Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# समर्पणम्

श्रीमदुपास्यतातपाणिङ्कजे यथाप्रज्ञं व्याख्यातया

सुधाऽऽख्यव्याख्ययाऽलङ्कृताऽसौ

सुश्रुतसंहिता सादरं

समर्पिता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीः ॥

# प्रस्तावना

शञ्चं नो मयश्च नो मा च न किञ्चनाममत् ।
क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ॥

विदितचरमदः सुरभारतीसमुपासकानामायुर्वेदतत्त्वविदां विदुषाम् । योऽयमायुर्वेदः ऋग्वेदस्यार्थवेदोपाङ्गभूतः प्रधानतमः । यतोऽथर्ववेदे भेषजपराणि बहूनि सूक्तानि दृश्यन्ते । अत एवाथर्ववेदस्य भिषक्शास्त्रे महीमहिमावलोक्यते । अयमायुर्वेदः शल्यशालाक्यकायभूतविद्याकौमारभृतगदरसायनवाजीकरणाख्यैरष्टभिरङ्गैर्विभक्तो दैवदुर्विपाकवशान्नामात्रेणावशिष्टोऽपि निखिलस्थावरजङ्गमादियोनिसमुद्भूतानां पाञ्चभौतिकदेहानां मनुष्यपशुपक्षिणां प्राणिनामाधिभौतिकाधिदैकाध्यात्मिकत्रिविधदुःखविध्वंसनाय विश्वस्मिञ् जागर्तितराम् ।

---

१ यथा कुष्ठद्रव्यविषये—उत्तमो मे कुष्ठास्युत्तमो नाम ते पिता । यक्ष्मं च सर्वं नाशय तक्मानं चारसाधि ॥ दोषभेदेन गण्डमालावर्णविषये--एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोणी द्वे । सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन ॥ पिप्पलीद्रव्यविषये--पिप्पली क्षिप्तभेषज्यू३तातिविद्धभेषजी । ता देवाः समकल्पयन्नियं जत्वा अलम् ॥....असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः । वातस्य भेषजीमथो क्षिप्तस्य भेषजीम् ॥ इति दिङ्मात्रमिह दर्शितविस्तरोऽथर्ववेदादौ द्रष्टव्यः ।

२ 'भिषजा पृष्टेनैव चतुर्णां वेदानामनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेया' इति चरकः । 'अथर्वान्तर्गतं सम्यगायुर्वेदं बुबोधवान्' इति भावमिश्रश्च ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* श्रीः *

# अथ सुश्रुतसंहिताया विषयानुक्रमः ।

## १ सूत्रस्थानम् ।

### १ प्रथमोऽध्यायः ।


| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| वेदोत्पत्तिनामाध्यायोपक्रमः | ... | १–२ | १–२ |
| धन्वन्तरिसमीपे औपधेनवादिशिष्याणामायुर्वेदाध्ययनार्थमागमनम् | ... | ३–४ | २–३ |
| धन्वन्तरिद्वारा औपधेनवादिशिष्याणां स्वागतम् | ... | ५ | ,, |
| आयुर्वेदस्य अथर्ववेदापाङ्गत्वकथनम् | ... | ६ | ,, |
| शल्यादिभेदेन आयुर्वेदस्याष्टौ विभागाः | ... | ७ | ३–४ |
| तत्र शल्य-शालाक्य-कायचिकित्सा-भूतविद्या-कौमारभृत्या-गदतन्त्र-रसायनतन्त्र-वाजीकरणतन्त्राणां क्रमशः सङ्क्षेपतो लक्षणम् | ... | ८-९ | ४–६ |
| शल्याङ्गप्रधानायुर्वेदोपदेशार्थं धन्वन्तरिसमीपे औपधेनवादानां प्रार्थना | ... | १०–११ | ,, |
| औपधेनवादिद्वारा सुश्रुताय प्रश्नाधिकारप्रदानम् | ... | १२–१३ | ,, |
| सुश्रुतं प्रत्यायुर्वेदप्रयोजनाख्यानम् | ... | १४ | ,, |
| आयुर्वेदनिरुक्तिः | ... | १५ | ,, |
| प्रत्यक्षादिप्रमाणद्वारा शल्यतन्त्रस्यानुकूल्यम् | ... | १६ | ,, |
| शल्यतन्त्रस्याद्यत्वनिरूपणम् | ... | १७ | ,, |
| आयुर्वेदतन्त्रेषु शल्यतन्त्रस्य श्रैष्ठ्यम् | ... | १८ | ,, |
| शल्यतन्त्रस्य प्रशंसा | ... | १९ | ४ |
| आयुर्वेदस्य गुरुपरम्पराप्रदर्शनम् | ... | २० | ,, |
| धन्वन्तरेरात्मपरिचयदानम् | ... | २१ | ,, |
| आयुर्वेदाधिष्ठानभूतपुरुषलक्षणम् | ... | २२ | ,, |
| व्याधीनां सामान्यवर्णनम् | ... | २३ | ,, |
| व्याधीनां चातुर्विध्यप्रदर्शनम् | ... | २४ | ७ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्क |
|---|---|---|
| चतुर्विधानामपि व्याधीनां निमित्तकथनम् | ... | २५ |
| व्याध्याश्रयनिरूपणम् | ... | २६ |
| व्याधीनां निग्रहकारणानि | ... | २७ |
| संशोधनादिष्वाहारस्य मुख्यता, तथा स्थावरजङ्गमप्रभेदेनौषधीनां द्वैविध्यवर्णनं च | ... | २८ |
| स्थावरौषधीनां चातुर्विध्यवर्णनम् | ... | २९ |
| जङ्गमौषधीनां चातुर्विध्यनिरूपणम् | ... | ३० |
| औषधीनां चिकित्सोपयोग्यङ्गवर्णनम् | ... | ३१ |
| पार्थिवौषधीनां वर्णनम् | ... | ३२ |
| कालकृतौषधीनां निरूपणम् | ... | ३३ |
| कालकृतौषधप्रयोजनम् | ... | ३४ |
| पूर्वोक्ताश्चतुर्विधौषध्यो व्याधीनां प्रकोपे प्रशमे च कारणीभूताः | | ३५ |
| आगन्तुव्याधीनामाश्रयभेदेन चिकित्सा | ... | ३६ |
| पूर्वं निर्दिष्टानां चतुर्णां ( व्याधिपुरुषौषधिक्रियाकालानाम् ) उपसंहारः | ... | ३७ |
| प्रथमाध्यायोक्तसङ्क्षिप्तार्थस्य चिकित्सितबीजत्वकथनम् | | ३८ |
| सुश्रुततन्त्रान्तर्गतस्थानाध्यायसंख्यावर्णनम् | ... | ४० |
| सुश्रुततन्त्राध्ययनफलम् | ... | ४१ |


## २ द्वितीयोऽध्यायः ।


| | |
|---|---|
| शिष्योपनयनीयनामाध्यायोपक्रमः | ... |
| शिष्यपरीक्षा | ... |
| आयुर्वेददीक्षाविधानम् | ... |
| आयुर्वेदाध्ययनाधिकारिनिरूपणम् | ... |
| शिष्यस्य कर्तव्यनिरूपणम् | ... |
| शिष्यविषये गुरोरात्मप्रवृत्तिनियमः | ... |
| व्याधिते वैद्यस्य कर्तव्यम् | ... |
| आयुर्वेदानध्ययनकालनिरूपणम् | ... |


## ३ तृतीयोऽध्यायः ।


| | |
|---|---|
| अध्ययनसम्प्रदानीयनामाध्यायोपक्रमः | ... |
| सूत्रादिप्रत्येकस्थानानामध्यायसंख्या | ... |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| सूत्रस्थानान्तर्गताध्यायनामानि | ... | ४-११ | १२ |
| सूत्रस्थानस्य निरुक्तिः | ... | १२ | १३ |
| निदानस्थानान्तर्गताध्यायनामानि | ... | १३-१४ | ,, |
| निदानस्थाननिर्वचनम् | ... | १४ | ,, |
| शारीरस्थानान्तर्गताध्यायनामानि | ... | १५-१६ | ,, |
| शारीरस्थानप्रयोजनम् | ... | १७ | ,, |
| चिकित्सास्थानान्तर्गताध्यायनामानि | ... | १८-२५ | १३-१४ |
| चिकित्सास्थाननिरुक्तिः | ... | २६ | ,,—,, |
| कल्पस्थानान्तर्गताध्यायनामानि | ... | २७-२८ | ,, |
| कल्पस्थाननिर्वचनम् | ... | २८ | ,, |
| उत्तरतन्त्रस्य प्रथमाध्यायस्य 'औपद्रविक' नामकरणे कारणम् | | २९-३० | ,, |
| शालाक्यतन्त्रान्तर्गताध्यायनामानि | ... | ३१-३४ | ,, |
| कौमारतन्त्रान्तर्गताध्यायनामानि | ... | ३५-३७ | १४-१५ |
| कायचिकित्साऽन्तर्गताध्यायनामानि | ... | ३८-४० | ,, |
| भूतविद्याऽध्यायनामानि | ... | ४१ | ,, |
| तन्त्रभूषणाध्यायनामानि | ... | ४२ | ,, |
| उत्तरतन्त्रस्य निरुक्तिः | ... | ४३ | ,, |
| अष्टाङ्गस्यायुर्वेदस्य सङ्क्षेपतस्तन्त्रद्वये निवेशः | ... | ४४-४६ | ,, |
| आयुर्वेदस्योपासितुर्वैद्यस्य राजार्हत्वम् | ... | ४७ | ,, |
| केवलं शास्त्रज्ञस्य कर्मनिष्णातस्य वा वैद्यस्य चिकित्साऽनधिकारित्वम् | ... | ४८-५२ | १५-१६ |
| शास्त्रकर्मोभयज्ञस्य वैद्यस्य प्रशंसा | ... | ५३ | ,, |
| आयुर्वेदशास्त्रस्याध्यापनाध्ययनप्रकारः | ... | ५४-५५ | १६-१७ |
| आयुर्वेदशास्त्राध्ययनसमाप्तौ शिष्यस्य कर्तव्यम् | ... | ५६ | ,, |


## ४ चतुर्थोऽध्यायः ।


| | | | |
|---|---|---|---|
| प्रभाषणीयनामाध्यायोपक्रमः | ... | १-२ | ,, |
| प्रभाषणस्य प्रयोजनम् | ... | ३-४ | १८ |
| एतच्छास्त्रव्याख्यानावश्यकता | ... | ५ | ,, |
| शास्त्रान्तरेषु वर्णितविषयाणां विज्ञानोपायः | ... | ६-७ | १८-१९ |
| गुरुमुखादधीतायुर्वेदा एव 'वैद्य' संज्ञाऽधिकारिणः | ... | ८ | ,, |
| औपधेनवादितन्त्राणामन्यसमानतन्त्रेषु प्रधानतानिर्देशः | | ९ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः — | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| **५ पञ्चमोऽध्यायः ।** | | | |
| अग्रोपहरणीयनामाध्यायोपक्रमः | ... | १–२ | १९ |
| चिकित्साकर्मणस्त्रैविध्यम् | ... | ३ | ,, |
| शस्त्रकर्मणः प्राधान्यम् | ... | ४ | २० |
| शस्त्रकर्मणोऽष्टौ भेदाः | ... | ५ | ,, |
| शस्त्रकर्मण्युपहरणीयान्युपकरणानि | ... | ६ | ,, |
| शस्त्रक्रियाया उपदेशः | ... | ७ | २०–२१ |
| शस्त्रकर्मणि प्रशस्तव्रणलक्षणम् | ... | ८–९ | ,, |
| शस्त्रकर्मणि वैद्यस्य गुणाः | ... | १० | २१–२२ |
| एकेन व्रणेन पाकस्थानस्याशुद्धावन्येऽपि व्रणाः कर्तव्याः | ... | ११–१२ | ,, |
| तिर्यक्छेदकर्तुं स्थानानि | ... | १३–१४ | ,, |
| उक्तस्थानादन्यत्र तिर्यक्छेदे हानिः | ... | १५ | ,, |
| मूढगर्भादिष्वभुक्तवतः शस्त्रकर्म कर्तव्यम् | ... | १६ | ,, |
| शस्त्रकर्मानन्तरमुपचारविधानम् | ... | १७ | २२–२३ |
| व्रणधूपनार्थं द्रव्याणि | ... | १८ | ,, |
| व्रणिनां रक्षाकर्म | ... | १९–३३ | २३–२४ |
| कृतरक्षाणां व्रणिनां कर्तव्यम् | ... | ३४ | ,, |
| व्रणबन्धनमोक्षणकालविवेचनम् | ... | ३५–३६ | ,, |
| व्रणिनां कषायलेपनबन्धनाहारादिविधानम् | ... | ३७ | ,, |
| व्रणस्य रोपणचिकित्सा कदा कार्या ? | ... | ३८–३९ | २५ |
| कालविशेषेण व्रणे बन्धमोक्षणविवेकः | ... | ४० | ,, |
| अतिपातिषु रोगेषु पूर्वोक्तविध्यकरणे दोषाभावः | ... | ४१ | ,, |
| शस्त्रजनितव्यथाशान्त्यर्थं घृतपरिषेकः | ... | ४२ | ,, |
| **६ षष्ठोऽध्यायः ।** | | | |
| ऋतुचर्यानामाध्यायोपक्रमः | ... | १–२ | ,, |
| कालशब्दस्य निरुक्तिः | ... | ३ | २६ |
| संवत्सरात्मनः कालस्य गतिविशेषेण निमेषादि-विभागः | ... | ४ | ,, |
| निमेषादीनां लक्षणानि | ... | ५ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| षड्ऋतूनां विभागाः | ... | ६ | २६ |
| दक्षिणोत्तरभेदेनायनविभागः | ... | ७ | २७ |
| चन्द्रसूर्यवायव एव प्रजापालने कारणम् | ... | ८ | ,, |
| युगवर्णनम् | ... | ९ | ,, |
| संशोधनाश्रयो वर्षादिऋतुविभागः | ... | १० | ,, |
| वर्षादिषु पित्तादीनां चयप्रकोपौ कथम्भवतः | ... | ११-१२ | २७-२८ |
| प्रकुपितानां वातादिदोषाणां संशोधनार्थमुपदेशः | ... | १३ | २९ |
| वातादिदोषाणां स्वाभाविकसंशमनकालः | ... | १४ | ,, |
| सांवत्सरिकलक्षणानामहोरात्रेऽप्यतिदेशः | ... | १५ | ,, |
| अव्यापन्नेष्वृतुषु औषधादीनां गुणशालित्वम् | ... | १६ | ,, |
| ऋतूनां विकृतिकारणत्वम् | ... | १७ | ३० |
| विकृतौषधीनामुपयोगेन रोगोत्पत्तिः | ... | १८ | ,, |
| विकृतर्तूनां चिकित्सासूत्रम् | ... | १९ | ,, |
| ऋतुव्यापद्भ्योरन्यैरपि कारणैर्व्याधिसम्भवः | ... | २० | ,, |
| ऋतुविकृतिजन्यव्याधीनां चिकित्सा | ... | २१ | ३०-३१ |
| अव्यापन्नानामृतूनां लक्षणम् | ... | २२-३७ | ३१-३२ |
| ऋतुव्यापदां सङ्क्षेपेण वर्णनम् | ... | ३८ | ,, |
| वसन्तादिष्वृतुषु दोषहरणव्यवस्था | ... | ३९ | ३३ |


## ७ सप्तमोऽध्यायः ।


| | | | |
|---|---|---|---|
| यन्त्रविधिनामाध्यायोपक्रमः | ... | १-२ | ,, |
| यन्त्राणां गणना | ... | ३ | ,, |
| यन्त्राणां सामान्यलक्षणम् | ... | ४ | ,, |
| यन्त्राणां षट् प्रकाराः | ... | ५ | ,, |
| यन्त्राणामवान्तरभेदाः | ... | ६ | ३४ |
| यन्त्रनिर्माणद्रव्यम् | ... | ७ | ,, |
| स्वस्तिकयन्त्राणां सङ्क्षेपेणाकृतिनिरूपणम् | ... | ८-९ | ,, |
| स्वस्तिकयन्त्राणां नामलक्षणकर्माणि | ... | १० | ३४-३५ |
| सन्दंशयन्त्राणां नामस्वरूपकर्माणि | ... | ११ | ,, |
| तालयन्त्राणां नामस्वरूपकर्माणि | ... | १२ | ,, |
| नाडीयन्त्राणां नामस्वरूपकर्माणि | ... | १३ | ३५-३६ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| शलाकायन्त्राणां नामस्वरूपकर्माणि | ... | १४ | ३७ |
| उपयन्त्राणां नामस्वरूपकर्माणि | ... | १५-१६ | ३८ |
| यन्त्रकर्माणि | ... | १७-१८ | ,, |
| यन्त्रदोषाः | ... | १९ | ,, |
| प्रशस्तयन्त्राणि | ... | २० | ,, |
| यन्त्राणां विषयभेदः | ... | २१ | ३९ |
| यन्त्रेषु कङ्कमुखस्य प्राधान्यम् | ... | २२ | ,, |


## ८ अष्टमोऽध्यायः ।


| | | | |
|---|---|---|---|
| शस्त्रावचारणीयनामाध्यायोपक्रमः | ... | १-२ | ,, |
| विंशतिः शस्त्राणि | ... | ३ | ,, |
| शस्त्राणामष्टविधकर्मणि विषयभेदः | ... | ४ | ४२ |
| शस्त्रकर्मणि शस्त्रग्रहणविधानम् | ... | ५ | ,, |
| सङ्क्षेपतः शस्त्राकृतिनिदर्शनम् | ... | ६ | ,, |
| शस्त्राणां प्रमाणानि | ... | ७ | ४३ |
| शस्त्राणां गुणाः | ... | ८ | ,, |
| शस्त्राणां दोषाः | ... | ९ | ,, |
| शस्त्राणां धारानिरूपणम् | ... | १० | ,, |
| आहरणे एषणे च धारायां भेदः | ... | ११ | ,, |
| शस्त्राणां त्रिविधयापनाया निरूपणम् | ... | १२ | ,, |
| शस्त्रनिशानार्था शिला | ... | १३ | ,, |
| शस्त्रकर्मणि कीदृशस्य शस्त्रस्योपयोगः | ... | १४ | ४४ |
| अनुशस्त्राणि | ... | १५ | ,, |
| अनुशस्त्राणां विषयाः | ... | १६-१८ | ,, |
| शस्त्राणां गुणसम्पत्तिकारणम् | ... | १९ | ,, |
| वैद्यैः शस्त्रपरिचयोऽवश्यं कार्यः | ... | २० | ४४-४५ |


## ९ नवमोऽध्यायः ।


| | | | |
|---|---|---|---|
| योग्यासूत्रीयनामाध्यायोपक्रमः | ... | १-२ | ,, |
| योग्याकरणार्थमावश्यकता | ... | ३ | ,, |
| छेद्यादिशस्त्रकर्मणि योग्याप्रदर्शनम् | ... | ४ | ४५-४६ |
| अनिर्दिष्टेष्वपि योग्याहेषु फलपुष्पादिषु योग्या प्रयोक्तव्या | | ५-६ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| **१० दशमोऽध्यायः ।** | | | |
| विशिखाऽनुप्रवेशनीयनामाध्यायोपक्रमः | ... | १–२ | ४६ |
| कीदृशस्य वैद्यस्य चिकित्सायामधिकारः | ... | ३ | ,, |
| व्याधिविज्ञानस्य षट् साधनानि | ... | ४ | ४७ |
| श्रोत्र–त्वक्–चक्षुः–जिह्वा–घ्राण–प्रश्नद्वारा व्याधि-विज्ञानप्रकारः | ... | ६ | ,, |
| अपरीक्षितेषु रोगेषु वैद्यस्य किंकर्तव्यविमूढता | ... | ६ | ४७–४८ |
| साध्ययाप्यासाध्येषु व्याधिषु कर्तव्यम् | ... | ७ | ,, |
| केषाञ्चित्साध्या अपि व्याधयो दुश्चिकित्स्याः | ... | ८ | ,, |
| वैद्यस्य परदारासम्पर्कादिनिषेधः | ... | ९ | ,, |
| **११ एकादशोऽध्यायः ।** | | | |
| क्षारपाकविधिनामाध्यायोपक्रमः | ... | १–२ | ,, |
| शस्त्रानुशस्त्रेभ्यः क्षारस्य प्राधान्यम् | ... | ३ | ४८–४९ |
| क्षारस्य निर्वचनम् | ... | ४ | ,, |
| क्षारस्य गुणकर्माणि | ... | ८ | ,, |
| क्षारस्य द्वैविध्यम् | ... | ६ | ,, |
| तत्र प्रतिसारणीयाख्यक्षारस्य विषयः | ... | ७ | ४९–५० |
| पानीयाख्यक्षारस्य विषयः | ... | ८ | ,, |
| क्षारचिकित्साया अयोग्या रोगिणः | ... | ९ | ,, |
| पानीयक्षारस्य पाकविधानम् | ... | १० | ,, |
| प्रतिसारणीयक्षारस्य निर्माणविधानम् | ... | ११–१२ | ५०–५२ |
| पाक्यसञ्ज्ञकतीक्ष्णक्षारनिर्माणप्रकारः | ... | १३ | ,, |
| व्याधिबलाबलमवलोक्य क्षारप्रयोगः | ... | १४ | ,, |
| मृदुक्षारे बलाधानार्थं क्षारोदकप्रक्षेपः | ... | १५ | ,, |
| क्षारस्य गुणाः | ... | १६ | ,, |
| क्षारस्य दोषाः | ... | १७ | ,, |
| क्षारप्रतिसारणविधिः | ... | १८ | ५२–५३ |
| क्षारेण सम्यग्दग्धलक्षणम् | ... | १९ | ,, |
| सम्यग्दग्धानन्तरकर्म | ... | २०–२१ | ,, |
| क्षारदग्धवेदना अम्लेन शाम्यति | ... | २२–२५ | ५३–५४ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| क्षारस्य सम्यग्दग्धहीनदग्धातिदग्धलक्षणानि | ... | २६ | ६४ |
| क्षारदग्धस्य व्रणस्य चिकित्सा | ... | २७ | ,, |
| द्विविधस्यापि क्षारस्य प्रतिषेधविषयः | ... | २८ | ,, |
| प्रदेशविशेषेण क्षारस्य निषेधः | ... | २९ | ,, |
| अवस्थाविशेषेण क्षारस्य निषेधः | ... | ३० | ६४–६६ |
| सम्यक् प्रयुक्तस्य क्षारस्य महागुणशालित्वम् | ... | ३१ | ,, |
| **१२ द्वादशोऽध्यायः ।** | | | |
| अग्निकर्मविधिनामाध्यायोपक्रमः | ... | १–२ | ,, |
| अग्निकर्ममहत्त्वम् | ... | ३ | ,, |
| अग्न्यवचारणोपकरणानि | ... | ४ | ६६–६६ |
| अग्न्यवचारणस्य सापवादः कालः | ... | ५ | ,, |
| सर्वाग्निकर्माङ्गविधानम् | ... | ६ | ,, |
| अग्निकर्मण्येकीयमतम् | ... | ७ | ,, |
| त्वगादिष्वग्निदाहस्य पृथक्पृथग्लक्षणम् | ... | ८ | ,, |
| रोगभेदाच्छरीरावयवेष्वग्न्यवचारणविधानम् | ... | ९ | ,, |
| अग्निकर्मविषयाः | ... | १० | ६७ |
| दाहकर्मणो वलयाद्या आकृतिभेदाः | ... | ११ | ,, |
| रोगस्थानमर्मबलादिकमवेक्ष्य अग्निकर्मनिश्चेतव्यम् | ... | १२ | ,, |
| सम्यग्दग्धचिकित्सा | ... | १३ | ,, |
| अग्निदाहानधिकारिणः | ... | १४ | ,, |
| स्नेहदग्धलक्षणम् | ... | १५ | ,, |
| अग्निदग्धस्य चातुर्विध्यम् | ... | १६ | ६८ |
| अग्निदग्धस्य सार्वदैहिकलक्षणं तत्सम्प्राप्तिश्च | ... | १७–१८ | ,, |
| प्लुष्टदग्धस्य चिकित्सा | ... | १९–२१ | ,, |
| दुर्दग्धस्य चिकित्सा | ... | २२ | ६९ |
| सम्यग्दग्धे चिकित्सा | ... | २३–२४ | ,, |
| अतिदग्धे चिकित्सा | ... | २५–२६ | ,, |
| सर्वाग्निदग्धव्रणरोपणार्थं घृतम् | ... | २७–२८ | ,, |
| स्नेहदग्धे चिकित्सा | ... | २९ | ,, |
| धूमोपहतलक्षणं तच्चिकित्सा च | .... | ३०–३७ | ७० |
| उष्णवातातपविद्युद्भिर्दग्धस्य चिकित्सा | ... | ३८–३९ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| **१३ त्रयोदशोऽध्यायः।** | | | |
| जलौकाऽवचारणीयनामाध्यायोपक्रमः | ... | १-२ | ६१ |
| जलौकाविषयः | ... | ३ | ,, |
| जलौकाप्रसङ्गेन शृङ्गस्यालाब्वाश्च विषयः | ... | ४ | ,, |
| वातादिदुष्टे रक्ते शृङ्गाद्यवचारणम् | ... | ६-७ | ६१-६२ |
| शृङ्गालाबुकयोः प्रयोगः | ... | ८ | ,, |
| जलौकश्शब्दनिरुक्तिः | ... | ९ | ,, |
| जलौकसां संख्यानिर्देशः | ... | १० | ,, |
| सविषा जलौकसः | ... | ११ | ,, |
| निर्विषा जलौकसः | ... | १२ | ६२-६३ |
| निर्विषजलौकसां प्रशस्तक्षेत्राणि, क्षेत्रभेदेन सविष-निर्विषत्वं च | ... | १३-१४ | ,, |
| जलौकसां ग्रहणोपायः | ... | १५ | ,, |
| जलौकसां पोषणप्रकारः | ... | १६ | ६३-६४ |
| निषिद्धा जलौकसः | ... | १७ | ,, |
| जलौकसामवचारणम् | ... | १८ | ,, |
| रोगाधिष्ठाने तासां ग्रहणलक्षणम् | ... | १९ | ,, |
| जलौकसां विशुद्धरक्तादानविज्ञानोपायः | ... | २० | ,, |
| रक्तसृग्जलौकसां रक्तापहरणविधानम् | ... | २१ | ६४-६५ |
| शोणितावसेचनोत्तरकर्माणि | ... | २२ | ,, |
| उपसंहारश्लोकः | ... | २३ | ,, |
| **१४ चतुर्दशोऽध्यायः।** | | | |
| शोणितवर्णनीयनामाध्यायोपक्रमः | ... | १-२ | ,, |
| शोणितोत्पत्तेर्हेतुभूतरसवर्णनम् | ... | ३ | ६५-६६ |
| शोणितोत्पत्तिवर्णनम् | ... | ४-५ | ,, |
| शोणितादार्तवोत्पत्तिस्तदुत्पत्तिक्षयकालश्च | ... | ६ | ,, |
| शोणितार्तवयोः स्वभावतो भेदः | ... | ७ | ,, |
| शोणितस्वभावे मतान्तरम् | ... | ८ | ,, |
| शोणितस्य पाञ्चभौतिकत्वदर्शनम् | ... | ९ | ६६-६७ |
| शोणितादिधातूनां क्रमेणोत्पत्तिवर्णनम् | ... | १० | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| रसः सर्वधातूनां पोषकः | ... | ११-१२ | ६८ |
| रसशब्दनिर्वचनम् | ... | १३ | ,, |
| रसस्यैकैकस्मिन् धातावस्थानकालः | ... | १४-१५ | ,, |
| शरीरे त्रिविधा रसगतिः | ... | १६ | ,, |
| वाजीकरिणामौषधीनां शीघ्रं शुक्रविरेचकत्वम् | ... | १७ | ,, |
| बालानां शुक्रादर्शने युक्तिः | ... | १८ | ६९ |
| वृद्धावस्थायामन्नरसस्यापोषकत्वम् | ... | १९ | ,, |
| धातुशब्दनिर्वचनम् | ... | २० | ,, |
| विकृतरक्तस्य दोषभेदेन लक्षणानि | ... | २१ | ,, |
| शुद्धशोणितलक्षणम् | ... | २२ | ,, |
| रक्तविस्राव्यानामतिदेशेन कथनम् | ... | २३ | ,, |
| अविस्राव्या रोगिणः | ... | २४ | ,, |
| रक्तमोक्षणस्य द्वैविध्यम् | ... | २५ | ७० |
| प्रच्छानविधानम् | ... | २६ | ,, |
| शोणितस्रावव्यायोगे कारणानि | ... | २७-२८ | ,, |
| दुष्टरक्तस्याविस्रावणे दोषाः | ... | २९ | ,, |
| रक्तातियोगस्तज्जन्या व्यापदश्च | ... | ३० | ,, |
| रक्तविस्रावणस्य योग्यसमयः | ... | ३१ | ,, |
| शुद्धरक्तस्य सम्यग्विस्रावितस्य च लक्षणम् | ... | ३२-३३ | ७०-७१ |
| रक्तविस्रावणफलम् | ... | ३४ | ,, |
| अप्रवृत्तरक्तस्य प्रवर्तनम् | ... | ३५ | ,, |
| रक्तातिप्रवृत्तौ रक्तरोधनोपायाः | ... | ३६-३८ | ७१-७२ |
| रक्तस्रावावरोधाय चत्वार उपायाः | ... | ३९-४२ | ,, |
| रक्तस्रावेऽतिक्रमनिषेधः | ... | ४३-४४ | ,, |
| शोणितमोक्षणे पश्चात्कर्म | ... | ४५ | ,, |


## १५ पञ्चदशोऽध्यायः ।


| | | | |
|---|---|---|---|
| दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयनामाध्यायोपक्रमः | ... | १-२ | ७३ |
| दोषस्य क्षयवृद्धिवर्णने कारणम् | ... | ३ | ,, |
| प्रकृतिस्थानां वातादिदोषाणां कर्म | ... | ४ | ७३-७४ |
| प्रकृतिस्थानां धातूनां कर्म | ... | ६ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| मलानां स्वाभाविकं कर्म | ... | ६ | ७४ |
| उपधातूनां स्वाभाविकं कर्म | ... | ७ | ,, |
| धातूनां परिरक्षणोपदेशः | ... | ८ | ,, |
| वातादिदोषाणां क्षयलक्षणम् | ... | ९ | ,, |
| दोषाणां क्षये चिकित्सा | ... | १० | ,, |
| धातुक्षयलक्षणानि | ... | ११ | ७५ |
| धातुक्षये सङ्क्षेपतस्तच्चिकित्सा | ... | १२ | ,, |
| मलक्षयलक्षणं तच्चिकित्सा च | ... | १३ | ,, |
| उपधातुक्षयलक्षणं चिकित्सा च | ... | १४ | ,, |
| अतिवृद्धदोषाणां लक्षणम् | ... | १५ | ७६ |
| अतिवृद्धधातूनां लक्षणम् | ... | १६ | ,, |
| अतिवृद्धमलानां लक्षणम् | ... | १७ | ,, |
| अतिवृद्धोपधातूनां लक्षणम् | ... | १८ | ,, |
| अतिवृद्धदोषधातुमलादिचिकित्सा | ... | १९ | ,, |
| अतिवृद्धः पूर्वो धातुः परं वर्धयति | ... | २० | ७६-७७ |
| बल( ओजो )लक्षणम् | ... | २१ | ,, |
| ओजसः स्वाभाविकं कर्म | ... | २२ | ,, |
| ओजसो गुणनिर्देशः | ... | २३-२४ | ,, |
| ओजसः क्षयकारणानि | ... | २५ | ७८ |
| ओजसस्तिस्रो व्यापदः | ... | २६-३० | ,, |
| ओजःक्षयचिकित्सा | ... | ३१ | ,, |
| दोषधातुमलक्षीणः स्वयोनिवर्द्धनं यदभिकाङ्क्षति तत्तस्मै दापयेत् | ... | ३२-३४ | ७८-७९ |
| मेदोवृद्धिनिदानं तच्चिकित्सा च | ... | ३५ | ,, |
| कार्श्यलक्षणं तच्चिकित्सा च | ... | ३६ | ८० |
| मध्यशरीरस्य कारणं गुणाश्च | ... | ३७ | ,, |
| स्थूलकृशयोर्दोषवत्त्वं मध्यमस्य गुणवत्त्वं च | ... | ३८ | ,, |
| धातुमलक्षये दोषा एव हेतवः | ... | ३९ | ,, |
| दोषधातुमलानां परिमाणानिर्देशे कारणम् | ... | ४० | ८०-८१ |
| स्वास्थ्यं विना दोषसमत्वज्ञानेऽशक्यता | ... | ४१ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| दोषादिक्षयवृद्धिलक्षणमनुमानेन ज्ञातव्यम् | ... | ४२ | ८१ |
| स्वस्थास्वस्थविषये वैद्यस्येतिकर्तव्यता | ... | ४३ | ,, |
| स्वस्थस्य लक्षणम् | ... | ४४ | ,, |

१६ षोडशोऽध्यायः ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| कर्णव्यधबन्धविधिनामाध्यायोपक्रमः | ... | १-२ | ,, |
| कर्णव्यधविधानम् | ... | ३ | ८१-८२ |
| अन्यदेशविद्धज्ञानोपायः | ... | ४ | ,, |
| कर्णसिराव्यधे दोषकथनम् | ... | ५ | ,, |
| दुर्विद्धकर्णस्य व्यापच्चिकित्सा च | ... | ६ | ,, |
| सम्यग्विद्धे पश्चात्कर्म | ... | ७ | ,, |
| कर्णोपद्रवशान्ते वर्द्धनोपायः | ... | ८ | ,, |
| छिन्नकर्णसन्धानम् | ... | ९ | ८३ |
| कर्णवेधस्य सङ्क्षेपतः पञ्चदशाकृतयः | ... | १० | ,, |
| केषाञ्चित्कर्णबन्धानां सन्धानसूत्रम् | ... | ११-१४ | ८४ |
| कर्णबन्धविधानम् | ... | १५ | ८४-८५ |
| कर्णबन्धे परिहार्याणि | ... | १६ | ,, |
| कीदृशः कर्णः सन्धातुमनर्हः | ... | १७ | ,, |
| कर्णव्यधानन्तरं विशेषविधिः | ... | १८ | ,, |
| व्रणे रूढे कर्णस्य पुनर्वर्धनम् | ... | १९-२३ | ८५-८६ |
| अरूढव्रणकर्णस्य वर्द्धने दोषः | ... | २४ | ,, |
| कथम्भूतः कर्णो वर्द्धनीयः | ... | २५ | ,, |
| कर्णबन्धानामपरिसंख्येयत्वम् | ... | २६ | ,, |
| कर्णपालिरोगास्तच्चिकित्सा च | ... | २७-४६ | ८६-८८ |
| छिन्ननासिकायाः सन्धानविधिः | ... | ४७-५१ | ,, |
| छिन्नौष्ठस्य सन्धानविधानम् | ... | ५२ | ,, |

१७ सप्तदशोऽध्यायः

| | | | |
|---|---|---|---|
| आमपक्वैषणीयनामाध्यायोपक्रमः | ... | १-२ | ८९ |
| व्रणशोफस्य सामान्यलक्षणम् | ... | ३ | ,, |
| दोषभेदेन शोफस्य विशेषलक्षणानि | ... | ४ | ,, |
| आमपच्यमानपक्वशोफलक्षणम् | ... | ५-६ | ८९-९० |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| शोफस्यामाद्यवस्थाज्ञातार एव वैद्यः, अन्ये तस्कराः | | ७ | ९० |
| एकदोषारब्धानामपि शोफानां पाककाले सर्वेषां दोषाणां मिश्रणम् | ... | ८–९ | ९०–९१ |
| आमस्य छेदनं पक्वस्य चोपेक्षा न कार्या | ... | १०–११ | ,, |
| शस्त्रकर्मणि प्राककर्म | ... | १२–१४ | ,, |
| शोफेऽप्रतिक्रियमाणे दोषः | ... | १५ | ,, |
| प्रतिक्रियमाणेऽपि पक्वानामुपक्रमसाफल्यम् | ... | १६ | ,, |
| पक्वशोफस्योपक्षणे दोषः | ... | १७ | ९१–९२ |
| शोफे विस्लापनाद्युपक्रमाः | ... | १८–१९ | ,, |


## १८ अष्टादशोऽध्यायः ।


| | | | |
|---|---|---|---|
| व्रणालेपनबन्धविधिनामाध्यायोपक्रमः | ... | १–२ | ,, |
| व्रणोपक्रमेष्वालेपबन्धयोः प्राधान्यम् | ... | ३ | ९२–९३ |
| प्रतिलोमकृतालेपनफलम् | ... | ४ | ,, |
| शुष्यमाणो लेपो नोपेक्षणीयः | ... | ५ | ,, |
| प्रलेपप्रदेहालेपभेदेन लेपस्य त्रैविध्यम् | ... | ६ | ,, |
| आलेपस्य कालावधिः फलं च | ... | ७–१० | ,, |
| आलेपतनुत्वस्य प्रमाणम् | ... | ११ | ९४ |
| आलेपावचारणविषये केचन नियमाः | ... | १२–१६ | ,, |
| व्रणबन्धन द्रव्याणि | ... | १७ | ९४–९५ |
| चतुर्दशबन्धविशेषाणां नामतो निर्देशः | ... | १८ | ,, |
| पूर्वोक्तबन्धानां विषयाः | ... | १९ | ९६ |
| बन्धयन्त्रणभेदाः | ... | २० | ,, |
| बन्धावचारणविधिः | ... | २१ | ,, |
| अतिस्निग्धरूक्षवर्तिकल्कनियमनम् | ... | २२ | ,, |
| व्रणायतनविशेषाद् बन्धस्य त्रैविध्यम् | ... | २३ | ,, |
| गाढशिथिलसमबन्धानां लक्षणानि | ... | २४ | ९७ |
| व्रणायतनविशेषे बन्धविशेषयोजनम् | ... | २५ | ,, |
| दोषभेदेन बन्धभेदः | ... | २६ | ,, |
| दोषकालविशेषाद् बन्धे विशेषता | ... | २७ | ,, |
| गाढादिस्थानेऽन्यथाकृतानां बन्धानां दोषाः | ... | २८ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| यथोचितबन्धगुणाः | ... | २९ | ९७ |
| बन्धं विना व्रणदोषाः | ... | ३० | ,, |
| बन्धस्यात्यन्तगुणवत्त्वम् | ... | ३१-३२ | ९८ |
| अबन्ध्या रोगाः | ... | ३३ | ,, |
| कुष्ठाग्निदग्धादीनां बन्धनिषेधः | ... | ३४ | ,, |
| देशदोषादीन् ज्ञात्वा बन्धनिश्चयः कार्यः | ... | ३५-३६ | ,, |
| व्रणबन्धविधानम् | ... | ३७-४२ | ९८-९९ |
| व्रणबन्धगुणाः | ... | ४३-४६ | ,, |


## १९ एकोनविंशोऽध्यायः।


| | | | |
|---|---|---|---|
| व्रणितोपासनीयनामाध्यायोपक्रमः | ... | १-२ | ,, |
| व्रणितयोग्यागारनिर्माणम् | ... | ३-४ | ९९-१०० |
| व्रणिनः शय्याकथनम् | ... | ५-६ | ,, |
| व्रणिनः समीपे सुहृन्निवासफलम् | ... | ७-८ | ,, |
| व्रणिनो दिवास्वापनिषेधः | ... | ९-१० | ,, |
| उत्थानसंवेशनादिषु व्रणरक्षा कार्या | ... | ११ | ,, |
| व्रणिनश्चतुर्विधकायचेष्टानिषेधः | ... | १२-१३ | ,, |
| व्रणिनो गम्यस्त्रीणां दर्शनादिनियमनम् | ... | १४-१५ | १००-१०१ |
| व्रणिनोऽत्यन्तदोषकरा आहाराः | ... | १६-१७ | ,, |
| व्रणिनो मद्यपाननियमनम् | ... | १८-१९ | ,, |
| व्रणिनोऽसेव्यवातातपादिवर्णनम् | ... | २० | ,, |
| व्रणरोगिभिरेतत्त्यागे हेतुः | ... | २१-२२ | १०१-१०२ |
| व्रणरोगिभिर्विशिष्टागन्तुबाधा परिहार्या | ... | २३ | ,, |
| राक्षसभूतादिभ्यः स्वरक्षार्थं धूपबल्युपहारादिदानम् | | २४ | ,, |
| राक्षसभूतादिसन्तर्पणफलम् | ... | २५ | ,, |
| मनसः प्रसन्नतायाः फलम् | ... | २६ | ,, |
| सायं प्रातर्वेदमन्त्रैर्व्याधितस्य रक्षा कार्या | ... | २७ | ,, |
| व्रणरोगिणो रक्षार्थं धूपः | ... | २८ | ,, |
| व्रणिनः शिरोधार्यछत्रातिच्छत्राद्योषधिवर्णनम् | ... | २९ | १०२-१०३ |
| व्यजनवीजनादिभिर्व्रणस्य रक्षा | ... | ३० | ,, |
| पूर्वोक्तरक्षोघ्नविधेः फलम् | ... | ३१ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| व्रणरोगिणो हितकरा आहाराः | ... | ३२–३४ | १०३ |
| यथोक्ताहाराचारनियमितस्य फलम् | ... | ३५–३७ | ,, |

२० विंशतितमोऽध्यायः ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| हिताहितीयनामाध्यायोपक्रमः | ... | १–२ | १०४ |
| हिताहितविषयेऽन्यमतम् | ... | ३ | ,, |
| एकान्तहितान्येकान्ताहितानि च द्रव्याणि | ... | ४ | ,, |
| सर्वप्राणिहितकररक्तशाल्याद्याहारवर्गः | ... | ५ | ,, |
| हितविहारवर्णनम् | ... | ६ | ,, |
| हिताहितप्रदर्शनम् | ... | ७ | ,, |
| संयोगतोऽहितानि | ... | ८ | १०५ |
| विरुद्धद्रव्यस्यापि क्वचित्प्रयोगः | ... | ९ | ,, |
| स्वस्थव्यक्तावेव एकान्तहिताहितत्वेन व्यवस्था | ... | १०–१२ | ,, |
| संयोगतोऽहितद्रव्याणां वर्णनम् | ... | १३ | १०५–१०६ |
| कर्मविरुद्धद्रव्याणां वर्णनम् | ... | १४ | ,, |
| मानविरुद्धद्रव्याणां वर्णनम् | ... | १५ | ,, |
| वीर्यतो विपाकतश्च विरुद्धरसद्वन्द्वानि | ... | १६ | १०६–१०७ |
| अतियोगयुक्तानि स्निग्धादिद्रव्याण्यप्यहितानि भवन्ति | | १७–१८ | ,, |
| विरुद्धरसवीर्यवतां द्रव्याणां सेवने व्यापदः | ... | १९ | ,, |
| अहितस्य सामान्यलक्षणम् | ... | २० | ,, |
| विरुद्धाशनजन्यरोगप्रतिक्रिया | ... | २१ | ,, |
| केषाञ्चिद् विरुद्धाशनमप्यहिताय न भवति | ... | २२ | १०७–१०८ |
| दिग्भेदेन वायुगुणवर्णनम् | ... | २३–३० | ,, |

२१ एकविंशतितमोऽध्यायः ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| व्रणप्रश्ननामाध्यायोपक्रमः | ... | १–२ | १०९ |
| वातपित्तकफा एव शरीरोत्पत्तिस्थितिप्रलयकारणानि | ... | ३–४ | ,, |
| वातादीनां निर्वचनम् | ... | ५ | ,, |
| प्रकृतिस्थानां वातादिदोषाणां स्थानानि | ... | ६–७ | १०९–११० |
| कफपित्तवातानां देहधारकत्वम् | ... | ८ | ,, |
| अग्निपित्तयोः परस्परं भेदविमर्शः | ... | ९ | १११ |
| पञ्चविधपित्तवर्णनम् | ... | १० | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| पित्तस्य चिकित्सोपयोगिस्वलक्षणम् | ... | ११ | ११२ |
| पञ्चविधश्लेष्मणः स्थानकर्माणि | ... | १२-१४ | ,, |
| श्लेष्मणश्चिकित्सोपयोगिस्वलक्षणम् | ... | १५ | ११२-११३ |
| रक्तस्थानकथनम् | ... | १६ | ,, |
| रक्तस्य स्वलक्षणम् | ... | १७ | ,, |
| दोषसञ्चयलक्षणानि | ... | १८ | ,, |
| वातप्रकोपणद्रव्याणि | ... | १९ | ,, |
| वातप्रकोपणकालः | ... | २० | ११४ |
| पित्तप्रकोपणानि | ... | २१ | ,, |
| पित्तप्रकोपकालः | ... | २२ | ,, |
| कफप्रकोपणानि | ... | २३ | ,, |
| कफप्रकोपकालः | ... | २४ | ,, |
| शोणितप्रकोपकारणानि | ... | २५ | ११४-११५ |
| शोणितप्रकोपकालः | ... | २६ | ,, |
| दोषाणां प्रकोपलक्षणानि | ... | २७ | ,, |
| प्रकुपितदोषाणां प्रसराख्यप्रकोपविशेषस्य लक्षणानि | ... | २८ | ११५-११६ |
| प्रकुपितो दोषो यत्र प्रसरति तत्र रोगमुत्पादयति | ... | २९-३० | ,, |
| प्रसरेण अन्यस्थानगतदोषस्य प्रतीकारः | ... | ३१ | ,, |
| दोषाणां प्रसरणलक्षणानि | ... | ३२ | ,, |
| दोषाणां स्थानसंश्रयवर्णनम् | ... | ३३ | ११६-११७ |
| व्याधीनां व्यक्त्यवस्थाकथनम् | ... | ३४ | ,, |
| व्याधीनां भेदावस्था | ... | ३५ | ,, |
| व्याधीनां सञ्चयप्रकोपादिविज्ञ एव वैद्यो भवति | ... | ३६ | ११८ |
| सञ्चयावस्थायां दोषाहरणे गुणः | ... | ३७ | ,, |
| दोषद्वयसंयोगे अंशांशबलविकल्पेनानुबन्धानुबन्धिभावः | | ३८ | ,, |
| संसर्गसन्निपातयोश्चिकित्सासूत्रम् | ... | ३९ | ,, |
| व्रणशब्दनिर्वचनम् | ... | ४० | ११९ |


## २२ द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।


| | | | |
|---|---|---|---|
| व्रणास्रावविज्ञानीयनामाध्यायोपक्रमः | ... | १-२ | ११९ |
| अष्टव्रणाधिष्ठानदर्शनम् | ... | ३ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| सुखसाध्यदुःखसाध्यव्रणाः | ४ | ११९ |
| व्रणानामाकृतयः | ५ | ११९–१२० |
| व्रणानां शीघ्रं संरोहणे प्रदुष्टौ च कारणम् | ६ | ,, |
| दुष्टव्रणानां लिङ्गानि | ७ | ,, |
| सर्वेषां व्रणानामास्रावर्णनम् | ८ | १२०–१२१ |
| स्थानभेदाद् व्रणास्रावस्य लक्षणमसाध्यत्वं च | ९–१० | १२२ |
| सकलव्रणवेदनाकथनम् | ११ | ,, |
| व्रणवर्णवर्णनम् | १२ | १२३ |
| अत्र प्रदर्शिता व्रणास्रववेदनावर्णा अन्यत्रोक्तसर्वशोफविकारेष्वपि बोद्धव्याः | १३ | ,, |
| २३ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः । | | |
| कृत्याकृत्यविधिनामाध्यायोपक्रमः | १–२ | १२३ |
| सुखसाध्या व्रणाः | ३ | १२३–१२४ |
| दुःखसाध्या व्रणाः | ४ | १२४ |
| सुखरोपणीया व्रणाः | ५ | ,, |
| कृच्छ्रसाध्या व्रणाः | ६–७ | ,, |
| याप्या व्रणाः | ८ | १२४–१२५ |
| प्रतिकाराभावात्साध्यव्रणानामेव याप्यत्वमसाध्यत्वं च | ९ | ,, |
| यापनीयलक्षणम् | १०–११ | ,, |
| असाध्यव्रणवर्णनम् | १२–१४ | १२५–१२६ |
| उपेक्षयासाध्यव्याधेरप्यसाध्यत्वम् | १५–१६ | ,, |
| व्याधेः सुखसाध्यता | १७ | १२७ |
| शुद्धव्रणलक्षणम् | १८ | ,, |
| संरोहद्व्रणलक्षणम् | १९ | ,, |
| सम्यग्रूढव्रणलक्षणम् | २० | ,, |
| रूढोऽपि व्रणो दोषप्रकोपादिभिर्दीर्यते | २१ | ,, |
| २४ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः । | | |
| व्याधिसमुद्देशीयनामाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| शस्त्रसाध्यस्नेहादिक्रियासाध्यत्वेन व्याधीनां द्वैविध्यम् | ३ | १२८ |
| त्रिविधं दुःखं सप्तविधा व्याधयश्च | ४ | ,, |
| त्रिविधाध्यात्मिकव्याधिलक्षणानि | ५ | १२८–१२९ |




CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| आधिभौतिकव्याधिलक्षणम् | ६ | १२८-१२९ |
| आधिदविकव्याधिलक्षणम् | ७ | १२९-१३० |
| सर्वेषां व्याधीनां वातपित्तकफा एवादिकारणम् | ८ | १३०-१३१ |
| रसादिदोषजन्या विकाराः | ९ | १३१-१३२ |
| व्याधीनामनेकत्वे कारणम् | १० | ,, |
| व्याधीनां दोषाणां च कार्यकारणभावसम्बन्धः | ११ | ,, |
| उपसंहारः | १२ | ,, |


## २५ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| अष्टविधशस्त्रकर्मीयनामाध्यायोपक्रमः | १-२ | १३३ |
| छेद्या व्याधयः | ३-४ | ,, |
| भेद्या व्याधयः | ५-८ | ,, |
| लेख्या व्याधयः | ९ | ,, |
| वेध्या व्याधयः | १० | १३४ |
| एष्या आहार्याश्च व्याधयः | ११ | ,, |
| विस्राव्या व्याधयः | १२-१५ | ,, |
| सीव्या व्याधयः | १६ | ,, |
| सीवनस्य विषयविशेषे प्रतिषेधः | १७ | ,, |
| विशोधनीया व्याधयः | १८-१९ | १३४-१३५ |
| सीवनकर्मणो विस्तरेण वर्णनम् | २०-२६ | १३५-१३६ |
| सीवनानन्तरं कर्म | २७-२८ | ,, |
| अत्र सङ्क्षेपेणोक्तस्याष्टविधशस्त्रकर्मणश्चिकित्सायां विस्तारवर्णनसङ्केतः | २९ | ,, |
| अष्टविधशस्त्रकर्मणो व्यापत्तयः | ३० | ,, |
| व्यापत्सुकारणकथनम् | ३१ | ,, |
| अनभिज्ञवैद्यवर्जनोपदेशः | ३२ | ,, |
| अतियुक्तशस्त्रव्यापद्वर्णनम् | ३३ | ,, |
| मर्मविद्धसामान्यलक्षणानि | ३४-३५ | १३६-१३७ |
| अमर्मविद्धसिरादिलक्षणम् | ३६-३९ | ,, |
| अनुक्तमांसमर्मणो विद्धलक्षणम् | ४० | ,, |
| मोहेन निजगात्रच्छेदकस्य वैद्यस्य त्यागः | ४१ | ,, |
| तिर्यक्शस्त्रप्रयोगेण व्यापदः | ४२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| वद्यंप्रति व्याधितेन विश्वासः कार्यः | ४३ | १३६-१३७ |
| वैद्यद्वारा विश्वस्तस्यातुरस्य पुत्रवत्पालनम् | ४४ | १३७-१३८ |
| सुचिकित्सायाः फलम् | ४५ | ,, |
| साध्यव्याधेरपि नानाविधकर्म साध्यत्वम् | ४६ | ,, |

## २६ षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| प्रनष्टशल्यविज्ञानीयनामाध्यायोपक्रमः | १-२ | १३८ |
| शल्यशब्दनिर्वचनम् | ३ | ,, |
| शल्यस्य चिकित्सोपयोगीभेदः | ४ | ,, |
| शल्यशास्त्रनिरुक्तिः | ५ | ,, |
| शारीरागन्तुक शल्यलक्षणम् | ६ | ,, |
| शल्येषु शरस्य प्राधान्यम् | ७ | १३८-१३९ |
| शल्यानामाहरणोपयोगिगतिभेदाः | ८ | ,, |
| शरीरे शल्यानि कथं स्थितिं कुर्वतीति प्रतिपादनम् | ९ | ,, |
| त्वगादिगतशल्यानां लक्षणानि | १० | १३९-१४० |
| शल्यानामावाधकरत्वेकारणम् | ११ | ,, |
| त्वगादिप्रणष्टशल्यानां विज्ञानोपायाः | १२ | ,, |
| सशल्यानां व्रणानां सामान्यलक्षणम् | १३-१५ | १४१ |
| निःशल्यस्य लक्षणम् | १६-१७ | ,, |
| त्वगादिगतशल्यानामाहरणोपयोगिन्यन्तःस्थावस्था | १८ | ,, |
| वार्क्षादिशल्यान्यनिर्हतानिचेद्रक्तं मांसंच पचन्तीति प्रतिपादनम् | १९ | १४२ |
| सौवर्णादीनिशल्यान्यनिर्हृतानि समयान्तरा द्विलीयन्त इति कथनम् | २०-२१ | ,, |
| विषाणादिशल्यानि शरीरे न विशीयन्त इत्यभिधानम् | २२ | ,, |
| सम्यक् शल्यविज्ञो वैद्यो राज्ञश्चिकित्सां कर्तुमर्हतीति प्रतिपादनम् | २३ | ,, |

## २७ सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| शल्यापनयनीयनामाध्यायोपक्रमः | १-२ | १४२ |
| अवबद्धानवबद्धभेदेन शल्यस्य द्वैविध्यम् | ३ | ,, |
| अनवबद्धशल्योद्धरणे पञ्चदशकारणानि | ४ | १४३ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| स्वभावादिकारणविषयः | ५ | १४३-१४४ |
| शल्यानामनुलोमप्रतिलोमभेदेन द्विविधारणोपायः | ६ | १४४ |
| प्रतिलोमानुलोमाहरणयोर्विषयः | ७ | ,, |
| उत्तुण्डितं छित्वा निर्वातयेदिति कथनम् | ८ | ,, |
| हस्तद्वाराऽऽहरणशक्यशल्यस्य हस्तेनैवाहरणम् | ९ | ,, |
| हस्तांशक्ये शस्त्रकर्मणाऽऽहरणम् | १० | १४५ |
| शल्याहरणे उपद्रवचिकित्सा | ११ | ,, |
| शल्याहरणानन्तरं कर्म | १२ | ,, |
| वक्षः पतितेषु शल्यापहरणस्य विशेषविधिः | १३ | ,, |
| अवबद्धशल्यस्य निर्हरणोपायः | १४ | १४५-१४६ |
| कुक्ष्याद्यच्छेदनीयप्रदेशस्थोत्तुण्डितानां निर्हरणोपायः | १५ | १४६ |
| कर्णवतां शल्यानामाहरणोपायः | १६ | ,, |
| कण्ठासक्तलाक्षाशल्यस्याहरणोपायः | १७ | ,, |
| लाक्षाभिन्ने शल्ये कण्ठासक्ते आहरणोपायः | १८ | ,, |
| अस्थ्यादिशल्यस्य कण्ठासक्तस्याहरणविधानम् | १९ | ,, |
| उदरान्तर्निविष्टजलाहरणोपायः | २० | १४७ |
| कण्ठासक्तग्रासाहरणोपायः | २१ | ,, |
| बाहुरज्जुलताऽऽदिपीडितकण्ठप्रकुपितवायुकफापहरणम् | २२ | ,, |
| शल्याकृतीनां नानात्वादनुक्तोपायः स्वयमूहनीयः | २३-२५ | ,, |

## २८ अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| विपरीताविपरीतव्रणविज्ञानीयनामाध्यायोपक्रमः | १-२ | १४८ |
| अरिष्टानां मृत्युसूचकत्वम् | ३-४ | ,, |
| रिष्टेऽपि मृत्युनिवृत्त्युपायः | ५ | ,, |
| कालान्तरेऽरिष्टपीडाया निदर्शनम् | ६ | १४८-१४९ |
| अरिष्टज्ञानापरिज्ञाने दोषः | ७ | ,, |
| व्रणस्यारिष्टानि | ८ | ,, |
| स्वाभाविकव्रणगन्धलक्षणम् | ९ | ,, |
| गन्धवैकृतकथनम् | १०-१२ | ,, |
| वर्णवैकृतवर्णनम् | १३-१५ | ,, |
| शब्दवैकृताख्यानम् | १६ | १४९-१५० |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सूत्रस्थानविषयानुक्रमः । २१

| विषयाः | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| स्पर्शवैकृताभिधानम् | १७ | १९० |
| आकृतिविकृतिवर्णनम् | १८–१९ | ,, |
| असाध्यव्रणवर्णनम् | २० | ,, |
| उपसंहारः | २१ | ,, |

२९ एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| विपरीताविपरीतस्वप्ननिदर्शनीयनामाध्यायोपक्रमः | १–२ | १९० |
| निर्देश्यदूतादिप्रतिपादनम् | ३–४ | १९१ |
| अप्रशस्तादूताः | ५–६ | ,, |
| अप्रशस्तस्य दूतवेषादेराख्यानम् | ७–८ | ,, |
| अप्रशस्तं दूतसम्भाषणम् | ९ | ,, |
| अप्रशस्तं दूतचेष्टितम् | १०–१४ | १९२ |
| दूतागमनसमयेऽप्रशस्तं वद्यचेष्टितादि | १५–१६ | ,, |
| वैद्यदूतयोः समागमे अप्रशस्ता वेला | १७ | ,, |
| अप्रशस्तानां नक्षत्रतिथीनां कथनम् | १८–१९ | ,, |
| रोगविशेषेण विशिष्टवेलादिवर्णनम् | २०–२२ | १९३ |
| प्रशस्तदूतदर्शनम् | २३–२६ | ,, |
| शुभाशुभशकुनवर्णनम् | २७–४० | १९४–१९५ |
| शुभाशुभवायोर्लक्षणम् | ४१ | १९५ |
| वैद्यस्य यात्रायां रोगविशेषानुसारिशुभशब्दाः | ४२–४४ | ,, |
| यात्रायामशस्तं वैद्यचेष्टितम् | ४५ | ,, |
| आतुरगृहप्रवेशे वैद्यगुणविधेरतिदेशः | ४६ | १९६ |
| यात्रोन्मुखस्यातुरगृहगतस्य च वैद्यस्य विपरीतं निमित्तम् | ४७–५३ | ,, |
| स्वप्नद्वारा शुभाशुभपरिज्ञानम् | ५४–६६ | १९६–१९७ |
| अफलदाः स्वप्नाः | ६७ | १९८ |
| रोगविशेषे विशिष्टस्वप्नदर्शनारिष्टम् | ६८–७० | ,, |
| अशुभस्वप्नदर्शनपरिहारः | ७१–७४ | १९८–१९९ |
| प्रशस्तस्वप्नवर्णनम् | ७५–८१ | १९९ |

३० त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| पञ्चेन्द्रियार्थविप्रतिपत्तिनामाध्यायोपक्रमः | १–२ | १६० |
| शरीरशीलयोः प्रकृतेर्विकृतिभाव एवारिष्टम् | ३ | ,, |


पाठ्य-पुस्तक-विभाग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| आतुरग्राह्यविरुद्धशब्दविप्रतिपत्तिकथनम् | ४-६ | १६० |
| आतुरग्राह्यविरुद्धस्पर्शविप्रतिपत्तिवर्णनम् | ७-८ | १६०-१६१ |
| आतुरग्राह्यविरुद्धरूपविप्रतिपत्तिकथनम् | ९ | ,, |
| आतुरगतरसविरुद्धप्रतिपत्तिगंधविरुद्धप्रतिपत्तिद्वयवर्णनम् | १० | ,, |
| आतुरग्राह्यरसविप्रतिपत्तिकथनम् | ११-१२ | ,, |
| आतुरग्राह्यगन्धविप्रतिपत्तिकथनम् | १३ | ,, |
| आतुरग्राह्यस्पर्शविप्रतिपत्तिवर्णनम् | १४ | ,, |
| आतुरग्राह्यरूपविप्रतिपत्तिवर्णनम् | १५-२३ | १६१-१६२ |
| **३१ एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| छायाविप्रतिपत्तिनामाध्यायोपक्रमः | १-२ | १६२-१६३ |
| रिष्टभूताश्छायाः | ३ | १६३ |
| शीलविकृतिजन्यारिष्टत्वम् | ४ | ,, |
| ओष्ठाद्यवयवविकृतिजन्यारिष्टत्वम् | ५-१० | १६३-१६४ |
| कायावयवक्रियाणां रिष्टभूता विप्रतिपत्तयः | ११-१६ | १६४ |
| शरीरदेशविशेषाश्रितरिष्टभूतव्याधयः | १७-२६ | १६५ |
| ज्वरातीसारादीनामन्योन्योपद्रवत्वेऽसाध्यत्वम् | २७-२९ | ,, |
| मृत्युकारणानि | ३० | १६६ |
| गतायुषां चिकित्साया विफलत्वे हेतुः | ३१-३२ | ,, |
| **३२ द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| स्वभावविप्रतिपत्तिनामाध्यायोपक्रमः | १-२ | १६६ |
| शरीरावयवानांमन्यथात्वं मरणसूचकम् | ३ | १६६-१६७ |
| शरीरावयवानामन्यथा भावस्य विस्तरेण वर्णनम् | ४ | १६७-१६८ |
| सर्वरोगागामनुक्तरिष्टोपसंग्रहः | ५-६ | १६९ |
| अरिष्टज्ञानफलम् | ७ | १६८-१६९ |
| **३३ त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| अवारणीयनामाध्यायोपक्रमः | १-२ | १६९ |
| प्रकृत्यैव दुश्चिकित्स्यमहागदवर्णनम् | ३-४ | ,, |
| रोगाणामसाध्यत्वे हेतुभूतोपद्रवाः | ५-६ | १६९-१७० |
| असाध्यत्वकारका वातव्याध्युपद्रवाः | ७ | १७० |
| असाध्यत्वकारकाः प्रमेहोपद्रवाः | ८ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| असाध्यत्वकारकाः कुष्ठोपद्रवाः | ९ | १७० |
| असाध्यत्वकारका अर्श उपद्रवाः | १० | ,, |
| असाध्यत्वकारका भगन्दरोपद्रवाः | ११ | ,, |
| असाध्यत्वकारका अश्मर्युपद्रवाः | १२ | ,, |
| असाध्यत्वकारका मूढगर्भोपद्रवाः | १३ | ,, |
| असाध्यत्वकारका उदरोपद्रवाः | १४ | ,, |
| असाध्यत्वकारका ज्वरोपद्रवाः | १५–१८ | १७१ |
| असाध्यत्वकारका अतिसारोपद्रवाः | १९ | ,, |
| असाध्यत्वकारका यक्ष्मो पद्रवाः | २० | ,, |
| असाध्यत्वकारका गुल्मोपद्रवाः | २१ | ,, |
| असाध्यत्वकारका विद्रध्युपद्रवाः | २२ | ,, |
| असाध्यत्वकारका पाण्डुरोगोपद्रवाः | २३ | ,, |
| ससाध्यत्वकारका रक्तपित्तोपद्रवाः | २४ | ,, |
| असाध्यत्वकारका उन्मादोपद्रवाः | २५ | १७१ |
| असाध्यत्वकारका अपस्मारोपद्रवाः | २६ | १७२ |
| **३७ चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| युक्तसेनीयनामाध्यायोपक्रमः | १–२ | १७२ |
| विषादिभ्यो नृपो रक्षणीय इति कथनम् | ३–४ | ,, |
| विषप्रयोगभेदाः | ५ | ,, |
| प्रमाणद्वाराऽकालमृत्युसाधनम् | ६ | ,, |
| वैद्यपुरोहिताभ्यां दोषागन्तुजन्यमृत्युभ्यो राजा रक्षणीय इति कथनम् | ७ | १७३ |
| वैद्यात्पुरोहितस्य प्राधान्यकथनम् | ८ | ,, |
| वर्णसङ्करादिभयेन राज्ञो रक्षणीयत्वम् | ९ | ,, |
| वैद्यकर्तृकदेववन्नृपोपासना | १०–११ | ,, |
| प्रतिक्षणोपयोगित्वाद् राजनिवासस्थानसमीपे वैद्यस्योचितप्रदेशवासः | १२–१४ | ,, |
| चिकित्सायाश्चत्वारः पादाः | १५–१६ | १७० |
| चतुर्षु पादेषु वैद्यस्य प्राधान्यम् | १७ | ,, |
| पादत्रयविरहेऽपि गुणवद्वैद्यस्य चिकित्सायां साफल्यम् | १८ | ,, |
| वैद्यगुणवर्णनम् | १९–२० | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषया:— | सूत्राङ्का: | पृष्ठाङ्का: |
|---|---|---|
| व्याधितगुणवर्णनम् | २१ | १७४ |
| भेषजगुणवर्णनम् | २२–२३ | ,, |
| परिचारकगुणवर्णनम् | २४ | १७४–१७६ |


## ३५ पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्याय: ।


| | | |
|---|---|---|
| आतुरोपक्रमणीयनामाध्यायोपक्रम: | १–२ | १७६ |
| व्याधिते दृष्टे भिषजा प्रथममायुरेव परीक्षितव्यम् | ३ | ,, |
| आयुर्लक्षणम् | ४ | १७६ |
| दीर्घायुषो लक्षणानि | ५–६ | १७६ |
| मध्यमायुषो लक्षणम् | ७–८ | ,, |
| अल्पायुषो लक्षणम् | ९–११ | ,, |
| आयुषो ज्ञानार्थमङ्गप्रत्यङ्गप्रमाणोपदेश: | १२ | १७७ |
| स्त्रीश्रोणिपुरुषवक्ष: स्थलप्रभृतीनां यौवन एव यथोक्त-प्रामाण्यम् | १३ | १७८ |
| उक्तप्रमाणज्ञानप्रयोजनम् | १४–१५ | ,, |
| सारद्वाराऽऽयुर्निर्देश: | १६ | १७८–१७९ |
| अङ्गप्रत्यङ्गमानसारज्ञानफलम् | १७ | १७९ |
| व्याधीनां साध्यादिभेदनिरूपणम् | १८ | ,, |
| अनुक्ते व्याधौ लक्षणद्वारा व्याध्युपचार: | १९ | ,, |
| आत्ययिके व्याधौ ऋतुचिकित्साविधि: | २०–२१ | १७९–१८० |
| कीदृशी क्रिया न सिद्ध्यति | २२ | ,, |
| क्रियाक्रिययोर्लक्षणम् | २३ | ,, |
| अग्निपरीक्षा, पाचकाग्नेश्चातुर्विध्यं च | २४ | ,, |
| विषमाग्नीनां वातादिप्रकोपकत्वम् | २५ | ,, |
| समाग्नीनां चिकित्सा | २६ | १८० |
| सौक्ष्म्याद्रसग्राहकाग्नेर्विवेचनाऽशक्या | २७ | १८१ |
| जाठरस्याग्नेर्वायोः सहायकत्वम् | २८ | ,, |
| वय: परीक्षा | २९ | ,, |
| भेषजमात्राप्रयोग एव वयोज्ञानस्य फलम् | ३० | ,, |
| दोषचयादावपिवयोज्ञानमावश्यकम् | ३१ | १८२ |
| क्रियाविशेषेऽपिवयोज्ञानफलं भवति | ३२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| स्थूलकृशमध्यप्रभेदेन देहभेदाः | ३३ | १८२ |
| स्थूलादीनां कर्शनादिचिकित्साकार्या | ३४ | ,, |
| बलपरीक्षा | ३५ | ,, |
| उपचयशक्तिलक्षणयोर्बलयोर्व्यभिचारः | ३६ | ,, |
| सत्त्वपरीक्षा | ३७–३८ | ,, |
| सात्म्यपरीक्षा | ३९–४० | १८२–१८३ |
| प्रकृतिभेषजयोरतिदेशेन वर्णनम् | ४१ | ,, |
| देशपरीक्षा, आनूपः, जाङ्गलः तथा साधारणो देशः | ४२ | ,, |
| देशपरिज्ञानफलम् | ४३–४५ | ,, |
| साध्यासाध्यव्याधीनां लक्षणम् | ४६–४७ | १८४ |
| क्रियासङ्करनिषेधः | ४८ | ,, |
| कृच्छ्रव्याधौ फलाभेऽपि सप्तरात्रं सैवकार्या | ४९ | ,, |
| कालदेशाद्यनुसारेण क्रियाकर्तुर्वैद्यस्य प्रशंसा | ५० | ,, |
| **३६ षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।** | | |
| भूमिप्रविभागीयनामाध्यायोपक्रमः | १–२ | १८४ |
| औषधग्रहणयोग्या भूमिः | ३ | १८४–१८५ |
| पञ्चमहाभूतगुणविशेषेण भूमेर्विशिष्टगुणवर्णनम् | ४ | १८५ |
| केषु ऋतुष्वौषधं ग्रहणीयम् | ५ | ,, |
| विरेचनद्रव्याणि कीदृश्यां भूमौ प्रादुर्भूतानि ग्राह्याणि | ६ | ,, |
| सर्वाण्यौषधानि नूतनान्येव गुणवत्तराणि भवन्ति, ऋते मध्वादिभ्यः | ७ | १८६ |
| भेषजद्रव्यज्ञानं केभ्यः कार्यम् | ८ | ,, |
| ऋतुविशेषे मूलादि ग्रहणनियमापवादः | ९ | ,, |
| भूमिविशेषेण द्रव्यगुणविशेषता | १०–१२ | ,, |
| कीदृशमौषधद्रव्यं ग्राह्यम् | १३ | १८६–१८७ |
| विडङ्गादयोऽनूतना अपि ग्राह्या भवन्ति | १४ | ,, |
| जाङ्गमौषधग्रहणकालः | १५ | ,, |
| भेषजागारं कीदृशं कार्यम् | १६ | ,, |
| **३७ सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः।** | | |
| मिश्रकनामाध्यायोपक्रमः | १–२ | १८७ |
| वातादिदोषप्रतिकूलाविम्लापनयोगाः | ३–७ | १८८ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| दोषभेदेन लेपस्य संस्कारविशेषः | ८ | १८८ |
| शोथपाचनद्रव्याणि | ९ | ,, |
| शोथदारणद्रव्याणि | १० | ,, |
| व्रणपीडनद्रव्याणि | ११ | ,, |
| व्रणसंशोधनद्रव्याणि | १२ | १८९ |
| व्रणवर्तिद्रव्याणि | १३-१४ | ,, |
| व्रणकल्कद्रव्याणि | १५-१६ | ,, |
| व्रणशोधनघृतम् | १७ | ,, |
| व्रणशोधनतैलम् | १८-१९ | ,, |
| व्रणशोधनचूर्णम् | २० | १८९-१९० |
| व्रणशोधनीरसक्रिया | २१ | ,, |
| व्रणव्रणधूपनम् | २२ | ,, |
| व्रणरोपणकषायः | २३ | ,, |
| व्रणरोपणवर्तयः | २४ | ,, |
| व्रणरोपणकल्कद्रव्याणि | २५ | ,, |
| व्रणरोपणं घृतम् | २६ | ,, |
| व्रणरोपणं तैलम् | २७ | ,, |
| व्रणरोपणचूर्णानि | २८-२९ | १९१ |
| व्रणरोपणीरसक्रिया | ३० | ,, |
| व्रणरोपणमुत्सादनम् | ३१ | ,, |
| अवसादनद्रव्याणि | ३२-३३ | ,, |
| शोधनरोपणद्रव्याणां समस्तानामलाभे कल्पान्तरम | ३४ | ,, |


## ३८ अष्टत्रिंशतमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| द्रव्यसङ्ग्रहणीयनामाध्यायोपक्रमः | १-२ | १९२ |
| सङ्क्षेपतो द्रव्यगणसंख्या | ३ | ,, |
| विदारीगन्धाऽऽदिगणः | ४-६ | ,, |
| आरग्वधादिगणः | ६-७ | ,, |
| वरुणादिगणः | ८-९ | १९३ |
| वीरतर्वादिगणः | १०-११ | ,, |
| सालसारादिगणः | १२-१३ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| रोध्रादिगणः | १४–१५ | १९३ |
| अर्कादिगणः | १६–१७ | १९४ |
| सुरसाऽऽदिगणः | १८–१९ | ,, |
| मुष्ककादिगणः | २०–२१ | ,, |
| पिप्पल्यादिगणः | २२–२३ | ,, |
| एलाऽऽदिगणः | २४–२५ | १९४–१९५ |
| वचादिहरिद्रोऽऽदिगणौ | २६–२८ | ,, |
| श्यामाऽऽदिगणः | २९–३० | ,, |
| बृहत्यादिगणः | ३१–३२ | ,, |
| पटोलादिगणः | ३३–३४ | ,, |
| काकोल्यादिगणः | ३५–३६ | १९५–१९६ |
| ऊषकादिगणः | ३७–३८ | ,, |
| सारिवाऽऽदिगणः | ३९–४० | ,, |
| अञ्जनादिगणः | ४१–४२ | ,, |
| परूषकादिगणः | ४३–४४ | ,, |
| प्रियङ्ग्वाम्रबिल्वादिगणौ | ४६–४७ | १९६–१९७ |
| न्यग्रोधादिगणः | ४८–४९ | ,, |
| गुडूच्यादिगणः | ५०–५१ | ,, |
| उत्पलादिगणः | ५२–५३ | ,, |
| मुस्ताऽऽदिगणः | ५४–५५ | ,, |
| हरीतक्यादिगणः | ५६–५७ | १९८ |
| पिप्पल्यादिगणः ( त्रिकटुः ) | ५८–५९ | ,, |
| आमलक्यादिगणः | ६०–६१ | ,, |
| त्रप्वादिगणः | ६२–६३ | ,, |
| लाक्षाऽऽदिगणः | ६४–६५ | ,, |
| लघुः पञ्चमूलगणः | ६६–६७ | १९८–१९९ |
| बृहत्पञ्चमूलगणः | ६८–६९ | ,, |
| दशमूलगणः | ७०–७१ | ,, |
| विदार्यादिकरमर्दादिगणौ | ७२–७४ | ,, |
| कुशादिस्तृणपञ्चमूलगणः | ७५–७६ | ,, |
| पञ्चानां पञ्चकानां गुणाः | ७७ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषया: । | सूत्राङ्का: । | पृष्ठाङ्का: । |
|---|---|---|
| त्रिवृतादिगणातिदेश: | ७८ | १९९ |
| सङ्क्षेपेण प्रोक्तानामेषां गणानां चिकित्सितेषु विस्तरसङ्कृत: | ७९ | २०० |
| एषां गणानामुपयोग: | ८० | ,, |
| स्वगृहीतानामेतद्गणायां धूमाद्युपद्रवेभ्यो रक्षणम् | ८१ | ,, |
| एषां द्रव्यगणानां योजनाप्रकार: | ८२ | ,, |


## ३९ एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्याय: ।


| | | |
|---|---|---|
| संशोधनसंशमनीयनामाध्यायोपक्रम: | १–२ | २०० |
| ऊर्ध्वभागहराणि द्रव्याणि | ३ | ,, |
| अधोभागहराणि द्रव्याणि | ४ | २०१ |
| उभयभागहराणि द्रव्याणि | ६ | ,, |
| शिरोविरेचन द्रव्याणि | ६ | ,, |
| वातसंशमनो वर्ग: | ७ | २०१–२०२ |
| पित्तसंशमनो वर्ग: | ८ | २०२ |
| श्लेष्मसंशमनो वर्ग: | ९ | ,, |
| संशोधनसंशमनद्रव्यमात्रानियमनम् | १० | ,, |
| दुर्बलरोगिणस्तीव्रशोधनं न कर्तव्यम् | ११ | २०३ |
| अतिदुर्बलेऽपि भवस्थाऽनुकूलेन शोधनोपदेश: | १२–१३ | ,, |
| मध्यमबलेषुव्याध्यग्निपुरुषेष्वौषधमात्रा | १४ | ,, |


## ४० चत्वारिंशत्तमोऽध्याय: ।


| | | |
|---|---|---|
| द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकविज्ञानीयनामाध्यायोपक्रम: | १–२ | २०३ |
| द्रव्यप्राधान्यस्य युक्तियुक्तं प्रतिपादनम् | ३ | ,, |
| रसप्राधान्ये एकीयमतम् | ४ | २०४–२०५ |
| वीर्यप्राधान्ये एकीयमतम् | ५ | २०५–२०६ |
| रसाश्रितं वीर्यकर्म | ६–९ | २०६ |
| मतान्तरेण विपाकस्य प्राधान्यम् | १०–१२ | २०६–२०७ |
| द्रव्यादिसमुदायप्राधान्यलक्षणेषु युक्तस्य स्वमतस्य स्थापनम् | १३ | २०७–२०८ |
| सर्वेषामपि द्रव्यादीनां क्रियाकारित्वम् | १४ | २०८ |
| रसादीनां द्रव्यकार्यत्वाद् द्रव्यस्य प्राधान्यम् | १५–१८ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः । | सूत्राङ्काः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---|---|
| आगमोक्तगुणसिद्धौषधीनां स्वतर्कनिषेधः | १९ | २०८ |
| प्रत्यक्षफलदायित्वेन आगमस्य प्राधान्यम् | २०–२१ | २०८–२०९ |

४१ एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| द्रव्यविशेषविज्ञानीयनामाध्यायोपक्रमः | १–२ | २०९ |
| द्रव्याणां पाञ्चभौतिकत्ववर्णनम् | ३ | ,, |
| पार्थिवद्रव्यस्य लक्षणं गुणाश्च | ४ | ,, |
| आप्यद्रव्यस्य लक्षणं गुणाश्च | ५ | ,, |
| आग्नेयद्रव्यस्य लक्षणं गुणाश्च | ६ | २१० |
| वायव्यद्रव्यस्य लक्षणं गुणाश्च | ७ | ,, |
| आकाशीयद्रव्यस्य लक्षणं गुणाश्च | ८ | ,, |
| सर्वेषामपि द्रव्याणामौषधत्वप्रतिपादनम् | ९ | ,, |
| विरेचनीयादिद्रव्याणां महाभूतगुणतारतम्ये स्वकार्यकर्तृत्वम् | १० | २१०–२११ |
| पार्थिवादिद्रव्याणां वातादिप्रकोपशमकत्वम् | ११–१४ | ,, |
| स्रोतोष्णादिगुणानां पार्थिवत्वादिविवेचनम् | १५ | २११–२१२ |
| शरीरस्य स्थितिवृद्धिक्षया द्रव्यमूलकाः | १६ | २१२ |

४२ द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| रसविशेषविज्ञानीयनामाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| रसोत्पत्तिहेतवः, रसप्रभेदाः, भूतगुणविशेषेण रसविशेषाश्च | ३ | २१२-२१३ |
| मधुरादिषड्रसानां वातादिदोषशमकत्वम् | ४ | ,, |
| दोषाणामुत्पत्तिकारणम् | ५–६ | ,, |
| सौम्याग्नेयभेदेन रसद्वैविध्यम् | ७ | ,, |
| कषायरसस्य वातलत्वप्रतिपादनम् | ८ | २१४ |
| कटुकरसस्य पित्तलत्वप्रतिपादनम् | ९ | ,, |
| मधुररसस्य श्लेष्मत्वप्रतिपादनम् | १० | ,, |
| कटुकस्य श्लेष्मघ्नत्वप्रतिपादनम् | ११ | ,, |
| षड्रसानां लक्षणानि | १२ | ,, |
| मधुररसस्य गुणकर्माणि, अतिसेवनेन तद्दोषाः | १३ | २१४–२१५ |
| अम्लरसस्य गुणकर्माणि अतिसेवनेन तद्दोषाः | १४ | २१५ |
| लवणरसस्य गुणकर्माणि अतिसेवनेन तद्दोषाः | १५ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कटुकरसस्य गुणकर्माणि अतिसेवनेन तद्दोषाः | १६ | २१५-२१६ |
| तिक्तरसस्य गुणकर्माणि अतिसेवनेन तद्दोषाः | १७ | २१६ |
| कषायरसस्य गुणकर्माणि अतिसेवनेन तद्दोषाः | १८ | ,, |
| सङ्क्षेपेण मधुरो वर्गः | १९ | ,, |
| सङ्क्षेपेणाम्लो वर्गः | २० | २१६-२१७ |
| सङ्क्षेपेण लवणो वर्गः | २१ | २१७ |
| सङ्क्षेपेण कटुको वर्गः | २२ | ,, |
| सङ्क्षेपेण तिक्तो वर्गः | २३ | ,, |
| सङ्क्षेपेण कषायो वर्गः | २४ | ,, |
| रसानां संयोगात् त्रिषष्टिभेदाः | २५ | ,, |
| विशिष्टविषये रसानामभ्यासोऽदोषाय | २६ | २१८ |


## ४३ त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| वमनद्रव्यविकल्पविज्ञानीयनामाध्यायोपक्रमः | १-२ | २१८ |
| वमनीयमदनफलकल्पः | ३ | २१८-२२० |
| वमनीयजीमूतकल्पः | ४ | २२० |
| वमनीयकुटजकल्पः | ५ | ,, |
| वमनीयकृतवेधनकल्पः | ६ | ,, |
| वमनीय इक्ष्वाकुकल्पः | ७ | ,, |
| वमनीय धामार्गवकल्पः | ८ | ,, |
| वमनाय आघ्राणप्रयोगः | ९ | ,, |
| वमनौषधीनां योजनाप्रकाराः | १०-११ | २२०-२२१ |


## ४४ चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| विरेचनद्रव्यविकल्पविज्ञानीयनामाध्यायोपक्रमः | १-२ | २२१ |
| विरेचने प्रधानद्रव्याणि | ३-४ | ,, |
| वातजरोगे त्रिवृत्कल्पः | ५ | ,, |
| पित्तजे कफजे च रोगे त्रिवृत्कल्पः | ६ | ,, |
| वातश्लेष्मजरोगे त्रिवृत्कल्पः | ७-८ | २२२ |
| सर्वविषयकगुटिकादियोगः | ९-११ | ,, |
| मोदकभक्ष्यरूपस्त्रिवृत्कल्पः | १२-१३ | ,, |
| यूषरूपस्त्रिवृत्तल्पः | १४ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| पुटपाकरूपस्त्रिवृत्कल्पः | १५ | २२२ |
| वैरेचनिकोऽवलेहः | १६ | ,, |
| अन्यो वैरेचनिकोऽवलेहः | १७ | २२३ |
| पित्तघ्नोऽवलेहः | १८ | ,, |
| श्लेष्मघ्नोऽवलेहः | १९ | ,, |
| अन्योऽवलेहः | २०–२१ | ,, |
| चूर्णावलेहः | २२ | ,, |
| वैरेचनिकमोदकः | २३ | ,, |
| वैरेचनिकयोर्लेहगुटिकयोः प्रयोगः | २४–२६ | ,, |
| वैरेचनिकं चूर्णम् | २६–२७ | २२३–२२४ |
| वैरेचनिका आसवाः | २८–३० | ,, |
| वैरेचनी पैष्टी सुरा | ३१–३४ | ,, |
| वैरेचनिकं सौवीरकम् | ३५–३९ | २२५ |
| वैरेचनिकं तुषोदकम् | ४०–४४ | ,, |
| सर्वविरेचकद्रव्येषु त्रिवृन्मूलविधेरतिदेशः | ४५ | ,, |
| दन्तीद्रवन्त्योर्विशिष्टकल्पः | ४६ | ,, |
| दन्तीद्रवन्त्योः स्नेहयोगाः | ४७–४८ | २२६ |
| दन्त्यादिचूर्णम् | ४९–५१ | ,, |
| दन्त्यादिमोदकः | ५२–५३ | ,, |
| व्योषादिविरेचनम् | ५४–५९ | २२६–२२७ |
| तिल्वककल्पः | ६०–६१ | २२७ |
| हरीतकीकल्पः | ६२–६९ | २२७–२२८ |
| त्रिफलागुणास्तत्कल्पश्च | ७०–७२ | २२८ |
| वैरेचनिकफलेषु हरीतकीविधानातिदेशः | ७२ | ,, |
| चतुरङ्गुलकल्पः | ७३–७४ | ,, |
| एरण्डतैलकल्पः | ७५–७७ | २२८–२२९ |
| स्नुहीक्षीरकल्पः | ७८–८५ | २२९ |
| वैरेचनिकत्रिवृदादिमोदकः | ८६–८९ | २२९–२३० |
| अनुक्तान्नपानेषु प्रयोगकल्पाः | ९० | २३० |
| क्षीरासादयः षडौषधकल्पाः | ९१ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| **४५ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।** | | |
| द्रवद्रव्यविध्यध्यायोपक्रमः | १-२ | २३१ |
| १ पानीयवर्गः— | | |
| आन्तरिक्षोदक गुणाः | ३ | ,, |
| पृथिव्यां पतिते पानीये स्थानविशेषेणान्यतमरसोत्पत्तिः | ४ | ,, |
| लोहितादिभूमिप्रभेदेन पानीयरसोत्पत्तौ परमतम् | ५ | ,, |
| पानीयस्य पार्थवादिभूमिप्रभेदेन रसविशेषोत्पत्तिः | ६ | २३१-२३२ |
| आन्तरिक्षोदकस्य चत्वारो भेदास्तद्गुणाश्च | ७ | २३२ |
| ऋतुभेदेन आन्तरिक्षाद्युदकसेवनम् | ८ | २३२-२३३ |
| नवोदकस्य दोषाः | ९-१० | २३३ |
| व्यापन्नजललक्षणम् | ११ | ,, |
| व्यापन्नजलस्य प्रसन्नतोपायाः | १२ | ,, |
| किम्पयपात्रस्थं जलं पेयम् | १३ | २३४ |
| व्यापन्नोदकवर्जनम् | १४-१६ | ,, |
| कलुषोदकस्य सप्त प्रसादनानि | १७ | ,, |
| उदकस्य पञ्च निक्षेपणानि | १८ | ,, |
| उदकस्य सप्त शीतीकरणानि | १९ | ,, |
| भौमं तोयं कीदृशं गुणवत् | २० | ,, |
| देशभेदेन नद्युदकगुणाः | २१ | २३४-२३५ |
| नदीनां गौरवलाघवे कारणम् | २२ | २३५ |
| आश्रयभेदेन नदीनां गुणविशेषः | २३ | ,, |
| भौमोदकानां दिवापेक्षो ग्रहणकालः | २४ | ,, |
| भौमोदकानामर्ककिरणादियोगादान्तरिक्षसमगुणवत्त्वम् | २५ | ,, |
| गणनाम्बुगुणाः | २६ | ,, |
| चन्द्रकान्तमणिप्रभवजलस्य गुणाः | २७ | ,, |
| शीतोदकविषयः | २८ | ,, |
| पार्श्वशूलादौ शीतोदकं वर्ज्यम् | २९-३० | २३५-२३६ |
| नदीतडागादिभेदेन भौमजलस्य गुणविशेषः | ३१-३६ | २३६ |
| आनूपादिदेशप्रभवजलगुणाः | ३७-३८ | ,, |
| उष्णोदक गुणाः | ३९ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| उष्णोदक भेदः | ४० | २३६ |
| पर्युषितमुष्णोदकं वर्ज्यम् | ४१ | ,, |
| शृतशीतोदक गुणः | ४२ | २३७ |
| नारिकेलफलोदकगुणाः | ४३ | ,, |
| शृतशीतजलस्य विषयः | ४४ | ,, |
| मन्दपानीययोग्या रोगिणः | ४५-४६ | ,, |
| **२ क्षीरवर्ग** | | |
| गव्यादिक्षीराणामष्टौ भेदाः | ४७ | ,, |
| क्षीराणां दश गुणाः | ४८ | ,, |
| सर्वक्षीराणां सामान्यगुणकर्माणि | ४९ | २३७-२३८ |
| गव्यक्षीरगुणाः | ५० | ,, |
| अजाक्षीरगुणाः | ५१-५२ | ,, |
| औष्ट्रक्षीरगुणाः | ५३ | ,, |
| आविकक्षीरगुणाः | ५४ | ,, |
| माहिषक्षीरगुणाः | ५५ | ,, |
| अश्ववाद्येकशफक्षीरगुणाः | ५६ | २३८-२३९ |
| नारीक्षीरगुणाः | ५७ | ,, |
| हस्तिनीक्षीरगुणाः | ५८ | ,, |
| प्राभातिकक्षीरगुणाः | ५९ | ,, |
| आपराह्णिकक्षीरगुणाः | ६० | ,, |
| आमपक्वक्षीरगुणाः | ६१ | ,, |
| स्त्रीक्षीरे पाकनिषेधः | ६२ | ,, |
| धारापातोष्णक्षीराणां गुणा अतिशृतक्षीरगुणाश्च | ६३ | ,, |
| वर्ज्यक्षीराणि | ६४ | ,, |
| **३ दधिवर्गः ।** | | |
| सामान्यतो दधिगुणाः | ६५ | २४० |
| मधुराम्लात्यम्लदधिगुणाः | ६६ | ,, |
| मन्दजातदधिगुणा गव्यदधिगुणाश्च | ६७ | ,, |
| अजादधिगुणाः | ६८ | ,, |
| माहिषदधिगुणाः | ६९ | ,, |
| उष्ट्रीदधिगुणाः | ७० | ,, |




CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| मेषीदधिगुणाः | ७१ | २४० |
| अश्वादधिगुणाः | ७२ | ,, |
| मानुषीदधिगुणाः | ७३ | ,, |
| हस्तिनीदधिगुणाः | ७४ | ,, |
| सर्वेषु दधिषु गोदधि श्रेष्ठम् | ७५ | २४१ |
| वस्त्रादिगालितदधिगुणाः | ७६ | ,, |
| क्वथितक्षीरोद्भवदधिगुणाः | ७७ | ,, |
| दधिसरगुणाः | ७८ | ,, |
| उद्धृतसारदधिगुणाः | ७९ | ,, |
| ऋतुभेदेन दध्नो हेयोपादेयता | ८० | ,, |
| मस्तुनो गुणाः | ८१–८३ | २४१–२४२ |
| **४ तक्रवर्गः ।** | | |
| सामान्यतस्तक्रगुणाः | ८४ | २४२ |
| तक्रघालयोर्लक्षणम् | ८५ | ,, |
| तक्रस्य निषेधविषयः | ८६ | ,, |
| तक्रार्हा रोगिणः | ८७ | ,, |
| तक्रस्य रसविशेषेण गुणविशेषः | ८८ | ,, |
| तक्रस्य संयोगविशेषेण त्रिदोषहरत्वम् | ८९ | २४३ |
| तक्रकूर्चिकामण्डयोर्गुणाः | ९० | ,, |
| किलाटपीयूषमोरटगुणाः | ९१ | ,, |
| नवनीतगुणाः | ९२ | ,, |
| क्षीरमथनोत्थनवनीतगुणाः | ९३ | ,, |
| सन्तानिकागुणाः | ९४ | ,, |
| पूर्वोक्तास्तक्रादिगुणा गव्यस्यैव ज्ञेयाः | ९५ | ,, |
| **५ घृतवर्गः ।** | | |
| सामान्यतो घृतगुणाः | ९६ | २४४ |
| गव्यघृतगुणाः | ९७ | ,, |
| अजाघृतगुणाः | ९८ | ,, |
| माहिषघृतगुणाः | ९९ | ,, |
| औष्ट्रघृतगुणाः | १०० | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| आविकघृतगुणाः | १०१ | २४४ |
| आश्वघृतगुणाः | १०२ | ,, |
| मानुषीघृतगुणाः | १०३ | २४४-२४६ |
| हस्तिनीघृतगुणाः | १०४ | २४६ |
| क्षीरमथनोत्थघृतगुणाः | १०५ | ,, |
| घृतमण्डस्य गुणाः | १०६ | ,, |
| पुराणघृतगुणाः | १०७-१११ | ,, |
| **६ तैलवर्गः ।** | | |
| सामन्यतस्तैलस्य गुणकर्मणी | ११२-११३ | २४६ |
| एरण्डतैलस्य गुणकर्माणि | ११४ | ,, |
| निम्बादिफलस्नेहगुणाः | ११५ | २४६-२४७ |
| अतसीतैलगुणाः | ११६ | २४७ |
| सर्षपतैलगुणाः | ११७ | ,, |
| इङ्गुदीतैलगुणाः | ११८ | ,, |
| कौसुम्भतैलगुणाः | ११९ | ,, |
| किराततिक्तादितैलगुणाः | १२० | ,, |
| मधुकादितैलगुणाः | १२१ | ,, |
| तुवरकभल्लातकतैलयोर्गुणाः | १२२ | ,, |
| सरलादिसारस्नेहगुणाः | १२३ | ,, |
| तुम्ब्यादिस्नेहगुणाः | १२४ | २४७-२४८ |
| यवतिक्कातैलगुणाः | १२५ | २४८ |
| एकैषिकातैलगुणाः | १२६ | ,, |
| आम्रतैलगुणाः | १२७ | ,, |
| फलतैलानां फलवद्गुणाः | १२८ | ,, |
| स्थावरस्नेहानां तिलतैलगुणत्वम् | १२९ | ,, |
| तिलतैलस्य श्रेष्ठ्यम् | १३० | ,, |
| वसामेदोमज्जगुणाः | १३१ | ,, |
| **७ मधुवर्गः ।** | | |
| सामान्यतो मधुगुणाः | १३२ | २४९ |
| मधुनो भेदाः | १३३ | ,, |
| पौतिकादिमधुजातीनां प्रत्येकं गुणाः | १३४-१३९ | २४९-२५० |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| नव-पुराण-मधुगुणाः | १४० | २६० |
| पक्वामयोर्मधुनो गुणाः | १४१ | ,, |
| मधुनो योगवाहित्वम् | १४२ | ,, |
| मधुन उष्णविरोधित्वप्रदर्शनम् | १४३-१४६ | २६०-२६१ |
| मधुनो वमनविषये उष्णेनाप्यविरोधः | १४६ | २६१ |
| मध्वजीर्णे कष्टावहम् | १४७ | ,, |
| ८ इक्षुवर्गः । | | |
| इक्षूणां सामान्यगुणाः | १४८ | ,, |
| इक्षूणां द्वादशभेदाः | १४९-१५० | ,, |
| इक्षूणां गुणवर्णनम् | १५१-१५९ | २६१-२६२ |
| इक्षूणामवयवविशेषेण गुणविशेषः | १५६ | २६२ |
| दन्तनिष्पीडितेक्षुरसगुणाः | १५७ | ,, |
| यन्त्रनिष्पीडितेक्षुरसस्य अग्निपक्वस्य च गुणाः | १५८ | ,, |
| फाणितगुणाः | १५९ | ,, |
| गुडस्य गुणाः | १६० | ,, |
| पुराणगुडस्य गुणाः | १६१ | ,, |
| गुडस्य संस्कारविशेषेण नामान्तरं गुणाश्च | १६२-१६३ | ,, |
| गुडसंस्कारेऽपनीयमानस्य मलस्य गुणाः | १६४ | ,, |
| शर्कराया गुणाः | १६५ | २६३ |
| मधुशर्कराया गुणाः | १६६ | ,, |
| यवासशर्कराया गुणाः | १६७ | ,, |
| अवशिष्टशर्कराणां गुणाः | १६८ | ,, |
| मधुकपुष्पोत्थफाणितस्य गुणाः | १६९ | ,, |
| ९ मद्यवर्गः । | | |
| सामान्यतो मद्यानां गुणकर्माणि | १७०-१७१ | ,, |
| मार्द्वीकमद्यगुणाः | १७२-१७३ | २६३-२६४ |
| खार्जूरमद्यगुणाः | १७४ | २६४ |
| सामान्यसुरागुणाः | १७५ | ,, |
| श्वेतसुरागुणाः | १७६ | ,, |
| प्रसन्ना गुणाः | १७७ | ,, |
| कुधान्यसुरागुणाः | १७८ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| आक्षिकीसुरागुणाः | १७९ | २६४ |
| कोहलजगलयोर्गुणाः | १८० | ,, |
| वक्कसगुणाः | १८१ | ,, |
| गुडशीधुगुणाः | १८२ | २६४–२६६ |
| शर्कराशीधुगुणाः | १८३ | २६६ |
| पक्करसशीधुगुणाः | १८४ | ,, |
| अपक्करसशीधुगुणाः | १८६ | ,, |
| आक्षिकशीधुगुणाः | १८६ | ,, |
| जाम्बवशीधुगुणाः सुरासवगुणाश्च | १८७ | ,, |
| मध्वासवगुणाः | १८८ | ,, |
| मैरेयकगुणाः | १८९ | ,, |
| इक्षुरसासवगुणाः | १९० | ,, |
| मधूकपुष्पशीधुगुणाः | १९१ | ,, |
| नवमद्यदोषाः | १९२ | ,, |
| जीर्णमद्यगुणाः | १९३ | ,, |
| अरिष्टगुणाः | १९४–१९५ | २६६ |
| पिप्पल्याद्यरिष्टगुणाः | १९६ | ,, |
| शेषारिष्टगुणाः | १९७ | ,, |
| मद्यदोषाः | १९८–२०२ | ,, |
| मद्यगुणाः | २०३ | ,, |
| कथं मद्यं मादयति | २०४–२०६ | २६६–२६७ |
| शारीरदोषभेदेन मदभेदः | २०६ | २६७ |
| मानसदोषभेदेन मदभेदः | २०७–२०९ | ,, |
| शुक्तस्य गुणाः | २१० | ,, |
| शुक्तसन्धितानां कन्दादीनां गुणाः | २११ | ,, |
| शुक्तस्य योनिभेदेन गुणाः | २१२ | २६८ |
| तुषाम्बुसौवीरकयोर्गुणाः | २१३ | ,, |
| धान्याम्लगुणाः | २१४-२१६ | ,, |
| **१० मूत्रवर्गः ।** | | |
| सामान्यतो मूत्रगुणाः | २१७–२१९ | २६८–२६९ |
| गोमूत्रगुणाः | २२०–२२१ | २६९ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| माहिषमूत्रगुणाः | २२२ | २५९ |
| छागमूत्रगुणाः | २२३ | ,, |
| मेषीमूत्रगुणाः | २२४ | ,, |
| आश्वमूत्रगुणाः | २२५ | ,, |
| गजमूत्रगुणाः | २२६ | ,, |
| गर्दभमूत्रगुणाः | २२७ | ,, |
| उष्ट्रमूत्रनरमूत्रयोर्गुणाः | २२८ | २५९–२६० |
| उक्तानि द्रवद्रव्याणि कालदेशविभागज्ञेन वैद्येन प्रयोक्तव्यानि | २२९ | ,, |

४६ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| अन्नपानविध्यध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| प्राणिनामाहारविषये सुश्रुतस्य प्रश्नः | ३ | २६०–२६१ |

१ धान्यवर्गः ।

| | | |
|---|---|---|
| शालीनां भेदाः | ४ | २६१ |
| सामान्यतः शालीनां गुणाः | ५ | ,, |
| लोहितशालिगुणाः | ६ | ,, |
| इतरशालीनां क्रमशोऽल्पगुणत्वम् | ७ | ,, |
| षष्टिकभेदास्तद्गुणाश्च | ८–९ | ,, |
| गौरषष्टिकगुणाः | १० | ,, |
| इतरषष्टिकगुणाः | ११ | ,, |
| व्रीहिणां भेदाः | १२ | २६२ |
| सामान्यतो व्रीहिगुणाः | १३ | ,, |
| कृष्णव्रीहिगुणाः | १४ | ,, |
| शाल्यादीनां भूमिविशेषेण गुणविशेषाः | १५–१७ | ,, |
| उत्पाट्य अन्यत्र रोपितशालिगुणाः | १८ | ,, |
| छिन्नरूढशालिगुणाः | १९ | ,, |
| शालिवर्गोपसंहारः | २० | ,, |
| कोरदूषकादीनि कुधान्यानि | २१ | २६३ |
| कोद्रवादीनां गुणाः | २२–२३ | ,, |
| प्रियङ्गुगुणाः | २४ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| मधूलिका-नान्दीमुख-वरक-मुकुन्दकानां गुणाः | २५ | २६३ |
| वेणुयवगुणाः | २६ | ,, |
| शमीधान्यानि | २७ | ,, |
| मुद्गगुणाः | २८-२९ | ,, |
| मसूर-मकुष्ठ-कुलाय गुणाः | ३० | ,, |
| आढकी-चणकगुणाः | ३१-३२ | २६३-२६४ |
| हरेणुसतीनगुणाः | ३३ | ,, |
| माषगुणाः | ३४ | ,, |
| राजमाषगुणाः | ३५ | ,, |
| आत्मगुप्ताकाकाण्डारण्यमाषगुणाः | ३६ | ,, |
| कुलत्थगुणाः | ३७ | ,, |
| वन्यकुलत्थगुणाः | ३८ | ,, |
| तिलगुणाः | ३९ | ,, |
| उत्तममध्यमाधमभेदेन तिलभेदाः | ४० | ,, |
| यवगुणाः | ४१-४२ | २६४-२६५ |
| अतियवगोधूमगुणाः | ४३ | ,, |
| शिम्बीनां सामान्यगुणाः | ४४-४५ | ,, |
| मुद्गपर्ण्यादिशिम्बीगुणाः | ४६ | ,, |
| वैदलानामाद्रशिम्बीगुणाः | ४७ | ,, |
| कुसुम्भातसीसर्षपगुणाः | ४८-४९ | ,, |
| त्याज्यधान्यानि | ५० | २६६ |
| नवानां विरूढानां च धान्यानां गुणाः | ५१ | ,, |
| धान्यवर्गोपसंहारः | ५२ | ,, |
| **२ मांसवर्गः ।** | | |
| मांसवर्गाः | ५३ | ,, |
| जङ्गालवर्गः | ५४ | २६६-२६७ |
| एणगुणाः | ५५ | ,, |
| हरिणगुणाः | ५६ | ,, |
| हरिणभेदाः | ५७ | ,, |
| मृगमातृकागुणाः | ५८ | ,, |
| विष्किरवर्गस्तद्गुणाश्च | ५९ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| लावकगुणाः | ६० | २६७ |
| कृष्णगौरतित्तिरगुणाः | ६१–६२ | २६७–२६८ |
| क्रकरोपचक्रकगुणाः | ६३ | ,, |
| मयूरगुणाः | ६४ | ,, |
| कुक्कुटगुणाः | ६५–६६ | ,, |
| प्रतुदवर्गः | ६७ | ,, |
| सामान्यतः प्रतुदवर्गगुणाः | ६८ | ,, |
| भेदाशिकाणपोतगुणाः | ६९ | ,, |
| पारावतगुणाः | ७० | ,, |
| गृहकुलिङ्गगुणाः | ७१ | ,, |
| गुहाशयाः प्राणिनः | ७२ | ,, |
| सामान्यतो गुहाशयगुणाः | ७३ | ,, |
| प्रसहाः प्राणिनस्तत्सामान्यगुणाः | ७४–७५ | २६९ |
| पर्णमृगाः | ७६ | ,, |
| सामान्यतः पर्णमृगगुणाः | ७७ | ,, |
| बिलेशयाः प्राणिनः | ७८ | ,, |
| सामान्यतो बिलेशयगुणाः | ७९ | ,, |
| शशगुणाः | ८० | ,, |
| गोधागुणाः | ८१ | ,, |
| शल्यकाजगरसर्पगुणाः | ८२–८४ | २६९–२७० |
| ग्राम्याः प्राणिनः | ८५ | ,, |
| सामान्यतो ग्राम्यागुणाः | ८६ | ,, |
| छगलगुणाः | ८७ | ,, |
| मेषगुणा भेदः पुच्छगुणाश्च | ८८ | ,, |
| गव्यगुणाः | ८९ | ,, |
| एकशफमांसगुणाः | ९० | ,, |
| अल्पभिष्यन्दिनो महाभिष्यन्दिनश्च प्राणिनः | ९१–९२ | ,, |
| आनूपवर्गभेदाः | ९३ | २७०–२७१ |
| कूलचराः प्राणिनः | ९४ | ,, |
| सामान्यतः कूलचरगुणाः | ९५ | ,, |
| गजगवयमांसगुणाः | ९६–९७ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| महिषमांसगुणाः | ९८ | २७१ |
| रुरु-चमर-सृमर-वराह-खड्गि-गोकर्णमांसगुणाः | ९९-१०४ | २७१-२७२ |
| हंसादयः प्लवाः प्राणिनः | १०५ | ,, |
| सामान्यतः प्लवानां गुणाः | १०६ | ,, |
| हंसमांसगुणाः | १०७ | ,, |
| कोशस्थाः प्राणिनः | १०८ | ,, |
| पादिनः प्राणिनः | १०९ | ,, |
| सामान्यतः कोशस्थानां पादिनां च गुणाः | ११० | ,, |
| कर्कटकगुणाः | १११ | २७३ |
| नादेयसामुद्रप्रभेदेन मत्स्यद्वैविध्यम् | ११२ | ,, |
| नादेया मत्स्याः | ११३ | ,, |
| सामान्यतो नादेयमत्स्यगुणाः | ११४ | ,, |
| रोहितमत्स्यगुणाः | ११५ | ,, |
| पाठीनमत्स्यगुणाः | ११६ | ,, |
| सरस्तडागादिस्थमत्स्यगुणाः | ११७ | ,, |
| सामुद्रा मत्स्याः | ११८ | ,, |
| सामान्यतः सामुद्रमत्स्यगुणाः | ११९ | ,, |
| सामुद्रजादिमत्स्यानामुत्तरोत्तरं गुणवत्तरम् | १२०-१२१ | ,, |
| नादेयादिमत्स्यावयवानां गुरुलाघवम् | १२२-१२५ | २७४ |
| अनुपादेयानि मांसानि | १२६ | ,, |
| शुष्कादिमांसदोषाः | १२७-१२८ | ,, |
| मांसस्य लिङ्गभेदेन शरीरभेदेन च गुणाः | १२९ | ,, |
| मांसस्य स्थानादिकृतं गुरुलाघवम् | १३०-१३३ | २७५ |
| मांसस्याहारविशेषेण गुणाः | १३४ | ,, |
| उक्तमांसवर्गाणां गुरुलाघवम् | १३५-१३६ | ,, |
| प्राप्ते कृत्स्नशरीरे गुणवदवयवा उपादेयाः | १३७ | ,, |
| चरादीन् परीक्ष्य मांसेषु गुरुलाघवम् | १३८ | ,, |
| **३ फलवर्गः ।** | | |
| दाडिमाद्यम्लवर्गः | १३९ | २७६ |
| सामान्यतो दाडिमादिफलानां गुणाः | १४० | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| दाडिमगुणाः | १४१–१४२ | २७६ |
| आमलक-बदर-सिञ्चितिका-कपित्थगुणाः | १४३–१४८ | २७७ |
| मातुलुङ्गगुणाः | १४९–१५१ | ,, |
| आम्रगुणाः | १५२–१५४ | ,, |
| आम्रातकलकुचगुणाः | १५५ | २७८ |
| करमर्द-प्रियाल-भव्य-पारावत-प्राचीनामलक-तिन्तिडीक-कोशाम-अम्लीकानारङ्ग-जम्बीर-ऐरावत-दन्तशठगुणाः | १५६–१६२ | ,, |
| कषायरसप्रायफलानि | १६३ | २७९ |
| सामान्यतः कषायरसप्रायफलानां गुणाः | १६४ | ,, |
| क्षीरवृक्षफल-जाम्बव-राजादन-तोदन-तिन्दुक-वाकुल-धान्वन-गाङ्गेरुक-अश्मन्तक-फल्गु-परूषक-पौष्कर-बिल्व-बिम्बीफलानां गुणाः | १६५–१७६ | ,, |
| तालादीनि मधुरफलानि | १७७ | २८० |
| तालादीनां सामान्यगुणाः | १७८ | ,, |
| ताल-नारिकेल-पनस-अक्षोटगुणाः | १७९–१८१ | ,, |
| द्राक्षादीनि मधुरफलानि | १८२ | ,, |
| द्राक्षा-काश्मर्य-खर्जूर-मधूकगुणाः | १८३–१८६ | ,, |
| वातामादीनि मधुरफलानि | १८७ | २८१ |
| वातामादीनां सामान्यगुणाः | १८८ | ,, |
| लवलीफलगुणाः | १८९ | ,, |
| वसिरादीनां गुणाः | १९० | ,, |
| ऐरावत-दन्तशठ-टङ्क-ऐङ्गुदशमीफलश्लेष्मातकगुणाः | १९१–१९३ | ,, |
| करीराक्षिकपीलुतृणशून्यफलगुणाः | १९४–१९५ | ,, |
| आरुष्कर-तौवरकफलगुणाः | १९६ | २८२ |
| करञ्ज-पलाश-निम्बफलगुणाः | १९७ | ,, |
| विडङ्गफलगुणाः | १९८ | ,, |
| हरीतकीगुणाः | १९९ | ,, |
| विभीतकफलगुणाः | २०० | ,, |
| पूगफलगुणाः | २०१ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| जातीकोश-कर्पूर-जातीफल-कङ्कोलकलवङ्ग-लता-कस्तूरिकागुणाः | २०३-२०४ | २८२ |
| प्रियाल-बिभीतक-कोल-आमलक-बीजपूरक-शम्पाक-कोशाम्रमज्जागुणाः | २०६-२०७ | ,, |
| फलगुणवन्मज्ज्ञो गुणाः | २०८ | २८३ |
| परिपक्वफलानां गुणवत्त्वम् | २०९ | ,, |
| त्याज्यफलानि | २१० | ,, |
| ४ शाकवर्गः । | | |
| कूष्माण्डादिफलशाकानि | २११ | ,, |
| सामान्यतः कूष्माण्डादीनां गुणाः | २१२ | ,, |
| कूष्माण्ड-कालिन्दा-लाबूनां गुणाः | २१३-२१६ | २८४ |
| त्रपुसादिफलशाकानि | २१६ | ,, |
| सामान्यतस्त्रपुसादीनां गुणाः | २१७ | ,, |
| त्रपुसैर्वारुककर्कारुकगुणाः | २१८-२१९ | ,, |
| शीर्णवृन्तकगुणाः | २२० | ,, |
| पिप्पल्यादिकटुफलशाकानि | २२१ | ,, |
| सामान्यतः पिप्पल्यादीनां गुणाः | २२२ | २८५ |
| पिप्पलीगुणाः | २२३ | ,, |
| आर्द्रशुष्कभेदेन मरिचगुणाः | २२४-२२५ | ,, |
| शुण्ठीगुणाः | २२६-२२७ | ,, |
| हिङ्गुगुणाः | २२८ | ,, |
| जोरकद्वयकारव्युपकुञ्चिकागुणाः | २२९ | २८६ |
| कुस्तुम्बरीगुणाः | २३०-२३१ | ,, |
| जम्बीर-सुरस-सुमुख-अर्जक-भूस्तृण-कासमर्दक-मधुशिग्रुगुणाः | २३२-२३७ | ,, |
| सर्षपशाकगण्डीरवेगनामगुणाः | २३८ | ,, |
| चित्रकतिलपर्णीवर्षाभूशाकगुणाः | २३९ | ,, |
| लघ्वाद्यवस्थाभेदेन मूलकगुणाः | २४०-२४३ | २८७ |
| लशुनगुणाः | २४४-२४५ | ,, |
| पलाण्डुगुणाः | २४६-२४७ | ,, |
| कलायशाकगुणाः | २४८ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कषायमधुरशाकवर्गस्तद्गुणाश्च | २४९–२५० | २८८ |
| चुञ्चु–जीवन्ती–वृक्षादन।–पूञ्जीगुणाः | २५१–२५२ | ,, |
| क्षारवृक्षोत्पलादिपल्लवगुणाः | २५३ | ,, |
| पुनर्नवादिशाकानि | २५४ | ,, |
| सामान्यतः पुनर्नवादिगुणाः | २५५ | ,, |
| तण्डुलीयकादिशाकानि | २५६ | ,, |
| सामान्यतस्तण्डुलीयकादिशाकानां गुणाः | २५७ | ,, |
| तण्डुलीय–उपोदिक–वास्तुक–चिल्लीपालङ्की–अश्ववलागुणाः | २५८–२६१ | ,, |
| मण्डूकपर्ण्यादितिक्तशाकवर्गः | २६२ | २८९ |
| मण्डूकपर्ण्यादीनां सामान्यगुणाः | २६३ | ,, |
| मण्डूकपर्णी–गोजिह्वा–सुनिषण्णक–अवल्गुज–सतीन–काकमाची–बृहती–पटोल–वार्ताक–कर्कोटक–कारवेल्लक–अटरूषक–वेत्राग्र–गुडूचीनिम्ब–पर्पट–किराततिक्त–वरुणप्रपुन्नाडशाकगुणाः | २६४–२७१ | २९० |
| कालशाककौसुम्भगुणाः | २७२ | ,, |
| नालिकाचाङ्गेरीगुणाः | २७३ | ,, |
| लोणिकादीनि शाकानि | २७४ | २९१ |
| सामान्यतो लोणिकादिगुणाः | २७५ | ,, |
| कुन्तलिका–कुरण्टिका—राजक्षवकशरीशाकानां गुणाः | २७६ | ,, |
| हरिमन्थकलायशाकगुणाः | २७७ | ,, |
| पूतिकरञ्जगुणाः | २७८ | ,, |
| ताम्बूलपत्रगुणाः | २७९–२८० | ,, |
| **५ पुष्पवर्गः ।** | | |
| कोविदारादिपुष्पशाकानि | २८१ | ,, |
| अगस्त्यपुष्पगुणाः | २८२ | २९२ |
| करीरादिपुष्पाणां गुणाः | २८३ | ,, |
| रक्तवृक्ष–निम्ब–मुष्कक–अर्क–असन–कुटजपुष्पगुणाः | २८४ | ,, |
| पद्मपुष्पादीनां गुणाः | २८५ | ,, |
| सिन्दुवार–मालती–मल्लिकापुष्पगुणाः | २८६ | ,, |
| वकुल–पाटल–नागकेसर–कुङ्कुमगुणाः | २८७ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| चम्पक-किंशुक-कुरण्टकगुणाः | २८८ | २९२ |
| मधुशिग्रुकरीरगुणाः | २८९ | ,, |
| क्षवकाद्युद्भिदशाकानि | २९० | ,, |
| क्षवकवेणुकरीरगुणाः | २९१–२९२ | २९३ |
| उद्भिदशाकानामाधारविशेषेण गुणावशेषः | २९३ | ,, |
| शुष्कशाकविशेषगुणाः | २९४ | ,, |
| वटकसिण्डाकीगुणाः | २९५ | ,, |
| सामान्यतः शाकगुणाः, तेषु पुष्पपत्रादीनामुत्तरोत्तरं गुरुत्वम् | २९६ | ,, |
| त्याज्यपत्रशाकादि | २९७ | ,, |
| विदार्यादिकन्दशाकानि | २९८ | २९४ |
| सामान्यतो विदार्यादिकन्दशाकगुणाः | २९९ | ,, |
| विदारीकन्दगुणाः | ३०० | ,, |
| शतावरीगुणाः | ३०१–३०२ | ,, |
| बिस-शृङ्गाटक-कसेरुक-पिण्डालुक-सुरेन्द्रकन्दगुणाः | ३०३–३०४ | ,, |
| वेण्वङ्कुरगुणाः | ३०५ | ,, |
| स्थूलसूरणमाणकादिगुणाः | ३०६ | ,, |
| माणकसूरणयोर्विशेषगुणाः | ३०७ | ,, |
| कुमुदोत्पलपद्मवराहकन्दानां गुणाः | ३०८–३०९ | २९५ |
| ताल-नारिकेल-खर्जूरप्रभृतिमस्तकमज्जगुणाः | ३१०–३११ | ,, |
| त्याज्यकन्दाः | ३१२ | ,, |


## ६ लवणवर्गः।


| | | |
|---|---|---|
| सामान्यतः सैन्धवादिलवणगुणाः | ३१३ | ,, |
| क्रमेण सैन्धव-सामुद्र-विड-सौवर्चल-रोमकौद्भिद-गुटिकालवणगुणाः | ३१४–३२० | ,, |
| ऊषरबालुकैलशैलमूलाकरोद्भूतलवणगुणाः | ३२१ | २९६ |
| यवक्षारसर्जिकोषरक्षारटङ्कादिगुणाः | ३२२–३२५ | ,, |
| सुवर्णरौप्यताम्रपुलीसमुक्ताविद्रुमवज्रवैदूर्यस्फाटकादिगुणाः | ३२६–३३० | २९७ |
| अनुक्तद्रव्याणां मधुरादिरसविशेषतो ज्ञानम् | ३३१ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| धान्यादिवर्गोक्तद्रव्येषु प्रधानानि | ३३२–३३९ | २९७ |
| ७ कृतान्नवर्गः । | | |
| लाजमण्डयोर्गुणाः | ३४०–३४१ | २९८ |
| पेयागुणाः | ३४२ | ,, |
| विलेपीगुणाः | ३४३ | ,, |
| शाकमांसादियोगतो विलेप्या गुणाः | ३४४ | ,, |
| मण्डादीनां लक्षणम् | ३४५ | २९९ |
| पायसकृसरगुणाः | ३४६ | ,, |
| भक्तगुणाः | ३४७ | ,, |
| भृष्टतण्डुलौदनगुणाः | ३४८ | ,, |
| स्नेहमांसादियोगत ओदनस्य विशेषगुणाः | ३४९ | ,, |
| संस्कारविशेषतः सूपशाकयोर्विशेषगुणाः | ३५० | ,, |
| मांसगुणाः | ३५१–३५२ | ,, |
| प्रदिग्धमांसगुणाः | ३५३ | ३०० |
| शुष्कमांसगुणाः | ३५४ | ,, |
| अङ्गारपक्वमांसगुणाः | ३५५ | ,, |
| शुल्यमांसगुणाः | ३५६ | ,, |
| तैलघृतसाधितमांसगुणाः | ३५७–३५८ | ,, |
| मांसरसगुणाः | ३५९–५६१ | ,, |
| सौरावगुणाः | ३६२ | ३०१ |
| उद्धृतरसमांसगुणाः | ३६३ | ,, |
| खानिष्कगुणाः | ३६४ | ,, |
| वेशवारगुणाः | ३६५–३६६ | ,, |
| मुद्गयूषगुणाः | ३६७ | ,, |
| रागषाडवगुणाः | ३६८ | ,, |
| मसूरादिपञ्चकयूषगुणाः | ३६९ | ३०२ |
| मृद्वीकादियोगतः पञ्चकयूषस्य विशेषगुणाः | ३७० | ,, |
| पटोलनिम्बयूषयोर्गुणाः | ३७१ | ,, |
| मूलककुलत्थयूषयोर्गुणाः | ३७२ | ,, |
| दाडिमामलकयूषगुणाः | ३७३ | ,, |
| मुद्गामलकयूषगुणाः | ३७४ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| यवकोलकुलत्थयूषस्य सर्वधान्यकृतयूषस्य च गुणाः | ३७६ | ३०२ |
| खडकाम्बलिकदाडिमाम्लदध्यम्लतक्राम्लयूषगुणाः | ३७६–३७७ | ,, |
| खड-यवागू-षाडवपानकानि | ३७८ | ३०३ |
| कृताकृतयूषपरिभाषा | ३७९ | ,, |
| संस्कृतासंस्कृतयूषमांसरसगुणाः | ३८० | ,, |
| काम्बलिकयूषलक्षणं शुष्कशाकविशेषाणां कृतान्नानां च गुणाः | ३८१ | ,, |
| वटकगुणाः | ३८२ | ,, |
| रागषाडवगुणाः | ३८३ | ,, |
| रसालासगुडदधिगुणाः | ३८३ | ,, |
| रसालासगुडदधिगुणाः | ३८४ | ,, |
| मन्थगुणाः | ३८५ | ३०४ |
| द्रव्यान्तरयोगतो मन्थगुणाः | ३८६–३८७ | ,, |
| पानकगुणाः | ३८८–३९१ | ,, |
| ८ भक्ष्यवर्गः । | | |
| भक्ष्यनिर्देशः | ३९२ | ३०६ |
| क्षीरसाधितभक्ष्यगुणाः | ३९३ | ,, |
| घृतपूरगुणाः | ३९४ | ,, |
| गुडकृतभक्ष्यगुणाः | ३९५ | ,, |
| मधुमस्तकसंयावापूपमोदकगुणाः | ३९६ | ,, |
| सट्टकगुणाः | ३९७ | ,, |
| विष्पन्दनगुणाः | ३९८ | ,, |
| समिताकृतफेनकादिगुणाः | ३९९ | ३०६ |
| मुद्गादिवेसवारगर्भभक्ष्यगुणाः | ४०० | ,, |
| पाललशष्कुलीपैष्टिकभक्ष्यगुणाः | ४०१ | ,, |
| मुद्गादिवैदलकृतभक्ष्यगुणाः | ४०२ | ,, |
| माषकृतभक्ष्यगुणाः | ४०३ | ,, |
| कूर्चिकाकृतभक्ष्यगुणा अङ्कुरितमुद्गादिकृतभक्ष्यगुणाश्च | ४०४ | ,, |
| घृततैलपक्वभक्ष्ययोर्गुणविशेषः | ४०५–४०६ | ,, |
| योनिविशेषेण भक्ष्याणां विशेषगुणाः | ४०७ | ,, |
| कपालाङ्गारपक्वानां विशेषगुणाः | ४०८ | ३०७ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| किलाटादिभक्ष्याणां गुणाः | ४०९ | ३०७ |
| कुल्माषवाट्यधानोलुम्बानां गुणाः | ४१० | ,, |
| सक्तुगुणाः | ४११-४१२ | ,, |
| लाजगुणाः | ४१३ | ,, |
| लाजसक्तुगुणाः | ४१४ | ,, |
| पृथुकगुणाः | ४१५ | ,, |
| धान्यपिष्टगुणाः, नवपुराणभेदेन तण्डलगुणाश्च | ४१६ | ,, |
| धान्यानामुक्तानुक्तसंग्रहः | ४१७ | ३०८ |
| **८ अनुपानवर्गः ।** | | |
| अनुपानविचारः | ४१८ | ,, |
| अनुपानद्रव्याणां संग्रहः | ४१९-४२० | ,, |
| अनुपानेषु जलस्य प्राशस्त्यम् | ४२१ | ,, |
| उष्णोदकाद्यनुपानविस्तरः | ४२२-४३१ | ३०९ |
| पूर्वोक्तशाल्यादिवर्गाणां पृथक्पृथगनुपानानि | ४३२ | ,, |
| आन्तरिक्षजलानुपानप्रशंसनम् | ४३३ | ३१० |
| सामान्यतोऽनुपानगुणाः | ४३४-४३६ | ,, |
| भोजनादिमध्यान्तोपयुक्तानुपानगुणाः | ४३७ | ,, |
| अनुपानव्यतिरेके दोषकथनम् | ४३८ | ३११ |
| अनुपानायोग्याः | ४३९ | ,, |
| पीतानुपानेन परिवर्ज्यानि | ४४०-४४१ | ,, |
| गुरुलाघवचिन्तायाः स्वभावसंस्कारमात्राद्यपेक्षा | ४४२ | ,, |
| गुरुलाघवचिन्तार्हाः पुरुषाः | ४४३ | ,, |
| केषु गुरुलाघवचिन्ता नावश्यिका | ४४४ | ,, |
| **१० आहारविधिः ।** | | |
| महानसविचारः । | ४४५ | ३१२ |
| सुसंस्कृतान्नस्य स्थानम् | ४४६ | ,, |
| आहारदूषकविषनाशनम् | ४४७ | ,, |
| भोजनस्योपकल्पनम् | ४४८-४५६ | ३१३ |
| भोजनस्थानम् | ४५७ | ,, |
| कीदृग् भोजनं हितकरम् | ४५८ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कालभेदेन आहारविधानम् | ४६९–४६३ | ३१४ |
| भोजनप्रकारकथनम् | ४६४ | ३१४ |
| कालादिभोजनानां फलम् | ४६५–३६६ | ,, |
| ऋतुप्रभेदेन भोजनकालः | ४६७–४६९ | ३१५ |
| अकालभोजने दोषकथनम् | ४७०–४७२ | ,, |
| हीनमात्रातिमात्रभोजनदोषाः | ४७३ | ,, |
| कीदृगन्नं सेवनीयम् | ४७४ | ,, |
| हेयान्नकथनम् | ४७५–४७६ | ,, |
| यथोत्तरं स्वादुतरं सेवनीयम् | ४७७ | ३१६ |
| भोजने गण्डूषकरणफलम् | ४७८–४७९ | ,, |
| स्वाद्वन्नगुणाः | ४८० | ,, |
| स्वाद्वन्नलक्षणं भोजने उदकपानविधानञ्च | ४८१ | ,, |
| दन्तान्तरगतान्नशोधनप्रकारः | ४८२ | ,, |
| जरणजीर्णकालयोर्दोषविशेषप्रकोपः | ४८३ | ,, |
| भुक्ते कुपितकफप्रतीकारः | ४८४–४८५ | ३१७ |
| भोजनोत्तरं कर्तव्यम् | ४८६ | ,, |
| भुक्तान्नस्य स्वार्थैर्थं मनःप्रियशब्दादिविषयसेवनम् | ४८७ | ,, |
| भोजनानन्तरं सेवितजुगुप्सितशब्दादिदोषाः | ४८८ | ,, |
| भोजनोत्तरं परिहरणीयानि | ४८९–४९० | ,, |
| रसानामतिमात्राशने दोषाः, मन्दाग्नौ वारद्वयभोजननिषेधश्च | ४९१ | ,, |
| मन्दाग्नौ गुर्वाहारनिषेधः | ४९२ | ,, |
| पिष्टान्ननिषेधः, लेह्यपयादीनां यथोत्तरं गौरवम् | ४९३ | ३१८ |
| लघूनां गुरूणां च मात्राविचारः | ४९४ | ,, |
| विशुष्कस्य द्रवाढ्यस्य भक्षणे दोषाभावः, शुष्कान्नसेवनदोषाश्च | ४९५ | ,, |
| अन्नविदाहकारणम् | ४९६ | |
| शुष्कविरुद्धविष्टम्भिनामग्निव्यापादकत्वम् | ४९७ | ,, |
| अजीर्णभेदाः | ४९८ | ,, |
| अजीर्णकारणानि | ४९९–५०० | ३१९ |



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| अजीर्णानां लक्षणम् | ५०१-५०२ | ३१९ |
| अजीर्णस्य बहुव्याधिकारित्वम् | ५०३ | ,, |
| अजीर्णानां चिकित्सा | ५०४-५०६ | ,, |
| समशनविषमाशनाध्यशनलक्षणम् | ५०७-५०८ | ,, |
| विदग्धाजीर्णस्य चिकित्सा | ५०९ | ,, |
| आमाशयगतान्नविदाहस्य चिकित्सा | ५१० | ,, |
| अजीर्णं प्रति शङ्कायां संशमनम् | ५११ | ३२० |
| अजीर्णे बुभुक्षाया दोषकथनम् | ५१२ | ,, |
| उष्णादिविंशतिगुणानां कर्माणि | ५१३-५२३ | ३२१ |
| आहारस्य गुणकथनम् | ५२४ | ,, |
| आहारावस्थायाकादूदोषाणां प्रकोपलक्षणम् | ५२५ | ,, |
| रसादेव अन्येषामपि धातूनामुत्पत्तिः | ५२६ | ३२२ |
| धातुभ्यः क्रमशो मलोत्पत्तिवर्णनम् | ५२७ | ,, |
| अजीण भोजनविचारः | ५२८-५२९ | ,, |
| एतदाहारविधिपठनफलम् | ५३० | ,, |


इति सूत्रस्थानविषयानुक्रमः ।

---

# अथ निदानस्थानम् ।

## १ प्रथमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| वातव्याधिनिदानोपक्रमः | १-२ | ३२३ |
| प्रकृतिभूतस्य व्यापन्नस्य च वायोः स्थानकर्मरोग-विषये प्रश्नः | ३-४ | ,, |
| वायोः स्वरूपवर्णनम् | ५-८ | ३२४ |
| देहे विचरतः वायोः कर्माणि | ९-१० | ३२५ |
| वायोर्नामस्थानकर्मभिः पञ्चधात्वम् | ११ | ,, |
| स्थानभेदेन वायोर्नामानि | १२ | ,, |
| प्राणवायोः स्थानं कर्माणि च | १३ | ,, |
| उदानवायोः स्थानं कर्माणि च | १४-१५ | ३२६ |
| समानवायोः स्थानं कर्माणि च | १६ | ,, |
| व्यानवायोः स्थानं कर्माणि च | १७-१८ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| अपानवायोः स्थानं कर्माणि च | १९ | ३२६ |
| विकृतवातद्वयकर्म | २० | ,, |
| वायोः स्थानविशेषेण रोगविशेषः | २१–२४ | ३२७ |
| वायोर्धातुविशेषाश्रयेण रोगविशेषः | २५–२९ | ,, |
| सर्वदेहगतवातकर्माणि | ३० | ,, |
| दोषान्तरसम्मिश्रवायोः सम्मिश्ररोगकरत्वम् | ३१ | ३२८ |
| कफपित्ताभ्यामावृतस्य वायो रोगकारित्वम् | ३२–३९ | ३२९ |
| वातरक्तप्रकोपकारणानि | ४०–४१ | ,, |
| वातरक्तसम्प्राप्तिः | ४२–४४ | ,, |
| वातादिविशेषेण वातरक्तस्य विशिष्टलिङ्गानि | ४५–४६ | ,, |
| वातरक्तपूर्वरूपम् | ४७ | ३३० |
| हस्तपादमात्रोत्पन्नस्य वायोः सर्वावयवव्यापनम् | ४८ | ,, |
| वातरक्तस्य असाध्यलक्षणानि | ४९ | ,, |
| आक्षेपकलक्षणम् | ५०–५१ | ,, |
| आक्षेपकविशेषाणामपतानकदण्डापतानकधनुःस्तम्भाभ्यन्तरायामबाह्यायामानां लक्षणानि | ५२–५८ | ३३१ |
| अपतानकस्य असाध्यलक्षणम् | ५९ | ,, |
| पक्षाघातलक्षणम् | ६०–६२ | ३३२ |
| पक्षाघातस्य साध्यासाध्यविचारः | ६३ | ,, |
| अपतन्त्रकलक्षणम् | ६४–६६ | ,, |
| मन्यास्तम्भलक्षणम् | ६७ | ,, |
| आर्दितस्य लक्षणम् | ६८–७२ | ३३३ |
| अर्दितवायोरसाध्यलक्षणम् | ७३ | ,, |
| गृध्रसीलक्षणम् | ७४ | ,, |
| विश्वाचीलक्षणम् | ७५ | ३३४ |
| क्रोष्टुकशिरोलक्षणम् | ७६ | ,, |
| खञ्जपङ्गुवातलक्षणम् | ७७ | ,, |
| कलापखञ्जलक्षणम् | ७८ | ,, |
| वातकण्टकलक्षणम् | ७९ | ,, |
| पाददाहलक्षणम् | ८० | ,, |
| पादहर्षलक्षणम् | ८१ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| अंसशोषावबाहुकयोर्लक्षणम् | ८२ | ३३४ |
| बाधिर्यलक्षणम् | ८३ | ३३५ |
| कर्णशूललक्षणम् | ८४ | ,, |
| मूकमिन्मिनगद्गदलक्षणम् | ८५ | ,, |
| तूनीप्रतितूनीलक्षणम् | ८६–८७ | ,, |
| आध्मानलक्षणम् | ८८ | ,, |
| प्रत्याध्मानलक्षणम् | ८९ | ,, |
| वाताष्ठीलालक्षणम् | ९० | ३३६ |
| प्रत्यष्ठीलालक्षणम् | ९१ | ,, |
| **२ द्वितीयोऽध्यायः ।** | | |
| अर्शो निदानोपक्रमः | १–२ | ,, |
| अर्शसां षाड्विध्यम् | ३ | ,, |
| अर्शसां निदानं सम्प्राप्तिश्च | ४ | ३३७ |
| गुदवलीनां वर्णनम् | ५–७ | ,, |
| अर्शसां पूर्वरूपाणि | ८ | ,, |
| अर्शसां सामान्यरूपाणि | ९ | ३३८ |
| वाताद्यर्शोलक्षणानि | १०–१५ | ३३९ |
| अर्शसां स्थानाश्रयं साध्यासाध्यत्वम् | १६ | ,, |
| मेढ्रादिषूत्पन्नानामर्शसां लक्षणानि | १७ | ३४० |
| चर्मकीललक्षणम् | १८ | ,, |
| चर्मकीलेषु दोषलिङ्गानि | १९–२० | ,, |
| मेढ्राद्विजेष्वर्शस्सुवातादिलक्षणातिदेशः | २१ | ,, |
| संसर्गजार्शसो लक्षणम् | २२ | ,, |
| अर्शसां साध्यासाध्यविचारः | २३–२४ | ३४१ |
| सर्ववलिव्यापिनामर्शसामसाध्यत्वम् | २५–२६ | ,, |
| **३ तृतीयोऽध्यायः ।** | | |
| अश्मरीनिदानाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| अश्मर्याश्चातुर्विध्यम् | ३ | ,, |
| अश्मरीसम्प्राप्तिः | ४ | ३४२ |
| अश्मरीणां पूर्वरूपम् | ५–६ | ,, |
| सामान्यतः सर्वासामश्मरीणां लक्षणानि | ७ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| श्लेष्माद्यश्मरीणां लक्षणानि | ८–१० | ३४३ |
| महतामेव शुक्राश्मरी भवतीति कथनम् | ११ | ,, |
| शुक्राश्मर्याः सम्प्राप्तिहेतुलक्षणानि | १२ | ,, |
| शर्करासिकतयोर्लक्षणम् | १३–१६ | ३४४ |
| मूत्रमार्गगताया अश्मर्या लक्षणम् | १६–१७ | ,, |
| अश्मर्याधारस्य बस्तेः स्थानसंस्थानद्वाराणि | १८–२३ | ३४६ |
| अश्मर्युत्पत्तिवर्णनम् | २४–२६ | ,, |
| बस्तिगतरोगाणां वायुरेव कारणम् | २७–२८ | ३४६ |

## ४ चतुर्थोऽध्यायः।

| | | |
|---|---|---|
| भगन्दरनिदानाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| भगन्दराणां नामानि निरुक्तिश्च | ३ | ,, |
| भगन्दराणां पूर्वरूपम् | ४ | ,, |
| शतपोनकभगन्दरस्य लक्षणम् | ५ | ३४७ |
| उष्ट्रग्रीवभगन्दरलक्षणम् | ६ | ,, |
| परिस्राविभगन्दरस्य लक्षणम् | ७ | ,, |
| शम्बूकावर्तभगन्दरलक्षम् | ८ | ३४८ |
| उन्मार्गिभगन्दरलक्षणम् | ९ | ,, |
| अभागन्दर्याभागन्दर्याश्च पिडकाया भेदः | १०–११ | ,, |
| भगन्दरस्य पूर्वरूपम् | १२ | ,, |
| असाध्यभगन्दरनिर्देशः | १३ | ,, |

## ५ पञ्चमोऽध्यायः।

| | | |
|---|---|---|
| कुष्ठनिदानाध्यायोपक्रमः | १–२ | ३४९ |
| कुष्ठसम्प्राप्तिः | ३ | ,, |
| कुष्ठस्य पूर्वरूपाणि | ४ | ३५० |
| महाकुष्ठानां क्षुद्रकुष्ठानां च नामानि | ५ | ,, |
| दोषभेदेन कुष्ठविशेषः | ६ | ,, |
| अरुणादीनां सप्तमहाकुष्ठानां क्रमेण लक्षणानि | ७ | ,, |
| स्थूलारुष्कमहाकुष्ठयोर्लक्षणम् | ८ | ३५१ |
| एककुष्ठचर्मदलयोर्लक्षणम् | ९ | ,, |
| विसर्पकुष्ठलक्षणम् | १० | ,, |
| परिसर्पसिध्मकुष्ठयोर्लक्षणम् | ११ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| विचर्चिकाकुष्ठलक्षणम् | १२ | ३९२ |
| किटिभपामाकुष्ठयोर्लक्षणम् | १३ | ,, |
| रकसाकुष्ठलक्षणम् | १४ | ,, |
| कस्मिन् कुष्ठे कस्य दोषस्याधिक्यम् | १५ | ,, |
| किलासकुष्ठलक्षणम् | १६ | ३९३ |
| वातपित्तश्लेष्मप्रभेदतः कुष्ठानां लक्षणानि | १७ | ,, |
| कुष्ठानामसाध्यत्वकथनम् | १८ | ,, |
| अप्रतिकारिकुष्ठानां दृष्टान्तेन असाध्यत्व कथनम् | १९–२० | ,, |
| धातुगतकुष्ठानां लक्षणम् | २१–२६ | ३९४ |
| स्त्रीपुंसयोः कुष्ठदोषात्तदपत्यस्यापि कुष्ठित्वम् | २७ | ,, |
| कुष्ठानां साध्यासाध्यविचारः | २८ | ,, |
| कुष्ठानां कर्मजत्वकथनम् | २९ | ,, |
| कुष्ठोत्पादककर्मणां जन्मान्तरानुबन्धित्वप्रदर्शनम् | ३०–३२ | ,, |
| कुष्ठप्रभृतीनां सङ्क्रामकत्वम् | ३३ | ३९५ |


## ६ षष्ठोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| प्रमेहनिदानाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| प्रमेहकारणानि | ३ | ,, |
| प्रमेहसम्प्राप्तिः | ४ | ,, |
| प्रमेहपूर्वरूपम् | ५ | ,, |
| सामान्यतः प्रमेहलक्षणम् | ६ | ३९६ |
| प्रमेहाणां पिडकानां च सर्वदोषजत्वम् | ७ | ,, |
| प्रमेहाणां साध्ययाप्यासाध्यभेदाः | ८ | ,, |
| सर्वप्रमेहाणां सर्वजत्वम् | ९ | ३९७ |
| कफजप्रमेहाणां क्रमेण लक्षणानि | १० | ,, |
| पित्तजप्रमेहाणां क्रमेण लक्षणानि | ११ | ,, |
| वातजप्रमेहाणां क्रमेण लक्षणानि | १२ | ,, |
| दोषानुसारेण प्रमेहोपद्रवाः | १३ | ,, |
| प्रमेहपिडकासम्प्राप्तिः | १४ | ३९८ |
| प्रमेहपिडकानां लक्षणानि | १५–१९ | ३९९ |
| पिडकानामसाध्यलक्षणम् | २० | ,, |
| वातजप्रमेहाणामसाध्यत्वे कारणम् | २१ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| सामान्यतः प्रमेहिणो लक्षणम् | २२–२३ | ३६९ |
| मधुमेहिनो लक्षणम् | २४–२५ | ,, |
| त्रयाणामपि दोषाणां विंशतिप्रमेहकरणे निदर्शनम् | २६ | ,, |
| प्रमेहाणामुपेक्षयाऽसाध्यत्वम् | २७ | ३६० |

७ सप्तमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| उदरनिदानाध्यायोपक्रमः | १–३ | ,, |
| उदराणां संख्या | ४ | ,, |
| उदराणां कारणानि | ५ | ३६१ |
| उदराणां सम्प्राप्तिः | ६ | ,, |
| उदराणां पूर्वरूपम् | ७ | ,, |
| वाताद्युदरलक्षणम् | ८–१० | ,, |
| सन्निपातोदरलक्षणम् | ११–१३ | ३६२ |
| प्लीहोदरलक्षणम् | १४–१५ | ,, |
| यकृद्दाल्युदरलक्षणम् | १६ | ,, |
| बद्धगुदोदरलक्षणम् | १७–१८ | ,, |
| परिस्राव्युदरलक्षणम् | १९–२० | ३६३ |
| जलोदरलक्षणम् | २१–२३ | ,, |
| अष्टविधोदराणां सामान्यलक्षणम् | २४ | ,, |
| उदराणां साध्यासाध्यविचारः | २५ | ,, |

८ अष्टमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| मूढगर्भनिदानाध्यायोपक्रमः | १–२ | ३६४ |
| मूढगर्भहेतवः | ३ | ,, |
| मूढगर्भस्य चातुर्विध्यम् | ४ | ,, |
| मूढगर्भस्य अष्टविधत्वम् | ५ | ३६५ |
| मूढगर्भस्य असाध्यलक्षणम् | ६ | ३६६ |
| स्वाभाविकप्रजननवर्णनम् | ७–८ | ,, |
| गर्भविच्युतौ दृष्टान्तप्रदर्शनम् | ९ | ,, |
| गर्भस्रावगर्भपातयोः कालनिर्देशः | १० | ,, |
| असाध्यमूढगर्भगर्भिण्योर्लक्षणम् | ११ | ,, |
| अन्तर्मृतगर्भलक्षणम् | १२–१३ | ३६७ |
| मातुर्मृताया अपि जीवतो गर्भस्योद्धरणम् | १४ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| **९ नवमोऽध्यायः ।** | | |
| विद्रधिनिदानाध्यायोपक्रमः | १–३ | ३६७ |
| विद्रधिसम्प्राप्तिः | ४–६ | ३६८ |
| वातादिविद्रधिलक्षणम् | ७–९ | ,, |
| सान्निपातिकविद्रधिलक्षणम् | १० | ,, |
| आगन्तुविद्रधिसम्प्राप्तिः | ११–१२ | ३६९ |
| रक्तविद्रधिलक्षणम् | १३ | ,, |
| सर्वजविद्रधेरसाध्यत्वम् | १४ | ,, |
| आभ्यन्तरविद्रधेर्हेतुसम्प्राप्तिलक्षणानि | १५–१८ | ,, |
| बाह्याभ्यन्तरविद्रधीनामधिष्ठानविशेषेण लक्षणम् | १९–२२ | ३७० |
| मर्मोत्थितविद्रधीनां सर्वावस्थासु कष्टत्वम् | २३ | ,, |
| विद्रधीनामवस्थाविशेषेण साध्यासाध्यत्वम् | २४–२५ | ,, |
| अहितैराहारविहारैः रक्तविद्रधिसम्भवः | २६–२७ | ३७१ |
| विद्रधिगुल्मयोर्भेदः | २८–३३ | ,, |
| अस्थिगतविद्रधिलक्षणम् | ३४–३८ | ३७२ |
| **१० दशमोऽध्यायः ।** | | |
| विसर्पनाडीस्तनरोगनिदानाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| विसर्पाणां सम्प्राप्तिहेतुस्वरूपनिरुक्तयः | ३ | ३७३ |
| वातादिविसर्पलक्षणम् | ४–६ | ,, |
| क्षतविसर्पलक्षणम् | ७ | ३७४ |
| विसर्पाणां साध्यासाध्यविचारः | ८ | ,, |
| नाडीव्रणस्य सम्प्राप्तिर्निरुक्तिश्च | ९ | ,, |
| नाडीसंख्या | १० | ,, |
| वातिकपैत्तिकनाडीलक्षणम् | ११ | ३७५ |
| कफजद्वन्द्वजनाडीलक्षणम् | १२ | ,, |
| सान्निपातिकनाडीलक्षणम् | १३ | ,, |
| शल्यनिमित्ताया नाड्या लक्षणम् | १४ | ,, |
| स्तनरोगसंख्या | १५ | ३७६ |
| अप्राप्तगर्भाणां स्त्रीणां स्तनरोगाभावः | १६ | ,, |
| प्रजातातां गर्भिणीनां च स्तनरोगसम्भवः | १७ | ,, |
| स्तन्यलक्षणम् | १८ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| शुक्रप्रवृत्तिवत् स्तन्यस्यापि प्रवृत्तिः | १९–२२ | ३७६ |
| वातादिदुष्टस्तन्यलक्षणम् | २३–२४ | ३७७ |
| निर्दोषस्तन्यलक्षणम् | २५ | ,, |
| स्तनरोगसम्प्राप्तिः | २६ | ,, |
| सङ्क्षेपेण स्तनरोगलक्षणातिदेशः | २७ | ,, |
| **११ एकादशोऽध्यायः।** | | |
| ग्रन्थपच्यर्बुदगलगण्डनिदानोपक्रमः | १–२ | ,, |
| ग्रन्थेर्हेतुसम्प्राप्तिलक्षणानि | ३ | ,, |
| वातिकादिग्रन्थिलक्षणम् | ४–६ | ३७८ |
| मेदोग्रन्थिलक्षणम् | ७ | ,, |
| सिराजग्रन्थेः सम्प्राप्तिर्लक्षणं च | ८–९ | ,, |
| अपच्याः सम्प्राप्तिलक्षणनिरुक्तयः | १०–१२ | ३७९ |
| अर्बुदानां सम्प्राप्तिः | १३ | ,, |
| वातादिजानामर्बुदानां ग्रन्थिसमानलक्षणानि | १४ | ३८० |
| रक्तार्बुदलक्षणम् | १५–१६ | ,, |
| मांसार्बुदलक्षणम् | १७–१८ | ,, |
| अर्बुदानामसाध्यलक्षणानि | १९–२० | ,, |
| अर्बुदानां पाकाभावे कारणम् | २१ | ,, |
| गलगण्डसम्प्राप्तिः | २२ | ३८१ |
| वातादिभेदेन गलगण्डलक्षणानि | २३–२७ | ,, |
| गलगण्डस्य असाध्यलक्षणम् | २८ | ,, |
| गलगण्डस्वरूपकथनम् | २९ | ,, |
| **१२ द्वादशोऽध्यायः।** | | |
| वृद्ध्युपदंशश्लीपदनिदानाध्यायोपक्रमः | १–२ | ३८२ |
| वृद्धीनां सप्तभेदाः | ३ | ,, |
| वृद्धीनां सम्प्राप्तिः | ४ | ,, |
| वृद्धीनां पूर्वरूपम् | ५ | ,, |
| वातजादिवृद्धिलक्षणानि | ६ | ,, |
| उपदंशानां निदानं सम्प्राप्तिश्च | ७ | ३८३ |
| उपदंशानां संख्या | ८ | ,, |
| वातजाद्युपदंशानां लक्षणानि | ९ | ३८४ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| श्लीपदसम्प्राप्तिः | १० | ३८५ |
| वातजादिश्लीपदानां लक्षणानि | ११ | ,, |
| श्लीपदस्य असाध्यलक्षणम् | १२ | ,, |
| श्लीपदानां श्लेष्माधिक्यनिरूपणम् | १३ | ,, |
| केषु देशेषु श्लीपदं विशेषतो जायते | १४ | ,, |
| श्लीपदस्थानानि | १५ | ३८५ |
| **१३ त्रयोदशोऽध्यायः ।** | | |
| क्षुद्ररोगनिदानाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| चतुश्चत्वारिंशत्क्षुद्ररोगनामानि | ३ | ,, |
| अजगल्लिकाया लक्षणम् | ४ | ,, |
| यवप्रख्याया लक्षणम् | ५ | ३८६ |
| अन्धालज्या लक्षणम् | ६ | ,, |
| विवृताया लक्षणम् | ७ | ,, |
| कच्छप्या लक्षणम् | ८ | ,, |
| वल्मीकस्य लक्षणम् | ९–१० | ,, |
| इन्द्रवृद्धाया लक्षणम् | ११ | ,, |
| पनसिकाया लक्षणम् | १२ | ,, |
| पाषाणगर्दभस्य लक्षणम् | १३ | ,, |
| जालगर्दभस्य लक्षणम् | १४ | ३८७ |
| इविरेल्लिकाया लक्षणम् | १५ | ,, |
| कक्षाया लक्षणम् | १६ | ,, |
| गन्धनामाया लक्षणम् | १७ | ,, |
| विस्फोटकलक्षणम् | १८ | ,, |
| अग्निरोहिणीलक्षणम् | १९–२० | ,, |
| चिप्पलक्षणम् | २१ | ३८८ |
| कुनखलक्षणम् | २२ | ,, |
| अनुशय्याः लक्षणम् | २३ | ,, |
| विदारिकालक्षणम् | २४ | ,, |
| शर्करार्बुदस्य लक्षणम् | २५–२७ | ,, |
| पामाविचर्चीरकसापददारीणां लक्षणम् | २८–२९ | ३८९ |
| कदरलक्षणम् | ३०–३१ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| अलसलक्षणम् | ३२ | ३८९ |
| इन्द्रलुप्तलक्षणम् | ३३-३४ | ,, |
| दारुणकलक्षणम् | ३५ | ,, |
| अरुंषिकालक्षणम् | ३६ | ३९० |
| पलितलक्षणम् | ३७ | ,, |
| मसूरिकालक्षणम् | ३८ | ,, |
| मुखदूषिकालक्षणम् | ३९ | ,, |
| पद्मिनीकण्टकलक्षणम् | ४० | ,, |
| जतुमणिलक्षणम् | ४१ | ,, |
| मषकलक्षणम् | ४२ | ,, |
| तिलकालकलक्षणम् | ४३ | ३९१ |
| व्यच्छलक्षणम् | ४४ | ,, |
| व्यङ्गलक्षणम् | ४५-४६ | ,, |
| परिवर्तिकालक्षणम् | ४७-४९ | ,, |
| अवपारिकालक्षणम् | ५०-५१ | ३९२ |
| निरुद्धप्रकशलक्षणम् | ५२-५४ | ,, |
| सन्निरुद्धगुदलक्षणम् | ५५-५६ | ,, |
| अहिपुतनलक्षणम् | ५७-५८ | ,, |
| वृषणकच्छूलक्षणम् | ५९-६० | ,, |
| गुदभ्रंशलक्षणम् | ६१ | ३९३ |
| १४ चतुर्दशोऽध्यायः। | | |
| शूकदोषनिदानाध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| शूकदोषजव्याधीनां सामान्यतः सम्प्राप्तिर्भेदाश्च | ३ | ,, |
| सर्षपिकाया लक्षणम् | ४ | ,, |
| अष्ठीलिकाया लक्षणम् | ६ | ३९४ |
| ग्रथितकुम्भीकाऽलजीमृदितानां लक्षणम् | ६-७ | ,, |
| सम्मूढपिडकाऽवमन्थयोर्लक्षणम् | ८ | ,, |
| पुष्करिकाया लक्षणम् | ९ | ,, |
| स्पर्शहानिलक्षणम् | १० | ,, |
| उत्तमाशतपोनकयोर्लक्षणम् | ११-१२ | ३९५ |
| त्वक्पाकशोणितार्बुदयोर्लक्षणम् | १३ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः । | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---|---|
| मांसार्बुदमांसपाकयोर्लक्षणम् | १४ | ३९६ |
| विद्रधितिलकालकयोर्लक्षणम् | १६-१७ | ,, |
| शूकदोषाणां साध्यासाध्यविचारः | १८ | ,, |

१५ पञ्चदशोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| भग्ननिदानाध्यायोपक्रमः | १-२ | ३९६ |
| भग्नानां निदानम् | ३ | ,, |
| भग्नस्य द्वैविध्यम् | ४ | ,, |
| तत्र सन्धिमुक्तस्य षड्भेदाः | ५ | ,, |
| सन्धिमुक्तस्य सामान्यलक्षणम् | ६ | ,, |
| उत्पिष्टादिसन्धिमुक्तानां लक्षणम् | ७ | ,, |
| काण्डभग्नभेदाः | ८ | ,, |
| काण्डभग्नस्य सामान्यलक्षणम् | ९ | ३९७ |
| कर्कटकादिद्वादशकाण्डभग्नानां लक्षणम् | १० | ,, |
| भग्नस्य कृच्छ्रसाध्यलक्षणम् | ११ | ,, |
| भग्नस्य असाध्यलक्षणम् | १२-१४ | ३९८ |
| मध्ये वयसि भग्नस्य साध्यत्वम् | १५ | ,, |
| अस्थिविशेषेण भग्नविशेषः | १६ | ,, |

१६ षोडशोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| मुखरोगनिदानोपक्रमः | १-२ | ,, |
| मुखरोगाणां संख्या | ३ | ३९९ |
| ओष्ठप्रकोपाणां संख्या | ४ | ,, |
| ओष्ठप्रकोपाणां वातजादिभेदतोलक्षणानि | ५-१२ | ४०० |
| दन्तमूलगतरोगाणां नामानि | १३ | ,, |
| शीतादलक्षणम् | १४-१५ | ,, |
| दन्तपुप्पुटकदन्तवेष्टसौषिराणां लक्षणानि | १६-१८ | ,, |
| महासौषिरक्षणम् | १९ | ,, |
| परिदरोपकुशयोर्लक्षणम् | २०-२२ | ४०१ |
| वैदर्भवर्धनयोर्लक्षणम् | २३-२४ | ,, |
| अधिमांसकदन्तनाडीनां लक्षणम् | २५-२६ | ,, |
| दन्तगतरोगाणां नामानि | २७ | ,, |
| दालनकृमिदन्तकयोर्लक्षणम् | २८-२९ | ४०२ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः । | सूत्राङ्काः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---|---|
| दन्तहर्षभञ्जनकशर्कराणां लक्षणानि | ३०-३२ | ४०२ |
| कपालिकाश्यावदन्तकहनुमोक्षलक्षणम् | ३३-३५ | ,, |
| जिह्वागतरोगाणां नामानि | ३६ | ४०३ |
| वातादिदोषभेदतः कण्टकलक्षणानि | ३७ | ,, |
| अलासोपजिह्विकयोर्लक्षणम् | ३८-३९ | ,, |
| तालुगतरोगाणां नामानि | ४० | ,, |
| कण्ठशुण्डीलक्षणम् | ४१ | ,, |
| तुण्डिकेर्यध्रुवयोर्लक्षणम् | ४२ | ,, |
| मांसकच्छपरक्तार्बुदयोर्लक्षम् | ४३ | ४०४ |
| मांससङ्घाततालुपुप्पुटयोर्लक्षणम् | ४४ | ,, |
| तालुशोषतालुपाकयोर्लक्षणम् | ४५ | ,, |
| कण्ठगतरोगाणां नामानि | ४६ | ,, |
| वातजादिभेदेन कण्ठरोहिणीनां लक्षणानि | ४७-५० | ,, |
| कण्ठशालूकलक्षणम् | ५१ | ४०५ |
| अधिजिह्वलक्षणम् | ५२ | ,, |
| वलयवलासयोर्लक्षणम् | ५३-५४ | ,, |
| वृन्दलक्षणम् | ५५-५६ | ,, |
| शतघ्नीलक्षणम् | ५७ | ,, |
| गिलायुलक्षणम् | ५८ | ४०६ |
| गलविद्रधिलक्षणम् | ५९ | ,, |
| गलौघलक्षणम् | ६० | ,, |
| स्वरघ्नलक्षणम् | ६१ | ,, |
| मांसतानलक्षणम् | ६२ | ,, |
| विदारीलक्षणम् | ६३ | ,, |
| सर्वसर (मुखपाक) भेदाः | ६४ | ,, |
| वातजादिभेदेन मुखपाकस्य लक्षणानि | ६५-६६ | ४०७ |


इति निदानस्थानविषयानुक्रमः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# अथ शारीरस्थानम् ।

## १ प्रथमोऽध्यायः ।


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| सर्वभूतचिन्ताशारीराध्यायोपक्रमः | १-२ | ४०७ |
| अव्यक्तवर्णनम् | ३ | ४०८ |
| अव्यक्तात्सर्वतत्त्वानामुत्पत्तिक्रमः | ४ | ४०९ |
| ज्ञानेन्द्रियाणां कर्मेन्द्रियाणां च विषयनिरूपणम् | ५ | ४१० |
| अव्यक्ताद्यष्टौ प्रकृतयः षोडश विकाराश्च | ६ | ,, |
| इन्द्रियाणामधिभूतमात्माधिदैवतभेदेन त्रैविध्यम् | ७ | ४११ |
| पूर्वोक्ताचेतनवर्गस्य पुरुषश्चेतपिता कथं भवतीति वर्णनम् | ८ | ,, |
| प्रकृतिपुरुषयोः साधर्म्यवैधर्म्ये | ९ | ४१२ |
| सर्वे विशेषाः सत्त्वरजस्तमोमया भवन्तीति प्रतिपादनम् | १० | ,, |
| प्रकृतिविषये वैद्यकसिद्धान्तप्रदर्शनम् | ११ | ,, |
| सर्वस्यापि कार्यजातस्य कारणमयत्वप्रतिपादनम् | १२-१४ | ४१३ |
| इन्द्रियाणां नियतस्वस्वविषयग्राहित्वकथनम् | १५ | ४१४ |
| आयुर्वेदस्य सांख्यादिभ्यो भेदप्रदर्शनम् | १६ | ४१५ |
| आत्मनः शरीरमनःसंयोगेऽभिव्यज्यमाना गुणाः | १७ | ,, |
| सत्त्वादियुक्तमनसो गुणाः | १८ | ,, |
| महाभूतगुणाः | १९ | ४१६ |
| महाभूतानां सत्त्वादित्रिगुणात्मकत्वम् | २० | ,, |
| महाभूतानामन्योन्यानुप्रवेशेऽपि स्वे स्वे द्रव्ये व्यक्तं लक्षणं भवतीति प्रदर्शनम् | २१ | ,, |
| प्रोक्तविषयोपसंहारः | २२ | ,, |


## २ द्वितीयोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| शुक्रशोणितशुद्धिशारीराध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| वातादिदुष्टरेतसः सन्तानोत्पादनेऽसमर्थाः | ३ | ४१७ |
| वातादिदुष्टरेतसो लक्षणानि | ४ | ,, |
| आर्तवदोषकथनम् | ६ | ,, |
| शुक्रदोषाणां चिकित्सा | ६-१० | ४१८ |
| अदुष्टशुक्रलक्षणम् | ११ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| आर्तवदोषाणां चिकित्सा | १२–१६ | ४१९ |
| अदुष्टार्तवलक्षणम् | १७ | ,, |
| असृग्दरलक्षणं तच्चिकित्सा च | १८–२० | ,, |
| आर्तवाप्रवृत्तिलक्षणं तच्चिकित्सा च | २१–२३ | ४२० |
| उक्तप्रकरणोपसंहारः | २४ | ,, |
| ऋतुमतीचर्या | २५–२६ | ४२१ |
| पुत्रीयाचारवर्णनम् | २७–३० | ,, |
| मैथुने विहितो निषिद्धश्च कालः | ३१ | ,, |
| प्राप्तगर्भाया पुंसवनविधिः | ३२ | ४२२ |
| ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्ये गर्भोत्पत्तिः | ३३ | ,, |
| विधिपूर्वकोत्पन्नगर्भस्य रूपवत्त्वादिफलम् | ३४ | ,, |
| गर्भस्य गौरकृष्णादिवर्णहेतवः | ३५ | ,, |
| पुंसां समागमे नार्या आर्तवविसर्पणम् | ३६ | ४२३ |
| यमलगर्भोत्पत्तिहेतुः | ३७ | ,, |
| आसेक्यक्लीबपुरुषलक्षणम् | ३८ | ,, |
| सौगन्धिकक्लीबपुरुषलक्षणम् | ३९ | ,, |
| कुम्भीकस्य ईर्ष्यकस्य च क्लीबस्य लक्षणम् | ४० | ,, |
| षण्डकपुरुषलक्षणम् | ४१–४२ | ,, |
| नरचेष्टिताया नार्या लक्षणम् | ४३ | ४२४ |
| पूर्वोक्तक्लीबानां साध्यासाध्यविचारः | ४४ | ,, |
| आसेक्यादीनां ध्वजोच्छ्रायहेतुः | ४५ | ,, |
| आहाराचारचेष्टासदृशी पुत्रोत्पत्तिः | ४६ | ,, |
| नारीद्वयसंयोगेऽस्थिरहितगर्भोत्पत्तिः | ४७ | ,, |
| विकृतगर्भोत्पत्तिलक्षणम् | ४८–५० | ,, |
| कुब्जकुणिपंगुमूकमिन्मिनोत्पत्तिहेतवः | ५१ | ४२५ |
| गर्भविकृतिकारणम् | ५२ | ,, |
| गर्भस्थस्य मूत्रपुरीषाद्यकरणे कारणम् | ५३ | ,, |
| गर्भस्थस्य अरोदने कारणम् | ५४ | ,, |
| मातुर्निश्वासोच्छ्वासादिभिर्गर्भस्यापि निश्वासोच्छ्वासादयः | ५५ | ,, |
| शरीररचनाविशेषादीनां स्वभावजत्वम् | ५६ | ,, |
| पूर्वजन्मन्यभ्यस्तागुणा उत्तरजन्मन्यप्यनुवर्तन्ते | ५७–५८ | ४२६ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## ३ तृतीयोऽध्यायः ।


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| गर्भावक्रान्तिशारीराध्यायोपक्रमः | १-२ | ४२६ |
| शुक्रार्तवयोः स्वरूपम् | ३ | ,, |
| गर्भावतरणप्रक्रिया | ४ | ४२७ |
| स्त्रीनपुंसकोत्पत्तिहेतवः | ५ | ,, |
| ऋतुकालमर्यादा | ६ | ,, |
| अदृष्टार्तवाया ऋतुमत्या लक्षणम् | ७-८ | ४२८ |
| ऋतावतिक्रान्ते गर्भाशयस्य सङ्कोचः | ९ | ,, |
| आर्तवस्वरूपनिरूपणम् | १० | ,, |
| आर्तवस्य प्रवृत्तिनिवृत्तिकालौ | ११ | ,, |
| ऋतौ समविषमदिनयोर्गमने पुंस्त्रियोर्जन्म | १२ | ,, |
| सद्योगृहीतगर्भाया लक्षणानि | १३ | ,, |
| गृहितगर्भाया उत्तरकालीनं लक्षणम् | १४-१५ | ४२९ |
| गर्भिण्या परिहरणीयानि | १६-१७ | ,, |
| प्रथमादिमासप्रभेदेन गर्भावस्थाः | १८ | ४३० |
| दौर्हृदानां यथावत्पूरणे फलम् | १९-२१ | ,, |
| दौर्हृदविशेषैर्गुणविशेषयुक्तापत्योत्पत्तिः | २२-२८ | ४३१ |
| यथादैवं दौर्हृदोद्भवः | २९ | ,, |
| पञ्चमादिमासेषु मनआदीनामुत्पत्तिः | ३० | ,, |
| गर्भपोषणक्रमः | ३१ | ४३२ |
| सम्भवतो गर्भस्य प्रथमं किमङ्गं प्रादुर्भवतीति नानामतप्रदर्शनम् | ३२ | ,, |
| गर्भस्य पितृमातृरसात्मसत्त्वसात्म्यजानि लक्षणानि | ३३ | ४३३ |
| गर्भस्य पुंस्त्रीनपुंसकशरीरलक्षणानि | ३४ | ,, |
| देवताऽऽदिपराः गुणवदपत्यानि जनयन्ति | ३५ | ,, |
| अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तेः स्वभावजत्वम् | ३६ | ,, |


## ४ चतुर्थोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| गर्भव्याकरणशारीराध्यायोपक्रमः | १-२ | ४३४ |
| एकादशप्राणनिरूपणम् | ३ | ,, |
| सप्तत्वङ्निरूपणम् | ४ | ४३५ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कलास्वरूपम् | ५-७ | ४३५ |
| मांसधराकलावर्णनम् | ८-९ | ,, |
| रक्तधराकलावर्णनम् | १०-११ | ४३६ |
| मेदोधराकलावर्णनम् | १२-१३ | ,, |
| श्लेष्मधराकलावर्णनम् | १४-१५ | ,, |
| पुरीषधराकलावर्णनम् | १६-१७ | ४३७ |
| षष्ठी-पित्तधराकला | १८ | ,, |
| शुक्रधराकलावर्णनम् | १९-२१ | ,, |
| पुसः शुक्रक्षरणमार्गः | २२ | ४३८ |
| पुंस हर्ष एव शुक्रप्रवृत्तिहेतुः | २३ | ,, |
| गृहीतगर्भाणामार्तवादर्शने हेतुः | २४ | ,, |
| गर्भस्य यकृत्प्लीहफुप्फुसोण्डुकानामुद्भवः | २५ | ,, |
| गर्भस्य अन्त्रगुदबस्तिजिह्वास्रोतः पेशीसिरास्नाय्वा-शयानामुत्पत्तिः | २६-३० | ४३९ |
| गर्भस्य वृक्कवृषणहृदयानामुत्पत्तिः | ३१ | ४४० |
| हृदयस्वरूपम् | ३२ | ,, |
| निद्रावर्णनम् | ३३ | ,, |
| तमोऽभिभूते हृदये निद्रा सत्त्वाविर्भावे बोधश्च | ३४-३५ | ,, |
| स्वप्नदर्शने कारणम् | ३६ | ४४१ |
| इन्द्रियाणां वैकल्ये आत्मा सुप्त इवोच्यते | ३७ | ,, |
| दिवास्वप्नस्य प्रवृत्तिनिवृत्ती | ३८ | ,, |
| यथोक्तस्वपने बलारोग्यायुर्वृद्ध्यादि | ३९-४० | ,, |
| सात्म्यीकृतनिद्राणां दिवास्वपतां रात्रौ जाग्रतां च दोषाभावः | ४१ | ,, |
| निद्रानाशहेतुस्तच्चिकित्सा च | ४२-४६ | ४४२ |
| निद्रातियोगे प्रतीकारः | ४७ | ,, |
| रात्रिजागरणार्हा दिवास्वापार्हाश्च | ४८ | ,, |
| तन्द्रालक्षणम् | ४९ | ,, |
| जृम्भालक्षणम् | ५० | ,, |
| क्लमलक्षणम् | ५१ | ,, |
| आलस्य लक्षणम् | ५२ | ,, |



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| उत्क्लेशलक्षणम् | ९३ | ४४२ |
| ग्लानिलक्षणम् | ९४ | ४४३ |
| गौरवलक्षणम् | ९५ | ,, |
| मूर्च्छातन्द्रानिद्राणामुत्पत्तिहेतवः | ९६ | ,, |
| गर्भपरिवृद्धौ कारणम् | ९७ | ,, |
| गर्भपरिवृद्धिवर्णनम् | ९८–९९ | ,, |
| शरीरवृद्धावपि दृष्टीरोमकूपाश्च न वर्धन्ते | ६० | ,, |
| शरीरे क्षीणेऽपि नखकेशौ वर्धेते | ६१ | ,, |
| सप्त प्रकृतयः | ६२ | ,, |
| प्रकृत्युत्पत्तिकारणम् | ६३ | ,, |
| वातप्रकृतिलक्षणम् | ६४–६७ | ,, |
| पित्तप्रकृतिलक्षणम् | ६८–७१ | ४४४ |
| श्लेष्मप्रकृतिलक्षणम् | ७२–७६ | ,, |
| संसर्गजप्रकृतीनां लक्षणम् | ७७ | ४४६ |
| गतायुषः प्रकृतीनां प्रकोपादयो भवन्ति | ७८ | ,, |
| प्रकृतयो मर्त्यानां बाधने कथन्न समर्थाः | ७९ | ,, |
| परमते प्रकृतीनां भौतिकत्वम् | ८० | ,, |
| सात्त्विकप्रकृतीनां लक्षणानि | ८१–८७ | ४४६ |
| राजसप्रकृतीनां लक्षणानि | ८८–९३ | ४४७ |
| तामसप्रकृतीनां लक्षणानि | ९४–९७ | ,, |
| प्रकृतिं विचार्य वैद्येन क्रिया कार्या | ९८–९९ | ,, |
| **५ पञ्चमोऽध्यायः ।** | | |
| शरीरसंख्याव्याकरणशारीराध्यायोपक्रमः | १–२ | ४४८ |
| शरीरशब्दव्यपदेश्यकथनम् | ३ | ,, |
| अङ्गप्रत्यङ्गनिरूपणम् | ४ | ,, |
| त्वगादिनिरूपणम् | ५ | ,, |
| त्वगादीनां पारसंख्यानम् | ६ | ४४९ |
| त्वगादीनां विस्तरेण कथनम् | ७ | ,, |
| आशयानुक्रमः | ८ | ,, |
| अन्त्रनिरूपणम् | ९ | ,, |
| स्रोतसां निरूपणम् | १० | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कण्डराणां विभागः | ११ | ४९० |
| जालानां निरूपणम् | १२ | ,, |
| कूर्चानामवयवेषु विभागः | १३ | ,, |
| मांसरज्जवः | १४ | ,, |
| सेवन्यः | १५ | ,, |
| अस्थिसङ्घाताः | १६ | ४९१ |
| सीमन्ताः | १७ | ,, |
| अस्थ्नां परिसंख्यानम् | १८ | ,, |
| अवयवेषु त्रिंशतास्थ्नां विभागः | १९ | ,, |
| पञ्चविधभेदानामस्थ्नां वर्णनम् | २० | ४९२ |
| शरीरधारणेऽस्थ्नां प्राधान्यम् | २१–२३ | ,, |
| अस्थ्याश्रितसन्धिकथनम् | २४–२५ | ४९३ |
| दशाधिकद्विशतसन्धिवर्णनम् | २६ | ,, |
| सन्धीनामष्टौ भेदाः | २७ | ,, |
| पेश्याद्याश्रितसन्धीनामसंख्येयत्वम् | २८ | ४९४ |
| नवशतस्नायुवर्णनम् | २९ | ,, |
| स्नायूनां विस्तरेण स्वरूपादिकथनम् | ३०–३६ | ४९५ |
| पञ्चशतपेशीनां वर्णनम् | ३७–३८ | ४९६ |
| स्त्रीणामधिकाया विंशतेर्वर्णनम् | ३९ | ,, |
| पेशीनां स्थानवशान्नानारूपत्वम् | ४० | ,, |
| स्त्रीणां पेशीविशेषवर्णनम् | ४१ | ,, |
| परिशिष्टममंसिरास्रोतसामतिदेशेन विवरणम् | ४२ | ,, |
| गर्भशय्यावर्णनम् | ४३–४४ | ,, |
| गर्भशय्यायां गर्भस्थितिस्वरूपवर्णनम् | ४५ | ,, |
| उक्तशारीरज्ञानप्रतिपादकत्वेन शल्यतन्त्रस्योत्कर्षः | ४६ | ,, |
| शल्यनिर्हरणं वाञ्छता मृतशरीरं शोधयित्वाऽङ्गप्रत्यङ्गानि द्रष्टव्यानि | ४७–४८ | ४९७ |
| शास्त्रदृष्टशारीरस्य प्रत्यक्षीकरणोपायः | ४९ | ,, |
| आत्मनः ज्ञानचक्षुर्भिरेव ज्ञेयत्वम् | ५० | ,, |
| शारीरशास्त्रविशारदेनैव चिकित्सा कार्या | ५१ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| **षष्ठोऽध्यायः ।** | | |
| प्रत्येकमर्मनिर्देशशारीराध्यायोपक्रमः | १–२ | ४६८ |
| मर्मणां संख्यानं स्वरूपं च | ३ | ,, |
| मांसादिभेदेन मर्मसंख्या | ४ | ,, |
| शारवाद्याश्रितमर्मसंख्या | ५ | ४६९ |
| शाखादिषु संख्यया विभक्तमर्मणां नामानि | ६ | ,, |
| मांसादिमर्मणां नामानि | ७ | ४६० |
| मर्मणां पञ्चभेदाः | ८ | ,, |
| सद्यःप्राणहराणि मर्माणि | ९ | ,, |
| कालान्तरप्राणहराणि मर्माणि | १० | ,, |
| विशल्यघ्नमर्माणि | ११ | ४६१ |
| वैकल्यकरमर्माणि | १२–१३ | ,, |
| रुजाकरमर्माणि | १४ | ,, |
| मर्मणां पूर्वोक्तकार्यकरणोपपत्तिः | १५ | ,, |
| मर्मणां सद्यःप्राणहरादिकर्मविशेषाः कथं भवन्ति | १६ | ,, |
| सद्यःप्राणहरादिकर्मविशेषस्य परमते व्यवस्था | १७ | ,, |
| चतुर्विधसिराकर्तृकदेहपालनम् | १८ | ४६२ |
| शल्योद्धरणे मर्माणि यत्नेन रक्षणीयानि | १९-२१ | ,, |
| सद्यःप्राणहरादिमर्मणां कारणवैकल्याद् व्यभिचारः | २२ | ,, |
| सद्यःप्राणहरादिमर्मणां मारणे कालावधिः | २३ | ,, |
| शारवागतमर्मणां प्रत्येकशो वर्णनम् | २४ | ४६३ |
| उदरोरसोर्मर्मस्थानानां प्रत्येकशो वर्णनम् | २५ | ४६४ |
| पृष्ठमर्मणां प्रत्येकशो विवरणम् | २६ | ४६५ |
| ऊर्ध्वजत्रुगतमर्मणां प्रत्येकशो वर्णनम् | २७ | ४६६ |
| सर्वमर्मणां सङ्क्षेपतो मानकथनम् | २८–२९ | ,, |
| मर्मणां मानकथनप्रयोजनम् | ३० | ४६७ |
| पाणिपादाद्यवयवच्छेदे जीवनं, तदन्तर्गतमर्मच्छेदे मरणम् | ३१–३२ | ,, |
| मर्मसु हता यदि जीवन्ति तदा विकला भवन्ति | ३३ | ,, |
| अमर्महरास्तु छेदभेदादिभिरपि न म्रियन्ते | ३४ | ,, |
| मर्मसु हता न जीवन्तीत्यत्र हेतुः | ३५ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| सद्यः प्राणहरादिमर्मपञ्चकहतलक्षणम् | ३६–४० | ४३७ |
| मर्मसमीपदेशघातेऽप्यनर्थकथनम् | ४१ | ४६८ |
| मर्माभिघातस्य अत्यन्तानर्थकारित्वम् | ४२ | ,, |
| मर्मसु जातानां शारीरविकाराणां कृच्छ्रतमत्वम् | ४३ | ,, |

७ सप्तमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| सिरावर्णविभक्तिशारीराध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| सिराणां संख्यानं तासामुत्पत्तिस्थानवर्णनं च | ३–४ | ,, |
| सिराणां प्राणानां चाधाराधेयत्वम् | ६ | ४६९ |
| वातादिवाहिनीनां सिराणां संख्या | ६ | ,, |
| वातादिवाहिनीनां सिराणां प्रत्यङ्गं विभागः | ७ | ४७० |
| वातादिवहसिरासु वातादीनां प्राकृतं वैकृतं च कर्म | ८–१५ | ,, |
| सिराणां वातादिसर्ववहत्वप्रतिपादनम् | १६–१७ | ४७१ |
| सिरावर्णविभक्तिकथनम् | १८ | ,, |
| अव्यध्यसिराणां सङ्क्षेपेण कथनम् | १९–२१ | ,, |
| अव्यध्यसिराणां विस्तरशो वर्णनम् | २२ | ,, |
| नाभितः प्रसृतसिराणां सर्वदेहे व्यापनम् | २३ | ४७२ |

८ अष्टमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| सिराव्यधविधिशारीराध्यायोपक्रमः | १–२ | ४७३ |
| अव्यध्याः सिराः | ३ | ,, |
| शोणितावसेकसाध्येषु सिरावेधः | ४ | ,, |
| प्रतिषिद्धानामप्यात्ययिके व्याधौ सिरावेधः | ५ | ,, |
| सिराव्यधस्य प्रधानकर्मविधिः | ६ | ,, |
| सिराव्यधे निषिद्धसमयः | ७ | ४७४ |
| सिराव्यधे यन्त्रणविधिः | ८ | ,, |
| प्रदेशविशेषेण शस्त्रप्रणिधानप्रमाणम् | ९ | ४७५ |
| सिराव्यधे ऋतुभेदेन कालभेदः | १० | ,, |
| सुविद्धसिरालक्षणम् | ११ | ,, |
| सिरायां विद्धायां प्राक् दुष्टरक्तप्रवृत्तिः | १२ | ४७६ |
| सम्यग्विद्धानामपि सिराणामस्रावे हेतुः | १३ | ,, |
| क्षीणादीनां क्रमेण स्रावणम् | १४ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| क्षीणे अतिस्रावणस्य दोषकरत्वम् | १५ | ४७६ |
| शोणितमोक्षणे परं प्रमाणम् | १६ | ,, |
| नियतदेहदेशगतरोगविशेषेण व्यध्यसिराकथनम् | १७ | ,, |
| विंशतिर्दुष्टव्यधाः | १८ | ४७७ |
| दुष्टव्यधानां विवरणम् | १९ | ,, |
| सिराव्यधे यत्नेन दर्शनम् | २० | ४७८ |
| शस्त्रकर्मणि अनिपुणवैद्याद् व्यापत्सम्भवः | २१ | ,, |
| स्नेनादिकर्मणः सिराव्यधस्य गुणाधिक्यम् | २२ | ,, |
| सिराव्यधस्य चिकित्सार्थत्वकथनम् | २३ | ,, |
| स्निग्धादिभिः पुरुषैः परिहरणीयानि | २४ | ,, |
| सिराविषाणतुम्बजलौकः प्रच्छन्नानां विषयाः | १५–२६ | ,, |

## ९ नवमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| धमनीव्याकरणशारीराध्यायोपक्रमः | १–२ | ४७९ |
| सिराभ्योऽन्या एव धमन्यः | ३ | ,, |
| धमनीनां संख्या | ४ | ,, |
| ऊर्ध्वगानां धमनीनां कार्याणि | ५–६ | ४८० |
| अधोगानां धमनीनां कार्याणि | ७–८ | ,, |
| तिर्यग्गतानां धमनीनां कार्याणि | ९ | ४८१ |
| धमनीस्रोतोभी रसः शरीरे उपचीयते | १० | ,, |
| प्रकृतिभूतानामप्रकृतिभूतानां च धमनीनां क्रियाः | ११ | ४८२ |
| स्रोतसां वर्णनं मूलविद्धलक्षणं च | १२ | ,, |
| स्रोतोलक्षणम् | १३ | ४८३ |

## १० दशमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| गर्भिणीव्याकरणशारीराध्यायोपक्रमः | १–२ | ४८४ |
| गर्भिण्याः कर्तव्यता | ३ | ,, |
| गर्भिण्या मासक्रमेण सेव्यानि | ४ | ,, |
| नवमे मासि सूतिकागृहप्रवेशः | ५ | ४८५ |
| उपस्थितप्रसवाया लक्षणानि | ६–७ | ,, |
| आसन्नप्रसवायाः करणीयोपचाराः | ८–९ | ,, |
| प्रतिलोमगर्भस्य अनुलोमीकरणम् | १० | ४८६ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| गर्भसङ्गे योनिधूपनादि | ११ | ४८६ |
| [illegible]त्तरं शिशोरुपचाराः | १२–१३ | ४८७ |
| चतूरात्रात् त्रिरात्राद्वा स्तन्यप्रवृत्तिः | १४ | ,, |
| शिशोः प्रथमादिदिनेषु मधुसर्पिरादिपायनम् | १५ | ,, |
| सूतिकोपचाराः | १६ | ,, |
| जाङ्गलदेशजाया सूतिकाया उपचारविशेषः | १७ | ४८८ |
| सूतिकाया अन्या सामान्यक्रिया | १८ | ,, |
| उक्ताहाराचारव्यतिक्रमे कृच्छ्रसाध्यव्याध्युत्पत्तिः | १९–२० | ,, |
| अपरायाः अपतने दोषास्तच्चिकित्सा च | २१ | ,, |
| सूतिकाया मक्कल्लललक्षणं तच्चिकित्सा च | २२ | ४८९ |
| बालोपचाराः | २३ | ,, |
| बालस्य दशमेऽह्नि नामकरणम् | २४ | ४९० |
| धात्रीलक्षणम् | २५–२७ | ,, |
| उपयुक्तधात्र्या अभावे दोषाः | २८ | ४९१ |
| अपरिस्रुतस्तन्यदानदोषः | २९ | ,, |
| स्त्रियाः स्तन्यनाशे हेतुः क्षीरजननोपायाश्च | ३० | ,, |
| स्तन्यपरीक्षा | ३१ | ,, |
| धात्र्याः स्तन्यदुष्टिकारणानि | ३२–३३ | ,, |
| अज्ञबालानां रोगज्ञानोपायः | ३४–३६ | ४९२ |
| बालकधात्र्योरवस्थाभेदेनोपचाराः | ३७ | ,, |
| बालस्यौषधमात्रा | ३८ | ,, |
| प्रकारान्तरेणौषधोपयोगः | ३९ | ,, |
| बालस्यज्वरे उपचारविशेषाः | ४० | ,, |
| बालस्य विरेकादीनामभावः | ४१ | ४९३ |
| बालस्य तालुपातचिकित्सा | ४२ | ,, |
| वाताध्मापितनाभौ गुदपाके चोपचाराः | ४३–४४ | ,, |
| बालस्य अवस्थाविशेषेण सर्पिः प्रयोगाः | ४५ | ,, |
| बालविषये परिजनस्य कर्तव्यता | ४६–४७ | ४९४ |
| स्त्रीस्तन्याभावे क्षीरान्तरोपयोगः | ४८ | ,, |
| बालस्यान्नदानकालः | ४९ | ,, |
| ग्रहोपसृष्टबाला रक्षणीयाः | ५० | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषया:— | सूत्राङ्का: | पृष्ठाङ्का: |
|---|---|---|
| ग्रहोपसर्गलक्षणम् | ६१ | ४९४ |
| शक्तिमन्तं बालं ज्ञात्वा विद्यां ग्राहयेत् | ६२ | ,, |
| बालस्य विवाहकाल: | ६३ | ,, |
| अतिबालायां गर्भाधाने दोषा: | ६४-६५ | ,, |
| गर्भाधाने अयोग्या: स्त्रिय: पुरुषाश्च | ६६ | ४९६ |
| गर्भिण्युपद्रवचिकित्सा | ६७ | ,, |
| गर्भस्रावे मासानुक्रमेण प्रयोगार्हा योगा: | ६८-६२ | ४९६ |
| गर्भाध्ययनयोगा: | ६३-६६ | ४९७ |
| निवृत्तप्रसवाया: षड्वर्षोत्तरं प्रसवे कुमारस्य अल्पायुष्ट्वम् | ६६ | ,, |
| गर्भिण्या निषिद्धवमनादीनां क्वचित्प्रतिप्रसव: | ६७ | ,, |
| कुमारस्व वपुर्मेधाबलबुद्धिविवर्धना योगा: | ६८-७० | ४९८ |


इति शारीरस्थान विषयानुक्रम: ।

---

# अथ चिकित्सास्थानम् ।

## १ प्रथमोऽध्याय: ।


| | | |
|---|---|---|
| द्विव्रणीयचिकित्सिताध्यायोपक्रम: | १-२ | ४९९ |
| शारीरागन्तुभेदेन व्रणस्य द्वैविध्यम् | ३ | ,, |
| आगन्तुव्रणस्य कर्मविशेषप्रयोजनम् | ४ | ५०० |
| दोषोपप्लवविशेषाद् व्रणभेदा: | ६ | ,, |
| व्रणलक्षणं द्विविधं व्रणनिरुक्तिश्च | ६ | ५०१ |
| वातजादिव्रणानां लक्षणानि | ७ | ५०३ |
| व्रणस्य षष्ट्युपक्रमाणां नामानि | ८ | ५०४ |
| उपक्रमेषु कषायादीनां शोधनरोपणोभयार्थकारित्वम् | ९ | ५०६ |
| अवस्थाभेदेन व्रणस्योपचारा: | १० | ५०६ |
| अपतर्पणनिरूपणम् | ११ | ,, |
| अपतर्पणस्य फलं विषय: कालावधिश्च | १२ | ,, |
| अपतर्पणस्य निषेधार्हा: | १३ | ,, |
| आलेपनविषय: | १४ | ,, |
| आलेपस्य फलम् | १५-१६ | ५०७ |
| परिषेकस्य फलं प्रयोगश्च | १७-१८ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| अभ्यङ्गस्य फलं कालावधारणं च | १९–२० | ५०८ |
| स्वेदनविषयः | २१ | ,, |
| विश्लापनविषयः प्रयोगश्च | २२ | ,, |
| उपनाहविषयः | २३ | ,, |
| पाचनविषयः प्रयोगश्च | २४–२६ | ,, |
| स्रावणविषयः | २७–२९ | ५०९ |
| स्नेहपानविषयः | ३० | ,, |
| वमनविषयः | ३१ | ,, |
| विरेचनार्हाः | ३२ | ,, |
| छेदनविषयः | ३३ | ,, |
| भेदनविषयः | ३४ | ५१० |
| दारणविषयाः | ३५–३७ | ,, |
| लेखनविषयाः | ३८–३९ | ,, |
| शस्त्राभावे क्षौमादिभिर्लेखनम् | ४० | ५११ |
| एषणविषयः | ४१–४२ | ,, |
| आहरणविषयाः | ४३ | ,, |
| व्यधनस्रावणविषयाः | ४४ | ,, |
| सीवनसन्धानविषयाः | ४५ | ,, |
| पीडनविषयः | ४६–४७ | ५१२ |
| शोणितास्थापनविषयः | ४८ | ,, |
| निर्वापणविषयः प्रयोगश्च | ४९–५० | ,, |
| उत्कारिकाविषयः प्रयोगश्च | ५१–५२ | ,, |
| शोधनकषायविषयाः | ५३ | ,, |
| शोधनवर्तिविषयः | ५४–५५ | ,, |
| शोधनसर्पिर्विषयः प्रयोगश्च | ५६ | ५१३ |
| शोधनतैलविषयः प्रयोगश्च | ५७ | ,, |
| शोधनीयरसक्रियाविषयः प्रयोगश्च | ५८–६१ | ५१४ |
| शोधनचूर्णविषयाः प्रयोगश्च | ६२ | ,, |
| रोपणकषायविषयाः | ६३ | ,, |
| रोपणवर्तिविषयाः | ६४ | ,, |
| रोपणकल्कविषयाः प्रयोगश्च | ६५–६९ | |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषया:— | सूत्राङ्का: | पृष्ठाङ्का: |
|---|---|---|
| रोपणसर्पिर्विषया: प्रयोगश्च | ७० | ६१६ |
| रोपणतैलविषया: प्रयोगश्च | ७१ | ,, |
| रोपणरसक्रियाविषया: प्रयोगश्च | ७२ | ,, |
| रोपणचूर्णविषया: | ७३ | ,, |
| शोधनरोपणयो: सर्वव्रणविषयत्वम् | ७४ | ,, |
| शोधनरोपणविधेर्मन्त्रवत्प्रयोग: | ७५ | ,, |
| अनिर्दिष्टयोगविषयिणी मीमांसा | ७६ | ,, |
| वातादिदुष्टव्रणेषु गुणविशेषा: | ७७–७९ | ,, |
| धूपनविषय: | ८० | ६१६ |
| उत्सादनविषय: प्रयोगश्च | ८१–८२ | ,, |
| अवसादनविषय: | ८३ | ,, |
| मृदुकर्मविषय: | ८४–८५ | ,, |
| दारुणकर्मविषय: | ८६–८७ | ६१७ |
| क्षारकर्मविषय: | ८८ | ,, |
| अग्निकर्मविषय: | ८९ | ,, |
| कृष्णीकरणविषया: प्रयोगश्च | ९०–९३ | ,, |
| पाण्डुकर्मविषया: प्रयोगश्च | ९४–९८ | ६१८ |
| व्रणानां सवर्णीकरणप्रयोग: | ९९–१०० | ,, |
| लोमसञ्जनोपाया: | १०१–१०३ | ६१९ |
| लोमशातनोपाया: | १०४–१०८ | ,, |
| बस्तिसाध्या व्रणा: | १०९ | ,, |
| उत्तरबस्तिसाध्या व्रणा: | ११० | ६२० |
| व्रणस्य बन्धकरणे कारणम् | १११ | ,, |
| पत्रदानविषय: प्रयोगश्च | ११२–११८ | ,, |
| कृमिघ्नविषया: | ११९–१२२ | ६२१ |
| बृंहणविषय: प्रयोगश्च | १२३ | ,, |
| विषजुष्टस्य विज्ञानचिकित्सितयोरतिदेश: | १२४ | ,, |
| शिरोविरेचनस्य विषय: | १२५ | ,, |
| नस्यविषया: | १२६ | ६२२ |
| कवलग्रहविषय: | १२७–१२८ | ,, |
| धूमपानविषय: | १२९ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| मधुसर्पिर्विषयः | १३० | ६२२ |
| मन्त्रविषयः | १३१ | ,, |
| व्रणिभ्यो देय आहारः | १३२ | ,, |
| क्षतातुरो रक्षोभ्यो रक्ष्यः | १३३ | ,, |
| व्रणस्य सङ्क्षेपेण मूलाधिष्ठानलक्षणचिकित्सा कथनम् | १३४ | ६२३ |
| अल्पौषधेषु शोधनरोपणादियोगेषु तत्समद्रव्याणामा-वापोपदेशः | १३५ | ,, |
| समग्रयोगालाभे यथालाभौषधप्रयोगः | १३६ | ,, |
| एकत्रैव व्याधौ यौगिकस्य ग्रहणमयौगिकस्य परित्यागः | १३७ | ६२४ |
| व्रणस्य व्रणितस्य चोपद्रवाः | १३८–१३९ | ,, |
| अनागतावेक्षणेन व्रणचिकित्सा | १४० | ,, |
| **२ द्वितीयोऽध्यायः ।** | | |
| सद्योव्रणचिकित्सिताध्यातोपक्रमः | १–३ | ,, |
| व्रणाकृतिमात्रे हेतुविशेषनिर्देशः | ४ | ६२६ |
| आगन्तुव्रणाकृतिः | ५–६ | ,, |
| व्रणाकृतिज्ञानफलम् | ७ | ,, |
| आगन्तुव्रणानां षड्विधत्वम् | ८–९ | ,, |
| छिन्नलक्षणम् | १० | ,, |
| भिन्नलक्षणम् | ११ | ,, |
| कोष्ठलक्षणम् | १२ | ,, |
| कोष्ठभेदस्य सामान्यलक्षणम् | १३–१५ | ६२६ |
| कोष्ठभेदस्य विशेषलक्षणम् | १६–१८ | ,, |
| विद्धलक्षणम् | १९ | ,, |
| क्षतलक्षणम् | २० | ६२७ |
| पिच्चितलक्षणम् | २१ | ,, |
| घृष्टलक्षणम् | २२ | ,, |
| छिन्नादीनां चतुर्णां चिकित्सा | २३–२५ | ,, |
| पिच्चितघृष्टपोश्चिकित्सा | २६–२८ | ,, |
| मूर्धाद्यवयवाश्रितच्छिन्नचिकित्सा | २९–३० | ६२८ |
| कर्णच्छेदादीनां विशेषचिकित्सा | ३१–३३ | ,, |
| शाखासु तिर्यक्छेदे चिकित्सा | ३४–३५ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| पृष्ठव्रणोरोव्रणयोश्चिकित्सा | ३६ | ६२८ |
| शाखानां निःशेषच्छेदेऽन्याचिकित्सा | ३७ | ,, |
| व्रणरोपणार्थं चन्दनादितैलम् | ३८ | ६२९ |
| द्वितीयं चन्दनादितैलम् | ३९-४० | ,, |
| भिन्ननेत्रचिकित्सा | ४१-४४ | ,, |
| उदरभेदचिकित्सा | ४६-४९ | ,, |
| कोष्ठगतशल्यस्य असाध्यलक्षणम् | ५०-५१ | ६३० |
| कोष्ठगतसाध्य व्रणचिकित्सा | ५२-५४ | ,, |
| भिन्नेऽपि कोष्ठे साध्यस्य लक्षणम् | ५५ | ,, |
| कोष्ठगतान्त्रसम्भेदचिकित्सा | ५६-६५ | ६३१ |
| मुष्कभेदचिकित्सा | ६६-६८ | ,, |
| उत्तमङ्गे विद्धस्य चिकित्सा | ६९-७० | ६३२ |
| सामान्यशरीरावयवविद्धचिकित्सा | ७१ | ,, |
| विषयविशेषेण विद्धचिकित्सा | ७२ | ,, |
| समङ्गादिरोपणतैलम् | ७३-७४ | ,, |
| तालीशादिरोपणतैलम् | ७५ | ६३३ |
| क्षतपिच्चितयोश्चिकित्सा | ७६ | ,, |
| घृष्टचिकित्सा विश्लिष्टदेहादिचिकित्सा च | ७७-७८ | ,, |
| शरीरर्तूनवेक्ष्य व्रणे तैलघृते योज्ये | ७९ | ,, |
| सद्योव्रणेषु पित्तविद्रध्युक्तघृतातिदेशः | ८० | ,, |
| सद्यः क्षतव्रणे घृततैलपरिषेकः | ८१ | ,, |
| अदुष्टव्रणरोपण तैलम् | ८२-८५ | ,, |
| सद्योव्रणचिकित्सायाः कालः | ८६ | ,, |
| दुष्टव्रणोपायाः | ८६-८८ | ६३४ |
| सर्वदुष्टव्रणेषु तैलघृतकल्कयोगाः | ८९-९२ | ,, |
| वातादिभेदेन कल्काः | ९३-९४ | ६३५ |
| सद्योव्रणस्य षड्विधत्वमेव | ९५ | ,, |
| बहूक्तानामपि सद्योव्रणानां षट्स्वेवान्तर्भावः | ९६-९७ | ,, |
| **३ तृतीयोऽध्यायः ।** | | |
| भग्नचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| केषां भग्नं कृच्छ्रसाध्यम् | ३ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| भग्नैः परिहरणीयानि | ४ | ६३६ |
| भग्नैः सेव्यानि | ५ | ,, |
| भग्नबन्धनद्रव्याणि | ६ | ,, |
| भग्नलेपनद्रव्याणि | ७ | ,, |
| ऋतुविशेषेण भग्नबन्धनकालावधिः | ८ | ,, |
| भग्ने कीदृशो बन्धो विधेयः | ९–१० | ,, |
| सवेदने भग्ने परिषेकविधिः | ११ | ६३७ |
| भग्ने कालादिविशेषेण शीतोष्णद्रव्योपयोगः | १२ | ,, |
| भग्ने आभ्यन्तरमेषजम् | १३ | ,, |
| सव्रणभग्नचिकित्सा | १४ | ,, |
| कालदोषाश्रयं भग्नस्य साध्यत्वम् | १५ | ,, |
| वयो भेदेन भग्नसन्धिस्थैर्ये कालावधिः | १६ | ,, |
| भग्नविशेषेण चिकित्सां विशेषः | १७ | ,, |
| भग्ने सङ्क्षेपतः सन्धिस्थापनोपायाः | १८–१९ | ६३८ |
| उत्पिष्टविश्लिष्टयोश्चिकित्साविशेषः | २०–२१ | ,, |
| उत्पिष्टनखसन्धिचिकित्सा | २२–२३ | ,, |
| भग्नाङ्गुल्याश्चिकित्सा | २४ | ,, |
| भग्नपादचिकित्सा | २५ | ,, |
| भग्नजङ्घोरोश्चिकित्सा | २६ | ६३९ |
| उर्वस्थिभङ्गे विशेषचिकित्सा | २७ | ,, |
| कटिभग्नचिकित्सा | २८ | ,, |
| पर्शुकाभग्नचिकित्सा | २९–३० | ,, |
| स्कन्धभग्नचिकित्सा | ३१ | ६४० |
| कूर्परसन्धिभग्नचिकित्सा | ३२ | ,, |
| जानुगुल्फमणिबन्धभग्नचिकित्सा | ३३ | ,, |
| हस्ततलभग्नचिकित्सा | ३४–३५ | ,, |
| नतोन्नतयोरक्षकयोश्चिकित्सा | ३६ | ,, |
| बाहुग्रीवावटुहनुभग्नचिकित्सा | ३७–३८ | ६४१ |
| हनुसन्धिभग्नचिकित्सा | ३९–४० | ,, |
| दन्तभग्नचिकित्सा | ४१–४२ | ,, |
| नासाभग्नचिकित्सा | ४३–४४ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कर्णभग्नचिकित्सा | ४५ | ६४२ |
| कपालभग्नचिकित्सा | ४६ | ,, |
| पतनादिना शूनेऽङ्गे शीतप्रदेहादिविधिः | ४७ | ,, |
| जङ्घोरुभग्नेषु कपाटशयनविधिः | ४८–४९ | ,, |
| श्रोण्यादिभग्नेषु शयनविधिः | ५० | ,, |
| चिरविमुक्तसन्धिचिकित्सा | ५१ | ६४३ |
| चिरकाण्डभग्नचिकित्सा | ५२ | ,, |
| भग्ने बहिर्निर्गतास्थिचिकित्सा | ५३ | ,, |
| कायविशेषेण भग्नक्रियाविशेषः | ५४ | ,, |
| भग्नसन्धानकं तैलम् | ५५–६६ | ,, |
| द्वितीयं भग्नसन्धानकं तैलम् | ६७–६८ | ६४५ |
| भग्ने पाकाभावार्थं प्रयत्नः कार्यः | ६९ | ,, |
| सम्यग्गूढभग्नलक्षणम् | ७० | ,, |
| **४ चतुर्थोऽध्यायः ।** | | |
| वातव्याधिचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ६४६ |
| आमाशयगते वाते षड्धरणयोगः | ३–४ | ,, |
| पक्वाशयगतवातचिकित्सा | ५ | ,, |
| बस्तिगतवातचिकित्सा श्रोत्रादिगतवातचिकित्सा च | ६ | ,, |
| त्वङ्मांसासृक्सिराप्राप्तवातचिकित्सा | ७ | ,, |
| स्नायुसन्ध्यस्थिप्राप्तवातचिकित्सा | ८ | ६४७ |
| अस्थिगतवातचिकित्सा | ९ | ,, |
| शुक्रगतवातचिकित्सा | १० | ,, |
| सर्वाङ्गैकाङ्गगतवातचिकित्सा | ११ | ,, |
| कफपित्तरक्तसंसृष्टवातचिकित्सा सुप्तिवातचिकित्सा च | १२ | ,, |
| सर्ववातविकारिणां भोजनानि | १३ | ,, |
| वातरोगे उपनाहस्वेदः | १४–१५ | ६४८ |
| वातरोगे अनग्निस्वेदविधिः | १६–१७ | ,, |
| स्कन्धवक्षस्त्रिकमन्यागतवातचिकित्सा | १८ | ,, |
| शिरोगतवातचिकित्सा | १९ | ,, |
| वातरोगे बस्तिप्रशंसा | २० | ६४९ |
| उक्तानुक्तवातरोगाणां सामान्यचिकित्सा | २१–२६ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| वातरोगे तिल्वकसर्पिः | २७ | ६४९ |
| वातरोगे अणुतैलम् | २८ | ६६० |
| वातरोगे शतपाकं सहस्रपाकं च तैलम् | २९ | ,, |
| वातरोगे पत्रलवणम् | ३० | ६६१ |
| वातरोगे काण्डलवणम् | ३१ | ,, |
| वातरोगे कल्याणकलवणम् | ३२ | ,, |
| वातरोगे लवणयोगप्रशंसा | ३३ | ६६२ |


## ५ पञ्चमोऽध्यायः।


| | | |
|---|---|---|
| महावातव्याधिचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| वातशोणितस्य द्वैविध्यनिराकरणम् | ३ | ,, |
| वातशोणितस्य सम्प्राप्तिनिरुक्तिपूर्वरूपलक्षणानि | ४ | ६६३ |
| वातशोणितयोग्याः पुरुषाः | ६ | ,, |
| कीदृशं वातशोणितमुपक्रम्यम् | ६ | ,, |
| वातप्रबलवातरक्तचिकित्सा | ७ | ६६४–६६६ |
| पित्तप्रबलवातरक्तचिकित्सा | ८ | ,, |
| रक्तप्रबलवातरक्तचिकित्सा | ९ | ,, |
| श्लेष्मप्रबलवातरक्तचिकित्सा | १० | ,, |
| संसर्गसन्निपातजवातरक्तचिकित्सा | ११ | ६६६ |
| वातरक्ते सामान्यचिकित्सा | १२–१३ | ,, |
| वातरक्ते उक्तानुक्तक्रियायोगसंग्रहः | १४–१६ | ६६७ |
| वातरक्ते निषिद्धौ आहाराचारौ | १७ | ६६८ |
| अपतानकचिकित्सा | १८ | ६६९ |
| प्रक्षाघातचिकित्सा | १९ | ,, |
| मन्यास्तम्भचिकित्सा | २० | ६६० |
| अपतन्त्रकचिकित्सा | २१ | ,, |
| अर्दितचिकित्सा | २२ | ,, |
| गृध्रस्यादौ सिराव्यधविधिः | २३ | ६६१ |
| कर्णशूलचिकित्सा | २४ | ,, |
| तूणीप्रतूणीचिकित्सा | २५ | ,, |
| आध्मानप्रत्याध्मानचिकित्सा | २६ | ६६२ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषया:— | सूत्राङ्का: | पृष्ठाङ्का: |
|---|---|---|
| अष्ठीलाप्रत्यष्ठीलाचिकित्सा | २७ | ९६२ |
| वातरोगे हिङ्ग्वादिचूर्णम् | २८ | ,, |
| संसृष्टावृतवातचिकित्सा | २९ | ,, |
| मेदोवृतवातचिकित्सा | ३० | ९६४ |
| ऊरुस्तम्भनिदानम् | ३१-३२ | ,, |
| ऊरुस्तम्भे आभ्यन्तरचिकित्सा | ३३-३५ | ,, |
| ऊरुस्तम्भे बाह्यचिकित्सा | ३६ | ,, |
| ऊरुस्तम्भे भोजनविधि: | ३७-३८ | ,, |
| ऊरुस्तम्भे अवस्थाविशेषेण स्नेहावचारणस्य प्रतिप्रसव: | ३९ | ९६५ |
| वातरोगे गुग्गुलुकल्प: | ४०-४५ | ,, |


## ६ षष्ठोऽध्याय: ।


| | | |
|---|---|---|
| अर्शश्चिकित्सिताध्यायोपक्रम: | १-२ | ९६६ |
| अर्शसां चतुर्विधसाधनोपाय: | ३ | ,, |
| अर्शस्सु क्षारपातनविधि: | ४-५ | ,, |
| क्षारेण सम्यग्दग्धातिदग्धहीनदग्धलक्षणानि | ६ | ९६७ |
| अर्शसां स्थानादिविशेषेण दहनविकल्प: | ७ | ९६८ |
| क्षारपाते विशेषविधानम् | ८ | ,, |
| क्षारकर्मण: पश्चात्कर्म | ९ | ,, |
| क्षारविभ्रंशस्य महदनर्थकारित्वम् | १० | ९६९ |
| अर्शोयन्त्रम् | ११ | ,, |
| अर्शसामालेपनविधि: | १२ | ,, |
| अदह्येष्वर्शस्सु यापनयोगा: | १३ | ९७० |
| अर्शस्सु दन्त्यरिष्ट: | १४ | ९७१ |
| अर्शस्सु अभयाऽरिष्ट: | १५ | ,, |
| अर्शस्सु दोषभेदेन विशेषचिकित्सा | १६ | ,, |
| अर्शस्सु भल्लातकविधानम् | १७ | ९७२ |
| अर्शस्सु द्वितीयं भल्लातकविधानम् | १८ | ,, |
| अर्शस्सु वृक्षकारुष्करक्षाराग्नियोगानां प्रशंसा | १९-२० | ,, |
| अर्शस्सु दोषविशेषेण अन्यप्रयोगाणामतिदेश: | २१ | ९७३ |
| अर्शस्सु वर्ज्यानि | २२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|
| **७ सप्तमोऽध्यायः ।** | | |
| अश्मरीचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ५७३ |
| अश्मर्यां स्नेहादिकर्म | ३–४ | ,, |
| वाताश्मर्यां पाषाणभेदादिगणः | ५–८ | ५७४ |
| पित्ताश्मर्यां कुशादिगणः | ९–१३ | ,, |
| श्लेष्माश्मर्यां वरुणादिगणः | १४–१६ | ५७५ |
| शर्करायां पिचुकादिगणः | १७ | ,, |
| शर्करायां क्रौञ्चास्थ्यादियोगः | १८ | ,, |
| अश्मर्यां त्रिकण्टकादियोगः | १९ | ,, |
| अश्मर्यां क्षारयोगः | २०–२१ | ,, |
| अश्मर्यां तिलादिक्षारयोगः | २२–२३ | ५७६ |
| अश्मर्यां श्वदंष्ट्रादिकल्कः | २४ | ,, |
| अश्मर्यां क्षीरयोगः | २५ | ,, |
| अश्मर्यां वीरतरादिगणः | २६ | ,, |
| अश्मर्यां शस्त्रच्छेदस्य अन्तिमोपक्रमत्वम् | २८ | ,, |
| राजानं पृष्ट्वा शस्त्रक्रिया कार्या | २९ | ,, |
| शस्त्रेण अश्मर्याहरणविधिः | ३०–३३ | ,, |
| शस्त्रकर्मणः पश्चात्कर्म | ३४–३५ | ५७९ |
| शस्त्रकर्मणि रक्ष्याणि मर्माणि | ३६–३८ | ५८० |
| **८ अष्टमोऽध्यायः ।** | | |
| भगन्दरचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ५८१ |
| भगन्दराणां संख्याः साध्यासाध्यविचारश्च | ३ | ,, |
| भगन्दरेषु शस्त्रचिकित्सायाः सामान्यविधिः | ४ | ,, |
| शतपोनकभगन्दरे शस्त्रक्रियायां विशेषः | ५–११ | ,, |
| शतपोनकभगन्दरे शस्त्रकर्मणः पश्चात्कर्म | १२–१९ | ५८२ |
| उष्ट्रग्रीवभगन्दरचिकित्सा | २०–२२ | ५८३ |
| परिस्राविभगन्दरचिकित्सा | २३–२५ | ५८४ |
| परिस्राविभगन्दरे शस्त्रक्रियाविधिः | २६–२७ | ,, |
| शिशूनां भगन्दरविशेषे विरेकाग्निशस्त्रक्षारनिषेधः | २८–२९ | ५८५ |
| भगन्दरे आरग्वधाद्या वर्तिः | ३० | ,, |
| आगन्तुजभगन्दरचिकित्सा | ३१–३२ | ,, |



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषया:— | सूत्राङ्का: | पृष्ठाङ्का: |
|---|---|---|
| सन्निपातजभगन्दरस्य वर्ज्यत्वम् | ३३ | ९८९ |
| भगन्दरे शस्त्रजनितवेदनाशमनोपाय: | ३४-३६ | ,, |
| वातकफजे भगन्दरे उपनाहस्वेद: | ३७ | ९८६ |
| भगन्दरे त्रिकटुकादियोग: | ३८ | ,, |
| भगन्दरव्रणशोधनवर्ग: | ३९ | ,, |
| भगन्दरे उत्सादनयोग: | ४० | ,, |
| भगन्दरे रसाञ्जनादिरापणकल्क: | ४१ | ,, |
| भगन्दरे कुष्ठादिशोधनकल्क: | ४२ | ,, |
| भगन्दरे मागध्यादिरोपणतैलम् | ४३-४६ | ९८७ |
| भगन्दरे न्यग्रोधादिगण: | ४७ | ,, |
| भगन्दरे त्रिवृतादितैलम् | ४८-४९ | ,, |
| भगन्दरे चित्रकादितैलम् | ५०-५२ | ,, |
| भगन्दरयन्त्रम् | ५३ | ,, |
| भगन्दरे वर्ज्याणि | ५४ | ९८८ |


## ६ नवमोऽध्याय: ।


| | | |
|---|---|---|
| कुष्ठचिकित्सिताध्यायोपक्रम: | १-२ | ,, |
| कुष्ठनिदानम् | ३ | ,, |
| कुष्ठे वर्ज्याणि | ४ | ,, |
| कुष्ठे आहाराचारविचार: | ५ | ९८९ |
| कुष्ठे सामान्यचिकित्सा | ६ | ९९० |
| कुष्ठे दोषविशेषेण क्रियाविशेष: | ७ | ,, |
| कुष्ठे महातिक्तकं घृतम् | ८ | ९९१ |
| कुष्ठे तिक्तकं घृतम् | ९ | ,, |
| कुष्ठे कतिपये सामान्ययोगा: | १० | ९९२ |
| दद्रौ लाक्षादियोग: | ११-१२ | ,, |
| दद्रौ सैन्धवादियोग: | १३ | ,, |
| दद्रौ हेमक्षीर्यादियोग: | १४ | ,, |
| श्वित्रे भद्रोदुम्बरीयोग: | १५ | ,, |
| श्वित्रे पूतिकीटादियोग: | १६ | ९९३ |
| श्वित्रे कृष्णसर्पादियोग: | १७-१८ | ,, |
| श्वित्रे कुक्कुटपुरीषयोग: | १९-२० | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| श्वित्रे क्षारयोगः | २१–२२ | ६९३ |
| श्वित्रे तैलयोगः | २३–२४ | ६९४ |
| श्वित्रे अवल्गुजाद्या वर्तिः | २५–२६ | ,, |
| श्वित्रे तुत्थादिलेपः | २७–२८ | ,, |
| कुष्ठे नीलतैलम् | २९–३३ | ६९५ |
| कुष्ठे महानीलतैलम् | ३४–३८ | ,, |
| श्वित्रे गोमूत्रादियोगः | ३९ | ६९६ |
| श्वित्रे पूतिकादिलेपः | ४०–४१ | ,, |
| कुष्ठे सकलदोषनिर्हरणोपदेशः | ४२ | ,, |
| कुष्ठे दोषशोधनक्रमः | ४३ | ,, |
| कुष्ठे कतिपये प्रायोगिका योगाः | ४४–४९ | ,, |
| दाहयुक्तकुष्ठिनः स्नानयोगः | ५० | ६९७ |
| सञ्जातकृमीणां कुष्ठानां चिकित्सा | ५१–५३ | ,, |
| कुष्ठ वज्रकतैलम् | ५४–५६ | ६९८ |
| कुष्ठे महावज्रकतैलम् | ५७–६३ | ,, |
| कुष्ठे लाक्षादिकं तैलम् | ६४–६५ | ,, |
| कुष्ठे खदिरादियवागूः | ६६ | ६९९ |
| कुष्ठे तैलघृतप्रदेहोद्धर्षणविरेकोपयोगाः | ६७–६८ | ,, |
| कुष्ठे कारभमूत्रयोगः | ६९ | ,, |
| कुष्ठे खदिरयोगप्रशंसा | ७०–७१ | ,, |
| कुष्ठिनः कर्तव्यता | ७२ | ,, |

१० दशमाऽध्यायः।

| | | |
|---|---|---|
| महाकुष्ठचिकित्साध्यायोपक्रमः | १–३ | ७०० |
| कुष्ठे यवकल्पः | ४–५ | ,, |
| कुष्ठे अरिष्टविधानम् | ६ | ७०१ |
| कुष्ठे आसवविधानम् | ७ | ,, |
| कुष्ठे सुराविधानम् | ८ | ,, |
| कुष्ठे अवलेहविधानम् | ९ | ७०२ |
| कुष्ठे चूर्णक्रिया | १० | ,, |
| कुष्ठे अयस्कृतिः | ११ | ,, |
| कुष्ठे महौषधायस्कृतिः | १२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कुष्ठ खदिरविधानम् | १३ | ६०३ |
| कुष्ठे गुडूचीविधानम् | १४ | ६०४ |
| कुष्ठे मिश्रकस्नेहः | १५-१६ | ,, |
| **११ एकादशोऽध्यायः ।** | | |
| प्रमेहचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-२ | ६०५ |
| प्रमेहस्य द्वैविध्यम् | ३ | ,, |
| प्रमेहे सामान्यचिकित्सा | ४ | ,, |
| प्रमेहिणो वर्ज्याणि | ५ | ,, |
| प्रमेहे पथ्यानि | ६ | ६०६ |
| प्रमेहे शोधनविधिः | ७ | ,, |
| सर्वप्रमेहे पञ्चयोगाः | ८ | ,, |
| विंशतिप्रमेहेषु विंशतियोगाः | ९ | ,, |
| प्रमेहेषु आरिष्टायस्कृतिलेहासवयवागूकषाययोगाः | १० | ६०८ |
| धनवतां प्रमेहे विशेषचिकित्सा | ११ | ,, |
| अधनानां प्रमेहे विशेषचिकित्सा | १२-१३ | ६०९ |
| **१२ द्वादशोऽध्यायः ।** | | |
| प्रमेहपिडकाचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-२ | ६१० |
| प्रमेहपिडकानां साध्यलक्षणम् | ३ | ,, |
| प्रमेहपिडकासु अवस्थाविशेषेण चिकित्साविशेषः | ४ | ,, |
| प्रमेहपिडकासु धान्वन्तरं घृतम् | ५ | ६११ |
| प्रमेहिणां शोधनोपदेशः | ६ | ,, |
| प्रमेहिणां स्वेदनिषेधः | ७ | ,, |
| अधोदेहे एव पिडकासम्भवे कारणम् | ८ | ६१२ |
| अपक्वानां पक्वानां च पिडकानां विशेषचिकित्सा | ९ | ,, |
| प्रमेहे सालसारादिलेहः | १० | ,, |
| प्रमेहे नवायसयोगः | ११ | ,, |
| प्रमेहे लोहारिष्टः | १२-१९ | ६१३ |
| प्रमेहनिवृत्तिलक्षणम् | २० | ,, |
| **त्रयोदशोऽध्यायः ।** | | |
| मधुमेहचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-३ | ६१४ |
| शिलाजतूत्पत्तिः | ४ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| शिलाजतुभेदाः | ६ | ६१४ |
| शिलाजतुसम्भवलोहविशेषेण शिलाजतुरसवीर्यविशेषः | ६ | ६१५ |
| शिलाजतूनामुत्तरोत्तरं प्राधान्यम् | ७ | ,, |
| शिलाजतुनः सामान्यगुणाः | ८ | ,, |
| प्रधानशिलाजतुलक्षणम् | ९ | ,, |
| शिलाजतुप्रयोगविधानम् | १०–१६ | ,, |
| मधुमेहे माक्षिकविधानम् | १७-१९ | ६१६ |
| मधुमेहे तुवरकविधानम् | २०–३५ | ६१८ |


## १४ चतुर्दशोऽध्यायः।


| | | |
|---|---|---|
| उदरचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| उदराणां साध्यासाध्यविचारः | ३ | ६१९ |
| उदरिणां पथ्यापथ्यानि | ४ | ,, |
| वाताद्युदरचिकित्सा | ५–७ | ,, |
| दुष्योदरचिकित्सा | ८ | ६२० |
| उदरे दोषानुलोमनप्रशंसा | ९ | ,, |
| उदरेषु कतिपये सामान्ययोगाः | १० | ,, |
| उदरे मूत्रवर्तिः | ११ | ६२२ |
| उदरे आनाहवर्तिक्रिया | १२ | ,, |
| प्लीहोदरचिकित्सा | १३ | ,, |
| उदरे षट्पलकं घृतम् | १४ | ६२३ |
| यकृद्दाल्युदरे सिराव्यधः | १५ | ,, |
| प्लीहोदरे सिरादाहः | १६ | ,, |
| बद्धगुदोदरपरिस्राव्युदरचिकित्सा | १७ | ,, |
| जलोदरचिकित्सा | १८ | ६२४ |
| सर्वोदरेषु क्षीरजाङ्गलमांसरसयोः प्रयोगः | १९ | ६२५ |


## १५ पञ्चदशोऽध्यायः।


| | | |
|---|---|---|
| मूढगर्भचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| मूढगर्भस्य कष्टसाध्यत्वम् | ३ | ,, |
| मूढगर्भस्य त्रयः सङ्गाः | ४ | ६२६ |
| मूढगर्भे मन्त्रप्रयोगः | ५–८ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| मूढगर्भे औषधप्रयोगः | ९ | ६२६ |
| मूढगर्भाहरणार्थं शस्त्रप्रयोगः | १०–१८ | ६२८ |
| शस्त्रकर्मणः पश्चात्कर्म | १९–२७ | ६२९ |
| सूतिकारोगे बलातैलम् | २८–३९ | ६३० |
| सूतिकारोगे शतपाकं बलातैलम् | ४०–४३ | ६३२ |
| अतिबलादिषु बलातैलविध्यतिदेशः | ४४ | ,, |
| नीलोत्पलादितैलम् | ४६–४७ | ,, |
| **१६ षोडशोऽध्यायः ।** | | |
| विद्रधिचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ६३२ |
| आमविद्रधिषु व्रणशोधवच्चिकित्सा | ३ | ,, |
| वातविद्रधिचिकित्सा | ४–९ | ,, |
| पित्तविद्रधिचिकित्सा | १०–१५ | ६३३ |
| पित्तविद्रधौ करञ्जादितैलम् | १६–२१ | ,, |
| श्लेष्मविद्रधिचिकित्सा | २२–२६ | ६३४ |
| रक्तजागन्तुजविद्रधिचिकित्सा | २७ | ,, |
| अपक्वाभ्यन्तरविद्रधिचिकित्सा | २८–३३ | ,, |
| विद्रधौ सिराव्यधः | ३४ | ६३५ |
| पक्वविद्रधिचिकित्सा | ३५–३७ | ,, |
| विद्रधेः पाकाभावे प्रयत्नः कार्यः | ३८ | ६३६ |
| मज्जजविद्रधिचिकित्सा | ३९–४३ | ,, |
| **१७ सप्तदशोऽध्यायः ।** | | |
| विसर्पनाडीस्तनरोगचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| विसर्पे सामान्यचिकित्सा | ३ | ,, |
| वातिकविसर्पचिकित्सा | ४–६ | ६३७ |
| पैत्तिकविसर्पचिकित्सा | ६–९ | ,, |
| पैत्तिकविसर्पे गौर्यादिघृतम् | १०–१३ | ६३८ |
| श्लैष्मकविसर्पचिकित्सा | १४–१५ | ,, |
| सर्वविसर्पेषु सामान्यचिकित्सा | १६ | ,, |
| वातजनाडीचिकित्सा | १७–१९ | ६३९ |
| पित्तजनाडीचिकित्सा | २०–२१ | ,, |
| पित्तनाड्यां श्यामादिघृतम् | २२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कफजनाडीचिकित्सा | २३-२९ | ६३९ |
| आगन्तुजनाडीव्रणचिकित्सा | २६-२८ | ६४० |
| क्षारसूत्रेण नाडीच्छेदनविधानम् | २९-३३ | ,, |
| सर्वनाडीनां सामान्यविधिः | ३४-४१ | ६४१ |
| स्तन्यदोषचिकित्सा | ४२-४४ | ,, |
| स्तनरोगचिकित्सा | ४६-४७ | ६४२ |


## १८ अष्टादशोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| ग्रन्थ्यपच्यर्बुदगलगण्डचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-२ | ६४३ |
| आमग्रन्थिचिकित्सा | ३ | ,, |
| आमग्रन्थौ स्नेहपानविधिः | ४ | ,, |
| वातिकग्रन्थिचिकित्सा | ५-७ | ,, |
| पैत्तिकग्रन्थिचिकित्सा | ८-११ | ६४४ |
| श्लैष्मिकग्रन्थिचिकित्सा | १२-१४ | ,, |
| मांसकन्दीचिकित्सा | १५-१६ | ,, |
| मेदोजग्रन्थिचिकित्सा | १७-१९ | ६४५ |
| अपचीचिकित्सा | २०-२३ | ,, |
| अमर्मजग्रन्थौ क्षाराग्निशस्त्रविधिः | २४ | ,, |
| अपच्यां जङ्घायां शस्त्रकर्म | २५-२६ | ६४६ |
| अपच्यां मणिबन्धोपरि शस्त्रकर्म | २७ | ६४७ |
| अपच्यां संशमनविधिः | २८ | ,, |
| वातार्बुदचिकित्सा | २९-३१ | ,, |
| पितार्बुदचिकित्सा | ३२-३४ | ,, |
| कफार्बुदचिकित्सा | ३५-४० | ६४८ |
| मेदोऽर्बुदचिकित्सा | ४१-४२ | ,, |
| वातजगलगण्डचिकित्सा | ४३-४७ | ६४९ |
| कफजगलगण्डचिकित्सा | ४८-५० | ,, |
| गलगण्डरोगे त्रिकटुकादियोगः | ५१ | ६५० |
| मेदोजगलगण्डचिकित्सा | ५२-५९ | ,, |


## १९ एकोनविंशोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| वृद्ध्युपदंशश्लीपदचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| वृद्धौ परिहार्य्याणि | ३ | ६९० |
| वातिकवृद्धिचिकित्सा | ४–८ | ६९१ |
| पैत्तिकवृद्धिचिकित्सा | ९–११ | ,, |
| श्लैष्मिकवृद्धिचिकित्सा | १२–१४ | ६९२ |
| मेदोजवृद्धिचिकित्सा | १५–१७ | ,, |
| मूत्रजवृद्धिचिकित्सा | १८–२० | ,, |
| अन्त्रवृद्धिचिकित्सा | २१–२४ | ,, |
| सामान्यत उपदंशचिकित्सा | २५–२७ | ६९३ |
| वातिकोपदंशचिकित्सा | २८–२९ | ,, |
| पैत्तिकोपदंशचिकित्सा | ३०–३२ | ६९४ |
| श्लैष्मिकोपदंशचिकित्सा | ३३–३५ | ,, |
| उपदंशस्य आमाद्यवस्थाभेदेन चिकित्सा | ३६–३९ | ,, |
| उपदंशे चूर्णम् | ४०–४१ | ६९५ |
| उपदंशे जम्ब्वादियोगः | ४२–४४ | ,, |
| उपदंशे कतिपये योगाः | ४५–४८ | ,, |
| त्रिदोषजोपदंशचिकित्सा | ४९–५१ | ,, |
| वातिकश्लीपदचिकित्सा | ५२–५४ | ६९६ |
| पैत्तिकश्लीपदचिकित्सा | ५५ | ,, |
| श्लैष्मिकश्लीपदचिकित्सा | ५६–६२ | ,, |
| श्लीपदे पानीयक्षारः | ६३–६७ | ६९७ |
| श्लीपदे द्वितीयपानीयक्षारः | ६८–६९ | ,, |


## २० विंशतितमोऽध्यायः।


| | | |
|---|---|---|
| क्षुद्ररोगचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ६९८ |
| अजगल्लिकाचिकित्सा | ३–४ | ,, |
| अन्धालजीयवप्रख्यापनसौकच्छपीपाषाणगर्दभचिकित्सा | ५–६ | ,, |
| विवृतेन्द्रविद्धागर्दभीजालगर्दभेरिवेल्लिकागन्धनामनीक-क्षाविस्फोटकानां चिकित्सा | ७–८ | ,, |
| चिप्पकुनखयोश्चिकित्सा | ९–१० | ६९९ |
| विदारिकायाश्चिकित्सा | ११–१५ | ,, |
| भेदोऽर्बुदशर्कार्बुदकच्छूविचर्चिकापामाचिकित्सा | १६–१८ | ७०० |

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| पाददारीचिकित्सा | १९ | ६६० |
| अलसचिकित्सा | २०–२२ | ,, |
| कदरेन्द्रलुप्तयोश्चिकित्सा | २३–२६ | ,, |
| अरूंषिकाचिकित्सा | २७–२८ | ६६१ |
| दारुणकचिकित्सा | २९ | ,, |
| पालतचिकित्सा | ३० | ,, |
| मसूरीकाचिकित्सा | ३१ | ,, |
| जतुमणिमशकतिलकालकानां चिकित्सा | ३२ | ६६२ |
| न्यच्छव्यङ्गनीलिकाचिकित्सा | ३३–३६ | ,, |
| यौवनपिडकाचिकित्सा | ३७ | ,, |
| पद्मिनीकण्टकचिकित्सा | ३८–३९ | ,, |
| परिवृत्तिकोपाटिकाचिकित्सा | ४०–४२ | ,, |
| निरुद्धप्रकशचिकित्सा | ४३–४५ | ६६३ |
| सन्निरुद्धगुदचिकित्सा | ४६–४७ | ,, |
| वल्मीकचिकित्सा | ४८–५६ | ,, |
| अहिपूतनवृषणकच्छूचिकित्सा | ५७–६० | ६६४ |
| गुदभ्रंशचिकित्सा | ६१–६३ | ,, |


## २१ एकविंशतितमोऽध्यायः।


| | | |
|---|---|---|
| शुक्रोगचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ६६५ |
| सर्षपीचिकित्सा | ३ | ,, |
| अष्ठीलिकाऽनुशयीचिकित्सा | ४ | ६६६ |
| ग्रथितकुम्भीकयोश्चिकित्सा | ५–६ | ,, |
| अलजीचिकित्सा | ७ | ,, |
| मृदितचिकित्सा | ८ | ,, |
| सम्मूढपिडकाचिकित्सा | ९ | ,, |
| अवमन्थपुष्करिकास्पर्शहानीनां चिकित्सा | १०–१२ | ,, |
| उत्तमाचिकित्सा | १३ | ६६७ |
| शतपोनकत्वक्पाकयोश्चिकित्सा | १४ | ,, |
| शोणिताबुंदमांसपाकविद्रधितिलकालकानां चिकित्सा | १५–१८ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| **२२ द्वाविंशतितमोऽध्यायः** | | |
| मुखरोगचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-२ | ६८ |
| ओष्ठप्रकोपचिकित्सा | ३-९ | ,, |
| शीतादचिकित्सा | १०-१२ | ,, |
| दन्तपुप्पुटकचिकित्सा | १३ | ६६९ |
| दन्तवेष्टचिकित्सा | १४-१६ | ,, |
| शौषिरचिकित्सा | १६-१७ | ,, |
| परिदरचिकित्सा | १८ | ,, |
| उपकुशचिकित्सा | १९-२१ | ६७० |
| दन्तवैदर्भचिकित्सा | २२ | ,, |
| अधिदन्तकचिकित्सा | २३ | ,, |
| अधिमांसचिकित्सा | २४-२६ | ,, |
| दन्तनाडीचिकित्सा | २६-३३ | ,, |
| दन्तहर्षचिकित्सा | ३४-३६ | ६७१ |
| दन्तशर्कराकपालिकयोश्चिकित्सा | ३६-३८ | ,, |
| कृमिदन्तकचिकित्सा | ३९-४० | ,, |
| हनुमोक्षचिकित्सा | ४१-४२ | ६७२ |
| जिह्वाकण्टकचिकित्सा | ४३-४७ | ,, |
| उपजिह्वाचिकित्सा | ४८ | ,, |
| गलशुण्डिकाचिकित्सा | ४९-५६ | ,, |
| तुण्डिकेर्यध्रुषकूर्मसङ्घाततालुपुप्पुटानां चिकित्सा | ५७ | ६७३ |
| तालुपाकचिकित्सा | ५८ | ,, |
| कण्ठरोहिणीचिकित्सा | ५९-६३ | ,, |
| कण्ठशालूकचिकित्सा | ६४ | ६७४ |
| अधिजिह्विकाचिकित्सा | ६५ | ,, |
| एकवृन्दगिलायुगलविद्रधीनां चिकित्सा | ६६ | ,, |
| मुखपाकचिकित्सा | ६७-७२ | ,, |
| मुखरोगे कवलविधिः | ७६ | ६७५ |
| असाध्या मुखरोगाः | ७७-८१ | ,, |
| **२३ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः।** | | |
| शोफचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-२ | ६७६ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| शोथभेदाः | ३ | ६७६ |
| शोथनिदानं सम्प्राप्तिश्च | ४ | ६७७ |
| वातजादिभेदेन शोथलक्षणम् | ५ | ,, |
| दोषाणां स्थानसंश्रयविशेषेण शोथे विशेषः | ६ | ,, |
| शोथानां साध्यासाध्यविवेकः | ७ | ६७८ |
| शोथोपद्रवाः | ८–९ | ,, |
| शोथिनः परिहरणीयानि | १० | ,, |
| दोषविशेषेण शोथचिकित्सा | ११ | ,, |
| शोथे सामान्यचिकित्सा | १२ | ,, |
| शोथे अपथ्यानि | १३ | ६७९ |


## २४ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| अनागताबाधप्रतिषेधनीयाध्यायोपक्रमः | १–२ | ६८० |
| दन्तधावनविधिः | ४–१२ | ,, |
| जिह्वानिर्लेखनलक्षणं तद्गुणाश्च | १३–१४ | ६८१ |
| मुखप्रक्षालनविधिस्तद्गुणाश्च | १५–१६ | ,, |
| नेत्राञ्जनविधिस्तद्गुणाश्च | १७–२० | ,, |
| ताम्बूलभक्षणविधिस्तद्गुणाश्च | २१–२४ | ६८२ |
| शिरोऽभ्यङ्गगुणाः | २५–२६ | ,, |
| शिरोऽभ्यङ्गार्थं तैलम् | २७–२८ | ,, |
| केशप्रसाधनीकर्णपूरणयोर्गुणाः | २९ | ६८३ |
| अभ्यङ्गगुणाः | ३० | ,, |
| सर्वाङ्गपरिषेकगुणाः | ३१–३२ | ,, |
| स्नेहावगाहनगुणाः | ३३ | ,, |
| अभ्यङ्गादा प्रकृतिविशेषेण तैलघृतयोर्योगः | ३४ | ६८४ |
| अभ्यङ्गानधिकारिणः | ३५–३७ | ,, |
| व्यायामविधिः, तद्गुणाः, अतिव्यायामदोषाः, व्यायामानधिकारिणः | ३८–५० | ,, |
| उद्वर्तनगुणाः | ५१ | ६८५ |
| उद्धर्षणोत्सादनयोर्गुणाः | ५२–५६ | ,, |
| स्नानगुणाः | ५७–६१ | ६८६ |
| स्नानानधिकारिणः | ६२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| अनुलेपनगुणाः | ६३ | ६८६ |
| पुष्पवस्त्ररत्नधारणगुणाः | ६४ | ,, |
| मुखालेपनगुणाः | ६५ | ६८७ |
| नेत्राञ्जनगुणाः | ६६ | ,, |
| देवताऽतिथिविप्रपूजनगुणाः | ६७ | ,, |
| आहारगुणाः | ६८ | ,, |
| पादप्रक्षालनगुणाः | ६९ | ६८८ |
| पादाभ्यङ्गगुणाः | ७० | ,, |
| पादत्रधारणगुणाः | ७१-७२ | ,, |
| केशनखरोमहरणगुणाः | ७३ | ,, |
| कवचधारणगुणाः | ७४ | ,, |
| उष्णीषच्छत्रधारणगुणाः | ७५ | ,, |
| दण्डधारणगुणाः | ७६-७७ | ६८९ |
| आस्या गुणाः | ७८ | ,, |
| चङ्क्रमणगुणाः | ७९-८० | ,, |
| सुखशय्यासनगुणाः | ८१ | ,, |
| बालव्यजनानिलगुणाः | ८२ | ,, |
| संवाहनगुणाः | ८३ | ,, |
| प्रवातनिवातयोर्गुणाः | ८४-८५ | ,, |
| आतप-छाययोर्गुणाः | ८६ | ६९० |
| अग्निसेवनगुणाः | ८७ | ,, |
| निद्रागुणाः | ८८ | ,, |
| स्वस्थैः सदापालनीयं सद्वृत्तम् | ८९-१०१ | ,, |
| ऋतुभेदेन पेयपानविधिः | १०२-१०७ | ६९३ |
| स्वस्थातुरविषयं दोषसंशोधनम् | १०८-१०९ | ६९४ |
| स्त्रीसेवनविधिः | ११०-१३२ | ,, |
| सद्वृत्तोपसंहारः | १३३ | ६९७ |


## २५ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| मिश्रकचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| परिपोटोत्पातोन्मन्थदुःखवर्धनपरिलेह्याख्यां कणपाल्याम-यानां लक्षणानि | ३-१२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| परिपोटकचिकित्सा | १३–१९ | ६९८ |
| उत्पाटचिकित्सा | १६–१७ | ६९९ |
| उन्मन्थचिकित्सा | १८–१९ | ,, |
| परिलेहिचिकित्सा | २०–२३ | ,, |
| कर्णपालिवर्धकतैलम् | २४–२७ | ,, |
| पलिते नीलीतैलम् | २८–३१ | ७०० |
| पलिते मैरीयकादितैलम् | ३२–३७ | ७०१ |
| मुखाभ्यङ्गार्थं लाक्षादितैलम् | ३८–४२ | ,, |
| नरदेवयोग्योऽङ्गरागः | ४३ | ७०२ |


## २६ षड्विंशतितमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| क्षीणबलीयवाजीकरणचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| वाजीकरणार्हाः पुरुषाः | ३–६ | ,, |
| वाजीकरणस्य लक्षणानि | ६–८ | ७०३ |
| षड्विधक्लैब्यलक्षणम् | ९–१६ | ,, |
| वाजीकरी तिलाद्यत्कारिका | १६–१७ | ७०४ |
| वाजीकरो शष्कुली | १८–१९ | ,, |
| वाजीकरोबस्ताण्डयोगः | २० | ७०६ |
| वाजीकरा पूपलिका | २१–२२ | ,, |
| वाजीकरी विदारीयोगः | २३ | ,, |
| वाजीकर आमलकयोगः | २४ | ,, |
| वाजीकरा अण्डयोगाः | २५–२६ | ,, |
| वाजीकरोऽश्वत्थयोगः | २७ | ७०६ |
| वाजीकरा विदारीमूलयोगः | २८ | ,, |
| वाजीकरो माषयागः | २९ | ,, |
| वाजीकरो गोधूमादियोगः | ३० | ,, |
| वाजीकरः पादाभ्यङ्गयोगः | ३१–३२ | ,, |
| वाजीकरः स्वयङ्गुप्तादियोगः | ३३ | ,, |
| वाजीकराः कतिपये योगाः | ३४–३६ | ,, |
| वाजीकरः क्षीरयोगः | ३७–३८ | ७०७ |
| वाजीकरयोगानां फलम् | ३९ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| **२७ सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।** | | |
| सर्वोपघातशमनीयरसायनाध्यायोपक्रमः | १–२ | ७०७ |
| रसायनयोग्या अवस्था नराश्च | ३–५ | ७०८ |
| रसायनः शीतोदकपयः क्षौद्रसर्पिर्योगः | ६ | ,, |
| रसायनो विडङ्गतण्डुलयोगः | ७ | ७०९ |
| रसायनो द्वितीयविडङ्गतण्डुलयोगः | ८ | ,, |
| रसायनः काश्मर्ययोगः | ९ | ७१० |
| रसायनो बलामूलयोगः | १० | ,, |
| रसायनो वाराहीमूलयोगः | ११ | ७११ |
| रसायनो बीजकसारादियोगः | १२ | ,, |
| रसायनः शणफलयोगः | १३ | ,, |
| **२८ अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।** | | |
| मेधाऽऽयुष्कामीयरसायनचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ७१२ |
| रसायनः श्वेतावल्गुजफलयोगः | ३ | ,, |
| रसायनो मण्डूकपर्णीस्वरसयोगः | ४ | ,, |
| रसायनो ब्राह्मीस्वरसयोगः | ५ | ७१३ |
| रसायनं ब्राह्मीघृतम् | ६ | ,, |
| रसायनो वचायोगः | ७ | ७१४ |
| रसायनं वचाघृतम् | ८ | ,, |
| अलक्ष्मीनाशको बिल्वयोगः | ९–१३ | ,, |
| रसायनं सुवर्णादियोगद्वयम् | १४–१६ | ७१५ |
| मेध्यो वचादियोगः | १७–१९ | ,, |
| अरिष्टप्रशमनो मध्वादियोगः | २० | ,, |
| वशीकरणः शतावर्यादियोगः | २१ | ७१६ |
| सौभाग्यकरो गोचन्दनादियोगः | २२ | ,, |
| सौभाग्यकरः पद्मादियोगः | २३–२६ | ,, |
| बुद्धिमेधाकरो गणः | २७ | ,, |
| आयुष्यो गणः | २८ | ,, |
| **२९ एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| स्वभावव्याधिप्रतिषेधनीयरसायनाध्यायोपक्रमः | १–२ | ७१७ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्का |
|---|---|---|
| सोमसंज्ञकामृतवर्णनम् | ३–९ | ७१७ |
| सोमसेवनविधानम् | १०–१२ | ७१८ |
| विविधसोमाभिषवयोग्यपात्राणि | १३ | ७२१ |
| सोमसेवनफलम् | १४–१९ | ,, |
| विविधसोमलक्षणानि | २०–२६ | ७२२ |
| सोमोत्पत्तिस्थानवर्णनम् | २७–३२ | ७२३ |
| **३० त्रिंशत्तमोऽध्यायः।** | | |
| निवृत्तसन्तापीयरसायनाध्यायोपक्रमः | १–३ | ,, |
| रसायनसेवनार्हा नराः | ४ | ७२४ |
| रसायन्यः सोमसमवीर्या ओषध्यः | ५ | ,, |
| तासामोषधीनां सेवनफलम् | ६–८ | ७२५ |
| रसायनीमोषधीनां लक्षणानि | ९–२५ | ,, |
| रसायनौषधानयनप्रकारः | २६–२८ | ७२६ |
| रसायनौषधीनाममृततुल्यगुणत्वे कारणम् | २९ | ७२७ |
| रसायनौषध्युत्पत्तिस्थानानि | ३०–४० | ,, |
| **३१ एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः।** | | |
| स्नेहोपयौगिकचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ७२८ |
| स्नेहस्य प्राधान्यम् | ३ | ,, |
| स्नेहस्य द्वियोनित्वम् | ४ | ,, |
| विविधस्थावरस्नेहानां गुणा उपयोगाश्च | ५ | ७२९ |
| कषायपाकस्नेहपाकक्रमे एकीयमतम् | ६ | ७३० |
| पलकुडवादिमानपरिभाषा | ७ | ,, |
| स्वमतानुसारेण कषायपरकस्नेहपाककल्पः | ८–१० | ७३१ |
| त्रिविधस्नेहपाकक्रियालक्षणम् | ११ | ७३२ |
| स्नेहसिद्धिलक्षणम् | १२–१३ | ,, |
| स्नेहपानविधानम् | १४ | ७३३ |
| सर्पिः पानार्हाः पुरुषाः | १५ | ,, |
| तैलपानार्हाः पुरुषाः | १६ | ,, |
| वसापानार्हाः पुरुषाः | १७ | ,, |
| मज्जपानार्हाः पुरुषाः | १८ | ,, |
| दोषविशेषेण स्नेहपानानुपानम् | १९ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषया:— | सूत्राङ्का: | पृष्ठाङ्का: |
|---|---|---|
| दोषसंसर्गविशेषे त्रिषष्टिरससंयुक्तमपि सर्पिर्योज्यम् | २० | ७३४ |
| अच्छस्नेहपानविषय: | २१ | ,, |
| स्नेहपाने कालविचार: | २२-२३ | ,, |
| स्नेहपाने तृष्णोपद्रवचिकित्सा | २४ | ,, |
| दोषादिविशेषेण स्नेहमात्राविभाग: | २५-२९ | ,, |
| प्रथममात्राया: प्राशस्त्यम् | ३० | ७३५ |
| स्नेहस्याजीर्णतायां कर्तव्योपचारा: | ३१-३३ | ,, |
| स्नेहे जीर्णे पश्चात् कर्म | ३४-३५ | ७३६ |
| स्नेहपानस्य कालावधि: | ३६ | ,, |
| सुकुमारादिष्वन्नादिना सह स्नेहप्रयोग: | ३७-४४ | ,, |
| स्नेहपानायोग्या नरा: | ४५-५० | ७३७ |
| अस्निग्धलक्षणम् | ५१-५२ | ७३८ |
| सुस्निग्धलक्षणम् | ५३ | ,, |
| अतिस्निग्धलक्षणम् | ५४ | ,, |
| अस्निग्धातिस्निग्धयो: प्रतीकार: | ५५ | ,, |
| स्नेहपानफलम् | ५६-५७ | ,, |
| **३२ द्वात्रिंशत्तमोऽध्याय: ।** | | |
| स्वेदावचारणीयचिकित्सिताध्यायोपक्रम: | १-२ | ७३९ |
| स्वेदस्य चातुर्विध्यम् | ३ | ,, |
| तापस्वेदविधानम् | ४ | ,, |
| ऊष्मस्वेदविधिर्नाडीस्वेदविधिश्च | ५-७ | ,, |
| भूस्वेदविधानम् | ८ | ,, |
| अश्मस्वेदविधानम् | ९ | ७४० |
| कुटीस्वेदविधानम् | १० | ,, |
| प्रस्तरस्वेदविधानम् | ११ | ,, |
| उपनाहस्वेदविधानम् | १२ | ,, |
| अवगाहपरिषेचनविधानम् | १३ | ,, |
| दोषविशेषे स्वेदविशेषोपयोग: | १४ | ७४१ |
| अनग्निकस्वेद: | १५ | ,, |
| स्वेदस्य सर्वदेहावयवव्यापित्वेन द्वैविध्यम् | १६ | ,, |
| प्राक्स्वेद्या: पश्चात्स्वेद्याश्च रोगिण: | १७-१९ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| स्वेदात्पूर्वं स्नेहोपयोगस्यावश्यकर्तव्यता | २०–२१ | ७४१ |
| स्वेदगुणाः | २२ | ७४२ |
| सम्यक्स्विन्नलक्षणानि | २३ | ,, |
| अतिस्विन्नलक्षणानि | २४ | ,, |
| स्वेदायोग्या रोगिणः | २५ | ,, |
| स्वेदप्रयोगे हृन्मुष्कदृष्टिरक्षाविधानम् | २६–२८ | ,, |
| स्वेदस्य पश्चात्कर्म | २९ | ७४३ |
| **३३ त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।** | | |
| वमनविरेचनसाध्योपद्रवचिकित्साध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| दोषाणामवस्थाविशेषेण चिकित्साविशेषः | ३ | ,, |
| वमनविरेचनयोः प्राधान्यम् | ४ | ७४४ |
| वमनौषधपानविधानम् | ५–७ | ,, |
| वमनस्य हीनातियोगलक्षणानि | ८ | ७४५ |
| वमनस्य सम्यग्योगलक्षणानि | ९ | ,, |
| सम्यग्वान्तस्य पश्चात्कर्म | १०–११ | ,, |
| वमनफलम् | १२–१३ | ,, |
| वमनायोग्या रोगिणः | १४–१६ | ७४६ |
| वमनापवादप्रतिप्रसवः | १७ | ,, |
| वमनयोग्या रोगिणः | १८ | ,, |
| विरेचनविधानम् | १९ | ,, |
| विरेचनौषधपानविधानम् | २० | ७४७ |
| त्रिविधकोष्ठलक्षणम् | २१ | ,, |
| पीतविरेचनस्य अपथ्यानि | २२ | ,, |
| वमने विरेचने च दोषनिर्गमनक्रमः | २३ | ,, |
| विरेचनस्य हीनातियोगलक्षणानि | २४ | ,, |
| सम्यग्विरिक्तलक्षणानि | २५ | ,, |
| विरेचने पश्चात्कर्म | २५ | ७४८ |
| विरेचनफलम् | २७–२८ | ,, |
| विरेचनायोग्या रोगिणः | २९–३१ | ,, |
| विरेचनयोग्या रोगिणः | ३२ | ,, |
| वमनविरेचनयोर्दोषनिर्हरणे विशेषः | ३३–३४ | ,, |
| विरेचनस्यासम्यक्प्रवृत्तौ कारणम् | ३५ | ,, |
| विरेचनस्य सम्यग्युक्तिः | ३६ | ७४९ |



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| दुर्बलस्य दोषहरणे विशेषविधिः | ३७ | ७४९ |
| स्थानाच्चलितदोषाणामवश्यं निर्हरणं कार्यम् | ३८ | ,, |
| क्रूरकोष्ठस्य संशोधनविधानम् | ३९ | ,, |
| संशोधनस्य स्नेहस्वेदपूर्वकप्रयोगे कारणम् | ४० | ,, |
| अतिस्निग्धस्य स्नेहविरेचननिषेधः | ४१ | ७५० |
| विषादिपीडितानां संशोधने विशेषविधिः | ४२ | ,, |
| स्नेहसात्म्यस्य संशोधनविधानम् | ४३ | ,, |
| अविज्ञातकोष्ठस्य संशोधने विशेषः | ४४ | ,, |
| नृपतियोग्यं विरेचनम् | ४५ | ,, |
| स्नेहस्वेदरहितसंशोधने दोषः | ४६ | ,, |
| विशोधनैः कीदृशाः दोषा हर्तुं सुखाः | ४७ | ,, |
| **३४ चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| वमनविरेचनव्यापच्चिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| पञ्चदशविधवमनविरेचनव्यापदः | ३ | ७५१ |
| वमनस्याधोगमनव्यापत्कथनम् | ४ | ,, |
| विरेचनस्योर्ध्वगमनव्यापत्कथनम् | ५ | ,, |
| सावशेषाषधव्यापद्वर्णनम् | ६ | ,, |
| जीर्णौषधव्यापद्वर्णनम् | ७ | ७५२ |
| अल्पदोषहरणव्यापद्वर्णनम् | ८ | ,, |
| वातशूलव्यापद्वर्णनम् | ९ | ,, |
| अयोगव्यापद्वर्णनम् | १० | ,, |
| अतियोगव्यापद्वर्णनम् | ११ | ७५३ |
| जीवादानव्यापद्वर्णनम् | १२–१४ | ७५४ |
| आध्मानव्यापद्वर्णनम् | १५ | ७५५ |
| परिकर्तिकाव्यापद्वर्णनम् | १६ | ,, |
| परिस्रावव्यापद्वर्णनम् | १७ | ७५६ |
| प्रवाहिकाव्यापद्वर्णनम् | १८ | ,, |
| हृदयोपसरणव्यापद्वर्णनम् | १९ | ,, |
| विबन्धव्यापद्वर्णनम् | २० | ,, |
| कासुचिद्वमनविरेचनव्यापत्स्वन्तरप्रदर्शनम् | २१ | ७५७ |
| पूर्वोक्तव्यापदां कारणानि | २२ | ,, |
| **३५ पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| नेत्रबस्तिप्रमाणप्रविभागचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| बस्तेः प्राधान्यम् | ३-४ | ७५८ |
| बस्तिसाध्या रोगाः | ५-६ | ,, |
| बस्तिनेत्रप्रमाणम् | ७-९ | ,, |
| बालवृद्धयोर्बस्तौ विशेषः | १० | ७५९ |
| व्रणनेत्रलक्षणम् | ११ | ,, |
| बस्तिनेत्रनिर्माणद्रव्यं तदाकृतिश्च | १२ | ,, |
| बस्तिनिर्माणद्रव्यम् | १३-१४ | ७६० |
| ग्रहणयोग्यबस्तेः परिकर्मबन्धविधिश्च | १५-१७ | ,, |
| बस्तिभेदाः | १८ | ,, |
| विशुद्धदेहस्यैव स्नेहबस्तिविधानम् | १९-२० | ७६१ |
| बस्तिकर्मानर्हा नराः | २१ | ,, |
| क्वचिदास्थापनस्यावस्थायां प्रतिप्रसवः | २२ | ,, |
| बस्त्यनर्हाणां बस्तिदाने दोषप्रदर्शनम् | २३ | ,, |
| बस्तेः सर्वाङ्गगतदोषहरत्वम् | २४-२८ | ,, |
| बस्तेर्वातप्रकोपप्रशमने प्राधान्यम् | २९-३१ | ७६२ |
| बस्तिव्यापदां निर्देशः | ३२-३३ | ,, |

३६ षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| नेत्रबस्तिव्यापच्चिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-२ | ७६३ |
| नेत्रप्रणिधानव्यापद्वर्णनं तच्चिकित्सा च | ३-५ | ७६४ |
| नेत्रदोषव्यापद्वर्णनं तच्चिकित्सा च | ६-९ | ,, |
| बस्तिदोषव्यापद्वर्णनम् | १०-११ | ७६५ |
| बस्तिपीडिनदोषव्यापद्वर्णनम् | १२-१६ | ,, |
| बस्तिद्रव्यदोषव्यापद्वर्णनम् | १७-२२ | ७६६ |
| शय्यादिदोषव्यापद्वर्णनम् | २३-२९ | ,, |
| अयोगाध्मानपरिकर्तिकापरिस्रावप्रवाहिकाहृदयोपसरणाङ्गग्रहातियोगजीवादानव्यापद्वर्णनं तच्चिकित्सा च | ३०-५० | ७६७ |
| क्रमेण क्रियमाणानां वमनादिपञ्चकर्मणां कालावधिः | ५१ | ७६९ |
| अनुवासनोत्तरबस्तिचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| विरेचनात्सप्ताहानन्तरमनुवासनविधिः | ३ | ,, |
| अनुवासनबस्तिमात्रा | ४ | ,, |
| अनुवासनबस्तेः पूर्वकर्म | ५-६ | ७७० |
| अनुवासनार्थं शटयादितैलम् | ७-१४ | ,, |
| अनुवासनार्थं चित्रकादितैलम् | १५-१८ | ७७१ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## ३७ सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| अनुवासनार्थं भूतिकादितैलम् | १९–२२ | ७७१ |
| अनुवासनार्थं जीवन्त्यादितैलम् | २३–२६ | ,, |
| अनुवासनार्थं मधुकादितैलम् | २७–२९ | ७७२ |
| अनुवासनार्थं मृणालादितैलम् | ३०–३२ | ७७३ |
| अनुवासनार्थं त्रिफलादितैलम् | ३३–३७ | ,, |
| अनुवासनार्थं पाठादितैलम् | ३६–३८ | ,, |
| अनुवासनार्थं विडङ्गादितैलम् | ३९–४२ | ७७४ |
| वातातिकोपेऽशुद्धस्याप्यनुवासनविधानम् | ४३–४४ | ,, |
| वातातिकोपेऽस्निग्धस्यापि निरूहविधानम् | ४५ | ,, |
| दोषभेदेन अनुवासनतैलानि | ४६ | ,, |
| रात्रौ बस्तिदाननिषेधः | ४७ | ,, |
| दिवा बस्तिदानगुणाः | ४८ | ७७५ |
| रात्रौ निषिद्धस्य बस्तिदानस्यापवादः | ४९–५० | ,, |
| ऋतुविशेषेण बस्तिकालविशेषः | ५१ | ,, |
| वाताधिके सर्वदाऽनुवासविधिः | ५२ | ,, |
| अभुक्तवतः स्नेहबस्तिप्रतिषेधः | ५३ | ,, |
| भोजनोत्तरमविलम्बितमनुवासनार्थमुपदेशः | ५४–५७ | ,, |
| अनुवासनबस्तिदानविधिः | ५८–६३ | ७७६ |
| शीघ्रं प्रत्यावृत्तेऽनुवासने चिकित्सा | ६४–६६ | ,, |
| अनुवासनस्यातियोगलक्षणम् | ६६ | ७७७ |
| सम्यगनुवासितलक्षणम् | ६७–६९ | ,, |
| स्नेहबस्तेः प्रथमादिदानेन कार्यनिरूपणम् | ७०–७४ | ,, |
| अनुवासनफलम् | ७५–७८ | ७७८ |
| अनुवासननिरूहयोरेकस्यैवातिशीलने दोषः | ७७–७८ | ,, |
| स्नेहबस्तेरवस्थाविशेषेण प्रत्यहं विधानम् | ७९ | ,, |
| अभ्यासेन बस्तिर्यथा निरापदः | ८० | ,, |
| वातादिदोषाभिभूतस्नेहबस्तिव्यापदः | ८१–८५ | ,, |
| पूर्वोक्तव्यापच्चिकित्सा | ८६ | ७७९ |
| अत्याशिते स्नेहबस्तिदानव्यापदस्तच्चिकित्सा च | ८७–८८ | ,, |
| अशुद्धस्यानुवासनदाने व्यापदस्तच्चिकित्सा च | ८९–९० | ,, |
| दूरानुसृते स्नेहे व्यापदस्तच्चिकित्सा च | ९१–९२ | ,, |
| अस्विन्नशुद्धयोरल्पादिस्नेहदाने व्यापदस्तच्चिकित्सा च | ९३–९४ | ७८० |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| अल्पभुक्तस्य मन्दगुणस्नेहदाने व्यापदस्तच्चिकित्सा च, | ९५–९६ | ७८० |
| स्नेहबस्तेरनिवृत्तिव्यापत्कालावधिः | ९७ | ,, |
| अनुपद्रवकारी स्नेहबस्तिरनिर्गतोऽप्युपेक्ष्यः | ९८ | ,, |
| एकस्मिन् स्नेहबस्तौ अप्रत्यागते द्वितीयो बस्तिर्न देयः | ९९ | ,, |
| उत्तरबस्तिनेत्रप्रमाणम् | १००–१०१ | ,, |
| उत्तरबस्तिद्रव्यमात्रा | १०२ | ७८१ |
| स्त्रीणामुत्तरबस्तिनेत्रप्रमाणम् | १०३ | ,, |
| स्त्रीणां मार्गभेदेन प्रणिधानविधिः | १०४–१०६ | ,, |
| स्त्रीणामुत्तरबस्तिस्नेहमानम् | १०६ | ,, |
| उत्तरबस्तियोग्यबस्तिवर्णनम् | १०७ | ,, |
| पुरुषाणामुत्तरबस्तिप्रणिधानविधिः | १०८–११३ | ,, |
| स्त्रीणामुत्तरबस्तिप्रणिधानविधिः | ११४–११६ | ७८२ |
| स्त्रीणां निरूहोत्तरबस्तिप्रमाणम् | ११६ | ,, |
| उत्तरबस्तौ अनागच्छति स्नेहे प्रत्यागमनोपायः | ११७–१२३ | ,, |
| बस्तिदाहे चिकित्सा | १२४ | ७८३ |
| उत्तरबस्तिफलम् | १२५–१२७ | ,, |
| ३८ अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः । | | |
| निरूहक्रमचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ७८४ |
| निरूहप्रणयनविधानम् | ३–६ | ,, |
| निरूहातियोगनिषेधः | ७ | ७८५ |
| दुर्निरूढलक्षणम् | ८ | ,, |
| अतिनिरूढलक्षणम् | ९ | ,, |
| सुनिरूढलक्षणम् | १० | ,, |
| सुनिरूढस्य पश्चात्कर्म | ११–१३ | ,, |
| निरूहानुवासनयोः सम्यग्दानलक्षणम् | १४ | ,, |
| सुनिरूढस्य तद्दिने कर्तव्योपचाराः | १५ | ,, |
| निरूहानन्तरं स्नेहबस्तिदानम् | १६ | ७८६ |
| मुहूर्तादनागच्छतोनिरूहस्य निर्हरणोपायः | १७ | ,, |
| चिरंसन्तिष्ठतो निरूहणाद्दोषाः | १८ | ,, |
| भुक्तवत आस्थापननिषेधः | १९–२० | ,, |
| जीर्णान्नस्य आस्थापनदाने गुणाः | २१–२२ | ,, |
| अवस्थावशेन भुक्तवतोऽपि निरूहदानम् | २३ | ,, |
| आस्थापनोपयौगिकद्रव्याणि | २४–२८ | ७८७ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| निरूहेषु दोषानुसारेण क्वाथादीनां मात्रा | २९–३१ | ७८७ |
| बस्तिद्रव्ययोजनाक्रमः | ३२–३६ | ,, |
| द्वादशप्रसृतिप्रमाणसाधनम् | ३७–४१ | ७८८ |
| वाते वातरोगे च शम्याकाद्यास्थापनम् | ४२–४६ | ,, |
| वाते वातरोगे च गुडूच्याद्यास्थापनम् | ४७–५० | ७८९ |
| पित्ते पित्तरोगे च कुशाद्यास्थापनम् | ५१–५४ | ,, |
| पित्ते पित्तरोगे च रोध्राद्यास्थापनम् | ५५–५९ | ७९० |
| कफे कफरोगे च भद्राद्यास्थापनम् | ६०–६३ | ,, |
| कफे कफरोगे च दशमूलाद्यास्थापनम् | ६४–६६ | ७९१ |
| संसृष्टे वृषाद्यास्थापनम् | ६७–७० | ,, |
| सर्वरोगहररास्नाद्यास्थापनम् | ७१–७६ | ,, |
| वातरोगे आस्थापनकल्पना | ७७ | ७९२ |
| पित्तरोगे आस्थापनकल्पना | ७८ | ,, |
| कफरोगे आस्थापनकल्पना | ७९ | ,, |
| शोणितरोगे आस्थापनकल्पना | ८० | ,, |
| शोधनास्थापन कल्पना | ८१ | ,, |
| लेखनास्थापनकल्पना | ८२ | ७९३ |
| बृंहणास्थापनकल्पना | ८३ | ,, |
| वाजीकरास्थापनकल्पना | ८४ | ,, |
| पिच्छाबस्तिकल्पना | ८५–८६ | ,, |
| सङ्ग्राह्यास्थापनकल्पना | ८७ | ,, |
| पूर्वोक्तकल्पेषु स्नेहबस्तिविधानार्थमुपदेशः | ८८ | ,, |
| बन्ध्यानां ऋतपाकबलातैलेन बस्तिः | ८९ | ,, |
| सत्त्वभेदेन बस्तिभेदः | ९० | ७९४ |
| कालादिभेदेन बस्तिभेदः | ९१–९२ | ,, |
| एरण्डबीजाद्युत्क्लेशेन बस्तिः | ९३–९५ | ,, |
| सर्वकालोपयोगार्हं माधुतैलिकबस्तिप्रशंसा | ९६–९९ | ,, |
| माधुतैलिकबस्तिकल्पना | १००–१०१ | ७९५ |
| युक्तरथाख्यबस्तिकल्पना | १०२ | ,, |
| दोषहरबस्तिकल्पना | १०३–१०४ | ,, |
| सिद्धबस्त्याख्यबस्तिकल्पना | १०५ | ,, |
| मुस्ताद्यास्थापनबस्तिः | १०६–१११ | ,, |
| अनुक्तास्थापनकल्पनासूत्रम् | ११२ | ७९६ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कृतास्थापनस्य वर्ज्यानि | ११३ | ७९६ |
| माधुतैलिकादिसंज्ञाविवरणम् | ११४-११७ | ,, |
| माधुतैलिकयोगानां निर्यन्त्रणत्वे कारणम् | १८ | ७९७ |


## ३९ एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| आतुरोपद्रवचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| कृतसंशोधनस्याग्निमान्द्यव्यापत्प्रतीकारः | ३-६ | ,, |
| संशोधने हृतदोषप्रमाणम् | ६ | ,, |
| हृतदोषप्रमाणविशेषेण अन्नसंसर्जनक्रमविशेषः | ७-१२ | ,, |
| अवस्थावशेन तर्पणादिक्रमः | १३ | ७९८ |
| उक्तान्नसंसर्जनक्रमस्य अन्यत्राप्यतिदेशः | १४ | ,, |
| लाक्षणिकस्यैव शुद्धिलक्षणस्य प्राधान्यम् | १५-१६ | ७९९ |
| बलविशेषेण अन्नसंसर्जनक्रमविशेषः | १७-१८ | ,, |
| क्रमेण कृतान्नसंसर्गस्य रसावचारणक्रम | १९-२० | ,, |
| स्नेहपीतवान्तयोरन्नसंसर्जनक्रमः | २१ | ,, |
| कृतसिराव्यधविरिक्तयोः परिहारकालावधिः | २२ | ,, |
| बस्तौ परिहारकालावधिः | २३ | ८०० |
| शुद्धसमानधर्मिणोऽन्येऽपि रोगिणः | २४ | ,, |
| स्नेहपीतादीनां परिहार्यापरिहरणे दोषाः | २५-३७ | ,, |
| पूर्वोक्तदोषाणां सङ्क्षेपतश्चिकित्सा | ३८ | ८०१ |
| विरिक्तेन वान्तेन च सेव्यमन्नपानम् | ३९ | ८०२ |


## ४० चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| धूमनस्य कवलग्रहचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| धूमस्य पञ्चविधत्वम् | ३ | ,, |
| धूमवर्तिसाधनद्रव्याणि | ४ | ,, |
| धूमनेत्रसाधनद्रव्याणि धूमनेत्रप्रमाणं च | ५ | ८०३ |
| धूमपानविधानम् | ६-९ | ,, |
| धूमविशेषेण धूमपाने विशेषविधिः | १० | ८०४ |
| धूमपानायोग्या रोगिणः | ११ | ,, |
| अकालपीतधूमव्यापदः | १२ | ,, |
| धूमपानकालाः | १३ | ,, |
| धूमानां प्रत्येकं कार्यम् | १४ | ,, |
| धूमपानगुणाः | १५-१६ | ,, |
| धूमस्य योगातियोगलक्षणानि | १७ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| प्रयोगिकादिधूमानां पानमर्यादा | १८ | ८०६ |
| व्रणधूपनविधिः | १९ | ,, |
| नस्यलक्षणं, तद्भेदाश्च | २०–२१ | ,, |
| स्नैहिकनस्यार्हाः | २२ | ८०७ |
| शिरोविरेचनार्हा रोगिणः | २३ | ,, |
| स्नैहिकवैरेचनिकयोः कालावधारणम् | २४ | ,, |
| नस्यदानविधानम् | २५–२७ | ८०८ |
| स्नैहिकनस्यप्रमाणम् | २८ | ,, |
| स्नैहिकनस्यस्य पश्चात्कर्म | २९–३१ | ८०९ |
| स्नैहिकनस्यस्य योगायोगातियोगलक्षणानि | ३२–३५ | ,, |
| नस्ये शिरोविरेकस्नेहप्रमाणम् | ३६ | ,, |
| वरेचनिकनस्यस्य योगायोगातियोगलक्षणानि | ३७–४३ | ८१० |
| अवपीडननस्यार्हा नराः | ४४–४५ | ,, |
| प्रधमनप्रयोगविषयः | ४६ | ८११ |
| नस्यायोग्या नराः | ४७ | ,, |
| नस्यव्यापदः | ४८ | ,, |
| नस्यव्यापदां द्वैविध्यम् | ४९ | ८११ |
| नस्यव्यापदां चिकित्सा | ५० | ,, |
| प्रतिमर्शनस्यकालाः | ५१ | ,, |
| यथोक्तकालसेवितप्रतिमर्शगुणाः | ५२ | ८१२ |
| प्रतिमर्शमात्रा | ५३ | ,, |
| नस्यसामान्यगुणाः | ५४–५५ | ,, |
| दोषविशेषेण नस्ये स्नेहविशेषः | ५६–५७ | ८१३ |
| चतुर्विधकवलानां द्रव्याणि | ५८–६० | ,, |
| कफहरस्निग्धकटुकादिकवलः | ६१ | ,, |
| कवलगण्डूषमात्रा | ६२ | ,, |
| गण्डूषधारणकालावधिः | ६३ | ८१४ |
| दोषविशेषेण कवलविशेषाः | ६४ | ,, |
| कवलस्य योगायोगातियोगलक्षणानि | ६५–६६ | ,, |
| दाहनाशनस्तिलादिकवलः | ६७–६८ | ,, |
| मुखरोगे प्रतिसारणविधिः | ६९ | ,, |
| प्रतिसारणे पश्चात्कर्म | ७०–७१ | ८१५ |


इति चिकित्सास्थानविषयानुक्रमः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीः ॥

# अथ कल्पस्थानम् ।

## १ प्रथमोऽध्यायः ।


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| अन्नपानरक्षाकल्पाध्यायोपक्रमः | १–३ | ८१७ |
| विषाद् राज्ञो रक्षणीयत्वम् | ४–६ | ,, |
| राज्ञा कदाऽपि कस्यचिदपि विश्वासो नैव विधेयः | ७ | ८१८ |
| महानसे नियोगार्हस्य वैद्यस्य गुणाः | ८–११ | ,, |
| कीदृशं महानसं विधेयम् | १२–१३ | ८१९ |
| नृपतिसेवायोग्याः परिकर्मिणः | १४–१६ | ,, |
| महानसे वैद्यस्य सावधानत्वकथनम् | १६ | ,, |
| महानसिकपरिकर्मिणां वैद्याधीनत्वम् | १७ | ,, |
| विषदातुर्लक्षणानि | १८–२२ | ८२० |
| विषदातुः परीक्षणे राज्ञा यत्नो विधेयः | २३–२५ | ,, |
| गरविषाधिष्ठानानि | २६–२७ | ,, |
| सविषान्नलक्षणम् | २८–३३ | ८२१ |
| सविषान्नबाष्पोष्मणा यद्भवति तद्वर्णनम् | ३४–३७ | ,, |
| सविषान्नभोजनदोषाः | ३८–३९ | ८२२ |
| आमाशयगतविषलक्षणं, तच्चिकित्सा च | ४०–४१ | ,, |
| पक्वाशयगतविषलक्षणं तच्चिकित्सा च | ४२–४३ | ,, |
| सविषद्रवद्रव्यलक्षणम् | ४४–४५ | ८२३ |
| सविषशाकसूपभक्ष्यफललक्षणम् | ४६–४७ | ,, |
| सविषदन्तकाष्ठादिलक्षणं, तच्चिकित्सा च | ४८–५० | ,, |
| सविषाभ्यङ्गलक्षणं, तच्चिकित्सा च | ५१–५४ | ,, |
| सविषोत्सादनपरिषेककषायानुलेपनशय्यावस्त्रतनुत्राणां लक्षणं, तच्चिकित्सा च | ५५ | ८२४ |
| सविषावलेखनलक्षणं, तच्चिकित्सा च | ५६–५८ | ,, |
| सविषशिरोभ्यङ्गशिरस्त्राणोष्णीषस्रजां लक्षणं तच्चिकित्सा च | ५९ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| सविषमुखलेपलक्षणम् | ६०–६१ | ८२४ |
| विषजुष्टवाहनलक्षणम् | ६२ | ८२६ |
| सविषनस्यधूमलक्षणम् | ६३–६४ | ,, |
| सविषपुष्पलक्षणम् | ६५–६६ | ,, |
| सविषकर्णतैललक्षणम् | ६७–६८ | ,, |
| सविषाञ्जनलक्षणम् | ६९–७१ | ,, |
| सविषपादुकालक्षणम् | ७२–७३ | ८२६ |
| सविषभूषणलक्षणम् | ७४ | ,, |
| पूर्वोक्तविषोपसर्गेष्वावस्थिकी क्रिया | ७५–७८ | ,, |
| चित्ते विषव्याप्तिप्रतिषेधः | ७९–८१ | ८२७ |
| भक्ष्यभोज्येषु विषघ्नद्रव्ययोगविधिः | ८२–८४ | ,, |
| विषभक्षणे वमनम् | ८५ | ,, |


## २ द्वितीयोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| स्थावरविषविज्ञानीयाध्यायोपक्रमः | १–२ | ८२८ |
| विषस्य द्वैविध्यम् | ३ | ,, |
| स्थावरविषस्य दशाधिष्ठानानि | ४ | ,, |
| पञ्चपञ्चाशत्स्थावरविषाणि | ५ | ,, |
| कन्दविषाणामवान्तरभेदाः | ६ | ८२९ |
| स्थावरविषाणां पत्रादिविशेषेण गुणविशेषाः | ७–१० | ,, |
| कन्दविषाणां लक्षणानि | ११–१८ | ,, |
| विषाणां दशगुणास्तत्कार्यं च | १९–२३ | ८३० |
| दशगुणयुक्तविषस्य सद्योव्यापादकत्वम् | २४ | ८३१ |
| दूषीविषलक्षणम् | २५–२६ | ,, |
| शरीरावयवविशेषगतदूषीविषलक्षणानि | २७–२९ | ,, |
| दूषीविषस्य कार्याणि | ३०–३२ | ८३२ |
| दूषीविषनिर्वचनम् | ३३ | ,, |
| स्थावरविषस्य सप्तवेगानां लक्षणानि | ३४–३९ | ,, |
| सप्तवेगानां यथाक्रमं चिकित्सितम् | ४०–४३ | ८३३ |
| वेगान्तरेषु कालघातिनो विषस्य प्रतीकारः | ४४–४६ | ,, |
| विषघ्नमजेयाख्यं घृतम् | ४७–४९ | ८३४ |
| दूषीविषारिरगदः | ५०–५२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| दूषीविषोपद्रवचिकित्सा | ९३-९४ | ८३४ |
| दूषीविषस्य साध्यासाध्यत्वलक्षणम् | ९९ | ८३९ |

३ तृतीयोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| जङ्गमविषविज्ञानीयाध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| जङ्गमविषस्य षोडशाधिष्ठानानि | ३-९ | ,, |
| तृणादीनां विषदूषितत्वज्ञानावश्यकता | ६ | ८३६ |
| विषदूषितजललक्षणं, तच्चिकित्सा च | ७-८ | ,, |
| दुष्टजलसंशोधनौषधम् | ९ | ,, |
| विषदूषितभूमिलक्षणं तच्चिकित्सा च | १०-१२ | ८३७ |
| विषदूषिततृणभक्तयोर्लक्षणम् | १३-१९ | ,, |
| विषदूषितधूमानिलयोर्लक्षणम् | १६-१७ | ,, |
| विषोत्पत्तौ पुरावृत्तवर्णनम् | १८-२२ | ,, |
| विषस्य नानावीर्यत्वे कारणम् | २३-२४ | ८३८ |
| विषस्य सर्वदोषप्रकोपकत्वम् | २६-२७ | ,, |
| दंशकाले सर्पाणां विषमुञ्चनप्रकारः | २८-२९ | ८३९ |
| सर्वविषेषु शीतक्रियोपचारोपदेशः | ३०-३१ | ,, |
| विषदूषितमांसभक्षणदोषाः | ३२-३४ | ,, |
| विषपीतलक्षणम् | ३६-३७ | ,, |
| विशिष्टदेशादौ दष्टानां वर्ज्यत्वम् | ३८ | ८४० |
| अवस्थाविशेषेण विषवृद्धिकथनम् | ३९ | ,, |
| विषाभिभूतस्य असाध्यलक्षणानि | ४०-४४ | ,, |

४ चतुर्थोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| सर्पदष्टविषविज्ञानीयाध्यायोपक्रमः | १-४ | ८४१ |
| सर्पाणां महाविषत्वप्रतिपादनम् | ६-८ | ,, |
| सर्पाणां पञ्चभेदाः | ९-१२ | ,, |
| सर्पाणां दंशने कारणम् | १३ | ८४२ |
| सर्पदंशस्य त्रिविध्यम् | १४-१९ | ,, |
| अवस्थावशेन सर्पविषस्यालपविषत्वम् | २०-२१ | ८४३ |
| दर्वीकरमण्डलिराजिलानां लक्षणानि | २२-२४ | ,, |
| सर्पाणां ब्राह्मणादिजातिनिरूपणम् | २६-२८ | ८४४ |
| दर्वीकरादीनां वातादिप्रकोपकत्वम् | २९ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| त्रिविधसर्पाणां विचरणकालः | ३०–३१ | ,, |
| सर्पाणामवस्थाविशेषेण उग्रविषत्वम् | ३२ | ८४६ |
| सर्पाणामल्पविषत्वे कारणम् | ३३ | ,, |
| दर्वीकरादिसर्पाणां नामनिर्देशो वैकरञ्जानां त्रयाणां पुनः सप्तभेदाश्च | ३४ | ,, |
| सर्पाणां पुरुषादिजातिलक्षणम् | ३५ | ८४६ |
| सामान्येन सर्पदष्टलक्षणम् | ३६ | ,, |
| दर्वीकरादिसर्पविशेषदष्टलक्षणम् | ३७ | ८४७ |
| पुरुषादिदष्टलक्षणम् | ३८ | ,, |
| सर्पविषस्य सप्तवेगानां लक्षणानि | ३९ | ८४८ |
| सर्पविषवेगस्य सप्तत्वे कारणम् | ४० | ८४९ |
| वेगान्तरलक्षणम् | ४१ | ,, |
| पशुपक्षिषु विषवेगानां लक्षणानि | ४२–४५ | ८५० |
| **५ पञ्चमोऽध्यायः ।** | | |
| सर्पदष्टविषचिकित्सिताध्यायोपक्रमः | १–२ | ८५१ |
| सर्पदंशेऽरिष्टाबन्धनम् | ३–४ | ,, |
| सर्पदष्टे आचूषणच्छेददाहाः | ५ | ,, |
| आचूषणविधानम् | ६ | ,, |
| मण्डलिसर्पदष्टे दाहनिषेधः | ७ | ,, |
| सर्पदष्टे मन्त्रैररिष्टाबन्धनम् | ८ | ,, |
| मन्त्रशक्तेः प्रशंसा | ९–१० | ८५२ |
| मन्त्रग्रहणविधानम् | ११–१२ | ,, |
| हीनस्वरादेर्मन्त्रस्यासिद्धावगदक्रमः | १३ | ,, |
| सर्पदंशे रक्तहरणविधानम् | १४–१६ | ,, |
| सर्पदंशे वल्मीकमृत्तिकाऽऽदियोगः | १७ | ८५३ |
| सर्पदंशे तैलादिद्रवनिषेधः | १८ | ,, |
| सर्पविषे वमनम् | १९ | ,, |
| दर्वीकरसर्पविषस्य सप्तवेगानां चिकित्सा | २०–२३ | ,, |
| मण्डलिसर्पविषस्य सप्तवेगानां चिकित्सा | २४–२७ | ,, |
| राजिलसर्पविषस्य सप्तवेगानां चिकित्सा | २८–२९ | ८५४ |
| गर्भिणीप्रभृतीनां विषचिकित्सायां विशेषः | ३० | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| पशूनां विषचिकित्सायां मात्रायां विशेषः | ३१ | ८९४ |
| पक्षिणां विषचिकित्सितम् | ३२–३३ | ,, |
| देशादिभेदेन विषचिकित्सायां भेदः | ३४ | ,, |
| अवस्थावशेन विषचिकित्सायां भेदः | ३५–३८ | ,, |
| कफविषातुरे वमनम् | ३९ | ८९५ |
| वातपित्तविषातुरे विरेकबस्ती | ४० | ,, |
| विषे अञ्जनयोग्यावस्था | ४१ | ,, |
| विषे शिरोविरेचनयोग्यावस्था | ४२ | ,, |
| नष्टसंज्ञस्य विषार्तस्य चिकित्सा | ४३–४९ | ८९६ |
| अनिष्टाबन्धनदूषितशोणितचिकित्सा | ५० | ,, |
| हृतगुणे विषे पश्चात्कर्म | ५१–५४ | ,, |
| नष्टसंज्ञचिकित्सितस्य अन्यत्राप्यतिदेशः | ५५ | ८९७ |
| विषेण पूतीभूतस्य मांसस्य चिकित्सा | ५६–६० | ,, |
| सर्वविषे महागदः | ६१–६२ | ८९८ |
| सर्वविषे अजितोऽगदः | ६३–६४ | ,, |
| सर्वविषे तार्क्ष्योऽगदः | ६५–६७ | ,, |
| सर्वविषे ऋषभोऽगदः | ६८–७२ | ८९९ |
| सर्वविषे सञ्जीवनोऽगदः | ७३–७४ | ,, |
| दर्वीकरराजिलविषेऽगदयोगः | ७५ | ९०० |
| मण्डलिविषेऽगदयोगः | ७६–७८ | ,, |
| लूतादिविषे वंशत्वगाद्यगदः | ७९–८० | ,, |
| विषे शिरीषयोगः | ८१ | ,, |
| मूषकविषेऽगदयोगः | ८२–८३ | ,, |
| सर्वविषे एकसरोगणः | ८४–८६ | ९०१ |
| **६ षष्ठोऽध्यायः ।** | | |
| दुन्दुभिस्वनीयकल्पाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| सर्वविषे क्षारागदः | ३–७ | ,, |
| सर्वविषे कल्याणकं सर्पिः | ८–११ | ९०३ |
| सर्वविषे अमृतं सर्पिः | १२–१३ | ,, |
| सर्वविषे महासुगन्धिनामाऽगदराजः | १४–२७ | ,, |
| विषार्तानां स्वेदनिषेधः | २८ | ९०९ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| विषार्तस्य पथ्यापथ्यानि | २९–३१ | ८६९ |
| विषमुक्तलक्षणम् | ३२ | ,, |

७ सप्तमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| मूषककल्पाध्यायोपक्रमः | १–२ | ८६६ |
| अष्टादशविधमूषकाणां नामनिर्देशः | ३–६ | ,, |
| सामान्यतो मूषकदष्टलक्षणम् | ७–९ | ,, |
| लालनदष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १० | ८६७ |
| पुत्रकदष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | ११–१२ | ,, |
| कृष्णदष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १३ | ,, |
| हंसिरदष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १४ | ,, |
| चिक्किरदष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १५ | ८६८ |
| छुच्छुन्दरदष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १६–१७ | ,, |
| अलसदष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १८ | ,, |
| कषायदन्तदष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १९ | ,, |
| कुलिङ्गदष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | २० | ,, |
| अजितदष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | २१ | ,, |
| चपलदष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | २२ | ,, |
| कपिलदष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | २३ | ,, |
| कोकिलदष्टलक्षणम् | २४ | ८६९ |
| अरुणादीनां पञ्चानां दष्टलक्षणं तच्चिकित्सा च | २५–३२ | ,, |
| मूषकविषे दाहविस्रावणप्रलेपाः | ३३ | ८७० |
| मूषकविषे शुकादियोगः | ३४–३५ | ,, |
| मूषकविषे फलादियोगः | ३६ | ,, |
| मूषकविषे शिरोविरेचनयोगः | ३७ | ,, |
| मूषकविषे संशमनयोगाः | ३८–४० | ८७१ |
| मूषकविषे प्रशान्तेऽपि शोधनं कार्यम् | ४१ | ,, |
| आखुविषकर्णिकाचिकित्सितम् | ४२ | ,, |
| उन्मत्तश्वश्रृगालादिदष्टलक्षणम् | ४३–५९ | ,, |
| उन्मत्तश्वादिदष्टचिकित्सा | ५०–५८ | ८७२ |
| अलर्कविषे दैवव्यपाश्रयचिकित्सा | ५९–६१ | ८७३ |
| अलर्कविषे तीक्ष्णसंशोधनम् | ६२ | ८७४ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| दष्टस्य श्वादेश्चेष्टाकरणे कारणम् | ६३–६४ | ८७४ |
| सहेतुकमुन्मत्तश्वादिचिकित्सितम् | ६५ | ,, |

८ अष्टमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| कीटकल्पाध्यायोपक्रमः | १–२ | ८७५ |
| कीटानामुत्पत्तिः | ३–४ | ,, |
| अष्टादशवायव्यकीटानां नामानि | ५–७ | ,, |
| चतुर्विंशत्याग्नेयकीटानां नामानि | ८–११ | ,, |
| त्रयोदशसौम्यकीटानां नामानि | १२–१४ | ८७६ |
| द्वादशसान्निपातिककीटानां नामानि | १५–१८ | ,, |
| चतुर्विधतीक्ष्णविषकीटानां लक्षणम् | १९–२२ | ८७७ |
| मन्दविषकीटानां लक्षणम् | २३ | ,, |
| गरलक्षणम् | २४ | ८७८ |
| चतुर्विधकणभनामानि, तद्दष्टलक्षणम् | २५–२७ | ,, |
| पञ्चविधगोधेरकनामानि, तद्दष्टलक्षणं च | २८ | ,, |
| षड्विधगलगोलिकानामानि, तद्दष्टलक्षणं च | २९ | ,, |
| अष्टविधशतपदीनामानि, तद्दष्टलक्षणं च | ३० | ८७९ |
| अष्टविधमण्डूकनामानि, तद्दष्टलक्षणं च | ३१ | ,, |
| विस्रम्भरादष्टलक्षणम् | ३२ | ,, |
| अहिण्डुकाकण्डूमकाशूकवृन्तादष्टलक्षणम् | ३३ | ,, |
| षड्विधपिपीलिकानामानि, तद्दष्टलक्षणं च | ३४ | ,, |
| षड्विधमक्षिकानामानि, तद्दष्टलक्षणं च | ३५ | ,, |
| पञ्चविधमशकनामानि तद्दष्टलक्षणं च | ३६ | ८८० |
| नरवावकृष्टविषलक्षणम् | ३७ | ,, |
| एकजातिष्वसाध्यानि | ३८ | ,, |
| शवमूत्रपुरीषविषकीटावमर्शनलक्षणं तच्चिकित्सा च | ३९–४० | ,, |
| सुसाध्यकीटदष्टलक्षणम् | ४१ | ,, |
| उग्रविषकीटचिकित्सा | ४२ | ,, |
| कीटदष्टे सामान्यचिकित्सा | ४३–४५ | ८८१ |
| त्रिकण्टकविषे कुष्ठाद्यगदः | ४६–४७ | ,, |
| गलगोलिकाविषे रजन्याद्यगदः | ४८ | ,, |
| शतपदीविषे कुङ्कुमाद्यगदः | ४९ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| मण्डूकविषे मेषशृङ्ग्याद्यगदः | ६० | ८८१ |
| विश्वम्भराविषे वचाद्यगदः | ६१ | ,, |
| अहिण्डुकाविषे शिरीषाद्यगदः | ६२ | ,, |
| कण्डूमकाविषचिकित्सा | ६३ | ८८२ |
| शूकवृन्तविषचिकित्सा | ६४ | ,, |
| पिपीलिकामक्षिकामशकविषचिकित्सा | ६५ | ,, |
| प्रतिसूर्यकदष्टचिकित्सा | ६६ | ,, |
| वृश्चिकामुत्पत्तिकथनम् | ६७ | ,, |
| वृश्चिकसंख्या | ६८ | ,, |
| मन्दविषवृश्चिकानां नामलक्षणकर्माणि | ६९–७० | ,, |
| मध्यविषवृश्चिकानां नामलक्षणकर्माणि | ७१–७२ | ,, |
| तीक्ष्णविषवृश्चिकानां नामलक्षणकर्माणि | ७३–७६ | ८८३ |
| उग्रमध्यविषवृश्चिकदष्टचिकित्सा | ७७–७९ | ,, |
| मन्दविषवृश्चिकदंशचिकित्सा | ८०–८४ | ८८४ |
| लूताविषस्य घोरतरत्वकथनम् | ८५–८६ | ,, |
| अगदप्रयोगार्थं विषनिश्चयज्ञानावश्यकता | ८७–८८ | ,, |
| लूताविषस्य दुर्विज्ञेयत्वम् | ८९ | ,, |
| लूताविषस्य सप्तदिनेषु पृथक् पृथग्लक्षणानि | ९०–९२ | ८८५ |
| तीक्ष्णमध्यमन्दविषाणां लूतानां कालावधिः | ९३–९४ | ,, |
| लूताविषस्याधिष्ठानविशेषेण विशेषलक्षणानि | ९५–९७ | ,, |
| लूतायाः प्रागुत्पत्तिकथनम् | ९८–१३ | ८८६ |
| लूतादंशस्य कृच्छ्रसाध्यासाध्यलक्षणम् | १४–१९ | ८८७ |
| त्रिमण्डलादष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १००–१०२ | ,, |
| श्वेतादष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १०३–१०४ | ८८८ |
| कपिलादष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १०५–१०६ | ,, |
| पीतिकादष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १०७–१०८ | ,, |
| आलाविषलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १०९–११० | ८८९ |
| मूत्रविषादष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १११–११२ | ,, |
| रक्तादष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | ११३–११४ | ,, |
| कसनादष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | ११५ | ,, |
| कृष्णादष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | ११६–११७ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| अग्निवर्णादष्टलक्षणं, तच्चिकित्सा च | ११८–११९ | ८९० |
| सामान्यतः सर्वलूतानां चिकित्सा | १२० | ,, |
| असाध्यविषाणां लूतानां दष्टलक्षणानि | १२१–१२७ | ,, |
| असाध्यानामपिलूतानां प्रत्याख्याय चिकित्सा | १२८ | ८९१ |
| कृच्छ्रसाध्यानां तात्कालिकं चिकित्सितम् | १२९ | ,, |
| लूताविषे दंशस्योत्कर्तनं तत्पश्चात्कर्म च | १३०–१३३ | ,, |
| लूतासु दशविधा उपक्रमाः | १३४ | ८९२ |
| कीटदष्टव्रणादिषु दुष्टव्रणवच्चिकित्सा | १३५ | ,, |
| निवृत्तदाहादौ व्रणे विषोत्पन्नकर्णिकायाश्चिकित्सा | १३६–१३८ | ,, |
| कीटकल्पोपसंहारः | १३९–१४० | ,, |
| चिकित्सितस्य पुण्यतमत्वप्रतिपादनम् | १४१–१४३ | ८९३ |


इति कल्पस्थानविषयानुक्रमः ।

---

# अथोत्तरतन्त्रम् ।

## १ प्रथमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| औपद्रविकाध्यायोपक्रमः | १–३ | ८९४ |
| उत्तरतन्त्रप्रशंसा | ४–७ | ,, |
| आदावुत्तरतन्त्रे उत्तमाङ्गरोगकथनम् | ८–९ | ८९५ |
| अक्षिगोलकवर्णनम् | १० | ,, |
| नयनस्य पाञ्चभौतिकत्वकथनम् | ११ | ,, |
| पूर्वाचार्यप्रतिपादितप्रमाणानुरूपदृष्टिमण्डलविवरणम् | १२–१३ | ८९६ |
| नेत्रमण्डलसन्धिपटलानां संख्या | १४ | ,, |
| नयनगतपञ्चमण्डलानि | १५ | ,, |
| नयनसन्धीनां वर्णनम् | १६ | ,, |
| नयनपटलानां वर्णनम् | १७ | ,, |
| तिमिराश्रयभूतानां तेषामेव चतुर्णां पटलानां चिकित्सार्थं विभागः | १८–१९ | ,, |
| सामान्यतो नेत्ररोगाणां सम्प्राप्तिः | २० | ८९७ |
| नेत्ररोगाणां पूर्वरूपम् | २१–२३ | ,, |
| नयनरोगे पूर्वरूपे एव क्रिया कार्या | २४ | ,, |




CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषया:— | सूत्राङ्का: | पृष्ठाङ्का: |
|---|---|---|
| सङ्क्षेपतो नेत्ररोगचिकित्सा | २५ | ८९७ |
| नेत्ररोगनिदानानि | २६-२७ | ८९८ |
| नेत्ररोगाणां संख्या | २८ | ,, |
| वातजनेत्ररोगाणां साध्यासाध्यविचार: | २९-३० | ,, |
| पित्तजनेत्ररोगाणां साध्यासाध्यविचार: | ३१-३२ | ,, |
| कफजनेत्ररोगाणां साध्यासाध्यविचार: | ३३-३५ | ८९९ |
| रक्तजनेत्ररोगाणां साध्यासाध्यविचार: | ३६-३८ | ,, |
| सान्निपातिकनेत्ररोगाणां साध्यासाध्यविचार: | ३९-४३ | ,, |
| सन्ध्याद्याश्रयभेदेन नेत्ररोगसंख्यानम् | ४४-४५ | ९०० |
| **२ द्वितीयोऽध्याय:** | | |
| सन्धिगतरोगविज्ञानीयाध्यायोपक्रम: | १-२ | ,, |
| सन्धिगतनेत्ररोगाणां संख्या | ३ | ,, |
| पूयालसोपनाहयोर्लक्षणम् | ४ | ९०१ |
| नेत्रस्रावाणां लक्षणानि | ५-७ | ,, |
| पर्वण्यलज्योर्लक्षणम् | ८ | ,, |
| कृमिग्रन्थिलक्षणम् | ९ | ९०२ |
| **३ तृतीयोऽध्याय: ।** | | |
| वर्त्मगतरोगविज्ञानीयाध्यायोपक्रम: | १-२ | ,, |
| वर्त्मरोगाणां सम्प्राप्ति: | ३-४ | ,, |
| वर्त्मरोगाणां नामनिर्देश: | ५-८ | ,, |
| उत्सङ्गिनीलक्षणम् | ९ | ९०३ |
| कुम्भीकालक्षणम् | १० | ,, |
| पोथकीलक्षणम् | ११ | ,, |
| वर्त्मशर्करालक्षणम् | १२ | ,, |
| अर्शोवर्त्मलक्षणम् | १३ | ९०४ |
| शुष्कार्शोलक्षणम् | १४ | ,, |
| अञ्जननामिकालक्षणम् | १५ | ,, |
| बहलवर्त्मलक्षणम् | १६ | ,, |
| वर्त्मबन्धलक्षणम् | १७ | ,, |
| क्लिष्टवर्त्मलक्षणम् | १८ | ,, |
| वर्त्मकर्दमलक्षणम् | १९ | ९०५ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| श्याववर्त्मलक्षणम् | २० | ९०५ |
| क्लिन्नवर्त्मलक्षणम् | २१ | ,, |
| अक्लिन्नवर्त्मलक्षणम् | २२ | ,, |
| वातहतवर्त्मलक्षणम् | २३ | ,, |
| वर्त्मार्बुदलक्षणम् | २४ | ९०६ |
| निमेषलक्षणम् | २५ | ,, |
| शोणितार्शोलक्षणम् | २६ | ,, |
| लगणलक्षणम् | २७ | ,, |
| विशवर्त्मलक्षणम् | २८ | ,, |
| पक्ष्मकोपलक्षणम् | २९–३० | ९०७ |

**४ चतुर्थोऽध्यायः ।**

| | | |
|---|---|---|
| शुक्लगतरोगविज्ञानीयाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| नेत्रशुक्लगतरोगाणां नामनिर्देशः | ३ | ,, |
| प्रस्तार्यर्मलक्षणम् | ४ | ,, |
| शुक्लार्मलोहितार्मणोर्लक्षणम् | ५ | ९०८ |
| अधिमांसजार्मस्नाय्वर्मणोर्लक्षणम् | ६ | ,, |
| शुक्तिकार्जुनयोर्लक्षणम् | ७ | ,, |
| पिष्टकसिराजालयोर्लक्षणम् | ८ | ९०९ |
| सिराजपिडकाबलासकयोर्लक्षणम् | ९ | ,, |

**५ पञ्चमोऽध्यायः ।**

| | | |
|---|---|---|
| कृष्णगतरोगविज्ञानीयाध्योपक्रमः | १–२ | ९१७ |
| नेत्रकृष्णगतरोगाणां नामनिर्देशः | ३ | ,, |
| सव्रणशुक्रलक्षणम् | ४ | ,, |
| सव्रणशुक्रस्यावस्थावशेन कादाचित्कसिद्धिः | ५ | ,, |
| सव्रणशुक्रस्य असाध्यत्वलक्षणम् | ६–७ | ,, |
| अव्रणशुक्रलक्षणम् | ८ | ९११ |
| अक्षिपाकात्ययलक्षणम् | ९ | ,, |
| अजकाजातलक्षणम् | १० | ,, |

**६ षष्ठोऽध्यायः ।**

| | | |
|---|---|---|
| सर्वगतरोगविज्ञानीयाध्यायोपक्रमः | १–२ | ९१२ |
| सर्वगतरोगाणां नामनिर्देशः | ३–४ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषया:— | सूत्राङ्का: | पृष्ठाङ्का: |
|---|---|---|
| अभिष्यन्दस्य सर्वनेत्ररोगमूलत्वम् | ५ | ९१२ |
| वातजाद्यभिष्यन्दलक्षणम् | ६-८ | ९१३ |
| रक्ताभिष्यन्दलक्षणम् | ९ | ,, |
| अधिमन्थानामभिष्यन्दजत्वम् | ११ | ,, |
| वाताधिमन्थलक्षणम् | १२-१३ | ,, |
| पित्ताधिमन्थलक्षणम् | १४-१५ | ९१४ |
| श्लेष्माधिमन्थलक्षणम् | १६-१७ | ,, |
| रक्ताधिमन्थलक्षणम् | १८-१९ | ,, |
| अधिमन्थानां दृष्टिविनाशकत्वे कालावधि: | २० | ,, |
| सशोफाशोफनेत्रपाकलक्षणम् | २१-२२ | ,, |
| हताधिमन्थलक्षणम् | २३-२४ | ९१५ |
| वातपर्यायलक्षणम् | २५ | ,, |
| शुष्काक्षिपाकलक्षणम् | २६ | ,, |
| अन्यतोवातलक्षणम् | २७ | ९१६ |
| अम्लाध्युषितलक्षणम् | २८ | ,, |
| सिरोत्पातलक्षणम् | २९ | ,, |
| सिराहर्षलक्षणम् | ३० | ,, |
| **७ सप्तमोऽध्याय: ।** | | |
| दृष्टिगतरोगविज्ञानीयाध्यायोपक्रम: | १-२ | ९१७ |
| नेत्रदृष्टिप्रमाणम् | ३-४ | ,, |
| दृष्टिगतरोगाणां संख्या | ५ | ,, |
| प्रथमपटलगततिमिरलक्षणम् | ६ | ,, |
| द्वितीयपटलगततिमिरलक्षणम् | ७-१० | ९१८ |
| तृतीयपटलगततिमिरलक्षणम् | ११-१४ | ,, |
| चतुर्थपटलगततिमिरलक्षणम् | १५-१७ | ९१९ |
| वातजतिमिरलक्षणम् | १८ | ,, |
| पित्तजतिमिरलक्षणम् | १९ | ९२० |
| कफजतिमिरलक्षणम् | २०-२१ | ,, |
| रक्तजतिमिरलक्षणम् | २२ | ,, |
| सान्निपातिकतिमिरलक्षणम् | २३-२४ | ,, |
| परिम्लायि संज्ञकतिमिरकथनम् | २५-२६ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|
| वातादिदोषभेदेन तिमिररागकथनम् | २७ | ९२१ |
| पूर्वोक्तपित्तजपरिम्लायिनो लक्षणम् | २८ | ,, |
| दोषभेदेन लिङ्गनाशलक्षणानि | २९–३३ | ,, |
| दृष्ट्याश्रया द्वादश रोगाः | ३४ | ,, |
| पित्तविदग्धदृष्टिलक्षणम् | ३५–३६ | ९२२ |
| कफविदग्धदृष्टिलक्षणम् | ३७–३८ | ,, |
| धूमदर्शिलक्षणम् | ३९ | ,, |
| ह्रस्वजाड्यनकुलान्ध्ययोर्लक्षणम् | ४० | ,, |
| गम्भीरिकालक्षणम् | ४१ | ,, |
| आगन्तुतिमिरलक्षणम् | ४२ | ,, |
| अनिमित्तलिङ्गनाशलक्षणम् | ४३–४४ | ९२३ |
| आभिघातजलिङ्गनाशलक्षणम् | ४५ | ,, |
| नेत्ररोगनिदानोपसंहारः | ४६ | ,, |
| **८ अष्टमोऽध्यायः ।** | | |
| चिकित्सितप्रविभागविज्ञानीयाध्यायोपक्रमः | १–३ | ९२४ |
| नेत्ररोगाणां साध्यासाध्यविचारः | ४–५ | ,, |
| छेद्या नेत्ररोगाः | ६ | ,, |
| लेख्या नेत्ररोगाः | ७ | ,, |
| भेद्या वेध्याश्च नेत्ररोगाः | ८ | ९२५ |
| अशस्त्रकृत्या नेत्ररोगाः | ९–१० | ,, |
| याप्या असाध्याश्च नेत्ररोगाः | ११ | ९२६ |
| **९ नवमोऽध्यायः ।** | | |
| वाताभिष्यन्दप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| सामान्येन अभिष्यन्दाधिमन्थयोश्चिकित्सा | ३–४ | ,, |
| विशेषतो वाताभिष्यन्दाधिमन्थयोश्चिकित्सा | ५–१३ | ९२७ |
| वाताभिष्यन्दे मधुकाद्यञ्जनम् | १४–१६ | ९२८ |
| अन्यतोवातवातपर्ययोश्चिकित्सा | १७–१९ | ,, |
| शुष्कपाकचिकित्सा | २०–२४ | ,, |
| सर्ववातजनेत्ररोगेषु वाताभिष्यन्दचिकित्साऽतिदेशः | २५ | ९२९ |
| **१० दशमोऽध्यायः ।** | | |
| पित्ताभिष्यन्दप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|
| पित्तजाभिष्यन्दचिकित्सा | ३-१२ | ९२९ |
| अम्लाध्युषितशुक्त्योश्चिकित्सा | १३-१५ | ९३१ |
| धूमदर्शिनश्चिकित्सा | १६ | ,, |

११ एकादशोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| श्लेष्माभिष्यन्दप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | ९३२ |
| श्लेष्मजाभिष्यन्दाधिमन्थयोश्चिकित्सा | ३-९ | ,, |
| बलासग्रथितेऽञ्जनयोगकथनम् | १०-१२ | ९३३ |
| पिष्टकेऽञ्जनयोगः | १३-१४ | ,, |
| प्रक्लिन्नवर्त्मन्यञ्जनयोगः | १५ | ९३४ |
| नेत्रकण्डूचिकित्सितम् | १६-१७ | ,, |
| पूर्वोक्तेषु बलासग्रथितपिष्टकप्रक्लिन्नवर्त्मसु सामान्यचिकित्सा | १८ | ,, |

१२ द्वादशोऽध्यायः।

| | | |
|---|---|---|
| रक्ताभिष्यन्दप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | ९३६ |
| सामान्यतो रक्ताभिष्यन्दरक्ताधिमन्थसिरोत्पातसिराहर्षाणां चिकित्सा | ३-१४ | ,, |
| सिरोत्पाते विशेषचिकित्सा | १५-१६ | ९३६ |
| सिराहर्षे अञ्जनयोगः | १७-१८ | ,, |
| अर्जुनचिकित्सितम् | १९-२३ | ९३७ |
| अर्जुने लेख्याञ्जनयोगः | २४-२६ | ,, |
| सव्रणशुक्रचिकित्सितम् | २७-३५ | ९३८ |
| अजकाजातचिकित्सितम् | ३६-३७ | ९३९ |
| नेत्रपाकचिकित्सितम् | ३८-४४ | ,, |
| पूयालसचिकित्सितम् | ४५-४६ | ९४० |
| प्रक्लिन्नवर्त्मचिकित्सितम् | ४७-४९ | ९४१ |
| तीक्ष्णाञ्जनेन दुर्बलनेत्रस्य प्रत्यञ्जनम् | ५० | ,, |
| प्रक्लिन्नवर्त्मनि चूर्णाञ्जनम् | ५१-५३ | ,, |

१३ त्रयोदशोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| लेख्यरोगप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | ९४२ |
| वर्त्मलेखनविधानम् | ३-८ | ,, |
| सम्यग्लिखितवर्त्मलक्षणम् | ९ | ९४३ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| दुर्लिखितवर्त्मलक्षणम् | १०-१२ | ९४३ |
| अतिलिखितवर्त्मलक्षणम् | १३ | ९४४ |
| रोगविशेषे प्रच्छानपूर्वकलेखनम् | १४ | ,, |
| श्यावकर्दमवर्त्मनोः समलेखनोपदेशः | १५ | ,, |
| कुम्भीकादौ छेदनपूर्वकं लेखनम् | १६ | ,, |
| कुत्रचिद् भेदनपूर्वकं लेखनम् | १७-१८ | ,, |
| **१४ चतुर्दशोऽध्यायः ।** | | |
| भेद्यरोगप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | ९४५ |
| भेदने सामान्यविधानम् | ३-४ | ,, |
| लगणे भेदनविधानम् | ५ | ,, |
| अञ्जननामिकायां भेदनविधानम् | ६ | ,, |
| अभिन्नाञ्जननामिकाचिकित्सा | ७ | ,, |
| कृमिग्रन्थिचिकित्सा | ८ | ,, |
| उपनाहचिकित्सा | ९ | ९४६ |
| पञ्चसु भेद्यरोगेषु सामान्यविधिः | १०-११ | ,, |
| **१५ पञ्चदशोऽध्यायः ।** | | |
| छेद्यरोगप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| अर्मणां छेदने प्राक्कर्म | ३ | ९४७ |
| अर्मच्छेदनविधानम् | ४-१० | ,, |
| छेदनानन्तरं प्रतिसारणविधानम् | ११-१३ | ९४८ |
| आवस्थिकशूलचिकित्सा | १४-१५ | ,, |
| अर्मणः शेषचिकित्सा | १६ | ,, |
| शुक्रचिकित्साया अर्मण्यप्यतिदेशः | १७ | ,, |
| छेदनार्हमर्म | १८ | ९४९ |
| सम्यक्छिन्नस्यार्मणो लक्षणम् | १९ | ,, |
| सिराजालच्छेदनविधानम् | २० | ,, |
| सिराजपिडकाच्छेदनविधानम् | २१ | ,, |
| सिराजालसिरपिडकयोः प्रतिसारणम् | २२ | ,, |
| पर्वणिकाच्छेदनविधानम् | २३-२४ | ,, |
| अर्मणि लेखनीयचूर्णानि | २५-२८ | ९५० |
| वर्त्मार्श आदीनां छेदनविधिः | २९-३३ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| **१६ षोडशोऽध्यायः ।** | | |
| पक्ष्मकोपप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ९९१ |
| पक्ष्मकोपे शस्त्रकर्मविधानम् | ३–६ | ,, |
| पक्ष्मकोपे अग्निक्षारविधानम् | ७ | ९९२ |
| पक्ष्मकोपे प्रतिसारणविधानम् | ८ | ,, |
| पक्ष्मोपरोधचिकित्सोपसंहारः | ९ | ९९३ |
| **१७ सप्तदशोऽध्यायः ।** | | |
| दृष्टिगतरोगप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| दृष्टिगतरोगाणां साध्यासाध्यविचारः | ३ | ,, |
| पित्तविदग्धदृष्टिचिकित्सा | ४–५ | ,, |
| पित्तविदग्धदृष्टौ चत्वारोऽञ्जनयोगाः | ६–७ | ९९४ |
| दिवारात्र्यन्धयोरञ्जनयोगाः | ८–११ | ,, |
| दिवान्ध्ये चूर्णाञ्जनम् | १२–१४ | ९९५ |
| दिवान्ध्ये कल्काञ्जनम् | १५ | ,, |
| नक्तान्ध्ये वर्त्यञ्जनयोगाः | १६–१८ | ,, |
| नक्तान्ध्ये रसक्रियाञ्जनम् | १९–२२ | ९९६ |
| नक्तान्ध्ये यकृद्योगाः | २३–२६ | ,, |
| दिवान्ध्ये गुटिकाञ्जनम् | २७ | ९९७ |
| याप्यतिमिर चिकित्सा | २८ | ,, |
| वाततिमिरचिकित्सा | २९–३० | ,, |
| तिमिरे त्रिफलाप्रयोगः | ३१ | ,, |
| दोषभेदेन तिमिरे नस्ययोगाः | ३२–३४ | ९९८ |
| वातजतिमिरे पुटपाकाञ्जनम् | ३५ | ,, |
| वातजरागितिमिरचिकित्सा | ३६–३७ | ,, |
| पित्तजतिमिरचिकित्सा | ३८–४० | ९९९ |
| श्लेष्मजतिमिरे नस्यधूमतर्पणपुटपाकाञ्जनरसक्रियाञ्जनयोगाः | ४१–४३ | ,, |
| सर्वकाचचिकित्सा | ४४–४५ | १००० |
| तिमिरेष्वभिष्यन्दचिकित्सातिदेशः | ४६–४७ | ,, |
| तिमिरे आहारविधानम् | ४८–५१ | ,, |
| रागप्राप्ते तिमिरे सिरामोक्षनिषेधः | ५२ | १००१ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| तिमिरस्य साध्यासाध्यविचारः | ९३ | ९६१ |
| याप्यतिमिरचिकित्सा | ९४ | ,, |
| श्लैष्मिकलिङ्गनाशे शस्त्रकर्मविधिः | ९५–६० | ,, |
| सम्यग् विद्धे नेत्रे पश्चात्कर्म | ६१–६३ | ९६२ |
| सम्यग्लिखितलक्षणम् | ६४–६८ | ,, |
| सम्यग्लिखिते धावनादिविधिः | ६९–७० | ९६३ |
| श्लैष्मिके लिङ्गनाशे शस्त्रकर्मायोग्याः | ७१ | ,, |
| दैवकृतच्छिद्रादन्यत्रनीलिकाव्यधे दोषप्रदर्शनपूर्वकचिकित्सा | ७२–७९ | ,, |
| शस्त्रकर्मार्हो लिङ्गनाशः | ८० | ९६४ |
| निर्लिखितस्यापि दोषस्य पुनरावृत्तौ कारणानि | ८१ | ,, |
| दुष्टशलाकाजनितव्यापदः | ८२ | ,, |
| शस्त्रकर्मयोग्यशलाका | ८३–८४ | ,, |
| दुष्टव्यधाहाराचारजा व्यापदः | ८५–८६ | ९६५ |
| कर्कशशलाकाजनितशूले दुष्टव्यधजे च रोगे चिकित्सा | ८७–९५ | ,, |
| अवशिष्टदोषदूषिताया दृष्टेः प्रसादनार्थमञ्जनद्वयम् | ९६–१०० | ९६६ |


## १८ अष्टादशोऽध्यायः।


| | | |
|---|---|---|
| क्रियाकल्पाध्यायोपक्रमः | १–४ | ९६७ |
| नेत्रे तर्पणविधानम् | ५–११ | ,, |
| सम्यक्तृप्तनेत्रलक्षणम् | १२–१३ | ९६८ |
| अतितृप्तनेत्रलक्षणम् | १४ | ,, |
| हीनतृप्तनेत्रलक्षणम् | १५ | ९६९ |
| हीनातितृप्तयोश्चिकित्सितम् | १६ | ,, |
| तर्पणविषयकथनम् | १७ | ,, |
| तर्पणाविषयकथनम् | १८ | ,, |
| पुटपाकस्य विषयाविषयौ | १९ | ,, |
| पुटपाकस्यावस्थिकः कालः | २०–२१ | ,, |
| त्रिविधपुटपाकविषयाः | २२ | ,, |
| स्नेहनपुटपाकविधानम् | २३ | ९७० |
| लेखनपुटपाकविधानम् | २४–२५ | ,, |
| रोपणपुटपाकविधानम् | २६ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| स्नेहनलेखनयोः प्राक्कर्म | २७ | ९७० |
| तर्पणपुटपाकयोः परिहारकालः | २८ | ,, |
| पुटपाके परिहार्याणि | २९ | ,, |
| पुटपाकयोर्व्यापच्चिकित्सा | ३० | ,, |
| पुटपाकस्य सम्यग्योगलक्षणम् | ३१ | ९७१ |
| पुटपाकस्यातियोगहीनयोगयोर्लक्षणम् | ३२ | ,, |
| पुटपाकविधानम् | ३३-३८ | ,, |
| तर्पणपुटपाकयोर्व्यापदः | ३९-४० | ,, |
| तर्पणपुटपाकयोर्गुणाः | ४१ | ९७२ |
| तर्पणपुटपाकयोर्व्यापच्चिकित्सा | ४२ | ,, |
| तर्पणपुटपाकयोः पूर्वकर्म पश्चात्कर्म च | ४३ | ,, |
| आश्च्योतनसेकयोर्गुणाः | ४४ | ,, |
| आश्च्योतने बिन्दुसंख्या | ४५ | ,, |
| परिषेकधारणकालः | ४६ | ,, |
| आश्च्योतनसेकयोः प्रयोगकालः | ४७ | ९७३ |
| शिरोबस्तिविधानम् | ४८-५० | ,, |
| अञ्जनभेदास्तदावस्थिककालश्च | ५१-५२ | ९७४ |
| लेखनाञ्जनविधानम् | ५३ | ,, |
| लेखनाञ्जनगुणाः | ५४ | ,, |
| रोपणाञ्जनविधानम् | ५५ | ,, |
| प्रसादनाञ्जनविधानम् | ५६ | ,, |
| पूर्वोक्तानामञ्जनानां प्रयोगकालः | ५७ | ९७५ |
| गुटिकारसचूर्णभेदेनाञ्जनत्रैविध्यम् | ५८ | ,, |
| गुटिकाञ्जनप्रमाणम् | ५९ | ,, |
| रसक्रियाऽञ्जनचूर्णाञ्जनयोः प्रमाणम् | ६० | ,, |
| अञ्जनस्थापनाय पात्राणि | ६१ | ,, |
| अञ्जनशलाकाकृतिः | ६२-६३ | ,, |
| अञ्जनविधानम् | ६४-६५ | ९७६ |
| अकाले प्रक्षालनदोषाः | ६६ | ,, |
| प्रक्षालनयोग्यं नेत्रम् | ६७ | ,, |
| अञ्जनायोग्या रोगिणः | ६८-६९ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|
| अञ्जनवैगुण्ये व्यापदः | ७०–७३ | ९७७ |
| अञ्जनव्यापदां चिकित्सा | ७४ | ,, |
| लेखनाञ्जनस्य समयोगलक्षणम् | ७५ | ,, |
| लेखनाञ्जनस्यातियोगलक्षणं तत्प्रतीकारश्च | ७६–७७ | ,, |
| लेखनाञ्जनस्य हीनयोगलक्षणं तत्प्रतीकारश्च | ७८ | ९७८ |
| प्रसादनाञ्जनस्य समयोगलक्षणम् | ७९ | ,, |
| प्रसादनाञ्जनस्यातियोगलक्षणं तत्प्रतीकारश्च | ८० | ,, |
| रोपणाञ्जनस्य समयोगातियोगलक्षणम् | ८१ | ,, |
| प्रसादनरोपणयोर्हीनयोगलक्षणम् | ८२ | ,, |
| पूर्वोक्तबीजेन अन्यान्यप्यञ्जनानि | ८३ | ,, |
| चूर्णाञ्जनविधानम् | ८४–९३ | ९७९ |
| भद्रोदयाञ्जनम् | ९४–९७ | ९८० |
| तगराद्यञ्जनम् | ९८–९९ | ,, |
| मनःशिलाऽऽद्यञ्जनम् | १००–१०२ | ९८१ |
| कांसाद्यञ्जनम् | १०३–१०४ | ,, |
| पथ्याऽऽद्यञ्जनम् | १०५–१०६ | ,, |
| **१९ एकोनविंशोऽध्यायः।** | | |
| नयनाभिघातप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| सामान्यतो नयनाभिघातचिकित्सा | ३–५ | ९८२ |
| नयनाभिघातस्य साध्यासाध्यविचारः | ६ | ९८३ |
| अतिप्रविष्टनयनचिकित्सा | ७ | ,, |
| अतिनिर्गतनयनचिकित्सा | ८ | ,, |
| कुकूणकलक्षणं तच्चिकित्सा च | ९–१५ | ९८४ |
| बालानां शुक्रलेखनार्थमञ्जनम् | १६ | ९८५ |
| नयनचिकित्सोपसंहारः | १७–२० | ९८६ |
| **२० विंशतितमोऽध्यायः।** | | |
| कर्णगतरोगविज्ञानीयाध्यायोपक्रमः | १–२ | ९८७ |
| कर्णरोगाणां नामनिर्देशः | ३–५ | ,, |
| कर्णशूललक्षणम् | ६ | ,, |
| कर्णप्रणादलक्षणम् | ७ | ,, |
| बाधिर्यलक्षणम् | ८ | ९८८ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कर्णक्ष्वेडलक्षणम् | ९ | ९८८ |
| कर्णसंस्रावलक्षणम् | १० | ,, |
| कर्णकण्डूकर्णगूथकयोर्लक्षणम् | ११ | ,, |
| कर्णप्रतिनाहलक्षणम् | १२ | ,, |
| कृमिकर्णकलक्षणम् | १३ | ९८९ |
| कर्णविद्रधिलक्षणम् | १४ | ,, |
| कर्णपाकपूतीकर्णयोर्लक्षणम् | १५ | ,, |
| कर्णगतशोथार्बुदार्शसां लक्षणातिदेशः | १६ | ,, |


## २१ एकविंशोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| कर्णगतरोगप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | ९९० |
| कर्णरोगे सामान्यचिकित्सा | ३ | ,, |
| सामान्यतः कर्णशूलप्रणादबाधिर्यक्ष्वेडानां चिकित्सा | ४-५ | ,, |
| कर्णशूले नाडीस्वेदः | ६-७ | ,, |
| कर्णशूले पिण्डस्वेदः | ८ | ९९१ |
| कर्णशूले स्नेहस्वेदः | ९-१० | ,, |
| कर्णस्वेदस्य पश्चात्कर्म | ११ | ,, |
| कर्णरोगे बलातैलम् | १२ | ,, |
| कतिपये कर्णपुरणयोगाः | १३-१९ | ,, |
| कर्णरोगे दीपिकातैलम् | २०-२२ | ९९२ |
| कर्णरोगे कतिपये योगाः | २३-२८ | ,, |
| पित्तजकर्णशूले विशेषचिकित्सा | २९-३० | ९९३ |
| श्लेष्मजकर्णशूले विशेषचिकित्सा | ३१-३३ | ,, |
| बाधिर्ये कतिपये योगाः | ३४-३८ | ,, |
| कर्णस्रावपूतिकर्ण क्रिमिकर्णेषु सामान्यचिकित्सा | ३९-४१ | ९९४ |
| कर्णस्रावे कतिपये कर्णपूरणयोगाः | ४२-४८ | ,, |
| पूतिकर्णचिकित्सा | ४९-५० | ९९५ |
| क्रिमिकर्णचिकित्सा | ५१ | ,, |
| क्रिमिकृतदौर्गन्ध्यचिकित्सा | ५२-५३ | ९९६ |
| कर्णक्ष्वेडचिकित्सा | ५४ | ,, |
| कर्णगूथचिकित्सा | ५५ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कर्णकण्डूचिकित्सा | ६६ | ९९६ |
| कर्णप्रतिनाहचिकित्सा | ६७ | ,, |
| कर्णपाकचिकित्सा | ६८ | ,, |
| कर्णगतकीटादिचिकित्सा | ६९ | ,, |
| २२ द्वाविंशतितमोऽध्यायः । | | |
| नासागतरोगविज्ञानीयाध्यायोपक्रमः | १–२ | ९९७ |
| नासारोगाणां नामनिदशः | ३–५ | ,, |
| अपीनसलक्षणम् | ६–७ | ,, |
| पूतिनस्यलक्षणम् | ८ | ९९८ |
| नासापाकलक्षणम् | ९ | ,, |
| पूयरक्तलक्षणम् | १० | ,, |
| क्षवथुलक्षणम् | ११–१२ | ,, |
| अंशथुलक्षणम् | १३ | ९९९ |
| दीप्तलक्षणम् | १४ | ,, |
| नासाप्रतीनाहलक्षणम् | १५ | ,, |
| नासास्रावलक्षणम् | १६ | ,, |
| नासाशाषलक्षणम् | १७ | ,, |
| अनुक्तरोगलक्षणातिदेशः | १८–२१ | १००० |
| २३ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः । | | |
| नासागतरोगप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| पीनसपूतिनस्ययोश्चिकित्सा | ३–४ | ,, |
| नासापाकचिकित्सा | ५ | १००१ |
| पूयरक्तचिकित्सा | ६ | ,, |
| क्षवथुभ्रंशथ्वोश्चिकित्सा | ७ | ,, |
| दीप्तचिकित्सा | ८ | ,, |
| नासाप्रतीनाहचिकित्सा | ९ | ,, |
| नासास्रावचिकित्सा | १० | १००२ |
| नासाशोषचिकित्सा | ११–१२ | ,, |
| २४ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः । | | |
| प्रतिश्यायप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| प्रतिश्यायस्य निदानम् | ३ | १००३ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| प्रतिश्यायस्य सम्प्राप्तिः | ४ | १००३ |
| प्रतिश्यायस्य पूर्वरूपम् | ५ | ,, |
| वातजप्रतिश्यायस्य लक्षणम् | ६ | ,, |
| पित्तजप्रतिश्यायस्य लक्षणम् | ७-८ | ,, |
| श्लेष्मजप्रतिश्यायस्य लक्षणम् | ९ | १००४ |
| सान्निपातिकप्रतिश्यायस्य लक्षणम् | १०-११ | ,, |
| रक्तजप्रतिश्यायस्य लक्षणम् | १२-१३ | ,, |
| दुष्टप्रतिश्यायलक्षणम् | १४-१५ | ,, |
| प्रतिश्यायोपद्रवाः | १६-१७ | १००५ |
| सामान्यतः प्रतिश्यायचिकित्सा | १८ | ,, |
| नवप्रतिश्याये पाचनम् | १९ | ,, |
| पक्वप्रतिश्यायस्य निर्हरणम् | २० | ,, |
| पक्वप्रतिश्याये सेव्यानि | २१ | ,, |
| प्रतिश्याये परिहार्याणि | २२ | ,, |
| पक्वप्रतिश्याये वमनम् | २३-२४ | १००६ |
| वातिकप्रतिश्यायचिकित्सा | २५ | ,, |
| पैत्तिकरक्तोत्थप्रतिश्यायचिकित्सा | २६-२९ | ,, |
| श्लेष्मजप्रतिश्यायचिकित्सा | ३०-३३ | १००७ |
| सान्निपातिकप्रतिश्यायचिकित्सा | ३४-३५ | ,, |
| सान्निपातिक प्रतिश्याये मुस्तादियोगः | ३६-३७ | ,, |
| सर्वप्रतिश्याये दशक्षीरं घृतम् | ३८-४१ | १००८ |
| रक्तप्रतिश्याये क्रिमिघ्नो विधिः | ४२ | ,, |
| **२५ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।** | | |
| शिरोरोगविज्ञानीयाध्यायोपक्रमः | १-२ | १००९ |
| शिरोरोगाणां नामानिर्देशः | ३-४ | ,, |
| वातजशिरोरोगलक्षणम् | ५ | ,, |
| पित्तजशिरोरोगलक्षणम् | ६ | ,, |
| श्लेष्मजशिरोरोगलक्षणम् | ७ | ,, |
| सान्निपातिकरक्तजशिरोरोगलक्षणम् | ८ | १०१० |
| क्षयजशिरोरोगलक्षणम् | ९ | ,, |
| क्रिमिजशिरोरोगलक्षणम् | १० | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| सूर्यावर्तलक्षणम् | ११-१२ | १०१० |
| अनन्तवातलक्षणम् | १३-१४ | १०११ |
| अर्धावभेदलक्षणम् | १५ | ,, |
| शङ्खकलक्षणम् | १६-१७ | ,, |
| **२६ षड्विंशतितमोऽध्यायः।** | | |
| शिरोरोगप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | १०१२ |
| वातजशिरोरोगचिकित्सा | ३-११ | ,, |
| पित्तरक्तजशिरोरोगचिकित्सा | १२-१७ | १०१३ |
| श्लेष्मजशिरोरोगचिकित्सा | १८-२३ | १०१४ |
| सान्निपातिकशिरोरोगचिकित्सा | २४ | १०१५ |
| क्षपजशिरोरोगचिकित्सा | २५ | ,, |
| क्रिमिजशिरोरोगचिकित्सा | २६-२९ | ,, |
| सूर्यावर्तकचिकित्सा | ३० | ,, |
| अर्धावभेदचिकित्सा | ३१-३५ | १०१६ |
| अनन्तवातचिकित्सा | ३६-३७ | ,, |
| शङ्खकचिकित्सा | ३८-४३ | ,, |
| शालाक्यतन्त्रोपसंहारः | ४४-४६ | १०१७ |
| **२७ सप्तविंशतितमोऽध्यायः।** | | |
| नवग्रहाकृतिविज्ञानीयाध्यायोपक्रमः | १-३ | १०१८ |
| बालग्रहाणां नामनिर्देशः | ४-५ | ,, |
| ग्रहाणां बालावेशे कारणम् | ६ | १०१९ |
| देहं प्रविशतां ग्रहाणामनुपलम्भे हेतुः | ७ | ,, |
| स्कन्दग्रहार्तलक्षणम् | ८ | ,, |
| स्कन्दापस्मारग्रहार्तलक्षणम् | ९ | ,, |
| शकुनिग्रहार्तलक्षणम् | १० | ,, |
| रेवतीग्रहार्तलक्षणम् | ११ | १०२० |
| पूतनाग्रहार्तलक्षणम् | १२ | ,, |
| अन्धपूतनाग्रहार्तलक्षणम् | १३ | ,, |
| शीतपूतनाग्रहार्तलक्षणम् | १४ | ,, |
| मुखमण्डिकाग्रहार्तलक्षणम् | १५ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| नैगमेषग्रहार्तलक्षणम् | १६ | १०२१ |
| असाध्यग्रहार्तलक्षण | १७ | ,, |
| साध्यग्रहार्तचिकित्सा | १८–२१ | ,, |

२८ अष्टाविंशोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| स्कन्दग्रहप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | १०२२ |
| स्कन्दग्रहार्तं परिषेचनम् | ३ | ,, |
| स्कन्दग्रहार्तेऽभ्यञ्जनार्थं तैलम् | ४ | ,, |
| स्कन्दग्रहार्तं घृतम् | ५ | ,, |
| स्कन्दग्रहार्तं धूपनम् | ६ | ,, |
| स्कन्दग्रहार्तं धारणद्रव्याणि | ७ | ,, |
| स्कन्दग्रहार्तं बलिः | ८ | १०२३ |
| स्कन्दग्रहार्तं स्नानम् | ९ | ,, |
| स्कन्दग्रहार्तं रक्षाविधानम् | १०–१४ | ,, |

२९ एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| स्कन्दापस्मार प्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | १०२४ |
| स्कन्दापस्मारग्रहार्तं परिषेचनम् | ३ | ,, |
| स्कन्दापस्मारग्रहार्तं तैलघृते | ४ | ,, |
| स्कन्दापस्मारग्रहार्तं उत्सादनधूपने | ५–६ | ,, |
| स्कन्दापस्मारग्रहार्तं बलिः स्नानं च | ७–८ | ,, |
| स्कन्दापस्मारग्रहार्तं रक्षाविधानम् | ९ | १०२५ |

३० त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| शकुनिप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| शकुनिग्रहार्तं परिषेचनम् | ३ | ,, |
| शकुनिग्रहार्तेऽभ्यञ्जनतलप्रदेहौ | ४–५ | १०२६ |
| शकुनिग्रहार्तं धूपनं धारणीयानि च | ६ | ,, |
| शकुनिग्रहार्तं बलिः | ७ | ,, |
| शकुनिग्रहार्तं स्नानम् | ८ | ,, |
| शकुनिग्रहार्तेऽर्चनम् | ९ | ,, |
| शकुनिग्रहार्तं रक्षाविधानम् | १०–११ | १०२७ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| **३१ एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| रेवतीप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | १०२७ |
| रेवतीग्रहार्तं परिषेकः | ३ | ,, |
| रेवतीग्रहार्तेऽभ्यञ्जनं तैलम् | ४ | ,, |
| रेवतीग्रहार्तं पानार्थं घृतम् | ५ | ,, |
| रेवतीग्रहार्तं धूपनम् | ६ | १०२८ |
| रेवतीग्रहार्तं धारणीयानि | ७ | ,, |
| रेवतीग्रहार्तं बलिः | ८ | ,, |
| रेवतीग्रहार्तं स्नानम् | ९ | ,, |
| रेवतीग्रहार्तं रक्षाविधानम् | १०–११ | ,, |
| **३२ द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| पूतनाप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | १०२९ |
| पूतनाग्रहार्तं परिषेकः | ३ | ,, |
| पूतनाग्रहार्तेऽभ्यञ्जनं तैलम् | ४ | ,, |
| पूतनाग्रहार्तं घृतम् | ५ | ,, |
| पूतनाग्रहार्तं धूपनम् | ६ | ,, |
| पूतनाग्रहार्तं धारणीयानि | ७ | ,, |
| पूतनाग्रहार्तं बलिः | ८ | ,, |
| पूतनाग्राहर्तं स्नानम् | ९ | १०३० |
| पूतनाग्रहार्त रक्षाविधानम् | १०–११ | ,, |
| **३३ त्रयत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| अन्धपूतनाप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| अन्धपूतनाग्रहार्तं परिषेकः | ३ | ,, |
| अन्धपूतनाग्रहार्तं तैलघृते | ४ | ,, |
| अन्धपूतनाग्रहार्तं प्रदेहः | ५ | १०३१ |
| अन्धपूतनाग्रहार्तं धूपनम् | ६ | ,, |
| अन्धपूतनाग्रहार्तं बलिः | ७ | ,, |
| अन्धपूतनाग्रहार्तं स्नानम् | ८ | ,, |
| अन्धपूतनाग्रहार्तं रक्षाविधानम् | ९ | ,, |



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| **३४ चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| शीतपूतनाप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | १०३२ |
| शीतपूतनाग्रहार्ते परिषेकः | ३ | ,, |
| शीतपूतनाग्रहार्ते तैलम् | ४ | ,, |
| शीतपूतनाग्रहार्ते घृतम् | ५ | ,, |
| शीतपूतनाग्रहार्ते धूपनम् | ६ | ,, |
| शीतपूतनाग्रहार्ते बलिस्नाने | ७-८ | ,, |
| शीतपूतनाग्रहार्ते रक्षाविधानम् | ९ | ,, |
| **३५ पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| मुखमण्डिकाप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | १०३३ |
| मुखमण्डिकाग्रहार्ते परिषेकः | ३ | ,, |
| मुखमण्डिकाग्रहार्ते तैलम् | ४ | ,, |
| मुखमण्डिकाग्रहार्ते घृतम् | ५ | ,, |
| मुखमण्डिकाग्रहार्ते धूपनम् | ६ | १०३४ |
| मुखमण्डिकाग्रहार्ते बलिस्नाने | ७-८ | ,, |
| मुखमण्डिकाग्रहार्ते रक्षाविधानम् | ९ | ,, |
| **३६ षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| नैगमेषप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| नैगमेषग्रहार्ते परिषेकः | ३ | १०३५ |
| नैगमेषग्रहार्ते तैलम् | ४ | ,, |
| नैगमेषग्रहार्ते घृतम् | ५ | ,, |
| नैगमेषग्रहार्ते धारणीयानि | ६ | ,, |
| नैगमेषग्रहार्ते धूपनम् | ७-८ | ,, |
| नैगमेषग्रहार्ते बलिस्नाने | ९-१० | ,, |
| नैगमेषग्रहार्ते रक्षाविधानम् | ११ | ,, |
| **३७ सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| ग्रहोत्पत्त्यध्यायोपक्रमः | १-२ | १०३६ |
| नवबालग्रहाणामुत्पत्तिवर्णनम् | ३-१६ | ,, |
| ग्रहाः कीदृशान् बालान् आविशन्ति | १७-२२ | १०३८ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| **३८ अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| योनिव्यापत्प्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | १०३९ |
| योनिरोगनिदानम् | ३–५ | ” |
| वातादिदोषभेदेन योनिरोगसंख्या | ६–८ | ” |
| वातजयोनिरोगाणां लक्षणानि | ९–११ | १०४० |
| पित्तजयोनिरोगाणां लक्षणानि | १२–१४ | ” |
| कफजयोनिरोगाणां लक्षणानि | १५–१७ | १०४१ |
| सान्निपातिकयोनिरोगाणां लक्षणानि | १८–२० | ” |
| वातजयोनिरोगचिकित्सा | २१–२३ | १०४२ |
| पित्तजयोनिरोगचिकित्सा | २४–२६ | ” |
| कफजयोनिरोगचिकित्सा | २७–३० | १०४३ |
| कौमारतन्त्रोपसंहारः | ३१–३२ | ” |
| **३९ एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| ज्वरप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | १०४४ |
| कायचिकित्सोपक्रमः | ३–७ | ” |
| रोगेषु ज्वरस्य प्राधान्यम् | ८–१२ | १०४५ |
| ज्वरस्वरूपकथनम् | १३ | ” |
| ज्वरभेदप्रदर्शनम् | १४ | १०४६ |
| ज्वरसम्प्राप्तिः | १५–२२ | ” |
| ज्वरे गात्रौष्ण्ये कारणम् | २३–२४ | १०४७ |
| ज्वरपूर्वरूपम् | २५–२८ | ” |
| वातजज्वरलक्षणम् | २९–३० | १०४८ |
| पित्तजज्वरलक्षणम् | ३१–३२ | ” |
| कफजज्वरलक्षणम् | ३३–३४ | १०४९ |
| सान्निपातिकज्वरलक्षणम् | ३५–३७ | ” |
| अभिन्यासज्वरलक्षणम् | ३८–४० | ” |
| सन्निपातज्वरभेदाः | ४१–४४ | १०५० |
| सन्निपातज्वरमर्यादा | ४५ | १०५१ |
| वातपित्तज्वरलक्षणम् | ४६–४७ | ” |
| वातश्लेष्मज्वरलक्षणम् | ४८–४९ | १०५२ |
| श्लेष्मपित्तज्वरलक्षणम् | ५० | ” |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| ( वातपैत्तिकज्वरे उपद्रवाः | १ | १०५२ |
| वातश्लेष्मजज्वरे उपद्रवाः | २ | ,, |
| कफपैत्तिकज्वरे उपद्रवाः ) | ३ | ,, |
| विषमज्वरसम्प्राप्तिः | ५१–५३ | ,, |
| प्रलेपकलक्षणम् | ५४ | १०५३ |
| चतुर्थकादिविपर्ययज्वरलक्षणम् | ५५ | ,, |
| एकीयमतेन विषमज्वरस्यागन्तुकत्वम् | ५६ | १०५४ |
| विषमज्वराणामारम्भकदोषाः | ५७–५८ | ,, |
| शीतपूर्वदाहपूर्वज्वरयोर्लक्षणम् | ५९–६१ | ,, |
| विषमज्वराणां स्वकालेषूद्गमः | ६२ | १०५५ |
| विषमज्वराणामुपशान्तवेगानामाप देहेऽवस्थानम् | ६३–६५ | ,, |
| कायचिकित्साविदां मतेन विषमज्वरसम्प्राप्तिः | ६६ | ,, |
| विषमज्वराणामाश्रयभूताधातवः | ६७ | ,, |
| एकीयमते विषमज्वरस्य भूताभिषङ्गजत्वम् | ६८ | ,, |
| विषमज्वराणां लक्षणानि | ६९–७० | ,, |
| विषमज्वराणां नियतकालागमने हेतुः | ७१–७४ | १०५७ |
| विविधागन्तुज्वराणां लक्षणानि | ७५–८२ | ,, |
| धातुगतज्वराणां लक्षणानि | ८३–९१ | १०५८ |
| ज्वराणां साध्यासाध्यलक्षणम् | ९२–९६ | १०६० |
| ज्वरपूर्वरूपे चिकित्सा | ९७–९९ | १०६१ |
| आमज्वरे लङ्घनम् | १००–१०१ | ,, |
| लङ्घनायोग्याज्वरिणः | १०२ | १०६२ |
| ज्वरे लङ्घनगुणाः | १०३ | ,, |
| सुलङ्घितलक्षणम् | १०४ | ,, |
| अतिलङ्घितलक्षणम् | १०५ | ,, |
| ज्वरे उष्णोदकम् | १०६ | १०६३ |
| ज्वरे अवस्थावशेन शीतोदकम् | १०७–१०८ | ,, |
| ज्वरे यवाग्वादयः | १०९–११० | ,, |
| ज्वरे वातादिदोषभेदेन पाचनकषायाः | १११–११३ | ,, |
| आमज्वरे पाचनयोगाः | ११४ | १०६४ |
| पक्वज्वरलक्षणम् | ११५ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| आमज्वरलक्षणम् | ११६–११८ | १०६४ |
| ज्वरे भेषजदानकालः | ११९–१२० | १०६५ |
| आमज्वरे भेषजदाने दोषाः | १२१ | ” |
| ज्वरे आवस्थिकं कर्तव्यम् | १२२ | ” |
| ज्वरे शोधनावस्था | १२३–१२६ | १०६६ |
| ज्वरे वमनादिक्रमः | १२६–१२९ | ” |
| ज्वरे आध्माने उदरलेपः | १३० | ” |
| ज्वरे ऊर्ध्ववाते फलवर्तिः | १३१ | १०६७ |
| ज्वरे ऊर्ध्ववाते यवागूः | १३२ | ” |
| रूक्षस्य ज्वरे सर्पिः | १३३ | ” |
| ज्वरे संशमनम् | १३४ | ” |
| ज्वरे तर्पणम् | १३५–१३७ | ” |
| द्वन्द्वजज्वरेषु पथ्यम् | १३८–१४० | ” |
| केषां यवागूरहिता | १४१ | १०६८ |
| ज्वरे तक्रप्रयोगः | १४२ | ” |
| ज्वरे क्षीरप्रयोगः | १४३–१४४ | ” |
| ज्वरे हितभोजनोपदेशः | १४५–१४९ | ” |
| ज्वरे आहारोपयोगीनि द्रव्याणि | १५०–१५५ | १०६९ |
| ज्वरे असेव्यानि | १५६–१६२ | १०७० |
| ज्वरे आयासनिषेधः | १६३ | ” |
| शान्तज्वरेऽपि शोधनम् | १६४ | ” |
| ज्वरे स्नाननिषेधः | १६५ | १०७१ |
| संक्षेपतः सर्वज्वरचिकित्सा | १६६–१६७ | ” |
| वातज्वरे संशमनकषायाः | १६८–१७४ | ” |
| पित्तज्वरे संशमनकषायाः | १७५–१८३ | १०७२ |
| पित्तज्वरे मूर्धप्रलेपः | १८४ | १०७३ |
| पित्तज्वरे गण्डूषयोगः | १८५ | १०७४ |
| कफज्वरे संशमनयोगाः | १८६–१९२ | ” |
| द्वन्द्वजज्वरे संशमनयोगाः | १९३–२०० | ” |
| सन्निपाते सामान्यचिकित्सा | २०१ | १०७५ |
| सन्निपाते क्षीरयोगाः | २०२–२०३ | ” |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| सन्निपाते कतिपययोगाः | २०४–२१० | १०७६ |
| विषमज्वरे विशेषचिकित्सा | २११–२१७ | ,, |
| विषमज्वरजीर्णज्वरयोर्घृतयोगाः | २१८–२५३ | १०७७ |
| विषमज्वरे पञ्चसारम् | २५४–२५५ | १०८२ |
| जीर्णज्वरे लाक्षादितैलम् | २५६ | ,, |
| जीर्णज्वरे क्षीरिवृक्षादितैलम् | २५७–२५८ | ,, |
| विषमज्वरे विशेषचिकित्सा | २५९–२६४ | ,, |
| भूताभिषङ्गोत्थज्वरचिकित्सा | २६५ | १०८३ |
| विविधागन्तुज्वरचिकित्सा | २६६–२७० | १०८४ |
| ज्वरे शीतप्रतीकारः | २७१–२८१ | ,, |
| ज्वरे दाहप्रतीकारः | २८२–२९४ | १०८५ |
| ज्वरोपद्रवचिकित्सा | २९५–३०७ | १०८७ |
| वातज्वरे निरूहानुवासने | ३०८ | १०८९ |
| पित्तज्वरे निरूहानुवासने | ३०९–३१२ | ,, |
| कफज्वरे निरूहानुवासने | ३१३ | ,, |
| संसर्गसन्निपातयोर्निरूहानुवासने | ३१४ | ,, |
| ज्वरे स्नेहोपयोगः | ३१५–३१७ | १०९० |
| ज्वरे हृतावशेषपित्तचिकित्सा | ३१८–३१९ | ,, |
| ज्वरे घृतदानयोग्यकालः | ३२० | ,, |
| मुच्यमानज्वरलक्षणम् | ३२१ | ,, |
| ज्वरमुक्तलक्षणम् | ३२२ | १०९१ |
| ज्वरस्य अन्यरोगेभ्यो गरीयस्त्वम् | ३२३–३२४ | ,, |


## ४० चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| अतिसारप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | १०९२ |
| अतिसारनिदानम् | ३–५ | ,, |
| अतिसारसम्प्राप्तिः | ६–७ | १०९३ |
| अतिसारपूर्वरूपाणि | ८ | ,, |
| वातजातिसारलक्षणम् | ९ | ,, |
| पित्तजातिसारलक्षणम् | १० | ,, |
| श्लेष्मजातिसारलक्षणम् | ११ | १०९४ |
| सान्निपातिकातिसारलक्षणम् | १२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| शोकजातिसारलक्षणम् | १३–१४ | १०९४ |
| आमातिसारलक्षणम् | १५–१६ | ” |
| आमपक्वमललक्षणम् | १७–१८ | ” |
| अतिसारस्य असाध्यलक्षणानि | १९–२१ | १०९५ |
| अनुक्तातिसाराणां दोषजेष्वेवान्तर्भावः | २२–२३ | १०९६ |
| अतिसारचिकित्सा | २४–३४ | ” |
| आमातिसारे पाचनयोगाः | ३५–५१ | १०९७ |
| सशूलेऽतिसारे कतिपययोगाः | ५२–५७ | १०९९ |
| आमातिसारे आहारकल्पना | ५८–५९ | ” |
| पैत्तिके आमातिसारे पाचनयोगः | ६०–६६ | ११०० |
| पक्वपित्तातिसारे शमनयोगाः | ६७–७९ | ११०१ |
| अतिसारे पुटपाकयोगाः | ८०–८८ | ११०२ |
| अतिसारे कौटजं फाणितम् | ८९–९० | ११०३ |
| अतिसारे यवागूयोगाः | ९१–९२ | ” |
| अतिसारे कतिपये योगाः | ९३–९८ | ११०४ |
| अतिसारे क्षीरयोगाः | ९९–१०२ | ” |
| सरक्तेऽतिसारे कतिपये योगाः | १०३–१०५ | ११०५ |
| अतिसारे वमनम् | १०६ | ” |
| अतिसारे बस्तियोगाः | १०७–१११ | ” |
| अतिसारे गुददौर्बल्यचिकित्सा | ११२ | ११०६ |
| अतिसारे शूलोपद्रवचिकित्सा | ११३ | ” |
| अतिसारे आहारोपयोगीनि द्रव्याणि | ११४–११५ | ” |
| रक्तातिसारलक्षणम् | ११६ | ” |
| रक्तातिसारचिकित्सा | ११७–१२८ | ११०७ |
| अतिसारे अवस्थावशेन विरेचनकर्म | १३०–१३१ | ११०८ |
| निःसारकलक्षणं, तच्चिकित्सा च | १३२–१३७ | ” |
| प्रवाहिकालक्षणम् | १३८–१३९ | ११०९ |
| प्रवाहिकाचिकित्सा | १४०–१५७ | ” |
| अतिसारे यवागूप्रशंसा | १५८ | १११२ |
| अतिसारे हेतुविपरीतचिकित्सा | १५९–१६० | ” |
| दोषाणां समवाये पूर्वं पित्तप्रतीकारः | १६१ | ” |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषया:— | सूत्राङ्का: | पृष्ठाङ्का: |
|---|---|---|
| अतिसारनिवृत्तिलक्षणम् | १६२ | १११२ |
| कर्मजदोषजभेदेन रोगस्य द्वैविध्यम् | १६३-१६६ | ,, |
| ग्रहणीनिदानम् | १६६-१६८ | १११३ |
| ग्रहण्या: स्थाननिरूपणम् | १६९ | ,, |
| ग्रहणीलक्षणम् | १७०-१७२ | १११४ |
| ग्रहणीपूर्वरूपाणि | १७३ | ,, |
| ग्रहण्या विशिष्टलक्षणम् | १७४-१७७ | ,, |
| ग्रहणीचिकित्सा | १७८-१८२ | १११६ |


## ४१ एकचत्वारिंशोऽध्याय: ।


| | | |
|---|---|---|
| शोषप्रतिषेधाध्यायोपक्रम: | १-२ | १११६ |
| शोषस्य रोगराजत्वम् | ३-६ | ,, |
| शोषस्य सान्निपात्वम् | ६-७ | १११७ |
| शोषस्य चतुर्विधो हेतु: | ८ | ,, |
| धातुक्षयाद् राजयक्ष्मसम्भव: | ९-१० | १११८ |
| शोषलक्षणानि | ११-१५ | ,, |
| एकीयमतेन शोषभेदा: | १६ | १११९ |
| व्यवायशोषलक्षणम् | १७ | ,, |
| शोकशोषलक्षणम् | १८ | ,, |
| जराशोषलक्षणम् | १९-२० | ११२० |
| अध्वशोषलक्षणम् | २१ | ,, |
| व्यायामशोषलक्षणम् | २२ | ,, |
| व्रणशोषलक्षणम् | २३ | ,, |
| उर:क्षतशोषलक्षणम् | २४-२६ | ,, |
| पूर्वोक्तशोषाणां स्वमते धातुक्षयसंज्ञकत्वम् | २६-२८ | ११२१ |
| शोषपूर्वरूपाणि | २९-३० | ,, |
| शोषस्य असाध्यलक्षणानि | ३१ | ११२२ |
| शोषस्य सामान्यचिकित्सा | ३२-३६ | ,, |
| शोषिणां देयानि मांसानि | ३६-३९ | ,, |
| शोषे कतिपये योगा: | ४०-४२ | ११२३ |
| शोषे वासाघृतम् | ४३ | ,, |
| शोषे घृतयोगा: | ४४-४९ | ११२४ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| शोषे एलादिरसायनम् | ९०–९४ | ११२४ |
| शोषोपद्रवाणां चिकित्सितम् | ९५ | ११२५ |
| शोषे अजाया उपयोगिता | ९६ | ,, |
| शोषे रसोनादियोगाः | ९७ | ,, |
| शोषे परिहरणीयानि दैवव्यपाश्रयचिकित्सितं च | ९८ | ,, |
| ४२ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः । | | |
| गुल्मप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ११२६ |
| गुल्मसम्प्राप्तिः | ३ | ,, |
| गुल्मस्य सामान्यरूपम् | ४ | ,, |
| गुल्मशब्दनिरुक्तिः | ५ | ,, |
| गुल्मस्य पाकाभावे कारणम् | ६ | ११२७ |
| गुल्मस्य पञ्चभेदाः | ७ | ,, |
| गुल्मस्य पूर्वरूपाणि | ८–९ | ,, |
| वातजादिगुल्मलक्षणम् | १०–१२ | ,, |
| रक्तजगुल्मलक्षणम् | १३–१५ | ११२८ |
| वातादिदोषभेदेन गुल्मचिकित्सा | १६–२३ | ,, |
| गुल्मे षडङ्गघृतम् | २४ | ११२९ |
| गुल्मे चिन्नकादिघृतम् | २५–२६ | ,, |
| गुल्मे हिङ्ग्वादिघृतम् | २७–२८ | ,, |
| गुल्मे दाधिकं घृतम् | २९–३० | ,, |
| गुल्मे रसोनादिघृतम् | ३१–३३ | ११३० |
| वातजगुल्मे घृतम् | ३४–३५ | ,, |
| रक्तपित्तजगुल्मे घृतम् | ३६ | ,, |
| कफजगुल्मे घृतम् | ३७–३८ | ,, |
| सान्निपातिकगुल्मचिकित्सा | ३९ | ११३१ |
| गुल्मे पानीयक्षारः | ४०–४५ | ,, |
| गुल्मे वृश्चीराद्यरिष्टः | ४६–४८ | ,, |
| गुल्मे आवस्थिकी चिकित्सा | ४९–६६ | ११३२ |
| गुल्मोपद्रवशूललक्षणम् | ६७–६८ | ११३४ |
| गुल्मोपद्रवशूलचिकित्सितम् | ६९–७५ | ,, |
| गुल्माभावेऽपि शूलसंभवः | ७६ | ११३५ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| शूलस्य निदानं सम्प्राप्तिश्च | ७७–८० | ११३९ |
| शूलस्य निरुक्तिः | ८१ | ,, |
| वातजादिदोषभेदेन शूलस्य लक्षणानि | ८३–८७ | ११३६ |
| वातजशूलचिकित्सा | ८८–१०२ | ,, |
| पित्तजशूलचिकित्सा | १०३–१०८ | ११३८ |
| कफजशूलचिकित्सा | १०९–११६ | ११३९ |
| पार्श्वशूलनिदानम् | ११७–११९ | ,, |
| पार्श्वशूलचिकित्सा | १२०–१२२ | ११४० |
| कुक्षिशूलनिदानम् | १२३–१२५ | ,, |
| कुक्षिशूलचिकित्सा | १२६–१३० | ,, |
| हृच्छूलनिदानम् | १३१–१३२ | ११४१ |
| हृच्छूलचिकित्सा | १३३–१३४ | ,, |
| मूत्रशूललक्षणम् | १३५ | ,, |
| विट्शूललक्षणम् | १३६–१३९ | ११४२ |
| मूत्रशूलविट्शूलयोश्चिकित्सा | १४०–१४१ | ,, |
| अन्नशूलनिदानं तच्चिकित्सा च | १४२–१४५ | ,, |
| **४३ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।** | | |
| हृद्रोगप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ११४३ |
| हृद्रोगस्य निदानं सम्प्राप्तिश्च | ३–४ | ,, |
| हृद्रोगप्रभेदाः | ५ | ११४४ |
| वातजादिदोषभेदेन हृद्रोगलक्षणानि | ६–१० | ,, |
| वातजहृद्रोगचिकित्सा | ११–१४ | ११४५ |
| पित्तजहृद्रोगचिकित्सा | १५–१६ | ,, |
| कफजहृद्रोगचिकित्सा | १७–१९ | ११४६ |
| कृमिहृद्रोगचिकित्का | २०–२२ | ,, |
| **४४ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।** | | |
| पाण्डुरोगप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ११४७ |
| पाण्डुरोगस्य निदानं सम्प्राप्तिश्च | ३ | ,, |
| पाण्डुरोगसङ्ख्या | ४ | ,, |
| वातजादिदोषभेदेन पाण्डुरोगलक्षणानि | ५–९ | ,, |
| कामलालक्षणम् | १० | ११४८ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कुम्भकामलालक्षणम् | ११ | ११४९ |
| हलीमकलक्षणम् | १२ | ,, |
| पाण्डुरोगोपद्रवाः | १३ | ,, |
| पाण्डुरोगचिकित्सा | १४–२९ | ,, |
| कामलाचिकित्सा | ३० | ११५२ |
| कुम्भकामलाचिकित्सा | ३१–३५ | ,, |
| पाण्डुरोगिणां सेव्यानि | ३६–३७ | ,, |
| पाण्डुरोगोपद्रवचिकित्सा | ३८ | ११५३ |
| पाण्डुरोगिणोऽसाध्यलक्षणानि | ३९–४० | ,, |
| ४५ पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः । | | |
| रक्तपित्तप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| रक्तपित्तस्य निदानं सम्प्राप्तिश्च | ३–४ | ११५४ |
| रक्तपित्तस्य लक्षणम् | ५–६ | ,, |
| रक्तपित्तस्य पूर्वरूपम् | ७ | ,, |
| वातादिदोषभेदेन रक्तपित्तलक्षणम् | ८ | ,, |
| रक्तपित्तोपद्रवाः | ९ | ११५५ |
| असाध्यरक्तपित्तलक्षणम् | १० | ,, |
| रक्तपित्तचिकित्सा | ११–१५ | ,, |
| रक्तपित्ते भोजनद्रव्याणि | १६–१८ | ११५६ |
| रक्तपित्ते कतिपये योगाः | १९–३७ | ,, |
| रक्तपित्ते आस्थापनानुवासनोत्तरबस्तयः | ३८–४२ | ११५८ |
| रक्तपित्तचिकित्साया रक्तार्शसि रक्तप्रदरे चातिदेशः | ४३–४५ | ११५९ |
| ४६ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः । | | |
| मूर्च्छाप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ११६० |
| मूर्च्छाया निदानसम्प्राप्ती | ३–४ | ,, |
| मूर्च्छायाः पूर्वरूपम् | ५ | ,, |
| मूर्च्छायाः सामान्यलक्षणम् | ६ | ,, |
| मूर्च्छाया भेदाः | ७–८ | ,, |
| रक्तगन्धजा मूर्च्छा | ९–१० | ,, |
| विषमद्योत्थमूर्च्छालक्षणम् | ११–१३ | ,, |
| मूर्च्छायाश्चिकित्सा | १४–१९ | ११६२ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| संन्यासलक्षणम् | २०–२१ | ११६२ |
| संन्यासचिकित्सा | २२–२९ | ११६३ |

४७ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| पानात्ययप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ११६४ |
| मद्यस्य गुणाः | ३ | ,, |
| मद्यस्य कर्माणि | ४–५ | ,, |
| मद्यस्य रसाः | ६ | ,, |
| विधिसेवितमद्यगुणाः | ७–८ | ,, |
| अविधिसेवितमद्यगुणाः | ९–१० | ११६५ |
| मदस्यावस्थात्रयम् | ११–१२ | ,, |
| पुरुषविशेषेण सेव्यमानं मद्यं नातिबाधां कुरुते | १३ | ,, |
| मदात्ययनिदानम् | १४–१६ | ,, |
| मदात्ययभेदाः | १७ | ,, |
| मदात्ययलक्षणम् | १८ | ११६६ |
| परमदलक्षणम् | १९ | ,, |
| पानाजीर्णलक्षणम् | २० | ,, |
| पानविभ्रमलक्षणम् | २१ | ,, |
| मदात्ययस्यासाध्यलक्षणानि | २२ | ११६७ |
| मदात्ययोपद्रवाः | २३ | ,, |
| वातजादिमदात्ययचिकित्सा | २४–२७ | ,, |
| सान्निपातिकमदात्ययचिकित्सा | २९ | ११६८ |
| मदात्यये कतिपये योगाः | ३०–३३ | ,, |
| परमदचिकित्सा | ३४–३६ | ११६९ |
| पानाजीर्णचिकित्सा | ३७–३८ | ,, |
| पानविभ्रमचिकित्सा | ३९–४१ | ११७० |
| सामान्यतः पानात्ययादीनां चिकित्सा | ४२–४७ | ,, |
| मदात्यये मद्यस्योपयोगिता | ४८ | ११७१ |
| विच्छिन्नमद्यस्य पुनर्मद्यसेवने दोषाः | ४९ | ,, |
| मद्यजतृष्णासम्प्राप्तिः | ५० | ११७२ |
| मद्यजतृष्णाचिकित्सा | ५१–५३ | ,, |
| मद्यजदाहसम्प्राप्तिः | ५४ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| मद्यजदाहचिकित्सा | ५५–५६ | ११७२ |
| रक्तजदाहलक्षणम् | ६७ | ११७४ |
| रक्तजदाहचिकित्सा | ६८–६९ | ,, |
| तृष्णानिरोधजदाहलक्षणम् | ७०–७१ | ११७५ |
| तृष्णानिरोधजदाहचिकित्सा | ७२ | ,, |
| रक्तपूर्णकोष्ठजदाहलक्षणं, तच्चिकित्सा च | ७३ | ,, |
| धातुक्षयजदाहलक्षणं, तच्चिकित्सा च | ७४–७५ | ,, |
| रक्तजदाहलक्षणं तच्चिकित्सा च | ७६–७७ | ,, |
| दाहानामसाध्यलक्षणम् | ७८ | ११७६ |
| दहानां पुनरावृत्तिनिषेधाय विधानम् | ७९ | ,, |
| मद्यसेवनविधानम् | ८०–८१ | ,, |

४८ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| तृष्णाप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| सामान्यतस्तृष्णालक्षणम् | ३ | ,, |
| तृष्णाया निदानसम्प्राप्ती | ४–६ | ११७७ |
| तृष्णायाः संख्या | ६ | ,, |
| तृष्णायाः पूर्वरूपम् | ७ | ,, |
| सप्तविधतृष्णानां लक्षणानि | ८–१४ | ,, |
| असाध्यतृष्णालक्षणम् | १५ | ११७८ |
| तृष्णायां सामान्यविधानम् | १६–१८ | ११७९ |
| वातिकादितृष्णाचिकित्सा | १९–२१ | ,, |
| सर्वतृष्णासु पित्तघ्नो विधिः | २२ | ,, |
| क्षतजतृष्णाचिकित्सा | २३–२७ | ११८० |
| आमजतृष्णाचिकित्सा | २८ | ,, |
| गुर्वन्नजतृष्णाचिकित्सा | २९ | ,, |
| श्रमजतृष्णाचिकित्सा | ३० | ,, |
| मद्यजतृष्णाचिकित्सा | ३१ | ११८१ |
| हृद्रोगजतृष्णाचिकित्सा | ३२ | ,, |
| सामान्यतः सर्वतृष्णासुविधिः | ३३ | ,, |

४९ एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| छर्दिप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| छर्दिनिदानम् | ३-५ | ११८१ |
| छर्दिनिरुक्तिः | ६ | ११८२ |
| छर्दिसम्प्राप्तिः | ७ | ,, |
| छर्दिपूर्वरूपम् | ८ | ,, |
| वातजादिदोषभेदेन छर्दिलक्षणानि | ९-१३ | ,, |
| छर्दीनामसाध्यलक्षणानि | १४ | ११८३ |
| छर्दीनां सामान्यचिकित्सा | १५-१७ | ,, |
| वातजादिच्छर्दिचिकित्सा | १८-२३ | ,, |
| सान्निपातिकच्छर्दिचिकित्सा | २४ | ११८४ |
| बीभत्सजादिच्छर्दिचिकित्सा | २५-२६ | ,, |
| छर्दिषु कतिपये योगाः | २७-३५ | ११८५ |
| **५० पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| हिक्काप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | ११८६ |
| हिक्काया निदानम् | ३-५ | ,, |
| हिक्काया निरुक्तिः | ६ | ११८७ |
| हिक्कायाः सम्प्राप्तिः | ७ | ,, |
| हिक्कायाः पूर्वरूपाणि | ८ | ,, |
| पञ्चविधहिक्कानां लक्षणानि | ९-१४ | ,, |
| हिक्काया असाध्यलक्षणम् | १५ | ११८८ |
| हिक्काचिकित्सा | १६-३६ | ,, |
| **५१ एकपञ्चाशोऽध्यायः ।** | | |
| श्वासप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | ११९० |
| श्वासस्य निदानम् | ३ | ,, |
| श्वासस्य सम्प्राप्तिः | ४ | ,, |
| श्वासस्य भेदाः | ५ | ११९१ |
| श्वासस्य पूर्वरूपम् | ६ | ,, |
| पञ्चविधश्वासानां लक्षणानि | ७-१३ | ,, |
| श्वासानां साध्यासाध्यविचारः | १४ | ११९२ |
| श्वासे संशोधनम् | १५-१६ | ,, |
| श्वासे घृतयोगाः | १७-२८ | ,, |
| श्वासे भृङ्गराजतैलम् | २९ | ११९३ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| श्वासे पथ्यम् | ३०–३१ | ११९३ |
| श्वासे लेहयोगाः | ३२–३६ | ११९४ |
| श्वासे कतिपययोगाः | ३६–४७ | ,, |
| श्वासे स्नेहस्वेदविधानम् | ४८ | ,, |
| श्वासे धूमयोगाः | ४९–५२ | ,, |
| श्वासे वमनविरेचने | ५३ | ११९६ |
| श्वासे तर्पणम् | ५४ | ,, |
| श्वासे निदिग्धिकादिलेहः | ५५ | ,, |
| श्वासादीनां कष्टसाध्यत्वम् | ५६ | ,, |
| **५२ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।** | | |
| कासप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| कासस्य निदानम् | ३ | ११९७ |
| कासस्य सम्प्राप्तिः | ४–५ | ,, |
| कासस्य संख्या | ६ | ,, |
| कासस्य पूर्वरूपम् | ७ | ,, |
| वातजादिदोषभेदेन कासस्य लक्षणानि | ८–१२ | ,, |
| कासस्य असाध्यलक्षणम् | १३ | ११९८ |
| सामान्यतः कासचिकित्सा | १४–२५ | ,, |
| वातजकासचिकित्सा | २६–२७ | १२०० |
| कफजकासचिकित्सा | २८–३१ | ,, |
| पित्तजक्षपजक्षतजकासचिकित्सा | ३२–३७ | ,, |
| कासे कल्याणगुडः | ३८–४१ | १२०१ |
| कासे अगस्त्यावलेहः | ४२–४६ | १२०२ |
| कासे कुलीरादिघृतम् | ४७–४८ | ,, |
| **५३ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।** | | |
| स्वरभेदप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | १२०३ |
| स्वरभेदस्य निदानसम्प्राप्ती | ३ | ,, |
| वातजादिदोषभेदेन स्वरभेदलक्षणानि | ४–७ | ,, |
| सामान्यतः स्वरभेदचिकित्सा | ८–९ | १२०४ |
| वातजस्वरभेदचिकित्सा | १०–१२ | ,, |
| पित्तजस्वरभेदचिकित्सा | १३–१४ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| कफजस्वरभेदचिकित्सा | १५ | १२०६ |
| मेदोजसान्निपातिकक्षपजस्वरभेदचिकित्सा | १६-१७ | ,, |

५४ चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| कृमिरोगप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| कृमीणां निदानम् | ३-५ | ,, |
| कृमीणामुत्पत्तिस्थानानि | ६-७ | १२०६ |
| पुरीषजकृमीणां नामलक्षणकर्माणि | ८-११ | ,, |
| कफजकृमीणां नामलक्षणकर्माणि | १२-१४ | ,, |
| रक्तजकृमीणां नामलक्षणकर्माणि | १५-१६ | १२०७ |
| पुरीषजादिकृमीणां विशेषकारणानि | १७ | ,, |
| सञ्जातकृमिलक्षणम् | १८ | ,, |
| कृमीणां दृश्यादृश्यविभागः | १९ | ,, |
| सामान्यतः पुरीषजकफजकृमीणां चिकित्सा | २०-३३ | ,, |
| स्थानविशेषेण कृमीणां विशेषचिकित्सा | ३४-३६ | १२०९ |
| रक्तजकृमिचिकित्सा | ३७-३९ | ,, |
| कृमिरोगे परिहार्याणि | ४० | ,, |

५५ पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| उदावर्तप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | १२१० |
| वेगविधारणनिषेधः | ३ | ,, |
| उदावर्तस्य निदानं तन्निरुक्तिश्च | ४ | ,, |
| त्रयोदशविधोदावर्तानां लक्षणानि | ५-१७ | ,, |
| असाध्योदावर्तलक्षणम् | १८ | १२१२ |
| सामान्यत उदावर्तचिकित्सा | १९ | ,, |
| वातिकोदावर्तचिकित्सा | २० | ,, |
| पुरीषजोदावर्तचिकित्सा | २१ | १२१३ |
| मूत्रोदावर्तचिकित्सा | २२-२७ | ,, |
| जृम्भाऽश्रुजोदावर्तचिकित्सा | २८ | ,, |
| क्षवजोदावर्तचिकित्सा | २९ | ,, |
| उद्गारजोदावर्तचिकित्सा | ३० | १२१४ |
| छर्द्यघातजोदावर्तचिकित्सा | ३१ | ,, |
| शुक्रोदावर्तचिकित्सा | ३२-३३ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| क्षुत्तृष्णाघातजोदावर्तचिकित्सा | ३४ | १२१४ |
| निद्राघातजोदावर्तचिकित्सा | ३५ | ,, |
| उदावर्तोपद्रवचिकित्सा | ३६ | ,, |
| दोषजोदावर्तस्य निदानं लक्षणानि च | ३७-४० | ,, |
| दोषजोदावर्तचिकित्सा | ४१-५३ | १२१५ |
| **५६ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।** | | |
| विसूचिकाप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-६ | १२१७ |
| अजीर्णस्य भेदाः | ३ | ,, |
| विसूचिकानिरुक्तिः | ४ | ,, |
| विसूचिकालक्षणम् | ५-६ | ,, |
| अलसकलक्षणम् | ७-८ | १२१८ |
| विलम्बिकाया लक्षणम् | ९ | ,, |
| आमस्य विकारान्तरकारित्वम् | १० | ,, |
| विसूचिकाया असाध्यलक्षणम् | ११ | ,, |
| विसूचिकायाश्चिकित्सा | १२-१९ | ,, |
| आनाहसम्प्राप्तिः | २० | १२१९ |
| आमजानाहस्य लक्षणम् | २१ | १२२० |
| पुरीषजानाहस्य लक्षणम् | २२ | ,, |
| आनाहचिकित्सा | २३-२७ | ,, |
| **५७ सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ।** | | |
| अरोचकप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | १२२१ |
| अरोचकसम्प्राप्तिः | ३ | ,, |
| पञ्चविधानामरोचकानां लक्षणानि | ४-५ | १२२२ |
| वातजारोचकचिकित्सा | ६ | ,, |
| पित्तजारोचकचिकित्सा | ७ | ,, |
| श्लेष्मजारोचकचिकित्सा | ८ | ,, |
| अरोचके कतिपययोगाः | ९-१५ | १२२३ |
| आगन्तुजारोचकचिकित्सा | १६-१७ | १२२४ |
| **५८ अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ।** | | |
| मूत्राघातप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | १२२५ |
| मूत्राघातानां नामनिर्देशः | ३-४ | ,, |



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| वातकुण्डलिकाया लक्षणम् | ६-६ | १२२५ |
| वाताष्ठीलाया लक्षणम् | ७-८ | ,, |
| वातबस्तेर्लक्षणम् | ९-१० | १२२६ |
| मूत्रातीतस्य लक्षणम् | ११-१२ | ,, |
| मूत्रजठरस्य लक्षणम् | १३-१४ | ,, |
| मूत्रोत्सङ्गस्य लक्षणम् | १५-१६ | ,, |
| मूत्रक्षयस्य लक्षणम् | १७ | ,, |
| मूत्रग्रन्थेर्लक्षणम् | १८-१९ | १२२७ |
| मूत्रशुक्रस्य लक्षणम् | २०-२१ | ,, |
| उष्णवातस्य लक्षणम् | २२-२३ | ,, |
| मूत्रौकसादस्य लक्षणम् | २४-२६ | ,, |
| पूर्वोक्तमूत्राघातानां चिकित्सा | २७-५० | १२२८ |
| मूत्ररक्ताचिकित्सा | ५१-५२ | १२३० |
| मूत्राघाते घृतम् | ५३-५७ | १२३१ |
| मूत्राघाते बलाघृतम् | ५८-६४ | ,, |
| मूत्राघाते महाबलातैलम् | ६५-७२ | १२३२ |
| **५८ एकोनषष्टितमोऽध्यायः ।** | | |
| मूत्रकृच्छ्रप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | १२३३ |
| मूत्रकृच्छ्रभेदाः | ३ | ,, |
| वातजादिदोषभेदेन मूत्रकृच्छ्रलक्षणानि | ४-१४ | ,, |
| मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | १५-१६ | १२३४ |
| वातिकमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | १७-१९ | १२३५ |
| पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | २०-२२ | ,, |
| श्लैष्मिकमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | २३ | ,, |
| सान्निपातिकमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | २४ | १२३६ |
| आभघातजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | २५ | ,, |
| पुरीषजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | २६ | ,, |
| अश्मरीजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा | २७ | ,, |
| **६० षष्टितमोऽध्यायः ।** | | |
| अमानुषोपसर्गप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-३ | १२३७ |
| ग्रहसामान्यलक्षणम् | ४ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| ग्रहावेशार्हा नराः | ५ | १२३८ |
| ग्रहाधिपानां संख्या | ६-७ | ,, |
| देवाद्यष्टविधग्रहाविष्टलक्षणम् | ८-१६ | ,, |
| देवादीनां ग्रहणकालः | १७-१८ | १२३९ |
| देहं विशतां ग्रहाणामलक्ष्ये हेतुः | १९ | १२४० |
| ग्रहाणां मनुष्यशरीरावेशे कथनम् | २०-२५ | ,, |
| ग्रहाणां भूतसंज्ञकत्वे कारणम् | २६ | १२४१ |
| भूतविद्याशब्दनिर्वचनम् | २७ | ,, |
| सामान्यतः सर्वग्रहचिकित्सा | २८-३० | ,, |
| ग्रहाणां वस्त्रादिप्रदानकालः | ३१ | १२४२ |
| देवग्रहचिकित्सा | ३२ | ,, |
| असुरग्रहचिकित्सा | ३३ | ,, |
| गन्धर्वयक्षग्रहयोश्चिकित्सा | ३४ | ,, |
| पितृग्रहचिकित्सा | ३५ | ,, |
| नागराक्षसग्रहयोश्चिकित्सा | ३६ | ,, |
| पिशाचग्रहचिकित्सा | ३७ | ,, |
| ग्रहाविष्टे धूपः | ३८-३९ | १२४३ |
| ग्रहाविष्टे गजपिप्पल्यादिर्योगः | ४० | ,, |
| ग्रहाविष्टे खरपुरीषादितैलम् | ४१-४२ | ,, |
| ग्रहाविष्टे कतिपये योगाः | ४३-४६ | ,, |
| ग्रहाविष्टेऽपराजितोयोगः | ४७-५३ | १२४४ |
| देवग्रहेऽशुचिप्रयोगनिषेधः | ५४-५५ | १२४५ |
| ग्रहाविष्टे हिताहारादिसेवनम् | ५६ | ,, |


## ६१ एकषष्टितमोऽध्यायः ।


| | | |
|---|---|---|
| अपस्मारप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १-२ | ,, |
| अपस्मारनिर्वचनम् | ३ | ,, |
| अपस्मारनिदानम् | ४-६ | १२४६ |
| अपस्मारपूर्वरूपाणि | ७ | ,, |
| अपस्मारस्य सामान्यलक्षणम् | ८-९ | ,, |
| अपस्मारस्य भेदाः | १० | १२४७ |
| वातजादिदोषभेदेन अपस्मारलक्षणानि | ११-१६ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| केषाचनमते अपस्मारस्यागन्तुकत्वम् | १७ | १२४७ |
| स्वमते अपस्मारस्य दोषजत्वकथनम् | १८–२१ | ,, |
| अपस्मारे कतिपये योगाः | २२–३० | १२४८ |
| अपस्मारे सिद्धार्थकं घृतम् | ३१–३३ | १२४९ |
| अपस्मारे पञ्चगव्यं घृतम् | ३४–३७ | १२६० |
| अपस्मारे भार्ग्यादिसुरा | ३८–४० | ,, |
| अपस्मारे सिराव्यधः | ४१ | १२६१ |
| **६२ द्विषष्टितमोऽध्यायः ।** | | |
| उन्मादप्रतिषेधाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| उन्मादनिरुक्तिः | ३ | ,, |
| उन्मादस्य भेदाः | ४–६ | ,, |
| उन्मादस्य पूर्वरूपाणि | ६–७ | १२६२ |
| पञ्चविधोन्मादानां लक्षणानि | ८–१३ | ,, |
| उन्मादस्य सामान्यचिकित्सा | १४–१९ | १२६३ |
| उन्मादे आहारविधानम् | २०–२१ | १२६४ |
| उन्मादे फलघृतम् | २२–२९ | ,, |
| उन्मादे ब्राह्म्यादियोगः | ३०–३२ | १२६६ |
| उन्मादे सिराव्यधनम् | ३३ | ,, |
| उन्मादे चित्तप्रसादनादिकम् | ३४–३९ | १२६६ |
| **६३ त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।** | | |
| रसभेदविकल्पाध्यायोपक्रमः | १–२ | ,, |
| रसभेदप्रयोजनम् | ३ | ,, |
| रसभेदाः | ४ | ,, |
| दोषभेदेन रसभेदोपयोगः | ५ | १२६७ |
| पञ्चदशद्विरससंयोगाः | ६–८ | ,, |
| विंशतिस्त्रिरससंयोगाः | ९–१० | १२६८ |
| पञ्चदशचतुष्करससंयोगाः | ११–१२ | १२६९ |
| षट्पञ्चरससंयोगाः | १३–१४ | १२७० |
| एकः षड्रससंयोगः | १५ | ,, |
| असंयुक्ताः षड्रसाः | १६ | ,, |
| अध्यायोपसंहारः | १७ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| **६४ चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।** | | |
| स्वस्थवृत्ताध्यायोपक्रमः | १–२ | १२६१ |
| स्वस्थलक्षणम् | ३–४ | ,, |
| ऋत्वाश्रयं स्वस्थवृत्तम् | ५ | ,, |
| वर्षाविधिः | ६–१२ | १२६२ |
| शरद्विधिः | १३–२० | ,, |
| महेन्तविधिः | २१–३१ | १२६३ |
| वसन्तविधिः | ३२–३९ | १२६४ |
| ग्रीष्मविधिः | ४०–४५ | १२६५ |
| प्रावृषेण्यविधिः | ४६–५४ | १२६६ |
| आर्तवविधिसेवनफलम् | ५५ | १२६७ |
| द्वादशाशनप्रविभागविधानम् | ५६ | ,, |
| शीताहारविषयः | ५७ | १२६८ |
| उष्णाहारविषयः | ५८ | ,, |
| स्निग्धाहारविषयः | ५९ | ,, |
| रूक्षाहारविषयः | ६० | ,, |
| द्रवशुष्काहारयोर्विषयः | ६१ | ,, |
| एककालोभयकालाहारविषयः | ६२ | ,, |
| औषधयुक्तमात्राहीनाहारविषयः | ६३ | ,, |
| यथर्तुदत्ताहारफलम् | ६४ | ,, |
| दशौषधकालाः | ६५ | १२६९ |
| अभक्तकालनिरूपणम् | ६६–६७ | ,, |
| प्राग्भक्तकालवर्णनम् | ६८–६९ | ,, |
| अधोभक्तमध्यभक्तयोर्लक्षणम् | ७०–७२ | ,, |
| अन्तराभक्तसभक्तवर्णनम् | ७३–७५ | ,, |
| सामुद्गकालनिरूपणम् | ७६–७७ | १२७० |
| मुहुर्मुहुः कालनिरूपणम् | ७८–७९ | ,, |
| ग्रासग्रासान्तरकालनिरूपणम् | ८०–८३ | ,, |
| आहारकालनिरूपणम् | ८४ | १२७१ |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| **६५ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।** | | |
| तन्त्रयुक्त्यध्यायोपक्रमः | १–२ | १२७१ |
| द्वात्रिंशत्तन्त्रयुक्तीनां नामनिर्देशः | ३ | ,, |
| तन्त्रयुक्तीनां प्रयोजनम् | ४–७ | १२७२ |
| अधिकरणलक्षणम् | ८ | ,, |
| योगलक्षणम् | ९ | ,, |
| पदार्थलक्षणम् | १० | १२७३ |
| हेत्वर्थलक्षणम् | ११ | ,, |
| उद्देशलक्षणम् | १२ | ,, |
| निर्देशलक्षणम् | १३ | ,, |
| उपदेशलक्षणम् | १४ | ,, |
| अपदेशलक्षणम् | १५ | ,, |
| प्रदेशलक्षणम् | १६ | ,, |
| अतिदेशलक्षणम् | १७ | १२७४ |
| अपवर्गलक्षणम् | १८ | ,, |
| वाक्यशेषलक्षणम् | १९ | ,, |
| अर्थापत्तिलक्षणम् | २० | ,, |
| विपर्ययलक्षणम् | २१ | ,, |
| प्रसङ्गलक्षणम् | २२ | ,, |
| एकान्तलक्षणम् | २३ | १२७५ |
| अनेकार्थलक्षणम् | २४ | ,, |
| पूर्वपक्षलक्षणम् | २५ | ,, |
| निर्णयलक्षणम् | २६–२७ | ,, |
| अनुमतलक्षणम् | २८ | ,, |
| विधानलक्षणम् | २९ | ,, |
| अनागतावेक्षणलक्षणम् | ३० | ,, |
| अतिक्रान्तावेक्षणलक्षणम् | ३१ | ,, |
| संशयलक्षणम् | ३२ | १२७६ |
| व्याख्यानलक्षणम् | ३३ | ,, |
| स्वसंज्ञालक्षणम् | ३४ | ,, |


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




| विषयाः— | सूत्राङ्काः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|
| निर्वचनलक्षणम् | ३५ | १२७६ |
| निदर्शनलक्षणम् | ३६ | ,, |
| नियोगलक्षणम् | ३७ | ,, |
| समुच्चयलक्षणम् | ३८ | ,, |
| विकल्पलक्षणम् | ३९ | १२७७ |
| ऊह्यलक्षणम् | ४० | ,, |
| अध्यायोपसंहारः | ४१-४३ | ,, |

६६ षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

| | | |
|---|---|---|
| दोषभेदविकल्पाध्यायोपक्रमः | १-३ | १२७८ |
| दोषभेदविषये सुश्रुतस्य प्रश्नः | ४-५ | ,, |
| दोषादीनां देहधारकत्वम् | ६ | ,, |
| तन्त्रोक्तविषयोपसंहारः | ७-८ | ,, |
| द्विषष्टिदोषभेदवर्णनम् | ९-११ | १२७९ |
| द्विषष्टिदोषभेदोपसंहारः | १२-१४ | १२८१ |
| अस्य तन्त्रस्य प्रशंसा | १५-१६ | ,, |
| अस्य तन्त्रस्याध्ययनफलम् | १७ | १२८२ |


इति सुश्रुतसंहिताया विषयानुक्रमः समाप्तः ।

आयुर्वेद के सब स्थान के छपे ग्रन्थों के सुलभ
मूल्य में प्राप्त होने का एकमात्र
विश्वस्त प्राचीन स्थान—

जयकृष्णदास हरिदास गुप्तः
चौखम्बा संस्कृत सीरिज़ आफिस,
बनारस सिटी ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

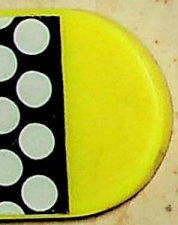

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* श्रीः *

॥ श्रीशः शरणम् ॥

अथ

# सुश्रुतसंहिता

## सूत्रस्थानम् ।

### प्रथमोऽध्यायः ।

[1]अथातो वेदोत्पत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

---

### * सुधा *

आरोग्यं यद्दयया लभते धर्मार्थसाधकं लोकः ।
व्याध्युन्मूलनशक्तः स जयति सर्वाश्रयः सूर्यः ॥ १ ॥
समर्च्य तं मानसमन्दिरे स्वे गुरोः पदद्वन्द्वरजःपवित्रे ।
विलिख्यते मञ्जुलटिप्पनीह सुदाममिश्रेण मया सुधाऽऽख्या ॥ २ ॥

( १ ) अथ शब्दः शिष्यप्रश्नानन्तर्ये, अतःशब्दो हेत्वर्थकः । तथा च यत औपधेनवादिनामधेयाः शिष्याः प्रजाहितार्थमायुर्वेदं गुरुं पृष्टवन्त अतो हेतोरित्यर्थः, नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयादिति मनूक्तेः । अत्र शिष्यप्रश्नानन्तर्ये प्रयुक्तोऽप्यथशब्दो मङ्गलार्थ एव । तदुक्तं शारीरकभाष्ये—"अर्थान्तरप्रयुक्त एव ह्यथशब्दः श्रुत्या मङ्गलप्रयोजनो भवति" । एवञ्चाग्रे प्रत्यध्यायमथशब्दप्रयोगो विघ्नबाहुल्यान्मङ्गलप्रयोजनक इति बोध्यम् । वेदोत्पत्तिमित्यस्य पूर्वमायुःशब्दस्य लोपावबोधनादायुर्वेदोत्पत्तिमित्यर्थो बोद्ध-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अथ खलु भगवन्तममरवरमृषिगणपरिवृतमाश्रमस्थं[2] काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरिमौपधेनववैतरणौरभ्रपौष्कलावतकरवीर्यगोपुररक्षितसुश्रुतप्रभृतय[3] ऊचुः ॥ ३ ॥

---

व्यः । उत्पत्तिः=अभिव्यक्तिः, तेन आयुर्वेदाभिव्यक्तिमधिकृत्य कृतोऽध्यायो वेदोत्पत्तिः, "अधिकृत्य कृते ग्रन्थे" इति छप्रत्ययः, तस्य "लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्" इति लुप्, तं व्याख्यास्यामः; अर्थाद् विशेषाभिव्याप्त्या प्रकथयिष्यामः ।

( १ ) यथोवाच=यादृगुक्तवान् । भगवान्—"उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामगतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति" ॥ धन्वन्तरिः—धनुः शल्यशास्त्रम्, तस्य अन्तं पारम् इयर्ति गच्छतीति धन्वन्तरिः, पृषोदरादित्वात् साधुः । अस्य विष्णोरंशांससम्भवत्वमाह भागवते—"स वै भगवतः साक्षाद् विष्णोरंशांशसम्भवः । धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक् ॥" इति ।

( २ ) आश्रमस्थं = वानप्रस्थाश्रमे स्थितम्, काशिराजं = वाराणसीराजम्, "ङ्याप्पोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्" इति ह्रस्वः । राजर्षेर्धन्वन्तरेरमरवरत्वेऽपि काशिराजत्वं नानुपपन्नम्, अवतारान्तरमापन्नत्वात् । पूर्वं स देवकार्यार्थं स्वर्गमापन्नः, पुनर्मनुष्यकार्यार्थं मर्त्यलोकमापन्नः । तदुक्तं भावप्रकाशे—"अधीत्य चायुषो वेदमिन्द्राद्धन्वन्तरिः पुरा । आगत्य पृथिवीं काश्यां जातो बाहुजवेश्मनि ॥ नाम्ना तु सोऽभवत्ख्यातो दिवोदास इति क्षितौ । बाल एव विरक्तोऽभूच्चचार सुमहत्तपः ॥ यत्नेन महता ब्रह्मा तं काश्यामकरोन्नृपम् । ततो धन्वन्तरिर्लोके काशिराजोऽभिधीयते ॥ हिताय देहिनां स्वीया संहिता विहिताऽमुना । अयं विद्यार्थिनो लोकान् संहितां तामपाठयत् ॥" इति ।

इदमिहावसेयम्— सुश्रुतः पितुर्विश्वामित्रस्याज्ञयाऽऽयुर्वेदाध्ययनाय धन्वन्तरिसमीपं गत्वा तन्मुखाच्छ्रुतायुर्वेदः स्वनाम्ना पुरोविद्यमानमेतत् सुश्रुतग्रन्थरत्नं चकारेत्युक्तं तत्रैव—"पितुर्वचनमाकर्ण्य सुश्रुतः काशिकां गतः । तेन सार्द्धं समध्येतुं मुनिसूनुशतं ययौ ॥·····काशिराजं जयाशीर्भिरभिनन्द्य मुदान्विताः ॥ सुश्रुताद्याः सुसिद्धार्था जग्मुर्गेहं स्वकं स्वकम् ॥ प्रथमं सुश्रुतस्तेषु स्वतन्त्रं कृतवान् स्फुटम् । सुश्रुतस्य सखायोऽपि पृथक् तन्त्राणि तेनिरे ॥ सुश्रुतेन कृतं तन्त्रं सुश्रुतं बहुभिर्यतः । तस्मात्तत्सुश्रुतं नाम्ना विख्यातं क्षितिमण्डले ॥" इति ।

( ३ ) प्रश्नकर्तृतया सुश्रुतस्य मुख्यत्वाद् यद्यपि पूर्वं नामग्रहणमुचितम्, तथाऽपि औपधेनवादीनां देवर्षीणां पूर्वनामग्रहणं राजर्षेर्धन्वन्तरेः पूज्यत्वेन बोध्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भगवन्! [1]शारीरमानसागन्तुव्याधिभिर्विविधवेदनाऽभिघातोपद्रुतान् [2]सनाथानप्यनाथवद्विचेष्टमानान् विक्रोशतश्च मानवानभिसमीक्ष्य मनसि नः पीडा भवति। तेषां सुखैषिणां रोगोपशमार्थमात्मनश्च [3]प्राणयात्राऽर्थं प्रजाहितहेतोरायुर्वेदं श्रोतुमिच्छाम इहोपदिश्यमानम्। अत्रायत्तमैहिकमामुष्मिकञ्च श्रेयः। तद्भगवन्तमुपपन्नाः स्मः शिष्यत्वेनेति ॥ ४ ॥

तानुवाच भगवान्—स्वागतं वः; सर्व एवामीमांस्या [4]अध्याप्याश्च भवन्तो वत्साः! ॥ ५ ॥

इह खल्वायुर्वेदो नामोपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रञ्च कृतवान् स्वयम्भूः [5]। ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्वञ्चालोक्य नराणां भूयोऽष्टधा प्रणीतवान् ॥ ६ ॥

तद्यथा—[6]शल्यं, शालाक्यं, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमार-

---

( १ ) शारीराः = वातादिवैषम्यनिमित्ताः, मानसाः = रजस्तमःसम्भूताः कामादयः, आगन्तवः = व्याघ्रादिकृताः शस्त्रादिकृताश्च। विविधं दुःखमादधतीति व्याधयः। यद्वा, पुरुषस्य येषु यैः येभ्यो वा दुःखं जायते ते व्याधयः, "उपसर्गे घोः किः" इति किप्रत्ययः। शारीरादिव्याधीनां विशेषव्याख्यानमग्रे स्वयमेव करिष्यति।

( २ ) सनाथानपि = मित्रादिसहितानपि। एतेन आयुर्वेदं विना मित्रादयोऽप्यनर्थका इति निष्कर्षः।

( ३ ) प्राणयात्रार्थं = स्वास्थ्यरक्षणार्थम्।

( ४ ) "कृतज्ञाद्रोहिमेधाविशुचिकल्पानसूयकाः। अध्याप्या धर्मतः साधुशक्ताप्तज्ञानवित्तदाः ॥" इति याज्ञवल्क्यः।

( ५ ) अष्टाङ्गसङ्ग्रहे त्वष्टौ विभागा अग्निवेशादिभिः कृता उक्ताः—"आयुर्वेदः श्लोकलक्षेण पूर्वं ब्राह्मस्त्वासीदग्निवेशादयस्तु। कृच्छ्राज्ज्ञेयप्राप्तपाराः सुतन्त्रास्तस्यैकैकं नैकधाऽङ्गानि तेनुः ॥" इति।

( ६ ) शल्यं शल्याहरणप्रधानं शल्यतन्त्रमित्यर्थः। शल्यं न केवलं तृणकाष्ठादि, किन्तु—"अतिप्रवृद्धं मलदोषजं वा शरीरिणां स्थावरजङ्गमानाम्। यत्किञ्चिदाबाधकरं शरीरे तत्सर्वमेव प्रवदन्ति शल्यम् ॥" इत्यपि बोध्यम्। शलाकायाः कर्म शालाक्यम्, तत्प्रधानं तन्त्रं शालाक्यतन्त्रमित्यर्थः। कायोऽग्निर्देहो वा तस्य चिकित्सा। तदुक्तम्—"जाठरः प्राणिनामग्निः काय इत्यभिधीयते"। देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षः पितृनागपिशाच-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भृत्यम्, अगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं, वाजीकरणतन्त्रमिति ॥ ७ ॥

अथास्य प्रत्यङ्गलक्षणसमासः—तत्र, शल्यं नाम विविधतृण-काष्ठपाषाणपांशुलोहलोष्टास्थिबालनखपूयास्रावदुष्टव्रणान्तर्गर्भशल्यो-द्धरणार्थं, यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानव्रणविनिश्चयार्थञ्च ।

शालाक्यं नामोर्ध्वजत्रुगतानां[1] श्रवणनयनवदनघ्राणादिसंश्रि-तानां व्याधीनामुपशमनार्थम् ।

कायचिकित्सा नाम सर्वाङ्गसंश्रितानां व्याधीनां ज्वररक्तपित्त-शोषोन्मादापस्मारकुष्ठमेहातिसारादीनामुपशमनार्थम् ।

भूतविद्या नाम देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागग्रहाद्युप-सृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम् ।

कौमारभृत्यं नाम कुमारभरणधात्रीक्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्त-न्यग्रहसमुत्थानाञ्च व्याधीनामुपशमनार्थम् ।

अगदतन्त्रं नाम सर्पकीटलूतामूषिकादिदष्टविषव्यञ्जनार्थं[2] वि-विधविषसंयोगोपशमनार्थं च ।

रसायनतन्त्रं नाम वयःस्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगापहरणस-मर्थञ्च ।

---

ग्रहात्मकानि भूतानि वेत्ति अनयेति, भूतावेशनिराकरणार्थं विद्येति वा भूतविद्या । कु-मारणां भृतिर्धारणं पोषणं चेति कुमारभृतिः, कुमारभृतेरिदं कौमारभृत्यम् । दुष्टस्त-न्येन शारीराः, दुष्टग्रहेण चागन्तवो व्याधयो बोद्धव्याः । अगदो विषप्रतीकारः, तदर्थं त-न्त्रमगदतन्त्रम् । रसानां रसरक्तादीनामयनमाप्यायनम्, अथवा रसानां रसवीर्यविपाका-दीनामायुरादिकारणानामयनं विशिष्टलाभोपायः रसायनम्; तदर्थं तन्त्रं रसायनतन्त्रम् । स्त्रीषु विषये नरो वाजीव शक्तिं प्राप्नोतीति तद् वाजीकरणम्; वजनं वाजः शुक्रस्य वेगः, स विद्यते येषां ते वाजिनः, अवाजिन वाजिनः क्रियन्तेऽनेनेति वा वाजीकरणम् ; तदर्थं तन्त्रं वाजीकरणतन्त्रम् ।

( १ ) जत्रु=ग्रीवामूलम्, वक्षोंऽससन्धिरित्यन्ये । तस्योर्ध्वमूर्ध्वजत्रु, राजदन्तादिः ।

( २ ) विविधानां विषाणां स्थावरजङ्गमात्मकानां संयोगः सङ्गमः । 'विविधविषसं-योगविषोपहतोपशमनार्थम्' इति पाठे संयोगविषं समानमधुघृतादि ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वाजीकरणतन्त्रं नामाल्पदुष्टक्षीणविशुष्कक्षीणरेतसामाप्यायनप्रसादोपचयजननिमित्तं प्रहर्षजननार्थञ्च ॥ ८ ॥

एवमयमायुर्वेदोऽष्टाङ्ग उपदिश्यते; अत्र कस्मै किमुच्यतामिति॥९॥

त ऊचुः—अस्माकं सर्वेषामेव शल्यज्ञानं मूलं कृत्वोपदिशतु भगवानिति ॥ १० ॥

स उवाचैवमस्विति ॥ ११ ॥

त ऊचुर्भूयोऽपि भगवन्तम्—अस्माकमेकमतीनां मतमभिसमीक्ष्य सुश्रुतो भगवन्तं प्रक्ष्यति, अस्मै चोपदिश्यमानं वयमप्युपधारयिष्यामः ॥ १२ ॥

स होवाचैवमस्विति ॥ १३ ॥

वत्स सुश्रुत ! इह खल्वायुर्वेदप्रयोजनं—व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणञ्च ॥ १४ ॥

आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः[1] ॥ १५ ॥

तस्याङ्गवरमाद्यं प्रत्यक्षागमानुमानोपमानैरविरुद्धमुच्यमानमुपधारय ॥ १६ ॥

एतद्यज्ञाङ्गं प्रथमम्। [2]प्रागभिघातव्रणसंरोहात् यज्ञशिरःसन्धानाच्च। श्रूयते हि, यथा—"रुद्रेण यज्ञस्य शिरश्छिन्नमिति, ततो देवा अश्विनावभिगम्योचुः—भगवन्तौ ! नः श्रेष्ठतमौ युवां भविष्यथः, भवद्भ्यां यज्ञस्य शिरः सन्धातव्यमिति। तावूचतुरेवमस्विति। अथ तयोरर्थे देवा इन्द्रं यज्ञभागेन प्रासादयन्। ताभ्यां यज्ञस्य शिरः संहितम्" इति ॥ १७ ॥

अष्टास्वपि चायुर्वेदतन्त्रेष्वेतदेवाधिकमभिमतम्, आमाशुक्रियाकरणात्, यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानात्, सर्वतन्त्रसामान्याच्च ॥१८॥

---

(१) चरके स्पष्टमाह—"शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारिजीवितम्। नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते" ॥ "यतश्चायुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि वेदयत्यतोऽप्यायुर्वेदः"।

(२) शारीरव्याधीनां प्रागेव देवासुरसङ्ग्रामेऽसुरैः कृताऽभिघातव्रणोत्पत्तिस्तत्संरोहात्प्रतीकारादित्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तदिदं शाश्वतं पुण्यं स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं वृत्तिकरञ्चेति[1] ॥१९॥

[2]ब्रह्मा प्रोवाच ततः प्रजापतिरधिजगे, तस्मादश्विनौ, अश्विभ्यामिन्द्रः, इन्द्रादहं, मया त्विह प्रदेयमर्थिभ्यः प्रजाहितहेतोः ॥२०॥

भवति चात्र ।

अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो[3] जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम् ।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि [4]गां भूय इहोपदेष्टुम् ॥ २१ ॥

अस्मिन् शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते । तस्मिन् [5]क्रिया, सोऽधिष्ठानम् । कस्मात् ? लोकस्य द्वैविध्यात् । लोको हि द्विविधः-स्थावरो जङ्गमश्च । द्विविधात्मक एवाग्नेयः[6] सौम्यश्च, तद्भूयस्त्वात् ; [7]पञ्चात्मको वा । तत्र चतुर्विधो [8]भूतग्रामः ; [9]संस्वेदजरायुजाण्डजोद्भिज्जसंज्ञः । तत्र पुरुषः प्रधानं, तस्योपकरणमन्यत् । तस्मात् पुरुषोऽधिष्ठानम् ॥ २२ ॥

तदुदुःखसंयोगा व्याधय उच्यन्ते ॥ २३ ॥

---

( १ ) अष्टाङ्गसङ्ग्रहे विशेषः-"क्वचिद्धर्मः क्वचिन्मित्रं क्वचिदर्थः क्वचिद्यशः । कर्माभ्यासः क्वचित्चेति चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥" ये तु केवलं वृत्तिबुद्धया चिकित्सन्ति तेषां कृते निन्दामाह चरकः—"कुर्वते ये तु वृत्त्यर्थं चिकित्सा पण्यविक्रयम । ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांसुराशिमुपासते ॥" इति ।

( २ ) गुरुपरम्परां दर्शयति—**ब्रह्मेति** ।

( ३ ) आदिदेवः = विष्णोरशांशसम्भव इत्यर्थः ।

( ४ ) गां = भूमिम्, 'गौ स्वर्गे च बलीवर्दे रश्मौ च कुलिशे पुमान् । स्त्री सौरभेयीदृग्बाणदिग्वाग्भूष्वप्सु भूम्नि च ॥' इति मेदिनी ।

( ५ ) क्रिया = भेषजशस्त्रक्षाराग्निनिर्वर्त्यं स्वास्थ्यवृत्तिकरं च कर्म ।

( ६ ) आग्नेयम् = अग्निभूताधिदैवतस्वभावम्, सौम्यं = सोमभूताधिदैवतस्वभावम्, तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे—"अग्नीषोममयं विश्वम् ।" इति ।

( ७ ) पञ्चात्मकः = पञ्चभूतात्मकः, यदुक्तम्—"सर्वं खल्विदं पाञ्चभौतिकम्" ।

( ८ ) भूतग्रामः = प्राणिसमूहः ।

( ९ ) मह्याः शरीरस्य च संस्वेदादूष्मणो जाताः संस्वेदजाः, जरायोर्गर्भाशयाज्जाताः जरायुजाः, अण्डं प्राण्याधारो वर्तुलं तस्माज्जाता अण्डजाः, भुवमुद्भिद्य जाता उद्भिज्जाः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ते चतुर्विधाः—आगन्तवः, शारीराः, मानसाः, स्वाभाविकाश्चेति ॥ २४ ॥

तेषामागन्तवोऽभिघातनिमित्ताः । शारीरास्त्वन्नपानमूला वातपित्तकफशोणितसन्निपातवैषम्यनिमित्ताः । मानसास्तु क्रोधशोकभयहर्षविषादेर्ष्याऽभ्यसूयादैन्यमात्सर्य्यकामलोभप्रभृतय इच्छाद्वेषभेदैर्भवन्ति । स्वाभाविकास्तु क्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रकृतयः ॥२५॥

त एते मनःशरीराधिष्ठानाः ॥ २६ ॥

तेषां [1]संशोधनसंशमनाहाराचाराः सम्यक्प्रयुक्ता निग्रहहेतवः ॥ २७ ॥

प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसाञ्च, स षट्सु रसेष्वायत्तः, रसाः पुनर्द्रव्याश्रयाः, द्रव्याणि पुनरोषधयः। तास्तु द्विविधाः—स्थावरा जङ्गमाश्च ॥ २८ ॥

तासां स्थावराश्चतुर्विधाः—वनस्पतयः, वृक्षा, वीरुध, ओषधय इति । तासु, अपुष्पाः फलवन्तो वनस्पतयः । पुष्पफलवन्तो वृक्षाः । प्रतानवत्यः स्तम्बिन्यश्च वीरुधः । फलपाकनिष्ठा ओषधय इति ॥२९॥

जङ्गमाः खल्वपि चतुर्विधाः—जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जाः । तत्र पशुमनुष्यव्यालादयो जरायुजाः । खगसर्पसरीसृपप्रभृतयोऽण्डजाः । कृमिकीटपिपीलिकाप्रभृतयः स्वेदजाः । [2]इन्द्रगोपमण्डूकप्रभृतय उद्भिज्जाः ॥ ३० ॥

तत्र स्थावरेभ्यस्त्वक्पत्रपुष्पफलमूलकन्दनिर्यासस्वरसादयः

---

(१) बहिराश्रयत्वेन आभ्यन्तराश्रयत्वेन संशोधनं द्विविधम् । तत्र बहिराश्रयं—शस्त्रक्षाराग्निप्रलेपादयः । आभ्यन्तराश्रयं चतुर्विधम्—वमनं, विरेचनम्, आस्थापनं, शोणितमोक्षणं च । संशमनमपि द्विविधम्—बाह्यमाभ्यन्तरं च । पेयलेह्याद्यभक्ष्यभेदादाहारश्चतुर्विधः । पुनस्त्रिविधः—दोषप्रशमनः, व्याधिप्रशमनः, स्वस्थवृत्तिकरश्च । आचाराः = कायवाङ्मानसं कर्म ।

(२) इन्द्रगोपः = 'वीरबहुटी' इति ख्यातः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रयोजनवन्तः, जङ्गमेभ्यश्चर्म्मनखरोमरुधिरादयः[1] ॥ ३१ ॥

पार्थिवाः सुवर्णरजतमणिमुक्तामनःशिलामृत्कपालादयः ॥ ३२ ॥

कालकृताः प्रवातनिवातातपच्छायाज्योत्स्नातमःशीतोष्णवर्षाऽहोरात्रपक्षमासर्त्वयनादयः संवत्सरविशेषाः ॥ ३३ ॥

त एते स्वभावत एव दोषाणां [2]सञ्चयप्रकोपप्रशमप्रतीकारहेतवः प्रयोजनवन्तश्च ॥ ३४ ॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः ।

शारीराणां विकाराणामेष वर्गश्चतुर्विधः ।
प्रकोपे प्रशमे चैव हेतुरुक्तश्चिकित्सकैः ॥ ३५ ॥
आगन्तवस्तु ये रोगास्ते द्विधा निपतन्ति हि ।
मनस्यन्ये शरीरेऽन्ये तेषान्तु द्विविधा क्रिया ॥ ३६ ॥
शरीरपतितानां तु शारीरवदुपक्रमः ।
मानसानां तु शब्दादिरिष्टो वर्गः सुखावहः ॥ ३७ ॥

एवमेतत् पुरुषो व्याधिरौषधं क्रियाकाल इति चतुष्टयं समासेन व्याख्यातम् । तत्र पुरुषग्रहणात् तत्सम्भवद्रव्यसमूहो भूतादिरुक्तस्तदङ्गप्रत्यङ्गविकल्पाश्च त्वङ्मांसास्थिसिरास्नायुप्रभृतयः । व्याधिग्रहणाद् वातपित्तकफशोणितसन्निपातवैषम्यनिमित्ताः सर्व एव व्याधयो व्याख्याताः । औषधग्रहणाद् द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकानामादेशः। क्रियाग्रहणाच्छेद्यादीनि स्नेहादीनि च कर्माणि व्याख्यातानि । कालग्रहणात् सर्वक्रियाकालानामादेशः ॥ ३८ ॥

---

( १ ) आदिग्रहणाद् मधुगोरसादीनां परिग्रहः । यदुक्तं चरके—"मूलत्वक्सारनिर्यासनालस्वरसपल्लवाः । क्षाराः क्षीरं फलं पुष्पं भस्म तैलानि कण्टकाः ॥ पत्राणि शुङ्गाः कन्दाश्च प्ररोहाश्चौद्भिदो गणः । मधूनि गोरसाः पित्तं वसा मज्जास्रगामिषम् ॥ विण्मूत्रचर्मरेतोऽस्थिस्नायुशृङ्गनखाः खुराः । जङ्गमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशलोमानि रोचनाः ॥" इति ।

( २ ) सञ्चयः = स्थानवृद्धिः, प्रकोपाः = प्रकोपप्रसरस्थानसंश्रयव्यक्तिभेदाः पञ्च, प्रशमः = स्वयमुपशमः, प्रतीकारः = हेतुव्याधिविपरीतं कर्म ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भवति चात्र ।

बीजं चिकित्सितस्यैतत्समासेन प्रकीर्त्तितम् ।
सविंशमध्यायशतमस्य व्याख्या भविष्यति ॥ ३९ ॥

तच्च सविंशमध्यायशतं पञ्चसु स्थानेषु सूत्रनिदानशारीरचिकित्सितकल्पेष्वर्थवशात् संविभज्य, उत्तरे तन्त्रे शेषानर्थान् व्याख्यास्यामः ॥ ४० ॥

भवति चात्र ।

[1]स्वयम्भुवा प्रोक्तमिदं सनातनं पठेद्धि यः काशिपतिप्रकाशितम् ।
स पुण्यकर्मा भुवि पूजितो नृपैरसुत्तये शक्रसलोकतां व्रजेत् ॥ ४१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने वेदोत्पत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

## द्वितीयोऽध्यायः ।

[2]अथातः शिष्योपनयनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
[3]ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानामन्यतममन्वयवयःशीलशौर्य्यशौचाचारविनयशक्तिबलमेधा[4]धृतिस्मृतिमतिप्रतिपत्तियुक्तं तनुजिह्वौष्ठदन्ता-

---

( १ ) एतच्छास्त्राध्ययनप्रशंसामाह—**स्वयम्भुवेति** । ब्रह्मणोपदिष्टस्यैतच्छास्त्रस्य परिशीलनात्पुरुषो भुवि भूमिपैः, स्वर्गे च देवैः पूजितो भवेदित्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहिताया सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां प्रथमोऽध्यायः ।**

---

### द्वितीयोऽध्यायः ।

( २ ) अथशब्दोऽत्र अध्यायानन्तर्यपरः, वेदोत्पत्त्यध्यायानन्तरमित्यर्थः । शिष्यस्योपनयनं दीक्षा तदधिकृत्य कृतोऽध्यायः शिष्योपनयनीयस्तम् । प्रागुपनीता अपि ब्राह्मणादय आयुर्वेदाध्ययनारम्भे पुनरुपनेयाः ।

( ३ ) उपनयनार्हशिष्यगुणसम्पदमभिदधाति—**ब्राह्मणेति** ।

( ४ ) मेधा=धारणावती बुद्धिः, धृतिः=नियमात्मिका बुद्धिः धैर्यं वा, "धृतिर्हि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मृजुवक्त्राक्षिनासं प्रसन्नचित्तवाक्चेष्टं क्लेशसहञ्च भिषक् शिष्यमुपनयेत्। अतो विपरीतगुणं नोपनयेत् ॥ ३ ॥

[1]उपनयनीयं तु ब्राह्मणं प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रेषु प्रशस्तायां दिशि शुचौ समे देशे चतुर्हस्तं चतुरस्रं स्थण्डिलमुपलिप्य गोमयेन दर्भैः संस्तीर्य्य, पुष्पैर्लाजभक्तै रत्नैश्च देवताः पूजयित्वा विप्रान् भिषजश्च, तत्रोल्लिख्याभ्युक्ष्य च दक्षिणतो ब्राह्मणं स्थापयित्वाऽग्निमुपसमाधाय, खदिरपलाशदेवदारुबिल्वानां समिद्भिश्चतुर्णां वा क्षीरवृक्षाणां न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थमधूकानां दधिमधुघृताक्ताभिर्दार्वीहौमिकेन विधिना स्रुवेणाज्याहुतीर्जुहुयात् सप्रणवाभिर्महाव्याहृतिभिः। ततः [2]प्रतिदैवतमृषींश्च स्वाहाकारं कुर्यात्, शिष्यमपि कारयेत् ॥ ४ ॥

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति, राजन्यो द्वयस्य, वैश्यो वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके ॥ ५ ॥

ततोऽग्निं त्रिःपरिणीयाग्निसाक्षिकं शिष्यं ब्रूयात्—[3]कामक्रोधलोभमोहमानाहङ्कारेर्ष्यापारुष्यपैशुन्यानृतालस्यायशस्यानि हित्वा, [4]नीचनखरोम्णा शुचिना कषायवाससा सत्यव्रतब्रह्मचर्य्याभिवादनतत्परेणावश्यं भवितव्यम्। मदनुमतस्थानगमनशयनासनभोजनाध्ययनपरेण भूत्वा, मत्प्रियहितेषु वर्तितव्यम्। अतोऽन्यथा ते वर्त्तमानस्याधर्मो भवति, अफला च विद्या, न च प्राकाश्यं प्राप्नोति ॥६॥

---

नियमात्मिका" इति चरकः। स्मृतिः = दृष्टश्रुतानुभूतस्मरणम्, तदुक्तं चरके—"दृष्टश्रुतानुभूतानां स्मरणात्स्मृतिरुच्यते।" इति। प्रतिपत्तिः = अर्थावबोधप्रागल्भ्यमनुष्ठानं वा। (१) उपनयनविधिं प्रतिपादयति—**उपनयेति**।

(२) प्रतिदैवतमृषींश्च = प्रतिदैवतं प्रतिऋषीनित्यर्थः।

(३) आत्मविषये शिष्यप्रवृत्तिं नियमयन् वक्ति-**कामेति**।

(४) क्लृप्तवान्नीचं नखादि यस्य स नीचनखरोमा तेन। मनुः—"क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


[1]अहं वा त्वयि सम्यग्वर्त्तमाने यद्यन्यथादर्शी स्याम्, ऐनोभाग्भवेयम्, अफलविद्यश्च ॥ ७ ॥

[2]द्विजगुरुदरिद्रमित्रप्रव्रजितोपनतसाध्वनाथाभ्युपगतानां[3] चात्मबान्धवानामिव स्वभैषजैः प्रतिकर्त्तव्यमेवं साधु भवति। [4]व्याधशाकुनिकपतितपापकारिणां च न प्रतिकर्त्तव्यम्। एवं विद्या प्रकाशते मित्रयशोधर्मार्थकामांश्च प्राप्नोति॥ ८ ॥

भवतश्चात्र ।

[5]कृष्णेऽष्टमी तन्निधनेऽहनी द्वे शुक्ले तथाऽप्येवमहर्द्विसन्ध्यम् ।
अकालविद्युत्स्तनयित्नुघोषे स्वतन्त्रराष्ट्रक्षितिपव्यथासु ॥९॥
श्मशानयानाद्यतनाहवेषु महोत्सवौत्पातिकदर्शनेषु ।
नाध्येयमन्येषु च येषु विप्रा नाधीयते नाशुचिना च नित्यम् ॥१०॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने शिष्योपनयनीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

---

(१) शिष्यविषये आत्मप्रवृत्तिं नियमयन् ब्रवीति—**अहमिति** ।

(२) उपचरणीयानाह—**द्विजेति** । (३) अभ्युपगतानाम् = दूरादायातानाम् ।

(४) अनुपचरणीयानाह—**व्याधेति** । व्याधादिष्वर्थलाभे सत्यपि न प्रतिकर्तव्यमित्यर्थः ।

(५) अध्ययननिषिद्धकालमाख्याति—**कृष्ण इति** । तन्निधाने = कृष्णपक्षावसाने, अहनी द्वे = चतुर्दश्यमावास्ये,। स्तनयित्नुः = मेघः, स्तनयतीति विग्रहे 'स्तनगदी देवशब्दे' इति धातोः "स्तनिहृषि" इत्यौणादिक इत्नुच् । स्वतन्त्रराष्ट्रक्षितिपव्यथासु = आत्मीयलोकदेशभूपतिपीडासु, अद्यतनं = वधस्थानम्, महोत्सवाः = शक्रोत्सवादयः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वितीयोऽध्यायः ।**

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## तृतीयोऽध्यायः ।

[1]अथातोऽध्ययनसम्प्रदानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

प्रागभिहितं सविंशमध्यायशतं पञ्चसु स्थानेषु । तत्र सूत्रस्थानमध्यायाः षट्चत्वारिंशत्, षोडशनिदानानि, दश शारीराणि, चत्वारिंशच्चिकित्सितानि, अष्टौ कल्पाः, तदुत्तरं षट्षष्टिः ॥ ३ ॥

[2]वेदोत्पत्तिः शिष्यनयस्तथाऽध्ययनदानिकः ।
प्रभाषणाग्रहरणावृतुचर्य्याऽथ यान्त्रिकः ॥ ४ ॥
शस्त्रावचारणं योग्या विशिखा क्षारकल्पनम् ।
अग्निकर्मजलौकाऽऽख्यावध्यायौ रक्तवर्णनम् ॥ ५ ॥
दोषधातुमलाद्यानां विज्ञानाध्याय एव च ।
कर्णव्यधामपक्वैषावालेपो व्रण्युपासनम् ॥ ६ ॥
हिताहितो व्रणप्रश्नो व्रणास्रावश्च यः पृथक् ।
कृत्याकृत्यविधिर्व्याधिसमुद्देशीय एव च ॥ ७ ॥
विनिश्चयः शस्त्रविधौ प्रनष्टज्ञानिकस्तथा ।
शल्योद्धृतिर्व्रणज्ञानं दूतस्वप्ननिदर्शनम् ॥ ८ ॥
पञ्चेन्द्रियं तथा छाया स्वभावाद्वैकृतं तथा ।
वारणो युक्तसेनीय आतुरक्रमभूमिकौ ॥ ९ ॥
मिश्रकाख्यो द्रव्यगणः संशुद्धौ शमने च यः ।
द्रव्यादीनाञ्च विज्ञानं विशेषो द्रव्यगोऽपरः ॥ १० ॥
रसज्ञानं वमनार्थमध्यायो रेचनाय च ।
द्रवद्रव्यविधिस्तद्वदन्नपानविधिस्तथा ॥ ११ ॥

---

### तृतीयोऽध्यायः ।

( १ ) अधीयत इत्यध्ययनं शास्त्रम्, सम्यक् प्रविभज्य दानं सम्प्रदानम्, तदधिकृत्य कृतोऽध्यायोऽध्ययनसम्प्रदानीयस्तम् ।

( २ ) सूत्रस्थानोक्तषट्चत्वारिंशदध्यायानां नामानि निर्दिशति—**वेदोत्पत्तिरिति**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचनात् सूत्रणाच्चैव सवनाच्चार्थसन्ततेः ।
षट्चत्वारिंशदध्यायं सूत्रस्थानं प्रचक्षते ॥ १२ ॥
[1]वातव्याधिकमर्शांसि साश्मरिश्च भगन्दरः ।
कुष्ठमेहोदरा मूढो विद्रधिः परिसर्पणम् ॥ १३ ॥
ग्रन्थिवृद्धिक्षुद्रशूकभग्नाश्च मुखरोगिकम् ।
हेतुलक्षणनिर्देशान्निदानानीति षोडश ॥ १४ ॥
[2]भूतचिन्ता रजःशुद्धिर्गर्भावक्रान्तिरेव च ।
व्याकरणं च गर्भस्य शरीरस्य च यत्स्मृतम् ॥ १५ ॥
प्रत्येकं मर्मनिर्देशः सिरावर्णनमेव च ।
सिराव्यधो धमनीनां गर्भिण्या व्याकृतिस्तथा ॥ १६ ॥
निर्दिष्टानि दशैतानि शारीराणि महर्षिणा ।
विज्ञानार्थं शरीरस्य भिषजां योगिनामपि ॥ १७ ॥
[3]द्विव्रणीयो व्रणः सद्यो भग्नानां वातरोगिकम् ।
महावातिकमर्शांसि साश्मरिश्च भगन्दरः ॥ १८ ॥
कुष्ठानां महतां चापि मैहिकं पैडकं तथा ।
मधुमेहचिकित्सा च तथा चोदरिणामपि ॥ १९ ॥
मूढगर्भचिकित्सा च विद्रधीनां विसर्पिणाम् ।
ग्रन्थिवृद्ध्युपदंशानां तथा च क्षुद्ररोगिकम् ॥ २० ॥
शूकदोषचिकित्सा च तथा च मुखरोगिणाम् ।
शोफस्यानागतानाञ्च निषेधो मिश्रकं तथा ॥ २१ ॥
वाजीकरं च यत् क्षीणे सर्वाबाधशमोऽपि च ।
मेधाऽऽयुष्करणञ्चापि स्वभावव्याधिवारणम् ॥ २२ ॥
निवृत्तसन्तापकरं कीर्त्तितञ्च रसायनम् ।

---

( १ ) निदानस्थानोक्तषोडशाध्यायानां नामान्यभिदधाति—**वातेति** ।
( २ ) शारीरस्थानोक्तदशाध्यायानां नामान्याख्याति—**भूतेति** ।
( ३ ) चिकित्सास्थानोक्तचत्वारिंशदध्यायानां नामानि परिगणितुमाह—**द्विव्रणीय इति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्नेहोपयौगिकः स्वेदो वमने च विरेचने ॥ २३ ॥
तयोर्व्यापच्चिकित्सा च नेत्रबस्तिविभागिकः ॥
नेत्रबस्तिविपत्सिद्धिस्तथा चोत्तरबस्तिकः ॥ २४ ॥
निरूहक्रमसंज्ञश्च तथैवातुरसंज्ञकः ।
धूमनस्य विधिश्चान्त्यश्चत्वारिंशदिति स्मृताः ॥ २५ ॥
प्रायश्चित्तं प्रशमनं चिकित्सा शान्तिकर्म च ।
पर्यायास्तस्य निर्देशाच्चिकित्सास्थानमुच्यते ॥२६॥
[1]अन्नस्य रक्षा विज्ञानं स्थावरस्येतरस्य च ।
सर्पदष्टविषज्ञानं तस्यैव च चिकित्सितम् ॥ २७ ॥
दुन्दुभेर्मूषिकाणाञ्च कीटानां कल्प एव च ।
अष्टौ कल्पाः समाख्याता विषभेषजकल्पनात् ॥ २८ ॥
अध्यायानां शतं विंशमेवमेतदुदीरितम् ।
[2]अतः परं स्वनाम्नैव तन्त्रमुत्तरमुच्यते ॥ २९ ॥
अधिकृत्य कृतं यस्मात्तन्त्रमेतदुपद्रवान् ।
औपद्रविक इत्येष तस्याग्र्यत्वान्निरुच्यते ॥ ३० ॥
सन्धौ वर्त्मनि शुक्ले च कृष्णे सर्वत्र दृष्टिषु ।
संविज्ञानार्थमध्याया गदानां तु प्रति प्रति ॥ ३१ ॥
चिकित्साप्रविभागीयो वाताभिष्यन्दवारणः ।
पैत्तस्य श्लैष्मिकस्यापि रौधिरस्य तथैव च ॥ ३२ ॥
लेख्यभेद्यनिषेधौ च छेद्यानां वर्त्मदृष्टिषु ।
क्रियाकल्पोऽभिघातश्च कर्णोत्थास्तच्चिकित्सितम् ॥ ३३ ॥
घ्राणोत्थानाञ्च विज्ञानं तद्वदप्रतिषेधनम् ।
प्रतिश्यायनिषेधश्च शिरोगदविवेचनम् ॥ ३४ ॥
चिकित्सा तद्वदानाञ्च शालाक्यं तन्त्रमुच्यते ।
नवग्रहाकृतिज्ञानं स्कन्दस्य च निषेधनम् ॥ ३५ ॥

---

( १ ) कल्पस्थानोक्ताष्टाध्यायानां नामानि निर्दिशति—**अन्नस्येति** ।
( २ ) उत्तरतन्त्रोक्तषट्षष्ट्यध्यायानां नामानि निर्देष्टुमाह—**अत इति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपस्मारशकुन्योश्च रेवत्याश्च पुनः पृथक् ।
पूतनायास्तथाऽन्धाया मण्डिका शीतपूतना ॥ ३६ ॥
नैगमेषचिकित्सा च ग्रहोत्पत्तिः सयोनिजा ।
कौमारतन्त्रमित्येतच्छालाक्येषु च कीर्त्तितम् ॥ ३७ ॥
ज्वरातिसारशोषाणां गुल्महृद्रोगिणामपि ।
पाण्डूनां रक्तपित्तस्य मूर्च्छायाः पानजाश्च ये ॥ ३८ ॥
तृष्णायाश्छर्दिहिक्कानां निषेधः श्वासकासयोः ।
स्वरभेदचिकित्सा च कृम्युदावर्त्तिनोः पृथक् ॥ ३९ ॥
विसूचिकाऽरोचकयोर्मूत्राघातविकृच्छ्रयोः ।
इति कायचिकित्सायाः शेषमत्र प्रकीर्त्तितम् ॥ ४० ॥
अमानुषनिषेधश्च तथाऽऽपस्मारिकोऽपरः ।
उन्मादप्रतिषेधश्च भूतविद्या निरुच्यते ॥ ४१ ॥
रसभेदाः स्वस्थवृत्तिर्युक्तयस्तान्त्रिकाश्च याः ।
दोषभेदा इति ज्ञेया अध्यायास्तन्त्रभूषणाः ॥ ४२ ॥
श्रेष्ठत्वादुत्तरं ह्येतत्तन्त्रमाहुर्महर्षयः ।
बह्वर्थसङ्ग्रहाच्छ्रेष्ठमुत्तरञ्चापि पश्चिमम् ॥ ४३ ॥
शालाक्यतन्त्रं कौमारं चिकित्सा कायिकी च या ।
भूतविद्येति चत्वारि तन्त्रे तूत्तरसंज्ञिते ॥ ४४ ॥
वाजीकरञ्चिकित्सासु रसायनविधिस्तथा ।
विषतन्त्रं पुनः कल्पाः शल्यज्ञानं समन्ततः ॥ ४५ ॥
इत्यष्टाङ्गमिदं तन्त्रमादिदेवप्रकाशितम् ।
विधिनाऽधीत्य युञ्जाना भवन्ति प्राणदा भुवि ॥ ४६ ॥

एतद्ध्यवश्यमध्येयम्, अधीत्य च कर्माप्यवश्यमुपासितव्यम्, उभयज्ञो हि भिषग् राजार्हो भवति ॥ ४७ ॥

भवन्ति चात्र ।

यस्तु केवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः[1] ।

---

(१) अपरिनिष्ठितः=अनिष्पन्नः, अशिक्षित इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स मुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्य भीरुरिवाहवम् ॥ ४८ ॥
यस्तु कर्मसु निष्णातो [1]धार्ष्ट्यच्छास्त्रबहिष्कृतः ।
स सत्सु पूजां नाप्नोति वधं चार्हति राजतः ॥ ४९ ॥
उभावेतावनिपुणावसमर्थौ स्वकर्मणि ।
[2]अर्धवेदधरावेतावेकपक्षाविव द्विजौ ॥ ५० ॥
[3]ओषध्योऽमृतकल्पास्तु शस्त्राशनिविषोपमाः ।
भवन्त्यज्ञैरुपहृतास्तस्मादेतान् विवर्जयेत् ॥ ५१ ॥
स्नेहादिष्वनभिज्ञा ये छेद्यादिषु च कर्मसु ।
ते निहन्ति जनं लोभात् कुवैद्या नृपदोषतः[4] ॥ ५२ ॥
[5]यस्तूभयज्ञो मतिमान् स समर्थोऽर्थसाधने ।
आहवे कर्म निर्वोढुं द्विचक्रः स्यन्दनो यथा ॥ ५३ ॥

अथ वत्स! तदेतदध्येयं यथा तथोपधारय मया प्रोच्यमानम्—अथ शुचये कृतोत्तरासङ्गायाव्याकुलायोपस्थितायाध्ययनकाले शिष्याय यथाशक्ति गुरुरुपदिशेत् पदं पादं श्लोकं वा। [6]ते च पदपादश्लोका भूयः क्रमेणानुसन्धेयाः। एवमेकैकशो[7] घटयेदात्मना चानुपठेत्। अद्रुतमविलम्बितमविशङ्कितमननुनासिकं व्यक्ताक्षरमपीडितवर्णम-

---

(१) धार्ष्ट्यात् = प्रागल्भ्यात्।

(२) अर्धवेदधरौ = अर्धज्ञानधरौ, शास्त्रज्ञः कर्मज्ञो वेत्यर्थः। ज्ञानार्थकोऽत्र वेदशब्दः। (३) यद्यपि 'ओषध्यः फलपाकान्ताः' एतन्परक ओषधिशब्दः, तथाऽप्यत्र चिकित्सोपयोगी समस्तद्रव्यवाचकः। चरकेऽप्येवमेवोक्तम्—"यथा विषं यथा शस्त्रं यथाऽग्निरशनिर्यथा। तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा॥" इति।

(४) राज्ञामयं दोषो यतोऽज्ञातकर्मणि प्रवृत्तान् वैद्यान्न निवर्तयन्तीत्यर्थः।

(५) शास्त्रज्ञकर्मज्ञस्य गुणं सदृष्टान्तं प्रतिपादयति—**यस्त्विति**। मतिमान् = ऊहापोहकुशलः, अर्थसाधने = आरोग्यविधाने।

(६) ते च = शिष्यशक्त्यनतिक्रमेणोपदिष्टाः, पदपादश्लोकाः = पदं पादं श्लोकं वा, भूयः = पुनःपुनः, अनुसन्धेयाः = अनुक्रमेण सन्धानीयाः, अर्थात् पदेन पादः, पादपदाभ्यां श्लोकः सन्धानीय इत्यर्थः।

(७) एकैकशः = एकमेकं प्रतिशिष्यम्, घटयेत् = योजनां विद ध्यात्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


क्ष्विभ्रुवौष्ठहस्तैरनभिनीतं[1] सुसंस्कृतं नात्युच्चैर्नातिनीचैश्च स्वरैः पठेत्। न चान्तरेण[2] कञ्चिद् व्रजेत् तयोरध्यायनयोः ॥ ५४ ॥

भवतश्चात्र ।

शुचिर्गुरुपरो दक्षस्तन्द्रानिद्राविवर्जितः ।
पठन्नेतेन विधिना शिष्यः शास्त्रान्तमाप्नुयात् ॥५५॥
वाक्[3]सौष्ठवेऽर्थविज्ञाने प्रागल्भ्ये कर्मनैपुणे ।
तदभ्यासे[4] च सिद्धौ च यतेताध्ययनान्तगः ॥५६॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थानेऽध्ययनसम्प्रदानीयो नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

---

## चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातः प्रभाषणीय[5]मध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

---

( १ ) अनभिनीतं = नर्तक इवाक्ष्विभ्रुवौष्ठहस्तैर्व्यञ्जकं न कुर्यादित्यर्थः ।

( २ ) अन्तरागमने मनुनाऽनध्याय उक्तः—"पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः । अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहर्निशम् ॥" इति ।

( ३ ) पूर्वोक्तनियमाचरणेन शास्त्रान्तप्राप्तवतः शिष्यस्येतिकर्तव्यतां वक्ति—वागिति ।

( ४ ) तदभ्यासे = कर्माभ्यासे, चकारात् कर्मदर्शनेऽपि । सिद्धौ = आरब्धाभिप्रेतारोग्यसाधनात्मकसिद्धावित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां तृतीयोऽध्यायः ।

---

### चतुर्थोऽध्यायः ।

( ५ ) पठितशास्त्रस्य प्रकर्षेणार्थानुसन्धानपूर्वकं व्याख्यानं प्रभाषणम्, तदधिकृत्य कृतोऽध्यायः प्रभाषणीयस्तम् ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अधिगतमप्यध्ययनमप्रभाषितमर्थतः[1] खरस्य चन्दनभार इव केवलं परिश्रमकरं भवति ॥ ३ ॥

भवति चात्र ।

यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य ।
एवं हि शास्त्राणि बहून्यधीत्य चार्थेषु मूढाः खरवद्वहन्ति ॥४॥

तस्मात् सविंशमध्यायशतमनुपदपादश्लोकमनुवर्णयितव्यमनुश्रोतव्यञ्च[2] । कस्मात् ? सूक्ष्मा[3] हि द्रव्यरसगुणवीर्य्यविपाकदोषधातुमलाशयमर्मसिरास्नायुसन्ध्यस्थिगर्भसम्भवद्रव्यसमूहविभागास्[4][5] तथा प्रनष्टशल्योद्धरणव्रणविनिश्चयभग्नविकल्पाः[6] साध्ययाप्यप्रत्याख्येयता च विकाराणामेवमादयश्चान्ये सहस्रशो विशेषा ये विचिन्त्यमाना विमलविपुलबुद्धेरपि बुद्धिमाकुलीकुर्य्युः किं पुनरल्पबुद्धेः । तस्मादवश्यमनुपदपादश्लोकमनुवर्णयितव्यमनुश्रोतव्यञ्च ॥ ५ ॥

अन्यशास्त्रोपपन्नानां[8] चार्थानामिहोपनीतानामर्थवशात्तेषां तद्वि-

---

( १ ) अयं भावः—गुणयुक्तमपि चन्दनं तद्गुणाननवगच्छतो वाहकस्य गर्दभस्य केवलं व्यथाकरं भवति, तद्वत्पठितमपि शास्त्रमर्थाननुसन्धाय अव्याख्यातं चेदध्ययनकर्तुः केवलं श्रमकरमेव; तस्मादर्थज्ञाने प्रयतनीयमिति ।

( २ ) अनुपदपादश्लोकं = पदं पादं पादं श्लोकं श्लोकमित्यर्थः, अनुशब्दस्य वीप्सार्थकत्वात् । अनुवर्णयितव्यम् = आचार्येण व्याख्यातव्यमित्यर्थः ।

( ३ ) सूक्ष्मा इति हेतुपदस्य सर्वत्राभिसम्बन्धः ।

( ४ ) आशयादीन् शारीरस्थाने स्वयमेव वक्ष्यति । ( ५ ) विभागाः = भेदाः ।

( ६ ) विकल्पाः = भेदाः । विकल्पशब्दस्य प्रनष्टशल्योद्धरणादिभिः सह प्रत्येकं सम्बन्धः, द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वात् ।

( ७ ) अनुपदपादेत्यस्य पुनरभिधानमस्य शास्त्रस्य दुरूहत्वख्यापनार्थम्, अतो न पौनरुक्त्यमिति बोध्यम् ।

( ८ ) उपपन्नानां = निबद्धानाम् । उपनीतानाम् = आनीतानाम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्येभ्यः[1] एव व्याख्यानमनुश्रोतव्यम् । कस्मात् ? न ह्येकस्मिन् शास्त्रे शक्यः सर्वशास्त्राणामवरोधः कर्त्तुम् ॥ ६ ॥

भवन्ति चात्र ।

एकं शास्त्रमधीयानो न विद्याच्छास्त्रनिश्चयम् ।
तस्माद्बहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सकः ॥ ७ ॥
शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चासकृत् ।
यः कर्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः[2] ॥ ८ ॥
औपधेनवमौरभ्रं सौश्रुतं पौष्कलावतम् ।
शेषाणां शल्यतन्त्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत् ॥ ९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने प्रभावणीयो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

## पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातोऽग्रोपहरणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः[3] ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
त्रिविधं कर्म—पूर्वकर्म[4], प्रधानकर्म, पश्चात्कर्मेति । तद्व्याधिं प्रति प्रत्युपदेक्ष्यामः ॥ ३ ॥

---

(१) तद्विद्येभ्यः = व्याकरणादिविद्येभ्यः ।

(२) तस्कराः = वैद्यव्याजेन रोगिभ्यो धनापहरणत्वात् प्राणहरणाच्च चौराः ।

इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्थोऽध्यायः ।

---

### पञ्चमोऽध्यायः ।

(३) कर्मणः अग्रे आदौ यन्त्रादिसम्भारस्योपहरणमुपकल्पनमग्रोपहरणम्, तदधिकृत्य कृतोऽध्यायोऽग्रोपहरणीयस्तम् ।

(४) "लङ्घनादिविरेकान्तं पूर्वकर्म व्रणस्य च । पाटनं रोपणं यच्च प्रधानं कर्म तत्स्मृतम् । बलवर्णाग्निकार्यं तु पश्चात्कर्म समादिशेत्" ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अस्मिन् शास्त्रे शस्त्रकर्मप्राधान्याच्छस्त्रकर्मैव तावत् पूर्वमुपदेक्ष्यामस्तत्सम्भारांश्च ॥ ४ ॥

तच्च शस्त्रकर्माऽष्टविधम्[1] । तद्यथा—छेद्यं भेद्यं, लेख्यं, वेध्यम्, एष्यम्, आहार्यम्, विस्राव्यं, सीव्यमिति ॥ ५ ॥

अतोऽन्यतमं कर्म चिकीर्षता वैद्येन पूर्वमेवोपकल्पयितव्यानि—यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निशलाकाश्रृङ्गजलौकालाबूजाम्बवौष्ठपिचुप्रोतसूत्रपत्रपट्टमधुघृतवसापयस्तैलतर्पणकषायालेपनकल्कव्यजनशीतोष्णोदककटाहादीनि[3]; परिकर्म्मिणश्च स्निग्धाः स्थिरा बलवन्तः ॥ ६ ॥

ततः प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रेषु दध्यक्षतान्नपानरत्नैरग्निं

---

( १ ) चरके तु षड्विधं शस्त्रकर्म निर्दिष्टम्—"पाटनं व्यधनं चैव छेदनं लेखनं तथा। प्रोञ्छनं सीवनं चैव षड्विधं शस्त्रकर्म तत् ॥" इति। एषणाहरणे शस्त्रकर्मणि केचिन्न मन्यन्ते तथाऽपि छित्त्वा भित्त्वाऽप्येषणाहरणे क्रियेते, अतोऽत्र शस्त्रकर्मणि निर्दिष्टे इति डल्हणः। १ छेद्यम्=अशेषतश्छेदनीयमर्शःप्रभृति, द्विधाकरणं भगन्दरप्रभृति वा। २ भेद्यं=विदारणीयं, विद्रध्यादि। ३ लेख्यं=लेखनीयं, रोहिण्यादि। ४ वेध्यं=स्वल्पमुखैः शस्त्रैर्व्यधनीयं, सिरादि। ५ एष्यम्=एषणीयं, नाड्यादि। ६ आहार्यम्=आहरणीयं, शर्करादि। ७ विस्राव्यं=विस्रावणीयं, विद्रधिकुष्ठादि। ८ सीव्यं=सीवनीयम्, उत्कर्तितपद्मकोपादि।

छेद्याद्यष्टविधशब्दानां व्याधिवाचकत्वेऽपि अभेदोपचाराच्छस्त्रकर्मव्यपदेशः। वाग्भटेन एतदतिरिक्तानि उत्पाटनादीनि पञ्चकर्माण्यधिकानि निर्दिष्टानि।

( २ ) छेद्याद्यष्टविधैकतमकर्मारम्भपूर्वमुपकल्पनीयानि द्रव्याण्याह—**यन्त्रेति ।**

( ३ ) जाम्बवौष्ठं = जम्बुफलसदृशमुखाग्रकृष्णपाषाणरचिता वर्तिः, पिचुः = तूलः, 'पिचुस्तूलोऽथ'इत्यमरः। भाषायामस्य 'रूई' 'कपास' इति नाम्ना प्रसिद्धिः। प्रोतः = वस्त्रम्, 'प्रोतो गुम्फितवाससोः' इति हेमचन्द्रः। पट्टः = व्रणादिबन्धनद्रव्यम्, 'पट्टश्चतुष्पथे पीठे राजादेः शासनान्तरे। व्रणादिबन्धने' इति हेमचन्द्रः। कषायः = व्रणादिप्रक्षालनार्थमौषधक्वथितम्।

( ४ ) आदिशब्दात् कवलिका–मृत्कपाल–कलस–स्थाली–शयनासनप्रभृतीनि बोद्धव्यानि। परिकर्मिणः = सर्वकर्मणां कर्तारः परिचारका उपकल्पयितव्याः, न तु केवलं यन्त्रादीन्येवोपकल्पनीयानीति भावः। चरके विशेषः—"उपचारज्ञता दाक्ष्यमनुरागश्च भर्तरि। शौचं चेति चतुष्कोऽयं गुणः परिचरे जने ॥" इति।

( ५ ) ततः = यन्त्रादिसामग्र्युपकल्पनानन्तरम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विप्रान् भिषजश्चार्चयित्वा, कृतबलिमङ्गलस्वस्तिवाचनं लघुभुक्तवन्तं प्राङ्मुखमातुरमुपवेश्य यन्त्रयित्वा[1], प्रत्यङ्मुखो वैद्यो मर्मसिरास्नायुसन्ध्यस्थिधमनीः परिहरन् अनुलोमं शस्त्रं निदध्यादापूयदर्शनात्[2], सकृदेवापहरेच्छस्त्रमाशु च। महत्स्वपि च पाकेषु द्व्यङ्गुलान्तरं त्र्यङ्गुलान्तरं वा शस्त्रपदमुक्तम् ॥ ७ ॥

तत्रायतो विशालः समः सुविभक्तो निराश्रय इति व्रणगुणाः॥८॥

भवतश्चात्र।

आयतश्च विशालश्च सुविभक्तो निराश्रयः।
प्राप्तकालकृतश्चापि व्रणः कर्म्मणि शस्यते ॥ ९ ॥
शौर्यमाशुक्रिया शस्त्रतैक्ष्ण्यमस्वेदवेपथु।

---

( १ ) 'शस्त्रपातपीडया चलनेनान्यत्र शस्त्राघातशङ्कानिवारणार्थं यन्त्रयित्वेति' इति चक्रः।

( २ ) मर्माणि=सप्ताधिकशत( १०७ )भेदवन्ति, सिराः=सप्तशत( ७०० )—भेदयुताः, स्नायवः=नवशत( ९०० )भेदयुक्ताः, सन्धयः=दशाधिकद्विशत( २१० )—भेदवन्तः, अस्थीनि=शतत्रय( ३०० )भेदापन्नानि, धमन्यः=चतुर्विंशतिसंख्याकाः, परिहरन्=परित्यजन्, अनुलोमं=लोमानुकूल्येन, येनैवावर्त्तेन लोमानि सन्ति तेनैवानुकूल्येनेत्यर्थः। प्रतिलोमे तु लोमभिः प्रतिहतधारं शस्त्रं कुण्ठीभवति व्यथां चोत्पादयति। हाराणचन्द्रस्तु—'अनुलोमं=यथाक्रमम्, क्रमस्त्वत्रानन्तरमुपदेष्टव्यशास्त्रापेक्षो विचारापेक्षश्च; तेन यथायोगमिति तात्पर्यार्थः।' इति व्याख्यातवान्। निदध्यात्=प्रवेशयेत्।

( ३ ) कियद्दूरमस्त्रं प्रवेशयेदित्याह—**आपूयेति।**

( ४ ) सुदूरशस्त्रप्रवेशनेऽनर्थसम्भावनयाऽवधिमभिदधाति—**महत्स्विति।**

( ५ ) समः=समपाकः, यतोऽसमपाकः किञ्चित्पक्वः शस्त्रप्रवेशनाय परिणामे न सुखदो भवति।

( ६ ) निराश्रयः=अङ्गुल्याऽवमर्दनेनोन्मूलिताशेषपूयाश्रयः, जिह्वादन्तसन्ध्याद्यप्राप्यदेशमनाश्रितो वा।

( ७ ) शस्त्रकर्मणि वैद्यगुणान् वक्ति—**शौर्यमिति**। आशुक्रिया=लघुहस्तता। लघुहस्ततया व्रणिनश्चिरं कष्टं न भवति। असम्मोहः=आमपक्वव्रणपरिज्ञाने प्राप्तानुष्ठिते चासम्मूढता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


असम्मोहश्च वैद्यस्य शस्त्रकर्म्मणि शस्यते ॥ १० ॥

एकेन वा व्रणेनाशुध्यमाने नान्तरा बुद्ध्याऽवेक्ष्यापरान् व्रणान् कुर्यात् ॥ ११

भवति चात्र ।

यतो यतो गतिं विद्यादुत्सङ्गो यत्र यत्र च ।
तत्र तत्र व्रणं कुर्य्याद् यथा [1]दोषो न तिष्ठति ॥ १२ ॥

तत्र भ्रूगण्डशङ्खललाटाक्षिपुटौष्ठदन्तवेष्टकक्षाकुक्षिवङ्क्षणेषु तिर्यक् छेद उक्तः ॥ १३ ॥

[3]चन्द्रमण्डलवच्छेदान् पाणिपादेषु कारयेत् ।
अर्द्धचन्द्राकृतींश्चापि गुदे मेढ्रे च बुद्धिमान् ॥ १४ ॥

अन्यथा तु [4]सिरास्नायुच्छेदनम्, अतिमात्रं वेदना, चिराद् व्रणसंरोहो, [5]मांसकन्दीप्रादुर्भावश्चेति ॥ १५ ॥

[6]मूढगर्भोदरार्शोऽश्मरीभगन्दरमुखरोगेष्वभुक्तवतः कर्म कुर्वीत ॥ १६ ॥

ततः शस्त्रमवचार्य शीताभिरद्भिरातुरमाश्वास्य, समन्तात् परिपीड्याङ्गुल्या, व्रणमभिमृज्य, प्रक्षाल्य [7]कषायेण, प्रोतेनोदकमादाय, तिलकल्कमधुसर्पिःप्रगाढामौषधयुक्तां [8]नातिस्निग्धां नाति-

---

(१) दोषः = पूयः । (२) दन्तवेष्टः = दन्तमूलमांसम् , वङ्क्षणम् = उरुसन्धिः ।

(३) एतादृशच्छेद एतद्ग्रन्थानुवादिना वाग्भटेन नानूदितः ।

(४) वाग्भटेऽप्युक्तम्—"तिर्यक् छिन्द्याल्ललाटभ्रूदन्तवेष्टकजत्रुणि । कुक्षिकक्षाक्षिकूटौष्ठकपोलगलवङ्क्षणे ॥ अन्यत्र छेदनात्तिर्यक् सिरास्नायुविपाटनम् ।" इति ।

(५) मांसकन्दीप्रादुर्भावः = कन्दाकृतिमांसाङ्कुरोत्पत्तिः ।

(६) शस्त्रकर्मणः प्राग् भोजनप्रतिषेधं दर्शयति—**मूढेति** ।

(७) कषायेण = शोधनकषायेणेत्यर्थः । "शङ्खिन्यङ्कोठसुमनःकरवीरसुवर्चलाः । शोधनानि कषायाणि वर्गश्चारग्वधादिकः" ॥

(८) औषधयुक्तां = मिश्रकोक्ताजगन्धाऽजश्रृङ्ग्यादिव्रणसंशोधनौषधोपेताम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रूक्षां वर्तिं[1] प्रणिदध्यात् । ततः कल्केनाच्छाद्य घनां कवलिकां[2] दत्त्वा वस्त्रपट्टेन बध्नीयात् । वेदनारक्तोघ्नैर्धूपैर्धूपयेद् रक्तोघ्नैश्च मन्त्रै रक्षां कुर्वीत ॥ १७ ॥

ततो गुग्गुलवगुरुसर्जरसवचागौरसर्षपचूर्णैर्लवणनिम्बपत्रविमिश्रैराज्ययुक्तैर्धूपयेत्, आज्यशेषेण चास्य प्राणान् समालभेत ॥१८॥

उदकुम्भाच्चापो गृहीत्वा प्रोक्षयन् रक्षाकर्म कुर्यात् ॥ १९ ॥

तद्वक्ष्यामः—

कृत्यानां प्रतिघातार्थं तथा रक्षोभयस्य च ।
रक्षाकर्म्म करिष्यामि ब्रह्मा तदनुमन्यताम् ॥ २० ॥
नागाः पिशाचा गन्धर्वाः पितरो यक्षराक्षसाः ।
अभिद्रवन्ति ये ये त्वां ब्रह्माद्या घ्नन्तु तान् सदा ॥२१॥
पृथिव्यामन्तरीक्षे च ये चरन्ति निशाचराः ।
दिक्षु वास्तुनिवासाश्च पान्तु त्वां ते नमस्कृताः ॥ २२ ॥
पान्तु त्वां मुनयो ब्राह्म्या दिव्या राजर्षयस्तथा ।
पर्वताश्चैव नद्यश्च सर्वाः सर्वे च सागराः ॥ २३ ॥
अग्नी रक्षतु ते जिह्वां प्राणान् वायुस्तथैव च ।
सोमो व्यानमपानं ते पर्जन्यः परिरक्षतु ॥ २४ ॥
उदानं विद्युतः पान्तु समानं स्तनयित्नवः ।
बलमिन्द्रो बलपतिर्मनुर्मन्ये मतिं तथा ॥ २५ ॥
कामांस्ते पान्तु गन्धर्वाः सत्त्वमिन्द्रोऽभिरक्षतु ।
प्रज्ञां ते वरुणो राजा समुद्रो नाभिमण्डलम् ॥ २६ ॥
चक्षुः सूर्य्यो दिशः श्रोत्रे चन्द्रमाः पातु ते मनः ।
नक्षत्राणि सदा रूपं छायां पान्तु निशास्तव ॥२७॥

---

(१) वर्त्तिं = विकेशिकाम् । "सपूतिमांसं सोत्सङ्गं सगर्तिं पूयगर्भिणम् । व्रणं विशोधयेच्छीघ्रं स्थिता ह्यन्तर्विकेशिका ॥" इति वाग्भटः । प्रणिदध्यात् = व्रणान्तः प्रवेशयेत् । (२) कवलिकां = व्रणबन्धनार्थमौदुम्बरादिवल्कलम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रेतस्त्वाप्याययन्त्वापो रोमाण्योषधयस्तथा ।
आकाशं खानि ते पातु देहं तव वसुन्धरा ॥ २८ ॥
वैश्वानरः शिरः पातु विष्णुस्तव पराक्रमम् ।
पौरुषं पुरुषश्रेष्ठो ब्रह्माऽऽत्मानं ध्रुवौ भ्रुवौ ॥ २९ ॥
एता देहे विशेषेण तव नित्या हि देवताः ।
एतास्त्वां सततं पान्तु दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥ ३० ॥
स्वस्ति ते भगवान् ब्रह्मा स्वस्ति देवाश्च कुर्वताम् ।
स्वस्ति ते चन्द्रसूर्यौ च स्वस्ति नारदपर्वतौ ।
स्वस्त्यग्निश्चैव वायुश्च स्वस्ति देवाः सहेन्द्रगाः ॥ ३१ ॥
पितामहकृता रक्षा स्वस्त्यायुर्वर्धतां तव ।
ईतयस्ते प्रशाम्यन्तु सदा भव गतव्यथः ॥ ३२ ॥

इति स्वाहा ।

एतैर्वेदात्मकैर्मन्त्रैः कृत्याव्याधिविनाशनैः ।
मयैवं कृतरक्षस्त्वं दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥ ३३ ॥

ततः कृतरक्षमातुरमागारं प्रवेश्य आचारिकमादिशेत् ॥ ३४ ॥

ततस्तृतीयेऽहनि विमुच्यैवमेव बध्नीयाद्व्रणपट्टेन, न चैनं त्वरमाणोऽपरेद्युर्मोक्षयेत् ॥ ३५ ॥

द्वितीयदिवसपरिमोक्षणाद्विग्रथितो व्रणश्चिरादुपसंरोहति, तीव्ररुजश्च भवति ॥ ३६ ॥

अत ऊर्द्ध्वं दोषकालबलादीनवेक्ष्य कषायालेपनबन्धाहाराचारान् विदध्यात् ॥ ३७ ॥

---

( १ ) "अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः खगाः ।
स्वचक्रं परचक्रं च सप्तैता ईतयः स्मृताः" ॥

( २ ) आचारिकं = द्विविधमाहारविहारलक्षणम्, एवं त्वयाऽऽहारविहारौ कर्तव्यावित्युपदिशेदित्यर्थः । ( ३ ) अपरेद्युः = द्वितीयदिने ।

( ४ ) अत ऊर्ध्वं = तृतीयदिनानन्तरम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


न चैनं त्वरमाणः सान्तर्दोषं रोपयेत् । स ह्यल्पेनाप्यपचारेणाभ्यन्तरमुत्सङ्गं कृत्वा भूयोऽपि विकरोति ॥ ३८ ॥

भवन्ति चात्र ।

तस्मादन्तर्बहिश्चैव सुशुद्धं रोपयेद् व्रणम् ।
रूढेऽप्यजीर्णव्यायामव्यवायादीन् विवर्जयेत् ।
हर्षं क्रोधं भयञ्चापि यावत् स्थैर्य्योपसम्भवात् ॥ ३९ ॥
हेमन्ते शिशिरे चैव वसन्ते चापि मोक्षयेत् ।
[1]त्र्यहाद् द्व्यहाच्छरद्ग्रीष्मवर्षास्वपि च बुद्धिमान् ॥४०॥
[2]अतिपातिषु रोगेषु नेच्छेद्विधिमिमं भिषक् ।
प्रदीप्तागारवच्छीघ्रं तत्र कुर्य्यात् प्रतिक्रियाम् ॥ ४१ ॥
या वेदना शस्त्रनिपातजाता तीव्रा शरीरं प्रदुनोति जन्तोः ।
घृतेन सा शान्तिमुपैति सिक्ता कोष्णेन यष्टीमधुकान्वितेन[3] ॥४२॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थानेऽग्रोपहरणीयो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

## षष्ठोऽध्यायः ।

अथात ऋतुचर्य्यमध्यायं[4] व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

---

( १ ) त्र्यहात्=हेमन्तादिषु शीतत्वेन शीघ्रपाकभयाभावात् त्र्यहान्मोक्षयेदित्यर्थः । द्व्यहात्=शरदादिषूष्णत्वेन शीघ्रपाकसम्भावनया द्व्यहान्मोक्षयेदित्यर्थः ।

( २ ) अतिपातिषु=आशुकारिषु ।

( ३ ) यष्टीमधुकं=भाषायां 'मुलहठी' 'जेठीमधु' इति नाम्ना प्रसिद्धम् । 'मधुकं क्लीतकं यष्टिमधुकं मधुयष्टिका' इत्यमराद् ह्रस्वेकारान्तघटितोऽप्ययम् ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चमोऽध्यायः ।**

---

**षष्ठोऽध्यायः ।**

( ४ ) ऋतुषु शिशिरादिषु वर्षाऽऽदिषु वा षट्सु चर्या चरणं वर्तनम्, तदधिकृत्य कृतोऽध्याय ऋतुचर्यस्तम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कालो हि नाम भगवान् स्वयम्भुरनादिमध्यनिधनोऽत्रं[1] रसव्यापत्सम्पत्ती जीवितमरणे च मनुष्याणामायत्ते । स सूक्ष्मामपि कलां न[2] लीयत इति कालः । सङ्कलयति कालयति वा भूतानीति काल[3]: ॥ ३ ॥

तस्य संवत्सरात्मनो[4] भगवानादित्यो गतिविशेषेण निमेषकाष्ठाकलामुहूर्त्ताहोरात्रपक्षमासर्त्वयनसंवत्सरयुगप्रविभागं करोति॥४॥

तत्र[5] लघ्वक्षरोच्चारणमात्रोऽक्षिनिमेषः, पञ्चदशाऽक्षिनिमेषाः काष्ठा, त्रिंशत्काष्ठाः कला, विंशतिकलो मुहूर्तः कलादशभागश्च, त्रिंशन्मुहूर्त्तमहोरात्रं, पञ्चदशाहोरात्राणि पक्षः । स च द्विविधः—

कृष्णश्च, तौ मासः ॥ ५ ॥

तत्र माघादयो द्वादश मासाः संवत्सरः, द्विमासिकमृतुं कृत्वा षड्ऋतवो भवन्ति । ते शिशिर[6]वसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्ताः, तेषां तपस्तपस्यौ शिशिरः, मधुमाधवौ वसन्तः, शुचिशुक्रौ ग्रीष्मः, नभोनभस्यौ वर्षाः, इषोर्जौ शरत्, सहःसहस्यौ हेमन्त इति ॥ ६ ॥

---

( १ ) अत्र = काले, रसव्यापत्सम्पत्ती = व्यापद् विपन्नता, सम्पत्तिः सम्पन्नतेति व्यापत्सम्पत्ती; रसस्य मधुरादेर्व्यापत्सम्पत्तीति षष्ठीतत्पुरुषः । जीवितमरणे इत्यत्रापि चकाराद् अत्रशब्दमनुवर्त्य योजनीयम् ।

( २ ) न लीयते = न श्लिष्टो भवति, गतिमत्त्वादित्यर्थः ।

( ३ ) श्रीमद्भागवते—"कालो बलीयान् बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ।
प्रजाः कालयते क्रीडन् पशुपालो यथा पशून् ॥" इति ।

( ४ ) संवत्सर आत्मा यस्य स तस्य संवत्सरात्मनः संवत्सरस्वरूपस्य, तस्य = कालस्य, इति सम्बन्धः । आदित्य इति चन्द्रस्याप्युपलक्षणम् । गतिविशेषेण = स्वोदयास्तगमनेन ।

( ५ ) पूर्वोक्तान् संवत्सरांशान् निमेषादीन् विवृणोति—**तत्रेति** ।

( ६ ) शिशिरादिषड्ऋतूनां विभागो रसबलनिष्पत्त्यर्थं प्रदर्शितः । तथा चोक्तं चरके संवत्सरादिविभागप्रदर्शनावसरे—"तत्र रविर्भाभिराददानो जगतः स्नेहं वायवस्तीव्ररूक्षाश्चोपशोषयन्तः शिशिरवसन्तग्रीष्मेषृतुषु यथाक्रमं रौक्ष्यमुत्पादयन्तो रूक्षान् रसान् तिक्तकषायकटुकाँश्चाभिवर्धयन्तो नृणां दौर्बल्यमावहन्ति" इत्यादिना ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


त एते शीतोष्णवर्षलक्षणाश्चन्द्रादित्ययोः कालविभागकरत्वादयने द्वे भवतो दक्षिणमुत्तरञ्च। तयोर्दक्षिणं वर्षाशरद्धेमन्ताः, तेषु भगवानाप्यायते सोमः, अम्ललवणमधुराश्च रसा बलवन्तो भवन्ति, उत्तरोत्तरञ्च सर्वप्राणिनां बलमभिवर्द्धते। उत्तरञ्च शिशिरवसन्तग्रीष्माः, तेषु भगवानाप्यायतेऽर्कः, तिक्तकषायकटुकाश्च रसा बलवन्तो भवन्ति, उत्तरोत्तरञ्च सर्वप्राणिनां बलमपहीयते ॥ ७ ॥

भवति चात्र।

शीतांशुः क्लेदयत्युर्वीं विवस्वान् शोषयत्यपि।
तावुभावपि संश्रित्य [२]वायुः पालयति प्रजाः ॥ ८ ॥

अथ खल्वयने द्वे युगपत् संवत्सरो भवति। ते तु [३]पञ्च युगमिति संज्ञां लभन्ते। स एष निमेषादिर्युगपर्यन्तः कालश्चक्रवत् परिवर्तमानः कालचक्रमुच्यत इत्येके ॥ ९ ॥

इह तु वर्षाशरद्धेमन्तग्रीष्मप्रावृषः षड् ऋतवो भवन्ति दोषोपचयप्रकोपोपशमनिमित्तम्। ते तु भाद्रपदाद्येन द्विमासिकेन व्याख्याताः। तद्यथा—भाद्रपदाश्वयुजौ वर्षाः, कार्तिकमार्गशीर्षौ शरत्, पौषमाघौ हेमन्तः, फाल्गुनचैत्रौ वसन्तः, वैशाखज्येष्ठौ ग्रीष्मः, आषाढश्रावणौ प्रावृडिति ॥ १० ॥

तत्र, वर्षास्वोषधयस्तरुण्योऽल्पवीर्या आपश्चाप्रसन्नाः क्षिति-

---

(१) शीतोष्णवर्षलक्षणाः=अतिशीतोष्णवर्षलक्षणाख्यः, मन्दशीतोष्णवर्षलक्षणाख्य इति षड्ऋतवः। तत्र शैत्यं वातकृतम्, औष्ण्यमादित्यकृतं, वर्षश्चन्द्रकृतः। केचित् शीतवर्षौ चन्द्रकृताविति मन्यन्ते।

(२) चरके—"योगवाहः परं वायुः संयोगादुभयार्थकृत्। दाहकृत्तेजसा युक्तः शीतकृत् सोमसंश्रयात्॥" इति।

(३) पञ्चसंवत्सराः युगमिति संज्ञां लभन्ते। युगस्य पारिभाषिकीयं संज्ञा। "कालचक्रं तु वर्षाणां पञ्चानां सम्प्रवर्तते। युगसंज्ञा च दैवज्ञैस्तत्र सम्परिकीर्तिता"॥ वस्तुतः कृतादयश्चत्वारो युगविशेषा इति बोध्यम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मलप्रायाः। ता उपयुज्यमाना नभसि मेघावृते[1] जलप्रक्लिन्नायां भूमौ क्लिन्नदेहानां प्राणिनां शीतवातविष्टम्भिताग्नीनां[2] विदह्यन्ते, विदाहात् पित्तसञ्चयमापादयन्ति। स[3] सञ्चयः शरदि प्रविरलमेघे वियत्युपशुष्यति पङ्केऽर्ककिरणप्रविलायितः पैत्तिकान् व्याधीन् जनयति ॥ ११ ॥

ता एवौषधयः कालपरिणामात् परिणतवीर्या[4] बलवत्यो हेमन्ते भवन्त्यापश्च प्रसन्नाः स्निग्धा अत्यर्थं गुर्व्यश्च। ता उपयुज्यमाना मन्दकिरणत्वाद्भानोः सतुषार[5]पवनोपस्तम्भितदेहानां देहिनामविदग्धाः स्नेहाच्छैत्याद्गौरवादुपलेपाच्च श्लेष्मसञ्चयमापादयन्ति। स सञ्चयो वसन्तेऽर्करश्मिप्रविलायित ईषत्स्तब्धदेहानां देहिनां श्लैष्मिकान् व्याधीन् जनयति।

ता एवौषधयो निदाघे निस्सारा[6] रूक्षा अतिमात्रं लघ्व्यो भवन्त्यापश्च, ता उपयुज्यमानाः सूर्य्यप्रतापोपशोषितदेहानां देहिनां रौक्ष्याल्लघुत्वाद्वैशद्याच्च वायोः सञ्चयमापादयन्ति। स सञ्चयः प्रावृषि चात्यर्थं जलोपक्लिन्नायां भूमौ क्लिन्नदेहानां प्राणिनां शीतवातवर्षेरितो वातिकान् व्याधीन् जनयति। एवमेष दोषाणां सञ्चयप्रकोपहेतुरुक्तः ॥ १२ ॥

---

(१) मेघावतते = मेघाच्छन्ने।

(२) शीतेन कुपितो वातः शीतवातस्तेन विष्टम्भितो मन्दवेगीकृतोऽग्निर्येषां ते तेषाम्। यतः शारीरेण शीतवातेन बहिर्लोमकूपावरोधनादुष्मणोऽनिर्गमनं भवति, अतोऽन्तरग्नेर्बलं वर्द्धते इति तात्पर्यम्। विदह्यन्ते = अम्लपाकमुपयान्ति।

(३) सः = वर्षाकालोपचितः, सञ्चयः = संहतिरूपा वृद्धिः।

(४) परिणतवीर्याः = प्राप्तशक्तिकाः।

(५) तुषारेण सहितः सतुषारः, स चासौ पवनस्तेनोपस्तम्भितो देहो येषां ते तथोक्तानां हिमार्द्रवायुनाऽऽप्यायितशरीराणां प्राणिनामित्यर्थः। यतो हिमसंहतिवशात्तदानीं सञ्चय एव, न प्रकोप इति भावः। (६) निस्साराः = जलीयांशरहिताः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

तत्र वर्षाहेमन्तग्रीष्मेषु[1] सञ्चितानां दोषाणां शरद्वसन्तप्रावृट्सु च[2] प्रकुपितानां निर्हरणं कर्तव्यम् ॥ १३ ॥

तत्र पैत्तिकानां व्याधीनामुपशमो हेमन्ते, श्लैष्मिकाणां निदाघे, वातिकानां शरदि, स्वभावत एव । त एते सञ्चयप्रकोपोपशमा व्याख्याताः ॥ १४ ॥

तत्र[3], पूर्वाह्णे वसन्तस्य लिङ्गं, मध्याह्ने ग्रीष्मस्य, अपराह्णे प्रावृषः, प्रदोषे वार्षिकं, शारदमर्धरात्रे, प्रत्यूषसि हैमन्तमुपलक्षयेत् । एवमहोरात्रमपि वर्षमिव शीतोष्णवर्षलक्षणं दोषोपचयप्रकोपोपशमैर्जानीयात्[4] ॥ १५ ॥

तत्र, अव्यापन्नेष्वृतुष्वव्यापन्ना ओषधयो[5] भवन्त्यापश्च, ता उपयुज्यमानाः प्राणायुर्बलवीर्यौजस्कर्य्यो[6] भवन्ति ॥ १६ ॥

---

( १ ) अत्र पुनः—'वर्षाहेमन्तग्रीष्मेषु' इत्यादिपाठो नियमार्थम् । शरदादिष्वेव प्रकुपितानां वमनादिनाऽऽकर्षणं यथा स्याद् ग्रीष्मादौ माभूदिति । 'ग्रीष्मादिषु हि हेतुबाहुल्याद् वमनादयो विधीयमाना व्यापदं मरणं वोत्पादयन्ति' ।

( २ ) संशोधनसाध्येष्वतिपातिषु रोगेषु ग्रीष्मादिष्वपि तद्विधानज्ञापनार्थं चकारः । निर्हरणं=वमनादिनाऽऽकर्षणम् । तच्च साधारणतया त्रिमासान्तरितं कृत्वा कर्तव्यम् । उक्तं च—"ग्रीष्मादिसञ्चितान् दोषान् त्रिमासान्तरितान् हरेत्" इति । वाग्भटः—"श्रावणे कार्तिके चैत्रे मासि साधारणे क्रमात् । ग्रीष्मवर्षाहिमचितान् वाय्वादीनाशु निर्हरेत्॥" इति।

( ३ ) सांवत्सरिकदोषोपचयप्रकोपोपशमनविधानस्य दिनेऽप्यतिदेशार्थं निर्दिशति—**तत्रेति** । तत्र=अहोरात्रे ।

( ४ ) दोषोपचयप्रकोपोपशमैः अहोरात्रमपि शीतोष्णवर्षलक्षणं वर्षमिव जानीयादिति सम्बन्धः । ( ५ ) ओषधयः=चतुर्विधाहारद्रव्याणि ।

( ६ ) प्राणाः=अग्नीषोमादयः, आयुः=शरीरेन्द्रियसत्त्वात्ममनसां संयोगः । ओजः=हृदयाश्रितसप्तधातुपरः स्नेहः । उक्तञ्च—"हृदि तिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत्सपीतकम् । ओजः शरीरे सञ्जातं तन्नाशान्नाशमृच्छति ॥" "ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् ।" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


[1]तेषां पुनर्व्यापदोऽदृष्टकारिताः, [2]शीतोष्णवातवर्षाणि खलु विपरीतान्यौषधीर्व्यापादयन्त्यापश्च ॥ १७ ॥

[3]तासामुपयोगाद्विविधरोगप्रादुर्भावो [4]मरको वा भवेदिति ॥ १८ ॥

तत्र, अव्यापन्नानामोषधीनामपाश्चोपयोगः ॥ १९ ॥

[5]कदाचिदव्यापन्नेष्वप्यृतुषु [6]कृत्याऽभिशापरक्षःक्रोधाधर्मैरुपध्वस्यन्ते[7] जनपदाः । विषौषधिपुष्पगन्धेन वायुनोपनीतेनाक्रम्यते यो देशस्तत्र दोषप्रकृत्यविशेषेण कासश्वासवमथुप्रतिश्यायशिरोरुग्ज्वरैरुपतप्यन्ते, ग्रहनक्षत्रचरितैर्वा, गृहदारशयनासनयानवाहनमणिरत्नोपकरणगर्हितलक्षणनिमित्तप्रादुर्भावैर्वा ॥ २० ॥

तत्र, स्थानपरित्यागशान्तिकर्म्मप्रायश्चित्त[10]मङ्गलजपहोमोपहारेज्याञ्जलिनमस्कारतपोनियमदयादानदीक्षाऽभ्युप[11]गमदेवताब्राह्मण-

---

( १ ) तेषाम्=ऋतूनाम्, व्यापदः=शीतोष्णवातवर्षाणां वैपरीत्यम्, अदृष्टकारिताः=अदृष्टेन सकलजनसाधारणाधर्मेण प्रयोजककर्त्रा कारिताः कर्तुं प्रयोजिताः ।

( २ ) स्वतन्त्रकर्तारमाह—**शीतोष्णेति ।**

( ३ ) व्यापादयन्ति=विरुद्धतां प्रापयन्ति ।

( ४ ) व्यापदापन्नानामोषधीनामपां चोपयोगादनिष्टं प्रदर्शयति—**तासामिति ।**

( ५ ) मरकः=जनपदध्वंसकारको रोगः, महामारीति यावत् ।

( ६ ) व्यापन्नर्तुभ्योऽपरैः कारणैर्व्याधिं सम्भावयन्नभिधत्ते—**कदाचिदिति ।**

( ७ ) कृत्या=आभिचारिकराक्षसीविशेषः । "तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः" इति मनुः । अभिशापः=ब्रह्मर्षिगुरुसिद्धादिदत्तशापः । अभिचारस्तु मन्त्रादिभिरेकपुरुषव्यापादकः ।

( ८ ) उपध्वस्यन्ते=उपधूयन्ते । विषौषधीनां कल्पस्थानोक्त–वेत्रकादम्बवल्लीकरम्भमहाकरम्भाणां पुष्पगन्धेन ।

( ९ ) ऋतुप्रकोपस्याधर्मकारित्वात्तत्र शान्त्यादिकं वक्ति—**तत्रेति ।**

( १० ) प्रायश्चित्तं=प्राक्तनकर्मोपशमाय सविधिचान्द्रायणाद्याचरणम् । "प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते । तपोनिश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥" इति वा । मङ्गलं=प्रशस्तौषधमणिधारणात्मकम्, जपः=गायत्र्यादिजपः, विष्णुसहस्रनामजपो वा । तदुक्तं चरके–"विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम् । स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वानपोहति" ॥ ( ११ ) अभ्युपगमः=गुरुवाक्याद्यङ्गीकारः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


गुरुपरैर्भवितव्यम् । एवं साधु भवति ॥ २१ ॥

अत ऊर्द्ध्वमव्यापन्नानामृतूनां लक्षणान्युपदेक्ष्यामः ॥ २२ ॥

वायुर्वात्युत्तरः[1] शीतो रजोधूमाकुला दिशः ।
छन्नस्तुषारैः सविता हिमानद्धा जलाशयाः ॥ २३ ॥
दर्पिता ध्वाङ्क्षखड्गाङ्गमहिषोरःकुक्कुराः[2] ।
रोध्रप्रियङ्गुपुन्नागाः[3] पुष्पिता हिमसाह्वये ॥ २४ ॥
शिशिरे[4] शीतमधिकं वातवृष्ट्याकुला[5] दिशः ।
शेषं हेमन्तवत् सर्वं विज्ञेयं लक्षणं बुधैः ॥ २५ ॥
सिद्धविद्याधरवधूचरणालक्तकाङ्किते[6] ।
मलये चन्दनलतापरिष्वङ्गाधिवासिते ॥ २६ ॥
वाति कामिजनानन्दजननोऽनङ्गदीपनः ।
दम्पत्योर्मानभिदुरो वसन्ते दक्षिणोऽनिलः ॥ २७ ॥
दिशो वसन्ते विमलाः काननैरुपशोभिताः ।
किंशुकाम्भोजबकुलचूताशोकादिपुष्पितैः ॥ २८ ॥
कोकिलाषट्पदगणैरुपगीता मनोहराः ।
दक्षिणानिलसंवीताः[7] सुमुखाः पल्लवोज्ज्वलाः ॥ २९ ॥

---

( १ ) अधुना अव्यापन्नर्त्तुलक्षणान्युपपादयितुमादौ हेमन्तलक्षणमाख्याति—**वायुरिति** । हेमन्ते उत्तरो वायुर्वाति, उत्तरदिशो जातत्वादिति भावः ।

( २ ) उरभ्रः = मेषः ।

( ३ ) पुन्नागः = पद्मकेसरः, नागकेसरो वा । 'पुन्नागे पुरुषस्तुङ्गः केसरो देवबल्लभः ।' इत्यमरः । ( ४ ) प्रसन्नशिशिरर्त्तुलक्षणमाचष्टे—**शिशिर इति** ।

( ५ ) वातवृष्ट्याकुलाः = वातेन मिश्रिता वृष्टिः ( उत्तरपदलोपः ) तया आकुला व्याप्तास्तथोक्ताः । ( ६ ) अव्यापन्नवसन्तर्त्तुलक्षणमभिदधाति—**सिद्धेति** ।

( ७ ) दक्षिणानिलसंवीताः = दक्षिणश्चासावनिलो वायुस्तेन संवीता आवृता दिशः । वसन्ते मलयाचलस्थितचन्दनसौरभ्ययुक्तो दक्षिणो वातो वाति, दक्षिणदिशो जातत्वादिति भावः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]ग्रीष्मे तीक्ष्णांशुरादित्यो मारुतो नैर्ऋतोऽसुखः[2]। [3]
भूस्तप्ता सरितस्तन्व्यो दिशः प्रज्वलिता इव ॥ ३० ॥
भ्रान्तचक्राह्वयुगलाः पयःपानाकुला मृगाः।
ध्वस्तवीरुत्तृणलता विपर्णाङ्कितपादपाः ॥ ३१ ॥
[4]प्रावृष्यम्बरमानद्धं पश्चिमानिलकर्षितैः।
अम्बुदैर्विद्युदुद्द्योतप्रस्नुतैस्तुमुलस्वनैः ॥ ३२ ॥
कोमलश्यामशष्पाढ्या शक्रगोपोज्ज्वला मही।
कदम्बनीपकुटजसर्जकेतकिभूषिता ॥ ३३ ॥
[5]तत्र वर्षासु नद्योऽम्भश्छन्नोखाततटद्रुमाः।
वाप्यः प्रोत्फुल्लकुमुदनीलोत्पलविराजिताः ॥ ३४ ॥
भूरव्यक्तस्थलश्वभ्रा बहुशस्योपशोभिता।
नातिगर्जत्स्रवन्मेघनिरुद्धार्कग्रहं नभः ॥ ३५ ॥
[6]बभ्रुरुष्णः शरद्यर्कः श्वेताभ्रविमलं नभः।
तथा सरांस्यम्बुरुहैर्भान्ति हंसांसघट्टितैः ॥ ३६ ॥
पङ्कशुष्कद्रुमाकीर्णा निम्नोन्नतसमेषु भूः।
बाणसप्ताह्वबन्धूककाशासनविराजिता ॥ ३७ ॥
✓ [7]स्वगुणैरतियुक्तेषु [8]विपरीतेषु वा पुनः।
[9]विषमेष्वपि वा दोषाः कुप्यन्त्यृतुषु देहिनाम् ॥३८॥

---

(१) प्रसन्नग्रीष्मर्तुलक्षणं प्रतिपादयति—**ग्रीष्म इति।**

(२) ग्रीष्मे निर्ऋतिर्दिशो जातात्वान्नैर्ऋतो वातो वाति, स च सुखप्रदो न भवतीति भावः। (३) जलाशयान्वेषितयेत्यर्थः।

(४) प्रसन्नप्रावृडृतुलक्षणं वक्ति—**प्रावृषीति।**

(५) प्रसन्नवर्षर्तुलक्षणमाचष्टे—**तत्रेति।**

(६) अव्यापन्नशरल्लक्षणं दर्शयति—**बभ्रुरिति।**

(७) स्वगुणैः=ऋतूनां शीतोष्णवर्षलक्षणैः।

(८) विपरीतेषु=मन्दशीतादियुक्तेष्वृतुषु। शीते उष्णम्, उष्णे शीतं, वर्षास्ववृष्टिरिति ऋतुवैपरीत्यं वा।

(९) वैषम्यं च=अनुलोमविलोमाभ्यामन्यर्तुचिह्नमन्यस्मिन्। एतेन ऋतूनां स्वगुणातिशययोगेन षट्, वैपरीत्ये षट्, वैषम्ये च षट् (एवं १८) व्यापद उक्ता भवन्ति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हरेद्वसन्ते श्लेष्माणं पित्तं शरदि निर्हरेत् ।
वर्षासु शमयेद्वायुं प्राग् विकारसमुच्छ्रयात् ॥ ३९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने ऋतुचर्यानाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

## सप्तमोऽध्यायः ।

अथातो यन्त्रविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

यन्त्रशतमेकोत्तरम्, अत्र हस्तमेव प्रधानतमं यन्त्राणामवगच्छ । किं कारणम् ? यस्माद्धस्तादृते यन्त्राणामप्रवृत्तिरेव, तदधीनत्वाद् यन्त्रकर्मणाम् ॥ ३ ॥

तत्र, मनःशरीराबाधकराणि शल्यानि, तेषामाहरणोपायो यन्त्राणि ॥ ४ ॥

तानि षट्प्रकाराणि, तद्यथा—स्वस्तिकयन्त्राणि, संदंशयन्त्राणि, तालयन्त्राणि, नाडीयन्त्राणि, शलाकायन्त्राणि, उपयन्त्राणि चेति ॥ ५ ॥

---

१ तत्तदृतुषु शमनीयं निर्दिशति—**हरेदिति** । २ अत्र वर्षाशब्देन 'प्रथमः प्रवृष्टः कालः प्रावृट्' गृह्यते । वर्षाण्विति वर्षन्ति मेघा अत्रेति व्युत्पत्त्या वर्षाशब्देन वर्षाप्रावृषोरभिधानेऽपि प्रावृडेवात्राभिधीयते, तस्यामेव निर्हरणविधानादिति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षष्ठोऽध्यायः ।**

---

### सप्तमोऽध्यायः ।

३ यन्त्रं शल्यानामाहरणोपायभूतं स्वस्तिकादि, तस्य विधिः कल्पनमाकारादिभिर्विधानं यस्मिन् स तथोक्तम् । ४ यन्त्राणि संख्यातुमाख्याति—**यन्त्रशतमिति** । एकाधिकशतमित्यर्थः । अत्र शतशब्दोऽसंख्येयवाची वा । उक्तं च वृद्धवाग्भटेन—"स्वबुद्ध्या च विकल्प्य विविधानि यन्त्रशस्त्राणि तत्कर्माणि च उपकल्पयेत् । अतः कर्मवशात्तेषामियत्ताऽवधारणमशक्यम् ।" इति । तस्मादनेकानि यन्त्राणि भवन्तीति बोध्यम् । ५ तदधीनत्वात् = हस्तायत्तत्वात् । ६ यन्त्राणां षड्विधभेदमाह—**तद्यथेति** ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तत्र [1]चतुर्विंशतिः स्वस्तिकयन्त्राणि, द्वे संदंशयन्त्रे, द्वे एव तालयन्त्रे, विंशतिर्नाड्यः, अष्टाविंशतिः शलाकाः, पञ्चविंशतिरुपयन्त्राणि ॥ ६ ॥

तानि प्रायशो [2]लौहानि भवन्ति, [3]तत्प्रतिरूपकाणि वा [4]तदलाभे ॥ ७ ॥

तत्र, नानाप्रकाराणां [5]व्यालानां [6]मृगपक्षिणां [7]मुखैर्मुखानि यन्त्राणां प्रायशः सदृशानि । तस्मात् तत्सारूप्यादागमादुपदेशादन्ययन्त्रदर्शनाद् [8]युक्तितश्च कारयेत् ॥ ८ ॥

[9]समाहितानि यन्त्राणि [10]खरश्लक्ष्णमुखानि च ।
सुदृढानि सुरूपाणि सुग्रहाणि च कारयेत् ॥ ९ ॥

[11]तत्र स्वस्तिकयन्त्राणि—अष्टादशाङ्गुलप्रमाणानि, सिंहव्याघ्र-

---

१ संख्येयमियत्तावोधनार्थं नास्ति, यतः शल्याकृतिमवलोक्य अधिकान्यपि स्वस्तिकादियन्त्राणि कर्तुं शक्यन्ते । अत एव एतच्छास्त्रमनुवदता वाग्भटेन संदंशयन्त्रविषये 'कीलबद्धविमुक्ताग्रौ' इत्यादिना चत्वारि संदंशयन्त्राण्युपदिष्टानि । 'द्वे एव तालयन्त्रे' इति सूत्रे एवशब्दोऽपि तालयन्त्रातिरिक्तयन्त्रेषु निर्दिष्टसंख्यां व्यभिचारयति, यस्मादेवकारं विनाऽपि 'द्वे तालयन्त्रे' इत्यभिमतार्थस्य लाभात् । अत्र हाराणचन्द्रः—'अर्शो यन्त्रे द्वे, स्त्रीपुंसावधिकृत्य; बस्तियन्त्राणि प्राधान्येन चत्वारि, षडष्टदशद्वादशाङ्गुलप्रमाणभेदात् ; उत्तरबस्तियन्त्राणि पुंसां द्वे, मेढ्रायामचतुर्दशाङ्गुलत्वभेदात् ; स्त्रीणां द्वे, मूत्रापत्यमार्गोपयोगित्वभेदात्, कन्यायां चैकमिति पञ्च; दकोदरयन्त्रमेकं ; धूमयन्त्राणि पञ्च , तत्र त्रीणि प्रायोगिकस्नैहिकवैरेचनिकभेदात् ; एकं कासघ्नवामनीययोरविशेषात् ; एकं च व्रणधूपनार्थम् ; निरुद्धप्रकशयन्त्रम् अलाबुयन्त्रं शृङ्गयन्त्रं चैकैकमिति विंशतिर्नाडीयन्त्राणि' । २ यद्यपि लोहपदेन सुवर्णादयः पञ्च गृह्यन्ते, तथाऽप्यत्र लोहोऽयस्तत्कृतानि लौहानि । ३ तत्प्रतिरूपकाणि=लोहप्रतिरूपकाणि सुवर्णादीनि भवन्तीत्यर्थः । ४ तदलाभे=लोहाभावे ॥ ५ व्यालानां=हिंस्राणाम्, व्यालानामिति मृगाणामेव विशेषणम् । ६ मृगशब्दोऽत्र पशुवाचकः; तेन सिंहादिपशुपक्षिणामित्यर्थः । 'मृगः पशौ कुरङ्गे च' इति विश्वः । ७ मुखैः सदृशानि यन्त्राणां प्रायशो मुखानि भवन्तीति योजना । ८ युक्तितः=प्रयोजनतः, पुरुषवयोऽवयवादिविचारतश्चेति तात्पर्यम् । ९ समाहितानि=न्यूनातिरिक्तमानरहितानीत्यर्थः । १० खरश्लक्ष्णमुखानि=तीक्ष्णमसृणमुखानि । 'खरो रक्षोऽन्तरे तीक्ष्णे' इति हेमचन्द्रः । 'श्लक्ष्णः स्नेहं विनाऽपि स्यात्कठिनोऽपि हि चिक्कणम्' इति बोध्यम् । ११ स्वस्तिकयन्त्राणां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वृकतरक्ष्वृक्षद्वीपिमार्जारशृगालमृगैर्वारुककाककङ्ककुररचासभासशश-घात्युलूकचिल्लिश्येनगृध्रकौञ्चभृङ्गराजाञ्जलिकर्णावभञ्जननन्दिमुखमु-खानि, मसूराकृतिभिः[1] कीलैरवबद्धानि, मूलेऽङ्कुशवदावृत्तवा-रङ्गाणि[2], अस्थिविदष्टशल्योद्धरणार्थमुपदिश्यन्ते ॥ १० ॥

सनिग्रहोऽनिग्रहश्च संदंशौ[3] षोडशाङ्गुलौ भवतः । तौ त्वङ्मां-ससिरास्नायुगतशल्योद्धरणार्थमुपदिश्येते ॥ ११ ॥

तालयन्त्रे-द्वादशाङ्गुले मत्स्यतालुवदेकतालद्वितालके[4], कर्णना-सानाडीशल्यानामाहरणार्थम् ॥ १२ ॥

नाडीयन्त्राणि[5]-अप्यनेकप्रकाराणि, अनेकप्रयोजनानि, एक-[6]

---

परिमाणाकृतिप्रयोजनानि दर्शयति—**तत्रेति** । कण्ठे कीलावबद्धत्वादुद्घाटनेन स्वस्ति-काकाराणि चतुरवयवानि दृश्यन्ते, तानि स्वस्तिकयन्त्राणि । एवमवशिष्टानामपि यन्त्राणां नामभिरेवाकारा ऊह्याः, 'तेषां नामभिरेवाकृतयः प्रायेण व्याख्याताः' इति सूत्रणात् । तत्र सिंहमुखादिमृगैर्वारुकमुखपर्यन्तानां नव यन्त्राणां दृश्यशल्याहरणार्थं प्रयोजनम्, काकमुखादिनन्दीमुखान्तानां गूढशल्याहरणार्थं प्रयोजनम् । तदुक्तं सङ्ग्रहे—"तेषां सिंहव्याघ्रभुजङ्गमकरादिमुखानि दृश्यवारङ्गेषु शल्येषु प्रयोजयेत्; इत-रेषु तु यथायोगं व्रणाकारानुरोधेन कङ्ककाककुररादिमुखानि" । १ वाग्भटः—"मसू-राकारपर्यन्तैः कण्ठे बद्धानि कीलकैः" इति । २ आवृत्तवारङ्गाणि = वक्रग्रहणस्थ-लानि। ३ द्विविधसंदंशयन्त्रे एकः सनिग्रहो नापितस्येव, द्वितीयोऽनिग्रहः स्वर्णकार-स्येवेति बोध्यम् । अष्टाङ्गसङ्ग्रहे त्वनयोर्नामान्तरं दृश्यते—"सनिबन्धनो निर्निबन्धनश्च संदंशौ द्वौ षोडशाङ्गुलौ भवतः" इति । इतोऽधिकमपि संदंशद्वयं तेनैव प्रदर्शितम्—"तथाऽन्यः संदंशः षडङ्गुलोऽर्धाङ्गुलविस्तृतो वक्रद्विबाहुरङ्गुष्ठाङ्गुलिप्रान्तसमागमाकृतिः। सूक्ष्मशल्याद्विपद्मव्रणाधिमांसहरणे । तद्वच्च मुचुण्डी, सा तु ऋजुरूक्ष्णा सूक्ष्मदन्ता" इत्यादिना । ४ तालयन्त्रद्वयस्याकृतिमभिदधाति—**मत्स्येति** । मत्स्यस्य तालुतुल्ये, "तेनातुल्यं क्रिया चेद्वतिः" इति वति सति मत्स्यतालुवत् । अत्र तालुपदस्य मृदुत्वे तात्पर्यम् । एकतालद्वितालमित्यत्र तालपदस्य किञ्चिद्वर्तयुक्तप्रदेशे तात्पर्यम् । एवं सति एकतालमित्यस्य मत्स्यतालुवद् मृदुमुखकिञ्चिद्वर्तयुतैकप्रदेशमेकतालम्, द्वितालमित्यस्य मत्स्यतालुवद् मृदुमुखकिञ्चिद्वर्तयुतद्विप्रदेशं द्वितालमित्यर्थः । परिणाहः कर्णादिप्रवे-शार्हः । ५ विंशतिर्नाडीयन्त्राणि विवृणोति—**नाडीयन्त्रेति** । ६ रक्ताहरणार्थान्य-लाबुभगन्दरार्शोयन्त्रादीनि एकतोमुखानि । बस्त्युत्तरबस्तिधूमयन्त्रादीनि उभयतोमु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तोमुखानि, उभयतोमुखानि च। तानि [1]स्रोतोगतशल्योद्धरणार्थं, रोगदर्शनार्थम्, आचूषणार्थं, क्रियासौकर्य्यार्थञ्चेति। तानि स्रोतोद्वारपरिणाहानि यथायोगदीर्घाणि च। तत्र भगन्दरार्शो [2]व्रणवस्त्युत्तरबस्तिमूत्रवृद्धिदकोदरधूमनिरुद्धप्रकशसन्निरुद्धगुदयन्त्राण्यलाबूशृङ्गयन्त्राणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥ १३ ॥

---

खानि। १ सुश्रुते शारीरनवमाध्यायान्ते—"मूलात् खादन्तरं देहे प्रसृतं त्वभिवाहि यत्। स्रोतस्तदिति विज्ञेयं सिराधमनिवर्जितम्॥" इति। २ रोगदर्शनार्थम्=आभ्यन्तररोगदर्शनायेत्यर्थः। यथा योनिव्रणेक्षणयन्त्रम्, अर्शोयन्त्रम्, अस्थिगतवायोर्दुष्टरक्तस्तन्ययोश्चूषणाय। ३ वृद्धवाग्भटोक्तं व्रणबस्तियन्त्रलक्षणम्—"नाडीव्रणप्रक्षालनाभ्यञ्जनयन्त्रे षडङ्गुले बस्तियन्त्राकारे मुखतोऽर्कर्णिके मूलमुखयोरङ्गुष्ठकलायप्रवेशस्रोतसी मूले निबद्धमृदुचर्मणी च" इति। ४ तत्र एकच्छिद्रद्विच्छिद्रभेदेन द्वे भगन्दरयन्त्रे, द्वे चार्शोयन्त्रे, व्रणयन्त्रमेकम्, वयोभेदेन षडष्टदशद्वादशाङ्गुलभेदाद् बस्तियन्त्रं चतुर्विधम्, स्त्रीणां पुंसां चोत्तरबस्तियन्त्रं द्विविधम्, मूत्रवृद्धिस्रावणार्थमेकम्, दकोदर( जलोदर )स्रावणार्थमेकम्, वैरेचनिकस्नैहिकप्रायोगिकभेदेन धूमयन्त्राणि त्रीणि, निरुद्धप्रकशयन्त्रमेकम्, अलाबूयन्त्रमेकम्, शृङ्गयन्त्रमेकम्, इत्येवं विंशतिर्नाडीयन्त्राणि परिगणनीयानि।

सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्यानुसारेण तु—अर्शोयन्त्रे द्वे, बस्तियन्त्राणि षडष्टदशद्वादशाङ्गुलप्रमाणभेदाच्चत्वारि, उत्तरबस्तियन्त्राणि पुंसां द्वे स्त्रीणां द्वे कन्यानां चैकमित्येवं पञ्च, दकोदरयन्त्रमेकम्, प्रायोगिकस्नैहिकवैरेचनिककासघ्नव्रणधूपनभेदाद् धूमयन्त्राणि पञ्च, निरुद्धप्रकशयन्त्रमेकम्, अलाबूयन्त्रमेकम्, शृङ्गयन्त्रमेकमित्येवं विंशतिः परिगणनीयानि। एषां मानादीनि सङ्ग्रहादावलोक्यानि। **अलाबूयन्त्रं**—"स्याद् द्वादशाङ्गुलोऽलाबुर्नाहे त्वष्टादशाङ्गुलः। चतुरङ्गुलवृत्तास्यो दीर्घोऽन्तःश्लेष्मरक्तहृत्" ॥ **शृङ्गयन्त्रं**—"त्र्यङ्गुलास्यं भवेच्छृङ्गं चूषणेऽष्टादशाङ्गुलम्। अग्रे सिद्धार्थकच्छिद्रं सुनद्धं चूचुकाकृति" ॥ रक्तचूषणार्थं वाग्भटे **घटीयन्त्र**मप्युपदिष्टम्। तत्रान्तर्दीपं प्रज्वाल्य चूषणं भवति। मदीयदेशे नापितस्त्रियो घटीयन्त्रस्योपयोगं कुर्वन्ति। घटीयन्त्रद्वारा रक्तचूषणं बहुवारं दृष्टं मया। एतदतिरिक्तान्यपि नाडीयन्त्राणि वाग्भटे दर्शितानि। तत्र **कण्ठशल्यावलोकिनीनाडीयन्त्रं**—"दशाङ्गुलार्धनाहान्तः कण्ठशल्यावलोकने। नाडी पञ्चमुखच्छिद्रा चतुष्कर्णस्य सङ्ग्रहे। वारङ्गस्य द्विकर्णस्य त्रिच्छिद्रा तत्प्रमाणतः" ॥ **शल्यनिर्घातिनीनाडीयन्त्रं**—"पद्मकर्णिकया मूर्ध्नि सदृशी द्वादशाङ्गुला। चतुर्थसुषिरा नाडी शल्यनिर्घातिनी मता" ॥ **अङ्गुलित्राणकं**—"अङ्गुलित्राणकं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शलाकायन्त्राणि--अपि नानाप्रकाराणि, नानाप्रयोजनानि, यथा-योगपरिणाहदीर्घाणि च । तेषां गण्डूपदसपफणशरपुङ्खबडिशमुखे द्वे द्वे, एषणव्यूहनचालनाहरणार्थमुपदिश्येते । मसूरदलमात्रमुखे द्वे किञ्चिदानताग्रे स्रोतोगतशल्योद्धरणार्थम् ; षट् कार्पासकृतोष्णीषाणि प्रमार्जनक्रियासु । त्रीणि दर्व्याकृतीनि खल्लमुखानि, क्षारौषधप्रणिधानार्थम् । त्रीण्यन्यानि जाम्बवबदनानि, त्रीण्यङ्कुशवदनानि, षडेवाग्निकर्मस्वभिप्रेतानि । नासाऽर्बुदहरणार्थमेकं कोलास्थिदलमात्रमुखं खल्लतीक्ष्णोष्ठम् । अञ्जनार्थमेकं कलाय-परिमण्डलमुभयतो मुकुलाग्रम् । मूत्रमार्गविशोधनार्थमेकं मालती-पुष्पवृन्ताग्रप्रमाणपरिमण्डलमिति ॥ १४ ॥

---

दान्तं वार्क्षं वा चतुरङ्गुलम् । द्विच्छिद्रं गोस्तनाकारं तद्वक्त्रविवृतौ सुखम्" ॥ **शमीयन्त्रं**—"शम्याख्यं तादृगच्छिद्रं यन्त्रमर्शःप्रपीडनम्" । **घ्राणार्बुदार्शोयन्त्रं**—"घ्राणार्बुदार्शसामेकच्छिद्रा नाड्यङ्गुलद्वया । प्रदेशिनीपरीणाहा स्याद् भगन्दरयन्त्रवत्" ॥ **योन्यैलक्षणयन्त्रं**—"योनिव्रणेक्षणं मध्ये सुषिरं षोडशाङ्गुलम् । मुद्राबद्धं चतुर्भिस्तमम्भोजमुकुलाननम्" ॥ अस्य वर्णनं वाग्भटार्थकौमुद्यां द्रष्टव्यमिति ।

१ अष्टाविंशतिः शलाकायन्त्राणि निर्दिशति—**शलाकेति** । २ 'बडिशं मत्स्यवेधनम्' इत्यमरः । भाषायां 'वंसी' इति । मुखशब्दस्य गण्डूपदादिभिः सह प्रत्येकमभिसम्बन्धः, द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वात् । वाग्भटः—"तेषामेषणकर्मणी । उभे गण्डूपदमुखे" "व्यूहनेऽहिफणावक्त्रौ द्वौ दश द्वादशाङ्गुलौ । चालने शरपुङ्खास्यौ, आहार्ये बडिशाकृती ॥" इति । ३ वाग्भटः—"स्रोतोभ्यः शल्यहारिणी । मसूरदलवक्त्रे द्वे स्यातामष्टनवाङ्गुले ।" इति । ४ कार्पासकृतोष्णीषाणि = तूलवेष्टिताग्रभागानीत्यर्थः । वाग्भटे—"कार्पासविहितोष्णीषाः शलाकाः षट् प्रमार्जने । पायावासन्नदूरार्थे द्वे दश द्वादशाङ्गुले ॥ द्वे षट् सप्ताङ्गुले घ्राणे द्वे कर्णेऽष्टनवाङ्गुले ।" इति । ५ खल्लमौषधमर्दनपात्रमिव मुखं येषां तानि खल्लमुखानि । सङ्ग्रहे—"क्षारविषौषधप्रणिधानाय च दर्व्यस्तिस्रोऽष्टाङ्गुला दर्व्याकाराः कनिष्ठिकानामिकामध्यमाङ्गुलिनखपरिमाणनिम्नमुखास्तथाऽञ्जलिसंस्थानाः" इति । ६ जाम्बववदनानि = जम्बुफलमुखाकाराणीत्यर्थः । वाग्भटे—"शलाका जाम्बवौष्ठानां क्षारेऽग्नौ च पृथक् त्रयम् । युञ्ज्यात्स्थूलाणुदीर्घाणाम्" इति । ७ वदरास्थिमज्जविदलप्रमाणमित्यर्थः । "कोलास्थिदलतुल्यास्या नासाऽर्शोर्बददाहकृत्" । ८ कलायपरिमण्डलं = कलायमात्रं परितो मण्डलम् । ९ वाग्भटे—"नतोऽग्रे शङ्कुना तुल्यो गर्भशङ्कुरिति स्मृतः । अष्टाङ्गुलायतस्तेन मूढ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयन्त्राणि—अपि रज्जुवेणिकापट्टचर्मान्तवल्कललतावस्त्राष्ठीलोऽश्मसमुद्गरपाणिपादतलाङ्गुलिजिह्वादन्तनखमुखबालाश्वकटकशाखाष्ठीवनप्रवाहणहर्षायस्कान्तमयानि क्षाराग्निभेषजानि चेति ॥१५॥

एतानि देहे सर्वस्मिन् देहस्यावयवे तथा ।
सन्धौ कोष्ठे धमन्याञ्च यथायोगं प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

यन्त्रकर्माणि तु—निर्घातनपूरणबन्धनव्यूहनवर्तनचालनविवर्तनविवरणपीडनमार्गविशोधनविकर्षणाहरणाञ्छनोन्नमनविनमनभञ्जनोन्मथनाचूषणैषणदारणर्जूकरणप्रक्षालनप्रधमनप्रमार्जनानि चतुर्विंशतिः ॥ १७ ॥

स्वबुद्ध्या चापि विभजेद् यन्त्रकर्माणि बुद्धिमान् ।
असंख्येयविकल्पत्वाच्छल्यानामिति निश्चयः ॥ १८ ॥

तत्र अतिस्थूलम्, असारम्, अतिदीर्घम्, अतिह्रस्वम्, अग्राहि, विषमग्राहि, वक्रं, शिथिलम्, अत्युन्नतं, मृदुकीलं, मृदुमुखं, मृदुपाशमिति द्वादश यन्त्रदोषाः ॥ १९ ॥

एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तं यन्त्रमष्टादशाङ्गुलम् ।
प्रशस्तं भिषजा ज्ञेयं तद्धि कर्मसु योजयेत् ॥ २० ॥

---

गर्भं हरेत् स्त्रियाः" ॥ "कर्णशोधनमश्वत्थपत्रप्रान्तं सुवाननम्" । "शलाकामन्त्रवर्धमनि । मध्योर्ध्ववृत्तदण्डां च मूले चार्धेन्दुसन्निभाम्" । इति क्रमशो गर्भशङ्कुः, कर्णशोधनम्, अन्त्रवर्धमेति शलाकात्रयमधिकं दृश्यते ।

१ उपयन्त्राणि निर्दिशति—**उपेति** । एषामुपयोगो गुरुमुखादवगन्तव्यः । २ अष्ठीला=वर्तुलाकारपाषाणखण्ड इत्यर्थः । ३ अश्वकटकः=घोटककविकाचूडकम् । ४ अयस्कान्तः=आकर्षकद्रावकचुम्बकभ्रामकभेदाच्चतुर्विधः पाषाणविशेषः । ५ निर्घातनम्=इतस्ततो विचाल्य निर्हरणम् । ६ उमन्थनं=प्रनष्टस्य शल्यस्य मार्गे शलाकादिभिरालोडनम्, आचूषणं=मुखेन शृङ्गादिना वातादिदूषितरक्तादेश्चूषणम् । एषणं=गण्डूपदमुखेन गम्भीरपाकादौ पूयाद्यन्वेषणम् । ७ यन्त्राणां सङ्ख्याऽनियमं दर्शयति—**स्वबुद्ध्येति** । ८ प्रायेण स्वस्तिकयन्त्रदोषानाख्याति—**तत्रेति** । ९ विषमग्राहि=एकदेशग्राहि, एकतो गृह्णात्यन्यतो नेतीन्दुः । १० मृदुमुखं=श-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दृश्यं[1] सिंहमुखाद्यैस्तु गूढं[2] कङ्कमुखादिभिः ।
निर्हरेत्तु शनैः शल्यं शास्त्रयुक्तिव्यपेक्षया ॥ २१ ॥
निवर्तते[3] साध्ववगाहते च शल्यं निगृह्योद्धरते[4] च यस्मात् ।
यन्त्रेष्वतः कङ्कमुखं प्रधानं स्थानेषु[5] सर्वेष्वधिकारि चैव ॥ २२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने यन्त्रविधिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

## अष्टमोऽध्यायः ।

अथातः शस्त्रावचारणीयमध्यायं[6] व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
विंशतिः शस्त्राणि, तद्यथा—मण्डलाग्र[7]करपत्रवृद्धिपत्रनखशस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकार्द्धधारसूचीकुशपत्राटीमुखशरारिमुखान्तर्मुखत्रिकूर्चककुठारिकाव्रीहिमुखारावेतसपत्रकबडिशदन्तशङ्खेषण्य इति ॥ ३ ॥

---

ल्यपीडनासहमुखमित्यर्थः । १ स्वस्तिकयन्त्राणां विषयभेदं प्रदर्शयन्नभिधत्ते—**दृश्यमिति ।** २ गूढम्=अदृश्यम् । ३ कङ्कमुखस्य प्राधान्यं दर्शयति—**निवर्तत इति** निवर्तते=निःसरति । अवगाहते=प्रविशति । ४ उद्धरते=आकर्षति । ५ स्थानेषु=सन्धिधमन्यादिषु ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तमोऽध्यायः ।**

---

### अष्टमोऽध्यायः ।

६ शस्त्राणामवचारणमुपयोगो विद्यते यस्मिन्नध्याये स शस्त्रावचारणीयस्तम् । ७ **मण्डलाग्रं**=मण्डलमिव अग्रं यस्य तच्छेदनलेखनादिकं शस्त्रम् । वृत्तमुखक्षुराकारप्रभेदेन द्विविधम् । तदुक्तम्—"यदग्रे मण्डलं वृत्तं क्षुरसंस्थानमेव च । मण्डलाग्रस्य जानीयात्प्रमाणं तु षडङ्गुलम्" ॥ वाग्भटे तु—"मण्डलाग्रं फले तेषां तर्जन्यन्तर्नखाकृति । लेखने छेदने योज्यं पोथकीशुण्डिकादिषु ॥" इत्युक्तम् । **करपत्रं**=करवत् पत्रं यस्य तच्छेदनलेखनकर्मप्रयोज्यक्रकचास्त्रम् । वाग्भटस्तु—"छेदेऽस्थ्नां करपत्रं तु खरधारं दशाङ्गुलम् । विस्तारे द्व्यङ्गुलं सूक्ष्मदन्तं सुत्सरुबन्धनम्" ॥ अन्येषां मते एतद्यन्त्रं करपत्राकारं द्वादशाङ्गुलात्मकम् । भानुमत्यां भोजोक्तिर्यथा—"द्वादशाङ्गुलदीर्घं स्यात्तनुचाच्चितकण्टकम् । करपत्रं विजानीयाद् भिषग्गाकृतिमानतः ॥" इति । **वृद्धिपत्रं**=वृद्धिनामकौषधेः पत्रमिव पत्रं यस्य तच्छेदनभेद-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नलेखनार्थकशस्त्रम्। एतद् अञ्चितांग्र–प्रयताग्रभेदेन द्विविधम्। द्वयोरपि सप्ताङ्गुलपरिमाणम्, अर्धपञ्चाङ्गुलं वृन्तं, सार्धाङ्गुलं फलं च कार्यम्। वाग्भटे तु—"वृद्धिपत्रं क्षुराकारं छेदभेदनपाटने। ऋज्वग्रमुन्नते शोथे, गम्भीरे च तदन्यथा॥ नताग्रं पृष्ठतः" इत्युक्तम्। **नखशस्त्रं**=नखानां छेदनाय शस्त्रं तदर्धकैशिकधारायुतछेदनभेदनलेखनार्थकशस्त्रम्। एतस्य फलं द्व्यङ्गुलायामम् एकाङ्गुलविस्तृतम्। भोजः—"नखानां छेदने कार्यं शस्त्रमष्टाङ्गुलायतम्। अर्धाङ्गुलं मुखं तस्य तीक्ष्णधारं तु कल्पयेत्"॥ केचित् "अष्टाङ्गुलं वक्रधारमृजुधारं नवाङ्गुलम्" इति भेदेन नखशस्त्रद्वयमाहुः। वाग्भटमते संदंशयन्त्रमेतत्—"वक्रर्जुधारं द्विमुखं नखशस्त्रं नवाङ्गुलम्। सूक्ष्मशल्योद्धृतिभेदप्रच्छानलेखने॥" इत्युक्तम्। **मुद्रिका**=प्रदेशिन्यग्रपर्वप्रदेशप्रमाणं छेदनभेदनाद्यर्थकशस्त्रम्। मुद्रिका दशाङ्गुला शरारिमुखी, सा च कर्तरीति कथ्यते। वाग्भटे त्वसावङ्गुलिशस्त्रनाम्ना लक्षिता—"कुर्यादङ्गुलिशस्त्रकम्॥ मुद्रिकानिर्गतमुखं फले त्वर्धाङ्गुलायतम्। योगतो वृद्धिपत्रेण मण्डलाग्रेण वा समम्॥ तत्प्रदेशिन्यग्रपर्वप्रमाणार्पणमुद्रिकम्। सूत्रबद्धं गले स्रोतोरोगच्छेदनभेदने॥" इति। एतदतिरिक्तमप्यस्य प्रयोजनमाह वाग्भटः—"मण्डलाङ्गुलिशस्त्राभ्यां तत्र कर्म प्रशस्यते। विष्कम्भौ नाम तौ मूढौ शस्त्रदारणमर्हतः"॥ **उत्पलपत्रकम्**=उत्पलपत्रमिव पत्रं यस्य तच्छेदनभेदनलेखनार्थकशस्त्रम्। उक्तं च—"तुल्यमुत्पलपत्रेण तीक्ष्णधारं समाहितम्। षडङ्गुलं प्रमाणेन शस्त्रमुत्पलपत्रकम्॥ तत्पत्रं त्र्यङ्गुलायामं कार्यमङ्गुलविस्तृतम्।" इति। **अर्धधारम्**=अर्धे धारा यस्य तच्छेदनभेदनाद्यर्थकं शस्त्रम्। एतच्चाष्टाङ्गुलायतम्, उरस्यङ्गुलविस्तारम्, द्व्यङ्गुलफलम्। उक्तं च भोजेन—"अर्धधारं तु कर्तव्यं शस्त्रमष्टाङ्गुलायतम्। उरस्यङ्गुलविस्तारं फले तद् द्व्यङ्गुलं भवेत्॥" इति। **सूची**=सीवनास्त्रम्। सीवनकार्येषु त्रैविध्यमस्याः। तत्रैका–वृत्ता द्व्यङ्गुला अल्पमांसे देशे सन्धौ च ग्राह्या। द्वितीया—त्र्यङ्गुलं त्र्यस्रा मांसले देशे ग्राह्या। तृतीया—सूची वक्रा मर्मफलकोषादिषु ग्राह्या। **कुशपत्रं**=कुशपत्रतुल्यं विस्रावणार्थकशस्त्रम्। अस्य लक्षणमुक्तम्—"द्व्यङ्गुलं रुचकं विद्यात्त्र्यङ्गुलं फलमुच्यते। वृन्तं स्याद् द्व्यङ्गुलं मध्ये कुशपत्रस्य लक्षणम्॥" इति। **आटीमुखम्**=आट्या 'आडी' इति नाम्नः पक्षिणो मुखवन्मुखं यस्य तद् व्रणविस्रावणार्थकशस्त्रम्। उक्तञ्च—"वृत्तं सप्ताङ्गुलं विद्यात्तस्याग्रे फलमिष्यते। आटीमुखप्रकारं हि फलमङ्गुष्ठमायतम्। आटीमुखं विजानीयात्तत्स्रावणविधौ मतम्॥" इति। **शरारिमुखं**=शरारिर्बृहच्चञ्चुर्धवलस्कन्धः पक्षिविशेषस्तन्मुखमिव मुखं यस्य तद् विस्रावणास्त्रम्। एतन्मुखसादृश्यस्यात्र ऋजुत्वे तात्पर्यन्न त्वायामे। तच्च द्वादशाङ्गुलं चलद्दलं कर्तव्यम्। अस्य लोके 'कर्तरी' इति संज्ञा। तथा च चक्रः—"आनुपूर्व्यायतां तीक्ष्णां प्रमाणेन दशाङ्गुलाम्। त्रिभागे कीलयोगं हि जानीयात्कर्तरीं भिषक्॥" इति। वस्तुतस्तु शरारिमुखस्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वक्ष्यमाणं विस्रावणं, कर्तर्यास्तु छेदनं कर्म । तस्मादेतच्छस्त्रद्वयस्य कर्मभेदात् पार्थक्यमस्ति । वाग्भटेऽपि—"आद्ये शरार्यास्यत्रिकूर्चके" इति, "स्नायुसूत्रकचच्छेदे कर्तरी कर्तरीनिभा" इति च शस्त्रद्वयस्य पृथक् पृथक् कर्मद्वयमुपदिष्टम् । **अन्तर्मुखं**=मध्यमुखं व्रणविस्रावणार्थकशस्त्रम् । लक्षणं च—"अष्टाङ्गुलं प्रमाणेन जिह्मधारेण चाप्लुतम् । शस्त्रमन्तर्मुखं नाम चन्द्रार्धमिव चोद्गतम् ॥" इति । वाग्भटे तु—"तद्वदन्तर्मुखं तस्य फलमध्यर्धमङ्गुलम् । अर्धचन्द्राननं चैतत्—" इति । **त्रिकूर्चकं**=त्रयः कूर्चाः क्षुद्रच्छुरिका यस्य तद् व्रणविस्रावणास्त्रम् । लक्षणम्—"अङ्गुलानि तथाऽष्टौ च शस्त्रं कार्यं त्रिकूर्चकम् । फलैरन्तर्मुखाकारैरङ्गुलैरन्वितं त्रिभिः ॥ एकैकस्य फलस्यैषामन्तरं व्रीहिसम्मितम् । वृन्तं पञ्चाङ्गुलायामं कार्यं रुचकभूषितम् ॥" इति । **कुठारिका**=कुठारतुल्यं व्यधनास्त्रम् । लक्षणं च—"कुठारिकाया वृन्तं स्यात्सार्धसप्ताङ्गुलायतम् । फलमर्धाङ्गुलायामं गोदन्तसदृशं समम् ॥" इति । वाग्भटे तु—"पृथुः कुठारी गोदन्तसदृशार्धाङ्गुलानना । तयोर्ध्वदण्डया विध्येदुपर्यस्थनां स्थितां सिराम् ॥" इति लक्षितम् । **व्रीहिमुखं**=व्रीहिमुखाकारमिव मुखं यस्य तद्व्यधनास्त्रम् । लक्षणम्—"शस्त्रं व्रीहिमुखं कार्यमङ्गुलानि षडायतम् । द्व्यङ्गुलं तस्य वृन्तं स्यात्तत्फलं चतुरङ्गुलम् ॥ तन्मुखं व्रीहिविस्तारं तनुसम्मूढकण्टकम् ।" इति भोजेनोक्तम् । वृद्धवाग्भटे तु—"व्रीहिमुखमध्यर्धाङ्गुलफलं मांसलप्रदेशसिराव्यधार्थं वृद्ध्युदरगुल्मविद्रध्यादिव्यधनभेदनार्थं च" इति । **आरा**=चर्मप्रभेदकशस्त्रम् । लक्षणम्—"आरा द्व्यष्टाङ्गुलायामा कर्तव्या तु विशाम्पते । तिलप्रमाणं तु फलं तस्याः कार्यं समाहितम् । दूर्वाऽङ्कुरपरीणाहं वृत्तं गोपुच्छसम्भवम् ॥" इति । वाग्भटे विशेषः—"आराऽर्धाङ्गुलवृत्तास्या तत्प्रवेशस्तथोर्ध्वतः । चतुरस्रा तया विध्येच्छ्लोफं पक्वामसंशये" ॥ **वेतसपत्रं**=वेतसपत्रमिव तद्व्यधनार्थकशस्त्रम् । अस्य भोजोक्तलक्षणम्—"तीक्ष्णमङ्गुलविस्तारं चतुरङ्गुलमायतम् । अङ्गुलानि तु चत्वारि वृन्तं कार्यं विजानता ॥" इति । **बडिशं**=मत्स्यवेधनयन्त्रमिवाहरणार्थकशस्त्रम् । भोजोक्तलक्षणम्—"बडिशे चापि कर्तव्ये प्रमाणेन षडङ्गुले । स्वानतं तु तयोरेकमेकं नात्यायतं भवेत् ॥ अर्धपञ्चाङ्गुलं वृन्तं शेषं कार्यं मुखं तयोः । अर्धचन्द्राकृतिवक्त्रं कार्यं नात्यानतस्य तु ॥ स्वानतं नामयेत्तत्र बडिशं च भिषग्वरः । वृन्ताग्रयोरन्तरं स्याद्यावदर्धाङ्गुलं भवेत्" ॥ इत्यादि । **दन्तशङ्कु**=कपालिकाशर्कराऽऽदिदन्तदोषाहरणार्थं तीक्ष्णकण्टकप्रथमशयपत्रमुखवच्छस्त्रम् । भोजः—"कार्यः षडङ्गुलायामो दन्तशङ्कुर्विजानता । शङ्कुवच्च मुखं तस्य कार्यमर्धाङ्गुलायतम् ॥ चतुरस्रं समं चैव तीक्ष्णधारं समाहितम् । वृन्ताग्रं तस्य कर्तव्यं शस्त्रव्रीहिमुखाकृति ॥ कपालिकां शर्करां च दन्तस्थां तेन शोधयेत् ।" इति । वाग्भटेन "एकधारं चतुष्कोणं प्रबद्धाकृति चैकतः । दन्तलेखनकं तेन शोधये-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र[1] मण्डलाग्रकरपत्रे स्यातां छेदने लेखने च। वृद्धिपत्रनख-शस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकार्द्धधाराणि छेदने भेदने च। सूचीकुशपत्रा-टीमुखशरारिमुखान्तर्मुखत्रिकूर्चकानि विस्रावणे। कुठारिकाव्रीहिमु-खारावेतसपत्रकाणि व्यधने सूची च। बडिशं दन्तशङ्कुश्चाहरणे। एषण्येषणे आनुलोम्ये च। सून्यः सीवने। इत्यष्टविधे कर्मणि उपयोगः[2] शस्त्राणां[3] व्याख्यातः॥ ४॥

तेषामथ यथायोगं[4] ग्रहणसमासोपायः[5] कर्मसु वक्ष्यते—तत्र वृद्धिपत्रं वृन्तफलसाधारणे भागे गृह्णीयाद्भेदनान्येवं सर्वाणि। वृद्धि-पत्रं मण्डलाग्रञ्च किञ्चिदुत्तानेन पाणिना लेखने बहुशोऽवचार्यम्। वृन्ताग्रे[6] विस्रावणानि। विशेषेण तु बालवृद्धसुकुमारभीरुनारीणां राज्ञां राजपुत्राणाञ्च त्रिकूर्चकेन विस्रावयेत्। तलप्रच्छादितवृन्त-मङ्गुष्ठप्रदेशिनीभ्यां व्रीहिमुखम्। कुठारिकां वामहस्तन्यस्तामितर-हस्तमध्यमाङ्गुल्याऽङ्गुष्ठविष्टब्धयाऽभिहन्यात्। आराकरपत्रैषण्यो मूले। शेषाणि तु यथायोगं[7] गृह्णीयात्॥ ५॥

तेषां[8] नामभिरेवाकृतयः प्रायेण[9] व्याख्याताः॥ ६॥

---

दन्तशर्कराम्॥" इति श्लोकेनास्य 'दन्तलेखनम्' इति नामान्तरमुक्तम्। **एषणी=** व्रणमार्गानुसारिशलाका। 'एषणीव्रणमार्गानुसारिण्यां च तुलाभिदि' इति हेमचन्द्रः। अस्याः कार्यत्रयम्—अन्वेषणं, भेदनम्, आनुलोमनं च। तत्र गण्डूपदाका-रमुखी एषणी प्राग् यन्त्राध्यायेऽन्वेषणार्थमुपदिष्टा, अत्र तीक्ष्णमुखी एषणी अभि-प्रेता। तन्त्रान्तरम्—"व्रणस्तासां परीणाहो मुखं गण्डूपदाकृति" इति। वाग्भटे तु—"गतिरन्वेषणे श्लक्ष्णा गण्डूपदमुखैषिणी। भेदनार्थेऽपरा सूचीमुखामूलनिविष्टखा॥" इति। एतदतिरिक्तान्यपि यन्त्राणि सन्तीति तानि अष्टाङ्गसङ्ग्रहादौ द्रष्टव्यानि।

१ उक्तयन्त्राणामष्टविधकर्म विभजति—**तत्रेति।** २ यन्त्राणां सङ्क्षिप्तसङ्ग्रह-णोपायमाख्याति—**तेषामिति।** ३ वाग्भटः—"छेदनभेदनलेख्यार्थं शस्त्रं वृन्तफ-लान्तरे। तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैर्गृह्णीयात्सुसमाहितः॥ विस्रावणानि वृन्ताग्रे तर्जन्य-ङ्गुष्ठकेन च। तलप्रच्छन्नवृन्ताग्रं ग्राह्यं व्रीहिमुखं मुखे॥ मूलेष्वाहरणार्थे तु क्रियासौकर्यतोऽपरम्।" इति। ४ वृन्तं मूलं त्सरुवारङ्गमित्येते शब्दाः पर्याय-वाचकाः। ५ योगानतिक्रम्येति यथायोगम्—कर्मयोगापेक्षया कानिचिद् वृन्ताग्रे कानिचिद् वृन्तमध्ये कानिचिद् वृन्तमूले च गृह्णीयादित्यर्थः। ६ सङ्क्षेपेण शस्त्राकृतिं दर्शयन् वक्ति—**तेषामिति।** ७ चक्रः—'प्रायेणेति वचनादागममेतत्त-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


[1]तत्र नखशस्त्रैषण्यौ अष्टाङ्गुले, सूच्यो वक्ष्यन्ते,। ( प्रदेशिन्यग्रपर्वप्रदेशप्रमाणा मुद्रिका । दशाङ्गुला शरारीमुखी सा च कर्त्तरीति कथ्यते ) । शेषाणि तु षडङ्गुलानि ॥ ७ ॥

[3]तानि सुग्रहाणि सुलोहानि सुधाराणि सुरूपाणि सुसमाहितमुखाग्राण्यकरालानि चेति शस्त्रसम्पत् ॥ ८ ॥

[4]तत्र वक्रं, कुण्ठं, खण्डं, खर[5]धारम्, अतिस्थूलम्, अतितुच्छम्, अतिदीर्घम्, अतिह्रस्वम्, इत्यष्टौ शस्त्रदोषाः । अतो विपरीतगुणमाददीत, अन्यत्र करपत्रात् । तद्धि खरधारमस्थिच्छेदनार्थम् ॥ ९ ॥

तत्र धारा भेदनानां मासू[6]री, लेखनानामर्द्ध[7]मासूरी, व्यधनानां विस्रावणानाञ्च कैशि[8]की, छेदनानामर्धकैशि[9]कीति ॥ १० ॥

बडिशं दन्तशङ्कु[10]श्चानताग्रे । [11]तीक्ष्णकण्टकप्रथमयवपत्रमुख्येषणी गण्डूपदाकारमुखी च ॥ ११ ॥

तेषां [12]पायना त्रिविधा क्षारोदकतैलेषु । तत्र क्षारपायितं शरशल्यास्थिच्छेदनेषु, उदकपायितं मांसच्छेदनभेदनपाटनेषु, तैलपायितं सिराव्यधनस्नायुच्छेदनेषु ॥ १२ ॥

तेषां निशानार्थं [13]श्लक्ष्णशिला माषवर्णा, धारासंस्थापनार्थं [14]शाल्मलीफलकमिति ॥ १३ ॥

---

न्त्रमागमान्तरं च शस्त्राकाराभिधायकं दर्शयति' इति । १ यन्त्राणां परिमाणानि प्रतिपादयति—**तत्रेति** । २ कंसान्तर्गतः पाठो निबन्धाख्यव्याख्याऽनुसारेणाधिकः प्रतिभाति । ३ शस्त्रगुणानभिदधाति—**तानीति** । ४ शस्त्रदोषान्निर्दिशति—**तत्रेति** । ५ खरधारं = कर्कशधारमित्यर्थः । ६ मासूरी = मसूरदलधारासदृशतन्वी, नखशस्त्रादीनामित्यर्थः । ७ अर्धमासूरी = मसूरदलधाराऽर्धतन्वी, मण्डलाग्रादीनामित्यर्थः । ८ कैशिकी = केशप्रमाणातन्वी कुठारिकाऽऽदीनां सूचीकुशपत्रादीनाञ्चेत्यर्थः । ९ अर्धकैशिकी = अर्धकेशप्रमाणा तन्वी, वृद्धिपत्रादीनामित्यर्थः । १० इति बडिशस्यैव विशेषणम्, दन्तशङ्कोस्तु शङ्कुतुल्यत्वेन तस्यानतत्वमस्त्येव । ११ एषणीशस्त्रस्य त्रैविध्यमुपपादयति—**तीक्ष्णेति** । १२ पायना = पातुं प्रयोजना, शस्त्रधारायाः मृदुमध्यतीक्ष्णीकरणप्रक्रियेत्यर्थः । श्रीहाराणचन्द्रस्तु—'निर्वृत्तानां शस्त्राणां तत्क्षणाद् द्रवद्रव्येषु निर्वापणं पायना' इति वक्ति । १३ श्लक्ष्णशिला = अनिशितधाराणां निशानार्थमकर्कशा शिलेत्यर्थः । १४ निशितधाराणां संस्थापनार्थं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवति चात्र ।

[1]यदा सुनिशितं शस्त्रं रोमच्छेदि सुसंस्थितम् ।
[2]सुगृहीतं प्रमाणेन तदा कर्मसु योजयेत् ॥ १४ ॥

[3]अनुशस्त्राणि तु त्वक्सारस्फटिककाचकुरुविन्द[4]जलौकाऽग्नि-क्षार[5]नखगोजीशेफालिकाशाकपत्रकरीरवालाङ्कुलय इति ॥ १५ ॥

[6]शिशूनां शस्त्रभीरूणां शस्त्राभावे च योजयेत् ।
[7]त्वक्सारादिचतुर्वर्गं छेद्ये भेद्ये च बुद्धिमान् ॥ १६ ॥
आहार्य्यच्छेद्यभेद्येषु नखं शक्येषु योजयेत् ।
विधिः प्रवक्ष्यते पश्चात् क्षारवह्निजलौकसाम् ॥ १७ ॥
ये स्युर्मुखगता रोगा नेत्रवर्त्मगताश्च ये ।
गोजीशेफालिकाशाकपत्रैर्विस्रावयेत्तु तान् ॥ १८ ॥
एष्येष्वेषण्यलाभे तु बालाङ्कुल्यङ्कुरा हिताः ।
शस्त्राण्येतानि मतिमान् शुद्धशैक्ष्[8]यायसानि तु ।
कारयेत् करणप्राप्तं कर्मारं कर्मकोविदम् ॥ १९ ॥
प्रयोगज्ञस्य वैद्यस्य सिद्धिर्भवति नित्यशः ।

---

शाल्मलीपट्टकमित्यर्थः । वाग्भटेन तु—"स्यान्नखाङ्गुलक्तिस्तारः सुघनो द्वादशाङ्गुलः । क्षौमपत्रोर्णकौशेयदुकूलमृदुचर्मजः । विन्यस्तपाशः सुस्यूतः सान्नरोर्णास्थशस्त्रकः । शलाकापिहितास्यश्च शस्त्रकोशः सुसंचयः ॥" इति शस्त्रसंस्थापनाय शस्त्रकोश उक्तः ।

१ कर्मार्हशस्त्रं लक्षयति—**यदेति** । २ सुगृहीतं='वृद्धिपत्रवृन्तफलसाधारणे भागे गृह्णीयात्' इति प्राक् सूत्रोक्तम् । ३ शस्त्राणां तत्कर्मसाधकद्रव्यान्तरमतिदिशति—**अनुशस्त्राणीति** । ४ 'कुरुन्द' इति ख्यातोऽतिकठोरः पाषाणभेदः । ५ पलाशकाष्ठादिदाहसम्भवो लवणरसभस्मविशेषः क्षारः । गोजी=गोजिह्वा, 'सिहोड' इति नाम्ना ख्यातो वा वृक्षस्तस्य पत्राणि; 'शाकपत्र'-घटकपत्रशब्दस्येहारभ्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात् । शाको महावृक्षविशेषः । ६ अशस्त्रावचारणीयान् दर्शयन् शस्त्रकर्मसाधकद्रव्यान्तरस्य विषयभेदमाख्याति—**शिशूनामिति** । ७ त्वक्सारादिभिः त्वक्सारस्फटिककाचकुरुविन्दैश्चतुर्भिः कृतो वर्गस्तम् । ८ शैक्ष्यं=तीक्ष्णम् । ९ कारयेत्=कर्तुं प्रयोजयेत्, करणप्राप्तं=स्व-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तस्मात परिचयं[1] कुर्याच्छस्त्राणां ग्रहणे सदा ॥ २० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने शस्त्रावचारणीयो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

## नवमोऽध्यायः ।

अथातो योग्यसूत्रीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अधिगतसर्वशास्त्रार्थमपि शिष्यं योग्याङ्कारयेत्[2] । स्नेहादिषु छेद्यादिषु च कर्मपथमुपदिशेत् । सुबहुश्रुतोऽप्यकृतयोग्यः[3] कर्मस्वयोग्यो भवति ॥ ३ ॥

तत्र[4], पुष्पफलालाबूकालिन्दक[5]त्रपुसैर्वारुकर्कारुकप्रभृतिषु छेद्यविशेषान् दर्शयेत्, उत्कर्तन[6]परिकर्त्तनानि चोपदिशेत् । दृतिवस्तिप्रसेवक[7]प्रभृतिषु उदकपङ्कपूर्णेषु भेद्ययोग्याम् । सरोम्णि चर्मण्यातते[8] लेख्यस्य । मृतपशुसिरासूत्पलनालेषु च वेध्यस्य । घुणोपहतकाष्ठवेणुनलनालीशुष्कालाबूमुखेषूद्वेष्यस्य । पनसविम्बीबिल्वफलमज्जमृतपशुदन्तेष्वाहार्य्यस्य । मधूच्छिष्टोपलिप्ते शाल्मलीफलके विस्राव्यस्य । सूक्ष्मघनवस्त्रान्तयोर्मृदुचर्मान्तयोश्च सीव्यस्य । पुस्त[9]मयपुरु-

---

कर्मणि निपुणम् । १ परिचयं = शस्त्रग्रहणाभ्यासम् ।

इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामष्टमोऽध्यायः ।

---

### नवमोऽध्यायः ।

२ योग्या सम्यक्कर्माभ्यासः, 'योग्याऽर्कयोषित्यभ्यासे' इति हेमचन्द्रः; तस्याः सूत्रं विद्यते यस्मिन् स योग्यासूत्रीयस्तम् । ३ अकृतयोग्यः = अकृतकर्माभ्यासः । ४ छेद्यादिकर्मणः सम्यगभ्यासात् प्राग् यस्य कर्मणो यस्मिन् द्रव्ये साम्यमस्ति तदर्शयति—**तत्रेति** । पुष्पफलं = कूष्माण्डः । ५ कालिन्दकः = 'तरबूज' इति भाषायां ख्यातः । ६ उत्कर्तनम् = ऊर्ध्वकर्तनम्, परिकर्तनम् = अधश्छेदनम् । ७ प्रसेवकः = चर्मनिर्मितभाण्डम् । ८ आतते = प्रसारिते । ९ "मृदा वा दारुणा वाऽथ वस्त्रेणाप्यथ चर्मणा । लोहरत्नैः कृतं वाऽपि पुस्तमित्यभिधीयते" ॥ पुस्तो दार्व्या-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षाङ्गप्रत्यङ्गविशेषेषु बन्धनयोग्याम्। मृदुचर्ममांसपेशीषूत्पलनालेषु च कर्णसन्धिबन्धयोग्याम्। मृदुषु मांसखण्डेष्वग्निक्षारयोग्याम्। उदकपूर्णघटपार्श्वस्रोतस्यलाबूमुखादिषु च नेत्रप्रणिधानबस्तित्रणबस्तिपीडनयोग्यामिति ॥ ४ ॥

भवतश्चात्र।

एवमादिषु मेधावी योग्यार्हेषु यथाविधि।
द्रव्येषु योग्यां कुर्वाणो न प्रमुह्यति कर्मसु ॥ ५ ॥
तस्मात्[1] कौशलमन्विच्छन् शस्त्रक्षाराग्निकर्मसु।
यस्य यत्रेह साधर्म्यं तत्र योग्यां समाचरेत् ॥ ६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने योग्यासूत्रीयो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

## दशमोऽध्यायः।

अथातो विशिखाऽनुप्रवेशनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः[2] ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अधिगत[3]ततन्त्रेणोपाससततन्त्रार्थेन दृष्टकर्मणा कृतयोग्येन शास्त्रं निगदता राजानुज्ञातेन नीचनखरोम्णा शुचिना शुक्लवस्त्रपरिहितेन छत्रवता दण्डहस्तेन सोपानत्केनानुद्धतवेशेन सुमनसा कल्याणाभिव्याहारेणाकुहक[4]केन बन्धुभूतेन भूतानां सुसहायवता वैद्येन विशिखाऽनुप्रवेष्टव्या ॥ ३ ॥

---

दिमथ्याः स्त्र्याद्याकृतेरुपादानकारणं यद्वस्तु तदुच्यते इत्यरुणदत्तः। १ पूर्वोक्तमुपसंहरति—**तस्मादिति**।

**इति सुश्रुतसंहिताया सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां नवमोऽध्यायः।**

---

### दशमोऽध्यायः।

२ विशिखायाः=वैद्यकव्यवसायसम्बन्धिकर्ममार्गस्य अनुप्रवेशनमधिकृत्य कृतोऽध्यायो विशिखाऽनुप्रवेशनीयस्तम्। अत्र चक्रः—'...यदि वा विशिखा रथ्यैव तस्यां चिकित्सार्थमनुप्रवेशनम्' इति। ३ कथम्भूतो वैद्यः कर्ममार्गप्रवेशाधिकारीत्याशङ्कायामभिधत्ते—**अधिगतेति**। ४ अकुहकेन—कुहकः शास्त्रविहीनः परम-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ततो दूतनिमित्तशकुनमङ्गलानुलोम्येनातुरगृहमभिगम्य, उपविश्य, आतुरमभिपश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच्च । त्रिभिरेतैर्विज्ञानोपायै रोगाः प्रायशो वेदितव्या इत्येके[1] । तत्तु न सम्यक्, षड्विधो हि रोगाणां विज्ञानोपायः । तद्यथा—पञ्चभिः श्रोत्रादिभिः[2] प्रश्नेन चेति ॥ ४ ॥

तत्र श्रोत्रेन्द्रियविज्ञेया विशेषा रोगेषु व्रणास्रावविज्ञानीयादिषु वक्ष्यन्ते—'तत्र सफेनं रक्तमीरयन्ननिलः सशब्दो निर्गच्छति' इत्येवमादयः । स्पर्शनेन्द्रियविज्ञेयाः शीतोष्णश्लक्ष्णकर्कशमृदुकठिनत्वादयः स्पर्शविशेषा ज्वरशोफादिषु । चक्षुरिन्द्रियविज्ञेयाः शरीरोपचयापचयायुर्लक्षणबलवर्णविकारादयः । रसनेन्द्रियविज्ञेयाः प्रमेहादिषु रसविशेषाः । घ्राणेन्द्रियविज्ञेया अरिष्टलिङ्गादिषु व्रणानामव्रणानाञ्च गन्धविशेषाः । प्रश्नेन च विजानीयादेशं कालं जातिं सात्म्य[3]मातङ्क[4]समुत्पत्तिं वेदनासमुच्छ्रायं बलमन्तरग्निं वातमूत्रपुरीषाणां प्रवृत्त्यप्रवृत्ती कालप्रकर्षादींश्च विशेषान् । आत्म[5]सदृशेषु विज्ञानाभ्युपायेषु तत्स्थानीयै[6]र्जानीयात् ॥ ५ ॥

भवति चात्र ।

मिथ्या[7]दृष्टा विकारा हि दुराख्या[8]तास्तथैव च ।

---

विश्वासकारको मायावी, ततो नञ्तत्पुरुषः; तेनाकुहकेन । १ "दर्शनप्रश्नसंस्पर्शैः परीक्षा त्रिविधा स्मृता" इति चक्रः । २ श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनघ्राणप्रश्नात्मकैरित्यर्थः । ३ यद्यस्य सेवितं सत् सुखाय सम्पद्यते तत्तस्य सात्म्यम्, प्रकृत्यनुकूलमित्यर्थः । तच्च द्विविधम्—चेष्टाऽऽख्यमाहाराख्यं च । चेष्टाऽऽख्यं कायवाङ्मनोभेदात्त्रिविधम्। आहाराख्यं रसभेदात् षड्विधम् । चरके—"सात्म्यं नाम तद्यदात्मन्युपशेते । तत्त्रिविधम्—प्रवरावरमध्यविभागेन । तत्र सर्वरसं प्रवरम्, एकरसमवरम्, मध्यन्तु प्रवरावरमध्यस्थम्" इति । ४ आतङ्कसमुत्पत्तिं=रोगकारणम् । 'आतङ्को रोगसन्तापशङ्कासु मुरजध्वनौ' इति मेदिनी । वेदनासमुच्छ्रायं=वातादिवेदनोद्रतिम् । ५ आत्मसदृशेषु=वातपित्तश्लेष्मरूपदोषोचितेषु । श्रीहाराणचन्द्रस्तु—'आत्मासदृशैषु' इति पाठं मत्वा उचितापरपर्यायोऽयं सदृशशब्दः । 'सदृशं समे उचिते' इति मेदिनी । ततश्चात्मासदृशेषु आत्मनोऽनुचितेष्वयुक्तेषु हीनेष्विति यावदिति व्याख्याति । ६ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धस्तत्स्थानीयैरित्यर्थः । ७ पञ्चज्ञानेन्द्रियद्वारा समीचीनतया न परीक्षिता इत्यर्थः । ८ दुराख्याता=रोगिणा यथायथं नोक्ताः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तथा दुष्परिमृष्टाश्च मोहयेयुश्चिकित्सकम् ॥ ६ ॥

एवमभिसमीक्ष्य साध्यान्[1] साधयेत्, याप्यान्[2] यापयेत्, असाध्यान्[3] नोपक्रमेत्, परिसंवत्सरोत्थितांश्च[4] विकारान् प्रायशो वर्जयेत् ॥ ७ ॥

तत्र साध्या अपि व्याधयः प्रायेणैषां दुश्चिकित्स्यतमा भवन्ति। तद्यथा—श्रोत्रियनृपतिस्त्रीबालवृद्धभीरुराजसेवककितवदुर्बलवैद्यविदग्धव्याधिगोपकदरिद्रकृपणक्रोधनानामनात्मवतामनाथानाञ्चैवं निरूप्य चिकित्सां कुर्वन् धर्मार्थकामयशांसि प्राप्नोति ॥ ८ ॥

भवति चात्र।

स्त्रीभिः सहास्यां संवासं परिहासञ्च वर्जयेत्।
दत्तञ्च ताभ्यो नादेयमन्नाद्न्यद्विषग्वरैः ॥ ९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने विशिखाऽनुप्रवेशनीयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

## एकादशोऽध्यायः।

अथातः क्षारपाकविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

शस्त्रानुशस्त्रेभ्यः क्षारः प्रधानतमः; छेद्यभेद्यलेख्यकरणात्,

---

१ साध्यान्=सुसाध्यदुःसाध्यभेदेन द्विविधान्। २ याप्यलक्षणम्—"यापनीयं तु तं विद्यात् क्रिया धारयते हि यम्। क्रियायां तु निवृत्तायां सद्यो यश्च विनश्यति॥" इति। ३ असाध्यान्=याप्यप्रत्याख्येयप्रभेदेन द्विविधान्। ४ संवत्सरातीतानित्यर्थः। साध्येऽपि रोगे दुश्चिकित्स्यानाह—**श्रोत्रियेति**। ६ राज्ञाऽनुमतं सर्वं गृह्णीयादिति भावः। चरके—"न च कदाचित् स्त्रीदत्तमामिषमादातव्यमननुज्ञातं भर्त्राऽथवाऽध्यक्षेण"। आमिषं भोग्यवस्तु। 'आमिषं भोग्यवस्तुनि' इति रभसः।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां दशमोऽध्यायः।**

---

### एकादशोऽध्यायः।

७ पाकश्च विधिश्चेति पाकविधी, क्षारस्य पाकविधी यस्मिन्नध्याये स क्षारपाकविधिस्तम्। पाकः क्षारनिर्माणपद्धतिः। विधिरवचारणम्। ८ यद्यप्यग्निजलौकसोः प्राधान्यं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिदोषघ्नत्वात्, विशेषक्रियाऽवचारणाच्च ॥ ३ ॥

तत्र क्षारणात्[1] क्षणनाद्वा क्षारः ॥ ४ ॥

नानौषधिसमवायात्त्रिदोषघ्नः[2], शुक्लत्वात् सौम्यः, तस्य सौम्यस्यापि सतो दहनपचनदारणादिशक्तिरविरुद्धा। स खल्वाग्नेयौषधिगुणभूयिष्ठत्वात् कटुक उष्णस्तीक्ष्णः[3] पाचनो विलयनः शोधनो रोपणः शोषणः स्तम्भनो लेखनः कृम्यामकफकुष्ठविषमेदसामुपहन्ता[4] पुंस्त्वस्य चातिसेवितः ॥ ५ ॥

स द्विविधः-प्रतिसारणीयः, पानीयश्च ॥ ६ ॥

तत्र, प्रतिसारणीयः कुष्ठ[5]किटिभदद्रुमण्डलकिलासभगन्दरार्बुदार्शोदुष्टव्रणनाडीचर्मकील[6]तिलकालकन्यच्छव्यङ्गमशकबाह्यविद्रधिकृमिविषादिषूपदिश्यते। सप्तसु च मुखरोगेषूपजिह्वाऽधिजिह्वोपकुशदन्तवैदर्भेषु तिसृषु च रोहिणीषु[7], एतेष्वेवानुशस्त्रप्रणिधा-

---

पृथगध्याये वक्ष्यते; किन्त्वत्र जलौकाः प्रधानम्, अग्निः प्रधानतरः, क्षारस्तु प्रधानतमः। "अतिशायने तमबिष्ठनौ" इति प्रकृष्टार्थे तमप्। क्षारस्य श्रेष्ठत्वमुक्तं वाग्भटेन-"सर्वशस्त्रानुशस्त्राणां क्षारः श्रेष्ठो बहूनि यत्। छेद्यभेद्यादिकर्माणि कुरुते विषमेष्वपि। दुःखावचार्यशस्त्रेषु तेन सिद्धिमयात्सु च। अतिकृच्छ्रेषु रोगेषु यच्च पानेऽपि युज्यते।" इति।

१ क्षारणात्=दुष्टत्वङ्मांसादीनां शातनात्, क्षणनात्=त्वङ्मांसादीनां हिंसनात्।

२ क्षारस्य पूर्वोक्तत्रिदोषघ्नत्वहेतुसाधनपुरस्सरं गुणकर्माह-**नानौषधीति।**

३ चरके-"तीक्ष्णोष्णो लघुरुष्णश्च क्लेदी पाकी विदारणः। दाहनो दीपनश्छेत्ता सर्वक्षारोऽग्निसन्निभः॥" इति। पाचनः=बाह्यप्रयोगे व्रणशोथस्य पक्ता, विलयनः-वातकफभूयिष्ठस्य शोफस्य, शोधनः-दुष्टव्रणादेः। योगशक्तिप्रभावात्तिलयवकल्कवत् क्षारस्य व्रणशोधनरोपणत्वे न विरोधः। अन्ये तु-सिरादिक्षणनभयाच्छुद्धे व्रणे रोपणार्थं क्षारो न ह्यवचार्य्यते, शुद्धो व्रणः स्वयमेव रोहति। तस्माद् 'रोपणः' इति पाठः पारम्पर्येणेति।

४ 'उपहन्ता' इत्यस्य कृम्यादिभिः प्रत्येकं सम्बन्धः। प्रतिसारणीयः=बाह्यपरिमार्जनः, पानीयः=आभ्यन्तरपरिमार्जनः। तदुक्तं सङ्ग्रहे-"स द्विविधो बाह्याभ्यन्तरपरिमार्जनभेदेन" इति। तत्र पानार्हक्षारवृत्ता रसार्णवे-"तिलापामार्गकदलीपलाशशिग्रुमोचकाः। मूलार्द्रकचिञ्चाऽश्वत्था वृत्तक्षाराः प्रकीर्तिताः॥" इति।

५ प्रतिसारणीयप्रभेदक्षारस्य विषयं दर्शयति-**कुष्ठेति।**

६ "समुत्थाननिदानाभ्यां चर्मकीलः प्रकीर्तितः" इत्यर्शोनिदानपठितः।

७ उक्तं च-"वातात् पित्तात्कफात्


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नमुक्तम् ॥ ७ ॥

पानीयस्तु गरगुल्मोदराग्निसङ्गाजीर्णारोचकानाहशर्कराश्मर्य्या-भ्यन्तरविद्रधिकृमिविषार्शस्सूपयुज्यते ॥ ८ ॥

अहितस्तु रक्तपित्तज्वरितपित्तप्रकृतिबालवृद्धदुर्बलभ्रममदमूर्च्छातिमिरपरीतेभ्योऽन्येभ्यश्चैवंविधेभ्यः ॥ ९ ॥

तञ्चेतरक्षारवद् दग्ध्वा परिस्रावयेत् । तस्य विस्तारोऽन्यत्र ॥ १० ॥

अथेतरक्षारविधौ मृदुर्मध्यस्तीक्ष्णश्च । तं चिकीर्षुः शरदि गिरिसानुजं शुचिरुपोष्य प्रशस्तेऽहनि प्रशस्तदेशजातमनुपहतं मध्यमवयसं महान्तमसितमुष्ककमधिवास्यापरेद्युः पाटयित्वा खण्डशः प्रकल्प्यावपाट्य निर्वाते देशे निचितिं कृत्वा सुधाशर्कराश्च

---

त्रिभ्यो रक्ताद्रोहिण्य ईरिताः । अन्त्ये सद्यो मारयत आद्यास्तिस्रः क्रियां विना" ॥ इति । चरके—"वातपित्तकफा यस्य युगपत्कुपितास्त्रयः । जिह्वामूलेऽवतिष्ठन्ते विदहन्तः समुच्छ्रिताः" इत्यादिना रोहिणीनिदानमुक्तम् ।

१ पानीयप्रभेदक्षारस्य विषयं दर्शयति—**गरेति** । सङ्ग्रहे—"नानाप्राण्यङ्गशमलविरुद्धौषधिभस्मनाम् । विषाणां चाल्पवीर्याणां योगो गर इति स्मृतः । कृत्रिमं गरसंज्ञं तु क्रियते विविधौषधैः" ॥ गुल्मं वक्ष्यति—"हृद्वस्त्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः । चयापचयवान् वृत्तः स गुल्म इति कीर्तितः" ॥ २ पानीयक्षारस्याविषयं दर्शयति—**रक्तेति** । ३ विषमद्यशोणितोत्थविकारो मदः । ४ परीतशब्दस्य भ्रमादिभिः सह प्रत्येकमभिसम्बन्धः । ५ यथेतरक्षारस्य प्रतिसारणीयाख्यस्य काष्ठदाहः, षड्गुणोदकपाकः, त्रिभागशेषकरणानन्तरं परिस्रावणं; तथा पानीयस्यापि पाकविधिर्द्वितीयपाकवर्जं स्रावणं च कार्यम् । ६ उत्तरतन्त्रे गुल्मादिष्वध्यायेषु ।

७ प्रतिसारणीयस्य पाकविधिं निर्दिशति—**तमिति** । ८ असितमुष्कं=कृष्णपुष्पपाटलितरुम्, 'गोलीढो झाटलो घण्टापाटलिर्मोचमुष्ककौ' इत्यमरः । अधिवास्य=मन्त्रबलिपूजादिभिरधिवासनं विधाय, तदुक्तं सङ्ग्रहे—"सुरापललसुमनोऽक्षतादिभिश्चतुर्दिशं बलिं कृत्वा प्रदक्षिणं चाभ्यर्च्यैनमधिवासयेत्" । एतदधिवासनं भूतानामपसारणार्थं भवतीत्युक्तं तन्त्रान्तरे—"निवसन्तीह भूतानि यान्यस्मिन् कानिचिद् द्रुमे । अपक्रामन्त्वतश्छेद्यः परार्थे श्वो ह्ययं द्रुमः" ॥ ९ निचितिं=काष्ठानामौत्तराधर्येणावस्थितिम् । १० सुधाशर्कराः=शुक्लखण्डिकाः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रक्षिप्य तिलनालैरादीपयेत्। अथोपशान्तेऽग्नौ तद्भस्म पृथग् गृह्णीयाद्भस्मशर्कराश्च[1]। अथानेनैव विधानेन कुटजपलाशाश्वकर्णपारिभद्रकविभीतकारग्वधतिलवकार्कस्नुह्यपामार्गपाटलानक्तमालवृषकदलीचित्रकपूतिकेन्द्रवृक्षास्फोताश्वमारकसप्तच्छदाग्निमन्थगुञ्जाश्वत्थस्रश्च कोशातकीः समूलफलपत्रशाखा दहेत्। ततः क्षारद्रोणमुदकद्रोणैः षड्भिरालोड्य सूत्रैर्वा यथोक्तैरेकविंशतिकृत्वः परिस्राव्य, महति कटाहे शनैर्दर्व्याऽवघट्टयन् विपचेत्। स यदा भवत्यच्छो रक्तस्तीक्ष्णः पिच्छिलश्च तमादाय महति वस्त्रे परिस्राव्येतरं विभज्य पुनरग्नावधिश्रयेत्। तत एव च क्षारोदकात् कुडवमध्यर्धं वाऽपनयेत्। ततः कटशर्कराभस्मशर्कराक्षीरपाकशङ्खनाभीरग्निवर्णाः कृत्वाऽऽयसे पात्रे तस्मिन्नेव क्षारोदके निषिच्य पिष्ट्वा तेनैव द्विद्रोणेऽष्टपलसम्मितं शङ्खनाभ्यादीनां प्रमाणं प्रतिवाप्य सततमप्रमत्तश्चैनमवघट्टयन् विपचेत्। स यथा नातिसान्द्रो नातिद्रवश्च भवति तथा प्रयतेत। अथैनमागतपाकमवतार्य्यानुगुप्तमायसे कुम्भे संवृतमुखे निदध्यादेष मध्यमः॥ ११॥

---

१ भस्मशर्कराः=दह्यमानार्द्रकाष्ठरसाच्छर्करं वान्योन्यसंहताः। उक्तञ्च—"मुष्ककाद्दह्यमानात्तु रसः प्रच्यवते हि यः। भस्मना सह संयुक्तः काठिन्यमुपगच्छति॥ तां भस्मशर्करामाहुः" इति निघण्टौ। २ अश्वकर्णः='गन्धियाभाँट' 'गजहुंड' इति नाम्ना पूर्वदेशे प्रसिद्धः पारीषाश्वत्थः, शालभेदो वा। 'साले तु सर्जकाश्वर्यश्वकर्णकाः सस्यसंवरः'इत्यमरः। ३ इन्द्रवृक्षः=श्वेतपुष्पकुटजतरुः, आस्फोता=सारिवा। ४ मूलादीनां चतुर्णां कुटजादिभिः सह प्रत्येकमभिसम्बन्धः। ५ क्षारद्रोणं=भागद्वयं मुष्ककभस्मनो भागैकं कुटजादिभस्मनो मिश्रीकृतमुच्यते। ६ परिस्राव्य=एकविंशतिवारान् वाससा गालयित्वेत्यर्थः। ७ तं=क्षारक्काथम्। ८ इतरं=क्षारभस्मकल्कम्। ९ अपनयेत्=कटशर्कराऽऽदीनि द्रव्याणि प्रत्येकं कुडवप्रमाणानि अध्यर्धकुडवप्रमाणानि वाऽऽवपेदित्यर्थः; कुडवमित्यस्य अध्यर्धमित्यत्र सम्बन्धात्। १० क्षीरपाकः=जलशुक्तिः। ११ आदिशब्दात्तन्त्रान्तरोक्तान्यावाप्यानि ग्राह्याणि—"क्रुञ्चं शकृद्दक्षशिखिगृध्रकङ्ककपोतजम्। चतुष्पात्पक्षिपित्तालमनोह्वालवणानि च॥" इति। १२ षट्त्रिंशदधिकपञ्चदशशतोदकपलैः सह विपचेदित्यर्थः। पच्यमानस्य तस्य तैक्ष्ण्याच्छरक्तपिच्छिलादयो गुणाः षोडशांशावशिष्टे षण्णवतिपलप्रमाणे भवन्ति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एष एवाप्रतीवापः[1] पक्वः संव्यूहिमो मृदुः ॥ १२ ॥

प्रतीवापे[2] यथालाभं दन्तीद्रवन्ती[3]चित्रकलाङ्गलकीपूतिकप्रवालतालपत्रीविडसुवर्चिकाकनक[4]क्षीरीहिङ्गुवचातिविषाः समाः श्लक्ष्णचूर्णाः शुक्तिप्रमाणाः प्रतीवापः । स एव सप्रतीवापः पक्वः पाक्यस्तीक्ष्णः ॥ १३ ॥

तेषां यथाव्याधिबलमुपयोगः ॥ १४ ॥

क्षीणबले[5] तु क्षारोदकमावपेद् बलकरणार्थम् ॥ १५ ॥

भवतश्चात्र ।

नैर्वाति[6]तीक्ष्णो न मृदुः शुक्लः श्लक्ष्ण[7]ोऽथ पिच्छिलः ।
अविष्यन्दी[8] शिवः शीघ्रः क्षारो ह्यष्टगुणः स्मृतः ॥ १६ ॥
अति[9]मार्दवश्वैत्यौष्ण्यतैक्ष्ण्यपैच्छिल्यसर्पिताः ।
सान्द्रताऽपक्वता हीनद्रव्यता दोष उच्यते ॥ १७ ॥

तत्र[10] क्षारसाध्यव्याधिव्याधितमुपवेश्य निवातातपे देशेऽस-

---

१ अत्र चक्रः—"क्षारो द्विविधः—सप्रतीवापोऽप्रतीवापश्च । आवापानन्तरं यत्पुनः शक्त्यतिशयार्थं दीयते सप्रतीवापः । तत्राप्रतीवापो मृदुः संव्यूहिमसंज्ञः, सप्रतीवापश्च पाक्यसंज्ञस्तीक्ष्णः"इति । संव्यूहिमश्च दन्त्यादिद्रव्यसहितः क्षारः । २ पाक्यसंज्ञं तीक्ष्णं संव्यूहिमं क्षारं प्रतिपादयति—**प्रतीवाप इति ।** "द्रवद्रव्ये द्रव्यान्तरं श्लक्ष्णपिष्टं दीयते सप्रतीवाप उच्यते" इत्यरुणदत्तः । ३ द्रवन्ती=चीरितपत्रदन्तीप्रभेदा । लाङ्गलकी=कुष्ठदुष्टव्रणनाशिका कलिकारिका, पूतिकप्रवालाः=कण्टकिकरञ्जपल्लवाः, 'प्रकोर्यः पूतिकरजः पूतीकः कलिमारकः' इत्यमरः । माधवमते—पूतिक इति ह्रस्वेकारघटितोऽपि । 'प्रवालो विद्रुमे वीणादण्डेऽभिनवपल्लवे'इति हेमचन्द्रः । ४ सुवर्चिका=जतुकाख्या, भाषायां 'चकवत' इति नाम्ना व्यवहृता । ५ क्षीणं बलं यस्यासौ तस्मिन् क्षीणबले, हीनशक्तिकक्षारे, तु क्षारोदकं क्षाराम्बु । तदुक्तं वाग्भटे—"बलार्थं क्षीणपानीये क्षाराम्बु पुनरावपेत्" इति । ६ क्षारस्य गुणानाख्याति—**नैर्वेति ।** ७ श्लक्ष्णः=अकर्कशः, त्वगिन्द्रियसुखप्रद इत्यर्थः । ८ अविष्यन्दी=योऽवचारितो न प्रसर्पति । ९ क्षारस्य दोषानभिधत्ते—**अतीति ।** अतिशब्दस्य मार्दवादिभिः प्रत्येकमभिसम्बन्धः । तदुक्तम्—"अत्यौष्ण्यमतिपैच्छिल्यमतितैक्ष्ण्यं विसर्पिता । अत्यर्थं मार्दवं श्वैत्यमत्यर्थं सान्द्रमेव च ॥ हीनौषधविपक्वत्वं क्षारदोषा नव स्मृताः ।" इति ।

१० प्रतिसारणीयक्षारविधिमभिदधाति—**तत्रेति ।** क्षारस्य साध्यश्चासौ विधिस्तेन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


म्बाधेऽग्रोपहरणीयोक्तेन विधानेनोपसम्भृतसम्भारं, ततोऽस्य[1] तमवकाशं निरीक्ष्य[2] वघृष्यावलिख्य प्रच्छयित्वा शलाकया क्षारं प्रतिसारयेत्, दत्त्वा वाक्शतमात्रमुपेक्षेत[3] ॥ १८ ॥

तस्मिन्निपतिते व्याधौ[4] कृष्णता दग्धलक्षणम्।
तत्राम्लवर्गः[5] शमनः सर्पिर्मधुकसंयुतः ॥ १९ ॥
अथ चेत् स्थिरमूलत्वात् क्षारदग्धं न शीर्य्यते।
इदमालेपनं तत्र समग्रमवचारयेत् ॥ २० ॥
अम्लकाञ्जिकबीजानि[6] तिलान् मधुकमेव च।
प्रपेष्य समभागानि तेनैनमनुलेपयेत् ॥ २१ ॥
तिलैकल्कः[7] समधुको घृताक्तो व्रणरोपणः।
रसेनाम्लेन[8] तीक्ष्णेन वीर्य्योष्णेन च योजितः ॥ २२ ॥
आग्नेयेनाग्निना तुल्यः कथं क्षारः प्रशाम्यति।
एवं चेन्मन्यसे वत्स ! प्रोच्यमानं निबोध मे ॥ २३ ॥
अम्लवर्जान् रसान् क्षारे सर्वानेव विभावयेत्[9]।
कटुकस्तत्र भूयिष्ठो लवणोऽनुरसस्तथा।

---

व्याधितं दुःखितमिति क्षारसाध्यव्याधिव्याधितम्। १ अस्य=व्याधितस्य, क्षारं प्रतिसारयेदित्यनेन सम्बन्धः। २ निरीक्ष्य=व्याध्याकृतिपरिज्ञानार्थमवलोक्य, पित्तदुष्टमवघृष्य, वातदुष्टमवलिख्य, कफदुष्टं प्रच्छयित्वा। ३ शताक्षरोच्चारणपर्याप्तसमयं क्षारावचारणम्। अर्थाद् वाक्शतमात्रकालेन यो दहति स यथोक्तगुणः क्षारोऽन्यथा त्ववरः। तदुक्तम्—"यद्येरण्डजनालमेष दहति क्षारो वरो वाक्शतात्" इति। ४ सम्यग्दग्धलक्षणं वक्ति—**तस्मिन्निति**। व्याधौ=दुष्टमांसादिरूपव्याधौ। ५ सम्यग्दग्धानन्तरमालेपनकर्म ब्रवीति—**तत्रेति**। अम्लवर्गः—"अम्लवेतसजम्बीरलुङ्गाम्लचणकाम्लकाः। नागरङ्गं तिन्तिडी च चिञ्चापत्रं च निम्बुकम्॥ चाङ्गेरी दाडिमं चैव करमर्दं तथैव च। एष चाम्लगणः प्रोक्तो वेतसाम्लसमायुतः"॥ ६ अम्लकाञ्जिकबीजानि=अम्लकाञ्जिकाधःस्थितद्रव्याणि। ७ क्षारकृतव्रणरोपणोपायमाख्याति—**तिलेति**। सङ्ग्रहे विशेषः—"मालतीवृषाङ्कोलनिम्बास्फोतपटोलीकरवीरपत्रक्काथेन व्रणप्रक्षालनम्। एषामेव च कल्ककाथे सिद्धं सर्पिस्तैलं वा रोपणम्, नागपुष्पमञ्जिष्ठाचन्दनतिलपर्णिकासु वा"। इति। ८ आग्नेयेनकाञ्जिकेनाग्निना तुल्यः क्षारः कथं प्रशाम्यतीत्याशङ्कायामभिधत्ते—**रसेनेति**। ९ विभावयेत्=जानीयात्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अम्लेन सह संयुक्तः सतीक्ष्णलवणो रसः ॥ २४ ॥
माधुर्य्यं भजतेऽत्यर्थं तीक्ष्णभावं विमुञ्चति ।
माधुर्य्याच्छममाप्नोति वह्निरद्भिरिवाप्लुतः ॥ २५ ॥

[1]तत्र सम्यग्दग्धे विकारोपशमो [2]लाघवमनास्रावश्च । [3]हीनदग्धे [4]तोदकण्डुजाड्यानि व्याधिवृद्धिश्च । [5]अतिदग्धे दाहपाकरागस्रावाङ्गमर्द[6][7]क्लमपिपासामूर्च्छाः स्युर्मरणं वा ॥ २६ ॥

क्षारदग्धव्रणं तु यथादोषं यथाव्याधि चोपक्रमेत् ॥ २७ ॥

[8]अथ नैते क्षारकृत्याः । तद्यथा-दुर्बलबालस्थविरभीरुसर्वाङ्गशूनोदरिरक्तपित्तिगर्भिण्यृतुमतीप्रवृद्धज्वरिप्रमेहिरूक्षक्षतक्षीणतृष्णामूर्च्छोपद्रुतक्लीबापवृत्तोद्वृत्तफलयोनयः ॥ २८ ॥

[10]तथा मर्मसिरास्नायुसन्धितरुणा[11]स्थिसेवनीधमनीगलनाभिनखान्तःशेफःस्रोतस्स्वल्पमांसेषु च [12]प्रदेशेष्वक्ष्णोश्च न दद्यादन्यत्र [13]वर्त्मरोगात् ॥ २९ ॥

[14]तत्र क्षारसाध्येष्वपि व्याधिषु शूनगात्रमस्थिशूलितमन्नद्वे-

---

१ चिकित्सान्तरकथनाय पुनः सम्यग्दग्धलक्षणमाख्याति—**तत्रेति** । २ लाघवम्—अङ्गानाम् । ३ हीनदग्धलक्षणमाह—**हीनेति** । ४ तोदः=सूचीव्यधनेनेव शूलेनेव वा व्यथा । ५ अतिदग्धलक्षणं दर्शयति—**अतीति** । ६ रागः=रक्तता । ७ अङ्गमर्दः=गात्रवेदना । ८ क्षारकर्मप्रतिषेध्यानाह—**अथेति** । ९ अत्रोद्वृत्तापवृत्तशब्दयोः फलयोनिभ्यां सह प्रत्येकं सम्बन्धः । तथा च, उद्वृत्तफलः=स्थानादूर्ध्वगताण्डः; अपवृत्तफलः=स्थानात्स्रस्ताण्डः, अत्र फलशब्दोऽण्डार्थकः, उद्वृत्तयोनिः=स्थानादूर्ध्वगतगर्भाशयः; अपवृत्तयोनिः=स्थानात्स्रस्तगर्भाशय इत्यर्थः । १० क्षारकर्मप्रतिषेध्यान् प्रदेशान् दर्शयति—**तथेति** । ११ तरुणास्थीनि=कोमलास्थीनि, तानि घ्राणकर्णाक्षिगुदेषु भवन्ति । सेवन्यः सप्त, उक्तं च—"सेवन्यः सप्त तासां तु भवेयुः पञ्च मस्तके । एका शैफसि जिह्वायामेका विध्येन्न ताः क्वचित् ॥" इति । धमन्यो नाभिजाश्चतुर्विंशतिसङ्ख्याकाः, एतद्विवरणं शारीरे वक्ष्यते । १२ जानुपादोपरि ललाटादिषु प्रदेशेष्वित्यर्थः । १३ वर्त्मरोगात्=नेत्ररोगात्' वर्त्मरोगेऽक्ष्णोरपि क्षारं दद्यादित्यर्थः । १४ अवस्थावशाद् यान् क्षारो न साधयति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



षिणं हृदयसन्धिपीडोपद्रुतं च[1] क्षारो न साधयति ॥ ३० ॥

भवति चात्र ।

विषा[2]ग्निशस्त्राशनिमृत्युकल्प[3]: क्षारो भवत्यल्पमतिप्रयुक्तः ।
स[4] धीमता सम्यगनुप्रयुक्तो रोगान्निहन्यादचिरेण घोरान् ॥३१॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने क्षारपाकविधिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## द्वादशोऽध्यायः ।

अथातोऽग्निकर्म[5]विधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

क्षारादग्नि[6]र्गरीयान् क्रियासु व्याख्यातः, तद्दग्धानां रोगाणामपुनर्भा[7]वाद्भेषजशस्त्र[8]क्षारैरसाध्यानां तत्साध्यत्वाच्च[9] ॥ ३ ॥

[10]अथेमानि दहनोपकरणानि । तद्यथा—पिप्पल्यजाशकृद्वोदन्तशरशलाकाजाम्ब[11]वौष्ठेतरलौहाः क्षौद्रगुडस्नेहाश्च[12] । [13]तत्र,

---

तान् दर्शयति—**तत्रेति** । १ चकाराद् दुर्बलबालस्थविरादीन् । २ असम्यक्प्रयुक्तस्य क्षारस्य महादोषत्वं निदर्शयति—**विषेति** । ३ मृत्युकल्पः=मृत्युसदृशः । अयं भावः—यथा विषं सर्वाङ्गानुसारि भूत्वा अग्निर्विस्फोटादिकं कृत्वा शस्त्रं सिरादिं छित्त्वा अशनिः सद्यो मारयति, तथाऽविचार्यं प्रयुक्तक्षारोऽपि व्याधितं व्यापादयतीति । ४ सम्यक्प्रयुक्तस्य क्षारस्य महागुणत्वं प्रतिपादयति—**स इति** ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकादशोऽध्यायः ।**

### द्वादशोऽध्यायः ।

५ "विधिः प्रवक्ष्यते पश्चात् क्षारवह्निजलौकसाम्" इति प्रागुक्तेः क्षारविधेः पश्चाद् अग्निकर्मविधिनामाऽध्याय आरभ्यते । अग्नेः सम्बन्धि यत्कर्म, तस्य विधिरस्ति यस्मिन्नध्याये सोऽग्निकर्म विधिस्तम् । ६ त्रिदोषघ्नछेद्यभेद्यलेख्यकरणादिषु क्षारस्य प्राधान्यमुक्त्वाऽधुना कर्मस्वग्निप्राधान्यमभिधत्ते—**क्षारादिति** । ७ अग्निना सम्यग्दग्धानां रोगाणामपुनर्भावो बोध्यः, असम्यग्दग्धे त्वग्निदग्धस्यापि पुनरुत्पत्तिः स्यात् । ८ इदमिहावसेयम्—भेषजाशक्ये शस्त्रावचारणं, शस्त्राशक्ये क्षारावचारणं, क्षाराशक्ये रोगेऽग्निरिति । ९ तत्साध्यत्वात्=अग्निसाध्यत्वात् । १० अग्न्यवचारणोपकरणानि प्रदर्शयति—**अथेति** । ११ जाम्बवौष्ठं=जम्बूफलसदृशमुखाग्रा कृष्णपाषाणरचिता वर्त्ती । १२ चकारात् सर्जरसमधूच्छिष्टप्रभृति । १३ दहनोपकरणानां विषयभेदं वक्ति—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पिप्पल्यजाशकृद्रोदन्तशरशलाकास्त्वग्गतानां, जाम्बवौष्ठेतरलौहा मांसगतानां, क्षौद्रगुडस्नेहाः सिरास्नायुसन्ध्यस्थिगतानाम् ॥ ४ ॥

तत्राग्निकर्म सर्वर्तुषु कुर्यादन्यत्र शरद्ग्रीष्माभ्यां; तत्राप्यात्ययिकेऽग्निकर्मसाध्ये व्याधौ तत्प्रत्यनीकं विधिं कृत्वा ॥ ५ ॥

सर्वव्याधिष्वृतुषु च पिच्छिलमन्नं भुक्तवतः कर्म कुर्वीत; अश्मरीभगन्दरार्शोमुखरोगेष्वभुक्तवतः ॥ ६ ॥

तत्र द्विविधमग्निकर्माहुरेके—त्वग्दग्धं, मांसदग्धञ्च। इह तु सिरास्नायुसन्ध्यस्थिष्वपि न प्रतिषिद्धोऽग्निः ॥ ७ ॥

तत्र, शब्दप्रादुर्भावो दुर्गन्धता त्वक्सङ्कोचश्च त्वग्दग्धे। कपोतवर्णताऽल्पश्चयथुवेदना शुष्कसङ्कुचितव्रणता च मांसदग्धे। कृष्णोन्नतव्रणता स्रावसन्निरोधश्च सिरास्नायुदग्धे। रूक्षारुणता कर्कशस्थिरव्रणता च सन्ध्यस्थिदग्धे ॥ ८ ॥

तत्र, शिरोरोगाधिमन्थयोर्भ्रूललाटशङ्खप्रदेशेषु दहेत् वर्त्मरोगेष्वार्द्रालक्तकप्रतिच्छन्नां दृष्टिं कृत्वा वर्त्मरोमकूपान् दहेत् ॥ ९ ॥

---

**तत्रेति।** १ भद्रशौनकः—"त्वङ्मांससंश्रितो वायुस्त्वग्दाहेनैव शाम्यति। मांसे दग्धे हि शाम्यन्ति सिरास्नाय्वस्थिसन्धिजाः ॥" इति। २ अग्निकर्मकालं निर्दिशति—**तत्राग्नीति।**

३ अग्निकर्मणि येषु व्याधिष्वशनप्रतिषेधस्तान् दर्शयति—**अश्मरीति।** ४ एके = काश्यपादयः, तद्यथा—"न सिरास्नायुसन्ध्यस्थिमर्मस्वपि कथञ्चन। दंशस्योत्कर्तनं कार्यं दाहो वा भिषजाऽग्निना ॥" इति। ५ त्वगादिष्वग्निकर्मकृते भेदलक्षणं दर्शयति—**तत्रेति।** ६ रोगभेदाच्छारीरावयवविशेषेष्वन्यवचारणं दर्शयति—**तत्रेति।** ७ अधिमन्थः = अभिष्यन्दोत्थनेत्ररोगः। तल्लक्षणं च—"उत्पाट्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा। शिरसोऽर्धं च तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥" इति। ८ वर्त्मदेशेऽन्यवचारणप्रकारं दर्शयति—**वर्त्मेति।** ९ अलक्तकं = लाक्षानिर्मितरक्तवर्णवस्त्रं, स्त्रीचरणरञ्जनोपयोगि 'महावर' इति ख्यातम्। अलक्तस्योपयोगोऽष्टाङ्गसङ्ग्रहे केवलं पद्मवालोपरि चिह्नार्थमुपदिष्टः—"उपपक्ष्माणि तु लाक्षारसेन लक्षयित्वा सन्दंशेनोद्धृत्य तनुसूच्यग्रेणाग्निवर्णेन रोमकूपान् दहेत्"। इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


त्वङ्मांससिरास्नायुसन्ध्यस्थिस्थितेऽत्युग्ररुजि वायावुच्छ्रितकठिनसुप्तमांसे व्रणे ग्रन्थ्यर्शोऽर्बुदभगन्दरापचीश्लीपदचर्म्मकीलतिलकालकान्त्रवृद्धिसन्धिसिराच्छेदनादिषु नाडीशोणितातिप्रवृत्तिषु चाग्निकर्म कुर्य्यात् ॥ १० ॥

तत्र वलय-बिन्दु-विलेखा-प्रतिसारणानीति दहनविशेषाः ॥ ११ ॥

भवति चात्र ।

रोगस्य संस्थानमवेक्ष्य सम्यङ्नरस्य मर्माणि बलाबलं च ।
व्याधिं तथर्तुञ्च समीक्ष्य सम्यक् ततो व्यवस्येद्भिषगग्निकर्म ॥ १२ ॥

तत्र सम्यग्दग्धे मधुसर्पिर्भ्यामभ्यङ्गः ॥ १३ ॥

अथेमानग्निना परिहरेत्—पित्तप्रकृतिमन्तःशोणितं भिन्नकोष्ठमनुद्धृतशल्यं दुर्बलं बालं वृद्धं भीरुमनेकव्रणपीडितमस्वेद्यांश्चेति ॥ १४ ॥

अत ऊर्ध्वमितरथा दग्धलक्षणं वक्ष्यामः—तत्र, स्निग्धं रूक्षं वाऽऽश्रित्य द्रव्यमग्निर्दहति । अग्निसन्तप्तो हि स्नेहः सूक्ष्मसिराऽनुसारित्वात्त्वगादीननुप्रविश्याशु दहति । तस्मात् स्नेहदग्धेऽधिका रुजो भवन्ति ॥ १५ ॥

---

१ अग्निकर्मणोऽवस्थाभेदेनावशिष्टविषयं दर्शयति—**त्वगिति** । २ सुप्तम् = अचेतनम् । ३ नाडी = व्रणविशेषः । ४ आश्रयव्याधिवशेन अभियोजनाकृतिं विभजते—**तत्र वलयेति** । अत्र वलयं वलयमिव शलाकाग्रनिर्मितम्, बिन्दुः बिन्दुरिव, विलेखा विविधा तिर्यगृजुवक्रलेखात्मिका, प्रतिसारणं तप्तशलाकाऽऽदिभिरवघर्षणमित्यूह्यम् । ५ संस्थानम् = आयताद्याकारम् ।

६ सम्यग्दग्धस्याग्निकर्मकुपितरक्तपित्तयोः प्रशमनाय वेदनोपशमाय च चिकित्सां प्रदर्शयति—**तत्र सम्यगिति** । मधुसर्पिर्भ्यामभ्यङ्गस्य प्रयोजनमुक्तं सङ्ग्रहे—"क्षतोष्मणो निग्रहार्थं सन्धानार्थं तथैव च । सद्योव्रणेष्वायतेषु क्षौद्रसर्पिर्विधीयते ॥" इति । ७ अग्निकर्मपरिहार्य्यानाह—**अथेति** । ८ ॥ भिन्नकोष्ठम् = अतिसारिणम् । तदुक्तं क्षारकर्मायोग्यजनपरिगणने—"पाण्डुर्मेही रक्तपित्ती क्षयार्तः क्षामोऽजीर्णी चोदरार्तो विषार्तः । तृड्च्छर्द्यार्तो गर्भिणी पीतमद्यो नैते स्वेद्या यश्च मत्योंऽतिसारी ॥" इति । ९ वलयादिप्रभेदात् प्रकारान्तरेण प्रमादाद् दग्धेऽभिदधाति—**अत इति** । १० इतरथा = वैद्यकर्तृकवलयादिं विना प्रमादाद्दग्धस्य । ११ स्निग्धं = घृतादि,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तत्र[1], प्लुष्टं दुर्दग्धं सम्यग्दग्धमतिदग्धञ्चेति चतुर्विधमग्निदग्धम्। तत्र यद्विवर्णं[2] प्लुष्यतेऽतिमात्रं तत् प्लुष्टम्। यत्रोत्तिष्ठन्ति स्फोटास्तीव्राश्चोषदाहरागपाकवेदनाश्चिराच्चोपशाम्यन्ति तद् दुर्दग्धम्। सम्यग्दग्धमनवगाढं तालफलवर्णं[3] सुसंस्थितं पूर्वलक्षणयुक्तञ्च। अतिदग्धे मांसावलम्बनं गात्रविश्लेषः सिरास्नायुसन्ध्यस्थिव्यापादनमतिमात्रं ज्वरदाहपिपासामूर्च्छाश्चोपद्रवा भवन्ति। व्रणश्चास्य चिरेण रोहति रूढश्च विवर्णो भवति। तदेतच्चतुर्विधमग्निदग्धलक्षणमात्मकर्मप्रसाधकं[4] भवति ॥ १६ ॥

भवन्ति चात्र।

अग्निना[5] कोपितं रक्तं भृशं जन्तोः प्रकुप्यति।
ततस्तेनैव वेगेन पित्तमस्याभ्युदीर्य्यते ॥ १७ ॥
तुल्यवीर्य्ये उभे ह्येते रसतो द्रव्यतस्तथा।
तेनास्य वेदनास्तीव्राः प्रकृत्या च विदह्यते ॥ १८ ॥
स्फोटाः शीघ्रं प्रजायन्ते ज्वरस्तृष्णा च वर्धते।
दग्धस्योपशमार्थाय चिकित्सा सम्प्रवक्ष्यते ॥ १९ ॥
प्लुष्टस्याग्निप्रतपनं[6] कार्य्यमुष्णं तथौषधम्।
शरीरे स्विन्नभूयिष्ठे स्विन्नं भवति शोणितम् ॥ २० ॥
प्रकृत्या ह्युदकं शीतं स्कन्दयत्यतिशोणितम्।
तस्मात् सुखयति[7] ह्युष्णं न तु शीतं कथञ्चन ॥ २१ ॥

---

रूक्षं=काष्ठपाषाणादि। १ वैद्यदोषात्प्रमादाद्वाऽग्निदग्धस्य चातुर्विध्यमाह—**तत्रेति**। २ विवर्णं=प्राकृतवर्णाद्भिन्नवर्णम्, प्लुष्यते=दह्यते, स्फोटो नोत्पद्यत इत्यर्थः। ३ तालफलवर्णं=पक्वतालफलवर्णम्। ४ चतुर्विधेष्वग्निदग्धलक्षणेषु सम्यग्दग्धलक्षणमुपादेयत्वेन वैद्यस्य चिकित्सा कर्मप्रसाधकम्, प्लुष्टदुर्दग्धातिदग्धलक्षणं परिहार्यत्वेनेति बोध्यम्।

५ सर्वेष्वग्निदग्धेषु चिकित्सार्थं विशिष्टदूष्यदोषयोर्दुष्टिं दर्शयति—**अग्निनेति**। ६ चतुर्विधेष्वग्निदग्धेष्वादौ प्लुष्टचिकित्सां निर्दिशति—**प्लुष्टस्येति**। प्रतपनं=स्वेदनम्। ७ यतः स्त्यानेन रक्तेन चावरुद्धमार्गो वायुरूष्माऽप्यनिर्गच्छन् प्लुष्टे शूलशोफरागादिकां वेदनां करोत्यतः शीतोपचारः सुखकारको न भवति, किन्तूष्णोपचारो रक्त-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शीतामुष्णाञ्च दुर्दग्धे क्रियां कुर्य्याद् भिषक् पुनः ।
घृतालेपनसेकांस्तु शीतानेवास्य कारयेत् ॥ २२ ॥
सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरीपद्मचन्दनगैरिकैः ।
सामृतैः सर्पिषा स्निग्धैरालेपं कारयेद्भिषक् ॥ २३ ॥
ग्राम्यानूपौदकैश्चैनं पिष्टैर्मांसैः प्रलेपयेत् ।
पित्तविद्रधिवच्चैनं सन्ततोष्माणमाचरेत् ॥ २४ ॥
अतिदग्धे विशीर्णानि मांसान्युद्धृत्य शीतलाम् ।
क्रियां कुर्य्याद् भिषक् पश्चाच्छालितण्डुलकण्डनैः ॥ २५ ॥
तिन्दुकीत्वक्कषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् ।
व्रणं गुडूचीपत्रैर्वा छादयेदथवौदकैः ॥ २६ ॥
क्रियाञ्च निखिलां कुर्य्याद् भिषक् पित्तविसर्पवत् ।
मधूच्छिष्टं समधुकं रोध्रं सर्जरसं तथा ॥ २७ ॥
मञ्जिष्ठां चन्दनं मूर्वा पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।
सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमुत्तमम् ॥ २८ ॥
स्नेहदग्धे क्रियां रूक्षां विशेषेणावचारयेत् ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धूमोपहतलक्षणम् ॥ २९ ॥

---

विलयनकारको भवतीति भावः । तदुक्तं सङ्ग्रहे—"स्त्याने रक्ते हिमैर्नोष्मा निष्क्रामति यतो बहिः । वेदना वर्धते तेन रुधिरं च विदह्यते । उष्णं निष्कामयत् कुर्यादूष्माणं मन्दतां रुजः ॥" इति । १ दुर्दग्धचिकित्सां निर्दिशति—**शीतामिति** । २ दुर्दग्धेऽवगाढमूलदग्धभागस्य स्विन्नरक्तस्य विलयनार्थं शीतोपचारम्, अनवगाढमूलदग्धभागस्यास्विन्नरक्तस्य विलयनार्थमुष्णोपचारं कुर्यादित्यर्थः । ३ सम्यग्दग्धचिकित्सां निर्दिशति—**सम्यगिति** । ४ सम्यग्दग्धे घृतस्निग्धीकृतैस्तुगाक्षीर्यादिद्रव्यैः पित्तप्रत्यनीकमविशोषिणं लेपं कारयेदित्यर्थः । ५ वातशान्त्यर्थं प्रलेपं वक्ति—**ग्राम्येति** । ६ सन्ततोष्माणं=बलवत्तरोष्माणम् । ७ अतिदग्धचिकित्सां दर्शयति—**अतिदग्ध इति** । विशीर्णानि=अवलम्बितानि । ८ तिन्दुकीत्वक्कषायैः=तिन्दुकीत्वक्चूर्णैरित्यर्थः । ९ औदकैः=पद्मादिकोमलपत्रैः । गुडूचीपद्मपत्रादिच्छादनेन पित्तरक्तोपद्रुतो व्रण ऊष्माणं त्यक्त्वा सुखमुत्वादयतीति तात्पर्यम् । १० सर्वेष्वग्निदग्धेषु व्रणस्य रोपणाय चिकित्सां दर्शयति—**मधूच्छिष्टमिति** । ११ घृतादिस्नेहदग्धचिकित्सां कथयति—**स्नेहदग्ध इति** । १२ कण्ठनासादिषु कर्मणि कृते धूमोपहतलक्षणं ब्रवीति—**अत**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्वसिति क्ष्वौति चात्यर्थमत्याधमति[1] कासते ।
चक्षुषोः परिदाहश्च रागश्चैवोपजायते ॥ ३० ॥
सधूमकं निश्वसिति घ्रेयं[2]मन्यन्न वेत्ति च ।
तथैव च रसान् सर्वान् श्रुतिश्चास्योपहन्यते ॥ ३१ ॥
तृष्णादाहज्वरयुतः सीदत्यथ च मूर्च्छति ।
धूमोपहत इत्येवं, शृणु तस्य चिकित्सितम् ॥ ३२ ॥
सर्पिरिक्षुरसं द्राक्षां पयो वा शर्कराम्बु वा ।
मधुराम्लौ रसौ वाऽपि वमनाय प्रदापयेत्[3] ॥ ३३ ॥
वमतः कोष्ठशुद्धिः स्याद् धूमगन्धश्च नश्यति ।
विधिनाऽनेन शाम्यन्ति सदनज्वरवथुज्वराः[4] ॥ ३४ ॥
दाहमूर्च्छातृडाध्मानश्वासकासाश्च दारुणाः ।
मधुरैर्लवणाम्लैश्च कटुकैः कवलग्रहैः ॥ ३५ ॥
सम्यग्गृह्णातीन्द्रियार्थान् मनश्चास्य प्रसीदति ।
शिरोविरेचनं चास्मै दद्याद्योगेन शास्त्रवित् ॥ ३६ ॥
दृष्टिर्विशुध्यते चास्य शिरोग्रीवञ्च देहिनः ।
अविदाहि लघु स्निग्धमाहारं चास्य कल्पयेत् ॥ ३७ ॥
उष्णवातातपैर्दग्धे शीतः कार्य्यो विधिः सदा[5] ।
शीतवर्षानिलैर्दग्धे स्निग्धमुष्णं च शस्यते[6] ॥ ३८ ॥
तथाऽतितेजसा दग्धे सिद्धिर्नास्ति कथञ्चन ।
इन्द्रवज्राग्निदग्धेऽपि जीवति प्रतिकारयेत् ।
स्नेहाभ्यङ्गपरीषेकैः प्रदेहैश्च तथा भिषक् ॥ ३९ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थानेऽग्निकर्मविधिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

**इति** । १ आधमति = आध्मानयुक्तो भवति । २ घ्रातुं योग्यं घ्रेयम्, नासागतदोषेण धूमादन्यद् घ्रेयं न वेत्तीत्यर्थः । ३ धूमोपघातस्य चिकित्सां दर्शयति—**सर्पिरिति** । ४ सदनं = शरीरावसन्नता । ५ प्रसङ्गाद् दग्धसदृशस्योष्णवातातपादिदग्धस्य चिकित्सां दर्शयति—**उष्णेति** । अत्र बहुवचनमनुक्तोष्णप्रापणार्थम्, अन्यथा द्विवचनेनैव वदेत् । ६ शीतं = हिमम्, अत्रापि बहुवचनमनुक्तशीतप्रापणार्थम् ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वादशोऽध्यायः ।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो जलौकाऽवचारणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

नृपाद्यबालस्थविरभीरुदुर्बलनारीसुकुमाराणामनुग्रहार्थं परमसुकुमारोऽयं शोणितावसेचनोपायोऽभिहितो जलौकसः ॥ ३ ॥

तत्र वातपित्तकफदुष्टशोणितं यथासंख्यं शृङ्गजलौकोऽलाबुभिरवसेचयेत्, स्निग्धशीतरूक्षत्वात् । सर्वाणि सर्वैर्वा ॥ ४ ॥

भवन्ति चात्र ।

उष्णं समधुरस्निग्धं गवां शृङ्गं प्रकीर्तितम् ।
तस्माद्वातोपसृष्टे तु हितं तदवसेचने ॥ ५ ॥
शीताधिवासा मधुरा जलौका वारिसम्भवा ।
तस्मात् पित्तोपसृष्टे तु हिता सा त्ववसेचने ॥ ६ ॥
अलाबु कटुकं रूक्षं तीक्ष्णञ्च परिकीर्त्तितम् ।

---

**त्रयोदशोऽध्यायः ।**

१ जलौकानामवचारणमस्ति यस्मिन् सोऽध्यायो जलौकाऽवचारणीयस्तम् । २ जलौकसोपचरणीयानाह—**नृपेति** । ३ जलौकसां प्रसङ्गाच्छृङ्गस्यालाब्वाश्च दोषविशेषेण विषयं दर्शयति—**तत्रेति** । ४ वाग्भटे—"प्रच्छानैनैकदेशस्थं ग्रथितं जलजन्मभिः । हरेच्छृङ्गादिभिः सुप्तमसृग्व्यापि सिराव्यधैः । प्रच्छानं पिण्डिते वा स्यादवगाढे जलौकसः । त्वक्स्थेऽलाबुघटीशृङ्गं सिरैव व्यापकेऽसृजि । वातादिधाम वा शृङ्गजलौकाऽलाबुभिः क्रमात् ॥" इति । ५ वातदुष्टे सहेतुशृङ्गावचारणं दर्शयति—**उष्णमिति** । ६ शृङ्गं=रक्तमोक्षणार्थकशृङ्गकृतयन्त्रम्, एतल्लक्षणमाह वाग्भटः—"व्यङ्गुलास्यं भवेच्छृङ्गं चूषणेऽष्टादशाङ्गुलम् । अग्रे सिद्धार्थकच्छिद्रं सुनद्धं चूचुकाकृति ॥" इति । सिद्धार्थकः=गौरसर्षपः । ७ पित्तदुष्टे सहेतुजलौकोऽवचारणं कथयति—**शीतेति** । ८ जलौका=रक्तपाः, भाषायां 'जोक' इति; 'रक्तपा तु जलौकायाम्' इत्यमरः । सान्तो जलौकश्शब्दः, "ओक उचः के" इति निपातिताऽदन्तोऽपि । एतच्छोधनमुक्तम्—"चिरन्तनजलौकायां ताम्रपात्रेण रक्षयेत् । चतुर्मासं निशाचूर्णं जलार्द्रपलके क्षिपेत् ॥ तस्मिन् क्षिपेज्जलौकां तां स्वयं लाला परित्यजेत् । मुक्तलाला जलौकाया सा योज्या रक्तमोक्षणे ॥" इति ।

९ श्लेष्मदुष्टे सहेत्वलाब्ववचारणं दर्शयति—**अलाब्विति** । अलाबु=रक्तमो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्माच्छ्लेष्मोपसृष्टे तु हितं तदवसेचने ॥ ७ ॥

तत्र, प्रच्छिते तनुबस्तिपटलावनद्धेन शृङ्गेण शोणितमवसेचयेदाचूषणात्, सान्तर्दीपयाऽलाब्वा ॥ ८ ॥

जलमासामायुरिति जलायुकाः, जलमासामोक इति जलौकसः ॥ ९ ॥

ता द्वादश, तासां सविषाः षट्, तावत्य एव निर्विषाः ॥१०॥

तत्र, सविषाः—कृष्णा कर्बुरा अलगर्दा इन्द्रायुधा सामुद्रिका गोचन्दना चेति। तासु, अञ्जनचूर्णवर्णा पृथुशिराः कृष्णा। वर्मिमत्स्यवदायता छिन्नोन्नतकुक्षिः कर्बुरा। रोमशा महापार्श्वा कृष्णमुखी अलगर्दा। इन्द्रायुधवदूर्ध्वराजिभिश्चित्रिता इन्द्रायुधा। ईषदसितपीतिका विचित्रपुष्पाकृतिचित्रा सामुद्रिका। गोवृषणवदधोभागे द्विधाभूताकृतिरणुमुखी गोचन्दनेति। ताभिर्दष्टे पुरुषे दंशे श्वयथुरतिमात्रं कण्डूर्मूर्च्छा ज्वरो दाहश्छर्दिर्मदः सदनमिति लिङ्गानि भवन्ति। तत्र महागदः पानालेपननस्यकर्मादिषूपयोज्यः। इन्द्रायुधादष्टमसाध्यम्। इत्येताः सविषाः सचिकित्सता व्याख्याताः ॥ ११ ॥

अथ निर्विषाः—कपिला पिङ्गला शङ्कुमुखी मूषिका पुण्डरीकमुखी सावरिका चेति। तत्र, मनःशिलारञ्जिताभ्यामिव पार्श्वाभ्यां पृष्ठे स्निग्धमुद्गवर्णा कपिला। किञ्चिद्रक्ता वृत्तकाया पिङ्गाऽऽ-

---

क्षणार्थकालाबुकृतयन्त्रम्। एतल्लक्षणमाह वाग्भटः—"स्याद् द्वादशाङ्गुलोऽलाबुर्नाहे त्वष्टादशाङ्गुलः। चतुस्त्र्यङ्गुलवृत्तास्यो दीप्तोऽन्तःश्लेष्मरक्तहृत्॥" इति। निबन्धव्याख्योद्धृतभाल्लूकिस्तु—"अष्टाङ्गुलपरिणाहा चतुरङ्गुलनालसम्मिता सुमुखी। कृष्णमृदालिप्ततनुः श्रेष्ठा रक्तावसेचनेऽलाबुः॥" इत्याह। १ शृङ्गालाबुकयोरवचारणप्रकारं दर्शयति—**तत्रेति**। २ सान्तर्दीपया=मध्यदीपसहितया शोणितमवसेचयेदिति सम्बन्धः। ३ जलौकाया निरुक्तिं वक्ति—**जलमिति**। ४ सविषनिर्विषभेदात्सङ्ख्यां निर्दिशति—**ता इति**। ५ सविषजलौकसां नामनिर्देशपुरस्सरमाकृतिं निर्दिशति—**तास्विति**। ६ एतद्दंशलिङ्गमसाध्यसर्पदष्टविषवेगविज्ञानवदसाधनार्हं वेदितव्यमित्यर्थः। ७ निर्विषजलौकसां नामनिर्देशपूर्वकमाकारं दर्शयति—**तत्रे**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुगा च पिङ्गला । [1]यकृद्वर्णा शीघ्रपायिनी दीर्घतीक्ष्णमुखी शङ्कुमुखी । मूषिका[2]कृतिवर्णाऽनिष्टगन्धा च मूषिका । मुद्गवर्णा पुण्डरीकतुल्यवक्त्रा पुण्डरीकमुखी । स्निग्धा पद्मपत्रवर्णाऽष्टादशाङ्गुलप्रमाणा सावरिका । सा च [3]पश्वर्थे । इत्येता अविषा व्याख्याताः ॥ १२ ॥

[4]तासां यवनपाण्ड्यसह्यपौतनादीनि क्षेत्राणि । तेषु महाशरीरा बलवत्यः शीघ्रपायिन्यो महाशना निर्विषाश्च विशेषेण भवन्ति ।

[5]तत्र, सविषमत्स्यकीटदर्दुरमूत्रपुरीषकोथ[6]जाताः कलुषेष्वम्भस्सु च सविषाः । पद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिककुवलयपुण्डरीकशैवलकोथजाता विमलेष्वम्भस्सु च निर्विषाः ॥ १३ ॥

भवति चात्र ।

क्षेत्रेषु विचरन्त्येताः सलिलाढ्यसुगन्धिषु ।
न च [7]सङ्कीर्णचारिण्यो न च [8]पङ्केशयाः सुखाः ॥ १४ ॥
तासां ग्रहणमार्द्रचर्मणा, अन्यैर्वा प्रयोगैर्गृह्णीयात् ॥ १५ ॥

[9]अथैनां नवे महति घटे सरस्तडागोदकपङ्कमावाप्य निदध्यात् । भक्ष्यार्थे चासामुपहरेच्छैवलं [10]वल्लूरमौदकांश्च कन्दांश्चूर्णीकृत्य, शय्यार्थं तृणमौदकानि च पत्राणि, द्व्यहात्त्र्यहाच्चा-

---

ति । १ यकृद्वर्णा=नीललोहितवर्णा । २ मूषिकलाङ्गूलाकृतिवर्णेत्यर्थः । ३ सङ्ग्रहे विशेषः—"सर्वासां च परं प्रमाणमष्टादशाङ्गुलानि । तत्र चतुष्पञ्चषडङ्गुला नृषु योजयेत्, गजवाजिष्वपराः । तासु सुकुमारास्तनुत्वचोऽल्पशिरस्का बृहदधरकायाश्च स्त्रियः, विपरीताः पुमांसोऽर्धचन्द्राकृति पुरोवृत्ताश्च । तत्र बहुदोषेषु चिरोत्थितेषु चामयेषु पुमांसो योजयितव्याः, स्त्रियो विपरीतेषु" ।

४ निर्विषजलौकसां प्रशस्तान् देशान् दर्शयति—**तासामिति** । यवनः=तुरुष्कदेशः । पाण्ड्यः=दक्षिणदिग्भवो देशः, सह्यः=नर्मदापारे पर्वतविशेषः, पौतनः=मथुरा । ५ जलौकसां सविषनिर्विषत्वं दर्शयति—**तत्रेति** । ६ कोथः=पूतिभावः । ७ शैवलाद्यशनत्वाद् विषादिविरुद्धाहारभुजो न भवन्तीत्यर्थः । ८ तृणोदकपत्रशयनत्वात्पङ्के न स्वपन्ती त्यर्थः । ९ पोषणप्रकारं दर्शयति—**अथैनामिति** । १० वल्लूरं=शुष्कमांसम्, 'उत्तप्तं शुष्कमांसं स्यात्तद्वल्लूरं त्रिलिङ्गकम्' इत्य-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्योऽन्यज्जलं भक्ष्यञ्च दद्यात्। सप्तरात्रात् सप्तरात्राच्च घटमन्यं सङ्क्रामयेत्॥ १६॥

भवति चात्र।

स्थूलमध्याः परिक्लिष्टाः पृथ्व्यो मन्दविचेष्टिताः।
अग्राहिण्योऽल्पपायिन्यः सविषाश्च न पूजिताः॥ १७॥

अथ जलौकोऽवसेकसाध्यव्याधितमुपवेश्य संवेश्य वा, विरूक्ष्य चास्य तमवकाशं मृद्गोमयचूर्णैर्यद्यरुजः स्यात्। गृहीताश्च ताः सर्षपरजनीकल्कोदकप्रदिग्धगात्रीः सलिलसरकमध्ये मुहूर्त्तस्थिता विगतक्लमा ज्ञात्वा ताभिः रोगं ग्राहयेत्। श्लक्ष्णशुक्लार्द्रपिचुप्रोतावच्छन्नां कृत्वा मुखमपावृणुयात्। अगृह्णन्त्यै क्षीरबिन्दुं शोणितबिन्दुं वा दद्याच्छस्त्रपदानि वा कुर्वीत। यद्येवमपि न ग्रहीयात्तदाऽन्यां ग्राहयेत्॥ १८॥

यदा च निविशितेऽश्वखुरवदाननं कृत्वोन्नम्य च स्कन्धं तदा जानीयाद् गृह्णातीति। गृह्णन्तीं चार्द्रवस्त्रावच्छन्नां धारयेत् सेचये च॥ १९॥

दंशे तोदकण्डुप्रादुर्भावैर्जानीयाच्छुद्धमियमादत्त इति। शुद्धमाददानामपनयेत्। अथ शोणितगन्धेन न मुञ्चेन्मुखमस्याः सैन्धवचूर्णेनावकिरेत्॥ २०॥

अथ पतितां तण्डुलकण्डनप्रदिग्धगात्रीं तैललवणाभ्यक्तमुखीं

---

मरः। १ अनुपयोज्यजलौकोलक्षणं दर्शयति—**स्थूलेति**। परिक्लिष्टाः=अन्योन्यदर्शनाः, श्रान्ता इति तात्पर्यम्; पृथ्व्यः=विस्तीर्णाः। तन्त्रान्तरोक्ततल्लक्षणम्—"लोमपृष्ठा च कपिला नातिस्थूला न दुर्बला। वर्जनीया प्रयत्नेन भिषजा कीर्तिमिच्छता॥" इति। २ तासामवचारणप्रकारं निर्दिशति—**अथेति**। ३ सलिलसरकं=जलपात्रम्। ४ रोगाधिष्ठाने जलौकसां ग्रहणलक्षणं दर्शयति—**यदेति**। ५ गृह्णाति=आददाति, शोणितं पिबतीत्यर्थः। जलौकाः स्वप्रकृत्या प्रथमं दुष्टमेव शोणितं यथा पिबन्तीत्याह वाग्भटः—"संपृक्ताद् दुष्टशुद्धास्त्राज्जलौका दुष्टशोणितम्। आदत्ते प्रथमं हंसः क्षीरं क्षीरोदकादिव॥" इति। ६ दुष्टरक्तपानानन्तरं विशुद्धरक्तादानलक्षणं दर्शयति—**दंश इति**। ७ तस्या रक्तापहरणविधिमभिदधाति—**अथेति**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वामहस्ताङ्गुष्ठाङ्गुलीभ्यां गृहीतपुच्छां दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठाङ्गुलिभ्यां शनैः शनैरनुलोममनुमार्जयेदास्यात् । वामयेत् तावद्यावत् सम्यग्वान्तलिङ्गानीति । सम्यग्वान्ता सलिलसरकन्यस्ता भोक्तुकामा सती चरेत् । या सीदति न चेष्टते सा दुर्वान्ता, तां पुनः सम्यग्वामयेत् । दुर्वान्ताया व्याधिरसाध्य इन्द्रमदो (रक्तमदो) नाम भवति । अथ सुवान्तां पूर्ववत् सन्निदध्यात् ॥ २१ ॥

शोणितस्य[1] च योगायोगानवेक्ष्य शतधौतघृताभ्यङ्गस्तत्पिचुधारणं वा, जलौकोव्रणान् मधुनाऽवघट्टयेत् । शीताभिरद्भिश्च परिषेचयेद् बध्नीत[2] वा, व्रणं कषायमधुरस्निग्धशीतैश्च प्रदेहैः प्रदिह्यादिति ॥ २२ ॥

भवति चात्र ।

क्षेत्राणि[3] ग्रहणं जातीः पोषणं सावचारणम् ।
जलौकसाञ्च यो वेत्ति तत्साध्यान् स जयेद् गदान् ॥२३॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने जलौकाऽवचारणीयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

## चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातः शोणितवर्णनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः[4] ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

तत्र[5] पाञ्चभौतिकस्य चतुर्विधस्य षड्रसस्य द्विविधवी[6]-

---

१ शोणितावसेचनानन्तरं जलौकोव्रणचिकित्सामाख्याति—**शोणितस्येति** । २ जलौकोमुखपदस्य रक्तस्थित्यर्थं बध्नीतेत्यर्थः । ३ पूर्वोक्तमुपसंहरति—**क्षेत्राणीति** ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रयोदशोऽध्यायः ।**

---

**चतुर्दशोऽध्यायः ।**

४ शोणितस्य वर्णनमधिकृत्य कृतोऽध्यायः शोणितवर्णनीयस्तम् । ५ शोणितोत्पत्तेर्हेतुभूतरसं विवृणोति—**तत्रेति** । ६ पेयलेह्यभोज्यभक्ष्यभेदाच्चतुर्विधस्येत्यर्थः । ७ शीतोष्णभेदाद् द्विविधवीर्यस्येत्यर्थः । अष्टविधवीर्यस्य शीतोष्णस्निग्धरूक्षविशदपि-


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


र्य्यस्याष्टविधवीर्य्यस्य वाऽनेकगुणस्योपयुक्तस्याहारस्य सम्यक्परिणतस्य यस्तेजोभूतः सारः परमसूक्ष्मः स रस इत्युच्यते। तस्य[1] च हृदयं स्थानं, स[2] हृदयाच्चतुर्विंशतिं धमनीरनुप्रविश्योर्ध्वगा दश दश चाधोगामिन्यश्चतस्रश्च तिर्यग्गाः कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति वर्द्धयति धारयति यापयति चादृष्टहेतुकेन कर्मणा। तस्य शरीरमनुसरतोऽनुमानाद् गतिरुपलक्षयितव्या क्षयवृद्धिवैकृतैः। तस्मिन् सर्वशरीरावयवदोषधातुमलाशयानुसारिणि रसे जिज्ञासा—किमयं सौम्यस्तैजस ? इति। अत्रोच्यते—स खलु द्रवानुसारी स्नेहनजीवनतर्पणधारणादिभिर्विशेषैः सौम्य इत्यवगम्यते ॥ ३ ॥

स[3] खल्वाप्यो रसो यकृत्प्लीहानौ प्राप्य राग[4]मुपैति ॥ ४ ॥

भवतश्चात्र।

रञ्जि[5]तास्तेजसा त्वापः शरीरस्थेन देहिनाम्।
अव्यापन्नाः प्रसन्नेन रक्तमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥
रसा[6]देव स्त्रिया रक्तं रजःसंज्ञं प्रवर्त्तते।
तद्वर्षाद् द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥ ६ ॥
आर्त[7]वं शोणितं त्वाग्नेयं अग्नी[8]षोमीयत्वाद् गर्भस्य ॥ ७ ॥
पाञ्चभौतिकं त्वपरे जीव[9]रक्तमाहुराचार्य्याः ॥ ८ ॥
विस्र[10]ता द्रवता रागः स्पन्दनं लघुता तथा।

---

च्छिलमृदुतीक्ष्णभेदादष्टविधवीर्यस्येत्यर्थः। अनेकगुणस्य=विंशतिगुणस्य। अष्टाङ्गहृदये-"गुरुमन्दहिमस्निग्धश्लक्ष्णतान्द्रमृदुस्थिराः। गुणाः ससूक्ष्मविशदा विंशतिः सविपर्ययाः॥" इति। १ तस्य=पोष्यस्य धातुरसस्य। हृदयस्यौजःस्थानत्वाद् हृदयशब्देनात्र हृदयोपलक्षितः प्रदेश उच्यते; न तु साक्षाद्धृदयम्। २ रसस्य क्रियां निर्दिशति—**स इति**। ३ शोणितं दर्शयति—**स इति**। ४ रागं=शोणितत्वम्। ५ पूर्वोक्तं स्पष्टीकरोति—**रञ्जिता इति**। ६ रक्तार्तवयोरभेदं प्रतिपादयन् तदुत्पत्तिक्षयकालं दर्शयति—**रसादेवेति**।

७ शोणितार्त्तवयोः स्वभावभेदं निर्दिशति—**आर्तवमिति**। ८ अग्नीषोमीयत्वात्=आग्नेयसौम्यत्वात्, आर्तवस्याग्निर्देवता, शुक्रस्य च सोमदेवता; "ईदग्नेः सोमवरुणयोः" इति ईकारः, "अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः" इति षत्वम्। ९ जीवरक्तं=मृतशरीरे रक्तादर्शनाज्जीवतुल्यं रक्तमित्यर्थः। १० शोणितस्य पूर्वोक्तं पाञ्चभौतिकत्वं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भूम्यादीनां गुणा ह्येते दृश्यन्ते चात्र शोणिते ॥ ९ ॥
रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रं तु जायते ॥ १० ॥

---

विवृणोति—**विस्रतेति**। विस्रता = आमगन्धता भूमिगुणः, द्रवता = द्रवभावो जलगुणः, रागः = रक्तता तेजोगुणः, स्पन्दनम् = ईषच्चलनं वायुगुणः, लघुता = लघुभाव आकाशगुण इति ।

१ शोणितप्रसङ्गेन धात्वन्तराणामपि क्रमेणोत्पत्तिं दर्शयति—**रसाद्रक्तमिति**। आद्यधातु**रसस्वरूपम्**—"आहारस्य रसः सारः" आहारसारभूत इत्यर्थः। **रसस्थानम्**—"सर्वदेहचरस्यापि स्थानं हृदयमेव च। रसस्तु हृदयं याति समानमारुतेरितः॥ स तु व्यानेन विक्षिप्तः सर्वान् धातून् विवर्द्धयेत्।" इति। रससारभूतद्वितीयधातु**रक्तस्वरूपम्**—"रसस्तु हृदयं याति समानमारुतेरितः। रञ्जितः पाचितस्तत्र पित्तेनायाति रक्तताम्॥ रक्तं सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम्। स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद् भवेत्"॥ **रक्तस्थानम्**—"यकृत्प्लीहा च रक्तस्य मुख्यस्थानम्। तस्य कर्म च जीवनम्" इति। रक्तसारभूततृतीयधातु**मांसस्वरूपम्**—"शोणितं स्वाग्निना पक्वं वायुना च घनीकृतम्। तदेव मांसं जानीयात्·····"इति। मांससारभूतचतुर्थधातु**मेदःस्वरूपम्**—"यन्मांसं स्वाग्निना पक्वं तन्मेद इति कथ्यते।" **मेदःस्थानम्**—"मेदो हि सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिषु स्थितम्। अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत्॥" इति। मेदस्सारभूतपञ्चमधा**त्वस्थिस्वरूपम्**—"मेदो यत्स्वाग्निना पक्वं वायुना चातिशोधितम्। तदस्थिसंज्ञां लभते स सारः सर्वविग्रहे"॥ स्थानभेदेन शतत्रयमस्थिसंख्यां विस्तरतः शारीरे वक्ष्यते। संक्षेपस्तु–देहशाखासु १२०, श्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरस्सु ११७, ग्रीवायां प्रत्यूर्ध्वं च ६३ इति बोध्यम्। अस्थिसारभूतषष्ठधातु**मज्जस्वरूपम्**—"स्नेहोऽस्थ्नः शुचिरेव स्यात्स मज्जा कथितो बुधैः"। "यः स्वेदवत्पृथग्भूतः स मज्जेत्यभिधीयते"। **मज्जस्थानम्**—"स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यन्तरे स्थितः।" इति। मज्जासारभूतसप्तमधातु**शुक्रस्वरूपम्**—"शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम्। गर्भबीजं वपुःसारो जीवस्याश्रय उत्तमः॥" इति। **शुक्रस्थानम्**—"यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा। एवं हि सकले काये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम्॥" इति। एतेषां मलानाह चरकः—"किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं, रसस्य तु कफोऽसृजः। पित्तं, मांसस्य खमला, मलः स्वेदस्तु मेदसः। स्यात्किट्टं केशलोमास्थनो, मज्ज्ञः स्नेहोऽक्षिविट्त्वचाम्॥" इति। "न शुक्रे पच्यमानेऽपि हेमनीवाक्षये मलः" इत्युक्तत्वात् सहस्रधाध्मातसुवर्णवच्छुक्रे मलो नोत्पद्यत इति बोध्यम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्रैषांसर्वधातूनामन्नपानरसः प्रीणयिता ॥ ११ ॥
रसजं पुरुषं विद्याद्रसं रक्षेत्प्रयत्नतः ।
अन्नात्पानाच्च मतिमानाचाराच्चाप्यतन्द्रितः ॥ १२ ॥
तत्र 'रस गतौ' धातुः; अहरहर्गच्छतीत्यतो रसः ॥ १३ ॥
स खलु त्रीणि त्रीणि कलासहस्राणि पञ्चदश च कला एकैकस्मिन् धाताववतिष्ठते । एवं मासेन रसः शुक्रीभवति स्त्रीणां चार्त्तवम् ॥ १४ ॥

भवति चात्र ।

अष्टादशसहस्राणि सङ्ख्या ह्यस्मिन् समुच्चये ।
कलानां नवतिः प्रोक्ता स्वतन्त्रपरतन्त्रयोः ॥ १५ ॥
स शब्दार्चिर्जलसन्तानवदणुना विशेषेणानुधावत्येवं शरीरं केवलम् ॥ १६ ॥
वाजीकरण्यस्त्वोषधयः स्वबलगुणोत्कर्षाद्विरेचनवदुपयुक्ताः शुक्रं शीघ्रं विरेचयन्ति ॥ १७ ॥

---

१ रसप्राधान्यमाह—**तत्रैषामिति** । २ अत एव मनुः—"अनाभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् । आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति ॥" इत्युपदिष्टवान् । ३ रसस्य निरुक्तिमाह—**तत्रेति** ।

४ धात्वन्तराणां स्वरूपं जनयतो रसधातोरेकैकस्मिन् धातौ कियत्कालावस्थितिरिति दर्शयति—**स खल्विति** । ५ पूर्वोक्तां संख्यां समुच्चिनोति—**अष्टेति** । हि यस्माद् अस्मिन् मासाख्ये समुच्चये कलासमूहे कलानाम् अष्टादशसहस्राणि नवतिश्च संख्याः स्वतन्त्रपरतन्त्रयोः प्रोक्ताः । अतस्त्रीणि कलासहस्राणि पञ्चदश च कला एकैकस्मिन् धाताववतिष्ठमानो रसो रक्तादिरूपेण परिणम्य शुक्रीभवन् मासं पूरयतीति तात्पर्यम् । ६ शरीरे रससञ्चरणं दृष्टान्तत्रयेण त्रिधा दर्शयति—**स इति** । ७ सन्तानशब्दः शब्दादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते । तथा च, शब्दसन्तानवदित्यनेन रसस्य तिर्यग्गामित्वम्, अर्चिःसन्तानवदित्यनेनोर्ध्वगामित्वं, जलसन्तानवदित्यनेनाधोगामित्वं चोक्तं भवति ।

८ मासेन रसः शुक्रीभवतीति पूर्वोक्ताद् वाजीकरीमहौषधीनां प्रयोगस्य नैष्फल्याशङ्कायां समादधति—**वाजीति** । ९ स्वशब्दस्योत्कर्षशब्दस्य च बलगुणाभ्यां सह सम्बन्धः । तथा चायं भावः—स्वबलोत्कर्षात् सङ्कल्पपादलेपविशिष्टकान्तास्पर्शादयः,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा[1] हि पुष्पमुकुलस्थो गन्धो न शक्यमिहास्तीति वक्तुमथो नैवा (नैव चा)स्तीति; अथवाऽ(च)स्ति, सतां भावानामभिव्यक्तिरिति कृ(ज्ञा)त्वा, केवलं सौक्ष्म्यान्नाभिव्यज्यते; स एव पुष्पे विवृतपत्रकेशरे कालान्तरेणाभिव्यक्तिं गच्छति; एवं बालानामपि वयःपरिणामाच्छुक्रप्रादुर्भावो भवति, रोमराज्यादयश्च विशेषा नारीणाम्। रजसि चोपचीयमाने शनैः शनैः स्तनगर्भाशययोन्यभिवृद्धिर्भवति १८

स एवान्नरसो वृद्धानां जरापरिपक्वशरीरत्वादप्रीणनो[2] भवति॥१९॥

त एते शरीरधारणाद्धातव[3] इत्युच्यते ॥ २० ॥

तेषां[4] क्षयवृद्धी शोणितनिमित्ते तस्मात्तदधिकृत्य वक्ष्यामः। तत्र[5], फेनिलमरुणं कृष्णं परुषं तनु शीघ्रगमस्कन्दि च वातेन दुष्टम्। नीलं पीतं हरितं श्यावं विस्रमनिष्टं पिपीलिकामक्षिकाणामस्कन्दि च पित्तदुष्टम्। गैरिकोदकप्रतीकाशं स्निग्धं शीतलं बहलं पिच्छिलं चिरस्रावि मांसपेशीप्रभं च श्लेष्मदुष्टम्। सर्वलक्षणसंयुक्तं काञ्जिकाभं विशेषतो दुर्गन्धि च सन्निपातदुष्टं, पित्तवद्रक्तेनातिकृष्णं च द्विदोषलिङ्गसंसृष्टम्। जीवशोणितमन्यत्र वक्ष्यामः ॥२१॥

इन्द्रगोपक[6]प्रतीकाशमसंहतमविवर्णं च प्रकृतिस्थं जानीयात् ॥२२॥

विस्राव्याण्यन्यत्र[7] वक्ष्यामः ॥ २३ ॥

अथाविस्राव्याः-सर्वाङ्गशोफः, क्षीणस्य चाम्लभोजननिमित्तः, पाण्डुरोग्यर्शसोदरिशोषिगर्भिणीनां च श्वयथवः ॥ २४ ॥

---

स्वगुणोत्कर्षाद् घृतक्षीरादयः, स्वबलगुणोत्कर्षान्माषादयश्चौषधयः शीघ्रं शुक्रं विरेचयन्तीति।

१ यदि मासेन रसः शुक्रीभवति तदा बालानामनश्नतामपि तत्कथं न दृश्यत इति निर्दिशति—**यथेति।** २ अप्रीणनः = ईषत्तर्पणः, अशेषधातुपोषकोऽपि रसो वृद्धानां जीवनमात्रं करोतीति भावः। ३ अत्र धातुशब्दो यौगिकस्तेन सिरास्नाय्वादयः सप्तोपधातवोऽपि ग्राह्याः। ४ तेषां = धातूनाम्। ५ रक्तविकृती अभिदधाति—**तत्रेति।** ६ रक्तप्रकृतिं दर्शयति—**इन्द्रेति।।** इन्द्रगोपकः = प्रावृट्कालज उद्भिज्जो रक्तेन्द्रवधूः। 'वीरबहूटी' इति लोके। चरके—"तपनीयेन्द्रगोपाभं पद्मालक्तकसन्निभम्। गुञ्जाफलसवर्णं च विशुद्धं विद्धि शोणितम्॥" इति। ७ अन्यत्र = अष्टविधशस्त्रकर्माध्याये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र शस्त्रविस्रावणं द्विविधं-[1]प्रच्छानं सिराव्यधनं च ॥ २५ ॥

तत्र, ऋज्वसङ्कीर्णं[6] सूक्ष्मं सममनवगाढमनुत्तानमाशु च शस्त्रं पातयेन्मर्मसिरास्नायुसन्धीनां चानुपघाति ॥ २६ ॥

तत्र, [2]दुर्दिने दुर्विद्धे शीतवातयोरस्विन्ने भुक्तमात्रे स्कन्द[3]त्वाच्छोणितं न स्रवत्यल्पं वा स्रवति ॥ २७ ॥

[4]मदमूर्च्छाश्रमार्त्तानां वातविण्मूत्रसङ्गिनाम् ।
निद्राऽभिभूतभीतानां नृणां नासृक् प्रवर्त्तते ॥२८॥

[5]तद्दुष्टं शोणितमनिर्ह्रियमाणं कण्डूशोफरागदाहपाकवेदना जनयेत् ॥ २९ ॥

[6]अत्युष्णेऽतिस्विन्नेऽतिविद्धेऽज्ञैर्विस्रावितमतिप्रवर्त्तते । तदतिप्रवृत्तं शिरोऽभितापमान्ध्यमधिमन्थतिमिरप्रादुर्भावं धातुक्षयमाक्षेपकं पक्षाघातमेकाङ्गविकारं तृष्णादाहौ हिक्कां कासं श्वासं पाण्डुरोगं मरणं चापादयति ॥ ३० ॥

भवन्ति चात्र ।

[7]तस्मान्न शीते नात्युष्णे नास्विन्ने नातितापिते ।
[8]यवागूं प्रतिपीतस्य शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ॥ ३१ ॥
[9]सम्यग्गत्वा यदा रक्तं स्वयमेवावतिष्ठते ।
शुद्धं तदा विजानीयात् सम्यग्विस्रावितं च तत् ॥ ३२ ॥
लाघवं[10] वेदनाशान्तिर्व्याधेर्वेगपरिक्षयः ।

---

१ प्रच्छानं = छेदनम् । प्रच्छानविधिमाह वाग्भटः—"गात्रं बध्वोपरि दृढं रज्ज्वा पट्टेन वा समम् । स्नायुसन्ध्यस्थिमर्माणि त्यजन् प्रच्छानमाचरेत् ॥ अधोदेशप्रविसृतैः पदैरुपरिगामिभिः । न गाढघनतिर्यग्भिर्न पदे पदमाचरेत्" ॥ २ शोणितस्यायोगमाह—**तत्रेति** । मेघाच्छन्नं दिनं दुर्दिनं तस्मिन् दुर्दिने । ३ स्कन्दत्वात् = स्त्यानत्वात् । ४ मदः = विषमदजन्यविकारः । ५ दुष्टरक्तस्याविस्रावणे दोषमाख्याति—**तद्दुष्टमिति** । ६ शोणितस्यातियोगे व्यापदो दर्शयति—**अत्युष्ण इति** । ७ पूर्वोक्तमुपसंहरन् सम्यग्योगं सहेतुकं निर्दिशति—**तस्मान्नेति** । ८ यवागूं = तिलयवागूम् ।

९ शुद्धरक्तस्य सम्यग्विस्रावितस्य च लक्षणं वक्ति—**सम्यगिति** । गत्वा = निःसृत्य, सम्यग्विस्रावितपक्षे—गत्वा = प्रवर्तनं कृत्वा । १० रक्तशुद्धिस्रावणस्याभ्यन्तर-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्यग्विस्राविते लिङ्गं प्रसादो मनसस्तथा ॥ ३३ ॥
त्वग्दोषा ग्रन्थयः शोफा रोगाः शोणितजाश्च ये।
रक्तमोक्षणशीलानां न भवन्ति कदाचन ॥ ३४ ॥

अथ खल्वप्रवर्त्तमाने रक्ते एलाशीतशिवकुष्ठतगरपाठाभद्रदारुविडङ्गचित्रकत्रिकटुकागारधूमहरिद्राऽर्कांङ्कुरनक्तमालफलैर्यथालाभं त्रिभिश्चतुर्भिः समस्तैर्वा चूर्णीकृतैर्लवणतैलप्रगाढैर्व्रणमुखमवघर्षयेदेवं सम्यक् प्रवर्त्तते ॥३५॥

अथातिप्रवृत्ते रोध्रमधुकप्रियङ्गुपत्तङ्गगैरिकसर्जरसरसाञ्जनशाल्मलीपुष्पशङ्खशुक्तिमाषयवगोधूमचूर्णैः शनैः शनैर्व्रणमुखमवचूर्ण्याङ्गुल्यग्रेणावपीडयेत् सालसर्जार्जुनारिमेदमेषशृङ्गधवधन्वनत्वग्भिर्वा चूर्णिताभिः क्षौमेण वा ध्मापितेन समुद्रफेनलाक्षाचूर्णैर्वा यथोक्तैर्व्रणबन्धनद्रव्यैर्गाढं बध्नीयात्। शीताच्छादनभोजनागारैः शीतैः परिषेकप्रदेहैश्चोपाचरेत्। क्षारेणाग्निना वा दहेद्यथोक्तम्। व्यधनादनन्तरं वा तामेवातिप्रवृत्तां सिरां विध्येत्। काकोल्यादिकाथं वा शर्करामधुरं पाययेत्। एणहरिणोरभ्रशशमहिषवराहाणां वा रुधिरं, क्षीरं यूषरसैः सुस्निग्धैश्चाश्नीयात्। उपद्रवांश्च यथास्वमुपचरेत् ॥ ३६ ॥

भवन्ति चात्र।

धातुक्षयात् स्रुते रक्ते मन्दः सञ्जायतेऽनलः।
पवनश्च परं कोपं याति तस्मात् प्रयत्नतः ॥ ३७ ॥
तं नातिशीतैर्लघुभिः स्निग्धैः शोणितवर्धनैः।

---

मपि लक्षणं दर्शयति—**लाघवमिति**। १ त्वग्दोषाः=कुष्ठशीतपित्तोदर्दकोठनीलिकाव्यङ्गन्यच्छतिलकालकादय अष्टादश। २ अप्रवर्तमाने रक्ते प्रवर्तनोपायमाह—**अथेति**। ३ भद्रदारुः=देवदारुः। ४ नक्तमालफलैः=बृहत्करञ्जफलैः। ५ अतिप्रवृत्ते रक्ते तदास्थापनार्थं बाह्याभ्यन्तरौपयिकभेषजं दर्शयति—**अथातीति**। ६ पत्तङ्गं=रक्तचन्दनम्। ७ अरिमेदः=विट्खदिरः। ८ पापयेदिति सम्बन्धः। ९ रक्तातिप्रवृत्तावशनं नियमयति—**क्षीरेति**। अयं भावः—पित्तदुष्टरक्तस्य पित्तप्रकृतिकस्य वा रक्तातिप्रवृत्तौ क्षीरसिक्तघृतस्निग्धीकृतौदनभोजनं, श्लेष्मदुष्टरक्तस्य श्लेष्म-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईषदम्लैरनम्लैर्वा भोजनैः समुपाचरेत् ॥ ३८ ॥
चतुर्विधं यदेतद्धि रुधिरस्य निवारणम् ।
सन्धानं स्कन्दनं चैव पाचनं दहनं तथा ॥ ३९ ॥
व्रणं कषायः सन्धत्ते रक्तं स्कन्दयते हिमम् ।
तथा सम्पाचयेद्भस्म दाहः सङ्कोचयेत् सिराः ॥ ४० ॥
अस्कन्दमाने रुधिरे सन्धानानि प्रयोजयेत् ।
सन्धाने भ्रश्यमाने तु पाचनैः समुपाचरेत् ॥ ४१ ॥
कल्पैरेतैस्त्रिभिर्वैद्यः प्रयतेत यथाविधि ।
असिद्धिमत्सु चैतेषु दाहः परम इष्यते ॥ ४२ ॥
शेषदोषे यतो रक्ते न व्याधिरतिवर्त्तते ।
सावशेषे ततः स्थेयं न तु कुर्य्यादतिक्रमम् ॥४३ ॥
देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्य्यते ।
तस्माद्यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः ॥ ४४ ॥
सुतरक्तस्य सेकाद्यैः शीतैः प्रकुपितेऽनिले ।
शोफं सतोदं कोष्णेन सर्पिषा परिषेचयेत् ॥ ४५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने शोणितवर्णनीयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

---

प्रकृतिकस्य वा रक्तातिप्रवृत्तौ मुद्गयूषयुतघृताक्तभोजनं, वातदुष्टरक्तस्य वातप्रकृतिकस्य वा मांसरसयुतघृताक्तभोजनमुपकारकं भवतीति । १ ईषदम्लैः = दाडिमामलकैः ।

२ रक्तनिवारणस्य चातुर्विध्यमाह—**चतुर्विधमिति** । ३ पाचनं = भस्म, तच्च क्षौमादिजनितम् ।

४ पूर्वपूर्वापेक्षयोत्तरोत्तरविध्यवसरं प्रतिपादयन् शलाकाप्रभृतिभिर्दाहस्य प्राधान्यमाह—**अस्कन्देति** ।

५ रक्तातिस्रावदोषं दर्शयति—**शेषेति** । अवशिष्टदूषितरक्तस्य निर्हरणं शृङ्गादिभिः शीतोपचारादिभिः प्रसादनं वा भवितुमर्हति । तदुक्तमष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"हरेच्छृङ्गादिभिः शेषं प्रसादमथवा नयेत् । शीतोपचारपित्तास्रक्रियाशुद्धिविशोषणैः । दुष्टं रक्तमनुद्रिक्तमेवमेव प्रसादयेत् ॥" इति ।

६ रक्तस्य माहात्म्यं प्रतिपादयति—**देहस्येति** ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्दशोऽध्यायः ।**

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथातो दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

दोषधातुमलमूलं[1] हि शरीरं, तस्मादेतेषां लक्षणमुच्यमानमुपधारय ॥ ३ ॥

तत्र[3], प्रस्पन्दनोद्वहनपूरणविवेकधारणलक्षणो वायुः पञ्चधा[4] प्रविभक्तः शरीरं धारयति ।

रागपक्तितेजोमेधोष्मकृत्[5] पित्तं पञ्चधा[6] प्रविभक्तमग्निकर्मणाऽनुग्रहं करोति; ।

सन्धिसंश्लेषणस्नेहनरोपणपूरणबलस्थैर्यकृच्छ्लेष्मा[8] पञ्चधा

---

## पञ्चदशोऽध्यायः ।

१ दोषाश्च वातादयः, धातवश्च रसादयः, मलाश्च पुरीषादय इति दोषधातुमलास्तेषां क्षयवृद्ध्योर्विज्ञानं विद्यते यस्मिन् सोऽध्यायो दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयस्तम् । २ यथा वृक्षादीनामुत्पत्तिस्थितिनाशेषु मूलं प्रधानं तथा शरीरस्य वातादयो मूलमित्यर्थः ।

३ दोषादीनां कर्माख्यं लिङ्गं दर्शयन्नादौ वातकर्म दर्शयति—**तत्रेति** । प्रस्पन्दनं=शरीरस्य चलनम्, उद्वहनम्=इन्द्रियार्थानां धारणम्, पूरणम्=आहारेण, विवेकः=रसमूत्रपुरीषाणां पृथक्करणम्, धारणं=शुक्रमूत्रादीनां वेगकाले कर्षणमवेगकाले धारणम् । ४ पञ्चधा=प्राणोदानसमानव्यानापानभेदेन, प्रविभक्तः=विभागयुतः । अत्र व्यानोदानप्राणसमानापानक्रमेणैतेषां प्रस्पन्दनादिपञ्चकर्माणि क्रमशो बोध्यानि ।

५ प्रकृतिस्थस्य पित्तस्य कर्म निर्दिशति—**रागेति** । कृच्छ्रब्दस्य रागादिभिः प्रत्येकमभिसम्बन्धः । तथा च—रागकृद् रञ्जकाख्यं पित्तं, पक्तिकृत् पाचकाख्यं, तेजःकृत् आलोचकाख्यं, तेजः दृष्टिः 'तेजो दृष्टिरिति ख्यातम्' इत्युक्तेः । मेधाकृत् बुद्धिकृत्, साधकाख्यमिति यावत् । अष्मकृत् भ्राजकाख्यम्, इति बोध्यम् । 'रागपक्त्योजतेजोमेधोष्मकृत्' इति पाठान्तरम् । ओजः हृदिस्थं सोमात्मकम् । पित्तस्य विशेषविवेचनमेकविंशत्यध्याये कृतं स्वयमेव भगवता सुश्रुतेन । ६ पाचकरञ्जकालोचकसाधकभ्राजकभेदेन पञ्चधा प्रविभक्तं पित्तमित्यर्थः ।

७ प्रकृतिस्थस्य कफस्य कर्म निर्दिशति—**सन्धीति** । अत्रापि कृच्छ्रब्दः सन्ध्यादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते । ८ श्लेष्मकः क्लेदकरोपकतर्पकावलम्बकभेदेन पञ्चधा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रविभक्त उदककर्मणाऽनुग्रहं करोति ॥ ४ ॥

रसस्तुष्टिं प्रीणनं रक्तपुष्टिं च करोति, रक्तं वर्णप्रसादं मांसपुष्टिं जीवयति च, मांसं शरीरपुष्टिं मेदसश्च, मेदः स्नेहस्वेदौ दृढत्वं पुष्टिमस्थ्नां च, अस्थीनि देहधारणं मज्ज्ञः पुष्टिं च, मज्जा प्रीतिं स्नेहं बलं शुक्रपुष्टिं पूरणमस्थ्नां च करोति, शुक्रं धैर्य्यं च्यवनं प्रीतिं देहबलं हर्षं बीजार्थं च ॥ ५ ॥

पुरीषमुपस्तम्भं वाय्वग्निधारणं च। बस्तिपूरणविक्लेदकृन्मूत्रम्। स्वेदः क्लेदत्वक्सौकुमार्यकृत् ॥ ६ ॥

रक्तलक्षणमार्त्तवं गर्भकृच्च, गर्भो गर्भलक्षणम्, स्तन्यं स्तनयोरापीनत्वजननं जीवनं चेति ॥ ७ ॥

तत्र विधिवत्परिरक्षणं कुर्वीत ॥ ८ ॥

✓ अत ऊर्ध्वमेषां क्षीणलक्षणं वक्ष्यामः-तत्र, वातक्षये मन्दचेष्टताऽल्पवाक्त्वमप्रहर्षो मूढसंज्ञता च। पित्तक्षये मन्दोष्माग्निता निष्प्रभत्वं च। श्लेष्मक्षये रूक्षताऽन्तर्दाह आमाशयेतरश्लेष्माशयशून्यता सन्धिशैथिल्यं तृष्णा दौर्बल्यं प्रजागरणं च ॥ ९ ॥

तत्र स्वयोनिवर्धनान्येव प्रतीकारः ॥ १० ॥

---

प्रविभक्तः श्लेष्मेत्यर्थः। १ प्रकृतिस्थानां रसादिधातूनां कर्म निर्दिशति—**रस इति।** २ मलानां प्राकृतं कर्माह—**पुरीषमिति।** उपस्तम्भः = स्थिरीकरणम्। तदुक्तम्—"सर्वधातुक्षयार्तस्य बलं भवति विड्बलम्" इति।

३ उपधातूनां प्राकृतं कर्म निर्दिशति—**रक्तेति।** ४ वक्ष्यति शारीरे—"स्तनयोः कृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा। अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः सम्मील्यन्ते विशेषतः॥ अकामतश्छर्दयति गन्धादुद्विजते शुभात्। प्रसेकः सदनं चापि गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते" ॥

५ तत्र = तेषु प्रकृतिस्थेषु वातादिषु। ६ वातादिदोषक्षयलक्षणं दर्शयति—**अत इति।** ७ चिकित्सामाह—**तत्रेति।** स्वयोनिवर्धनानि—स्वेषां वातादीनां योनीन् वातमग्निमपश्च वर्द्धयन्ति यानि द्रव्याणि तानि आत्मगुणवर्द्धनद्रव्याणीति निष्कर्षः। ८ उक्तं च—"वातक्षये शीतरूक्षैर्न त्वन्यैः कटुकादिभिः। पित्तक्षयेऽपि कटुकैरुष्णैर्न लवणादिभिः। क्षीरादिभिः स्निग्धशीतैः प्रतिकुर्यात्कफक्षये ॥" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रसक्षये[1] हृत्पीडाकम्पशून्यतास्तृष्णा च। शोणितक्षये त्वक्पारुष्यमम्लशीतप्रार्थना सिराशैथिल्यं च। मांसक्षये स्फिग्गण्डौष्ठोपस्थोरुवृत्तःकक्षापिण्डिकोदरग्रीवाशुष्कता रौक्ष्यतोदौ गात्राणां सदनं धमनीशैथिल्यं च। मेदःक्षये श्लीहाभिवृद्धिः सन्धिशून्यता रौक्ष्यं मेदुरमांसप्रार्थना च। अस्थिक्षयेऽस्थिशूलं दन्तनखभङ्गो रौक्ष्यं च। मज्जक्षयेऽल्पशुक्रता पर्वभेदोऽस्थिनिस्तोदोऽस्थिशून्यता च। शुक्रक्षये मेढ्रवृषणवेदनाऽशक्तिर्मैथुने चिराद्वा प्रसेकः, प्रसेके चाल्परक्तशुक्रदर्शनम्॥ ११॥

तत्रापि स्वयोनिवर्धनद्रव्योपयोगः[2] प्रतीकारः॥ १२॥

पुरीषक्षये[3] हृदयपार्श्वपीडा सशब्दस्य च वायोरूर्ध्वगमनं कुक्षौ सञ्चरणं च। मूत्रक्षये बस्तितोदोऽल्पमूत्रता च। अत्रापि स्वयोनिवर्धनद्रव्याणि प्रतीकारः। स्वेदक्षये स्तब्धरोमकूपता त्वक्शोषः स्पर्शवैगुण्यं स्वेदनाशश्च। तत्राभ्यङ्गः स्वेदोपयोगश्च॥ १३॥

आर्त्तवक्षये[4] यथोचितकालादर्शनमल्पता वा योनिवेदना च। तत्र संशोधनमाग्नेयानां च द्रव्याणां[5] विधिवदुपयोगः। स्तन्यक्षये स्तनयोर्म्लानता स्तन्यासम्भवोऽल्पता वा। तत्र श्लेष्मवर्धनद्रव्योपयोगः। गर्भक्षये गर्भास्पन्दनमनुन्नतकुक्षिता च॥ तत्र प्राप्तबस्तिकालायाः क्षीरबस्तिप्रयोगो मेध्यान्नोपयोगश्चेति॥ १४॥

---

१ रसादिधातुक्षयलक्षणमाख्याति—**रसेत्यादिना।**

२ धातुमलोपधातुविषये स्वयोनिवर्धनद्रव्यविज्ञानार्थं श्लोकाः—"यद्यपि पञ्चभूतानां वाच्यः पाको द्विधा मतः। तथाऽप्यपां प्रधानत्वाद्रसः सौम्योऽभिधीयते॥ अतिरिक्ता गुणा रक्ते वह्नेर्मांसे तु पार्थिवाः। मेदस्यम्बुभुवोरस्थि पृथिव्यनिलतेजसाम्॥ मज्ज्ञि शुक्रे च सोमस्य मूत्रेऽम्बुशिखिनोर्गुणाः। भुवो विश्यार्त्तवे त्वग्नेः प्रस्वेदस्तन्ययोरपाम्॥ इति धातुमलेषूक्ता गुणाः प्राधान्यतः स्थिताः। प्रायेण भूगुणा गर्भे स्तोका ह्यन्यगुणा अपि॥" इति। प्रतीकारः = चिकित्साकारणमित्यर्थः। ३ पुरीषक्षयलक्षणं चिकित्सां च दर्शयति—**पुरीषेति।** ३॥ मूत्रक्षये लक्षणान्तरं चरके—"मूत्रक्षये मूत्रकृच्छ्रं मूत्रवैवर्ण्यमेव च। पिपासा बाधते चास्य मुखं च परिशुष्यति॥" इति। ४ उपधातुक्षयलक्षणं चिकित्सां च प्रदर्शयति—**आर्तवेति।** ५ द्रव्याणां = तिलमाषसुराशुक्तादीनाम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत[1] ऊर्ध्वमतिवृद्धानां दोषधातुमलानां लक्षणं वक्ष्यामः। वृद्धिः पुनरेषां स्वयोनिवर्धनाल्युपसेवनाद्भवति । तत्र, वातवृद्धौ वाक्पारुष्यं कार्श्यं काष्ण्यं गात्रस्फुरणमुष्णकामिता निद्रानाशोऽल्पबलत्वं गाढवर्चस्त्वं च। पित्तवृद्धौ पीतावभासता सन्तापः शीतकामित्वमल्पनिद्रता मूर्च्छा बलहानिरिन्द्रियदौर्बल्यं पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं च। श्लेष्मवृद्धौ शौक्ल्यं शैत्यं स्थैर्य्यं गौरवमवसादस्तन्द्रा निद्रा सन्ध्यस्थिविश्लेषश्च ॥ १५ ॥

रसो[2]ऽतिवृद्धो हृदयो[3]त्क्लेदं प्रसेकं चापादयति। रक्तं रक्ताङ्गाक्षितां सिरापूर्णत्वं च। मांसं स्फिग्गण्डौष्ठोपस्थोरुबाहुजङ्घासु वृद्धिं गुरुगात्रतां च। मेदः स्निग्धाङ्गतामुदरपार्श्ववृद्धिं कासश्वासादीन् दौर्गन्ध्यं च। अस्थ्य[4]ध्यस्थीन्यधिदन्तांश्च। मज्जा सर्वाङ्गनेत्रगौरवं च। शुक्रं शुक्राश्मरीमतिप्रादुर्भावं च ॥ १६ ॥

पुरी[5]षमाटोपं कुक्षौ शूलं च। मूत्रं मूत्रवृद्धिं मुहुर्मुहुः प्रवृत्तिं बस्तितोदमाध्मानं च। स्वेदस्त्वचो दौर्गन्ध्यं कण्डूं च ॥ १७ ॥

आर्त्त[6]वमङ्गमर्दमतिप्रवृत्तिं दौर्गन्ध्यं च । स्तन्यं स्तनयोरापिनत्वं मुहुर्मुहुः प्रवृत्तिं तोदं च। गर्भो जठराभिवृद्धिं स्वेदं च ॥१८॥

तेषां यथास्वं संशोधनं क्षप[7]णं च क्षयादविरु[8]द्धैः क्रियाविशेषैः प्रकुर्वीत ॥ १९ ॥

पूर्व[9]ः पूर्वोऽतिवृद्धत्वाद्वर्धयेद्धि परं परम् ।

---

१ वातादिदोषाणामतिवृद्धिलक्षणं वक्ति—**अत इति**। २ धातूनामतिवृद्धिलक्षणमाख्याति—**रस इति**। ३ हृदयोक्लेदः = हृल्लासः, प्रसेकः = मुखस्रावः । ४ अध्यस्थीनि = अधिकास्थीनि । ५ मलानामतिवृद्धिलक्षणं दर्शयति—**पुरीषमिति**। आटोपम् = ईषत्सशब्दमाध्मानम् ।

६ उपधातूनामतिवृद्धौ लक्षणं ब्रवीति—**आर्तवमिति**। ७ क्षपणं = संशमनं, दोषहरणमित्यर्थः । ८ उक्तं च तन्त्रान्तरे—"छिन्नाविश्वादिभिर्वायुं पित्तं क्षौद्रफलत्रिकैः। कफं गुडार्द्रकाद्यैश्च जयेद्दोषाविरोधिभिः ॥" इति । चक्रस्तु—'अविरुद्धैरिति वृद्धस्य तथा क्षपणं कर्तव्यं यथाऽन्यदोषस्य धातोर्वा वृद्धिः क्षयो वा न भवतीति भावः' इति व्याख्यातवान् ।

९ पूर्वशब्दस्योपलक्षणत्वात्परोऽपि वृद्धः सन् पूर्वं वर्धयति, एवं धातूनां ह्रासे परः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तस्मादतिप्रवृद्धानां धातूनां ह्रासनं हितम्॥ २०॥

बललक्षणं बलक्षयलक्षणं चात ऊर्ध्वमुपदेक्ष्यामः। तत्र रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खल्वोजस्तदेव[1] बलमित्युच्यते, स्वशास्त्रसिद्धान्तात्॥ २१॥

तत्र[2] बलेन स्थिरोपचितमांसता सर्वचेष्टास्वप्रतिघातः[3] स्वरवर्णप्रसादो बाह्यानामाभ्यन्तराणां[4] च करणानामात्मकार्यप्रतिपत्तिर्भवति॥ २२॥

भवन्ति चात्र।

ओजः[5] सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं रसम्।
विविक्तं मृदु मृत्स्नं च प्राणायतनमुत्तमम्॥ २३॥
देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम्।
तदभावाच्च[6] शीर्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम्॥ २४॥
अभिघातात्[7] क्षयात् कोपाच्छोकाद्ध्यानाच्छ्रमात् क्षुधः।
ओजः सङ्क्षीयते ह्येभ्यो धातुग्रहणनिःसृतम्[8]।

---

क्षीणः सन् पूर्वं क्षपयति, पूर्वोऽपि क्षीणः सन् परं वर्धयतीति बोध्यम्। १ वस्तुतो भारहरणादिशक्तिगम्यस्य बलस्य रसवीर्यवर्णादिगुणा न सन्ति, सर्वधातुस्नेहभूतस्योपचयलक्षणस्यौजसस्तु रूपरसवीर्यादयः सन्तीति बलौजसोर्भेद एवावसेयः। ओजः कारणम्, बलं कार्यम्। श्रीभावमिश्रः—'यस्माद्रसादोजो भवति स रसः सर्वधातुस्थानगतत्वात् तत्तद्धातुवन्मन्यत इति सर्वधातूनां स्नेह ओजः। क्षीरे घृतमिव तदेव बलमिति तत्कार्यकारणयोरभेदोपचारात्। अभेदकथनं च चिकित्सैकार्थम्' इति। २ बलस्य स्वाभाविकं कर्माह—**तत्रेति।** ३ अप्रतिघातः=अप्रतिहतशक्तिता। ४ बाह्यकरणानां=वाक्पाणिपादपायूपस्थानां कर्मेन्द्रियाणाम्, आभ्यन्तरकरणानां=चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानां बुद्धीन्द्रियाणामित्यर्थः। ५ ओजसः स्वाभाविकगुणान्निर्दिशति—**ओज इति।** तन्त्रान्तरे—"प्राणाश्रयस्यौजसोऽष्टौ बिन्दवो हृदयाश्रयाः। अष्टबिन्दुप्रमाणं तदीषद्रक्तं सपीतकम्। अग्निसोमात्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितं च तत्॥" इत्योजोवर्णनम्। अस्य विवेचनं चरके सू० अ० ३० चक्रपाणिदत्तकृतटीकायामवलोक्यम्। ६ ओजोऽभावाच्छरीराणि विनश्यन्तीत्यर्थः। ७ ओजसः क्षयहेतूनभिधत्ते—**अभिघातादिति।** ८ धातवो गृह्यन्ते यैस्तानि धातुग्रहणानि—सर्वधातुस्नेहपरम्परारूपेण धातुवाहीनि स्रोतांसि, धातुवाहिनां स्रोतसां स्थानत्वाद्हृदयं वा तस्मान्निःसृतं निर्गत-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तेजः समीरितं[1] तस्माद्विस्रंसयति देहिनः ॥ २५ ॥

तस्य विस्रंसो व्यापत् क्षय इति लिङ्गानि व्यापन्नस्य भवन्ति। सन्धिविश्लेषो[2] गात्राणां सदनं दोषच्यवनं क्रियाऽसन्निरोधश्च विस्रंसे। स्तब्धगुरुगात्रता वातशोफो वर्णभेदो ग्लानिस्तन्द्रा निद्रा च व्यापन्ने। मूर्च्छा मांसक्षयो मोहः प्रलापो मरणमिति च क्षये ॥२६॥२७॥

भवन्ति चात्र।

त्रयो दोषा बलस्योक्ता व्यापद्विस्रंसनक्षयाः।
विश्लेषसादौ गात्राणां दोषविस्रंसनं श्रमः।
अप्राचुर्यं क्रियाणां च बलविस्रंसलक्षणम् ॥ २८ ॥
गुरुत्वं स्तब्धताऽङ्गेषु ग्लानिर्वर्णस्य भेदनम्।
तन्द्रा निद्रा वातशोफो बलव्यापदि लक्षणम् ॥ २९ ॥
मूर्च्छा मांसक्षयो मोहः प्रलापोऽज्ञानमेव च।
पूर्वोक्तानि च लिङ्गानि[3] मरणं च बलक्षये ॥ ३० ॥

तत्र विस्रंसे व्यापन्ने च क्रियाः[4] विशेषैरविरुद्धैर्बलमाप्याययेत्। इतरं[5] तु मूढसंज्ञं वर्जयेत् ॥ ३१ ॥

दोषधातुमलक्षीणो बलक्षीणोऽपि वा नरः।
स्वयोनिवर्धनं यत्तदन्नपानं प्रकाङ्क्षति ॥ ३२ ॥
यद्यदाहारजातं तु क्षीणः प्रार्थयते नरः।
तस्य तस्य स लाभे तु तं तं क्षयमपोहति ॥ ३३ ॥
यस्य धातुक्षयाद्वायुः संज्ञां कर्म च नाशयेत्।

---

मित्यर्थः। १ वायुनेति शेषः। तस्मात्=हृदयात्। ओजसः क्षयभेदानां विस्रंसादीनां क्रमशो लक्षणानि दर्शयति—**सन्धीति**। २ दोषविस्रंसनं=दोषप्रच्यवनम्। ३ लिङ्गानि=विस्रंसव्यापदोर्लक्षणानीत्यर्थः। ४ जीवनीयौषधक्षीररसादिक्रियाविशेषैरित्यर्थः, अविरुद्धैः=ओजोऽनुकूलैः। ५ इतरं=क्षीणौजस्कम्, मूढसंज्ञं=मोहाद्यष्टसंज्ञम्। ६ निबन्धसङ्ग्रहव्याख्यायाम्—"यावान् मुद्गान् हरेणूँश्च रूक्षं च लघु भोजनम्। कषायकटुतिक्तं च वातक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ॥ तिलमाषकुलत्थादि पिष्टान्नविकृतिं तथा। मस्तुशुक्ताम्लतक्राणि पित्तक्षीणस्तथा दधि ॥ मांसं माहिषवाराहमाजं गुडगुरूणि च। श्लेष्मक्षीणोऽभिलषति क्षीरस्वप्नदधीनि च ॥ इक्षुं मांसरसं मन्थं मधुसर्पिर्गुडोदकम्। असृङ्मांसं यवागूं च रसक्षीणोऽभिकाङ्क्षति ॥" इत्यादयः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रक्षीणं च बलं यस्य नासौ शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ ३४ ॥

रसनिमित्तमेव स्थौल्यं कार्श्यं च[1]। तत्र[2] श्लेष्मलाहारसेविनोऽध्यशनशीलस्याव्यायामिनो दिवास्वप्नरतस्य चाम एवान्नरसो मधुरतरश्च शरीरमनुक्रामन्नतिस्नेहान्मेदो जनयति[3]। तदतिस्थौल्यमापादयति। तमतिस्थूलं क्षुद्रश्वासपिपासाक्षुत्स्वप्नस्वेदगात्रदौर्गन्ध्यक्रथनगात्रसादगद्गदत्वानि क्षिप्रमेवाविशन्ति[4], सौकुमार्यान्मेदसः सर्वक्रियास्वसमर्थः, कफमेदोनिरुद्धमार्गत्वाच्चाल्पव्यवायो भवति, आवृतमार्गत्वादेव शेषा धातवो नाप्यायन्तेऽत्यर्थमतोऽल्पप्राणो भवति, प्रमेहपीडकाज्वरभगन्दरविद्रधिवातविकाराणामन्यतमं प्राप्य पञ्चत्वमुपयाति। सर्व एव चास्य रोगा बलवन्तो भवन्त्यावृतमार्गत्वात् स्रोतसाम्, अतस्तस्योत्पत्तिहेतुं परिहरेत्। उत्पन्ने[5] तु शिलाजतुगुग्गुलुगोमूत्रत्रिफलालोहरजोरसाञ्जनमधुयवमुद्गकोरदूषकश्यामाकोद्दालकादीनां विरूक्षणच्छेदनीयानां[6] द्रव्याणां विधिवदुपयोगो व्यायामो लेखनबस्त्युपयोगश्चेति[7] ॥ ३५ ॥

तत्र[8] पुनर्वातलाहारसेविनोऽतिव्यायामव्यवायाध्ययनभयशोकध्यानरात्रिजागरणपिपासाक्षुत्कषायाल्पाशनप्रभृतिभिरुपशोषितो रसधातुः शरीरमननुक्रामन्नल्पत्वान्न प्रीणाति, तस्मादतिकार्श्यं भवति, सोऽतिकृशः क्षुत्पिपासाशीतोष्णवातवर्षभारादानेष्वसहिष्णुर्वातरोगप्रायोऽल्पप्राणश्च[9] क्रियासु भवति, श्वासकासशोष[10]-

---

श्लोका अवलोक्याः। १ चकाराद् माध्यं शरीरम् । २ स्थौल्यनिमित्तं दर्शयति—**तत्र श्लेष्मेति।** ३ अध्यशनशीलस्य = अजीर्णभोजनाभ्यासिनः। तदुक्तम्—"अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते" इति। ४ क्रथनम् = अकस्माच्छ्वासावरोधः। तदुक्तम्—"श्वासरोधो हि योऽकस्मात्स क्राथः क्रथनं च तत्" इति। ५ प्राप्तस्थौल्यस्य चिकित्सामाह—**उत्पन्न इति।** ६ विरूक्षणच्छेदनीयानां = मेदोघ्नस्रोतोविशोधनीयानाम्। ७ लेखनबस्तयः—"त्रिफलाक्काथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमन्विताः। ऊषकादिप्रतीवापा बस्तयो लेखनाः स्मृताः॥" इति चिकित्सितोक्ताः। उपयोगश्चेति चकाराद् व्यायामादयो मृदवः काङ्कायनसक्तवश्च समुचिताः।

८ कार्श्यनिमित्तमभिधत्ते—**तत्रेति।** ९ अल्पप्राणः = अल्पशक्तिः। १० शो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्लीहोदराग्निसादगुल्मरक्तपित्तानामन्यतममासाद्य मरणमुपयाति। सर्व एव चास्य रोगा बलवन्तो भवन्त्यल्पप्राणत्वात्। अतस्तस्योत्पत्तिहेतुं परिहरेत्। उत्पन्ने तु पयस्याऽश्वगन्धाविदारिगन्धाशतावरीबलाऽतिबलानागबलानां मधुराणामन्यासां चौषधीनामुपयोगः, क्षीरदधिघृतमांसशालिषष्टिकयवगोधूमानां च, दिवास्वप्नब्रह्मचर्याव्यायामबृंहणबस्त्युपयोगश्चेति ॥ ३६ ॥

यः पुनरुभयसाधारणान्यासेवेत तस्यान्नरसः शरीरमनुक्रामन् समान् धातूनुपचिनोति, समधातुत्वान्मध्यशरीरो भवति सर्वक्रियासु समर्थः क्षुत्पिपासाशीतोष्णवर्षातपसहो बलवांश्च। स सततमनुपालयितव्य इति ॥ ३७ ॥

भवन्ति चात्र।

अत्यन्तगर्हितावेतौ सदा स्थूलकृशौ नरौ।
श्रेष्ठो मध्यशरीरस्तु कृशः स्थूलात्तु पूजितः ॥ ३८ ॥
दोषः प्रकुपितो धातून् क्षपयत्यात्मतेजसा।
इद्धः स्वतेजसा वह्निरुखागतमिवोदकम् ॥ ३९ ॥
वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात् तथैव च।

---

षः = राजयक्ष्मा। १ काश्यंचिकित्सामाख्याति—**उत्पन्न इति**। २ विदारिगन्धा = शालिपर्णी। ३ बृंहणबस्तयः—"बृंहणद्रव्यनिःक्वाथास्तत्कल्कस्नेहसैन्धवैः। युक्ताः खजप्रमथिता बस्तयो बृंहणा मताः॥" इति चिकित्सितोक्ताः। सन्तर्पणमपि लघु कर्तव्यमित्युपयोगश्चेत्यत्र चकारेण बोध्यते।

४ मध्यशरीरस्य निमित्तं 'स सततमनुपालयितव्यः' इति चिकित्सां चाह—**य इति**। ५ 'समर्थः' इत्यनेनैव बलवत्त्वे सिद्धे पुनर्बलवाँश्चेति कथनं स्वास्थ्यकरद्रव्याहारादिवास्वप्नादिविहारसेवी बलवानेव भवतीति नियमार्थम्। ६ धातुमलक्षये वातादिदोषस्य हेतुत्वं निदर्शयति—**दोष इति**। ७ क्षपयति = वृद्धिसाम्ययोर्हासं करोति।

८ उखागतं = स्थालीगतम्। 'पिठरः स्थाल्युखा कुण्डम्' इत्यमरः। ९ दोषादीनां परिमाणाभावमुपपादयति—**वैलक्षण्यादिति**। वातादिप्रकृति—रसरक्तादि—भारसहनदीर्घह्रस्वादिशरीरभेदेन विसदृशत्वादित्यर्थः। १० अस्थायित्वात् = नित्यगावस्थिकद्विविधकालभेदेनानवस्थितत्वात्। तत्रादौ नित्यगे—प्रातः श्लेष्मा मध्याह्ने पित्तमित्या-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोषधातुमलानां तु परिमाणं न विद्यते ॥ ४० ॥
एषां समत्वं यच्चापि भिषग्भिरवधार्यते ।
न तत् स्वास्थ्यादृते शक्यं वक्तुमन्येन हेतुना ॥ ४१ ॥
दोषादीनां त्वसमतामनुमानेन लक्षयेत् ।
अप्रसन्नेन्द्रियं वीक्ष्य पुरुषं कुशलो भिषक् ॥ ४२ ॥
स्वस्थस्य रक्षणं कुर्य्यादस्वस्थस्य तु बुद्धिमान् ।
क्षपयेद् बृंहयेच्चापि दोषधातुमलान् भिषक् ।
तावद्यावदरोगः स्यादेतत्साम्यस्य लक्षणम् ॥ ४३ ॥
समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ ४४ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

---

## षोडशोऽध्यायः ।

अथातः कर्णव्यधबन्धविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येते । तौ षष्ठे मासि सप्तमे वा शुक्लपक्षे प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रेषु कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनं धात्र्यङ्के कुमारधराङ्के वा कुमारमुपवेश्य बालक्रीडनकैः प्रलो-

---

च्याह्निकोपचयः । एवं हेमन्ते श्लेष्मा ग्रीष्मे वायुरित्यार्तवोपचयः । आवस्थिके तु—बाल्ये श्लेष्माभिवर्धनं शुक्रालपत्वं कन्यानामार्तवस्तन्याभावश्च । एवं यौवने पित्तस्य वार्द्धक्ये वायोरुपचय इति । १ क्षयवृद्धिलक्षणामसमतामित्यर्थः । २ स्वस्थलक्षणं ब्रवीति—**समेति।**

**इति सुश्रुतसंहितायां सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चदशोऽध्यायः ।**

---

### षोडशोऽध्यायः ।

३ व्यधश्च बन्धश्च व्यधबन्धौ, तयोर्विधिर्व्यधबन्धविधिः ; कर्णयोर्व्यधबन्धविधिर्विद्यते यस्मिन् स तम् । ४ रक्षा ग्रहेभ्यो रक्षणम्, भूषणं कुण्डलादिभिरलङ्करणं तन्निमित्तं रक्षाभूषणनिमित्तम् । तदुक्तम्—"कर्णव्यधे कृते बालो न ग्रहैरभिभूयते ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्याभिसान्त्वयन् भिषग्वामहस्तेनाकृष्य कर्णं दैवकृते छिद्रे आदित्यकरावभासिते शनैः शनैर्दक्षिणहस्तेन ऋजु विध्येत्। प्रतनुकं सूच्या, बहलमारया, पूर्वं दक्षिणं कुमारस्य, वामं कुमार्याः। ततः पिचुवर्त्तिं प्रवेशयेत् ॥ ३ ॥

शोणितबहुत्वेन वेदनया चान्यदेशविद्धमिति जानीयात्। निरुपद्रवतया तद्देशविद्धमिति ॥ ४ ॥

तत्राज्ञेन यदृच्छया विद्धासु सिरासु कालिकामर्मरिकालोहितिकासूपद्रवा भवन्ति। तत्र, कालिकायां ज्वरो दाहः श्वयथुर्वेदना च भवति। मर्मरिकायां वेदना ज्वरो ग्रन्थयश्च। लोहितिकायां मन्यास्तम्भापतानकशिरोग्रहकर्णशूलानि भवन्ति। तेषु यथास्वं प्रतिकुर्वीत ॥५॥

क्लिष्टजिह्माप्रशस्तसूचीव्यधाद्गाढतरवर्त्तित्वादोषसमुदायादप्रशस्तव्यधाद् वा यत्र संरम्भो वेदना वा भवति तत्र वर्त्तिमुपहृत्याशु मधुकैरण्डमूलमञ्जिष्ठायवतिलकल्कैर्मधुघृतप्रगाढैरालेपयेत् तावद्यावत् सुरूढ इति। सुरूढं चैनं पुनर्विध्येत्। विधानन्तु पूर्वोक्तमेव ॥६॥

तत्र सम्यग्विद्धमामतैलेन परिषेचयेत् त्र्यहात्त्र्यहाच्च वर्तिं स्थूलतरां दद्यात् परिषेकं च तमेव ॥ ७ ॥

अथ व्यपगतदोषोपद्रवे कर्णे वर्धनार्थं लघुवर्धनकं कुर्यात् ॥८॥

---

भूष्यते तु मुखं यस्मात् कार्यस्तत्कर्णयोर्व्यधः ॥" इति। १ कर्णव्यधनार्थं सूर्यालोकप्रवेशार्हप्रतनुप्रदेशरूपे सिराऽऽदिरहिते निर्लोहितागमने च छिद्रे इति भावः। २ प्रतनुकं = सूक्ष्मकर्णम्। ३ बहलं = स्थूलकर्णम्। ४ पिचुवर्तिं = तूलसूत्ररूपां स्वर्णादिनिर्मितशलाकाम्। ५ दैवकृतान्यदेशविद्धस्य दैवकृतच्छिद्रविद्धस्य च विज्ञानमाह—**शोणितेति**॥ ६ सिरासु व्यधने दोषमभिधत्ते—**तत्राज्ञेनेति**। ७ कालिका = कर्णस्रोतोविशेषः, मर्मरिका = कर्णसिराविशेषः। ८ कालिकाऽऽदिसिराविशेषव्यधनादन्यथाव्यापदं दर्शयति—**क्लिष्टेति**। ९ कालिकाऽऽदिदुर्विद्धस्य चिकित्सां निर्दिशति—**तत्र वर्तिमिति**। १० सम्यग्विद्धस्य चिकित्सामाख्याति—**तत्रेति**।

११ शमितोपद्रवे कर्णवर्धनोपायमाह—**अथेति**। १२ वर्धनकम् = अपामार्गनिम्बकाष्ठादीनां लवङ्गसदृशशलाकाम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


एवं विवर्धितः कर्णश्छिद्यते तु द्विधा नृणाम् ।
दोषतो वाऽभिघाताद्वा सन्धानं तस्य मे शृणु ॥ ९ ॥

तत्र[1] समासेन पञ्चदश[2]कर्णबन्धनाकृतयः । तद्यथा—नेमिसन्धानक उत्पलभेद्यको वल्लूरक आसङ्गिमो गण्डकर्ण आहार्यो निर्वेधिमो व्यायोजिमः कपाटसन्धिकोऽर्द्धकपाटसन्धिकः सङ्क्षिप्तो हीनकर्णो वल्लीकर्णो यष्टिकर्णः काकौष्ठक इति । तेषु, पृथुलायतसमोभयपा[3]लिर्नेमिसन्धानकः । वृत्तायतसमोभयपालिरुत्पलभेद्यकः । ह्रस्ववृत्तसमोभयपालिर्वल्लूरकः । अभ्यन्तरदीर्घैकपालिरासङ्गिमः । बाह्यदीर्घैकपालिर्गण्डकर्णः । अपालिरुभयतोऽप्याहार्य्यः । पीठोपमपालिरुभयतः क्षीणपुत्रिका[4]श्रितो निर्वेधिमः । स्थूलाणुसमविषमपालिर्व्यायोजिमः । अभ्यन्तरदीर्घैकपालिरितरालपपालिः कपाटसन्धिकः । बाह्यदीर्घैकपालिरितरालपपालिरर्धकपाटसन्धिकः । तत्र दशैते कर्णबन्ध[5]विकल्पाः साध्याः । तेषां स्वनामभिरेवाकृतयः प्रायेण व्याख्याताः । सङ्क्षिप्तादयः पञ्चासा[6]ध्याः । तत्र शुष्क[7]शष्कुलिरुत्सन्नपालिरितरालपपालिः सङ्क्षिप्तः । अनधिष्ठानपालिः पर्यन्तयोः क्षीणमांसो हीनकर्णः । तनुविषमाल्पपालिर्वल्लीकर्णः । ग्रथितमांसस्तब्धसिरासन्ततसूक्ष्मपालिर्यष्टिकर्णः । निर्मांससङ्क्षिप्ताग्रालपशोणितपालिः काकौष्ठक इति । बद्धेष्वपि तु शोफदाहरागपाकपिडकास्रावयुक्ता न सिद्धिमुपयान्ति ॥ १० ॥

---

१ सन्धेयकर्णस्य सन्धानार्थमसन्धेयकर्णस्य च परित्यागार्थं वक्ति—तत्रेति । २ यद्यपि पञ्चदशकर्णेषु नैमिसन्धानकादिदशकर्णा बन्धनार्हाः सङ्क्षिप्तादिपञ्चकर्णा असाध्यत्वादबन्धनार्हास्तथाऽप्येषां पञ्चानां बन्धसम्बन्धाद् बन्धसम्भावनामात्रमित्यवसेयम् । ३ पालिः=कर्णलताग्रभागः, 'पालिः कर्णलताग्रेऽस्त्रौ पङ्क्तावङ्कप्रभेदयोः' इति मेदिनी । ४ कर्णपालिकाया उपरि कर्णकुहरमुभयतो यत् किञ्चिदुद्गता सा पुत्रिका तदाश्रितः, निर्वेधिमः=व्यधेन निर्वृत्तः । ५ अमी बन्धविकल्पा नित्यकर्मदर्शनादभ्यासाच्च जायन्ते । ६ असाध्याः=सन्धानायाशक्याः । ७ शुष्का शष्कुलिः कर्णरन्ध्रं यत्र स शुष्कशष्कुलिः कर्ण इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भवन्ति चात्र ।

[1]यस्य पालिद्वयमपि कर्णस्य न भवेदिह ।
[2]कर्णपीठं समे मध्ये तस्य विद्ध्वा विवर्धयेत् ॥ ११ ॥
[3]बाह्यायामिह दीर्घायां सन्धिराभ्यन्तरो भवेत् ।
आभ्यन्तरायां दीर्घायां बाह्यसन्धिरुदाहृतः ॥ १२ ॥
[4]एकैवं[5] तु भवेत् पालिः स्थूला पृथ्वी स्थिरा च या ।
तां द्विधा पाटयित्वा तु छित्त्वा चोपरि सन्धयेत् ॥ १३ ॥
[5]गण्डादुत्पाट्य मांसेन सानुबन्धेन[6] जीवता ।
कर्णपालीमपालेस्तु कुर्यान्निर्लिख्य शास्त्रवित् ॥ १४ ॥

अतोऽन्यतमं बन्धं चिकीर्षुरग्रहोपहरणीयोक्तोपसम्भृतसम्भारं विशेषतश्चात्रोपहरेत्, सुरामण्डं क्षीरमुदकं धान्याम्लं कपाल[7]चूर्णञ्चेति । ततोऽङ्गनां पुरुषं वा ग्रथित[8]केशान्तं लघु भुक्तवन्तमाप्तैः सुपरिगृहीतं च कृत्वा बन्धमुपधार्य्य छेद्यभेद्यलेख्यव्यधनैरुपपन्नैरुपपाद्य कर्णशोणितमवेक्ष्य दुष्टमदुष्टं वेति । तत्र वातदुष्टे धान्याम्लोष्णोदकाभ्यां पित्तदुष्टे शीतोदकपयोभ्यां श्लेष्मदुष्टे सुरामण्डोष्णोदकाभ्यां प्रक्षाल्य कर्णौ, पुनरवलिख्यानुन्नतमहीनमविषमञ्च कर्णसन्धिं सन्निवेश्य, स्थितरक्तं सन्दध्यात् । ततो मधुघृतेनाभ्यज्य पिचुप्लोतयोरन्यतरेणावगुण्ठ्य सूत्रेणानवगाढमनतिशिथिलञ्च बद्ध्वा कपालचूर्णेनावकीर्य्याचारिकमुपदिशेद् द्विव्रणीयोक्तेन च

---

१ सन्धेयकर्णस्य निर्वेधिमसंज्ञस्य सन्धानमभिधत्ते—**यस्येति** । २ कर्णशष्कुल्यां यतः पालिकाया आरम्भस्तत्कर्णपीठम् । ३ सन्धेयकर्णानां व्यायोजिमकपाटसन्धिकार्धकपाटाख्यानां सन्धानमाख्याति—**बाह्यायामिति** । यदा बाह्या कपोलदूरवर्तिनी पालिर्दीर्घा स्यात्तदाऽऽभ्यन्तरा कपोलसंश्रयी सन्धिः कर्तव्यः । यदा चाभ्यन्तरा पालिर्दीर्घा स्यात्तदा बाह्यः सन्धिः कर्तव्य इति भावः । ४ सन्धेयासङ्गिमस्य सन्धानमभिदधाति—**एकैवेति** । ५ आहार्यस्य सन्धानमाह—**गण्डादिति** । ६ सानुबन्धेन=गण्डप्रदेशलग्नेनेत्यर्थः । ७ कपालचूर्णं=नूतनमृद्भाण्डचूर्णम् । ८ ग्रथितकेशान्तं=केशव्याकुलतया कर्माभिघातभयाद् वन्धविश्लेषभयाद्वा सङ्ग्रथित-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विधानेनोपचरेत् ॥ १५ ॥

भवति चात्र।

विघट्टनं[2] दिवास्वप्नं व्यायाममतिभोजनम्।
व्यवायं[3]मग्निसन्तापं वाक्श्रमञ्च विवर्जयेत् ॥ १६ ॥
( आमतैलपरीषेकं त्रिरात्रमवचारयेत्।
ततस्तैलेन संसृष्टं व्यहादपनयेत् पिचुम् ॥ १ ॥ )

न चाशुद्धरक्तमतिप्रवृत्तरक्तं क्षीणरक्तं वा सन्दध्यात्। स[4] हि वातदुष्टे रक्ते रूढोऽपि परिपुटनवान्[5]। पित्तदुष्टे दाहपाकरागवेदनावान्। श्लेष्मदुष्टे स्तब्धः कण्डूमान्। अतिप्रवृत्तरक्ते[6] श्यावशोफवान्। क्षीणोऽल्पमांसो[7] न वृद्धिमुपैति ॥ १७ ॥

आमतैलेन[8] त्रिरात्रं परिषेचयेत्। त्रिरात्राच्च पिचुं परिवर्तयेत्। स यदा सुरूढो निरुपद्रवः सवर्णो भवति तदैनं शनैश्शनैरभिवर्द्धयेत्। अतोऽन्यथा संरम्भदाहपाकरागवेदनावान्, पुनश्छिद्यते वा॥१८॥

अथास्याप्रदुष्टस्याभिवर्धनार्थमभ्यङ्गः। तद्यथा—गोधाप्रतुदविष्किरानूपौदकवसामज्जानौ पयः सर्पिस्तैलं गौरसर्षपजं च यथालाभं सम्भृत्यार्कालर्कबलाऽतिबलाऽनन्ताऽपामार्गाश्वगन्धाविदारिगन्धाक्षीरशुक्लाजलशूकमधुरवर्गपयस्याप्रतिवापं तैलं वा पाचयित्वा स्वनुगुप्तं निदध्यात् ॥ १९ ॥

स्वेदितोन्मर्दितं[10] कर्णं स्नेहेनैतेन योजयेत्।

---

कचावयवम्। १ विधानेन=आलेपनाद्यौषधेन। २ परिहरणीयानाह—**विघट्टनमिति**। ३ व्यवायः=मैथुनम्। ४ अशुद्धरक्तकर्णस्य सन्धाने दोषं दर्शयति—**स हीति**। ५ त्वच उच्चटनं सशोफः कर्णलतिकारोगो वा परिपुटनम्। तदुक्तं चिकित्सिते—"सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसाऽभिप्रवर्तते। कर्णशोफो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान्॥" इति। ६ अतिप्रवृत्तरक्तकर्णस्य सन्धाने दोषमाख्याति—**अतीति**। ७ क्षीणकर्णस्य सन्धाने दोषमाह—**क्षीण इति**।

८ विशेषविधिमभिधत्ते—**आमेति**।

९ जलशूकः=शैवालः, जलवासी कीटविशेषः; मधुरवर्गः=रसविज्ञानीये वक्ष्यमाणः, पयस्या=विदारीभेदः क्षीरकाकोली, अर्कपुष्पी वा। १० पूर्वोक्तमन्दाराद्यौषधिपाचिततैलावचारणे गुणमाह—**स्वेदीति**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अथानुपद्रवः सम्यक् बलवांश्च विवर्द्धते ॥ २० ॥
यवाश्वगन्धायष्ट्याह्वैस्तिलैश्चोद्वर्त्तनं हितम् ।
शतावर्य्यश्वगन्धाभ्यां पयस्यैरण्डजीवनैः[1][2] ॥ २१ ॥
तैलं विपक्वं सक्षीरमभ्यङ्गात् पालिवर्द्धनम् ।
ये[3] तु कर्णा न वर्द्धन्ते स्वेदस्नेहोपपादिताः ॥ २२ ॥
तेषामपाङ्गदेशे[4] तु कुर्य्यात् प्रच्छानमेव[5] तु ।
बाह्यच्छेदं[6] न कुर्वीत व्यापदः[7] स्युस्ततो ध्रुवाः ॥ २३ ॥
बद्धमात्रं तु यः कर्णं सहसैवाभिवर्द्धयेत् ।
आमकोशी[8] समाध्मातः क्षिप्रमेव विमुच्यते ॥ २४ ॥
जातरोमा[9] सुवर्त्मा च श्लिष्टसन्धिः समः स्थिरः ।
सुरूढोऽवेदनो यश्च तं कर्णं वर्धयेच्छनैः ॥ २५ ॥
अमिताः[10] कर्णबन्धास्तु विज्ञेयाः कुशलैरिह ।
यो यथा सुविशिष्टः स्यात्तं तथा विनियोजयेत् ॥ २६ ॥
[11]कर्णपाल्यामयान्नृणां पुनर्वक्ष्यामि सुश्रुत ! ।
कर्णपाल्यां प्रकुपिता वातपित्तकफास्त्रयः ॥ २७ ॥
द्विधा वाऽप्यथ संसृष्टाः कुर्वन्ति विविधा रुजः ।
विस्फोटः स्तब्धता शोफः पाल्यां दोषे तु वातिके ॥ २८ ॥
दाहविस्फोटजननं शोफः पाकश्च पैत्तिके ।
कण्डूः सश्वयथुः स्तम्भो गुरुत्वञ्च कफात्मके ॥ २९ ॥
यथादोषं च संशोध्य कुर्य्यात्तेषां चिकित्सितम् ।

---

१ कर्णपालिवर्धनार्थमन्यत्तैलं निर्दिशति—**शतावर्य्येति** । २ जीवनैः= काकोल्यादिद्रव्यैः । ३ अवर्धमानकर्णानां वर्धनोपायमाह—**य इति** । ४ अपाङ्गदेशे=कर्णशष्कुल्याः किञ्चिदधोदेशे । ५ प्रच्छानम्=ईषत्तिर्यक्छेदनम् । ६ बाह्यच्छेदं=कर्णबाह्यलतिकाच्छेदम् । ७ व्यापदः=कर्णलतिकावुटनादिव्यापद इत्यर्थः । अथवा आन्ध्यादयः, वक्ष्यति शारीरे—"भ्रूपुच्छयोरन्धोऽक्ष्णोर्बाह्यतोऽपाङ्गौ नाम तत्रान्ध्यं दृष्ट्युपघातो वा" इति । ८ आमकोशी=असम्यग्रूढमध्य इत्यर्थः । ९ वर्धनयोग्यकर्णं निर्दिशति—**जातेति** । १० कर्णबन्धानाममितत्वं दर्शयति—**अमिता इति** । ११ कर्णपाल्यामयान् तच्चिकित्सां चाह—**कर्णेति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्वेदाभ्यङ्गपरीषेकैः प्रलेपासृग्विमोक्षणैः ॥ ३० ॥
मृद्वीं क्रियां बृंहणीयैर्यथास्वं भोजनैस्तथा ।
य एवं वेत्ति दोषाणां चिकित्सां कर्त्तुमर्हति ॥ ३१ ॥
अत ऊर्द्ध्वं नामलिङ्गैर्[1]वक्ष्ये पाल्यामुपद्रवान् ।
[2]उत्पाटकश्चोत्पुटकः श्यावः कण्डूयुतो भृशम् ॥ ३२ ॥
[3]अवमन्थः सकण्डूको ग्रन्थिको जम्बुलस्तथा ।
स्रावी च दाहवांश्चैव शृण्वेषां क्रमशः क्रियाम् ॥ ३३ ॥
अपामार्गः सर्जरसः पाटलालकुचत्वचौ[4] ।
उत्पाटके प्रलेपः स्यात्तैलमेभिश्च पाचयेत् ॥ ३४ ॥
शम्पाकशिग्रुपूतीकान् गोधामेदोऽथ तद्वसाम् ।
वाराहं गव्यमैणेयं पित्तं सर्पिश्च संसृजेत् ॥ ३५ ॥
लेपमुत्पुटके दद्यात्तैलमेभिश्च साधितम् ।
गौरीं सुगन्धां सश्यामामनन्तां[5] तण्डुलीयकम् ॥ ३६ ॥
श्यावे प्रलेपनं दद्यात्तैलमेभिश्च साधितम् ।
पाठां रसाञ्जनं क्षौद्रं तथा स्यादुष्णकाञ्जिकम् ॥ ३७ ॥
दद्याल्लेपं सकण्डूके तैलमेभिश्च साधितम् ।
व्रणीभूतस्य देयं स्यादिदं तैलं विजानता ॥ ३८ ॥
मधुकक्षीरकाकोलीजीवकाद्यैर्विपाचितम् ।
गोधावराहसर्पाणां वसाः स्युः कृतबृंहणे ॥ ३९ ॥
प्रलेपनमिदं दद्यादवसिच्यावमन्थके ।
प्रपौण्डरीकं मधुकं समङ्गां[6] धवमेव च ॥ ४० ॥
तैलमेभिश्च सम्पक्वं शृणु कण्डूमतः क्रियाम् ।
सहदेवा विश्वदेवा अजाक्षीरं ससैन्धवम् ॥ ४१ ॥
एतैरालेपनं दद्यात्तैलमेभिश्च साधितम् ॥ ४२ ॥

---

१ नामलिङ्गैः—नामभिराख्यातानि लिङ्गानि नामलिङ्गानि तैः । २ उत्पाटयति पाकेन उन्मूलयतीत्युत्पाटकः, उत्पुटं मांसाभिवृद्ध्योद्गतसन्धिं करोतीत्युत्पुटकः, श्यावः रक्तदुष्ट्या श्यामवर्णः । ३ अवमथ्नाति मन्थनमिव पीडयतीत्यवमन्थकः । ४ लकुचः = 'बड़हर' इति नाम्ना प्रसिद्धः । ५ अनन्ता = सारिवा । ६ समङ्गा = लज्जालुः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ग्रन्थिके गुटिकां पूर्वं स्रावयेदवपाट्य तु ।
ततः सैन्धवचूर्णन्तु घृष्ट्वा लेपं प्रदापयेत् ॥ ४३ ॥
लिखित्वा तत् स्रुतं घृष्ट्वा चूर्णैर्लोध्रस्य जम्बुले ।
क्षीरेण प्रतिसार्य्यैनं शुद्धं संरोपयेत्ततः ॥ ४४ ॥
मधुपर्णी मधूकञ्च मधुकं मधुना सह ।
लेपः स्राविणि दातव्यस्तैलमेभिश्च साधितम् ॥ ४५ ॥
पञ्चवल्कैः समधुकैः पिष्टैस्तैश्च घृतान्वितैः ।
जीवकाद्यैः ससर्पिष्कैर्दह्यमानं प्रलेपयेत् ॥ ४६ ॥

[1]विश्लेषितायास्त्वथ नासिकाया वक्ष्यामि सन्धानविधिं यथावत् ।
[2]नासाप्रमाण पृथिवीरुहाणां पत्रं गृहीत्वा त्ववलम्बितस्य ॥ ४७ ॥
तेन प्रमाणेन हि गण्डपार्श्वादुत्कृत्य बद्धं त्वथ नासिकाग्रम्[3] ।
विलिख्य चाशु प्रतिसन्दधीत तत् साधुबन्धैर्भिषगप्रमत्तः ॥ ४८ ॥
सुसंहितं सम्यगतो यथावन्नाडीद्वयेनाभिसमीक्ष्य बद्ध्वा[4] ।
प्रोन्नम्य चैनामवचूर्णयेत्तु पत्तङ्गयष्टीमधुकाञ्जनैश्च ॥ ४९ ॥
सञ्छाद्य सम्यक् पिचुना सितेन तैलेन सिञ्चेदसकृत्तिलानाम् ।
घृतञ्च पाय्यः स नरः सुजीर्णे स्निग्धो विरेच्यः स यथोपदेशम् ॥५०॥
रूढञ्च सन्धानमुपागतं स्यात् तदर्द्धशेषन्तु पुनर्निकृन्तेत् ।
हीनां पुनर्वर्द्धयितुं यतेत समाञ्च कुर्यादतिवृद्धमांसाम् ॥ ५१ ॥
[5]नाडीयोगं विनौष्ठस्य नासासन्धानवद्विधिम् ।
य एवमेव जानीयात् स राज्ञः कर्तुमर्हति ॥ ५२ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने कर्णव्यधबन्धविधिर्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

---

१ विश्लेषिताया नासिकाया सन्धानविधिमाह—**विश्लेषिताया इति** ।

२ नासाप्रमाणं = विश्लेषितांशपरिमितम् ।

३ नासिकाग्रं = वियोजितांशोपरिभागम् । ४ नलकृतमेरण्डपत्रनालकृतं वा नाडीद्वयम् । ५ छिन्नस्योष्ठस्य सन्धानविधिमभिधत्ते—**नाडीति** ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षोडशोऽध्यायः ।**

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# सप्तदशोऽध्यायः ।

अथात आमपक्वैषणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

शोफसमुत्थाना ग्रन्थिविद्रध्यलजीप्रभृतयः प्रायेण व्याधयोऽभिहिता अनेकाकृतयः, तैर्विलक्षणः पृथुर्ग्रथितः समो विषमो वा त्वङ्मांसस्थायी दोषसङ्घातः शरीरैकदेशोत्थितः शोफ इत्युच्यते ॥३॥

स षड्विधो वातपित्तकफशोणितसन्निपातागन्तुनिमित्तः । तस्य दोषरूपव्यञ्जनैर्लक्षणानि व्याख्यास्यामः । तत्र, वातशोफोऽरुणः कृष्णो वा परुषो मृदुरनवस्थितास्तोदादयश्चात्र वेदनाविशेषा भवन्ति । पित्तशोफः पीतो मृदुः सरक्तो वा शीघ्रानुसार्योषादयश्चात्र वेदनाविशेषा भवन्ति । श्लेष्मशोफः पाण्डुः शुक्लो वा कठिनः शीतः स्निग्धो मन्दानुसारी कण्ड्वादयश्चात्र वेदनाविशेषा भवन्ति । सर्ववर्णवेदनः सन्निपातजः । पित्तवच्छोणितजोऽतिकृष्णश्च । पित्तरक्तलक्षण आगन्तुर्लोहितावभासश्च ॥ ४ ॥

स यदा बाह्याभ्यन्तरैः क्रियाविशेषैर्न सम्भावितः प्रशमयितुं क्रियाविपर्ययाद् बहुत्वाद्वा दोषाणां तदा पाकाभिमुखो भवति । तस्यामस्य पच्यमानस्य पक्वस्य च लक्षणमुच्यमानमुपधारय । तत्र,

---

## सप्तदशोऽध्यायः ।

१ आमं विपच्यमानं चेति वक्ष्यमाणत्वादत्रामशब्दात्पच्यमानोऽपि ज्ञातव्यः । तथा च—आमश्च पच्यमानश्च पक्वश्च तेषामेषणं विज्ञानं विद्यते यस्मिन् स आमपक्वैषणीयस्तम् । २ शोथमुपपादयति—**शोफेति** । समुत्तिष्ठन्त्यनेनेति समुत्थान आकारः, शोफः समुत्थान एषामिति शोफसमुत्थानाः । ३ विलक्षणः=ग्रन्थ्यादिरोगविशेषेभ्यो भिन्नः । ४ शरीरैकदेशोत्थित इत्युक्त्याऽस्य शोथस्य पृथक्त्वं सूच्यते । ५ शोफः=व्रणशोथः । ६ व्रणशोथस्य षाड्विध्यं दर्शयति—**स इति** ।

७ वातादिरूपैर्वर्णादिभिरित्यर्थः । ८ आलेपनक्काथपानादिबाह्याभ्यन्तरैः शोथानवचारणे दोषं कथयति—**स यदेति** । ९ क्रियाविपर्ययात्=अतर्पणादिक्रियावैपरीत्यादित्यर्थः । १० पाकाभिमुखस्यामशोथस्य लक्षणमभिधत्ते=**तत्रेति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मन्दोष्मता त्वक्सवर्णता शीतशोफता स्थैर्यं मन्दवेदनताऽल्पशोफता चामलक्षणमुद्दिष्टम्। सूचिभिरिव निस्तुद्यते[1] दश्यत इव पिपीलिकाभिस्ताभिश्च संसर्प्यत इव छिद्यत इव शस्त्रेण भिद्यत इव शक्तिभिस्ताड्यत इव दण्डेन पीड्यत इव पाणिना घट्ट्यत इव चाङ्गुल्या, दह्यते पच्यत इव चाग्निद्वाराभ्याम्, ओषश्चोषपरीदाहाश्च[3] भवन्ति। वृश्चिकविद्ध इव च स्थानासनशयनेषु न शान्तिमुपैति। आध्मातवस्तिरिवाततश्च[4] शोफो भवति, त्वग्वैवर्ण्यं शोफाभिवृद्धिर्ज्वरदाहपिपासा भक्तारुचिश्च पच्यमानलिङ्गम्। वेदनोपशान्तिः पाण्डुताऽल्पशोफता वलीप्रादुर्भावस्त्वक्परिपुटनं निम्नदर्शनमङ्गुल्याऽवपीडिते प्रत्युन्नमनं, वस्ताविवोदकसञ्चरणं[6] पूयस्य, प्रपीडयत्येकं[7]मन्तमन्ते वाऽवपीडिते, मुहुर्मुहुस्तोदः कण्डूरुन्नतता व्याधेरुपद्रवशान्तिर्भक्ताभिकाङ्क्षा च पक्वलिङ्गम्॥ ५॥

कफजेषु तु रोगेषु[8] गम्भीरगतित्वादभिघातजेषु[9] वा केषुचिदसमस्तं पक्वलक्षणं दृष्ट्वा पक्वमपक्वमिति मन्यमानो भिषग् मोहमुपैति। यत्र[10] हि त्वक्सवर्णता शीतशोफता स्थौल्यमल्परुजताऽश्मवच्च[11] घनता, न तत्र मोहमुपेयादिति॥ ६॥

भवन्ति चात्र।

आमं विपच्यमानं च सम्यक् पक्वञ्च यो भिषक्।
जानीयात् स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः॥ ७॥

वाताद्ते नास्ति रुजा न पाकः पित्ताद्ते नास्ति कफाच्च पूयः।
तस्मात् समस्ताः परिपाककाले पचन्ति शोफांस्त्रय एव दोषाः॥८॥

---

१ पाकाभिमुखपच्यमानशोथस्य लक्षणं दर्शयति—**सूचिभिरिति**। २ निःशब्दस्यात्र भृशार्थकत्वाद् भृशं व्यथत इत्यर्थः। ३ एकदेशिकदाह ओषः। ४ आततः=त्वक्सङ्कोचरहितः। ५ पाकाभिमुखपक्वशोथस्य लक्षणं वक्ति—**वेदेत्यादिना**। ६ वस्तावुदकसञ्चरणमिव शोथे पूयसञ्चरणं भवतीत्यर्थः। ७ एकमवयवं प्रपीडयति यपरमप्यवयवं प्रपीडयतीति भावः। ८ रोगेषु=शोथेषु। ९ अभिघातजेषु=छिद्रानुप्रविष्टशल्यादिकारणादभिघातजन्यशोथेष्वित्यर्थः। १० पक्वविज्ञानोपायमाह—**यत्रेति**। ११ घनता=काठिन्यम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कालान्तरेणाभ्युदितन्तु[1] पित्तं कृत्वा वशे वातकफौ प्रसह्य ।
पचत्यतः शोणितमेव पाको मतोऽपरेषां विदुषां द्वितीयः ॥ ९ ॥

तत्र[2], आमच्छेदे मांससिरास्नाय्वस्थिसन्धिव्यापादनमतिमात्रं शोणितातिप्रवृत्तिर्वेदनाप्रादुर्भावोऽवदरणमनेकोपद्रवदर्शनं क्षतं[3] विद्रधिर्वा भवति । स[4] यदा भयमोहाभ्यां पक्वमप्यपक्वमिति मन्यमानश्चिरमुपेक्षते व्याधं वैद्यस्तदा गम्भीरानुगतो द्वारमलभमानः पूयः स्वमाश्रयमवदीर्योत्सङ्गं[5] महान्तमवकाशं कृत्वा नाडीं जनयित्वा कृच्छ्रसाध्यो भवत्यसाध्यो वेति ॥ १० ॥

भवन्ति चात्र ।

यश्छिनत्त्यामसज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते ।
श्वपचाविव मन्तव्यौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ ११ ॥
प्राक्[6] शस्त्रकर्मणश्चेष्टं भोजयेदातुरं भिषक् ।
मद्यपं पाययेन्मद्यं तीक्ष्णं यो वेदनासहः ॥ १२ ॥
न मूर्च्छत्यन्नसंयोगान्मत्तः शस्त्रं[7] न बुध्यते ।
तस्मादवश्यं भोक्तव्यं रोगपूक्तेषु कर्मसु ॥ १३ ॥
प्राणो[8] ह्याभ्यन्तरो नृणां बाह्यप्राणगुणान्वितः[9] ।
धारयत्यविरोधेन शरीरं पाञ्चभौतिकम् ॥ १४ ॥

अल्पो[10] महान् वा क्रियया विना यः समुच्छ्रितः पाकमुपैति शोफः ।
विशालमूलो विषमो विदग्धः स कृच्छ्रतां यात्यवगाढदोषः ॥ १५ ॥
आलेपविस्रावणशोधनैस्तु[11] सम्यक् प्रयुक्तैर्यदि नोपशाम्येत् ।

---

१ प्रकोपप्रसरस्थानसंश्रयकालावधिनाऽभ्युदितं समन्ततः पुनरुद्भूतमित्यर्थः । २ आमपच्यमानव्रणशोथच्छेदने दोषं दर्शयति—**तत्रेति** । ३ क्षतजन्यविद्रधिरित्यर्थः । ४ भयमोहाभ्यां पक्वशोथस्योपेक्षायामपि दोषं निर्दिशति—**स इति** । ५ उत्सङ्ग इव, व्रणाशये बहुकालं पूयावस्थानेन विदारिताभ्यन्तरप्रदेशनिम्नमुत्सङ्गसादृश्यादुत्सङ्गमित्यर्थः । ६ शस्त्रकर्मणः प्राक् कर्मोपदिशति—**प्रागिति** । ७ शस्त्रं=शस्त्रवेदनामित्यर्थः । ८ ओजोजन्यभारहरणादिशक्तिलक्षणबलमाभ्यन्तरः प्राणः । ९ पाञ्चभौतिकाहारजन्योपचयलक्षणबलं बाह्यः प्राणः । १० अल्पस्य महतो वा शोथस्य प्रतिक्रियाऽभावे दोषमाह—**अल्प इति** ।

११ आलेपनादिक्रियोपचारितानामपि शोथानामुपशमाभावे शीघ्रपाकोपक्रमसा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पच्येत शीघ्रं सममल्पमूलः स पिण्डितश्चोपरि चोन्नतः स्यात् ॥१६॥
कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वाय्वीरितः सन्दहति प्रसह्य ।
तथैव पूयोऽप्यविनिःसृतो हि मांसं सिराः स्नायु च खादतीह ॥१७॥
आदौ विस्लापनं कुर्य्याद् द्वितीयमवसेचनम् ।
तृतीयमुपनाहञ्च चतुर्थीं पाटनक्रियाम् ॥ १८ ॥
पञ्चमं शोधनं कुर्य्यात् षष्ठं रोपणमिष्यते ।
एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमं वैकृतापहम् ॥ १९ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने आमपक्वैषिणीयविधिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

---

## अष्टादशोऽध्यायः ।

अथातो व्रणालेपनबन्धविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
आलेप आद्य उपक्रमः, एष सर्वशोफानां सामान्यः प्रधानतमश्च, तं च प्रतिरोगं वक्ष्यामः । ततो बन्धः प्रधानं, तेन शुद्धिर्व्रण-

---

फल्यं दर्शयति—**आलेपेति** । १ पिण्डितः = वर्तुलः । २ पक्वशोथस्योपेक्षणे प्रागुक्तमेव दोषं निदर्शयति—**कक्षमिति** । कक्षं = शुष्कतृणादिबहुलप्रदेशम् ।

३ व्रणस्यावचारणक्रममाह—**आदाविति** । विस्लापनम् = अङ्गुल्यादिविमर्दनेन शोथविलयनम्, अवसेचनं = जलौकाऽऽदिभी रुधिरविस्रावणम्, उपनाहः = पाचनाय बन्धनम्, पाटनक्रियां = छेदनकर्म, शोधनं = प्रलेपादिभिः शुद्धिकरणम् । रोपणं = क्षतादिपूरणम्, वैकृतापहं = विकृतिसम्पन्नस्य रोमसञ्जननादिसवर्णकरणम् ; इत्येते सप्त व्रणस्योत्तरोत्तरक्रमाः । व्रणस्य षष्टिरुपक्रमाश्चिकित्सास्थानस्य द्विव्रणीये वक्ष्यन्ते ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तदशोऽध्यायः ।**

---

### अष्टादशोऽध्यायः ।

४ व्रणस्यालेपनबन्धयोर्विधिर्विद्यते यस्मिन् स तम् । ५ यद्यपि द्विव्रणीये व्रणस्य षष्टिरुपक्रमेष्वपतर्पणस्याद्यत्वमुक्तम्, तथाऽप्यत्र शोथभेषजप्रयोगापेक्षया प्रधानतया वाऽऽलेपस्याद्यत्वमुक्तम् ; तथा च परस्परं न विरोध इति बोध्यम् । ६ ततः = आलेपात् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रोपणमस्थिसन्धिस्थैर्यं च ॥ ३ ॥

तत्र[1] प्रतिलोममालिम्पेन्नानुलोमम् । प्रतिलोमे हि सम्यगौषधमवतिष्ठतेऽनुप्रविशति रोमकूपान् स्वेदवाहिभिश्च सिरामुखैर्वीर्य्यं प्राप्नोति ॥ ४ ॥

न च[2] शुष्यमाणमुपेक्षेत, अन्यत्र पीडयितव्यात् । शुष्को ह्यपार्थको[3] रुक्षश्च ॥ ५ ॥

स[4] त्रिविधः—प्रलेपः, प्रदेहः, आलेपश्च । तेषामन्तरं-प्रलेपः शीतस्तनुरविशोषी विशोषी च; प्रदेहस्तूष्णः[5] शीतो वा बहलोऽबहुरविशोषी च । मध्यमोऽत्रालेपः । तत्र, रक्तपित्तप्रसादकृदालेपः । प्रदेहो[6] वातश्लेष्मप्रशमनः सन्धानः शोधनो रोपणः शोफवेदनापहश्च, तस्योपयोगः क्षताक्षतेषु[7] । यस्तु क्षतेषूपयुज्यते स भूयः कल्क[8] इति संज्ञां लभते निरुद्धालेपनसञ्ज्ञः तेनास्रावसन्निरोधो मृदुता पूतिमांसापकर्षणमनन्तदोषता[10] व्रणशुद्धिश्च भवति ॥ ६ ॥

अविदग्धेषु शोफेषु हितमालेपनं भवेत् ।
यथास्वं[11] दोषशमनं दाहकण्डूरुजापहम् ॥ ७ ॥
त्वक्प्रसादनमेवाग्र्यं मांसरक्तप्रसादनम् ।
दाहप्रशमनं श्रेष्ठं तोदकण्डूविनाशनम् ॥ ८ ॥
मर्मदेशेषु ये रोगा गुह्यचेष्वपि तथा नृणाम् ।
संशोधनाय तेषां हि कुर्यादालेपनं भिषक् ॥ ९ ॥
षड्भागं पैत्तिके स्नेहं चतुर्भागन्तु वातिके ।
अष्टभागन्तु कफजे स्नेहमात्रां प्रदापयेत् ॥ १० ॥

---

१ प्रतिलोमालेपनं तत्फलं च निर्दिशति—**तत्रेति** । २ शुष्यमाणलेपस्योपेक्षणे दोषमाह—**न चेति** । ३ अपार्थकः=निष्फलः । ४ लेपस्य त्रैविध्यमाह—**स इति** । ५ वातकफबहुले उष्णः, पित्तरक्तबहुले शीतः । ६ मध्यमो व्याधिश्रलक्षणः । ७ यः कल्कः पिण्डीकृत्य व्रणस्योपरि दीयते स प्रदेहः । ८ क्षताक्षतेषु=व्रणशोथेषु । ९ कल्को नाम—"द्रव्यमात्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा जलमिश्रितम् । तदेव सूरिभिः पूर्वैः कल्क इत्यभिधीयते ॥" इति । १० अनन्तदोषता=आभ्यन्तरपूयराहित्यम् । ११ यथास्वं=पित्तकफवातक्रमेण दाहकण्डूरुजाशामकमित्यर्थः । १२ स्नेहमा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तस्य[1] प्रमाणमार्द्रमाहिषचर्मोत्सेधमुपदिशन्ति ॥ ११ ॥

न[2] चालेपं रात्रौ[3] प्रयुञ्जीत, मा भूच्छैत्यपिहितोष्मणस्तदनिर्गमाद्[4] विकारप्रवृत्तिरिति[5] ॥ १२ ॥

प्रदेहसाध्ये व्याधौ तु हितमालेपनं दिवा ।
पित्तरक्ताभिघातोत्थे सविषे च विशेषतः ॥ १३ ॥
न च पर्य्युषितं लेपं कचाचिदवचारयेत् ।
उपर्य्युपरि लेपं तु न कदाचित् प्रदापयेत् ॥ १४ ॥
ऊष्माणं वेदनां दाहं घनत्वाज्जनयेत् स हि ।
न च तेनैव लेपेन प्रदेहं दापयेत् पुनः ॥ १५ ॥
शुष्कभावात् स निर्वीर्य्यो युक्तोऽपि स्यादपार्थकः ॥१६॥

अत[6] ऊर्ध्वं व्रणबन्धनद्रव्याण्युपदेक्ष्यामः । तद्यथा-क्षौमकार्पासिकदुकूलकौशेयपत्रोर्णचीनपट्ट[7]चर्मान्तर्वल्कलालाबूशकलल[8]ताविदलरज्जुतूलफलस[9]न्तानिकालौहानीति; तेषां व्याधिं कालं[10] चावेक्ष्यो-

---

त्रां=घृततैलादिपरिमाणम् । १ आलेपतनुत्वस्य प्रमाणमाह—**तस्येति** । २ आलेपावचारणनियमान् दर्शयति—**न चेति** । ३ चक्रः—'रात्रिस्वाभाविकशैत्यात्संवृतरोमकूपात्पुनरालेपनेऽपि व्रणोष्मा बहिरनिर्गच्छन्नवरुद्धो विवृद्धः सन्नितरव्रणे व्रणशोथे वा दाहपाकौ करोतीति भावः । यस्तु प्रदेहो वातश्लेष्मविषयः स रात्रावपि देयोऽविरुद्धत्वात् । पाचनलेपस्तु पाचकत्वादेव दातव्यः; तथा घृतप्रदेहो निर्वापणतया दीयत एव क्षीरशीतजलादिसेकश्च, तथा व्रणकल्कोऽप्यहोरात्रस्थायिबन्धविहित एव' इति । ४ तदनिर्गमात्=शोथोष्मणोऽनिःसरणात् । आलेपनाद्धेतोः 'शैत्यावरुद्धरोमकूपत्वेन बहिरनिर्गच्छन्नूष्मा शोथं पचतीत्यर्थः । ५ प्रवृत्तिः=अभिवृद्धिः । ६ व्रणबन्धनद्रव्याण्यभिदधाति—**अत इति** । ७ चीनपट्टं=चीनदेशजनितपत्रोर्णभेदचीनयुगपट्टनाम्ना तत्र ख्यातम् । चर्म=हरिणादीनां चर्मेत्यर्थः । सुवर्णपिष्टकादिलिप्तचर्मतन्तुभिस्तुरुष्कव्यूतं वा । बाह्यवल्कलस्याभ्यन्तरमन्तर्वल्कलम् । ८ लताविदलं=श्यामलताऽऽदिपाटितार्धम् । ९ सन्तानिका=क्षीरसन्तानिका दुग्धविकारः । १० वातश्लैष्मिकं व्याधिं शीतं कालं चकाराद् गाढं स्थानञ्चावेक्ष्य व्रणबन्धनद्रव्याणां घनानामुपयोगः; रक्तपैत्तिकं व्याधिमुष्णं कालं चकाराद् शिथिलं स्थानञ्चावेक्ष्य व्रणबन्धनद्रव्याणां तनूनामुपयोगः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पयोगः; प्रकरणतश्चैषामादेशः ॥ १७ ॥

तत्र[2] कोशदामस्वस्तिकानुवेल्लितप्र(मु)तोलीमण्डलस्थगिकायमकखट्वाचीनविबन्धवितानगोफणाः पञ्चाङ्गी चेति चतुर्दश बन्धविशेषाः । तेषां नामभिरेवाकृतयः प्रायेण व्याख्याताः ॥ १८ ॥

---

१ सर्पादिदष्टस्यारिष्टाबन्धो रज्वादिभिः, रक्तातिप्रवृत्तौ रक्तनिवृत्तये सन्तानिकया, भग्नसन्धानाय पाटितश्यामलतादिभिः, दन्तान् सुवर्णादिलौहैः, अर्बुदग्रन्थ्यादीन् त्रप्वादिलौहैः, शिरोव्रणानलाबुशकलेन बध्नीयादित्यादेशाशयः । एवं प्रकरणमवेक्ष्य यथायोग्यमपरेषामादेशप्रकार ऊह्यः ।

२ चतुर्दशबन्धविशेषाणां नामानि निर्दिशति—**तत्रेति । कोशः** = क्रिमिकोशाकारो व्रणबन्धविशेषः । अस्य लक्षणम्—"पूरयित्वौषधैर्बन्धः क्रियते कोशकाकृतिः । कोशकाख्यः स विज्ञेयो वैद्यैर्बन्धेन वर्जितः" ॥ **दाम** = मालेव व्रणबन्धविशेषः । तल्लक्षणम्—"दामाकृतिश्चतुष्पादो बन्धः स्याद्दामसंज्ञितः" । **स्वस्तिकः** = स्वस्तिकाकृतिव्रणबन्धः । **अनुवेल्लितं** = वक्रानुपूर्व्या कृतो व्रणबन्धभेदः । उक्तं च स्वस्तिकानुवेल्लितास्यबन्धयोर्लक्षणम्—"स्वस्तिकं पुनः । स्वस्तिकाकृतिमासीव्य पश्चादावेष्टय बध्यते ।" अनुवेल्लितं तद् विद्यात्" । **प्रतोली** = मत्स्यधारणजलयन्त्रवद् बहुच्छिद्रो व्रणबन्धभेदः । एतल्लक्षणम्—"मुक्तोली पुटिका प्रोक्ता जालवद् बहुरन्ध्रका" । बन्धस्यास्य संज्ञाऽन्तरम्—"गोतुण्डिकां चालनीं च तामेवाहुर्भिषग्वराः" । **मण्डलं** = वेष्टनाकारो गोलो वा व्रणबन्धनभेदः । तल्लक्षणम्—"मण्डलं वेष्टनाकारं विदध्यान्मण्डलाख्यके" । **स्थगिका** = ताम्बूलकरङ्काकारो बन्धभेदः । उक्तं च—"स्थगिकां स्थगिकाकारां" "भेषजादिभिरापूर्य स्थगिका पट्टकेन च" । **यमकः** = व्रणद्वयस्य संयमनो यमलाख्यबन्धभेदः । तल्लक्षणम्—"बध्यते मण्डलाकारो यमलव्रणयोस्तु यः । बन्धं यमकनामानं भिषजो वर्णयन्ति तम्" ॥ **खट्वा** = खट्वाऽऽकारश्चतुष्पादो बन्धभेदः । तल्लक्षणम्—"खट्वा तु बहुपादा स्याच्चीराभिर्बहुभिर्वृता" । **चीनः**—बहुभिश्चीराभिर्वृतो ग्रन्थिबन्धनवर्जितश्चीनांशुकवेष्टितो बन्धभेदः । तल्लक्षणम्—"चीनबन्धं विजानीयाच्चीराभिर्बहुभिर्वृतम्" । **विबन्धः** = ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्परिक्षिप्तत्वेन विविधाकृतिबन्धभेदः । एतल्लक्षणम्—"विबन्धो विविधो बन्धः स च षड्ग्रन्थिकायुतः" । **वितानः** = शिरस्काकारेण विस्तारो बन्धभेदः । तल्लक्षणम्—"ज्ञेयो वितानसंज्ञस्तु वितानाकारसंयुतः" । **गोफणा** = पाषाणगुडिकाकृतिबन्धभेदः कौपीनबन्धो वा । तल्लक्षणम्—"पाषाणगुडिकोत्क्षेपकारिणीं गोफणां विदुः" । **पञ्चाङ्गी** = पञ्चाङ्गुलाकृतिव्रणबन्धभेदः । तल्लक्षणम्—"पञ्चाङ्गुलाकृतिं" "पञ्चाङ्गी तु वृतां कुर्याद् बन्धनाय चिकित्सकः ।" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



[1]तत्र कोशमङ्गुष्ठाङ्गुलिपर्वसु विदध्यात्। दाम सम्बाधेऽङ्गे। सन्धिकूर्चक[2]भ्रूस्तनान्तरतलकर्णेषु स्वस्तिकम्। अनुवेल्लितं तु शा-[3][4]खासु। ग्रीवा[5]मेढ्रयोः प्रतोलीम्। वृत्तेऽङ्गे[6] मण्डलम्। अङ्गुष्ठाङ्गुलिमे-ढ्राग्रेषु स्थगिकाम्। यमलव्रणयोर्यमकम्। हनु[7]शङ्खगण्डेषु खट्वाम्। अपाङ्गयोश्चीनम्। पृष्ठोदरोरःसु विबन्धम्। मूर्द्धनि वितानम्। चिबु-कनासौष्ठांसबस्तिषु गोफणाम्। जत्रुण ऊर्द्ध्वं पञ्चाङ्गीमिति। यो वा यस्मिन् शरीरप्रदेशे सुनिविष्टो भवति तं तस्मिन् विदध्यात्॥ १९॥

[10]यन्त्रणमूर्ध्वमधस्तिर्यक् च॥ २०॥

[11]तत्र घनां कवलिकां दत्त्वा वामहस्तपरिक्षेपमृजुमनाविद्धमस-ङ्कुचितं मृदु पट्टं निवेश्य बध्नीयात्। न च व्रणस्योपरि कुर्य्याद् ग्रन्थिमाबाधकरं च॥ २१॥

न च [12]विकेशिकौषधेऽतिस्निग्धेऽतिविषमे वा कुर्वीत। यस्मादति-स्नेहात् क्लेदो, रौक्ष्याच्छेदो, दुर्न्यासाद् व्रणवर्त्मावघर्षणमिति॥२२॥

---

१ पूर्वोक्तकोशादिबन्धानां विषयान् दर्शयति—**तत्र कोशमिति**। तन्त्रान्तरे विशे-षः—"अङ्गुल्यङ्गुष्ठकाग्रे तु कूर्चकूर्परजानुषु। कोषकं कोषकाकारं व्रणबन्धं तु योजयेत्॥" इति। २ कूर्चकः=पादाङ्गुष्ठाङ्गुलिमध्यभागे क्षिप्रसंज्ञकमर्मोपरिष्टादुभयतः। ३ ह-स्तपादतलमित्यर्थः। ४ शाखासु=सक्थिबाहुषु। तन्त्रान्तरे—"शाखासु तिर्यक्पति-तान् प्रहारादिकृतान् भिषक्। तान् प्रसीव्यानुबध्नीयादयं ज्ञेयोऽनुवेल्लितः॥" इति। ५ तन्त्रान्तरे—"ललाटे च प्रयोजयेत्" इति विशेषः। ६ स्तनबाहुपार्श्वोदरोरुपृ-ष्ठादिके वृत्तेऽङ्गे इत्यर्थः। ७ भ्रूकर्णयोरन्तरं शङ्खः।

८ पूर्वोक्तदेशविशेषं विकल्पयति—**यो वेति**। ९ सुनिविष्टः=शोभनाकारः। १० ऊर्ध्वादिभेदेन मृदुसमावगाढसंज्ञस्य बन्धस्य त्रैविध्यं दर्शयति—**यन्त्रणमिति**। यन्त्रणं=पट्टग्रन्थेर्बन्धनम्।

११ बन्धावचारणं निर्दिशति—**तत्रेति**। कवलयति प्रच्छादनेन व्रणान् ग्रसती-वेति कवलिका औषधवस्त्रयोरन्तरे दीयमानौदुम्बरादिवल्कलं पत्राणि वा सा, द्विगुणच-तुर्गुणमृदुवस्त्रविरचिता कवलिकेत्यन्ये। १२ विकेशिका=तिलकल्कमधुघृत्तात्तवस्त्रस्य सूत्रस्य वा वर्त्तिः। उक्तं च वाग्भटे—"सपूतिमांसं सोत्सङ्गं सगर्तिं पूयगर्भिणम्। व्रणं विशोधयेच्छीघ्रं स्थिता ह्यन्तर्विकेशिका॥" इति। औषधपदेनात्रौषधकल्कः पूतिमांसो-त्सङ्गगत्यस्थ्यन्तरपूयवर्जितेषु व्रणेष्वौषधकल्कस्य, व्रणान्तरे विकेशिकौषधकल्कयोश्चोप-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



[1]तत्र व्रणायतनविशेषाद्बन्धविशेषस्त्रिविधो भवति—गाढः, समः, शिथिल इति ॥ २३ ॥

[2]पीडयन्नरुजो गाढः सोच्छ्वासः शिथिलः स्मृतः ।
नैव गाढो न शिथिलः समो बन्धः प्रकीर्तितः ॥ २४ ॥

[3]तत्र, स्फिक्कुक्षिकक्षावङ्क्षणोरुशिरःसु गाढः । शाखावदनकर्ण-कण्ठमेढ्रमुष्कपृष्ठपार्श्वोदरोरस्सु समः । अक्ष्णोः सन्धिषु च शिथिल इति ॥ २५ ॥

[4]तत्र पैत्तिकं गाढस्थाने समं बध्नीयात्, समस्थाने शिथिलं, शिथिलस्थाने नैव; एवं शोणितदुष्टं च । श्लैष्मिकं शिथिलस्थाने समं, समस्थाने गाढं, गाढस्थाने गाढतरम्; एवं वातदुष्टं च ॥२६॥

[5]तत्र पैत्तिकं शरदि ग्रीष्मे द्विरह्नो बध्नीयात् । रक्तोपद्रुतमप्येवम् । श्लैष्मिकं हेमन्तवसन्तयोस्त्र्यहाद्वातोपद्रुतमप्येवम् । एवमभ्यूह्य बन्धविपर्य्ययं च कुर्यात् ॥ २७ ॥

[6]तत्र समशिथिलस्थानेषु गाढं बद्धे विकेशिकौषधनैरर्थक्यं शोफवेदनाप्रादुर्भावश्च, गाढसमस्थानेषु शिथिलं बद्धे विकेशिकौषधपतनं पट्टसञ्चाराद् व्रणवर्त्मावघर्षणमिति । गाढशिथिलस्थानेषु समं बद्धे च गुणाभाव इति ॥ २८ ॥

[7]अविपरीतबन्धे वेदनोपशान्तिरसृक्प्रसादो मार्दवं च ॥ २९ ॥

[8]अबध्यमानो दंशमशकतृणकाष्ठोपलपांशुशीतवातातपप्रभृतिभिर्विशेषैरभिहन्यते व्रणो विविधवेदनोपद्रुतश्च दुष्टतामुपैत्यालेपनादीनि चास्य विशोषमुपयान्ति ॥ ३० ॥

---

योगो बोध्यः । १ व्रणायतनविशेषाद् बन्धस्य त्रैविध्यमाह—**तत्रेति** ।

२ गाढशिथिलसमबन्धानां लक्षणं निर्दिशति—**पीडयन्निति** । पीडयन्नवगाढमानोऽपि यो रुजां न करोति । ३ व्रणायतनविशेषे बन्धविशेषयोजनं दर्शयति—**तत्र स्फिगिति** । ४ दोषविशेषे बन्धविशेषं निर्दिशति—**तत्रेति** । ५ कालविशेषे बन्धविशेषं निर्दिशति—**तत्रेत्यादिना** । ६ गाढादिस्थानेऽन्यथाकृतानां बन्धानां दोषमाह—**तत्र समेति** । ७ यथोचितबन्धगुणानभिधत्ते—**अविपरीतेति** । ८ अब-



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


चूर्णितं मथितं भग्नं विश्लिष्टमतिपातितम्[2] ।
अस्थिस्नायुसिराच्छिन्नमाशु बन्धेन रोहति ॥ ३१ ॥
सुखमेवं व्रणी शेते सुखं गच्छति तिष्ठति ।
सुखं शय्यासनस्थस्य क्षिप्रं संरोहति व्रणः ॥ ३२ ॥

अबन्ध्याः[3] पित्तरक्ताभिघातविषनिमित्ता यदा च शोफदाह-पाकरागतोदवेदनाऽभिभूताः क्षाराग्निदग्धाः पाकात् प्रकुपितप्रशीर्ण-मांसाश्च भवन्ति ॥ ३३ ॥

कुष्ठिनामग्निदग्धानां पिडका मधुमेहिनाम् ।
कर्णिकाश्चोन्दुरुविषे विषजुष्टव्रणाश्च ये ॥ ३४ ॥
मांसपाके न बध्यन्ते गुदपाके च दारुणे ।
स्वबुद्ध्या[4] चापि विभजेत् कृत्याकृत्यांश्च[5] बुद्धिमान् ॥३५॥
देशं[6] दोषञ्च विज्ञाय व्रणञ्च व्रणकोविदः ।
ऋतूंश्च परिसङ्ख्याय ततो बन्धान्निवेशयेत् ॥ ३६ ॥
ऊर्ध्वं[7] तिर्य्यगधस्ताच्च यन्त्रणा त्रिविधा मता ।
यथा च बध्यते बन्धस्तथा वक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३७ ॥
घनां कवलिकां दत्त्वा मृदु चैवापि पट्टकम् ।
विकेशिकामौषधं च नातिस्निग्धं समाचरेत् ॥ ३८ ॥
प्रक्लेदयत्यतिस्निग्धा तथा रूक्षा क्षिणोति च ।
युक्तस्नेहा रोपयति दुर्न्यस्ता वर्त्म घर्षति ॥ ३९ ॥
विषमञ्च व्रणं कुर्य्यात् स्तम्भयेत् स्रावयेत्तथा ।
यथा व्रणं विदित्वा तु योगं वैद्यः प्रयोजयेत् ॥ ४० ॥
पित्तजे रक्तजे वाऽपि सकृदेव परिक्षिपेत् ।
असकृत् कफजे वाऽपि वातजे च विचक्षणः ॥ ४१ ॥

---

ध्यमानबन्धे दोषमभिदधाति—**अबध्येति** । १ बन्धस्य गुणौत्कर्ष्यमाह—**चूर्णित-मिति** । २ अतिपातितं=स्थानाच्युतमवलम्बमानम् । ३ बन्धेऽनर्थकारिणो विकारान् दर्शयति—**अबन्ध्या इति** । ४ देशदोषादीन् विज्ञाय बन्धनिश्चयमुप-दिशति—**स्वबुद्ध्येति** । ५ कृत्याकृत्यान्=साध्यासाध्यान् । ६ देशं=स्फि-क्कुक्षिकक्षादिकं देशमित्यर्थः । ७ पूर्वोक्तं व्रणबन्धविधिमुपसंहरति—**ऊर्ध्वमिति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तलेन प्रतिपीड्याथ स्रावयेदनुलोमतः ।
सर्वांश्च बन्धान् गूढान्तान् सन्धींश्च विनिवेशयेत् ॥ ४२ ॥
ओष्ठस्याप्येष सन्धाने यथोद्दिष्टो विधिः स्मृतः ।
बुद्ध्योत्प्रेक्ष्याभियुक्तेन तथा चास्थिषु जानता ॥ ४३ ॥
उत्तिष्ठतो निषण्णस्य शयनं वाऽधिगच्छतः ।
गच्छतो विविधैर्यानैर्नास्य दुष्यति स व्रणः ॥ ४४ ॥
ये च स्युर्मांससंस्था वै त्वग्गताश्च तथा व्रणाः ।
सन्ध्यस्थिकोष्ठप्राप्ताश्च सिरास्नायुगतास्तथा ॥ ४५ ॥
तथाऽवगाढगम्भीराः सर्वतो विषमस्थिताः ।
नैते साधयितुं शक्या ऋते बन्धाद्भवन्ति हि ॥ ४६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने व्रणालेपनबन्धविधिर्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

## एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथातो व्रणितोपासनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
व्रणितस्य प्रथममेवागारमन्विच्छेत् । तच्चागारं प्रशस्तं वास्त्वादिकं कार्य्यम् ॥ ३ ॥

---

१ व्रणबन्धगुणानुपसंहरति—ओष्ठस्येति ।

इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामष्टादशोऽध्यायः ।

---

### एकोनविंशोऽध्याय ।

२ व्रणितस्य सञ्जातव्रणस्य व्रणलेपनाधिकारात्कृतव्रणबन्धस्य वा उपासनं गृहशय्याऽशनादिसेवनं विद्यते यस्मिन् स व्रणितोपासनीयस्तम् । ३ व्रणिनो योग्यागारमाह—व्रणितस्येति । ४ प्रशस्तशब्देन प्रागुदग्निम्नत्वादिकं वास्तुशब्देन च प्रदेशो बोध्यः । भूमेः प्राशस्त्यमुक्तं वास्तुशास्त्रे—"निष्कपाला निरुपला कृमिवल्मीकवर्जिता । अस्थिवर्ज्या न सुषिरा तनुधालुकसंयुता ॥ अङ्गारैर्वृक्षमूलैश्च शूलैश्चापि पृथग्विधैः । पङ्कसङ्करकूपैश्च दारुभिर्लोष्टकैरपि ॥ शर्कराभिरयुक्ता या भस्माद्यैस्तु तुषैरपि । सा शुभा सर्ववर्णानां सर्वसम्पत्करी धरा ॥ मनसश्चक्षुषो यत्र सन्तोषो जायते भुवि । तस्यां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रशस्तेवास्तुनि गृहे शुचावातपवर्जिते ।
निवाते न च रोगाः स्युः शारीरागन्तुमानसाः ॥ ४ ॥

तस्मिन् शयनमसम्बाधं स्वास्तीर्णं मनोज्ञं प्राक्शिरस्कं सशस्त्रं कुर्वीत ॥ ५ ॥

सुखचेष्टाप्रचारः स्यात् स्वास्तीर्णे शयने व्रणी ।
प्राच्यां दिशि स्थिता देवास्तत्पूजार्थं च तच्छिरः ॥ ६ ॥

तस्मिन् सुहृद्भिरनुकूलैः प्रियंवदैरुपास्यमानो यथेष्टमासीत ॥७॥

सुहृदो विक्षिपन्त्याशु कथाभिर्व्रणवेदनाः ।
आश्वासयन्तो बहुशस्त्वनुकूलाः प्रियंवदाः ॥ ८ ॥

न च दिवानिद्रावशगः स्यात् ॥ ९ ॥

दिवास्वप्नाद् व्रणे कण्डूर्गात्राणां गौरवं तथा ।
श्वयथुर्वेदना रागः स्रावश्चैव भृशं भवेत् ॥ १० ॥

उत्थानसंवेशनपरिवर्त्तनचङ्क्रमणोच्चैर्भाषणाद्यास्वात्मचेष्टास्वप्रमत्तो व्रणं संरक्षेत् ॥ ११ ॥

स्थानासनं चङ्क्रमणं दिवास्वप्नं तथैव च ।
व्रणितो न निषेवेत शक्तिमानपि मानवः ॥ १२ ॥

उत्थानाद्यासनं स्थानं शय्या चातिनिषेविता ।
प्राप्नुयान्मारुतादङ्गे रुजस्तस्माद्विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

गम्यानाञ्च स्त्रीणां सन्दर्शनसम्भाषणसंस्पर्शनानि दूरतः परिहरेत् ॥ १४ ॥

---

कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम् ॥" इति । १ प्रशस्तप्रदेशागारे स्थितिं कुर्वतो व्रणिनः शारीरादिरोगाणामभावं वक्ति —**प्रशस्तेति** । २ व्रणिनः शयनं निर्दिशति— **तस्मिन्निति** । ३ प्रचारः = शयनपरिवर्तनादिगतिरित्यर्थः । ४ शयने व्रणिनोऽवस्थितिमुपदिशति—**तस्मिन्निति** । ५ सुहृदुपासनफलं कथयति—**सुहृद इति** । ६ व्रणिनो दिवास्वापे दोषं दर्शयति—**दिवेति** । ७ उत्थानाद्यवस्थासु व्रणरक्षायाः कर्तव्यतामाह—**उत्थानेति** । ८ व्रणिनश्चतुर्विधकायव्यापारं नियमयति—**स्थानासनमिति** । ऊर्ध्वीभूतस्य व्रणितस्य स्थितिः स्थानम्; उपविष्टस्य च स्थितिरासनम् । ९ उत्थादीनामतिनिषेवणेन दोषमभिधत्ते—**उत्थानेति** । १० व्रणिनो गम्यस्त्रीणां दर्शनाद्यतिदोषकरविहारं परिहरति—**गम्यानामिति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्त्रीदर्शनादिभिः शुक्रं कदाचिच्चलितं स्रवेत् ।
ग्राम्यधर्मकृतान् दोषान् सोऽसंसर्गेऽप्यवाप्नुयात् ॥ १५ ॥

नवधान्यमाषतिलकलायकुलत्थनिष्पावहरितकशाकाम्ललवण-कटुकगुडपिष्टविकृतिवल्लूरशुष्कशाकाजाविकानूपौदकमांसवसासी-तोदककृशरापायसदधिदुग्धतक्रप्रभृतीन् परिहरेत् ॥ १६ ॥

तक्रान्तो नवधान्यादिर्योऽयं वर्ग उदाहृतः ।
दोषसञ्जननो ह्येष विज्ञेयः पूयवर्धनः ॥ १७ ॥

मद्यपश्च मैरेयारिष्टासवशीधुसुराविकारान् परिहरेत् ॥ १८ ॥

मद्यमम्लं तथा रूक्षं तीक्ष्णमुष्णं च वीर्यतः ।
आशुकारि च तत् पीतं क्षिप्रं व्यापादयेद् व्रणम् ॥ १९ ॥

वातातपरजोधूमावश्यायातिसेवनातिभोजनानिष्टभोजनाश्रवण-दर्शनेर्ष्यामर्षभयक्रोधशोकध्यानरात्रिजागरणविषमाशनशयनोपवा-सवाग्व्यायामस्थानचङ्क्रमणशीतवातविरुद्धाध्यशनाजीर्णमक्षिकाद्या बाधाः परिहरेत् ॥ २० ॥

व्रणिनः सम्प्रतप्तस्य कारणैरेवमादिभिः ।

---

१ व्रणिनोऽतिदोषकरानाहारान् दर्शयति—**नवेति** । २ कलायेन नात्र हरेणु-सतीनकयोर्ग्रहणं किन्तु त्रिपुटकस्य 'खेंसारी' इति ख्यातस्येति बोध्यम् । ३ "कुठेर-शिग्रुसुरससुमुखासुरिभूस्तृणाः । मूलकं चुक्रिका चेति वर्गे हरितकं विदुः" ॥ ४ प्रभृति-शब्दात्परिहरणीयवरकोद्दालकादयो ग्राह्याः । ५ दोषकरत्वमभिधत्ते—**तक्रान्त इति** । ६ दोषशब्देनात्र व्रणदुष्टिर्बोद्धव्याः । ७ शस्त्रकर्मणः प्रागेकवारं मद्यपान-मुक्तमत्र व्रणे सति तं निषेधति—**मद्यपश्चेति** । "मैरेयं धातकीपुष्पगुडधान्याम्लसाधि-तम् । स चातुर्जातकाजाजीभक्तुष्ठोषणनागरम्" ॥ अथवा—"आसवस्य सुरायाश्च द्वयोरेकत्र भाजने । सन्धानं तद्विजानीयान्मैरेयमुभयात्मकम्" ॥ "यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः । अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात्" ॥ सीधुः—"ज्ञेयः शीतरसः सीधुर-पक्वमधुरद्रवैः । सिद्धः पक्वरसः सीधुः सम्पक्वमधुरद्रवैः" ॥ सुरा—"परिपक्वान्नसन्धा-नसमुत्पन्नां सुरां जगुः" । ८ व्रणिनो बाह्यान् वातादीनसेव्यानाह—**वातेति** । ९ समं मधुघृतप्रभृति विरुद्धाध्यशनम् । १० वातादीनां परिहारे कारणमाह—**व्रणिन इति** । रक्षांसि अष्टविधा ग्रहाः । तदुक्तम्—"देवास्तथा शत्रुगणाश्च तेषां गन्धर्वयक्षाः पितरो भुजङ्गाः । रक्षांसि या चापि पिशाचजातिरेषोऽष्टको देवगणो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



क्षीणशोणितमांसस्य भुक्तं सम्यङ् न जीर्यति ॥ २१ ॥
अजीर्णात् पवनादीनां विभ्रमो बलवान् भवेत् ।
ततः शोफरुजास्रावदाहपाकानवाप्नुयात् ॥ २२ ॥

सदा नीचनखरोम्णा शुचिना शुक्लवाससा शान्तिमङ्गलदेवता-ब्राह्मणगुरुपरेण भवितव्यमिति । तत् कस्य हेतोः ? हिंसाविहाराणि हि महावीर्याणि रक्षांसि पशुपतिकुबेरकुमारानुचराणि मांसशोणितप्रियत्वात् क्षतजनिमित्तं व्रणिनमुपसर्पन्ति सत्कारार्थं[1] जिघांसूनिं वा कदाचित् ॥ २३ ॥

भवति चात्र ।

तेषां सत्कारकामानां प्रयतेतान्तरात्मना ।
धूपबल्युपहारांश्च भक्ष्यांश्चैवोपहारयेत् ॥ २४ ॥

ते तु सन्तर्पिता आत्मवन्तं न हिंस्युः । तस्मात् सततमतन्द्रितो जनपरिवृतो नित्यं दीपोदकशस्त्रस्रग्दामपुष्पलाजाद्यलङ्कृते वेश्मनि सम्पन्मङ्गलमनोऽनुकूलाः कथाः शृण्वन्नासीत ॥ २५ ॥

सम्पदाद्यनुकूलाभिः कथाभिः प्रीतमानसः ।
आशावान् व्याधिमोक्षाय क्षिप्रं सुखमवाप्नुयात् ॥ २६ ॥

ऋग्यजुःसामाथर्ववेदाभिहितैरपरैश्चाशीर्विधानैरुपाध्याया भिषजश्च सन्ध्ययो रक्षां कुर्युः ॥ २७ ॥

सर्षपारिष्ट[2]पत्राभ्यां सर्पिषा लवणेन च ।
द्विरह्नः[3] कारयेद् धूपं दशरात्रमतन्द्रितः ॥ २८ ॥

छत्रा[4]मतिच्छत्रां लाङ्गू(ङ्ग)लीं जटिलां ब्रह्मचारिणीं लक्ष्मीं

---

ग्रहाख्यः॥" इति । १ सत्कारार्थं=पूजार्थम् ।

२ 'अरिष्टं लशुने निम्बे' इति कोशान्निम्बपत्रमित्यर्थः । ३ अह्नो द्विः सायं प्रातरित्यर्थः । ४ छत्रातिच्छत्रे = द्रोणपुष्पीद्वयम्, छत्रा = शतपुष्पा, अतिच्छत्रा विषाणिकेत्यरुणदत्तः, लाङ्गूली = कपिकच्छूः, जटिला = जटामासी, ब्रह्मचारिणी = मुण्डितिका, ब्रह्मयष्टीति हाराणचन्द्रः, ब्राह्मीत्यन्ये, लक्ष्मी = शमी, लक्ष्मणेत्यन्ये, विष्णुक्रान्तेत्यपरे, ऋद्धिरित्युदयचन्द्रः, तुलसीति केचित्, गुहातिगुहे = शालिपर्णीपृश्निपर्ण्यौ, शतवीर्या = शतावरी, नीलदूर्वेत्यन्ये, सहस्रवीर्या = श्वेतदूर्वा, सिद्धार्थकः = सर्षपः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गुह्यामतिगुह्यां वचामतिविषां शतवीर्यां सहस्रवीर्यां सिद्धार्थकांश्च शिरसा धारयेत् ॥ २९ ॥

व्यज्येत बालव्यजनैर्व्रणं न च विघट्टयेत्।
न तुदेन्न च कण्डूयेच्छयानः परिपालयेत् ॥ ३० ॥
अनेन विधिना युक्तमादावेव निशाचराः।
वनं केशरिणाऽऽक्रान्तं वर्जयन्ति मृगा इव ॥ ३१ ॥
जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवोत्तरम्[1]।
भुञ्जानो जाङ्गलैर्मांसैः शीघ्रं व्रणमपोहति ॥ ३२ ॥
तण्डुलीयकजीवन्तीसुनिषण्णकवास्तुकैः[2]।
बालमूलकवार्त्ताकपटोलैः कारवेल्लकैः ॥ ३३ ॥
सदाडिमैः सामलकैर्घृतभृष्टैः ससैन्धवैः।
अन्यैरेवंगुणैर्वाऽपि मुद्गादीनां रसेन वा ॥ ३४ ॥
शक्तून्[3] विलेपीं कुल्माषं जलञ्चापि श्रृतं पिबेत्।
दिवा न निद्रावशगो निवातगृहगोचरः।
व्रणी वैद्यवशे तिष्ठन् शीघ्रं व्रणमपोहति ॥ ३५ ॥
व्रणे श्वयथुरायासात् स च रागश्च जागरात्।
तौ च रुक् च दिवास्वापात् ताश्च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ ३६ ॥
एवंवृत्तसमाचारो व्रणी सम्पद्यते सुखी।
आयुश्च दीर्घमाप्नोति धन्वन्तरिवचो यथा ॥ ३७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने व्रणितोपासनीयो नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

---

१ द्रवादुत्तरो द्रवहीन इत्यर्थः, न तु द्रवप्रधानः। किं वा द्रवमुत्तरं श्रेष्ठमान्तरिक्षादि, तच्चाल्पमेव वचनान्तराज्ज्ञेयमिति चक्रः। वचनं च—"व्रणोदरास्थापनपीडितानां प्रमेहिणां छर्द्यतिसारिणां च। द्रवं न दद्यादथवाऽपि कोष्णं स्वल्पं हितं भेषजसंस्कृतं च॥" इति भोजोक्तम्। २ सुनिषण्णकः = सिरबालिका। ३ सात्म्यापेक्षया यवादिशक्तून् पिवेदित्यर्थः। विलेपी = स्वल्पद्रवा बहुसिक्था, कुल्माषः = अर्धस्विन्नो गोधूमादिः, तदुक्तम्—"अर्धस्विन्नाश्च गोधूमा अन्ये च चणकादयः। कुल्माषा इति कथ्यन्ते" इति।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकोनविंशोऽध्यायः।**

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## विंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो हिताहितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

यद्वायोः पथ्यं तत् पित्तस्यापथ्यमित्यनेन हेतुना न किञ्चिद् द्रव्यमेकान्तेन हितमहितं वाऽस्तीति केचिदाचार्या ब्रुवते । तत्तु न सम्यक् । इह खलु यस्माद् द्रव्याणि स्वभावतः संयोगतश्चैकान्तहितान्येकान्ताहितानि हिताहितानि च भवन्ति ॥ ३ ॥

तत्र, एकान्तहितानि जातिसात्म्यात् सलिलघृतदुग्धौदनप्रभृतीनि । एकान्ताहितानि तु दहनपचनमारणादिषु प्रवृत्तान्यग्निक्षारविषादीनि । संयोगादपराणि विषतुल्यानि भवन्ति । हिताहितानि तु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमिति ॥ ४ ॥

अतः सर्वप्राणिनामयमाहारार्थं वर्ग उपदिश्यते । तद्यथा— रक्तशालिषष्टिककङ्गुकमुकुन्दकपाण्डुकपीतकप्रमोदककालकासनपुष्पककर्दमकशकुनाहृतसुगन्धककलमनीवारकोद्रवोद्दालकश्यामाकगोधूमवेणुयवादयः । एणहरिणकुरङ्गमृगमातृकाश्वदंष्ट्राकरालक्रकरकपोतलावतित्तिरिकपिञ्जलवर्तीरवर्त्तिकादीनां मांसानि, मुद्गवनमुद्गमकुष्ठकलायमसूरमङ्गल्यचणकहरेण्वाढकीसतीनाः । चिल्लिवास्तुकसुनिषण्णकजीवन्तीतण्डुलीयकमण्डूकपर्ण्यः । गव्यं घृतं सैन्धवदाडिमामलकमित्येष वर्गः सर्वप्राणिनां सामान्यतः पथ्यतमः ॥५॥

तथा ब्रह्मचर्य्यनिवातशयनोष्णोदकस्नाननिशास्वप्नव्यायामाश्चैकान्ततः पथ्यतमाः ॥ ६ ॥

एकान्तहितान्येकान्ताहितानि च प्रागुपदिष्टानि । हिताहितानि तु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमिति ॥ ७ ॥

---

विंशतितमोऽध्यायः ।

१ हिताहितानि शरीरस्वस्थास्वस्थकराणि द्रव्याणि विद्यन्ते यस्मिन् स हिताहितीयस्तम् । २ आदौ हिताहितविषये परमतं दर्शयति—**यद्वायोरिति** । ३ एकान्तेन = सर्वतोभावेन । ४ परमतं खण्डयति—**तत्त्विति** । ५ संयोगः = द्वित्राणां द्रव्याणां सम्मेलनम् ; यथा सममधुघृतादिकम् । ६ करालः = कस्तूरीमृगः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संयोगतस्त्वपराणि विषतुल्यानि भवन्ति । तद्[1]यथा-वल्लीफल-कवककरीराम्लफललवणकुलत्थपिण्याकदधितैलविरोहिपिष्टशुष्क-शाकाजाविकमांसमद्यजाम्बवचिलिचिमत्स्यगोधावराहांश्च नैक[2]ध्यमश्नीयात् पयसा ॥ ८ ॥

रोगं[3] सात्म्यं च देशं च कालं देहं च बुद्धिमान् ।
अवेक्ष्याग्न्यादिकान्[4] भावान् रोगवृत्तेः[5] प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥
अवस्था[6]ऽन्तरबाहुल्याद्रोगादीनां व्यवस्थितम् ।
द्रव्यं नेच्छन्ति भिषज इच्छन्ति स्वस्थरक्षणे ॥ १० ॥
द्वयो[7]रन्यतरादाने वदन्ति विषदुग्धयोः ।
दुग्धस्यैकान्तहिततां विषमेकान्ततोऽहितम् ॥ ११ ॥
एवं युक्तरसेष्वेषु द्रव्येषु सलिलादिषु ।
एकान्तहिततां विद्धि वत्स सुश्रुत ! नान्यथा ॥ १२ ॥

अतो[8]ऽन्यान्यपि संयोगादहितानि वक्ष्यामः—नवविरूढधान्यै-र्वसामधुपयोगुडमाषैर्वा ग्राम्यानूदकपिशितादीनि नाभ्यवहरेत् । न पयोमधुभ्यां रोहिणीशाकं जातुकशाकं वाऽश्नीयात् । बलाकां वारुणीकुल्माषाभ्याम् । काकमाचीं पिप्पलीमरिचाभ्यां नाडीभङ्गशाककुक्कुटदधीनि च नैकध्यम् । मधु चोष्णोदकानुपानं[9]

---

१ संयोगतो विषतुल्यानि निर्दिशति—**तद्यथेति** । वल्ली लता तज्जं फलं कूष्माण्डादि । २ नैकध्यम् = एकस्मिन् समये पयसा सह नाश्नीयादित्यर्थः । ३ रोगादीनवेक्ष्य क्वचिद् विरुद्धस्यापि प्रयोगं कर्तुमुपदिशति—**रोगमिति** । ४ आदिशब्दात् प्रकृतिवयः-प्रभृतीनां ग्रहणम् । ५ रोगवृत्तेः = रोगिणो विरुद्धपदार्थमपि प्रयोजयेदित्यर्थः ।

६ एकान्तहिताहितत्वेन स्वस्थावस्थारक्षणे एव व्यवस्थामाह—**अवस्थेति** । अयं भावः—ऊहापोहकुशलैर्बुद्धिमद्भिर्वैद्यवरैः सम्यग् विचार्य प्रयुक्तान्येकान्ताहितानि द्रव्याण्यपि रुग्णावस्थायां हितकराणि भवन्तीति द्रव्याणामेकान्तहिताहितप्रभेदेन व्यवस्थां ते नाङ्गीकुर्वन्ति । चरके—"योगादपि विषं तीक्ष्णमुत्तमं भेषजं भवेत् । भेषजं वाऽपि दुर्युक्तं तीक्ष्णं सम्पद्यते विषम् ॥" इति । ७ द्वयोः—स्वस्थरोगिणोः । ८ संयोगादहितानि दर्शयति—**अत इति** ।

९ सर्वोष्णपदार्थैः सह मधुपानमहितकरं न तु केवलमुष्णोदकैः साकम् । तथा च हारीतः—"नानापुष्पप्रकाराणां रससारात्मकं मधु । तच्छैत्यात्सौकुमार्याच्च सर्वैरुष्णै-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पित्तेन चाममांसानि। सुराकृशरापायसांश्च नैकध्यम्। सौवीरकेण सह तिलशष्कुलीम्। मत्स्यैः सहेक्षुविकारान्। गुडेन काकमाचीं, मधुना मूलकं, गुडेन वाराहं मधुना च सह विरुद्धम्। क्षीरेण मूलकमाम्रजाम्बवश्वाविच्छूकरगोधाश्च। सर्वांश्च मत्स्यान् पयसा विशेषेण चिलिचिमम्। कदलीफलं तालफलेन पयसा दध्ना तक्रेण वा। लकुचफलं पयसा दध्ना माषसूपेन वा। प्राक् पयसः पयसोऽन्ते वा॥ १३॥

अतः[1] कर्म्मविरुद्धान् वक्ष्यामः—कपोतान् सर्षपतैलभृष्टान् नाद्यात्। कपिञ्जलमयूरलावतित्तिरिगोधाश्चैरण्डदाग्निसिद्धा एरण्डतैलसिद्धा वा नाद्यात्। कांस्यभाजने दशरात्रपर्युषितं सर्पिः, मधु चोष्णेरुष्णे वा, मत्स्यपरिपचने शृङ्गवेरपरिपचने वा सिद्धां काकमाचीम्। तिलकल्कसिद्धमुपोदिकाशाकम्[2]। नारिकेलेन वराहवसापरिभृष्टां बलाकाम्। भासमङ्गारशूल्यं[3] नाश्नीयादिति॥ १४॥

अतो[4] मानविरुद्धान् वक्ष्यामः—मध्वम्बुनी मधुसर्पिषी मानतस्तुल्ये नाश्नीयात्। स्नेहौ[5] मधुस्नेहौ जलस्नेहौ वा। विशेषादान्तरीक्षोदकानुपानौ॥ १५॥

अत[6] ऊर्द्ध्वं रसद्वन्द्वानि रसतो वीर्यतो विपाकतश्च विरुद्धानि वक्ष्यामः—तत्र मधुराम्लौ रसवीर्यविरुद्धौ मधुरलवणौ च। मधुरकटुकौ च सर्वतः। मधुरतिक्तौ रसविपाकाभ्यां मधुरकषायौ चा-

---

विरुध्यते॥" इति। पयसा सह मत्स्यभक्षणहेतुमाह चरके—"न मत्स्यान् पयसा सहाभ्यवहरेदुभयं ह्येतन्मधुरं मधुरविपाकं महाभिष्यन्दि शीतोष्णत्वाद्विरुद्धवीर्यं विरुद्धवीर्यत्वाच्छोणितप्रदूषणाय महाभिष्यन्दित्वान्मार्गोपरोधाय च।" इति। १ कर्मविरुद्धान् दर्शयति—**अतः कर्मेति**। कर्म = संस्कारः; तथा च चरकः—"संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते। ते गुणाश्च तोयाग्निसन्निकर्षशौचमन्थनदेशकालवासनभावनादिभिः कालप्रकर्षभाजनादिभिश्च धीयन्ते।" इति २ उपोदिका = भाषायां 'पोई' इति ख्याता। ३ यच्छूलेन विद्ध्वाऽङ्गारेषु पच्यते तदङ्गारशूल्यम्। ४ स्वभावापथ्यसंयोगकालसंस्कारमानैः पञ्चप्रकाराणि विरुद्धानि दर्शयति—**अतो मानेति**। ५ "सर्पिस्तैलं वसा मज्जा स्नेहो दृष्टश्चतुर्विधः" इति। ६ वीर्यतो विपाकतश्च विरुद्धानि रसद्वन्द्वानि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



म्ललवणौ रसतः। अम्लकटुकौ रसविपाकाभ्याम्, अम्लतिक्ताव-म्लकषायौ च सर्वतः[1]। लवणकटुकौ रसविपाकाभ्यां, लवणतिक्तौ लवणकषायौ च सर्वतः। कटुतिक्तौ रसवीर्याभ्यां कटुकषायौ च, तिक्तकषायौ रसतः॥ १६॥

तरतमयोगयुक्तांश्च भावानतिरूक्षानतिस्निग्धानत्युष्णानतिशीतानित्येवमादीन् विवर्जयेत्[2]॥ १७॥

भवन्ति चात्र।

विरुद्धान्येवमादीनि वीर्यतो यानि कानि[3] च।
तान्येकान्ताहितान्येव शेषं विद्याद्धिताहितम्॥ १८॥
व्याधिमिन्द्रियदौर्बल्यं मरणं चाधिगच्छति[4]।
विरुद्धरसवीर्याणि भुञ्जानोऽनात्मवान्[5] नरः॥ १९॥
यत्किञ्चिद्दोषमुत्क्लेश्य भुक्तं कायान्न निर्हरेत्[6]।
रसादिष्वयथार्थं वा तद्विकाराय कल्पते॥ २०॥
विरुद्धाशनजान्[7] रोगान् प्रतिहन्ति विरेचनम्।
वमनं शमनं वाऽपि पूर्वं[8] वा हितसेवनम्॥ २१॥
सात्म्यतोऽल्पतया वाऽपि दीप्ताग्नेस्तरुणस्य[9] च।

---

निर्दिशति—**अत ऊर्ध्वमिति।** १ सर्वतः = रसवीर्यविपाकतः। २ अतियोगयुक्तानां स्निग्धादीनामहितत्वं कथयति—**तरतमेति।** ३ एवमादीनीत्युक्ते पुनर्यानि कानीति कथनात्—"यच्चापि देशकालाग्निसात्म्यासात्म्यानिलादिभिः। संस्कारतो वीर्यतश्च कोष्ठावस्थाक्रमैरपि। परिहारोपचाराभ्यां पाकात्संयोगतोऽपि च। विरुद्धं तच्च न हितं ह्रत्सम्पद्विधिभिश्च यत्॥" इति चरकोक्ताशेषविरुद्धान्युपसङ्ग्रहीतव्यानि।

४ "पाण्ड्वान्ध्वीसर्पदकोदराणां विस्फोटकोन्मादभगन्दराणाम्। मूर्च्छामदाध्मानगलामयानां पाण्ड्वामयस्यामविषस्य चैव॥ किलासकुष्ठग्रहणीगदानां शोषास्रपित्तज्वरपीनसानाम्। सन्तानदोषस्य तथैव मृत्योर्विरुद्धमन्नं प्रवदन्ति हेतुम्॥" इति चरकोक्तं व्याधिमित्यर्थः॥ ५ अनात्मवान् = अजितेन्द्रियः, जिह्वालोलुप इति यावत्। ६ अहितलक्षणमाह—**यदिति।**

७ विरुद्धाशनजन्यरोगाणां चिकित्सामाह—**विरुद्धेति।** ८ सुवर्णलोहादिविरोधिरोगहरं पूर्वमेव सेवेत। तदुक्तम्—"न सज्जते हेमपात्रे विषं, पद्मदलेऽम्बुवत्।' इति। ९ विरुद्धाशनमपि केषाञ्चिदहिताय न भवतीत्याह—**सात्म्यत इति।** सात्म्यतः =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्निग्धव्यायामबलिनां[1] विरुद्धं वितथं भवेत् ॥ २२ ॥

अथ वातगुणान् वक्ष्यामः—

पूर्वः[2] समधुरः स्निग्धो लवणश्चैव मारुतः ।
गुरुर्विदाहजननो रक्तपित्ताभिवर्द्धनः ॥ २३ ॥
क्षतानां विषजुष्टानां व्रणिनः श्लेष्मलाश्च ये ।
तेषामेव विशेषेण सदा रोगविवर्द्धनः ॥ २४ ॥
वातलानां प्रशस्तश्च श्रान्तानां कफशोषिणाम् ।
तेषामेव विशेषेण व्रणक्लेदविवर्द्धनः ॥ २५ ॥
मधुरः[3] श्चाविदाही च कषायानुरसो लघुः ।
दक्षिणो मारुतः श्रेष्ठश्चक्षुष्यो बलवर्धनः ॥ २६ ॥
रक्तपित्तप्रशमनो न च वातप्रकोपणः ।
विशदः[4] पो रूक्षपरुषः खरः स्नेहबलापहः ॥ २७ ॥
पश्चिमो मारुतस्तीक्ष्णः कफमेदोविशोषणः ।
सद्यः प्राणक्षयकरः शोषणस्तु शरीरिणाम् ॥ २८ ॥
उत्तरो[5] मारुतः स्निग्धो मृदुर्मधुर एव च ।
कषायानुरसः शीतो दोषाणां चाप्रकोपणः ॥ २९ ॥
तस्माच्च प्रकृतिस्थानां क्लेदनो बलवर्धनः ।
क्षीणक्षयविषार्त्तानां विशेषेण तु पूजितः ॥ ३० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने हिताहितीयो नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

---

अभ्याससात्म्यतया । अल्पतया = हीनशक्तितया । १ स्निग्धव्यायामाभ्यां बलिनस्तेषां स्निग्धद्रव्याहारव्यायामकारित्वेन बलवतामित्यर्थः । "व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपि भोजनम् । विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषं परिपच्यते" ॥ २ पूर्वदिग्योगेन वायुगुणान्निर्दिशति—**पूर्व इति** । ३ दक्षिणदिग्योगेन वायुगुणान्निर्दिशति—**मधुर इति** । ४ पश्चिमदिग्योगेन वायुगुणान् दर्शयति—**विशद इति** । ५ उत्तरदिग्योगेन वायुगुणानाख्याति—**उत्तर इति** ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां विंशोऽध्यायः ।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# एकविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो व्रणप्रश्नमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसम्भवहेतवः । तैरेवाव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्वसन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यतेऽगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभिरतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके । त एव च व्यापन्नाः प्रलयहेतवः । तदेभिरेव शोणितचतुर्थैः सम्भवस्थितिप्रलयेष्वप्यविरहितं शरीरं भवति ॥ ३ ॥

भवति चात्र ।

नर्ते देहः कफादस्ति न पित्तान्न च मारुतात् ।
शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते ॥ ४ ॥

तत्र 'वा' गतिगन्धनयोरिति धातुः, 'तप' सन्तापे, 'श्लिष' आलिङ्गने, एतेषां कृद्विहितैः प्रत्ययैर्वातः पित्तं श्लेष्मेति च रूपाणि भवन्ति ॥ ५ ॥

दोषस्थानान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः—तत्र समासेन वातः श्रोणिगुदसंश्रयः; तदुपर्यधो नाभेः पक्वाशयः, पक्वामाशयमध्यं पित्तस्य,

---

**एकविंशतितमोऽध्यायः ।**

१ व्रणाः व्रणकारणत्वाद् वातादिदोषास्तद्विषयकः प्रश्नो यस्मिन् स व्रणप्रश्नस्तम् । प्रश्नः = अविज्ञातप्रवचनम् । २ वातपित्तकफा एव शरीरसम्भवस्थितिप्रलयहेतव इति प्रतिपादयति—**वातेति** । ३ तिष्ठन्तीति स्थूणास्तिस्रः स्थूणा यस्य तत्त्रिस्थूणम् ; "ऊर्ध्वमूलमधः शाखं त्रिस्थूणं पञ्चदैवतम् । क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वै वेद स वेदवित् ॥" ४ वातादीनां निरुक्तिमाह—**तत्र वेति** । सन्तापार्थकात्तपधातोरिचि तकारस्येत्वे वर्णविपर्यये तस्य च ते कृते, किं वा अपि दीयते स्म 'दो अवखण्डने' क्तः 'अच उपसर्गात्तः' वष्टिभागुरिरिति अकारलोपे पित्तम् । आलिङ्गनार्थकात् श्लिष् धातोः 'सर्वधातुभ्यो मनिन्' इत्युणादिसूत्रेण मनिन्प्रत्यये गुणे च श्लेष्मा । ५ सङ्क्षेपेण वातपित्तकफानां प्रधानानि स्थानानि दर्शयति—**दोषेति** । विस्तरेण तु वातस्य नाभिमध्यहृदयकण्ठसर्वाङ्गसन्धयः, पित्तस्य यकृत्प्लीहाहृदयदृष्टित्वगिन्द्रियाणि, कफस्य उरश्शिरःकण्ठसन्धय इति बोध्यानि । ६ श्रोणिगुदसंश्रयः—श्रोणिश्च गुदं च श्रोणिगुदे, ते संश्रयो यस्यासौ तथोक्तः, कटिवायुस्थानो वायुरित्यर्थः । ७ "पक्वाशय-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आमाशय[1]: श्लेष्मण: ॥ ६ ॥

अत: परं पञ्चधा विभज्यन्ते। तत्र वात[2]स्य वातव्याधौ वक्ष्यामः। पित्त[3]स्य यकृत्प्लीहानौ हृदयं दृष्टिस्त्वक् पूर्वोक्तं च। श्लेष्म[4]ण: स्तूर:-शिर:कण्ठसन्धय इति पूर्वोक्तञ्च। एतानि खलु दोषाणां स्थानान्यव्यापन्नानाम् ॥ ७ ॥

विसर्गादानविक्षेपै[5]: सोमसूर्य्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ॥ ८ ॥

---

स्वधो नाभेरूर्ध्वमामाशय: स्मृत:"। १ "नाभिस्तनान्तरं जन्तोराहुरामाशयं बुधा:। आमाशयादध: पक्वाशयादूर्ध्वं तु पाकला" ॥ २ चरके—"पुरीषाधानं कटि: सक्थिनी पादावस्थीनि च वातस्थानानि"। ३ "स्वेदो रसो लसिका रुधिरमामाशयश्च पित्तस्थानानि"। यकृत्=दक्षिणकुक्षेरध:स्थशरीरावयवविशेष: कालखण्डाभिधरञ्जकपित्ताधारम्। प्लीहा=वामपार्श्वाश्रयं मांसखण्डम्; "तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषत: सीदति चातुरोऽत्र।" इति। हृदयं=कमलमुकुलाकारमधोमुखम्; "पुण्डरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम्। जाग्रतस्तद् विकसति स्वपतश्च निमीलति॥" इति। दृष्टि:=कृष्णतारकान्तर्वर्तिनी मसूरदलमात्रा। ४ "उर:शिरोग्रीवापर्वण्यामाशयो मेदश्च श्लेष्मस्थानानि"।

५ विसृजति जनयत्याप्यमंशमिति विसर्ग:, आददाति क्षपयति पृथिव्या: सौम्यांशमित्यादानम्, शीतोष्णवर्षादीनां यथायोगं प्रेरणं विक्षेपस्तैर्विसर्गादानविक्षेपै: कर्मभि: क्रमेण चन्द्रादित्यवाता यथा जगद्धारयन्ति; तथा कफपित्तवाता अपि पूर्वोक्तैर्विसर्गादिकर्मत्रयैर्देहं धारयन्तीति भाव:। अत्र चरकोक्तमनुसन्धातव्यम्—"तत्र वायोरात्मैवात्मा, पित्तमाग्नेयं, श्लेष्मा सौम्य" इति। सोम एव शरीरे श्लेष्मान्तर्गत:। अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गत:। तथा च चरके जगति सोमस्य कार्यम्—"सोम: शिशिराभिर्भाभिरापूयन् जगदाप्यायति शश्वत्।" शरीरे सौम्यस्य श्लेष्मण: कार्यन्तु—"सन्धिसंश्लेषणस्नेहनरोपणपूरणबलस्थैर्यकृच्छ्लेष्मा पञ्चधा प्रविभक्त उदककर्मणाऽनुग्रहं करोति"। सूर्यस्य जगति कार्यम्—"रविर्भाभिराददानो जगत: स्नेहम्।" शरीर आग्नेयस्य पित्तस्य कार्यम्—"रागपक्त्योजस्तेजोमेधोष्मकृत्पित्तं पञ्चधा प्रविभक्तमग्निकर्मणाऽनुग्रहं करोति।" वायोर्जगति कार्यम्—"धरणी धारणं, ज्वलनो ज्वालनं, सृष्टिश्च मेघानाम्, अपां विसर्ग:, प्रवर्तनं स्रोतसां, पुष्पफलानां चाभिनिर्वर्तनम्, उद्भेदनं चौद्भिदानाम्।" शरीरे वायुदेवताकस्य वातस्य कार्यन्तु—"समीरणोऽग्ने:, दोषसंशोषण: क्षेप्ता बहिर्मलानाम्। विण्मूत्रपित्तादिमलाशयानां विक्षेपसंहारकर:।" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तत्र[1] जिज्ञास्यं, किं पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निः ? आहोस्वित् पित्तमेवाग्निरिति ?। अत्रोच्यते-न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निरुपलभ्यते आग्नेयत्वात् पित्ते दहनपचनादिष्वभिप्रवर्त्तमानेष्वग्निवदुपचारः क्रियतेऽन्तरग्निरिति। क्षीणे ह्यग्निगुणे[2] तत्समानद्रव्योपयोगादतिवृद्धे शीतक्रियोपयोगादागमाच्च पश्यामो न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निरिति[3] ॥ ९ ॥

तच्चाहृष्टहेतुकेन[4] विशेषेण पक्वामाशयमध्यस्थं पित्तं चतुर्विधमन्नपानं पचति विवेचयति[5] च दोषरसमूत्रपुरीषाणि ; तत्रस्थमेव चात्मशक्त्या शेषाणां पित्तस्थानानां शरीरस्य चाग्निकर्मणाऽनुग्रहं करोति, तस्मिन् पित्ते पाचकोऽग्निरिति संज्ञा ; यत्तु यकृत्प्लीह्नोः पित्तं तस्मिन् रञ्जकोऽग्निरिति संज्ञा, स रसस्य रागकृदुक्तः ; यत् पित्तं हृदयसंस्थितं तस्मिन् साधकोऽग्निरिति[6] संज्ञा, सोऽभिप्रार्थितमनोरथसाधनकृदुक्तः ; यदृष्ट्यं पितं तस्मिन्नालोचकोऽग्निरिति संज्ञा, स रूपग्रहणाधिकृतः ; यत्तु त्वचि पित्तं तस्मिन् भ्राजकोऽग्निरिति संज्ञा, सोऽभ्यङ्गपरिषेकावगाहावलेपनादीनां क्रियाद्रव्याणां पक्ता, छायानां[8] च प्रकाशकः ॥ १० ॥

---

१ अग्निपित्तयोर्भेदं विचारयति—**तत्रेति**। २ अग्नेर्गुणो यस्य तत्तस्मिन्नग्निगुणे पित्ते; तत्समानद्रव्योपयोगात् = अग्निसमोष्णतीक्ष्णद्रव्योपयोगात्। ३ अत्र डल्हणः-इहाग्निपित्तयोरभेदकथनं कृतं, तद्रसवीर्यादिगुणोपाधियुक्तस्य पित्तस्य चिकित्साद्वारेणाग्नेश्चिकित्सा कार्येति दर्शनार्थम् ; अन्यथा रसादिगुणोपाधिरहितस्य वह्नेश्चिकित्साकर्तुं न पार्यत इति। वस्तुतस्तु "क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः। पित्तं च केशान् पचति पलितं तेन जायते ॥" इत्यादिबहुभिर्भेदप्रतिपादकवाक्यैः पित्ताग्न्योर्भेद एव।

४ पञ्चविधपित्तं प्रतिपादयति—**तच्चेति**। ५ "अशितपीतलीढखादितम्" इति चरकोक्तं चतुर्विधमित्यर्थः। पित्तस्य सङ्क्षेपतः कार्यमुक्तं चरके—"दर्शनं पक्तिरूष्मा च क्षुत्तृष्णा देहमार्दवम्। प्रभा प्रसादो मेधा च पित्तकर्माविकारजम् ॥" इति। ६ विवेचयति = पृथक्करोति। ७ साधकः = धर्मार्थकाममोक्षलक्षणपुरुषार्थस्य साधनकर्तेत्यर्थः। ८ छायानां = पाञ्चभौतिकानां नीलादिवर्णानाम्। चरकः—"छाया वर्णप्रभाऽऽश्रया" इति। चकारात्पाञ्चभौतिकानां प्रभाणां च प्रकाशकः। छायाप्रभयोर्भेदस्तु—"आसन्ना लक्ष्यते छाया प्रभा दूरात्प्रकाशते। वर्णमाक्रामति च्छाया प्रभा वर्णप्रकाशिनी ॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पित्तं[1] तीक्ष्णं द्रवं पूति नीलं[2] पीतं तथैव च ।
उष्णं कटुरसं चैव विदग्धं चाम्लमेव च ॥ ११ ॥

अत[3] ऊर्द्ध्वं श्लेष्मस्थानान्यनुव्याख्यास्यामः—तत्र, आमाशयः पित्ताशयस्योपरिष्टात् तत्प्रत्यनीक[4]त्वादूर्द्ध्वगतित्वात्तेजसश्चन्द्र इव आदित्यस्य; स चतुर्विधस्याहारस्याधारः । स च तत्रौदकैर्गुणैराहारः प्रक्लिन्नो भिन्न[5]सङ्घातः सुखजरश्च भवति ॥ १२ ॥

माधु[6]र्यात् पिच्छिलत्वाच्च प्रक्लेदित्वात्तथैव च ।
आमाशये सम्भवति श्लेष्मा मधुरशीतलः ॥ १३ ॥

स[7] तत्रस्थ एव स्वशक्त्या शेषाणां श्लेष्मस्थानानां शरीरस्य चोदककर्मणाऽनुग्रहं करोति । उरः[8]स्थस्त्रिकसन्धारणमात्मवीर्य्येणान्नरससहितेन हृदयावलम्बनं करोति । जिह्वामूल[9]कण्ठस्थो जिह्वेन्द्रियस्य सौम्यत्वात् सम्यक् रसज्ञाने वर्त्तते । शिरः[10]स्थः स्नेहसन्तर्पणाधिकृतत्वाद् इन्द्रिय[11]याणामात्मवीर्य्येणानुग्रहं करोति । सन्धि[12]स्थस्तु श्लेष्मा सर्वसन्धिसंश्लेषात् सर्वसन्ध्यनुग्रहं करोति ॥ १४ ॥

श्लेष्मा[13] श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीत एव च[14] ।

---

इति बोद्धव्यः ।

१ पित्तस्य चिकित्सोपयोगिस्वलक्षणं निर्दिशति—**पित्तमिति ।** २ सामावस्थायां नीलम् ; निरामावस्थायां पीतम् । ३ श्लेष्मस्थानान्याह—**अत इति ।** ४ प्रत्यनीकत्वात्=पित्तप्रतिकूलत्वात् । ५ चर्वणद्वाराभिन्नसङ्घातः; सुखजरः=सुखेन परिणामं गच्छति । ६ आहारस्येति शेषः । ७ श्लेष्मकर्माण्याह—**स तत्रस्थ इति ।** तत्रस्थः=आमाशयस्थः क्लेदकाख्यः श्लेष्मा । "क्लेदकः सोऽन्नसङ्घातक्लेदनात्" । ८ उरःस्थः=अवलम्बकाख्यः श्लेष्मा, तदुक्तं वाग्भटे—"कफधाम्नां च शेषाणां यत्करोत्यवलम्बनम् । ततोऽवलम्बकः श्लेष्मा" इति । शिरोबाहुद्वयसन्धानस्थानं त्रिकम् । चक्रस्तु—'त्रिकमिह पृष्ठास्थिबाहुद्वयसन्धानस्थानम् ।' इत्युक्तवान् । ९ जिह्वाया मूले कण्ठे तिष्ठतीति जिह्वामूलकण्ठस्थः बोधकसंज्ञकः श्लेष्मा; "रसबोधनात् । बोधको रसनास्थायी" । १० शिरःस्थः=तर्पकाख्यः श्लेष्मा; "शिरःसंस्थोऽत्तर्पणात् । तर्पकः" । ११ इन्द्रियाणां=श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानाम् । १२ सन्धिस्थः=श्लेषकसञ्ज्ञकः श्लेष्मा; "सन्धिसंश्लेषाच्छ्लेषकः सन्धिषु स्थितः" । १३ श्लेष्मणश्चिकित्सोपयोगिस्वलक्षणमाह—**श्लेष्मेति ।** १४ चकारान्मृदुस्थिरादिगुणाः समुच्चीयन्ते ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मधुरस्त्वविदग्धः[1] स्याद् विदग्धो[2] लवणः स्मृतः ॥ १५ ॥
शोणितस्य स्थानं यकृत्प्लीहानौ । तच्च प्राग्[3]भिहितम् । तत्रस्थमेव शेषाणां शोणितस्थानानामनुग्रहं करोति ॥ १६ ॥

भवति चात्र ।

अनुष्ण[4]शीतं मधुरं स्निग्धं रक्तञ्च वर्णतः ।
शोणितं गुरु विस्रं स्याद् विदाहश्चास्य पित्तवत् ॥ १७ ॥

एतानि खलु दोषस्थानानि, एषु सञ्चीयन्ते दोषाः । प्राक्[5] सञ्चयहेतुरुक्तः । तत्र सञ्चितानां खलु दोषाणां स्तब्ध[6]पूर्णकोष्ठता पीतावभासता[7] मन्दोष्मता[8] चाङ्गानां गौरवमालस्यं[9] चयकारणविद्वेषश्चेति लिङ्गानि भवन्ति । तत्र प्रथमः क्रियाकालः[9] ॥ १८ ॥

अत[10] ऊर्द्ध्वं प्रकोपणानि वक्ष्यामः—तत्र बलवद्विग्रहातिव्यायामव्यवायाध्ययनप्रपतनप्रधावनप्रपीडनाभिघातलङ्घनप्लवनतरणरात्रिजागरणभारहरणगजतुरङ्गरथपदातिचर्य्याकटुकषायतिक्तरूक्षलघुशीतवीर्य्यशुष्कशाकवल्लूरवरक[12]कोद्दालककोरदूषश्यामाकनीवारमुद्गमसूराढकीहरेणुकलायनिष्पावानशनविषमाशनाध्य[13]शनवातमूत्रपुरीषशुक्रच्छर्दिक्षवथूद्गारबाष्पवेगविघातादिभिर्विशेषैर्वायुः प्रकोपमापद्यते ॥ १९ ॥

---

१ अविदग्धः = अपक्वः । २ विदग्धः = पक्वः । ३ प्राक् = चतुर्दशेऽध्याये ।

४ शोणितस्य स्थानमुक्त्वा निदानलिङ्गज्ञानार्थं चिकित्सार्थं च स्वलक्षणमाह—**अनुष्णेति** । ५ प्राक् = ऋतुचर्य्याऽध्याये । स्वस्थानेषु दोषाणामभिवृद्धिः सञ्चयः । तदुक्तं वाग्भटे—"स्वस्थानवृद्धिर्दोषाणां चय इत्यभिधीयते" । इति । ६ वातसञ्चयस्येति शेषः । ७ पित्तसञ्चयस्येति शेषः । ८ श्लेष्मसञ्चयस्येति शेषः । ९ क्रियाकालः = कर्मावसरः, तथा च रोगाः प्रथमावस्थायामेव प्रतिक्रियाऽर्हाः । तदुक्तं वाग्भटे—"अणुर्हि प्रथमं भूत्वा रोगः पश्चाद् विवर्धते । स जातमूलो मुष्णाति बलमायुश्च दुर्मतेः ॥ तस्मात्प्रागेव रोगेभ्यो रोगेषु तरुणेषु वा । भैषजैः प्रतिकुर्वीत य इच्छेत्सुखमात्मनः ॥" इति । १० वातप्रकोपणान्याह—**अत इति** । ११ अतिशब्दस्य व्यायामादिभिस्त्रिभिः सम्बन्धः । १२ वरकः = प्रियङ्गुनामककुधान्यविशेषः । १३ अध्यशनम् = अजीर्णे भोजनम् ।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



[1]स शीताभ्रप्रवातेषु घर्मान्ते च विशेषतः ।
प्रत्यूषस्य पराह्णे तु जीर्णेऽन्ने च प्रकुप्यति ॥ २० ॥

[2]क्रोध[3]शोकभयायासोपवासविदग्धमैथुनोपगमनकट्वम्ललवण-तीक्ष्णोष्णलघुविदा[4]हितिलतैलपिण्या[5]ककुलत्थसर्षपातसीहरितकशाक-गोधामत्स्याजाविकमांसदधितक्र[6]कूर्चिकामस्तुसौवीरकसुराविकाराम्ल-फलकट्व[7]रप्रभृतिभिः पित्तं प्रकोपमापद्यते ॥ २१ ॥

[8]तदुष्णै[9]रुष्णकाले च मेघान्ते च विशेषतः ।
मध्याह्ने चार्द्धरात्रे च जीर्यत्यन्ने च कुप्यति ॥ २२ ॥

दिवा[10]स्वप्नाव्यायामालस्यमधुराम्ललवणशीतस्निग्धगुरुपिच्छिला-भि[11]ष्यन्दिहायनकयवकनै[12]षधैत्कटमाषमहामाषगोधूमतिलपिष्टविकृतिदधिदुग्धकृशरापायसेक्षुविकारानूपौदकमांसवसाबिसमृणालकसेरुकशृङ्गाटकमधुरवल्लीफलसमशनाध्यशनप्रभृतिभिः श्लेष्मा प्रकोपमापद्यते ॥ २३ ॥

[13]स शीतैः शीतकाले च वसन्ते च विशेषतः ।
पूर्वाह्णे च प्रदोषे च भुक्तमात्रे प्रकुप्यति ॥ २४ ॥

[14]पित्तप्रकोपणैरेव चाभीक्ष्णं द्रवस्निग्धगुरुभिराहारैः दिवास्व-

---

१ वातप्रकोपहेतुकालं निर्दिशति—**स इति** । २ पित्तप्रकोपणान्याह—**क्रोधेति** । ३ "विदाहि द्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात्तथा तृषाम् । हृदि दाहं च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥" इति । ४ पिण्याकः = तिलकल्कः । ५ "कुठेरशिग्रुसुरससुमुखासुरिभूस्तृणाः । चुक्रकश्चुक्रिका चेति वर्गे हरितकं विदुः" ॥ ६ "दध्ना क्षीरेण वा सह पाकात्पृथग्भूतघनद्रवभागं क्षीरं कूर्चिकेत्युच्यते" । "दध्नो मण्डस्तु मस्त्विति" । ७ कट्वरं = स्नेहरहितं दधि । ८ पित्तप्रकोपस्य कालमाह—**तदुष्णैरिति** । ९ श्लेष्मप्रकोपणान्याह—**दिवेति** । १० अभिष्यन्दि = दोषधातुमलस्रोतसामतिशयक्लेदप्राप्तिजनकम् । शार्ङ्गधरे तु—"पैच्छिल्याद्गौरवाद् द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः सिराः । धत्ते यद्गौरवं तत्स्यादभिष्यन्दि यथा दधि" ॥ ११ नैषधः = निषधदेशीयः 'कोरक' इत्याख्यः शालिधान्यविशेषः । इत्कटः = 'खग्गली' इति ख्यातो धान्यविशेषः । १२ श्लेष्मणः प्रकोपकालं दर्शयति—**स शीतैरिति** । १३ रक्तप्रकोपकारणान्याह—**पित्तेति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रक्रोधानलातपश्रमाभिघाताजीर्णविरुद्धाध्यशनादिभिर्विशेषैरसृक् प्रकोपमापद्यते ॥ २५ ॥

यस्मात्[1] रक्तं विना दोषैर्न कदाचित् प्रकुप्यति ।
तस्मात्तस्य यथादोषं कालं विद्यात् प्रकोपणे ॥ २६ ॥

तेषां[2] प्रकोपात् कोष्ठतोदसञ्चरणाम्लिकापिपासापरिदाहान्नद्वेषहृदयोत्क्लेदाश्च जायन्ते । तत्र द्वितीयः क्रियाकालः ॥ २७ ॥

अत[3] ऊर्द्ध्वं प्रसरं वक्ष्यामः—तेषामेभिरातङ्कविशेषैः प्रकुपितानां पर्य्युषितकिण्वोदकपिष्टसमवाय[4] इवोद्रिक्तानां प्रसरो भवति । तेषां वायुर्गतिमत्त्वात्[5] प्रसरणहेतुः[6] सत्यप्यचैतन्ये । स[7] हि रजोभूयिष्ठः; रजश्च प्रवर्त्तकं सर्वभावानाम् । यथा[8]—महानुदकसञ्चयोऽतिवृद्धः सेतुमवदार्यापरेणोदकेन व्यामिश्रः सर्वतः प्रधावति । एवं दोषाः कदाचिदेकशो द्विशः समस्ताः शोणितसहिता

---

१ रक्तप्रकोपकालमाह—**यस्मादिति** । यस्य वातादिदोषस्य यः प्रकोपणकालस्तमनतिक्रम्य रक्तं शरद्व्यतिरिक्तत्वेनास्वतन्त्रतया यं कञ्चिद्दोषमाश्रित्य कुप्यतीत्यर्थः । २ वातादिदोषाणां प्रकोपचिह्नानि दर्शयति—**तेषामिति** । तत्र वातस्य कोष्ठतोदसञ्चरणम् । पित्तस्याम्लिकापिपासापरिदाहाः । अम्लिका=अम्लोद्गिरणम् ; कफस्यान्नद्वेषहृदयोत्क्लेदाः । उत्क्लेदः=वमनेच्छा ।

३ दोषाणां प्रसराख्यप्रकोपविशेषं दर्शयति—**अत ऊर्ध्वमिति** । ४ दोषाणां प्रसरणप्रकारमाह—**पर्युषितकिण्वेति** । किण्वं=मद्यबीजम् । मधूकफलबीजमिति यावत् ।

५ शार्ङ्गधरे—"पित्तं पङ्गु कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत्" ॥ वाग्भटेऽपि—"विभुत्वादाशुकारित्वाद् बलित्वादन्यकोपनात् । स्वातन्त्र्याद्व्याधुरोगत्वाद्दोषाणां प्रबलोऽनिलः ॥" इति ।

६ तेषां दोषाणां मध्ये वायुरचैतन्ये सत्यपि गतिमत्त्वात्प्रसारे निमित्तकारणमित्यर्थः । ७ उक्तमर्थं द्रढयति—**स इति** । सः=वायुः, हि=यस्मात्, रजोभूयिष्ठः=रजोगुणबहुलः । तथा च वक्ष्यति—"तिर्यग्गो द्विगुणश्चैव रजोबहुल एव च" । वायोस्तिर्यग्गत्वात्सर्वतः प्रसरणे निमित्तत्वमनुपपन्नमिति नाशङ्क्यम् ; जीववति शरीरे प्राणापानयोरूर्ध्वाधोगतिदर्शनादेव तिर्यग्गत्वमात्रेणानभ्युपगमात् । ८ प्रसरप्रकारं दृष्टान्तेन स्फोटयति—**यथेत्यादिना** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वा अनेकधा प्रसरन्ति । तद्यथा—वातः, पित्तम्, श्लेष्मा, शोणितम्, वातपित्ते, वातश्लेष्माणौ, पित्तश्लेष्माणौ, वातशोणिते, पित्तशोणिते, श्लेष्मशोणिते, वातपित्तशोणितानि, वातश्लेष्मशोणितानि, पित्तश्लेष्मशोणितानि, वातपित्तकफाः, वातपित्तकफशोणितानि; इत्येवं पञ्चदशधा प्रसरन्ति ॥ २८ ॥

[1]कृत्स्नेऽर्द्धेऽवयवे वाऽपि यत्राङ्गे कुपितो भृशम् ।
दोषो विकारं नभसि मेघवत्तत्र वर्षति ॥ २९ ॥
नात्यर्थं[2] कुपितश्चापि लीनो मार्गेषु तिष्ठति ।
निष्प्रत्यनीकः कालेन हेतुमासाद्य कुप्यति ॥ ३० ॥

तत्र वायोः पित्तस्थानगतस्य पित्तवत् प्रतीकारः । पित्तस्य च कफस्थानगतस्य कफवत् । कफस्य च वातस्थानगतस्य वातवत् । एष क्रियाविभागः ॥ ३१ ॥

[3]एवं प्रकुपितानां प्रसरतां च वायोर्विमार्गगमनाटोपौ[4], ओषचोषपरिदाहधूमायनानि पित्तस्य, अरोचकाविपाकाङ्गसादाश्छर्दिश्चेति श्लेष्मणो लिङ्गानि भवन्ति । तत्र तृतीयः क्रियाकालः ॥ ३२ ॥

[5]अत ऊर्ध्वं [6]स्थानसंश्रयं वक्ष्यामः—एवं प्रकुपिताः तांस्तान् शरीरप्रदेशानागम्य तांस्तान् व्याधीन् जनयन्ति । ते यदोदरसन्नि-

---

१ यथाऽऽकाशे यत्र मेघाः प्रादुर्भवन्ति, तत्रैव प्रवर्षन्ति, तथैव भृशमत्यन्तं कुपितो वातादिदोषो यत्र कृत्स्नेन समस्तेऽङ्गेऽर्धे खण्डे वाऽवयवे चिबुकचरणादौ प्रसरति तत्रैव विकृतिभावं करोतीत्यर्थः । २ अपि च नात्यर्थं कुपितो दोषो निष्प्रत्यनीकोऽकृतप्रतिक्रियत्वेन प्रतिबन्धरहितः सन् मार्गेषु स्रोतस्सु लीन एकदेशप्रच्छन्नस्तिष्ठति, पुनः कालेन हेतुं प्रकोपणकारणमासाद्य विकर्तुं कुप्यतीत्यर्थः । ३ दोषाणां प्रसरणलिङ्गान्याह—**एवमित्यादिना** । प्रकोपप्रसरयोर्भेदो यथा काठिन्यमापन्नवतः सर्पिषः क्वाथ्यमानस्य प्रथमं सञ्चलनमात्रमेव प्रकोपः, तस्यैव चातिक्वाथ्यमानस्य फेनमण्डलेनोत्सर्पता देशान्तरसरणमेव प्रसरः । ४ आटोपः = उदरमध्ये वायुजन्यसवेदनो गुडगुडशब्दः, उक्तञ्च भावप्रकाशे—"आटोपो गुडगुडाशब्दः प्रोक्तो जठरसम्भवः" । इति । ५ दोषाणां स्थानसंश्रयं वर्णयति—**अत इत्यादिना** । ६ दोषाणां स्रोतोवैगुण्याद्यत्र सङ्गः स स्थानसंश्रयः । वक्ष्यति—"कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम् । यत्र सङ्गः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वेशं कुर्वन्ति तदा गुल्मविद्रध्युदराग्निसङ्गानाहविसूचिकाऽतिसार-प्रभृतीन् जनयन्ति। वस्तिगताः प्रमेहाश्मरीमूत्राघातमूत्रदोषप्रभृतीन्। वृषणगता वृद्धीः[1]। मेढ्रगता निरुद्धप्रकशोपदंशशूकदोषप्रभृतीन्[2]। गुदगता भगन्दरार्शःप्रभृतीन्। ऊर्ध्वजत्रुगतास्तूर्ध्वजान्[3]। त्वङ्मांसशोणितस्थाः क्षुद्ररोगान्[4][5] कुष्ठानि विसर्पाश्च। मेदोगता ग्रन्थ्यर्बुदगलगण्डालजीप्रभृतीन्[6], अस्थिगता विद्रध्यनुशयीप्रभृतीन्[7] पादगताः श्लीपदवातशोणितवातकण्टकप्रभृतीन्। सर्वाङ्गगता ज्वरसर्वाङ्गरोगप्रभृतीन्। तेषामेवमभिनिविष्टानां पूर्वरूपप्रादुर्भावः[8]; तं प्रतिरोगं वक्ष्यामः। तत्र पूर्वरूपगतेषु चतुर्थः क्रियाकालः[9]॥ ३३॥

अत[10] ऊर्ध्वं व्याधेर्दर्शनं वक्ष्यामः—शोफार्बुदग्रन्थिविद्रधिविसर्पप्रभृतीनां प्रव्यक्तलक्षणता[11], ज्वरातिसारप्रभृतीनाञ्च। तत्र पञ्चमः क्रियाकालः॥ ३४॥

अत[12] ऊर्ध्वमेतेषामवदीर्णानां[13] व्रणभावमापन्नानां षष्ठः क्रियाकालः। ज्वरातिसारप्रभृतीनाञ्च दीर्घकालानुबन्धः। तत्राप्रतिक्रियमाणेऽसाध्यतामुपयान्ति॥ ३५॥

---

स्ववैगुण्याद् व्याधिस्तत्रोपजायते॥" इति। १ वृद्धीः=वातपित्तकफशोणितमेदोमूत्रान्त्रनिमित्ताः सप्त। २ निरुद्धप्रकशलक्षणम्—"वातोपसृष्टमेवं तु चर्म संश्रयते मणिम्॥ मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च। निरुद्धप्रकशे तस्मिन् मन्दधारमवेदनम्॥ मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्न च विदीर्यते। निरुद्धप्रकशं विद्याद्" इति। ३ ऊर्ध्वजान्=कर्णनासाऽक्षिशिरःप्रभृतीन्। ४ त्वक्शब्देनात्र रसो बोध्यः। ५ क्षुद्ररोगान्=अजगल्लिकादिचतुश्चत्वारिंशत्प्रकीर्णरोगान्। ६ अपची=गण्डमालाऽऽख्यगलरोगविशेषः। ७ अनुशयी=क्षुद्ररोगान्तर्गतपादरोगः। ८ "स्थानसंश्रयिणः क्रुद्धा भाविव्याधिप्रबोधकम्। दोषाः कुर्वन्ति यल्लिङ्गं पूर्वरूपं तदुच्यते"॥ ९ दोषस्थानाश्रितहेतुना चिकित्साऽत्र दोषदूष्योभयोः कर्तव्या। १० व्याधीनां व्यक्त्यवस्थां दर्शयति—**अत इत्यादिना।** ११ प्रव्यक्तलक्षणता=व्यक्तिः, यथा ज्वरस्य सन्तापः, अतीसारस्य मलातिसरणम्, उदरस्य वायुपूरणम्, शोफार्बुदादीनां त्वङ्मांसस्थानस्य दोषस्य सङ्घातता, इत्यादि। एवञ्चात्र व्याधेश्चिकित्सा भवति। १२ व्याधीनां भेदावस्थां कथयति=**अत इत्यादिना।** १३ अवदीर्णानाम्=अवदरणं प्राप्तानाम्, भिन्नाना-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भवन्ति चात्र ।

सञ्चयञ्च प्रकोपञ्च प्रसरं स्थानसंश्रयम् ।
व्यक्तिं भेदञ्च यो वेत्ति दोषाणां स भवेद्भिषक् ॥ ३६ ॥
सञ्चयेऽपहृता दोषा लभन्ते नोत्तरा[1] गतीः ।
ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः ॥ ३७ ॥
सर्वैर्भावै[2]स्त्रिभिर्वाऽपि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः ।
संसर्गे[3] कुपितः क्रुद्धं दोषं दोषोऽनुधावति ॥ ३८ ॥
संसर्गे यो गरी[4]यान् स्यादुपक्रम्यः[5] स वै भवेत् ।
शेषदोषा[6]विरोधेन सन्निपाते[7] तथैव च ॥ ३९ ॥

---

मित्यर्थः । १ उत्तराः=प्रकोपादिकाः पञ्च । २ संसर्गे सन्निपाते चांशांशबलविकल्पेनानुबन्धानुबन्धिभावं दर्शयति—**सर्वैरिति** । भावैः=रूक्षोष्णस्निग्धादिस्वभावैः । तत्र वातस्य रूक्षत्वादयो भावाः, पित्तस्योष्णत्वादयः, कफस्य स्निग्धत्वादय इति बोध्यम् । ३ संसर्गे=दोषद्वयसंयोगे ।

इदमिहानुसन्धेयम्—यदा किल दोषद्वयसंसर्गो भवति, तदा प्रधानस्यानुबन्ध्यभूतस्य दोषस्य चिकित्सा कर्तव्या; तत्प्रशमादेवाप्रधानस्यानुबन्धीभूतस्य प्रशमो भविष्यति । यदा तु सर्वैर्भावैः कुप्यन्ति, सर्वे प्रधानभूताः परस्परमनुबन्धभूताश्च भवन्ति; एवं च समसन्निपातो भवति तदा पित्तमुपचरणीयम् । उक्तं च—"निर्हरेत् पित्तमेवादौ ज्वरेषु समवायिषु । दुर्निवारतरं तद्धि ज्वरार्त्तेषु विशेषतः ॥ समवाये तु दोषाणां पूर्वं पित्तमुपाचरेत् । ज्वरे चैवातिसारे च सर्वत्रान्यत्र मारुतम् ॥" इति । चक्रदत्ते सन्निपातज्वरचिकित्सा कफनिग्रहपूर्विकोक्ता—"सन्निपाते ज्वरे पूर्वं कुर्यादामकफापहम् । पश्चाच्छ्लेष्माणि सङ्क्षीणे शमयेत् पित्तमारुतौ ॥" इति । वृन्दमाधवोऽपि—"श्लेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्याद् व्याधौ त्रिदोषजे ।" इति । चरकेण तु वातस्य सर्वापेक्षया बलवत्त्वादादौ वातप्रशमनपूर्विका चिकित्सोक्ता—"वातस्यानुजयेत् पित्तं पित्तस्यानुजयेत्कफम् ।" इति दिक् । ४ गरीयान्=तत्तद्धर्मद्वारेण बलीयान् । चरकः—"त्रयाणां वा जयेत्पूर्वं यो भवेद् बलवत्तमः ।" इति ।

५ उपक्रम्यः=प्रतिकर्तव्यः । ६ शेषदोषाविरोधेन=तदनुगतदोषाभिवृद्धिभयात्तदविरोधेन । तथा चेन्दुः—"तेन कुपितस्तथा जेतव्यो यथा तद्विपरीतैराहारादिभिः सदृशत्वाद्दोषान्तरं न कुप्यति" इति । ७ सन्निपाते संसर्गे च गरीयसः प्रतीकारविधानाद्दोषबलसाम्ये यथायोगं सर्वे एव प्रतिकर्तव्या इत्यर्थाच्चिन्तेऽपि "कफस्थानानुपूर्व्या वा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वृणोति यस्माद् रूढेऽपि व्रण[1]वस्तु न नश्यति ।
आदेहध[2]ारणात्तस्माद् व्रण[3] इत्युच्यते बुधैः ॥ ४० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने व्रणप्रश्नमध्यायो नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो व्रणास्रा[4]वविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

त्व[5]ङ्मांससिरास्नास्थ्यस्थिसन्धिकोष्ठ[6]मर्माणीत्यष्टौ व्रणवस्तूनि । अत्र सर्वव्रणसन्निवेशः ॥ ३ ॥

तत्र, आद्यै[7]कवस्तुसन्निवेशी त्वग्भेदी व्रणः सू[8]पचरः । शेषा[9]ः स्वयमवदीर्यमाणा दुरुपचाराः ॥ ४ ॥

तत्रायतश्चतुरस्रो वृत्तस्त्रिपुटक[10] इति व्रणाकृतिसमासः, [11]शेषा-

---

सन्निपातज्वरं जयेत्" इत्याद्युक्त्या कफानुपूर्व्यैव पित्तानिलयोः प्रतिक्रिया भवतीति सारम् । १ व्रणवस्तु=त्वङ्मांससिरास्नास्थ्यस्थिसन्धिकोष्ठमर्माणीति वक्ष्यमाणमष्टावयवं व्रणोपादानं, व्रणचिह्नं वा । २ आदेहधारणाद्=यावज्जीवम् । ३ व्रणयतीति व्रणः, अच् । 'व्रण गात्रविचूर्णने' इति चौरादिको धातुः ।

**इति सुश्रुतसंहितायां सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकविंशतितमोऽध्यायः ।**

## द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

४ व्रणास्रावस्य विज्ञानमधिकृत्य कृतोऽध्यायो व्रणास्रावविज्ञानीयस्तम् । 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' इति छः । अध्यायेऽस्मिन् "सर्वव्रणवेदना वक्ष्यामः" इति वक्ष्यमाणत्वेनात्र प्रतिज्ञायामादिशब्दस्य लोपदर्शनाद्, व्रणास्रावादिविज्ञानीयमित्यर्थो बोध्यः । ५ व्रणाधिष्ठानानि दर्शयति—**त्वगिति** । ६ "स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृदुण्डुकः फुप्फुसश्च 'कोष्ठ' इत्यभिधीयते" ॥ ७ आद्यैकवस्तुसन्निवेशी=आद्यत्वगधिष्ठानसंश्रयीत्यर्थः । ८ सूपचरः=सुखसाध्यः । ९ शेषाः=मासाद्यधिष्ठानसन्निवेशिनः, स्वयमवदीर्यमाणाः=आलेपस्रावणादिवैद्यप्रयत्नं निरपेक्ष्य दोषप्रकोपात्स्वयमेव पक्वाः पश्चाद् भिन्नाः, दुरुपचाराः=दुस्साध्या इत्यर्थः । १० त्रिपुटकः=कलायः 'खेसारी' तदाकारो व्रणाकृतिभेदस्त्रिपुटकः, त्रिकोण इति यावत् । ११ शेषाः=सूपचारव्यतिरिक्ताः, दीर्घचतुरस्रवर्तुलत्रिकोणव्यतिरिक्ता अर्धचन्द्रस्वस्तिकाद्या वा ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्तु विकृताकृतयो दुरुपक्रमा भवन्ति ॥ ५ ॥

सर्व[1] एव व्रणाः क्षिप्रं संरोहन्त्यात्मवतां[2] सुभिषग्भिश्चोपक्रान्ताः; अनात्मवतामज्ञैश्चोपक्रान्ताः प्रदुष्यन्ति, प्रवृद्धत्वाच्च[3] दोषाणाम् ॥ ६ ॥

तत्रातिसंवृतोऽतिविवृतोऽतिकठिनोऽतिमृदुरुत्सन्नोऽवसन्नोऽतिशीतोऽत्युष्णः कृष्णरक्तपीतशुक्लादीनां वर्णानामन्यतमवर्णो भैरवः पूतिपूयमांससिरास्नायुप्रभृतिभिः पूर्णः पूतिपूयास्राव्युन्मार्ग्युत्सङ्गचमनोज्ञदर्शनगन्धोऽत्यर्थं वेदनावान् दाहपाकरागकण्डूशोफपिडकोपद्रुतोऽत्यर्थं दुष्टशोणितास्रावी दीर्घकालानुबन्धी चेति[4] दुष्टव्रणलिङ्गानि। तस्य दोशोच्छ्रायेण[5] षट्त्वं विभज्य यथास्वं प्रतीकारे प्रयतेत ॥ ७ ॥

अत[6] ऊर्द्ध्वं सर्वस्रावान् वक्ष्यामः—तत्र घृष्टासु छिन्नासु वा त्वक्षु स्फीटेषु भिन्नेषु[10] विदारितेषु वा सलिलप्रकाशो भवत्यास्रावः किञ्चिद्विस्र[11]ः पीतावभासश्च। मांसगतः सर्पिःप्रकाशः सान्द्रः

---

१ व्रणानां क्षिप्रं संरोहणे प्रदुष्टौ च हेतुमाह—**सर्व इत्यादिना**। २ आत्मवतां=समीक्ष्याहारविहारं कुर्वताम्, सुभिषग्भिः=सम्यक् स्रावस्वरूपादिकं जानद्भिः। ३ अहिताहारविहारसेविनामनात्मवतामज्ञभिषगुपक्रान्तानां व्रणानां प्रदुष्टौ हेतुमाह—**प्रवृद्धत्वाच्चेति**। ४ दुष्टव्रणानां लक्षणानि निर्दिशति—**तत्रातिसंवृत इति**। अतिसंवृतः=वातेनातिसङ्कुचितमुखः, अतिविवृतः=पित्तशोणितेन व्याप्तमुखः, अतिकठिनः=वातेन काठिन्यम्, अतिमृदुः=कफेन मार्दवम्, उत्सन्नः=मांसाभिवृद्ध्योन्नतः, अवसन्नः=मांसहीनेन निम्नाकारः, उत्सन्नावसन्नौ रक्तपित्तेन बोद्धव्यौ। एवमतिशैत्यं कफवातात्, अत्युष्णत्वञ्च रक्तपित्तादवसेयम्। कृष्णादयो वर्णा यथासम्भवं वातादिभिर्ज्ञेयाः। ५ उन्मार्गी=ऊर्ध्वमुखस्तिर्यग्गतिरिति वा। उत्सङ्गी=कोटरवान्, ऊर्ध्वगतिरिति वा। ६ चकारादोष्यादयो दुष्टव्रणविशेषा बोध्याः। तत्र चरकोक्तं रोप्यलक्षणम्—"बहिः शुद्ध इवाभाति स व्रणो रोप्य उच्यते"। इति। ७ दोषोच्छ्रायेण=दोषप्राबल्येन। वातपित्तकफरक्तसन्निपातागन्तुभेदतः षट्त्वम्। ८ सर्वव्रणास्रावं वर्णयति—**अत इति**। ९ व्रणवस्तुषु मध्ये त्वक्षिवति सम्बन्धः। १० स्वयं भिन्नेषु यत्नेन विदारितेष्वित्यर्थः। ११ विस्रः=आमगन्धिः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्वेतः पिच्छिलश्च । सिरागतः सद्यश्छिन्नासु[1] सिरासु रक्तातिप्रवृत्तिः पक्वासु च तोयनाडीभिरिव तोयागमनं पूयस्य, आस्रावश्चात्र तनुर्विच्छिन्नः[2] पिच्छिलोऽवलम्बी श्यावोऽवश्यायप्रतिमश्च[3] । स्नायुगतः स्निग्धो घनः सिंघाणकप्रतिमः[4] सरक्तश्च । अस्थिगतोऽस्थन्यभिहते स्फुटिते भिन्ने दोषावदारिते वा दोषभक्षितत्वादस्थि निःसारं[5] शुक्तिधौतमिवाभाति । आस्रावश्चात्र मज्जमिश्रः सरुधिरः स्निग्धश्च । सन्धिगतः पीड्यमानो न प्रवर्त्तते, आकुञ्चनप्रसारणोन्नमनविनमनप्रधावनोत्कासनप्रवाहणैश्च[6] स्रवति । आस्रावश्चात्र पिच्छिलोऽवलम्बी सफेनपूयरुधिरोन्मथितश्च[7] । कोष्ठतोऽसृङ्मूत्रपुरीषपूयोदकानि स्रवति । मर्मगतस्त्वगादिष्ववरुद्धत्वान्नोच्यते ।

तत्र[8] त्वगादिगतानामास्रावाणां यथाक्रमं पारुष्यश्यावावश्यायदधिमस्तुतुषोदकमांसधावनपुलाकोदकसन्निभत्वानि मारुताद् भवन्ति । पित्ताद्गोमेद[10] गोमूत्रभस्मशङ्खकषायोदकमाध्वीकतैलसन्निभत्वानि । पित्तवद् रक्तादतिविस्रत्वञ्च । कफान्नवनीतकासीसमज्जपिष्टतिलनारिकेलोदकवराहवसासन्निभत्वानि । सन्निपातान्नारिकेलोदकैर्वारुक[11] रसकाञ्जिकप्रसादारुकोदकप्रियङ्गुफलयकृन्मुद्गयूषसवर्णत्वानीति ॥ ८ ॥

---

१ क्वचिद् व्रण एवात्मशक्त्या सिराश्छित्वा शोणितं प्रवर्तयतीत्युच्यते—**सद्यश्छिन्नास्विति** । २ वच्छिन्नः—भागशो विभक्तः; अल्पमल्पं प्रवृत्त इति यावत् । ३ अवश्यायः=नीहारः; 'अवश्यायस्तु नीहारः' इत्यमरः । ४ नासिकास्रुतः पीताभः श्लेष्मा 'सिंघाणक' इत्युच्यते । ५ निस्सारं=लघुभवतीत्यर्थः । धौता शुक्तिः शुक्तिधौतं धौतशुक्तिवदित्यर्थः । 'मयूरव्यंसकादयश्च' इति व्यत्ययेन पूर्वनिपातः । ६ उन्नमनं=बाहुजङ्घाऽऽदीनामूर्ध्वनयनम्, विनयनं=गात्राणामधःप्रापणम्, प्रधावनं=वेगेन गमनम्, उत्कासनं=मुहुर्मुहुर्बलवत्कासः, प्रवाहणं=निकुन्थनम् । ७ उन्मथितः=आलोडितः । ८ दोषास्रावान्निर्दिशति—**तत्रेति** । ९ मर्मवर्जितेषु सप्तसु त्वङ्मांससिरास्नाय्वस्थिसन्धिकोष्ठेषु व्रणवस्तुषु सप्त सप्त स्रावा क्रममनतिक्रम्य द्रष्टव्या इत्यर्थः । १० गोमेदः रक्ताभो मणिभेदः । ११ एर्वारुकरसः=कर्कटिकाफलरसः, काञ्जिकप्रसादः=काञ्जिकस्योपर्यच्छः, आरुकः='आलुबुखारा' इति नाम्ना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्लोकौ चात्र भवतः ।

पक्वाशयादसाध्यस्तु पुलाकोदकसन्निभः ।
क्षारोदकनिभः स्रावो वर्ज्यो रक्ताशयात् स्रवन् ॥ ९ ॥
आमाशयात् कलायाम्भोनिभश्च त्रिकसन्धिजः ।
स्रावानेतान् परीक्ष्यादौ ततः कर्माचरेद् भिषक् ॥ १० ॥

अत ऊर्द्ध्वं सर्वव्रणवेदना वक्ष्यामः—तोदनभेदनताडन-च्छेदनायमनमन्थनविक्षेपणचुम्चुमायननिर्दहनावभञ्जनस्फोटन-विदारणोत्पाटनकम्पनविविधशूलविश्लेषणविकिरणपूरणस्तम्भन-स्वप्नाकुञ्चनाङ्कुशिकाः सम्भवन्ति । अनिमित्तविविधवेदना-प्रादुर्भावो वा मुहुर्मुहुर्यत्रागच्छन्ति वेदनाविशेषास्तं वातिक-मिति विद्यात् । ओषचोषपरिदाहधूमायनानि यत्र गात्रमङ्गा-रावकीर्णमिव पच्यते यत्र चोष्माभिवृद्धिः क्षते क्षारावसिक्त-वच्च वेदनाविशेषास्तं पैत्तिकमिति विद्यात् । पित्तवद्रक्तसमुत्थं जानीयात् । कण्डूर्गुरुत्वं सुप्तत्वमुपदेहोऽल्पवेदनत्वं स्तम्भः शैत्यञ्च यत्र तं श्लैष्मिकमिति विद्यात् । यत्र सर्वासां वेदनानामुत्पत्तिस्तं सान्निपातिकमिति विद्यात् ॥ ११ ॥

---

ख्यातः । १ स्थानभेदात् स्रावस्यासाध्यत्वमाह—**पक्वाशयादिति ।**

२ तोदनं=सूचीभिरिव व्यथनम् , भेदनम्=आरयेव विदारणम् , ताडनं=दण्डादिनैवाहननम् , छेदनं=शस्त्रादिभिरिव द्विधाकरणम् , आयमनं=सङ्कुचिताङ्ग-देशस्याकृष्यायतीकरणमिव, मन्थनं=मन्थनकादिभिर्व्रणान्तर्मथ्यत इव, विक्षेपणं=प्रेर्यत इव, चुम्चुमायनं=सर्षपराजिकाकल्कालेपनमिव, निर्दहनं=वह्निना निश्शेषं दह्यत इव, अवभञ्जनं=सञ्चूर्ण्यत इव, स्फोटनं=पाषाणादिभिरिव, विदारणं=नखा-दिभिश्चीर्यत इव, उत्पाटनम्=ऊर्ध्वमाकृष्यत इव, कम्पनं=वेप्यत इव, विविधशूल-विश्लेषणं=नानाप्रकारार्तिशूलाहतशरीरस्येव, विकिरणं=नानास्थानेषु व्रणावयवा विकीर्यन्त इव, पूरणं=भरणम् , स्तम्भनं=स्तब्धता, स्वप्नः=स्पर्शानवबोधः, आकु-ञ्चनं=कुटिलीकरणमिव, अङ्कुशिकाः=अङ्कुशाहतस्येवेति वेदनाविशेषाः ।

३ धूमायनम्=ऊष्माभिवृद्धया व्रणाद् धूमोद्गिरणमिव । ४ सुप्तत्वं=नखमक्षिका-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अत[1] ऊर्ध्वं व्रणवर्णान् वक्ष्यामः-भस्मकपोत[2]ास्थिवर्णः पर[3]रुषोऽरुणः कृष्ण इति मारुतजस्य । नीलः पीतो हरितः श्यावः कृष्णो रक्तः कपिलः पिङ्गल इति रक्तपित्तसमुत्थयोः । श्वेतः स्निग्धः पाण्डुरिति श्लेष्मजस्य । सर्ववर्ण[4]ोपेतः सान्निपातिक इति ॥ १२ ॥

भवति चात्र ।

न[5] केवलं व्रणेषूक्तो वेदनावर्णसङ्ग्रहः ।
सर्वशोफविकार[6]ेषु व्रणवल्लक्षयेद्भिषक् ॥ १३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने व्रणस्रावविज्ञानीयनाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

---

## त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः कृत्य[7]ाकृत्यविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
तत्र[8], वयःस्थानां दृढानां प्राणवतां सत्त्ववतां च सुचिकित्स्या

---

मशकादिदंशवेदनाऽनभिज्ञत्वम् । १ व्रणवर्णानभिदधाति—**अत इति** । २ कपोतोऽत्र धूसर एव प्रत्येतव्यः । ३ परुषः=चित्रवर्णः । 'परुषं कर्बुरे रूक्षे' इति हैमः । ४ सर्वे वातजाद्युक्ता वर्णाः सर्ववर्णास्तैरुपेतः । ५ अत्र व्रणोक्तान् दोषदुष्टिस्रावावेदनावर्णान् सर्वशोफेष्वपि निर्दिशति—**नेत्यादिना** । ६ विकारेषु=विद्रध्यलजीग्रन्थ्यादिषु ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।**

---

### त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

७ कृत्याश्चिकित्सारूपक्रियाऽर्हाः साध्याः, अकृत्याश्चिकित्सारूपक्रियाऽनर्हा असाध्यास्तयोर्विधिर्विद्यते यस्मिन् स कृत्याकृत्यविधिस्तम् । सुखसाध्यकृच्छ्रसाध्यभेदेन साध्या द्विविधाः । एवं याप्यप्रत्याख्येयभेदेनासाध्या अपि द्विविधाः । उक्तं सङ्ग्रहे—"साध्योऽसाध्य इति व्याधिर्द्विधा तौ तु पुनर्द्विधा—सुसाध्यः कृच्छ्रसाध्यश्च याप्योऽन्यश्चानुपक्रमः ॥" इति । ८ सुखसाध्यव्रणानाह—**तत्रेति** । वयःस्थानां=तरुणानाम्,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


व्रणाः । एकस्मिन् वा पुरुषे यत्रैतद्गुणचतुष्टयं तस्य सुखसाधनीयतमाः । तत्र, वयःस्थानां प्रत्यग्रधातुत्वादाशुव्रणा रोहन्ति । दृढानां स्थिरबहुमांसत्वाच्छस्त्रमवचार्यमाणं सिरास्नाय्वादिविशेषान्न प्राप्नोति । प्राणवतां वेद्यनाभिघाताहारयन्त्रणादिभिर्न ग्लानिरुत्पद्यते । सत्त्ववतां दारुणैरपि क्रियाविशेषैर्न व्यथा भवति । तस्मादेतेषां सुखसाधनीयतमाः ॥ ३ ॥

त एव विपरीतगुणा वृद्धकृशाल्पप्राणभीरुषु द्रष्टव्याः ॥ ४ ॥

स्फिक्पायुप्रजननललाटगण्डौष्ठपृष्ठकर्णफलकोपोदरजत्रुमुखाभ्यन्तरसंस्थाः सुखरोपणीया व्रणाः ॥ ५ ॥

अक्षिदन्तनासापाङ्गश्रोत्रनाभिजठरसेवनीनितम्बपार्श्वकुक्षिवङ्क्षःकक्षास्तनसन्धिभागगताः सफेनपूयरक्तानिलवाहिनोऽन्तःशल्याश्च दुश्चिकित्स्याः । अधोभागाश्चोर्द्ध्वभागनिर्वाहिणो, रोमान्तोपनखमर्मजङ्घाऽस्थिसंश्रिताश्च । भगन्दरमपि चान्तर्मुखं सेवनीकुटकास्थिसंश्रितम् ॥ ६ ॥

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ।
व्रणाः कृच्छ्रेण सिध्यन्ति येषां चापि व्रणे व्रणाः ॥ ७ ॥

अवपाटिकानिरुद्धप्रकाशसन्निरुद्धगुदजठरग्रन्थिक्षतक्रिमयः

---

दृढानां = सुसंहतावयवानाम्, प्राणवतां = बलवताम्, सत्त्ववतां = व्यसनेऽप्यनाकुलानाम् । १ प्रत्यग्रा अभिनवा धातवो येषां ते प्रत्यग्रधातवस्तेषां भावस्तस्मात्, विवर्द्धमानधातुत्वादिति भावः । २ वक्ष्यत्यग्रे—"सत्त्ववान् सहते सर्वं संस्तभ्यात्मानमात्मना" । इति । ३ दुश्चिकित्स्यव्रणानाह—**त इति** । ४ साध्यभेदान् सुखसाध्यानभिधत्ते—**स्फिगिति** । स्फिचौ = कटिप्रोथौ, पायुः = गुदम्, प्रजननं = गुह्यप्रदेशः । ५ अत्राभ्यन्तरशब्दः कर्णादिभिः सम्बध्यते ।

६ साध्यभेदान् कृच्छ्रसाध्यान्निर्दिशति—**अक्षीत्यादिना** । ७ श्रोत्रशब्देनात्र श्रोत्रपाली गृह्यते । ८ जङ्घास्थि = गुल्फजान्वन्तरास्थि । ९ सेवन्युपलक्षितं कुटकास्थि तेन संश्रितम् । कुटकास्थि = कटिकाण्डास्थि, ककुन्दरास्थीत्यर्थः । उक्तं च वाग्भटेन—"भगन्दरोऽन्तर्वदनस्तथा कट्यस्थिसंश्रितः" । इति । १० असाध्यभेदान् याप्यानभिदधाति—**अवपाटिकेति** । ११ क्षतमूलाः क्रिमयः क्षतक्रिमयः, समासस्थोऽपि क्रिमिशब्दस्तात्पर्यवशादुत्तरत्रान्वीयते । तथा च प्रतिश्यायजाः कोष्ठजाश्च

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रतिश्यायजाः कोष्ठजाश्च त्वद्दोषिणां प्रमेहिणां वा ये परिक्लेतेषु[1] दृश्यन्ते । शर्करा सिकतामेहो वातकुण्डलिकाऽष्ठीला[2] दन्तशर्करोपकुशः कण्ठशालूकं निष्कोषणदूषिताश्च[3] दन्तवेष्टा विसर्पास्थिक्षतोरःक्षतव्रणग्रन्थिप्रभृतयश्च[4] याप्याः ॥ ८ ॥

साध्या[5] याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चासाध्यतां[6] तथा ।
घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावताम्[7] ॥ ९ ॥
यापनीयं[8] विजानीयात् क्रिया धारयते तु यम्[9] ।
क्रियायां तु निवृत्तायां सद्य एव विनश्यति ॥ १० ॥
प्राप्ता[10] क्रिया धारयति[11] याप्यव्याधितमातुरम् ।
प्रपतिष्यदिवागारं विष्कम्भः[12] साधुयोजितः ॥ ११ ॥

अत[13] ऊर्द्ध्वमसाध्यान् वक्ष्यामः—मांसपिण्डवदुद्गताः[14] प्रसेकिनोऽन्तःपूयवेदनावन्तोऽश्वापानवदुद्वृत्तौष्ठाः[15]। केचित् कठिना गोशृङ्गवदुन्नतमृदुमांसप्ररोहाः। अपरे दुष्टरुधिरस्राविणस्तनुशीतपिच्छि-

---

क्रिमय इति सम्बन्धः । १ परिक्लेतेषु=व्रणीभूतासु पिडकासु । २ वातकुण्डलिकाऽष्ठीलेति द्वौ मूत्राघातरोगभेदौ । ३ निष्कुष्णाति बहिर्निस्सारयति मलानेभिरिति निष्कोषणं सविषदन्तकाष्ठं तेन दूषिता दन्तवेष्टा दन्तवेष्टनमांसानि । दन्तवेष्टा इति बहुवचनन्त्वनेकदोषदूषितत्वेन बहुविधभेदाल्लक्षणीयम् । दन्तवेष्टलक्षणम्—"स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च । 'दन्तवेष्टः' स विज्ञेयो दुष्टशोणितसम्भवः" ॥ इति । ४ व्रणाय ग्रन्थिर्व्रणग्रन्थिः, स च मर्मज एव; अमर्मजानां साध्यत्वेनोपदेक्ष्यमाणत्वात् । प्रभृतिग्रहणात् संवत्सरोत्थितानां स्फुटितवातरक्तादीनामादेशः ।

५ अप्रतीकारात्साध्यानामेव याप्यत्वासाध्यत्वे कथयति—**साध्या इति** । ६ चकाराद् याप्यत्वमागताः साध्याः । ७ अक्रियावतां=क्रियारहितानां विरुद्धक्रियाकारिणां च । ८ प्रसङ्गाद् याप्यव्याधितमभिधत्ते—**यापनीयमिति** । ९ यं=वृद्धादिकम् । १० उक्तमर्थं दृष्टान्तेन बोधयति—**प्राप्तेति** । प्राप्ता=विधिबोधिता, न्याय्येत्यर्थः । ११ धारयति=प्राणधारणमेव करोति, न पुनर्व्याधिमूलोच्छेदम् । उक्तं च सङ्ग्रहे—"याति नाशेषतां रोगः कर्मजो नियतायुषः । प्रपतन्निव विष्कम्भैर्धार्यतेऽत्रातुरो हितैः" ॥ इति । १२ विष्कम्भः=स्थूणा ।

१३ असाध्यान् व्रणानभिधत्ते—**अत इत्यादिना** । १४ प्रसेकिनः=स्रावबहुलाः । १५ अश्वापानवदुद्वृत्तौष्ठाः=अश्वगुदवदुन्नतप्रान्ताः; वडवायोनिवदुत्सन्नवर्त्मानो वा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लास्राविणो वा मध्योन्नताः। केचिदवसन्नशुषिरपर्यन्ताः शणतूलवत् स्नायुजालवन्तो दुर्दर्शनाः। वसामेदोमज्जमस्तुलुङ्गस्राविणश्च दोषसमुत्थाः। पीतासितमूत्रपुरीषवातवाहिनश्च कोष्ठस्थाः। त एवोभयतोभागव्रणमुखेषु पूयरक्तनिर्वाहिणः। क्षीणमांसानाञ्च सर्वतोगतयश्चाणुमुखा मांसबुद्बुदवन्तः सशब्दवातवाहिनश्च शिरःकण्ठस्थाः। क्षीणमांसानाञ्च पूयरक्तनिर्वाहिणोऽरोचकाविपाककासश्वासोपद्रवयुक्ताः। भिन्ने वा शिरःकपाले यत्र मस्तुलुङ्गदर्शनं त्रिदोषलिङ्गप्रादुर्भावः कासश्वासौ वा यस्येति ॥ १२ ॥

भवन्ति चात्र।

वसां मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुङ्गं च यः स्रवेत्।
आगन्तुस्तु व्रणः सिध्येन्न सिध्येद्दोषसम्भवः ॥ १३ ॥
अमर्मोपहिते देशे सिरासन्ध्यस्थिवर्जिते।
विकारो योऽनुपर्येति तदसाध्यस्य लक्षणम् ॥ १४ ॥
क्रमेणोपचयं प्राप्य धातूननुगतः शनैः।
न शक्य उन्मूलयितुं वृद्धो वृक्ष इवामयः ॥ १५ ॥
स स्थिरत्वान्महत्त्वाच्च धात्वनुक्रमणेन च।
निहन्त्यौषधवीर्याणि मन्त्रान् दुष्टग्रहो यथा ॥ १६ ॥

---

१ अवसन्ना निम्ना शुषिराः सच्छिद्राः प्रान्ताः प्रान्तप्रदेशा येषां तेऽवसन्नशुषिरप्रान्ताः। २ वसा = मांसनिर्यासः। ३ मस्तुलुङ्गम् = अर्धविलीनघृताकारो मस्तकमज्जा, मस्तिष्कमित्यर्थः; 'मस्तुलुङ्गं मस्तिष्कम्' इति त्रिकाण्डशेषः। ४ उभयतः = गुदवदनोभयमार्गाभ्यां व्रणमुखमार्गेण। ५ सर्वव्रणवस्तुगता व्रणा यादृशास्तादृशानाह—**सर्वतो गतय इति**। सर्वतः = ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्गतय इत्यर्थः। ६ वाग्भटः—"नैव सिद्ध्यन्ति वीसर्पज्वरातीसारकासिनाम्। पिपासूनामनिद्राणाम्" इति। ७ देशे = अवयवे, त्वचीत्यर्थः; सिरासन्ध्यस्थिवर्जित इत्यत्रादिशब्दस्य लोपदर्शनात्। ८ अनुपर्येति = पौनःपुन्येनाभ्युदेति, सर्वतो धातून् व्याप्नोतीति वाऽर्थः। ९ साध्यस्यापि व्याधेरुपेक्षयाऽसाध्यत्वमाह—**क्रमेणेति**। १० सः = उपेक्षितो व्याधिः। स्थिरत्वात् = बलवत्त्वात्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


[1]अंतो यो विपरीतः स्यात् सुखसाध्यः स उच्यते ।
अबद्धमूलः क्षुप[2]को यद्वदुत्पाटने सुखः ॥ १७ ॥
त्रि[3]भिर्दोषै रनाक्रान्तः श्या[4]वौष्ठः पिडकी समः ।
अवे[5]दनो निरास्रावो व्रणः शुद्ध इहोच्यते ॥ १८ ॥
क[6]पोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः ।
स्थिराश्चि[7]पिटिकावन्तो रोहतीति तमादिशेत् ॥ १९ ॥
रू[8]ढवर्त्मानमग्रन्थिमशूनमरुजं व्रणम् ।
त्वक्सवर्णं समतलं सम्यग्रूढं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥
दो[9]षप्रकोपाद् व्यायामादभिघाताज्जीर्णतः ।
हर्षात् क्रोधाद्भयाद्वाऽपि व्रणो रूढोऽपि दीर्यते ॥ २१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने कृत्याकृत्यविधिर्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

---

## चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो [10]व्याधिसमुद्देशीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

---

१ सुखसाध्यत्वमाह—**अत इति** । २ क्षुपकः = अतिबालवृक्षः, यथोत्पाटनेऽतितरां सुखतामाविष्करोति तथा । ३ शुद्धव्रणलक्षणमभिदधाति—**त्रिभिरिति** । ४ श्यावौष्ठः = किञ्चित् कृष्णः किञ्चित्पाण्डुः । पिडका व्रणौष्ठेऽणुमांसाङ्कुरोपचिताः सन्ति यस्य स पिडकी । ५ नास्ति वातादीनां तोदादिवेदना यस्य सोऽवेदनः । ६ रोहद्व्रणलक्षणमभिधत्ते—**कपोतेति** । ७ चिपिटिका = चर्मचेली । चर्मचेली सा, या व्रणे शुष्का सूक्ष्मा श्वेता त्वगुच्चटति । ८ सम्यग्रूढव्रणलक्षणमाचष्टे—**रूढेत्यादिना** । रूढं जाताङ्कुरं वर्त्मस्रावमार्गं यस्य स तम् । मांसाङ्कुरप्रपूरितावकाशमिति भावः । ९ दोषप्रकोपादिभी रूढोऽपि व्रणो दीर्यते इत्यभिधत्ते—**दोषेत्यादिना** ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।**

---

### चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

१० व्याधीनां समासेनोद्देशः कथनं, तदधिकृत्य कृतोऽध्यायो व्याधिसमुद्देशीयस्तम्; "समासकथनमुद्देशः" इति तन्त्रयुक्त्यध्यायस्मरणात् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


द्विविधास्तु व्याधयः—शस्त्रसाध्याः[१], स्नेहादिक्रियासाध्याश्च[२]। तत्र शस्त्रसाध्येषु स्नेहादिक्रिया न प्रतिषिध्यते[३]। स्नेहादिक्रियासाध्येषु शस्त्रकर्म न क्रियते[४] ॥ ३ ॥

अस्मिन् पुनः[५] शास्त्रे सर्वतन्त्रसामान्यात्[६] सर्वेषां व्याधीनां यथास्थूलमवरोधः[७] क्रियते। प्राग्[८]भिहितम्—'तद्दुःखसंयोगा व्याधय' इति। तच्च दुःखं त्रिविधम्—आध्यात्मिकम्[९], आधिभौतिकम्, आधिदैविकमिति।

तत्तु सप्तविधेव्याधावुपनिपतति[१०-११]। ते[१२] पुनः सप्तविधा व्याधयः। तद्यथा[१३]—आदिबलप्रवृत्ताः, जन्मबलप्रवृत्ताः, दोषबलप्रवृत्ताः, सङ्घातबलप्रवृत्ताः, कालबलप्रवृत्ताः, दैवबलप्रवृत्ताः, स्वभावबलप्रवृत्ता इति ॥ ४ ॥

तत्रादिबलप्रवृत्ता ये शुक्रशोणितदोषान्वयाः कुष्ठार्शःप्रभृतयः।

---

१ शस्त्रसाध्याः = प्रायः क्रियैकत्वाच्छस्त्रानुशस्त्रप्रणिधानसाध्या अवपाटिकाप्रभृतय इत्यर्थः। २ आदिशब्दात् स्वेदनवमनविरेचनादयो ग्राह्याः। ३ शस्त्रसाध्यव्याधिषु स्नेहादिक्रियाभिरुपकारदर्शनान्न निषिध्यत इत्यर्थः। यथा शस्त्रक्रियां विनाऽपि विद्रधिशोथौ स्वेदनेन, अश्मरी वरुणयवक्षारादिसेवनेन, अर्शस्सूरणसेवनेन च शाम्यतीति दिङ्मात्रमिह दर्शितम्। ४ न क्रियते = अनुपयोगित्वान्न विधीयत इत्यर्थः। ५ अत्र पुनःशब्द एवार्थकः। ६ सर्वतन्त्रसामान्यात् = शल्याद्यष्टतन्त्राणां रुग्विनिश्चयाद्यर्थत्वेन तुल्यत्वात्। ७ यथास्थूलं = स्थूलमनतिक्रम्य यथास्थूलम्, यथास्थूलदृष्टयेत्यर्थः। विस्तरशः सर्वे व्याधय उपदिष्टा अपि निदानाद्यनेकार्थविज्ञेयत्वाद् दुरधिगमा भवन्तीति न सूक्ष्मदृष्टयेत्यर्थः। अवरोधः = परिग्रहः, सङ्ग्रह इति यावत्। ८ प्राक् = प्रथमेऽध्याये। ९ आध्यात्मिकम् = आत्मन्यधि अध्यात्मं तत्र भवमाध्यात्मिकम्, तच्च द्विविधं—शारीरं मानसं च, तत्र शारीरं वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यनिमित्तम्; मानसं च कामक्रोधलोभमोहभयेर्ष्याविषादविषयविशेषादर्शननिबन्धनम्। आधिभौतिकं = भूतेषु प्राणिष्वधिकृत्य यत्प्रवर्तते तदाधिभौतिकम्, मानुषपशुपक्षिसरीसृपस्थावरनिमित्तमित्यर्थः। आधिदैविकं = देवेषु सुरेषु सुरयोनिषु चाधिकृत्य यत्प्रवर्तते तदाधिदैविकम्, यक्षराक्षसविनायकग्रहावेशादिनिबन्धनमित्यर्थः।

१० तत् = प्रत्यात्मवेदनीयं दुःखत्रिकम्। ११ उपनिपतति = परिलक्षितं भवतीत्यर्थः। १२ ते = पूर्वोक्तास्तदुःखसंयोगरूपा त्रिविधा व्याधयः। १३ यथा च तत्सप्तत्वमुपैति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तेऽपि द्विविधाः—मातृजाः पितृजाश्च । जन्मबलप्रवृत्ता ये मातुरपचारात्[1] पङ्गुजात्यन्धबधिरमूकमिन्मिन[2]वामनप्रभृतयो जायन्ते । तेऽपि द्विविधाः—रसकृता[3] दौहृदापचारकृताश्च[4] । दोषबलप्रवृत्ता ये आतङ्कसमुत्पन्ना[5] मिथ्याहाराचारकृताश्च । तेऽपि द्विविधाः—आमाशयसमुत्थाः पक्वाशयसमुत्थाश्च । पुनश्च द्विविधाः—शारीरा मानसाश्च । त एते आध्यात्मिकाः ॥ ५ ॥

सङ्घातबलप्रवृत्ता य आगन्तवो दुर्बलस्य बलवद्विग्रहात् । तेऽपि द्विविधाः—शस्त्रकृता[6] व्यालकृताश्च । एते आधिभौतिकाः ॥ ६ ॥

कालबलप्रवृत्ता ये शीतोष्णवातवर्षाप्रभृतिनिमित्ताः । तेऽपि

---

तद्दर्शयति—**तद्यथेत्यादिना** । आदिबलप्रवृत्ताः = दुष्टशुक्रशोणितबलजाताः । जन्मबलप्रवृत्ताः = शुक्रशोणितवदुष्टिं विनाऽपि मातुरपचारबलजाताः । दोषबलप्रवृत्ताः = वातादिरजस्तमोरूपदोषशक्तिजाताः । "वायुःपित्तं कफश्चेति शारीरो दोषसङ्ग्रहः । मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च ॥" इति दोषा वातादयो रजस्तमसी च । सङ्घातबलप्रवृत्ताः = प्रहारशक्तिजाताः । कालबलप्रवृत्ताः = शीतोष्णवर्षलक्षणषड्ऋतुबलजाताः । दैवबलप्रवृत्ताः = दैवशक्तिजाताः । स्वभावबलप्रवृत्ताः = प्रकृतिशक्तिजाताः । १ अपचारात् = दुष्टाहाराचाररूपापचारादित्यर्थः । २ मिन्मिनाः = सानुनासिका अस्पष्टवाचः । ३ अत्र—"मधुरनित्या प्रमेहिणं मूकमतिस्थूलं वा, लवणनित्या शीघ्रवलीपलितं खालित्यरोगिणं वा, अम्लनित्या रक्तपित्तिनं त्वग्दोषिरोगिणं वा ।" इत्यादिचरकोक्तमनुसन्धातव्यम् ।

४ स्वहृदयेन गर्भहृदयेन च द्विहृदया नारी गर्भिणी, तत्सम्बन्धित्वाद् गर्भो दौर्हृदमुच्यते, तस्यापचार इन्द्रियार्थप्रार्थनाविघातस्तत्कृताः । तद् वक्ष्यति—"इन्द्रियार्थांस्तु यान् यान् सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी । गर्भाबाधभयात्तांस्तान् भिषगाहृत्य दापयेत् ॥ सा प्राप्तदौर्हृदा पुत्रं जनयेत्सुगुणान्वितम् । अलब्धदौर्हृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम् ॥ येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दौर्हृदे वै विमानिता । प्रजायेत सुतस्यार्तिस्तस्मिंस्तस्मिंस्तथेन्द्रिये ॥" इति । ५ आतङ्को रोगस्तत्समुत्पन्ना व्याधयः, यथा प्रतिश्यायात् कासः कासात् क्षय इत्यादि बोध्यम् । अत्र प्रधानव्याधेर्यत्रि दोषरूपं कारणं तदेवाप्रधानस्यापि ।

६ "पक्षिमत्स्यमृगैर्ये तु दंष्ट्रिशृङ्गिनखैर्हताः । पतनानशनप्रायैर्वज्राग्निविषबन्धनैः ॥ मृता जलप्रवेशेन ते वै शस्त्रहताः स्मृताः ।" इति देवीपुराणोक्तपारिभाषिकशस्त्रपरत्वे 'व्यालकृताश्च' इत्यत्र व्यालपदेन पक्षिमत्स्यादिपुराणोक्तभिन्ना दुष्टहिंस्रजन्तवो बोध्याः ।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


द्विविधाः-व्यापन्नर्तुकृता अव्यापन्नर्तुकृताश्च। दैवबलप्रवृत्ता ये देवद्रोहादभिशस्तका अथर्वणकृता उपसर्गजाश्च। तेऽपि द्विविधाः-विद्युदशनिकृताः पिशाचादिकृताश्च। पुनश्च द्विविधाः-संसर्गजा आकस्मिकाश्च। स्वभावबलप्रवृत्ताः क्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रभृतयः। तेऽपि द्विविधाः-कालकृता अकालकृताश्च। तत्र परिरक्षणकृताः कालकृताः। अपरिरक्षणकृता अकालकृताः। एते आधिदैविकाः। अत्र सर्वव्याध्यवरोधः॥ ७॥

सर्वेषाञ्च व्याधीनां वातपित्तश्लेष्माण एव मूलं, तल्लिङ्गत्वाद्दृष्टफलत्वादागमाच्च। यथा हि कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेणावस्थितं सत्त्वरजस्तमांसि न व्यतिरिच्यन्ते। एवमेव कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेणावस्थितमव्यतिरिच्य वातपित्तश्लेष्माणो वर्तन्ते। दोष-

---

१ देवानां देवगुरुवृद्धसिद्धादीनां द्रोहस्तस्मात्। अभिशस्तकाः=आक्रोशजाः। अभिशापस्य पापमूलत्वात्तज्जा व्याधयोऽप्यभिशस्तका उच्यन्ते। अथर्वकृता=अथर्ववेदाभिहिताभिचारिकमन्त्रैर्मारणादिकृताः। उपसर्गजाः=धूमकेतुसततोल्कापातग्रहनक्षत्रवैकृताद्यशुभसूचकोत्पातदर्शनसमयोत्पन्नाः, ज्वरादिपीडितजनसमीपोत्पन्ना वा। तथा च वक्ष्यति—"प्रसङ्गाद् गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात् सहभोजनात्। सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात्। औपसर्गिकरोगांश्च सङ्क्रामन्ति नरान्नरम्॥" इति। २ संसर्गजाः=दैवादिद्रोहजनसम्पर्कजाताः, आकस्मिकाः=संसर्गं विनैव प्राक्तनकर्मपीडितत्वेन जाताः। ३ परिरक्षणकृताः=स्वास्थ्यानुगुणकालकृताः, तद्विपरीताश्चापरिरक्षणकृताः। तत्र परिरक्षणकृतानां नोपचारः किन्तु भोजनपानरसायनादिभिर्याप्यतैवास्ति; अपरिरक्षणकृतानां च यथादोषं यथारोगं प्रतीकारो भवतीति बोध्यम्।

४ सर्वेषां=सविंशत्येकादशशतानां कार्यभूतानाम्। ५ मूलम्=आदिकारणमित्यर्थः। तेषां वातादीनां लिङ्गानि रूक्षशीतादीनि तोददाहकण्ड्वादीनि च तल्लिङ्गानि तेषां भावस्तस्मात्, दृष्टफलत्वाद्=वातादिहरौषधैर्वाताद्युपशमेन तत्तद्व्याध्युपशमदर्शनात्, आगमात्="नास्ति रोगो विना दोषैः" इत्यादिशास्त्राच्च। ६ विश्वरूपेण=जगद्रूपेण। ७ न व्यतिरिच्यन्ते=न पृथग्भवन्ति। ८ विश्वरूपेण=नानाऽऽकारेण। ९ अव्यतिरिच्य=अपरित्यज्येत्यर्थः। १० अत्र डल्हणः—वातादिदोषरसपुरीषमलसंसर्गादतीसारादयः, वातादिदोषरसधातुसंसर्गाज्ज्वरादयो रसाधिष्ठानाः, वातादिदोषरसादिदूष्यमूलमलसंसर्गाद् विंशतिमेहाः, तथा वातादिदोषरक्तधातुसंसर्गाद् वातरक्तरक्तपित्तविद्रधिरक्तगुल्मादयः। आयतनानां स्थानानां विशेषो भेद-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


धातुमलसंसर्गादायतनविशेषान्निमित्ततश्चैषां विकल्पः। दोषदूषिते-
ष्वर्थं धातुषु संज्ञा क्रियते-रसजोऽयं, शोणितजोऽयं, मांसजोऽयं,
मेदोजोऽयम्, अस्थिजोऽयं, मज्जजोऽयं, शुक्रजोऽयं व्याधिरिति ॥८॥

तत्र, अन्नाश्रद्धारोचकाविपाकाङ्गमर्दज्वरहृल्लासतृप्तिगौरवहृत्पा-
ण्डुरोगमार्गोपरोधकार्श्यवैरस्याङ्गसादाकालवलिपलितदर्शनप्रभृतयो
रसदोषजा विकाराः। कुष्ठविसर्पपिडकामशकनीलिकातिलकालकन्य-
च्छव्यङ्गेन्द्रलुप्तपलीहविद्रधिगुल्मवातशोणितार्शोऽर्बुदाङ्गमर्दासृग्दर-
रक्तपित्तप्रभृतयो रक्तदोषजा गुदमुखमेढ्रपाकाश्च। अधिमांसार्बुदा-
र्शोऽधिजिह्वोपजिह्वोपकुशगलशुण्डिकाऽलजीमांससङ्घातौष्ठप्रकोपगल-
गण्डगण्डमालाप्रभृतयो मांसदोषजाः। ग्रन्थिवृद्धिगलगण्डार्बुदमेदो-
जौष्ठप्रकोपमधुमेहातिस्थौल्यातिस्वेदप्रभृतयो मेदोदोषजाः। अध्य-
स्थ्यधिदन्तास्थितोदशूलकुनखप्रभृतयोऽस्थिदोषजाः। तमोदर्शनमू-
र्च्छाभ्रमपर्वस्थूलमूलारुर्जन्मनेत्राभिस्यन्दप्रभृतयो मज्जदोषजाः।
क्लैब्याप्रहर्षशुक्राश्मरीशुक्रमेहशुक्रदोषादयश्च तद्दोषजाः। त्वग्दोषाः
सङ्गोऽतिप्रवृत्तिरयथाप्रवृत्तिर्वा मलायतनदोषाः। इन्द्रियाणामप्रवृत्ति-
रयथाप्रवृत्तिर्वेन्द्रियायतनदोषाः। इत्येष समास उक्तः। विस्तरं नि-

---

स्तस्मात्। यथा सप्तस्वायतनेषु पञ्चषष्टिर्मुखरोगाः, चक्षुरिन्द्रियायतनेषु षट्सप्ततिर्नेत्र-
रोगाः। १ वातादिनिमित्तत इत्यर्थः। यथा प्रत्येकं वातादिज्वरास्त्रयः, सान्निपातिक
एकः, द्वन्द्वजास्त्रयः, आगन्तुश्चाष्टमः। एवमन्यदपि निमित्ततो व्याधीनां नानात्वं ज्ञेयम्।
२ तादात्म्याध्यासेनेति भावः। यथा—घृतदग्धस्तैलदग्ध इत्यादौ घृतादिशब्देन घृता-
दिस्थो वह्निर्लक्ष्यते, तथा रसजोऽयमित्यादौ रसादिस्थितवातादिदोषा लक्ष्यन्ते। अतो
व्याधीनां दोषमूलत्वेऽपि तथा तथा संज्ञा नानुपपन्नेत्यभिसन्धिः।

३ 'अश्रद्धायां मुखप्रविष्टस्याहारस्याभ्यवहरणं भवत्येव परन्त्वनिच्छा, अरुचौ
तु मुखप्रविष्टं नाभ्यवहरतीति भेदः।' इति चक्रपाणिदत्तः। ४ उद्गारशुद्धावपि भक्ता-
काङ्क्षा न जायते सा तृप्तिः। ५ पर्वसु स्थूलमूलानां गम्भीरपरिणाहानामरुषां व्रणानां
जन्म इति पर्वस्थूलमूलारुर्जन्म, अरुषां स्थूलमूलानां पर्वजानां च दर्शनमित्यात्रेयः।
६ अप्रहर्षः = स्त्रीष्वनभिलाषः। ७ आदिशब्दात्—"रोगी वा क्लीबमल्पायुर्विरूपं
वा प्रजायते। न चास्य जायते गर्भः पतति प्रसवत्यपि। शुक्रं हि दुष्टं सापत्यं सदारं
बाधते नरम्॥" इति चरकोक्तं बोध्यम्। ८ कर्णनासामुखाच्छिमलायतनेष्वन्येषु च

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मित्तानि चैषां प्रतिरोगं वक्ष्यामः ॥ ९ ॥

भवति चात्र ।

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम् ।
यत्र सङ्गः खवैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते ॥ १० ॥

भूयोऽत्र जिज्ञास्यं, किं वातादीनां ज्वरादीनाञ्च नित्यः संश्लेषः परिच्छेदो वा ? इति । यदि नित्यः संश्लेषः स्यात्तर्हि नित्यातुराः सर्व एव प्राणिनः स्युः । अथाप्यन्यथा वातादीनां ज्वरादीनां चान्यत्र वर्त्तमानानामन्यत्र लिङ्गं न भवतीति कृत्वा यदुच्यते वातादयो ज्वरादीनां मूलानीति; तन्न, अत्रोच्यते दोषान् प्रत्याख्याय ज्वरादयो न भवन्ति । अथ च न नित्यः सम्बन्धः । यथा हि विद्युद्घाताशनिवर्षाण्याकाशं प्रत्याख्याय न भवन्ति । सत्यप्याकाशे कदाचिन्न भवन्ति । अथ च निमित्ततस्तत एवोत्पत्तिरिति । तरङ्गबुद्बुदादयश्चोदकविशेषा एव । वातादीनां ज्वरादीनाञ्च नाप्येवं संश्लेषो न परिच्छेदः शाश्वतिकः । अथ च निमित्तत एवोत्पत्तिरिति ॥११॥

भवति चात्र ।

विकारपरिमाणञ्च सङ्ख्या चैषां पृथक् पृथक् ।
विस्तरेणोत्तरे तन्त्रे सर्वाबाधाश्च वक्ष्यते ॥ १२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने व्याधिसमुद्देशीयो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

---

प्रजननाद्यपत्यपथेष्वप्रवृत्तिः सङ्ग उच्यते । १ परिधावतां=व्यानवायोः प्रेरणया सर्वशरीरे परिभ्रमताम् । उक्तञ्च—"व्यानेन रसधातुर्हि विक्षेपोचितकर्मणा । युगपत् सर्वतोजस्रं देहे विक्षिप्यते सदा॥ ···दोषाणामपि चैवं स्यादेकदेशप्रक्षेपणम्।" इति। २ खानां स्रोतसां वैगुण्यं तस्माद्धेतोः । स्ववैगुण्यादिति पाठे स्वेषां दोषाणामिति बोध्यम् ।

३ व्याधीनां दोषाणां च कार्यकारणसम्बन्धमभिधत्ते—**भूय इति ।** ४ संश्लेषः=सम्बन्धः, परिच्छेदः=असम्बन्धः । ५ आकाशशब्देनात्र मेघो बोध्यः । ६ निमित्ततः=वातादिप्रचारविशेषादित्यर्थः । ७ निमित्ततः=मिथ्याऽऽहारादितः । ८ विकाराणां रोगाणां परिमाणं समुदायसंख्यां 'व्याधीनां तु सहस्रं यत्' इत्यादिना, एषां पृथक् पृथक् संख्या अवयवसंख्या 'षडङ्गीसि' इत्यादिक्रमेण बाधाः ज्वरातीसारशोषादय उत्तरतन्त्रे वक्ष्यते ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## पञ्चविंशतितमोऽध्यायः।

अथातोऽष्टविधशस्त्रकर्मीयमध्यायं व्याख्यास्यामः॥ १॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः॥ २॥

छेद्या भगन्दरा ग्रन्थिः श्लैष्मिकस्तिलकालकः।
व्रणवर्त्मार्बुदान्यर्शश्चर्मकीलोऽस्थिमांसगम्॥ ३॥
शल्यं जतुमणिर्मांससङ्घातो गलशुण्डिका।
स्नायुमांससिराकोथो वल्मीकं शतपोनकः॥ ४॥
अध्रुषश्चोपदंशाश्च मांसकन्ध्वधिमांसकः।
भेद्या विद्रधयोऽन्यत्र सर्वजाद् ग्रन्थयस्त्रयः॥ ५॥
आदितो ये विसर्पाश्च वृद्धयः सविदारिकाः।
प्रमेहपिडकाशोफस्तनरोगावमन्थकाः॥ ६॥
कुम्भीकानुशयीनाड्यो वृन्दौ पुष्करिकाऽलजी।
प्रायशः क्षुद्ररोगाश्च पुप्पुटौ तालुदन्तजौ॥ ७॥
तुण्डिकेरी गिलायुश्च पूर्वं ये च प्रपाकिणः।
बस्तिस्तथाऽश्मरीहेतोर्मेदोजा ये च केचन॥ ८॥
लेख्याश्चतस्रो रोहिण्यः किलासमुपजिह्विका।
मेदोजो दन्तवैदर्भो ग्रन्थिर्वर्त्माधिजिह्विका॥ ९॥

---

### पञ्चविंशतितमोऽध्यायः।

१ कर्मणि साधवः कर्मण्याः, अष्टविधशस्त्रकर्मार्हान् व्याधीनधिकृत्य कृतोऽध्यायोऽष्टविधशस्त्रकर्मण्यस्तम्। २ तिलकालकः = क्षुद्ररोगपठितः। ३ चर्मकीलः = गुदपार्श्ववर्त्ती मांसाङ्कुरोऽर्शोभेदः। ४ जतुमणिः = क्षुद्ररोगविशेषः। ५ कोथः = पूतीभावः। ६ शतपोनकः = मेढ्रसमन्तादणुमुखच्छिद्रव्याप्तो वातशोणितजः शूकरोगविशेषः। ७ अध्रुषः = तालुगतमुखरोगः। ८ वृन्दौ = एकवृन्दो वृन्दश्च, कण्ठगतरोगौ। ९ पुप्पुटौ = तालुपुप्पुटो दन्तपुप्पुटश्च। १० गिलायुः = एतन्नामा गलरोगः। ११ चतस्रः = वातपित्तश्लेष्मसन्निपातोत्थाः वातपित्तकफशोणितजा वा, रोहिण्यः = गलरोगाः; "पित्तवत्साधयेद् वैद्यो रोहिणीं रक्तसम्भवाम्" इति स्मरणाद् रक्तजाया रोहिण्या एकान्तासाध्यत्वेन व्याचिख्यासिताया अपीह परिगणनं नानुपपन्नम्। १२ वर्त्म = व्रणवर्त्म नेत्रवर्त्म च।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अर्शांसि मण्डलं[1] मांसकन्दी मांसोन्नतिस्तथा[2] ।
वेध्याः सिरा बहुविधा मूत्रवृद्धिर्दकोदरम् ॥ १० ॥
एष्याः[3] नाड्यः सशल्याश्च व्रणा उन्मार्गिणश्च[4] ये ।
आहार्य्याः शर्करास्तिस्रो[5] दन्तकर्णमलोऽश्मरी ॥ ११ ॥
शल्यानि मूढगर्भाश्च वर्चश्च[6] निचितं गुदे ।
स्राव्याः[7] विद्रधयः पञ्च भवेयुः सर्वजादृते ॥ १२ ॥
कुष्ठानि वायुः सरुजः शोफो यश्चैकदेशजः ।
पाल्यामयाः श्लीपदानि विषजुष्टश्च शोणितम् ॥ १३ ॥
अर्बुदानि विसर्पाश्च ग्रन्थयश्चादितस्तु ये ।
त्रयस्त्रयश्चोपदंशाः स्तनरोगा विदारिका[8] ॥ १४ ॥
सुषिरो[9] गलशालूकं कण्टकाः कृमिदन्तकः ।
दन्तवेष्टः सोपकुशः[10] शीतादो दन्तपुप्पुटः ॥ १५ ॥
पित्तासृक्कफजाश्चौष्ठ्याः क्षुद्ररोगाश्च भूयशः ।
सीव्या मेदःसमुत्थाश्च भिन्नाः सुलिखिता गदाः ॥ १६ ॥
सद्योव्रणाश्च[11] ये चैव चलसन्धिव्यपाश्रिताः ।
न[12] क्षाराग्निविषैर्जुष्टा न च[13] मारुतवाहिनः ॥ १७ ॥
नान्तर्लोहितशल्याश्च[14] तेषु सम्यग्विशोधनम् ।

---

१ मण्डलं = दद्रुपुण्डरीकादीनां मण्डलमित्यर्थः । २ मांसोन्नतिः = व्रणेषु दुष्टमांसाभिवृद्धिः । ३ एष्याः = लोहादिशलाकयाऽन्तरन्वेषणीयाः । ४ उन्मार्गिणः = ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्गतिमन्तः । ५ मूत्रशर्करा, पादशर्करा, दन्तशर्करा चेति तिस्रः शर्करा आहार्या आकर्षणीया इत्यर्थः । ६ वर्चः = विष्ठा, 'वर्चो नपुंसके रूपे विष्ठायामपि तेजसि' इति मेदिनी । ७ स्राव्याः = चूषणेन निर्हरणीयाः । ८ विदारिकाशब्देनेह क्षुद्ररोगमुखरोगोक्तयोर्द्वयोरेव विदारिकयोः परिग्रहः; समक्रियत्वादाकृतिसाम्याद्वा ।
९ सुषिरः = दन्तमूलगतरोगः । १० शीतादः = दन्तवेष्टगतरोगः । ११ चकारात्तथाविधा मांसादिसमुत्था अपि सीव्याः । अष्टाङ्गहृदये विशेषः—"सद्यः सद्योव्रणान् सीव्येद् विवृत्तानभिघातजान् । मेदोजान् विवृतान् ग्रन्थीन् ह्रस्वाः पालिश्च कर्णयोः ॥ शिरोऽक्षिकूटनासौष्ठगण्डकर्णोरुबाहुषु । ग्रीवाललाटमुष्कस्फिङ्मेढ्रपायूदरादिषु ॥ गम्भीरेषु प्रदेशेषु मांसलेष्वचलेषु च ।" इति । १२ अवस्थाविशेषण पूर्वोक्तानां सेवनं प्रतिषेधयति—**नेत्यादिना** । १३ फुप्फुसादिगता मारुतवाहिन इत्यर्थः । १४ अन्तर्दुष्टशो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


[1]पांशुरोमनखादीनि चलमस्थि भवेच्च यत् ॥ १८ ॥
अहृतानि यतोऽमूनि पाचयेयुर्भृशं व्रणम् ।
रुजश्च विविधाः कुर्य्युस्तस्मा[2]देतान् विशोधयेत् ॥ १९ ॥
ततो व्रणं समु[3]न्नम्य स्थापयित्वा यथास्थितम् ।
सीव्येत् सूक्ष्मेण सूत्रेण वल्केनाश्मन्त[4]कस्य वा ॥ २० ॥
शणजक्षौमसूत्राभ्यां स्नाय्वा बालेन वा पुनः ।
मूर्वागुडूचीतां[5]नैर्वा सीव्येद्वेल्लितकं[6] शनैः ॥ २१ ॥
सीव्येद्वोफ[7]णिकां वाऽपि सीव्येद्वा तु[8]न्नसेवनीम् ।
ऋजुग्र[9]न्थिमथो वाऽपि यथायोगमथापि वा ॥ २२ ॥
देशेऽल्पमांसे सन्धौ च सूची वृत्ताऽङ्गुलद्वयम् ।
आयता त्र्यङ्गुला [10]त्र्यस्रा मांसले वाऽपि पूजिता ॥ २३ ॥
धनुर्वक्रा हिता मर्मफलकोशोदरोपरि ।
इत्येतास्त्रिविधाः सूचीस्तीक्ष्णाग्राः सुसमाहिताः ॥ २४ ॥
कारयेन्मालतीपुष्पवृन्ताग्रपरिमण्डलाः ।

---

णितशरादिशल्या इत्यर्थः । १ निर्हरणीयानुपदिशति—**पांशुरिति** । २तस्मादेतान् शल्यविशेषान् निर्हृत्य विशोधयेदाश्वेवेति भावः । ३समुन्नम्य = किञ्चिदुन्नतं कृत्वा, स्थापयित्वा = ओष्ठेनौष्ठं संयुज्येत्यर्थः । ४ अश्मन्तकस्य = अम्लोटकसदृशवृक्षस्य । ५ तानैः = तन्तुभिः ।

६ **वेल्लितकं** = कुटिलं तिर्यक् प्रणिहितया सूच्या सूत्रेणैकेनावेष्टय सम्पादितम् । उक्तं च—"अल्पान्तरन्तु कुटिलं सीव्यते बहुवेष्टनम् । यत्तद् वेल्लितकं नाम शाखाऽऽदौ युज्यते बुधैः ॥" इति । ७ **गोफणिका** = गोफणाकारा शलाकोपहिता सेवनी । उक्तञ्च—"पाटितं योनिगुदयोरन्तरं वा तथाविधम् । देशं स्यूत्वा यथायोगं पुनस्तच्छेदशङ्कया ॥ नास्तिस्थूले नातिसूक्ष्मे शलाके द्वे निपात्य च । तदासक्तेन सूत्रेण संवेष्टय सेवनी कृता । नाम्ना गोफणिका प्रोक्ता दुष्करा मन्दबुद्धिभिः ॥" इति । ८ **तुन्नसेवनी** = यथा पाटितं वस्त्रं तन्तुवायकाः सन्दधति तद्वत्सेवनी । तथा च—"पृथक् पृथक् तु सञ्छिन्नं सीव्यते तुन्नसेवनी । या योज्या पद्मकोपादौ" इति । ९ **ऋजुग्रन्थिः** = प्रायेणौष्ठसन्धानार्थं यत्र सेवन्यां सृक्कतः सृक्कपर्यन्तम् ऋजुसूचीं निपात्य तदग्रमूलासक्तेन सूत्रेणाकृष्य सन्धेयभागं संयुज्य ग्रन्थिः क्रियते सा । उक्तं च—"पार्श्वात्पार्श्वान्तरं यावदृजुसूचीं निपात्य च । संवेष्टयाकृष्य सूत्रेण ग्रन्थिर्यः सन्धिहेतवे । क्रियते स ऋजुग्रन्थिरोष्ठादिषु विधीयते ॥" इति । १० त्र्यस्रा = त्रिधा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नातिदूरे निकृष्टे वा सूचीं कर्मणि पातयेत् ॥ २५ ॥
दूराद्गुजो व्रणोष्ठस्य सन्निकृष्टेऽवलुञ्चनम्[1] ॥ २६ ॥
अथ[2] क्षौमपिचुच्छन्नं सुस्यूतं प्रतिसारयेत्[3] ।
प्रियङ्ग्वञ्जनयष्ट्याह्वरोध्रचूर्णैः समन्ततः ॥ २७ ॥
शल्लकीफलचूर्णैर्वा क्षौमध्यामेन[4] वा पुनः ।
ततो व्रणं यथायोगं बद्ध्वाऽऽचारिकमादिशेत्[5] ॥ २८ ॥
एतदष्टविधं कर्म समासेन प्रकीर्तितम् ।
चिकित्सितेषु कात्स्न्र्येन विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥ २९ ॥
हीनातिरिक्तं[6] तिर्यक् च गात्रच्छेदनमात्मनः ।
एताश्चतस्रोऽष्टविधे कर्मणि व्यापदः स्मृताः ॥ ३० ॥
अज्ञानलोभाहितवाक्ययोगभयप्रमोहैरपरैश्च भावैः[7] ।
यदा प्रयुञ्जीत भिषक् कुशस्त्रं[8] तदा स शेषान् कुरुते विकारान् ॥३१॥
तं[10] क्षारशस्त्राग्निभिरौषधैश्च भूयोऽभियुञ्जानमयुक्तियुक्तम् ।
जिजीविषुर्दूरत एव वैद्यं विवर्जयेदुग्रविषाहितुल्यम् ॥ ३२ ॥
तदेव[11] युक्तं त्वति मर्मसन्धीन् हिंस्यात् सिराः स्नायुमथास्थि चैव ।
मूर्खप्रयुक्तं पुरुषं क्षणेन प्राणैर्वियुञ्ज्यादथवा[12] कथञ्चित् ॥ ३३ ॥
भ्रमः[13] प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं[14] संलयनोष्णते च ।
स्रस्ताङ्गता मूर्च्छनमूर्ध्व[15] वातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः ॥३४॥

---

रेत्यर्थः । १ अवलुञ्चनं = त्रुटनमित्यर्थः । २ अथ = सीवनानन्तरम् । ३ प्रतिसारयेत् = अवचूर्णयेत् । ४ क्षौमध्यामेन = अतसीभववस्त्रभस्मना, अतसीबीजचूर्णेन वा । ५ व्रणितोपासनीयोक्तमाचारं कथयेदित्यर्थः ।

६ अष्टविधशस्त्रकर्मणां व्यापदं कथयति—**हीनेत्यादिना** । ७ व्यापदो हेतून् दर्शयति—**अज्ञानेति** । ८ शत्रुवाक्यमित्यर्थः । ९ ईषदर्थोऽयं कुशब्दः क्रियाविशेषणम् ; शस्त्रमीषन्मात्रं प्रयुञ्जीतेत्यर्थः । १० तं = तथाविधं भिषक्छब्दाचरम् । ११ अतिरिक्तशस्त्रव्यापदं दर्शयति—**तदेवेति** । १२ वियुञ्ज्यात् = प्राणैः सह वियोगं कारयेत् । १३ मर्मसन्धिसिरास्नाय्वस्थिपञ्चसु छिन्नेषु यानि लिङ्गानि भवन्ति तानि सामान्येन दर्शयति—**भ्रम इत्यादिना** । १४ सुषुप्तावस्थस्येव चित्तस्याकर्मण्यता । 'संलपनम्' इति पाठे रहसि भाषणमित्यर्थो बोध्यः । १५ ऊर्ध्ववातशब्देनात्र श्वासोऽभिप्रेतो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मांसोदकाभं रुधिरञ्च गच्छेत् सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव ।
[1]दशार्द्धसङ्ख्येष्वपि हि क्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम् ॥३५॥
[2]सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं स्रवेद्यैः क्षततश्च वायुः ।
करोति रोगान् विविधान् यथोक्तांश्छिन्नासु भिन्नास्वथवा सिरासु॥३६॥
[3]कौब्ज्यं शरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च ।
चिराद् व्रणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं मनुजं व्यवस्येत्॥३७॥
शोफातिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च बलक्षयः पर्वसु भेदशोफौ ।
क्षतेषु सन्धिष्वचलाचलेषु स्यात् सन्धिकर्मोपरतिश्च लिङ्गम् ॥३८॥
घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्ववस्थासु न शान्तिरस्ति ।
तृष्णाऽङ्गसादौ श्वयथुश्च रुक्षः तमस्थिविद्धं मनुजं व्यवस्येत् ॥३९॥
यथास्वमेतानि विभावयेर्युलिङ्गानि मर्मस्वभिताडितेषु ।
स्पर्शं न जानाति विपाण्डुवर्णो यो मांसमर्मण्यभिताडितः स्यात्॥४०॥
[10]आत्मानमेवाथ जघन्यकारी शस्त्रेण यो हन्ति हि कर्म कुर्वन् ।
तमात्मवानात्महनं कुवैद्यं विवर्जयेदायुरभीप्समानः ॥ ४१ ॥
तिर्य्यक्प्रणिहिते शस्त्रे दोषाः [11]पूर्वमुदाहृताः ।
तस्मात् परिहरन् दोषान् कुर्याच्छस्त्रनिपातनम् ॥ ४२ ॥
मातरं पितरं पुत्रान् बान्धवानपि चातुरः ।
अप्येतानभिशङ्केत वैद्ये विश्वासमेति च ॥ ४३ ॥
[12]विसृजत्यात्मनाऽऽत्मानं न चैनं परिशङ्कते ।

---

न तु रोगविशेषः । १ दशार्धसंख्येषु = पञ्चसंख्येषु मर्मादिष्वित्यर्थः ।

२ अमर्मविद्धसिराऽऽदिलिङ्गमाह—**सुरेन्द्रेति ।** सुरेन्द्रगोपप्रतिमम् = इन्द्रगोपकीटसन्निभम् । ३ कौब्ज्यं = यत्राङ्गे स्नायुवेधस्तस्य वक्रता । ४ क्रियासु = उत्क्षेपणावक्षेपणप्रसारणाकुञ्चनलक्षणासु । ५ व्यवस्येत् = जानीयात् । ६ पर्वसु = सन्धिषु । ७ वक्ष्यति—"शाखासु हन्वोः कट्यां च चेष्टावन्तश्च सन्धयः । शेषास्तु सन्धयः सर्वे विज्ञेया हि स्थिरा बुधैः ॥" इति । ८ सन्धिकर्मणां यथाक्रममुन्नमनविनमनादीनां चालनापवर्तनादीनां चोपरतिर्विरतिः ।

९ अनुक्तस्य मांसमर्मणो विद्धलक्षणमाह—**स्पर्शमिति ।** १० आत्मानमेव = स्वाङ्गमेव । ११ पूर्वम् = अग्रोपहरणीयाध्याये । १२ विसृजति = स्वदेहमर्पयति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तस्मात् पुत्रवदेवैनं पालयेदातुरं भिषक् ॥ ४४ ॥
धर्मार्थौ कीर्तिमत्यर्थं सतां ग्रहणमुत्तमम् ।
प्राप्नुयात् स्वर्गवासञ्च हितमारभ्य कर्मणा ॥ ४५ ॥
[1]कर्मणा कश्चिदेकेन द्वाभ्यां कश्चित्त्रिभिस्तथा ।
विकारः साध्यते कश्चिच्चतुर्भिरपि कर्मभिः ॥ ४६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थानेऽष्टविधशस्त्रकर्मण्यो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

---

## षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः प्रनष्टशल्यविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
'शल' 'श्वल' आशुगमने धातुः । तस्य शल्यमिति रूपम् ॥ ३ ॥
तद्द्विविधं—शारीरमागन्तुकञ्च ॥ ४ ॥
सर्वशरीराबाधकरं शल्यं, तदिहोपदिश्यत इत्यतः शल्यशास्त्रम् ॥ ५ ॥
तत्र शारीरं रोमनखादि धातवोऽन्नमला दोषाश्च दुष्टाः । आगन्त्वपि शारीरशल्यव्यतिरेकेण यावन्तो भावा दुःखमुत्पादयन्ति ॥ ६ ॥
अधिकारो हि लोहवेणुवृक्षतृणशृङ्गास्थिमयेषु, तत्रापि विशेषतो लोहमयेष्वेव, विशसनार्थोपपन्नत्वाल्लोहस्य, लोहानामपि दुर्वा-

---

१ साध्यव्याधेरप्यनेककर्मसाध्यत्वमभिधत्ते—**कर्मणेति** । कर्मणा = छेद्यादिकेन स्नेहादिकेन वा कर्मणेत्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।**

---

## षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

२ शरीरान्तःप्रविष्टत्वेन द्रष्टुमयोग्यानां शल्यानामुपस्थितिविज्ञानमधिकृत्य कृतोऽध्यायः प्रनष्टशल्यविज्ञानीयस्तम् । ३ शलत्याशु गच्छति वेगेनान्तःशरीरमनुप्रविशतीति शल्यम् । 'शलेर्यत्' इत्यौणादिको यत्प्रत्ययः । ४ यत्किञ्चिद् वस्तुजातमाश्रनुप्रवेशि सत् सर्वशरीरं बाधते तच्छल्यमित्यर्थः । ५ भावाः = तृणकाष्ठपाषाणलोहलोष्टप्रभृतिपदार्थाः । ६ शल्येषु शस्त्रस्य प्राधान्यं दर्शयति—**अधिकार इति** । ७ वि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रत्वादणुमुखत्वाद् दूरप्रयोजनकरत्वाच्च शर एवाधिकृतः । स द्विविधः कर्णी । ऋक्षणश्च, प्रायेण विविधवृक्षपत्रपुष्पफलतुल्याकृतयो व्याख्याता व्यालमृगपक्षिवक्त्रसदृशाश्च ॥ ७ ॥

सर्वशल्यानान्तु महतामणूनां वा पञ्चविधो गतिविशेष ऊर्ध्वमधोऽर्वाचीनस्तिर्य्यगृजुरिति ॥ ८ ॥

तानि वेगक्षयात् प्रतिघाताद्वा त्वगादिषु व्रणवस्तुष्ववतिष्ठन्ते । धमनीस्रोतोऽस्थिवि[६]वरपेशीप्रभृतिषु वा शरीरप्रदेशेषु ॥ ९ ॥

तत्र[७] शल्यलक्षणमुच्यमानमुपधारय । तत्तु द्विविधं—सामान्यं वैशेषिकञ्च । श्यावं पिडकाऽऽचितं शोफवेदनावन्तं मुहुर्मुहुः शोणितास्राविणं बुद्बुदवदुन्नतं मृदुमांसञ्च व्रणं जानीयात् सशल्योऽयमिति । सामान्यमेतल्लक्षणमुक्तम् । वैशेषिकन्तु—त्वग्गते विवर्णः शोफो भवत्यायतः कठिनश्च । मांसगते शोफाभिवृद्धिः शल्यमार्गानुपसंरोहः पीडनासहिष्णुता चोषपाकौ च । पेश्यन्तरस्थेऽप्येतदेव चोषशोफवर्जम् । सिरागते सिराऽऽध्मानं सिराशूलं सिराशोफश्च । स्नायुगते स्नायुजालोत्क्षेपणं संरम्भश्चोग्रा रुक् च । स्रोतोगते स्रोतसां स्वकर्मगुणहानिः । धमनीस्थे सफेनं रक्तमीरयन्ननिलः सशब्दो निर्गच्छत्यङ्गमर्दः पिपासा हृल्लासश्च[१०] । अस्थिगते विविधवेदनाप्रादुर्भावः शोफश्च । अस्थिविवरगतेऽस्थिपूर्णताऽस्थितोदः[११] संहर्षो बलवांश्च । सन्धिगतेऽस्थिवच्चेष्टोपरमश्च[१२] कोष्ठगत

---

शसनार्थोपपन्नत्वात् = हिंसार्थोपयोगित्वादित्यर्थः । १ दुर्वारत्वात् = अप्रतिबन्धेनान्तःशरीरप्रवेशित्वात् । २ दूरप्रयोजनकरत्वात् = दूरादपि हिंसाकार्यसम्पादकत्वात् । ३ कर्णी = कर्णयुक्तः, वडिशवत्कण्टकाचितमुख इति यावत् । ऋक्षणः = अकर्णः ।

४ अधस्तादागतस्य शरस्योर्ध्वगतिविशेषः । उपरिष्टादागतस्य शरस्याधोगतिविशेषः । पश्चादागतस्य शरस्यार्वाचीनगतिविशेषः । पार्श्वाभ्यामागतस्य शरस्य तिर्यग्गतिविशेषः, अग्रदेशादागतस्य शरस्य ऋजुगतिविशेषः । ५ शल्यानि शरीरे कथं स्थितिं कुर्वन्तीति प्रतिपादयति—**तानीति** । ६ विवरशब्दस्य धमन्यादिभिस्त्रिभिः सम्बन्धः । पेशी = मांसखण्डः । ७ त्वगादिगतशल्यानां लक्षणान्याचष्टे—**तत्रेति** । ८ स्नायुजालोत्क्षेपणं = स्नायुसमूहोन्नमनमित्यर्थः । ९ संरम्भः = श्वयथुः । १० हृल्लासः = हृदयोत्क्लेदः; असकृच्छ्रीवनमिति यावत् । ११ संहर्षः = मारुतोपद्रवो रोमाञ्चप्रायो वेदनाविशेषः । १२ चे-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आटोपानाहौ मूत्रपुरीषाहारदर्शनञ्च व्रणमुखात्। मर्मगते मर्मविद्धैवश्चेष्टते। सूक्ष्मगतिषु शल्येष्वेतान्येव लक्षणान्यस्पष्टानि भवन्ति॥१०॥

महान्त्यल्पानि वा शुद्धदेहानामनुलोमसन्निविष्टानि रोहन्ति। विशेषतः कण्ठस्रोतःसिरात्वक्पेश्यस्थिविवरेषु। दोषप्रकोपव्यायामाभिघाताजीर्णेभ्यः प्रचलितानि पुनर्वाधन्ते॥ ११॥

तत्र, त्वक्प्रनष्टे स्निग्धस्विन्नायां मृन्माषयवगोधूमगोमयमृदितायां त्वचि यत्र संरम्भो वेदना वा भवति तत्र शल्यं विजानीयात्। स्यानघृतमृच्चन्दनकल्कैर्वा प्रदिग्धायां शल्योष्मणाऽऽशु विसरति घृतमुपशुष्यति वा लेपो यत्र तत्र शल्यं विजानीयात्। मांसप्रनष्टे स्नेहस्वेदादिभिः क्रियाविशेषैरविरुद्धैरातुरमुपपादयेत्। कर्शितस्य तु शिथिलीभूतमनवबद्धं क्षुभ्यमाणं यत्र संरम्भं वेदनां वा जनयति तत्र शल्यं विजानीयात्। कोष्ठास्थिसन्धिपेशीविवरेष्ववस्थितमेवमेव परीक्षेत। सिराधमनीस्रोतःस्नायुप्रनष्टे खण्डचक्रसंयुक्ते याने व्याधितमारोप्याशु विषमेऽध्वनि यायाद् यत्र संरम्भो वेदना वा भवति तत्र शल्यं जानीयात्। अस्थिप्रनष्टे स्नेहस्वेदोपपन्नान्यस्थीनि बन्धनपीडनाभ्यां भृशमुपाचरेद्यत्र संरम्भो वेदना वा भवति तत्र शल्यं जानीयात्। अस्थिप्रनष्टे स्नेहस्वेदोपपन्नान्यस्थीनि बन्धनपीडनाभ्यां भृशमुपाचरेद्यत्र संरम्भो वेदना वा भवति तत्र शल्यं विजानीयात्। सन्धिप्रनष्टे स्नेहस्वेदोपपन्नान् सन्धीन् प्रसरणाकुञ्च-

---

ष्टोपरमः = प्रसारणाकुञ्चनादीनां विरतिः। १ आनाहः = वातमूत्रमलाद्यवरोधः। २ अस्य सामान्यलक्षणं सङ्ग्रहे-"देहप्रसुप्तिर्गुरुता सम्मोहः शीतकामिता। स्वेदो मूर्च्छा वमिः श्वासो मर्मविद्धस्य लक्षणम्॥" इति। ३ किं सर्वाण्येव शल्यान्येवमाबाधकराणि भवन्तीत्याह—**महान्तीति**। ४ अनुलोमसन्निविष्टानि = सिराऽऽदेर्नातितरामुपघातित्वेन स्वल्पाबाधं सन्निविष्टानि। ५ अतोऽवश्यं तान्यप्याहरणार्थं विज्ञानीयानीति भावः। ६ त्वगादिप्रविष्टशल्यानां विज्ञानोपायं दर्शयति-**तत्रेति**। ७ संरम्भः = रागशोथाभिसम्भवः। ८ विसरति = द्रवीभावाद् विसर्पति। ९ वमनविरेचनादि संशोधनात्मकक्रियाविशेषैरित्यर्थः। १० क्षुभ्यमाणम् = आकुञ्चनप्रसारणयानारोहणव्यायामप्रतरणमर्दनादिक्रियाविशेषैः स्पन्द्यमानम्। ११ खण्डचक्रसंयुक्ते = भग्नचक्रसमन्विते याने रथे। १२ वि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नबन्धनपीडनैर्भृशमुपाचरेत्, यत्र संरम्भो वेदना वा भवति तत्र शल्यं विजानीयात्। मर्मप्रनष्टे त्वनन्यभावान्मर्मणामुक्तं परीक्षणं भवति ॥ १२ ॥

सामान्यलक्षणमपि च हस्तिस्कन्धाश्वपृष्ठपर्वतद्रुमारोहणधनुर्व्यायामद्रुतयाननियुद्धाध्वगमनलङ्घनप्रतरणप्लवनव्यायामैर्जृम्भोद्वारकासक्षवथुष्ठीवनहसनप्राणायामैर्वातमूत्रपुरीषशुक्रोत्सर्गैर्वा यत्र संरम्भो वेदना वा भवति तत्र शल्यं जानीयात् ॥ १३ ॥

भवन्ति चात्र।

यस्मिंस्तोदादयो देशे सुप्तता गुरुताऽपि च।
घट्टते बहुशो यत्र स्तूयते तुद्यतेऽपि च ॥ १४ ॥
आतुरश्चापि यं देशमभीक्ष्णं परिरक्षति।
संवाह्यमानो बहुशस्तत्र शल्यं विनिर्दिशेत् ॥ १५ ॥
अल्पाबाधमशूनञ्च नीरुजं निरुपद्रवम्।
प्रसन्नं मृदुपर्य्यन्तं निराघट्टमनुन्नतम् ॥ १६ ॥
एषण्या सर्वतो दृष्ट्वा यथामार्गं चिकित्सकः।
प्रसाराकुञ्चनान्नूनं निःशल्यमिति निर्दिशेत् ॥ १७ ॥
अस्थ्यात्मकं भज्यते तु शल्यमन्तश्च शीर्य्यते।
प्रायो निर्भुज्यते शार्ङ्गमायसञ्चेति निश्चयः ॥ १८ ॥

---

षमेऽध्वनि = निम्नोन्नतमार्गे। १ धनुराकर्षणजनितश्रमो धनुर्व्यायामः। २ नियुद्धं = बाहुयुद्धम्। 'नियुद्धं बाहुयुद्धे स्यात्' इत्यमरः। ३ प्लवनम् = उत्पतनम्। ४ उत्सर्गशब्दस्य वातादिचतुर्भिः सह सम्बन्धः। ५ घट्टते = चालयति। 'घट्टिते' इति पाठे चालिते सतीत्यर्थो बोध्यः। ६ संवाह्यमान = स्थानात्स्थानान्तरं नीयमानः, मृद्यमानो वा। ७ निःशल्यस्य लक्षणं दर्शयति—**अल्पाबाधमिति**। अल्पाबाधम् = अल्पदुःखमित्यर्थः। ८ नीरुजं = निर्गतशूलादिवेदनमित्यर्थः। ९ एषण्या = एतन्नामिकया लोहशलाकया। १० आहरणोपयोगिन्यन्तःशल्यावस्थां निर्दिशति—**अस्थ्यात्मकमिति**। अस्थीन्येवात्मा स्वरूपं यस्य तत्। भज्यते = खण्डशः स्फुट्यते। ११ शीर्यते = कणशः स्फुट्यते। १२ निर्भुज्यते = कुटलीभवति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वार्क्षवैणवतार्णानि निर्ह्रियन्ते तु नो यदि ।
पचन्ति रक्तं मांसञ्च क्षिप्रमेतानि देहिनाम् ॥ १९ ॥
कानकं राजतं ताम्रं रैतिकं त्रपुसीसकम् ।
चिरस्थानाद्विलीयन्ते पित्ततेजःप्रतापनात् ॥ २० ॥
स्वभावशीता मृदवो ये चान्येऽपीदृशा मताः ।
द्रवीभूताः शरीरेऽस्मिन्नेकत्वं यान्ति धातुभिः ॥ २१ ॥
विषाणदन्तकेशास्थिवेणुदारूपलानि तु ।
शल्यानि न विशीर्यन्ते शरीरे मृन्मयानि च ॥ २२ ॥
द्विविधं पञ्चगतिमत्त्वगादिव्रणवस्तुषु ।
विश्लिष्टं वेत्ति यः शल्यं स राज्ञः कर्तुमर्हति ॥ २३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने प्रनष्टशल्यविज्ञानीयो नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

## सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः शल्यापनयनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
शल्यं द्विविधम्-अवबद्धमनवबद्धञ्च ॥ ३ ॥

---

१ वार्क्षादिशल्यान्यनिर्हृतानि रक्तं मांसं च पचन्तीति कथयति—**वार्क्षेति**। २ सौवर्णादीनि शल्यान्यनिर्हृतानि कालान्तराद् विलीयन्त इति प्रतिपादयति—**कानकमिति**। ३ शृङ्गादीनि शल्यानि शरीरे न विशीर्यन्त इति वक्ति—**विषाणेति**। ४ वैद्यस्तुतिमाह—**द्विविधमिति**। द्विविधं = कर्णी श्रुत्पञ्चेति द्विप्रकारमित्यर्थः। पञ्चगतिमत् = ऊर्ध्वाधोऽर्वाचीनतिर्य्यग्ऋजुगतिकम्। ५ विश्लिष्टं = विविधप्रकारेण स्थितम्। ६ कर्तुं = प्रतिकर्तुम्, चिकित्सितुमिति यावत्।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षड्विंशतितमोऽध्यायः।**

---

### सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

७ प्रनष्टशल्यानि विज्ञाय कथमपनेयानीति शल्यापनयनीयं नामाध्यायमधिकरोति। शल्यानामपनयनं निर्हरणप्रकारमधिकृत्य कृतोऽध्यायः शल्यापनयनीयस्तम्। ८ विशेषेणासक्तमवबद्धम्। शिथिलरूपेणावस्थितमनवबद्धम्। अवबद्धमस्थ्यादा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तत्र[1] समासेनानवबद्धशल्योद्धरणार्थं पञ्चदश हेतून्[2] वक्ष्यामः । तद्यथा—स्वभाव[3]:, पाचनं, भेदनं, दारणं, पीडनं, प्रमार्जनं, निर्ध्मापनं, वमनं, विरेचनं, प्रक्षालनं, प्रतिमर्श[4]:, प्रवाहणम्, आचूषणम्, अयस्कान्तः, हर्षश्चेति ॥ ४ ॥

तत्र[5], अश्रुक्षवथूद्गारकासमूत्रपुरीषानिलैः स्वभाववलप्रवृत्तैर्नयनादिभ्यः पतति । मांसावगाढं शल्यमविदह्य[6]मानं पाचयित्वा प्रकोपात तस्य पूयशोणितवेगाद् गौरवाद् वा पतति । पक्वमभिद्यमानं भेदयेद्दारयेद् वा । भिन्नमनिरस्यमानं पीडनीयैः पीडयेत् पाणिभिर्वा। अणून्यक्ष्[7]णि शल्यानि परिषेचनाध्मा[8]पनैर्बालवस्त्रपाणिभिः प्रमार्जयेत् । आहारशेषश्लेष्महीनाणुशल्यानि श्वसनोत्कासनप्रधमनैर्निर्धमेत्[10] । [11]अन्नशल्यानि वमनाङ्गुलिप्रतिमर्शप्रभृतिभिः । विरेचनैः पक्वाशयगतानि[12] । व्रणदोषाशयगतानि[13] प्रक्षालनैः । वातमूत्रपुरीषग-

---

वतीवासक्तमिति सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्यम् । १ अत्रानवबद्धं नाम शल्यं सुखमपनीयत इति सूचीकटाहन्यायेन तावत् तत्परिहरणोपायानुपदिशन्नाह—**तत्रेति** । २ हेतून् = साधनानि उपायान् वा । ३ स्वभावः = प्रकृतिः, अतसीकुष्ठादिपाचनद्रव्यैरपक्वशल्यस्य पाकविधानम्, वृद्धिपत्रादिशस्त्रैर्विदारणम्, चिरबिल्वादिमिश्रकोक्तैरौषधैः स्फोटनम्, शाल्मल्यादिमिश्रकोक्तैर्द्रव्यैः शल्यनिःसारणम्, बालवस्त्रपाणिभिः प्रोञ्छनम्, पिप्पलीकट्फलादिचूर्णस्य नाड्या नासिकाऽन्तःप्रापणम्। ४ अङ्गुल्यादिनाऽवघर्षणम्, निकुन्थनम्, मुखशृङ्गादिश्चूषणम्, लौहाकर्षको मणिभेदः।

५ स्वभावादिपञ्चदशसाधनानां विषयमभिधत्ते—**तत्रेत्यादिना** । ६ अविदह्यमानम् = अपच्यमानम् । ७ अक्ष्णशल्यानि = इन्द्रियगतशल्यानि । ८ अक्षिषु मुखमारुतस्य प्रापणमाध्मापनम् । श्रीहाराणचन्द्रः—आध्मापनन्त्वत्र वायोर्निरोधेनोदरपरिपूरणम्, एतत्तु कर्णस्रोतःप्रविष्टानां पिपीलिकाऽऽदीनामाहरणार्थमुपदिश्यत इत्याह । ९ भुञ्जानस्य नासाऽन्तरादिस्थितमन्नमाहारशेषः, हीनानां पतितानां भ्रष्टानां शल्यानामल्पावयवा हीनाणुशल्यान्युच्यन्ते । सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्ये तु—लवमात्रेण कण्ठादावासक्तानि श्लेष्मणाऽरुधितान्यन्नादीनि ताम्बूलादीनि वा आहारश्लेष्महीनाणुशल्यानि। अत्र श्लेष्महीनेति विशेषणं तत्सम्पृक्तानां पैच्छिल्येन अनालम्बित्वादित्यनुसन्धेयमिति । १० निर्धमेत् = श्वसनादिभिर्वेगविशेषैर्निष्कासयेदित्यर्थः । ११ आमाशयेऽवस्थितानि शल्यान्यन्नशल्यानि । १२ पक्वाशयगतानि = ग्रहणीमारभ्य गुदपर्यन्तं महास्रोतस्यवस्थितानि शल्यानीत्यर्थः । १३ व्रणदोषः पूयः स एव शल्यमाशये गतानि, व्रणान्तरव-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भंसङ्गेषु प्रवाहणमुक्तम्। [1]मारुतोदकसविषरुधिरदुष्टस्तन्येष्वाचूषणमास्येन विषाणैर्वा। [2]अनुलोममनवबद्धमकर्णमनल्पव्रणमुखमयस्कान्तेन। हृद्यवस्थितमनेककारणोत्पन्नं शोकशल्यं हर्षेणेति॥ ५॥

[3]सर्वशल्यानान्तु महतामणूनां वा द्वावेवाहरणहेतू भवतः। [4]प्रतिलोमोऽनुलोमश्च॥ ६॥

[5]तत्र प्रतिलोममर्वाचीनमानयेत्, अनुलोमं पराचीनम्॥ ७॥

उत्तुण्डितं[6] छित्त्वा निर्घातयेच्छेदनीयमुखम्॥ ८॥

[7]छेदनीयमुखान्यपि कुक्षिवङ्क्षकक्षावङ्क्षणपर्शुकान्तरपतितानि च हस्तशक्यं यथामार्गेण हस्तेनैवापहर्त्तुं प्रयतेत॥ ९॥

---

स्थितानि पूयरूपशल्यानि जलादिप्रक्षालनैर्निस्सारयेदित्यर्थः।

१ मारुतोऽत्र पाणिमन्थेन दारितेऽस्थनि निरुद्धो वायुः। "निरुद्धेऽस्थनि वा वायौ पाणिमन्थेन दारिते। नाडीं दत्त्वाऽस्थनि भिषक् चूषयेत्पवनं बली॥" उदकं च कर्णस्रोतोगतम्। तथा चाष्टाङ्गहृदये—"कर्णेऽम्बुपूर्णे हस्तेन मथित्वा तैलवारिणि। क्षिपेदधोमुखं कर्णं हन्याद्वा चूषयेत वा॥" इति। २ अनुलोमम्=ऋजुस्थितम्। तथा चेङ्गमर्थमनुवदता वाग्भटेनाप्युक्तम्—"अयस्कान्तेन निष्कर्णं विवृतास्यमृजुस्थितम्।" इति। ३ शल्यानामनुलोमप्रतिलोमभेदेन द्विविधमाहरणोपायं दर्शयति—**सर्वेति**। ४ तत्प्रवेशमार्गेणैवाहरणं प्रतिलोमः। प्रवेशमार्गमन्तरा मार्गान्तरं विधाय तदाहरणमनुलोमः। ५ प्रतिलोमानुलोमयोर्विषयमाह—**तत्रेति**। अवन्तमवरमञ्चतीति 'विभाषाञ्चेरदिक् स्त्रियाम्' इति स्वार्थे खः। अर्वाचीनं=नातिदूरप्रविष्टं, प्रतिलोममानयेदित्यर्थः। परा बहुलमञ्चतीति पराचीनं दूरप्रविष्टम्, अनुलोममानयेदित्यर्थः।

६ ऊर्ध्वं निःसरन्मुखमिवोत्तुण्डितम्, निर्घातयेत्=हस्तेन मुद्गरादिना वेतस्ततश्चालयेत्, छेदनीयमुखं=छेदनार्हमुखम्, कण्टकखर्जूरीपत्रप्रभृतिकम्। एतेनोत्तुण्डितं छेदनीयमुखं परान्निर्गतमुखं छेद्यप्रदेशजटिलं च शल्यं पराचीनानुलोमाहरणविषय इत्युक्तं भवतीति डल्हणः। अत्र श्रीहाराणचन्द्रस्तु उत्तुण्डितमुद्गतकण्टकाचितमुखं, छिद्यतेऽनेनेति कृत्यल्युटोर्बाहुल्याच्छेदनीयं धारामुखे यस्येति छेदनीयमुखम्, तात्पर्यादर्वाचीनं शल्यं छित्त्वा निर्घातयेदानुलोम्येनाहरणार्थं पराचीनं कर्तुमिति शेषः। अत्र छित्त्वेति शल्यदैर्घ्यपरिणाहसंघर्षकृतोपतापशङ्काजिहासार्थमिदं छेदनं तावत्यंशे कर्तव्यं यावत्यंशे छिन्ने सुखं शल्यं पराचीनं भवितुमर्हतीति सुधियो मन्यन्ते इति व्याख्यातवान्। किन्त्वर्थद्वये विशेषमन्तरं नाभातीति विभावयन्तु। ७ छेदनीयमुखानि=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हस्तेनापहर्त्तुमशक्यं विशस्य[1] शस्त्रेण यन्त्रेणापहरेत्[2] ॥ १० ॥

भवति चात्र।

शीतलेन जलेनैनं[3] मूर्च्छन्तमवसेचयेत्।
संरक्षेदस्य मर्माणि मुहुराश्वासयेच्च तम् ॥ ११ ॥

ततः शल्यमुद्धृत्य निर्लोहितं व्रणं कृत्वा स्वेदार्हमग्निघृतप्रभृतिभिः संस्वेद्य[4] विदह्य प्रदिह्य सर्पिर्मधुभ्यां बद्ध्वाऽऽचारिकमुपदिशेत्[5]। सिरास्नायुविलग्नं शलाकादिभिर्विमोच्यापनयेत्[6]। श्वयथुग्रस्तवारङ्गं[7] समवपीड्य श्वयथुं; दुर्बलवारङ्गं कुशादिभिर्बद्ध्वा ॥ १२ ॥

हृदयमभितो[8] वर्त्तमानं शल्यं शीतजलादिभिरुद्वेजितस्यापहरेद् यथामार्गम्[9]। दुरुपहरमन्यतोऽपबाध्यमानं[10] पाटयित्वोद्धरेत् ॥ १३ ॥

[11]अस्थिविवरप्रविष्टमस्थिविदष्टं[12] वाऽवगृह्य पादाभ्यां यन्त्रेणापहरेदशक्यमेवं वा बलवद्भिः सुपरिगृहीतस्य यन्त्रेण ग्राहयित्वा शल्यवारङ्गं प्रविभुज्य[13] धनुर्गुणैर्बद्धैकतश्चास्य [14]पञ्चाङ्ग्यामुप-

---

तीक्ष्णधारामुखानि। १ विशस्य = शस्त्रेण छित्वा। यन्त्रप्रवेशनिरोधकं प्रदेशं शस्त्रेण छित्त्वेति चक्रः। २ अष्टाङ्गहृदये—"दृश्यं सिंहाहिमकर-वर्मिकर्कक्काननैः। अदृश्यव्रणसंस्थानाद् ग्रहीतुं शक्यते यतः ॥ कङ्कभृङ्गाह्वकुररशरारीवायसाननैः। सन्दंशाभ्यां त्वगादिस्थं तालाभ्यां सुषिरं हरेत् ॥ सुषिरस्थं तु नलकैः शेषं शेषैर्यथायथम्।" इति। ३ एनं = शल्यातुरमित्यर्थः।

४ संस्वेद्य = अतिनिस्सृतलोहितमवेदनं व्रणं सुखोष्णेन घृतेन तदितरमग्निना संस्वेद्येत्यर्थः। भोजोऽत्र विशेषयति—"अग्निकृत्या व्रणा ये तु तेष्वग्निमवचारयेत्। स्वेदयेत्सक्तुपिण्डीभिः स्वेदकृत्यान् समन्ततः ॥" इति। विदह्य = अग्निकृत्यान् व्रणान् दग्ध्वा; प्रदह्य = अस्वेद्यमतिस्रुतलोहितं च लेपयित्वा। ५ व्रणितोपासनीयोक्तमाचारिकमित्यर्थः। ६ प्रतिपत्तिसौकर्य्याय कांश्चिदपनयनप्रकारान् दर्शयति—**सिरेति**। ७ श्वयथुग्रस्तवारङ्गं = शोथग्रसितबाणमित्यर्थः। ८ हृदयमभितः = हृदयसमीपावस्थितम्। ९ यथामार्गं = येन मार्गेण प्रविष्टं तेनैव मार्गेण, प्रतिलोमविधिनाऽपहरेदित्यर्थः। १० अपबाध्यमानं = मर्मपीडाकारिशल्यमित्यर्थः। पाटयित्वा = स्थानान्तरे किञ्चिद्दारयित्वा। ११ अवबद्धशल्यस्य निर्हरणोपायं निर्दिशति—**अस्थीति**। १२ अस्थिविदष्टम् = अतिसंसक्तमित्यर्थः। १३ प्रविभुज्य = वक्रीकृत्य। १४ पञ्चानामङ्गानां चतुर्णां पादानां मुखसमाहितानां समाहारः पञ्चाङ्गी बन्धविशेषस्तत्रोपसंयतस्य बद्धस्य।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


संयतस्याश्वस्य वक्त्रकविके बध्नीयात्। अथैनं[1] कशया ताडयेद्यथोन्नामयन् शिरोवेगेन शल्यमुद्धरति। दृढां वा वृक्षशाखामवनम्य तस्यां पूर्ववद् बद्ध्वोद्धरेत्॥ १४॥

अदेशोत्तुण्डितं[2]मष्टीलाऽश्ममुद्गराणामन्यतमस्य प्रहारेण विचाल्य यथामार्गं[3]मेव यन्त्रेण॥ १५॥

यन्त्रेण विमृदितं[4]कर्णानि कर्णवन्त्यनाबाधकरदेशोत्तुण्डितानि पुरस्तादेव[5]॥ १६॥

जातुषे[6] कण्ठासक्ते कण्ठे नाडीं[7] प्रवेश्याग्नितप्ताञ्च शलाकां तयाऽवगृह्य शीताभिरद्भिः परिषिच्य स्थिरीभूतामुद्धरेत्॥ १७॥

अजातुषं जतुमधूच्छिष्टप्रलिप्तया शलाकया पूर्वकल्पनेत्येके॥१८॥

अस्थि[9]शल्यमन्यद्वा तिर्य्यक्कण्ठासक्तमवेक्ष्य केशोण्डुकं[10] दृढैकसूत्रबद्धं द्रवभक्तोपहितं पाययेदाकण्ठात्; पूर्वकोष्ठं च [11]वामयेत्। वमतश्च शल्यैकदेशसक्तं ज्ञात्वा सूत्रं सहसा त्वाक्षिपेत्; मृदुना वा दन्तधावनकूर्चकेनापहरेत् प्रणुदेद्वाऽन्तः। क्षतकण्ठाय च मधुसर्पिषी लेढुं प्रयच्छेत्त्रिफलाचूर्णं वा मधुशर्करावमिश्रम्॥ १९॥

---

१ एनम्=अश्वमित्यर्थः। २ कुक्ष्याद्यच्छेदनीयप्रदेशावस्थितोद्गतकर्णिकम्, अष्ठीलाश्म=वर्तुलाकारपाषाणखण्डम्। ३ यथामार्गं=प्रतिलोमविधिना। ४ विमृदितकर्णानि=सङ्कुचितकर्णिकं कृत्वा, कर्णवन्ति=कर्णवच्छल्यानि। ५ पुरस्तात्=अग्रतः प्रदेशे एव, प्रतिलोममेवेत्यर्थः। आकर्षयेदिति शेषः। ६ जातुषशल्यस्याहरणविधानमभिदधाति—**जातुष इति**। जातुषे=लाक्षामये। जतोर्विकारो जातुषम्, अण्प्रत्ययः पुगागमश्च। ७ नाडीं=कण्ठशल्यावलोकिनीं ताम्रादिरचितनलिकाम्। पुरा बालका लाक्षामयशल्यैः क्रीडन्तिस्म। तेषां प्रमादान्निगिलिते सत्ययं विधिरिति बोध्यम्। ८ स्थिरीभूतां=शीतजलावसेकेन दृढीभूतामित्यर्थः।

९ अस्थ्यादिशल्यस्यात्यन्तं कण्ठासक्तस्याहरणविधिमाह—**अस्थिशल्यमिति**। भोजनावसरे भोज्यपदार्थेषु मत्स्यादिप्राणिनामस्थिखण्डमस्थिशल्यमिति भावः। १० केशोण्डुकम्=उण्डुकसदृशबालरचितगेन्दुकम्। उण्डुकं परिणाममिलाश्रयः स्थूलक्षुद्रान्त्रयोरन्तरालस्थो गोलः, तथा च केशोऽयमुण्डुकमिवेति केशोण्डुकम्। वक्ष्यति—"उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधराकला।" इति। ११ वामयेत्=वमनं कारयेदित्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उदकपूर्णोदरमवाक्शिरसमवपीडयेद्धुनीयाद्वामयेद्वा भस्मराशौ वा निखनेदामुखात् ॥ २० ॥

ग्रासशल्ये तु कण्ठासक्ते निःशङ्कमनवबुद्धं स्कन्धे मुष्टिनाऽभिहन्यात्; स्नेहं मद्यं पानीयं वा पाययेत् ॥ २१ ॥

बाहुरज्जुलतापाशैः कण्ठपीडनाद्वायुः प्रकुपितः श्लेष्माणं कोपयित्वा स्रोतो निरुणद्धि लालास्रावं फेनागमनं संज्ञानाशं चापादयति। तमभ्यज्य संस्वेद्य शिरोविरेचनं तस्मै तीक्ष्णं दद्याद्रसञ्च वातघ्नं विदध्यादिति ॥ २२ ॥

भवन्ति चात्र।

शल्याकृतिविशेषांश्च स्थानान्यावेक्ष्य बुद्धिमान्।
तथा यन्त्रपृथक्त्वं च सम्यक् शल्यमथाहरेत् ॥ २३ ॥
कर्णवन्ति तु शल्यानि दुःखाहार्य्याणि यानि च।
आददीत भिषक् तस्मात्तानि युक्त्या समाहितः ॥ २४ ॥
एतैरुपायैः शल्यं तु नैव निर्यात्यते यदि।
मत्या निपुणया वैद्यो यन्त्रयोगैश्च निर्हरेत् ॥ २५ ॥
शोथपाकौ रुजश्चोग्राः कुर्याच्छल्यमनिर्हृतम्।
वैकल्यं मरणं चापि तस्माद् यत्नाद्विनिर्हरेत् ॥ २६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने शल्यापनयनीयो नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

---

१ उदरान्तर्निविष्टजलाहरणोपायमाह—**उदकेति**। २ धुनीयात्=दोलयेत्। अरुणदत्तः—'उदकपूर्णस्य चक्राद्यारोपणेनोदकनिस्सारः कार्य' इति। ३ ग्रासः शल्यमिवेति ग्रासशल्यं तस्मिन्। ४ अनवबुद्धं=स्कन्धे मामयं हनिष्यतीति बुद्धिविषयमतिक्रान्तम्; सहसेत्यर्थः। ५ बाहुरज्जुलताऽऽदिपाशपीडितकण्ठप्रकुपितवायुश्लेष्मापहरणोपायमुपपादयति—**बाह्विति**। ६ शल्याकृतीनामानन्त्यादनुक्तोपायं स्वयमूहनार्थमुपदिशति—**शल्येति**। ७ अनिर्हृतशल्यदोषानाह—**शोथेति**।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तविंशतितमोऽध्यायः।**

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो विपरीताविपरीतव्रणविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

फलाग्निजलवृष्टीनां पुष्पधूमाम्बुदा यथा ।
ख्यापयन्ति भविष्यत्त्वं तथा रिष्टानि पञ्चताम् ॥ ३ ॥
तानि सौक्ष्म्यात् प्रमादाद्वा तथैवाशुव्यतिक्रमात् ।
गृह्यन्ते नोद्गतान्यज्ञैर्मुमूर्षोर्न त्वसम्भवात् ॥ ४ ॥
ध्रुवन्तु मरणं रिष्टे ब्राह्मणैस्तत् किलामलैः ।
रसायनतपोजप्यतत्परैर्वा निवार्य्यते ॥ ५ ॥
नक्षत्रपीडा बहुधा यथा कालं विपच्यते ।

---

## अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

१ विपरीता विकृता अविपरीताः प्राकृताश्च ते व्रणास्तेषां विज्ञानमधिकृत्य कृतोऽध्यायो विपरीताविपरीतव्रणविज्ञानीयस्तम् । २ अरिष्टानां मरणसूचकत्वं निदर्शयति—**फलेति** । यथा पुष्पादयो फलादीनां भविष्यत्त्वं सूचयति, तथैव रिष्टानीति भावः । रिष्टमायुष्यसूचकलिङ्गम् । तदाह—"क्रियापथमतिक्रान्ताः केवलं देहमाश्रिताः । दोषाः कुर्वन्ति यल्लिङ्गं तदरिष्टं निरुच्यते ॥" इति । रिष्टमेवारिष्टम् । तदाह भावप्रकाशे—"रोगिणो मरणं यस्मादवश्यंभावि लक्ष्यते । तल्लक्षणमरिष्टं स्याद्रिष्टं चापि तदुच्यते ॥" इति । ३ आशुव्यतिक्रमात् = आश्वेवान्यथाभावात् ; यदैवारिष्टमुत्पन्नं तदैव मरणादिरित्यर्थः । ४ उद्गतानि = उपस्थितान्यपि तानि रिष्टानि । ५ "अप्येवं तु भवेत् पुष्पं फलेनाननुबन्धि यत् । फलं चापि भवेत् किञ्चिद्यस्य पुष्पं न पूर्वजम् ॥ न त्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते । मरणं चापि तन्नास्ति यन्नारिष्टपुरस्सरम् ॥" इत्यात्रेयः ।

६ आगमप्रामाण्यमङ्गीकुर्वन् महर्षिसुश्रुतो लौकिकेन वैदिकेन च कर्मविशेषेण रिष्टेऽपि मृत्योर्व्यभिचारं दर्शयति—**ब्राह्मणैरिति** । ७ अमलैः = रागद्वेषादिमानसदोषरहितैः, रजस्तमोवर्जितैरिति यावत् । ८ कालान्तरेऽरिष्टपीडां निदर्शयति—**नक्षत्रेति** । नक्षत्रविशेषे ग्रहावस्थानजन्या पीडा नक्षत्रपीडेत्यर्थः । ९ कालं = पञ्चविंशवर्षादौ । कालादिति पाठे कालविशेषमाश्रित्येत्यर्थः । विपच्यते = फलति । उक्तं च पराशरेण—"होरायां नवमे सूर्यः सप्तमे च शनैश्चरः । एकादशे गुरुः शुक्रो मासमेकं न जीवति ॥ अशुभे लग्नसम्प्राप्ते षष्ठाष्टमे निशाकरः । शनैश्चरस्तु बन्धुस्थो द्विमासे मृत्युमृच्छति ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तथैवारिष्टपाकं[1] च ब्रुवते बहवो जनाः ॥ ६ ॥
असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन् गतायुषः ।
अतोऽरिष्टानि यत्नेन लक्षयेत् कुशलो भिषक् ॥ ७ ॥
गन्धं[3]वर्णरसादीनां विशेषाणां स्वभावं[4]तः ।
वैकृतं यत् तदाचष्टे व्रणिनः पक्वलं[5]क्षणम् ॥ ८ ॥
कटु[6]स्तीक्ष्णश्च विस्रश्च गन्धस्तु पवनादिभिः ।
लोहगन्धिस्तु रक्तेन व्याभिश्रः सान्निपातिकः ॥ ९ ॥
लाजा[7]तसीतैलसमाः किञ्चिद्विस्राश्च गन्धतः ।
ज्ञेयाः प्रकृतिगन्धाः स्युरतोऽन्यद्गन्धवैकृतम् ॥ १० ॥
मद्यागुर्वाज्यसुमनःपद्मचन्दनचम्पकैः ।
सगन्धा दिव्यगन्धाश्च मुमूर्षूणां व्रणाः स्मृताः ॥ ११ ॥
श्वाजिमूषिकध्वाङ्क्षपूतिवल्लूरमत्कुणैः ।
सगन्धाः पङ्कगन्धाश्च भूमिगन्धाश्च गर्हिताः ॥ १२ ॥
ध्यामकुङ्कुमकङ्कुष्ठसवर्णाः पित्तकोपतः ।
न दह्यन्ते न चूष्यन्ते भिषक् तान् परिवर्जयेत् ॥ १३ ॥
कण्डूमन्तः स्थिराः श्वेताः स्निग्धाः कफनिमित्ततः ।
दूयन्ते वाऽपि दह्यन्ते भिषक् तान् परिवर्जयेत् ॥ १४ ॥
कृष्णास्तु ये तनुस्रावा वातजा मर्मतापिनः ।
स्वल्पामपि न कुर्वन्ति रुजं तान् परिवर्जयेत् ॥ १५ ॥
क्ष्वेडन्ति[10] घुर्घुरायन्ते ज्वलन्तीव च ये व्रणाः ।

---

१ पाकं = भोगम्, फलमित्यर्थः । तथा च पातञ्जलसूत्रम्—"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः" इति । २ अरिष्टापरिज्ञानदोषं दर्शयति—**असिद्धिमिति** । धर्मार्थकामादीनां हानिरसिद्धिः । ३ प्रकृतमनुसन्धाय व्रणस्यारिष्टान्याह—**गन्धेति** । ४ स्वभावतः = दोषाणां प्रकृतितः । ५ पक्वलक्षणं = पातलक्षणम्, विनाशोन्मुखतायाः लक्षणमित्यर्थः । 'स्याद्विनाशोन्मुखं पक्वम्' इत्यमरः । यथा पक्वं फलं पतत्येव, तथाऽऽवापि व्रणो पतत्येवेति भावः । ६ प्राकृतव्रणगन्धं वर्णयति—**कटुरिति** । ७ लाजासीतैलसमास्त्रयो गन्धाः क्रमेण वातपैत्तिक—वातश्लैष्मिक—पित्तश्लैष्मिका द्वन्द्वजा ज्ञेयाः । ८ वैकृतव्रणगन्धान् दर्शयति—**अत इति** । ९ विकृतवर्णानभिधत्ते—**ध्यामेति** । ईषत्कृष्णो ध्यामः । १० शब्दवैकृतमाह—**क्ष्वेडन्तीति** । क्ष्वेडन्ति = खटखटाशब्दं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वङ्मांसस्थाश्च पवनं सशब्दं विसृजन्ति ये ॥ १६ ॥
ये च मर्मस्वसम्भूता भवन्त्यत्यर्थवेदनाः ।
दह्यन्ते चान्तरत्यर्थं बहिः शीताश्च ये व्रणाः ॥ १७ ॥
दह्यन्ते बहिरत्यथ भवन्त्यन्तश्च शीतलाः ।
शक्तिध्वजरथा कुन्तवाजिवारणगोवृषाः ॥ १८ ॥
येषु चाप्यवभासेरन् प्रासादाकृतयस्तथा ।
चूर्णावकीर्णा इव ये भान्ति वा न च चूर्णिताः ॥ १९ ॥
प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः ।
प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषां च मर्मसु ॥ २० ॥
क्रियाभिः सम्यगारब्धा न सिध्यन्ति च येव्रणाः ।
वर्जयेत्तान् भिषक् प्राज्ञः संरक्षन्नात्मनो यशः ॥ २१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने विपरीताविपरीतव्रणविज्ञानीयो नाम अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

---

## एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो विपरीताविपरीतस्वप्ननिदर्शनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

---

कुर्वन्तीत्यर्थः । 'वंशशल्ये सिंहनादे श्वेडा ना तु ध्वनौ विषे ।' इति रुद्रः । १ स्पर्शवैकृतमभिदधाति—**दह्यन्त इति** । २ आकृतिवैकृतमाचष्टे—**शक्तीति** । ३ प्रसङ्गतो व्रणानामुपद्रवविशेषैरसाध्यत्वं प्रतिपादयति—**प्राणेति** । शक्तिलक्षणबलक्षयः प्राणक्षयः । उपचयलक्षणबलक्षयो मांसक्षयः । ४ येषां व्रणानां मर्मस्ववस्थितिस्तेऽसाध्या इत्यर्थः । ५ अनुक्तमप्यशेषारिष्टमुपसंहरति—**क्रियाभिरिति** । ६ वर्जयेत् = परित्यजेत् । अन्यथा शरीरावस्थितधातूनां शक्तिक्षये भेषजादिभिश्चिकित्सितेऽपि भिषजोऽयश एवेति ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।**

---

### एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

६ विपरीतानामनिष्टाशंसित्वेनाशस्तानाम्, अविपरीतानामिष्टाशंसित्वेन प्रशस्तानां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दूतदर्शनसम्भाषा वेषाश्चेष्टितमेव च ।
ऋक्षं वेला तिथिश्चैव निमित्तं शकुनोऽनिलः ॥ ३ ॥
देशो वैद्यस्य वाग्देहमनसाञ्च विचेष्टितम् ।
कथयन्त्यातुरगतं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ ४ ॥
पाखण्डाश्रमवर्णानां सपक्षाः कर्मसिद्धये ।
त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्मविपत्तये ॥ ५ ॥
नपुंसकं स्त्री बहवो नैककार्या असूयकाः ।
गर्दभोष्ट्ररथप्राप्ताः प्राप्ता वा स्युः परम्पराः ॥ ६ ॥
वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ।
पाशदण्डायुधधराः पाण्डुरेतरवाससः ॥ ७ ॥
आर्द्रजीर्णाप्सव्यैकमलिनोध्वस्तवाससः ।
न्यूनाधिकाङ्गा उद्विग्ना विकृता रौद्ररूपिणः ॥ ८ ॥
रूक्षनिष्ठुरवादाश्चाप्यमाङ्गल्याभिधायिनः ।
छिन्दन्तस्तृणकाष्ठानि स्पृशन्तो नासिकां स्तनम् ॥ ९ ॥

---

स्वप्नानां निदर्शनमुदाहरणमनुक्तार्थज्ञानायैकदेशेन कथनं, तदधिकृत्य कृतोऽध्यायो विपरीताविपरीतस्वप्ननिदर्शनीयस्तम् । स्वप्नशब्दानन्तरं लुप्तादिशब्दनिर्देशान्नक्षत्रवेलातिथिनिमित्तशकुनानिलदेशवैद्यवाग्देहमनश्चेष्टा अपि गृह्यन्ते । तथा च स्वप्नादीनां निदर्शनमधिकृत्येत्याद्यवसेयम् । १ निर्देश्यदूतादीन् दर्शयति—**दूतेति** । दूतस्य दर्शनसम्भाषणवेशचेष्टितानीति बोध्यम् । २ आर्द्रादिनक्षत्राणीत्यर्थः । ३ निमित्तम्=उदककुम्भसर्पादिदर्शनम् । ४ तत्रादौ दूतदर्शनमधिकृत्य वक्ति—**पाखण्डेति** । पाखण्डाः=वेदबाह्या बौद्धकापालिकाः । आश्रमाः सन्त्येषामित्यर्चि आश्रमाः, आश्रमस्था ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थयतयः । वर्णा ब्राह्मणादयः । सपक्षाः—समानः पक्षो येषां ते सपक्षाः । यथा पाखण्डानां पाखण्डाः, ब्रह्मचारिणां ब्रह्मचारिण इत्येवमादयः । ५ नैककार्याः=नैकस्मिन् दौत्यादिकार्ये एव नियुक्ता इत्यर्थः । ६ परम्पराः=पङ्क्तिं कृत्वा, प्राप्ता वा स्युः=आगता वा भवेयुः । असूयकाः=गुणेष्वपि दोषारोपकारकाः । ७ ये=दूताः, उपसर्पन्ति=वैद्यसमीपमागच्छन्ति ।

८ दूतवेषविषयेऽभिधत्ते—**पाशेति** । ९ शुक्लेतरकृष्णपीतादिवस्त्रा इत्यर्थः । 'शुक्लशुभ्रशुचिश्वेतविशदश्वेतपाण्डुराः' इत्यमरः । १० अपसव्यं=प्राचीनावीताकृतिनाऽऽश्रितमुत्तरीयम् । ११ दूतसम्भाषणविषये ब्रवीति—**रूक्षेति** । १२ दूतचेष्टितसम्बन्धे-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वस्त्रान्तानामिकाकेशनखरोमदशास्पृशः ।
स्रोतोऽवरोधहृद्दण्डमूर्धोरःकुक्षिपाणयः ॥ १० ॥
कपालोपलभस्मास्थितुषाङ्गारकराश्च ये ।
विलिखन्तो महीं किञ्चिन्मुञ्चन्तो लोष्टभेदिनः[1] ॥ ११ ॥
तैलकर्दमदिग्धाङ्गा रक्तस्रगनुलेपनाः ।
फलं पक्वमसारं वा गृहीत्वाऽन्यच्च तद्विधम् ॥ १२ ॥
नखैर्नखान्तरं वाऽपि करेण चरणं तथा ।
उपानच्चर्म्महस्ता वा विकृतव्याधिपीडिताः ॥ १३ ॥
वामाचारा[2] रुदन्तश्च श्वासिनो विकृतेक्षणाः ।
याम्यां दिशं प्राञ्जलयो विषमैकपदे[3] स्थिताः ॥ १४ ॥
वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ।
दक्षिणेन[4]ाभिमुखं देशे त्वशुचौ वा हुताशनम् ।
ज्वलयन्तं पचन्तं वा क्रूरकर्म्मणि[5] चोद्यतम् ॥ १५ ॥
नग्नं भूमौ शयानं वा वेगोत्सर्गेषु वाऽशुचिम् ।
प्रकीर्णकेशमभ्यक्तं स्विन्नं विक्लवमेव च ॥ १६ ॥
वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ।
वैद्यस्य[6] पैत्र्ये दैवे वा कार्य्ये चोत्पात[7]दर्शने ॥ १७ ॥
मध्याह्ने चार्द्धरात्रे वा सन्ध्योः कृत्तिका[8]सु च ।
आर्द्राऽश्लेषामघामूलपूर्वासु भरणीषु च ॥ १८ ॥
चतुर्थ्यां[9] वा नवम्यां वा षष्ठ्यां सन्धिदिनेषु च ।
वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ १९ ॥

---

ऽभिदधाति—**छिन्दत इति** । १ लोष्टभेदिनः = काष्ठलोष्टादिमर्द्दनशीलाः, "काष्ठलोष्टादिमर्द्दिनम्" इति तन्त्रान्तरीयस्मरणात् । २ वामाचाराः = अधमव्यवहारा इत्यर्थः । ३ एकपदे स्थिताः = एकस्मिन् स्थाने दण्डायमाना इत्यर्थः । ४ दूतागमनकालेऽनुक्तमपि 'चेष्टितमेव च' इति चकारेण भिषक्चेष्टितादि निर्दिशति—**दक्षिणेति** । ५ पशुवधादिक्रूरकर्मणीत्यर्थः । ६ वेलामधिकृत्य कथयति—**वैद्यस्येति** । ७ उत्पाता भूमिकम्पादयो दृश्यन्तेऽत्रेत्युत्पातदर्शनं तस्मिन्, भूमिकम्पाद्युपलक्षितकाले इत्यर्थः । ८ नक्षत्रमधिकृत्य वक्ति—**कृत्तिकास्विति** । ९ तिथिविषयेऽभिदधाति—**चतुर्थ्यामिति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्विन्नाभितप्ता मध्याह्ने ज्वलनस्य समीपतः ।
गर्हिताः पित्तरोगेषु दूता वैद्यमुपागताः ॥ २० ॥
त एव कफरोगेषु कर्म्मसिद्धिकराः स्मृताः ।
एतेन शेषं व्याख्यातं बुद्ध्वा संविभजेत्तु तत् ॥ २१ ॥
रक्तपित्तातिसारेषु प्रमेहेषु तथैव च ।
प्रशस्तो जलरोधेषु दूतवैद्यसमागमः ॥ २२ ॥
विज्ञायैवं विभागं तु शेषं बुध्येत पण्डितः ।
क्लवासाः शुचिर्गौरः श्यामो वा प्रियदर्शनः ॥ २३ ॥
स्वस्यां जातौ स्वगोत्रो वा दूतः कार्य्यकरः स्मृतः ।
गोयानेनागतस्तुष्टः पादाभ्यां शुभचेष्टितः ॥ २४ ॥
स्मृतिमान् विधिकालज्ञः स्वतन्त्रः प्रतिपत्तिमान् ।
अलङ्कृतो मङ्गलवान् दूतः कार्य्यकरः स्मृतः ॥ २५ ॥
स्वस्थं प्राङ्मुखमासीनं समे देशे शुचौ शुचिम् ।
उपसर्पति यो वैद्यं स च कार्य्यकरः स्मृतः ॥ २६ ॥
मांसोदकुम्भातपत्रविप्रवारणगोवृषाः ।

---

१ विशिष्टरोगेषु विशिष्टवेलादि दर्शयन् दूतवैद्यसमागमस्याप्रशस्तमाख्याति—**स्विन्नेति** ।

२ अष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"घृतोदकादिद्रवसमीपस्थमतिशीतस्तम्भः प्रत्युषसि श्लेष्मामयेऽशुभः पित्तमये तु शुभः ।" इति । अरुणदत्तः—"वातरोगे परुषरूक्षसिकतापाषाणशर्करादिविशिष्टे देशे काले साहाह्ने दूतोऽशुभः, विपरीतस्तु शुभः ।" इति । ३ दूतवैद्यसमागमस्य प्राशस्त्यं प्रस्तूयते—**रक्तेति** । ४ जलरोधेषु=जलनिरोधयुक्तप्रदेशेषु । अष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"तथा सेतुबन्धे छर्दिमेहातिसारादिष्वशुभः, सेतुबन्धे तु शुभः शेषं बुध्येत ।" इति । ५ शेषम्=उदावर्तमूत्रकृच्छ्रादौ जलवेगदर्शनादिकस्य प्राशस्त्यं जानीयादित्यर्थः । ६ प्रशस्तदूतदर्शनं निर्दिशति—**शुक्लेति** । ७ वृषभवाह्यशकटेन, न तु गौरेव यानं तेन; "गवां तु यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम्" इति मनूक्तेः । ८ कथम्भूतं वैद्यमुपसर्पन् दूतः कार्यसिद्धिकरो भवतीत्याह—**स्वस्थमिति** ।

९ शुभाशुभशकुनान् दर्शयति—**मांसोदेति** । उदकुम्भशब्देन पूर्णो रिक्तश्च घटो ग्राह्यः । उक्तं च—"रत्नानां पूर्णकुम्भानाम्" इति, तथा—"चिकित्सकस्य चौरस्य तथैवाध्ययनार्थिनः । प्रशस्तमाहुर्भिषजो जलार्थे रिक्तकं घटम् ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शुक्लवर्णाश्च[1] पूज्यन्ते प्रस्थान दर्शनं गताः ॥ २७ ॥
स्त्री पुत्रिणी सवत्सा गौर्वर्धमाना[2] स्वलङ्कृता ।
कन्या मत्स्याः फलं चामं स्वस्तिकं[3] मोदका दधि ॥ २८ ॥
हिरण्याक्षतपात्रं वा रत्नानि सुमनो[4] नृपः ।
अप्रशान्तोऽनलो[5] वाजी हंसश्चाषः शिखी तथा ॥ २९ ॥
ब्रह्मदुन्दुभिजीमूतशङ्खवेणुरथस्वनाः ।
सिंहगोवृषनादाश्च ह्रेषितं गजबृंहितम् ॥ ३० ॥
शस्तं हंसरुतं नृणां कौशिकं[6] चैव वामतः ।
प्रस्थाने यायिनः श्रेष्ठा वाचश्च हृदयङ्गमाः ॥ ३१ ॥
पत्रपुष्पफलोपेतान् सक्षीरान्नीरुजो द्रुमान् ।
आश्रिता वा नभोवेश्मध्वजतोरणवेदिकाः ॥ ३२ ॥
दिक्षु शान्तासु वक्तारो मधुरं पृष्ठतोऽनुगाः ।
वामा वा दक्षिणा वाऽपि शकुनाः कर्मसिद्धये ॥ ३३ ॥
शुष्केऽशनिहतेऽपत्रे[7] वल्लीनद्धे[8] सकण्टके ।
वृक्षेऽथवाऽश्मभस्मास्थिविट्तुषाङ्गारपांशुषु ॥ ३४ ॥
चैत्यवल्मीकविषमस्थिता दीप्तखरस्वराः ।
पुरतो दिक्षु दीप्तासु वक्तारो नार्थसाधकाः ॥ ३५ ॥

---

१ शुक्लवर्णाः पदार्थाः कार्पासास्थितक्रभस्मक्षारादिव्यतिरिक्ताः सुमनोदध्यक्षतमौक्तिकादय इति डल्हणः । २ वर्धमाना=अङ्कुरितयौवना । चरकः—"कन्यानां वर्धमानानां बद्धस्यैकपशोस्तथा ।" इति । वर्धमानमलङ्कृतेति पाठे 'वर्धमानः शरावः' इति डल्हणः । तत्र 'वर्धमानः प्रश्नभेदे शरावैरण्डविष्णुषु ।" इति मेदिन्यादिकोशे पुंस्त्ववर्धमानशब्दस्यैव शरावोऽर्थः । केचित्—'वर्धमाना इति शरावाः, ते च स्वलङ्कृता इति आलेपनादिना मण्डिताः' इति अन्ये त्वङ्कारोपितं कुमारं कुमारीं वा वर्धमानमाहुरिति चक्रः ।

३ स्वस्ति शुभाय यत्तत् स्वस्तिकं मुक्तादामविशेषः, तण्डुलपिष्टं वा, "स्वस्तिकं प्राङ्मुखं यत्स्यादलिन्दानुगतं भवेत्" इत्याद्युक्तलक्षणं मण्डलं वा । ४ सुमनः=वैद्यस्य शोभनमानसमित्यर्थः । 'सुमना' इति पाठान्तरम् । ५ अप्रशान्तः=प्रज्वलितः । ६ कौशिकस्येदं कौशिकम्, उलूकरुतं वामभागे इत्यर्थः । 'महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः' इत्यमरः ।

७ अशुभशकुनान्याह—**शुष्क इति** । ८ वल्लीनद्धे=लतोद्ग्रथित इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पुन्नामानः खगा वामाः स्त्रीसंज्ञा दक्षिणाः शुभाः ।
दक्षिणाद्वामगमनं प्रशस्तं श्वशृगालयोः ।
वामं नकुलचाषाणां नोभयं शशसर्पयोः ॥ ३६ ॥
भासकौशिकयोश्चैव न प्रशस्तं किलोभयम् ।
दर्शनं वा रुतं चापि न गोधाकृकलासयोः ॥ ३७ ॥
दूतैरनिष्टैस्तुल्यानामशस्तं दर्शनं नृणाम् ।
कुलत्थतिलकार्पासतुषपाषाणभस्मनाम् ॥ ३८ ॥
पात्रं नेष्टं तथाऽङ्गारतैलकर्दमपूरितम् ।
प्रसन्नेतरमद्यानां पूर्णं वा रक्तसर्षपैः ॥ ३९ ॥
शवकाष्ठपलाशानां शुष्काणां पथि सङ्गमाः ।
नेष्यन्ते पतितान्तस्थदीनान्धरिपवस्तथा ॥ ४० ॥
मृदुः शीतोऽनुकूलश्च सुगन्धिश्चानिलः शुभः ।
खरोष्णोऽनिष्टगन्धश्च प्रतिलोमश्च गर्हितः ॥ ४१ ॥
ग्रन्थ्यर्बुदादिषु सदा छेदशब्दस्तु पूजितः ।
विद्रध्युदरगुल्मेषु भेदशब्दस्तथैव च ॥ ४२ ॥
रक्तपित्तातिसारेषु रुद्धशब्दः प्रशस्यते ।
एवं व्याधिविशेषेण निमित्तमुपधारयेत् ॥ ४३ ॥
तथैवाक्रुष्टहाकष्टमाक्रन्दरुदितस्वनाः ।
छर्द्यां वातपुरीषाणां शब्दो वै गर्दभोष्ट्रयोः ॥ ४४ ॥
प्रतिषिद्धं तथा भग्नं क्षुतं स्खलितमाहतम् ।
दौर्मनस्यञ्च वैद्य य यात्रायां न प्रशस्यते ॥ ४५ ॥

---

'वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः । १ भासः = गृध्रः, 'भासो गृध्रे कुक्कुटे च' इति विश्वः २ अन्तस्थाः = चाण्डालाः । ३ शुभाशुभवायुमाह—**मृदुरिति** । ४ प्रतिलोमः = अभिमुख इत्यर्थः ।

५ वैद्यस्य यात्रायां रोगविशेषे शुभशब्दान्निर्दिशति—**ग्रन्थीति** । ६ शर्करादिव्याधिभेदेन निमित्तम्, आहरणादिशब्दशुभाशुभम् । ७ सामान्यं शब्दनिमित्तमुपदिशति—**तथवेति** । ८ यात्रायां वैद्यस्याप्यशस्तं वागादिचेष्टितं वक्ति—**प्रतिषि-**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रवेशेऽप्येतदुद्देशादवेक्ष्यं च तथाऽऽतुरे ।
प्रतिद्वारं गृहे वाऽस्य पुनरेतन्न गण्यते ॥ ४६ ॥
केशभस्मास्थिकाष्ठाश्मतुषकार्पासकण्टकाः ।
खट्वोर्ध्वपादा मद्यापो वसा तैलं तिलास्तृणम् ॥ ४७ ॥
नपुंसकव्यङ्गभग्नमुण्डासिताम्बराः ।
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा नेष्यन्ते दर्शनं गताः ॥ ४८ ॥
भाण्डानां सङ्करस्थानां स्थानात् सञ्चरणं तथा ।
निखातोत्पाटनं भङ्गः पतनं निर्गमस्तथा ॥ ४९ ॥
वैद्यासनावसादो वा रोगी वा स्यादधोमुखः ।
वैद्यं सम्भाषमाणोऽङ्गं कुड्यमास्तरणानि वा ॥ ५० ॥
प्रमृज्याद्वा धुनीयाद्वा करौ पृष्ठं शिरस्तथा ।
हस्तं चाकृष्य वैद्यस्य न्यसेच्छिरसि चोरसि ॥ ५१ ॥
यो वैद्यमुन्मुखः पृच्छेदुन्माष्टि स्वाङ्गमातुरः ।
न स सिध्यति वैद्यो वा गृहे यस्य न पूज्यते ॥ ५२ ।
भवने पूज्यते वाऽपि यस्य वैद्यः स सिध्यति ।
शुभं शुभेषु दूतादिष्वशुभं ह्यशुभेषु च ॥ ५३ ॥
आतुरस्य ध्रुवं तस्माद् दूतादीन् लक्षयेद्भिषक् ।
स्वप्नानतः प्रवक्ष्यामि मरणाय शुभाय च ॥ ५४ ॥

---

द्धमिति । १ आतुरगृहे प्रथमप्रवेशे वैद्ययात्राविधिमतिदिशति—**प्रवेश इति** । २ यात्रोन्मुखस्यातुरगृहगतस्य च वैद्यस्य विपरीतं निमित्तं दर्शयति—**केशेत्यादिना** । ३ "अष्टाभिः काष्ठखण्डैश्च कृता खट्वेति कथ्यते" इत्युक्तलक्षणा शय्या सा ऊर्ध्वपादा चेत् । ऊर्ध्वपादः शरभाख्यो गजाकृतिः पशुभेद इति श्रीहाराणचन्द्रः । ४ मुण्डाः= मुण्डितशिरसः ।

५ सङ्कीर्यन्ते भाण्डान्यत्रेति सङ्करो भाण्डाधारस्तत्रस्थानां भाण्डानां सञ्चरणं, पतनमित्यर्थः । तथा चोक्तं चरके—"आतुरस्य गृहे यस्य भिद्यन्ते वा पतन्ति वा । अतिमात्रममात्राणि दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥" इति । ६ निखातः=भूम्यादेः खननम् । ७ निर्गमः=पूर्णकुम्भादिमाङ्गलिकवस्तूनां गृहाभ्यन्तरतो गमनम् । तथा च विपरीतनिमित्ताधिकारे चरकः—"प्रवेशे पूर्णकुम्भाग्निमृद्बीजफलसर्पिषाम् । वृषब्राह्मणरत्नान्नदेवतानां विनिर्गतिम् ॥" इति । ८ स्वप्नैः शुभाशुभज्ञानमुपदिशति—**स्वप्नानिति** ॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सुहृदो यांश्च पश्यन्ति व्याधितो वा स्वयं तथा ।
स्नेहाभ्यक्तशरीरस्तु करभव्यालगर्दभैः ॥ ५५ ॥
वराहैर्महिषैर्वाऽपि यो यायाद्दक्षिणामुखः ।
रक्ताम्बरधरा कृष्णा हसन्ती मुक्तमूर्द्धजा ॥ ५६ ॥
यं वा कर्षति वृद्धा स्त्री नृत्यन्ती दक्षिणामुखम् ।
अन्तावसायिभिर्यो वाऽऽकृष्यते दक्षिणामुखः[1] ॥ ५७ ॥
परिष्वजेरन् यं वाऽपि प्रेताः प्रव्रजितास्तथा ।
मुहुराघ्रायते यस्तु श्वापदैर्विकृताननैः ॥ ५८ ॥
पिबेन्मधु च तैलञ्च यो वा पङ्केऽवसीदति[2] ।
पङ्कप्रदिग्धगात्रो वा प्रनृत्येत् प्रहसेत्तथा ॥ ५९ ॥
निरम्बरश्च यो रक्तां धारयेच्छिरसि स्रजम् ।
यस्य वंशो नलो वाऽपि तालो वोरसि जायते ॥ ६० ॥
यं वा मत्स्यो ग्रसेद् यो वा जननीं प्रविशेन्नरः[3] ।
पर्वताग्रात् पतेद् यो वा श्वभ्रे वा तमसाऽऽवृते ॥ ६१ ॥
ह्रियते स्रोतसा यो वा यो वा मौण्ड्यमवाप्नुयात् ।
पराजीयेत बध्येत काकाद्यैर्वाऽभिभूयते ॥ ६२ ॥
पतनं तारकादीनां प्रणाशं दीपचक्षुषोः ।
यः पश्येद्देवतानां वा प्रकम्पमवनेस्तथा ॥ ६३ ॥
यस्य छर्दिर्विरेको वा दशनाः प्रपतन्ति वा ।
शाल्मलीं किंशुकं यूपं वल्मीकं पारिभद्रकम् ॥ ६४ ॥
पुष्पाढ्यं कोविदारं वा चितां वा योऽधिरोहति ।
कार्पासतैलपिण्याकलोहानि लवणं तिलान् ॥ ६५ ॥
लभेताश्नीत वा पक्वमन्नं यश्च पिबेत् सुराम् ।
स्वस्थः स लभते व्याधिं व्याधितो मृत्युमृच्छति ॥ ६६ ॥

---

१ मनुः–"निषादस्त्री तु चाण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम् । श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपि गर्हितम् ॥" इति । २ स्वप्ने पङ्कावसादनं सद्योमृत्युकरं भवति । ३ प्रविशेत्= मातुरुदरं प्रविशतीत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यथास्वं[1] प्रकृतिस्वप्नो विस्मृतो विहृत[2]स्तथा ।
चिन्ता[3]कृतो दिवा दृष्टो भवन्त्यफलदास्तु[4] ते ॥ ६७ ॥
ज्वरि[5]तानां शुना सख्यं कपिसख्यं तु शोषिणाम् ।
उन्मादे राक्षसैः प्रेतैरपस्मारे प्रवर्त[6]नम् ॥ ६८ ॥
मेहातिसारिणां तोयपानं स्नेहस्य कुष्ठिनाम् ।
गुल्मेषु स्थाव[7]रोत्पत्तिः कोष्ठे, मूर्ध्न शिरोरुजि ॥ ६९ ॥
शष्कुलीभक्षणं छर्द्यामध्वा श्वासपिपासयोः ।
हारि[8]द्रं भोजनं वाऽपि यस्य स्यात् पाण्डुरोगिणः ॥ ७० ॥
रक्तपित्ती पिबेद्यस्तु शोणितं स विनश्यति ।
स्वप्[9]नानेवंविधान् दृष्ट्वा प्रातरुत्थाय यत्नवान् ॥ ७१ ॥
दद्यान्माषांस्तिलांल्लोहं विप्रेभ्यः काञ्चनं तथा ।

---

१ विफलान् स्वप्नान्निर्दिशति—**यथास्वमिति** । स्वां वातादिप्रकृतिमनतिक्रम्येति यथास्वं प्रकृतिस्वप्नः । यथा वातप्रकृतेः—"वियदपि गच्छति सम्भ्रमेण सुप्तः" इति, पित्तप्रकृतेः—"सुप्तः सन् कनकपलाशकर्णिकारान् संपश्येदपि च हुताशविद्युदुल्काः" इति, कफप्रकृतेः—"सुप्तः सन् सकमलहंसचक्रवाकान् संपश्येदपि च जलाशयान् मनोज्ञान्" इति च लक्षणं वक्ष्यति । २ विहतः=पश्चाद् दृष्टेन विशिष्टस्वप्नेन प्राग् दृष्टोऽशुभस्वप्नः पराहतः । चरकोऽप्याह—"अकल्याणमपि स्वप्नं दृष्ट्वा तत्रैव यः पुनः । पश्येत् सौम्यं शुभाकारं तस्य विद्यात शुभं फलम् ॥ न स्वपेद्यः पुनर्दृष्ट्वा स सद्यः स्यान्महाफलः ।" इति । ३ चिन्ताकृतशब्देन—"दृष्टं श्रुतानुभूतं च प्रार्थितं कल्पितं तथा । भाविकं दोषजं चैव स्वप्नं सप्तविधं विदुः ॥" इति चरकोक्तसप्तविधस्वप्नेषु दृष्टश्रुतानुभूतप्रार्थितकल्पितसमाख्यपञ्चविधस्वप्नानां ग्रहणम् । ४ तुशब्दश्चकारार्थकः, तेन "दिवास्वप्नमतिह्रस्वमतिदीर्घं तथैव च । दृष्टः प्रथमयामे यः स्वप्नः सोऽप्यफलो भवेत् ॥" इति चरकोक्तः प्रथमयामदृष्टः स्वप्नोऽतिह्रस्वोऽतिदीर्घश्च समुच्चीयते ।

५ रोगविशेषे विशिष्टस्वप्नदर्शनारिष्टमाचष्टे—**ज्वरितानामिति** । ६ नर्तनादिषु प्रवर्तनमित्यर्थः । "नृत्येद्रक्षोगणैः सार्द्धम्" इति स्मरणात् । ७ स्थावरोत्पत्तिः=वंशलताऽऽदीनामुत्पत्तिरित्यर्थः । चरकः—"लता कण्टिकिनी यस्य दारुणा हृदि जायते । स्वप्ने गुल्मस्तमन्ताय क्रूरो विशति मानवम् ॥" इति । ८ हारिद्रं=हरिद्रारक्तभोजनलक्षणमित्यर्थः । ९ अशुभस्वप्नदर्शनशान्तिमुपदिशति—**स्वप्नानिति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जपेच्चापि शुभान् मन्त्रान् गायत्रीं त्रिपदां तथा ॥ ७२ ॥
दृष्ट्वा तु प्रथमे यामे स्वप्याद् ध्यात्वा पुनः शुभम् ।
जपेद्वाऽन्यतमं देवं ब्रह्मचारी समाहितः ॥ ७३ ॥
न चाचक्षीत कस्मैचिद् दृष्ट्वा स्वप्नमशोभनम् ।
देवताऽऽयतने चैव वसेद्रात्रित्रयं तथा ।
विप्रांश्च पूजयेन्नित्यं दुःस्वप्नात् प्रविमुच्यते ॥ ७४ ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रशस्तं[1] स्वप्नदर्शनम् ।
देवान् द्विजान् गोवृषभान् जीवतः सुहृदो नृपान् ॥ ७५ ॥
समिद्धमग्निं विप्रांश्च निर्म्मलानि जलानि च ।
पश्येत् कल्याणलाभाय व्याधेरपगमाय[2] च ॥ ७६ ॥
मांसं मत्स्यान् स्रजः श्वेता वासांसि च फलानि च ।
लभन्ते धनलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७७ ॥
महाप्रासादसफलवृक्षवारणपर्वतान् ।
आरोहेद् द्रव्यलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७८ ॥
नदीनदसमुद्रांश्च[3] क्षुभितान् कलुषोदकान्[4] ।
तरेत् कल्याणलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७९ ॥
उरगो वा जलौको वा भ्रमरो वाऽपि यं दशेत् ।
आरोग्यं निर्दिशेत्तस्य धनलाभञ्च बुद्धिमान् ॥ ८० ॥
एवंरूपान् शुभान् स्वप्नान् यः पश्येद् व्याधितो नरः ।
स दीर्घायुरिति ज्ञेयस्तस्मै कर्म समाचरेत् ॥ ८१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने विपरीताविपरीतस्वप्नदर्शनीयो नाम एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

---

१ प्रशस्तान् स्वप्नान्निर्दिशति—**अत इति** । २ अपगमाय=निवृत्तये । ३ गङ्गाद्या नद्यः । शोणभद्रादयो नदाः । ४ कलुषोदकान्=अप्रशस्तजलानित्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।**

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः पञ्चेन्द्रियार्थविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत् ।
तत्त्वरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोध मे ॥ ३ ॥
शृणोति विविधान् शब्दान् यो दिव्यानामभावतः ।
समुद्रपुरमेघानामसम्पत्तौ च निःस्वनान् ॥ ४ ॥
तान् स्वनान्नावगृह्णाति मन्यते चान्यशब्दवत् ।
ग्राम्यारण्यस्वनांश्चापि विपरीतान् शृणोति च ॥ ५ ॥
द्विषच्छब्देषु रमते सुहृच्छब्देषु कुप्यति ।
न शृणोति च योऽकस्मात्तं ब्रुवन्ति गतायुषम् ॥ ६ ॥
यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णञ्च शीतवत् ।
सञ्जातशीतपिडको यश्च दाहेन पीड्यते ॥ ७ ॥

---

### त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ मनःपुरस्सराणि चेन्द्रियाण्यर्थसङ्ग्रहसमर्थानि भवन्तीति चरकोक्त्या पञ्चेन्द्रियाणां मनःपुरस्सराणां श्रोत्र–स्पर्शन–चक्षू–रसन–घ्राणानामर्थाः शब्द-स्पर्श-रूप–रस–गन्धास्तेषां विप्रतिपत्तिर्हीनातियोगेन रिष्टाख्यो विपरीतावबोधो विद्यतेऽस्मिन्निति पञ्चेन्द्रियार्थविप्रतिपत्तिस्तम् ।

२ शरीरशीलप्रकृतीनां भावानां विकृतिर्वैपरीत्यं यद् भवेत्तदरिष्टं मरणलक्षणमित्यर्थः । प्रकृतिः=सप्तसङ्ख्याका; "सप्त प्रकृतयो दोषैः पृथक् संसर्गेण साम्येन च भवन्ति । दोषवच्च गुणैरपि सत्त्वादिभिः सप्तप्रकृतयो भवन्ति । तथा पुनः सप्तप्रकृतयो जातिकुलदेशकालवयोबलप्रत्यात्मसंश्रयाः । दृश्यन्ते हि पुरुषाणां जात्यादिनियतास्ते भावविशेषाः ।" इत्यष्टाङ्गसङ्ग्रहः ।

३ विस्तरतो विकृतिं दर्शयन् प्रागातुरग्राह्यविरुद्धशब्दविप्रतिपत्तिं निर्दिशति—**शृणोतीति ।** ४ दिव्यानां=दिवि स्थितानां, सिद्धकिन्नरगन्धर्वादीनामित्यर्थः । ५ असम्पत्तौ=अविद्यमानेऽपि । ६ रामायणे—"परान्तकाले हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ।" इति ।

७ आतुरग्राह्यविरुद्धस्पर्शविप्रतिपत्तिं निर्दिशति—**य इति ।** ८ शीतपिडकाः कफजाः; अतस्तत्र जाड्यादयो वेदनाविशेषाः प्राकृताः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उष्णगात्रोऽतिमात्रञ्च यः शीतेन प्रवेपते ।
प्रहारान्नाभिजानाति योऽङ्गच्छेदमथापि वा ॥ ८ ॥
पांशुनेवावकीर्णानि यश्च गात्राणि मन्यते ।
वर्णान्यता वा रौज्यो वा यस्य गात्रे भवन्ति हि ॥ ९ ॥
स्नातानुलिप्तं यञ्चापि भजन्ते नीलमक्षिकाः ।
सुगन्धिर्वाऽति योऽकस्मात्तं ब्रुवन्ति गतायुषम् ॥ १० ॥
विपरीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोपयोजितान् ।
उपयुक्ताः क्रमाद्यस्य रसा दोषाभिवृद्धये ॥ ११ ॥
यस्य दोषाग्निसाम्यञ्च कुर्य्युर्मिथ्योपयोजिता ।
यो वा रसान्न संवेत्ति गतासुं तं प्रचक्षते ॥ १२ ॥
सुगन्धं वेत्ति दुर्गन्धं दुर्गन्धस्य सुगन्धिताम् ।
गृह्णीते वाऽन्यथा गन्धं शान्ते दीपे च नीरुजः ॥ १३ ॥
यो वा गन्धान्न जानाति गतासुं तं विनिर्दिशेत् ।
द्वन्द्वान्युष्णहिमादीनि कालावस्था दिशस्तथा ॥ १४ ॥
विपरीतेन गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः ।
दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति ॥ १५ ॥

---

१ आतुरगताग्राह्यविरुद्धरूपविप्रतिपत्तिमाह—**पांशुनेति** । २ राज्यः=नीललोहितादयो लेखा इत्यर्थः । आतुरगताग्राह्यविरुद्धरसविप्रतिपत्तिं दर्शयति—**स्नातेति** । अत्र विशेषमाह चरकः—"अत्यर्थं रसिकं कायं कालपक्वस्य मक्षिकाः । अपि स्नातानुलिप्तस्य भृशमायान्ति सर्वतः ॥" इति । एतदरिष्टं वार्षिकमिति बोध्यम् । ४ आतुरगताग्राह्यविरुद्धगन्धविप्रतिपत्तिमभिधत्ते—**सुगन्धिरिति** । अत्रेत्त्वमार्षम् । एतदप्यरिष्टं वर्षावधि बोध्यम् । ५ आतुरग्राह्यरसविप्रतिपत्तिमाह—**विपेति** । मधुरोऽम्लः, अम्लो मधुर इति विपरीतेन । इदमरिष्टं मासिकमित्यवसेयम् । ६ आतुरग्राह्यगन्धविप्रतिपत्तिं दर्शयति—**सुगन्धमिति** । ७ विजातीयत्वेन । यथा मालतीयस्य केतकीयत्वेन, केतकीयस्य मालतीयत्वेन । ८ आतुरग्राह्यस्पर्शविप्रतिपत्तिं वक्ति—**द्वन्द्वानीति** । प्रभातस्य सायङ्कालत्वेन, सायङ्कालस्य प्रभातत्वेनेति कालवैपरीत्यम् । एवमवस्थाया दिशश्च वैपरीत्यं बोध्यम् । एतेन मानसः स्पर्श उक्तो भवति । "स्पर्शनेन्द्रियसंस्पर्शः स्पर्शो मानस एव च" इति द्विविधः स्पर्शस्तन्त्रान्तरे । त्रैमासिकमरिष्टमेतत् ।

९ आतुरग्राह्यरूपविप्रतिपत्तिं दर्शयति=**दिवेति** ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रात्रौ सूर्य्यं ज्वलन्तं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम् ।
अमेघोपप्लवे यश्च शक्रचापतडिद्गुणान् ॥ १६ ॥
तडित्त्वतोऽसितान् यो वा निर्म्मले गगने घनान् ।
विमानयानप्रासादैर्यश्च सङ्कुलमम्बरम् ॥ १७ ॥
यश्चानिलं मूर्त्तिमन्तमन्तरिक्षञ्च पश्यति ।
धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥ १८ ॥
प्रदीप्तमिव लोकञ्च यो वा प्लुतमिवाम्भसा ।
भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥ १९ ॥
न पश्यति सनक्षत्रां यश्च देवीमरुन्धतीम्[1] ।
ध्रुवमाकाशगङ्गां वा तं वदन्ति गतायुषम् ॥ २० ॥
ज्योत्स्नादर्शोष्णतोयेषु छायां यश्च न पश्यति ।
पश्यत्येकाङ्गहीनां वा विकृतां वाऽन्यसत्त्वजाम् ॥ २१ ॥
श्वकाककङ्क[2]गृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसाम् ।
पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृतामपि ॥ २२ ॥
यो वा मयूरकण्ठ[3]ाभं विधूमं वह्निमीक्षते ।
आतुरस्य भवेन्मृत्युः स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने पञ्चेन्द्रियार्थविप्रतिपत्तिर्नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

---

## एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातश्छाया[4]विप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

---

१ चरकः—"सप्तर्षीणां समीपस्थां यो न पश्यत्यरुन्धतीम् । संवत्सरान्ते जन्तुः स पश्यतीति महत्तमः ॥" इति । २ अस्य लक्षणम्—"कङ्कः स्यात्कङ्कमल्लाख्यो बाणपक्षार्हपक्षकः । लोहपृष्ठो दीर्घपादः पक्षाधः पाण्डुवर्णभाक् ॥" इति । ३ मयूरकण्ठाभं—मयूरकण्ठस्याभा इवाभा यस्य तं, नीलवर्णमित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

### एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

४ छायाशब्दानन्तरमादिशब्दस्य लोपनिर्देशाच्छायाऽऽदीनां विप्रतिपत्तिमधि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यथोवाच भगवान धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
श्यावा[1] लोहितिका नीला पीतिका वाऽपि मानवम्।
अभिद्रवन्ति[2] यं छायाः स परासुरसंशयम् ॥ ३ ॥
ह्रीरपक्रमते[3] यस्य प्रभाधृतिस्मृतिश्रियः[4]।
अकस्माद्यं भजन्ते वा स परासुरसंशयम् ॥ ४ ॥
यस्याधरौष्ठः[5] पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं तथोत्तरः।
उभौ वा जाम्बवाभासौ[6] दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ ५ ॥
आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतन्ति वा।
खञ्जनप्रतिमा[7] वाऽपि तं गतायुषमादिशेत् ॥ ६ ॥
कृष्णा स्तब्धाऽवलिप्ता वा जिह्वा शूना[8] च यस्य वै।
कर्कशा वा भवेद् यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥ ७ ॥
कुटिला स्फुटिता वाऽपि शुष्का वा यस्य नासिका।
अवस्फूर्जति[9] मग्ना वा न स जीवति मानवः ॥ ८ ॥
सङ्क्षिप्ते विषमे स्तब्धे रक्ते स्रस्ते च लोचने।

---

कृत्य कृतोऽध्यायस्तम्। आदिशब्दाद् ह्रीश्रीतुष्ट्यादिविप्रतिपत्तीनां ग्रहणम्। चरकः—"छाया वर्णप्रभाऽऽश्रया" इति। अनयोर्भेदोऽष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"छाया वर्णमाक्रामत्यासन्ना च लक्ष्यते पञ्चभूतात्मिका च। प्रभा तु वर्णं प्रकाशयति विप्रकृष्टाल्लक्ष्यते तेजः प्रभवैव च।" इति। चरकेण—"नाभसी निर्मला नीला सस्नेहा सप्रभेव च।" इत्यादिना पञ्चविधाश्छायाः, "रक्ता पीता सिता श्यावा हरिता पाण्डुराऽसिता।" इत्यादिना सप्तविधाः प्रभाः, "कृष्णः कृष्णश्यामः श्यामावदात अवदातश्च" इत्यादिना चतुर्विधा वर्णाश्च प्रदर्शिताः।

१ रिष्टभूताश्छाया दर्शयति—**श्यावेति**। २ अभिद्रवन्ति = उपसर्पन्तीत्यर्थः। चरकोऽप्युक्तवान्—"छाया विवर्तते यस्य स्वस्थोऽपि प्रेत एव सः।" इत्यादिना। ३ शीलविकृतेररिष्टत्वमाह—**ह्रीरिति**। अपक्रमते = अपसरति। ४ चरकः—"धृतिर्हि नियमात्मिका"। "आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृतिः।" इति।

५ ओष्ठाद्यवयवविकृतेररिष्टत्वं प्रतिपादयति—**यस्येति**। ६ जाम्बवाभासौ = पक्वजम्बूफलसदृशावित्यर्थः। ७ खञ्जनप्रतिमाः = खञ्जरीटकण्ठवन्नीलाः मर्दनादिभिरगारधूमानुरचितमुपस्तरणं खञ्जनमुच्यते, यं खरजिमित्याहुर्मृदङ्गवादका इति डल्हणः। ८ शूना = श्वयथुयुक्तेत्यर्थः। ९ अवस्फूर्जति = दृढं शब्दायते।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्यातां वा प्रस्रुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥ ९ ॥
केशाः सीमन्तिनो यस्य सङ्क्षिप्ते विनते भ्रुवौ ।
लुनन्ति[1] चाक्षिपक्ष्माणि सोऽचिराद् याति मृत्यवे ॥ १० ॥
नाहरत्यन्नमाम्यस्थं न धारयति यः शिरः ।[2]
एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणान् जहाति सः ॥ ११ ॥
बलवान् दुर्बलो वाऽपि सम्मोहं योऽधिगच्छति ।
उत्थाप्यमानो बहुशस्तं पक्वं भिषगादिशेत् ॥ १२ ॥
उत्तानः सर्वदा शेते पादौ विकुरुते[3] च यः ।
विप्रसारणशीलो[4] वा न स जीवति मानवः ॥ १३ ॥
शीतपादकरोच्छ्वासश्छिन्नोच्छ्वासश्च यो भवेत् ।
काकोच्छ्वासश्च[5] यो मर्त्यस्तं धीरः परिवर्जयेत् ॥ १४ ॥
निद्रा न छिद्यते यस्य यो वा जागर्ति सर्वदा ।
मुह्येद्वा वक्तुकामश्च प्रत्याख्येयः स जानता ॥ १५ ॥
उत्तरौष्ठश्च यो लिह्यादुत्कारांश्च[6] करोति यः ।
प्रेतैर्वा भाषते सार्द्धं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥ १६ ॥
खेभ्यः[7] सरोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते ।
पुरुषस्याविषार्तस्य सद्यो जह्यात् स जीवितम् ॥ १७ ॥
वाताष्ठीला[8] तु हृदये यस्योद्ध्वमनुयायिनी ।
रुजाऽन्नविद्वेषकरी स परासुरसंशयम् ॥ १८ ॥
अनन्योपद्रवकृतः[9] शोफः पादसमुत्थितः ।

---

१ लुनन्ति = अनवरतं चलन्तीत्यर्थः । एतदरिष्टं स्वस्थस्य षड्रात्रात्, आतुरस्य च त्रिरात्रान्मरणाय भवति ।

२ रिष्टभूतां कायावयवक्रियाविप्रतिपत्तिमधिकृत्य कथयति—**नाहरतीति** । न गिलतीत्यर्थः । ३ विकुरुते = वारं वारं तत्प्रसारणाकुञ्चने करोतीत्यर्थः । ४ विप्रसारणशीलः = पादसङ्कोचनशीलः । एतदरिष्टं सद्योमृत्युकारकम् । ५ काकोच्छ्वासः = काकवद्व्याक्तमुखत्वेनोच्छ्वासनशीलः । ६ उत्कारान् = उद्गारानित्यर्थः ।

७ खेभ्यः = ऊर्ध्वाधःसर्वच्छिद्रेभ्यः, चरकेऽप्युक्तम्—"यदा तु सर्वच्छिद्रेभ्यो रोमकूपेभ्य एव च । वर्तते तामसंख्येयां गतिं तस्याहुरन्तिकीम् ॥" इति ८ वातस्याष्ठीला ग्रन्थिः, न तु वातव्याधिपठिता वाताष्ठीला । ९ अनन्योपद्रवकृतः = नान्योप-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पुरुषं हन्ति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥ १९ ॥
अतिसारो ज्वरो हिक्का छर्दिः शूनाण्डमेढ्रता ।
श्वासिनः कासिनो वाऽपि यस्य तं क्षीणमादिशेत् ॥ २० ॥
स्वेदो दाहश्च बलवान् हिक्का श्वासश्च मानवम् ।
बलवन्तमपि प्राणैर्वियुञ्जन्ति न संशयः ॥ २१ ॥
श्यावा जिह्वा भवेद्यस्य सव्यं चाक्षि निमज्जति ।
मुखञ्च जायते पूति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥
वक्त्रमापूर्यतेऽश्रूभिः[1] स्विद्यतश्चरणावुभौ ।
चक्षुश्चाकुलतां[2] याति यमराष्ट्रं गमिष्यतः ॥ २३ ॥
अतिमात्रं लघूनि स्युर्गात्राणि गुरुकाणि वा ।
यस्याकस्मात् स विज्ञेयो गन्ता वैवस्वतालयम् ॥ २४ ॥
पङ्कमत्स्यवसातैलघृतगन्धांश्च ये नराः ।
मृष्टगन्धांश्च[3] ये यान्ति गन्तारस्ते यमालयम् ॥ २५ ॥
यूका ललाटमायान्ति बलिं नाश्नन्ति वायसाः ।
येषां वाऽपि रतिर्नास्ति यातारस्ते यमालयम् ॥ २६ ॥
ज्वरातिसारशोफाः स्युर्यस्यान्योन्यावसादिनः[4] ।
प्रक्षीणबलमांसस्य नासौ शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ २७ ॥
क्षीणस्य यस्य क्षुत्तृष्णे हृद्यैर्मिष्टैर्हितैस्तथा ।
न शाम्यतोऽन्नपानैश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ २८ ॥
प्रवाहिका शिरःशूलं कोष्ठशूलञ्च दारुणम् ।
पिपासा बलहानिश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ २९ ॥

---

द्रवकृत इत्यर्थः ; श्वासपिपासाऽऽदिशोफोपद्रवैरेव कृत इति निष्कर्षः। शोफोपद्रवा वक्ष्यन्ते–"श्वासः पिपासा दौर्बल्यं ज्वरश्छर्दिररोचकः। हिक्काऽतिसारकासाश्च शोथिनं क्षपयन्ति हि ॥" इति। १ अश्रूणामिति पाठे 'नाग्निस्तृप्यति काष्ठानाम्' इतिवत्करणे षष्ठी बोध्या। २ आकुलताम्=ओदनमण्डादिनैव पूर्णा याति। ३ मृष्टगन्धान्=शोभनगन्धान्, मरिचगन्धानिति सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्यम्। ४ अन्योन्यावसादिनः=परस्परोपद्रविण इत्यर्थः। आत्रेयः–"ज्वरातिसारौ शोफान्ते श्वयथुर्वा तयोः क्षये। दुर्बलस्य विशेषेण नरस्यान्ताय जायते ॥" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विषमेणोपचारेण[1] कर्म्मभिश्च पुराकृतैः ।
अनित्यत्वाच्च जन्तूनां जीवितं निधनं व्रजेत् ॥ ३० ॥
प्रेताः[2] भूताः पिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च ।
मरणाभिमुखं नित्यमुपसर्पन्ति मानवम् ॥ ३१ ॥
तानि भेषजवीर्य्याणि प्रतिघ्नन्ति जिघांसया[3] ।
तस्मान्मोघाः[4] क्रियाः सर्वा भवन्त्येव गतायुषाम् ॥ ३२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने छायाविप्रतिपत्तिनामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

## द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः स्वभाव[5]विप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
स्वभावप्रसिद्धानां शरीरैकदेशानामन्य[6]भावित्वं मरणाय । तद्यथा[7]—शुक्लानां कृष्णत्वं, कृष्णानां शुक्लता, रक्तानामन्यवर्णत्वं, स्थिराणां मृदुत्वं, मृदूनां स्थिरता, चलानामचलत्वम् अचलानां चलता,

---

१ अरिष्टोद्भवहेतुत्रयमभिधत्ते—**विषमेणेति** । उपचारः = आहारविहारादिव्यवहारः, प्रकृतेर्बलादीन् भावानुपेक्ष्य कृत उपचारो विषमोपचारः; अवेक्ष्य कृत उपचारः समोपचारः । २ गतायुषां चिकित्साया निष्फलत्वे हेतुमाह—**प्रेता इति** । ३ जिघांसया = हन्तुमिच्छया । ४ मोघाः = निष्फला भवन्तीत्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।**

---

### द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

५ स्वभावस्य प्रकृतेर्विप्रतिपत्तिर्विपरीतावबोधस्तदधिकृत्य कृतोऽध्यायः स्वभावविप्रतिपत्तिस्तम् । ६ अन्यभावित्वं = गुणकर्मभ्यामन्यथाभावित्वमित्यर्थः । ७ शरीरैकदेशानामन्यथात्वमुपदर्शयति—**तद्यथेति** । शुक्लानां = नयनशुक्लमण्डलदन्तादीनाम्, कृष्णानां = केशश्मश्रुवादीनाम्, रक्तानाम् = ओष्ठजिह्वाऽऽदीनाम्, स्थिराणां = कठिनानामस्थ्यादीनाम्, मृदूनां = त्वङ्मांसादीनाम्, चलानां = सन्धिजिह्वाऽऽदीनाम्, अचलानां = मेदोऽस्थिनाभ्यादीनाम्, पृथूनां = महतां शिरोललाटोरःप्रभृतीनाम्, सङ्क्षि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पृथूनां सङ्क्षिप्तत्वं, सङ्क्षिप्तानां पृथुता, दीर्घाणां ह्रस्वत्वं, ह्रस्वानां दीर्घता, अपतनधर्म्मिणां पतनधर्म्मित्वं, पतनधर्म्मिणामपतनधर्म्मत्वं; अकस्माच्च शैत्यौष्ण्यस्नैग्ध्यरौक्ष्यप्रस्तम्भवैवर्ण्यावसादनञ्चाङ्गानाम् ॥ ३ ॥

स्वेभ्यः स्थानेभ्यः शरीरैकदेशानामवस्रस्तोत्क्षिप्तभ्रान्तावक्षिप्तपतितविमुक्तनिर्गतान्तर्गतगुरुलघुत्वानि, प्रवालवर्णव्यङ्गप्रादुर्भावो वाऽप्यकस्मात्, सिराणाञ्च दर्शनं ललाटे, नासावंशे वा पिडकोत्पत्तिः, ललाटे प्रभातकाले स्वेदः, नेत्ररोगाद्विना वाऽश्रुप्रवृत्तिः, गोमयचूर्णप्रकाशस्य वा रजसो दर्शनमुत्तमाङ्गे निलयनं वा कपोतकङ्ककाकप्रभृतीनां, मूत्रपुरीषवृद्धिरभुञ्जानानां, तत्प्रणाशो भुञ्जानानां वा, स्तनमूलहृदयोरःसु च शूलोत्पत्तयः, मध्ये शून्यत्वमन्तेषु परिम्लायित्वं विपर्ययो वा, तथाऽर्द्धाङ्गे श्वयथुः, शोषोऽङ्गपक्षयोर्वा, नष्टहीनविकलविकृतस्वरता वा, विवर्णपुष्पप्रादुर्भावो वा दन्तमुखनखशरीरेषु ।

यस्य वाऽप्सु कफपुरीषरेतांसि निमज्जन्ति, यस्य वा दृष्टिमण्डले भिन्नविकृतानि रूपाण्यालोक्यन्ते, स्नेहाभ्यक्तकेशाङ्ग इव यो भाति,

---

स्रत्वं = सङ्कुचितत्वम्, सङ्क्षिप्तानां = दृष्टिमण्डलादीनाम्, दीर्घाणां = जङ्घाऽऽदीनाम्, ह्रस्वानां = ग्रीवाऽऽदीनाम्, अपतनधर्मिणां = नखकेशादीनाम्, पतनधर्मिणां = स्वेदमूत्रपुरीषादीनाम् ।

१ एकदेशानाम् = ओष्ठभ्रूपक्ष्मणाम्, अवस्रस्तत्वम् = अधःप्रलम्बित्वम्, उत्क्षिप्तत्वम् = ऊर्ध्वगतित्वम्, भ्रान्तत्वं = चञ्चलत्वम्, अवक्षिप्तत्वं = तिर्यक्क्षिप्तत्वम्, पतितत्वं = न बिभर्त्तिशिरोग्रीवमिति चरकोक्त्या शिरोग्रीवाऽऽदीनामेवावधार्यमाणत्वम्, विमुक्तत्वं = सन्धीनां मोक्षः, निर्गतत्वं = जिह्वानेत्रादीनां बहिर्निःसरणम्, अन्तर्गतत्वं = तेषामेवान्तः प्रवेशः । २ प्रवालस्य वर्ण इव व्यङ्गः । "नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यङ्गम्" इति वक्ष्यमाणलक्षणः क्षुद्ररोगस्तस्य प्रादुर्भावः । ३ "बिम्बीविद्रुमवर्णाभा शक्रगोपप्रभाऽपि वा । नासावंशे भवेद् यस्य पिडका न स सिद्धति ॥" इति । ४ चरकः—"यस्य गोमयचूर्णाभं चूर्णं मूर्द्धनि जायते । सस्नेहे भ्रश्यते चैव मासान्तं तस्य जीवितम् ॥" इति । ५ निलयनं = पतनम्, उपवेशनमिति यावत् । ६ परिम्लायित्वं = शुष्कता । ७ विवर्णपुष्पप्रादुर्भावः = अनुज्ज्वलवर्णचिह्नोत्पत्तिरित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यश्च दुर्बलो भक्तद्वेषातिसाराभ्यां पीड्यते, कासमानश्च तृष्णाऽभिभूतः, क्षीणश्छर्दिभक्तद्वेषयुक्तः, सफेनपूयरुधिरोद्गामी हतस्वरः शूलाभिपन्नश्च मनुष्यः, शूनकरचरणवदनः क्षीणोऽन्नद्वेषी स्रस्तपिण्डिकांसपाणिपादो ज्वरकासाभिभूतः, यस्तु पूर्वाह्णे भुक्तमपराह्णे छर्दयत्यविदग्धमतिसार्य्यते वा ज्वरकासाभिभूतः स श्वासान्म्रियते।

बस्तवद्विलपन्[1] यश्च भूमौ पतति स्रस्तमुष्कः[2], स्तब्धमेढ्रो भग्नग्रीवः प्रनष्टमेहनश्च[3] मनुष्यः, प्राग्विशुष्यमाणहृदय आर्द्रशरीरः, यश्च लोष्टं लोष्टेनाभिहन्ति काष्ठं काष्ठेन, तृणानि वा छिनत्ति[4], अधरोष्ठं दशति, उत्तरोष्ठं वा, लेढि आलुञ्चति[5] वा कर्णौ केशांश्च, देवद्विजगुरुसुहृद्वैद्यांश्च द्वेष्टि, यस्य वक्रानुवक्रगा[6] ग्रहा गर्हितस्थानगताः पीडयन्ति, जन्मर्क्षं वा यस्योल्काऽशनिभ्यामभिहन्यते होरा वा, गृहदारशयनासनयानवाहनमणिरत्नोपकरणगर्हितलक्षण[7]निमित्तप्रादुर्भावो वेति ॥ ४ ॥

भवन्ति चात्र।

चिकित्स्यमानः सम्यक् च विकारो योऽभिवर्धते।

---

१ बस्तवद्=व्यापाद्यमानछगलकवदित्यर्थः। २ स्रस्तमुष्कः=स्थानाच्च्युताण्डकोशः।। ३ प्रनष्टमेहनः=प्रनष्टमूत्रः। 'मेहनं मूत्रशिश्नयोः' इति मेदिनी। ४ नखैश्छिनत्तीत्यर्थः। ५ आलुञ्चति=उत्पाटयति। ६ समाक्रान्तं राशिं मुक्त्वा पुनः पूर्वमेव भुक्तराशिं नक्षत्रं वा याति सा ग्रहाणां वक्रगतिः। अनुगत एवोत्तरस्थानमनुप्राप्ता गतिरनुवक्रः। सूर्यसिद्धान्ते–'वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा। तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः॥' इति। ७ 'लग्नं धनं सोदरं च बन्धुः पुत्रो रिपुस्तथा। भार्या च निधनं धर्मः कर्म चायो व्ययस्तथा'' ॥ इत्युक्तेषु द्वादशस्थानेष्वनुपचयराशिलक्षणं गर्हितस्थानम्। अनुपचयश्च राशयः स्वजन्मनक्षत्रराशेः प्रथमद्वितीयचतुर्थपञ्चमसप्तमाष्टमनवमद्वादशराशय इतीन्दुः। ८ सूर्याधिष्ठितान्नक्षत्रादेकविंशतितमं नक्षत्रमुल्का, अशनिस्तु त्रयोविंशम्। उक्तं च–'उल्का स्यादेकविंशतिः। द्वाविंशतितमं कल्पं त्रयोविंशं च वज्रकम्। निर्घातं च चतुर्विंशमुक्ता ह्यष्टावुपग्रहाः'॥ होरा=जन्मराशिः, अभिहन्यते=सर्वतोभद्रवेधक्रमेण विध्यते। ९ गर्हितलक्षणानि तन्निमित्तरतत्कारणः प्रादुर्भावोऽरिष्टस्योत्पत्तिरित्यर्थः। यथा गृहस्य गृध्रोपवेशनादिकं, दाराणां पश्वादिप्रसवनमित्यादिकं गर्हितलक्षणं महाभारतीयभीष्मविराटपर्वतश्चानुसन्धेयम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद्वतायुषः ॥ ५ ॥
निवर्तते[1] महाव्याधिः सहसा यस्य देहिनः।
न चाहार[2]फलं यस्य दृश्यते स विनश्यति ॥ ६ ॥
एता[3]न्यरिष्टरूपाणि सम्यग् बुध्येत यो भिषक्।
साध्यासाध्यपरीक्षायां स राज्ञः सम्म[4]तो भवेत् ॥ ७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने स्वभावविप्रतिपत्तिर्नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३२॥

---

## त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।

अथातोऽवा[5]रणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
उपद्र[6]वैस्तु ये जुष्टा व्याधयो यान्त्यवार्य्यताम्।
रसाय[7]नाद्विना वत्स ! तान् शृण्वेकमना मम ॥ ३ ॥
वातव्याधिः प्रमेहश्च कुष्ठमर्शो भगन्दरम्।
अश्मरी मूढगर्भश्च तथैवोदरमष्ठमम् ॥ ४ ॥
अष्टावेते प्रकृत्यैव दुश्चिकित्स्या महागदाः।
प्राण[8]मांसक्षयश्वासतृष्णाशोषवमीज्वरैः ॥ ५ ॥

---

१ निवर्तते=कारणं विनैव निवृत्तो भवतीत्यर्थः। २ चरकः-"आहारमुपयुञ्जानो भिषजा सूपकल्पितम्। यः फलं तस्य नाप्नोति दुर्लभं तस्य जीवितम्॥" इति। ३ अरिष्टज्ञानफलं दर्शयति-**एतानीति**। ४ सम्मतः=पूज्यो भवतीत्यर्थः।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः।**

---

### त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।

५ उपद्रवविशेषजुष्टतया न विद्यते वारणं येषां तेऽवारणा व्याधयस्तानधिकृत्य कृतोऽध्यायोऽवारणीयतम्। ६ मूलव्याध्युत्पत्त्यनन्तरं जायमाना व्याधय उपद्रवाः। यथाऽऽह चरकः—"उपद्रवस्तु खलु रोगोत्तरकालजो रोगाश्रयो रोग एव स्थूलोऽणुर्वा रोगात्पश्चाज्जायत इत्युपद्रवसंज्ञः।" इति। ७ रसायनाद्विना=रसायनतपोजपादिकं विनेत्यर्थः। रसायनादिभिरत्वसाध्यो व्याधिरपि साध्यत इति निष्कर्षः।

८ दुश्चिकित्स्यान् मूलव्याधीन् दर्शयति—**वातेति**। ९ वातव्याध्यादीनाम-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्च्छाऽतिसारहिक्काभिः पुनश्चैतैरुपद्रुताः ।
वर्जनीया विशेषेण भिषजा सिद्धिमिच्छता ॥ ६ ॥
शूनं सुप्तत्वचं[1] भग्नं कम्पाध्माननिपीडितम् ।
नरं रुजार्त्तमन्तश्च वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ७ ॥
यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव वा ।
पिडकापीडितं[3] गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ ८ ॥
प्रभिन्नं प्रस्रुताङ्गञ्च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ।
पञ्चकर्मगुणातीतं[4] कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥ ९ ॥
तृष्णारोचकशूलार्तमतिप्रस्रुतशोणितम् ।
शोफातीसारसंयुक्तमर्शोव्याधिर्विनाशयेत् ॥ १० ॥
वातमूत्रपुरीषाणि क्रिमयः शुक्रमेव च ।
भगन्दरात् प्रस्रवन्ति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥
प्रशूननाभिवृषणं रुद्धमूत्रं रुगन्वितम् ।
अश्मरी क्षपयत्याशु सिकता[5] शर्कराऽन्विता ॥ १२ ॥
गर्भकोषपरासङ्गो[6] मक्कल्लो योनिसंवृतिः ।
हन्यात् स्त्रियं मूढगर्भे यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ १३ ॥
पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोफातीसारपीडितम् ।
विरिक्तं पूर्य्यमाणञ्च वर्जयेदुदरार्दितम् ॥ १४ ॥

---

साध्यताहेतूनुपद्रवानभिदधाति—**प्राणेति**। १ सुप्तत्वचं = स्पर्शानभिज्ञत्वचमित्यर्थः। २ अष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः। उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ बस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः। दाहस्तृष्णाम्लको मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥ वातिकानामुदावर्तकण्ठहृद्ग्रहलो लताः। शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥" इति। अतिप्रस्रुतं = मूत्रातिस्राविणम्। ३ शराविकाद्या दश पिडकास्ताभिः पीडितम्। ४ पञ्चमधात्वस्थिस्थितं कुष्ठं, तत्र कर्माणि संशोधनसंशमनाभ्यङ्गगुग्गुलुशिलाजतुप्रभृतीनि, तेषां गुणाः फलानि तेभ्योऽतीतम्।

५ शर्कराऽन्विता सिकता च क्षपयतीति सम्बन्धः। ६ गर्भकोषपरासङ्गः = गर्भकोषस्य गर्भाशयस्य परोऽत्यर्थमासङ्गः सम्बद्धता, मक्कलः = सूताया हृच्छिरोबस्तिशूलं मक्कलसंज्ञितम्। डल्हणः—तथा गर्भाशयाच्च्युतगर्भाया योनिद्वारसक्तगर्भायाश्च रक्तं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यस्ताम्यति[1] विसंज्ञश्च शेते निपतितोऽपि वा ।
शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च[2] ज्वरेण म्रियते नरः ॥ १५ ॥
यो हृष्टरोमा[3] रक्ताक्षो हृदि सङ्घातशूलवान् ।
नित्यं वक्त्रेण चोच्छ्वस्यात्तं ज्वरो हन्ति मानवम् ॥ १६ ॥
हिक्काश्वासपिपासाऽऽर्त्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम्[4] ।
सन्ततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥ १७ ॥
आविलाक्षं[5] प्रताम्यन्तं निद्रायुक्तमतीव[6] च ।
क्षीणशोणितमांसञ्च नरं नाशयति ज्वरः ॥ १८ ॥
श्वासशूलपिपासाऽऽर्त्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ।
विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत् ॥ १९ ॥
शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ।
कृच्छ्रेण बहु मेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥ २० ॥
श्वासशूलपिपासाऽन्नविद्वेषग्रन्थिमूढताः[7] ।
भवन्ति दुर्बलत्वञ्च गुल्मिनो मृत्युमेष्यतः ॥ २१ ॥
आध्मातं बद्धनिष्यन्दं[8] छर्दिहिक्कातृडन्वितम् ।
रुजाश्वाससमाविष्टं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ २२ ॥
पाण्डुदन्तनखो यश्च पाण्डुनेत्रश्च मानवः ।
पाण्डुसङ्घातदर्शी[9] च पाण्डुरोगी विनश्यति ॥ २३ ॥
लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ।
रक्तानाञ्च दिशां द्रष्टा रक्तपित्ती विनश्यति ॥ २४ ॥
अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः ।
जागरिष्णुरसन्देहमुन्मादेन विनश्यति ॥ २५ ॥

---

स्तुतमन्तःस्थितं पच्यमानं मक्कलसंज्ञितं भवतीति ज्ञेयमिति । १ ताम्यति = मुह्यति, मुहुर्मुहुर्मूर्च्छां प्राप्नोतीति यावत् ।

२ बहिःशीतार्दित इत्यर्थः । ३ हृष्टरोमाः = रोमाञ्चितदेहः । ४ विभ्रान्तलोचनं = शश्वदितस्ततो घूर्णितनेत्रम् । ५ आविलाक्षम् = ओदनमण्डनवदश्रुपूर्णनयनम् । ६ रात्रिन्दिवमित्यर्थः । ७ ग्रन्थिमूढता = ग्रन्थिरूपस्य गुल्मस्याकस्याल्लीनता । ८ बद्धनिष्यन्दं = बद्धमूत्रम् । ९ पाण्डुसङ्घातदर्शी = श्वेतसमूहदर्शी ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बहुशोऽपस्मरन्तन्तु प्रक्षीणं चलितभ्रुवम् ।
नेत्राभ्याञ्च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ २६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थानेऽवारणीयो नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

---

## चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो युक्तसेनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
युक्तसेनस्य नृपतेः परानभिजिगीषतः ।
भिषजा रक्षणं कार्य्यं यथा तदुपदेक्ष्यते ॥ ३ ॥
विजिगीषुः सहामात्यैर्यात्रायुक्तः प्रयत्नतः ।
रक्षितव्यो विशेषेण विषादेव नराधिपः ॥ ४ ॥
पन्थानमुदकं छायां भक्तं यवसमिन्धनम् ।
दूषयन्त्यरयस्तच्च जानीयाच्छोधयेत्तथा ।
तस्य लिङ्गं चिकित्सा च कल्पस्थाने प्रवक्ष्यते ॥ ५ ॥
एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते ।
तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषा आगन्तवः स्मृताः ॥ ६ ॥

---

१ विकुर्वाणम् = तिर्यक् क्षेपणादिरूपां विक्रियां कुर्वाणमित्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।**

---

### चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

२ युक्ता युद्धार्थं नियुक्ता सेना यस्य स युक्तसेनो राजा, तमधिकृत्य कृतोऽध्यायो युक्तसेनीयस्तम् । ३ साधारणतया सर्वेभ्य आगन्तुमृत्युभ्यो रक्षणीयः, विशेषतस्तु स्थावरजङ्गमकृत्रिमात्मकविषाद् रक्षितव्यः । ४ विषेण दूषितो मार्गोऽश्वादिखुरोत्थापितधूल्या रोमनासिकाच्छिद्रादिष्वन्तः प्रविशन् विकरोति ।

५ मृत्युशतम् = एकाधिकं शतं मृत्युरित्यर्थः । कारणानामसंख्येयत्वाच्छतशब्दोऽत्र इयत्तावोधको न, किन्तु संख्यावाचकः । ६ कालेन संयुक्तः कालमृत्युरित्यर्थः । कालसंज्ञ इति पाठान्तरम् । शेषाः = शतम्, आगन्तवः = विषमाभ्यवहारादितोऽभिचारादितश्चागमनशीला अपमृत्यवः, अकालमृत्यव इत्यर्थः । "जलमग्निर्विषं शस्त्रं स्त्रियो राजकुलानि च । अकालमृत्यवो ह्येते तेभ्यो बिभ्यति पण्डिताः ॥" इत्याद्यवसेयम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दोषागन्तुजमृत्युभ्यो रस[1]मन्त्रविशारदौ ।
रक्षेतां नृपतिं नित्यं य[2]त्तौ वैद्यपुरोहितौ ॥ ७ ॥
ब्रह्मा[3] वेदाङ्गमष्टाङ्गमायुर्वेदमभाषत ।
पु[4]रोहितमते तस्माद्वर्तेत भिषगात्मवान् ॥ ८ ॥
सङ्क[5]रः सर्ववर्णानां प्रणाशो धर्म्मकर्म्मणाम् ।
प्रजानामपि चोच्छित्तिर्नृपव्य[6]सनहेतुतः ॥ ९ ॥
पुरुषाणां नृपाणाञ्च केवलं तुल्यमूर्त्तिता ।
आज्ञा त्यागः क्षमा धैर्य्यं विक्रमश्चाप्यमानुषः ॥ १० ॥
तस्मा[7]देवमिवाभीक्ष्णं वाङ्मनःकर्म्मभिः शुभैः ।
चिन्तयेन्नृपतिं वैद्यः श्रेयांसीच्छन् विचक्षणः ॥ ११ ॥
स्क[8]न्धावारे च महति राजगेहादनन्तरम् ।
भवेत् सन्निहितो नित्यं सर्वो[9]पकरणान्वितः ॥ १२ ॥
तत्रस्थमेनं ध्वजवद्यशः ख्यातिसमुच्छ्रितम् ।
उपसर्पन्त्यमोहेन विषशल्यामयार्दिताः ॥ १३ ॥
स्वतन्त्रकुशलोऽन्येषु शास्त्रार्थेष्ववहिष्कृतः ।
वैद्यो[10] ध्वज इवाभाति नृपतद्वैद्यपूजितः ॥ १४ ॥
वैद्यो[11] व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः ।

---

१ यथासंख्येन रसविशारदो वैद्यः, मन्त्रविशारदः पुरोहितः । २ यत्तौ = यत्नपरौ । यत्नादिति पाठान्तरम् । ३ वैद्यात्पुरोधसः प्राधान्यं दर्शयति—**ब्रह्मेति** । ४ अथर्ववेदविदः पुरोधसो देवार्चनाद्युपायमङ्गीकृत्यैव बुद्धिमता भिषजा युक्तिव्यपाश्रयचिकित्सा विधातव्येति भावः । ५ सङ्करः = एकत्वम् । 'व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च । स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसङ्कराः ॥' इति मनुः ।

६ व्यसनहेतुतः = राज्ञो रोगादिरूपव्यसनकारणादित्यर्थः । ७ तस्माद् वैद्यो-देवमिव नृपतिं चिन्तयेदिति सम्बन्धः । ८ युद्धार्थमुद्युक्तानां सैन्यानामावारः सन्निवेशस्तस्मिन् स्कन्धावारे, कटक इत्यर्थः । ९ सर्वोपकरणान्वितः = यन्त्रशस्त्रक्षारौषधाद्युपेतः । १० कौटिलीयार्थशास्त्रे चिकित्साकर्मज्ञानां स्त्रीणामप्यवस्थितिरुक्ता—'चिकित्सकाः शस्त्रयन्त्रागदस्नेहवस्त्रहस्ताः स्त्रियश्चान्तःपुरचिन्त्यः पुरुषाणामुद्धर्षणीयाः पृष्ठतस्तिष्ठेयुः ।' इति ।

११ चिकित्सायाश्चतुरः पादानाह—**वैद्य इति** । व्याध्युपसृष्टः = रोगी ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


एते पादाश्चिकित्साया: कर्म्मसाधनहेतव: ॥ १५ ॥
गुणवद्भिस्त्रिभि: पादैश्चतुर्थो गुणवान् भिषक् ।
व्याधिमल्पेन कालेन महान्तमपि साधयेत् ॥ १६ ॥
[1]वैद्यहीनास्त्रय: पादा गुणवन्तोऽप्यपार्थका: ।
उद्गातृहोतृब्रह्माणो यथाऽध्वर्य्युं विनाऽध्वरे ॥ १७ ॥
[2]वैद्यस्तु गुणवानेकस्तारयेदातुरान् सदा ।
प्लवं [3]प्रतितरैर्हीनं कर्णधार इवाम्भसि ॥ १८ ॥
[4]त्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयङ्कृती ।
लघुहस्त: शुचि: शूर: सज्जोपस्करभेषज: ॥ १९ ॥
प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान् [5]व्यवसायी विशारद: ।
सत्यधर्म्मपरो यश्च स वै भिषक् पाद उच्यते ॥ २० ॥
[6]आयुष्मान् सत्त्ववान् साध्यो द्रव्यवानात्मवानपि ।
आस्तिको वैद्यवाक्यस्थो व्याधित: पाद उच्यते ॥ २१ ॥
[7]प्रशस्तदेशसम्भूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् ।
[8]युक्तमात्रं मनस्कान्तं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ २२ ॥
दोषघ्नमग्लानिकरमविकारि विपर्य्यये ।
समीक्ष्य दत्तं काले च भेषजं पाद उच्यते ॥ २३ ॥
[9]स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान् युक्तो व्याधितरक्षणे ।

---

१ तेषु पादेषु वैद्यस्य प्राधान्यं निदर्शयति—**वैद्यहीना इति** । यथा यज्ञेऽध्वर्युं विना उद्गातृहोतृ ब्रह्माणो निष्फलास्तथा वैद्यरहितास्त्रयः पादा अपार्थका निष्फलाः । उद्गाता = सामवेदवित्, होता = ऋग्वेदवित्, ब्रह्मा = त्रयीविद् यज्ञसंसिद्धेर्वाचकः, अध्वर्युः = यजुर्वेदवित् सर्वकर्मोपदेष्टा, अत एव तस्य प्राधान्यम् ।

२ पादत्रयव्यतिरेकेऽपि वैद्यक्रियायाः साफल्यं निदर्शयति—**वैद्यस्त्विति** । ३ प्रतिस्रोतस्यपि नौकादण्डादिकं निःक्षिप्य नौगुणमाकृष्य वा तरन्तीति वा प्रतितरास्तैः प्रतितरैः पोतवाहैः, अन्तःप्रविष्टजलोत्क्षेपकैः पुरुषैर्वा ।

४ वैद्यगुणानभिधत्ते—**तत्त्वेति** । ५ व्यवसायी = विषमावस्थास्वपि चिकित्सां कुर्वन् यो न मुह्यति । ६ व्याधितगुणानभिदधाति—**आयुष्मानिति** । ७ भेषजगुणानाचष्टे—**प्रशस्तेति** । ८ युक्तमात्रं = हीनातिमात्रोपयोगरहितम्, उपयुक्तमात्रया प्रदत्तमित्यर्थः । ९ परिचारकगुणान् वक्ति—**स्निग्ध इति** । स्निग्धः = प्रीति-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वैद्यवाक्यकृदश्रान्तः पादः परिचरः स्मृतः ॥ २४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने युक्तसेनीयो नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

---

## पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथात आतुरोपक्रमणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

आतुरमुपक्रममाणेन भिषजाऽऽयुरादावेव परीक्षितव्यम् । सत्यायुषि व्याध्यृत्वग्निवयोदेहबलसत्त्वसात्म्यप्रकृतिभेषजदेशान् परीक्षेत ॥ ३ ॥

तत्र महापाणिपादपार्श्वपृष्ठस्तनाग्रदशनवदनस्कन्धललाटं दीर्घाङ्गुलिपर्वोच्छ्वासप्रेक्षणबाहुं विस्तीर्णभ्रूस्तनान्तरोरस्कं ह्रस्वजङ्घामेढ्रग्रीवं गम्भीरसत्त्वस्वरनाभिमनुच्चैर्बद्धस्तनान्तरोरस्कं ह्रस्वजङ्घामेढ्रग्रीवं गम्भीरसत्त्वस्वरनाभिमनुच्चैर्बद्धस्तनमुपचितमहारोमशकर्णं पश्चान्मस्तिष्कं स्नातानुलिप्तं मूर्द्धानुपूर्व्या विशुष्यमाणशरीरं पश्चाच्च

---

युक्तः, अजुगुप्सुः=अनिन्दकः, यतो निन्दकः परिचारक आतुरविषादमापादयति । व्याधितस्य संवाहनस्वापनादिभी रक्षणे युक्तः निपुणः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।**

---

## पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ चिकित्साऽर्थं यादृश आतुर उपक्रम्यो भवति, तादृशोपक्रमणमधिकृत्य कृतोऽध्याय आतुरोपक्रमणीयस्तम् । २ उपक्रममाणेन=चिकित्साऽऽरम्भं करिष्यमाणेनेति भावः । ३ अत एव योगरत्नाकरे—"औषधं मङ्गलं मन्त्रो ह्यन्याश्च विविधाः क्रियाः । यस्यायुस्तस्य सिद्ध्यन्ति न सिद्धन्ति गतायुषि ॥" इति । ४ दीर्घायुषो लक्षणान्याह—**तत्रेत्यादिना** । महच्छब्दस्य पाण्यादिललाटान्तैः प्रत्येकमभिसम्बन्धः । महत्त्वं च वक्ष्यमाणप्रमाणतः किञ्चिदाधिक्यम् । एवमग्रे दैर्घ्यादिकं वेदितव्यम् । ५ उपचितौ मांसलौ महान्तौ विस्तीर्णौ रोमशौ च कर्णौ यस्य तमुपचितमहारोमशकर्णम् । शिरः पश्चाद्भागे औन्नत्या विस्तृतया चानुमितं प्रचुरतरं मस्तिष्कं यस्य तम्, अथवा पश्चाद् ग्रीवाभागे मस्तिष्को रोमावर्तो विद्यते यस्य तं पश्चान्मस्तिष्कम् । आदौ स्नातः पश्चादनुलिप्तस्तम् । मूर्धानुपूर्व्या अर्थाद्यस्य प्रथमं मस्तकादिशरीरं शुष्यति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विशुष्यमाणहृदयं पुरुषं जानीयादीर्घायुः खल्वयमिति । तमेकान्ते-[1] नोपक्रमेत् । एभिर्लक्षणैर्विपरीतैरल्पायुः, मिश्रैर्मध्यमायुरिति ॥ ४ ॥

भवन्ति चात्र ।

गूढसन्धिसिरास्नायुः संहताङ्गः स्थिरेन्द्रियः ।[2]
उत्तरोत्तरसुक्षेत्रो यः स दीर्घायुरुच्यते[3] ॥ ५ ॥
गर्भात् प्रभृत्यरोगो यः शनैः[4] समुपचीयते ।
शरीरज्ञानविज्ञानैः स दीर्घायुः समासतः ॥ ६ ॥
मध्यमस्यायुषो[5] ज्ञानमत ऊर्ध्वं निबोध मे ।
अधस्तादक्षयोर्यस्य लेखाः स्युर्व्यक्तमायताः ॥ ७ ॥
द्वे वा तिस्रोऽधिका वापि पादौ कर्णौ च मांसलौ ।
नासाग्रमूर्ध्वञ्च भवेदूर्ध्वं लेखाश्च पृष्ठतः ॥ ८ ॥
यस्य स्युस्तस्य परममायुर्भवति सप्ततिः ।
जघन्यस्यायुषो[6] ज्ञानमत ऊर्ध्वं निबोध मे ॥ ९ ॥
ह्रस्वानि यस्य पर्वाणि सुमहच्चापि मेहनम् ।
तथोरस्यवलीढानि न च स्यात्पृष्ठमायतम् ॥ १० ॥
ऊर्ध्व च श्रवणौ स्थानान्नासा चोच्चा शरीरिणः ।
हसतो जल्पतो वाऽपि दन्तमांसं प्रदृश्यते ।
प्रेक्षते यश्च विभ्रान्तं स जीवेत्पञ्चविंशतिम् ॥ ११ ॥

अथ[7] पुनरायुषो विज्ञानार्थमङ्गप्रत्यङ्गप्रमाणसारानुपदेक्ष्यामः । तत्राङ्गान्यन्तराधिसक्थिबाहुशिरांसि तद्वयवाः प्रत्यङ्गानीति ।

---

पश्चाद्धृदयम् । १ एकान्तेन = असन्दिग्धमनसेत्यर्थः । २ गूढा मांसादिना संवृताः सन्धिसिरास्नायवो यस्य सः । ३ उत्तरोत्तरसुक्षेत्रः = उत्तरोत्तरमापादशिरश्शोभन-शरीर इत्यर्थः । ४ यः शरीरज्ञानविज्ञानैः शनैः समुपचायते वृद्धिं प्राप्नोतीति सम्बन्धः । शनैः = क्रमशः, अन्यथावर्द्धनेऽल्पायुः । तदुक्तम्—"व्यञ्जनादिशुभा विद्या मेधो मेधादयो यशः । अल्पे वयसि यस्यैतन्न स जीवेत्कदाचन ॥" इति । ५ मध्यमायुषो लक्षणानि निर्दिशति—**मध्यमस्येति** । ६ अल्पायुषो लक्षणानि वक्ति—**जघन्यस्येति** । ७ आयुषो ज्ञानार्थमङ्गप्रत्यङ्गप्रमाणमुपदर्शयति—**अथेत्यादिना** । ८ अन्तरं सक्थ्यादीनामवकाश आधीयतेऽत्रेत्यन्तराधिः शरीरमध्यभागः । सक्थिकटिसन्धिमारभ्य पादा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र,[1] स्वैरङ्गुलैः पादाङ्गुष्ठप्रदेशिन्यौ द्व्यङ्गुलायते । प्रदेशिन्यास्तु मध्यमाऽनामिकाकनिष्ठिका यथोत्तरं पञ्चमभागहीनाः । चतुरङ्गुलायते पञ्चाङ्गुलविस्तृते प्रपदपादतले । पञ्चचतुरङ्गुलायतविस्तृता पार्ष्णिः । चतुर्दशाङ्गुलायतः पादः । चतुर्दशाङ्गुलपरिणाहानि पादगुल्फजङ्घाजानुमध्यानि । अष्टादशाङ्गुला जङ्घा; जानूपरिष्टाच्च द्वात्रिंशदङ्गुलमेवं पञ्चाशत् । जङ्घायामसमावूरू । द्व्यङ्गुलानि वृषणचिबुकदशननासापुटभागकर्णमूलनयनान्तराणि । चतुरङ्गुलानि मेहनवदनान्तरनासाकर्णललाटग्रीवोच्छ्रायदृष्ट्यन्तराणि । द्वादशाङ्गुलानि भगविस्तारमेहननाभिहृदयग्रीवास्तनान्तरं मुखायाममणिबन्धप्रकोष्ठस्थौल्यानि । इन्द्रबस्तिपरिणाहां[3] सपीठकूर्परान्तरायामः षोडशाङ्गुलः । चतुर्विंशत्यङ्गुलो हस्तः । द्वात्रिंशदङ्गुलपरिमाणौ भुजौ । द्वात्रिंशत्परिणाहावूरू । मणिबन्धकूर्परान्तरं षोडशाङ्गुलम् । तलं षट्चतुरङ्गुलायामविस्तारम् । अङ्गुष्ठमूलप्रदेशिनीश्रवणापाङ्गान्तरमध्यमाङ्गुल्यौ पञ्चाङ्गुले । अर्द्धपञ्चाङ्गुले प्रदेशिन्यनामिके । सार्धत्र्यङ्गुलौ कनिष्ठाङ्गुष्ठौ । चतुर्विंशतिविस्तारपरिणाहं मुखग्रीवम् । त्रिभागाङ्गुलिविस्तारा नासापुटमर्य्यादा । नयनत्रिभागपरिणाहा तारका । नवमस्तारकांशो दृष्टिः[4] । केशान्तमस्तकान्तरमेकादशाङ्गुलम्[5] । मस्तकादवटुकेशान्तो[6] दशाङ्गुलः । कर्णावट्वन्तरं चतुर्दशाङ्गुलम् । पुरुषोरःप्रमाणविस्तीर्णा स्त्रीश्रोणिः । अष्टादशाङ्गुलविस्तीर्णमुरः । तत्प्रमाणा पुरुषस्य कटी । सविंशमङ्गुलशतं[7] पुरुषायाम इति ॥ १२ ॥

---

ङ्गुलीर्यावत् । १ पादाङ्गुष्ठादारभ्य मस्तकपर्यन्तं क्रमशो मानं प्रदर्शयन्नाह—**तत्रेति** । तत्र=तेषां प्रत्यङ्गानां मध्ये । २ मुखं च—"ओष्ठौ च दन्तमूलानि दन्तजिह्वे च तालु च । गलश्चौष्ठादिसकलं सप्ताङ्गं मुखमुच्यते ॥" इति । ३ "पार्ष्णि प्रति जङ्घामध्ये इन्द्रबस्तिर्नाम" इति शारीरे वक्ष्यमाणलक्षणो देश इन्द्रबस्तिः । ४ तारका=नवमांशो दृष्टिमण्डलमित्यर्थः । ५ केशानामन्तो मर्यादाऽत्रेति व्युत्पत्त्या केशसीमायां प्रवृत्तोऽपि केशान्तशब्दः सामान्यशब्दस्य विशेषवृत्तित्वादिह शङ्खयोरुपर्येव बोध्यः । ६ अवटुः=ग्रीवापश्चाद्भागस्थः, कृकाटिका वा ।

७ विंशत्या अङ्गुलैः सह शतं सविंशमङ्गुलशतं, पुरुषायामः पादाग्रावस्थितस्यो-


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन्ति चात्र ।

पञ्चविंशे[1] ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे ।
समत्वागतवीर्य्यौ[2] तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ १३ ॥
देहः स्वैरङ्गुलैरेष यथावदनुकीर्त्तितः ।
युक्तः[3] प्रमाणेनानेन पुमान् वा यदि वाऽङ्गना ॥ १४ ॥
दीर्घमायुरवाप्नोति वित्तञ्च महदृच्छति ।
मध्यमं मध्यमैरायुर्वित्तं हीनैस्तथाऽवरम् ॥ १५ ॥

अथ सारान् वक्ष्यामः—स्मृतिभक्तिप्रज्ञाशौर्य्यशौचोपेतं कल्याणाभिनिवेशं[4] सत्त्वसारं विद्यात् । स्निग्धसंहतश्वेतास्थिदन्तनखं

---

र्ध्वबाहोः पुरुषस्य दैर्घ्यम् । एवं च—"केवलं पुनः शरीरमङ्गुलिपर्वाणि चतुरशीतिः, तदायामविस्तारसमं समुच्यते ।" इति चरकोक्तचतुरशीत्यङ्गुलपुरुषायामेन सह नास्य विरोधः ।

अत्र चक्रोक्त्यनुसारेण सविंशमङ्गुलशतं पुरुषायाममानं सरलतया संख्याऽऽदिबोधनार्थमधः प्रदर्श्यते—

| | |
|---|---|
| पार्ष्णिः— | ५ पञ्चाङ्गुलायामा । |
| जङ्घा— | २४ चतुर्विंशत्यङ्गुला । |
| जानु— | ४ चतुरङ्गुलम् । |
| ऊरुः— | २४ चतुर्विंशत्यङ्गुलः । |
| मेहननाभ्योरन्तरं— | १२ द्वादशाङ्गुलम् । |
| नाभिहृदयान्तरं— | १२ द्वादशाङ्गुलम् । |
| ग्रीवाहृदयान्तरं— | १२ द्वादशाङ्गुलम् । |
| ग्रीवा— | ४ चतुरङ्गुलायामा । |
| मुखं— | १२ द्वादशाङ्गुलायामम् । |
| केशान्तचूडास्थानरूपमस्तकान्तरम्— | ११ एकादशाङ्गुलम् । |
| | १२० |

१ स्त्रीश्रोणिपुरुषोरःप्रभृतीनां यौवने एव यथोक्तप्रमाणता भवतीति दर्शयति—**पञ्चेति ।** २ समत्वं परिपूर्णत्वमागतं वीर्यं शक्तिर्ययोस्तौ समत्वागतवीर्यौ । पञ्चविंशे वर्षे पुरुषः समत्वागतवीर्यः, षोडशे वर्षे नारी च समत्वागतवीर्या भवतीत्यर्थः । तथा च तन्त्रान्तरम्—"वर्षेऽथ पञ्चविंशे नरः समन्वितबलः षोडशे नारी । अर्हति मानोन्मानं जीवितभागे चतुर्थे वा ॥" इति । ३ उक्तप्रमाणप्रयोजनं दर्शयति—**युक्त इति ।** ४ कल्याणाभिनिवेशं = शुभकार्येषु यत्नशीलम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुलकामप्रजं[1] शुक्रेण। अकृशमुत्तमबलं स्निग्धगम्भीरस्वरं सौभाग्योपपन्नं महानेत्रञ्च मज्ज्ञा। महाशिरःस्कन्धं दृढदन्तहन्वस्थिनखमस्थिभिः। स्निग्धमूत्रस्वेदस्वरं बृहच्छरीरमायासासहिष्णुं मेदसा। अच्छिद्रगात्रं[2] गूढास्थिसन्धि मांसोपचितञ्च मांसेन। स्निग्धताम्र[3]नखनयनतालुजिह्वौष्ठपाणिपादतलं रक्तेन। सुप्रसन्नमृदुत्वग्रोमाणं त्वक्सारं विद्यादिति येषां। पूर्वं पूर्वं प्रधानमायुःसौभाग्ययोरिति॥१६॥

विशेषतोऽङ्गप्रत्यङ्गप्रमाणादथ सारतः।
परीक्ष्यायुः सुनिपुणो भिषक् सिध्यति कर्मसु॥ १७॥

व्याधिविशेषास्तु प्रागभिहिताः। सर्व एवैते त्रिविधाः—साध्या, याप्याः, प्रत्याख्येयाश्च। तत्रैतान् भूयस्त्रिधा परीक्षेत—किमसावौपसर्गिकः, प्राक्केवलः, अन्यलक्षण इति। तत्र, औपसर्गिको[4] यः पूर्वोत्पन्नं व्याधिं जघन्यकालजातो व्याधिरुपसृजति स तन्मूल[5] एवोपद्रवसंज्ञः। प्राक्केवलो[6] यः प्रागेवोत्पन्नो व्याधिरपूर्वरूपोऽनुपद्रवश्च। अन्यलक्षणो[7] यो भविष्यद्व्याधिख्यापकः, स पूर्वरूपसंज्ञः। तत्र, सोपद्रवमन्योन्याविरोधेनोपक्रमेत, बलवन्तमुपद्रवं वा। प्राक्केवलं यथास्वं प्रतिकुर्वीत। अन्यलक्षणे त्वादिव्याधौ प्रयतेत॥ १८॥

भवति चात्र।

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः।
अनुक्त[8]मपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत्॥ १९॥

प्राग[9]भिहिता ऋतवः॥ २०॥

---

१ बहुलकामप्रजं = बहुलकामं बहुप्रजमित्यर्थः। २ अच्छिद्रगात्रम् = अनिन्दितशरीरम्। ३ स्निग्धताम्रशब्दयोर्नखादिपाणितलान्तैः सह प्रत्येकं सम्बन्धः।

४ उपद्रवसंज्ञ औपसर्गिकः प्रसिद्धः। चरकोऽप्याह—"उपद्रवस्तु खलु रोगोत्तरकालजो रोगाश्रयो रोग एव स्थूलोऽणुर्वा पश्चाज्जायत इत्युपद्रवः।" इति। ५ तन्मूलमूलक इति पाठे तस्य पूर्वोत्पन्नस्य व्याधेर्मूलं मूलमस्य स इति बोध्यः। ६ य उत्पन्नो व्याधिः प्रागेव जन्मत एवापूर्वरूपः पूर्वरूपेतरः, अनुपद्रव उपद्रवेतरश्च स प्राक्केवलः। ७ 'अन्यलक्षण' इत्यत्र अन्ये उत्पित्सवो व्याधयो लक्ष्यन्तेऽनेनेति करणे ल्युट्। ८ अनुक्तमपि व्याधिं दोषाणां लिङ्गैरुपाचरेदिति सम्बन्धः। ९ प्राक् = ऋतुचर्याध्याये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीते शीतप्रतीकारमुष्णे चोष्णनिवारणम् ।
कृत्वा कुर्य्यात् क्रियां प्राप्तां[1] क्रियाकालं न हापयेत्[2] ॥ २१ ॥
अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न कृता क्रिया ।
क्रिया हीनाऽतिरिक्ता वा साध्येष्वपि न सिध्यति ॥ २२ ॥
या ह्युदीर्णं[3] शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ।
सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥ २३ ॥

प्राग्[4]भिहितोऽग्निरन्नस्य पाचकः । स चतुर्विधो भवति—दोषै[5]रभिपन्न एकः । विक्रियामापन्नस्त्रिविधो भवति—विषमो वातेन, तीक्ष्णः पित्तेन, मन्दः श्लेष्मणा, चतुर्थः समः सर्वसाम्यादिति । तत्र, यो यथाकालमुपयुक्तमन्नं सम्यक् पचति स समः, समैर्दोषैः । यः कदाचित् सम्यक् पचति, कदाचिदाध्मानशूलोदावर्तातिसारजठरगौरवान्त्रकूज[6]नप्रवाहणानि कृत्वा स विषमः । यः प्रभूतमप्युपयुक्तमन्नमाशु पचति स तीक्ष्णः; स एवाभिवर्द्धमानोऽत्यग्नि[7]रित्याभाष्यते । स मुहुर्मुहुः प्रभूतमप्युपयुक्तमन्नमाशुतरं पचति, पाकान्ते च गलतालुवोष्ठशोषदाहसन्तापान् जनयति । यस्त्वल्पमप्युपयुक्तमुदरशिरोगौरवकासश्वासप्रसेकच्छर्दिगात्रसदनानि कृत्वा महता कालेन पचति स मन्दः ॥ २४ ॥

विषम[8]ो वातजान् रोगांस्तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान् ।
करोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान् कफसम्भवान् ॥ २५ ॥

तत्र[9], समे परिरक्षणं कुर्वीत । विषमे स्निग्धाम्ललवणैः क्रियाविशेषैः प्रतिकुर्वीत । तीक्ष्णे मधुरस्निग्धशीतैर्विरेकैश्च । एवमेवात्यग्नौ, विशेषेण माहिषैश्च क्षीरदधिसर्पिर्भिः । मन्दे कटुतिक्तकषायैर्वमनैश्च ॥ २६ ॥

---

१ प्राप्ताम्=उचितामित्यर्थः । २ न हापयेत्=नोल्लङ्घयेत् । ३ उदीर्णम्=उत्कटम् । ४ प्राक्=व्रणप्रश्ने पक्वामाशयमध्यस्थं पित्तमित्यादिनाऽभिहितः । ५ दोषानभिपन्नः=दोषरहित इत्यर्थः । ६ कूजनं=गुडगुडायनशब्दः । ७ अत्यग्निः=भस्मकाग्निः; वृन्दमाधवे—"वर्धमानो भवेत्तीक्ष्णो भस्मकाख्यो महानलः" इति । ८ विषमाद्यग्नीनां वातादिप्रकोपकत्वमाह—**विषम इति** । ९ समाग्न्यादीनां चिकि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः ।
सौक्ष्म्याद्रसानाददानो [1]विवेक्तुं नैव शक्यते ॥ २७ ॥
प्राणापानसमानैस्तु सर्वतः पवनैस्त्रिभिः ।
[3]ध्मायते पाच्यते चापि स्वे स्वे स्थाने व्यवस्थितैः ॥ २८ ॥

[4]वयस्तु त्रिविधं—बाल्यं, मध्यं, वृद्धमिति । तत्रोनषोडशवर्षा बालाः । तेऽपि त्रिविधाः—क्षीरपाः, क्षीरान्नादा, अन्नादा इति । तेषु [5]संवत्सरपराः क्षीरपाः, द्विसंवत्सरपराः क्षीरान्नादाः, परतोऽन्नादा इति । षोडशसप्तत्योरन्तरे मध्यं वयः । तस्य विकल्पो वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता हानिरिति । तत्र, आविंशतेर्वृद्धिः, आत्रिंशतो यौवनम्, आचत्वारिंशतः सर्वधात्विन्द्रियबलवीर्य्यसम्पूर्णता, अत ऊर्ध्वमीषत्परिहाणिर्यावत् सप्ततिरिति । सप्ततेरूर्ध्वं क्षीयमाणधात्विन्द्रियबलवीर्य्योत्साहमहन्यहनि वलीपलितखालित्यजुष्टं कासश्वासप्रभृतिभिरुपद्रवैरभिभूयमानं सर्वक्रियास्वसमर्थं जीर्णागारमिवाभिवृष्ट[6]मवसीदन्तं वृद्धमाचक्षते ॥ २९ ॥

तत्रोत्तरोत्तरासु वयोऽवस्थासूत्तरोत्तरा[7] भेषजमात्राविशेषा भवन्ति, ऋते च परिहाणेः । तत्राद्यापेक्षया प्रतिकुर्वीत ॥ ३० ॥

---

त्सां निर्दिशति—**तत्रेत्यादिना** । १ विवेक्तुं=विशेषतो निर्णेतुम् । २ प्राणापानसमानैस्त्रिभिरित्यर्थः । ३ ध्मायते=फूत्कारेणेव प्रज्ज्वाल्यते । ४ कालप्रमाणविशेषापेक्षिणी हि शरीरावस्था वयोऽभिधीयते । ५ संवत्सरपराः=संवत्सरेण परिच्छिन्नसीमानः । 'परः स्यादुत्तरे सीमापरिच्छिन्ने' इति कोशः । ६ चरकस्त्वात्रिंशतो वृद्धिमाह—"विवर्द्धमानधातुगुणमात्रिंशद्वर्षमुपदिष्टम्" इति । अत्र वृद्धिर्विशेषतोऽस्थ्नो बोध्यः । मांसादिवृद्धिस्तु निर्दिष्टवर्षानन्तरमपि भवितुमर्हति । ७ वली=त्वक्सङ्कोचः, पलितं=केशशौक्ल्यम्, खालित्यं=खल्वाटत्वम् । ८ अभिवृष्टं=वृष्टिभिराक्लिन्नम्, अवसीदन्तं=पतन्तम् ।

९ उत्तरोत्तराः=क्रमशो वर्द्धिता भेषजमात्राविशेषाः । यथा—"प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका । अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥ एकैकां वर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् । तदूर्ध्वं मासवृद्धिः स्याद्यावत् षोडशकाब्दिकः ॥ षोडशाब्दात्ततस्तूर्ध्वं यावदासप्ततेरिति । एवमेव विभागोऽयं तदूर्ध्वं बालवत् क्रिया ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन्ति चात्र ।

बाले विवर्द्धते श्लेष्मा मध्यमे पित्तमेव तु ।
भूयिष्ठं वर्द्धते वायुर्वृद्धे तद्वीक्ष्य योजयेत् ॥ ३१ ॥
अग्निक्षारविरेकैस्तु बालवृद्धौ विवर्जयेत् ।
तत्साध्येषु विकारेषु मृद्वीं कुर्य्यात् क्रियां शनैः ॥ ३२ ॥
देहः स्थूलः, कृश मध्य इति प्रागुपदिष्टः ॥ ३३ ॥
कर्शयेद् बृंहयेच्चापि सदा स्थूलकृशौ नरौ ।
रक्षणञ्चैव मध्यस्य कुर्वीत सततं भिषक् ॥ ३४ ॥
बलमभिहितगुणं, दौर्बल्यञ्च स्वभावदोषजरादिभिरवेक्षितव्यम् । यस्माद्बलवतः सर्वक्रियाप्रवृत्तिस्तस्माद्बलमेव प्रधानमधिकरणानाम् ॥ ३५ ॥
केचित् कृशाः प्राणवन्तः स्थूलाश्चाल्पबला नराः ।
तस्मात् स्थिरत्वव्यायामैर्बलं वैद्यः प्रतर्कयेत् ॥ ३६ ॥
सत्त्वं तु व्यसनाभ्युदयक्रियाऽऽदिस्थानेष्वविक्लवकरम् ॥ ३७ ॥
सत्त्ववान् सहते सव संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
राजसः स्तभ्यमानोऽन्यैः सहते नैव तामसः ॥ ३८ ॥
सात्म्यानि तु देशकालजात्यृतुरोगव्यायामोदकदिवास्वप्नरस-

---

विश्वामित्रः—"विडङ्गकलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम् । एतेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्धितम् ॥ कोलास्थिमात्र क्षीरादेर्दद्याद् भैषज्यकोविदः ॥ क्षीरान्नादे कोलमात्रमन्नादे डुम्बरोपमम् ॥" इति । परिहाणेः = पर्यतिशयेन धात्वेन्द्रियादीनां हानिरपचयः, वृद्धावस्थेति यावत्; तद्विनेत्यर्थः । आद्यापेक्षया = बाल्यापेक्षया, षोडशवर्षवद् भेषजमात्रेत्यर्थः ।

१ अग्निक्षारविरेकसाध्येषु व्याधिषु मृद्वी क्रिया । यथा अजाशकृदादिमृदुद्रव्यसंश्रयोऽग्निः, आवापप्रतिवापहीनो मृदुक्षारः, चतुरङ्गुलादिमृदुद्रव्याश्रयो विरेकः । २ प्राक् = दोषादिविज्ञानीये । ३ स्थूलादीनां कर्शनादिचिकित्सामुपदिशति—**कर्शयेदिति ।** ४ बलपरीक्षां विचारयति—**बलमिति ।** ५ अवेक्षितव्यं = मातृपितृशोणितशुक्रस्वभावादिभिर्ज्ञातव्यमित्यर्थः । ६ सत्त्वपरीक्षामुपदिशति—**सत्त्वमिति ।** ७ सात्म्यपरीक्षामाख्याति—**सात्म्यानीति ।** यद्यस्य सेवितं सुखाय सम्पद्यते तत्तस्य सात्म्यम् । चरकः—"सात्म्यं नाम तत्, यत्सातत्येनोपसेव्यमानमुपशेते" इति । ८ दिवा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रभृतीनि प्रकृतिविरुद्धान्यपि यान्यबाधकराणि भवन्ति ॥ ३९ ॥

यो रसः कल्पते यस्य सुखायैव निषेवितः ।
व्यायामजातमन्यद्वा तत् सात्म्यमिति निर्दिशेत् ॥ ४० ॥

प्रकृतिं भेषजं चोपरिष्टाद्[1] वक्ष्यामः ॥ ४१ ॥

देशस्त्वानूपो जाङ्गलः साधारण इति । तत्र, बहूदकनिम्नोन्नतनदीवर्षगहनो मृदुशीतानिलो बहुमहापर्वतवृक्षो मृदुसुकुमारोपचितशरीरमनुष्यप्रायः कफवातरोगभूयिष्ठश्चानूपः । आकाशसमः[3] प्रविरलाल्पकण्टकिवृक्षप्रायोऽल्पवर्षप्रस्रवणोदपानोदकप्रायः[4] उष्णदारुणवातः प्रविरलाल्पशैलः स्थिरकृशशरीरमनुष्यप्रायो वातपित्तरोगभूयिष्ठश्च जाङ्गलः । उभयदेशलक्षणः साधारण इति ॥ ४२ ॥

भवन्ति चात्र ।

समाः साधारणे यस्माच्छीतवर्षोष्ममारुताः ।
दोषाणां समता जन्तोस्तस्मात्साधारणो मतः ॥ ४३ ॥

न तथा बलवन्तः स्युर्जलजा वा स्थलाहृताः[5] ।
स्वदेशे निचिता दोषा अन्यस्मिन् कोपमागताः ॥ ४४ ॥

उचिते वर्तमानस्य नास्ति देशकृतं भयम् ।
आहारस्वप्नचेष्टाऽऽदौ तद्देशस्य गुणे सति ॥ ४५ ॥

---

स्वप्नसात्म्यम्—"निद्रा सात्म्यीकृता यैस्तु रात्रौ च यदि वा दिवा । न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां वाऽपि जायते ॥" इति । १ उपरिष्टात् = शारीरस्थानस्य चतुर्थेऽध्याये प्रकृतिं, सूत्रस्थानस्य भूमिप्रविभागीयादौ भेषजम् । २ देशपरीक्षामाचष्टे-**देश इति ।**

३ आकाशसमः = निम्नोन्नतत्वरहितत्वेन समभूमिभागः । ४ अल्पं वर्षायाः प्रस्रवणानां निर्झराणामुदपानानां कूपानामुदकं प्रायेण यत्र स तथोक्तः । ५ स्वदेशे निचिताः सञ्चिता दोषा अन्यस्मिन् विरुद्धगुणदेशे कोपमागतास्तथा न बलवन्तः स्युः, यथा जलजाः कूर्मादयः स्थलाहृताः; वाशब्दात् स्थलजाश्च गवादयो जलाहृताः सन्तो न बलवन्तः स्युः । उक्तं च—"नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति । स एव प्रच्युतः स्थानाच्छुनाऽपि परिभूयते" ॥ डल्हणस्तु—जलजा आनूपदेशजाताः श्लीपदादयः स्थलाहृता जाङ्गलदेशं नीता इति व्याख्यातवान् । एतन्मते श्लोकपूर्वार्द्धं व्याधिसुचिकित्स्यतापरकं, श्लोकोत्तरार्द्धं दोषचयादिसुचिकित्स्यतापरकं च बोद्धव्यम् ।

CC-0, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


देशप्रकृतिसात्म्यर्तुविपरीतोऽचिरोत्थितः ।
सम्पत्तौ भिषगादीनां बलसत्त्वायुषां तथा ॥ ४६ ॥
केवलः समदेहाग्नेः सुखसाध्यतमो गदः ।
अतोऽन्यथा त्वसाध्यः स्यात् कृच्छ्रो व्यामिश्रलक्षणः ॥ ४७ ॥
क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ।
पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासङ्करो हितः ॥ ४८ ॥
गुणालाभेऽपि सपदि यदि सैव क्रिया हिता ।
कर्तव्यैव तदा व्याधिः कृच्छ्रसाध्यतमो यदि ॥ ४९ ॥
य एवमेनं विधिमेकरूपं बिभर्त्ति कालादिवशेन धीमान् ।
स मृत्युपाशान् जगतो गदौघान् छिनत्ति भैषज्यपरश्वधेन ॥ ५० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने आतुरोपक्रमणीयो नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

---

## षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो भूमिप्रविभागीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
श्वभ्रशर्कराऽश्मविषमवल्मीकशमशानाघातनदेवतायतनसिकता-

---

१ सुखसाध्यादीनां लक्षणमभिदधाति—**देशेति** । जाङ्गलदेशे कफरोगोत्पत्तिरिति देशविपरीतः । पित्तप्रकृतेः कफरोगोत्पत्तिरिति प्रकृतिविपरीतः । कटुसात्म्यस्य कफरोगोत्पत्तिरिति सात्म्यविपरीतः । शरदि वातिकव्याधेः, हेमन्ते पैत्तिकव्याधेः, ग्रीष्मे श्लैष्मिकव्याधेश्चोत्पत्तिरिति ऋतुविपरीतः । २ केवलः = उपद्रवादिरहितत्वेन एकदोषजनितः । ३ युगपद् द्वयोः प्रयोगः सङ्करः । ४ भैषज्यपरश्वधेन = औषधरूपकुठारेणेत्यर्थः । एतदध्यायानन्तरं केचिन्मिश्रकाध्यायं पठन्तीति बोध्यम् ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।**

---

## षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

५ भूमेः प्रकृष्टः सामान्यतो विशेषतश्च विभागस्तमधिकृत्य कृतोऽध्यायो भूमिप्रविभागीयस्तम् । ६ औषधाहरणयोग्यां भूमिमभिदधाति—**श्वभ्रेति** । ७ आघा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भिरनुपहतामनूषरामभङ्गुरासदूरोदकां स्निग्धां प्ररोहवतीं मृद्वीं स्थिरीं समां कृष्णां गौरीं लोहितां वा भूमिमौषधार्थं परीक्षेत। तस्यां जातमपि कृमिविषशस्त्रातपपवनदहनतोयसम्बाधमार्गैरनुपहतमेकरसं पुष्टं पृथ्ववगाढमूलमुदीच्याश्चौषधमाददीतेत्येष भूमिपरीक्षाविशेषः सामान्यः॥ ३ ॥

विशेषतस्तु तत्र, अश्मवती स्थिरा गुर्वी श्यामा कृष्णा वा स्थूलवृक्षशस्यप्राया स्वगुणभूयिष्ठा। स्निग्धा शीतलाऽऽसन्नोदका स्निग्धशस्यतृणकोमलवृक्षप्राया शुक्लाऽम्बुगुणभूयिष्ठा। नानावर्णा लघ्वश्मवती प्रविरलाल्पपाण्डुवृक्षप्ररोहा अग्निगुणभूयिष्ठा। रूक्षा भस्मरासभवर्णा तनुरूक्षकोटरालपरसवृक्षप्राया अनिलगुणभूयिष्ठा। मृद्वी समा श्वभ्रवत्यव्यक्तरसजला सर्वतोऽसारवृक्षा महापर्वतवृक्षप्राया श्यामा चाकाशगुणभूयिष्ठा॥ ४ ॥

अत्र केचिदाहुराचार्य्याः—प्रावृड्वर्षाशरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मेषु यथासंख्यं मूलपत्रत्वक्क्षीरसारफलान्याददीतेति। तत्तु न सम्यक्, सौम्याग्नेयत्वाज्जगतः। सौम्यान्यौषधानि सौम्येष्वृतुषु गृहीतानि सोमगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातान्यतिमधुरस्निग्धशीतानि जायन्ते। एतेन शेषं व्याख्यातम्॥ ५ ॥

तत्र पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातानि विरेचनद्रव्याण्याददीत, अग्न्याकाशमारुतगुणभूयिष्ठायां वमनद्रव्याणि। उभयगुणभूयिष्ठायामुभयतोभागानि। आकाशगुणभूयिष्ठायां संशमनानि। एवं बलवत्तराणि भवन्ति॥ ६ ॥

---

तनं=प्राणिवधस्थानम्। १ अभङ्गुराम्=असन्निहितनद्यादिकत्वेनाभञ्जनशीलाम्। २ प्ररोहवतीं=प्रचुरतरबीजाङ्कुरप्ररोहशीलाम्। ३ पञ्चमहाभूतविशेषेण भूमेर्विशिष्टगुणं दर्शयति—**विशेषतस्त्विति**। ४ स्वेषां गुणानां स्थूलत्वादीनां भूयिष्ठमाधिक्यमत्रेति स्वगुणभूयिष्ठा, पृथ्वीगुणभूयिष्ठेत्यर्थः। ५ केषु ऋतुष्वौषधान्याददीतेति प्रतिपादयति—**अत्रेत्यादिना**। ६ विरेचनादिद्रव्याणि कीदृश्यां भूमौ जातानि ग्राह्याणीति दर्शयति—**तत्रेति**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वाण्येव[1] चाभिनवान्यन्यत्र मधुघृतगुडपिप्पलीविडङ्गेभ्यः। सर्वाण्येव सक्षीराणि[2] वीर्य्यवन्ति, तेषामसम्पत्तावनतिक्रान्तसंवत्सराण्याददीतेति ॥ ७ ॥

भवन्ति चात्र।

गोपालास्तापसा व्याधा[4] ये चान्ये वनचारिणः।
मूलाहाराश्च ये तेभ्यो भेषजव्यक्तिरिष्यते[5] ॥ ८ ॥
सर्वावयवसाध्येषु पलाशलवणादिषु।
व्यवस्थितो न कालोऽस्ति तत्र सर्वो विधीयते ॥ ९ ॥
गन्धवर्णरसोपेता[6] षड्विधा भूमिरिष्यते।
तस्माद् भूमिस्वभावेन[7] बोजिनः षड्रसायुताः ॥ १० ॥
अव्यक्तः किल तोयस्य रसो निश्चयनिश्चितः।
रस एव स चाव्यक्तो व्यक्तो भूमिरसाद्भवेत् ॥ ११ ॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना भूमिः साधारणा स्मृता।
द्रव्याणि यत्र तत्रैव तद्गुणानि विशेषतः ॥ १२ ॥
विगन्धेनापरामृष्टमविपन्नं[8] रसादिभिः।

---

१ अभिनवान्येवौषधानि गुणवत्तराणि भवन्तीति प्रतिपादयति—**सर्वाण्येवेति।** यानि यान्यौषधान्यवश्यमभिनवानि ग्राह्याणि तान्याह श्रीभावमिश्रः—"वासानिम्बपटोलकेतकबलाकूष्माण्डकेन्दीवरी वर्षाभूकुटजाश्च कन्दसहिताः सा पूतिगन्धामृताः। ऐन्द्रीनागबलाकुरण्टकपुरो क्षत्रामृता सर्वदा सार्द्रा एव तुं न क्वचिद् द्विगुणिताः कार्येषु योज्या बुधैः॥" इति। २ सक्षीराणि = सरसानीत्यर्थः।

३ तेषां = सक्षीराणाम्, असम्पत्तौ = अप्राप्तौ, निबन्धसङ्ग्रहव्याख्याऽनुसारतः—तेषां = मधुघृतादीनाम्, असम्पत्तौ = अत्यन्तपुराणानामप्राप्तौ, अनतिक्रान्तसंवत्सराणि न अतिक्रान्तः संवत्सरो येषां तानि एव ग्राह्याणि। भावप्रकाशे—"मधुनः शर्करायाश्च गुडस्यापि विशेषतः। एकसंवत्सरे वृत्ते पुराणत्वं स्मृतो बुधैः॥" इति। ४ येभ्यो भेषजानि ज्ञातव्यानि तानि निर्दिशति—**गोपाला इति।** गोमहिष्याजादिपालका गोपालाः। ५ भेषजानां नामतो रूपतश्च स्फुटतराववोधो भेषजव्यक्तिरुच्यते। चरकोऽप्याह—"ओषधीर्नामरूपाभ्यां जानन्ति ह्यजपा वनैः" इति। ६ सौम्यान्यौषधानि सौम्येष्वृतुष्वाददीतेत्युक्तं व्यभिचारयति—**सर्वेत्यादिना।** ७ भूमिविशेषेण द्रव्यगुणविशेषं दर्शयति—**गन्धेति।** ८ अविपन्नम् = अविकृतम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नवं द्रव्यं पुराणं वा ग्राह्यमेव विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥
विडङ्गं पिप्पली क्षौद्रं सर्पिश्चाप्यनवं हितम् ।
शेषमन्यत्त्वभिनवं गृह्णीयादोषवर्जितम्[1] ॥ १४ ॥
जङ्गमानां वयःस्थानां[2] रक्तरोमनखादिकम् ।
क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारेषु संहरेत् ॥ १५ ॥
प्लोतं[3] मृद्भाण्डफलकशङ्कुविन्यस्तभेषजम् ।
प्रशस्ताँयां दिशि शुचौ भेषजागारमिष्यते ॥ १६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने भूमिप्रविभागीयो नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

---

## सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो मिश्रकं[5] मध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
मातुं[6]लुङ्गाग्निमन्थौ च भद्रदारुमहौषधम् ।

---

१ दोषवर्जितं = क्रिमिविषशस्त्राद्युपघातादिदोषवर्जितमित्यर्थः । २ 'वयःस्थस्तरुणो युवा' इत्यमरः । ३ प्रायेण भेषजद्रव्याणां विगन्धत्वादयो भावा विन्यासदोषादागारदोषाच्चोपजायन्ते तदर्थमुपदिशति—**प्लोतेत्यादिना** । प्लोतं = वस्त्रखण्डम्, फलकं = काष्ठपट्टम्, शङ्कुः = शाखापत्रादिरहितवंशादिप्रकाण्डः ।

४ पूर्वस्यामुत्तरस्यां वा दिशीत्यर्थः । स्थापनप्रक्रमाह चरकादौ—"पूर्वोत्तरद्वारेषु निवातप्रवातैकदेशेषु नित्यपुष्पोपहारबलिकर्मवत्स्वग्निसलिलोपस्वेदधूमरजोमूषिकचतुष्पदामनभिगमनीयानि स्ववच्छानि शिक्येष्वासज्य स्थापयेत् ।" इति ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।**

---

### सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

५ षष्ठ्युपक्रमाणां मध्ये विस्रापनपाचनाद्यष्टानां प्रधानानां मिश्रं संयुतमालेपनादिद्रव्यजातमाचष्टे मिश्रकस्तम् । स्वार्थे कप्रत्ययः । ६ क्रमेण वातादिदोषशोफप्रत्यनीकं विस्रापनयोगं दर्शयति—**मातुलुङ्गेत्यादिना** । मातुलुङ्गं = 'बिजौरा' इति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अहिंस्रा[1] चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोफजित् ॥ ३ ॥
दूर्वा च नलमूलञ्च मधुकं चन्दनं[2] तथा ।
शीतलाश्च[3] गणाः सर्वे प्रलेपः पित्तशोफहृत् ॥ ४ ॥
आगन्तुजे रक्तजे च ह्येष एव विधिः स्मृतः ।
विधिर्विषघ्नो विषजे पित्तघ्नोऽपि हितस्तथा ॥ ५ ॥
अजगन्धाऽश्वगन्धा च काला[4] सरलया सह ।
एकैषिकाऽजशृङ्गी च प्रलेपः श्लेष्मशोफहृत् ॥ ६ ॥
एते वर्गास्त्रयो लोध्रं पथ्या[5] पिण्डीतकानि च ।
अनन्ता चेति लेपोऽयं सन्निपातकशोफहृत् ॥ ७ ॥
स्निग्धाम्ललवणो[6] वाते कोष्णः, शीतः पयोयुतः ।
पित्ते, चोष्णः कफे क्षारमूत्राढ्यस्तत्प्रशान्तये ॥ ८ ॥
शणमूलकशिग्रूणां[7] फलानि तिलसर्षपाः ।
शुक्तवः किण्वमतसी द्रव्याण्युष्णानि[8] पाचनम् ॥ ९ ॥
चिरबिल्वोऽग्निको[9] दन्ती चित्रको हयमारकः ।
कपोतगृध्रकङ्काणां पुरीषाणि च दारुणम् ।
क्षारद्रव्याणि[10] वा यानि क्षारो वा दारुणं परम् ॥ १० ॥
द्रव्याणां[11] पिच्छिलानां तु त्वङ्मूलानि प्रपीडनम् ।
यवगोधूममाषाणां चूर्णानि च समासतः ॥ ११ ॥

---

ख्यातम्, अग्निमन्थः = 'अरनी' 'गणियारी' इति प्रसिद्धः । महौषधं = शुण्ठी । १ अहिंस्रा = कण्टकपालीवृक्षः । २ चन्दनं = रक्तचन्दनम्, शार्ङ्गधरः—"कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम्" । ३ शीतला गणाः = वक्ष्यमाणाः काकोल्याद्युत्पलादि-न्यग्रोधादयः । ४ काला = अहिंस्रा । ५ पथ्या = 'हरड' इति नाम्ना प्रसिद्धा, पिण्डीतकानि = शुक्लकृष्णपीतभेदात्त्रिविधं मदनफलम्, 'मयनफल' इति नाम्ना ख्यातम् । ६ दोषभेदेन लेपस्य संस्कारविशेषं निर्दिशति—**स्निग्धेति** । ७ पाच-नानि दर्शयति—**शणेति** । फलानि = बीजानि । ८ उष्णानि = कुष्ठादीनि ।

९ दारुणं निर्दिशति—**चिरबिल्व इति** । वृद्धकरञ्जः = चिरबिल्वः, अग्निकः = कलिकारिका भल्लातकं वा, हयमारः = करवीरः । १० क्षारद्रव्याणि = मुष्ककबदर-जपलाशादीनि । ११ पीडनं निर्दिशति—**द्रव्याणामिति** । पिच्छिलानां = शाल्म-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्खिन्यङ्कोठसुमनःकरवीरसुवर्चलाः[1][2]।
शोधनानि कषायाणि वर्गश्चारग्वधादिकः ॥ १२ ॥
अजगन्धाऽजशृङ्गी[3] च गवाक्षी लाङ्गलाह्वया।
पूतीकश्चित्रकः पाठा विडङ्गैलाहरेणवः ॥ १३ ॥
कटुत्रिकं यवक्षारो लवणानि मनःशिला।
कासीसं त्रिवृता दन्ती हरितालं सुराष्ट्रजा ॥ १४ ॥
संशोधनीनां वर्त्तीनां द्रव्याण्येतानि निर्दिशेत्।
एतैरेवौषधैः[4] कुर्यात्कल्कानपि च शोधनान् ॥ १५ ॥
कासीसकटुरोहिण्योर्जातीकन्दहरिद्रयोः।
पूर्वोद्दिष्टेषु[5] चाङ्गेषु कुर्यात्तैलघृतानि वै ॥ १६ ॥
अर्कोत्तमां[6] स्नुहीक्षीरं पिष्ट्वा क्षारोत्तमानपि।
जातीमूलं हरिद्रे द्वे कासीसं कटुरोहिणीम् ॥ १७ ॥
पूर्वोद्दिष्टानि चान्यानि कुर्य्यात् संशोधनं घृतम्।
मयूरकः[7] राजवृक्षो निम्बः कोशातकी तिलाः ॥ १८ ॥
बृहती कण्टकारी च हरितालं मनःशिला।
शोधनानि च योज्यानि तैले द्रव्याणि शोधने ॥ १९ ॥
कासीसे सैन्धवे किण्वे वचायां रजनीद्वये।

---

लिश्लेष्मातकनागबलाप्रभृतीनाम्। १ शोधनकषायं दर्शयति—**शङ्खिनीति**। शङ्खिनी=यवतिक्ता। २ सुवर्चलाः=सूर्यावर्तः, 'सूर्यमुखी' इति लोके। ३ कषायमुक्त्वा वर्तिभेषजद्रव्याणि निर्दिशति—**अजेति**। गवाक्षी=इन्द्रवारुणी, लाङ्गलाह्वया=कलिकारिका, पूतीकः=बृहत्करञ्जः, सुराष्ट्रजा=तद्वेशतुम्बुरुमृत्तिका। ४ वर्तिमुक्त्वा कल्कमभिदधाति—**एतैरिति**। एतैः=पूर्वोक्तैरजगन्धादिसुराष्ट्रजाऽन्तैः।

५ पूर्वोद्दिष्टेषु=संशोधनार्थमुपदिष्टेषु, 'यत्राधिकरणेनोक्तिर्गुणे स्यात्स्नेहसंविधौ। तत्रैव कल्कनिर्व्यूहाविष्येते' इत्यादिस्मरणादत्र पूर्वोद्दिष्टेष्वित्यधिकरणनिर्देशात् क्वाथकल्कयोः परिग्रहः कर्तव्यः। ६ कल्कमुक्त्वा शोधनघृतमाह—**अर्केति**। अर्कमूलमित्यर्थः, उत्तमा=त्रिफला, स्नुहीक्षीरं=सेहुण्डदुग्धम्। ७ शोधनतैलमभिधत्ते—**मयूरक इति**। मयूरकः=अपामार्गः, राजवृक्षः=किरमालकः, 'अमलतास' इति लोके। बृहती=बृहत्कण्टकारी, कण्टकारी=लघुकण्टकारी, शोधनानि=शोधनवर्तिनिर्दिष्टानि। ८ शो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोधनाङ्गेषु चान्येषु चूर्णं कुर्वीत शोधनम् ॥ २० ॥
सालसारादिसारेषु पटोलत्रिफलासु च ।
रसक्रिया विधातव्या शोधनी शोधनेषु च ॥ २१ ॥
श्रीवेष्टके सर्जरसे सरले देवदारुणी ।
सारेष्वपि च कुर्वीत मतिमान् व्रणधूपनम् ॥ २२ ॥
कषायाणामनुष्णानां वृक्षाणां त्वक्षु साधितम् ।
शृतं शीतं कषायं वा रोपणार्थेषु शस्यते ॥ २३ ॥
सोमामृताऽश्वगन्धासु काकोल्यादौ गणे तथा ।
क्षीरिप्ररोहेष्वपि च वर्तयो रोपणाः स्मृताः ॥ २४ ॥
समङ्गा सोमसरला सोमवल्कः सचन्दनः ।
काकोल्यादिश्च कल्कः स्यात् प्रशस्तो व्रणरोपणे ॥ २५ ॥
पृथक्पर्ण्यात्मगुप्ता च हरिद्रे मालती सिता ।
काकोल्यादिश्च योज्यः स्यात् भिषजा रोपणे घृते ॥ २६ ॥
कालानुसार्य्यागुरुणी हरिद्रे देवदारु च ।
प्रियङ्गवश्च रोध्रश्च तैले योज्यानि रोपणे ॥ २७ ॥

---

धनचूर्णानि निर्दिशति—**कासीस इति ।** १ शोधनीं रसक्रियां प्रतिपादयति—**सालसारादीति ।** रसक्रिया=फाणिताकृतिः, तत्कल्पना च—भेषजापेक्षयाऽष्टगुणं षोडशगुणं वा जलं दत्त्वाऽष्टभागावशेषः षोडशभागावशेषो वा क्वाथः कार्यः । ततः पूतं कषायं पुनस्तावत्पचेद्यावत्फाणिताकृतिः स्यात् । २ अष्टमं व्रणधूपनं ब्रवीति—**श्रीवेष्टक इति ।** श्रीवेष्टकः='गुग्गुल' इति लोके । सर्जरसः=लोके 'राल' इति प्रसिद्धः । ३ धूपनवर्जं रोपणमपि कषायादिसप्तविधभेदेन दर्शयति—**कषायाणामिति ।** ४ शीतकषायः="द्रव्यादापोत्थितात्तोये तत्पुनर्निशि संस्थितात् । कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः ॥" इति ।

५ क्षीरिणो वृक्षाः—"अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटपिप्पलसंज्ञिताः । पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षाः समाख्याता विचक्षणैः ॥" इति । ६ रोपणकल्कद्वयं निर्दिशति—**समङ्गेति ।** समङ्गा=लोके 'लज्जालु' इति ख्याता । सोमवल्कः=कट्फलम्, अमरोक्त्या, कदरः, 'श्वेतखदिर' इति लोके । ७ रोपणघृतमुपदिशति—**पृथगिति ।** आत्मगुप्ता=कपिकच्छूः, लोके 'कवांछ' इति । ८ रोपणतैलं निर्दिशति—**कालेति ।** कालानुसार्य=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कङ्गुका[1] त्रिफला रोध्रं कासीसं श्रवणाह्वया।
धवाश्वकर्णयोस्त्वक् च रोपणं चूर्णमिष्यते ॥ २८ ॥
प्रियङ्गुका सर्जरसः पुष्पकासीस[2]मेव च।
त्वक्चूर्णं धववजं चैव रोपणार्थं प्रशस्यते ॥ २९ ॥
त्वक्षु न्यग्रोधवर्गस्य त्रिफलायास्तथैव च।
रसक्रियां रोपणार्थे विदधीत यथाक्रमम् ॥ ३० ॥
अपामार्गो[4]ऽश्वगन्धा च तालपत्री सुवर्चला।
उत्सादने प्रशस्यन्ते काकोल्यादिश्च यो गणः ॥ ३१ ॥
कासीसं[5] सैन्धवं किण्वं कुरुविन्दो मनःशिला।
कुक्कुटाण्डकपालानि सुमनोमुकुलानि च ॥ ३२ ॥
फले शैरीषकाम्ले धातुचूर्णानि यानि च।
व्रणेषूत्सन्नमांसेषु प्रशस्तान्यवसादने ॥ ३३ ॥
समस्तं[6] वर्गमर्द्धं वा यथालाभमथापि वा।
प्रयुञ्जीत भिषक् प्राज्ञो यथोद्दिष्टेषु कर्मसु[7] ॥ ३४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने मिश्रकाध्यायो नाम सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

---

तगरम्। १ व्रणरोपणचूर्णमाख्याति—**कङ्गुकेति**। श्रवणाह्वया = मुण्डितिका, अश्वकर्णः = लोके 'सखुआ' इति नाम्ना ख्यातः। २ "कासीसं धातुकासीसं पांशुकासीसमित्यपि। तदेव किञ्चित्पीतं तु पुष्पकासीसमुच्यते" ॥ ३ रोपणीं रसक्रियामाह—**त्वक्षिति**। ४ उत्सादनद्रव्याण्याह—**अपामार्ग इति**। ५ अवसादनद्रव्याणि निर्दिशति—**कासीसमिति**। कुरुविन्दो लोहितरत्नं पद्मरागः, कुक्कुटाण्डकपालानि = कुक्कुटाण्डकपर्पराणि, सुमनोमुकुलानि = मालतीकलिका, धातुचूर्णानि = हरितालमनःशिलातुत्थकासीसप्रभृतीनि, उत्सन्नमांसेषु = अतिवृद्धमांसाङ्कुरेषु, अवसादने = अवचूर्णने। ६ शोधनरोपणद्रव्याणां समस्तानामलाभे कल्पान्तरं दर्शयति—**समस्तमिति**। ७ विम्लापनादिकर्मस्वित्यर्थः।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो द्रव्यसङ्ग्रहणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

समासेन सप्तत्रिंशद् द्रव्यगणा भवन्ति ॥ ३ ॥

(१) तद्यथा—विदारिगन्धा विदारी विश्वदेवा सहदेवा श्वदंष्ट्रा पृथक्पर्णी शतावरी सारिवा कृष्णसारिवा जीवकर्षभकौ महासहा क्षुद्रसहा बृहत्यौ पुनर्नवैरण्डो हंसपादी वृश्चिकाल्यृषभी चेति ॥ ४ ॥

विदारिगन्धाऽऽदिरयं गणः पित्तानिलापहः ।

शोषगुल्माङ्गमर्दोर्ध्वश्वासकासविनाशनः ॥ ५ ॥

(२) आरग्वधमदनगोपघोण्टाकण्टकीकुटजपाठापाटलामूर्वेन्द्रयवसप्तपर्णनिम्बकुरुण्टकदासी—कुरुण्टकगुडूचीचित्रकशार्ङ्गेष्टाकरञ्जद्वयपटोलकिराततिक्तकानि सुषवी चेति ॥ ६ ॥

आरग्वधादिरित्येष गणः श्लेष्मविषापहः ।

मेहकुष्ठज्वरवमीकण्डूघ्नो व्रणशोधनः ॥ ७ ॥

---

## अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ द्रव्याणां सङ्ग्रहः 'समाहृतिस्तु सङ्ग्रहः' इति कोशप्रामाण्यात् सङ्क्षेपेण प्रतिपादनं, तमधिकृत्य कृतोऽध्यायो द्रव्यसङ्ग्रहणीयस्तम् । २ विदारिगन्धा=शालपर्णी, विश्वदेवा=नागबला, सहदेवा=पीतपुष्पा बला, श्वदंष्ट्रा=गोक्षुरकः, सारिवा=जम्बूपत्राकारा लता, यस्याः पत्रत्रोटनेन दुग्धं निःसरति । कृष्णसारिवा=श्यामलता, पूर्वोक्तसारिवाभेदः, जीवकर्षभकौ=अष्टवर्गोक्तौ, अनयोः प्रतिनिधिभूते गुडूचीवंशलोचने, तदुक्तम्-"जीवकर्षभकाभावे गुडूचीवंशलोचने" । भावप्रकाशमते द्वयोः प्रतिनिधिभूता विदारी । महासहा=माषपर्णी, क्षुद्रसहा=मुद्गपर्णी, हंसपादी=हंसपदाकारपत्रा पीतपुष्पा जलयुक्तदेशजाता 'हंसपदी' इति लोके प्रसिद्धेति डल्हणः । वृश्चिकाली=ईषद्रोमशा श्वेतपुष्पगुच्छा दक्षिणावर्तवेल्ली मेषशृङ्गीभेदः 'बरहंटा' इति लोके । ऋषभी=कपिकच्छूः । ३ आरग्वधः=लोके 'अमलतास' इति ख्यातः, गोपघोण्टा=कर्कोटी, क्षुद्रवदरीभेद इत्यन्ये, पूगभेद इत्यपरे । ४ कुरण्टकदासीकुरण्टकौ क्रमशः पीतनीलपुष्पभेदाल्लोके 'पियावांसा' इति ख्यातौ ५ शार्ङ्गेष्टा=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(३) वरुणार्त्तगलशिग्रुमधुशिग्रुतर्कारीमेषशृङ्गीपूतीकनक्तमालमोरटाग्निमन्थसैरेयकद्वयबिम्बीवसुकवसिरचित्रकशतावरीबिल्वाजशृङ्गीदर्भा बृहतीद्वयञ्चेति ॥ ८ ॥

वरुणादिर्गणो ह्येष कफमेदोनिवारणः ।
विनिहन्ति शिरःशूलगुल्माभ्यन्तरविद्रधीन् ॥ ९ ॥

(४) वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनीगुन्द्रानलकुशकाशाश्मभेदकाग्निमन्थमोरटावसुकवसिरभल्लूककुरण्टकेन्दीवरकपोतवङ्का श्वदंष्ट्रा चेति ॥ १० ॥

वीरतर्वादिरित्येष गणो वातविकारनुत् ।
अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्राघातरुजापहः ॥ ११ ॥

(५) सालसाराजकर्णखदिरकदरकालस्कन्धकमुकभूर्जमेषशृङ्गीतिनिशचन्दनकुचन्दनशिंशपाशिरीषासनधवार्जुनतालशाकनक्तमालपूतीकाश्वकर्णागुरूणि कालीयकञ्चेति ॥ १२ ॥

सालसारादिरित्येष गणः कुष्ठविनाशनः ।
मेहपाण्ड्वामयहरः कफमेदोविशोषणः ॥ १३ ॥

(६) रोध्रसावररोध्रपलाशकुटन्नटाशोकफञ्जीकट्फलैलवालुकशल्लकीजिङ्गिनीकदम्बसालाः कदली चेति ॥ १४ ॥

एष रोध्रादिरित्युक्तो मेदःकफहरो गणः
योनिदोषहरः स्तम्भी वर्ण्यो विषविनाशनः ॥ १५ ॥

---

काकजङ्घा, काकमाचीति केचित्, अन्ये 'गुञ्जां' वदन्ति । १ आर्तगलः = अर्जुनवृक्षो नीलझिण्टी वा । २ सैरेयकद्वयं = पीतरक्तपुष्पभेदाद् झिण्टीद्वयम् । ३ अजशृङ्गी = छागलविषाणिका सेण्डिकेति । ४ वीरतरुः = अर्जुनवृक्षः, सहचरद्वयं = कण्टशेलुद्वयम् । ५ वसिरः = अपामार्गः, भल्लूकः = श्योनाकः, लोके 'सोनापाठा' इति ख्यातः । ६ कालस्कन्धः = तिन्दुकवृक्षः । ७ कुचन्दनं = रक्तचन्दनम् । ८ कालीयकं तु कालीयं पीताभं हरिचन्दनम् ।

९ सावररोध्रः = श्वेतस्थूलत्वग्लोध्रः, लोके 'पठानी लोध' इति नाम्ना व्यवहृतः । १० फञ्जी = भार्गी, लोके 'भारङ्गी' इति । ११ जिङ्गिनी = झिङ्गी गुडमज्जनिका ।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) अर्कालर्ककरञ्जद्वयनागदन्तीमयूरकभार्गीरास्नेन्द्रपुष्पीक्षुद्रश्वेतामहाश्वेतावृश्चिकाल्यलवणास्तापसवृक्षश्चेति ॥ १६ ॥

अर्कादिको गणो ह्येष कफमेदोविषापहः ।
कृमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद् व्रणशोधनः ॥ १७ ॥

(८) सुरसाश्वेतसुरसाफणिज्झकार्जकभूस्तृणसुगन्धकसुमुखकालमालकासमर्दक्षवकखरपुष्पाविडङ्गकट्फलसुरसीनिर्गुण्डीकुलाहलोन्दुरुकर्णिकाफञ्जीप्राचीबलकाकमाच्यो विषमुष्टिकश्चेति ॥ १८ ॥

सुरसादिर्गणो ह्येष कफहृत् कृमिसूदनः ।
प्रतिश्यायारुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधनः ॥ १९ ॥

(९) मुष्ककपलाशधवचित्रकमदनवृक्षकशिंशपावज्रवृक्षास्त्रिफला चेति ॥ २० ॥

मुष्कादिर्गणो ह्येष मेदोघ्नः शुक्रदोषहृत् ।
मेहार्शःपाण्डुरोगघ्नः शर्करानाशनः परः ॥ २१ ॥

(१०) पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरमरिचहस्तिपिप्पलीहरेणुकैलाजमोदेन्द्रयवपाठाजीरकसर्षपमहानिम्बफलहिङ्गुभार्गीमधुरसाऽतिविषावचाविडङ्गानि कटुरोहिणी चेति ॥ २२ ॥

पिप्पल्यादिः कफहरः प्रतिश्यायानिलारुचीः ।
निहन्यादीपनो गुल्मशूलघ्नश्चामपाचनः ॥ २३ ॥

(११) एलातगरकुष्ठमांसीध्यामकत्वक्पत्रनागपुष्पप्रियङ्गुहरेणुकाव्याघ्रनखशुक्तिचण्डास्थौणेयकश्रीवेष्टकचोचचोरकवालुकगुग्गु-

---

१ अलर्कः=श्वेतपुष्पो मन्दारकः । २ महाश्वेता=नीलपुष्पः सेफन्दः, श्वेतापराजितेत्यपरे । ३ सुरसाश्वेतसुरसा=कृष्णश्वेतवर्णा तुलसी । ४ क्षवकः=क्षवथुकारः, लोके 'नक्छिंकनी' इति ख्यातः । ५ उन्दुरुकर्णिका=मूसाकर्णी । ६ प्राचीबलः=काकजङ्घा । ७ वज्रवृक्षः=स्नुही, 'सेंहुड' इति ख्यातः । ८ हस्तिपिप्पली=गजपिप्पली । "चविकायाः फलं प्राज्ञैः कथिता गजपिप्पली" । ९ महानिम्बफलं=द्रेकाफलम्, 'वकायनफल' इति लोके । १० आमलक्षणम्—"जठरानलदौर्बल्यादविपक्वरतु यो रसः । स आमसञ्ज्ञको देहे सर्वदोषप्रकोपकः ॥" इति । ११ ध्यामकं=रोहिषतृणम् । १२ चण्डा=अजमोदाकारा, 'खुरासानी अजवायन' इति लोके । १३ चोचः=वनवा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लुसर्जरसतुरुष्ककुन्दुरुकागरुस्पृक्कोशीरभद्रदारुकुङ्कुमानि पुन्नाग-केशरञ्चेति ॥ २४ ॥

एलादिको वातकफौ निहन्याद्विषमेव च ।
वर्णप्रसादनः कण्डूपिडकाकोठनाशनः ॥ २५ ॥

(१२) वचामुस्तातिविषाभयाभद्रदारूणि नागकेशरञ्चेति ॥२६॥

(१३) हरिद्रा दारुहरिद्राकलशीकुटजबीजानि मधुकं चेति ॥२७॥

एतौ वचाहरिद्रादी गणौ स्तन्यविशोधनौ ।
आमातिसारशमनौ विशेषाद्दोषपाचनौ ॥ २८ ॥

(१४) श्यामामहाश्यामात्रिवृद्दन्तीशङ्खिनीतिल्वककम्पिल्लकरम्य-कक्रमुकपुत्रश्रेणीगवाक्षीराजवृक्षकरञ्जद्वयगुडूचीसप्तलाच्छगलान्त्री-सुधाः सुवर्णक्षीरी चेति ॥ २९ ॥

उक्तः श्यामादिरित्येष गणो गुल्मविषापहः ।
आनाहोदरविड्भेदी तथोदावर्तनाशनः ॥ ३० ॥

(१५) बृहतीकण्टकारिकाकुटजफलपाठा मधुकञ्चेति ॥ ३१ ॥

पाचनीयो बृहत्यादिर्गणः पित्तानिलापहः ।
कफारोचकहृद्रोगमूत्रकृच्छ्ररुजापहः ॥ ३२ ॥

(१६) पटोलचन्दनकुचन्दनमूर्वागुडूचीपाठाःकटुरोहिणी चेति३३

पटोलादिर्गणः पित्तकफारोचकनाशनः ।
ज्वरोपशमनो ब्रण्यश्छर्दिकण्डूविषापहः ॥ ३४ ॥

(१७) काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकमुद्गपर्णीमाषपर्णीमेदा-महामेदाच्छिन्नरुहाकर्कटशृङ्गीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौण्डरीकर्द्धिवृद्धिमृद्वी-

---

१ सिक्तात्वक्, चोरकः = ग्रन्थिपर्णाकारो ग्रन्थिपर्णभेदः । १ स्पृक्का = पिडकापुष्पम् । २ कोठलक्षणम्—"वरटीदष्टसङ्काशः कण्डूमान् लोहितोऽस्रकफपित्तात् । क्षिप्रोत्पादविनाशः कोठ इति निगद्यते सद्भिः ॥" इति । ३ कलशी = पृश्निपर्णी । ४ दोषपाचनौ = सामदोषाणां पाचनावित्यर्थः । ५ महाश्यामा = वृद्धदारकः, लोके 'विधारा' इति । ६ रम्यकः = द्रेका, गवाक्षी = इन्द्रवारुणी । ७ छगलान्त्री = वृद्धदारकभेदः, सुधा = सीहुण्डः । ८ कुटजफलम् = 'इन्द्रयव' इति नाम्ना ख्यातम् । ९ छिन्नरुहा = गुडूची । १० प्रपौण्डरीकं = स्वनामख्यातं यष्टिमधुद्रव्यादीषत्स्थूलं मधुररसं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काजीवन्त्यो मधुकञ्चेति ॥ ३५ ॥

काकोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः ।
जीवनो बृंहणो वृष्यः स्तन्यश्लेष्मकरस्तथा ॥ ३६ ॥

(१८) ऊषकसैन्धवशिलाजतुकासीसद्वयहिङ्गूनि तुत्थकञ्चेति ॥ ३७ ॥

ऊषकादिः कफं हन्ति गणो मेदोऽवशोषणः ।
अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्रगुल्मप्रणाशनः ॥ ३८ ॥

(१९) सारिवामधुकचन्दनकुचन्दनपद्मककाश्मरीफलमधूकपुष्पाण्युशीरञ्चेति ॥ ३९ ॥

सारिवाऽऽदिः पिपासाघ्नो रक्तपित्तहरो गणः ।
पित्तज्वरप्रशमनो विशेषाद्दाहनाशनः ॥ ४० ॥

(२०) अञ्जनरसाञ्जननागपुष्पप्रियङ्गुनीलोत्पलनलदनलिनकेशराणि मधुकञ्चेति ॥ ४१ ॥

अञ्जनादिर्गणो ह्येष रक्तपित्तनिबर्हणः ।
विषोपशमनो दाहं निहन्त्याभ्यन्तरं तथा ॥ ४२ ॥

(२१) परूषकद्राक्षाकट्फलदाडिमराजादनकतकफलशाकफलानि त्रिफला चेति ॥ ४३ ॥

परूषकादिरित्येष गणोऽनिलविनाशनः ।
मूत्रदोषहरो हृद्यः पिपासाघ्नो रुचिप्रदः ॥ ४४ ॥

(२२) प्रियङ्गुसमङ्गाधातकीपुन्नागनागपुष्पचन्दनकुचन्दनमोचरसरसाञ्जनकुम्भीकस्रोतोञ्जनपद्मकेसरयोजनवल्ल्यो दीर्घमूला चेति ४५

(२३) अम्बष्ठाधातकीकुसुमसमङ्गाकट्वङ्गमधुकबिल्वपेशिका-

---

नेत्राश्च्योतनार्हं द्रव्यम्, अन्ये श्रीपुष्पमाहुरिति डल्हणः । १ कासीसद्वयं = पुष्पकासीसधातुकासीसद्वितयम् । २ अञ्जनं = सौवीराञ्जनम् । ३ "वीरणस्य तु मूलं स्यादुशीरं नलदं च तत्" । ४ परूषकः = धन्वपत्रकः, लोके 'फालसा' इति व्यवहृतः । ५ राजादनं = पियालफलम्, लोके 'खिरनी' इति, कतकः = निर्मली, तत्फलम् । अत्र परूषकादीनां सर्वेषां फलानि गृह्यन्त इति बोध्यम् । ६ समङ्गा = लज्जालुः । ७ मोचरसः = रक्तशालमलिनिर्यासः, कुम्भीकः = वारिपर्णी । ८ योजनवल्ली = मञ्जिष्ठा, लोके 'मजीठ' इवि ख्याता । ९ कट्वङ्गः = श्योनाकः, बिल्वपेशिका = बालबिल्वगिरः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सावररोध्रपलाशनन्दीवृक्षाः पद्मकेशराणि चेति ॥ ४६ ॥

गणौ प्रियङ्ग्वम्बष्ठादी पक्वातीसारनाशनौ
सन्धानीयौ हितौ पित्ते व्रणानाञ्चापि रोपणौ ॥ ४७ ॥

(२४) न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षमधूककपीतनककुभाम्रकोशाम्रचोरकपत्रजम्बूद्वयपियालमधूकरोहिणीवञ्जुलकदम्बबदरीतिन्दुकीसल्लकीरोध्रसावररोध्रभल्लातकपलाशा नन्दीवृक्षश्चेति ॥ ४८ ॥

न्यग्रोधादिर्गणो व्रण्यः सङ्ग्राही भग्नसाधकः।
रक्तपित्तहरो दाहमेदोघ्नो योनिदोषहृत् ॥ ४९ ॥

(२५) गुडूचीनिम्बकुस्तुम्बुरुचन्दनानि पद्मकश्चेति ॥ ५० ॥

एष सर्वज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः।
हृल्लासारोचकवमीपिपासादाहनाशनः ॥ ५१ ॥

(२६) उत्पलरक्तोत्पलकुमुदसौगन्धिककुवलयपुण्डरीकाणि मधुकश्चेति ॥ ५२ ॥

उत्पलादिरयं दाहपित्तरक्तविनाशनः।
पिपासाविषहृद्रोगच्छर्दिमूर्च्छाहरो गणः ॥ ५३ ॥

(२७) मुस्ताहरिद्रादारुहरिद्राहरीतक्यामलकबिभीतककुष्ठहैमवतीवचापाठाकटुरोहिणीशार्ङ्गेष्टाऽतिविषाद्राविडीभल्लातकानि चित्रकश्चेति ॥ ५४ ॥

एष मुस्तादिको नाम्ना गणः श्लेष्मनिषूदनः।
योनिदोषहरः स्तन्यशोधनः पाचनस्तथा ॥ ५५ ॥

(२८) हरीतक्यामलकबिभीतकानि त्रिफला ॥ ५६ ॥

त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठविनाशनी।

---

१ नन्दीवृक्षः=काश्मरी। २ कपीतनः=आम्रातकः, लोके 'आमड़ा' इति प्रसिद्धः। ३ पियालः=सारद्रुमः, मधूकः=गुडपुष्पः, 'महुआ' इति। ४ कुस्तुम्बुरुः=धान्यकम्, 'धनिया'। ५ हैमवती=श्वेतवचा। ६ द्राविडी=सूक्ष्मैला।

७ शार्ङ्गधरे—"एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ बिभीतकौ। चत्वार्यामलकान्येवं त्रिफलैषा प्रकीर्तिता॥" इत्येषा महती त्रिफला। एतदतिरिक्ता स्वल्पा त्रिफलाऽपि। तदुक्तम्—"पथ्या बिभीतकं धात्री महती त्रिफला मता। स्वल्पा काश्मर्यखर्जरपरूषक-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्षुष्या दीपनी चैव विषमज्वरनाशनी ॥ ५७ ॥
(२९) पिप्पलीमरिचशृङ्गवेराणि त्रिकटुकम् ॥ ५८ ॥
त्र्यूषणं कफमेदोघ्नं मेहकुष्ठत्वगामयान् ।
निहन्यादीपनं गुल्मपीनसाग्न्यल्पतामपि ॥ ५९ ॥
(३०) आमलकीहरीतकीपिप्पल्यश्चित्रकश्चेति ॥ ६० ॥
आमलक्यादिरित्येष गणः सर्वज्वरापहः ।
चक्षुष्यो दीपनो वृष्यः[1] कफारोचकनाशनः ॥ ६१ ॥
(३१) त्रपुसीसताम्ररजतकृष्णलोहसुवर्णानि लोहमल[2]श्चेति ॥६२॥
गणस्त्रप्वादिरित्येष गर[3]क्रिमिहरः परः ।
पिपासाविषहृद्रोगपाण्डुमेहहरस्तथा ॥ ६३ ॥
(३२) लाक्षारेव[4]तकुटजाश्वमारकट्फलहरिद्राद्वयनिम्बसप्तच्छद-
मालत्यस्त्रायमाणा चेति ॥ ६४ ॥
कषायस्तिक्तमधुरः कफपित्तार्त्तिनाशनः ।
कुष्ठक्रिमिहरश्चैव दुष्टव्रणविशोधनः ॥ ६५ ॥
पञ्च पञ्चमूलान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः—
(३३) तत्र[5] त्रिकण्टकबृहतीद्वयपृथक्पर्ण्यो विदारिगन्धा चेति
कनीय[6]ः ॥ ६६ ॥

---

फलैर्भवेत् ॥" इति । १ "यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृहणं गुरु । हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद् वृष्यमुच्यते ॥" इति २ लोहमलः=लोहकिट्टम्, स उत्तममध्यमाधमभेदेन त्रिविधः—"शताब्दमुत्तमं किट्टं मध्यं चाशीतिवार्षिकम् । अधमं षष्टिवर्षीयं ततो हीनं विषोपमम् ॥" इति । ३ गरः=कृत्रिमं विषम्, "नानाप्राण्यङ्गशमलविरुद्धौषधिभस्मनाम् । विषाणां चाल्पवीर्याणां योगो गर इति स्मृतः ॥" इति । ४ आरेवतः=आरग्वधः, लोके 'अमलतास' इति नाम्ना प्रसिद्धः, कुटजः='कुरैया' इति ख्यातः।

५ अष्टाङ्गसङ्ग्रहे मध्यमजीवनद्वयाधिक्यात् सप्तपञ्चमूलानि । तत्र मध्यमाख्यपञ्चमूलगणः—"बला पुनर्नवैरण्डसूच्यपर्णीद्वयेन च । मध्यमं कफवातघ्नं नातिपित्तकरं लघु ॥" इति । जीवनाख्यः पञ्चमूलगणो यथा—'अभीरुवीराजीवन्तीजीवकर्षभकैः स्मृतम् । जीवनाख्यं तु चक्षुष्यं वृष्यं पित्तानिलापहम् ॥" इति । ६ पञ्चसु मध्ये आद्यं लघुपञ्चमूलगणं दर्शयति—**तत्रेति** । ७ कनीयः=लघुपञ्चमूलमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कषायतिक्तमधुरं कनीयः पञ्चमूलकम् ।
वातघ्नं पित्तशमनं बृंहणं[1] बलवर्द्धनम् ॥ ६७ ॥

(३४) बिल्वाग्निमन्थटिण्टुकपाटलाः काश्मर्य्यश्चेति महत्[2] ॥६८॥

सतिक्तं कफवातघ्नं पाके लघ्वग्निदीपनम् ।
मधुरानुरसञ्चैव[3] पञ्चमूलं महत् स्मृतम् ॥ ६९ ॥

अनयोर्दशमूलमुच्यते[4] ॥ ७० ॥

गणः श्वासहरो ह्येष कफपित्तानिलापहः ।
आमस्य पाचनश्चैव सर्वज्वरविनाशनः ॥ ७१ ॥

(३५) विदारीसारिवाराजनीगुडूच्योऽजशृङ्गी चेति वल्लीसंज्ञः[5] ॥७२॥

(३६) करमर्दत्रिकण्टकसैरीयकशतावरीगृध्रनख्य इति कण्टकसंज्ञः[6] ॥ ७३ ॥

रक्तपित्तहरौ ह्येतौ शोफत्रयविनाशनौ ।
सर्वमेहहरौ चैव शुक्रदोषविनाशनौ ॥ ७४ ॥

(३७) कुशकाशनलदर्भकाण्डेक्षुका इति तृणसंज्ञकः[7] ॥ ७५ ॥

मूत्रदोषविकारञ्च रक्तपित्तं तथैव च ।
अन्त्यः[8] प्रयुक्तः क्षीरेण शीघ्रमेव विनाशयेत् ॥ ७६ ॥

एषां वातहरावाद्यौ[9] वन्त्यः पित्तविनाशनः ।
पञ्चकौ श्लेष्मशमनावितरौ[10] परिकीर्त्तितौ ॥ ७७ ॥

त्रिवृतादिकमन्यत्रोपदेक्ष्यामः ॥ ७८ ॥

---

१ बृंहणं=शरीरवृद्धिकरमित्यर्थः । २ महत्=महत्पञ्चमूलमित्यर्थः । ३ अनुरसमाह चरकः-"व्यक्तः शुष्कस्य चादौ च रसो द्रव्यस्य लक्ष्यते । विपर्ययेणानुरसः" इति । ४ अनयोः=कनीयोमहत्पञ्चमूलयोः, समवाये इति शेषः । ५ वल्लीपञ्चमूलगणं दर्शयति-**विदारीति** । ६ कण्टकपञ्चमूलगणं वक्ति-**करमर्देति** । करमर्दः=कृष्णपाकफलः, लोके 'करौंदा' इति ख्यातः । गृध्रनखी=कण्टकपालीवृक्षः ।

७ तृणपञ्चमूलगणमाह—**कुशेति** । काण्डेक्षुकः='खागड' इति ख्यातः । चरकोक्ततृणपञ्चमूलगणः-"शरेक्षुदर्भकाशानां शालीनां मूलमेव च ।" इति । ८ अन्त्यः=तृणपञ्चमूलसंज्ञकः । ९ आद्यौ=लघुपञ्चमूलमहापञ्चमूलगणौ, अन्त्यः=तृणपञ्चमूलगणः । १० इतरौ=वल्लीकण्टकसंज्ञकौ ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समासेन गणा ह्येते प्रोक्तास्तेषान्तु विस्तरम् ।
चिकित्सितेषु वक्ष्यामि ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ ७९ ॥
एभिर्लेपान् कषायांश्च तैलं सर्पींषि पानकान् ।
प्रविभज्य यथान्यायं कुर्वीत मतिमान् भिषक् ॥ ८० ॥
धूमवर्षानिलक्लेदैः[1] सर्वर्तुष्वनभिद्रुते ।
ग्राहयित्वा गृहे न्यस्येद्विधिनौषधसङ्ग्रहम् ॥ ८१ ॥
समीक्ष्य[2] दोषभेदांश्च मिश्रान् भिन्नान् प्रयोजयेत् ।
पृथङ्मिश्रान समस्तान् वा गणं वा व्यस्त[3]संहतम् ॥ ८२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने द्रव्यसङ्ग्रहणीयो नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः संशोधन[4]संशमनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
मदन[5]कुटजजीमूतकेक्ष्वाकु[6]धामार्गवकृतवेधनसर्षपविडङ्गपिप्पलीकरञ्जप्रपुन्नाडकोविदारकर्बुदारारिष्टाश्वगन्धाविदुलबन्धु[7]जीवकश्वेताशणपुष्पीबिम्बीवचामृगेर्वारु[8]श्चित्रा चेत्यूर्ध्वभागहराणि । तत्र, कोविदारपूर्वाणां फलानि । कोविदारादीनां मूलानि ॥ ३ ॥

---

१ ओषधिरक्षणविधिमाह—**धूमेति** । २ पूर्वोक्तद्रव्यगणानां प्रयोगप्रकारमुपदिशति—**समीक्ष्येति** । ३ द्वित्राणां द्रव्याणामुपयोगो व्यस्तम्, गणोक्तसमस्तद्रव्याणामुपयोगः संहतः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामष्टत्रिंशोऽध्यायः ।**

---

### एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

४ संशोधनं वमनविरेचनशिरोविरेचनं, संशमनं सम्यग्दुष्टदोषस्यानिर्हरणपूर्वकं शमनमदुष्टस्यानुदीरणं च, तदधिकृत्य कृतोऽध्यायः संशोधनसंशमनीयस्तम् । ५ वमनद्रव्यगणं निर्दिशति—**मदनेति** । ६ इक्ष्वाकुः=कटुकालाबूः, 'कडू तुंबी' इति लोके । धामार्गवः=पीतपुष्पकोशातकी, कृतवेधनः=कोशातकीभेदः । ७ बन्धुजीवकः=मध्याह्नपुष्पकः, लोके 'दुपहरिया' इति ख्यातः । ८ मृगेर्वारुः=इन्द्रवारुणी, चित्रा=आरण्यकचण्डका ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


त्रिवृता[1] श्यामादन्तीद्रवन्तीसप्तलाशङ्खिनीविषाणिकागवाक्षी[2]च्छगलान्त्रीस्नुक्सुवर्णक्षीरिचित्रककिणिही[3]कुशकाशतिल्वककम्पिल्लकरम्य[4]कपाटलापूगहरीतक्यामलकविभीतकनीलिनीचतुरङ्गुल[5]रेण्डपूतीकमहावृक्ष[6]सप्तच्छदार्का ज्योतिष्मती[7] चेत्यधोभागहराणि । तत्र, तिल्वकपूर्वाणां मूलानि । तिल्वकादीनां पाटलान्तानां त्वचः। कम्पिल्लकफलरजः । पूगादीनामेरण्डान्तानां फलानि । पूतीकारग्वधयोः पत्राणि । शेषाणां क्षीराणीति ॥ ४ ॥

कोशातकी सप्तला शङ्खिनी देवदाली कारवेल्लिका चेत्युभयतोभागहराणि । एषां स्वरसा इति ॥ ५ ॥

पिप्पली[9]विडङ्गापामार्गशिग्रुसिद्धार्थकशिरीषमरिचकरवीर[10]बिम्बीगिरिकर्णिकाकिणिहीवचाज्योतिष्मतीकरञ्जार्कालर्कलशुनातिविषाशृङ्गवेरतालीशतमाल[11]सुरसाऽर्जकेङ्गुदीमेषशृङ्गीमातुलुङ्गीसु[12]रङ्गीपीलुजातीशालतालमधूकलाक्षाहिङ्गुलवणमद्यगोशकृद्रसमूत्राणीति शिरोविरेचनानि । तत्र, करवीरपूर्वाणां फलानि । करवीरादीनामर्कान्तानां मूलानि । तालीशपूर्वाणां कन्दाः । तालीशादीनामर्जकान्तानां पत्राणि । इङ्गुदीमेषशृङ्ग्योस्त्वचः । मातुलुङ्गीसुरङ्गीपीलुजातीनां पुष्पाणि । शालतालमधूकानां साराः । हिङ्गुलाक्षे निर्य्यासौ । लवणानि पार्थिववविशेषाः । मद्यान्यासुतसंयोगाः । शकृद्रसमूत्रे मलाविति ॥ ६ ॥

संशमनान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः-तत्र[13], भद्रदारुकुष्ठहरिद्रावरुणमेषशृङ्गीबलाऽतिबलार्तगल[14]कच्छुरासल्लकीकुबेराक्षीवीरतरुसहचरा-

---

१ विरेचनद्रव्याणि दर्शयति—**त्रिवृतेति** । त्रिवृता=रक्तमूला, लोके 'निशोत' इति । श्यामा=कृष्णमूला त्रिवृत् । २ गवाक्षी=श्वेतपुष्पेन्द्रवारुणी, छगलान्त्री=वृद्धदारकः, स्नुक्=सीहुण्डः । ३ किणिही=अपामार्गः । ४ रम्यकः=द्रेका, पटोलमूलमित्यन्ये । ५ चतुरङ्गुलः='अमलतास' इति ख्यातः । ६ महावृक्षः=बहुकण्टकः सीहुण्डभेदः । ७ ज्योतिष्मती=लोके 'मालकांगनी' इति ख्याता ।

८ वमनविरेचनद्रव्याणि निर्दिशति—**कोशातकीति** । ९ शिरोविरेचनद्रव्याणि दर्शयति—**पिप्पलीति** । १० बिम्बी=कुन्दुरुः, गिरिकर्णिका=अपराजिता । ११ सुरसा=तुलसी, अर्जकः=कुठेरकः, लोके 'बबई' इति १२ सुरङ्गी=रक्तशोभाञ्जनः । १३ संशोधनमुक्त्वा वातसंशमनगणमभिदधाति—**तत्रेति** । १४ कच्छुरा=शूकशिम्बी,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्निमन्थवत्सादन्येरण्डाश्मभेदकालर्कार्कशतावरीपुनर्नवावसुकवसिर-[1]काञ्चनकभार्गीकार्पासीवृश्चिकालीपत्तूर[2]बदरयवकोलकुलत्थप्रभृतीनि। विदारिगन्धादिश्च द्वे चाद्ये पञ्चमूल्यौ समासेन वातसंशमनो वर्गः॥७॥

चन्दन[3]कुचन्दनह्रीवेरोशीरमञ्जिष्ठापयस्या[4]विदारीशतावरीगुन्द्रा-शैवलकह्लारकुमुदोत्पलकदलीकन्दलीदूर्वामूर्वा[5]प्रभृतीनि काकोल्यादिः सारिवाऽऽदिरञ्जनादिरुत्पलादिर्न्यग्रोधादिस्तृणपञ्चमूलमिति समासेन पित्तसंशमनो वर्गः॥ ८॥

कालेयक[6]कागुरुतिलपर्णीकुष्ठहरिद्राशीत[7]शिवशतपुष्पासरलारास्ना-प्रकीर्य्योदकीर्य्येङ्गुदीसुमनःकाकादनी[8]लाङ्गलकीहस्तिकर्णमुञ्जातकला-मज्जकप्रभृतीनि वल्लीकण्टकपञ्चमूल्यौ पिप्पल्यादिर्बृहत्यादिर्मुष्ककादि-र्वचादिः सुरसादिरारग्वधादिरिति समासेन श्लेष्मसंशमनो वर्गः॥९॥

तत्र[9] सर्वाण्येवौषधानि व्याध्यग्निपुरुषबलान्यभिसमीक्ष्य विद-ध्यात्। तत्र, व्याधिबलादधिकमौषधमुपयुक्तं तमुपशम्य व्याधिं। व्याधिमन्यमावहति। अग्निबलादधिकमजीर्णं विष्टभ्य वा पच्यते। पुरुषबलादधिकं ग्लानिमूर्च्छामदानावहति संशमनम्। एवं संशोध-नमतिपातयति। हीनमेभ्यो दत्तमकिञ्चित्करं भवति तस्मात्सममेव विदध्यात्॥ १०॥

---

सल्लकी = फलशाकलता 'सलई' इति ख्याता, कुबेराक्षी = पाटला, वीरतरुः = अर्जुनवृक्षः, सहचरः = पीतझिण्टी, अग्निमन्थः = गणकारिका, वत्सादनी = गुडूची। १ वसुकः = बकपुष्पम्, वसिरः = सूर्यावर्तः, काञ्चनकः = 'कचनार' इति ख्यातः। २ पत्तूरः = कुचन्दनम्।

३ पित्तसंशमनगणमाचष्टे—**चन्दनेति**। ४ पयस्या = क्षीरकाकोली। ५ प्रभृतिग्रहणादनुक्तस्य मधुरतिक्तकषायद्रव्यस्य ग्रहणम्। ६ कफसंशमनगणं निर्दिशति—**कालेयकेति**। कालेयकं = मलयाद्रिचन्दनम्, तिलपर्णी = हुलहुल' इति ख्याता, रक्तचन्दनमित्यन्ये। ७ शीतशिवं = कर्पूरं सैन्धवं शतपुष्पाभेदं वा। ८ प्रकीर्या = कण्टकीकरञ्जः, उदकीर्या = करञ्जः। ९ काकादनी = गुञ्जा, लाङ्गलकी = 'कलिहारी' इति ख्याता, हस्तिकर्णः = 'भूपलाश' इति लोकोक्तः।

१० संशोधनसंशमनद्रव्यमात्रां नियमयति—**तत्रेति**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भवन्ति चात्र ।

[11]रोगे शोधनसाध्ये तु यो भवेद्दोषदुर्बलः ।
तस्मै दद्याद्भिषक् प्राज्ञो दोषप्रच्यावनं[1] मृदु ॥ ११ ॥
चले[2] दोषे मृदौ कोष्ठे नेक्षेतात्र बलं नृणाम् ।
अव्याधिदुर्बलस्यापि शोधनं हि तदा भवेत् ॥ १२ ॥
स्वयं प्रवृत्तदोषस्य मृदुकोष्ठस्य शोधनम् ।
भवेदल्पबलस्यापि प्रयुक्तं व्याधिनाशनम् ॥ १३ ॥
व्याध्यादिषु[3] तु मध्येषु क्वाथस्याञ्जलिरिष्यते[4] ।
विडालपदकं[5] चूर्णं देयः कल्कोऽक्षसम्मितः[6] ॥ १४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने संशोधनसंशमनीयो नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

---

## चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो द्रव्यरसगुणवीर्य्यविपाकविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

---

११ दुर्बलस्य बलवच्छोधनं निषेधते—**रोग इति** । १ प्रच्यावनं = विरेचनमित्यर्थः । २ अवस्थाविशेषेण दुर्बलेऽपि शोधनमुपदिशति—**चल इति** । ३ व्याध्यग्निपुरुषेषु मध्यमबलेष्वौषधमात्रां निर्दिशति—**व्याध्यादिष्विति** । ४ अञ्जलिः = चत्वारि पलानि, षोडशतोलकानीत्यर्थः । ५ विडालपदकं = कर्षमितम्, एकतोलकमित्यर्थः । ६ अक्षसम्मितः = कर्षसम्मित इत्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।**

---

### चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

७ द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकानां विज्ञानं विशिष्टं ज्ञानं, तदधिकृत्य कृतोऽध्यायो द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकविज्ञानीयस्तम् । द्रव्यम् = औषधम्, रसः = मधुरादिः, गुणाः = शीतोष्णस्निग्धरूक्षमन्दतीक्ष्णगुरुलघुपिच्छिलविशदश्लक्ष्णपरुषकठिनमृदुद्रवसान्द्रस्थिररसरस्थूलसूक्ष्मा विंशतिः, वीर्यं—"भूतप्रभावातिशयो द्रव्ये पाके रसे स्थितः । चिन्त्याचिन्त्यक्रियाहेतुर्वीर्यं धन्वन्तरेर्मतम्" ॥ यद् द्रव्यं परिणामकाले स्वाभाविकं रसं परित्यज्य रसान्तरं भजते तत्र 'विपाक' इति संज्ञेति डल्हणः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

केचिदाचार्या[1] ब्रुवते—द्रव्यं प्रधानम्। कस्मात्? व्यवस्थितत्वात्[2], इह खलु द्रव्यं व्यवस्थितं न रसादय; यथा—आमे फले ये रसादयस्ते पक्वे न सन्ति। नित्यत्वाच्च[3], नित्यं हि द्रव्यमनित्या गुणाः; यथा—कल्कादिप्रविभागः[4], स एव सम्पन्नरसगन्धो व्यापन्नरसगन्धो वा भवति। स्वजात्यवस्थानाच्च[5], यथा हि पार्थिवं द्रव्यमन्यभावं[6] न गच्छत्येवं शेषाणि। पञ्चेन्द्रियग्रहणाच्च, पञ्चभिरिन्द्रियैर्गृह्यते[7] द्रव्यं न रसादयः। आश्रयत्वाच्च[8], द्रव्यमाश्रिता रसादयो भवन्ति। आरम्भसामर्थ्याच्च[9], द्रव्याश्रित आरम्भः, यथा—विदारिगन्धादिमाहृत्य सङ्क्षुद्य विपचेदित्येवमादिषु न रसादिष्वारम्भः। शास्त्रप्रामाण्याच्च, शास्त्रे हि द्रव्यं प्रधानमुपदेशे हि योगानां, यथा—मातुलुङ्गाग्निमन्थौ चेत्यादौ न रसादय उपदिश्यन्ते। क्रमापेक्षितत्वाच्च रसादीनां, रसादयो हि द्रव्यक्रममपेक्षन्ते, यथा—तरुणे तरुणाः सम्पूर्णे सम्पूर्णा इति। एकदेशसाध्यत्वाच्च, द्रव्याणामेकदेशेनापि व्याधयः साध्यन्ते, यथा—महावृक्षक्षीरेणेति। तस्माद् द्रव्यं प्रधानम्। द्रव्यलक्षणन्तु 'क्रियागुणवत्[10] समवायिकारणम्' इति॥ ३ ॥

नेत्याहुरन्ये[11]। रसास्तु प्रधानम्, कस्मात्? आगमात्, आगमो

---

१ तत्र प्रथमं सयुक्तिकं द्रव्यप्राधान्यं प्रतिपादयति—**केचिदिति**। २ व्यवस्थितत्वात्=स्वस्वगुणाभावेऽप्यवस्थानादित्यर्थः। ३ कालपरिणामेन रसाद्यन्यथाभावेऽपि तद्रूपतयाऽवस्थितत्वान्नित्यत्वमिति तात्पर्यम्। ४ कल्कादिरूपेण प्रविभक्ते द्रव्यसमूहः कल्कादिप्रविभागः। आदिशब्दात् स्वरसश्रृतशीतफाण्टानां परिग्रहः। ५ स्वस्यां पार्थिवादिजातावविस्थितत्वादित्यर्थः। ६ अन्यभावम्=आप्यादिजातिम्, शेषाणि=अवशिष्टान्याप्यादीनि।

७ द्रव्ये गृहीते तदाश्रया गुणा गृहीता भवन्ति, गुणाः=शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः। द्रव्ये शब्दोऽप्यस्ति, यथा पार्थिवादिद्रव्ये करकराऽऽदिशब्दः। "भूमौ करकराशब्दो जले चुलुचुलुध्वनिः" इत्याद्यनुसन्धेयम्। ८ आश्रयत्वात्=समवायसम्बन्धेन रसादीनामधिष्ठानत्वात्। ९ आरम्भसामर्थ्यात्=आहरणकुट्टनादिकर्मार्हत्वात्। १० क्रियाश्च गुणाश्च सन्त्यस्मिन्निति क्रियागुणवत्। यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्। यथा—तन्तवः पटस्य, घटस्य च मृत्कपालादिः। ११. रसप्राधान्ये एकीयमतं दर्शयति—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हि शास्त्रमुच्यते; शास्त्रे हि रसा अधिकृताः[1], यथा–रसायत्त आहार इति, तस्मिंश्च प्राणाः। उपदेशाच्च, उपदिश्यन्ते हि रसाः, यथा–मधुराम्ललवणा वातं शमयन्ति। अनुमानाच्च, रसेन ह्यनुमीयते द्रव्यं, यथा–मधुरमिति। ऋषिवचनाच्च, ऋषिवचनं वेदो यथा–किञ्चिदिज्यार्थं मधुरमाहरेदिति[2]। तस्माद्रसाः प्रधानम्। रसेषु[3] गुणसंज्ञा। रसलक्षणमन्यत्रोपदेक्ष्यामः[4] ॥ ४ ॥

नेत्याहुरन्ये। वीर्य्यं[5] प्रधानमिति। कस्मात्? तद्वशेनौषधकर्मनिष्पत्तेः। इहौषधकर्माण्यूर्ध्वाधोभागोभयभागसंशोधनसंशमनसङ्ग्राहकाग्निदीपनपाचनलेखनबृंहणरसायनवाजीकरणश्वयथुकरविलयनदहनदारणमादनप्राणन्नविषप्रशमनानि वीर्य्यप्राधान्याद्भवन्ति। तच्च वीर्य्यं द्विविधमुष्णं शीतं च, अग्नीषोमीयत्वाज्जगतः। केचिदष्टविधमाहुः–शीतमुष्णं स्निग्धं रूक्षं विशदं पिच्छिलं मृदु तीक्ष्णं चेति एतानि वीर्याणि स्वबलगुणोत्कर्षाद्रसमभिभूयात्मकर्म कुर्वन्ति। यथा तावन्महत्पञ्चमूलं कषायं तिक्तानुरसं वातं शमयति, उष्णवो-

---

नेत्याहुरिति। न द्रव्यं प्रधानमित्यर्थः। १ अधिकृताः=प्राधान्येनोपदिष्टा इत्यर्थः। २ मधुरं मधुररसप्रधानं द्रव्यमित्यर्थः। अत्र रसप्राधान्येन द्रव्यव्यपदेशाद्रसाः प्रधानमिति सारम्। ३ रसेषु=लुप्तादिनिर्देशाद् रसादिष्वित्यर्थः। ४ अन्यत्र=रसविज्ञानीयेऽध्याये। ५ वीर्यप्राधान्ये एकीयमतं निर्दिशति—नेत्याहुरिति। न रसाः प्रधानमित्यर्थः।

६ वीर्यम्—"शक्तिमात्रं तु वीर्यं स्यादिति केचिद् बुधा विदुः। तन्मते द्रव्यरसयोः पाकस्य च गुणस्य च ॥ मृद्वादेः स्वक्रियोत्पादे शक्तिर्वीर्यमिति स्थितिः। मृद्वादयो गुणा ह्यष्टौ वीर्याणीत्यूचिरे परे ॥ यस्मात्सर्वगुणोत्कृष्टाः शक्त्युत्कर्षयुता अमी। व्यवहारोपयुक्ताश्च नेदृशास्त्वपरे गुणाः ॥ तस्मान्न ते वीर्यसंज्ञा इति शास्त्रविदां मतम्। अन्ये शीतोष्णभेदेन वीर्यं द्विविधमूचिरे ॥ अग्नीषोममयं विश्वं यत एतच्चराचरम्।॥" इति। "·····वीर्यं तु क्रियते येन या क्रिया। नावीर्यं कुरुते किञ्चित्सर्वा वीर्यकृता क्रिया ॥" इति चरकोक्त्या रसादीनां वीर्यत्वं धर्मधर्मिणोरभेदात्समर्थनीयम्। येनेति करणे तृतीया। तेन कर्तुर्द्रव्यस्य वीर्यत्वं नाशङ्कनीयम्। ७ औषधकर्माणि दर्शयति—इहेति। ८ लेखनं=पत्तलीकरणम्।

९ क्षारादिना दहनं, गृध्रपुरीषादिना दारणं, मदिराऽऽदिना मत्तताकरणं मादनम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्यत्वात्, तथा कुलत्थः कषायः, कटुकः पलाण्डुः, स्नेहभावाच्च। मधुरश्चेक्षुरसो वातं वर्द्धयति, शीतवीर्यत्वात्। कटुका पिप्पली पित्तं शमयति, मृदुशीतवीर्यत्वात्, अम्लमामलकं लवणं सैन्धवञ्च। तिक्ता काकमाची पित्तं वर्द्धयति, उष्णवीर्यत्वात्, मधुरा मत्स्याश्च। कटुकं मूलकं श्लेष्माणं वर्द्धयति, स्निग्धवीर्यत्वात्। अम्लं कपित्थं श्लेष्माणं शमयति, रूक्षवीर्यत्वात्, मधुरं क्षौद्रञ्च। तदेतन्निदर्शनमात्रमुक्तम्॥ ५॥

भवन्ति चात्र।

ये रसा वातशमना[1] भवन्ति यदि तेषु वै।
रौक्ष्यलाघवशैत्यानि न ते हन्युः समीरणम्॥ ६॥
ये रसाः पित्तशमना[2] भवन्ति यदि तेषु वै।
तैक्ष्ण्यौष्ण्यलघुताश्चैव न ते तत्कर्मकारिणः॥ ७॥
ये रसाः श्लेष्मशमना[3] भवन्ति यदि तेषु वै।
स्नेहगौरवशैत्यानि न ते तत्कर्मकारिणः॥ ८॥
तस्माद्वीर्यं प्रधानमिति॥ ९॥

नेत्याहुरन्ये[4]। विपाकः[5] प्रधानमिति। कस्मात्? सम्यङ्मिथ्याविपाकत्वात्[6]। इह सर्वद्रव्याण्यभ्यवहृतानि सम्यङ्मिथ्याविपक्वानि गुणं दोषं वा जनयन्ति।

तत्राहुरन्ये—प्रतिरसं पाक इति। केचित्त्रिविधमिच्छन्ति—

---

१ वातशमनाः=मधुराम्ललवणाः। २ पित्तशमनाः=मधुरतिक्तकषायाः। ३ श्लेष्मशमनाः=कटुतिक्तकषायाः।

४ विपाकप्राधान्यवादिमतं दर्शयति—**नेति**। ५ विपाको नाम—"जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्। रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः॥" इति वाग्भटोक्तलक्षणः। ६ द्रव्यगुणानुरूपो निष्ठापाकः सम्यग्विपाकस्तद्विपरीतो मिथ्याविपाकस्तस्य भावस्तस्मात्। ७ सम्यग् विपक्वानि गुणं, मिथ्याविपक्वानि दोषं च जनयन्तीत्यर्थः। यथा—सम्यग् विपक्वश्चित्रकोऽग्निसन्दीपनादिरूपं गुणं, मिथ्याविपक्वो रुद्धमूत्रत्वादिरूपं दोषं च जनयतीत्याद्यवसेयम्। ८ षड्विधविपाकवादिमतं दर्शयति—**तत्राहुरिति**। प्रतिरसं=रसं रसं प्रति पाक इत्यर्थः। षड्रसानां यथाक्रमं षड् विपाकाः भवन्तीति तत्सारम्।

९ त्रिविधविपाकवादिमतमुपन्यस्यति—**केचिदिति**। चरकेऽपि—"कटुतिक्तकषा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मधुरमम्लं कटुकं चेति । तत्तु न सम्यक्, भूतगुणादागमाच्चान्योऽम्लो विपाको नास्ति । पित्तं हि विदग्धमम्लतामुपैत्यग्नेर्मन्दत्वात् । यद्येवं लवणोऽप्यन्यः पाको भविष्यति, श्लेष्मा हि विदग्धो लवणतामुपैतीति ।

मधुरो मधुरस्याम्लोऽम्लस्यैवं सर्वेषामिति केचिदाहुः । दृष्टान्तं चोपदिशन्ति—यथा तावत् क्षीरमुखागतं पच्यमानं मधुरमेव स्यात्तथा शालियवमुद्गादयः प्रकीर्णाः स्वभावमुत्तरकालेऽपि न परित्यजन्ति तद्वदिति । केचिद्वदन्ति—अबलवन्तो बलवतां वशमायान्तीति । एवमनवस्थितिः; तस्मादसिद्धान्त एषः । आगमे हि द्विविध एव पाको मधुरः कटुकश्च । तयोर्मधुराख्यो गुरुः, कटुकाख्यो लघुरिति । तत्र पृथिव्यग्नेजोवाय्वाकाशानां द्वैविध्यं भवति गुणसाधर्म्याद् गुरुता लघुता च । पृथिव्यापश्च गुर्व्यः, शेषाणि लघूनि । तस्माद् द्विविध एव पाक इति ॥ १० ॥

भवन्ति चात्र ।

द्रव्येषु पच्यमानेषु येष्वम्बुपृथिवीगुणाः ।
निर्वर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाको मधुर उच्यते ॥ ११ ॥
तेजोऽनिलाकाशगुणाः पच्यमानेषु येषु तु ।
निर्वर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाकः कटुक उच्यते ॥ १२ ॥
पृथक्त्वदर्शिनामेष वादिनां वादसङ्ग्रहः ।

---

याणां विपाकः प्रायशः कटुः । अम्लोऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरं लवणस्तथा ॥" इति कटवम्लमधुरभेदेन त्रय एव विपाकाः प्रदर्शिताः । १ विपाकत्रैविध्यं दूषयति—**भूतेति ।** भूतगुणात्=पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतगुणादित्यर्थः । २ 'प्रतिरसं पाकः' इति पूर्वोक्तपक्षं स्थापयति—**मधुर इति ।** ३ उखागतं = स्थालीगतमित्यर्थः । ४ प्रकीर्णाः = भूमावुप्ताः । ५ उत्तरकाले = प्ररोहकाले ।

६ "त्रिषष्टिः स्यादसंख्येया रसानुरसकल्पनात् । रसास्तरतमाभ्यान्तु संख्यामतिपतन्ति हि ॥" इति चरकोक्त्या रसानुरसकल्पनेन रसानामपरिसंख्येयत्वादनवस्थितिरिति बोध्यम् । ७ स्वाभिमतं विपाकप्रकारद्वयं द्रढयति—**आगम इति ।** ८ तस्मात् = पृथिव्यादीनां गुरुत्वलघुत्वसाधर्म्येण द्वैविध्यात् । ९ निर्वर्तन्ते=जायन्ते इत्यर्थः । १० पृ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्णामपि सामग्र्यमिच्छन्त्यत्र विपश्चितः ॥ १३ ॥
तद् द्रव्यमात्मना किञ्चित्किञ्चिद्वीर्य्येण सेवितम् ।
किञ्चिद्रसविपाकाभ्यां दोषं हन्ति करोति वा ॥ १४ ॥
पाको नास्ति विना वीर्य्याद्वीर्य्यं नास्ति विना रसात् ।
रसो नास्ति विना द्रव्याद् द्रव्यं श्रेष्ठतमं स्मृतम् ॥ १५ ॥
जन्म तु द्रव्यरसयोरन्योऽन्यापेक्षिकं स्मृतम् ।
अन्योऽन्यापेक्षिकं जन्म यथा स्याद् देहदेहिनोः ॥ १६ ॥
वीर्य्यसंज्ञा गुणा येऽष्टौ तेऽपि द्रव्याश्रयाः स्मृताः ।
रसेषु न भवन्त्येते निर्गुणास्तु गुणाः स्मृताः ॥ १७ ॥
द्रव्ये द्रव्याणि यस्माद्धि विपच्यन्ते च षड्रसाः ।
श्रेष्ठं द्रव्यमतो ज्ञेयं, शेषा भावास्तदाश्रयाः ॥ १८ ॥
अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ।
आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ १९ ॥
प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः ।
नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान् परीक्षेत कथञ्चन ॥ २० ॥
सहस्रेणापि हेतूनां नाम्बष्ठादिर्विरेचयेत् ।

---

थक्त्वदर्शिनां = 'द्रव्यं प्रधानं' 'रसाः प्रधानाः' इत्येवं द्वैतदर्शिनामित्यर्थः । १ सामग्र्यं = समुदायत्वम् । २ पूर्वोक्तमतभेदस्य समन्वयं कुर्वन् चतुर्णां प्राधान्यमभिदधाति—**तदिति** । चरकेऽप्याह—"किञ्चिद्रसेन कुरुते कर्म वीर्येण चापरम् । द्रव्यं गुणेन पाकेन प्रभावेण च किञ्चन ॥" इति । ३ रसादीनां द्रव्यकार्यत्वाद् द्रव्यस्य प्राधान्यं वक्ति—**पाक इति** ।

४ द्रव्यमिति सामान्यत उक्तमपि तन्त्रान्तरोक्तमूलत्वगादीनां परिग्रहः कर्तव्यः । तद्यथा—"मूलत्वक्सारनिर्यासनाररसवरसपल्लवाः । क्षीरं क्षारं फलं पुष्पं भस्म तैलानि कण्टकम् ॥ पत्राणि शृङ्गकन्दानि प्ररोहास्तूद्भिदादयः । द्रव्यशब्देन गृह्यन्ते जङ्गमाः पार्थिवास्तथा ॥" इति । ५ द्रव्यातिरिक्ता रसादयो भावा इत्यर्थः । ६ आगमोक्तगुणानां भेषजानां स्वबुध्या विचारनिषेधं निर्दिशति—**अमीमांस्यानीति** । अमीमांस्यानि = न विचार्याणीत्यर्थः ।

७ आगमस्य प्रत्यक्षफलत्वेन बलीयस्त्वमाह—**प्रत्यक्षेति** । हिताहितभेदेन प्रत्यक्षलक्षणफला औषधीर्न परीक्षेतेत्यर्थः । ८ प्रसिद्धलक्षणफलमौषधं हेतुभिः कुतो न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तस्मात्तिष्ठेत्तु मतिमानागमे न तु हेतुषु ॥ २१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकविज्ञानीयो नाम

५३०
५४
विषय संख्या
आगत पंजिका संख्या ४०,८२६
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
18 MAR 1972 - 8 MAR 1983
A ३१/१४ शो ४३/६
16 AUG 1972
A ३३/२०
28 JUL 1973
V 161/1
-1 OCT 1974
A-८०/४
19 MAR 1982
०६/५

त... उत्कर्ष... वायव्... त... यं प्राय... करं ... षत्कष... बन्ध...

परीक्षण... विधात...

...यो द्रव्य... यात्... क्यम्... निर्दिशा... ६

उपचयकरं — वृद्धिकरमित्यर्थः । ७ आप्यद्रव्यस्य लक्षणं गुणांश्चाभिदधाति—शीतेति ।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


चतुर्णामपि सामग्र्यमिच्छन्त्यत्र विपश्चितः ॥ १३ ॥
सेवितम् ।
वा ॥ १४ ॥
धना रसात् ।
स्मृतम् ॥ १५ ॥
ाम् ।
हेहिनोः ॥ १६ ॥
: स्मृताः ।
ताः ॥ १७ ॥
ङ्गसाः ।
: ॥ १८ ॥
ावतः ।
: ॥ १९ ॥
।
२० ॥
।

---

नामित्यर्थः । १ साम- चतुर्णां प्राधान्यमभिद- वीर्येण चापरम् । द्रव्यं द्रव्यकार्यत्वाद् द्रव्यस्य

ीनां परिग्रहः कर्तव्यः । फलं पुष्पं भस्म तैलानि शब्देन गृह्यन्ते जङ्गमाः इत्यर्थः । ६ आगमोक्त- **ोमांस्यानीति** । अमी- मांस्यानि = न विचार्याणीत्यर्थः ।

७ आगमस्य प्रत्यक्षफलत्वेन बलीयस्त्वमाह—**प्रत्यक्षेति** । हिताहितभेदेन प्रत्य- क्षलक्षणफला औषधीर्न परीक्षेतेत्यर्थः । ८ प्रसिद्धलक्षणफलमौषधं हेतुभिः कुतो न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तस्मात्तिष्ठेत्तु मतिमानागमे न तु हेतुषु ॥ २१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकविज्ञानीयो नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥

---

## एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो द्रव्यविशेषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

तत्र, पृथिव्यग्नेजोवाय्वाकाशानां समुदायाद् द्रव्याभिनिर्वृत्तिः, उत्कर्षस्त्वभिव्यञ्जको भवति - इदं पार्थिवमिदमाप्यमिदं तैजसमिदं वायव्यमिदमाकाशीयमिति ॥ ३ ॥

तत्र, स्थूलसारसान्द्रमन्दस्थिरखरगुरुकठिनगन्धबहुलमीषत्कषायं प्रायशो मधुरमिति पार्थिवम् । तत् स्थैर्य्यबलगौरवसङ्घातोपचयकरं विशेषतश्चाधोगतिस्वभावमिति ॥ ४ ॥

शीतस्तिमितस्निग्धमन्दगुरुसरसान्द्रमृदुपिच्छिलं रसबहुलमीषत्कषायाम्ललवणं मधुररसप्रायमाप्यम् । तत् स्नेहनह्लादनक्लेदनबन्धनविष्यन्दनकरमिति ॥ ५ ॥

---

परीक्षणीयमित्यत आह—**सहस्रेणेति** । तस्माद् भेषजविषये वैद्यवरैः शास्त्रे एवास्था विधातव्या, न तु प्रतिकूलतर्के इति भावः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।**

---

### एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ द्रव्याणां पार्थिवत्वादिना प्रभेदा द्रव्यविशेषास्तेषां विज्ञानमधिकृत्य कृतोऽध्यायो द्रव्यविशेषविज्ञानीयस्तम् । २ द्रव्योत्पत्तिप्रकारमुपदिशति—**तत्रेति** । ३ समुदायात्=समवायात्, द्रव्याभिनिर्वृत्तिः=द्रव्योत्पत्तिः, उत्कर्षः=कस्य चित्तत्त्वस्याधिक्यम् । ४ अभिव्यञ्जकः=परस्परमसादृश्यबोधकः । ५ पार्थिवद्रव्यस्य लक्षणं गुणांश्च निर्दिशति—**तत्रेति** । सारं=स्थिरांशम्, पाकादिभिः क्षयापचयरहितमित्यर्थः । ६ उपचयकरं=वृद्धिकरमित्यर्थः । ७ आप्यद्रव्यस्य लक्षणं गुणांश्चाभिदधाति—**शीतेति** ।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]उष्णतीक्ष्णसूक्ष्मरूक्षखरलघुविशदं रूपगुणबहुलमीषदम्ललवणं कटुकरसप्रायं विशेषतश्चोर्ध्वगतिस्वभावमिति तैजसम्। तद्दहनपचनदारणतापनप्रकाशनप्रभावर्णकरमिति ॥ ६ ॥

[2]सूक्ष्मरूक्षखरशिशिरलघुविशदं स्पर्शबहुलमीषत्तिक्तं विशेषतः कषायमिति वायवीयम्। तद्वैशद्यलाघवग्लपनविरूक्षणविचारणकरमिति ॥ ७ ॥

[4]श्लक्ष्णसूक्ष्ममृदुव्यवायिविशदविविक्तमव्यक्तरसं शब्दबहुलमाकाशीयम्। तन्मार्दवशौषिर्य्यलाघवकरमिति ॥ ८ ॥

अनेन [5]निदर्शनेन नानौषधीभूतं जगति किञ्चिद् द्रव्यमस्तीति कृत्वा तं तं युक्ति[6]विशेषमर्थं चाभिसमीक्ष्य स्ववीर्य्यगुणयुक्तानि द्रव्याणि [7]कार्मुकाणि भवन्ति। तानि यदा कुर्वन्ति स कालः, यत्कुर्वन्ति तत्कर्म, येन कुर्वन्ति तद्वीर्य्यं, यत्र कुर्वन्ति तदधिकरणं, [8]यथा कुर्वन्ति स उपायः, यन्निष्पादयन्ति तत् फलमिति ॥ ९ ॥

तत्र[9], विरेचनद्रव्याणि पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठानि, पृथिव्यापो गुर्व्यस्ता गुरुत्वादधो गच्छन्ति, तस्माद्विरेचनमधोगुणभूयिष्ठमनुमानात्। वमनद्रव्याण्यग्निवायुगुणभूयिष्ठानि, अग्निवायू हि लघू,

---

स्तिमितम् = आर्द्रम्। १ तैजसद्रव्यस्य लक्षणं गुणांश्चाचष्टे—**उष्णेति**। विशदम् = अपिच्छिलम्। २ वायवीयद्रव्यस्य लक्षणं गुणांश्चाह—**सूक्ष्मेति**। खरं = कर्कोटकफलवत्खरस्पर्शम्। ३ विचारणं = मनसोऽनेकविकल्पकारणम्। ४ आकाशीयद्रव्यस्य लक्षणं गुणांश्च दर्शयति—**श्लक्ष्णेति**। व्यवायि = विषमद्यवत्सकलं देहं व्याप्य पाकाय वर्तनम्। वक्ष्यति—"व्यवायी चाखिलं देहं व्याप्य पाकाय कल्पते।" इति। विविक्तं = पृथग्भूतम्, अव्यक्तरसं = मधुरादिरसविशेषानुपलभ्यमानम्।

५ निदर्श्यते विज्ञायते द्रव्याणां स्वभावोऽनेनेति निदर्शनं तेन, पूर्वोक्तेन शास्त्रेणेत्यर्थः। नानौषधीभूतं, जगति अनौषधीभूतं किञ्चिद् द्रव्यं नास्तीति सम्बन्धः। संसारेऽस्मिन् दृश्यमानं सर्वं द्रव्यजातं यथाऽवसरं पथ्यकरं भवतीति भावः। ६ युक्तिविशेषं = तोयाग्निसंस्कारभावनामात्राऽऽदियोजनाविशेषम्। ७ कार्मुकाणि = कार्यकराणि। कर्मणे प्रभवतीत्यर्थे 'कर्मण उकञ्' इत्युकञ्। ८ यथा = येन प्रकारेण, स्वरसकल्कश्रृतशीतफाण्टघृततैललेहमोदकादिनेत्यर्थः। ९ विरेचनीयादिद्रव्याणां महाभूतगुणतारतम्येन स्वकार्यकर्तृत्वमुपपादयति—**तत्रेति**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लघुत्वाच्च तान्यूर्ध्वमुत्तिष्ठन्ति, तस्माद्वमनमप्यूर्ध्वगुणभूयिष्ठम् । उभयगुणभूयिष्ठमुभयतोभागम् । आकाशगुणभूयिष्ठं संशमनम्[1] । साङ्ग्राहिकमनिलगुणभूयिष्ठम्, अनिलस्य शोषणात्मकत्वात् । दीपनमग्निगुणभूयिष्ठं, ( तत्समानत्वात् ) । लेखनम्[2] अनिलानलगुणभूयिष्ठम् । बृंहणं[3] पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठम् । एवमौषधकर्माण्यनुमानात्साधयेत् ॥ १० ॥

भवन्ति चात्र ।

भूतेजोवारिजैर्द्रव्यैः[4] शमं याति समीरणः ।
भूम्यम्बुवायुजैः पित्तं क्षिप्रमाप्नोति निर्वृतिम् ॥ ११ ॥
खतेजोऽनिलजैः श्लेष्मा शममेति शरीरिणाम् ।
वियत्पवनजाताभ्यां वृद्धिमाप्नोति मारुतः ॥ १२ ॥
आग्नेयमेव यद् द्रव्यं तेन पित्तमुदीर्यते ।
वसुधाजलजाताभ्यां बलासः परिवर्द्धते ॥ १३ ॥
एवमेतद्गुणाधिक्यं द्रव्ये द्रव्ये विनिश्चितम् ।
द्विशो वा बहुशो वाऽपि ज्ञात्वा दोषेषु चाचरेत् ॥ १४ ॥

तत्र[5], य इमे गुणा वीर्य्यसंज्ञकाः शीतोष्णस्निग्धरूक्षमृदुतीक्ष्णपिच्छिलविशदास्तेषां तीक्ष्णोष्णावाग्नेयौ, ।शीतपिच्छिलावम्बुगुणभूयिष्ठौ, पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठः स्नेहः, तोयाकाशगुणभूयिष्ठं

---

१ शार्ङ्गधरे संशमनलक्षणम्—"न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि । समीकरोति क्रुद्धांश्च तत्संशमनमुच्यते ॥" इति । भावप्रकाशे साङ्ग्राहिकद्रव्यलक्षणम्—"आग्नेयगुणभूयिष्ठात्तोयांशं परिशोष्य यत् । सङ्गृह्णाति मलं यत्तु ग्राही शुण्ठ्यादयो यथा ॥" इति । उष्णग्राहकशीतग्राहकभेदेन ग्राहकद्रव्यं द्विविधमाह—"यद् ग्रहण्यामामं सम्पाच्य वह्निं कृत्वा तत्रस्थं द्रवं च शोषयित्वा स्तम्भनं करोति तदुष्णग्राहकं ज्ञेयम् । यद् द्रव्यमतिसारादौ पक्वमलादिकं संस्तभ्य सङ्ग्रहं करोति तच्छीतग्राहकं ज्ञेयमेतदनिलगुणभूयिष्ठमित्यदोषः ।" इति ।

२ शार्ङ्गधरे लेखनलक्षणम्—"धातून् मलान् वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत् । लेखनं तत्" इति । ३ "बृंहत्त्वं यच्छरीरस्य जनयेत्तच्च बृंहणम् ।" इति चरकः । ४ पार्थिवादिद्रव्याणां वातादिप्रकोपशमकत्वमाह—**भ्विति** । ५ शीतोष्णादीनां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृदुत्वम्, वायुगुणभूयिष्ठं रौक्ष्यम्, क्षितिसमीरणगुणभूयिष्ठं वैशद्यम्, गुरुलघुविपाकावुक्तगुणौ; तत्र, उष्णस्निग्धौ वातघ्नौ, शीतमृदुपिच्छिलाः पित्तघ्नाः, तीक्ष्णरूक्षविशदाः श्लेष्मघ्नाः; गुरुपाको वातपित्तघ्नः, लघुपाकः श्लेष्मघ्नः, तेषां मृदुशीतोष्णाः स्पर्शग्राह्याः, पिच्छिलविशदौ चक्षुःस्पर्शाभ्यां, स्निग्धरूक्षौ चक्षुषा, तीक्ष्णो सुखदुःखोत्पादनात्; गुरुपाकः सृष्टविण्मूत्रतया कफोत्क्लेशेन च, लघुर्बद्धविण्मूत्रतया मारुतकोपेन च। तत्र तुल्यगुणेषु भूतेषु रसविशेषमुपलक्षयेत्। तद्यथा—मधुरो गुरुश्च पार्थिवः, मधुरः स्निग्धश्चाप्य इति ॥ १५ ॥

भवति चात्र।

गुणा य उक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा।
स्थानवृद्धिक्षयास्तस्माद् देहिनां द्रव्यहेतुकाः ॥ १६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने द्रव्यविशेषविज्ञानीयो नाम एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

---

## द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

अथातो रसविशेषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
आकाशपवनदहनतोयभूमिषु यथासङ्ख्यमेकोत्तरपरिवृद्धाः शब्द-

---

पार्थिवत्वादिविवेचनं करोति—तत्रेति। इमे = वक्ष्यमाणाः। १ तयोर्मधुराख्यो गुरुः कटुकाख्यो लघुरित्युक्त्या मधुरकटुकविपाकावित्यर्थः। २ स्थानं दोषधातुमलसाम्येनावस्थितिः, वृद्धिर्दोषादेर्वर्द्धनम्, क्षयो दोषादीनां ह्रासस्ते स्थानवृद्धिक्षयास्तस्माद्देहिनां प्राणिनां द्रव्यहेतुकाः निजींवद्रव्यमूला भवन्तीत्यर्थः।

**इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।**

---

### द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

३ रसविशेषस्य मधुरादेर्विज्ञानमधिकृत्य कृतोऽध्यायो रसविशेषविज्ञानीयस्तम्। ४ उत्तरे भूते परिवृद्धा उत्तरपरिवृद्धाः, एकेन एकैकस्याकाशादेर्गुणेनोत्तरपरिवृद्धा इत्ये-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्पर्शरूपरसगन्धाः, तस्मादाप्यो रसः। परस्परसंसर्गात्[1] परस्परानुग्रहात् परस्परानुप्रवेशाच्च सर्वेषु सर्वेषां सान्निध्यमस्ति। उत्कर्षापकर्षात्तु[2] ग्रहणम्। स खल्वाप्यो रसः शेषभूतसंसर्गाद्विदग्धः[3] षोढा विभज्यते। तद्यथा—मधुरोऽम्लो लवणः कटुकस्तिक्तः कषाय इति। ते च भूयः परस्परसंसर्गात्त्रिषष्टिधा भिद्यन्ते[4]। तत्र[5] भूम्यम्बुगुणबाहुल्यान्मधुरः, भूम्यग्निगुणबाहुल्यादम्लः, तोयाग्निगुणबाहुल्यात्लवणः, वाय्वग्निगुणबाहुल्यात्कटुकः, वाय्वाकाशगुणबाहुल्यात्तिक्तः, पृथिव्यनिलगुणबाहुल्यात्कषाय इति ॥ ३ ॥

तत्र, मधुराम्ललवणा वातघ्नाः, मधुरतिक्तकषायाः पित्तघ्नाः, कटुतिक्तकषायाः श्लेष्मघ्नाः ॥ ४ ॥

तत्र[6], वायु(यो)रात्मैवात्मा, पित्तमाग्नेयं श्लेष्मा सौम्य इति ॥५॥

त एते रसाः स्वयोनिवर्द्धना[7] अन्ययोनिप्रशमनाश्च ॥ ६ ॥

केचिदाहुरग्नीषोमीयत्वाज्जगतो रसा द्विविधाः[8]—सौम्या आग्नेयाश्च। तत्र मधुरतिक्तकषायाः सौम्याः। कट्वम्ललवणा आग्नेयाः। तत्र मधुराम्ललवणाः स्निग्धा गुरवश्च, कटुतिक्तकषाया रूक्षा लघवश्च; सौम्याः शीता आग्नेयाश्चोष्णाः ॥ ७ ॥

---

कोत्तरपरिवृद्धाः, एकैकस्मिन्नुत्तरे भूते पूर्वपूर्वभूतगुणेन प्रवृद्धाः। यथाऽऽकाशे—शब्दो गुणः, पवने—शब्दस्पर्शौ, दहने—शब्दस्पर्शरूपाणि, तोये—शब्दस्पर्शरूपरसाः, भूमौ—शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः। तदाह मनुः—"आद्यादस्य गुणन्त्वेषामवाप्नोति परः परः। यो यो यावतिथश्चैषां स स तावद्गुणः स्मृतः॥" इति। १ परस्परसंसर्गाद्=अन्योन्यसंयोगात्, परस्परानुग्रहाद्=अन्योन्योपकारात्, परस्परानुप्रवेशाद्=अनुप्रवेशादेकात्म्यीभावात्। २ उत्कर्षः=वृद्धिः, अपकर्षः=ह्रासः, उत्कर्षाद् ग्रहणम्, अपकर्षादग्रहणमिति तात्पर्यम्। ३ शेषभूतानां तोयव्यतिरिक्तानां चतुर्णां भूतानां संसर्गो मिलनं तस्मात्, विदग्धः=पाकेन अवस्थाऽन्तरं गतः। ४ भेदप्रकारोऽयं रसभेदीये वक्ष्यते।

५ यस्य यस्य शेषभूतस्य संसर्गाद्यो यो रस उत्पद्यते तं तं दर्शयति—**तत्रेत्यादिना**। ६ दोषाणामुत्पत्तिकारणमाख्याति—**तत्रेति**। आत्मैवात्मा कारणम्, वायुतो वायूत्पत्तिरित्यर्थः। आग्नेयम् अग्नेः पित्तमुत्पद्यते इत्यर्थः। सौम्यः सोमाच्छ्लेष्मण उत्पत्तिरित्यर्थः। ७ येभ्यः कारणेभ्यो मधुरादयो रसा उत्पद्यन्ते तानि वर्धयन्तीत्यर्थः। ८ सौम्याग्नेयभेदेन रसद्वैविध्यमभिदधाति—**केचिदिति**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र, शैत्यरौक्ष्यलाघववैशद्यवैष्टम्भ्यगुणलक्षणो वायुः। तस्य समानयोनिः कषायो रसः। सोऽस्य शैत्याच्छैत्यं वर्द्धयति, रौक्ष्याद्रौक्ष्यं, लाघवाल्लाघवं, वैशद्याद्वैशद्यं, वैष्टम्भ्याद्वैष्टम्भ्यमिति ॥ ८॥

औष्ण्यतैक्ष्ण्यरौक्ष्यलाघववैशद्यगुणलक्षणं पित्तम्। तस्य समानयोनिः कटुको रसः। सोऽस्यौष्ण्यादौष्ण्यं वर्द्धयति, तैक्ष्ण्यात्तैक्ष्ण्यं, रौक्ष्याद्रौक्ष्यं, लाघवाल्लाघवं, वैशद्याद्वैशद्यमिति ॥ ९ ॥

माधुर्य्यस्नेहगौरवशैत्यपैच्छिल्यगुणलक्षणः श्लेष्मा। तस्य समानयोनिर्मधुरो रसः। सोऽस्य माधुर्य्यान्माधुर्य्यं वर्द्धयति, स्नेहात् स्नेहं, गौरवाद्गौरवं, शैत्याच्छैत्यं, पैच्छिल्यात्पैच्छिल्यमिति ॥१०॥

तस्य[1] पुनरन्ययोनिः कटुको रसः। स श्लेष्मणः प्रत्यनीकत्वात्[2] कटुकत्वान्माधुर्य्यमभिभवति[3], रौक्ष्यात् स्नेहं, लाघवाद्गौरवमौष्ण्याच्छैत्यं, वैशद्यात्पैच्छिल्यमिति। तदेतन्निदर्शनमात्रमुक्तम् ॥११॥

रसलक्षणमत[4] ऊर्ध्वं वक्ष्यामः—तत्र, यः परितोषमुत्पादयति[5] प्रह्लादयति तर्पयति जीवयति मुखोपलेपं[6] जनयति श्लेष्माणं चाभिवर्द्धयति स मधुरः। यो दन्तहर्षमुत्पादयति[7] मुखास्रावं जनयति श्रद्धाञ्चोत्पादयति सोऽम्लः। यो भक्तरुचिमुत्पादयति कफप्रसेकं जनयति मार्दवं चापादयति स लवणः। यो जिह्वाग्रं बाधते उद्वेगं जनयति शिरो गृह्णीते नासिकाञ्च स्रावयति स कटुकः। यो गले चोषमुत्पादयति[8] मुखवैशद्यं जनयति भक्तरुचिं चापादयति हर्षञ्च स तिक्तः। यो वक्त्रं परिशोषयति जिह्वां स्तम्भयति कण्ठं बध्नाति हृदयं कर्षति पीडयति च स कषायः ॥ १२ ॥

रसगुणानत[9] ऊर्ध्वं वक्ष्यामः—तत्र, मधुरो रसो रसरक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जौजःशुक्रस्तन्यवर्धनश्चक्षुष्यः केश्यो वर्ण्यो बलकृत्स-

---

१ तस्य = श्लेष्मणः। २ प्रत्यनीकत्वाद् = विरुद्धत्वात्। ३ अभिभवति = नाशयतीत्यर्थः। ४ षड्रसानां लक्षणं प्रतिपादयति—**रसेति**। ५ परितोषं = भोजनावसरे परितुष्टिम् ६ मुखोपलेपं = मुखमलवृद्धिम्। ७ दन्तहर्षं = दन्तकुण्ठताम्। ८ चोषं = चूषणवदाकर्षणम्। ९ सेवितस्य मधुररसस्य गुणकर्माणि निर्दिशति—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



न्धानः शोणितरसप्रसादनो बालवृद्धक्षतक्षीणहितः षट्पदपिपीलिकानामिष्टतमस्तृष्णामूर्च्छादाहप्रशमनः षडिन्द्रियप्रसादनः कृमिकफकरश्चेति । स[1] एवं गुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानः कासश्वासालसकवमथुवदनमाधुर्यस्वरोपघातकृमिगलगण्डानापादयति, तथाऽर्बुदश्लीपदबस्तिगुदोपलेपाभिष्यन्दप्रभृतीन् जनयति ॥ १३ ॥

अम्ल[2]ो जरणः पाचनो दीपनः पवननिग्रहोऽनुलोमनः कोष्ठविदाही बहिश्शीतः क्लेदनः प्रायशो हृद्यश्चेति । स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो दन्तहर्षनयनसम्मीलनरोम[3]संवेजनकफविलयनशरीरशैथिल्यान्यापादयति, तथा क्षताभिहतदग्धदष्टभग्नशून-रुग्ण[4]प्रच्युतावमूत्रितविसर्पितच्छिन्नभिन्नविद्धोत्पिष्टादीनि पाचयत्याग्नेयस्वभावात् परिदहति, कण्ठमुरो हृदयञ्चेति ॥ १४ ॥

लव[5]णः संशोधनः पाचनो विश्लेषणः क्लेद[6]नः शैथिल्यकृदुष्णः सर्व[7]रसप्रत्यनीको मार्गविशोधनः सर्वशरीरावयवमार्दवकरश्चेति । स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानो गात्रकण्डूकोठ[8]शोफवैवर्ण्यपुंस्त्वोपघातेन्द्रियोपतापमुखाक्षिपाकरक्तपित्तवातशोणिताम्लिकाप्रभृतीनापादयति ॥ १५ ॥

कटु[9]को दीपनः पाचनो रोचनः शोधनः स्थौल्यालस्यकफकृमिविषकुष्ठकण्डूपशमनः सन्धिबन्धविच्छेदनोऽवसादन[10]ः स्तन्यशुक्रमेदसामुपहन्ता चेति । स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो भ्रममदगलतालवोष्ठशोषदाहसन्तापबलविघातकम्पतोदभेद-

---

रसगुणानिति । १ अतिसेविते मधुरे दोषमभिधत्ते—स इति ।

२ अम्लरसस्य गुणकर्माणि अतिसेवितस्य तस्य दोषांश्चाख्याति—अम्ल इत्यादिना । ३ रोमसंवेजनं=रोमाञ्चम् । ४ रुग्णं=वक्रीभूतम्, प्रच्युतं=स्वस्थानाद् विश्लिष्टम्, अवमूत्रितं=मूत्रविषाणां जन्तूनां मूत्रेण दूषितम्, विसर्पितं=स्पर्शविषजन्तुसृष्टम् । ५ लवणरसस्य गुणकर्माणि अतिसेवितस्य तस्य दोषांश्च वक्ति—लवण इति । ६ क्लेदनः=व्रणस्य क्लेदोत्पादक इत्यर्थः । ७ सर्वरसप्रत्यनीकः=सर्वरसोच्छेदक इत्यर्थः । मार्गविशोधनः=मलमूत्रव्रणादिमार्गविशोधकः । ८ कोठः=पिडकाः । ९ कटुकरसस्य गुणकर्माणि अतिसेवितस्य तस्य दोषांश्च ब्रवीति—कटुक इति । १० अव-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत करचरणपार्श्वपृष्ठप्रभृतिषु च वातशूलानापादयति ॥ १६ ॥

तिक्तः[1]श्छेदनो रोचनो दीपनः शोधनः कण्डूकोठतृष्णामूर्च्छाज्वरप्रशमनः स्तन्यशोधनो विण्मूत्रक्लेदमेदोवसापूयोपशोषणश्चेति । स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो गात्रमन्यास्तम्भाक्षेपकार्दितशिरश्शूलभ्रमतोदभेदच्छेदास्यवैरस्यान्यापादयति ॥ १७ ॥

कषा[2]यः सङ्ग्राहको रोपणः स्तम्भनः शोधनो लेख[3]नः शोषणः पीडनः क्लेदोपशोषणश्चेति । स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो हृत्पीडाऽऽस्यशोषोदराध्मानवाक्यग्रहमन्यास्तम्भगात्रस्फुरणचु[4]मचुमायनाकुञ्चनाक्षेपणप्रभृतीञ्जनयति[5] ॥ १८ ॥

अतः सर्वेषामेव द्रव्याण्युपदेक्ष्यामः । तद्यथा—काकोल्यादिः क्षीरघृतवसामज्जशालिषष्टिकयवगोधूममाषशृङ्गाटककसे[6]रुकत्रपुसै[7]र्वारुककर्कारुकालाबुकालिन्दकतकगिलोड्यपियालपुष्करबीजकाश्मर्य्यमधूकद्राक्षाखर्जूरराजादनतालनालिकेरेक्षुविकारबलाऽतिबलाऽऽत्मगुप्ताविदारीपयस्यागोक्षुरकक्षीरमोरटमधूलिकाकूष्माण्डप्रभृतीनि समासेन मधुरो वर्गः ॥ १९ ॥

दाडिमामलकमातुलुङ्गाम्रातककपित्थकरमर्दबदरकोलप्राचीनामलकतिन्तिडीककोशाम्रकभव्यपारावतवेत्रफललकुचाम्लवेतसदन्त[8]-

---

सादनः=अनुत्साहोत्पादकः । १ तिक्तरसस्य गुणकर्माणि अतिसेवितस्य तस्य दोषांश्च दर्शयति—**तिक्त इति** । २ कषायरसस्य गुणकर्माणि अतिसेवितस्य तस्य दोषांश्चाचष्टे—**कषाय इति** । ३ लेखनः=व्रणगतदुष्टमांसस्योच्छेदकः । ४ चुमचुमायनं=सर्षपकल्कलिप्तस्येव त्वचि वेदनाविशेषः । ५ त्रपुसं=लोके 'खीरा' इति ख्यातम्, एर्वारुकं=कर्कटी, 'तरबूज' इत्यन्ये, कर्कारुकं=लोके 'खरबूज' इति प्रसिद्धम्, कालिन्दं=कर्कारुभेदम्, लोके 'फूंट' इति ख्यातम्, कतकः=निर्मलीबीजम्, गिलोड्यः=कालकलकः शितोड्यकन्दः प्रावृड्जातः शणपत्रिकाऽऽकारो वल्लीयुक्तो गिल्लोठीति लोके इति डल्हणः । गिलं मधुजम्बीरफलम्, उड्यं जिज्ञासितव्यमिति श्रीहाराणचन्द्रः ।

६ दन्तशठः=जम्बीरः, सुराऽऽदीनां लक्षणं शार्ङ्गधरे—"परिपक्वान्नसन्धानसमुत्पन्नां सुरां जगुः । कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ॥ यत्र द्रवेऽभिषूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते । तुषाम्बुसन्धितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः ॥ यवैस्तु निस्तुषैः पक्वैः सौवीरं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शठदधितक्रसुराशुक्तसौवीरकतुषोदकधान्याम्लप्रभृतीनि समासेनाम्लो वर्गः ॥ २० ॥

सैन्धवसौवर्चलविडपाक्यरोमकसामुद्रकपक्त्रिमयवक्षारोषरप्रसूतसुवर्चिकाप्रभृतीनि समासेन लवणो वर्गः ॥ २१ ॥

पिप्पल्यादिः सुरसाऽऽदिः शिग्रुमधुशिग्रुमूलकलशुनसुमुखशीतशीतशिवकुष्ठदेवदारुहरेणुकावल्गुजफलचण्डागुग्गुलुमुस्तलाङ्गलकीशुकनासापीलुप्रभृतीनि सालसारादिश्च प्रायशः कटुको वर्गः ॥ २२ ॥

आरग्वधादिर्गुडूच्यादिर्मण्डूकपर्णीवेत्रकरीरहरिद्राद्वयेन्द्रयववरुणस्वादुकण्टकसप्तपर्णबृहतीद्वयशङ्खिनीद्रवन्तीत्रिवृत्कृतवेधनकर्कोटककारवेल्लवार्त्ताककरीरकरवीरसुमनःशङ्खपुष्पयपामार्गत्रायमाणाऽशोकरोहिणीवैजयन्तीसुवर्चलापुनर्नवावृश्चिकालीज्योतिष्मतीप्रभृतीनि समासेन तिक्तो वर्गः ॥ २३ ॥

न्यग्रोधादिरम्बष्ठादिः प्रियङ्ग्वादी रोध्रादिस्त्रिफला शल्लकीजम्ब्वाम्रबकुलतिन्दुकफलानि कतकशाकपाषाणभेदकवनस्पतिफलानि सालसारादिश्च प्रायशः कुरुवककोविदारकजीवन्तीचिल्लीपालङ्क्यासुनिषण्णकप्रभृतीनि नीवारकादयो मुद्गादयश्च वैदलाः समासेन कषायो वर्गः ॥ २४ ॥

तत्रैतेषां रसानां संयोगास्त्रिषष्टिर्भवन्ति । तद्यथा—पञ्चदश द्विकाः, विंशतिस्त्रिकाः, पञ्चदश चतुष्काः, षट् पञ्चकाः, एकशः षड्सः, एकः षट्क इति । तेषामन्यत्र प्रयोजनानि वक्ष्यामः ॥ २५ ॥

---

सन्धितं भवेत् । कुल्माषधान्यमण्डादिसन्धितं काञ्जिकं विदुः ॥" इति । १ पाक्यम्—उद्भिदलवणः । २ पक्त्रिमं=लवणकारद्वारापाकाभिनिर्वृत्तम् । ३ हरेणुका=निर्गुण्डीबीजम्, अवल्गुजः=सोमराजी, लोके 'बाकुची' इति ख्यातः, चण्डा=अजमोदाकारचोराख्यसुगन्धिद्रव्यम्, शणपुष्पीभेद इत्यन्ये। शुकनासा=श्योनाकः, लोके 'सोनापाठा' इति ख्याता। ४ वेत्रकरीरः=वेत्राङ्कुरः । ५ वृश्चिकाली=लोके 'मेढासिङ्गी' इति ख्याता। ६ चिल्ली=वास्तुकः, पालङ्क्या=पालकीति ख्याता। सुनिषण्णकः=सिरिवालिका। ७ अन्यत्र=उत्तरतन्त्रस्थ त्रिषष्टितमेऽध्याये ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवति चात्र ।

जग्धाः[1] षडधिगच्छन्ति बलिनो[2] वशतां रसाः ।
यथा प्रकुपिता दोषा वशं यान्ति बलीयसः ॥ २६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने रसविशेषविज्ञानीयो नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

---

## त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो वमनद्रव्यविकल्पविज्ञानीयमध्यायं[3] व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

वमनद्रव्याणां फलादीनां मदनफलानि श्रेष्ठतमानि भवन्ति । अथ मदनपुष्पाणामातपपरिशुष्काणां[4] चूर्णप्रकुञ्चं[5] प्रत्यक्पुष्पासदापुष्पीनिम्बकषायाणामन्यतमेनालोड्य मधुरसैन्धवयुक्तं पुष्पचूर्णमात्रां पाययित्वा वामयेत् ।

मदनशलाटुचूर्णान्येवं[6] वा बकुलरम्यकोपयुक्तानि मधुलवणयुक्तान्यभिप्रतप्तानि, मदनशलाटुचूर्णसिद्धां वा तिलतण्डुलयवागूम् । निर्वृत्तानां[7] वा नातिहरितपाण्डूनां कुशमूढावबद्धमृद्वोमयप्रलि-

---

१ जग्धाः=भक्षिताः, एकैकशः कृत्वोपयुक्ता इति भावः । २ बलिनः=व्यक्तरसस्य ।

इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

### त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

३ वमनद्रव्याणां विकल्पो विविधो योगस्तस्य विज्ञानमधिकृत्य कृतोऽध्यायो वमनद्रव्यविकल्पविज्ञानीयस्तम् । ४ अत्र पुष्पशब्दः फले वर्तते, कारणे कार्योपचारादिति डल्हणः । ५ प्रकुञ्चं=पलम् , चत्वारि तोलकानीत्यर्थः । मात्रेयं मध्यमा; उक्तं च—"द्रव्यप्रमाणन्तु यदुक्तमग्रे मध्येषु यत्कोष्ठवयोबलेषु । तन्मूलमारभ्य भवेद् विकल्पस्तेषां विकल्पो ह्यधिकोनभावः ॥" इति । तस्माद् दोषबलादिकमवलोक्य निर्दिष्टमात्राया न्यूनाधिक्यं कार्यम् । ६ 'आमे फले शलाटुः स्यात्' इत्यमरः । ७ पक्वमदनफलानां तृतीयं प्रधानं योगं निर्दिशति—**निर्वृत्तानामिति** । निर्वृत्तानां=पक्वानामित्यर्थः । ८ कुशविरचितपुटकः कुशमूढ इत्युच्यते, "कुशपुटे बद्ध्वा" इति दृढबलः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्तानां यवतुषमुद्गमाषशाल्यादिधान्यराशावष्टरात्रोषितक्लिन्नभिन्नानां फलानां फलपिप्पलीरुद्धृत्यातपे शोषयेत्। तासां दधिमधुपलैलविमृदितपरिशुष्काणां सुभाजनस्थानामन्तर्नखमुष्टिमुष्णे यष्टीमधुककषाये कोविदारादीनामन्यतमे वा कषाये प्रमृद्य रात्रिपर्युषितं मधुसैन्धवयुक्तमाशीर्भिरभिमन्त्रितमुदङ्मुखः प्राङ्मुखमातुरं पाययेदनेन मन्त्रेणाभिमन्त्र्य—

"ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानलानिलाः।
ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसङ्घाश्च पान्तु ते ॥
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा।
सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥"

विशेषेण श्लेष्मज्वरप्रतिश्यायान्तर्विद्रधिषु। अप्रवर्त्तमाने वा दोषे पिप्पलीवचागौरसर्षपकल्कोन्मिश्रैः सलवणैस्तुषाम्बुभिः पुनः पुनः प्रवर्तयेदासम्यग्वान्तलक्षणादिति।

मदनफलमज्जचूर्ण वा तत्काथपरिभावितं मदनफलकषायेण; मदनफलमज्जसिद्धस्य वा पयसः सन्तानिकां क्षौद्रयुक्तां, मदनफलमज्जसिद्धं वा पयः, मदनफलमज्जसिद्धेन वा पयसा यवागूम्, अधोभागासृक्पित्तहृद्दाहयोः; मदनफलमज्जसिद्धस्य वा पयसो दधिभावमुपगतस्य दध्युत्तरं दधि वा कफप्रसेकच्छर्दिमूर्च्छातमकेषु। मदनफलमज्जरसं भल्लातकस्नेहवदादाय फाणितीभूतं लेहयेत्। आतपपरिशुष्कं वा तमेव जीवन्तीकषायेण पित्ते कफस्थानगते। मदनफलमज्जकाथं वा पिप्पल्यादिप्रतीवापं, तच्चूर्णं वा निम्बरूपिकाकषाययोरन्यतरेण सन्तर्पणकफजव्याधिहरं, मदनफलमज्जचूर्ण

---

१ मदनफलबीजानीत्यर्थः। २ पललं=तिलचूर्णम्। ३ अन्तर्नखा मुष्टिरन्तर्नखमुष्टिः, अन्तःस्थितेन मुष्टिना यावद् गृह्यते तावन्मानमित्यर्थः। तोलकपरिमाणमिति भावः। अत्र "यावद्वा साधु मन्येत" इति चरकोक्तमपि ध्येयम्। ४ द्वयोः श्लोकयोरेकमन्त्रतयैकवचनम्। ५ सम्यग्वान्तलक्षणमाह चरकः—"पित्तान्तमिष्टं वमनं तथोर्ध्वम्" इति। ६ दुर्वमनबहुदोषविषययोगं दर्शयति—**मदनेति**। ७ सन्तानिकां=सरमित्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा मधुककाश्मर्यद्राक्षाकषायेण । मदनफलविधानमुक्तम्[1] ॥ ३ ॥

जीमूतककुसुमचूर्णं[2] पूर्ववदेव क्षीरेण, निर्वृत्तेषु क्षीरयवागूं, रोमशेषु सन्तानिकाम्, अरोमशेषु दध्युत्तरं, हरितपाण्डुषु दधि तत्कषायसंसृष्टां वा सुरां, कफारोचककासश्वासपाण्डुरोगयक्ष्मसु। पर्यागतेषु मदनफलमज्जवदुपयोगः ॥ ४ ॥

तद्वदेव कुटजफलविधानम् ॥ ५ ॥

कृतवेधनानामप्येष एव कल्पः[3] ॥ ६ ॥

इक्ष्वाकुकुसुमचूर्णं[4] वा पूर्ववत्। एवं क्षीरेण, कासश्वासच्छर्दिकफरोगेषूपयोगः ॥ ७ ॥

धामार्गवस्यापि[5] मदनफलमज्जवदुपयोगः। विशेषतस्तु गरगुल्मोदरकासश्वासश्लेष्मामयेषु वायौ च कफस्थानगते ॥ ८ ॥

कृतवेधनफलपिप्पलीनां[6] वमनद्रव्यकषायपरिपीतानां[7] बहुशश्चूर्णमुत्पलादिषु दत्तमाघ्रातं वामयति, तत्त्वनवबद्धदोषेषु[8] यवागूमाकण्ठात्पीतवत्सु च विदध्यात्। वमनविरेचनशिरोविरेचनद्रव्याण्येवं वा प्रधानतमानि भवन्ति ॥ ९ ॥

भवतश्चात्र।

वमनद्रव्ययोगाणां दिगियं सम्प्रकीर्त्तिता।
तां विभज्य[9] यथाव्याधि कालशक्तिविनिश्चयात् ॥ १० ॥
कषायैः स्वरसैः कल्कैश्चूर्णैरपि च बुद्धिमान्।

---

१ त्रिंशद्योगविधानमित्यर्थः। २ मदनफलस्य पश्चाद् वमनीयजीमूतककल्पमुपदिशति—**जीमूतकेति**। जीमूतकः=देवदाली। ३ कृतवेधनानां=कोशातकीनाम्। ४ इक्ष्वाकुः=कटुकालाबूः। ५ धामार्गवः=पीतपुष्पकटुघोषकः, लोके 'कड़वी तरोई' इति ख्यातः। ६ कृतवेधनः=श्वेतपुष्पकटुकोशातकी।

७ परिपीतानां=भावितानाम्। वमनद्रव्याणि कषायभावनयैव विशेषेण गुणवन्ति भवन्ति। तदाह चरकः—"भूयश्चैषां बलाधानं कार्यं स्वरसभावनैः। सुभावितं ह्यल्पमपि द्रव्यं स्याद् बहुकर्मकृत्। स्वरसैस्तुल्यवीर्यैर्वा तस्माद् द्रव्याणि भावयेत्॥" इति। ८ अनवबद्धदोषेषु=अतिकुपितदोषेषु पुरुषेष्वित्यर्थः। ९ विभज्य=विविच्य, 'वमना-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पेयलेह्याद्यभोज्येषु[1] वमनान्युपकल्पयेत् ॥ ११ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने वमनद्रव्यविकल्पविज्ञानीयो नाम त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

---

## चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो विरेचनद्रव्यविकल्पविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अरुणाभं[3] त्रिवृन्मूलं श्रेष्ठं मूलविरेचने ।
प्रधानं तिलवकस्त्वक्षु फलेष्वपि हरीतकी ॥ ३ ॥
तैलेष्वेरण्डजं तैलं स्वरसे कारवेल्लिका ।
सुधापयः पयःसूक्तमिति प्राधान्यसङ्ग्रहः ।
तेषां विधानं वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ४ ॥
वैरेचनद्रव्यरसानुपीतं[4] मूलं महत्त्रैवृतमस्तदोषम्[5] ।
चूर्णीकृतं सैन्धवनागराढ्यमम्लैः पिबेन्मारुतरोगजुष्टः ॥ ५ ॥
इक्षोर्विकारैर्मधुरैः[6] रसैस्तत् पैत्ते गदे क्षीरयुतं पिबेच्च ।
गुडूच्यरिष्टत्रिफलारसेन सव्योषमूत्रं कफजे पिबेत्तत् ॥ ६ ॥
त्रिवर्णकत्र्यूषणयुक्तमेतद् गुडेन लिह्यादनवेन चूर्णम्[7] ।
प्रस्थे[8] च तन्मूलरसस्य दत्त्वा तन्मूलकल्कं कुडवप्रमाणम्[9] ॥ ७ ॥

---

न्युपकल्पयेत्' इति परेणान्वयः । १ भोज्यपदेन मोदकशष्कुल्यादीनां ग्रहणम् ।

इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

### चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

२ विरेचनद्रव्याणां विकल्पो विविधो योगस्तस्य विज्ञानमधिकृत्येत्यादि पूर्ववत् । ३ मूलत्वग्फलतैलस्वरसदुग्धेषु प्रधानानि विरेचनद्रव्याणि दर्शयति—**अरुणाभमिति** । ४ अनुपीतम्=अनुभावितम् । ५ कृम्यादिदोषरहितं मूलमित्यर्थः । ६ मधुरैः=काकोल्यादिभिः, रसैः=क्वाथैः, तद्=ईषल्लोहितं त्रिवृन्मूलम् । ७ त्रिवर्णकत्र्यूषणयुक्तं=त्रिजातकत्रिकटुसहितमित्यर्थः । ८ प्रस्थे=अष्टविंशत्युत्तरशततोलके । तन्मूलरसस्य=त्रिवृन्मूलक्वाथस्य । ९ कुडवप्रमाणं=षोडशतोलकप्रमाणमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कर्षोन्मिते सैन्धवनागरे च विपाच्य कल्कीकृतमेतदद्यात् ।
तत्कल्कभागः समहौषधार्द्धः ससैन्धवो मूत्रयुतश्च पेयः ॥ ८ ॥
समास्त्रिवृन्नागरकाऽभयाः स्युर्भागार्द्धकं पूगफलं सुपक्वम् ।
दिडङ्गसारो मरिचं सदारु योगः ससिन्धूद्भवमूत्रयुक्तः ॥ ९ ॥
विरेचनद्रव्यभवन्तु चूर्णं रसेन तेषां भिषजा विमृद्य ।
तन्मूलसिद्धेन च सर्पिषाऽऽक्तं सेव्यं तदाज्ये गुटिकीकृतञ्च ॥ १० ॥
गुडे च पाकाभिमुखे निधाय चूर्णीकृतं सम्यगिदं विपाच्य ।
शीतं त्रिजातात्कमथो विमृद्य योगानुरूपा गुटिकाः प्रयोज्याः ॥ ११ ॥
वैरेकीयद्रव्यचूर्णस्य भागं सिद्धं सार्द्धं क्वाथभागैश्चतुर्भिः ।
आमृद्नीयात् सर्पिषा तच्छृतेन तत्क्वाथोष्मस्वेदितं सामितञ्च ॥१२॥
पाकप्राप्ते फाणिते चूर्णितं तत्क्षिप्तं पक्वं चावतार्य्यं प्रयत्नात् ।
शीतीभूता मोदका ह्यग्निगन्धाः कार्यास्त्वेते भक्ष्यकल्पाः समासात् ॥१३॥
रसेन तेषां परिभाव्य मुद्गान् यूषः ससिन्धूद्भवसर्पिरिष्टः ।
वैरेचनेऽन्यैरपि वैदलैः स्यादेवं विदध्याद्वमनौषधैश्च ॥ १४ ॥
भित्त्वा द्विधेत्तुं परिलिप्य कल्कैस्त्रिभण्डिजातैः प्रतिबध्य रज्ज्वा ।
पक्वञ्च सम्यक् पुटपाकयुक्त्या खादेत्तु तं पित्तगदी सुशीतम् ॥१५॥
सितात्रिजगन्धात्वक्क्षीरीविदारीत्रिवृतः समाः ।
लिह्यान्मधुघृताभ्यान्तु तृड्दाहज्वरशान्तये ॥ १६ ॥

---

१ विडङ्गसारः=विडङ्गबीजानि । २ मोदकभक्ष्यरूपं त्रिवृत्कल्पमुपदिशति—**वैरेकीयेति।** ३ सामितं=समिता एव सामितं, गोधूमचूर्णमित्यर्थः । तदाह राजनिघण्टौ—"गोधूमा धवला धौताः कुट्टिताः शोधितास्ततः । प्रोक्षिताश्च विनिस्पृष्टाश्चालिताः समिताः स्मृताः ॥" इति ।

४ पाकप्राप्ते=आसन्नपाकमागते, फाणिते=मोदकसाधनत्वाच्चूर्णाद्द्विगुणीभूतेक्षुरसे। तदुक्तम्—"इक्षो रसस्तु यः पक्वः किञ्चिद्गाढो बहुद्रवः । स एवेक्षुविकारेषु ख्यातः फाणितसंज्ञया ॥" इति । ५ यूषरूपं त्रिवृत्कल्पं निर्दिशति—**रसेनेति ।** ६ पुटपाकरूपं त्रिवृत्कल्पं दर्शयति—**भित्त्वेति ।** ७ त्रिभण्डी=शुक्ला त्रिवृत्तज्जातैस्त्रिभण्डिजातैः । 'ङ्यापोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्' इति ह्रस्वः । ८ पुटपाकयुक्त्या=काश्मर्यादिपत्राच्छादनकुशपरिवेष्टनमृदावलेपनज्वलदङ्गारादिस्थापनविधिना । ९ वैरचनलेहा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं त्रिवृच्चूर्णावचूर्णितम् ।
रेचनं सुकुमाराणां त्वक्पत्रमरिचांशकम् ॥ १७ ॥
पचेल्लेहं सिताक्षौद्रपलार्धकुडवान्वितम् ।
त्रिवृच्चूर्णयुतं शीतं पित्तघ्नं तद्विरेचनम् ॥ १८ ॥
त्रिवृच्छ्यामाक्षारशुण्ठीपिप्पलीर्मधुनाऽऽप्नुयात्[1] ।
सर्वश्लेष्मविकाराणां श्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥ १९ ॥
बीजाढ्यपथ्याकाश्मर्यधात्रीदाडिमकोलजान् ।
तैलभृष्टान् रसानम्लफलैरावाप्य साधयेत्[3] ॥ २० ॥
घनीभूतं त्रिसौगन्ध्यं त्रिवृत्क्षौद्रसमन्वितम् ।
लेह्यमेतत्कफप्रायैः सुकुमारैर्विरेचनम् ॥ २१ ॥
नीलीतुल्यं[4] त्वगेलञ्च तैस्त्रिवृत्ससितोपला ।
चूर्णं सन्तर्पणं क्षौद्रफलाम्लं सन्निपातनुत् ॥ २२ ॥
त्रिवृच्छ्यामासिताकृष्णात्रिफलामाक्षिकैः समैः[5] ।
मोदकाः सन्निपातोर्ध्वरक्तपित्तज्वरापहाः ॥ २३ ॥
त्रिवृद्भागास्त्रयः प्रोक्तास्त्रिफला तत्समा तथा[6] ।
क्षारकृष्णाविडङ्गानि[7] सञ्चूर्ण्य मधुसर्पिषा ॥ २४ ॥
लिह्याद् गुडेन गुटिकाः कृत्वा वाऽप्यथ भक्षयेत् ।
कफवातकृतान् गुल्मान् प्लीहोदरहलीमकान् ॥ २५ ॥
हन्त्यन्यानपि चाप्येतन्निरपायं[8] विरेचनम् ।
चूर्णं श्यामात्रिवृन्नीली कट्वी मुस्ता दुरालभा ॥ २६ ॥

---

नभिदधाति—**सितेति** । १ आप्नुयात्=लेहार्थं मिश्रीकुर्यादित्यर्थः । २ बीजाढ्यपथ्या=सुपक्वहरीतकी, काश्मर्यं=गाम्भारीफलम् ।

३ साधयेत्=विपचेत्, 'बीजाढ्यपथ्यादीनां रसप्रस्थमग्निसन्तप्ते एरण्डतैलपलचतुष्टये निक्षिप्य अम्लफलादीनां यथालाभं दाडिमादीनां चतुःपलं कल्कं दत्त्वा पाकेन घनीभूते चूर्णितं त्रिवृन्मूलं चतुःपलं त्वगेलापत्रचूर्णं च कर्षमितं प्रक्षिप्यावतार्य शीते मधुपलद्वयं दैयमित्युपदेशः । ४ नीलीतुल्यं=नीलिनीफलतुल्यमित्यर्थः । लोके 'नील' इति । ५ वैरेचनिकमोदकमाचष्टे—**त्रिवृदिति** । ६ लेहगुटिकयोः प्रयोगमाख्याति—**त्रिवृदिति** । ७ एषामपि त्रयो भागा बोद्धव्याः । ८ निरपायम्=उपद्रवरहितम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चव्येन्द्रबीजं त्रिफला सर्पिर्मांसरसाम्बुभिः ।
पीतं विरेचनं तद्धि रूक्षाणामपि शस्यते ॥ २७ ॥
वैरेचनिकनिःक्वाथभागाः शीतास्त्रयो मताः ।
द्वौ फाणितस्य तच्चापि पुनरम्भावधिश्रयेत्[२] ॥ २८ ॥
तत् साधुसिद्धं विज्ञाय शीतं कृत्वा निधापयेत् ।
कलसे कृतसंस्कारे[३] विभज्यर्त्तू हिमाहिमौ ॥ २९ ॥
मासादूर्ध्वं जातरसं मधुगन्धं वरासवम् ।
पिबेदसावेव विधिः क्षारमूत्रासवेष्वपि ॥ ३० ॥
वैरेचनिक[४]मूलानां क्वाथे माषान् सुभावितान् ।
सुधौतांस्तत्कषायेण शालीनाञ्चापि तण्डुलान् ॥ ३१ ॥
अवक्षुद्य[५]कैतः पिण्डान् कृत्वा शुष्कान् सुचूर्णितान् ।
शालितण्डुलचूर्णञ्च तत्कषायोष्मसाधितम् ॥ ३२ ॥
तस्य पिष्टस्य भागांस्त्रीन् किण्वभागविमिश्रितान् ।
मण्डोदकार्थे क्वाथञ्च दद्यात्तत्सर्वमेकतः ॥ ३३ ॥
निदध्यात्कलसे तान्तु सुरां जातरसां पिबेत् ।
एष एव सुराकल्पो वमनेष्वपि कीर्त्तितः ॥ ३४ ॥
मूलानि[६] त्रिवृदादीनां प्रथमस्य गणस्य च ।
महतः पञ्चमूलस्य मूर्वाशार्ङ्गेष्टयोरपि ॥ ३५ ॥

---

१ वैरेचनिकगौडमासवमाह—**वैरेचनिकेति** । २ अधिश्रयेत्=विपचेत् । ३ कृतसंस्कारे=घृतपिप्पल्याद्यालेपनेनागुर्वादिधूपनेन च संस्कृते । विभज्यर्तू हिमाहिमौ=हिमे शीते मासं धान्यराशौ स्थापनीयम्, अहिमे ग्रीष्मे पक्षं चेति तात्पर्यम् ।

४ वैरेचनीं पैष्टीं सुरां निर्दिशति—**वैरेचनिकेति** । वैरेचनिकमूलानां त्रिवृदादिमूलानां क्वाथे सुभावितान् भावनाविधिना सप्तरात्रं वासितान् । भावनाविधिस्तु—"दिवा दिवाऽऽतपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ निवासयेत् । शुष्कं चूर्णीकृतं द्रव्यं सप्ताहं भावनाविधिः ॥ द्रवेण यावता द्रव्यमेकीभूयार्द्रतां व्रजेत् । द्रवप्रमाणं निर्दिष्टं भिषग्भिर्भावनाविधौ ॥ भाव्यद्रव्यसमं क्वाथ्यं क्वाथ्यादष्टगुणं जलम् । अष्टांशशोषितः क्वाथो भाव्यानां तेन भावना ॥" इति । ५ अवक्षुद्य=उलूखले सङ्कुट्य । ६ वैरेचनं सौवीरकमाह—**मूला-**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सुधां हैमवतीं[1] चैव त्रिफलाऽतिविषे वचाम् ।
संहृत्यैतानि भागौ द्वौ कारयेदेकमेतयोः ॥ ३६ ॥
कुर्यान्निःक्काथमेकस्मिन्नेकस्मिंश्चूर्णमेव तु ।
क्षुण्णांस्तस्मिंस्तु निःक्काथे भावयेद् बहुशो यवान् ॥ ३७ ॥
शुष्काणां मृदुभृष्टानां तेषां भागास्त्रयो मताः ।
चतुर्थं भागमावाप्य चूर्णानामनुकीर्तितम् ॥ ३८ ॥
प्रक्षिप्य कलसे सम्यक् समस्तं तदनन्तरम् ।
तेषामेव कषायेण शीतलेन सुयोजितम् ॥ ३९ ॥
पूर्ववत्[2]सन्निदध्यात्तु ज्ञेयं सौवीरकं हि तत् ।
पूर्वोक्तं[3] वर्गमाहृत्य द्विधा कृत्वैकमेतयोः ॥ ४० ॥
भागं संक्षुद्य संसृज्य यवैः स्थाल्यामधिश्रयेत्[4] ।
अजशृङ्ग्याः कषायेण तमभ्यासिच्य साधयेत्[5] ॥ ४१ ॥
सुसिद्धांश्चावताय्यैतानौषधिभ्यो विवेचयेत्[6] ॥
विमृद्य सतुषान् सम्यक् ततस्तान् पूर्ववन्मितान् ॥ ४२ ॥
पूर्वोक्तौषधभागस्य चूर्णं दत्त्वा तु पूर्ववत् ॥
तेनैव सह यूषेण कलसे पूर्ववत्क्षिपेत् ॥ ४३ ॥
ज्ञात्वा जातरसञ्चापि तत्तुषोदकमादिशेत् ।
तुषाम्बुसौवीरकयोर्विधिरेषः प्रकीर्त्तितः ॥ ४४ ॥
षड्रात्रात् सप्तरात्राद्वा ते च पेये प्रकीर्त्तिते ।
वैरेचनेषु सर्वेषु त्रिवृन्मूलविधिः स्मृतः ॥ ४५ ॥
दन्तीद्रवन्त्योर्मूलानि[7] विशेषान्मृत्कुशान्तरे ।
पिप्पलीक्षौद्रयुक्तानि स्विन्नान्युद्धृत्य[8] शोषयेत् ॥ ४६ ॥

---

**नीति** । प्रथमस्य गणस्य=विदारिगन्धाऽऽदेः । १ हैमवतीं=श्वेतवचाम्, 'उसारेरेवन्द' इत्यन्ये । २ पूर्ववत्सन्निदध्यात्=आसवत्कृतसंस्कारे कलसे सन्निदध्यादित्यर्थः । ३ वैरेचनिकं तुषोदककल्पं निर्दिशति—**पूर्वोक्तमिति** । ४ अधिश्रयेत्=स्थापयेदित्यर्थः । ५ साधयेत्=रन्धयेत् । ६ विवेचयेत्=पृथक्कुर्यात् ।
७ दन्तीद्रवन्त्योर्विशिष्टकल्पमुपदिशति—**दन्तीति** । दन्तीद्रवन्त्योर्मूलान्युद्धृत्य शोषयेदिति सम्बन्धः । ८ स्विन्नानि=पुटपाकविधिना पक्कानि ।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततस्त्रिवृद्विधानेन[1] योजयेच्छ्लेष्मपित्तयोः ।
तयोः कल्ककषाभ्यां चक्रतैलं[2] विपाचयेत् ॥ ४७ ॥
सर्पिश्च पक्वं वीसर्पकच्छादाहालजीर्जयेत् ।
मेहगुल्मानिलश्लेष्मविबन्धांस्तैलमेव च ॥ ४८ ॥
चतुःस्नेहं शकृच्छुक्रवातसंरोधजा रुजः ।
[4]न्तीद्रवन्तीमरिचकनकाह्वयवासकैः ॥ ४९ ॥
विश्वभेषजमृद्वीकाचित्रकैर्मूत्रभावितम् ।
सप्ताहं सर्पिषा चूर्णं योज्यमेतद्विरेचनम् ॥ ५० ॥
जीर्णे सन्तर्पणं क्षौद्रं पित्तश्लेष्मरुजापहम् ।
अजीर्णपार्श्वरुक्पाण्डुप्लीहोदरनिबर्हणम् ॥ ५१ ॥
[5]गुडस्याष्टपले पथ्या विंशतिः स्युः पलं पलम् ।
दन्तीचित्रकयोः कर्षौ पिप्पलीत्रिवृतोर्दश ॥ ५२ ॥
कृत्वैतान्मोदक[6]नेकं दशमे दशमेऽहनि ।
ततः खादेदुष्णतोयसेवी निर्यन्त्रणा[7]स्त्विमे ॥ ५३ ॥
दोषघ्ना ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकुष्ठनाशनाः ।
व्योष[8]त्रिजातकं मुस्ता विडङ्गामलके तथा ॥ ५४ ॥
नवैतानि समांशानि त्रिवृष्टद[9]ष्टगुणानि वै ।
श्लक्ष्णचूर्णीकृतानीह दन्तीभागद्वयं तथा ॥ ५५ ॥
सर्वाणि चूर्णितानीह गालितानि[10] विमिश्रयेत् ।

---

१ त्रिवृद्विधानेन=श्लेष्मणि गुडूच्यरिष्टेत्यादिप्रागुक्तविधिना, पित्ते इक्षोर्विकारैरित्यादिप्रागुक्तविधिना चेत्यर्थः । २ चक्रतैलं=चक्रपीडितं तिलतैलमित्यर्थः । 'चक्रं तैलयन्त्रम्' इत्यमरटीकायां क्षीरस्वामी । ३ यज्ञोपवीतप्रतिमाः प्रभूताः पित्तानिलाछाजनिभास्तु कक्षाः । ४ दन्त्यादिचूर्णमाह—**दन्तीति** । ५ दन्त्यादिमोदकं निर्दिशति—**गुडस्येति** । ६ मोदकान्=मोदकाकारान् दशभागान् कृत्वा, एकं मोदकं दशमे दशमेऽहनि खादेदिति सम्बन्धः । ७ निर्यन्त्रणाः=वातातपादिप्रतिषेधनियमरहिताः, पथ्यरहिता इति यावत् । ८ व्योषादिशीतविरेचनं त्रिवृदष्टकं निर्दिशति—**व्योषमिति** । ९ त्रिवृदष्टगुणो येषु तानि त्रिवृदष्टगुणानि । १० गालितानि=वस्त्रेण गालितानीत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



षड्भिश्च शर्कराभागैरीषत्[1]सैन्धवमाक्षिकैः ॥ ५६ ॥
पिण्डितं भक्षयित्वा तु ततः शीताम्बु पाययेत् ।
बस्तिरुक्तृड्ज्वरच्छर्दिशोषपाण्डुभ्रमापहम् ॥ ५७ ॥
निर्यन्त्रणमिदं सर्वं विषघ्नन्तु विरेचनम् ।
त्रिवृदष्टकसंज्ञोऽयं प्रशस्तः पित्तरोगिणाम् ॥ ५८ ॥
भक्ष्यः क्षीरानुपानो वा पित्तश्लेष्मातुरैर्नरैः ।
भक्ष्यरूपसधर्मत्वादाढ्येष्वेव[2] विधीयते ॥ ५९ ॥
तिल्वक[3]स्य त्वचं बाह्यामन्तर्वल्कविवर्जिताम् ।
चूर्णयित्वा तु द्वौ भागौ तत्कषायेण गालयेत्[4] ॥ ६० ॥
तृतीयं भावितं तेन भागं शुष्कन्तु भावितम् ।
दशमूलीकषायेण त्रिवृद्वृत्तसम्प्रयोजयेत् ॥ ६१ ॥
विधानं त्वक्षु निर्दिष्टं फलानामथ[5] वक्ष्यते ।
हरीतक्याः फलं त्वस्थिवियुक्तं दोषवर्जितम् ॥ ६२ ॥
योज्यं त्रिवृद्विधानेन सर्वव्याधिनिबर्हणम् ।
रसायनं[6] परं मेध्यं दुष्टान्तर्व्रणशोधनम् ॥ ६३ ॥
हरीतकी विडङ्गानि सैन्धवं नागरं त्रिवृत् ।
मरिचानि च तत्सर्वं गोमूत्रेण विरेचनम् ॥ ६४ ॥
हरीतकी भद्रदारु कुष्ठं पूगफलं तथा ।
सैन्धवं शृङ्गवेरञ्च गोमूत्रेण विरेचनम् ॥ ६५ ॥
नीलिनीफलचूर्णञ्च नागराभययोस्तथा ।
लिह्याद् गुडेन सलिलं पश्चादुष्णं पिबेन्नरः ॥ ६६ ॥

---

१ अत्र चतुर्थांशवाचकस्य ईषच्छब्दस्य सैन्धवशब्देन सहान्वयः । पिण्डितमिति विशेषणाद् माक्षिकन्तु पिण्डितत्वसम्पादनयोग्यमेव देयम् । २ भक्ष्यरूपसधर्मत्वात्=अपूपमोदकादिभक्ष्यरूपतुल्यत्वात् , आढ्येषु=धनिषु, 'ईभ्य आढ्यो धनी स्वामी' इत्यमरः । ३ त्वक्प्रसाधनकतिल्वककल्पमुपदिशति—**तिल्वकस्येति** । तिल्वकः=रोध्राकारो बृहत्पत्रो रक्तवैरेचनिकवृक्षः । ४ तिल्वकमूलक्वाथेन गालयेदित्यर्थः । गालनं पुनरिहैकविंशतिवारान् पारम्पर्यादिति डल्हणः । ५ फलप्रधानहरीतकीकल्पं निर्दिशति—**फलानामिति** । ६ "यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् ।"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

पिप्पल्यादिकषायेण पिबेत्पिष्टां हरीतकीम् ।
सैन्धवोपहितां[1] सद्य एष योगो विरेचयेत् ॥ ६७ ॥
हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुडेन वा ।
सैन्धवोपहिता वाऽपि सातत्येन[2] नाग्निदीपनी ॥ ६८ ॥
वातानुलोमनी वृष्या चेन्द्रियाणां प्रसादनी ।
सन्तर्पणकृतान्[3] रोगान् प्रायो हन्ति हरीतकी ॥ ६९ ॥
शीतमामलकं रूक्षं पित्तमेदःकफापहम् ।
बिभीतकमनुष्णन्तु कफपित्तनिबर्हणम् ॥ ७० ॥
त्रीण्यप्यम्लकषायाणि सतिक्तमधुराणि च ।
त्रिफला सर्वरोगघ्नी त्रिभागघृतमूर्च्छिता[4] ॥ ७१ ॥
वयसः स्थापनं चापि कुर्यात् सन्ततसेविता ।
हरीतकी[5]विधानेन फलान्येवं प्रयोजयेत् ॥ ७२ ॥
विरेचनानि सर्वाणि विशेषाच्चतुरङ्गुलात्[6] ।
फलं काले[7] समुद्धृत्य सिकतायां निधापयेत् ॥ ७३ ॥
सप्ताहमातपे शुष्कं ततो मज्जानमुद्धरेत् ।
तैलं ग्राह्यं जले पक्त्वा तिलवद्वा प्रपीड्य च ॥ ७४ ॥
तस्योपयोगो बालानां यावद्वर्षाणि द्वादश ।
लिह्यादेरण्डतैलेन कुष्ठत्रिकटुकान्वितम् ॥ ७५ ॥
सुखोदकञ्चानुपिबेदेष योगो विरेचयेत् ।
एरण्ड[8]तैलं त्रिफलाक्वाथेन त्रिगुणेन तु ॥ ७६ ॥
युक्तं पीतं तथा क्षीररसाभ्यां[9] तु विरेचयेत् ।

---

अपि च—"स्वस्थस्यौजस्करं यत्तु तद् वृष्यं तद्रसायनम्" इति । १ सैन्धवोपहितां=समसैन्धवेन संसृष्टामित्यर्थः । २ सातत्येन=सततोपयोगेनेत्यर्थः । ३ सन्तर्पणकृतान्=स्निग्धभोजनदिवास्वप्नाद्याहारविहारजनितान् । ४ मूर्च्छिता=मिलिता ।

५ आमलकादिषु हरीतकीविधिमतिदिशति—**हरीतकीति** । ६ चतुरङ्गुलकल्पमुपदिशति—**विशेषादिति** । चतुरङ्गुलात्=किरमालादित्यर्थः । चतस्रोऽङ्गुलयः प्रमाणमस्य पर्वणस्तद्योगाद् वृक्षोऽपि । ७ काले=परिपक्वावस्थायाम् । ८ एरण्डतैलकल्पमभिधत्ते—**एरण्डेति** । ९ क्षीररसाभ्यां=दुग्धमांसरसाभ्यामित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बालवृद्धक्षतक्षीणसुकुमारेषु योजितम् ॥ ७७ ॥
फलानां विधिरुद्दिष्टः क्षीराणां[1] शृणु सुश्रुत ! ।
विरेचनानां तीक्ष्णानां पयः[2] सौधं परं मतम् ॥ ७८ ॥
अज्ञप्रयुक्तं तद्घ्नन्ति विषवत् कर्म्मविभ्रमात्[3] ।
विजानता प्रयुक्तन्तु महान्तमपि सञ्चयम् ॥ ७९ ॥
भिनत्त्याश्वेव दोषाणां रोगान् हन्ति च दुस्तरान् ।
महत्याः पञ्चमूल्यास्तु बृहत्योश्चैकशः[4] पृथक् ॥ ८० ॥
कषायैः समभागं तु तदङ्गारैर्विशोषितम्[5] ।
अम्लादिभिः पूर्ववत्तु प्रयोज्यं कोलसम्मितम्[6] ॥ ८१ ॥
महावृक्षपयःपीतैर्यवागूस्तण्डुलैः कृता[7] ।
पीता विरेचयत्याशु गुडेनोत्कारिका[8] कृता ॥ ८२ ॥
लेहो वा साधितः सम्यक् स्नुहीक्षीरपयोघृतैः ।
भावितास्तु स्नुहीक्षीरे पिप्पल्यो लवणान्विताः ॥ ८३ ॥
चूर्णं काम्पिल्लकं[9] वाऽपि तत्पीतं[10] गुटिकीकृतम् ।
सप्तला शङ्खिनी दन्ती त्रिवृदारग्वधं गवाम् ॥ ८४ ॥
मूत्रेणाप्लाव्य सप्ताहं स्नुहीक्षीरे ततः परम् ।
कीर्ण तेनैव चूर्णेन माल्यं वसनमेव च ॥ ८५ ॥
आघ्रायावृत्य[11] वा सम्यङ् मृदुकोष्ठो विरिच्यते ।
क्षीरत्वक्फलमूलानां विधानैः परिकीर्त्तितैः ।
अवेक्ष्य सम्यग्योगादीन् यथावदुपयोजयेत् ॥ ८६ ॥
[12]त्रिवृच्छाणमितास्तिस्रस्तिस्रश्च त्रिफलात्वचः ।

---

१ तीक्ष्णविरेचकद्रव्येषु स्नुहीक्षीरकल्पं निर्दिशति—**क्षीराणामिति** । २ "प्रवरो बहुकण्टकः" इति चरकोक्त्या बहुकण्टकस्नुहीभवं क्षीरमित्यर्थः । ३ कर्मविभ्रमात्=तत्कर्मणोऽविज्ञानादित्यर्थः । ४ एकैकशः=बृहत्योर्लघुस्थूलबृहत्योः । ५ तत्=सप्तमांशं स्नुहीक्षीरम् । ६ कोलसम्मितं बलवत्क्रूरकोष्ठाभिप्रायेणोक्तम्, कर्षप्रमाणमिति तदर्थः । ७ महावृक्षपयःपीतैः=स्नुहीक्षीरभावितैः । ८ उत्कारिका=लप्सिका । ९ काम्पिल्लकं='कबीला' इति लोकोक्तसम्बन्धिचूर्णम् । १० तत्पीतं=स्नुहीक्षीरभावितमित्यर्थः । ११ अवचूर्णितं माल्यमाघ्राय, अवचूर्णितं वसनमावृत्य परिधायेति सम्बन्धः । १२ शाण-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विडङ्गपिप्पलीक्षारशाणास्तिस्रश्च चूर्णिताः ॥ ८७ ॥
लिह्यात् सर्पिर्मधुभ्याञ्च मोदकं वा गुडेन वा ।
भक्तयेन्निष्परीहारमेतच्छ्रेष्ठं विरेचनम् ॥ ८८ ॥
गुल्मान् प्लीहोदरं कासं हली[1]कमरोचकम् ।
कफवातकृतांश्चान्यान् व्याधीनेतद् व्यपोहति ॥ ८९ ॥
घृतेषु तैलेषु पयःसु चापि मद्येषु मूत्रेषु तथा रसेषु ।
भक्ष्यान्नलेह्येषु च तेषु तेषु विरेचनान्यग्र्यमतिर्विदध्यात्[2] ॥ ९० ॥
क्षीरं[3] रसः कल्कमथो कषायः शृतश्च शीतश्च तथैव फाण्टम् ।
कल्पाः[4] षडेते खलु भेषजानां यथोत्तरं ते लघवः प्रदिष्टा ॥ ९१ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने विरेचनद्रव्यविकल्पविज्ञानीयो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

---

मिताः=कर्षचतुर्थांशपरिमिताः । १ हलीमकः=पाण्डुरोगभेदः । २ अग्रमतिः=प्रधानप्रज्ञः, बुद्धिमानित्यर्थः ।

३ क्षीरं=दुग्धम्, रसः=स्वरसः; अस्य लक्षणम्—"आहतात्तत्क्षणाकृष्टाद् द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवः । वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते" ॥ आर्द्रद्रव्याभावे—"कुडवं चूर्णितं द्रव्यं प्रक्षिप्तं द्विगुणे जले । अहोरात्रं स्थितं तस्माद् भवेत्स्वरस उच्यते॥" इति । कल्कः=पिष्टद्रव्यपिण्डः, एतल्लक्षणम्—"द्रव्यमात्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा जलमिश्रितम् । तदेव सूरिभिः पूर्वैः कल्क इत्यभिधीयते"॥ कषायः=क्वाथः, अयं शृतकषायशीतकषायभेदेन द्विविधः । द्वयोर्लक्षणम्—"वह्नौ तु क्वथितं द्रव्यं शृतमाहुश्चिकित्सकाः । उपोषितं निशायां तु तोयस्थं शीतमुच्यते" ॥ फाण्टः=कषायभेदः, यथा—कल्कितद्रव्यपलं चतुष्पले उष्णतोये क्षिप्त्वा क्षणकालं शरावावृतं संस्थाप्याथ मृदितं वस्त्रपूतं च फाण्ट इत्युच्यते । अस्यैतल्लक्षणम्—"चूर्णमुष्णे न सम्पृक्तं तत्फाण्टमभिधीयते।" इति । ४ कल्पाः=प्रकाराः ।

इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो द्रवद्रव्यविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

पानीयमान्तरीक्षमनिर्देश्यरसममृतं जीवनं तर्पणं धारणमाश्वासजननं श्रमक्लमपिपासामदमूर्च्छातन्द्रानिद्रादाहप्रशमनमेकान्ततः पथ्यतमञ्च ॥ ३ ॥

तदेवावनिपतितमन्यतमं रसमुपलभते स्थानविशेषान्नदीनदसरस्तडागवापीकूपचुण्टीप्रस्रवणोद्भिदविकिरकेदारपल्वलादिषु स्थानेष्ववस्थितमिति ॥ ४ ॥

तत्र, लोहितकपिलपाण्डुपीतनीलशुक्लेष्ववनिप्रदेशेषु मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायाणि यथासङ्ख्यमुदकानि सम्भवन्तीत्येके भाषन्ते ॥ ५ ॥

तत्तु न सम्यक् । तत्र पृथिव्यादीनामन्योन्यानुप्रवेशकृतः सलिलरसो भवत्युत्कर्षापकर्षेण । तत्र, स्वलक्षणभूयिष्ठायां भूमावम्लं

---

## पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ द्रवद्रव्याणां पानीयक्षीरादीनां रसगुणवीर्यविपाकतो विधिर्विधानमधिकृत्य कृतोऽध्यायो द्रवद्रव्यविधिस्तम् । छस्य लुक् । २ आन्तरीक्षोदकगुणान् दर्शयति—**पानीयमिति** । अन्तरीक्षादाकाशादागतमान्तरीक्षम्, मधुरादिभेदेन निर्देशानर्हो रसोऽत्रेत्यनिर्देश्यरसम्, अप्रकटरसमित्यर्थः । ३ अस्य लक्षणम्—"योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः । क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥" इति । ४ तन्द्राया लक्षणमुक्तं माधवनिदाने—"इन्द्रियार्थेष्वसम्प्राप्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः । निद्राऽऽर्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥" इति । ५ एकान्ततः पथ्यम्=अतिशयेन हितम् । ६ अवद्धकूपश्चुण्टी, प्रस्रवणोद्भिदः—जलमुद्भिद्यतेऽत्रेत्युद्भिदः, उद्भज्जलकुण्डादिरित्यर्थः । वालुकाद्युत्क्षेपणेन विकीर्यते जलमत्रेति विकिरं, गयास्थफल्गुनद्यादिः ।

७ अष्टाङ्गसङ्ग्रहेऽन्यथा दृश्यते—"श्वेते कषायं भवति पाण्डुरे चैव तिक्तकम् । कपिले क्षारसंसृष्टमूषरे लवणान्वितम् । कटु पर्वतविस्तारे मधुरं कृष्णमृत्तिके ॥" इति । ८ अन्योन्यानुप्रवेशकृतः=पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतपञ्चीकरणजनित इत्यर्थः । ९ उत्कर्षाप-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लवणञ्च । अम्बुगुणभूयिष्ठायां मधुरम् । तेजोगुणभूयिष्ठायां कटुकं तिक्तं च । वायुगुणभूयिष्ठायां कषायम् । आकाशगुणभूयिष्ठायामव्यक्तरसम्, अव्यक्तं ह्याकाशमित्यतः; तत् प्रधानमव्यक्तरसत्वात्[1]। तत्पेयमान्तरीक्षालाभे ॥ ६ ॥

तत्रान्तरीक्षं चतुर्विधम् । तद्यथा—धारं[2], कारं, तौषारं, हैमिमिति । तेषां धारं प्रधानं, लघुत्वात् । तत् पुनर्द्विविधं—गाङ्गं, सामुद्रं चेति । तत्र गाङ्गमाश्वयुजे मासि प्रायशो वर्षति । तयोर्द्वयोरपि परीक्षणं कुर्वीत—शाल्योदनपिण्डमकुथितम[3]विदग्धं रजतभाजनोपहितं वर्षति देवे बहिष्कुर्वीत, स यदि मुहूर्त्तं स्थितस्तादृश एव भवति तदा गाङ्गं पततीत्यवगन्तव्यम्; वर्णान्यत्वे सिक्थ[4]प्रक्लेदे च सामुद्रमिति विद्यात्, तन्नोपादेयम् । सामुद्रमप्याश्वयुजे मासि गृहीतं गाङ्गवद्भवति । गाङ्गं पुनः प्रधानं, तदुपाददीताश्वयुजे मासि । शुचिशुक्लवितते पटैकदेशच्युतमथवा हर्म्य[5]तलपरिभ्रष्टमन्यैर्वा शुचिभिर्भाजनैर्गृहीतं सौवर्णे राजते मृन्मये वा पात्रे निदध्यात् । तत्सर्वकालमुपयुञ्जीत, तस्यालाभे भौमम् । तच्चाकाशगुणबहुलम् । तत् पुनः सप्तविधम् । तद्यथा—कौपं, नादेयं, सारसं, ताडागं, प्रास्रवणम्, औद्भिदं, चौण्ड्यमिति ॥ ७ ॥

तत्र वर्षा[6]स्वान्तरिक्षमौद्भिदं वा सेवेत, महागुणत्वात् । शरदि

---

कर्षेण=पाकवशाद् व्यक्ताव्यक्तविभागेनेत्यर्थः । १ रसेनान्तरीक्षजलसाम्यादव्यक्तरसत्वमिति भावः ।

२ धाराभिः पततीति धारम् । उक्तं च—"धाराभिः पतितं तोयं गृहीतं स्फीतवाससा । शिलायां वसुधायां वा धौतायां पतितं च यत् ॥ सौवर्णे राजते ताम्रे स्फाटिके काचनिर्मिते । भाजने मृन्मये वाऽपि स्थापितं धारमुच्यते ॥" इति । कारं=वर्षोपलोद्भवम् । 'करो वर्षोपले' इति मेदिनी । तौषारम्=आन्तरीक्षजलनिचयजातम्' हैमं=स्फटिकशिलाशकलसदृशहिमोद्भवम् । ३ अकुथितं=पूतीभावमनापन्नम्, अविदग्धम्=अविवर्णम् । ४ सिक्थप्रक्लेदे=विभक्तत्वेन सिक्थकोथे जाते इत्यर्थः । ५ हर्म्यमिष्टकादिरचितं धवलगृहमित्यरुणदत्तः । तथा च—धवलगृहोपरिभूमेः सक्काशादधः पतद् गृहीतमित्यर्थः ।

६ वर्षाशब्दो वर्षाऽन्ते आश्वयुजे वर्तते न तु भाद्रपदे; तत्रान्तरिक्षजलस्य निषि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सर्वं, प्रसन्नत्वात्। हेमन्ते सारसं ताडागं वा; वसन्ते कौपं प्रास्रवणं वा; ग्रीष्मेऽप्येवम्; प्रावृषि चौष्ट्यमनभिवृष्टं सर्वञ्चेति ॥ ८ ॥

कीटमूत्रपुरीषाण्डशवकोथप्रदूषितम्।
तृणपर्णोत्करयुतं कलुषं विषसंयुतम् ॥ ९ ॥
योऽवगाहेत वर्षासु पिबेद्वाऽपि नवं जलम्।
स बाह्याभ्यन्तरान् रोगान् प्राप्नुयात् प्रमेव तु ॥ १० ॥

तत्र यत् पङ्कशैवालहटतृणपद्मपत्रप्रभृतिभिरवच्छन्नं शशिसूर्यकिरणानिलैर्नाभिजुष्टं गन्धवर्णरसोपसृष्टञ्च तद्वचापन्नमिति विद्यात्। तस्य स्पर्शरूपरसगन्धवीर्यविपाकदोषाः षट् सम्भवन्ति। तत्र, खरता पैच्छिल्यमौष्ण्यं दन्तग्राहिता च स्पर्शदोषः; पङ्कसिकताशैवालबहुवर्णता रूपदोषः; व्यक्तरसता रसदोषः; अनिष्टगन्धता गन्धदोषः; यदुपयुक्तं तृष्णागौरवशूलकफप्रसेकानापादयति स वीर्यदोषः; यदुपयुक्तं चिराद्विपच्यते विष्टम्भयति वा स विपाकदोष इति। त एते आन्तरिक्षे न सन्ति ॥ ११ ॥

व्यापन्नस्य चाग्निकथनं सूर्यातपप्रतापनं तप्तायःपिण्डसिकतालोष्ट्राणां वा निर्वापणं प्रसादनञ्च कर्त्तव्यं नागचम्पकोत्पलपाटलापुष्पप्रभृतिभिश्चाधिवासनमिति ॥ १२ ॥

---

द्धत्वात्। तदुक्तम्—"बलाहकाद्याः समदाः कीटा लूताश्च खेचराः। तद्विषोत्सर्गसंसर्गादग्राह्यं तत्तदा जलम्॥" इति डल्हणः। १ नवोदकस्य बाह्याभ्यन्तरप्रयोगे दोषानिर्दिशति—**कीटेति**। कीटाः=वृश्चिकादयः। तत्र कोथशब्दस्य कीटादिभिः सह प्रत्येकं सम्बन्धः। कोथः=पूतीभावः। २ तृणपर्णानामुत्करः समूहस्तेन युतं तृणपर्णोत्करयुतम्। ३ स्थावरजङ्गमविषयुक्तमित्यर्थः। ४ कण्डूकुष्ठादिकान् बाह्यरोगान्, कफगुल्मोदरामयाद्याभ्यन्तररोगान्। तदुक्तम्—"स्नानेन त्वग्भवान् रोगान् कण्डूकुष्ठविसर्पकृत्। पानेन कफगुल्मानां कृमीणां वरसम्भवान्। करोति विविधान् रोगान्" इति। ५ व्यापन्नजललक्षणं वक्ति—**तत्रेति**। ६ हटतृणं=जलकुम्भिका। ७ नाभिजुष्टम्=अनभिसृष्टमित्यर्थः। ८ उपसृष्टम्=उपेतम्। ९ तत्र=तेषु षड्दोषेषु। १० दन्तान् ग्रहीतुं शीलमस्येति दन्तग्राहिता, अतिशीततेत्यर्थः। ११ अनिष्टगन्धता=विस्रादिगन्धतेत्यर्थः। १२ विष्टम्भयति=गुडगुडशब्दं करोति। १३ दूषितजलस्य विशोधनोपायं दर्शयति—**व्यापन्नस्येति**। १४ निर्वापणं=जले निक्षेप-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौवर्णे राजते ताम्रे कांस्ये मणिमयेऽपि वा ।
पुष्पावतंसं[1] भौमे वा सुगन्धि सलिलं पिबेत् ॥ १३ ॥
व्यापन्नं वर्जयेन्नित्यं तोयं यच्चाप्यनार्तवम् ।
दोषसञ्जननं ह्येतन्नाददीताहितन्तु तत् ॥ १४ ॥
व्यापन्नं सलिलं यस्तु पिबतीहाप्रसाधितम्[2] ।
श्वयथुं पाण्डुरोगञ्च त्वग्दोषमविपाकताम् ॥ १५ ॥
श्वासकासप्रतिश्यायशूलगुल्मोदराणि च ।
अन्यान् वा विषमान्[3] रोगान् प्राप्नुयादचिरेण सः ॥ १६ ॥

तत्र सप्त कलुषस्य प्रसादनानि[4] भवन्ति । तद्यथा—कतकगोमेदकबिसग्रन्थिशैवालमूलवस्त्राणि[5] मुक्तामणिश्चेति ॥ १७ ॥

पञ्च निक्षेपणानि[6] भवन्ति । तद्यथा—फलकं, त्र्यस्रं, मुञ्जवलयः, उदकमञ्चिका, शिक्यञ्चेति ॥ १८ ॥

सप्तशीतीकरणानि भवन्ति—प्रवातस्थापनम्, उदकप्रक्षेपणं, यष्टिकाभ्रामणं[7], व्यजनं, वस्त्रोद्धरणं, वालुकाप्रक्षेपणं, शिक्यावलम्बनञ्चेति ॥ १९ ॥

निर्गन्धमव्यक्तरसं तृष्णाघ्नं शुचि शीतलम् ।
अच्छं लघु च हृद्यञ्च तोयं गुणवदुच्यते ॥ २० ॥

तत्र नद्यः पश्चिमाभिमुखाः पथ्याः, लघूदकत्वात् । पूर्वाभिमुखास्तु न प्रशस्यन्ते, गुरूदकत्वात् । दक्षिणाभिमुखा नाऽतिदोषलाः,

---

णमित्यर्थः । १ पुष्पावतंसं = पुष्पाधिवासितम् । २ प्रसाधितं=पूर्वोक्ताग्निकथनाद्यसंस्कृतमित्यर्थः । ३ विषमान्=अनियतकालस्थायिनः । ४ प्रसादनानि=निर्मलीकरणानि । ५ गोमेदकः=पीताभो मणिः ।

६ निक्षिप्यन्ते स्थाप्यन्तेऽत्रेति निक्षेपणानि आसनानि । शाल्मल्यादिकाष्ठविरचितपट्टकं फलकम्, त्र्यष्टमष्टास्रदण्डत्रयसंयोगस्त्र्यष्टकम्, वलयाकारेण मुञ्जादिविरचितो गोलो मुञ्जवलयः, आकाशान्तराले निरन्तरनिहितवेत्रवैणवादिविरचिता उदकमञ्चिका, रज्ज्वादिनिर्मितं दोलायन्त्रं शिक्यम् । ७ यष्टिकाभ्रामणं = दण्डादिनाऽऽलोडनम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साधारणत्वात् । तत्र सह्यप्रभवाः कुष्ठं जनयन्ति, विन्ध्यप्रभवाः कुष्ठं पाण्डुरोगञ्च, मलयप्रभवाः कृमीन्, महेन्द्रप्रभवाः श्लीपदोद्राणि, हिमवत्प्रभवा हृद्रोगश्वयथुशिरोरोगश्लीपदगलगण्डान्, प्राच्यावन्त्या[2] अपरावन्त्याश्चार्शांस्युपजनयन्ति, पारियात्रप्रभवाः पथ्या बलारोग्यकर्य इति ॥ २१ ॥

नद्यः शीघ्रवहा लघ्व्यः प्रोक्ता याश्चामलोदकाः ।
गुर्व्यः शैवालसंच्छन्नाः कलुषा मन्दगाश्च याः ॥ २२ ॥
प्रायेण नद्यो मरुष्वु[3] सतिक्ता लवणान्विताः ।
लघ्व्यः समधुराश्चैव पौरुषेया बले हिताः ॥ २३ ॥

तत्र सर्वेषां भौमानां ग्रहणं प्रत्यूषसि, तत्र ह्यमलत्वं शैत्यञ्चाधिकं भवति, स एव चापां परो गुण इति ॥ २४ ॥

दिवार्ककिरणैर्जुष्टं निशायामिन्दुरश्मिभिः ।
अरूक्षमनभिष्यन्दि[4] तत्तुल्यं गगनाम्बुना ॥ २५ ॥
गगनाम्बु त्रिदोषघ्नं गृहीतं यत् सुभाजने ।
बल्यं रसायनं मेध्यं[5] पात्रापेक्षि ततः परम् ॥ २६ ॥
रक्षोघ्नं[6] शीतलं ह्लादि ज्वरदाहविषापहम् ।
चन्द्रकान्तोद्भवं वारि पित्तघ्नं विमलं स्मृतम् ॥ २७ ॥
मूर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये ।
भ्रमक्लमपरीतेषु तमके[7] वमथौ तथा ॥ २८ ॥
ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमम्भः प्रशस्यते ।
पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे ॥ २९ ॥

---

१ 'पूना' इति देशसमीपस्थः पर्वतविशेषः सह्यः । २ अवन्ती उज्जयिनी तयोपलक्षितो देशस्तस्य पूर्वस्यां जाताः प्राच्यावन्त्याः पश्चिमस्यां जाता अपरावन्त्याः शैलास्तेषु या नद्य इति डल्हणः। ३ मरुषु=मरुदेशेषु । ४ दोषान् व्याधीन् झटिति यदभिष्यन्दते उत्पादयति तदभिष्यन्दि, तदभिन्नमनभिष्यन्दि । चरके—"वैशद्यात्कफहन्तृत्वात् तान्येव विवृणोति यत्। तदुक्तमनभिष्यन्दि द्रव्यं द्रव्यविशारदैः ॥" इति । ५ मेधायै हितं मेध्यं धारणाशक्तिवर्द्धकम् । ६ रक्षोघ्नं=राक्षसभयहारीत्यर्थः । ७ तमके=श्वासे मोहे वा, वमथौ=वमने छर्द्यां वा । 'वमथुर्वमने

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आध्माने स्तिमिते[1] कोष्ठे सद्यःशुद्धे नवज्वरे ।
हिक्कायां स्नेहपीते[2] च शीताम्बु परिवर्जयेत् ॥ ३० ॥
नादेयं वातलं रूक्षं दीपनं लघु लेखनम्[3] ।
तदभिष्यन्दि मधुरं सान्द्रं गुरु कफावहम् ॥ ३१ ॥
तृष्णाघ्नं सारसं बल्यं[4] कषायं मधुरं लघु ।
ताडागं वातलं स्वादु कषायं कटु पाकि[5] च ॥ ३२ ॥
वातश्लेष्महरं वाप्यं सक्षारं कटु पित्तलम् ।
सक्षारं पित्तलं कौपं श्लेष्मघ्नं दीपनं लघु ॥ ३३ ॥
चौण्ड्यमग्निकरं रूक्षं मधुरं कफकृन्न च ।
कफघ्नं दीपनं हृद्यं लघु प्रस्रवणोद्भवम् ॥ ३४ ॥
मधुरं पित्तशमनमविदाह्यौद्भिदं स्मृतम् ।
वैकिरं कटु सक्षारं श्लेष्मघ्नं लघु दीपनम् ॥ ३५ ॥
कैदारं मधुरं प्रोक्तं विपाके गुरु दोषलम् ।
तद्वत्पाल्वलमुद्दिष्टं विशेषाद्दोषलं तु तत् ॥ ३६ ॥
सामुद्रमुदकं विस्रं लवणं सर्वदोषकृत् ।
अनेकदोषमानूपं वार्यभिष्यन्दि गर्हितम् ॥ ३७ ॥
एभिर्दोषैरसंयुक्तं निरवद्यन्तु[6] जाङ्गलम् ।
पाकेऽविदाहि तृष्णाघ्नं प्रशस्तं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ३८ ॥
दीपनं स्वादु शीतञ्च तोयं साधारणं लघु ।
कफमेदोऽनिलामघ्नं दीपनं बस्तिशोधनम् ॥ ३९ ॥
श्वासकासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकं सदा ।
यत् काथ्यमानं[7] निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं लघु ॥ ४० ॥
चतुर्भागावशेषन्तु तत्तोयं गुणवत् स्मृतम् ।
न च पर्युषितं[8] देयं कदाचिद्वारि जानता ॥ ४१ ॥

---

कासे' इति हेमचन्द्रः । १ स्तिमिते = आमकोष्ठे इत्यर्थः । २ स्नेहपीते=स्नेहपानानन्तरमित्यर्थः । ३ लेखनं = शरीरकृशकरम् । ४ बल्यं = बलकरम् । ५ कटुपाकि = विपाके कटित्वत्यर्थः । ६ निरवद्यं = दोषरहितम् । ७ काथ्यमानं = पच्यमानम्, निर्वेगम् = अनुद्भामित्वेन निश्चलम् । ८ पर्युषितं = रात्र्युषितम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अम्लीभूतं कफोत्क्लेशि न हितं तत् पिपासवे ।
मद्यपानात्समुद्भूते रोगे पित्तोत्थिते तथा ॥ ४२ ॥
सन्निपातसमुत्थे च शृतशीतं प्रशस्यते ।
स्निग्धं स्वादु हिमं हृद्यं दीपनं बस्तिशोधनम् ॥ ४३ ॥
वृष्यं पित्तपिपासाघ्नं नारिकेलोदकं गुरु ।
दाहातीसारपित्तासृङ्मूर्च्छामद्यविषार्त्तिषु ॥ ४४ ॥
शृतशीतं जलं शस्तं तृष्णाच्छर्दिभ्रमेषु च ।
अरोचके[1] प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथौ क्षये ॥ ४५ ॥
मन्देऽग्नावुदरे कुष्ठे ज्वरे नेत्रामये तथा ।
व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मन्दं[2]माचरेत् ॥ ४६ ॥

इति जलवर्गः ।

अथ क्षीरवर्गः ।

गव्यं[3]माजं तथा चौष्ट्रमाविकं माहिषञ्च यत् ।
अश्वायाश्चैव नार्याश्च करेणूनाञ्च यत्पयः ॥ ४७ ॥
तत्त्वने[4]कौषधिरसप्रसादं प्राणदं गुरु ।
मधुरं पिच्छिलं शीतं स्निग्धं श्लक्ष्णं सरं मृदु ।
सर्वप्राणभृतां तस्मात् सात्म्यं क्षीरमिहोच्यते ॥ ४८ ॥
तत्र[5] सर्वमेव क्षीरं प्राणिनामप्रतिषिद्धं जातिसात्म्यात्[6] । वात-

---

१ मन्दपानीयार्हरोगान् दर्शयति—**अरोचक इति** । २ यावत्प्रतिषेधयितुमशक्यं तावदाचरणं मन्दः ।

**इति जलवर्गः ।**

**अथ क्षीरवर्गः—**

३ क्षीराणां गव्यादीनामष्टभेदान्निर्दिशति—**गव्यमिति** । चकारत्रयमनुक्तसमानजातीयक्षीराणां समुच्चयार्थम् । तेनाश्वतरीखरीमृगीस्वङ्गिनीक्षीराणामपि ग्रहणमिति डल्हणः । ४ सर्वक्षीराणां दशविधगुणान् दर्शयति—**तत्त्विति** । अनेकौषधिरसप्रसादं=मधुरादिसर्वखाद्यद्रव्यसारभागप्रसादम् ; "द्रव्याणि पुनरोषधयः" इति प्राग् भगवता सुश्रुतेनैवोक्तत्वात् । ५ सर्वक्षीराणां सामान्यगुणकर्माणि निर्दिशति—**तत्रेति** । ६ जातिसात्म्यात्=जन्मनः शीलितत्वादित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पित्तशोणितमानसेष्वपि विकारेष्वविरुद्धम्। जीर्णज्वरकासश्वास-शोषक्षयगुल्मोन्मादोदरमूर्च्छाभ्रममददाहपिपासाहृद्ग्रस्तिदोषपाण्डु-रोगग्रहणीदोषार्शःशूलोदावर्त्तातिसारप्रवाहिकायोनिरोगगर्भास्रावर-क्तपित्तश्रमक्लमहरं पाप्मापह बल्यं वृष्यं वाजीकरणं रसायनं मेध्यं सन्धानमास्थापनं वयःस्थापनमायुष्यं जीवनं बृंहणं वमनविरेचना-स्थापनं तुल्यगुणत्वाच्चौजसो वर्द्धनं बालवृद्धक्षतक्षीणानां क्षुद्व्य-वायव्यायामकर्शितानाञ्च पथ्यतमम् ॥ ४९ ॥

अल्पाभिष्यन्दि गोक्षीरं स्निग्धं गुरु रसायनम्।
रक्तपित्तहरं शीतं मधुरं रसपाकयोः ॥ ५० ॥
जीवनीयं तथा वातपित्तघ्नं परमं स्मृतम्।
गव्यतुल्यगुणं त्वाजं विशेषाच्छोषिणां हितम् ॥ ५१ ॥
दीपनं लघु सङ्ग्राहि श्वासकासास्रपित्तनुत्।
अजानामल्पकायत्वात् कटुतिक्तनिषेवणात् ॥ ५२ ॥
नात्यम्बुपानाद्व्यायामात्सर्वव्याधिहरं पयः।
रूक्षोष्णं लवणं किञ्चिदौष्ट्रं स्वादुरसं लघु ॥ ५३ ॥
शोफगुल्मोदरार्शोघ्नं कृमिकुष्ठविषापहम्।
आविकं मधुरं स्निग्धं गुरु पित्तकफावहम् ॥ ५४ ॥
पथ्यं केवलवातेषु कासे चानिलसम्भवे।
महाभिष्यन्दि मधुरं माहिषं वह्निनाशनम् ॥ ५५ ॥
निद्राकरं शीततरं गव्यात् स्निग्धतरं गुरु।

---

१ जीर्णज्वरलक्षणमाह—"त्रिसप्ताहव्यतीतस्तु ज्वरो यस्तनुतां गतः। प्लीहाग्नि-सादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते॥" इति। २ पाप्मापहं = कार्पासजाद्यपहरणजन्य-पापक्षयकरम्। तथा चैकादशाध्याये मनुः—"कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च। पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः॥" इति। ३ सन्धानं = भग्नसंयोजकम्, आस्थापनं = निरूहवस्त्युपयोगि। ४ वमनं = वमनद्रव्यसंयोगीति डल्हणः, विरेचनं मृदुकोष्ठस्य पित्तप्रकृतेश्च। तथा च वक्ष्यति—"बहुपित्तो मृदुः स दुग्धेनापि विरच्यते" इति। यावन्तो गुणा ओजसस्तावन्तः क्षीरस्येति तुल्यगुणत्वात्। ५ शोषिणां = राज-यक्ष्मरोगिणामित्यर्थः। ६ व्याधिः = वातादिदोषः। ७ महाभिष्यन्दि = दोषधातुम-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उष्णमैकशफं[1] बल्यं शाखावातहरं[2] पयः ॥ ५६ ॥
मधुराम्लरसं रूक्षं लवणानुरसं लघु ।
नार्यास्तु मधुरं स्तन्यं कषायानुरसं हिमम् ॥ ५७ ॥
नस्याश्च्योतनयोः[3] पथ्यं जीवनं लघु दीपनम् ।
हस्तिन्या मधुरं वृष्यं कषायानुरसं गुरु ॥ ५८ ॥
स्निग्धं स्थैर्यकरं[4] शीतं चक्षुष्यं बलवर्द्धनम् ।
प्रायः प्राभातिकं क्षीरं गुरु विष्टम्भि शीतलम् ॥ ५९ ॥
रात्र्याः सोमगुणत्वाच्च व्यायामाभावतस्तथा ।
दिवाकराभितप्तानां व्यायामानिलसेवनात् ॥ ६० ॥
वातानुलोमि श्रान्तिघ्नं चक्षुष्यं चापराह्णिकम् ।
पयोऽभिष्यन्दि गुर्वामं प्रायशः परिकीर्त्तितम् ॥ ६१ ॥
तदेवोक्तं लघुतरमनभिष्यन्दि वै श्रृतम् ।
वर्जयित्वा स्त्रियाः स्तन्यमाममेव हि तद्धितम् ॥ ६२ ॥
धारोष्णं गुणवत्[6] क्षीरं विपरीतमतोऽन्यथा ।
तदेवातिश्रृतं शीतं गुरु बृंहणमुच्यते[7] ॥ ६३ ॥
अनिष्टगन्धमम्लञ्च विवर्णं विरसञ्च यत् ।
वर्ज्यं सलवणं क्षीरं यच्च विग्रथितं[8] भवेत् ॥ ६४ ॥

इति क्षीरवर्गः ।

---

लस्रोतसामधिकक्लेदप्राप्तिकारणम् । १ एकः शफः खुरो यस्याः सा एकशफा अश्वादयः, तत्सम्बन्धि दुग्धम् । २ शाखा द्वौ बाहू द्वे सक्थिनी च तद्वतो वातः शाखावातः । ३ नस्यं नासाग्राह्यम्, आश्च्योतनमक्षिपूरणं तयोर्नस्याश्च्योतनयोः । "नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम्" । ४ शरीरस्थैर्यकरमित्यर्थः । ५ तत् स्त्रीस्तन्यमाममनावर्तितमेव हितमिति सम्बन्धः । ६ गुणवत्=बहुगुणम्, अतिशायने वतुप् । ७ बृंहणं=शरीरवर्द्धकम् । ८ विकृत्या गुम्फितमिव विग्रथितम्, अम्लादिद्रव्यसंयोगेन विनष्टमित्यर्थः ।

इति क्षीरवर्गः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अथ दधिवर्गः—

दधि[1] तु मधुरमम्लमत्यम्लञ्चेति; तत्कषायानुरसं स्निग्धमुष्णं पीनसविषमज्वरातिसारारोचकमूत्रकृच्छ्रकार्श्यापहं वृष्यं[3] प्राणकरं मङ्गल्यञ्च ॥ ६५ ॥

महाभिष्यन्दि मधुरं कफमेदोविवर्द्धनम् ।
कफपित्तकृदम्लं स्यादत्यम्लं रक्तदूषणम् ॥ ६६ ॥
विदाहि सृष्टविण्मूत्रं मन्दजातं[4] त्रिदोषकृत् ।
स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्द्धनम् ॥ ६७ ॥
वातापहं पवित्रञ्च दधि गव्यं रुचिप्रदम् ।
दध्यार्जं कफपित्तघ्नं लघु वातक्षयापहम् ॥ ६८ ॥
दुर्नामश्वासकासेषु[5] हितमग्नेश्च दीपनम् ।
विपाके मधुरं वृष्यं वातपित्तप्रसादनम् ॥ ६९ ॥
बलासवर्द्धनं[6] स्निग्धं विशेषाद्दधि माहिषम् ।
विपाके कटु सक्षारं गुरु भेद्यौष्ट्रिकं दधि ॥ ७० ॥
वातमर्शांसि कुष्ठानि कृमीन् हन्त्युदराणि च ।
कोपनं कफवातानां दुर्नाम्नां चाविकं दधि ॥ ७१ ॥
रसे पाके च मधुरमत्यभिष्यन्दि दोषलम् ।
दीपनीयमचक्षुष्यं वाडवं दधि वातलम् ॥ ७२ ॥
रूक्षमुष्णं कषायञ्च कफमूत्रापहञ्च तत् ।
स्निग्धं विपाके मधुरं बल्यं सन्तर्पणं गुरु ॥ ७३ ॥
चक्षुष्यमग्र्यं[7] दोषघ्नं दधि नार्या गुणोत्तरम्[7] ।
लघु पाके बलासघ्नं वीर्योष्णं पक्तिनाशनम्[8] ॥ ७४ ॥

---

अथ दधिवर्गः—

१ दधिभेदान् सामान्यतो गुणांश्चाह—**दधीति** । २ "यः स्यादनियतात् कालात् शीतोष्णाभ्यां तथैव च । वेगतश्चापि विषमः स ज्वरो विषमः स्मृतः ॥" इति । ३ वृष्यं=शुक्रवर्द्धकम् । ४ न सम्यग् दधिभावमापन्नं मन्दजातम् । ५ दुर्नाम=अर्शः । 'दुर्नाम क्लीबमर्शसि' इति मेदिनी । क्षुभ्नादित्वाण्णत्वाभावः । ६ बलासवर्द्धनं=कफवृद्धिकरम् । ७ गुणोत्तरं=गुणश्रेष्ठम् । ८ पक्तिनाशनं=पाचनशक्तिहरम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कषायानुरसं नाग्या दधि वर्चोविवर्द्धनम् ।
दधोन्युक्तानि यानीह गव्यादीनि पृथक् पृथक् ॥ ७५ ॥
विज्ञेयमेवं सर्वेषु गव्यमेव गुणोत्तरम् ।
वातघ्नं कफकृत् स्निग्धं बृंहणं नातिपित्तकृत् ॥ ७६ ॥
कुर्याद् भक्ताभिलाषञ्च दधि यत् सुपरिस्रुतम्[1] ।
श्रृतात् क्षीरात्तु यज्जातं गुणवद्दधि तत् स्मृतम् ॥ ७७ ॥
वातपित्तहरं रुच्यं धात्वग्निबलवर्द्धनम् ।
दध्नः सरो[2] गुरुर्वृष्यो विज्ञेयोऽनिलनाशनः ॥ ७७ ॥
वह्नेर्विधमनश्चापि[3] कफशुक्रविवर्द्धनः ।
दधि त्वसारं[4] रूक्षञ्च ग्राहि विष्टम्भि वातलम् ॥ ७९ ॥
दीपनीयं लघुतरं सकषायं रुचिप्रदम् ।
शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम्[5] ॥ ८० ॥
हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते ।
तृष्णाक्लमहरं मस्तु[6] लघु स्रोतोविशोधनम् ॥ ८१ ॥
अम्लं कषायं मधुरमवृष्यं कफवातनुत् ।
प्रह्लादनं प्रीणनञ्च[7] भिनत्त्याशु मलञ्च तत् ॥
बलमावहते क्षिप्रं भक्तच्छन्दं[8] करोति च ॥ ८२ ॥
स्वाद्वम्लमत्यम्लकमन्दजातं तथा श्रृतक्षीरभवं सरञ्च[9] ।

---

१ सुष्ठु परिस्रुतं वस्त्रादिभिर्गालितजलांशं सुपरिस्रुतम् । २ सरः=स्नेहबहुल उपरितनांशः । तथा च भावप्रकाशे—"दध्नस्तूपरि यो भागो घनः स्नेहसमन्वितः । स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मण्डस्तु मस्त्विति" ॥ ३ विधमनः=नाशनः । ४ असारं= निस्सारम्, सररहितमित्यर्थः ।

५ रोगविशेषेण दधिनिषेधमाह चरकः—"रक्तपित्तकफोत्थेषु विकारेष्वहितं च तत् । न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम् ॥ नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना । ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठपाण्ड्वामयभ्रमान् । प्राप्नुयात् कामलां चोग्रां विधिं हित्वा दधिप्रियः ॥" इति । ६ मस्तु=द्विगुणवारियुतं दधि । राजनिघण्टौ—"तक्रं त्रिभागदधिसंयुतमम्बुधीरैरुक्तं दधि द्विगुणवारियुतं तु मस्तु" इति । ७ प्रीणनं=प्रीतिसञ्जननम् । ८ भक्तच्छन्दं=क्षुधाम् । ९ दधिवर्गोक्तमुपसंहरति—स्वाद्विति ।


पाठ्य-पुस्तक-विभाग
CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असारमेवं दधि सं[1]प्रधाऽस्मिन् वर्गे स्मृता मस्तुगुणास्तथैव॥८३॥

इति दधिवर्गः।

---

अथ तक्रवर्गः—

त[2]क्रं मधुरमम्लं कषायानुरसमुष्णवीर्य्यं लघु रूक्षमग्निदीपनं ग[3]रशोफातिसारग्रहणीपाण्डुरोगार्शःप्लीहगुल्मारोचकविषमज्वरतृष्णाच्छर्दि[4]प्रसेकशूलमेदःश्लेष्मानिलहरं मधुरविपाकं हृद्यं मूत्रकृच्छ्रस्ने[5]हव्यापत्प्रशमनमवृष्यञ्च॥ ८४॥

मन्थनादिपृथग्भूतस्नेहमर्द्धोदकं च यत्।
नातिसान्द्रद्रवं तक्रं स्वाद्वम्लं तु[6]वरं रसे।
यत्तु सस्नेहमजलं मथितं घोलमुच्य[7]ते॥ ८५॥
नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले।
न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपैत्तिके॥ ८६॥
शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफोत्थेष्वामयेषु च।
मा[8]र्गावरोधे दुष्टे च वायौ तक्रं प्रशस्यते॥ ८७॥

तत् पुनर्मधुरं श्लेष्मप्रकोपणं पित्तप्रशमनञ्च; अम्लं वातघ्नं पित्तकरञ्च॥ ८८॥

---

१ स्वाद्वम्लमित्यादिना श्लोकार्धेन गणनीयम्। तत्र सरः=ससारम्।

इति दधिवर्गः।

---

अथ तक्रवर्गः—

२ अथ तक्रगुणान् प्रतिपादयति–**तक्रमिति**। ३ गरं=संयोगजं विषम्। ४ प्रसेकः=कफजन्यलालादिस्रावः। ५ स्नेहव्यापत्प्रशमनं=स्निग्धद्रव्यभक्षणजनितविकारनाशनम्। स्नेहातियोगजनितविकाराः—तन्द्रा सोत्क्लेश आनाहो ज्वरः स्तम्भो विसंज्ञतेत्यादिकाश्चरकादाववलोकनीयाः। ६ तुवरं=कषायानुरसम्।

७ तन्त्रान्तरे तक्रस्य त्रैविध्यमाह–"रूक्षमर्द्धोद्धृतस्नेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम्। तक्रं दोषाग्निबलवित्त्रिविधं तत्प्रयोजयेत्"॥ अपि च घोलमथिततक्रोदश्चिच्छच्छिकेतिनामभेदेन तद्भेदा उक्ता निघण्टौ–"घोलन्तु मथितं तक्रमुदश्विच्छच्छिकाऽपि च। ससारं निर्जलं घोलं मथितं त्वसरोदकम्॥ तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्वित्त्वर्द्धवारिकम्। छच्छिका सारहीना स्यात्स्वच्छा प्रचुरवारिका॥" इति। ८ स्रोतोमार्गावरोधे शोधकत्वात्तक्रस्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं, स्वादु पित्ते सशर्करम् ।
पिबेत्तक्रं कफे चापि व्योषक्षारसमन्वितम् ॥ ८९ ॥
ग्राहिणी वातला रूक्षा दुर्जरा तक्रकूर्चिका[1] ।
तक्राल्लघुतरो मण्ड[2]: कूर्चिकादधितक्रज: ॥ ९० ॥
गुरु: किलाट[3]ोऽनिलहा पुंस्त्वनिद्राप्रद: स्मृत: ।
मधुरौ बृंहणौ वृष्यौ तद्वत्पीयूष[4]मोरटौ ॥ ९१ ॥

नवनीतं पुन: सद्य[5]स्कं लघु सुकुमारं मधुरं कषायमीषदम्लं शीतलं मेध्यं दीपनं हृद्यं सङ्ग्राहि पित्तानिलहरं वृष्यमविदाहि क्षयकासव्रणशोषार्शोऽर्दिता[6]पहं, चिरोत्थितं गुरु कफमेदोविवर्द्धनं बलकरं बृंहणं शोषघ्नं विशेषेण बालानां प्रशस्यते ॥ ९२ ॥

क्षीरोत्थं पुनर्नवनीतमुत्कृष्टस्नेहमाधुर्ययुक्तमतिशीतं सौकुमार्यकरं चक्षुष्यं सङ्ग्राहि रक्तपित्तनेत्ररोगहरं प्रसादनञ्च ॥ ९३ ॥

सन्ता[7]निका पुनर्वातघ्नी तर्पणी बल्या वृष्या स्निग्धा रुच्या मधुरा मधुरविपाका रक्तपित्तप्रसादनी गुर्वी च ॥ ९४ ॥

विकल्प एष दध्यादि: श्रेष्ठो गव्योऽभिवर्णित: ।
विकल्पा[8]नवशिष्टांस्तु क्षीरवीर्यात्समादिशेत् ॥ ९५ ॥

---

प्राशस्त्यमित्यर्थ: । १ दध्ना तक्रेण वा सह पाकात् पृथग्भूतं घनद्रवभागं क्षीरं कूर्चिका । २ उपरितन: स्वच्छो भागो मण्ड: । कथम्भूत: कूर्चिकादधितक्रज: कूर्चिकाभूतं यद्दधि तक्रं च ताभ्यां जात इत्यर्थ: । तदाह निघण्टौ–"दध्ना सह च यत्पक्वं क्षीरं सा दधिकूर्चिका । तक्रेण पक्वं यत्क्षीरं सा भवेत्तक्रकूर्चिका ॥" इति । ३ किलाट:= कूर्चिकीभूतदुग्धस्य पिण्ड: । तदुक्तम्–"नष्टदुग्धस्य पक्वस्य पिण्ड: प्रोक्त: किलाटक" इति ।

४ "क्षीरं सद्य: प्रसूताया: पीयूषमिति संज्ञितम् । सप्तरात्रात्परं क्षीरमप्रसन्नस्तु मोरट:" ॥ सप्ताहात्परतो यावत्प्रसन्नतां न गच्छति तावन्मोरट इत्यर्थ: । ५ सद्यो भवं सद्यस्कम् । ६ अर्दिताख्यवातव्याधि: । ७ सन्तानिका = क्षीरस्योपरिस्थितभाग:, क्षीरसर इति यावत् । ८ अवशिष्टान् अजातक्राद्यात्मकान् विकल्पान् प्रकारान् क्षीरवीर्यात् समादिशेद् यथाऽजादीनां क्षीरगुणस्तदनुगुणतत्तक्रादिगुणमुपदिशेदित्यर्थ: ।

इति तक्रवर्ग: ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अथ घृतम्—

घृतं[1] तु मधुरं सौम्यं मृदु शीतवीर्य्यमल्पाभिष्यन्दि स्नेहनमुदावर्तोन्मादापस्मारशूलज्वरानाह[2]वातपित्तप्रशमनमग्निदीपनं स्मृतिमतिमेधाकान्तिस्वरलाव[3]ण्यसौकुमार्य्यौजस्तेजोबलकरमायुष्यं वृष्यं मेध्यं वयःस्थापनं गुरु चक्षुष्यं श्लेष्माभिवर्द्धनं पाप्म[4]लक्ष्मीप्रशमनं विषहरं रक्षोघ्नञ्च ॥ ९६ ॥

विपाके मधुरं शीतं वातपित्तविषापहम् ।
चक्षुष्यमग्र्यं बल्यञ्च गव्यं सर्पिर्गुणोत्तरम् ॥ ९७ ॥
आजं घृतं दीपनीयं चक्षुष्यं बलवर्द्धनम् ।
कासे श्वासे क्षये चापि पथ्यं पाके च तल्लघु ॥ ९८ ॥
मधुरं रक्तपित्तघ्नं गुरु पाके कफावहम् ।
वातपित्तप्रशमनं सुशीतं माहिषं घृतम् ॥ ९९ ॥
औष्ट्रं कटु घृतं पाके शोफक्रिमिविषापहम् ।
दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगु[5]ल्मोदरापहम् ॥ १०० ॥
पाके लघ्वाविकं सर्पिर्न च पित्तप्रकोपणम् ।
कफेऽनिले [6]योनिदोषे शोषे कम्पे च तद्धितम् ॥ १०१ ॥
पाके लघूष्णवीर्य्यञ्च कषायं कफनाशनम् ।
दीपनं बद्धमूत्रञ्च विद्यादैकशफं घृतम् ॥ १०२ ॥
चक्षुष्यमग्र्यं स्त्रीणान्तु सर्पिः स्यादमृतोपमम् ।

---

अथ घृतवर्गः—

१ अथ सामान्यतो घृतगुणानाह—**घृतमिति** । सोमगुणबहुलं सौम्यम् । २ आनाहः = विण्मूत्ररोधकव्याधिः । ३ लावण्यं = शरीरसौन्दर्यभेदः, तदुक्तम्—"मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा । प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥" इति । ४ पाप्मप्रशमनमलक्ष्मीप्रशमनं चेत्यर्थः । घृतस्य पाप्मप्रशमनत्वमाह—"यस्मात्तेजोमयं ब्रह्म घृते तच्च व्यवस्थितम् । तेजोऽमृतमयं दिव्यं महापातकनाशनम् ॥" इति ।

५ "ह्रन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः । वृत्तश्चयापचयवान् स गुल्म इति कीर्तितः" ॥ अपि च—"आर्तवादपि गुल्मः स्यात् स तु स्त्रीणां प्रजायते । अन्यस्त्वसृग्भवः पुंसां तथा स्त्रीणां प्रजायते ॥" इति । ६ योनिदोषे = उदावर्तादिविंश-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वृद्धिं करोति देहाग्न्योर्लघुपाकं विषापहम् ॥ १०३ ॥
कषायं बद्धविण्मूत्रं तिक्तमग्निकरं लघु ।
हन्ति कारेणवं[1] सर्पिः कफकुष्ठविषक्रिमीन् ॥ १०४ ॥
क्षीरघृतं[2] पुनः सङ्ग्राहि रक्तपित्तभ्रममूर्च्छाप्रशमनं नेत्ररोग-हितञ्च[3] ॥ १०५ ॥

सर्पिर्मण्डस्तु[4] मधुरः सरो योनिश्रोत्राक्षिशिरसां शूलघ्नो बस्ति-नस्याक्षिप्रपूरणेषूपदिश्यते ॥ १०६ ॥

सर्पिः पुराणं[5] सरं कटुविपाकं त्रिदोषापहं मूर्च्छामदोन्मादोदर-ज्वरगरशोषापस्मारयोनिश्रोत्राक्षिशिरःशूलघ्नं[6] दीपनं बस्तिनस्याक्षि-पूरणेषूपदिश्यते ॥ १०७ ॥

भवति चात्र ।

पुराणं तिमिरश्वासपीनसज्वरकासनुत् ।
मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ १०८ ॥
एकादशशतञ्चैव वत्सरानुषितं घृतम् ।
रक्षोघ्नं कुम्भसर्पिः[7] स्यात् परतस्तु महाघृतम् ॥ १०९ ॥
पेयं महाघृतं भूतैः कफघ्नं पवनाधिकैः ।
बल्यं पवित्रं मेध्यञ्च विशेषात्तिमिरापहम् ॥ ११० ॥
सर्वभूतहरञ्चैव[8] घृतमेतत् प्रशस्यते ॥ १११ ॥

---

तियोनिव्यापदि । १ कारेणवं = हास्तिनम् । २ क्षीरघृतं = क्षीरमथनात्समुद्भूत-नवनीतोत्थं घृतमित्यर्थः । ३ नेत्ररोगहितं=षट्सप्ततिदृष्टिगतव्याधिहितकरम् । ४ सर्पिर्मण्डः=घनीभूतघृतस्योपरिस्थितः स्वच्छो भागः, सरः=विरेचकः ।

५ यद्यपि पुराणसर्पिर्विषये—"वर्षादूर्ध्वं भवेदाज्यं पुराणम्" "पुराणं दशवर्षं स्यात् प्रपुराणमतः परम्" इत्यादि मतभेदो दृश्यते; तथाऽपि "यथा यथा जरां याति गुणवत्स्यात्तथा तथा" इत्यायुर्वेददीपिकोद्धृतहारीतोक्तवचनविषयकाज्यगुणोत्कर्ष्ये सर्वेषां मतैक्यमिति बोध्यम् । ६ शूलशब्दस्य योन्यादिभिः सह प्रत्येकं सम्बन्धः । ७ "शतवर्षस्थितं यत्तु कुम्भसर्पिरतदुच्यते" इत्यपरे । ८ सर्वभूतहरं=पिशाचादिसर्वभूतबाधाऽपहारकमित्यर्थः ।

इति घृतवर्गः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## अथ तैलानि—

तैलं[1] त्वाग्नेयमुष्णं तीक्ष्णं मधुरं मधुरविपाकं बृंहणं प्रीणनं व्यवायि[2] सूक्ष्मं विशदं गुरु सरं विकासि[3] वृष्यं त्वक्प्रसादनं शोधनं मेधामार्दवमांसस्थैर्यवर्णबलकरं चक्षुष्यं बद्धमूत्रं लेखनं तिक्तकषायानुरसं पाचनमनिलबलासक्षयकरं[4] क्रिमिघ्नमशितपित्तजननं योनिशिरःकर्णशूलप्रशमनं गर्भाशयशोधनञ्च, तथा छिन्नभिन्नविद्धोत्पिष्टच्युतमथितक्षतपिच्छितभग्नस्फुटितक्षाराग्निदग्धविश्लिष्टदारिताभिहतदुर्भग्नमृगव्यालविदष्टप्रभृतिषु[5] च परिषेकाभ्यङ्गावगाहादिषु तैलं प्रशस्यते ॥ ११२ ॥

तद्बस्तिषु च पानेषु नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ।
अन्नपानविधौ चापि प्रयोज्यं वातशान्तये ॥ ११३ ॥

एरण्डतैलं मधुरमुष्णं तीक्ष्णं दीपनं कटु कषायानुरसं सूक्ष्मं स्रोतोविशोधनं त्वच्यं वृष्यं मधुरविपाकं वयःस्थापनं योनिशुक्रविशोधनमारोग्यमेधाकान्तिस्मृतिबलकरं वातकफहरमधोभागदोषहरञ्च ॥ ११४ ॥

निम्बातसीकुसुम्भमूलकजीमूतक[6]वृक्षककृतवेधनार्ककम्पिल्लकहस्तिकर्णपृथ्वीकापीलुकरञ्जेङ्गुदीशिग्रुसर्षपसुवर्चलाविडङ्गज्योतिष्मतीफलतैलानि तीक्ष्णाणि लघून्युष्णवीर्याणि कटूनि कटुविपाकानि

---

### अथ तैलवर्गः—

१ सामान्यतस्तैलस्य गुणकर्मणी निर्दिशति—**तैलमिति** । यद्यपि तैलशब्देन तिलेषु भवं तैलं तिलतैलमभिप्रेतम्, तथाऽपि वर्गेऽस्मिन्नैरण्डतैलादीनामपि वक्तव्यतया "तिलादिस्निग्धवस्तूनां स्नेहस्तैलमुदाहृतः" इति पारिभाषिकं तैलमत्राभिप्रेतम् । आग्नेयम्=अग्निगुणबहुलम् । २ "व्यवायी वाऽखिलं देहं व्याप्य पाकाय कल्पते" इति वक्ष्यमाणलक्षणं व्यवायि । ३ विकासि=सर्वशरीरानुप्रवेशेन धातुसन्धिबन्धनविमोचकम् । ४ अनिलो वातः बलासः श्लेष्मा मिलितयोस्तयोर्विनाशकमित्यर्थः । ५ उत्पिष्टं=चूर्णितम्, च्युतं=स्थानादपसृतम्, मथितं=विलोडितम्, पिच्छितं=चिपिटीभूतम्, भग्नं=सन्धिमुक्तादिभग्नम्, स्फुटितं=बहुधाखण्डीभूतम् । ६ जीमूतकः=दैवदाली, वृक्षकः=कुटजः, कृतवेधनः=कोशातकी । कम्पि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सराण्यनिलकफकृमिकुष्ठप्रमेहशिरोरोगहराणि चेति ॥ ११५ ॥

वातघ्नं मधुरं तेषु क्षौमं तैलं बलापहम् ।
कटुपाकमचक्षुष्यं स्निग्धोष्णं गुरु पित्तलम् ॥ ११६ ॥
कृमिघ्नं सार्षपं तैलं कण्डूकुष्ठापहं लघु ।
कफमेदोऽनिलहरं लेखनं कटु दीपनम् ॥ ११७ ॥
कृमिघ्नमिङ्गुदीतैलमीषत्तिक्तं तथा लघु ।
कुष्ठामयकृमिहरं दृष्टिशुक्रबलापहम् ॥ ११८ ॥
विपाके कटुकं तैलं कौसुम्भं सर्वदोषकृत् ।
रक्तपित्तकरं तीक्ष्णमचक्षुष्यं विदाहि च ॥ ११९ ॥

किरात[1]तिक्तकातिमुक्तकविभीतकनालिकेरकोलाक्षोडजीवन्ती-प्रियालकर्बुदारसूर्यवल्लीत्रपुसैर्वारुककर्कारुकूष्माण्डप्रभृतीनां तैलानि मधुराणि मधुरविपाकानि वातपित्तप्रशमनानि शीतवीर्याण्यभिष्यन्दीनि सृष्टविण्मूत्राण्यग्निसादनानि चेति ॥ १२० ॥

मधु[2]ककाश्मर्यपलाशतैलानि मधुरकषायाणि कफपित्तप्रशमनानि ॥ १२१ ॥

तुवर[3]कभल्लातकतैले उष्णे मधुरकषाये तिक्तानुरसे वातकफकुष्ठमेदोमेहकृमिप्रशमने उभयतोभागदोषहरे च ॥ १२२ ॥

सरलदेवदारुगुण्ड[4]ीरशिंशपागुरुसारस्नेहास्तिक्तकटुकषाया दुष्टव्रणशोधनाः कृमिकफकुष्ठानिलहराश्च ॥ १२३ ॥

तुम्बी कोशा[5]म्रदन्तीद्रवन्तीश्यामासप्तलानीलिकाकम्पिल्लकशङ्खिनीस्नेहास्तिक्तकटुकषाया अधोभागदोषहराः कृमिकफकुष्ठानिल-

---

ल्लकः=रेणुषद्गुण्डारोचनी, हस्तिकर्णः=भूपलाशः, पृथ्वीका=कृष्णजीरकः ।

१ किराततिक्तकः=भूनिम्बः, अतिमुक्तकः=माधवीलताफलम् । 'फले लुक्' इति सूत्रेण तद्धितप्रत्ययस्य लुक् । एवमन्यत्रापि यथायोगं बोद्धव्यम् । २ मधुकः=गुडपुष्पः, दीर्घोकारघटितोऽपि मधूकशब्दः; काश्मर्यः=गम्भारी, 'गम्भार' इति ख्यातः । ३ तुवरकनामौषधिः, एतत्परिचयस्तु—"पत्रैस्तु केशराकारैः कलायसदृशैः फलैः । वृत्तस्तुवरको नाम पश्चिमार्णवतीरजः॥" इति तत्रान्तरीयः । ४ गण्डीरो वृक्षविशेषः । सरलाद्यगुर्वन्तानामन्तर्गतसारभागस्य तैलम् । ५ कोशाम्रः=वनाम्रवृक्षविशेषः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हरा दुष्टव्रणशोधनाश्च ॥ १२४ ॥

यवतिक्तातैलं[1] सर्वदोषप्रशमनमीषत्तिक्तमग्निदीपनं लेखनं मेध्यं पथ्यं रसायनञ्च ॥ १२५ ॥

एकैषिकातैलं[2] मधुरमतिशीतं पित्तहरमनिलप्रकोपणं श्लेष्माभिवर्द्धनं च ॥ १२६ ॥

सहकारतैलमीषत्तिक्तमतिसुगन्धि वातकफहरं रूक्षं मधुरकषायं रसवन्नातिपित्तकरञ्च[3] ॥ १२७ ॥

फलोद्भवानि तैलानि यान्युक्तानीह कानिचित् ।
गुणान् कर्म च विज्ञाय फलानीव[4] विनिर्दिशेत् ॥ १२८ ॥
यावन्तः स्थावराः स्नेहाः समासात्[5] परिकीर्त्तिताः ।
सर्वे तैलगुणा ज्ञेयाः सर्वे चानिलनाशनाः ॥ १२९ ॥
सर्वेभ्यस्त्विह तैलेभ्यस्तिलतैलं विशिष्यते[6] ।
निष्पत्तेस्तद्गुणत्वाच्च[7] तैलत्वमितरेष्वपि ॥ १३० ॥

ग्राम्यानूपौदकानाञ्च[8] वसामेदोमज्जानो गुरूष्णमधुरा वातघ्नाः । जाङ्गलैकशफक्रव्यादादीनां लघुशीतकषाया रक्तपित्तघ्नाः । प्रतुदविष्किराणां[9] श्लेष्मघ्नाः । तत्र घृततैलवसामेदोमज्जानो यथोत्तरं गुरुविपाका वातहराश्च ॥ १३१ ॥

---

१ यवक्षेत्रेषु जायमाना तिक्तसप्ताष्टपत्रा यवतिक्ता तस्याः फलतैलमित्यर्थः । २ एकैषिका = कृष्णत्रिवृता अविद्धकरणी पाठा वा तस्याः फलतैलम् । ३ आम्रतैलमित्यर्थः, 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः' इत्यमरः । ४ फलसदृशगुणकर्माणि विनिर्दिशेदित्यर्थः । 'फलवत्तानि निर्दिशेत्' इति पाठान्तरम् । ५ "स्नेहानां द्विविधा योनिः सौम्यस्थावरजङ्गमा" इति चरकः ।

६ वैशिष्ट्यमाह चरकः—"तैलं संयोगसंस्कारात्सर्वरोगापहं परम् । तैलप्रयोगादजरा निर्विकारा जिताश्रमाः । आसन्नातिबलाः सङ्ख्ये दैत्याधिपतयः पुरा ॥" इति । ७ निष्पत्तेः = तैलकर्मसंसिद्धेः, यथा तिले तैलं निष्पद्यते, तथैवैरण्डादिष्वपीति निष्पत्तिसाम्यमिति भावः । ८ तैलसाम्याद् वसामेदोमज्जगुणान् दर्शयति—ग्राम्येति । ९ प्रतुद्य चञ्च्वा ये भक्षयन्ति ते प्रतुदाः कपोतपारावतादयः, नखैर्विकीर्य ये भक्षयन्ति ते विष्किराः लावादयः ।

इति तैलवर्गः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## अथ मधुवर्गः—

मधु[1] तु मधुरं कषायानुरसं रूक्षं शीतमग्निदीपनं वर्ण्यं स्वर्यं लघु सुकुमारं[2] लेखनं हृद्यं वाजीकरणं सन्धानं शोधनं रोपणं सङ्ग्राहि चक्षुष्यं प्रसादनं सूक्ष्ममार्गानुसारि पित्तश्लेष्ममेदोमेहहिक्काश्वासकासातिसारच्छर्दितृष्णाकृमिविष[3]प्रशमनं ह्लादि त्रिदोषप्रशमनञ्च। तत्तु लघुत्वात्कफघ्नं पैच्छिल्यान्माधुर्यात्कषायभावाच्च वातपित्तघ्नम्॥ १३२॥

पौत्तिकं[4] भ्रामरं क्षौद्रं माक्षिकं छात्रमेव च।
आर्घ्यमौद्दालकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः॥ १३३॥
विशेषात्[5]पौत्तिकं तेषु रूक्षोष्णं सविष[6]ान्वयात्।
वातासृक्पित्तकृच्छ्रेदि[7] विदाहि मदकृन्मधु॥ १३४॥
पैच्छिल्यात् स्वादुभूयस्त्वाद् भ्रामरं गुरुसंज्ञितम्।
क्षौद्रं विशेषतो ज्ञेयं शीतलं लघु लेखनम्॥ १३५॥

---

### अथ मधुवर्गः—

१ मधुनः सामान्यगुणान्निर्दिशति—**मधिवति**। २ सुकुमारं = सौकुमार्यकरमित्यर्थः। ३ विशेषतो वरटीदंशजन्यविषशामकमिति बोध्यम्। ४ पौत्तिकम्—"महत्यः पिङ्गला यास्तु मक्षिकाः पुत्तिकाः स्मृताः" तद्भवं सर्पिषा तुल्यं मधु पौत्तिकम्। भ्रामरम्—"किञ्चित्सूक्ष्मैः प्रसिद्धेभ्यः षट्पदेभ्योऽलिभिश्चितम्। निर्मलं स्फटिकाभं यत्तन्मधु भ्रामरं स्मृतम्॥" इति। क्षौद्रम्—"मक्षिकाः कपिलाः सूक्ष्माः क्षुद्राख्यास्तत्कृतं मधु। मुनिभिः क्षौद्रमित्युक्तं तद्वर्णात्कपिलं भवेत्॥" इति। माक्षिकम्—"मक्षिकाः पिङ्गवर्णास्तु महत्यो मधुमक्षिकाः। ताभिः कृतं तैलवर्णं माक्षिकं परिकीर्तितम्॥" इति। छात्रम्—"वरटाः कपिलाः पीताः प्रायो हिमवतो वने। कुर्वन्ति छत्रकाकारं तज्जं छात्रं मधु स्मृतम्॥" इति। आर्घ्यम्—"तीक्ष्णतुण्डास्तु याः पीतवर्णाः षट्पदसन्निभाः। अर्घ्यास्ता माक्षिका ज्ञेया आर्घ्यं तत्कृतमुच्यते॥" इति। औद्दालकम्—"प्रायो वल्मीकमध्यस्थाः कपिलाः स्वल्पकीटकाः। कुर्वन्ति कपिलं स्वल्पं तत्स्यादौद्दालकं मधु॥" इति। दालम्—"इन्द्रनीलदलाकाराः सूक्ष्मा या मक्षिकाः शुभाः। वृक्षकोटरमध्यस्थास्तज्जं दालमुदाहृतम्॥" इति।

५ पौत्तिकाद्यष्टमधुजातीनां गुणान् दर्शयति—**विशेषादिति**। ६ सविषान्वयात् = सविषमक्षिकासम्बन्धित्वादित्यर्थः। ७ मेदोग्रन्थ्यादीनां छेदीत्यर्थः। विदा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तस्माल्लघुतरं रूक्षं माक्षिकं प्रवरं स्मृतम् ।
श्वासादिषु च रोगेषु प्रशस्तं तद्विशेषतः ॥ १३६ ॥
स्वादुपाकं गुरु हिमं पिच्छिलं रक्तपित्तजित् ।
श्वित्रमेहकृमिघ्नं च विद्याच्छात्रं गुणोत्तरम् ॥ १३७ ॥
आर्घ्यं मध्वतिचक्षुष्यं कफपित्तहरं परम् ।
कषायं कटु पाके च बल्यं तिक्तमवातकृत्[1] ॥ १३८ ॥
औद्दालकं रुचिकरं स्वर्यं कुष्ठविषापहम् ।
कषायमुष्णमम्लञ्च पित्तकृत् कटुपाकि च ॥ १३९ ॥
छर्दिमेहप्रशमनं मधु रूक्षं दलोद्भवम् ।
बृंहणीयं मधु नवं नातिश्लेष्महरं सरम् ॥ १४० ॥
मेदःस्थौल्यापहं ग्राहि पुराणं[2]मतिलेखनम् ।
दोषत्रयहरं पक्वं[3]माममम्लं त्रिदोषकृत् ॥ १४१ ॥
तद्युक्तं विविधैर्योगैर्निहन्यादामयान् बहून् ।
नानाद्रव्यात्मकत्वाच्च[4] योगवाहि परं मधु ॥ १४२ ॥
तत्तु[5] नानाद्रव्यरसगुणवीर्यविपाकविरुद्धानां पुष्परसानां सविषमक्षिकासम्भवत्वाच्चानुष्णोपचारम् ॥ १४३ ॥
उष्णैर्विरुध्यते सर्वं विषान्वयतया मधु ।
उष्णार्त्तमुष्णैरुष्णे[6] वा तन्निहन्ति यथा विषम् ॥ १४४ ॥
तत्सौकुमार्याच्च तथैव शैत्यान्नानौषधीनां[7] रससम्भवाच्च ।

---

हिलक्षणम्—"द्रव्यस्वभावादथ गौरवाद्वा चिरेण पाकं जठराग्नियोगात् । पित्तप्रकोपं विदहत् करोति तदन्नपानं कथितं विदाहि ॥" इति । १ किञ्चिद् वातकृदिति निष्कर्षः । २ "मधुनः शर्करायाश्च गुडस्यापि विशेषतः । एकसंवत्सरेऽतीते पुराणत्वं स्मृतं बुधैः ॥" इति । ३ अग्निसंयोगात्पक्वम् । अग्निसंयोगनिषेधात् कालपरिणामेन पक्वत्वमामत्वमित्यन्ये ।

४ नानाद्रव्यात्मकत्वात्=अनेकविधपुष्परससम्भूतत्वात्, योगवाहि=योगेन द्रव्यसंयोगेन वहति तत्तद्द्रव्यगुणानुकारीणि तानि तानि कर्माणि करोतीति तत् । ५ तद् मधु अनुष्णोपचारम् उष्णोपचारानर्हं भवतीति योजना । ६ उष्णार्तं=घर्मेण सूर्यतापेन वा पीडितम्, उष्णैर्द्रव्यैः सह उष्णे काले देशे वा । ७ नानौषधीनां=परस्प-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उष्णैर्विरुध्येत विशेषतश्च तथाऽन्तरीक्षेण जलेन चापि॥१४५॥
उष्णेन[1] मधु संयुक्तं वमनेष्ववचारितम् ।
अपाकादनवस्थानान्न विरुध्येत पूर्ववत् ॥ १४६ ॥
मध्वामात्[2]परतस्त्वन्यदामं कष्टं न विद्यते ।
विरुद्धोपक्रमत्वात्[3]तत् सर्वं हन्ति यथा विषम् ॥ १४७ ॥

अथेक्षुवर्गः—

इक्षवो मधुरा मधुरविपाका गुरवः शीताः स्निग्धा बल्या वृष्या मूत्रला रक्तपित्तप्रशमनाः कृमिकफकराश्चेति ॥ १४८ ॥

ते चानेकविधाः । तद्यथा—
पौण्ड्रको भीरुकश्चैव वंशकः श्वेतपोरकः[4] ।
कान्तारस्तापसेक्षुश्च काष्ठेक्षुः[5] सूचिपत्रकः ॥ १४९ ॥
नैपालो दीर्घपत्रश्च नीलपोरोऽथ कोशकृत् ।
इत्येता जातयः स्थौल्याद्[6] गुणान् वक्ष्याम्यतः परम् ॥१५०॥
सुशीतो मधुरः स्निग्धो बृंहणः श्लेष्मलः सरः ।
अविदाही गुरुर्वृष्यः पौण्ड्रको भीरुकस्तथा ॥ १५१ ॥
आभ्यां तुल्यगुणः किञ्चित्सक्षारो वंशको मतः ।
वंशवच्छ्वेतपोरस्तु किञ्चिदुष्णः स वातहा ॥ १५२ ॥
कान्तारतापसाविक्षू वंशकानुगतौ मतौ ।
एवंगुणस्तु काष्ठेक्षुः स तु वातप्रकोपणः ॥ १५३ ॥
सूचीपत्रो नीलपोरौ नैपालो दीर्घपत्रकः ।
वातलाः कफपित्तघ्नाः सकषाया विदाहिनः ॥ १५४ ॥

---

रविरुद्धनानौषधिपुष्पाणामित्यर्थः । १ वमनविषयेऽपवादमाह—**उष्णेनेति** । यद्यपि वमने उष्णस्य मधुना विरोधो नोक्तः, तथाऽपि वृद्धा न प्रयुञ्ज्यते, वमनस्याधोगतिभयादिति डल्हणः । २ मध्वामात्=मध्वजीर्णात् । ३ आमे उष्णमुपचर्यते मधुनि नोपचर्यते इति विरुद्धोपक्रमत्वादित्यस्य तात्पर्यम् ।

**इति मधुवर्गः ।**

अथेक्षुवर्गः—

४ 'शतपोरकः' इति पाठान्तरम् । ५ 'काण्डेक्षुः' इति पाठान्तरम् । ६ स्थौ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कोशकारो गुरुः शीतो रक्तपित्तक्षयापहः ।
अतीव मधुरो मूले मध्ये मधुर एव तु ॥ १५५ ॥
अग्रेष्वक्षिषु विज्ञेय इक्षूणां लवणो रसः ॥ १५६ ॥
अविदाही कफकरो वातपित्तनिवारणः ।
वक्त्रप्रह्लादनो वृष्यो दन्तनिष्पीडितो रसः ॥ १५७ ॥
गुरुर्विदाही[1] विष्टम्भी यान्त्रिकस्तु प्रकीर्त्तितः ।
पक्को गुरुः सरः स्निग्धः सतीक्ष्णः कफवातनुत् ॥ १५८ ॥
फाणितं[2] गुरु मधुरमभिष्यन्दि बृंहणमवृष्यं त्रिदोषकृच्च ॥१५९॥
गुडः[3] सक्षारमधुरो नातिशीतः स्निग्धो मूत्ररक्तशोधनो नाति-
पित्तजिद्वातघ्नो मेदःकफकरो बल्यो वृष्यश्च ॥ १६० ॥
पित्तघ्नो मधुरः शुद्धो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः ।
स पुराणोऽधिकगुणो गुडः पथ्यतमः स्मृतः ॥ १६१ ॥
मत्स्यण्डिकाखण्डशर्करा[4] विमलजाता उत्तरोत्तरं शीताः स्निग्धाः
गुरुतरा मधुरतरा वृष्या रक्तपित्तप्रशमनास्तृष्णाप्रशमनाश्च ॥१६२॥
यथा यथैषां वैमल्यं मधुरत्वं तथा तथा ।
स्नेहगौरवशैत्यानि सरत्वञ्च तथा तथा ॥ १६३ ॥
यो यो मत्स्यण्डिकाखण्डशर्कराणां स्वको गुणः ।
तेन तेनैव निर्देश्यस्तेषां विस्रावणो[5] गुणः ॥ १६४ ॥

---

ल्यात्=प्राधान्याद् इत्येता द्वादश जातयो भवन्तीत्यर्थः । १ "विदाहि द्रव्यमुद्गार-
मम्लं कुर्यात्तथा तृषाम् । हृदि दाहं च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥" इति, तद्
विशदयति वाग्भटः—"मूलाग्रजन्तुजग्धादिपीडनान्मलसङ्करात् । किञ्चित्कालं विधृत्या
च विकृतिं याति यान्त्रिकः । विदाही गुरु विष्टम्भी तेनासौ" इति । २ फाणितम्=
अर्द्धावर्तितेक्षुरसः, 'राब' इति ख्यातम् । ३ अशुद्धगुडगुणान्निर्दिशति—**गुड इति** ।
फाणितस्य पाकादतिघनभावमापन्नो निर्मलो गुड इत्यर्थः ।

४ "इक्षो रसो यः सम्पक्को घनः किञ्चिद् द्रवान्वितः । मन्दं यत् स्यन्दते तस्मात्त-
न्मत्स्यण्डी निगद्यते ॥" इति । पाकोत्तरकालं मलापहरणेन विशुद्धागुडाज्जाता मत्स्य-
ण्डिका ततः खण्डस्ततः शर्करा उत्तरोत्तरं विमलजाता वैमल्योत्कर्षमापन्ना उत्तरोत्तरं
शैत्यादिप्रकर्षगुणभाजो भवन्तीत्यर्थः । ५ विस्रावणः=तत्तदुत्पत्तिकाले विस्रुतः सर-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सारस्थिता[1] सुविमला निःक्षारा च यथा यथा।
तथा तथा गुणवती विज्ञेया शर्करा बुधैः॥ १६५॥
मधुशर्करा पुनश्छद्यतीसारहरी रूक्षा छेदनी[2] प्रसादनी कषायमधुरा मधुरविपाका च॥ १६६॥
यवासशर्करा[3] मधुरकषाया तिक्तानुरसा श्लेष्महरी सरा चेति॥१६७॥
यावत्यः शर्कराः प्रोक्ताः सर्वा दाहप्रणाशनाः।
रक्तपित्तप्रशमनाश्छर्दिमूर्च्छातृषापहाः॥ १६८॥
रूक्षं मधूकपुष्पोत्थं फाणितं वातपि कृत्।
कफघ्नं मधुरं पाके कषायं बस्तिदूषणम्[4]॥ १६९॥

अथ मद्यवर्गः—

सर्वं[5] पित्तकरं मद्यमम्लं रोचनदीपनम्।
भेदनं कफवातघ्नं हृद्यं बस्तिविशोधनम्॥ १७०॥
पाके लघु विदाह्युष्णं तीक्ष्णमिन्द्रियबोधनम्[6]।
विकासि[7] सृष्टविण्मूत्रं शृणु तस्य विशेषणम्॥ १७१॥
मार्द्वीकमविदाहित्वान्मधुरान्वयतस्तथा[8]।
रक्तपित्तेऽपि सततं बुधैर्न प्रतिषिध्यते॥ १७२॥

---

सक्षारो मलः। १ अपगतमलत्वेन सारमात्रेणावस्थिता सारस्थिता, अत एव सुविमला निर्मला निःक्षारा निर्हृतगुडानुगतक्षारभावा। २ छेदनी=पिण्डीभूतानां कफादीनां भेदकारिणी। ३ यवासक्काथपाकघनीभावाच्छर्करा कृता यवासशर्करेति डल्हणः। ४ बस्तिदूषणं=मूत्राशये वातादिप्रकोपकारीत्यर्थः।

**इतीक्षुवर्गः।**

**अथ मद्यवर्गः—**

५ मद्यानां सामान्यगुणकर्माणि दर्शयति—**सर्वमिति**। सर्वं=पैष्टिकं माद्वीकं गौडं चेति त्रिविधम्। ६ इन्द्रियबोधनम्=इन्द्रियप्रसादनम्, "प्रहर्षणः प्रीतिकरः पानान्नगुणदर्शकः। वाद्यगीतप्रहासानां कथानां च प्रवर्तकः॥" इति। ७ विकासि=धातुसन्धिबन्धनशैथिल्यकारीत्यर्थः। तदुक्तं शार्ङ्गधरे—"सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत्करोति विकासि तत्। विश्लेष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवाः॥" इति। सृष्टविण्मूत्रम्=विष्ठामूत्रप्रवर्तकमित्यर्थः। ८ मृद्वीका द्राक्षा तत्कृतं मद्यं माद्वीकम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुरं तद्धि रूक्षञ्च कषायानुरसं लघु ।
लघुपाकि सरं शोषविषमज्वरनाशनम् ॥ १७३ ॥
मार्द्वीकाल्पान्तरं किञ्चित् खार्जूरं वातकोपनम् ।
तदेव विशदं रुच्यं कफघ्नं कर्शनं[1] लघु ॥ १७४ ॥
कषायमधुरं हृद्यं सुगन्धोन्द्रियबोधनम् ।
कासार्शोग्रहणीदोषमूत्राघातानिलापहा ॥ १७५ ॥
स्तन्यरक्तक्षयहिता सुरा[2] बृंहणदीपनी ।
कासार्शोग्रहणीश्वासप्रतिश्यायविनाशनी ॥ १७६ ॥
श्वेता मूत्रकफस्तन्यरक्तमांसकरी सुरा[3] ।
छर्द्यरोचकहृत्कुक्षितोदशूलप्रमर्दनी ॥ १७७ ॥
प्रसन्ना[4] कफवातार्शोविबन्धानाहनाशनी ।
पित्तलाऽल्पकफा रूक्षा यवैर्वातप्रकोपणी ॥ १७८ ॥
विष्टम्भिनी सुरा गुर्वी श्लेष्मला तु मधूलिका[5] ।
रूक्षा नातिकफा वृष्या पाचनी चाक्षिकी[6] स्मृता ॥ १७९ ॥
त्रिदोषो भेद्यवृष्यश्च कोहलो[7] वदनप्रियः ।
ग्राह्युष्णो जगलः पक्का रूक्षस्तृट्कफशोफकृत् ॥ १८० ॥
हृद्यः प्रवाहिकाऽऽटोपदुर्नामानिलशोषहृत्[8] ।
बर्कसो[9] हृतसारत्वाद्विष्टम्भी वातकोपनः ॥ १८१ ॥
दीपनः सृष्टविण्मूत्रो विशदोऽल्पमदो गुरुः ।

---

१ कर्शनं=कार्श्यकारकमित्यर्थः । २ "शालिपिष्टकपिष्टादिकृतं मद्यं सुरा स्मृता" इत्युक्तलक्षणा सुरा ।

३ श्वेता सुरा इति सम्बन्धः । श्वेतवर्णा सुरेत्यर्थः । श्वेतपुनर्नवादिमूलशालिपिष्टकिण्वप्रभवा कतोलीति प्रसिद्धेति डल्हणः । ४ प्रसन्ना=उपरितनाच्छो भागः सुरामण्ड इत्यर्थः । तदुक्तं शार्ङ्गधरे—"सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात्" इति । ५ स्वल्पगोधूमो मध्यदेशे पीशीकेति ख्याता, मर्कटहस्ततृणं वा तत्फलकिण्वं मधूलकमिति डल्हणः । मधूकफलसम्भूतसुरा मधूलिकेति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । ६ अक्षं बिभीतकफलं तत्कृता सुरा आक्षिकी । ७ यवसक्तुकृता सुरा कोहलः । ८ "आटोपो गुडगुडाशब्दः प्रोक्तो जठरसम्भवः" । दुर्नाम=अर्शः । ९ सकल्कत्वेन सान्द्रं मद्यं जगल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कषायो मधुरः सीधुर्गौडः पाचनदीपनः ॥ १८२ ॥
शार्करो मधुरो रुच्यो दीपनो बस्तिशोधनः ।
वातघ्नो मधुरः पाके हृद्य इन्द्रियबोधनः ॥ १८३ ॥
तद्वत् पक्करसः[1] सीधुर्बलवर्णकरः सरः ।
शोफघ्नो दीपनो हृद्यो रुच्यः श्लेष्मार्शसां हितः ॥ १८४ ॥
कर्शनः शीतरसिकः श्वयथूदरनाशनः ।
वर्णकृज्जरणः[2] स्वर्यो विबन्धघ्नोऽर्शसां हितः ॥ १८५ ॥
आह्निकः पाण्डुरोगघ्नो ब्रण्यः सङ्ग्राहको लघुः ।
कषायमधुरः सीधुः पित्तघ्नोऽसृक्प्रसादनः ॥ १८६ ॥
जाम्बवो बद्धनिस्यन्दस्तुवरो[3] वातकोपनः ।
तीक्ष्णः सुरासवो[4] हृद्यो मूत्रलः कफवातनुत् ॥ १८७ ॥
मुखप्रियः स्थिरमदो विज्ञेयोऽनिलनाशनः ।
लघुर्मध्वासवश्छेदी[5] मेहकुष्ठविषापहः ॥ १८८ ॥
तिक्तः कषायः शोफघ्नस्तीक्ष्णः स्वादुरवातकृत् ।
तीक्ष्णः कषायो मदकृद् दुर्नामकफगुल्महृत् ॥ १८९ ॥
कृमिमेदोऽनिलहरो मैरेयो मधुरो[6] गुरुः ।
बल्यः पित्तहरो वर्ण्यो हृद्यश्चेक्षुरसासवः ॥ १९० ॥
सीधुर्मधूकपुष्पोत्थो विदाह्यग्निबलप्रदः ।
रूक्षः कषायकफहृद्वातपित्तप्रकोपणः ॥ १९१ ॥
निर्दिशेद्रसतश्चान्यान् कन्दमूलफलासवान् ।
नवं मद्यमभिष्यन्दि गुरु वातादिकोपनम् ॥ १९२ ॥
अनिष्टगन्धि विरसमहृद्यञ्च विदाहि च ।
सुगन्धि दीपनं हृद्यं रोचिष्णु कृमिनाशनम् ॥ १९३ ॥

---

इत्युच्यते, स एव यदाऽद्रवः कल्कमात्रावशिष्टस्तदा बक्वस इत्युच्यते । १ "इक्षोः पक्वै रसैः सिद्धः सीधुः पक्करसः स्मृतः । आमैस्तैरेव यः सीधुः स शीतरसिको मतः" ॥ २ जरणः = अन्नादिपाचकः । ३ बद्धं निस्यन्दं मूत्रं येन स बद्धनिस्यन्दः । ४ सुरया सूयते तोयकार्यं क्रियते यस्मिन् स सुरासव इति डल्हणः । ५ छेदी = दोषसंशोधनः । ६ "आसवस्य सुरायाश्च द्वयोरेकत्र भाजने । सन्धानं तद्विजानीयान्मैरेयमुभया-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुटस्रोतस्करं[1] जीर्णं लघु वातकफापहम् ।
अरिष्टो द्रव्यसंयोगसंस्कारादधिको गुणैः[2] ॥ १९४ ॥
बहुदोषहरश्चैव[3] दोषाणां शमनश्च सः ।
दीपनः कफवातघ्नः सरः पित्तविरोधनः ॥ १९५ ॥
शूलाध्मानोदरप्लीहज्वराजीर्णार्शसां हितः ।
पिप्पल्यादिकृतो[4] गुल्मकफरोगहरः स्मृतः ॥ १९६ ॥
चिकित्सितेषु वक्ष्यन्तेऽरिष्टाः रोगहराः पृथक् ।
अरिष्टासवसीधूनां गुणान् कर्माणि चादिशेत् ॥ १९७ ॥
बुद्ध्या यथास्वं संस्कारमवेक्ष्य कुशलो भिषक् ।
सान्द्रं[5] विदाहि दुर्गन्धं विरसं कृमिलं गुरु ॥ १९८ ॥
अहृद्यं तरुणं तीक्ष्णमुष्णं दुर्भाजनस्थितम्[6] ।
अल्पौषधं पर्युषितम[7]त्यच्छं पिच्छिलञ्च यत् ॥ १९९ ॥
तद्वर्ज्यं सर्वदा मद्यं किञ्चिच्छेषं च तद्भवेत् ।
तत्र यत् स्तोकसम्भारं तरुणं पिच्छिलं गुरु ॥ २०० ॥
कफप्रकोपि तन्मद्यं दुर्जरञ्च विशेषतः ।
पित्तप्रकोपि बहलं तीक्ष्णमुष्णं विदाहि च ॥ २०१ ॥
अहृद्यं फेनिलं पूति कृमिलं विरसं च यत् ।
तथा पर्युषितञ्चापि विद्यादनिलकोपनम् ॥ २०२ ॥
सर्वदोषैरुपेतं तु सर्वदोषप्रकोपणम् ।
चिरस्थितं[8] जातरसं दीपनं कफवातजित् ॥ २०३ ॥
रुच्यं प्रसन्नं सुरभि मद्यं सेव्यं मदावहम् ।
तस्यानेकप्रकारस्य[9] मद्यस्य रसवीर्यतः ॥ २०४ ॥

---

श्रयम्" ॥ १ स्फुटस्रोतस्करं=स्रोतोविकाशम् । २ मद्यादिसंस्कारापेक्षया तत्तच्चित्रकाभयादिद्रव्यसंयोगसंस्कारादित्यर्थः । ३ अत्र दोषशब्दो व्याधिवाचकः । ४ शर्करामधुसंयोगेन पिप्पल्यादिगणक्काथकृत इत्यर्थः । ५ मद्यदोषं दर्शयति—**सान्द्रमिति** । सान्द्रं=घनम् । ६ काचस्फटिकमृण्मयमद्यपात्रातिरिक्तमलिनत्वादिनिन्दितपात्रावस्थितमित्यर्थः ।

७ पर्युषितम्=अनाच्छादितमुखे पात्रेऽवस्थितम् । ८ मद्यस्य गुणान्निर्दिशति—**चिरस्थितमिति** । ९ कथं मद्यं मादयतीति दर्शयति—**तस्येति** । रसवीर्यतोऽनेक-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सौक्ष्म्यादौष्ण्याच्च तैक्ष्ण्याच्च विकासित्वाच्च वह्निना।
समेत्य हृदयं प्राप्य धमनीरूर्ध्वमागतम्॥ २०५॥
विक्षोभ्येन्द्रियचेतांसि वीर्यं मदयतेऽचिरात्।
चिरेण[1] श्लैष्मिके पुंसि पानतो जायते मदः।
अचिराद्वातिके हृष्टः पैत्तिके शीघ्रमेव तु॥ २०६॥
सात्त्विके[2] शौचदाक्षिण्यहर्षमण्डनलालसः।
गीताध्ययनसौभाग्यसुरतोत्साहकृन्मदः॥ २०७॥
राजसे दुःखशीलत्वमात्मत्यागं ससाहसम्[3]।
कलहं सानुबन्धं[4] तु करोति पुरुषे मदः॥ २०८॥
अशौचनिद्रामात्सर्यागम्यागमनलोलताः।
असत्यभाषणञ्चापि कुर्याद्धि तामसे मदः॥ २०९॥
रक्तपित्तकरं शुक्तं[5] छेदि भुक्तविपाचनम्।
वैस्वर्य्यं जरणं श्लेष्मपाण्डुक्रिमिहरं लघु॥ २१०॥
तीक्ष्णोष्णं मूत्रलं हृद्यं कफघ्नं कटुपाकि च।
तद्वत्तदासुतं[6] सर्वं रोचनञ्च विशेषतः॥ २११॥

---

प्रकारस्य तस्य मद्यस्य वीर्यं मदशक्तिः सौक्ष्म्यात् स्थूलसूक्ष्मस्रोतोऽनुसारित्वाद् औष्ण्याद् आग्नेयत्वेनोर्ध्वगामित्वात् तैक्ष्ण्याद् अचिरकारित्वाद् विकासित्वाद् अपरिणतावस्थायामेव तत्तत्कार्यकारित्वाच्च वह्निना पाचकेन पित्तेन समेत्य मिलित्वा हृदयं प्राप्य धमनीरूर्ध्वमागतं धमनीभिरूर्ध्वं प्राप्तम् इन्द्रियचेतांसि विक्षोभ्य विचाल्य अचिराद् मदयते मानवमिति शेषः। १ शारीरदोषभेदेन मदभेदं दर्शयति—**चिरेणेति।** २ सात्त्विकादिभेदेन मदभेदं वक्ति—**सात्त्विक इति।** दाक्षिण्यं=परापेक्षिणी प्रकृतिः।

३ साहसेन दुष्कर्मणा सहितं ससाहसम्। 'साहसं तु दमे दुष्कर्मकर्मणि' इति इति हैमः। तच्च पञ्चधा—"मनुष्यमारणं स्तेयं परदाराभिमर्षणम्। पारुष्यमनृतं चैव साहसं पञ्चधा स्मृतम्॥" इति स्मृतिः। ४ सानुबन्धं=मुख्यविवादानुयायिविवादानुगतम्। ५ "यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम्। धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते॥" इति। ६ तेन शुक्तेनासुतं कृताभिषवं कन्दादिकं तदासुतम्।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौडानि[1] रसशुक्तानि मधुशुक्तानि यानि च ।
यथापूर्वं[2] गुरुतराण्यभिष्यन्दकराणि च ॥ २१२ ॥
तुषाम्बु[3] दीपनं हृद्यं हृत्पाण्डुकृमिरोगनुत् ।
ग्रहाण्यर्शोविकारघ्नं भेदि सौवीरकं[4] तथा ॥ २१३ ॥
धान्याम्लं[5] धान्ययोनित्वाज्जीवनं दाहनाशनम् ।
स्पर्शात्पानात्तु पवनकफतृष्णाहरं लघु ॥ २१४ ॥
तैक्ष्ण्याच्च निर्हरेदाशु कफं गण्डूषधारणात् ।
मुखवैरस्यदौर्गन्ध्यमलशोषक्लमापहम् ॥ २१५ ॥
दीपनं जरणं भेदि हितमास्थापनेषु च ।
समुद्रमाश्रितानाञ्च जनानां सात्म्यमुच्यते[7] ॥ २१६ ॥

## अथ मूत्राणि—

अथ[8] मूत्राणि गोमहिषाजाविगजहयखरोष्ट्राणां तीक्ष्णान्युष्णानि कटूनि तिक्तानि लवणानुरसानि लघूनि शोधनानि[9] कफवात-

---

१ गुडोद्भवानि शुक्तानि गौडानि—"गुडाम्बुना सतैलेन सन्धानं काञ्जिकं तु यत् । कन्दशाकफलैर्युक्तं गुडशुक्तं तदुच्यते ॥" इति । इक्षुरसादिकृतानि रसशुक्तानि गुडशुक्तवत्सन्धेयानि । मधुशुक्तानि—"जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीमूलसंयुतम् । मधुभाण्डे विनिक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत् । त्र्यहेण तज्जातरसं मधुशुक्तमुदाहृतम् ॥" इति । 'मद्यशुक्तानि' इति पाठान्तरम् । तत्र तल्लक्षणम्—"सर्वं मद्यं पञ्चरसं कालान्तरवशाद्यदा । त्यक्त्वाऽन्यरसमम्लत्वं याति शुक्तं तदुच्यते ॥" इति । २ यथापूर्वं सर्वापेक्षया गौडं शुक्तं गुरु अभिष्यन्दकरं चेति भावः । ३ तुषाम्बु=तुषोदकम्, "तुषोदकं यवैरामैः सतुषैः शकलीकृतैः" इति तल्लक्षणम् । ४ सौवीरकलक्षणम्—"सौवीरकं यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषैः कृतम् । गोधूमैरपि सौवीरमाचार्याः केचिदूचिरे ॥" इति ।

५ "धान्याम्लं शालिचूर्णैश्च कोद्रवादिकृतं च यत्" इति धान्याम्ललक्षणम् । धान्ययोनित्वात्—धान्यानि शाल्यादीनि योनिरस्येति धान्ययोनि तस्य भावस्तस्मात् । ६ जरणं=दोषपाचनम्, भेदि=विरेचकम् । ७ सात्म्यम्=प्रकृत्यनुकूलम् ।

**इति मद्यवर्गः ।**

---

**अथ मूत्रवर्गः—**

८ मूत्रसामान्यगुणान्निर्दिशति—**अथेति** । ९ शोधनानि=मलशुद्धिकराणी-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृमिमेदोविषगुल्मार्शउदरकुष्ठशोफारोचकपाण्डुरोगहराणि हृद्यानि दीपनानि च सामान्यतः ॥ २१७ ॥

भवतश्चात्र ।

तत्सर्वं कटु तीक्ष्णोष्णं लवणानुरसं लघु ।
शोधनं कफवातघ्नं कृमिमेदोविषापहम् ॥ २१८ ॥
अर्शोजठरगुल्मघ्नं शोफारोचकनाशनम् ।
पाण्डुरोगहरं भेदि हृद्यं दीपनपाचनम् ॥ २१९ ॥

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं सक्षारत्वान्न वातलम् ।
लघ्वग्निदीपनं [1]मेध्यं पित्तलं कफवातजित् ॥ २२० ॥
शूलगुल्मोदरानाहविरेकास्थापनादिषु ।
मूत्रप्रयोगसाध्येषु गव्यं [2]मूत्रं प्रयोजयेत् ॥ २२१ ॥
दुर्नामोदरशूलेषु कुष्ठमेहाविशुद्धिषु ।
आनाहशोफगुल्मेषु पाण्डुरोगे च माहिषम् ॥ २२२ ॥
कासश्वासापहं शोफकामलापाण्डुरोगनुत् ।
कटुतिक्तान्वितं छागमीषन्मारुतकोपनम् ॥ २२३ ॥
कासप्लीहोदरश्वासशोषवर्चोग्रहे हितम् ।
सक्षारं तिक्तकटुकमुष्णं वातघ्नमाविकम् ॥ २२४ ॥
दीपनं कटु तीक्ष्णोष्णं वातचेतोविकारनुत् ।
आश्वं कफहरं मूत्रं कृमिदद्रुषु शस्यते ॥ २२५ ॥
सतिक्तं लवणं भेदि वातघ्नं पित्तकोपनम् ।
तीक्ष्णं क्षारे किलासे [3]च नागं मूत्रं प्रयोजयेत् ॥ २२६ ॥
गर[4]चेतोविकारघ्नं तीक्ष्णं ग्रहणिरोगनुत् ।
दीपनं गार्दभं मूत्रं कृमिवातकफापहम् ॥ २२७ ॥
शोफकुष्ठोदरोन्मादमारुतक्रिमिनाशनम् ।

---

त्यर्थः । १ मेध्यं=मेधाजनकम्, पवित्रं वा । २ अत्र भावप्रकाशोक्तं ध्येयम्–"गोजाविमाहिषीणां तु स्त्रीणां मूत्रं प्रशस्यते । खरोष्ट्रभनराश्वानां पुंसां मूत्रं हितं स्मृतम्" ॥ इति । ३ किलासे=श्वेतकुष्ठे । ४ गरचेतोविकारघ्नं=विषोन्मादादिमा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्शोघ्नं कारभं[1] मूत्रं मानुषं च विषापहम् ॥ २२८ ॥
द्रवद्रव्याणि सर्वाणि समासात् कीर्त्तितानि तु ।
कालदेशविभागज्ञो नृपतेर्दातुमर्हति[2] ॥ २२९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने द्रवद्रव्यविज्ञानीयो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

---

## षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातोऽन्नपान[3]विधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

धन्वन्तरिमभिवाद्य सुश्रुत उवाच—प्रागभिहितः प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसां च । स षट्सु रसेष्वायत्तः । रसाः पुनर्द्रव्याश्रयिणः[4] । द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकनिमित्ते च क्षयवृद्धी दोषाणां साम्यञ्च । ब्रह्मादेरपि च लोकस्याहारः स्थित्युत्पत्तिविनाशहेतुः । आहारादेवाभिवृद्धिर्बलमारोग्यं वर्णेन्द्रियप्रसादश्च । तथा ह्याहारवैषम्यादस्वास्थ्यम् । तस्याशित[5]पीतलीढखादितस्य नानाद्रव्यात्मकस्यानेकविधविकल्पस्यानेकविधप्रभावस्य पृथक् पृथग्द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकप्रभावकर्माणीच्छामि ज्ञातुं, न ह्यनवबुद्धस्व[6]भावा

---

नसिकविकारहरमित्यर्थः । १ कारभम् = औष्ट्रम् । २ वैद्य इति शेषः । नृपतेरिति चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ।

इति सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

### षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

३ अन्नं शाल्यादि पानमनुपानादि तयोर्विधिं प्रकारमधिकृत्य कृतोऽध्यायोऽन्नपानविधिस्तम् । ४ "रसो नास्ति विना द्रव्याद्" इति पूर्वोक्तं ध्येयम् । ५ अशितं मोदकादि, पीतमुदकादि, लीढं लेह्यं मध्वादि, खादितं भक्ष्यं मोदकादि । खादितमत्र चूष्यं स्तन्याद्येवेति निश्चीयते पारिशेष्यात् । न च खादतेश्चूषणार्थोऽनुपपन्नः—'स्तन्यं खादति बालकः' इत्यादिप्रयोगदर्शनादिति सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्यम् । ६ आहारस्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भिषजः स्वस्थानुवृत्तिं रोगनिग्रहणञ्च कर्त्तुं समर्थाः। आहारायत्ताश्च सर्वप्राणिनो यस्मात्तस्मादन्नपानविधिमुपदिशतु मे भगवानित्युक्तः प्रोवाच भगवान् धन्वन्तरिः—अथ खलु वत्स सुश्रुत ! यथाप्रश्नमुच्यमानमुपधारयस्व ॥ ३ ॥

तत्र[1], लोहितशालिकलमकदमकपाण्डुकसुगन्धकशकुनाहृतपुष्पापाण्डकपुण्डरीकमहाशालिशीतभीरुकरोध्रपुष्पकदीर्घशूककाञ्चनकमहिषमहाशूकहायनकदूषकमहादूषकप्रभृतयः शालयः ॥ ४ ॥

मधुरा वीर्यतः शीता लघुपाका बलावहाः।
पित्तघ्नाल्पा[2]निलकफाः स्निग्धा बद्धाल्प[3]वर्चसः ॥ ५ ॥
तेषां लोहितकः श्रेष्ठो दोषघ्नः शुक्रमूत्रलः।
चक्षुष्यो वर्णबलकृत् स्वर्यो हृद्यस्तृषापहः ॥ ६ ॥
व्रण्यो ज्वरहरश्चैव सर्वदोष[4]विषापहः।
तस्मादल्पान्तरगुणाः क्रमशः शालयोऽवराः ॥ ७ ॥

षष्टिक[5]काङ्गुकमुकुन्दकपीतकप्रमोदककाकलकासनपुष्पकमहाषष्टिकचूर्णककुरवककेदारप्रभृ[6]तयः षष्टिकाः ॥ ८ ॥

रसे पाके च मधुराः शमना वातपित्तयोः।
शालीनाञ्च गुणै[7]स्तुल्या बृंहणाः कफशुक्रलाः ॥ ९ ॥
षष्टिकः प्रवरस्तेषां कषायानुरसो लघुः।
मृदुः स्निग्धस्त्रिदोषघ्नः स्थैर्यकृद् बलवर्द्धनः ॥ १० ॥
विपाके मधुरो ग्राही तुल्यो लोहितशालिभिः।
शेषास्त्वल्पान्तरगुणाः षष्टिकाः क्रमशो गुणैः ॥ ११ ॥

---

अनवबुद्धोऽज्ञातः स्वभावः स्वरूपो यैस्तेऽनवबुद्धस्वभावाः। १ शालिभेदान् दर्शयति—**तत्रेति**। एते शाल्यादयो नानादेशप्रसिद्धा इति तत्तद्देशीयैरेव आकृत्यादिभिर्वक्तुं शक्यन्ते। २ अल्पानिलकफाः=किञ्चिद्वातश्लेष्मकराः। ३ बद्धमल्पं वर्चः पुरीषमेभिरिति बद्धाल्पवर्चसः मलावरोधकाः, अल्पमलोत्पादका इत्यर्थः। ४ अत्र दोषशब्दस्य व्याधिरर्थः।

५ षष्टिकभेदान्निर्दिशति—**षष्टिकेति**। ६ प्रभृतिग्रहणाच्चीनदुर्दरशारदादयो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णव्रीहिशालामुखजतुमुखनन्दीमुखलावाक्तकत्वरितककुक्कुटाण्डकपारावतकपाटलप्रभृतयो व्रीहयः ॥ १२ ॥

कषायमधुराः पाकेऽमधुरा वीर्यतोऽहिमाः[२] ॥
अल्पाभिष्यन्दिनस्तुल्याः षष्टिकैर्बद्धवर्चसः[३] ॥ १३ ॥
कृष्णव्रीहिर्वरस्तेषां कषायानुरसो लघुः ।
तस्मादल्पान्तरगुणाः क्रमशो व्रीहयोऽपरे ॥ १४ ॥
दग्धायामवनौ जाताः शालयो लघुपाकिनः ।
कषाया बद्धविण्मूत्रा रूक्षाः श्लेष्मापकर्षणाः ॥ १५ ॥
स्थलजाः[४] कफपित्तघ्नाः कषायाः कटुकान्वयाः ।
किञ्चित्सतिक्तमधुराः पवनानलवर्द्धनाः[५] ॥ १६ ॥
कैदाराः[६] मधुरा वृष्या बल्याः पित्तनिबर्हणाः ।
ईषत्कषायाल्पमला गुरवः कफशुक्रलाः ॥ १७ ॥
रोप्याः[७] तिरोप्या लघवः शीघ्रपाका गुणोत्तराः ।
अदाहिनो दोषहरा बल्या मूत्रविवर्द्धनाः ॥ १८ ॥
शालयश्छिन्नरूढा[८] ये रूक्षास्ते बद्धवर्चसः ।
तिक्ताः कषायाः पित्तघ्ना लघुपाकाः कफापहाः ॥ १९ ॥
विस्तरेणायमुद्दिष्टः शालिवर्गो[९] हिताहितः ।
तद्वत् कुधान्यमुद्गादिमाषादीनाञ्च वक्ष्यते ॥ २० ॥

---

बोध्याः । 'षष्टिको व्रीहिभेदः' इति हेमाद्रिः । १ व्रीहिभेदानाह—कृष्णेति । २ अहिमाः=उष्णाः । ३ बद्धवर्चसः=मलावरोधका इत्यर्थः । ४ स्थलजाः=जाङ्गलभूमिजाताः । ५ पवनानलवर्द्धनाः=किञ्चिद्वाताग्निवृद्धिकरा इत्यर्थः । ६ कैदाराः=सजलभूमिभागसम्भवाः, अनूपजा इति यावत् । ७ ये शालय एकवारमुत्पाट्याश्वन्यत्र रोप्यन्ते ते रोप्याः, ये तु द्विस्त्रिर्वाऽन्यत्र रोप्यन्ते तेऽतिरोप्या इति डल्हणः । ८ पूर्वं छिन्नाः पश्चाद्दृढाश्छिन्नरूढाः । ९ शाल्यादिर्वर्गः शालिवर्गः, शालिषष्टिकव्रीहिवर्ग इत्यर्थः । शाकपार्थिवादित्वादादिशब्दस्य लोपः । हिताहितः एष शालिवर्गः स्वस्थावस्थायामेकान्तहितः, किन्तु रुग्णावस्थायां दोषानुसारेण कस्मिंश्चिद् हितः कस्मिंश्चिदहित इति भावः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## अथ कुधान्यवर्गः—

कोरदूषकश्यामाकनीवारशान्तनुवरकोद्दालकप्रियङ्गुमधूलिकानान्दीमुखीकुरुविन्दगवेधुकसरवरुकतोदपर्णीमुकुन्दकवेणुयवप्रभृतयः कुधान्यविशेषाः ॥ २१ ॥

उष्णाः कषायमधुरा रूक्षाः कटुविपाकिनः ।
श्लेष्मघ्ना बद्धनिस्यन्दा वातपित्तप्रकोपणाः ॥ २२ ॥
कषायमधुरस्तेषां शीतः पित्तापहः स्मृतः ।
कोद्रवश्च सनीवारः श्यामाकश्च सशान्तनुः ॥ २३ ॥
कृष्णा रक्ताश्च पीताश्च श्वेताश्चैव प्रियङ्गवः ।
यथोत्तरं प्रधानाः स्यू रूक्षाः कफहराः स्मृताः ॥ २४ ॥
मधूली मधुरा शीता स्निग्धा नान्दीमुखी तथा ।
विशोषी तत्र भूयिष्ठं वरुकः समुकुन्दकः ॥ २५ ॥
रूक्षा वेणुयवा ज्ञेया वीर्योष्णाः कटुपाकिनः ।
बद्धमूत्राः कफहराः कषाया वातकोपनाः ॥ २६ ॥

मुद्गवनमुद्गकलायमकुष्ठमसूरमङ्गल्यचणकसतीनत्रिपुटकहरेणवाढकीप्रभृतयो वैदलाः ॥ २७ ॥

कषायमधुराः शीताः कटुपाका मरुत्कराः ।
बद्धमूत्रपुरीषाश्च पित्तश्लेष्महरास्तथा ॥ २८ ॥
नात्यर्थं वातलास्तेषु मुद्गा दृष्टिप्रसादनाः ।
प्रधाना हरितास्तत्र वन्या मुद्गसमाः स्मृताः ॥ २९ ॥
विपाके मधुराः प्रोक्ता मसूरा बद्धवर्चसः ।
मकुष्ठकाः कृमिकराः कलायाः प्रचुरानिलाः ॥ ३० ॥
आढकी कफपित्तघ्नी नातिवातप्रकोपणी ।
वातलाः शीतमधुराः सकषाया विरूक्षणाः ॥ ३१ ॥
कफशोणितपित्तघ्नाश्चणकाः पुंस्त्वनाशनाः ।

---

**अथ कुधान्यवर्गः—**

१ कोरदूषकः = 'कोदो' इति ख्यातः । २ बद्धनिस्यन्दाः = बद्धमूत्राः, मूत्रस्रावन्यूनकरा इति भावः । ३ शमीधान्यानि निर्दिशति—**मुद्गेति** । ४ प्रभृतिश-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त एव घृतसंयुक्तास्त्रिदोषशमनाः परम् ॥ ३२ ॥
हरेणवः सतीनाश्च विज्ञेया बद्धवर्चसः ।
ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारकाः[1] ॥ ३३ ॥
माषो गुरुर्भिन्नपुरीषमूत्रः स्निग्धोष्णवृष्यो मधुरोऽनिलघ्नः ।
सन्तर्पणः स्तन्यकरो[2] विशेषाद्बलप्रदः शुक्रकफावहश्च ॥ ३४ ॥
कषायभावान्न पुरीषभेदी न मूत्रलो नैव कफस्य कर्त्ता ।
स्वादुर्विपाके मधुरोऽलसान्द्रः[3] सन्तर्पणः स्तन्यरुचिप्रदश्च ॥ ३५ ॥
माषैः समानं फलमात्मगुप्तमुक्तञ्च[4] काकाण्डफलं तथैव ।
आरण्यमाषा गुणतः प्रदिष्टा रूक्षाः कषाया अविदाहिनश्च ॥३६॥
उष्णः कुलत्थो रसतः कषायः कटुर्विपाके कफमारुतघ्नः ।
शुक्राश्मरीगुल्मनिषूदनश्च साङ्ग्राहिकः[5] पीनसकासहारी ॥ ३७ ॥
आनाहमेदोगुदकीलहिक्काश्वासापहः शोणितपित्तकृच्च ।
कफस्य हन्ता नयनामयघ्नो[6] विशेषतो वन्यकुलत्थ उक्तः ॥ ३८ ॥
ईषत्कषायो[7] मधुरः सतिक्तः साङ्ग्राहिकः पित्तकरस्तथोष्णः ।
तिलो विपाके मधुरो बलिष्ठः स्निग्धो व्रणालेपन एव पथ्यः ॥३९॥
दन्त्योऽग्निमेधाजननोऽल्पमूत्रस्त्वच्यो[8]ऽथ केश्योऽनिलहा गुरुश्च ।
तिलेषु सर्वेष्वसितः[9] प्रधानो मध्यः सितो हीनतरास्तथान्ये ॥ ४० ॥
यवः कषायो मधुरो हिमश्च कटुर्विपाके कफपित्तहारी ।
व्रणेषु पथ्यस्तिलवच्च नित्यं प्रबद्धमूत्रो[10] बहुवातवर्चाः ॥ ४१ ॥

---

ब्दान्माषकुलत्थादीनां परिग्रहः । वैदलाः=द्विदलान्नसमूहा इत्यर्थः । १ आध्मानं=वातरोगविशेषः, 'अफारा' इति ख्यातम् ।

२ विशेषाद् दुग्धोत्पादकः, स्त्रीणामिति शेषः । ३ अलसान्द्रः=राजमाषः, 'बोडा' इति नाम्ना ख्यातः । ४ आत्मगुप्तं फलं=क्रौञ्चबीजम् , काकाण्डायाः फलं काकाण्डफलं, क्रौञ्चसदृशं शूकशिम्बीफलमित्यर्थः । 'सञ्ज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्' इति ह्रस्वः । ५ साङ्ग्राहिकः=सङ्ग्राही, अनिलगुणभूयिष्ठ इत्यर्थः । ६ नयनामयघ्नः=नेत्ररोगहरः । ७ अनुरसे ईषत्कषाय इति भावः । ८ त्वचे हितस्त्वच्यः त्वचो हितकरः । अत्र 'स्तन्यः' इति पाठान्तरम् । केशेभ्यो हितः केश्यः केशहितकरः । ९ असितः=कृष्णतिलः । १० प्रबद्धमूत्रः=अल्पमूत्रकर्ता, बहुवातवर्चाः=आन्त्रे वात-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्थैर्य्याग्निमेधास्वरवर्णकृच्च सपिच्छिलः स्थूलविलेखनश्च ।
मेदोमरुत्तृड्हरणोऽतिरूक्षः प्रसादनः शोणितपित्तयोश्च ॥ ४२ ॥
एभिर्गुणैर्हीनतरैस्तु किञ्चिद् विद्याद् यवेभ्योऽतियवानशेषैः[1] ।
गोधूम उक्तो मधुरो गुरुश्च बल्यः स्थिरः शुक्ररुचिप्रदश्च ॥ ४३ ॥
स्निग्धोऽतिशीतोऽनिलपित्तहन्ता सन्धानकृत्[2] श्लेष्मकरः सरश्च ।
रुक्षः कषायो विषशोषशुक्रबलासदृष्टित्वयकृद्[3] विदाही ॥ ४४ ॥
कटुर्विपाके मधुरस्तु शिम्बः प्रबन्धविण्मारुतपित्तलश्च ।
सिताऽसिताः पीतकरक्तवर्णा भवन्ति येऽनेकविधास्तु शिम्बाः ॥४५॥
यथोदिताः[4] स्ते गुणतः प्रधाना ज्ञेयाः कटूष्णा रसपाकयोश्च ।
सहाद्वयं[5] मूलकजाश्च शिम्बाः कुशिम्बिवल्लीप्रभवास्तु शिम्बाः ॥४६॥
ज्ञेया विपाके मधुरा रसे च बलप्रदाः पित्तनिबर्हणाश्च[6] ।
विदाहवन्तश्च भृशं विरूक्षा विष्टभ्य[8] जीर्यन्त्यनिलप्रदाश्च ॥ ४७ ॥
रुचिप्रदाश्चैव सुदुर्जराश्च[9] सर्वे स्मृता वैदलिकास्तु[10] शिम्बाः ।
कटुर्विपाके कटुकः कफघ्नो विदाहिभावादहितः कुसुम्भः[11] ॥ ४८ ॥
उष्णोऽतसी स्वादुरसाऽनिलघ्नी पित्तोल्बणा स्यात् कटुका विपाके ।
पाके रसे चापि कटुः प्रदिष्टः सिद्धार्थकः[12] शोणितपित्तकोपी ।
तीक्ष्णोष्णरूक्षः कफमारुतघ्नस्तथागुणश्चासित[13] सर्षपोऽपि ॥ ४९ ॥

---

मलवर्धक इत्यर्थः । १ निःशूकाः कृष्णारुणयवा अतियवा उच्यन्ते । तदुक्तं भावप्रकाशे—"निःशूकोऽतियवः स्मृतः" इति । २ भग्नानामस्थ्नां सन्धानकर्तेत्यर्थः । ३ बलासः = श्लेष्मा । ४ यथोदिताः = येन प्रकारेणोक्ताः, अर्थात् सितः सर्वप्रधानस्तदपेक्षया न्यूनगुणोऽसितस्ततः पीतोऽल्पगुणस्ततोऽपि रक्तोऽल्पगुणः ।

५ सहाद्वयं = मुद्गपर्णीमाषपर्णीद्वितयम् । मूलकजाश्च शिम्बाः = मूलकशिम्बी । कुशिम्बिवल्लीप्रभवाः = आत्मगुप्तालतासम्भवाः । पूर्वं पक्कमात्मगुप्ताफलमत्राममात्मगुप्ताफलमुपदिश्यते इति न पुनरुक्तादोष आशङ्क्यः । ६ पित्तनिबर्हणाः = पित्तनाशकाः । ७ मुद्गादिसतीनान्तानां वैदलानामार्द्रशिम्बीफलिकागुणमभिदधाति—**विदाहेति** । ८ विष्टभ्य = पाककाले गुडगुडाशब्दं कृत्वा, जीर्यन्ति = पाकं गच्छन्ति । ९ सुदुर्जराः = दुःखेन पाकपरिणामा इत्यर्थः । १० शिम्बाः = मुद्गाद्यार्द्रफलिकाः । ११ शमीधान्यसामान्यात्कुसुम्भातसीसर्षपबीजगुणं दर्शयति—**कटुरिति** । १२ सिद्धार्थकः = श्वेतसर्षपः । १३ असितसर्षपः = रक्तसर्षपः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनार्तवं[1] व्याधिहतमपर्यागतमेव च ।
अभूमिजं नवञ्चापि न धान्यं गुणवत् स्मृतम् ॥ ५० ॥
नवं धान्यमभिष्यन्दि लघु संवत्सरोषितम्[2] ।
विदाहि गुरु विष्टम्भि विरूढं[3] दृष्टिदूषणम् ॥ ५१ ॥
शाल्यादेः सर्षपान्तस्य विविधस्यास्य भागशः[4] ।
कालप्रमाणसंस्कारमात्राः सम्परिकीर्त्तिताः ॥ ५२ ॥

अथोर्ध्वं मांसवर्गानुपदेक्ष्यामः । तद्यथा—जलेशया[5], आनूपा, ग्राम्याः, क्रव्यभुज, एकशफा, जाङ्गलाश्चेति षण्मांसवर्गाः । एतेषां वर्गाणामुत्तरोत्तरं प्रधानतमाः । ते पुनर्द्विविधा—जाङ्गला आनूपाश्चेति । तत्र जाङ्गलवर्गोऽष्टविधः । तद्यथा—जङ्घालौ[6], विष्किराः, प्रतुदा, गुहाशयाः, प्रसहाः, पर्णमृगा, बिलेशया, ग्राम्याश्चेति । तेषां जङ्घालविष्किरौ[7] प्रधानतमौ ॥ ५३ ॥

तावेणहरिणर्क्षकुरङ्गकरालकृतमालशरभश्वदंष्ट्रापृषतचारुष्करमृ-

---

१ त्याज्यधान्यानि निर्दिशति—**अनार्तवमिति** । अनार्तवं=न यथास्वर्तुजातम्, व्याधिहतं=कुङ्कुमादिव्याधिनष्टम्, अपर्यायगतम्=अपरिपक्वम्, अभूमिजम्=ऊषरोपलकाद्यशस्तभूमिप्रदेशप्रभवम् । २ भावप्रकाशे—"वर्षोषितं सर्वधान्यं गौरवं परिमुञ्चति । न तु त्यजति तद्वीर्यं स्वं क्रमान्मुञ्चत्यतः परम् ॥" इति । ३ विरूढम्=अङ्कुरितं धान्यमित्यर्थः । विरूढमङ्कुरजननशक्तिरहितमिति डल्हणः । ४ भागशः=अंशतः, अल्पप्रमाणत इत्यर्थः । **इति कुधान्यवर्गः ।**

## अथ मांसवर्गः—

५ जलेशयाः=मत्स्यादयः, आनूपाः=जलप्रायप्रदेशवासिनो महिषादयः, ग्राम्याः=ग्रामवासिनश्छागादयः, क्रव्यभुजः=आममांसाशिनो गृध्रादयः, एकशफाः=खरादयः, तदुक्तं भागवते—"खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा । एते चैकशफाः" इति । जाङ्गलाः=हरिणादयः । ६ जङ्घा वेगवत्यः सन्त्येषामिति जङ्घालाः, विकीर्य भक्षयन्तीति विष्किराः, चञ्च्वा प्रतुद्य भक्षयन्तीति प्रतुदाः, गुहायां शेरते इति गुहाशयाः, स्वं भक्ष्यं प्रसह्य भक्षयन्तीति प्रसहाः, पर्णे मृगयन्त इति पर्णमृगाः, तदुक्तम्—"वतौकोवृक्षमार्जारवृक्षमर्कटिकादयः । एते पर्णमृगाः प्रोक्ताः" इति । बिले शेरत इति बिलेशयाः, ग्रामे वा ग्राम्याः ।

७ तौ=पूर्वोक्तजङ्घालविष्किरौ, एणः=कृष्णमृगः, हरिणः=गौरमृगः, ऋक्षः=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गमातृकाप्रभृतयो जङ्घाला मृगाः कषाया मधुरा लघवो वातपित्त-हरास्तीक्ष्णा हृद्या बस्तिशोधनाश्च ॥ ५४ ॥

कषायो मधुरो हृद्यः पित्तासृक्कफरोगहा ।
सङ्ग्राही रोचनो बल्यस्तेषामेणो ज्वरापहः ॥ ५५ ॥
मधुरो मधुरः पाके दोषघ्नोऽनलदीपनः ।
शीतलो बद्धविण्मूत्रः सुगन्धिर्हरिणो लघुः ॥ ५६ ॥
एणः कृष्णास्तयोर्ज्ञेयो हरिणस्ताम्र उच्यते ।
यो न कृष्णो न ताम्रश्च कुरङ्गः सोऽभिधीयते ॥ ५७ ॥
शीताऽसृक्पित्तशमनी विज्ञेया मृगमातृका ।
सन्निपातक्षयश्वासकासहिक्कारुचिप्रणुत् ॥ ५८ ॥

लावतित्तिरिकपिञ्जलवर्त्तीरवर्त्तिकावर्त्तकनप्तृकावार्तीकचकोरक-लविङ्कमयूरक्रकरोपचक्रकुक्कुटसारङ्गशतपत्रकुतित्तिरिकुरवाहकयवा-लकप्रभृतयस्त्र्याहला विष्किराः ॥ ५९ ॥

लघवः शीतमधुरा कषाया दोषनाशनाः ।
सङ्ग्राही दीपनश्चैव कषायमधुरो लघुः ।
लावः कटुविपाकश्च सन्निपाते च पूजितः[२] ॥ ६० ॥
ईषद्गुरूष्णमधुरो वृष्यो मेधाऽग्निवर्द्धनः ।
तित्तिरिः सर्वदोषघ्नो ग्राही वर्णप्रसादनः ॥ ६१ ॥

---

नीलाण्डो मृगः, 'रोहू' इति ख्यातः ; कुरङ्गः=चतुरगतिको मृगः, 'चतुरङ्ग' इति ख्यातः, कराल:=कस्तूरीमृगः, कृतमालः=सङ्घातचारी मृगः, शरभः=उष्ट्रप्रमाणो महाशृङ्गः-"अष्टपादूर्ध्वनयन ऊर्ध्वपादचतुष्टयः" इत्युक्तलक्षणः काश्मीरे प्रसिद्धः, श्वदंष्ट्रा=शुनो दंष्ट्रेव चतुर्दन्तोऽतिदुष्टो मृगः, पृषतः=शुभ्रबिन्दुचित्रितः, चारुष्करः=चारुशरीरः क्षुद्रमृगविशेषः, मृगमातृका=अल्पा पृथूदरा हरिणी। प्रभृतिशब्दात् कोटरकरभादयः। १ लावश्चतुर्विधः। तदुक्तम्-"गौरिकः पांशुलश्चैव पौण्ड्रको दर्भर-स्तथा। लावश्चतुर्विधः प्रोक्तः तित्तिरिर्द्विविधः स्मृतः" ॥ तित्तिरिः=चित्रपक्षः कृष्ण-तित्तिरिः, कपिञ्जलः=गौरतित्तिरिः, वर्त्तीरः='घरघरा' इति ख्यातः। अवशिष्टानां परिचयोऽन्यत्र कर्तव्यः। त्रिभिश्चरणयुगलचञ्चुभिराहलन्ति विलिखन्ति भूमिमिति त्र्याहलाः। २ पूजितः=प्रशस्तः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्तपित्तहरः शीतो लघुश्चापि कपिञ्जलः ।
कफोत्थेषु च रोगेषु मन्दवाते च शस्यते ॥ ६२ ॥
हिक्काश्वासानिलहरो विशेषाद्दौरतित्तिरिः ।
वातपित्तहरा वृष्या मेधाऽग्निबलवर्द्धनाः ॥ ६३ ॥
लघवः क्रकरा हृद्यास्तथा चैवोपचक्रकाः ।
कषायः स्वादुलवणास्त्वच्यः केश्योऽरुचौ हितः ॥ ६४ ॥
मयूरः स्वरमेधाऽग्निदृक्श्रोत्रेन्द्रियदार्ढ्यकृत् ।
स्निग्धोष्णोऽनिलहा वृष्यः स्वेदस्वरबलावहः ॥ ६५ ॥
बृंहणः कुक्कुटो वन्यस्तद्वद् ग्राम्यो गुरुस्तु सः ।
वातरोगक्षयवमीविषमज्वरनाशनः ॥ ६६ ॥

कपोतपारावतभृङ्गराजपरभृतकोयष्टिककुलिङ्ग[1]गृहकुलिङ्गगोक्ष्वेड-कडिण्डिमाणवकशतपत्रकमातृनिन्दकभेदाशिशुकसारिकावल्गुलीगि-रिशालट्वान्नदूषकसुगृहीखञ्जरीटहारीतदात्यूहप्रभृतयः प्रतुदाः ॥६७॥

कषायमधुरा रूक्षाः फलाहारा[2] मरुत्कराः ।
पित्तश्लेष्महराः शीता बद्धमूत्राल्पवर्चसः ॥ ६८ ॥
सर्वदोषकरस्तेषां भेदाशी मलदूषकाः ।
कषायस्वादुलवणो गुरुः काणकपोतकः ॥ ६९ ॥
रक्तपित्तप्रशमनः कषायविशदोऽपि च ।
विपाके मधुरश्चापि गुरुः पारावतः स्मृतः ॥ ७० ॥
कुलिङ्गो मधुरः स्निग्धः कफशुक्रविवर्द्धनः ।
रक्तपित्तहरो वेश्मकुलिङ्गस्त्वतिशुक्रलः ॥ ७१ ॥

सिंहव्याघ्रवृकतरक्षुवृत्तद्वीपिमार्जारशृगालमृगेर्वारुक[3]प्रभृतयो गु-हाशयाः ॥ ७२ ॥

मधुरा गुरवः स्निग्धा बल्या मारुतनाशनाः ।
उष्णवीर्या हिता नित्यं नेत्रगुह्यविकारिणाम् ॥ ७३ ॥

---

१ कुलिङ्गः=वन्यचटकः, गृहकुलिङ्गः=ग्राम्यचटकः, गोक्ष्वेडकः=गोनर्दपक्षी ।
२ फलाहारत्वेन वातकरा इत्यर्थः । ३ मृगेर्वारुकः=मृगादः शृगालाकारो व्याघ्रभेदः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



काकक[1]ङ्ककुररचाषभासशशघात्युलूकचिल्लि[2]श्येनगृध्रप्रभृतयः प्रसहाः ॥ ७४ ॥

एते सिंहादिभिः सर्वे समाना वायसादयः ।
रसवीर्यविपाकेषु विशेषाच्छोषिणे हिताः ॥ ७५ ॥

मद्गु[3]मूषिकवृक्षशायिकावकुशपूतिघासवानरप्रभृतयःपर्णमृगाः॥७६॥

मधुरा गुरवो वृष्याश्चक्षुष्या शोषिणे हिताः ।
सृष्टमूत्रपुरीषाश्च कासार्शःश्वासनाशनाः ॥ ७७ ॥

श्वाविच्छल्यकगोधाशशवृ[4]षदंशलोपाकलोमशकर्णकदलीमृगप्रियकाजगरसर्पमूषिकनकुलमहाब[5]भ्रुप्रभृतयो बिलेशयाः ॥ ७८ ॥

वर्चोमूत्रं संहतं कुर्युरेते वीर्ये चोष्णाः पूर्ववत् स्वादुपाकाः ।
वातं हन्युः श्लेष्मपित्ते च कुर्युः स्निग्धाः कासश्वासकार्श्यापहाश्च॥७९॥

कषायमधुरस्तेषां शशः पित्तकफापहः ।
नातिशीतलवीर्यत्वाद्वात[6]धारणो मतः ॥ ८० ॥

गोधा विपाके मधुरा कषायकटुका स्मृता ।
वातपित्तप्रशमनी बृंहणी बलवर्द्धनी ॥ ८१ ॥

शल्यकः स्वादुपित्तघ्नो लघुः शीतो विषापहः ।
प्रियको मारुते पथ्योऽजगरस्त्वर्शसां हितः ॥ ८२ ॥

दुर्नामानिलदोषघ्नः कृमिदू[7]षीविषापहाः ।
चक्षुष्या मधुराः पाके सर्पा मेधाऽग्निवर्द्धनाः ॥ ८३ ॥

---

१ कङ्को नाम—"कङ्कः स्यात्कङ्कमल्लाख्यो बाणपत्रार्हपक्षकः । लोहपृष्ठो दीर्घपादः पक्षाधः पाण्डुवर्णभाक्" ॥ २ चिल्लिः=चिल्हः । ३ मद्गुमूषिकः=वृक्षाश्रयी मालुयासर्पः, वृक्षशायिका=वृक्षमर्कटिका, 'गिलहरी' इति ख्याता, अवकुशः=गोलाङ्गुलो वानरः, वानरत्वेऽप्यस्य पृथक्कथनं प्रपञ्चार्थम्, पूतिघासः=सुगन्धिवृषणो वनबिलाडः । ४ वृषदंशः=ग्राममार्जारः, लोपाकः=शृगालभेदः, लोमशकर्णः=बिलेशयो मृगभेदः, कदली=बृहद्बिडालसदृशो व्याघ्राकारो मृगविशेषः, मृगप्रियकः=गोनसः । ५ महाबभ्रुः=बृहन्नकुलः । ६ वातसाधारणः=कषायाद् वाताभिवृद्धौ मधुराद् वातोपशमे च समानः । ७ दूषीविषम्—"दूषितं देशकालान्न दिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः । यस्माद् दूषयते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दर्वीकरा दीपकाश्च[1] तेषूक्ताः कटुपाकिनः ।
मधुराश्चातिचक्षुष्याः सृष्टविण्मूत्रमारुताः ॥ ८४ ॥
अश्वाश्वतरगोखरोष्ट्रबस्तोरभ्रमेदःपुच्छैकप्रभृतयो[2] ग्राम्याः[3] ॥ ८५ ॥
ग्राम्या वातहराः सर्वे बृंहणा कफपित्तलाः ।
मधुरा रसपाकाभ्यां दीपना बलवर्द्धनाः ॥ ८६ ॥
नातिशीतो गुरुः स्निग्धो मन्दपित्तकफः स्मृतः ।
छगलस्त्वनभिष्यन्दी तेषां पीनसनाशनः ॥ ८७ ॥
बृंहणं मांसमौरभ्रं पित्तश्लेष्मावहं गुरु ।
मेदःपुच्छोद्भवं वृष्यमौरभ्रसदृशं गुणैः ॥ ८८ ॥
श्वासकासप्रतिश्यायविषमज्वरनाशनम् ।
श्रमात्यग्निहितं गव्यं पवित्रं[4] मनिलापहम् ॥ ८९ ॥
औरभ्रवत्सलवणं मांसमेकशफोद्भवम् ।
अल्पाभिष्यन्द्ययं वर्गो जाङ्गलः समुदाहृतः ॥ ९० ॥
दूरे जनान्तनिलया[5] दूरे पानीयगोचराः ।
ये मृगाश्च विहङ्गाश्च तेऽल्पाभिष्यन्दिनो मताः ॥ ९१ ॥
अतीवासन्ननिलया[6]ः समीपोदकगोचराः ।
ये मृगाश्च विहङ्गाश्च महाभिष्यन्दिनस्तु ते ॥ ९२ ॥
आनूपवर्गस्तु पञ्चविधः । तद्यथा—कूलचराः[7], प्लवाः[8], कोषस्थाः,

---

धातून् तस्माद् दूषीविषं स्मृतम्" ॥ १ दीपकाः=राजिमन्तः सर्पाः । २ अश्वगर्दभसंयोगेनोत्पन्नोऽश्वतरः 'खच्चर' इति ख्यातः । ३ मेदःपुच्छकः=दुम्बकः । ४ यज्ञोपयोगित्वेन पवित्रमित्यर्थः । ५ जनशब्दोऽत्र ग्रामवाची । तेन दूरे ग्रामतो गृहा इत्यर्थ इति डल्हणः । विप्रकृष्टे देशे जनपरिपूर्णत्वेन मनोहराणि भवनानि येभ्यस्ते दूरे जनान्तनिलयाः । अन्तो मनोहर इति पर्यायौ; अलुक् छान्दस इति सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्यम् । 'जनात्तनिलयाः' इति पाठान्तरम् । दूरे पानीयगोचराः=दूरे पानीयविषयाः, जलाशयाद् दूरनिवासिन इत्यर्थः । ६ अतीवासन्ननिलयाः=अतिशयेन ग्रामासन्नगृहा इत्यर्थः । ७ अनुगता आपो यत्रेत्यनूपो जलप्रायो देशस्तत्र भवा आनूपास्तेषां वर्गः । ८ कूले नद्यादितटे चरन्ति भक्षयन्ति भ्रमन्ति चेति कूलचराः, प्लवन्ते पानीये तरन्तीति प्लवाः, कोषः शङ्खादीनां सम्पुटस्तत्र तिष्ठन्तीति कोषस्थाः, पादिनः=पादवन्तः कच्छपादयः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पादिनः, मत्स्याश्चेति ॥ ९३ ॥

तत्र, गजगवयमहिषरुरुचमरसृमररोहितवराहखड्गिगोकर्णका-
लपुच्छकोद्रन्यङ्कव्यगवयप्रभृतयः कूलचराः पशवः ॥ ९४ ॥

वातपित्तहरा वृष्या मधुरा रसपाकयोः ।
शीतला बलिनः स्निग्धा मूत्रलाः कफवर्द्धनाः ॥ ९५ ॥
विरूक्षणो लेखनश्च वीर्योष्णः पित्तदूषणः ।
स्वाद्वम्ललवणस्तेषां गजः श्लेष्मानिलापहः ॥ ९६ ॥
गवयस्य तु मांसं हि स्निग्धं मधुरकासजित् ।
विपाके मधुरं चापि व्यवायस्य तु वर्द्धनम् ॥ ९७ ॥
स्निग्धोष्णमधुरो वृष्यो महिषस्तर्पणो गुरुः ।
निद्रापुंस्त्वबलस्तन्यवर्द्धनो मांसदार्ढ्यकृत् ॥ ९८ ॥
रुरोर्मांसं समधुरं कषायानुरसं स्मृतम् ।
वातपित्तोपशमनं गुरु शुक्रविवर्द्धनम् ॥ ९९ ॥
तथा चमरमांसन्तु स्निग्धं मधुरकासजित् ।
विपाके मधुरं चापि वातपित्तप्रणाशनम् ॥ १०० ॥
सृमरस्य तु मांसञ्च कषायानुरसं स्मृतम् ।
वातपित्तोपशमनं गुरु शुक्रविवर्द्धनम् ॥ १०१ ॥
स्वेदनं बृंहणं वृष्यं शीतलं तर्पणं गुरु ।
श्रमानिलहरं स्निग्धं वाराहं बलवर्द्धनम् ॥ १०२ ॥
कफघ्नं खड्गिपिशितं कषायमनिलापहम् ।
पित्र्यं पवित्रमायुष्यं बद्धमूत्रं विरूक्षणम् ॥ १०३ ॥

---

१ रुरुः=शरदि शृङ्गत्यागी मृगभेदः। तल्लक्षणम्—"विकटबहुविषाणः शम्बरा-
कारदेहः सलिलतटचरत्वाच्छम्बरेभ्यो विचित्रः। त्यजति शरदि शृङ्गं रौत्यतोऽसौ रुरुः
स्यात् पृथुलमृगविशेषः प्रायशश्चेदिदेशे ॥" इति। २ कालपुच्छकः=कृष्णपुच्छको
मृगभेदः, "रूपैरेणसमः कालपुच्छो मुनिभिरीरितः" इति तल्लक्षणम्। उद्रः='उदवि-
लाव' इति ख्यातः, न्यङ्कुः=बहुशृङ्गो मृगभेदः। ३ कूलचराणां सामान्यगुणमभिदधा-
ति—**वातेति**। ४ लेखनः=शरीरकृशकारकः। ५ व्यवायस्य=मैथुनस्य। ६ पितृ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोकर्णमांसं मधुरं स्निग्धं मृदु कफावहम् ।
विपाके मधुरञ्चापि रक्तपित्तविनाशनम् ॥ १०४ ॥

हंससारसक्रौञ्चचक्रवाककुररकादम्बकारण्डवजीवञ्जीवकबकबलाकापुण्डरीकप्लवशरारीमुखनान्दीमुखमद्गूत्क्रोशकाचाक्षमल्लिकाक्षशुक्लाक्षपुष्करशायिकाकोनालकाम्बुकुक्कुटिका मेघरावश्वेतवारलप्रभृतयः प्लवाः सङ्घातचारिणः ॥ १०५ ॥

रक्तपित्तहराः शीताः स्निग्धा वृष्या मरुज्जितः ।
सृष्टमूत्रपुरीषाश्च मधुरा रसपाकयोः ॥ १०६ ॥
गुरूष्णमधुरः स्निग्धः स्वरवर्णबलप्रदः ।
बृंहणः शुक्रलस्तेषां हंसो वातविकारनुत् ॥ १०७ ॥

शङ्खशङ्खनखशुक्तिशम्बूकभल्लूकप्रभृतयः कोषस्थाः ॥ १०८ ॥
कूर्मकुम्भीरकर्कटकृष्णकर्कटकशिशुमारप्रभृतयः पादिनः ॥१०९॥
शङ्खकूर्मादयः स्वादुरसपाका मरुन्नुदः ।
शीताः स्निग्धा हिताः पित्ते वर्चस्याः श्लेष्मवर्द्धनाः ॥११०॥

---

भ्यो हितं पित्र्यम्, 'खड्गामिषम्' इति स्मृत्युक्तप्रामाण्येनास्य मांसं श्राद्धे पितॄणां हितकरमित्यर्थः ।

१ कादम्बः=कलहंसः, कारण्डवः=शुक्रहंसभेदः, जीवं जीवयतीति बाहुलकात् खच्; जीवञ्जीवकः=यो विषदर्शनमात्रेण ग्लायति म्रियते वा स पक्षिविशेषः । राजानोऽन्नादौ विषसत्तापरिज्ञानायैनं पालयन्तिस्म । जीवञ्जीवकश्चकोर इति शब्दार्थचिन्तामणिः । बकः='बगला' इति प्रसिद्धः, बलाका=क्षुद्रबकः, पुण्डरीकः=कमलनयनो हंसभेदः, प्लवः=हंसभेदः, शरारीमुखः=दीर्घचञ्चुः खादिरवर्णः पक्षिविशेषः, नन्दीमुखः=आटीभेदः । अस्य लक्षणम्—"स्थूला कठोरा वृत्ता च यस्याश्चञ्चूपरिस्थिता । गुटिका चञ्चुसदृशी ज्ञेया नन्दीमुखीति सा ॥" इति । मद्गुः— जलकाकः, उत्क्रोशः—कुररभेदः, काचाक्षः=बृहद्बकः, मलिकाक्षः=मल्लिकाकारमक्षि यस्य स लोहितचञ्चुचरणः कृष्णवर्णो हंसप्रभेदः, शुक्लाक्षपुष्करशायिके तद्भेदौ, कोनालकः=श्वेतोदरश्यामपृष्ठपानीयवर्त्तिका, अम्बुकुक्कुटिका=जलकुक्कुटी, मेघरावः=चातकः, श्वेतवारलः=ज्येष्ठबलाका । 'श्वेतचरण' इति पाठः ।

२ सङ्घातचारिणां प्लवानां सामान्यगुणमाह—**रक्तेति** । ३ शङ्खनखः=क्षुद्रशङ्खः, शुक्तिः='सीप' इति प्रसिद्धा, शम्बूकः='घोंघा' इति ख्यातः, भल्लूकः=कपर्दकः । ४ कोशस्थानां पादिनां च सामान्यगुणं दर्शयति—**शङ्खेति** । ५ वर्च-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कृष्णकर्कटकस्तेषां बल्यः [1]कोष्णोऽनिलापहः ।
शुक्लः सन्धानकृत् सृष्टविण्मूत्रोऽनिलपित्तहा ॥ १११ ॥
मत्स्यास्तु द्विविधाः—नादेयाः सामुद्राश्च ॥ ११२ ॥
तत्र नादेयाः—रोहितपाठीनपाटलाराजीववर्मिगोमत्स्यकृष्ण-[2]मत्स्यवागुज्जारमुरलसहस्रदंष्ट्रप्रभृतयो नादेयाः ॥ ११३ ॥
नादेया मधुरा मत्स्या गुरवो मारुतापहाः ।
रक्तपित्तकराश्चोष्णा वृष्याः स्निग्धाल्पवर्चसः ॥ ११४ ॥
कषायानुरसस्तेषां शष्पशैवाल[3]भोजनः ।
रोहितो मारुतहरो नात्यर्थं पित्तकोपनः ॥ ११५ ॥
पाठीनः श्लेष्मलो वृष्यो निद्रा[4]लुः पिशिताशनः ।
दूषयेद्रक्तपित्तं तु कुष्ठरोगं करोत्यसौ ।
मुरलो बृंहणो वृष्यः स्तन्यश्लेष्मकरस्तथा ॥ ११६ ॥
सरस्तडागसम्भूताः स्निग्धाः स्वादुरसाः स्मृताः ।
महाह्रदेषु बलिनः, स्वल्पेऽम्भस्यबलाः स्मृताः ॥ ११७ ॥
तिमितिमिङ्गिलकुलिशपाकमत्स्यनिरुलरुनन्दिवारलकमकरग-[5]रकचन्द्रकमहामीनराजीवप्रभृतयः सामुद्राः ॥ ११८ ॥
सामुद्रा गुरवः स्निग्धा मधुरा नातिपित्तलाः ।
उष्णा वातहरा वृष्या वर्चस्याः श्लेष्मवर्धनाः ॥ ११९ ॥
बलावहा विशेषेण मांसाशित्वात् समुद्रजाः ।
समुद्रजेभ्यो नादेया बृंहणत्वाद् गुणोत्तराः ॥ १२० ॥
तेषामप्यनिलघ्नत्वाच्चौण्ट्यकौप्यौ गुणोत्तरौ ।
स्निग्धत्वात् स्वादुपाकत्वात्तयोर्वाप्या गुणाधिकाः ॥१२१॥

---

स्याः = पुरीषकराः वृष्या वा; "कूर्मो वातहरो वृष्यः" इति तन्त्रान्तरस्मरणात् ।
१ कोष्णः = किञ्चिदुष्णः । २ कृष्णमत्स्यः = 'सिंगी' इति ख्यातः । तदुक्तम्—"कृष्णमत्स्यस्तु शकली बहुकण्टकसंयुतः । कषायवर्णो रक्ताक्षः कथितो मत्स्यवेदिभिः ॥" इति । ३ शष्पं शैवालं च भोजनं यस्य स शष्पशैवालभोजनः । 'शष्पं बालतृणं घासः' इत्यमरः । ४ निद्रालुः = निद्रोत्पादकः, पिशिताशनः = मांसाशित्वेन पुष्टिकर इति भावः । ५ पार्श्वेषु कण्टकवलयितो वर्तुलो मत्स्यश्चन्द्रकः ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नादेया गुरवो मध्ये यस्मात् पुच्छास्यचारिणः[1]।
सरस्तडागजानां तु विशेषेण शिरो लघु ॥ १२२ ॥
अदूरगोचरा[2] यस्मात् तस्मादुत्सोदपानजाः।
किञ्चिन्मुक्त्वा शिरोदेशमत्यर्थं गुरवस्तु ते ॥ १२३ ॥
अधस्ताद् गुरवो ज्ञेया मत्स्याः सरसिजाः स्मृताः।
उरोविचरणात्तेषां पूर्वमङ्गं लघु स्मृतम् ॥ १२४ ॥
इत्यानूपो महाभिष्यन्दि[3]मांसवर्गो व्याख्यातः ॥ १२५ ॥

तत्र[4] शुष्कपूतिव्याधितविषसर्पहतदिग्ध[5]विद्धजीर्णकृशबालानामसात्म्यचारिणां[6] च मांसान्यभक्ष्याणि, यस्माद्विगतव्यापन्नापहतपरिणतालपासम्पूर्णवीर्यत्वाद्दोषकराणि भवन्ति; एभ्योऽन्येषामुपादेयं[7] मांसमिति ॥ १२६ ॥

अरोचकं प्रतिश्यायं गुरु शुष्कं प्रकीर्त्तितम्।
विषव्याधिहतं मृत्युं बालं छर्दिञ्च कोपयेत् ॥ १२७ ॥
कासश्वासकरं वृद्धं त्रिदोषं व्याधिदूषितम्।
क्लिन्न[8]मुत्क्लेशजननं कृशं वातप्रकोपणम् ॥ १२८ ॥

स्त्रियश्चतुष्पात्सु पुमांसो विहङ्गेषु, महाशरीरेष्वल्पशरीरा, अल्पशरीरेषु महाशरीराः प्रधानतमाः। एवमेकजातीयानां महाशरीरेभ्यः कृशशरीराः प्रधानतमाः ॥ १२९ ॥

---

१ पुच्छेनास्येन चरन्तीति ते पुच्छास्यचारिणः।

२ अदूरगोचराः=अदूरविषयाः, स्वल्पदेशप्रचारा इत्यर्थः। उत्सोदपानजाः=पर्वतनिर्झरसम्भवाः। ३ महाभिष्यन्दि=दोषधातुमलस्रोतसामतिशयक्लेदकारीत्यर्थः। तदुक्तम्—"हृदयस्थान्ननिर्यासवाहिस्रोतोमुखानि यत्। भुक्तं लिम्पति पैच्छिल्यादभिष्यन्दि तदुच्यते ॥ वैशद्यात्कफहन्तृत्वात्तान्येव विवृणोति यत्। तदुक्तमनभिष्यन्दि द्रव्यं द्रव्यविशारदैः ॥" इति। ४ अनुपादेयानि मांसानि निर्दिशति—**तत्रेति**। ५ दिग्धः=विषाक्तः, विद्धः=बाणादिविद्धः, जीर्णः=वृद्धः। ६ असात्म्यचारिणाम्=अस्वास्थ्यकराहारशीलानामित्यर्थः। ७ "सद्योहतं वयःस्थं च शुद्धं मुरभि शस्यते" इत्यष्टाङ्गसङ्ग्रहोक्तम्। अपि च—"मुहूर्तात्तदुपादेयं प्रहारदंशवर्जितम्" इति। ८ क्लिन्नं=पूतिभावमापन्नम्, उत्क्लेशजननम्=उत्क्लेदकारकम्। ९ महाशरीरेषु=गजादिषु मध्ये अल्पशरीरास्तज्जातीया गजादयः, अल्पशरीरेषु नकुलादिषु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानादिकृतं मांसस्य गुरुलाघवमुपदेक्ष्यामः । तद्यथा—रक्तादिषु शुक्रान्तेषु धातुषूत्तरोत्तरा गुरुतरास्तथा सक्थिस्कन्धक्रोडशिरःपादकरकटीपृष्ठचर्मकालेयकयकृदन्त्राणि ॥ १३० ॥

शिरः स्कन्धं कटी पृष्ठं सक्थिनी चात्मपक्षयोः ।
गुरुपूर्वं विजानीयाद्धातवस्तु यथोत्तरम् ॥ १३१ ॥
सर्वस्य प्राणिनो देहे मध्यो गुरुरुदाहृतः ।
पूर्वभागो गुरुः पुंसामधोभागस्तु योषिताम् ॥ १३२ ॥
उरोग्रीवं विहङ्गानां विशेषेण गुरु स्मृतम् ।
पक्षोत्क्षेपात्समो दिष्टो मध्यभागस्तु पक्षिणाम् ॥ १३३ ॥
अतीव रूक्षं मांसं तु विहङ्गानां फलाशिनाम् ।
बृंहणं मांसमत्यर्थं खगानां पिशिताशिनाम् ॥ १३४ ॥
मत्स्याशिनां पित्तकरं वातघ्नं धान्यचारिणाम् ।
जलजानूपजा ग्राम्या क्रव्यादैकशफास्तथा ॥ १३५ ॥
प्रसहा बिलवासाश्च ये च जङ्गालसंज्ञिताः ।
प्रतुदा विष्किराश्चैव लघवः स्युर्यथोत्तरम् ।
अल्पाभिष्यन्दिनश्चैव यथापूर्वमतोऽन्यथा ॥ १३६ ॥

प्रमाणाधिकास्तु स्वजातौ चाल्पसारा गुरवश्च । सर्वप्राणिनां सर्वशरीरेभ्यो ये प्रधानतमा भवन्ति यकृत्प्रदेशवर्त्तिनस्तानाददीत । प्रधानालाभे मध्यमवयस्कं सद्यस्कमक्लिष्टमुपादेयं मांसमिति ॥ १३७ ॥

भवति चात्र ।

चरः शरीरावयवाः स्वभावो धातवः क्रियाः ।

---

मध्ये महाशरीरा अतितरां परिपुष्टशरीरा इत्यर्थः । १ कालेयकः=यकृत्सन्निहितत्वाद् वृक्कम् । २ आत्मपक्षयोः=स्वांशयोः । ३ धातवो रक्तादयो यथोत्तरं गुरव इत्यर्थः । ४ पिशिताशिनां=मांसभक्षिणाम्, श्येनादीनामित्यर्थः । ५ मत्स्याशिनाम्=उत्क्रोशाख्यकुररप्रभेदादीनाम् ।

६ प्रमाणाधिकाः=अयथोपचितशरीराः । ७ यकृत्प्रदेशे दीर्घाकारा मांसवर्तय इत्यर्थः । ८ मांसस्य गुरुलाघवनिर्णये परीक्षणीयान् विषयान् उपसंहरति—चर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिङ्गं प्रमाणं संस्कारो मात्रा चास्मिन् परीक्ष्यते ॥ १३८ ॥

इति मांसवर्गः ।

---

अथ फलवर्गः—

अत ऊर्ध्वं फलान्युपदेक्ष्यामः । तद्यथा—दाडिमामलकबदर[1]-कोलकर्कन्धुसौवीरसिञ्चितिकाफलकपित्थमातुलुङ्गाम्राम्रातककरमर्दप्रियालनारङ्गजम्बीरलकुचभव्यपारावतवेत्रफलप्राचीनामलकतिन्तिडीकनीपकोशाम्राम्लीकाप्रभृतीनि ॥ १३९ ॥

अम्ल[2]ानि रसतः पाके गुरूण्युष्णानि वीर्यतः ।
पित्तलान्यनिलघ्नानि कफोत्क्लेशकराणि च ॥ १४० ॥
कषायानुरसं तेषां दाडिमं नातिपित्तलम् ।
दीपनीयं रुचिकरं हृद्यं वर्चोविबन्धनम् ॥ १४१ ॥
द्विविधं तत्तु विज्ञेयं मधु[3]रं चाम्लमेव च ।

---

इति । चरः=आहारो विहारश्च, किमयमाहरति क च विहरतीत्येवं चरादीन् परीक्ष्य मांसेषु गुरुलाघवं वाच्यमित्यर्थः । तत्राहारः—"शष्पशैवालभोजना" इति, विहारः—"अतीवासन्ननिलया" इत्यादिना पूर्वं च प्रतिपादितः शरीरावयवादिष्वप्येवं निदर्शनान्यनुसन्धेयानि ।

इति मांसवर्गः ।

---

अथ फलवर्गः—

१ बदरकोलकर्कन्धुसौवीरसिञ्चितिका इति पञ्च बदरप्रभेदाः । तत्र बदरं महाकारम्, कोलं मध्यप्रमाणम्, कर्कन्धुः अल्पम्, सौवीरम् आमपक्वावस्थासु मधुरं मरुदेशजम्, सिञ्चितिकाफलं 'सेव' इति नाम्ना ख्यातम्, कपित्थं प्रसिद्धम्, मातुलुङ्गं=बीजपूरकः, आम्रं प्रसिद्धम् । आम्रातकम् 'आमड़ा' इति ख्यातम्, करमर्दः='करौंदा' इति प्रियालः='जिरौंजी' इति, नारङ्गः='नारंगी' इति, जम्बीरः='जंबीरीनींबू' इति, लकुचः='बड़हर' इति, भव्यं='कमरख' इति, पारावतः=धवललोहितं मधुराम्लं फलं कामरूपदेशजम्, वेत्रफलं=पद्मबीजसदृशम्, प्राचीनामलकं=पानीयामलकं प्राग्देशजातम्, तिन्तिडीकं=वृक्षाम्लम्, नीपं=कदम्बफलम्, कोशाम्रं=बहुकीटमाम्रफलम्, अम्लीका=तिन्तिडीभेदः ।

२ दाडिमादिफलानां सामान्यगुणमाह—**अम्लानीति** । ३ मधुररसोत्कटं मधु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिदोषघ्नं तु मधुरमम्लं वातकफापहम् ॥ १४२ ॥
अम्लं समधुरं तिक्तं कषायं कटुकं सरम् ।
चक्षुष्यं[1] सर्वदोषघ्नं वृष्यमामलकीफलम् ॥ १४३ ॥
हन्ति वातं तदम्लत्वात्[2] पित्तं माधुर्यशैत्यतः ।
कफं रूक्षकषायत्वात् फलेभ्योऽभ्यधिकं च तत् ॥ १४४ ॥
कर्कन्धुकोलबदरमामं[3] पित्तकफावहम् ।
पक्वं पित्तानिलहरं स्निग्धं समधुरं सरम् ॥ १४५ ॥
पुरातनं तृट्शमनं श्रमघ्नं दीपनं लघु ।
सौवीरं बदरं स्निग्धं मधुरं वातपित्तजित् ॥ १४६ ॥
कषायं स्वादु सङ्ग्राहि शीतं सिञ्चितिकाफलम् ।
आमं कपित्थमस्वर्यं कफघ्नं ग्राहि वातलम् ॥ १४७ ॥
कफानिलहरं पक्वं मधुराम्लरसं गुरु ।
श्वासकासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम् ॥ १४८ ॥
लघ्वम्लं दीपनं हृद्यं मातुलुङ्गमुदाहृतम् ।
त्वक् तिक्ता दुर्जरा[4] तस्य वातकृमिकफापहा ॥ १४९ ॥
स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं मांसं[5] मारुतपित्तजित् ।
मेध्यं[6] शूलानिलच्छर्दिकफारोचकनाशनम् ॥ १५० ॥
दीपनं लघु सङ्ग्राहि गुल्मार्शोघ्नं तु केसरम्[7] ।
शूलाजीर्णविबन्धेषु[8] मन्देऽग्नौ कफमारुते ॥ १५१ ॥
अरुचौ च विशेषेण रसस्तस्योपदिश्यते ।
पित्तानिलकरं बालं पित्तलं बद्धकेसरम्[9] ॥ १५२ ॥
हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम् ।
कषायानुरसं स्वादु वातघ्नं बृंहणं गुरु ॥ १५३ ॥

---

रम्, अम्लरसोत्कटमम्लम् । १ चक्षुषे हितं चक्षुष्यं नेत्रहितकरम् । २ "सर्वं पित्तलमम्लम्" इति चरकः । ३ आमम् = अपक्वम् । ४ दुर्जरा = दुःखेन पाकपरिणामा । ५ मांसं = कटाहं, मातुलुङ्गस्याभ्यन्तरस्थान्त्रवद्भागमित्यर्थः । ६ मेधायै हितं मेध्यं बुद्धिवर्द्धकम् । ७ केसरं = बीजपूरान्तर्गतरसकोशः । ८ विबन्धः = मलावरोधः । ९ बद्धकेसरं = अपरिणतत्वेन संश्लिष्टतन्तुजालम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पित्ताविरोधि[1] सम्पक्कमाम्रं शुक्रविवर्द्धनम् ।
बृंहणं मधुरं बल्यं गुरु विष्टम्भ्य जीर्यति ॥ १५४ ॥
आम्रातकफलं वृष्यं सस्नेहं श्लेष्मवर्द्धनम् ।
त्रिदोषविष्टम्भकरं लकुचं शुक्रनाशनम् ॥ १५५ ॥
अम्लं तृष्णापहं रुच्यं पित्तकृत् करमर्दकम् ।
वातपित्तहरं वृष्यं प्रियालं गुरु शीतलम् ॥ १५६ ॥
हृद्यं स्वादु कषायाम्लं भव्यमास्यविशोधनम् ।
पित्तश्लेष्महरं ग्राहि गुरु विष्टम्भि शीतलम् ॥ १५७ ॥
पारावतं समधुरं रुच्यमत्यग्निवातनुत् ।
गरदोषहरं नीपं प्राचीनामलकं[2] तथा ॥ १५८ ॥
वातापहं तिन्तिडीकमामं पित्तबलासकृत् ।
ग्राह्युष्णं दीपनं रुच्यं सम्पक्कं कफवातनुत् ॥ १५९ ॥
तस्मादल्पान्तरगुणं कोशाम्रफलमुच्यते ।
अम्लीकायाः फलं पक्कं तद्वद्भेदि तु केवलम् ॥ १६० ॥
अम्लं समधुरं हृद्यं विशदं भक्तरोचनम् ।
वातघ्नं दुर्जरं प्रोक्तं नारङ्गस्य फलं गुरु[3] ॥ १६१ ॥
तृष्णाशूलकफोत्क्लेशौ[4]च्छर्दिश्वासनिवारणम् ।
वातश्लेष्मविबन्धघ्नं जम्बीरं गुरु पित्तकृत् ।
ऐरावतं दन्तशठमम्लं शोणितपित्तकृत् ॥ १६२ ॥
क्षीरवृक्षफलजाम्बवराजादनतोदनशीतफलतिन्दुकबकुलधन्वना-[5]

---

१ पित्ताविरोधि=ईषत् पित्तशमनम् । २ प्राचीनामलकं=पानीयामलकम् । ३ गुरु=चिरपाकि । ४ उत्क्लेशः=हृदयोक्लेदः ।

५ क्षीरवृक्षाः—"न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसाः" इति । अत्र वेतसस्थाने आम्रातकस्यैव व्यवहार इत्युन्नेयम् । जाम्बवं=जम्बूफलम्, राजादनं=क्षीरिणीफलम्, लोके—'खिरनी' इति ख्यातम् । तोदनं=राजप्रियम्, राजपलाण्डुरिति यावत् । रावणाम्लिकेत्यन्ये । शीतफलं=काश्मीराम्लिका, तिन्दुकः=तिन्दुकभेदः कालसारः, बकुलः='मौलसरी' इति ख्यातस्य फलम्, धन्वनं='धामन' इति ख्यातस्य फलम्, अदमन्तकः=अम्लोटकफलम्, अश्वकर्णम्=अश्वत्थसदृशशालविशेषस्य फलम्, फल्गु=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्मन्तकाश्वकर्णफल्गुपरूषकगाङ्गेरुकीपुष्करवर्तिबिल्वबिम्बीप्रभृतीनि ॥ १६३ ॥

फलान्येतानि[1] शीतानि कफपित्तहराणि च ।
सङ्ग्राहकाणि रूक्षाणि कषायमधुराणि च ॥ १६४ ॥
क्षीरवृक्षफलं तेषां गुरु विष्टम्भि शीतलम् ।
कषायं मधुरं साम्लं नातिमारुतकोपनम् ॥ १६५ ॥
अत्यर्थं वातलं ग्राहि[2] जाम्बवं कफपित्तजित् ।
स्निग्धं स्वादु कषायं च राजादनफलं गुरु ॥ १६६ ॥
कषायं मधुरं रूक्षं तोदनं कफवातजित् ।
अम्लोष्णं लघु सङ्ग्राहि स्निग्धं पित्ताग्निवर्द्धनम् ॥ १६७ ॥
आमं कषायं सङ्ग्राहि तिन्दुकं वातकोपनम् ।
विपाके गुरु सम्पक्वं मधुरं कफपित्तजित् ॥ १६८ ॥
मधुरं च कषायं च स्निग्धं सङ्ग्राहि बाकुलम् ।
स्थिरीकरं च दन्तानां विशदं फलमुच्यते ॥ १६९ ॥
सकषायं हिमं स्वादु धान्वनं कफवातजित् ।
तद्वद् गाङ्गेरुकं विद्यादश्मन्तकफलानि च ॥ १७० ॥
विष्टम्भि मधुरं स्निग्धं फल्गुजं तर्पणं गुरु ।
अत्यम्लमीषन्मधुरं कषायानुरसं लघु ॥ १७१ ॥
वातघ्नं पित्तजननमामं विद्यात् परूषकम् ।
तदेव पक्वं मधुरं वातपित्तनिबर्हणम् ॥ १७२ ॥
विपाके मधुरं शीतं रक्तपित्तप्रसादनम् ।
पौष्करं[3] स्वादु विष्टम्भि बल्यं कफकरं गुरु ॥ १७३ ॥
कफानिलहरं तीक्ष्णं स्निग्धं सङ्ग्राहि दीपनम् ।

---

काकोदुम्बरिकाफलम्, 'कठूमर' इति लोके, 'अंजीर' इत्यन्ये । परूषकः='फालसा' इति ख्यातः, गाङ्गेरुकी=नागबलाफलम्, बिल्वः प्रसिद्धः, बिम्बी=कुन्दरुः । १ एषां सामान्यगुणं वक्ति—फलानीति । २ "सङ्ग्राहि मूत्रशुक्रतोः" इति वाग्भटोक्त्या मलमूत्रसङ्ग्राहकमित्यर्थः । ३ पौष्करं=पद्मादिफलम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कटुतिक्तकषायोष्णं बालं बिल्वमुदाहृतम् ॥ १७४ ॥
विद्यात् तदेव सम्पक्वं मधुरानुरसं गुरु ।
विदाहि विष्टम्भकरं दोषकृत् पूतिमारुतम्[1] ॥ १७५ ॥
बिम्बीफलं साश्वकर्णं स्तन्यकृत् कफपित्तजित् ।
तृड्दाहज्वरपित्तासृक्कासश्वासक्षयापहम् ॥ १७६ ॥
तालनारिकेलपनसमौचप्रभृतीनि[2] ॥ १७७ ॥
स्वादुपाकरसान्याहुर्वातपित्तहराणि[3] च ।
बलप्रदानि स्निग्धानि बृंहणानि हिमानि च ॥ १७८ ॥
फलं स्वादुरसं तेषां तालजं गुरु पित्तजित् ।
तद्बीजं[4] स्वादुपाकं च मूत्रलं वातपित्तजित् ॥ १७९ ॥
नारिकेरं गुरु स्निग्धं पित्तघ्नं स्वादु शीतलम् ।
बलमांसप्रदं हृद्यं बृंहणं बस्तिशोधनम् ॥ १८० ॥
पनसं सकषायं तु स्निग्धं स्वादुरसं गुरु ।
मौचं स्वादुरसं प्रोक्तं कषायं नातिशीतलम् ।
रक्तपित्तहरं वृष्यं रुच्यं श्लेष्मकरं गुरु ॥ १८१ ॥
द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरमधूकपुष्पप्रभृतीनि[5] ॥ १८२ ॥
रक्तपित्तहराण्याहुर्गुरूणि मधुराणि च ।
तेषां द्राक्षा सरा स्वर्या मधुरा स्निग्धशीतला ॥ १८३ ॥
रक्तपित्तज्वरश्वासतृष्णादाहक्षयापहा[6] ।
हृद्यं मूत्रविबन्धघ्नं पित्तासृग्वातनाशनम् ॥ १८४ ॥
केश्यं रसायनं मेध्यं काश्मर्यं फलमुच्यते[7] ।

---

१ पूतिमारुतं=दुर्गन्धाधोवायुप्रवर्तकम्, पूतिः सुगन्धिर्मारुतो यस्येति तत् पूतिमारुतम् । पूतिशब्दोऽयं सुगन्धिवाची । यथा—पूतिः खट्वाशः, वनजा मधुकर्कटी पूतिपुष्पेति सुगन्धिपुष्पेत्यर्थ इति डल्हणः । २ पनसः= 'कटहल'इति प्रसिद्धः; मौचं=कदलीफलम् । ३ तालादीनां सामान्यगुणं दर्शयति—**स्वाद्विति** । ४ तद्बीजं=तालबीजम् । ५ काश्मर्यं=गम्भारीफलम्, खर्जूरं=वृक्षविटपप्रभेदेन 'खजूर' 'छोहारा'इति ख्यातम्, मधूकपुष्पं=गुडपुष्पकुसुमम्, मधूकफलगुणसाम्याद् मधूकपुष्पस्योपदेशः । ६ द्राक्षाऽऽदीनां सामान्यं गुणं निर्दिशति—**रक्तेति** । ७ मूत्रविबन्धघ्नं=मूत्रावरोधहरम् । ८ रसादीनां धातूनामय-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


क्षतक्षयापहं हृद्यं शीतलं तर्पणं गुरु ॥ १८५ ॥
रसे पाके च मधुरं स्वार्जूरं रक्तपित्तजित् ।
बृंहणीयमहृद्यं च मधूककुसुमं गुरु ।
वातपित्तोपशमनं फलं तस्योपदिश्यते ॥ १८६ ॥
[1]वातामाक्षोडाभिषुकनिचुलपिचुलपिचुनिकोचकोरुमाणप्रभृतीनि १८७
[2]पित्तश्लेष्महराण्याहुः स्निग्धोष्णानि गुरूणि च ।
बृंहणान्यनिलघ्नानि बल्यानि[3] मधुराणि च ॥ १८८ ॥
कषायं कफपित्तघ्नं किञ्चित्तिक्तं रुचिप्रदम् ।
हृद्यं सुगन्धि विशदं लवलीफलमुच्यते[4] ॥ १८९ ॥
वसिरं[5] शीतपाक्यं च सारुष्करनिबन्धनम् ।
विष्टम्भि दुर्जरं रूक्षं शीतलं वातकोपनम् ॥ १९० ॥
विपाके मधुरं चापि रक्तपित्तप्रसादनम् ।
ऐरावतं[6] दन्तशठमम्लं शोणितपित्तकृत् ॥ १९१ ॥
शीतं कषायं मधुरं टङ्कं[7] मारुतकृद् गुरु ।
स्निग्धोष्णं तिक्तमधुरं वातश्लेष्मघ्नमैङ्गुदम्[8] ॥ १९२ ॥
शमीफलं[9] गुरु स्वादु रूक्षोष्णं केशनाशनम् ।
गुरु श्लेष्मातकफलं[10] कफकृन्मधुरं हिमम् ॥ १९३ ॥
करीराक्षिकपीलूनि[11] तृणशून्यफलानि च ।

---

नमाप्यायनरूपं रसायनम्। १ वातामं 'बादाम'इति, अक्षोडं='अखरोट'इति, अभिषुकः='अंगूर'इति, निचुलं='चिलगोजा'इति, पिचु=पिचुकम्, निकोचकं='पिस्ता' इति, उरुमाणं='नासपाती'इति। प्रभृतिग्रहणाल्लवलीफलादीनि ग्राह्याणि। २ वातादीनां सामान्यगुणमभिदधाति—**पित्तेति**। ३ बल्यानि=बलकराणि।

४ लवलीफलं='हरफारेवड़ी'इति ख्यातम्। तल्लक्षणम्—"घनस्निग्धा हरितांशुः प्रपुन्नाटसदृक्च्छदा। सुगन्धिमूला लवली पाण्डुकोमलवल्कला॥"इति। ५ वसिरं=सूर्यावर्तफलम्, शीतपाक्यं=बलाफलम्, अरुष्करनिबन्धनं भल्लातकवृन्तं तेन सह वर्तमानमिति सारुष्करनिबन्धनम्। ६ ऐरावतं=कृष्णलोहितालपफला ऐरावणिका, दन्तशठं=जम्बीरभेदम्। ७ टङ्कं=नीलकपित्थफलम्। ८ ऐङ्गुदम्=इङ्गुदीफलम्। ९ शमीफलं=सङ्करम्। १० श्लेष्मातकफलं='लिसोड़ा'इति ख्यातस्य फलम्। ११ करीरः=मरुदेशजातः कण्टकीवृक्षः, आक्षिकम्=अक्षिकीफलम्, पीलु=पीलुफ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्वादुतिक्तकटूष्णानि कफवातहराणि च ॥ १९४ ॥
तिक्तं पित्तकरं तेषां सरं कटुविपाकि च ।
तीक्ष्णोष्णं कटुकं पीलु सस्नेहं कफवातजित् ॥ १९५ ॥
आरुष्करं[1] तौवरकं कषायं कटुपाकि च ।
उष्णं क्रिमिज्वरानाहमेहोदावर्त्तनाशनम् ।
कुष्ठगुल्मोदरार्शोघ्नं कटुपाकि तथैव च ॥ १९६ ॥
अङ्कोलस्य फलं विस्रं गुरुश्लेष्महरं हिमम् ।
करञ्जकिंशुकारिष्ट[2]फलं जन्तुप्रमेहनुत् ॥ १९७ ॥
रूक्षणोष्णं कटुकं पाके लघु वातकफापहम् ।
तिक्तमीषद्विषहितं विडङ्गं कृमिनाशनम् ॥ १९८ ॥
त्रण्यमुष्णं सरं मेध्यं दोषघ्नं शोफकुष्ठनुत् ।
कषायं दीपनं चाम्लं चक्षुष्यं चाभ[3]याफलम् ॥ १९९ ॥
भेदनं लघु रूक्षोष्णं वैस्वर्य्यं क्रिमिनाशनम् ।
चक्षुष्यं स्वादुपाक्याँक्षं[4] कषायं कफपित्तजित् ॥ २०० ॥
कफपित्तहरं रूक्षं वक्त्रक्लेदमलापहम् ।
कषायमीषन्मधुरं किञ्चित् पूगफलं सरम् ॥ २०१ ॥
जातीकोशोऽथ[5] कर्पूरं जातीकटुकयोः फलम् ।
कक्कोलकं लवङ्गं च तिक्तं कटु कफापहम् ॥ २०२ ॥
लघु तृष्णापहं वक्त्रक्लेददौर्गन्ध्यनाशनम् ।
सतिक्तः सुरभिः शीतः कर्पूरो लघु लेखनः ॥ २०३ ॥
तृष्णायां मुखशोषे च वैरस्ये चापि पूजितः ।
लताकस्तूरिका[6] तद्वच्छीता बस्तिविशोधनी ॥ २०४ ॥
प्रियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ।
बैभीतको मदकरः कफमारुतनाशनः ॥ २०५ ॥

---

लम्, तृणशून्यं = मल्लिका । १ आरुष्करं = भल्लातकम्, तौवरकं = तुवरकफलं प्रमेहचिकित्सिते प्रोच्यमानम् । २ अरिष्टः = निम्बः । ३ अभयाफलं हरीतकीफलम् । ४ आक्षं = बिभीतकफलम् । ५ जातीकोशः = जावित्री । जातीकोशादीनां फलेतरत्वे सत्यपि गुणसाम्यादुपपादनम् । कटुकः = कक्कोलः । ६ लताकस्तूरिकाफ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कषायमधुरोमज्जा कोलानां[1] पित्तनाशनः ।
तृष्णाच्छर्द्यनिलघ्नश्च तद्वदामलकस्य च ॥ २०६ ॥
बीजपूरकशम्याकमज्जा कोशाम्रसम्भवः ।
स्वादुपाकोऽग्निबलकृत् स्निग्धः पित्तानिलापहः ॥ २०७ ॥
यस्य यस्य फलस्येह वीर्यं भवति यादृशम् ।
तस्य तस्यैव वीर्येण मज्जानमपि निर्दिशेत् ॥ २०८ ॥
फलेषु परिपक्वं यद् गुणवत्तदुदाहृतम् ।
बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणोत्तरम् ।
ग्राह्युष्णं दीपनं तद्धि कषायं कटु तिक्तकम् ॥ २०९ ॥
व्याधितं[2] कृमिजुष्टं च पाकातीतमकालजम् ।
वर्जनीयं फलं सर्वमपर्यागतमेव च ॥ २१० ॥

इति फलवर्गः ।

शाकान्यत ऊर्ध्वं[3] वक्ष्यामः । तत्र पुष्पफलालाबुकालिन्दकप्रभृतीनि[4] ॥ २११ ॥

पित्तघ्नान्यनिलं कुर्युस्तथा मन्दकफानि च ।

---

लमिति तात्पर्यम् । १ बहुवचननिर्देशात् कोलसजातीयानां बदरादीनामित्यर्थः ।

२ त्याज्यफलानि दर्शयति–व्याधितमिति । व्याधितत्वमाकृतिवैकृत्या बोध्यम् । कृमिजुष्टं=कृमिसेवितम्, पाकातीतम्=अतिपक्वम्, अकालजं यथास्वकालेऽनुत्पन्नम्, अपर्याप्तम्=अपरिपक्वम् ।

इति फलवर्गः ।

अथ शाकवर्गः—

३ "मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकम् । त्वक् पुष्पं कवकं चैव शाकं दशविधं स्मृतम्" ॥ इत्युक्तानि बोध्यानि । ४ पुष्पफलं=कूष्माण्डम्, इदं लताफलेषु श्रेष्ठम् । तदुक्तं राजनिघण्टौ–"कूष्माण्डं प्रवरं वदन्ति भिषजो वल्लीफलानां पुनः" । अलाबू=दीर्घवर्तुलाद्यनेकप्रकारा तुम्बिनी, कालिन्दकं=कूष्माण्डाकृतिफलसदृशफलम्, लोके 'तरबूज'इति ख्यातम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सृष्टमूत्रपुरीषाणि[1] स्वादुपाकरसानि च ॥ २१२ ॥
पित्तघ्नं तेषु कूष्माण्डं बालं मध्यं[2] कफावहम् ।
शुक्लं[3] लघूष्णं सक्षारं दीपनं बस्तिशोधनम् ॥ २१३ ॥
सर्वदोषहरं हृद्यं पथ्यं चेतोविकारिणाम्[4] ।
दृष्टिशुक्रक्षयकरं कालिन्दं कफवातकृत् ॥ २१४ ॥
अलाबुर्भिन्नविट्का[5] तु रूक्षा गुर्व्यतिशीतला ।
तिक्तालाबुरहृद्या तु वामिनी वातपित्तजित् ॥ २१५ ॥
त्रपुसैर्वारुकर्कारुकशीर्णवृन्तप्रभृतीनि[6] ॥ २१६ ॥
स्वादुतिक्तरसान्याहुः[7] कफवातकराणि च ।
सृष्टमूत्रपुरीषाणि रक्तपित्तहराणि च ॥ २१७ ॥
बालं सुनीलं त्रपुसं तेषां पित्तहरं स्मृतम् ।
तत्पाण्डुकफकृज्जीर्णमम्लं वातकफापहम् ॥ २१८ ॥
एर्वारुकं सकर्कारु सम्पक्वं कफवातकृत् ।
सक्षारं मधुरं रुच्यं दीपनं नातिपित्तलम् ॥ २१९ ॥
सक्षारं[8] मधुरं चैव शीर्णवृन्तं कफापहम् ।
भेदनं दीपनं हृद्यमानाहाष्ठीलनुल्लघु ॥ २२० ॥
पिप्पलीमरिचशृङ्गवेरार्द्रकहिंगुजीरककुस्तुम्बुरु[9][10]जम्बीरसुमुखसुर-

---

१ सृष्टमूत्रपुरीषाणि=मलमूत्रप्रवर्तकानि । २ मध्यम्=अर्धपक्वम् । ३ शुक्लं=परिपक्वम् । ४ उन्मादापस्मारादिचेतोविकारिणामित्यर्थः । ५ भिन्नविट्का=मलभेदिनी । ६ त्रपुसं=सुधावासः, लोके 'खीरा'इति ख्यातम्, एर्वारुः=लोमशा कर्कटी, 'ककड़ी'इति लोके, कर्कारुकशीर्णवृन्तौ=कर्कटीभेदौ ।

७ त्रपुसादीनां सामान्यगुणं दर्शयति—**स्वाद्विति** । ८ सक्षारमित्यादयोऽपक्वशीर्णवृन्तस्य गुणाः, भेदनमित्यादयोऽर्धपक्वस्य गुणाः, आनाहेत्यादि परिपक्वस्य चेति बोध्यम् । आनाहश्च अष्ठीला चानाहाष्ठीलं तन्नुदतीत्यानाहाष्ठीलनुत् । अष्ठीला मूत्राघातविशेषः । ९ शृङ्गवेरं=शुण्ठी । १० कुस्तुम्बुरु=धन्याकम्, 'धनिया'इति, जम्बीरः=जम्बीरगन्धि किञ्चिदम्लं हरितशाकम्, सुमुखसुरसार्जका एते त्रयस्तुलसीभेदाः, भूस्तृणं=रौहिषः, गन्धतृणविशेषः, सुगन्धकः=अल्पभूस्तृणभेदः, कासमर्दकः='कसौंदी'इति ख्यातः, कालमालः=कृष्णमल्लिका, बर्बरिकेति यावत्, कुठेरकः=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सार्जकभूस्तृणसुगन्धककासमर्दककालमालकुठेरकक्षवकखरपुष्पशिग्रुमधुशिग्रुफणिज्झकसर्षपराजिकाकुलाहलावगुत्थगण्डीरतिलपर्णिकावर्षाभूचित्रकमूलकलशुनपलाण्डुकलायप्रभृतीनि ॥ २२१ ॥

कटूत्युष्णानि रुच्यानि वातश्लेष्महराणि च ।
कृतान्नेषूपयुज्यन्ते संस्कारार्थमनेकधा ॥ २२२ ॥
तेषां गुर्वी स्वादुशीता पिप्पल्यार्द्रा कफावहा ।
शुष्का कफानिलघ्नी सा वृष्या पित्तविरोधिनी ॥ २२३ ॥
स्वादुपाक्यार्द्रमरिचं गुरु श्लेष्मप्रसेकि च ।
कटूष्णं लघु तच्छुष्कमवृष्यं कफवातजित् ॥ २२४ ॥
नात्युष्णं नातिशीतं च वीर्यतो मरिचं सितम् ।
गुणवन्मरिचेभ्यश्च चक्षुष्यं च विशेषतः ॥ २२५ ॥
नागरं कफवातघ्नं विपाके मधुरं कटु ।
वृष्योष्णं रोचनं हृद्यं सस्नेहं लघु दीपनम् ॥ २२६ ॥
कफानिलहरं स्वर्यं विबन्धानाहशूलनुत् ।
कटूष्णं रोचनं हृद्यं वृष्यं चैवार्द्रकं स्मृतम् ॥ २२७ ॥
लघूष्णं पाचनं हिङ्गु दीपनं कफवातजित् ।

---

तुलसीभेदः, क्षवकः = 'नकछिकनी' इति प्रसिद्धः, खरपुष्पः = मरुबकः, क्षवकभेद इत्यन्ये, शिग्रुः = श्वेतशोभाञ्जनः, मधुशिग्रुः = रक्तशोभाञ्जनः, फणिज्झकः = 'मरुआ' इति ख्यातः, सर्षपराजिके स्पष्टे, कुलाहलः = मुण्डितिका, अवगुत्था = रक्तगुञ्जा, गण्डीरः = सूरणः, तिलपर्णिका = रक्तचन्दनं चोरको वा, वर्षाभूः = श्वेतपुनर्नवा, चित्रकमूलकलशुनपलाण्डवः प्रसिद्धाः, कलायः = वर्तुलकलायः, 'मटर' इति ख्यातस्तस्य शाकम् ।

१ एतच्छाकानां सामन्यगुणं वक्ति—**कटूनीति** । २ कृतान्नेषु = कृतान्नवर्गपठितेषु मुद्गयूषादिषु अनेकधा क्वाथकल्कव्यञ्जनादिविभागेन, संस्कारार्थं = गुणाधानार्थम् । ३ समं पित्तं न वर्द्धयति नापि च ह्रासयतीति पित्तविरोधिनी । ४ सितं मरिचं = शोभाञ्जनबीजम्, श्वेतमरिचं वा । ५ मरिचेभ्यः सकाशाद् गुणवत् प्रशस्तगुणमित्यर्थः । प्रशंसायां मतुप् । २ नागरं = शुण्ठी ।

६ विबन्धः = मलाद्यप्रवर्तनम्, आनाहस्तु—"आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कटु स्निग्धं सरं तीक्ष्णं शूलाजीर्णविबन्धनुत् ॥ २२८ ॥
तीक्ष्णोष्णं कटुकं पाके रुच्यं पित्ताग्निवर्द्धनम् ।
कटु श्लेष्मानिलहरं गन्धाढ्यं जीरकद्वयम्[1] ॥ २२९ ॥
कारवी[2] करवी तद्वद्विज्ञेया सोपकुञ्चिका ।
भक्ष्यव्यञ्जनभोज्येषु विविधेष्ववचारिता[3] ॥ २३० ॥
आर्द्रा कुस्तुम्बरी कुर्यात् स्वादुसौगन्ध्यहृद्यताम् ।
सा शुष्का मधुरा पाके स्निग्धा तृड्दाहनाशनी ॥ २३१ ॥
दोषघ्नी कटुका किञ्चित् तिक्ता स्रोतोविशोधनी ।
जम्बीरः पाचनस्तीक्ष्णः कृमिवातकफापहः ॥ २३२ ॥
सुरभिर्दीपनो रुच्यो मुखवैशद्यकारकः ।
कफानिलविषश्वासकासदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ २३३ ॥
पित्तकृत् पार्श्वशूलघ्नः सुरसः[4] समुदाहृतः ।
तद्वत्तु सुमुखो ज्ञेयो विशेषाद् गरनाशनः[5] ॥ २३४ ॥
कफघ्ना लघवो रूक्षास्तीक्ष्णोष्णाः पित्तवर्द्धनाः ।
कटुपाकरसाश्चैव सुरसार्जकभूस्तृणाः[6] ॥ २३५ ॥
मधुरः कफवातघ्नः पाचनः कण्ठशोधनः ।
विशेषतः पित्तहरः सतिक्तः कासमर्दकः ॥ २३६ ॥
कटुः सक्षारमधुरः शिग्रुस्तिक्तोऽथ पिच्छिलः ।
मधुशिग्रुः सरस्तिक्तः शोफघ्नो दीपनः कटुः ॥ २३७ ॥
विदाहि बद्धविण्मूत्रं रूक्षं तीक्ष्णोष्णमेव च ।
त्रिदोषं सार्षपं शाकं गाण्डीरं वेगनाम[7] च ॥ २३८ ॥
चित्रकस्तिलपर्णी[8] च कफशोफहरे लघू ।
वर्षाभूः कफवातघ्नी हिता शोफोदरार्शसाम् ॥ २३९ ॥

---

१ सितपीतभेदेन जीरकद्वयम् । २ कारवी = सूक्ष्मजीरकम्, करवी = सूक्ष्मकृष्णजीरकम्, उपकुञ्चिका = ईषत्कृष्णं स्थूलजीरकम् इत्येवं पञ्चविधानि जीरकाणि विज्ञेयानि । ३ अवचारिता = संस्कारार्थं प्रक्षिप्ता । ४ सुरसः = श्वेततुलसी । ५ गरनाशनः = कृत्रिमविषहरः । ६ सुरसः = कृष्णतुलसी । ७ वेगनाम = महाकालफलम्, 'वेगो जवे प्रवाहे च महाकालफलेऽपि च' इति मेदिनी । ८ तिलपर्णी =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कटुतिक्तरसा हृद्या रोचनी वह्निदीपनी ।
सर्वदोषहरा लघ्वी कण्ठ्या[1] मूलकपोतिका ॥ २४० ॥
महत्तद्गुरु विष्टम्भि तीक्ष्णमामं त्रिदोषकृत् ।
तदेव स्नेहसिद्धं तु पित्तनुत् कफवातजित् ॥ २४१ ॥
त्रिदोषशमनं शुष्कं विषदोषहरं लघु ।
विष्टम्भि वातलं शाकं शुष्कमन्यत्र मूलकात् ॥ २४२ ॥

पुष्पं[2] च पत्रं च फलं तथैव यथोत्तरं ते गुरवः प्रदिष्टाः ।
तेषां तु पुष्पं कफपित्तहन्तृ फलं निहन्यात् कफमारुतौ च ॥२४३॥
स्निग्धोष्णतीक्ष्णः[3] कटुपिच्छिलश्च गुरुः सरः स्वादुरसश्च बल्यः ।
वृष्यश्च[4] मेधास्वरवर्णचक्षुर्भग्नास्थिसन्धानकरो रसोनः[5] ॥ २४४ ॥
हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूलविबन्धगुल्मारुचिकासशोफान् ।
दुर्नामकुष्ठानलसादजन्तुसमीरणश्वासकफांश्च हन्ति[6] ॥ २४५ ॥
नात्युष्णवीर्योऽनिलहा[7] कटुश्च तीक्ष्णो गुरुर्नातिकफावहश्च ।
बलावहः पित्तकरोऽथ किञ्चित् पलाण्डुरग्निं च विवर्द्धयेत्तु ॥२४६॥
स्निग्धो[8] रुचिष्यः स्थिरधातुकर्त्ता बल्योऽथ मेधाकफपुष्टिदश्च ।
स्वादुर्गुरुः शोणितपित्तशस्तः स पिच्छिलः क्षीरपलाण्डुरुक्तः ॥२४७॥
कलायशाकं पित्तघ्नं कफघ्नं वातलं गुरु ।
कषायानुरसं चैव विपाके मधुरं च तत् ॥ २४८ ॥

---

रक्तचन्दनम् । १ कण्ठ्या=गलशोधिनी, मूलकपोतिका=बालमूलकम् । २ मूलकविषयकपुष्पपत्रादीनां गुणं प्रतिपादयति–**पुष्पमिति** । ३ लशुनगुणमाह–**स्निग्धेति** । ४ वृष्यः=शुक्रवृद्धिकरः ।

५ **रसोनः**=एकरसविरहितः पञ्चरसो लशुन इत्यर्थः । तदुक्तं भावप्रकाशे–"पञ्चभिश्च रसैर्युक्तः रसेनाम्लेन वर्जितः । तस्माद्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः ॥ कटुकश्चापि मूलेषु तिक्तः पत्रेषु संस्थितः । नाले कषाय उद्दिष्टो नालाग्रे लवणः स्मृतः ॥ बीजे तु मधुरः प्रोक्तो रसस्तद्गुणवेदिभिः।" इति । ६ अनलसादः=अग्निमान्द्यम् । ७ पलाण्डुगुणं प्रतिपादयति—**नात्युष्णेति** । ८ पलाण्डुभेदक्षीरपलाण्डुगुणमाह—**स्निग्ध इति** । रुचिष्यः=रुचिकरः, 'रुचिभुजिभ्यां किष्यन्' इति किष्यन्, कित्वाद् गुणाभावः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुच्चूयूथिकातरुणीजीवन्तीबिम्बीतिकानन्दीभल्लातकच्छगलान्त्रीवृक्षादनीफञ्जीशाल्मलीशेलुवनस्पतिप्रसवशणकर्बुदारकोविदारप्रभृतीनि ॥ २४९ ॥

कषायस्वादुतिक्तानि रक्तपित्तहराणि च ।
कफघ्नान्यनिलं कुर्युः सङ्ग्राहीणि लघूनि च ॥ २५० ॥
लघुः पाके च जन्तुघ्नः पिच्छिलो व्रणिनां हितः ।
कषायमधुरो ग्राही चुच्चूस्तेषां त्रिदोषहा ॥ २५१ ॥
चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवन्ती समुदाहृता ।
वृक्षादनी वातहरा फञ्जी त्वल्पबला मता ॥ २५२ ॥
क्षीरवृक्षोत्पलादीनां कषायाः पल्लवाः स्मृताः ।
शीताः सङ्ग्राहिणः शस्ता रक्तपितातिसारिणाम् ॥ २५३ ॥
पुनर्नवावरुणतर्कार्युरुबूकवत्सादनीबिल्वशाकप्रभृतीनि ॥२५४॥
उष्णानि स्वादुतिक्तानि वातप्रशमनानि च ।
तेषु पौनर्नवं शाकं विशेषाच्छोफनाशनम् ॥ २५५ ॥
तण्डुलीयकोपोदिकाऽश्वबलाचिल्लीपालङ्क्यावास्तूकप्रभृतीनि ॥२५६॥
सृष्टमूत्रपुरीषाणि सक्षारमधुराणि च ।
मन्दवातकफान्याहू रक्तपित्तहराणि च ॥ २५७ ॥
मधुरो रसपाकाभ्यां रक्तपित्तमदापहः ।

---

१ चुच्चूः = नाडिकाकारपत्रः, "पालङ्क्यवत्स्मृतश्चुच्चूः स तु सङ्ग्रहणान्तकः" इति वाग्भटः । यूथिका='जूही' इति ख्याता, "सितपीतनीलमेचकनाम्न्यः कुसुमेन यूथिकाः" । तरुणी='सेवती' इति ख्याता, जीवन्ती=जीवा, पाढासमानपत्रेति डल्हणः । जीवन्तीपटोलसदृशैः पत्रैरित्यन्ये । बिम्बीतिका=कुन्दुरिका, नन्दी=धवः, भल्लातकः='भिलावा' इति प्रसिद्धः छगलान्त्री=वृद्धदारुकः, वृक्षादनी=बन्दा, फञ्जी=भार्गी, 'भारंगी' इति, शाल्मली प्रसिद्धा, शेलुः=श्लेष्मातकः, 'लिसोड़ा' इति, वनस्पतिप्रसवाः=न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षशीरिवृक्षपल्लवाः, शणः प्रसिद्धः, कर्बुदारः=श्लेष्मातकभेदः श्वेतकाञ्चनारो वा, कोविदारः=रक्तकाञ्चनारः । २ जन्तुघ्नः=कृमिघ्नः ।

३ क्षीरवृक्षा न्यग्रोधादयः, उत्पलानि नीलोत्पलादीनि तेषां पल्लवाः । ४ पुनर्नवा=श्वेतपुनर्नवा, वरुणः=वरुणवृक्षो याज्ञिकः, तर्कारी=अरणिका, उरुबूकः=शुक्लैरण्डः, वत्सादनी=गुडूची । ५ तण्डुलीयकः='चौलाई' इति, उपोदिका=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेषां शीततमो रूक्षस्तण्डुलीयो विषापहः ॥ २५८ ॥
स्वादुपाकरसा वृष्या वातपित्तमदापहा ।
उपोदिका सरा स्निग्धा बल्या श्लेष्मकरी हिमा ॥ २५९ ॥
कटुर्विपाके कृमिहा मेधाग्निबलवर्द्धनः ।
सक्षारः सर्वदोषघ्नो वास्तूको रोचनः सरः ॥ २६० ॥
चिल्ली वास्तूकवज्ज्ञेया पालङ्क्या तण्डुलीयवत् ।
वातकृत् बद्धविण्मूत्रा रूक्षा पित्तकफे हिता ।
शाकमाश्वबलं रूक्षं बद्धविण्मूत्रमारुतम् ॥ २६१ ॥

मण्डूकपर्णीसप्तलासुनिषण्णकसुवर्चलापिप्पलीगुडूचीगोजिह्वा-काकमाचीप्रपुन्नाडावल्गुजसतीनबृहतीकण्टकारिकाफलपटोलवार्त्ताकुकारवेल्लककटुकिकाकेवुकोरुबूकपर्पटककिराततिक्तकर्कोटकारिष्टकोशातकीवेत्रकरीराटरूषकार्कपुष्पीप्रभृतीनि ॥ २६२ ॥

रक्तपित्तहराण्याहुर्हृद्यानि सुलघूनि च ।

---

'पोई' इति, अश्वबला = मेथिकाभेदः, चिल्ली = रक्तवास्तूकः । १ मण्डूकपर्णी = ब्राह्मीभेदः, 'वरमी' इति लोके, सप्तला = सेहुण्डः, सुनिषण्णकः = सिरिवालिका, चतुष्पत्री 'चौपतिया' इति, "चाङ्गेरीसदृशैः पत्रैः सुनिषण्णश्चतुर्दलः । शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति कथ्यते ॥" इति तल्लक्षणम् । सुवर्चला = सूर्यावर्तः, पिप्पली, गुडूची, गोजिह्वा = 'गोभी' इति, काकमाची = 'मकोय' इति, प्रपुन्नाडः = 'पमाड़' इति, अवल्गुजः = 'वाकुची' इति, सतीनः = वर्तुलकलायः, बृहतीकण्टकारिकाफलम् = बृहल्लघुभेदद्वयेन कण्टकारिकाफलम् , 'पटोलस्तिक्तकः पटुः' इत्यमरः, लोके 'परवल' इति, तस्य फलं पत्रं च गृह्यते, वार्ताकुः = वर्तुलफलो वृन्ताकः, 'वैंगन' इति, कारवेल्लकः = 'करैला' इति ख्यातः, कटुकिका = अरण्यकासमर्दः, केवुकः = ग्राम्योऽरण्यश्च, 'केंऊ' इति ख्यातः, उरुबूकः = रक्तैरण्डः, शुक्लैरण्डः पूर्वमुक्तः, पर्पटकः = 'पित्तपापड़ा' इति, किराततिक्तक = भूनिम्बः, 'चिरायता' इति, कर्कोटकः = 'ककोड़ा' इति अरिष्टः = निम्बः, कोशातकी = 'तोरई' इति, वेत्रकरीरं = वेत्राग्रं, 'वेतकोपल' इति, आटरूषकः = वासकः, 'अडूसा' इति, अर्कपुष्पी = अर्कपुष्पसदृशी लता, 'अन्धाहुली' इति ख्याता ।

२ मण्डूकपर्ण्यादीनां सामान्यगुणमाख्याति—**रक्तेति** । ३ हृदयाय हितानि हृद्यानि ।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुष्ठमेहज्वरश्वासकासारुचिहराणि च ॥ २६३ ॥
कषाया तु हिता पित्ते स्वादुपाकरसा हिमा ।
लघ्वी मण्डूकपर्णी तु तद्वद्रोजिह्विका मता ॥ २६४ ॥
अविदाही त्रिदोषघ्नः सङ्ग्राही सुनिषण्णकः ।
अवल्गुजः कटुः पाके तिक्तः पित्तकफापहः ॥ २६५ ॥
ईषत्तिक्तं त्रिदोषघ्नं शाकं कटु सतीनजम् ।
नात्युष्णशीतं कुष्ठघ्नं काकमाच्यास्तु तद्विधं[1] ॥ २६६ ॥
कण्डुकुष्ठकृमिघ्नानि कफवातहराणि च ।
फलानि बृहतीनां तु कटुतिक्तलघूनि च ॥ २६७ ॥
कफपित्तहरं ब्रण्यमुष्णं तिक्तमवातलम् ।
पटोलं कटुकं पाके वृष्यं रोचनदीपनम् ॥ २६८ ॥
कफवातहरं तिक्तं रोचनं कटुकं लघु ॥
वार्ताकं दीपनं प्रोक्तं जीर्णं सक्षारपित्तलम् ।
तद्वत् कर्कोटकं विद्यात् कारवेल्लकमेव च ॥ २६९ ॥
अटरूषकवेत्राग्रगुडूची[2] निम्बपर्पटाः ।
किराततिक्तसहितास्तिक्ताः पित्तकफापहाः ॥ २७० ॥
कफापहं शाकमुक्तं वरुणप्रपुनाडयोः ।
रूक्षं लघु च शीतं च वातपित्तप्रकोपणम् ॥ २७१ ॥
दीपनं कालशाकं[3] तु गरदोषहरं कटु ।
कौसुम्भं[4] मधुरं रूक्षमुष्णं श्लेष्महरं लघु ॥ २७२ ॥
वातलं नालिकाशाकं[5] पित्तघ्नं मधुरं च तत् ।
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नी साम्ला वातकफे हिता ।
उष्णा कषायमधुरा चाङ्गेरी[6] चाग्निदीपनी ॥ २७३ ॥

---

१ यद्विधं = त्रिदोषघ्नमित्यर्थः । २ "वायुं वत्सादनो हन्यात्" इति चरके गुडूची वातहरा, इह कफपित्तहरा आख्याता । ३ कालशाकं = श्राद्धार्हं कालियाशाकम् । ४ कौसुम्भं = 'कुसुम्भ' इति ख्यातस्य शाकम् । ५ नालिकाशाकं = 'पटुआ' इति ख्यातस्य शाकम् । ६ चाङ्गेरी = 'अमलोनिया' इति ख्यातस्य शाकम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोणिका[1]जातुकत्रिपर्णिकापत्तूरजीवकसुवर्चलाडुडुरककुतुम्बक-कुठिञ्जरकुन्तलिकाकुरण्टिकाप्रभृतयः ॥ २७४ ॥

स्वादु[2]पाकरसाः शीताः कफघ्ना नातिपित्तलाः ।
लवणानुरसा रूक्षाः सक्षारा वातलाः सराः ॥ २७५ ॥
स्वादुतिक्ता कुन्तलिका कषाया सकुरण्टिका ॥
सङ्ग्राहि शीतलं चापि लघु दोषापहं तथा ।
राज[3]क्षवकशाकं तु सटीशाकं च तद्विधम् ॥ २७६ ॥
स्वादुपाकरसं शाकं दुर्जरं हरि[4]मन्थजम् ।
भेदनं मधुरं रूक्षं कलायमतिवातलम् ॥ २७७ ॥
स्रंसनं कटुकं पाके लघु वातकफापहम् ।
शोफघ्नमुष्णवीर्यं च पत्रं पूतिक[5]रञ्जजम् ॥ २७८ ॥
ताम्बूलपत्रं तीक्ष्णोष्णं कटु पित्तप्रकोपणम् ।
सुगन्धि विशदं तिक्तं स्वर्यं वातकफापहम् ॥ २७९ ॥
स्रंसनं कटुकं पाके कषायं वह्निदीपनम् ।
वक्त्रकण्डूमलक्लेददौर्गन्ध्यादिविशोधनम् ॥ २८० ॥

## अथ पुष्पवर्गः—

कोविदारशणशाल्मलीपुष्पाणि मधुराणि मधुरविपाकानि रक्तपित्तहराणि च। वृष[6]वागस्त्ययोः पुष्पाणि तिक्तानि कटुविपा-

---

१ लोणिका = क्षुद्राम्लिका, जातुकं = शुक्लशालपर्णी, त्रिपर्णिका = दुग्धिका, वनकार्पासी वा, पत्तूरं = शिरबालिकाभेदं शालिञ्जीशाकं वा, जीवकः एतन्नाम्नैव प्रसिद्धः, सुवर्चला = सूर्यावर्तभेदः, 'डोडी' इति ख्याता, डुडुरकः इतिनाम्नैव ख्यातः, कुतुम्बकः = द्रोणपुष्पः, कुठिञ्जरः = कुरहञ्जनः, कुन्तलिका = चुच्चूसदृशा दीर्घपत्रा, कुरण्टिका = पीतझिण्टी। २ लोणिकादीनां सामान्यगुणं दर्शयति—**स्वाद्विति**। ३ राजक्षवकशाकं = कृष्णराजिकाशाकम्, शटीशाकं = गन्धमूलीशाकम्, तद्विधं = राजक्षवकसदृशम्। ४ हरिमन्थजं = चणकशाकम्। ५ पूतिकरञ्जः = कण्टकिकरञ्जः।

**इति शाकवर्गः।**

## अथ पुष्पवर्गः—

६ वृषः वासकः, अगस्त्यः वकः, तयोः पुष्पाणीत्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानि क्षयकासापहानि ॥ २८१ ॥

आगस्त्यं नातिशीतोष्णं नक्तान्धानां प्रशस्यते ॥ २८२ ॥

करीरमधुशिग्रुकरीरकुसुमानि कटुविपाकानि वातहराणि सृष्टमूत्रपुरीषाणि च ॥ २८३ ॥

रक्तवृक्षस्य निम्बस्य मुष्ककार्कासनस्य च ।
कफपित्तहरं पुष्पं कुष्ठघ्नं कुटजस्य च ॥ २८४ ॥
सतिक्तं मधुरं शीतं पद्मं पित्तकफापहम् ।
मधुरं पिच्छिलं स्निग्धं कुमुदं ह्लादि शीतलम् ।
तस्मादल्पान्तरगुणे विद्यात् कुवलयोत्पले ॥ २८५ ॥
सिन्धुवारं विजानीयाद्धितं पित्तविनाशनम् ।
मालतीमल्लिके तिक्ते सौरभ्यात् पित्तनाशने ॥ २८६ ॥
सुगन्धि विशदं हृद्यं बाकुलं पाटलानि च ।
श्लेष्मपित्तविषघ्नं तु नागं तद्वच्च कुङ्कुमम् ॥ २८७ ॥
चम्पकं रक्तपित्तघ्नं शीतोष्णं कफनाशनम् ।
किंशुकं कफपित्तघ्नं तद्वदेव कुरण्टकम् ॥ २८८ ॥
यथा वृक्षं विजानीयात् पुष्पं वृक्षोचितं तथा ।
मधुशिग्रुकरीराणि कटुश्लेष्महराणि च ॥ २८९ ॥
क्षवककुलेवरवंशकरीरप्रभृतीनि कफहराणि सृष्टमूत्रपुरी-

---

१ करीरः = मरुदेशजः कण्टकिवृक्षभेदः, मधुशिग्रुः = रक्तशोभाञ्जनः । २ रक्तवृक्षः = बन्धूको रक्तचन्दनं वा । ३ असनः = पीतशालः । ४ सिन्धुवारं = निर्गुण्डीपुष्पम् । ५ सौरभ्यात् = सौगन्ध्यादित्यर्थः । ६ नागं = नागकेसरम् । ७ कुरण्टकं = झिण्टीपुष्पम् । ८ अनुक्तमर्थमुपसङ्ग्रहीतुमभिधत्ते—**यथेति** । पुष्पमनुक्तपुष्पजातं वृक्षोचितं वृक्षन्यस्तं स्तवकादिकं यथावृक्षं वृक्षानुरूपं जानीयात् । 'उचितं तु भवेन्न्यस्ते' इति मेदिनी ।

इति पुष्पवर्गः ।

---

अथोद्भिदशाकवर्गः ।

९ क्षवकः = छत्रकभेदः, कुलेचरः = छत्रकभेदः, वंशकरीरः = वंशाङ्कुरः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


षाणि च ॥ २९० ॥

क्षवकं कृमिलं तेषु स्वादुपाकं सपिच्छलम् ।
विष्यन्दि[1] वातलं नातिपित्तश्लेष्मकरं च तत् ॥ २९१ ॥
वेणोः करीराः कफला मधुरा रसपाकतः ।
विदाहिनो वातकराः सकषाया विरूक्षणाः ॥ २९२ ॥

उद्भिदानि पलाले[2]क्षुकरीषवेणुक्षितिजानि । तत्र पलालजातं मधुरं मधुरविपाकं रूक्षं दोषप्रशमनं च । इक्षुजं मधुरं कषायानुरसं कटुकं शीतलं च । तद्वद्[3]देवोष्णं कारीषं कषायं वातकोपनं च । वेणुजातं कषायं वातकोपनं च । भूमिजं गुरु नातिवातलं भूमितश्चास्यानु[4]रसः ॥ २९३ ॥

पिण्या[5]कतिलकल्कस्थूणिकाशुष्कशाकानि सर्वदोषप्रकोपणानि ॥ २९४ ॥

विष्टम्भिनः स्मृताः सर्वे वटका वातकोपनाः ।
सिण्डा[6]की वातला सार्द्रा रुचिष्याऽनलदीपनी ॥ २९५ ॥
विड्भेदि गुरु रूक्षञ्च प्रायो विष्टम्भि दुर्जरम् ।
सकषायं च सर्वं हि स्वादु शाकमुदाहृतम् ।
पुष्पं पत्रं फलं नालं कन्दाश्च गुरवः क्रमात् ॥ २९६ ॥
कर्कशं परि[7]जीर्णं च कृमिजुष्टमदेशजम् ।
वर्जयेत् पत्रशाकं तत् यदकाल[8]विरोहि च ॥ २९७ ॥

---

१ विष्यन्दि = श्लेष्मस्रावीत्यर्थः । २ पलालः = सस्यशून्यकाण्डादिः, इक्षुः प्रसिद्धः, करीषं = शुष्कगोमयम्, वेणुः = वंशकाष्ठादिः, क्षितिजानि = भूमिजातानि, उद्भिदानि = उद्भिज्जानि छत्रकादीनीत्यर्थः । ३ तद्वत् = इक्षुजसदृशम् । ४ भूमिसदृशगुणमित्यर्थः । ५ पिण्याकः = यन्त्रादिपीडितसर्षपादिनिःस्नेहकल्कः, 'खली' इति ख्यातः, तिलकल्कः = तिलपिण्याकः, स्थूणिकाशुष्कशाकानि = स्थूणिका वटकारूपाणि शुष्कशाकानि । ६ सिण्डाकी = 'पकौड़ी' 'वचका' इत्यादिनाम्ना व्यवहृता । ७ परिजीर्णम् = अतिपक्वम् । ८ अकालविरोहि = यथास्वकाले नोत्पन्नम् ।

इत्युद्भिदशाकवर्गः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कन्दानत ऊर्द्ध्वं वक्ष्यामः—विदारीकन्दशतावरीबिसमृणाल-शृङ्गाटककशेरुकपिण्डालुकमध्वालुकहस्त्यालुककाष्ठालुकशङ्खालुकरक्तालुकेन्दीवरोत्पलकन्दप्रभृतीनि ॥ २९८ ॥

रक्तपित्तहराण्याहुः शीतानि मधुराणि च ।
गुरूणि बहुशुक्राणि स्तन्यवृद्धिकराणि च ॥ २९९ ॥
मधुरोबृंहणो वृष्यः शीतः स्वर्योऽतिमूत्रलः ।
विदारीकन्दो बल्यस्तु पित्तवातहरश्च सः ॥ ३०० ॥
वातपित्तहरी वृष्या स्वादुतिक्ता शतावरी ।
महती चैव हृद्या च मेधाग्निबलवर्द्धिनी ॥ ३०१ ॥
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नी वृष्या शीता रसायनी ।
कफपित्तहरास्तिक्तास्तस्या एवाङ्कुराः स्मृताः ॥ ३०२ ॥
अविदाहि विसं प्रोक्तं रक्तपित्तप्रसादनम् ।
विष्टम्भि दुर्जरं रूक्षं विरसं मारुतावहम् ॥ ३०३ ॥
गुरू विष्टम्भिशीतौ च शृङ्गाटककशेरुकौ ।
पिण्डालुकं कफकरं गुरु वातप्रकोपणम् ॥ ३०४ ॥
सुरेन्द्रकन्दः श्लेष्मघ्नो विपाके कटु पित्तकृत् ।
वेणोः करीरा गुरवः कफमारुतकोपनाः ॥ ३०५ ॥
स्थूलसूरणमाणकप्रभृतयः कन्दा ईषत्कषायाः कटुका रूक्षा विष्टम्भिनो गुरवः कफवातलाः पित्तहराश्च ॥ ३०६ ॥
माणकं स्वादु शीतं च गुरु चापि प्रकीर्त्तितम् ।
स्थूलकन्दस्तु नात्युष्णः सूरणो गुदकीलहा ॥ ३०७ ॥

---

अथ कन्दवर्गः—

१ पिण्डालुकः = गोलालुकः, मध्वालुकः = रोमशो मधुरालुकः, हस्त्यालुकः = दीर्घालुकः, काष्ठालुकः = कठिनालुकः, शङ्खालुकः = श्वेतालुकः, रक्तालुकः = लोहितालुकः । २ स्तन्यवृद्धिकराणि = स्त्रीणां दुग्धवर्धकानि । ३ तस्याः = शतावर्याः । ४ सुरेन्द्रकन्दः = वन्यालुको वज्रकन्दो वा । ५ वेणोः = वंशस्य, करीराः = मूलाङ्कुराः । ६ स्थूलः कन्दः = बृहदाकारः सूरणः, सूरणः = लघुसूरणः, माणकः = "माणकः स्यान्महापत्रः" इति भावप्रकाशोक्तः 'मानकन्द' इति ख्यातः । ७ गुदकीलमर्श

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कुमुदोत्पलपद्मानां कन्दा मारुतकोपनाः ।
कषायाः पित्तशमना विपाके मधुरा हिमाः ॥ ३०८ ॥
वाराहकन्दः[1] श्लेष्मघ्नः कटुको रसपाकतः ।
मेहकुष्ठकृमिहरो बल्यो वृष्यो रसायनः ॥ ३०९ ॥
तालनारिकेलखर्जूरप्रभृतीनां मस्तकं[2]मज्जानः ॥ ३१० ॥
स्वादुपाकरसानाहू रक्तपित्तहरांस्तथा ।
शुक्रलाननिलघ्नांश्च कफवृद्धिकरानपि ॥ ३११ ॥
बालं[3] ह्यनार्त्तवं जीर्णं व्याधितं कृमिभक्षितम् ।
कन्दं विवर्जयेत् सर्वं यो वा सम्यङ् न रोहति ॥ ३१२ ॥

## अथ लवणानि—

सैन्धव[4]सामुद्रविडसौवर्चलरोमकौद्भिदप्रभृतीनि लवणानि यथोत्तरमुष्णानि वातहराणि कफपित्तकराणि यथापूर्वं स्निग्धानि स्वादूनि सृष्टमूत्रपुरीषाणि चेति ॥ ३१३ ॥

चक्षुष्यं सैन्धवं हृद्यं रुच्यं लघ्वग्निदीपनम् ।
स्निग्धं समधुरं वृष्यं शीतं दोषघ्नमुत्तमम् ॥ ३१४ ॥
सामुद्रं मधुरं पाके नात्युष्णमविदाहि च ।
भेदनं स्निग्धमीषच्च शूलघ्नं नातिपित्तलम् ॥ ३१५ ॥
सक्षारं दीपनं सूक्ष्मं शूलहृद्रोगनाशनम् ।
रोचनं तीक्ष्णमुष्णं च विडं वातानुलोमन[5]म् ॥ ३१६ ॥

---

हन्तीति गुदकीलहा । १ वाराहकन्दः प्रसिद्धः, एतदभावे—"वाराहीणामभावे तु चर्मकारालुको मतः" । २ मस्तकमज्जानः=तालादिवृक्षशिरोऽग्रमज्जानः, मज्जा 'गिरी' इति । ३ त्याज्यकन्दानाह—**बालमिति** । सम्यङ् न रोहति=सम्यङ् न प्रादुर्भवतीत्यर्थः ।

**इति कन्दवर्गः ।**

## अथ लवणवर्गः—

४ सैन्धवं प्रसिद्धम् , सामुद्रं=दक्षिणसमुद्रसमीपजातम् , विडं=कृत्रिमलवणम् , सौवर्चलं=कृष्णलवणम् , रोमकं=पांशुलवणं शाकम्भरीदेशोत्थम् , औद्भिदं=साम्भरिलवणम् , प्रभृतिग्रहणादूषरोत्थादीनि बोध्यानि । ५ वातानुलोमनं=मार्गा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लघु सौवर्चलं पाके वीर्योष्णं विशदं कटु ।
गुल्मशूलविबन्धघ्नं हृद्यं सुरभि रोचनम् ॥ ३१७ ॥
रोमकं तीक्ष्णमत्युष्णं व्यवायि[1] कटुपाकि च ।
वातघ्नं लघु विस्यन्दि सूक्ष्मं विड्भेदि मूत्रलम् ॥ ३१८ ॥
लघु तीक्ष्णोष्णमुत्क्लेदि[2] सूक्ष्मं वातानुलोमनम् ।
सतिक्तं कटु सक्षारं विद्याल्लवणमौद्भिदम् ॥ ३१९ ॥
कफवातकृमिहरं लेखनं पित्तकोपनम् ।
दीपनं पाचनं भेदि लवणं गुटिकाह्वयम्[3] ॥ ३२० ॥
ऊषसूतं[4] वालुकैलं शैलमूलाकरोद्भवम् ।
लवणं कटुकं छेदि विहितं कटु चोच्यते ॥ ३२१ ॥
यवक्षारस्वर्जिकाक्षारोषक्षारपाकिमटङ्कणक्षारप्रभृतयः[5] ।
गुल्माशोंग्रहणीदोषप्रतिश्यायविनाशनाः ।
क्षारास्तु पाचनाः सर्वे रक्तपित्तकराः सराः ॥ ३२२ ॥
ज्ञेयौ वह्निसमौ[6] क्षारौ स्वर्जिकायावशूकजौ ।
शुक्रश्लेष्मविबन्धार्शोगुल्मप्लीहविनाशनौ ॥ ३२३ ॥
उष्णोऽनिलघ्नः प्रक्लेदी चोषक्षारो बलापहः ।
मेदोघ्नः पाकिमः क्षारस्तेषां बस्तिविशोधनः ॥ ३२४ ॥
विरूक्षणोऽनिलकरः श्लेष्मघ्नः पित्तदूषणः ।
अग्निदीप्तिकरस्तीक्ष्णष्टङ्कणः क्षार उच्यते ॥ ३२५ ॥

---

वृतवातस्य स्रोतःशुद्धिकरत्वेन प्रवर्तनम् । १ व्यवायि = अपक्वमेवाखिलं देहं व्याप्य पश्चान्मद्यविषयवद्देहस्थमेव पाकपरिणामि । २ उत्क्लेदि = आर्द्रीभावकारि । ३ गुटिकाऽऽह्वयं = पाकाभिनिर्वृत्तत्वाद् गुटिकाभूतं लवणम् । ४ ऊषसूतम् = ऊषः क्षारमृत्तिका, ततः सूतं जातमूषसूतम् , बालुकैलं = बालुकाः सिकतास्तन्मयी इला पृथ्वी तत्र भवं बालुकैलम् । 'इलोर्वी वाग् बुधस्त्री गौः' इति हेमचन्द्रः । शैलमूलाकरोद्भवं = पर्वतमूलावस्थितखनिजोत्पन्नम् । ५ यवक्षारः = यवशूकोद्भवक्षारः, स्वर्जिकाक्षारः = सर्जिक्षारः, 'सज्जीखार' इति लोके, ऊषक्षारः प्रसिद्धः, पाकिमक्षारः = पाकेन निर्वृत्तः क्षारपाकविधावुपदिष्टः पानीयः प्रतिसारणीयश्च, टङ्कणक्षारः = 'सोहागाखार' इति । ६ वह्निसमौ = अग्निसदृशतीक्ष्णाविति यर्थः । व्रणस्य लेखनमिति बोध्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


[1]सुवर्णं स्वादु हृद्यञ्च बृंहणीयं रसायनम् ।
दोषत्रयपहं शीतं चक्षुष्यं विषसूदनम् ॥ ३२६ ॥
रूप्यमम्लं सरं शीतं सस्नेहं पित्तवातनुत् ।
ताम्रं कषायं मधुरं लेखनं शीतलं सरम् ॥ ३२७ ॥
सतिक्तं लेखनं कांस्यं चक्षुष्यं कफवातजित् ।
वातकृच्छीतलं लोहं तृष्णापित्तकफापहम् ॥ ३२८ ॥
कटु क्रिमिघ्नं लवणं त्रपुसीसं विलेखनम् ।
मुक्ताविद्रुमवज्रेन्द्रवैदूर्यस्फटिकादयः ॥ ३२९ ॥
चक्षुष्या मणयः शीता लेखना विषसूदनाः ।
पवित्रा धारणीयाश्च पाप्मालक्ष्मीमलापहाः ॥ ३३० ॥
[3]धान्येषु मांसेषु फलेषु चैव शाकेषु चानुक्तमिहाप्रमेयात्[4] ।
[5]आस्वादतो भूतगुणैश्च मत्वा तदादिशेद् द्रव्यमनल्पबुद्धिः ॥३३१॥
[6]षष्टिकाः यवगोधूमा लोहिता ये च शालयः ।
मुद्गाढकीमसूराश्च धान्येषु प्रवराः स्मृताः ॥ ३३२ ॥
लावतित्तिरिसारङ्गकुरङ्गैणकपिञ्जलाः ।
मयूरवर्मिकूर्माश्च[7] श्रेष्ठा मांसगणेष्विह ॥ ३३३ ॥
दाडिमामलकं द्राक्षा खर्जूरं सपरूषकम् ।
राजादनं मातुलुङ्गं फलवर्गे प्रशस्यते ॥ ३३४ ॥
सतीनो वास्तुकश्चुच्चूचिल्लीमूलकपोतिकाः ।
मण्डूकपर्णी जीवन्ती शाकवर्गे प्रशस्यते ॥ ३३५ ॥
गव्यं क्षीरं घृतं श्रेष्ठं, सैन्धवं लवणेषु च ।
धात्री दाडिममम्लेषु पिप्पली नागरं कटौ ॥ ३३६ ॥

---

१ सुवर्णादीनां गुणमभिदधाति—**सुवर्णमिति** । २ वज्रेन्द्रः=हीरकः, वैदूर्यं=विडालनेत्राभो मणिभेदः । ३ अनुक्तद्रव्यज्ञानोपायं दर्शयति—**धान्येष्विति** । ४ अप्रमेयत्वात्=अपरिसंख्येयत्वात्, आनन्त्यादिति यावत् । ५ आस्वादतः=मधुरादिरसविशेषतः, भूतगुणैः=द्रव्यारम्भकभूतगुणैर्वीर्यविपाकादिभिश्च । ६ उक्तेषु धान्यादिवर्गेषु प्रधानानि द्रव्याण्यभिधत्ते—**षष्टिकेति** । ७ वर्मिः=महाशकलो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तिक्ते पटोलवार्त्ताके मधुरे घृतमुच्यते ।
क्षौद्रं पूगफलं श्रेष्ठं कषाये सपरूषकम् ॥ ३३७ ॥
शर्करेक्षुविकारेषु पाने मध्वासवौ[1] तथा ।
परिसंवत्सरं धान्यं, मांसं वयसि मध्यमे ॥ ३३८ ॥
अपर्युषितमन्नं तु संस्कृतं मात्रया शुभम् ।
फलं पर्यागतं[2], शाकमशुष्कं तरुणं नवम् ॥ ३३९ ॥
अतः[3] परं प्रवक्ष्यामि कृतान्नं[4] गुणविस्तरम् ॥ ३४० ॥
लाजमण्डो[5] विशुद्धानां पथ्यः पाचनदीपनः ।
वातानुलोमनो हृद्यः पिप्पली[6]गरायुतः ॥ ३४१ ॥
स्वेदाग्निजननी लघ्वी दीपनी बस्तिशोधनी ।
क्षुत्तृट्श्रमग्लानिहरी पेया वातानुलोमनी ॥ ३४२ ॥
विलेपी[7] तर्पणी हृद्या ग्राहिणी बलवर्द्धनी ।
पथ्या स्वादुरसा लघ्वी दीपनी क्षुत्तृषापहा ॥ ३४३ ॥
हृद्या[8] सन्तर्पणी वृष्या बृंहणी बलवर्द्धनी ।
शाकमांसफलैर्युक्ता विलेप्यम्ला[9] च दुर्जरा ॥ ३४४ ॥

---

रोहितभेदो मत्स्येषु प्रधानतम इत्यर्थः । १ मध्वासवौ=माद्वीकद्राक्षाऽऽसवौ ।
२ पर्यागतं=परिपक्वम् ।

## इति लवणादिवर्गः ।

### अथ कृतान्नवर्गः—

३ संस्कृतान्नानां गुणं विशिनष्टि—अत इति । ४ कृतान्नम्=अग्निद्वारा पाचितान्नमित्यर्थः । ५ भृष्टशालिभवा लाजा इत्युच्यन्ते, तैः साधितो मण्डो लाजमण्डः । तदुक्तम्—"लाजैर्वा तण्डुलैर्भृष्टैर्लाजमण्डः प्रकीर्तितः" । मण्डस्तु—"नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः" । सिक्थो भक्तावयवस्तेन रहितोऽसिक्थक इत्यस्यार्थः ।

तन्त्रान्तरे त्रिविधं मण्डमाह—"मण्डस्तु त्रिविधो ज्ञेय एकद्वित्रिपरिस्रुतः । लाजैर्भृष्टैरभृष्टैश्च तण्डुलैः परिसंस्कृतः । चतुस्त्रिंशद्गुणं भक्तात् पूर्वः पूर्वो लघुर्हितः ॥" इति । ६ पिप्पलीशुण्ठीमिलितो लाजमण्ड इत्यर्थः । ७ विलेपी—"विलेपी घनसिक्था स्यात् सिद्धा नीरे चतुर्गुणे" इति । ८ अत्र—'बस्तिसंशोधनी वृष्या ज्वरातीसारयोर्हिता ।' इति पाठान्तरम् । ९ अम्ला=अम्लादिभिः कृतसंस्कारा इत्यर्थः । 'विलेप्यम्ला च

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सिक्थैर्विरहितो मण्डः पेया[1] सिक्थसमन्विता ।
विलेपी बहुसिक्था स्याद् यवागूर्विरलद्रवा[2] ॥ ३४५ ॥
विष्टम्भी पायसो[3] बल्यो मेदःकफकरो गुरुः ।
कफपित्तकरी बल्या कृशरा[4]ऽनिलनाशनी ॥ ३४६ ॥
धौतस्तु[5] विमलः शुद्धो मनोज्ञः सुरभिः समः ।
स्विन्नः[6] सुप्रस्रुतस्तूष्णो विशदस्त्वोदनो लघुः ॥ ३४७ ॥
अधौतोऽप्रस्रुतोऽस्विन्नः शीतश्चाप्योदनो गुरुः ।
लघुः सुगन्धिः कफहा विज्ञेयो भृष्टतण्डुलः[7] ॥ ३४८ ॥
स्नेहैर्मांसैः फलैः कन्दैर्वैदलाम्लैश्च संयुताः ।
गुरवो बृंहणा बल्या ये च क्षीरोपसाधिताः[8] ॥ ३४९ ॥
सुस्विन्नो निस्तुषो भृष्ट ईषत्सूपो लघुर्हितः ।
स्विन्नं निष्पीडितं शाकं हितं स्यात् स्नेहसंस्कृतम् ॥ ३५० ॥
अस्विन्नं स्नेहरहितमपीडितमतोऽन्यथा ।
मांसं स्वभावतो वृष्यं स्नेहनं बलवर्द्धनम् ॥ ३५१ ॥
स्नेहगोरसधान्याम्लफलाम्लकटुकैः[9] सह ।
सिद्धं मांसं हितं बल्यं रोचनं बृंहणं गुरु ॥ ३५२ ॥

---

दुर्जरा' इत्यत्र 'यवाग्वस्ताश्च दुर्जराः' इति श्रीहाराणचन्द्रः पठति व्याख्याति च ताः पूर्वोक्ता मण्डाद्यात्मका यवाग्व एवेत्यर्थः । चकारोऽवधारणार्थः, न तु ताः, पृथग् यवाग्वश्चेति वाक्यार्थः । १ पेया अत्र यवागूः, पेयायवाग्वोर्भेदवादिनां मते पेयालक्षणम्—"चतुर्दशगुणे नीरे रक्तशाल्यादिभिः कृता । द्रवाधिका स्वल्पसिक्था पेया प्रोक्ता भिषग्वरैः ॥" इति । २ यवागूः = पेया । एतेन भक्तावयवरहितो मण्डः, पेया यवाग्वपरपर्याया भक्तावयवसमन्विता विरलद्रवा, विलेपी बहुभक्तावयवा लेह्या पृथग् द्रवरहितेति भेदत्रयमेतच्छ्लोकोक्तं बोध्यम् । ३ पयसि संस्कृतस्तण्डुलः पायसः । ४ तिलतण्डुलमाषपक्वा कृशरा ।

५ ओदनगुणं दर्शयति—**धौत इति** । धौतः = प्रक्षालितः, विमलः = कण्डनादिनाऽपगतमलः । ६ स्विन्नः = सम्यक्पक्वः, सुप्रस्रुतः = सुष्ठु गालितमण्डः । ७ भृष्टस्तण्डुलोऽस्येति भृष्टतण्डुलः, भृष्टतण्डुलसाधित ओदन इत्यर्थः । ८ संस्कारविशेषेण दधिदलगुणमाह—**सुस्विन्न इति** । तत्र ईषद्भृष्ट इति सम्बन्धः । ९ गोरसः = दधि तक्रं च, न तु क्षीरम्, 'गोरसो दधि तक्रं च' इति हैमात् । "शाकाम्लपलपिण्याककुल-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदेवं[1] गोरसादानं सुरभिद्रव्यसंस्कृतम् ।
विद्यात्पित्तकफोद्रेकि बलमांसाग्निवर्द्धनम् ॥ ३५३ ॥
परिशुष्कं[2] स्थिरं स्निग्धं हर्षणं प्रीणनं गुरु ।
रोचनं बलमेधाग्निमांसौजः शुक्रवर्द्धनम् ॥ ३५४ ॥
तदेवोल्लुप्तं[3]पिष्टत्वादुल्लुप्तमिति पाचकाः ।
परिशुष्कगुणैर्युक्तं वह्नौ पक्वमतो लघुः ॥ ३५५ ॥
तदेव [4]शूलिकाप्रोतमङ्गारपरिपाचितम् ।
ज्ञेयं गुरुतरं किञ्चित् [5]प्रदिग्धं गुरुपाकतः ॥ ३५६ ॥
उल्लुप्तं [6]भर्जितं पिष्टं प्रतप्तं कन्दुपाचितम् ।
परिशुष्कं प्रदग्धं च शूल्यं यच्चान्यदीदृशम् ॥ ३५७ ॥
मांसं यत्तैलसिद्धं तद्वीर्योष्णं पित्तकृद् गुरु ।
लघ्वग्निदीपनं हृद्यं रुच्यं दृष्टिप्रसादनम् ॥ ३५८ ॥
अनुष्णवीर्यं पित्तघ्नं मनोज्ञं घृतसाधितम् ।
प्रीणनः प्राणजननः श्वासकासक्षयापहः ॥ ३५९ ॥
वातपित्तश्रमहरो हृद्यो मांसरसः स्मृतः ।
स्मृत्योजःस्वरहीनानां ज्वरक्षीणक्षतोरसाम् ॥ ३६० ॥
भग्नविश्लिष्टसन्धीनां कृशानामल्परेतसाम् ।

---

स्थलवणामिषैः । करीरदधिमाषैश्च प्रायः क्षीरं विरुध्यते ॥" इति तन्त्रान्तराच्च ।

१ प्रदिग्धत्वेन सिद्धस्य मांसस्य गुणं वक्ति–**तदेवेति** ।

२ परिशुष्कम्—"सिक्तं बहुघृते भृष्टं मुहुरुष्णाम्बुना मृदु । जीरकाद्यैर्घनं मांसं परिशुष्कं तदुच्यते ॥" इति । ३ आदावुल्लुप्तमतिच्छिन्नं पश्चात्पिष्टं तस्य भाव उल्लुप्तपिष्टत्वं तस्मात्, 'उल्लुप्तम्' इति पाचकाः सूपकारा वदन्तीति शेषः । ४ शूलिकाप्रोतं=लोहादिशलाकाऽऽरोपितम् । ५ स्नेहधान्याम्लतक्रादिना प्रदिग्धमित्यर्थः । ६ भर्जितादिनां लक्षणम्—"भर्जितं स्याद् घृतादौ तु पिष्ट्वा यत्साधितं पुनः । अपूपादिकृतं पिष्टं दधिदाडिमसौरभैः ॥ सिद्धं साज्यैस्तथाऽजाजीसामुद्रमरिचैरपि । अङ्गारादिषु यत्पक्वं प्रतप्तं तदुदाहृतम् ॥ पिशितं सौरभैर्लिप्तं कन्दुपक्वं मधु प्रभम् । राजिकाकल्कलिप्तं च कन्दुपाचितमुच्यते ॥" परिशुष्कमुक्तम् । "तदेव गोरसादानं प्रदिग्धमिति विश्रुतम्" इति परिशुष्कलक्षणस्याग्रे बोध्यम् । "हिङ्गूदके परिक्षिप्तं शूले निष्पोडितं ततः । सिक्त्वा सिक्त्वाऽम्बुधाराभिर्विधूमेऽग्नौ प्रतापयेत् ॥ फलाम्लेनापि यत्पक्वं शूल्यं तत्सौर-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आप्यायनः संहननः शुक्रदो बलवर्द्धनः ॥ ३६१ ॥
स दाडिमयुतो वृष्यः संस्कृतो[२] दोषनाशनः ।
प्रीणनः सर्वभूतानां विशेषान्मुखशोषिणाम् ॥ ३६२ ॥
क्षुत्तृष्णापहरः श्रेष्ठः सौरावः[३] स्वादुशीतलः ।
यन्मांसमुद्धृतरसं न तत् पुष्टिबलावहम् ॥ ३६३ ॥
विष्टम्भि दुर्जरं रूक्षं विरसं मारुतावहम् ।
दीप्ताग्नीनां सदा पथ्यः खानिष्कस्तु[४] परं गुरुः ॥ ३६४ ॥
मांसं निरस्थि सुस्विन्नं पुनर्दृषदि पेषितम् ।
पिप्पलीशुण्ठिमरिचगुडसर्पिःसमन्वितम् ॥ ३६५ ॥
ऐकध्यं पाचयेत्सम्यग् वेसवार इति स्मृतः ।
वेसवारो गुरुः स्निग्धो बल्यो वातरुजापहः ॥ ३६६ ॥
कफघ्नो दीपनो हृद्यः शुद्धानां व्रणिनामपि ।
ज्ञेयः पथ्यतमश्चैव मुद्गयूषः[५] कृताकृतः ॥ ३६७ ॥
स[६] तु दाडिममृद्वीकायुक्तः स्याद्रागखाडवः ।

---

भान्वितम् ॥" इति । ईदृशम् = एवंविधं तैलसाधितं मांसम् । १ आप्यायनः = स्मृतिस्वरहीनज्वरक्षीणकृशाल्परेतसां स्वास्थ्यकरः, संहननः = क्षतोरसां भग्नविश्लिष्टसन्धीनां च सन्धानकरः, शुक्रदः = अल्परेतसां वीर्यवर्द्धकः, बलवर्धनः = ओजोहीनानां बलवृद्धिकरः । २ संस्कृतः = घृतादिना भर्जितः । ३ सौरावः = रसस्योपरितनः स्वच्छो भागः 'शोरवा' इति ख्यातः । ४ खानिष्कः = अतिशुष्कमांसपिष्टः, वेसवारभेदो वा । "अनस्थि पिशितं पिष्टं स्विन्नं गुणघृतान्वितम् । कृष्णामरिचसंयुक्तं वेसवार इति स्मृतः" ॥ आत्रेयस्तु—"चित्रकं पिप्पलीमूलं पिप्पलीचव्यनागरम् । धान्याकं रजनीश्वेततण्डुलाश्च समांशकाः । वेसवार इति ख्यातः शाकादिषु नियोजयेत् ॥" इति । ५ यूषः = "अष्टादशगुणे नीरे शिम्बीधान्यश्रुतो रसः । विरलान्नो घनः किञ्चित्पेयातो यूष उच्यते ॥" इति शार्ङ्गधरसंहिताऽनुसारेण चतुर्दशगुणे जले मुद्गादिसाधितो यूषो बोध्यः । कृतः लवणस्नेहकटुकादिः संस्कृतः, अकृतस्तैरसंस्कृतः कृताकृतः । ६ स = मुद्गयूषः, दाडिममृद्वीकायुक्तः 'रागखाडव' इति व्यवहारोपयोगिनामा स्यात् । अन्योऽपि रागखाडवः— "आममाम्रं त्वचाहीनं द्विखिर्वा खण्डितं ततः ।.....सुपक्वं च समुत्तार्य मरीचैलेन्दुवासितम् । स्थापितं स्निग्धमृद्भाण्डे रागखाण्डवसञ्ज्ञितः" ॥ अपि च—"क्वथितं तु गुडोपेतं सहकारफलं नवम् । तैलनागरसंयुक्तं विज्ञेयो रागखाडवः ॥" इति बोध्यः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुचिष्यो ल पाकश्च दोषाणां चा विरोधकृत् ॥ ३६८ ॥
मसूरमुद्गगोधूमकुलत्थलवणैः कृतः ।
कफपित्ताविरोधी स्याद्वातव्याधौ च शस्यते ॥ ३६९ ॥
मृद्वीकादाडिमैर्युक्तः स चाप्युक्तोऽनिलार्दिते ।
रोचनो दीपनो हृद्यो लघुपाक्युपदिश्यते ॥ ३७० ॥
पटोलनिम्बयूषौ तु कफमेदोविशोषिणौ ।
पित्तघ्नौ दीपनौ हृद्यौ कृमिकुष्ठज्वरापहौ ॥ ३७१ ॥
श्वासकासप्रतिश्यायप्रसेकारोचकज्वरान् ।
हन्ति मूलकयूषस्तु कफमेदोगलामयान् ।
कुलत्थयूषोऽनिलहा श्वासपीनसनाशनः ॥ ३७२ ॥
तूणीप्रतूणीकासार्शोगुल्मोदावर्त्तनाशनः ।
दाडिमामलकैर्यूषो हृद्यः संशमनो लघुः ॥ ३७३ ॥
प्राणाग्निजननो मूर्च्छामेदोघ्नः पित्तवातजित् ।
मुद्गामलकयूषस्तु ग्राही पित्तकफे हितः ॥ ३७४ ॥
यवकोलकुलत्थानां यूषः कण्ठ्योऽनिलापहः ।
सर्वधान्यकृतस्तद्वद् बृंहणः प्राणवर्द्धनः ॥ ३७५ ॥
खडकाम्बलिकौ हृद्यौ तथा वातकफे हितौ ।
बल्यैः कफानिलौ हन्ति दाडिमाम्लोऽग्निदीपनः ॥ ३७६ ॥

१ तूणी प्रतूणी च वातरोगः । तत्र तूणीप्रतूणीलक्षणं वक्ष्यति निदाने—"अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता । भिन्दतीव गुदोपस्थं सा तूणीत्युपदिश्यते । गुदोपस्थोत्थिता सैव प्रतिलोमविसर्पिणी । वेगैः पक्वाशयं याति प्रतितूनोति सा स्मृता ॥" इति । २ खड-काम्बलिकौ यूषविशेषौ । तत्र खडो द्विविधः—सतक्रशमीधान्यः सतक्रशाकश्च । तदुक्तम्—'सतक्राणि शमीधान्यानि स्निग्धानि सङ्ग्राहकाणि खलानि" इति । डलयोरभेदात् 'खलः' 'खड' इति पर्यायौ । सतक्रशाकस्तु—"कपित्थतक्रचाङ्गेरीमरिचाजाजिचित्रकैः । सुपक्वः खड यूषोऽयमथ काम्बलिकोऽपरः । दध्यम्ललवणस्नेहतिलमाषसमन्वितः" ॥ नलः—"तिलं सुलुञ्चितं कृत्वा पिष्टं क्षीरे व्यहोषितम् । पटे पूतं पचेद्धीमानार्द्रकावापिते घृते ॥ मरिचाजाजिसामुद्रैर्युक्तस्तिलखडो भवेत्" । "दधिमस्त्वम्लसिद्धस्तु यूषः काम्बलिकः स्मृतः । पुनः सौवर्चलाजाजीबीजपूरकसौरभैः । संयोज्यमथितः स्वच्छ एष काम्बलिको भवेत् ॥" इति । ३ दाडिमाम्लादिसाधितयूषगुणं निर्दिशति—बल्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दध्यम्लः कफकृद्बल्यः स्निग्धो वातहरो गुरुः ।
तक्राम्लः पित्तकृत् प्रोक्तो विषरक्तप्रदूषणः ॥ ३७७ ॥
खडा[1]ः खडयवाग्वश्च षाडवाः पानकानि च ।
एवमादीनि चान्यानि क्रियन्ते वैद्यवाक्यतः ॥ ३७८ ॥
अस्नेहलवणं सर्वमकृतं कटु[2]कैर्विना ।
विज्ञेयं लवणस्नेहकटुकैः संयुतं कृतम् ॥ ३७९ ॥
अथ गोरसधान्याम्लफलाम्लैरन्वितं च यत् ।
यथोत्तरं लघु हितं संस्कृतासंस्कृतं रसम् ॥ ३८० ॥
दधिमस्त्वम्लसिद्धस्तु यूषः काम्बलिकः स्मृतः ।
तिलपिण्या[3]कविकृतिः शुष्कशाकं विरूढकम् ॥ ३८१ ॥
सिण्डा[4]की च गुरूणि स्युः कफपित्तकराणि च ।
तद्वच्च वटका[5]न्याहुर्विदाहीनि गुरूणि च ॥ ३८२ ॥
लघवो बृंहणा वृष्या हृद्या रोचनदीपनाः ।
तृष्णामूर्च्छाभ्रमच्छर्दिश्रमघ्ना रा[6]गषाडवाः ॥ ३८३ ॥
रसा[7]ला बृंहणी बल्या स्निग्धा वृष्या च रोचनी ।

---

इति । १ खडाः पूर्वोक्तलक्षणाः, खडयूषसिद्धा यवाग्वः खडयवाग्वः, षाडवाः = मधुराम्लद्रव्यकृताः, तल्लक्षणम्—"स्पष्टाम्लमधुरोऽस्पष्टकषायलवणोषणाः । अतिक्ताः षाडवाः कोलकुलत्थवदरैः कृताः ॥" इति कोलकपित्थवदरैरिति पाठान्तरम् । पानकानि = द्राक्षाऽम्लिकाऽऽदिकृतानि पेयानि, तल्लक्षणम्—"द्राक्षामधूकखर्जूरकाश्मर्यः सपरूषकाः । तुल्यांशैः कल्पितं पूतं शीतं कर्पूरवासितम् ॥ पानकं पञ्चसाराख्यं दाहतृष्णानिवर्तकम् । त्रिजातमरिचाद्यैस्तु संस्कृताः पानकास्तथा ॥" इति । अन्यदपि आम्रादिफलपानकं मत्कृतदानदीपिकायाष्टिप्पन्यां द्रष्टव्यम् । २ कटुकैः शुण्ठ्यादिभिर्विनेत्यर्थः । ३ तिलविकृतिः लड्डुकादिः, पिण्याकविकृतिः पिण्याकपिष्टकादिः, विरूढकम् = अङ्कुरितं विगतरोहं वा मुद्गादि । ४ सिण्डाकी = शुक्तेष्वनासुतार्द्रा प्राक्कथिता । ५ वटकानि = सिण्डाकीवटकानीत्यर्थः । ६ रागः—"सितारुचकसिन्धूत्थैः सवृक्षाम्लपरूषकैः । जम्बूफलरसैर्युक्तो रागो राजिकया कृतः ॥" इति । ७ रसाला = शिखरिणी, तल्लक्षणम्—"सचतुर्जातकाजाजिससिताद्रंकनागरम् । रसाला स्याच्छिखरिणी संघृष्टं ससरं दधि" ॥ अपि च—"अर्धाढकः सुचिरपर्युषितस्य दध्नः खण्डस्य षोडशपलानि शशिप्रभस्य । सर्पिःपलं मधुपलं मरिचं द्विकर्षं शुण्ठ्याः पला-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नेहनं[1] गुडसंयुक्तं हृद्यं दध्यनिलापहम् ॥ ३८४ ॥
सक्तवः[2] सर्पिषाऽभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः ।
नातिद्रवा नातिसान्द्रा मन्थ इत्युपदिश्यते ॥ ३८५ ॥
मन्थः सद्योबलकरः पिपासाश्रमनाशनः ।
साम्लस्नेहगुडो मूत्रकृच्छ्रोदावर्त्तनाशनः ॥ ३८६ ॥
शर्करेक्षुरसद्राक्षायुक्तःपित्तविकारनुत् ।
द्राक्षामधूकसंयुक्तः कफरोगनिबर्हणः ॥ ३८७ ॥
वर्गत्रयेण[3]ोपहितो मलदोषानुलोमनः ।
गौडमम्लमनम्लं वा पानकं गुरु मूत्रलम् ॥ ३८८ ॥
तदेव[4] खण्डमृद्वीकाशर्करासहितं पुनः ।
साम्लं[5] सतीक्ष्णं सहिमं पानकं स्यान्निरत्ययम् ॥ ३८९ ॥
मार्द्वीकं तु श्रमहरं मूर्च्छादाहतृषापहम् ।
परूषकाणां कोलानां हृद्यं विष्टम्भि पानकम् ॥ ३९० ॥
द्रव्यसंयोगसंस्कारं ज्ञात्वा मात्रां च सर्वत[6]ः ।
पानकानां यथायोगं गुरुलाघवमादिशेत् ॥ ३९१ ॥

इति कृतान्नवर्गः ।

---

धर्मपि चार्धपलं विडस्य ॥ सूक्ष्मे पटे सुविमले मृदुपाणिघृष्टा कर्पूरधूलिसुरभीकृतपात्रसंस्था । एषा वृकोदरकृता सरसा रसाला" इति । १ सगुडदधिगुणमाख्याति—**स्नेहनमिति** । २ सक्तुमन्थमभिधत्ते—**सक्तव इति** । "यवतण्डुललाजादिचूर्णे सक्तुः प्रकीर्तितः" इति । ३ वर्गत्रयेण अम्लस्नेहगुडत्रितयेण उपहितो युक्तः, मलदोषानुलोमनः=मलमूत्रनिस्सारणः । ४ तदेव=गौडमेव । ५ साम्लं=तिन्तिडीकादिद्रव्यसहितम्, सतीक्ष्णं मरिचादितीक्ष्णद्रव्योपहितम्, सहिमं=कर्पूरयुतं पानकं स्यात्=भवेद्, निरत्ययं श्रेष्ठमित्यर्थः । ६ सर्वतः=सर्वस्मिन् पानके । सप्तम्यर्थे तसिल्प्रत्ययः ।

इति कृतान्नवर्गः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्ष्याम्यतः परं भक्ष्यान्[1] रसवीर्यविपाकतः ॥ ३९२ ॥
भक्ष्याः क्षीरकृता बल्या वृष्या हृद्याः सुगन्धिनः ।
अदाहिनः[2] पुष्टिकराः दीपनाः पित्तनाशनाः ॥ ३९३ ॥
तेषां प्राणकरा हृद्या घृतपूराः[3] कफावहाः ।
वातपित्तहरा वृष्या गुरवो रक्तमांसलाः ॥ ३९४ ॥
बृंहणा गौडिकाः[4] भक्ष्या गुरवोऽनिलनाशनाः ।
अदाहिनः पित्तहराः शुक्रलाः कफवर्द्धनाः ॥ ३९५ ॥
मधुमस्तकसंयावाः[5] पूपा ये ते विशेषतः ।
गुरवो बृंहणाश्चैव मोदकास्तु सुदुर्जराः ॥ ३९६ ॥
रोचनो दीपनः स्वर्यः पित्तघ्नः पवनापहः ।
गुरुर्मृष्टतमश्चैव सक्तुकः[6] प्राणवर्द्धनः ॥ ३९७ ॥
हृद्यः सुगन्धिर्मधुरः स्निग्धः कफकरो गुरुः ।

---

अथ भक्ष्यवर्गः—

१ भक्ष्यान् = लड्डुकादीन् । २ अदाहिनः = ईषद्दाहसञ्जाननाः । ३ घृतपूराः = 'घेवर' इति ख्याताः । तल्लक्षणम्—"मर्दितां समितां क्षीरनारिकेरसितादिभिः । अवगाह्य घृते पक्वो घृतपूरोऽयमुच्यते" ॥ समितां = गोधूमचूर्णम् । प्रकारान्तरम्—गोधूमचूर्णं सूक्ष्मं च स्वच्छं तस्मिन् घृतं क्षिपेत् यावत्तत् पिण्डतां गच्छेत् पश्चाद्दग्धे विमर्दयेत् ॥ फेनयित्वा द्रवीभूते ततः पात्रे घृतं न्यसेत् । सशब्दे सुघृते तप्ते तस्य धारामपासृजेत् ॥ यावच्च व्याप्य तत्पात्रं प्रसरेद् घृतपूरकः । यत्किञ्चित्ताम्रतां याते खण्डपङ्के निमज्जयेत ॥"इति । ४ गुडेन संसृष्टाः पूपागौडिकाः । ५ 'समिता वेष्टिता मध्ये मधु दत्त्वा श्रृता घृते । मधुमस्तकमुद्दिष्टम्" । अपि च—"मधुतैलघृतैर्मध्ये वेष्टिताः समिताश्च याः । मधुमस्तकमुद्दिष्ट तस्याख्या परिमार्जनम् ॥"इति मधुमस्तका एव मधुशीर्षका बच्यन्ते इति उल्लणः । तत्र मधुशीर्षकलक्षणमाह नलः—विमर्द्य समिताचूर्णं मृदुपाकं गुडान्वितम् । घृतावगाहे गुडिकां वृत्तां पक्वां सकेशराम् ॥ सौगन्धिकाथिवासां च कुर्यात्पूपलिकां बुधः । स एव खण्डसंयावः सिताभ्रातमपूरितः । मातुङ्गात्वचा चैव वेष्टितो मधुशीर्षकः ॥"इति । संयवः—संयावस्तु घृतक्षीरगुडरोधूमपाकजः" । "समितां घृतदुग्धेन मोदयित्वा सुशोभनाम् । पचेद् घृतोत्तरे स्वन्डे क्षिपेद् भाण्डे नवेततः । संयाघोऽसौ युतश्चूर्णैः खण्डलामरिचार्द्रकैः ॥"इति । पूपाः='पूआ' इति ख्याताः । ६ सक्तुकः—"लवङ्गव्योषखण्डैस्तु दधि निर्मथ्य गालितम् । पक्वं दाडिमसंयुक्तं चन्द्रचूर्णाव-


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातापहस्तृप्तिकरो बल्यो विष्यन्दनः[1] स्मृतः ॥ ३९८ ॥
बृंहणाः वातपित्तघ्ना भक्ष्या बल्यास्तु सामिताः[2] ।
हृद्याः पथ्यतमास्तेषां लघवः फेनकादयः[3] ॥ ३९९ ॥
मुद्गादिवेसवाराणां पूर्णा[4] विष्टम्भिनो मताः ।
वेसवारैः सपिशितैः सम्पूर्णा[5] गुरुबृंहणाः ॥ ४०० ॥
पालला[6]ः श्लेष्मजननाः, शष्कुल्यः कफपित्तलाः ।
वीर्योष्णाः पैष्टिंका[7] भक्ष्याः कफपित्तप्रकोपणाः ॥ ४०१ ॥
विदाहिनो नातिबला गुरवश्च विशेषतः ।
वैदला[8] लघवो भक्ष्याः कषायाः सृष्टमारुता[9]ः ॥ ४०२ ॥
विष्टम्भिनः पित्तसमाः श्लेष्मघ्ना भिन्नवर्चसः ।
बल्या वृष्यास्तु गुरवो विज्ञेया माषसाधिताः ॥ ४०३ ॥
[10]कूर्चिकाविकृता भक्ष्या गुरवो नातिपित्तलाः ।
[11]विरूढककृता भक्ष्या गुरवोऽनिलपित्तलाः ॥ ४०४ ॥
विदाहोत्क्लेशजनना रूक्षा दृष्टिप्रदूषणाः ।
हृद्याः सुगन्धिनो भक्ष्या लघवो घृतपाचिताः ॥ ४०५ ॥
वातपित्तहरा बल्या वर्णदृष्टिप्रसादनाः ।
विदाहिनस्तैलकृता गुरवः कटुपाकिनः ॥ ४०६ ॥
उष्णा मारुतदृष्टिघ्नाः पित्तलास्त्वक्प्रदूषणाः ।
फलमांसेक्षुविकृतितिलमाषोपसंस्कृताः ॥ ४०७ ॥

---

चूर्णितम् । सष्टकं पाचका आहुः ॥"इति । १ विष्यन्दनः—"आमगोधूमचूर्णं च सर्पिः क्षीरगुडान्वितम् । नातिसान्द्रो नातिघनो विष्यदो नाम नामतः ॥"इति । २ समिता गोधूमचूर्णं तत्कृताः सामिता इति फेनकादिविशेषणम् । ३ फेनकाः—"विमर्दं विमलां शुक्लां समितां नातिशर्कराम् । संवेष्टनाय गर्भार्थं खरपाकं घृते पचेत् । फेनकं फेनसङ्काशं सम्पूर्णशशिसन्निभम् ॥" इति । ४ पूर्णाः=पूरितगर्भाः । ५ सम्पूर्णाः=सम्पूरितगर्भाः । ६ पललं तिलचूर्णं गुडाद्युपेतं तेन कृताः पाललाः । 'पललं तिलचूर्णे च' इति मेदिनी । ७ पिष्टकं तण्डुलचूर्णं तेन कृताः पैष्टिकाः । ८ विदला मुद्गादयस्तैः कृता वैदलाः । ९ सृष्टमारुताः=बहुवाताः । १० कूर्चिका क्षीरविकृतिस्तया विकृता विविधप्रकाराः कृताः कूर्चिकाविकृताः । ११ विरूढककृताः=अङ्कुरितमुद्गादि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भक्ष्या बल्याश्च गुरवो बृंहणा हृदयप्रियाः ।
कपालाङ्गारपक्वास्तु[1] लघवो वातकोपनाः ॥ ४०८ ॥
सुपक्वास्तनवश्चैव भूयिष्ठं लघवो मताः ।
सकिलाटादयो[2] भक्ष्या गुरवः कफवर्द्धनाः ॥ ४०९ ॥
कुल्माषा[3] वातला रूक्षा गुरवो भिन्नवर्चसः ।
उदावर्त्तहरो वाट्यः[4] कासपीनसमेहनुत् ।
धानोलुम्बास्तु[5] लघवः कफमेदोविशोषणाः ॥ ४१० ॥
सक्तवो[6] बृंहणा वृष्यास्तृष्णापित्तकफापहाः ।
पीताः सद्यो बलकरा भेदिनः पवनापहाः ॥ ४११ ॥
गुर्वी पिण्डी खराऽत्यथ लघ्वी सैव विपर्ययात्[7] ।
सक्तूनामाशु जीर्येत मृदुत्वादवलेहिका ॥ ४१२ ॥
लाजाच्छर्द्यतिसारघ्ना दीपनाः कफनाशनाः ।
बल्याः कषायमधुरा लघवस्तृण्मलापहाः ॥ ४१३ ॥
तृट्छर्दिदाहघर्मार्त्तिनुदस्तत्सक्तवो मताः ।
रक्तपित्तहराश्चैव दाहज्वरविनाशनाः ॥ ४१४ ॥
पृथुकाः[8] गुरवः स्निग्धा बृंहणाः कफवर्द्धनाः ।
बल्याः सक्षीरभावात्तु[9] वातघ्ना भिन्नवर्चसः ॥ ४१५ ॥
सन्धानकृत्पिष्टमामं[10] ताण्डुलं कृमिमेहनुत् ।
सुदुर्जरः स्वादुरसो बृंहणस्तण्डुलो नवः ।
सन्धानकृन्मेहहरः पुराणस्तण्डुलः स्मृतः ॥ ४१६ ॥

---

कृताः । १ कपालः खर्परः, अङ्गारः ज्वलदङ्गारस्तत्र पक्वाः कपालाङ्गारपक्वाः मण्डकादिकर्कटीप्रभृतयः । २ किलाटः = नष्टक्षीरभागः, तदुक्तम्—"नष्टदुग्धस्य पक्वस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाटकः ।" इति । आदिशब्दादामिक्षातक्रादयः, तैः सह वर्तमानाः सकिलाटादयः । ३ "अर्द्धस्विन्नाश्च गोधूमा अन्ये च चणकादयः । कुल्माषा इति कथ्यन्ते" इति । ४ वाट्यः = भृष्टयवादिकृतः । ५ धानाः = भृष्टयवाः, उलुम्बाः = अग्निपक्काश्चणकादिसिम्बाः 'होरहा' इति ख्याताः । ६ सक्तवः = भृष्टयवचूर्णानि । ७ विपर्ययात् = नातिखरत्वाद् मृदुरित्यर्थः । ८ पृथुकाः = चिपिटकाः, 'चिउड़ा' इति ख्याताः । ९ सक्षीरभावात् = क्षीरयोगात् । १० आमम् = अपक्वम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


द्रव्यसंयोगसंस्कारविकारान् समवेक्ष्य तु ।
यथाकारणमासाद्य भोक्तॄणां छन्दतोऽपि वा ।
अनेकद्रव्ययोनित्वाच्छास्त्रतस्तान् विनिर्दिशेत् ॥ ४१७ ॥

अतः सर्वानुपानान्युपदेक्ष्यामः ।

अम्लेन केचिद्विहता मनुष्या माधुर्ययोगे प्रणयी भवन्ति ।
तथाऽम्लयोगे मधुरेण तृप्तास्तेषां यथेष्टं प्रवदन्ति पथ्यम् ॥ ४१८ ॥
शीतोष्णतोयासवमद्ययूषफलाम्लधान्याम्लपयोरसानाम् ।
यस्यानुपानं तु हितं भवेद्यत्तस्मै प्रदेयं त्विह मात्रया तत् ॥ ४१९ ॥
व्याधिं च कालं च विभाव्य धीरैर्द्रव्याणि भोज्यानि च तानि तानि ।
सर्वानुपानेषु वरं वदन्ति मेध्यं यदम्भः[१०] शुचिभाजनस्थम् ॥४२०॥
लोकस्य जन्मप्रभृति प्रशस्तं तोयात्मकाः सर्वरसाश्च दृष्टाः ।
सङ्क्षेप एषोऽभिहितोऽनुपानेष्वतः परं विस्तरतो विधास्ये ॥४२१॥

उष्णोदकानुपानं तु स्नेहानामथ शस्यते ।
ऋते[११] भल्लातकस्नेहात् स्नेहात्तौवरकात्तथा ॥ ४२२ ॥

---

१ अत्र—"यदा कारणमासाद्य भोक्तॄणां छन्दतोऽपि वा । भक्ष्यादयः प्रकल्प्याः स्युस्तदा सुनिपुणो भिषक् ॥ द्रव्यसंयोगसंस्कारविकारान् समवेक्ष्य तु । अनेकद्रव्ययोनित्वाच्छास्त्रतस्तान् विनिर्दिशेत् ॥" इति श्रीहाराणचन्द्रस्त्रीकृतपाठः । २ यथाकारणं=यथादोषादिप्रकोपम्, आसाद्य=प्राप्य, भोक्तॄणां छन्दतः=अभिलाषतः अनेकद्रव्ययोनित्वाद् भक्ष्यादीनामिति शेषः ३ शास्त्रतः=शास्त्रानुसारेण, तान्=द्रव्यसंयोगसंस्कारविकारान् । ४ विनिर्दिशेत्=गुणत उपदिशेदित्यर्थः ।

इति भक्ष्यवर्गः ।

---

## अथानुपानवर्गः—

५ अन्नादनु पश्चात्पीयन्ते इत्यनुपानानि, आहारमनु लक्षीकृत्य पीयन्ते यानि तान्यनुपानानि वा । ६ विहताः=उद्वेजिताः । ७ प्रणयी भवन्ति=अभिलाषिणो भवन्ति । ८ यथेष्टं=यथेप्सितम्, अम्लतृप्तस्य मधुरं मधुरतृप्तस्याम्लं पथ्यम् अनुपानं प्रवदन्तीत्यर्थः । ९ अनुपानद्रव्याणि सङ्गृह्योपपादयति—**शीतेत्यादिना** । १० अम्भः=आन्तरिक्षं जलम् । ११ अत्यन्तोष्णस्य भल्लातकस्य तैलं विनेत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अनुपानं वदन्त्येके तैले यूषाम्लकाञ्जिकम् ।
शीतोदकं माक्षिकस्य पिष्टान्नस्य च सर्वशः ॥ ४२३ ॥
दधिपायसमद्यार्त्ति विषजुष्टे तथैव च ।
केचित् पिष्टमयस्याहुरनुपानं सुखोदकम्[1] ॥ ४२४ ॥
पयो मांसरसो वाऽपि शालिमुद्गादिभोजिनाम् ।
युद्धाध्वातपसन्तापविषमद्यरुजासु च[2] ॥ ४२५ ॥
माषादेरनुपानं तु धान्याम्लं दधिमस्तु वा ।
मद्यं मद्योचितानां तु सर्वमांसेषु पूजितम् ॥ ४२६ ॥
अमद्यपानामुदकं फलाम्लं वा प्रशस्यते ।
क्षीरं घर्माध्वभाष्यस्त्रीक्लान्तानाममृतोपमम्[3] ॥ ४२७ ॥
सुरा कृशानां स्थूलानामनुपानं मधूदकम्[4] ।
निरामयानां चित्रं[5] तु भुक्तमध्ये प्रकीर्त्तितम् ॥ ४२८ ॥
स्निग्धोष्णं मारुते पथ्यं, कफे रूक्षोष्णमिष्यते ।
अनुपानं हितं चापि पित्ते मधुरशीतलम् ॥ ४२९ ॥
हितं शोणितपित्तिभ्यः क्षीरमिक्षुरसस्तथा ।
अर्कशेलुशिरीषाणामासवास्तु विषार्त्तिषु[6] ॥ ४३० ॥
अतः परं तु वर्गाणामनुपानं पृथक् पृथक् ।
प्रवक्ष्याम्यानुपूर्वेण सर्वेषामेव मे शृणु ॥ ४३१ ॥

तत्र पूर्वसस्यजातीनां[7] बदराम्लं, वैदलानां धान्याम्लं, जङ्घालानां धन्वजानां[8] च पिप्पल्यासवः, विष्किराणां कोलबदरासवः, प्रतुदानां क्षीरवृक्षासवः, गुहाशयानां खर्जूरनालिकेरासवः, प्रसहानामश्वगन्धाऽऽसवः, पर्णमृगाणां[9] [10]कृष्णगन्धासवः, बिलेशयानां

---

१ सुखोदकं=मन्दोष्णजलम् । २ सन्तापः=अग्न्यादितापः । ३ भाष्यम्=उच्चैर्भाषणम् । ४ समांशेन मधुना मिश्रमुदकं मधूदकम् । ५ चित्रं=स्निग्धरूक्षोष्णमधुराद्यनेकविधम् । ६ शेलुः=श्लेष्मातकः, 'लिसोड़ा' इति ख्यातः । ७ विषार्तिषु=विषपीडासु । ८ पूर्वसस्यजातीनां=शालिवर्गपठितानामन्नसमूहानामित्यर्थः । ९ धन्वजानां=मरुदेशजानां मृगाणां, वर्तकादीनां पक्षिणां वा । १० कृष्णगन्धासवः=शोभाञ्जनासवः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


फलसारासवः, एकशफानां त्रिफलाऽऽसवः, अनेकशफानां खदिरासवः, कूलचराणां शृङ्गाटककशेरुकासवः, कोशवासिनां पादिनां च स एव, प्लवानामिक्षुरसासवः, नादेयानां मत्स्यानां मृणालासवः, सामुद्राणां तु मातुलुङ्गासवः, अम्लानां फलानां पद्मोत्पलकन्दासवः, कषायाणां दाडिमवेत्रासवः, मधुराणां त्रिकटुकयुक्तः खण्डासवः, तालफलादीनां धान्याम्लम्, कटुकानां दूर्वानलवेत्रासवः, पिप्पल्यादीनां श्वदंष्ट्रावसुकासवः; कूष्माण्डादीनां दार्वीकरीरासवः, चुच्चुप्रभृतीनां लोध्रासवः, जीवन्त्यादीनां त्रिफलाऽऽसवः, कुसुम्भशाकस्य स एव मण्डूकपर्ण्यादीनां महापञ्चमूलासवः, तालमस्तकादीनामम्लफलासवः, सैन्धवादीनां सुरासव आरनालं च, तोयं वा सर्वत्रेति॥४३२॥

भवन्ति चात्र ।

सर्वेषामनुपानानां माहेन्द्रं तोयमुत्तमम् ।
सात्म्यं यस्य तु यत्तोयं तत् तस्मै हितमुच्यते ॥ ४३३ ॥
उष्णं वाते कफे तोयं पित्ते रक्ते च शीतलम् ।
दोषवद् गुरु वा भुक्तमतिमात्रमथापि वा ॥ ४३४ ॥
यथोक्तेनानुपानेन सुखमन्नं प्रजीर्यति ।
रोचनं बृंहणं वृष्यं दोषसङ्घातभेदनम् ॥ ४३५ ॥
तर्पणं मार्दवकरं श्रमक्लमहरं सुखम् ।
दीपनं दोषशमनं पिपासाच्छेदनं परम् ॥ ४३६ ॥
बल्यं वर्णकरं सम्यगनुपानं सदोच्यते ।
तदादौ कर्शयेत्पीतं स्थापयेन्मध्यसेवितम् ॥ ४३७ ॥

---

१ फलानि दाडिमादीनि साराः शालसारादयस्तेषामासवः फलसारासवः । २ छागादीनामनेकशफानामित्यर्थः । ३ कषायाणां = क्षीरवृक्षादिफलानाम् । ४ मधुराणां द्राक्षाऽऽदीनां फलानां त्रिकटुकयुक्तः खण्डासवः शर्कराऽऽसवः । ५ कटुकानां फलानामित्यर्थः । ६ श्वदंष्ट्रा = गोक्षुरकः, वसुकः = वुकः । ७ तालमस्तकमज्जादीनामित्यर्थः । ८ आरनालं = काञ्जिकम् । ९ माहेन्द्रम् = आन्तरिक्षमित्यर्थः । १० यत्तोयं = नदीनदसरस्तडागादिजलम् । ११ दोषवद = वातादिदोषकरम् । १२ सुखम् = अदोषम् । १३ परम् अतिशयेन सदोच्यते सर्वदा कथ्यते इति सम्बन्धः । १४ अनुपा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पश्चात्पीतं बृंहयति तस्माद्वीक्ष्य प्रयोजयेत् ।
स्थिरतां गतमक्लिन्नमन्नमद्रवपायिनाम् ॥ ४३८ ॥
भवत्याबाधजननमनुपानमतः पिबेत् ।
न पिबेच्छ्वासकासार्त्तो रोगे चाप्यूर्ध्वजत्रुगे ॥ ४३९ ॥
क्षतोरस्कः प्रसेकी च यस्य चोपहतः स्वरः ।
पीत्वाऽध्वभाष्याध्ययनगेयस्वप्नान्न शीलयेत् ॥ ४४० ॥
प्रदूष्यामाशयं तद्धि तस्य कण्ठोरसि स्थितम् ।
स्यन्दाग्निसादच्छर्द्यादीनामयाञ्जनयेद् बहून् ॥ ४४१ ॥
गुरुलाघवचिन्तेयं स्वभावं नातिवर्त्तते ।
तथा संस्कारमात्रान्नकालांश्चाप्युत्तरोत्तरम् ॥ ४४२ ॥
मन्दकर्मानलारोग्याः सुकुमाराः सुखोचिताः ।
जन्तवो ये तु तेषां हि चिन्तेयं परिकीर्त्यते ॥ ४४३ ॥
बलिनः खरभक्ष्या ये ये च दीप्ताग्नयो नराः ।

---

नस्य भोजनादिमध्यान्तविभागेन गुणविशेषं दर्शयति—**तदिति** । तद् अनुपानं भोजनस्यादौ पीतं सेवितं कर्शयेत् शरीरस्य कृशत्वमापादयेत्, मध्यसेवितं स्थापयेत् । स्थाधातोर्गतिनिवृत्त्यर्थत्वान्न कर्शयति नापि च स्थूलयति, अपि तु समं करोतीत्यर्थः । पश्चात् पीतं बृंहयति शरीरं पुष्णाति तस्माद्वीक्ष्य प्रयोजयेत् । अर्थात्कार्श्यमिच्छताऽऽदौ मध्यशरीरमिच्छता मध्ये पुष्टिमिच्छताऽन्तेऽनुपानं प्रयोक्तव्यमिति निष्कर्षः । १ अद्रवपायिनाम्=अनुपानमपिबताम् । २ आबाधजननं=पीडाकरम् । ३ ऊर्ध्वजत्रुगे=ग्रीवामूलोपरितनभागे, नासाकर्णादिगतरोगे इत्यर्थः । ४ प्रसेकी=लालास्रावी ।

५ अनुपानसेवनानन्तरं वर्ज्यान्निर्दिशति=**पीत्वेति** । ६ न शीलयेत्=न सेवेत । ७ स्यन्दं=श्लेष्मस्रवणम् । ८ स्वभावं=नैसर्गिकीं गुर्वाद्याहारसात्म्यताम् । ९ उत्तरोत्तरम्=स्वभावात्संस्कारं संस्कारान्मात्रां मात्रातोऽन्नम् अन्नात्कालं गुरुलाघवचिन्ता नातिवर्तते नातिक्रामतीत्यर्थः । 'नातिवर्तते' इति क्रियापदमनुकृष्य संस्कारादावन्वयात् संस्कारं नातिवर्तते, मात्रां नातिवर्तते, अन्नं नातिवर्तते, कालं नातिवर्तते इति बोध्यम् । संस्कारं नातिवर्तते, यथा स्वभावाद् गुरोरपि व्रीहेर्लाजा लघवः, लघोरपि शालेः संस्कारात् पिष्टं गुरुः । आत्रेयोऽपि—"गुरूणां लाघवं विद्यात्संस्कारात्सविपर्ययम् । व्रीहेर्लाजा यथा च स्युः सक्तूनां सिद्धपिण्डकाः ॥" इति । एवं मात्राऽऽदीनां बोध्यम् । अत्र विस्तरभिया विरम्यते । १० खरभक्ष्याः=अमृदुवणकादिभोजना इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कर्मनित्याश्च[1] ये तेषां नावश्यं परिकीर्त्यते[2] ॥ ४४४ ॥

इति सर्वानुपानवर्गः ।

---

अथाहारविधिं वत्स ! विस्तरेणाखिलं शृणु ।
आप्तान्वितमसङ्कीर्णं[3] शुचि काय महानसम्[4] ॥ ४४५ ॥
तत्राप्तैर्गुणसम्पन्नमन्नं भक्ष्यं सुसंस्कृतम् ।
शुचौ देशे सुसंगुप्तं समुपस्थापयेद् भिषक् ॥ ४४६ ॥
विषघ्नैरगदैः[5] स्पृष्टं प्रोक्षितं व्यजनोदकैः[6] ।
सिद्धैर्मन्त्रैर्हृतविषं सिद्धमन्त्रं निवेदयेत् ॥ ४४७ ॥
वक्ष्याम्यतः परं कृत्स्नमाहारस्योपकल्पनाम् ।
घृतं काष्णायसे[7] देयं पेया देया तु राजते ॥ ४४८ ॥
फलानि सर्वभक्ष्यांश्च प्रदद्याद्वै दलेषु[8] च ।
परिशुष्कं[9] प्रदिग्धानि सौवर्णेषु प्रकल्पयेत् ॥ ४४९ ॥
प्रद्रवाणि[10] रसांश्चैव राजतेषूपहारयेत् ।
कट्वराणि[11] खडांश्चैव सर्वान् शैलेषु[12] दापयेत् ॥ ४५० ॥
दद्यात्ताम्रमये पात्रे सुशीतं सुश्रृतं पयः ।
पानीयं पानकं मद्यं मृन्मयेषु प्रदापयेत् ॥ ४५१ ॥
काचस्फटिकपात्रेषु शीतलेषु शुभेषु च ।

---

१ कर्मनित्याः = सदा कर्मकारिणः । २ गुरुलाघवचिन्तेति शेषः ।

इत्यनुपानवर्गः ।

३ आप्तैर्विश्वस्तैरन्वितं युक्तम् । ४ महानसं=पाकशालम् । ५ विषघ्नैः=विषहारिभिः । ६ व्यजनं तालवृन्तं तदपि विषघ्नभेषजोदकैः प्रोक्षितं सिक्तम् । ७ काष्णायसे=कृष्णलौहमये पात्रे । ८ वैशब्दः पादपूरणे, दलेषु=पत्रेषु; 'पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्ण छदः पुमान्' इत्यमरः । श्रीहाराणचन्द्रमते 'वैदलेषु' इत्यस्य वंशादिरचितेषु इत्यर्थो बोध्यः । ९ "सिक्तं बहुघृते भृष्टं सुबहुरुष्णाम्बुना मृदु । जीरकाद्यैर्धनं मांसं परिशुष्कं तदुच्यते । तदेव गोरसादानं प्रदिग्धमिति विश्रुतम् ॥" इति । १० प्रद्रवाणि=प्रकृष्टद्रवाणि मण्डादीनि । ११ "सौवीराम्लं तथाऽत्यम्लं काञ्जिकं कटवरं विदुः" इति । १२ शैलेषु=पाषाणमयेषु पात्रेषु ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दद्याद्वैदूर्यपात्रेषु रागषाडवसट्टकान् ॥ ४५२ ॥
पुरस्ताद्विमले पात्रे सुविस्तीर्णे मनोरमे ।
सूदः सूपौदनं दद्यात् प्रदेहांश्च सुसंस्कृतान् ॥ ४५३ ॥
फलानि सर्वभक्ष्यांश्च परिशुष्काणि यानि च ।
तानि दक्षिणपार्श्वे तु भुञ्जानस्योपकल्पयेत् ॥ ४५४ ॥
प्रद्रवाणि रसांश्चैव पानीयं पानकं पयः ।
खडान् यूषांश्च पेयांश्च सव्ये पार्श्वे प्रदापयेत् ॥ ४५५ ॥
सर्वान् गुडविकारांश्च रागषाडवसट्टकान् ।
पुरस्तात् स्थापयेत् प्राज्ञो द्वयोरपि च मध्यतः ॥ ४५६ ॥
एवं विज्ञाय मतिमान् भोजनस्योपकल्पनाम् ।
भोक्तारं विजने रम्ये निःसम्पाते शुभे शुचौ ॥ ४५७ ॥
सुगन्धपुष्परचिते समे देशेऽथ भोजयेत् ।
विशिष्टमिष्टसंस्कारैः पथ्यैरिष्टैः रसादिभिः ॥ ४५८ ॥
मनोज्ञं शुचि नात्युष्णं प्रत्यग्रमशनं हितम् ।
पूर्वं मधुरमश्नीयान्मध्येऽम्ललवणौ रसौ ॥ ४५९ ॥
पश्चाच्छेषान् रसान् वैद्यो भोजनेष्ववचारयेत् ।
आदौ फलानि भुञ्जीत दाडिमादीनि बुद्धिमान् ॥ ४६० ॥
ततः पेयांस्ततो भोज्यान् भक्ष्यांश्चित्रांस्ततः परम् ।
घनं पूर्वं समश्नीयात् केचिदाहुर्विपर्ययम् ॥ ४६१ ॥
आदावन्ते च मध्ये च भोजनस्य तु शस्यते ।

---

१ वैदूर्यपात्रेषु=बिडालनेत्राभमणिनिर्मितपात्रेषु । २ सूपेन मुद्गादिद्विदलेन सिहितमोदनं भक्तं सूपौदनम् । ३ प्रदेहान्=प्रलेहान्, 'चटनी' इति प्रसिद्धान् । ४ निःसम्पाते=वितानसहिते । 'निःसम्बाधे' इति पाठान्तरम् । ५ समे=निम्नोन्नतत्वरहिते देशे । ६ प्रत्यग्रम्=अभिनवम्, सद्यस्कमिति यावम् । ७ यतो भोजनात् प्राग्भुक्तो मधुरो रसः पक्वाशयगतं वायुं जयति, भोजनस्य मध्ये भुक्तावलवणौ पित्ताशयेऽग्निदीप्तिं कुरुतः, भोजनान्ते सेविताः शेषाः कटवादयः कफजयं कुर्वन्ति अतो वैद्यस्तदा तदा तत्तत्पदार्थमवचारयेदिति । ८ यतः प्रथमं भुक्तो दाडिमाद्यम्लो वातं जयति । ९ पेयान्=पातव्यान्, भोज्यान्=रक्तशाल्यादीन् । १० घनं भोज्यादिकठिनं पूर्वं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


निरत्ययं[1] दोषहरं फलेष्वामलकं नृणाम् ॥ ४६२ ॥
मृणालविसशालूककन्देक्षुप्रभृतीनि च ।
पूर्वं योज्यानि भिषजा न तु भुक्ते कदाचन ॥ ४६३ ॥
सुखं[2]मुच्चैः समासीनः समदेहोऽन्नतत्परः ।
काले सात्म्यं लघु स्निग्धं क्षिप्रमुष्णं द्रवोत्तरम् ॥ ४६४ ॥
बुभुक्षितोऽन्नमश्नीयान् मात्रावद्विदितागमः ।
काले भुक्तं प्रीणयति सात्म्यमन्नं न बाधते ॥ ४६५ ॥
लघु शीघ्रं व्रजेत पाकं स्निग्धोष्णं बलवह्निदम् ।
क्षिप्रं भुक्तं समं पाकं यात्यदोषं द्रवोत्तरम् ॥ ४६६ ॥
सुखं जीर्यति मात्रावद्धातुसाम्यं करोति च ।
अतीवा[3]यतयामास्तु क्षपा येष्वृतुषु[4] स्मृताः ॥ ४६७ ॥

---

समश्नीयात् । केचिद् विपर्ययम् अर्थात् पूर्वं द्रवं पश्चात् कठिनमाहुः । १ निरत्ययं= निर्बाधम् । २ भोजनप्रकारं प्रतिपादयति—**सुखमिति** । सुखं सुखपूर्वकम् उच्चैरुच्चासने समासीनः सम्यगुपविष्टः, अन्नतत्परोऽन्नपरायणः, न जल्पनादावासक्तः । तथा च स्मृतिः—"अजल्पन्नहसन् तन्मना भुञ्जीत" इति । काले=नित्यगे आवस्थिके च द्विविधे काले, तत्र नित्यगः—"याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत् । याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद् बलक्षयः ॥" इति । आवस्थिकः—"क्षुत्सम्भवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च । काले वा यदि वाऽकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥" इति । सात्म्यं हितकारि, लघु, स्निग्धं, क्षिप्रं नातिद्रुतं नातिविलम्बितम् । तथा चात्रेयः—"नातिद्रुतमश्नीयात् तथा नातिविलम्बितमश्नीयात्" इति । उष्णं, द्रवोत्तरं द्रवप्रधानम्, बुभुक्षितः भोजनकाले बुभुक्षितः, अकाले बुभुक्षानिषेधं स्वयमेव वक्ष्यति—"भवत्यकालेऽपि तदा बुभुक्षाया मन्दवुद्धिं विषवन्निहन्ति" । मात्रावत्, न त्वमात्रावत्; अन्यथाऽशुभं स्यात् । तदुक्तं चरके—"त्रिविधं कुक्षौ स्थापयेदवकाशांशमाहारमुपयुञ्जानः, तद्यथा—एकमवकाशांशं मूर्त्तानामाहारविकाराणामेकं द्रवाणामेकं पुनर्वातपित्तश्लेष्मणाम्, एतावतीं ह्याहारमात्रामुपयुञ्जानो नामात्राहारजं किञ्चिदशुभं प्राप्नोति" । "अपीडनं भवेत्कुक्षेः पार्श्वयोरविपाटनम् । अन्नेन हृदयाबाधो जठरस्य तु गौरवम् ॥ प्रीणनं चक्षुरादीनां शमनं क्षुत्पिपासयोः । उच्छ्वासश्वासहास्यादिकथासु सुखवर्तनम् । सुखेन परिणामः स्यादन्ने भुक्ते दिवा निशि" ॥ विदितागमः हेयोपादेयविवेकार्थं विदितं हिताहितं येन स विदितागमः । ३ अतीवायतयामाः=अतिशयदीर्घप्रहराः । ४ ऋतुषु=हेमन्तशिशिरेषु ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तेषु तत् प्रत्यनीकाढ्यं[1] भुञ्जीत प्रातरेव तु ।
येषु[2] चापि भवेयुश्च दिवसा भृशमायताः ॥ ४६८ ॥
तेषु तत्कालं[3] विहितमपराह्णे प्रशस्यते ।
रजन्यो दिवसाश्चैव येषु[4] चापि समाः स्मृताः ॥ ४६९ ॥
कृत्वा समं[5] महोरात्रं तेषु भुञ्जीत भोजनम् ।
नाप्राप्तातीतकालं[6] वा हीनाधिकमथापि वा ॥ ४७० ॥
अप्राप्तकाले भुञ्जानः शरीरे ह्यबलौ नरः ।
तांस्तान् व्याधीनवाप्नोति मरणं वा नियच्छति ॥ ४७१ ॥
अतीतकाले भुञ्जानो वायुनोपहतेऽनले ।
कृच्छ्राद्विपच्यते भुक्तं द्वितीयञ्च न काङ्क्षति ॥ ४७२ ॥
हीनमात्रमसन्तोषं करोति च बलक्षयम् ।
आलस्यगौरवाटोपसादांश्च कुरुतेऽधिकम्[7] ॥ ४७३ ॥
तस्मात् सुसंस्कृतं युक्त्या दोषैरेतैर्विवर्जितम् ।
यथोक्तगुणसम्पन्नमुपसेवेत भोजनम् ॥ ४७४ ॥
विभज्य दोषकालादीन् कालयोरुभयोरपि[8] ।
अचोक्षं[9] दुष्टमुत्सृष्टं पाषाणतृणलोष्टवत् ॥ ४७५ ॥
द्विष्टं व्युषितमस्वादु पूति चान्नं विवर्जयेत् ।
चिरसिद्धं स्थिरं शीतमन्नमुष्णीकृतं पुनः ॥ ४७६ ॥

---

१ प्रत्यनीकाढ्यं = कालबलप्रवृत्तदोषगुणानां विरोधिद्रव्यगुणबहुलमित्यर्थः । २ येषु=ग्रीष्मप्रावृट्सु । ३ द्रवस्निग्धमधुरप्रायमित्यर्थः । ४ येषु = शरद्वसन्तेषु । ५ अहोरात्रं समं कृत्वा मध्याह्ने इत्यर्थः । ६ अकालमात्रावत्त्वं निर्दिशति—**नाप्राप्तेति** । अप्राप्तकालमतीतकालं वा न भुञ्जीतेत्यर्थः । ७ अधिकभोजने मनुरपि दोषमाह—"अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् । अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥" इति । ८ उभयोः कालयोः = सायं प्रातः । मनुरपि "सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं स्मृतिनोदितम् । नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥" इति ।

९ हेयान्नं निर्दिशति—**अचोक्षमिति** । अचोक्षम्=अशुचिम्, 'चोक्षो गीते शुचौ दक्षे तथा तीक्ष्णमनोज्ञयोः ।' इति मेदिनी । दुष्टं विषादिभिः, उत्सृष्टम्=उच्छिष्टम्, पाषाणतृणलोष्टानि विद्यन्तेऽस्येति पाषाणतृणलोष्टवत् पाषाणादियुक्तमित्यर्थः । द्विष्टं=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अशान्तमुपदग्धं च तथा स्वादु न लक्ष्यते ।
यद्यत् स्वादुतरं तत्तद्विदध्यादुत्तरोत्तरम् ॥ ४७७ ॥
प्रक्षालयेदद्विरास्यं भुञ्जानस्य मुहुर्मुहुः ।
विशुद्धरसने तस्मै रोचतेऽन्नमपूर्ववत् ॥ ४७८ ॥
स्वादुना तस्य रसनं प्रथमेनातितर्पितम् ।
न तथा स्वादयेदन्यत्तस्मात् प्रक्षाल्यमन्तरा ॥ ४७९ ॥
सौमनस्यं बलं पुष्टिमुत्साहं हर्षणं सुखम् ।
स्वादु सञ्जनयत्यन्नमस्वादु च विपर्ययम् ॥ ४८० ॥
भुक्त्वाऽपि यत् प्रार्थयते भूयस्तत् स्वादु भोजनम् ।
अशितश्चोदकं युक्त्या भुञ्जानश्चान्तरा पिबेत् ॥ ४८१ ॥
दन्तान्तरगतं चान्नं शोधनेनाहरेच्छनैः ।
कुर्यादनिर्हृतं तद्धि मुखस्यानिष्टगन्धताम् ॥ ४८२ ॥
जीर्णेऽन्ने वर्द्धते वायुर्विदग्धे पित्तमेव तु ।
भुक्तमात्रे कफश्चापि तस्माद् भुक्तेरितं कफम् ॥ ४८३ ॥
धूमेनापोह्य हृद्यैर्वा कषायकटुतिक्तकैः ।

---

मनःप्रतिघाति, व्युषितं = विशेषेणोषितं, चिरकालावस्थितमित्यर्थः । १ अशान्तं = किञ्चिदवशिष्टविस्रावणम्, अत्युष्णमित्यर्थः । उपदग्धम् = अतिपाकित्वेन ज्वलितम्, चकाराद् यथायथं यन्न सिद्धं तदपि समुच्चेयम् । २ यत् स्वादुतरं संस्कृतं मधुररसादिकमस्ति तद् उत्तरोत्तरं यदधिकाधिकं स्वादुकरं तद् विदध्यात्, कोऽर्थः? दद्याद् वैद्य इति शेषः । ३ प्रक्षालयेत=गण्डूषं कारयेत् । ४ स्वादुतरपदार्थस्य दानावसरे प्रतिवारं गण्डूषकरणस्य फलमाह—**स्वादुनेति** । ५ स्वाद्वन्नस्य गुणं प्रतिपादयति—**सौमनस्यमिति** । ६ प्रार्थयते=यत् किमपि मुद्गमोदकादिकं याचते, तदेव स्वाद्वन्नं विज्ञेयमित्यर्थः । ७ अशितः = भुक्तो जनः, युक्त्या = यथाऽजीर्णादिबाधो न भवेत्तथा मात्रयेत्यर्थः । भुञ्जानश्चान्तरा भोजनमध्ये उदकं पिबेत् । श्रीभावमिश्रस्तु भोजनान्तेऽन्नं जीर्णे सत्यभूरि जलं सेवितुमुपदिशति—"अत्यम्बुपानाच्च विपच्यतेऽन्नं निरम्बुपानाच्च स एव दोषः । तस्मान्नरो वह्निविवर्द्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि ॥" इति । ८ शोधनेन = तृणादिना दन्तधावनेन । वाग्भटे भोजनानन्तरमपि दन्तधावनविधानमुपदिष्टम्—"प्रातर्भुक्त्वा च मृद्वग्रं कषायकटुतिक्तकम् । भक्षयेद्दन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन् ॥" इति । ९ विदग्धे = किञ्चित्पक्वे । १० भुक्तेरितं =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पूगकङ्कोलकर्पूरलवङ्गसुमनःफलैः[1] ॥ ४८४ ॥
फलैः कटुकषायैर्वा मुखवैशद्यकारकैः ।
ताम्बूलपत्रसहितैः सुगन्धैर्वा विचक्षणः ॥ ४८५ ॥
भुक्त्वा राजवदासीत[2] यावदन्नक्लमो गतः ।
ततः पादशतं गत्वा वामपार्श्वेन संविशेत्[3] ॥ ४८६ ॥
शब्दरूपरसान् गन्धान् स्पर्शांश्च मनसः प्रियान् ।
भुक्तवानुपसेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥ ४८७ ॥
शब्दरूपरसाः स्पर्शा गन्धाश्चापि जुगुप्सिताः[4] ।
अशुच्यन्नं तथा भुक्तमतिहास्यं च वामयेत् ॥ ४८८ ॥
शयनं चासनं वाऽपि नेच्छेद्वाऽपि द्रवोत्तरम्[5] ।
नाग्न्यातपौ न प्लवनं न यानं नापि वाहनम् ॥ ४८९ ॥
न चैकरससेवायां प्रसज्येत कदाचन ।
शाकावरान्नभूयिष्ठमम्लं च न समाचरेत्[6] ॥ ४९० ॥
एकैकशः समस्तान् वा नाध्यश्नीयाद्रसान्[7] सदा ।
प्राग्भुक्ते[8] त्वविविक्तेऽग्नौ द्विरन्नं न समाचरेत् ॥ ४९१ ॥
पूर्वभुक्ते विदग्धेऽन्ने भुञ्जानो हन्ति पावकम् ।
मात्रागुरुं परिहरेदाहारं द्रव्यतश्च यः[9] ॥ ४९२ ॥
पिष्टान्नं नैव भुञ्जीत [10]मात्राया वा बुभुक्षितः ।

---

भोजनेन वर्द्धितम् । १ सुमनःफलैः=जातीफलैः । २ राजवदासीत=भद्रासनेनासीत, यावदन्नभक्षणजन्येन्द्रियार्थप्रबाधकश्रमो भवेत् । भद्रासनलक्षणम्-"सोमन्याः पार्श्वयोर्न्यस्येद् गुल्फयुग्मं सुनिश्चलम् । वृषणाधः पादपार्ष्णि पाणिभ्यां परिबन्धयेत् ॥" इति । ३ संविशेत्=निद्रारहितं शयीत । ४ जुगुप्सिताः=मनसोऽप्रियाः । निन्दिता इत्यर्थः । विशेषमाहात्रेयः—"व्यायामं च व्यवायं च धावनं यानमेव च । युद्धं गीतं च पाठं च मुहूर्तं भुक्तवांस्त्यजेत् ॥" इति । मुहूर्तं=द्वादशक्षणम् ( ४८ मिनिट ।

५ द्रवोत्तरं द्रवाढ्यमशनं नाग्न्यादीनिच्छेदिति सम्बन्धः । ६ अवरान्नं=द्विदलान्नम्, अम्लं च न समाश्रयेद् न भक्षयेत् । ७ नाध्यश्नीयात्=नाधिकं भक्षयेत् । ८ प्राग्भुक्ते पूर्वं भोजने कृते तु अग्नौ अविविक्ते अविशुद्धे सति द्विरन्नं द्वितीयवारमन्नं न समाचरेद् न भुञ्जीतेत्यर्थः । ९ मुद्गादिद्रव्याणां लघूनामपि मात्रागुरुं मात्रातो गुरुमाहारं परिहरेत्, माषादिद्रव्यतो गुरुमाहारमपि परिहरेदित्यर्थः । १० मात्र-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


द्विगुणं च पिबेत्तोयं सुखं सम्यक् प्रजीर्यति ।
पेयं[1] लेह्यं[1] भक्ष्याणां गुरु विद्याद्यथोत्तरम् ॥ ४९३ ॥
गुरूणामर्द्धसौहित्यं[2] लघूनां तृप्तिरिष्यते ।
द्रवोत्तरो[3] द्रवश्चापि न मात्रागुरुरिष्यते ॥ ४९४ ॥
द्रवाढ्यमपि शुष्कं तु सम्यगेवोपपद्यते[4] ।
विशुष्कमन्नमभ्यस्तं[5] न पाकं साधु गच्छति ॥ ४९५ ॥
पिण्डीकृतमसंक्लिन्नं[6] विदाहमुपगच्छति ।
स्रोतस्यन्नवहे[7] पित्तं पक्तौ वा यस्य तिष्ठति ॥ ४९६ ॥
विदाहि भुक्तमन्यद्वा तस्याप्यन्नं विदह्यते ।
शुष्कं[8] विरुद्धं विष्टम्भि वह्निव्यापदमावहेत् ॥ ४९७ ॥
आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः ।
अजीर्णं[9] केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः[9] ॥ ४९८ ॥
[10]अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाद्वा [11]सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ।
कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥४९९॥

---

या = अल्पपरिमाणेन पिष्टान्नं भुञ्जीत वा बुभुक्षितश्चेत्। चरकः—"गुरुपिष्टमयं द्रव्यं तण्डुलान् पृथुकानपि । न जातु भुक्तवान् खादेन्मात्रां खादेद् बुभुक्षितः ॥" इति ।

१ पेयं = क्षीरादि, लेह्यं = मध्वादि, आद्यं = भक्तादि, भक्ष्यं = लड्डुकादि, एतेषां यथोत्तरं गुरुत्वं जानीयादित्यर्थः । २ सुहितस्य तृप्तस्य भावः सौहित्यम् । अर्धसौहित्यम् = अर्धतृप्तिपर्यन्तम् । चरकः-"द्रव्यापेक्षया च त्रिभागसौहित्यमर्धसौहित्यं वा गुरूणामुपदिश्यते" इति ३ द्रवात् क्षीरादेरुत्तरः अधिकः द्रवः पेयादिः । ४ सम्यगेवोपपद्यते = अदोषकरं भवति । ५ अभ्यस्तं सेवितं द्रवप्राचुर्यमन्तरेण न साधु समीचीनतया पाकं गच्छतीत्यर्थः । ६ असंक्लिन्नं = सम्यगार्द्रीभावमनापन्नम् । अत एव पिण्डीकृतं विदाहं विदग्धतां किञ्चित्पाकमिति यावत्, उपगच्छति प्राप्नोति ।

७ अन्नवहे स्रोतसि = आमाशये, पक्तौ = पित्तधरायां कलायां वा यस्य पित्तं विदग्धं सत्तिष्ठति, तस्यापि भुक्तं विदाहि अन्यद् अविदाहि वाऽन्नं विदह्यते इति सम्बन्धः । ८ शुष्कं = पिष्टान्नादि, विरुद्धं = क्षीरमत्स्यादि, विष्टम्भि = गुडगुडाशब्दकारिचणकमसूरादि विरूढधान्यादि वा, वह्निव्यापदम् = अग्निमान्द्यम्, आवहेत् = कुर्यात् । ९ रसस्य रसवदाहारस्य शेषोऽसम्यक् परिणतत्वेन शिष्टोऽशो रसशेषस्ततो रसशेषतः । १० अजीर्णस्य कायिककारणमभिदधाति—अतीति। ११ सन्धारणात् = मूत्रपुरीषादीनां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईर्ष्याभयक्रोधपरिक्षतेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन[2]।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिणाममेति ॥ ५०० ॥
माधुर्यमन्नं गतमामसंज्ञं विदग्धसंज्ञं गतमम्लभावम्।
किञ्चिद्विपक्वं भृशतोदशूलं विष्टब्धमानद्धविरुद्धवातम् ॥ ५०१ ॥
उद्गारशुद्धावपि भक्तकाङ्क्षा न जायते हृद्गुरुता च यस्य।
रसावशेषेण तु सप्रसेकं[3] चतुर्थमेतत् प्रवदन्त्यजीर्णम् ॥ ५०२ ॥
मूर्च्छाप्रलापौ वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः।
उपद्रवा भवन्त्येते मरणं चाप्यजीर्णतः ॥ ५०३ ॥
तत्रामे लङ्घनं कार्यं विदग्धे वमनं हितम्।
विष्टब्धे स्वेदनं पथ्यं रसशेषे शयीत च[4] ॥ ५०४ ॥
वामयेदाशु तं तस्मादुष्णेन लवणाम्बुना।
कार्यं चानशनं तावद्यावन्न प्रकृतिं भजेत् ॥ ५०५ ॥
लघुकायमतश्चैनं लङ्घनैः समुपाचरेत्।
यावन्न प्रकृतिस्थः स्याद्दोषतः प्राणतस्तथा ॥ ५०६ ॥
हिताहितोपसंयुक्तमन्नं समशनं[5] स्मृतम्।
बहु स्तोकमकाले वा विज्ञेयं विषमाशनम् ॥ ५०७ ॥
अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते।
त्रयमेतन्निहन्त्याशु बहून् व्याधीन् करोति वा ॥ ५०८ ॥
अन्नं विदग्धं हि नरस्य शीघ्रं शीताम्बुना वै परिपाकमेति।
तद्ध्वस्य शैत्येन निहन्ति पित्तमाक्लेदिभावाच्च नयत्यधस्तात् ५०९
विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रे द्रवेत हृत्कोष्ठगलं च यस्य।
द्राक्षाऽभयां माक्षिकसम्प्रयुक्तां[6] लीढ्वाऽभयां वा स सुखं लभेत॥५१०॥

---

सन्निरोधात्, स्वप्नविपर्ययः=दिवास्वापो रात्रौ जागरणम्। १ मानसरजस्तमोदोषकृ-मजीर्णमाख्यातिं ईर्ष्येति। २ रुग्दैन्यनिपीडितेन=रोगदैन्यव्याप्तेन। ३ सप्रसेकं=लालास्रावसहितम्। ४ चकारादामादिषु च शयीतेत्यर्थः। वाग्भटोऽपि–"लङ्घनं कार्यमामे तु विष्टब्धे स्वेदनं हितम्। विदग्धे वमनं यद्वा यथावस्थं हितं भवेत्॥" इति। ५ समशनविषमाशनाध्यशनलक्षणमाह–हितेति। ६ माक्षिकसम्प्रयुक्ताम्,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भवेदजीर्णं प्रति यस्य शङ्का स्निग्धस्य जन्तोर्बलिनोऽन्नकाले ।
प्रातः स शुण्ठीमभयामशङ्की[1] भुञ्जीत सम्प्राश्य हितं हितार्थी ॥५११॥
स्वल्पं यदा दोषविबद्धमामं लीनं[2] न तेजःपथमावृणोति ।
भवत्यजीर्णेऽपि तदा बुभुक्षा सा मन्दबुद्धिं विषवन्निहन्ति ॥ ५१२ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गुणानां[3] कर्मविस्तरम् ।
कर्मभिस्त्वनुमीयन्ते नानाद्रव्याश्रया गुणाः ॥ ५१३ ॥
ह्लादनः[4] स्तम्भनः शीतो मूर्च्छातृट्स्वेददाहजित् ।
उष्णस्तद्विपरीतः स्यात् पाचनश्च[5] विशेषतः ॥ ५१४ ॥
स्नेहमार्द्रवकृत् स्निग्धो बलवर्णकरस्तथा ।
रूक्षस्तद्विपरीतः स्याद्विशेषात् स्तम्भनः खरः ॥ ५१५ ॥
पिच्छिलो जीवनो बल्यः सन्धानः श्लेष्मलो गुरुः ।
विशदो विपरीतोऽस्मात् क्लेदाचूषणरोपणः[6] ॥ ५१६ ॥
दाहपाककरस्तीक्ष्णः स्रावणो, मृदुरन्यथा ।
सादोपलेपबलकृद्[7] गुरुस्तर्पणबृंहणः ॥ ५१७ ॥
लघुस्तद्विपरीतः स्याल्लेखनो रोपणस्तथा ।
दशाद्याः[8] कर्मतः प्रोक्तास्तेषां कर्मविशेषणैः ॥ ५१८ ॥
दशैवान्यान् प्रवक्ष्यामि द्रवादींस्तान्निबोध मे ।

---

अभयां=हरीतकीं वा लीढ्वेति द्वितीयो योगः । १ अशङ्कः=शङ्कारहितः । २ लीनं=स्रोतस्सु संश्लिष्टम्, तेजःपथं=जठराग्निपथम्, पित्तनिस्सरणमार्गमिति यावत् ।

३ गुणानां=विविधद्रव्याश्रितानां शीतोष्णादिगुणानामित्यर्थः । ४ उष्णादिविंशतिगुणानां कर्माणि दर्शयति—**ह्लादन इति** । ह्लादनः=उष्णार्त्तानां सुखसञ्जननः, स्तम्भनः=शोणितादीनां गतिमतां सन्निरोधनः । ५ व्रणादीनां पाचन इत्यर्थः । ६ क्लेदाचूषणः=आर्द्रीभावसंशोषणः, व्रणरोपणश्चेति क्लेदाचूषणरोपणः । ७ सादः अङ्गग्लानिः, उपलेपः मलवृद्धिः, बलं श्लेष्मा, तानि करोतीति सादोपलेपबलकृत् । ८ दशाद्याः=शीतोष्णस्निग्धरूक्षपिच्छिलविशदतीक्ष्णमृदुगुरुलघुगुणाः । ९ द्रवादीन्=द्रवसान्द्रश्लक्ष्णकर्कशसुगन्धदुर्गन्धसरमन्दव्यवायिविकास्याशुकारिसूक्ष्मगुणान् । अत्र सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्यम्—संख्येयं कर्म विशेषमाश्रित्योपदिश्यते, श्लक्ष्णकर्कशौ पिच्छिलविशदसाम्यादुक्तगुणौ नातो द्वादशत्वापत्तिः । वस्तुतस्तु 'दशैवान्यान्' इत्यस्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रवः प्रक्लेदनः, सान्द्रः स्थूलः स्याद् बन्धकारकः।
श्लक्ष्णः पिच्छिलवज्ज्ञेयः कर्कशो विशदो यथा ॥ ५१९ ॥
सुखानुबन्धी सूक्ष्मश्च सुगन्धो रोचनो मृदुः।
दुर्गन्धो विपरीतोऽस्माद्धृल्लासारुचिकारकः ॥ ५२० ॥
सरोऽनुलोमनः प्रोक्तो, मन्दो यात्राकरः स्मृतः।
व्यवायी[2] चाखिलं देहं व्याप्य पाकाय कल्पते ॥ ५२१ ॥
विकासी[3] विकसन्नेवं धातुबन्धान् विमोक्षयेत्।
आशुकारी तथाऽऽशुत्वाद्धावत्यम्भसि तैलवत् ॥ ५२२ ॥
सूक्ष्मस्तु सौक्ष्म्यात् सूक्ष्मेषु स्रोतःस्वनुसरः स्मृतः।
गुणा विंशतिरित्येवं यथावत्परिकीर्त्तिताः ॥ ५२३ ॥
सम्प्रवक्ष्याम्यतश्चोर्ध्वमाहार[4]गतिनिश्चयम्।
पञ्चभूतात्मके देहे ह्याहारः पाञ्चभौतिकः।
विपक्वः पञ्चधा सम्यग्[5]गुणान् स्वानभिवर्द्धयेत् ॥ ५२४ ॥
अविदग्धः कफं पित्तं विदग्धः पवनं पुनः।
सम्यग्विपक्वो निस्सार[6]ः आहारः परिबृंहयेत् ॥ ५२५ ॥

---

स्थाने 'दश चान्यान्' इति केषाञ्चन सम्मतः पाठः समीचीनः प्रतिभाति। चकाराद्दशेतरगुणसमुच्चयः। एव च विंशतिर्गुणा इत्यत्र न किमपि शङ्कासमाधानम्। अत एव श्रीभावमिश्रः—"सुश्रुते तु गुणा एते विंशतिस्तान् ब्रुवे शृणु। गुरुर्लघुः स्निग्धरूक्षौ तीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः सरः॥ पिच्छिलो विशदः शीत उष्णश्च मृदुकर्कशौ। स्थूलः सूक्ष्मो द्रवः शुष्क आशुर्मन्दः स्मृता गुणाः॥" इति। चरकेऽपि विंशतिरेव गुणाः परिगणिताः।

१ यात्राकरः = कालक्षेपकरः, 'यात्रा स्याद् यापने गतौ' इत्यमरः। २ शार्ङ्गधरोऽपि—"पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति। व्यवायि तद्यथा भङ्गा फेनं चाहि समुद्भवम्॥" इति। ३ "सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत्करोति विकासि तत्। विश्लेष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवाः॥" इति। ४ आहियते रसोऽस्मादित्याहारोऽन्नपानं तस्य गतिः कर्म तस्य निश्चयम् आहारगतिनिश्चयं धातुगुणवर्धनम्, यद्यदात्मकमन्नमभ्यवहृतं पक्वं यद् द्रव्यगुणं याति गतमपि यच्च पुष्णाति तस्य निर्णयमिति डल्हणः। ५ सम्यग् विपक्वः पाचकाग्निना परिणतिं गतः स्वान् गुणानभिवर्द्धयेदिति सम्बन्धः। चरकेऽप्युक्तम्—"यथास्वैरेव पुष्यन्ते देहे द्रव्यगुणाः पृथक्। पार्थिवाः पार्थिवानेव शेषाः शेषांश्च कृत्स्नशः॥" इति। ६ निस्सारः = नीरसः, मलमात्रेणावस्थित इत्यर्थः।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विण्मूत्रमाहारमलः[1] सारः प्रागीरितो रसः ।
स तु व्यानेन विक्षिप्तः सर्वान् धातून् प्रतर्पयेत्[2] ॥ ५२६ ॥
कफः पित्तं मलः[3] खेषु स्वेदः स्यान्नखरोम च ।
नेत्रविट् त्वक्षु च स्नेहो धातूनां[4] क्रमशो मलाः ॥ ५२७ ॥
दिवा[5] विबुद्धे हृदये जाग्रतः पुण्डरीकवत् ।
अन्नमक्लिन्नधातुत्वादजीर्णेऽपि हितं निशि ॥ ५२८ ॥
हृदि सम्मीलिते[6] रात्रौ प्रसुप्तस्य विशेषतः ।
क्लिन्नविस्रस्तधातुत्वादजीर्णे न हितं दिवा ॥ ५२९ ॥
इमं विधिं योऽनुमतं महा[7]मुनेर्नृपर्षिमुख्यस्य पठेद्धि यत्नतः ।
स भूमिपालाय विधातुमौषधं महात्मनां चार्हति सू[8]रिसत्तमः ॥५३०॥

इति भगवता श्रीधन्वन्तरिणोपदिष्टायां तच्छिष्येण महर्षिणा सुश्रुतेन विरचितायां सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

---

१ विण्मूत्रम् आहारमलः, रसः आहारस्य सारः प्राक् शोणितवर्णनीये ईरितः कथितः । शार्ङ्गधरोऽपि–"आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः । सिराभिस्तज्जलं नीतं बस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥ तत् किट्टं च मलं ज्ञेयं तिष्ठेत्पक्वाशये च तत् । बलित्रितयमार्गेण यात्यपानेन नोदितम् ॥" इति । २ प्रतर्पयेत्=अतिशयेन वर्द्धयेत् । ३ खेषु=कर्णश्रोत्रमुखादिस्रोतस्सु, मलः=कर्णगूथादिः । ४ धातूनां=रसरक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जानाम् । ५ दिवा दिवसे जाग्रतः पुरुषस्य पुण्डरीकवत् पद्मवद् हृदये विबुद्धे रविकिरणजुष्टत्वेन सक्रियत्वेन च श्लेष्मणोऽपचयात्परिस्फुटान्तः सुषिरे सति अक्लिन्नधातुत्वात् क्लेदेन अननुगतदोषधातुमलत्वात्, अजीर्णमप्यन्नं निशि हितमित्यर्थः । ६ रात्रौ प्रसुप्तस्य हृदि विशेषतः सम्मीलिते सङ्कुचिते क्लिन्नविस्रस्तधातुत्वाद् आर्द्रशिथिलधातुत्वाद् अजीर्णे 'सायं भुक्ते' इति शेषः । दिवा न हितमन्नमित्यर्थः । ७ महामुनेः=धन्वन्तरेः, अनुमतं=सम्मतं, विधिम्=आहारविधिम् । ८ सूरिसत्तमः=पण्डितप्रधानः ।

इति पण्डितश्रीकपिलदेवमिश्रतनुजन्मना मिश्रोपाह्वश्रीसुदामाशर्म्मणा निर्म्मितायां सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सूत्रस्थाने षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

समाप्तमिदं सूत्रस्थानम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अथ निदानस्थानम् ।

## प्रथमोऽध्यायः ।

अथातो वातव्याधिनिदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
धन्वन्तरिं धर्मभृतां वरिष्ठमसृतोद्भवम् ।
चरणावुपसङ्गृह्य सुश्रुतः परिपृच्छति ॥ ३ ॥
वायोः प्रकृतिभूतस्य व्यापन्नस्य च कोपनैः ।
स्थानं कर्म च रोगांश्च वद मे वदतां वर ! ॥ ४ ॥

---

### अथ निदानस्थानम् ।

आकीटमुद्धरन्ती सकलाधिव्याधिकष्टतातिजुष्टम् ।
लोकं दशशतनयना सद्गुणा सुधारसमय्युमा जयति ॥ १ ॥

१ "रोगमादौ परीक्षेत" इत्युक्तेर्हेतुलक्षणप्रतिपादकनिदानस्थानमारभ्यते—अथेति । "पित्तं पङ्गु कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत् ॥" इत्युक्त्या दोषेषु वातस्य प्राधान्यात् प्रथमं वातव्याधिनिदानमधिकरोति । वातजनितोऽसाधारणव्याधिर्वातव्याधिरात्रेपकादिस्तस्य निदानं वातव्याधिनिदानम् । निर्दिश्यते व्याधिरनेनेति निदानं विप्रकृष्टसन्निकृष्टभेदेन व्याध्युत्पत्तिहेतुभूतमित्यर्थः । विप्रकृष्टं—विरुद्धाहारादि, सन्निकृष्टं—वातादि । अपि च—"नि निश्चयनिषेधयोः' इति वररुचेरुपसर्गसूत्रेण निशब्दस्य निश्चयार्थकत्वाद् व्याधिनिश्चयकरणं निदानमित्यर्थः । रोगाणां निदानं पञ्चविधमित्याह माधवकरः—"निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा । समाप्तिश्चेति बिज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥ निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः । निदानमाहुः पर्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥" इति । शार्ङ्गधरे वातव्याधेरशीतिर्भेदा उक्ताः—"अशीतिर्वातजा रोगाः कथ्यन्ते मुनिभाषिताः" इति ।

२ अमृतेन सह उद्भवः उत्पत्तिर्यस्य तम् । "ततो धन्वन्तरिर्देवः श्वेताम्बरधरः स्वयम् । बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतस्य समुत्थितः ॥" इति विष्णुपुराणम् । विष्णोरंशांशसम्भूतस्य धन्वन्तरेः कथा ब्रह्मवैवर्तपुराणादावनुसन्धेया । ३ प्रकृतिभूतस्य=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्राब्रवीद्भिषजां वरः ।
स्वयम्भूरेष भगवान् वायुरित्यभिशब्दितः ॥ ५ ॥
स्वातन्त्र्यान्नित्यभावाच्च सर्वगत्वात्तथैव च ।
सर्वेषामेव सर्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ६ ॥
स्थित्युत्पत्तिविनाशेषु भूतानामेष कारणम् ।
अव्यक्तो व्यक्तकर्मा च रूक्षः शीतो लघुः खरः ॥ ७ ॥
तिर्यग्गो द्विगुणश्चैव रजोबहुल एव च ।
अचिन्त्यवीर्यो दोषाणां नेता रोगसमूहराट् ॥ ८ ॥
आशुकारी मुहुश्चारी पक्वाधानगुदालयः ।

---

प्राकृतस्य, व्यापन्नस्य = विकृतस्य, कोपनैः = 'तत्र बलवत्' इत्यादिना व्रणप्रश्नोक्तैर्द्रव्यगुणकर्मभिः । १ वायोः स्वयम्भूत्वे कारणं निर्दिशति—**स्वातन्त्र्यादिति** । स्वातन्त्र्यात् = स्वाधीनत्वात्, स्वकर्मविषये नान्येन पित्तादिना प्रेर्यत इत्यर्थः । नित्यभावात् = प्रलयेऽप्यवस्थानात्, 'वायुर्ह्येवैतान् संवृङ्क्ते' सर्वान्, इति श्रुतेः । सर्वगत्वात् = सर्वमूर्त्तसंयोगित्वादित्यर्थः । २ सर्वात्मा = सर्वप्रयत्नाश्रयः, आत्मयत्नयोः पर्यायत्वात् । ३ अव्यक्तः = अनुद्भूतमूर्तित्वेन बाह्यकरणागोचरः, योगाभ्यासावसेय इति यावत् । व्यक्तकर्मा = प्रकटक्रियः ।

४ तिर्यग् ऊर्ध्वाधो गच्छतीति तिर्यग्गः, द्विगुणः = स्पर्शशब्दद्वितयगुणयुक्तः । तथा च मनुः—"परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् । गुणं पूर्वस्य पूर्वस्य धारयन्त्युत्तरोत्तरम् ॥" इति । अपि च—"महाभूतानि खं वायुरग्निरापः क्षितिस्तथा । शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तद्गुणाः ॥ तेषामेकगुणः पूर्वो गुणवृद्धिः परे परे । पूर्वः पूर्वगुणश्चैव क्रमतो गुणिषु स्मृतः ॥" इति । रजोबहुलः = त्रिगुणत्वेऽपि प्रवर्तकत्वाद्रजःप्रधानः । साङ्ख्ये—"सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलञ्च रजः" इति । अचिन्त्यवीर्यः = अचिन्त्यमियत्तया परिच्छेत्तुमशक्यं वीर्यं शक्तिर्यस्य सः, दोषाणां दोषधातुमलानां नेता प्रेरकः, रोगसमूहे रोगहेतुसमुदाये राजते शोभते इति रोगसमूहराट्, "शाखागता कोष्ठगताश्च रोगा मर्मोर्ध्वसर्वावयवाङ्गजाश्च । ये सन्ति तेषां न तु कश्चिदन्यो वायोः परं जन्मनि हेतुरस्ति ॥" इति चरकानुशासनात् ।

५ आशुकारी = शीघ्रं विनाशकारी, प्रकृतिभूतोऽपि मुहुरेकविधमनेकविधं चरितुं शीलमस्येति मुहुश्चारी । पक्वाधानं पक्वाशयः गुदः पायुश्चालयो यस्य स पक्वाधानगुदालयः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


देहे विचरतस्तस्य लक्षणानि निबोध मे ॥ ९ ॥
दोषधात्वग्निसमतां सम्प्राप्तिं विषयेषु च।
क्रियाणामानुलोम्यं च करोत्यकुपितोऽनिलः ॥ १० ॥
यथाऽग्निः पञ्चधा भिन्नो नामस्थानात्मकर्मभिः।
भिन्नोऽनिलस्तथा ह्येको नामस्थानक्रियामयैः ॥ ११ ॥
प्राणोदानौ समानश्च व्यानश्चापान एव च।
स्थानस्था मारुताः पञ्च यापयन्ति शरीरिणम् ॥ १२ ॥
वायुर्यो वक्त्रसञ्चारी स प्राणो नाम देहधृक्।
सोऽन्नं प्रवेशयत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते ॥ १३ ॥
प्रायशः कुरुते दुष्टो हिक्काश्वासादिकान् गदान्।

---

१ धातुशब्देनेह शरीरधारणकारणाद्रसादयः पुरीषादयश्चोच्यन्ते। विषयेषु = शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु, सम्प्राप्तिं = समनस्केन्द्रियाणामभिसम्बन्धम्। २ क्रियाणां = वचनादीनाम्, आनुलोम्यं = यथास्वभावमनुकूलत्वम्। ३ अग्निः पित्तग एक एवाग्निः, पञ्चधा व्रणप्रश्ने पाचकरञ्जकालोचकभ्राजकसाधकेतिपञ्चप्रकारेण भिन्नः।

४ स्थानेत्यादिना सङ्क्षेपेण पूर्वोक्तमर्थं स्फोटयति—**प्राणेति**। प्रागनिति प्राणयतीति वा प्राणः, उद् ऊर्ध्वमनितीत्युदानः, भुक्तपीते समं नयतीति समानः, वीर्यवत्कर्म कुर्वन् विगृह्य वाऽनतीति व्यानः, मूत्रपुरीषाद्यपनयन्नधोऽनितीत्यपानः। शार्ङ्गधरे सुश्रुतातिरिक्तः क्रमो दृश्यते। तद्यथा—"अपानः स्यात्समानश्च प्राणोदानौ तथैव च। व्यानश्चेति समीरस्य नामान्युक्तान्यनुक्रमात्॥" इति। "हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः। उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः॥" इति। हृदि उरःस्थाने एषां क्रमशो व्यापाराणि—"अन्नप्रवेशनं मूत्राद्युत्सर्गोऽन्नविपाचनम्। भाषणादिनिमेषादि तद्व्यापाराः क्रमादमी॥" इति। ५ स्थानस्थाः = साम्यावस्थाऽवस्थिताः, अविकृता इति यावत्। ६ यापयन्ति = परिपालयन्ति।

७ वक्त्रसञ्चारी = मुखसञ्चरणशीलः, वातस्य स्थानमेतद् विस्तरतो बोद्धव्यम्। सङ्क्षेपतस्तु व्रणप्रश्ने "वातः श्रोणिगुदसंश्रयः" इत्युक्तम्। वक्त्रसञ्चारित्वमस्योपलक्षणम्। तेन मूर्धोरःकण्ठनासिका अपि प्राणस्य स्थानमिति डल्हणः। तथा चाष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"तत्र प्राणो मूर्धन्यवस्थितः कण्ठोरश्चरो बुद्धीन्द्रियहृदयमनोधमनीधारणष्ठीवनक्षवथूद्गारप्रश्वासोच्छ्वासान्नप्रवेशादिक्रियः।" इति। ८ प्राणान् = अग्निसोमादीन्, अवलम्बते = देहधारणाय स्वक्रियासु योजयतीत्यर्थः। ९ आदिशब्दात्प्रति-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उदानो नाम यस्तूर्ध्वमुपैति पवनोत्तमः ॥ १४ ॥
तेन भाषितगीतादिविशेषोऽभिप्रवर्त्तते ।
ऊर्ध्वजत्रुगतात्[२] रोगान् करोति च विशेषतः ॥ १५ ॥
आमपक्वाशयचरः[३] समानो वह्निसङ्गतः ।
सोऽन्नं पचति तज्जांश्च[४] विशेषान्विविनक्ति हि ॥ १६ ॥
गुल्माग्निसादातीसारप्रभृतीन् कुरुते गदान् ।
कृत्स्नदेहचरो व्यानो रससंवहनोद्यतः[५] ॥ १७ ॥
स्वेदासृक्स्रावणश्चापि पञ्चधा[६] चेष्टयत्यपि ।
क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् प्रायशः सर्वदेहगान्[७] ॥ १८ ॥
पक्वाधानालयोऽपानः[८] काले कर्षति चाप्ययम् ।
समीरणः शकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्त्तवान्यधः ॥ १९ ॥
क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् घोरान् बस्तिगुदाश्रयान्[९] ।
शुक्रदोषप्रमेहास्तु व्यानापानप्रकोपजाः ॥ २० ॥
युगपत् कुपिताश्चापि देहं भिन्द्युरसंशयम्[१०] ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नानास्थानान्तराश्रितः ॥ २१ ॥
बहुशः कुपितो वायुर्विकारान् कुरुते हि यान् ।

---

श्यायादयः । १ ऊर्ध्वशब्देन नाभ्युरःकण्ठादीनां भाषितगीतादावादिशब्देन प्रयत्नादीनां च परिग्रहः । तदुक्तं चरके—"उदानस्य पुनः स्थानं नाभ्युरःकण्ठ एव च । वाक्प्रवृत्तिप्रयत्नौजोबलवर्णादि कर्म च ॥" इति । वाग्भटे—"उरःस्थानमुदानस्य नासानाभिगलांश्चरेत् ।" इति ।

२ ऊर्ध्वजत्रुगतान्=नेत्रमुखघ्राणकर्णशिरःसंश्रयान् । चकारात्कासादीनन्यान् रोगान् करोति । ३ आमस्य पक्वं तस्याशय आमपक्वाशयस्तत्र चरतीत्यामपक्वाशयचरः पच्यमानाहाराशयसञ्चारी, समानः=तन्नामकवायुः, वह्निसङ्गतः=वह्नेः पार्श्वे मिलितः, "अन्तरग्नेश्च पार्श्वस्थः समानः" इत्यात्रेयः । ४ तज्जान्=अन्नपाकजान्, विशेषान्=रसदोषमूत्रपुरीषसमाख्यातान्, विविनक्ति=पृथक्करोति । ५ रसस्य संवहने सम्यक्प्रेरणे उद्यतः प्रवृत्त इति रससंवहनोद्यतः । ६ पञ्चधा=उत्क्षेपणापक्षेपणप्रसारणाकुञ्चनगमनानीति पञ्चविधैः कर्मभिः । ७ सर्वदेहगान्=ज्वरातीसाररक्तपित्तप्रभृतीन् । ८ पक्वाधानं पक्वाशय आलयो यस्य स पक्वाधानालयः । ९ बस्त्याश्रयोऽश्मर्यादिः, गुदाश्रयो भगन्दरादिः । १० भिन्द्युः=देहं विनाशयेयुः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायुरामाशये क्रुद्धश्छर्द्यादीन्[1] कुरुते गदान् ॥ २२ ॥
मोहं मूर्च्छां पिपासां च हृद्ग्रहं[2] पार्श्ववेदनाम् ।
पक्वाशयस्थोऽन्त्रे[3]कूजं शूलं नाभौ करोति च ॥ २३ ॥
कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिक[4]वेदनाम् ।
श्रोत्रादिष्विन्द्रिय[5]वधं कुर्यात् क्रुद्धः समीरणः ॥ २४ ॥
वैवर्ण्यं स्फुरणं रौक्ष्यं सुप्तिं चुमुचु[6]मायनम् ।
त्वक्[7]स्थो निस्तोदनं कुर्यात् त्वग्भेदं परिपोटनम् ॥ २५ ॥
व्रणांश्च रक्त[8]गो, ग्रन्थीन् सशूलान् मांससंश्रितः ।
तथा मेदःश्रितः कुर्याद् ग्रन्थीन्मन्दरुजोऽव्रणान् ॥ २६ ॥
कुर्यात्सिरागतः शूलं सिराऽऽकुञ्चनपूरणम् ।
स्नायुप्राप्तः स्तम्भकम्पौ शूलमाक्षेपणं तथा ॥ २७ ॥
हन्ति सन्धिगतः सन्धीन् शूलशोफौ करोति च ।
अस्थिशोषं च भेदं च कुर्याच्छूलं च तच्छ्रितः ॥ २८ ॥
तथा मज्जगते रुक् च न कदाचित् प्रशाम्यति ।
[10]अप्रवृत्तिः प्रवृत्तिर्वा विकृतिः शुक्रगेऽनिले ॥ २९ ॥
हस्तपादशिरोधातूंस्तथा सञ्चरति क्रमात् ।
व्याप्नुयाद्वाऽखिलं देहं वायुः सर्वगतो नृणाम् ॥ ३० ॥

---

१ आदिशब्दाद्—"रुक् पार्श्वोदरहृन्नाभेस्तृष्णोद्गारविसूचिकाः । कासः कण्ठास्यशोषश्च श्वासश्चामाशयस्थिते ॥" इति माधवनिदानोक्तविशेषो ग्राह्यः । २ हृदयस्य बन्धनमिव वेदनाविशेषं हृद्ग्रहम् । ३ अन्त्रकूजम् = अन्त्रे गुडगुडाद्यव्यक्तशब्दम् । ४ त्रिकवेदनां = स्फिजोरुपरितनसन्धिवेदनामित्यर्थः । ५ इन्द्रियवधं = स्वस्वविषयग्रहणेऽशक्तताम्, श्रोत्रे कुपितः श्रुतिनाशं, नेत्रे कुपितो दृष्टिनाशं कुर्यादित्याद्यवसेयम् । ६ चुमुचुमायनं = राजिकाकल्कलिप्ताङ्गमिव वेदनाविशेषम् । ७ चन्द्रिकाकारो निबन्धसङ्ग्रहव्याख्याकारश्च त्वक्शब्देन रसमाह, तेन रसगत इत्यर्थो बोध्यः । त्वग्भेदं = त्वचामवदारणम् , परिपोटनं = सर्वतस्त्वचां विचूर्णनम् ।

८ माधवनिदाने रक्तगतवातलक्षणं तु—"रुजस्तीव्राः ससन्तापा वैवर्ण्यं कृशता रुचिः । गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तम्भाश्वासश्च रक्तगेऽनिले ॥" इति । ९ तच्छ्रितः = अस्थ्याश्रितः । १० अप्रवृत्तिः = स्त्रीसम्भोगे शुक्रस्यैकान्ततोऽमोक्षः, प्रवृत्तिः = यथाकालं मोक्षः, विकृतिः = शुक्रशोणितनानाविकारः, तदुक्तं माधवनिदाने—"क्षिप्रं मुञ्चति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्तम्भनाक्षेपणस्वापशोफशूलानि सर्वगः ।
स्थानेषूक्तेषु सम्मिश्रः सम्मिश्राः कुरुते रुजः ॥ ३१ ॥
कुर्यादवयवप्राप्तो मारुतस्त्वमितान् गदान् ।
दाहसन्तापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते ॥ ३२ ॥
शैत्यशोफगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफावृते ।
सूचीभिरिव निस्तोदः स्पर्शद्वेषः प्रसुप्तता ॥ ३३ ॥
शेषाः पित्तविकाराः स्युर्मारुते शोणितान्विते ।
प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते ॥ ३४ ॥
दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैवर्ण्यं च कफावृते ।
उदाने पित्तसंयुक्ते मूर्च्छादाहभ्रमक्लमाः ॥ ३५ ॥
अस्वेदहर्षौ मन्दोऽग्निः शीतस्तम्भौ कफावृते ।
समाने पित्तसंयुक्ते स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छनम् ॥ ३६ ॥
कफाधिकं च विण्मूत्रं रोमहर्षः कफावृते ।
अपाने पित्तसंयुक्ते दाहौष्ण्ये स्यादसृग्दरः ॥ ३७ ॥
अधःकायगुरुत्वं च तस्मिन्नेव कफावृते ।

---

बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा । विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥" इति । विकृता इति पाठे प्रवृत्तिरित्यस्य विशेषणम् । अतिशीघ्रातिमन्दग्रथितविवर्णादियुक्तेत्यर्थ इति डल्हणः । १ एकाङ्गगत एकधातुगतो वा वायुरुपेक्षितः सर्वाङ्गगतः सर्वधातुगतो वा भूत्वा यानि कर्माणि करोति तानि दर्शयति—**स्तम्भनेति** । स्तम्भनं=जड़ीभावः ।

२ उक्तेषु स्थानेषु आमाशयादिषु सम्मिश्रः पित्तादिभिरावृतः, सम्मिश्राः यथायोगं पित्तादीनां दाहादिकार्यलिङ्गैः समन्विताः । ३ अमितान्=बहुविधान् । 'अभितान्' इति पाठे तान् अवयवान्, अभि लक्ष्यीकृत्येत्यर्थः । ४ 'सम्मिश्राः कुरुते रुजः' इत्यत्र सङ्क्षेपेणोक्तावरणस्य त्रयोदशप्रकारान् प्रतिपादयति—**दाहेति** । वाग्भटे- "वायोरावरणं चातो बहुभेदं प्रवक्ष्यते । लिङ्गं पित्तावृते दाहस्तृष्णा शूलं भ्रमस्तमः ॥" इत्यादिना वायोरावरणं द्वाविंशतिविधमुक्तम् । ५ कफाधिकं=श्लेष्मबहुलं विण्मूत्रम् ।

६ असृग्दीर्यते च्यवते यस्मिन्निति असृग्दरः रक्तप्रदरः । तदुक्तं माधवकरेण— "विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद् गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च । .....असृग्दरं भवेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम्" इति । ऋतुकालभिन्नान्यकालेऽपि अधिकार्तवस्रावोऽसृग्दर एव । तद् वक्ष्यति शारीरे—"तदेवातिप्रसङ्गेन प्रवृत्तमनृतावपि । असृग्दरं विजानीयादतोऽ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः ॥ ३८ ॥
गुरुणि सर्वगात्राणि स्तम्भनं चास्थिपर्वणाम् ।
लिङ्गं कफावृते व्याने चेष्टाः स्तम्भस्तथैव च ॥ ३९ ॥
प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याऽऽहारविहारिणाम् ।
रोगाध्वप्रमदामद्यव्यायामैश्चातिपीडनात् ॥ ४० ॥
ऋतुसात्म्यविपर्यासात् स्नेहादीनां च विभ्रमात् ।
अव्यवाये तथा स्थूले वातरक्तं प्रकुप्यति ॥ ४१ ॥
हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतोऽन्यैश्च वायुः कोपं यातः कारणैः सेवितैः स्वैः ।
तीक्ष्णोष्णाम्लक्षारशाकादिभोज्यैः सन्तापाद्यैर्भूयसा सेवितैश्च ॥४२॥
क्षिप्रं रक्तं दुष्टिमायाति तच्च वायोर्मार्गं संरुणद्ध्याशु यातैः ।
क्रुद्धोऽत्यर्थं मार्गरोधात् स वायुरत्युद्रिक्तं दूषयेद्रक्तमाशु ॥ ४३ ॥
तत् संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ।
तद्वत् पित्तं दूषितेनासृजाऽऽक्तं श्लेष्मा दुष्टो दूषितेनासृजाऽऽक्तः ॥ ४४
स्पर्शोद्विग्नो तोदभेदप्रशोषस्वापोपेतौ वातरक्तेन पादौ ।
पित्तासृग्भ्यामुग्रदाहौ भवेतामत्यर्थोष्णौ रक्तशोफौ मृदू च ॥ ४५ ॥
कण्डूमन्तौ श्वेतशीतौ सशोफौ पीनस्तब्धौ श्लेष्मदुष्टे तु रक्ते ।
सर्वैर्दुष्टे शोणिते चापि दोषाः स्वं स्वं रूपं पादयोर्दर्शयन्ति ॥४६॥

---

न्यद्रक्तलक्षणात् ॥" इति । १ गात्रविक्षेपणं = स्वेच्छया गात्रस्येतस्ततः सञ्चलनम् । २ अस्थिपर्वणाम् = अस्थिसन्धीनाम् । ३ चेष्टा गमनादिका तत्रासामर्थ्यं चेष्टास्तम्भः । ४ सुकुमाराणां = मृदुदेहावयवानाम् । ५ 'शोकाच्च प्रमदा' इति पाठान्तरम् ।

६ मधुकोशव्याख्यायाम्—वातरक्तं हि दुष्टेन वातेन दुष्टेन रक्तेन च विशिष्टसम्प्राप्तिकं विकारान्तरमेव । तदुक्तं चरके–"वायुः प्रवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावारितः पथि । क्रुद्धः सन्दूषयेद्रक्तं तज्ज्ञेयं वातशोणितम् ॥" इति । ७ अन्यैः = भारहरणादिकारणैः । ८ स्वैः = लघुरूक्षादिभिः । ९ यातः = गच्छतः, वायोरिति सम्बन्धः । १० अत्युद्रिक्तम् = अतिशयेन वृद्धिं गतम् । ११ दूषितेन वायुना सम्पृक्तं मिलितं, तद् रक्तम् , तत्प्राबल्याद् वातप्राबल्यात् रक्तस्याप्राबल्याद् वातरक्तमुच्यते । १२ अक्तः = संयुक्तः ।

१३ वातादिदोषविशेषेण वातरक्तस्य विशिष्टलिङ्गानि दर्शयति—**स्पर्शेति** । स्पर्शोद्विग्नौ स्पर्शासहौ पादाविति सम्बन्धः । स्पर्शोऽयं शीत एव, "शीतप्रद्वेषश्चानिलोत्तरे" इति चरकैकवाक्यत्वात् । १४ स्वापः = स्पर्शानभिज्ञता । १५ स्वं स्वं रूपं = स्पर्शोद्वि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राग्रूपे[1] शिथिलौ स्विन्नौ शीतलौ सविपर्ययौ[2] ।
वैवर्ण्यतोदसुप्तत्वगुरुत्वौषसमन्वितौ ॥ ४७ ॥
पादयोर्[3]मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि ।
आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनुसर्पति ॥ ४८ ॥
आजानु[4]स्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्रुतं च यत् ।
उपद्रवैश्च यज्जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः[5] ॥ ४९ ॥
शोणितं तदसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ।
यदा[6] तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः ॥ ५० ॥
तदाक्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः[7] ।
मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपक[8] इति स्मृतः ॥ ५१ ॥
सोऽपतानकसंज्ञो यः पातयत्यन्तराऽन्तरा[9] ।
कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेव यदि तिष्ठति ॥ ५२ ॥

---

ग्नादित्रिदोषलिङ्गम् । १ प्राग्रूपे=पूर्वरूपे, "अव्यक्तलक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम् । आत्मरूपं तु यद् व्यक्तमपायो लघुता पुनः ॥" इति । २ सविपर्ययौ=शैथिल्यादिलक्षणेषु विपर्ययेण कठिनास्विन्नोष्णौ । 'पादौ' इत्यध्याहारः । तच्चथाऽऽहाष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"कण्डूस्फुरणनिस्तोदभेदगौरवसुप्तताः । भूत्वा भूत्वा प्रणश्यन्ति मुहुराविर्भवन्ति च ॥" इति । ३ पादयोः कदाचिद हस्तयोरपि मूलं तलम् आस्थाय प्रथममवस्थानं कृत्वा आखोः मूषिकस्य विषमिव तद्देहं सकलमेव अनुसर्पति । आखोर्विषमित्यनेन मन्दविसर्पितां दर्शितवानिति विजयरक्षितः । ४ वातरक्तस्यासाध्यलक्षणानि निर्दिशति—**आजान्विति ।**

५ आदिशब्दात् "अस्वप्नारोचकश्वासमांसक्रोथशिरोग्रहाः । मूर्च्छा च मदरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ॥ हिक्कापाङ्गुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः । अङ्गुलीवक्रतास्फोटादाहमर्मग्रहार्बुदाः ॥" इति चरकोक्ता उपद्रवा ग्राह्याः । ६ आक्षेपकस्य सामान्यलक्षणं विशिनष्टि—**यदेति** । यदा सर्वाः धमनीः ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्गाश्चतुर्विंशतिर्नाड्यः अभ्येति व्याप्नोति । कः ? मुहुश्चरो मारुत इति सम्बन्धः । मुहुश्चरः=वारंवारं सञ्चरणशीलः । ७ तदाक्षेपात्=देहचालनात्, आक्षिपति=हस्त्यारूढस्येव देहं चालयतीत्याक्षेपकः ।

८ आक्षेपकविशेषाणामपतानकादिबाह्यायामान्तानां लक्षणानि दर्शयति—**स इति ।** य आक्षेपकोऽन्तरा मध्ये मध्ये पातयति मोहयति सोऽपतानसंज्ञः । ९ दण्डापतानका-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स दण्डवत् स्तम्भयति कृच्छ्रो दण्डापतानकः ।
हनुग्रहस्तदाऽत्यर्थं सोऽन्नं कृच्छ्रान्निषेवते ॥ ५३ ॥
धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुःस्तम्भसंज्ञकः ।
अङ्गुलीगुल्फजठरहृद्बद्धोगलसंश्रितः ॥ ५४ ॥
स्नायुप्रतानमनिलो यदाऽऽक्षिपति वेगवान् ।
विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् ॥ ५५ ॥
अभ्यन्तरं धनुरिव यदा नमति मानवः ।
तदाऽस्याभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ॥ ५६ ॥
बाह्यस्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च ।
तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकट्यूरुभञ्जनम् ॥ ५७ ॥
कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ।
कुर्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ ५८ ॥
गर्भपातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः ।
अभिघातनिमित्तश्च न सिध्यत्यपतानकः ॥ ५९ ॥

---

न्तरायामबहिरायामभेदेन अपतानकस्य त्रैविध्यमभिदधाति–**कफेति** । तासु=धमनीषु ।

१ धनुःस्तम्भसंज्ञकमन्तरायामं दर्शयति—**धनुरिति** । २ स्नायुप्रतानं=लतावदनेकप्ररोहं स्नायुजालम् । स्नायुशब्दस्योपलक्षणत्वात् सिराकण्डयोरपि ग्रहणम् । तदुक्तम्—"महाहेतुर्बली वायुः सिराः सस्नायुकण्डराः । मन्यापृष्ठाश्रिता बाह्याः संशोष्यायामयेद्धहिः ।" इति ।

३ विष्टब्धाक्षः=निश्चलनेत्रः, स्तब्धहनुः=विवृतास्यत्वेन संवृतास्यत्वेनवा स्तब्धकण्ठकपोलसन्धिः । तदुक्तम्–"जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः । कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनुम् । करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् ॥" इति । तीव्रवेदनाभिः परीततया भग्ने इव पार्श्वेऽस्येति भग्नपार्श्वः । ४ आयामं धनुर्वदानमनम्, अन्तरं क्रोडदेशमभिलक्ष्यीकृत्येत्यभ्यन्तरम्, अभ्यन्तरमायामम् अभ्यन्तरायामं, क्रोडेन नतमित्यर्थः । ५ बाह्यस्नायवः पादमूलपिण्डिकाकटीपृष्ठग्रीवापश्चिमभागाश्रयाः, तासां प्रताने तिष्ठतीति बाह्यस्नायुप्रतानस्थः, बाह्यायामं=पृष्ठेन नतम् । तदुक्तमात्रेयेण—"चापवन्नम्यमानस्य पृष्ठतो नीयते शिरः इति ।"

६ एकः कफान्वितेन वातेन, द्वितीयः पित्तान्वितेन, तृतीयः केवलवातकृतेन, चतुर्थोऽभिघातेन । ७ अपतानकस्यासाध्यत्वं प्रतिपादयति—**गर्भेति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अधोगमाः सतिर्यग्गा धमनीरूर्ध्वदेहगाः ।
यदा प्रकुपितोऽत्यर्थं मातरिश्वा प्रपद्यते ॥ ६० ॥
तदाऽन्यतरपक्षस्य सन्धिबन्धान् विमोक्षयन् ।
हन्ति पक्षं तमाहुर्हि पक्षाघातं भिषग्वराः ॥ ६१ ॥
यस्य कृत्स्नं शरीरार्धमकमण्यमचेतनम् ।
ततः पतत्यसून् वाऽपि जहात्यनिलपीडितः ॥ ६२ ॥
शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः ।
साध्यमन्येन संसृष्टमसाध्यं क्षयहेतुकम् ॥ ६३ ॥
वायुरूर्ध्वं व्रजेत् स्थानात् कुपितो हृदयं शिरः ।
शङ्खौ च पीडयत्यङ्गान्याक्षिपेन्नमयेच्च सः ॥ ६४ ॥
निमीलिताक्षो निश्चेष्टः स्तब्धाक्षो वाऽपि कूजति ।
निरुच्छ्वासोऽथवा कृच्छ्रादुच्छ्वस्यान्नष्टचेतनः ॥ ६५ ॥
स्वस्थः स्याद्धृदये मुक्ते ह्यावृते तु प्रमुह्यति ।
कफान्वितेन वातेन ज्ञेय एषोऽपतन्त्रकः ॥ ६६ ॥
दिवास्वप्नासनस्थानविकृतोर्ध्वनिरीक्षणैः ।
मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणाऽऽवृतः ॥ ६७ ॥

---

१ पक्षाघातलक्षणमाह—**अध इति** । एकतरकायार्धधमनीरूर्ध्वाधस्तिर्यग्गता यदा मातरिश्वा वायुः प्रपद्यते आश्रयति, तदाऽन्यतरपक्षस्य बाहुकक्षपार्श्वोरुजङ्घाऽऽदिविभागेनार्धशरीरस्य सन्धिबन्धान् विमोक्षयन् हन्ति निरीहं करोति । अत्र धमनीशब्देन सिरास्नाय्वोरपि परिग्रहः । तथा चात्रेयः—"गृहीत्वाऽर्धं शरीरस्य सिरास्नायू विशोष्य च" इति । २ पतति = शय्याशायी भवतीत्यर्थः । ३ पक्षाघातस्य साध्यासाध्यत्वं प्रतिपादयति **शुद्धेति** । ४ क्षयहेतुकं = धातुक्षयकुपितवातजम् ।

५ अपतन्त्रकलक्षणमाह—**वायुरिति** । ६ शङ्खौ = भ्रुवोः पुच्छान्तयोरुपरि कर्णललाटयोर्मध्ये मर्मद्वये । ७ कूजति = कपोत इव शब्दं करोति । तदुक्तम्—"कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतन्त्रकः । स एव चापतानाख्यः" । एतद्वचनेन वाग्भटमतेऽपतन्त्रकोऽपतानकश्चैक एव व्याधिरिति बोध्यम् । ८ मन्यास्तम्भलक्षणं ब्रवीति—**दिवेति** । आसनमुपवेशः, स्थानमूर्ध्वभवनम्, स्वप्नासमस्थानेति पाठे असमे उपधानादौ शिरसः स्थितिरसमस्थानम्, विकृताधोनिरीक्षणं वक्रमार्गावलोकनम्, तैः श्लेष्मणाऽऽवृतः स एव वायुः मन्यास्तम्भं प्रकुरुते । मन्या = ग्रीवापश्चाच्छिरा, "मन्या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्क्षये ।
उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च ॥ ६८ ॥
हसतो जृम्भतो भाराद्विषमा[2]च्छयनादपि ।
शिरोनासौष्ठचिबुक[3]ललाटेक्षणसन्धिगः ॥ ६९ ॥
अर्दयित्वाऽनिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यतः ।
वक्रीभवति वक्त्रा[4]र्धं ग्रीवा चाप्यपवर्त्तते ॥ ७० ॥
शिरश्चलति वाक्स[5]ङ्गो नेत्रादीनां च वैकृतम् ।
ग्रीवाचिबुकदन्तानां तस्मिन् पार्श्वे तु वेदना ॥ ७१ ॥
[6]यस्याग्रजो रोमहर्षो वेपथुर्नेत्रमाविलम् ।
वायुरूर्ध्वं त्वचि स्वापस्तोदो मन्याहनुग्रहः ।
तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः ॥ ७२ ॥
क्षी[7]णस्यानिमिषात्तस्य प्रसक्तं सक्तभाषिणः ।
न सिध्यत्यर्दितं बा[8]ढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ ७३ ॥
[9]पार्ष्णिप्रत्यङ्गुलीनां तु कण्डरा याऽनिलार्दिता ।
[10]सक्थ्नः क्षेपं निगृह्णीयाद् गृध्रसीति हि सा स्मृता ॥७४॥

---

पार्श्वशिरोगलात्" इति । १ अर्दितस्य निदानपूर्वकं लक्षणं निर्दिशति—गर्भिणीति । २ विषमात्=नतोन्नतात्, शयनात्=ग्रीवाऽऽदिवैपरीत्यशयनाद् उपधानाद्वा । "विषमादुपधानाच्च" इत्यष्टाङ्गहृदयम् ।

३ चिबुकं=मुखकुहरस्याधोभागः । ४ मुखार्धंवच्छरीरार्धंव्यापकोऽप्यर्दितः । तदुक्तं चरके—"अर्धे तस्मिन् मुखार्धे वा केवले स्यात्तदर्दितम्" इति । ५ वाक्सङ्गः=वचसोऽनिर्गमः, नेत्रादीनामित्यत्र आदिशब्दाद् गण्डनासादीनां परिग्रहः । ६ अस्य पूर्वरूपं व्याचष्टे—**यस्येति** । अग्रजः=पूर्वभावी । ७ अर्दितस्यासाध्यत्वं वक्ति—**क्षीणेति** । ८ बाढमतिशयेन, त्रिवर्षं त्रिवार्षिकम्, अतीतवर्षत्रयमिति यावत् । 'वर्षाल्लुक् च' इति ठञ् तस्य लुक् च । ९ गृध्रसीलक्षणमाह-**पार्ष्णीति** । पार्ष्णिः=गुल्फपाश्चात्याधोभागः, कण्डरा=स्थूला स्नायुः ।

१० सक्थ्नः=गुल्फादिविटपान्तभागस्य, क्षेपं=पादन्यासप्रवर्तकं शक्तिसञ्चारं, निगृह्णीयात्=अवरुन्ध्यात्, सा 'गृध्रसी' कथ्यते । व्याधिरयं नितम्बादारभ्य पार्ष्णिपर्यन्तं भवति । तदुक्तं चरके—"स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजङ्घापदं क्रमात् । गृध्रसी

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


[1]तलं प्रत्यङ्गुलीनां तु कण्डरा बाहुपृष्ठतः ।
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाचीति हि सा स्मृता ॥ ७५ ॥
[2]वातशोणितजः शोफो जानुमध्ये महारुजः ।
शिरःक्रोष्टुकपूर्वं तु स्थूलः क्रोष्टुकं[3]मूर्धवत् ॥ ७६ ॥
[4]वायुः कट्यां स्थितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदा ।
खञ्जस्तदा भवेज्जन्तुः, पङ्गुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ ७७ ॥
प्रक्रामं[5]न् वेपते यस्तु खञ्जन्निव च गच्छति ।
कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबं[6]धनम् ॥ ७८ ॥
न्यं[7]स्ते तु विषमं पादे रुजः कुर्य्यात्समीरणः ।
वातकण्टक इत्येष विज्ञेयः खुडकाश्रितः[8] ॥ ७९ ॥
पार्ष्ण्योः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः ।
विशेषतश्चङ्क्रमणात्पाददाहं तमादिशेत् ॥ ८० ॥
[10]हृष्यतश्चरणौ यस्य भवतश्च प्रसुप्तवत् ।
पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपजः ॥ ८१ ॥
[11]अंसदेशस्थितो वायुः शोषयित्वांऽसबन्धनम् ।

---

स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ॥" इति । १ गृध्रसीसदृशीं विश्वाचीं ब्रवीति—**तलेति** । तलं हस्तस्योपरिभागः, बाहुपृष्ठत आरभ्य हस्ततलं लक्ष्यीकृत्याङ्गुलीनां याः कण्डरास्ताः सन्दूष्य बाह्वोर्ग्रहणाकुञ्चनादिकर्मक्षयकरी 'विश्वाची' उच्यते । बाह्वोरिति द्विवचनं सामान्यापेक्षया, कदाचित् कस्मिंश्चिद् बाहौ भवति ।

२ क्रोष्टुकशिरोलक्षणमाह—**वातेति** । ३ क्रोष्टुकमूर्धवत् = शृगालमस्तकवत् । ४ खञ्जपङ्गुवातयोर्लक्षणमाह—**वायुरिति** । सक्थिद्वयवधात् पङ्गुः, एकसक्थिवधात् खञ्जः । वधश्चात्र गमनादिक्रियानाशः । ५ कलायखञ्जलक्षणं वक्ति—**प्रक्रामन्निति** । प्रक्रामन् = गमनमारभमाणः, "कम्पते गमनारम्भे" इति । ६ सन्धिप्रबन्धनं = शिथिलीकृतसन्धिबन्धनमित्यर्थः । ७ वातकण्टकलक्षणमाह—**न्यस्त इति** । ८ खुडकाश्रितः = पादजङ्घासन्धिसंश्रयः, पार्ष्णिसंश्रयो वेत्यर्थः । वातविशेषणमेतत् । ९ पाददाहाख्यवातलक्षणमुपदिशति—**पादयोरिति** । १० पादहर्षलक्षणमभिदधाति—**हृष्यत इति** । हृष्यतः = 'भिनभिनी' इतिवद् वेदनायुक्तौ भवतः ।

११ पूर्वार्द्धश्लोकेन अंसशोषस्य उत्तरार्द्धेन अवबाहुकस्य च लक्षणमाह—**अंसेति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सिराश्चाकुञ्च्य तत्रस्थो[1] जनयत्यवबाहुकम् ॥ ८२ ॥
यदा[2] शब्दवहं स्रोतो वायुरावृत्य तिष्ठति ।
शुद्धः श्लेष्मान्वितो वाऽपि वाधिर्यं तेन जायते ॥ ८३ ॥
हनुशङ्खशिरोग्रीवं यस्य भिन्दन्निवानिलः ।
कर्णयोः कुरुते शूलं कर्णशूलं तदुच्यते ॥ ८४ ॥
आवृत्य[4] सक्फो वायुर्धमनीः शब्दवाहिनीः ।
नरान् करोत्यक्रियकान्[5] मूकमिन्मिनगद्गदान् ॥ ८५ ॥
अधो[6] या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता ।
भिन्दतीव गुदोपस्थं सा तूनीत्यभिधीयते ॥ ८६ ॥
गुदोपस्थोत्थिता सैव प्रतिलोम[7]विसर्पिणी ।
वेगै[8]: पक्वाशयं याति प्रतितूनोति सा स्मृता ॥ ८७ ॥
साटोप[9]मत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम् ।
आध्मानमिति जानीयाद्घोरं[10] वातनिरोधजम् ॥ ८८ ॥
विमुक्त[11]पार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम् ।

---

अंसबन्धनं श्लेष्माणं शोषयित्वा 'अंसशोषं जनयेत्' इति शेषः । १ तत्रस्थः = अंसदेशस्थितः । २ बाधिर्यमाह—**यदेति** । स्रोतः = कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नो नभोभागः । ३ कर्णशूलमाह—**हन्विति** । ४ जिह्वागतमूकमिन्मिनगद्गदारव्यवातरोगं दर्शयति—**आवृत्येति** । आवृत्य = अवरुन्ध्य । ५ अक्रियकान् = अवचनक्रियकान्, मूकः = वचनरहितः, मिन्मिनः = सानुनासिकसर्ववचनः, गद्गदः = लुप्तपदव्यञ्जनाभिधायी, अव्यक्तवागिति यावत् । ६ तूनीप्रतितूनीलक्षणमभिधत्ते—**अध इति** । वर्चोमूत्राशयोत्थिता = पक्वाशयमूत्राशयोत्थिता । ७ प्रतिलोमविसर्पिणी = अधस्तादूर्ध्वगामिनीत्यर्थः । ८ वेगैः = वातकृतोद्गमैः ।

९ आध्मानाख्यवातमाह—**साटोपमिति** । साटोपं = गुडगुडाशब्दयुक्तम् । तदुक्तं भावमिश्रैः—"आटोपो गुडगुडाशब्दः प्रोक्तो जठरसम्भवः" इति । आध्मापं = वातपूर्णचर्मपुटकवदन्तःप्रपूरितवातम्, उदरं = पक्वाशयम् । १० घोरं = कष्टप्रदम् । ११ प्रत्याध्मानमाह—**विमुक्तेति** । विमुक्तं वेदनादिभिः परित्यक्तं पार्श्वहृदयमत्रेति विमुक्तपार्श्वहृदयम् । आमाशयसमुत्थत्वेन प्रत्यासत्त्या पार्श्वहृदयोरपि वेदनाशङ्कानिरासार्थमाह विमुक्तेत्यादीति विजयरक्षितः । आमाशयोत्थितं = नाभिस्तनान्तरोत्थि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रत्याध्मानं विजानीयात् कफव्याकुलितानिलम्[1] ॥ ८९ ॥
अष्ठीलावद्घनं ग्रन्थिमूर्ध्वमायतमुन्नतम्[2] ।
वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गावरोधिनीम् ॥ ९० ॥
एनामेव[3] रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम् ।
प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम्[4] ॥ ९१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने वातव्याधिनिदानं नाम प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

---

## द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातोऽर्शसां[5] निदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
षडर्शांसि[6] भवन्ति वातपित्तकफशोणितसन्निपातैः सहजानि[7] चेति ॥ ३ ॥

---

तम् । १ कफव्याकुलितानिलं=कफावृतवातम् ।

२ वाताष्ठीलामाह—**अष्ठीलेति** । अष्ठीला उत्तरापथे वर्तुलः पाषाणविशेष इति जेज्जटः, कर्मकाराणां वर्तुला दीर्घा लौहभाण्डीति गयदासः, तद्वद् घनं संहतावयवम्, ग्रन्थि= ग्रन्थ्याकारम्, ऊर्ध्वमायतम्=उपरिदीर्घम्, उन्नतं=तिर्यगुन्नतम्, वाताष्ठीलां=वातकृतामष्ठीलां जानीयादिति सम्बन्धः । बहिर्मार्गावरोधिनीं=वातमूत्रपुरीषावरोधिनीम् । ३ प्रत्यष्ठीलामाह—**एनामिति** । ४ तिर्यगुत्थितां=तिर्यगायताम् ।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थाने सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां प्रथमोऽध्यायः ।**

---

## द्वितीयोऽध्यायः ।

५ अरिवत् प्राणान् शृणाति हिनस्तीत्यर्श इति पृषोदरादिपाठान्निरुक्तिः । तदुक्तं वाग्भटे—"अरिवत्प्राणिनो मांसकीलने निविशन्ति यत् । अर्शांसि तस्मादुच्यन्ते गुदमार्गनिरोधतः ॥" इति । माधवनिदाने—"दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि सन्दूष्य विविधाकृतीन् । मांसाङ्कुरा अपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि ताञ्जगुः" ॥ अपानादौ इत्यत्र आदिशब्देन नासिकाश्रवणचक्षुर्मेढ्रनाभिप्रभृतयो गृह्यन्ते । ६ माधवनिदानेऽपि—"पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च । अर्शांसि षट् प्रकाराणि विद्याद् गुदबलित्रये ॥" इति । ७ सहजानि=गुदबल्यारम्भकबीजोपतापाच्छरीरेण सहजातानीत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्रानात्मवतां यथोक्तैः प्रकोपणैर्विरुद्धाध्यशनस्रोप्रसङ्गोत्कटुकासनपृष्ठयानवेगविधारणादिभिर्विशेषैः प्रकुपिता दोषा एकशो द्विशः समस्ताः शोणितसहिता वा यथोक्तं प्रसृताः प्रधानधमनीरनुप्रपद्याधो गत्वा गुदमागम्य प्रदूष्य गुदवलीर्मांसप्ररोहाञ्जनयन्ति, विशेषतो मन्दाग्नेः, तथा तृणकाष्ठोपललाष्ठवस्त्रादिभिः शीतोदकसंस्पर्शनाद्वा कन्दाः परिवृद्धिमासादयन्ति, तान्यर्शांसीत्याचक्षते ॥ ४ ॥

तत्र स्थूलान्त्रप्रतिबद्धमर्द्धपञ्चाङ्गुलं गुदमाहुः । तस्मिन् वलयस्तिस्रोऽध्यर्द्धाङ्गुलान्तरसम्भूताः प्रवाहणी विसर्जनी संवरणी चेति चतुरङ्गुलायताः । सर्वास्तिर्यगेकाङ्गुलोच्छ्रिताः ॥ ५ ॥

शङ्खावर्तनिभाश्चापि उपर्युपरि संस्थिताः ।
गजतालुनिभाश्चापि वर्णितः सम्प्रकीर्त्तिताः ।
रोमान्तेभ्यो यवाध्यर्द्धो गुदौष्ठः परिकीर्त्तितः ॥ ६ ॥

प्रथमा तु गुदौष्ठादङ्गुलमात्रे ॥ ७ ॥

तेषां तु भविष्यतां पूर्वरूपाणि—अन्नेऽश्रद्धा कृच्छ्रात्पक्तिरम्लीका

---

१ अर्शसां हेतून् सम्प्राप्तिं चाभिदधाति—**तत्रेति** । प्रकोपणैः = बलवद्विग्रहादिव्रणप्रश्नाध्यायोक्तैः ।

२ उत्कटुकासनं = कठिनासनम्, अथवा—"गुदपार्ष्णीसमायोगः प्राहुरुत्कटुकासनम्" इति । ३ प्रसृताः = प्रसरं प्राप्ताः, प्रधानधमनीः = अधोगामिनीः पुरीषवाहिनीर्दश धमनीः । ४ विशेषतो मन्दाग्नेः प्रकुपिता दोषा मांसप्ररोहान् जनयन्तीति सम्बन्धः । ५ गुदं वलीश्च विवृणोति—**तत्रेति** । स्थूलान्त्रेण गुदान्त्रेण प्रतिबद्धं मिलितं स्थूलान्त्रप्रतिबद्धम्, अर्द्धहीनं पञ्चाङ्गुलमर्द्धपञ्चाङ्गुलं सार्द्धचतुरङ्गुलप्रमाणमित्यर्थः । ६ वलयः = गुदावयवभूतास्त्वक्सङ्कोचाः, तिस्रः अध्यर्धाङ्गुलान्तरसम्भूताः सार्धैकाङ्गुलान्तरिताः, मलस्याधःपीडनात्प्रथमा प्रवाहिणी, गुदविस्फारणेन मलविसर्जनाद् द्वितीया विसर्जनी, गुदसङ्कोचन्याख्यपेशीद्वयकृता चक्राकारा वलिस्तु संवरणीनाम । आसामवस्थितिक्रममाहाष्टाङ्गहृदये—"वलयः प्रवाहणी तासामन्तर्मध्ये विसर्जनी । बाह्या संवरणी तस्या गुदोष्ठो बहिरङ्गुले ॥" इति ।

७ यवाध्यर्धः = सार्धो यवः, अङ्गुलस्य त्रियवप्रमाणत्वादर्धाङ्गुलपरिमितो देश इत्यर्थः । भोजेऽप्युक्तम्—"रोमान्तेभ्यो यवादर्धं गुदोष्ठं परिचक्षते । गुदोष्ठादङ्गुलं चैव प्रथमां तां वलिं विदुः । सार्धैकाङ्गुलमानेन अन्ये च परिकीर्तिते ॥" इति । ८ भवि-



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिदाहो विष्टम्भः पिपासा सक्थिसदनमाटोपः कार्श्यमुद्गारबाहुल्यमक्ष्णोः श्वयथुरन्त्रकूजनं गुदपरिकर्तनमाशङ्का पाण्डुरोगग्रहणीदोषशोषाणां कासश्वासौ बलहानिर्भ्रमस्तन्द्रा निद्रेन्द्रियदौर्बल्यं च ॥८॥

जातेष्वेतान्येव लक्षणानि प्रव्यक्ततराणि भवन्ति ॥ ९ ॥

तत्र मारुतात्परिशुष्कारुणविवर्णानि विषममध्यानि कदम्बपुष्पतुण्डिकेरीनाडीमुकुलसूचीमुखाकृतीनि च भवन्ति । तैरुपद्रुतः सशूलं संहतमुपवेश्यते, कटीपृष्ठपार्श्वमेढ्रगुदनाभिप्रदेशेषु चास्य वेदना भवन्ति, गुल्माष्ठीलाप्लीहोदराणि चास्य तन्निमित्तान्येव भवन्ति, कृष्णत्वङ्नखनयनदशनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति॥१०॥

पित्तान्नीलाग्राणि तनूनि विसर्पीणि पीतावभासानि यकृत्प्रकाशानि शुकजिह्वासंस्थानानि यवमध्यानि जलौकोवक्त्रसदृशानि प्रक्लिन्नानि च भवन्ति । तैरुपद्रुतः सदाहं सरुधिरमतिसार्यते, ज्वरदाहपिपासामूर्च्छाश्चास्योपद्रवा भवन्ति, पीतत्वङ्नखनयनदशनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ॥ ११ ॥

श्लेष्मजानि श्वेतानि महामूलानि स्थिराणि वृत्तानि स्निग्धानि पाण्डूनि करीरपनसास्थिगोस्तनाकाराणि न भिद्यन्ते न स्रवन्ति कण्डूबहुलानि च भवन्ति । तैरुपद्रुतः सश्लेष्माणमनल्पं मांसधावनप्रकाशमतिसार्यते, शोफशीतज्वरारोचकाविपाकशिरोगौरवाणि चास्य तन्निमित्तान्येव भवन्ति, शुक्लत्वङ्नखनयनदशनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ॥ १२ ॥

रक्तजानि न्यग्रोधप्ररोहविद्रुमकाकणन्तिकाफलसदृशानि पित्तलक्षणानि च, यदाऽवगाढपुरीषप्रपीडितानि भवन्ति तदाऽत्यर्थं दुष्ट-

---

ष्यतां=भवितुकामानाम् । १ सक्थिसदनं=जङ्घाऽवसादः । २ गुदे कर्तनवद् वेदना-विशेषः परिकर्तनम् । ३ वातार्शोलक्षणान्याह—**तत्रेति** । ४ विवर्णानि=विविधवर्णानि, विषममध्यानि=निम्नोन्नतमध्यानि, तुण्डिकेरी=वनकार्पासिका । ५ पित्तार्शोलक्षणान्याह—**पित्तादिति** । ६ विसर्पीणि=प्रपाकित्वात्प्रसरणशीलानि । ७ यवमध्यानि=स्थूलमध्यानि । ८ श्लेष्मार्शोलक्षणानि निर्दिशति—**श्लेष्मजानीति** । ९ शीतप्रधानज्वर इत्यर्थः । १० रक्तार्शोलक्षणानि वक्ति—**रक्तजानीति** । काकण-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनल्पमसृक् सहसा विसृजन्ति, तस्य चातिप्रवृत्तौ शोणितातियोगोपद्रवा[1] भवन्ति ॥ १३ ॥

सन्निपातजानि[2] सर्वदोषलक्षणयुक्तानि ॥ १४ ॥

सहजानि दुष्टशोणितशुक्रनिमित्तानि, तेषां दोषत एव प्रसाधनं[3] कर्त्तव्यम्। विशेषतश्चैतानि दुर्दर्शनानि[4] परुषाणि पाण्डूनि दारुणान्यन्तर्मुखानि। तैरुपद्रुतः कृशोऽल्पभुक् सिरासन्ततगात्रोऽल्पप्रजः क्षीणरेताः क्षामस्वरः क्रोधनोऽल्पाग्निप्राणः परमलसश्च तथा घ्राणशिरोऽक्षिनासाश्रवणरोगवान्, सततमन्त्रकूजाटोपहृदयोपलेपारोचकप्रभृतिभिः पीड्यते ॥ १५ ॥

भवति चात्र।

बाह्यमध्यवलिस्थानां प्रतिकुर्याद्भिषग्वरः।
अन्तर्वलिसमुत्थानां प्रत्याख्यायाचरेत् क्रियाम्[5] ॥ १६ ॥

प्रकुपितास्तु दोषा मेढ्रमभिप्रपन्ना मांसशोणिते प्रदूष्य कण्डं जनयन्ति, ततः कण्डूयनात् क्षतं समुपजायते, तस्मिंश्च क्षते दुष्टमांसजाः प्ररोहाः पिच्छिलरुधिरस्राविणो जायन्ते कूर्चकिनोऽभ्य-

---

न्तिका=गुन्जा, लोके 'चिरमिटी' इति ख्याता। १ उपद्रवाः शोणितवर्णनीये प्रागुक्ताः—"तदतिप्रवृत्तं शिरोऽभितापमान्ध्यमधिमन्थतिमिरप्रादुर्भावं धातुक्षयमाक्षेपकं पक्षाघातमेकाङ्गविकारं तृष्णादाहौ हिक्कां कासं श्वासं पाण्डुरोगं मरणं चापादयति" इति।

२ चरके तु सर्वेषामर्शसां सन्निपातजत्वमुक्तम्—"अर्शांसि खलु जायन्ते नासन्निपतितैस्त्रिभिः। दोषैर्दोषविशेषात्तु विशेषः कल्प्यतेऽर्शसाम्॥" इति। ३ प्रसाधनं=लिङ्गतः प्रभेदसाधनम्। यदुक्तम्—"द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोऽप्येकदोषजः। योऽधिकस्तेन निर्देशः क्रियते रसदोषयोः॥" इति। ४ अन्तर्विद्रधिवद् दुःखेन दृश्यन्ते इति दुर्दर्शनानि। हाराणचन्द्रस्तु—दुर्दर्शनान्यतिदीर्घत्वादितोभ यङ्कराणि, "सहजान्यर्शांसि कानिचिदणूनि कानिचिन्महान्ति कानिचिद्दीर्घाणि च" इत्यात्रेय इत्याह।

५ प्रत्याख्याय=असाध्यान्येतान्यर्शांसि यथेष्टं कुरुष्वेति निराकृत्य। तन्त्रान्तरेऽसाध्यताया लक्षणम्—"हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा। शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्योऽर्शसो हि सः॥ हृत्पार्श्वशूलं सम्मोहश्छर्दिरङ्गस्य रुग्ज्वरः। तृष्णा गुदस्य पाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम्॥" इति। ६ कूर्चकिनः=शूकरादिरोमवद् दृढ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


न्तरमुपरिष्टाद्वा, ते तु शोफो विनाशयन्त्युपघ्नन्ति च पुंस्त्वम्। योनिमभिप्रपन्नाः सुकुमारान् दुर्गन्धान् पिच्छिलरुधिरस्राविणश्छत्राकारान् करीरान्[1] जनयन्ति, ते तु योनिमुपघ्नन्त्यार्तवं च। नाभिमभिप्रपन्नाः सुकुमारान दुर्गन्धान् पिच्छिलान् गण्डूपदमुखसदृशान् करीरान् जनयन्ति। त एवोर्ध्वमागताः श्रोत्राक्षिघ्राणवदनेष्वर्शास्युपनिर्वर्तयन्ति[2]। तत्र कर्णजेषु बाधिर्यं शूलं पूतिकर्णता च, नेत्रजेषु वर्त्मावरोधो[3] वेदना स्रावो दर्शननाशश्च, घ्राणजेषु प्रतिश्यायोऽतिमात्रं क्षवथुः कृच्छ्रोच्छ्वासता पूतिनस्यं सानुनासिकवाक्यत्वं शिरोदुःखं च। वक्त्रजेषु कण्ठौष्ठतालूनामन्यतमस्मिंस्तैर्गद्गदवाक्यता रसाज्ञानं मुखरोगाश्च भवन्ति ॥ १७ ॥

व्यानस्तु प्रकुपितः श्लेष्माणं परिगृह्य बहिः[4] स्थिराणि कीलवदर्शांसि निवर्त्तयति, तानि चर्मकीलान्यर्शांसीत्याचक्षते ॥ १८ ॥

भवन्ति चात्र।

तेषु[5] कीलेषु निस्तोदो मारुतेनोपजायते।
श्लेष्मणा तु सवर्णत्वं[6] ग्रन्थित्वं च विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥
पित्तशोणितजं रौक्ष्यं कृष्णत्वं शुक्लता तथा।
समुदीर्णखरत्वं[7] च चर्मकीलस्य लक्षणम् ॥ २० ॥
अर्शसां लक्षणं व्यासादुक्तं सामान्यतस्तु यत्।
तत्सव प्राग्विनिर्दिष्टात्साधयेद्भिषजां वरः[8] ॥ २१ ॥
अर्शस्सु दृश्यते रूपं यदा दोषद्वयस्य तु।

---

सूक्ष्माङ्कुरानुविद्धाः प्ररोहा इति योजना, अभ्यन्तरं = मणेरुपरि, उपरिष्टात्=त्वगुपरि वा। १ करीरान्=अङ्कुरान्। 'करीरः कलशे वंशाङ्कुरवृक्षविशेषयोः' इति हेमचन्द्रः। २ उपनिर्वर्तयन्ति = उत्पादयन्ति। ३ वर्त्मावरोधः=निमीलितनेत्रता।

४ बहिः=गुदौष्ठं परित्यज्य, तत्र त्वर्शसामेव सम्भवत्वात्। तदुक्तम्—"व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः। कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तद्विदुः ॥" इति। गुदौष्ठदेशे एव नान्यत्रेत्यन्ये। ५ चर्मकीलानां दोषानुसारि लक्षणमाह—तेष्विति। ६ सवर्णत्वं = श्लेष्मणः समानवर्णत्वम्, त्वक्समानवर्णतेत्यन्ये। ७ समुदीर्णखरत्वम्=अतीव कठिनत्वम्। ८ प्राक्=व्रणप्रश्ने वातव्याधौ कुपितास्त्व-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसर्गं तं विजानीयात् संसर्गः स च षड्विधः ॥ २२ ॥
त्रिदोषाण्यल्पलिङ्गानि याप्यानि तु विनिर्दिशेत् ।
द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ॥ २३ ॥
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ।
सन्निपातसमुत्थानि सहजानि तु वर्जयेत् ॥ २४ ॥
सर्वाः स्युर्वलयो येषां दुर्नामभिरुपद्रुताः ।
तैस्तु प्रतिहतो वायुरपानः सन्निवर्तते ॥ २५ ॥
ततो व्यानेन सङ्गम्य ज्योतिर्मृद्नाति देहिनाम् ॥ २६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थानेऽर्शोनिदानं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

## तृतीयोऽध्यायः ।

अथातोऽश्मरीणां निदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
चतस्रोऽश्मर्यो भवन्ति श्लेष्माधिष्ठानाः । तद्यथा—श्लेष्मणा, वातेन, पित्तेन, शुक्रेण चेति ॥ ३ ॥

---

त्यादिपूर्वोक्तश्लोकेषु वा । १ षड्विधः=वातपित्ते, वातकफौ, पित्तकफौ, वातरक्ते, पित्तरक्ते, कफरक्ते चेति षट् प्रकारः । २ परिगतोऽतिक्रान्तः संवत्सरो यैस्तानि परिसंवत्सराणि । ३ सन्निवर्तते=उपरि परावर्तते, अधो न निस्सरतीत्यर्थः । ४ सङ्गम्य व्यानेन मिलित्वा देहिनां, ज्योतिः अग्निं, मृद्नाति मन्दीकरोतीत्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वितीयोऽध्यायः ।**

---

### तृतीयोऽध्यायः ।

५ गुदबस्त्योरेकाधिकरण्याद् बस्तिगतव्याधानां यथाकथञ्चित्साजात्यमस्तीत्यर्शोनिदानानन्तरमश्मरीणां निदानमारभ्यते । ६ श्लेष्माधिष्ठानाः=कफसमवायिकारणाः । तिस्र एव श्लेष्माधिष्ठानाः, शुक्राश्मरी शुक्राधिष्ठाना । तथा च चरकः—"विशोषयेद् बस्तिगतं सशुक्रम्" इति । अन्ये तु "शुक्रं तु सौम्यम्" इति वचनाच्छुक्राश्मर्यपि श्लेष्माधिष्ठानैव । तदुक्तम्—"वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजाऽपरा । प्रायः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

तत्रासंशोधनशीलस्यापथ्यकारिणः प्रकुपितः श्लेष्मा मूत्रसम्पृक्तोऽनुप्रविश्य बस्तिमश्मरीं जनयति ॥ ४ ॥

तासां पूर्वरूपाणि—बस्तिपीडारोचकौ मूत्रकृच्छ्रं बस्तिशिरोमुष्कशेफसां वेदना ज्वरः कृच्छ्रावसादौ बस्तिगन्धित्वं मूत्रस्येति॥५॥

यथास्ववेदनावर्णं दुष्टं सान्द्रमथाविलम् ।
पूर्वरूपेऽश्मनः कृच्छ्रान्मूत्रं सृजति मानवः ॥ ६ ॥

अथ जातासु नाभिबस्तिसेवनीमेहनेष्वन्यतमस्मिन् मेहतो वेदना मूत्रधारासङ्गः सरुधिरमूत्रता मूत्रविकिरणं गोमेदकप्रकाशमत्याविलं ससिकतं विसृजति । धावनलङ्घनप्लवनपृष्ठयानोष्णाध्वगमनैश्चास्य वेदना भवन्ति ॥ ७ ॥

तत्र, श्लेष्माश्मरी श्लेष्मलमन्नमभ्यवहरतोऽत्यर्थमुपलिप्याधः परिवृद्धिं प्राप्य बस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि, तस्य मूत्रप्रतिघातादाल्यते भिद्यते निस्तुद्यत इव च बस्तिर्गुरुः शीतश्च भवति । अश्मरी चात्र श्वेता स्निग्धा महती कुक्कुटाण्डप्रतीकाशा मधूकपुष्पवर्णा वा भवति; तां श्लैष्मिकीमिति विद्यात् ॥ ८ ॥

पित्तयुक्तस्तु श्लेष्मा सङ्घातमुपगम्य यथोक्तां परिवृद्धिं प्राप्य

---

श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्य्यः स्युर्यमोपमाः ॥" इति । १ मूत्रसम्पृक्तः=मूत्रसंसृष्टः, बस्तिमनुप्रविश्येति सम्बन्धः । २ बस्तिशिरः=मूत्राशयद्वारम् । ३ कृच्छ्रावसादः=कष्टयुक्ताङ्गग्लानिः, बस्तिगन्धित्वं=छागसमानगन्धत्वम् । ४ यथास्वं यथादोषं वेदनावर्णश्च यस्मिन् मूत्रे तद् यथास्ववेदनावर्णम् , दुष्टं वातादिभिः । ५ अश्मनः=अश्मरीसमूहस्येत्यर्थः ।

६ सर्वासां सामान्यलक्षणं प्रतिपादयति—**अथेति** । ७ मूत्रधारासङ्गः=अश्मर्या मार्गावरोधान्मूत्रधारानिरोधः, सरुधिरमूत्रता=अश्मर्याः सङ्घट्टनात्सरक्तमूत्रप्रवर्तनम् , मूत्रविकिरणम्=शिश्नमणावश्मरीनिरोधाद् मूत्रस्येतश्चेतश्च गमनम् । ८ ससिकतं=सिकताऽऽकारेणाश्मर्य्यंशेनानुगतम् । ९ तत्र=असंशोधनशीलापथ्यकारिषु मध्ये । अत्र 'तत्रात्यर्थं श्लेष्मलमन्नमभ्यवहरतः । श्लेष्मा सङ्घातमुपगम्य यथोक्तां परिवृद्धिम्' इति हाराणचन्द्रसम्मतपाठः । १० तस्य=पुरुषस्य, मूत्रप्रतिघातात्=मूत्रावरोधात् , दाल्यते=कुठारेणेव दीर्यते, भिद्यते=आरयेव स्फोटयते, निस्तुद्यते=सूचीभिरिव व्यथ्यते । ११ सङ्घातं=काठिन्यमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि, तस्य मूत्रप्रतीघातादूष्यते[1] चूष्यते दह्यते पच्यत इव बस्तिरुष्णवातश्च भवति। अश्मरी चात्र सरक्ता पीतावभासा कृष्णा भल्लातकास्थिप्रतिमा मधुवर्णा वा भवति; तां पैत्तिकीमिति विद्यात् ॥ ९ ॥

वातयुतस्तु श्लेष्मा सङ्घातमुपगम्य यथोक्तां परिवृद्धिं प्राप्य बस्तिमुखमधिष्ठाय स्रोतो निरुणद्धि, तस्य मूत्रप्रतीघातात्तीव्रा वेदना भवति, तथाऽत्यथ पीड्यमानो दन्तान् खादति नाभिं पीडयति मेढ्रं मृद्नाति[2] पायुं स्पृशति विशीर्यते[3] विदहति वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण चास्य मेहतो निःसरन्ति। अश्मरी चात्र श्यावा परुषा विषमा खरा[4] कदम्बपुष्पवत्कण्टकाचिता भवति; तां वातिकीमिति विद्यात् ॥ १० ॥

प्रायेणैतास्तिस्रोऽश्मर्यो दिवास्वप्नसमशनाध्यशनशीतस्निग्धगुरुमधुराहारप्रियत्वाद्विशेषेण बालानां भवन्ति। तेषामेवाल्पबस्तिकायत्वादनुपचितमांसत्वाच्च बस्तेः सुखग्रहणाहरणा भवन्ति, महतां तु शुक्राश्मरी शुक्रनिमित्ता भवति ॥ ११ ॥

मैथुनाभिघातादतिमैथुनाद्वा[5] शुक्रं चलितमनिर्गच्छद्विमार्गगमनादनिलोऽभितः[6] सङ्गृह्य मेढ्रवृषणयोरन्तरे संहरति[7], संहृत्य चोपशोषयति। सा मूत्रमार्गमावृणोति, मूत्रकृच्छ्रं बस्तिवेदनां वृषणयोश्च

---

१ ऊष्यते=समीपस्थेनेवाग्निनोपतप्यते, चूष्यते=आकृष्यत इव, दह्यते=अग्निना भस्मसादिव क्रियते, पच्यते=क्षारेणेव दह्यते, उष्णवातः=उत्तरन्त्रे पठितो मूत्राघातभेदः। तद्यथा—"व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलावृतम्। बस्तिं मेढ्रं गुदं चैव प्रदहन् स्रावयेदधः ॥ मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा। कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्णवातं वदन्ति तम् ॥" इति। २ मृद्नाति=मेढ्रमर्दनं करोति। ३ विशीर्यते=आर्त्तनादं करोति, नानाविधदुःखोद्भावकं शब्दं विदधातीति यावत्, विदहति=विन्दुशो निष्यन्देन परितपति। ४ खरा=कठोरा। ५ मैथुनाभिघातात्=उपस्थितशुक्रवेगस्य मैथुनाकरणात्, अतिमैथुनात्=मैथुनप्राचुर्याद् वा। ६ अभितः=ऊर्ध्वमधश्चोभयतः। ७ संहरति=राशीकरोति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्वयथुमापादयति, पीडितमात्रे च तस्मिन्नेव प्रदेशे प्रविलयमाप[1]द्यते; तां शुक्राश्मरीमिति विद्यात् ॥ १२ ॥

भवन्ति चात्र ।

शर्करा सिकता मेहो भस्माख्यो[2]ऽश्मरिवैकृतम् ।
अश्मर्याः शर्करा ज्ञेया तुल्यव्यञ्ज[3]नवेदना ॥ १३ ॥
पवनेऽनुगुणे सा[4] तु निरेत्यल्पा विशेषतः ।
सा भिन्नमू[5]र्त्तिर्वातेन शर्करेत्यभिधीयते ॥ १४ ॥
हृत्पीडा सक्थिसदनं कुक्षिशूलः सवेपथुः ।
तृष्णोर्ध्वगोऽनिलः काष्ण्यं दौर्बल्यं पाण्डुगात्रता ॥ १५ ॥
अरोचकाविपाकौ तु शर्करार्त्ते भवन्ति च ।
मूत्रमार्गप्रवृत्ता सा सक्तां[6] कुर्यादुपद्रवान् ॥ १६ ॥
दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमरोचकम् ।
पाण्डुत्वमुष्णवातञ्च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ १७ ॥
नाभिपृष्ठकटीमुष्कगुदवङ्क्षणशेफसाम् ।
एकद्वारस्तनुत्वक्को[7] मध्ये बस्तिरधोमुखः ॥ १८ ॥
अलाब्वा इव रूपेण सिरा[8]स्नायुपरिग्रहः ।
बस्तिर्बस्तिशिरश्चैव पौरुषं वृषणौ गुदम् ॥ १९ ॥
[10]एकसम्बन्धिनो ह्येते गुदास्थिविवरस्थिताः ।

---

१ प्रविलयमापद्यते=अल्पत्वाद् विलीयते । तदुक्तम्—"तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते" इति । २ भस्माख्यः=उत्तरतन्त्रे पठितो मूत्रशुक्रनामा मूत्ररोगः । ३ तुल्या व्यञ्जनावेदना यस्याः सा, अश्मरीसदृशवर्णशूलादिलिङ्गेत्यर्थः ।

४ सा अश्मरी यदा अल्पा स्यात्तदा पवने वातेऽनुगुणेऽनुकूले सति निरेति निर्गच्छति, प्रतिलोमे तु पवने क्वचिदिति शेषः । तदुक्तम्—"अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे । निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे निरुध्यते ॥" इति । ५ भिन्नमूर्तिः=वायुना विदीर्णावयवः । ६ सक्ता=अनिर्गता । ७ तन्वी त्वगस्येति तनुत्वक्कः सूक्ष्मत्वक्कः । ८ सिरास्नायू परिग्रहोऽवलम्बनमस्येति सिरास्नायुपरिग्रहः । ९ बस्तिप्रसङ्गेन बस्तिसमीपस्थानामन्येषां स्थानं निर्दिशति—बस्तिरिति । पौरुषं=शिश्नो भगं च । १० एकसम्बन्धिनः=समानसंश्रयाः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मूत्राशयो मलाधारः प्राणायतनमुत्तमम् ॥ २० ॥
पक्वाशयगतास्तत्र नाड्यो मूत्रवहास्तु याः ।
तर्पयन्ति सदा मूत्रं सरितः सागरं यथा ॥ २१ ॥
सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते मुखान्यासां सहस्रशः ।
नाडीभिरुपनीतस्य मूत्रस्यामाशयान्तरात् ॥ २२ ॥
जाग्रतः स्वपतश्चैव स निःस्यन्देन पूर्यते ।
आमुखात्सलिले न्यस्तः पार्श्वेभ्यः पूर्यते नवः ॥ २३ ॥
घटो यथा तथा विद्धि बस्तिर्मूत्रेण पूर्यते ।
एवमेव प्रवेशेन वातः पित्तं कफोऽपि वा ॥ २४ ॥
मूत्रयुक्त उपस्नेहात् प्रविश्य कुरुतेऽश्मरीम् ।
अप्सु स्वच्छास्वपि यथा निषिक्तासु नवे घटे ॥ २५ ॥
कालान्तरेण पङ्कः स्यादश्मरीसम्भवस्तथा ।
संहन्त्यपो यथा दिव्या मारुतोऽग्निश्च वैद्युतः ॥ २६ ॥
तद्वद्बलासं बस्तिस्थमूष्मा संहन्ति सानिलः ।
मारुते प्रगुणे बस्तौ मूत्रं सम्यक् प्रवर्त्तते ।
विकारा विविधाश्चापि प्रतिलोमे भवन्ति हि ॥ २७ ॥

---

१ प्राणानामग्नीषोमादीनामायतनं स्थानमिति प्राणायतनम्, उत्तमम् । तदाह दृढबलः—"तत्र शाखाऽऽश्रितेभ्यो मर्मभ्यः स्कन्धाश्रितानि गरीयांसि, स्कन्धाश्रितेभ्योऽपि हृद्बस्तिशिरांसि तन्मूलत्वाच्छरीरस्य" इति । २ अस्याक्षीणमूत्रत्वं निदर्शयति—**पक्वाशयेति** । ३ तर्पयन्ति=वर्धयन्ति । ४ आसां=नाडीनाम् । ५ उपनीतस्य=प्रापितस्य । ६ निःस्यन्देन=मन्दं मन्दं क्षरणेन पूर्यत इत्यर्थः ।

७ अधोमुखत्वेन बस्तेरनूर्ध्वमुखस्यापि पूरणप्रकारं दृष्टान्तेनावगमयति—**आमुखादिति** । सलिले न्यस्तो धृतः पार्श्वेभ्यः चतुष्पार्श्वगतच्छिद्रेभ्यः पूर्यते । ८ एवमेव मूत्रवदेव, प्रविश्यतेऽनेनेति प्रवेशस्तेन प्रवेशेन, प्रकृतत्वात् सूक्ष्मछिद्रनिचयेनेत्यर्थः । ९ उपस्नेहात=उपलेपात् । १० निषिक्तासु=स्थापितासु । ११ यथा मारुतो वायुः, वैद्युतोऽग्निश्च दिव्या आन्तरिक्षा अपो जलानि संहन्ति काठिन्यं करोति करकाः करोतीति यावत् ; तद्वत् सानिलः सवातः ऊष्मा पित्तं बस्तिस्थं बलासं कफं संहन्ति कठिनं करोति, अश्मरीं करोतीत्यर्थः ।

१२ बस्तिगतानां रोगाणां वायोः कारणत्वमुपपादयति—**मारुत इति** । प्रगुणे=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मूत्राघाताः प्रमेहाश्च शुक्रदोषास्तथैव च ।
मूत्रदोषाश्च ये केचिद्वस्तावेव भवन्ति हि ॥ २८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थानेऽश्मरीनिदानं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

## चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो भगन्दराणां निदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

वातपित्तश्लेष्मसन्निपातागन्तुनिमित्ताः शतपोनकोष्ट्रग्रीवपरिस्राविशम्बूकावर्त्तोन्मार्गिणो यथासङ्ख्यं पञ्च[३] भगन्दरा भवन्ति । ते तु भगगुदबस्तिप्रदेशदारणाच्च भगन्दरा इत्युच्यन्ते । अपक्वाः[४] पिडकाः, पक्वास्तु भगन्दराः ॥ ३ ॥

तेषान्तु पूर्वरूपाणि—कटीकपालवेदना[५] कण्डूर्दाहः शोफश्च गुदस्य भवति ॥ ४ ॥

तत्रापथ्यसेविनां वायुः प्रकुपितः सन्निवृत्तः[६] स्थिरीभूतो गुदम[७]-

---

अनुकूले । प्रतिलोमे=प्रतिकूले । १ वायौ प्रतिकूले सति ये रोगाः प्रादुर्भवन्ति तान् दर्शयति—**मूत्रेति** । मूत्राघातः=मूत्रावरोधः, मूत्रकृच्छ्रं तु दुःखेन मूत्रप्रवृत्तिरिति ।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां तृतीयोऽध्यायः ।**

---

### चतुर्थोऽध्यायः ।

२ भगवद्दारयन्तीति भगन्दरास्तेषाम् । भगशब्दो गुदाद्युपलक्षणम् । उक्तमपि भोजे—"भगं परिसमन्ताच्च गुदं बस्तिं तथैव च । भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो भगन्दरः॥"इति।

३ पञ्चेति संख्याकथनं रक्तजद्वन्द्वजभगन्दरसम्भावनानिरासार्थम् । तन्त्रान्तरे भगन्दरस्याष्टौ प्रकाराः समुपलभ्यन्ते, तेषु येऽधिकास्त्रयः त एव प्रदर्श्यन्ते यथा—"वातपित्तात्परिक्षेपी परिक्षिप्य गुदं गतिः । जायते परितस्तत्र प्राकारं परिखेव च ।" इति परिक्षेपी । "ऋजुर्वातकफादृज्व्या गुदो गत्या विदार्य्यते" इति ऋजुः । "कफपित्ते तु पूर्वोक्तं दुर्नामाश्रित्य कुप्यतः । अर्शोमूले ततः शोफः कण्डूदाहादिमान् भवेत् ॥ स शीघ्रं पक्वभिन्नोऽस्य क्लेदयन् मूलमर्शसः । स्रवत्यजस्रं गतिभिरयमर्शो भगन्दरः ॥"इत्यर्शोभगन्दरः । ४ वाग्भटेऽप्युक्तम्—"अपक्वं पिडकामाहुः पाकप्राप्तं भगन्दरम्"इति ।

५ कटीकपालं=कट्यस्थि । ६ सन्निवृत्तः=स्वकर्मविरतः । ७ गुदमभितः=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भितोऽङ्गुले द्व्यङ्गुले वा मांसशोणिते प्रदूष्यारुणवर्णां पिडकां जनयति, साऽस्य तोदादीन् वेदनाविशेषाञ्जनयति[1], अप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति, मूत्राशयाभ्यासगतत्वाच्च व्रणः प्रक्लिन्नः शतपोनकवदणुमुखैश्छिद्रैरापूर्यते[2], तानि च छिद्राण्यजस्रमच्छं फेनानुविद्धमधिकमास्रावं स्रवन्ति, व्रणश्च ताड्यते भिद्यते छिद्यते सूचीभिरिव निस्तुद्यते, गुदं चावदीर्यते, उपेक्षिते च वातमूत्रपुरीषरेतसामप्यागमश्च तैरेव छिद्रैर्भवति । तं भगन्दरं शतपोनकमित्याचक्षते ॥ ५ ॥

पित्तं तु प्रकुपितमनिलेनाधः प्रेरितं पूर्ववदवस्थितं रक्तां तन्वीमुच्छ्रितामुष्ट्रग्रीवाकारां पिडकां जनयति, साऽस्य चोषादीन् वेदनाविशेषाञ्जनयति, अप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति, व्रणश्चाग्निक्षाराभ्यामिव दह्यते दुर्गन्धमुष्णमास्रावं स्रवति, उपेक्षितश्च वातमूत्रपुरीषरेतांसि विसृजति । तं भगन्दरमुष्ट्रग्रीवमित्याचक्षते ॥ ६ ॥

श्लेष्मा तु प्रकुपितः समीरणेनाधः प्रेरितः पूर्ववदवस्थितः शुक्लावभासां स्थिरां कण्डूमतीं पिडकां जनयति, साऽस्य कण्ड्वादीन् वेदनाविशेषाञ्जनयति, अप्रतिक्रियमाणा च पाकमुपैति, व्रणश्च कठिनः संरम्भी कण्डूप्रायः पिच्छिलमजस्रमास्रावं स्रवति, उपेक्षितश्च वातमूत्रपुरीषरेतांसि विसृजति; तं भगन्दरं परिस्राविणमित्याचक्षते ॥ ७ ॥

वायुः प्रकुपितः प्रकुपितौ पित्तश्लेष्माणौ परिगृह्याधो गत्वा पूर्ववदवस्थितः पादाङ्गुष्ठप्रमाणां सर्वलिङ्गां पिडकां जनयति, साऽस्य तोददाहकण्ड्वादीन् वेदनाविशेषान् जनयति, अप्रतिक्रिय-

---

गुदस्य चतुष्पार्श्वतः, अङ्गुले द्व्यङ्गुले वा । तदुक्तम्—"गुदस्य द्व्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिडकाऽऽर्तिकृत्" इति । १ वेदनाविशेषान् = वातानुगुणवेदनाविशेषान् जनयति, अप्रतिक्रियमाणा = अपतर्पणादिभिः । २ अभ्यासः = सन्निकृष्टो देशः ।

३ शतपोनकवत् = चालनिकावत् । यद्वा शतपोनकः शुक्रदोषे पठितो विकारः । ४ फेनानुविद्धं = फेनानुगतम् । ५ छिद्यते = दात्रेणेव द्विधा क्रियते । ६ उच्छ्रिताम् = उन्नताम्, उष्ट्रग्रीवाकारामिति मध्ये गलवक्रत्वेनोष्ट्रग्रीवाकारत्वम् । ७ पित्तानुरूपवेदनाविशेषानित्यर्थः । ८ कफानुगुणवेदनाविशेषानित्यर्थः । ९ संरम्भी = सततवेदनः, कण्डूप्रायः = खर्जूबहुलः । १० त्रिदोषानुगुणवेदनाविशेषानित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


माणा च पाकमुपैति, व्रणश्च नानाविधवर्णमास्रावं स्रवति, [1]पूर्ण-नदीशम्बूकावर्त्तवच्चात्र समुत्तिष्ठन्ति वेदनाविशेषाः ; तं भगन्दरं शम्बूकावर्त्तमित्याचक्षते ॥ ८ ॥

मूढेन मांसलुब्धेन यदस्थिशल्यमन्नेन सहाभ्यवहृतं यदाऽव-गाढपुरीषोन्मिश्रमपानेनाधःप्रेरितमसम्यगागतं[2] गुदं क्षिणोति तत्र क्षतनिमित्तः कोथ उपजायते, तस्मिंश्च क्षते पूयरुधिरावकीर्णमां-सकोथे भूमाविव जलप्रक्लिन्नायां क्रिमयः सञ्जायन्ते, ते भक्षयन्तो गुदमनेकधा पार्श्वतो दारयन्ति, तस्य तैर्मार्गैः कृमिकृतैर्वातपुरी-षरेतांस्यभिनिःसरन्ति; तं भगन्दरमु[3]मार्गिणमित्याचक्षते ॥ ९ ॥

भवन्ति चात्र ।

[4]उत्पद्यतेऽल्परुक् शोफात् क्षिप्रं चाप्युपशाम्यति ।
पाय्वन्तदेशे पिडका सा ज्ञेयाऽन्या भगन्दरात् ॥ १० ॥
पायोः स्याद् द्व्यङ्गुले देशे गूढमूला सरुग्ज्वरा ।
भागन्दरी तु विज्ञेया पिडकाऽतो[5] विपर्य्ययात् ॥ ११ ॥
[6]यानयानान्मलोत्सर्गात् कण्डूरुग्दाहशोफवान् ।
पायुर्भवेद्व्रजः कट्यां पूर्वरूपं भगन्दरे ॥ १२ ॥
[7]घोराः साधयितुं दुःखाः सव एव भगन्दराः ।
तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च भगन्दरः ॥ १३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने भगन्दरनिदानं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

१ पूर्णनद्या आवर्तवत् शम्बूकावर्तवत्, अथवा पूर्णनद्याः शम्बूकावर्तवद् वेदना-विशेषाः समुत्तिष्ठन्ति प्रवर्तन्ते । तदुक्तं भोजे—"नदीनां परिपूर्णानां शम्बूकावर्तका यथा । समुत्तिष्ठन्ति वेगेन तोयवेगसमीरिताः ॥" इति । शम्बूकास्तदाख्याः शङ्खाः । 'शम्बूको दैत्यविशेषे करिकुम्भान्तशङ्खयोः' इति हेमचन्द्रः ।

२ असम्यगागतं = तिर्यगागतम् । ३ अत्रोन्मार्गेण क्रिमिकृतविमार्गेण पुरीषादि-गमनादुन्मार्गिसंज्ञा ज्ञेया । ४ पाय्वन्तदेशे गुदस्यान्ते पिडका शोफादुत्पद्यते इति सम्बन्धः । ५ अतो विपर्ययात् = भागन्दर्याः पिडकाया वैपरीत्याद् भगन्दरकरी पिडका भवतीत्यर्थः । ६ भगन्दरपूर्वरूपं दर्शयति - **यानेति** । ७ प्रतीकारप्रयत्नाय प्रति-पादयति—**घोरा इति** । घोराः = कष्टप्रदाः साधयितुं दुःखाः कष्टसाध्या भवन्तीति शेषः ।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्थोऽध्यायः ।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो कुष्ठ[1]निदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

मिथ्याहार[2]विहाराचारस्य विशेषाद् गुरु[3]विरुद्धासात्म्याजीर्णाहिताशिनः स्नेहपीतस्य वान्तस्य वा व्यायामग्राम्यधर्मसेविनो ग्राम्यानूपौदकमांसानि वा पयसाऽभीक्ष्णमश्नतो यो वा मज्ज[4]त्यप्सूष्माभितप्तः सहजा छर्दिर्वा प्रति[5]हन्ति, तस्य पित्तश्लेष्माणौ प्रकुपितौ परिगृह्यानिलः प्रवृद्धस्तिर्यग्गा[6]: सिराः सम्प्रतिपद्य समुद्धूय बाह्यं मार्गं प्रति समन्ताद्विक्षिपति, यत्र यत्र च दोषो विक्षिप्तो निःसरति तत्र तत्र मण्डलानि प्रादुर्भवन्ति, एवं समुत्पन्नस्त्वचि दोषस्तत्र तत्र च परि-

---

## पञ्चमोऽध्यायः ।

१ दुःसाध्यत्वसामान्याद् भगन्दरनिदानानन्तरं कुष्ठनिदानमारभ्यते । कुष्णात्यङ्गं कुत्सितं तिष्ठतीति वा कुष्ठम् । "कालेनोपेक्षितं यस्मात् सर्वं कुष्णाति तद्वपुः" इति तन्त्रान्तरम् २ मिथ्याहाराचारस्य = अहिताहारविहारस्येत्यर्थः । ३ विरुद्धानि = "न मत्स्यान् पयसाऽभ्यवहरेत्" इत्यादिना चरकोक्तानि, हिताहितीये प्राक् प्रदर्शितानि वा, असात्म्यं = प्रकृतिप्रतिकूलम् । ४ यः ऊष्माभितप्तः, ऊष्मणा अग्न्यातपादिना अभितप्तः सन्तप्तः, अप्सु शीतोदकेषु मज्जति । चरकेऽप्युक्तम्—"भयश्रमसन्तापोपहतस्य च सहसा शीतोदकमवतरतः" इति । ५ प्रतिहन्ति = अवरोधते ।

६ तिर्यग्गाः सिराः = शारीरस्थानोक्तास्तिर्यग्गमनस्वभावात् प्रधानभूताश्चतस्रो धमनीः, सम्प्रतिपद्य = सम्प्राप्य, समुद्धूय = आक्षिप्य, अस्य स्थाने 'सन्दूष्य' इति पाठान्तरम् । तत्र सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्यम्—'सन्दूष्येति "सिराः प्रपद्य तिर्यग्गास्त्वग्लसीकासृगामिषम् । दूषयन्ति" इति तन्त्रान्तरीयस्मरणात्' इति । बाह्यं = बाह्यरोगमार्गम् । तदुक्तं चरके—"तत्र शाखा रक्तादयो धातवस्त्वक् च स बाह्यो रोगमार्गः" "दोषाः प्रकुपिताः स्थानमधिगम्य सन्तिष्ठमानास्तानेव त्वगादीन् दूषयन्तः कुष्ठान्यभिनिवर्त्तयन्ति" इति दृढबलोक्त्येव बाह्यां त्वचं प्रति लक्षीकृत्येति वाऽर्थो बोध्यः । श्रीहाराणचन्द्रोऽपि 'बाह्यं मार्गमिति "रक्तादयो धातवस्त्वक् च बाह्यो रोगमार्गः" इत्यागमे सत्यपि सामान्यशब्दस्य विशेषवृत्तित्वात् "एवमुत्पन्नस्त्वचि" इत्यनन्तरोक्तेश्च बाह्यां त्वचं प्रति इत्याह ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वृद्धिं प्राप्याप्रतिक्रियमाणोऽभ्यन्तरं प्रतिपद्य धातूनभिदूषयति ॥३॥

तस्य पूर्वरूपाणि-त्वक्पारुष्यमकस्माद्रोमहर्षः कण्डूः स्वेदबाहुल्यमस्वेदनं वाऽङ्गप्रदेशानां स्वापः क्षतविसर्पणमसृजः कृष्णता चेति॥४॥

तत्र सप्त महाकुष्ठानि, एकादश क्षुद्रकुष्ठानि; एवमष्टादश कुष्ठानि भवन्ति। तत्र महाकुष्ठान्यरुणौदुम्बरर्ष्यजिह्वकपालकाकणकपुण्डरीकदद्रुकुष्ठानीति। क्षुद्रकुष्ठान्यपि स्थूलारुष्कं महाकुष्ठमेककुष्ठं चर्मदलं विसर्पः परिसर्पः सिध्मं विचर्चिका किटिमं पामा रकसा चेति। सर्वाणि कुष्ठानि सवातानि सपित्तानि सश्लेष्माणि सक्रिमीणि च भवन्ति; उत्सन्नतस्तु दोषग्रहणमभिभवात् ॥ ५ ॥

तत्र वातेनारुणं, पित्तेनौदुम्बरर्ष्यजिह्वकपालकाकणकानि, श्लेष्मणा पुण्डरीकं दद्रुकुष्ठं चेति। तेषां तु महत्त्वं क्रियागुरुत्वमुत्तरोत्तरं धात्वनुप्रवेशादसाध्यत्वं चेति ॥ ६ ॥

तत्र, वातेनारुणाभानि तनूनि विसर्पीणि तोदभेदस्वापयुक्तान्यरुणानि। पित्तेन पक्वोदुम्बरफलाकृतिवर्ण्यौडुम्बराणि, ऋष्यजिह्वाप्रकाशानि खराणि ऋष्यजिह्वानि, कृष्णकपालिकाप्रकाशानि कपालकुष्ठानि, काकणन्तिकाफलसदृशान्यतीव रक्तकृष्णानि काक-

---

१ वातादिरप्रतिक्रियमाणः सन् अभ्यन्तरं प्रतिपद्य धातून् क्रमशो रक्तमांसादीनभिदूषयति। 'प्रतिपद्यते धातूनभिदूषयन्'इति पाठान्तरम्। २ तस्य = कुष्ठसामान्यस्य। ३ अकस्मात्=कारणं विनैव, रोमहर्षः = रोमाञ्चः। ४ स्वापः=स्पर्शाज्ञानम्। ५ कुष्ठानामसंख्येयत्वादिदं संख्याप्रदर्शनं दिङ्मात्रमिति ज्ञेयम्। तदुक्तं चरके—"स सप्तविधोऽष्टादशविधोऽसंख्येयविधो वा भवति"इति। ६ तदुक्तं चरके—"न च किञ्चिदस्ति कुष्ठमेकदोषप्रकोपनिमित्तम्"इति। उत्सन्नतः = उत्कर्षतः, तु = एव, तुरत्रावधारणार्थः, दोषग्रहणं = वातादिदोषनामग्राहम्, अभिभवात् 'इतरदोषयोः क्रियते'इति शेषः।

७ दोषभेदेन कुष्ठविशेषस्योत्पत्तिमाह—**तत्रेति**। ८ महत्त्वं चैषां शीघ्रमुत्तरोत्तरधात्ववगाहनबहुदोषजत्वक्रियाभूयस्त्वयोगात्। ९ अरुणाभानि=रक्तवर्णानीत्यर्थः। १० अरुणानि = अरुणाख्यानि कुष्ठानि। ११ ऋष्यः नीलाण्डो हरिणः 'रुरु' इति ख्यातस्तस्य जिह्वाया इव प्रकाशः सादृश्यं येषां तानि, खराणि = खरत्वयुक्तानि। १२ कृष्णकपालिकाप्रकाशानि = कृष्णखर्परखण्डाकाराणि। १३ काकणन्तिका = गुञ्जा,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णकानि, तेषां चतुर्णामप्योषचोषपरिदाहधूमायनानि क्षिप्रोत्थानप्रपाकभेदित्वानि क्रिमिजन्म च सामान्यानि लिङ्गानि; पुण्डरीकपत्रप्रकाशानि पौण्डरीकाणि श्लेष्मणा, अतसीपुष्पवर्णानि ताम्राणि वा विसर्पीणि पिडकावन्ति च दद्रुकुष्ठानि; तयोर्द्वयोरप्युत्सन्नता परिमण्डलता कण्डूश्चिरोत्थानत्वं चेति सामान्यानि रूपाणि ॥ ७ ॥

क्षुद्रकुष्ठान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः—

स्थूलानि सन्धिष्वतिदारुणानि स्थूलारुषि स्युः कठिनान्यरूंषि ।
त्वक्कोचभेदस्वपनाङ्गसादाः कुष्ठे महत्पूर्वयुते भवन्ति ॥ ८ ॥
कृष्णारुणं येन भवेच्छरीरं तदेककुष्ठं प्रवदन्ति कुष्ठम् ।
स्युर्येन कण्डूव्यथनौषचोषास्तलेषु तच्चर्मदलं वदन्ति ॥ ९ ॥
विसर्पवत् सर्पति सर्वतो यस्त्वग्रक्तमांसान्यभिभूय शीघ्रम् ।
मूर्च्छाविदाहारतितोदपाकान् कृत्वा विसर्पः स भवेद्विकारः ॥१०॥
शनैः शरीरे पिडकाः स्रवत्यः सर्पन्ति यास्तं परिसर्पमाहुः ।
कण्डूयन्वितं श्वेतमपायि सिध्म विद्यात्तनु प्रायश ऊर्ध्वकाये॥११॥

---

औदुम्बरादिचतुर्णां पित्तकृतत्वं दर्शयति—**तेषामिति** । १ आत्रेयः—"सश्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् । सोत्सेधं च सरागं च पुण्डरीकं तदुच्यते ॥" इति । २ डल्हणः = 'दद्रुकुष्ठं द्विविधं सितमसितं च । असितस्य महोपक्रमसाध्यत्वादनुबन्धित्वप्रकर्षाच्च महाकुष्ठेषु मध्ये सुश्रुते पाठः । सितदद्रुकुष्ठस्य सुखसाध्यत्वादुत्तरोत्तरधात्वनुप्रवेशाभावात्तथाऽत्यर्थपीडारहितत्वाच्च चरके क्षुद्रकुष्ठेषु मध्ये पाठ इत्यदोषः' इति ।

३ क्षुद्रकुष्ठेषु प्राक् स्थूलारुष्कलक्षणमाह—**स्थूलानीति** । स्थूलानि = स्थूलमूलानीत्यर्थः । ४ स्थूलारुषि स्थूलारुष्कसंज्ञके कुष्ठे, कठिनानि अरूंषि व्रणाः स्युः । ५ त्वचां कोचः सङ्कोचः, भेदो विदारणं, स्वपनमचेतनत्वं चेति त्वक्कोचभेदस्वपनानि, तानि चाङ्गसादाश्चेति त्वक्कोचभेदस्वपनाङ्गसादाः । ६ तलेषु = हस्तपादस्यैव तलेष्वित्यर्थः । ७ अभिभूय = दूषयित्वा ।

८ विसर्पाख्यकुष्ठमिदं वक्ष्यमाणविसर्पाख्यरोगश्च चिरविसर्पणशीघ्रविसर्पणभेदाभ्यां भिद्यते । ९ अपायि = शीततौ विनाशीत्यर्थः । १० ऊर्ध्वकाय इति सामान्येनोक्तेऽपि प्रायेणोरस्येव भवति । तदुक्तं चरके—श्वेतं ताम्रं तनु च यद्रजो घृष्टं विमुञ्चति । अलाबुपुष्पवर्णं तत् सिध्मं प्रायेण चोरसि" ॥ डल्हणः—'सिध्मकुष्ठं द्विवि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्योऽतिकण्डूवर्त्तिरुजः सरूक्षा भवन्ति गात्रेषु विचर्चिकायाम्।
कण्डूमती दाहरुजोपपन्ना विपादिका पादगतेयमेव ॥ १२ ॥
यत् स्रावि वृत्तं घनमुग्रकण्डु तत् स्निग्धकृष्णं किटिभं वदन्ति।
सास्रावकण्डूपरिदाहकाभिः पामाऽणुकाभिः पिडकाभिरूह्या ॥१३॥
स्फोटैः सदाहैरति सैव कच्छूः स्फिक्पाणिपादप्रभवैर्निरूप्या।
कण्डूवन्विता या पिडका शरीरे संस्रावहीना रकसोच्यते सा ॥१४॥
अरुः ससिध्मं रकसा महच्च यच्चैककुष्ठं कफजान्यमूनि।
वायोः प्रकोपात्परिसर्पमेकं शेषाणि पित्तप्रभवाणि विद्यात् ॥ १५ ॥

किलासमपि कुष्ठविकल्प एव; तत्त्रिविधम्—वातेन पित्तेन श्लेष्मणा चेति। कुष्ठकिलासयोरन्तरं—त्वग्गतमेव किलासमपरिस्रावि

---

धम्—सिध्मं पुष्पिकासिध्मं च। पुष्पिकासिध्मस्य सुखसाध्यत्वात् सुश्रुते क्षुद्रकुष्ठेषु पाठः। सिध्मस्य दुःखसाध्यत्वाच्चरके महाकुष्ठे पाठ इत्यदोषः—इति।

१ राज्यः=अवदरणकृता बह्व्यो रेखाः। २ गात्रेषु=पाणिपादेषु। स्पष्टमुक्तं भोजे—"दोषाः प्रदूष्य त्वङ्मांसं पाणिपादसमाश्रिताः। पिडकां जनयन्त्याशु दाहकण्डूसमन्विताम्॥ दाल्यते त्वक् खरा रूक्षा पाण्योर्ज्ञेया विचर्चिका। पादे विपादिका ज्ञेया स्थानान्यत्वाद्विचर्चिका॥" इति। एतेन विचर्चिकैव पादयोर्भवन्ती विदारणयोगाद्विपादिका भवतीति नैकादशसंख्याऽनुपपत्तिः। ३ वृत्तं=प्रायेण वर्तुलम्, घनं=स्पर्शतः कठिनम्।

४ माधवनिदाने किटिभमित्यस्य किटिममिति संज्ञाऽन्तरं दृश्यते—"श्यावं किणखरस्पर्शं परुषं किटिमं स्मृतम्" इति। ५ आस्रावकण्डूपरिदाहकैः सह वर्तन्ते यास्तास्ताभिः। ६ तन्त्रान्तरेऽप्युक्तम्—"सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिचोश्च" इति। ७ शरीरे=सम्पूर्णदेहे। ८ यस्मिन् क्षुद्रकुष्ठे यस्य दोषस्याधिक्यं तद्दर्शयति—**अरुरिति**। अरुः=स्थूलारुष्कम्। ९ शेषाणि=विसर्पकिटिभविचर्चिकापामाचर्मदलानि।

१० अन्तरं=भेदः। "त्वग्गतं च यदस्रावि तत् किलासं प्रकीर्तितम्। यदा त्वचमतिक्रम्य तद्धातूनवगाहते। हित्वा किलाससंज्ञां च कुष्ठसंज्ञां लभेत्तदा॥" इति विश्वामित्रः। भालुकिना धातुभेदेन किलासस्य संज्ञाऽन्तरं दर्शितम्—"वारुणं तत्तु विज्ञेयं मांसधातुसमाश्रयम्। मेदश्रितं भवेच्छ्वित्रं दारुणं रक्तसंश्रयम्॥" इति। चरकेऽपि—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च। तद्वातेन मण्डलमरुणं परुषं परिध्वंसि[1] च, पित्तेन पद्मपत्रप्रतीकाशं सपरिदाहं च, श्लेष्मणा श्वेतं स्निग्धं बहलं कण्डूमच्च। तेषु सम्बद्धमण्डलमन्तेजातं[2] रक्तरोम चासाध्यमग्निदग्धं च ॥ १६ ॥

कुष्ठेषु[3] तु त्वक्सङ्कोचस्वापस्वेदशोफभेदकौण्य[4]स्वरोपघाता वातेन, पाकावदरणाङ्गुलिपतन[5]कर्णनासाभङ्गाक्षिरागसत्त्व[6]क्षोत्पत्तयः पित्तेन, कण्डूवर्णभेदशोफास्रावगौरवाणि श्लेष्मणा ॥ १७ ॥

तत्रादिबल[7]प्रवृत्तं पौण्डरीकं काकणं चासाध्यम् ॥ १८ ॥

भवन्ति चात्र।

यथा वनस्पतिर्जातः प्राप्य कालप्रकर्षणम्।
अन्तर्भूमिं विगाहेत मूलैर्वृष्टिविवर्द्धितैः ॥ १९ ॥
एवं कुष्ठं समुत्पन्नं त्वचि कालप्रकर्षतः।
क्रमेण धातू[8]न् व्याप्नोति नरस्याप्रतिकारिणः ॥ २० ॥
स्पर्शहानिः स्वेदनत्वमीषत्कण्डूश्च जायते।
वैवर्ण्यं रूक्षभावश्च कुष्ठे त्वचि समाश्रिते ॥ २१ ॥
त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्याभिप्रवर्त्तनम्।
कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रिते ॥ २२ ॥
बाहुल्यं[10] वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडकोद्गमः।

---

'दारुणं वाऽरुणं श्वित्रं किलासं नामभिस्त्रिभिः" इति। १ परिध्वंसि=रोमापहारि। तदुक्तम्—"सदाहं रोमविध्वंसि" इति।

२ अन्ते जातम्=ओष्ठपाणिपादगुह्योत्पन्नमित्यर्थः। तदुक्तमष्टाङ्गसङ्ग्रहे-"गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम्। वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता॥" इति। तलमत्र पादतलमिति विजयरक्षितः। रक्तरोम= शुक्लरोम, असाध्यलक्षणे चरकेण—"यच्छुक्लरोमबहुलं यत्संलग्नं परस्परम्। यच्च वर्षगणोपेतं तच्छ्वित्रं नैव सिद्ध्यति॥" इति। ३ कुष्ठानामनुक्तमपि दोषलिङ्गं वक्ति—कुष्ठेष्विति। ४ कुणेर्भावः कौण्यं करवैकल्यम्। 'कुकरे कुणिः' इत्यमरः। ५ अङ्गुलिपतनं=पाकप्राबल्येनाङ्गुलिस्रंसनमित्यर्थः। ६ सत्त्वः=क्रिमिः। ७ आदिबलप्रवृत्तं=शुक्रशोणितदोषान्वयमित्यर्थः, पुण्डरीकग्रहणं सर्वमहाकुष्ठानामुपलक्षणम्। ८ धातून्=अभ्यन्तरीयरक्तादीनित्यर्थः।

९ विकृतः पूयो विपूयकः दुर्गन्धता। १० बाहुल्यं=कुष्ठमण्डलानामाधिक्यम्।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोदः स्फोटैः स्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ २३ ॥
दौर्गन्ध्यमुपदेहश्च पूयोऽथ क्रिमयस्तथा ।
गात्राणां भेदनं चापि कुष्ठे मेदःसमाश्रिते ॥ २४ ॥
नासाभङ्गोऽक्षिरागश्च क्षते च क्रिमिसम्भवः ।
भवेत् स्वरोपघातश्च ह्यस्थिमज्जसमाश्रिते ॥ २५ ॥
कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां सम्भेदः क्षतसर्पणम् ।
शुक्रस्थानगते लिङ्गं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ २६ ॥
स्त्रीपुंसयोः कुष्ठदोषाद् दुष्टशोणितशुक्रयोः ।
यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ २७ ॥
कुष्ठमात्मवतः साध्यं त्वग्रक्तपिशिताश्रितम् ।
मेदोगतं भवेद्याप्यमसाध्यमत उत्तरम् ॥ २८ ॥
ब्रह्मस्त्रीसज्जनवधपरस्वहरणादिभिः ।
कर्मभिः पापरोगस्य प्राहुः कुष्ठस्य सम्भवम् ॥ २९ ॥
म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातेऽपि गच्छति ।
नातः कष्टतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्त्तितम् ॥ ३० ॥
आहाराचारयोः प्रोक्तामास्थाय महतीं क्रियाम् ।
औषधीनां विशिष्टानां तपसश्च निषेवणात् ॥
यस्तेन मुच्यते जन्तुः स पुण्यां गतिमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥
प्रसङ्गाद्गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात् ।
सहशय्याऽऽसनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ३२ ॥

---

१ स्फोटः=त्वचः स्फुटनम् । २ नासाभङ्गः=नासिकाऽवदरणम् । ३ कुष्ठं सञ्जातमस्येति कुष्ठितम् । यदा स्त्रीपुंसयोः कुष्ठिनोर्बीजमुपहतं स्यात्तदा तयोः प्रजा नोत्पद्यते इति डल्हणः । दुष्टं शुक्रमार्तवं वा सर्वथा बीजत्वानुपघातादपत्यजनकं, परन्तु विकृतं जनयतीति द्रष्टव्यमिति विजयरक्षितः । ४ आत्मवतः=जितेन्द्रियस्य, समीक्ष्याहाराचारकारिण इति यावत् । ५ पुनर्जाते पुनर्जन्मनि अपि गच्छति अनुसरति । अतो जन्मान्तरानुसारित्वात् सुचिरं क्लेशकरो नान्यो रोग इति भावः । ६ आस्थाय=आश्रित्य । ७ प्रसङ्गात्=मैथुनात् ।

८ अनुलेपनात्=धारणात् । तदुक्तं मनुनाऽपि–"उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिकरोगाश्च सङ्क्रामन्ति नरान्नरम्॥ ३३॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने कुष्ठनिदानं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

---

## षष्ठोऽध्यायः।

अथातः प्रमेहनिदानं व्याख्यास्यामः॥ १॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः॥ २॥

दिवास्वप्नाव्यायामालस्यप्रसक्तं शीतस्निग्धमधुरमेद्यद्रवान्नपानसेविनं रुषं जानीयात् प्रमेही भविष्यतीति॥ ३॥

तस्य चैवंप्रवृत्तस्यापरिपक्का एव वातपित्तश्लेष्माणो यदा मेदसा सहैकत्वमुपेत्य मूत्रवाहिस्रोतांस्यनुसृत्याधो गत्वा बस्तेर्मुखमाश्रित्य निर्भिद्यन्ते तदा प्रमेहान् जनयन्ति॥ ४॥

तेषां तु पूर्वरूपाणि-हस्तपादतलदाहः स्निग्धपिच्छिलगुरुता गात्राणां मधुरशुक्लमूत्रता तन्द्रा सादः पिपासा दुर्गन्धश्च श्वासस्तालुगलजिह्वादन्तेषु मलोत्पत्तिर्जटिलीभावः केशानां वृद्धिश्च नखानाम्५

---

धारयेत्। उपवीतमलङ्कारं स्रजं करकमेव च॥" इति १ औपसर्गिकरोगाः=सङ्क्रामकरोगाः। "मसूरिकाश्च रोमान्त्यो ग्रन्थिवीसर्प एव च। उपदंशश्च कण्ड्वाद्या औपसर्गिकसंज्ञकाः॥" इत्याद्यन्यतोऽवसेयम्।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चमोऽध्यायः।**

---

### षष्ठोऽध्यायः।

२ प्रमेहः शुक्रघटितरोगविशेषस्तस्य निदानम्। ३ प्रसक्तम्=अत्यासक्तम्। ४ मेद्यं=मेदोऽभिवर्द्धकम्। ५ पुरुषमिति कथनेन स्त्रीणां प्रमेहा न भवन्ति। तथा च तन्त्रान्तरे—"रजः प्रसेकान्नारीणां मासि मासि विशुद्ध्यति। सर्वं शरीरं दोषाश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः॥" इति, एतत्तु न युक्तम्, सर्वतन्त्राप्रसिद्धेः प्रत्यक्षविरोधाच्चेति डल्हणः। ६ प्रमेहसम्प्राप्तिमाह—**तस्येति**। अपरिपक्काः=आमाः। ७ मूत्रवाहीनि बस्तिशिरोगतानि स्रोतांसीति मूत्रवाहिस्रोतांसि। ८ निर्भिद्यन्ते=निस्सरन्ति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तत्रा[1]विलप्रभूतमूत्रलक्षणाः सर्व एव प्रमेहाः ॥ ६ ॥
सर्व एव सर्वदोषसमुत्थाः सह पिडकाभिः ॥ ७ ॥

तत्र, क[2]फादुदकेक्षुवालिकासुरासिकताशनैर्लवणपिष्टसान्द्रशुक्रफेनमेहा [3]दश साध्याः, दो[4]षदूष्याणां समक्रियत्वात्। पित्तान्नीलहरिद्राऽम्लक्षारमञ्जिष्ठाशोणितमेहाः [5]षट् याप्याः, दो[6]षदूष्याणां विषमक्रियत्वात्। वातात्सर्पिर्वसाक्षौद्रहस्तिमेहाश्चत्वा[7]रोऽसाध्यतमाः, महा[8]त्ययिकत्वात् ॥ ८ ॥

---

१ प्रमेहाणां सामान्यलक्षणं दर्शयति—**तत्रेति** । अष्टाङ्गहृदयेऽपि—"सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता । मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥" इति। २ कफात् = कफप्राधान्यादित्यर्थः । ३ तन्त्रान्तरे–"शीताच्छशीतैरुदकप्रमेहः स्यादिक्षुवाली मधुराच्छशीतात् । पित्तोत्कटः स्वच्छगुणात्सुराऽऽख्यो मूत्रेण युक्तः सिकताप्रमेहः ॥ मन्देन मूत्रेण शनैःप्रमेहो गुरोर्विदग्धाल्लवणप्रमेहः । पिष्टः प्रमेहः खलु शुक्रभागात्समस्तसान्द्रेण तु सान्द्रमेहः ॥ स्निग्धेन शुक्रेण च शुक्रमेहः स्यात्फेनमेहो गुरुशुक्लयोगात् । इत्येभिरंशैः कफदोषजातैर्नृणां प्रमेहा दश सम्भवन्ति । औत्कट्यतोऽयं व्यपदेश एषु संसर्गभावो गुणदोषदूष्यात् ।

४ दोषोऽत्र कफः दूष्या मेदोमज्जाप्रभृतयः । तदुक्तं चरके–"बहुबद्धं मेदो मांसं च शरीरजक्लेदः शुक्रं शोणितं च वसा मज्जा लसीका रसश्चौजः संख्यात इति दूष्यविशेषाः" इति, तेषां समक्रियत्वात् रूक्षोष्णादिसाध्यत्वेनाभिन्नक्रियत्वात् । कफस्य रूक्षतीक्ष्णकटुतिक्तादिका या क्रियाऽनुकूला सा मेदःप्रभृतीनां विरुद्धोपक्रमा न भवतीति भावः । ५ "पित्तानीलहरिद्राम्लक्षारमाञ्जिष्ठशोणितैः" इति । ६ दोषोऽत्र पित्तं दूष्या मेदःप्रभृतयस्तेषाम्, विषमक्रियत्वात्=पित्तमेदसः परस्परं विरुद्धक्रियत्वात्, पित्तस्य यद् मधुरशीतादि पथ्यं, तन्मेदसोऽपथ्यं, मेदसो यत्कटुकादि पथ्यं, तत् पित्तस्यापथ्यमिति भावः । चरके याप्यत्वस्य हेत्वन्तरमपि दर्शितम्—"सर्व एव ते याप्याः संसृष्टदोषमेदःस्थानकत्वात्" इति । ७ तन्त्रान्तरेऽपि—"सर्पिर्मेहं मरुत्कुर्याद्युक्तश्च लवणेन हि । मेदोयुक्तो वसायुक्तो वसामेहकरस्तु सः। क्षौद्रमेहे रौक्ष्यगुणाद्विष्टम्भो हस्तिमेहतः॥" इति।

८ महात्ययिकत्वात्=आप्यायनार्हप्रचुरतरमज्जप्रभृतिसारतरधातुक्षयकरत्वात् । 'विरुद्धोपक्रमत्वाच्च' इति, अत्रापि सम्बध्यते । तदुक्तं चरके—"इमांश्चतुरः प्रमेहान् वातजानसाध्यानाचक्षते भिषजः, महात्ययिकत्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वाच्चेति" इति । तेनात्र यद्वायोः स्निग्धादि पथ्यं, तन्मेदसोऽपथ्यमित्यादिस्तदर्थो बोध्यः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तत्र, वातपित्तमेदोभिरन्वितः श्लेष्मा श्लेष्मप्रमेहान् जनयति, वातकफशोणितमेदोभिरन्वितं पित्तं पित्तप्रमेहान्, कफपित्तवसामज्जमेदोभिरन्वितो वायुर्वातप्रमेहान् ॥ ९ ॥

तत्र[1], श्वेतमवेदनमुदकसदृशमुदकमेही मेहति। इक्षुरसतुल्यमिक्षुबालिकामेही। सुरामेही सुरातुल्यम्। सरुजं सिकताऽनुविद्धं[2] सिकतामेही। शनैः सकफं मृत्स्नं शनैर्मेही। विशदं लवणतुल्यं[3] लवणमेही। हृष्टरोमा पिष्टरसतुल्यं[4] पिष्टमेही। आविलं सान्द्रं[5] सान्द्रमेही। शुक्रतुल्यं शुक्रमेही। स्तोकं[6] स्तोकं सफेनं फेनमेही मेहति ॥ १० ॥

अत ऊर्ध्वं पित्तनिमित्तान् वक्ष्यामः—सफेनमच्छं नीलं नीलमेही मेहति। सदाहं हरिद्राऽऽभं हरिद्रामेही। अम्लरसगन्धमम्लमेही। स्रुतक्षारप्रतिमं क्षारमेही। मञ्जिष्ठोदकप्रकाशं[7] मञ्जिष्ठामेही। शोणितप्रकाशं शोणितमेही मेहति ॥ ११ ॥

अत ऊर्ध्वं वातनिमित्तान् वक्ष्यामः—सर्पिःप्रकाशं सर्पिर्मेही मेहति। वसाप्रकाशं वसामेही। क्षौद्ररसवर्णं क्षौद्रमेही। मत्तमातङ्गवदनुप्रबन्धं हस्तिमेही मेहति ॥ १२ ॥

मक्षिकोपसर्पणमालस्यं मांसोपचयः प्रतिश्यायः शैथिल्यारोचकाविपाकाः कफप्रसेकच्छर्दिनिद्राकासश्वासाश्चेति श्लेष्मजानामुपद्रवाः. वृषणयोरवदरणं बस्तिभेदो मेढ्रतोदो हृदि शूलमम्लीका-

---

१ कफजानां दशप्रमेहाणामनुक्रमेण लक्षणानि निर्दिशति—**तत्रेति**। २ सिकता वालुकेव विकृतिमापन्नः श्लेष्मा सिकता, तद्युक्तं सिकताऽनुविद्धम्। ३ लवणतुल्यं = लवणाम्बुसदृशमित्यर्थः। ४ पिष्टरसतुल्यं = तण्डुलचूर्णमिश्रोदकसमम्। ५ सान्द्रं = घनम्, "यस्य पर्युषितं मूत्रं सान्द्रीभवति भाजने। पुरुषं कफकोपेन तमाहुः सान्द्रमेहिनम्॥" इति चरकः। ६ स्तोकं स्तोकम् = अल्पमल्पमित्यर्थः। ७ मञ्जिष्ठोदकप्रकाशं = 'मञ्जीठ' इति ख्यातस्य क्वाथसदृशम्। ८ अनुप्रबन्धम् = अजस्रम्, यथा मत्तमतङ्गजः प्रवृद्धवेगानुपूर्व्या सततं मेहति तद्वदयमित्यर्थः।

९ प्रतिदोषं प्रमेहोपद्रवान् दर्शयति—**मक्षिकेति**। मक्षिकोपसर्पणं = शरीरे मूत्रे वा मक्षिकाभिसरणम्। तदुक्तं चरके—"षट्पदपिपीलिकाभिश्च शरीरमूत्राभिस-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ज्वरातीसारारोचका वमथुः परिधूमायनं[1] दाहो मूर्च्छा पिपासा निद्रानाशः पाण्डुरोगः पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं चेति पैत्तिकानाम् । हृद्ग्रहो लौल्यं[2]मनिद्रा स्तम्भः कम्पः शूलं बद्धपुरीषत्वं चेति वातजानाम् । एवमेते विंशतिः प्रमेहाः सोपद्रवा[3] व्याख्याताः ॥ १३ ॥

तत्र, वसामेदोभ्यामभिपन्नशरीरस्य त्रिभिर्दोषैश्चानुगतधातोः प्रमेहिणो दश[4] पिडका जायन्ते । तद्यथा—शराविका, सर्षपिका, कच्छपिका, जालिनी, विनता, पुत्रिणी, मसूरिका, अलजी, विदारिका, विद्रधिका चेति ॥ १४ ॥

शरावमात्रा तद्रूपा[5] निम्नमध्या शराविका ।
गौरसर्षप[6]संस्थाना तत्प्रमाणा च सार्षपी ॥ १५ ॥
सदाहा कूर्म[7]संस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥
जालि[8]नी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता ॥ १६ ॥
महती पिडका नीला पिडका विनता स्मृता ।
महत्यल्पा[9]चिता ज्ञेया पिडका सा तु पुत्रिणी ॥ १७ ॥
मसूरसमसंस्थाना ज्ञेया सा तु मसूरिका ।
रक्ता सिता स्फोटवती दारुणा त्वलजी[10] भवेत् ॥ १८ ॥

---

रणम्" इति । १ परिधूमायनं=समन्ततो धूमोद्गिरणम् । २ लौल्यं=विरुद्धाविरुद्धसर्वरसभक्षणेच्छा । ३ उपद्रवाः प्रदर्शिताश्चरके—"उपद्रवास्तु खलु प्रमेहिणां तृष्णाऽतीसारज्वरदाहदौर्बल्यारोचकाविपाकाः पूतिमांसपिडकालजीविद्रध्यादयश्च तत्प्रसङ्गाद् भवन्ति" इति ।

४ चरके तु सप्तैव पिडका निर्दिष्टाः—"शराविका कच्छपिका जालिनी सर्षपी तथा। अलजी विनताऽऽख्या च विद्रधी चेति सप्तमी" ॥ भोजे नव पिडका उक्ताः—"शराविका सर्षपिका कूर्मिका जालिनी तथा । कुलत्थिकाऽलजी पुत्री विदारी विद्रधी तथा ॥ नवैताः पिडका ज्ञेयाः" इति । कुलत्थिका=मसूरिका ।

५ तद्रूपा=शरावरूपा । ६ गौरसर्षपसंस्थाना=श्वेतसर्षपाकारेत्यर्थः । ७ कूर्मसंस्थाना=कच्छपपृष्ठाभेत्यर्थः । तदुक्तं चरके—"अवगाढार्तिनिस्तोदा महावास्तुपरिग्रहा । इलक्ष्णा कच्छपपृष्ठाभा पिडका कच्छपी मता ॥" इति । ८ तन्त्रान्तरेऽस्या लक्षणम्—"परस्पराभिसम्बन्धात्पिडका चैकदेशजा । पित्तोत्कटा दाहवती भृशरुग्जालिनी मता ॥" इति । ९ अल्पाचिता=क्षुद्रपिडकाभिर्ग्रथिता । १० "दहति त्वचमु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विदारीकन्दवद् वृत्ता कठिना च विदारिका ।
विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका बुधैः ॥ १९ ॥
ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तत्कृताः ।
गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मणि चोत्थिताः ।
सोपद्रवा[2] दुर्बलाग्नेः पिडकाः परिवर्जयेत् ॥ २० ॥
कृत्स्नं शरीरं निष्पीड्य[3] मेदोमज्जवसायुतः ।
अधः प्रक्रमते वायुस्तेनासाध्यास्तु वातजाः ॥ २१ ॥
प्रमेहपूर्वरूपाणामाकृतिर्यत्र दृश्यते ।
किञ्चिच्चाप्यधिकं मूत्रं तं प्रमेहिणमादिशेत् ॥ २२ ॥
कृत्स्नान्यर्द्धानि वा यस्मिन् पूर्वरूपाणि मानवे ।
प्रवृद्धमूत्रमत्यर्थं तं प्रमेहिणमादिशेत् ॥ २३ ॥
पिडकापीडितं गाढमुपसृष्टमुपद्रवैः ।
मधुमेहिनमाचष्टे स चासाध्यः प्रकीर्त्तितः ॥ २४ ॥
स चापि गमनात् स्थानं स्थानादासनमिच्छति ।
आसनाद् वृणुते शय्यां शयनात् स्वप्नमिच्छति ॥ २५ ॥

यथा हि वर्णानां पञ्चानामुत्कर्षापकर्षकृतेन[4] संयोगविशेषेण शबलबभ्रुकपिलकपोतमेचक[5]कादीनां वर्णानामनेकेषामुत्पत्तिर्भवति, एवमेव दोषधातुमलाहारविशेषेणोत्कर्षापकर्षकृतेन संयोगविशेषेण प्रमेहाणां नानाकरणं भवति ॥ २६ ॥

---

त्थाने तृष्णामोहज्वरप्रदा । विसर्पत्यनिशं दुःखाद्दहत्यग्निरिवालजी ॥" इति । १ ये मेहा यन्मया यद्दोषारब्धाः, तेषामेताः प्रमेहपिडका तत्कृतास्तद्दोषकृताः । यद्यपि प्रमेहास्त्रिदोषजन्यास्तथाऽपि 'व्यपदेशस्तु भूयसा' इति न्यायेन येषु प्रमेहेषु ये दोषा अधिकास्तदनुसारेणैव ते सज्ञां लभन्ते, तद्वत्तद्दोषोल्बणाः पिडका अपीति निष्कर्षः ।

२ उपद्रवाः = तृट्कासादयः । यदुक्तं चरके—"तृट्कासमांससङ्कोचमोहहिक्कामदज्वराः । विसर्पमर्मसंरोधाः पिडकानामुपद्रवाः ॥" इति । ३ निष्पीड्य = मूत्रेण सह समस्तान् धातून् प्रवाह्येत्यर्थः । तदुक्तमष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"वायुर्वसादीन् धातून् शरीरस्य परमसारभूतान् बस्तिमाकृष्य मूत्रेण सह विसृजति, तस्मात्..... असाध्याः" । ४ उत्कर्षापकर्षकृतेन = वृद्धिन्यूनमात्राकृतेनेत्यर्थः । ५ मेचकः = श्या-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भवति चात्र ।

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः[1] ।
मधुमेहत्वमायान्ति[2] तदासाध्या भवन्ति हि ॥ २७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने प्रमेहनिदानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

## सप्तमोऽध्यायः ।

अथात उदराणां[3] निदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

धन्वन्तरिर्धर्मभृतां वरिष्ठो राजर्षि[4]रिन्द्रप्रतिमोऽभवद्यः ।
ब्रह्मर्षि[5]पुत्रं विनयोपपन्नं शिष्यं शुभं सुश्रुतमन्वशात् सः ॥ ३ ॥
पृथक्[6]समस्तैरपि चेह दोषैः प्लीहोदरं बद्धगुदं तथैव ।

---

मवर्णः । १ अप्रतिकारिणः=प्रतीकारमकुर्वतः पुंसः ।

२ मधुमेहः सावरणवायुनैव क्रियते । तदुक्तं चरके—"तैरावृतगतिर्वायुरोज आदाय गच्छति । यदा वस्तिं तदा कृच्छ्रो मधुमेहः प्रवर्तते ॥" इति । प्रसङ्गादिदमिहावसेयम्—"मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति । सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥" इति वाग्भटोक्त्या भाविनीं मधुमेहतामाश्रित्य सर्व एव मेहा मधुमेहशब्दवाच्या इति ।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षष्ठोऽध्यायः ।**

---

### सप्तमोऽध्यायः ।

३ उदरोत्सेधसाधर्म्यादुदराणां निदानम् । अत्रोदरस्थो रोगोऽप्युदरशब्देनोच्यते । उक्तं च—"तात्स्थ्यतद्धर्मताभ्यां च तत्समीपतयाऽपि च । तत्साहचर्याच्छब्दानां वृत्तिरेषा चतुर्विधा ॥" इति । ४ राजा ऋषिरिवेति राजर्षिः । ५ ब्रह्मर्षिपुत्रं=विश्वामित्रसुतम् । विश्वामित्रो राजर्षिरपि तपसा ब्रह्मर्षित्वमवापेति पौराणिकाः । ६ पृथग् दोषैस्त्रीणि, समस्तैर्दोषैरेकः सन्निपातोदरः, एवं चत्वार्युदराणि दोषप्रधानानि, प्लीहोदरम्, अत्र यकृद्दाल्युदरस्यापि समावेशः, प्लीहोदरसमत्वात् । तदुक्तं भावप्रकाशे—"प्लीहोदरस्यैव भेदो यकृद्दाल्युदरं तथा" इति । बद्धगुदं=बद्धगुदोदरः, आगन्तुकं=परिस्राव्युदरं, छिद्रोदरं क्षतोदरं वा, तदुक्तमष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"छिद्रो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आगन्तुकं सप्तममष्टमञ्च दकोदरञ्चेति वदन्ति तानि ॥४॥
सुदुर्बलाग्नेरहिताशनस्य संशुष्कपूत्यन्ननिषेवणाद्वा ।
स्नेहादिमिथ्याचरणाच्च जन्तोर्वृद्धिं गताः कोष्ठमभिप्रपन्नाः ॥ ५ ॥
गुल्माकृतिव्यञ्जितलक्षणानि कुर्वन्ति घोराण्युदराणि दोषाः ।
कोष्ठादुपस्नेहवदन्नसारो निःसृत्य दुष्टोऽनिलवेगनुन्नः ॥ ६ ॥
त्वचः समुन्नम्य शनैः समन्ताद् विवर्द्धमानो जठरं करोति ।
तत्पूर्वरूपं बलवर्णकाङ्क्षावलीविनाशो जठरे हि राज्यः ॥ ७ ॥
जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्यो वस्तौ रुजः पादगतश्च शोफः ।
सङ्गृह्य पार्श्वोदरपृष्ठनाभीर्यद् वर्द्धते कृष्णसिराऽवनद्धम् ॥ ८ ॥
सशूलमानाहवदुग्रशब्दं सतोदभेदं पवनात्मकं तत् ।
यच्चोषतृष्णाज्वरदाहयुक्तं पीतं सिरा भान्ति च यत्र पीताः ॥ ९ ॥
पीताक्षिविण्मूत्रनखाननस्य पित्तोदरं तत्त्वचिराभिवृद्धिः ।
यच्छीतलं शुक्लसिराऽवनद्धं गुरु स्थिरं शुक्लनखाननस्य ॥ १० ॥
स्निग्धं महच्छ्लोफयुतं ससादं कफोदरं तत्तु चिराभिवृद्धि ।
स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडार्त्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः ॥ ११ ॥

---

दरमिति प्राहुः परिस्रावीति चापरे" इति । दकोदरं=जलोदरम् । प्लीहोदरादीनि चत्वारि दूष्यप्रधानानि । १ सुदुर्बलाग्नेः=अतिशयनष्टाग्नेः ।

२ गुल्माकृत्या व्यञ्जितानि लक्षणानि येषां तानि, गुल्मरूपेण प्रकटितचिह्नानीत्यर्थः । ३ घोराणि=कष्टकराणि, उदराणि—उदरस्थरोगान्, उदराणां सङ्क्षेपेण हेत्वन्तरमुक्तं चरके—"अतिसञ्चितदोषाणां पापं कर्म च कुर्वताम् । उदराण्युपजायन्ते मन्दाग्नीनां विशेषतः ॥" इति । ४ उपस्नेहवत्=यथा नवमृद्घटे परिपूर्णो द्रवः सूक्ष्मस्रोतोभिः स्रवद्दृश्यते, तथा दुष्टः सामः, अनिलवेगनुन्नः प्रदुष्टप्राणापानवातप्रेरितः, अन्नसारः अन्नरसः, कोष्ठाद् निःसृत्य, त्वचः समुन्नम्य आनद्धाः कृत्वा समन्तात् शनैर्विवर्द्धमानः सन् जठरमुदराख्यं रोगं करोति । ५ काङ्क्षा=अन्नाकाङ्क्षा, वली=श्लथचर्मात्मकोदरावयवविशेषः, अत्र विनाशशब्दस्य बलादिना प्रत्येकमभिसम्बन्धः, जठरे हि राज्यः रेखाः, भवन्तीति शेषः । जीर्णापरिज्ञानविदाहौ विद्येते यासु बस्तिरुजासु ता जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्यः । "जीर्णाजीर्णं न वेत्ति च" इति चरकः ।

६ वातोदरलक्षणं ब्रवीति—सङ्गृह्येति । ७ स्त्रिय इति अविवेकिसन्निहितज-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा ।
तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्वन्ति घोरं जठरं त्रिलिङ्गम् ॥१२॥
तच्छीतवाताभ्रसमुद्भवेषु विशेषतः कुप्यति दह्यते च ।
स चातुरो मूर्च्छति सम्प्रसक्तं पाण्डुः कृशः शुष्यति तृष्णया च ॥१३॥
प्रकीर्त्तितं दूष्युदरं तु घोरं प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ।
विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक् कफश्च ॥ १४ ॥
प्लीहाभिवृद्धिं सततं करोति प्लीहोदरं तत् प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
वामे च पार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ॥१५॥
मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः ।
सव्येतरस्मिन् यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ॥ १६ ॥
यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा सहितैः पृथग् वा ।
सञ्चीयते तत्र मलः सदोषः क्रमेण नाड्यामिव सङ्करो हि ॥ १७ ॥
निरुध्यते चास्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् ।
हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तच्चोदरं विट्समगन्धिकं च ॥ १८ ॥
प्रच्छर्दयन् बद्धगुदो विभाव्यस्ततः परिस्राव्युदरं निबोध ।

---

नोपलक्षणम् । १ गरान्=संयोगजविषान् । तदुक्तमष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"नानाप्राण्यङ्ग-शमलविरुद्धौषधिभस्मनाम् । विषाणां चाल्पवीर्याणां योगो गर इति स्मृतः । कृत्रिमं गरसंज्ञं तु क्रियते विविधौषधैः ॥" इति । २ "जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हृतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा । स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥" इति । ३ दूष्युदरं=सन्निपातोदरम्, छन्दोऽनुरोधादकारलोपः, घोरं=भयानकम् ।

४ "विदाहिद्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात्तथा तृषाम् । हृदि दाहं च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥" इति । "पैच्छिल्याद् गौरवाद् द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः सिराः । धत्ते यद्गौरवं तत्स्यादभिष्यन्दि यथा दधि ॥" इति । ५ प्लीहा उदरवामपार्श्वस्थस्तस्य क्रमेणाभिवृद्धिम् । "तस्य प्लीहा कठिनोऽष्ठीलेवादौ वर्धमानः कच्छपसंस्थान उपलभ्यते, स चोपेक्षितः क्रमेण कुक्षिं जठरमन्यधिष्ठानं च परिक्षिपन्नुदरमभिनिर्वर्तयति" इति चरकः । ६ सव्येतरस्मिन्=दक्षिणपार्श्वे इत्यर्थः । ७ तदेव=तादृशमेव, यकृद्दालयति भेदयतीति यकृद्दाल्युदरम् । ८ उपलेपिभिः=पिच्छिलैः केवुकादिभिः । ९ सङ्करः=सम्मार्जनीक्षिप्यमाणतृणाद्यवकरः, नाड्यां=प्रणालिकायाम् इव ।

१० गुदोपर्यन्त्रस्य बद्धत्वाद् मलनिरुद्धं गुदमस्यास्तीति बद्धगुदो, विभाव्यः ज्ञेयः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शल्यं यदन्नोपहितं[1] तदन्त्रं भिनत्ति यस्यागतमन्यथा वा ॥ १९ ॥
तस्मात् स्रुतोऽन्त्रात्[2] सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः ।
नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यतेऽतीव विदह्यते च ॥ २० ॥
एतत् परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं दकोदरं कीर्तयतो निबोध ।
यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वान्तो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः ॥२१॥
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दुष्यन्ति हि तद्वहानि[3] ।
स्नेहोपलिप्तेष्वथवाऽपि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति[4] ॥ २२ ॥
स्निग्धं महत्सम्परिवृत्तनाभि[5] भृशोन्नतं पूर्णमिवाम्बुना च ।
यथा दृतिः[6] क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥२३॥

आध्मानं[7] गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता ।
शोफः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः ।
दाहस्तृष्णा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ॥ २४ ॥
अन्ते सलिलभावं हि भजन्ते जठराणि तु ।
सर्वाण्येव परीपाकात्[8] तदा तानि विवर्जयेत् ॥ २५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने उदरनिदानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

चरके विशेषः = "पक्वमवालैः सहान्नेन भुक्तैर्बद्धायने गुदे । उदावर्त्तैस्तथाऽशोभिरन्त्र-सम्मूर्च्छनेन वा । अपानो मार्गसंरोधाद् धात्वग्निं कुपितोऽनिलः । वर्चः पित्तकरान् रुद्ध्वा जनयत्युदरं ततः ॥" इति । १ यस्य पुरुषस्य यद् अन्नोपहितम् अन्नसंयुक्तं शल्यं कण्टकशर्करादि, अन्यथा यथाभुक्तं तद्विलोमेन, तिर्यग् जृम्भयाऽत्यशनेन वा आगतं तद् अन्त्रं भिनत्ति विदारयतीति सम्बन्धः । चरकेऽपि—"शर्करातृणलोष्ठास्थिक-ण्टकैरन्नसंयुतैः । भिद्येतान्त्रं यदा भुक्तैर्जृम्भयाऽत्यशनेन वा ॥" इति । २ स्रुतः = गलितः ३ तद्वहानि = उदकवहानि । ४ पूर्ववत् = यथा परिस्राव्युदरेऽधोनाभेरुदरो-भिवृद्धिर्गुदस्रावश्च भवति तद्वत् । ५ सम्परिवृत्तनाभि = उच्छ्रलितनाभि, समाततं = वेदनया विस्तीर्णम् इव । ६ दृतिः = चर्मनिर्मितोदकपात्रं 'मशक' इति, यथा = इव, क्षुभ्यति = चलति, कम्पते, शब्दायते = गुडगुडायते । ७ अष्टविधोदराणां सामान्यल-क्षणमुपदिशति—**आध्मानमिति** । ८ उदराणां साध्यासाध्यविचारमाचष्टे = **अन्त इति** । ९ परिपाकात् = कालपरिणामात् ।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तमोऽध्यायः ।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

## अष्टमोऽध्यायः

अथातो मूढगर्भनिदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

ग्राम्यधर्मयानवाहनाध्वगमनप्रस्खलनप्रपतनप्रपीडनधावनाभिघातविषमशयनासनोपवासवेगाभिघातातिरूक्षकटुतिक्तभोजनशोकातिक्षारसेवनातिसारवमनविरेचनप्रेङ्खोलनाजीर्णगर्भशातनप्रभृतिभिर्विशेषैर्बन्धनान्मुच्यते गर्भः, फलमिव वृन्तबन्धनादभिघातविशेषैः। स विमुक्तबन्धनो गर्भाशयमतिक्रम्य यकृत्प्लीहान्त्रविवरैरवस्रंसमानः कोष्ठसङ्क्षोभमापादयति, तस्या जठरसङ्क्षोभाद्वायुरपानो मूढः पार्श्वबस्तिशीर्षोदरयोनिशूलानाहमूत्रसङ्गानामन्यतममापाद्य गर्भं च्यावयति तरुणं शोणितस्रावेण। तमेवं कदाचिद्विवृद्धमसम्यगागतमपत्यपथमनुप्राप्तमनिरस्यमानं विगुणापानसम्मोहितं गर्भं मूढगर्भमित्याचक्षते ॥ ३ ॥

ततः स कीलः प्रतिखुरो बीजकः परिघ इति। तत्र, ऊर्ध्वबाहुशिरःपादो यो योनिमुखं निरुणद्धि कील इव स कीलः। निःसृतहस्तपादशिराः कायसङ्गी प्रतिखुरः। यो निर्गच्छत्येकशिरोभुजः स बीजकः। यस्तु परिघ इव योनिमुखमावृत्य तिष्ठेत् स परिघ। इति चतु-

---

### अष्टमोऽध्यायः।

१ उत्सेधसामान्याद् मूढगर्भनिदानमारभ्यते। मूढगर्भश्च—"सर्वावयवसम्पूर्णो मनोबुद्ध्यादिसंयुतः। विगुणापानसम्मूढो मूढगर्भोऽभिधीयते"॥ मूढो जड इवेति मूढः, निरुद्धगतिकत्वेन स्वकार्यानर्ह इत्यर्थः। २ ग्राम्यधर्मः=मैथुनम्। ३ प्रेङ्खोलनं=दोलनम्, गर्भशातनं=चित्रकादिभेषजेन गर्भपातनम्, बन्धमत्र गर्भाशयप्रतिबद्धाः सिराः पेश्यश्चेति डल्हणः। ४ गर्भाशयं=गर्भशय्याम्, अतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य। ५ मूढगर्भस्य निरुक्तिं वक्ति—**तमेवेति**। कदाचिद् असम्यगागतं विलोमेनागतमिति सम्बन्धः, विवृद्धं=जातसारम्, अपत्यपथं=योनिम्। ६ अनिरस्यमानम्=अनिस्सरन्तम्, सम्मोहितं=मूर्च्छितम्। ७ ततः=अपानवैगुण्यात्, सः=मूढगर्भः, कीलः=शङ्कुः तद्वद् ऊर्ध्वबाहुचरणशिरोभिर्योन्यां लग्नः कीलकः, प्रतिखुर इत्यत्र खुरशब्देन हस्तपादावुच्येते, परिघः=मुद्गरः। ८ भोजेऽप्युक्तम्—"ऊर्ध्वबाहुशिरःपादो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


र्विधो भवतीत्येके भाषन्ते। तत्तु न सम्यक्; कस्मात्? स यदा विगुणानिलप्रपीडितोऽपत्यपथमनेकधा प्रतिपद्यते तदा सङ्ख्या हीयते ॥४॥

तत्र[1], कश्चिद् द्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनिमुखं प्रतिपद्यते। कश्चिदाभुग्नैकसक्थिरेकेन[2]। कश्चिदाभुग्नसक्थिशरीरः स्फिग्देशेन[3] तिर्यगागतः। कश्चिदुरःपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते। अन्तःपार्श्वापवृत्तशिराः[4] कश्चिदेकेन बाहुना। कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन। कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिरोभिः। कश्चिदेकेन सक्थ्ना योनिमुखं प्रतिपद्यतेऽपरेण पायुम्। इत्यष्टविधा[5] मूढगर्भगतिरुद्दिष्टा समासेन[6] ॥ ५ ॥

तत्र, द्वावन्त्यावसाध्यौ[7] मूढगर्भौ, शेषानपि विपरीतेन्द्रियार्थाक्षे[8]-

---

रुन्ध्याद्योनिमुखं तु यः। प्रतिकीलोपमस्थित्या स च कीलकसंज्ञितः ॥ अधस्तात्पार्श्वतो वाऽपि तथैवाकुञ्चितोऽपि वा। यो निःसृत्य मुखं योनेर्ज्ञेयः प्रतिखुरस्तु सः ॥ योनिद्वारात्तु निर्गच्छेद्यश्चैकः सशिरोभुजः। तमाहुर्बीजकं नाम मूढगर्भचिकित्सकाः। योनिमावृत्य यस्तिष्ठेत् परिघो गोपुरं यथा। तथाऽन्तर्गर्भमायान्तं विद्यात् परिघसंज्ञितम्॥" इति।

१ मूढगर्भस्याष्टविधं दर्शयति=**तत्रेति**। २ आभुग्नं कुटिलीभूतमेकं सक्थि यस्य स आभुग्नैकसक्थिः। ३ स्फिग्देशेन=कटिमांसपिण्डद्वितयेनेत्यर्थः। ४ पार्श्वयोरन्तर्मध्येऽपवृत्तं पराङ्मुखीभूतं शिरो यस्य सः। ५ माधवनिदानेऽष्टविधा गतयस्तु—"भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम्। द्वारं निरुध्य शिरसा जठरेण कश्चित् कश्चिच्छरीरपरिवर्तितकुब्जदेहः एकेन॥ कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः। पार्श्वापवृत्तगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा गतिरियम्॥" इति।

६ विस्तरेण तु तिर्यग् ग्रीवाजङ्घाप्रकारेणानन्ता भवति। ७ अत एवाष्टाङ्गसङ्ग्रहे शस्त्रावचारणार्थमुपदिष्टम्—"तौ मूढौ हस्तेनाहर्तुमशक्यावितिं शस्त्रमवचारयेत्" इति। ८ वैपरीत्येन हीनातियोगेनानुभूताः शब्दादयोऽर्था इति विपरीतेन्द्रियार्थाः, योनिभ्रंशः=योन्या बहिर्निर्गमनम्, योनिसंवरणं=योनिसङ्कोचः।

अत्र श्रीकण्ठोद्धृततन्त्रान्तरोक्तयोनिसंवरणव्याधिर्वर्ण्यते—"वातलान्यन्नपानानि व्यायामं प्रजागरम्। अत्यर्थं सेवमानाया गर्भिण्या योनिमार्गगः॥ मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम्। कुरुते रुद्धमार्गत्वात् पुनरन्तर्गतोऽनिलः॥ निरुणद्धि आशयद्वारं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्वयोनिभ्रंशसंवरणमक्लश्वासकासभ्रमनिपीडितान् परिहरेत् ॥६॥

भवन्ति चात्र ।

कालस्य परिणामेन मुक्तं वृन्ताद् यथा फलम् ।
प्रपद्यते स्वभावेन नान्यथा पतितुं ध्रुवम् ॥ ७ ॥
एवं कालप्रकर्षेण मुक्तो नाडीविबन्धनात् ।
गर्भाशयस्थो यो गर्भो जननाय प्रपद्यते ॥ ८ ॥
कृमिवाताभिघातैस्तु तदे वोपद्रुतं फलम् ।
पतत्यकालेऽपि यथा तथा स्याद्गर्भविच्युतिः ॥ ९ ॥
आचतुर्थात्ततो मासात् प्रस्रवेद् गर्भविच्युतिः ।
ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥ १० ॥
प्रविध्यति[३] शिरो या तु शीताङ्गी निरपत्रपा[४] ।
नीलोद्धतसिरा[५] हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥ ११ ॥

---

पीडयन् गर्भसंस्थितिम् । निरुद्धवदनोच्छ्वासो गर्भश्चाशु विपद्यते । बद्धां संरुद्धहृदयां नाशयत्याशु गर्भिणीम् । योनिसंवरणं विद्याद् व्याधिमेनं सुदारुणम् ॥ अन्तकप्रतिमं घोरं नारभेत चिकित्सितम् ।"इति । मक्कल्लः=शूलभेदः, यत्र प्रसूताया वातेन रुधिरमारोध्य बस्तिशिरःप्रभृतिषु शूलं क्रियते । तद् वक्ष्यति स्वयमेव शारीरे—"प्रजातायाश्चोत्तरकालं तीक्ष्णैरविशोधितं रक्तं मल्लं करोति"इति । चकारादप्रजाताया अपि बोध्यम् ।

१ यथा गर्भशय्या गर्भरक्षणं करोति नाभिनाडी च गर्भं पुष्णातीति सर्वं स्पष्टमुक्तमष्टाङ्गसङ्ग्रहे=‘‘अस्य नाभ्यां प्रतिबद्धा नाडी, नाड्यामपरा, तस्यां मातृहृदयं, ततो मातृहृदयादाहाररसो धमनीभिः स्यन्दमानोऽपरामुपैति । ततः क्रमान्नाभिं ततश्च स पुनर्गर्भस्य पक्वाशये स्वकायाग्निना पच्यमानः प्रसादबाहुल्याद्धात्वादिपुष्टिकरः सम्पद्यते" । जननाय=प्रसवाय, प्रपद्यते=जन्म लभते, "स योनिं शिरसा याति स्वभावात् प्रसवं प्रति"इति वक्ष्यति । २ गर्भविच्युतिस्रावरूपा भवेदित्यर्थः ।

३ असाध्यमूढगर्भगर्भिण्योर्लक्षणमाह—**प्रविध्यतीति** । प्रविध्यति=अतिशयेन शिरो धुनोतीत्यर्थः । ४ निरपत्रपा=लज्जाशून्या । ५ नीलवर्णा उद्धता सिरा कुक्ष्यंशे यस्याः सा नीलोद्धतसिरा, सा गर्भिणी गर्भं हन्ति, स च गर्भश्च तां गर्भिणीं हन्तीत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता ।
भवत्युच्छ्वासपूतित्वं शूलं चान्तर्मृते शिशौ ॥ १२ ॥
मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ।
गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ १३ ॥
बस्तमारविपन्नायाः कुक्षिः प्रस्पन्दते यदि ।
तत्क्षणाज्जन्मकाले तं पाटयित्वोद्धरेद्भिषक् ॥ १४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने मूढगर्भनिदानं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

## नवमोऽध्यायः ।

अथातो विद्रधीनां निदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
सर्वामरगुरुः श्रीमान्निमित्तान्तरभूमिपः ।

---

१ अन्तर्मृतगर्भलक्षणमाह—**गर्भेति** । गर्भास्पन्दनं=गर्भावयवाचलनम्, आवीनां=प्रसववेदनानाम्, योनेर्मूत्रकफप्रसेकादिप्रसवलिङ्गानां वा । २ 'शूनताऽन्तर्मृते' इति पाठान्तरम् । चरकेऽन्यान्यपि लिङ्गानि प्रदर्शितानि—"तस्याः स्तिमितं स्तब्धमुदरमाततं शीलमश्मान्तर्गतमिव भवत्यस्पन्दनो गर्भः शूलमधिकमुपजायते, न चाव्यः प्रादुर्भवन्ति, योनिर्न प्रस्रवत्यक्षिणी चास्यावेगप्रादुर्भावौ वा यथावदुपलभ्यते इत्येवं लक्षणां स्त्रियं मृतगर्भेयमिति विद्यात् ।" इति । ३ उपतापैः=दुःखैरित्यर्थः ।

४ मातुर्मृताया अपि जीवतो गर्भस्योद्धरणमाह—**बस्तेति** । बस्तमारश्छागवन्मरणं तेन विपन्नाया मृताया बस्तमारविपन्नायाः । अत्र 'बस्तिद्वारे विपन्नायाः' इति पाठः । ५ तत्क्षणात्=मुहूर्तात् । तद् वक्ष्यति—"नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पण्डितः । मण्डलाग्रेण कर्तव्यं छेद्यमन्तर्विजानता ॥" इति । जन्मकाले=नवमादिमासे, पाटयित्वा=स्त्रीकुक्षिं विदार्य, तं=गर्भम्, उद्धरेत् ।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यामष्टमोऽध्यायः ।**

## नवमोऽध्यायः ।

६ अथोत्सेधसामान्याद् विद्रधिनिदानमारभ्यते । शीघ्रमुल्मुकमिव विदहतीति विद्रधिः । तदुक्तं चरके—"तप्तैः शस्त्रैर्यथा मध्येतोल्मुकैरिव दह्यते" इति । "स वै शीघ्रविदाहित्वाद् विद्रधीत्यभिधीयते" इति तन्त्रान्तरं च । ७ सर्वामरगुरुः=सक-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्यायोवाच निखिलमिदं विद्रधिलक्षणम् ॥ ३ ॥
त्वग्[१]रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ।
दोषाः शोफं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥ ४ ॥
महा[२]मूलं रुजावन्तं वृत्तं चाप्यथवाऽऽयतम् ।
तमाहुर्विद्रधिं धीरा विज्ञेयः स च षड्विधः ॥ ५ ॥
पृथ[३]ग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा ।
षण्णामपि हि तेषान्तु लक्षणं सम्प्रवक्ष्यते ॥ ६ ॥
कृष्णोऽरुणो वा परुषो भृशमत्यर्थवेदनः ।
चित्रोत्था[४]नप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसम्भवः ॥ ७ ॥
पक्वोदुम्बरसङ्काशः श्यावो वा ज्वरदाहवान् ।
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसम्भवः ॥ ८ ॥
शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्तब्धोऽल्पवेदनः ।
चिरोत्था[५]नप्रपाकश्च सकण्डुश्च कफोत्थितः ॥ ९ ॥
तनुपीतसिताश्चै[६]षामास्रावाः क्रमशः स्मृताः ।
नाना[७]वर्णरुजास्रावो घाटालो विषमो महान् ॥ १० ॥
विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सान्निपातिकः ।

---

लदेवगुरुः, धन्वन्तरिणाऽमृतदानेन देवानाममरत्वं सम्पादितमतः सर्वेषां गुरुरिति निष्कर्षः । श्रीमान्=विष्णुः, "श्रीमान् विष्णुः" इति रत्नावली । निमित्तान्तरभूमिपः । निमित्तान्तरेण आयुर्वेदोपदेशकारणान्तरेण भूमिपः भूमिपतित्वमापन्न इत्यर्थः । तदुक्तम्—"तस्मात्त्वं पृथिवीं याहि काशीमध्ये नृपो भव । प्रतीकाराय रोगाणामायुर्वेदं प्रकाशय ॥" इति भागवते ।

१ विद्रधिसम्प्राप्तिमाह—**त्वगिति** । २ महामूलम्=अस्थ्यादिसमाश्रयणाद् गम्भीरमूलमित्यर्थः । ३ विद्रधेः षट्संख्यां विवृणोति—**पृथगिति** । ४ चित्रौ नानाविधौ वायोर्विषमक्रियत्वादुद्गमप्रपाकौ यस्य सः । ५ चिरमुत्थानप्रपाकौ यस्य स चिरोत्थानप्रपाकः । ६ एषां=वातपित्तकफोत्थविद्रधीनाम् । ७ नाना बहुविधा वर्णाः, रुजास्तोददाहकण्ड्वादिकाः, तनुपीतादय आस्रावाश्च यस्य सः, घाटा कृकाटिकेवोच्छ्रितपार्श्वोऽस्यास्तीति घाटालः, उन्नतपर्यन्त इत्यर्थः । विषमः=दारुणः, क्लेशजनकत्वादसाध्यत्वाच्च ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यसेविनः ॥ ११ ॥
क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ।
ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः ॥ १२ ॥
एष विद्रधिरागन्तुः पित्तविद्रधिलक्षणः ।
कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाकरः ॥ १३ ॥
पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ।
उक्ता विद्रधयो ह्येते तेष्वसाध्यस्तु सर्वजः ॥ १४ ॥
आभ्यन्तरानतस्तूर्ध्वं विद्रधीन् परिचक्षते ।
गुर्वसात्म्यविरुद्धान्नशुष्कसंसृष्टभोजनात् ॥ १५ ॥
अतिव्यवायव्यायामवेगाघातविदाहिभिः ।
पृथक् सम्भूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ॥ १६ ॥
वल्मीकवत्समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम् ।
गुदे बस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वङ्क्षणयोस्तथा ॥ १७ ॥
वृक्कयोर्यकृति प्लीह्नि हृदये क्लोम्नि वा तथा ।

---

१ काष्ठलोष्टपाषाणादिभिरभिहत इत्यर्थः । अभिहत इति अस्रुतरक्तस्य मथितपिच्चितादेरुपलक्षणम् , क्षत इति स्रुतरक्तस्य छिन्नभिन्नादेरिति श्रीकण्ठः । २ वायुविसृतः=वातप्रेरितः । ३ एते उक्ताः षड्विधा बाह्या विद्रधयस्तेषु सर्वजः सान्निपातिकोऽसाध्यः । ४ इत्थं बाह्यविद्रधीनुक्त्वाऽऽभ्यन्तरविद्रधीनभिदधाति—**आभ्यन्तरानिति** । बाह्याभ्यन्तरभेदेन विद्रधिद्वयं चरकेऽप्युक्तम्—"विद्रधिं द्विविधामाहुर्बाह्यामाभ्यन्तरीं तथा" इति । ५ सम्भूय=मिलित्वा । ६ यतो वक्ष्यति–"तुल्यदोषसमुत्थानाद् विद्रधेर्गुल्मकस्य च" इति । ७ समुन्नद्धं=समन्तादुन्नतम् , अन्तः=शरीराभ्यन्तरे । गुल्मरूपित्वमत्र काठिन्येन बोध्यम् । अष्टाङ्गसङ्ग्रहेऽप्युक्तम्–"बाह्योऽत्र तत्र तत्राङ्गे दारुणो ग्रथितोन्नतः । आन्तरो दारुणतरो गम्भीरो गुल्मवद्घनः ॥ वल्मीकवत्समुच्छ्रायी शीघ्रघात्यग्निशस्त्रवत्" । ८ विद्रध्याधारभूतमांसादिसम्भवाद् बस्तिमुखे इत्यर्थः । न तु बस्तौ, तत्र मांसमेदसोरभावात् ।

९ वृक्को मांसपिण्डद्वयम् , एको वामपार्श्वे स्थितः, द्वितीयो दक्षिणपार्श्वे स्थितः । हाराणचन्द्रस्तु 'वृक्कयोः' इत्यस्य स्थाने 'वुक्कयोः' इति पठित्वा वुक्कौ नाम द्वे हृदयावरणे इति व्याख्यातवान् ।

१० क्लोम्नि=पिपासास्थाने । तदुक्तं भावप्रकाशे–"अधस्तु दक्षिणे भागे हृदयात्


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेषां लिङ्गानि जानीयाद्बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ १८ ॥
आमपक्वैषणीयाच्च पक्वापक्वं विनिर्दिशेत् ।
अधिष्ठानविशेषेण लिङ्गं शृणु विशेषतः ॥ १९ ॥
गुदे वातनिरोधस्तु बस्तौ कृच्छ्रात्पमूत्रता ।
नाभ्यां हिक्का तथाऽऽटोपः कुक्षौ मारुतकोपनम् ॥ २० ॥
कटीपृष्ठग्रहस्तीव्रो वङ्क्षणोत्थे तु विद्रधौ ।
वृक्कयोः पार्श्वसङ्कोचः प्लीहवच्छ्वासावरोधनम् ॥ २१ ॥
सर्वाङ्गग्रहस्तीव्रो हृदि शूलश्च दारुणः ।
श्वासो यकृति तृष्णा च पिपासा क्लोमजेऽधिका ॥ २२ ॥
आमो वा यदि वा पक्वो महान् वा यदि वेतरः ।
सर्वो मर्मोत्थितश्चापि विद्रधिः कष्ट उच्यते ॥ २३ ॥
नाभेरुपरिजाः पक्वा यान्त्यूर्ध्वमितरे त्वधः ।
जीवत्यधो निःस्रुतेषु स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति ॥ २४ ॥
हृन्नाभिबस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः ।
जीवेत्कदाचित् पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ २५ ॥

---

क्लोम तिष्ठति । जलवाहि सिरामूलं तृष्णाच्छादनकृन्मतम् ॥" इति । बाह्योर्द्वयोर्मध्ये वक्षस्तन्मध्ये हृदयं तत्पार्श्वे क्लोम पिपासास्थानमिति वैद्याः । क्लोम कालखण्डादधस्तात् स्थितं दक्षिणपार्श्वस्थं तिलकं प्रसिद्धमिति डल्हणः । कालखण्डात् कोऽर्थः ? यकृतः ।

१ सूत्रस्थाने एतन्नामकसप्तदशाध्यायोक्तलक्षणैरित्यर्थः । २ बाह्याभ्यन्तरविद्रधीनां स्थानविशेषेण लक्षणानि दर्शयति—गुदे इति ।

३ 'वृक्कयोः' इति हाराणचन्द्रसम्मतपाठः । ४ नाभेरुपरिजाः प्लीहयकृत्क्लोमकुक्षिहृदयजाः, पक्वाः ऊर्ध्वं मुखमार्गेण, यान्ति स्रवन्ति, इतरे गुदबस्तिवृक्कवङ्क्षणजा अधो गुदमार्गेण स्रवन्तीत्यर्थः । तदुक्तं हारीतेन—"ऊर्ध्वं प्रभिन्नेषु मुखान्नराणां प्रवर्ततेऽसृक्सहितोऽपि पूयः । अधः प्रभिन्नेषु च पायुमार्गाद्, द्वाभ्यां प्रवृत्तिस्त्विह नाभिजेषु ॥" इति । ५ तेषु = प्लीहयकृत्क्लोमगुदकुक्षिवृक्कवङ्क्षणजेष्वन्तर्विद्रधिषु, बाह्यतो भिन्नेषु कदाचिद् दैवाज्जीवेत्, इतरेषु = हृन्नाभिबस्तिजेषु, कदाचन = पाके अपाके वा न जीवेत्, मर्मत्वादिति भावः । तदुक्तं भोजेन—"असाध्यो मर्मजो ज्ञेयः पक्वोऽपक्वश्च विद्रधिः । सन्निपातोत्थितोऽप्येवं पक्व एव तु बस्तिजः । त्वग्जो नाभेरधो यश्च साध्यो मर्मसमीपजः । अपक्वश्चैव पक्वश्च साध्यो नोपरिनाभिजः ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रीणामपप्रजातानां[1] प्रजातानां तथाऽहितैः ।
दाहज्वरकरो घोरो जायते रक्तविद्रधिः ॥ २६ ॥
अपि सम्यक् प्रजातानामसृक् कायादनिःसृतम् ।
रक्तजं विद्रधिं कुर्यात् कुक्षौ मक्कल्लसंज्ञितम् ॥ २७ ॥
सप्ताहान्नोपशान्तश्चेत्ततोऽसौ सम्प्रपच्यते[2] ।
विशेषमथ वक्ष्यामि स्पष्टं विद्रधिगुल्मयोः ॥ २८ ॥
गुल्मदोषसमुत्थानाद्विद्रधेर्गुल्मकस्य[3] च ।
कस्मान्न पच्यते गुल्मो विद्रधिः पाकमेति च ॥ २९ ॥
न निबन्धोऽस्ति[4] गुल्मानां विद्रधिः सनिबन्धनः ।
गुल्माकाराः[5] स्वयं दोषा विद्रधिर्मांसशोणिते ॥ ३० ॥
विवरानुचरो ग्रन्थिरप्सु बुद्बुदको यथा ॥ ३१ ॥
एवम्प्रकारो[6] गुल्मस्तु तस्मात्पाकं न गच्छति ।
मांसशोणितबाहुल्यात् पाकं गच्छति विद्रधिः ॥ ३२ ॥
मांसशोणितहीनत्वाद् गुल्मः पाकं न गच्छति ।
गुल्मस्तिष्ठति दोषे स्वे विद्रधिर्मांसशोणिते ।
विद्रधिः पच्यते तस्माद् गुल्मश्चापि न पच्यते ॥ ३३ ॥
हृन्नाभिबस्तिजः[7] पक्को वर्ज्यो यश्च त्रिदोषजः ।
अर्थं[8] मज्जपरीपाको घोरः समुपजायते ॥ ३४ ॥

---

१ अपप्रजातानां=पतितगर्भाणां, निर्हृतमूढगर्भाणाञ्चेत्यर्थः, प्रजातानां=यथाकालं सुखं प्रसूतानां स्त्रीणाम्, अहितैः=रक्तपित्तप्रकोपिभिः शीतरूक्षाहारविहारैः रक्तविद्रधिर्जायते इति सम्बन्धः । २ सम्प्रपच्यते=पित्तोष्मणाऽन्तः प्रपच्यत इत्यर्थः ।

३ 'तुल्यदोषसमुत्थानाद्' इति पाठान्तरम् । "हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः । वृत्तश्चयापचयवान् स गुल्म इति कीर्तितः" ॥ ४ इति निश्चित्य बध्नातीति निबन्धो मूलं मांसरक्तादिदूष्यमित्यर्थः । ५ गुल्मे दोषा वातादयः स्वयं गुल्माकारा भवन्ति, विद्रध्यां तु मांसशोणिते विद्रधिर्भवत इत्यर्थः ।

६ एवंप्रकारो गुल्मस्तु यथाऽप्सु विवरानुचरो ग्रन्थिर्बुद्बुदको भवति, तथा कोष्ठे आन्त्रविवरानुचरो ग्रन्थिर्गुल्मो भवतीत्यर्थः । ७ असाध्यविद्रधिमाह—**हृदिति** । अष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"पक्को हृन्नाभिबस्तिस्थो भिन्नोऽन्तर्बहिरेव वा । पक्वश्चान्तः स्रवन् वक्त्रात् क्षीणस्योपद्रवान्वितः ॥" इति । ८ अस्थिगतविद्रधिं निर्दि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोऽस्थिमांसनिरोधेन द्वारं न लभते यदा ।
ततः स व्याधिना तेन ज्वलनेनेव दह्यते ॥ ३५ ॥
अस्थिमज्जोष्मणा तेन शीर्यते[1] दह्यमानवत् ।
विकारः शल्यभूतोऽयं क्लेशयेदातुरं चिरम् ॥ ३६ ॥
अथास्य[2] कर्मणा व्याधिर्द्वारं तु लभते यदा ।
ततो मेदःप्रभं स्निग्धं शुक्लं शीतमथो गुरु ॥ ३७ ॥
भिन्नेऽस्थ्नि निःस्रवेत् पूयमेतदस्थिगतं विदुः ।
विद्रधिं शास्त्रकुशलाः सर्वदोषरुजावहम् ॥ ३८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने विद्रधिनिदानं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

## दशमोऽध्यायः ।

अथातो विसर्पनाडीस्तनरोगनिदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
त्वङ्[3]मांसशोणितगताः कुपितास्तु दोषाः
सर्वाङ्ग[4]सारिणमिहास्थितमात्मलिङ्गम् ।

---

शति—**अथेति** । १ शीर्यते=विनश्यति । २ अथ=पाकानन्तरम् , कर्मणा=प्राक्तनकर्मणा, शस्त्रकर्मणा वा ।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां नवमोऽध्यायः ।**

---

### दशमोऽध्यायः ।

३ आश्रयग्रहणेनाश्रितस्यापि ग्रहणाद् अत्र त्वक्शब्देन तदाश्रिता लसीकाऽपि गृह्यते । तदुक्तं माधवकरेण—"रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः । विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्तधातवः ॥" इति । ४ बहिरन्तरुभयतो वाऽवयवशः सर्वमङ्गं सर्तुं शीलमस्येति तं सर्वाङ्गसारिणं 'शोफम्' इत्यस्य विशेषणम् । तथा च चरकः—"बहिःश्रितः श्रितश्चान्तस्तथा चोभयसंश्रितः । विसर्पो बलमेतेषां ज्ञेयं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कुर्वन्ति विस्तृतमनुन्नतमाशु शोफं
तं सर्वतो विसरणाच्च[1] विसर्पमाहुः ॥ ३ ॥
वातात्मकोऽसितमृदुः परुषोऽङ्गमर्द-
सम्भेदतोदपवनज्वरलिङ्गयुक्तः ।
गण्डैर्[2]यदा तु विषमैरतिदूषितत्वा-
द्युक्तः स एव कथितः खलु वर्जनीयः ॥ ४ ॥
पित्तात्मको द्रुतगतिर्ज्वरदाहपाक-
स्फोटप्रभेदबहुलः क्षतजप्रकाशः ।
दोषैः[3]प्रवृद्धिहतमांससिरो यदा स्यात्
स्रोतोजकर्दमनिभो न तदा स सिध्येत् ॥ ५ ॥
श्लेष्मात्मकः सरति मन्दमशीघ्रपाकः
स्निग्धः सितश्चयथुरल्परुगुग्रकण्डुः ।
सर्वात्मकः[4]स्त्रिविधवर्णरुजोऽवगाढः
पक्को न सिध्यति च मांससिराप्रणाशात् ॥ ६ ॥
सद्यः[5]क्षतव्रणमुपेत्य नरस्य पित्तं
रक्तञ्च दोषबहुलस्य करोति शोफम् ।

---

गुरु यथोत्तरम् ॥" इति । इह=उत्पत्तिस्थाने, अस्थितम्=अनिश्चलम्, आत्मलिङ्गं=व्यस्तसमस्तवातादिलक्षणम् । १ चकारेण विविधं विसर्पतीत्यर्थः समुच्चीयते । तदुक्तं चरके—"विविधं सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः । परिसर्पोऽथवा नाम्ना सर्वतः परिसर्पणात् ॥" इति ।

२ गण्डैः=अग्निदग्धदेशसदृशैः स्फोटैर्युक्त इति सम्बन्धः । तदुक्तम्—"अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्द्रुतं स च । मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽति बलस्ततः ॥" इति । ३ कफपित्तात्मकविसर्पं ब्रवीति—**दोषेति** । दोषप्रवृद्ध्या पित्तकफाभिवृद्ध्या हता विनष्टा मांससिरा यत्र स तथोक्तः, स्रोतोजं=सौवीराञ्जनम् । ४ सर्वात्मकः=त्रिदोषजः, सान्निपातिक इति यावत्, त्रिविधानां दोषाणां वर्णाः कृष्णपीतसितादयः, रुजश्च तोददाहकण्ड्वादिवेदनाः ।

५ सद्यःक्षतव्रणमुपेत्य दोषबहुलस्य नरस्य पित्तं रक्तं च शोफं करोतीति सम्बन्धः । क्षतं शस्त्रप्रहारादिना । तदुक्तं भोजेन—"शस्त्रप्रहारैस्तैस्तैस्तु व्याददन्तनखैरपि । क्षते वाऽप्यथवा भग्ने बहुदोषस्य देहिनः । रक्तं पित्तं च बहुलं व्रणमाशु प्र-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यावं सलोहितमतिज्वरदाहपाकं
स्फोटैः कुलत्थसदृशैरसितैश्च कीर्णम् ॥ ७ ॥
सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः
सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति ।
पैत्तानिलावपि च दर्शितपूर्वलिङ्गौ
सर्वे च मर्मसु भवन्ति हि कृच्छ्रसाध्याः[1] ॥ ८ ॥
शोफं[2] न पक्वमिति पक्वमुपेक्षते यो ।
यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः[3] ।
अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य
स्थानानि[4] पूर्वविहितानि ततः स पूयः[5] ॥ ९ ॥
तस्यातिमात्रगमनाद्व्रतिरित्यतश्च
नाडीव[6] यद्वहति तेन मता तु नाडी ।
दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च
सम्मूर्च्छितैस्तैरपि[7] च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ १० ॥

---

पद्यते । कुरुतस्ते समेते तु व्रणशोथं सुदारुणम् ॥ आचितं तनुविस्फोटैः कृष्णैः पीतकसन्निभैः । पित्तवीसर्पवल्लिङ्गं तस्य शेषं विनिर्दिशेत् ॥" इति । अस्य क्षतजन्यविसर्पस्य पित्तजे विसर्पेऽन्तर्भावान्न तन्त्रान्तरोक्तसप्तसंख्याऽऽधिक्यम् । सुश्रुतोक्तवीसर्पातिरिक्ता माधवकरोद्धृता अग्निकर्दमग्रन्थिविसर्पाख्य निर्दिश्यन्ते—"आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः । यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफसम्भवः ॥" इति । एतेषां लक्षणानि चरकसंहिताया विसर्पचिकित्सायां द्रष्टव्यानि ।

१ असाध्यत्वेन कृच्छ्रत्वं बोध्यम् । तथा च भोजः—"वर्ज्यस्तु क्षतजस्तेषां सन्निपातात्तु यो भवेत् । भिषजा जानता त्याज्याः सर्व एव तु मर्मजाः ॥" इति ।

२ नाडीव्रणनिदानं निर्दिशति—**शोफमिति** । ३ असाधुवृत्तः=अनुचितकर्मतत्परः, अहिताहाराचार इति श्रीकण्ठः । ४ स्थानानि=त्वङ्मांससिरास्नायुसन्ध्यस्थिकोष्ठमर्माणि व्रणवास्तुशब्दाभिहितानि । ५ तस्य=पूयस्य । ६ नाडीव=प्रणालिकावत् ।

७ दोषैः पृथक् तिस्रः, सन्निपतितैरित्यध्याहार्यं एकशश्च सन्निपतितैरन्या, अपराश्च तिस्रः, सम्मूर्च्छितैरपि च द्विदोषसंयोगोत्थाः, अन्यथा अपि चकारो निरर्थकौ स्यातां । सम्मूर्च्छितैः कोऽर्थः? संश्लिष्टैः । अतिदेशेनोक्तयोर्द्वन्द्वसन्निपातयोः सर्वत्र अगणनान्नो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला
फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपायाम् ।
तृट्तापतोदसदनज्वरभेदहेतुः
पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु पित्तात् ॥ ११ ॥
ज्ञेया कफाद्बहुघनार्जुनपिच्छिलास्रा
रात्रिस्रुतिः स्तिमितरुक्कठिना सकण्डुः ।
दोषद्वयाभिहितलक्षणदर्शनेन
तिस्रो गतीर्व्यतिकरप्रभवास्तु विद्यात् ॥ १२ ॥
दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा
यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि ।
तामादिशेत् पवनपित्तकफप्रकोपाद्
घोरामसुक्षयकरीमिव कालरात्रिम् ॥ १३ ॥
नष्टं कथञ्चिदनुमार्गमुदीरितेषु ।
स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति ।
सा फेनिलं मथितमच्छमसृग्विमिश्र-
मुष्णं स्रवेत सहसा सरुजा च नित्यम् ॥ १४ ॥

---

क्तपञ्चसंख्या हानिशङ्काऽवसरः । अन्ये तु—त्रिभिर्दोषैः पृथक् तिस्रः, एकशः सम्मूर्च्छितैरन्या सान्निपातिकी, शल्यनिमित्ता च पञ्चमीति पञ्चैव नाड्य इत्येवं व्याख्यामाहुः । १ परुषं कर्कशं सूक्ष्मं मुखं यस्याः सा परुषसूक्ष्ममुखी, सशूला = शूलसहिता, फेनानुविद्धं = फेनानुगतम्, क्षपायां=रात्रौ, स्रवति=शैत्ये वातवृद्धेऽधिकं स्रावयतीत्यर्थः । २ दिनेषु औष्ण्येन पित्तकोपादिति भावः । ३ बहुरधिकः घनः सान्द्रः अर्जुनो धवलः पिच्छिल आस्र आस्रावो यस्यां सा तथोक्ता । ४ शैत्येन श्लेष्मणः प्रकोपादिति भावः, स्तिमितरुक्=मन्दवेदना । ५ व्यतिकरप्रभवाः=द्वन्द्वजाः, तिस्रः=वातपित्तजा पित्तकफजा वातकफजा च, गतीः=नाडीः, विद्यात् ।

६ सान्निपातिकीं नाडीमभिदधाति—**दाहेति** । ७ असुक्षयकरीं=प्राणापहारिणीम् । तदाह माधवः—"नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिद्धेच्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः' इति । कालरात्रिं=यमभगिनीम्, इव । ८ शल्यनिमित्तां नाडीं निर्दिशति—**नष्टमिति** । नष्टम्=अन्तःप्रविष्टतयाऽदृश्यमानम् । ९ फेनिलं=फेनवन्तम्, मथितम्=उन्मथितम्, उष्णम्=उष्णस्पर्शम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यावत्यो[1] गतयो यैश्च कारणैः सम्भवन्ति हि ।
तावन्तः स्तनरोगाः स्युः स्त्रीणां तैरेव हेतुभिः ॥ १५ ॥
धमन्यः संवृतद्वाराः[2] कन्यानां स्तनसंश्रिता ।
दोषाविसरणात्[3]तासां न भवन्ति स्तनामयाः ॥ १६ ॥
तासामेव प्रजातानां गर्भिणीनां च ताः पुनः ।
स्वभावादेव विवृता[4] जायन्ते सम्भवन्त्यतः ॥ १७ ॥
रसप्रसादो[5] मधुरः पक्काहारनिमित्तजः ।
कृत्स्नदेहात् स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ १८ ॥
विशस्तेष्वपि[6] गात्रेषु यथा शुक्रं न दृश्यते ।
सर्वदेहाश्रितत्वाच्च[7] शुक्रलक्षणमुच्यते ॥ १९ ॥
तदेव[8] चेष्टयुवतेर्दर्शनात् स्मरणादपि ।
शब्दसंश्रवणात् स्पर्शात् संहर्षाच्च[9] प्रवर्त्तते ॥ २० ॥
सुप्रसन्नं मनस्तत्र हर्षणे हेतुरुच्यते ।
आहाररसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रियाः ॥ २१ ॥
[10]तदेवापत्यसंस्पर्शादर्शनात् स्मरणादपि ।

---

१ अथ स्तनरोगनिदानमभिधत्ते—**यावत्य इति** । यावत्यः=यावत्परिमाणाः । २ संवृत द्वाराः=सङ्कुचितद्वाराः, कन्यानाम्=अप्राप्तगर्भाणां स्त्रीणाम्, न तु कुमारीणामेवेति तात्पर्यम् । ३ अविसरणात्=असञ्चरणात् संवृतद्वारतया 'स्तनामयारम्भकदोषाणामप्रवेशादित्यर्थः । 'दोषावितरणात्' इति हाराणचन्द्रसम्मतपाठः । ४ विवृताः=प्रसृतद्वाराः ।

५ स्तन्यं निर्दिशति—**रसेति** । रसस्य प्रसादः प्रसन्नो भागो रसप्रसादः, कथंभूतः ? मधुरः, पक्काहारो निमित्तमस्येति पक्काहारनिमित्तो रसस्तस्माज्जातः पक्काहारनिमित्तजः । ६ विशस्तेष्वपि=छिन्नेष्वपि । ७ सर्वदेहाश्रितत्वात् शुक्रवत्समस्तशरीराश्रितत्वात् शुक्रलक्षणमुच्यते स्तन्यमिति शेषः । वक्ष्यति शारीरे—"यथा पयसि सर्पिस्तु गुडश्चेक्षुरसे यथा । शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्विषग्वरः ॥" इति ।

८ शुक्रदृष्टान्तेन स्तन्यस्याभ्यन्तरदर्शनं प्रतिपाद्य तेनैव दृष्टान्तेन बहिःप्रवर्तनं प्रतिपादयति—**तदेवेति** । तदेव शुक्रं प्रवर्तते बहिर्निःसरतीति सम्बन्धः । ९ संहर्षात्=विशिष्टसङ्कल्पलक्षणात् । संहर्षे हेतुचतुष्टयं निर्दिशति—इष्टयुवतेरित्यादि । १० तदेव स्तन्यं शुक्रवत् सम्प्रवर्तते इत्यग्रेण सम्बन्धः । अत्र पुत्रसंस्पर्शादिकारणचतुष्टयं बोध्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत् सम्प्रवर्त्तते ॥ २२ ॥
स्नेहो निरन्तरस्तत्र प्रस्रवे[1] हेतुरुच्यते ।
तत्[2] कषायं भवेद्घातात् क्षिप्तं च प्लवतेऽम्भसि ॥ २३ ॥
पित्तादम्लं सकटुकं राज्योऽम्भसि[3] च पीतिकाः ।
कफाद्घनं पिच्छिलं च जले चाप्यवसीदति[4] ।
सर्वैर्दुष्टैः सर्वलिङ्गमभिघातात्[5] च दुष्यति ॥ २४ ॥
यत्[6] क्षीरमुदके क्षिप्तमेकीभवति[7] पाण्डुरम् ।
मधुरं चाविवर्णं च प्रसन्नं तद्विनिर्दिशेत् ॥ २५ ॥
सक्षीरौ[8] वाऽप्यदुग्धौ वा प्राप्य दोषः स्तनौ स्त्रियाः ।
रक्तं मांसं च सन्दूष्य स्तनरोगाय कल्पते ॥ २६ ॥
पञ्चानामपि तेषां[9] तु हित्वा शोणितविद्रधिम् ।
लक्षणानि[10] समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ २७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने विसर्पनाडीस्तनरोगनिदानं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

## एकादशोऽध्यायः ।

अथातो ग्रन्थ्यपच्यर्बुदगलगण्डानां निदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
[11]वातादयो मांसमसृक् च दुष्टाः सन्दूष्य मेदश्च कफानुविद्धम् ।

---

तत्र मूलकारणं स्नेहः । १ प्रस्रवे = स्तन्यस्रवणे ।

२ स्तन्यदुष्टिलक्षणमाचष्टे–**तदिति** । ३ अम्भसि क्षिप्ते सति पीतिकाः पीतवर्णाः राज्यः सूत्रवद् रेखा भवन्तीत्यर्थः । ४ अवसीदति = निमज्जतीत्यर्थः । ५ अभिघातात् = पतनप्रहारशोककोधादिशारीरिकमानसिकाभिघातादित्यर्थः । ६ अविकृतस्तन्यं निर्दिशति–**यदिति** । ७ एकीभवति = सर्वात्मना जलेन सहैकत्वं याति । ८ सक्षीरौ गर्भवत्याः, अदुग्धौ प्रसूतायाः, प्राप्य = विवृतधमनीमुखेनाविश्य । ९ तेषां = स्तनरोगाणामित्यर्थः । १० समानानि तुल्यानि भवन्तीति शेषः ।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां दशमोऽध्यायः ।**

### एकादशोऽध्यायः ।

११ तत्रादावेकेनैव श्लोकेन ग्रन्थेर्हेतुसम्प्राप्तिलक्षणादीनि निर्दिशति–**वातेति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोफं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ ३ ॥
आयम्यते[1] व्यथ्यत एति तोदं प्रत्यस्यते[2] कृत्यत एति भेदम् ।
कृष्णोऽमृदुर्बस्तिरि[3]वाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रम[4]च्छम् ॥४॥
दन्दह्यते[5] धूप्यति चोषवांश्च पापच्यते[6] प्रज्वलतीव चापि ।
रक्तः सपीतोऽप्यथवाऽपि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्णमतीव चास्रम् ॥५॥
शीतोऽविवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डूः पाषाणवत्संहननोपपन्नः[8] ।
चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद् भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ ६ ॥
शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महानल्परुजोऽतिकण्डूः ।
मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने[10]पिण्याकसापःप्रतिमं तु मेदः ॥७॥
व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य[11] वायुर्हि[12]सिराप्रतानम् ।
सम्पीड्य सङ्कोच्य विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥८॥
ग्रन्थिः सिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च ।
अरुक् स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि[13] विवर्जनीयः ॥९॥

---

वातादयः=वातपित्तकफाः, दुष्टाः=वृद्धिं गताः, "वृद्धिश्चापि विरोधिनाम्" इति वचनात् । एतावतांऽशेन हेतूपदेशः मांसमसृक् च सन्दूष्य कफानुविद्धं कफसंसृष्टं मेदश्च चकारात सिराजो ग्रन्थिः शोफं कुर्वन्तीति योजना । इयतांऽशेन सम्प्राप्तिरुपदिष्टा । कथं भूतं शोफं ? वृत्तोन्नतं वृत्तं वर्तुलम् , उन्नतमुच्छ्रितम् , विग्रथितं विकृत्या ग्रन्थिनेवानुगतम् , अतीव कठिनमिति तात्पर्यम् । वृत्तोन्नतमित्यादिना लक्षणमुपदिष्टम् । श्लोकेन पञ्च ग्रन्थयो बोध्याः ।

१ वातग्रन्थिं प्रतिपादयति–**आयम्यत इति** । आयम्यते=आकृष्य दीर्घीक्रियते, ग्रन्थिरिति शेषः । २ प्रत्यस्यते=क्षिप्यते । ३ बस्तिरिवाततः=मूत्राशयवद्दीर्घः । ४ अस्रं=स्रावम् । ५ पित्तग्रन्थिमाख्याति–**दन्दह्यत इति** । दन्दह्यते=अग्निनेवात्यर्थं दह्यते । ६ पापच्यते=क्षारेणेव भृशं पच्यते । ७ कफग्रन्थिमभिधत्ते—**शीत इति** । अविवर्णः=प्रकृतिवर्णः, ईषद्विवर्णो वा । ८ पाषाणवत् कठिन इति शेषः, संहननोपपन्नः=सङ्घातान्वितः, महानिति तात्पर्यम् । ९ मेदोजग्रन्थिं ब्रवीति—**शरीरेति** । शरीरस्य वृद्धिक्षयाभ्यां क्रमशो वृद्धिहानी यस्य स तथोक्तः ।

१० पिण्याकस्तिलकल्कः, सर्पिरत्र स्त्यानं, तत्सदृशं मेदः स्रवतीत्यर्थः । ११ सिराजग्रन्थेः सम्प्राप्तिं दर्शयति—**व्यायामेति** । तैस्तैः=बलवद्विग्रहादिभिः । १२ सिराप्रतानं=सिराभ्यो निर्गतं सूक्ष्मसिराजालम् । १३ चकारेण अरुजोऽपि विवर्जनीयः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



[1]हन्वस्थिकक्षाक्षकबाहुसन्धिमन्यागलेषूपचितं तु मेदः ।
ग्रन्थिं स्थिरं वृत्तमथायतं वा स्निग्धं कफश्चाल्परुजं करोति ॥ १० ॥
तं ग्रन्थिभिस्त्वामलकास्थिमात्रैर्मत्स्याण्ड[2]जालप्रतिमैस्तथाऽन्यैः ।
अनन्य[3]वर्णै[4]रुपचीयमानं चयप्र[5]कर्षादपचीं वदन्ति ॥ ११ ॥
कण्डूयुतास्तेऽल्परुजः प्रभिन्नाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये ।
मेदःकफाभ्यां खलु[6] रोग एष सुदुस्तरो व[7]र्षगणानुबन्धी ॥ १२ ॥
गात्र[8]प्रदेशे क्वचिदेव दोषाः सम्मूर्च्छिता मांसमभिप्रदूष्य ।

---

तदुक्तं भोजेन–"पञ्चैतानरुजो ग्रन्थीन् मर्मजानचलांस्त्यजेत् । कपोलगलमन्यासु दुश्चिकित्स्याश्च सन्धिषु ॥" इति । अष्टाङ्गसङ्ग्रहे तु ग्रन्थेर्नव भेदाः प्रदर्शिताः—"दोषास्रङ्मांसमेदोऽस्थिसिराव्रणभवा नव" इति । एतेषां लक्षणानि तत एवावगन्तव्यानि, विस्तरभयान्नात्र प्रदर्शितानि ।

१ अथ अपच्याः सम्प्राप्त्यादीन् ब्रवीति—**हन्विति** । हन्वोरस्थि हन्वस्थि, अत्र सन्धिशब्दस्थ हन्वस्थ्यादिभिर्बाहुन्तैः सह प्रत्येकं सम्बन्धः । कक्षा अंसस्थाधोभागः, अक्षकसन्धिः = कोष्ठकसन्धिः, बाहुसन्धिः = गौण्यावृत्या द्वे वङ्क्षणसन्धी, मन्या = ग्रीवापश्चाद्भागस्था धमनी । २ जाले जालाकारे आधारे मत्स्याण्डं मत्स्याण्डजालं, राजदन्तादिषु परम्, तत्सदृशैर्मत्स्याण्डजालप्रतिमैः । ३ अनन्यवर्णैः = मेदःकफकृतत्वेन समानवर्णैरित्यर्थः । ४ चयप्रकर्षात्=उपचयप्रकर्षात् ।

५ अत्र अप्यर्थकः खलुशब्दः । तेन मेदःकफौ वातादिदोषान्तरानुविद्धौ ज्ञेयौ तथा हि भोजः–"वातपित्तकफा वृद्धा मेदश्चापि समाचितम् । जङ्घयोः कण्डराः प्राप्य मत्स्याण्डसदृशान् बहून् । कुर्वन्ति ग्रथितांस्तेभ्यः पुनः प्रकुपितोऽनिलः । तान् दोषानूर्ध्वगो वक्षःकक्षामन्यागलाश्रिताः ॥ व्यामिश्रदोषजातस्य कृच्छ्रसाध्याः प्रकीर्तिताः । तासां वातोदरा रूक्षा वातवेदनयाऽन्विता ॥ क्षिप्रपाकसमुत्थाना दाहयुक्ता तु पैत्तिकी । गूढा वा पाककठिना कफात्स्निग्धाऽल्परुक्करा ॥ मेदोऽधिका श्लैष्मिकी च विशेषादतिमार्दवा । अपची कण्ठमन्यासु कक्षावङ्क्षणसन्धिषु ॥ तां तु मालाकृतिं विद्यात् कण्ठहृद्धनुसन्धिषु । गण्डमालां विजानीयादपचीतुल्यलक्षणाम् ॥" इति । चरके गण्डमाला गण्डे एव पठिता—"मेदःकफाच्छोणितसञ्चयोत्थो गण्डस्य पार्श्वे गलगण्ड एकः । स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गण्डैर्दीप्तानले यूनि बलान्विते च ॥ साध्या स्मृता पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुता त्वसाध्या ॥" इति डल्हणः ।

६ वर्षगणानुबन्धी = बहुवर्षानुसरणशील इत्यर्थः । ७ अर्बुदानां सम्प्राप्तिमाह–**गात्रेति** । क्वचिदेव गात्रप्रदेशे दोषाः शोफं कुर्वन्तीति सम्बन्धः । सम्मूर्च्छिताः =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्धचपाकम् ॥ १३ ॥
कुर्वन्ति मांसोपचयं तु शोफं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ।
वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च ॥ १४ ॥
तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ।
दोषः[1] प्रदुष्टो रुधिरं सिरास्तु सम्पीड्य सङ्कोच्य गतस्तु पाकम् ॥१५॥
सास्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं मांसाङ्कुरैराचितमाशु वृद्धिम् ।
स्रवत्यजस्रं रुधिरं प्रदुष्टमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं स्यात् ॥ १६ ॥
रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात् पाण्डुर्भवेदर्बुदपीडितस्तु ।
मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टं प्रकरोति शोफम् ॥ १७ ॥
अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ।
प्रदुष्टमांसस्य नरस्य बाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ १८ ॥
मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमानि विवर्जयेत्तु ।
संप्रस्रुतं मर्मणि यच्च जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम् ॥ १९ ॥
यज्जायतेऽन्यत् खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ।
यद् द्वन्द्वजातं युगपत् क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ २० ॥
न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोऽधिकत्वाच्च विशेषतस्तु ।
दोषस्थिरत्वाद् ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ २१ ॥

---

प्रवृद्धाः । १ अर्बुदस्य लक्षणं दर्शयति—**दोष इति** । प्रदुष्टो दोषः सिरासु गतो रुधिरं सम्पीड्य सङ्कोच्य मांसपिण्डम् उन्नह्यति उन्नतं करोतीति सम्बन्धः । २ मांसजन्यस्य सम्प्राप्तिमाह—**मुष्टीति** । ३ अश्मोपमं = पाषाणवत् कठिनम् , अप्रचाल्यं = स्थिरत्वाच्चालनानर्हम् । ४ मांसपरायणस्य = मांसाशनशीलस्य । तस्य चातिमात्रं मांसवृद्धिः, "मांसं मांसेन वर्धते" इत्यभिधानात् ।

५ साध्येष्वपि असाध्यप्रकारान् प्रतिपादयति—**साध्येष्वपीति** । ६ सम्प्रस्रुतं = स्रावयुक्तम् , स्रावश्चात्रापाक्तित्वेऽपि त्वगवदरणान्मनागवगन्तव्यः । ७ स्रोतःसु = नासादिषु । ८ अधिकमर्बुदमध्यर्बुदम् , एतद्विरर्बुदमेव । ९ द्वन्द्वेन युग्मेन जातं द्वन्द्वजातम् । १० दोषकार्यस्य मांसोच्छ्रयस्य तेनैव स्वरूपेण चिरकालावस्थितिशीलत्वात् , ग्रथनात् = ग्रन्थिरूपत्वात् , तेषां = मेदःप्रभृतीनाम् । ११ तुशब्दोऽप्यर्थकः, तेन व्याधिस्वभावादपीत्यर्थः । भोजेऽप्युक्तम्—"न पच्यते स्थिरत्वाच्च ग्रथित्वात्स्वभावतः" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातः[1] कफश्चैव गले प्रवृद्धौ मन्ये तु संसृत्य तथैव मेदः।
कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्वलिङ्गैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः[2] ॥२२॥
तोदान्वितः कृष्णसिराऽवनद्धः कृष्णोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु।
मेदोऽन्वितश्चोपचितश्च कालाद्ध्वेदतिस्निग्धतरोऽरुजश्च[3] ॥ २३ ॥
पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धचपाको यदृच्छया[4] पाकमियात् कदाचित्।
वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥ २४ ॥
स्थिरः सवर्णोऽल्परुगुग्रकण्डुः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु[5]।
चिराभिवृद्धिं कुरुते चिराच्च प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् ॥ २५ ॥
माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः[6] ॥
स्निग्धो मृदुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदःकृतो नीरुगथातिकण्डुः ॥२६॥
प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः[7]।
स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं[8] कुरुते च नित्यम् ॥२७॥
कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम्।
क्षीणं च वैद्यो गलगण्डिनं तं भिन्नस्वरं[10] चैव विवर्जयेत्तु ॥ २८ ॥
निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते[11] गले।
महान् वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत् ॥ २९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने गलगण्डगण्डमालाऽपच्यर्बुदनिदानं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

१ अथ क्रमागतगलगण्डस्य सम्प्राप्तिं दर्शयति—**वात इति**। वातेन कफेन च गलगण्डो भवति, न च पित्तेनेति बोध्यम्। २ भोजः—"महान्तं शोथमल्पं वा हनुमन्यागलाश्रयम्। लम्बन्तं मुष्कवद् दृष्ट्वा गलगण्डं विनिर्दिशेत्॥" इति। ३ अरुज इति सोऽपि वातगलगण्डो यदा कालात् कालेन कृत्वा मेदोऽन्वितो भवति, तदा अरुजो-भवतीत्यर्थः' इति डल्हणः। ४ यदृच्छया अज्ञातहेतुनियमेन पाकमियात् गच्छेत्, कदाचिद् न सर्वकालम्। ५ सवर्णः=प्रकृतिसमवर्णः। ६ प्रलेपः=श्लेष्मणा लिप्त इव। ७ देहक्षये क्षयं, देहवृद्धौ च वृद्धिं यातीत्यर्थः। ८ अनुशब्दम्=अनु-नादं, प्रतिशब्दमित्यर्थः। ९ गलगण्डस्यासाध्यतामभिधत्ते—**कृच्छ्रादिति**। १० भिन्न-स्वरं=स्वरभेदवन्तम्। ११ मुष्कवत्=अण्डकोशवत्।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकादशोऽध्यायः।**

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## द्वादशोऽध्यायः ।

अथातो वृद्ध्युपदंशश्लीपदानां[1] निदानं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

वातपित्तश्लेष्मशोणितमेदोमूत्रान्त्रनिमित्ताः सप्त[2] वृद्धयः । तासां मूत्रान्त्रनिमित्ते वृद्धी वातसमुत्थे केवलमुत्पत्तिहेतुरन्यतम[3]ः ॥ ३ ॥

अधः प्रकुपितोऽन्यतमो हि दोषः फलकोशवाहिनी[4]रभिप्रपद्य धमनीः फलकोशयोर्वृद्धिं जनयति, तां वृद्धिमित्याचक्षते ॥ ४ ॥

तासां भविष्यतीनां पूर्वरूपाणि—बस्तिकटीमुष्कमेढ्रेषु वेदना मारुतनिग्रह[5]ः फलकोशशोफश्चेति ॥ ५ ॥

तत्रानिलपरिपूर्णं बस्तिमिवातत[6]ं परुषमनिमित्तानिलरुजं वातवृद्धिमाचक्षते । पक्वोडुम्बरसङ्काशां ज्वरदाहोष्मवतीं चाशुसमुत्थानपाकां पित्तवृद्धिम् । कठिनामल्पवेदनां शीतां कण्डूमतीं श्लेष्मवृद्धिम् । कृष्णस्फोटावृतां पित्तवृद्धिलिङ्गां रक्तवृद्धिम् । मृदुस्निग्धां कण्डूमतीमल्पवेदनां तालफ[7]लप्रकाशां मेदोवृद्धिम् । मूत्रसन्धारणशीलस्य मूत्रवृद्धिर्भवति, सा गच्छतोऽम्बुपूर्णा द्रतिरिव क्षुभ्य[8]ति मूत्रकृच्छ्रं वेदनां वृषणयोः श्वयथुं कोशयोश्चापादयति, तां मूत्रवृद्धिं विद्यात् , भारहरणबलवद्ग्रहवृत्तप्रपतनादिभिरायासविशेषैर्वायुरतिप्रवृद्धः प्रकुपितश्च स्थूलान्त्रस्येतरस्य[9] चैकदेशं विगुणमादायाधो गत्वा वङ्क्षणसन्धिमुपेत्य ग्रन्थिरूपेण स्थित्वाऽप्रतिक्रियमाणे च कालान्तरेण फलकोशं प्रविश्य मुष्कशोफमापादयति, आध्मातो बस्तिरिवाततः[10] प्रदीर्घः

---

द्वादशोऽध्यायः ।

१ वृद्धिः=वृषणवृद्धिः, उपदंशः=मेढ्रगतरोगविशेषः, श्लीपदं=पादवल्मीकम् । २ संख्येयग्रहणेनैव सप्तसंख्यासिद्धौ पुनः सप्तेति संख्यानं द्वन्द्वजादिवृद्धिप्रतिषेधार्थम् । ३ मूत्रान्त्ररूप इत्यर्थः । ४ फलकोशवाहिनीः=अण्डकोशानुसारिणीः । ५ मारुतनिग्रहः=अधोवातावरोधः । ६ आतताम्=आध्माताम् , परुषां=रूक्षाम् , अनिमित्तानिलरुजं=कारणरहितवातवेदनाम् । ७ तालफलप्रकाशां=पक्वतालफलसवर्णामित्यर्थः । ८ क्षुभ्यति=सञ्चलति । ९ इतरस्य=क्षुद्रान्त्रस्य । १० आततः=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

सशोफो भवति, सशब्दमवपीडितश्चोर्ध्वमुपैति[1], विमुक्तश्च पुनराध्मायते, तामन्त्रवृद्धिमसाध्यामित्याचक्षते ॥ ६ ॥

तत्रातिमैथुनादतिब्रह्मचर्य्याद्वा तथाऽतिब्रह्मचारिणीं चिरोत्सृष्टां[2] रजस्वलां दीर्घरोमां कर्कशरोमां सङ्कीर्णरोमां[3] निगूढरोमामल्पद्वारां महाद्वारामप्रियामकामामचौक्ष्यं[4]सलिलप्रक्षालितयोनिमप्रक्षालितयोनिं योनिरोगोपसृष्टां स्वभावतो वा दुष्टयोनिं[5] वियोनिं वा नारीमत्यर्थमुपसेवमानस्य तथा करजदशन[6]विषशूकनिपातनाद्बन्धनाद्ध्वस्ताभिघाताच्चतुष्पदीगमनादचौक्ष्यसलिलप्रक्षालनादवपीडनाच्छुक्रमूत्रवेगविधारणान्मैथुनान्ते वाऽप्रक्षालनादिभिर्मेढ्रमागम्य प्रकुपिता दोषाः क्षतेऽक्षते[7] वा श्वयथुमुपजनयन्ति, तमुपदंशमित्याचक्षते ॥ ७ ॥

स[8] पञ्चविधस्त्रिभिर्दोषैः पृथक् समस्तैरसृजा चैकः ॥ ८ ॥

तत्र[9] वातिके पारुष्यं त्वक्परिपुटनं स्तब्धमेढ्रता परुषशोफता

---

विस्तीर्णः । १ उपैति = उद्गच्छति ।

२ उपदंशानां निदानं सम्प्राप्तिं च निर्दिशति—**तत्रेति** । ब्रह्मचर्यस्य मैथुनराहित्यस्यातिक्रमणं सहसा परित्यागोऽतिब्रह्मचर्यं तस्मात् । तदुक्तमष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"स्त्रीव्यवायनिवृत्तस्य सहसा भजतोऽथवा" इति । भजतो मैथुनं कुर्वत इति तदर्थः । अतिब्रह्मचारिणीं = मैथुनातिनिवृत्त्या ब्रह्मचर्यव्रतधारिणीम् , चिरोत्सृष्टां = प्रभूतकालं व्यवायेन परित्यक्ताम् । ३ सङ्कीर्णरोमां = घनरोमाम् , निगूढरोमाम् = अभ्यन्तररोमाम् । ४ अचौक्ष्यसलिलप्रक्षालितयोनिम् = अशुचिजलप्रक्षालितभगम् ।

५ दुष्टयोनिं = वातादिदोषाध्युषितयोनिम् , वियोनिं = विकृतयोनिम् , हस्तजङ्घान्तरमिति डल्हणः । पारुष्यादिदोषदुष्टयोनिमिति हाराणचन्द्रः । ६ करे जाताः करजाः नखाः, दशनाः = दन्ताः, शूकः सविषजलमलोद्भवस्वल्पडुण्डुभादिजन्तुस्तस्य निपातनाल्लिङ्गादिशरीरे पातनात् , अथवा शूकप्रधानलिङ्गादिवृद्धिकरवात्स्यायनाद्युक्तलेपादितस्य निपातनात् प्रयोगात् । ७ अवपीडनात् = रज्ज्वादिभिर्बन्धनात् ताडनाद्वा ।

८ मेढ्रेइति शेषः । तन्त्रान्तरे विशेषः—'मेढ्रसन्धौ व्रणाः केचित् केचित् सर्वाश्रयाः स्मृताः । कुलत्थाकृतयः केचित् केचिन्मुद्गदलोपमाः ॥ रुजादाहपरीताश्च तृष्णामोहसमन्विताः । शीघ्रं केचिद्विसर्पन्ति शनैः केचित्तथाऽपरे ॥ स्त्रीणां च पुंसां जायन्ते उपदंशाः सुदारुणाः ।" इति । ९ उपदंशानां पञ्चविधसंख्यां निर्दिशति—**स इति** । १० वातजाद्युपदंशानां लक्षणानि दर्शयति—**तत्रेति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविधाश्च वातवेदनाः। पैत्तिके ज्वरः श्वयथुः पक्वोडुम्बरसङ्काशस्तीव्रदाहः क्षिप्रपाकः पित्तवेदनाश्च। श्लैष्मिके श्वयथुः कण्डूमान् कठिनः स्निग्धः श्लेष्मवेदनाश्च। रक्तजे कृष्णस्फोटप्रादुर्भावोऽत्यर्थमसृक्प्रवृत्तिः पित्तलिङ्गान्यत्यर्थं ज्वरदाहौ शोषश्च याप्यश्चैव कदाचित्। सर्वजे सर्वलिङ्गदर्शनमवदरणं च शेफसः कृमिप्रादुर्भावो मरणं चेति ॥ ९ ॥

कुपितास्तु[1] दोषा वातपित्तश्लेष्माणोऽधःप्रपन्ना वङ्क्षणोरुजानुजङ्घास्ववतिष्ठमानाः कालान्तरेण पादमाश्रित्य शनैः शोफं[2] जनयन्ति, तं श्लीपदमित्याचक्षते। तत् त्रिविधं—वातपित्तकफनिमित्तमिति ॥ १० ॥

तत्र, वातजं खरं कृष्णं परुषमनिमित्तानिलरुजं परिस्फुटति[3] च बहुशः। पित्तजं तु पीतावभासमीषन्मृदुज्वरदाहप्रायं च। श्लेष्मजं तु श्वेतं स्निग्धावभासं मन्दवेदनं भारिकं महाग्रन्थिकं[4] कण्टकैरुपचितं च ॥ ११ ॥

तत्र संवत्सरातीतमतिमहद्वल्मीकजातं[5] प्रसृतमिति वर्जनीयानि १२

भवन्ति चात्र।

त्रीण्यप्येतानि[6] जानीयात् च्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात्।
गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ १३ ॥
पुराणोदकभूयिष्ठाः[7] सर्वर्तुषु च शीतलाः।
ये देशास्तेषु[8] जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ १४ ॥

---

१ क्रमागतस्य श्लीपदस्य सम्प्राप्तिं सख्यां चोपपादयति—**कुपिता इति**। २ सज्वरं शोफं जनयन्तीति बोध्यम्। तदुक्तम्—"यः सज्वरो वङ्क्षणजो भृशार्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण" इति। शिलावत् पदं श्लीपदमिति केचित्। ३ परिस्फुटति = अवदीर्यते। ४ महाग्रथिकं=बृहदाकारैर्ग्रन्थिभिरनुविद्धम्, कण्टकैः=अङ्कुरैः। ५ वल्मीकजातं = वल्मीकवद् बहुशिखराकारत्वेनोत्पन्नमित्यर्थः, प्रसृतं = यत्र त्वचो विदीर्णेन लसिका स्रवति।

६ श्लीपदेषु कफस्याभ्यभिचारेण प्राधान्यं दर्शयति—**त्रीणीति**। ७ श्लीपदसम्भवहेतुं देशं निर्दिशति—**पुराणेति**। ८ देशाः = अनूपदेशाः। तदुक्तमष्टाङ्गस-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादवद्धस्तयोश्चापि श्लीपदं जायते[1] नृणाम् ।
कर्णौष्ठिनासिकौष्ठेषु केचिदिच्छन्ति तद्विदः ॥ १५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने वृद्ध्युपदंशश्लीपदनिदानं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

## त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातः क्षुद्ररोगाणां[2] निदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

समासेन[3] चतुश्चत्वारिंशत् क्षुद्ररोगाः भवन्ति । तद्यथा—अजगल्लिका, यवप्रख्या, अन्धालजी, विवृता, कच्छपिका, वल्मीकं, इन्द्रवृद्धा, पनसिका, पाषाणगर्दभः, जालगर्दभः, कक्षा, विस्फोटकः, अग्निरोहिणी, चिप्पं, कुनखः, अनुशयी, विदारिका, शर्कराऽर्बुदं, पामा, विचर्चिका, रकसा, पाददारिका, कदरम्, अलसेन्द्रलुप्तौ, दारुणकः, अरुंषिका, पलितं, मसूरिका, यौवनपिडका, पद्मिनीकण्टको, जतुमणिः, मशकः, चर्मकीलः. तिलकालकः, न्यच्छं, व्यङ्गः, परिवर्त्तिका, अवपाटिका, निरुद्धप्रकशः, सन्निरुद्धगुदः, अर्हिपूतनं, वृषणकच्छूः, गुदभ्रंशश्चेति ॥ ३ ॥

स्निग्धा[4] सवर्णा ग्रथिता नीरुजा ग्रन्थिसन्निभा ।

---

ङ्ग्रहे—"श्लीपदं जायते तच्च देशेऽनूपे भृशं श्रमात्" इति । १ तन्त्रान्तरेऽप्युक्तम्—"तच्छ्लीपदं स्यात् करकर्णनेत्रशिश्नौष्ठनासास्वपि केचिदाहुः" इति ।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वादशोऽध्यायः ।**

---

### त्रयोदशोऽध्यायः ।

२ क्षुद्रा लघवः तिलकालकाभिप्रायेण, अग्निरोहिणी वल्मीकप्रभृतीनामभिप्रायेण क्षुद्रास्तीक्ष्णाः ; अथवा पूर्वाचार्यपठिता पारिभाषिकीयं संज्ञा, क्काथपाक्यसंज्ञावदिति वाचस्पतिः । ३ विस्तरेण तु प्रमाणाभावः । अत्र संख्यायां संज्ञासु च न्यूनाधिक्यं वाग्भटे द्रष्टव्यम् । ४ अजगल्लिकादीनां चतुश्चत्वारिंशत्क्षुद्ररोगाणां यथाक्रमं


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ ४ ॥
यवाकारा[1]सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता ।
पिडका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ ५ ॥
घनामवक्त्रां पिडकामुन्नतां परिमण्डलाम् ।
अन्धा[2]लजीमल्पपूयां तां विद्यात् कफवातजाम् ॥ ६ ॥
विवृतास्यां महादाहां पक्वोडुम्बरसन्निभाम् ।
विवृता[3]मिति तां विद्यात् पित्तोत्थां परिमण्डलाम् ॥ ७ ॥
ग्रन्थयः पञ्च वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः ।
कफानिलाभ्यामुद्भूतां विद्यात्तां कच्छ[4]पीमिति ॥ ८ ॥
पाणिपादतले सन्धौ ग्रीवायामूर्ध्वजत्रुणि ।
ग्रन्थिर्वल्मीक[5]वद्यस्तु शनैः समुपचीयते ॥ ९ ॥
तोदक्लेदपरीदाहकण्डूमद्भिर्व्रणैर्वृतः ।
व्याधिर्वल्मीक इत्येष कफपित्तानिलोद्भवः ॥ १० ॥
पद्मपुष्क[6]रवन्मध्ये पिडकाभिः समाचिताम् ।
इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ ११ ॥
कर्णौ परि समन्ताद्वा पृष्ठे वा पिडकोग्ररुक् ।
शालूकवत्पनसिकां तां विद्याच्छ्लेष्मवातजाम् ॥ १२ ॥
हनुसन्धौ समुद्भूतं शोफमल्परुजं स्थिरम् ।

---

लक्षणानि निर्दिशति—**स्निग्धेति** । १ बालानामिति प्रायोभावित्वादुक्तं, तेनाबालानामपि दृश्यमानाः सङ्गच्छन्त इति श्रीकण्ठः । २ यवाकारा=यववन्मध्ये स्थूलेत्यर्थः ।

३ अन्धालजीं स्नायुगतामाह भोजे—"श्लेष्मानिलौ श्रितौ स्नायुं पिडकां परिमण्डलाम् । दुष्टौ जनयतोऽवक्त्रामल्पपूयामकण्डुराम् । आमोदुम्बरसङ्काशां विद्यादन्धालजीं तु ताम् ।" इति । ४ पित्तेनातितरां पाकाद् व्यात्तमुखतायां विवृता संज्ञा । ५ मध्ये उन्नतत्वेत पर्यन्ते नतत्वेन च कच्छपिका संज्ञा । ६ वल्मीकवदित्यनेन प्रचुरशिखरत्वेन समुच्छ्रितत्वं दूरावगाढमूलत्वं च ख्याप्यते । अत एव चिकित्सायामवगाढमूलशोधनार्थमग्निक्षाराभ्यां चिकित्सेदित्युक्तमिति विजयरक्षितः । ७ पद्मपुष्करवत्=पद्मबीजकोशवदित्यर्थः। 'पद्मकर्णिकवत्' इति पाठान्तरम् । कर्णिकेत्यत्राकारलोप आर्षः ।

८ शालूकवत्=कमलकन्दवत् कठिनां तदकारां वा । तदुक्तमष्टाङ्गसंग्रहे "कठिनो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाषाणगर्दभ विद्याद्बलासपवनात्मकम् ॥ १३ ॥
विसर्पवत् सर्पति यो दाहज्वरकरस्तनुः ।
अपाकः श्वयथुः पित्तात् स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १४ ॥
पिडिकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम् ।
वर्त्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥ १५ ॥
बाहुपार्श्वांसकक्षासु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् ।
पित्तप्रकोपसम्भूतां कक्षामिति विनिर्दिशेत् ॥ १६ ॥
एकामेवंविधां दृष्ट्वा पिटिकां स्फोटसन्निभाम् ।
त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धनामां प्रचक्षते ॥ १७ ॥
अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्ततः ।
क्वचित् सर्वत्र वा देहे स्मृता विस्फोटका इति ॥ १८ ॥
कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसहारणाः ।
अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः ॥ १९ ॥
सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा घ्नन्ति मानवम् ।
तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सन्निपाततः ॥ २० ॥

---

ग्ररुक् । शालूकाभा पनसिका"इति । 'शालूकमेषां कन्दः स्यात्' इत्यमरः । १ पाषाणवत् काठिन्यात् पाषाणगर्दभ इति विजयरक्षितः । २ बलासः=श्लेष्मा । ३ अपाकः=ईषत्पाकः । ४ पित्ताद्=उद्भूतपित्तात्, तेन भोजोक्तं पित्तोल्वणदोषत्रयजन्यत्वमस्याविरुद्धं भवति । स यदाह—"पित्तोत्कटास्त्रयो दोषा जनयन्ति त्वगाश्रिताः । श्यावं रक्तं तनुं शोथमपाकं बहुवेदनम् ॥ विसर्पिणं सदाहं च तृष्णाज्वरसमन्वितम् । विसर्पमाहुस्तं व्याधिमपरे जालगर्दभम् ॥" इति विजयरक्षितः । ५ उत्तमाङ्गस्थां=शिरोगताम् ।

६ सर्वात्मिकां=सर्वदोषजाम् । सर्वात्मिकामित्यनेनैव सवलिङ्गत्वे सिद्धे पुनः सर्वलिङ्गामिति वचनं विकृतिविषमसमवायारब्धलिङ्गव्यतिरेकेण प्रत्येकदोषलिङ्गयुक्ततां ख्यापयतीति मधुकोषव्याख्याकारौ । ७ अष्टाङ्गसङ्ग्रहे वातपित्तोभयजन्या सूक्ष्मा नानापिटकायुता च कक्षा उक्ता—"कक्ष्येति कक्षासन्नेषु प्रायो देशेषु सानिलात् । पित्ताद् भवन्ति पिटकाः सूक्ष्मा लाजोपमा घनाः ॥" इति । ८ एकां=कक्षोक्तैककृष्णस्फोटसदृशीमित्यर्थः ।

९ अत्र माधवोक्तं विशिष्टलक्षणम्—"त्वचमाश्रित्य ते रक्तं मांसास्थीनि प्रदूष्य च । घोरान् कुर्वन्ति विस्फोटान् सर्वान् ज्वरपुरःसरान् ॥" इति । १० कक्षाभागेषु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नखमांसमधिष्ठाय पित्तं वातश्च वेदनाम् ।
करोति दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्पमादिशेत् ॥ २१ ॥
तदेव क्षतरोगाख्यं तथोपनखमित्यपि ।
अभिघातात् प्रदुष्टो यो नखो रूक्षोऽसितः खरः ॥ २२ ॥
भवेत्तं कुनखं विद्यात् कुलीनमिति संज्ञितम् ।
गम्भीरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरिस्थिताम् ॥ २३ ॥
कफादन्तःप्रपाकां तां विद्यादनुशयीं भिषक् ।
विदारीकन्दवद् वृत्तां कक्षावङ्क्षणसन्धिषु ॥ २४ ॥
रक्तां विदारिकां विद्यात् सर्वजां सर्वलक्षणाम् ।
प्राप्य मांससिरास्नायूः श्लेष्मा मेदस्तथाऽनिलः ॥ २५ ॥
ग्रन्थिं कुर्वन्ति भिन्नोऽसौ मधुसर्पिर्वसानिभम् ।
स्रवत्यास्रावमत्यर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनिलः ॥ २६ ॥
मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत् पुनः ।
दुर्गन्धं क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः सिराः ॥ २७ ॥
स्रवन्ति सहसा रक्तं तद्विद्याच्छर्करावदम् ।

---

प्रदीप्ताङ्गारसन्निभाः स्फोटा अग्निरोहिणीशब्दवाच्याः । १ चिप्पमङ्गुलीवेष्टकमिति तन्त्रान्तरे ख्यातम् । अक्षतनामायं विकारः "रोगः क्षतश्चर्मनखान्तरे स्यान्मांसास्रदूषी भृशदाहपाकः" इति तन्त्रान्तरम् । चर्मनखान्तरे चर्मनखसन्धाविति तदर्थः । २ अल्पसंरम्भाम् = अल्पशोथामित्यर्थः । ३ मस्तकोपरिस्थितामित्यर्थः । श्लोकस्यास्योत्तरार्धे—"पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादन्तःप्रपाकिनीम्" इत्यन्यत्र । तदा पादस्योपरि स्थितामिति सम्बन्धः ।

४ सर्वजा = सन्निपातजा, सन्निपातजन्याऽपीयं साध्यैव । चरके त्वियं वातकफजन्या पठिता—"ज्वरान्विता वङ्क्षणकक्षसन्धौ वर्तिर्निरर्तिः कठिना मता या । विदारिका सा कफमारुताभ्याम्" इति तस्माद्वातकफाधिक्येन ज्वरयोगेनाल्पपित्ततया अस्या उत्पत्तिर्बोध्या । तदुक्तं वाग्भटे—"ऊष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्यूष्मणा विना" इति ।

५ नानावर्ण = घृतमेदोवसावर्णमित्यर्थः । भोजेऽप्युक्तम्—"तमेव भिन्नं दुर्गन्धं घृतमेदोनिभं सिराः । स्रवन्ति स्रावमनिशं तदा स्याच्छर्करार्बुदम् ॥" इति । तमेव ग्रन्थि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पामाविचर्च्यौ कुष्ठेषु रकसा च प्रकीर्त्तिता ॥ २८ ॥
परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः ।
पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रिताम् ॥ २९ ॥
शर्करोन्मथिते पादे हते वा कण्टकादिभिः ।
मेदोरक्तानुगैश्चैव दोषैर्वा जायते नृणाम् ॥ ३० ॥
सकीलकठिनो ग्रन्थिर्निम्नमध्योन्नतोऽपि वा ।
कोलमात्रः सरुक् स्रावी जायते कदरस्तु सः ॥ ३१ ॥
क्लिन्नाङ्गुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहरुगन्वितौ ।
दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विनिर्दिशेत् ॥ ३२ ॥
रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम् ।
प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥ ३३ ॥
रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः ।
तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुज्येति च विभाव्यते ॥ ३४ ॥
दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रपाट्यते ।
कफवातप्रकोपेण विद्याद्दारुणकं तु तम् ॥ ३५ ॥

---

मेवेति तदर्थः । ततः = शर्कराबुदात् । १ पामा विचर्चिका रकसा कुष्ठभेदेषु दर्शिताः क्षुद्ररोगमधिकृत्येह लिखितेति न दोषः । २ परिक्रमणशीलस्य = सर्वतो भ्रमणस्वभावस्येत्यर्थः । ३ दारीं = विपादिकाम् । विपादिकाकुष्ठं तु पिडका सविदारणेति भेदः । ४ शर्कराभिः घटकर्परखण्डादिभिरुन्मथिते पीडिते, पादे, हस्तयोरपीति भोजः—"हस्तयोः पादयोश्चापि गम्भीरानुगतं खरम् । मांसकीलं जनयतः कुपितौ कफमारुतौ सशल्यमिव तं देशं मन्यते तेन पीडितः । शर्काराकदरं केचिन्मन्यन्ते वातकण्टकम् ॥" इति । ५ कीलेन शङ्कुना सदृशं सकीलं, सकीलं चासौ कठिनश्च सकीलकठिनः । ६ पादाङ्गुलिषु दुष्टकर्दमसंस्पर्शत्वेन यत् क्लिन्नभावं सोऽलसशब्दवाच्यः । ७ इन्द्रलुप्तस्य खालित्यं रुज्येति पर्यायकथनम् । वाग्भटोक्त्या इन्द्रलुप्ते सहसा केशाः पतन्ति, खालित्ये शनैः शनैरिति विशेषः । अत्र श्रीकण्ठः-'कार्तिकस्त्वाह—"इन्द्रलुप्तं श्मश्रुणि भवति खालित्यं शिरस्येव, रुह्या च सर्वदेहे" इति । आगमस्त्वत्र नास्ति' । रुज्या, रूढ्या, रुह्या इति नामभेदः ।

८ अष्टाङ्गसङ्ग्रहेऽस्य विशेषलक्षणमुक्तम्—"कण्डूकेशच्युतिस्वापरौक्ष्यकृत् स्फुटनं त्वचः । सुसूक्ष्मं कफवाताभ्यां विद्याद् दारुणकं तु तत् ॥" इति विदेहवचनात् पि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदानि मूर्धनि ।
कफासृक्कृमिकोपेन नृणां विद्यादरूंषिकाम् ॥ ३६ ॥
क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ।
पित्तं[1] च केशान् पचति पलितं तेन जायते ॥ ३७ ॥
दाहज्वररुजावन्तस्ताम्राः स्फोटाः सपीतकाः ।
गात्रेषु वदने चान्तर्विज्ञेयास्ता मसूरिकाः[2] ॥ ३८ ॥
शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतशोणितैः ।
जायन्ते पिडका यूनां वक्त्रे या मुखदूषिकाः[3] ॥ ३९ ॥
कण्टकैराचितं वृत्तं कण्डूमत् पाण्डुमण्डलम् ।
पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तद्[4]ाख्यं कफवातजम् ॥ ४० ॥
नीरुजं सममुत्सन्नं मण्डलं कफरक्तजम्[5] ।
सहजं रक्तमीषच्च श्लक्ष्णं जतुमणिं विदुः ॥ ४१ ॥
अवेदनं स्थिरञ्चैव यस्य गात्रेषु दृश्यते ।
माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्मषकं[6] वदेत् ॥ ४२ ॥

---

त्तरक्तानुबन्धोऽप्यत्र द्रष्टव्यः—"यदत्र पटलाभासं सरुजस्कं शिरस्त्वचि । परुषं जायते जन्तोस्तस्य रूपं विशेषतः ॥ तोदैः समन्वितं वातात् सकण्डूगौरवं कफात् । सपिपासं सदाहार्तिरागं पित्तासृजं तथा ॥" इत्यत्र वचने सदाहरागं च पित्तात्, सार्तिं तु रक्तात्, अर्तिर्हि रक्तजाऽपि भवतीति श्रीकण्ठः । १ चरकोक्त्या दोषत्रयसहितशरीरोष्मा पलितहेतुर्न तु केवलं पित्तमेवेति बोध्यम् । तदुक्तं तत्र—"तेजोऽनिलाद्यैः सह केशभूमिं दग्ध्वा तु कुर्यात् खलितिं नरस्य । किञ्चित्तु दग्ध्वा पलितानि कुर्याद्धरित्प्रभत्वं च शिरोरुहाणाम् ॥" इति ।

२ तन्त्रान्तरे—"पित्तं शोणितसंसृष्टं यदा दूषयति त्वचम् । तदा करोति पिडकाः सर्वगात्रेषु देहिनः । मसूरमुद्गमाषाणां तुल्याः कोलोपमा अपि । मसूरिकास्तु विज्ञेयाः पिडका रक्तपित्तजाः" ॥ इति । अस्या विस्तरशो वर्णनमन्यत्र द्रष्टव्यम् । ३ मुखकान्तिहारकत्वेन मुखदूषिका 'मुंहासा' शब्दवाच्याः । ४ कमिलिनीकण्टकसदृशैः कण्टकैर्व्याप्तं वृत्तादिलक्षणं पद्मिनीकण्टकाख्यं बोध्यम् । ५ कफरक्तजमिति सामान्येनोक्तम्, तेन चरकोक्तं त्रिदोषजत्वमप्यस्योपपन्नं भवति । तथा हि—"कृष्णः स्निग्धो जतुमणिर्ज्ञेयो वातोत्तरैस्त्रिभिः । अरुजं त्वपरैरुक्तं लक्ष्मेत्याहुर्भिषग्वराः ॥" इति ।

६ भोजः—"वातेरिते त्वचि यदा दूष्येते कफमेदसी । श्लक्ष्णं मृदु सवर्णं च कुरुतो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च।
वातपित्तकफोच्छोषात्तान् विद्यात्तिलकालकान्॥ ४३॥
मण्डलं महदल्पं वा श्यामं वा यदि वा सितम्।
सहजं नीरुजं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते॥ ४४॥
समुत्थाननिदानाभ्यां चर्मकीलं प्रकीर्त्तितम्।
क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः॥ ४५॥
सहसा मुखमागत्य मण्डलं विसृजत्यतः।
नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यङ्गं तमादिशेत्॥ ४६॥
मर्दनात् पीडनाच्चापि तथैवात्यभिघाततः।
मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरः॥ ४७॥
तदा वातोपसृष्टं तु चर्म प्रतिनिवर्त्तते।
मणेरधस्तात् क्रोशश्च ग्रन्थिरूपेण लम्बते॥ ४८॥
सवेदनः सदाहश्च पाकं च व्रजति क्वचित्।
मारुतागन्तुसम्भूतां विद्यात्तां परिवर्त्तिकाम्॥ ४९॥
सकण्डूः कठिना चापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता।
अल्पीयःखां यदा हर्षाद् बालां गच्छेत् स्त्रियं नरः॥ ५०॥

---

मषकं वदेत्॥" इति। मषकमित्यत्र माषशब्दात् 'इवे प्रतिकृतौ' इति कन्, नैरुक्तयेन च विधिना ह्रस्वत्वम्। १ वातपित्ताभ्यां हेतुभ्यां कफस्योच्छोषः शोषणं तस्मात्। अन्ये—"मारुतः पित्तमादाय कफरक्तसमाश्रितः। चिनोति तिलमात्राणि त्वचि ते तिलकालकाः॥" इति तन्त्रान्तरमवलोक्य 'वातपित्तकफोद्रेकात्' इति पठन्ति। २ सहजं=जन्मकालप्रवृत्तम्। ३ "न्यच्छं लाञ्छनमुच्यते" रक्तपित्तान्वितो वायुरस्य कारणम्। तदुक्तं भोजेन—"रक्तपित्तान्वितो वायुस्त्वक्प्रदेशाश्रितो यदा। जनयेन्मण्डलं कृष्णं श्यावं वा न्यच्छमादिशेत्॥" इति ४ प्रागर्शोनिदाने। वाग्भ- टस्तु—"मषेभ्यस्तून्नततरान् चर्मकीलान् सितासितान्" इति चर्मकीलं मषकभेदमेवोक्तवान्।

५ श्यावं=शुक्लानुविद्धकृष्णवर्णम्। व्यङ्गमेव स्थानान्तरेण वर्णान्तरेण च नीलिकोच्यते "कृष्णमेवङ्गुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः" इति माधवः। ६ सर्वतश्चरो व्यानो वायुरिति सम्बन्धः। भोजेऽप्युक्तम्—"मणेरधो मेढ्रचर्मव्यानस्तु परिवर्तयेत्। सशूलतोददाहाद्यैर्विज्ञेया परिवर्तिका। श्लैष्मिकी कठिना स्निग्धा कण्डूमत्यल्पवेदना॥" इति। ७ अल्पीयोऽल्पतरं खं योनिमुखं यस्याः सा ताम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्ताभिघातादथवा चर्मण्युद्वर्त्तिते[1] बलात् ।
मर्दनात्पीडनाद्वाऽपि शुक्रवेगविघाततः ॥ ५१ ॥
यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ।
वातोपसृष्टमेवं तु चर्म संश्रयते[2] मणिम् ॥ ५२ ॥
मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ।
निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारमवेदनम् ॥ ५३ ॥
मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्न च विदीर्यते[3] ।
निरुद्धप्रकशं विद्याद् दुरूढां चावपाटिकाम् ॥ ५४ ॥
वेगसन्धारणाद्वायुर्विहतो[4] गुदमाश्रितः ।
निरुणद्धि महत्स्रोतः[5] सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ५५ ॥
मार्गस्य सौक्ष्म्यात् कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य[6] गच्छति ।
सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात् सुदुस्तरम् ॥ ५६ ॥
शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने[7] शिशोर्भवेत् ।
स्विन्नस्यास्नाप्यमानस्य कण्डू रक्तकफोद्भवा ॥ ५७ ॥
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ।
एकीभूतं व्रणैर्घोरं[8] तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५८ ॥
स्नानोत्सादनहीनस्य[9] मलो वृषणसंश्रितः ।
प्रक्लिद्यते यदा स्वेदात् स कण्डूं जनयेत्तदा ॥ ५९ ॥
तत्र कण्डूयनात् क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ।
प्राहुर्वृषणकच्छूंतां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ६० ॥

---

१ उद्वर्तिते=उत्तानीभूयोर्ध्वं वर्तिते । २ संश्रयते=समग्रं श्रयते । ३ विदीर्यते=त्वक्परिवर्तनाशक्यतया मणिर्विवृतो न भवतीत्यर्थः । ४ विहतः=अवरुद्धगतिः । ५ महत्स्रोतः=गुदम् । ६ तस्य=गुदस्येत्यर्थः । ७ अपाने=गुदे ।

८ व्रणैः सह एकीभूतं तम् अपानं घोरमहिपूतनं विद्यादिति योजना । इदं दुष्टस्तन्यपानादपि भवतीति भोजेनोक्तम्—"दुष्टस्तन्यस्य पानेन मलस्याचालनेन च । कण्डूदाहरुजावद्भिः पिडकैश्च समाचिता । सम्भवन्ति यथादोषं दारुणा ह्यहिपूतना ॥" इति । ९ उत्सादनम्=उद्वर्तनम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवाहणा[1]तिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः ।
रूक्षदुर्बलदेहस्य तं गुदभ्रंशमादिशेत् ॥ ६१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने क्षुद्ररोगनिदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

## चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथा[2]तः शूकदोषनिदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

लिङ्ग[3]वृद्धिमिच्छतामक्रमप्रवृत्तानां शूकदोषनिमित्ता दश चाष्टौ च व्याधयो जायन्ते । तद्यथा—सर्षपिका, अष्ठीलिका, ग्रथितं, कुम्भीका, अलजी, मृदितं, सम्मूढपिडका, अवमन्थः, पुष्करिका, स्पर्शहानिः, उत्तमा, शतपोनकः, त्वक्पाकः, शोणितार्बुदं, मांसार्बुदं, मांसपाकः, विद्रधिः, तिलकालकश्चेति ॥ ३ ॥

गौरसर्षपतुल्या तु शूक[4]दुर्भुग्नहेतुका ।
पिडका कफरक्ताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका बुधैः ॥ ४ ॥

---

१ प्रवाहणं = प्रकर्षेण कुन्थनम् ।

इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रयोदशोऽध्यायः

---

### चतुर्दशोऽध्यायः ।

२ शूकः सविषो जलमलोद्भवो जन्तुभेदः, शिश्नवृद्धिकरयोगो वा तस्य दोषो वातादी रोगो वा "दोषा ह्यपि रोगशब्दं लभन्ते" इति दृढबलस्मरणात्, तस्य निदानं शूकदोषनिदानम् । लिङ्गवृद्धिकरा योगा वात्स्यायनीयकामसूत्रे उक्ताः—"भल्लातकास्थिजलशूकमथाब्जपत्रमन्तर्विदह्य मतिमान् सह सैन्धवेन । एतद्विरूढबृहतीफलतोयपिष्टमालेपनं महिषविड्विमलीकृतेऽङ्गे ॥" इति । अपि च—"अश्वगन्धावरीकुष्ठमांसीसिंह्यीफलान्वितम् । चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत् । स्तनलिङ्गकर्णपालिवर्धनं ब्रह्मणादिदम् ॥" इति ।

३ शूकदोषजव्याधीनां सामान्यसम्प्राप्तिं भेदांश्च दर्शयति—**लिङ्गेति** । लिङ्गवृद्धिमिच्छतां=लिङ्गस्थूलीकरणमभिलषताम्, अक्रमप्रवृत्तानाम्=अनुचितशिश्नवृद्धिकरकल्पे प्रवृत्तिमताम् । 'क्रमः कल्पाङ्घ्रिशक्तिषु' इति हेमचन्द्रः । ४ शूकस्य दुर्भुग्नं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिना विषमैरन्तैर्मारुतस्य प्रकोपतः ।
शूकैस्तु विषसम्भुग्नैः पिडकाऽष्ठीलिका भवेत् ॥ ५ ॥
शूकैर्यत् पूरितं शश्वद् ग्रथितं तत् कफोत्थितम् ।
कुम्भीका रक्तपित्तोत्था जाम्बवास्थिनिभाऽशुभा ॥ ६ ॥
अलजीलक्षणैर्युक्तामलजीं च वितर्कयेत् ।
मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वायुकोपतः ॥ ७ ॥
पाणिभ्यां भृशसम्मूढे सम्मूढपिडका भवेत् ।
दीर्घा बह्वचश्च पिडका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः ॥ ८ ॥
सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ।
पित्तशोणितसम्भूता पिडका पिडकाचिता ॥ ९ ॥
पद्मपुष्करसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिकेति सा ।
जनयेत् स्पर्शहानिं तु शोणितं शूकदूषितम् ॥ १० ॥
मुद्गमाषोपमा रक्ता पिडका रक्तपित्तजा ।
उत्तमैषा तु विज्ञेया शूकाजीर्णनिमित्तजा ॥ ११ ॥
छिद्रैरणुमुखैर्वस्तु चितं यस्य समन्ततः ।

---

दुरवचारणादवश्यविकारित्वरूपं बलवत्कौटिल्यं हेतुर्यस्याः सा शूकदुर्भुग्नहेतुका । १ विषमैः=अप्रशस्तैः, अन्तैः=पतितैः, शूकैरष्ठीलिका भवेदिति सम्बन्धः । अष्ठीलिका लौहकारस्य भाण्डीविशेषः, तत्तुल्यत्वादष्ठीलिका । २ शूकैर्यत् पूरितं=शेफसि शूकपूरणप्रतीतियुक्तम्, ग्रन्थितुल्यत्वाद् ग्रथितसञ्ज्ञा, शश्वद=अहरहः, एतेनैकदिनान्तरपूरणं प्रशस्तमिच्छन्ति कामतन्त्राचार्याः । नित्यपूरणाद् ग्रथितनाम्नो रोगस्योत्पत्तिरिति वाचस्पतिः । ३ कुम्भी वारिपर्णी तस्याः फलं कुम्भी 'फले लुप्' इति तद्धितप्रत्ययस्य लुप्, 'इवे प्रतिकृतौ' इति कन्। कुम्भीफलाकारा कुम्भीका । 'कुम्भ्युखायां पाटलायां वारिपर्ण्यां च कट्फले' इति हेमचन्द्रः । ४ शुभं शुक्लं तद्विरोधे नञ्, कृष्णेत्यर्थः ।

५ अलजीलक्षणैः=प्रमेहपिडकोक्तालजीलक्षणैरित्यर्थः । ६ शूकपातानन्तरं पीडितमिति बोध्यम् । यत्तु संरब्धं शोथशूलादिभिरभिभूतमित्यर्थः । ७ भृशसम्मूढे=अत्यन्तमर्दनेन अवनते 'पातितशूकेलिङ्गे' 'वातकोपतः' इति द्वयमध्याहार्यम् । ८ स्पर्शहानिम्=एतन्नामानं व्याधिविशेषमित्यर्थः । ९ शूकाजीर्णं पुनःपुनर्दुरवचरितशूकविकृतिमेव तन्निमित्तजा । १० छिद्रैः=दुरवचारितशूकदोषजनितवातशोणितजैः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातशोणितजो व्याधिर्विज्ञेयः शतपोनकः ॥ १२ ॥
पित्तरक्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाकोऽ[1] ज्वरदाहवान् ।
कृष्णैः स्फोटैः सरक्तैश्च पिडकाभिश्च पीडितम् ।
यस्य वस्तिरुजश्चोग्रा[2] ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥ १३ ॥
मांसदोषेण[3] जानीयादर्बुदं मांससम्भवम् ।
शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः[4] ॥ १४ ॥
विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ।
विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत्[5] ॥ १५ ॥
कृष्णानि चित्राण्यथवा[6] शूकानि सविषाणि च ।
पातितानि पचन्त्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥ १६ ॥
कालानि[7] भूत्वा मांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः ।
सन्निपातसमुत्थानं तं विद्यात्तिलकालकम्[8] ॥ १७ ॥
तत्र[9] मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः ।
विद्रधिश्च न सिध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने शूकदोषनिदानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

---

१ त्वक्पाकः = एतन्नामा व्याधिविशेषः ।

२ 'वास्तुरुजः' इति पाठे वास्तु व्रणाधिष्ठानं तत्र रुजः अगाधोच्छ्रितमांसशोथत्वादित्यर्थः । ३ शूकपातानन्तरं प्रहारादिना कृतेन मांसदोषेण मांससम्भवमर्बुदं मांसार्बुदं जानीयात् । ४ वेदनाः = वातपित्तकफजा इत्यर्थः । ५ विद्रधिनिदाने "नानावर्णरुजास्रावः" इत्यादिना सन्निपातजविद्रधिलक्षणं विद्रधिं निर्दिशेत् जानीयात् । ६ चित्राणि = नानावर्णानि, शुक्लपीतनीलादिवर्णानीति यावत् । ७ कालानि = कृष्णानि परिणततिलफलवर्णानि । ८ कृष्णतिलतुल्यत्वात् तिलकालकसञ्ज्ञा । ९ शूकदोषजेष्वसाध्यान्निर्दिशति—तत्रेति ।

इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्दशोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथातो भग्नानां निदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

पतनपीडनप्रहाराक्षेपणव्यालमृगदशनप्रभृतिभिरभिघातविशेषैरनेकविधमस्थ्नां भङ्गमुपदिशन्ति ॥ ३ ॥

तत्तु भङ्गजातमनुसार्यमाणं द्विविधमेवोत्पद्यते सन्धिमुक्तं काण्डभग्नं च ॥ ४ ॥

तत्र सन्धिमुक्तम्–उत्पिष्टं, विश्लिष्टं, विवर्त्तितम्, अवक्षिप्तम्, अतिक्षिप्तं, तिर्य्यक्क्षिप्तमिति षडविधम् ॥ ५ ॥

तत्र प्रसारणाकुञ्चनविवर्त्तनाक्षेपणाशक्तिरुग्रुजत्वं स्पर्शासहत्वं चेति सामान्यं सन्धिमुक्तलक्षणमुक्तम् ॥ ६ ॥

विशेषेणोत्पिष्टे सन्धावुभयतः शोफो वेदनाप्रादुर्भावो विशेषतश्च नानाप्रकारा वेदना रात्रौ प्रादुर्भवन्तिः । विश्लिष्टेऽल्पः शोफो वेदनासातत्यं सन्धिविक्रिया च । विवर्त्तिते तु सन्धिपार्श्वापगमाद्विषमाङ्गता वेदना च । अवक्षिप्ते सन्धिविश्लेषस्तीव्ररुजत्वं च । अतिक्षिप्ते द्वयोः सन्ध्यस्थ्नोरतिक्रान्तता वेदना च । तिर्यक्क्षिप्ते त्वेकास्थिपार्श्वापगमनमत्यर्थं वेदना चेति ॥ ७ ॥

काण्डभग्नमत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः—कर्कटकम्, अश्वकर्णं, चूर्णितं, पिच्चितम्, अस्थिच्छल्लितं, काण्डभग्नं, मज्जानुगतम्, अतिपातितं,

---

पञ्चदशोऽध्यायः ।

१ प्रभृतिग्रहणाद् बलवद्विग्रहादीनामादेशः । २ अनुसार्यमाणं=तत्त्वतोऽनुसन्धीयमानम् । ३ द्वयोरस्थ्नोः सन्धानं सन्धिस्तनुमुक्तं सन्धिविश्लेषः, काण्डभग्नम्=अस्थिकाण्डभग्नम्, काण्डेन च नलककपालवलयतरुणरुचकानां ग्रहः । ४ उत्पिष्टं=यत्रास्थिपेषणं जातम्, विश्लिष्टं=यत्र किञ्चिद्विश्लेषणं जातम्, विवर्तितं=सम्यदक्षिणविभागेनापवर्तितम्, अवक्षिप्तम्=ऊर्ध्वमधो वा क्षिप्तम्, अतिक्षिप्तं=मांससिरादीनि विदार्यापगतम्, तिर्यक्क्षिप्तं=तिर्यग्गतम्, अत्र ह्येकं सन्ध्यस्थि सन्धिस्थानं त्यक्त्वा तिर्यग्यातीति तात्पर्यम् । ५ सन्धिसंश्रययोरस्थ्नोर्व्यावर्तनेन पार्श्वागमनाद्विषमाङ्गता ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्रं, छिन्नं, पाटितं, स्फुटितमिति [1]द्वादशविधम् ॥ ८ ॥

श्वयथुबाहुल्यं स्पन्दनविवर्त्तनस्पर्शासहिष्णुत्वमवपीड्यमाने शब्दः स्रस्ताङ्गता विविधवेदनाप्रादुर्भावः सर्वास्ववस्थासु न [2]शर्म-लाभ इति समासेन काण्डभग्नलक्षणमुक्तम् ॥ ९ ॥

विशेषतस्तु सम्मूढमुभयत[3]तोऽस्थिमध्ये भग्नं ग्रन्थिरिवोन्नतं कर्कटकम्, अश्वकर्णवदुद्गतमश्वकर्णकं स्पृश्यमानं शब्दवच्चूर्णितमवगच्छेत्, पिच्चितं [4]पृथुतां गतमनल्पशोफम्, पार्श्वयोरस्थि हीनोद्गतमस्थिच्छल्लि[5]तम्, वेल्ल[6]ते प्रकम्पमानं काण्डभग्नम्, अस्थ्यवयवोऽस्थिमध्यवनुप्रविश्य मज्जानमुन्न[7]द्यतीति मज्जानुगतम्, अस्थि निःशेषतश्छिन्नमतिपातितम्, आभुग्न[8]मविमुक्तास्थि वक्रम्, [9]अन्यतरपार्श्वावशिष्टं छिन्नम्, पाटितमणुबहुविदारितं वेदनावच्च, [10]शूकपूर्णमिवाध्मातं विपुलं [11]विस्फुटीकृतं स्फुटितमिति ॥१०॥

तेषु चूर्णितच्छिन्नातिपातितमज्जानुगतानि कृच्छ्रसाध्यानि, कृशवृद्धबालानां क्षतक्षीणकुष्ठश्वासिनां सन्ध्युपगतं चेति ॥ ११ ॥

भवन्ति चात्र ।

[12]भिन्नं कपालं कट्यां तु सन्धिमुक्तं तथा च्युतम् ।
जघनं प्रतिपिष्टं च वर्जयेत्तच्चिकित्सकः ॥ १२ ॥
[13]असंश्लिष्टं कपालं तु ललाटे चूर्णितं च यत् ।
भग्नं [14]स्तनान्तरे शङ्खे पृष्ठे मूर्ध्नि च वर्जयेत् ॥ १३ ॥

---

१ तन्त्रान्तरे द्वादशविधादप्यधिकमुक्तम् । तथा च माधवः—"भग्नं तु काण्डे बहुधा प्रयाति समासतो नामभिरेव तुल्यम्" इति । २ शर्म सुखं तस्य लाभः । 'शर्मशातसुखानि च' इत्यमरः । ३ अस्थि उभयतः ऊर्ध्वमधश्च मध्ये भग्नं सम्मूढं कार्यानर्हमिति सम्बन्धः । ४ पृथुतां = विस्तीर्णताम् । ५ छल्लं वल्कलम् अस्थि छल्लमिव सञ्जातमिवास्थिछल्लितम् । ६ अस्य स्थाने 'खल्लितम्' इति पाठान्तरम् । तत्र खल्लो गर्तः । ७ उन्नद्यति = उत्क्षिपति । ८ आभुग्नम् = ईषत्कुटिलम् । ९ एकतरपार्श्वावशिष्टमित्यर्थः । १० शूको यवादीनामग्रभागः, वेदनाविशेषे तात्पर्यम् । ११ विस्फुटीकृतं = विदलीकृतम् । १२ असाध्यतां निर्दिशति—**भिन्नमिति** । १३ असंश्लिष्टं = विघट्टितसन्धि ।

१४ स्तनान्तरे = उरसि, शङ्खे = शारीरे वक्ष्यमाणे द्वे मर्मणी, पृष्ठे = पृष्ठवंशे,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदितो यच्च दुर्जातमस्थि सन्धिरथापि वा ।
सम्यग्यमितमप्यस्थि दुर्न्यासाद्दुर्निबन्धनात् ॥ १४ ॥
सङ्क्षोभाद्वाऽपि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्चवर्जयेत् ।
मध्यस्य वयसोऽवस्थास्तिस्रो याः परिकीर्त्तिताः ॥ १५ ॥
तत्र स्थिरो भवेज्जन्तुरुपक्रान्तो विजानता ।
तरुणास्थीनि नम्यन्ते भज्यन्ते नलकानि तु ॥ १६ ॥
कपालानि विभिद्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च ।

इति सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने भग्ननिदानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## षोडशोऽध्यायः ।

अथातो मुखरोगाणां निदानं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
मुखरोगाः पञ्चषष्टिः सप्तस्वायतनेषु । तत्रायतनानि—ओष्ठौ,

---

मूर्ध्नि = चूडास्थाने । भालुकिनाऽप्युक्तम्—"शङ्खे मूर्ध्नि स्तनान्तरे वा काण्डेभग्नं मरणाय" इति । १ आदितः भग्नात्पूर्वतः, यदस्थि, दुर्जातं विकृतं, शोषादिना दूषितमित्यर्थः । २ सर्वेषामनवधानतोऽसाध्यत्वं प्रतिपादयति—**सम्यगिति** । सम्यग्यमितं = सम्यक्संहितम् । ३ दुर्न्यासात् = दुःस्थापनात्, दुर्निबन्धनात् = कुशातूलिकादिबन्धनवस्तुभिर्दृढतयाऽबन्धनात् । ४ संक्षोभात् = संहिताङ्गखण्डद्वयस्य सञ्चलनात् । ५ आतुरोपक्रमणीये "तस्य विकल्पो वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णताहानिरिति" इत्यादिना वर्णितास्तासु तिस्रोऽवस्थाः षोडशवर्षादूर्ध्वं चत्वारिंशद्यावत् ।

६ अस्थिविशेषेण भग्नविशेषमाह—**तरुणेति** । घ्राणकर्णकण्ठाक्षिपुटेषु तरुणास्थीनि नम्यन्ते वक्रीभवन्ति, एतेनात्र वक्रलक्षणं भग्नम् । नलकानि शाखास्थीनि भज्यन्ते त्रुटन्ति, कपालानि मस्तकादिकर्पराणि विभिद्यन्ते विदारणानि भवन्ति, रुचकानि दन्ताः स्फुटन्ति स्फुटितानि भवन्ति, चकाराद् वलयान्यपि स्फुटितानि भवन्ति, अस्थनः तरुणनलककपालवलयरुचकेति पञ्चभेदात् ।

**इति सुश्रुतसंहिताया निदानस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चदशोऽध्यायः ।**

### षोडशोऽध्यायः ।

७ भोजेनाप्युक्तम्—"दन्तेष्वष्टावोष्ठयोश्च मूलेषु दश पञ्च च । नव तालुनि जिह्वायां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दन्तमूलानि, दन्ताः, जिह्वा, तालु, कण्ठः, सर्वाणि चेति। तत्राष्टावोष्ठयोः, पञ्चदश दन्तमूलेषु, अष्टौ दन्तेषु, पञ्च जिह्वायाम्, नव तालुनि, सप्तदश कण्ठे, त्रयः सर्वेष्वायतनेषु ॥ ३ ॥

तत्रौष्ठप्रकोपौ[1] वातपित्तश्लेष्मसन्निपातरक्तमांसमेदोभिघातनिमित्ताः ॥ ४ ॥

कर्कशौ[2] परुषौ स्तब्धौ कृष्णौ तीव्ररुगन्वितौ।
दाल्येते[3] परिपाट्येते ह्योष्ठौ मारुतकोपतः ॥ ५ ॥
आचितौ पिडकाभिस्तु सर्षपाकृतिभिर्भृशम्।
सदाहपाकसंस्रावौ नीलौ पीतौ च पित्ततः ॥ ६ ॥
सवर्णाभिस्तु[4] चीयेते पिडकाभिरवेदनौ।
कण्डूमन्तौ कफाच्छ्नौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू ॥ ७ ॥
सकृत्[5]कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च।
सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडकाचितौ ॥ ८ ॥
खर्जूरफलवर्णाभिः पिडकाभिः समाचितौ।
रक्तोपसृष्टौ[6] रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ९ ॥
मांसदुष्टौ गुरू स्थूलौ मांसपिण्डवदुद्गतौ।
जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति[7] सूक्कस्योभयतो मुखात् ॥ १० ॥
मेदसा घृतमण्डाभौ[8] कण्डूमन्तौ स्थिरौ मृदू।
अच्छस्फटिकसङ्काशमास्रावं स्रवतो गुरू ॥ ११ ॥

---

पञ्चसप्तदशामयाः। कण्ठे त्रयः सर्वसरा एकषष्टिश्चतुःपराः"इति। चरके चतुःषष्टिविधाः, शार्ङ्गधरे चतुःसप्तविविधाः, वाग्भटे पञ्चसप्ततिविधाः, भावप्रकाशे च सप्तषष्टिविधा मुखरोगा उक्ताः। १ प्रकोपशब्देनेह तन्मूला रोगा उच्यन्ते। २ कर्कशौ= शाकपत्रवत् खरस्पर्शौ, परुषौ= कठोरौ, स्तब्धौ=निश्चलौ। ३ दाल्येते= विदार्येते, परिपाट्येते=किञ्चिदवदीर्णत्वचौ भवतः। ४ सवर्णाभिः=ओष्ठसमानवर्णाभिरित्यर्थः। ५ सकृत्=कदाचिद् विकृतिवशात्। ६ रक्तोपसृष्टौ= रक्तदूषितौ।

७ क्रिमयश्चात्र सूक्कस्य ओष्ठप्रान्तद्वितयस्य उभयत उभयपार्श्वाश्रयिणो मुखाद् व्रणास्याद् मूर्च्छन्ति उच्छ्रिता भवन्तीत्यर्थः। ८ घृतमण्डः=घृतस्योपरितनः स्वच्छो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षतजाभौ[1] विदीर्येते पाट्येते चाभिघाततः ।
ग्रथितौ[2] च समाख्यातावोष्ठौ कण्डूसमन्वितौ ॥ १२ ॥

दन्तमूलगतास्तु—शीतादः, दन्तपुप्पुटकः, दन्तवेष्टकः, शौषिरः, महाशौषिरः, परिदरः, उपकुशः, दन्तवैदर्भः, वर्द्धनः, अधिमांसः, नाड्यः[3] पञ्चेति ॥ १३ ॥

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो[4] यस्याकस्मात्[5] प्रवर्त्तते ।
दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥ १४ ॥
दन्तमांसानि शीर्यन्ते[6] पचन्ति च परस्परम् ।
शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसम्भवः ॥ १५ ॥
दन्तयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथुः सरुजो महान् ।
दन्तपुप्पुटको ज्ञेयः कफो[8]रक्तनिमित्तजः ॥ १६ ॥
स्रवन्ति पूयरुधिरं चला दन्ता भवन्ति च ।
दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसम्भवः ॥ १७ ॥
श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान् कफरक्तजः ।
लालास्रावी स विज्ञेयः कण्डूमान् शौषिरो गदः ॥ १८ ॥
दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते[9] ।

---

भागस्तस्यामेवाभा ययोस्तौ । १ क्षतजाभौ=रक्तच्छायौ, 'रक्तक्षतजशोणितम्' इत्यमरः । २ ग्रथितौ=ग्रन्थियुक्तौ । ओष्ठप्रकोपे वातजे शुद्धो वातः कारणम्, अभिघातजे तु कफरक्तसहित इति परस्परं भेद इति डल्हणः । भोजेनाप्युक्तम्—"क्षताक्षताभिहतौ वाऽपि रक्तावोष्ठौ सवेदनौ । भवतः सपरिस्रावौ कफरक्तप्रदूषितौ ॥" इति ।

३ नाड्यः पञ्चेतीति सर्वं मिलित्वा पञ्चदशसंख्याः पूर्यन्ते । पञ्च नाड्यो दोषादिभेदेन "दोषैस्त्रिभिर्भवति" इत्यादिना प्राग् नाडीनिदाने ज्ञातव्याः । शार्ङ्गधरसंहितायां "तथा त्रयोदशमिता दन्तमूलामयाः स्मृताः" इत्यादिना त्रयोदशसंख्याः परिगणिताः । तत्राधिकस्य दन्तविद्रधेर्लक्षणम्—"दन्तमांसैर्मलस्रावैर्बाह्यतः श्वयथुर्गुरुः । सदाहरुक् स्रवेद् भिन्नं पूयास्रं दन्तविद्रधिः ॥" इति । ४ दन्तवेष्टेभ्यः=दन्तबन्धनमांसेभ्य इत्यर्थः । ५ अकस्मात्=अभिघातादिनिमित्तं विनेत्यर्थः । ६ शीर्यन्ते=गलन्ति । ७ कफरक्तजत्वेऽपि रुजा लालास्रावाभावात् शौषिराद् भिन्नोऽयम् ।

८ चकारेण दन्ता ओष्ठौ चाप्यवदीर्यन्ते इति बोध्यम् । तदुक्तं भोजे—"विवृद्धमनिशं दन्तान् तालोष्ठमपि दारयेत् । महाशौषिर इत्येव सप्तरात्रान्निहन्त्यसून् ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दन्तमांसानि पच्यन्ते मुखं च परिपीड्यते ॥ १९ ॥
यस्मिन् स सर्वजो[1] व्याधिर्महाशौषिरसंज्ञकः ।
दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन् ष्ठीवति चाप्यसृक् ॥ २० ॥
पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो[2] हि सः ।
वेष्टेषु[3] दाहः पाकश्च तेभ्यो दन्ताश्चलन्ति च ॥ २१ ॥
आघट्टिताः[4] प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनाः ।
आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखं पूति च जायते ॥ २२ ॥
यस्मिन्नुपकुशः स स्यात् पित्तरक्तकृतो गदः ।
घृष्टेषु[5] दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान् ॥ २३ ॥
भवन्ति च चला दन्ताः स वैदर्भोऽभिघातजः ।
मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः ॥ २४ ॥
वर्द्धनः[6] स मतो व्याधिर्जाते रुक् च प्रशाम्यति ।
हानव्ये[7] पश्चिमे दन्ते महाञ्छोथो महारुजः ॥ २५ ॥
लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ।
दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः[8] ॥ २६ ॥

दन्तगतास्तु—दालनः, क्रिमिदन्तको, दन्तहर्षो, भञ्जनकः, शर्करा, कपालिका, श्यावदन्तको, हनुमोक्षश्चेति[9] ॥ २७ ॥

---

१ सर्वदोषेभ्यो जातः सर्वजः सान्निपातिकः । त्रिदोषजत्वेनैवास्य सप्तरात्राद् मारकत्वमुक्तं भोजे । २ दन्तमांसस्य परिदारणात्परिदरसञ्ज्ञा । ३ वेष्टेषु = दन्तवेष्टनमांसेष्वित्यर्थः । ४ आघट्टिताः=आचालिताः । ५ घृष्टेषु = दन्तकाष्ठादिना घृष्टेष्वित्यर्थः । ६ वर्धनः, खलीवर्धनः, अधिदन्त इति नामभेदः । ७ हानव्ये=हनुकुहरे, पश्चिमे = अन्तजे । ८ यथा नाडीनिदाने वातपित्तकफसन्निपातागन्तुनिमित्ता ईरितास्तथा दन्तमांसगता अपि पञ्च नाड्यो बोध्या इत्यर्थः ।

९ शार्ङ्गधरे—"दन्तरोगा दशाख्याताः" इत्यादिना दश दन्तगता रोगाः परिगणिताः । तत्र सुश्रुतातिरिक्तयोः करालदन्तचालयोर्लक्षणे प्रदर्श्येते—"शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः । करालान् विकटान् दन्तान् करालो न स सिद्ध्यति ॥" इति, "चालश्चलद्भिर्दशनैर्भक्षणादधिकव्यथैः" इति । शार्ङ्गधरस्य दन्तभेदः, सुश्रुतस्य भञ्जनकश्च एक एव रोगः प्रतिभाति, तीव्ररुजाकरत्वात् । तत्र दन्तभेदलक्षणम्—"दन्तभेदे


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाल्यन्ते बहुधा दन्ता यस्मिंस्तीव्ररुगन्विताः ।
दालनः स इति ज्ञेयः सदागतिनिमित्तजः[1] ॥ २८ ॥
कृष्णश्छिद्री[2] चलः स्रावी ससंरम्भी महारुजः ।
अनिमित्तरुजो वाताद्विज्ञेयः कृमिदन्तकः[3] ॥ २९ ॥
दशनाः शीतमुष्णं च सहन्ते स्पर्शनं न च ।
यस्य तं दन्तहर्षं[4] तु व्याधिं विद्यात् समीरणात् ॥ ३० ॥
वक्त्रं वक्रं भवेद्यस्मिन् दन्तभङ्गश्च[5] तीव्ररुक् ।
कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनकसंज्ञितः ॥ ३१ ॥
शर्करेव[6] स्थिरीभूतो मलो दन्तेषु यस्य वै ।
सा दन्तानां गुणघ्नी[7] तु विज्ञेया दन्तशर्करा ॥ ३२ ॥
दलन्ति दन्तवल्कानि[8] यदा शर्करया सह ।
ज्ञेया कपालिका सैव दशनानां विनाशिनी ॥ ३३ ॥
योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः ।
श्यावतां नीलतां वाऽपि गतः स श्यावदन्तकः[9] ॥ ३४ ॥
वातेन तैस्तैर्भावैस्तु[10] हनुसन्धिर्विसंहतः[11] ।
हनुमोक्ष[12] इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः[13] ॥ ३५ ॥

---

द्विजास्तोदभेदरुक्स्फुटनान्विताः" इत्यष्टाङ्गसङ्ग्रहोक्तं ज्ञेयम् । १ सदागतिः = वायुः । असाध्योऽयं दालनः । २ कृष्णः = कृष्णदन्तकः । ३ क्रिमिकृतच्छिद्रत्वेन वेदनाविशेषयुक्तः कृमिदन्तकः ।

४ दन्तहर्षस्य वातजत्वेऽप्युष्णासहत्वं व्याधिप्रभावात् कफरक्तावृतत्वाद्वा बोद्धव्यम् । ५ दन्तभङ्गकारिणा दोषेण वक्त्रस्यापि वक्रत्वं भवेदित्यर्थः । अयमप्यसाध्यः । ६ शर्करेव = उपलखण्ड इव । ७ गुणघ्नी = शुक्लत्वदृढत्वादिगुणहरणशीलेत्यर्थः । ८ दन्तवल्कानि वल्कलाकारा दन्तकवचा दलन्ति स्फुटन्ति । ९ श्यावदन्तकः, संज्ञायां कन् । असाध्योऽयम् । १० तैस्तैर्भावैः = वातव्याधिनिदानोक्तैः "उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि वा । हसतो जल्पतोऽवाऽपि" इति भावैरित्यर्थः । ११ विसंहतः = विघट्टितः, हनुसन्धिभ्यः किञ्चिच्चलित इति भावः । १२ हनुमोक्षस्य दन्तदेशसामीप्याद् दन्तपीडाकरत्वाच्च दन्तरोगे समावेश इति बोध्यम् । १३ अर्दितलक्षणमिव लक्षणं यस्येत्यर्दितलक्षणः । एतेन दन्तपीडाकरत्वे तात्पर्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिह्वागतास्तु—कण्टकाः[1] त्रिविधास्त्रिभिर्दोषैः, अलास, उपजिह्विका चेति ॥ ३६ ॥

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता[2] प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ।
पित्तेन पीता परिदह्यते च चिता सरक्तैरपि कण्टकैश्च ।
कफेन गुर्वी बहुला चिता च मांसोद्भवैः[3] शाल्मलिकण्टकाभैः ॥३७॥
जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलासं[4]संज्ञः कफरक्तमूर्त्तिः ।
जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले तु जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥३८॥
जिह्वाग्ररूपः[5] श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य[6] जातः कफरक्तयोनिः ।
प्रसेककण्डूपरिदाहयुक्ता प्रकथ्यतेऽसावुपजिह्विकेति ॥३९॥

तालुगतास्तु—गलशुण्डिका, तुण्डिकेरी, अध्रुषः, मांसकच्छपः, अर्बुदं, मांससङ्घातः, तालुपुप्पुटः, तालुशोषः, तालुपाक इति ॥४०॥

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात् प्रवृद्धो दीर्घः शोफो ध्मातवस्तिप्रकाशः[7] ।
तृष्णाकासश्वासकृत्सम्प्रदिष्टो व्याधिर्वैद्यैः कण्ठशुण्डीति नाम्ना[8] ॥४१॥
शोफः स्थूलस्तोददाहप्रपाकी[9] प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मता तु ।
शोफः स्तब्धो लोहितस्तालुदेशे रक्ताज्ज्ञेयः सोऽध्रुषो रुग्ज्वराढ्यः ॥४२॥
कूर्मोत्सन्नोऽवेदनो[10] ऽशीघ्रजन्माऽरक्तो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा स्यात्

---

१ त्रिविधाः कण्टकाः=वातकण्टकः, पित्तकण्टकः, कफकण्टकश्च । शार्ङ्गधरे जिह्वागतरोगेषु अधिजिह्वाख्यः पञ्चसंख्याऽतिरिक्तः षष्ठो भेदो दृश्यते । जिह्वोपरि जातो यः श्वयथुस्तेनाधिजिह्वा कथिता । सुश्रुते कण्ठरोगे पठितेयम् । २ स्फुटिता=मनाग्विदीर्णा प्रसुप्ता=रसस्यानवबोधादचेतना, शाकः=खरपत्रो वृक्षविशेषः, 'सागवान'इति ख्यातस्तस्य छदनं पत्रं तत्प्रकाशा, खरस्पर्शेत्यर्थः । ३ मांसोद्भवैः=मांसाङ्कुरैः । ४ असाध्योऽयम् । कफरक्तयोर्मूर्त्तिरिव मूर्तिरस्येति कफमूर्तिः । ५ जिह्वाग्ररूपः=जिह्वाग्रसन्निभः ।

६ जिह्वाम् उन्नम्य ऊर्ध्वीकृत्य जात उत्पन्नः । एतेन जिह्वाया अधोभवतीत्युक्तमिति डल्हणः । ७ ध्मातवस्तिप्रकाशः=वातपूरितचर्मपुटतुल्यः । ८ कण्ठशुण्डी=गलशुण्डी । ९ तोददाहप्रपाकी, एतेन वातपित्तानुबन्धो बोद्धव्यः, प्रागुक्ताभ्यां=श्लेष्मासृग्भ्याम्, तुण्डिकेरी वनकार्पासीफलं तत्तुल्यशोथतया तुण्डिकेरी । तदुक्तमष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"हनुसन्ध्याश्रितः कण्ठे कार्पासीफलसन्निभः । पिच्छिलो मन्दरुक्शोफः कठिनस्तुण्डिकेरिका ॥" इति । १० अवेदनः=अल्पवेदन इति श्रीकण्ठः । अशीघ्रजन्मा=चिरजः, मन्दानुसारीत्यर्थः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्माकारं[1] तालुमध्ये तु शोफं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिङ्गम्[2] ॥ ४३ ॥
दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजं च तालवन्तःस्थं मांससङ्घातमाहुः ।
नीरुक् स्थायी कोलमात्रः कफात् स्यान्मेदोयुक्तात् पुप्पुटस्तालुदेशे[3]४४
शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालुः श्वासो वातात्तालुशोषः[4] सपित्तात् ।
पित्तं कुर्यात् पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येनं[5] तालुपाकं वदन्ति ॥ ४५ ॥

कण्ठगतास्तु-रोहिण्यः[6] पञ्च, कण्ठशालूकम्, अधिजिह्वो, बलयो, बलास, एकवृन्दो, वृन्दः, शतघ्नी, गिलायुः, गलविद्रधिः, गलौघः, स्वरघ्नो, मांसतानो, विदारी चेति ॥ ४६ ॥

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ[7]
पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् ।
प्रदूष्य मांसं गलरोधिनोऽङ्कुरान्
सृजन्ति यान् साऽसुहरा[8] हि रोहिणी ॥ ४७ ॥

जिह्वां समन्ताद् भृशवेदना ये मांसाङ्कुराः कण्ठनिरोधिनः स्युः ।
तां रोहिणीं वातकृतां वदन्ति वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ताम्[9] ॥ ४८ ॥
क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजा स्यात् ।
स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका गुर्वी स्थिरा सा कफसम्भवा वै ॥४९॥
गम्भीरपाकाऽप्रतिवारवीर्या[10] त्रिदोषलिङ्गा त्रयसम्भवा स्यात् ।
स्फोटाचिता पित्तसमानलिङ्गाऽसाध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिकेयम्॥५०॥

---

१ पद्माकारं = कमलकर्णिकाकारम् । तदुक्तं भोजेन—"उपर्येव भवेन्नद्धो यथा पद्मस्य कर्णिका । पार्श्वतश्चाङ्कुरैर्दीर्घैर्नासा चाप्यवसीदति । श्लेष्मरक्तसमुत्थानं तत्ता-ल्वर्बुदसंज्ञितम् ॥" इति । २ प्रोक्तलिङ्गं=पूर्वोक्तरक्तार्बुदतुल्यलिङ्गम् । ३ पुप्पुटः = तालुपुप्पुट इत्यर्थः । तालुशब्दोऽत्र लुप्तनिर्दिष्टो द्रष्टव्यः । ४ भोजेन—"तालुशोषो भवेद् वातात्" इत्युक्तम् । वाग्भटेन तु—"वातपित्तज्वरायासैस्तालुशोषस्तदाह्वयः" इति वात-पित्ताभ्यां तालुशोषः पठितः । ५ एनं=पाकम् । ६ वातजपित्तजकफजसन्निपातजर-क्तजा इति पञ्च रोहिण्यः । ७ मूर्च्छितौ = प्रवृद्धौ, 'मूर्च्छितो दृढवृद्धयोः' इत्यजयः । ८ दोषानुसारेण मारकत्वकालो निर्दिष्टः श्रीकण्ठोद्धृतखरनादे—"सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति त्र्यहाच्छ्लेष्मसमुद्भवा । पञ्चाहात् पित्तसम्भूता सप्ताहात्पवनोत्थिता॥"इति । ९ वाता-त्मकोपद्रवाः = कम्पमन्यास्तम्भादयः । १० अप्रतिवारवीर्या=सद्योमारकतया दुर्निवा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः ।
खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति ॥५१॥
जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वाप्रबन्धोपरि रक्तमिश्रात् ।
ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ ५२ ॥
बलासः एवायतमुन्नतं च शोफं करोत्यन्नगतिं निवार्य ।
तं सर्वथैवाप्रतिवारवीर्यं विवर्जनीयं बलयं वदन्ति ॥ ५३ ॥
गले तु शोफं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् ।
मर्मच्छिदं दुस्तरमेतदाहुर्बलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ ५४ ॥
वृत्तोन्नतो यः श्वयथुः सदाहः कण्ड्वन्वितोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ।
नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ ५५ ॥
समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति ।
तं चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात् सतोदं पवनात्मजं तु ॥ ५६ ॥
वर्तिर्घना कण्ठनिरोधिनी या चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः ।
नानारुजोच्छ्रायकरी त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नीव शतघ्न्यसाध्या ॥५७॥

---

रशक्तिरित्यर्थः । १ कण्टकोपलक्षितः शूको जलशूकः, स इव भूतो जात इति कण्टकशूकभूतः । २ शालूकं कमलकन्दं तत्समकाठिन्येन कण्ठशालूकम् ।

३ जिह्वाप्रबन्धस्य जिह्वामूलस्योपरि उपरिष्टात् । एतेन जिह्वातलजाया उपजिह्वाया व्यावर्तनं भवति । तदुक्तं चरके–"जिह्वोपरिष्टादुपजिह्विका स्यात् कफादधस्तादधिजिह्विका च' इति । ४ बलासः=श्लेष्मा । ५ अन्नस्य गतिर्येन स्रोतसा सोऽन्नगतिरन्नवहमार्गः, अन्नस्य प्रवेशो वेति श्रीकण्ठः । ६ मर्मच्छिदं=प्राणायतनहृदयमर्मच्छिदम् । ७ निपुणाः=कुशलाः, 'वैद्याः कथयन्ति' इति शेषः । ८ अपाक्यः=पाकानर्हः, ईषत्पाकीति डल्हणः । ९ बलासक्षतजप्रसूतः=कफरक्तजात इत्यर्थः ।

१० एकवृन्दस्यावस्थाविशेष एव वृन्दः । तुल्यस्थानाकृतितो न सप्तदशसंख्याऽतिरेकः । विस्तरस्त्वन्यत्र द्रष्टव्यः । ११ पिशितप्ररोहैः=मांसाङ्कुरैरित्यर्थः । १२ नानारुजोच्छ्रायकरी=वातपित्तकफज–तोददाहकण्ड्वादिवेदनावृद्धिकरीत्यर्थः । १३ "अयःकण्टकसंच्छन्ना शतघ्नी महती शिला" तत्तुल्यो व्याधिः शतघ्नीशब्दवाच्यः । असाध्या=प्राणहरी । भोजेऽप्युक्तम्–"वातपित्तकफा दुष्टा मांसाङ्कुरसमाचिताम् । मध्यकण्ठचर्यां वर्तिं जनयन्ति ह्युपेक्षिताः । शङ्कुनेव गले विद्धा शतघ्न्येषा न सिद्धयति ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्परुक् स्यात् कफरक्तमूर्त्तिः[1]।
संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः[2] ॥ ५८ ॥
सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोफो रुजो यत्र च सन्ति सर्वाः।
स सर्वदोषो गलविद्रधिस्तु तस्यैव[3] तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ ५९ ॥
शोफो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वातगतेर्निहन्ता।
कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्यतेऽसौ ॥ ६० ॥
योऽतिप्रताम्यन्[4] श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः[5]।
कफो दिग्धेष्वनिलायनेषु[6] ज्ञेयः स रोगः श्वसनात् स्वरघ्नः ॥६१॥
प्रतानवान्[7] यः श्वयथुः सुकष्टो[8] गलोपरोधं कुरुते क्रमेण।
स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत्[9] सर्वकृतो विकारः ॥६२॥
सदाहतोदं श्वयथुं सरक्तमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम्[10]।
पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात् स[11] तु येन शेते ॥६३॥
सर्वसरास्तु[12] वातपित्तकफशोणितनिमित्ताः[13] ॥ ६४ ॥
स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्यस्याचितं सर्वसरः स वातात्।
रक्तैः सदाहैस्तनुभिः सपीतैर्यस्याचितं चापि स पित्तकोपात् ॥६५॥
कण्डूयुतैरल्परुजैः सवर्णैर्यस्याचितं चापि स वै कफेन।

---

१ कफरक्तमूर्तिः=कफरक्तज इत्यर्थः। २ सक्तमिव=आसक्तमिव। ३ तस्यैव पूर्वोक्तस्यैव सर्वजस्य सन्निपातजस्य विद्रधेस्तुल्यः सदृश इत्यर्थः। ४ अतिप्रताम्यन्=अत्यर्थं तमः प्रपश्यन्निष्यर्थः।

५ शुष्को नीरसो विमुक्तश्च किमपि गिलितुमशक्यतयाऽस्वाधीनः कण्ठो यस्य स शुष्कविमुक्तकण्ठः। ६ कफोपदिग्धेषु=कफलिप्तेषु, अनिलायनेषु=वातमार्गेषु। ७ प्रतानवान्=विस्तारयुक्तः। ८ सुकष्टः=महादुःखप्रदायीति श्रीकण्ठः। ९ प्राणप्रणुत्=प्राणप्रेरकः। १० पूतिविशीर्णमांसं=दुर्गन्धिगलितमांसमित्यर्थः। ११ स पुरुषो येन पार्श्वेन विशेषाद् बाहुल्येन शेते, तस्मिन्नेव पार्श्वे विदारी भवतीत्यर्थः।

१२ मुखगतोष्ठादिसप्तस्थानव्यापकतया सर्वसरत्वं ज्ञेयमिति विजयरक्षितः। सर्वस्मिन् मुखे ये भवन्ति ते सर्वसराः, मुखपाका इत्यर्थः। ते पञ्चविधाः प्रदर्शिताः शार्ङ्गधरे—"मुखपाको भवेद्वातात् पित्तात्तद्वत्कफादपि। रक्ताच्च सन्निपाताच्च" इति। १३ अत्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्तेन पित्तोदित एक एव कैश्चित् प्रदिष्टो मुखपाकसंज्ञः ॥ ६६ ॥

इति भगवता श्रीधन्वन्तरिणोपदिष्टायां तच्छिष्येण महर्षिणा सुश्रुतेन विरचितायां सुश्रुतसंहितायां निदानस्थाने मुखरोगनिदानं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

# अथ शारीरस्थानम् ।

## प्रथमोऽध्यायः ।

अथातः सर्वभूतचिन्ताशारीरं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान्धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखि-

---

शोणितोपादानं मतान्तराभिप्रायेणेत्यनन्तर स्पष्टीभविष्यति । १ कैश्चिद् आचार्यैः रक्तेन मुखपाकसंज्ञ एकः सर्वसरः प्रदिष्टः स पित्तोदित एवेति सम्बन्धः । इति शम् ।

इति पण्डितश्रीकपिलदेवमिश्रतनुजन्मना मिश्रोपाह्वश्रीसुदामाशर्मणा निर्मितायां सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां निदानस्थाने षोडशोऽध्यायः ।

समाप्तमिदं निदानस्थानम् ।

### अथ शारीरस्थानम् ।

वीणावादनवेलायां यन्मुखे स्मितसान्द्रता ।
तां दयार्द्रहितां वाणीं सुदामामिश्र आश्रये ॥ १ ॥

२ रोगनिदानज्ञानानन्तरं चिकित्साया अवसरः, सा तत्तत्स्थानज्ञानमन्तरा न सम्भवतीति तत्तदङ्गप्रत्यङ्गादिज्ञापनार्थं शारीरस्थानमारभ्यते—**अथात इति** । सर्वभूतचिन्ताशारीरम्, शरीरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरः, सर्वभूतानां मनुष्यतिर्यक्स्थावरादिप्राणिनां चिन्ता विचारः, सा विद्यते यस्मिन्नध्याये, छप्रत्ययस्तस्य 'अध्यायानुवाकयोर्लुक्'इति लुक् । ततः सर्वभूतचिन्ता चासौ शारीरश्चेति कर्मधारयस्तम् । ३ अव्यक्तं निरूपयति—**सर्वेति** । सर्वभूतानां कारणमव्यक्तं नामेति सम्बन्धः । न विद्यते व्यक्ति-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लस्य जगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं नाम। तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं समुद्र इवौदकानां भावानाम् ॥ ३ ॥

तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते तल्लिङ्ग एव, तल्लिङ्गाच्च महतस्तल्लक्षण एवाहङ्कार उत्पद्यते, स त्रिविधो वैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति। तत्र वैकारिकादहङ्कारात्तैजससहायात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते। तद्यथा-श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाग्घस्तोपस्थपायुपादमनांसीति। तत्र पूर्वाणि पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि, इतराणि पञ्च

---

रवयवो यस्येत्यव्यक्तं, बहिरिन्द्रियागोचर इत्यर्थः। मूलप्रकृतिपर्यायोऽयमव्यक्तशब्दः कथम्भूतम्? अकारणं, न विद्यते कारणं यस्य तद् अविकृतिरूपम्, न कस्यचित्कार्यमित्यर्थः। तदुक्तं साङ्ख्यकारिकायाम्-'मूलप्रकृतिरविकृतिः'इति। तस्य स्वरूपं निर्दिशति-**सत्त्वेति**। सत्त्वरजस्तमांसि लक्षणं स्वरूपं यस्येति सत्त्वरजस्तमोलक्षणम्। पुनः कथम्भूतम्? अष्टरूपं, प्रकृतिभावेनैवाव्यक्तं महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणीत्यष्टौ रूपाणि यस्य तत्। तथा चोक्तं गीतायाम्--'भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥' इति। पुनरपि किं विशिष्टम्? अखिलस्य जगतः सम्भवहेतुः अभिव्यक्तिकारणम्। १ क्षीयते इति क्षेत्रं शरीर तज्जानन्तीति क्षेत्रज्ञास्तेषां, जीवानामित्यर्थः। अधिष्ठानम्=आश्रयः, औदकानाम् उदकसम्बन्धिनां भावानां पदार्थानां समुद्र इव, यथा एकः समुद्रो बहूनां जलजन्तूनामाश्रयस्तथैव तदव्यक्तमेकमपि अनेकेषां जीवानामाश्रयो भवतीति।

२ अव्यक्तात्सर्वतत्त्वानामुत्पत्तिक्रमं दर्शयति--**तस्मादिति**। तस्मात्=क्षेत्रज्ञाधिष्ठितात्, अव्यक्तात्=मूलप्रकृतेः, महान्=आद्यं कार्यं बुद्धितत्त्वम्। साङ्ख्यकारिकायां सृष्टिक्रममाह--'प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः। तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि॥'इति। साङ्ख्यप्रवचनभाष्ये--'महत्तत्त्वमिति प्रोक्तं बुद्धितत्त्वं तदुच्यते'इति। "प्रकृतिर्विश्वजननीं पूर्वं बुद्धिमजीजनत्" इत्यादिना शार्ङ्गधरेऽपि। उत्पद्यते=व्यक्तीभवति, तल्लिङ्गः--तस्याव्यक्तस्य लिङ्गमिव लिङ्गं यस्येति तल्लिङ्गः सत्त्वरजस्तमोलक्षण एव।

३ अहङ्कारः=अभिमानव्यापारलक्षणः, 'अहमित्यभिमानेन यः क्रियासु प्रवर्तते। कार्यकारणयुक्तस्तु तदहङ्कारलक्षणम्॥' इति। ४ वैकारिकः=सात्त्विकः, तैजसः=राजसः, भूतादिः=तामसः। ५ तल्लक्षणानि=सत्त्वलक्षणानि, प्रकाशकत्वात् सत्त्वप्रधानानीति निष्कर्षः। तदुक्तं सांख्यकारिकायाम्--'सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात्। भूतादेस्तन्मात्रः स तामसः, तैजसादुभयम्॥'इति। ६ बुद्धेराश्रय-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वायुः, सूर्यश्चक्षुषः, रसनस्यापः, पृथिवी घ्राणस्य, वचसोऽग्निः, हस्तयोरिन्द्रः, पादयोर्विष्णुः, पायोर्मित्रः, प्रजापतिरुपस्थस्येति॥ ७॥

तत्र सर्व एवाचेतन एष वर्गः, पुरुषः पञ्चविंशतितमः कार्यकारणसंयुक्तश्चेतयिता भवति। सत्यप्यचैतन्ये प्रधानस्य पुरुषकैवल्यार्थं प्रवृत्तिमुपदिशन्ति क्षीरादींश्चात्र हेतूनुदाहरन्ति ॥ ८ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रकृतिपुरुषयोः साधर्म्यवैधर्म्ये व्याख्यास्यामः। तद्यथा—उभावप्यनादी, उभावप्यनन्तौ, उभावप्यलिङ्गौ, उभावपि नित्यौ, उभावप्यनपरौ, उभौ च सर्वगताविति। एकौ तु प्रकृतिर-

---

बुद्धेरधिष्ठाता ब्रह्मेत्यर्थः। एवमग्रेऽपि व्याख्येयम्।

१ पूर्वोक्ताचेतनवर्गस्य पुरुषश्चेतयिता कथं भवतीति विवृणोति—**तत्रेति**। तत्र=सर्वेभूतेषु मध्ये, एषः=पूर्वोक्तः, वर्गः=चतुर्विंशतितत्त्वरूपः, सर्व एवाचेतन इति सम्बन्धः। पुरुषः पञ्चविंशतितमः पञ्चविंशतितत्त्वरूपः, कार्यकारणसंयुक्तः—कार्येण महदादिविकारेण कारणेन मूलप्रकृत्या संयुक्तः, संयोग एव भोगापवर्गार्थं सर्गं करोतीति भावः; चेतयिता चेतनो भवतीति तात्पर्यम्। २ प्रधानस्य=प्रकृतेः, "प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा। एतानि तस्या नामानि शिवमाश्रित्य या स्थिता॥" इति मूलप्रकृतेः पर्यायनामान्याह शार्ङ्गधरे। पुरुषकैवल्यार्थं पुरुषस्य मुक्तये, 'मुक्तिः कैवल्यनिर्वाणश्रेयोनिःश्रेयसामृतम्' इत्यमरः। प्रवृत्तिं कार्याकारेण परिणामम् उपदिशन्ति, आचार्या इति शेषः। अत्र अचेतनायाः प्रकृतेः प्रवृत्तौ क्षीरादींश्च हेतून् उदाहरन्ति। तद्यथा—'वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य। पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य॥' इति साङ्ख्यकारिकायाम्। यथा वत्सविवृद्धयर्थं क्षीरमचेतनं प्रवर्तते, एवं प्रकृतिरचेतनाऽपि पुरुषविमोक्षणाय प्रवर्तिष्यते इति तद्भावः।

३ समानो धर्मः साधर्म्यम्, विरुद्धो धर्मो वैधर्म्यम्, साधर्म्यं च वैधर्म्यं चेति तें साधर्म्यवैधर्म्ये। ४ तयोः प्राक् साधर्म्यं दर्शयति—**उभाविति**। उभौ=प्रकृतिपुरुषौ, अनादी=न विद्यते आदिः कारणं ययोस्तौ, अनन्तौ=न विद्यतेऽन्तो नाशो ययोस्तौ, अलिङ्गौ=लिङ्ग्यतेऽनेनेति लिङ्गमाकारः, न विद्यते लिङ्गं ययोस्तौ, नित्यौ=कारणरहितौ, अपरौ=न विद्यते परः श्रेष्ठो याभ्यां तौ, अनपराविति पाठे—न विद्यतेऽपरो याभ्यां तौ, यतः प्रकृतिपुरुषावेव महदादिभ्यः परौ, सर्वगतौ व्यापकौ।

५ वैधर्म्यं दर्शयति—**एकेति**। त्रिगुणा=सत्त्वरजस्तमोगुणा, बीजधर्मिणी, बीजस्य धर्मो बीजधर्मः, सोऽस्त्यस्या इति बीजधर्मिणी, सत्त्वरजस्तमसां गुणानां साम्यावस्थायां स्थिता सर्वेषां महदादिविकाराणां बीजभावेनावस्थिता बीजधर्मिणीत्युच्यते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


चेतना त्रिगुणा बीजधर्मिणी प्रसवधर्मिण्यमध्यस्थधर्मिणी चेति। बहवस्तु पुरुषाश्चेतनावन्तोऽगुणा अबीजधर्माणोऽप्रसवधर्माणो मध्यस्थधर्माणश्चेति ॥ ९ ॥

तत्र कारणानुरूपं कार्यमिति कृत्वा सर्व एवैते विशेषाः सत्त्वरजस्तमोमया भवन्ति। तदज्ञनत्वात् तन्मयत्वाच्च तद्गुणा एव पुरुषा भवन्तीत्येके भाषन्ते ॥ १० ॥

वैद्यके तु—

स्वभावमीश्वरं कालं यदृच्छां नियतिं तथा।
परिणामं च मन्यन्ते प्रकृतिं पृथुदर्शिनः ॥ ११ ॥

---

इति डल्हणः। संहारे भूतेन्द्रियतन्मात्राहङ्कारमहदादीनामाधारभूतेति बीजधर्मिणीति गयी। प्रसवधर्मिणी=सर्गावस्थायां कार्याकारेण परिणामिनी। डल्हणः—सैव सिसृक्षुणा विभुना पुरुषेण सार्द्धं क्षोभमागम्य साम्यावस्थातः प्रच्युता महदहङ्कारादिक्रमेण चराचरस्य जगतः प्रसवित्रीति प्रसवधर्मिणीत्युच्यते। अमध्यस्थधर्मिणी=सत्त्वादिगुणरूपतया सुखदुःखभोगवतीत्यर्थः। तथा चोक्तमीश्वरकृष्णेन—'तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्। संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः॥'अद्धा न कश्चित् पुरुषो बध्यते, न कश्चित् संसरति, न कश्चिन्मुच्यते; प्रकृतिरेव तु नानाश्रया सती बध्यते संसरति मुच्यते चेति बन्धमोक्षसंसाराः पुरुषेषूपचर्यन्ते इति तदर्थः।

१ कारणस्य शुक्लतन्तुरूपकारणस्य अनुरूपं सदृशं कार्यं शुक्लपटस्यैवोत्पत्तिरूपकार्यम्, इति कृत्वा इति हेतोः सर्व एवैते विशेषाः प्रकाराः महदादिकाः सत्त्वरजस्तमोमया भवन्ति, तदज्ञनत्वात्, तेषां सत्त्वरजस्तमसामज्ञनमाकारो येषु ते तदज्ञनाः पुरुषाः सत्त्वादिलक्षणास्तेषां भावस्तत्त्वं तस्मात् 'तदज्ञनता तदाकारता' इति वाचस्पतिः। तन्मयत्वात्=सत्त्वादिरूपमहदादिवृत्तौ प्रतिबिम्बनात् पुरुषाणां सत्त्वादिमयत्वात्। तथा च पातञ्जलसूत्रम्—'वृत्तिसारूप्यमितरत्र'इति, जपाकुसुमस्फटिकयोरिव बुद्धिपुरुषयोः सन्निधानाभेदग्रहे बुद्धिवृत्तीः समारोप्य शान्तोऽस्मि दुःखितोऽस्मि मूढोऽस्मीत्यध्यवस्यतीति तदर्थः। तद्गुणाः=सुखिनो दुःखिनो मूढाश्च पुरुषा भवन्ति, इत्येके=सांख्याचार्याः, एतेन पूर्वोक्तस्य सर्वस्यैकीयमतं प्रतिपादितम्।

२ वैद्यके तु–पृथुदर्शिनः विपुलदर्शिनः स्वभावादयः षट् प्रकृतिं कारणं मन्यन्ते इति सम्बन्धः। स्वभावादिभेदभिन्नायाः षड्विधाया अपि प्रकृतेरुदाहरणान्यत्राभिहितानि। तत्र तावत् स्वभावस्य कारणत्वम्—"अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते" "सन्निवेशः शरीराणां दन्तानां पतनोद्भवौ। तलेष्वसम्भवो यश्च रोम्णामेतत्स्वभावतः"॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्मयान्येव भूतानि[1] तद्गुणान्येव चादिशेत् ।
तैश्च तल्लक्षणः कृत्स्नो भूतग्रामो व्यजन्यत ॥ १२ ॥
तस्योपयोगोऽभिहितश्चिकित्सां प्रति सर्वदा ।
भूतेभ्यो हि परं[3] यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सिते ॥ १३ ॥
यतोऽभिहितं[4]—तत्सम्भवद्द्रव्यसमूहो भूतादिरुक्तः । भौतिकानि

---

अपि च—"धातुषु क्षीयमाणेषु वर्धेते द्वाविमौ सदा । स्वभावं प्रकृतिं कृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥" इत्यादिनोक्तम् । एवं वह्निरूपिण ईश्वरस्य जीवितादिकारणत्वम्—"जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः । सौदम्याद्रसानाददानो विवेक्तुं नैव शक्यते । अग्निमूलं बलं पुंसां बलमूलं हि जीवितम् ॥" इत्यादिना दर्शितम् । शीतोष्णलक्षणस्य कालस्य कारणत्वम्—"महाभूतविशेषास्तु शीतोष्णद्वयभेदतः । काल इत्यध्यवस्यन्ति न्यायमार्गानुसारिणः ॥' इत्यादिना लक्षितम् । यदृच्छा पुनरलक्षित आकस्मिकपदार्थाविर्भावस्तस्याः कारणत्वम्—"यदृच्छाया चोपगतानि पाकं पाकक्रमेणोपचरेद्विधिज्ञः"इत्यादिना प्रदर्शितम् । नियतिः पूर्वजन्मार्जितौ धर्माधर्मौ, तत्कारणत्वं यथा—"ब्रह्मस्त्रीसज्जनवधपरस्वहरणादिभिः । कर्मभिः पापरोगस्य प्राहुः कुष्ठस्य सम्भवम् ॥"इति, "कर्मजा व्याधयः केचित्"इत्यादिना चोक्तम् । परिणामस्य कारणत्वम्—"ता एवौषध्यः कालपरिणामात्परिणतवीर्या बलवत्यो हेमन्ते भवन्त्यापश्च" इत्यादिना दर्शितम् ।

वस्तुतस्तु गुणत्रयात्मिका प्रकृतिरेव कारणम् । केवलं स्वभावादिरूपेणावभासनात् तानि तानि स्वभावादीनि नामानि लभते । विस्तरस्त्वन्यत्र द्रष्टव्यः ।

१ भूतानि = आकाशादीनि पञ्चमहाभूतानि, तन्मयान्येव = अवकाशचलोष्णद्रवखरस्वभावादिधर्मविशेषाक्रान्तप्रकृतिपरिणाममयान्येव, तद्गुणानि-तस्याः प्रकृतेर्गुणाः सत्त्वरजस्तमांसि एव गुणा येषां तानि तद्गुणानि, च आदिशेत् । तैः = आकाशादिभूतैः, तल्लक्षणैः—तेषां भूतानां लक्षणमिव लक्षणं यस्य स तथोक्तः, कृत्स्नः = सकलः, भूतग्रामः = स्थावरजङ्गमात्मकः, व्यजन्यत = विविधो जनितः । २ तस्य = भूतग्रामस्य, उपयोगः = प्रयोजनम् । ३ परम् = अव्यक्तादि । ४ अभिहितं = वेदोत्पत्तिनामकेऽध्याये प्रतिपादितमित्यर्थः । तस्य पुरुषस्य सम्भव उत्पत्तिस्तदर्थो द्रव्यसमूहः, अथवा तस्य पुरुषस्य सम्भवद्द्रव्याणि शुक्रशोणितादीनि तेषां समूहः संयोगविशेषः, किं विशिष्टः ? भूतादिः-भूतानि महाभूतानि आदीनि प्रथमानि प्रधानानि वा यस्य सः, अथवा भूतं पृथिव्यादिकं महाभूतमादिर्मूलकारणं यस्य सः, अथवा तत्सम्भवद्द्रव्यसमूहः शुक्रशोणितादिसंयोगः स भूतानां प्राणिनामादिर्मूलकारणम्, तत्र व्यक्तीभावात् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


चेन्द्रियाण्यायुर्वेदे वर्ण्यन्ते, तथेन्द्रियार्थाः ॥ १४ ॥

भवति चात्र ।

इन्द्रियेणेन्द्रियार्थं तु स्वं स्वं गृह्णाति मानवः ।
नियतं तुल्ययोनित्वान्नान्येनान्यमिति स्थितिः ॥ १५ ॥

न चायुर्वेदशास्त्रेषूपदिश्यन्ते सर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च । असर्वगतेषु च क्षेत्रज्ञेषु नित्यपुरुषख्यापकान् हेनुदाहरन्ति । आयुर्वेदशास्त्रसिद्धान्तेष्वसर्वगताः क्षेत्रज्ञा नित्याश्च, तिर्य्यग्योनिमानुषदेवेषु सञ्चरन्ति धर्माधर्मनिमित्तम् । त एतेऽनुमानग्राह्याः परमसूक्ष्माश्चेतनावन्तः शाश्वता लोहितरेतसोः सन्निपातेष्वभिव्यज्यन्ते ।

---

१ श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि भौतिकान्युक्तानि—"खं श्रोत्रे स्पर्शने वायुर्दर्शने तेज उत्कटम् । सलिलं रसने भूमिर्घ्राणे तज्ज्ञैर्निरूपितम् ॥" इति । २ इन्द्रियार्थाः शब्दस्पर्शादयो विषया भौतिका उक्ताः—"शब्दो वैहायसः स्पर्शो वायवीयः प्रकीर्तितः । रूपमाग्नेयमाप्योऽत्र रसो गन्धस्तु पार्थिवः ॥" इति । ३ तुल्ययोनित्वात् = समानभूतकारणत्वात , नान्येनान्यम् । अयं भावः—श्रोत्रादीनामिन्द्रियाणां शब्दादीनामिन्द्रियार्थानां च पाञ्चभौतिकत्वेऽपि यस्य भूतस्य यत्र यत्रेन्द्रिये आधिक्यं तेन तेनेन्द्रियेण तस्य तस्यैव गुणा गृह्यन्ते, अर्थादाकाशीयं श्रोत्रेन्द्रियमाकाशीयगुणं शब्दमादत्ते न तु श्रोत्रेन्द्रियं गन्धमन्यं वा गुणं गृह्णाति । वैशेषिकैरपि—"घ्राणेन्द्रियं पार्थिवं रूपादिषु मध्ये गन्धकस्यैव व्यञ्जकत्वात्" इत्याद्युक्तम् । एवमन्यत्राप्यवसेयमिति ।

४ आयुर्वेदस्य सांख्यादिभ्य इन्द्रियाणां भौतिकातिरिक्तमपि भेदं दर्शयति—न चेति । आयुर्वेदशास्त्रेषु सर्वगताः व्यापकाः, नित्याश्च क्षेत्रज्ञाः कर्मपुरुषाः, न चोपदिश्यन्ते, किन्तु असर्वगता नित्याश्च कथिताः । क्षेत्रज्ञस्यासर्वगतत्वनित्यत्वानङ्गीकारे—पूर्वदेहपरित्यागापरदेहपरिग्रहपरलोकगमनादिरसम्भवः स्यात् । तथाऽनित्यत्वाङ्गीकारे—'योऽहं बाल्ये पितरावन्वभवं स एव स्थाविरे प्रणप्तृनननुभवामि' इत्यादिकं ज्ञानमसम्भवं स्यात् । ५ असर्वगतेषु = अणुपरिमाणेष्वित्यर्थः । ६ हेतून् = 'सदकारणवन्नित्यम्' इत्यादीन् । भोजेनाप्युक्तम्—"शुभाशुभाभ्यां कर्मभ्यां प्रेरणान्मनसो गतेः । देहाद् देहान्तरं याति क्रिमिवच्छाश्वतोऽव्ययः । नित्य इत्युच्यते सद्भिः सन्नकारणवान् यतः॥" इति । ७ सञ्चरन्तीत्यनेन सर्वगतस्य सञ्चरणासम्भवादणुत्वे हेतुरपि सूचितः । धर्माधर्मनिमित्तमित्यनेन च शुभाशुभफलभोक्ता क्षेत्रज्ञः सुतरां नित्य इति सूचितम् ।

८ परमसूक्ष्मत्वादेव न प्रत्यक्षाः, किन्तु अनुमानग्राह्या इति तात्पर्यम् । ९ लो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यतोऽभिहितं-पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इति। स एव कर्मपुरुषश्चिकित्साऽधिकृतः ॥ १६ ॥

तस्य सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नः प्राणापानावुन्मेषनिमेषौ बुद्धिर्मनः सङ्कल्पो विचारणा स्मृतिर्विज्ञानमध्यवसायो विषयोपलब्धिश्च गुणाः ॥ १७ ॥

सात्त्विकास्तु-आनृशंस्यं संविभागरुचिता तितिक्षा सत्यं धर्म आस्तिक्यं ज्ञानं बुद्धिर्मेधा स्मृतिर्धृतिरनभिषङ्गश्च । राजसास्तु-दुःखबहुलताऽटनशीलताऽधृतिरहङ्कार आनृतिकत्वमकारुण्यं दम्भो मानो हर्षः कामः क्रोधश्च । तामसास्तु-विषादित्वं नास्तिक्यमधर्मशीलता बुद्धेर्निरोधोऽज्ञानं दुर्मेधस्त्वमकर्मशीलता निद्रालुत्वञ्चेति ।

आन्तरीक्षास्तु-शब्दः शब्देन्द्रियं सर्वच्छिद्रसमूहो विविक्तता च । वायव्यास्तु—स्पर्शः स्पर्शेन्द्रियं सर्वचेष्टासमूहः सर्वशरीरस्पन्दनं लघुता च । तैजसास्तु-रूपं रूपेन्द्रियं वर्णः सन्तापो भ्राजिष्णुता पक्तिरमर्षस्तैक्ष्ण्यं शौर्य्यं च । आप्यास्तु-रसो रसनेन्द्रियं

---

हितरेतसोः = पञ्चभूतात्मकयोः शुक्रशोणितयोः, सन्निपातेषु = संयोगेषु, अभिव्यज्यन्ते = जायन्ते । १ अभिहितं=बीजाध्याये कथितमित्यर्थः। २ शरीरी = आत्मा, समवायः = संयोगः । ३ कर्मफलभागित्यर्थः ।

४ आत्मनः शरीरमनःसंयोगेऽभिव्यज्यमानान् गुणान्निर्दिशति—**तस्येति** । तस्य = कर्मपुरुषस्य। ५ विज्ञानं = शिल्पशास्त्रादिबोधः, अध्यवसायः = निश्चयात्मिका बुद्धिः, विषयोपलब्धिः विषयाणां शब्दादीनामुपलब्धिरिन्द्रियद्वाराऽवगतिः, एते षोडश गुणाः । ६ सत्त्वादियुक्तस्य मनसो गुणान्निर्दिशति—**सात्त्विकास्त्विति** । आनृशंस्यम् = अक्रूरकर्मकारिता, संविभागरुचिता = संविभज्य मोदकादिदाने रुचिरभिलाषो यस्य तस्य भावस्तथोक्ता, तितिक्षा = क्षमा । ७ अस्ति धर्मोक्षपरलोकादिकमिति बुद्धया चरतीत्यास्तिकस्तस्य भाव आस्तिक्यम्। ८ अनभिषङ्गः = अनासक्तिः, फलेच्छां विना श्रेयः । ९ आनृतिकत्वम् = अनृतभाषित्वम् । १० बुद्धेर्निरोधः = बुद्धेः प्रतीघातः, अवकुण्ठनमिति यावत्। दुर्मेधस्त्वं = दुष्टबुद्धित्वम्। ११ महाभूतगुणान्निर्दिशति—**आन्तरिक्षास्त्विति** । आन्तरिक्षा = आकाशीयाः । १२ विविक्तता = शारीराणां भावानां सिरास्नाय्वस्थिपेशीप्रभृतीनां जातिव्यक्तिभ्यां मिथः पृथक्त्वम् । १३ सर्वचेष्टासमूहः = नमनोन्नमनादिसर्वक्रियानिवह इत्यर्थः । १४ भ्राजि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वद्रवसमूहो गुरुता शैत्यं स्नेहो रेतश्च । पार्थिवास्तु—गन्धो गन्धेन्द्रियं सर्वमूर्तसमूहो गुरुता चेति ॥ १९ ॥

तत्र सत्त्वबहुलमाकाशं, रजोबहुलो वायुः, सत्त्वरजोबहुलोऽग्निः, सत्त्वतमोबहुला आपः, तमोबहुला पृथिवीति ॥ २० ॥

श्लोकौ चात्र भवतः ।

[2]अन्योन्यानुप्रविष्टानि सर्वाण्येतानि निर्दिशेत् ।
स्वे स्वे द्रव्ये तु सर्वेषां व्यक्तं लक्षणमिष्यते ॥ २१ ॥
अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ता विकाराः षोडशैव तु ।
क्षेत्र[3]ज्ञश्च समासेन स्वतन्त्रपरतन्त्रयोः ॥ २२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने सर्वभूतचिन्ताशारीरं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः ।

[4]अथातः शुक्रशोणितशुद्धिं शारीरं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
वातपित्तश्लेष्मशोणितकुणपग्रन्थिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषरेतसः

---

ष्णुता=दीप्तिः; पक्तिः=जठराग्निकृताहारपरिणतिः । १ सर्वमूर्तसमूहः=दोषधातुमलेषु काठिन्यपदार्थसमूह इत्यर्थः । 'सर्वमूर्तिसमूह' इति पाठान्तरम् ।

२ महाभूतानामन्योऽन्यानुप्रवेशेऽपि स्वे स्वे द्रव्ये व्यक्तं लक्षणं भवतीति दर्शयति—**अन्योऽन्येति** । यद्यपि भूतान्तरेषु पूर्वभूतगुणस्यानुप्रवेशोऽस्तीति सर्वेषां गन्धप्रभृतिधर्माणां सर्वत्रावस्थितिः, तथाऽप्यनुप्रविष्टस्य दुर्बलत्वात् पृथिव्याद्यंशस्याल्पत्वाद्वा न व्यक्तेति भावः । ३ क्षेत्रं सूक्ष्मस्थूलशरीरं तत् जानातीति क्षेत्रज्ञः पुरुषः, अथं स्वतन्त्रे आयुर्वेदशास्त्रेऽणुपरिणामः, परतन्त्रे सांख्यादिशास्त्रे सर्वगतः समासेन सङ्क्षेपेणोक्त इति तात्पर्यम् ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः शारीरस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां प्रथमोऽध्यायः ।**

### द्वितीयोऽध्यायः ।

४ पूर्वाध्याये "लोहितरेतसोः सन्निपातेष्वभिव्यज्यन्ते" इत्यविशेषादुक्तम्, तत्राविशुद्धशुक्रशोणितसंयोगेन क्षेत्रज्ञजननासम्भवात्तयोः शुद्धिविधिं प्रतिपादयितुं शुक्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]प्रजोत्पादने न समर्था भवन्ति ॥ ३ ॥

तेषु वातवर्णवेदनं वातेन, पित्तवर्णवेदनं पित्तेन, श्लेष्मवर्णवेदनं श्लेष्मणा, शोणितवर्णवेदनं कुणपगन्ध्यनल्पं च रक्तेन, ग्रन्थिभूतं श्लेष्मवाताभ्यां, पूतिपूयनिभं पित्तश्लेष्मभ्यां, क्षीणं प्रागुक्तं पित्तमारुताभ्यां, मूत्रपुरीषगन्धि सन्निपातेनेति। तेषु कुणपग्रन्थिपूतिपूयक्षीणरेतसः कृच्छ्रसाध्याः। मूत्रपुरीषरेतसस्त्वसाध्याः साध्यमन्यच्चेति ॥ ४ ॥

आर्त्तवमपि त्रिभिर्दोषैः शोणितचतुर्थैः पृथग्द्वन्द्वैः समस्तैश्चोपसृष्टमबीजं भवति। तदपि दोषवर्णवेदनाऽऽदिभिर्विज्ञेयम्। तेषु कुणपग्रन्थिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यं साध्यमन्यच्चेति॥ ५॥

भवन्ति चात्र।

[9]तेष्वाद्यान् शुक्रदोषांस्त्रीन् स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत्[10]।
[11]क्रियाविशेषैर्मतिमांस्तथा [12]चोत्तरबस्तिभिः ॥ ६ ॥

---

शोणितशुद्धिं शारीरमारभ्यते। १ प्रजोत्पादने=सन्तानोत्पादने इत्यर्थः।

२ वातस्य वातदुष्टस्य वर्णान् रक्तादीन् वेदनाश्च तोदभेदादीन् करोतीति णिचि अचि च वातवर्णवेदनम्। एवमन्यत्रापि यथायोगमूह्यम्। चरके विशेषः—"फेनिलं तनुरूक्षञ्च कृच्छ्रेणाल्पं च मारुतात्। भवत्युपहतं शुक्रं न तद्गर्भाय कल्पते॥ सनीलमथवा पीतमत्युष्णं पूतिगन्धि वा। दहल्लिङ्गं विनिर्याति शुक्रं पित्तेन दूषितम्॥ श्लेष्मणा रुद्धमार्गन्तु भवत्यत्यर्थपिच्छिलम्। इति दोषाः समाख्याताः शुक्रस्य तु विशेषतः॥" इति। ३ कुणपं शवस्तस्येव गन्धोऽस्येति कुणपगन्धि।

४ वातादिदूषितरक्तेनेति व्यपदेशः, यस्माद्रक्तस्य दोषा एव दूषयितारः। यथाऽग्नितप्तघृततैलाभ्यां दग्धं द्रव्यं घृततैलदग्धमित्युच्यते, न त्वग्निना दग्धमिति। ५ ग्रन्थिभूतं=ग्रन्थिसदृशमित्यर्थः। ६ पूतिपूयनिभं=दुर्गन्धिपूयसदृशम्। ७ प्राक्=दोषादिविज्ञानीये क्षीणवीर्यलक्षणमुक्तमित्यर्थः। ८ दोषवर्णवेदनादिभिः=शुक्रदोषोक्ताभिरित्यर्थः।

९ शुक्रदोषाणां चिकित्सां प्रतिपादयति—**तेष्विति**। आद्यान्=वातपित्तकफकृतान्। १० आदिशब्दाद् वमनविरेचननिरूढानुवासनोत्तरबस्तयः पञ्चकर्माण्युपदिश्यन्ते। ११ क्रियाविशेषैः=तन्त्रान्तरोक्तैरमृतसारलौहामृतप्राशगोधूमाद्यघृतब्राह्म्यादिरसायनादिभिश्चेत्यर्थः। १२ पूर्वोक्तादिशब्दात्पञ्चकर्मान्तर्गतोत्तरबस्तेर्लाभे पुनरत्र ग्रहणं प्राधान्यार्थम्।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाययेत नरं सर्पिर्भिषक् कुणपरेतसि ।
धातकीपुष्पखदिरदाडिमार्जुनसाधितम् ॥ ७ ॥
पाययेदथवा सर्पिः सालसारादिसाधितम् ।
ग्रन्थिभूते शटीसिद्धं पालाशे वाऽपि भस्मनि ॥ ८ ॥
परूषकवटादिभ्यां पूयप्रख्ये च साधितम् ।
प्रागुक्तं वक्ष्यते यच्च तत् कार्यं क्षीणरेतसि ॥ ९ ॥
विट्प्रभे पाययेत् सिद्धं चित्रकोशीरहिङ्गुभिः ।
स्निग्धं वान्तं विरिक्तं च निरूढमनुवासितम् ॥ १० ॥
योजयेच्छुक्रदोषार्त्तं सम्यगुत्तरवस्तिना ।
स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च ॥ ११ ॥
शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा ।
विधिमुत्तरवस्त्यन्तं कुर्य्यादार्त्तवशुद्धये ॥ १२ ॥
स्त्रीणां स्नेहादियुक्तानां चतसृष्वार्त्तवार्त्तिषु ।

---

१ घातक्यादीनि त्रीण्यपि घृतानि क्वाथकल्काभ्यामेव साधितानि बोध्यानि । तदुक्तम्–"यत्राधिकरणेनोक्तिर्गणे स्यात्स्नेहसंविधौ । तत्रैव कल्कनिर्यूहाविष्येते स्नेहवेदिना ॥" इति । अविशेषात् कल्कः सेटकपरिमितो घृतं चतुःसेटकं जलं च षोडश सेटकम् । २ सालसारादिगणो द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः । ३ पलाशभस्माढकं षड्भिः सलिलाढकैः सप्तकृत्वः परिस्रुतमाढकशेषं प्रस्थघृतपाकाय प्रयोज्यमिति डल्हणः । ४ द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तपरूषकादिन्यग्रोधादिगणाभ्यामित्यर्थः ।

५ प्राग् दोषादिविज्ञानीये उक्तं स्वयोनिवर्धनं द्रव्यम्, वक्ष्यते क्षीणबलीयेऽध्याये । अत्र चरकोक्तविशेषोऽपि बोध्यः–"वाजीकरणयोगोक्तैरुपयोगैः सुखैर्हितैः । रक्तपित्तहरैर्योगैर्योनिव्यापादिकैस्तथा । दुष्टं यथा भवेद्रेतस्ततस्तत्समुपाचरेत् । घृतं च जीवनीयं यच्च्यवनप्राश एव च ॥ गिरिजस्य प्रयोगश्च रेतोदोषानपोहति ॥ वातान्विते हिताः शुक्रे निरूहाः सानुवासनाः । अभयाऽऽमलकीयं च पैत्ते शरतं रसायनम् ॥ मागध्यमृतलोहानां त्रिफलाय रसायनम् । कफोत्थितं शुक्रदोषं हन्याद्भल्लातकस्य च ॥" इत्यादिः । ६ मलमूत्रवाचकोऽयं विट्शब्दः, मूत्रपुरीषगन्धप्रकाशे इत्यर्थः । ७ कुणपादीनां सर्वेषां सामान्यं प्रतीकारं प्रतिपादयति—**स्निग्धमिति** । ८ शुद्धशुक्रलक्षणमाह—**स्फटिकाभमिति** । चरकेऽपि—"स्निग्धं घनं पिच्छिलं च मधुरं चाविदाहि च । रेतः शुद्धं विजानीया-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुर्यात् कल्कान[1] पिचूंश्चापि पथ्यान्याचमनानि च ॥ १३ ॥
ग्रन्थिभूते पिबेत् पाठां त्र्यूषणं वृक्षकाणि च ।
दुर्गन्धिपूयसङ्काशे मज्जतुल्ये तथाऽऽर्त्तवे ॥ १४ ॥
पिबेद्भद्रश्रियः क्वाथं चन्दनक्वाथमेव च ।
शुक्रदोषहराणां च यथास्वमवचारणम् ॥ १५ ॥
योगानां शुद्धिकरणं[3] शेषास्वप्यार्तवार्त्तिषु ।
अन्नं शालियवं मद्यं हितं मांसं च पित्तलम् ॥ १६ ॥
शशास्रृक्प्रतिमं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम् ।
तदार्तवं प्रशंसन्ति[4] यद्वासो न विरञ्जयेत् ॥ १७ ॥
तदेवातिप्रसङ्गेन[5] प्रवृत्तमनृतावपि ।
असृग्दरं विजानीयादतोऽन्यद्रक्तलक्षणात् ॥ १८ ॥
असृग्दरी भवेत् सर्वैः साङ्गमर्दैः सवेदनैः ।
तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा तमस्तृषा ॥ १९ ॥
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः[6] ।
तरुण्या हितसेविन्यास्तमल्पोपद्रवं भिषक् ॥ २० ॥
रक्तपित्तविधानेन[7] यथावत् समुपाचरेत् ।
[8]दोषैरावृतमार्गत्वादार्तवं नश्यति स्त्रियाः ॥ २१ ॥
तत्र मत्स्यकुलत्थाम्लतिलमाषसुरा हिताः ।

---

च्छ्वेतं स्फटिकसन्निभम् ॥" इति । १ कल्कादयो वातादिदोषहरद्रव्यकृता योनिव्यापत्सूक्ताः, आचमनानि योनिप्रक्षालनार्थास्त्रिफलादिक्काथाः । २ चन्दनक्वाथं = श्वेतचन्दनक्वाथमित्यर्थः । ३ शुक्रदोषहराणां यथास्वं योगानां शेषासु शुद्धिकरणमिति सम्बन्धः ।

४ आचार्यास्तदेवार्तवं गर्भोत्पादनाय प्रशंसन्ति, यच्छुष्कं जलेन प्रक्षालितं वस्त्रं लौहित्योपेतं न कारयतीति तात्पर्यम् । तदुक्तं वृद्धवाग्भटेन—"आर्तवं पुनः शशरुधिरलाक्षारसोपमं धौतं च विरञ्यमानं शुद्धमाहुः" । इति । ५ अतिप्रसङ्गेन अतिमात्रया दीर्घकालानुवर्तित्वेन चानृतावृतावपि प्रवृत्तमसृग्दरं विजानीयात् । अत एतस्मात् शशेत्यादिना प्राक् प्रतिपादितादृक्तलक्षणाद् अन्यद् शोणितवर्णनीये यादृशमुक्तं तादृशमित्यर्थः । ६ वातजाः = कम्पादयो रोगाः । ७ अत्र रक्तपित्तग्रहणेन रक्तार्शोरक्तातिसारावप्युपलक्ष्येते फलसाम्यादित्याहुरिति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । ८ सचिकित्सितं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाने मूत्रमुदश्वित्च दधि शुक्तं च भोजने ॥ २२ ॥
क्षीणं प्रागीरितं रक्तं सलक्षणचिकित्सितम् ।
तथाऽप्यत्र विधातव्यं विधानं नष्टरक्तवत् ॥ २३ ॥
एवमदुष्टशुक्रः शुद्धार्त्तवा च ॥ २४ ॥

ऋतौ प्रथमदिवसात् प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवास्वप्नाञ्जनाश्रुपातस्नानानुलेपनाभ्यङ्गनखच्छेदनप्रधावनहसनकथनातिशब्दश्रवणावलेखनानिलायासान् परिहरेत् । किं कारणं ? दिवा स्वपन्त्याः स्वापशीलः, अञ्जनादन्धः, रोदनाद्विकृतदृष्टिः, स्नानानुलेपनाद् दुःखशीलः, तैलाभ्यङ्गात्कुष्ठी, नखापकर्त्तनात् कुनखी, प्रधावनाच्चञ्चलः, हसनाच्छचावदन्तौष्ठतालुजिह्वः, प्रलापी चातिकथनात् , अतिशब्दश्रवणाद् बधिरः, अवलेखनात् खलतिः, मारुतायाससेवनादुन्मत्तो गर्भो भवतीत्येवमेतान् परिहरेत् । दर्भसंस्तरशायिनीं करतलशरावपर्णान्यतमभोजिनीं हविष्यं, त्र्यहं च भर्त्तुः संरक्षेत् । ततः शुद्धस्नातां

---

नष्टार्तवं निर्दिशति—**दोषैरिति** । १ मूत्रं = गोमूत्रमित्यर्थः । उदश्विदर्धोदकं तक्रम् । तदुक्तं निघण्टौ—"तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्वित्त्वर्द्धवारिकम्" इति । २ आर्तवक्षये यथोचितकालादर्शनमल्पता वा योनिवेदना च । तत्र संशोधनमाग्नेयानां च द्रव्याणां विधिवदुपयोग इति प्राग् दोषादिविज्ञानीयोक्तम् । अष्टाविंशत्येकोनत्रिंशद्दिनानन्तरमार्तवस्यादर्शनमल्पदर्शनं वा योन्यादौ वेदना चेति क्षीणार्तवलक्षणम् । ३ प्रकृतत्वाद्रक्तवद् रक्तार्तववदित्यर्थः । ४ भवतीति शेषः ।

५ ऋतुर्नाम शोणितदर्शनोपलक्षितो गर्भधारणयोग्यः स्त्रीणामवस्थाविशेष इति कुल्लूकभट्टः । "ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः । चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥" इति मनुः । शोणितदर्शनात्प्रभृति स्त्रीसम्पर्कगमनादौ शिष्टनिन्दितैश्चतुर्भिरन्यैरहोरात्रैस्सह षोडश अहोरात्राणि मासि मासि स्त्रीणामृतुरिति तदर्थः। वृद्धवाग्भटोक्तर्तुकालस्तु—"ऋतुस्तु दृष्टार्तवो द्वादशरात्रं भवति षोडशरात्रमित्यन्ये। शुद्धयोनिगर्भाशयार्तवायाः मासमपि केचित् । तद्वददृष्टार्तवोऽप्यस्तीत्यपरे" इति ।

६ अवलेखनं=कङ्कतिकाऽऽदिना केशप्रसाधनम् । ७ खलतिः = इन्द्रलुप्ती । ८ आदौ जीर्णशोणितापगमेन शुद्धा पश्चात् स्नातेति तां शुद्धस्नाताम् । तदुक्तम्—"नवे तनौ च सञ्जाते विगते जीर्णशोणिते । नारी भवति संशुद्धा पुंसा संसृज्यते तदा ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थेऽहन्यहतवासां समलङ्कृतां कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनां भर्त्तारं [1]दर्शयेत्। तत् कस्य हेतोः ?॥ २५॥

पूर्वं पश्येद्तुस्नाता यादृशं नरमङ्गना।
तादृशं जनयेत् पुत्रं भर्त्तारं दर्शयेदतः॥ २६॥

ततो[2]विधानं पुत्रीयमुपा[3]ध्यायः समाचरेत्।
कर्मान्ते च क्रमं ह्येनमारभेत विचक्षणः॥ २७॥

[4]ततोऽपराह्णे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिःस्निग्धः सर्पिःक्षीराभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमाषोत्तराहारां नारीमुपेयाद्रात्रौ सामादिभिरभिविश्वास्य। विकल्प्यैवं चतुर्थ्यां षष्ठ्यामष्टम्यां दशम्यां द्वादश्यां चोपेयादिति पुत्रकामः॥ २८॥

एपूत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च।
प्रजासौभाग्यमैश्वर्यं बलं च दिवसेषु वै॥ २९॥

अतः परं पञ्चम्यां सप्तम्यां नवम्यामेकादश्यां च स्त्रीकामः। त्रयोदशीप्रभृतयो निन्द्याः[5]॥ ३०॥

तत्र प्रथमे दिवसे ऋतुमत्यां मैथुनगमनायुष्यं पुंसां भवति। यश्च तत्राधीयते गर्भः स प्रसवमानो विमु[6]च्यते। द्वितीयेऽप्येवं सूतिकागृहे वा। तृतीयेऽप्येवमसम्पूर्णाङ्गोऽल्पायुर्वा भवति। चतु[7]र्थे तु सम्पूर्णाङ्गो दीर्घायुश्च भवति। न च प्रवर्त्तमाने रक्ते बीजं प्रविष्टं गुणकरं भवति, यथा नद्यां प्रतिस्रोत[8]ः प्लाविद्रव्यं प्रक्षिप्तं प्रतिनिवर्त्तते नोर्ध्वं गच्छति तद्वदेव द्रष्टव्यम्। तस्मान्नियमवतीं त्रिरात्रं परिहरेत्। अतः परं मासादुपेयात्॥ ३१॥

---

१ वैद्यइति शेषः। २ भर्तर्यनासन्ने पुत्रादिकमपि पश्येत्। ३ उपाध्यायस्त्वत्र वैदिककर्मकुशलो याज्ञिकः। पुत्राय हितं पुत्रीयम्। पुत्रीयविधानमन्यत्र धर्मशास्त्रादौ द्रष्टव्यम्।

४ पुत्रीयविधानान्ते यः क्रमस्तं निर्दिशति–**तत इति**। यत उक्तम्–"स्त्रियाः शुक्रेऽधिके स्त्री स्यात्पुमान् पुंसोऽधिके भवेत्। तस्माच्छुक्रविवृद्ध्यर्थं वृष्यं स्निग्धं च सेवयेत्॥" इति। ५ नपुंसकजननान्निन्द्या इत्यर्थः। ६ प्राणैरिति शेषः। ७ चतुर्थं दिवसेऽपि रजोऽनिवृत्तौ न सङ्गच्छेत्। ८ प्रतिस्रोतः=धाराऽभिमुखमित्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसु लक्ष्मणावटशुङ्गासहदेवाविश्वदेवानामन्यतमं क्षीरेणाभिषुत्य त्रींश्चतुरो वा बिन्दून् दद्याद् दक्षिणे नासापुटे पुत्रकामायै, न च तान्निष्ठीवेत् ॥ ३२ ॥

ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्याद्गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः ।
ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्यादङ्कुरो यथा ॥ ३३ ॥
एवं जाता रूपवन्तः सत्त्ववन्तश्चिरायुषः ।
भवन्त्यृणस्य मोक्तारः सत्पुत्राः पुत्रिणो हिताः ॥ ३४ ॥

तत्र तेजोधातुः सर्ववर्णानां प्रभवः । स यदा गर्भोत्पत्तावब्धातुप्रायो भवति तदा गर्भं गौरं करोति, पृथिवीधातुप्रायः कृष्णं, पृथिव्याकाशधातुप्रायः कृष्णश्यामं, तोयाकाशधातुप्रायो गौरश्यामम् । यादृग्वर्णमाहारमुपसेवते गर्भिणी तादृग्वर्णप्रसवा भवतीत्येके भाषन्ते । तत्र दृष्टिभागमप्रतिपन्नं तेजो जात्यन्धं करोति, तदेव रक्तानुगतं रक्ताक्षं, पित्तानुगतं पिङ्गाक्षं, श्लेष्मानुगतं शुक्लाक्षं वातानुगतं विकृताक्षमिति ॥ ३५ ॥

भवन्ति चात्र ।

घृतपिण्डो यथैवाग्निमाश्रितः प्रविलीयते ।

---

१ चकारादलब्धगर्भाया अपि । तथा च लब्धगर्भाया लक्ष्मणाऽऽदिनस्यदानं गर्भस्थापनार्थम् । अलब्धगर्भायास्तु गर्भग्रहणार्थमिति ध्येयम् ।

लक्ष्मणालक्षणमुद्धृतवान् डल्हणः—"पुत्रकाकाररक्ताल्पबिन्दुभिर्लाञ्छितच्छदा । लक्ष्मणा पुत्रजननी बस्तगन्धाकृतिर्भवेत् ॥" इति । तां च शरत्काले पुष्पफलोपेतां दृष्ट्वा शनिदिने सन्ध्यायां तस्याश्चतुर्भागेषु खदिरकीलकान् निखायापरेद्युर्हस्तमूलपुष्यैर्योगं गते दिवाकरे मन्त्रवद् गृहीत्वा समानवर्णवत्साया गोः क्षीरेण यथाविधि नस्यं दद्यात् । वटशुङ्गाः=वटप्ररोहाः । २ अष्टाङ्गहृदये विशेषः—"क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासापुटे स्वयम् । पुत्रार्थं दक्षिणे सिञ्चेद्वामे दुहितृवाञ्छया ॥" इति । ३ चतुर्णामृतुक्षेत्राम्बुबीजानामिति सम्बन्धः । दार्ष्टान्तिके—ऋतुः स्त्रीणां रजःसमयः, क्षेत्रं गर्भाशयः, अम्बु आहारपाकजो रसः, बीजं शुक्रशोणितम् । ४ "पितुर्ऋणं पिण्डदानात्" इत्यादि पितृणामृणत्रयस्य मोक्षणशीला इत्यर्थः ।

५ गर्भस्य गौरकृष्णादिवर्णहेतूनभिदधाति—तत्रेति । ६ अब्धातुप्रायः=आ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विसर्पत्यार्त्तवं नार्यास्तथा पुंसां समागमे ॥ ३६ ॥
बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ ।
यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ ॥ ३७ ॥
पित्रोरत्यल्पबीजत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ।
स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥ ३८ ॥
यः पूतियोनौ जायेत स सौगन्धिकसंज्ञितः ।
स योनिशेफसोर्गन्धमाघ्राय लभते बलम् ॥ ३९ ॥
स्वे गुदेऽब्रह्मचर्य्याद्यः स्त्रीषु पुंवत् प्रवर्तते ।
कुम्भीकः स च विज्ञेय, ईर्ष्यकं शृणु चापरम् ॥ ४० ॥
दृष्ट्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्तते ।
ईर्ष्यकः स च विज्ञेयः, षण्डकं शृणु पञ्चमम् ॥ ४१ ॥
यो भार्यायामृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्त्तते ।
ततः स्त्रीचेष्टिताकारो जायते षण्डसंज्ञितः ॥ ४२ ॥

---

प्यधातुबहुल इत्यर्थः । १ गर्भानुपयोगि शुक्रमप्यासां चरतीत्याह वृद्धवाग्भटः—"योषितोऽपि स्रवन्त्येव शुक्रं पुंसां समागमे । तन्न गर्भस्य किञ्चित्तु करोतीति न चिन्त्यते॥" इति । २ धर्मेतरपुरस्सरौ–धर्मस्तदितरोऽधर्मस्तौ पुरस्सरौ ययोस्तौ । तथा च यमौ धर्माधर्मपुरोगामिनौ भवत इत्यर्थः । गयदासस्तु धर्मेतरोऽधर्मस्तत्पुरस्सरौ ——अत एव तदुत्पत्तौ प्रायश्चित्तमप्युपदिष्टमिति व्याख्यातवान् । ३ आसेक्यपुरुषलक्षणमाह—**पित्रोरिति** । आसेक्यो मुखयोनीति नामान्तरम् । ४ अन्यपुरुषेण स्वमुखे मैथुनं कारयित्वा तस्य शुक्रं प्राश्य मेढ्रोत्थानं लभते इत्यर्थः । ५ सौगन्धिकनामेत्यर्थः । नासायोनीति नामान्तरम् । ६ बलं=मैथुने शक्तिम् ।

७ यः स्वे गुदे स्त्रीवदधोभूतः पुरुषान्तरेण मैथुनं कारयित्वा पश्चात् स्त्रीषु विषये पुरुषवद् मैथुनं करोति स कुम्भीकनामा ज्ञेयः । अस्योत्पत्तौ हेतुमाह चरकः—"मातुर्व्यवायप्रतिघेन वक्री स्याद्बीजदौर्बल्यतया पितुश्च" इति । गयदासस्त्वेतदुत्पत्तिहेतौ काश्यपोक्तं श्लोकं पठति—"अरजस्कां यदा नारीं श्लेष्मरेता व्रजेदृतौ । अन्यसक्ता भवेत्प्रीतिर्जायते कुम्भिलस्तदा" ॥ ८ "ईर्ष्यकः स तु विज्ञेयो दृष्टियोनिस्तु स स्मृतः" इति तन्त्रान्तराद् ईर्ष्यको दृष्टियोन्यपरपर्यायः । अस्योत्पत्तौ हेतुमाह दृढबलः—"ईर्ष्याऽभिभूतावपि मन्दहर्षावीर्ष्याह्वयस्यापि वदन्ति हेतुम्" इति । ९ अङ्गनेव उत्तानीभूय विपरीतबन्धेनेति यावत् । १० स्त्रीचेष्टितः समेढ्रोऽपि पंशक्तिहीनः, स्त्र्याकारः श्मश्रुर-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतौ पुरुषवद्वाऽपि प्रवर्तेताङ्गना यदि[1] ।
तत्र कन्या यदि भवेत् सा भवेन्नरचेष्टिता[2] ॥ ४३ ॥
आसेक्यश्च सुगन्धी च कुम्भीकश्चेर्ष्यकस्तथा ।
सरेतसस्त्वमी ज्ञेया अशुक्रः षण्डसंज्ञितः ॥ ४४ ॥
अनया विप्रकृत्या[3] तु तेषां शुक्रवहाः सिराः ।
हर्षात् स्फुटत्वमायान्ति ध्वजोच्छ्रायस्ततो भवेत् ॥ ४५ ॥
आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ॥ ४६ ॥
यदा नार्यावुपेयातां वृषस्यन्त्यौ कथञ्चन ।
मुञ्चन्त्यौ शुक्रमन्योन्यमनस्थिस्तत्र[4] जायते ॥ ४७ ॥
ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमावहेत् ।
आर्त्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि ॥ ४८ ॥
मासि मासि विवर्धेत गर्भिण्या गर्भलक्षणम् ।
कललं[5] जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणैः[6] ॥ ४९ ॥
सर्पवृश्चिककूष्माण्डविकृताकृतयश्च ये ।
गर्भास्त्वेते स्त्रियाश्चैव ज्ञेयाः पापकृता भृशम् ॥ ५० ॥

---

हितः । डल्हणस्तु–स्त्र्याकृतिः स्त्रीचेष्टितश्च स्त्रीवदधोभूतः स्वमेढ्रस्योर्ध्वप्रदेशेऽपरपुरुषाद् वीर्यं च्युतिं कारयतीति ।

१ अधुना नारीषण्डं निर्दिशति—ऋताविति । पुरुषवद् न्युब्जीभूयेत्यर्थः । २ स्त्रीरूपाऽपि पुंवत् स्त्रियमारुह्य तद्योनौ स्वयोनिघर्षणं करोतीति डल्हणः । ३ विप्रकृत्या = शुक्रप्राशनादिरूपविपरीतेन विशिष्टेन वा स्वभावेनेत्यर्थः । ४ अनस्थि = अस्थिरहितमांसपिण्डात्मकगर्भ इत्यर्थः । डल्हणस्तु–ईषदर्थे नञ्, तेनाल्पकोमलास्थिरित्यर्थः । विचारणीयमेतत्, यतः "ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्याद् गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः" इति पूर्वोक्त्या ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां चतुर्णामेव सान्निध्याद् गर्भोत्पत्तेः, "योषितोऽपि स्रवन्त्येव·····गर्भस्य तन्न किञ्चित्तु करोतीति न चिन्त्यते" इति तन्त्रान्तरोक्तेश्च । ५ कललं गर्भाकृतिभूतं शुक्रशोणितसन्निपातमात्रं सिङ्घाणप्रख्यम् । 'उल्वं च कललोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः । पूर्वोक्तकारणादत्रापि विचारणीयम् । अत एव इमौ द्वावपि श्लोकौ जेज्झटाचार्येण न पठिताविति डल्हणः । ६ केशश्मश्रुलोमनखदन्तसिरास्नायुधमनीरेतःप्रभृ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भो वातप्रकोपेण दौर्हृदे[1] वाऽवमानिते ।
भवेत् कुब्जः कुणिः पङ्गुर्मूको मिन्मिन एव वा ॥ ५१ ॥
मातापित्रोस्तु नास्तिक्यादशुभैश्च पुराकृतैः ।
वातादीनाञ्च कोपेन गर्भो विकृतिमाप्नुयात् ॥ ५२ ॥
मलाल्पत्वादयोगाच्च[2] पायोः पक्वाशयस्य च ।
वातमूत्रपुरीषाणि न गर्भस्थः[3] करोति हि ॥ ५३ ॥
जरायुणा मुखे च्छन्ने कण्ठे च कफवेष्टिते ।
वायोर्मार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थः प्ररोदिति ॥ ५४ ॥
निःश्वासोच्छ्वाससङ्क्षोभस्वप्नान् गर्भोऽधिगच्छति[4] ।
मातुर्निश्वसितोच्छ्वाससङ्क्षोभस्वप्नसम्भवान् ॥ ५५ ॥
सन्निवेशः[5] शरीराणां दन्तानां पतनोद्भवौ ।
तलेष्वसम्भवो यश्च रोम्णामेतत् स्वभावतः[6] ॥ ५६ ॥
भाविताः[7] पूर्वदेहेषु सततं शास्त्रबुद्धयः ।
भवन्ति सत्त्वभूयिष्ठाः पूर्वजातिस्मरा नराः ॥ ५७ ॥
कर्मणा चोदितो येन तदाप्नोति पुनर्भवे ।

---

तिभिरित्यर्थः । १ स्वहृदयेन गर्भहृदयेन च द्वे हृदये यस्याः सा द्विहृदया गर्भिणी तस्या इदं दौर्हृदं गर्भिणीश्रद्धादि, अवमाननं च गर्भिण्याः श्रद्धादिखण्डनम् । तदुक्तम्—"श्रद्धाविघाताद् गर्भस्य विकृतिश्च्युतिरेव वा" इति । २ अयोगाद्=ईषद्योगादित्यर्थः । ३ गर्भस्थो बालक इत्यर्थः । ४ निश्वासादिका याश्चेष्टा माता कुरुते, ता गर्भोऽपि करोतीति भावः । ५ सन्निवेशः=रचनाविशेषः । ६ हस्तपादतलेष्वित्यर्थः ।

७ चरके हेत्वन्तरं प्रदर्शितम्—"तत्र जरायुजानामण्डजानां प्राणिनामेते यां यां गर्भकरा भावा योनिमापद्यन्ते, तस्यां तस्यां योनौ तथा तथा रूपा भवन्ति । तद्यथा—कनकरजतताम्रत्रपुसीसकान्यासिच्यमानानि तेषु तेषु मधूच्छिष्टविग्रहेषु । ते यदा मनुष्यबिम्बमापद्यन्ते, तदा मनुष्यविग्रहेण जायन्ते । तस्मात्समुदयात्मकः सन् गर्भो मनुष्यादिविग्रहेण जायते । मनुष्यश्च मनुष्यप्रभव उच्यते तद्योनित्वात्" इति । ८ पूर्वजन्मन्यभ्यस्ता गुणा उत्तरजन्मन्यपि अनुवर्तन्ते इति श्लोकद्वयेन दर्शयति—**भाविता इति ।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यस्ताः पूर्वदेहे ये तानेव भजते गुणान् ॥ ५८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने शुक्रशोणितशुद्धिशारीरं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

## तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो गर्भावक्रान्तिशारीरं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

सौम्यं शुक्रमार्त्तवमाग्नेयमितरेषामप्यत्र भूतानां सान्निध्यमस्त्यणुना विशेषेण, परस्परोपकारात्परस्परानुग्रहात्परस्परानुप्रवेशाच्च ॥ ३ ॥

---

पूर्वदेहेषु सत्त्वभूयिष्ठाः सन्तः सततं ये भाविताः ज्ञानविज्ञानादिना परिशुद्धास्ते शास्त्रबुद्धयो भवन्तीति योजना ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः शारीरस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वितीयोऽध्यायः ।**

---

### तृतीयोऽध्यायः ।

१ गर्भः गर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसम्मूर्च्छितं शुक्रशोणितं तस्यावक्रान्तिरवक्रमणम्, अवतरणमिति यावद्, गर्भावक्रान्तिः, सा विद्यते यस्मिन्नध्याये छप्रत्ययः, 'अध्यायानुवाकयोर्लुक्' इति तस्य लुक् । २ सोमगुणभूयिष्ठं सौम्यमित्यर्थः । ३ अग्निगुणभूयिष्ठमाग्नेयम् । इतरेषां = पृथिवीवाय्वाकाशानाम् । ४ पृथिवीजलाग्निवाय्वाकाशानां क्रमशो धारणसङ्गठनपरिणाम्यूहावकाशदानैः परस्परोपकारकादित्यर्थः । परस्परानुग्रहश्च, यथा—पार्थिवद्रव्ये पृथिव्याख्यं भूतं बलवद्, अवशिष्टानि जलादीनि चत्वारि दुर्बलान्याश्रयदानेनानुगृह्णातीत्येवम्प्रकारेण द्रव्यान्तरे कस्यचिद् बलवत्त्वेऽन्येषां दुर्बलत्वे बलवद्भूतं दुर्बलान्यनुगृह्णन्तीति बोध्यम् । परस्परानुप्रवेशश्च, यथा—शब्दगुणकस्याकाशस्य वायौ प्रवेशः, शब्दस्पर्शगुणत्वाद् वायोः । आकाशवाय्वोस्तेजसि प्रवेशः, शब्दस्पर्शरूपगुणत्वात्तेजसः । एवमग्रेऽपि अनुप्रवेशकानुप्रवेश्यत्वेनावस्थितानां पञ्चमहाभूतानां परस्परानुप्रवेशो बोद्धव्यः । मनुरपि—"आद्यस्य गुणं त्वेषामवाप्नोति परः परः । यो यो यावतिथश्चैषां स स तावद्गुणः स्मृतः ॥" इति । अथवा वेदान्तोक्तपञ्चीकरणद्वाराऽप्यस्य समाधानं बोध्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तत्र स्त्रीपुंसयोः संयोगे तेजः[1] शरीराद्वायुरुदीरयति[2] । ततस्तेजोऽनिलसन्निपाताच्छुक्रं च्युतं[3] योनिमभिप्रतिपद्यते संसृज्यते चार्तवेन। ततोऽग्नीषोमसंयोगात् संसृज्यमानो[4] गर्भो गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते क्षेत्रज्ञो वेदयिता स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोता रसयिता पुरुषः स्रष्टा गन्ता साक्षी धाता वक्ता यः कोऽसावित्येवमादिभिः पर्य्यायवाचकैर्नामभिरभिधीयते दैवसङ्गादक्षयोऽव्ययोऽचिन्त्यो भूतात्मना[5] सहान्वक्षं[6] सत्त्वरजस्तमोभिर्दैवासुरैरपरैश्च[7] भावैर्वायुनाऽभिप्रेर्यमाणः गर्भाशयमनुप्रविश्यावतिष्ठते ॥ ४ ॥

तत्र शुक्रबाहुल्यात् पुमान्, आर्त्तवबाहुल्यात् स्त्री, साम्यादुभयोर्नपुंसकमिति ॥ ५ ॥

ऋतुस्तु[8] द्वादशरात्रं भवति दृष्टार्त्तवः । अदृष्टार्त्तवाऽप्यस्तीत्येके भाषन्ते ॥ ६ ॥

---

१ तेजः = स्त्रीपुरुषेन्द्रियद्वितयसङ्घर्षजन्यमूष्माणमित्यर्थः । २ उदीरयति = उद्रिक्तं करोति । ३ च्युतं द्रवीभावमापन्नं सत् स्खलितं, योनिमभितः सर्वतः प्रतिपद्यते गच्छति, आर्तवेन आर्तववहात् स्रोतसो विच्युतेन स्त्रीबीजेन, संसृज्यते मिश्रीभावमापद्यते । ४ संसृज्यमानः षाकविशेषाद् गर्भाकारेण परिणम्यमानः गर्भः, गर्भाशयं योन्यास्तृतीयावर्त्तावस्थितगर्भशय्यामित्यर्थः । गर्भशय्यास्वरूपं च—"शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्ता सा च कीर्तिता । तस्यास्तृतीये त्वावर्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ यथा रोहितमत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः । तत्संस्थानां तथा रूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः" ॥ यथा जले रोहितमत्स्यस्यावस्थितिस्तथा पित्ताशयपक्वाशयमध्ये गर्भशय्याया अप्यवस्थितिः, यथा च रोहितस्य मुखं स्वल्पमाशयस्तु महान् तथा तस्या रूपमपीति तदर्थः । ५ भूतात्मना = भौतिकेन सूक्ष्मलिङ्गशरीरेण सह, अन्वक्षं=तत्क्षणमेव । ६ अपरैः=पश्चादिजैरित्यर्थः ।

७ ननु "आर्तवं हि चतुरञ्जलिप्रमाणं शुक्रं तु प्रसृतिमात्रम्" इत्युक्तेः सदैवार्तवस्यैव बाहुल्यात् कथं पुत्रोत्पत्तिरिति चेत्? न, यतः शुक्रं कदाचिदत्यन्तहर्षवशाद् दुग्धादिशुक्रलद्रव्यसेवनाच्छुक्रबाहुल्याद् गर्भाशये बहु स्रवति कदाचिद्वैमनस्यादिनाऽल्पम्, एवमार्तवमपीति न दोषः । ८ तुकारः समुच्चयार्थः । तेन षोडशरात्रादिकं समुच्चीयते । एवञ्च—"ऋतुस्तु दृष्टार्तवो द्वादशरात्रं भवति, षोडशरात्रमित्यन्ये, शुद्धयोनिगर्भाशयार्तवायाः मासमपि केचित्, तद्वददृष्टार्तवोऽप्यस्तीत्यपरे" इति वृद्धवा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन्ति चात्र ।

पीनप्रसन्नवदनां प्रक्लिन्नात्मुखद्विजाम् ।
नरकामां प्रियकथां स्रस्तकुक्ष्यक्षिमूर्द्धजाम् ॥ ७ ॥
स्फुरद्भुजकुचश्रोणिनाभ्यूरुजघनस्फिचम् ।
हर्षौत्सुक्यपरां चापि विद्याद्दतुमतीमिति ॥ ८ ॥
नियतं दिवसेऽतीते सङ्कुचत्यम्बुजं यथा ।
ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनिः संव्रियते तथा ॥ ९ ॥
मासेनोपचितं काले धमनीभ्यां तदार्तवम् ।
ईषत्कृष्णं विगन्धं च वायुर्योनिमुखं नयेत् ॥ १० ॥
तद्वर्षाद् द्वादशात् काले वर्तमानमसृक् नरः ।
जरापक्वशरीराणां याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥ ११ ॥
युग्मेषु तु पुमान् प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाऽबला ।
पुष्पकाले शुचिस्तस्मादपत्यार्थी स्त्रियं व्रजेत् ॥ १२ ॥

तत्र सद्योगृहीतगर्भाया लिङ्गानि—श्रमो ग्लानिः पिपासा सक्थिसदनं शुक्रशोणितयोरवबन्धः स्फुरणं च योनेः ॥ १३ ॥

---

ग्भटोक्तं सङ्गच्छते । दृष्टमार्तवं यस्मिन् काले स दृष्टार्तवः कालः ऋतुः । द्वादशरात्रमिति षोडशदिनेषु मध्ये आद्यं दिनत्रयमन्तिमं च षोडशं योनिसङ्कोचदिनं न गणनीयमिति डल्हणः ।

१ अदृष्टार्तवाया ऋतुमत्या लक्षणं निर्दिशति—**पीनेति** । २ द्विजा दन्तास्तेषां प्रक्लेदासम्भवात्तत्समीपवर्त्तिनो दन्तवेष्टका ग्राह्याः । ३ योनिरत्र धराद्वारम्, संव्रियते = सङ्कोचमाप्नोति । ४ युग्मेषु = चतुर्थषष्ठादिसमदिनेषु । "युग्मेषु तु दिनेष्वासां भवत्यल्पतरं रजः । संयोगं तत्र या गच्छेत् सा पुमांसं प्रसूयते ॥ अयुग्मेषु दिनेष्वासां भवेद्बहुतरं रजः । संयोगं तत्र या गच्छेत सा तु कन्यां प्रसूयते ॥" इति विदेहोक्त्या "शुक्रबाहुल्यात् पुमान्" इत्यादि पूर्वोक्तस्य न विरोध इति भावः । ५ शरीरशुचिरित्यर्थः । तन्त्रान्तरे—"स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्धसुमनोऽर्चितः । भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलङ्कृतः ॥ ताम्बूलवदनस्तस्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः । पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]स्तनयोः कृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा ।
अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः सम्मील्यन्ते विशेषतः ॥ १४ ॥
अकामतश्छर्दयति गन्धादुद्विजते शुभात् ।
प्रसेकः सदनं चापि गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते ॥ १५ ॥

तदा प्रभृति व्यवायं व्यायाममतितर्पणमतिकर्शनं दिवास्वप्नं रात्रिजागरणं शोकं यानारोहणं भयमुत्कटुकासनं चैकान्ततः स्नेहादिक्रियां शोणितमोक्षणं चाकाले वेगविधारणं च न सेवेत ॥१६॥

दोषाभिघातैर्गर्भिण्या यो यो भागः प्रपीड्यते ।
स स भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥ १७ ॥

तत्र प्रथमे मासि कललं[2] जायते । द्वितीये [3]शीतोष्मानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां सङ्घातो घनः[4] सञ्जायते; यदि पिण्डः[5] पुमान्, स्त्री चेत् [6]पेशी, नपुंसकं चेदर्बुदमिति[7]। तृतीये हस्तपादशिरसां[8] पञ्च पिण्डका [9]निर्वर्त्तन्तेऽङ्गप्रत्यङ्गविभागश्च सूक्ष्मो भवति। चतुर्थे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्तो भवति, गर्भहृदयप्रव्यक्तिभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो[10] भवति, कस्मात् ? तत्स्थान[11]त्वात्। तस्माद्गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु[12] करोति। द्विहृदयां

---

१ गृहीतगर्भाया उत्तरकालीनं लिङ्गं दर्शयति—स्तनयोरिति। चरके—"आर्तवादर्शनमास्यसंस्रवणमनन्नाभिलाषः छर्दिररोचकोऽम्लकामता च विशेषेण, श्रद्धाप्रणयनञ्चोच्चावचेषु भावेषु गुरुगात्रत्वं चक्षुषोर्लानिः स्तनयोः स्तन्यमोष्ठस्तनमण्डलयोश्च काष्ण्यमत्यर्थम्, श्वयथुः पादयोरीषल्लोमराज्या योन्याश्च चाटालत्वमिति गर्भे पर्याप्ते रूपाणि भवन्ति" इति। २ गर्भाकारं शुक्रशोणितसन्निपातमात्रं कललमित्युच्यते। ३ शीतः=श्लेष्मा, ऊष्मा=पित्तम्, "भौमाप्याग्नेयवायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः। पञ्चाहारगुणान् स्वान् स्वान् पार्थिवादीन् पचन्त्यनु ॥" इति चरकः।

४ घनः=कठिन इत्यर्थः। ५ पिण्डः=वर्तुलाकारः। ६ पेशी=दीर्घाकृतिः। ७ अर्बुदमिवेत्यर्बुदम् अर्धपिण्डाकृतिः। भोजे पिण्डादीनामन्यथाकृतिर्दर्शिता—"चतुरस्रा भवेत्पेशी, वृत्तः पिण्डो घनः स्मृतः। शाल्मलीमुकुलाकारमर्बुदं परिचक्षते॥" इति। ८ सूचका इति शेषः। ९ निर्वर्तन्ते=निस्सरन्ति। १० चेतना=मनोद्वितीयनामिका। ११ स्थानत्वात्=हृदयस्थानत्वादित्यर्थः। १२ इन्द्रियार्थेषु=शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु। तदुक्तम्—"हृदयव्यक्तभावेन व्यज्यते चेतनाऽपि च। तस्माच्-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च नारीं दौर्हृदिनीमाचक्षते। दौर्हृदविमाननात् कुब्जं कुणिं खञ्जं जडं वामनं विकृताक्षमनक्षं वा नारी सुतं जनयति, तस्मात् सा यद्यदिच्छेत् तत्तस्यै दापयेत्। लब्धदौर्हृदा हि वीर्यवन्तं चिरायुषं च पुत्रं जनयति ॥ १८ ॥

भवन्ति चात्र।

इन्द्रियार्थांस्तु यान् यान् सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी।
गर्भाबाधभयात्तांस्तान् भिषगाहृत्य दापयेत् ॥ १९ ॥
सा प्राप्तदौर्हृदा पुत्रं जनयेत गुणान्वितम्।
अलब्धदौर्हृदा गर्भे लभेतात्मनि वा भयम् ॥ २० ॥
येषु येष्विन्द्रियार्थेषु दौर्हृदे वै विमानना।
प्रजायेत सुतस्यार्त्तिस्तस्मिंस्तस्मिंस्तथेन्द्रिये ॥ २१ ॥
राजसन्दर्शने यस्या दौर्हृदं जायते स्त्रियाः।
अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥ २२ ॥
दुकूलपट्टकौशेयभूषणादिषु दौर्हृदात्।
अलङ्कारैषिणं पुत्रं ललितं सा प्रसूयते ॥ २३ ॥
आश्रमे संयतात्मानं धर्मशीलं प्रसूयते।
देवताप्रतिमायां तु प्रसूते पार्षदोपमम्।
दर्शने व्यालजातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते ॥ २४ ॥
गोधामांसाशने पुत्रं सुषुप्सुं धारणात्मकम्।
गवां मांसे च बलिनं सर्वक्लेशसहं तथा ॥ २५ ॥

---

तुर्थे गर्भस्तु नानावस्तूनि वाञ्छति ॥" इति। १ गर्भहृदयेन च द्विहृदया नारी तस्या इदं दौर्हृदं श्रद्धादि तस्य विमाननं तस्मात्। तदुक्तमष्टाङ्गहृदये—"श्रद्धाविघाताद् गर्भस्य विकृतिश्च्युतिरेव वा" इति। २ कुणिं=कुत्सितपाणिम्। ३ निषिद्धमपि विदाहि विष्टम्भ्याद्यपथ्यम्। उक्तञ्च—"देयमप्यहितं तस्यै हितोपहितमल्पकम्" इति। अतिशयेनाल्पमित्यल्पकमिति तदर्थः। ४ अलब्धदौर्हृदा=अप्राप्ताभिलषितपदार्थेत्यर्थः।

५ दौर्हृदविशेषैर्गुणविशेषयुक्तापत्योत्पत्तिं विवृणोति—**राजेति**। ६ ललितं=शृङ्गारचेष्टायुक्तम्। ७ पार्षदेषु रुद्रानुचरेषु सभापुरुषेषु वा उपमा यस्य स तं पार्षदोपमं सभ्यसमम्। ८ सुषुप्सुं स्वप्तुमिच्छुम्, धारणात्मकं हृदयगृहीतवस्तूनाममोच-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माहिषे दौर्हृदाच्छूरं रक्ताक्षं लोमसंयुतम्।
वराहमांसात् स्वप्नालुं शूरं सञ्जनयेत् सुतम्॥ २६॥
मार्गाद्विक्रान्तजङ्घालं सदा वनचरं सुतम्।
सूमराद्विग्नमनसं[२] नित्यभीतं च तैत्तिरात्॥ २७॥
अतोऽनुक्तेषु या नारी समभिध्याति दौर्हृदम्।
शरीराचारशीलैः[३] सा समानं जनयिष्यति॥ २८॥
कर्मणा[४] चोदितं जन्तोर्भवितव्यं पुनर्भवेत्।
यथा तथा दैवयोगाद्दौर्हृदं[५] जनयेद्धृदि॥ २९॥

पञ्चमे मनःप्रतिबुद्धतरं भवति, षष्ठे बुद्धिः, सप्तमे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरः, अष्टमेऽस्थिरीभवत्योजः[६]। तत्र जातश्चेन्न जीवेन्निरोजस्त्वान्नैर्ऋतभागत्वाच्च[७]। ततो[८] बलिं मांसौदनमस्मै दापयेत्। नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिन् जायते। अतोऽन्यथा विकारी भवति॥ ३०॥

मातुस्तु खलु रसवहायां नाड्यां[९] गर्भनाभिनाडी प्रतिबद्धा, साऽस्य मातुराहाररसवीर्यमभिवहति[१०]॥ तेनोपस्नेहेनास्याभिवृद्धिर्भवति। असञ्जाताङ्गप्रत्यङ्गप्रविभागमानिषेकात्[११] प्रभृति सर्वशरी-

---

कमिति डल्हणः। 'धावनात्मकम्' इति पाठे शीघ्रगामिनमित्यर्थः। १ मार्गात्=मृगमांसात्, विक्रान्तजङ्घालं=वेगवज्जङ्घायुक्तम्। २ विग्नमनसं=चञ्चलचित्तम्।

३ तत्तत्पदार्थशरीराचारशीलैरित्यर्थः। ४ कर्मणा=प्राक्तनकर्मणा। ५ दौर्हृदं=गर्भिण्यभिलाषः। ६ ओजः=सर्वधातूनां परं तेजः। तदुक्तम्-"ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम्। हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थिति निबन्धनम्॥" इति। ओजसोऽस्थिरतायाः कारणं चरकादौ बोध्यम्। ७ नैर्ऋतभागत्वात्=रक्षसांशत्वादित्यर्थः।

८ ततस्तस्माद् अस्मै निर्ऋतयेऽष्टमे मासि मांसौदनं बलिं दापयेत्। यत उक्तम्-"अष्टमे मासि जातस्य हरन्त्योजो निशाचराः" इति। कुमारतन्त्रे-"नैर्ऋताय भागश्च बालेषु रुद्रेण दत्तः" इति। ९ नाड्यां मातुर्गर्भाशयोर्ध्ववयवसंस्थितायां धमन्यां गर्भनाभिनाडी गर्भस्य नाभिप्रसृतसिराद्यावृता नाडीप्रतिबद्धा सिराऽध्यायोक्तप्रकारेण सदृढं संलग्ना। "गर्भस्य नाभिनाड्या तु नाडी रसवहा स्त्रियाः। संलग्ना तेन गर्भस्य वृद्धिर्भवति नित्यशः॥" इति। १० अभिवहति=प्रापयति। ११ आनिषेकात्=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रावयवानुसारिणीनां रसवहानां तिर्यग्गतानां धमनीनामुपस्नेहो जीवयति ॥ ३१ ॥

गर्भस्य[२] खलु सम्भवतः पूर्वं शिरः सम्भवतीत्याह शौनकः, शिरोमूलत्वात्प्रधानेन्द्रियाणाम्[३]। हृदयमिति कृतवीर्य्यो, बुद्धेर्मनसश्च स्थानत्वात्। नाभिरिति पाराशर्यः, ततो हि वर्धते देहो देहिनः। पाणिपादमिति मार्कण्डेयः, तन्मूलत्वाच्चेष्टाया गर्भस्य। मध्यशरीरमिति सुभूतिर्गौतमः, तन्निबद्धत्वात् सर्वगात्रसम्भवस्य। तत्तु न सम्यक्, सर्वाण्यङ्गप्रत्यङ्गानि युगपत् सम्भवन्तीत्याह धन्वन्तरिर्गर्भस्य सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते वंशाङ्कुरवच्चूतफलवच्च। तद्यथा—चूतफले परिपक्वे केशरमांसास्थिमज्जानः पृथक् पृथग् दृश्यन्ते, कालप्रकर्षात्। तान्येव तरुणे नोपलभ्यन्ते, सूक्ष्मत्वात्। तेषां सूक्ष्माणां केशरादीनां कालः प्रव्यक्ततां करोति। एतेनैव वंशाङ्कुरोऽपि व्याख्यातः। एवं गर्भस्य तारुण्ये सर्वेष्वङ्गप्रत्यङ्गेषु सत्स्वपि सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः, तान्येव कालप्रकर्षात् प्रव्यक्तानि भवन्ति ॥ ३२ ॥

तत्र गर्भस्य[४] पितृजमातृजरसजात्मजसत्त्वजसात्म्यजानि शरीरलक्षणानि व्याख्यास्यामः—गर्भस्य, केशश्मश्रुलोमास्थिनखदन्तसिरास्नायुधमनीरेतःप्रभृतीनि स्थिराणि पितृजानि। मांसशोणितमेदोमज्जहृन्नाभियकृत्प्लीहान्त्रगुदप्रभृतीनि मृदूनि मातृजानि। शरीरोपचयो बलं वर्णः स्थितिर्हानिश्च रसजानि। इन्द्रियाणि ज्ञानं विज्ञानमायुःसुखदुःखादिकं चात्मजानि। सत्त्वजान्युत्तरत्र वक्ष्यामः।

---

आगर्भाधानात्। १ उपसन्नं निष्यन्देन स्नेहयतीत्युपस्नेहः मातुराहाररसवीर्यरूपी, जीवयति = प्राणधारणं करोति। तथा च भोजः—"गर्भो रुणद्धि स्रोतांसि रसरक्तवहानि वै। रक्ताज्जरायुर्भवति नाडी चैव रसात्मिका॥ सा नाडी गर्भमाप्नोति तया गर्भस्य वर्तनम्। यद्यदश्नाति माताऽस्य भोजनं हि चतुर्विधम्। तस्मादन्नाद्रसीभूतं वीर्यं त्रेधा प्रवर्तते। भागः शरीरं पुष्णाति स्तन्यं भागेन वर्धते॥ गर्भः पुष्यति भागेन वर्धते च यथाक्रमम्। गर्भे कुल्येव केदारं नाडी प्रीणाति तर्पिता॥" इति।

२ गर्भे यदङ्गं पूर्वं भवतीति नानामतप्रदर्शनपुरस्सरं धन्वन्तरिमतं दर्शयति—गर्भस्येति। ३ इन्द्रियाणां = ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियाणाम्। ४ लक्षणानि = लक्षणीया-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर्यमारोग्यं बलवर्णौ मेधा च सात्म्यजानि ॥ ३३ ॥

तत्र यस्या दक्षिणे स्तने प्राक् पयोदर्शनं भवति दक्षिणाक्षिमहत्त्वञ्च पूर्वञ्च दक्षिणं सक्थ्युत्कर्षति बाहुल्याच्च पुन्नामधेयेषु द्रव्येषु दौर्हृदं[1]मभिध्यायति स्वप्नेषु चोपलभते पद्मोत्पलकुमुदाम्रातकादीनि पुन्नामान्येव प्रसन्नमुखवर्णा च[2] भवति तां ब्रूयात्, पुत्रमियं जनयिष्यतीति, तद्विपर्य्यये कन्याम्। यस्याः पार्श्वद्वयमुन्नतं पुरस्तान्निर्गतमुदरं प्रागभिहितलक्षणं च[3] तस्या नपुंसकमिति विद्यात्। यस्या मध्ये निम्नं द्रोणीभूतमुदरं[4] सा युग्मं प्रसूयत इति ॥ ३४ ॥

भवन्ति चात्र ।

देवताब्राह्मणपराः शौचाचारहिते रताः ।
महागुणान् प्रसूयन्ते विपरीतास्तु निर्गुणान् ॥ ३५ ॥
अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तिः[5] स्वभावादेव जायते ।
अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तौ ये भवन्ति गुणागुणाः ।
ते ते गर्भस्य विज्ञेया धर्माधर्मनिमित्तजाः ॥ ३६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने गर्भावक्रान्तिशारीरं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

नि, ज्ञातव्यानीति यावत्। कर्मणि ल्युट्। १ दौर्हृदम्=अभिलाषम्। २ चकारात् "पुत्रगर्भयुतायास्तु नार्या मासि द्वितीयके। गर्भो गर्भाशये लक्ष्यः पिण्डाकारोऽपरं शृणु ॥" इति लक्षणान्तरमपि बोध्यम्। ३ तदुक्तं चरके—"सम्याङ्गचेष्टा पुरुषार्थिनी स्त्री स्त्रीस्वप्नपानाशनशीलचेष्टा। सम्यात्तगर्भा न च वृत्तगर्भा सम्यप्रदुग्धा स्त्रियमेव सूते ॥" इति। ४ चकारात्—"नपुंसकं यदा गर्भे भवेद्भर्तोऽबुदाकृतिः" इति लक्षणान्तरमपि बोध्यम्। ५ द्रोणी जलक्षेपणी तत्सदृशमित्यर्थः। ६ निर्वृत्तिः=सिद्धिः, उत्पत्तिरिति यावत्।

इति सुश्रुतसंहितायाः शारीरस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां तृतीयोऽध्यायः ।

---


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो गर्भव्याकरणं[1] नाम शारीरं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अग्निः[2] सोमो वायुः सत्त्वं रजस्तमः पञ्चेन्द्रियाणि भूतात्मेति प्राणाः ॥ ३ ॥

तस्य खल्वेवम्प्रवृत्तस्य[3] शुक्रशोणितस्याभिपच्यमानस्य क्षीरस्येव सन्तानिकाः सप्त त्वचो भवन्ति । तासां प्रथमाऽवभासिनी नाम, या सर्ववर्णान्[4]वभासयति पञ्चविधां च[5] छायां प्रकाशयति । सा व्रीहेरष्टादशभागप्रमाणा, सिध्मपद्मकण्टकाधिष्ठाना । द्वितीया लोहिता नाम, व्रीहिषोडशभागप्रमाणा, तिलकालकन्यच्छव्यङ्गाधिष्ठाना । तृतीया श्वेता नाम, व्रीहिद्वादशभागप्रमाणा, चर्मदलाजगल्लीमशकाधि-

---

### चतुर्थोऽध्यायः ।

१ पूर्वाध्याये सङ्क्षेपत उक्तस्य गर्भस्य विस्तरेण व्याख्यातुं गर्भव्याकरणं नामाध्याय आरभ्यते । व्याख्यायते विस्तरेण विव्रियतेऽनेनेति व्याकरणम्, गर्भस्य व्याकरणं विवरणमित्यर्थः । शेषं पूर्ववत् । २ अग्निरत्र पाचकालोचकरञ्जकभ्राजकसाधकानां तथा पाञ्चभौतिकानां तथा सप्तधातुगतानामूष्मणां शक्तिरूपतयाऽवस्थितो वाचोऽधिदेवत्वं प्राप्तो बोद्धव्यः, स चाहारपाकादिकर्मणा जीवयति । सोमश्च पञ्चात्मकश्लेष्मरसशुक्रादीनां, तोयात्मकानां भावानां रसनेन्द्रियस्य च शक्तिरूपतयाऽवस्थितो मनसश्चाधिदेवत्वं प्राप्तो बोध्यः, स च सौम्यधातोरोजःप्रभृतेः पेषणेन पवनपावकसंशुष्कभागस्यार्द्रताविधानेन जीवयति । वायुः प्राणादिभेदेन पञ्चात्मकः, स च दोषधातुमलाङ्गोपाङ्गादीनां सञ्चारणेनोच्छ्वासनिःश्वासाभ्यां च जीवयति । सत्त्वं रजस्तम इति मनोरूपतया परिणतं जीवात्मनः शरीरान्तरे जीवनग्रहणमोक्षणे हेतुरिति तदपि जीवयति । पञ्चेन्द्रियाणि श्रोत्रत्वङ्नेत्रजिह्वाघ्राणानि शब्दादिग्रहणकर्मणा जीवयति । भूतात्मा जीवात्मा, स चाशेषस्यैव राशेश्चैतन्यहेतुरिति सोऽपि जीवयति । प्राणयन्ति जीवयन्तीति प्राणा इति डल्हणः ।

३ एवंप्रवृत्तस्य जीवात्माधिष्ठितस्य अभिपच्यमानस्य तस्य शुक्रशोणितस्य क्षीरस्य सन्तानिका इव यथा पाचितस्य दुग्धस्योपरि सर उत्पद्यते, तथैव सप्तत्वचो भवन्तीत्यर्थः । चरकेतु षट् त्वचोऽभिहिताः । ४ सर्ववर्णान्=गौरादिकान् । ५ चकारात्प्रभाम्, "आसन्ना लक्ष्यते छाया प्रभा दूरात्प्रकाशते" इति । ६ अत्र व्रीहिर्यवः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ष्ठाना। चतुर्थी ताम्रा नाम, व्रीहेरष्टभागप्रमाणा, विविधकिलासकुष्ठाधिष्ठाना। पञ्चमी-वेदिनी नाम, व्रीहिपञ्चभागप्रमाणा, कुष्ठविसर्पाधिष्ठाना। षष्ठी रोहिणी नाम, व्रीहिप्रमाणा, ग्रन्थ्यपच्यर्बुदश्लीपदगलगण्डाधिष्ठाना। सप्तमी मांसधरा नाम, व्रीहिद्वयप्रमाणा, भगन्दरविद्रध्यर्शोऽधिष्ठाना। यदेतत् प्रमाणं निर्दिष्टं तन्मांसलेष्ववकाशेषु, न ललाटे सूक्ष्माङ्गुल्यादिषु। यतो वक्ष्यत्युदरेषु-व्रीहिमुखेनाङ्गुष्ठोदरप्रमाणमवगाढं विध्येदिति ॥ ४ ॥

कलाः खल्वपि सप्त सम्भवन्ति धात्वाः यान्तरमर्यादाः ॥ ५ ॥

भवतश्चात्र।

यथा हि सारः काष्ठेषु छिद्यमानेषु दृश्यते।
तथा धातुर्हि मांसेषु छिद्यमानेषु दृश्यते ॥ ६ ॥
स्नायुभिश्च प्रतिच्छन्नान् सन्ततांश्च जरायुणा।
श्लेष्मणा वेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तु तान् विदुः ॥ ७ ॥

तासां प्रथमा मांसधरा नाम, यस्यां मांसे सिरास्नायुधमनीस्रोतसां प्रताना भवन्ति ॥ ८ ॥

भवति चात्र।

यथा बिसमृणालानि विवर्धन्ते समन्ततः।

---

१ उदररोगचिकित्सिते वक्ष्यतीत्यर्थः। २ अङ्गुष्ठोदरप्रमाणं विंशतितमभागोनषड्यव-$\frac{१}{२०}$ प्रमाणम्। एतेन सप्तत्वचः समुदिता अङ्गुष्ठोदरप्रमाणाः सन्तीति सूच्यते।

३ धातूनां मांसशोणितभेदःश्लेष्मशुक्राणाम्, आशययोः पित्तपक्वाशययोरन्तरेषु मर्यादाः। डल्हणस्तु दधतीति धातवो रसरक्तमांसादयः, कफपित्तपुरीषाण्यपि प्राकृतानि स्वकर्मणा दधतीति धातवः, तेषामाशया अवस्थानप्रदेशा धात्वाशयाः, तेषामन्तरेषु मर्यादाः सीमाभूता इत्याह। कलास्वरूपम्-"धात्वाशयान्तरे धातुर्यः क्लेदस्त्वधितिष्ठति। देहोष्मणाऽभिपक्वश्च सा कलेत्यभिधीयते॥" इति। वृद्धवाग्भटः-"यस्तु धात्वाशयान्तरेण क्लेदोऽवतिष्ठते स यथास्वमूष्मभिर्विपक्वः स्नायुश्लेष्मजरायुच्छन्नः काष्ठ इव सारो धातुरसशेषोऽल्पत्वात् कलासंज्ञः"। कला 'झिल्ली' इति भाषायां ज्ञातव्या। ४ जरायुणा गर्भवेष्टकसदृशेन, सन्ततान् सम्यक्प्रकारेण व्याप्तान्। ५ कलाभागान्=कलाविभागविशेषान्। ६ प्रतानाः=विस्ताराः, शाखा इति यावत्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमौ पङ्कोदकस्थानि तथा मांसे सिराऽऽदयः[1] ॥ ९ ॥

द्वितीया रक्तधरा नाम मांसस्याभ्यन्तरतः, तस्यां शोणितं विशेषतश्च सिरासु यकृत्प्लीह्नोश्च[2] भवति ॥ १० ॥

भवति चात्र ।

वृक्षाद्यथाऽभिप्रहतात् क्षीरिणः क्षीरमावहेत् ।
मांसादेवं क्षतात् क्षिप्रं शोणितं सम्प्रसिच्यते[3] ॥ ११ ॥

तृतीया मेदोधरा नाम, मेदो हि सर्वभूतानामुदरस्थमण्वस्थिषु च, महत्सु[4] च मज्जा भवति ॥ १२ ॥

भवति चात्र ।

स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा[5] त्वभ्यन्तराश्रितः ।
अथेतरेषु सर्वेषु सरक्तं मेद[6] उच्यते ।
शुद्धमांसस्य यः स्नेहः सा वसा[7] परिकीर्त्तिता ॥ १३ ॥

चतुर्थी श्लेष्मधरा नाम, सर्वसन्धिषु प्राणभृतां भवति ॥१४॥

भवति चात्र ।

स्नेहाभ्यक्ते यथा ह्यक्षे[8] चक्रं साधु प्रवर्त्तते ।
सन्धयः साधु वर्त्तन्ते संश्लिष्टाः श्लेष्मणा तथा ॥ १५ ॥

---

१ शाखाप्रशाखारूपेण विवर्धन्ते इति भावः ।

२ यकृदिदं दक्षिणे भागे नवमपर्शुकावधि स्वैरङ्गुलैश्चतुर्दशाङ्गुलमायामेनाष्टाङ्गुलं चतुरङ्गुलञ्चोत्सेधेनोपलभ्यते, प्लीहा चाष्टमपर्शुकां यावदधिष्ठितः षडङ्गुलश्चतुरङ्गुलविस्तारः सार्द्धाङ्गुलोत्सेधश्च, तयो रक्तधराऽऽख्या कला भवतीति भावः । ३ सम्प्रसिच्यते=रक्तधराकलाऽनुविद्धत्वाच्छोणितं प्रसवतीत्यर्थः । ४ महत्सु=अस्थिष्वित्यर्थः । ५ मज्जानाम=अस्थिमध्यगतः स्नेहः । स द्विविधः-पीतो रक्तश्च । तत्र पीतो नलकास्थ्नामन्तः, रक्तस्त्वितरास्थिषु, प्रान्तभागेषु च नलकास्थ्नाम् । सोऽयं स्थूलस्वरूपेण मेदसोऽभिन्नोऽपि कर्मवैशेष्यात्पृथगेव धातुः । ६ मेदोनाम—सान्द्रसर्पिस्तुल्यः स्नेहधातुः शरीरस्य । तस्य स्थानमुदरान्तः, त्वचामधश्च । ७ वसा तु—मांसान्तरानुप्रविष्टः स्नेहस्तस्या मेदस्यनुप्रवेशस्तुल्योपादानत्वात् । ८ अक्षे=चक्रच्छिद्रान्तर्गतधुरि, 'अक्षो रथस्यावयवे' इति हेमचन्द्रः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमी पुरीषधरा नाम, याऽन्तःकोष्ठे मलमभिविभजते पक्वाशयस्था ॥ १६ ॥

भवति चात्र ।

यकृत्समन्तात् कोष्ठं च तथाऽन्त्राणि समाश्रिता ।
उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला ॥ १७ ॥

षष्ठी पित्तधरा नाम, या चतुर्विधमन्नपानमुपभुक्तमामाशयात् प्रच्युतं पक्वाशयोपस्थितं धारयति ॥ १८ ॥

भवति चात्र ।

अशितं खादितं पीतं लीढं कोष्ठगतं नृणाम् ।
तज्जीर्यति यथाकालं शोषितं पित्ततेजसा ॥ १९ ॥

---

१ कोष्ठस्थिताऽपि पुरीषस्य पक्वाशयस्थितत्वाद्बाहुल्येन पक्वाशयस्थोच्यते । कोष्ठशब्देन "स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृदुण्डुकं फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥" इति बोध्यम् । २ अत्र सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्यम्–यकृतः कोष्ठस्यामाशयादेश्च समन्तात् समीपत इत्यर्थः । एतेनैतदुक्तं भवति, यथा नाभेरधो दक्षिणतः स्थितस्य क्षुद्रान्त्रसीमासन्निविष्टस्योण्डुकस्यापरप्रान्तेन सम्बद्धं बृहदन्त्रमूर्ध्वमुखीभूय ग्रहण्या दक्षिणपार्श्वतो यकृतोऽधस्तादामाशयमपसव्यं कृत्वा गुदमनुगतम् । तथैव तदन्तर्वर्त्तिनी मलधरानामकला उण्डुकस्थं पक्वं मलं विसृजतीति । डल्हणस्तु—समन्तात्सर्वतो यकृदादिकं समाश्रिता उण्डुकस्थं मलं विभजते । तत्र यकृद्ग्रहणं रक्ताधारसाम्येन प्लीह्न उपलक्षणं यकृत्समीपानां हृदयादीनां च, उण्डुकग्रहणेन सान्निध्याद् गुदं गृह्यते । तेनोर्ध्वं यकृदादिन्यवस्थितम् , अधस्ताद् गुदपर्यन्तं कोष्ठं समन्तात् समाश्रितेति ।

३ उण्डुकस्तु–पक्वाशयस्यैकदेशे विभक्तमलधारकः । सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्ये—स्थूलक्षुद्रान्त्रयोराद्यन्तसीमासन्निविष्टो मलोद्गमप्रतिबन्धिनाऽनुलोमसन्निविष्टेन कपाटद्वितयेनानुविद्धः पार्श्वोद्भूतयैकद्वारया प्रायः षडङ्गुलिमितयाऽननुभूतक्रियया नाड्या समेतः पुरीषविभाजको गोलो यन्त्रभेद इति । ४ आमाशयात् प्रच्युतं कफाशयाद् भ्रष्टं पक्वाशयोपस्थितं पक्वाशयगमनायोपस्थितं पित्तस्थानं संप्राप्तं पाकार्थं धारयतीत्यर्थः । इयमेव ग्रहणी अभिहिता–"षष्ठी पित्तधरानाम या कला परिकीर्तिता । आमपक्वाशयान्तःस्था ग्रहणी साऽभिधीयते ॥" इति । सङ्ग्रहे स्पष्टमाह–"षष्ठी पित्तधरानाम पक्वामाशयमध्यस्था । सा ह्यन्तरग्नेरधिष्ठानतयाऽऽमाशयात् पक्वाशयोन्मुखमन्नं बलेन विधार्य पित्ततेजसा शोषयन्ती पचति, पक्वं च विमुञ्चति । दोषाधिष्ठिता तु दौर्बल्यादा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तमी शुक्रधरा नाम, या सर्वप्राणिनां सर्वशरीरव्यापिनी॥२०॥

भवन्ति चात्र ।

यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौ रसो यथा ।
शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्विषग्वरः ॥ २१ ॥
द्वचङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य चाप्यधः ।
मूत्रस्रोतःपथाच्छुक्रं पुरुषस्य प्रवर्त्तते ॥ २२ ॥
कृत्स्नदेहाश्रितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा ।
स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात्तत् सम्प्रवर्त्तते ॥ २३ ॥

गृहीतगर्भाणामार्त्तववहानां स्रोतसां वर्त्मान्यवरुध्यन्ते गर्भेण, तस्माद् गृहीतगर्भाणामार्तवं न दृश्यते । ततस्तदधः प्रतिहतमूर्ध्वमागतमपरं चोपचीयमानमपरेत्यभिधीयते । शेषं चोर्ध्वतरमागतं पयोधरावभिप्रतिपद्यते, तस्माद्गर्भिण्यः पीनोन्नतपयोधरा भवन्ति ॥२४॥

गर्भस्य यकृत्प्लीहानौ शोणितजौ । शोणितफेनप्रभवः फुप्फुसः । शोणितकिट्टप्रभव उण्डुकः ॥ २५ ॥

---

मभेव । ततोऽसावन्नस्य ग्रहणात् पुनर्ग्रहणी संज्ञा" इति । १ 'गुडश्चेक्षुरसे' इति पाठान्तरम् । पयोदृष्टान्तोऽल्पमैथुनत्वाद् बहुशुक्रे, इक्षुदृष्टान्तस्त्वतिपीडनशुक्रक्षरणत्वान्मन्दशुक्रे इति डल्हणः ।

२ 'पार्श्वे' इत्यत्र 'वामे' इत्येव साधीयान् पाठः । अन्यथा प्रत्यक्षविरोधात् स्वोक्तिविरोधाच्च । श्रूयते हि "शुक्रवहे द्वे शुक्रप्रादुर्भावाय, द्वे शुक्रविसर्गाय च" इति सुश्रुत एवेति प्रत्यक्षशारीरस्योपोद्घाते गणनाथसेनः । ३ व्यायच्छतः = स्त्रीप्रसङ्गं कुर्वतः । ४ प्रतिहतं = प्रत्यावृत्तम् । ५ अपरा = जरायुः । ६ हृदयादधो दक्षिणपार्श्वे स्थितं यकृत् कालखण्डापरपर्यायम् । हृदयस्य वामभागेऽधस्तन्नाडिकालग्नो रक्तवाहिसिरामूलं प्लोहा । अनयोराकृतिः प्राक् प्रदर्शिता । ७ हृदयस्य वामभागेऽधस्तन्नाडिकालग्नः फुप्फुसः । सुश्रुतार्थसन्दीपनभाष्ये—फुप्फुसो नाम प्रायेण कण्ठप्रदेशादारभ्य षष्ठीं सप्तमीं वा पर्शुकामवधीकृत्य लम्बमानः समन्तात्, सप्तमपर्शुकासमदेशवर्त्तिनं कुक्षिवक्षोविभाजिनं तदपवारणपटं सृष्ट्वेव विस्तारेण प्रायः सर्वमुरोव्याप्यावतिष्ठते । स चाधस्तात् कोविदारपत्रवद् द्वेधा विभज्यते, विभक्तस्य च तस्य दक्षिणो भागो वामाद् विशालः किञ्चित्पुरस्सरश्च वामस्तु दक्षिणादायतः किञ्चित्पृष्ठानुसारी चेति । ८ उण्डुकः = पोट्टलकः, अस्याकृत्यादिकं प्रागभिहितम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असृजः श्लेष्मणश्चापि यः प्रसादः परो मतः ।
तं पच्यमानं पित्तेन वायुश्चाप्यनुधावति ॥ २६ ॥
ततोऽस्यान्त्राणि जायन्ते गुदं बस्तिश्च देहिनः ।
उदरे पच्यमानानामाध्मानाद्रुक्मसारवत् ॥ २७ ॥
कफशोणितमांसानां सारो जिह्वा प्रजायते ।
यथार्थमूष्मणा युक्तो वायुः स्रोतांसि दारयेत् ॥ २८ ॥
अनुप्रविश्य पिशितं पेशीर्विभजते तथा ।
मेदसः स्नेहमादाय सिरास्नायुत्वमाप्नुयात् ॥ २९ ॥
सिराणां तु मृदुः पाकः स्नायूनां च ततः खरः ।
आशय्याभ्यासयोगेन करोत्याशयसम्भवम् ॥ ३० ॥

रक्तमेदःप्रसादाद् वृक्कौ । मांसासृक्कफमेदःप्रसादाद् वृषणौ; । शोणितकफप्रसादजं हृदयं, यदाश्रया हि धमन्यः प्राणवहाः । तस्याधो वामतः प्लीहा फुप्फुसश्च, दक्षिणतो यकृत् क्लोम च । तद्धृदयं विशेषेण चेतनास्थानम्, अतस्तस्मिंस्त-

---

१ प्रसादः = सारतमो भागः । २ यथार्थं पेशीर्विभजते इति सम्बन्धः । पेशी = मांसपिण्डम् ।

३ अभ्यासयोगेन वारं वारम्, आशय्य आशयानुरूपो भूत्वा, आशयानां सम्भवमुत्पत्तिं करोति वायुरिति पूर्वेणान्वयः । ४ वृक्कौ = आभ्यन्तरे कुक्षिगोलकौ । ५ 'हृदयस्याधो वामतः प्लीहा दक्षिणतो यकृद् उभयतः क्लोम फुप्फुसौ च' इति तु साधीयान् पाठ इति प्रत्यक्षशारीरस्योपोद्घाते गणनाथसेनः । तन्त्रान्तरेऽपि—"फुप्फुसस्तु द्विधाभिन्नो वामदक्षिणभेदतः । पेश्यां वक्षस्थलस्थायां समासन्नोऽनुशीर्षकः ॥ अधो विशालो बहुभिः कोशैरिव मधुक्रमः । दुष्टशोणितसंशुद्धिकोशोऽयं परिकीर्तितः ॥" इत्यादिना वामदक्षिणभेदेन फुप्फुसो वर्णितः ।

६ क्लोम = तिलकं, पिपासास्थानमिति यावत् । तदुक्तम्—"अधस्तु दक्षिणे भागे हृदयात् क्लोम तिष्ठति । जलवाहि सिरामूलं तृष्णास्थानं मतं बुधैः ॥" इति । यद्यपि क्लोमस्यावस्थितिरामाशयस्याधो वामपार्श्वेऽस्ति, तथाऽप्यस्य हृदयाद् दक्षिणदेशवर्त्तिमुखमात्रेण बोध्यम् । तदुक्तम्—"आमाशयादधस्ताच्च ग्रहण्या उपरिस्थितात् । पित्तपातस्थानवद्धमुखात् प्लीहाद्यधिस्थितात् ॥ क्लोम्नो विनिःश्रुतेनाथ सच्चारेण रसेन च । भिद्यतेऽन्नमनिर्भिन्नं यदामाशयशक्तितः ॥" इति । ७ सामान्येन सकलं शरीरं चेतनास्थानमुक्तं चरके—"चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः । केशलोमनखाग्रान्न-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मसाऽऽवृते सर्वप्राणिनः स्वपन्ति ॥ ३१ ॥

भवति चात्र ।

पुण्डरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम् ।
जाग्रतस्तद्विकसति स्वपतश्च निमीलति ॥ ३२ ॥

निद्रां तु वैष्णवीं पाप्मानमुपदिशन्ति । सा स्वभावत एव सर्वप्राणिनोऽभिस्पृशति । तत्र यदा संज्ञावहानि स्रोतांसि तमोभूयिष्ठः श्लेष्मा प्रतिपद्यते तदा तामसी नाम निद्रा भवत्यनवबोधिनी, सा प्रलयकाले । तमोभूयिष्ठानामहःसु निशासु च भवति, रजोभूयिष्ठानामनिमित्तम्, सत्त्वभूयिष्ठानामर्द्धरात्रे । क्षीणश्लेष्मणामनिलबहुलानां मनःशरीराभितापवतां च नैवं, सा वैकारिकी भवति ॥३३॥

भवन्ति चात्र ।

हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुत ! देहिनाम् ।
तमोऽभिभूते तस्मिंस्तु निद्रा विशति देहिनम् ॥ ३४ ॥
निद्राहेतुस्तमः सत्त्वं बोधने हेतुरुच्यते ।
स्वभाव एव वा हेतुर्गरीयान् परिकीर्त्यते ॥ ३५ ॥

---

मलद्रवगुणैर्विना ॥" इति । १ तमसा तमोगुणेन, आवृते आच्छादित इत्यर्थः ।

२ पुण्डरीकेण = सङ्कुचितकमलेनेत्यर्थः । ३ अधोमुखम् = अधोवर्तिमुखाकृतिभागमित्यर्थः । तन्त्रान्तरे विशेषः—"चतुःप्रकोष्ठं हृदयं वामदक्षिणभागतः । तेषां द्वौ दक्षिणौ कोष्ठौ गृहीत्वाऽशुद्धशोणितम् ॥ मनाक् संशोध्य विसृजेत् सिरया फुप्फुसेऽनिशम् । तत्र शुद्धं व्रजेत् कोष्ठौ वामौ च तदनन्तरम् । तस्मात् सृतं शरीरं च जीवयेद् बृंहयेच्च तत् ॥" इति । ४ वैष्णवीं मायामित्यर्थः । पाप्मानम् उपदिशन्ति, आचार्या इति शेषः । जनो निद्रया शुभाशुभकर्म कर्तुमसमर्थः, अतः 'पाप्मानम्' इत्युक्तम् ।

५ यद्यपि तन्त्रान्तरे—"कालस्वभावामयचित्तदेहखेदैः कफागन्तुतमोभवा च । निद्रा बिभर्ति प्रथमा शरीरं पाप्मान्तगा व्याधिनिमित्तमन्याः ॥" इति सप्तविधा निद्रा उक्तास्तथाऽपि त्रिविधैवेति तामसी–स्वाभाविकी–वैकारिकीभेदेन क्रमशस्ता दर्शयति—**तत्रेति** । ६ अनिमित्तम् = अनियतकालम्, रजसश्चलतया कदाचिद्दिवा कदाचिद्रात्रावितीति तात्पर्यम् । ७ आयातीति शेषः । आयाति चेत् सा निद्रा वैकारिकीत्यर्थः । चरके विशेषः—"यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः । विषयेभ्यो निव-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]पूर्वदेहानुभूतांस्तु भूतात्मा स्वपतः प्रभुः ।
रजोयुक्तेन मनसा गृह्णात्यर्थान् शुभाशुभान् ॥ ३६ ॥
करणानां तु वैकल्ये तमसाऽभिप्रवर्धते[2] ।
अस्वपन्नपि भूतात्मा प्रसुप्त इव चोच्यते ॥ ३७ ॥

[3]सर्वर्तुषु दिवास्वापः प्रतिषिद्धोऽन्यत्र ग्रीष्मात् । प्रतिषिद्धेष्वपि तु बालवृद्धस्त्रीकर्शितक्षतक्षीणमद्यनित्ययानवाहनाध्वकर्मपरिश्रान्तानामभुक्तवतां मेदःस्वेदकफरसरक्तक्षीणानामजीर्णिनां च मुहूर्त्तं दिवास्वपनमप्रतिषिद्धम् । रात्रावपि जागरितवतां जागरितकालादर्धमिष्यते दिवास्वपनम् । विकृतिर्हि दिवास्वप्नो नाम । तत्र स्वपतामधर्मः[4] सर्वदोषप्रकोपश्च । तत्प्रकोपाच्च कासश्वासप्रतिश्यायशिरोगौरवाङ्गामर्दारोचकज्वराग्निदौर्बल्यानि भवन्ति । रात्रावपि जागरितवतां वातपित्तनिमित्तास्त[5] एवोपद्रवा भवन्ति ॥ ३८ ॥

भवन्ति चात्र ।

तस्मान्न जागृयाद्रात्रौ दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ।
ज्ञात्वा दोषकरावेतौ बुधः स्वप्नं मितं चरेत् ॥ ३९ ॥
अरोगः सुमना ह्येवं बलवर्णान्वितो नृ[6]षः ।
नातिस्थूलकृशः श्रीमान् नरो जीवेत् समाः शतम् ॥ ४० ॥
निद्रा सात्म्यीकृता यैस्तु रात्रौ च यदि वा दिवा ।
दिवा[7]रात्रौ च ये नित्यं स्वप्नजागरणोचिताः ॥
न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां वाऽपि जायते ॥ ४१ ॥
निद्रा[8]नाशोऽनिलात् पित्तान्मनस्तापात् क्षयादपि ।

---

र्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥"इति । १ स्वप्नदर्शने कारणं निर्दिशति–**पूर्वेति**। स्वपतः शरीरस्य प्रभुः स्वामी जीवात्मेत्यर्थः । २ तमसा करणानामिन्द्रियाणां वैकल्ये वैक्लव्ये अभिवर्द्धिते अभि सर्वतो बहिरन्तश्च प्रवर्द्धित इत्यर्थः। बहिरिन्द्रियविषयभूतेऽर्थे, अन्तर्मनोऽर्थे । ३ दिवास्वप्नस्य प्रवृत्तिनिवृत्तौ निर्दिशति–**सर्वर्तुष्विति** । ४ तथाऽपि ग्रीष्मे शरीररक्षार्थं दिवास्वप्नोऽभिहितः, सर्वदोषप्रकोपः=वातादिरक्तसर्वदोषप्रकोपश्चेत्यर्थः ।

५ ते=कासश्वासप्रतिश्यायादयः । ६ नृषः=शुक्लः, स्त्रीसम्भोगशक्तियुक्त इत्यर्थः । ७ अयमर्धश्लोके डल्हणसम्मतोऽतः स्थापितः । ८ निद्रानाशहेतून् तच्चिकित्सां च

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भवत्यभिघाताच्च प्रत्यनीकैः[1] प्रशाम्यति ॥ ४२ ॥
निद्रानाशेऽभ्यङ्गयोगो मूर्ध्नि तैलनिषेवणम् ।
गात्रस्योद्वर्त्तनं चैव हितं संवाहनानि[2] च ॥ ४३ ॥
शालिगोधूमपिष्टान्नभक्ष्यैरैक्षवसंस्कृतैः ।
भोजनं मधुरं स्निग्धं क्षीरमांसरसादिभिः ॥ ४४ ॥
रसैर्बिलेशयानां च विष्किराणां तथैव च ।
द्राक्षासितेक्षुद्रव्याणामुपयोगे भवेन्निशि ॥ ४५ ॥
शयनासनयानानि मनोज्ञानि मृदूनि च ।
निद्रानाशे तु कुर्वीत तथाऽन्यान्यपि[3] बुद्धिमान् ॥ ४६ ॥
निद्राऽतियोगे वमनं हितं संशोधनानि च ।
लङ्घनं रक्तमोक्षश्च मनोव्याकुलनानि च ॥ ४७ ॥
कफमेदोविषार्तानां रात्रौ जागरणं हितम् ।
दिवास्वप्नश्च तृट्शूलहिक्काजीर्णातिसारिणाम् ॥ ४८ ॥
इन्द्रियार्थेष्वसम्प्राप्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः ।
निद्रार्त्तस्येव यस्येहा[4][5] तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ ४९ ॥
[6]पीत्वैकमनिलोच्छ्वासमुद्वेष्टन् विवृताननः ।
यं मुञ्चति सनेत्रास्रं स जृम्भ इति संज्ञितः ॥ ५० ॥
योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः ।
क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥ ५१ ॥
सुखस्पर्शप्रसङ्गित्वं दुःखद्वेषणलोलता ।
शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मस्वालस्यमुच्यते ॥ ५२ ॥
उत्क्लिश्यान्नं न निर्गच्छेत् प्रसेकः[7] ष्ठीवनेरितम् ।
हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत् ॥ ५३ ॥

---

दर्शयति—**निद्रति** । १ प्रत्यनीकैः=अभ्यङ्गादिभिः । २ संवाहनानि=मृदुमर्दनानि । ३ अन्यानि=प्रावरणादीनि । ४ तन्द्रां निर्दिशति—**इन्द्रियेति** । ५ ईहा=चक्षुर्निमीलनादिका । ६ जृम्भादीनां लक्षणं ब्रवीति—**पीत्वेति** । ७ प्रसे-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्त्रे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्वेष्टनं भ्रमः[1]।
न चान्नमभिकाङ्क्षेत ग्लानिं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ ५४ ॥
आर्द्रचर्मावनद्धं हि यो गात्रमभिमन्यते।
तथा गुरु शिरोऽत्यर्थं गौरवं तद्विनिर्दिशेत् ॥ ५५ ॥
मूर्च्छा पित्ततमःप्राया, रजःपित्तानिलाद् भ्रमः।
तमोवातकफात्तन्द्रा, निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥ ५६ ॥

गर्भस्य खलु रसनिमित्ता मारुताध्माननिमित्ता[2] च परिवृद्धिर्भवति ॥ ५७ ॥

भवन्ति चात्र।

तस्यान्तरेण नाभेस्तु ज्योतिःस्थानं[3] ध्रुवं स्मृतम्।
तदाधमति[4] वातस्तु देहस्तेनास्य वर्धते ॥ ५८ ॥
ऊष्मणा सहितश्चापि दारयत्यस्य[5] मारुतः।
ऊर्ध्वं तिर्यगधस्ताच्च स्रोतांस्यपि यथा तथा ॥ ५९ ॥
दृष्टिश्च रोमकूपाश्च न वर्धन्ते कदाचन।
ध्रुवाण्येतानि[6] मर्त्यानामिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ ६० ॥
शरीरे क्षीयमाणेऽपि वर्द्धेते द्वाविमौ सदा।
स्वभावं प्रकृतिं[7] कृत्वा नखकेशाविति स्थितिः ॥ ६१ ॥

सप्त प्रकृतयो भवन्ति—दोषैः पृथक्, द्विशः, समस्तैश्च ॥६२॥

शुक्रशोणितसंयोगे यो भवेद्दोष उत्कटः[8]।
प्रकृतिर्जायते तेन तस्या मे लक्षणं शृणु ॥ ६३ ॥

तत्र[9] यः प्रजागरूकः शीतद्वेषी दुर्भगः स्तेनो मत्सर्यनार्यो[10] गान्धर्वचित्तः स्फुटितकरचरणोऽल्परूक्षश्मश्रुनखकेशः क्राथी[11] दन्तनख-

---

कः=आस्यस्रवणम्। १ हृदये बन्धनमिव वेदनाविशेषो हृदयोद्वेष्टनम्। २ मारुतेन वातेन आध्मानं स्रोतसां पूरणं तदेव निमित्तं कारणं यस्यां सा तथोक्ता। ३ ज्योतिः=अग्निः। ४ आधमति=प्रज्वलितं करोति। ५ दारयति=विस्तारयति। ६ ध्रुवाणि=निश्चलानि। ७ प्रकृतिं=कारणमित्यर्थः। ८ उत्कटः=प्रबलः।

९ वातप्रकृतेर्लक्षणं प्रतिपादयति—तत्रेति। १० अनार्यः=असज्जनः, गान्धर्वचित्तः गान्धर्वे सङ्गीते चित्तं यस्य स तथोक्तः। ११ क्राथी=हिंसाशीलः, अत्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खादी च भवति ॥ ६४ ॥

अधृतिरदृढसौहृदः कृतघ्नः कृशपरुषो धमनीततः प्रलापी ।
द्रुतगतिरटनोऽनवस्थितात्मा वियति च गच्छति सम्भ्रमेण सुप्तः ६५

अव्यवस्थितमतिश्चलदृष्टिर्मन्दरत्नधनसञ्चयमित्रः ।
किञ्चिदेव विलपत्यनिबद्धं मारुतप्रकृतिरेष मनुष्यः ॥ ६६ ॥

वातिकाश्चाजगोमायुशशाखूष्ट्रशुनां तथा ।
गृध्रकाकखरादीना[२]नूकैः कीर्तिता नराः ॥ ६७ ॥

[३]स्वेदनो दुर्गन्धः पीतशिथिलाङ्गस्ताम्रनखनयनतालुजिह्वौष्ठपाणिपादतलो दुर्भगो वलिपलितखालित्यजुष्टो बहुभुगुष्णद्वेषी क्षिप्रकोपप्रसादो मध्यमबलो मध्यमायुश्च भवति ॥ ६८ ॥

मेधावी निपुणमतिर्विगृह्य वक्ता तेजस्वी समितिषु दुर्निवारवीर्यः ।
सुप्तः सन्कनकपलाशकर्णिकारान्सम्पश्येदपि च हुताशविद्युदुल्काः ६९ ॥

न भयात् प्रणमेदनतेष्वमृदुः प्रणतेष्वपि सान्त्वनदानरुचिः ।
भवतीह सदा व्यथितास्यगतिः स भवेदिह पित्तकृतप्रकृतिः ॥ ७० ॥

भुजङ्गोलूकगन्धर्वयक्षमार्जारवानरैः ।
व्याघ्रर्क्षनकुलानूकैः पैत्तिकास्तु नराः स्मृताः ॥ ७१ ॥

[४]दूर्वेन्दीवरनिस्त्रिंशार्द्रारिष्टकशरकाण्डानामन्यतमवर्णः सुभगः प्रियदर्शनो मधुरप्रियः कृतज्ञो धृतिमान् सहिष्णुरलोलुपो बलवांश्चिरग्राही[५] दृढवैरश्च भवति ॥ ७२ ॥

शुक्लाक्षः स्थिरकुटिलालिनीलकेशो
लक्ष्मीवान् जलदमृदङ्गसिंहघोषः ।

---

'क्रोधी' इति पाठान्तरम्, दन्तनखखादी दन्तखादी नखखादीति सम्बन्धः । तत्र दन्तखादी इत्यस्य सुप्ते दन्तान् किटकिटायते इत्यर्थो बोध्यः । १ अनवस्थितात्मा = अनवस्थितचित्त इत्यर्थः । 'आत्मा कलेवरे यत्ने स्वभावे परमात्मनि । चित्ते धृतौ च बुद्धौ च परव्यावर्तनेऽपि च' इति धरणिः । २ वातिका नरा अजादीनाम् अनूकैः शीलैः कीर्तिता इत्यर्थः । ३ पित्तप्रकृतेर्लक्षणं ब्रवीति—**स्वेदन इति** । ४ कफप्रकृतेर्लक्षणमभिदधाति—**दूर्वेति** । इन्दीवरं = नीलकमलम्, निस्त्रिंशः = असिः, अरिष्टः = 'रीठा' इति ख्यातः, तस्य विशेषणमार्द्र इति । ५ चिरात् परिचितत्वेन मित्रत्वेन वा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्तः सन् सक्कमलहंसचक्रवाकान्
सम्पश्येदपि च जलाशयान् मनोज्ञान् ॥ ७३ ॥
रक्तान्तनेत्रः सुविभक्तगात्रः स्निग्धच्छविः सत्त्वगुणोपपन्नः ।
क्लेशक्षमो मानयिता[1] गुरूणां ज्ञेयो बलासप्रकृतिर्मनुष्यः ॥७४॥
दृढशास्त्रमतिः स्थिरमित्रधनः परिगण्य चिरात् प्रददाति बहु ।
परिनिश्चितवाक्यपदः सततं गुरुमानकरश्च[2] भवेत्स सदा ॥ ७५ ॥
ब्रह्मरुद्रेन्द्रवरुणैः सिंहाश्वगजगोवृषैः ।
तार्क्ष्यहंससमानूकाः श्लेष्मप्रकृतयो नराः ॥ ७६ ॥
द्वयोर्वा[3] तिसृणां वाऽपि प्रकृतीनां तु लक्षणैः ।
ज्ञात्वा संसर्गजा वैद्यः प्रकृतीरभिनिर्दिशेत् ॥ ७७ ॥
प्रकोपो[4] वाऽन्यभावो वा क्षयो वा नोपजायते ।
प्रकृतीनां स्वभावेन जायते तु गतायुषः ॥ ७८ ॥
विषजातो यथा कीटो न विषेण विपद्यते ।
तद्वत्प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवन्ति न[5] बाधितुम् ॥ ७९ ॥
प्रकृतिमिह[6] नराणां भौतिकीं केचिदाहुः
पवनदहनतोयैः कीर्त्तितास्तास्तु तिस्रः ।
स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च क्षमावान्
शुचिरथ चिरजीवी नाभसः खैर्महद्भिः[7] ॥ ८० ॥
शौचमास्तिक्यमभ्यासो वेदेषु गुरुपूजनम् ।

---

ग्रहीतुं शीलमस्येति चिरग्राही । १ मानयिता=पूजकः । २ मानकरः=सम्मानकरः । ३ संसर्गजप्रकृतेर्लक्षणं निर्दिशति—द्वयोरिति । ४ स्वभावतः प्रकृतीनां प्रकोपो वैपरीत्यं क्षयो वा स्वस्थस्य न भवति, किन्तु सन्निकृष्टमृत्योर्मर्त्यस्यैव भवतीति तात्पर्यम् ।

५ नकारोऽयमोषदर्थे । तेन वातादयो वातादिजकरचरणस्फुटनादिकं किञ्चित्कर्तुं शक्नुवन्ति न त्वधिकम् । तन्त्रान्तरेऽपि—"सर्वान् प्राणभृतो हन्ति नूनं तु कायगं विषम् । अस्मिंश्चापि समुत्पन्ना दृश्यन्ते क्रिमयो यथा । तथा हि विषयो दोषः प्रकृतिर्नातिबाधते ॥" इति । ६ एकीयमते प्रकृतीनां भौतिकत्वं दर्शयति—प्रकृतिमिति । ७ खैः=नासाकर्णादिच्छिद्रैरित्यर्थः । ८ सात्त्विककायेषु ब्रह्मकायलक्षणमाह—शौच-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियातिथित्वमिज्या च ब्रह्मकायस्य लक्षणम् ॥ ८१ ॥
माहात्म्यं शौर्यमाज्ञा च सततं शास्त्रबुद्धिता ।
भृत्यानां भरणं चापि माहेन्द्रं कायलक्षणम् ॥ ८२ ॥
शीतसेवा सहिष्णुत्वं पैङ्गल्यं[1] हरिकेशता[1] ।
प्रियवादित्वमित्येतद्वारुणं कायलक्षणम् ॥ ८३ ॥
मध्यस्थता सहिष्णुत्वमर्थस्यागमसञ्चयौ ।
महाप्रसवशक्तित्वं[2] कौबेरं कायलक्षणम् ॥ ८४ ॥
गन्धमाल्यप्रियत्वं च नृत्यवादित्रकामिता ।
विहारशीलता चैव गान्धव कायलक्षणम् ॥ ८५ ॥
प्राप्तकारी[3] दृढोत्थानो निर्भयः स्मृतिमान् शुचिः ।
रागमोहमदद्वेषैर्वर्जितो याम्यसत्त्ववान् ॥ ८६ ॥
जपव्रतब्रह्मचर्यहोमाध्ययनसेविनम् ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नमृषिसत्त्वं नरं विदुः ॥ ८७ ॥
सप्तैते सात्त्विकाः काया राजसांस्तु निबोध मे ।
ऐश्वर्यवन्तं रौद्रं च शूरं चण्ड[4]मसूयकम् ॥ ८८ ॥
एकाशिनं चौदरिक[5]मासुरं सत्त्वमीदृशम् ।
तीक्ष्णमायासिनं भीरुं चण्ड[6] मायाऽन्वितं तथा ॥ ८९ ॥
विहाराचारचपलं सर्पसत्त्वं विदुनरम् ।
प्रवृद्धकामसेवी चाप्यजस्राहार एव च ॥ ९० ॥
अमर्षणोऽनवस्थायी[7] शाकुनं कायलक्षणम् ।
एकान्तग्राहिता रौद्रमसूया धर्मबाह्यता ॥ ९१ ॥
भृशमात्मस्तवश्चापि[8] राक्षसं कायलक्षणम् ।

---

**मिति** । १ पैङ्गल्यं=पिङ्गलाक्षत्वम्, हरिकेशता=कपिलकचत्वम् । २ अत्यन्तसन्तानोत्पादनशक्तिरित्यर्थः । ३ प्राप्तकारी=युक्तियुक्तकर्मकारी, दृढोत्थानः=दृढोद्यमः । ४ चण्डं=तीव्रकोपम्, 'चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः' इत्यमरः । ५ औदरिकं=बहुभक्षकम् । ६ चण्डं=क्रोधनम्, मायाऽन्वितं=कपटयुक्तम् । ७ अनवस्थायी=अस्थिरचित्तः । ८ भृशमात्मस्तवः=अत्यन्तमात्मस्तुतिकर्तेत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्छिष्टाहारता तैक्ष्ण्यं साहसप्रियता तथा ॥ ९२ ॥
स्त्रीलोलुपत्वं नैर्लज्ज्यं पैशाचं कायलक्षणम् ।
असंविभागमलसं दुःखशीलमसूयकम् ॥ ९३ ॥
लोलुपं चाप्यदातारं प्रेतसत्त्वं विदुर्नरम् ।
षडेते राजसाः कायास्तामसांस्तु निबोध मे ॥ ९४ ॥
दुर्मेधस्त्वं मन्दता च स्वप्ने मैथुननित्यता ।
निराकरिष्णुता चैव विज्ञेयाः पाशवा गुणाः ॥ ९५ ॥
अनवस्थितता मौर्ख्यं भीरुत्वं सलिलार्थिता ।
परस्पराभिमर्दश्च मत्स्यसत्त्वस्य लक्षणम् ॥ ९६ ॥
एकस्थानरतिर्नित्यमाहारे केवले रतः ।
वानस्पत्यो नरः सत्त्वधर्म्मकामार्थवर्जितः ॥ ९७ ॥
इत्येते त्रिविधाः कायाः प्रोक्ता वै तामसास्तथा ।
कायानां प्रकृतीर्ज्ञात्वा त्वनुरूपां क्रियां चरेत् ॥ ९८ ॥
महाप्रकृतयस्त्वेता रजःसत्त्वतमःकृताः ।
प्रोक्ता लक्षणतः सम्यग् भिषक् ताश्च विभावयेत् ॥ ९९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने गर्भव्याकरणशारीरं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

१ असंविभागं = संविभज्य यो न खादति । २ मन्दता = कुटिलता, 'मन्दस्तु कुटिलेऽलसे' इति कोशः । ३ निराकरिष्णुता = बहिष्करणस्वभावः । ४ अभिमर्दः = युद्धम्, 'अभिमर्दो मन्थनयुद्धयोः' इति हेमचन्द्रः । ५ प्रकृतिं ज्ञात्वैव क्रिया कार्येत्युपदिशति—कायानामिति । अनुरूपां = यथोचितामित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायाः शारीरस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्थोऽध्यायः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातः शरीरसंख्याव्याकरणं शारीरं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

शुक्रशोणितं गर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसम्मूर्च्छितं 'गर्भ' इत्युच्यते । तं चेतनाऽवस्थितं वायुर्विभजति, तेज एनं पचति, आपः क्लेदयन्ति, पृथिवी संहन्ति, आकाशं विवर्धयति, एवं विवर्द्धितः स यदा हस्तपादजिह्वाघ्राणकर्णनितम्बादिभिरङ्गैरुपेतस्तदा 'शरीरम्' इति संज्ञां लभते । तच्च षडङ्गं शाखाश्चतस्रो, मध्यं पञ्चमं, षष्ठं शिर इति ॥ ३ ॥

अतः परं प्रत्यङ्गानि वक्ष्यन्ते-मस्तकोदरपृष्ठनाभिललाटनासाचिबुकबस्तिग्रीवा इत्येता एकैकाः, कर्णनेत्रनासाभ्रूशङ्खांसगण्डकक्षस्तनवृषणपार्श्वस्फिग्जानुबाहूरुप्रभृतयो द्वे द्वे-विंशतिरङ्गुलयः, स्रोतांसि वक्ष्यमाणानि, एष प्रत्यङ्गविभाग उक्तः ॥ ४ ॥

तस्य पुनः संख्यानं-त्वक्चः कला धातवो मला दोषा यकृत्प्लीहानौ फुप्फुस उण्डुको हृदयमाशया अन्त्राणि वृक्कौ स्रोतांसि कण्डरा

---

### पञ्चमोऽध्यायः ।

१ शरीरस्य संख्या अङ्गप्रत्यङ्गादीनामेकत्वादिपरिमाणं तस्या व्याकरणं विवरणम् । शेषं पूर्ववत् । २ आत्मा क्षेत्रज्ञः प्रकृतयः विकाराश्च सर्वभूतचिन्ताऽध्यायोक्तास्तैः सम्मूर्च्छितमभिव्याप्तमित्यात्मप्रकृतिविकारसम्मूर्च्छितम् । 'सम्मूर्च्छनमभिव्याप्तौ' इति मेदिनी । ३ चेतनाऽवस्थितम् = आत्माधिष्ठितमित्यर्थः ।

४ सङ्ग्रहे शरीरस्य प्रमाणम्—"स्वाङ्गुलैः पादाङ्गुष्ठप्रदेशिन्यौ द्व्यङ्गुलायते । तिस्रोऽन्याः क्रमेणोत्तरोत्तरं पञ्चभागहीनास्तन्नखहीना वा चतुरङ्गुलायताः" इत्यादिनाऽङ्गप्रत्यङ्गानां प्रत्येकमायामविस्तारौ प्रदर्श्य "सर्वं पुनः शरीरमङ्गुलानि चतुरशीति तदायामविस्तारसमं समुच्यते । यथोक्तपरिमाणमिष्टम्" इत्युक्तम् । ५ शाखा = हस्तपादम् , मध्यं = कण्ठादिगुदपर्यन्तम् , शिरः = सग्रीवं मस्तकम् । ६ चिबुकं = 'ठोडी' इति लोके । ७ शङ्खः = 'कनपटी' इति लोके । ८ स्फिक् = 'चूतड़' इति लोके ।

९ पूर्वोक्तं बाह्यमङ्गप्रत्यङ्गादिकं बाह्यतो द्रष्टुं शक्यते, किन्त्वाभ्यन्तरं तच्छवच्छेदनमन्तरा बाह्यतो द्रष्टुं न शक्यते इति तदपि संख्यातुमारभते—त्वच इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जालानि कूर्चा रज्जवः सेवन्यः सङ्घाताः सीमन्ता अस्थीनि सन्धयः स्नायवः पेश्यो मर्माणि सिरा धमन्यो योगवहानि स्रोतांसि च ॥ ५ ॥

त्वचः सप्त, कलाः सप्त, आशयाःसप्त, धातवः सप्त, सप्त सिराशतानि, पञ्च पेशीशतानि, नव स्नायुशतानि, त्रीण्यस्थिशतानि, द्वे दशोत्तरे सन्धिशते, सप्तोत्तरं मर्मशतं, चतुर्विंशतिर्धमन्यः, त्रयो दोषाः, त्रयो मलाः, नव स्रोतांसि, षोडश कण्डराः, षोडश जालानि, षट् कूर्चाः, चतस्रो रज्जवः, सप्त सेवन्यः, चतुर्दश सङ्घाताः, चतुर्दश सीमन्ताः, द्वाविंशतिर्योगवहानि स्रोतांसि, द्विकान्यन्त्राणि चेति समासः ॥ ६ ॥

विस्तारोऽत ऊर्ध्वं-त्वचोऽभिहिताः[२] कला धातवो मला दोषा यकृत्प्लीहानौ फुप्फुस उण्डुको हृदयं वृक्कौ च ॥ ७ ॥

आशयास्तु[३]-वाताशयः, पित्ताशयः, श्लेष्माशयो, रक्ताशयः, आमाशयः, पक्वाशयो, मूत्राशयः, स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टम इति ॥८॥

सार्धत्रिव्यामान्यन्त्राणि पुंसां, स्त्रीणामर्धव्यामहीनानि ॥ ९ ॥

श्रवणनयनवदनघ्राणगुदमेढ्राणि नव स्रोतांसि नराणां बहिर्मुखान्येतान्येव स्त्रीणामपराणि च त्रीणि द्वे स्तनयोरधस्ताद्रक्तवहञ्च ॥ १० ॥

---

१ धमन्या सह योगं वहन्ति यानि स्रोतांसि तानि योगवहानि प्राणोदकान्नादिवाहीनी धमनीव्याकरणे वक्ष्यमाणानि । २ प्राग् गर्भव्याकरणे । ३ आशयानुक्रमस्तु वाग्भटेनोक्तः—"रक्तस्याद्यः क्रमात्परे । कफामपित्तपक्वानां वायोर्मूत्रस्य च क्रमात् । गर्भाशयोऽष्टमः स्त्रीणां पित्तपक्वाशयान्तरा ॥" इति "नाभिस्तनान्तरं जन्तोराहुरामाशयं बुधाः । आमाशयादधः पक्वाशयादूर्ध्वन्तु या कला । ग्रहणीनामिका सैव कथितः पाचकाशयः । ऊर्ध्वमग्न्याशयो नाभेर्मध्यभागे व्यवस्थितः ॥ तस्योपरि तिलं ज्ञेयं तदधः पवनाशयः । पक्वाशयस्तु तदधः स एव तु मलाशयः ॥ तदधः कथितो बस्तिः स हि मूत्राशयोः मतः ॥" इति ।

४ पार्श्वतः प्रसारितयोर्बाह्वोर्मध्यं व्यामः, 'व्यामो बाह्वोः सकरयोस्ततयोस्तिर्यगन्तरम्' इत्यमरः । ५ अधस्तात्=स्मरातपत्रस्याधोभागे इत्यर्थः । स्मरातपत्रं च


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षोडश कण्डराः[1]—तासाञ्चतस्रः पादयोः, तावत्यो हस्तग्रीवापृष्ठेषु, तत्र हस्तपादगतानां कण्डराणां नखाः प्ररोहाः, ग्रीवाहृदयनिबन्धिनीनामधोभागगतानां [2]मेढ्रं, श्रोणिपृष्ठनिबन्धिनीनामधोभागगतानां [3]बिम्बं, मूर्धोरुवक्षोंऽसपिण्डादीनां च ॥ ११ ॥

मांस[4]सिरास्नाय्वस्थिजालानि प्रत्येकं चत्वारि चत्वारि[5], तानि मणिबन्धगुल्फसंश्रितानि परस्परनिबद्धानि परस्परसंश्लिष्टानि परस्परगवाक्षि[6]तानि चेति, यैर्गवाक्षि[7]तमिदं शरीरम् ॥ १२ ॥

षट् [8]कूर्च्चाः—ते हस्तपादग्रीवामेढ्रोषु, हस्तयोर्द्वौ, पादयोर्द्वौ, ग्रीवामेढ्रयोरेकैकः ॥ १३ ॥

महत्यो मांसरज्ज[9]वश्चतस्रः—पृष्ठवंशमुभयतः [10]पेशीनिबन्धनार्थं द्वे बाह्ये, आभ्यन्तरे च द्वे ॥ १४ ॥

सप्त सेवन्यः—शिरसि विभक्ताः पञ्च, जिह्वाशेफसोरेकैकाः,

---

भगस्योपरिभागे, उक्तं च तन्त्रान्तरे—"विपुलपिप्पलपत्रसमाकृतेरवयवस्य शिरस्तलमाश्रितम्। सकलकामसिरामुखचुम्बितं निगदितं मदनातपवारणम्॥" इति। १ कण्डराः= स्थूलाः स्नायवः, सा आकारे वृत्ता इति वक्ष्यति—"वृत्तास्तु कण्डराः सर्वा विज्ञेयाः कुशलैरिह" इति। २ जननेन्द्रियवाचकोऽयं मेढ्रशब्दः, तेन पुंसां मेढ्रः स्त्रीणां योनिरित्यर्थः। ३ बिम्बं मण्डलमर्थान्निस्तम्बस्येति डल्हणः। हाराणचन्द्रस्तु—'बिम्बः' इति पठित्वा बिम्बः सच्छिद्रं त्रिकास्थि उच्यते इति व्याख्याति। मूर्धोरुवक्षोंऽसपिण्डादीनां चेत्यत्र पूर्ववाक्याद् 'बिम्बम्' इत्यनुवर्त्य व्याख्येयम्। हाराणचन्द्रस्तु—'उरुवक्षोऽक्षपिण्डादिगतानां च मूर्धा' इति पाठं मनुते। ४ जालानि निर्दिशति—**मांसेति**। ५ एकस्मिन् मणिबन्धे एकं जालं सिरायाः, अपरं स्नायोः, तृतीयं मांसस्य, चतुर्थमस्थ्नः। एवं चत्वारि चत्वारि जालानि षोडश बोध्यानि। एतेनेतरमणिबन्धो गुल्फौ च व्याख्यातौ। ६ गवाक्षा सञ्जाता एषां तानि गवाक्षितानि सञ्जातपरस्परच्छिद्राणीत्यर्थः। ७ गवाक्षितं=विरचितनिरन्तरजालकाकाररन्ध्रनिकरपरिकलितम्। ८ कूर्चा इव कूर्चाः। "कूर्चा अपि सिरास्नायुमांसास्थिप्रभवाः स्मृताः" इति। ९ रज्जवः=बन्धन्य इत्यर्थः।

१० पेशीनिबन्धनार्थमित्यनेन प्रयोजनं प्रतिपाद्यते। तदुक्तम्—"पृष्ठवंशस्योभयत्र महत्यो मांसरज्जवः। चतस्रो मांसपेशीनां बन्धनं तत्प्रयोजनम्" ॥ "अस्थ्नां संयोजिकाः शुभ्राः सौत्रिका रज्जवो मताः। काश्चित् स्थूलाः प्रशस्ताश्च दीर्घा बहुविधा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताः परिहर्त्तव्याः शस्त्रेण ॥ १५ ॥

चतुर्दशास्थ्नां सङ्घाताः, तेषां त्रयो गुल्फजानुवङ्क्षणेषु, एतेनेतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ। त्रिकशिरसोरेकैकः ॥ १६ ॥

चतुर्दश एव सीमन्ताः, ते चास्थिसङ्घातवद् गणनीयाः यतस्तैर्युक्ता अस्थिसङ्घाताः, ये ह्युक्ताः सङ्घातास्ते खल्वष्टादशैकेषाम् ॥ १७ ॥

त्रीणि सषष्टीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते, शल्यतन्त्रे तु त्रीण्येव शतानि। तेषां सविंशमस्थिशतं शाखासु, सप्तदशोत्तरं शतं श्रोणिपार्श्वपृष्ठोरःसु, ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं त्रिषष्टिः, एवमस्थ्नां त्रीणि शतानि पूर्यन्ते ॥ १८ ॥

एकैकस्यां तु पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणि तानि पञ्चदश, तलकूचगुल्फसंश्रितानि दश, पाष्ण्यामेकम्, जङ्घायां द्वे, जानुन्येकम्, एकमूराविति, त्रिंशदेवमेकस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति, एतेनेतरसक्थि

---

स्तथा ॥" इति। १ यत एषु स्थानेषु शस्त्रकर्मणा सन्धानं काठिन्येन भवतीति भावः। २ सङ्घाताः=दृढसंयोगाः। ३ अत्र त्रिकपदेन बाहुग्रीवाऽस्थित्रय सङ्घात उच्यते। ४ सीमन्ताः केशवद्विकाशिताः सङ्घातनिबन्धना भावविशेषा इति सुश्रुतार्थसन्दीपनम्। "सङ्घाताः सीविता यैस्तु सीमन्तास्ते प्रकीर्तिताः" इति तन्त्रान्तरम्। यैरस्थिभिरिति तदर्थः। ५ तैः=सीमन्तैः। ६ एकेषां="चतुर्दशास्थिसङ्घाताः सीमन्ता द्विगुणा नव" इति वाग्भटेनोक्तानाम्।

७ वेदवादिनः=याज्ञवल्क्यादयः, "अस्थ्नां सह षष्ट्या शतत्रयम्" इति भाषन्ते। चरकेऽपि सषष्टीन्यस्थिशतान्युक्तानि। एवं वाग्भटेऽपि—"अस्थ्नां शतानि षष्टिश्च त्रीणि दन्तनखैः सह" इत्युक्तम्। षट्चत्वारिंशदधिकद्विशतसंख्याऽस्थिमयोऽयं नरकङ्काल इति भगवत औरभ्रस्य मतम्। केषाञ्चन मतेऽष्टचत्वारिंशदधिकशतद्वयम्। त्रिपञ्चाशदधिकशतद्वयमित्यन्ये। षडधिकद्विशतानीत्याधुनिकपाश्चात्यचिकित्सकाः।

८ स्वमतं दर्शयति—**त्रीण्येव शतानीति**। ९ 'तेषामष्टादशोत्तरं शतं शाखासु, पञ्चाधिकं शतं श्रोणिपार्श्वपृष्ठोरःकण्ठनाडीषु, ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं सप्तसप्ततिः, एवमस्थ्नां त्रीणि शतानि पूर्यन्ते' इति श्रीहाराणचन्द्रसम्मतपाठः।

१० विंशत्यधिकशतं शाखागतान्यस्थीनि दर्शयति—**एकैकस्यामिति**। एकैकस्यां पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणि, अङ्गुष्ठे द्वे, तानि चतुर्दश। तलकूर्चगुल्फसंश्रितान्येकादश, पाष्ण्यामेकम्, जङ्घायां द्वे, जानुन्येकम्, एकमूराविति त्रिंशदेकस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति। द्वितीयेऽप्येवम्। एतेनैव च जानुवर्ज्जेन बाहू च व्याख्यातौ' इति श्रीहाराण-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहू च व्याख्यातौ। श्रोण्यौं पञ्च, तेषां गुदभगनितम्बेषु चत्वारि, त्रिकसंश्रितमेकं, पार्श्वे षट्त्रिंशदेकस्मिन्, द्वितीयेऽप्येवम्, पृष्ठे त्रिंशत्, अष्टावुरसि, द्वे अंसफलके, ग्रीवायां[३] नव, कण्ठनाड्यां चत्वारि, द्वे हन्वोः, दन्ता द्वात्रिंशत्, नासायां त्रीणि, एकं तालुनि, गण्डकर्णशङ्खेष्वेकैकं, षट् शिरसि ॥ १९ ॥

एतानि पञ्चविधानि भवन्ति। तद्यथा—कपालरुचकतरुणवलयनलकसंज्ञानि। तेषां जानुनितम्बांसगण्डतालुशङ्खशिरःसु कपालानि, दशनास्तु रुचकानि, घ्राणकर्णग्रीवाऽक्षिकोषेषु[३] तरुणानि, पार्श्वपृष्ठोरःसु वलयानि, शेषाणि[४] नलकसंज्ञानि ॥ २० ॥

भवन्ति चात्र।

अभ्यन्तरगतैः[५] सारैर्यथा तिष्ठन्ति भूरुहाः।
अस्थिसारैस्तथा देहा ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम् ॥ २१ ॥
तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम्।
अस्थीनि न विनश्यन्ति साराण्येतानि देहिनाम् ॥ २२ ॥
मांसान्यत्र[६] निबद्धानि सिराभिः स्नायुभिस्तथा।
अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्यन्ते पतन्ति वा ॥ २३ ॥
सन्धयस्तु[७] द्विविधाः—चेष्टावन्तः स्थिराश्च ॥ २४ ॥

---

चन्द्रसम्मतपाठः। १ सप्तदशोत्तरं शतं पार्श्वादिगतानि दर्शयति—**श्रोण्यामिति**। श्रोण्यां पञ्च, तेषां गुदभगनितम्बेषु चत्वारि, त्रिकसंश्रितमेकम्, पार्श्वयोरष्टचत्वारिंशत्, पृष्ठे चतुर्विंशतिः, द्वे अंसपीठे, उरसि त्रीणि, अक्षकसंज्ञे द्वे, फुप्फुसनिबद्धायां कण्ठसंसक्तायां नाड्यामेकविंशतिः, ग्रीवायाः पुरस्तान्नवकम्, तदूर्ध्वमेकम्, अभ्यन्तरतः कर्णशङ्कुल्योरधस्तात् षट्, गण्डकर्णशङ्खेष्वेकैकम्, हनुसमाख्यमेकम्, दन्ता द्वात्रिंशत्, नासायामष्टौ, नासायामुपकनीनकं द्वे, अपाङ्गयोरधस्ताद् द्वे, वर्त्मसंज्ञे द्वे, षट् शिरसि-शिरसोऽभ्यन्तरे च द्वे।' इति श्रीहाराणचन्द्रसम्मतपाठः।

२ त्रिषष्टिः ग्रीवोर्ध्वगतानि निर्दिशति—**ग्रीवायामिति**। ३ अक्षिकोषः = अक्षिपिधानं वर्त्म। ४ शेषाणि भोजोक्तानि—"हस्तपादाङ्गुलितले कूर्चेषु मणिबन्धयोः। बाहुजङ्घाद्वये चापि जानीयान्नलकानि तु॥" इति। ५ शरीरधारणेऽस्थ्नां प्राधान्यं निदर्शयति—**अभ्यन्तरेति**। ६ अत्र = अस्थ्नि। ७ अस्थ्याश्रितसन्धीन्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाखासु हन्वोः[1] कटयां च चेष्टावन्तस्तु सन्धयः।
शेषास्तु सन्धयः सर्वे विज्ञेया हि स्थिरा बुधैः॥ २४॥

सङ्ख्यातस्तु दशोत्तरे द्वे शते। तेषां शाखास्वष्टषष्टिः, एकोनषष्टिः[2] कोष्ठे, ग्रीवां प्रत्यूर्ध्व त्र्यशीतिः। एकैकस्यां[3] पादाङ्गुल्यां त्रयस्त्रयः, द्वावङ्गुष्ठे, ते चतुर्दश। जानुगुल्फवङ्क्षणेष्वेकैकः, एवं सप्तदशैककस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति। एतेनेतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ। त्रयः[4] कटीकपालेषु, चतुर्विंशतिः पृष्ठवंशे, तावन्त एव पार्श्वयोः उरस्यष्टौ। तावन्त[5] एव ग्रीवायां, त्रयः कण्ठे, नाडीषु हृदयक्लोमनिबद्धास्वष्टादश, दन्तपरिमाणा दन्तमूलेषु, एकः काकलके[6] नासायां च, द्वौ वर्त्ममण्डलजौ नेत्राश्रयौ, गण्डकर्णशङ्खेष्वेकैकः, द्वौ हनुसन्धी, द्वावुपरिष्टाद् भ्रुवोः शङ्ख्योश्च[7], पञ्च शिरःकपालेषु, एको मूर्ध्नि॥ २६॥

त एते सन्धयोऽष्टविधाः—कोरोलूखलसामुद्गप्रतरतुन्नसेवनीवायसतुण्डमण्डलशङ्खावर्ताः। तेषामङ्गुलिमणिबन्धगुल्फजानुकूर्परेषु कोराः सन्धयः, कक्षावङ्क्षणदशनेषूलूखलाः, अंसपीठगुदभगनितम्बेषु सामुद्गाः, ग्रीवापृष्ठवंशयोः प्रतराः, शिरःकटीकपालेषु तुन्न-

---

दर्शयति-**सन्धयस्त्विति**। १ हन्वोः=हनुमूलयोः, कक्ष्यां चेति चकाराद् ग्रीवायामपि चेष्टावन्तश्चला इत्यर्थः। २ 'एकोननवतिः कोष्ठे, ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं त्रिपञ्चाशत्' इति हाराणचन्द्रः। ३ शाखास्वष्टषष्टिं विवृणोति-**एकैकस्यामिति**। ४ कोष्ठगतानाह-**त्रय इति**। ५ ग्रीवोर्ध्वगतानाह--**तावन्त इति**। तावन्तः=अष्टावित्यर्थः। ६ काकलके=घण्टिकायामित्यर्थः।

७ शङ्ख्योश्चोपरिष्टाद् द्वावित्यर्थः। तदुक्तं तन्त्रान्तरे-"ग्रीवास्वष्टौ त्रयः कण्ठे कण्ठनाड्यां नवद्वयम्। वर्त्ममण्डलगण्डाह्वकर्णशङ्खहनुद्वये॥ भ्रूशङ्खद्वितयस्योर्ध्वं सप्तस्वेषु द्वयं द्वयम्। कपाले पञ्च मूर्ध्न्येको नासाकाकलयोर्द्वयम्। द्वात्रिंशता व्यशीतिः स्यादेवं दन्ताश्रितैः सह॥" इति। ८ कोरः=गर्तः, कपाटादिनिबन्धनार्थो यन्त्रभेद 'कबजा' इत्याख्यायत इति सुश्रुतार्थसन्दीपनम्। उलूखलः प्रसिद्धः, समुद्गः सम्पुटः, समुद्ग एव सामुद्गः, प्रतरत्यनेनेति प्रतरः वेलकः, छिन्नानामल्पं सेवनं स्यूतं तुन्नसेवनी, तूणसेवनीति नामान्तरम्, तत्र तूणस्य तूणीरस्येव सेवनीत्यर्थो बोध्यः। वायसतुण्डं काकमुखम्, मण्डलः गोलः, शङ्खस्यावर्तः शङ्खावर्तः, एते यथानामप्रकृतयः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवन्यः, हनोरुभयतस्तु वायसतुण्डः, कण्ठहृदयनेत्रक्लोमनाडीषु[1] मण्डलाः, श्रोत्रशृङ्गाटकेषु शङ्खावर्त्ताः। तेषां नामभिरेवाकृतयः प्रायेण व्याख्याताः ॥ २७ ॥

अस्थ्नां तु सन्धयो ह्येते केवलाः परिकीर्त्तिताः।
पेशीस्नायुसिराणां तु सन्धिसङ्ख्या न विद्यते ॥ २८ ॥

नव स्नायुशतानि[2]। तासां शाखासु षट्शतानि, द्वे शते त्रिंशच्च कोष्ठे, ग्रीवां प्रत्यूर्ध्व सप्ततिः। एकैकस्यान्तु पादाङ्गुल्यां षट् निचिताः, तावत्य एव तलकूर्चगुल्फेषु[3] तावत्य एव जङ्घायाम्, दश जानुनि, चत्वारिंशदूरौ, दश वङ्क्षणे, शतमध्यर्द्धमेवमेकस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति। एतेनतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ। षष्टिः[4] कटयाम्, पृष्ठेऽशीतिः, पार्श्वयोः षष्टिः, उरसि त्रिंशत्, द्वात्रिंशद् ग्रीवायाम्[5], मूर्ध्नि चतुस्त्रिंशत्। एवं नव स्नायुशतानि व्याख्यातानि ॥ २९ ॥

भवन्ति चात्र।

स्नायूश्चतुर्विधा विद्यात्तास्तु सर्वा निबोध मे।
प्रतानवत्यो[6] वृत्ताश्च पृथ्व्यश्च शुषिराः[7] स्तथा ॥ ३० ॥
प्रतानवत्यः शाखासु सर्वसन्धिषु चाप्यथ।
वृत्तास्तु कण्डराः[8] सर्वा विज्ञेयाः कुशलैरिह ॥ ३१ ॥
आमपक्वाशयान्तेषु वस्तौ च शुषिराः खलु।
पार्श्वोरसि तथा पृष्ठे पृथुलाश्च[9] शिरस्यथ ॥ ३२ ॥

---

सन्धयो बोध्याः। १ फुफ्फुसनाडीष्विति पाठान्तरम्। श्वासनाडीष्विति तदर्थः। २ स्नायूनां स्वरूपादिकमाह तन्त्रान्तरे—"स्नायवः सूत्रवत्सूक्ष्माः शुभ्रा निखिलदेहगाः। कारणानि चेतनानां सदा चैतन्यसाधने ॥ सुखदुःखावबोधे च प्रवृत्तौ च निवर्तने ॥" इत्यादि। ३ शाखासु षट्शतानि स्नायुसंख्या दर्शयति—**एकैकस्यामिति**। ४ त्रिंशदधिकद्विशतं कोष्ठगताः स्नायुसंख्या दर्शयति—**षष्टिरिति**। ५ ग्रीवोर्ध्वगताः सप्ततिस्नायुसंख्या आह—**षडिति**। ६ प्रतानवत्यः=शाखाप्रशाखभिर्विस्तारवत्यः। ७ शुषिराः=सच्छिद्राः। ८ कण्डराः=स्थूलाः स्नायवः, ता अपि शाखासु सर्वसन्धिषु चेति सम्बन्धः। ९ पृथुलाः=पृथुलसंज्ञका इत्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौर्यथा फलकैस्तीर्णा[1] बन्धनैर्बहुभिर्युता ।
भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता सुसमाहिता ॥ ३३ ॥
एवमेव शरीरेऽस्मिन् यावन्तः सन्धयः स्मृताः ।
स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः ॥ ३४ ॥
न ह्यस्थीनि न वा पेश्यो न सिरा न च सन्धयः ।
व्यापादितास्तथा हन्युर्यथा स्नायुः शरीरिणम् ॥ ३५ ॥
यः स्नायूः प्रविजानाति बाह्याश्चाभ्यन्तरास्तथा ।
स गूढं शल्यमाहर्त्तुं देहाच्छक्नोति देहिनाम् ॥ ३६ ॥

पञ्च पेशीशतानि[2] भवन्ति । तासां चत्वारि शतानि शाखासु, कोष्ठे षट्षष्टिः, ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं चतुस्त्रिंशत् । एकैकस्यां[3] तु पादाङ्गुल्यां तिस्रस्तिस्रस्ताः पञ्चदश, दश प्रपदे, पादोपरि कूर्चसन्निविष्टास्तावत्य एव, दश गुल्फतलयोः, गुल्फजान्वन्तरे विंशतिः, पञ्च जानुनि, विंशतिरूरौ, दश वङ्क्षणे, शतमेवमेकस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति, एतेनेतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ । तिस्रः[4] पायौ, एका मेढ्रे, सेवन्यां चापरा, द्वे वृषणयोः, स्फिचोः पञ्च पञ्च, द्वे वस्तिशिरसि, पञ्चोदरे, नाभ्यामेका, पृष्ठोर्ध्वसन्निविष्टाः पञ्च पञ्च दीर्घाः, षट् पार्श्वयोः, दश वक्षसि, अक्षकांसौ प्रति समन्तात् सप्त, द्वे हृदयामाशययोः, षट् यकृत्प्लोहोण्डुकेषु, ग्रीवायां[5] चतस्रः, अष्टौ हन्वोः, एकैका काकलकगलयोः, द्वे तालुनि, एका जिह्वायाम्, ओष्ठयोर्द्वे, नासायां द्वे, द्वे नेत्रयोः, गण्डयोश्चतस्रः, कर्णयोर्द्वे, चतस्रो ललाटे, एका शिरसीति । एवमेतानि पञ्च पेशीशतानि ॥ ३७ ॥

भवति चात्र ।

सिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि सन्धयश्च शरीरिणाम् ।

---

१ फलकैः काष्ठपट्टैः आस्तीर्णा व्याप्तेत्यर्थः । २ "पञ्चपेशीशतान्येव स्त्रीवजें विद्धि भूमिप । अतश्च तिस्रो ह्रीयन्ते स्त्रीणां शेफसि मुष्कयोः ॥" इति भोजवचनं सुश्रुतविरोधादुपेक्ष्यम्, यतः शिश्नमुष्कगतानां तिसृणां पेशीनां तस्या गर्भाशयेऽवस्थानेन पञ्चशतसंख्यापूरणात् । ३ शाखासु पेशीनां चतुःशतसंख्या दर्शयति—एकैकस्यामिति । ४ कोष्ठगतषट्षष्टिसंख्या निर्दिशति—तिस्र इति । ५ ग्रीवोर्ध्वगतचतु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेशीभिः संवृतान्यत्र बलवन्ति भवन्त्यतः ॥ ३८ ॥

स्त्रीणां तु विंशतिरधिका । दश तासां स्तनयोरेकैकस्मिन् पञ्च पञ्चेति यौवने तासां परिवृद्धिः । अपत्यपथे चतस्रः—तासां प्रसृतेऽभ्यन्तरतो द्वे, मुखाश्रिते बाह्ये च वृत्ते द्वे, गर्भच्छिद्रसंश्रितास्तिस्रः, शुक्रार्त्तवप्रवेशिन्यस्तिस्र एव । पित्तपक्वाशययोर्मध्ये गर्भशय्या, यत्र गर्भस्तिष्ठति ॥ ३९ ॥

तासां बहलपेलवस्थूलाणुपृथुवृत्तह्रस्वदीर्घस्थिरमृदुश्लक्ष्णकर्कशभावाः सन्ध्यस्थिसिरास्नायुप्रच्छादका यथाप्रदेशं स्वभावत एव भवन्ति ॥ ४० ॥

भवति चात्र ।

पुंसां पेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्ता लक्षणमुष्कजाः ।
स्त्रीणामावृत्य तिष्ठन्ति फलमन्तर्गतं हि ताः ॥ ४१ ॥
मर्मसिराधमनीस्नोतसामन्यत्र प्रविभागः ॥ ४२ ॥
शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्ता सा प्रकीर्तिता ।
तस्यास्तृतीये त्वावर्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥ ४३ ॥
यथा रोहितमत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः ।
तत्संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥ ४४ ॥
आभुग्नोऽभिमुखः शेते गर्भो गर्भाशये स्त्रियाः ।
स योनिं शिरसा याति स्वभावात् प्रसवं प्रति ॥ ४५ ॥
त्वक्पर्यन्तस्य देहस्य योऽयमङ्गविनिश्चयः ।

---

स्त्रिंशत्संख्या दर्शयति—ग्रीवायामिति । १ प्रसृते योनेरभ्यन्तरतः प्रसारिते मूत्रस्रोतःस्वरूपे द्वे द्वे च योनिमुखाश्रिते बाह्ये गोले इत्यर्थः । २ गर्भच्छिद्रसंश्रिताः = आवर्तत्रयरूपेण गर्भाशयमार्गमाश्रिता इत्यर्थः ।

३ पेशीनां स्थानवशान्नानास्वरूपमभिदधाति—तासामिति । बहला = दृढा बहुतरा वा, पेलवा = अतिकोमला अल्पा वा । ४ श्लक्ष्णाः = चिक्कणा स्पर्शसुखा इत्यर्थः । ५ पुंसां मेहनमुष्कयोश्च यास्तिस्रो मांसपेश्यः पूर्वमुक्तास्ताः स्त्रीणां मेहनमुष्काभावादन्तर्गतं फलं गर्भाशयमावृत्य तिष्ठन्तीत्यर्थः । ६ अन्यत्र = षष्ठसप्तमनवमाध्यायेष्वित्यर्थः । ७ आभुग्नः = कुटिलीकृताङ्गः, सङ्कुचिताङ्ग इति यावत् । अभि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शल्यज्ञानादृते नैष वर्ण्यतेऽङ्गेषु केषुचित् ॥ ४६ ॥
तस्मान्निःसंशयं ज्ञानं हर्त्रा शल्यस्य वाञ्छता।
शोधयित्वा [1]मृतं सम्यग् द्रष्टव्योऽङ्गविनिश्चयः ॥ ४७ ॥
प्रत्यक्षतो हि यद् दृष्टं शास्त्रदृष्टञ्च यद्भवेत्।
समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्द्धनम् ॥ ४८ ॥

[2]तस्मात् समस्तगात्रमविषोपहतमदीर्घव्याधिपीडितमवर्षशतिकं निःसृष्टान् [3]पुरीषं पुरुषमवहन्त्यामापगायां निबद्धं पञ्जरस्थं मुञ्जवल्कलकुशशणादीनामन्यतमेनावेष्टिताङ्गप्रत्यङ्गमप्रकाशे [4]देशे कोथयेत्। सम्यक्[5]प्रकुथितं चोद्धृत्य ततो देहं सप्तरात्रादुशीरबालवेणुवल्कलकूर्चानामन्यतमेन शनैः शनैरवघर्षयंस्त्वगादीन् सर्वानेव बाह्याभ्यन्तराङ्गप्रत्यङ्गविशेषान् यथोक्तान् लक्षयेच्चक्षुषा ॥ ४९ ॥

श्लोकौ चात्र भवतः।

न शक्यश्चक्षुषा द्रष्टुं देहे सूक्ष्मतमो[6] विभुः।
दृश्यते ज्ञानचक्षुर्भिस्तपश्चक्षुर्भिरेव च ॥ ५० ॥
शरीरे चैव शास्त्रे च दृष्टार्थः स्याद्विशारदः।
दृष्टश्रुताभ्यां सन्देहम [7]पोह्याचरेत् क्रियाः ॥ ५१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने शरीरसंख्याव्याकरणशारीरं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

मुखः=मातुः पृष्ठाभिमुखः। १ मृतं=शवमित्यर्थः। २ शास्त्रदृष्टाभ्यान्तरशारीरस्य प्रत्यक्षीकरणोपायमाख्याति—**तस्मादिति**। ३ अन्त्रगतं पुरीषमन्त्रपुरीषम्। ४ अन्यथा मत्स्यादिना भक्षितत्वादसम्पूर्णावयवता स्यादिति भावः। ५ प्रकुथितं=शटितम्। ६ सूक्ष्मतमः=परमसूक्ष्मः, 'बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च भागो जीवः' इति श्रुतिः। विभुः=आत्मा। ७ अपोह्य=दूरीकृत्येत्यर्थः।

**इति सुश्रुतसंहितायाः शारीरस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चमोऽध्यायः।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# षष्ठोऽध्यायः ।

अथातः प्रत्येकमर्मनिर्देशं शारीरं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

सप्तोत्तरं मर्मशतम् । तानि मर्माणि पञ्चात्मकानि भवन्ति । तद्यथा—मांसमर्माणि, सिरामर्माणि, स्नायुमर्माणि, अस्थिमर्माणि, सन्धिमर्माणि चेति, न खलु मांससिरास्नाय्वस्थिसन्धिव्यतिरेकेणान्यानि मर्माणि भवन्ति यस्मान्नोपलभ्यन्ते ॥ ३ ॥

तत्रैकादश मांसमर्माणि, एकचत्वारिंशत् सिरामर्माणि, सप्त-

---

## षष्ठोऽध्यायः ।

१ म्रियते येनाङ्गमुपहते इति मर्म 'सर्वधातुभ्यो मनिन्' उणादिः, प्रत्येकमेकैकेषां मर्मणां निर्देशो विवरणं विद्यते यस्मिन्नध्याये तम् । शेषं पूर्ववत् । मर्माणि मांससिराऽऽदि संश्रितानीति पूर्वाध्याये शरीरसंख्याव्याकरणे एव व्याख्यातुमुचितानि, तथाऽपि बहुवक्तव्यत्वात्पृथगुच्यन्ते । २ मांसबहुलानि मर्माणि मांसमर्माणीत्यर्थः । एवमेव शेषं व्याख्येयम् । यतो वक्ष्यति—"मर्माणि नाम मांससिरास्नाय्वस्थिसन्धिसन्निपाताः"

३ एकादश ११ मांसमर्माणि ।

| मर्मनामानि | सं० |
|---|---|
| तलहृदयानि | ४ |
| इन्द्रबस्तीनि | ४ |
| गुदम् | १ |
| स्तनरोहिते | २ |
| | ११ |

एकचत्वारिंशत् ४१ सिरामर्माणि ।

| मर्मनामानि | सं० |
|---|---|
| नीलधमन्यः | ४ |
| मातृकाः | ८ |
| शृङ्गाटकानि | ४ |
| अपाङ्गे | २ |
| स्थपनी | १ |
| फणे | २ |
| स्तनमूले | २ |
| अपस्तम्भौ | २ |
| अपलापौ | २ |
| हृदयम् | १ |
| नाभिः | १ |
| पार्श्वसन्धी | २ |
| बृहत्यौ | २ |
| लोहिताक्षाणि | ४ |
| ऊर्व्यः | ४ |
| | ४१ |

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विंशतिः स्नायुमर्माणि, अष्टावस्थिमर्माणि, विंशतिः सन्धिमर्माणि चेति । तदेतत् सप्तोत्तरं मर्मशतम् ॥ ४ ॥

तेषामेकादशैकस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति, एतेनेतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ, उदरोरसोर्द्वादश, चतुर्दश पृष्ठे, ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं सप्तत्रिंशत् ॥ ५ ॥

तत्र सक्थिमर्माणि क्षिप्रतलहृदयकूर्चकूर्चशिरोगुल्फेन्द्रबस्ति-जान्वाण्यूर्वीलोहिताक्षाणि विटपं चेति । एतेनेतरत् सक्थि व्याख्यातम् । उदरोरसोस्तु गुदबस्तिनाभिहृदयस्तनमूलस्तनरोहितापलापान्यपस्तम्भौ चेति । पृष्ठमर्माणि तु कटीकतरुणकुकुन्दरनितम्बपार्श्वसन्धिबृहत्यंसफलकान्यंसौ चेति । बाहुमर्माणि तु क्षिप्रतलहृदयकूर्चकूर्चशिरोमणिबन्धेन्द्रबस्तिकूर्पराण्यूर्वीलोहिताक्षाणि कक्षधरं

---

**सप्तविंशतिः २७ स्नायुमर्माणि ।**

| मर्मनामानि | सं० |
|---|---|
| आप्यः | ४ |
| विटपौ | २ |
| कक्षधरौ | २ |
| कूर्चाः | ४ |
| कूर्चशिरांसि | ४ |
| बस्तिः | १ |
| क्षिप्राणि | ४ |
| अंसौ | २ |
| विधुरे | २ |
| उत्क्षेपौ | २ |
| | २७ |

**अष्टौ ८ अस्थिमर्माणि ।**

| मर्मनामानि | सं० |
|---|---|
| कटीकतरुणे | २ |
| नितम्बौ | २ |
| अंसफलके | २ |
| शङ्खौ | २ |
| | ८ |

**विंशतिः २० सन्धिमर्माणि ।**

| मर्मनामानि | सं० |
|---|---|
| जानुनी | २ |
| कूर्परौ | २ |
| सीमन्ताः | ५ |
| अधिपतिः | १ |
| गुल्फौ | २ |
| मणिबन्धौ | २ |
| कुकुन्दरे | २ |
| आवर्तौ | २ |
| कृकाटिके | २ |
| | २० |

१ क्षिप्रादीनां मर्मणां लक्षणमग्रे वक्ष्यति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेति । एतेनेतरो बाहुर्व्याख्यातः । जत्रुण ऊर्ध्वं मर्माणि चतस्रो धमन्योऽष्टौ मातृका द्वे कृकाटिके द्वे विधुरे द्वे फणे द्वावपाङ्गौ द्वावावर्त्तौ द्वावुत्क्षेपौ द्वौ शङ्खावेका स्थपनी पञ्च सीमन्ताश्चत्वारि शृङ्गाटकान्येकोऽधिपतिरिति ॥ ६ ॥

तत्र तलहृदयेन्द्रबस्तिगुदस्तनरोहितानि मांसमर्माणि, नीलधमनीमातृकाशृङ्गाटकापाङ्गस्थपनीफणस्तनमूलापलापास्तम्भहृदयनाभिपार्श्वसन्धिबृहतीलोहिताक्षोर्व्यः सिरामर्माणि, आणीविटपकक्षधरकूर्चकूर्चशिरोबस्तिक्षिप्रांसविधुरोत्क्षेपाः स्नायुमर्माणि, कटीकतरुणनितम्बांसफलकशङ्खास्त्वस्थिमर्माणि, जानुकूर्परसीमन्ताधिपतिगुल्फमणिबन्धकुकुन्दरावर्त्तकृकाटिकाश्चेति सन्धिमर्माणि ॥ ७ ॥

तान्येतानि पञ्चविकल्पानि मर्माणि भवन्ति । तद्यथा—सद्यः[२]प्राणहराणि, कालान्तरप्राणहराणि, विशल्यघ्नानि, वैकल्यकराणि, रुजाकराणीति । तत्र सद्यःप्राणहराण्येकोनविंशतिः, कालान्तरप्राणहराणि त्रयस्त्रिंशत्, त्रीणि विशल्यघ्नानि, चतुश्चत्वारिंशद्वैकल्यकराणि, अष्टौ रुजाकराणीति ॥ ८ ॥

भवन्ति चात्र ।

शृङ्गाटकान्यधिपतिः शङ्खौ कण्ठसिरा[४] गुदम् ।
हृदयं बस्तिनाभी च घ्नन्ति सद्योहतानि तु ॥ ९ ॥
वक्षोमर्माणि सीमन्ततलक्षिप्रन्द्रबस्तयः[५] ।
कटीकतरुणे सन्धी पार्श्वजौ बृहती च या ॥ १० ॥

---

१ तलहृदयादिसंज्ञकादीनां मांसादिमर्मणां पृथक् पृथक् संख्याः प्राक् चतुर्थगद्ये प्रदर्शिताः । २ यद्यपि सद्यःशब्दस्तत्क्षणवाची, तथाऽप्यत्र सप्तरात्रपरकोऽयम् । एकोनविंशत्यादिकाः संख्या नामानुसारेण पूर्वप्रदर्शिततत्तन्मर्मसंख्यातोऽवसेयाः । कालान्तरशब्देन पक्षो मासश्च बोध्यत इत्यग्रे व्यक्तीभविष्यति निर्हृतशल्यं घ्नन्तीति विशल्यघ्नानि ।

३ सद्यःप्राणहरादीनि मर्माणि दर्शयति=शृङ्गाटकानीत्यादिना । ४ कण्ठसिराः=मातृकाः, ताश्चाष्टौ । ५ तलानि=तलहृदयानि, तानि चत्वारि ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नितम्बाविति चैतानि कालान्तरहराणि तु ।
उत्क्षेपौ स्थपनी चैवाविशल्यघ्नानि निर्दिशेत् ॥ ११ ॥
लोहिताक्षाणि जानूर्वीकूर्चविटपकूर्पराः ।
कुकुन्दरे कक्षधरे विधुरे सक्थकाटिके ॥ १२ ॥
अंसांसफलकापाङ्गा नीले मन्ये फणे तथा ।
वैकल्यकरणान्याहुरावर्त्तौ द्वौ तथैव च ॥ १३ ॥
गुल्फौ द्वौ मणिबन्धौ द्वौ द्वे द्वे कूर्चशिरांसि च ।
रुजाकराणि जानीयादष्टावेतानि बुद्धिमान् ।
क्षिप्राणि विद्धमात्राणि घ्नन्ति कालान्तरेण च ॥ १४ ॥

मर्माणि नाम मांससिरास्नाय्वस्थिसन्धिसन्निपाताः[1]। तेषु स्वभावत एव विशेषेण प्राणाः[2] तिष्ठन्ति । तस्मान्मर्मस्वभिहतास्तांस्तान् भावानापद्यन्ते[3] ॥ १५ ॥

तत्र[4] सद्यःप्राणहराण्याग्नेयानि, अग्निगुणेष्वाशु क्षीणेषु क्षपयन्ति । कालान्तरप्राणहराणि सौम्याग्नेयानि, अग्निगुणेष्वाशु क्षीणेषु क्रमेण च सोमगुणेषु कालान्तरेण क्षपयन्ति । विशल्यप्राणहराणि वायव्यानि, शल्यमुखावरुद्धो यावदन्तर्वायुस्तिष्ठति तावज्जीवति, उद्धृतमात्रे तु शल्ये मर्मस्थानाश्रितो वायुर्निष्क्रामति, तस्मात् सशल्यो जीवति उद्धृतशल्यो म्रियते पाकात्पतितशल्यो वा जीवति । वैकल्यकराणि सौम्यानि, सोमो हि स्थिरत्वाच्छैत्याच्च प्राणावलम्बनं करोति, रुजाकराण्यग्निवायुगुणभूयिष्ठानि, विशेषतश्च [5]तौ रुजाकरौ, पाञ्चभौतिकीं च रुजामाहुरेके ॥ १६ ॥

केचि[6]दाहुर्मांसादीनां पञ्चानामपि समस्तानां विवृद्धानां च सम-

---

१ मांसादीनां यथा सम्भवं व्यस्तसमस्तरूपेण मेलनं सन्निपातः । २ प्राणाः= अग्नीषोमादयः । ३ इन्द्रियाणां स्वस्वविषयाग्रहणमनोबुद्धिविपर्ययविविधवेदनाऽऽदिकान् भावानित्यर्थः । ४ मर्मणां सद्यः प्राणहरादिकर्मविशेषाः कथं भवन्तीति दर्शयति–तत्रेति । आग्नेयानि = अग्निगुणभूयिष्ठानीत्यर्थः । एवमन्यत्रापि बोध्यम् । ५ तौ = अग्निवायू ।

६ सद्यःप्राणहरादिकर्मविशेषस्य मतान्तरीयां व्यवस्थां निर्दिशति—केचिदिति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायात्[1] सद्यःप्राणहराणि, एकहीनानामल्पानां वा कालान्तरप्राणहराणि, द्विहीनानां विशल्यप्राणहराणि, त्रिहीनानां वैकल्यकराणि, एकस्मिन्नेव रुजाकराणीति नैवं यतोऽस्थिमर्मस्वभिहतेषु शोणितागमनं भवति[2] ॥ १७ ॥

भवन्ति चात्र ।

चतुर्विधा[3] यास्तु सिराः शरीरे प्रायेण ता ममसु सन्निविष्टाः ।
स्नाय्वस्थिमांसानि तथैव सन्धीन् सन्तर्प्य देहं प्रतिपालयन्ति ॥ १८ ॥
ततः[4] क्षते मर्मणि ताः प्रवृद्धः समन्ततो वायुरभिस्तृणोति[5] ।
विवर्द्धमानस्तु स मातरिश्वा रुजः सुतीव्राः प्रतनोति काये ॥ १९ ॥
रुजाभिभूतं तु ततः शरीरं प्रलीयते[6] नश्यति चास्य संज्ञा ।
अतो हि शल्यं विनिहर्त्तुमिच्छन् मर्माणि यत्नेन परीक्ष्य कर्षेत्[7] ॥
एतेन शेषं व्याख्यातम् ॥ २१ ॥

तत्र सद्यःप्राणहरमन्ते[8] विद्धं कालान्तरेण मारयति, कालान्तरप्राणहरमन्ते विद्धं वैकल्यमापादयति विशल्यप्राणहरं च, वैकल्यकरं कालान्तरं क्लेशयति रुजां च करोति, रुजाकरमतीव्रवेदनं भवति ॥ २२ ॥

[9]तत्र सद्यःप्राणहराणि सप्तरात्राभ्यन्तरान्मारयन्ति, कालान्तरप्राणहराणि पक्षान्मासाद्वा, तेष्वपि क्षिप्राणि कदाचिदाशु मारयन्ति विशल्यप्राणहराणि वैकल्यकराणि च कदाचिदत्यभिहतानि

---

१ गुदवस्तिनाभिहृदयेषु सद्यःप्राणहरमर्मस्वस्थिन अव्यक्तेष्वपि अव्यक्तास्थ्नां शक्त्या पञ्चानां समवायोऽस्त्येवेति न दोषः । २ शोणितागमनं रक्तदर्शनं भवति, अतः प्रत्यक्षप्रमाणान्मांसादीनि सर्वाणि सर्वत्र मर्मणि भवन्तीति बोद्धव्यम् । ३ सिराणां स्नाय्वस्थिमांससन्धिगतत्वमुपसंहरति–**चतुर्विधा इति** । चतुर्विधाः = वातपित्तकफरक्तवहाः । ४ शल्योद्धरणे मर्मणां यत्नेन रक्षाकरणार्थमुपदिशति–**तत इति** ।

५ अभिस्तृणोति = आच्छादयति । ६ प्रलीयते = शरीरयन्त्रं विघट्टयति । ७ कर्षेत् = बहिर्निष्कासयेदित्यर्थः । ८ अन्ते=समीपे, मध्ये विद्धं तु सद्य एव मारयतीति तात्पर्यम् ।

९ सद्यःप्राणहरादिमर्मणां मारणे कालावधिमभिधत्ते—**तत्रेति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारयन्ति ॥ २३ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रत्येकशो मर्मस्थानानि व्याख्यास्यामः—तत्र, पादस्याङ्गुष्ठाङ्गुल्योर्मध्ये क्षिप्रं[1] नाम मर्म, तत्र विद्धस्याक्षेपकेण मरणम्। मध्यमाङ्गुलीमनुपूर्वेण मध्ये पादतलस्य तलहृदयं[2] नाम, तत्रापि रुजाभिर्मरणम्। क्षिप्रस्योपरिष्टाद्[3]उभयतः कूर्चौ नाम, तत्र पादस्य भ्रमणवेपने भवतः। गुल्फसन्धेरध उभयतः कूर्चशिरो[4] नाम, तत्र रुजाशोफौ। पादजङ्घयोः सन्धाने गुल्फो[5] नाम, तत्र रुजः स्तब्धपादता खञ्जता वा। पार्ष्णिं प्रति जङ्घामध्ये इन्द्रबस्तिर्[6]नाम, तत्र शोणितक्षयेण मरणम्। जङ्घोर्वोः सन्धाने जानु[7] नाम, तत्र खञ्जता। जानुन ऊर्ध्वमुभयतस्त्र्यङ्गुलमाणी[8] नाम, तत्र शोफाभिवृद्धिः स्तब्धसक्थिता च। ऊरुमध्ये ऊर्वी नाम, तत्र शोणितक्षयात् सक्थिशोषः। ऊर्व्या ऊर्ध्वमधो वङ्क्षणसन्धेरूरुमूले[10] लोहिताक्षं नाम, त लोहितक्षयेण पक्षाघातः सक्थिशोषो वा। वङ्क्षणवृषणयोरन्तरे[11] विटपं नाम, तत्र षाण्ढ्यमल्पशुक्रता वा भवति। एवमेतानि एकादश सक्थिमर्माणि व्याख्यातानि। एतेनेतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ। विशेषतस्तु यानि सक्थ्नि गुल्फजानुविटपानि तानि बाहौ मणिबन्धकूर्परकक्षधराणि[12]। यथा वङ्क्षणवृषणयोरन्तरे विटपमेवं वक्षःकक्षयोर्मध्ये कक्षधरं, तस्मिन् विद्धे त एवोपद्रवाः।

---

१इदं स्नायुमर्म अर्धाङ्गुलं कालान्तरप्राणहरम्। २इदं मांसमर्म अर्धाङ्गुलं कालान्तरप्राणहरम्। ३ 'द्व्यङ्गुले' इति शेषः। तदुक्तं वाग्भटे—"तस्योर्ध्वं द्व्यङ्गुले कूर्चः" इति। उभयतः=ऊर्ध्वमधश्च, कूर्चः स्नायुमर्म चतुरङ्गुलं वैकल्यकरम्। ४ इदमपि स्नायुमर्म एकाङ्गुलप्रमाणं वैकल्यकरम्। ५ इदं सन्धिमर्म द्व्यङ्गुलप्रमाणं वैकल्यकरम्। ६ इदं मांसमर्म, अर्धाङ्गुलप्रमाणं पार्ष्णिं प्रति द्वादशाङ्गुले स्थितं कालान्तरप्राणहरम्, भोजमतेऽस्य प्रमाणं द्व्यङ्गुलम्। ७ इदं सन्धिमर्म त्र्यङ्गुलप्रमाणं वैकल्यकरम्। ८ इदमपि स्नायुमर्म अर्धाङ्गुलप्रमाणं वैकल्यकरम्। ९ इदं सिरामर्म एकाङ्गुलप्रमाणं वैकल्यकरम्। १० इदमपि सिरामर्म अर्धाङ्गुलप्रमाणं वैकल्यकरं च। ११ इदं स्नायुमर्म एकाङ्गुलप्रमाणं वैकल्यकरम्। १२ तत्स्थाने बाहौ मणिबन्धकूर्परकक्षधराख्यानि बोद्धव्या-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषतस्तु मणिबन्धे कुण्ठता[1], कूर्पराख्ये कुणिः, कक्षधरे पक्षाघातः। एवमेतानि चतुश्चत्वारिंशच्छाखासु मर्माणि व्याख्यातानि॥२४॥

अत ऊर्ध्वमुदरोरसोर्मर्माण्यनुव्याख्यास्यामः—तत्र वातवर्चोनिरसनं[2] स्थूलान्त्रप्रतिबद्धं गुदं नाम मर्म, तत्र सद्योमरणम्। अल्पमांसशोणितोऽभ्यन्तरतः कट्यां मूत्राशयो बस्तिर्नाम, तत्रापि सद्योमरणमश्मरीव्रणादृते। तत्राप्युभयतो भिन्ने न जीवति एकतो भिन्ने मूत्रस्रावी व्रणो भवति। स तु यत्नेनोपक्रान्तो रोहति। पक्वामाशययोर्मध्ये सिराप्रभवा नाभिर्नाम[3], तत्रापि सद्योमरणम्। स्तनयोर्मध्यमधिष्ठायोरस्यामाशयद्वारं सत्त्वरजस्तमसामधिष्ठानं हृदयं[4] नाम, तत्रापि सद्य एव मरणम्। स्तनयोरधस्ताद् द्व्यङ्गुलमुभयतः, स्तनमूले[5] नाम मर्मणी; तत्र कफपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां म्रियते। स्तनचूचुकयोरूर्ध्वं द्व्यङ्गुलमुभयतः स्तनरोहितौ[6] नाम, तत्र लोहितपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च म्रियते। अंसकूटयोरधस्तात् पार्श्वोपरिभागयोरपलापौ नाम, तत्र रक्तेन पूयभावं गतेन मरणम्। उभयत्रोरसो नाड्यौ वातवहे अपस्तम्भौ[7] नाम, तत्र वातपूर्णकोष्ठतया कासश्वासाभ्यां च मरणम्। एवमेतान्युदरोरसोर्द्वादश मर्माणि व्याख्यातानि॥ २५॥

---

नीति तात्पर्यम्। १ कुण्ठता=करस्याकर्मण्यतेत्यर्थः। २ निरसनं=प्रेरकम्, स्थूलान्त्रप्रतिबद्धं=स्थूलान्त्राभिमुखे संसक्तम्, गुदं नाम मर्मेदं मांस मर्म चतुरङ्गुलप्रमाणं सद्योमारकं च।

३ "नाभिपृष्ठकटीमुष्कगुदवङ्क्षणशेफसाम्। एकद्वारस्तनुत्वक्को मध्ये बस्तिरधोमुखः॥" इति तन्त्रान्तरीयात् कट्यामिति नाभ्यादीनामुपलक्षणम्। मूत्राशयो बस्तिरिति स्नायुमर्म चतुरङ्गुलं सद्योमारकम्। ४ सिरामर्मेदं चतुरङ्गुलम्। ५ इदमपि सिरामर्म कमलमुकुलाकारमधोमुखं चतुरङ्गुलं च। ६ इमे सिरामर्मणी द्व्यङ्गुलप्रमाणे कालान्तरप्राणहरे च। ७ "स्तनचूचुकयोरूर्ध्वं द्व्यङ्गुलात् स्तनरोहिते। अर्धाङ्गुलमिते मांसमर्मणी परिकीर्तिते॥ रक्तपूरितकोष्ठस्य कालान्मरणकारिणी॥" इति। ८ सिरामर्मणी अर्धाङ्गुले कालान्तरेण प्राणहरे। ९ इमे अपि सिरामर्मणि अर्धाङ्गुलप्रमाणे कालान्तरप्राणहरे च।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत ऊर्ध्वं पृष्ठमर्माणि व्याख्यास्यामः—तत्र, पृष्ठवंशमुभयतः[1] प्रतिश्रोणिकाण्डमस्थिनो कटीकतरुणे नाम मर्मणी, तत्र शोणितक्षयात् पाण्डुर्विवर्णो हीनरूपश्च म्रियते। [2]पार्श्वजघनबहिर्भागे पृष्ठवंशमुभयतो नातिनिम्ने कुकुन्दरे नाम [3]मर्मणी, तत्र स्पर्शाज्ञानमधःकाये चेष्टोपघातश्च। श्रोणीकाण्डयोरुपर्याशयाच्छादनौ [4]पार्श्वान्तरप्रतिबद्धौ नितम्बौ नाम, तत्राधःकायशोषो दौर्बल्याच्च मरणम्। अधःपार्श्वान्तरप्रतिबद्धौ जघनपार्श्वमध्ययोस्तिर्यगूर्ध्वं च जघनात्[5] पार्श्वसन्धी नाम, तत्र लोहितपूर्णकोष्ठतया म्रियते। स्तनमूलाद्वजूभयतः पृष्ठवंशस्य बृहत्यौ नाम, तत्र शोणितातिप्रवृत्तिनिमित्तैरुपद्रवैर्म्रियते। पृष्ठोपरि पृष्ठवंशमुभयतस्त्रिकसम्बद्धे[6] अंसफलके नाम, तत्र बाह्वोः स्वापशोषौ। बाहुमूर्धग्रीवामध्येंऽसपीठस्कन्धनिबन्धनावंसौ[7] नाम, तत्र स्तब्धबाहुता। एवमेतानि चतुर्दश पृष्ठमर्माणि व्याख्यातानि ॥ २६ ॥

अत्र ऊर्ध्वमूर्ध्वजत्रुगतानि व्याख्यास्यामः—तत्र कण्ठनाडीमुभयतश्चतस्रो धमनीर्[8] द्वे नीले द्वे च मन्ये [9]व्यत्यासेन, तत्र मूकता

---

१ पृष्ठवंशमुभयतः=मेरुदण्डपार्श्वद्वये, प्रतिश्रोणीकाण्डं=श्रोण्याः सव्यापसव्यभागे, अस्थिनी=अस्थिमर्मणी, अर्धाङ्गुले कालान्तरेण प्राणहरे च। २ पार्श्वयोः=सव्यापसव्ययोः जघनबहिर्भागे कट्याः पश्चाद्भागे। ३ इमे सन्धिमर्मणी अर्धाङ्गुलप्रमाणे वैकल्यकरे च। ४ पार्श्वान्तरप्रतिबद्धौ पार्श्वमध्ये प्रतिबद्धौ। श्रीहाराणचन्द्रस्तु—अन्यानि पार्श्वाणि पार्श्वान्तराणि श्रोणिकाण्डगतयोरस्थ्नोश्चतुष्पार्श्वानीति यावत्, तैर्दृढमासक्तौ पार्श्वान्तरप्रतिबद्धौ ऊर्ध्वाधःसंयोगसचिवौ नितम्बौ। अस्थिमर्मणी अर्धाङ्गुले कालान्तरप्राणहरे च। ५ जवनादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी, जघनपश्चाद्भागमाश्रित्य स्थितावित्यर्थः। पार्श्वसन्धी सिरामर्मणी अर्धाङ्गुले कालान्तरेण प्राणहरे च। ६ सिरामर्मणी अर्धाङ्गुले कालान्तरप्राणहरे च। ७ ग्रीवाया अंसद्वयस्य संयोगस्त्रिकस्तत्र सम्बद्धे अंसफलके, अस्थिमर्मणी अर्धाङ्गुले वैकल्यकरे च। ८ स्नायुमर्मणी अर्धाङ्गुले वैकल्यकरे च।

९ सिरे च धमन्यौ चेति धमन्यः 'विरूपाणामपि समानार्थानाम्' इत्येकशेषः। सिराधमन्योः समानार्थता धमनीव्याकरणे व्यक्तीभविष्यति। १० व्यत्यासेन=वैपरीत्येन, अर्थादेकस्मिन् पार्श्वे नीला मन्या, अपरस्मिन् पार्श्वे च नीला मन्येति विभागे-


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरवैकृतमरसग्राहिता च। ग्रीवायामुभयतश्चतस्रः[1] सिरा मातृकाः, तत्र सद्योमरणम्। शिरोग्रीवयोः सन्धाने कृकाटिके[2] नाम, तत्र चलमूर्द्धता। कर्णपृष्ठतोऽधःसंश्रिते विधुरे[3] नाम, तत्र बाधिर्यम्। घ्राणमार्गमुभयतः स्रोतोमार्गप्रतिबद्धे अभ्यन्तरतः फणे[4] नाम, तत्र गन्धज्ञानम्। भ्रूपुच्छान्तयोरधोऽक्ष्णोर्बाह्यतोऽपाङ्गौ[5] नाम, तत्रान्ध्यं दृष्टच्युपघातो वा। भ्रुवोरुपरि निम्नयोरावर्त्तौ[6] नाम, तत्राप्यान्ध्यं दृष्टच्युपघातो वा। भ्रुवोः पुच्छान्तयोरुपरि कर्णललाटयोर्मध्ये शङ्खौ[7] नाम, तत्र सद्योमरणम्। शङ्खयोरुपरि केशान्त उत्क्षेपौ[8] नाम, तत्र सशल्यो जीवति पाकात् पतितशल्यो वा नोद्धृतशल्यः। भ्रुवोर्मध्ये स्थपनी नाम, तत्रोत्क्षेपवत्। पञ्च सन्धयः शिरसि विभक्ताः[10] सीमन्ता नाम, तत्रोन्मादभयचित्तनाशैर्मरणम्। घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वासन्तर्पणीनां सिराणां मध्ये सिरासन्निपातः शृङ्गाटकानि[11], तानि चत्वारि मर्माणि, तत्रापि सद्यो मरणम्। मस्तकाभ्यन्तरत उपरिष्टात् सिरासन्धिसन्निपातो रोमावर्तोऽधिपतिः[12], तत्रापि सद्य एव। एवमेतानि सप्तत्रिंशदूर्ध्वजत्रुगतानि मर्माणि व्याख्यातानि॥२७॥

भवन्ति चात्र।

ऊर्ध्वः[13] शिरांसि विटपे च सकक्षपार्श्वे
एकैकमङ्गुलमितं स्तनपूर्वमूलम्।

---

नेति भावः। सिरामर्मणी चतुरङ्गुले वैकल्यकरे च। १ एकस्मिन्नेकस्मिन् पार्श्वे चतस्रश्चतस्र इत्यर्थः। सिरामर्माणि चतुरङ्गुलप्रमाणानि। २ सन्धिमर्मणी अर्धाङ्गुले वैकल्यकरे च। ३ स्नायुमर्मणी किञ्चिन्निम्नाकारे वैकल्यकारिणी च। ४ सिरामर्मणी अर्धाङ्गुले वैकल्यकारिणी च। ५ सिरामर्मणी अर्धाङ्गुले वैकल्यकरे च। ६ सन्धिमर्मणी अर्धाङ्गुले वैकल्यकारिणी च। ७ अस्थिमर्मणी अर्धाङ्गुले। ८ स्नायुमर्मणी अर्धाङ्गुले विशल्यप्राणहरे च। ९ सिरामर्म अर्धाङ्गुलं विशल्यघ्नं च। १० विभक्ताः शरीरसंख्याव्याकरणे ते सीमन्ताः सन्धिमर्माणि चतुरङ्गुलप्रमाणानि कालान्तरप्राणहराणि च। ११ सिरामर्माणि चतुरङ्गुलप्रमाणानि। १२ इदं सन्धिमर्म अर्धाङ्गुलप्रमाणं च।

१३ सर्वेषां मर्मणां सङ्क्षेपेण मानं दर्शयति—ऊर्ध्व इति। कक्षयोः समीपभ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्ध्यङ्गुलद्वयमितं मणिबन्धगुल्फं
त्रीण्येव जानु सपरं सह कूर्पराभ्याम् ॥ २८ ॥
हृद्बस्तिकूर्चगुदनाभि वदन्ति मूर्ध्नि
चत्वारि पञ्च च गले दश यानि च द्वे ।
तानि स्वपाणितलकुञ्चितसम्मितानि[1]
शेषाण्यवेहि परिविस्तरतोऽङ्गुलार्धम् ॥ २९ ॥
एतत्प्रमाणमभिवीक्ष्य वदन्ति तज्ज्ञाः
शस्त्रेण कर्मकरणं परिहृत्य कार्यम् ।
पार्श्वाभिघातितमपीह निहन्ति मर्म
तस्माद्धि मर्मसदनं परिवर्जनीयम् ॥ ३० ॥

छिन्नेषु[2] पाणिचरणेषु सिरा नराणां सङ्कोचमीयुरसृगल्पमतो निरेति ।
प्राप्यामितव्यसनमुग्रमतो मनुष्याः संच्छिन्नशाखतरुवन्निधनं न यान्ति ॥
क्षिप्रेषु तत्र[3] सतलेषु हतेषु रक्तं गच्छत्यतीव पवनश्च रुजं करोति ।
एवं विनाशमुपयान्ति हि तत्र विद्धा वृक्षा इवायुधविघातनिकृत्तमूलाः ३२
तस्मात्तयोरभिहतस्य तु पाणिपादं छेत्तव्यमाशु मणिबन्धनगुल्फदेशे ।
मर्माणि[4] शल्यविषयार्थमुदाहरन्ति यस्माच्च मर्मसु हता न भवन्ति सद्यः ३३
जीवन्ति तत्र यदि वैद्यगुणेन केचित्ते प्राप्नुवन्ति विकलत्वमसंशयं हि ।
सम्भिन्नजर्जरितकोष्ठशिरःकपाला जीवन्ति शस्त्रविहतैश्च शरीरदेशैः ३४
छिन्नैश्च सक्थिभुजपादकरैरशेषैर्येषां न मर्मपतिता विविधाः प्रहाराः ।
सोम[6]मारुततेजांसि रजःसत्त्वतमांसि च ।
मर्मसु प्रायशः पुंसां भूतात्मा चावतिष्ठते ॥ ३५ ॥
मर्मस्वभिहतास्तस्मान्न जीवन्ति शरीरिणः ।

---

वाभ्यां कक्षधराभ्यां सह वर्तमाने सकक्षपार्श्वे । १ स्वपाणितलकुञ्चितसम्मितानि = मुष्टिप्रमाणानीत्यर्थः । २ करचरणाद्यवयवच्छेदे जीवन्ति तदन्तर्गतमर्मच्छेदे तु म्रियन्त इति विशेषं निदर्शयति—**छिन्नेष्विति** । ३ तत्र=पाण्योः पादयोर्वा । ४ मर्मसु हता यदि जीवन्ति तदा विकला भवन्तीति दर्शयति—**मर्माणीति** । ५ अमर्महतास्तु छेदभेदादिभिरपि न म्रियन्त इति प्रतिपादयति—**सम्भिन्नेति** । ६ मर्मस्व-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियार्थेष्वसम्प्राप्तिर्मनोबुद्धिविपर्ययः ॥ ३६ ॥
रुजश्च विविधास्तीव्रा भवन्त्याशुहरे हते ।
हते कालान्तरघ्ने तु ध्रुवो धातुक्षयो नृणाम् ॥ ३७ ॥
ततो धातुक्षयाज्जन्तुर्वेदनाभिश्च नश्यति ।
हते वैकल्यजनने केवलं वैद्यनैपुणात् ॥ ३८ ॥
शरीरं क्रियया युक्तं विकलत्वमवाप्नुयात् ।
विशल्यघ्नेषु विज्ञेयं पूर्वोक्तं यच्च कारणम् ॥ ३९ ॥
रुजाकराणि मर्माणि क्षतानि विविधा रुजः ।
कुर्वन्त्यन्ते च वैकल्यं कुवैद्यवशगो यदि ॥ ४० ॥
छेदभेदाभिघातेभ्यो दहनाद्दारणादपि ।
उपघातं विजानीयान् मर्मणां तुल्यलक्षणम् ॥ ४१ ॥
मर्माभिघातस्तु न कश्चिदस्ति योऽल्पात्ययो वाऽपि निरत्ययो वा ।
प्रायेण मर्मस्वभिताडितास्तु वैकल्यमृच्छन्त्यथवा म्रियन्ते ॥४२॥
मर्माण्यधिष्ठाय हि ये विकारा मूर्च्छन्ति काये विविधा नराणाम् ।
प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवन्ति नरस्य यत्नैरपि साध्यमानाः ॥४३॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने प्रत्येकमर्मनिर्देशशारीरं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

---

## सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः सिरावर्णविभक्ति नाम शारीरं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
सप्त सिराशतानि भवन्ति । याभिरिदं शरीरमारा-

---

भिहता न जीवन्तीत्यत्र हेतुमुपपादयति—**सोमेति** । १ सद्यःप्राणहरादिमर्मपञ्चक-हतस्य लक्षणं ब्रवीति—**इन्द्रियार्थेष्विति** । २ मर्मसमीपदेशघातेऽप्यनर्थकरं दर्शयति—**छेदेति** । ३ मूर्च्छन्ति = समुच्छ्रायं प्राप्नुवन्ति ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः शारीरस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षष्ठोऽध्यायः ।**

---

**सप्तमोऽध्यायः ।**

४ "मर्मसिरास्नायुधमनीः परिहरन्" इत्यादौ मर्मानन्तरं सिराणां निर्देशात् सिरावर्णविभागशारीरमारभ्यते । सिराणां वातादिवहानां तद्वर्णानां च रक्तनीलशुक्ललोहि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म इव जलहारिणीभिः केदार इव च कुल्याभिरुपस्निह्यतेऽनुगृह्यते चाकुञ्चनप्रसारणादिभिर्विशेषैः । द्रुमपत्रसेवनीनामिव[1] च तासां प्रतानाः । तासां नाभिर्मूलं, ततश्च प्रसरन्त्यूर्ध्वमधस्तिर्यक् च ॥३॥

भवतश्चात्र ।

यावत्यस्तु सिराः काये सम्भवन्ति शरीरिणाम्[2] ।
नाभ्यां सर्वा निबद्धास्ताः प्रतन्वन्ति[3] समन्ततः ॥ ४ ॥
नाभिस्था[4] प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिर्व्युपाश्रिता ।
सिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः[5] ॥ ५ ॥

तासां मूलसिराश्चत्वारिंशत् । तासां वातवाहिन्यो दश, पित्तवाहिन्यो दश, कफवाहिन्यो दश, दश रक्तवाहिन्यः । तासां तु वातवाहिनीनां वातस्थानगतानां पञ्चसप्ततिशतं भवति, तावत्य एव पित्तवाहिन्यः पित्तस्थाने, कफवाहिन्यश्च कफस्थाने, रक्तवाहिन्यश्च यकृत्प्लोम्नोः । एवमेतानि सप्त सिराशतानि ॥ ६ ॥

तत्र वातवाहिन्यः सिरा एकस्मिन् सक्थ्नि पञ्चविंशतिः । एतेनेतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ । विशेषतस्तु कोष्ठे चतुस्त्रिंशत् । तासां गुदमेढ्राश्रिताः श्रोण्यामष्टौ, द्वे द्वे पार्श्वयोः, षट् पृष्ठे, तावत्य एव चोदरे, दश वक्षसि । एकचत्वारिंशत् जत्रुण ऊर्ध्वम् । तासां चतुर्दश ग्रीवायां, कर्णयोश्चतस्रः, नव जिह्वायां, षट् नासिकायां, अष्टौ नेत्रयोः, एवमेतत् पञ्चसप्ततिशतं वातवहानां सिराणां व्याख्यातं भवति । एष एव विभागः[6] शेषाणामपि । विशेषतस्तु पित्तवा-

---

तानां विभक्तिर्विभागो विद्यते यस्मिन् तत्तथोक्तम् । शेषं पूर्ववत् । आरामः=उपवनम्, जलहारिणीभिः=प्रणालिकाभिः, केदारः=क्षेत्रम्, कुल्याभिः=कृत्रिमाल्पसरिद्भिः । १ सेवनीनां=सेवनीसदृशानाम् । २ शरीरिशब्देन गर्भोऽभिप्रेतः, यतः सिरा गर्भावस्थायामेवोत्पद्यन्ते न तूर्ध्वमेव । ३ प्रतन्वन्ति=शरीरे ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च विस्तृन्वन्ति । ४ नाभिस्थाः नाभ्याधारकासु सिरास्ववस्थिताः, प्राणिनां प्रकृतत्वात् प्राणवतां गर्भाणामित्यर्थः । ५ अरकैः निखातैर्नेमिप्रसक्तैः काष्ठैः चक्रनाभिः चक्रपिण्डकेव । ६ विभागः=वातवाहिसिराविभागः, शेषाणां=पित्तश्लेष्मरक्तवहानाम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निन्यो नेत्रयोर्दश, कर्णयोर्द्वे। एवं रक्तवहाः कफवहाश्च। एवमेतानि सप्त सिराशतानि सविभागानि व्याख्यातानि ॥ ७ ॥

भवन्ति चात्र।

[1]क्रियाणामप्रतीघातममोहं बुद्धिकर्मणाम्।
करोत्यन्यान्[2] गुणांश्चापि स्वाः सिराः पवनश्चरन् ॥ ८ ॥
यदा तु कुपितो वायुः स्वाः सिराः प्रतिपद्यते।
तदाऽस्य विविधा रोगा जायन्ते वातसम्भवाः ॥ ९ ॥
भ्रा[3]जिष्णुतामन्नरुचिमग्निदीप्तिमरोगताम्।
संसर्पत्स्वाः सिराः पित्तं कुर्याच्चान्या[4]न् गुणानपि ॥ १० ॥
यदा प्रकुपितं पित्तं सेवते स्ववहाः सिराः।
तदाऽस्य विविधा रोगा जायन्ते पित्तसम्भवाः ॥ ११ ॥
स्नेहमङ्गेषु सन्धीनां स्थैर्यं बलमुदीर्णताम्।
करोत्यन्या[5]न् गुणांश्चापि बलासः स्वाः सिराश्चरन् ॥ १२ ॥
यदा तु कुपितः श्लेष्मा स्वाः सिराः प्रतिपद्यते।
तदाऽस्य विविधा रोगा जायन्ते श्लेष्मसम्भवाः ॥ १३ ॥
धातूनां पूरणं वर्ण[6] स्पर्शज्ञानमसंशयम्।
स्वाः सिराः सञ्चरद्रक्तं कुर्याच्चान्या[6]न् गुणानपि ॥ १४ ॥
यदा तु कुपितं रक्तं सेवते स्ववहाः सिराः।
तदाऽस्य विविधा रोगा जायन्ते रक्तसम्भवाः ॥ १५ ॥
न हि वातं सिराः काश्चिन् न पित्तं केवलं तथा।
श्लेष्माणं वा वहन्त्येता अतः सर्ववहाः स्मृताः ॥ १६ ॥

---

१ वातादिवहसिरासु वातादीनां प्राकृतं वैकृतं च कर्म निर्दिशति—**क्रियाणामिति**। क्रियाणां=कायिकप्रसारणादिक्रियाणाम्, अप्रतीघातम्=अनवरोधम्, बुद्धिकर्मणां=बुद्धिकर्मेन्द्रियाणां पञ्चानाम्, अमोहं=दुःखाभावम्। २ अन्यान्=रसादिव्यापनद्वारा शरीरपोषादीन्। ३ भ्राजिष्णुता=कान्तिमत्त्वम्। ४ अन्यान्=मेधाबुद्धिदर्शनशक्त्यादीन्। ५ अन्यान्=सन्धिश्लेषणादिकान्। ६ अन्यान=“रक्तं वर्णप्रसादं मांस-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदुष्टानां हि दोषाणां मूर्च्छितानां प्रधावताम् ।
ध्रुवमुन्मार्गगमनमतः सर्ववहाः स्मृताः ॥ १७ ॥
तत्रारुणा वातवहाः पूर्यन्ते वायुना सिराः ।
पित्तादुष्णाश्च नीलाश्च, शीता गौर्यः स्थिराः कफात् ॥१८॥
असृग्वहास्तु रोहिण्यः[2] सिरा नात्युष्णशीतलाः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि न विध्येद्याः सिरा भिषक् ।
वैकल्यं मरणं चापि व्यधात् तासां ध्रुवं भवेत् ॥ १९ ॥
सिराशतानि चत्वारि विद्याच्छाखासु बुद्धिमान् ।
षट्त्रिंशच्च शतं कोष्ठे चतुःषष्टिं च[3] मूर्द्धनि ॥ २० ॥
शाखासु षोडश सिराः कोष्ठे द्वात्रिंशदेव तु ।
पञ्चाशज्जत्रुणश्चोर्ध्वमव्यध्याः परिकीर्त्तिताः ॥ २१ ॥

तत्र[4], सिराशतमेकस्मिन् सक्थ्नि भवति। तासां जालधरा[5] त्वेका, तिस्रश्चाभ्यन्तराः-तत्रोर्वीसंज्ञे द्वे, लोहिताक्षसंज्ञा[6] चैका एतास्त्वव्यध्याः। एतेनेतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ। एवमशस्त्रकृत्याः षोडश शाखासु। द्वात्रिंशच्छ्रोण्यां, तासामष्टावशस्त्रकृत्याः-द्वे द्वे विटपयोः, कटीकतरुणयोश्च । अष्टावष्टावेकैकस्मिन् पार्श्वे, तासामेकैकामूर्ध्वगां परिहरेत्, पार्श्वसन्धिगते च द्वे। चतस्रो विंशतिश्च पृष्ठे पृष्ठवंशमुभयतः, तासामूर्ध्वगामिन्यौ द्वे द्वे परिहरेद् बृहतीसिरे। तावत्य एवोदरे, तासां मेढ्रोपरि रोमराजीमुभयतो द्वे द्वे परिहरेत्। चत्वारिंशद् वक्षसि, तासां चतुर्दशाशस्त्रकृत्याः-हृदये द्वे, द्वे द्वे स्तनमूले, स्तनरोहितापलापस्तम्भेषूभयतोऽष्टौ । एवं द्वात्रिंशदशस्त्रकृत्याः

---

पुष्टिं च करोति"इत्यादिकान्। १ मूर्च्छितानाम्=अन्योन्यं मिश्रितानाम्। २ रोहिण्यः=रक्तवर्णाः। ३ चकाराच्छतमनुकर्षणीयम्, चतुःषष्टयधिकं शतमिति निष्कर्षः।

४ प्रत्यङ्गानुसारेण अव्यध्याः सिरा विस्तरशो निर्दिशति—तत्रेति । तत्र=चतुःशतेषु मध्ये। ५ जालानीव जालानि मांससिरास्नाव्यस्थिसन्धिजानि कूर्चशिरोव्यापीनि तानि धारयन्ति यास्ता जालधराः। ६ तत्र=आभ्यन्तरेषु मध्ये, उर्वीलोहिताक्षं च द्वे मर्मणी मर्मविभागीयशारीरे निर्दिष्टे। अत्र तदुपलक्षितास्ता द्वयेकाः सिरा उपचारात् तत्सञ्ज्ञयोपदिश्यन्ते। एवमन्यत्रापि कथञ्चिद् भेदविवक्षयाऽनुसन्धेयम्। ७ अ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठोदरोरःसु[1] भवन्ति। चतुःषष्टिसिराशतं[2] जत्रुण ऊर्ध्वं भवति। तत्र षट्पञ्चाशत् शिरोधरायां, तासामष्टौ[3] चतस्रश्च मर्मसंज्ञाः परिहरेद्, द्वे कृकाटिकयोः, द्वे विधुरयोः, एवं ग्रीवायां षोडशाव्यध्याः। हन्वोरुभयतोऽष्टावष्टौ, तासां तु सन्धिधमन्यौ द्वे द्वे परिहरेत्। षट्त्रिंशज्जिह्वायां[4], तासामधः षोडशाशस्त्रकृत्याः, रसवहे द्वे, वाग्वहे च द्वे। द्विर्द्वादश[5] नासायां, तासामौपनासिक्यश्चतस्रः[6] परिहरेत्, तासामेव च तालुन्येकां मृदौ[7]वुद्देशे। अष्टत्रिंशदुभयोर्नेत्रयोः, तासामेकैकामपाङ्गयोः परिहरेत्। कर्णयोर्दश, तासां शब्दवाहिनीमेकैकां परिहरेत्। नासानेत्रगतास्तु[8] ललाटे षष्टिः, तासां केशान्तानुगताश्चतस्रः परिहरेत्। आवर्त्तयोरेकैका, स्थपन्यां चैका परिहर्त्तव्या। शङ्खयोर्दश, तासां शङ्खसन्धिगतामेकैकां परिहरेत्। इत्येता नासानेत्रगता बोद्धव्याः। द्वादश मूर्ध्नि, तासामुत्क्षेपयोर्द्वे परिहरेत्, सीमन्तेष्वेकैकाम्[10], एकामधिपताविति। एवमशस्त्रकृत्याः पञ्चाशज्जत्रुण ऊर्ध्वमिति॥ २२॥

भवति चात्र।

व्याप्नुवन्त्यभितो देहं नाभितः प्रसृताः सिराः।
प्रतानाः पद्मिनीकन्दाद्विसादीनां यथा[11] जलम्॥ २३॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने सिरावर्णविभक्तिशारीरं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

---

व्यध्याः कोष्ठगताः सिराः प्रतिपादयति—द्वात्रिंशदिति। १ पृष्ठशब्देन श्रोणिपार्श्वानामपि ग्रहणम्। तेन श्रोणिगता अष्टौ, पार्श्वगता एकैका, चतस्रः पृष्ठे, चतस्र उदरे, चतुर्दश वक्षसि, एवं द्वात्रिंशदव्यध्याः। २ चतुःषष्टिसिराशतं=चतुःषष्ट्यधिकं सिराशतमित्यर्थः। ३ अष्टौ मातृकाः, चतस्रः द्वे नीले द्वे मन्ये चैवं द्वादश मर्मसंज्ञाः। ४ जिह्वाया अधः षोडश ऊर्ध्वं विंशतिरेवं षट्त्रिंशदित्यर्थः। ५ द्विर्द्वादश=चतुर्विंशतिरित्यर्थः। ६ औपनासिक्यः=नासासमीपवर्तिन्य इत्यर्थः। नासातले पार्श्वगता इति तात्पर्यम्। ७ मृदावुद्देशे=नासासमीपे।

८ याश्चतुर्विंशतिर्नासागता याश्च षट्त्रिंशन्नेत्रगतास्ता एव ललाटे षष्टिः। नेत्रयोरष्टत्रिंशत् सिरासूक्तासु द्वयोरपाङ्गाश्रितत्वमिति नेत्रगताः षट्त्रिंशदेवेति बोध्यम्। ९ आवर्तमर्मसमीपकेशान्तानुगता इत्यर्थः। १० सीमन्तेषु=पञ्चसु। ११ यथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अष्टमोऽध्यायः ।

अथातः सिराव्यधविधिशारीरं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

बालस्थविररूक्षक्षतक्षीणभीरुपरिश्रान्तमद्याध्वस्त्रीकामतवमित-विरिक्तास्थापितानुवासितजागरितक्लीबकृशगर्भिणीनां कासश्वास-शोषप्रवृद्धज्वराक्षेपकपक्षाघातोपवासपिपासामूर्च्छाप्रपीडितानां च सिरां न विध्येत्; याश्चाव्यध्याः, व्यध्याश्चादृष्टाः, दृष्टाश्चायन्त्रिताः, यन्त्रिताश्चानुत्थिता इति ॥ ३ ॥

शोणितावसेकसाध्याश्च ये विकाराः प्रागभिहितास्तेषु चापक्केष्व-न्येषु चानुक्तेषु यथाऽभ्यासं यथान्यायं च सिरां विध्येत् ॥ ४ ॥

प्रतिषिद्धानामपि च विषोपसर्गात्ययिकेषु सिराव्यधनमप्रति-षिद्धम् ॥ ५ ॥

तत्र स्निग्धस्विन्नमातुरं यथादोषप्रत्यनीकं द्रवप्रायमन्नं भुक्त-वन्तं यवागूं पीतवन्तं वा यथाकालमुपस्थाप्यासीनं स्थितं वा प्राणा-

---

पद्मिनीकन्दात् प्रसृता निगेता बिसादीनां बिसमृणालानां प्रताना विस्तारा जलं व्याप्नुवन्ति, तथा नाभितः प्रसृताः सिराः अभितः सर्वतो देहं व्याप्नुवन्ति । एतेन सर्वत्र सिरासम्भवत्वेन व्याख्यातसंख्यासु न्यूनाधिक्यमस्तीति सूच्यते ।

इति सुश्रुतसंहिताया: शारीरस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तमोऽध्यायः ।

---

## अष्टमोऽध्यायः ।

१ सिराणां व्यधविधिर्विद्यते यस्मिन्नध्याये, ततः सिराव्यधविधिश्च तच्छारीरं चेति कर्मधारयः । २ अव्यध्या जालधरादयः प्रागुक्ताः, व्यध्या अपि अदृष्टाः गम्भीरगतित्वाद् दृष्टिपथमनाक्रान्ताः, दृष्टा अपि अयन्त्रिताः उत्थापयितुं वल्लपट्टचर्मान्तर्वल्कललतानामन्यतमेन या न बद्धाः, यन्त्रिता अपि या अनुत्थिताः ता न विध्येदिति भावः । ३ प्राक् = शोणितवर्णनीये । ४ अनुक्तेषु = गुल्मप्लीहादिषु, यथाऽभ्यासं = यथासमीपम्, यथान्यायं = स्नेहस्वेदादियथोचिताम् । ५ विषोपसर्गात्ययिकेषु = सर्पदंशनादिजन्यविषोपद्रवेषु विसर्पाद्यात्ययिकेषु चेत्यर्थः । ६ सिरावेधस्य प्रधानकर्मविधिमभिधत्ते—तत्रेति । ७ उपस्थाप्य = पुरोधसा देवानर्चयित्वा, उपपूर्वस्य तिष्ठतेः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नबाधमानो वस्त्रपट्टचर्मान्तर्वल्कललतानामन्यतमेन यन्त्रयित्वा नातिगाढं नातिशिथिलं शरीरप्रदेशमासाद्य प्राप्तं शस्त्रमादाय सिरां विध्येत् ॥ ६ ॥

नैवातिशीते नात्युष्णे न प्रवाते न [1]चाभ्रिते ।
सिराणां व्यधनं कार्यमरोगे वा कदाचन ॥ ७ ॥

तत्र[2], व्यध्यसिरं पुरुषं प्रत्यादित्यमुखमरत्निमात्रोच्छ्रिते उपवेश्यासने सक्थ्नोराकुञ्चितयोर्निवेश्य कूपरौ सन्धिद्वय[3]स्योपरि हस्तावन्तर्गूढाङ्गुष्ठकृतमुष्टीमन्ययोः स्थापयित्वा यन्त्रण[4]शाटकं ग्रीवामुष्टयोरुपरि परिक्षिप्यान्येन पुरुषेण पश्चात्स्थितेन वामहस्तेनोत्तानेन शाटकान्तद्वयं ग्राहयित्वा [5]ततो वैद्यो ब्रूयात्—दक्षिणहस्तेन सिरोत्थापनार्थं नात्या[6]यतशिथिलं यन्त्रमावेष्टयेति, असृक्स्रावणार्थं च । यन्त्रं पृष्ठमध्ये पीडयेति, कर्मपुरुषं[7]च वायुपूर्णमुखं स्थापयेत् । एष उत्तमाङ्गगतानामन्तर्मुखवर्ज्जानां सिराणां व्यधने यन्त्रणविधिः । तत्र[8] पादव्यध्यसिरस्य पादं समे स्थाने सुस्थिरं स्थापयित्वाऽन्यं पादमीषत्सङ्कुचितमुच्चैः कृत्वा व्यध्यसिरपादं जानुसन्धेरधः शाटकेनावेष्ट्य हस्ताभ्यां प्रपीड्या[9]गुल्फं व्यध्यप्रदेशस्योपरि चतुरङ्गुले प्लोता[10]दीनामन्यतमेन बद्ध्वा वा पादसिरां विध्येत् । अथो-

---

पूजार्थकत्वात्, "कृतस्वस्त्ययनः स्निग्धरसान्नप्रतिभोजितः" इति तन्त्रान्तरे । आसीनम् = उपविष्टम्, ललाटादिगतसिराव्यधनार्थमिति भावः । स्थितं = दण्डवदवस्थितम्, पादादिगतसिराव्यधनार्थमिति भावः । १ अभ्राणि मेघाः सञ्जातानि यत्र तदभ्रितं दिनं तस्मिन् ।

२ शिरोगतसिरावेधार्थं यन्त्रणविधिं प्रतिपादयति—तत्रेति । ३ जानुसन्धिद्वयस्योपरीत्यर्थः । तलसंवृताङ्गुष्ठेन पाणिना कृता मुष्टिर्यत्र तावन्तर्गूढाङ्गुष्ठकृतमुष्टी । ४ यन्त्रणशाटकं = यन्त्रणवस्त्रम् । ५ ततः=तं पुरुषमित्यर्थः, द्वितीयान्तात् सार्वविभक्तिकस्तसिल् । ६ नात्यायतशिथिलं=नात्याकृष्टं नापि च शिथिलं, सममित्यर्थः । ७ पादगतसिरावेधार्थं यन्त्रणविधिमाह—तत्रेति । ८ आगुल्फं गुल्फमभिव्याप्य गुल्फादर्वाग्वा जानुसन्धेरधो हस्ताभ्यां प्रपीड्य शाटकेन वस्त्रेणावेष्टयेति सम्बन्धः । पश्चान्तरं निर्दिशति—व्यध्येति । ९ प्लोतं=वस्त्रम् । १० हस्तगतसिरावेधनार्थं यन्त्रण-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिष्टाद्धस्तौ गूढाङ्गुष्ठकृतमुष्टी सम्यगासने स्थापयित्वा सुखोपविष्टस्य पूर्ववद्[1] यन्त्रं बद्ध्वा हस्तसिरां विध्येत् । गृध्रसोर्[2] विश्वाच्योः सङ्कुचितजानुकूर्परस्य । [3]श्रोणीपृष्ठस्कन्धेषून्नामितपृष्ठस्यावाक्शिरस्कस्योपविष्टस्य [4]विस्फूर्जितपृष्ठस्य विध्येत् । उदरोरसोः प्रसारितोरस्कस्योन्नामितशिरस्कस्य [5]विस्फूर्जितदेहस्य । बाहुभ्यामवलम्बमानदेहस्य पार्श्वयोः । अवनामितमेढ्रस्य मेढ्रे । उन्नमितविदष्टजिह्वाऽग्रस्याधोजिह्वायाम् । अतिव्यात्ताननस्य तालुनि दन्तमूलेषु च । एवं यन्त्रोपायानन्यांश्च सिरोत्थापनहेतून् बुद्ध्वाऽवेक्ष्य शरीरवशेन व्याधिवशेन च विदध्यात् ॥ ८ ॥

मांस[6]लेष्ववकाशेषु यवमात्रं शस्त्रं निदध्यात् । अतोऽन्येष्वर्द्धयवमात्रं वा व्रीहिमात्रं वा व्रीहिमुखेन, अस्थ्नामुपरि कुठारिकया विध्येदर्द्धयवमात्रम् ॥ ९ ॥

भवन्ति चात्र ।

व्यभ्रे वर्षासु विध्येत ग्रीष्मकाले तु शीत[7]ले ।
हेमन्तकाले मध्याह्ने शस्त्रकालास्त्रयः स्मृताः ॥ १० ॥
सम्यक्शस्त्रनिपातेन धारया या स्रवेदसृक् ।
मुहूर्त्त रुद्धा तिष्ठेच्च सुविद्धां तां विनिर्दिशेत् ॥ ११ ॥

---

विधिं वक्ति—अथेति । १ पूर्ववत् = पादवत्, कूर्परसन्धेरधः शाटकेनावेष्टय व्यध्यप्रदेशस्योर्ध्वं चतुरङ्गुले वेत्यर्थः ।

२ गृध्रस्यां सङ्कुचितजानोः विश्वाच्यां सङ्कुचितकूर्परस्य पुरुषस्य सिरां विध्येदिति पूर्ववाक्येन सम्बन्धः । ३ श्रोण्यादिगतसिरावेधनार्थं यन्त्रणविधिमुपदिशति—श्रोणीति । ४ विस्फूर्जितमायमितं पृष्ठं येन स तस्य विस्फूर्जितपृष्ठस्य । ५ विस्फूर्जितदेहस्य = आयामितमध्यशरीरस्येत्यर्थः । बाहुभ्यां = वृक्षशाखाद्यालम्बिताभ्याम्, अवलम्ब्यमानदेहस्य = उच्चैरवस्थाप्यमानशरीरस्य । अवनामितमेढ्रस्य = वक्रीकृतमेढ्रस्येत्यर्थः । अवनामनात् पूर्वं शिश्नस्य हर्षावस्थामपेक्षत इति बोध्यम् ।

६ प्रदेशविशेषेण शस्त्रप्रणिधानप्रमाणं प्रतिपादयति—मांसलेष्विति । मांसलेषु = उदरोरुस्फिगादिषु । ७ शीतले = सायं प्रातःकाले । ८ रुद्धा = वस्त्रादिना वेष्टिता,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा कुसुम्भपुष्पेभ्यः पूर्वं स्रवति पीतिका ।
तथा सिरासु विद्धासु दुष्टमग्रे प्रवर्त्तते ॥ १२ ॥
मूर्च्छितस्यातिभीतस्य श्रान्तस्य तृषितस्य च ।
न वहन्ति सिरा विद्धास्तथाऽनुत्थितयन्त्रिताः ॥ १३ ॥
क्षीणस्य बहुदोषस्य मूर्च्छयाऽभिहतस्य च ।
भूयोऽपराह्णे विस्राव्या साऽपरेद्युस्त्र्यहेऽपि वा ॥ १४ ॥
रक्तं सशेषदोषं तु कुर्यादपि विचक्षणः ।
न चातिप्रस्रुतं कुर्याच्छेषं संशमनैर्जयेत् ॥ १५ ॥
बलिनो बहुदोषस्य वयःस्थस्य शरीरिणः ।
परं प्रमाणमिच्छन्ति प्रस्थं शोणितमोक्षणे ॥ १६ ॥

तत्र[3], पाददाहपादहर्षावबाहुकचिप्पविसर्पवातशोणितवातकण्टकविचर्चिकापाददारीप्रभृतिषु क्षिप्रमर्मण[4] उपरिष्टाद् द्व्यङ्गुले व्रीहिमुखेन सिरां विध्येत् । श्लीपदे तच्चिकित्सिते यथा वक्ष्यते[5] । क्रोष्टुकशिरःखञ्जपङ्गुलवातवेदनासु जङ्घायां गुल्फस्योपरि चतुरङ्गुले, अपच्यामिन्द्रबस्तेरधस्ताद् द्व्यङ्गुले, जानुसन्धेरुपर्यधो वा चतुरङ्गुले, गृध्रस्यामूरुमूलसंश्रितां गलगण्डे, एतेनेतरसक्थि बाहू च व्याख्यातौ । विशेषतस्तु वामबाहौ कूर्परसन्धेरभ्यन्तरतो बाहुमध्ये प्लीह्नि कनिष्ठिकाऽनामिकयोर्मध्ये वा, एवं दक्षिणबाहौ यकृदाख्ये कफोदरे चैतामेव च कासश्वासयोरर्पा आदिशन्ति । गृध्रस्यामिव विश्वाच्यां, श्रोणिं प्रति समन्ताद् द्व्यङ्गुले प्रवाहिकायां शूलिन्यां, परिवर्त्तिकोपदंशशूकदोषशुक्रव्यापत्सु मेढ्रमध्ये, वृषणयोः पार्श्वे मूत्रवृद्ध्यां, नाभेरधश्चतुरङ्गुले सेवन्यां वामपार्श्वे दकोदरे, वामपार्श्वे कक्षास्तनयोरन्तरेऽन्तांवद्रधौ[6]

---

तिष्ठेत्=असृक् स्थापयेत् । १ दुष्ट=रक्तमित्यर्थः । २ प्रस्थ=सार्धत्रयोदशपलम्, तदुक्तम्—"वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे । सार्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥" इति । बलवत्त्वादिधर्मवतामिदानीं द्विपलमेव परं प्रमाणमिति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । ३ रोगानुसारेण सिरावेधस्थानं निर्दिशति—तत्रेति । ४ क्षिप्रमर्मण इत्यत्र जातावेकवचनम्, क्षिप्रमर्मस्य इत्यर्थः । ५ तथा सिरां विध्येदिति शेषः । ६ वाम-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्श्वशूले च, बाहुशोषावबाहुकयोरप्येके वदन्त्यंसयोरन्तरे, त्रिकसन्धिमध्यगतां तृतीयके, अधःस्कन्धसन्धिगतामन्यतरपार्श्वसंस्थितां चतुर्थके, हनुसन्धिमध्यगतामपस्मारे, शङ्खकेशान्तसन्धिगतामुरोऽपाङ्गललाटेषु चोन्मादे[1], जिह्वारोगेष्वधोजिह्वायां दन्तव्याधिषु च, तालुनि तालव्येषु, कर्णयोरुपरि समन्तात् कर्णशूले तद्रोगेषु[2] च, गन्धाग्रहणे नासारोगेषु च नासाग्रे, तिमिराक्षिपाकप्रभृतिष्वक्ष्यामयेषूपनासिके[3] लालाटचामपाङ्गचां वा, एता एव च शिरोरोगाधिमन्थप्रभृतिषु[4] रोगेष्विति ॥ १७ ॥

अत ऊर्ध्वं दुष्टव्यधनमनुव्याख्यास्यामः-तत्र दुर्विद्धाऽतिविद्धा कुञ्चिता पिच्चिता कुट्टिताऽप्रस्रुता अत्युदीर्णा अन्तेऽभिहता परिशुष्का कूणिता वेपिता अनुत्थितविद्धा शस्त्रहता तिर्य्यग्विद्धा अपविद्धा अव्यध्या विद्रुता धेनुका पुनःपुनर्विद्धा मांससिरास्नाय्वस्थिसन्धिमर्मसु चेति विंशतिर्दुष्टव्यधाः[5] ॥ १८ ॥

तत्र, या सूक्ष्मशस्त्रविद्धाऽव्यक्तम[6]सृक् स्रवति रुजाशोफवती च सा दुर्विद्धा, प्रमाणातिरिक्तविद्धायामन्तःप्रविशति शोणितं शोणितातिप्रवृत्तिर्वा साऽतिविद्धा, कुञ्चितायामप्येवं, कुण्ठ[7]शस्त्रप्रमथिता पृथुलीभावमापन्ना पिच्चिता, अनासादिता[8] पुनःपुनरन्तयोश्च बहुशः शस्त्राभिहता कुट्टिता, शीतभयमूर्च्छाभिरप्रवृत्तशोणिता अप्रस्रुता, तीक्ष्णमहामुखशस्त्रविद्धा अत्युदीर्णा, अल्परक्तस्रावित्वेन्यन्ते विद्धा अन्तेऽभिहता क्षीणशोणितस्यानिलपूर्णा परिशुष्का, चतुर्भागावसादिता[9] किञ्चित्प्रवृत्तशोणिता कूणिता, दुःस्थानबन्धनाद्

---

पार्श्वग्रहणं दक्षिणपार्श्वस्योपलक्षणम् । १ 'उन्मादेऽपस्मारे च' इति पाठो न समीचीनः । तथा चैतच्छास्त्रानुवादी वाग्भटः—"उरोऽपाङ्गललाटस्थामुन्मादेऽपस्मृतौ पुनः। हनुसन्धौ समुद्भूतां सिरां भ्रूमध्यगामिनीम् ॥" इति । २ तद्रोगेषु = कर्णरोगेषु । ३ उपनासिके = नासिकाऽऽसन्ने सिरे ।

४ प्रभृतिग्रहणात् क्षुद्ररोगपठितारूंषिकादयो गृह्यन्ते । ५ दुष्टो व्यधो यासां ता दुष्टव्यधाः । ६ अव्यक्तम् = अल्पतयाऽस्पष्टम् । ७ कुण्ठशस्त्रं = धाराविरहितशस्त्रम् । ८ अनासादिता=सम्यगनुद्धितत्वेनाप्राप्ता । ९ चतुर्थो भागश्चतुर्भागः अन्त-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेपमानायाः शोणितसम्मोहो[1] भवति सा वेपिता, अनुत्थितविद्धा मर्म्येवं, छिन्नाऽतिप्रवृत्तशोणिता क्रियासङ्करी[2] शस्त्रहता, तिर्य्यक्प्रणिहितशस्त्रा किञ्चिच्छेषा तिर्य्यग्विद्धा, बहुशः क्षता हीनशस्त्रप्रणिधानेनापविद्धा, अशस्त्रकृत्या अव्यध्या, अनवस्थितविद्धा विद्रुता, प्रदेशस्थ[3] बहुशोऽवघट्टनादारोहव्यधा मुहुर्मुहुः शोणितस्रावा धेनुका, सूक्ष्मशस्त्रव्यधनाद् बहुशो भिन्ना पुनःपुनर्विद्धा, मांसस्नाय्वस्थिसिरासन्धिमर्मसु विद्धा रुजां शोफं वैकल्यं मरणं चापादयति ॥ १९ ॥

भवन्ति चात्र ।

सिरासु शिक्षितो नास्ति चला ह्येताः स्वभावतः ।
मत्स्यवत् परिवर्त्तन्ते तस्माद्यत्नेन ताडयेत्[4] ॥ २० ॥
अजानता गृहीते तु शस्त्रे कार्यानिपातिते ।
भवन्ति व्यापदश्चैता बहवश्चाप्युपद्रवाः ॥ २१ ॥
स्नेहादिभिः क्रियायोगैर्न तथा लेपनैरपि ।
यान्त्याशु व्याधयः शान्तिं यथा सम्यक् सिराव्यधात् ॥२२॥
सिराव्यधश्चिकित्सार्द्ध[5] शल्यतन्त्रे प्रकीर्त्तितः ।
यथा प्रणिहितः सम्यग्बस्तिः कायचिकित्सिते ॥ २३ ॥

तत्र स्निग्धस्विन्नवान्तविरिक्तास्थापितानुवासितसिराविद्धैः परिहर्त्तव्यानि—क्रोधायासमैथुनदिवास्वप्नवाग्व्यायाम[6]यानाध्ययनस्थानासनचङ्क्रमणशीतवातातपविरुद्धासात्म्याजीर्णान्यावललाभात्, मासमेके मन्यन्ते । एतेषां विस्तरमुपरिष्टाद् वक्ष्यामः ॥२४॥

भवतश्चात्र ।

सिराविषाणतुम्बैस्तु जलौकाभिः पदैस्तथा ।

---

र्गता शोणितधरा कला, तत्रावसादिता सङ्कुचिततया रक्तं विस्रावयितुमक्षमा चतुर्भागावसादिता । १ शोणितसम्मोहः=मुहुर्मुहुःशोणितप्रवृत्तिनिरोधः । २ क्रियासङ्करी=गमनादिक्रियाविनाशकरीत्यर्थः । ३ सिराव्यधनप्रदेशस्थेत्यर्थः । आरोह उपर्युपर्यारोपितो व्यधो यस्याः सा तथोक्ता । ४ ताडयेत्=विध्येदित्यर्थः । ५ चिकित्साऽर्धं चिकित्सामध्ये मुख्यम् । ६ वाग्व्यायामः=उच्चैर्भाषणम् । उपरिष्टाद=आतुरोपद्रवचिकि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवगाढं यथापूर्वं निर्हरेद् दुष्टशोणितम् ॥ २५ ॥
अवगाढे जलौकाः स्यात् प्रच्छन्नं पिण्डिते हितम् ।
सिराऽङ्गव्यापके रक्ते शृङ्गालाबू त्वचि स्थिते ॥ २६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने सिराव्यधविधिशारीरं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

## नवमोऽध्यायः ।

अथातो धमनीव्याकरणं शारीरं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

चतुर्विंशतिर्धमन्यो नाभिप्रभवा अभिहिताः । तत्र केचिदाहुः—सिराधमनीस्रोतसामविभागः, सिराविकारा एव धमन्यः स्रोतांसि चेति । तत्तु न सम्यक्, अन्या एव हि धमन्यः स्रोतांसि च सिराभ्यः । कस्मात् ? व्यञ्जनान्यत्वात् मूलसन्नियमात् कर्मवैशेष्यादागमाच्च । केवलं तु परस्परसन्निकर्षात् सदृशागमकर्म्मत्वात् सौक्ष्म्याच्च विभक्तकर्मणामप्यविभाग इव कर्मसु भवति ॥ ३ ॥

---

स्थिते । १ यथापूर्वं पूर्वानतिक्रमेण सिरादिभिरवगाढमभ्यन्तराश्रयं दुष्टशोणितं निर्हरेदित्यर्थः । एतेन अवगाढं जलौकोभिः, अवगाढतरं तुम्बैः, अवगाढतमं विषाणेन, सार्वाङ्गिकमत्यवगाढतमं च सिराभिः, त्वग्गतत्वेन अनवगाढं तु पदैः प्रच्छानैरिति तात्पर्यम् । २ मतान्तरं निर्दिशति—अवेति । वाग्भटेनाप्युक्तम्—"प्रच्छानं पिण्डिते वा स्यादवगाढे जलौकसः । त्वक्स्थेऽलाबुघटीशृङ्गं सिरैव व्यापकेऽसृजि ॥" इति ।

इति सुश्रुतसंहितायाः शारीरस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यामष्टमोऽध्यायः ।

---

### नवमोऽध्यायः ।

३ ध्मानाद् वायुपूरणाद् धमन्यस्तासां व्याकरणं विवरणं विद्यते यस्मिन् । शेषं पूर्ववत् । ४ अभिहिताः=शोणितवर्णनीयादौ कथिताः । ५ अविभागः=अविशेषः । ६ नाममात्रभिन्नानीति भावः । ७ तदुक्तं चरके—"ध्मानाद्धमन्यः स्रवणात् स्रोतांसि सरणात् सिरा" इति । ध्मानाद्रसादीनां यथावदीरणेनान्तरग्नेर्दीपनाद्धमन्यः, स्रवणान्मांसादीनाप्याययितुं रसादीनां चरणात् स्रोतांसि, सरणाद्वेगेन शोणितसहितानां त्रयाणां वातादीनां वहनात् सिरेति तदर्थः । ८ व्यञ्जनान्यत्वात्=लिङ्ग-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तासां तु नाभिप्रभवाणां धमनीनामूर्ध्वगा दश, दश चाधोगामिन्यः, चतस्रस्तिर्य्यग्गाः ॥ ४ ॥

ऊर्ध्वगाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धप्रश्वाशोच्छ्वासजृम्भितक्षुद्धसितकथितरुदितादीन् विशेषानभिवहन्त्यः शरीरं धारयन्ति। तास्तु हृदयमभिप्रपन्नास्त्रिधा जायन्ते, तास्त्रिंशत्[1]। तासां तु वातपित्तकफशोणितरसान् द्वे द्वे वहतस्ता दश, शब्दरूपरसगन्धानष्टाभिर्गृह्णीते[2], द्वाभ्यां भाषते, द्वाभ्यां घोषं करोति, द्वाभ्यां स्वपिति, द्वाभ्यां प्रतिबुध्यते, द्वे चाश्रुवाहिन्यौ, द्वे स्तन्यं स्त्रिया वहतः स्तनसंश्रिते, ते एव शुक्रं नरस्य स्तनाभ्यामभिवहतः, तास्त्वेतास्त्रिंशत् सन्धिभागा व्याख्याताः। एताभिरूर्ध्वं नाभेरुदरपार्श्वपृष्ठोरःस्कन्धग्रीवाबाहवो धार्य्यन्ते याप्यन्ते च ॥ ५ ॥

भवति चात्र।

ऊर्ध्वगमास्तु कुर्वन्ति कर्माण्येतानि सर्वशः।
अधोगमास्तु वक्ष्यामि कर्म तासां यथायथम् ॥ ६ ॥

अधोगमास्तु वातमूत्रपुरीषशुक्रार्त्तवादीन्यधो वहन्ति। तास्तु पित्ताशयमभिप्रतिपन्नास्तत्रस्थमेवान्नपानरसं विपक्वमौष्ण्याद्[4] विवेचयन्त्योऽभिवहन्त्यः शरीरं तर्पयन्ति, अर्पयन्ति चोर्द्ध्वगानां

---

न्यत्वात्, तत्र सिराणां वातादिवहानामरुणनीलशुक्ललोहितवर्णत्वं लक्षणम्। शब्दादिवहधमनीनां तु वर्णानुक्तेः स्वधातुसमवर्णत्वम्। एवं स्रोतसामपि। तदुक्तं चरके—"स्वधातुसमवर्णानि वृत्तस्थूलान्यणूनि च। स्रोतांसि दीर्घाण्याकृत्या प्रतानसदृशानि च" इत्यादिकमिति निबन्धसंग्रहाख्यव्याख्यायां द्रष्टव्यम्। १ शाखाप्रशाखापरिसंख्यानेनेति बोध्यम्। २ प्रत्येकं द्वाभ्यां द्वाभ्यामिति शेषः। द्वाभ्यां जिह्वागताभ्यां भाषते व्यक्तशब्दं करोति, द्वाभ्यां कण्ठगताभ्यां घोषमव्यक्तशब्दं करोति, द्वाभ्यां तमोविषयाभ्यां स्वपिति, द्वाभ्या सत्त्वविषयाभ्यां प्रतिबुद्धयते।

३ अण्डग्रन्थिभिर्यदन्तःप्रसादरसं निस्सरति तत्पुरुषस्तनमभितः केशादिरूपेण पुरुषचिह्नं प्रकटयतीति नरस्य स्तनाभ्यां शुक्रमभिवहत इत्यस्याभिप्रायः। ४ औष्ण्याद् अग्नेरिति शेषः। विवेचयन्त्यः=विपक्वमशनरसं पृथक्कुर्वन्त्यः, अभि सर्वतो वहन्त्यः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिर्यग्गाणां च रसस्थानञ्चाभिपूरयन्ति, मूत्रपुरीषस्वेदाश्च विवेचयन्ति; आमपक्वाशयान्तरे च त्रिधा जायन्ते तास्त्रिंशत्, तासां तु वातपित्तकफशोणितरसान् द्वे द्वे वहतस्ता दश, द्वे अन्नवाहिन्यावन्त्राश्रिते, तोयवहे द्वे, मूत्रबस्तिमभिप्रपन्ने मूत्रवहे द्वे, शुक्रवहे द्वे शुक्रप्रादुर्भावाय, द्वे विसर्गाय, ते एव रक्तमभिवहतो नारीणामार्त्तवसञ्ज्ञम्, द्वे वर्चोनिरसन्यौ स्थूलान्त्रप्रतिबद्धे, अष्टावन्यास्तिर्य्यग्गाणां धमनीनां स्वेदमर्पयन्ति, तास्त्वेतास्त्रिंशत् सविभागा व्याख्याताः। एताभिरधोनाभेः पक्वाशयकटीमूत्रपुरीषगुदबस्तिमेढ्रसक्थीनि धार्यन्ते याप्यन्ते च ॥ ७ ॥

भवति चात्र।

अधोगमास्तु कुर्वन्ति कर्माण्येतानि सर्वशः।
तिर्यग्गाः सम्प्रवक्ष्यामि कर्म चासां यथायथम् ॥ ८ ॥

तिर्यग्गाणां तु चतसृणां धमनीनामेकैका शतधा सहस्रधा चोत्तरोत्तरं विभज्यन्ते, तास्त्वसङ्ख्येयाः। ताभिरिदं शरीरं गवाञ्चितं विबद्धमाततं च। तासां मुखानि रोमकूपप्रतिबद्धानि, यैः स्वेदमभिवहन्ति रसं चाभितर्पयन्त्यन्तर्बहिश्च, तैरेव चाभ्यङ्गपरिषेकावगाहालेपनवीर्याण्यन्तःशरीरमभिप्रतिपद्यन्ते त्वचि विपक्वानि, तैरेव च स्पर्शं सुखमसुखं वा गृह्णाति। तास्त्वेताश्चतस्रो धमन्यः सर्वाङ्गगताः सविभागा व्याख्याताः ॥ ९ ॥

भवतश्चात्र।

यथा स्वभावतः खानि मृणालेषु बिसेषु च।

---

१ रसस्थानं = हृदयम्। सुश्रुतार्थसन्दीपने तु-रसस्थानं, नाभेर्नेदिष्ठं पृष्ठवंशभागमागत्य वामं स्कन्धं यावदुत्थाय रक्तवाहिन्या धमन्या योगमुपगतं रसाधिष्ठानभूतं नाडीभेदं चेति। २ पक्वाशयान्तरे = पित्ताशये इत्यर्थः। ३ विसर्गाय = शुक्रनिःसरणाय, ते = द्वे अण्डाधस्ताल्लिङ्गमूलसंसक्ते। ४ गवाक्षितं = गवाक्षाकाररन्ध्रनिकरयुक्तमित्यर्थः। यथा गवाक्षे बहूनि छिद्राणि भवन्ति, तथाऽस्मिन् देहे जालवत् सिरा व्याप्य तिष्ठन्तीति भावः। विबद्धं = विशेषेण बद्धम्, आततं = व्याप्तम्। ५ रसं = रसधातुमित्यर्थः। ६ बिसेषु = सूक्ष्मतरमृणालेषु। एतेन स्थूलं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं चेति त्रिविधं मृणालं बोध्यम्।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धमनीनां तथा खानि रसो यैरुपचीयते ॥ १० ॥
पञ्चाभिभूतास्त्वथ पञ्चकृत्वः पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयन्ति ।
पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयित्वा पञ्चत्वमायान्ति विनाशकाले॥११॥

अत[२] ऊर्द्ध्वं स्रोतसां मूलविद्धलक्षणमुपदेक्ष्यामः । तानि तु— प्राणान्नोदकरसरक्तमांसमेदोमूत्रपुरीषशुक्रार्त्तववहानि, येष्वधिकारः, एकेषां[३] बहूनि । एतेषां विशेषा बहवः । तत्र प्राणवहे द्वे[४], तयोर्मूलं हृदयं रसवाहिन्यश्च धमन्यः, तत्र विद्धस्य क्रोशनविनमनमोहनभ्रमणवेपनानि मरणं वा भवति । अन्नवहे द्वे[५], तयोर्मूलमामाशयोऽन्नवाहिन्यश्च धमन्यः, तत्र विद्धस्याध्मानं शूलान्नद्वेषो छर्दिःपिपासाऽऽन्ध्यं मरणं च । उदकवहे द्वे[६], तयोर्मूलं तालु क्लोम च । तत्र

---

१ अयमर्थः—धमन्यः कथम्भूताः पञ्चाभिभूताः पञ्चभ्य आकाशादिमहाभूतेभ्य अभिसमन्ताद् भूता उत्पन्नाः । अथवा शब्दस्पर्शरूपरसगन्धैः पञ्चभिरभिभूता व्याप्ताः, पञ्चेन्द्रियं पञ्च इन्द्रियाणि उभयात्मकं मनश्च यस्य तं पञ्चेन्द्रियं जीवात्मानं, कर्मपुरुषमिति यावत् । पञ्चसु श्रोत्रादिष्विन्द्रियाधिष्ठानेषु, पञ्चकृत्वः पञ्चवारान् , पर्यायेण न त्वेकदैवेति भावः । भावयन्ति प्रापयन्ति, योजयन्तीति यावत् । पञ्चेन्द्रियं पञ्चानामिन्द्रियाणां समाहारः पञ्चेन्द्रियं श्रोत्रादीन्द्रियपञ्चकम् , तदुपलक्षितं कर्मेन्द्रियं मनश्च, पञ्चसु पृथिव्यादिषु बुद्धीन्द्रियविषयेषु तदुपलक्षितेषु हस्तादिषु कर्मेन्द्रियविषयेषु मन्तव्ये मनोविषये च, भावयित्वा प्राप्य, संयोज्येति यावत् । विनाशकाले पञ्चत्वम् आकाशादिभावम् , आयान्ति आगच्छन्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । एतेन आकाशादिपञ्चभूतसमुदायसमुत्पन्ना धमन्यः कर्मपुरुषमिन्द्रियाधिष्ठानेषु पञ्चवारान् भावयन्ति । ततश्चेन्द्रियपञ्चकमाकाशादिषु भूतेषु संयोज्य विनाशकाले धमन्यो विनाशं यान्तीति डल्हणोक्त्या निष्कर्षः ।

२ स्रोतसां मूलविद्धलक्षणं वक्ति—अत इति । पञ्चमाध्याये—"द्वाविंशतिर्योगवहानि स्रोतांसि च"इति प्रस्तावमात्रं कृतं न व्याकृतं सम्प्रति प्राणवहादीन्येव स्रोतांसि विव्रियत इति तात्पर्यम् । ३ एकेषाम्=अन्येषाम् । तदुक्तम्—"अतिबहुत्वात्तु खलु केचिदपरिसंख्येयान्याचक्षते" इति, अपि च—"बहूनि तानि संख्याय शक्यन्ते नैव भाषितुम्" इति । वाग्भटे त्रयोदश स्रोतांस्युक्तानि । ४ द्वे=फुप्फसदक्षिणपार्श्ववामपार्श्वात्मके । ५ एकं स्रोतो जिह्वातलात् काकलकाधःपर्यन्तं स्थूलम्, एकं च काकलकादामाशयपर्यन्तं किञ्चित्सूक्ष्ममिति द्वे । ६ एकं क्लोमानुविद्धम्, एकं चोपता-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्धस्य पिपासा सद्योमरणं च[1]। रसवहे द्वे[2], तयोर्मूलं हृदयं रसवाहिन्यश्च धमन्यः, तत्र विद्धस्य शोषः प्राणवहे[3]विद्धवच्च मरणं तल्लिङ्गानि च। रक्तवहे द्वे, तयोर्मूलं यकृत्प्लीहानौ रक्तवाहिन्यश्च धमन्यः, तत्र विद्धस्य श्यावाङ्गता ज्वरो दाहः पाण्डुता शोणितागमनं रक्तनेत्रता च। मांसवहे द्वे, तयोर्मूलं स्नायुत्वचं रक्तवहाश्च धमन्यः, तत्र विद्धस्य श्वयथुर्मांसशोषः सिराग्रन्थयो मरणं च। मेदोवहे द्वे, तयोर्मूलं कटी वृक्कौ च, तत्र विद्धस्य स्वेदागमनं स्निग्धाङ्गता तालुशोषः स्थूलशोफता पिपासा च। मूत्रवहे द्वे, तयोर्मूलं बस्तिर्मेढ्रं च, तत्र विद्धस्यानद्धबस्तिता मूत्रनिरोधः स्तब्धमेढ्रता च। पुरीषवहे द्वे[4], तयोर्मूलं पक्वाशयो गुदं च, तत्र विद्धस्यानाहो दुर्गन्धता ग्रथितान्त्रता च। शुक्रवहे द्वे, तयोर्मूलं स्तनौ वृषणौ च, तत्र विद्धस्य क्लीबता चिरात् प्रसेको रक्तशुक्रता च। आर्तववहे द्वे, तयोर्मूलं गर्भाशय आर्त्तववाहिन्यश्च धमन्यः, तत्र विद्धाया वन्ध्यात्वं मैथुनासहिष्णुत्वमार्त्तवनाशश्च। सेवनीच्छेदाद्रजाप्रादुर्भावः[5]। बस्तिगुदविद्धलक्षणं प्रागुक्तमिति। स्रोतोविद्धन्तु प्रत्याख्यायोपचरेत्[7]। उद्धृतशल्यन्तु ज्ञातविधानेनोपचरेत् ॥ १२ ॥

भवति चात्र।

मूलात् खादन्तरं देहे प्रसृतं त्वभिवाहि[8] यत्।
स्रोतस्तदिति विज्ञेयं सिराधमनिवर्जितम् ॥ १३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने धमनीव्याकरणशारीरं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

लुकमिति द्वे। १ सद्योमरणम्=आध्मानकण्ठावरोधादिनेत्यर्थः। २ रसस्थानस्योर्ध्वाधोविभागेन द्वे। ३ प्राणवहमूलविद्धवदित्यर्थः। ४ द्वे=उण्डुकक्षुद्रान्त्रे।

५ "सेवन्यः सप्त तासां तु भवेयुः पञ्चमस्तके। एका शेफसि जिह्वायाम्" इति यद्यपि सन्ति, तथाऽप्यत्र गुदामारभ्य मुष्कमूलं यावत् सेवनी बोध्या। ६ स्रोतोऽधिकारे-"तत्र विद्धस्यानद्धबस्तिता" इत्यादिना बस्तिविद्धलक्षणम्, "तत्र विद्धस्यानाह-" इत्यादिना गुदविद्धलक्षणं चोक्तमित्यर्थः। ७ प्रत्याख्याय=स्रोतोविद्धपरिवारं काठिन्यमुक्त्वा, उपचरेत् 'शल्योद्धरणप्रकारेण' इति शेषः। ८ अभिवाहि=प्राणादिवहन-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## दशमोऽध्यायः ।

अथातो गर्भिणीव्याकरणं शारीरं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

गर्भिणी प्रथमदिवसात् प्रभृति नित्यं प्रहृष्टा शुच्यलङ्कृता शुक्लवसना शान्तिमङ्गलदेवताब्राह्मणगुरुपरा च भवेत्, मलिनविकृतहीनगात्राणि न स्पृशेत्, दुर्गन्धदुर्दर्शनानि परिहरेत्, उद्वेजनीयाश्च कथाः, शुष्कं पर्युषितं कुथितं क्लिन्नं चान्नं नोपभुञ्जीत, बहिर्निष्क्रमणं शून्यागारचैत्यश्मशानवृक्षाश्रयान् क्रोधभयसङ्करांश्च भावानुचैर्भाष्यादिकं च परिहरेद् यानि[2] च गर्भं व्यापादयन्ति, न चाभीक्ष्णं तैलाभ्यङ्गोत्सादनादीनि निषेवेत, न चायासयेच्छरीरं, पूर्वोक्तानि च परिहरेत्, शयनासनं मृद्वास्तरणं नात्युच्चमपाश्रय[3]योपेतमसम्बाधं च विदध्यात्, हृद्यं द्रवं मधुरप्रायं स्निग्धं दीपनीयसंस्कृतं च भोजनं भोजयेत्, सामान्यमेतदाप्रसवात् ॥ ३ ॥

विशेषतस्तु गर्भिणी प्रथमद्वितीयतृतीयमासेषु मधुरशीतद्रवप्रायमाहारमुपसेवेत, विशेषतस्तु तृतीये षष्टिकौदनं पयसा भोजयेच्चतुर्थे दध्ना पञ्चमे पयसा षष्ठे सर्पिषा चेत्येके, चतुर्थे पयोनवनीतसंसृष्टमाहारयेज्जाङ्गलमांससहितं हृद्यमन्नं भोजयेत्, पञ्चमे क्षीरसर्पिःसंसृष्टं, षष्ठे श्वदंष्ट्रा[4]सिद्धस्य सर्पिषो मात्रां पाययेद् यवागूं वा,

---

शीलम् । तन्त्रान्तरे—"मनःप्राणान्नवानीयदोषधातूपधातवः । धातूनां च मला मूत्रं मलमित्यादयस्तनौ । सञ्चरन्ति हि यैर्मार्गैस्तानि स्रोतांसि सञ्जगुः ।" इति । चरके विशेषः—"स्वधातुसमवर्णानि वृत्तस्थूलान्यणूनि च । स्रोतांसि दीर्घाण्याकृत्या प्रतानसदृशानि च ॥" इति ।

इति सुश्रुतसंहितायाः शारीरस्थानीयसधाऽऽख्यटिप्पन्यां नवमोऽध्यायः ।

---

### दशमोऽध्यायः ।

१ गर्भिण्या व्याकरणमाहाराचारादिविवरणं विद्यते यस्मिन् । शेषं समानम् । २ यानि गर्भावक्रान्तौ ग्राम्यधर्मयानादीन्युपदिष्टानि । ३ अपाश्रयश्चन्द्रातपः प्राङ्गणावरणमिति यावत्, तेनोपेतम्, असम्बाधं = मत्कुणादिरहितम् । ४ श्वदंष्ट्रा =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तमे सर्पिः पृथक्पर्ण्यादिसिद्धम्[1], एवमाप्यायते गर्भः, अष्टमे बदरोदकेन बलाऽतिबलाशतपुष्पापललपयोदधिमस्तुतैललवणमद्-नफलमधुघृतमिश्रेणास्थापयेत् पुराणपुरीषशुद्ध्यर्थमनुलोमनार्थं च वायोः, ततः पयोमधुरकषायसिद्धेन तैलेनानुवासयेत्[3], अनुलोमे हि वायौ सुखं प्रसूयते निरुपद्रवा च भवति, अत ऊर्ध्वं स्निग्धाभिर्यवागूभिर्जाङ्गलरसैश्चोपक्रमेदाप्रसवकालात्; एवमुपक्रान्ता स्निग्धा बलवती सुखमनुपद्रवा प्रसूयते ॥ ४ ॥

नवमे मासि सूतिकागारमेनां प्रवेशयेत् प्रशस्ततिथ्यादौ तत्रारिष्टं[4] ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां श्वेतरक्तपीतकृष्णेषु भूमिप्रदेशेषु बिल्वन्यग्रोधतिन्दुकभल्लातकनिर्मितं सर्वागारं यथासङ्ख्यं तन्मयपर्य्यङ्कमुपलिप्तभित्तिं सुविभक्तपरिच्छेदं प्राग्द्वारं दक्षिणद्वारं वाऽष्टहस्तायतं चतुर्हस्तविस्तृतं रक्षामङ्गलसम्पन्नं विधेयम् ॥ ५ ॥

जाते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबन्धने ।
सशूले जघने नारी ज्ञेया सा तु प्रजायिनी ॥ ६ ॥

तत्रोपस्थितप्रसवायाः कटीपृष्ठं प्रति समन्ताद् वेदना भवत्यभीक्ष्णं पुरीषप्रवृत्तिर्मूत्रं प्रसिच्यते योनिमुखाच्छ्लेष्मा च ॥ ७ ॥

प्रजनयिष्यमाणां कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनां कुमारपरिवृतां पुन्नामफलहस्तां[5] स्वभ्यक्तामुष्णोदकपरिषिक्तामथैनां सम्भृतां यवागूमाकण्ठात् पाययेत्। ततः कृतोपधाने मृदुनि विस्तीर्णे शयने[6] स्थिता-

---

'गोखरू' इति ख्याता। १ पृथक्पर्ण्यादिः = पृश्निपर्ण्यादिः, स च द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये विदारीगन्धाऽऽदिगणे द्रष्टव्यः। २ पललं = तिलचूर्णम्। ३ सङ्ग्रहे गर्भिण्या आस्थापनेऽनुवासने च सन्निवेशविशेष उक्तः—"गर्भिणी तु न्युब्जामास्थापयेदनुवासयेच्च, तथाऽस्या विवृतमार्गतया सम्यगौषधिमनुप्रविशति" इति। ४ 'अरिष्टं सूतिकागृहम्' इत्यमरः।

५ पुन्नामा = पुन्नागः, 'नागकेसर' इति लोके। तथा च राजनिघण्टुः—"पुन्नागः पुरुषस्तुङ्गः पुन्नामा पाटलद्रुमः" इति। एतत्फलेन भूतानां विद्रावणं भवति, तदुक्तम्—"पुन्नागो मधुरः शीतः सुगन्धिः पित्तनाशकृत्। भूतविद्रावणश्चैव देवतानां प्रसादनः॥" इति। ६ शयने = भूशयने, तदुक्तं वाग्भटेन—"तनौ भूशयनेऽस्थिताम्" इति। सङ्ग्रहे विशेष उक्तः—"सुरक्तार्षभचर्मप्रच्छदे मृदुनि भूशयने शयानाम्" इत्यादिना।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माभुम्रसक्थीमुत्तानामशङ्कनीयाश्चतस्रः स्त्रियः परिणतवयसः प्रजननकुशलाः कर्त्तितनखाः परिचरेयुरिति ॥ ८ ॥

अथास्या विशिखान्तरमनुलोममनुमुखमभ्यज्यानुब्रूयाच्चैनामेकाम्—सुभगे! प्रवाहस्वेति, न चाप्राप्तावी प्रवाहस्व। ततो विमुक्ते गर्भनाडीप्रबन्धे सशूलेषु श्रोणिवङ्क्षणबस्तिशिरःसु च प्रवाहेथाः शनैः शनैः। ततो गर्भनिर्गमे प्रगाढम्, ततो गर्भे योनिमुखं प्रपन्ने गाढतरमाविशल्यभावात्। अकालप्रवाहणाद् बधिरं मूकं कुब्जं व्यस्तहनुमूर्ध्वाभिघातिनं कासश्वासशोषोपद्रुतं विकटं वा जनयति ॥९॥

तत्र प्रतिलोममनुलोमयेत् ॥ १० ॥

गर्भसङ्गे तु योनिं धूपयेत् कृष्णसर्पनिर्मोकेण पिण्डीतकेन वा, बध्नीयाद्धिरण्यपुष्पीमूलं हस्तपादयोः, धारयेत् सुवर्चलां विशल्यां वा ॥ ११ ॥

---

आसमन्ताद् भुग्ने सङ्कुचिते सक्थिनी यस्याः सा ताम्। १ विशिखान्तरं = योनेर्बहिर्द्वारम्, अपत्यमार्गमिति यावत्। २ तैलमभ्यज्येत्यर्थः। तदुक्तमष्टाङ्गहृदये—"मुक्तगर्भापरां योनिं तैले नाङ्गं च मर्दयेत्" इति। ३ एका = चतसृणां स्त्रीणां मध्ये काचिदेकेत्यर्थः। हे सुभगे! प्रवाहस्व आपत्यं बहिः प्रवर्तयितुं यतस्व, कुन्थनं कुर्विति यावत्। इत्येनामनुब्रूयादिति सम्बन्धः। अप्राप्तावी = अप्राप्तप्रसववेदनः। ४ प्रकृष्टो बन्धः प्रबन्धस्तस्मिन्। ५ स्वस्थानाद् गर्भस्य निःसरणाय गमनं गर्भनिर्गमस्तस्मिन्। गर्भनिर्गमे, प्रगाढं = प्रथमापेक्षयाऽधिकवेगेन। ६ गाढतरं = द्वितीयापेक्षयाऽतिशयवेगेन, आविशल्यभावात् = अपरापातपर्यन्तम्, अकाले यदा प्रसववेदना नोत्पद्यते तस्मिन् काले प्रवाहणादित्यर्थः।

७ व्यस्तहनुम् = अर्दितवत्तिर्यङ्मुखसन्धिम्, मूर्द्धाभिघातिनं = विकृतमस्तिष्कम्। ऊर्ध्वाभिघातिनमिति पाठे ऊर्ध्वजत्रुगतरोगिणमित्यर्थः। ८ प्रतिलोमं = प्राक् शिरोनिस्सरतीति स्वाभाविकप्रसवनियमस्तद् वैपरीत्येनापत्यपथमनुप्राप्तम्, अनुलोमयेत् = मूढगर्भचिकित्सोक्तविध्यनुसारेण बहिर्निष्क्रमणयोग्यं कुर्यात्। ९ गर्भस्य सङ्गे सक्ताविव्यर्थः। १० पिण्डीतकेन = मदनफलेन। ११ हिरण्यपुष्पीमूलं = कलिकारिकामूलम्। तदुक्तं रसतरङ्गिण्याम्—"सुधौतं लाङ्गलीमूलं वारिणा परिपेषितम्। नाभौ योनौ प्रलिप्तं वा सद्यः प्रसवकृन्मतम्" ॥" इति। १२ सुवर्चलां = सूर्यमुखीम्, विशल्यां = गुडूचीम्, विशल्या पाटलेति डल्हणः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ जातस्योल्बमपनीय[1], मुखं च सैन्धवसर्पिषा विशोध्य[2], घृताक्तं मूर्ध्नि पिचुं दद्यात् । ततो नाभिनाडीमष्टाङ्गुलमायम्य सूत्रेण बद्ध्वा[3] छेदयेत्, तत्सूत्रैकदेशं च कुमारस्य ग्रीवायां सम्यग् बध्नीयात्[4] ॥ १२ ॥

अथ कुमारं शीताभिरद्भिराश्वास्य जातकर्मणि कृते मधुसर्पिरनन्तचूर्णमङ्गुल्याऽनामिकया[5] लेहयेत् । ततो बलातैलेनाभ्यज्य, क्षीरवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन[6] वा रूप्यहेमप्रतप्तेन वा वारिणा स्नापयेदेनं कपित्थपत्रकषायेण वा कोष्णेन यथाकालं यथादोषं यथाविभवं च ॥ १३ ॥

धमनीनां हृदिस्थानां विवृतत्वादनन्तरम् ।
चतूरात्रात्त्रिरात्राद्वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥

तस्मात् प्रथमेऽह्नि मधुसर्पिरनन्तमिश्रं[7] मन्त्रपूतं त्रिकालं पाययेत्, द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं सर्पिः, तृतीये च । ततः प्राङ्निवारितस्तन्यं मधुसर्पिः स्वपाणितलसम्मितं द्विकालं पाययेत् ॥१५॥

अथ सूतिकां बलातैलाभ्यक्तां[8] वातहरौषधनिष्काथेनोपाचरेत् ।

---

१ उल्बं=जरायुम् । २ विशोध्य=संशोध्य, श्लेष्मापकर्षणेन निर्मलीकृत्य घृताक्तं पिचुं मूर्ध्नि दद्यात् । तन्त्रान्तरे विशेषः "दक्षिणतर्जन्या तालूत्रम्यावगुण्ठयेत्, शिरसि स्नेहपिचुना" इति । ३ बध्वा=रुधिरगतिनिरोधार्थं बन्धनं कृत्वेत्यर्थः । वृद्धवाग्भटे विशेषः—"प्रत्यागतप्राणस्य च प्रकृतिभूतस्य नाभिनालं नालाभिबन्धनाच्चतुरङ्गुलस्योर्ध्वं क्षौमसूत्रेण बध्वा तीक्ष्णेन शस्त्रेण वर्धयेत्" इति । ४ तेन रसादिगतिप्रतिबन्धाच्छीघ्रमेव नाभिनाडी शुष्का भविष्यतीति बोध्यम् । ५ अनन्तचूर्णं सुवर्णचूर्णं, तेन मिश्रितं मधुसर्पिः । वृद्धवाग्भटेन त्वन्यथा प्राशनमभिहितं, यथा—"ऐन्द्रीब्राह्मीशङ्खपुष्पीवचाकल्कं मधुघृतोपेतं हरेणुमात्रं कुशाभिमन्त्रितं सौवर्णेनाश्वत्थपत्रेण वा मेधाऽऽयुर्बलजननं प्राशयेद्वा ब्राह्मीवचाऽनन्ताशतावर्यन्यतमचूर्णम्" इति ।

६ सर्वगन्धो नाम—"चातुर्जातककर्पूरकक्कोलागुरुकुङ्कुमम् । लवङ्गसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥" इति । ७ अनन्तस्य सुवर्णचूर्णस्य सर्षपप्रमाणेन मिश्रम् । वृद्धवाग्भटेन—'अनन्तामिश्रे' इति पाठे अनन्ता दूर्वा व्याख्याता । तन्त्रान्तरे—"स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं हितम्" इति । ८ मूढगर्भचिकित्सितोक्तबलातैलाभ्यक्ता-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सशेषदोषां तु तदहः पिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेरचूर्णं गुडोदकेनोष्णेन पाययेत्। एवं द्विरात्रं त्रिरात्रं वा कुर्यादादुष्टशोणितात्। विशुद्धे ततो विदारिगन्धादिसिद्धां स्नेहयवागूं क्षीरयवागूं वा पाययेत्त्रिरात्रम्। ततो यवकोलकुलत्थसिद्धेन जाङ्गलरसेन शाल्योदनं भोजयेद् बलमग्निबलञ्चावेक्ष्य। अनेन विधिनाऽध्यर्द्धमासमुपसंस्कृता विमुक्ताहाराचारा विगतसूतिकाऽभिधाना स्यात्, पुनरार्त्तवदर्शनादित्येके॥ १६॥

धन्वभूमिजातां[2] तु सूतिकां घृततैलयोरन्यतरस्य मात्रां पाययेत् पिप्पल्यादिकषायानुपानां, स्नेहनित्या च स्यात् त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा बलवतीमबलां[3] यवागूं पाययेत् त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा। अत ऊर्ध्वं स्निग्धेनान्नसंसर्गेणोपचरेत्॥ १७॥

प्रायशश्चैनां प्रभूतेनोष्णोदकेन परिषिञ्चेत्। क्रोधायासमैथुनादीन्[4] परिहरेत्॥ १८॥

भवतश्चात्र।

मिथ्याचारात्[5] सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते।
स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेदत्यपतर्पणात्[6]॥ १९॥
तस्मात्तां[7] देशकालौ च व्याधिसात्म्येन कर्मणा।
परीक्ष्योपचरेन्नित्यमेवं नात्ययमाप्नुयात्॥ २०॥

अथापराऽपतन्त्यानाहाध्मानौ[8] कुरुते, तस्मात् कण्ठमस्याः केश-

---

मित्यर्थः। वातहरौषधानि वीरतर्वादीनि भद्रदार्वादीनि च सूत्रस्थानोक्तानि। १ विदारीगन्धाऽऽदिगणः द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः। २ धन्वभूमिजातां=मरुदेशोत्पन्नां, जाङ्गलदेशोत्पन्नां वा। ३ अबलां=सूतिकाम्। ४ आदिपदात् क्रोधादयः पञ्चदश आतुरोपद्रवचिकित्सितोक्ता ग्राह्याः।

५ मिथ्याऽऽचारात्=पूर्वविहिताहाराचाराणामयथावत्करणात्। ६ अत्यपतर्पणात्=अतिलङ्घनात्, असाध्यत्वे हेतुः। ७ तां सूतिकां देशकालौ परीक्ष्य व्याधिसात्म्येन व्याध्यनुकूलेन कर्मणा नित्यमुपचरेत् प्रतिकुर्यादिति सम्बन्धः। एवमत्ययं विनाशं न आप्नुयात्।

८ अपराया अपतने दोषान् तच्चिकित्सां चाचष्टे—अथेति। अपरा=जरायुः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेष्टितयाऽङ्गुल्या प्रमृजेत्। कटुकालाबुकृतवेधनसर्षपसर्पनिर्मोकैर्वा कटुतैलविमिश्रैर्योनिमुखं धूपयेत्। लाङ्गली[1]मूलकल्केन वाऽस्याः पाणिपादतलमालिम्पेत्। मूर्ध्नि वाऽस्या महावृक्ष[2]क्षीरमनुसेचयेत्। कुष्ठलाङ्गलीमूलकल्कं वा मद्यमूत्रयोरन्यतरेण पाययेत्। शालमूलकल्कं वा पिप्पल्यादिं[3] वा मद्येन। सिद्धार्थककुष्ठलाङ्गलीमहावृक्षक्षीरमिश्रेण सुरामण्डेन वाऽऽस्थापयेत्। एतैरेव सिद्धेन सिद्धार्थकतैलेनोत्तरवस्तिं दद्यात्, स्निग्धेन वा कृत्तनखेन हस्तेनापहरेत्[4] ॥ २१ ॥

प्रजा[5]तायाश्च नार्य्या रुद्धशरीरायास्तीक्ष्णैरविशोधितं रक्तं वायुना तद्देशगतेनातिसंरुद्धं नाभेरधः पार्श्वयोर्बस्तौ वस्तिशिरसि वा ग्रन्थिं करोति। ततश्च नाभिबस्त्युदरशूलानि भवन्ति, सूचीभिरिव निस्तुद्यते भिद्यते दीर्यत इव च पक्वाशयः। समन्तादाध्मानमुदरे मूत्रसङ्गश्च भवतीति मक्कल्ललक्षणम्। तत्र[6] सर्पिषा सुखोष्णेन लवणचूर्णेन वा वीरतर्वादिसिद्धं जलमुषकादिप्रतीवापं पाययेत्, यवक्षारचूर्णं वा पिप्पल्यादिक्काथेन, पिप्पल्यादिचूर्णं वा सुरामण्डेन, वरुणादिक्काथं वा पञ्चकोलैलाप्रतीवापं, पृथक्पर्ण्यादिक्काथं वा भद्रदारुमरिचसंसृष्टं, पुराणगुडं वा त्रिकटुकचतुर्जातककुस्तुम्बुरुमिश्रं खादेत्, अँच्छं[7] वा पिबेदरिष्टमिति ॥ २२ ॥

अथ[8] बालं क्षौमपरिवृतं क्षौमवस्त्रास्तृतायां शय्यायां शाययेत्।

---

१ लाङ्गली = कलिहारिका, अस्यावशिष्टमाह रसतरङ्गिण्याम्–'लाङ्गली वारिणा पिष्टा करपादप्रलेपिता। अपरां पातयत्याशु न सन्देहोऽत्र कश्चन ॥" इति। २ महावृक्षः = स्नुही। ३ पिप्पल्यादिः द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तगणः।

४ अष्टाङ्गसङ्ग्रहे–"न चेदपरा पतति ततो दक्षिणेन पाणिना नाभेरुपरिष्टाद् बलवदुत्पीड्यान्येन पृष्ठत उपसङ्गृह्य विधुनुयात्" इति विशेषोक्तं वाऽऽचरणीयम्। ५ मक्कल्ललक्षणं दर्शयति–**प्रजाताया इति**। तीक्ष्णैः = पिप्पल्याद्यौषधैः। ६ तच्चिकित्सां प्रतिपादयति—**तत्रेति**। वीरतर्वादिः ऊषकादिः वरुणादिश्च गणः द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये द्रष्टव्यः। ७ अच्छं = केवलम्, अरिष्टं चिकित्सिते वक्ष्यमाणमभयाऽरिष्टादिकं वा पिबेदित्यर्थः। ८ बालोपचारप्रकारं निर्दिशति—**अथेति**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीलुबदरीनिम्बपरूषकशाखाभिश्चैनं परिवीजयेत्। मूर्ध्नि चास्याहरहस्तैलपिचुमवचारयेत्, धूपयेच्चैनं रक्तोघ्नैर्धूपैः। रक्तोघ्नानि चास्य पाणिपादशिरोग्रीवास्ववसृजेत्। तिलातसीसर्षपकणांश्चात्र प्रकिरेत्। अधिष्ठाने चाग्निं प्रज्वालयेत्। व्रणितोपासनीयं चावेक्षेत ॥ २३ ॥

ततो दशमेऽहनि मातापितरौ कृतमङ्गलकौतुकौ स्वस्तिवाचनं कृत्वा नाम कुर्यातां यदभिप्रेतं नक्षत्रनाम वा ॥ २४ ॥

ततो यथावर्णं धात्रीमुपेयान्मध्यमप्रमाणां मध्यमवयस्कामरोगां शीलवतीमचपलामलोलुपामकृशामस्थूलां प्रसन्नक्षीरामलम्बौष्ठीमलम्बोर्ध्वस्तनीमव्यङ्गामव्यसनिनीं जीवद्वत्सां दोग्ध्रीं वत्सलामक्षुद्रकर्मिणीं कुले जातामतो भूयिष्ठैश्च गुणैरन्वितां श्यामां आरोग्यबलवृद्धये बालस्य। तत्रोर्ध्वस्तनी करालं कुर्यात्। लम्बस्तनी नासिकामुखं छादयित्वा मरणमापादयेत्। ततः प्रशस्तायां तिथौ शिरःस्नातमहतवाससमुदङ्मुखं शिशुमुपवेश्य धात्रीं प्राङ्मुखीमुपवेश्य दक्षिणं स्तनं धौतमीषत्परिस्रुतमभिमन्त्र्य मन्त्रेणानेन पाययेत्॥२५॥

---

१ परूषकः='फालसा' इति ख्यातः। २ रक्षोघ्नैः=वचाकुष्ठक्षौमकहिङ्गुसर्षपातसीलशुनादिना कृतै रक्षोघ्ननामधेयैरित्यर्थः। ३ अधिष्ठाने=सूतिकाऽऽगारे।

४ नक्षत्रनाम=नक्षत्रदेवताकृतं नाम। तथा च वेदाङ्गज्यौतिषे—"अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर्बृहस्पतिः" इत्यादिना कृत्तिकानक्षत्रमारभ्य सर्वेषां नक्षत्राणां देवताः प्रदर्श्य "नक्षत्रदेवता एता एताभिर्यज्ञकर्मणि। यजमानस्य शास्त्रज्ञैर्नाम नक्षत्रजं स्मृतम्॥" इत्युक्तम्। बौधायनसूत्रे—"पुत्रस्य नाम गृह्णाति रौहिणाय तिष्याय" इति। "कुलदेवतानक्षत्रसम्बद्धं पिता नाम कुर्यात्" इति शङ्कः। नामकरणे नाक्षत्रनाम नक्षत्रपादाक्षरादि कार्यमिति वृद्धाः। गृह्यसूत्रे तु—"द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तस्थं दीर्घाभिनिष्ठानं कृतं कुर्यान्न तद्धितम्" इति। एतद्वचनानां विशेषविवेचनमन्यत्र द्रष्टव्यम्। ५ यथावर्णं=वर्णातिक्रमेण, समानजातीयामित्यर्थः। ६ "शीतकाले भवेदुष्णा ग्रीष्मे च सुखशीतला। तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कीर्तिता॥" इति। अन्यत्र साधारणतया षोडशवार्षिकी श्यामाऽभिहिता।

७ उक्तव्यतिक्रमे दोषं दर्शयति—तत्रेति। ऊर्ध्वस्तनी करालं दन्तुरं कुर्यादित्यर्थः। ८ धात्रीमिति मातुर्विशुद्धस्तन्याभावे बोध्यम्। तदुक्तम्—"मातुरेव पिबे-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चत्वारः सागरास्तुभ्यं स्तनयोः क्षीरवाहिणः ।
भवन्तु सुभगे ! नित्यं बालस्य बलवृद्धये ॥ २६ ॥
पयोऽमृतरसं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने ! ।
दीर्घमायुरवाप्नोतु देवाः प्राश्यामृतं यथा ॥ २७ ॥

अतोऽन्यथा नानास्तन्योपयोगस्यासात्म्याद् व्याधिजन्म भवति[1] ॥ २८ ॥

अपरिस्रुतेऽप्यतिस्तब्धस्तन्यपूर्णस्तनपानादुत्सुंहितस्रोतसः[2] शिशोः कासश्वासवमीप्रादुर्भावः । तस्मादेवंविधानां स्तन्यं न पाययेत् ॥ २९ ॥

क्रोधशोकावात्सल्यादिभिश्च स्त्रियाः स्तन्यनाशो भवति । अथास्याः क्षीरजननार्थं सौमनस्यमुत्पाद्य यवगोधूमशालिषष्टिकमांसरससुरासौवीरकपिण्याकलशुनमत्स्यकशेरुकशृङ्गाटकबिसविदारिकन्दमधुकशतावरीनलिकाण्डलाबूकालशाकप्रभृतीनि[3] विदध्यात् ॥ ३० ॥

अथास्याः स्तन्यमप्सु परीक्षेत, तच्चेत् शीतलममलं तनु शङ्खावभासमप्सु न्यस्तमेकीभावं गच्छत्यफेनिलमतन्तुमन्नोत्प्लवतेऽवसीदति[4] वा तच्छुद्धमिति विद्यात्, तेन कुमारस्यारोग्यं शरीरोपचयो बलवृद्धिश्च भवति । न च क्षुधितशोकार्तश्रान्तप्रदुष्टधातुगर्भिणीज्वरितातिक्षीणातिस्थूलविदग्धभक्तविरुद्धाहारतर्पिताया स्तन्यं पाययेत्; नाजीर्णौषधं च बालं, दोषौषधमलानां तीव्रवेगोत्पत्तिभयात् ॥ ३१ ॥

भवन्ति चात्र ।

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा ।
दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ ३२ ॥

---

स्तन्यं तत्परं देहवृद्धये । स्तन्यधात्र्यावुभे कार्ये तदसम्पदि वत्सले ॥" इति । १ तस्माद् दुग्धपानार्थमेकैव धात्री नियोजनीयेति निष्कर्षः । २ उत्सुंहितस्रोतसः=उर्ध्वं परिपूर्णस्रोतसः । ३ नलिका=नाडीशाकः, कालशाकः=श्राद्धार्हः शाकभेदः, प्रभृतिग्रहणाद् वीरणादयो ग्राह्याः । ४ अवसीदति=निमज्जति, अत्रापि नकारः सम्बध्यते ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः ।
दूषयन्ति पयस्तेन शारीरा व्याधयः शिशोः ॥
भवन्ति कुशलस्तांश्च भिषक् सम्यग् विभावयेत् ॥ ३३ ॥
अङ्गप्रत्यङ्गदेशे तु रुजा यत्रास्य जायते ।
मुहुर्मुहुः स्पृशति तं स्पृश्यमाने च रोदिति ॥ ३४ ॥
निमीलिताक्षो मूर्द्धस्थे शिरोरोगे न धारयेत् ।
बस्तिस्थे मूत्रसङ्गार्त्तो रुजा तृष्यति मूर्च्छति ॥ ३५ ॥
विण्मूत्रसङ्गवैवर्ण्यच्छर्द्यध्मानान्त्रकूजनैः ।
कोष्ठे दोषान् विजानीयात् सर्वत्रस्थांश्च रोदनैः ॥ ३६ ॥

तेषु च यथाऽभिहितं मृद्वच्छेदनीयमौषधं मात्रया क्षीरपस्य क्षीरसर्पिषा धात्र्याश्च विदध्यात्, क्षीरान्नादस्यात्मनि धात्र्याश्च, अन्नादस्य कषायादीनात्मन्येव न धात्र्याः ॥ ३७ ॥

तत्र मासादूर्ध्वं क्षीरपायाङ्गुलिपर्वद्वयग्रहणसम्मितामौषधमात्रां विदध्यात्, कोलास्थिसम्मितां कल्कमात्रां क्षीरान्नादाय, कोलसम्मितामन्नादायेति ॥ ३८ ॥

येषां गदानां ये योगाः प्रवक्ष्यन्तेऽगदङ्कराः ।
तेषु तत्कल्कसंलिप्तौ पाययेत शिशुं स्तनौ ॥ ३९ ॥
एकं द्वे त्रीणि चाहानि वातपित्तकफज्वरे ।
स्तन्यपायाहितं सर्पिरितराभ्यां यथार्थतः ॥ ४० ॥

---

१ वक्तुमशक्तानां बालानां व्याधिज्ञानोपायं वक्ति—**अङ्गेति** । २ यथाऽभिहितं यस्मिन् यस्मिन् रोगे यद्यदौषधं कथितं तत्तत्कुर्यात्, मृदु=अतीक्ष्णम्, अच्छेदनीयं=कफमेदसोरित्यर्थः ।

३ तामेव भेषजमात्रां दर्शयति-**तत्रेति** । शार्ङ्गधरे तु-"बालस्य प्रथमे मासि देया भेषजरक्तिका । अवलेही कृतैकैव क्षीरक्षौद्रसिताघृतैः । वर्धयेत्तावदेकैकां यावद् भवति वत्सरः । मात्रेयं कल्कचूर्णानां कषायाणां चतुर्गुणा ॥" इति भेषजप्रमाणं प्रदर्शितम् । वस्तुतस्तु "मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः । व्याधिं द्रव्यं च कोष्ठं च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥" इति बोध्यम् । ४ औषधप्रयोगं प्रकारान्तरेणाह—**येषामिति** । ५ इतराभ्यां = क्षीरपायान्नादाभ्याम्, यथार्थतः=यथाप्रयोजनतः, सर्पिर्हितमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न च तृष्णाभयादत्र पाययेत शिशुं स्तनौ ।
विरेकबस्तिवमनान्यृते कुर्याच्च नात्ययात्[1] ॥ ४१ ॥
मस्तुलुङ्गक्षयाद्यस्य[2] वायुस्ताल्वस्थि नामयेत् ।
तस्य तृड्दैन्ययुक्तस्य सर्पिर्मधुरकैः[3] श्रृतम् ॥ ४२ ॥
पानाभ्यञ्जनयोर्योज्यं शीताम्बूद्वेजनं[4] तथा ।
वातेनाध्मापितां नाभिं सरुजां तुण्डिसंज्ञिताम् ॥ ४३ ॥
मारुतघ्नैः प्रशमयेत् स्नेहस्वेदोपनाहनैः ।
गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत् क्रियाम् ॥
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ४४ ॥

क्षीराहाराय[5] सर्पिः पाययेत् सिद्धार्थकवचामांसीपयस्यांडपामार्गशतावरीसारिवाब्राह्मीपिप्पलीहरिद्राकुष्ठसैन्धवसिद्धं, क्षीरान्नादाय मधुकवचापिप्पलीचित्रकत्रिफलासिद्धम्, अन्नादाय द्विपञ्चमूलीक्षीरतगरभद्रदारुमरिचमधुकविडङ्गद्राक्षाद्विब्राह्मीसिद्धम्; तेनारोग्यबलमेधाऽऽयूंषि शिशोर्भवन्ति ॥ ४५ ॥

बालं पुनर्गात्रसुखं गृह्णीयात्, न चैनं तर्जयेत्[6], सहसा न प्रतिबोधयेद्वित्रासभयात्, सहसा नापहरेदुत्क्षिपेद्वा[7] वातादिविघातभयात्, नोपवेशयेत् कौब्ज्याभयात्, नित्यं चैनमनुवर्तेत[8] प्रियशतैरजिघांसुः। एवमनभिहतमनास्त्वभिवर्द्धते नित्यमुदग्रसत्त्वसम्पन्नो नीरोगः सुप्रसन्नमनाश्च भवति। वातातपविद्युत्प्रभापादपलताशून्यागारनिम्नस्थानग्रहच्छायादिभ्यो दुर्ग्रहोपसर्गतश्च बालं रक्षेत् ॥४६॥

नाशुचौ विसृजेद्बालं नाकाशे विषमे न च ।

---

१ अत्ययात्=प्राणनाशकविकारात्। २ मस्तुलुङ्गक्षयात्=श्रृतघृताकारमस्तकमज्जक्षयात्। ३ मधुरकैः=जीवनीयगणैः। ४ शीताम्बूद्वेजनं=नेत्रादौ शीतलजलावसेकेन त्रासनमित्यर्थः।

५ बालस्यावस्थाभेदेन सर्पिःप्रयोगान् वक्ति—क्षीरेति। ६ पयस्या=क्षीरकाकोली, अर्कपुष्पीति डल्हणः। ७ तर्जयेत्=भर्त्सयेत। ८ अपहरेत्=आकर्षेत्, उत्क्षिपेत्=क्रीडनार्थमूर्ध्वमुत्क्षिपेत्। ९ यावच्छक्तिर्नोत्पद्यते तावन्नोपवेशयेदित्यर्थः। १० अनुवर्तेत=अनुकूलयेत्, प्रियशतैः=बालक्रीडनकादिप्रियपदार्थशतैरित्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोष्ममारुतवर्षेषु रजोधूमोदकेषु च ॥ ४७ ॥
क्षीरसात्म्यतया[1] क्षीरमाजं गव्यमथापि वा ।
दद्यादास्तन्यपर्याप्तेर्[2]बालानां वीक्ष्य मात्रया ॥ ४८ ॥
षण्मासं चैनमन्नं[3] प्राशयेल्लघु हितं च ॥ ४९ ॥
नित्यमवरोधे[4]रतश्च स्यात् कृतरक्षं उपसर्ग[5]भयात्, प्रयत्नतश्च ग्रहोपसर्गेभ्यो रक्ष्या बाला भवन्ति ॥ ५० ॥

अथ[6] कुमार उद्विजते त्रस्यति रोदिति नष्टसञ्ज्ञो भवति नखदशनैर्धात्रीमात्मानं च परिणुदति दन्तान् खादति कूजति जृम्भते भ्रुवौ विक्षिपत्यूर्ध्वं निरीक्षते फेनमुद्वमति सन्दष्टौष्ठः क्रूरो भिन्नामवर्चा दीनार्त्तस्वरो निशि जागर्त्ति दुर्बलो म्लानाङ्गो मत्स्यच्छुच्छुन्दरिमत्कुणगन्धो यथा पुरा धात्र्याः स्तन्यमभिलषति तथा नाभिलषतीति सामान्येन ग्रहोपसृष्टलक्षणमुक्तं, विस्तरेणोत्तरे वक्ष्यामः॥५१॥

शक्तिमन्तं[8] चैनं ज्ञात्वा यथावर्णं विद्यां ग्राहयेत् ॥ ५२ ॥
अथास्मै पञ्चविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत् पित्र्यधर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति ॥ ५३ ॥

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ ५४ ॥
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ५५ ॥

---

१ यतः शिशोः क्षीरमेव सात्म्यं भवति, न त्वन्नादिकम् । २ यावत् स्त्रियाः स्तन्यस्य समन्ततो भावेन प्राप्तिर्भवति, अथवा यावत् स्तन्यपानस्य योग्यता भवेत्तावदिति । ३ 'षष्ठेऽन्नप्राशनं कुर्याद्यद्वेष्टं मङ्गलं कुले' इति मनुस्मरणान्मुख्यकालविषयमेतत् । ४ अवरोधरतः = परिजनाद्यवरोधयुक्त इत्यर्थः । ५ उपसर्गभयात्=पतनाद्युपद्रवभयादित्यर्थः ।

६ ग्रहोपसृष्टस्य बालस्य सामान्यलक्षणं निर्दिशति—अथेति । अथ = ग्रहोपसर्गारम्भे । ७ छुच्छुन्दरी = गन्धमुखी 'छुछुन्दर' इति ख्याता, मत्कुणः='खटमल' । इति प्रसिद्धः । ८ शक्तिमन्तं=विद्याऽध्ययनजन्यकष्टसहिष्णुम् । ९ एतच्च योग्यकालप्रदर्शनपरं न तु नियमार्थम्, प्रायेणैतावता कालेन गृहीतविद्यो भवतीति बोध्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिवृद्धायां दीर्घरोगिण्यामन्येन वा विकारेणोपसृष्टायां गर्भाधानं नैव कुर्वीत। पुरुषस्याप्येवंविधस्य त एव दोषाः सम्भवन्ति ॥ ५६ ॥

तत्र [1]पूर्वोक्तैः कारणैः पतिष्यति गर्भे गर्भाशयकटीवङ्क्षणबस्तिशूलानि रक्तदर्शनं च। तत्र शीतैः परिषेकावगाहप्रदेहादिभिरुपचरेज्जीवनीयश्रृतक्षीरपानैश्च [2]। गर्भस्फुरणे मुहुर्मुहुस्तत्सन्धारणार्थं [3]क्षीरमुत्पलादिसिद्धं पाययेत्।

प्रस्रंसमाने [4]सदाहपार्श्वपृष्ठशूलासृग्दरानाहमूत्रसङ्गाः, स्थानात् स्थानं चोपक्रामति गर्भे कोष्ठे संरम्भः [5], तत्र स्निग्धशीताः क्रियाः।

वेदनायां महासहाक्षुद्रसहामधुकश्वदंष्ट्राकण्टकारिकासिद्धं पयः शर्कराक्षौद्रमिश्रं पाययेत्। मूत्रसङ्गे [6]दर्भादिसिद्धम्। आनाहे हिङ्गुसौवर्चललशुनवचासिद्धम्।

अत्यर्थं [7]स्रवति रक्ते कोष्ठागारिकाऽऽगारमृत्पिण्डसमङ्गाधातकीकुसुमनवमालिकागैरिकसर्जरसरसाञ्जनचूर्णं मधुनाऽवलिह्यात्, यथालाभं न्यग्रोधादित्वक्प्रवालकल्कं वा पयसा पाययेत्, उत्पलादिकल्कं वा कशेरुशृङ्गाटकशालूक [10]कल्कं वा श्रृतेन पयसा, उदुम्बरफलौदककन्दक्काथेन वा शर्करामधुमधुरेण शालिपिष्टं, न्यग्रोधादि [11]स्वरसपरिपीतं वा वस्त्रावयवं योन्यां धारयेत्।

अथाद्दष्टशोणितवेदनायां मधुकदेवदारुमञ्जिष्ठा पयस्यासिद्धं पयः [12] पाययेत्, तदेवाश्मन्तकशतावरीपयस्यासिद्धं विदारि-

---

१ पूर्वोक्तैः=गर्भावक्रान्तिमूढगर्भनिदानोक्तैः, कारणैः=व्यायामादिभिः। २ जीवनीयानि=द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तानि काकोल्यादीनि। ३ उत्पलादिर्द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये द्रष्टव्यः। ४ प्रस्रंसमाने=पतनाय किञ्चिच्चलति सतीत्यर्थः। ५ संरम्भः=वेदनाविशेषः। ६ महासहा=माषपर्णी, क्षुद्रसहा=मुद्गपर्णी। ७ दर्भादिः द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः कुशादिगणः।

८ अत्यर्थं स्रवति रक्ते कोऽर्थः? असृग्दरे, कोष्ठवदागारेण चरतीति कोष्ठागारिका भंवरीनामा। ९ न्यग्रोधादिक्षीरिवृक्षाणां त्वचः कल्कं तेषां प्रवालकल्कं वा, प्रवालं=नवपल्लवः। १० शालूकं=कमलकन्दः। ११ न्यग्रोधादिगणः पूर्वोक्तः। १२ पयः-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्धाऽऽदिसिद्धं वा, बृहतीद्वयोत्पलशतावरीसारिवापयस्यामधुकसिद्धं वा, एवं क्षिप्रमुपक्रान्ताया उपावर्त्तन्ते[1] रुजो गर्भश्चाप्यायते।

व्यवस्थिते च गर्भे गव्येनोडुम्बरशलाटुसिद्धेन पयसा भोजयेत्। अतीते[3] लवणस्नेहवर्ज्याभिर्यवागूभिरुद्दालकादीनां[4] पाचनीयोपसंस्कृपाभिरुपक्रमेत यावन्तो मासा गर्भस्य तावन्त्यहानि। बस्त्युदरशूलेषु पुराणगुडं दीपनीय[5]संयुक्तं पाययेदरिष्टं वा;

वातोपद्रवगृहीतत्वात् स्रोतसां[6] लीयते गर्भः, सोऽतिकालमवतिष्ठमानो व्यापद्यते, तं मृदुना स्नेहादिक्रमेणोपचरेत्, उत्क्रोश[7]रससंसिद्धामनल्पस्नेहां यवागूं पाययेत्, माषतिलबिल्वशलाटुसिद्धान् वा कुल्माषान् भक्षयेन्मधुमाध्वीकं चानुपिबेत् सप्तरात्रम्; कालातीतस्थायिनि गर्भे विशेषतः सधान्यगुदूखलं मुसलेनाभिहन्याद्विषमे वा यानासने सेवेत।

वाताभिपन्न एव शुष्यति[8] गर्भः, स मातुः कुक्षिं न पूरयति मन्दं स्पन्दते च, तं बृंहणीयैः पयोभिर्मांसरसैश्चोपचरेत्।

शुक्रशोणितं वायुनाऽभिप्रपन्नमव[10]क्रान्तजीवमाध्मापयत्युदरं, तं कदाचिद् यदृच्छयोपशान्तं नैग[11]मेषापहृतमिति भाषन्ते, तमेव कदाचित्प्रलीय[12]मानं नागोदरमित्याहुः, तत्रापि लीन[13]वत् प्रतीकारः॥५७॥

---

पाकविधिः—"द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम्। क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः॥" इति। १ उपावर्तन्ते = उपयमं यान्ति। २ उदुम्बरस्य शलाटुभिरामैः फलैः सिद्धेन पयसेत्यर्थः। ३ अतीते = गर्भपतिते। ४ उद्दालकः = वनकोद्रवः, 'कोदो' इति ख्यातः, पाचनीयः = शुण्ठीजीरकादिः। ५ दीपनीयसंयुक्तं = पञ्चकोलचूर्णयुतमित्यर्थः। ६ स्रोतसां = गर्भनिर्गममार्गाणाम्। ७ उत्क्रोशः = कुररी, पक्षिविशेषः। ८ तथा च गर्भनिर्गमः सुगमतया सम्भवतीति भावः। ९ न तु लीनवन्मार्गावरोधात्तिष्ठतीति तात्पर्यम्।

१० अवक्रान्तजीवं शुक्रशोणितं गर्भ इत्यर्थः। वायुनाऽभिप्रपन्नं पीडितं सद् उदरमाध्मापयतीति सम्बन्धः। ११ नैगमेष उत्तरतन्त्रे वक्ष्यमाणो बालग्रहस्तेनापहृतम्। १२ प्रविलीयमानम् = अल्पीभवन्तम्। चरकादौ लीनगर्भोपविष्टकनागोदराणि चेति त्रयो गर्भरोगा उक्ताः। एतेषां भेदस्तत एवावगन्तव्यः। १३ लीनगर्भवदित्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत ऊर्ध्वं मासानुमासिकं वक्ष्यामः ॥ ५८ ॥
मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च ।
अश्मन्तकस्तिलाः कृष्णास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ ५९ ॥
वृक्षादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा ।
अनन्ता सारिवा राज्ञा पद्मो मधुकमेव च ॥ ६० ॥
बृहत्यौ काश्मरी चापि क्षीरिशुङ्गास्त्वचो घृतम् ।
पृश्निपर्णी बला शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ ६१ ॥
शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कशेरु मधुकं सिता ।
वत्सैते सप्त योगाः स्युरर्धश्लोकसमापनाः ॥
यथासंख्यं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोयुताः ॥ ६२ ॥
कपित्थबृहतीबिल्वपटोलेक्षुनिदिग्धिका ।
मूलानि क्षीरसिद्धानि पाययेद् भिषगष्टमे ॥ ६३ ॥
नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबेत् ।
क्षीरं शुण्ठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्यादशमे हितम् ॥ ६४ ॥
सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं सुरदारु च ।
एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् चोपशाम्यति ॥ ६५ ॥

निवृत्तप्रसवायास्तु पुनः षड्भ्यो वर्षेभ्य ऊर्ध्वं प्रसवमानाया नार्याः कुमारोऽल्पायुर्भवति ॥ ६६ ॥

अथ गर्भिणीं व्याध्युत्पत्तावत्यये छर्दयेन्मधुराम्लेनान्नोपहितेनानुलोमयेच्च, संशमनीयं च मृदु विदध्यादन्नपानयोः, अश्नीयाच्च

---

१ अश्मन्तकः = कोविदाराकारोऽम्लपत्रः, 'अमलोनिया' इति ख्यातः । २ पद्मा = भार्गी । ३ शुङ्गाः = अविकसितपल्लवाः, प्ररोहा इति यावत् । ४ मधुपर्णिका = गूडूची, मधुयष्टिकेति डल्हणः । ५ गर्भस्रावे गर्भपातशङ्कायामेते सप्तयोगाश्चूर्णरूपेण सप्तसु मासेषु यथाक्रमं प्रयोज्या इत्यर्थः । ६ विरेचकत्वात् पटोलमूलं स्वल्पमेव प्रयोज्यम् । वस्तुतस्तु पटोलपत्रमेवोपयोज्यमिति बोध्यम् । ७ सुरदारु = देवदारु ।

८ षड्वर्षोत्तरं प्रसवे गर्भस्य अल्पायुत्वं निर्दिशति—**निवृत्तेति** । षड्वर्षानन्तरं प्रसवमाना नारी निवृत्तप्रसवा बोध्या । श्रीहाराणचन्द्रस्तु प्रकारान्तरेण व्याख्याति । तद्व्याख्यानं तत एवोन्नेयम् । ९ गर्भिण्या निषिद्धानामपि वमनादीनां


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृदुवीर्यं मधुरप्रायं गर्भाविरुद्धं च, गर्भाविरुद्धाश्च क्रिया यथायोगं विदधीत मृदुप्रायाः ॥ ६७ ॥

भवन्ति चात्र ।

सौवर्णं[1] सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा ।
मत्स्याक्षकः[2] शङ्खपुष्पी[2] मधु सर्पिः सकाञ्चनम् ॥ ६८ ॥
अर्कपुष्पी[3] मधुघृतं चूर्णितं कनकं वचा ।
हेमचूर्णानि कैडर्यः[4] श्वेता दूर्वा घृतं मधु ॥ ६९ ॥
चत्वारोऽभिहिताः प्राशाः श्लोकार्द्धेषु चतुर्ष्वपि ।
कुमाराणां वपुर्मेधाबलबुद्धिविवर्द्धनाः ॥ ७० ॥

इति भगवता श्रीधन्वन्तरिणोपदिष्टायां तच्छिष्येण महर्षिणा सुश्रुतेन विरचितायां सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने गर्भिणी-व्याकरणं शरीरं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

---

प्रतिप्रसवमाह—**अथेति** । १ कुमारस्य वपुर्मेधाबलबुद्धिविवर्धनं पूर्वोक्तं सुवर्ण-चूर्णं निर्दिशति—**सौवर्णमिति** । सौवर्णं = सुवर्णभस्म । २ मत्स्याक्षकः = ब्राह्मी, शङ्खपुष्पी = 'शंखाहुली' इति प्रसिद्धा । ३ अर्कपुष्पी = अर्कसदृशपत्रपुष्पा पय-स्यालता । ४ कैडर्यः = पर्वतनिम्बः । श्रीहाराणचन्द्रस्तु—'कैटर्यः' इति पाठं मत्वा 'कट्फलः' इति व्याख्याति । श्वेता = अपराजिता । एतद्योगानां प्रयोगः संवत्सरपर्यन्तं कर्तव्यः । बालकानां यादृशी मात्रा साऽष्टत्रिंशत्संख्याके गद्येऽभिहिता । इति शम् ।

इति पण्डितश्रीकपिलदेवमिश्रतनुजन्मना मिश्रोपाह्वश्रीसुदामाशर्मणा निर्मितायां सुश्रुतसंहितायां सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां शारीरस्थाने दशमोऽध्यायः ।

समाप्तमिदं शारीरस्थानम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# अथ चिकित्सास्थानम् ।

## प्रथमोऽध्यायः ।

अथातो द्विव्रणीयचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
[२]द्वौ व्रणौ भवतः—शारीर आगन्तुकश्चेति । तयोः शारीरः पव-

---

### अथ चिकित्सास्थानम् ।

उदयगिरेरभ्युदयन्निन्दुसुधापिण्डसङ्क्रान्तैः ।
उल्लैस्सदाऽभितापात्पातालोकं स आदित्यः ॥ १ ॥

१ "रोगमादौ परीक्षेत तदनन्तरमौषधम्" इत्युक्त्या निदानस्थाने व्याधीनां स्वस्वलक्षणतो निदानमुक्तम्। तच्चाधिष्ठानविशेषज्ञानमन्तरा न सम्भवतीति तद्विज्ञापनार्थं शारीरस्थानमप्युक्तम् । ततश्चिकित्साया अवसरं ज्ञात्वा चिकित्सास्थानं प्रारिप्समानो भगवान् सुश्रुतस्तन्त्रस्यास्य शल्याङ्गप्राधान्याद् व्रणचिकित्सार्थं प्रथमं द्विव्रणीयचिकित्सितमेव विवक्षुराह—**अथात इति** । द्वौ व्रणावधिकृत्य कृतोऽध्यायो द्विव्रणीयः। छप्रत्ययस्तस्येयादेशश्च । चिकित्सितं रुक्प्रतिक्रियां व्याख्यास्यामः विशेषेण प्रकथयिष्याम इत्यर्थः ।

आसुर्यादिभेदाच्चिकित्सा त्रिविधेत्यपि प्रसङ्गादत्र बोध्यम् । तदुक्तम्—"आसुरी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा मता । सूत्रप्रधाना दैवी स्याच्छेदभेदात्मिकाऽऽसुरी ॥ मानुषी षड्सा ज्ञेया जपहोमादिसंस्कृता । कलौ चाल्पबले लोके मानुषी तत्र पूजिता ॥" इति । तस्या लक्षणं यथा—"याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः । सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम् ॥ या ह्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च । सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत ॥" इति अस्याः फलम्—"क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः । कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥" इति । अस्या अङ्गानि यथा—"रोगी दूतो भिषग् दीर्घमायुर्द्रव्यञ्च सेवकः । सदौषधं चिकित्सायामित्यङ्गानि बुधा जगुः ॥" इति ।

२ व्रणवर्णनमामूलमवतारयति—**द्वाविति** । चरके शारीरव्रणस्य निजत्वेन भेदः प्रदर्शितः—"निजः शरीरदोषोत्थ आगन्तुर्बाह्यहेतुजः ॥ वधबन्धप्रपतनाद् दंष्ट्रादन्तनखक्षतात् । आगन्तवो व्रणास्तद्वद् विषस्पर्शाग्निशस्त्रजाः ॥.....यथास्वैर्हेतुभिर्दुष्टा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नपित्तकफशोणितसन्निपातनिमित्तः । आगन्तुरपि पुरुषपशुपक्षि-व्यालसरीसृपप्रपतनपीडनप्रहाराग्निक्षारविषतीक्ष्णौषधशकलकपाल-शृङ्गचक्रेषु परशुशक्तिकुन्ताद्यायुधाभिघातनिमित्तः । तत्र तुल्ये व्रणसामान्ये द्विकारणोत्थानप्रयोजनसामर्थ्याद् 'द्विव्रणीय' इत्युच्यते ॥ ३ ॥

सर्वस्मिन्नेवागन्तुव्रणे तत्कालमेव क्षतोष्मणः प्रसृतस्योपशमार्थं पित्तवच्छीतक्रियाऽवचारणविधिविशेषः सन्धानार्थं च मधुघृतप्रयोग इत्येतद् द्विकारणोत्थानप्रयोजनम्, उत्तरकालं तु दोषोपप्लवविशेषाच्छारीरवत् प्रतीकारः ॥ ४ ॥

दोषोपप्लवविशेषः पुनः समासतः पञ्चदशप्रकारः, प्रसरण-

---

वातपित्तकफा नृणाम् । बहिर्मार्गं समाश्रित्य जनयन्ति निजान् व्रणान् ॥" इति । आगन्तुर्व्यथापूर्वमुदेति, पश्चाद्वातादीन् कोपयति । निजे तु पूर्वं वातादयः प्रकुप्यन्ति, पश्चाद् व्यथोत्पद्यते । तदाह भगवान् सुश्रुतः स्वयमेव—"आगन्तुर्व्यथापूर्वमुत्पन्नो जघन्यं वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यमापादयति" । १ शकलं=काष्ठादीनामवयवः, कपालं=घटादीनां खण्डम् ।

२ द्विव्रणीयस्य निरुक्तिमाह—**तत्रेति** । व्रणसामान्ये=व्रणजातौ, व्रणत्वे इत्यर्थः । 'जातिर्जातं च सामान्यम्' इत्यमरः । तुल्येऽपि द्विकारणोत्थानप्रयोजनसामर्थ्याद् द्विविधाभ्यां कारणाभ्यामुत्थानमुत्पत्तिस्तस्य प्रयोजनं वक्ष्यमाणं शीतक्रियाऽऽद्यवचारणं तस्य सामर्थ्यं शक्तिस्तस्माद् 'द्विव्रणीय' इत्युच्यते इत्यर्थः सम्बन्धश्च । ३ तत्कालं=यस्मिन् समयेऽभिघातात् क्षतमुत्पद्यते तस्मिन्नेव काले इत्यर्थः । प्रसृतस्य अवाप्तप्रसारस्य, क्षतोष्मणः प्रहारजनितान्तर्गतस्य सन्तापविशेषस्येति योजना ।

४ सन्धानार्थं=घातविशेषाद् द्विधाभूतस्यावयवस्य संयोजनार्थम्, चकारात् क्षतोष्मणो निर्वापनार्थं तथा मार्गावरोधेन कुपितवातरक्तशमनार्थं च । ५ उत्तरकालं=सप्ताहात्परमित्यर्थः, यस्मात्सद्योव्रणत्वं सप्ताहमेव । दोषोपप्लवविशेषात्—दोषैः शोणितचतुर्थैर्वातादिभिरुपप्लव उपद्रवस्तस्य विशेषो भेदस्तस्मात् शारीरवत् प्रतीकारः यथा शारीरिकव्रणस्य चिकित्सा भवति तथाऽऽगन्तुव्रणस्य चिकित्सा कर्तव्येत्यर्थः । चरकेऽपि—"व्रणानां निजहेतूनामागन्तूनामशाम्यताम् । कुर्याद्दोषबलापेक्षी निजानामौषधं यथा ॥" इति ।

६ दोषोपप्लवाद् व्रणभेदं दर्शयति—**दोषोपप्लवेति** । दोषोपप्लवविशेषः=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्याद्, यथोक्तो व्रणप्रश्नाधिकारे। [1]शुद्धत्वात् षोडशप्रकार इत्येके ॥ ५ ॥

[2]तस्य लक्षणं द्विविधं-सामान्यं वैशेषिकं च। तत्र सामान्यं रुक्[3]। 'व्रण' गात्रविचूर्णने, व्रण[4]यतीति व्रणः। विशेषलक्षणं पुनर्वातादिलिङ्गविशेषः ॥ ६ ॥

तत्र [5]श्यावारुणाभस्तनुः शीतः पिच्छलोऽल्पस्रावी रूक्षश्चटचटायनशीलः स्फु[6]रणायामतोदभेदवेदनाबहुलो निर्मांसश्चेति वातात्। क्षिप्रजः पीतनीलाभः किंशुकोद[7]काभोष्णस्रावी दाहपाकरागविकारी पीतपिडकाजुष्टश्चेति पित्तात्। प्रतत[8]चण्डकण्डूबहुलः स्थूलौष्ठः स्त-

---

दोषोपद्रवभेदः पुनः समासतः सङ्क्षेपतः, पञ्चदशप्रकारः शोणितचतुर्थानां वातादीनां पृथगन्योन्यसंसर्गेण पञ्चदशप्रकार इत्यर्थः। विस्तरस्त्वेषां धातुमलसंयोगजोऽपरिसंख्येयः। प्रसरणसामर्थ्यात्=प्रव्यक्तलिङ्गतया प्रसारित्वेनानुभवादित्यर्थः। एकविंशे व्रणप्रश्नाध्याये प्रसरणप्रकारः स्वयमेव वर्णितः—"वातः, पित्तं, श्लेष्मा, शोणितं, वातपित्ते, वातश्लेष्माणौ, पित्तश्लेष्माणौ, वातशोणिते, पित्तशोणिते, श्लेष्मशोणिते, वातपित्तशोणितानि, वातश्लेष्मशोणितानि, पित्तश्लेष्मशोणितानि, वातपित्तकफाः, वातपित्तकफशोणितानि, इत्येवं पञ्चदशधा प्रसरन्ति।" इति।

१ शुद्धत्वात्=तत्तद्विकारकारिशक्त्या विना कृतत्वेन शुद्धतया विजृम्भितत्वादित्यर्थः। २ शुद्धाशुद्धभेदेन व्रणस्य लक्षणद्वैविध्यं दर्शयति—**तस्येति**। तस्य=व्रणस्य। ३ रुक्=त्वगाद्यवदरणमात्रम्। ४ व्रणयति=गात्रवैवर्ण्यं करोति। व्रणशब्दनिरुक्तिस्तु व्रणति 'व्रण शब्दे' व्रणयति 'व्रण गात्रविचूर्णने' इति वा धातोरच्प्रत्यये बोध्या। व्रणनामनिरुक्तिस्तूक्ता स्वयमेव भगवता सुश्रुतेन—"व्रणोति यस्माद्रूढेऽपि व्रणवस्तु न नश्यति। आदेहधारणात्तस्माद् व्रण इत्युच्यते बुधैः॥" इति।

५ वातादिव्रणानां पृथक्पृथक् लक्षणानि निर्दिशति—**तत्रेति**। तत्र=पञ्चदशप्रकारेषु मध्ये। ६ स्फुरणम्=आभ्यन्तरे किञ्चित्कम्पनमिव, आयामः=सङ्कुचिताङ्गदेशस्य दीर्घीकरणार्थमाकर्षणमिव वेदनाविशेषः। तोदः=सूचीविद्धवद्वेदनाविशेषः, भेदः=आरया त्वग्विदारणमिव वेदनाविशेषः। ७ किंशुकोदकाभोष्णस्रावी=पलाशपुष्पप्रक्षालनजलतुल्योष्णस्रावशील इत्यर्थः। ८ प्रततचण्डकण्डूबहुलः=विशालकण्डूयनप्रायः, स्थूलौष्ठः=विशालोन्नतव्रणवर्त्म, स्तब्धसिरास्नायुजालावततः=अमृदुसिरास्नायुसमूहेन बद्धः। 'जालं समूह आनायो गवाक्षक्षारकावपि' इत्यमरः।

चरके वातादिव्रणलक्षणमाह—"स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावोऽतितीव्ररुक्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वसिरास्नायुजालावततः कठिनः पाण्डुवर्णाभासो मन्दवेदनः शुक्लशीतसान्द्रपिच्छिलास्रावी गुरुश्चेति कफात्। प्रवालदलनिचयप्रकाशः कृष्णस्फोटपिडकाजालोपचितस्तुरङ्गस्थानगन्धिः सवेदनो धूमायनशीलो रक्तस्रावी पित्तलिङ्गश्चेति रक्तात्। तोददाहधूमायनप्रायः पीतारुणाभस्तद्वर्णस्रावी चेति वातपित्ताभ्याम्। कण्डूयनशीलः सनिस्तोदो रूक्षो गुरुर्दारुणो मुहुर्मुहुः शीतपिच्छिलस्रावी चेति वातश्लेष्मभ्याम्। गुरुः सदाह उष्णः पीतपाण्डुस्रावी चेति पित्तश्लेष्मभ्याम्। रूक्षस्तनुस्तोदबहुलः सुप्त इव च रक्तारुणाभस्तद्वर्णस्रावी चेति वातशोणिताभ्याम्। घृतमण्डाभो मीनधावनतोयगन्धिर्मृदुर्विसर्प्युष्णकृष्णस्रावी चेति पित्तशोणिताभ्याम्। रक्तो गुरुः पिच्छिलः कण्डूप्रायः स्थिरः सरक्तपाण्डुस्रावी चेति श्लेष्मशोणिताभ्याम्। स्फुरणतोददाहधूमायनप्रायः पीततनुस्रावी चेति वातपित्तशोणितेभ्यः। कण्डूस्फुरणचुमचुमायनप्रायः पाण्डुघनरक्तस्रावी चेति वातश्लेष्मशोणितेभ्यः। दाहपाकरागकण्डूप्रायः पाण्डुघनरक्तास्रावी चेति श्लेष्मपित्तशोणितेभ्यः। त्रिविधवर्णवेदनास्रावविशेषोपेतः पवनपित्तकफेभ्यः, निर्दहननिर्मथनस्फुरणतोददाहपाकरागकण्डूस्वापबहुलो नानावर्णवेदनास्रावविशेषोपेतः

---

तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसम्भवः ॥...तृष्णामोहज्वरस्वेददाहदुष्टव्रवदारुणैः। व्रणं पित्तकृतं विद्याद् गन्धैः स्रावैश्च पूतिकैः ॥.....बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितौ मन्दवेदनः। पाण्डुवर्णोऽल्पसङ्क्लेदचिरकारी कफव्रणः ॥" इति। १ प्रवालदलनिचयप्रकाशः = समुद्रजन्यात्यन्तरक्तलतामणिखण्डसमूहतुल्य इत्यर्थः। निचयशब्देन प्रव्यक्तरक्तवर्णत्वमाविष्क्रियते। २ धूमायनशीलः = औष्ण्याद्धूमोद्गिरणमिव कर्तुं शीलः। ३ तद्वर्णस्रावी = वातपित्तयोर्वर्णेन स्रावेण च युक्तः। ४ सुप्तः = स्पर्शानभिज्ञः, अज्ञायमानस्पर्श इवेत्यर्थः। ५ घृतमण्डाभः—घृतस्य मण्डः उपरितनः स्वच्छो भागस्तस्याभा इवाभा यस्य सः। मीनधावनतोयगन्धिः = मत्स्यप्रक्षालनोदकगन्धिरित्यर्थः, विस्रगन्धिरिति यावत्। ६ चुमचुमायनं = राजिकाकल्कलिप्तवद्वेदनाविशेषः। ७ निर्दहनम् = अग्निदाह इव वेदनाविशेषः, निर्मथनं = विलोडनवद्वेदनाविशेषः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवनपित्तकफशोणितेभ्यः। जिह्वातलाभो[1] मृदुः स्निग्धः श्लक्ष्णो विगतवेदनः सुव्यवस्थितो[2] निरास्रावश्चेति शुद्धो व्रण इति ॥ ७ ॥

तस्य व्रणस्य षष्टिरुपक्रमा भवन्ति। तद्यथा—अपतर्पणमालेपः

---

१ अधुना शुद्धव्रणलक्षणं ब्रवीति—**जिह्वेति**। जिह्वातलवदाभा प्रभा यस्य सः। अत्राभा वर्णः, तलशब्दः स्वरूपवचनः। जिह्वातलाभशब्दस्य मृदुस्निग्धश्लक्ष्णशब्दैस्सह प्रत्येकं सम्बन्धः। २ सुव्यवस्थितः=समतलत्वेन शोभनाकारः। उत्सन्नोत्सङ्गित्वरहित इत्यर्थः।

३ व्रणस्य षष्टिमुपक्रमान्निर्दिशति—**तस्येति**। अपतर्पणम्=अभोजनम्, लङ्घनमिति यावत्, आलेपः=यथोक्तौषधिभिरुत्लेपनम्, परिषेकः=यथास्वौषधसिद्धोष्णजलाद्यवसेचनम्, अभ्यङ्गः=तैलादिना मर्द्दनम्, स्वेदः=पार्थिवद्रव्याणां तापेन क्लेदरूपः, विम्लापनं=अङ्गुष्ठादिनाऽवमर्द्दनम्, उपनाहः=व्रणालेपनपिण्डः, पाचनं=शोथोपरि शणमूलकवीजादिद्रव्यबन्धनेन दोषपाचनम्, विस्रावणं=जलौकोभिः प्रच्छानैर्वा शोणितमोक्षणम्, स्नेहः=औषधिसिद्धघृतपानम्, वमनं=प्रच्छर्दनम्, विरेचनं=हरीतक्याद्यौषधिभिर्विरेकः, छेदनं=शस्त्रेण द्विधाकरणम्, भेदनं=शस्त्रेण विदारणम्, दारणं=चिरबिल्वादि दारणीयद्रव्यैः क्षारेण वा दारणम्, लेखनं=दुष्टमांसापनयनार्थं रेखाकारिशस्त्रानुशस्त्रोपयोगेन प्रतिकरणम्, एषणं=शलाकाशस्त्रादिनाऽन्वेषणम्, आहरणं=शल्याद्यानयनम्, व्यधनं=शस्त्रेण वेधनम्, विस्रावणं=दुष्टशोणितादिनिस्सारणम्, सीवनं सन्धानं च=व्रणौष्ठादीनां संयोजनम्, पीडनं=यथोक्तपीडनद्रव्यैश्चम्पनम्, शोणितास्थापन=सिराच्छेदादिजन्यरुधिरावरोधनम्, निर्वापणं=पित्तरक्तव्रणस्य पच्यमानस्य ज्वरेणाभिभूतस्य दूर्वाद्यौषधादिभिर्दाहोपशमनम्, उत्कारिका=तिलालसीसर्षपैरण्डादिस्नैहिकबीजपाचितलप्सिकाऽऽकारो घनीभूतः कल्को लप्सिकाकारा।

कषायादयः सप्त शोधनरोपणाः। तत्र कषायः=मिश्रकाध्यायोक्तशङ्खिन्यङ्कोठसुमनादिशोधनद्रव्यकृतक्काथः, वर्तिः=मिश्रकाध्यायोक्ताजगन्धाजशृङ्गयादिशोधनद्रव्यकृता, कल्कः=अजगन्धादिशोधनद्रव्यसाधितः, सर्पिः=अर्कमूलत्रिफलाऽऽदिभिः पूर्वोक्तशोधनवर्तिनिर्दिष्टैर्द्रव्यैश्च संस्कृतघृतम्, तैलम्=अपामार्गादिभिः शोधनवर्तिनिर्दिष्टैर्द्रव्यैश्च साधितं तैलम्, शोधनरोपणकर्मद्वयकर्तृतया द्वित्वमेव तैलघृतयोर्गणनीयम्। रसक्रिया=सालसारादिगणद्रव्यैरन्यैश्च शोधकद्रव्यैः साधितो घनीभूतः क्काथः, अवचूर्णनं=चूर्णावकीर्णम्, व्रणधूपनं=श्रीवेष्टकादिभिर्धूपनम्, उत्सादनं=परिशुष्कारुग्मांसानां व्रणानामुत्सादनीयापामार्गाश्वगन्धादिभिरुन्नमनम्, मांसाभिवर्द्धनमिति यावत्, निम्नव्रणोत्थापनमित्यर्थः। अवसादनं=दुष्टमांसादीनां विलपनम्, उत्सन्न-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिषेकोऽभ्यङ्गः स्वेदो विम्लापनमुपनाहः पाचनं विस्रावणं स्नेहो वमनं विरेचनं छेदनं भेदनं दारणं लेखनमेषणमाहरणं व्यधनं विस्रावणं सीवनं सन्धानं पीडनं शोणितास्थापनं निर्वापणमुत्कारिका कषायो वर्त्तिः कल्कः सर्पिस्तैलं रसक्रियाऽवचूर्णनं व्रणधूपनमुत्सादनमवसादनं मृदुकर्म दारुणकर्म क्षारकर्माग्निकर्म कृष्णकर्म

---

व्रणमांसक्षयकरमित्यर्थः, मृदुकर्म=दारुणानां मृदूकरणम् दारुणकर्म,=तद्विपरीतम्।

क्षारकर्म=क्षारपाकविध्यध्याये "तत्र क्षारसाध्यव्याधिव्याधितमुपवेश्य" इत्यादिनोक्तम्, अग्निकर्म=अग्निकर्मविध्यध्यायोक्तम्, कृष्णकर्म=पूरणानन्तरं व्रणस्य शुक्लत्वनिराकरणार्थं कृष्णीकरणम्, पाण्डुकर्म=कृष्णानां पाण्डुकरणम्, एतदुभयकर्म व्रणस्थानस्य शरीरसमवर्णकरणार्थमवगन्तव्यम्, प्रतिसारणं न गण्यते। रोमसञ्जननं=वालोत्पादककर्म, लोमापहरणं=व्रणमभितो रोमाकीर्णत्वाद्यस्य व्रणस्य पूरणं न भवति तदर्थं कर्तर्यादिना रोमशातनकर्म, बस्तिकर्म=वातादिदुष्टव्रणे निरूहस्नैहिकबस्तिकर्मकरणम्, उत्तरबस्तिकर्म=मूत्राघातादिदोषजन्यव्रणे उत्तरबस्तिकर्मकरणम्, बन्धः=बन्धनम्, पत्रदानं=दोषानुसारेण तत्तद्दोषघ्नपत्रबन्धनम्, कृमिघ्नं=कृमिनाशककर्म, बृंहणं=बृंहणीयकर्म, विषघ्नं=कल्पस्थाने वक्ष्यमाणं विषनाशककर्म, शिरोविरेचनं=जत्रूपरिस्थानां कण्डूमतां व्रणानामुपशमाय शिरोविरेचनकर्म, नस्यं=जत्रूर्ध्वमुत्पन्नानां रूक्षाणां व्रणानां शान्त्यर्थं नस्यकर्म, कवलधारणं=शीतोष्णकवलग्रहकर्म, धूमः=धूमपानकर्म, मधुसर्पिः=व्रणस्योष्णताशान्त्यर्थं सन्धानार्थं च मधुसर्पिःप्रयोगः, सर्पिषो वारद्वयमभिधानं संस्कृतासंस्कृतसर्पिःपरिग्रहार्थम्। यन्त्रं=हस्तेनाक्रष्टुमशक्यव्रणे यन्त्राहरणकर्म, आहारः=व्रणितोपासनीयाध्याये जीर्णशाल्योदनमित्यादिनोक्तः, रक्षाविधानं=व्रणितोपासनीयाध्यायोक्तमिति।

चरके दृढबलेन षट्त्रिंशदेवोपक्रमा उक्ताः—"यथाक्रममतश्चोर्द्ध्वं शृणु सर्वानुपक्रमान्॥ शोफघ्नं षड्विधं चैव शस्त्रकर्मावपीडनम्। निर्वापणं ससन्धानं स्वेदः शमनमेषणम्॥ शोधनौ रोपणीयौ च कषायौ सप्रलेपनौ। द्वे तैले तद्गुणे पत्रं च्छादने द्वे च बन्धने॥ भोज्यमुत्सादनं दाहो द्विविधः सावसादनः। काठिन्यमार्दवकरे धूपनालेपने शुभे॥ व्रणावचूर्णनं वर्ण्यं रोपणं लोमरोहणम्। इति षट्त्रिंशदुद्दिष्टा व्रणानां समुपक्रमाः॥" इति। षष्टिरुपक्रमाः षट्त्रिंशदुपक्रमेष्वन्तर्भावनीयाः। भावप्रकाशे तु "आदौ शोथहरो लेपस्ततस्तु परिषेचनम्। विम्लापनमसृङ्मोक्षस्ततः स्यादुपनाहनम्॥ पाचनं भेदनं पश्चात्पीडनं शोधनं तथा। रोपणं वर्णकरणं व्रणस्यैते क्रमाः स्मृताः" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाण्डुकर्म प्रतिसारणं रोमसञ्जननं लोमापहरणं बस्तिकर्मोत्तरबस्तिकर्म बन्धः पत्रदानं कृमिघ्नं बृंहणं विषघ्नं शिरोविरेचनं नस्यं कवलधारणं धूमो मधुसर्पिर्यन्त्रमाहारो रक्षाविधानमिति ॥ ८ ॥

तेषु[1] कषायो वर्तिः कल्कः सर्पिस्तैलं रसक्रियाऽवचूर्णनमिति शोधनरोपणानि, तेष्वष्टौ शस्त्रकृत्याः, शोणितास्थापनं क्षारोऽग्निर्यन्त्रमाहारो रक्षाविधानं बन्धविधानं चोक्तानि, स्नेहस्वेदनवमनविरेचनबस्त्युत्तरबस्तिशिरोविरेचननस्यधूमकवलधारणान्यन्य[2] वक्ष्यामः, यदन्यदवशिष्टमुपक्रमजातं तदिह वक्ष्यते ॥ ९ ॥

---

१ उपक्रमेषु कषायादीनां शोधनरोपणोभयार्थकारित्वमभिधत्ते—तेष्विति । तेषु=षष्ट्युपक्रमेषु मध्ये । तेषु=अपतर्पणादिषु मध्ये, अष्टौ=दारणवर्ज्याश्छेदनादयः सीवनान्ताः, शस्त्रकृत्याः=शस्त्रेण छेदनाद्युपक्रमोपक्रमणीयाः । उपक्रमा अष्टविधशस्त्रकर्मीयाध्याये बोद्धव्याः । शोणितास्थापनं चतुर्दशे शोणितवर्णनीयाध्याये "चतुर्विधं यदेतद्धि रुधिरस्य निवारणम्" इत्यादिना कषायशीतक्रियापचनदहनचतुर्विधभेदेनोक्तम् । क्षारः एकादशे क्षारपाकविध्यध्याये प्रतिसारणीयपानीयाख्यद्विविधभेदेनोक्तः । अग्निः द्वादशेऽग्निकर्म विध्यध्याये प्रोक्तः । यन्त्रं सप्तमे यन्त्रविध्यध्याये कथितम् । आहारः एकोनविंशे व्रणितोपासनीयाध्याये "जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवोत्तरम्" इत्यादिनोक्तः । रक्षाविधानं पञ्चमेऽग्रोपहरणीयाध्याये "ततो गुग्गुलवगुरुसर्जरसवचागौरसर्षपचूर्णैः" इत्यादिना धूपनैः मन्त्रेण च व्रणितोपासनीयाध्याये "छत्रामतिच्छत्रां लाङ्गलीं जटिलां ब्रह्मचारिणीं लक्ष्मीं गुह्यामतिगुह्याम्" इत्यादिना शिरस्योषधिधारणेन च द्विविधमुक्तम् । बन्धविधानम् अष्टादशे व्रणालेपनबन्धविध्यध्याये "तत्र घनां कवलिकां दत्त्वा वामहस्तपरिक्षेपमृजुमनाविद्धमसङ्कुचितं मृदुपट्टं निवेश्य बध्नीयात्" इत्यादिनोक्तम् ।

२ अन्यत्र=चिकित्सास्थानस्य वक्ष्यमाणतत्तदध्यायेष्वित्यर्थः । यथा स्नेहः एकत्रिंशत्तमे स्नेहोपयौगिकचिकित्सिताध्याये "अथ लघुकोष्ठायातुराय" इत्यादिना वक्ष्यमाणः । स्वेदो द्वात्रिंशत्तमे स्वेदावचारणीयचिकित्सिताध्याये वक्ष्यमाणः । वमनं विरेचनं च त्रयस्त्रिंशत्तमे वमनविरेचनसाध्योपद्रवचिकित्सिताध्याये वक्ष्यमाणम् । बस्तिः अष्टत्रिंशत्तमे निरूहक्रमचिकित्सिताध्याये वक्ष्यमाणा । उत्तरबस्तिः सप्तत्रिंशत्तमेऽनुवासनोत्तरबस्तिचिकित्सिताध्याये वक्ष्यमाणा । शिरोविरेचन–नस्य–धूम–कवल–धारणानि चत्वारिंशत्तमे धूमनस्यकवलग्रहचिकित्सिताध्याये वक्ष्यमाणानि ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षड्विधः प्रागुपदिष्टः शोफः, तस्यैकादशोपक्रमा भवन्त्यपतर्पणादयो विरेचनान्ताः, ते च विशेषेण शोथप्रतीकारे वर्तन्ते, व्रणभावमापन्नस्य च न विरुध्यन्ते। शेषास्तु प्रायेण व्रणप्रतीकारहेतव एव ॥ १० ॥

अपतर्पणमाद्य उपक्रमः, एष सर्वशोफानां सामान्यः प्रधानतमश्च ॥ ११ ॥

भवन्ति चात्र।

दोषोच्छ्रायोपशान्त्यर्थं दोषानद्धस्य देहिनः।
अवेक्ष्य दोषं प्राणं च कार्यं स्यादपतर्पणम् ॥ १२ ॥
ऊर्ध्वमारुततृष्णाक्षुन्मुखशोषश्रमान्वितैः।
न कार्यं गर्भिणीवृद्धबालदुर्बलभीरुभिः ॥ १३ ॥
शोफेषूत्थितमात्रेषु व्रणेषूग्ररुजेषु च।

---

१ शोफस्योपचारान्निर्दिशन्नाह—**षड्विध इति**। षड्विधः=वातपित्तकफशोणितसन्निपातागन्तुनिमित्तः, प्राक्=सप्तदशे आमपक्वैषणीयाध्याये। २ अपतर्पणादय इत्यत्रातद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः, तेनापतर्पणातिरिक्ता एकादश ग्राह्याः। ३ व्रणभावमापन्नस्य शोफस्येत्यर्थः। अर्थाच्छोफो यदा व्रणभावमापन्नस्तदैतेऽपतर्पणादिविरेचनान्ता एकादश उपक्रमा न श्रेष्ठाः। तदा तु एकादशभ्योऽवशिष्टा उपक्रमा बोद्धव्या इति भावः।

४ उपक्रमेषु मध्ये प्रथममपतर्पणं विवेचयति—**अपतर्पणमिति**। आद्यः=प्रागाद्यत्वेनोपदिष्टादालेपादपि पूर्वं प्रयुज्यत्वादाद्यतर इत्यर्थः। उपक्रमः=उपचारः, भावे घञ्, 'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः' इति वृद्धिनिषेधः। सर्वशोफानाम्=आगन्तुकातिरिक्तानां पञ्चदशानामित्यर्थः। सामान्यः=शोफस्य सर्वांशहितकरत्वेन सामान्यः, प्रधानतमः=शीघ्ररोगहरत्वेनात्यन्तश्रेष्ठ इत्यर्थः। ५ अपतर्पणस्य फलं विषयं च निर्दिशति—**दोषोच्छ्रायेति**। ६ चकारादवस्थाप्रकृत्यादीनां ग्रहणम्।

७ येष्वपतर्पणनिषेधस्तन्निर्दिशति—**ऊर्ध्वमारुतेति**। ऊर्ध्वमारुताः=श्वासकासादिरोगिणः। सुश्रुतार्थसन्दीपनकारस्तूर्ध्वमारुतपदेन वातविकारमाह। तल्लक्षणं यथा—"यथा भुक्ते तथाऽभुक्ते यस्योद्गारो भृशं भवेत्। तस्योर्ध्ववातं तं विद्यादुदानव्यानसम्भवम् ॥" इति। ८ आलेपनविषयं प्रतिपादयति—**शोफेष्विति**। उत्थितमात्रेषु=अ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथास्वैरौषधैर्लेपं प्रात्येकश्येन कारयेत् ॥ १४ ॥
यथा प्रज्वलिते वेश्मन्यम्भसा परिषेचनम् ।
क्षिप्रं प्रशमयत्यग्निमेवमालेपनं रुजः ॥ १५ ॥
प्रह्लादने शोधने च शोफस्य हरणे तथा ।
उत्सादने रोपणे च लेपः स्यात्तु तदर्थकृत् ॥ १६ ॥

वातशोफे तु वेदनोपशमार्थं सर्पिस्तैलधान्याम्लमांसरसवातहरौषधनिःक्काथैरशीतैः परिषेकान् कुर्वीत, पित्तरक्ताभिघातविषनिमित्तेषु क्षीरघृतमधुशर्करोदकेक्षुरसमधुरौषधक्षीरवृक्षनिष्क्काथैरनुष्णैः परिषेकान् कुर्वीत, श्लेष्मशोफे तु तैलमूत्रक्षारोदकसुराशुक्तक्काम्लौषधनिःक्काथैरशीतैः परिषेकान् कुर्वीत ॥ १७ ॥

यथाऽम्बुभिः सिच्यमानः शान्तिमग्निर्नियच्छति ।
दोषाग्निरेवं सहसा परिषेकेण शाम्यति ॥ १८ ॥

---

चिरोत्थितेषु, जातमात्रेष्विति यावत् । १ यथास्वैः=वातादिदोषानुसारेण समुदितैर्मिश्रकोक्तैर्वक्ष्यमाणैश्च द्विपञ्चमूलयादिभिरौषधैरित्यर्थः । २ प्रात्येकश्येन=पक्कैकेन, प्रत्येकश इत्यस्माच्छब्दात् 'चतुर्वर्णादीनां स्वार्थे उपसंख्यानम्' इति ष्यञ् बोध्यः । 'प्रत्येकश्येन' 'प्रत्येकं चैव' इति पाठान्तरम् । प्रत्येकश्येनेति पाठो विचारणीयः ।

३ दृष्टान्तप्रदर्शनेनालेपस्य फलमाख्याति--यथेति । ४ प्रह्लादने वेदनोपशमनेन शान्त्यवस्थापने, शोधने=व्रणस्य दोषप्रकोपस्फोटनादिति भावः । तथा शोफस्य हरणे विलयने, उत्सादने=निम्नव्रणोत्थापने, रोपणे=मांससञ्जनने, चकारादवसादनसवर्णकरणादीनि बोध्यानि । तदर्थकृत्=प्रह्लादनादिप्रयोजनकारीत्यर्थः । आलेपस्य रात्रौ निषेधमाह भावप्रकाशे-"तमसा पिहितोऽत्युष्मा रोमकूपमुखोत्थितः । विना लेपेन निर्याति रात्रौ नालेपयेदतः" ॥ रात्रिलेपनिषेधाविषयमप्याह--"रात्रावपि प्रलेपस्तु विधातव्यो विचक्षणैः । अपाकिशोथे गम्भीरे रक्तपित्तसमुद्भवे ॥" इति ।

५ वातादिशोफेषु परिषेकस्य फलं प्रयोगं चाचष्टे—वातेत्यादिना । ६ धान्येष्वभिषुतमम्लं धान्याम्लं काञ्जिकम्, शाकपार्थिवादिः । "धान्याम्लं शालिचूर्णाच्छकोद्रवादिकृतं भवेत्" इति बोध्यम् । वातहरौषधानि=भद्रदार्वादीनि । ७ मधुरौषधानि=काकोल्यादीनि, क्षीरिवृक्षाः=क्षीरियुक्तवृक्षपञ्चकम् । तदुक्तम्—"न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपारिशप्लक्षपादपाः । पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षास्तेषां त्वक् पञ्चवल्कलम् ॥ केचित्तु पारिशस्थाने शिरीषं वेतसं परे ।" इति । ८ कफघ्नौषधानि=कालेयकागुर्वादीनि ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यङ्गस्तु दोषमालोक्योपयुक्तो दोषोपशमं मृदुतां च करोति ॥१९॥
स्वेदविम्लापनादीनां क्रियाणां प्राक् स उच्यते ।
पश्चात् कर्मसु चादिष्टः स च विस्रावणादिषु ॥ २० ॥
रुजावतां दारुणानां कठिनानां तथैव च ।
शोफानां स्वेदनं कार्यं ये चाप्येवंविधा व्रणाः ॥ २१ ॥
स्थिराणां रुजतां मन्दं काय विम्लापनं भवेत् ।
अभ्यज्य स्वेदयित्वा तु वेणुनाड्या ततः शनैः ॥ २२ ॥
विमर्दयेद्भिषक् प्राज्ञस्तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ।
शोफयोरुपनाहं तु कुर्यादामविदग्धयोः ॥ २३ ॥
अविदग्धः शमं याति विदग्धः पाकमेति च ।
निवर्त्तते न यः शोफो विरेकान्तैरुपक्रमैः ॥ २४ ॥
तस्य सम्पाचनं कुर्यात् समाहृत्यौषधानि तु
दधितक्रसुराशुक्तधान्याम्लैर्योजितानि तु ॥ २५ ॥
स्निग्धानि लवणीकृत्य पचेदुत्कारिकां शुभाम् ।

---

१ अभ्यङ्गस्य फलं प्रयोगं चाभिधत्ते—**अभ्यङ्गस्त्विति** । अभ्यङ्गस्तैलादिना मर्द्दनम्, तच्च वाते कफे च तैलेन, पित्ते रक्ते विषादिषु च शतधौतादिघृतेन कार्यम् । २ अभ्यङ्गस्य समयनिर्धारणं निर्दिशति—**स्वेदेति** । सोऽभ्यङ्गः स्नेहवर्जितानां स्वेद-विम्लापनादिविरेचनान्तानां सप्तोपक्रमाणां प्रागुच्यते । स्नेहवमनविरेचनरहितेषु विस्रावणादिसेचनान्तेषु कर्मसु पश्चादादिष्ट इत्यर्थः ।

३ स्वेदनविषयमभिदधाति—**रुजावतामिति** । रुजावतां = वातकफवेदनायुक्तानामित्यर्थः । स्वेदप्रयोगं स्वेदावचारणीयचिकित्सिते वक्ष्यति । ४ विम्लापनस्य विषयं प्रयोगं च दर्शयति—**स्थिराणामिति** । स्थिराणां = कठोराणाम् । ५ वेणुनाड्या = वंशनलिकयेत्यर्थः । ६ उपनाहविधिमभिदधाति—**शोफयोरिति** । उपनाहः = सोष्णबहललेपः । ७ अविदग्धः = आमः । ८ विदग्धः = किञ्चित्पक्वः । ९ पाचनप्रयोगमभिधत्ते—**निवर्तत इति** । १० औषधानि = शणमूलकशिग्रूणामित्यादिमिश्रकोक्तानि समभागप्रमाणानि ।

११ दध्यादीनि द्रवद्रव्याणि चतुर्गुणानि बोध्यानि । १२ स्निग्धानि = घृताप्लुतानीत्यर्थः । लवणीकृत्य लवणेन संसृष्टानि 'लवणाल्लुक्' इति ठको लुक्, लवणेन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैरण्डपत्रया[1] शोफं नाहयेदुष्णया तया ॥ २६ ॥
[2]हितं सम्भोजनं चापि पाकायाभिमुखो यदि ।
वेदनोपशमार्थाय[3] तथा पाकशमाय च ॥ २७ ॥
अचिरोत्पतिते[4] शोफे कुर्याच्छोणितमोक्षणम् ।
सशोफे कठिने श्यामे[5] सरक्ते वेदनावति ॥ २८ ॥
संरब्धे[6] विषमे वाऽपि व्रणे विस्रावणं हितम् ।
सविषे च विशेषेण जलौकोभिः पदैस्तथा[7] ॥ २९ ॥
वेदनायाः प्रशान्त्यर्थं पाकस्याप्राप्तये तथा ॥
सोपद्रवाणां[8] रूक्षाणां कृशानां व्रणशोषिणाम् ॥ ३० ॥
यथास्वमौषधैः[9] सिद्धं स्नेहपानं विधीयते ।
[10]उत्सन्नमांसशोफे तु कफजुष्टे विशेषतः ॥ ३१ ॥
[11]सङ्क्लिष्टश्यामरुधिरे व्रणे [12]प्रच्छर्दनं हितम् ।
[13]वातपित्तप्रदुष्टेषु दीर्घकालानुबन्धिषु ॥ ३२ ॥
विरेचनं प्रशंसन्ति व्रणेषु व्रणकोविदाः ।
[14]अपाकेषु तु रोगेषु कठिनेषु स्थिरेषु च ॥ ३३ ॥

---

संसृज्येत्यर्थः। उत्कारिकां = लप्सिकाऽऽकृतिम्। १ सैरण्डपत्रया एरण्डपत्रोपरिविन्यस्तया उष्णया तयोत्कारिकया शोफं नाहयेद् बध्नीयादित्यर्थः। २ हितं = हितकारि भोजनमित्यर्थः। अत्रोष्णानुषङ्गाद् भोजनमप्युष्णमेव बोध्यम्। तदुक्तं व्रणितोपासनीये "जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवोत्तरम्। भुञ्जानो जाङ्गलैर्मांसैः शीघ्रं व्रणमपोहति॥" इति।

३ विस्रावणकर्म निर्दिशति—**वेदनेत्यादिना**। ४ अचिरोत्पतिते = तत्कालप्रादुर्भूते। ५ श्यामे = हरिद्वर्णे, 'त्रिषु श्यामौ हरित्कृष्णौ' इत्यमरः। सरक्ते = रक्तवर्णे, वेदनावति = बहुवेदनायुक्ते। भूम्नि वतुप्। ६ संरब्धे = दाहरागसङ्कुले, विशालमूले इति डल्हणः। विषमे = नतोन्नत इत्यर्थः। ७ पदैः = प्रच्छानैरित्यर्थः। ८ स्नेहपानविषयं दर्शयति—**सोपद्रवाणामिति**। सोपद्रवाणां = वेपथुपक्षवधादियुक्तानामित्यर्थः, न तु गन्धवर्णस्रावावेदनाऽऽकृतीनां पञ्चव्रणोपद्रवाणाम्। ९ वातादेर्यस्य यदात्मीयमौषधं तैरित्यर्थः।

१० वमनविषयमभिधत्ते—**उत्सन्नेति**। उत्सन्नम् = उन्नतम्। ११ सङ्क्लिष्टं = दूषितम्। १२ प्रच्छर्दनं = वमनम्। १३ विरेचनविषयमभिदधाति—**वातेत्यादिना**। अत्र वातेन सहितं पित्तमिति समासो बोध्यः, न तु वातश्च पित्तं चेति। १४ छेदनवि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नायुकोथादिषु[1] तथा छेदनं प्राप्तमुच्यते[2]।
अन्तःपूयेष्ववक्त्रेषु[3] तथैवोत्सङ्गवत्स्वपि ॥ ३४ ॥
गतिमत्सु च रोगेषु[4] भेदनं प्राप्तमुच्यते।
बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि[5] ॥ ३५ ॥
मर्मोपरि च जातेषु रोगेषूक्तेषु दारुणम्।
सुपक्वे[6] पिण्डिते शोफे पीडनैरुपपीडिते ॥ ३६ ॥
पाकोद्वृत्तेषु[7] दोषेषु तत्तु कार्यं विजानता।
सुपिष्टैर्दारुणद्रव्यैर्युक्तैः[8] क्षारेण वा पुनः ॥ ३७ ॥
कठिनान्[9] स्थूलवृत्तौष्ठान् दीर्यमाणान पुनः पुनः।
कठिनोत्सन्नमांसांश्च लेखनेनाचरेद्भिषक्[10] ॥ ३८ ॥
समं[11] लिखेत् सुलिखितं लिखेन्निरवशेषतः।
वर्त्मनां तु प्रमाणेन समं शस्त्रेण निर्लिखेत् ॥ ३९ ॥

---

षयमाख्याति—**अपाकेष्विति**। अत्र नञ्शब्दस्योभयार्थकत्वेन अपाकेषु पाकशून्येषु अधिमांसादिषु, अथवा ईषत्पाकेषु वल्मीकादिष्वित्यर्थो बोद्धव्यः। १ कोथः= पूतिभावः, आदिशब्दात् सिराधमन्यादिसङ्ग्रहः। २ प्राप्तं युक्तमिति पर्यायौ।

३ भेदनविषयमभिदधाति—**अन्तःपूयेष्विति**। अवक्त्रेषु=वक्त्ररहितेषु ईषद्वक्त्रेषु चेत्यर्थः, नञ्शब्दस्योभयार्थकत्वात्। ४ रोगेषु=व्रणेषु। ५ दारुणविषयं निर्दिशति—**बालेति**। असहाः=स्वभावेनैवासहिष्णवः। ६ दारुणावस्थामभिधत्ते—**सुपक्व इति**। पिण्डिते=संहतपूयत्वेन पिण्डाकारत्वमापन्ने, पीडनैः= पीडनीयौषधैः। ७ पाकोद्वृत्तेषु=पाकमतिक्रान्तेषु, अत्यन्तं परिपक्वेष्विति तात्पर्यम्। ८ दारुणद्रव्यैः= 'चिरबिल्वोऽग्निको दन्ती' इत्यादिमिश्रकाध्यायोक्तैः। क्षारोऽत्र प्रतिसारणीयाख्यः। अस्य विधिरेकादशे क्षारपाकविधयध्यायेऽवलोकनीयः।

९ भावप्रकाशे—"क्षारद्रव्यं तथा क्षारो दारुणः परिकीर्तितः। हस्तिदन्तो जले पिष्टो बिन्दुमात्रप्रलेपितः। अत्यर्थं कठिने शोथे कथितो भेदनः परः॥" इति। लेखनविषयं वर्णयति—**कठिनानिति**। १० लेखनेन=दुष्टमांसापनयनार्थं रेखाकारिशस्त्रानुशस्त्रोपयोगेनेत्यर्थः। ११ समम्=अखिलम्, अधिकमिति यावत्। 'समं साध्यखिलं सदृक्' इति हेमचन्द्रः। लिखेत् कठिनानिति पूर्वेण सह योजना। एवमेव स्थूलवृत्तौष्ठान् सुलिखितम् अतिशयलिखितं लिखेत्। पुनः पुनः दीर्यमाणान् निरवशेषतो मनागप्यपरिहार्यं लिखेत्। कठिनोत्सन्नमांसान् वर्त्मनां प्रमाणेन समं लिखेत्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षौमं[1] प्लोतं पिचुं फेनं यावशूकं ससैन्धवम्।
कर्कशानि च पत्राणि लेखनार्थे प्रदापयेत्॥ ४०॥
नाडीव्रणान् शल्यगर्भानुन्मार्ग्यैत्सङ्गिनः शनैः।
करीरबालाङ्कुलिभिरेषण्या[2] वैषयेद्भिषक्॥ ४१॥
नेत्रवर्त्मगुदाभ्यासनाडचोऽवक्त्राः[3] सशोणिताः।
चुच्चूपोदकजैः श्लक्ष्णैः करीरैरेषयेतु ताः॥ ४२॥
संवृतासंवृतास्येषु व्रणेषु मतिमान् भिषक्।
यथोक्तमाहरेच्छल्यं प्राप्तोद्धरणलक्षणम्[4]॥ ४३॥
रोगे[5] व्यधनसाध्ये तु यथोद्देशं प्रमाणतः।
शस्त्रं निदध्याद् दोषं च स्रावयेत् कीर्त्तितं[6] यथा॥ ४४॥
अपाको[7]द्रुता ये च मांसस्था वि ताश्च ये।
यथोक्तं[8] सीवनं तेषु कार्यं सन्धानमेव च॥ ४५॥
[9]पूयगर्भानणुद्वारान् व्रणान्मर्मगतानपि।
[10]यथोक्तैः पीडनद्रव्यैः समन्तात् परिपीडयेत्॥ ४६॥

---

१ क्षौमं क्षुमा अतसी तद्भवं वस्त्रम्, प्लोतं = शणजं वस्त्रम्, पिचुं=कार्पासतूलाम्, फेनं = समुद्रफेनम्, यावशूकं = यवक्षारम्, कर्कशानि पत्राणि = गोजीशेफालिकाशाकपत्रकरीरादीनां शस्त्रावचारणीयाध्यायोक्तानि।

२ एषणविषयं दर्शयति—**नाडीति**। ३ बालाः = शल्लकीशूकरादीनाम्। ४ अभ्यासः = समीपम्। ५ आहरणविषयं निर्दिशति—**संवृतेति**। ६ शल्यापनयनीयोक्तं विधिमनतिक्रम्येति यथोक्तमित्यर्थः। ७ व्यधनस्रावणविषयं दर्शयति—**रोग इति**। रोगोऽत्र दकोदरमूत्रवृद्ध्यादिः। शारीरस्थानोक्तसिराव्यधविधावुद्दिष्टं विधिं स्मारयति—यथोद्देशमिति। तत्र दकोदरोद्दिष्टं प्रमाणमङ्गुष्ठोदरप्रमाणमवगाढम्। विद्रध्यादिषु—"महत्स्वपि च पाकेषु द्व्यङ्गुलान्तरं व्यङ्गुलान्तरं वा शस्त्रनिपातनम्" इति। अत्र श्लोके निदध्यादित्यन्तेन व्यधनम्, अवशिष्टेन च स्रावणमिति उपक्रमद्वयमुक्तम्। ८ कीर्तितं = शोणितवर्णनीये सिराव्यधविधौ चोक्तम्।

९ सीवनसन्धानविषयमभिदधाति—**अपाकोपद्रुता इति**। न पाकेनोपद्रुता अपाकोपद्रुताः पाकोपद्रवरहिता इत्यर्थः। १० यथोक्तम् = अष्टविधशस्त्रकर्मीयाध्यायोक्तम्। अत्राविशेषेऽपि महति व्रणे सीवनम्, अल्पीयसि च सन्धानमित्यध्यवसेयमिति सुश्रुतार्थसन्दीपनम्। ११ पीडनविषयमाख्याति—**पूयेति**। १२ यथोक्तैः = मिश्र-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं[1] पीडनं प्रति ।
न चाभिमुखमालिम्पेत्तथा दोषः[2] प्रसिच्यते ॥ ४७ ॥
तैस्तैर्निमित्तैर्बहुधा शोणिते प्रस्रुते भृशम् ।
कार्यं यथोक्तं[4] वैद्येन शोणितास्थापनं भवेत् ॥ ४८ ॥
दाहपाकज्वरवतां व्रणानां पित्तकोपतः ।
रक्तेन चाभिभूतानां कार्यं निर्वापणं[5] भवेत् ॥ ४९ ॥
यथोक्तैः[6] शीतलद्रव्यैः क्षीरपिष्टैर्घृतप्लुतैः ।
दिह्यादबहलान् सेकान् सुशीतांश्चावचारयेत् ॥ ५० ॥
व्रणेषु क्षीणमांसेषु तनुस्रावित्वपाकिषु ।
तोदकाठिन्यपारुष्यशूलवेपथुमत्सु च ॥ ५१ ॥
वातघ्नवर्गोऽम्लगणे काकोल्यादिगणे तथा ।
स्नैहिकेषु च [9]बीजेषु पचेदुत्कारिकां शुभाम् ॥ ५२ ॥
तेषां च स्वेदनं कार्यं स्थिराणां वेदनावताम् ।
[10]दुर्गन्धानां क्लेदवतां पिच्छिलानां विशेषतः ॥ ५३ ॥
कषायैः शोधनं कार्यं शोधनैः [11]प्रागुदीरितैः ।

---

काध्याये "द्रव्याणां पिच्छिलानां तु त्वङ्मूलानि प्रपीडनम्" इत्याद्युक्तैरित्यर्थः ।

१ प्रदेहं = प्रलेपनम् । २ दोषः = पूयः, प्रसिच्यते = स्वयमेव प्रक्षरति । ३ शोणितास्थापनं निर्दिशति—तैरिति । तैस्तैः = सिराच्छेदादिभिः । ४ यथोक्तं = शोणितवर्णनीयाध्यायोक्तम् । शोणितास्थापनं = रक्तातिप्रवृत्तिस्तम्भनमित्यर्थः । तच्च 'सन्धानं स्कन्दनं चैव पाचनं दहनम् तथा" इति भेदाच्चतुर्विधम् ।

५ निर्वापणविषयमभिधत्ते—दाहेति । ६ यथोक्तैः = मिश्रकाध्यायोक्तैर्दूर्वाऽऽदिभिः । अनेन श्लोकेन सेकलेपाविति निर्वापणद्वयमुक्तम् । ७ उत्कारिकाविषयं प्रतिपादयति—व्रणेष्विति । ८ वातघ्नवर्गः = संशोधनसंशमनीयाध्याये भद्रदारुकुष्ठहरिद्रावरुणेत्यादिनोक्तः, अम्लवर्गः = दाडिमादिः, काकोल्यादिगणः = द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये काकोलीक्षीरकाकोलीत्यादिनोक्तः । ९ बीजेषु = तिलातसीसर्षपैरण्डादिबीजेष्वित्यर्थः । वातघ्नवर्गकाकोल्यादिगणस्नैहिकबीजानि समभागानि तच्चतुर्गुणम्लानां गृहीत्वा नातिघनां नातिसान्द्रां पेयाऽनुकारिणीमुत्कारिकां पचेदिति डल्हणः ।

१० शोधन कषायविषयं दर्शयति—दुर्गन्धानामिति । ११ प्रागुदीरितैः = मिश्र-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तःशल्यानणुमुखान् गम्भीरान् मांससंश्रितान् ॥ ५४ ॥
शोधनैर्[2]द्रव्ययुक्ताभिर्वर्त्तिभिस्तान् यथाक्रमम्।
पूतिमांसप्रतिच्छन्नान् महादोषांश्च[3] शोधयेत् ॥ ५५ ॥
कल्कीकृतैर्[4]यथालाभं वर्त्तिद्रव्यैः पुरोदितैः[5]।
पित्तप्रदुष्टान् गम्भीरान् दाहपाकप्रपीडितान् ॥ ५६ ॥
कार्पासीफलमिश्रेण जयेच्छोधनसर्पिषा[6]।
उत्सन्नमांसान्स्निग्धानल्पस्रावान् व्रणांस्तथा[7] ॥ ५७ ॥
सर्षपस्नेहयुक्तेन[8] धीमांस्तैलेन शोधयेत्।
तैलेनाशुध्यमानानां शोधनीयां[9] रसक्रियाम्[10] ॥ ५८ ॥
व्रणानां स्थिरमांसानां कुर्य्याद् द्रव्यैरुदीरितैः[11]।
कषाये विधिवत्तेषां[12] कृते चाधिश्रयेत् पुनः ॥ ५९ ॥
सुराष्ट्रजां[13] सकासीसां दद्याच्चापि मनःशिलाम्।

---

काधषाये शङ्खिन्यङ्कोठसुमनःकरवीरसुवर्चला इत्यादिनोक्तैः। १ शोधनवर्ति-विषयमभिदधाति—**अन्तरिति**। २ शोधनद्रव्यैः अजगन्धाऽजशृङ्गी च गवाक्षी लाङ्गलाह्वयेत्यादिभिश्रकाधषायोक्तद्रव्यैः, युक्ताभिः वर्तिभिस्तान् व्रणान् शोधयेदिति शेषः। ३ पित्तदुष्टस्य दोषस्य सर्पिर्विषयत्वादत्र दोषपदेन वातकफौ ज्ञातव्यौ।

४ शोधनसर्पिषयं तत्प्रयोगं च दर्शयति—**कल्कीति**। ५ पुरोदितैः = मिश्रकोक्तैः। ६ शोधनद्रव्यैः कासीसाजगन्धादिभिः सिद्धेन सर्पिषेत्यर्थः। यावन्ति कासीसाजगन्धादीनि शोधनद्रव्याणि तावन्मात्रं कार्पासफलम्। एतान्येकीकृत्य कल्कचतुर्गुणं घृतं, घृतचतुर्गुणं जलं च गृहीत्वा घृतं साधनीयमिति निबन्ध-सङ्ग्रहव्याख्याकारः।

७ शोधनतैलविषयं तत्प्रयोगं च दर्शयति—**उत्सन्नेति**। ८ सर्षपस्नेहयुक्तेन = अधिकसर्षपतैलान्वितेन, तैलेन = तिलतैलेन, मिश्रकोक्तकासीसादिपूयादिशोधनद्रव्यसिद्धेन मयूरकादिसिद्धेन वेति शेषः। ९ शोधनरसक्रियाविषयं तत्प्रयोगं चाभिधत्ते—**तैलेनेति**। १० रसक्रियाकल्पनाविधिरित्थम्—द्रव्यापेक्षयाऽष्टगुणं षोडशगुणं वा जलं दत्त्वाऽष्टभागावशेषः षोडशभागावशेषो वा क्वाथः कर्तव्यः। ततः पूतं कषायं पुनस्तावत्पचेद्यावत् फाणिताकृतिः स्यादिति। ११ उदीरितैः = मिश्रकोक्तसालसारादिसारेष्वित्यादिभिर्द्रव्यैरित्यर्थः। १२ तेषां = सालसारादीनाम्। १३ सुराष्ट्रजादीनि मात्रया षोडशांशानि चूर्णितानि शेषकषायपादे कषायस्य पुनः पाकात् फाणितीभावे सत्यावापयेत्। क्षौद्रमातुलुङ्गरसावार्द्रत्वसम्पादनार्थमेव ग्राह्यौ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरितालं च मतिमांस्ततस्तामवचारयेत् ॥ ६० ॥
मातुलुङ्गरसोपेतां सक्षौद्रामतिमर्दिताम् ।
व्रणेषु दत्त्वा तां तिष्ठेत् त्रींस्त्रींश्च दिवसान् परम् ॥ ६१ ॥
[1]मेदोजुष्टानगम्भीरान् दुर्गन्धांश्चूर्णशोधनैः[2] ।
उपाचरेत् भिषक् प्राज्ञः श्लक्ष्णैः शोधनवर्तिजैः[3] ॥ ६२ ॥
शुद्धं[4]लक्षणयुक्तानां कषायं रोपणं हितम् ।
तत्र कार्यं [5]यथोद्दिष्टैर्द्रव्यैर्वैद्येन जानता ॥ ६३ ॥
अवेदनानां शुद्धानां गम्भीराणां तथैव च ।
हिता रोपणवर्त्यङ्गकृता रोपण[6]वर्तयः ॥ ६४ ॥
अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम् ।
कल्कः संरोहणः कार्यस्तिलजो मधुसंयुतः ॥ ६५ ॥
स माधुर्यात्तथौष्ण्याच्च स्नेहाच्चानिलनाशनः ।
कषायभावान्माधुर्यात्तिक्तत्वाच्चापि पित्तहृत् ॥ ६६ ॥
औष्ण्यात् कषायभावाच्च तिक्तत्वाच्च कफे हितः ।
शोधयेद्रोपयेच्चापि युक्तः शोधनरोपणैः ॥ ६७ ॥
निम्बपत्रमधुभ्यां तु युक्तः संशोधनः स्मृतः ।
पूर्वाभ्यां[7] सर्पिषा चापि युक्तश्चाप्युपरोपणः ॥ ६८ ॥
तिलवद्यवकल्कं तु केचिदाहुर्मनीषिणः ।
शमयेदविदग्धं[8] च विदग्धमपि पाचयेत् ॥ ६९ ॥

---

१ शोधनचूर्णविषयं तत्प्रयोगं चाचष्टे—**मेद इति** । अगम्भीरान्=उत्तानानित्यर्थः । २ शोधनानि चूर्णानि चूर्णशोधनानि तैश्चूर्णशोधनैः कासीसादिभिरित्यर्थः । ३ शोधनवर्तिजैः=अजगन्धाऽजशृङ्गी चेत्यादिभिः । ४ अशुद्धव्रणस्य कषायादिचूर्णान्तानि शोधनानि निर्दिश्य अधुना शुद्धस्य तानेव रोपणान्निर्दिशति—**शुद्धेति** । शुद्धलक्षणयुक्तानां व्रणानामित्यर्थः । शुद्धव्रणलक्षणं तु कृत्याकृत्यविध्यध्याये "त्रिभिर्दोषैरनाक्रान्तः श्यावौष्ठः पिडकीसमः" इत्यादिना, अस्मिन्नेवाध्याये—"जिह्वातलाभो मृदुः स्निग्धः श्लक्ष्णो विगतवेदनः" इत्यादिना चोक्तम् । ५ यथोद्दिष्टैः=मिश्रकोक्तैर्वटादित्वगात्मकैर्द्रव्यैरित्यर्थः। ६ रोपणवर्त्यङ्गैः मिश्रकोक्तसोमामृताश्वगन्धाकाकोल्यादिभिः कृतेत्यर्थः। ७ पूर्वाभ्यां=निम्बपत्रमधुभ्याम् । ८ अविदग्धम्=आमम् , विदग्धं=किञ्चित्पक्वम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्वं भिनत्ति भिन्नं च शोधयेद्रोपयेत्तथा ।
पित्तरक्तविषागन्तून् गम्भीरानपि च व्रणान् ॥ ७० ॥
रोपयेद्रोपणीयेन[1] क्षीरसिद्धेन सर्पिषा ।
कफवाताभिभूतानां व्रणानां मतिमान् भिषक् ॥ ७१ ॥
कारयेद्रोपणं तैलं भेषजैस्तद्यथोदितैः[2] ।
अबन्ध्यानां[3] चलस्थानां शुद्धानां च प्रदुष्यताम् ॥ ७२ ॥
द्विहरिद्रायुतां कुर्याद्रोपणार्थां[4] रसक्रियाम् ।
समानां[5] स्थिरमांसानां त्वक्स्थानां रोपणं भिषक् ॥ ७३ ॥
चूर्णं विदध्यान्मतिमान् प्राक्स्थानोक्तो[6] विधिर्यथा ।
शोधनो रोपणश्चैव विधिर्योऽयं प्रकीर्त्तितः ॥ ७४ ॥
सर्वव्रणानां[7] सामान्येनोक्तो दोषविशेषतः ।
एष आगमसिद्धत्वात्तथैव फलदर्शनात्[8] ॥ ७५ ॥
मन्त्रवत् सम्प्रयोक्तव्यो न मीमांस्यः कथञ्चन ।
स्वबुद्ध्या चापि विभजेत्[9] कषायादिषु सप्तसु ॥ ७६ ॥
भेषजानि यथायोगं यान्युक्तानि पुरा मया ।
आद्ये द्वे पञ्चमूल्यौ तु गणौ यश्चानिलापहः ॥ ७७ ॥

---

१ रोपणीयेन = पृथक्पर्ण्यात्मगुप्ता चेत्यादिमिश्रकाध्यायोक्तेनेत्यर्थः । २ यथोदितैः = मिश्रकाध्याये कालानुसार्यागुरुणीत्याद्युक्तैः ।

३ रोपणरसक्रियाविषयान् प्रयोगं च प्रतिपादयति—**अबन्ध्यानामिति** । अबन्ध्यानां = पित्तरक्तविषाभिघातादीनां बन्धनानर्हाणाम्, चलस्थानां = चेष्टावत्सन्धिजानाम्, प्रदुष्यतां = दुष्टिमापद्यमानानाम् । रोपणार्थां = त्वक्तु न्यग्रोधवर्गस्येत्यादिमिश्रकाध्यायोक्ताम्, रसक्रिया, अत्र कल्पना—न्यग्रोधादिवर्गस्य त्रिफलायाश्च द्रव्यापेक्षयाऽष्टगुणे चतुर्गुणे वाऽम्भस्यष्टभागावशिष्टे चतुर्भागावशिष्टे वा कषायं पुनरधिसृत्य फाणितीभावेऽवशिष्टकषायपादमात्रया हरिद्राद्वयचूर्णं प्रक्षिप्य सुमर्दितां मधुयुतामवचारयेत् । अत्र शोधनरसक्रियावत् कलावधिर्नास्त्येव यावद्व्रणरोपणमेव कार्येति डल्हणः ।

४ रोपणचूर्णविषयान् दर्शयति—**समानामिति** । ५ प्राक् सूत्रस्थाने उक्त इति प्राक्स्थानोक्तः, विधिः=प्रकारः, स च चूर्णविधानप्रकारो मिश्रकाध्याये "कङ्कुष्ठा त्रिफला रोध्रं कासीसं श्रवणाह्वया" इत्यादिना निर्दिष्टः । ६ सर्वव्रणानां=शारीरागन्तूनाम् । ७ आगमसिद्धत्वात्=शास्त्रप्रसिद्धत्वात् । ८ विभजेत्=न्यूनाधिक्यं कुर्यादित्यर्थः । ९ उक्त-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स वातदुष्टे दातव्यः कषायादिषु सप्तसु ।
न्यग्रोधादिर्गणो यस्तु काकोल्यादिश्च यः स्मृतः ॥ ७८ ॥
तौ पित्तदुष्टे दातव्यौ कषायादिषु सप्तसु ।
आरग्वधादिस्तु गणो यश्चोष्णैः[१] परिकीर्त्तितः ॥ ७९ ॥
तौ देयौ कफदुष्टे तु, संसृष्टे संयुता गणाः ।
वातात्मकानुग्ररुजान्[२] मांसावानपि च व्रणान् ॥ ८० ॥
सक्षौमयवसर्पिर्भिर्धूपनाङ्गैश्च[३] धूपयेत् ।
परिशुष्काल्पमांसानां गम्भीराणां तथैव च ॥ ८१ ॥
कुर्यादुत्सादनीयानि[४] सर्पीष्यालेपनानि च ।
मांसाशिनां[५] च मांसानि भक्षयेद्विधिवन्नरः ॥ ८२ ॥
विशुद्धमनसस्तस्य मांसं मांसेन वर्द्धते ।
उत्सन्नमृदुमांसानां[६] व्रणानामवसादनम् ॥ ८३ ॥
कुर्याद् द्रव्यैर्यथोद्दिष्टैश्चूर्णितैर्मधु[७] ना सह ।
कठिनानाममांसानां[८] दुष्टानां मातरिश्वना ॥ ८४ ॥
मृद्वी क्रिया विधातव्या शोणितं चापि मोक्षयेत् ।
वातघ्नौषधसंयुक्तान्[९] स्नेहान् सेकांश्च कारयेत् ॥ ८५ ॥

---

शोधनरोपणविषयं प्रपञ्चेनावगमयति—**आद्य इति** । १ उष्णः उष्णवीर्यः कफघ्नो मुष्ककादिः सुरसाऽऽदिर्वा ।

२ धूपनविषयमभिदधाति—**वातेति** । ३ धूपनाङ्गैः=मिश्रकोक्तैः "श्रीवेष्टके सर्जरसे सरले देवदारुणि" इत्यादिभिः । ४ उत्सादनविषयमभिदधाति—**परीति** । परिशुष्काल्पमांसानामित्यनेन वातात्मकत्वं गम्भीराणामित्यनेन रक्तपित्तात्मकत्वं चोक्तम् । उत्सादनीयानि=मिश्रकाध्यायोक्तानि "अपामार्गोऽश्वगन्धा च तालपत्री सुवर्चला" इत्यादीनि मांसवर्धनीयानि द्रव्याणि ।

५ आभ्यन्तरमुत्सादनं ब्रवीति—**मांसाशिनामिति** । मांसाशिनां=व्याघ्रादीनाम् । चरकेऽपि—"सिंहानृक्षांस्तरक्षूंश्च व्याघ्रानेवंविधांस्तथा । मांसादान् मृगशब्देन दद्यान्मांसाभिवृद्धये ॥" इति । ६ अवसादनविषयमभिधत्ते—**उत्सन्नेति** । उत्सन्नमुद्धृतं मृदुमांसं येषां ते तेषाम् । अवसादनम्=उन्नतव्रणस्य निम्नत्वसम्पादनं मांसस्फोटनं वा ।

७ यथोद्दिष्टैः=मिश्रकोदितैः "कासीस सैन्धव किण्वं कुरुविन्दो मनःशिला" इत्यादिभिः ।

८ मृदुकर्मविषयमभिधत्ते—**कठिनानामिति** । ९ वातघ्नौषधैः भद्रदार्वादिभिः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रणेषु[1] मृदुमांसेषु दारुणीकरणं हितम् ।
धवप्रियङ्ग्वशोकानां रोहिण्याश्च[2] त्वचस्तथा ॥ ८६ ॥
त्रिफलाधातकीपुष्परोध्रसर्जरसान् समान् ।
कृत्वा सूक्ष्माणि चूर्णानि व्रणं तैरवचूर्णयेत् ॥ ८७ ॥
उत्सन्नमांसान्[3] कठिनान् कण्डूयुक्तांश्चिरोत्थितान् ।
तथैव खलु दुःशोध्यान् शोधयेत् क्षारकर्मणा ॥ ८८ ॥
स्रवतोऽश्मभवान्[4]मूत्रं ये चान्ये रक्तवाहिनः ।
निःशेषं[5]च्छिन्नसन्धींश्च साधयेदग्निकर्मणा ॥ ८९ ॥
दुरूढत्वात्[6]तु शुक्लानां कृष्णकर्म हितं भवेत् ।
भल्लातकान् वासयेत्तु क्षीरे प्राङ्मूत्रभावितान् ।
ततो द्विधा छेदयित्वा लौहे कुम्भे निधापयेत् ॥ ९० ॥
कुम्भेऽन्यस्मिन् निखाते तु तं कुम्भमथ योजयेत् ।
मुखं मुखेन सन्धाय गोमयैर्दाहयेत्ततः ॥ ९१ ॥
यः स्नेहश्चयवते तस्माद् ग्राहयेत्तं शनैर्भिषक् ।
ग्राम्यानूपशफान् दग्ध्वा सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ९२ ॥
तैलेनानेन संसृष्टं शुक्लमालेपयेद् व्रणम् ।

---

संशोधनसंशमनीयाध्यायोक्तैः संयुक्तान् संसिद्धान् । १ दारुणकर्मविषयं दर्शयति—व्रणेष्विति । प्राग् गम्भीराणामुत्सन्नमृदुमांसानां चोत्साद्यत्वेनावसाद्यत्वेन चोपदेशाद् विधिरयं समतलमृदुमांसविषय इति बोध्यम् । दारुणीकरणं = कठिनीकरणम् । २ रोहिण्याः = कटुतुम्ब्याः ।

३ क्षारविषयमभिधत्ते—उत्सन्नेति । ४ अग्निकर्मविषयं निर्दिशति—स्रवत इति । मूत्रं स्रवत इति सम्बन्धः । अश्मभवान् = अश्मरीहरणार्थं कृतान् । ५ निःशेषं छिन्नाः सन्धानभूमयो येषां ते तान् ।

६ अधुना रूढस्य शुक्लस्यैव व्रणस्य प्रकृतिभावार्थं कृष्णीकरणविषयान् प्रयोगं च प्रतिपादयति—दुरूढत्वादिति । शुक्लानां शुक्लवर्णमापन्नानां व्रणानां कृष्णकर्म कृष्णीकरणं हितं भवेत् । पूर्वं भल्लातकान् भल्लातकफलानि आसप्तमरात्रं मूत्रभावितान् रात्रौ गोमूत्रभावितानि कृत्वा "दिवा दिवातपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ निवासयेत्" इत्युक्त्या दिवा च आतपे शुष्काणि कृत्वा क्षीरे गोः क्षीरे वासयेत स्थापयेत् । ततो भल्लातकफलानि द्विधा छेदयित्वा छेदनं विधाय लौहे कुम्भे स्थापयेत् । अथ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भल्लातकविधानेन सारस्नेहांस्तु कारयेत् ॥ ९३ ॥
ये च केचित् फलस्नेहा विधानं तेषु पूर्ववत् ।
दुरूढत्वात्तु कृष्णानां पाण्डुकर्म हितं भवेत् ॥ ९४ ॥
सप्तरात्रं स्थितं क्षीरे छागले रोहिणीफलम् ।
तेनैव पिष्टं सुश्लक्ष्णं सवर्णकरणं हितम् ॥ ९५ ॥
नवं कपालिकाचूर्णं वैदुलं सर्जनाम च ।
कासीसं मधुकं चैव क्षौद्रयुक्तं प्रलेपयेत् ॥ ९६ ॥
कपित्थमुद्धृते मांसे मूत्रेणाजेन पूरयेत् ।
कासीसं रोचनां तुत्थं हरितालं मनःशिलाम् ॥ ९७ ॥
वेणुनिर्लेखनं चापि प्रपुन्नाडरसाञ्जनम् ।
अधस्तादर्जुनस्यैतन्मासं भूमौ निधापयेत् ॥ ९८ ॥
मासादूर्ध्वं ततस्तेन कृष्णमालेपयेद् व्रणम् ।
कुक्कुटाण्डकपालानि कतकं मधुकं समम् ॥ ९९ ॥

---

अन्यस्मिन् कुम्भे निखाते खनित्वा स्थापिते तं निहितभल्लातकफलं लौहकुम्भं योजयेत् । ततो मुखेन शरावमुखेन मुखं तल्लौहकुम्भमुखं सन्धाय कृष्णमृत्तिकाभिः संयोजनं विधाय गोमयैर्दाहयेत् । तस्माद् यः स्नेहस्तैलं च्यवते पतति तं भिषग् वैद्यः शनैः ग्राहयेत् सुनिगुप्तं निधापयेदित्यर्थः । अत्र मृन्मयः कुम्भश्चेत्तं निःसृतभल्लातकस्नेहशोषदुष्टिभयात् स्नेहभावितं कर्तव्यमिति विशेषोऽवसेयः । ग्राम्यानूपशफान् = अश्वमहिषादिखुरानित्यर्थः । 'शफं क्लीबे खुरः पुमान्' इत्यमरोक्त्या पुंस्त्वमार्षम् ।

१ सारस्नेहफलस्नेहयोरपि विधिमिममतिदिशति—भल्लातकेति । सारः = देवदार्वादिः, कारयेत् = तत्तद्दग्धशफयोगेन स्नेहं कारयेदित्यर्थः । केचित् = पिण्डितकविभीतकादयः फलस्नेहास्तेषु पूर्ववद् विधानं कारयेदिति पूर्वेणान्वयः ।

२ अथ कृष्णानां पाण्डुकर्मणा सवर्णताकारकत्वमाह—दुरूढत्वादिति । कृष्णानां = कृष्णवर्णमापन्नानाम् । ३ रोहिणी = कटुतुम्बी, 'वृत्ता सा रोहिणी स्मृता' इति लक्षणाद् रोहिणी हरीतकीभेदो वा । ४ कपालिका चूर्णं = मृन्मयभाण्डखण्डम्, वैदुलं = वेतसचूर्णम्, सर्जनाम = सालवृक्षमूलम् । ५ मधुकं = 'मुलहटी' इति ख्यातम् । ६ मांससदृशत्वाद् मांसे आभ्यन्तरेऽवयवे 'गिरि' इति ख्याते उद्धृते कपित्थकपालम् । तम् आजेन मूत्रेण कासीसादिभिश्च पूरयेत् । रोचना = गोरोचना । ७ वेणुनिर्लेखनं = तक्षित्वोद्धृता वंशत्वमित्यर्थः । प्रपुन्नाडं = चक्रमर्दबीजम् । ८ अर्जुनस्य = एतन्नाम्ना प्रसिद्धस्य वृक्षस्येत्यर्थः । ९ कतकं = 'निर्मली' इति ख्यातम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा समुद्रमण्डूकीमणिचूर्णं च दापयेत्[1]।
गुटिका मूत्रपिष्टास्ता व्रणानां प्रतिसारणम् ॥ १०० ॥
हस्तिदन्तमसीं कृत्वा मुख्यं चैव रसाञ्जनम्[2]।
रोमाण्येतेन जायन्ते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ १०१ ॥
चतुष्पदानां त्वग्रोमखुरशृङ्गास्थिभस्मना।
तैलाक्ता चूर्णिता भूमिर्भवेद्रोमवती पुनः ॥ १०२ ॥
कासीसं नक्तमालस्य[3] पल्लवांश्चैव संहरेत्।
कपित्थरसपिष्टानि रोमसञ्जननं परम् ॥ १०३ ॥
रोमाकीर्णो[4] व्रणो यस्तु न सम्यगुपरोहति।
क्षुरकर्तरिसन्दंशैस्तस्य रोमाणि निर्हरेत् ॥ १०४ ॥
शङ्खचूर्णस्य[6] भागौ द्वौ हरितालं च भागिकम्।
शुक्तेन[7] सह पिष्टानि लोमशातनमुत्तमम् ॥ १०५ ॥
तैलं भल्लातकस्याथ स्नुहीक्षीरं तथैव च।
प्रगृह्यैकत्र मतिमान् रोमशातनमुत्तमम् ॥ १०६ ॥
कदलीदीर्घवृन्ताभ्यां[8] भस्मालं लवणं शमी-।
बीजं शीतोदपिष्टं वा रोमशातनमाचरेत् ॥ १०७ ॥
आगारगोधिकापुच्छं[9] रम्भाऽऽलं बीजमैङ्गुदम्।
दग्ध्वा तद्भस्मतैलाम्बु[10] सूर्यपक्वं कचान्तकृत् ॥ १०८ ॥
[11]वातदुष्टो व्रणो यस्तु रूक्षश्चात्यर्थवेदनः।
अधःकाये विशेषेण तत्र [12]बस्तिर्विधीयते ॥ १०९ ॥

---

१ समुद्रमण्डूकी=शुक्तिः, मणिः=स्फटिकादिः।

२ रोमसञ्जननं निर्दिशति—**हस्तीति**। हस्तिदन्तं भस्मीकृत्य रसाञ्जनेन 'अजाक्षीरसहितेन' इति शेषः। ३ नक्तमालस्य=करञ्जस्य, पल्लवान्=कोमलपत्राणीत्यर्थः। ४ शस्त्रकृतं रोमशातनं दर्शयति=**रोमाकीर्ण इति**। ५ सन्दंशः=रोमापहरणो यन्त्रभेदः। ६ औषधकृतं रोमशातनमभिधत्ते—**शङ्खेति**। ७ शुक्तेन=काञ्जिकेन। ८ दीर्घवृन्तः=श्योनाकः, आलं=हरितालम्। ९ आगारगोधिका=गृहगोधिका, ब्राह्मणीति यावत्, यस्याः शरीरे रक्तता भवति तत्पुच्छमित्यर्थः। १० समं तैलं जलं च तावतैव परिमाणेन प्रदेयं यावता सर्वस्यार्द्रता स्यात्।

११ बस्तिविषयं ब्रवीति—**वातेति**। १२ बस्तिः='पिचकारी' स चात्र निरूहः,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूत्राघाते मूत्रदोषे शुक्रदोषेऽश्मरीव्रणे ।
तथैवार्तवदोषे च बस्तिरप्युत्तरो हितः ॥ ११० ॥
यस्माच्छुध्यति बन्धेन व्रणो याति च मार्दवम् ।
रोहत्यपि च निःशङ्कस्तस्माद् बन्धो विधीयते ॥ १११ ॥
स्थिराणामल्पमांसानां रौक्ष्यादनुपरोहताम् ।
पत्रदानं भवेत् कार्यं यथादोषं यथर्त्तु च ॥ ११२ ॥
एरण्डभूर्जपूतीकहरिद्राणां तु वातजे ।
पत्रमाश्वबलं यच्च काश्मरीपत्रमेव च ॥ ११३ ॥
पत्राणि क्षीरवृक्षाणामौदकानि तथैव च ।
दूषिते रक्तपित्ताभ्यां व्रणे दद्याद्विचक्षणः ॥ ११४ ॥
पाठामूर्वागुडूचीनां काकमाचीहरिद्रयोः ।
पत्रं च शुकनासाया योजयेत् कफजे व्रणे ॥ ११५ ॥
अकर्कशमविच्छिन्नमजीर्णं सुकुमारकम् ।
अजन्तुजग्धं मृदु च पत्रं गुणवदुच्यते ॥ ११६ ॥
स्नेहमौषधसारं च पट्टः पत्रान्तरीकृतः ।
नादत्ते यत्ततः पत्रं लेपस्योपरि दापयेत् ॥ ११७ ॥

---

स्नैहिकश्च बोध्यः । "बस्तिर्द्विधाऽनुवासाख्यो निरूहश्च ततः परः । यः स्नेहैर्दीयते स स्यादनुवासननामकः ॥ कषायक्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते । बस्तिभिर्दीयते यस्मात् तस्माद्बस्तिरिति स्मृतः ॥" इति । १ उत्तरबस्तिविषयं प्रतिपादयति—**मूत्राघात इति ।** २ व्रणबन्धकरणे कारणमाह—**यस्मादिति ।** ३ निर्गता निर्घातमक्षिकादिपतनानां शङ्का यस्मिन् सः निःशङ्कः । तस्मात्कारणाद् बन्धो विधीयते व्रणालेपनबन्धविध्यध्यायोक्तेन विधिनेति शेषः ।

४ पत्रदानविषयं प्रतिपादयति—**स्थिराणामिति ।** ५ दोषानुसारेण पत्रविशेषं दर्शयति—**एरण्डेति ।** भूर्जशब्देनात्र पत्रसाम्याद् मृदुत्वादिगुणयोगाच्च भूर्जपत्रत्वगेवाभिप्रेयते । ६ अश्वबला उपोदिका तस्या इदमाश्वबलम् , काश्मरी=गम्भारी । ७ औदकानि=कुमुदादिपत्राणि । ८ कफजन्यव्रणे पत्रदानमाह—**पाठेति ।** ९ शुकनासायाः=श्योनाकस्य, शुकनासाचर्मकारवट इति डल्हणः । १० यादृशानि पत्राणि बन्धने गुणवन्ति भवन्ति तानि निर्दिशति—**अकर्कशमिति ।** ११ पत्र

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैत्यौष्ण्यजननार्थाय स्नेहसङ्ग्रहणाय च ।
दत्तौषधेषु दातव्यं पत्रं वैद्येन जानता ॥ ११८ ॥
मक्षिका व्रणमागत्य निःक्षिपन्ति यदा कृमीन् ।
श्वयथुर्भक्षिते तैस्तु जायते भृशदारुणः ॥ ११९ ॥
तीव्रा रुजो विचित्राश्च रक्तस्रावश्च जायते ।
सुरसाऽऽदिर्हितस्तत्र धावने पूरणे तथा ॥ १२० ॥
सप्तपर्णकरञ्जार्कनिम्बराजादनत्वचः ।
हिता गोमूत्रपिष्टाश्च सेकः क्षीरोदकेन वा ॥ १२१ ॥
प्रच्छाद्य मांसपेश्या च कृमीनपहरेद् व्रणात् ।
विंशतिं कृमिजातीस्तु वक्ष्याम्युपरि भागशः ॥ १२२ ॥
दीर्घकालातुराणां तु कृशानां व्रणशोषिणाम् ।
बृंहणीयो विधिः सर्वः कायाग्निं परिरक्षता ॥ १२३ ॥
विषजुष्टस्य विज्ञानं विषनिश्चयमेव च ।
चिकित्सितं च वक्ष्यामि कल्पे तु प्रतिभागशः ॥ १२४ ॥
कण्डूमन्तः सशोफाश्च ये च जत्रूपरि व्रणाः ।
शिरोविरेचनं तेषु विदध्यात् कुशलो भिषक् ॥ १२५ ॥

---

दानप्रयोजनं दर्शयति—स्नेहमिति । १ पित्तरक्तजन्यव्रणे शैत्यस्य वातकफजन्यव्रणे औष्ण्यस्य चोत्पादनार्थमित्यर्थः । २ दत्तौषधेषु 'व्रणेषु' इति शेषः । ३ कृमिघ्नविषयं प्रतिपादयति—मक्षिकेति । ४ भक्षिते 'व्रणे' इति शेषः । ५ विचित्राः=तोददाहकण्ड्वादिनानारूपा रुज इत्यर्थः । ६ सुरसाऽऽदिः=द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः । ७ क्षारोदकेन=सप्तकृत्वः परिस्रुतेन पलाशादिक्षारजलेन, सेकः=परिषेकः । ८ उपरि=उत्तरतन्त्रस्य कृमिप्रतिषेधीयाध्याये इत्यर्थः ।

९ बृंहणविषयमभिधत्ते—दीर्घेति । १० बृंहणीयः=मांसरसादिशरीरपुष्टिकारको विधिरित्यर्थः । ११ विषघ्नविषयं निर्दिशति—विषेति । विषजुष्टस्यान्नपानादेः विज्ञानं लक्षणं स्थावरजङ्गमादिविषनिश्चयज्ञानं चिकित्सितं च प्रतिभागशः प्रत्येकं कल्पे कल्पस्थाने वक्ष्यामीत्यर्थः । १२ शिरोविरचनविषयं ब्रवीति—कण्डूमन्त इति । १३ शिरोविरेचनं=नस्यप्रभेदः, शिरोविरेचन–नस्य-कवलग्रह–धूमविधिरस्यैव स्थानस्य चत्वारिंशत्तमेऽध्याये वक्ष्यमाणः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुजावन्तोऽनिलाविष्टा रूक्षा ये चोर्ध्वजत्रुजाः ।
व्रणेषु तेषु कर्त्तव्यं नस्यं वैद्येन जानता ॥ १२६ ॥
दोषप्रच्यावनार्थाय रुजादाहक्षयाय च ।
जिह्वादन्तसमुत्थस्य हरणार्थं मलस्य च ॥ १२७ ॥
शोधनो रोपणश्चैव व्रणस्य मुखजस्य वै ।
उष्णो वा यदि वा शीतः कवलग्रह इष्यते ॥ १२८ ॥
ऊर्ध्वजत्रुगतान् रोगान् व्रणांश्च कफवातजान् ।
शोफस्रावरुजायुक्तान धूमपानैरुपाचरेत् ॥ १२९ ॥
क्षतोष्मणो निग्रहार्थं सन्धानार्थं तथैव च ॥
सद्योव्रणेष्वायतेषु क्षौद्रसर्पिर्विधीयते ॥ १३० ॥
अवगाढास्त्वणुमुखा ये व्रणाः शल्यपीडिताः ।
निवृत्तहस्तोद्धरणा यन्त्रं तेषु विधीयते ॥ १३१ ॥
लघुमात्रो लघुश्चैव स्निग्ध उष्णोऽग्निदीपनः ।
सर्वव्रणेभ्यो देयस्तु सदाऽऽहारो विजानता ॥ १३२ ॥
निशाचरेभ्यो रक्ष्यस्तु नित्यमेव क्षतातुरः ।
रक्षाविधानैरुद्दिष्टैर्यमैः सनियमैस्तथा ॥ १३३ ॥

---

१ नस्यविषयं प्रतिपादयति—**रुजावन्त इति** । २ कवलग्रहविषयं दर्शयति—**दोषेति** । त्रिफलाद्राक्षाऽऽदिकषायादिभिर्वातादिदोषप्रच्यावनार्थायेत्यर्थः । ३ शोधनः=शोधनद्रव्यकृतः, रोपणः=रोपणद्रव्यकृतः । ४ उष्णः=वातकफजन्यव्रणे उष्ण इत्यर्थः । शीतः=रक्तपित्तजन्यव्रणे शीत इत्यर्थः । ५ धूमविषयमभिदधाति—**ऊर्ध्वेति** । ६ शोथस्रावरुजापहारकद्रव्याणां धूमपानैरित्यर्थः ।

७ मधुसर्पिर्विषयमभिधत्ते—**क्षतोष्ण इति** । ८ यन्त्रविषयं दर्शयति—**अवगाढा इति** । अवगाढाः=अत्यन्तं गम्भीराः । ९ उद्धार्यतेऽनेनेत्युद्धरणं, निवृत्तं हस्ताभ्यामुद्धरणं यत्रेति निवृत्तहस्तोद्धरणाः हस्तेनाहर्तुमशक्याः । १० प्रसङ्गाद् आहारविषयमभिदधाति—**लघुमात्र इति** । लघुमात्रः=मात्रया लघुरित्यर्थः । विशेषतस्तु व्रणितोपासनीयाध्याये द्रष्टव्यः ।

११ विहारविषयं प्रतिपादयति—**निशाचरेभ्य इति** । १२ रक्षाविधानैः=धूपबल्युपहारादिव्रणितोपासनीयाध्यायोक्तैरित्यर्थः । यमाः=अहिंसाऽऽदयः पञ्च, तदुक्तम्—"अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्यमकल्कता । अस्तेयमिति पञ्चैते यमा वै परिकीर्तिताः ॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]षण्मूलोऽष्टपरिग्राही पञ्चलक्षणलक्षितः ।
षष्ट्युपक्रमनिर्दिष्टैश्चतुर्भिः साध्यते व्रणः ॥ १३४ ॥
[2]योऽल्पौषधकृतो योगो बहुग्रन्थभयान्मया ।
द्रव्याणां [3]तत्समानानां तत्रावापो न दुष्यति ॥ १३५ ॥
प्रस[4]ङ्गाभिहितो यो वा बहुदुर्लभभेषजः ।

---

इति । अन्यत्र दश यमा उक्ताः--"ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिर्ध्यानं सत्यमकल्कता । अहिंसास्तेयमाधुर्ये यमश्चेति यमाः स्मृताः ॥" इति । नियमाः=अक्रोधादयः पञ्च, तदुक्तम्--'अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् । अप्रमादश्च सततं पञ्चैते नियमाः स्मृताः ॥'' इति । देवीगीतायां तु दश नियमा उक्ताः--"तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् । सिद्धान्तश्रवणञ्चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ॥ दशैते नियमाः प्रोक्ता मया पर्वतनायक ! ॥" इति ।

१ व्रणस्य सङ्क्षेपेण मूलाधिष्ठानलक्षणचिकित्सापदार्थान्निर्दिशति-**षण्मूल इति ।** वातपित्तकफशोणितसन्निपातागन्तवः षडेव मूलं कारणानि यस्य स षण्मूलः, त्वङ्मांससिरास्नायुसन्ध्यस्थिकोष्ठमर्माणीत्यष्टौ व्रणवस्तूनि परिगृह्णातीत्यष्टपरिग्राही, परिग्रहः अधिष्ठानम् , आश्रय इति यावत् । पञ्चलक्षणलक्षितः--पञ्चानां वातपित्तकफसन्निपातागन्तूनां लक्षणैर्लक्षितः । षष्ट्युपक्रमनिर्दिष्टैः-षष्ट्युपक्रमा निर्दिष्टा अस्येति षष्ट्युपक्रमनिर्दिष्टैः । 'षष्ट्या विधानैर्निर्दिष्टैः' इति पाठान्तरम् । चतुर्भिः वैद्यातुरौषधपरिचारकैः, व्रणः साध्यते इत्यर्थः ।

२ अल्पौषधेषु शोधनरोपणादियोगेषु तत्समद्रव्याणामावापविषयमुपदिशति--**य इति ।** ३ तेषां शोधनरोपणद्रव्याणां रसगुणवीर्यविपाकैः समानानि तुल्यानि द्रव्याणि तत्समानानि तेषाम् , आवापः=प्रक्षेपः, तत्र=तस्मिन् , अल्पौषधे योगे न दुष्यतीत्यर्थः । ४ समग्रयोगालाभे यथालाभौषधप्रयोगं प्रतिपादयति-**प्रसङ्गेति ।** प्रसङ्गाभिहितो यो बहुभेषजो दुर्लभभेषजो वा, तत्र यथोपपत्ति यथालाभं चिकित्सितं भेषजं कार्यम् । प्रसङ्गाभिहितो यथा-"पिण्डीतकत्रयं रोध्रं पूर्वं ये च प्रकीर्तिताः । वर्गास्त्रयः प्रलेपे ते शोफे सर्वकृते हिताः ॥" इति । अत्र हि वातपित्तकफशोथोक्तौषधगणत्रयं प्रकरणसमानत्वात् सन्निपातौषधप्रसङ्गाभिहितम् । तत्र यथालाभं भेषजानां चिकित्सितं कार्यम् । बहुभेषजो यथा—"आद्ये द्वे पञ्चमूल्यौ तु गणो यश्चानिलापहः" इति । अत्र भद्रदार्वादिगणस्य बहुभेषजत्वाद् यथालाभमेव चिकित्सितं कार्यम् । दुर्लभभेषजो यथा-किञ्चिदेव भेषजं क्वचिद्देशकालादौ दुर्लभम् । तत्र यथालाभं चिकित्सितं कार्यमिति निबन्धसङ्ग्रहव्याख्याकारः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथोपपत्ति तत्रापि कार्यमेव चिकित्सितम् ॥ १३६ ॥
गणोक्तमपि यद्द्रव्यं भवेद् व्याधावयौगिकम् ।
तदुद्धरेद्यौगिकं तु प्रक्षिपेदप्यकीर्त्तितम् ॥ १३७ ॥
उपद्रवास्तु विविधा व्रणस्य व्रणितस्य च ।
तत्र गन्धादयः पञ्च व्रणस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ १३८ ॥
ज्वरातिसारौ मूर्च्छा च हिक्काच्छर्दिररोचकः ।
श्वासकासाविपाकाश्च तृष्णा च व्रणितस्य तु ॥ १३९ ॥
व्रणक्रियास्वेवमासु व्यासेनोक्तास्वपि क्रियाम् ।
भूयोऽप्युपरि वक्ष्यामि सद्योव्रणचिकित्सिते ॥ १४० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां शारीरस्थाने द्विव्रणीयचिकित्सितं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातः सद्योव्रणचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
धन्वन्तरिर्धर्मभृतां वरिष्ठो वाग्विशारदः ।
विश्वामित्रसुतं शिष्यमृषिं सुश्रुतमन्वशात् ॥ ३ ॥

---

१ एकत्रैव व्याधौ यौगिकस्य ग्रहणमयौगिकस्य परित्यागं चाचष्टे-**गणोक्तमिति**। २ उपद्रवान्निर्दिशति-**उपद्रवा इति**। ३ गन्धादयः = विपरीताविपरीतव्रणविज्ञानीयोक्ताः गन्धवर्णादयः ४ चकारात् विसर्पादीनां समुच्चयः। चरके—"विसर्पः पक्षघातश्च सिरास्तम्भोऽपतानकः। मोहोन्मादव्रणरुजो ज्वरस्तृष्णा हनुग्रहः। कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः। षोडशोपद्रवाः प्रोक्ताः व्रणानां व्रणचिन्तकैः॥" इति। ५ अनागतावेक्षणेन व्रणचिकित्सां कथयति-**व्रणेति**। ६ उपरि सद्योव्रणचिकित्सिते क्रियां वक्ष्यामीति सम्बन्धः।

**इति सुश्रुतसंहिताया भिषक्कर्मसिद्धिस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां प्रथमोऽध्यायः।**

### द्वितीयोऽध्यायः।

७ सद्योव्रणानां तत्कालीनव्रणानां सामान्यं विशिष्टं च चिकित्सितमिति सद्योव्रणचिकित्सितम्, तदधिकृत्य कृतोऽध्यायस्तम्। ८ अन्वशात् = शिक्षितवानित्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नानाधारामुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः।
नानारूपा व्रणा ये स्युस्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्॥ ४॥
आयताश्चतुरस्राश्च त्र्यस्रा मण्डलिनस्तथा।
अर्द्धचन्द्रप्रतीकाशा विशालाः कुटिलास्तथा॥ ५॥
शरावनिम्नमध्याश्च यवमध्यास्तथाऽपरे।
एवम्प्रकाराकृतयो भवन्त्यागन्तवो व्रणाः॥ ६॥
दोषजा वा स्वयं भिन्ना, न तु वैद्यनिमित्तजाः।
भिषग्व्रणाकृतिज्ञो हि न मोहमधिगच्छति॥ ७॥
भृशं दुर्दर्शरूपेषु व्रणेषु विकृतेष्वपि।
अनन्ताकृतिरागन्तुः स भिषग्भिः पुरातनैः॥ ८॥
समासतो लक्षणतः षड्विधः परिकीर्तितः।
छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च॥ ९॥
घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्।
तिरश्चीन ऋजुर्वाऽपि यो व्रणश्चायतो भवेत्॥ १०॥
गात्रस्य पातनं चापि छिन्नमित्युपदिश्यते।
कुन्तशक्त्यृष्टिखड्गाग्रविषाणादिभिराशयः॥ ११॥
हतः किञ्चित्स्रवेतद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते।

---

१ नाना धारा मुखानि च येषां तानि तैः। नानास्थानानि देहस्थानानि तेषु निपातितैर्निक्षिप्तैरिति नानास्थाननिपातितैः। अत्र श्लोके त्रीणि व्रणाकृतिकारणान्युक्तानि—नानाप्रकारशस्त्रधारा, नानाप्रकारशस्त्रमुखानि, नानाप्रकारदेहस्थानानि चेति। २ स्वयं भिन्नाः=पक्वभिन्नाः। ३ दुर्दर्शरूपेषु=गोशृङ्गवदुन्नतमांसप्ररोहाद्यदर्शनीयेषु। ४ भिषग्भिः पुरातनैः=ब्रह्मादिभिः। षाड्विध्यं दर्शयति—छिन्नमिति। ५ छिन्नं भिन्नं चेति द्वयं तीक्ष्णमुखेन शस्त्रेण, विद्धमिति अणुमुखेन शस्त्रेण, क्षतं पिच्चितं घृष्टमिति त्रयं पाषाणलगुडादिभिः। ६ गात्रस्य पातनं=गात्रावयवविशेषस्य हस्तादेः पातनम्, चकारादपातनं च। ७ अग्रशब्दस्य कुन्तादिभिः सह प्रत्येकं सम्बन्धः। विषाणं=दन्तः शृङ्गं च, 'विषाणं तु शृङ्गे कोलेभदन्तयोः' इति हेमचन्द्रः। आशयः=आमादिस्थानम्। ८ किञ्चित्स्रवेत्=किमप्यनिर्दिष्टमित्यर्थः। यस्य मूत्ररुधिरादेर्य आशयो भिन्नः स तत् स्रवेत्। तेन बस्तिभिन्नो मूत्रं, रुधिराशयो रुधिरमिति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ॥ १२ ॥
हृदुण्डकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ।
तस्मिन् भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते ॥ १३ ॥
मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ।
मूर्च्छाश्वासतृडाध्मानमभक्तच्छन्द एव च ॥ १४ ॥
विण्मूत्रवातसङ्गश्च स्वेदास्रावोऽक्षिरक्तता ।
लोहगन्धित्वमास्यस्य गात्रदौर्गन्ध्यमेव च ॥ १५ ॥
हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र मे शृणु ।
आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयेत् पुनः ॥ १६ ॥
आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम् ।
पक्वाशयगते चापि रुजो गौरवमेव च ॥ १७ ॥
शीतता चाप्यधो नाभेः खेभ्यो रक्तस्य चागमः ।
अभिन्नेऽप्याशयेऽन्त्राणां खैः सूक्ष्मैरन्त्रपूरणम् ॥ १८ ॥
पिहितास्ये घटे यद्वल्लक्ष्यते तस्य गौरवम् ।
सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदङ्गं त्वार्शयाद्विना ॥ १९ ॥

---

निष्कर्षः। १ स्थानशब्द आमादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते। तथा च–आमस्य स्थानमामाशयः, अग्नेः पच्यमानाशयः, मलस्य पक्वाशयः, मूत्रस्य बस्तिः, रुधिरस्य यकृत्प्लीहानौ, हृद् हृदयम्, उण्डुकः इक्षुरसपाकमलवद्यः शोणितमलस्तज्ज उण्डुकः, स चान्त्रप्रदेशे व्यवस्थितः पुरीषाधानमिति, फुप्फुस इति हृदयस्य वामभागे रक्ताधारः 'फुप्फुस' इति ख्यातः। २ तस्मिन्=कोष्ठे इत्यर्थः। सर्वत्रैव रक्तस्य विद्यमानत्वाद् रक्तपूर्णे इत्युक्तम्। ३ अभक्तच्छन्दः=अनन्नाभिलाषः। ४ विण्मूत्रवातानां सङ्गोऽप्रवृत्तिः, निरोध इति यावत्। ५ हृत्पार्श्वयोः शूलमिति सम्बन्धः।

६ पक्वाशयस्थितस्य रक्तस्य लक्षणमाह—**पक्वेत्यादिना**। पक्वाशयगते=पक्वाशयस्थे 'रुधिरे' इति शेषः। रुजः=शूलम्, गौरवमिति नाभेरधो बोद्धव्यम्। ७ खेभ्यः=स्रोतोभ्यः। ८ यद्वत् पिहितास्ये आच्छादितमुखे घटे सूक्ष्मैः खै रन्ध्रैरुदकपूरणं लक्ष्यते, तद्वद् अभिन्नेऽप्याशये अन्त्राणां सूक्ष्मैः खै रक्तेन रन्ध्रपूरणमित्यर्थः। ९ आशयादुक्तामाद्याशयं विना सूक्ष्मास्येन शल्येन यदङ्गमभिहतम् उत्तुण्डितम् उद्धृतं त्वङ्मांसाच्छादितं शल्यमुखम् ईषद् दृष्टमुखं वा, निर्गतं निर्गतशल्यम्। तन्त्रान्तरे– "विद्धमुत्तुण्डितमनुत्तुण्डितं भिन्नं निर्भिन्नम्" इति चतुष्प्रकार विद्धमभिहितम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तुण्डितं निर्गतं वा तद्विद्धमिति निर्दिशेत् ।
[1]नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् ॥ २० ॥
विषमं व्रणमङ्गे यत्तत् क्षतं त्वभिनिर्दिशेत् ।
प्रहारपीडनाभ्यां तु यदङ्गं [2]पृथुतां गतम् ॥ २१ ॥
सास्थि तत्पिच्चितं विद्यान्मज्जै[3]रक्तपरिप्लुतम् ।
विगतत्वग्यदङ्गं हि सङ्घर्षादन्यथाऽपि वा ॥ २२ ॥
उषा[4]स्रावान्वितं तत्तु घृष्टमित्युपदिश्यते ।
छिन्ने[5] भिन्ने तथा विद्धे क्षते वाऽसृगतिस्रवेत् ॥ २३ ॥
रक्तक्षयाद्वायुरस्तत्र करोति पवनो भृशम् ।
स्नेहपानं हितं तत्र तत्सेको विहितस्तथा ॥ २४ ॥
वेश[6]वारैः सकृशरैः सुस्निग्धैश्चोपनाहनम् ।
धान्यस्वेदांश्च कुर्वीत स्निग्धान्यालेपनानि च ॥ २५ ॥
वातघ्नौषधसिद्धैश्च स्नेहैर्बस्तिर्[7]विधीयते ।
पिच्चिते [8]च विघृष्टे च नातिस्रवति शोणितम् ॥ २६ ॥
अग[9]च्छति भृशं तस्मिन् दाहः पाकश्च जायते ।
तत्रोष्मणो निग्रहार्थं तथा दाहप्रपाकयोः ॥ २७ ॥
शीतमालेपनं कार्यं परिषेकश्च शीतलः ।
षट्स्वेतेषु यथोक्तेषु छिन्नादिषु समासतः ॥ २८ ॥

---

१ नातिच्छिन्नं नावगाढच्छदम्, नातिभिन्नं नातिविदीर्णाशयम्, उभयोर्लक्षणान्वितं स्तोकच्छेदस्तोकावदरणयोगादुभयलक्षणयुक्तम्, विषमं व्रणमङ्गे यद् अङ्गवैषम्यकरं व्रणं यत्तत् क्षतमभिधीयते । २ पृथुतां=चिप्पिटतामित्यर्थः । ३ मज्जरक्तपरिप्लुतं=मज्जरक्तानुपातम् । ४ उषा=ऊष्मनिर्गमवद् व्यथाविशेषः ।

५ अधुना छिन्नादिषु चतुर्षु चिकित्सामाचष्टे—**छिन्न इति** । ६ वेशवारैः=निरस्थिस्विन्नस्निग्धपिष्टमांसादिभिः । तदुक्तम्—"निरस्थि पिशितं पिष्टं स्विन्नं गुडघृतान्वितम् । कृष्णामरिचसंयुक्तं वेशवार इति स्मृतः ॥" इति । "तिलतण्डुलसम्पक्वः कृशरः सोऽभिधीयते" । उपनाहनं=बन्धनम् । धान्यस्वेदास्तु—"कोशधान्यानि वा सम्यगुपस्वेद्यास्तीर्य" इत्यादिना स्वेदाध्याये वक्ष्यन्ते । ७ नाभेरूर्ध्वगतेषु व्रणेषु स्नेहपानम्, अधोगतेषु बस्तिरिति विवेकः ।

८ पिच्चितघृष्टयोश्चिकित्सामाख्याति—**पिच्चित इति** । ९ अगच्छति=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञेयं समर्पितं सर्वं सद्योव्रणचिकित्सितम् ।
अत[1] ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि छिन्नानां तु चिकित्सितम् ॥ २९ ॥
ये व्रणा [2]विवृताः केचिच्छिरःपार्श्वावलम्बिनः ।
तान् सीव्येद्विधिनोक्तेन[3] बध्नीयाद्गाढमेव च ॥ ३० ॥
कर्ण[4] स्थानादपहृतं[4] स्थापयित्वा यथास्थितम् ।
सीव्येद्यथोक्तं तैलेन[5] स्रोतश्चाभिप्रतर्पयेत् ॥ ३१ ॥
कृकाटिकाऽन्ते छिन्ने तु गच्छत्यपि समीरणे ।
सम्यङ्[6]निवेश्य बध्नीयात् सीव्येच्चापि निरन्तरम् ॥ ३२ ॥
आजेन सर्पिषा चैव परिषेकं तु कारयेत् ।
उत्तानोऽन्नं समश्नीयाच्छयीत च [7]सुयन्त्रितः ॥ ३३ ॥
शाखासु[10] पतितांस्तिर्यक् प्रहारान् विवृतान् भृशम् ।
सीव्येत् सम्यङ् निवेश्याशु सन्ध्यस्थीन्यनुपूर्वशः ॥ ३४ ॥
बद्ध्वा वेल्लितकेनाशु ततस्तैलेन सेचयेत् ।
चर्मणा गोफणाबन्धः कार्यो यो वा हितो भवेत् ॥ ३५ ॥
पृष्ठे व्रणो यस्य भवेदुत्तानं शाययेत्तु तम् ।
अतोऽन्यथा[11] चोरसिजे शाययेत् पुरुषं व्रणे ॥ ३६ ॥
छिन्नां निःशेषतः शाखां दग्ध्वा तैलेन बुद्धिमान् ।
बध्नीयात् कोशबन्धेन [12]प्राप्तं कार्यं च रोपणम् ॥ ३७ ॥

---

अस्रवति सति । तस्मिन्=रुधिरे इत्यर्थः । १ मूर्धावयवाश्रितच्छिन्नचिकित्सामाह—**अत इत्यादिना** । २ विवृताः=व्यात्तमुखाः । ३ ऋजुग्रन्थित्वेन सेवन्यादिना सीव्येदित्यर्थः । ४ अपहृतं=भ्रष्टम्, अनिःशेषतश्छिन्नमिति यावत् ।

५ तैलेन=नासासन्धानोक्तविधिसाहचर्यात् कृष्णतिलतैलेन स्रोतः=कर्णविवरम्, चकारात् स्थूलप्रदेशश्च । ६ शिरोग्रीवयोः सन्धाने कृकाटिकाऽऽख्ये द्वे सन्धिमर्मणी, तयोः समीपवर्तिश्वासानिलवाहिनी नाडी कृकाटिकान्तस्तस्मिन् । ७ सम्यङ्निवेश्य=यथास्थानं स्थापयित्वा । ८ उत्तानः=शय्यासंलग्नपृष्ठतयोर्ध्वभावापन्नः । ९ सुयन्त्रितः=शिरआदिपरिचालनविरहितत्वे सुसंयतः सन्नित्यर्थः । १० शाखासु=चतसृषु, हस्तयोः पादयोश्चेत्यर्थः । ११ अन्यथा=अधोमुखम् । १२ प्राप्तं=युक्तमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्दनं[1] पद्मकं रोध्रमुत्पलानि प्रियङ्गवः ।
हरिद्रा मधुकं चैव पयः[2] स्यादत्र चाष्टमम् ॥ ३८ ॥
तैलमेभिर्विपक्वं तु प्रधानं व्रणरोपणम् ।
चन्दनं[3] कर्कटाख्या च सहे मांस्याह्वयाऽमृते ॥ ३९ ॥
हरेणवो मृणालं च त्रिफला पद्मकोत्पले ।
त्रयोदशाङ्गं त्रिवृतं[4] मेतद्वा पयसाऽन्वितम् ॥ ४० ॥
तैलं विपक्वं सेकार्थे हितं तु व्रणरोपणे ।
अतः[5] ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भिन्नानां तु चिकित्सितम् ॥ ४१ ॥
भिन्नं नेत्रमकर्मण्यं[6]मभिन्नं लम्बते तु यत् ।
तन्निवेश्य यथास्थानमव्याविद्धं[7]सिरं शनैः ॥ ४२ ॥
पीडयेत्पाणिना सम्यक् पद्मपत्रान्तरेण तु ।
ततोऽस्य तर्पणं कार्यं नस्यं चानेन सर्पिषा ॥ ४३ ॥
आजं घृतं क्षीरपात्रं मधुकं चोत्पलानि च ।
जीवकर्षभकौ चैव पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ॥ ४४ ॥
सर्वनेत्राभिघाते तु सर्पिरेतत् प्रशस्यते ।
उदरान्मेदसो वर्त्तिर्निर्गता यस्य देहिनः ॥ ४५ ॥

---

१ रोपणार्थं चन्दनादितैलमाह—**चन्दनमिति** । २ पयः = दुग्धम्, तच्च-तुर्गुणं ग्राह्यम् । अत्र रोपणतैलेऽष्टमशब्दग्रहणाज्जलं न देयम् । ३ द्वितीयं चन्दना-दितैलं निर्दिशति—**चन्दनमिति** । कर्कटाख्या = कर्कटशृङ्गी, सहे = माषपर्णीमुद्ग-पर्ण्यौ, मांसी = जटामांसी नामैकदेशे नाममात्रग्रहणमित्युक्तेः । अमृता = गुडूची, हरे-णवः = रेणुका, मृणालम् = उशीरम् । ४ त्रिभिर्घृतवसामज्जभिर्वृतं त्रिवृतमित्यर्थः ।

५ भिन्ननयनचिकित्सितमाख्याति—**अत इति** । ६ कर्मणि साधु कर्मण्यं, 'तत्र साधु' इति यत् । न कर्मण्यमकर्मण्यम्, असाध्यत्वेनाचिकित्स्यमित्यर्थः । अभिन्नम् = अस्फुटितमित्यर्थः ।

७ अव्याविद्धसिरम् = अनाकुलितसिरम् । सुश्रुतार्थसन्दीपनकारस्तु 'अव्याविद्ध-शिरम्' इति पाठं मत्वा शिरःपर्यायोऽयं शिरशब्दोऽदन्तः, निचकर्त शिरान् द्रोणिरिति-वत्, अवक्रशिरस्कमित्यर्थः । नेत्रविशेषणमेतत् । आतुरविशेषणत्वे तु पीडयन्ने-त्रावच्छेद इत्युन्नेयमित्याह । उदरभेदचिकित्सां ब्रवीति—**उदरानिति** ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कषायभस्ममृत्कीर्णां[1] बद्ध्वा सूत्रेण सूत्रवित् ।
अग्नितप्तेन शस्त्रेण छिन्द्यान्मधुसमायुतम् ॥ ४६ ॥
बध्वा व्रणं सुजीर्णेऽन्ने सर्पिषः पानमिष्यते ।
स्नेहपानाद्ऋते चापि पयःपानं विधीयते ॥ ४७ ॥
शर्करामधुयष्टिभ्यां लाक्षया वा[2] श्वदंष्ट्रया ।
चित्रासमन्वितं चैव रुजादाहविनाशनम् ॥ ४८ ॥
आटोपो मरणं वा स्याच्छूलो वाऽच्छिद्यमानया ।
मेदोग्रन्थौ च यत् तैलं वक्ष्यते तच्च योजयेत् ॥ ४९ ॥
त्वचोऽतीत्य सिरादीनि भित्त्वा वा परिहृत्य वा ।
कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान्[3] ॥ ५० ॥
तत्रान्तर्लोहितं पाण्डुं शीतपादकराननम् ।
शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्धं[4] च विवर्जयेत् ॥ ५१ ॥
आमाशयस्थे रुधिरे वमनं पथ्यमुच्यते ।
पक्वाशयस्थे देयं च विरेचनमसंशयम् ॥ ५२ ॥
आस्थापनं च निःस्नेहं कार्यमुष्णैर्विशोधनैः ।
यवकोलकुलत्थानां निःस्नेहेन रसेन च ॥ ५३ ॥
भुञ्जीतान्नं यवागूं वा पिबेत् सैन्धवसंयुताम् ।
अतिनिःस्रुतरक्तो वा भिन्नकोष्ठः पिबेदसृक् ॥ ५४ ॥
स्वमार्गप्रतिपन्नास्तु यस्य विण्मूत्रमारुताः ।
व्युपद्रवः[5] स भिन्नेऽपि कोष्ठे जीवति मानवः ॥ ५५ ॥

---

१ तां वर्तिमिति शेषः । सूत्रवित्=शास्त्रज्ञ इत्यर्थः ।

२ वाशब्दाद् योगद्वयं बोद्धव्यम् । यथा यष्टिमधुक्वथिते क्षीरे सशर्करैरण्डतैलं प्रक्षिप्य तस्य पानमिति प्रथमः, द्वितीयस्तु श्वदंष्ट्राक्वथिते क्षीरे सलाक्षाचित्रातिलतैलं प्रक्षिप्य पीयत इति । वृद्धवाग्भटोऽपि—"सक्षौद्रे च व्रणे बद्धे सुजीर्णेऽन्ने घृतं पिबेत् । क्षीरं वा शर्कराचित्रालाक्षागोक्षुरकैः श्रृतम् ॥ रुग्दाहजित् सयष्ट्याह्वैः परं पूर्वोदितो विधिः ॥" इति । ३ कोष्ठगते त्वाटोपानाहविद्रध्यादीनिति शल्यापनयनीयोक्तोपद्रवानित्यर्थः । ४ आनद्धं=स्वमार्गादप्रवर्तमानदोषमलम् । ५ विगता उपद्रवा ज्वराध्मानादयो यस्य स व्युपद्रवः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिन्नमन्त्रं[1] निष्क्रान्तं प्रवेश्यं नान्यथा भवेत्।
पिपीलिकाशिरोग्रस्तं तदप्येके[2] वदन्ति तु ॥ ५६ ॥
प्रक्षाल्य पयसा दिग्धं तृणशोणितपांशुभिः।
प्रवेशयेत् कृत्तनखो घृतेनाक्तं शनैः शनैः ॥ ५७ ॥
प्रवेशयेत् क्षीरसिक्तं शुष्कमन्त्रं घृताप्लुतम्।
अङ्गुल्याऽभिमृशेत्[3] कण्ठं जलेनोद्वेजयेदपि ॥ ५८ ॥
हस्तपादेषु सङ्गृह्य समुत्थाप्य महाबलाः।
भवत्यन्तःप्रवेशस्तु यथा [4]निर्धुनुयुस्तथा ॥ ५९ ॥
तथाऽन्त्राणि विशन्त्यन्तः स्वां कलां[5] पीडयन्ति च।
व्रणाल्पत्वाद्[6]बहुत्वाद्वा दुष्प्रवेशं भवेत्तु यत् ॥ ६० ॥
तदापाट्य प्रमाणेन भिषगन्त्रं प्रवेशयेत्।
यथास्थानं निविष्टे च व्रणं सीव्येदतन्द्रितः ॥ ६१ ॥
स्थानादपेतमादत्ते प्राणान् गुम्फितमेव[7] वा।
वेष्टयित्वा तु पट्टेन घृतसेकं प्रदापयेत् ॥ ६२ ॥
घृतं पिबेत् सुखोष्णं च चित्रा[8]तैलसमन्वितम्।
मृदुक्रियार्थं शकृतो वायोश्चाधःप्रवृत्तये ॥ ६३ ॥
ततस्तैलमिदं कुर्याद्रोपणार्थं चिकित्सकः।
त्वचोऽश्वकर्ण[9]धवयोर्मोचकीमेषशृङ्गयोः ॥ ६४ ॥
शल्लकयर्जुनयोश्चापि विदार्याः क्षीरिणां तथा।
बलामूलानि चाहृत्य तैलमेतैर्विपाचयेत् ॥ ६५ ॥
व्रणं संरोपयेत्तेन वर्षमात्रं यतेत[10] च।

---

१ अधुना कोष्ठगतान्त्रसम्भेदमभिधत्ते—**अभिन्नमिति**। २ तदपि = भिन्नमपि, अन्त्रं प्रवेश्यमिति सम्बन्धः। ३ स्वस्थाने आनयनार्थमन्त्रस्योपायत्रयं निर्दिशति—**अङ्गुल्येति**। ४ निर्धुनुयुः = शनैः शनैरालोडयेयुः। ५ कलां = मलधराऽख्यामित्यर्थः।

६ दुःप्रवेशस्य चिकित्सामाह—**व्रणाल्पत्वादिति**। व्रणाल्पत्वात् = व्रणसौक्ष्म्यात्। ७ गुम्फितं = परस्परमतिक्रान्तम्। ८ चित्रातैलम् = परण्डतैलम्। चित्रा दन्तीत्यन्ये। ९ अश्वकर्णः = सालवृक्षः, मोचकी = शाल्मली। १० यतेत = मैथुन-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादौ[1] निरस्तमुष्कस्य जलेन प्रोक्ष्य चाक्षिणी ॥ ६६ ॥
प्रवेश्य तुन्नसेवन्या मुष्कौ सीव्येत्ततः परम् ।
कार्यो गोफणिकाबन्धः कट्यामावेश्य यन्त्रकम् ॥ ६७ ॥
न कुर्यात् स्नेहसेकं च तेन क्लिद्यति हि व्रणः ।
कालानुसार्यगुर्वेलाजातीचन्दनपद्मकैः ॥ ६८ ॥
शिलादार्व्यमृतातुत्थैस्तैलं कुर्वीत रोपणम् ।
शिरसोऽपहृते[2] शल्ये बालवर्तिं प्रवेशयेत् ॥ ६९ ॥
बालवर्त्यामदत्तायां मस्तुलुङ्गं[3] व्रणात् स्रवेत् ।
हन्यादेनं ततो वायुस्तस्मादेवमुपाचरेत् ॥ ७० ॥
व्रणे रोहति चैकैकं शनैर्बालमपाक्षिपेत् ।
गात्राद्व्यपहृतेऽन्यस्मात्[4] स्नेहवर्त्तिं प्रवेशयेत् ॥ ७१ ॥
कृते निःशोणिते चापि विधिः सद्यःक्षते हितः ।
दूरावगाढाः सूक्ष्माः स्युर्ये व्रणास्तान् विशोणितान् ॥ ७२ ॥
कृत्वा सूक्ष्मेण नेत्रेण[5] चक्रतैलेन तर्पयेत् ।
समङ्गां रजनीं पद्मां त्रिवर्ग[6] तुत्थमेव च ॥ ७३ ॥
विडङ्गं कटुकां पथ्यां[7] गुडूचीं सकरञ्जिकाम् ।
संहृत्य विपचेत्काले तैलं रोपणमुत्तमम् ॥ ७४ ॥

---

व्यायामादि परिहरन् यत्नं कुर्वीत । १ मुष्कभेदचिकित्सामाचष्टे—**पादाविति** । निरस्तमुष्कस्य=विलम्बिवृषणस्य, कोषान्निर्गतफलस्येति यावत् । 'मुष्कोऽण्डकोषो वृषणः' इत्यमरः ।

२ अतः परं विद्धचिकित्सां वक्ति—**शिरस इति**। अपहृते=कर्षिते । ३ मस्तुलुङ्गं=मस्तकस्य घृताकारस्नेहः, मस्तिष्कमिति यावत् । ४ अन्यस्मात्=शिरोव्यतिरिक्ताद् गात्रादित्यर्थः । स्नेहवर्तिं=घृताक्तपट्टादिवर्त्तिम् । ५ नेत्रेण=व्रणप्रक्षालनयन्त्रेण,'पिचकारी' इति प्रसिद्धेन यन्त्रेणेति यावत् । ६ त्रिवर्गं=त्रिफलाम् । ७ पथ्या=हरीतकी । त्रिवर्गे पथ्याया ग्रहणात् पुनरत्र पथ्याग्रहणं भागद्वयप्रक्षेपार्थम् । यदुक्तम्—"घृते तैले च योगे च यद् द्रव्यं पुनरुच्यते । तज्ज्ञातव्यमिहाचार्यैर्भागतो द्विगुणं भवेत् ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालीशं[1] पद्मकं मांसी हरेण्वगुरुचन्दनम् ।
हरिद्रे पद्मबीजानि सोशीरं मधुकं च तैः ॥ ७५ ॥
पक्वं सद्योव्रणेषूक्तं तैलं रोपणमुत्तमम् ।
क्षते क्षतविधिः[2] कार्यः पिच्चिते भग्नवद्विधिः ॥ ७६ ॥
घृष्टे रुजो निगृह्याशु [3]चूर्णैरुपचरेद्व्रणम् ।
विश्लिष्टदेहं[4] पतितं मथितं हतमेव च ॥ ७७ ॥
वासयेत्तैलपूर्णायां द्रोण्यां[5] मांसरसाशनम् ।
अयमेव विधिः कार्यः [6]क्षीणे मर्महते तथा ॥ ७८ ॥
रोपणे सपरीषेके पाने च व्रणिनां सदा ।
तैलं घृतं वा संयोज्यं शरीरर्तूनवेक्ष्य हि ॥ ७९ ॥
घृतानि यानि वक्ष्यामि यत्नतः पित्तविद्रधौ ।
सद्योव्रणेषु देयानि तानि वैद्येन जानता ॥ ८० ॥
सद्यःक्षतव्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत् ।
सर्पिषा नातिशीतेन बलातैलेन वा पुनः ॥ ८१ ॥
समङ्गां रजनीं पद्मां पथ्यां तुत्थं सुवर्चलाम् ।
पद्मकं रोध्रमधुकं विडङ्गानि हरेणुकम् ॥ ८२ ॥
तालीशपत्रं नलदं चन्दनं पद्मकेशरम् ।
मञ्जिष्ठोशीरलाक्षाश्च क्षीरिणां चापि पल्लवान् ॥ ८३ ॥
प्रियालबीजं तिन्दुक्यास्तरुणानि फलानि च ।
यथालाभं समाहृत्य तैलमेभिर्विपाचयेत् ॥ ८४ ॥
सद्योव्रणानां सर्वेषामदुष्टानां तु रोपणम् ।

---

१ अन्यदपि रोपणार्थं तैलं निर्दिशति—**तालीशमिति** । २ क्षतसामान्यो विधिः क्षतविधिः, क्षौद्रघृततैलाभ्यङ्गादिः सर्वः । ३ चूर्णैः=मिश्रकोक्तकङ्कुकात्रिफलारोध्रादिकृतैरित्यर्थः । ४ प्रसङ्गाद् विश्लिष्टदेहादीनां चिकित्सां ब्रवीति—**विश्लिष्टेति** । विश्लिष्टदेहं=नमनाकर्षणारोहणादिभिः स्वस्थानच्युतावयवदेहम्, पतितं=वृक्षादितः पतनेन प्रपीडितम्, मथितं=हस्त्यादिभिर्म्मथितम्, हतं=दण्डमुष्टयादिभिराहतम् । ५ द्रोणी काष्ठनिर्मिता लघुनौरिव, 'द्रोणी काष्ठाम्बुवाहिनी' इत्यमरः । 'कठौता' 'टब' इति वा बोध्यम् । ६ क्षीणे=अध्वादिक्षीणे । ७ अस्यैव

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कषायमधुराः शीताः क्रियाः स्निग्धाश्च योजयेत् ॥ ८५ ॥
सद्योव्रणानां सप्ताहं पश्चात् पूर्वोक्तमाचरेत् ।
दुष्टव्रणेषु कर्त्तव्यमूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ॥ ८६ ॥
विशोषणं तथाऽऽहारः शोणितस्य च मोक्षणम् ।
कषायं राजवृक्षादौ सुरसादौ च धावनम् ॥ ८७ ॥
तयोरेव कषायेण तैलं शोधनमिष्यते ।
क्षारकल्पेन वा तैलं क्षारद्रव्येषु साधितम् ॥ ८८ ॥
द्रवन्ती चिरबिल्वश्च दन्ती चित्रकमेव च ।
पृथ्वीका निम्बपत्राणि कासीसं तुत्थमेव च ॥ ८९ ॥
त्रिवृत्तेजोवती नीली हरिद्रे सैन्धवं तिलाः ।
भूमिकदम्बः सुवहा शुकाख्या लाङ्गलाह्वया ॥ ९० ॥
नैपाली जालिनी चैव मदयन्ती मृगादनी ।
सुधामूर्वार्ऽकीटारिहरितालकरञ्जिकाः ॥ ९१ ॥
यथोपपत्ति कर्त्तव्यं तैलमेतैस्तु शोधनम् ।
घृतं वा यदि वा प्राप्तं कल्काः संशोधनास्तथा ॥ ९२ ॥

---

स्थानस्य' पञ्चदशाध्याये वक्ष्यमाणेन बलातैलेनेत्यर्थः । १ पूर्वोक्तं=द्विव्रणीयोक्तम् ।

२ प्रसङ्गाद् दुष्टव्रणविधिमधिकरोति—**दुष्टेति** । ३ राजवृक्षादिः आरग्वधादिः, सुरसादिश्च द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये उक्तः । ४ क्षारपाकविधावुपदिष्टानां मुष्कपलाशादीनां क्षारं षड्गुणेनोदकेन मूत्रेण वा एकविंशतिवारान् परिस्राव्य तैलाच्चतुर्गुणे तस्मिन् क्षारोदके तैलं पाचयेदित्याशयेनाह—क्षारकल्पेनेति ।

५ अधुना सर्वदुष्टव्रणेषु तैलघृतकल्कयोगान्निर्दिशति—**द्रवन्तीति** । द्रवन्ती=दन्तीभेदः, चिरबिल्वः=करञ्जकः, दन्ती='दतैया' इत्यादिनाम्नाऽवधप्रान्तादौ प्रसिद्धा, चित्रकं='चीता' इति, पृथ्वीका=कृष्णजीरकः । ६ तेजोवती=चव्यम्, नीली='नील' इति ख्याता । 'नीलादोषधौ' इति ङीष् । ७ भूमिकदम्बः=मुण्डितिका, सुवहा=निर्गुण्डी, शुकाख्या=शिरीषः, लाङ्गलाह्वया=कलिहारिका । ८ नैपाली=मनःशिला, जालिनी=कोशातकी, मदयन्ती=वनमल्लिका, मृगादनी=इन्द्रवारुणी, ९ सुधा='सेंहुड' इति, मूर्वा='मरोरफली' इति, अर्कः='आक' इति, कीटारिः=विडङ्गम्, हरितालं प्रसिद्धम्, करञ्जिका=नक्तमालफलम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैन्धवत्रिवृदेरण्डपत्रकल्कस्तु वातिके ।
त्रिवृद्धरिद्रामधुककल्कः पैत्ते तिलैर्युतः ॥ ९३ ॥
कफजे तिलतेजोह्वादन्तीस्वर्जिकचित्रकाः ।
दुष्टव्रणविधिः कार्यो मेहकुष्ठव्रणेष्वपि ॥ ९४ ॥
षड्विधः प्राक् प्रदिष्टो यः सद्योव्रणविनिश्चयः ।
नातः शक्यं परं वक्तुमपि निश्चितवादिभिः ॥ ९५ ॥
उपसर्गैर्निपातैश्च तत् तु पण्डितमानिनः ।
केचित् संयोज्य भाषन्ते बहुधा मानगर्विताः ॥ ९६ ॥
बहु तद्भाषितं तेषां षट्स्वेष्वेवावतिष्ठते ।
विशेषा इव सामान्ये षट्त्वं तु परमं मतम् ॥ ९७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने सद्योव्रण चिकित्सितं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

## तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो भग्नानां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च ।

---

१ वातादिभेदेन कल्कान्तराण्युपदिशति—सैन्धवेति । २ तेजोह्वा=चविका। ३ छिन्नादिषट्के कस्यचिद् विप्रतिपत्तिं निराकुर्वन् षड्विधत्वमेव प्रतिपादयति—षड्विध इति । ४ अतः परमिति सम्बन्धः । अतः परं = सप्तविधत्वादि । ५ बहूक्तानामपि सद्योव्रणानां षट्स्वेवान्तर्भावं ब्रवीति—उपसर्गैरिति । उपसर्गैः = प्रादिभिः, निपातैः = चादिभिः, "घृष्टावकृत्तविच्छिन्नपविलम्बितपातितम्" इति क्रमेण संयोज्य बहु भाषन्ते । ६ अवतिष्ठते=अन्तर्भवतीत्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वितीयोऽध्यायः ।**

---

### तृतीयोऽध्यायः ।

७ भग्नानां त्रुटितानामङ्गावयवानां चिकित्सितमित्यर्थः । भग्नं द्विविधं—सव्रणमव्रणं चेति । ८ येषां भग्नं कृच्छ्रसाध्यं तान्निर्दिशति—अल्पाशिन इति । अल्पा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ३ ॥
लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम् ।
व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥ ४ ॥
शालिर्मांसरसः क्षीरं सर्पिर्यूषः सतीनजः ।
बृंहणं चान्नपानं स्याद्देयं भग्नाय जानता ॥ ५ ॥
मधूकोदुम्बराश्वत्थपलाशककुभत्वचः ।
वंशसर्जवटानां वा कुशार्थमुपसंहरेत् ॥ ६ ॥
आलेपनार्थं मञ्जिष्ठां मधुकं रक्तचन्दनम् ।
शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टं च संहरेत् ॥ ७ ॥
सप्ताहादथ सप्ताहात् सौम्येष्वृतुषु बन्धनम् ।
साधारणेषु कर्त्तव्यं पञ्चमे पञ्चमेऽहनि ॥ ८ ॥
आग्नेयेषु त्र्यहात् कुर्य्याद्भग्नदोषवशेन वा ।

---

शिनः=आहाररहितस्य, अनात्मवतः=अवशेन्द्रियस्य, अपथ्याशिन इत्यर्थः ।

१ उपद्रवैः=ज्वराध्मानमूत्रपुरीषसङ्गादिभिः । २ भग्नाङ्गैरसेव्यानि दर्शयति--**लवणमिति** । ३ भग्नाङ्गैः सेव्यानि निर्दिशति--**शालिरिति** । ४ सतीनः=वर्तुलकलायः ।

५ भग्नबन्धनद्रव्याणि दर्शयति--**मधूकेति** । ६ वंशेत्यादौ 'त्वच' इत्यस्य योजना । कुशाशब्देन भग्नबन्धनार्थं वंशवेत्रादिकं प्रोच्यते । अत्र सुश्रुतार्थसन्दीपनकारः—कुशा नाम सामगानां स्तोत्रगाने तालव्यञ्जनाय ग्राह्य औडुम्बरशङ्कुस्तत्साम्यात् कुशाशब्दोऽत्र तदाकारे भग्नसंश्लेषणे फलके प्रवर्तत इति निश्चीयते । "वल्कलैः शकलैरपि" "कुशाह्वयैः समं बन्धम्" इति तन्त्रान्तरीये कुशाशब्दस्य तदर्थे प्रयोगदर्शनादिति । वाग्भटः—"आच्छनोत्पीडनोन्नामचर्मसङ्क्षेपबन्धनैः । सन्धीन् शरीरगान् सर्वान् चलानप्यचलानपि ॥ इत्येतैः स्थापनोपायैः सम्यक् संस्थाप्य निश्चलम् । पट्टैः प्रभूतसर्पिर्भिर्वेष्टयित्वा सुखैस्ततः ॥ कदम्बोदुम्बराश्वत्थसर्जार्जुनपलाशजैः । वंशोद्भवैर्वा पृथुभिस्तनुभिः सुनिवेशितैः । सुश्लक्ष्णैः सुप्रतिस्तम्भैर्वल्कलैः शकलैरपि । कुशाह्वयैः समं बन्धं पट्टस्योपरि योजयेत् ॥" उपसंहरेत्=समीपे आसादयेत् ।

७ भग्नलेपनद्रव्याण्याह—**आलेपनार्थमिति** । ८ ऋतुविशेषेण भग्नबन्धनकालावधिमभिधत्ते—**सप्ताहादिति** । अष्टाङ्गहृदये—"त्र्यहात् त्र्यहादृतौ घर्मे सप्ताहान्मोक्षयेद्भिषक् । साधारणे तु पञ्चाहाद् भङ्गदोषवशेन वा ॥" इति । ९ पक्षान्तरमाह—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्रातिशिथिलं बद्धे सन्धिस्थैर्यं न जायते ॥ ९ ॥
गाढेनापि त्वगादीनां शोफो रुक् पाक एव च ।
[1]तस्मात् साधारणं बन्धं भग्ने शंसन्ति तद्विदः ॥ १० ॥
[2]न्यग्रोधादिकषायं तु सुशीतं परिषेचने ।
पञ्चमूलीविपक्वं तु क्षीरं कुर्यात् सवेदने ॥ ११ ॥
सुखोष्णमवचार्य वा चक्रतैलं विजानता ।
विभज्य कालं दोषं च दोषघ्नौषधसंयुतम् ॥ १२ ॥
परिषेकं प्रदेहं च विदध्याच्छीतमेव च ।
[3]गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् ॥ १३ ॥
शीतलं लाक्षया युक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः ।
[4]सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तरैः ॥ १४ ॥
प्रतिसार्यं कषायैस्तु शेषं भग्नवदाचरेत् ।
[5]प्रथमे वयसि त्वेवं भग्नं सुकरमादिशेत् ॥ १५ ॥
अल्पदोषस्य जन्तोस्तु काले च शिशिरात्मके ।
प्रथमे वयसि त्वेवं मासात् सन्धिः स्थिरो भवेत् ॥ १६ ॥
मध्यमे द्विगुणात्[6] कालादुत्तरे त्रिगुणात् स्मृतः ।

---

**भग्नेति** । भग्नदोषवशेन=भग्नोष्मणस्तीक्ष्ण्येनेत्यर्थः । एतेनोष्मबलमभिसमीक्ष्य यथा त्वगादयः प्रदुष्टा न भवेयुस्तथैव बन्धनं कार्यमित्यायातम् । १ तस्मात्=गाढशिथिलयोर्बन्धयोर्दोषावहत्वात्, साधारणं=समाख्यं बन्धनमित्यर्थः । २ सवेदने भग्ने परिषेकविधिमुपदिशति—**न्यग्रोधेति** । न्यग्रोधादिकषायं=न्यग्रोधादिगणोक्तौषधिक्काथम् ।

३ भग्ने आभ्यन्तरमौषधमभिधत्ते—**गृष्टीति** । गृष्टिः=सकृत्प्रसूता गौः । मधुरौषधैः काकोल्यादिभिः साधितम् । कल्पनाप्रकारो निबन्धसङ्ग्रहव्याख्यायाम्—काकोल्यादीनां मधुराणां कर्षमात्रं द्रव्यमष्टगुणं क्षीरं चतुर्गुणोदकसिद्धं क्षीरशेषं सर्पिर्लाक्षाकर्षमात्रप्रक्षेपान्वितम्, तच्च लघौ कोष्ठे देयम्, इयं च दिनं प्रति मात्रा ।

४ सव्रणस्य भग्नस्य चिकित्सां वक्ति—**सव्रणस्येति** । सर्पिर्मधूत्तरैः घृतमधुप्रधानैः कषायैः न्यग्रोधादिकल्कैः व्रणं प्रतिसार्य प्रलिप्य, शेषं बन्धनादिकम् । ५ कालदोषाश्रयं भग्नस्य साध्यत्वं निर्दिशति—**प्रथम इति** । सुकरं=सुखसाध्यम् । ६ द्विगुणात्कालात्=द्वाभ्यां मासाभ्याम्, उत्तरे=चरमे वयसि, त्रिगुणात्=त्रिभिर्मा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

अवनामितमुन्नह्येदुन्नतं चावपीडयेत् ॥ १७ ॥
आच्छेदतिक्षिप्तमधो गतं चोपरि वर्जयेत् ।
आच्छनैः पीडनैश्चैव सङ्क्षेपैर्बन्धनैस्तथा ॥ १८ ॥
सन्धीञ्छरीरे सर्वांस्तु चलान्यप्यचलानपि ।
एतैस्तु स्थापनोपायैः स्थापयेन्मतिमान् भिषक् ॥ १९ ॥
उत्पिष्टमथ विश्लिष्टं सन्धिं वैद्यो न घट्टयेत् ।
तस्य शीतान् परीषेकान् प्रदेहांश्चावचारयेत् ॥ २० ॥
अभिघाते हृते सन्धिः स्वां याति प्रकृतिं पुनः ।
घृतदिग्धेन पट्टेन वेष्टयित्वा यथाविधि ॥ २१ ॥
पट्टोपरि कुशान् दत्त्वा यथावद्बन्धमाचरेत् ।
प्रत्यङ्गभग्नस्य विधिरत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यते ॥ २२ ॥
नखसन्धिं समुत्पिष्टं रक्तानुगतमार्या ।
अवमथ्य स्रुते रक्ते शालिपिष्टेन लेपयेत् ॥ २३ ॥
भग्नां वा सन्धिमुक्तां वा स्थापयित्वाऽङ्गुलीं समाम् ।
अणुनाऽऽवेष्टच पट्टेन घृतसेकं प्रदापयेत् ॥ २४ ॥
अभ्यज्य सर्पिषा पादं तलभग्नं कुशोत्तरम् ।

---

सैरित्यर्थः । १ अवनामितम् = अधोगतम्, उन्नह्येत् = ऊर्ध्वं कुर्यात्, उन्नतम् = उद्गतम्, अवपीडयेत = अधः कुर्यात्, अतिक्षिप्तम् = अतिप्रेरितम् । २ आच्छेत् = यथावत् स्थापनार्थमाकर्षेत्, अधोगतम्, उपरि वर्तयेत् नयेत् ।

३ चलान् हस्तपादकटीहनुगतान्, तद्विपरीतान् अचलान् । तदुक्तम्—"शाखासु हन्वोः कट्यां च चेष्टावन्तो भवन्ति हि । शेषास्तु सन्धयः सर्वे स्थिरास्तज्ज्ञैरुदाहृताः ॥" इति । ४ उत्पिष्टं = द्वाभ्यामस्थिभ्यां सन्धौ घर्षणम्, चूर्णितमित्यर्थः । विश्लिष्टं = मनाक् सन्धिविश्लेषः शिथिलतामात्रम्, स्वस्थानाच्च्युतमित्यर्थः । ५ कुशान् = मधूकोदुम्बराश्वत्थादीनां त्वचः, काष्ठानि च । ६ उत्पिष्टनखसन्धिचिकित्सामाह—**नखेति** । समुत्पिष्टं = सञ्चूर्णितम्, रक्तानुगतं = दुष्टरक्तानुविद्धम्, आर्या = चर्मकाराणां व्यधनास्त्रेण ।

७ अङ्गुलिभग्नचिकित्सां वक्ति—**भग्नामिति** । ८ पादतलभग्नचिकित्सां ब्रवीति—**अभ्यज्येति** । तलभग्नं पादं वल्कपट्टेन कुशोत्तरं बध्नीयादिति सम्बन्धः । कुशा भग्नबन्धनार्थं वंशवेत्रादित्वक् काष्ठं वा पश्चात् प्रदेशेऽस्येति कुशो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्त्रपट्टेन बध्नीयान्न च व्यायाममाचरेत् ॥ २५ ॥
अभ्यज्याथामयेज्जङ्घामूरुं च सुसमाहितः ।
दत्त्वा वृत्तत्वचः शीता[2] वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ २६ ॥
मतिमांश्चक्रयोगेन ह्याञ्छेदूर्वस्थि[3] निर्गतम् ।
स्फुटितं पिच्चितं चापि बध्नीयात् पूर्ववद्भिषक्[4] ॥ २७ ॥
आञ्छेदूर्ध्वमधो वाऽपि कटिभग्नं[5] तु मानवम् ।
ततः स्थानस्थिते सन्धौ बस्तिभिः[6] समुपाचरेत् ॥ २८ ॥
पर्शुकास्वथ[7] भग्नासु घृताभ्यक्तस्य तिष्ठतः ।
दक्षिणास्वथवा वामास्वनुमृज्य निबन्धनीः[8] ॥ २९ ॥
ततः कर्वैलिकां[9] दत्त्वा वेष्टयेत् सुसमाहितः ।

---

त्तरम् । १ भग्नजङ्घोरोश्चिकित्सा कथयति—**अभ्यज्येति** । जङ्घा=गुल्फोपरि जान्वधोभागे नलकाश्रया । २ शीता वृत्तत्वचः=न्यग्रोधादिशीतवृक्षाणां कुशानित्यर्थः ।

३ उर्वस्थिभङ्गे विशेषचिकित्सामाचष्टे-**मतिमानिति** । चक्रयोगेन वर्तुलान् कुशान् दत्त्वा नामयित्वा चक्रवदाञ्छेद् बध्नीयादित्यर्थः । सुश्रुतार्थसन्दीपनकारस्तु—ऊरुसन्धेरुदूखलाकाराद् गह्वराद् बहिर्निर्गतं हि मुसलाकारमस्थ्यायतत्वादाभुग्नत्वान्मांसादिसन्ततत्वाच्चाशक्यं भवति स्वस्थानमानेतुं हस्तेनेति कटीमावेष्टय दृढमातुरं कीलकबन्धं निबध्य बलवद्भिर्ग्राहयित्वा वा चक्राश्रितया रज्ज्वा जानुसन्धेरूर्ध्वं बध्वा प्राणानबाधमानाः शनैः शनैश्चक्रभ्रामणेन रज्जुं तामाकृष्यास्थि तदुदूखलसम्मुखमानयन्ति कुशला यथावदवस्थापयितुं तदिदमुच्यते—मतिमानित्यादि । तथा च मतिमान् समीक्ष्यकारी चक्रयोगेन प्रदर्शितया रीत्या चक्रप्रयोगेण निर्गतमुदूखलाद्बहिर्निर्गतम् ऊर्वस्थि ऊरुसन्धिगतं मुसलाकारमस्थ्याञ्छेदाकर्षेदित्यादि व्याख्याय पूर्वोक्तमर्थं निराकृतवान् । ४ पूर्ववत्=तलभग्नवत् ।

५ कटिभग्नचिकित्सां प्रतिपादयति-**आञ्छेदिति** । ऊर्ध्वगतमस्थि अधः कृत्वा, अधोगतं तु ऊर्ध्वं कृत्वा बध्नीयादित्यर्थः । ६ बस्तिभिः=यथायोगमास्थापनानुवासनोत्तरबस्तिभिः । ७ पर्शुकाभग्नचिकित्सामभिधत्ते-**पर्शुकास्विति** । पर्शुकासु=पृष्ठभागनिबन्धनास्थिषु, पार्श्वास्थिष्वित्यर्थः । 'पार्श्वास्थनि तु पर्शुका' इत्यमरः । पर्शुरिव पर्शुका 'इवे प्रतिकृतौ' इति कन् । दक्षिणास्वथवा वामासु पर्शुकासु भग्नास्विति सम्बन्धः । भग्नासु कोऽर्थः ? आनतासु, तेषां नमनमेव भग्नत्वम् । ८ निबन्धनीः=मांसरज्जवः । निबध्यते आभिरिति व्युत्पत्तिः ।

९ औषधवस्त्रयोरन्तरे औषधसंस्थापनार्थं या औदुम्बरादित्वक् पत्राणि वा दीयते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैलपूर्णे कटाहे वा द्रोण्यां वा शाययेन्नरम् ॥ ३० ॥
मुसलेनोत्क्षिपेत् कक्षामंससन्धौ विसंहते ।
स्थानस्थितं च बध्नीत स्वस्तिकेन विचक्षणः ॥ ३१ ॥
[४]कौर्परं तु तथा सन्धिमङ्गुष्ठेनानुमार्जयेत् ।
अनुमृज्य ततः सन्धिं पीडयेत् कूर्पराच्च्युतम् ॥ ३२ ॥
प्रसार्याकुञ्चयेच्चैनं स्नेहसेकं च दापयेत् ।
[७]एवं जानुनि गुल्फे च मणिबन्धे च कारयेत् ॥ ३३ ॥
[८]उभे तले समे कृत्वा तलभग्नस्य देहिनः ।
बध्नीयादामतैलेन परिषेकं च कारयेत् ॥ ३४ ॥
मृत्पिण्डं धारयेत् पूर्व लवणं च ततः परम् ।
हस्ते जातबले चापि कुर्यात् पाषाणधारणम् ॥ ३५ ॥
[१०]सन्नमुन्नमयेत् स्विन्नमक्षकं मुसलेन तु ।

---

सा कवलिका । कवलयति प्रच्छादनेन व्रणान् ग्रसतीवेति कवलिका व्रणप्रच्छादनं निर्मलं सूक्ष्मवस्त्रमिति यावदिति श्रीहाराणचन्द्रः । १ 'द्रोणी काष्ठाम्बुवाहिनी' इत्यमरः ।

२ स्कन्धभग्नचिकित्सां वक्ति–**मुसलेनेति** । उत्क्षिपेत् = ऊर्ध्वं नयेत् । अंससन्धौ = भुजशिरःसन्धौ, विसंहते = विश्लिष्टे । ३ स्वस्तिकेन = व्रणालेपनबन्धविध्यध्यायोक्तेन स्वस्तिकाकृतिबन्धविशेषेणेत्यर्थः । ४ कूर्परसन्धिभग्नचिकित्सां दर्शयति–**कौर्परमिति** । कूर्परः = 'केहुनी' इति ख्यातः, तत्र भवं कौर्परम् , सन्धिमित्यस्य विशेषणम् । अनुमार्जयेत् = अनुमर्दयेत् , एतदनुमार्जनं प्रच्युतस्य सन्ध्यस्थ्नो मार्गोपलम्भार्थम् । ५ कूर्पराच्च्युतं कूर्परगर्ताद्बहिर्निर्गतं सन्धिं सन्ध्यवयवभूतं गुटिकाऽऽकारमस्थिविशेषं पीडयेद् विमर्दयेत् । ६ सन्धेः प्रसारणाकुञ्चने ऋजुकृत्य स्वस्थाने स्थापनायेति बोध्यम् ।

७ अनन्याकृतिकत्वात् कूर्परसन्धिचिकित्सितं जान्वादावतिदिशति—**एवमिति** । एवं = कूर्परसन्धिचिकित्सितप्रकारेण । ८ हस्ततलचिकित्सामभिधत्ते–**उभ इति** । ९ मृत्पिण्डादिधारणं क्रमशो गुरुभारार्पणेन शनैः शनैः स्वकार्यक्षमत्वसम्पादनार्थम् । उपलक्षणमेतत् । एवं च द्रव्यान्तरधारणमप्यविरुद्धम् । क्वचित्–"मृत्पिण्डं धारयेत्" इत्यादिश्लोकार्द्धस्थाने "प्राग्गोमयमयं पिण्डं धारयेन्मृन्मयं ततः" इति पाठान्तरम् ।

१० नतोन्नतयोरक्षकयोश्चिकित्सां ब्रवीति–**सन्नमिति** । सन्नम् = अवनतम् ,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथोन्नतं पीडयेच्च बध्नीयाद्गाढमेव च ॥ ३६ ॥
ऊरुवच्चापि कर्त्तव्यं बाहुभग्नचिकित्सितम् ।
ग्रीवायां तु विवृत्तायां प्रविष्टायामधोऽपि च ॥ ३७ ॥
अवटावथ हन्वोश्च प्रगृह्योन्नमयेन्नरम् ।
ततः कुशाः समं दत्त्वा वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ ३८ ॥
उत्तानं शाययेच्चैनं सप्तरात्रमतन्द्रितः ।
हन्वस्थिनी समानीय हनुसन्धौ विसंहते ॥ ३९ ॥
स्वेदयित्वा स्थिते सम्यक् पञ्चाङ्गीं वितरेद्भिषक् ।
वातघ्नमधुरैः सर्पिः सिद्धं नस्ये च पूजितम् ॥ ४० ॥
अभग्नांश्चलितान् दन्तान् सरक्तानवपीडयेत् ।
तरुणस्य मनुष्यस्य शीतैरालेपयेद्बहिः ॥ ४१ ॥
सिक्त्वाऽम्बुभिस्ततः शीतैः सन्धानीयैरुपाचरेत् ।
उत्पलस्य च नालेन क्षीरपानं विधीयते ॥ ४२ ॥
जीर्णस्य तु मनुष्यस्य वर्जयेच्चलितान् द्विजान् ।
नासां सन्नां विवृत्तां वा ऋज्वीं कृत्वा शलाकया ॥ ४३ ॥

---

अक्षकं=जत्रुतोऽससंश्रितपाशकाकारमस्थि, मुसलेन उन्नमयेत्; स्विन्नम्=उन्नतं मुसलेनाधः पीडयेत् । १ बाहुभग्नचिकित्सिते उरुभग्न चिकित्सितमतिदिशति–**ऊरुवदिति** । ऊरुवत्=ऊरुसन्धिवत्, चकारयोगेनेति निष्कर्षः । कूर्परांसयोर्मध्ये बाहुः ।

२ बाहुग्रीवाऽवटुहनुभग्नचिकित्सामाचष्टे–**ग्रीवायामिति** । विवृत्तायां=वक्रायाम् । ३ कृकाटिकाभागसन्धौ गर्तोऽवटुः, हनू=मुखसन्धी, हनोरेकत्वेऽपि सव्यापसव्यविभागेन द्वित्वमुन्नेयम् । ४ अतन्द्रितः=सावधानः, वैद्य इति शेषः । ५ हनुभग्नचिकित्सामाह–**हन्वस्थिनीति** । हन्वस्थिनी=हनुसन्ध्यस्थिनी, समानीय=मुखं मुखेन संयुज्य । ६ स्थिते=स्थापिते इत्यर्थः । पञ्चाङ्गीं=बन्धविशेषम्, तल्लक्षणं यथा–"पञ्चाङ्गीं तु वृतां कुर्याद् बन्धनाय चिकित्सकः" इति । ७ वातघ्नानि=भद्रदार्वादीनि, मधुराणि=काकोल्यादीनि ।

८ दन्तभग्नचिकित्सां वक्ति–**अभग्नानिति** । ९ शीतैः=शतधौतघृतादिभिर्दूर्वोशीरादिभिश्च । १० सन्धानीयैः=मधुघृतादिभिर्न्यग्रोधप्रियङ्गवम्बष्ठादिभिश्च, उपाचरेद् 'दन्तमूलावलेपनैः' इति शेषः । ११ नासाभग्नचिकित्सामाह–**नासामिति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथङ्नासिकयोर्नाड्यौ द्विमुख्यौ[1] सम्प्रवेशयेत् ।
ततः पट्टेन संवेष्टच घृतसेकं प्रदापयेत् ॥ ४४ ॥
भग्नं[2] कर्णं च बध्नीयात् समं कृत्वा घृतप्लुतम् ।
सद्यःक्षतविधानं[3] च ततः पश्चात्समाचरेत् ॥ ४५ ॥
मस्तुलुङ्गाद्विना[4] भिन्ने कपाले मधुसर्पिषी ।
दत्त्वा ततो निबध्नीयात् सप्ताहं च पिबेद् घृतम् ॥ ४६ ॥
पतनादभिघाताद्वा शूनमङ्गं यदक्षतम् ।
शीतान्[5] प्रदेहान् सेकांश्च भिषक् तस्यावचारयेत् ॥ ४७ ॥
अथ[6] जङ्घोरुभग्नानां कपाटशयनं हितम् ।
कीलका बन्धनार्थं च पञ्च[7] कार्या विजानता ॥ ४८ ॥
यथा न चलनं तस्य भग्नस्य क्रियते तथा ।
सन्धेरुभयतो द्वौ द्वौ तले चैकश्च कीलकः[8] ॥ ४९ ॥
श्रोण्यां वा पृष्ठवंशे वा वक्षस्यक्षकयोस्तथा ।
भग्नसन्धिविमोक्षेषु[9] विधिमेनं समाचरेत् ॥ ५० ॥

---

सन्नामस्थिभङ्गेनावनतां शलाकया उन्नम्य, विवृत्तां वक्रां ऋजूकृत्येत्यर्थः । १ द्विमुख्यौ नाड्यौ=अन्तर्बहिर्मुख्यौ । निःश्वासोच्छ्वासक्रियाणकादिनिर्गमार्थमिति भावः।

२ कर्णभग्नचिकित्सामाख्याति—**भग्नमिति** । समं कृत्वा=यथावत् स्थापयित्वा । ३ सद्यःक्षतविधानं=सद्योव्रणचिकित्सासदृशं मधुघृताभ्यङ्गशीतपरिषेकादि । ४ कपालभग्नचिकित्सां निर्दिशति—**मस्तुलुङ्गाद्विनेति** । मस्तिष्कभिन्नो न जीवतीति तस्य चिकित्साऽभावादाह—मस्तुलुङ्गाद्विनेति । कपाले=शिरोऽस्थनि । ५ अतिस्रुतरक्तत्वेन पाकभयान्नोष्णानिति तात्पर्यम् ।

६ जङ्घोरुभग्नेषु कपाटशयनविधिमभिधत्ते—**अथेति** । ७ भग्नस्थानस्य इतस्ततश्चलनपरिहारार्थं पञ्चकीलानां निवेशनमावश्यकमिति भावः । ८ तत्र जङ्घाभग्ने गुल्फसन्धेरुभयपार्श्वे द्वौ द्वौ कीलकौ, तले चैक इत्येवं पञ्च ऊरुभग्ने जानुसन्धेरुभयतो द्वौ, वङ्क्षणसन्धेरुभयतो द्वौ, तले चैक इत्येवमत्र पञ्च । जङ्घोर्वोर्द्वयोर्भग्नयोस्तूभयतो बहिः गुल्फयोर्द्वौ, जानोर्द्वौ, वङ्क्षणयोर्द्वौ, तले चैक इत्येवं सप्त कीला इति बोध्यम् । ९ भग्नसन्धिविमोक्षेषु=भग्नेषु सन्धिमुक्तेषु सत्स्वित्यर्थः । अत्र श्रोण्यादिषु कीलकानामनिर्देशेऽपि श्रोण्यां भग्नसन्धिविमुक्तायां तदुभयपार्श्वतः, पृष्ठवंशे वक्षसि च पार्श्वयोः, अक्षकयोरक्षके वा कक्षयोर्द्वौ द्वौ सर्वत्र तले चैकः कीलको देयः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्धींश्चिरविमुक्तांस्तु स्निग्धान् स्विन्नान् मृदूकृतान्।
उक्तैर्विधानैर्बुद्ध्या च सम्यक् प्रकृतिमानयेत् ॥ ५१ ॥
काण्डभग्ने प्ररूढे तु विषमोल्बणसंहिते।
आपोथ्य समयेद्भग्नं ततो भग्नवदाचरेत् ॥ ५२ ॥
कल्पयेन्निर्गतं शुष्कं व्रणान्तेऽस्थि समाहितः।
सन्ध्यन्ते वा क्रियां कुर्यात् सव्रणे व्रणभग्नवत् ॥ ५३ ॥
ऊर्ध्वकाये तु भग्नानां मस्तिष्कयं कर्णपूरणम्।
घृतपानं हितं नस्यं प्रशाखास्वनुवासनम् ॥ ५४ ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि तैलं भग्नप्रसाधकम् ॥ ५५ ॥
रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले।
दिवा दिवा शोषयित्वा गवां क्षीरेण भावयेत् ॥ ५६ ॥
तृतीयं सप्तरात्रं वा भावयेन्मधुकाम्बुना।

---

विधि = पूर्वोक्तकपाटशयनकीलकयन्त्रणादिकमित्यर्थः।

१ अथ चिरभग्नविधिमभिदधाति—**सन्धीनिति**। २ चिरकाण्डभग्नविधानमाख्याति—**काण्डभग्न इति**। विषमोल्बणसंहिते—विषमत्वेन व्यक्तसन्धानमस्येति विषमोल्बणसंहितं तस्मिन्। प्ररूढे अङ्कुरोत्पन्ने, आपोथ्य विश्लेष्य भग्नं भग्नावच्छेदं समयेत् समं कुर्यात्, समं स्थापयेदिति यावत्। ३ भग्ने बहिर्निर्गतास्थिचिकित्सामाह—**कल्पयेदिति**। निर्गतं बहिर्गतं व्रणान्ते व्रणैकदेशे सन्ध्यन्ते सन्ध्येकदेशे वर्तमानं वा शुष्कमस्थि समाहितः सावधानो वैद्यः कल्पयेच्छेदयेत्। यथाऽन्यत्र व्रणो न भवति तथा छेदयेदिति निष्कर्षः। सव्रणे व्रणयुक्ते व्रणभग्नवद् व्रणवद् भग्नवच्चेत्यर्थः।

४ कायविशेषेण भग्नक्रियाविशेषं निर्दिशति—**ऊर्ध्वकाय इति**। मस्तिष्कयं = मस्तिष्कहितम्, शिरसि स्नेहाक्तपिचुप्लोतादिधारणमित्यर्थः। ५ प्रशाखासु—प्रकृष्टाः शाखाः प्रशाखास्तासु, अङ्गुलिव्यतिरिक्तजानुजङ्घाबाहुद्वितयेष्वित्यर्थः। अनुवासनं = बस्तिः। ६ बस्तिकर्णपूरणपाननस्यानुवासनोपयुक्तं गन्धतैलं निर्दिशति—**अत इति**।

७ प्रथमं सप्तरात्रमस्थिरे वहति जले कृष्णतिलान् रात्रौ वासयित्वा दिवा शोषयेदित्यर्थः। द्वितीयं सप्तरात्रं भाव्यद्रव्यसमेन गवां क्षीरेण भावयेत्। तृतीयं सप्तरात्रं भाव्यद्रव्यसमेन मधुकाम्बुना भावयेत्। चतुर्थं सप्तरात्रं भाव्यद्रव्यसमेन क्षीरेण पुनः पीतान् भावितान् शोषयित्वा चूर्णयेत्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः क्षीरे पुनः पीतान् सुशुष्कांश्चूर्णयेद्भिषक् ॥ ५७ ॥
काकोल्यादिं सयष्ट्याह्वं मञ्जिष्ठां सारिवां तथा ।
कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥ ५८ ॥
शतपुष्पां च सञ्चूर्ण्य तिलचूर्णेन[1] योजयेत् ।
पीडनार्थं च कर्त्तव्यं सर्वगन्धश्रृतं पयः ॥ ५९ ॥
चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं विपचेद्भिषक् ।
एलामंशुमतीं[3] पत्रं जीवकं तगरं[4] तथा ॥ ६० ॥
रोध्रं प्रपौण्डरीकं च तथा कालानुसारिणम्[5] ।
सैरेयकं[5] क्षीरशुक्लामनन्तां समधूलिकाम् ॥ ६१ ॥
पिष्ट्वा शृङ्गाटकं चैव पूर्वोक्तान्यौषधानि[6] च ।
एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाऽग्निना[7] ॥ ६२ ॥
एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु[8] ।
आक्षेपके पक्षघाते तालुशोषे तथाऽर्दिते ॥ ६३ ॥
मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे ।
बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्नायु क्षयं गताः ॥ ६४ ॥

---

१ तिलचूर्णेन तिलचूर्णभागत्रितयेन काकोल्यादिशतपुष्पान्तानामेकं भागं योजयेदित्यर्थः । २ सर्वगन्धैः क्षीरपाकविधिना श्रृतमिति सर्वगन्धश्रृतम्, श्रृतेन पयसा उष्णेनैव काकोल्यादिशतपुष्पान्तचूर्णसहितं तत् तिलचूर्णमार्द्रीकृत्य चक्रेण पीडयेदित्यर्थः । क्षीरपाकविधिः—"क्काथ्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषं कर्तव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥" इति । सर्वगन्धं नाम—"चातुर्जातककर्पूरकक्कोलागुरुकुङ्कुमम् । लवङ्गसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥' इति । तैले निःसृते चतुर्गुणेन पयसा जलेन तत्तैलं भिषग् वैद्यो विपचेत् ।

३ कल्कद्रव्याणि निर्दिशति—एलामित्यादिना । अंशुमती=शालपर्णी । ४ कालानुसारिणं=तगरम् । अस्य वारद्वयमभिधानं द्विभागार्थम् । ५ सैरेयकः=कटसरैया' इति ख्यातः, क्षीरशुक्ला=क्षीरविदारी, अनन्ता=सारिवा, 'अनन्तमूल' इति ख्याता, मधूलिका=मूर्वा । ६ पूर्वोक्तान्यौषधानि=काकोल्यादिशतपुष्पान्तानि । ७ तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"शास्त्रवित्तु भिषक् तेन मृदुना वह्निना शनैः । पचेत्स्नेहमधश्चोर्ध्वं चालयित्वा निरन्तरम् ॥ भवत्येवं पाकसिद्धिरन्यथा दग्धतां व्रजेत् ।" इति । ८ सर्वकर्मसु=पानाभ्यङ्गादिष्वित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथ्यं पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु भोजने ।
ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरमुनैवोपजायते ॥ ६५ ॥
मुखं च पद्मप्रतिमं ससुगन्धिसमीरणम् ।
गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥ ६६ ॥
राजार्हमेतत्कर्त्तव्यं राज्ञामेव विचक्षणैः ।
त्रपुसाक्षप्रियालानां तैलानि मधुरैः सह ॥ ६७ ॥
वसां दत्त्वा यथालाभं क्षीरे दशगुणे पचेत् ।
स्नेहोत्तममिदं चाशु कुर्याद्भग्नप्रसाधनम् ।
पानाभ्यञ्जननस्येषु वस्तिकर्मणि सेचने ॥ ६८ ॥
भग्नं नैति यथापाकं प्रयतेत तथा भिषक् ।
पक्वमांससिरास्नायु तद्धि कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ६९ ॥
भग्नं सन्धिमनाविद्धमहीनाङ्गमनुल्बणम् ।
सुखचेष्टाप्रचारं च सहितं सम्यगादिशेत् ॥ ७० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने भग्नचिकित्सितं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

१ महासम्भारसाध्यत्वादिति महत्त्वसूचकमात्रम् । तेन नान्येषां निषिद्धम् ।

२ द्वितीयं भग्नसन्धानकं तैलमभिधत्ते-त्रपुसेति । त्रपुसं = कर्कटीभेदः, 'खीरा' इति, अक्षः = विभीतकफलम्, 'अक्षो ज्ञानात्मशकटव्यवहारेषु पाशके । रुद्राक्षेन्द्राक्षयोः सर्पे विभीतकतरावपि ॥ चक्रे कर्षे पुमान् क्लीबं तुत्थे सौवर्चलेन्द्रिये ।' इति मेदिनी । प्रियालः = 'चिरौंजी' इति ख्यातः । मधुरैः = काकोल्यादिभिः ।

३ भग्ने यथा पाको न भवेत्तथा प्रयतेतेति प्रतिपादयति—भग्नमिति । ४ भग्नारोग्यलक्षणं निर्दिशति-भग्नमिति । अनाविद्धम् = अवक्रम्, "आविद्धः क्षिप्तवक्रयोः' इति हैमः । अनुल्बणम् = अनुन्नतम्, सुखचेष्टाप्रचारं = सुखेनाकुञ्चनप्रसारणादिकमित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां तृतीयोऽध्यायः ।

---


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो वातव्याधिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
आमाशयगते वाते छर्दयित्वा यथाक्रमम् ।
देयः षड्धरणो योगः सप्तरात्रं सुखाम्बुना ॥ ३ ॥
चित्रकेन्द्रयवे पाठा कटुकाऽतिविषाऽभया ।
वातव्याधिप्रशमनो योगः षड्धरणः स्मृतः ॥ ४ ॥
पक्वाशयगते चापि देयं स्नेहविरेचनम् ।
बस्तयः शोधनीयाश्च प्राशाश्चलवणोत्तराः ॥ ५ ॥
कार्यो बस्तिगते चापि विधिर्बस्तिविशोधनः ।
श्रोत्रादिषु प्रकुपिते कार्यश्चानिलहा क्रमः ॥ ६ ॥
स्नेहाभ्यङ्गोपनाहाश्च मर्दनालेपनानि च ।

---

## चतुर्थोऽध्यायः ।

१ वातव्याधीनां क्षुद्रवातविकाराणां चिकित्सितमित्यर्थः । महावातव्याधीनां चिकित्सितं पञ्चमाध्याये वक्ष्यते । २ क्रमं पूर्वकालापरकालकर्तव्यस्नेहस्वेदनपानलैङ्गिकवैगिकमानिककायशुद्धिसंसर्जनभोजनादिकमनतिक्रम्येति यथाक्रमम् । प्रथमदिवसे वमनं कारयितव्यम्, ततो द्वितीयं दिनमारभ्य षड्दिनपर्यन्तं पाठक्रमेण एकैकस्य चूर्णं टङ्कमितं देयमित्यर्थ इति भावमिश्रः । ३ षण्णामनन्तरोक्तानां चित्रकादीनां धरणं मानविशेषमस्मिन्निति षड्धरणः । धरणं हि पलदशमांशः । तदुक्तं मनुना— 'पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश' इति । यद्यपि धरणशब्दः चतुर्विंशतिरक्तिकारूपे मानभेदे दृश्यते, तथाऽपि योगस्यास्य पलदशमांशत्वेन द्वात्रिंशद्रक्तिकमेव मानमुपयोज्यमित्युन्नेयम् ।

भावप्रकाशकारस्तु—"चित्रकेन्द्रयवौ पाठा कटुकाऽतिविषाऽभया । आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं सुखाम्बुना । योगेऽस्मिन् भिषजा ग्राह्याः षण्णां षड्धरणाः पृथक् । दिनेषु षट्सु दातव्यास्तेन षड्धरणः स्मृतः ॥" अत्र षण्णां समुदितानां षड्धरणमितानां चूर्णीकृतानामेकस्मिन्नहनि एकटङ्को देयः । इति । ४ स्नेहविरेचनं=तिल्वकसर्पिरादिविरेचनम् । ५ प्रकर्षेण अश्यन्ते इति प्राशाः, पानादिष्वभ्यवहार्यत्वेन वक्ष्यमाणस्नेहलवणकल्याणकलवणादय इत्यर्थः । ६ बस्तिविशोधनः = अश्मरीचिकित्सि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वङ्मांसासृक्सिराप्राप्ते कुर्यात् चासृग्विमोक्षणम् ॥ ७ ॥
[1]स्नेहोपनाहाग्निकर्मबन्धनोन्मर्दनानि च ।
स्नायुसन्ध्यस्थिसम्प्राप्ते कुर्याद्वायावतन्द्रितः ॥ ८ ॥
निरुद्धेऽस्थनि वा वायौ पाणिर्[2]मन्थेन दारिते ।
[3]नाडीं दत्त्वाऽस्थनि भिषक् [4]चूषयेत्पवनं बली ॥ ९ ॥
शुक्रप्राप्तेऽनिले कार्यं शुक्रदोषचिकित्सितम्[5] ।
[6]अवगाह-कुटी-कर्षू-प्रस्तराभ्यङ्ग-वस्तिभिः ॥ १० ॥
जयेत्सर्वाङ्गजं वातं सिरा[7]मोक्षैश्च बुद्धिमान् ।
एकाङ्गगं [8]च मतिमाच्छृङ्गैश्चावस्थितं जयेत् ॥ ११ ॥
बलासपित्तरक्तैस्तु संसृष्टम[9]विरोधिभिः ।
सुप्तिवाते[10] त्वसृङ्मोक्षं कुर्यात्तु बहुशो भिषक् ॥ १२ ॥
[11]दिह्याच्च लवणागारधूमैस्तैलसमन्वितैः ।

---

तोक्तो मूत्राघाताद्युपशमनः । १ स्नेहः = बाह्याभ्यन्तरस्नेह इत्यर्थः ।

२ मथ्यते प्राणिभ्यां मण्डलाकारेण परिभ्राम्य छिद्रं कारयितुमस्थि विलोड्यत इवानेनेति मन्थः, आराऽऽख्यशस्त्रविशेषस्तेन 'वरमा' इति हिन्दीभाषायां प्रसिद्धेनेत्यर्थः । ३ नाडी = द्विमुखीरजतादिनाडीमित्यर्थः । ४ चूषयेत् = मुखवायुना चूषणेन वातापकर्षणं कुर्यात् ।

अयं भावः—कस्मिंश्चिदस्थ्नि यदि दोषवशेन वायुरवरुद्धः स्यात्तदा शस्त्रेण त्वङ्मांसं विपाट्य आरया छेदनं विधाय तत्र द्विमुखीं रजतादिनाडिकां प्रणिधाय मुखमारुतेन वायोश्चूषणं कुर्यादिति । ५ शारीरस्थानद्वितीयाध्यायोक्तं शुक्रशोणितशुद्ध्युक्तं चिकित्सितं वाजीकरणोक्तं मूत्रदोषचिकित्सितोपदिष्टं च कर्तव्यमित्यर्थः ।

६ एवं धातूपधातुगतवातचिकित्सामभिधाय सर्वाङ्गैकाङ्गगतवातचिकित्सामाचष्टे—**अवगाहेति** । अवगाहः=वातहरभेषजक्काथपूर्णद्रोण्यादिष्ववगाहो, द्रवस्वेदः, कुटी= गृहाभ्यन्तरे चतुष्कोणेषु निर्धूमाङ्गारोपरि वातनाशकद्रव्यैर्धूपनं कुटी, सा चोष्मस्वेदः । कर्षूः = पुरुषाया[मम]मात्रनिखातं कृत्वा वातशामकद्रव्यदरधावनिप्रदेशे शयनं कर्षूः, स चोष्मस्वेदविशेषः । प्रस्तरः = स्विन्नतुषधान्यादिभिरास्तृतायां भूमौ परिशयनम्, अयमप्यूष्मस्वेदविशेषः । ७ सिरामोक्षैः=बहुवचनात् पञ्चानां सिराणां मोक्षणैरित्यर्थः । ८ चकारात्सर्वाङ्गवातोक्ता अवगाहादयोऽप्यनुकृष्यन्ते । ९ अविरोधिभिराहारादिभिः प्रतिकुर्यादित्यर्थः । १० स्पर्शानभिज्ञत्वेनोपलक्षितो वातः सुप्तिवातस्तस्मिन् सुप्तिवाते । ११ दिह्यात्=लेपयेत् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमूलीश्रृतं क्षीरं फलाम्लो रस एव च ॥ १३ ॥
सुस्निग्धो धान्ययूषो वा हितो वातविकारिणाम् ।
काकोल्यादिः [१]सवातघ्नः सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः ॥ १४ ॥
सा पौदकमांसस्तु सर्वस्नेहसमन्वितः ।
सुखोष्णः स्पष्टलवणः शाल्वणः परिकीर्त्तितः ॥ १५ ॥
तेनोपनाहं कुर्वीत सर्वदा वातरोगिणाम् ।
कुञ्च्यमानं [३]रुजार्त्तं वा गात्रं स्तब्धमथापि वा ॥ १६ ॥
[४]गाढं पट्टैर्निबध्नीयात् क्षौमकार्पासकौर्णिकैः ।
बिडालनकुलोन्द्रा[५]णां चर्मगोण्यां मृगस्य वा ॥ १७ ॥
प्रवेशयेद्वा स्वभ्यक्तं शाल्वणेनोपनाहितम् ।
स्कन्दवक्षस्किप्राप्तं वायुं मन्यागतं तथा ॥ १८ ॥
वमनं हन्ति [६]नस्यं च कुशलेन प्रयोजितम् ।
शिरोगतं शिरोवस्तिर्हन्ति वाऽसृग्विमोक्षणम् ॥ १९ ॥

---

१ सर्ववातविकारिणां भोजनानि निर्दिशति—**पञ्चमूलीति** । पञ्चमूली = द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्ता आद्या द्वितीया वा, फलाम्लः = दाडिमाद्यम्लः, रसः = छागमांसरसः, सुस्निग्धः = स्नेहयुक्तः, धान्ययूषः = कुलत्थादिवातहरधान्ययूष इत्यर्थः । सुस्निग्धशब्दस्य रसशब्देनापि सम्बन्ध इति बोध्यम् । अत्र क्षीरादीनां प्रयोगो दोषप्रकृतिसात्म्यापेक्षया कर्तव्यः ।

२ कथम्भूतः काकोल्यादिः सवातघ्नः वातघ्नैर्भद्रदार्वादिभिर्विदारिगन्धादिभिर्वर्तत इति सवातघ्नः, पुनः सर्वैरम्लद्रव्यैः शुक्ताम्लिकसुरासौवीरकदधिमस्त्वादिभिः संयुत इति सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः, पुनः आनूपौदकमांसेन सह वर्तत इति सानूपौदकमांसः, अत्र आनूपाः कूलचराः, औदकाः कोशस्थाः पादिनो मत्स्याश्च ग्राह्याः, सर्वस्नेहैः घृततैलवसामज्जभिः समन्वितः, सुखोष्णः ईषदुष्णः—स्पष्टलवणः, स्पष्टानि व्यक्तानि लवणानि सैन्धवादीनि यत्र सः ।

एषां भागमानमाह डल्हणः—"मांसेनात्रौषधं तुल्यं यावताऽम्लेन चाम्लता । तावन्तश्च चतुःस्नेहाः स्निग्धत्वं च यथा भवेत् ॥" इति । ३ कुञ्च्यमानं = सङ्कोच्यमानम्, रुजार्तं = वेदनाऽऽर्त्तम्, ४ "अक्ष्णोः सन्धिषु च शिथिलः" इत्युपदेशाद-क्षिसन्धी विहाय गाढमित्युपदेशः । ५ उन्द्रः = 'ऊदबिलाड़' इति भाषायां प्रसिद्धः । 'नकुलोष्ट्राणाम्' इति पाठे उष्ट्रः 'ऊंट' इति ख्यातः । चर्मगोण्यां = चर्मकोशे । ६ नस्यं =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नेहं मात्रा[1]सहस्रं तु धारयेत्तत्र योग[2]तः।
सर्वाङ्गगतमेकाङ्गस्थितं वाऽपि समीरणम्॥ २०॥
रुणद्धि केवलो बस्तिर्वायुवेगमिवाचलः।
स्ने[3]स्वेदस्तथाऽभ्यङ्गो बस्तिः स्नेहविरेचनम्॥ २१॥
शिरोबस्तिः शिरःस्नेहो धूमः स्नैहिक एव च।
सुखोष्णः स्नेहगण्डूषो नस्यं स्नैहिक एव च॥ २२॥
रसाः क्षीराणि मांसानि स्नेहाः स्नेहान्वितं च यत्।
भोजनानि फलाम्लानि स्निग्धानि लवणानि च॥ २३॥
सुखोष्णः परीषेकस्तथा संवाह[4]नानि च।
कुङ्कुमागुरुपत्र[5]माणि कुष्ठैलातगराणि च॥ २४॥
कौशेयौर्णिकरोमाणि कार्पासानि गुरूणि च।
निवातातपयुक्तानि तथा गर्भ[6]गृहाणि च॥ २५॥
मृद्वी शय्याऽग्निसन्तापो ब्रह्मचर्य्यं तथैव च।
समासेनैवमादीनि योज्यान्यनिलरोगिषु॥ २६॥

त्रिवृद्दन्तीसुवर्णक्षीरीसप्तलाशङ्खिनीत्रिफलाविडङ्गानामक्ष[8]समाः भागाः, बिल्वमात्रः कल्कस्तिल्वकमूलकर्कम्पिल्लकयोः[9], त्रिफलारसदधिपात्रे द्वे द्वे, घृतपात्रमेकं, तदैकध्यं संसृज्य विपचेत्; तिल्वकसर्पिरेतत् स्नेहविरेचनमुपदिशन्ति वातरोगिषु। तिल्वकविधिरेवाशोकर[10]म्यकयोर्द्रष्टव्यः॥ २७॥

---

शिरोविरेचनम्। १ मात्रा=लघ्वक्षरोच्चारणोपलक्षितः कालविशेषः। "वामजानुनि तद्धस्तभ्रमणं यावता भवेत्। कालेन मात्रा सा ज्ञेया मुनिभिर्वेदपारगैः॥" इत्यादिकं बोध्यम्। २ योगतः=युक्तितः, 'योगोऽपूर्वार्थसम्प्राप्तौ सङ्गतिध्यानयुक्तिषु' इति मेदिनी। युक्तेर्व्याख्यामुत्तरतन्त्रस्य क्रियाकल्पे करिष्यते।

३ अधुना उक्तानुक्तसर्ववातव्याधीनां सामान्यचिकित्सामाह—**स्नेहेति**। ४ संवाहनानि=सुखकराङ्गमर्दनानि। ५ पत्रं=तेजपत्रम्। ६ गर्भगृहाणि=अभ्यन्तरगृहादीनि। ७ वातरोगिणां स्नेहविरेचने तिल्वकसर्पिः प्रतिपादयति—**त्रिवृदिति**। योगेषु सप्तलाया अभावे 'कालादाना' इति दीयते। ८ अक्षसमाः=तोलकप्रमाणा इत्यर्थः। ९ कम्पिल्लकः=एलावृक्षः। १० रम्यकः=पटोलमूलम्,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिलपरिपीडनोपकरणकाष्ठान्याहृत्यानल्पकालं तैलपरिपीतान्यणूनि खण्डशः कल्पयित्वाऽवक्षुद्य महति कटाहे पानीये आप्लाव्य क्वाथयेत्, ततः स्नेहमम्बुपृष्ठाद्यदुदेति तत् सरकपाण्योरन्यतरेणादाय वातघ्नौषधप्रतीवापं च स्नेहपाककल्पेन विपचेत्; एतदणुतैलमुपदिशन्ति वातरोगेषु। अणुभ्यस्तैलद्रव्येभ्यो निष्पाद्यते इत्यणुतैलम् ॥ २८ ॥

अथ महापञ्चमूलकाष्ठैर्बहुभिरवदह्यावनिप्रदेशमसितं मुषितमेकरात्रमुपशान्तेऽग्नावपोह्य भस्म निवृत्तां भूमिं विदारिगन्धादिसिद्धेन तैलघटशतेन तुल्यपयसाऽभिषिच्यैकरात्रमवस्थाप्य ततो यावती मृत्तिका स्निग्धा स्यात्तामादायोष्णोदकेन महति कटाहेऽभ्यासिञ्चेत्; तत्र यत्तैलमुत्तिष्ठेत्तत्पाणिभ्यां पर्य्यादाय स्वनुगुप्तं निदध्यात्। ततस्तैलं वातहरौषधक्वाथमांसरसक्षीराम्लभागसहस्रेण सहस्रपाकं विपचेद्यावता कालेन शक्नोति पक्तुं, प्रतिवापश्चात्र हैमवतीं दक्षिणापथगाश्च गन्धा वातघ्नानि च, तस्मिन् सिध्यति शङ्खानाध्मापयेद् दुन्दुभिं घातयेच्छत्रं धारयेद्व्यालव्यजनैश्च वीजयेद्ब्राह्मणसहस्रं भोजयेत्, तत् साधु सिद्धमवतार्य सौवर्णे राजते

---

पर्वतनिम्ब इति डल्हणः।

१ अणुतैलनिर्माणप्रकारमुपदिशति—**तिलेति**। तिलपरिपीडनोपकरणकाष्ठानि चक्रयष्टिमकटिकादीनि आहृत्य आनीय अनल्पकालं चिरकालं तैलपरिपीतानि तैलभावितानि खण्डशः अणूनि सूक्ष्माणि कल्पयित्वा कारयित्वा, अवक्षुद्य सम्यक् पिष्ट्वा चूर्णयित्वा च, महति कटाहे पानीये आप्लाव्य प्रक्षिप्य क्वाथयेत्। अम्बुपृष्ठात् पानीयोपरि यदुदेति यदुत्पद्यते, तत् सरकपाण्योः मृण्मयपात्रहस्तयोः अन्यतरेण आदाय गृहीत्वा वातघ्नौषधप्रतीवापं भद्रदार्वादिभेषजकल्कं स्नेहपाककल्पेन विपचेदित्यर्थः। २ निष्पाद्यते = निष्पीड्यते।

३ शतपाकं सहस्रपाकं च तैलं निर्दिशति—**अथेति**। ४ असितं = कृष्णवर्णम्। ५ अपोह्य = भस्म निस्सार्य, निवृत्तां = शान्तदाहां भूमिमित्यर्थः। ६ अभ्यासिञ्चेत् = प्लावयेत्। ७ हैमवताः = उत्तरापथसम्भूताः, गन्धाः = कस्तूरीशटीकुष्ठजटामांसीसरलसुरदारुमुरादयः, दक्षिणपथगाः = चन्दनजातीफलकङ्कोललवङ्गादयः। ८ शङ्खा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृन्मये वा पात्रे स्वनुगुप्तं निदध्यात् । तदेतत् सहस्रपाकमप्रतिवारवीर्यं राजार्हं तैलम् । एवं भागशतविपक्वं शतपाकम् ॥ २९ ॥

गन्धर्वहस्तमुष्ककनक्तमालाटरूषकपूतीकारग्वधचित्रकादीनां पत्राण्यार्द्राणि लवणेन सहोदूखलेऽवक्षुद्य स्नेहघटे प्रक्षिप्यावलिप्य गोशकृद्भिर्दाहयेत्; एतत्पत्रलवणमुपदिशन्ति वातरोगेषु । इति पत्रलवणम् ॥ ३० ॥

एवं स्नुहीकाण्डवार्ताकुशिग्रुलवणानि सङ्क्षुद्य घटं पूरयित्वा सर्पिस्तैलवसामज्जभिः प्रक्षिप्यावलिप्य गोशकृद्भिर्दाहयेत्; एतत् स्नेहलवणमुपदिशन्ति वातरोगेषु । इति काण्डलवणम् ॥ ३१ ॥

गण्डीरपलाशकुटजबिल्वार्कस्नुह्यपामार्गपाटलापारिभद्रकनादेयीकृष्णगन्धानीपनिम्बनिर्दहन्यटरूषकनक्तमालकपूतिकबृहतीकण्टकारिकाभल्लातकेङ्गुदीवैजयन्तीकदलीवाष्पद्वयेक्षुरकेन्द्रवारुणीश्वेतमोक्षकाशोका इत्येवं वर्ग समूलपत्रशाखमार्द्रमाहृत्य लवणेन सह संसृष्टं पूर्ववदग्ध्वा क्षारकल्पेन परिस्राव्य विपचेत्; प्रतिवापश्चात्र हिङ्ग्वादिभिः पिप्पल्यादिभिर्वा । इत्येतत् कल्याणकलवणं वातरोगेषु गुल्मप्लीहाग्निपङ्गाजीर्णार्शोऽरोचकार्त्तानां का-

---

नाध्मापयेदित्याद्याः स्तुतयः । १ शतपाक विद्यादिति शेषः ।

२ वातरोगेषु कफप्रायेषु पत्रलवणमुपदिशति—**गन्धवति** । गन्धर्वहस्तः=एरण्डः । ३ लवणेन=सर्वपत्रसमसैन्धवलवणेनेत्यर्थः । ४ वातरोगेषु वातप्रायेषु काण्डलवणमभिधत्ते—**एवमिति** । अत्र सर्पिरादिचतुःस्नेहस्य सैन्धवलवणस्य च सर्वद्रव्यसमत्वं बोध्यम् । ५ कल्याणकलवणं प्रतिपादयति—**गण्डीरेति** । गण्डीरो द्विविधः=स्थलजो जलजश्च, स्थलजः 'गांड़र' इति ख्यातः, जलजः 'जलपीपल' इति ख्यातः । ६ नादेयी=भूमिजम्बूः, 'नादेयी नागरङ्गे स्याज्जयायां जलबेतसे । भूमिजम्ब्वां जयायां च काङ्क्षुष्ठे च समीक्ष्यते ॥' इति विश्वः । कृष्णगन्धा=शोभाञ्जनः । ७ निर्दहनी='मोरटा' इति ख्यातः ।

८ बाष्पद्वयं=बाष्पिकाद्वयं, तच्च लोहितं कृष्णं च सिन्धुविषये । केचिद् वर्षाभूद्वयमिति पठन्तीति डल्हणः । इक्षुरकः='तालमखाना' इति ख्यातः । 'बाष्पद्वयेक्षुरकेन्द्रवारुणी' इति पाठे 'वर्षाभूहीवेरक्षुरकेन्द्रवारुणी' इति श्रीहाराणचन्द्र सम्मतपाठः । तत्रापि क्षुरकः कोकिलाक्षः । ९ आहृत्य=आनीय, उलूखले सङ्कुट्येत्यर्थः । लवणेन=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सादिभिरुपद्रुतानां चोपदिशन्ति पानभोजनेष्वपीति ॥ ३२ ॥

भवति चात्र ।

विष्यन्दनादुष्णभावाद्दोषाणां च विपाचनात् ।
संस्कारपाचनाच्चेदं वातरोगेषु शस्यते ॥ ३३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने वातव्याधिचिकित्सितं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

## पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो महावातव्याधिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

द्विविधं वातशोणितमुत्तानमवगाढं चेत्येके भाषन्ते । तत्तु

---

सर्वौषधितुल्यसैन्धवलवणेनेत्यर्थः । १ एतल्लवणयोगप्रशंसामाचष्टे—**विष्यन्दनादिति** । विष्यन्दनात्=मूत्रपुरीषादीनां क्षरणादित्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्थोऽध्यायः ।**

---

### पञ्चमोऽध्यायः ।

२ पूर्वाध्याये क्षुद्रवातव्याधीनां चिकित्सितमुक्त्वाऽधुना महावातव्याधिचिकित्सितमा रभते—**अथेति** । महान्तश्च ते वातव्याधय इति महावातव्याधयस्तेषां चिकित्सितमित्यर्थः । एषां महत्त्वं तु दुःसाध्यत्वेन असाध्यत्वेन च बोध्यम् । ३ वातशोणिताख्यो व्याधिः प्रायो वातव्याधिविशेष एव, शोणितयुक्तेन वायुना कृतत्वात् । द्वयोर्दुष्टत्वेऽपि वातस्य प्राबल्याद्दोषत्वेन प्राधान्याद् वातरक्तव्यपदेशः, न तु रक्तवात इति । तदुक्तम्–"हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्च विदाह्यन्नं स विदाहोऽशनस्य । कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च स्रस्तं दुष्टं पादयोश्चीयते तु । तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्याद्दुच्यते वातरक्तम् ॥" इति ।

चरकादौ वातशोणिताध्यायस्य पृथक्करणं निदानवैशिष्ट्याद् विशिष्टदोषदूष्यख्यापनार्थं हस्तादिदेशे एव सम्प्राप्तिकथनार्थं क्रियाविशेषख्यापनार्थं च बोध्यम् । "तस्य स्थानं करौ पादावङ्गुल्यः सर्वसन्धयः । कृत्वाऽऽदौ हस्तपादे तु मूलं देहे विधावति ॥" इति चरकः । उत्तानं=त्वङ्मांसाश्रयम् , अवगाढम्=अन्ताश्रयम् , त्वङ्मांसव्यतिरिक्तधात्वाश्रयमिति यावत् । 'उत्तानमथ गम्भीरं द्विविधं तत्प्रचक्षते । त्वङ्मांसा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न सम्यक्, तद्धि कुष्ठवदुत्तानं भूत्वा कालान्तरेणावगाढीभवति, तस्मान्न द्विविधम् ॥ ३ ॥

तत्र बलवद्भिग्रहादिभिः प्रकुपितस्य वायोर्गुरूष्णाध्यशनशीलस्य[1] प्रदुष्टं शोणितं मार्गमावृत्य वातेन सहैकीभूतं युगपद्वातरक्तनिमित्तां वेदनां जनयतीति वातरक्तम्[2]। तत्तु पूर्वं हस्तपादयोरवस्थानं कृत्वा पश्चाद् देहं व्याप्नोति। तस्य पूर्वरूपाणि-तोददाहकण्डूशोफस्तम्भत्वक्पारुष्यसिरास्नायुधमनीस्पन्दनसक्थिदौर्बल्यानि श्यावरक्तमण्डलोत्पत्तिश्चाकस्मात्पाणिपादतलाङ्गुलिगुल्फमणिबन्धप्रभृतिषु। तत्राप्रतिकारिणोऽपचारिणश्च[3] रोगो व्यक्तः, तस्य लक्षणमुक्तम्[4]। तत्राप्रतिकारिणो वैकल्यं भवति ॥ ४ ॥

भवति चात्र।

प्रायशः सुकुमाराणां[5] मिथ्याहारविहारिणाम्।
स्थूलानां सुखिनां चापि वातरक्तं प्रकुप्यति ॥ ५ ॥

तत्र[6] प्राणमांसक्षयपिपासाज्वरमूर्च्छाश्वासकासस्तम्भारोचकाविपाकविसर्पणसङ्कोचनैरुपद्रुतं बलवन्तमात्मवन्तमुपकरणवन्तं चोपक्रमेत् ॥ ६ ॥

---

श्रयमुत्तानं गम्भीरं त्वन्तराश्रयम्॥" इति चरकः। एके=आत्रेयादयः।

अत्र चक्रपाणिना सुश्रुतचरकविरोधपरिहारः कृतः—'सुश्रुतेन यद् द्वैविध्यमुक्तं तदाचार्ययोः परमात्मनोः सुश्रुताग्निवेशयोरेकस्याप्यप्रामाण्यं न सङ्गतमिति कृत्वाऽविरोधमेवात्र व्याख्यानयामः। तथा हि—सुश्रुतेन उत्तानं वातशोणितं कुष्ठवद् गम्भीरं भवतीत्युच्यते, न तु सर्वमेव उत्तानं भूत्वा गम्भीरं भवतीति प्रतिज्ञायते। तेन यो ब्रूते—उत्तानमेवावतिष्ठते तं प्रति सुश्रुतवचनं बाधकम्। चरके तु उत्तानमेवावतिष्ठते इति नोच्यते एव, किन्तु प्रथमोत्पत्तौ किञ्चिदुत्तानमुत्पद्यते, किञ्चित्त गम्भीरमिति। तेन न विरोधश्चरकसुश्रुतयोः'इति।

१ 'अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते'इति। २ चरकेऽपि—"वायुर्विवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावारितः पथि। कृत्स्नं सन्दूषयेद्रक्तं तज्ज्ञेयं वातशोणितम्॥"इति। ३ अपचारिणः=अयथार्थकारिण इत्यर्थः। ४ निदानस्थाने इति शेषः। ५ सुकुमाराणां=मृदुदेहावयवानाम्। ६ साध्यानां वातरोगिणां लक्षणमभिधत्ते—तत्रेति। प्राणः=बलम्, मांसक्षयः=मांसगलनम्। ७ विसरणम्=अतिसारः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]तत्र, आदावेव बहुवातरूक्षम्लानाङ्गादृते मार्गावरणाद्[2] दुष्टशोणितमसकृदल्पाल्पमवसिञ्चेद्वातकोपभयात्[3] । [4]ततो वमनादिभिरुपक्रमैरुपपाद्य प्रतिसंसृष्टभक्तं[5] वातप्रबले पुराणघृतं पाययेत्[6]; अजाक्षीरं चार्द्धतैलं मधुकाक्षयुक्तं, शृगालविन्नासिद्धं वा शर्करामधुमधुरं, शुण्ठीशृङ्गाटककशेरुकसिद्धं, श्यामारास्नासुषवीशृगालविन्नापीलुशतावरीश्वदंष्ट्राद्विपञ्चमूलीसिद्धं वा, द्वि ञ्चमूलीक्वाथाष्टगुणसिद्धेन च पयसा मधुकमेषशृङ्गीश्व ष्ट्रासरलभद्रदारुवचासुर[8]भिकल्कप्रतीवापं[9] तैलं पाचयित्वा पानादिषूपयुञ्जीत, शतावरी[10] मयूरककिणिह्यजमोदामधुकक्षीरविदारीबलाऽतिबलातृणा[11] पञ्चमूलीकाथसिद्धं वा काकोल्यादिप्रतिवापं, बलातैलं[12] शतपाकं वेति । [13]वातहरमूलसिद्धेन च पयसा परिषेचनमम्लैर्[14] वा कुर्वीत । यवसमधुकैरण्डतिलवर्षाभूभिर्वा प्रदेहः कार्यः । तत्र[15] चूर्णितेषु यवगोधूमतिलमुद्गमाषेषु प्रत्येकशः काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकबलाऽतिबलाबिसमृणालशृगालविन्नामेषशृङ्गीप्रियालशर्कराकशेरुकसुरभिवचाकल्कमिश्रेषूपनाहाथ सर्पिस्तैलवसामज्जदुग्धसिद्धाः पञ्च पायसा व्या-

---

१ दूष्यचिकित्सामाचष्टे—**तत्रेति** । २ मार्गावरणात्=शोणितेन वायोर्मार्गनिरोधादित्यर्थः । ३ अवसिञ्चेत्=स्रावयेत् । ४ दोषचिकित्सितमभिधत्ते—**तत इति** । ५ प्रतिसंसृष्टभक्तं=पेयादिक्रमेणान्नं भुक्तवन्तम् । वातप्रबले वातरक्ते इत्यर्थः । ६ अजाक्षीरस्य भागद्वयं तैलस्यैक इत्यर्थः । अक्षः=कर्षः, तोलकमिति यावत् । शृगालविन्ना=पृश्निपर्णी । ७ सुषवी=कारवेल्लः, 'सुषवी कृष्णजीरके । कारवेल्ले च जीरे च' इति हैमः ।

८ पुराणघृततैलं निर्दिश्य पक्वतैलं निर्दिशति—**द्विपञ्चमूलीति** । द्विपञ्चमूलीं कषायकल्पेन विपाच्य पादशेषेण तेनाष्टगुणेन क्षीरं साधयेत । क्षीरशेषमवतार्य तेन मधुकादिकल्कयुक्तं तैलं साधयेदिति । ९ सुरभिः=रास्ना, प्रतीवापः=प्रक्षेपः । १० 'अपामार्गः शैखरिको धामार्गवमयूरकौ' इत्यमरः । ११ तृणपञ्चमूली=कुशकाशनलदर्भकाण्डेक्षुका इति द्रव्यसङ्ग्रहणीयोक्तास्तृणसंज्ञका । १२ शतपाकं बलातैलं मूढगर्भचिकित्सिताध्याये वक्ष्यते ।

१३ अन्तःपरिमार्जनेमभिधाय बहिःपरिमार्जनमभिधत्ते—**वातेति** । वातहरमूलानि दशमूलादीनि । १४ अम्लैः=सुरासौवीरकतुषोदकादिभिः । १५ वाताधिक्यवातरक्त-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख्याताः ; स्नैहिकफलसारोत्कारिका वा, चूर्णितेषु यवगोधूमतिल-मुद्गमाषेषु विचित्रमत्स्यपिशितवेशवारो वा, बिल्वपेशिकातगर-देवदारुसरलोरास्नाहरेणुकुष्ठशतपुष्पैला सुरादधिमस्तुयुक्त उपनाहः, मातुलुङ्गाम्लसैन्धवघृतमिश्रं मधुशिग्रुमूलमालेपस्तिलकल्कश्चेति वातप्रबले ॥ ७ ॥

पित्तप्रबले द्राक्षारेवतकट्फलपयस्यामधुकचन्दनकाश्मर्यकषायं शर्करामधुमधुरं पाययेत् । शतावरीमधुकपटोलत्रिफलाकटुरोहिणी-कषायं गुडूचीकषायं वा पित्तज्वरहरं चन्दनादिकषायं शर्करामधुम-धुरं, मधुरतिक्तकषायसिद्धं वा सर्पिः । बिसमृणालभद्रश्रियपद्मक-कषायेणार्द्धक्षीरेण परिषेकः । क्षीरेक्षुरसमधुशर्करातण्डुलोदकैर्वा द्राक्षेक्षुकषायमिश्रैर्मस्तुमद्यधान्याम्लैः, जीवनीयसिद्धेन वा सर्पिषा-ऽभ्यङ्गः, शतधौतघृतेन वा, काकोल्यादिकल्कविपक्वेन वा सर्पिषा । शालिषष्टिकनलवञ्जुलतालीशशृङ्गाटकगलोडचगौरीगैरिकशैवलप-द्मकपद्मपत्रप्रभृतिभिर्धान्याम्लपिष्टैः प्रदेहो घृतमिश्रः । वातप्रबले-ऽप्येष सुखोष्णः प्रदेहः कार्यः ॥ ८ ॥

रक्तप्रबलेऽप्येवं, बहुशश्च शोणितमवसेचयेत्, शीततमाश्च प्रदेहाः कार्या इति ॥ ९ ॥

श्लेष्मप्रबले त्वामलकहरिद्राकषायं मधुमधुरं पाययेत् । त्रिफ-

---

चिकित्सामुपदिशति-**तत्रेति** । १ स्नैहिकफलानां तिलैरण्डातसीविभीतकादीनां सा-रो मज्जा, उत्कारिका लप्सिकाऽऽकारा । २ पिशितवेशवारः = मांसमयो वेशवारः । "मांसं निरस्थि सुस्विन्नं पुनर्दृषदि पेशितम् । पिप्पलीशुण्ठिमरिचगुडसर्पिःसमन्वितम् । ऐकध्यं विपचेत् समग्वेशवार इति स्मृतः ॥" इति सूदशास्त्रम् । बिल्वपेशिका = अति-कोमला बिल्वगिरः । ९ सरला = त्रिवृत् ।

३ पित्तप्रबलवातरक्तचिकित्सामाचष्टे-**पित्तेति** । आरेवतकः 'अमलतास' इति ख्यातः । कट्फलं = 'कायफल' इति ख्यातम्, पयस्या = अर्कपुष्पी, अन्ये क्षीरवि-दारीमाहुः । ४ गलोडयः = यवबीजम्, 'गलौड़' इति श्रीहाराणचन्द्रसम्मत-पाठः, तत्र स गलो गडकमत्स्यः 'गड़ई' इत्याख्यायते, ओड़ो जपापुष्पमिति व्याख्या-तवान् । गौरी = हरिद्रा । ५ श्लेष्मप्रबलवातरक्तचिकित्सामभिधत्ते-**श्लेष्मेति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाकषायं वा; मधुकशृङ्गवेरहरीतकीतिक्तरोहिणीकल्कं वा सक्षौद्रं मूत्रतोययोरन्यतरेण गुडहरीतकीं वा भक्षयेत्। तैलमूत्रक्षारोदक-सुराशुक्तकफघ्नौषधनिःक्वाथैः परिषेकः। आरग्वधादिकषायैर्वोष्णैः। मस्तुमूत्रसुराशुक्तमधुकसारिवापद्मकसिद्धं वा घृतमभ्यङ्गः। तिल-सर्षपातसीयवचूर्णानि श्लेष्मातककपित्थमधुशिग्रुमिश्राणि क्षारमूत्रपिष्टानि प्रदेहः। श्वेतसर्षपकल्कः, तिलाश्वगन्धाकल्कः, शेलुक-पित्थप्रियालकल्कः, मधुशिग्रुपुनर्नवाकल्कः, व्योषतिक्तापृथक्पर्णी-बृहतीकल्क इत्येते पञ्च प्रदेहाः सुखोष्णाः क्षारोदकपिष्टाः, शालिप-र्णी पृश्नीपर्णी बृहत्यौ वा क्षीरपिष्टास्तर्पणमिश्राः॥ १०॥

संसर्गे सन्निपाते च क्रियापथमुक्तं मिश्रं कुर्यात्। [३]वेषु च गुडहरीतकीमासेवेत, पिप्पलीर्वा क्षीरपिष्टा वारिपिष्टा वा [४]पञ्चाभि-वृद्ध्या दशाभिवृद्ध्या वा पिबेत् क्षीरौदनाहारो दशरात्रं, भूयश्चा-पकर्षयेत्, एवं यावत् पञ्च दश वेति। तदेतत् पिप्पलीवर्द्धमानकं वातशोणितविषमज्वरारोचकपाण्डुरोगप्लीहोदरार्शःकासश्वासशोफ-शोषातिसारहृद्रोगोदराण्युपहन्ति; जीव[५]नीयप्रतीवापं सर्पिः पयसा पाचयित्वाऽभ्यञ्यात्॥ ११॥

[६]सहासहदेवाचन्दनमूर्वामुस्ताप्रियालशतावरीकशेरुपद्मकमधु-कशतपुष्पाकुष्ठानि क्षीरपिष्टः प्रदेहो घृतमण्डयुक्तः, सै[७]रेयकाटरूष-कबलाजीवन्तीसु[८]वीकल्को वा छागक्षीरपिष्टः, गोक्षीरपिष्टः, काश्म-

---

१ क्षारोदकं क्षारपाकविध्यध्याये प्रागुक्तम्। कफघ्नौषधानां कटुतिक्तकषायाणां निः-क्वाथैरित्यर्थः २ तर्पणमिश्राः=यवशक्तुसम्मिश्राः।

३ शुद्धदेहस्य सामान्यचिकित्सां ब्रवीति—**सर्वेष्विति**। ४ यथा प्रथमदिवसे पञ्च पिप्पल्यः, द्वितीयदिवसे दश, अथवा प्रथमदिवसे दश, द्वितीयदिवसे विंशतिः, एवं दशरात्रं वर्धनं कुर्यात्। दशदिनानन्तरं तेनैव क्रमेण दैनन्दिनं पञ्च दश वा हापयेत्, यावदारम्भदिनस्य पञ्च दश वा संख्या नागच्छेत्। पञ्चदशात्मिका द्वेधा मात्रापरिक-ल्पना बलाद्यनुसारेण बोध्या। ५ जीवनीयानि=द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तानि काको-ल्यादीनि। ६ सहा=माषपर्णी, सहदेवा='सहदेई' इति प्रसिद्धा, चन्दनं प्रसि-द्धम, मूर्वा='मरोड़फली' इति ख्याता। ७ सुषवी=कारवेल्लकः इति बोध्यम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्यमधुकतर्पणकल्को[1] वा, मधूच्छिष्टमञ्जिष्ठासर्जरससारिवाक्षीरसिद्धं पिण्डतैलमभ्यङ्गः[2]। सर्वेषु[3] पुराणघृतमामलकरसविपक्वं वा पानार्थे, जीवनीयसिद्धं[4] परिषेकार्थे, काकोल्यादिकाथकल्कसिद्धं वा, सुषवीक्वाथसिद्धं वा, कारवेल्लकक्वाथमात्रसिद्धं वा, बलातैलं[5] वा परिषेकावगाहबस्तिभोजनेषु, शालिषष्टिकयवगोधूमान्नमनवं भुञ्जीत पयसा[6] जाङ्गलरसेन वा मुद्गयूषेण वाऽनम्लेन। शोणितमोक्षाभीक्ष्णं कुर्वीत; उच्छ्रिते च दोषे वमनविरेचनास्थापनानुवासनकर्म[7] कर्त्तव्यम् ॥ १२ ॥

पटोलत्रिफलाभीरुगुडूचीकटुकाकृतम् ।
क्वाथं पीत्वा जयत्याशु वातशोणितजां रुजम् ॥ १३ ॥

भवन्ति चात्र ।

एवमाद्यैः क्रियायोगैरचिरोत्पतितं सुखम् ।
वातासृक् साध्यते वैद्यैर्याप्यते तु चिरोत्थितम् ॥ १४ ॥
उपनाहपरीषेकप्रदेहाभ्यञ्जनानि च ।
शरणान्यप्रवातानि मनोज्ञानि महान्ति च ॥ १५ ॥
मृदुगण्डोपधानानि[9] शयनानि सुखानि च ।
वातरक्ते प्रशस्यन्ते मृदुसंवाहनानि[10] च ॥ १६ ॥
व्यायामं[11] मैथुनं कोपमुष्णाम्ललवणाशनम् ।

---

१ तर्पणं = यवचूर्णम् ।

२ कल्कयोगेन पिण्डं सान्द्रं तैलं पिण्डतैलमित्यर्थः । 'पिण्डो बोले बले सान्द्रे देहागारैकदेशयोः । देहमात्रे निवापे च गोलसिल्हकयोरपि ॥ श्रोण्ड्पुष्पे च पुंसि स्यात् क्लीबमाजीवनायसोः' इति मेदिनी । ३ सर्वेषु=पञ्चस्वपि वातरक्तेष्वित्यर्थः । ४ जीवनीयसिद्धं = काकोल्यादिसिद्धम्, 'घृतम्' इति शेषः । ५ मूढगर्भोक्तं बलातैलमित्यर्थः । ६ पित्तप्रधाने पयसा, वातप्रधाने जाङ्गलरसेन, श्लेष्मप्रधाने मुद्गरसेन सात्म्यापेक्षया वा भुञ्जीतेत्यर्थः । ७ सामान्येनोक्तमपि कफोत्कटे वमनं, पित्तरक्तोत्कटे विरेचनं, वातोत्कटे च अनुवासनास्थापनेतत्कर्मद्वयं कर्तव्यम् । ८ शरणानि=गृहाणि, 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः ।

९ गण्डपदेन मस्तकादीनामप्युपधानानि, 'उपधानं तूपबर्हः' इत्यमरः ; 'तकिया' इति लोके । १० संवाहनानि = करपादादिमर्दनानि । ११ निषिद्धौ आहाराचारौ दर्श-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिवास्वप्नमभिष्यन्दि गुरु चान्नं विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

अपतानकिनमस्रस्ताङ्गमवक्रभ्रुवमस्तब्धमेढ्रमस्वेदनमवेपनम-प्रलापिनमखट्वापातिनमबहिरायामिनं चोपक्रमेत् । तत्र प्रागेव स्नेहाभ्यक्तं स्विन्नशरीरमवपीडनेन तीक्ष्णेनोपक्रमेत शिरःशुद्ध्यर्थम् । अनन्तरं च विदारिगन्धादिक्वाथमांसरसक्षीरदधिपक्वं सर्पिरच्छं पाययेत्, तथा हि नातिमात्रं वायुः प्रसरति; ततो भद्रदार्वादिवातघ्नगणमाहृत्य सयवकोलकुलत्थं सानूपौदकमांसं पञ्चवर्गमेकतः प्रक्वाथ्य तमादाय कषायमम्लक्षीरैः सहोन्मिश्रच सर्पिस्तैलवसामज्जभिः सह विपचेन्मधुरकप्रतीवापम् । तदेतत् त्रै-

---

यति–व्यायाममिति । अत्र "पुराणा यवगोधूमा नीवाराः शालिषष्टिकाः । भोजनार्थे रसार्थे तु विष्किराः प्रतुदा हिताः ॥ आढक्यश्चणका मुद्गा मसूराः सकुलत्थकाः । यूषार्थे बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता वातशोणिते ॥ सुनिषण्णकवेताग्रकाकमाचीशतावरी । वास्तुकोपोदिकाशाकं शाकं सौवर्चलं तथा ॥ घृतमांसरसैर्भृष्टं शाकं सात्म्याय दापयेत् " इति विहिता अपि द्रष्टव्याः ।

१ अपतानकचिकित्सितमाचष्टे–**अपतानकिनमिति** । अपतानकस्य लक्षणं निदानस्थानस्य प्रथमाध्याये द्रष्टव्यम् । अस्रस्ताङ्गं=नान्तःप्रविष्टनयनम् । २ अखट्वापातिनम्=अशय्याशायिनम्, अबहिरायामिनम्=अपश्चान्मुखनामिनम् । बहिरायामलक्षणं निदानस्थानस्य प्रथमाध्याये द्रष्टव्यम् । ३ अवपीडय दीयत इत्यवपीडस्तेन । ४ शिरःशुद्ध्यर्थं शिरोविरेचनं वातस्य श्लेष्मस्थानगतत्वेन झटिति संज्ञाप्रबोधार्थमिति भावः । तन्त्रान्तरे विशेषः—"विरेच्यः स्नेहपित्वाऽऽदौ स्नेह्युक्तैर्विरेचनैः । रूक्षैर्वा मृदुभिः शस्तमसकृद्वस्तिकर्म च । न हि वस्तिसमं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥" इति ।

५ अनन्तरं=शिरोविरेचनानन्तरम्, विदारिगन्धादिसर्पिरन्तानां द्रव्याणां प्रत्येकशः प्रस्थं ग्राह्यम् । अच्छं=वस्त्रपूतेन निर्मलमित्यर्थः । ६ पानयोग्यं घृतं प्रदर्श्य सर्वकार्योपयोगिनं महास्नेहमभिदधाति–**तत इति** ।

७ पञ्चानां वर्गाणां समाहारः पञ्चवर्गम् । तच्च कुलचराः, प्लवाः, कोशस्थाः, पादिनः, मत्स्याश्च । ८ अम्लानि=सुरासौवीरकधान्याम्लादीनि, क्षीरमाजं गव्यं वेति अम्लक्षीराणि तैः ।

९ मधुरकप्रतीवापं=काकोल्यादिमधुरवर्गकल्कप्रक्षेपम् । अत्र सयवकोलकुलत्थानां यथालाभं भद्रदार्वादिद्रव्याणां च चतुरः प्रस्थान्, आनूपौदकमांसानां च चतुरः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृतमपतानकिनां परिषेकावगाह्याभ्यङ्गपानभोजनानुवासननस्येषु विदध्यात्[1]। यथोक्तैश्च स्वेदैर्[2]विधानैः स्वेदयेत्, बलीयसि वाते सुखोष्णतुषबुसकरीषपूर्णे कूपे निर्दध्यादासुखात्[3], तप्तायां वाऽङ्गारचुल्लयां तप्तायां वा शिलायां सुरापरिषिक्तायां पलाशदलच्छन्नायां शाययेत्, कृशरावेशवारपायसैर्वा स्वेदयेत्। मूलकोरुवूकँस्फूर्जार्जकार्कसप्तलाशङ्खिनीस्वरससिद्धं तैलमपतानकिनां परिषेकादिषूपयोज्यम्। अभुक्तवता पीतमम्लं दधिमरिचवचायुक्तमपतानकं हन्ति, तैलसर्पिर्वसाक्षौद्राणि च। एतच्छुद्धवातापतानकविधानमुक्तं, संसृष्टे संसृष्टं कर्त्तव्यम्, वेगान्तेषु[5] चावपीडं दद्यात्, ताम्रचूडकर्कटकृष्णमत्स्यशिशुमारवराहवसाश्चासेवेत, क्षीराणि वा वातहरसिद्धानि, यवकोलकुलत्थमूलकदधिघृततैलसिद्धां वा यवागूं, स्नेहविरेचनास्थापनानुवासनैश्चैनं दशरात्राद्धृतवेगमुपक्रमेत्। वातव्याधिचिकित्सितं चावेक्षेत; रक्षाकर्म[7] च कुर्यादिति ॥ १८ ॥

पक्षाघातोपद्रुतमम्लानगात्रं सरुजमात्मवन्तमुपकरणवन्तं चोपक्रमेत्[8]। तत्र प्रागेव स्नेहस्वेदोपपन्नं मृदुना शोधनेन संशोध्यानुवास्यास्थाप्य च यथाकालमाक्षेपकविधानेनोपचरेत्[9]। वैशेषिकश्चात्र

---

प्रस्थानेकीकृत्य अष्टगुणे जले पक्त्वा पादावशिष्टं कषायमम्लक्षीरयोः प्रत्येकशः चतुःप्रस्थेन सम्मिश्रय तेन सर्पिरादीनां चतुर्णां चतुःप्रस्थं मधुरककल्कं विपचेदिति तात्पर्यम्। १ त्रिभिस्तैलादिभिर्वृतं सर्पिस्त्रैवृतम्। २ स्वेदविधानैः = स्वेदावचारणीयाभिहितैः। ३ विदध्यात् = स्थापयेद् रोगिणमित्यर्थः।

४ उरुवूकः = शुक्लैरण्डः, स्फूर्जकः = तिन्दुकः, 'तिन्दुकः स्फूर्जकः' इत्यमरः। अर्जकः = 'सफेद बबई' इति ख्यातः, 'सितेऽर्जकोऽत्र' इत्यमरः। अर्कः प्रसिद्धः, सप्तला = सप्तपर्णः, 'सतवन' इति ख्यातः, शङ्खिनी = 'शंखाहुली' इति ख्याता। मूलकादीनां स्नेहचतुर्गुणेन रसेन सिद्धं, मूलकादिपादकल्कमकल्कं वा पक्त्वा सुखोष्णं परिषेके द्रवस्वेदे इत्यर्थः। आदिशब्दादभ्याङ्गादिष्विति डल्हणः। ५ वेगान्तरेषु = वेगोपरमेषु। ६ ताम्रचूडः = कुक्कुटः, कर्कटः = 'केंकडा' इति, कृष्णमत्स्यः = कुलीरमत्स्याकारोऽशल्क इति डल्हणः। तन्त्रान्तरेऽपि—"कर्कटकुलीरशिशुमारवराहवसाः पाययेत्" इति। ७ रक्षाकर्म प्राग् अग्रोपहरणीयाध्याये व्रणितोपासनीयाध्याये चोक्तम्।

८ पक्षाघातचिकित्सां प्रतिपादयति-पक्षेति। ९ आक्षेपकः = अपतानकः। १० विशेष

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तिष्कशिरोबस्तिः, अणुतैलमभ्यङ्गार्थे, शाल्वणमुपनाहार्थं, बलातैलमनुवासनार्थे, एवमतन्द्रितस्त्रींश्चतुरो वा मासान् क्रियापथमुपसेवेत ॥ १९ ॥

मन्यास्तम्भेऽप्येतदेव विधानम् । विशेषतो वातश्लेष्महरैर्नस्यैरूर्ध्वस्वेदैश्चोपचरेत् ॥ २० ॥

अपतन्त्रकातुरं नापतर्पयेत्, वमनानुवासनास्थापनानि न निषेवेत, वातश्लेष्मापरुद्धोच्छ्वासं तीक्ष्णैः । प्रध्मापनैर्मोक्षयेत्, तुम्बुरुपुष्करार्ह्वहिङ्ग्वम्लवेतसपथ्यालवणत्रयं यवक्वाथेन पातुं प्रयच्छेत्, पथ्याशतार्द्धे सौवर्चलद्विपले चतुर्गुणे पयसि सर्पिः प्रस्थं सिद्धं, वातश्लेष्मापनुच्च कर्म कुर्यात् ॥ २१ ॥

अर्दितातुरं बलवन्तमुपकरणवन्तं च वातव्याधिविधानेनोप-

---

एव वैशेषिकः । श्रीहाराणचन्द्रस्तु—'मस्तिष्कशिरीबस्तिः' इत्यत्र 'मास्तिष्कं शिरोबस्तिश्च शिरःशुद्धयर्थम्'इति पाठं मत्वा मस्तिष्कहितत्वान्मास्तिष्कं स्नेहपिचुधारणमिति व्याख्याति, वक्ति च—वायुर्हि मस्तिष्कगता रक्तवाहिनीर्धमनीः सन्दूष्य तासु च काञ्चिद्वा विपाट्य सव्यं मस्तिष्कभागं प्रपीडयन्नपसव्यं पक्षमाहन्ति, अन्यथा तु सव्यं पक्षमिति निश्चीयते शारीरतत्त्वेन समं निदानवाक्यार्थतत्त्वमनुसन्धाय तेनैवं ब्रूमः रक्तानुपयोगितया यथाऽत्र मास्तिष्कशिरोबस्त्युपदेशेन 'आक्षेपकविधानेनोपाचरेत्' इत्यतिदेशप्राप्तमवपीडनमेकान्तेन प्रतिषिध्यते न तथाऽणुतैलाभ्यङ्गोपदेशे नातिदेशप्राप्तमभ्यङ्गार्थं वातरक्तोपयोगि त्रैवृतं सर्पिः । न चैतदश्रद्धेयं बहुशः परीक्षितत्वादिति ।

अणुतैलमस्यैव स्थानस्य चतुर्थाध्याये द्रष्टव्यम् । २ मूढगर्भोक्तं बलातैलमित्यर्थः । ३ मन्यास्तम्भचिकित्सामुपदिशति—**मन्येति** । ग्रीवायाः पश्चाद्भागे स्थिता सिरा 'मन्या' इत्युच्यते । 'पश्चाद्ग्रीवा सिरा मन्या' इत्यमरः । ४ अपतन्त्रकचिकित्सामभिधत्ते—**अपेति** । तन्त्रान्तरेऽपि—"अथापतन्त्रकेणार्तमातुरं नापतर्पयेत् । निरूढबस्तिं वमनं सेवयेन्न कदाचन ॥ श्वसनाः कफवाताभ्यां रुद्धास्तस्य विमोक्षयेत् । तीक्ष्णैः प्रधमनैः संज्ञां तासु मुक्तासु विन्दति ॥" इति । श्वसनाः = प्रश्वासोच्छ्वासवहा धमनीरिति तदर्थः ।

५ पथ्याशतार्द्धे सर्पिः प्रस्थं सिद्धं पातुं प्रयच्छेदिति योजना । पथ्या हरीतकी शतार्द्धं कल्कीकृतं पञ्चाशत्फलं तस्मिन्नित्यर्थः । ६ अर्दितचिकित्सां वक्ति—**अर्दितेति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरेत्, वैशेषिकैश्च मास्तिष्कशिरोवस्तिनस्यधूमोपनाहस्नेहनाडीस्वेदादिभिः। ततः सतृणं[1] महापञ्चमूलं काकोल्यादिं विदारिगन्धादिमौदकानूपमांसं तथैवौदकंकन्दांश्च[2] संहृत्य द्विगुणोदके क्षीरद्रोणे[3] निःक्वाथ्य पादावशिष्टमवतार्य परिस्राव्य तैलप्रस्थेनोन्मिश्रय पुनरग्नावधिश्रयेत्। ततस्तैलं क्षीरानुगतमवतार्य[4] शीतीभूतमभिमन्त्रीयात्, तत्र यः स्नेहः उत्तिष्ठेत्तमादाय मधुरौषधसहाक्षीरयुक्तं[5] विपचेत्, एतत् क्षीरतैलमर्दितातुराणां पानाभ्यङ्गादिषूपयोज्यम्। तैलहीनं क्षीरसर्पिरक्षितर्पणमिति ॥ २२ ॥

गृध्रसीविश्वाचीक्रोष्टुकशिरःखञ्जपङ्गुलवातकण्टकपाददाहपादहर्षावबाहुकबाधिर्यधमनीगतवातरोगेषु यथोक्तं यथोद्देशं च सिराव्यधं[6] कुर्यात्, अन्यत्रावबाहुकात्; वातव्याधिचिकित्सितं चावेक्षेत ॥ २३ ॥

कर्णशूले[7] तु शृङ्गवेररसं तैलमधुसंसृष्टं सैन्धवोपहितं सुखोष्णं कर्णे दद्यात्, अजामूत्रमधुतैलानि वा, मातुलुङ्गदाडिमतिन्तिडीकस्वरसमूत्रसिद्धं तैलं, शुक्तसुरातक्रमूत्रलवणसिद्धं वा; नाडीस्वेदैश्च[8] स्वेदयेत्, वातव्याधिचिकित्सां चावेक्षेत, भूयश्चोत्तरे वक्ष्यामः॥२४॥

तूणीप्रतूण्योः[10] स्नेहलवणमुष्णोकेन पाययेत्, पिप्पल्यादिचूर्णं

---

१ कुशकाशनलदर्भकाण्डेक्षुकसंज्ञकैस्तृणैः सहितं सतृणमित्यर्थः। महापञ्चमूलं=विल्वादिपञ्चमूलम्। २ औदककन्दान्=कशेरुशृङ्गाटकशालूकादीन्। ३ क्षीरद्रोणे=सार्द्धद्वादशसेटके पयसि। ४ क्षीरानुगतं=दुग्धेन सहैकावयवीभूतम्। ५ मधुरौषधानि काकोल्यादीनि, सहा माषपर्णी क्षीरं चतुर्गुणं तेन युक्तमित्यर्थः। ६ गृध्रस्यादिषु वातव्याधिचिकित्सिते कृते पश्चाच्छोणितावरणं निश्चित्य सिराव्यधं कुर्यादिति निष्कर्षः।

७ कर्णशूलचिकित्सामभिधत्ते-**कर्णेति**। शृङ्गवेररसम्=आर्द्रकरसम्, सैन्धवोपहितं=किञ्चित्सैन्धवलवणेन संयुक्तम्। ८ नाडीस्वेदोऽत्र एकतः प्रदीप्तेन पट्टकाष्टेन अन्येन वा बुद्धिपरिकल्पितेन देय इति सुश्रुतार्थसन्दीपनम्। ९ एकविंशतितमे कर्णगतरोगप्रतिषेधाध्याये इत्यर्थः।

१० तूणीप्रतूणीचिकित्सामाह-**तूणीति**। स्नेहलवणमस्यैव स्थानस्य चतुर्थाध्याये


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा, हिङ्गुयवक्षारप्रगाढं[1] वा सर्पिः, बस्तिभिश्चैनमुपक्रमेत् ॥२५॥

आध्माने[3] त्वपतर्पणपाणितापदीपनचूर्णफलवर्त्तिक्रियापाचनीयदीपनीयबस्तिभिरुपाचरेत्[4]। लङ्घनान्तरं चान्नकाले धान्यकजीरकादिदीपनसिद्धान्यन्नानि । प्रत्याध्माने छर्दनापतर्पणदीपनानि कुर्यात्[5] ॥ २६ ॥

अष्ठीलाप्रत्यष्ठीलयोर्गुल्माभ्यन्तरविद्रधिवत्क्रियाविभाग इति[6]।२७।

हिङ्गुत्रिकटुवचाऽजमोदाधान्याजगन्धादाडिमतिन्तिडीकपाठाचित्रकयवक्षारसैन्धवविडसौवर्चलस्वर्जिकापिप्पलीमूलाम्लवेतसशटीपुष्करमूलहपुषाचव्याजाजीपथ्याश्चूर्णयित्वा मातुलुङ्गाम्लेन बहुशः परिभाव्यार्द्धमात्रां[9] गुटिकां कारयेत्, ततः प्रातरेकैकां वातविकारी भक्षयेत्। एष योगः कासश्वासगुल्मोदरारोचकहृद्रोगाध्मानपार्श्वोदरबस्तिशूलानाहमूत्रकृच्छ्रप्लीहार्शस्तूणीप्रतूणीरपहन्ति ॥२८॥

भवन्ति चात्र ।

केवलो[10] दोषयुक्तो वा धातुभिर्वाऽऽवृतोऽनिलः ।

---

गतम्। १ हिङ्गुयवक्षारप्रगाढं = भृशं हिङ्गुयवक्षारम्, 'प्रगाढं भृशकृच्छ्रयोः' इत्यमरः। 'प्रगाढो दृढकृच्छ्रयोः' इति हैमात् पुंलिङ्गोऽपि प्रगाढशब्दः। २ सामान्यवस्तिग्रहणात्त्रिविधबस्त्यवबोध इति डल्हणः।

३ आध्मानचिकित्सां निर्दिशति—**आध्मान इति**। ४ उदरचिकित्सिते वक्ष्यमाणा मदनफलादिकृता वर्तिः, तस्याः प्रणिधानं फलवर्तिक्रिया। "मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः। गुडक्षारसमायुक्ता फलवर्तिर्निगद्यते ॥" इत्युक्तद्रव्याणामेव व्यवहारः। पाचनीयानि = पञ्चकोलादीनि। ५ क्रियाविभागः = चिकित्साभेदः।

६ हिङ्ग्वादिचूर्णगुटिकानिर्माणप्रकारं निर्दिशति—**हिङ्ग्विति**। ७ अजगन्धा = 'अजवाइन' इति लोके। ८ शटी = 'कचूर' इति लोके, हपुषा = 'हाऊबेर' इति लोके। ९ अक्षमात्रां = तोलकपरिमाणगुटिकामित्यर्थः। हिङ्ग्वादिगुटिका वातगुल्मिनां कृते द्विगुणक्षारहिङ्ग्वम्लवेतसाः कार्याः। उक्तं च—"यच्चूर्णं गुटिका याश्च कर्तव्या वातगुल्मिनाम्। द्विगुणक्षारहिङ्ग्वम्लवेतसास्ता हिता इति ॥" इति डल्हणः।

१० संसृष्टावृतवातचिकित्सां दर्शयति—**केवल इति**। केवलो वातपित्तकफैरसंसृष्टः, दोषयुक्तो वातादिदोषसंयुक्तः, धातुभिः रसरक्तमांसमेदोमज्जशुक्रैः शरीरधारकत्वात् स्वेदोविण्मूत्रैर्वातपित्तकफैश्चावृतो वातः लक्षणोद्देश्यां, लक्षणानि तत्तद्दोषलिङ्गानि। यथा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातस्य—लक्षणं तोदादिकं कृष्णारुणत्वं कम्पादिकं च, पित्तस्य—चोषादिकं पीतादिवर्णत्वं, दाहादिकं, च, कफस्य—कण्डूवादिकं शुक्लादिवर्णत्वं प्रसेकादिकं च। ऊहस्तर्कः, अश्रुतस्य परिकल्पनेति यावत्। विज्ञेयः वैद्यैरिति शेषः। वायोः पित्तकफाभ्यां धातुभिश्चामूत्रैरावरणं युक्तं, वातेन वातस्यावरणं न युक्तमिति चेत्? उच्यते—वायोः वाय्वन्तरेण गतिहननरूपमावरणमुक्तमेव, वायुना वाय्वन्तरेणोपहतेन वातकुण्डलिका बहिरपि दृश्यते च। तेन प्राणादीनां पञ्चानां वातानां परस्परमावार्यावरकभेदेन युक्तमावरणम्।

भगवता चरकेण विंशतिरावरणानि दर्शितानि। तद्यथा—"मारुतानां हि पञ्चानामन्योन्यावरणं शृणु। लिङ्गं व्याससमासाभ्यामुच्यमानं मयाऽनघ॥ प्राणो वृणोत्युदानादीन् प्राणं वृण्वन्ति तेऽपि च। उदानाद्यास्तथाऽन्योन्यं सर्व एव यथाक्रमम्॥ विंशतिर्वरणान्येतान्युल्बणानां परस्परम्। मारुतानां हि पञ्चानां तानि सम्यक् प्रतर्कयेत्॥" इति। 'प्राणो वृणोत्युदानादीन्' इत्यनेन चत्वार्यावरणानि, 'प्राणं वृण्वन्ति च' इत्यनेन च चत्वारि, 'उदानाद्यास्तथाऽन्योन्यम्' इत्यनेन द्वादशावरणान्युच्यन्ते। तत्रोदानेन व्यानादीनां त्रयाणामावरणे त्रीणि, तथा व्यानाद्यैश्चोदानावरणे त्रीणि, तथा व्यानेन समानापानावरणे द्वौ, ताभ्यां च व्यानावरणे द्वौ, परिशिष्टयोश्चान्योन्यावरणे द्वे। एवं द्वादशावरणानि पूर्वाष्टकयुक्तानि विंशतिर्भवन्ति।

वाग्भटे तु वायो र्द्वाविंशतिविधान्यावरणान्युक्तानि। प्रसङ्गादत्र तान्यपि प्रदर्श्यन्ते—"वायोरावहणं चातो बहुभेदं प्रवक्ष्यते। लिङ्गं पित्तावृते दाहस्तृष्णा शूलं भ्रमस्तमः॥ कटूष्णैश्चाम्ललवणैर्विदाहः शीतकामिता। शैत्यगौरवशूलानि कटव्याद्युपशयोऽधिकम्॥ लङ्घनायासरूक्षोष्णकामिता च कफावृते। रक्तावृते सदाहार्तिस्त्वङ्मांसान्तरयोर्भृशम्॥ भवेत् सरागः श्वयथुर्जायन्ते मण्डलानि च। मांसेन कठिनः शोफो विवर्णः पिडिकास्तथा॥ हर्षः पिपीलिकानां च सञ्चार इव जायते। चलः स्निग्धो मृदुः शीतः शोफो गात्रेष्वरोचकः॥ आढ्यवात इति ज्ञेया स कृच्छ्रो मेदसाऽऽवृते। स्पर्शमस्थ्यावृतेऽत्युष्णं पीडनं चाभिनन्दति॥ सूच्येव तुद्यतेऽत्यर्थमङ्गं सीदति शूल्यते। मज्जावृते विनमनं जृम्भणं परिवेष्टनम्॥ शूलं च पीड्यमानेन पाणिभ्यां लभते सुखम्। शुक्रावृतेऽतिवेगो वा न वा निष्फलताऽपि वा॥ भुक्ते कुक्षौ रुजाजीर्णे शाम्यत्यन्नावृतेऽनिले। मूत्राप्रवृत्तिराध्मानं बस्तौ मूत्रावृते भवेत्॥ विडावृते विबन्धोऽधः स्वस्थाने परिकृन्तति। व्रजत्याशु जरां स्नेहो भुक्ते चानह्यते नरः॥ शकृत्पीडितमन्नेन दुःखं शुष्कं चिरात् सृजेत्। सर्वधात्वावृते वायौ श्रोणीवङ्क्षणपृष्ठरुक्॥ विलोमो मारुतोऽस्वस्थं हृदयं पीड्यतेऽपि च। भ्रमो मूर्च्छा रुजा दाहः पित्तेन प्राण आवृते। विदग्धेऽन्ने च वमनमुदानेऽपि भ्रमादयः। दाहोऽन्तरूर्जाभ्रंशश्च, दाहो व्यानेन सर्वगः॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञेयो लक्षणोहाभ्यां चिकित्सा चाविरोधतः ॥ २९ ॥
रुजावन्तं घनं शीतं [1]शोफं मेदोयुतोऽनिलः ।
करोति यस्य तं वैद्यः शोथवत् समुपाचरेत् ॥ ३० ॥
कफमेदोवृतो वायुर्यदोरू प्रतिपद्यते ।
तदाऽङ्गमर्दस्तैमित्यरोमहर्षरुजाज्वरैः ॥ ३१ ॥
निद्रया चार्दितौ स्तब्धौ शीतलावप्रचेतनौ ।
गुरुकावस्थिरावूरू न स्वाविव [2]च मन्यते ॥ ३२ ॥
तमूरुस्तम्भमित्याहुराढ्यवातमथापरे ।
स्नेहवर्जं पिबेत्तत्र चूर्णं [3]षड्धरणं नरः ॥ ३३ ॥
हितमुष्णाम्बुना तद्वत् पिप्पल्यादिगणैः कृतम् ।
लिह्याद्वा त्रैफलं चूर्णं क्षौद्रेण कटुकान्वितम् ॥ ३४ ॥
मूत्रैर्वा गुग्गुलं श्रेष्ठं पिबेद्वाऽपि शिलाजतु ।
ततो हन्ति कफाक्रान्तं समेदस्कं [4]प्रभञ्जनम् ॥ ३५ ॥
हृद्रोगमरुचिं गुल्मं तथाऽभ्यन्तरविद्रधिम् ।
सक्षारमूत्रस्वेदांश्च रूक्षाण्युत्सादनानि च ॥ ३६ ॥
कुर्याद्विद्याच्च [5]मूत्राढ्यैः करञ्जफलसर्षपैः ।
भोज्याः पुराणश्यामाककोद्रवोदालशालयः ॥ ३७ ॥

---

क्लमोऽङ्गचेष्टा सङ्गश्च ससन्तापः सवेदनः । समान उष्मोपहतिरतिस्वेदोऽरतिः सतृट् ॥ दाहश्च स्यादपाने तु मले हारिद्रवर्णता । रुजोऽतिवृद्धिस्तापश्च योनिमेढ्रनपायुषु ॥ श्लेष्मणात्वावृते प्राणे सादस्तन्द्राऽरुचिर्वमिः । ष्ठीवनक्षवथूद्गारनिःश्वासोच्छ्वासङ्ग्रहाः ॥ उदाने गुरुगात्रत्वमरुचिर्वाक्स्वरग्रहः । बलवर्णप्रणाशश्च, व्याने पर्वास्थिवाग्ग्रहाः ॥ गुरुताऽङ्गेषु सर्वेषु स्खलितं च गतौ भृशम् । समानेऽतिहिमाङ्गत्वमस्वेदोमन्दवह्निता ॥ अपाने सकफं मूत्रशकृतः स्यात् प्रवर्तनम् । इति द्वाविंशतिविधं वायोरावरणं विदुः ॥ प्राणादयस्तथाऽन्योन्यमावृण्वन्ति यथाक्रमम् । सर्वेऽपि विंशतिविधं विद्यादावरणं च तत् ॥ निःश्वासोच्छ्वाससंरोधः प्रतिश्यायः शिरोग्रहः । हृद्रोगो मुखशोषश्च प्राणेनोदान आवृते ॥ उदानेनावृते प्राणे वर्णौजोबलसङ्क्षयः । दिशाऽनयाच विभजेत्सर्वमावरणं भिषक् ॥" इति ।

१ शोफम्=अपक्वशोफमित्यर्थः । २ स्पर्शाज्ञानात्परकीयाविव मन्यत इति भावः । ३ षड्धरणं=प्रागुक्तं चूर्णम् । ४ प्रभञ्जनः=वायुरित्यर्थः । ५ दिह्यात्=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुष्कमूलकयूषेण पटोलस्य रसेन वा ।
जाङ्गलैरघृतैर्मांसैः शाकैश्चालवणैर्हितैः ॥ ३८ ॥
यदा स्यातां रिक्तीणे भूयिष्ठे कफमेदसी ।
तदा स्नेहादिकं कर्म पुनरत्रावचारयेत् ॥ ३९ ॥
सुगन्धिः सुलघुः सूक्ष्मस्तीक्ष्णोष्णः कटुको रसे ।
कटुपाकः सरो हृद्यो गुग्गुलुः स्निग्धपिच्छिलः ॥ ४० ॥
स नवो बृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वपकर्षणः ।
तैक्ष्ण्यौष्ण्यात्कफवातघ्नः सरत्वान्मलपित्तनुत् ॥ ४१ ॥
सौगन्ध्यात् पूतिकोष्ठघ्नः सौक्ष्म्याच्चानलदीपनः ।
तं प्रातस्त्रिफलादार्वीपटोलकुशवारिभिः ॥ ४२ ॥
पिबेदावाप्य वा मूत्रैः क्षीरैरुष्णोदकेन वा ।
जीर्णे यूषरसैः क्षीरैर्भञ्जानो हन्ति मासतः ॥ ४३ ॥
गुल्मं मेहमुदावर्त्तमुदरं सभगन्दरम् ।
कृमिकण्डूरुचिश्वित्राण्यर्बुदं ग्रन्थिमेव च ॥ ४४ ॥
नाड्याढ्यवातश्वयथुकुष्ठदुष्टव्रणांश्च सः ।
कोष्ठसन्ध्यस्थिगं वायुं वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ४५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने महावातव्याधिचिकित्सितं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

लेपयेत्, मूत्राढ्यैः = गोमूत्रपिष्टैरुष्णैः करञ्जफलश्वेतसर्षपैरित्यर्थः । १ परितः क्षीणे इत्यर्थः । २ गुग्गुलुकल्पमुपदिशति—सुगन्धिरिति । ३ कोष्ठस्य पक्वाशयादेः पूतिर्दुर्गन्धः पूतिकोष्ठस्तं हन्तीति पूतिकोष्ठघ्नः । ४ अत्र वारिशब्देन क्वाथो बोध्यः । ५ क्षारैः=क्षारोदकैरित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चमोऽध्यायः ॥

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## षष्ठोऽध्यायः ।

अथातोऽर्शसां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

चतुर्विधोऽशसां साधनोपायः । तद्यथा—भेषजं क्षारोऽग्निः शस्त्रमिति । तत्र, अचिरकालजातान्यल्पदोषलिङ्गोपद्रवाणि भेषजसाध्यानि । मृदुप्रसृतावगाढान्युच्छ्रितानि क्षारेण । कर्कशस्थिरपृथुकठिनान्यग्निना । तनुमूलान्युच्छ्रितानि क्लेदवन्ति च शस्त्रेण । तत्र भेषजसाध्यानामर्शसामदृश्यानां च भेषजं भवति; क्षाराग्निशस्त्रसाध्यानां तु विधानमुच्यमानमुपधारय ॥ ३ ॥

तत्र, बलवन्तमातुरमर्शोभिरुपद्रुतमुपस्निग्धं परिस्विन्नमनिलवेदनाऽभिवृद्धिप्रशमार्थं स्निग्धमुष्णमल्पमन्नं द्रवप्रायं भुक्तवन्तमुपवेश्य संवृते शुचौ देशे साधारणे व्यभ्रे काले समे फलके शय्यायां वा प्रत्यादित्यगुदमन्यस्योत्सङ्गे निषण्णपूर्वकायमुत्तानं किञ्चिदुन-

---

**षष्ठोऽध्यायः ।**

१ अर्शःसम्भवे प्रकुपितस्य वातस्य प्राधान्याद्यथाक्रमञ्चिद् वातव्याधिचिकित्साऽनन्तरमर्शसां चिकित्सितमधिकरोति—अथेति । २ प्रसृतानि = विस्तृतानि, अवगाढानि = उपर्यणुत्वेन अन्तस्तुं महत्त्वेन गम्भीराणीत्यर्थः । ३ स्थिराणि=अप्रसरणशीलानि, पृथूनि = विशालानि । ४ उच्छ्रितानि = बहिरुद्गतानि ।

५ तन्त्रस्यास्य शल्याङ्गप्राधान्यात् क्रमं विहाय प्रथमं तावत् क्षारादिसाध्यान्यधिकृत्य ब्रवीति—क्षारेति । ६ अर्शस्सु क्षारपातनविधिमभिधत्ते—तत्रेति । बलवन्तमित्यनेन वृद्धत्वरहितः सत्त्वभूयिष्ठो वा बोध्यः । ७ प्राक् सूत्रस्थानेऽर्शोव्याधिमधिकृत्य "अभुक्तवतः कर्म कुर्वीत" इति यदुक्तं, तन्मुखाश्रितानामर्शसां कर्मणि भोजनप्रतिषेधार्थमिति न विरोधः । अत एव "प्राक् शस्त्रकर्मणः श्रेष्ठं भोजयेदातुरं भिषक्" इति प्रागुक्तं सङ्गच्छते ।

८ साधारणे=शारद्वसन्तिके, नातिशीतोष्णे वा, काले इत्यस्य विशेषणम् । व्यभ्रे= मेघरहिते दिने इत्यर्थः । समे फलके = समतलकाष्ठपट्टादौ । प्रत्यभिमुखेनादित्यं प्रत्यादित्यं, प्रत्यादित्यं मुखं यस्य तम् । यस्यां दिश्यादित्यो गतस्तस्यां दिश्यर्शसेन सम्मुखगुदं कृत्वा स्नातव्यमित्यर्थः । अन्यस्य उत्सङ्गे क्रोडे निषण्णपूर्वकायं पूर्वेण कायेनो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्तकटिकं वस्त्रकम्बलकोपविष्टं यन्त्रणशाटकेन परिक्षिप्तग्रीवासक्थं परिकर्मिभिः सुपरिगृहीतमस्पन्दनशरीरं कृत्वा घृताभ्यक्तं यन्त्रमृज्वणुमुखं पायौ शनैः शनैः प्रवाह्माणस्य प्रणिधाय प्रविष्टे चार्शो वीक्ष्य शलाकयोत्पीडच पिचुवस्त्रयोरन्यतरेण प्रमृज्य क्षारं पातयेत्। पातयित्वा च पाणिना यन्त्रद्वारं पिधाय वाक्च्छ मात्रमुपेक्षेत, ततः प्रमृज्य क्षारबलं व्याधिबलं चावेक्ष्यं पुनरालेपयेत्। अथार्शः पक्वजाम्बवप्रतीकाशमवसन्नमीषन्नतमभिसमीक्ष्योपावर्त्तयेत्। क्षारं प्रक्षालयेद्वान्याम्लेन दधिमस्तुशुक्तफलाम्लैर्वा। ततो यष्टीमधुकमिश्रेण सर्पिषा निर्वाप्य यन्त्रमपनीयोत्थाप्यातुरमुष्णोदकोपविष्टं शीताभिरद्भिः परिषिञ्चेत्, अशीताभिरित्येके। ततो निर्वातमागारं प्रवेश्याचारिकमादिशेत्, सावशेषं पुनर्दहेत्। एवं सप्तरात्रात् सप्तरात्रादेकैकमुपक्रमेत; तत्र बहुषु पूर्वं दक्षिणं साधयेत्, दक्षिणाद्वामं, वामात् पृष्ठजं, ततोऽग्रजमिति ॥ ४ ॥

तत्र वातश्लेष्मनिमित्तान्यग्निक्षाराभ्यां साधयेत्, क्षारेणैव मृदुना पित्तरक्तनिमित्तानि ॥ ५ ॥

---

त्तानं कृत्वा स्थितं नाधरेणेत्यर्थः। १ परिक्षिप्तमाकृष्टनिबद्धं ग्रीवासक्थि यस्य तम्। २ पायौ=गुदे।

३ वाक्छतमात्रं=लब्धक्षरशतोपलक्षितकालमात्रम्। "यद्येरण्डजनालमेष दहति क्षारो वरो वाक्शतात्" इति। ४ इयता क्षारेण इयानंशः सम्यग्दग्धो भविष्यति, इयतेयानित्याद्यालोच्येत्यर्थः। क्षारमात्रा तन्त्रान्तरे—"क्षारमात्रा नखोत्सेधप्रमाणाद्या प्रकीर्तिता। द्विगुणा मध्यमा मात्रा त्रिगुणा महती मता। पित्ते श्लेष्मणि वाते च यथासंख्यं प्रयोजयेत्॥" इति।

५ तन्त्रान्तरे विशेषः—"पक्वजाम्बवकाश्मर्यवर्णं दग्धेऽनिलार्शसि। पित्तजे भृङ्गमायूरकण्ठवर्णं विनिर्दिशेत्। बृहतीपुष्पवर्णत्वं सम्यग्दग्धे कफार्शसि॥" इति। उपावर्त्तयेत्=क्षारक्रियां निवर्तयेदित्यर्थः। ६ शुक्तं=चुक्रम्, फलाम्लं=बीजपूररसः।

७ सप्तरात्रमतीत्येति सप्तरात्रात्। ल्यब्लोपे पञ्चमी। ८ एतत्तन्त्रानुवादी वाग्भटोऽपि—"प्राग्दक्षिणं ततो वाममर्शः पृष्ठाग्रजं ततः। बह्वर्शसः" इति। ९ सूत्रस्थाने द्वादशाध्यायोक्तेन इहोक्तेन च विधानेनेति शेषः। १० पित्तरक्तनिमित्तानि मृद्वादीनीत्यर्थः। तदुक्तम्—"पित्तोत्तरा नीलमुखास्तनवो मृदवः श्लथा" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र वातानुलोम्यमन्नरुचिरग्निदीप्तिर्लाघवं बलवर्णोत्पत्तिर्मनस्तुष्टिरिति सम्यग्दग्धलिङ्गानि। अतिदग्धे तु गुदावदरणं दाहो मूर्च्छा ज्वरः पिपासा शोणितातिप्रवृत्तिस्तन्निमित्ताश्चोपद्रवा भवन्ति। श्यामालपत्रणता कण्डूरनिलवैगुण्यमिन्द्रियाणामप्रसादो विकारस्य चाशान्तिर्हीनदग्धे ॥ ६ ॥

[1]महान्ति च प्राणवतश्छित्त्वा [2]दहेत्। निर्गतानि चात्यर्थं दोषपूर्णानि यन्त्राद्विना स्वेदाभ्यङ्गस्नेहावगाहोपनाहविस्रावणालेपक्षाराग्निशस्त्रैरुपाचरेत्। प्रवृत्तरक्तानि च रक्तपित्तविधानेन, भिन्नपुरीषाणि चातीसारविधानेन, बद्धवर्चांसि स्नेहपानविधानेनोदावर्तविधानेन वा। एष [3]सर्वस्थानगतानामर्शसां दहनकल्पः ॥ ७ ॥

[4]आसाद्य च दर्वीकूर्चकशलाकानामन्यतमेन क्षारं पातयेत्। भ्रष्टगुदस्य तु विना यन्त्रेण क्षारादिकर्म प्रयुञ्जीत। सर्वेषु च शालिषष्टिकयवगोधूमान्नं सर्पिःस्निग्धमुपसेवेत पयसा निम्बयूषेण पटोलयूषेण वा, यथादोषं शाकैर्वास्तूकतण्डुलीय[5]कजीवन्त्युपोदिकाऽश्वबलाबालमूलकपालङ्क्यसनचिल्लीचुच्चूकलाय[6]वल्लीभिरन्यैर्वा। यच्चान्यदपि स्निग्धमग्निदीपनमर्शोघ्नं सृष्टमूत्रपुरीषं च तदुपसेवेत ॥ ८ ॥

[7]दग्धेषु चार्शःस्वभ्यक्तोऽनलसन्धुक्षणार्थमनिलप्रकोपसङ्क्षरणार्थं च स्नेहादीनां [8]सामान्यतो विशेषतस्तु क्रियापथमुपसेवेत। सर्पींषि च [9]दीपनीयवातहरसिद्धानि हिङ्ग्वादिभिश्चूर्णैः प्रतिसंसृज्य-

---

१ स्थानादिविशेषेणार्शसां दहनविकल्पं निर्दिशति—**महान्तीति**। प्राणवतः=बलवत इत्यर्थः। २ क्षारदाहोस्योक्तत्वादग्निना दहेदित्यर्थः। ३ सर्वशब्देन मेढ्रादीनां परिग्रहो बोध्यः। दहनकल्पः=अग्निक्षारदाहे शास्त्रीयविधिरित्यर्थः। 'कल्पः शास्त्रे विधौ न्याये संवर्ते ब्रह्मणो दिने' इति मेदिनी।

४ क्षारपाते विशेषविधिमुपदिशति—**आसाद्येति**। ५ तण्डुलीयकः='चौलाई' तण्डुलीय एव तण्डुलीयकः, स्वार्थेऽण् ६ कलायवल्ली=वर्तुलकलायलता। ७ क्षारकर्मणः पश्चात्कर्म निर्दिशति—**दग्धेष्विति**। ८ सामान्यतः=सर्वार्शोघ्नविधिना, विशेषतः=वाताद्यर्शसां यथादोषं दहनविधिना। ९ दीपनीयानि=पिप्पल्यादीनि, वातहराणि=भद्रदार्वादीनि, हिङ्ग्वादिभिः=चिकित्सास्थाने पञ्चमाध्यायोक्तैश्चूर्णैः-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिबेत्। पित्तार्शःसु पृथक्पर्ण्यादीनां[1] कषायेण दीपनीयप्रतीवापं सर्पिः। शोणितार्शःसु मञ्जिष्ठामुरङ्गचादीनां[2] कषायैः। श्लेष्मार्शःसु सुरसादीनां कषायैः सर्पिः। उपद्रवांश्च यथास्वमुपाचरेत्॥ ९॥

परं[3] च यत्नमास्थाय गुदे क्षाराग्निशस्त्राण्यवचारयेत्[4], तद्विभ्रमाद्विषाण्ढ्यशोफदाहमदमूर्च्छाटोपानाहातीसारप्रवाहणानि भवन्ति मरणं वा॥ १०॥

अत ऊर्ध्वं यन्त्रप्रमाणमुपदेक्ष्यामः—तत्र, यन्त्रं लौहं दान्तं शार्ङ्गं वार्क्षं वा गोस्तनाकारं चतुरङ्गुलायतं[5] पञ्चाङ्गुलपरिणाहं पुंसां, षडङ्गुलपरिणाहं नारीणां तलायतम्। तद् द्विच्छिद्रं—दर्शनार्थमेकं छिद्रं, एकं छिद्रं तु कर्मणि। एकद्वारे हि शस्त्रक्षाराग्नीनामतिक्रमो न भवति। छिद्रप्रमाणं तु त्र्यङ्गुलायतमङ्गुष्ठोदरपरिणाहम्। यदङ्गुलमवशिष्टं तस्यार्द्धाङ्गुलमधस्तादर्द्धाङ्गुलोच्छ्रितोपरिवृत्तकर्णिकं[6]। एष यन्त्राकृतिसमासः॥ ११॥

अत ऊर्ध्वमर्शसामालेपान् वक्ष्यामः—स्नुहीक्षीरयुक्तं हरिद्राचूर्णमालेपः प्रथमः। कुक्कुटपुरीषगुञ्जाहरिद्रापिप्पलीचूर्णमिति गोमूत्रपित्तपिष्टो[7] द्वितीयः। दन्तीचित्रकसुवर्चिकालाङ्गलीकल्को वा गोपित्तपिष्टस्तृतीयः। पिप्पलीसैन्धवकुष्ठशिरीषफलकल्कः स्नुहीक्षीरपिष्टोऽर्कक्षीरपिष्टो वा चतुर्थः। कासीसहरितालसैन्धवाश्वमारकविडङ्गपूतीककृतवेधनजम्ब्वर्कोत्तमारणीदन्तीचित्रकालर्कस्नुहीपयःसु

---

रित्यर्थः। प्रतिसंसृज्य = दोषबलप्रातिकूल्येन संयोज्य १ पृथक्पर्ण्यादीनां = मिश्रकाध्यायोक्तरोपणघृतसाधनद्रव्याणामित्यर्थः। २ मुरङ्गी = रक्तशोभाञ्जनः, तदादीनाम्, द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये वरुणादिगणान्तर्गतमधुशिग्वादीनामित्यर्थः। 'मुरङ्गी' इत्यत्र 'मुरङ्गी' इति पाठान्तरम्। ३ परम् = उत्तमम्।

४ अवचारणप्रकारः सूत्रस्थाने पञ्चमाष्टमद्वादशैकोनविंशतिपञ्चविंशत्यध्यायेषु द्रव्यव्यः। ५ आयतं = दीर्घम्, परिणाहः = वर्तुलता, तलायतं = स्वहस्तवद् वर्तुलम्। ६ अर्धाङ्गुलोच्छ्राये उपरि वृत्ता कर्णिका यस्य तदित्यर्थः यन्त्राकृतिसमासः = यन्त्राकारसङ्क्षेपः। ७ गोमूत्रं च गोपित्तं च गोमूत्रपित्ते, ताभ्यां पिष्ट इत्यर्थः। ८ सुवर्चिका = 'सज्जीखार' इति। ९ उत्तमारणी = भूम्यामलकी, अलर्कः = श्वेता-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैलं विपक्वमभ्यञ्जनेनार्शः शातयति ॥ १२ ॥

अत ऊर्ध्वं भेषजसाध्येष्वदृश्येष्वर्शःसु योगान् यापनार्थं वक्ष्यामः- प्रातः प्रार्गुडहरीतकीमासेवेत । ब्रह्मचारी गोमूत्रद्रोणसिद्धं वा हरीतकीशतं[1] प्रातः प्रातर्यथाबलं क्षौद्रेण । अपामार्गमूलं[2] वा तण्डुलोदकेन सक्षौद्रमहरहः । शतावरीमूलकल्कं[3] वा क्षीरेण । चित्रकचूर्णयुक्तं वा सीधुं[4] पराष्टं[4] म् । भल्लातचूर्णयुक्तं वा सक्तुमन्थमलवणं तक्रेण । कलशे वाऽन्तश्चित्रकमूलकल्कावलिप्ते निषिक्तं तक्रमम्लमनम्लं वा पानभोजनेषूपयुञ्जीत । एष एव भार्ग्यास्फोतायवान्यामलकगुडूचीषु तक्रकल्पः । पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकविडङ्गशुण्ठीहरीतकीषु च पूर्ववदेव, निरन्नो वा तक्रमहरहर्मासमुपसेवेत । शृङ्गवेरपुनर्नवा[6]चित्रककषायसिद्धं वा पयः । कुटजमूलत्वक्फाणितं[7] वा पिप्पल्यादिप्रतीवापं क्षौद्रेण । वातव्याध्युक्तं हिङ्ग्वादिचूर्णमुपसेवेत तक्राहारः, क्षीराहारो वा क्षारलवणान्, चित्रकमूलक्षारोदकसिद्धान् वा कुल्माषान्[9] भक्षयेत् । चित्रकमूलक्षारोदकसिद्धं वा पयः । पलाशतरुक्षारसिद्धान् वा कुल्माषान् । पाटलापामार्गबृहतीपलाशक्षारं वा परिस्रुतमहरहर्घृतसंसृष्टम् । कुटजबन्दाकमूलकल्कं वा तक्रेण । चित्रकपूतीकनागरकल्कं वा पूतीकक्षारेण । क्षारोदकसिद्धं वा

---

र्कः । १ गोमूत्रहरीतकीयोगोऽयं गाढपुरीषमन्दाग्नेर्बोध्यः । २ एषोऽपामार्गमूलयोगः पित्तरक्तार्शसि ज्ञातव्यः ।

३ शतावरीमूलकल्कयोगोऽयं वातपित्तानुबद्धरक्तजेषु बोध्यः । ४ पराध्यं = श्रेष्ठम् । ५ आस्फोता = सारिवा । ६ वातकफजानां शुष्कार्शसामन्नपाने तक्रं निर्दिश्य रक्तपित्तजानामार्द्राणामन्नपाने गोरसमेव निर्दिशति-शृङ्गवेरेति । योगोऽयं कफवातानुबद्धरक्तजेषु बोध्यः । ७ फाणितं='राब' इति हिन्दीभाषायां प्रसिद्धम् ।

अत्र परिमाणं तु कुटजत्वचां शतपलफाणिते पिप्पल्यादिचूर्णं षट्पलम् । अयं योगः कफपित्तानुबद्धरक्तजेषु ज्ञातव्यः । ८ एष योगो वातकफजेषु बोद्धव्यः । तक्राहारो वातकफानुबद्धरक्तजेषु । क्षीराहारो वातपित्तानुबन्धजेषु । ९ कुल्माषान् = यवौदनान् । "अर्धस्विन्नाश्च गोधूमा अन्ये च चणकादयः । कुल्माषा इति कथ्यन्ते" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्पिः पिप्पल्यादिप्रतीवाम्[1]। कृष्णतिलप्रसृतं प्रकुञ्चं वा प्रातः प्रातरुपसेवेत शीतोदकानुपानम्। एभिरभिवर्धतेऽग्निरर्शांसि चोपशाम्यन्ति ॥ १३ ॥

द्विपञ्चमूलीदन्तीचित्रकपथ्यानां तुलामाहृत्य[3] जलचतुर्द्रोणे विपाचयेत्। ततः पादावशिष्टं कषायमादाय सुशीतं गुडतुलया सहोन्मिश्रच घृतभाजने निःक्षिप्य मासमुपेक्षेत यवपल्ले[4]। ततः प्रातः प्रातर्मात्रां पाययेत। तेनार्शोग्रहणीदोषपाण्डुरोगोदावर्तारोचका न भवन्ति दीप्तोऽग्निश्च भवति ॥ १४ ॥

पिप्पलीमरिचविडङ्गैलवालुकलोध्राणां[5] द्वे द्वे पले, इन्द्रवारुण्याः पञ्च पलानि, कपित्थमध्यस्य दश, पथ्याफलानामर्धप्रस्थः, प्रस्थो धात्रीफलानाम्; एतदैकध्यं जलचतुर्द्रोणे विपाच्य, पादावशेषं परिस्राव्य, सुशीतं गुडतुलाद्वयेनोन्मिश्रच, घृतभाजने निःक्षिप्य पक्षमुपेक्षेत यवपल्ले। ततः प्रातः प्रातर्यथाबलमुपयुञ्जीत। एष खल्वरिष्टः प्लीहाग्निषङ्गार्शोग्रहणीहृत्पाण्डुरोगशोफकुष्ठगुल्मोदरकृमिहरो बलवर्णकरश्चेति ॥ १५ ॥

तत्र, वातप्रायेषु स्नेहस्वेदवमनविरेचनास्थापनानुवासनमप्रतिषिद्धम्। पित्तजेषु विरेचनम्। एवं रक्तजेषु संशमनम्[6]। कफजेषु

---

१ प्रसृतं = पलद्वयम् अष्टौ तोलकानीति यावत्। प्रकुञ्चं = पलम्, चत्वारि तोलकानीति यावत्।

२ अर्शोरोगे दन्त्यरिष्टं ब्रवीति—**द्विपञ्चमूलीति**। लघुपञ्चमूली बृहत्पञ्चमूली चेति द्वयमित्यर्थः। ३ तुला = पलशतम्। ४ यवपल्ले = यवपूर्णस्थूलकुसूलके, 'पल्लः स्थूलकुसूलके' इति शब्दार्थचिन्तामणिः। अरिष्टेऽस्मिन् धातकीपुष्पाण्यनुक्तान्यपि पलद्वयं पलत्रयं वा दातव्यानि, सर्वेष्वरिष्टेष्वधिवासनार्थं धातकीपुष्पप्रक्षेपस्य वृद्धैः स्वीकृतत्वात्।

५ अशस्सु अभयाऽरिष्टनिर्माणप्रकारं प्रतिपादयति—**पिप्पलीति**। "हरीतकीनां प्रस्थार्धं प्रस्थमामलकस्य च। स्यात्कपित्थाद्दशपलं ततोऽर्धा चेन्द्रवारुणी॥" इत्यादिनाऽभयारिष्टश्चरकेणाप्युक्तः। किन्त्वत्र कटुकत्वपरिहारार्थमिन्द्रवारुण्याः साधंद्वयपलान्येव प्रक्षिपन्ति।

६ सम्यक् शमयतीति संशमनम्, सम्यग् दुष्टदोषस्यानिर्हरणपूर्वकं शमनम्,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शृङ्गवेरकुलत्थोपयोगः। सर्वदोषहरं यथोक्तं सर्वजेषु यथास्वौषधसिद्धं वा पयः सर्वेष्विति ॥ १६ ॥

अत[1] ऊर्ध्वं भल्लातकविधानमुपदेक्ष्यामः—भल्लातकानि परिपक्वान्यनुपहतान्याहृत्य तत एकमादाय द्विधा त्रिधा चतुर्द्धा वा छेदयित्वा कषायकल्पेन विपाच्य तस्य कषायस्य शुक्तिमनुष्णां घृताभ्यक्तताल्वोष्ठः प्रातः प्रातरुपसेवेत, ततोऽपराह्णे क्षीरं सर्पिरोदन इत्याहारः। एवमेकैकं वर्द्धयेद्यावत् पञ्चेति, ततः पञ्च पञ्चाभिवर्धयेद्यावत् सप्ततिरिति, प्राप्य च सप्ततिमपकर्षयेद्[2] भूयः पञ्च पञ्च यावत्पञ्चेति, पञ्चभ्यश्चैकैकं यावदेकमिति। एवं भल्लातकसहस्रमुपयुज्य सर्वकुष्ठार्शोभिर्विमुक्तो बलवानरोगः शतायुर्भवति ॥ १७ ॥

द्वित्रि[3]णीयोक्तेन विधानेन भल्लातकनिश्च्युतितं [4]स्नेहमादाय प्रातः प्रातः शुक्तिमात्रमुपयुञ्जीत, जीर्णे पूर्ववदाहारः फलप्रकर्षश्च। भल्लातकमज्जभ्यो वा स्नेहमादायापकृष्टदोषः प्रतिसंसृष्टभक्तो निवातमागारं प्रविश्य यथाबलं प्र[5]सृतिं प्रकुञ्चं वोपयुञ्जीत। तस्मिन् जीर्णे क्षीरं सर्पिरोदन इत्याहारः। एवं मासमुपयुज्य मासत्रयमादिष्टाहारो रक्षेदात्मानम्। ततः सर्वोपतापानपहृत्य वर्णवान् बलवान् श्रवणग्रहणधारणशक्तिसम्पन्नो वर्षशतायुर्भवति। मासे मासे च प्रयोगे वर्षशतं वर्षशतमायुषोऽभिवृद्धिर्भवति। एवं दशमासानुपयुज्य वर्षसहस्रायुर्भवति ॥ १८ ॥

भवन्ति चात्र।

यथा सर्वाणि कुष्ठानि हतः खदिरबीज[6]कौ।

---

अदुष्टस्यानुदीरणं च। व्याधिशमने तु प्रस्तुतव्याधिशमनम्, अप्रस्तुतव्याधेरनुदीरणम्। "न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि। समीकरोति च क्रुद्धान् तत संशमनमुच्यते ॥" इति। संशमनी=गुडूची।

१ भल्लातकविधानमुपदिशति—**अत इति**। २ अपकर्षयेत्=न्यूनं कुर्यात। ३ भल्लातकप्रयोगान्तरं दर्शयति—**द्वित्रिणीयेति**। ४ स्नेहं=तैलम्। उपयुञ्जीत=भुञ्जीत। ५ प्रसृतिः=पलद्वयम्, प्रकुञ्चं=पलम्। ६ बीजकः='विजय-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथैवार्शांसि सर्वाणि वृक्तकारुष्करौ[1] हतः ॥ १९ ॥
साध्या नाप्यतिवर्त्तन्ते प्रमेहा रजनीं[2] यथा ।
क्षारागिं नातिवर्त्तन्ते तथा दृश्या गुदोद्भवाः ॥ २० ॥
घृतानि दीपनीयानि लेहायस्कृतयः सुराः ।
आसवाश्च प्रयोक्तव्या वीक्ष्य दोषसमुच्छ्रितिम् ॥ २१ ॥
वेगावरोधस्त्रीपृष्ठयानान्युत्कटुकासनम्[4] ।
यथास्वं दोषलं चान्नमर्शःसु परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थानेऽर्शश्चिकित्सितं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

---

## सप्तमोऽध्यायः ।

अथातोऽश्मरीचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
अश्मरी दारुणो व्याधिरन्तकप्रतिमो मतः ।
औषधैस्तरुणः[6] साध्यः प्रवृद्धश्छेदमर्हति ॥ ३ ॥
तस्य पूर्वेषु रूपेषु[7] स्नेहादिक्रम इष्यते ।
तेनास्यापचयं यान्ति व्याधेर्मूलान्यशेषतः[8] ॥ ४ ॥

---

सार'इति ख्यातः । १ वृक्तकारुष्करौ=कुटजभल्लातकौ । २ रजनीं=हरिद्राम् ।
३ अर्शस्सु वर्जितकर्माणि निर्दिशति—वेगेति । वेगावरोधः=मलमूत्रावरोधः ।
४ उत्कटुकासनं=विषमासनस्थितिरित्यर्थः । 'गुदपार्ष्णीसमायोगः प्राहुरुत्कटुकासनम्''इति बोध्यम् ।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षष्ठोऽध्यायः ।

---

### सप्तमोऽध्यायः ।

५ अन्तकप्रतिमः=यमोपम इत्यर्थः । ६ तरुणः=सद्यस्कः । ७ अस्याः पूर्वरूपम्—"वस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽनिरुक् । मूत्रे बस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ॥''इति । ८ मूलानि=आरम्भकदोषाः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]पाषाणभेदो वसुको वशिराश्मन्तकौ तथा ।
शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कण्टकारिका ॥ ५ ॥
कपोतवङ्काऽऽर्तगलः कच्चकोशीरकुब्जकाः ।
वृक्षादनी भल्लुकश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥ ६ ॥
यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि च ।
ऊषकादि[3]प्रतीवापमेषां क्वाथैर्घृतं कृतम् ॥ ७ ॥
भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ।
क्षारान् यवागूर्यूषांश्च कषायाणि पयांसि च ॥ ८ ॥
भोजनानि चं कुर्वीत वर्गेऽस्मिन् वातनाशने ।
[5]कुशः काशः सरो गुन्द्रा उत्कटो मोरटोऽश्मभित् ॥ ९ ॥
[6]वरी विदारी वाराही शालिमूलत्रिकण्टकम् ।
भल्लूकः पाटला[7] पाठा पत्तूरोऽथ कुरुण्टिका ॥ १० ॥
पुनर्नवा शिरीषश्च क्वथितास्तेषु साधितम् ।
घृत शिलाजमधुकबीजैरिन्दीवरस्य च ॥ ११ ॥
त्रपुसैर्वारुकादीनां बीजैश्चावापितं शुभम् ।
भिनत्ति पित्तसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ १२ ॥
क्षारान् यवागूर्यूषांश्च कषायाणि पयांसि च ।

---

१ वातजन्याश्मरीचिकित्सामभिधत्ते—**पाषाणेति** । पाषाणभेदः='पखानभेद' 'पत्थरचूर' इति भाषा । वसुकः=वकपुष्पम् , अश्मन्तकः=कोविदारसदृशदलः । २ कपोतवङ्का=ब्राह्मी, कच्चकः=मध्यलेखानिचितः ऋजुकपत्र ईषद्रक्तमूलः 'कवहक' इति मालवके प्रसिद्ध इति डल्हणः । 'कच्चक' इत्यत्र 'ककुभ' इति श्रीहाराणचन्द्रसम्मतपाठः । उशीरः='खस' कुब्जकः='चिरमिटी' वृक्षादनी=वन्दा, भल्लुकः=श्योनाकः, वरुणः प्रसिद्धः । ३ ऊषकादीनां द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तानां द्रव्याणां प्रतीवापः प्रक्षेपः । ४ चकाराच्चूर्णादीनां समुच्चयः ।

५ पित्तजन्याश्मरीचिकित्सां निर्दिशति-**कुश इति** । उत्कटः='दालचीनी' उद्भटः कट आवरणमावरको वाऽस्येति विग्रहः । उत्कटो महती खगालीति डल्हणः । मोरटः=इक्षुमूलम् । ६ वरी=शतावरी, ७ पाटला='पाढर' इति भाषा, 'पाठा'='पाढ' इति भाषा, पत्तूरः='सिरवालिका' इति ख्यातः । कुरुण्टिका=सिरवालिकाभेदः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन् पित्तनाशने ॥ १३ ॥
गणो[1] वरुणकादिस्तु गुग्गुल्वेलाहरेणवः[2]।
कुष्ठभद्रादिमरिचचित्रकैः ससुराह्वयैः[3] ॥ १४ ॥
एतैः सिद्धमजासर्पिरूषकादिगणेन च।
भिनत्ति कफसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ १५ ॥
क्षारान् यवागूर्यूषांश्च कषायाणि पयांसि च।
भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन् कफनाशने ॥ १६ ॥
पिचुकाङ्कोलकतकशाकेन्दीवरजैः[4] फलैः।
चूर्णितैः सगुडं तोयं शर्कराश्मनं पिबेत् ॥ १७ ॥
क्रौञ्चोष्ट्रासभास्थीनि श्वदंष्ट्रा तालमूलिका।
अजमोदा कदम्बस्य मूलं नागरमेव च ॥ १८ ॥
पीतानि शर्करां भिन्द्युः सुरयोष्णोदकेन वा।
त्रिकण्टकस्य[5] बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ॥ १९ ॥
अविक्षीरेण सप्ताहमश्मरीभेदनं पिबेत्।
द्रव्याणां तु घृतोक्तानां क्षारोऽविमूत्रगालितः ॥ २० ॥
ग्राम्यसत्त्वशकृत्क्षारैः[6] संयुक्तः साधितः शनैः।

---

१ कफाश्मरीचिकित्सामाचष्टे-**गण इति**। २ हरेणुः='रेणुका' इति ख्यातः। ३ भद्रादिगण इत्यर्थः। ससुराह्वयैः=देवदारुसहितैरित्यर्थः। शुक्राश्मरीचिकित्सा तु कफाश्मरीचिकित्साऽनुसारेणैव कार्या, कफशुक्रयोस्तुल्यगुणत्वात्।

४ शर्कराचिकित्सामभिधत्ते-**पिचुकेति**। पिचुकः=कार्पासफलम्, अङ्कोलः=अङ्कोटः। अवस्थाभेदादश्मरी शर्करा सिकता भवति। तदुक्तम्-"पीडिते स्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा। स भिन्नमूर्तिर्वातेन शर्करेत्यभिधीयते॥" इति। शर्करासिकतयोश्च भेदो महत्त्वाल्पत्वाभ्यां बोद्धव्यः। शुक्राश्मरी बालानां न भवति। तदुक्तम्-'शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात्। स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः। शोषयत्युपसङ्गृह्य शुक्रं तच्छुष्कमश्मरी॥" इति

५ "चूर्णे चूर्णसमो देयो मोदके द्विगुणो गुडः" इति तन्त्रान्तरीयाच्चूर्णसमगुडसहितमित्यर्थः। तोयं=जलं, तच्चोष्णं ग्राह्यम्। ६ त्रिकण्टकस्य=गोक्षुरकस्य। ७ ग्राम्यसत्त्वानामश्वादीनां पुरीषक्षारैः संयुक्तः षड्गुणाविमूत्रगालितः। तस्य क्षारोदकस्य पाकसिद्धिसमये चतुर्थांशेन ऊषकादित्रिकटुकयोः समभागेन मिश्रितयोः प्रक्षेपः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्रोषकादिरावापः कार्यस्त्रिकटुकान्वितः ॥ २१ ॥
एष क्षारोऽश्मरीं गुल्मं शर्करां च भिनत्त्यपि ।
तिलापामार्गकदलीपलाशयवकल्कजः ॥ २२ ॥
क्षारः पेयोऽविमूत्रेण शर्करानाशनः परः ।
पाटलाकरवीराणां क्षारमेवं समाचरेत् ॥ २३ ॥
श्वदंष्ट्रायष्टिकाब्राह्मीकल्कं वाऽक्षसमं पिबेत् ।
सहैडकाख्यौ पेयौ वा शोभाञ्जनकमार्कवौ ॥ २४ ॥
कपोतवङ्कामूलं वा पिबेदम्लैः सुरादिभिः ।
तत्सिद्धं वा पिबेत् क्षीरं वेदनाभिरुपद्रुतः ॥ २५ ॥
हरीतक्यादिसिद्धं वा वर्षाभूसिद्धमेव वा ।
सर्वथैवोपयोज्यः स्याद्व्रणो वीरतरादिकः ॥ २६ ॥
घृतैः क्षारैः कषायैश्च क्षीरैः सोत्तरबस्तिभिः ।
यदि नोपशमं गच्छेच्छेदस्तत्रोत्तरो विधिः ॥ २७ ॥
कुशलस्यापि वैद्यस्य यतः सिद्धिरिहाध्रुवा ।
उपक्रमो जघन्योऽयमतः स परिकीर्तितः ॥ २८ ॥
अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ।
तस्मादापृच्छ्य च कर्त्तव्यमीश्वरं साधुकारिणा ॥ २९ ॥
अथ रोगान्वितमुपस्निग्धमपकृष्टदोषमीषत्कर्षितमभ्यक्तस्विन्न

---

१ तिलापामार्गकदलीपलाशयवकल्कजक्षारस्य कर्षद्वयं कर्षत्रयं वा षड्गुणेन अविमूत्रेण बहुशः स्रावितं पूतं पेयमिति तात्पर्यम् । २ योगोऽयं वातश्लेष्मसम्भूताश्मर्यां बोद्धव्यः । ३ अविमूत्रेण पिबेदित्यर्थः । ४ एडकाख्या मेषी तस्या इदं मूत्रमैडकाख्यम्, तेन सह वर्तमानौ सहैडकाख्यौ । ५ मार्कवः='भाङ्गरा'इति ख्यातः । ६ हरीतक्यादिसिद्ध=त्रिफलादिसिद्धम् । वर्षाभूः=पुनर्नवा । ७ वीरतरादिकः=द्रव्यसङ्ग्रहणीयो वीरतर्वादिगण इत्यर्थः । ८ अश्मरीहरद्रव्यसिद्धैर्नैरूहिकैः स्नैहिकैश्चोत्तरबस्तिभिरित्यर्थः । ९ ईश्वरं=स्वामिनम्, राजानमिति यावत् । 'ईभ्य आढ्यो धनी स्वामी स्त्रीश्वरः पतिरीशिता'इत्यमरः ।

१० "प्रवृद्धश्छेदमर्हति" इति प्रागुक्तस्मरणाद् शस्त्रेणाश्मर्याहरणविधिं दर्शयति—अथेति । अपकृष्टदोषं=पूर्वेद्युर्वमनविरेचनादिना निर्हृतदोषमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरं भुक्तवन्तं कृतबलिमङ्गलस्वस्तिवाचनमग्रोपहरणीयोक्तेन विधानेनोपकल्पितसम्भारमाश्वास्य, ततो बलवन्तमविक्लवमाजानुसमे फलके प्रागुपवेश्य पुरुषं तस्योत्सङ्गे निषण्णपूर्वकायमुत्तानमुन्नतकटीकं वस्त्रधारकोपविष्टं सङ्कुचितजानुकूर्परमितरेण सहाववद्धं सूत्रेण शाटकैर्वा, ततः स्वभ्यक्तनाभिप्रदेशस्य वामपार्श्वं विमृद्य मुष्टिनाऽवपीडयेदधोनाभेर्यावदश्मर्यधःप्रपन्नेति । ततः स्नेहाभ्यक्ते क्लृप्तनखे वामहस्तप्रदेशिनीमध्यमे पायौ प्रणिधायानुसेवनीमासाद्य प्रयत्नबलाभ्यां पायुमेढ्रान्तरमानीय, निर्व्यलीकमनायतमविषमं च बस्तिं सन्निवेश्य, भृशमुत्पीडयेदङ्गुलिभ्यां यथा ग्रन्थिरिवोन्नतं शल्यं भवति ॥ ३० ॥

स चेद् गृहीतशल्ये तु विवृताक्षो विचेतनः ।
हतवल्लम्बशीर्षश्च निर्विकारो मृतोपमः ॥ ३१ ॥
न तस्य निर्हरेच्छल्यं निर्हरेत्तु म्रियेत सः ।
विना त्वेतेषु रूपेषु निर्हर्त्तुं प्रयतेत वै ॥ ३२ ॥

सव्ये पार्श्वे सेवनीं यवमात्रेण मुक्त्वाऽवचारयेच्छस्त्रमश्मरीप्रमाणं, दक्षिणतो वा क्रियासौकर्यहेतोरित्येके । यथा च न भिद्यते चूर्ण्यते वा तथा प्रयतेत, चूर्णमल्पमप्यवस्थितं हि पुनः परिवृद्धि-

---

१ अग्रोपहरणीयोक्तेन विधानेन = यन्त्रशस्त्रक्षारशलाकादिविधिना । २ बलवन्तम् = आतुरापेक्षया बलीयांसमित्यर्थः । अपकृष्टदोषं विशुद्धमन्नसंसर्जनेन सञ्जनितबलमिति डल्हणः । ३ तस्योत्सङ्गे = उपवेशितपुरुषक्रोडे । ४ इतरेण प्रागुपवेशितपुरुषेण सहेत्यर्थः । ५ अधःप्रपन्ना = अधोगता । ६ सेवनीमनु लक्ष्यीकृत्य, प्रणिधाय प्रवेश्येत्यर्थः । आसाद्य = अश्मरीं प्राप्य । ७ निर्व्यलीकं = त्वक्सङ्कोचरहितम्, अनायतम् = आकर्षणेनादीर्घीभूतम्, अविषमं निम्नोन्नतत्वरहितं यथा स्यात्तथा बस्तिं सन्निवेश्य, उत्पीडयेत् = बहिर्मुखं प्रपीडयेदित्यर्थः ।

८ अश्मरीशल्ये गृहीते यादृशस्य पुरुषस्य मरणभयादनाहरणीयाश्मरी तादृशं पुरुषं निर्दिशति—स चेदिति । विवृताक्षः, विवृते स्तब्धेऽक्षिणी यस्य सः । ९ विकारेभ्यो व्यापारेभ्यो निष्क्रान्त इति निर्व्यापारः । १० प्रयतेत = प्रयत्नं कुर्यादित्यर्थः ।


पाठ्य-पुस्तक विभाग
CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेति, तस्मात् समस्तामग्रवक्त्रेणाददीत[1]। स्त्रीणां तु बस्तिपार्श्वगतो गर्भाशयः सन्निकृष्टः, तस्मान्नासामुत्सङ्गवच्छस्त्रं[2] पातयेत्[3]; अतोऽन्यथा खल्वासां मूत्रस्रावी व्रणो भवेत्। पुरुषस्य वा[4] मूत्रप्रसेकक्षणान्मूत्रक्षरणम्[5]। अश्मरीव्रणादतं भिन्नो बस्तिरेकधा[6] न भवति, द्विधा भिन्नबस्तिराश्मरिको न सिध्यति, अश्मरीव्रणनिमित्तमेकधाभिन्नबस्तिर्जीवति क्रियाऽभ्यासाच्छास्त्रविहितच्छेदान्निस्यन्दै-[9]

---

अत्र 'समुपाचरेत्' इति पाठान्तरम्। १ अग्रभागे सर्पफणाकारं वक्त्रं मुखमस्येति तेन अग्रवक्त्रेण यन्त्रविध्यध्यायोक्तेन सर्पफणामुखेन शलाकायन्त्रेणेत्यर्थः।

२ स्त्रीणां पुंवच्छस्त्रनिपातने बस्तिनिकटस्थगर्भाशयस्य छेदभयाच्छेदविशेषमुपदिशति—स्त्रीणामिति। ३ उद् ऊर्ध्वं सङ्ग उत्सङ्गः, सोऽस्यास्तीति तदुत्सङ्गवद् उत्तानमित्यर्थः। हाराणचन्द्रस्तु—उत्सङ्गः क्रोडो गर्भाशयसंसङ्गार्हो भाग इति यावत्, तमर्हतीत्युत्सङ्गवत्, 'तदर्हम्'इति वतिः, तादृशं शस्त्रं न पातयेत्; गर्भाशयस्य तद्द्वारस्य च च्छेदभयादित्याकुतम्। एतदेव भङ्गीविशेषेणावगमयति—अत इत्यादिनेति। ४ यदाऽवगाढः शस्त्रपातः स्यात्तदा बहिर्गतं त्वङ्मांसं भित्त्वा बस्तित्वचा सह भगवस्तुबस्तिपार्श्वाश्रयस्य गर्भाश्रयस्यापि त्वचो भेदः स्यात्। ततस्तासां भगान्तर्गतो मूत्रस्रावी व्रणः स्यादित्यर्थः। तथा च वैतरणः—"भगस्याधः स्त्रिया बस्तिरूर्ध्वं गर्भाशयः स्थितः। गर्भाशयश्च बस्तिश्च महास्रोतःसमाश्रितौ॥ बस्तिभागं समुन्नम्य अवनम्याश्मरीं बुधः। स्फिगग्रे भेदनं तासां हितमन्यत्र दोषकृत्॥"इति।

श्रीहाराणचन्द्रस्तु खल्विति हेतौ 'खलु हेतौ निषेधे च' इति कोशान्तरञ्च। तदयमर्थः—यस्मादत उत्सङ्गवच्छस्त्रपातनान्मूत्रस्रावी व्रणोऽन्यथाप्रकारो भवेत्, योनिव्रणोभयमुखप्रस्रावित्वादिति हृदयम्। एतावता बस्तेर्दक्षिणे पार्श्वे तिर्यक्छेदस्य नितरामात्यधिकत्वात् प्रागुक्तमेक इत्यस्यास्वारसिकं समन्वितं भवति। इति। वाग्भटस्तु स्त्रीणामुत्सङ्गवच्छस्त्रं पातयेदित्याह। तथा हि—"स्त्रीणां बस्तिस्तु पार्श्वगः। गर्भाशयाश्रयस्तासां शस्त्रमुत्सङ्गवत्ततः। न्यसेदतोऽन्यथा ह्यासां मूत्रस्रावी व्रणो भवेत्॥" इति।

५ वाशब्दश्चार्थे। तेन स्त्रियाः पुरुषस्य चेत्यर्थः। मूत्रप्रसेकः, मूत्रमार्गमूलसंसक्तं स्रोतःक्षणनं छेदनं तस्मात्। ६ एकधा न भवति=एकीभावं न गच्छति, न जीवतीति तात्पर्यम्।

७ अश्मरीनिमित्ताघातेन पुनरेकधा भिन्नबस्तेर्जीविते हेतुं निर्दिशति—अश्मरीति। ८ क्रियाणामुष्णोदकस्वेदक्षीरवृक्षकषाययोजनादीनामभ्यासादित्यर्थः। ९ निस्यन्दो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवृद्धत्वाच्च शल्यस्येति । उद्धृतशल्यं तृष्णोदकद्रोण्यामवतार्य[1] स्वेदयेत्, तथा हि बस्तिरसृजा न पूर्यते; पूर्णं वा क्षीरवृक्षकषायं पुष्पनेत्रेण[2] विदध्यात् ॥ ३३ ॥

भवति चात्र ।

क्षीरवृक्षकषायस्तु पुष्पनेत्रेण योजितः ।
निर्हरेदश्मरीं तूर्णं रक्तं बस्तिगतं च यत् ॥ ३४ ॥

मूत्रमार्गविशोधनार्थं चास्मै गुडसौहित्यं[3] वितरेत् । उद्धृत्य चैनां मधुघृताभ्यक्तव्रणं मूत्रविशोधनद्रव्यसिद्धामुष्णां[4] सघृतां यवागूं पाययेदुभयकालं त्रिरात्रम् । त्रिरात्रादूर्ध्वं गुडप्रगाढेन पयसा मृद्वोदनमल्पं भोजयेद्दशरात्रं मूत्रासृग्विशुद्ध्यर्थं व्रणक्लेदनार्थं[5] च दशरात्रादूर्ध्वं फलाम्लैर्जाङ्गलरसैरुपाचरेत् । ततो दशरात्रं चैनमप्रमत्तः स्वेदयेत् स्नेहेन द्रवस्वेदेन वा, क्षीरवृक्षकषायेण चास्य व्रणं प्रक्षालयेत् । रोध्रमधुकमञ्जिष्ठाप्रपौण्डरीककल्कैर्व्रणं प्रतिग्राहयेत्[6] । एतेष्वेव हरिद्रायुतेषु तैलं घृतं वा विपक्वं व्रणाभ्यञ्जनमिति ।

---

मूत्रं तेन परिवृद्धं शल्यं तस्मादित्यर्थः । एतदुक्तं भवति—येन निःस्यन्देन मूत्रेण वृद्धेन सता शल्यं परिवृद्धं तस्य शल्यापहरणेऽपि निःशेषापरिस्रुतत्वाद्भिन्नबस्तिर्जीवतीति निबन्धसङ्ग्रहव्याख्याकारः ।

सुश्रुतार्थसन्दीपने तु—निस्यन्दनं निःस्यन्दोऽत्र मूत्रसम्पृक्तो मल एव 'कुदभिहितो भावो द्रव्यवत्प्रकाशते' इति हि न्यायः । तथा च शल्यस्याश्मर्या बस्तेरुपादानभूतं मांसशोणितमनधिष्ठाय मूत्रमलमात्रेण परिवृद्धत्वान्नास्त्यत्र बस्तेः शल्याभिनिर्वृत्तेः स्वरूपतो दोषलेशोऽपि तस्मान्निरङ्कुशमिदमुपदिश्यते जीवतिक्रियाऽभ्यासादित्ययमभिसन्धिरिति ।

१ स्वेदनार्थमवतारयेदिति तात्पर्यम् । २ पुष्पनेत्रेण = विवक्षितेन उत्तरबस्तिनेत्यर्थः । ३ गुडसौहित्यं = गुडवासितं भक्तम्, वितरेत् = दद्यात् । एनाम् = अश्मरीम्, 'उद्धृत्य चैनमिति उष्णोदकद्रोण्या इति शेषः' इति डल्हणः । ४ मूत्रविशोधनद्रव्यैस्तृणपञ्चमूलीगोक्षुरककूष्माण्डकपाषाणभेदप्रभृतिभिः सिद्धामित्यर्थः । ५ मूत्रासृग्विशुद्ध्यर्थं = मूत्ररुधिरशुद्धये, व्रणक्लेदनार्थं, क्लेदो ह्यन्तर्गतं दोषमपाकृत्य व्रणं रोपणमार्गमापादयति । ६ प्रतिग्राहयेत् = लेपयेदित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्यानशोणितं चोत्तरबस्तिभिरुपाचरेत्। सप्तरात्राच्च स्वमार्गमप्रतिपद्यमाने मूत्रे व्रणं यथोक्तेन विधिना दहेदग्निना। स्वमार्गप्रतिपन्ने चोत्तरबस्त्यास्थापनानुवासनैरुपचरेन्मधुरैकषायैरिति। यदृच्छया वा मूत्रमार्गप्रतिपन्नामन्तरासक्तां शुक्राश्मरीं शर्करां वा स्रोतसाऽपहरेत्। एवं चाशक्ये विदार्य वा नाडीं शस्त्रेण बडिशेनोद्धरेत्। रूढव्रणश्चाङ्गनाश्वनगनागरथद्रुमान्नारोहेत वर्षं नाप्सु प्लवेत भुञ्जीत वा गुरु ॥ ३५ ॥

मूत्रवहशुक्रवहमुष्कस्रोतोमूत्रप्रसेकसेवनीयोनिगुदबस्तीन् परिहरेत्। तत्र मूत्रवहच्छेदान्मरणं मूत्रपूर्णबस्तेः शुक्रवहच्छेदान्मरणं क्लैब्यं वा मुष्कस्रोतउपघाताद् ध्वजभङ्गः। मूत्रप्रसेकक्षणान्मूत्रप्रक्षरणम्। सेवनीयोनिच्छेदाद् रुजः प्रादुर्भावः। बस्तिगुदविद्धलक्षणं प्रागुक्तमिति ॥ ३६ ॥

भवतश्चात्र।

मर्माण्यष्टावसम्बुध्य स्रोतोजानि शरीरिणाम्।
व्यापादयेद्बहून् मर्त्यान् शस्त्रकर्मापटुर्भिषक् ॥ ३७ ॥
सेवनी शुक्रहरणी स्रोतसी फलयोर्गुदम्।
मूत्रसेकं मूत्रवहं योनिर्बस्तिस्तथाऽष्टमः ॥ ३८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थानेऽश्मरीचिकित्सितं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

१ स्त्यानं बस्तौ संहतं शोणितमस्येति स्त्यानशोणितम्। २ मधुराणि सूत्रस्थाने द्विचत्वारिंशदध्यायोक्तानि काकोल्यादीनि कषायाणि क्षीरवृक्षादीनि तैः। मधुरवर्गाणां कषायो यत्र तैर्मधुरकषायैरुत्तरबस्त्यास्थापनानुवासनैरिति सम्बन्ध इति सुश्रुतार्थसन्दीपनम्। ३ स्रोतसा=मूत्रमार्गेणेत्यर्थः। ४ नाडीं मेढ्रानुशायिनीम्। ५ शस्त्रकर्मणि रक्षणीयान्यष्टौ मर्माणि निर्दिशति—**मूत्रवहेति**। ६ शस्त्रकर्मणि अपटुःअचतुर इत्यर्थः।

**इति सुश्रुतसंहिताया श्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तमोऽध्यायः।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अष्टमोऽध्यायः ।

अथातो भगन्दराणां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

पञ्च[1] भगन्दरा व्याख्याताः, तेष्वसाध्यः शम्बूकावर्त्तः शल्यनिमित्तश्चेति । शेषाः कृच्छ्रसाध्याः ॥ ३ ॥

तत्र[2], भगन्दरपिडकोपद्रुतमातुरमपतर्पणादिविरेचनान्तेनैकादशविधेनोपक्रमेणोपक्रमेतापक्वपिडकम् । पक्वेषु चोपस्निग्धमवगाहस्विन्नं शय्यायां सन्निवेश्यार्शसमिव यन्त्रयित्वा, भगन्दरं समीक्ष्य परा[3]चीनमवाचीनं वा, बहिर्मुखमन्तर्मुखं वा । ततः प्रणिधायैषणीमुन्नम्य साशयमुद्धरेच्छस्त्रेण । अन्तर्मुखे चैवं सम्यग्यन्त्रं प्रणिधाय प्रवाह्यमाणस्य भगन्दरमुखमासाद्यैषणीं दत्त्वा शस्त्रं पातयेत् । आसाद्य वाऽग्निद्वारं चेत्येतत्सामान्यं सर्वे[4]षु ॥ ४ ॥

विशेषतस्तु—

नाड्य[5]न्तरे व्रणान् कुर्य्याद्भिषक् तु शतपोनके ।
ततस्तेषू[6]परूढेषु शेषा नाडीरुपाचरेत् ॥ ५ ॥
गतयोऽन्योऽन्यसम्बद्धा बाह्याश्छेद्यास्त्वनेकधा ।

---

अष्टमोऽध्यायः ।

१ पञ्च भगन्दरा व्याख्याता निदाने इति शेषः । "भगं परिसमन्ताच्च गुदं वस्तिं तथैव च । भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्मादेष भगन्दरः" ॥ भजन्त्यनेनेति भगो मेहनम्, भजन्त्यस्मिन्निति भगं योनिः । अत्र भगशब्देन द्वयमपि कथ्यते । भगवत्=योनिवत्, इति तदर्थः ।

२ भगन्दरेषु शस्त्रचिकित्सायाः सामान्यविधिं दर्शयति—**तत्रेति** । अपतर्पणादिविरेचनान्तेनैकादशविधेन द्विव्रणीयोक्तेनेत्यर्थः । ३ परांचीनं=पराङ्मुखम्, बहिर्मुखमिति यावत्; अवाचीनम्=अन्तर्मुखम् । उन्नम्य शस्त्रमार्गनिरूपणार्थं प्रणिहितां तामेषणीमुन्नतां कृत्वा साशयं भगन्दराधिष्ठानभूततत्समीपवर्तिप्रदेशसहितम् उद्धरेच्छिन्द्यादित्यर्थः । ४ सर्वेषु=भगन्दरेष्वित्यर्थः ।

५ शतपोनकाख्ये भगन्दरे शस्त्रक्रियायां विशेषविधिमभिधत्ते—**नाड्यन्तर इति** । नाडीनां निकटस्थानामन्तरं मध्यं नाड्यन्तरं तस्मिन् । व्रणान् कुर्यात् छेदेनेत्यर्थः । ६ उपरूढेषु=सम्यग्रूढलिङ्गेनोपलक्षितेषु व्रणेष्वित्यर्थः । ७ अनिश्चितनिकटासु नाडीषु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाडीरनभिसम्बद्धा[1] यश्छिनत्त्येकधा भिषक् ॥ ६ ॥
स कुर्य्याद्विवृतं[2] जन्तोर्व्रणं गुदविदारणम् ।
तस्य तद्विवृतं मार्गं विण्मूत्रं[3]मनुगच्छति ॥ ७ ॥
आटोपगुदशूलं च करोति पवनो भृशम् ।
तत्राधिगततन्त्रोऽपि भिषङ्मुह्येदसंशयम् ॥ ८ ॥
तस्मान्न विवृतः कार्यो व्रणस्तु शतपोनके ।
व्याधौ तत्र बहुच्छिद्रे भिषजा वै विजानता ॥ ९ ॥
अर्द्धलाङ्गलकश्छेदः[4] कार्यो लाङ्गलकोऽपि वा ।
सर्वतोभद्रको[5] वाऽपि कार्यो गोतीर्थकोऽपि वा ॥ १० ॥
सर्वतः स्रावमार्गांस्तु दहेद्वैद्यस्तथाऽग्निना[6] ।
सुकुमारस्य भीरोर्हि दुष्करः शतपोनकः ॥ ११ ॥
रुजास्रावापहं[7] तत्र स्वेदमाशु प्रयोजयेत् ।
स्वेदद्रव्यैर्यथोद्दिष्टैः कृशरापायसादिभिः ॥ १२ ॥
ग्राम्यानूपौदकैर्मांसैर्लावाद्यैर्वाऽपि विष्किरैः[8] ।

---

छेदकरणे दोषं दर्शयति—**गतय इति** । गतयः=नाड्यः । १ अनभिसम्बद्धाः=परस्परममिलिताः । २ विवृतं=व्यात्तमुखं व्रणमित्यर्थः ।

३ व्यात्तमुखव्रणेन मलमूत्रं निस्सरतीत्यर्थः । ४ लाङ्गलं हलम् , अर्धलाङ्गल इव अर्धलाङ्गलकः । ५ सर्वतोभद्रस्त्वासनविशेषः पर्यङ्किकाकारो मण्डलाकारसदृशो वा । गोतीर्थकस्य कियन्तोऽर्था डल्हणेन कृताः । तद्यथा—गच्छतो गोः मूत्रगतिसदृशः, अथवा गोतीर्थं गोयोनिः, तदाकारो गोतीर्थकः, अथवा गोतीर्थं निपानं ( प्याऊ ) येन गावः पिबन्ति, तत्खुराङ्कितवच्छेदविशेषः । तथा च तन्त्रान्तरम्—"द्वाभ्यां समाभ्यां पार्श्वाभ्यां छेदो लाङ्गलको मतः । ह्रस्वमेकतरं यच्च सोऽर्द्धलाङ्गलकः स्मृतः ॥ सेवनीं वर्जयित्वा च चतुर्द्धा दारिते गुदे । सर्वतोभद्रकं छेदमाहुश्छेदविदो जनाः ॥ पार्श्वगतेन शस्त्रेण छेदो गोतीर्थको भवेत् ।" इति । ६ अग्निनेति प्राधान्येनोपदिश्यते, तेन क्षारेणापि दाहो बोध्यः ।

७ शतपोनके शस्त्रकर्मणः पश्चात्कर्म निर्दिशति—**रुजास्रावेति** । तत्र=शतपोनके । ८ द्वात्रिंशत्तमस्वेदावचारणीयाध्यायोक्तैः स्वेदद्रव्यैरित्यर्थः । ९ "वर्तकालावविकिरकपिञ्जलकतित्तिराः । कुलिङ्गकुक्कुटाद्याश्च विष्किराः समुदाहृताः । विकीर्य भक्षयन्त्येते यस्मात्तस्माद्धि विष्किराः ॥" इति । विष्किरैरिति सिद्धे लावाद्यैरिति विशे-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्षादनीमथैरण्डं बिल्वादिं च गणं तथा ॥ १३ ॥
कषायं सुकृतं कृत्वा स्नेहकुम्भे निषेचयेत् ।
नाडीस्वेदेन तेनास्य तं व्रणं स्वेदयेद्भिषक् ॥ १४ ॥
तिलैरण्डातसीमाषयवगोधूमसर्षपान् ।
लवणान्यम्लवर्गञ्च स्थाल्यामेवोपसाधयेत् ॥ १५ ॥
आतुरं स्वेदयेत्तेन तथा सिध्यति कुर्वतः ।
स्विन्नं च पाययेदेनं कुष्ठं च लवणानि च ॥ १६ ॥
वचाहिङ्ग्वजमोदं च समभागानि सर्पिषा ।
माद्वीकेनाथवाऽम्लेन सुरासौवीरकेण वा ॥ १७ ॥
ततो मधुकतैलेन तस्य सिञ्चेद्भिषग् व्रणम् ।
परिषिञ्चेद् गुदं चास्य तैलैर्वातरुजापहैः ॥ १८ ॥
विधिनाऽनेन विण्मूत्रं स्वमार्गमधिगच्छति ।
अन्ये चोपद्रवास्तीव्राः सिध्यन्त्यत्र न संशयः ॥ १९ ॥
शतपोनक आख्यात उष्ट्रग्रीवे क्रियां शृणु ।
अथोष्ट्रग्रीवमेषित्वा छित्त्वा क्षारं निपातयेत् ॥ २० ॥
पूतिमांसव्यपोहार्थमग्निरत्र न पूजितः ।
अथैनं घृतसंसृष्टैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ २१ ॥
बन्धं ततोऽनुकुर्वीत परिषेकं तु सर्पिषा ।
तृतीये दिवसे मुक्त्वा यथास्वं शोधयेद्भिषक् ॥ २२ ॥

---

षणं विष्किरेषु लावस्यैव विशेषेणौपयौगिकत्वबोधनार्थम् । १ वृक्षादनी = वन्दाकः, बिल्वादिं गणं = बृहत्पञ्चमूलम् ।

२ नाडीस्वेदविधानं चिकित्सास्थानस्य द्वात्रिंशत्तमे स्वेदाचारणीयाध्याये द्रष्टव्यम् । ३ एनं = भगन्दरातुरम् । ४ माद्वीकेन = द्राक्षामद्येनेत्यर्थः । ५ मधुककाथकल्कसिद्धं तैलं मधुकतैलं तेन । ६ वातव्याधिनिर्दिष्टैर्वातरुजापहैस्तैलैरित्यर्थः । ७ उपद्रवाः = आध्मानगुदभ्रंशादयः ।

८ उष्ट्रग्रीवाख्यभगन्दरचिकित्सां निर्दिशति—अथेति । क्षारनिपातनं पूतिमांसापकर्षणार्थम् । ९ बन्धं = गोफणाख्यं कौपीनाकारबन्धमित्यर्थः । १० यथास्वं = य-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः शुद्धं विदित्वा च रोपयेत्तु यथाक्रमम् ।
उत्कृत्यास्रावमार्गं तु परिस्राविणि बुद्धिमान् ॥ २३ ॥
क्षारेण वा स्रावगतिं दहेद्धुतवहेन वा ।
सुखोष्णेनाणुतैलेन सेचयेद् गुदमण्डलम् ॥ २४ ॥
उपनाहाः प्रदेहाश्च मूत्रक्षारसमन्विताः ।
वामनीयौषधैः कार्याः परिषेकाश्च मात्रया ॥ २५ ॥
मृदुभूतं विदित्वैनमल्पस्रावरुगन्वितम् ।

---

थादोषं द्विव्रणीयोक्तानुसारेण । १ द्विव्रणीयोक्तं क्रममनतिक्रम्येति यथाक्रमम् । २ उत्कृत्य=शस्त्रेण छित्त्वा । ३ अणुतैलं प्राक् चतुर्थाध्याये कथितं, सुखोष्णेन तेन गुदमण्डलं सेचयेत् ।

४ वामनीयौषधैर्मदनफलादिभिः संशोधनसंशमनीयाध्यायोक्तैरुपनाहादयः परिषेकाः प्रक्षालनार्थाः क्वाथाश्च मूत्रक्षारसमन्विताः कार्या इत्यर्थः । ५ व्याध्यादिबलमभिसमीक्ष्य यत्र यादृशी मात्रा उचिता तत्र तादृश्या मात्रयेत्यर्थः ।

६ परिस्राविभगन्दरे शस्त्रक्रियाविधिमभिधत्ते—**मृदुभूतमिति** । एनं परिस्राविणं भगन्दरं मृदुभूतं दोषदुष्टतया सञ्जीतमृदुमांसत्वेनावाप्तमृदुभावम् , अल्पस्रावरुगन्वितं प्राक्छित्ततया दोषाणामल्पीयस्त्वेन अल्पतरस्राववेदनं विदित्वा गतिं नाडीमन्विष्य खर्जूरपत्रादिकं निश्शेषं छिन्द्यादित्यर्थः । डल्हणः—खर्जूरपत्रमिव पत्रकं यस्य तत् खर्जूरपत्रकम् , तच्च मध्यनाडीच्छेदस्य पार्श्वद्वयस्थानां मुखानां तिर्यक्छेदेन पङ्क्तिद्वयेन भवति । मध्यवक्रनाड्यनुलोमच्छेदस्यार्धचन्द्रतुल्यत्वादर्धचन्द्रः । मध्यरूढव्रणपदस्यैकमूलपार्श्वद्वयगतनाडीद्वयेनैकमुखेन बहिर्मुखेन चन्द्रमण्डलतुल्यत्वाच्छेदस्य चन्द्रमण्डलतनीयस्याभग्नकूलयोर्विशालायां वा नाड्यनुरोधे मध्यैकच्छेदेन मूलाग्रयोस्त्रिशिष्येऽवच्छेदेन चक्राकारसादृश्याच्चक्रम् । अन्तर्मुखे स्थूलं मूलेऽणु तेन सूचीमुखं, तदेव अवाङ्मुखमधोमुखमिति ।

क्षारणचन्द्रस्तु—खर्जूरपत्रकादीनि तु संस्थानविशेषभिन्नानां भगन्दराणां नामानि । अत्र खर्जूरपत्रकमिति संज्ञायां कः । सा च काकपक्षकादिवत् सादृश्यमूला । तथा च खर्जूरपत्राणि यथा नालस्योभयपार्श्वतः प्रसरन्तितथैव प्रसृताभिर्नाडीभिरुपनिबद्धा प्रधाननाडी यत्राविर्भवति स खर्जूरपत्रको नाम भगन्दरः, चन्द्रस्यार्धमिवेति चन्द्रार्धम् , चन्द्र चक्रं चन्द्रमण्डलाकारम् , सूचीमुखं सूक्ष्मवक्त्रम् , अवाङ्मुखमधोमुखमिति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतिमन्विष्य शस्त्रेण छिन्द्यात् खर्जूरपत्रकम् ॥ २६ ॥
चन्द्रार्द्धं चन्द्रचक्रञ्च सूचीमुखमवाङ्मुखम् ।
छित्त्वाऽग्निना दहेत् सम्यगेवं क्षारेण वा पुनः ॥ २७ ॥
ततः संशोधनैरेवं मृदुपूर्वैर्[1]विशोधयेत् ।
बहिरन्तर्मुखश्चापि शिशोर्यस्य भगन्दरः ॥ २८ ॥
तस्याहितं विरेकाग्निशस्त्रक्षारावचारणम् ।
यद्यन्मृदु च[3] तीक्ष्णं च तत्तत्तस्यावचारयेत् ॥ २९ ॥
आरग्वधनिशाकालाचूर्णं[4] मधुघृताप्लुतम् ।
अग्र्यवर्त्तिप्रणिहितं व्रणानां शोधनं हितम् ॥ ३० ॥
योगोऽयं नाशयत्याशु गतिं मेघमिवानिलः ।
आगन्तुजे भिषङ्नाडीं[6] शस्त्रेणोत्कृत्य यत्नतः ॥ ३१ ॥
जम्ब्वोष्ठेनाग्निवर्णेन तप्तया वा शलाकया ।
दहेद्यथोक्तं मतिमांस्तं व्रणं सुसमाहितः ॥ ३२ ॥
कृमिघ्नं च विधिं कुर्य्याच्छल्यानयनमेव च ।
प्रत्याख्यायैष[8] चारभ्यो वर्ज्यश्चापि त्रिदोषजः ॥ ३३ ॥
एतत्[9] कर्म समाख्या सर्वेषामनुपूर्वशः ।

---

१ मृदुपूर्वैः संशोधनैः पूर्वं मृदुसंशोधनैः, क्रूरकोष्ठं चेत् पश्चात् तीक्ष्णैः संशोधनैः शोधयेदित्यर्थः । २ शिशूनां भगन्दरविशेषे विरेकाग्निशस्त्रक्षारनिषेधं दर्शयति—**बहिरिति** । ३ मृदु च तीक्ष्णं च = नातितीक्ष्णं नातिमृदित्यर्थः । यथा नात्युष्णशीताः काकमाच्यादयः । ४ भगन्दरे आरग्वधादिवर्तिमाह—**आरग्वधेति** । आरग्वधः = 'अमलतास'इति, निशा = हरिद्रा, काला = 'काली निसोत'इति ख्याता । मधुघृताप्लुतम् , सामान्येनोक्तेऽपि चूर्णाद् द्विगुणं मधु पक्त्वाऽतितरां तन्तुलीभूते तस्मिन् चूर्णमेतत् प्रक्षिप्य घृताक्ते ताम्रपात्रेऽवतार्योष्णावस्थायां वर्तिः कार्येत्युपदिशन्ति प्राञ्चः । अर्वाञ्चस्तु मधुघृताप्लुतेन चूर्णेनाक्तं वस्त्रखण्डमेव वर्तीकृत्योपयुञ्जन्तीति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । ५ अग्रवर्तिः नातिश्लथखरत्वेन घनवर्तिता सूत्रमयी वर्तिस्तया प्रणिहितमित्यर्थः ।

६ शल्यनिमित्तभगन्दरचिकित्सां निर्दिशति—**आगन्तुज इति** । ७ जम्ब्वोष्ठेन = जम्बूफलसदृशसूक्ष्माग्रकृष्णपाषाणरचितया वर्त्या । ८ एषः = आगन्तुजः, प्रत्याख्याय = प्रायेणासाध्य इत्यभिधायेत्यर्थः । ९ सर्वभगन्दरेषु शस्त्रजनितवेदनाशमनो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एषान्तु शस्त्रपतनाद्वेदना यत्र जायते ॥ ३४ ॥
तत्राणुतैलेनोष्णेन परिषेकः प्रशस्यते ।
वातघ्नौषधसम्पूर्णां[1] स्थालीं छिद्रशराविकाम् ॥ ३५ ॥
स्नेहाभ्यक्तगुदस्तप्तामध्यासीत सबाष्पिकाम्[2] ।
नाड्या वाऽस्याहरेत् स्वेदं शयानस्य रुजापहम् ।
उष्णोदकेऽवगाह्यो वा तथा शाम्यति वेदना ॥ ३६ ॥
कदलीमृगलोपाकप्रियकाजिनसम्भृतान्[3] ।
कारयेदुपनाहांश्च शालवणादीन् विचक्षणः ॥ ३७ ॥
कटुत्रिकं वचाहिङ्गुलवणान्यथ दीप्यकम्[4] ।
पाययेच्चाम्लकौलत्थसुरासौवीरकादिभिः ॥ ३८ ॥
ज्योतिष्मतीलाङ्गलकीश्यामादन्तीत्रिवृत्तिलाः[5] ।
कुष्ठं शताह्वा गोलोमी[6] तिल्वको गिरिकर्णिका ॥ ३९ ॥
कासीसं काञ्चनक्षीर्य्यौ वर्गः शोधन इष्यते ।
त्रिवृत्तिला नागदन्ती मञ्जिष्ठा पयसा सह[7] ॥ ४० ॥
उत्सादनं भवेदेतत् सैन्धवक्षौद्रसंयुतम् ।
रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठानिम्बपल्लवाः[8] ॥ ४१ ॥
त्रिवृत्तेजो[9]तीदन्तीकल्को नाडीव्रणापहः ।

---

पायं दर्शयति—**एतदिति** । १ वातघ्नौषधसम्पूर्णां = भद्रदार्वाद्यैरण्डादिवातहरौषधक्काथपूर्णामित्यर्थः । स्थालीं कथम्भूतां ? छिद्रशराविकां छिद्रीकृतशरावाच्छन्नमुखाम् । २ सबाष्पिकां = बाष्पमुद्गिरन्तीम् ।

३ वातकफजे भगन्दरे वेदनोपशमनार्थमुपनाहं दर्शयति—**कदलीमृगेति** । कदलीमृगो मृगविशेषः, लोपाकः शृगालभेदः, प्रियको मृगविशेषः । 'कदलीकन्दलीचीनश्चमूरुप्रियकावपि'इत्यमरः । ४ भगन्दरे त्रिकटुकादियोगं वक्ति—**कटुत्रिकमिति** । ५ भगन्दरशोधनवर्गमभिधत्ते—**ज्योतिष्मतीति** । ज्योतिष्मती = 'मालकाङ्गनी' इति, लाङ्गलकी = 'कलिहारी'इति, श्यामा = 'कालीनिसोत'इति । ६ गोलोमी = दूर्वा, गिरिकर्णिका = अपराजिता ।

७ भगन्दरोत्सादनद्रव्याण्याह—**त्रिवृदिति** । ८ भगन्दरे रोपणशोधनकल्कमभिदधाति—**रसाञ्जनमिति** । ९ तेजोवती = 'तेजबल'इति ख्याता ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुष्ठं त्रिवृत्तिला दन्ती मागध्यः सैन्धवं मधु ॥ ४२ ॥
रजनी त्रिफला तुत्थं हितं स्याद् व्रणशोधनम् ।
मागध्यो मधुकं रोध्रं कुष्ठमैला हरेणवः ॥ ४३ ॥
मञ्जिष्ठा धातकी चैव सारिवा रजनीद्वयम् ।
प्रियङ्गवः सर्जरसः पद्मकं पद्मकेसरम् ॥ ४४ ॥
सुधा वचा लाङ्गलकी मधूच्छिष्टं ससैन्धवम् ।
एतत् सम्भृत्य सम्भारं तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ ४५ ॥
एतद्वै गण्डमालासु मण्डलेष्वथ मेहिषु ।
रोपणार्थं हितं तैलं भगन्दरविनाशनम् ॥ ४६ ॥
न्यग्रोधादिगणश्चैव हितः शोधनरोपणे ।
तैलं घृतं वा तत्पक्वं भगन्दरविनाशनम् ॥ ४७ ॥
त्रिवृद्दन्तीहरिद्राऽर्कमूलं लोहाश्वमारकौ ।
विडङ्गसारं त्रिफला स्नुह्यर्कपयसी मधु ॥ ४८ ॥
मधूच्छिष्टसमायुक्तैस्तैलमेतैर्विपाचयेत् ।
भगन्दरविनाशार्थमेतद्योज्यं विशेषतः ॥ ४९ ॥
चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलपूं ह्यमारकम् ।
सुधां वचां लाङ्गलकीं सप्तपर्णं सुवर्चिकाम् ॥ ५० ॥
ज्योतिष्मतीं च सम्भृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ।
एतद्धि स्यन्दनं तैलं भृशं दद्याद्भगन्दरे ॥ ५१ ॥
शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ।
द्विव्रणीयमवेक्षेत व्रणावस्थासु बुद्धिमान् ॥ ५२ ॥
छिद्राद्ऊर्ध्वं हरेदोष्ठमर्शोयन्त्रस्य यन्त्रवित् ।

---

१ मागध्यादिरोपणतैलमभिधत्ते—**मागध्य इति** । कल्पनाप्रकारस्तु—यावन्ति तैलानि तच्चतुर्थांशो भेषजानां कल्कः, तैल चतुर्गुणं जलमिति ।

२ न्यग्रोधादिगणो द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये प्राग् द्रष्टव्यः । ३ लोहम्=अगुरु, अश्वमारकः=करवीरः । विडङ्गसारं='वायभिरङ्ग'इति ख्यातम् । ४ स्यन्दनतैलं निर्दिशति—**चित्रकेति** । मलपूः=कठूमर'इति । ५ स्यन्दनं=स्यन्दनाख्यं तैलमित्यर्थः । ६ अर्शोयन्त्रं तु सोष्ठत्वेन नैवोपयोगार्हं गुदोष्ठादेव छेद्यत्वात्तदिदं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो भगन्दरे दद्यादेतदर्धेन्दुसन्निभम् ॥ ५३ ॥
व्यायामं[1] मैथुनं कोपं पृष्ठयानं गुरूणि[2] च ।
संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः ॥ ५४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने भगन्दरचिकित्सितं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

## नवमोऽध्यायः ।

अथातः[3] कुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
विरुद्धाध्यशनासात्म्यवेगविघातैः स्नेहादीनां चायथारम्भैः पापक्रियया पुरा[4]कृतकर्मयोगाच्च त्वग्दोषा भवन्ति ॥ ३ ॥
तत्र[5], त्वग्दोषी मांसवसादुग्धदधितैलकुलत्थमाषनिष्पावे[6]क्षुपिष्टविकाराम्लविरुद्धा[7]ध्यशनाजीर्णविदाह्यभिष्यन्दीनि दिवास्वप्नं व्यवायं च परिहरेत् ॥ ४ ॥

---

ब्रवीति—**छिद्रादिति** । १ भगन्दरे आसंवत्सरं वर्ज्याणि निर्दिशति—**व्यायाममिति** । २ गुरूणि भोजनानीत्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहिताया[3]चिकित्सास्थानीयसुधाख्यटिप्पन्यामष्टमोऽध्यायः ।**

---

### नवमोऽध्यायः ।

३ 'म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवेत् । नातो निन्द्यतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ॥'इति स्मरणात् क्रमागतत्वेन कुष्ठचिकित्सिाऽऽरभ्यते—**अथेति** । ४ पुराकृतकर्मयोगात्=प्राक्तनकर्मसम्बन्धात् । "साधुनिन्दावधान्यस्वहरणाद्यैश्च सेवितैः । पाप्मभिः, कर्मभिः सद्यः प्राक्तनैः प्रेरिता मलाः ॥ त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दुष्टाः कुष्ठमुशन्ति तत् ।"इत्यष्टाङ्गहृदयम् । त्वग्दोषाः=कुष्ठाः ।

५ कुष्ठिनां वर्ज्याणि निर्दिशति—**तत्रेति** । ६ निष्पावः=राजशिम्बी, 'भटवासु'इति भाषा । ७ विरुद्धं="न मत्स्यान् पयसाऽभ्यवहरेत्"इत्यादिनोक्तम्, अध्यशनं="अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते"इति, अजीर्णम्=आममन्नम्,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]ततः शालिषष्टिकयवगोधूमकोरदूषश्यामाकोद्दालकादीननवान् भुञ्जीत मुद्गाढक्योरन्यतरस्य यूषेण[2] सूपेन वा निम्बपत्रारुष्कर-व्यामिश्रेण, मण्डूकपर्ण्यवल्गुजाटरूषकरूपिकापुष्पैः सर्पिःसिद्धैः सर्षपतैलसिद्धैर्वा, तिक्तवर्गेण[3] वाऽभिहितेन। मांससात्म्याय वा जाङ्गलमांसममेदस्कं[4] वितरेत्। तैलं वज्रकं[5]मभ्यङ्गार्थे। आरग्व[6]धादिकषायमुत्सादनार्थे। पानपरिषेकावगाहादिषु च खदिरकषायम्। इत्येष आहाराचारविभागः ॥ ५ ॥

तत्र [7]पूर्वरूपेषूभयतः संशोधनमासेवेत। तत्र त्वक्[8]सम्प्राप्ते शोधनालेपनानि। शोणितप्राप्ते संशोधनालेपनकषायपानशोणिता-वसेचनानि। मांसप्राप्ते शोधनालेपनकषायपानशोणितावसेचना-रिष्ट[9]मन्थप्राशाः। [10]चतुर्थकर्मगुणप्राप्तं याप्यमात्मवतः[11] संविधानव-

---

अपक्वमिति यावत्, विदाहि=परिणामेऽम्लपाककारि, "विदाहि द्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात्तथा तृषाम्। हृदि दाहं च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात्॥" इति, अभिष्यन्दि=श्लेष्मप्रकोपि, "पैच्छिल्याद् गौरवाद् द्रव्यं रुध्वा रसवहाः सिराः। धत्ते यद् गौरवं तत्स्यादभिष्यन्दि यथा दधि॥" इति, गुणसाधर्म्याच्छ्लेष्माऽपि पिच्छिलगौरवादिगुणयुक्तः।

१ कुष्ठे विहितानि निर्दिशति—तत इति। २ वस्त्रगालितः क्वाथो यूषः, अगालितः सूपः। अरुष्करः=भल्लातकफलम्। अवल्गुजा='वाकुची' इति, अटरूषकः='अडूसा' इति, रूपिकापुष्पम्=अर्कपुष्पम्। ३ प्रपुन्नाडावल्गुजपटोलवार्ताकादिना तिक्तवर्गेणेत्यर्थः। ४ अमेदस्कं=मेदोरहितम्। ५ वज्रकं तैलं="सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजम्" इत्यादिनाऽस्मिन्नेवाध्याये वक्ष्यमाणम्। ६ आरग्वधादिद्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तस्तस्य कषायः कल्क इत्यर्थः, कषायशब्दस्य चरके स्वरसादिषु पञ्चसु परिभाषणात्। तथाहि—"पञ्चविधं कषायकल्पनमिति। तद्यथा—स्वरसः, कल्कः, शृतः, शीतः, फाण्टः, कषाय इति" इति। उत्सादनार्थे=उद्वर्तनार्थे।

७ "अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णताः। दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोष्ठोन्नतिर्भ्रमः॥ व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः। रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽतिकोपनम्॥ रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम्।" इति च कुष्ठपूर्वरूपलक्षणमुन्नेयम्। उभयतः संशोधनं=वमनं विरेचनं च। ८ त्वक्संप्राप्ते=रसप्राप्ते।

९ अत्रारिष्टशब्दस्योपलक्षणत्वादासवसुरयोरपि परिग्रहः कार्यः। १० चतुर्थं=मेदोगतम्। ११ आत्मवतः=समीचीनाहाराचारस्य, संविधानवतः=कर्मानुष्ठानसाधनपर-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तश्च। तत्र संशोधनाच्छोणितावसेचनाच्चोर्ध्वं भल्लातशिलाजतुधातुमाक्षीकगुग्गुल्वगुरुतुवरकखदिरासनायस्कृतिविधानमासेवेत। पञ्चमं नैव चोपक्रमेत् ॥ ६ ॥

तत्र प्रथममेव कुष्ठिनं स्नेहपानविधानेनोपपादयेत्। मेषशृङ्गीश्वदंष्ट्राशार्ङ्गेष्टागुडूचीद्विपञ्चमूलीसिद्धं तैलं घृतं वा वातकुष्ठिनां पानाभ्यङ्गयोर्विदध्यात्। धवाश्वकर्णककुभपलाशपिचुमर्दपर्पटकमधुकरोध्रसमङ्गासिद्धं सर्पिः पित्तकुष्ठिनाम्। प्रियालशालारग्वधनिम्बसप्तपर्णचित्रकमरिचवचाकुष्ठसिद्धं श्लेष्मकुष्ठिनाम्। भल्लातकाभयाविडङ्गसिद्धं वा सर्वेषाम्। तुवरकतैलं भल्लातकतैलं वेति ॥ ७ ॥

सप्तपर्णारग्वधातिविषेक्षुरपाठाकटुरोहिण्यमृतात्रिफलापटोलपि-

---

कस्येत्यर्थः। १ भल्लातकविधानमर्शश्चिकित्सिते, गुग्गुलोर्महावातव्याधिचिकित्सिते, शिलाजतुतुवरकविधानं प्रमेहपिडकाचिकित्सितेषु, खदिरासनायस्कृतिविधानं च महाकुष्ठविधौ निर्दिष्टमिति तत एवावगन्तव्यम्। २ पञ्चमम्=अस्थ्यादिगतकुष्ठमित्यर्थः।

३ तन्त्रान्तरेऽपि—"कुष्ठिनं स्नेहपानेन पूर्वं सर्वमुपाचरेत्" इति। अपि च—"स्नेहैराप्याययेच्चैनं कुष्ठघ्नैरन्तराऽन्तरा" इति। ४ वातानुबन्धकुष्ठचिकित्सां दर्शयति—**मेषशृङ्गीति**। मेषशृङ्गी=मेढाशिंगी' इति, श्वदंष्ट्रा=गोक्षुरकः, शार्ङ्गेष्टा='काकजंघा' इति, गुडूचीति सुश्रुतार्थसन्दीपनम्। द्विपञ्चमूली=दशमूलम्।

५ पित्तानुबन्धकुष्ठचिकित्सां निर्दिशति—**धवेति**। अश्वकर्णः=शालभेदः, ककुभः=अर्जुनः, पिचुमर्दः=निम्बः, अस्य त्वग् ग्राह्या। तदुक्तम्—"सारः स्यात् खदिरादीनां निम्बादीनां त्वचस्तथा। फलं तु दाडिमादीनां पटोलादेर्दलं तथा॥" इति। एतद्वचनं यत्र पत्रादिशब्देन विशेषो नोक्तस्तत्रैव बोद्धव्यम्। पर्पटकः='पित्तपापड़ा' इति, समङ्गा=लज्जालुः, 'लजौनी' इति भाषा।

६ श्लेष्मानुबन्धकुष्ठचिकित्सामाह—**प्रियालेति**। प्रियालः='चिरौंजी' इति प्रसिद्धः। ७ त्रिदोषजनितकुष्ठचिकित्सामाह—**भल्लातकेति**। अभया=हरीतकी।

८ महातिक्तघृतं निर्दिशति—**सप्तपर्णेति**। सप्तपर्णः='सतवन' इति ख्यातः, आरग्वधः='अमलतास' इति, अतिविषा='अतीस' इति, कटुरोहिणी='कुटकी' इति, अमृता='गुडूची' इति, त्रिफला, पटोलः, पिचुमर्दः=निम्बः, पर्पटकः='पित्तपापड़ा' इति, दुरालभा='जवासा' इति, पद्मकः='पद्माख' इति, हरिद्रापदेन 'हलदी' 'दारुहल्दी' इति द्वयं ग्राह्यम्, उपकुल्यापदेन 'पिप्पली-गजपिप्पली' इति द्वयं च

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुमर्दपर्पटकदुरालभात्रायमाणामुस्ताचन्दनपद्मकहरिद्रोपकुल्याविशालामूर्वाशतावरीसारिवेन्द्रयवाटरूषकषड्ग्रन्थामधुकभूनिम्बगृष्टिका इति समभागाः कल्कः स्यात्, कल्काच्चतुर्गुणं सर्पिः प्रक्षिप्य तद् द्विगुणो धात्रीफलरसस्तच्चतुर्गुणा आपस्तदैकध्यं समालोड्य विपचेत्, एतन्महातिक्तकं नाम सर्पिः कुष्ठविषमज्वररक्तपित्तहृद्रोगोन्मादापस्मारगुल्मपिडकाऽसृग्दरगलगण्डगण्डमालाश्लीपदपाण्डुरोगविसर्पषाण्ड्यकण्डूपामादीञ्छमयेदिति ॥ ८ ॥

त्रिफलापटोलपिचुमन्दाटरूषककटुरोहिणीदुरालभात्रायमाणाः पर्पटकश्चैतेषां द्विपलिकान् भागान् जलद्रोणे प्रक्षिप्य पादावशेषं कषायमादाय कल्कपेष्याणीमानि भेषजान्यर्द्धपलिकानि त्रायमाणामुस्तेन्द्रयवचन्दनकिराततिक्तानि पिप्पल्यश्चैतानि घृतप्रस्थे समावाप्य विपचेत्, एतत्तिक्तकं नाम सर्पिः कुष्ठविषमज्वरगुल्मार्शोग्रहणीदोषशोफपाण्डुरोगविसर्पषाण्ड्यशमनं चेति ॥ ९ ॥

अतोऽन्यतमेन घृतेन स्निग्धस्विन्नस्यैकां द्वे तिस्रश्चतस्रः पञ्च वा सिरा विध्येत्; मण्डलानि चोत्सन्नान्यवलिखेदभीक्ष्णं, प्रच्छयेद्वा, समुद्रफेणशाकगोजीकाकोदुम्बरिकापत्रैर्वाऽवघृष्यालेपयेल्लाक्षासर्जरसरसाञ्जनप्रपुन्नाडावल्गुजतेजोवत्यश्वमारकार्ककुटजारेवतमूलकल्कैर्मूत्रपिष्टैः पित्तपिष्टैर्वा, स्वर्जिकातुत्थकासीसविडङ्गागार-

---

ग्राह्यम्, तन्त्रान्तरे दर्शनात्। विशाला=इन्द्रवारुणी, मूर्वा='मरोरफली' इति,..... षड्ग्रन्था=वचा, मधुकः='मुलहठी' इति, भूनिम्बः='चिरायता' इति, गृष्टिका='वाराहीकन्द' इति ख्याता।

१ तिक्तघृतविधानं ब्रवीति—**त्रिफलेति**। २ द्विपलिकान्=अष्टौ तोलकान्, द्रोणे=सार्द्धद्वादशसेटके जले इत्यर्थः। ३ कल्कार्थं दृषदि पेषणीयानि कल्कपेष्याणि, इमानि=वक्ष्यमाणानि त्रायमाणादीनीत्यर्थः। ४ समावाप्य=निःक्षिप्येत्यर्थः। ५ उत्सन्नानि=उद्धतानि। ६ कुष्ठेषु प्रथमलेपमाह—**समुद्रफेणेति**। शाकः='सागौन' इति ख्यातो महाखरपत्रः। ७ प्रपुन्नाडः=चक्रमर्दः, अवल्गुजः='वाकुची' इति ख्यातः। ८ गोपित्तपिष्टैरित्यर्थः।

९ द्वितीयलेपं निर्दिशति—**स्वर्जिकेति**। स्वर्जिका='सज्जीखार' इति ख्याता।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूमचित्रककटुकसुधाहरिद्रासैन्धवकल्कैर्वा, एतान्येवावाप्य क्षार-कल्पेन निःस्रुते पालाशे क्षारे ततो विपाच्य फाणितमिव सञ्जातम-वतार्य लेपयेत्, ज्योतिष्कफलत्वक्षामरिचपिप्पलीसुमनःपत्रैर्वा, हरितालमनःशिलार्कक्षीरतिलशिग्रुमरिचकल्कैर्वा, स्वर्जिकाकुष्ठतु-त्थकुटजचित्रकविडङ्गमरिचमनःशिलाकल्कैर्वा, हरीतकीकरञ्जिका-विडङ्गसिद्धार्थकलवणरोचनावल्गुजहरिद्राकल्कैर्वा ॥ १० ॥

सर्वे कुष्ठापहाः सिद्धा लेपाः सप्त प्रकीर्त्तिताः ।
वैशेषिकानतस्तूर्ध्वं दद्रूश्वित्रेषु मे शृणु ॥ ११ ॥

लाक्षा कुष्ठं सर्षपाः श्रीनिकेतं रात्रिर्व्योषं चक्रमर्दस्य बीजम् ।
कृत्वैकस्थं तक्रपिष्टः प्रलेपो दद्रूपूक्तो मूलकाद्बीजयुक्तः ॥ १२ ॥
सिन्धूद्भूतं चक्रमर्दस्य बीजमिक्षूद्भूतं केशरं तार्क्ष्यशैलम् ।
पिष्टो लेपोऽयं कपित्थाद्रसेन दद्रूस्तूर्णं नाशयत्येष योगः ॥ १३ ॥
हेमक्षीरी व्याधिघातः शिरीषो निम्बः सर्जो वत्सकः साजकर्णः ।
शीघ्रं तीव्रा नाशयन्तीह दद्रूः स्नानालेपोद्धर्षणेषु प्रयुक्ताः ॥ १४ ॥
भद्रासंज्ञोदुम्बरीमूलतुल्यं दत्त्वा मूलं क्षोदयित्वा मलप्वाः ।

---

१ तृतीयलेपमभिधत्ते—**एतानीति** । एतानि=स्वर्जिकाऽऽदीनि दर्शेत्यर्थः। २ फाणितमिव=मत्स्यण्डीव, फाणितं लोके 'राब' इति ख्यातम्। ३ चतुर्थलेपमाचष्टे—**ज्योतिष्केति** । ज्योतिष्कफलं='मकोयफल' इति, सुमनाः='चमेली' तत्पत्रैरित्यर्थः। ४ पञ्चमलेपमाख्याति—**हरितालेति** । ५ षष्ठलेपं दर्शयति—**स्वर्जिकेति**।

६ सप्तमलेपं वक्ति—**हरीतकीति** । सिद्धार्थकः=सर्षपः। ७ दद्रुनाशकलेपमाह—**लाक्षेति** । श्रीनिकेतं='नवनीत' इति, रात्रिः=हरिद्रा। ८ सिन्धूद्भूतं=सैन्धवम्, इक्षूद्भूतं=गुडादिकम्, केशरं=नागकेसरम्, तार्क्ष्यं=रसाञ्जनम्। ९ हेमक्षीरी=स्वर्णक्षीरी, व्याधिघातः='अमलतास' इति, वत्सकः=कुडा, अजकर्णः='बड़ा साल' इति।

१० श्वित्रचिकित्सामभिदधाति—**भद्रेति** । उदुम्बरी भद्रनामा काष्ठोदुम्बरिका महती, मलपूः सैवाल्पविटपा, तयोर्मूलं पलं षोडशभिः सलिलपलैः पक्वं चतुर्भागावशिष्टमुष्णकाले कोष्णं पीतमातपसंस्थस्य कटुतैलाभ्यक्तस्य च श्वित्रे स्फोटजननमिति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धं तोयं पीतमुष्णे सुखोष्णं स्फोटान् श्वित्रे पुण्डरीके च कुर्यात्॥१५॥
द्वैपं[1] दग्धं चर्म मातङ्गजं वा भिन्ने स्फोटे तैलयुक्तं प्रलेपः ।
पूतिः[2] कीटो राजवृक्षोद्भवेन क्षारेणाक्तः श्वित्रमेको निहन्ति ॥१६॥
कृष्णस्य सर्पस्य [3]सी सुदग्धा बैभीतकं तैलमथ द्वितीयम् ।
एतत् समस्तं मृदितं प्रलेपात् श्वित्राणि सर्वाण्यपहन्ति शीघ्रम् ॥१७॥
अध्यर्द्धतोये[4] सुमतिस्रुतस्य क्षारस्य कल्पेन तु सप्तकृत्वः ।
तैलं श्रृतं तेन चतुर्गुणेन श्वित्रापहं अक्षणमेतदग्र्यम् ॥ १८ ॥
घृतेन युक्तं प्रपुनाडबीजं कुष्ठं च यष्टीमधुकं च पिष्ट्वा ।
श्वेताय दद्याद् गृहकुक्कुटाय चतुर्थभक्ताय[5] बुभुक्षिताय ॥ १९ ॥
तस्योपसङ्गृह्य च तत्पुरीषमुत्पाचितं[6] सर्वत एव लिम्पेत् ।
अभ्यन्तरं[7] मासमिमं प्रयोगं प्रयोजयेच्छ्वित्रमथो निहन्ति ॥२०॥
क्षारे सुदग्धे गजलेण्डजे[8] तु गजस्य मूत्रेण बहुस्रुते[9] च ।
द्रोणप्रमाणे[1] दशभागयुक्तं दत्त्वा पचेद्बीजमवल्गुजस्य[10] ॥ २१ ॥

---

निबन्धसङ्ग्रहव्याख्याकारः । सुश्रुतार्थसन्दीपनकारस्तु—भद्रा अनन्ता, उडुम्बरी इस्वोडुम्बरः, मलपूः काकोडुम्बरिका इत्याह ।

१ सञ्जातभिन्नस्फोटस्य श्वित्रिणः पश्चात्कर्म दर्शयति—द्वैपमिति । २ अधोवायुवत् पूतिगन्धिः कीट इत्यर्थः । राजवृक्षः='अमलतास' इति प्रसिद्धः । ३ पुटदग्धस्य कृष्णवर्णस्य सर्पस्य कृष्णवर्णक्षारो 'मसी' इत्युच्यते । ४ अधिकमर्द्धमत्रेत्यध्यर्द्धम्, अध्यर्द्धं च तत्तोयं तस्मिन् । अत्र श्लोके कृष्णस्य सर्पस्येत्यस्यानुवृत्तिः । तथा चायमर्थः—कल्पेन क्षारपाकविधिना सप्तकृत्वः सप्तवारान् सुमतिस्रुतस्य सुमत्या स्रावितस्य कृष्णसर्पक्षारस्य अध्यर्द्धतोये पाकानन्तरं क्षारापेक्षयाऽर्धाधिकैकभागे तोये चतुर्गुणेन तेन तोयेन श्रृतं तैलं श्वित्रापहं अक्षणम् उपलेपनमेतदग्र्यं श्रेष्ठमित्यर्थः । "स्रावयेत् षड्गुणे तोये केचिदाहुश्चतुर्गुणे" इति क्षारपाकविधिरनुसन्धेयः ।

५ चतुर्थभक्ताय यामदशकमुपोषितत्वेनावाप्तचतुर्थभक्तकालाय, विशेषणस्यास्य निःसृतप्राक्तनपुरीषत्वे तात्पर्यमिति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । ६ उत्पाचितं = मलप्वादिभिः प्रयोगैः स्फोटकादिभिः पाकं नीतमित्यर्थः । ७ अभ्यन्तरं = धात्वन्तर्गतम् । ८ गजलेण्डजे = हस्तिपुरीषजे । ९ बहुस्रुते = एकविंशतिवारान् गालिते । १ द्रोणप्रमाणे = सार्द्धद्वादशसेटकप्रमाणे । १० अवल्गुजस्य = सोमराज्याः, 'वाकुची' इति


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतद्यदा चिक्कणतामुपैति[1] तदा समस्तं गुटिका विदध्यात् ।
श्वित्रं प्रलिम्पेदथ सम्प्रघृष्य, तया व्रजेदाशु सवर्णभावम् ॥ २२ ॥
कषायकल्पेन सुभावितां तु, जलं त्वचं चूतहरीतकीनाम् ।
तां ताम्रदीपे प्रणिधाय धीमान् वर्त्तिं वटक्षीरसुभावितां तु ॥ २३ ॥
आदीप्य तज्जातमसीं गृहीत्वा, तां चापि पथ्याऽम्भसि भावयित्वा ।
सम्भक्षितं तद् बहुशः किलासं, तैलेन सिक्तं कटुना प्रयाति ॥२४॥
आवल्गुजं बीजमग्र्यं[2] नदीजं, काकाह्वानोदुम्बरी या च लाक्षा ।
लौहं चूर्णं मागधी तार्क्ष्यशैलं[4], तुल्याः कार्य्याः कृष्णवर्णास्तिलाश्च॥२५॥
वर्त्तिं कृत्वा तां गवां पित्तपिष्टां, लेपः कार्य्यः श्वित्रिणां श्वित्रहारी ।
लेपात् पित्तं शौखिनं[5] श्वित्रहारि, ह्रीवेरं वा दग्धमेतेन युक्तम् ॥२६॥
तुत्थालकटुकाव्योषसिंहार्कहयमारकाः[6] ।
कुष्ठावल्गुजभल्लातक्षीरिणीसर्षपाः स्नुही ॥ २७ ॥

---

ख्यातस्येत्यर्थः । १ चिक्कणतां=स्निग्धताम् ।

२ किलासचिकित्सां ब्रवीति—**कषायकल्पेनेति** । चूतहरीतकीनां त्वचं छित्त्वा कषायकल्पेन क्वाथकल्पनया जलं यत्काथः, तेन सुभावितां पिचुवर्तिं कटुतैलेन सिक्त्वा तां ताम्रदीपे प्रणिधाय, आदीप्य च तज्जातमसीं गृहीत्वा वटक्षीरसुभावितां कृत्वा तामेव पथ्याऽम्भसि हरीतकीक्वाथेन भावयित्वा कटुना तैलेन सिक्त्वा किलासं बहुशः सम्भक्षितं कोऽर्थः ? उपलेपितं सद् अपयाति । तन्त्रान्तरेऽपि—"पथ्याऽऽमूत्वक्कषायेण पिचुवर्तिः सुभाविता । कटुतैलयुते ताम्रपात्रे प्रज्ज्वालयेत्ततः ॥ मसीं तत्र वटक्षीरपथ्याक्काथेन भावयेत् । भक्षितं कटुतैलाक्तं तेन श्वित्रं प्रणश्यति ॥" इति ।

सुश्रुतार्थसन्दीपनकारस्तु—'जलं त्वचम्' इत्यत्र 'दलत्वजम्' इति पठित्वा व्याख्याति—कश्चिदत्र दलसहिता त्वक् दलत्वक् तां दलत्वचमित्याचष्टे । एतत्त्वगतिकानां गतिरित्यश्रद्दधानाः 'दलमुत्सेधखण्डयोः' इति कोषान्तरस्मरणाद् दलत्वचमुत्सन्नां त्वचमित्याचक्षते । तथा च चूतहरीतकीनां घनां त्वचं कषायकल्पेन "भाव्यद्रव्यसमं क्वाथ्यम्" इत्याद्युक्तेन विधिना प्रकृतत्वात्तासामेव कषायेण सुभावितां सप्तकृत्वो भावितां कृत्वेति शेष इति । ३ नदीजं=तापीनदीसमुद्भूतो माक्षिकधातुः, काकाह्वानोदुम्बरी=काकोदुम्बरिका, 'कठूमर' इति लोके । ४ तार्क्ष्यशैलं=रसाञ्जनम् । ५ शिखिनं इदं शैखिनं मयूरपित्तमित्यर्थः ।

६ प्रथमलेपमाह—**तुत्थेति** । आलं=हरितालम् , ···सिंहः=रक्तशिग्रुः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिल्वकारिष्टपीलूनां पत्राण्यारग्वधस्य वा।
बीजं विडङ्गाश्वहन्त्रोर्हरिद्रे बृहतीद्वयम्॥ २८॥
आभ्यां श्वित्राणि योगाभ्यां लेपान्नश्यन्त्यशेषतः।
वायसी फल्गुतिक्तानां शतं दत्त्वा पृथक् पृथक्॥ २९॥
द्वे लोहरजसः प्रस्थे त्रिफलाढ्याढकं तथा।
त्रिद्रोणेऽपां पचेद् यावद्भागौ द्वावसनादपि॥ ३०॥
शिष्टं च विपचेद् भूय एतैः श्लक्ष्णप्रपेषितैः।
कल्कैरिन्द्रयवव्योषत्वग्दारुचतुरङ्गुलैः॥ ३१॥
पारावतपदीदन्तीबाकुचीकेशराह्वयैः।
कण्टकार्य्या च तत्पक्वं घृतं कुष्ठिषु योजयेत्॥ ३२॥
दोषधात्वाश्रितं पानादभ्यङ्गात्त्वग्गतं तथा।
अप्यसाध्यं नृणां कुष्ठं नाम्ना नीलं नियच्छति॥ ३३॥
त्रिफलात्वक् त्रिकटुकं सुरसा मदयन्तिका।
वायस्यारग्वधाश्चैषां तुलां कुर्य्यात् पृथक् पृथक्॥ ३४॥
काकमाच्यर्कवरुणदन्तीकुटजचित्रकात्।
दार्वीनिदिग्धिकाभ्यां तु पृथग्दशपलं तथा॥ ३५॥
त्रिद्रोणेऽपां पचेद्यावत् षट्प्रस्थं परिशेषितम्।
शकृद्रसदधिक्षीरमूत्राणां पृथगाढकम्॥ ३६॥
तद्वद् घृतस्य तत्साध्यं भूनिम्बव्योषचित्रकैः।

---

१ द्वितीयं लेपमाह—**तिल्वकेति**। तिल्वकः=लोध्रः, अरिष्टः=निम्बः। २ अश्वहन्ता=करवीरकः। ३ कुष्ठे नीलघृतं ब्रवीति—**वायसीति**। वायसी='मकोय' इति, फल्गुः='कठूमर' इति, तिक्ता=कटुकी, एषां पृथक् पृथक् शतं पलानीत्यर्थः। ४ असनाद् विजयसारात् अपां त्रिद्रोणे द्वौ भागौ यावदर्द्धावशिष्टं तावद्विपचेदित्यर्थः। अत्र सर्पिश्चतुर्भागं, सर्पिषश्चतुर्थभाग इन्द्रयवादिकल्को बोद्धव्यः। ५ पारावतपदी=हंसपदीभेदः। ६ नीलयति सवर्णयति कुष्ठमिति नीलं नाम।

७ महानीलघृतमभिधत्ते—**त्रिफलात्वगिति**। मदयन्तिका—'मेहदो' इति ख्याता। ८ निदिग्धिका=कण्टकारिका। ९ शकृद्रसः=गोमयस्वरसो द्विस्त्रिर्वा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करञ्जफलनीलिकाश्यामाऽवल्गुजपीलुभिः ॥ ३७ ॥
नीलिनीनिम्बकुसुमैः सिद्धं कुष्ठापहं घृतम् ।
अक्षणादङ्गसावर्ण्यं श्वित्रिणां जनयेन्नृणाम् ।
भगन्दरं कृमीनर्शो महानीलं नियच्छति ॥ ३८ ॥
मूत्रं गव्यं चित्रकव्योषयुक्तं सर्पिःकुम्भे क्षौद्रयुक्तं स्थितं हि ।
पक्षादूर्ध्वं श्वित्रिभिः पेयमेतत्कुर्य्याच्चास्मिन्कुष्ठदिष्टं विधानम् ॥३९॥
पूतीकार्कनुङ्नरेन्द्रद्रुमाणां मूत्रैः पिष्टाः पल्लवाः सौमनाश्च ।
लेपः श्वित्रं हन्ति दद्रूव्रणांश्च दुष्टान्यर्शांस्येष नाडीव्रणांश्च ॥४०॥
अस्मादूर्ध्वं निःस्रुते दुष्टरक्ते जातप्राणं सर्पिषा स्नेहयित्वा ।
तीक्ष्णैर्योगैश्छर्दयित्वा प्रगाढं पश्चाद्दोषं निर्हरेच्चाप्रमत्तः ॥ ४१ ॥
दुर्बान्तो वा दुर्विरिक्तोऽथवा स्यात् कुष्ठी दोषैरुद्धतैर्व्याप्तदेहः ।
निःसन्दिग्धं यात्यसाध्यत्वमाशु तस्मात्कृत्स्नान्निर्हरेत्तस्य दोषान् ॥४२॥
पक्षात् पक्षाच्छर्दनान्यभ्युपेयान्मासान्मासात् स्रंसनं चापि देयम् ।
स्नाव्यं वत्सरे हि द्विरल्पं नस्यं दद्याच्च त्रिरात्रात् त्रिरात्रात् ॥४३॥
पथ्या व्योषं सेक्षुजातं सतैलं लीढ्वा शीघ्रं मुच्यते कुष्ठरोगात् ।
धात्रीपथ्या क्षोपकुल्याविडङ्गान्क्षौद्राज्याभ्यामेकतोवाऽवलिह्यात् ॥४४॥

---

वल्गालितः । १ नीलिका='कालीनिसोत' इति ख्याता । २ नीलिनी='नील' इति ख्याता । ३ नरेन्द्रद्रुमः='अमलतास' इति ख्यातः । ४ सुमनाया इमे सौमनाः मालतीपल्लवा इत्यर्थः । सुमना=लोके 'चमेली' इति ।

५ पूर्वं कृतवमनस्य कृतविरेचनस्यापि कुष्ठिनो दोषप्राबल्यात् पुनः पुनः शोधन-शोणितावसेकयोः कर्तव्यतामुपदिशति—**अस्मादिति** । ६ जातप्राणं=प्राप्तपराक्रममित्यर्थः । ७ छर्दयित्वा=वामयित्वा, निर्हरेत्=विरेचयेत् । ८ केन क्रमेण शोधनशोणितावसेचनं कार्यमिति दर्शयति—**पक्षादिति** । प्रतिपक्षमतीत्येति पक्षात् पक्षात्, ल्यब्लोपे पञ्चमी । ९ स्रंसनं=विरेचनम् । १० वत्सरे वर्षे द्विः वारद्वयं षड्भिः षड्भिर्मासैरित्यर्थः । वाग्भटोऽपि—"पक्षात्पक्षाच्छर्दनान्यभ्युपेयान्मासान्मासाच्छोधनान्यप्यधस्तात् । शुद्धिर्मूर्ध्नि स्यात्त्रिरात्रात्त्रिरात्रात् षष्ठे षष्ठे मास्यसृङ्मोक्षणानि ॥" इति ।

११ प्रायोगिकयोगान्निर्दिशति—**पथ्येति** । सेक्षुजातं=सगुडम् । तैलगुडयोः कुष्ठकारित्वेऽपि हरीतकीत्रिकटुसंयुक्तयोः कुष्ठहारित्वं, संयोगशक्तेरचिन्त्यत्वादिति डल्हणः । १२ अक्षः=बिभीतकः, 'अक्षशब्दः स्मृतोऽष्टासु सौवर्चलबिभीके । कर्षप-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीत्वा मासं वा पलांशां हरिद्रां मूत्रेणान्तं पापरोगस्य[1] गच्छेत्।
एवं पेयश्चित्रकः श्लक्ष्णपिष्टः पिप्पल्यो वा पूर्ववन्मूत्रयुक्ताः ॥ ४५ ॥
तद्वत्तार्क्ष्यं[2] मासमात्रं च पेयं तेनाजस्रं[3] देहमालेपयेच्च।
आरिष्टत्वक्[4] साम्रपर्णी च तुल्या लाक्षामुस्तं पञ्चमूल्यौ हरिद्रे ॥४६॥
मञ्जिष्ठाऽक्षौ वासको देवदारु पथ्यावह्नी[5] व्योषधात्री विडङ्गम्।
सामान्यांशं योजयित्वा विडङ्गैश्[6]चूर्णं कृत्वा तत्पलोन्मानमश्नन्॥४७॥
कुष्ठाज्जन्तुर्मुच्यते त्रै[7]लं वा सार्पद्रोणं व्योषयुक्तं च युञ्जन्।
गोमूत्राम्बुद्रोणसिद्धेऽक्षपीडे[8] सिद्धं सर्पिर्नाशयेच्चापि कुष्ठम् ॥ ४८ ॥
आरग्वधे सम्रपर्णे पटोले सवृक्षके[9] नक्तमाले सनिम्बे।
जीर्णं पक्वं तद्वरिद्राद्वयेन हन्यात् कुष्ठं मुष्ककं चापि सर्पिः ॥४९॥
रोध्रारिष्टं पद्मकं रक्तसारः[10] सम्राह्वाक्षौ वृक्षको बीजकश्च।
योज्याः स्नाने दह्यमानस्य जन्तोः पेया वा स्यात्क्षौद्रयुक्ता त्रिभण्डी[11]॥
खादेत् कुष्ठी मांसशाते पुराणान् मुद्गान् सिद्धान् निम्बतोये सतैलान्।
निम्बकाथं जातसत्त्वः[12] पिबेद्वा काथं वाऽर्कालर्कसम्रच्छदानाम्॥५१॥
जग्धेष्वङ्गेष्वश्वमारस्य[13] मूलं लेपो युक्तः स्याद्विडङ्गैः समूत्रैः।
मूत्रैश्चैनं सेचयेद् भोजयेच्च सर्वाहारान् सम्प्रयुक्तान् विडङ्गैः ॥५२॥
कारञ्जं वा सार्षपं वा क्षतेषु क्षेप्यं तैलं शिग्रुकोशाम्रयोर्वा।
पक्वं सर्वैर्वा कटूष्णैः सतिक्तैः शेषं च स्याद् दुष्टवत्[14] संविधानम्॥५३॥

---

क्षरुद्राक्षशकटेन्द्रियपाशके ॥" इति कोशः। उपकुल्या = पिप्पली। १ पापरोगस्य = कुष्ठस्य। २ तार्क्ष्यं = रसाञ्जनम्। एतत्परिमाणं प्रत्यहं पलम्। ३ तेन = अनन्तरोक्तेन रसाञ्जनेनेत्यर्थः। ४ आरिष्टत्वक् = निम्बत्वक्। ५ वह्निः = चित्रकः।

६ पूर्वोक्तचूर्णसमविडङ्गैरित्यर्थः। ७ त्रिफलाक्काथकल्कसिद्धं त्रैफलमित्यर्थः। ८ गोमूत्रमेवाम्बु गोमूत्राम्बु तद्द्रोणसिद्धे। गोमूत्रेणैव क्काथोऽयं निष्पाद्य इत्यर्थः। ९ वृक्षकः 'कुड़ा' इति ख्यातस्तेन सहिते सवृक्षके। १० रक्तसारः = रक्तचन्दनम्, सम्राह्वः = सम्रपर्णः, अक्षः = बिभीतकः, वृक्षकः = कुटजः, बीजकः = 'विजयसार' इति ख्यातः। ११ त्रिभण्डी = त्रिवृत्। १२ जातसत्त्वः = उत्पन्नकृमिः। १३ जग्धेषु = कृमिजग्धेषु। १४ दुष्टवत् = दुष्टव्रणवत्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजम् ।
स्नुहीशिरीषयोर्मूलं चित्रकास्फोतयोरपि ॥ ५४ ॥
विषलाङ्गलवज्राख्यकासीसालमनःशिलाः ।
करञ्जबीजं त्रिकटु त्रिफलां रजनीद्वयम् ॥ ५५ ॥
सिद्धार्थकान् विडङ्गानि प्रपुन्नाडं च संहरेत् ।
मूत्रपिष्टैः पचेदेतैस्तैलं कुष्ठविनाशनम् ॥ ५६ ॥
एतद्वज्रकमभ्यङ्गान्नाडीदुष्टव्रणापहम् ।
सिद्धार्थकः करञ्जौ द्वौ द्वे हरिद्रे रसाञ्जनम् ॥ ५७ ॥
कुटजश्च प्रपुन्नाडसप्तपर्णौ मृगादनी ।
लाक्षा सर्जरसोऽर्कश्च सास्फोताऽऽरग्वधौ स्नुही ॥ ५८ ॥
शिरीषस्तुवराख्यस्तु कुटजारुष्करौ वचा ।
कुष्ठं कृमिघ्नं मञ्जिष्ठा लाङ्गली चित्रकं तथा ॥ ५९ ॥
मालती कटुतुम्बी च गन्धाह्वा मूलकं तथा ।
सैन्धवं करवीरश्च गृहधूमं विषं तथा ॥ ६० ॥
कम्पिल्लकं ससिन्दूरं तेजोह्वातुत्थकाह्वये ।
समभागानि सर्वाणि कल्कपेष्याणि कारयेत् ॥ ६१ ॥
गोमूत्रं द्विगुणं दद्यात्तिलतैलाच्चतुर्गुणम् ।
कारञ्जं वा महावीर्य्यं सार्षपं वा महागुणम् ॥ ६२ ॥
अभ्यङ्गात् सर्वकुष्ठानि गण्डमालाभगन्दरान् ।
नाडीदुष्टव्रणान् घोरान् नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ६३ ॥
महावज्रकमित्येतन्नाम्ना तैलं महागुणम् ।

---

१ कुष्ठेषु बहिःशोधकवज्रकतैलं ब्रवीति—**सप्तपर्णेति** । २ आस्फोता = सारिवा । ३ विषं=वत्सनाभः, वज्राख्यः=निष्पत्रा स्नुही । ४ महावज्रकतैलं निर्दिशति—**सिद्धार्थक इति** । सिद्धार्थकः=श्वेतसर्षपः । ५ मृगादनी=इन्द्रवारुणी । ६ गन्धाह्वा=गन्धकः । ७ कम्पिल्लकं='कबीला' इति, तेजोह्वा=चव्यम् । ८ स्नेहचतुर्थांशो भेषजकल्कः, स्नेहचतुर्गुणो द्रव्य इति न्यायः । द्रवार्थमत्र पूर्वसाहचर्याद् गोमूत्रमेव ग्राह्यम् ।

९ तिलतैलाच्चतुर्गुणं गोमूत्रं द्विगुणं दद्यादिति योजना । एतेन अष्टगुणं दद्यादि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पित्तावापैर्मूत्रपिष्टैस्तैलं लाक्षादिकैः कृतम् ॥ ६४ ॥
सप्ताहं कटुकाऽलाब्वां निदधीत चिकित्सकः ।
पीतवन्तं ततो मात्रां तेनाभ्यक्तं च मानवम् ॥ ६५ ॥
शोषयेदातपे तस्य दोषा गच्छन्ति सर्वशः ।
स्रुतदोषं समुत्थाप्य स्नातं खदिरवारिणा ॥ ६६ ॥
यवागूं पाययेदेनं साधितां खदिराम्बुना ।
एवं संशोधने वर्गे कुष्ठघ्नेष्वौषधेषु च ॥ ६७ ॥
कुर्य्यात् तैलानि सर्पींषि प्रदेहोद्घर्षणानि च ।
प्रातः प्रातश्च सेवेत योगान् वैरेचनान् शुभान् ।
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ वा यैरुत्थानं न गच्छति ॥ ६८ ॥
कारभं वा पिबेन्मूत्रं जीर्णे तत्क्षीरभोजनम् ।
जातसत्त्वानि कुष्ठानि मासैः षड्भिरपोहति ॥ ६९ ॥
दिदृक्षुरन्तं कुष्ठस्य खदिरं कुष्ठपीडितः ।
सर्वथैव प्रयुञ्जीत स्नानपानाशनादिषु ॥ ७० ॥
यथा हन्ति प्रवृद्धत्वात् कुष्ठमातुरमोजसा ।
तथा हन्त्युपयुक्तस्तु खदिरः कुष्ठमोजसा ॥ ७१ ॥
नीचैरोमनखः श्रान्तो हिताश्यौषधतत्परः ।
योषिन्मांससुरावर्जी कुष्ठी कुष्ठमपोहति ॥ ७२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने कुष्ठचिकित्सितं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

त्यायातम् । १ पित्तावापैः=गोपित्तयुक्तैः, मूत्रपिष्टै=गोमूत्रपिष्टैः, तैलं = तिलतैलम्, लाक्षादिकैः= अनन्तरोक्तैर्महावज्रकतैलाङ्गसम्भूतैर्लाक्षासर्जरसादिभिरित्यर्थः । २ शोषयेत्=स्वेदयेत्, सर्वशः=ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्, गच्छन्ति=स्वेदरूपेण परिणम्य यान्तीत्यर्थः ।

३ दोषनिस्सरणानन्तरं कर्तव्यतामुपदिशति-स्रुतदोषमिति । ४ करभा उष्ट्यास्तत्सम्बन्धि मूत्रं कारभम् । ५ खदिरसारस्योत्कृष्टतामाचष्टे—यथेति । ६ कुष्ठिनः कर्तव्यतामुपदिशति—नीचेति । नीचकेशनखः=क्लृप्तकेशनखः, श्रान्तः=जितेन्द्रियः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दशमोऽध्यायः ।

अथातो महाकुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

कुष्ठेषु मेहेषु कफामयेषु सर्वाङ्गशोफेषु च दारुणेषु ।
कृशत्वमिच्छत्सु च मेदुरेषु योगानिमानग्र्यमतिर्विदध्यात् ॥ ३ ॥

क्षुण्णान् यवान्निष्पूतान् रात्रौ गोमूत्रपर्य्युषितान् महति किंलिञ्जे शोषयेत्, एवं सप्तरात्रं भावयेच्छोषयेच्च । ततस्तान् कपालभृष्टान् शक्तून् कारयित्वा, प्रातः प्रातरेव कुष्ठिनं प्रमेहिणं वा सालसारादिकषायेण कण्टकिवृक्षकषायेण वा पाययेद् भल्लातकप्रपुन्नाडावल्गुजार्कचित्रकविडङ्गमुस्तचूर्णचतुर्भागयुक्तान् । एवमेव सालसारादिकषायपरिपीतानामारग्वधादिकषायपरिपीतानां वा गोशकृद्भूतानां वा यवानां शक्तून् कारयित्वा भल्लातकादीनां चूर्णान्यावाप्य खदिराशननिम्बराजवृक्षरोहितकगुडूचीनामन्यतमस्य कषायेण शर्करामधुमधुरेण द्राक्षायुक्तेन दाडिमवेतसाम्लेन

---

वाग्भटे—"व्रतयमदमसेवात्यागशीलाभियोगो द्विजसुरगुरुपूजा सर्वसत्त्वेषु मैत्री । शिवशिवसुततारा भास्कराराधनानि प्रकटितमलपापं कुष्ठमुन्मूलयन्ति ॥" इत्युक्तमपि ध्येयम् ।

**इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां नवमोऽध्यायः ।**

---

## दशमोऽध्यायः ।

१ महतां धात्वनुप्रविष्टानां कुष्ठानां चिकित्सितमित्यर्थः । २ मेदुरेषु = सान्द्रेषु, कठिनेष्विति तात्पर्यम् । 'सान्द्रस्निग्धस्तु मेदुरः' इत्यमरः । ३ कुष्ठे यवकल्पं निर्दिशति—**क्षुण्णानिति** । क्षुण्णान् = उलूखले कुट्टितान्, निष्पूतान् = तुषादिना विरहितान् । ४ किलिञ्जे = वंशादित्वग्ग्रथितपिटकादौ । ५ कपाले घटादिकपरे भृष्टान् । ६ सालसारादिर्द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तो गणः । कण्टकिवृक्षाः खदिरविकङ्कतकरमर्दादयस्तेषां कषायेण क्वाथेनेत्यर्थः ।

७ अवल्गुजः = 'बाकुची' इति । ८ परिपीतान् = भावितान् । ९ गोशकृद्भूतानां = गोपुरीषस्वरसभावितानामित्यर्थः । गोभिरक्षुण्णभक्षितत्वेनापरिणतगोमयरूपाणामिति हाराणचन्द्रः । १० राजवृक्षः = आरग्वधः, रोहितकः = 'गुलनार' इति ख्यातः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैन्धवलवणान्वितेन पाययेत् । एष सर्वमन्थकल्पः ॥ ४ ॥

यावकांश्च भक्ष्यान् धानोलुम्बककुल्माषापूपपूर्णकोशोत्कारिका-शष्कुलिकाकुणावीप्रभृतीन् सेवेत । यवविधानेन गोधूमवेणुयवानुपयुञ्जीत ॥ ५ ॥

अरिष्टानतो वक्ष्यामः—पूतीकचव्यचित्रकसुरदारुसारिवादन्तीत्रिवृत्त्रिकटुकानां प्रत्येकं षट्पलिका भागा बदरकुडवस्त्रिफलाकुडव इत्येतेषां चूर्णानि, ततः पिप्पलीमधुघृतैरन्तःप्रलिप्ते घृतभाजने प्राक्कृतसंस्कारे सप्तोदककुडवानयोरजोऽर्द्धकुडवमर्द्धतुलां च गुडस्याभिहितानि चूर्णान्यावाप्य स्वनुगुप्तं कृत्वा यवपल्ले सप्तरात्रं वासयेत्, ततो यथाबलमुपयुञ्जीत, एषोऽरिष्टः कुष्ठमेहमेदःपाण्डुरोगश्वयथूनपहन्ति । एवं सालसारादौ न्यग्रोधादावारग्वधादौ चारिष्टान् कुर्वीत ॥ ६ ॥

आसवानतो वक्ष्यामः—पलाशभस्मपरिस्रुतस्योष्णोदकस्य शीतीभूतस्य त्रयो भागा द्वौ फाणितस्यैकध्यमरिष्टकल्पेन विदध्यात् । एवं तिलादीनां क्षारेषु सालसारादौ न्यग्रोधादावारग्वधादौ मूत्रेषु चासवान् विदध्यात् ॥ ७ ॥

अथ सुरा वक्ष्यामः—शिंशपाखदिरयोः सारमादायोत्पाट्य चोत्तमारणीब्राह्मीकोशातकीस्तत्सर्वमेकतः कषायकल्पेन विपाच्योदकमाददीत मण्डोदकार्थं, किण्वपिष्टमभिषुणुयाच्च यथोक्तम् । एवं सुराः सालसारादौ न्यग्रोधादावारग्वधादौ च विदध्यात् ॥ ८ ॥

---

१ सर्वमन्थे पथ्यान्निर्दिशति—**यावकानिति** । धानाः = शुष्कभृष्टयवाः, उलुम्बकाः = सरसा भृष्टयवाः । २ कुणावी = यवपर्पटी । ३ वेणुयवः = वंशबीजम् । ४ "पक्वौषधाम्बुसिद्धं यन्मद्यं तत्स्यादरिष्टकम्" इति । ५ यवपल्ले = यवकुसूले । ६ "सीधुरिक्षुरसैः पक्वैरपक्वैरासवो भवेत्" इति वचनादपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः प्रोच्यते । ७ अरिष्टकल्पेन = अनन्तरोक्तपूतीकाद्यरिष्टस्य यवपल्ले स्थापनवदित्यर्थः । ८ क्षारेषु = क्षारोदकेषु । ९ उत्पाट्य = सङ्कुट्येत्यर्थः । १० मण्डोदकार्थं = सुरोदकार्थम्, किण्वपिष्टं = मधूकपुष्पबीजमिश्रितम्, अभिषुणुयात् = सुरार्थं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतोऽवलेहान् वक्ष्यामः—खदिरासननिम्बराजवृक्षसालसार-क्काथे तत्सारपिण्डान् श्लक्ष्णपिण्डान् प्रक्षिप्य विपचेत्, ततो नाति-द्रवं नातिसान्द्रमवतार्य तस्य पाणितलपूर्णमप्रातराशो मधुमिश्रं लिह्यात्। एवं सालसारादौ न्यग्रोधादावारग्वधादौ च लेहान् कारयेत्॥ ९॥

अतश्चूर्णक्रियां वक्ष्यामः—सालसारादीनां सारचूर्णप्रस्थमाहृत्या-रग्वधादिकषायपरिपीतमनेकशः सालसारादिकषायेणैव पाययेत्। एवं न्यग्रोधादीनां फलेषु, पुष्पेष्वारग्वधादीनां चूर्णक्रियां कारयेत्॥

अत ऊर्ध्वमयस्कृतीर्वक्ष्यामः—तीक्ष्णलोहपत्राणि तनूनि लवण-वर्गप्रदिग्धानि गोमयाग्निप्रतप्तानि त्रिफलासालसारादिकषायेण निर्वापयेत् षोडशवारान्, ततः खदिराङ्गारतप्तान्युपशान्ततापानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेद्घनतान्तवपरिस्रावितानि, ततो यथाबलं मात्रां सर्पिर्मधुभ्यां संसृज्योपयुञ्जीत, जीर्णे यथाव्याध्यन्मलमल-वणमाहारं कुर्वीत। एवं तुलामुपयुज्य कुष्ठमेहमेदःश्वयथुपाण्डु-रोगोन्मादापस्मारानपहत्य वर्षशतं जीवति। तुलायां तुलायां वर्ष-शतगुणोत्कर्षः। एतेन सर्वलौहेष्वयस्कृतयो व्याख्याताः॥ ११॥

त्रिवृच्छचामाऽग्निमन्थसप्तलाकेवुकशङ्खिनीतिल्वकत्रिफलाप-लाशशिंशपानां स्वरसमादाय पालाश्यां द्रोण्यामभ्यासिच्य खदिरा-

---

सन्दध्यात्, यथोक्तं सूत्रस्थाने विरेचनाधिकारे इति शेषः।

५ पाणितलं पूरितमनेनेति पाणितलपूर्णं, पाणितलप्रपूरकमिति यावत्; अप्रात-राशः=अकृतप्रातर्भोजनः। ६ सालसारादिसारचूर्णप्रस्थसमपरिमाणेनैव आरग्वधादि-कषायप्रस्थभावितमित्यर्थः। ७ तनूनि=तिलोत्सेधमात्राणीति तात्पर्यम्। लवण-वर्गः सैन्धवसौवर्चललोद्भिदविडसामुद्रस्तत्कल्केन लिप्तानि। ८ घनतान्तवं घनवस्त्रं तेन परिस्रावितानि गालितानीत्यथः।

९ संसृज्य=लौहमयपात्रे लौहदण्डमर्दनेन सम्यगेकीभावं कृत्वा। १० तुलां=तोलकम्। ११ वर्षशतगुणोत्कर्षः=वर्षशतमायुः। १२ सर्वलौहेषु=सर्वधातुषु, 'सर्वं स्यात्तैजसं लोहम्' इत्यमरः। १३ औषधायस्कृतिमभिधत्ते—त्रिवृदिति। १४ अ-भ्यासिच्य=निःक्षिप्य, अयःपिण्डं स्वरसप्रमाणमभिसमीक्ष्य पञ्चाशत्पलप्रमाणं ग्राह्यम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षारतप्तमयःपिण्डं त्रिःसप्तकृत्वो निर्वाप्य तमादाय पुनरासिच्य स्थाल्या गोमयाग्निना विपचेत्। ततश्चतुर्थभागावशिष्टमवतार्य परिस्राव्य भूयोऽग्नितप्तान्ययःपत्राणि प्रक्षिपेत्। सिध्यति चास्मिन् पिप्पल्यादिचूर्णभागं द्वौ मधुनस्तावद् घृतस्येति दद्यात्, ततः प्रशान्तमायसे पात्रे स्वनुगुप्तं निदध्यात्। ततो यथायोगं शुक्तिं प्रकुञ्चं वोपयुञ्जीत। जीर्णे यथाव्याध्याहारमुपसेवेत। एषौषधायस्कृतिरसाध्यं कुष्ठं प्रमेहं वा साधयति स्थूलमपकर्षति शोफमुपहन्ति सन्नमग्निमुद्धरति विशेषेण चोपदिश्यते राजयक्ष्मिणां वर्षशतायुश्चानया पुरुषो भवति। सालसारादिक्वाथमासिच्य पालाश्यां द्रोण्यामयोघनं तप्तं निर्वाप्य कृतसंस्कारे कलशेऽभ्यासिच्य पिप्पल्यादिचूर्णभागं क्षौद्रं गुडमिति च दत्त्वा स्वनुगुप्तं निदध्यात्। एतां महौषधायस्कृतिं मासमर्द्धमासं वा स्थितां यथाबलमुपयुञ्जीत। एवं न्यग्रोधादावारेवतादिषु च विदध्यात्॥ १२॥

अतः खदिरविधानमुपदेक्ष्यामः—प्रशस्तदेशजातमनुपहतं मध्यमवयसं खदिरं परितः खानयित्वा मध्यममूलं छित्त्वाऽयोमयं कुम्भं तस्मिन्नन्तरे निदध्याद्यथा रसग्रहणसमर्थो भवति। ततस्तं गोमयमृदाऽवलिप्तमवकीर्येन्धनैर्गोमयमिश्रैरादीपयेत्। यथाऽस्य दह्यमानस्य रसः स्रवत्यधस्तात्, यदा जानीयात् पूर्णं भाजनमिति। अथैनमुद्धृत्य परिस्राव्य रसमन्यस्मिन् पात्रे निधायानुगुप्तं निदध्यात्। ततो यथायोगं मात्रामामलकरसमधुसर्पिर्भिः संसृज्योप-

---

१ पिप्पल्यादिगणो द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये द्रष्टव्यः। २ शुक्तिः = अर्द्धपलम्, प्रकुञ्चं = पलम्।

३ औषधायस्कृतेर्विधानान्तरं दर्शयति—**सालसारादीति**। सालसारादिर्द्रव्यसङ्ग्रहणीयोक्तः। ४ अयांसि हन्यन्तेऽनेनेत्ययोघनो मुसलम्। अयस्कारस्य लोहताडनार्थं लोहपिण्डमिति तात्पर्यम्। घनशब्देनैव लोहपिण्डे प्राप्ते अयश्शब्दस्तीक्ष्णलौहप्रापणार्थमिति बोध्यम्।

५ क्षौद्रं = मधु, तच्च कषायचतुर्थांशेन पुराणमवगन्तव्यम्। ६ महौषधायस्कृतिं = वीर्यवदौषधविशेषायस्कृतिमित्यर्थः। ७ अन्तरे = गर्त्ते। ८ आमलक-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युञ्जीत, जीर्णे भल्लातकविधानवदाहारः परिहारश्च। प्रस्थे चोपयुक्ते शतं वर्षाणामायुषोऽभिवृद्धिर्भवति। खदिरसारतुलामुदकद्रोणे विपाच्य षोडशांशावशिष्टमवतार्यानुगुप्तं निदध्यात्। तमामलकरसमधुसर्पिर्भिः संसृज्योपयुञ्जीत। एष एव सर्ववृक्षसारेषु कल्पः। खदिरसारचूर्णतुलां खदिरसारक्काथमात्रां वा प्रातः प्रातरुपसेवेत, खदिरसारक्वाथसिद्धमाविकं[1] वा सर्पिः॥ १३॥

अमृतवल्ली[2]स्वरसं क्वाथं वा तत्सिद्धं वा सर्पिः प्रातः प्रातरुपसेवेत। अपराह्णे ससर्पिष्कमोदनमामलकयूषेण भुञ्जीत, एवं मासमुपयुज्य सर्वकुष्ठैर्विमुच्यत इति॥ १४॥

कृष्णतिल[3]भल्लातकतैलामलकरससर्पिषां द्रोणं सालसारादिकषायस्य च, त्रिफलात्रिकटुकपरूषफलमञ्जविडङ्गफलसारचित्रार्कावल्गुजहरिद्राद्वयत्रिवृद्दन्तीन्द्रयवयष्टीमधुकातिविषारसाञ्जनप्रियङ्गूनां पालिका भागास्तानैकध्यं[4] स्नेहपाकविधानेन पचेत्। तत्साधुसिद्धमवतार्य परिस्राव्यानुगुप्तं निदध्यात्। तत उपसंस्कृत[5]शरीरः प्रातः प्रातरुत्थाय पाणि[6]शुक्तिमात्रं क्षौद्रेण प्रतिसंसृज्योपयुञ्जीत, जीर्णे मुद्गामलकयूषेणालवणेन सर्पिष्मन्तं खदिरोदकसिद्धं मृद्वोदनमश्नीयात् खदिरोदकसेवी। इत्येवं द्रोणमुपयुज्य सर्वकुष्ठैर्विमुक्तः शुद्धतनुः स्मृतिमान वर्षशतायुररोगो भवति॥ १५॥

भवति चात्र।

सुरामन्थासवारिष्टांल्लेहांश्चूर्णान्ययस्कृतीः।

---

रसः खदिररससमः, मधुसर्पिषी समस्ते द्रव्यपादिके। १ आविकं सर्पिर्यद्यपि अपथ्यकरं तथाऽप्यत्र पथ्यत्वेनाभिहितं, द्रव्यसंयोगशक्तेरचिन्त्यत्वात्। २ अमृतवल्ली=गुडूची।

३ मिश्रकस्नेहविषयं निर्दिशति—कृष्णतिलेति। अत्र द्रोणशब्दस्य कृष्णतिलभल्लातकतैलादिभिः प्रत्येक सम्बन्धः। ४ ऐकध्यम्=एकीकृत्येत्यर्थः। अत्र "अधिकरणविचाले च' इति विहितस्य धाप्रत्ययस्य ध्यमुञ्। ५ उपसंस्कृतशरीरः=वमनादिना संशुद्धशरीरः। ६ पाणिः कर्षस्तन्मात्रं शुक्तिमात्रं वेति पाणिशुक्तिमात्रम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्रशोऽपि कुर्वीत [1]बीजेनानेन बुद्धिमान् ॥ १६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने महाकुष्ठचिकित्सितं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

## एकादशोऽध्यायः।

अथातः प्रमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

द्वौ प्रमेहौ भवतः—सहजोऽपथ्यनिमित्तश्च। तत्र सहजो मातृपितृबीजदोषकृतः, अहिताहार[2]जोऽपथ्यनिमित्तः। तयोः [3]पूर्वेणोपद्रुतः कृशो रूक्षोऽल्पाशी पिपासुर्भृशं परिस[4]रणशीलश्च भवति, उत्तरेण [5]स्थूलो बह्वाशी स्निग्धः शय्यासनस्वप्नशीलः प्रायेणेति ॥ ३ ॥

तत्र कृ[6]शमन्नपानप्रतिसंस्कृताभिः क्रियाभिश्चिकित्सेत, स्थूलं[7]मपतर्पणयुक्ताभिः ॥ ४ ॥

[8]सर्व एव च परिहरेयुः सौवीरकतुषोदकशुक्तमैरेयसुरासव-

---

१ बीजेन = बीजभूतेन, अनेन = पूर्वोक्तविधानेन। विशेषेण ईजत इति बीजम्, अच्। 'ईज गतिकुत्सनयोः' इति धातुः।

**इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां दशमोऽध्यायः।**

---

### एकादशोऽध्यायः।

२ "आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि। नवान्नपानं गुड-वैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम्॥" इत्याद्यहिताहारजन्य इत्यर्थः। ३ पूर्वेण = सहजेन। ४ परिसरणशीलः = परिभ्रमणशीलः। ५ उत्तरेण = अपथ्यनिमित्तेन।

६ कृशं = कार्श्यादिलक्षणलक्षितं सहजम्। ७ स्थूलं = स्थौल्यादिलक्षणयुक्त-महिताहारविहारजम्। तदुक्तं चरके—"क्लेदश्च मेदश्च कफश्च वृद्धः प्रमेहहेतुः प्रसमीक्ष्य तस्मात्। वैद्येन पूर्वं कफपित्तजेषु मेहेषु कार्याण्यपतर्पणानि॥" इति।

८ प्रमेहिणो वर्ज्यानि निर्दिशति—**सर्व इति**। सौवीरकादयः सूत्रस्थानस्य पञ्च-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तोयपयस्तैलघृतेक्षुविकारदधिपिष्टान्नाम्लपानकानि ग्राम्यानूपौदकमांसानि चेति ॥ ५ ॥

ततः[4] शालिषष्टिकयवगोधूमकोद्रवोद्दालकाननवान्[2] भुञ्जीत चणकाढकीकुलत्थमुद्गविकल्पेन[3], तिक्तकषायाभ्यां शाकगणाभ्यां निकुम्भेङ्गुदीसर्षपातसीतैलसिद्धाभ्यां[4], बद्धमूत्रैर्वा जाङ्गलैर्मांसैरपहृतमेदोभिरनम्लैरघृतैश्चेति[5] ॥ ६ ॥

तत्रादित एव प्रमेहिणं स्निग्धमन्यतमेन[6] तैलेन प्रियङ्ग्वादिसिद्धेन वा घृतेन वामयेत् प्रगाढं विरेचयेच्च । विरेचनादनन्तरं[7] सुरसादिकषायेणास्थापयेन्महौषधभद्रदारुमुस्ताऽऽस्थापेन मधुसैन्धवयुक्तेन, दह्यमानं च न्यग्रोधादिकषायेण निस्तैलेन ॥ ७ ॥

ततः[8] शुद्धदेहमामलकरसेन हरिद्रां मधुसंयुक्तां पाययेत्, त्रिफलाविशालादेवदारुमुस्तकषायं वा, शालकम्पिल्लकमुष्ककफलकमक्षमात्रं[10] वा मधुमधुरमामलकरसेन हरिद्रायुतम्, कुटजकपित्थरोहितबिभीतकसप्तपर्णपुष्पकल्कं[11] वा, निम्बारग्वधसप्तपर्णमूर्वाकुटजसोमवृक्षपलाशानां वा[12] त्वक्पत्रमूलफलपुष्पकषायाणि । एते पञ्चप्रयोगाः सर्वमेहानामपहन्तारो व्याख्याताः ॥ ८ ॥

विशेषतश्चातः[13] ऊर्ध्वम्-तत्रोदकमेहिनं पारिजातकषायं पाययेत्,

---

चत्वारिंशत्तमेऽध्याये द्रष्टव्याः । १ प्रमेहे पथ्यानि दर्शयति—**तत इति** । २ अनवान्=पुराणान् । ३ विकल्पेन=विभागेन । ४ निकुम्भा=दन्ती । ५ अपहृतमेदोभिः=मेदोरहितैरित्यर्थः । ६ अन्यतमेन=अनन्तरोक्तनिकुम्भादितैलानामेकतमेन । प्रियङ्ग्वादिः=प्रियङ्गुसमङ्गाधातकीपुन्नागनागपुष्पचन्दनकुचन्दनमोचरससाञ्जनकुम्भीकस्रोतोञ्जनपद्मकेसरयोजनवल्ल्यो दीर्घमूला चेति द्रव्यसङ्ग्रहणीयोक्तः । ७ अनन्तरं=सप्तरात्रात्परमित्यर्थः । सुरसादिकषायो वातविद्रध्यादावुक्तः ।

८ प्रमेहनाशकरान् पञ्चयोगान्निर्दिशति—**तत इति** । तत्रामलकरसश्चतुःपलप्रमाणः, हरिद्रा कर्षप्रमाणा, मधु कर्षप्रमाणम् । ९ विशाला=इन्द्रवारुणी । १० अक्षमात्रं=तोलकपरिमाणम् । ११ पुष्पशब्दस्य कुटजादिभिः सह प्रत्येकं सम्बन्धः । अस्मिन् कुटजादियोगेऽपि मधु आमलकरसश्चानुवर्तनीयः । १२ निम्बादीनां त्वक्पत्रमूलफलपुष्पकषायणीत्यर्थः । १३ 'वक्ष्यते' इति शेषः ।

विंशतिप्रमेहेषु क्रमशो विंशतियोगान्निर्दिशति—**तत्रेति** । "अच्छं बहुसिलं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]इक्षुमेहिनं वैजयन्तीकषायं, [2]सुरामेहिनं निम्बकषायं, सिकता[3]मेहिनं चित्रककषायं, [4]शनैर्मेहिनं खदिरकषायं, [5]लवणमेहिनं पाठागुरुहरिद्राकषायं, पिष्टमेहिनं हरिद्रादारुहरिद्राकषायं, सान्द्र[6]मेहिनं सप्तपर्णकषायं, शुक्रमेहिनं दूर्वाशैवलप्लवहठकरञ्जकसेरु[7]ककषायं ककुभचन्दनकषायं वा, फेनि[8]मेहिनं त्रिफलारग्वधमृद्वीका[9]कषायं, मधुमधुरमिति। पैत्तिकेषु [10]नीलमेहिनं सालसारादिकषाय-मश्वत्थकषायं वा पाययेत्, [11]हरिद्रामेहिनं राजवृक्षकषायम्, [12]अम्लमेहिनं न्यग्रोधादिकषायं, [13]क्षारमेहिनं त्रिफलाकषायं, [14]मञ्जिष्ठामेहिनं मञ्जिष्ठाचन्दनकषायं, [15]शोणितमेहिनं गुडूचीति-न्दुकास्थिकाश्मर्य्यखर्जूरकषायं मधुमिश्रम्।

अत ऊर्ध्वमसाध्येष्वपि योगान् यापनार्थं वक्ष्यामः। तद्-यथा—[16]सर्पिर्मेहिनं कुष्ठकुटजपाठाहिङ्गुकटुरोहिणीकल्कं गुडूची-चित्रककषायेण पाययेत्, [17]वसामेहिनमग्निमन्थकषायं शिंशपा-

---

शीतं निर्गन्धमुदकोपमम्। मेहत्युदकमेहेन किञ्चिच्चाविलपिच्छिलम्॥" इति कफजन्यप्रमेहान्तर्गतमुदकमेहिलक्षणम्। १ 'इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः" इति तल्लक्षणम्। २ "सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमघो घनम्" इति तल्लक्षणम्। ३ "मूर्तीरणून् सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान्" इति तल्लक्षणम्। ४ "शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति" इति तल्लक्षणम्। ५ "विशदं लवणतुल्यं लवणमेही" इति तल्लक्षणम्। ६ "संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद् बहुलं सितम्" इति तल्लक्षणम्।

७ "सान्द्रीभवेत पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति" इति तल्लक्षणम्। ८ "शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति" इति तल्लक्षणम्। ९ "स्तोकं स्तोकं सफेनं फेन-मेही मेहति"इति तल्लक्षणम्। १० "नीलमेहेन नीलाभम्" इति तस्य लक्षणम्। ११ "हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत्"इति तस्य लक्षणम्। १२ "अम्लरसगन्ध-मम्लमेही"इति तस्य लक्षणम्।

१३ "गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत्"इति तल्लक्षणम्। १४ "विस्रं माञ्जिष्ठ-मेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम्"इति तस्य लक्षणम्। १५ "विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः"इति तल्लक्षणम्। १६ "सर्पिःप्रकाशं सर्पिर्मेही मेहति"इति तस्य लक्ष-णम्। १७ "वसामेही वसामिश्रं वसाऽऽभं मूत्रयेन्मुहुः"इति तल्लक्षणम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कषायं वा, क्षौद्रमेहिनं कदरक्रमुककषायं, हस्तिमेहिनं तिन्दुककपित्थशिरीषपलाशपाठामूर्वादुःस्पर्शाकषायं मधुमधुरं हस्त्यश्वशूकरोष्ट्रास्थिक्षारं चेति। दह्यमानमौदकैकन्दक्काथसिद्धां यवागूं क्षीरेक्षुरसमधुरां पाययेत ॥ ९ ॥

ततः प्रियङ्ग्वनन्तायूथिकापद्मात्रायन्तिकालोहितिकाऽम्बष्ठादाडिमत्वक्शालपर्णीपद्मतुङ्गकेशरधातकीबकुलशाल्मलीश्रीवेष्टकमोचरसेष्वरिष्टानयस्कृतीर्लेहानासवांश्च कुर्वीत। शृङ्गाटकगिलोड्यबिसमृणालकाशकसेरुकमधुकाम्रजम्ब्वसनतिनिश-ककुभकट्वङ्गरोध्रभल्लातकपलाशचर्मिवृक्षगिरिकर्णिकाशीतशिवनिचुलदाडिमाजकर्णहरिवृक्षराजादनगोपघोण्टाविकङ्कतेषु वा। यवान्नविकारांश्च सेवेत; यथोक्तकषायसिद्धां चास्मै यवागूं प्रयच्छेत्कषायाणि वा पातुम् ॥ १० ॥

महाधनमहिताहारमौषधद्वेषिणमीश्वरं वा पाठाऽभयाचित्रकप्र-

---

१ "कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदेद् बुधः" इति तस्य लक्षणम्। २ "हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम्। सलसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥" इति तस्य लक्षणम्। ३ औदककन्दक्काथसिद्धां = शालूकादिकन्दक्काथसिद्धामित्यर्थः।

४ प्रमेहेषु अरिष्टायस्कृतिलेहासवयवागूकषाययोगान् दर्शयति—तत इति। अनन्ता = अनन्तमूलम्, यूथिका = 'जूही' इति, पद्मा = भार्गी, त्रायन्तिका = मदयन्तिका, लोहितिका = वराहक्रान्ता, अम्बष्ठा = माचिका, गुग्गुलुरिति यावत्। तुङ्गः = पुन्नागः, केशरं = नागकेशरम्। ·····श्रीवेष्टकः = सरलनिर्यासः, मोचरसः = शाल्मलीनिर्यासः।

५ गिलोड्यः = 'तालमखाना' इति, गिलोडयः कन्दः प्रावृड्जातः शणपत्राकारो वल्लीयुक्तश्चर्मण्वतीनदीभवश्वेतपाषाणसदृशः 'गुगिलोट' इति लोके इति डल्हणः। बिसं = पद्ममूलम्, मृणालं = पद्मस्थूलप्ररोहः, ·····असनः = बीजकः, तिनिशः = एतन्नाम्ना 'वञ्जुल' इति नाम्ना वा प्रसिद्धः, ककुभः = अर्जुनः, कट्वङ्गः = 'अरलू' इति, ···चर्मिवृक्षः = भूर्जवृक्षः, गिरिकर्णिका = श्वेतस्यन्दः, शीतशिवः = शतपुष्पाभेदः, निचुलः = जलवेतसः, अजकर्णः = सालभेदः, हरिवृक्षः = दारुहरिद्रा, राजादनः = प्रियालः, 'चिरौंजी' इति, गोपघोण्टा = वन्यक्षुद्रवदरः, विकङ्कतः = स्रुवावृक्षः।

६ अनन्तरोक्तप्रियङ्ग्वादिशृङ्गाटकादिवर्गकषायसिद्धामित्यर्थः।

७ धनवतः प्रमेहिणश्चिकित्सामाचष्टे—महाधनमिति। महाधनं = विपुलधन-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाढमनल्पमाक्षिकमन्यतममासवं पाययेत्, अङ्गारशूल्यावदंशं वा माध्वीकमभीक्ष्णम्। क्षौद्रकपित्थमारचानुविद्धानि चास्मै पानान्युपहरेत्। उष्ट्राश्वतरखरपुरीषचूर्णानि चास्मै दद्याद्दशनेषु। हिङ्गुसैन्धवयुक्तैर्यूषैः साधैश्च रागैर्भोजयेत्। अविरुद्धानि चास्मै पानभोजनान्युपहरेत् रसवन्ति। प्रवृद्धमेहास्तु व्यायामनियुद्धक्रीडागजतुरगरथपदातिचर्य्यापरिक्रमणानि अस्त्रोपास्त्रे वा सेवेरन्॥ ११॥

अधनस्त्ववबान्धवो वा पादत्राणातपत्रविरहितो भैक्ष्याशी ग्रामैकरात्रानुवासी मुनिरिव संयतात्मा योजनशतमधिकं वा गच्छेत्। महाधनो वा श्यामाकनीवारवृत्तिरामलककपित्थतिन्दुकाश्मन्तकफलाहारो मृगैः सह वसेत्, तन्मूत्रशकृद्भक्षः सततमनुव्रजेद् गाः, ब्राह्मणो वा शिलोञ्छवृत्तिर्भूत्वा ब्रह्मरथमुपधारयेत् पठेत् सततम्,

---

शालिनम्। औषधद्वेषिणं=कटुभेषजद्वेषकर्तारम्, ईश्वरम्=ईशितारम्, 'ईभ्य आढ्यो धनी स्वामी त्वीश्वरः पतिरीशिता' इत्यमरः। १ शूलपक्वं मांसं मद्यानुगुणचर्वणद्रव्यमत्रेत्यङ्गारशूल्यावदंशम्। माध्वीकं=मधुयोगिमद्यम्। २ रागैः=अनुरागकरैरित्यर्थः।

३ स्थौल्यादिगुणयुक्तस्य प्रमेहिणः अपकर्षणविधानमभिधत्ते=प्रवृद्धेति। व्यायामः=अङ्गानां विविधप्रकार आयामः। तदुक्तम्—"तुलाभ्रमगुणाकर्षधनुराकर्षणादिभिः। आयामो विविधोऽङ्गानां व्यायाम इति कीर्तितः॥" इति। व्यायामफलमुक्तम्—"न च व्यायाममदृशमन्यत्स्थौल्यापकर्षणम्। न च व्यायामिनं मर्त्यं मर्दयन्त्यरयो बलात्॥ न चैनं सहसाऽऽक्रम्य जरा समधिगच्छति। व्यायामोत्सन्नगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च। व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगाः॥" इति। नियुद्धं=बाहुयुद्धम्।

४ 'सर्वदिग्भागभागेषु हस्त्यश्वरथपत्तिषु। शस्त्रास्त्रैर्यस्तु संयोगः सा चर्येति प्रकीर्त्यते॥" इति। अस्त्रं=शास्त्रितं धनुः, उपास्त्रं=शास्त्रनियमवर्जितं धनुरेवेति डल्हणः।

५ अधनानां प्रमेहे विशेषचिकित्सामाख्याति—अधन इति। ६ मृगैः=पशुमात्रैरित्यर्थः। 'मृगः पशौ कुरङ्गे च करिनक्षत्रभेदयोः' इति विश्वः। क्षत्रियविधिरेषः। वैश्यस्य विधिस्तन्मूत्रशकृद्भक्षीति। ७ 'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्' इति यादवः ब्रह्मरथः=ब्रह्म एव रथो ब्रह्मरथस्तं, वेदमित्यर्थः। वेदाध्ययनेन पापरोग-


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतरः[1] खनेद्वा कूपं, कृशन्तु सततं रक्षेत् ॥ १२ ॥

भवति चात्र ।

अधनो वैद्यसन्देशादेवं[2] कुर्वन्ननन्द्रितः ।
संवत्सरादन्तराद्वा प्रमेहात् प्रतिमुच्यते ॥ १३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने प्रमेहचिकित्सितं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

## द्वादशोऽध्यायः ।

अथ[3] अथातः प्रमेहपिडकाचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

शराविकाद्या नव[4] पिडकाः प्रागुक्ताः ; ताः प्राणवतोऽल्पास्वङ्-मांसप्राप्ता मृद्वचोऽल्परुजः क्षिप्रपाकभेदिन्यश्च साध्याः ॥ ३ ॥

ताभिरुपद्रुतं प्रमेहिणमुपचरेत् । तत्र [5]पूर्वरूपेष्वपतर्पणं वन[6]स्पति कषायं वस्तमूत्रं चोपदिशेत् । एवमकुर्वतस्तस्य मधुराहारस्य मूत्रं स्वेदः श्लेष्मा च मधुरीभवति प्रमेहश्चाभिव्यक्तो भवति, तत्रोभय[7]तः संशोधनमासेवेत । एवमकुर्वतस्तस्य दोषाः प्रवृद्धाः मांसशो-

---

प्रायः प्रमेहो नश्यतीति भावः । १ इतरः=शूद्रः । २ वैद्यसन्देशात्=वैद्योपदेशादित्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकादशोऽध्यायः ।**

---

### द्वादशोऽध्यायः ।

३ प्रायः प्रमेहिण एव तस्यां तस्यामवस्थायां पिडका जायन्ते इति तासां चिकित्सितमारभ्यते—अथेति । ४ शराविका–सर्षपिका–कच्छपिका–जालिनी–विनता–पुत्रिणी–मसूरिकाऽलजी–विदारिका इति नव पिडकाः, प्राक्=निदानस्थानस्य षष्ठाध्याये । शराविकाद्या एताः प्रमेहपिडका प्रमेहं विनाऽपि भवन्ति । तदुक्तम्—"विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः । तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहाः ॥" इति ।

५ चरकोक्तं पूर्वरूपलक्षणम्—"स्वेदोऽङ्गगन्धः शिथिलाङ्गता च शय्यासनस्वप्नसुखे रतिश्च । हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो घनाङ्गताकेशनखातिवृद्धिः ॥ शीतप्रियत्वं गलतालुशोषो माधुर्यमास्ये करपाददाहः । भविष्यतो मेहगदस्य रूपं मूत्रेऽभिधावन्ति पिपीलिकाश्च ॥" इति । ६ वनस्पतिकषायं=वटादिक्षीरवृक्षकषायम् । ७ उभयतः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णितं प्रदूष्य शोफं जनयन्त्युपद्रवान् वा कांश्चित्, तत्रोक्तः प्रतीकारः सिरामोक्षश्च । एवमकुर्वतस्तस्य शोफो वृद्धोऽतिमात्ररुजो विदाहमापद्यते, तत्र शस्त्रप्रणिधानमुक्तं व्रणक्रियोपसेवा च । एवमकुर्वतस्तस्य पूयोऽभ्यन्तरमवदार्य्योत्सङ्गं महान्तमवकाशं कृत्वा प्रवृद्धो भवत्यसाध्यः । तस्मादादितः एव प्रमेहिणमुपक्रमेत् ॥ ४ ॥

भल्लातकबिल्वाम्बुपिप्पलीमूलोदकीर्य्यावर्षाभूपुनर्नवाचित्रकशटीस्नुहीवरुणकपुष्करदन्तीपथ्यादशपलोन्मिता यवकोलकुलत्थांश्च प्रास्थिकान् सलिलद्रोणे निःक्वाथ्य चतुर्भागावशिष्टेऽऽवतार्य वचात्रिवृत्कम्पिल्लकभार्गीनिचुलशुण्ठीगजपिप्पलीविडङ्गरोध्रशिरीषाणां भागैरर्द्धपलिकैर्घृतप्रस्थं विपाचयेन्मेहश्वयथुकुष्ठगुल्मोदरार्शःप्लीहविद्रधिपिडकानां नाशनं नाम्ना धान्वन्तरम् ॥ ५ ॥

दुर्विरेच्यां हि मधुमेहिनो भवन्ति मेदोऽभिव्याप्तशरीरत्वात्, तस्मात् तीक्ष्णमेतेषां शोधनं कुर्वीत । पिडकापीडिताः सोपद्रवाः सर्व एव प्रमेहा मूत्रादिमाधुर्ये मधुगन्धसामान्यात् पारिभाषिकीं मधुमेहतां लभन्ते ॥ ६ ॥

न चैतान् कथञ्चिदपि स्वेदयेत्, मेदोबहुत्वादेतेषां विशीर्यते देहः स्वेदेन ॥ ७ ॥

---

संशोधनं=वमनं विरेचनं चेत्यर्थः । १ उपद्रवान्=मक्षिकोपसर्पणमालस्यमित्यादिकान् निदानस्थानोक्तान् । उक्तः=सूत्रस्थाने द्विव्रणीये च । २ आदितः=आद्यं पूर्वरूपं वीक्ष्येत्यर्थः । ल्यब्लोपे पञ्चमी बोध्या ।

३ धान्वन्तरघृतं निर्दिशति—**भल्लातकेति** । उदकीर्या='कजा' इति ख्याता । श्रीभावमिश्रः—"दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी । वर्षाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् । सुधानीपकदम्बाश्च बिल्वं भल्लातकानि च । शटी पुष्करमूलं च पिप्पलीमूलमेव च । पृथग्दशपलान्भागानेतांस्तोयेऽर्मणे पचेत् । यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं विपाचयेत् । तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं पचेद्भिषक् । निचुलं त्रिफला भार्गी रोहिषं गजपिप्पली ॥ शृङ्गवेरविडङ्गानि चव्यं कम्पिल्लकं तथा । गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेत्तु यथाबलम् । एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् ॥" इति ।

४ प्रमेहिणां शोधनमुपदिशति—**दुर्विरेच्या इति** । दुःखेन विरेच्या दुर्विरेच्याः । ५ द्विव्रणीयमभिसमीक्ष्य शोधनं कुर्वीतेत्यर्थः । ६ प्रमेहिणां स्वेदननिषेधं करोति—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसायनीनां[1] च दौर्बल्यान्नोर्ध्वमुत्तिष्ठन्ति प्रमेहिणां दोषाः, ततो मधुमेहिनामधःकाये पिडकाः प्रादुर्भवन्ति[2] ॥ ८ ॥

अपक्वानां[3] पिडकानां शोफवत् प्रतीकारः पक्वानां व्रणवदिति। तैलं तु व्रणरोपणमेवादौ कुर्वीत[4]। आरग्वधादिकषायमुत्सादनार्थे[5], सालसारादिकषायं परिषेचने, पिप्पल्यादिकषायं पानभोजनेषु, पाठाचित्रकशार्ङ्गेष्टाक्षुद्राबृहतीसारिवासोमवल्कसप्तपर्णारग्वधकुटजमूलचूर्णानि मधुमिश्राणि प्राश्नीयात्[6] ॥ ९ ॥

सालसारादिवर्गकषायं चतुर्भागावशिष्टमवतार्य परिस्राव्य पुनरुपनीय[7] साधयेत्, सिद्धयति चामलकरोध्रप्रियङ्गुदन्तीकृष्णायस्ताम्रचूर्णानि आवपेत्, एतदनुपदग्धलेहीभूतमवतार्यानुगुप्तं निदध्यात्। ततो यथायोगमुपयुञ्जीत। एष लेहः सर्वमेहानां हन्ता ॥१०॥

त्रिफलाचित्रकत्रिकटुविडङ्गमुस्तानां नव भागास्तावन्त एव कृष्णायश्चूर्णस्य[8], तत्सर्वमेकध्यं कृत्वा यथायोगं मात्रां सर्पिर्मधुभ्यां संसृज्योपयुञ्जीत्, एतन्नवायसम्। एतेन[9] जाठर्यं न भवति सन्नोऽग्निराप्यायते[10] दुर्नामशोफपाण्डुकुष्ठरोगाविपाककासश्वासप्रमेहाश्च न

---

न चैतानिति। १ अधोदेहे एव पिडकासम्भवे हेतुमाह—रसायनीनामिति। रसायनीनामित्यत्रादिशब्दस्य लुप्तनिर्देशाद् रसपित्तकफशोणितवहानां धमनीनामित्यर्थः। २ दोषदूष्याणामधःप्रसरणादिति भावः।

३ अपक्वानां पक्वानां च पिडकानां विशेषचिकित्सितमभिधत्ते—अपक्वानामिति। ४ रोपणद्रव्यं मिश्रकाद्युक्तमुन्नेयम्। ५ उत्सादनार्थे=उद्वर्तनाय, 'अर्थे कृते च शब्दौ द्वौ तादर्थ्ये परिकीर्तितौ' इत्युक्तेः। भावमिश्रः—'प्रमेहपिडिकानां प्राक्कार्यं रक्तावसेचनम्। पाटनं च विपक्वानां तासां पाने प्रशस्यते ॥ क्वाथो वानस्पतैर्बास्त्यं मूत्रं तीक्ष्णं च शोधनम्। एलादिकेन कल्केन तैलं च व्रणरोपणम्। आरग्वधादिना क्वाथं कुर्याद्दुद्वर्तनानि च। सालसारादिना सेकान् भोज्यादिश्च कणादिना ॥" इति। ६ शार्ङ्गेष्टा=महाकरञ्जः, क्षुद्रा=कण्टकारी, सोमवल्कः=श्वेतखदिरः। ७ उपनीय=अग्नेरुपरि निधायेत्यर्थः।

८ नवायसयोगमाख्याति—त्रिफलेति। ९ कृष्णायश्चूर्णस्य=कृष्णलौहचूर्णस्य। १० जाठर्यं स्थौल्यम्। ११ दुर्नाम=अर्शः, 'दुर्नाम पुनरर्शसि' इति हेमचन्द्रः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन्ति ॥ ११ ॥

सालसारादिनिर्यूहे[1] चतुर्थांशावशेषिते ।
परिस्रुते[2] ततः शीते मधु[3] माक्षिकमावपेत् ॥ १२ ॥
फाणितीभावमापन्नं गुडं[4] शोधितमेव च ।
श्लक्ष्णपिष्टानि चूर्णानि पिप्पल्यादिगणस्य[5] च ॥ १३ ॥
ऐकध्यमावपेत् कुम्भे संस्कृते घृतभाविते ।
पिप्पलीचूर्णमधुभिः प्रलिप्तेऽन्तःशुचौ दृढे ॥ १४ ॥
श्लक्ष्णानि तीक्ष्णलोहस्य तत्र पत्राणि[6] बुद्धिमान् ।
खदिराङ्गारतप्तानि बहुशः सन्निपातयेत् ॥ १५ ॥
सुपिधानं तु तं कृत्वा यवपल्ले[7] निधापयेत् ।
मासांस्त्रींश्चतुरो वाऽपि यावदालोहसङ्क्षयात् ॥ १६ ॥
ततो जातरसं तन्तु प्रातः प्रातर्यथाबलम् ।
निषेवेत यथायोगमाहारं चास्य कल्पयेत् ॥ १७ ॥
कार्श्यकृद् बलिनामेष सन्नस्याग्नेः प्रसाधकः ।
शोफनुद् गुल्महृत कुष्ठमेहपाण्ड्वामयापहः ॥ १८ ॥
प्लीहोदरहरः शीघ्रं विषमज्वरनाशनः ।
अभिष्यन्दापहरणो लोहारिष्टो महागुणः ॥ १९ ॥
प्रमेहिणो यदा मूत्रमपिच्छिलमनाविलम् ।

---

१ महागु॰शालिनं लोहारिष्टं वर्णयति-**सालसारादिति**। शालसारादिनिर्यूहे = द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तशालसारादिक्काथे इत्यर्थः। शालसारादिद्रव्यस्य पलशतम्, चतुर्द्रोणजले पाचनम्। २ परिस्रुते = वस्त्रेण गालिते। ३ मधु पञ्चाशत्पलप्रमाणम्। माक्षिकं मध्वासवमित्यर्थः। ४ गुडः पञ्चाशत्पलप्रमाणः। पूर्वोक्तकषाये विलायितस्तृणादिनिस्सारणेन पवित्रीकृतो गुडः शोधितो बोध्यः। ५ पिप्पल्यादिगणचूर्णस्य पञ्चविं॰तिपलानि। ६ तीक्ष्णलोहस्य श्लक्ष्णानि पत्राणीति सम्बन्धः। पत्राणि तिलोत्सेधप्रमाणानि बोध्यानि। लोहचूर्णानां पञ्चविंशतिपलानि ग्राह्याणि।

७ यवपल्ले = यवपूर्णकुसूले। अत्र लोहारिष्टे चूर्णमाक्षिकगुडाः क्काथात् षोडशाष्टमतुरीयांशा एवावाप्या इति सुश्रुतार्थसन्दीपनम्। ८ प्रमेहनिवृत्तिलक्षणमभि॰

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशदं तिक्तकटुकं तदाऽऽरोग्यं प्रचक्षते ॥ २० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने प्रमेहपिडकाचिकित्सितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

## त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो मधुमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

मधुमेहित्वमापन्नं भिषग्भिः परिवर्जितम् ।
योगेनानेन मतिमान् प्रमेहिणमुपाचरेत् ॥ ३ ॥
मासे शुक्रे शुचौ चैव शैलाः सूर्यांशुतापिताः ।
जतुप्रकाशं स्वरसं शिलाभ्यः प्रस्रवन्ति हि ॥ ४ ॥
शिलाजत्विति विख्यातं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
त्रपुवादीनां तु लोहानां षण्णामन्यतमान्वयम् ॥ ५ ॥

---

धत्ते—**प्रमेहिण इति** । अपिच्छिलम् = अविजिलम् । 'स्यात्पिच्छिलं तु विजिलम्' इत्यमरः । अनाविलं = प्रसन्नम्, विशदं = रूक्षमित्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहिताया श्चिकित्सास्थानीयसुधाख्यटिप्पन्यां द्वादशोऽध्यायः ।**

---

### त्रयोदशोऽध्यायः ।

१ "स मारुतस्य पित्तस्य कफस्य च मुहुर्मुहुः । दर्शयत्याकृतिं गत्वा क्षयमाप्यायते पुनः । उपेक्षयाऽस्य जायन्ते पिडकाः" इति पिडकाः प्रायेण मधुमेहिनामेव भवन्तीति पिडकाचिकित्साऽनन्तरं मधुमेहचिकित्सितमारभ्यते—**अथेति** । २ शुक्रे = ज्येष्ठे मासि, शुचौ = आषाढे मासि । तदुक्तमन्यत्रापि—"निदाघघर्मसन्तप्ता धातुसारं धराधराः । निर्यासवत्प्रमुञ्चन्ति तच्छिलाजतु कीर्तितम् ॥" इति । यद्यपि मासान्तरेऽपि शिलजतुप्रस्रवणं दरीदृश्यते, तथाऽप्येतन्मासद्वयाभिधानमतिशयगुणबोधनार्थम् ।

३ जतुप्रकाशं = लाक्षाप्रभमित्यर्थः । शिलाभ्यः = त्रपुवादिधात्वनुगतोपलेभ्यः । ४ त्रपु = वङ्गम्, 'वङ्गसीसकयोस्त्रपु' इति रुद्रः । आदिना सीसताम्ररूप्यसुवर्णकृष्णलौहानि बोध्यानि । लोहानां = तैजसधातूनाम्, 'लोहोऽस्त्री शस्त्रके लोहं जोङ्गके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञेयं स्वगन्धतश्चापि षड्योनि प्रथितं क्षितौ ।
लोहाद्भवति तद् यस्माच्छिलाजतु जतुप्रभम् ॥ ६ ॥
तस्य लोहस्य तद्वीर्य्यं रसं चापि बिभर्त्ति तत् ।
त्रपुसीसायसादीनि प्रधानान्युत्तरोत्तरम् ॥ ७ ॥
यथा तथा प्रयोगेऽपि श्रेष्ठे श्रेष्ठगुणाः स्मृताः ।
तत्सर्वं तिक्तकटुकं कषायानुरसं सरम् ॥ ८ ॥
कटुपाक्युष्णवीर्य्यं च शोषणं छेदनं तथा ।
तेषु यत् कृष्णमलघु स्निग्धं निःशर्करं च यत् ॥ ९ ॥
गोमूत्रगन्धि यच्चापि तत् प्रधानं प्रचक्षते ।
तद्भावितं सारगणैर्हृतदोषो दिनोदये ॥ १० ॥
पिबेत् सारोदकेनैव श्लक्ष्णपिष्टं यथाबलम् ।
जाङ्गलेन रसेनान्नं तस्मिन् जीर्णे तु भोजयेत् ॥ ११ ॥
उपयुज्य तुलामेवं गिरिजादमृतोपमात् ।

---

सर्वतैजसे' इति मेदिनी । "पुरा लोमिनदैत्यानां निहतानां सुरैर्युधि । उत्पन्नानि शरीरेभ्यो लोहानि विविधानि च ॥" इति तन्त्रान्तरम् । अन्यतमान्वयम् = एकतमान्वयम् ।

१ षड्योनि = षट्कारणम् । "सौवर्णं राजतं ताम्रमायसं च चतुर्विधम्" इति तन्त्रान्तरीयवचनं चतुर्णामपि मुख्यानां तेषां गुणख्यापनार्थमिति बोध्यम् । २ तत् पुनः शिलाजतु न केवलं स्वस्वगन्धं बिभर्ति, किन्तर्हि रसवीर्ये अपीत्याह—**लोहादिति** । तत् जतुप्रभं शिलाजतु यस्माल्लोहाद् भवत्युत्पद्यते तस्य लोहस्य तदन्नपानाध्यायोपदिष्टं वीर्यं रसं च तत्तस्मात् तत्तल्लोहसम्भूतत्वादिति यावत्, बिभर्ति कारणारूपं कार्यमिति कृत्वेत्याकूतमिति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । चकाराद् वर्णप्रभावं च बिभर्तीति समुच्चयः ।

३ शिलाजतूनामुत्तरोत्तरं श्रैष्ठ्यं निर्दिशति—**त्रप्विति** । त्रपुसीसायसादीनि = वङ्गसीसकताम्ररजतसुवर्णकृष्णलोहजानीत्यर्थः । ४ शिलाजतुसामान्यगुणान् दर्शयति—**तत्सर्वमिति** । ५ दुष्टरक्तादेः शोषणमित्यर्थः । छेदनं = कफग्रन्थ्यादिछेदनकृत् । ६ प्रधानशिलाजतुलक्षणं ब्रवीति—**तेष्विति** ।

७ शिलाजतुप्रयोगविधिमभिधत्ते—**तद्भावितमिति** । भावना दशदिनानि विंशतिदिनानि त्रिंशद्दिनानि वा कार्या । सारगणैः = शालसारादिगणैः । हृतदोषः = वमनादिना संशुद्धदेहः । ८ सारोदकेन = सालसारादिक्वाथेनेत्यर्थः । ९ तुलां = पञ्च-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वपुर्वर्णबलोपेतो मधुमेहविवर्जितः ॥ १२ ॥
जीवेद्वर्षशतं पूर्णमजरोऽमरसन्निभः ।
शतं शतं तुलायां तु सहस्रं दशतौलिके ॥ १३ ॥
भल्लातकविधानेन परिहारविधिः स्मृतः ।
मेहं कुष्ठमपस्मारमुन्मादं श्लीपदं गरम् ॥ १४ ॥
शोषं शोफार्शसी गुल्मं पाण्डुतां विषमज्वरम् ।
अपोहत्यचिरात् कालाच्छिलाजतु निषेवितम् ॥ १५ ॥
न सोऽस्ति रोगो यं चापि निहन्यान्न शिलाजतु ।
शर्करां चिरसम्भूतां भिनत्ति च तथाऽश्मरीम् ॥ १६ ॥
भावनालोडने चास्य कर्त्तव्ये भेषजैर्हितैः ।
एवं च माक्षिकं धातुं तापीजममृतोपमम् ॥ १७ ॥
मधुरं काञ्चनाभासमम्लं वा रजतप्रभम् ।
पिबन् हन्ति जराकुष्ठमेहपाण्ड्वामयक्षयान् ॥ १८ ॥
तद्भावितः कपोतांश्च कुलत्थांश्च विवर्जयेत् ।
पञ्चकर्मगुणातीतं श्रद्धावन्तं जिजीविषुम् ॥ १९ ॥
योगेनानेन मतिमान् साधयेदपि कुष्ठिनम् ।

---

सेटकपरिमाणाम् । गिरिजात्=शिलाजतुनः । १ दशतौलिके=पञ्चाशत्सेटकसम्मिते शिलाजतुनि सेविते इत्यर्थः । २ भल्लातकविधानं चिकित्सास्थानस्य षष्ठाध्याये 'भल्लातकानि परिपक्वान्यनुपहतान्याहृत्य" इत्यादिनोक्त द्रष्टव्यम् ।

३ मधुमेहे स्वर्णमाक्षिकधातुविधानमतिदिशति—एवञ्चेति । तापी विन्ध्याद्रिप्रसिद्धा पश्चिमवाहिनी नदी तस्यां जातं स्वर्णमाक्षिकं रजतमाक्षिकं चेत्यर्थः । ४ काञ्चनाभासं सुवर्णसदृशं मधुरं, रजतप्रभं रजतसदृशमम्लं वा सुवर्णमाक्षिकं भवतीत्यर्थः । ५ तद्भावितः, ताभ्यां शिलाजतुस्वर्णमाक्षिकधातुभ्यां भावितो व्याप्तदेहः कपोतान् कुलत्थांश्च यावज्जीवं वर्जयेदित्यर्थः ।

६ पञ्चकर्मगुणैरतीतं हीनम् । अत्र डल्हणः—पञ्चशब्देन पञ्चमधात्वस्थिस्थितं कुष्ठमुक्तम् , तत्र कर्माणि संशोधनसंशमनाभ्यङ्गगुग्गुलुशिलाजतुप्रभृतीनि तेषां गुणाः फलानि, तान्यतीतम् । एतदुक्तं भवति—अस्थिगत कुष्ठं संशोधनादिभिरप्राप्तविशेषं साधयेदिति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्षास्तुवरका[1] ये स्युः पश्चिमार्णवभूमिषु ॥ २० ॥
वीचीतरङ्गविक्षेपमारुतोद्धूतपल्लवाः ।
तेषां फलानि गृह्णीयात् सुपक्कान्यम्बुदागमे ॥ २१ ॥
मज्जां तेभ्योऽपि[2] संहृत्य शोषयित्वा विचूर्ण्य च ।
तिलवत् पीडयेद् द्रोण्यां स्रावयेद्वा[3] कुसुम्भवत् ॥ २२ ॥
तत् तैलं संहृतं भूयः पचेदातोयसङ्क्षयात् ।
अवतार्य्य करीषे[4] च पक्षमात्रं निधापयेत् ॥ २३ ॥
स्निग्धः स्विन्नो हृतमलः[5] पक्षादूर्ध्वं प्रयत्नवान् ।
चतुर्थभक्तान्तरितः[6] शुक्लादौ दिवसे शुभे ॥ २४ ॥
मन्त्रपूतस्य तैलस्य पिबेन्मात्रां[7] यथाबलम् ।
तत्र मन्त्रं प्रवक्ष्यामि येनेदमभिमन्त्र्यते ॥ २५ ॥
"मज्जसार ! महावीर्य्य ! सर्वान् धातून् विशोधय ।
शङ्खचक्रगदापाणिस्त्वामाज्ञापयतेऽच्युतः ॥ २६ ॥"
तेनास्योर्ध्वमधश्चापि दोषा यान्त्यसकृत् ततः ।
अस्नेहलवणां[8] सायं यवागूं शीतलां पिबेत् ॥ २७ ॥
पञ्चाहं प्रपिबेत् तैलमनेन विधिना नरः ।
पक्षं रिहरेच्चापि मुद्गयूषौदनाशनः[9] ॥ २८ ॥
पञ्चभिर्दिवसैरेवं सर्वकुष्ठैर्विमुच्यते[10] ।

---

१ तुवरकरसायनस्य षड्विधप्रयोगविधानं दर्शयति—**वृक्षा इति** । २ तेभ्यः= फलेभ्यः । ३ स्रावयेत्= कुसुम्भपुष्पवद् गालयेदित्यर्थः । ४ करीषे=शुष्कगोमये, 'तत्तु शुष्कं करीषोऽस्त्री' इत्यमरः । ५ हृतं मलं पुरीषं कफादयोऽपि यस्य स हृतमलः । ६ चतुर्थभक्तेनान्तरितस्तिरस्कृत इति चतुर्थभक्तान्तरितः चतुःसन्ध्याभोजनरहित इत्यर्थः । पक्षादूर्ध्वं प्रथमेऽह्नि सायं प्रातर्भोजनं कृत्वा द्वितीयेऽह्नि प्रातर्भुक्त्वा सायङ्काले भोजनं न कर्तव्यम्, अथवा सायं भोजनस्थाने फलाम्लमुष्णोदकं वा पाययेत् । ततस्तृतीयेऽह्नि लघुकोष्ठाय कुष्ठिने स्नेहं दद्यात् । एवं चतुर्थभक्तमन्तरितं भवतीति निष्कर्षः ।

७ मात्रां=कर्षप्रमाणाम् । ८ नञ् ईषदर्थे, तेन अल्पस्नेहलवणामित्यर्थो बोध्यः । ९ क्रोधादीनिति शेषः । १० एतत्पर्यन्तं पञ्चाह्निकप्रयोगेण तुवरकमज्जतैलस्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदेव[1] खदिरक्काथे त्रिगुणे साधु साधितम् ॥ २९ ॥
निहन्ति पूर्ववत् पक्वं पिबेन्मासमतन्द्रितः ।
तेनाभ्यक्तशरीरश्च कुर्वीताहारमीरितम् ॥ ३० ॥
भिन्नस्वरं रक्तनेत्रं विशीर्णं कृमिभक्षितम् ।
अनेनाशु प्रयोगेण साधयेत् कुष्ठिनं नरम् ॥ ३१ ॥
सर्पिर्[2]मधुयुतं पीतं तदेव खदिराम्बुना ।
पक्ष्मिमांसरसाहारं करोति द्विशतायुषम् ॥ ३२ ॥
तदेव[3] नस्ये पञ्चाशद्दिवसानुपयोजितम् ।
वपुष्मन्तं श्रुतिधरं करोति त्रिशतायुषम् ॥ ३३ ॥
शोधयन्ति[4] नरं पीता मज्जानस्तस्य मात्रया ।
महावीर्य्यस्तुवरकः कुष्ठमेहापहः परः ॥ ३४ ॥
सान्तर्धूमस्तस्य[5] मज्जा तु दग्धः क्षिप्तस्तैले सैन्धवं चाञ्जनं च ।
पैल्ल्यं हन्यादर्मनक्तान्ध्यकाचान्[6] नीलीरोगं तैमिरं चाञ्जनेन ॥३५॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने मधुमेहचिकित्सितं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

## चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथात उदर[8]राणां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

---

कुष्ठहरः प्रथमो योगः । १ इत आरभ्य खदिराम्बुसिद्धस्य तस्यैव तैलस्य विशिष्टावस्थकुष्ठे द्वितीयो योगः । २ इत आरभ्य सर्पिर्मधुखदिरकषायविधिना तस्यैव तृतीयो योगः । ३ इत आरभ्य पञ्चाशदाहिको नस्यप्रयोगश्चतुर्थः । ४ मज्जप्रयोगः पञ्चम इत आरभ्यते । ५ इतोऽञ्जनप्रयोगः षष्ठ आरभ्यते । ६ अञ्जनं = स्रोतोञ्जनम् ।

७ प्रस्तार्य्यर्म्मशुक्लार्म्मरक्तार्म्ममांसार्म्मस्नाय्वर्म्मभेदादर्म्मः पञ्चविधः । अर्मादयो नेत्ररोगभेदाः । एषां लक्षणानि उत्तरतन्त्रे स्वयमेव व्यक्तीकरिष्यति । तानि विस्तरभिया नेह प्रतन्यन्ते ।

**इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रयोदशोऽध्यायः ।**

---

चतुर्दशोऽध्यायः ।

८ उदरशब्देन उदरस्थो रोगो बोद्धव्यः, "अर्थतो धर्मतः साम्यात्तत्समीपतयाऽपि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अष्टावुदराणि [1]पूर्वमुद्दिष्टानि। तेष्वसाध्यं बद्धगुदं परिस्रावि च। अवशिष्टानि कृच्छ्रसाध्यानि [2]सर्वाण्येव प्रत्याख्यायोपक्रमेत। तेष्वाद्यश्चतुर्वर्गो [3]भेषजसाध्यः, [4]कालप्रकर्षात् सर्वाण्येव शस्त्रसाध्यानि वर्जयितव्यानि वा ॥ ३ ॥

उदरी तु गुर्वभिष्यन्दिरूक्षविदाहिस्निग्धपिशितपरिषेकावगाहान् परिहरेत्। शालिषष्टिकयवगोधूमनीवारान् नित्यमश्नीयात् ॥४॥

[5]तत्र वातोदरिणं विदारिगन्धादिसिद्धेन सर्पिषा स्नेहयित्वा तिल्वकविपक्वेनानुलोम्य, चित्राफलतैलप्रगाढेन विदारिगन्धाकषायेणास्थापयेदनुवासयेच्च शाल्वणेन चोपनाहयेदुदरम्, भोजयेच्चैनं विदारिगन्धादिसिद्धेन क्षीरेण जाङ्गलरसेन चाभीक्ष्णं स्वेदयेत् ॥ ५ ॥

पित्तोदरिणं तु मधुरगणविपक्वेन सर्पिषा स्नेहयित्वा,

---

च। तत्साहचर्याच्छब्दानां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा ॥" इत्युक्तत्वात्। १ पूर्वं प्राक् निदानस्थाने–"पृथक् समस्तैरपि चेह दोषैः प्लीहोदरं बद्धगुदं तथैव। आगन्तुकं सप्तममष्टमं च दकोदरं चेति वदन्ति तानि ॥" इत्युक्तानीत्यर्थः। तत्र अष्टसंख्यापूरणावसरे प्लीहोदरयकृद्दाल्युदरयोरैक्यमेव ज्ञातव्यम्।

२ कृच्छ्रसाध्येष्वपि यथोत्तरं कृच्छ्रकृच्छ्रतरत्वमुक्तं तन्त्रान्तरे–"वातपित्तकफप्लीहसन्निपातोदकोदरम्। कृच्छ्रं यथोत्तरम्" इति। प्रत्याख्याय="अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत्" इति निराकृत्य। ३ चतुर्णां दोषजानां वर्गश्चतुर्वर्गः वातपित्तकफदूषीविषनिमित्तः, उत्तरः=प्लीहोदरबद्धगुदच्छिद्रोदकोदराख्यः।

४ कालप्रकर्षात् भेषजसाध्यकालातिक्रमाच्छस्त्रसाध्यकालातिक्रमाच्च सर्वाण्येवोदराणि शस्त्रसाध्यानि वर्जयितव्यानि। ५ अभिष्यन्दि=दोषधातुमलस्रोतसां क्लेदप्राप्तिजनकम्। शार्ङ्गधरे–"पैच्छिल्याद् गौरवाद् द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः सिराः। धत्ते यद्गौरवं तत्स्यादभिष्यन्दि यथा दधि ॥" इति। विदाहि=धान्याम्लादिकम्।

६ वातोदरिणश्चिकित्सामभिधत्ते–**तत्रेति**। ७ तिल्वकः=रोध्रः, अनुलोम्य=विरेच्य, चित्रा=दन्ती। ८ "काकोल्यादिः सवातघ्नः सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः। सानूपौदकमांसस्तु सर्वस्नेहसमन्वितः। सुखोष्णः स्पष्टलवणः शाल्वणः परिकीर्तितः" इति वातव्याधिनिदानोक्तः। ९ पित्तोदरिणश्चिकित्सामाचष्टे–**पित्तोदरिणमिति**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामा[1] त्रिफलात्रिवृद्विपक्वेनानुलोम्य, शर्करामधुघृतप्रगाढेन न्यग्रोधादिकषायेणास्थापयेदनुवासयेच्च, पायसेनोपनाहयेदुदरं, भोजयेच्चैनं विदारिगन्धादिसिद्धेन पयसा ॥ ६ ॥

श्लेष्मोदरिणं[2] पिप्पल्यादिकषायसिद्धेन सर्पिषोपस्नेह्य स्नुहीक्षीरविपक्वेनानुलोम्य, त्रिकटुकमू क्षारतैलप्रगाढेन मुष्ककादिक[3]षायेणास्थापयेदनुवासयेच्च, शणातसीधातकीकिण्व[4]सर्षपमूलकबीजकल्कैश्चोपनाहयेदुदरं, भोजयेच्चैनं त्रिकटुकप्रगाढेन कुलत्थयूषेण पायसेन वा, स्वेदयेच्चाभीक्ष्णम् ॥ ७ ॥

दूष्योदरिणं[5] तु प्रत्याख्याय सप्तलाशङ्खिनीस्वरससिद्धेन सर्पिषा विरेचयेन्मासमर्द्धमासं वा, महावृक्ष[6]क्षीरसुरागोमूत्रसिद्धेन वा, शुद्धकोष्ठं तु मद्येनाश्वमारकगुञ्जाकाकादनी[7]मूलकल्कं पाययेत्; इक्षुकाण्डानि वा कृष्णसर्पेण दंशयित्वा भक्षयेद् वल्लीफ[8]लानि वा, मूलजं कन्दजं वा विषमासेवयेत्, तेनागदो भवत्यन्यं वा भावमापद्यते ॥ ८ ॥

भवति चात्र ।

[10]कुपितानिलमूलत्वात् सञ्चितत्वान्मलस्य च ।
सर्वोदरेषु शंसन्ति बहुशस्त्वनुलोमनम् ॥ ९ ॥

अत ऊर्ध्वं[9] सामान्ययोगान् वक्ष्यामः । तद् यथा—एरण्डतैलमहरहर्मासं द्वौ वा केवलमूत्रयुक्तं क्षीरयुक्तं वा सेवेतोदकवर्जी,

---

मधुरगणः=काकोल्यादिमधुरवर्ग इत्यर्थः । १ श्यामा='निसोत' इति । २ कफोदरिणश्चिकित्सां निर्दिशति-श्लेष्मोदरिणमिति । ३ मुष्ककादिर्द्रव्यसङ्ग्रहणीाध्यायोक्तः । ४ किण्वं=मधूकपुष्पबीजमित्यर्थः ।

५ सान्निपातिकचिकित्सामाख्याति-दूष्योदरिणमिति । दूष्योदरिणं=त्रिदोषोदरिणम् । प्रत्याख्याय="अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत्" इति सूचयित्वा, शङ्खिनी='शंखाहुली' इति ख्याता । ६ महावृक्षः सेहुण्डस्तत्क्षीरम् । 'विरेचयेत्' इति शेषः । ७ काकादनी='काकजंघा' इति ख्याता । ८ वल्लीफलानि=कर्कटीप्रभृतीनि । ९ वा अथवा अन्यं भावं मृत्युमित्यर्थः ।

१० तन्त्रान्तरेऽपि—"दोषातिमात्रोपचयात्स्रोतोमार्गनिरोधनात् । सम्भवत्युदरं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माहिषं वा मूत्रं क्षीरेण निराहारः सप्तरात्रम्, उष्ट्रीक्षीराहारो वाऽन्नवारिवर्जी पक्षं, पिप्पलीं वा मासं पूर्वोक्तेन[1] विधानेनासेवेत, सैन्धवाजमोदायुक्तं वा निकुम्भतैलम्[2], आर्द्रकशृङ्गवेररसपात्रशतसिद्धं वा वातशूलेऽवचार्य्यम्[3], शृङ्गवेररसविपक्वं क्षीरमासेवेत चव्यशृङ्गवेरकल्कं वा पयसा सरलदेवदारुचित्रकमेव वा, मुरङ्गीशालपर्णीश्यामापुनर्नवा[4] वा कल्कं वा, ज्योतिष्कफलतैलं[5] वा क्षीरेण स्वजिकाहिङ्गुमिश्रं पिबेत्, गुडद्वितीयां वा हरीतकीं भक्षयेत्, स्नुहीक्षीरभावितानां[6] वा पिप्पलीनां सहस्रं कालेन, पथ्याकृष्णाचूर्णं वा स्नुहीभावितमुत्कारिकां[7] पक्वां दापयेत्; हरीतकीचूर्णं प्रस्थमाढके घृतस्यावाप्याङ्गारेष्वभिविलाप्य खजेनाभिमथ्यानुगुप्तं कृत्वाऽर्द्धमासं यवपल्ले[9] वासयेत्, ततश्चोद्धृत्य परिस्राव्य हरीतकीक्वाथाम्लदधीन्यावाप्य विपचेत्, तद् यथायोगं मासमर्द्धमासं वा पाययेत्; गव्ये पयसि[10] महावृक्षक्षीरमावाप्य विपचेत्, विपक्वं चावतार्य्य शीतीभूतं मन्थानेनाभिमथ्य नवनीतमादाय भूयो महावृक्षक्षीरेणैव विपचेत्, तद्यथायोगं मासं मासार्द्धं वा पाययेत्; चव्यचित्रकदन्त्यतिविषा[11] कुष्ठसारिवात्रिफलाजमोदहरिद्राशङ्खिनीत्रिवृत्त्रिकटुकानामर्द्धकार्षिका भागा राजवृक्षफलमज्ज्ञानामष्टौ कर्षा महावृक्षक्षीरपले द्वे गवां क्षीरमूत्रयोरष्टावष्टौ पलानि एतत् सर्वं घृतप्रस्थे समावाप्य विपचेत्, तद् यथायोगं मासमर्द्धमासं वा पाययेत्; एतानि[12] तिल्वकघृतचतुर्थानि सर्षपीष्युदरगुल्मविद्रध्यष्ठीलाऽऽनाहकुष्ठोन्मादापस्मारेषूपयोज्यानि

---

तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत्॥" इति। १ पूर्वोक्तेन = चिकित्सास्थानस्य पञ्चमाध्यायोक्तेन। २ निकुम्भतैलं = दन्तीतैलम्। ३ आर्द्रशृङ्गवेरम् = आर्द्रकम्। अत्र निकुम्भतैलमनुकृष्यते। ४ मुरङ्गी = रक्तशोभाञ्जनः। 'सुरङ्गी' इति पाठान्तरम्। ५ ज्योतिष्कः = 'मालकाङ्गनी' इति ख्यातः। ६ स्नुहीक्षीरभावना त्रिसप्तवारान्। ७ उत्कारिका = लप्सिकाकारा।

८ खजेन = मन्थानेन। ९ यवपल्ले = यवपूर्णकुसूले। १० आढकप्रमाणे गव्ये पयसि महावृक्षक्षीरं सेहुण्डदुग्धम्। ११ अतिविषा = 'अतीस' इति। १२ एतानि =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरेचनार्थम् ; मूत्रासवारिष्टसुराश्चाभीक्ष्णं महावृक्षक्षीरसम्भृताः सेवेत ; विरेचनद्रव्यकषायं वा शृङ्गवेरदेवदारुप्रगाढम् ॥ १० ॥

वमनविरेचनद्रव्याणां पालिका भागाः पिप्पल्यादि–वचादि–हरिद्रादि–परिपठितानां च द्रव्याणां श्लक्ष्णपिष्टानां यथोक्तानां च लवणानां तत्सर्वं [२]मूत्रगणे प्रक्षिप्य महावृक्षक्षीरप्रस्थं च मृद्वग्निना घट्टयन् विपचेदप्रदग्धकल्कं, तत्साधुसिद्धमवतार्य्य शीतीभूतमक्षमात्रा[३] गुटिका वर्त्तयेत् , तासामेकां द्वे तिस्रो वा गुटिका बलापेक्षया मासांस्त्रींश्चतुरो वा सेवेत, एषाऽऽनाहवर्तिक्रिया विशेषेण मेहाव्याधिषूपयुज्यते कोष्ठजांश्च कृमीनपहन्ति कासश्वासकृमिकुष्ठप्रतिश्यायारोचकाविपाकोदावर्त्तांश्च नाशयति ॥ ११ ॥

मदनफलमज्जकुटजजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवत्रिवृत्त्रिकटुसर्षपलवणानि महावृक्षक्षीरमूत्रयोरन्यतरेण पिष्ट्वाङ्गुष्ठमात्रां वर्त्तिं कृत्वोदरिण आनाहे तैललवणाभ्यक्तगुदस्यैकां द्वे वा [६]पायौ निदध्यात् । एषाऽऽनाहवर्त्तिक्रिया वातमूत्रपुरीषोदावर्त्तध्मानानाहेषु विधेया ॥ १२ ॥

प्लीहोदरिणः स्निग्धस्विन्नस्य दध्ना भुक्तवतो वामबाहौ कूर्पराभ्यन्तरतः सिरां विध्येत्, विमर्दयेत् पाणिना प्लीहानं रुधिरस्यन्दनार्थं, ततः संशुद्धदेहं समुद्रशुक्तिकाक्षारं पयसा पाययेत्, हिङ्गुसौवर्चिकाक्षारेण स्नुतेन पलाशक्षारेण वा यवक्षारं किंशुकक्षा-

---

हरीतकीमारभ्योक्तानि, तिल्वकघृतं वातव्याधिनिदाने प्रोक्तम् । १ उदरे आनाहमूत्रवर्तिक्रियामुपदिशति—**वमनेति** । पालिका भागाः=चत्वारि चत्वारि तोलकानि । पिप्पल्यादयस्त्रयो गणा द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायेऽवलोकनीयाः । २ मूत्रगणे=मूत्रवर्गे । गवादीनां मूत्रेण व्यस्तसमस्तेन पिष्ट्वा चतुर्गुणैर्विपाच्यम् । ३ अक्षमात्रा=तोलकपरिमाणा । ४ प्रमेहादिमहाव्याधिष्वित्यर्थः ।

५ आनाहवर्तिक्रियामुपदिशति—**मदनेति** । जीमूतकः=देवदाली, ईक्ष्वाकुः='कडूतोरई' इति, धामार्गवः='तोरई' इति । ६ पायौ=गुदे । ७ प्लीहोदरिण श्चिकित्सां ब्रवीति—**प्लीहोदरिण इति** । ८ कूर्परो भुजमध्यग्रन्थिस्तदाभ्यन्तरत इत्यर्थः । 'कफोणिः कूर्परोऽरत्नेः पृष्ठम्' इति नाममाला । ९ संशुद्धदेहं=वम-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोदकेन वा बहुशः स्रुतेन यवक्षारं पारिजातकेक्षुरकापामार्गक्षारं वा, तैलसंसृष्टं शोभाञ्जनकषायं वा, पिप्पलीसैन्धवचित्रकयुक्तं पूतिकरञ्जक्षारं वाऽम्लस्रुतं विडलवणपिप्पलीप्रगाढम् ॥ १३ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलचित्रकशृङ्गवेरयवक्षारसैन्धवानां पालिकाः भागा घृतप्रस्थं तत्तुल्यं क्षीरं तदैकध्यं विपाचयेत् । एतत् षट्पलकं नाम सर्पिः प्लीहाग्निसङ्गगुल्मोदरोदावर्त्तश्वयथुपाण्डुरोगकासश्वासप्रतिश्यायोर्ध्ववातविषमज्वरानपहन्ति । मन्दाग्निर्वा हिंग्वादिकं चूर्णमुपयुञ्जीत ॥ १४ ॥

यकृद्दाल्येऽप्येष एव क्रियाविभागः । विशेषतस्तु दक्षिणबाहौ सिराव्यधः ॥ १५ ॥

मणिबन्धं सकृन्नाम्य वामाङ्गुष्ठसमीरिताम् ।
ददेत् सिरां शरेणाशु प्लीह्नो वैद्यः प्रशान्तये ॥ १६ ॥

बद्धगुदे परिस्राविणि च स्निग्धस्विन्नस्याभ्यक्तस्याधोनाभेर्वामतश्चतुरङ्गुलमपहाय रोमराज्या उदरं पाटयित्वा चतुरङ्गुलप्रमा-

---

नविरेचनाभ्यां संशुद्धशरीरम् । समुद्रजा क्षुद्रा शुक्तिः समुद्रशुक्तिका । १ इक्षुरकः = कोकिलाक्षः । २ 'चिरबिल्वो नक्तमालः करजश्च करञ्जके' इत्यमरः । कण्टकिकरञ्जक्षारमर्धपलमात्रं षड्गुणाम्लकाञ्जिकेन बहुशः परिस्रुतं, पिप्पलीविडलवणप्रक्षेप इति डल्हणः ।

३ षट्पलकघृतं दर्शयति—**पिप्पलीति** । ४ पालिका भागाः = चत्वारि चत्वारि तोलकानि । ५ यकृद्दाल्युदरिणश्चिकित्सामाचष्टे—**यकृद्दाल्य इति** । ६ दक्षिणबाहौ भुजमध्यस्थसिराव्यध इत्यर्थः ।

७ प्लीह्नः सिरादाहं वर्णयति—**मणिबन्धमिति** । 'मणिबन्धः पाणिमूलम्' इति हलायुधः । मणिबन्धं सकृत किञ्चिन्नाम्य, कोऽर्थः ? उन्नामयित्वा वामाङ्गुष्ठं प्रति सम्यगीरितां गतामिति वामाङ्गुष्ठसमीरितां सिरां शरेण अग्नौ प्रतप्तेन आशु दहेदित्यर्थः ।

८ बद्धगुदोदरिणः परिस्राव्युदरिणश्च चिकित्सामुपदिशति—**बद्धगुद इति** । ९ नाभेरधस्ताद् वामतः वामभागे रोमराज्या रोमराजीतश्चतुरङ्गुलमपहाय चतुरङ्गुलप्रमाणं पाटयित्वा तिर्यक् छित्त्वाऽन्त्राणि निष्कृत्येति सम्बन्धः । नाभेरधश्चतुरङ्गुलमपहायेति सिरासन्निकर्षपरिहारार्थं बोध्यम् । लोम्नि तिर्यगवस्थितेऽनुलोमगं शस्त्रपातनम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णमन्त्राणि निष्कृष्य निरीक्ष्य बद्धगुदस्यान्त्रप्रतिरोधकरमश्मानं बालं वाऽपोह्य मलजातं वा ततो मधुसर्पिर्भ्यामभ्यज्यान्त्राणि यथास्थानं स्थापयित्वा बाह्यं व्रणमुदरस्य सीव्येत। परिस्रावि[1]ण्यप्येवमेव शल्यमुद्धृत्यान्त्रस्रावान् संशोध्य, तच्छिद्रमन्त्रं समाधाय कालपिपीलिकाभिर्दंशयेत, दष्टे च तासां कायानपहरेन्न शिरांसि, ततः पूर्ववत्[2] सीव्येत, सन्धानं च यथोक्तं कारयेत, यष्टीमधुकमिश्रया च कृष्णमृदाऽवलिप्य बन्धेनोपचरेत्। ततो निवातमागारं प्रवेश्याचारिकमुपदिशेद्वासयेच्चैनं तैलद्रोण्यां वा पयोवृत्तिमिति[3]॥ १७॥

उदकोदरिणस्तु[3] वातहरतैलाभ्यक्तस्योष्णोदकस्विन्नस्य स्थितस्याप्तैः सुपरिगृहीतस्याकक्षात्[4] परिवेष्टितस्याधोनाभेर्वामतश्चतुरङ्गुलमपहाय रोमराज्या व्रीहिमुखेनाङ्गुष्ठोदरप्रमाणमवगाढं विध्येत्, तत्र त्रप्वादीनामन्यतमस्य नाडीं द्विद्वारां पक्वनाडीं वा संयोज्य दोषोदकमवसिञ्चेत, ततो नाडीमपहृत्य तैललवणेनाभ्यज्य व्रणं बन्धेनोपचरेत्, न चैकस्मिन्नेव दिवसे सर्वं दोषोदकमपहरेत्, सहसा ह्यपहृते तृष्णाज्वराङ्गमर्दातीसारश्वासपाददाहा उत्पद्येरन्नापूर्यते वा भृशतरमुदरमसञ्जातप्राणस्य, तस्मात् तृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठाष्टमदशमद्वादशषोडशरात्राणामन्यतममन्तरीकृत्य दोषोदकमल्पाल्पमवसिञ्चेत। निःस्रुते च दोषे गाढतरमाविकौशेयचर्मणा[5]मन्यतमेन परिवेष्टयेदुदरं, तथा नाध्मापयति वायुः षण्मा[6]-

---

१ पूर्ववत् सीव्येद् बाह्यं व्रणमिति शेषः। यथोक्तम्=औपहरणीयोक्तं सद्योव्रणोक्तं च विधानं कारयेदित्यर्थः। २ पयोवृत्तिं=दुग्धाहारम्। ३ उदकोदरिणश्चिकित्सां वक्ति—उदकोदरिण इति। वातपित्तोपद्रवशान्त्यर्थं वातहरतैलाभ्यक्तस्येत्यर्थः। ४ आकक्षात्=कक्षपर्यन्तम्।

५ वाग्भटेन तु वाससैव परिवेष्टनमुक्तम्—"अथास्य नाडीमाकृष्य तैलेन लवणेन च। व्रणमभ्यज्य बध्वा च वेष्टयेद् वाससोदरम्॥' इति। ६ वाग्भटेन तु—"स्यात् क्षीरवृत्तिः षण्मासांस्त्रीन् पेयां पयसा पिबेत्। त्रींश्चान्यान् पयसैवाद्यात् फलाम्लेन रसेन वा॥ अल्पशः स्नेहलवणं जीर्णं श्यामाकोद्रवम्। प्रयतो वत्सरेणैवं विजयेत्त-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांश्च पयसा भोजयेज्जाङ्गलरसेन वा, ततः त्रीन्मासानर्द्धोदकेन पयसा फलाम्लेन जाङ्गलरसेन वा, अवशिष्टं मासत्रयमन्नं लघु हितं वा सेवेत । एवं संवत्सरेणागदो भवति ॥ १८ ॥

भवति चात्र ।

आस्थापने[1] चैव विरेचने च पाने तथाऽऽहारविधिक्रियासु ।
सर्वोदरिभ्यः कुशलैः प्रयोज्यं क्षीरं [2]श्रृतं जाङ्गलजो रसो वा ॥१९॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने उदरचिकित्सितं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

## पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथ[3]तो मूढगर्भचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

नार्त[4]ः कष्टतममस्ति यथा मूढगर्भशल्योद्धरणम् । अत्र हि योनि-यकृत्प्लीहान्त्रविवरगर्भाशय[5]यानां मध्ये कर्म कर्त्तव्यं स्पर्शेन, उत्क[6]-

---

जलोदरम् ॥" इति क्षीरेणैवोक्तम् । १ कृतकर्मणः सर्वोदरिणः क्षीरजाङ्गलमांसरसप्रयोगं ब्रवीति—आस्थापन इति । २ श्रृतम्=उष्णीकृतं क्षीरमित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताव्याख्यायां चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्दशोऽध्यायः ।

---

### पञ्चदशोऽध्यायः ।

३ क्रमागतत्वादुदरचिकित्सानन्तरं मूढगर्भचिकित्सितमारभ्यते—अथेति । मूढः स्वाभाविकप्रसूतिविधिविपरीतेन निरुद्धगतिः स चासौ गर्भस्तस्य चिकित्सितम् । स्वाभाविकप्रसूतिविधिश्चरके वर्णितः—"गर्भस्तु खलु मातुः पृष्ठाभिमुख ऊर्ध्वशिराः सङ्कुच्याङ्गान्यास्तेऽन्तःकुक्षौ । .....स चोपस्थितकाले जन्मनि प्रसूतिमारुतयोगात् परिवृत्यावाक्शिरा निष्क्रामत्यपत्यपथेन, एषा प्रकृतिः, विकृतिः पुनरतोऽन्यथा" इति ।

४ मूढगर्भस्य कष्टतमत्वं प्रतिपादयति—नार्त इति । ५ गर्भाशयः=गर्भशय्यानाम योनेस्तृतीय आवर्तः । तदुक्तं शारीरे स्वयमेव—"तस्यास्तृतीये आवर्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता" इति । ६ उत्कर्षणम्=अधोगतगर्भस्थबालकस्योर्ध्वीकरणम्, अपकर्षणम्=ऊर्ध्वगतस्याधःकर्षणम्, स्थानापवर्तनं=गर्भशय्यात उत्तानस्यावा-



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्षणापकर्षणस्थानापवर्त्तनोत्कर्त्तनभेदनच्छेदनपीडनर्जूकरणदारणानि चैकहस्तेन गर्भं गर्भिणीं चाहिंसंता[1], तस्मादधिपतिमापृच्छ्य च परं च यत्नमास्थायोपक्रमेत ॥ ३ ॥

तत्र समासेनाष्टविधा मूढगर्भगतिरुद्दिष्टा[2]। स्वभावगता अपि त्रयः[3] सङ्गा भवन्ति—शिरसो वैगुण्यादंसयोर्जघनस्य वा ॥ ४ ॥

जीवति तु गर्भे सूतिकागर्भनिर्हरणे प्रयतेत। निर्हर्त्तुमशक्ये च्यावनान् मन्त्रानुपशृणुयात्। तान् वक्ष्यामः—॥ ५ ॥

'इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि!।
उच्चैःश्रवाश्च[4] तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥ ६ ॥
इदममृतमपां समुद्धृतं वै तव लघु गर्भमिमं प्रमुञ्चतु स्त्रि।
तदनलपवनार्कवासवास्ते सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥ ७ ॥
मुक्ताः पशोर्विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः।
मुक्तः सर्वभयाद् गर्भ एह्येहि विरमावितः ॥ ८ ॥'

औषधानि च विदध्याद् यथोक्तानि[5]। मृते चोत्तानाया आभु-

---

ङ्मुखीकरणम्, उत्कर्तनम्=ऊर्ध्वस्य कस्यचिदङ्गस्य छेदनम्, भेदनं=गर्भकुक्ष्यादेराध्मातस्य विदारणम्, छेदनं=तत्तत्स्थानासक्तस्य तस्याङ्गस्य द्वैधीकरणम्, पीडनं=वलनम्, ऋजूकरणं=वक्रस्य प्राञ्जलीकरणम्, दारणं=विदारणम्।

१ अहिंसता=वधयोग्यव्यापारमकुर्वता। २ उद्दिष्टा=निदानस्थानस्याष्टमाध्याये "कश्चिद् द्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनिमुखं प्रतिपद्यते" इत्यादिना कथितेत्यर्थः। असंख्येयमूढगर्भगतिषु कश्चिद् द्वाभ्यामित्याद्यष्टविधा गतयः प्रायः व्यवहारोपयोगिन्य इत्युन्नेयम्। ३ अष्टाङ्गसङ्ग्रहे तु—"समासतस्तु त्रिविधा गतिः—ऊर्ध्वा तिर्यङ्न्युब्जा च" इति। एतदष्टाङ्गसङ्ग्रहोक्तं वर्गीकरणमाधुनिकपाश्चात्यवर्गीकरणं च समानं प्रतिभातीति बोद्धव्यम्। ४ उच्चैःश्रवाः=समुद्रमन्थनोत्पन्नः शक्रस्य श्वेतवोटकः।

५ यथोक्तानि=शारीरस्थानस्य दशमाध्याये "गर्भसङ्गे तु योनिं धूपयेत् कृष्णसर्पनिर्मोकेण पिण्डीतकेन वा" इत्यादिनोदितानीत्यर्थः। मृते चेति चकारेण मन्त्रतन्त्रप्रसूतिजननव्यापारेष्वफलीभूतेषु जीवितेऽपीत्यनुक्तसमुच्चयः। आभुग्नसक्थ्याः=ऊर्ध्वजानुकत्वेन सङ्कुचीकृतसक्थ्याः, वस्त्राधारकोन्नमितकट्याः=वस्त्राधारकोपरिशयानाया इत्यर्थः। वस्त्राधारको वस्त्रनिर्मितोऽन्तःशुषिरो वस्त्रवलयस्तेनोन्नमिता कटिर्यस्याः सा तस्या इति समासः। धन्वननगवृत्तिकाशालवलीमृत्स्नघृताभ्यां, धन्वनो धनुर्वृक्षः,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रसक्थ्या वस्त्राधारकोन्नमितकट्या धन्वननगवृत्तिकाशाल्मलीमृत्स्नघृताभ्यां म्रक्षयित्वा हस्तं योनौ प्रवेश्य गर्भमुपहरेत्। तत्र सक्थिभ्यामागतमनुलोममेवाञ्छेत्। एकसक्थ्नाप्रपन्नस्येतरसक्थि प्रसार्योपहरेत्। स्फिग्देशेनागतस्य स्फिग्देशं प्रपीड्योर्ध्वमुत्क्षिप्य सक्थिनी प्रसार्योपहरेत्। तिर्यगागतस्य परिघस्येव तिरश्चीनस्य पश्चादर्द्धमूर्ध्वमुत्क्षिप्य पूर्वार्द्धमपत्यपथं प्रत्यार्जवमानीयोपहरेत्। पार्श्वोपवृत्तशिरसमंसम्प्रपीड्योर्ध्वमुत्क्षिप्य शिरोऽपत्यपथमानीयोपहरेत्। बाहुद्वयप्रतिपन्नस्योर्ध्वमुत्पीड्यांसौ शिरोऽनुलोममानीया-

---

'धन्वनः धामनि इति भाषाप्रसिद्धे धनुवृक्षे' इति शब्दार्थचिन्तामणिः। नगवृत्तिका शल्लकी, शाल्मली प्रसिद्धा, यद्यपि मृत्स्नशब्दः प्रशस्तायां मृदि वर्तते, तथाऽप्यत्र धनुर्वृक्षशल्लकीशाल्मलीनां पिच्छिलेष्वेव मृत्स्नशब्दो बोद्धव्य इति डल्हणः। श्रीहाराणचन्द्रस्तु—'धन्वनगवृत्तिकशाल्मलीमृत्स्नघृताभ्याम्' इति पाठं मनुते, व्याख्याति च—शाल्मलीषु मध्ये मरुदेशीयपर्वतस्था हि नितरां पिच्छिलनिर्यासा भवन्ति तदिदमुच्यते—धन्वेति। धन्वा मरुदेशः, मृत्स्नमत्र पिच्छिलो भागः, 'विविक्तं मृत्स्नं च' इत्योजोलक्षणं च। तन्त्रान्तरेऽप्युक्तम्—'हस्तमभ्यज्य योनिं च साज्यशाल्मलिपिच्छया' इति सुश्रुतार्थसन्दीपने।

१ निदानस्थानोक्तेष्वष्टविधेषु मूढगर्भेषु मध्ये "कश्चिद् द्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनिमुखं प्रतिपद्यते" इति प्रथमस्य विधिं प्रतिपादयति—**तत्रेति**। आञ्छेत्=आकर्षेदित्यर्थः। २ "कश्चिदाभुग्नैकसक्थिरेकेन" इति द्वितीयस्य विधिमुपपादयति—**एकेति**। द्वितीयसक्थि सङ्कुचीकृत्य एकसक्थ्नाऽऽगतस्य प्रगुणीभूतसक्थिद्वयप्रसारणं कृत्वाऽऽकर्षेदित्यर्थः। सक्थि=जङ्घा।

३ "कश्चिदाभुग्नसक्थिशरीरः स्फिग्देशेन तिर्यगागतः" इति तृतीयस्य विधिमभिधत्ते—**स्फिगिति**। ४ "कश्चिद्दुरःपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते" इति चतुर्थस्य विधिमभिदधाति—**तिर्यगिति**। ५ तिरश्चीनस्य=तिर्यग्भूतस्य। ६ आर्जवम्=ऋजुभावम्।

७ "अन्तःपार्श्वोपवृत्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना" इति पञ्चमस्य विधिं वक्ति—**पार्श्वेति**। पार्श्वोपवृत्तशिरसं=पार्श्वाभिमुखशिरसम्। ८ अपत्यपथं=योनिम्। ९ "कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन" इति षष्ठस्य विधिं ब्रवीति—**बाहुद्वयेति**। बाहुद्वयप्रतिपन्नस्य=बाहुद्वयमात्रेण निर्गतस्येत्यर्थः। आद्यं मूढगर्भत्रितयं पादाभ्यामाहरणीयं, तदितरन्मूढगर्भत्रयं शिरसेति निष्कर्षः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहरेत्। द्वावन्त्यावसाध्यौ[1] मूढगर्भौ। एवमशक्ये शस्त्रमवचारयेत्॥९॥

सचेतनं च शस्त्रेण न कथञ्चन दारयेत्।
दार्यमाणो[2] हि जननीमात्मानं चैव घातयेत्॥ १०॥
अविषह्ये[3] विकारे तु श्रेयो गर्भस्य पातनम्।
न गर्भिण्या विपर्यासः प्राप्तकालं न हापयेत्[4]॥ ११॥

ततः[5] स्त्रियमाश्वास्य मण्डलाग्रेणावङ्कुलीशस्त्रेण वा शिरो विदार्य, शिरःकपालान्याहृत्य शङ्कुना[6] गृहीत्वोरसि कक्षायां वाऽपहरेत्। अभिन्ने शिरसि चाक्षिकूटे[7] गण्डे वा, अंससंसक्तस्यांसदेशे बाहुं छित्त्वा, दृतिमिवाततं[8] वातपूर्णोदरं वा विदार्य निरस्यान्त्राणि शिथिलीभूतमाहरेत्। जघनसक्तस्य वा जघनकपालानीति॥ १२॥

यद्यदङ्गं हि गर्भस्य तस्य सज्जति[9] तद्भिषक्।
सम्यग् विनिर्हरेच्छित्त्वा रक्षेन्नारीं च यत्नतः॥ १३॥
गर्भस्य गतयश्चित्रा जायन्तेऽनिलकोपतः।
तत्रानल्पमतिर्वैद्यो वर्त्तेत विधिपूर्वकम्॥ १४॥
नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्त्तमपि पण्डितः।
स[10] ह्याशु जननीं हन्ति निरुच्छ्वासं पशुं यथा॥ १५॥

---

१ "कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिराभिः" इति सप्तमस्य, "कश्चिदेकेन सक्थ्ना योनिमुखं प्रतिपद्यतेऽपरेण पायुम्" इत्यष्टमस्य च असाध्यत्वं प्रतिपादयति—द्वाविति। २ दार्यमाणः=छेद्यमानः. जननी=शस्त्रजनितदुःखासहिष्णुत्वेन हस्तपादादेर्विषमविक्षेपाद् मातरं घातयेदित्यर्थः।

३ शस्त्रमन्त्राद्युपायासिद्धौ गर्भिणीरक्षार्थं गर्भपातनस्य श्रेयोऽभिदधाति—अविषह्य इति। ४ न हापयेत्=नोल्लङ्घयेत्। यतोऽनन्तरमेव वक्ष्यति—"नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पण्डितः। स ह्याशु जननीं हन्ति निरुच्छ्वासं पशुं यथा॥" इति। ५ मूढगर्भाहरणार्थं शस्त्रावचारणं निर्दिशति—तत इति। मण्डलाग्रलक्षणमुक्तं भोजेन—"द्वे मण्डलाग्रे ये प्रोक्ते एकं वृत्तमुखं तयोः। तीक्ष्णधारं दृढं कार्यमेकं तच्च क्षुराकृति॥" इति। ६ शङ्कुना=आकुञ्चिताकारवडिशविशेषेण।

७ अक्षिकूटे=चक्षुर्गोलके। शङ्कुनाऽपहरणम्। ८ 'दृतिश्चर्मपुटे मत्स्ये' इति मेदिनी। ९ सजति=कर्तेतीति तात्पर्यम्। 'षञ्ज सङ्गे' इति धातुः। १० सः=गर्भः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मण्डलाग्रेण कर्त्तव्यं छेद्यमन्तर्विजानता ।
वृद्धिपत्रं[1] हि तीक्ष्णाग्रं नारीं हिंस्यात् कदाचन ॥ १६ ॥
अथापतन्तीमपरां[2] पातयेत् पूर्ववद्भिषक् ।
हस्तेनापहरेद्वाऽपि पार्श्वाभ्यां परिपीड्य वा ॥ १७ ॥
धुनुयाच्च मुहुर्नारीं पीडयेद्वांऽसपिण्डिकाम्[3] ।
तैलाक्तयोनेरेवं तां पातयेत् मतिमान् भिषक् ॥ १८ ॥
एवं निर्हृतशल्यां तु सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ।
ततोऽभ्यक्तशरीराया योनौ स्नेहं[4] निधापयेत् ॥ १९ ॥
एवं मृद्वी भवेद्योनिस्तच्छूलं चोपशाम्यति ।
कृष्णा[5]तन्मूलशुण्ठचेलाहिङ्गुभार्गीः सदीप्यकाः ॥ २० ॥
वचामतिविषां रास्नां चव्यं सञ्चूर्ण्य पाययेत् ।
स्नेहेन दोषस्यन्दार्थं वेदनोपशमाय च ॥ २१ ॥
क्वाथं चैषां तथा कल्कं चूर्णं वा स्नेहवर्जितम् ।
शाकत्वग्घिङ्ग्वतिविषापाठाकटुकरोहिणीः ॥ २२ ॥
तथा तेजोवतीं[6] चापि पाययेत् पूर्ववद्भिषक् ।
त्रिरात्रं पञ्चसप्ताहं ततः स्नेहं पुनः पिबेत् ॥ २३ ॥
पाययेद्वाऽऽसवं नक्तमरिष्टं वा सुसंस्कृतम् ।
शिरीषककुभाभ्यां च तोयमाचमने[7] हितम् ॥ २४ ॥
उपद्रवाश्च[8] येऽन्ये स्युस्तान् यथास्वमुपाचरेत् ।

---

१ "वृद्धिपत्रं क्षुराकार छेदभेदनपाटने । ऋज्वग्रमुन्नते शोथे गम्भीरे च तदन्यथा। नताग्रं पृष्ठतः" इति वाग्भटोक्तं लक्षणं वृद्धिपत्रस्य । २ अपरां=गर्भाशयकजरायुमित्यर्थः । पूर्ववत्=शारीरस्थानीयगर्भिणीव्याकरणोक्तविधिनेत्यर्थः ।

३ श्रीहाराणचन्द्रस्तु—'पीडयेद्वा सपिण्डिकाम्' इति पाठं पठित्वा व्याख्याति—'पीडयेन्मर्दयेत्, सपिण्डिकामपरासन्निहितमांसपिण्डिकासहितामपरामित्यर्थः' इति ।

४ स्नेहं=योनिसन्तर्पणे प्राधान्याद् वक्ष्यमाणं बलातैलमित्यर्थः ।

५ प्रसवकाले जातमूढगर्भायाः कृतकर्मणाऽपहृतायाः पार्श्वयोनिशूलकाठिन्यशान्त्यर्थं रक्तक्लेदादिदोषप्रसेकार्थं च तैलाक्तयोनेस्तैलेन कृष्णादिपानं निर्दिशति—कृष्णेति । कृष्णा=पिप्पली, तन्मूलं=पिप्पलीमूलम्, दीप्यकः=अजमोदा ।

६ तेजोवती=चव्यम् । ७ आचमने=प्रक्षालने । ८ उपद्रवाः=वातरोगज्वराद्याः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वतः परिशुद्धा च स्निग्धपथ्याल्पभोजना ॥ २५ ॥
स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेत् क्रोधविवर्जिता ।
पयो वातहरैः[1] सिद्धं दशाहं भोजने हितम् ॥ २६ ॥
रसं दशाहं शेषे तु यथायोगमुपाचरेत् ।
व्युपद्रवां विशुद्धां च ज्ञात्वा च बलवर्णिनीम् ॥ २७ ॥
ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यो विसृजेत् परिहारतः ।
योनिसन्तर्पणेऽभ्यङ्गे पाने बस्तिषु भोजने[2] ॥ २८ ॥
बलातैलमिदं चास्यै दद्यादनिलवारणम् ।
बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च ॥ २९ ॥
यवकोलकुलत्थानां क्वाथस्य पयसस्तथा ।
अष्टावष्टौ शुभा भागास्तैलादेकस्तदेकतः ॥ ३० ॥
पचेदावाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ।
तथाऽगुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च ॥ ३१ ॥
मञ्जिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलां कालानुसारिवाम्[3] ।
मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचाम् ॥ ३२ ॥
शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ।
तत् साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृन्मयेऽपि वा ॥ ३३ ॥
प्रक्षिप्य कलशे सम्यक् स्वनुगुप्तं निधापयेत् ।
बलातैलमिदं ख्यातं सर्ववातविकारनुत् ॥ ३४ ॥
यथाबलमतो मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ।
या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ॥ ३५ ॥
वातक्षीणे मर्महते मथितेऽभिहते तथा ।
भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयुज्यते ॥ ३६ ॥

---

१ वातहरैः = शतपुष्पादिभिः । २ सूतिकारोगे बलातैलं प्रतिपादयति—**योनिसन्तर्पण इति** । बलामूलक्वाथस्य यवकोलकुलत्थक्वाथस्य पयसश्च प्रत्येकमष्टावष्टौ भागाः, तैलस्यैको भागः सर्वमेकीकृत्य काकोल्यादिमधुरगणं सैन्धवादिकं च भेषजकल्कं स्नेहचतुर्थांशं प्रक्षिप्य अग्नौ पचेदिति ३ कालानुसारिवा=तगरम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतदाक्षेपकादीन् वै वातव्याधीनपोहति ।
हिक्कां कासमधीमन्थं[1] गुल्मं श्वासं च दुस्तरम् ॥ ३७ ॥
षण्मासानुपयुञ्जैतदन्त्रवृद्धिमपोहति ।
प्रत्यग्रधातुः[2] पुरुषो भवेच्च स्थिरयौवनः ॥ ३८ ॥
राज्ञामेतद्धि कर्त्तव्यं राजमात्राश्च ये नराः ।
सुखिनः सुकुमाराश्च धनिनश्चापि ये नराः ॥ ३९ ॥
बलाकषायपीतेभ्यस्तिलेभ्यो वाऽप्यनेकशः[3] ।
तैलमुत्पाद्य तत्काथशतपाककृतं शुभम् ॥ ४० ॥
निवाते निभृतागारे प्रयुञ्जीत[4] यथाबलम् ।
जीर्णेऽस्मिन् पयसा स्निग्धमश्नीयात् षष्टिकौदनम् ॥४१॥
अनेन विधिना द्रोणमुपयुज्यान्नमीरितम् ।
भुञ्जीत द्विगुणं कालं बलवर्णान्वितस्ततः ॥ ४२ ॥
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः शतायुः पुरुषो भवेत् ।
शतं शतं तथोत्कर्षो द्रोणे[5] द्रोणे प्रकीर्त्तितः ॥ ४३ ॥
बलाकल्पेनातिबलागुडूच्यादित्यपर्णिषु[6] ।
सैरेयके[7] वीरतरौ शतावर्य्यां त्रिकण्टके ॥ ४४ ॥
तैलानि मधुके [8]कुर्य्यात् प्रसारण्यां च बुद्धिमान् ।
नीलोत्पलं[9] वरीमूलं गव्ये क्षीरे विपाचयेत् ॥ ४५ ॥
शतपाकं ततस्तेन तिलतैलं पचेद्भिषक् ।
बलातैलस्य कल्कांस्तु सुपिष्टांस्तत्र दापयेत् ॥ ४६ ॥

---

१ अधीमन्थः=अभिष्यन्दपूर्वकोऽक्षिरोगः । २ प्रत्यग्रधातुः=संशुद्धधातुरित्यर्थः ।
३ शतपाकं बलातैलं निर्दिशति—बलेति । बलाकषायपीतेभ्यः=बलाक्वाथभावितेभ्यः । अनेकशः=सप्तवारानित्यर्थः । ४ प्रयुञ्जीत=पाययेत । ५ द्रोणे द्रोणे प्रतिद्रोणं तैले प्रयुक्ते शतं शतमुत्कर्षः आयुषो वृद्धिरित्यर्थः । ६ द्रव्यान्तरेषु बलातैलविधानमतिदिशति—बलाकल्पेनेति । ७ सैरेयक=झिण्टी, वीरतरुः=अर्जुनः, 'नदीसर्जो वीरतरुरिन्द्रद्रुः ककुभोऽर्जुनः' इत्यमरः । ८ अतिबलादितैलेषु तैलोक्तभेषजकल्कं प्रक्षिप्य कुर्यादित्यर्थः ।
९ नीलोत्पलादितैलं प्रतिपादयति—नीलोत्पलमिति । वरीमूलं=शतावरीमू-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वेषामेव जानीयादुपयोगं चिकित्सकः ।
बलातैलवदेतेषां गुणांश्चैव विशेषतः ॥ ४७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने मूढगर्भचिकित्सितं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

---

## षोडशोऽध्यायः ।

अथातो[1] विद्रधीनां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
उक्ता[2] विद्रधयः षडत्रे तेष्वसाध्यस्तु सर्वजः ।
शेषेष्वामेषु[3] कर्त्तव्या त्वरितं शोफवत् क्रिया[4] ॥ ३ ॥
वातघ्नमूलकल्कैस्तु घृततैलवसायुतैः ।
सुखोष्णो[6] बहलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ ४ ॥
सानूपौदकमांसस्तु काकोल्यादिः सतर्पणः ।
स्नेहाम्लसिद्धो लवणः प्रयोज्यश्चोपनाहने ॥ ५ ॥
वेशवारैः[7] सकृशरैः पयोभिः पायसैस्तथा ।
स्वेदयेत् सततं चापि निर्हरेच्चापि शोणितम् ॥ ६ ॥
स चेदेवमुपक्रान्तः पाकायाभिमुखो यदि ।
तं पाचयित्वा शस्त्रेण भिन्द्याद्भिन्नं च शोधयेत् ॥ ७ ॥

---

लम । नामैकदेशे नामग्रहणमिति वरीशब्देन शतावरी बोधः ।
इति सुश्रुतसंहिताव्याख्यिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चदशोऽध्यायः ।

---

### षोडशोऽध्यायः ।

१ निदानस्थानप्रक्रमोपस्थितं विद्रधिचिकित्सितमधिकरोति—**अथेति** । २ उक्ताः= निदानस्थानस्य नवमाध्याये कथिताः सर्वजः सन्निपातजन्यः । ३ आमेषु विद्रधिषु व्रणशोथवच्चिकित्सार्थमुपदिशति—**शेषेष्विति** । ४ क्रिया=द्विव्रणीयोक्तापतर्पणादिविरेचनान्ता । ५ वातविद्रधिचिकित्सामाचष्टे—**वातघ्नेति** । ६ सुखोष्णः=ईषदुष्णः ।
७ वेशवारो नाम—"मांसं निरस्थि सुस्विन्नं पुनर्दृषदि पेषितम् । पिप्पलीशुण्ठिमरिचगुडसर्पिःसमन्वितम् । ऐकध्यं विपचेत् सम्यग् वेशवार इति स्मृतः ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमूलकषायेण प्रक्षाल्य लवणोत्तरैः ।
तैलैर्भद्रादिमधुकसंयुक्तैः प्रतिपूरयेत् ॥ ८ ॥
वैरेचनिकैर्युक्तेन त्रैवृतेन विशोध्य च ।
पृथक्पर्ण्यादिसिद्धेन त्रैवृतेन च रोपयेत् ॥ ९ ॥
पैत्तिकं शर्करालाजामधुकैः सारिवायुतैः ।
प्रदिह्यात् क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः ॥ १० ॥
पाक्यैः शीतकषायैर्वा क्षीरैरिक्षुरसैस्तथा ।
जीवनीयघृतैर्वाऽपि सेचयेच्छर्करायुतैः ॥ ११ ॥
त्रिवृद्धरीतकीनां च चूर्णं लिह्यान्मधुद्रवम् ।
जलौकोभिर्हरेच्चासृक् पक्वं चापाक्य बुद्धिमान् ॥ १२ ॥
क्षीरवृक्षकषायेण प्रक्षाल्यौदकजेन वा ।
तिलैः सयष्टिमधुकैः सक्षौद्रैः सर्पिषा युतैः ॥ १३ ॥
उपदिह्य प्रतनुना वाससा वेष्टयेद् व्रणम् ।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ॥ १४ ॥
सहरिद्रैः कृतं सर्पिः सक्षीरं व्रणरोपणम् ।
क्षीरशुक्लापृथक्पर्णीसमङ्गारोध्रचन्दनैः ॥ १५ ॥
न्यग्रोधादिप्रवालेषु तेषां त्वक्क्वथवा कृतम् ।

---

१ भद्रादिः=भद्रदार्वादिः । २ वैरेचनिकानि=त्रिवृदादीनि, चूर्णीकृतैस्तैर्युक्तेनेत्यर्थः । त्रैवृतेन, त्रिभिर्घृतवसामज्जभिर्घृतं व्याप्तं त्रैवृतं तेन । ३ पृथक्पर्ण्यादीनि मिश्रकाध्यायोक्तानि, तैः सिद्धेनेत्यर्थः ।

४ पित्तविद्रधिचिकित्सां ब्रवीति--पैत्तिकमिति । ५ पयस्या=क्षीरकाकोली । ६ पाक्यैः=सद्यःपाकेन निवृत्तैरित्यर्थः । ७ जीवनीयानि द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तानि काकोल्यादीनि, तैः सिद्धानि गव्यादिघृतानि तैर्जीवनीयघृतैः ।

८ दाहवेदनाशान्तये विरेचनं निर्दिशति-त्रिवृदिति । ९ पक्वे विद्रधौ चिकित्सामाह--जलौकोभिरिति । १० क्षीरवृक्षाणां न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षशिरीषपादपानां कषायः क्षीरवृक्षकषायस्तेन, औदकजेन=कमलकुमुदकल्हारजन्यक्काथेनेत्यर्थः । ११ समङ्गा=मञ्जिष्ठा । १२ प्रवालेषु=पल्लवेषु । कृतं=पाचितं, घृतमिति शेषः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्तमालस्य[1] पत्राणि तरुणानि फलानि च ॥ १६ ॥
सुमनायाश्च[2] पत्राणि पटोलारिष्टयोस्तथा ।
द्वे हरिद्रे मधुच्छिष्टं मधुकं तिक्तरोहिणी ॥ १७ ॥
प्रियङ्गुः कुशमूलं च निचुलस्य[3] त्वगेव च ।
मञ्जिष्ठाचन्दनोशीरमुत्पलं सारिवा त्रिवृत् ॥ १८ ॥
एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
दुष्टव्रणप्रशमनं नाडीव्रणविशोधनम् ॥ १९ ॥
सद्यश्छिन्नव्रणानां च करञ्जाद्यमिदं शुभम् ।
दुष्टव्रणाश्च ये केचिद् ये चोत्सृष्टक्रिया[4] व्रणाः ॥ २० ॥
नाड्यो गम्भीरिका याश्च सद्यश्छिन्नास्तथैव च ।
अग्निक्षारकृताश्चैव ये व्रणा दारुणा[5] अपि ॥ २१ ॥
करञ्जाद्येन हविषा[6] प्रशाम्यन्ति न संशयः ।
इष्टकासिकतालोष्टगोशकृत्तुषपांशुभिः[7] ॥ २२ ॥
मूत्रैरुष्णैश्च सततं स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ।
कषायपानैर्वमनैरालेपैरुपनाहनैः ॥ २३ ॥
हरेद् दोषानभीक्ष्णं चाप्यलाब्वाऽसृक्[8] तथैव च ।
आरग्वधकषायेण पक्वं[9] चापाट्य धावयेत् ॥ २४ ॥
हरिद्रात्रिवृतासक्तुतिलैर्मधुसमायुतैः ।
पूरयित्वा व्रणं सम्यग् बध्नीयात् कीर्त्तितं यथा ॥ २५ ॥
ततः कुलत्थिकादन्तीत्रिवृच्छ्यामार्कतिल्वकैः ।
कुर्य्यात् तैलं सगोमूत्रं हितं तत्र ससैन्धवम् ॥ २६ ॥
पित्तविद्रधिवत् सर्वाः क्रिया निरवशेषतः ।
विद्रध्योः कुशलः कुर्य्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ॥ २७ ॥

---

१ करञ्जादिघृतं वर्णयति—नक्तमालस्येति । नक्तमालः=करञ्जः । २ सुमना='चमेली'इति । ३ निचुलस्य=जलवेतसस्य । ४ अतिभयङ्करत्वेन उत्सृष्टा क्रिया चिकित्सा येषां ते उत्सृष्टक्रियाः । ५ दारुणाः=भयङ्कराः । ६ हविषा=घृतेन । ७ कफविद्रधिचिकित्सामभिधत्ते—इष्टकेति । ८ "सर्वाणि सर्वैर्वा"इति जलौकावचारणीयाध्यायोक्तत्वाज्जलौकोभी रुधिरमोक्षणं नानुपपन्नमित्युन्नेयम् । ९ पक्के

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]वरुणादिगणक्काथमपक्वेऽभ्यन्तरोत्थिते ।
ऊषक[2]कादिप्रतीवापं पिबेत् सुखकरं नरः ॥ २८ ॥
अनयोर्वर्गयोः सिद्धं सर्पिर्वैरेचनेन[3] च ।
अचिराद्विद्रधिं हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितम् ॥ २९ ॥
एभिरेव गणैश्चापि संसिद्धं स्नेहसंयुतम् ।
कार्य्यमास्थापनं क्षिप्रं तथैवाप्यनुवासनम् ॥ ३० ॥
पानालेपनभोज्येषु मधुशिग्रुद्रुमोऽपि वा ।
दत्तावापो यथादोषमपक्वं हन्ति विद्रधिम् ॥ ३१ ॥
तोयधान्याम्लमूत्रैस्तु पेयो वाऽपि सुरादिभिः ।
यथादोषगणक्काथैः[4] पिबेद्वाऽपि शिलाजतु ॥ ३२ ॥
प्रधानं गुग्गुलं चापि शुण्ठीं च सुरदारु च ।
स्नेहोपनाहौ कुर्य्याच्च सदा चाप्यनुलोमनम् ॥ ३३ ॥
यथोद्दिष्टां सिरां विध्येत् कफजे विद्रधौ भिषक् ।[5]
रक्तपित्तानिलोत्थेषु केचिद् बाहौ[6] वदन्ति तु ॥ ३४ ॥
पक्वं वा बहिरुन्नद्धं भित्त्वा व्रणवदाचरेत् ।
[7]स्रुतेपूर्ध्वमधो वाऽपि मैरेयाम्लसुरासवैः ॥ ३५ ॥
पेयो वरुणकादिस्तु मधुशिग्रुद्रुमोऽपि वा ।
शिग्रुमूलजले सिद्धं ससिद्धार्थकमोदनम् ॥ ३६ ॥
यवकोलकुलत्थानां यूषैर्भुञ्जीत मानवः ।

---

कफविद्रधौ क्रियां निर्दिशति—आरग्वधेति । १ वरुणादिर्द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः । २ ऊषकादिरपि तत्रैव द्रष्टव्यः । ३ वैरेचनेन=संशोधनसंशमनीयाध्यायोक्तेन "त्रिवृताश्यामादन्तीद्रवन्तीसप्तलाशङ्खिनी" इत्यादिनोक्तेन विरेचनद्रव्येण कल्कीकृतेनेत्यर्थः । ४ यथादोषं गणोक्तवातादिहरद्रव्यक्काथैरित्यर्थः ।

५ विद्रधौ सिराव्यधं प्रतिपादयति—यथोद्दिष्टामिति । यथोद्दिष्टां="वामपश्चैव कक्षास्तनयोरन्तरेऽन्तर्विद्रधौ" इति शारीरस्थानोक्तामित्यर्थः । ६ बाहौ=बाहुमध्ये कूर्परे । ७ स्वयमन्तर्भिन्नत्वेन स्रुतेष्वित्यर्थः । मैरेयलक्षणं यथा—"आसवस्य सुरायाश्च द्वयोरेकत्र भाजने । सन्धानं तद्विजानीयान्मैरेयमुभयाश्रयम् ॥" इति । ८ सिद्धार्थकः श्वेतसर्षपस्तेन सहितं ससिद्धार्थकम् ओदनम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रातः प्रातश्च सेवेत मात्रया [1]तैल्वकं घृतम् ॥ ३७ ॥
त्रिवृतादिगणक्वाथसिद्धं [2]वाऽप्युपशान्तये ।
नोपग[3]च्छेद् यथापाकं प्रयतेत तथा भिषक् ॥ ३८ ॥
पर्य्याग[4]ते विद्रधौ तु सिद्धिर्नैकान्तिकी स्मृता ।
प्रत्या[5]ख्याय तु कुर्वीत मज्जजातं तु विद्रधिम् ॥ ३९ ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नानां कुर्याद्रक्तावसेचनम् ।
विद्रध्युक्तां क्रियां कुर्य्यात् पक्वे वाऽस्थि तु भेदयेत् ॥४०॥
निःशल्यमथ विज्ञाय कर्त्तव्यं व्रणशोधनम् ।
धावेत् तिक्तकषायेण तिक्तं सर्पिस्तथा हितम् ॥ ४१ ॥
यदि मज्जपरिस्रावो न निवर्त्तेत देहिनः ।
कुर्य्यात् संशोधनीयानि कषायादीनि बुद्धिमान् ॥ ४२ ॥
प्रियङ्गुधातकीरोध्रकट्फलं [6]तिनिसैन्धवम् ।
एतैस्तैलं विपक्तव्यं विद्रधिव्रणरोपणम् ॥ ४३ ॥

इतिसुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने विद्रधिचिकित्सितंनाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

---

## सप्तदशोऽध्यायः ।

[7]अथातो विसर्पनाडीव्रतनरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
साध्या विसर्पास्त्रय आदितो ये न सन्निपातक्षतजौ हि साध्यौ ।

---

१ तैल्वक घृत=तिल्वकघृतम्, तच्च वातव्याधिचिकित्सिते द्रष्टव्यम् । २ अत्र सर्पिरित्यनुवर्तनीयम् ।

३ विद्रधिर्यथा पाकं न प्राप्नुयात्तथा यतितव्यमित्युपदिशति—**नोपगच्छेदिति** । ४ पर्यागते=परितः पाकं प्राप्ते इत्यर्थः । ५ मज्जजातविद्रधिचिकित्सां प्रतिपादयति—**प्रत्याख्यायेति** । प्रत्याख्यायः=असाध्योऽयं व्याधिरिति निराकृत्येत्यर्थः । ६ तिनिः=तिनिशः एतन्नाम्नाऽपि प्रसिद्धः । तिनिपदेन तिनिशस्य बोधः, 'नामैकदेशे नाममात्रं हणम्' इत्युक्तेः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षोडशोऽध्यायः ।**

---

## सप्तदशोऽध्यायः ।

७ क्रमागतत्वाद् विसर्पादीनां चिकित्सामधिकरोति—**अथात इति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साध्येषु तत्पथ्यगणैर्विदध्याद् घृतानि सेकांश्च तथोपदेहान् ॥ ३ ॥
मुस्तोशताह्वासुरदारुकुष्ठवाराहिकुस्तुम्बुरुकृष्णगन्धाः ।
वातात्मके चोष्णगणाः प्रयोज्याः सेकेषु लेपेषु तथा घृतेषु ॥ ४ ॥
यत् पञ्चमूलं खलु कण्टकाख्यमल्पं महच्चाप्यथ वल्लिजं च ।
तच्चोपयाज्यं भिषजा प्रदेहे सेके घृते चापि तथैव तैले ॥ ५ ॥
कसेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्द्राः सशैवलाः सोत्पलकदमाश्च ।
वस्त्रान्तराः पित्तकृते विसर्पे लेपा विधेयाः सघृताः सुशीताः ॥ ६ ॥
ह्रीवेरलामज्जकचन्दनानि स्रोतोजमुक्तामणिगैरिकाश्च ।
क्षीरेण पिष्टाः सघृताः सुशीता लेपाः प्रयोज्यास्तनवः सुखाय ॥७॥
प्रपौण्डरीकं मधुकं पयस्या मञ्जिष्ठिका पद्मकचन्दने च ।
सुगन्धिका चेति सुखाय लेपाः पैत्ते विसर्पे भिषजा प्रयोज्याः ॥८॥
न्यग्रोधवर्गैः परिषेचनं च घृतं च कुर्य्यात् स्वरसेन तस्य ।
शीतैः पयोभिश्च मधूदकैश्च सशर्करैरिक्षुरसैश्च सेकान् ॥ ९ ॥

---

१ तत्पथ्यगणैः=वातपित्तकफजन्येषु तत्तद्वातादिहरगणैरित्यर्थः । २ वातजन्यविसर्पचिकित्सामभिदधाति—मुस्तेति । ३ कुस्तुम्बुरु=धान्याकम्, 'धनिया'इति लोके कथितम् । कृष्णगन्धा=शोभाञ्जनः । उष्णगणाः=भद्रदार्वादयः पिप्पल्यादयश्च ।

४ घृतेष्विति पाठान्तरम् । ५ कण्टकाख्यं="करमर्दत्रिकण्टकसैरीयकशतावरीगृध्रनख्य"इति कण्टकसंज्ञकपञ्चमूलम्, अल्पं=लघुपञ्चमूलम्, तच्च "त्रिकण्टकबृहतीद्वयपृथक्पर्ण्यौ विदारिगन्धा च"इति । महत्=बृहत्पञ्चमूलम्, तच्च "बिल्वाग्निमन्थटिण्टुकपाटलाः काश्मर्य्यश्च 'इति । वल्लिजं="विदारीसारिवारजनीगुडूच्योऽजशृङ्गी च"इति वल्लीसंज्ञकमित्यर्थः ।

६ पित्तजनितविसर्पचिकित्सितमाचष्टे—कसेरविति । गुन्द्रा=भद्रमुस्तकः, 'स्याद्भद्रमुस्तको गुन्द्रा'इत्यमरः । धन्वन्तरिणा गुन्द्राभद्रमुस्तकयोरभेद उक्तः—"मुस्तमम्बुधरो मेघो घनो राजकशेरुकः । भद्रमुस्तो वराहोऽब्दो गाङ्गेयः कुरुबिन्दकः ॥" इति । ७ वस्त्रान्तराः=वसनेनान्तरीकृताः । ८ लामज्जकः=उशीरम्, स्रोतोजं=सौवीरमञ्जनम् । ९ यतो घनलेपेन त्वग्गतस्योष्मणो रोधाद् ऊष्मा दाहश्च सञ्जायते । तदुक्तं वाग्भटे—"श्लक्ष्णशुष्कघनो लेपश्चन्दनस्यापि दाहकृत् । त्वग्गतस्योष्मणो रोधाच्छीतकृच्चान्यथा गुरोः ॥" इति । १० पयस्या=क्षीरविदारी । ११ सुगन्धिका=उशीरम् । १२ मधूदकैः=मधुमिश्रजलैरित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घृतस्य गौरीमधुकारविन्दरोध्राम्बुराजादनगैरिकेषु ।
तथर्षभे पद्मकसारिवासु काकोलिमेदाकुमुदोत्पलेषु ॥ १० ॥
सचन्दनायां मधुशर्करायां द्राक्षास्थिरोपृश्निशताह्वयासु ।
कल्कीकृतासूदकमत्र दत्त्वा न्यग्रोधवर्गस्य तथा स्थिरादेः ॥ ११ ॥
गणस्य बिल्वादिकपञ्चमूल्याश्चतुर्गुणं क्षीरमथापि तद्वत् ।
प्रस्थं विपक्वं परिषेचनेन पैत्तीर्निहन्यात्तु विसर्पनाडीः ॥ १२ ॥
विस्फोटदुष्टव्रणशीर्षरोगान् पाकं तथाऽऽस्यस्य निहन्ति पानात् ।
ग्रहार्दिते शोषिणि चापि बाले घृतं हि गौर्यादिकमेतदिष्टम् ॥१३॥
अजाऽश्वगन्धा सरला सकाला सैकैषिका चाप्यथवाऽजशृङ्गी ।
गोमूत्रपिष्टो विहितः प्रदेहो हन्याद् विसर्पं कफजं स शीघ्रम् ॥१४॥
कालानुसार्यागुरुचोचगुञ्जारास्नावचाशीतशिवेन्द्रपर्ण्यः ।
पालिन्दिमुञ्जातमहीकदम्बा हिता विसर्पेषु कफात्मकेषु ॥ १५ ॥
गणस्तु योज्यो वरुणप्रवृत्तः क्रियासु सर्वासु विचक्षणेन ।
संशोधनं शोणितमोक्षणं च श्रेष्ठं विसर्पेषु चिकित्सितं हि ॥१६॥

---

१ पित्तविसर्पे गौर्यादिघृतमाचष्टे—घृतस्येति । गौरी=हरिद्रा । अम्बु=वालकम् , राजादनं=प्रियालः, ऋषभः=ऋषभकनाम्ना प्रसिद्धः । एतदलाभे वंशलोचनप्रक्षेपः । २ स्थिरा=शालपर्णी, पृश्निः=पृथक्पर्णी, शताह्वया=शतावरी । अत्र गौर्यादीनां शताह्वयान्तां चतुर्णां पलानां कल्कः, न्यग्रोधादीनां विदारिगन्धादीनां महतोऽपि पञ्चमूल्याश्च मिलितानां त्रयाणां गणानां क्वाथो घृतस्य चतुर्गुणः, गव्यं क्षीरमपि चतुर्गुणं घृतस्य प्रस्थमित्युन्नेयम् । ३ गौर्यादिघृतगुणं वक्ति—**विस्फोटेति ।**

४ कफजनितपित्तविसर्पचिकित्सामाचष्टे—**अजेति ।** अजा=अजगन्धा, लोके 'बबई' इति ख्याता सरला=कृष्णा त्रिवृत् , कालः=कासमर्दः, एकैषिका=शतावरी । ५ कालानुसार्या=नगरम् , चोचः='तज' इति, शीतशिवं=शतपुष्पाभेदः, सैन्धवमिति सुश्रुताथसन्दीपनम् । इन्द्रपर्णी=इन्द्रवारुणी । ६ पालिन्दिः=कालवल्ली, मुञ्जातः=उत्तरापथजः स्वल्पकन्द इति डल्हणः । महीकदम्बः=मुण्डी ।

७ सर्वविसर्पेषु सामान्यचिकित्सितमभिधत्ते—**गणस्त्विति ।** वरुणप्रदत्तः=वरुणादिः । ८ शोणितमोक्षणं जलौकोभिरेव, सर्वेषां रक्तपित्तप्रधानत्वात् । अस्य रक्तपित्तप्राधान्यमाह—वाग्भटः—"विसर्पो न ह्यसंसृष्टः सोऽस्रपित्तेन जायते । रक्तमेवा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वांश्च पक्वान् परिशोध्य धीमान् व्रणक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम्[1]।
नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्येच्छेषाश्चतस्रः[3] प्रतियत्नसाध्याः ॥१७॥
तत्रानिलोत्थामुपनाह्य[4] पूर्वमशोषतः पूयगतिं विदार्य।
तिलैरपामार्गफलैश्च पिष्ट्वा ससैन्धवैर्बन्धनमत्र[5] कुर्यात् ॥ १८ ॥
प्रक्षालने चापि सदा व्रणस्य योज्यं महद् यत् खलु पञ्चमूलम्।
हिंस्रां[6] हरिद्रां कटुकां बलां च गोजिह्विकां चापि सबिल्वमूलाम् ॥१९॥
संहृत्य तैलं विपचेद् व्रणस्य संशोधनं पूरणरोपणं च।
पित्तात्मिकां[7] प्रागुपनाह्य धीमानुत्कारिकाभिः सपयोघृताभिः ॥२०॥
निपात्य शस्त्रं तिलनागदन्तीयष्ट्याह्वकल्कैः[8] परिपूरयेत्ताम्।
प्रक्षालने चापि ससोमनिम्बा[9] निशा प्रयोज्या कुशलेन नित्यम् ॥२१॥
श्यामात्रिभण्डीत्रिफलासु[10] सिद्धं हरिद्रयो रोध्रकवृक्षयोश्च।
घृतं सदुग्धं व्रणतर्पणेन हन्याद्गतिं कोष्ठगताऽपि या स्यात् ॥ २२ ॥
[11]नाडीं कफोत्थामुपनाह्य सम्यक्[12] कुलत्थसिद्धार्थकसक्तुकिण्वैः।

---

श्रयश्चास्य बहुशोऽस्रं हरेत्ततः ॥'' इति। १ यथोक्तं=द्विव्रणीयोक्तमित्यर्थः।

## अथ नाडीचिकित्सा।

२ वातजनितनाडीचिकित्सितमभिदधाति—**नाडीति**। ३ पृथक् त्रिभिर्दोषैः शल्यनिमित्ततश्चैवं चतस्र इत्यर्थः। ४ उपनाह्य=तैस्तैर्वातहरद्रव्यैः प्रदिह्येत्यर्थः। ५ व्रणालेपनबन्धविधियुक्तरीत्या बन्धनं कुर्यादित्यर्थः। ६ हिंस्रा='बालछड़' इति ख्याता। अत्र द्रव्यकल्कः स्नेहचतुर्थांशः, द्रवः स्नेहचतुर्गुणः। "अनुक्ते द्रवकार्ये तु सर्वत्र सलिलं स्मृतम्" इति वचनादत्र द्रवो जलम्।

७ पित्तजन्यनाडीचिकित्सितं ब्रवीति—**पित्तात्मिकामिति**। ८ नागदन्ती=इन्द्रवारुणी। ९ 'सोमं काञ्जिकम्' इति कोशान्तरम्। व्यवहारस्तु धान्याम्लस्यैवेति हाराणचन्द्रः। निशा=हरिद्रा। १० पित्तजन्यनाडयां श्यामादिघृतमभिधत्ते—**श्यामेति**। श्यामा=श्यामामूला त्रिवृत्, त्रिभण्डी=रक्तमूला त्रिवृत्। अत्र श्यामादिघृते श्यामादीनां कल्कः, चतुर्गुणं दुग्धं, जलं च चतुर्गुणम्। तदुक्तम्—"क्षीरमस्त्वारणालाद्यैः पाको यत्रेरितः क्वचित्। जलं चतुर्गुणं तत्र वीर्याधानार्थमावपेत्॥'' इति। वृक्षः=वृक्षकः, कुटज इत्यर्थः।

११ कफजन्यनाडीचिकित्सितं ब्रवीति—**नाडीमिति**। १२ सिद्धार्थकः=श्वेत-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृदूकृतामेष्य गतिं विदित्वा निपातयेच्छस्त्रमशेषकारी ॥ २३ ॥
दद्याद् व्रणे निम्बतिलान् सुपिष्टान् सुराष्ट्रजासैन्धवसम्प्रयुक्तान् ।
प्रक्षालने चापि करञ्जनिम्बजात्यक्षपीलुस्वरसाः प्रयोज्याः ॥ २४ ॥
सुवर्चिकासैन्धवचित्रकेषु निकुम्भतालीतलरूपिकासु ।
फलेष्वपामार्गभवेषु चैव कुर्य्यात् समूत्रेषु हिताय तैलम् ॥ २५ ॥
नाडीं तु शल्यप्रभवां विदार्य निर्हृत्य शल्यं प्रविशोध्य मार्गम् ।
संशोधयेत् क्षौद्रघृतप्रगाढैस्तिलैस्ततो रोपणमस्य कुर्य्यात् ॥ २६ ॥
कुम्भीकखर्जूरकपित्थबिल्ववनस्पतीनां च शलाटुवर्गे ।
कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैलमावाप्य मुस्तासरलाप्रियङ्गूः ॥ २७ ॥
सुगन्धिकामोचरसाहिपुष्पं रोध्रं विदध्यादपि धातकीं च ।
एतेन शल्यप्रभवा च नाडी, रोहेद् व्रणो वा सुखमाशु चैव ॥२८॥

कृशदुर्बलभीरूणां नाडी मर्माश्रिता च या ।
क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न तु शस्त्रेण बुद्धिमान् ॥ २९ ॥
एषण्या गतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम् ।
सूचीं निदध्याद् गत्यन्ते तथोन्नम्याशु निर्हरेत् ॥ ३० ॥
सूत्रस्यान्तं समानीय गाढं बन्धं समाचरेत् ।
ततः क्षारबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत् प्रवेशयेत् ॥ ३१ ॥
क्षाराक्तं मतिमान् वैद्यो यावन्न क्लिद्यते गतिः ।
भगन्दरेऽप्येष विधिः कार्य्यो वैद्येन जानता ॥ ३२ ॥
अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत् ।

---

सर्षपः । १ सुराष्ट्रजा='फिटकिरी' इति ख्याता । २ अक्षः=बिभीतकः । ३ निकुम्भः=दन्ती, तालीं=तालमूली रूपिका=श्वेतार्कः । ४ चतुर्गुणेषु गोमूत्रेष्वित्यर्थः । ५ आगन्तुजनाडीचिकित्सितं वक्ति--नाडीन्त्विति । ६ कुम्भीकः=पुन्नागः । ७ 'आमे फले शलाटुः स्यात्' इत्यमरः । कुम्भीकादीनां शलाटूनि आमफलानीत्यर्थः । ८ सुगन्धिका=उशीरम्, अहिपुष्पं=नागकेशरम् ।

९ क्षारसूत्रेण नाडीच्छेदनविधिमभिदधाति--कृशेति । च येति चकारेण अकृशादीनामपि मर्माश्रिता नाडी समुच्चीयते । १० गत्यन्ते=नाडीसीमायाम्, उन्नम्य=उन्मुखीकृत्य, निर्हरेत्=बहिराहरेत् । ११ आदिशब्दाद् ग्रन्थ्यादीनां परिग्रहः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचीभिर्यववक्त्राभिराचितं वा समन्ततः ।
मूले सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने चोपचरेद् व्रणम् ॥ ३३ ॥
यो द्वित्रणीयेऽभिहितास्तु वर्त्तयस्ताः सर्वनाडीषु भिषग् विदध्यात् ।
घोण्टाफलत्वग्लवणानि लाक्षा पूगीफलं चालवणं च पत्रम् ॥३४॥
स्नुह्यर्कदुग्धेन तु कल्क एष वर्त्तीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीः ।
बिभीतकाम्रास्थिवटप्रवाला हरेणुकाशङ्खिनिबीजमस्यः ॥ ३५ ॥
वाराहिकन्दश्च तथा प्रदेयो नाडीषु तैलेन च मिश्रयित्वा ॥ ३६ ॥
धुत्तूरजं मदनकोद्रवजं च बीजं कोशातकी शुकनसा मृगभोजनी च ।
अङ्कोटबीजकुसुमं गतिषु प्रयोज्यं लाक्षोदकाहृतमलासु विकृत्य चूर्णम् ३७
तथा च गोमांसमसी हिताय कोष्ठाश्रितस्यादरतो दिशन्ति ॥
वर्तीकृतं माक्षिकसम्प्रयुक्तं नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं वा ॥३८॥
दुष्टव्रणे यद्विहितं च तैलं तत्सर्वनाडीषु भिषग्विदध्यात् ॥
चूर्णीकृतैरथ विमिश्रितमेभिरेव तैलं प्रयुक्तमचिरेण गतिं निहन्ति ३९
एष्वेव सूत्रसहितेषु विधाय तैलं तत्साधितं गतिमपोहति सप्तरात्रात् ।
पिण्डीतकस्य तु वराहविभावितस्य मूलेषु कन्दशकलेषु च सौवहेषु ४०
तैलं कृतं गतिमपोहति शीघ्रमेतत् कन्देषु चामरवरायुधसाह्वयेषु ॥
भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन सिद्धं विडङ्गरजनीद्वयचित्रकैश्च ॥ ४१॥

स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं
नाडीं कफानिलकृतामपचीं व्रणांश्च ।

---

१ सर्वनाडीनां सामान्यविधिमभिधत्ते--येति । २ घोण्टाफलं=बदरीफलम् । ३ अलवणायाः काकमर्दनिकाया इदं पत्रमालवणम् । ४ शङ्खिनी='शङ्खाहुली' इति ख्याता, तद्बीजमित्यर्थः । मस्यः=क्षाराः । ५ मृगभोजनी=इन्द्रवारुणी । ६ एषु=धत्तूरकादिबीजादिषु । ७ तैलत्रितयमुपदिशति--पिण्डीतकस्येति । ८ सुवहाया एतानि सौवहानि तेषु सौवहेषु ।

९ अमरवरइन्द्रस्तस्यायुधं वज्रं तेन समान आह्वयः संज्ञा येषां ते अमरायुधसाह्वयास्तेषु, वज्रकन्देष्वित्यर्थः । १० मार्कवस्य=भृङ्गराजस्येत्यर्थः । अत्र भल्लातकादीनां चित्रकान्तानां कल्कः मार्कवस्य रसश्चतुर्गुणो बोध्यः ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तन्ये गते विकृतिमाशु भिषक् तु धात्रीं
पीतां घृतं परिणतेऽहनि वामयेत्तु ॥ ४२ ॥
निम्बोदकेन मधुमागधिकायुतेन ।
वान्तागतेऽहनि च मुद्गरसाशना स्यात् ।
एवं त्र्यहं चतुरहं षडहं वमेद्वा ।
सर्पिः पिबेत् त्रिफलया सह संयुतं वा ॥ ४३ ॥
भार्गीं वचामतिविषां सुरदारु पाठां
मुस्तादिकं मधुरसां कटुरोहिणीं च ।
धात्रीं पिबेत्तु पयसः परिशोधनार्थ-
मारग्वधादिषु वरं मधुना कषायम् ॥ ४४ ॥
सामान्यमेतदुपदिष्टमतो विशेषाद्
दोषान् पयोनिपतितान् शमयेद् यथास्वम् ।
रोगं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग् विदध्याद्
यद्विद्रधावभिहितं बहुशो विधानम् ॥ ४५ ॥
सम्पच्यमानमपि तं तु विनोपनाहैः
सम्भोजनेन खलु पाचयितुं यतेत ।
शीघ्रं स्तनो हि मृदुमांसतयोपनद्धः
सर्वं प्रकोपमुपयात्यवदीर्य्यते च ॥ ४६ ॥
पक्के च दुग्धहरिणीः परिहृत्य नाडीः
कृष्णं च चूचुकयुगं विदधीत शस्त्रम् ।

---

### अथ स्तनरोगचिकित्सा ।

१ स्तन्यदोषचिकित्सितं वर्णयति—**स्तन्य इति** । स्तन्ये दोषैर्विकृतिं गते सतीत्यर्थः । २ परिणतेऽहनि = सायङ्काले । ३ मागधिका = पिप्पली । ४ मुस्तादिद्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये द्रष्टव्यः । ५ आरग्वधादिरपि द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः । ६ स्तनरोगचिकित्सामभिधत्ते—**रोगमिति** । ७ पाककारित्वादुपनाहं निषेधति—**शीघ्रमिति** । ८ दुग्धहरिणी नाडीः = स्तन्यवाहिनीः सिरा इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमे विदाहिनि तथैव गते च पाकं
धात्र्याः स्तनौ सततमेव च निर्दुहीत[1] ॥ ४७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने विसर्पनाडीस्तनरोगचिकित्सितं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

## अष्टादशोऽध्यायः ।

[2]अथातो ग्रन्थ्यपच्यर्बुदगलगण्डचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

[3]ग्रन्थिष्वथामेषु भिषग्विदध्याच्छोफ[4]क्रियां विस्तरशो विधिज्ञः ।
रक्षेद् बलं चापि नरस्य नित्यं तद्रक्षितं व्याधिबलं निहन्ति ॥ ३ ॥
तैलं[5] पिबेत् सर्पिरथो द्वयं वा दत्त्वा वसां वा त्रिवृ[6]तं विदध्यात् ।
अपेहिवातादशमूलसिद्धं वैद्यश्चतुःस्नेहमथो द्वयं वा ॥ ४ ॥
हिंस्रा[7]ऽथ रोहिण्यमृताऽथ भार्गी श्योनाकबिल्वागुरुकृष्ण[8]गन्धाः ।
गोजी च पिष्टा सह तालपत्र्या ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ ५ ॥
स्वेदोपनाहान् विविधांश्च कुर्यात् तथा [9]प्रसिद्धानपरांश्च लेपान् ।
विदार्य वा पक्वमपोह्य पूयं प्रक्षाल्य बिल्वार्कनरेन्द्र[10]तोयैः ॥ ६ ॥

---

१ निर्दुहीत = स्तनाभ्यां दुग्धं स्रावयेदित्यर्थः । अष्टाङ्गहृदयेऽपि—"स्तनजे व्रणवत्सर्वं न त्वेनमुपनाहयेत् । पाटयेत्पालयन् स्तन्यवाहिनीः कृष्णचूचुकौ । सर्वास्वामास्ववस्थासु निर्दुहीत च तत्स्तनम् ॥" इति ।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तदशोऽध्यायः ।

---

### अष्टादशोऽध्यायः ।

२ क्रमोपस्थितं ग्रन्थ्यादिचिकित्सितमभिधत्ते—अथेति । ३ आमग्रन्थिचिकित्सितं वक्ति—ग्रन्थिष्विति । ४ शोफक्रियां = द्विव्रणीयोक्तामामशोफचिकित्सामित्यर्थः । ५ आमग्रन्थौ स्नेहपानविधिं दर्शयति—तैलमिति । ६ त्रिभिरवयवैस्तैलसर्पिर्वसाभिर्वृतं व्याप्तमिति त्रिवृतम् ।

७ वातजनितग्रन्थिचिकित्सामा—हहिंस्रेति । हिंस्रा = 'बालछड़' इति, रोहिणी = कटुका । ८ कृष्णगन्धा = शोभाञ्जनः, गोजी = शाखोटकः, तालपत्री = तालमूली । ९ प्रसिद्धान् = मिश्रकोक्तान् मातुलुङ्गादीन् । १० नरेन्द्रतोयैः = चतुरङ्गुलपत्रकाथैः,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिलैः सपञ्चाङ्गुलपत्रमिश्रैः संशोधयेत् सैन्धवसम्प्रयुक्तैः ।
शुद्धं व्रणं वाऽप्युपरोपयेयुस्तैलेन रास्नासरलाऽन्वितेन ॥ ७ ॥
विडङ्गयष्टीमधुकामृताभिः सिद्धेन वा क्षीरसमन्वितेन ।
जलौकसः पित्तकृते हितास्तु क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनं च ॥ ८ ॥
काकोलिवर्गस्य च शीतलानि पिबेत् कषायाणि सशर्कराणि ।
द्राक्षारसेनेक्षुरसेन वाऽपि चूर्णं पिबेच्चापि हरीतकीनाम् ॥ ९ ॥
मधूकजम्ब्वर्जुनवेतसानां त्वग्भिः प्रदेहानवचारयेत ।
सशर्करैर्वा तृणशून्यकन्दैर्दिह्यादभीक्ष्णं मुचुलुन्दजैर्वा ॥ १० ॥
विदार्य वा पक्वमपोह्य पूयं धावेत् कषायेण वनस्पतीनाम् ।
तिलैः सयष्टीमधुकैर्विशोध्य सर्पिः प्रयोज्यं मधुरैर्विपक्वम् ॥ ११ ॥
हृतेषु दोषेषु यथाऽऽनुपूर्व्या ग्रन्थौ भिषक् श्लेष्मसमुत्थिते तु ।
स्विन्नस्य विम्लापनमेव कुर्यादङ्गुष्ठलोहोपलवेणुदण्डैः ॥ १२ ॥
विकङ्कतारग्वधकार्कनन्तीकाकादनीतापसवृक्षमूलैः ।
आलेपयेत्पिण्डफलार्कभार्गीकरञ्जकालामदनैश्च विद्वान् ॥ १३ ॥
अममजातं शममप्रयान्तमपक्वमेवापहरेद् विदार्य ।
दहेत् स्थिते चास्रजि सिद्धकर्मा सद्यःक्षतोक्तं च विधिं विदध्यात् १४
या मांसकन्द्यः कठिना बृहत्यस्तास्वेव योज्यश्च विधिर्विधिज्ञैः ।
शस्त्रेण वाऽऽपाट्य सुपक्वमाशु प्रक्षालयेत् पथ्यतमैः कषायैः ॥१५॥
संशोधनैस्तं च विशोधयेयुः क्षारोत्तरैः क्षौद्रगुडप्रगाढैः ।

---

अत्र तोयशब्दस्य काथपरकत्वात् । १ पञ्चाङ्गुलः = एरण्डः । २ सरला = त्रिवृदित्यर्थः । ३ चतुर्गुणगोदुग्धसमन्वितेन तैलेन, कल्कीकृतैर्विडङ्गादिभिः सिद्धेन वा रोपयेदित्यर्थः ।

४ पित्तजनितग्रन्थिचिकित्सितं प्रतिजानीते—**जलौकस इति** । ५ प्रदेहान् = उपनाहान् । ६ तृणशून्यकन्दैः = केतकीमूलैरित्यर्थः । मुचुलुन्दः = मुचकुन्दः । ७ मधुरैः = काकोल्यादिमधुरद्रव्यैरित्यर्थः । ८ कफजन्यग्रन्थिचिकित्सामभिधत्ते—**हृतेष्विति** । यथाऽऽनुपूर्व्या = स्नेहस्वेदादिक्रमेण । ९ काकनन्ती = गुञ्जा, काकादनी = श्वेतगुञ्जा । १० पिण्डफला = कटुतुम्बी, काला = कृष्णा त्रिवृत् । ११ सद्यःक्षतोक्तं विधिं = मधुघृतादिविधानम् । १२ मांसकन्दीचिकित्सामाह—**येति** । मांसकन्दः = मांसप्ररोहाः । १३ क्षारोत्तरैः = यवक्षारमुख्यैरित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्धे च तैलं त्ववचारणीयं विडङ्गपाठारजनीविपक्वम् ॥ १६ ॥
मेदःसमुत्थे तिलकल्कदिग्धं दत्त्वोपरिष्टाद्विगुणं पटान्तम् ।
हुताशतप्तेन मुहुः प्रमृज्याल्लोहेन धीमानदहन् हिताय ॥ १७ ॥
प्रलिप्य दार्वीमथ लाक्षया वा प्रतप्तया स्वेदनमस्य कार्यम् ।
निपात्य वा शस्त्रमपोह्य मेदो दहेत् सुपक्वं त्वथवा विदार्य ॥१८॥
प्रक्षाल्य मूत्रेण तिलैः सुपिष्टैः सुवर्चिकाद्यैर्हरितालमिश्रैः ।
ससैन्धवैः क्षौद्रघृतप्रगाढैः क्षारोत्तरैरेनमभिप्रशोध्य ॥ १९ ॥
तैलं विदद्याद् द्विकरञ्जगुञ्जावंशावलेखेङ्गुदमूत्रसिद्धम् ।
जीमूतकैः कोशवतीफलैश्च दन्तीद्रवन्तीत्रिवृतासु चैव ॥ २० ॥
सर्पिः कृतं हन्त्यपचीं प्रवृद्धां द्विधा प्रवृत्तं तदुदारवीर्य्यम् ।
निर्गुण्डिजातीबरिहिष्ठयुक्तं जीमूतकं माक्षिकसैन्धवाढ्यम् ॥२१॥
अभिप्रतप्तं वमनं प्रगाढं दुष्टापचीषूत्तममादिशन्ति ।
कैटर्य्यबिम्बीकरवीरसिद्धं तैलं हितं मूर्धविरेचनं च ॥ २२ ॥
शाखोटकस्य स्वरसेन सिद्धं तैलं हितं नस्यविरेचनेषु ।
मधूकसारश्च हितोऽवपीडे फलानि शिग्रोः खरमञ्जरेर्वा ॥ २३ ॥
ग्रन्थीनमर्मप्रभवानपक्वानुद्धृत्य चाग्निं विदधती पश्चात् ।

---

१ मेदोजन्यग्रन्थिचिकित्सां वक्ति—मेद इति । तिलकल्कदिग्धं = तिलकल्कलिप्तमित्यर्थः । २ हुताशतप्तेन = अग्नितप्तेन लोहेनेति सम्बन्धः । ३ दार्वीं = दारुहरिद्राम् । ४ सुवर्चिकाद्यैः = स्वर्जिकाक्षारादिभिरित्यर्थः । ५ वंशावलेखः=वंशत्वक् । अत्र गोमूत्रं चतुर्गुणं, द्विकरञ्जादीनां कल्कः ।

## अथापचीचिकित्सा ।

६ अपचीचिकित्सितमाचष्टे—जीमूतकैरिति । जीमूतकैः=वन्दालैः, कोशवतीफलैः=कटुकोशातकीफलैः । अपची गण्डमालाया अवस्थाविशेषः, तदुक्तम्—"ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये। कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्तीति केचित् ॥" इति । ७ द्विधा प्रवृत्तं = बाह्याभ्यन्तरः प्रवृत्तम्, उदारवीर्यम्=उत्कटवीर्यम् । ८ बरिहिष्ठः=ह्रीबेरम् । ९ कैटर्यः = पर्वतनिम्बः । १० अवपीड्य दीयत इत्यवपीडस्तस्मिन्, नस्यप्रभेद इत्यर्थः । खरमञ्जरिः = 'वनतुलसी' इति ख्यातः ।

११ अमर्मजग्रन्थौ क्षाराग्निशस्त्रविधिं दर्शयति—ग्रन्थीनिति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षारेण वाऽपि प्रतिसारयेत्तु संलिख्य शस्त्रेण यथोपदेशम् ॥२४॥
पार्ष्णिं प्रति द्वे दश चाङ्गुलानि भित्त्वेन्द्रबस्तिं परिवर्ज्य धीमान् ।
विदार्य्य मत्स्याण्डनिभानि वैद्यो निष्कृष्य जालान्यनलं विदध्यात् २५
आ गुल्फकर्णात् सुमितस्य जन्तोस्तस्याष्टभागं खुडकाद्विभज्य ।
घोणर्जुवेधः सुरराजबस्तेर्हित्वाऽल्पिमात्रं त्वपरे वदन्ति ॥ २६ ॥

---

१ अपच्यां जङ्घायां शस्त्रकर्मविधानं निर्दिशति—पार्ष्णिमिति । धीमान् मर्मपरिरक्षणकुशलो वैद्यः पार्ष्णिं प्रति गुल्फस्य पश्चाद्भागं प्रति द्वे दश चाङ्गुलानि द्वादशाङ्गुलानि मित्वा परिहर्तुं परिमाय ऊर्ध्वं जङ्घामध्ये द्व्यङ्गुलमिन्द्रबस्तिं परिवर्ज्य विदार्य मत्स्याण्डनिभानि मीनाण्डसदृशानि मेदोजालानि निष्कृष्य आकृष्य अनलमग्निं विदध्यादित्यर्थः ।

भोजः—'वातपित्तकफा वृद्धा मेदश्चापि समाचितम् । जङ्घयोः कण्डरां प्राप्य मत्स्याण्डसदृशान् बहून् ॥ कुर्वन्ति ग्रन्थीन् यस्तेभ्यः पुनः प्रकुपितोऽनिलः । दोषैस्तैरूर्ध्वगो वक्षःकक्षामन्यागलाश्रितः । नानाप्रकारान् कुरुते ग्रन्थीन् सा त्वपची मता । व्यामिश्रदोषोत्पन्नां तु कृच्छ्रसाध्यां विनिर्दिशेत् । तासां वातोत्तरा कृष्णा वातकी वेदनायुता । क्षिप्रपाकसमुत्थाना दाहयुक्ता च पैत्तिकी । गूढाऽविपाका कठिना कफात् स्निग्धा रुजाकरी । मेदोऽधिका श्लैष्मिकी च विशेषात्सा समार्दवा । तां तु मालाऽऽकृतिं मन्याकण्ठहृद्बनुसन्धिषु । गलमालां विजानीयादपचीतुल्यलक्षणाम् ॥" इति ।

२ पक्षान्तरं दर्शयति—**आ गुल्फेति** । गुल्फं कर्णञ्चाभिव्याप्येति आ गुल्फकर्णात् सुमितस्य सम्यङ् मापितस्य जन्तोरातुरप्राणिनस्तस्य प्रमाणस्य षट्सप्तत्यङ्गुलमितस्य अष्टभागमष्टमभागं सार्धनवाङ्गुलमात्रं खुडकाद् गुल्फभागाद् द्व्यङ्गुलप्रमाणाद् विभज्य पृथक्कृत्य सुरराजबस्तेर्हित्वा इन्द्रबस्तिं हित्वा घोणर्जुवेधः घोणा नासा तस्यां यथा ऋजुवेधो भवति तथाऽवक्रो वेधः कर्तव्यः । स च खुडकस्याङ्गुलत्रितयम्, अष्टमभागस्य च सार्धनवाङ्गुलम् । एवं सार्धद्वादशाङ्गुलपरिहारेणेन्द्रबस्तिमर्म परिहृतं भवति । तदुक्तमपि—"त्रयोदशाङ्गुले पार्ष्णि प्रति कालान्तरा सुहृत् । इन्द्रबस्तिरसृक्स्रावी मांसगोऽर्धाङ्गुलो भवेत् ॥" इति । अपरे भिषग्वराः, अल्पिमात्रमङ्गुलद्वयप्रमाणं वदन्तीत्यर्थः । एवं प्रथमश्लोकेन इन्द्रबस्तेरधस्ताद् द्वितीयश्लोकेन तस्योपरिष्टाज्जङ्घायाः पाश्चात्यभागगतकण्डराया द्व्यङ्गुलमात्रो व्यधः कार्य इति सिद्धम् । एवमनुपशमे वामपार्श्वजातायां दक्षिणजङ्घापृष्ठमध्यादिन्द्रबस्तेरधस्तादूर्ध्वं वा शस्त्रेण अल्पिमात्रं व्रणं कृत्वा मत्स्याण्डजालसदृशं मेदोऽपनीय अग्निना दहेत् । एवं दक्षिणपार्श्वजातायामपि । उभयपार्श्वजातायामुभयत इति बोध्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणिबन्धोपरिष्टाद्वा कुर्य्याद्रेखात्रयं भिषक् ।
अङ्गुल्यन्तरितं सम्यगपचीनां निवृत्तये ॥ २७ ॥
चूर्णस्य काले प्रचलाककाकगोधाहिकूर्मप्रभवां मसीं तु ।
दद्याच्च तैलेन सहेङ्गुदीनां यद्वक्ष्यते श्लीपदिनां च तैलम् ॥ २८ ॥
विरेचनं धूममुपाददीत भवेच्च नित्यं यवमुद्गभोजी ।
कर्कारुकैर्वारुकनारिकेलप्रियालपञ्चाङ्गुलबीजचूर्णैः ॥ २९ ॥
वातार्बुदं क्षीरघृताम्बुसिद्धैरुष्णैः सतैलैरुपनाहयेत्तु ।
कुर्य्याच्च मुख्यान्युपनाहनानि सिद्धैश्च मांसैरथ वेशवारैः ॥३०॥
स्वेदं विदध्यात् कुशलस्तु नाडया शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च ।
वातघ्ननिर्यूहपयोऽम्लभागैः सिद्धं शताख्यं त्रिवृतं पिबेद्वा ॥ ३१ ॥
स्वेदोपनाहा मृदवस्तु पथ्याः पित्तार्बुदे कायविरेचनं च ।
विघृष्य चोदुम्बरशाकगोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥ ३२ ॥

---

१ ऊर्ध्वदेहजातायामपच्यां मणिबन्धोपरि शस्त्रकर्मविधिमभिधत्ते—**मणिबन्धेति**। वा अथवा मणिबन्धोपरिष्टाद् अग्नितप्तया शलाकया इन्द्रबस्तेरष्टभागमात्रं वा विहाय अग्रे रेखात्रयं कुर्यादित्यर्थः ।

२ सम्प्रति संशमनविधिमभिदधाति—**चूर्णस्येति**। चूर्णस्य काले=चूर्णोपयोगावस्थायाम्, प्रचलाको मयूरः, काकः, गोधा, अहिः, कूर्मः, तत्प्रभवां मसीं क्षारमित्यर्थः। ३ "काकादनीं काकजङ्घां बृहतीं कण्टकारिकाम्" इत्यादिषु संसिद्धं तैलं तेनापि सह दद्यादित्यर्थः ।

## अथार्बुदचिकित्सा ।

४ अर्बुदः=मांसोपचयतया प्रतीयमानं शोफम्, मांसकील इति यावत्। तत्रादौ वातार्बुदचिकित्सां वक्ति—**कर्कारुकेति**। कर्कारुकं=कूष्माण्डम्, एर्वारुकं=कर्कटी,...पञ्चाङ्गुलः=एरण्डः। बीजशब्दस्य कर्कारुकादिभिः प्रत्येकं सम्बन्धः। नारिकेले बीजस्य सम्बन्धात् तदङ्कुरो ग्राह्यः ।

५ अत्र कर्कारुकादिबीजापेक्षयाऽम्बुक्षीरं चतुर्गुणं, घृतं पादार्द्धं दत्त्वा लप्सिकावत् पक्त्वा किञ्चित्तैलेन सम्मिश्र्य उपनाहयेदिति भावः। ६ वातघ्नः भद्रदार्वादिवातसंशमनो वर्गः संशोधनसंशमनीयाध्यायोक्तः । शताख्यं=शतधा पक्वं, शतपाकमित्यर्थः। त्रिवृतं, त्रिभिर्घृततैलवसाभिर्मज्जवर्जं वृतं व्याप्तं त्रिवृतम्।

७ पित्तार्बुदचिकित्सामाचष्टे—**स्वेदोपनाहा इति**। ८ गोजी=शाखोटकः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लक्ष्णीकृतैः सर्जरसप्रियङ्गुपत्तङ्गरोध्राञ्जनयष्टिकाह्वैः[1]।
विस्राव्य चारग्वधगोजिसोमाः श्यामा[2] च योज्या कुशलेन लेपे॥३३॥
श्यामागिरिह्वाञ्जनकीरसेषु द्राक्षारसे सप्तलिकारसे[3] च।
घृतं पिबेत् क्लीतकसम्प्रसिद्धं[4] पित्तार्बुदी तज्जठरी[5] च जन्तुः॥३४॥
शुद्धस्य[6] जन्तोः कफजेऽर्बुदे तु रक्तेऽवसिक्ते तु ततोऽर्बुदं तत्।
द्रव्याणि[7] यान्यूर्ध्वमधश्च दोषान् हरन्ति तैः कल्ककृतैः प्रदिह्यात्[8]॥३५॥
कपोतपारावतविड्विमिश्रैः सकांस्यनीलैः[9] शुकलाङ्गलाख्यैः।
मूत्रैस्तु काकादनिमूलमिश्रैः क्षारप्रदिग्धैरथवा प्रदिह्यात्॥३६॥
निष्पाव[10]पिण्याककुलत्थकल्कैर्मांसप्रगाढैर्दधिमस्तुयुक्तैः।
लेपं विदध्यात्कृमयो यथाऽत्र मूर्च्छन्ति मुञ्चन्त्यथ मक्षिकाश्च॥३७॥
अल्पावशिष्टे कृमिभक्षिते च [11]लिखेत् ततोऽग्निं विदधीत पश्चात्।
यदल्पमूलं त्रपुताम्रसीसपट्टैः समावेष्ट्य तदायसैर्वा॥३८॥
क्षाराग्निशस्त्राण्यसकृद्विदध्यात् प्राणानहिंसन् भिषगप्रमत्तः।
आस्फोत[12]जातीकरवीरपत्रैः कषायमिष्टं व्रणशोधनार्थम्॥३९॥
शुद्धे च तैलं विदधीत भार्गीविडङ्गपाठात्रिफलाविपक्वम्।
यदृच्छ[13]या चोपगतानि पाकं पाकक्रमेणोपचरेद्विधिज्ञः॥४०॥
मेदोऽर्बुदं[14] स्विन्नमथो विदार्य्य विशोध्य सीव्येद्व्रतरक्तमाशु।

---

१ पत्तङ्गं = रक्तचन्दनम्। २ श्यामा = कृष्णा त्रिवृत्। ३ सप्तलिकारसे = सप्तपर्णरसे। ४ क्लीतकसम्प्रसिद्धं = यष्टीमधुकल्कसिद्धम्। ५ तज्जठरी = पित्तोदरीत्यर्थः।

६ कफार्बुदचिकित्सितं ब्रवीति—**शुद्धस्येति**। शुद्धस्य = वमनद्वारा संशुद्धशरीरस्येत्यर्थः। ७ द्रव्याणि = जीमूतकीघोषवतीफलदन्तीद्रवन्तीत्रिवृदादीनि संशोधनसंशमनीयाध्यायोक्तानि। ८ प्रदिह्यात् = लिम्पेत्। ९ सकांस्यनीलैः = कांस्यमलसहितैः, शुकः = ग्रन्थिपर्णम्, 'कुकरौंधा'इति ख्यातः। 'ग्रन्थिपर्णं शुकं बर्हं पुष्पं स्थौणेयकुक्कुरे'इत्यमरः। लाङ्गलिका = कलिहारी।

१० अर्बुदे कृमिनाशकोपायं निर्दिशति—**निष्पावेति**। निष्पावः = राजशिम्बः, पिण्याकः = तिलकल्कः। ११ शस्त्रेण लिखेदित्यर्थः। ततः पश्चात् समूलमुपहन्तुमग्निं विदधीत। १२ आस्फातो = सारिवा। १३ यदृच्छया = स्वेच्छया, अकस्मादिति तात्पर्यम्। १४ मेदोऽर्बुदचिकित्सितमभिधत्ते—**मेदोऽर्बुदमिति**। स्विन्नं = कृतस्वे-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो हरिद्रागृहधूमरोध्रपत्तङ्गचूर्णैः समनःशिलालैः ॥ ४१ ॥
व्रणं प्रतिग्राह्य मधुप्रगाढैः करञ्जतैलं विदधीत शुद्धे।
सशेषदोषाणि हि योऽर्बुदानि करोति तान्याशु पुनर्भवन्ति ॥ ४२ ॥
तस्मादशेषाणि समुद्धरेत्तु हन्युः सशेषाणि यथा हि वह्निः।
संस्वेद्य गण्डं पवनोत्थमादौ नाडचाऽनिलघ्नौषधपत्रभङ्गैः ॥ ४३ ॥
अम्लैः समूत्रैर्विविधैः पयोभिरुष्णैः सतैलैः पिशितैश्च विद्वान्।
विस्रावयेत् स्विन्नमतन्द्रितश्च शुद्धं व्रणं चाप्युपनाहयेत्तु ॥ ४४ ॥
शणातसीमूलकशिग्रुकिण्वप्रियालमज्जानुयुतैस्तिलैस्तु।
कालामृताशिग्रुपुनर्नवार्कगजादिनामाकरहाटकुष्ठैः ॥ ४५ ॥
एकैषिकावृक्षकतिल्वकैश्च सुराम्लपिष्टैरसकृत् प्रदिह्यात् ॥ ४६ ॥
तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिम्बहंसाह्वयावृक्षकपिप्पलीभिः।
सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगण्डरोगे ॥ ४७ ॥
स्वेदोपनाहैः कफसम्भवं तु संस्वेद्य विस्रावणमेव कुर्यात्।
ततोऽजगन्धाऽतिविषाविशल्याविषाणिकाकुष्ठशुकाह्वयाभिः ॥ ४८ ॥
पलाशभस्मोदकपेषिताभिर्दिह्यात् सगुञ्जाभिरशीतलाभिः।
दशार्द्धसंख्यैर्लवणैश्च युक्तं तैलं पिबेन्मागधिकादिसिद्धम् ॥ ४९ ॥

---

दनम्। १ पत्तङ्गं = रक्तचन्दनम्।

२ विद्रधिचिकित्सिते करञ्जादिघृते प्रोक्तद्रव्यैः करञ्जतैलं विदधीतेत्यर्थः। "ग्रन्थ्यर्बुदानां न यतो विशेषः प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः। अतश्चिकित्सेद् भिषगर्बुदानि विधानविद् ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥" इति बोध्यम्।

## अथ गलगण्डचिकित्सा।

३ वातजनितगलगण्डचिकित्सितमभिधत्ते—**संस्वेद्येति**। ४ पत्रभङ्गैः = पत्रचूर्णैरित्यर्थः। ५ गजादिनामा = गजपिप्पली, करहाटं = मदनफलम्। ६ एकैषिका = रक्तमूला त्रिवृत्, वृक्षकः = कुटजः, तिल्वकः = रोध्रः। ७ हंसाह्वया = हंसपदी, बलाभ्यां = बलाऽतिबलाभ्यामित्यर्थः।

८ पित्तजन्यगलगण्डाभावात् कफजनितगलगण्डचिकित्सामभिदधाति—**स्वेदोपनाहैरिति**। ९ विशल्या = दन्ती, विषाणिका = कर्कटशृङ्गी, शुकाह्वया = इयोनाकः। १० दशार्धसंख्यैः = पञ्चलवणैरित्यर्थः। मागधिकादिर्द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः। पिप्प-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रच्छर्दनं मूर्द्धविरेचनं च धूमश्च वैरेचनिको हितस्तु ।
पाकक्रमो वाऽपि सदा विधेयो वैद्येन पाकं[1] गतयोः कथञ्चित् ॥५०॥
कटुत्रिकक्षौद्रयुताः समूत्रा भक्ष्या यवान्नानि रसाश्च[2][3] मौद्गाः ।
सशृङ्गवेराः सपटोलनिम्बा हिताय देया गलगण्डरोगे ॥ ५१ ॥
मेदःसमुत्थे[4] तु यथोपदिष्टां विध्येत् सिरां स्निग्धतनोर्नरस्य ।
श्यामासुधालोहपुरीषदन्तीरसाञ्जनैश्चापि[5] हितः प्रदेहः ॥ ५२ ॥
मूत्रेण वाऽऽलोड्य हिताय सारं प्रातः पिबेच्छालमहीरुहाणाम्[6] ।
शस्त्रेण वाऽऽपाट्य विदार्य्य चैनं मेदः समुद्धृत्य हिताय सीव्येत् ५३
मज्जाज्यमेदोमधुभिर्दहेद्वा दग्धे च सर्पिर्मधु चावचार्य्यम् ।
कासीसतुत्थे च ततोऽत्र देये चूर्णीकृते रोचनया समेते ॥ ५४ ॥
तैलेन चाभ्यज्य हिताय दद्यात् सारोद्भवं[7] गोमयजं च भस्म ।
हितं च नित्यं त्रिफलाकषायो गाढश्च बन्धो यवभोजनं च ॥ ५५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने ग्रन्थ्यपच्यर्बुदगलगण्डचिकित्सितं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

## एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथातो[8] वृद्ध्युपदंशश्लीपदचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
अन्त्रवृद्धया[9] विना षड्या वृद्धयस्तासु वर्जयेत् ।

---

ल्यादिस्तत्क्वाथकल्काभ्यां सिद्धमित्यर्थः । १ पाकं गतयोः=पाकप्राप्तयोर्वातकफजन्ययोः । २ सर्वगलगण्डविषये त्रिकटुकादियोगं निर्दिशति—कटुत्रिति । ३ रसाः=यूषाः ।

४ मेदोजन्यगलगण्डचिकित्सां वक्ति—मेद इति । यथोपरिष्टाम्=ऊरुसन्धि-निर्दिष्टाम् । ५ लोहपुरीषं=लोहमलम् । ६ शालमहीरुहाणां सालसारादिवृक्षाणां सारमिति सम्बन्धः । सारः कल्कः । ७ सारोद्भवं=कालानुसार्य्योद्भवम्, सारोद्भवं सालसारादिसमुत्थमिति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् ।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यामष्टादशोऽध्यायः ।

---

### एकोनविंशोऽध्यायः ।

८ निदानक्रमोपस्थितं वृद्ध्यादिचिकित्सितमारभ्यते—अथेति । ९ अन्त्रवृद्धि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्वादियानं व्यायामं मैथुनं वेगनिग्रहम् ॥ ३ ॥
अत्यासनं चङ्क्रमणमुपवासं गुरूणि च ।
तत्रादितो वातवृद्धौ त्रैवृतस्निग्धमातुरम् ॥ ४ ॥
स्विन्नं चैनं यथान्यायं पाययेत विरेचनम् ।
कोशाम्रातिल्वकैरण्डफलतैलानि वा नरम् ॥ ५ ॥
सक्षीरं वा पिबेन्मांसं तैलमैरण्डसम्भवम् ।
ततः कालेऽनिलघ्नानां क्वाथैः कल्कैश्च बुद्धिमान् ॥ ६ ॥
निरूहयेन्निरूढं च भुक्तवन्तं रसौदनम् ।
यष्टीमधुकसिद्धेन ततस्तैलेन योजयेत् ॥ ७ ॥
स्नेहोपनाहौ कुर्य्याच्च प्रदेहांश्चानिलापहान् ।
विदग्धां पाचयित्वा वा सेवनीं परिवर्जयेत् ॥ ८ ॥
भिन्द्यात् ततः प्रभिन्नायां यथोक्तं क्रममाचरेत् ।
पित्तजायामपक्वायां पित्तग्रन्थिक्रमो हितः ॥ ९ ॥
पक्वां वा भेदयेद्भिन्नां शोधयेत् क्षौद्रसर्पिषा ।
शुद्धायां च भिषग्दद्यात् तैलं कल्कं च रोपणम् ॥ १० ॥
रक्तजायां जलौकोभिः शोणितं निर्हरेद्भिषक् ।
पिबेद् विरेचनं वाऽपि शर्कराक्षौद्रसंयुतम् ॥ ११ ॥

---

विना याः षड् वृद्धयः वातपित्तश्लेष्मशोणितमेदोमूत्रनिमित्ताइति । १ चङ्क्रमणं= भ्रमणम् । भावमिश्रोऽपि–'वृद्धावत्यशनं मार्गमुपवासं गुरूणि च । वेगाघातं पृष्ठयानं व्यायामं मैथुनं त्यजेत् ॥''इति ।

२ तत्र वातजन्यवृद्धिचिकित्सितं ब्रवीति—तत्रादित इति । त्रिभिरवयवैर्वृतं त्रैवृतं मिश्रितस्नेहत्रितयमित्यर्थः । ३ यत उक्त शारीरस्थाने—''सेवनीच्छेदाद्गुजाप्रादुर्भावः''इति । ४ यथोक्तं क्रमं=द्विव्रणीयोक्तव्रणक्रियामित्यर्थः । अष्टाङ्गहृदयेऽपि—''शोधयेत् त्रिवृता स्निग्ध वृद्धौ स्नेहैरचलात्मके । कोशाम्रातिल्वकैरण्डसुकुमारकमिश्रकैः ॥ ततोऽनिलघ्नैर्यूषकल्कस्नेहैर्निरूहयेत् । रसेन भोजितं यष्टितैलेनान्वासयेदनु । स्वेदप्रलेपा वातघ्नाः पक्वे भित्त्वा व्रणक्रियाः॥''इति ।

५ पित्तजनितवृद्धिचिकित्सितं वक्ति—पित्तजायामिति । ६ द्विव्रणीयोक्तकरञ्जादिसिद्धं रोपणमित्यर्थः । रोपणतैलं करञ्जश्च मिश्रकमभिसमीक्ष्य कल्पनीयमिति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पित्तग्रन्थिक्रमं कुर्य्यादामे पक्वे च सर्वदा ।
वृद्धिं[२] कफात्मिकामुष्णैर्मूत्रपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ १२ ॥
पीतदारुकषायं च पिबेन्मूत्रेण संयुतम् ।
विम्लापनाद्दते वाऽपि श्लेष्मग्रन्थिक्रमो हितः ॥ १३ ॥
पक्वायां च विभिन्नायां तैलं[३] शोधनमिष्यते ।
सुमनारुष्कराङ्कोठसप्तपर्णेषु साधितम् ॥ १४ ॥
मेदँ[४]:समुत्थां संस्वेद्य लेपयेत् सुरसादिना ।
शिरोविरेकैर्द्रव्यैर्[५]वा सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ १५ ॥
स्विन्नां चावेष्टच पट्टेन समाश्वास्य तु मानवम् ।
रक्षन् फले सेवनीं च वृद्धिपत्रेण दारयेत् ॥ १६ ॥
मेदस्ततः समुद्धृत्य दद्यात् कासीससैन्धवे ।
बध्नीयाच्च[६] यथोद्दिष्टं शुद्धे तैलं च दापयेत् ॥ १७ ॥
मनःशिलाललवणैः सिद्धमारुष्करेषु च ।
मूत्रँ[७]जां स्वेदयित्वा तु वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ १८ ॥
सेवन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद् व्रीहिमुखेन तु ।
अथात्र द्विमुखां नाडीं दत्त्वा विस्रावयेद्भिषक् ॥ १९ ॥
मूत्रं नाडीमथोद्धृत्य स्थगिकाबन्धमाचरेत् ।
शुद्धा[८]यां रोपणं दद्याद् वर्जयेदन्त्रहेतुकीम् ॥ २० ॥
अप्राप्तफलकोषायां वातवृद्धिक्रमो हितः ।

---

सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । १ पक्वे भेदनादिक्रिया पूर्ववदेव । तदुक्तमष्टाङ्गहृदये–"पित्तरक्तोद्भवे वृद्धावामपक्वे यथायथम् । शोफव्रणक्रियां कुर्यात् प्रततं च हरेदसृक् ॥" इति ।

२ कफजन्यवृद्धिचिकित्सामाह—**वृद्धिमिति** । ३ सुमनारुष्कराङ्कोठसप्तपर्णेषु साधितं तैलमिति सम्बन्धः । ४ मेदोजन्यवृद्धिचिकित्सामभिदधाति—**मेद इति** । ५ शिरोविरेकद्रव्यैः = शिरोविरेचनभेषजैः, तानि द्रव्याणि—पिप्पलीविडङ्गापामार्गशिरीषसिद्धार्थकादीनि संशोधनसंशमनीयाध्यायोक्तानि । ६ यथोद्दिष्टं = व्रणालेपनबन्धविध्यध्याध्योक्तं, गोफणया स्थगिकाबन्धेन वा बध्नीयादिति भावः ।

७ मूत्रजन्यवृद्धिचिकित्सां विवृणोति—**मूत्रजामिति** । ८ शुद्धायां = निर्मूत्र-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र या वङ्क्षणस्था तां दहेदर्द्धेन्दुवक्त्रया[1] ॥ २१ ॥
सम्यङ्मार्गावरोधार्थं कोशप्राप्तां तु वर्जयेत् ।
त्वचं भित्त्वाऽङ्गुष्ठमध्ये दहेच्चाङ्गविपर्य्ययात्[2] ॥ २२ ॥
अनेनैव विधानेन वृद्धौ वातकफात्मिके ।
प्रदहेत् प्रयतः किन्तु स्नायुच्छेदोऽधिकस्तयोः ॥ २३ ॥
शङ्खोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम्[3] ।
व्यत्यासाद्वा[4] सिरां विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्तये ॥ २४ ॥
उपदंशेषु[5] साध्येषु स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः ।
सिरां विध्येन्मेढ्रमध्ये पातयेद्वा[6] जलौकसः ॥ २५ ॥
हरेदुभयतश्चापि[7] दोषानत्यर्थमुच्छ्रितान् ।
सद्योऽपहृतदोषस्य रुक्शोफावुपशाम्यतः ॥ २६ ॥
यदि[8] वा दुर्बलो जन्तुर्न वा प्राप्तं विरेचनम् ।
निरूहेण हरेत् तस्य दोषानत्यर्थमुच्छ्रितान् ॥ २७ ॥
प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्ववर्षाभूकुष्ठदारुभिः ।
सरलागुरुरास्नाभिर्वातजं सम्प्रलेपयेत्[10] ॥ २८ ॥
निचुलैरण्डबीजानि यवगोधूमसक्तवः ।

---

त्वेन दोषरहितायामित्यर्थः । १ अर्धेन्दुवक्त्रया लौहशलाकयेत्यर्थः । २ वामान्त्रवृद्धौ दक्षिणाङ्गुष्ठमध्ये त्वङ्मात्रं छित्त्वा दहेत्, दक्षिणान्त्रवृद्धौ वामाङ्गुष्ठमध्ये त्वङ्मात्रं छित्त्वा दहेदिति 'अङ्गविपर्ययात्' इत्यस्याशयः । ३ सेवनीं शारीरस्थानोक्ताम्, तथा हि—"सप्त सेवन्यः—शिरसि विभक्ताः पञ्च, जिह्वाशेफसोरेकैका, ताः परिहर्तव्याः शस्त्रेण" इति । ४ व्यत्यासात्=वामदक्षिणान्त्रवृद्धिभेदेन अङ्गविपर्ययादित्यर्थः ।

## अथोपदंशचिकित्सा ।

५ तत्रोपदंशे सामान्यचिकित्साविधिमभिधत्ते—**उपदंशेष्विति** । ६ वापदेनात्र व्यवस्था बोध्या । अर्थाद् बहुदोषे सिरां विध्येत् अल्पदोषे तु जलौकां पातयेदिति । ७ उभयतः=वमनविरेचनाभ्याम् । बलवतो विषय एषः । ८ दुर्बलविषयं दर्शयति—**यदीति** । न वा प्राप्तं=न युक्तम् ।

९ वातजन्योपदंशचिकित्सां निर्दिशति—**प्रपौण्डरीकेति** । प्रपौण्डरीकं=शालपर्णीपत्रतुल्यच्छदम्, 'पुण्डरिया' इति ख्यातम् । वर्षाभूः='गदहपूना' इति । १० सर-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतैश्च वातजं स्निग्धैः सु[1]खोष्णैः सम्प्रलेपयेत् ॥ २९ ॥
प्र[2]पौण्डरीकपूर्वैश्च द्रव्यैः सेकः प्रशस्यते ।
गैरिका[3]ञ्जनयष्ट्याह्वसारिवोशीरपद्मकैः ॥ ३० ॥
सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पैत्तिकं सम्प्रलेपयेत् ।
पद्मोत्पलमृणालैश्च ससर्जार्जुनवेतसैः ॥ ३१ ॥
सापःस्निग्धैः समधुकैः पैत्तिकं सम्प्रलेपयेत् ।
सेचयेच्च घृतक्षीरशर्करेक्षुमधूदकैः ॥ ३२ ॥
अथवाऽपि सुशीतेन कषायेण वटादिना ।
[4]शालाश्वकर्णाजकर्णधवत्वग्भिः कफोत्थितम् ॥ ३३ ॥
सुरापिष्टाभिरुष्णाभिः सतैलाभिः प्रलेपयेत् ।
रज[5]न्यतिविषामुस्तासुरसासुरदारुभिः ॥ ३४ ॥
सपत्रपाठा [6]त्तूरैरथवा सम्प्रलेपयेत् ।
सुरसाऽऽरग्वधाद्योश्च क्वाथाभ्यां परिषेचयेत् ॥ ३५ ॥
एवं[7] संशोधनालेपसेकशोणितमोक्षणैः ।
प्रतिकुर्य्यात् क्रिया[8]योगैः प्राक्स्थानोक्तैर्हितैरपि ॥ ३६ ॥
नायाति च यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक् ।
विदग्धैस्तु सिरास्नायुत्वङ्मांसैः क्षीयते ध्व[9]जः ॥ ३७ ॥
शस्त्रेणोपचरेच्चापि पाकमागतमाशु वै ।
तदाऽपोह्य[10] तिलैः सर्पिःक्षौद्रयुक्तैः प्रलेपयेत् ॥ ३८ ॥
करवीरस्य [11]पत्राणि जात्यारग्वधयोस्तथा ।

---

ला=त्रिवृत् । १ सुखोष्णैः=ईषदुष्णैरित्यर्थः । २ प्रपौण्डरीकपूर्वैः=प्रपौण्डरीकादिभिः सप्तभिः । ३ पित्तजन्योपदंशचिकित्सितं ब्रवीति—**गैरिकेति** । अञ्जनं=रसाञ्जनम् ।

४ कफजन्योपदंशचिकित्सितमभिधत्ते—**शालेति** । शालाश्वकर्णौ शालभेदौ, अजकर्णः=गजहडः । ५ रजनी=हरिद्रा, अतिविषा='अतीस' इति ख्याता । ६ पत्तूरः=सिरवालिका । ७ उपदंशस्यामाद्यवस्थाभेदेन चिकित्सां दर्शयति—**एवमिति** । ८ मिश्रकाध्यायोक्तक्रियायोगैरित्यर्थः । ९ ध्वजः=मेढ्रः । १० अपोह्य=कुथितांशमुपहृत्य ११ पत्राणां कषाय इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रक्षालने प्रयोज्यानि वैजयन्त्यर्कयोरपि ॥ ३९ ॥
सौराष्ट्रीं[1] गैरिकं तुत्थं पुष्पकासीससैन्धवम् ।
रोध्रं रसाञ्जनं दार्वीं हरितालं मनःशिलाम् ॥ ४० ॥
हरेणुकैले च तथा सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
तच्चूर्णं क्षौद्रसंयुक्तमुपदंशेषु पूजितम् ॥ ४१ ॥
जम्ब्वाम्रसुमनानिम्बश्वेतकाम्बोजिपल्लवाः[2] ।
शल्लकीबदरीबिल्वपलाशतिनिशत्वचः ॥ ४२ ॥
क्षीरिणां[3] च त्वचो योज्याः क्वाथे त्रिफलया सह ।
तेन क्वाथेन नियतं व्रणं प्रक्षालयेद्भिषक् ॥ ४३ ॥
अस्मिन्नेव कषाये तु तैलं धीरो विपाचयेत् ।
गोजीविडङ्गयष्टीभिः सर्वगन्धैश्च[4] संयुतम् ॥ ४४ ॥
एतत् सर्वोपदंशेषु श्रेष्ठं रोपणमिष्यते ।
सर्जिकातुत्थकासीसं शैलेयं च रसाञ्जनम् ॥ ४५ ॥
मनःशिलासमैश्चूर्णं व्रणवीसर्पनाशनम् ।
गुन्द्रां[5] दग्ध्वा कृतं भस्म हरितालं मनःशिला ॥ ४६ ॥
उपदंशविसर्पाणामेतच्छान्तिकरं परम् ।
मार्कवं[6] त्रिफला दन्तो ताम्रचूर्णमयोरजः ॥ ४७ ॥
उपदंशं निहन्त्येष वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा ।
उपदंशद्वयेऽप्येतां प्रत्याख्यायाचरेत् क्रियाम्[7] ॥ ४८ ॥
तयोरेव च या योग्या वीक्ष्य दोषबलाबलम् ।
उपदंशे विशेषेण शृणु भूयस्त्रिदोषजे ॥ ४९ ॥
दुष्टव्रणविधिं कुर्य्यात् कुथितं मेहनं[8] त्यजेत् ।

---

१ सौराष्ट्री = 'फिटकिरी' इति ख्याता। २ पल्लवशब्दो जम्ब्वादिभिः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । ३ क्षीरिणां = वटाश्वत्थादीनाम् । ४ सर्वगन्धैः = चातुर्जातकादिभिरित्यर्थः । यथा—"चातुर्जातककर्पूरकक्कोलागुरुकुङ्कुमम् । लवङ्गसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥" इति । ५ गुन्द्रा = भद्रमुस्तकः । ६ मार्कवः = भृङ्गराजः ।

७ असाध्यत्वेनोपदिष्टयोरुपदंशद्वयोश्चिकित्सितं ब्रवीति—**उपदंशेति** । उपदंशद्वये = रक्तजसन्निपातजद्वये । ८ मेहनं लिङ्गं यावन्मात्रं कुथितं शटितं तावन्मात्रं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जम्ब्वोष्ठेनाग्निवर्णेन पश्चाच्छेषं दहेद्भिषक् ॥ ५० ॥
सम्यग्दग्धं च विज्ञाय मधुसर्पिः प्रयोजयेत् ।
शुद्धे च रोपणं दद्यात् कल्कं तैलं हितं च यत् ॥ ५१ ॥
स्नेहस्वेदोपपन्ने तु श्लीपदेऽनिलजे भिषक् ।
कृत्वा गुल्फोपरि सिरां विध्येत्तु चतुरङ्गुले ॥ ५२ ॥
समाप्यायितदेहं च बस्तिभिः समुपाचरेत् ।
मासमेरण्डजं तैलं पिबेन्मूत्रेण संयुतम् ॥ ५३ ॥
पयसौदनमश्नीयान्नागरक्वथितेन च ।
त्रै तं चोपयुञ्जीत शस्तो दाहस्तथाऽग्निना ॥ ५४ ॥
गुल्फस्याधः सिरां विध्येच्छ्लीपदे पित्तसम्भवे ।
पित्तघ्नीं च क्रियां कुर्यात् पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥ ५५ ॥
सिरां सुविदितां विध्येदङ्गुष्ठे श्लैष्मिके भिषक् ।
मधुयुक्तानि चाभीक्ष्णं कषायाणि पिबेन्नरः ॥ ५६ ॥
पिबेद्वाऽप्यभयाकल्कं मूत्रेणान्यतमेन च ।
कटुकाममृतां शुण्ठीं विडङ्गं दारु चित्रकम् ॥ ५७ ॥
हितं वा लेपने नित्यं भद्रदारु सचित्रकम् ।
विडङ्गमरिचार्केषु नागरे चित्रकेऽथवा ॥ ५८ ॥
भद्रदार्वेलुकाख्ये च सर्वेषु लवणेषु च ।
तैलं पक्वं पिबेद्वाऽपि यवान्नं च हितं सदा ॥ ५९ ॥

---

त्यजेत्, छिन्द्यादित्यर्थः । १ जम्ब्वोष्ठेन=कृष्णपाषाणरचितजम्बूफलसदृशशस्त्रेणेत्यर्थः ।

## अथ श्लीपदचिकित्सा ।

२ तत्र वातिकश्लीपदचिकित्सां निर्दिशति—स्नेहेति । ३ बस्तिभिः=निरूहबस्तिभिः । ४ त्रिभिरवयवैर्वृतं त्रैवृतं, स्नेहत्रितयमित्यर्थः । ५ पित्तजन्यश्लीपदचिकित्सामभिधत्ते—गुल्फस्येति । ६ श्लैष्मिकश्लीपदचिकित्सितमभिदधाति—सिरामिति । अङ्गुष्ठे क्षिप्राख्यमर्मण उपरि चतुरङ्गुले सुविदितां सिरां विध्येदित्यर्थः ।
७ अन्यतमेन मूत्रेण=अष्टसु मूत्रेषु एकतमेन । ८ एलुकाख्यः='एलुआ' इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिबेत् सर्षपतैलं वा श्लीपदानां निवृत्तये ।
पूतीकरञ्जपत्राणां[1] रसं वाऽपि यथाबलम् ॥ ६० ॥
अनेनैव विधानेन पुत्रञ्जीवकजं[2] रसम् ।
प्रयुञ्जीत भिषक् प्राज्ञः कालसात्म्यविभागवित् ॥ ६१ ॥
केवुकाकन्दनिर्यासं[3] लवणं त्वथ पाकिमम्[4] ।
रसं दत्त्वाऽथ [5]पूर्वोक्तं पेयमेतद्भिषग्जितम् ॥ ६२ ॥
काकादनीं काकजङ्घां बृहतीं कण्टकारिकाम् ।
कदम्बपुष्पीं[6] मन्दारीं लम्बां शुकनसां तथा ॥ ६३ ॥
दग्ध्वा मूत्रेण तद्भस्म स्रावयेत् क्षारकल्पवित् ।
तत्र दद्यात् प्रतीवापं काकोदुम्बरिकारसम् ॥ ६४ ॥
मदनाच्च फलात् काथं शुकाख्यास्वरसं तथा ॥
एष[7] क्षारस्तु पानीयः श्लीपदं हन्ति सेवितः ॥ ६५ ॥
अपचीं गलगण्डं च ग्रहणीदोषमेव च ।
भक्तस्यानशनं चैव हन्यात् सर्वविषाणि च ॥ ६६ ॥
[8]एष्वेव तैलं संसिद्धं नस्याभ्यङ्गेषु पूजितम् ।
एतानेवामयान् हन्ति ये च दुष्टव्रणा नृणाम् ॥ ६७ ॥
द्रवन्तीं त्रिवृतां दन्तीं [9]नीलीं श्यामां तथैव च ।
सप्तलां शङ्खिनीं चैव दग्ध्वा मूत्रेण गालयेत् ॥ ६८ ॥
दद्याच्च त्रिफलाक्काथमेष क्षारस्तु साधितः ।

---

१ पूतीकरञ्जः = कण्टकिकरञ्जः । २ पुत्रञ्जीवकः = 'जीयापोता' इति ख्यातः । ३ केवुका 'केमुआ' इति । ४ पाकिमं = विडाख्यं लवणम् । ५ पूर्वोक्तं पुत्रञ्जीवकीयम् । ६ कदम्बपुष्पी = मुण्डी, लम्बा = कटुतुम्बी ।

७ एषः = अनन्तरोक्तः क्षारः । क्षारपाकप्रकारस्तु षड्गुणेन गोमूत्रेण एकविंशतिवारान् काकादन्यादीनां क्षारं स्रावयेत् । तत्र काकोदुम्बरिकारसं मदनफलक्काथं शुकनासास्वरसं च प्रत्येकं गोमूत्रेण समम्, अपरेषां पादैकं प्रक्षिप्य क्षारकल्पक्रमेण विपाच्य इति । ८ एषु = काकादन्यादिषु । ९ नीलीं = श्रीफलम् ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधो गच्छति पीतस्तु [1]पूर्वैश्चाप्याशिषः समाः ॥ ६९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने वृद्धचुपदंशश्लीपदचिकित्सितं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

---

## विंशतितमोऽध्यायः ।

अथ[2]तः क्षुद्ररोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

[3]तत्राजगल्लिकामामां जलौकोभिरुपाचरेत् ।

शुक्तिश्रुघ्नी[4] यवक्षारकल्कैश्चालेपयेद्भिषक् ॥ ३ ॥

श्यामालाङ्गलकीपाठाकल्कैर्वाऽपि विचक्षणः ।

पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥ ४ ॥

अन्धा[5]लजीं यवप्रख्यां पनसीं कच्छपीं तथा ।

पाषाणगर्दभं चैव पूर्वं स्वेदेन योजयेत् ॥ ५ ॥

मनःशिलातालकुष्ठदारुकल्कैः प्रलेपयेत् ।

परिपाकगतान् भित्त्वा[6] व्रणवत् समुपाचरेत् ॥ ६ ॥

विवृता[7]मिन्द्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्द्दभम् ।

---

१ पूर्वैः = पूर्वक्षारयोगैरित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकोनविंशोऽध्यायः ।

---

### विंशतितमोऽध्यायः ।

२ निदानस्थानक्रमागतं क्षुद्ररोगाणां चिकित्सितं विवृणोति—**अथात इति** । ३ अजगल्लिकायाश्चिकित्सां वक्ति—**तत्रेति** । ४ श्रुघ्नी = स्वर्जिकाक्षारः । भावप्रकाशे—"शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः" इति पठ्यते । अत्र प्राग् आलेपस्योपक्रमः, पश्चाज्जलौकोभिरिति ध्येयम् ।

५ अन्धालजी-यवप्रख्या-पनसी-कच्छपी-पाषाणगर्दभानां चिकित्सितमभिधत्ते—**अन्धेति** । ६ भित्त्वा = शस्त्रेण विदार्य्य । ७ विवृतेन्द्रवृद्धा-गर्दभी-जालगर्दभेरिवेल्ला-गन्धनाग्नी-कक्षाणां चिकित्सां ब्रवीति—**विवृतामिति** । अस्या भावप्रका-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]इरिवेल्लां गन्धनाम्नीं कक्षां विस्फोटकांस्तथा ॥ ७ ॥
पित्तजस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्भिषक् ।
रोपयेत् सर्पिषा पक्वान् सिद्धेन मधुरौषधैः ॥ ८ ॥
चिप्पं[3]मुष्णाम्बुना सिक्तमुत्कृत्य[4] स्रावयेद्भिषक् ।
[5]चक्रतैलेन चाभ्यज्य सर्जचूर्णेन चूर्णयेत् ॥ ९ ॥
बन्धेनोपचरेच्चैनमशक्यं चाग्निना दहेत् ।
मधुरौषधसिद्धेन ततस्तैलेन रोपयेत् ॥ १० ॥
कुनखे विधिरप्येष[6] कार्यो हि भिषजा भवेत् ।
उपाचरेदनुशयीं श्लेष्मविद्रधिवद्भिषक् ॥ ११ ॥
विदारिकां सम[7]भ्यज्य स्विन्नां विम्लाप्य लेपयेत् ।
नग[8]वृत्तिकवर्षाभूबिल्वमूलैः सुपेषितैः ॥ १२ ॥
व्रणभावगतायां वा कृत्वा संशोधनक्रियाम् ।
रोपणार्थं[9] हितं तैलं कषायमधुरैः[10] श्रृतम् ॥ १३ ॥
प्रच्छानैर्वा जलौकोभिः स्राव्याऽपक्का विदारिका ।
अजकर्णैः सपालाशमूलकल्कैः प्रलेपयेत् ॥ १४ ॥

---

शे लक्षणम्—"मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिडकाचितम्। रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद् वातपित्तजाम् ॥" इति ।

१ "पिडकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुपरुजां ज्वराम्। सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥" इति तल्लक्षणम्। गन्धनाम्न्या लक्षणं तु—"एकां तु तादृशीं दृष्ट्वा पिडकां स्फोटसन्निभाम् । त्वग्जातां पित्तकोपेन गन्धनाम्नीं प्रचक्षते ॥" इति । तादृशीं कक्षासदृशीं बाह्वादिषु कृष्णां सवेदनाञ्चेति तदर्थः । गर्दभिकेरिवेल्लिकयोर्विवृतायां गन्धनाम्न्याश्च कक्षायां यथाकथञ्चिदन्तर्भावो भविष्यतीति भगवता सुश्रुतेन निदानस्थानेऽनुपदिष्टा अपि एतास्तिस्रः अत्र प्रकरणे चिकित्सासंशयनिवारणाय नाममात्रेणोपदिष्टा इति विभावनीयम्। २ मधुरौषधैः=काकोल्यादिभिः ।

३ चिप्पस्य चिकित्सामाह—**चिप्पमिति** । ४ उत्कृत्य=शस्त्रेण दुष्टमांसं दूरीकृत्येत्यर्थः । ५ चक्रेण पीडितं तैलं चक्रतैलं तेन । ६ एष विधिः=चिप्पोक्तविधानमित्यर्थः । विदारिकायाश्चिकित्सां दर्शयति—**विदारिकामिति** । ७ समभ्यज्य=संस्वेद्य । ८ नगवृत्तिकः='जीयाल-जीअल' इति लोके । ९ कषायो न्यग्रोधादिपठितः,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्वां विदार्य्य शस्त्रेण पटोलपिचुमर्दयोः[1]।
कल्केन तिलयुक्तेन सर्पिर्मिश्रेण लेपयेत् ॥ १५ ॥
बद्ध्वा च क्षीरवृक्षस्य[2] कषायैः खदिरस्य च।
व्रणं प्रक्षालयेच्छुद्धास्ततस्ता रोपयेत् पुनः ॥ १६ ॥
[3]मेदोऽर्बुदविधानेन साधयेच्छर्करार्बुदम्।
कच्छूं[4] विचर्चिकां पामां कुष्ठवत् समुपाचरेत् ॥ १७ ॥
लेपश्च शस्यते सिक्थशताह्वागौरसर्षपैः[5]।
वचादार्वीसर्षपैर्वा तैलं वा नक्तमालजम् ॥ १८ ॥
सारतैलमथाभ्यङ्गे[6] कुर्वीत कटुकैः[7] श्रृतम्।
पादैदार्य्या[8] सिरां विद्ध्वा स्वेदाभ्यङ्गौ प्रयोजयेत् ॥ १९ ॥
मधूच्छिष्टवसामज्जसर्जचूर्णघृतैः कृतः।
यवाद्यगैरिकोन्मिश्रैः पादलेपः प्रशस्यते ॥ २० ॥
पादौ सिक्त्वाऽऽरनालेन लेपनं ह्यलसे[9] हितम्।
कल्कीकृतैर्निम्बतिलकासीसालैः[10] ससैन्धवैः ॥ २१ ॥
लाक्षारसोऽभया वाऽपि कार्यं स्याद्रक्तमोक्षणम्।
सिद्धं रसे कण्टकार्य्यास्तैलं वा सार्षपं हितम् ॥ २२ ॥
कासीसरोचनशिलाचूर्णैर्वा [11]प्रतिसारणम्।
उत्कृत्य[12] दग्ध्वा स्नेहेन जयेत् कदरसंज्ञकम् ॥ २३ ॥

---

मधुरः काकोल्यादिः। १ पिचुमर्दः=निम्बः। २ क्षीरवृक्षस्य=न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थादिवृक्षस्य।

३ शर्कराबुंदस्य चिकित्सामाह—मेद इति। ४ रकसा-विचर्चिका-पामानां चिकित्सां वक्ति-कच्छूरिति। कच्छूं=रकसाम्। ५ सिक्थं=मधूच्छिष्टम्, 'मोम' इति भाषायाम्। 'सिक्थं नीव्यां मधूच्छिष्टे' इति हेमचन्द्रः। ६ सारतैलं=शिंशपाऽगुरुसरलदेवदार्वादिसिद्धतैलम् कटुकैः=कटुकौषधिभिः पिप्पल्यादिभिः। ७ पाददारिकायाश्चिकित्सामाह—पादेति। प्राक् स्नेहस्वेदौ पश्चात् सिरावेधनम्। ८ मधूच्छिष्टं='मोम' इति ख्यातम्।

९ अलसचिकित्सां वक्ति—पादाविति। १० कासीसः='कसीस' इति, आलं=हरितालम्। ११ प्रतिसारणं=घर्षणमित्यर्थः। १२ कदरचिकित्सां ब्रवीति—उत्कृ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रलुप्ते सिरां मूर्ध्नि स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत्।
कल्कैः समरिचैर्दिह्याच्छिलाकासीसतुत्थकैः ॥ २४ ॥
कुटन्नटादारुकल्कैर्लेपनं वा प्रशस्यते।
प्रच्छयित्वाऽवगाढं वा गुञ्जाकल्कैर्मुहुर्मुहुः ॥ २५ ॥
लेपयेदुपशान्त्यथ कुर्य्याद्वाऽपि रसायनम्।
मालतीकरवीराग्निनक्तमालविपाचितम् ॥ २६ ॥
तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापहं परम्।
अरूंषिकां हृते रक्ते सेचयेन्निम्बवारिणा ॥ २७ ॥
दिह्यात् सैन्धवयुक्तेन वाजिविष्ठारसेन तु।
हरितालनिशानिम्बकल्कैर्वा सपटोलजैः ॥ २८ ॥
यष्टीनीलोत्पलैरण्डमार्कवैर्वा प्रलेपयेत्।
सिरां दारुणकेविद्ध्वा स्निग्धस्विन्नस्य मूर्द्धनि ॥ २९ ॥
अवपीडं शिरोबस्तिमभ्यङ्गं च प्रयोजयेत्।
क्षालने कोद्रवतृणक्षारतोयं प्रशस्यते ॥ ३० ॥
उपरिष्टात् प्रवक्ष्यामि विधिं पलितनाशनम्।
मसूरिकायां कुष्ठघ्नलेपनादिक्रिया हिता ॥ ३१ ॥

---

त्येति। उत्कृत्य=शस्त्रेणावलिख्य, स्नेहेन=अग्नितप्ततैलेनेत्यर्थः। "दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा" इति भावमिश्रः।

१ इन्द्रलुप्तचिकित्सितं निर्दिशति—**इन्द्रलुप्त इति**। २ कुटन्नटः=तगरः। ३ रसायनम्=अष्टादश दिव्यौषधयः। ४ अभ्यञ्जने=शिरोऽभ्यञ्जने। तत्तैलं जातीकरवीरचित्रककरञ्जकल्पसिद्धेन स्नेहपाककल्पपरिभाषया गोमूत्रचतुर्गुणेन कार्यम्।

५ अरूंषिकायाश्चिकित्सितं प्रतिपादयति—**अरूंषिकामिति**। ६ वाजिविष्ठारसेन=अश्वपुरीषरसेनेत्यर्थः। ७ निशा=हरिद्रा। ८ मार्कवः=भृङ्गराजः। ९ दारुणकचिकित्सामभिदधाति—**सिरामिति**। १० पलितचिकित्सामाह—**उपेति**। उपरिष्टात्=पञ्चविंशतितमे मिश्रकचिकित्सिते। ११ मसूरिकायाश्चिकित्सां दर्शयति—**मसूरिकायामिति**। तत्र कुष्ठनाशकलेपनम्, आदिशब्देन उद्वर्तनं घृतं च बोध्यम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पित्तश्लेष्मविसर्पोक्ता क्रिया वा सम्प्रशस्यते ।
जतूमणिं[1] समुत्कृत्य मषकं तिलकालकम् ॥ ३२ ॥
क्षारेण प्रदहेद् युक्त्या वह्निना वा शनैः शनैः ।
न्यच्छे[2] व्यङ्गे सिरामोक्षो नीलिकायां च शस्यते ॥ ३३ ॥
यथान्यायं यथाभ्यासं लालाट्यादिसिराव्यधः ।
घृष्ट्वा[3] दिह्यात् त्वचं पिष्ट्वा क्षीरिणां[4] क्षीरसंयुताम् ॥ ३४ ॥
बलाऽतिबलयष्ट्याह्व[5] रजनीर्वा प्रलेपनम् ।
पयस्या[6]ऽगुरुकालीयलेपनं वा सगैरिकम् ॥ ३५ ॥
क्षौद्राज्ययुक्तया लिम्पेद् दंष्ट्रया शूकरस्य च ।
कपित्थराजादन[7]योः कल्कं वा हितमुच्यते ॥ ३६ ॥
यौवने[8] पिडकास्वेष विशेषाच्छर्दनं हितम् ।
लेपनं च वचारोध्रसैन्धवैः सर्षपान्वितैः ॥ ३७ ॥
कुस्तुम्बुरु[9]वचालोध्रकुष्ठैर्वा लेपनं हितम् ।
पद्मिनीकण्टके[10] रोगे छर्दयेन्निम्बवारिणा ॥ ३८ ॥
तेनैव सिद्धं सक्षौद्रं सर्पिःपानं प्रदापयेत् ।
निम्बारग्वधयोः कल्को हित उत्सादने[11] भवेत् ॥ ३९ ॥
परिवृत्तिं[12] घृताभ्यक्तां सुस्विन्नामुपनाहयेत्[13] ।
ततोऽभ्यज्य[14] शनैश्चर्म चानयेत पीडयेन्मणिम्[15] ॥ ४० ॥

---

१ जतुमणि-मशक-तिलकालकानां चिकित्सां वक्ति-जत्विति। समुत्कृत्य=शस्त्रेण सम्यगवलिख्य। २ न्यच्छ-व्यङ्ग-नीलिकानां चिकित्सितमाचष्टे—न्यच्छ इति। नीलिका व्यङ्गभेदः, तथा हि— 'कृष्णमेवं पुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः" इति। ३ घृष्ट्वा=समुद्रफेनादिकं घृष्ट्वेत्यर्थः। ४ क्षीरिणां=न्यग्रोधादिक्षीरवृक्षाणाम्। ५ रजनी=हरिद्रा। ६ पयस्या=अर्कपुष्पी,...कालीयम्=अगरचन्दनम्। ७ राजादनं=प्रियालः।

८ यौवनपिडकायाश्चिकित्सामभिदधाति—यौवन इति। एषः=अनन्तरोक्तलेपसमूहः, छर्दनं=वमनम्। ९ कुस्तुम्बुरु='धनिया' इति। १० पद्मिनीकण्टकचिकित्सामाह—पद्मिनीति। ११ उत्सादने=उद्वर्तने। १२ परिवृत्तिचिकित्सामाख्याति—परिवृत्तिमिति। १३ उपनाहयेत्=बध्नीयात्। १४ सर्पिषाऽभ्यज्येत्यर्थः। १५ मणिं=मेढ्राग्रम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रविष्टे च मणौ चर्म स्वेदयेदुपनाहनैः ।
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा वातघ्नैः शालवणादिभिः ॥ ४१ ॥
दद्याद्वातहरान् बस्तीन् स्निग्धान्यन्नानि भोजयेत् ।
वपाटिकां[1] जयेदेवं यथादोषं चिकित्सकः ॥ ४२ ॥
निरुद्धप्रकशे[2] नाडीं लौहीमुभयतोमुखीम् ।
दारवीं[3] वा जतुकृतां घृताभ्यक्तां प्रवेशयेत् ॥ ४३ ॥
परिषेके वसामज्जशिशुमारवराहयोः ।
चक्रतैलं तथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम् ॥ ४४ ॥
त्र्यहात् त्र्यहात् स्थूलतरां सम्यङ् नाडीं प्रवेशयेत् ।
स्रोतो विवर्द्धयेदेवं स्निग्धमन्नं च भोजयेत् ॥ ४५ ॥
भित्त्वा वा सेवनीं मुक्त्वा सद्यःक्षतवदाचरेत् ।
सन्निरुद्धगुदं[4] रोगं वल्मीकं वह्निरोहिणीम् ॥ ४६ ॥
प्रत्याख्याय[5] यथायोगं चिकित्सितमथाचरेत् ।
विसर्पोक्तेन विधिना साधयेदग्निरोहिणीम् ॥ ४७ ॥
सन्निरुद्धगुदे योज्या निरुद्धप्रकशक्रिया ।
शस्त्रेणोत्कृत्य[6] वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् ॥ ४८ ॥
विधानेनार्बुदोक्तेन शोधयित्वा च रोपयेत् ।
वल्मीकं[7] तु भवेद्यस्य नातिवृद्धममर्मजम् ॥ ४९ ॥
तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ।
कुलत्थिकाया मूलैश्च गुडूच्या लवणेन च ॥ ५० ॥
आरेवतस्य[8] मूलैश्च दन्तीमूलैस्तथैव च ।

---

१ अवपाटिकायाश्चिकित्सां प्रतिपादयति—**वपाटिकामिति** । 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' इत्यकारलोपः । २ निरुद्धप्रकशचिकित्सितं ब्रवीति—**निरुद्धेति** । ३ दारवी=काष्ठमयीम्, जतुकृतां=लाक्षाकृताम् । ४ सन्निरुद्धगुद-वल्मीकाग्निरोहिणीचिकित्सितमाख्याति—**सन्निरुद्धेति** । ५ प्रत्याख्याय=असाध्योऽयं व्याधिरिति निराकृत्य, "यावदुच्छ्वसिति प्राणी तावत् कार्या प्रतिक्रिया । कदापि दैवयोगेन दृष्टारिष्टोऽपि जीवति ॥' इत्यादिकञ्चोपदिश्येत्यर्थः । ६ उत्कृत्य=अवलिख्य ।
७ वल्मीकस्य विशेषचिकित्सां निर्दिशति—**वल्मीकमिति** । ८ आरेवतस्य=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामामूलैः[1] सपललैः[2] शक्तुमिश्रैः प्रलेपयेत् ॥ ५१ ॥
सुस्निग्धैश्च सुखोष्णैश्च[3] भिषक् तमुपनाहयेत् ।
पक्वं वा तद्विजानीयात् गतीः सर्वा यथाक्रमम् ॥ ५२ ॥
अभिज्ञाय ततश्छित्त्वा प्रदहेन्मतिमान् भिषक् ।
संशोध्य दुष्टमांसानि क्षारेण प्रतिसारयेत्[4] ॥ ५३ ॥
व्रणं विशुद्धं विज्ञाय रोपयेन्मतिमान् भिषक् ।
सुमनाः[5] ग्रन्थयश्चैव भल्लातकमनःशिले ॥ ५४ ॥
कालानुसारी[6] सूक्ष्मैला चन्दनागुरुणी तथा ।
एतैः सिद्धं निम्बतैलं वल्मीके रोपणं हितम् ॥ ५५ ॥
पाणिपादोपरिष्टात्तु छिद्रैर्बहुभिरावृतम् ।
वल्मीकं यत् सशोफं स्याद्वर्ज्यं[8] तत्तु विजानता ॥ ५६ ॥
धात्र्याः[7] स्तन्यं शोधयित्वा बाले साध्याऽहिपूतना ।
पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् ॥ ५७ ॥
पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रामप्यहिपूतनाम् ।
त्रिफलाकोलखदिरकषायं व्रणरोपणम् ॥ ५८ ॥
कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः ।
लेपोऽम्लपिष्टो बदरीत्वग्वा सैन्धवसंयुता ॥ ५९ ॥
कपालतुत्थजं चूर्णं[9] चूर्णकाले प्रयोजयेत् ।
चिकित्सेन्मुष्ककच्छूं चाप्यहिपूतनपामवत्[10] ॥ ६० ॥
गुदभ्रंशे[11] गुदं स्विन्नं स्नेहाभ्यक्तं प्रवेशयेत् ।

---

आरग्वधस्य । १ श्यामामूलैः=त्रिवृन्मूलैः, सपललैः—पललं तिलपिष्टिस्तत्सहितैरित्यर्थः । २ सुखोष्णैः=ईषदुष्णैः । उपनाहयेत्=पाचयेत् । ३ प्रतिसारयेत्=घर्षयेत् । ४ सुमना='चमेली' इति प्रथिता, ग्रन्थिः='पिपरामूल' इति ख्याता । ५ कालानुसारी=कृष्णसारिवा । ६ असाध्यत्वेन वर्ज्यमित्यर्थः ।

७ अहिपूतनायाश्चिकित्सामाख्याति—धात्र्या इति । स्तन्यं=दुग्धम् । ८ कपालं=पक्वघटादिखण्डः । ९ वृषणकच्छूचिकित्सितमतिदिशति—चिकित्सेदिति । पामवदित्यत्र नान्तः पामन्शब्दोऽवगन्तव्यः । 'पाम पामा विचर्चिका' इत्यमरः . १० गुद-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्येद्गोफणाबन्धं मध्यच्छिद्रेण चर्मणा ॥ ६१ ॥
विनिर्गमार्थं वायोश्च स्वेदयेच्च मुहुर्मुहुः ।
क्षीरे मत्पञ्चमूलं मूषिकां चान्त्रवर्जिताम् ॥ ६२ ॥
पक्त्वा तस्मिन् पचेत्तैलं वातघ्नौषधसंयुतम् ।
गुदभ्रंशमिदं कृच्छ्रं पानाभ्यङ्गात् प्रसाधयेत् ॥ ६३ ॥

इतिसुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने क्षुद्ररोगचिकित्सितं नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

---

## एकविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः शूकरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
संलिख्य सर्षपीं सम्यक् कषायैरवचूर्णयेत् ।
कषायेष्वेव तैलं च कुर्वीत व्रणरोपणम् ॥ ३ ॥

---

भ्रंशचिकित्सितमभिधत्ते--गुदभ्रंश इति । १ गोफणाबन्धं=कौपीनबन्धम् । २ वायोः = अधोवायोरित्यर्थः ।

३ बिल्वाग्निमन्थटिण्टुकपाटलाः काश्मर्यश्चेति महत्पञ्चमूलमित्यथः । मूषिकां निर्गतान्त्रां कृत्वा महत्पञ्चमूलस्य प्रस्थं क्षीरप्रस्थे त्रिगुणितजले विपचेत् । क्षीरप्रस्थेऽवशिष्टे तैलकुडवं दत्त्वा भद्रदार्वादिकल्कपाकं कृत्वा यथाबलं पानाभ्यङ्गाभ्यां गुदभ्रंशं साधयेदिति डल्हणः ।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां विंशतितमोऽध्यायः ।

---

### एकविंशतितमोऽध्यायः ।

४ क्रमोपस्थितं शूकरोगचिकित्सितं विवृणोति--अथात इति । निदानस्थाने शूकदोषनिदानमित्युक्तम्, अत्र तु शूकरोगचिकित्सितमित्युच्यते । तत्र "दोषा ह्यपि रोगशब्दं लभन्ते" इति चरकस्मरणान्न दोषरोगशब्दयोर्भेदशङ्काकलङ्कलेशोऽपीत्यवगन्तव्यम् ।

५ सर्षपिकाचिकित्सां ब्रवीति—संलिख्येति । कषायैः = मिश्रकोक्तकषायद्रव्य-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]अष्ठीलिकां जलौकोभिर्ग्राहयेत् कुशलो भिषक् ।
तथा चानुपशाम्यन्तीं कफग्रन्थिवदुद्धरेत् ॥ ४ ॥
स्वेदयेद् ग्रथितं शश्वन्नाडीस्वेदेन बुद्धिमान् ।
सुखोष्णैरुपनाहैश्च [3]सुस्निग्धैरुपनाहयेत् ॥ ५ ॥
[4]कुम्भीकां पाकमापन्नां भिन्द्याच्छुद्धां तु रोपयेत् ।
तैलेन त्रिफलालोध्रतिन्दुकाम्रातकेन तु ॥ ६ ॥
[5]ग्राहयित्वा जलौकोभिरलजीं सेचयेत्ततः ।
[6]कषायैस्तेषु सिद्धं च तैलं रोपणमिष्यते ॥ ७ ॥
[7]बलातैलेन कोष्णेन मृदितं परिषेचयेत् ।
[8]मधुरैः सर्पिषा स्निग्धैः सुखोष्णैरुपनाहयेत ॥ ८ ॥
[9]सम्मूढपिडकां क्षिप्रं जलौकोभिरुपाचरेत् ।
भित्त्वा [10]पर्य्यागतां चापि लेपयेत् क्षौद्रसर्पिषा ॥ ९ ॥
अवमन्थे[11] गते पाकं भिन्ने तैलं विधीयते ।
धवाश्वकर्णपत्तङ्गस[12]ल्लकीतिन्दुकीकृतम् ॥ १० ॥
क्रियां[13] पुष्करिकायां तु शीतां सर्वां प्रयोजयेत् ।
जलौकोभिर्हरेच्चासृक् सर्पिषा चावसेचयेत् ॥ ११ ॥
स्पर्शहान्यां[14] हरेद्रक्तं प्रदिह्यान्मधुरैरपि ।
क्षीरेक्षुरससर्पिर्भिः सेचयेच्च सुशीतलैः ॥ १२ ॥

---

चूर्णैरित्यर्थः । १ अष्ठीलिकाचिकित्सामाख्याति--अष्ठीलिकामिति । २ ग्रथितचिकित्सितमाह--स्वेदयेदिति । शश्वत्=प्रत्यहम् । ३ सुस्निग्धैरुपनाहैरिति सम्बन्धः । ४ कुम्भीकाचिकित्सां वक्ति--कुम्भीकामिति । ५ अलजीचिकित्सितमभिधत्ते--ग्राहयित्वेति । ६ कषायैः=प्लक्षादिकषायवृक्षकषायैरित्यर्थः । ७ मृदितचिकित्सां ब्रवीति--बलेति । मूढगर्भोक्तेन बलातैलेनेत्यर्थः । ८ काकोल्यादिमधुरद्रव्यैरित्यर्थः ।

९ सम्मूढपिडकाचिकित्सामभिदधाति—सम्मूढेति । १० पर्यागतां=पक्वामित्यर्थः । ११ अवमन्थचिकित्सामभिधत्ते--अवमन्थ इति । १२ सल्लकी=कुन्दुरुकी, 'सलई' इति ख्याता । 'महेरणा कुन्दुरुकी सल्लकी ह्लादनीति च' इत्यमरः । १३ पुष्करिकाचिकित्सां निर्दिशति—क्रियामिति । १४ स्पर्शहानिचिकित्सितं दर्श-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिडकामुत्तमाख्यां च बडिशेनोद्धरेद्भिषक् ।
उद्धृत्य मधुसंयुक्तैः कषायैरवचूर्णयेत् ॥ १३ ॥
रसक्रिया विधातव्या लिखिते शतपोनके ।
पृथक्पर्ण्यादिसिद्धं च देयं तैलमनन्तरम् ॥ १४ ॥
क्रियां कुर्य्याद्भिषक् प्राज्ञस्त्वक्पाकस्य विसर्पवत् ।
रक्तविद्रधिवच्चापि क्रिया शोणितजेऽर्बुदे ॥ १५ ॥
कषायकल्कसर्पींषि तैलं चूर्णं रसक्रियाम् ।
शोधनं रोपणं चैव वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥ १६ ॥
यथास्वं सर्पिषः पानं पथ्यं चापि विरेचनम् ।
हितः शोणितमोक्षश्च यच्चापि लघु भोजनम् ॥ १७ ॥
अर्बुदं मांसपाकं च विद्रधिं तिलकालकम् ।
प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक् सम्यक् प्रतिक्रियाम् ॥ १८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने शूकरोगचिकित्सितं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

---

यति—स्पर्शेति । १ उत्तमाख्यांश्चिकित्सामाचष्टे—पिडकामिति । बडिशेन=बडिशयन्त्रेणेत्यर्थः । २ कषायैः=चूर्णैरित्यर्थः । ३ शतपोनकचिकित्सितमाह—रसक्रियेति । फाणिताकृती रसक्रिया । ४ पृथक्पर्ण्यादिभिर्मिश्रकोक्तरोपणघृतपठितैः काकोल्यादिवर्जितैः सिद्धम् ।

५ त्वक्पाकचिकित्सामाह—क्रियामिति । ६ शोणितार्बुदचिकित्सां वक्ति—रक्तेति । ७ शूकरोगेषु कर्तव्यकर्मोपदिशति—कषायेति । ८ असाध्यानाम् अर्बुद-मांसपाक-विद्रधि-तिलकालकानां प्रतिक्रियां निर्दिशति—अर्बुदामिति । ९ मांसपाके तिलकालके च दुष्टव्रणवत्, शेषयोस्तु विद्रध्यर्बुदवच्चिकित्सा कर्तव्येति निष्कर्षः ।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकविंशतितमोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो मुखरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

चतुर्विधेन[1] स्नेहेन मधूच्छिष्टयुतेन च ।
वातजेऽभ्यञ्जनं कुर्यान्नाडीस्वेदं च बुद्धिमान् ॥ ३ ॥
विदध्यादोष्ठकोपे तु शाल्वणं चोपनाहने ।
मस्तिष्के[2] चैव नस्ये च तैलं वातहरं हितम् ॥ ४ ॥
श्रीवेष्टकं सजरसं सुरदारु सगुग्गुलु ।
यष्टीमधुकचूर्णं तु विदध्यात प्रतिसारणम्[3] ॥ ५ ॥
पित्तरक्ताभिघातोत्थं जलौकोभिरुपाचरेत् ।
पित्तविद्रधिवच्चापि क्रियां[4] कुर्यादशेषतः ॥ ६ ॥
शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवल एव च ।
हृते रक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके ॥ ७ ॥
त्र्यूषणं[5] स्वर्जिकाक्षारो यवक्षारो विडं तथा ।
क्षौद्रयुक्तं विधातव्यमेतच्च प्रतिसारणम् ॥ ८ ॥
मेदोजे[6] स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनो हितः ।
प्रियङ्गुत्रिफलालोध्रं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥ ९ ॥
एतदोष्ठप्रकोपानां साध्यानां कर्म कीर्त्तितम् ।

---

द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

१ वातिकौष्ठप्रकोपचिकित्सितमाख्याति–चतुर्विधेनेति । चतुर्विधेन = चतुःप्रकारेण । स्नेहस्य चातुर्विध्यमुक्तम्–"स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा । मज्जा च" इति । मधूच्छिष्टयुतेन = सिक्थकमिश्रेणेत्यर्थः । मधूच्छिष्टं 'मोम' इति ख्यातम् । २ मस्तिष्के = मस्तिष्कहिते शिरस्तर्पणे इत्यर्थः । ३ प्रतिसारणं = घर्षणम् ।

४ पैत्तिकौष्ठप्रकोपचिकित्सां प्रतिपादयति—पित्तेति । ५ संशोधनसंशमनरूपां बाह्यामाभ्यन्तरीं च क्रियामित्यर्थः । ६ श्लैष्मिकौष्ठप्रकोपचिकित्सां वक्ति—शिर इति । ७ त्र्यूषणं = त्रिकटुकम् , स्वर्जिकाक्षारः = 'सज्जीखार' इति, यवक्षारः = 'जवाखार' इति । ८ मेदोजन्यौष्ठप्रकोपचिकित्सामभिदधाति—मेदोज इति । स्वेदिते = अस्नेहपूर्वं स्वेदनं कृते, भिन्ने = शस्त्रेण विदारिते इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दन्तमूलगतानां तु रोगाणां कर्म वक्ष्यते ॥ १० ॥
शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान् ।
निःक्काथ्य त्रिफलामुस्तं गण्डूषः सरसाञ्जनः ॥ ११ ॥
प्रियङ्गवश्च मुस्तं च त्रिफला च प्रलेपनम् ।
नस्यं च त्रिफलासिद्धं मधुकोत्पलपद्मकैः ॥ १२ ॥
दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् ।
सपञ्चलवणः क्षारः सक्षौद्रः प्रतिसारणम् ॥ १३ ॥
हितः शिरोविरेकश्च नस्यं स्निग्धं च भोजनम् ।
विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणांस्तु प्रतिसारयेत् ॥ १४ ॥
रोध्रपत्तङ्गयष्ट्याह्वलाक्षाचूर्णैर्मधूत्तरैः ।
गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः ॥ १५ ॥
काकोल्यादौ दशक्षीरसिद्धं सर्पिश्च नस्यतः ।
शौषिरे हृतरक्ते तु रोध्रमुस्तरसाञ्जनैः ॥ १६ ॥
सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः ।
सारिवोत्पलयष्ट्याह्वसावरागुरुचन्दनैः ॥ १७ ॥
क्षीरे दशगुणे सिद्धं सर्पिर्नस्ये च पूजितम् ।
क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः ॥ १८ ॥
संशोध्योभयतः कार्यं शिरश्चोपकुशे तथा ।
काकोदुम्बरिकागोजीपत्रैर्विस्रावयेदसृक् ॥ १९ ॥
क्षौद्रयुक्तैश्च लवणैः सव्योषैः प्रतिसारयेत् ।

---

१ दन्तमूलगतरोगेषु प्राक् शीतादचिकित्सां निर्दिशति—शीताद इति । २ नागरं=शुण्ठी । ३ दन्तपुप्पुटकचिकित्सामाह—नस्यञ्चेति । मधुकोत्पलपद्मकत्रिफलासिद्धं सर्पिर्नस्ये देयमित्यर्थः । ४ दन्तवेष्टकचिकित्सामाचष्टे—विस्रावित इति । ५ पत्तङ्गं=रक्तचन्दनम्, मधूत्तरैः=मधुप्रधानैः । ६ क्षीरिणः=न्यग्रोधोदुम्बरादिक्षीरिवृक्षकाथा इत्यर्थः ।
७ शौषिरचिकित्सां निर्दिशति—शौषिर इति । ८ सावरः=रोध्रः । ९ परिदरचिकित्सामाचष्टे—क्रियामिति । १० उपकुशचिकित्सितमभिधत्ते—संशो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिप्पलीः सषपांश्चैव नागरं नैचुलं[1] फलम् ॥ २० ॥
सुखोदकेन संसृष्टं कवलं चापि धारयेत् ।
घृतं मधुरकैः[2] सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ २१ ॥
शस्त्रेण[3] दन्तवैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत् ।
ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ २२ ॥
उद्धृत्य[4]धिकदन्तं तु ततोऽग्निमवचारयेत् ।
कृमिदन्तकवच्चापि विधिः कार्यो विजानता ॥ २३ ॥
छित्त्वा[5]ऽधिमांसं सक्षौद्रैरेभिश्चूर्णैरुपाचरेत् ।
वचातेजोवती[6]पाठासर्जिकायावशूकजैः ॥ २४ ॥
क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवलश्चात्र कीर्त्तितः ।
पटोलत्रिफलानिम्बकषायश्चात्र धावने ।
हितः शिरोविरेकश्च धूमो वैरेचनश्च यः ॥ २५ ॥
सामान्यं कर्म नाडीनां विशेषं चात्र मे शृणु ।
नाडीव्रणहरं कर्म[7] दन्तनाडीषु कारयेत् ॥ २६ ॥
यं[8] दन्तमभिजायेत नाडी तं दन्तमुद्धरेत् ।
छित्त्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरिजो[9] भवेत् ॥ २७ ॥
शोधयित्वा दहेद्वाऽपि क्षारेण ज्वलनेन वा ।
भिनत्त्युपेक्षिते दन्ते हनुकास्थि गतिर्ध्रुवम् ॥ २८ ॥
समूलं दशनं तस्मादुद्धरेद्भग्नमस्थि च ।
उद्धृते तूत्तरे दन्ते समूले स्थिरबन्धने[10] ॥ २९ ॥
रक्तातियोगात्[11] पूर्वोक्ता रोगा घोरा भवन्ति हि ।

---

ध्येति । उभयतः = वमनविरेचनाभ्यामूर्ध्वमधश्चेत्यर्थः । १ निचुलस्य जलवेतस्येदं नैचुलम् । २ मधुरकैः = काकोल्यादिमधुरद्रव्यैरित्यर्थः । ३ दन्तवैदर्भचिकित्सां ब्रवीति—**शस्त्रेणेति** । ४ वर्धनस्य ( अधिदन्तस्य ) चिकित्सां वक्ति—**उद्धृत्येति** । ५ अधिमांसचिकित्सितं प्रतिपादयति—**छित्त्वेति** । ६ तेजोवती = चव्यम् ।

७ दन्तनाडीचिकित्सामभिधत्ते—**नाडीति** । ८ यं दन्तमभि समीपे नाडी जायेत तं दन्तमुद्धरेदित्यर्थः । ९ नोपरिजः = नोर्ध्वदन्तपङ्क्तिगत इत्यर्थः । १० स्थिरबन्धने = दृढतरदन्तवेष्टने । ११ पूर्वोक्ताः = शोणितवर्णनीयाध्याये कथिताः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्गुष्ठाङ्गुलिसन्दंशेनाकृष्य गलशुण्डिकाम्[1] ॥ ४९ ॥
छेदयेन्मण्डलाग्रेण जिह्वोपरि तु संस्थिताम् ।
नोत्कृष्टं चैव हीनं च विभागं छेदयेद्भिषक् ॥ ५० ॥
अत्यादानात् स्रवेद्रक्तं तन्निमित्तं म्रियेत च ।
हीनच्छेदाद्भवेच्छोफो लाला निद्रा भ्रमस्तमः ॥ ५१ ॥
तस्माद्वैद्यः प्रयत्नेन दृष्टकर्मा विशारदः ।
गलशुण्डीं तु सञ्छिद्य कुर्य्यात् प्राग्नमिमं क्रमम् ॥ ५२ ॥
मरिचातिविषापाठावचाकुष्ठकुटन्नटैः[2] ।
क्षौद्रयुक्तैः सलवणैस्ततस्ताः प्रतिसारयेत् ॥ ५३ ॥
वचामतिविषां पाठां रास्नां कट्वीं[3] करोहिणीम्[4] ।
निःक्काथ्य पिचुमन्दं[5] च कवलं तत्र योजयेत् ॥ ५४ ॥
इङ्गुदीकिणिहीदन्तीसरलासुरदारुभिः[6] ।
पञ्चाङ्गीं[7] कारयेत् पिष्टैर्वर्त्तिं गन्धोत्तरां[8] शुभाम् ॥ ५५ ॥
ततो धूमं पिबेज्जन्तुर्द्विरह्नः[9] कफनाशनम् ।
क्षारसिद्धेषु मुद्गेषु यूषश्चाप्यशने हितः ॥ ५६ ॥
तुण्डिकेयध्रुषे कूर्मे सङ्घाते तालुपुप्पुटे[8] ।
एष एव विधिः कार्य्यो विशेषः शस्त्रकर्मणि ॥ ५७ ॥
तालुपाके तु कर्त्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् ।
स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः[10] ॥ ५८ ॥
कीर्त्तितं तालुजानां तु कण्ठ्यानां कर्म वक्ष्यते ।

---

१ गलशुण्डिकायाश्चिकित्सां निर्दिशति--अङ्गुष्ठेति । गलशुण्डिका = घण्टिका ।
२ अत्र कुटन्नटः इयोनाकः । 'इयोनाकशुकनासर्क्षदीर्घवृन्तकुटन्नटाः' इत्यमरः । ३ कटु-करोहिणी = 'कुटकी' इति ख्याता । ४ पिचुमन्दः = निम्बः । ५ किणिही = ब्योति-ष्मती 'मालकांगनी' इति ख्याता । ६ पञ्चभिरङ्गभूतद्रव्यैः कृतां पञ्चाङ्गीम् । गन्धो-त्तरां = गन्धप्रधानाम् । ७ द्विरह्नः = सायं प्रातरित्यर्थः ।
८ तुण्डकेर्यध्रुष-कूर्म-सङ्घात-तालुपुप्पुटानां चिकित्सितमतिदिशति-तुण्डीति । तत्र तुण्डिकेरीतालुपुप्पुटौ भेद्यौ, अध्रुषः सङ्घातश्च छेद्यः, मांसोच्छ्रायत्वादवस्थावि-शेषेण कूर्मो लेख्यश्छेद्यो वा । ९ तालुपाकचिकित्सां निर्दिशति-तालिति ।
१० अनिलनाशनः = वातघ्नः ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साध्यानां रोहिणीनां तु हितं शोणितमोक्षणम् ॥ ५९ ॥
छर्दनं धूमपानञ्च गण्डूषो नस्यकर्म च ।
वातिकीं तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् ॥ ६० ॥
सुखोष्णान्[२] स्नेहगण्डूषान् धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ।
पत्तङ्गशर्कराक्षौद्रैः[३] पैत्तिकीं प्रतिसारयेत् ॥ ६१ ॥
द्राक्षापरूषककाथौ हितौ च कवलग्रहे ।
आगारधूमकटुकैः श्लैष्मिकीं प्रतिसारयेत् ॥ ६२ ॥
श्वेताविडङ्गदन्तीषु तैलं सिद्धं ससैन्धवम् ।
नस्यकर्मणि योक्तव्यं तथा कवलधारणे ॥ ६३ ॥
पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं रक्तसम्भवाम् ।
विस्राव्य[५] कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् ॥ ६४ ॥
एककालं यवान्नं च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ।
उपजिह्विकवच्चापि साधयेदधिजिह्विकाम्[६] ॥ ६५ ॥
एकवृन्दं[७] तु विस्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् ।
गिलायुञ्चापि यो व्याधिस्तं च शस्त्रेण साधयेत् ॥ ६६ ॥
अमर्मस्थं सुपक्वं च भेदयेद्गलविद्रधिम् ।
वातात्[८] सर्वसरं[९] चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् ॥ ६७ ॥
तैलं वातहरैः[१०] सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ।
ततोऽस्मै स्नैहिकं धूममिमं दद्याद्विचक्षणः ॥ ६८ ॥
शालराजादनैरण्डसारेङ्गुदिमधूकजाः ।

---

१ कण्ठरोहिणीचिकित्सां ब्रवीति—साध्यानामिति । साध्यानां=सन्निपातभिन्नानाम् । २ प्रतिसारयेत्=घर्षयेत् । ३ सुखोष्णान्=ईषदुष्णान् । ४ पत्तङ्गं=रक्तचन्दनम् । ५ कण्ठशालूकचिकित्सामाह—विस्राव्येति । जलौकादिभिर्विस्राव्येत्यर्थः । साधयेत्=चिकित्सेत् । ६ अधिजिह्विकायाश्चिकित्सां वक्ति—उपेति । ७ एकवृन्द-गिलायु-गलविद्रधीनां चिकित्सां प्रतिपादयति—एकेति । शिरोविरेचनधूमप्रलेपच्छारादिभिः शोधनमाचरेदित्यर्थः ।

८ वातिकमुखपाकचिकित्सामाख्याति—वातादिति । सर्वं सरतीति सर्वसरस्तम् । ९ वातहरैः=भद्रदार्वादिकल्ककषायसिद्धैः । १० सारः सारवृक्षः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मज्जानो गुग्गुलुध्यामं[1]मांसीकालानुसारिवाः।
श्रीसर्जरसशैलेयमधूच्छिष्टानि चाहरेत् ॥ ६९ ॥
तत्सर्वं सुकृतं चूर्णं स्नेहे[2]नालोड्य युक्तितः।
टुण्टूकवृन्तं सक्षौद्रं मतिमांस्तेन लेपयेत् ॥ ७० ॥
एष सर्वसरे धूमः प्रशस्तः स्नैहिको मतः।
कफघ्नो मारुतघ्नश्च मुखरोगविनाशनः ॥ ७१ ॥
पित्ताँत्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः।
सर्वः पित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ ७२ ॥
प्रतिसारणगण्डूषधूमसंशोधनानि च।
कफात्मके सर्वसरे विधिं कुर्यात् कफापहम् ॥ ७३ ॥
पिबेदतिविषां पाठां मुस्तं च सुरदारु च।
रोहिणीं कटुकाख्यां च कुटजस्य फलानि च ॥ ७४ ॥
गवां मूत्रेण मनुजो भागैर्धर[6]णसम्मितैः।
एष सर्वान् कफकृतान् रोगान् योगोऽपकर्षति ॥ ७५ ॥
[7]क्षीरेक्षुरसगोमूत्रदधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः।
विदध्यात् कवलान् वीक्ष्य[8] दोषं तैलघृतैरपि ॥ ७६ ॥
रोगाणां मुखजातानां साध्यानां कर्म कीर्त्तितम्।

---

खदिरादिः। हाराणचन्द्रस्तु सारेङ्गुदीति समस्तं मत्वा सारेङ्गुदी श्रेष्ठेङ्गुदी बृहत्फलेङ्गुदीति यावदिति व्याख्याति। १ ध्यामं=रोहिषनामकसुगन्धिततृणम्। कालानुसारिवा=कालवल्ली। २ लेपयोग्यस्नेहेनेत्यर्थः। ३ टुण्टूकः=श्योनाकः।

४ पैत्तिकमुखपाकचिकित्सामभिदधाति—**पित्तात्मक इति**। शुद्धकायस्य=वमनादिभिः संशुद्धशरीरस्य। ५ कफजन्यमुखपाकचिकित्सां विवृणोति—**प्रतीति**। ६ अत्र धरणं चतुर्विंशतिकाप्रमाणम्।

७ सर्वमुखरोगेषु कवलविधिमभिधत्ते—**क्षीरेति**। ८ दोषं वीक्ष्य=रोगकारणं विचार्येत्यर्थः। यथा वातात्मके क्षीरदधिमस्त्वम्लकाञ्जिकतैलघृतैः, पित्तात्मके क्षीरेक्षुरसघृतैः, कफात्मके च मूत्रेणेति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


[1]असाध्या अपि वक्ष्यन्ते रोगा ये यत्र कीर्त्तिताः ॥ ७७ ॥
ओष्ठप्रकोपा वर्ज्याः स्युर्मांसरक्तत्रिदोषजाः ।
दन्तमूलेषु वर्ज्यौ तु त्रिलिङ्गगतिशौषिरौ ॥ ७८ ॥
दन्तेषु च न सिध्यन्ति श्यावदालनभञ्जनाः ।
जिह्वागतेष्वलासस्तु तालव्येष्वर्बुदं तथा ॥ ७९ ॥
स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलासश्च विदारिका ।
गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥ ८० ॥
असाध्याः कीर्त्तिता ह्येते रोगा नव दशैव च ।
तेषां चापि क्रियां वैद्यः [3]प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ ८१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने मुखरोगचिकित्सितं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः शोफानां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
[4]ड्विधोऽवयवसमुत्थः शोफोऽभिहितो लक्षणतः प्रतीकार-

---

१ असाध्यान् मुखरोगान्निर्दिशति—असाध्या इति । २ नव दशैव=एकोनविंशतिरेवेत्यर्थः । तद्यथा—त्रय ओष्ठजाः, दन्तमूलेषु द्वौ, दन्तेषु त्रयः, जिह्वायामेकः, तालुन्यपि एकः, गले स्वरघ्नादयो नव । एवमेकोनविंशतिः पूर्यते । ३ प्रत्याख्याय=“यावदुच्छ्वसिति प्राणी तावत्कार्या प्रतिक्रिया । कदाऽपि दैवयोगेन दृष्टारिष्टोऽपि जीवति ॥” इत्याद्युपदेशपूर्वकं निराकृत्येत्यर्थः । तत्र ओष्ठजानां शोणितावसेचनं यथायोगं संशोधनं च, शौषिरस्य क्षारेण प्रतिसारणम्, दालनस्य स्नेहावलेपनम्, अलासस्य शस्त्रक्षाराग्न्यवचारणं जीवनीयगणोपयोगश्च, अर्बुदस्य शस्त्रक्षारोपयोगो विस्रावणं च, अवशिष्टानां मरिचवाराहीकन्दाद्युपयोगेन विस्रावणं कर्तव्यमित्याद्युन्नेयम् ।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

## त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

४ शोथभेदान्निर्दिशति—षडविध इति । अवयवे समुत्तिष्ठतीत्यवयवसमुत्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तश्च। सर्वसरस्तु पञ्चविधः। तद्यथा—वातपित्तश्लेष्मसन्निपातविषनिमित्तः॥ ३॥

तत्रातितर्पितस्याध्वगमनादतिमात्रमभ्यवहरतो वा पिष्टान्नहरितकशाकलवणानि क्षीणस्य वाऽतिमात्रमम्लमुपसेवमानस्य मृत्पक्कलोष्टकटशर्करानूपौदकमांससेवनादजीर्णतो वा ग्राम्यधर्मसेवनाद्विरुद्धाहारसेवनाद्वस्त्यश्वोष्ट्ररथपदातिसङ्क्षोभणाद्दोषा धातून् प्रदूष्य श्वयथुमापादयन्त्यखिले शरीरे॥ ४॥

तत्र, वातश्वयथुररुणः कृष्णो वा मृदुरनवस्थितास्तोदादयश्चात्र वेदनाविशेषाः। पित्तश्वयथुः पीतो रक्तो वा शीघ्रानुसार्योष्मचोषादयश्चात्र वेदनाविशेषाः। श्लेष्मश्वयथुः पाण्डुः शुक्लो वा स्निग्धः कठिनः शीतो मन्दानुसारी, कण्ड्वादयश्चात्र वेदनाविशेषाः। सन्निपातश्वयथुः सर्ववर्णवेदनः। विषनिमित्तस्तु गरोपयोगाद् दुष्टतोयसेवनात् प्रकोथोदकावगाहनात् सविषसत्त्वदिग्धचूर्णेनावचूर्णनाद्वा सविषमूत्रपुरीषशुक्रस्पृष्टानां तृणकाष्ठादीनां संस्पर्शनात्, स तु मृदुः क्षिप्रोत्थानोऽवलम्बी चलो वा दाहपाकप्रायश्च भवति॥ ५॥

भवन्ति चात्र।

दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामाशयस्थिताः।
पक्वाशयस्था मध्ये च वर्चःस्थानगतास्त्वधः॥ ६॥

---

१ शोथस्य निदानं सम्प्राप्तिं चोपपादयति—**तत्रेति**। २ ग्राम्यधर्मसेवनात्=मैथुनकरणात्। "न मत्स्यान् पयसाऽभ्यवहरेत्" इत्यादिविरुद्धाहारसेवनात्। तन्त्रान्तरे—"शुद्धश्यामयाभुक्तकृशबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा। दध्याममूच्छाकविरोधिदुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च॥ अर्शांस्यचेष्टा न च देहशुद्धिर्मर्मोपघातो विषमा प्रसूतिः। मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणां च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः॥" इति।

३ वातादिभेदेन शोथलक्षणं दर्शयति—**तत्रेति**। ४ गरं संयोगजं विषं तस्योपयोगादित्यर्थः। ५ प्रकोथोदकावगाहनात्=शटितजलस्नानात्। ६ अवलम्बी=लम्बमानः, अधोगमनशील इति तात्पर्यम्। ७ यत्रस्था दोषा यत्र देशे शोथं कुर्वन्ति तं निर्दिशति—**दोषा इति**। ऊर्ध्वम्=उरःप्रभृत्यूर्ध्वदेहे। ८ मध्ये=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृत्स्नं देहमनुप्राप्ताः कुर्य्युः [1]सर्वसरं तथा ।
[2]श्वयथुर्मध्यदेशे यः स कष्टः सर्वगश्च यः ॥ ७ ॥
अर्द्धाङ्गेऽरिष्टभूतश्च [3]यश्चोर्द्ध्वं परिसर्पति ।
श्वास[4]ः पिपासा दौर्बल्यं ज्वरश्छर्दिररोचकः ॥ ८ ॥
हिक्काऽतीसारकासाश्च शूनं सङ्क्षपयन्ति हि ।
सामान्यतो विशेषाच्च तेषां वक्ष्यामि भेषजम् ॥ ९ ॥
शोफिन[5]ः सर्व एव परिहरेयुरम्ललवणदधिगुडवसापयस्तैल-घृतपिष्टमयगुरूणि ॥ १० ॥

तत्र[6], वातश्वयथौ त्रैवृतमेरण्डतैलं वा मासमर्द्धमासं वा पाययेत्, न्यग्रोधादिकषायसिद्धं सर्पिः पित्तश्वयथौ, आरग्वधादिसिद्धं श्लेष्मश्वयथौ, सन्निपातश्वयथौ स्नुहीक्षीर[7]पात्रं द्वादशभिरम्लपात्रैः प्रतिसंसृष्टं दन्ती[8]प्रतीवापं सर्पिः पाचयित्वा पाययेत्, विषनिमित्ते कल्पेषु प्रतीकारः ॥ ११ ॥

अथातः सामान्यचिकित्सितं व्याख्यास्यामः—तिल्वकघृतचतुर्थानि यान्युक्तान्युदरेषु ततोऽन्यतममुपयुज्यमानं श्वयथुमपहन्ति, मूत्रवर्त्तिक्रियां वा सेवयेत्, नवायसं वाऽहरहर्मधुना, विड-

---

उरःपक्वाशयमध्ये । वर्चःस्थानं=पुरीषाशयः । १ सर्वसरं=सर्वशरीरसरणशीलम् । २ कृच्छ्रादिभेदं प्रतिपादयति—**श्वयथुरिति** । सर्वगः=सर्वशरीरगामी । ३ यश्चोर्ध्वं परिसर्पतीति पुरुषविषयकमेतत् । चकारात् स्त्रियाश्चोपरिजो योऽधो याति स गृह्यते । चरके—"यस्तु पादाभिनिर्वृत्तः शोथः सर्वाङ्गगो भवेत् । पुरुषं हन्ति, नारीं च मुखजो, गुह्यजो द्वयम् ॥" इति । तन्त्रान्तरेऽपि—"ऊर्ध्वगामी नरं पद्भ्यामधोगामी मुखात् स्त्रियम् । उभयं बस्तिसञ्जातः शोथो हन्ति न संशयः ॥" इति । ऊर्ध्वगामी=मुखगामी, अधोगामी=पादगामी । तदुक्तम्—"पादात्प्रवृत्तः श्वयथुर्नृणां यः प्राप्नुयान्मुखम् । स्त्रीणां वक्त्रात्पदं याति बस्तिजश्च न सिद्धयति ॥" इति । ४ शोथोपद्रवान् दर्शयति—**श्वास इति** । ५ शोथातुरस्य वर्ज्यानि निर्दिशति—**शोफिन इति** । ६ दोषविशेषेण श्वयथुचिकित्सामाख्याति—**तत्रेति** । ७ स्नुहीक्षीरपात्रं=सेहुण्डदुग्धाढकम् । ८ दन्तीप्रतीवापः=स्नेहचतुर्थांशेन दन्तीकल्कप्रक्षेपः । कल्पेषु=कल्पस्थानेषु ।

९ नवायसं त्रिफलाचित्रकत्रिकटुविडङ्गेत्यादिना प्रमेहपिडकाचिकित्सिते द्वादशा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञातिविषाकुटजफलभद्रदारुनागरमरिचचूर्णं वा धरणमुष्णाम्बुना, त्रिकटुक्षारायश्चूर्णानि वा त्रिफलाकषायेण, मूत्रं वा तुल्यक्षीरं, हरीतकीं वा तुल्यगुडामुपयुञ्जीत, देवदारुशुण्ठीं वा, गुग्गुलुं वा मूत्रेण वर्षाभूकषायानुपानं वा, तुल्यगुडं शृङ्गवेरं वा, वर्षाभूकषायं मूलकल्कं वा सशृङ्गवेरं पयोऽनुपानमहरहर्मासम्, व्योषवर्षाभूकषायसिद्धेन वा सर्पिषा मुद्गोलुम्बान् भक्षयेत्, पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकमयूरवर्षाभूसिद्धं वा क्षीरं पिबेत्, सहौषधमुरङ्गीमूलसिद्धं वा, त्रिकटुकैरण्डमूलश्यामामूलसिद्धं वा, वर्षाभूशृङ्गवेरसहादेवदारुसिद्धं वा, तथा अलाबूबिभीतकफलकल्कं वा तण्डुलाम्बुना, क्षारपिप्पलीमरिचशृङ्गवेरानुसिद्धेन च मुद्गयूषेणालवणेनाल्पस्नेहेन भोजयेद् यवान्नं गोधूमान्नं वा, वृक्काकर्कनक्तमालनिम्बवर्षाभूकाथैश्च परिषेकः, सर्षपसुवर्चलसैन्धवशार्ङ्गेष्टाभिश्च प्रदेहः कार्य्यः, यथादोषं च विरेचनास्थापनानि तीक्ष्णान्यजस्रमुपसेवेत, स्नेहस्वेदोपनाहांश्च, सिराभिश्चाभीक्ष्णं शोणितमवसेचयेदन्यत्रोपद्रवशोफादिति ॥ १२ ॥

भवन्ति चात्र ।

पिष्टान्नमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमजाङ्गलं च ।
स्त्रियो घृतं तैलपयोगुरूणि शोफं जिघांसुः परिवर्जयेत्तु ॥ १३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने शोथचिकित्सितं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

---

ध्यायेऽभिहितम् । १ धरणं=कर्षम् । २ क्षारः=यवक्षारः ३ वर्षाभूकषायं=रक्तपुनर्नवाक्वाथम् । ४ मयूरः=अपामार्गः । ५ मुरङ्गी=शोभाञ्जनः । ६ सहा=माषपर्णी । ७ वृक्षकः=कुटजः । ८ शार्ङ्गेष्टा=काकजङ्घा । ९ अजस्रं=वारं वारम् । १० शोफे अपथ्यानि निर्दिशति—पिष्टान्नमिति । पिष्टान्नं=गोधूमचूर्णादिकम् ।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

अथातोऽनागतावाबाधप्रतिषेधनीयं चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

उत्थायोत्थाय सततं स्वस्थेनारोग्यमिच्छता ।
धीमता यदनुष्ठेयं तत्सव सम्प्रवक्ष्यते ॥ ३ ॥
तत्रादौ दन्तपवनं द्वादशाङ्गुलमायतम् ।
कनिष्ठिकापरीणाहमृज्वग्रन्थितमव्रणम् ॥ ४ ॥
अयुग्मग्रन्थि यच्चापि प्रत्यग्रं शस्तभूमिजम् ।
अवेक्ष्यर्त्तुं च दोषं च रसं वीर्य्यं च योजयेत् ॥ ५ ॥
कषायं मधुरं तिक्तं कटुकं प्रातरुत्थितः ।
निम्बश्च तिक्तके श्रेष्ठः कषाये खदिरस्तथा ॥ ६ ॥
मधूको मधुरे श्रेष्ठः करञ्जः कटुके तथा ।
क्षौद्रव्योषत्रिवर्गाक्तं सतैलं सैन्धवेन च ॥ ७ ॥
चूर्णेन तेजोवत्याश्च दन्तान्नित्यं विशोधयेत् ।
एकैकं घर्षयेद्दन्तं मृदुना कूर्चकेन च ॥ ८ ॥
दन्तशोधनचूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन् ।
तद्दौर्गन्ध्योपदेहौ तु श्लेष्माणं चापकर्षति ॥ ९ ॥

---

## चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

१ अनागतानां किञ्चिदागतानामाबाधानां प्रतिषेधो निवर्तकप्रयोजकव्यापारस्तमधिकृत्य कृतोऽध्यायस्तम् अनागतावाधप्रतिषेधनीयम् । २ ब्राह्मे मुहूर्ते इति शेषः । तदुक्तमष्टाङ्गहृदये—"ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः । शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः ॥" इति । "ब्राह्मे मुहूर्त्त उत्तिष्ठेज्जीर्णाजीर्णे निरूपयन्" इत्यष्टाङ्गसङ्ग्रहः । स्वस्थेन=अनातुरेण । स्वस्थस्य लक्षणम्—"समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः । प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥" इति ।

३ दन्तधावनविधानमभिदधाति—**तत्रादाविति** । ४ धर्मशास्त्रे विशेषमाह विष्णुः—"द्वादशाङ्गुलिकं विप्रे काष्ठमाहुर्मनीषिणः । शूद्रविट्क्षत्रजातीनां नवषट्चतुरङ्गुलम् ॥" इति । "चतुरङ्गुलमानं तु नारीणां नात्र संशयः" इति गर्गः । ७ काष्ठ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशद्यमन्नाभिरुचिं सौमनस्यं करोति च ।
न खादेद् गलतालोष्ठजिह्वारोगसमुद्भवे ॥ १० ॥
अथास्यपाके श्वासे च कासहिक्कावमीषु च ।
दुर्बलोऽजीर्णभक्तश्च मूर्च्छार्त्तो मदपीडितः ॥ ११ ॥
शिरोरुगार्त्तस्तृषितः श्रान्तः पानक्लमान्वितः ।
अर्दिती कर्णशूली च दन्तरोगी च मानवः ॥ १२ ॥
जिह्वानिर्लेखनं[2] रौप्यं सौवर्णं वा मेव[3] च ।
तन्मलापहरं शस्तं मृदु[4] श्लक्ष्णं दशाङ्गुलम् ॥ १३ ॥
मुखवैरस्यदौर्गन्ध्यशोफजाड्यहरं सुखम्[5] ।
दन्तदार्ढ्यकरं रुच्यं स्नेहगण्डूषधारणम्[6] ॥ १४ ॥
क्षीरवृक्षकषायैर्वा क्षीरेण च विमिश्रितैः[7] ।
भिल्लोदककषायेण तथैवामलकस्य वा[8] ॥ १५ ॥
प्रक्षालयेन्मुखं नेत्रे स्वस्थः शीतोदकेन वा ।
नीलिकां मुखशोषं च पिडकां व्यङ्गमेव[9] च ॥ १६ ॥
रक्तपित्तकृतान् रोगान् सद्य एव विनाशयेत् ।
सुखं लघु निरीक्षेत दृढं पश्यति चक्षुषा ॥ १७ ॥

---

नुसारेण फलान्तरमाह गर्गः—"सर्जे धैर्यं वटे दीप्तिः करञ्जे विजयो रणे । प्लक्षजे चार्थसम्पत्तिर्बदर्यां मधुरस्वरः ॥ खदिरे चैव सौभाग्यं बिल्वे तु विपुलं धनम् । औदुम्बरे वाक्सिद्धिर्वन्धूके च दृढा मतिः ॥ सैन्ध्रे च कीर्तिसौभाग्यं पालाशे सिद्धिरुत्तमा । कदम्बे सकला लक्ष्मीराम्रे आरोग्यमेव च ॥ अपामार्गे श्रुतिर्मेधाप्रज्ञाऽवाप्तिर्वपुः श्रुतिः । आयुः शीलं यशो लक्ष्मीः सौभाग्यं चोपजायते ॥ अर्केण हन्ति रोगांस्तु बीजपूरेण तु व्यथाम् । दाडिमे सिन्धुवारे च उटजे कुटजे तथा ॥ जाती च करमर्दश्च दुःस्वप्नं नाशयेदिति । ककुभेन तथाऽऽयुष्मान् भवेत्पलितवर्जितः ॥" इति ।

१ धर्मशास्त्रानुसारेण अष्टम्यादितिथिषु दन्तधावननिषेधः—"अष्टम्योश्च चतुर्दश्योः पञ्चदश्यां त्रिजन्मसु । व्यतीपाते च सङ्क्रान्त्यां दन्तकाष्ठं न भक्षयेत् ॥" इत्यादिः । २ जिह्वानिर्लेखनोपायं निर्दिशति—जिह्वेति । ३ मृदु = कोमलं, 'कोमलं मृदुलं मृदु' इत्यमरः । ४ गण्डूषफलमभिधत्ते—मुखेति ।

५ मुखप्रक्षालनविधिमभिधत्ते—क्षीरेति । क्षीरवृक्षकषायैः=न्यग्रोधादिक्षीरपादपक्काथैरित्यर्थः । ६ भिल्लः=रोध्रः । ७ व्यङ्गं = 'झाई' इति प्रथते । ८ नेत्राञ्जनविधि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मतं स्रोतोऽञ्जनं श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धुसम्भवम् ।
दाहकण्डूमलघ्नं च दृष्टिक्लेदरुजापहम् ॥ १८ ॥
अक्ष्णो रूपावहं चैव सहते मारुतातपौ ।
न नेत्ररोगा जायन्ते तस्मादञ्जनमाचरेत् ॥ १९ ॥
[1]भुक्तवाञ्छिरसा स्नातः श्रान्तश्छर्दनवाहनैः ।
रात्रौ जागरितश्चापि नाञ्जयाज्ज्वरित एव च ॥ २० ॥
[2]कर्पूरजातिकक्कोलल वङ्गकटुकाह्वयैः ।
सचूर्णपूगैः सहितं पत्रं ताम्बूलजं शुभम् ॥ २१ ॥
मुखवैशद्यसौगन्ध्यकान्तिसौष्ठवकारकम् ।
हनुदन्तस्वरमलजिह्वेन्द्रियविशोधनम् ॥ २२ ॥
प्रसेकशमनं हृद्यं गलामयविनाशनम् ।
पथ्यं सुप्तोत्थिते भुक्ते स्नाते वान्ते च मानवे ॥ २३ ॥
[3]रक्तपित्तक्षतक्षीणतृष्णामूर्च्छापरीतिनाम् ।
रूक्षदुर्बलमर्त्यानां न हितं चास्यशोषिणाम् ॥ २४ ॥
[4]शिरोगतांस्तथा रोगाञ्छिरोऽभ्यङ्गोऽपकर्षति ।
केशानां मार्दवं दैर्घ्यं बहुत्वं स्निग्धकृष्णताम् ॥ २५ ॥
करोति शिरसस्तृप्तिं सुत्वक्कमपि चाननम् ।
सन्तर्पणं चेन्द्रियाणां शिरसः प्रतिपूरणम् ॥ २६ ॥
[5]मधुकं क्षीरशुक्ला च सरलं देवदारु च ।

---

तद्गुणांश्च ब्रवीति—**सुखमिति** । १ येषां नेत्राञ्जनमपथ्यं तान्निर्विशति—**भुक्तवानिति** । २ ताम्बूलभक्षणविधिं तद्गुणांश्च वक्ति—**कर्पूरेति** । जाती = जातीफलम् ।

३ यैस्ताम्बूलं न भक्षणीयं तान्निर्दिशति—**रक्तेति** । वाग्भटे—"ताम्बूलं क्षतपित्तास्रूक्षोत्कुपितचक्षुषाम् । विषमूर्च्छामदार्तानामपथ्यं शोषिणामपि ॥" इति । ४ शिरोऽभ्यङ्गगुणान् वक्ति—**शिर इति** । "नित्यं स्नेहार्द्रशिरसः शिरःशूलं न जायते । न खालित्यं न पालित्यं न केशाः प्रपतन्ति च ॥ बलं शिरः कपालानां विशेषेणाभिवर्धते । दृढमूलाश्च दीर्घाश्च कृष्णाः केशा भवन्ति च ॥ इन्द्रियाणि प्रसीदन्ति सुत्वग्भवति चाननम् । निद्रालाभः सुखं च स्यान्मूर्ध्नि तैलनिषेवणात् ॥" इति चरकः । ५ शिरोऽभ्यङ्गार्थं तैलं निर्दिशति—**मधुकमिति** । क्षीरशुक्ला=क्षीरविदारी ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुद्रकं पञ्चनामानं समभागानि संहरेत् ॥ २७ ॥
तेषां कल्ककषायाभ्यां चक्रतैलं[1] विपाचयेत् ।
सदैव शीतलं जन्तोर्मूर्ध्नि तैलं प्रदापयेत् ॥ २८ ॥
केशप्रसाधनी[2] केश्या रजोजन्तुमलापहा ।
हनुमन्याशिरः कर्णशूलघ्नं कर्णपूरणम्[3] ॥ २९ ॥
अभ्यङ्गो[4] मार्दवकरः कफवातनिरोधनः ।
धातूनां पुष्टिजननो मृजावर्णबलप्रदः ॥ ३० ॥
सेकः[5] श्रमघ्नोऽनिलहृद्भग्नसन्धिप्रसाधकः ।
क्षताग्निदग्धाभिहतविघृष्टानां रुजापहः ॥ ३१ ॥
जलसि स्य वर्द्धन्ते यथा मूलेऽङ्कुरास्तरोः ।
तथा धातुविवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते ॥ ३२ ॥
सिरामुखैः[6] रोमकूपैर्धमनीभिश्च तर्पयन् ।
शरीरबलमाधत्ते युक्तः[7] स्नेहोऽवगाहने ॥ ३३ ॥

---

१ चक्रतैलं = यन्त्रपीडिततैलम् । मधुकादिद्रव्यं क्वाथार्थं पलशतमुदकस्य द्वादशाधिकपञ्चशतपलानि, तावद् विपचेद् यावद् द्वादशाधिकं शतं भवति । ततो वस्त्रपूतं ग्राह्यं, तेन क्वाथेन तथा तद्द्रव्याणामेव कल्कैरष्टभिः पलैश्चक्रतैलस्य द्वात्रिंशत्पलानि विपचेत्, यावत्तैलपाकलक्षणानि भवन्तीति डल्हणः ।

२ केशप्रसाधनीकर्णपूरणयोर्गुणान् वक्ति—केशेति । केशप्रसाधनी = कङ्कतिका ।

३ 'न कर्णरोगा वातोत्था न मन्याहनुसङ्ग्रहः । नोच्चैः श्रुतिर्न वाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णतर्पणात् ॥" इति चरकः ।

४ अभ्यङ्गगुणान्निर्दिशति—अभ्यङ्ग इति । चरकः—"स्नेहाभ्यङ्गाद्यथा कुम्भश्चर्मस्नेहविमर्षनात् । भवत्युपाङ्गादचलश्च दृढः क्लेशसहो यथा ॥ तथा शरीरमभ्यङ्गाद् दृढं सुत्वक्च जायते । प्रशान्तमारुताबाधं क्लेशव्यायामसंसहम् ॥ स्पर्शनेऽभ्यधिको वायुः स्पर्शनं च त्वगाश्रितम् । त्वच्यश्च परमभ्यङ्गस्तस्मात्तं शीलयेन्नरः ॥ न चाभिघाताभिहतं गात्रमभ्यङ्गसेविनः । विकारं भजतेऽत्यर्थं बलकर्मणि वा क्वचित् ॥ सुस्पर्शोपचिताङ्गश्च बलवान् प्रियदर्शनः । भवत्यभ्यङ्गनित्यत्वान्नरोऽल्पजर एव च ॥" इति ।

५ सर्वाङ्गपरिषेकगुणानभिधत्ते—सेक इति । सेकः = परिषेकः, स्नेहेनार्द्रीकरणमित्यर्थः । ६ स्नेहावगाहनगुणान् वक्ति—सिरामुखैरिति । ७ युक्तः = प्रयु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र[1] प्रकृतिसात्म्यर्तुदेशदोषविकारवित् ।
तैलं घृतं वा मतिमान् युञ्जयादभ्यङ्गसेकयोः ॥ ३४ ॥
केवलं[2] सामदोषेषु न कथञ्चन योजयेत् ।
तरुणज्वर्य्यजीर्णी च नाभ्यक्तव्यौ कथञ्चन ॥ ३५ ॥
तथा विरिक्तो वान्तश्च निरूढो यश्च मानवः ।
पूर्वयोः कृच्छ्रता व्याधेरसाध्यत्वमथापि वा ॥ ३६ ॥
शेषाणां तदहः प्रोक्ता अग्निमान्द्यादयो गदाः ।
सन्तर्पणसमुत्थानां रोगाणां नैव कारयेत् ॥ ३७ ॥
[3]शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम् ।
तत् कृत्वा तु सुखं देहं विमृद्नीयात्[4] समन्ततः ॥ ३८ ॥
[5]शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता ।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा[6] ॥ ३९ ॥
श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता ।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते ॥ ४० ॥
न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित् स्थौल्यापकर्षणम् ।
न च व्यायामिनं मर्त्यमर्दयन्त्यरयो भयात् ॥ ४१ ॥
न चैनं सहसाऽऽक्रम्य जरा समधिरोहति ।
स्थिरीभवति मांसं च व्यायामाभिरतस्य च ॥ ४२ ॥
[7]व्यायामस्विन्नगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च ।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्रमृगा इव ॥ ४३ ॥

---

क्त इत्यर्थः । १ अभ्यङ्गादौ प्रकृतिविशेषेण तैलघृतयोर्योगं वक्ति—**तत्रेति** । २ यैरभ्यङ्गो न कार्यस्तानाह—**केवलमिति** । वाग्भटः—"वर्ज्योऽभ्यङ्गः कफग्रस्तकृतसंशुद्धयजीर्णिभिः" इति ।

३ व्यायामविधिं प्रतिपादयति—**शरीरेति** । ४ वाग्भटोऽपि—"तं कृत्वाऽनुसुखं देहं मर्दयेच्च समन्ततः" इति । ५ व्यायामगुणान्निर्दिशति—**शरीरेति** । शरीरोपचयः = देहवृद्धिरित्यर्थः । सुविभक्तता = सुघटितशरीरता । ६ मृजा = शुद्धिरित्यर्थः । ७ व्यायामेन स्विन्नं स्वेदयुक्तं गात्रं यस्य स तस्य व्यायामस्विन्नगात्रस्य, पद्भ्यामुद्वर्तितस्य = पादाभ्यां बहुकृतमर्दनस्येत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वयोरूपगुणैर्हीनमपि कुर्यात् सुदर्शनम् ।
व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपि भोजनम् ॥ ४४ ॥
विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषं परिपच्यते ।
व्यायामो हि सदा पथ्यो बलिनां स्निग्धभोजिनाम् ॥४५॥
स च शीते वसन्ते च तेषां पथ्यतमः स्मृतः ।
सर्वेष्वृतुष्वहरहः पुम्भिरात्महितैषिभिः ॥ ४६ ॥
बलस्यार्द्धेन कर्त्तव्यो व्यायामो हन्त्यतोऽन्यथा ।
हृदि स्थानस्थितो वायुर्यदा वक्त्रं प्रपद्यते ॥ ४७ ॥
व्यायामं कुर्वतो जन्तोस्तद्बलाधस्य लक्षणम् ।
वयोबलशरीराणि देशकालाशनानि च ॥ ४८ ॥
समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात् ।
क्षयतृष्णाऽरुचिच्छर्दिरक्तपित्तभ्रमक्लमाः ॥ ४९ ॥
कासशोषज्वरश्वासा अतिव्यायामसम्भवाः ।
रक्तपित्ती कृशः शोषी श्वासकासक्षयातुरः ॥ ५० ॥
भुक्तवान् स्त्रीषु च क्षीणो भ्रमार्त्तश्च विवर्जयेत् ।
उद्वर्त्तनं वातहरं कफमेदोविलापनम् ॥ ५१ ॥
स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्प्रसादकरं परम् ।
सिरामुखविविक्तत्वं त्वक्स्थस्याग्नेश्च तेजनम्॥ ५२ ॥
उद्घर्षणोत्सादनाभ्यां जायेयातामसंशयम् ।
उत्सादनाद्भवेत् स्त्रीणां विशेषात् कान्तिमद्वपुः ॥ ५३ ॥
प्रहर्षसौभाग्यमृजालाघवादिगुणान्वितम् ।
उद्घर्षणं तु विज्ञेयं कण्डूकोठानिलापहम् ॥ ५४ ॥

---

१ शीतवसन्तातिरिक्तसमये स्वल्पो व्यायामः करणीयः । तदाह वाग्भटः—"शीतकाले वसन्ते च मन्दमेव ततोऽन्यदा" इति । २ बलस्यार्द्धेन = अर्धशक्त्येत्यर्थः । ३ अतिव्यायामेन दोषमाचष्टे—क्षयेति । ४ व्यायामानधिकारिणो निर्दिशति—रक्तपित्तीति ।

५ उद्वर्तनगुणानभिधत्ते—उद्वर्तनमिति । उद्वर्तनस्य वातहरादयः पञ्चगुणाः । ६ उद्घर्षणोत्सादनयोर्गुणान् प्रतिपादयति—सिरेति । ७ उद्घर्षणं = भ्रामकादिना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्वोः सञ्जनयत्याशु फेनकः[1] स्थैर्य्यलाघवे ।
कण्डूकोठानिलस्तम्भमलरोगापहश्च सः ॥ ५५ ॥
तेजनं त्वग्गतस्याग्नेः सिरामुखविवेचनम् ।
उद्घर्षणं त्विष्टिकया कण्डूकोठविनाशनम् ॥ ५६ ॥
निद्रा[2]दाहश्रमहरं स्वेदकण्डूतृषापहम् ।
हृद्यं मलहरं श्रेष्ठं सर्वेन्द्रियविशोधनम् ॥ ५७ ॥
तन्द्रापापोपशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्द्धनम् ।
रक्तप्रसादनं चापि स्नानमग्नेश्च दीपनम् ॥ ५८ ॥
उष्णेन शिरसः स्नानमहितं चक्षु[3]षः सदा ।
शीतेन शिरसः स्नानं चक्षुष्यमिति निर्दिशेत् ॥ ५९ ॥
श्लेष्ममारुतकोपे तु ज्ञात्वा व्याधिबलाबलम् ।
काममुष्णं शिरःस्नानं भैषज्यार्थं समाचरेत् ॥ ६० ॥
अतिशीताम्बु शीते च श्लेष्ममारुतकोपनम् ।
अत्युष्णमुष्णकाले च पित्तशोणितवर्द्धनम् ॥ ६१ ॥
तच्चा[4]तिसारज्वरितकर्णशूलानिलार्त्तिषु ।
आध्मानारोचकाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥ ६२ ॥
सौभाग्य[5]दं वर्णकरं प्रीत्योजोबलवर्द्धनम् ।
स्वेददौर्गन्ध्यवैवर्ण्यश्रमघ्नमनुलेपनम्[6] ॥ ६३ ॥
स्नानं येषां निषिद्धं तु तेषामनुलेपनम्[7] ।
रक्षो[8]घ्नमथ चौजस्यं सौभाग्यकरमुत्तमम् ॥ ६४ ॥

---

गात्रादिघर्षणम् । १ फेनकः = समुद्रफेनः । २ स्नानगुणानाख्याति—**निद्रेति** । ३ वाग्भटः—"उष्णाम्बुनाऽधः कायस्य परिषेको बलावहः । तेनैव चोत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम् ॥" इति । आमलकैः स्नानस्य गुणानाह भावप्रकाशे—"यः सदाऽऽमलकैः स्नानं करोति स विनिश्चितम् । वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं नरः ॥" इति ।

४ स्नानानर्हजनान्निर्दिशति—**तच्चेति** । तत् = स्नानम् । ५ अनुलेपनगुणान् ब्रवीति—**सौभाग्यदमिति** । ६ तेषामनुलेपनमपि निषिद्धमित्यर्थः । ७ पुष्प—वस्त्र—रत्नधारणगुणानाख्याति—**रक्षोघ्नमिति** । भावप्रकाशे—"सुगन्धिपुष्पपत्राणां धारणं कान्तिकारकम् । पापरक्षोग्रहहरं कामदं श्रीविवर्द्धनम् ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमनोम्बररत्नानां धारणं प्रीतिवर्द्धनम् ।
मुखालेपाद् दृढं चक्षुःपीनगण्डं तथाऽऽननम् ॥ ६५ ॥
अव्यङ्गपिडकं कान्तं भवत्यम्बुजसन्निभम् ।
पक्ष्मलं विशदं कान्तममलोज्ज्वलमण्डलम् ॥ ६६ ॥
नेत्रमञ्जनसंयोगाद् भवेच्चामलतारकम् ।
यशस्यं स्वर्ग्यमायुष्यं धनधान्यविवर्द्धनम् ॥ ६७ ॥
देवताऽतिथिविप्राणां पूजनं गोत्रवर्द्धनम् ।
आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद् देहधारकः ॥ ६८ ॥

---

भावप्रकाशे शीतादिसमयभेदेन धारणार्हवस्त्राणि तद्गुणाश्च प्रदर्शिताः । तथा हि—"कौशेयौर्णिकवस्त्रं च रक्तवस्त्रं तथैव च । वातश्लेष्महरं तत्तु शीतकाले विधारयेत् ॥" कौशेयं पट्टाम्बरं तसरवस्त्रं चेति तदर्थः । "मेध्यं सुशीतं पित्तघ्नं कषायं वस्त्रमुच्यते । तद्धारयेदुष्णकाले तत्रापि लघु शस्यते ॥" कषायं 'कौङ्कुमी' इति लोके कषायरागरक्तं वेति तदर्थः । "शुक्लं तु शुभदं वस्त्रं शीतातपनिवारणम् । न चोष्णं न च वा शीतं तत्तु वर्षासु धारयेत् ॥" इति । प्रसङ्गान्मलिनवस्त्रधारणदोषोऽपि प्रदर्शितः—"कदाऽपि न जनैः सद्भिर्धार्यं मलिनमम्बरम् । तत्तु कण्डूक्रिमिकरं ग्लान्यलक्ष्मीकरं परम् ॥" इति । रत्नाभरणधारणगुणानाह तत्रैव—"ग्रहदृष्टिहरं पुष्टिकरं दुःस्वप्ननाशनम् । पापदौर्भाग्यशमनं रत्नाभरणधारणम् ॥" इति ।

१ सुमनः = पुष्पम् ।

२ मुखालेपनगुणानाह—**मुखेति** । ३ कान्तं = मनोरमं, 'कान्तं मनोरमं रुच्यं मनोज्ञं मञ्जु मञ्जुलम्' इत्यमरः । ४ नेत्राञ्जनगुणानाचष्टे—**पक्ष्मलमिति** । ५ अमलोज्ज्वलमण्डलं = निर्मलोज्ज्वलनेत्रबहिर्भागम् । ६ देवताऽतिथिब्राह्मणपूजनगुणानभिदधाति—**यशस्यमिति** । यशस्यं = यशस्करमित्यर्थः । ७ गोत्रवर्द्धनं = वंशवर्द्धनम् ।

८ आहारगुणान् ब्रवीति—**आहार इति** । तन्त्रान्तरे भोजनसमयमाह—"अथोक्तगुणसम्पन्नं नरः सेवेत भोजनम् । विचार्य दोषकालादीन् कालयोरुभयोरपि ॥" इति । "सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिनोदितम् । नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत् । याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद् बलक्षयः ॥ क्षुत्सम्भवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च । काले वा यदि वाऽकाले सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुस्तेजःसमुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्द्धनः ।
पादप्रक्षालनं पादमलरोगश्रमापहम् ॥ ६९ ॥
चक्षुःप्रसादनं वृष्यं रक्तोघ्नं प्रीतिवर्द्धनम् ।
निद्राकरो देहसुखश्चक्षुष्यः श्रमसुप्तिनुत् ॥ ७० ॥
पादत्वङ्मृदुकारी च पादाभ्यङ्गः सदा हितः ।
पादरोगहरं वृष्यं रक्तोघ्नं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ७१ ॥
सुखप्रचारमोजस्यं सदा पादत्रधारणम् ।
अनारोग्यमनायुष्यं चक्षुषोरुपघातकृत् ॥ ७२ ॥
पादाभ्यामनुपानद्भ्यां सदा चङ्क्रमणं नृणाम् ।
पापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम् ॥ ७३ ॥
हर्षलाघवसौभाग्यकरमुत्साहवर्द्धनम् ।
बाणवारं मृजावर्णतेजोबलविवर्द्धनम् ॥ ७४ ॥
पवित्रं केश्यमुष्णीषं वातातपरजोपहम् ।

---

जीर्णाहारस्य लक्षणम्—"उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः। लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥" इति । आहारस्थानमाह—"आहारं तु रहः कुर्यान्निर्हारमपि सर्वदा । उभाभ्यां लक्ष्म्युपेतः स्यात् प्रकाशे हीयते श्रिया ॥" इति । निर्हारः=मलमूत्रोत्सर्ग इति तदर्थः । अन्यच्च—"आहारनिर्हारविहारयोगाः सदैव सद्भिर्विजने विधेयाः" इति ।

१ पादप्रक्षालनगुणान् दर्शयति—**पादेति** । २ पादाभ्यङ्गगुणानिर्दिशति—**निद्रेति** । चरके विशेषः—"खरत्वं स्तब्धता रौक्ष्यं श्रमः सुप्तिश्च पादयोः । सद्य एवोपशाम्यन्ति पादाभ्यङ्गनिषेवणात् ॥ जायते सौकुमार्यं च बलं स्थैर्यं च पादयोः । दृष्टिः प्रसादं लभते मारुतश्चोपशाम्यति ॥ न च स्याद् गृध्रसीवातः पादयोः स्फुटनं न च । न सिरास्नायुसङ्कोचः पादाभ्यङ्गेन पादयोः ॥" इति । ३ पादत्रधारणगुणान् वक्ति—**पादरोगेति** । ४ पादत्रधारणं=पादुकादिधारणम् ।

५ केशनखरोमहरणगुणानाख्याति—**पादाभ्यामिति** । अनुपानद्भ्यां=पादुकादिपादत्राणरहिताभ्याम् । ६ पापोपशमनं=निर्मलीकरणम् । तथा च तन्त्रान्तरम्—"केशश्मश्रुनखादीनां कल्पनं सम्प्रसादनम्" इति । ७ बाणवारः=कञ्चुकः, 'कवच' इति लोके । 'कञ्चुको वारवाणोऽस्त्री' इत्यमरः । ८ शिरोवेष्टनधारणगुणानभिदधाति—**पवित्रमिति** । उष्णीषं=शिरोवेष्टनम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]वर्षाऽनिलरजोघर्महिमादीनां निवारणम् ॥ ७५ ॥
वर्ण्यं चक्षुष्यमौजस्यं [2]शङ्करं छत्रधारणम् ।
[3]शुनः सरीसृपव्यालविषाणिभ्यो भयापहम् ॥ ७६ ॥
श्रमस्खलनदोषघ्नं स्थविरे च प्रशस्यते ।
सत्त्वोत्साहबलस्थैर्य्यधैर्य्यवीर्य्यविवर्द्धनम् ॥ ७७ ॥
[4]अवष्टम्भकरं चापि भयघ्नं दण्डधारणम् ।
[5]आस्या वर्णकफस्थौल्यसौकुमार्य्यकरी सुखा ॥ ७८ ॥
[6]अध्वा वर्णकफस्थौल्यसौकुमार्य्यविनाशनः ।
[7]अत्यध्वा विपरीतोऽस्माज्जरादौर्बल्यकृच्च सः ॥ ७९ ॥
यत्तु चङ्क्रमणं[8] नातिदेहपीडाकरं भवेत् ।
तदायुर्बलमेधाऽग्निप्रदमिन्द्रियबोधनम् ॥ ८० ॥
[9]श्रमानिलहरं वृष्यं पुष्टिनिद्राधृतिप्रदम् ।
[10]सुखं शय्यासनं, दुःखं विपरीतगुणं मतम् ॥ ८१ ॥
[11]बालव्यजनमौजस्यं मक्षिकादीनपोहति ।
शोषदाहश्रमस्वेदमूर्च्छाघ्नो व्यजनानिलः ॥ ८२ ॥
[12]प्रीतिनिद्राकरं वृष्यं कफवातश्रमापहम् ।
[13]संवाहनं मांसरक्तत्वक्प्रसादकरं सुखम् ॥ ८३ ॥
[14]प्रवातं रौक्ष्यवैवर्ण्यस्तम्भकृद्दाहपक्तिनुत् ।
स्वेदमूर्च्छापिपासाघ्नमप्रवातमतोऽन्यथा ॥ ८४ ॥

---

१ छत्रधारणगुणानाचष्टे—**वर्षेति**। चरकः—"ईतेः प्रशमनं बल्यं गुप्त्यावरण-शङ्करम्। घर्मानिलरजोऽम्बुघ्नं छत्रधारणमुच्यते ॥" इति। २ शं कल्याणं करोतीति तत् शङ्करम्। ३ दण्डधारणगुणानाह—**शुन इति**। ४ अवष्टम्भकरम्=अवलम्बनकरमित्यर्थः। ५ आस्यागुणान् वक्ति—**आस्येति**। आस्या=स्थितिः। ६ चङ्क्रमणगुणानभिधत्ते—**अध्वेति**। ७ अत्यध्वा=अतिशयेन मार्गगमनम्। ८ चङ्क्रमणं=कुटिलगत्या परिभ्रमणम्।

९ सुखशय्यासनगुणान् प्रतिपादयति—**श्रमेति**। १० सुखं=मृदुगण्डोपधानादियोगात् सुखावहमित्यर्थः। ११ बालव्यजनानिलगुणानभिदधाति—**बालेति**। १२ संवाहनगुणानाह—**प्रीतीति**। १३ संवाहनम्=अङ्गमर्दनम्। १४ प्रवातनिवा-


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखं वातं प्रसेवेत ग्रीष्मे शरदि मानवः ।
निवातं ह्यायुषे सेव्यमारोग्याय च सर्वदा ॥ ८५ ॥
आतपः पित्ततृष्णाऽग्निस्वेदमूर्च्छाभ्रमास्रकृत् ।
दाहवैवर्ण्यकारी च छाया चैतानपोहति ॥ ८६ ॥
अग्निर्वातकफस्तम्भशीतवेपथुनाशनः ।
आमाभिष्यन्दजरणो रक्तपित्तप्रदूषणः ॥ ८७ ॥
पुष्टिवर्णबलोत्साहमग्निदीप्तिमतन्द्रिताम् ।
करोति धातुसाम्यं च निद्रा काले निषेविता ॥ ८८ ॥

तत्रादित एव नीचनखरोम्णा शुचिना शुक्लवाससा लघूष्णीषच्छत्रोपानत्केन दण्डपाणिना काले हितमितमधुरपूर्वाभिभाषिणा बन्धुभूतेन भूतानां गुरुवृद्धानुमतेन सुसहायेनानन्यमनसा खलूपचरितव्यं, तदपि न रात्रौ, न केशास्थिकण्टकाश्मतुषभस्मोत्करकपालाङ्गारामेध्यस्नानबलिभूमिषु, न विषमेन्द्रकीलचतुष्पथश्वभ्राणामुपरिष्टात् ॥ ८९ ॥

न राजद्विष्टपरुषपैशुन्यानृतानि वदेत्, न देवब्राह्मणपितृ-

---

तयोर्गुणानाख्याति—**प्रवातमिति** । १ आतपच्छाययोर्गुणान् वक्ति—**आतप इति** । २ अग्निसेवनगुणान् ब्रवीति—**अग्निरिति** ।

३ निद्रागुणान् दर्शयति—**पुष्टीति** । ४ काले=दिवास्वापातिरिक्ते काले इत्यर्थः । तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"दिवास्वापं न कुर्वीत यतोऽसौ श्लेष्मकफावहः । ग्रीष्मवर्ज्येषु कालेषु दिवास्वप्नो निषिध्यते ॥" इति । दिवास्वापजनानाह तन्त्रान्तरे—"उचितो हि दिवा स्वप्नो नित्यं येषां शरीरिणाम् । वातादयः प्रकुप्यन्ति तेषामस्वपतां दिवा ॥" अपि च—"व्यायामप्रमदाऽध्ववाहनरतान् क्लान्तानतीसारिणः, शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान् हिक्कामरुत्पीडितान् । क्षीणान् क्षीणकफाञ्छिशून् मदहतान् वृद्धान् रसाजीर्णिनो, रात्रौ जागरितान्नरान्निरशनान्कामं दिवा स्वापयेत् ॥" अन्यच्च—"दिवा वा यदि वा रात्रौ निद्रा सात्म्यीकृता तु यैः । न तेषां स्वपतां दोषो जाग्रतां चोपजायते ॥" इति ।

५ स्वस्थैः सदा पालनीयं सद्वृत्तमुपदिशति—**तत्रादित इति** । ६ उपचरितव्यं=गन्तव्यमित्यर्थः । ७ उत्करः=तृणादिराशिः । ८ यागार्थनिखातयूपोपलक्षितः प्रदेशः इन्द्रकीलः । इन्द्रार्थं कीला न्यस्यन्ते यस्मिन् देशे स प्रदेश इन्द्रकील

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

परिवादांश्च न नरेन्द्रद्विष्टोन्मत्तपतितक्षुद्रनीचाचारानुपासीत ॥ ९० ॥

वृक्षपर्वतप्रपातविषमवल्मीकदुष्टवाजिकुञ्जराद्यधिरोहणानि परिहरेत्, पूर्णनदीसमुद्राविदितपल्वलश्वभ्रकूपावतरणानि, भिन्नशून्यागारश्मशानविजनारण्यवासाग्निसम्भ्रमव्यालभुजङ्गकीटसेवाश्च, ग्रामघातकलहशस्त्रसन्निपातव्यालसरीसृपशृङ्गिसन्निकर्षांश्च ॥ ९१ ॥

नाग्निगोगुरुब्राह्मणप्रेङ्खादम्पत्यन्तरेणाभियायात्, न शवमनुयायात्, देवगोब्राह्मणचैत्यध्वजरोगिपतितपापकारिणां च छायां नाक्रमेत, नास्तं गच्छन्तमुद्यन्तं वाऽऽदित्यं वीक्षेत, गां धापयन्तीं धयन्तीं परशस्यं वा चरन्तीं परस्मै न कस्मैचिदाचक्षीत, न चोल्कापातेन्द्रधनूंषि, नाग्निं मुखेनोपधमेत् । नापो भूमिं वा पाणिपादेनाभिहन्यात् ॥ ९२ ॥

न वेगान् धारयेत्, न बहिर्वेगान् ग्रामनगरदेवताऽऽयतनश्मशानचतुष्पथसलिलाशयपथिसन्निकृष्टानुत्सृजेन्न प्रकाशं न वाऽग्निसलिलसोमार्कगोगुरुप्रतिमुखम् ॥ ९३ ॥

---

इति डल्हणः । १ परिवादः=विद्यमानदोषस्याभिधानम् । यथा—"परोवादस्तथ्यो भवतु वितथो वाऽपि महतां तथाऽप्युच्चैर्धाम्नां हरति महिमानं जनरवः । तुलोतीर्णस्यापि प्रकटनिहताशेषतमसो रवेस्तादृक् तेजो न हि भवति कन्यां गतवतः ॥" इति । २ 'प्रपातः=निर्झरः ।

३ ग्रामघातः=महामारीजनितग्रामहननम्, मरक इति यावत् । ४ प्रेङ्खा दोला तयोरन्तरेणेत्यर्थः । 'प्रेङ्खा दोलादिका स्त्रियाम्' इत्यमरः । ५ 'नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यन्तं कदाचन' इति मनुः । ६ 'नावारयेद् गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित्' इति मनुः । ७ 'न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद् बुधः' इति मनुः । 'नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् । अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलङ्घयेत् ॥ न चैनं पादतः कुर्यात्' इति मनुः ।

८ मनुः—'न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे । न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते ॥ न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन । न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नपि च स्थितः ॥ न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके । वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः । न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥" इति । अपि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न भूमिं विलिखेत्, नासंवृतंमुखः सदसि जृम्भोद्गार-श्वासक्षवथूनुत्सृजेत्, न पर्य्यङ्किकाऽवष्टम्भपादप्रसारणानि गुरु-सन्निधौ कुर्य्यात् ॥ ९४ ॥

न बालकर्णनासास्रोतोदशनविवराण्यभिकुष्णीयात्, न वीज-येत् केशमुखनखवस्त्रगात्राणि, न गात्रनखवक्त्रवादित्रं कुर्य्यात्, न काष्ठलोष्टतृणादीनभिहन्याद् भिन्द्याद् वा ॥ ९५ ॥

न प्रतिवातातपं सेवेत, न भुक्तमात्रोऽग्निमुपासीत, नोत्कटका-ल्पकाष्ठासनमध्यासीत, न ग्रीवां विषमं धारयेत्, न विषम-कायः क्रियां भजेत भुञ्जीत वा, न प्रततमीक्षेत विशेषाज्ज्योति-र्भास्करसूक्ष्मचलभ्रान्तानि, न भारं शिरसा वहेत्, न स्वप्नजाग-रणशयनासनस्थानचङ्क्रमणयानवाहनप्रधावनलङ्घनप्लवनप्रतर-णहास्यभाष्यव्यवायव्यायामादीनुचितानप्यतिसेवेत ॥ ९६ ॥

उचितादप्यहितात् क्रमशो विरमेत्, हितमनुचितमप्यासेवेत क्रमशो न चैकान्ततः, पादहीनात् ॥ ९७ ॥

नावाक्शिराः शयीत, न भिन्नपात्रे भुञ्जीत, न विना पात्रेण, नाञ्जलिपुटेनापः पिबेत्, काले हितमितस्निग्धमधुरप्रायमाहारं वैद्यप्रत्यवेक्षितमश्नीयात्, ग्रामगणगणिकापणिकशत्रुसत्रशठप-

---

च—'प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान्। प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः॥' इति। १ न असंवृतमाच्छादितं मुखं यस्य स नासंवृतमुखः। २ पर्य-ङ्किका=खट्वा, अवष्टम्भः=पृष्ठोपधानम्। ३ नाभिकुष्णीयात्=नाभिकर्षेत्।

४ 'न छिन्द्यान्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान्। न मूल्लोष्ठं च मृद्नीयान्न छिन्द्यात्करजैस्तृणम्॥' इति मनुः। ५ आसनशब्दस्योत्कटादिभिः प्रत्येकं सम्बन्धः। ६ लङ्घनं=गर्तादिकमतिक्रम्य गमनम्, प्लवनम्=उत्प्लुत्य गमनम्। ७ न चैकान्ततः=न सहसा, कथं? तद्दर्शयति—पादहीनादिति। पादं पादं विहायैव विरमेत्, सहसाऽधिकं त्यागे हानिः स्यादिति तात्पर्यम्।

८ 'न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते' इति मनुः। ९ 'न वार्यञ्जलिना पिबेत्' इति मनुः। १० ग्रामभोजनं=बहुस्वामिकमन्नम्, ग्रामीणा मिलित्वा यत् किञ्चिदन्नं सम्पादयन्ति तद् ग्रामभोजनम्। गणाः=रथकारचारणादयः। 'गणान्नं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तितभोजनानि परिहरेत्, शेषाण्यपि चानिष्टरूपरसगन्धस्पर्शशब्द-मानसानि, अन्यान्येवङ्गुणान्यपि वा सम्भूय दत्तानि, मक्षिका-बालोपहतानि, नाप्रक्षालितपाणिपादो भुञ्जीत न मूत्रोच्चारपीडितो न सन्ध्ययोर्नानुपाश्रितो नातीतकालं हीनमतिमात्रं चेति ॥ ९८ ॥

न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं[३] नष्टं पर्युषितं पयः।
नात्मानमुदके पश्येन्न नग्नः प्रविशेज्जलम् ॥ ९९ ॥
दधि न नक्तं भुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम्।
नामुद्गयूषं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना।
अन्यथा न जयेत् कुष्ठविसर्पादीन् गदान् बहून् ॥ १०० ॥

द्यूतमद्यातिसेवाप्रतिभूसाक्षित्वसमाह्वानगोष्ठीवादित्राणि[३] न सेवेत, स्रजं छत्रोपानहौ[४] कनकमतीतवासांसि न चान्यैर्धृतानि धारयेत्, ब्राह्मणमग्निं गाञ्च नोच्छिष्टः स्पृशेत् ॥ १०१ ॥

यस्मिन्[५] यस्मिन्नृतौ ये ये दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम्।
तेषु तेषु प्रदातव्या रसास्ते ते विजानता ॥ १०२ ॥
वर्षासु न[६] पिबेत्तोयं पिबेच्छरदि मात्रया।
वर्षासु चतुरो मासान् मात्रावदुदकं पिबेत् ॥ १०३ ॥
उष्णं हैमे वसन्ते च कामं[७] ग्रीष्मे तु शीतलम्।
हेमन्ते च वसन्ते च सीध्वरिष्टौ पिबेन्नरः ॥ १०४ ॥
घृतशीतं पिबेद् ग्रीष्मे प्रावृट्काले रसं पिबेत्।
यूषं वर्षति, तस्यान्ते[८] प्रपिबेच्छीतलं जलम् ॥ १०५ ॥
स्वस्थ एवमतोऽन्यस्तु[९] दोषाहारमतानुगः।

---

गणिकान्नं च विदुषा च जुगुप्सितम्। स्तेनगायनयोश्चान्नं तद्गो वार्धुषिकस्य च ॥' इत्यादिकं चतुर्थाध्याये मनुवचनमवलोकनीयम्।

१ 'केशकीटावपन्नं च पदा स्पृष्टं च कामतः' इति मनुः। २ 'न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत्' इति। ३ वादित्राणि = मृदङ्गादिवाद्यानि। ४ 'उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत्' इति च। ५ ऋतुभेदेन पेयपानविधिमुपदिशति-यस्मिन्निति। ६ न पिबेत् = ईषत् पिबेत्। मात्रया = अल्पपरिमाणेनेत्यर्थः। ७ कामं = यथेच्छम्। ८ तस्यान्ते = वर्षान्ते, शरदीत्यर्थः। ९ अन्यः = अस्वस्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नेहं[1] सैन्धवचूर्णेन पिप्पलीभिश्च संयुतम् ॥ १०६ ॥
पिबेदग्निविवृद्ध्यर्थं न च वेगान् विधारयेत् ।
अग्निदीप्तिकरं नृणां रोगाणां शमनं प्रति ॥ १०७ ॥
प्रावृट्शरद्वसन्तेषु सम्यक् स्नेहादिमाचरेत्[2] ।
कफे प्रच्छर्दनं पित्ते विरेको बस्तिरीरणे[3] ॥ १०८ ॥
शस्यते त्रिष्वपि सदा व्यायामो दोषनाशनः ।
भुक्तं विरुद्धमप्यन्नं व्यायामान्न प्रकुप्यति[4] ॥ १०९ ॥
उत्सर्गं[5] मैथुनाहारशोधने स्यात्तु तन्मनाः ।
नेच्छेद्रोगभयात् प्राज्ञः पीडां वा कायमानसीम् ॥ ११० ॥
अतिस्त्री[6]सम्प्रयोगाच्च रक्षेदात्मानमात्मवान् ।
शूलकासज्वरश्वासकार्श्यपाण्ड्वामयक्षयाः ॥ १११ ॥
अतिव्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः ।
आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विताः ॥ ११२ ॥
स्थिरोपचितमांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयताः ।
त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्वा समीयात् प्रमदां नरः ॥ ११३ ॥
सर्वेष्वृतुषु, घर्मेषु पक्षात् पक्षाद् व्रजेद् बुधः ।
रजस्वलामकामां[7] च मलिनामप्रियां तथा ॥ ११४ ॥
वर्णवृद्धां[8] वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम् ।
हीनाङ्गीं गर्भिणीं द्वेष्यां योनिदोषसमन्विताम् ॥ ११५ ॥
[9]सगोत्रां गुरुपत्नीं च तथा प्रव्रजितामपि ।

---

१ अग्निदीपनोपायं दर्शयति—स्नेहमिति । २ स्वस्थातुरयोरुभयोरपि शोधनोपायं निर्दिशति—प्रावृडिति । ३ ईरणे = वायावित्यर्थः । ४ न प्रकुप्यति = न दोषचयमाप्नोति । ५ मैथुनं निषेधति—उत्सर्गेति ।

६ स्त्रीसंसर्गं नियमयति—अतीति । ६ अकामां = मैथुनानभिलाषिणीमित्यर्थः । ७ वर्णवृद्धां = वर्णश्रेष्ठाम् । यथा शूद्रस्य वैश्या, वैश्यस्य क्षत्रिया, क्षत्रियस्य ब्राह्मणी गमनानर्हा । मनुः—'शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृता । ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥' इति । ९ मनुः—'असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥' इति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्ध्यापर्वस्वगम्याञ्च नोपेयात् प्रमदां नरः ॥ ११६ ॥
गोसर्गे चार्द्धरात्रे च तथा मध्यन्दिनेषु च ।
लज्जासमावहे देशे विवृतेऽशुद्ध एव च ॥ ११७ ॥
क्षुधितो व्याधितश्चैव क्षुब्धचित्तश्च मानवः ।
वातविण्मूत्रवेगी च पिपासुरतिदुर्बलः ॥ ११८ ॥
तिर्य्यग्योनौ वयोनौ च प्राप्तशुक्रविधारणम् ।
दुष्टयोनौ विसर्गन्तु बलवानपि वर्जयेत् ॥ ११९ ॥
रेतसश्चातिमात्रन्तु मूर्द्धावरणमेव च ।
स्थितावुत्तानशयने विशेषेणैव गर्हितम् ॥ १२० ॥
क्रीडायामपि मेधावी हितार्थी परिवर्जयेत् ।
रजस्वलां प्राप्नवतो नरस्यानियतात्मनः ॥ १२१ ॥
दृष्ट्यायुस्तेजसां हानिरधर्मश्च ततो भवेत्
लिङ्गिनीं गुरुपत्नीञ्च सगोत्रामथ पर्वसु ॥ १२२ ॥
वृद्धाञ्च सन्ध्ययोश्चापि गच्छतो जीवितक्षयः ।
गर्भिण्यां गर्भपीडा स्याद् व्याधितायां बलक्षयः ॥१२३॥
हीनाङ्गीं मलिनां द्वेष्यां कामं वन्ध्यामसंवृते ।

---

१ पर्वाणि—'चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्याऽथ पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र ! रविः सङ्क्रान्तिरेव च॥' इति । 'तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या। त्रयोदशी च शेषास्ते प्रशस्ता दशरात्रयः॥' 'मघा मूलं च वर्जयेत्' इत्यादिधर्मशास्त्रवचनमप्यनुसन्धातव्यम् । २ गोसर्गे=प्रभाते ।

३ विवृते=अनाच्छादिते देशे । स्त्रीसेवनयोग्यस्थानमुक्तम्—'विहारं भार्यया कुर्याद् देशेऽतिशयसंवृते । रम्ये श्राव्याङ्गनागाने सुगन्धे सुखमारुते॥' इति । ४ अतिदुर्बलो नोपेयादिति पूर्वक्रियया सम्बन्धः । ५ तिर्यग्योनिः=पशुयोनिः, अयोनिः= अल्पयोनिः, प्राप्तशुक्रविधारणं प्राप्तस्य निर्गमनायोद्यतस्य शुक्रस्य विधारणम् ।

६ मूर्धावरणं=लिङ्गमणेरुष्णीषवदावरणम् । ७ स्थितौ=ऊर्ध्वीभावावस्थायाम् । म् । ८ प्राप्नवतः=गच्छत इत्यर्थः । अनियतात्मनः=अवशेन्द्रियस्य । ९ लिङ्गिनीं= संन्यासादिलिङ्गधारिणीम् । १० गर्भिण्यां स्त्रियां 'मैथुनकरणे' इति शेषः । ११ असं-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशेऽशुद्धे च शुक्रस्य मनसश्च क्षयो भवेत् ॥ १२४ ॥
क्षुधितः क्षुब्धचित्तश्च मध्याह्ने तृषितोऽबलः ।
स्थितश्च हानिं शुक्रस्य वायोः कोपञ्च विन्दति[2] ॥ १२५ ॥
अतिप्रसङ्गाद्भवति शोषः शुक्रक्षयावहः ।
व्याधितस्य रुजा श्लीहि मृत्युर्मूर्च्छा च जायते ॥ १२६ ॥
प्रत्यूषस्यर्द्धरात्रे[3] च वातपित्ते प्रकुप्यतः ।
तिर्यग्योनावयोनौ च दुष्टयोनौ तथैव च ॥ १२७ ॥
उपदंशस्तथा वायोः कोपः शुक्रस्य च क्षयः ।
उच्चारिते[4] मूत्रिते च रेतसश्च विधारणे ॥ १२८ ॥
उत्ताने च भवेच्छीघ्रं शुक्राश्मर्यास्तु सम्भवः ।
सर्वं परिहरेत् तस्मादेतल्लोकद्वयेऽहितम्[5] ॥ १२९ ॥
शुक्रं चोपस्थितं मोहान्न सन्धार्यं कथञ्चन ।
वयोरूपगुणोपेतां[6] तुल्यशीलां कुलान्विताम् ॥ १३० ॥
अभिकामोऽभिकामान्तु[7] हृष्टो हृष्टामलङ्कृताम् ।
सेवेत प्रमदां युक्त्या वाजीकरणबृंहितः ॥ १३१ ॥
भक्ष्याः सशर्कराः क्षीरं ससितं रस[8] एव च ।
स्नानं[9] सव्यजनं स्वप्नो व्यवायान्ते[10] हितानि तु ॥ १३२ ॥
मुखमात्रं समासेन सद्वृत्तस्यैतदीरितम् ।

---

वृते=अनाच्छादिते देशे इत्यर्थः । १ क्षुब्धचित्तः=सञ्चलितमानसः । २ विन्दति=लभते इत्यर्थः । ३ प्रत्यूषसि=प्रभाते । ४ उच्चारिते=पुरीषवेगयुक्ते, 'उच्चारावस्करौ शमलं शकृत् । पुरीषं गूथवर्चस्कमस्त्री विष्ठाविशौ स्त्रियौ' इत्यमरः । मूत्रिते=मूत्रवेगयुक्ते इत्यर्थः ।

५ लोकद्वये=इहलोके परलोके चेत्यर्थः । ६ वयः किशोरावस्था, रूपं मनोहरं, गुणो दाक्षिण्यादिस्तैरुपेतां युक्तामित्यर्थः । तुल्यशीलां तुल्यः समानः शीलो यस्याः सा तथोक्ताम् । ७ अभिकामः=सकामः, अभिकामां=सकामाम् । ८ रसः=मांसरसः । ९ स्नानमिदं ग्रीष्मादौ दिवा मैथुने व्यवस्थापनीयम् । व्यवायान्ते=मैथुनान्ते इत्यर्थः । १० सद्वृत्तमुपसंहरति—मुखेति । मुखशब्दोऽत्र प्रधानवाचकः, तेन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरोग्यमायुरर्थो वा नासद्भिः प्राप्यते नृभिः ॥ १३३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थानेऽनागताबाधचिकित्सितं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

## पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो मिश्रकचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

पाल्यामयास्तु विस्राव्या इत्युक्तं प्राङ्निबोध तान् ।
परिपोटस्तथोत्पात उन्मन्थो दुःखवर्द्धनः ॥ ३ ॥
पञ्चमः परिलेही च कर्णपाल्या गदा स्मृताः ।
सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसाऽभिप्रवर्द्धिते ॥ ४ ॥
कर्णशोफो भवेत् पाल्यां सरुजः परिपोटवान् ।
कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात् परिपोटकः ॥ ५ ॥
गुर्वाभरणसंयोगात् ताडनाद् घर्षणादपि ।
शोफः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुगन्वितः ॥ ६ ॥

---

मुखमात्रं प्रधानमात्रमित्यर्थः। १ असद्भिः=असच्चरितैरित्यर्थः।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्विंशतितमोऽध्यायः।

## पञ्चविंशतितमोऽध्यायः।

२ कर्णपालीगतरोगनामधेयमभिधत्ते—**पाल्यामया इति**। विस्राव्या इत्युक्तं सूत्रस्थानस्य पञ्चविंशतितमेऽध्याये—"स्राव्या विद्रधयः पञ्च भवेयुः सर्वजादृते। कुष्ठानि वातजः सरुजः शोफो यश्चैकदेशजः। पाल्यामयाः श्लीपदानि विषजुष्टं च शोणितम्" इत्यादिना।

३ परिपोटलक्षणं दर्शयति—**सौकुमार्यादिति**। कर्णे चिरोत्सृष्टे बहुकालमुपेक्षिते सहसा झटिति प्रवर्धिते सौकुमार्याद्धेतोः पाल्यां शोफः सरुगित्यादिलक्षणयुक्तः स्यात्। सवातात्परिपोटको रोगः स्यात्। चिरोत्सृष्टत्वे सौकुमार्यं हेतुरिति डल्हणाशयः। ४ परिपोटवान्=मनाक् स्रवगवदरणवान्।

५ उत्पातलक्षणमभिदधाति—**गुर्विति**। ६ श्यावत्वमत्र व्याधिप्रभावात्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः ।
बलाद्बर्द्धयतः कर्णं पाल्यां वायुः प्रकुप्यति ॥ ७ ॥
गृहीत्वा सकफं कुर्याच्छोफं तद्वर्णवेदनम् ।
उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥ ८ ॥
वर्द्धमाने यदा कर्णे कण्डूदाहरुगन्वितः ।
शोफो भवति पाकश्च त्वक्स्थोऽसौ दुःखवर्द्धनः ॥ ९ ॥
कफासृक्कृमयः कुर्य्युः सर्षपाभा विकारिणीः ।
स्राविणीः पिडकाः पाल्यां कण्डूदाहरुगन्विताः ॥ १० ॥
कफासृक्कृमिसम्भूतः स विसर्पान्वितस्ततः ।
लिह्यात् सशष्कुलीं पालीं परिलेहीति स स्मृतः ॥ ११ ॥
पाल्यामया ह्यमी घोरा नरस्याप्रतिकारिणः ।
मिथ्याहारविहारस्य पालिं हिंस्युरुपेक्षिताः ॥ १२ ॥
तस्मादाशु भिषक् तेषु स्नेहादिक्रममाचरेत् ।
तथाऽभ्यङ्गपरीषेकप्रदेहासृग्विमोक्षणम् ॥ १३ ॥
सामान्यतो विशेषाच्च वक्ष्याम्यभ्यञ्जनं प्रति ।
खरमञ्जरियष्ट्याह्वसैन्धवामरदारुभिः ॥ १४ ॥
सुपिष्टैः साश्वगन्धैश्च मूलकावल्गुजैः फलैः ।

---

१ उन्मन्थस्य लक्षणमाख्याति—**बलादिति** । २ 'तद्वर्णवेदनम्' इत्यत्र 'स्तब्धमवेदनम्' इति पाठान्तरम् । ३ दुःखवर्द्धनस्य लक्षणमभिधत्ते—**वर्द्धमान इति** । दुःखवर्द्धनाद्धेतोः दुःखवर्द्धनको नाम रोगः ।

४ परिलेहिनो लक्षणमभिदधाति—**कफेति** । ५ सः=पिडकात्मको विकारः । ६ लिह्यात्=निर्मांसीकुर्यात्, आच्छादयेद् वा । शष्कुली बाह्यपाल्यधिष्ठिता तत्सहितां सशष्कुलीम् । ७ अप्रतिकारिणः=अचिकित्स्यमानस्येत्यर्थः । ८ स्नेह आदिर्यस्य वमनादेः स स्नेहादिः, स चासौ क्रमस्तम् । वातिकेऽभ्यङ्गानुवासनप्रदेहादि, पैत्तिके विरेचनम्, श्लैष्मिके वमनम्, रक्तपैत्तिके रक्तापकर्षणविरेकपरिषेकादिका क्रिया, क्रिमिजे क्रिमिघ्नश्च विधिः ।

९ सर्वेषां सामान्यचिकित्सितमभिधाय प्रथमं तावत परिपोटकस्य चिकित्सामाचष्टे—**खरमञ्जरीति** । खरमञ्जरिः=अपामार्गः । १० अवल्गुजः=सोमराजी,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्पिस्तैलवसामज्जमधूच्छिष्टानि पाचयेत् ॥ १५ ॥
सक्षीराण्यथ तैः पालिं प्रदिह्यात् परिपोटके ।
मञ्जिष्ठातिलयष्ट्याह्वसारिवोत्पलपद्मकैः ॥ १६ ॥
सरोध्रैः सकदम्बैश्च बलाजम्ब्वाम्रपल्लवैः ।
सिद्धं धान्याम्लसंयुक्तं तैलमुत्पातनाशनम् ॥ १७ ॥
तालपत्र्यश्वगन्धार्कबाकुचीफलसैन्धवैः ।
तैलं कुलीरगोधाभ्यां वसया सह पाचितम् ॥ १८ ॥
सरलालाङ्गलीभ्याञ्च हितमुन्मन्थनाशनम् ।
तथाऽश्मन्तकजम्ब्वाम्रपत्रक्काथेन सेचनम् ॥ १९ ॥
प्रपौण्डरीकमधुकमञ्जिष्ठारजनीद्वयैः ।
चूर्णैरुद्वर्त्तनैः पालीं तैलाक्तामवचूर्णयेत् ॥ २० ॥
लाक्षाविडङ्गकल्केन तैलं पक्त्वाऽवचारयेत् ।
स्विन्नां गोमयपिण्डेन प्रदिह्यात् परिलेहिके ॥ २१ ॥
पिष्टैर्विडङ्गैरथवा त्रिवृच्छ्यामार्कसंयुतैः ।
करञ्जेङ्गुदिबीजैर्वा कुटजारग्वधायुतैः ॥ २२ ॥
सर्वैर्वा सार्षपं तैलं सिद्धं मरिचसंयुतम् ।
सनिम्बपत्रैरभ्यङ्गे मधूच्छिष्टान्वितं हितम् ॥ २३ ॥
पालीषु व्याधियुक्तासु तन्वीषु कठिनासु च ।
पुष्ट्यर्थं मार्दवार्थञ्च कुर्य्यादभ्यञ्जनं त्विदम् ॥ २४ ॥
लोपाकानूपमज्जानं वसां तैलं नवं घृतम् ।

---

'बाकुची' इति ख्यातः। 'अवल्गुजः सोमराजी सुवल्लिः सोमवल्लिका। कालमेषी कृष्णफला बाकुची पूतिफल्यपि।' इत्यमरः। १ मधूच्छिष्ट = 'मोम' इति प्रथते।

२ उत्पातस्य चिकित्सां वक्ति—मञ्जिष्ठेति। ३ बला = 'खरेटी' इति ख्याता। ४ उन्मन्थस्य चिकित्सितं ब्रवीति—तालपत्रीति। तालपत्री = मूषिकपर्णी, 'मुसली' इति लोके। ५ कुलीरः = 'केंकड़ा' इति, गोधा = 'गोह' इति च प्रथते। ६ सरला देवदारुः, लाङ्गली कलिहारिका, ताभ्यामित्यर्थः। ७ रजनीद्वयैः = हरिद्राद्वयैः।

८ परिलेहिनश्चिकित्सां प्रतिपादयति—लाक्षेति। ९ कुटजः = 'कुड़ा' इति ख्यातः। १० तन्वीषु = कोमलासु। ११ लोपाकः = शृगालः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचेद्दशगुणं क्षीरमावाप्य मधुरं गणम् ॥ २५ ॥[1]
अपामार्गाश्वगन्धे[2] च तथा लाक्षारसं शुभम् ।
तत्सिद्धं परिपूतञ्च स्वनुगुप्तं निधापयेत् ॥ २६ ॥
तेनाभ्यञ्ज्यात् सदा पालीं सुस्विन्नामतिमर्दिताम् ।
एतेन पाल्यो वर्द्धन्ते निरुजो निरुपद्रवाः ॥ २७ ॥
मृद्वयः पुष्टाः समाः स्निग्धा जायन्ते भूषणक्षमाः ।
नीलीदलं[3] भृङ्गरजोऽर्जुनत्वक्पिण्डीतकं कृष्णमयोरजश्च ।
बीजोद्भवं[4] साहचरञ्च पुष्पं पथ्याऽक्षधात्रीसहितं विचूर्ण्य ॥ २८ ॥
एकीकृतं सर्वमिदं प्रमाय[5] पङ्केन तुल्यं नलिनीभवेन ।
संयोज्य पक्वं कलशे निधाय लौहे घटे सद्मनि सापिधाने[6] ॥ २९ ॥
अनेन तैलं विपचेद् विमिश्रं रसेन भृङ्गत्रिफलाभवेन ।
आसन्नपाके च परीक्षणार्थं पत्रं बलाकाभवमाक्षिपेच्च[7] ॥ ३० ॥
भवेद् यदा[8] तद् मराङ्गनीलं तदा विपक्वं विनिधाय पात्रे ।
कृष्णायसे मासमवस्थितं तदभ्यङ्गयोगात्पलितानि हन्यात् ॥ ३१ ॥
सैरीय[10]जम्ब्वर्जुनकाश्मरीजं पुष्पं तिलान्मार्कव[11] चूतबीजे ।
पुनर्नवे कर्दम[12] कण्टकार्यौ कासीसपिण्डीतकबीजसारम् ॥ ३२ ॥
फलत्रय[13] लोहरजोऽञ्जनञ्च यष्ट्याह्वयं नीरजसारिवे च ।

---

१ मधुरं = काकोल्यादिमधुरद्रव्यम् । २ अश्वगन्धः = 'असगन्ध' इति ख्यातः ।

३ पलिते नीलीतैलं निर्दिशति—नीलीति । नीली 'नील' इति ख्याता तद्दलं पत्रमित्यर्थः । भृङ्गरजः = 'भांगरा' इति । अर्जुनः ककुभस्तस्य त्वक् वल्कलम् । पिण्डीतकं कृष्णपुष्पमदनफलम् । ४ बीजोद्भवं = मातुलुङ्गसम्भवं पुष्पम्, सहचरः = 'सहदेई' इति ख्यातः, तत्सम्बन्धि पुष्पम् । ५ प्रमाय = तोलयित्वा । ६ सापिधाने = साच्छादने । 'अपिधानतिरोधानपिधानाच्छादनानि च' इत्यमरः । ७ बलाकाभवं = बकभवं, पत्रं = पक्षमित्यर्थः । 'पत्र तु वाहने पर्णे पक्षे च शरपक्षिणोः' इति विश्वः ।

८ यदा तत् पक्वं भ्रमराङ्गवन्नीलं भवेदित्यर्थः । ९ पलितानि = जरसा केशशौक्ल्यादीनि । १० पलिते योगान्तरं निर्दिशति—सैरीयेति । सैरीयः = झिण्टी । ११ मार्कवः = भृङ्गराजः । १२ कर्दमः = कमलिनीमूलपङ्कः, ··· पिण्डीतकः = पाण्डुरवर्णं मदनफलम्, बीजसारम् = असनसारम् । १३ फलत्रयं = त्रिफलेत्यर्थः । अञ्जनं =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिष्ट्वाऽथ सर्वं सह मोदयन्त्या साराम्भसा बीजकसम्भवेन ॥३३॥
साराम्भसः सप्तभिरेव पश्चात् प्रस्थैः समालोड्य दशाहगुप्तम् ।
लौहे सुपात्रे विनिधाय तैलमक्षोद्भवं तच्च पचेत् प्रयत्नात् ॥३४॥
पक्वञ्च लौहेऽभिनवे निधायं नस्यं विदध्यात् परिशुद्धकायः ।
अभ्यङ्गयोगैश्च नियुज्यमानं भुञ्जीत मांसान् कृशरामथो वा ॥३५॥
मासोपरिष्टाद्घनकुञ्चिताग्राः केशा भवन्ति भ्रमराञ्जनाभाः ।
केशास्तथाऽन्ये खलतौ भवेयुर्जरा न चैनं सहसाऽभ्युपैति ॥ ३६ ॥
बलं परं सम्भवतीन्द्रियाणां भवेच्च वक्त्रं बलिभिर्विमुक्तम् ।
नाकामिनेऽनर्थिनि नाकृताय नैवारये तैलमिदं प्रदेयम् ॥ ३७ ॥
लाक्षा रोध्रं द्वे हरिद्रे शिलाऽऽले कुष्ठं नागं गैरिका वर्णकाश्च ।
मञ्जिष्ठोग्रा स्यात् सुराष्ट्रोद्भवा च पत्तङ्गं वै रोचना चाञ्जनञ्च ॥३८॥
हेमाङ्गत्वक् पाण्डुपत्रं वटस्य कालीयं स्यात् पद्मकं पद्ममध्यम् ।
रक्तं श्वेतं चन्दनं पारदञ्च काकोल्यादिः क्षीरपिष्टश्च वर्गः ॥ ३९ ॥
मेदो मज्जा सिक्थकङ्गोघृतञ्च दुग्धं क्वाथः क्षीरिणाञ्च द्रुमाणाम् ।
एतत् सर्वं पक्वमेकध्यतस्तु वक्त्राभ्यङ्गे सर्पिरुक्तं प्रधानम् ॥४०॥
हन्याद् व्यङ्गं नीलिकाञ्चाति वृद्धां वक्त्रे जाताः स्फोटिकाश्चापि काश्चित् ।
पद्माकारं निर्व्यलीकञ्च वक्त्रं कुर्यादेतत् पीनगण्डं मनोज्ञम् ॥४१॥

---

रसाञ्जनम् । नीरजं = नीलोत्पलम् । १ कर्षप्रमाणं पिष्ट्वेत्यर्थः । मोदयन्त्या = वनमल्लिकया, बीजकसम्भवेन = मातुलुङ्गोद्भवेन, साराम्भसा = सारोदकेन । २ साराम्भसः = सालसारक्वाथस्य, नामैकदेशे नाममात्रग्रहणात् । ३ अक्षोद्भवं = बिभीतकोत्थं तैलम् , एतच्चैकमाढकं ग्राह्यम् । ४ मासपर्यन्तं निधायेत्यर्थः ।

५ खलतौ = खल्वाटे । एतेन खलतावपि योगोऽयं प्रयोक्तव्य इति गम्यते । ६ इदं तैलम् अकामिनेऽनभिलाषिणे न, अर्थिनि याचके न, अकृताय चौर्यादिनिन्दितकर्मकारिणे न, नैव अरये शत्रवे प्रदेयमित्यर्थः ।

७ व्यङ्गादिनाशकघृतं निर्दिशति—लाक्षेति । शिला = मनःशिला, आलं = हरितालम् । नागं = नागकेसरम् । 'वर्णको हरितालम्' इति शब्दार्थचिन्तामणिः । ८ उग्रा = वचा, सुराष्ट्रोद्भवा = 'फिटकिरी' इत्युद्घुष्यते । पत्तङ्गं = रक्तचन्दनम् । ९ हेमाङ्गश्चम्पक इति शब्दार्थचिन्तामणिः । कालीयं = कृष्णचन्दनम् , 'अगर' इति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्ञामेतद् योषितां चापि नित्यं कुर्याद् वैद्यस्तत्समानां नृणाञ्च ।
कुष्ठघ्नं वै सर्पिरेतन्न प्रधानं येषां पादे सन्ति वैगादिकाश्च ॥ ४२ ॥
हरीतकीचूर्णमरिष्टपत्रं चूतत्वचं दाडिमपुष्पवृन्तम् ।
पत्रञ्च दद्यान्मदयन्तिकाया लेपोऽङ्गरागो नरदेवयोग्यः ॥ ४३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने मिश्रकचिकित्सितं नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

---

## षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः क्षीणबलीयं वाजीकरणचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
कल्यस्योदग्रवयसो वाजीकरणसेविनः ।
सर्वेष्वृतुष्वहरहर्यवायो न निवारितः ॥ ३ ॥
स्थविराणां रिरंसूनां स्त्रीणां वाल्लभ्यमिच्छताम् ।

---

ख्यातम् । १ अरिष्टपत्रं = निम्बपत्रम् । २ मदयन्तिकायाः = वनमल्लिकाया इत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायामिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां
पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

---

### षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

३ क्षीणबलाय हितं क्षीणबलीयं वाजीकरणचिकित्सितं व्याख्यास्याम इत्यर्थः । वाजीकरणं तु—"यद् द्रव्यं पुरुषं कुर्याद् वाजीव सुरतक्षयम् । तद्वाजीकरमाख्यातं मुनिभिर्भिषजांवरैः ॥" इति ।

४ वाजीकरणयोग्यानरान्निर्दिशति—कल्यस्येति । कल्पस्य=निरामयस्य, 'कल्पं प्रभाते मधुनि सज्जे दक्षे निरामये' इति हेमचन्द्रः । उदग्रवयसः उदग्रमुन्नतं वयो यस्य स तस्य यौवनस्थस्येत्यर्थः । एतेन बालवृद्धौ निराक्रियेते । तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"अतिबालो ह्यसम्पूर्णसवधातुः स्त्रियो व्रजन् । उपतप्येत सहसा तडागमिव काजलम् ॥ शुष्कं रूक्षं यथा काष्ठं जन्तुदग्धं विजर्जरम् । स्पृष्टमाशु विशीर्येत तथा वृद्धः स्त्रियो व्रजन् ॥" इति ।

५ वाजीकरणौषधयोग्यजनानाह—स्थविराणामिति । रिरंसूनां = रन्तुमिच्छू-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योषित्प्रसङ्गात् क्षीणानां क्लीबानामल्परेतसाम् ॥ ४ ॥
विलासिनामर्थवतां रूपयौवनशालिनाम् ।
नृणाञ्च बहुभार्य्याणां योगा वाजीकरा हिताः ॥ ५ ॥
सेवमानो यदौचित्याद्वाजीवात्यर्थवेगवान् ।
नारीस्तर्पयते तेन वाजीकरणमुच्यते ॥ ६ ॥
भोजनानि विचित्राणि पानानि विविधानि च ।
वाचः श्रोत्रानुगामिन्यस्त्वचः स्पर्शसुखास्तथा ॥ ७ ॥
यामिनी सेन्दुतिलका कामिनी नवयौवना ।
गीतं श्रोत्रमनोहारि ताम्बूलं मदिराः स्रजः ॥ ८ ॥
मनसश्चाप्रतीघातो वाजीकुर्वन्ति मानवम् ।
तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते ॥ ९ ॥
द्वेष्यस्त्रीसम्प्रयोगाच्च क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम् ।
कटुकाम्लोष्णलवणैरतिमात्रोपसेवितैः ॥ १० ॥

---

नामित्यर्थः । वाल्लभ्यं=प्रियत्वम् । १ वाजीकरणस्य लक्षणं प्रतिपादयति—सेवमान इति । तन्त्रान्तरेऽपि—"येन नारीषु सामर्थ्यं वाजीवल्लभते नरः । व्रजेच्चाभ्यधिकं येन वाजीकरणमेव तत् ॥" इति । अनेन निरुक्तेन त्रिविधमपि वृष्यमवरुध्यते । यथा—शुक्रवृद्धिकरं माषादि, शुक्रकृतिकरं सङ्कल्पादि, शुक्रकृतिवृद्धिकरं च क्षीरादि । तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"शुक्रकृतिकरं किञ्चित् किञ्चिच्छुक्रविवर्द्धनम् । कृतिवृद्धिकरं किञ्चित् त्रिविधं वृष्यमुच्यते ॥" इति । वृष्यादिद्रव्याणां सद्यः शुक्रादिकरणे प्रभावोऽयमिति डल्हणः ।

तथा च श्रीवाग्भटः—'केचिदाहुरहोरात्राद्दशाहादपरे, परे । मासात्प्रयाति शुक्रत्वमन्नं पाकक्रमादिति ॥ वृष्यादीनि प्रभावेण सद्यः शुक्रादि कुर्वते । प्रायः करोत्यहोरात्रात् कर्माव्यन्यच्च भेषजम् ॥" इति । २ वाजीकरणवस्तूनि निर्दिशति—भोजनानीति । ३ यामिनी रात्रिः, सेन्दुतिलका इन्दुतिलकेन सहिता चन्द्रिकया युता रात्रिरित्यर्थः ।

४ षड्विधेषु क्लैब्येषु प्रथममानसक्लैब्यलक्षणं प्रतिपादयति—तैस्तैरिति । तैस्तैर्भावैः=भयशोकक्रोधस्त्रीदोषदर्शनादिभिः, अहृद्यैः=वाक्पारुष्यादिना हृदयाहितैरित्यर्थः । क्षते=पीडिते । ५ सम्प्रयोगात्=सम्बन्धात्, मैथुनादित्यर्थः । ६ पित्तजन्यद्वितीयक्लैब्यलक्षणं दर्शयति—कटुकेति । कटुकादिनाऽतिमात्रेण प्रवृद्धेन पित्तेन शुक्रस्य दग्धत्वात् क्लैब्यं भवति पित्तजमिति तात्पर्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौम्यधातुक्षयो दृष्टः क्लैब्यं तदपरं स्मृतम् ।
अतिव्यवायशीलो[1] यो न च वाजीक्रियारतः ॥ ११ ॥
ध्वजभङ्गमवाप्नोति[2] तच्छुक्रक्षयहेतुकम् ।
महता[3] मेढ्ररोगेण मर्मच्छेदेन वा पुनः ॥ १२ ॥
क्लैब्यमेतच्चतुर्थं स्यान्नृणां पुंस्त्वोपघातजम् ।
जन्मप्रभृति[4] यः क्लीबः क्लैब्यं तत् सहजं स्मृतम् ॥१३॥
बलिनः क्षुब्धमनसो[5] निरोधाद् ब्रह्मचर्य्यतः ।
षष्ठं[6] क्लैब्यं मतं तत्तु स्थिरशुक्रनिमित्तजम् ॥१४॥
असाध्यं[7] सहजं क्लैब्यं मर्मच्छेदाच्च यद्भवेत् ।
साध्यानामितरेषान्तु कार्य्यो हेतुविपर्य्ययः[8] ॥ १५ ॥
विधिर्वाजीकरो यस्तु तं प्रवक्ष्याम्यतः परम् ।
तिलमाषविदारीणां शालीनां चूर्णमेव वा ॥ १६ ॥
पौण्ड्रेक्षुरसैरार्द्रं[9] मदितं सैन्धवान्वितम् ।
वराहमेदसा युक्तां घृतेनोत्कारिकां[10] पचेत् ॥ १७ ॥
तां भक्षयित्वा पुरुषो गच्छेत्तु प्रमदाशतम् ।
बस्ताण्डसिद्धे[11] पयसि भावितानसकृत्तिलान् ॥ १८ ॥

---

१ शुक्रक्षयजन्यतृतीयक्लैब्यलक्षणं वक्ति—अतिव्यवायेति । अतिव्यवायशीलः=अत्यन्तमैथुनस्वभावः । २ ध्वजस्य शिश्नस्य भङ्गस्तमित्यर्थः । 'ध्वजः पूर्वदिशो गृहे । शिश्ने चिह्ने पताकायां खट्वाङ्गे शौण्डिकेऽपि च' इति हेमचन्द्रः । ३ मेढ्ररोगेण चतुर्थक्लैब्यं लक्षणमाख्याति—महतेति । मर्मच्छेदेन=वीर्यवाहिसिराच्छेदेनेत्यर्थः ।

४ सहजपञ्चमक्लैब्यलक्षणमाचष्टे—जन्मेति । ५ क्षुब्धमनसः=कामातिसङ्क्षलितमनसः । ६ स्थिरशुक्रनिमित्तजषष्ठक्लैब्यलक्षणमुपपादयति—षष्ठमिति । ७ षड्विधेषु क्लैब्येषु पञ्चमस्य सहजस्य, चतुर्थस्य मर्मच्छेदजन्यस्य च क्लैब्यस्य असाध्यत्वमन्येषां साध्यत्वं निर्दिशति—असाध्यमिति । ८ हेतुविपर्ययः=औषधान्नविहारैर्व्याध्युपशय इति तात्पर्यम् ।

९ वाजीकरणतिलाद्युत्कारिकायोगं ब्रवीति—तिलेति । १० रसैः=इक्षुरसैः, मांसरसैश्चेत्यर्थः । ११ उत्कारिकां=लप्सिकाकाराम् । १२ वाजीकरणद्वितीययोगं दर्शयति—बस्ताण्डेति । अनेन योगद्वयमुच्यते । तद्यथा—क्षीरपाकविधिना सिद्धे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशुमारवसापक्वाः शष्कुल्यस्तैस्तिलैः कृताः ।
यः खादेत् स पुमान् गच्छेत् स्त्रीणां शतमपूर्ववत्[1] ॥ १९ ॥
पिप्पलीलवणोपेते बस्ताण्डे क्षीरसर्पिषि[2] ।
साधिते भक्षयेद् यस्तु स गच्छेत् प्रमदाशतम् ॥ २० ॥
पिप्पलीमाषशालीनां[4] यवगोधूमयोस्तथा ।
चूर्णभागैः समैस्तैस्तु घृते पूपलिकां पचेत् ॥ २१ ॥
तां भक्षयित्वा पीत्वा तु शर्करामधुरं पयः ।
नरश्चटकवद्[5] गच्छेद्दशवारान्निरन्तरम् ॥ २२ ॥
विदार्याः[6] सुकृतं चूर्णं स्वरसेनैव भावितम्[7] ।
सर्पिर्मधुयुतं लीढ्वा दश स्त्रीरधिगच्छति ॥ २३ ॥
एवमामलकं[8] चूर्णं स्वरसेनैव भावितम् ।
शर्करामधुसर्पिर्भिर्युक्तं लीढ्वा पयः पिबेत् ॥ २४ ॥
एतेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति ।
पिप्पलीलवणोपेते बस्ताण्डे घृतसाधिते[9] ॥ २५ ॥
शिशुमारस्य वा खादेत्तं तु वाजीकरे भृशम् ।
कुलीरकूर्मनक्राणां[10] ण्डान्येवं तु भक्षयेत् ॥ २६ ॥

---

पयसि भावितान् सप्ताहं रात्रौ रात्रौ वासितान् दिवा चातपे शुष्कान् तिलान् क्षीरस्यानुपानेन खादेदिति प्रथमो योगः । द्वितीयस्तु बस्ताण्डसिद्धपयोभावितैस्तिलैः कृताः शिशुमारवसया भृष्टाः शष्कुलीर्भक्षयेदिति ।

क्षीरपाकविधिस्तु—"द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशिष्टं कर्तव्यं क्षीरपाके स्वयं विधिः ॥" इति । १ अपूर्ववत्=प्रथमसुरतवत् । २ वाजीकरणतृतीयबस्ताण्डयोगं निर्दिशति—**पिप्पलीति** । ३ क्षीरमथनोत्थं सर्पिः क्षीरसर्पिस्तस्मिन्, नवनीतघृते इत्यर्थः ।

४ वाजीकरणचतुर्थपूपलिकायोगमाख्याति—**पिप्पलीमाषेति** । ५ चटकवत्=कलविङ्कवत्, चटकः 'गवरा' इति लोके उद्घुष्यते । ६ वाजीकरणपञ्चमविदारीयोगमाह—**विदार्या इति** । ७ भावितं=वासितम् । ८ वाजीकरणषष्ठामलकयोगं वक्ति—**एवमिति** । ९ वाजीकरणसप्तमाण्डयोगं वक्ति—**पिप्पलीति** । बस्तः छागस्तस्य अण्डे अण्डद्वयम् । अत्राण्डपदेन वृषणौ ग्राह्यौ । १० अत्राण्डपदेन



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिषर्षभबस्तानां पिबेच्छुक्राणि वा नरः ।
अश्वत्थफलमूलत्वक्च्छुङ्गासिद्धं पयो नरः ॥ २७ ॥
पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं कुलिङ्ग इव हृष्यति ।
विदारिमूलकल्कन्तु घृतेन पयसा नरः ॥ २८ ॥
उडुम्बरसमं पीत्वा वृद्धोऽपि तरुणायते ।
माषाणां पलमेकन्तु संयुक्तं क्षौद्रसर्पिषा ॥ २९ ॥
अवलिह्य पयः पीत्वा तेन वाजी भवेन्नरः ।
क्षीरपक्वांस्तु गोधूमानात्मगुप्ताफलैः सह ॥ ३० ॥
शीतान् घृतयुतान् खादेत्ततः पश्चात् पयः पिबेत् ।
नक्रमूषिकमण्डूकचटकाण्डकृतं घृतम् ॥ ३१ ॥
पादाभ्यङ्गेन कुरुते बलं भूमिन्तु न स्पृशेत् ।
यावत् स्पृशति नो भूमिं तावद्वृच्छेन्निरन्तरम् ॥ ३२ ॥
स्वयङ्गुप्तेक्षुरकयोः फलचूर्णं सशर्करम् ।
धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत् ॥ ३३ ॥
उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममिष्यते ।
शतावर्य्युच्चटामूलं पेयमेवं बलार्थिना ।
स्वयंगुप्ताफलैर्युक्तं माषसूपं पिबेन्नरः ॥ ३४ ॥

गुप्ताफलं गोक्षुरकाच्च बीजं तथोच्चटां गोपयसा विपाच्य ।

---

८च्यादिप्राणिप्रादुर्भावकक्कोशो ग्राह्यः। लोके 'अंडा' इति प्रथते । १ ऋषभः = वृषभः ।
२ वाजीकरणाष्टमाश्वत्थादियोगं निर्दिशति—अश्वत्थेति । शुङ्गा = नवपल्लवकोशी । ३ कुलिङ्ग इव = चटक इव । ४ वाजीकरणनवमविदारीमूलयोगं वक्ति—विदारीति । ५ वाजीकरणदशममाषयोगमाह—माषाणामिति । ६ वाजीकरणगोधूमादियोगं ब्रवीति—क्षीरेति । आत्मगुप्ता = कपिकच्छूः, 'केवांछ' इति ख्याता।
७ नक्राद्यण्डकृतसर्पिषा वाजीकरणं पादाभ्यङ्गयोगमाख्याति—नक्रेति । ८ बलं = स्त्रीरमणशक्तिमित्यर्थः । ९ स्वयंगुप्ताऽऽदकं योगमभिधत्ते—स्वयमिति । इक्षुरकः = 'तालमखाना' इति ख्यातः । १० वाजीकरान् कतिपययोगानभिदधाति—उच्चटेति । उच्चटा = श्वेतगुञ्जा, "श्वेतगुञ्जोच्चटा प्रोक्ता" इति भावप्रकाशः । ११ माष-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खजाहतं[1] शर्करया च युक्तं पीत्वा नरो हृष्यति सर्वरात्रम् ॥ ३५ ॥
माषान् विदारीमपि सोक्षटाञ्च क्षीरे गवां क्षौद्रघृतोपपन्नाम्।
पीत्वा नरः शर्करया सुयुक्तां कुलिङ्गवद्धृष्यति सर्वरात्रम् ॥ ३६ ॥
गृष्टीनां[2] वृद्धवत्सानां माषपर्णभृतां गवाम्।
यत् क्षीरं तत् प्रशंसन्ति बलकामेषु जन्तुषु ॥ ३७ ॥
क्षीरमांसगणाः सर्वे काकोल्यादिश्च पूजितः।
वाजीकरणहेतोर्हि तस्मात्तत्तु प्रयोजयेत् ॥ ३८ ॥
एते[3] वाजीकरा योगाः प्रीत्यपत्यबलप्रदाः।
सेव्या विशुद्धो[4] चितदेहैः कालाद्यपेक्षया ॥ ३९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां क्षीणबलीयवाजीकरणचिकित्सितं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६ ॥

## सप्तविंशतितमोऽध्यायः।

अथातः सर्वोपघातशमनीयं[5] रसायनं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

---

सूपं=माषद्विदलम्। १ खजाहतं=मन्थानमाथितम्।

२ वाजीकरणक्षीरयोगं दर्शयति—गृष्टीनामिति। 'गृष्टिः सकृत्प्रसूता गौः' इत्यमरः। वृद्धो वत्सो यासां तासां वृद्धवत्सानाम्, विरूढवत्सानाम्। माषपर्णभृतां माषपर्णेन हरिन्माषपर्णेन पोषितानामित्यर्थः।

३ वाजीकरणयोगानां फलं निर्दिशति—एत इति। ४ आदौ विशुद्धः पश्चादुपचितो देहो येषां ते तैर्विशुद्धोपचितदेहैः। वाजीकरा योगा विशुद्धशरीराणां कृतसंसर्जनानामेव फलदा भवन्ति। चरके शोधनमुक्तम्—हरीतकीनां चूर्णानि सैन्धवामलके गुडम्। वचां विडङ्गं रजनीं पिप्पलीं विश्वभेषजम्॥ पिबेदुष्णाम्बुना जन्तुः स्नेहस्वेदोपपादितः। तेन शुद्धशरीराय कृतसंसर्जनाय च॥ त्रिरात्रं यावकं दद्यात् पञ्चाहं वाऽपि सर्पिषा। सप्ताहं वा पुराणस्य यावच्छुद्धेस्तु वर्चसः॥" इति।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षड्विंशतितमोऽध्यायः।

## सप्तविंशतितमोऽध्यायः।

५ सर्वेषामुपघातानां दोषजानां मानसानां च शमनाय हितं सर्वोपघातशमनीयं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वे[1] वयसि मध्ये वा मनुष्यस्य रसायनम् ।
प्रयुञ्जीत भिषक् प्राज्ञः स्निग्धशुद्धतनोः सदा ॥ ३ ॥
नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रसायनो विधिः ।
न भाति वाससि क्लिष्टे[3] रङ्गयोग इवाहितः ॥ ४ ॥
शरीरस्योपघाता ये दोषजा मानसास्तथा ।
उपदिष्टाः प्रदेशेषु तेषां वक्ष्यामि वारणम्[4] ॥ ५ ॥
शीतोदकं पयः क्षौद्रं सर्पिरित्येकशो द्विशः ।
त्रिशः समस्तं[5] मथवा प्राक्पीतं स्थापयेद्वयः ॥ ६ ॥

---

रसायनं व्याख्यास्यामः । रसायनं नाम—"यज्जराव्याधिविध्वंसि वयःस्तम्भकरं तथा । चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं भेषजं तद्रसायनम् ॥" इति श्रीभावमिश्रः ।

कुटीप्रावेशिकवातातपिकभेदेन द्विविधं रसायनमाह चरकः—"रसायनानां द्विविधं प्रयोगमृषयो विदुः । कुटीप्रावेशिकं चैव वातातपिकमेव च ॥" इति । एषां विधानादिकं तत एवावगन्तव्यम् । रसायनस्य फलमप्याह तत्रैव—"दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः । प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलं परम् ॥ वाक्सिद्धिं प्रणतिं कान्तिं लभते नरो रसायनात्" इति ।

अपि च तत्रैव—"न जरां न च दौर्बल्यं नातुर्यं निधनं न च । जग्मुर्वर्षसहस्राणि रसायनपराः पुरा ॥ न केवलं दीर्घमिहायुरश्नुते रसायनं यो विधिवन्निषेवते । गतिं स देवर्षिनिषेवितां शुभां प्रपद्यते ब्रह्म तथेति चाक्षयम् ॥" इति ।

१ पूर्वे = षोडशवर्षाभ्यन्तरे, मध्ये = षोडशसप्ततयोरन्तरे वयसि, तदुक्तम्—"आषोडशाद्भवेद् बालो यावत्क्षीरनिवर्तकः । मध्यमः सप्ततिर्यावत् परतो वृद्ध उच्यते ॥" इति बोध्यम् । २ "शुद्धकोष्ठं तु तं ज्ञात्वा रसायनमुपाचरेत् । वयःप्रकृतिसात्म्यज्ञो यौगिकं यस्य यद्भवेत् ॥" इति चरकः । ३ क्लिष्टे = मलिने इत्यर्थः । ४ वारणं = शमनम् ।

५ सर्वे मिलित्वा पञ्चदश प्रयोगाः । तद्यथा, एकशः—शीतोदकं, पयः, क्षौद्रं, सर्पिरिति चत्वारः । द्विशः—शीतोदकपयसी, उदकमधू, उदकसर्पिषी, पयोमधू, पयःसर्पिषी, क्षौद्रसर्पिषी इति षट् । त्रिशः—शीतोदकपयःसर्पींषि, शीतोदकमधुसर्पींषि, पयोमधुसर्पींषि, शीतोदकपयोमधूनि इति चत्वारः । समस्तस्य—शीतोदकपयःक्षौद्रसर्पींषि इत्येकः । तत्र समपित्तवातकफप्रकृतेः शीतोदकस्य, अधिकपित्तप्रकृतेः पयसयः, कफप्रकृतेः क्षौद्रस्य, अधिकवातप्रकृतेः सर्पिष उपयोगो वातादिदोषभेदप्रकृतिमवेक्ष्य मानानुकूलं कर्तव्यः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र[1] विडङ्गतण्डुलचूर्णमाहृत्य यष्टीमधुकमधुयुक्तं यथाबलं शीततोयेनोपयुञ्जीत शीततोयं चानुपिबेदेवमहरहर्मांसं, तदेव मधुयुक्तं भल्लातककाथेन वा मधुद्राक्षाकाथयुक्तं[3] वा, मध्वामलकरसाभ्यां[4] वा, गुडूचीकाथेन[5] वा, एवमेते पञ्च प्रयोगाः भवन्ति। जीर्णे मुद्गामलकयूषेणालवणेनाल्पस्नेहेन घृतवन्तमोदनमश्नीयात्। एते खल्वशांसि क्षपयन्ति, कृमीनुपघ्नन्ति, ग्रहणधारणशक्तिं जनयन्ति, मासे मासे प्रयोगे वर्षशतं वर्षशतमायुषोऽभिवृद्धिर्भवति ॥ ७ ॥

विडङ्गतण्डुलानां[6] द्रोणं पिष्टपचने पिष्टवदुपस्वेद्य विगतकषायं स्विन्नमवतार्य्य दृषदि पिष्टमायसे दृढे कुम्भे मधूदकोत्तरं[7] प्रावृषि[8] भस्मराशावन्तर्गृहे चतुरो मासान् दध्यात्, वर्षाऽभिगमे[9] चोद्धृत्योपसंस्कृतशरीरः सहस्रसम्पाताभिहुतं[9] कृत्वा प्रातः प्रातर्यथाबलमुपयुञ्जीत, जीर्णे मुद्गामलकयूषेणालवणेन घृतवन्तमोदनम-

---

१ प्रथमं विडङ्गतण्डुलयोगं निर्दिशति—तत्रेति। २ तदेव=विडङ्गतण्डुलचूर्णमेव। ३ 'विडङ्गतण्डुलचूर्णम्' इति सम्बध्यते। ४ विडङ्गतण्डुलचूर्णस्य अत्रापि सम्बन्धः। ५ विडङ्गतण्डुलचूर्णयुतगुडूचीकाथेनेत्यर्थः। ६ द्वितीय विडङ्गतण्डुलयोगमाख्याति—विडङ्गेति। द्रोणं=सार्धद्वादशसेटकप्रमाणम्, पिष्टपचने=कटाहे। ७ मधूदकोत्तरं=मधुविडङ्गकाथप्रधानम्। प्रावृषि=वर्षाकाले। ८ वर्षाऽभिगमे=वर्षाकालव्यतीते इत्यर्थः।

९ सहस्रसम्पाताध्यायः ऋग्वेदे पठ्यते, तैर्मन्त्रैः सहस्रं हुत्वोपयुञ्जीतेति डल्हणः। सुश्रुतार्थसन्दीपनकारस्तु—'सम्पातेन होममाक्षिपते' इति न्यायात् सहस्रमाज्यं हुत्वा सम्पातसहस्रानयनमर्थाल्लभ्यते। सम्पातश्च स्रुवक्षरितहुतशेषाज्यबिन्दवो नाम। 'आज्यं जुहोति' इति कौशिकसूत्रात् सम्पातक्षिप्तजुहोतिचोदनायामाज्यमेव हि हव्यं प्रत्येतव्यम्। तेनाभिहुतं तद्योगेन संस्कृतमित्यर्थः। होमश्च 'अम्बयो यन्त्यध्वाभिर्जामयो अध्वरीयतां पृञ्चती मधुना पयः' इत्यादि ऋक्चतुष्टयात्मकेनाथर्वणसंहिताप्रथमकाण्डान्तर्गतप्रथमानुवाकीयचतुर्थसूक्तेन कर्तव्यः, 'अम्बयो यन्ति वायोः पूतः इति च शान्ताः' इति कौशिकसूत्रेण सर्वरोगभैषज्यकर्मणि आज्यहोमे सूत्रस्यैतस्य विनियोगविधानादित्यादि व्याख्यानं कृतवान्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्नीयात्, पांशुशय्यायां[1] शयीत, तस्य मासादूर्ध्वं सर्वाङ्गेभ्यः कृमयो निष्क्रामन्ति, तानणुतैलेना[2]भ्यक्तस्य वंशविदलेनापहरेत्, द्वितीये[3] पिपीलिकास्तृतीये यूकास्तथैवापहरेत्, चतुर्थे दन्तनखरोमाण्यवशीर्यन्ते, पञ्चमे प्रशस्तगुणलक्षणानि जायन्ते, अमानुषं[4] चादित्यप्रकाशं वपुरधिगच्छति, दूराच्छ्रवणानि दर्शनानि चास्य भवन्ति, रजस्तमसी चापोह्य सत्त्वमधितिष्ठति, [5]श्रुतनिगाद्यपूर्वोत्पादी गजबलोऽश्वजवः पुनर्युवाऽष्टौ वर्षशतान्यायुरवाप्नोति; तस्याणुतैलमभ्यङ्गार्थे, अ[6]कर्णकषायमुत्सादनार्थे, सोशीरं कूपोदकं स्नानार्थे, चन्दनमुपलेपनार्थे, भल्ला[7]तकविधानवदाहारः परिहारश्च ॥ ८ ॥

काश्म[8]र्याणां निष्कुलीकृतानामेष एव कल्पः पांशुशय्याभोजनवर्जम्। अत्र हि पयसा श्रृतेन भोक्तव्यम्, समानमन्यत् पूर्वेणाशिषश्च[9]। शोणितपित्तनिमित्तेषु विकारेष्वेतेषामुपयोगः ॥ ९ ॥

[10]यथोक्तमागारं प्रविश्य बलामूलार्द्धपलं पलं वा पयसाऽऽलोड्य पिबेत्, जीर्णे पयः सर्पिरोदन इत्याहारः। एवं द्वादशरात्रमुपयुज्य द्वादशवर्षाणि वयस्तिष्ठति। एवं दिवसशतमुपयुज्य वर्षशतं वयस्तिष्ठति। [11]एवमेवातिबलानागबलाविदारीशतावरीणामुपयोगः। विशेषतस्त्वतिबलामुदकेन, नागबलाचूर्णं मधुना, विदारीचूर्णं क्षीरेण, शतावरीमप्येवं, पूर्वेणान्यत्समानमाशिषश्च समाः। एतास्त्वौषधयो बलकामानां शोषिणां रक्तपित्तोपसृष्टानां शोणितं छर्दयतां विरिच्यमानानां चोपदिश्यन्ते ॥ १० ॥

---

१ पांशुशय्यायां=धूलिशय्यायाम्। २ अणुतैलं प्राग् वातव्याधिचिकित्सिते द्रष्टव्यम्। ३ द्वितीये मासीत्यर्थः। ४ अस्य योगस्य प्रशस्तगुणलक्षणानि निर्दिशति—अमानुषमिति। ५ श्रुतनिगादी=वेदतत्त्वार्थवादी, अपूर्वश्लोकादिकमुत्पादयितुं शीलमस्येत्यपूर्वोत्पादी। ६ अजकर्णः सालभेदस्तस्य कषायः कल्कः। ७ भल्लातकविधानमर्शसां चिकित्सिते द्रष्टव्यम्। ८ काश्मर्ययोगं दर्शयति—काश्मर्याणामिति। ९ आशिषः=गुणा इत्यर्थः।

१० बलामूलयोगं प्रतिपादयति—यथोक्तमिति। अर्द्धपलं=तोलकद्वयम्, पलं=चत्वारि तोलकानि। ११ बलामूलयोगमतिबलाऽऽदिष्वतिदिशति—एवमिति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाराहीमूलतुलाचूर्णं[1] कृत्वा ततो मात्रां मधुयुक्तां पयसाऽऽलोड्य पिबेत्, जीर्णे पयः सर्पिरोदन इत्याहारः, प्रतिषेधोऽत्र पूर्ववत्। प्रयोगमिममुपसेवमानो वर्षशतमायुरवाप्नोति स्त्रीषु चाक्षयताम्, एतेनैव चूर्णेन पयोऽवचूर्ण्य घृतशीतमभिमथ्याज्यमुत्पाद्य मधुयुतमुपयुञ्जीत सायम्प्रातरेककालं वा, जीर्णे पयः सर्पिरोदन इत्याहारः, एवं मासमुपयुज्य वर्षशतायुर्भवति ॥ ११ ॥

चक्षुःकामः प्राणकामो वा बीजकसाराग्निमन्थमूलं निःकाथ्य माषप्रस्थं साधयेत्, तस्मिन् सिध्यति चित्रकमूलानामक्षमात्रं कल्कं दद्यादामलकरसचतुर्थभागं, ततः स्विन्नमवतार्य सहस्रसम्पाताभिहुतं कृत्वा शीतीभूतं मधुसर्पिर्भ्यां संसृज्योपयुञ्जीत यथाबलं, यथासात्म्यं च लवणं परिहरन् भक्षयेत्। जीर्णे मुद्गामलकयूषेणालवणेन घृतवन्तमोदनमश्नीयात् पयसा वा मासत्रयम्। एवमाभ्यां प्रयोगाभ्यां चक्षुः सौपर्णवद् भवत्यनल्पबलो बलवांस्त्रीषु चाक्षयो वर्षशतायुर्भवतीति ॥ १२ ॥

भवति चात्र।

पयसा सह सिद्धानि नरः शणफलानि यः।
भक्षयेत् पयसा सार्द्धं वयस्तस्य न शीर्यते ॥ १३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने सर्वोपघातशमनोयं रसायनचिकित्सितं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

---

एव=बलामूलविधानवदित्यर्थः। १ वाराहीमूलयोगमाचष्ट—**वाराहीति**। तुला=पञ्चसेटकपरिमाणा।

२ बीजकसारादियोगं प्रतिपादयति—**चक्षुरिति**। ३ बीजकसारः='विजयसार' इति ख्यातः। ४ अक्षमात्रं=तोलकपरिमाणम्। ५ ऋग्वेदीयसहस्रसम्पाताध्यायोक्तमन्त्रैः सहस्रं हुत्वेत्यर्थः। ६ सौपर्णवत्=गरुडनयनवदित्यर्थः। ७ शणफलयोगं ब्रवीति—**पयसेति**। शणः='सनई' इति ख्यातः।

**इति सुश्रुतसंहिताया चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तविंशतितमोऽध्यायः।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अष्टाविंशतितमोऽध्यायः।

अथातो मेधायुष्कामीयं रसायनचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

मेधायुःकामः श्वेतावल्गुजफलान्यातपपरिशुष्काण्यादाय सूक्ष्मचूर्णानि कृत्वा गुडेन सहालोड्य स्नेहकुम्भे सप्तरात्रं धान्यराशौ निदध्यात्, सप्तरात्रादुद्धृत्य हृतदोषस्य यथाबलं पिण्डं प्रयच्छेदनुदिते सूर्य्ये उष्णोदकं चानुपिबेत्। भल्लातकविधानवच्चागारप्रवेशः, जीर्णौषधश्चापराह्णे हिमाभिरद्भिः परिषिक्तगात्रः शालीनां षष्टिकानां च पयसा शर्करामधुरेणौदनमश्नीयात्। एवं षण्मासानुपयुज्य विगतपाप्मा बलवर्णोपेतः श्रुतनिगादो स्मृतिमानरोगो वर्षशतायुर्भवति। कुष्ठिनं पाण्डुरोगिणमुदरिणं वा कृष्णाया गोमूत्रेणालोड्यार्द्धपलिकं पिण्डं विगतलौहित्ये सवितरि पाययेत्, पराह्णे चालवणेनामलकयूषेण सर्पिष्मन्तमोदनमश्नीयात्, एवं मासमुपयुज्य स्मृतिमानरोगो वर्षशतायुर्भवति। एष एवोपयोगश्चित्रकमूलानां रजन्याश्चित्रकमूले विशेषो द्विपलिकं पिण्डं परं प्रमाणं, शेषं पूर्ववत् ॥ ३ ॥

हृतदोष एव प्रतिसंसृष्टभक्तो यथाक्रममागारं प्रविश्य मण्डू-

---

**अष्टाविंशतितमोऽध्यायः।**

१ मेधा अनेकग्रन्थसूदमतमार्थधारणावती धीः, आयुः कामयन्त इत्यायुष्कामाः, 'इसुसोः सामर्थ्ये' इति पत्वम्। ततः 'तस्मै हितम्' इति छप्रत्यये ईयादेशे, मेधायुष्कामीयम्। २ श्वेतावल्गुजफलयोगं निर्दिशति—**मेधायुरिति**। श्वेतावल्गुजः=**'सफेद बाकुची' इति ख्यातः**। ३ भल्लातकविधान चरके—"भल्लातकसर्पिर्भल्लातकक्षीरं भल्लातकक्षौद्रं गुडभल्लातकं भल्लातकयूषो भल्लातकतैलं भल्लातकपललं भल्लातकसक्तवो भल्लातकलवणं भल्लातकतर्पणमिति भल्लातकविधानमुक्तं भवति" इति। ४ कृष्णाया बाकुच्या इत्यर्थः। ५ चित्रकोऽत्र कृष्णमूलो ग्राह्य इति डल्हणः।

६ मण्डूकपर्णीस्वरसयोगं वक्ति—**हृतेति**। प्रतिसंसृष्टभक्तः=प्रत्याख्याताहारः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपर्णीस्वरसमादाय सहस्रसम्पाताभिहुतं कृत्वा यथाबलं पयसाऽऽलोडय पिबेत् पयोऽनुपानं वा, तस्यां जीर्णायां यवान्नं पयसोपयुञ्जीत । तिलैर्वा सह भक्षयेत् त्रीन् मासान् पयोऽनुपानं, जीर्णे पयः सर्पिरोदन इत्याहारः । एवमुपयुञ्जानो ब्रह्मवर्चसी श्रुतनिगादी भवति वर्षशतमायुरवाप्नोति । त्रिरात्रोपोषितश्च त्रिरात्रमेनां भक्षयेत्, त्रिरात्रादूर्द्ध्वं पयःसर्पिरिति चोपयुञ्जीत । बिल्वमात्रं पिण्डं वा पयसाऽऽलोडय पिबेत्, एवं दशरात्रमुपयुज्य मेधावी वर्षशतायुर्भवति ॥ ४ ॥

हृतदोष एवागारं प्रविश्य प्रतिसंसृष्टभक्तो ब्राह्मीस्वरसमादाय सहस्रसम्पाताभिहुतं कृत्वा यथाबलमुपयुञ्जीत, जीर्णौषधश्चापराह्णे यवाग्मलवणां पिबेत्, क्षीरसात्म्यो वा पयसा भुञ्जीत, एवं सप्तरात्रमुपयुज्य ब्रह्मवर्चसी मेधावी भवति । द्वितीयं सप्तरात्रमुपयुज्य ग्रन्थमीप्सितमुत्पादयति नष्टश्चास्य प्रादुर्भवति । तृतीयं सप्तरात्रमुपयुज्य द्विरुच्चारितं शतमप्यवधारयति, एवमेकविंशतिरात्रमुपयुज्यालक्ष्मीरपक्रामति, मूर्तिमती चैनं वाग्देव्यनुप्रविशति, सर्वाश्चैनं श्रुतय उपतिष्ठन्ति, श्रुतधरः पञ्चवर्षशतायुर्भवति ॥ ५ ॥

ब्राह्मीस्वरसप्रस्थद्वये घृतप्रस्थं विडङ्गतण्डुलानां कुडवं द्वे द्वे पले वचात्रिवृतयोर्द्वादश हरीतक्यामलकबिभीतकानि श्लक्ष्णपिष्टान्यावाप्यैकध्यं साधयित्वा स्वनुगुप्तं निदध्यात्, ततः पूर्वविधानेन मात्रां यथाबलमुपयुञ्जीत, जीर्णे पयःसर्पिरोदन इत्याहारः । एतेन ऊर्द्ध्वमधस्तिर्य्यक् कृमयो निष्क्रामन्ति, अलक्ष्मीरपक्रामति, पुष्करवर्णः स्थिरवयाः श्रुतनिगादी त्रिवर्षशतायुर्भवति ।

---

१ ऋग्वेदीयसहस्रसम्पाताध्यायोक्तमन्त्रैः सहस्रं हुत्वेत्यर्थः । २ एना = मण्डूकपर्णीम् । ३ ब्राह्मीस्वरसयोगं दर्शयति—हृतदोष इति । हृतदोषः = विरेचनादिनाऽपगतदोष इत्यर्थः ।

४ ब्राह्मीघृतमुपपादयति—ब्राह्मीति । प्रस्थद्वये = सार्धसेटके । ५ कुडवं = षोडशतोलकानि, द्वे द्वे पले = अष्टौ अष्टौ तोलकानि । ६ श्लक्ष्णपिष्टानि = सूक्ष्मचूर्णानि । 'स्तोकाल्पक्षुल्लकाः सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु' इत्यमरः । ७ पुष्करः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतदेव कुष्ठविषमज्वरापस्मारोन्मादविषभूतग्रहेष्वन्येषु च महाव्याधिषु संशोधनमादिशन्ति ॥ ६ ॥

हृतदोष एवागारं प्रविश्य हैमवत्या[1] वचायाः पिण्डमामलकमात्रमभिहुतं[2] पयसाऽऽलोड्य पिबेत्, जीर्णे पयःसर्पिरोदन इत्याहारः। एवं द्वादशरात्रमुपयुञ्जीत, ततोऽस्य श्रोत्रं विप्रियते, द्विरभ्यासात् स्मृतिमान् भवति, त्रिरभ्यासाच्छतमादत्ते, चतुर्द्वादशरात्रमुपयुज्य सव तरति किल्विषं, तार्क्ष्यदर्शनमुत्पद्यते[3], शतायुश्च भवति। द्वे द्वे पले इतरस्या[4] वचाया निःक्वाथ्य[5] पिबेत् पयसा, समानं भोजनं, समाः पूर्वेणाशिषश्च[6] ॥ ७ ॥

वचाशतपाकं वा सर्पिर्द्रोणमुपयुज्य पञ्चवर्षशतायुर्भवति, गलगण्डापचीश्लीपदस्वरभेदांश्चापहन्तीति ॥ ८ ॥

अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि आयुष्कामरसायनम्।
मन्त्रौषधसमायुक्तं संवत्सरफलप्रदम् ॥ ९ ॥
बिल्वस्य चूर्णं पुष्ये[9] तु हुतं वारान् सहस्रशः।
श्रीसूक्तेन[10] नरः कल्ये ससुवर्णं दिने दिने ॥ १० ॥

---

सिताम्भोजस्तद्वद् वर्णः। डाराणचन्द्रस्तु 'पुष्करकर्णं' इति पाठं पठित्वा श्रेष्ठकर्णेन्द्रिय इति व्याख्यातवान्।

तन्त्रान्तरे मेधाकरभेषजप्रदर्शनपुरस्सरं ब्राह्मीघृतमुक्तम्—"शङ्खपुष्पी वचा सोमा ब्राह्मी ब्रह्मसुवर्चला। अभया च गुडूची च अटरूषकबाकुची ॥ एतैरक्षसमैर्भागैर्घृतं प्रस्थं विपाचयेत्। कण्टकार्या रसं प्रस्थं बृहत्या च समन्वितम् ॥ एतद्ब्राह्मीघृतं नाम स्मृतिमेधाकरं परम्।" इति।

१ वचायोगं निर्दिशति—**हृतेति**। हैमवत्या वचायाः = श्वेताया वचायाः। २ अभिहुतं = सहस्रसम्पातेन अभिहुतं कृत्वेत्यर्थः। ३ तार्क्ष्यदर्शनं = गरुडदृष्टिमित्यर्थः। ५ इतरस्याः = रक्तायाः, निःक्वाथ्य = क्वारपाकविधानेनेत्यर्थः। ४ आशिषः = गुणा इत्यर्थः।

६ वचाघृतमुपदिशति—**वचेति**। द्रोणं = सार्धसप्तत्रिंशत्सेटकपरिमाणम्। ७ अलक्ष्मीनाशकबिल्वयोगमभिधत्ते—**अत इति**। ८ संवत्सरोपयोगेन फलप्रदमित्यर्थः। ९ डाराणचन्द्रस्तु—'पुष्ये' इत्यत्र 'पुष्पे' इति पठित्वा पुष्पकाले वसन्ते इति यावदिति व्याख्याति। १० श्रीसूक्तेन = 'हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्र-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्पिर्मधुयुतं लिह्यादलक्ष्मीनाशनं परम् ।
त्वचं विहाय बिल्वस्य मूलक्वाथं दिने दिने ॥ ११ ॥
प्राश्नीयात् पयसा सार्द्धं स्नात्वा हुत्वा समाहितः ।
दशसाहस्रमायुष्यं स्मृतं युक्तरथं भवेत् ॥ १२ ॥
[३]हुत्वा बिसानां क्वाथन्तु मधुलाजैश्च संयुतम् ।
अमोघं शतसाहस्र युक्तं युक्तरथं स्मृतम् ॥ १३ ॥
[३]सुवर्ण पद्मबीजानि मधु लाजाः प्रियङ्गवः ।
गव्येन पयसा पीतमलक्ष्मीं प्रतिषेधयेत् ॥ १४ ॥
नीलोत्पलदलक्वाथो गव्येन पयसा श्रृतः ।
ससुवर्णतिलैः सार्द्धमलक्ष्मीनाशनः स्मृतः ॥ १५ ॥
गव्यं पयः सुवर्णञ्च [४]मधूच्छिष्टञ्च माक्षिकम् ।
पीतं शतसहस्राभिहुतं युक्तरथं स्मृतम् ॥ १६ ॥
[५]वचाघृतसुवर्णञ्च बिल्वचूर्णमिति त्रयम् ।
मेध्यमायुष्यमारोग्यपुष्टिसौभाग्यवर्द्धनम् ॥ १७ ॥
वासामूलतुलां[६]क्वाथे तैलमावाप्य साधितम् ।
हुत्वा सहस्रमश्नीयान्मेध्यमायुष्यमुच्यते ॥ १८ ॥
यावकांस्तावकान् खादेदभिभूय[७] यवांस्तथा ।
पिप्पलीमधुसंयुक्तान् शिक्षाचरणवद्भवेत् ॥ १९ ॥
[८]ध्वामलकचूर्णानि सुवर्णमिति च त्रयम् ।
प्राश्यारिष्टगृहीतोऽपि मुच्यते प्राणसंशयात् ॥ २० ॥

---

जाम् । चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥' इत्यादि षोडशर्चेन अथर्ववेदोक्तेनेत्यर्थः । कल्ये = प्रातःकाले । ससुवर्ण = सुवर्णभस्मसहितमित्यर्थः । १ रथादिष्वव्यविरुद्धमिति तात्पर्यम् ।

२ योगान्तरमुपदिशति—हुत्वेति । बिसानां = मृणालानाम् । ३ सुवर्णादियोगद्वयं निर्दिशति—सुवर्णेति । ४ मधूच्छिष्टं = सिक्थकम्, 'मोम' इत्युद्घुष्यते । ५ वचाघृतादियोगमाख्याति—वचेति । वचासिद्धं घृतं वचाघृतं सुवर्णभस्म च । ६ तुला = पञ्चसेटकप्रमाणा । ७ अभिभूय = सङ्कुट्येत्यर्थः ।

८ अरिष्टशमनमध्वादियोगं ब्रवीति—ध्वेति । सुवर्ण = सुवर्णभस्म ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतावरीघृतं सम्यगुपयुक्तं दिने दिने ।
सक्षौद्रं ससुवर्णञ्च नरेन्द्रं स्थापयेद्वशे ॥ २१ ॥
गोचन्दना मोहनिका मधुकं माक्षिकं मधु ।
सुवर्णमिति संयोगः पेयः सौभाग्यमिच्छता ॥ २२ ॥
पद्मनीलोत्पलक्वाथे यष्टीमधुकसंयुते ।
सर्पिरासादितं गव्यं ससुवर्णं सदा पिबेत् ॥ २३ ॥
पयश्चानुपिबेत् सिद्धं तेषामेव समुद्भवे ।
अलक्ष्मीघ्नं सदाऽऽयुष्यं राज्याय सुभगाय च ॥ २४ ॥
यत्र नोदीरितो मन्त्रो योगेष्वेतेषु साधने ।
शब्दिता तत्र सर्वत्र गायत्री त्रिपदा भवेत् ॥ २५ ॥
पाप्मानं नाशयन्त्येता दद्युश्चौषधयः श्रियम् ।
कुर्य्युर्नागबलं चापि मनुष्यममरोपमम् ॥ २६ ॥
सतताध्ययनं वादः परतन्त्रावलोकनम् ।
तद्विद्या चार्य्यसेवा च बुद्धिमेधाकरो गणः ॥ २७ ॥
आयुष्यं भोजनं जीर्णे वेगानाञ्चाविधारणम् ।
ब्रह्मचर्य्यमहिंसा च साहसानाञ्च वर्जनम् ॥ २८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने मेधायुष्कामीयं रसायनं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

---

१ वशीकरणशतावर्यादियोगमुपदिशति—शतावरीति । शतावर्य्या सिद्धं घृतं शतावरीघृतम् । २ सौभाग्यकरगोचन्दनादियोगमभिधत्ते—गोचन्दनेति । गोचन्दना = प्रियङ्गुः, मोहनिका = पुत्रजीवी । ३ पद्मादियोगमभिदधाति—पद्मेति । ४ आसादितं = साधितम् ।

५ अनुक्तमन्त्रेषु योगेषु गायत्रीमन्त्रमतिदिशति—यत्रेति । नोदीरितः = नोपदिष्टः । ६ सर्वेषामुक्तप्रयोगाणां फलमाख्याति—पाप्मानमिति । ७ नागवद् गजवद् बलमित्यर्थः । ८ बुद्धिमेधाकरगणं निर्दिशति—सततेति । परतन्त्रावलोकनं = आयुर्वेदातिरिक्ततन्त्रमननम् ।

९ आयुष्यं गणं प्रतिपादयति—आयुष्यमिति । १० साहसः—'सहसा क्रियते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः।

अथातः स्वभावव्याधिप्रतिषेधनीयं रसायनं व्याख्यास्यामः॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः॥ २॥

ब्रह्मादयोऽसृजन् पूर्वममृतं सोमसंज्ञितम्।
जरामृत्युविनाशाय विधानं तस्य वक्ष्यते॥ ३॥

एक एव खलु भगवान् सोमः स्थाननामाकृतिवीर्य्यविशेषैश्चतुर्विंशतिधा भिद्यते॥ ४॥

तद्यथा—

अंशुमान्मुञ्जवांश्चैव चन्द्रमा रजतप्रभः।
दूर्वासोमः कनीयांश्च श्वेताक्षः कनकप्रभः॥ ५॥
प्रतानवांस्तालवृन्तः करवीरोऽशवानपि।
स्वयम्प्रभो महासोमो यश्चापि गरुडाहृतः॥ ६॥
गायत्रश्चैष्टुभः पाङ्क्तो जागतः शाकरस्तथा।
अग्निष्टोमो रैवतश्च यथोक्त इति संज्ञितः॥ ७॥

---

कर्म यत् किञ्चिद् बलदर्पितैः। तत् साहसमिति प्रोक्तं सहोबलमिहोच्यते॥ मनुष्यमारणं स्तेयं परदाराभिमर्षणम्। पारुष्यमनृतञ्चेह साहसं पञ्चधा स्मृतम्॥' इति नारदः।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यामष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥

---

## एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः।

१ स्वभावप्रवृत्तानां जरादिव्याधीनां। प्रतिषेधनं तस्मै हितं स्वभावव्याधिप्रतिषेधनीयं रसायनं व्याख्यास्याम इत्यर्थः। २ सोमसंज्ञकामृतवर्णनं करोति—ब्रह्मादय इति। अमृतं सूत इति सोमः। 'षु प्रसवैश्वर्ययोः' इति धातोः 'अर्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभायापदियक्षिनीभ्यो मन्' इत्यौणादिको मन्प्रत्ययः। ३ अंशुमानित्यादिना चतुर्विंशतिनामानि सोमस्यैव ज्ञेयानि। ४ अत्र 'शाङ्करः' इति पाठान्तरम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गायत्र्या त्रिपदा युक्तो यश्चोडुपतिरुच्यते ।
एते सोमाः समाख्याता वेदोक्तैर्नामभिः शुभैः ॥ ८ ॥
सर्वेषामेव चैतेषामेको विधिरुपासने ।
सर्वे तुल्यगुणाश्चैव विधानं तेषु वक्ष्यते ॥ ९ ॥

अतोऽन्यतमं सोममुपयुयुक्षुः सर्वोपकरणपरिचारकोपेतः प्रशस्ते देशे त्रिवृतमागारं कारयित्वा हृतदोषः प्रतिसंसृष्टभक्तः प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रेषु अंशुमन्तमादायाध्वरकल्पेनाहृतमभिषुतमभिहुतं चान्तरागारे कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनः सोमकन्दं सुवर्णसूच्या विदार्य्य पयो गृह्णीयात् सौवर्णे राजते वा पात्रेऽञ्जलिमात्रं, ततः सकृदेवोपयुञ्जीत नास्वादयन्, तत उपस्पृश्य शेषमप्स्ववसाद्य यमनियमाभ्यामात्मानं संयोज्य वाग्यतोऽभ्यन्तरतः सुहृद्भिरुपास्यमानो विहरेत् ॥ १० ॥

---

१ सोमस्य संज्ञान्तरं दर्शयति—यश्चेति । २ तुल्यगुणाः = समानफलाः इत्यर्थः । ३ सोमसेवनविधानमुपदिशति—अत इति । अन्यतमम् = एकतमम् अंशुमदाख्यं सोमम्, उपयुयुक्षुः = उपयोगं कर्तुमिच्छुरित्यर्थः । ४ तिसृभिर्भित्तिभिः परिवृतं त्रिवृतम् आगारं कुटीमित्यर्थः ।

कुटीनिर्माणप्रकारमाह चरकः—"नृपवैद्यद्विजातीनां साधूनां पुण्यकर्मणाम् । निवासे निर्भये शस्ते प्राप्योपकरणे पुरे । दिशि पूर्वोत्तरस्यां च सुभूमौ कारयेत् कुटीम् ॥ विस्तारोत्सेधसम्पन्नां त्रिगर्भां सूक्ष्मलोचनाम् । घनभित्तिमृतुसुखां सुस्पष्टां मनसः प्रियाम् ॥ शब्दादीनामशस्तानामगम्यां स्त्रीविवर्जिताम् । इष्टोपकरणोपेतां सज्जवैद्यौषधद्विजाम् ॥ अथोदगयने शुक्ले तिथिनक्षत्रपूजिते । मुहूर्तकरणोपेते प्रशस्ते कृतवापनः ॥ धृतिस्मृतिबलं कृत्वा श्रद्दधानः समाहितः । विधूय मानसान् दोषान् मैत्रीं भूतेषु चिन्तयन् ॥ देवताः पूजयित्वाऽग्रे द्विजातींश्च प्रदक्षिणम् । देवगोब्राह्मणान् कृत्वा ततस्तां प्रविशेत् कुटीम् ॥" इति ।

५ अध्वरकल्पेनाहृतं = अग्निष्टोमविधानेनानीतम्, अभिषुतं = पीडितम्, अभिहुतम् = अग्नौ प्राग्वत् प्रक्षिप्तम् । उभयत्र 'ऋत्विग्भिः' इति शेषो बोध्यः । ६ अन्तरागारे = अन्तःकोष्ठे इत्यर्थः । ७ सुवर्णसूच्या = कनकशलाकया । ८ अञ्जलिमात्रं = कुडवपरिमाणम्, षोडशतोलकानीत्यर्थः । ९ शेषं = गृहीतक्षीरमंशुमतः कन्दम्, अप्सु = नद्यादिजले, अवसाद्य = प्रक्षिप्य । १० विहरेत् = गमनप-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काणः सञ्जायते जन्तुरर्दितं चास्य जायते ॥ ३० ॥
चलमप्युत्तरं दन्तमतो नापहरेद् भिषक्।
धावने जातिमदनस्वादुकण्टकखादिरम् ॥ ३१ ॥
कषायं[2] जातिमदनकटुकस्वादुकण्टकैः।
यष्ट्याह्वरोध्रमञ्जिष्ठाखदिरैश्चापि यत् कृतम् ॥ ३२ ॥
तैलं शोधनं तद्धि हन्याद्दन्तगतां गतिम्।
कीर्त्तिता दन्तमूले तु क्रिया दन्तेषु वक्ष्यते ॥ ३३ ॥
स्नेहानां[3] कवलाः कोष्णाः सर्पिषस्त्रैवृतस्य[4] वा।
निर्यूहाश्चानिलघ्नानां[5] दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥ ३४ ॥
स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्निग्धं च भोजनम्।
रसो रसयवाग्वश्च क्षीरं सन्तानिका[6] घृतम् ॥ ३५ ॥
शिरोबस्तिर्हितश्चापि क्रमो यश्चानिलापहः।
अहिसंज्ञान्[7] दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक् ॥ ३६ ॥
लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्ताः प्रतिसारयेत्[8]।
दन्तहर्षक्रियां चापि कुर्य्यान्निरवशेषतः ॥ ३७ ॥
कपालिकां[9] कृच्छ्रतमा तत्राप्येषा क्रिया हिता।
[10]जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदन्तकम् ॥ ३८ ॥
तथाऽवपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः।
भद्रदार्वादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः ॥ ३९ ॥
चलमुद्धृत्य च स्थानं विदहेच्छुषिरस्य[11] च।

---

१ चलमपि = ईषत्कम्पयुक्तमपि। २ कषायः = क्वाथः, जाति = मालती। 'ङ्यापोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्' इति ह्रस्वः। स्वादुकण्टकः = गोक्षुरकः।

३ दन्तरोगेषु दन्तहर्षचिकित्सामाख्याति—स्नेहानामिति। ४ त्रैवृतस्य = सम्मिलितस्नेहत्रितयस्येत्यर्थः। ५ निर्यूहाः = क्वाथाः। ६ सन्तानिका = 'मलाई' इति प्रसिद्धा। ७ शर्करायाश्चिकित्सां वक्ति—अहिसंज्ञानिति। ८ प्रतिसारयेत् = घर्षयेत्। ९ कपालिकायाश्चिकित्सामाचष्टे—कपालिकेति। १० कृमिदन्तचिकित्सितमभिधत्ते—जयेदिति। विस्रावणैः = लेखनैर्हिङ्गुतुत्थकादिलेपैश्चेत्यर्थः। ११ शुषिरस्य = पूयकृतच्छिद्रस्येत्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो विदारीयष्ट्याह्वशृङ्गाटककसेरुकैः ॥ ४० ॥
तैलं दशगुणे क्षीरे सिद्धं नस्ये हितं भवेत् ।
हनुमोक्षे समुद्दिष्टां कुर्य्याच्चादितवत् क्रियाम् ॥ ४१ ॥
फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम् ।
तथाऽतिकठिनान् भक्ष्यान् दन्तरोगी विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥
साध्यानां दन्तरोगाणां चिकित्सितमुदीरितम् ।
जिह्वागतानां साध्यानां कर्म वक्ष्यामि सिद्धये ॥ ४३ ॥
ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम् ।
कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत् कार्य्यं भिषजा भवेत् ॥ ४४ ॥
पित्तजेषु विघृष्टेषु निःसृते दुष्टशोणिते ।
प्रतिसारणगण्डूषं नस्यं च मधुरं हितम् ॥ ४५ ॥
कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये ।
पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्य्यस्तु प्रतिसारणे ॥ ४६ ॥
गृह्णीयात् कवलांश्चापि गौरसर्षपसैन्धवैः ।
पटोलनिम्बवार्त्ताकुक्षारयूषैश्च भोजयेत् ॥ ४७ ॥
उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् ।
शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनमुपाचरेत् ॥ ४८ ॥
जिह्वागतानां कर्मोक्तं तालव्यानां प्रवक्ष्यते ।

---

१ हनुमोक्षचिकित्सितमाह—**हन्विति** । २ मस्तिष्कशिरोबस्तिनस्यधूमोपनाहादिकां क्रियामित्यर्थः । ३ असाध्या दन्तरोगास्तु स्युरदन्तदालभञ्जनाख्या इति, तेषां चिकित्सितं नोदाहृतमिति तात्पर्यम् । ४ वातिकजिह्वाकण्टकचिकित्सितं निर्दिशति—**जिह्वेति** । ५ पैत्तिकजिह्वाकण्टकचिकित्सामाह—**पित्तजेष्विति** । गोजीशेफालिकापत्रैर्विघृष्टेष्वित्यर्थः । ६ प्रतिसारणं गण्डूषश्चेति द्वयं काकोल्यादिमधुरद्रव्यैरेव कार्यम् ।

७ श्लैष्मिकजिह्वाकण्टकचिकित्सितं दर्शयति—**कण्टकेष्विति** । लिखितेषु=असृजः=रुधिरस्य, क्षये=स्रावावसाने इत्यर्थः । ८ क्षारो यवक्षारस्तत्प्रधानो यूषः क्षारयूषस्तैः । ९ उपजिह्वायाश्चिकित्सां ब्रवीति—**उपेति** । संलिख्य=शस्त्रेणावलिख्य ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसायनं पीतवांस्तु निवाते [1]न्मनाः शुचिः।
आसीत तिष्ठेत् क्रामेच्च न कथञ्चन संविशेत्[2] ॥ ११ ॥

सायं वा भुक्तवान् श्रुतशान्तिः कुशशय्यायां कृष्णाजिनोत्तरायां सुहृद्भिरुपास्यमानः शयीत, तृषितो वा शीतोदकमात्रां[3] पिबेत्। (अशनायितो वा क्षी[4]) ततः प्रातरुत्थायोपश्रुतशान्तिः कृतमङ्गलो गां स्पृष्ट्वा तथैवासीत, तस्य जीर्णे सोमे छर्दिरुत्पद्यते[5], ततः शोणितात्तं कृमिव्याप्तमिश्रं छर्दितवते सायं श्रृतशीतं क्षीरं वितरेत्[6]। ततस्तृतीयेऽहनि कृमिव्याप्तमिश्रमतिसार्य्यते, स तेनानिष्टप्रतिग्रहभुक्तप्रभृतिभिर्विशेषैर्मुक्तः[7] शुद्धतनुर्भवति, ततः सायं स्नाताय पूर्ववदेव क्षीरं वितरेत्, क्षौमवस्त्रास्तृतायां चैनं शय्यायां शाययेत्। ततश्चतुर्थेऽहनि तस्य श्वयथुरुत्पद्यते, ततः सर्वाङ्गेभ्यः कृमयो निष्क्रामन्ति, तदहश्च शय्यायां पांशुभिरवकीर्य्यमाणः[8] शयीत, ततः सायं पूर्ववदेव क्षीरं वितरेत्। एवं पञ्चमषष्ठयोर्दिव योर्वर्त्तत, केवलमुभयकालमस्मै क्षीरं वितरेत्। ततः सप्तमेऽहनि निर्मांसस्त्वगस्थिभूतः केवलं सोमपरिग्रहादेवोच्छ्वसिति, तदहश्च क्षीरेण सुखोष्णेन[9] परिषिच्य तिलमधुकचन्दनानुलिप्तदेहं पयः पाययेत्। ततोऽष्टमेऽहनि प्रातरेव क्षीरपरिषिक्तं चन्दनप्रदिग्धगात्रं[10] पयः पाययित्वा पांशुशय्यां समुत्सृज्य क्षौमास्तृतायां शाययेत, ततो मांसमाप्याय्यते, त्वक् चावदलति, दन्तनखरोमाणि चास्य पतन्ति। तस्य नवमदिवसात् प्रभृत्यणुतैलाभ्यङ्गः[11] सोमवल्ककषायपरिषेकः। ततो दशमेऽहन्येतदेव वितरेत्, ततोऽस्य त्वक्स्थिरतामुपैति। एवमेकादशद्वादशयोर्वर्त्तत।

---

रिश्रमणस्थानासनचतुर्विधकायविहारं कुर्यादित्यर्थः। १ तत्रैव सोमे मनो यस्य स तन्मनाः। २ न संविशेत्=न स्वप्यात्।

३ अत्र मात्राशब्दस्य अल्पार्थकत्वात् स्वल्पं शीतोदकमित्यर्थः। ४ छर्दिः=वमनम्। ५ क्रियाविशेषणमेतत्। ६ वितरेत्=दद्यादित्यर्थः। ७ श्राद्धाद्यनिष्टप्रतिग्रहभोजनादिभिरित्यर्थः। ८ पांशुभिः=धूलिभिः। ९ सुखोष्णेन=ईषदुष्णेन। १० चन्दनप्रदिग्धगात्रं=चन्दनानुलिप्तशरीरम्। ११ अणुतैलं वातव्याधिचिकित्सिते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततस्त्रयोदशात् प्रभृति सोमवल्ककषायपरिषेकः, एवमाषोडशाद् वर्त्तेत । ततः सप्तदशाष्टादशयोर्दिवसयोर्दर्शना[1] जायन्ते शिखरिणः स्निग्धवज्रवैदूर्य्यस्फटिकनिकाशाः समाः स्थिराः सहिष्णवः, तदा प्रभृति चानवैः शालितण्डुलैः क्षीरयवागूमुपसेवेत यावत् पञ्चविंशतिरिति । ततोऽस्मै दद्याच्छल्योदनं मृदूभयकालं पयसा, ततोऽस्य नखा जायन्ते विद्रुमेन्द्रगोपकतरुणादित्यप्रकाशाः[2], स्थिराः स्निग्धा लक्ष्णसम्पन्नाः[3] केशाश्च जायन्ते, त्वक् च नीलोत्पलातसीपुष्पवैदूर्य्यप्रकाशाः[4] । ऊर्द्ध्वञ्च मासात् केशान् वापयेत्, वापयित्वा चोशीरचन्दनकृष्णतिलकल्कैः शिरः प्रदिह्यात् पयसा वा स्नापयेत् ।

ततोऽस्यानन्तरं सप्तरात्रात् केशा जायन्ते भ्रमराञ्जननिभाः कुञ्चिताः स्निग्धाः । ततस्त्रिरात्रात् प्रथमावसथपरिसरान्निष्क्रम्य मुहूर्त्तं स्थित्वा पुनरेवान्तः प्रविशेत्, ततोऽस्य बलातैलमभ्यङ्गार्थेऽवचार्य[5], यवपिष्टमुद्वर्त्तनार्थे, सुखोष्णञ्च पयः परिषेकार्थे, अर्जकर्णकषायमुत्सादनार्थे[6], सोशीरं कूपोदकं स्नानार्थं, चन्दनमनुलेपार्थे, आमलकरसविमिश्राश्चास्य यूषसूपविकल्पाः[7], क्षीरमधुकसिद्धञ्च कृष्णतिलमवचारणार्थे, एवं दशरात्रं, ततोऽन्यद् दशरात्रं द्वितीये परिसरे वर्त्तेत । ततस्तृतीये परिसरे स्थिरीकुर्वन्नात्मानमन्यद्दशरात्रमासीत, किञ्चिदातपपवनान् वा सेवेत, पुनश्चान्तः प्रविशेत्, न चात्मानमादर्शेऽप्सु वा निरीक्षेत रूपशालित्वात्[9] । ततोऽ

---

द्रष्टव्यम् । सोमवल्ककषायपरिषेकः=सोमवल्ककाथस्नानम् । १ दर्शनाः=दन्ताः । २ इन्द्रगोपः='वीरबहूटी' इति ख्यातः प्रावृषि जायमानो रक्तवर्णः कीटः । ३ लक्षणसम्पन्नाः=घनत्वकृष्णत्वादिगुणयुक्ता इत्यर्थः ।

४ वैदूर्य्यच्छार्यालक्षणं यथा—"एकं वेणुपलाशकोमलरुचा मायूरकण्ठत्विषा मार्जारक्षणपिङ्गलच्छविजुषा सेयं त्रिधा छायया । यद् गात्रं गुरुतां दधाति नितरां स्निग्धं तु दोषोज्झितं वैदूर्य्यं विशदं वदन्ति सुधियः स्वच्छञ्च तच्छोभनम् ॥" इति । ५ बलातैलं मूढगर्भचिकित्सितोक्तम् । ६ अर्जकर्णः सालभेदस्तस्य कषायः कल्कः ।

७ मुद्गादिद्विदलस्य वस्त्रगालितो यूषः, सूपस्त्वगालितः । ८ परिसरे=परिवृतप्रकोष्ठे । ९ यतो मनोहरं रूपं मनोविभ्रमावहं स्यादिति तात्पर्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यदशरात्रं क्रोधादीन् परिहरेत् । एवं सर्वेषामुपयोगविकल्पः । विशेषतस्तु वल्लीप्रतानक्षुपादयः[1] सोमा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैर्भक्षयितव्याः । तेषान्तु प्रमाणमर्द्धचतुर्थमुष्टयः[2] ॥ १२ ॥

अंशुमन्तं[3] सौवर्णे पात्रेऽभिषुणुयात्, चद्रमसं राजते चोपयुज्याष्टगुणमैश्वर्यमवाप्येशानं[4] देवमनुप्रविशति, शेषांस्तु ताम्रमये मृण्मये वा रोहिते[5] वा चर्म्मणि विते, शूद्रवर्जं त्रिभिर्वर्णैः सोमा उपयोक्तव्याः । ततश्चतुर्थे मासे पौर्णमास्यां शुचौ देशे ब्राह्मणानर्चयित्वा कृतमङ्गलो निष्क्रम्य यथोक्तं व्रजेदिति ॥ १३ ॥

ओषधीनां[6] पतिं सोममुपयुज्य विचक्षणः ।
दशवर्षसहस्राणि नवां धारयते तनुम् ॥ १४ ॥
नाग्निर्न तोयं न विषं न शस्त्रं नास्त्रमेव च ।
तस्यालमायुःक्षपणे समर्थाश्च भवन्ति हि ॥ १५ ॥
भद्राणां[7] षष्टिवर्षाणां प्रसुतानामनेकधा ।
कुञ्जराणां सहस्रस्य बलं समधिगच्छति ॥ १६ ॥
क्षीरोदं शक्रसदनमुत्तरांश्च कुरूनपि ।
यत्रेच्छति स गन्तुं वा तत्राप्रतिहता गतिः ॥ १७ ॥
कन्दर्प इव रूपेण कान्त्या चन्द्र इवापरः ।
प्रह्लादयति भूतानां मनांसि स महाद्युतिः ॥ १८ ॥
साङ्गोपाङ्गांश्च निखिलान् वेदान् विन्दति तत्त्वतः ।
चरत्यमोघसङ्कल्पो[8] देववच्चाखिलं जगत् ॥ १९ ॥

---

१ आदिग्रहणात् कन्दादीनां परिग्रहः । २ अर्द्धचतुर्थमुष्टयः=अष्टादशतोलकानि ।

३ विविधसोमाभिषवयोग्यपात्राणि निर्दिशति—**अंशुमन्तमिति** । अभिषुणुयात्=कण्डयेदित्यर्थः । ४ अष्टगुणमैश्वर्यम्=अणिमाद्यष्टैश्वर्यम् । 'अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा । प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः ॥' इत्यमरः । ईशानं=शङ्करम् । ५ रोहिते=लोहितमृगविशेषे ।

६ सोमसेवनफलमभिधत्ते—**ओषधीनामिति** । ७ भद्राणां=श्रेष्ठजातीयानामित्यर्थः । प्रसुतानां=प्रस्यन्दन्मदानाम् । ८ अमोघः अनिष्फलः सङ्कल्पो यस्य


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वेषामेव[1] सोमानां पत्राणि दश पञ्च च ।
तानि शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते निपतन्ति च ॥ २० ॥
एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा ।
शुक्लस्य पौर्णमास्यान्तु भवेत् पञ्चदशच्छदः ॥ २१ ॥
शीर्यते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः ।
कृष्णपक्षक्षये चापि लता भवति केवला ॥ २२ ॥
अंशुमानाज्यगन्धस्तु कन्दवान् रजतप्रभः ।
कदल्याकारकन्दस्तु मुञ्जवांल्लशुनच्छदः ॥ २३ ॥
चन्द्रमाः कनकाभासो जले चरति सर्वदा ।
गरुडाहृतनामा च श्वेताक्षश्चापि पाण्डुरौ ॥ २४ ॥
सर्पनिर्मोकसदृशौ[3] तौ वृक्षाग्रावलम्बिनौ ।
तथाऽन्ये मण्डलैश्चित्रैश्चित्रिता इव भान्ति ते ॥ २५ ॥
सर्व एव तु विज्ञेयाः सोमाः पञ्चदशच्छदाः ।
क्षीरकन्दलतावन्तः पत्रैर्नानाविधैः स्मृताः ॥ २६ ॥
हिमवत्यर्बुदे[4] सह्ये महेन्द्रे मलये तथा ।
श्रीपर्वते देवगिरौ गिरौ देवसहे तथा ॥ २७ ॥
पारियात्रे च विन्ध्ये च देवसुन्दे ह्रदे तथा ।
उत्तरेण वितस्ताया[5]: प्रवृद्धा ये महीधराः ॥ २८ ॥

---

सः । १ विविधसोमलक्षणानि निर्दिशति—**सर्वेषामिति** । दशपञ्च पत्राणि=पञ्चदश दलानीत्यर्थः । 'पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्ण छदः पुमान्' इत्यमरः । २ कृष्णपक्षेऽमायां सर्वेषां पञ्चदशपत्राणां निपतनात् केवलं लतामात्रेणैवावशिष्टः सोमो दृश्यते इति भावः । ३ निर्मोकः=कञ्चुकः, 'केंचुल' इति ख्यातः । 'समौ कञ्चुकनिर्मोकौ' इत्यमरः ।

४ सोमोत्पत्तिस्थानानि दर्शयति—**हिमवतीति** । हिममस्त्यस्मिन्निति हिमवान् तस्मिन् हिमाचले, अर्बुदे='आबू' इति ख्याते महीधरे, सह्ये=मलयाद्रिसमीपवर्तिनि शैले, महेन्द्रे=कलिङ्गदेशस्थे कुलपर्वते, मलये=ऋष्यमूकप्रदेशान्तरेऽद्रिविशेषे, श्रीपर्वते=श्रीशैले, 'मेरुमन्दरकैलासमलया गन्धमादनः । महेन्द्रः श्रीपर्वतश्च हेमकूटस्तथैव च ॥ अष्टावेते तु सम्पूज्या गिरयः पूर्वादिक् क्रमात्' । देवगिर्यादयः शैला ज्ञातव्या । ५ वितस्तायाः=एतन्नामिकायः काश्मीरदेशस्थाया नद्याः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्च तेषामधो मध्ये सिन्धुनामा[1] महानदः ।
हठवत्[2] प्लवते तत्र चन्द्रमाः सोमसत्तमः ॥ २९ ॥
तस्योद्देशेषु[3] चाप्यस्ति मुञ्जवानंशुमानपि ।
काश्मीरेषु[4] सरो दिव्यं नाम्ना क्षुद्रकमानसम्[5] ॥ ३० ॥
गायत्रस्त्रैष्टुभः पाङ्क्तो जागतः शाक्करस्तथा ।
अत्र सन्त्यपरे चापि सोमाः सोमसमप्रभाः ॥ ३१ ॥
न तान् पश्यन्त्यधर्मिष्ठाः कृतघ्नाश्चापि मानवाः ।
भेषजद्वेषिणश्चापि ब्राह्मणद्वेषिणस्तथा ॥ ३२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने स्वभावव्याधिप्रतिषेधनीयं रसायन-चिकित्सितं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

---

## त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो[6] निवृत्तसन्तापीयं रसायनचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
यथा निवृत्तसन्तापा[7] मोदन्ते दिवि देवताः ।

---

१ सिन्धुः=काश्मीरदेशप्रसिद्धो नदः । २ हठवत्=जलकुम्भिकावत्, प्लवते=तरति । ३ उद्देशेषु=निकटवर्ति प्रदेशेष्वित्यर्थः ।

४ "शारदामठमारभ्य कुङ्कुमाद्रितटान्तकम् । तावत् काश्मीरदेशः स्यात् पञ्चाशद्योजनात्मकः ॥' इति तन्त्रशास्त्रम् । ५ मानसस्थानमुक्तं मृगेन्द्रसंहितायां—मेरोर्याम्ये गन्धमादनो नाम विष्कम्भशैलस्तस्य मूले नन्दनाख्यमुपवनमस्ति, तत्र मानसं नाम सर इत्युक्तम् । यथा—'यामाद्रिमूले गन्धर्वं सुरसिद्धाप्सरोवृतम् । नन्दनं मानसं तत्र सरो मानसतस्करम्' इति ।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

६ सोमसाम्यादष्टादशानां श्वेतकापोत्यादीनामोषधीनामुपयोगमुपदेष्टुं निवृत्तसन्तापीयं नाम रसायनमधिकरोति—**अथात इति** । निवृत्तसन्तापपदमधिकृत्य कृतं रसायनं निवृत्तसन्तापीयम् । ७ निवृत्तः शारीरमानसजनितसन्तापो येषां ते निवृत्त-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथौषधीरिमाः प्राप्य मोदन्ते भुवि मानवाः ॥ ३ ॥

अथ[1] सप्त पुरुषा रसायनं नोपयुञ्जीरन्। तद् यथा—अनात्मवानलसो दरिद्रः प्रमादी व्यसनी पापकृद् भेषजापमानी चेति[2]। सप्तभिरेव कारणैर्न सम्पद्यते—अज्ञानादनारम्भादस्थिरचित्तत्वादारिद्र्यादनायत्तत्वादधर्मादौषधालाभाच्चेति ॥ ४ ॥

अथौषधीर्व्याख्यास्यामः—श्वेतकापोती[3], कृष्णकापोती, गोनसी, अजगरी, वाराही, कन्या, छत्रा, अतिच्छत्रा, करेणुः, अजा, चक्रका, आदित्यपर्णिनी, ब्रह्मसुवर्चला, श्रावणी, महाश्रावणी, गोलोमी, अजलोमी, महावेगवती, चेत्यष्टादश सोमसमवीर्य्या महौषधयो व्याख्याताः। तासां सोमवत् क्रियाशीः[4] स्तुतयः शास्त्रेऽभिहिताः। तासामागारेऽभिहुतानां याः क्षीरवत्यस्तासां क्षीरकुडवं[5] सकृदेवोपयुञ्जीत।

यास्त्वक्षीरा[6] मूलवत्यस्तासां प्रदेशिनीप्रमाणानि[7] त्रीणि काण्डानि प्रमाणमुपयोगे, श्वेतकापोती समूलपत्राभक्षयितव्या, गोनस्यजगरीकृष्णकापोतीनां सनखमुष्टिं[8] खण्डशः कल्पयित्वा क्षीरेण विपाच्य परिस्राव्याभिघारितमभिहुतञ्च सकृदेवोपयुञ्जीत। चक्रकायाः पयः सकृदेव। ब्रह्मसुवर्चला सप्तरात्रमुपयोक्तव्या। भक्ष्यकल्पेन। शेषाणां पञ्च पलानि क्षीराढकक्वथितानि प्रस्थेऽवशिष्टेऽवतार्य परिस्राव्य सकृदेवोपयुञ्जीत। सोमवदाहारविहारौ व्याख्यातौ, केवलं नवनीतमभ्यङ्गार्थं, शेषं सोमवदानिर्गमादिति[9] ॥ ५ ॥

---

न्तापाः। १ रसायनसेवनायोग्यपुरुषान् दर्शयति—अथेति। २ अनात्मवानित्यादीनां सप्तानां पुरुषाणामज्ञानादिभिः सप्तभिर्यथासंख्यं परेणान्वयः।

३ सोमसमवीर्या महौषधीर्वर्णयति—श्वेतकापोतीति। ४ अष्टादशौषधीनां मध्ये क्षीरवतीनामोषधीनां सेवनविधिमुपदिशति—तासामिति। आशीः=मङ्गलपाठादिः। ५ क्षीरस्य कुडवं षोडशतोलकानि। ६ अक्षीराणामोषधीनां सेवनविधानं निर्दिशति—या इति। ७ आयामविस्ताराभ्यां प्रदेशिनीप्रमाणानीत्यर्थः। ८ सनखमुष्टिम्=अन्तर्बद्धनखमुष्टिपरिमितम्। ९ आनिर्गमात्=गूढागारे आवासपर्यन्तमित्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन्ति चात्र ।

युवानं[1] सिंहविक्रान्तं कान्तं श्वतनिगादिनम् ।
कुर्य्युरेताः क्रमेणैव द्विसहस्रायुषं नरम् ॥ ६ ॥
अङ्गदी कुण्डली मौली दिव्यस्रक्चन्दनाम्बरः ।
चरत्यमोघसङ्कल्पो नभस्यम्बुददुर्गमे ॥ ७ ॥
व्रजन्ति पक्षिणो येन जललम्बाश्च तोयदाः ।
गतिः सौषधिसिद्धस्य सोमसिद्धगतिः परा ॥ ८ ॥
अथ[2] वक्ष्यामि विज्ञानमौषधीनां पृथक् पृथक् ।
मण्डलैः कपिलैश्चित्रैः सर्पाभा पञ्चपर्णिनी ॥ ९ ॥
पञ्चारत्निप्रमाणा च विज्ञेयाऽजगरी बुधैः ।
निष्पत्रा कनकाभासा[4] मूले द्व्यङ्गुलसम्मिता ॥ १० ॥
सर्पाकारा लोहितान्ता श्वेतकापोतिरुच्यते ।
द्विपर्णिनीं मूलभवामरुणां कृष्णमण्डलाम् ॥ ११ ॥
द्व्यरत्निमात्रां जानीयाद्गोनसीं गोनसाकृतिम्[5] ।
सक्षीरां रोमशां मृद्वीं रसेनेक्षुरसोपमाम् ॥ १२ ॥
एवं रूपरसाञ्चापि कृष्णकापोतिमादिशेत् ।
कृष्णसर्पस्वरूपेण वाराहीकन्दसम्भवा ॥ १३ ॥
एकपत्रा महावीर्य्या भिन्नाञ्जनसमप्रभा ।
छत्रातिच्छत्रके विद्याद्रक्षोघ्ने[6] कन्दसम्भवे ॥ १४ ॥
जरामृत्युनिवारिण्यौ श्वेतकापोति[7]संस्थिते ।
कान्तैर्द्वादशभिः पत्रैर्मयूराङ्गरुहोपमैः ॥ १५ ॥
कन्दजा काञ्चनक्षीरी कन्या नाम महौषधी ।
करेणुः सुबहुक्षीरा कन्देन गजरूपिणी ॥ १६ ॥

---

१ ओषधीनां सेवनफलमभिदधाति—युवानमिति । २ जलेन लम्बा अधो लम्बमानाः । ३ ओषधीनां विज्ञानोपायीभूतलक्षणानि निर्दिशति—अथेति । ४ कनकवत् सुवर्णवदाभासो वर्णो यस्याः सा कनकाभासा । ५ गोनसाकृतिं= गोनासिकाकाराम् , अथवा गोनसः सर्पविशेषस्तद्वदाकृतिर्यस्याः सा ताम् । ६ रक्षोघ्ने=रक्षसां प्रध्वंसकरे । ७ श्वेतकापोतिसंस्थिते = श्वेतकापोतिकाकारे ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तिकर्णपलाशस्य[1] तुल्यपर्णा द्विपर्णिनी ।
अजास्तनाभकन्दा तु सक्षीरा क्षुपरूपिणी ॥ १७ ॥
अजा महौषधी ज्ञेया शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरा ।
श्वेतां विचित्रकुसुमां काकादन्या समां क्षुपाम् ॥ १८ ॥
चक्रकामोषधीं विद्याज्जरामृत्युनिवारिणीम् ।
मूलिनी पञ्चभिः पत्रैः सुरक्तांशुककोमलैः ॥ १९ ॥
आदित्यपर्णिनी ज्ञेया सदाऽऽदित्यानुवर्तिनी ।
कनकाभा जलान्तेषु सर्वतः परिसर्पति ॥ २० ॥
सक्षीरा पद्मिनीप्रख्या देवी ब्रह्मसुवर्चला ।
अरत्नि[2]मात्रक्षुपका पत्रैर्द्व्यङ्गुलसम्मितैः ॥ २१ ॥
पुष्पैर्नीलोत्पलाकारैः फलैश्चाञ्जनसन्निभैः ।
श्रावणी महती ज्ञेया कनकाभा पयस्विनी ॥ २२ ॥
श्रावणी पाण्डुराभासा महाश्रावणिलक्षणा ।
गोलोमी चाजलोमी च रोमशे कन्दसम्भवे ॥ २३ ॥
हंसपादीव विच्छिन्नैः पत्रैर्मूलसमुद्भवैः ।
अथवा शङ्खपुष्प्या च समाना सर्वरूपतः ॥ २४ ॥
वेगेन महताऽऽविष्टा सर्पनिर्मोकसन्निभा ।
एषा वेगवती नाम जायते ह्यम्बुदक्षये[3] ॥ २५ ॥
सप्तादौ[4] सर्वरूपिण्यो ह्योषध्यो याः प्रकीर्त्तिताः ।
तासामुद्धरणं कार्य्यं मन्त्रेणानेन सर्वदा ॥ २६ ॥
'महेन्द्ररामकृष्णानां ब्राह्मणानां गवामपि ।
तपसा तेजसा वाऽपि प्रशाम्यध्वं शिवाय[5] वै ॥२७॥'

---

१ हस्तिकर्णः='हाथीकन्द' इति ख्यातः । राजनिघण्टुः—"हस्तिकन्दो हस्तिपत्रः स्थूलकन्दोऽतिपत्रकः । बृहत्पत्रोऽतिपत्रश्च हस्तिकर्णस्तु कर्णकः ॥" इति । २ बद्ध-मुष्टिकरोऽरत्निः । ३ अम्बुदक्षये=शरदीत्यर्थः ।

४ ओषध्यानयनप्रकारं दर्शयति—**सप्तादाविति** । 'सर्परूपिण्य' इत्यत्र 'सर्व-रूपिण्य' इति डाराणचन्द्रसम्मतपाठः । ५ शिवाय=कल्याणं कर्तुमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रेणानेन मतिमान् सर्वा एवाभिमन्त्रयेत् ।
अश्रद्दधानैरलसैः कृतघ्नैः पापकर्मभिः ॥ २८ ॥
नैवासादयितुं शक्याः सोमाः सोमसमास्तथा ।
पीतावशेषममृतं देवैर्ब्रह्मपुरोगमैः ॥ २९ ॥
निहितं सोमवीर्य्यासु सोमे चाप्योषधीपतौ ।
देवसुन्दे ह्रदवरे तथा सिन्धौ महानदे ॥ ३० ॥
दृश्यते च जलान्तेषु मेध्या ब्रह्मसुवर्चला ।
आदित्यपर्णिनी ज्ञेया तथैव हिमसङ्क्षये ॥ ३१ ॥
दृश्यतेऽजगरी नित्यं गोनसी चाम्बुदागमे ।
काश्मीरेषु सरो दिव्यं नाम्ना क्षुद्रकमानसम् ॥ ३२ ॥
करेणुस्तत्र कन्या च छत्रातिच्छत्रके तथा ।
गोलोमी चाजलोमी च महती श्रावणी तथा ॥ ३३ ॥
वसन्ते कृष्णसर्पाख्या गोनसी च प्रदृश्यते ।
कौशिकीं सरितं तीर्त्वा सञ्जयन्त्यास्तु पूर्वतः ॥ ३४ ॥
क्षितिप्रदेशो वल्मीकैराचितो योजनत्रयम् ।
विज्ञेया तत्र कापोती श्वेता वल्मोकमूर्द्धसु ॥ ३५ ॥
मलये नलसेतौ च वेगवत्यौषधी ध्रुवा ।
कार्त्तिक्यां पौर्णमास्याञ्च भक्षयेत्तामुपोषितः ॥ ३६ ॥
सोमवच्चात्र वर्त्तेत फलं तावच्च कीर्त्तितम् ।
सर्वा विचेयास्त्वोषध्यः सोमाश्चाप्यर्बुदे गिरौ ॥ ३७ ॥
स शृङ्गैर्देवचरितैरम्बुदानीकभेदिभिः ।
व्याप्तस्तीर्थैश्च विख्यातैः सिद्धर्षिसुरसेवितैः ॥ ३८ ॥
गुहाभिर्भीमरूपाभिः सिंहोन्नादितकुक्षिभिः ।

---

१ ओषधीनाममृततुल्यगुणत्वे कारणं दर्शयति—पीतेति । २ सोमवीर्यास्वोषधीष्वित्यर्थः ।
३ ओषध्युत्पत्तिस्थानानि दर्शयति—देवसुन्द इति । ४ जलान्तेषु=जलमध्येषु । ५ हिमसङ्क्षये=वसन्ते इत्यर्थः । ६ अम्बुदागमे=वर्षासु । ७ कृष्णसर्पाख्या=वाराही । ८ योजनत्रयं=द्वादशक्रोशात्मकः । ९ नलेन वानरवि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गजालोडिततोयाभिरापगाभिः समन्ततः ।
विविधैर्धातुभिश्चित्रैः सर्वत्रैवोपशोभितः ॥ ३९ ॥
नदीषु शैलेषु सरःसु चापि पुण्येष्वरण्येषु तथाऽऽश्रमेषु ।
सर्वत्र सर्वाः परिमार्गितव्याः सर्वत्र भूमिर्हि वसूनि धत्ते ॥ ४० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने निवृत्तसन्तापीयं रसायन-
चिकित्सितं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

---

## एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः स्नेहोपयौगिकं चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
स्नेहसारोऽयं पुरुषः, प्राणाश्च स्नेहभूयिष्ठाः स्नेहसाध्याश्च भवन्ति । स्नेहो हि पानानुवासनमास्थिष्कशिरोबस्त्युत्तरबस्तिनस्य-कर्णपूरणगात्राभ्यङ्गभोजनेषूपयोज्यः ॥ ३ ॥
तत्र द्वियोनिश्चतुर्विकल्पोऽभिहितः स्नेहः स्नेहगुणाश्च । तत्र

---

शेषेण निर्मिते रामायणप्रसिद्धे सामुद्रसेतौ, रामेश्वरनिकटे इत्यर्थः । १ परिमार्गितव्याः = अन्वेषणीयाः ।

इति सुश्रुतसंहिताया श्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

### एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

२ पूर्वाध्यायेषु रसायनमुक्तं, तच्च शरीरस्य शुद्धिमन्तरा न फलदमिति संशोधनोपदेशार्थं प्राक् स्नेहोपयौगिकं चिकित्सितमारभ्यते—**अथात इति** । स्नेहस्य सर्पिरादेरुपयोगो बाह्योऽभ्यन्तरश्च तमधिकृत्य कृतं स्नेहोपयौगिकं चिकित्सितं व्याख्यास्यामः । ३ स्नेहस्य प्राधान्यं दर्शयति—**स्नेहेति** । स्नेहः सारो बलं यस्य सः ।
४ स्नेहस्य द्वियोनित्वं प्रतिपादयति—**तत्रेति** । द्वियोनिः = स्थावरजङ्गमभेदेन द्विप्रकारकः । तदुक्तं—"स्थावरो जङ्गमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते" इति । चतुर्विकल्पः = चतुर्भेद इत्यर्थः । तदुक्तम्—"स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा । मज्जा च" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जङ्गमेभ्यो गव्यं घृतं प्रधानम्, स्थावरेभ्यस्तिलतैलं प्रधानमिति॥४॥

अत ऊर्द्ध्वं यथाप्रयोजनं यथाप्रधानं च स्थावरस्नेहानुपदेक्ष्यामः—तत्र, तिल्वकैरण्डकोशाम्रदन्तीद्रवन्तीसप्तलाशङ्खिनीपलाशविषाणिकागवाक्षीकम्पिल्लकशम्पाकनीलिनीस्नेहा विरेचयन्ति। जीमूतककुटजकृतवेधनेक्ष्वाकुधामार्गवमदनस्नेहा वामयन्ति। विडङ्गखरमञ्जरीमधुशिग्रुसूर्य्यवल्लीपीलुसिद्धार्थकज्योतिष्मतीस्नेहाः शिरो विरेचयन्ति। करञ्जपूतिककृतमालमातुलुङ्गेङ्गुदीकिराततिक्तकस्नेहा दुष्टव्रणेषूपयुज्यन्ते। तुवरककपित्थकम्पिल्लकभल्लातकपटोलस्नेहा महाव्याधिषु, त्रपुसैर्वारुककर्कारुकतुम्बीकूष्माण्डस्नेहा मूत्रसङ्गेषु, कपोतवङ्कावल्गुजहरीतकीस्नेहाः शर्कराऽश्मरीषु। कुसुम्भसर्षपातसीपिचुमर्दातिमुक्तकभाण्डीकटुतुम्बीकटभीस्नेहाः प्रमेहेषु। तालना-

---

स्नेहस्य द्वित्रिचतुःसंयोगेन संज्ञान्तरं तन्त्रान्तरे—"द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा यमकस्त्रिवृतो महान्" इति। द्वाभ्यां स्नेहाभ्यां घृततैलाभ्यां यमकाख्यः स्नेहः स्यात्। त्रिभिः स्नेहैर्घृततैलवसारूपैस्त्रिवृताख्यः स्यात्। चतुर्भिर्घृततैलवसामज्जभिर्महान् महास्नेह इत्यर्थ इति तदर्थः। १ अष्टाङ्गहृदयेऽपि "सर्पिर्मज्जा वसा तैलं स्नेहेषु प्रवरं मतम्। तत्रापि चोत्तमं सर्पिः संस्कारस्यानुवर्तनात्॥" इति। चरके—"नान्यः स्नेहस्तथा कश्चित् संस्कारमनुवर्तते। यथा सर्पिरतः सर्पिः सर्वस्नेहोत्तमं मतम्॥" इति।

२ चरकेऽपि—"सर्वेषां तैलजातानां तिलतैलं विशिष्यते। बलार्थे स्नेहने चाग्र्यमैरण्डं तु विरेचने॥" इति। ३ विविधस्यावरस्नेहानां गुणानुपयोगांश्च दर्शयति—**तत्रेति**। तत्र=स्नेहेषु मध्ये इत्यर्थः। तिल्वकः=लोध्रः। ४ विषाणिका=मेषशृङ्गी, गवाक्षी=इन्द्रवारुणी, कम्पिल्लकः='कबीला' इति ख्यातः, शम्पाकः=आरग्वधः। ५ खरमञ्जरी=अपामार्गः, सूर्यवल्ली=अर्कपुष्पी। ६ विरेचयन्ति=नस्य प्रयोगेण शिरसः श्लेष्माणं स्रावयन्ति। ७ किरातितिक्तः='चिरायता' इति ख्यातः।

८ महाकुष्ठप्रमेहादिमहाव्याधिष्विति यर्थः। ९ मूत्रसङ्गेषु=मूत्रकृच्छ्राध्मानाश्मरीषु। १० कपोतवङ्का=ब्रह्मसुवर्चला, अवल्गुजः=बाकुची। ११ पिचुमर्दः=निम्बः, अतिमुक्तकः='तेंदुआ' इति ख्यातः। भाण्डी 'भाण्डनी इति लोके प्रसिद्धो विटपो भाण्डधावनार्थमासुतीवलाः समाहरन्तीति डल्हणः। कटभी='मालकांगनी'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिकेलपनसमोचप्रियालबिल्वमधूकश्लेष्मातकाम्रातकफलस्नेहाः पित्तसंसृष्टे वायौ। बिभीतकभल्लातकपिण्डीतकस्नेहाः कृष्णीकरणे। श्रवणकङ्गुकटुण्टुकस्नेहाः पाण्डूकरणे। सरलपीतदारुशिंशपागुरुसारस्नेहा दद्रुकुष्ठकिटिभेषु। सर्व एव स्नेहा वातमुपघ्नन्ति। तैलगुणाश्च समासेन व्याख्याताः ॥ ५ ॥

अत ऊर्ध्वं कषायस्नेहपाकक्रममुपदेक्ष्यामः— तत्र, केचिदाहुः— त्वक्पत्रमूलादीनां भागस्तच्चतुर्गुणं जलमावाप्य चतुर्भागावशेषं निःक्वाथ्यापहरेदित्येष कषायपाककल्पः। स्नेहप्रसृतेषु षट्सु चतुर्गुणं द्रवमावाप्य चतुरश्चात्समान् भेषजपिण्डानित्येष स्नेहपाककल्पः। एतत्तु न सम्यक्, कस्मादागमासिद्धत्वात् ॥ ६ ॥

पलकुडवादीनामतो मानन्तु व्याख्यास्यामः—तत्र, द्वादश धान्यमाषा मध्यमाः सुवर्णमाषकः, ते षोडश सुवर्णम्; अथवा मध्यमनिष्पावा एकोनविंशतिर्धरणम्, तान्यर्द्धतृतीयानि कर्षः, तत-

---

इति लोके। १ पिण्डीतकः=मदनः। २ श्रवणः='इङ्गुदी' इति डल्हणः, मुण्डतिकेति हाराणचन्द्रः। कङ्गुकः='कङ्गुनी—काकुन—कउनी' इति देशभेदेनोद्बुध्यते। टुण्टुकः=स्योनाकः। ३ व्याख्याताः=द्रवद्रव्यविधौ कथिता इत्यर्थः।

४ कषायपाकस्नेहपाकक्रमे एकीयमतं दर्शयति—**तत्रेति**। ५ तदुक्तम्—"चतुर्भागावशिष्टं क्वाथमुपहरेत्" इति। ६ आगमासिद्धत्वात्=शास्त्रविरुद्धत्वात। ७ पलकुडवादिमानपरिभाषां प्रतिपादयति—**तत्रेति**। ८ मध्यमाः=मध्यमप्रमाणाः, न क्षुद्रा न च महान्त इति यावत्। ९ अर्द्धतृतीयोंऽशो येषां तान्यर्धतृतीयानि, अर्द्धहीनत्रितयानि, सार्द्धद्वयमिति यावत्।

**मानप्रदर्शकचक्रम्।**

| | | | |
|---|---|---|---|
| १२ | मध्यमधान्यमाषाः— | १ | सुवर्णमाषकः। |
| १६ | सुवर्णमाषकाः— | १ | सुवर्णम्। |
| | **अथवा—** | | |
| १२ | मध्यमनिष्पावाः— | १ | सुवर्णमाषकः। |
| १९ | सुवर्णमाषकाः— | १ | धरणम्। |
| २॥ | धरणानि— | १ | कर्षः। |
| ४ | कर्षाः— | १ | पलम्। |

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्ध्वं चतुर्गुणमभिवर्द्धयन्तः पलकुडवप्रस्थाढकद्रोणा इत्यभिनिष्पद्यन्ते, तुला पलशतं, ताः पुनर्विंशतिर्भारः, शुष्काणामिदं मानमार्द्रद्रवाणाञ्च द्विर्गुणमिति ॥ ७ ॥

तत्रान्यतमपरिमाणसम्मितानां यथायोगं त्वक्पत्रमूलादीनामातपपरिशोषितानां छेद्यानि खण्डशश्छेदयित्वा भेद्यान्यणुशो भेदयित्वाऽवकुटचाष्टगुणेन षोडशगुणेन वाऽम्भसाऽभिषिच्य स्थाल्यां चतुर्भागावशिष्टं क्वाथयित्वाऽपहरेदित्येष कषायपाककल्पः। स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः स्नेहचतुर्थांशो भेषजकल्कः, तदैकध्यं संसृज्य

---

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४ | पलानि— | १ | कुडवः। |
| ४ | कुडवाः— | १ | प्रस्थः। |
| ४ | प्रस्थाः— | १ | आढकः। |
| ४ | आढकाः— | १ | द्रोणः। |
| १०० | पलानि— | १ | तुला। |
| २० | तुला— | १ | भारः। |

एतत्सुश्रुताचार्यसम्मतं मानं मागधं मानम्। तदुक्तम्—"मानं तु द्विविधं प्रोक्तं कालिङ्गं मागधं तथा। कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठमिति मानविदो विदुः॥ कालिङ्गमपि मानं च चरकाचार्यसम्मतम्।" इति।

१ कानिचिद् द्रव्याणि आर्द्राण्यपि न द्विगुणानि ग्राह्याणि, तान्युक्तानि भावप्रकाशे—'वासानिम्बपटोलकेतकबलाकूष्माण्डकेन्दीवरीवर्षाभूकुटजाश्च कन्दसहिताः सापूतिगन्धामृताः। ऐन्दीनागबलाकुरण्टकपुरोक्षत्रामृता सर्वदा सार्दा एव तु न क्वचिद्द्विगुणिताः कार्येषु योज्या बुधैः॥" इति। शार्ङ्गधरे—"गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डं च शतावरी। अश्वगन्धा सहचरी शतपुष्पा प्रसारिणी॥ प्रयोक्तव्या सहैवार्द्रा द्विगुणा नैव योजयेत्" इति।

२ स्वमतानुसारेण कषायपाककल्पं स्नेहपाककल्पं चोपपादयति—**तत्रान्यतमेति**। तत्र=मानद्वयमध्ये, अन्यतमपरिमाणसम्मितानाम्=एकतमपलादिमानतोलितानाम्। ३ वाशब्देन चतुर्गुणेनेत्यस्य समुच्चयः क्रियते। तथा च त्रयाणामपि कषायपाकविषयमवलम्ब्याह तन्त्रान्तरे—"कर्षादौ तु पलं यावद्धात् षोडशिकं जलम्। ततस्तु कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत्। चतुर्गुणमतश्चोर्ध्वं यावत् प्रस्थादिकं भवेत्।" इति। प्रकारान्तरमाह—"मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं जलम्। कठिनात् कठिने देयं जलं षोडशिकं मतम्॥" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपचेदित्येष स्नेहपाककल्पः। अथवा तत्रोदकद्रोणे त्वक्पत्रफलमूलादीनां तुलामावाप्य चतुर्भागावशिष्टं निःक्वाथ्यापहरेदित्येष कषायपाककल्पः स्नेहकुडवे भेषजपलं पिष्टं कल्कं चतुर्गुणं द्रवमावाप्य विपचेदित्येष स्नेहपाककल्पः ॥ ८ ॥

भवतश्चात्र।

स्नेहभेषजतोयानां प्रमाणं यत्र नेरितम्।
तत्रायं विधिरास्थेयो निर्दिष्टे तत्तदेव तु ॥ ९ ॥
अनुक्ते द्रवकार्ये तु सर्वत्र सलिलं मतम्।
कल्कक्वाथावनिर्देशे गणात्तस्मात् प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

अत ऊर्द्ध्वं स्नेहपाकक्रममुपदेक्ष्यामः—स तु त्रिविधः, तद्यथा—मृदुः, मध्यमः, खर, इति। तत्र स्नेहौषधिविवेकमात्रं यत्र भेषजं स मृदुरिति। मधूच्छिष्टमिव विशदमविलेपि भेषजं यत्र स मध्यमः, कृष्णमवसन्नमौषद्विशदं चिक्कणं च यत्र भेषजं स खर इति। अत ऊर्द्ध्वं दग्धस्नेहो भवति, तं पुनः साधु साधयेत्। तत्र पानाभ्यवहार्योर्मृदुः, नस्याभ्यङ्ग्योर्मध्यमः, बस्तिकर्णपूरणयोस्तु खर इति ॥ ११ ॥

भवतश्चात्र।

शब्दस्योपशमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा।
गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ १२ ॥
घृतस्यैवं विपक्वस्य जानीयात् कुशलो भिषक्।
फेनोऽतिमात्रं तैलस्य शेषं घृतवदादिशेत् ॥ १३ ॥

---

१ कषायस्नेहपाकपरिभाषां दर्शयति—स्नेहेति। २ यस्मादेव गणात् स्नेहपाकोऽभीष्टस्तस्मादेव गणात् क्वाथकल्कप्रकाराभ्यां समाचरेदित्यर्थः। ३ त्रिविधस्नेहपाकक्रियालक्षणं वक्ति—अत इति। ४ विवेकमात्रं = पृथग्भावमात्रम्। ५ अङ्गुल्यादावविलेपीत्यर्थः। ६ चरकसंहितायामन्यथा दृश्यते—"खरोऽभ्यङ्गे मृदुर्नस्ये पाने बस्तौ च मध्यमः" इति। तद् द्वयमपि श्रद्धेयम्। ७ स्नेहसिद्धिलक्षणमभिधत्ते—शब्दस्येति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत ऊर्ध्वं स्नेहपानक्रममुपदेक्ष्यामः—अथ[1] खलु लघुकोष्ठायातुराय कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनायोदयगिरिशिखरसंस्थिते[2] प्रतप्तकनकनिकरपीतलोहिते सवितरि यथाबलं तैलस्य घृतस्य वा मात्रां पातुं प्रयच्छेत्। पीतमात्रे चोष्णोदकेनोपस्पृश्य[3] सोपानत्को यथासुखं विहरेत्॥ १४॥

रूक्षक्षतविषार्त्तानां वातपित्तविकारिणाम्।
हीनमेधास्मृतीनाञ्च सर्पिःपानं प्रशस्यते॥ १५॥
कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः।
पिबेयुस्तैलसात्म्याश्च तैलं दार्ढ्यार्थिनश्च ये॥ १६॥
व्यायामकर्शिताः शुष्करेतोरक्ता महारुजः।
महाग्निमारुतप्राणा वसायोग्या नराः स्मृताः॥ १७॥
क्रूराशयाः क्लेशसहा वातार्त्ता दीप्तवह्नयः।
मज्जानमाप्नयुः सर्वे सर्पिर्वा स्वौषधान्वितम्॥ १८॥
केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम्।
देयं बहुकफे चापि व्योषक्षारसमायुतम्॥ १९॥

---

१ स्नेहपानविधिमभिदधाति—अथेति। २ उदयगिरिशिखरसंस्थिते=उदयाचलशृङ्गसमुपस्थिते, प्रातःकाले इत्यर्थः। ३ उपस्पृश्य=आचम्य।

४ सर्पिःपानयोग्यान्नरान्निर्दिशति—रूक्षेति। चरके विशेषः—"वातपित्तप्रकृतयो वातपित्तविकारिणः। चक्षुःकामाः क्षताः क्षीणा वृद्धा बालास्तथाऽबलाः॥ आयुःप्रकर्षकामाश्च बलवर्णस्वरार्थिनः। पुष्टिकामाः प्रजाकामाः सौकुमार्यार्थिनश्च ये॥ दीप्त्योजःस्मृतिमेधाग्निबुद्धीन्द्रियबलार्थिनः। पिबेयुः सर्पिरार्ताश्च दाहशस्त्रविषाग्निभिः॥" इति।

५ तैलपानयोग्यान्नरान् दर्शयति—कृमीति। चरके—"प्रवृद्धश्लेष्ममेदस्काश्चलस्थूलगलोदराः। वातव्याधिभिराविष्टा वातप्रकृतयश्च ये॥ बलं तनुत्वं लघुतां दृढतां स्थिरगात्रताम्। स्निग्धश्लक्ष्णतनुत्वक्तां ये च काङ्क्षन्ति देहिनः॥ कृमिकोष्ठाः क्रूरकोष्ठास्तथा नाडीभिरर्दिताः। पिबेयुः शीतले काले तैलं तैलोचिताश्च ये॥" इति।

६ वसापानयोग्यान्नरान् वर्णयति—व्यायामेति। अत्रापि विशेषश्चरकेऽनुसन्धेयः। ७ मज्जपानार्हजनानाख्याति—क्रूराशया इति। क्रूराशयाः=क्रूरकोष्ठा इत्यर्थः। ८ दोषविशेषेण स्नेहपानानुपानं वक्ति=केवलमिति। भावप्रकाशे—'घृते कोष्णं जलं पेयं तैले यूषः प्रशस्यते। वसामज्ज्ञोः पिबेन्मण्डमनुपान

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोषाणामल्पभूयस्त्वं संसर्गं समवेक्ष्य च ।
युञ्ज्यात्त्रिषष्टिधाभिन्नैः समासव्यासतो रसैः ॥ २० ॥
स्नेहसात्म्यः क्लेशसहः काले नात्युष्णशीतले ।
अच्छमेव पिबेत् स्नेहमच्छपानं हि पूजितम् ॥ २१ ॥
शीतकाले दिवा स्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि ।
वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ॥ २२ ॥
वातपित्ताधिकस्योष्णे तृण्मूर्च्छोन्मादकारकः ।
शीते वातकफार्त्तस्य गौरवारुचिशूलकृत् ॥ २३ ॥
स्नेहपीतस्य चेत् तृष्णा पिबेदुष्णोदकं नरः ।
एवं चानुपशाम्यन्त्यां स्नेहमुष्णाम्बुना वमेत् ॥ २४ ॥
दिह्याच्छीतैः शिरः शीतं तोयं चाप्यवगाहयेत् ।
या मात्रा परिजीर्येत चतुर्भागगतेऽहनि ॥ २५ ॥
सा मात्रा दीपयत्यग्निमल्पदोषे च पूजिता ।

---

सुखावहम् ॥" इति । चरकस्तु—"जलमुष्णं घृते पेयं यूषस्तैले नु शस्यते । वसामज्ञोस्तु मण्डः स्यात्सर्वेषूष्णमथाम्बु वा ॥" इत्याह ।

१ दोषसंसर्गविशेषे त्रिषष्टिरससंयुक्तमपि सर्पिर्योज्यमिति दर्शयति—**दोषाणामिति** । २ त्रिषष्टीरसभेदोऽयमुत्तरतन्त्रान्ते व्यक्तीभविष्यति । ३ अशनात्पृक्स्नेहपानविषये कथयति—**स्नेहेति** । शक्तिलक्षणबलयुक्तेन क्लेशसह इत्यर्थः । "अच्छपेयस्तु यः स्नेहो न तासामुर्विचारणाम् । स्नेहस्य स भिषग्दृष्टः कल्पः प्राथमकल्पिकः ।" इति चरकः । ४ पानं द्विविधम्–अशनात् पृथक्, अशनव्यामिश्रं वा तत्र यत्पृथक् तदच्छपानम् ।

५ स्नेहपाने कालविचारणां दर्शयति—**शीतेति** । अत्राष्टाङ्गसङ्ग्रहः—"सर्वं सर्वस्य च स्नेहं युञ्ज्याद् भास्वति निर्मले । ऋतौ साधारणे दोषसात्म्येऽनिलकफे कफे ॥ दिवा निश्यनिले पित्ते संसर्गे पित्तवत्यपि" इति । अपि च –"स्वरमाणस्तु शीतेऽपि दिवा तैलं प्रयोजयेत् । उष्णेऽपि रात्रौ सर्पिस्तु दोषादीन् वीक्ष्य चान्यथा ॥" इति । चरकः—"सर्पिः शरदि पातव्यं वसा मज्जा च माधवे । तैलं प्रावृषि नात्युष्णशीते स्नेहं पिबेन्नरः ॥" इति ।

६ उक्तकालविपर्यये दोषं दर्शयति—**वातेति** । ७ स्नेहपाने तृष्णोपद्रवचिकित्सामाह—**स्नेहेति** । ८ दिह्यात् = लिम्पेत् । ९ दोषादिविशेषेण स्नेहमात्रां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या मात्रा परिजीर्येत तथाऽर्द्धदिवसे गते ॥ २६ ॥
सा वृष्या बृंहणी चैव मध्यदोषे च पूजिता ।
या मात्रा परिजीर्येत चतुर्भागावशेषिते ॥ २७ ॥
स्नेहनीया च सा मात्रा बहुदोषे च पूजिता ।
या मात्रा परिजीर्येत्तु तथा परिणतेऽहनि ॥ २८ ॥
ग्लानिमूर्च्छामदान् हित्वा सा मात्रा पूजिता भवेत् ।
अहोरात्रादसन्दुष्टा या मात्रा परिजीर्यति ॥ २९ ॥
सा तु कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी ।
यथाऽग्नि प्रथमां[1] मात्रां पाययेत विचक्षणः ॥ ३० ॥
पीतो ह्यतिबहुस्नेहो जनयेत् प्राणसंशयम् ।
मिथ्याचाराद्[2] बहुत्वाद्वा यस्य स्नेहो न जीर्यति ॥ ३१ ॥
विष्टभ्य चापि जीर्येत्तं वारिणोष्णेन वामयेत् ।
जीर्णाजीर्णविशङ्कायां स्नेहस्योष्णोदकं पिबेत् ॥ ३२ ॥
तेनोद्गारो भवेच्छुद्धो भक्तं प्रति रुचिस्तथा ।
स्युः पच्यमाने[3] तृड्दाहभ्रमसादारतिक्लमाः ॥ ३३ ॥

---

विभजते—येति । अष्टाङ्गहृदये—'द्वाभ्यां चतुर्भिरष्टाभिर्यामैर्जीर्यन्ति याः क्रमात् । ह्रस्वमध्योत्तमा मात्रास्तास्ताभ्यश्च ह्रसीयसीम् । कल्पयेद्दीप्य दोषादीन् प्रागेव तु ह्रसीयसीम्" इति । भावप्रकाशेऽपि—"अहोरात्रेण महती जीर्यत्यह्नि तु मध्यमा । जीर्यत्यल्पा दिनार्द्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥' इति ।

उत्तमादिस्नेहमात्रार्हाः पुरुषा उक्ताश्चरके—"प्रभूतस्नेहनित्या ये क्षुत्पिपासासहा नराः । पावकश्चोत्तमबलो येषां ये चोत्तमा बले ॥ गुल्मिनः सर्पदष्टाश्च विसर्पोपहताश्च ये । उन्मत्ताः कृच्छ्रमूत्राश्च गाढवर्चस एव च ॥ पिबेयुरुत्तमां मात्राम्, —अरुष्कस्फोटपिडकाकण्डूपामाभिरर्दिताः । कुष्ठिनश्च प्रमीढाश्च वातशोणितिकाश्च ये ॥ नातिवह्वाशिनश्चैव मृदुकोष्ठास्तथैव च । पिबेयुर्मध्यमां मात्रां मध्यमाश्चापि ये बले । ये तु वृद्धाश्च बालाश्च सुकुमाराः सुखोचिताः । रिक्तकोष्ठत्वमहितं येषां मन्दाग्नयश्च ये । ज्वरातीसारकासाश्च येषां चिरसमुत्थिताः । स्नेहमात्रां पिबेयुस्ते ह्रस्वां ये चावरा बले ॥" इति ।

१ प्रथममात्रायाः प्राशस्त्यं दर्शयति—**यथाऽग्नीति** । २ स्नेहस्याजीर्णतायां कर्तव्योपचारानाह—**मिथ्येति** । ३ अष्टाङ्गसङ्ग्रहेऽन्यदप्युक्तम्—"ततो गुरुप्राव-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिषिच्याद्भिरुष्णाभिर्जीर्णस्नेहं ततो नरम् ।
यवागूं पाययेच्चोष्णां कामं क्लिन्नाल्पतण्डुलाम् ॥ ३४ ॥
देयौ यूषरसौ वाऽपि सुगन्धी स्नेहवर्जितौ ।
कृतौ वाऽत्यल्पसर्पिष्कौ विलेपीर्वा विधीयते ॥ ३५ ॥
पिबेत्[२] त्र्यहं चतुरहं पञ्चाहं षडहं तथा ।
सप्तरात्रात् परं स्नेहः सात्म्यीभवति सेवितः[३] ॥ ३६ ॥
सुकुमारं[४] कृशं वृद्धं शिशुं स्नेहद्विषं तथा ।
तृष्णार्त्तमुष्णकाले च सह भक्तेन पाययेत् ॥ ३७ ॥
पिप्पल्यो लवणं स्नेहाश्चत्वारो दधिसर्स्तुकः[५] ।
पीतमेकध्यमेतद्धि सद्यःस्नेहनमुच्यते ॥ ३८ ॥
भृष्टमांसरसे स्निग्धा यवागूः सूपकल्पिता ।
सक्षुद्रा पीयमाना तु सद्यःस्नेहनमुच्यते ॥ ३९ ॥
सर्पिष्मती पयः सिद्धा यवागूः स्वल्पतण्डुला ।
सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यःस्नेहनमुच्यते ॥ ४० ॥

---

रणो निवाते शयने स्थितः । जरणान्तं प्रतीक्षेत तृष्यन्तुष्णाल्पवारिपः । शिरोरुग्भ्रमनिष्ठीवमूर्च्छादाहारुचिक्लमैः । जानीयाद् भेषजं जीर्यज्जीर्णं तच्छान्तिलाघवात् । अनुलोमानिलस्वास्थ्यक्षुत्तृष्णोद्गारशुद्धिभिः ।" इति ।

१ स्नेहे जीर्णे पश्चात्कर्म निर्दिशति—**परिषिच्येति** । पूर्वकर्म तु "द्रवोष्णमनभिष्यन्दि भोज्यमन्नं प्रमाणतः । नातिस्निग्धमसङ्कीर्णं श्वः स्नेहं पातुमिच्छता ॥" इत्याह चरकः । २ स्नेहपानस्य कालावधिं दर्शयति—**पिबेदिति** । त्र्यहं मृदुकोष्ठः, चतुःपञ्चषडहानि मध्यमकोष्ठः, सप्तरात्रं क्रूरकोष्ठः पिबेदिति तात्पर्यम् । तदुक्तं चरके—"मृदुकोष्ठस्त्रिरात्रेण स्निह्यत्यच्छोपसेवया । स्निह्यति क्रूरकोष्ठस्तु सप्तरात्रेण मानवः ॥" इति ।

३ सात्म्यीभूते स्नेहे यो दोषः सोऽष्टाङ्गसङ्ग्रहे कथितः—"सात्म्यीभूतो हि कुरुते न मलानामुदीरणम् । अतियोगेन वा व्याधीन् यथाऽम्भो ह्यतियोजनात् ॥" इति । यदि तु सप्ताहेनापि स्नेहलक्षणं नोत्पद्यते तदा दिनमेकं विश्रमय्य पुनः स्नेहो योज्य इति सद्वैद्याः ।

४ सुकुमारादिषु अन्नादिना सह स्नेहप्रयोगमुपदिशति—**सुकुमारमिति** । ५ दध्नो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिप्पल्यो लवणं सर्पिस्तिला पिष्टं वराहजा ।
वसा च पीतमैकध्यं सद्यःस्नेहनमुच्यते ॥ ४१ ॥
शर्कराचूर्णसंसृष्टे दोहनस्थे घृते तु गाम् ।
दुग्ध्वा क्षीरं पिबेद्वृद्धः सद्यःस्नेहनमुच्यते ॥ ४२ ॥
यवकोलकुलत्थानां क्काथो मागधिकाऽन्वितः ।
पयो दधि सुरा चेति घृतमप्यष्टमं भवेत् ॥ ४३ ॥
सिद्धमेतैर्घृतं पीतं सद्यःस्नेहनमुत्तमम् ।
राज्ञे राजसमेभ्यो वा देयमेतद् घृतोत्तमम् ॥ ४४ ॥
बलहीनेषु वृद्धेषु मृदुग्निस्त्रीमहात्मसु ।
अल्पदोषेषु योज्याः स्युर्ये योगाः सम्यगीरिताः ॥ ४५ ॥
विवर्जयेत् स्नेहपानमजीर्णी तरुणज्वरी ।
दुर्बलोऽरोचकी स्थूलो मूर्च्छार्त्तो मदपीडितः ॥ ४६ ॥
छर्द्यर्दितः पिपासार्त्तः श्रान्तः पानक्लमान्वितः ।
दत्तबस्तिर्विरिक्तश्च वान्तो यश्चापि मानवः ॥ ४७ ॥
अकाले दुर्दिने चैव न च स्नेहं पिबेन्नरः ।
अकाले च प्रसूता स्त्री स्नेहपानं विवर्जयेत् ॥ ४८ ॥
स्नेहपानाद्भवन्त्येषा नृणां नानाविधा गदाः ।
गदा वा कृच्छ्रतां यान्ति न सिध्यन्त्यथवा पुनः ॥ ४९ ॥
गर्भाशयेऽवशेषाः स्यू रक्तक्लेदमलास्ततः ।
स्नेहं जह्यान्निषेवेत पाचनं रूक्षमेव च ॥ ५० ॥
दशरात्रात् ततः स्नेहं यथावदवचारयेत् ।

---

मण्डः दधिमस्तुकः । १ सद्यःस्नेहनयोगानां विषयं दर्शयति—बलहीनेष्विति । २ पिप्पल्यादिना पूर्वमुक्ता योगा इत्यर्थः । ३ स्नेहपानानर्हजनान्निर्दिशति—विवर्जयेदिति । स्नेहपानयोग्यजनानाह—'स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचित्तकाः । वृद्धबालकृशा रूक्षाः क्षीणास्राः क्षीणरेतसः । वातार्तास्तिमिरार्ता ये तेषां स्नेहनमुत्तमम् ॥" इति ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरीषं ग्रथितं रूक्षं कृच्छ्रादन्नं विपच्यते ॥ ५१ ॥
उरो विदहते वायुः कोष्ठादुपरि धावति ।
दुर्वर्णो दुर्बलश्चैव रूक्षो भवति मानवः ॥ ५२ ॥
सुस्निग्धो त्वग्विट्शैथिल्यं दीप्तोऽग्निर्मृदुगात्रता ।
ग्लानिर्लाघवमङ्गानामधस्तात् स्नेहदर्शनम् ।
सम्यक्स्निग्धस्य लिङ्गानि स्नेहद्वेषस्तथैव च ॥ ५३ ॥
भक्तद्वेषो मुखस्रावो गुददाहः प्रवाहिका ।
पुरीषातिप्रवृत्तिश्च भृशस्निग्धस्य लक्षणम् ॥ ५४ ॥
रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम् ।
श्यामाककोरदूषान्नतक्रपिण्याकशक्तुभिः ॥ ५५ ॥
दीप्तान्तरग्निः परिशुद्धकोष्ठः प्रत्यग्रधातुर्बलवर्णयुक्तः ।
दृढेन्द्रियो मन्दजरः शतायुः स्नेहोपयोगी पुरुषो भवेत्त ॥ ५६ ॥
स्नेहो हितो दुर्बलवह्निदेहसन्धुक्षणे व्याधिनिपीडितस्य ।
बलान्वितौ भोजनदोषजातैः प्रमर्दितुं तौ सहसा न साध्यौ ॥ ५७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने स्नेहोपयोगिकचिकित्सितं
नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

---

१ अस्निग्धस्य लक्षणं वक्ति—**पुरीषमिति** । २ सुस्निग्धलक्षणं ब्रवीति—**सुस्निग्धेति** । ३ स्नेहद्वेषः=स्नेहारुचिः । ४ अतिस्निग्धलक्षणं दर्शयति—**भक्तद्वेष इति** । चरकस्तु—"पाण्डुता गौरवं जाड्यं पुरीषस्याविपक्वता । तन्द्रीरुचिरुत्क्लेशः स्यादतिस्निग्धलक्षणम् ॥" इति ।

५ अस्निग्धातिस्निग्धयोः प्रतीकारं प्रतिपादयति—**रूक्षस्येति** । ६ पिण्याकः=तिलकल्कः । ७ स्नेहपानफलमभिधत्ते—**दीप्तेति** । ८ प्रत्यग्रधातुः=अभिनवधातुः, संशुद्धधातुरित्यर्थः । ९ भोजनदोषजातैः=दुर्भुक्तस्वभावगुणभूतदोषसमूहैः ।

स्नेहसेवने हिताहितमाह चरकः—"उष्णोदकोपचारी स्याद् ब्रह्मचारी क्षपाशयः । शकृन्मूत्रानिलोद्गारानुदीर्णांश्च न धारयेत् ॥ व्यायाममुच्चैर्वचनं क्रोधशोकौ हिमातपौ । वर्जयेदप्रवातं च सेवेत शयनासनम् ॥" इति ।

**इति सुश्रुतसंहिताया चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्या-
मेकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः।

अथातः स्वेदावचारणीयं चिकित्सितं व्याख्यास्यामः॥ १॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः॥ २॥

चतुर्विधः स्वेदः, तद्यथा-तापस्वेदः, ऊष्मस्वेदः, उपनाहस्वेदः, द्रवस्वेद इति। अत्र सर्वस्वेदविकल्पावरोधः॥ ३॥

तत्र तापस्वेदः पाणिकांस्यकन्दुकपालवालुकावस्त्रैः प्रयुज्यते, शयानस्य चाङ्गतापो बहुशः खादिराङ्गारैरिति॥ ४॥

ऊष्मस्वेदस्तु कपालपाषाणेष्टकालोहपिण्डानग्निवर्णानद्विरासिञ्चेदम्लद्रव्यैर्वा, तैरार्द्रालक्तकपरिवेष्टितैरङ्गप्रदेशं स्वेदयेत्। मांसरसपयोदधिस्नेहधान्याम्लवातहरपत्रभङ्गक्वाथपूर्णां वा कुम्भीमनुतप्तां प्रवृत्योष्माणं गृह्णीयात्। पार्श्वच्छिद्रेण वा कुम्भेनाधोमुखेन तस्य मुखमभिसन्धाय तस्मिन् छिद्रे हस्तिशुण्डाकारां नाडीं प्रणिधाय तं स्वेदयेत्॥ ५॥

सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम्।
हस्तिशुण्डिकया नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणम्।
सुखा सर्वाङ्गगा ह्येषा न च क्लिश्नाति मानवम्॥ ६॥
व्यामार्द्धमात्रा त्रिर्वक्रा हस्तिहस्तसमाकृतिः।
स्वेदनार्थे हिता नाडी कैलिञ्जी हस्तिशुण्डिका॥ ७॥
पुरुषायाममात्राञ्च भूमिमुत्कीर्य्य खादिरैः।

---

### द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः।

१ स्वेदनं स्वेदस्तस्यावचारणमधिकृत्य कृतं स्वेदावचारणीयं चिकित्सितं व्याख्यास्यामः। २ भावप्रकाशकारोऽपि—"स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्मस्वेदसञ्ज्ञितः। उपनाहो द्रवः स्वेदः सर्वे वातार्तिहारिणः॥" इति। ३ कन्दुः=स्वेदनी, अत्र 'तावा' इति बोद्धव्यम्।

४ अलक्तकः='महावर' इति ख्यातः। ५ वातहरपत्रभङ्गक्वाथपूर्णाम्=एरण्डादिवातहरद्रव्यपल्लवक्वाथपरिपूर्णाम्। ६ कम्बलादिना गुरुप्रावरणेन आवृतं पिहितमिति गुरुप्रावरणावृतम्। ७ कैलिञ्जीनाडीविधिमभिधत्ते—व्यामेति। व्यामः=स्वे स्वे पार्श्वे प्रसारितयोर्बाह्वोर्मध्यम्। 'व्यामो बाह्वोः सकरयोस्ततयोस्तियगन्तरम्' इत्यमरः। ८ कटोपकरणकाशादिद्रव्यैर्विरचिता कैलिञ्जीत्यर्थः। ९ भूस्वेदविधिम-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काष्ठैर्दग्ध्वा तथाऽभ्युक्ष्य[1] क्षीरधान्याम्लवारिभिः ॥ ८ ॥
पत्रैर्भङ्गैरवच्छाद्य[2] शयानं स्वेदयेत्ततः ।
पूर्ववत्[3] स्वेदयेद्दग्ध्वा भस्मापोह्यापि वा शिलाम् ॥ ९ ॥

[4]पूर्ववत् कुटीं वा चतुर्द्वारां कृत्वा तस्यामुपविष्टस्यान्तश्चतुर्द्वारेऽङ्गारानुपसन्धाय तं स्वेदयेत् ॥ १० ॥

कोशधान्यानि[5] वा सम्यगुपस्वेद्यास्तीर्य्य किलिञ्जेऽन्यस्मिन् वा तत्प्रतिरूपके शयानं प्रावृत्य स्वेदयेत्; एवं पांशुगोशकृत्तुषबुसपलालोष्मभिः स्वेदयेत् ॥ ११ ॥

उपनाहस्वेदस्तु वातहरमूलकल्कैरम्लपिष्टैर्[6]लवणप्रगाढैः सुस्निग्धैः सुखोष्णैः प्रदिह्य स्वेदयेत् । एवं काकोल्यादिभिरेलादिभिः सुरसादिभिस्तिलातसीसर्षपकल्कैः कृशरापायसोत्कारिकाभिर्वेशवारैः शाल्वणैर्वा तनुवस्त्रावनद्धैः स्वेदयेत् ॥ १२ ॥

द्रवस्वेदस्तु वातहरद्रव्यक्काथपूर्णे कोष्णकटाहे द्रोण्यां वाऽवगाह्य स्वेदयेत् । एवं पयोमांसरसयूषतैलधान्याम्लघृतवसामूत्रेष्ववगाहेत, सुखोष्णैः कषायैश्च परिषिञ्चेदिति ॥ १३ ॥

---

भिदधाति—**पुरुषेति** । उत्कीर्य=खनित्वा । १ अभ्युक्ष्य=संसिच्य । २ पत्रभङ्गैः=पूर्ववद् वातहरैरण्डादिपल्लवैरित्यर्थः । ३ अश्मस्वेदविधानं व्यक्ति—**पूर्ववदिति** । अपोह्य=दूरीकृत्य ।

४ कुटीस्वेदविधिं प्रतिपादयति—**पूर्ववदिति** । चरके—अनत्युत्सेधविस्तारां वृत्ताकारामलोचनाम् । घनभित्तिं कुटीं कृत्वा कुड्यैः सम्प्रलेपयेत् ॥ कुटीमध्ये भिषक शय्यां स्वास्तीर्णामुपकल्पयेत् । प्रावाराजिनकौशेयकुथकम्बलगोलकैः ॥ हसन्तिकाभिरङ्गारपूर्णाभिस्तां च सर्वशः । परिवार्यान्तरारोहेदभ्यक्तः स्विद्यते सुखम् ॥" इति । चरके त्रयोदशविधाः स्वेदा यथा—"सङ्करः प्रस्तरो नाडी परिषेकोऽवगाहनम् । जेन्ताकोऽश्मघनः कर्षूः कुटी भूः कुम्भिकैव च ॥ कूपो होलाक इत्येते स्वेदयन्ति त्रयोदश ।" इति ।

५ प्रस्तरस्वेदविधिमुपपादयति—**कोशेति** । कोशधान्यानि=माषादीनि शमीधान्यानीत्यर्थः । उपस्वेद्य=उष्णीकृत्य, किलिञ्जे=कटे । ६ अम्लेन काञ्जिकतक्रादिना पिष्टैरित्यर्थः । ७ सुरसादिर्द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः । ८ अवगाहपरिषेचनविधिमाख्याति—**द्रवेति** । ९ चकारात् पूर्वोक्तपयोमांसरसादिभिश्चेत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र[1] तापोष्मस्वेदौ विशेषतः श्लेष्मघ्नौ, उपनाहस्वेदो वातघ्नः, अन्यतरस्मिन्[2] पित्तसंसृष्टे द्रवस्वेद इति ॥ १४ ॥

कफमेदोऽन्विते[3] वायौ निवातातपगुरुप्रावरणनियुद्धाध्वव्यायामभारहरणामर्षैः स्वेदमुत्पादयेदिति ॥ १५ ॥

भवन्ति चात्र।

चतुर्विधो योऽभिहितो द्विधा स्वेदः प्रयुज्यते।
सर्वस्मिन्नेव देहे[4] तु देहस्यावयवे तथा ॥ १६ ॥
येषां[5] नस्यं विधातव्यं बस्तिश्चैव हि देहिनाम्।
शोधनीयाश्च ये केचित् पूर्वं स्वेद्यास्तु[6] ते मताः ॥ १७ ॥
पश्चात् स्वेद्या हृते शल्ये मूढगर्भाऽनुपद्रवा।
सम्यक् प्रजाता काले या पश्चात् स्वेद्या विजानता ॥१८॥
स्वेद्यः पूर्वञ्च पश्चाच्च भगन्दर्यर्शसस्तथा।
अश्मर्या चातुरो जन्तुः शेषान् शास्त्रे प्रचक्ष्महे ॥ १९ ॥

नानभ्यक्ते[6] नापि चास्निग्धदेहे स्वेदो योज्यः स्वेदविद्भिः कथञ्चित्।

---

१ दोषविशेषे स्वेदविशेषोपयोगं दर्शयति—तत्रेति। २ अन्यतरस्मिन्=एकतरस्मिन्, वाते श्लेष्मणि वेत्यर्थः।

३ अधुना अनग्निकस्वेदमभिदधाति—कफेति। चरकोऽपि—"व्यायाम उष्णसदनं गुरुप्रावरणं क्षुधा। बहुपानं भयक्रोधावुपनाहाहवातपाः॥ स्वेदयन्ति दशैतानि नरमग्निगुणादृते।" इति। ४ वृषणद्वयहृदयदृष्ट्यतिरिक्ते सर्वस्मिन् देहे इत्यर्थः। तथा च—"वृषणौ हृदयं दृष्टी स्वेदयेन्मृदु नैव वा। मध्यमं वङ्क्षणौ शेषमङ्गावयवमिष्टतः॥" इति चरकैकवाक्यता। अत्र चरकवचने 'स्वेदयेन्मृदु' इति स्वेदैकसाध्ये वृषणादिगते व्याधौ मृदुस्वेदः। स्वेदव्यतिरिक्तोपायान्तरदर्शने तु नैव वेति बोद्धव्यम्।

५ पूर्वस्वेद्यान् पश्चात् स्वेद्यांश्चातुरान्निर्दिशति—येषामिति। स्वेदसाध्यान् विकारानाह चरकः—"प्रतिश्याये च कासे च हिक्काश्वासेष्वलाघवे। कर्णमन्याशिरश्शूले स्वरभेदे गलग्रहे॥ अर्दितैकाङ्गसर्वाङ्गपक्षाघाते विनामके। कोष्ठानाहविबन्धेषु शुक्राघाते विजृम्भके॥ पार्श्वपृष्ठकटीकुक्षिसङ्ग्रहे गृध्रसीषु च। मूत्रकृच्छ्रे महत्त्वे च मुष्कयोरङ्गमर्दके॥ पादजानूरुजङ्घार्तिसङ्ग्रहे श्वयथावपि। खल्लीष्वामेषु शीते च वेपथौ वातकण्टके॥ सङ्कोचायामशूलेषु स्तम्भगौरवसुप्तिषु। सर्वाङ्गेषु विकारेषु स्वेदनं हितमुच्यते॥" इति।

६ स्वेदात्पूर्वं स्नेहस्योपयोगितां दर्शयति—नानभ्यक्त इति। चरकोऽपि—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टं लोके काष्ठमस्निग्धमाशु गच्छेद् भङ्गं स्वेदयोगैर्गृहीतम् ॥२०॥
स्नेहक्लिन्ना धातुसंस्थाश्च दोषाः स्वस्थानस्था ये च मार्गेषु लीनाः ।
सम्यक्स्वेदैर्योजितैस्ते द्रवत्वं प्राप्ताः कोष्ठं यान्ति देहादशेषात् ॥२१॥
अग्नेर्दीप्तिं मार्दवं त्वक्प्रसादं भक्तश्रद्धां स्रोतसां निर्मलत्वम् ।
कुर्यात् स्वेदो हन्ति निद्रां सतन्द्रां सन्धीन् स्तब्धांश्चेष्टयेदाशु युक्तः२२
स्वेदास्रावो व्याधिहानिर्लघुत्वं शीतार्थित्वं मार्दवं चातुरस्य ।
सम्यक्स्विन्ने लक्षणं प्राहुरेतन्मिथ्यास्विन्ने व्यत्ययेनैतदेव ॥२३॥
स्विन्नेऽत्यर्थं सन्धिपीडा विदाहः स्फोटोत्पत्तिः पित्तरक्तप्रकोपः ।
मूर्च्छाभ्रान्तिर्दाहतृष्णे क्लमश्च कुर्य्यात्तूर्णं तत्र शीतं विधानम् ॥२४॥
पाण्डुर्मेही पित्तरक्ती क्षयार्त्तः क्षामोऽजीर्णी चोदरार्त्तो विषार्त्तः ।
तृट्च्छर्द्यार्त्तो गर्भिणी पीतमद्यो नैते स्वेद्या यश्च मर्त्योऽतिसारी ॥
स्वेदादेषां यान्ति देहा विनाशं नोसाध्यत्वं यान्ति चैषां विकाराः ।
स्वेदैः साध्यो दुर्बलोऽजीर्णभक्तः स्यातां चेद्द्वौ स्वेदनीयौ ततस्तौ ॥
एतेषां स्वेदसाध्या ये व्याधयस्तेषु बुद्धिमान् ।
मृदून् स्वेदान् प्रयुञ्जीत तथा हृन्मुष्कदृष्टिषु ॥ २६ ॥

---

"स्नेहपूर्वं प्रयुक्तेन स्वेदेनावजितेऽनिले । पुरीषमूत्ररेतांसि न सज्जन्ति कथञ्चन ॥ शुष्काण्यपि हि काष्ठानि स्नेहस्वेदोपपादनैः । नमयन्ति यथान्यायं किं पुनर्जीवतो नरान् "॥ अपि च—"स्नेहमग्रे प्रयुञ्जीत ततः स्वेदमनन्तरम् । स्नेहस्वेदोपपन्नस्य संशोधनमथेतरत् ॥" इति । १ यान्ति=बहिर्निस्सरन्ति । २ स्वेदगुणान्निर्दिशति—**अग्नेरिति** । ३ सम्यक् स्विन्नलक्षणान्याह—**स्वेदेति** । ४ मिथ्यास्विन्ने व्याधिवृद्धिः, देहस्य गौरवम् , उष्णाभिलाषः, देहस्य काठिन्यं चेति व्यत्ययेन बोध्यम् ।

५ अतिस्विन्नलक्षणानि दर्शयति—**स्विन्न इति** । ६ स्वेदानर्हानातुरानाह—**पाण्डुरिति** । चरकः—"कषायमद्यनित्यानां गर्भिण्या रक्तपित्तिनाम् । पित्तिनां सातिसाराणां रूक्षाणां मधुमेहिनाम् ॥ विदग्धभ्रष्टबद्धानां विषमद्यविकारिणाम् । श्रान्तानां नष्टसञ्ज्ञानां स्थूलानां पित्तमेहिनाम् ॥ तृष्यतां क्षुधितानां च क्रुद्धानां शोचतामपि । कामल्युदरिणां चैव क्षतानामाढ्यरोगिणाम् ॥ दुर्बलातिविशुष्काणामुपक्षीणौजसां तथा । भिषक् तैमिरिकाणां च न स्वेदमवतारयेत् ॥" इति ।

७ स्वेदप्रयोगे हृन्मुष्कदृष्टिरक्षाविधानमभिदधाति—**एतेषामिति** । ८ चरके—"वृषणौ हृदयं दृष्टी स्वेदयेन्मृदु नैव वा । मध्यमं वङ्क्षणौ शेषमङ्गावयवमिष्टतः ॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वान् स्वेदान्निवाते च जीर्णान्नस्यावचारयेत् ।
स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी ॥ २७ ॥
स्विद्यमानस्य च मुहुर्हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ।
सम्यक्स्विन्नं विमृदितं स्नातमुष्णाम्बुभिः शनैः ॥ २८ ॥
[1]स्वभ्यक्तं प्रावृताङ्गञ्च निवातशरणस्थितम् ।
भोजयेदनभिष्यन्दि सर्वं चाचारमादिशेत् ॥ २९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने स्वेदावचारणीयं चिकित्सितं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

---

## त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

[2]अथातो वमनविरेचनसाध्योपद्रवचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

[3]दोषाः क्षीणा बृंहयितव्याः, कुपिताः प्रशमयितव्याः, वृद्धा [4]निर्हर्तव्याः, समाः परिपाल्या इति सिद्धान्तः ॥ ३ ॥

---

इति । स्वेदैकसाध्ये वृषणादिगते व्याधौ मृदुस्वेदः । स्वेदव्यतिरिक्तापायान्तरसम्भवे तु नैव वैति बोध्यमिति तदर्थः । १ स्वेदस्य पश्चात् क्रियामुपदिशति—**स्वभ्यक्त-मिति** । "स्निग्धः स्वेदैरुपक्रम्यः स्विन्नः पथ्याशनो भवेत् । तदहः स्विन्नगात्रस्तु व्यायामं वर्जयेन्नरः ॥" इति चरकः ।

**इति सुश्रुतसंहिताव्याख्यिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।**

---

### त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

२ वमनविरेचनसाध्येषु व्याधिषु स्नेहस्वेदोपपन्नस्यैवाधिकृतत्वात् पञ्चकर्मविध्य-न्तर्गतवमनविरेचनविधानार्थमयमध्याय आरभ्यते—**अथात इति** । पञ्चकर्माणि तु—"प्रथमं वमनं पश्चाद्विरेकश्चानुवासनम् । एतानि पञ्चकर्माणि निरूहो नावनं तथा ॥" इत्याह भावप्रकाशे । वमनविरेचनाभ्यां साध्यानामुपद्रवाणां व्याधीनां चिकि-त्सितमित्यर्थः ।

३ दोषाणामवस्थाविशेषेण चिकित्साविशेषं दर्शयति—**दोषा इति** । ४ निर्हर्त-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राधान्येन वमनविरेचने वर्त्तेते निर्हरणे दोषाणाम्। तस्मात्तयोर्विधानमुच्यमानमुपधारय ॥ ४ ॥

अथातुरं स्निग्धं स्विन्नमभिष्यन्दिभिराहारैरनवबद्धदोषमवलोक्य श्वो वमनं पाययिताऽस्मीति सम्भोजयेत् तीक्ष्णाग्निं बलवन्तं बहुदोषं महाव्याधिपरीतं वमनसात्म्यञ्च ॥ ५ ॥

भवति चात्र।

पेशलैर्विविधैरन्नैर्दोषानुत्क्लेश्य देहिनः।
स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक् प्रवर्त्तते ॥ ६ ॥

अथापरेद्युः पूर्वाह्णे साधारणे काले वमनद्रव्यकषायकल्कचूर्णस्नेहानामन्यतमस्य मात्रां पाययित्वा वामयेत्। यथायोगं कोष्ठविशेषमवेक्ष्य, असात्म्यबीभत्सदुर्गन्धदुर्दर्शनानि च वमनानि विदध्यात्, अतो विपरीतानि विरेचनानि। तत्र सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं वा वमनसाध्येषु विकारेषु क्षीरदधितक्रयवागूनामन्यतममाकण्ठं पाययेत्, पीतौषधञ्च पाणिभिरग्नितप्तैः प्रताप्यमानं मुहूर्त्तमुपेक्षेत। तस्य च स्वेदप्रादुर्भावेण शिथिलतामापन्नं स्वेभ्यः

---

व्याः=न्यूनीकर्तव्याः। १ वमनविरेचनयोः प्राधान्यमाचष्टे—प्राधान्येनेति। २ निर्हरणे=दूरीकरणे। ३ वमनौषधपानविधानमभिधत्ते—अथेति। अनभिष्यन्दिभिः=ग्राम्यानूपौदकमांसपयोमाषादिभिरित्यर्थः। ४ पेशलैः=कोमलैः, ग्राम्यौदकानूपमांसरसाद्यनभिष्यन्दिभिराहारैरिति यावत्। चरकः—"ग्राम्यौदकानूपरसैः समांसैरुत्क्लेशनीयः पयसा च वम्यः। रसैस्तथा जाङ्गलजैः सयूषैः स्निग्धैः कफावृद्धिकरैर्विरेच्यः॥" इति।

५ अपरेद्युः=अन्यस्मिन् दिने, भोजः—"एकाहोपरतः स्नेहात् स्विन्नः प्रच्छर्दनं पिबेत्। भुक्त्वा ग्राम्यौदकैर्मांसैरानूपैश्च सुसंस्कृतैः॥" इति। साधारणे काले नातिशीतोष्णे। ६ मात्रास्तन्त्रान्तरे स्पष्टीकृताः—"क्वाथपाने नव प्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता। मध्यमा षण्मिता बोध्या त्रिप्रस्था च कनीयसी॥" इति।

वमनादौ प्रस्थशब्देन सार्धत्रयोदशपलान्युच्यन्ते। तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे। सार्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः॥" इति।

कल्कादिमानं तु—"कल्कमोदकचूर्णानां कर्षमद्याच्च लेहतः। कर्षद्वयं पलं वाऽपि वयोरोगाद्यपेक्षया॥" इति। ७ बीभत्सः=विकृताकृतिः। ८ क्षीरादयो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानेभ्यः प्रचलितं कुक्षिमनुसृतं जानीयात्, ततः प्रवृत्तहल्लासं ज्ञात्वा जानुमात्रासनोपविष्टमाप्तैर्ललाटे पृष्ठे पार्श्वयोः कण्ठे च पाणिभिः सुपरिगृहीतमङ्गुलीगन्धर्वहस्तोत्पलनालानामन्यतमेन कण्ठमभिस्पृशन्तं वामयेत्तावद्यावत्सम्यग्वान्तलिङ्गानीति ॥ ७ ॥

भवतश्चात्र।

कफप्रसेकं हृदयाविशुद्धिं कण्डूञ्च दुश्छर्दितलिङ्गमाहुः।
पित्तातियोगञ्च विसंज्ञताञ्च हृत्कण्ठपीडामपि चातिवान्ते ॥ ८ ॥
पित्ते कफस्यानु सुखं प्रवृत्ते शुद्धेषु हृत्कण्ठशिरःसु चापि।
लघौ च देहे कफसंस्रवे च स्थिते सुवान्तं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ ९ ॥

सम्यग्वान्तं चैनमभिसमीक्ष्य स्नेहनविरेचनशमनानां धूमानामन्यतमं सामर्थ्यतः पाययित्वाऽऽचारिकमादिशेत् ॥ १० ॥

भवन्ति चात्र।

ततोऽपराह्णे शुचिशुद्धदेहमुष्णाभिरद्भिः परिषिक्तगात्रम्।
कुलत्थमुद्गाढकिजाङ्गलानां यूषैः रसैर्वाऽप्युपभोजयेत्तु ॥ ११ ॥
कासोपलेपस्वरभेदनिद्रातन्द्रास्यदौर्गन्ध्यविषोपसर्गाः।

---

वमनद्रव्यसंस्कृता ज्ञेयाः। अथवा क्षीरादिकं दोषानुसारेण पूर्वमाकण्ठं पाययेत्तदनन्तरं भैषज्यमात्रां पाययेत्। तथा चाष्टाङ्गसङ्ग्रहे—"भीरुकृशबालसुकुमारत्वाद् दोषानुरोधेनाकण्ठं पीतयूषेक्षुरसक्षीरमांसरसमथतुषोदकयवागूमण्डान्यतमम्" इति।

१ अष्टाङ्गहृदयेऽपि—"उभे पार्श्वे ललाटे च वमतश्चास्य धारयेत्। प्रपीडयेत्तथा नाभिं पृष्ठं च प्रतिलोमतः॥" इति। २ गन्धर्वस्य मृगभेदस्य हस्त इव पत्रमस्येति गन्धर्वहस्तः, शुक्लैरण्ड इत्यर्थः। ३ वमनस्य हीनातियोगलक्षणानि निर्दिशति—कफेति। ४ अतियोगम्=अतिप्रवृत्तिम्।

५ सम्यग्वान्तलक्षणं दर्शयति—पित्त इति। चरकोऽपि—"क्रमात् कफः पित्तमथानिलश्च यस्यैति सम्यग्वमितः स इष्टः। हृत्पार्श्वमूर्धेन्द्रियमार्गशुद्धौ तथा लघुत्वेऽपि च लक्ष्यमाणे॥" इति। केषाञ्चन मते वमनविरेचनयोश्चतुर्विधा शुद्धिः—आन्तिकी, वैगिकी, मानिकी, लैङ्गिकी चेति।

६ सम्यग्वान्तकर्म वक्ति—सम्यगिति। ६ धूमानां=चत्वारिंशत्तमेऽध्याये धूमनस्यकवलग्रहचिकित्सिते वक्ष्यमाणानाम्। ७ आचारिकम्=एकोनचत्वारिंशत्तमेऽध्याये वक्ष्यमाणम्। ८ वमनफलमभिदधाति—कासेति। उपलेपः=स्रोतस्सु मलाभिवृद्धिः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कफप्रसेकग्रहणीप्रदोषा न सन्ति जन्तोर्वमतः कदाचित् ॥ १२ ॥
छिन्ने तरौ पुष्पफलप्ररोहा यथा विनाशं सहसा व्रजन्ति ।
तथा हृते श्लेष्मणि शोधनेन तज्जा विकाराः प्रशमं प्रयान्ति॥१३॥
नं वामयेत् तैमिरिकोर्ध्ववातगुल्मोदरप्लीहकृमिश्रमार्त्तान् ।
स्थूलक्षतक्षीणकृशातिवृद्धमूत्रातुरान् केवलवातरोगान् ॥ १४ ॥
स्वरोपघाताध्ययनप्रसक्तदुश्छर्दिदुःकोष्ठतृडार्त्तबालान् ।
ऊर्ध्वास्रपित्तिक्षुधितातिरूक्षगर्भिण्युदावर्तिनिरूहितांश्च ॥ १५ ॥

अवम्यवमनाद्रोगाः कृच्छ्रतां यान्ति देहिनाम् ।
असाध्यतां वा गच्छन्ति नैते वाम्यास्ततः स्मृताः ॥ १६ ॥
एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये च विषातुराः ।
अतीव चोल्बणकफास्ते च स्युर्मधुकाम्बुना ॥ १७ ॥

वाम्यास्तु—विषशोषस्तन्यदोषमन्दाग्न्युन्मादापस्मारश्लीपदार्बुदविदारिकामेदोमेहगरज्वरारुच्यपच्यामातीसारहृद्रोगचित्तविभ्रमविसर्पविद्रध्यजीर्णमुखप्रसेकहृल्लासश्वासकासपीनसपूतिनासकण्ठौष्ठवक्त्रपाककर्णस्रावाधिजिह्वोपजिह्विकागलशुण्डिकाधःशोणितपित्तिनः कफस्थानजेषु विकारेष्वन्ये च कफव्याधिपरीता इति ॥१८॥

विरेचनमपि स्निग्धस्विन्नाय वान्ताय च देयम् । अवान्त-

---

१ वमनानर्हजनान् दर्शयति—**नेति** । ऊर्ध्ववातस्य लक्षणमुक्तं तन्त्रान्तरे—"अधः प्रतिहतो वायुः श्लेष्मणा कुपितेन च । करोत्यनिशमुद्गारमूर्ध्ववातः स उच्यते ॥" इति । २ ऊर्ध्वास्रः=यस्य नासाक्षिकर्णास्यमार्गैः रक्तं प्रवर्तते सः, ऊर्ध्वरक्तीत्यर्थः ।

३ वमनार्हजनान्निर्दिशति—**वाम्यास्त्विति** । ४ ज्वरशब्देन नवज्वरो विषमज्वरश्च प्रत्येतव्यः । तथा च चरके—शेषास्तु वम्याः, विशेषतस्तु पीनसकुष्ठनवज्वरराजयक्ष्मकासश्वासेत्यादिना कथितः ।

**अथ विरेचनविधिः ।**

५ वमनविध्यनन्तरं विरेचनविधिमभिधत्ते—**विरेचनमिति** । भावप्रकाशेऽपि—"स्निग्धस्विन्नाय वान्ताय दद्यात्सम्यग् विरेचनम् । अवान्तस्य स्वधः स्रस्तो ग्रहणीं छादयेत् कफः ॥ मन्दाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् । अथवा पाचनैरामं बलासं परिपाचयेत् ॥" इति ।

विरेचनं कदा कदा कार्यमित्युक्तं तत्रैव—"ऋतौ वसन्ते शरदि देहशुद्धौ विरे-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्य हि सम्यग्विरिक्तस्यापि सतोऽधः स्रस्तः श्लेष्मा ग्रहणीं छादयति, गौरवमापादयति, प्रवाहिकां वा जनयति ॥ १९ ॥

अथातुरं श्वो विरेचनं पाययिताऽस्मीति पूर्वाह्णे लघु भोजयेत्, फलाम्लमुष्णोदकं चैनमनुपाययेत्। अथापरेऽहनि विगतश्लेष्मधातुमातुरोपक्रमणीयादवेक्ष्यातुरमथास्मै औषधमात्रां पातुं प्रयच्छेत् ॥ २० ॥

तत्र[2] मृदुः क्रूरो मध्यम इति त्रिविधः कोष्ठो भवति। तत्र बहुपित्तो मृदुः, स दुग्धेनापि विरिच्यते। बहुवातश्लेष्मा क्रूरः, स दुर्विरेच्यः। समदोषो मध्यमः, स साधारण इति। तत्र मृदौ मात्रा मृद्वी[3], तीक्ष्णे क्रूरे, मध्ये मध्या कर्त्तव्येति। पीतौषधश्च तन्मनाः[4] शय्याऽभ्याशे[5] विरिच्यते ॥ २१ ॥

विरेचनं[5] पीतवांस्तु न वेगान् धारयेद् बुधः।
निवातशायी शीताम्बु न स्पृशेन्न प्रवाहयेत् ॥ २२ ॥

यथा च वमने प्रसेकौषधकफपित्तानिलाः[6] क्रमेण गच्छन्ति, एवं विरेचने मूत्रपुरीषपित्तौषधकफा इति ॥ २३ ॥

भवन्ति चात्र।

हृत्कुक्ष्यशुद्धिः परिदाहकण्डूर्विण्मूत्रसङ्गाश्च न सद्विरिक्ते।
मूर्च्छागुदभ्रंशकफातियोगाः शूलोद्गमश्चातिविरिक्तलिङ्गम् ॥ २४ ॥
गतेषु दोषेषु कफान्वितेषु नाभ्या लघुत्वे मनसश्च तुष्टौ।

---

चयेत्। अन्यदाऽऽत्ययिके कार्ये शोधनं शीलयेद् बुधः ॥" इति। तच्च विरेचनम्—"वान्तं षडहसंसृष्टं पुनः संस्नेहितं क्रमात्। उष्णं लघु त्र्यहं भुक्तं षोडशेऽह्नि विरेचयेत् ॥" इति क्रमेण कार्यम्। १ "द्वे पले ज्येष्ठमाख्यातं मध्यमं तु पलं भवेत्। पलार्धमुपयुञ्जीत कनीयस्तु विरेचनम् ॥" इति पुरुषस्य बलापेक्षया प्रधानमध्यादिभेदेनौषधमात्रामित्यर्थः।

२ त्रिविधकोष्ठलक्षणं प्रतिपादयति—**तत्रेति**। ३ मृद्वी=मृदुगुणोपेता, तीक्ष्णा=तीक्ष्णगुणोपेता। ४ तत्र विरेके मनो यस्य स तन्मनाः, शय्याभ्यासे=खट्वादिनिकटे इत्यर्थः। ५ विरेचने कर्तव्यकर्मोपदिशति—**विरेचनमिति**। ६ प्रसेकः=लालास्रावम्।

७ विरेचनस्यायोगातियोगलक्षणमभिदधाति—**हृदिति**। ८ सम्यग् विरि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतेऽनिले चाप्यनुलोमभावं सम्यग्विरिक्तं मनुजं व्यवस्येत् ॥२५॥
मन्दाग्निमक्षीणमसद्विरिक्तं न पाययेताहनि तत्र पेयाम् ।
क्षीणं तृडार्त्तं सुविरेचितञ्च तन्वीमशीतां लघु पाययेच्च ॥ २६ ॥
बुद्धेः प्रसादं बलमिन्द्रियाणां धातुस्थिरत्वं बलमग्निदीप्तिम् ।
चिराच्च पाकं वयसः करोति विरेचनं सम्यगुपास्यमानम् ॥ २७ ॥
यथौदकानामुदकेऽपनीते चरस्थिराणां भवति प्रणाशः ।
पित्ते हृते त्वेवमुपद्रवाणां पित्तात्मकानां भवति प्रणाशः ॥ २८ ॥
मन्दाग्न्यतिस्नेहितबालवृद्धस्थूलाः क्षतक्षीणभयोपतप्ताः ।
श्रान्तस्तृषार्त्तोऽपरिजीर्णभक्तो गर्भिण्यधो गच्छति यस्य चास्रक् ॥२९॥
नवप्रतिश्यायमदात्ययी च नवज्वरी या च नवप्रसूता ।
शल्यार्दितश्चाप्यविरेचनीयाः स्नेहादिभिर्ये त्वनुपस्कृताश्च ॥ ३० ॥
अत्यर्थपित्ताभिपरीतदेहान् विरेचयेत्तानपि मन्दमन्दम् ।
विरेचनैर्यान्ति नरा विनाशमज्ञप्रयुक्तैरविरेचनीयाः ॥ ३१ ॥

विरेच्यास्तु ज्वरगरारुच्यर्शोऽर्बुदोदरग्रन्थिविद्रधिपाण्डुरोगापस्मारहृद्रोगवातरक्तभगन्दरच्छर्दियोनिरोगविसर्पगुल्मपक्वाशयरुग्विबन्धविसूचिकाऽलसकमूत्राघातकुष्ठविस्फोटकप्रमेहानाहप्लीहशोफवृद्धिशस्त्रक्षतक्षाराग्निदग्धदुष्टव्रणाक्षिपाककाचतिमिराभिष्यन्दशिरःकर्णाक्षिनासास्यगुदमेढ्रदाहोर्ध्वरक्तपित्तकृमिकोष्ठिनः पित्तस्थानजेष्वन्येषु च विकारेष्वन्ये च पैत्तिकव्याधिपरीता इति ॥३२॥

सरत्वसौक्ष्म्यतैक्ष्ण्यौष्ण्यविकाशित्वैर्विरेचनम् ।

---

क्तलक्षणमाख्याति—**गतेष्विति** । गतेषु=विरिक्तेषु । १ विरेचने पश्चात्कर्माह—**मन्दाग्निमिति** । २ पेयाविधिः—"चतुर्दशगुणे नीरे रक्तशाल्यादिभिः कृता । द्रवाधिका स्वल्पसिक्था पेया प्रोक्ता भिषग्वरैः ॥" इत्यादिर्बोध्यः ।

३ विरेचनफलमभिधत्ते—**बुद्धेरिति** । ४ चरा मत्स्यादयो जङ्गमाः, स्थिराः पद्मादयः स्थावरास्तेषां चरस्थिराणाम् । ५ पित्तात्मकानां=पित्तकारणानामित्यर्थः । ६ विरेचनानर्हरोगिणो निर्दिशति—**मन्देति** । ७ अनुपस्कृताः=असंस्कृता इत्यर्थः ।

८ विरेचनार्हान् रोगिणो दर्शयति—**विरेच्यास्त्विति** । ९ काचः=नेत्ररोगभेदः । १० वमनविरेचनयोर्दोषनिर्हरणे विशेषं वक्ति—**सरत्वेति** । सरत्वं=विस-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वमनन्तु हरेद्दोषं प्रकृत्या गतमन्यथा ॥ ३३ ॥
यात्यधो[1] दोषमादाय पच्यमानं विरेचनम् ।
गुणोत्कर्षाद् व्रजत्यूर्ध्वमपक्वं वमनं पुनः[2] ॥ ३४ ॥
मृदुकोष्ठस्य दीप्ताग्नेरतितीक्ष्णं विरेचनम्[3] ।
न सम्यङ्निर्हरेद्दोषानतिवेगं[4]प्रधावितम् ॥ ३५ ॥
पीतं[5] यदौषधं प्रातर्भुक्तपाकसमे क्षणे ।
पक्तिं गच्छति दोषांश्च निर्हरेत् तत् प्रशस्यते ॥ ३६ ॥
दुर्बलस्य[6] चलान् दोषानल्पानल्पान् पुनः पुनः ।
हरेत् प्रभूतानल्पांस्तु शमयेत् प्रच्युतानपि[7] ॥ ३७ ॥
रेद्दोषांश्चलान् पक्वान् बलिनो दुर्बलस्य वा[8] ।
चला ह्युपेक्षिता दोषाः क्लेशयेयुश्चिरं नरम् ॥ ३८ ॥
मन्दाग्निं क्रूरकोष्ठञ्च सक्षारलवणैर्घृतैः[9] ।
सन्धुक्षिताग्निं स्निग्धञ्च स्विन्नञ्चैव विरेचयेत् ॥ ३९ ॥
[10]स्निग्धस्विन्नस्य भैषज्यैर्दोषस्तूत्क्लेशितो बलात् ।
[11]विलीयतेन मार्गेषु स्निग्धे भाण्ड इवोदकम् ॥ ४० ॥

---

रणस्वभावत्वम्, सौक्ष्म्यं = सूक्ष्मस्रोतोऽनुसारित्वम्, तैक्ष्ण्यं = शीघ्रतया दोषस्रावणकरत्वम्, औष्ण्यं = सौम्यद्रव्योपमर्दनकरणसामर्थ्यम्, विकाशित्वं = धातोः शैथिल्यकरणसामर्थ्यम् ।

१ अधो याति = पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठं विरेचनद्रव्यं गुरुत्वात्पच्यमानमेवाधो गच्छतीत्यर्थः । २ ऊर्ध्वं व्रजति = अग्निवायुगुणभूयिष्ठं वमनद्रव्यं लघुत्वादपक्वमेवोर्ध्वं यातीत्यर्थः । ३ विरेचनस्यासम्यक्प्रवृत्तौ हेतुमुपदिशति—**मृद्वि**ति । ४ अतिवेगप्रधावितम् = अतिवेगप्रवर्तितम् । ५ विरेचनस्य सम्यग्युक्तिमाह—**पीतमि**ति । ६ दुर्बलस्य दोषहरणे विशेषविधिमभिदधाति—**दुर्बलस्ये**ति । चलान् = कुपितान् । ७ प्रच्युतान् = चलितानित्यर्थः । भोजेऽपि—'दोषमल्पं च शमयेच्चलितं चापि दुर्बले । बहुदोषं तु चलितं शनैरल्प प्रवाहयेत् ॥" इति । ८ स्थानाच्चलितानां दोषाणामवश्यं निर्हरणं कर्तव्यमित्युपदिशति—**हरेदि**ति । ९ मन्दाग्नेः क्रूरकोष्ठस्य च संशोधनविधिमभिधत्ते—**मन्दाग्निमि**ति । १० संशोधनस्य स्नेहस्वेदपूर्वकप्रयोगे हेतुमुपपादयति—**स्निग्धे**ति । ११ न विलीयते = न लग्नो भवति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नैं चातिस्नेहपीतस्तु पिबेत् स्नेहविरेचनम् ।
दोषाः प्रचलिताः स्थानाद् भूयः श्लिष्यन्ति[२] वर्त्मसु ॥ ४१ ॥
विषाभिघातपिडकाशोफपाण्डुविसर्पिणः ।
नाति[३]स्निग्धा विशोध्याः स्युस्तथा कुष्ठप्रमेहिणः ॥ ४२ ॥
विरूक्ष्य[४] स्नेहसात्म्यन्तु भूयः संस्नेह्य शोधयेत् ।
तेन दोषा हृतास्तस्य भवन्ति बलवर्द्धनाः ॥ ४३ ॥
प्रागपीतं[५] नरं शोध्यं पाययेतौषधं मृदु ।
ततो विज्ञातकोष्ठस्य कार्य्यं संशोधनं पुनः ॥ ४४ ॥
सुखं[६] दृष्टफलं हृद्यमल्पमात्रं महागुणम् ।
व्यापत्स्वल्पात्ययं[७] चापि पिबेन्नृपतिरौषधम् ॥ ४५ ॥
स्नेहस्वेदावनभ्यस्य[८] यस्तु संशोधनं पिबेत् ।
दारु शुष्कमिवानामे[९] देहस्तस्य विशीर्य्यते ॥ ४६ ॥
स्नेहस्वेदप्रचलिता रसैः स्निग्धैरुदीरिताः ।
दोषाः कोष्ठगता जन्तोः सुखा हर्त्तुं विशोधनैः ॥ ४७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने वमनविरेचनसाध्योपद्रवचिकित्सितं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

---

१ अतिस्निग्धस्य स्नेहविरेचनं निषेधति—**नेति** । २ श्लिष्यन्ति=संयुज्यन्ते इत्यर्थः । ३ विषादिपीडितानां संशोधने विशेषविधिमभिधत्ते—**विषेति** । ३ अत्र नञ् ईषदर्थकः । ४ स्नेहसात्म्यस्य संशोधनविधिमभिदधाति—**विरूक्ष्येति** । ५ अविज्ञातकोष्ठस्य संशोधने मृदुविरेचनप्रदानायोपदिशति—**प्रागिति** । प्राग् न पीतं विरेचनं येन सः तं प्रागपीतम् ।

६ नृपतियोग्यं विरेचनमाख्याति—**सुखमिति** । ७ अल्पात्ययम्=अल्पविनाशम् । ८ स्नेहस्वेदनरहितसंशोधने दोषमाचष्टे—**स्नेहेति** । ९ आनामे=वक्रीकरणे ।

विरेचनोत्तरकर्माण्याह=“पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी । सुगन्धि किञ्चिदाघ्राय ताम्बूलं शीलयेद् बुधः ॥ निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न शयीत च । शीताम्बु न स्पृशेत् क्वापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः ॥” इति भावमिश्रः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो वमनविरेचनव्यापच्चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

वैद्यातुरनिमित्तं वमनं विरेचनं च पञ्चदशधा व्यापद्यते । तत्र वमनस्याधो गतिरूर्द्ध्वं विरेचनस्येति पृथक् । सामान्यमुभयोः—सावशेषौषधत्वं, जीर्णौषधत्वं, हीनदोषापहृतत्वं, वातशूलम्, अयोगः, अतियोगः, जीवादानम्, आध्मानं, परिकर्त्तिका, परिस्रावः, प्रवाहिका, हृदयोपसरणं, विबन्ध इति ॥ ३ ॥

तत्र बुभुक्षापीडितस्यातितीक्ष्णाग्नेर्मृदुकोष्ठस्य चावतिष्ठमानं दुर्बलस्य वा गुणसामान्यभावाद्वमनमधो गच्छति, तत्रेप्सितानवाप्तिर्दोषोत्क्लेशश्च । तमाशु स्नेहयित्वा भूयस्तीक्ष्णतरैर्वामयेत् ॥४॥

अपरिशुद्धामाशयस्योत्कृष्टश्लेष्मणः सशेषान्नस्य वाऽहृद्यमतिप्रभूतं वा विरेचनं पीतमूर्द्ध्वं गच्छति, तत्रेप्सितानवाप्तिर्दोषोत्क्लेशश्च । तत्राशुद्धामाशयमुल्बणश्लेष्माणमाशु वामयित्वा भूयस्तीक्ष्णतरैर्विरेचयेत्, आमाशये त्वामवत् संविधानम्, अहृद्येऽतिप्रभूते च हृद्यं प्रमाणयुक्तञ्च । अत ऊर्द्ध्वमुत्तिष्ठत्यौषधे न तृतीयं पाययेत् । ततस्त्वेनं मधुघृतफाणितयुक्तैर्लेहैर्विरेचयेत् ॥ ५ ॥

दोषविग्रथितमल्पमौषधमवस्थितमूर्द्ध्वभागिकमधोभागिकं वा

---

### चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ वमनविरेचनजनिता व्यापत्तस्याश्चिकित्सितमित्यर्थः । २ पञ्चदशविधवमनविरेचनव्यापदो ब्रवीति—वैद्येति । वैद्यातुरग्रहणेन भेषजपरिचारकयोरपि ग्रहणम् । तथा च चरकः—"प्रेष्य भैषज्यवैद्यानां वैगुण्यादातुरस्य च" इति । चरके दश व्यापद उक्ताः—"आध्मानं परिकर्तिश्च स्रावो हृद्गात्रयोर्ग्रहः । जीवादानं सविभ्रंशः स्तम्भः सोपद्रवः क्लमः ॥ अयोगादतियोगाच्च दशैता व्यापदो मताः" इति ।

३ वमनस्याधोगमनव्यापदं वक्ति—तत्रेति । चरके—"क्षुधार्तमृदुकोष्ठाभ्यां खल्वपोक्लिष्टकफेन वा । तीक्ष्णं पीतं स्थितं क्षुब्धं वमनं स्याद्विरेचनम् ॥" इति । ४ अवतिष्ठमानं=पाकं गच्छदित्यर्थः । ५ ईप्सितानवाप्तिः=अभीष्टवमनाप्राप्तिः, दोषोत्क्लेशः=कफोत्कर्षः । ६ विरेचनस्योर्ध्वगमनव्यापदं कथयति—अपरिशुद्धेति । ७ दोषोत्क्लेशः=पित्तोत्कर्ष इत्यर्थः । ८ सावशेषौषधव्यापदं वर्णयति—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


न स्रंसयति दोषान्। तत्र तृष्णा पार्श्वशूलं छर्दिर्मूर्च्छा पर्वभेदो हृल्लासोऽरतिरुद्गाराविशुद्धिश्च भवति। तमुष्णाभिरद्भिराशु वामयेदूर्ध्वभागिके, अधोभागिकेऽपि च सावशेषौषधमतिप्रधावितदोषमतिबलमसम्यग्विरिक्तमप्येवं वामयेत् ॥ ६ ॥

क्रूरकोष्ठस्यातितीक्ष्णाग्नेरल्पमौषधमल्पगुणं वा भक्तवत् पाकमुपैति, तत्र समुदीर्णा दोषा यथाकालमनिर्हीयमाणा व्याधिविभ्रमं बलविभ्रंशञ्चापादयन्ति, तमनल्पममन्दमौषधञ्च पाययेत् ॥ ७ ॥

अस्निग्धस्विन्नेनाल्पगुणं वा भेषजमुपयुक्तमल्पान् दोषान् हन्ति। तत्र वमने दोषशेषो गौरवमुत्क्लेशं हृदयाविशुद्धिं व्याधिवृद्धिं च करोति, तत्र तं यथायोगं पाययित्वा वामयेद् दृढतरम्। विरेचने तु गुदपरिकर्तनमाध्मानं शिरोगौरवमनिःसरणं वा वायोर्व्याधिवृद्धिं च करोति। तमुपपाद्य भूयः स्नेहस्वेदाभ्यां विरेचयेद् दृढतरम्, दृढं बहुप्रचलितदोषं वा तृतीये दिवसेऽल्पगुणं चेति ॥ ८ ॥

अस्निग्धस्विन्नेन रूक्षौषधमुपयुक्तमब्रह्मचारिणा वा वायुं कोपयति। तत्र वायुः प्रकुपितः पार्श्वपृष्ठश्रोणिमन्यामर्मशूलं मूर्च्छां भ्रमं संज्ञानाशञ्च करोति, तं वातशूलमित्याचक्षते। तमभ्यज्य धान्यस्वेदेन स्वेदयित्वा यष्टीमधुकविपक्वेन तैलेनानुवासयेत् ॥ ९ ॥

स्नेहस्वेदाभ्यामविभावितशरीरेणाल्पमौषधमल्पगुणं वा पीतमूर्ध्वमधो वा नाभ्येति दोषांश्चोत्क्लिश्य तैः सह बलक्षयमापाद-

---

दोषेति। दोषविग्रथितं = दोषमिश्रितम्।

१ जीर्णौषधव्यापदं ब्रवीति—क्रूरेति। २ समुदीर्णाः = प्रकुपिता इत्यर्थः। ३ अनल्पं = प्रभूतम्, अमन्दं = तीक्ष्णम्। ४ हीनदोषापहृतव्यापदमभिदधाति—अस्निग्धेति। ५ तं = दोषशेषम्, यथायोगं = स्नेहादियोगपूर्वकमित्यर्थः। ६ अल्पगुणं = मृद्वौषधम्। ७ वातशूलव्यापदमभिधत्ते—अस्निग्धस्विन्नेनेति। ८ माषादिशमीधान्यस्वेदेनेत्यर्थः।

९ अयोगव्यापदमाख्याति—स्नेहेति। अभिभावितशरीरेण = अप्राप्तदेहेन। १० नाभ्येति = न याति। "प्रातिलोम्येन दोषाणां हरणात्ते ह्यकृत्स्नशः। अयोगसंज्ञे"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यति, तत्राध्मानं हृदयग्रहस्तृष्णा मूर्च्छा दाहश्च भवति, तमयोगमित्याचक्षते । तमाशु वामयेन्मदनफललवणाम्बुभिर्विरेचयेत्तीक्ष्णतरैः कषायैश्च । दुर्वान्तस्य तु समुत्क्लिष्टा दोषा व्याप्य शरीरं कण्डूश्वयथुकुष्ठपिडकाज्वराङ्गमर्दनिस्तोदनानि कुर्वन्ति, ततस्तानवशेषान्महौषधेनापहरेत् । अस्निग्धस्विन्नस्य मृदुविरिक्तस्याधोनाभेः स्तब्धपूर्णोदरता शूलं वातपुरीषसङ्गः कण्डूमण्डलप्रादुर्भावो भवति, तमास्थाप्य पुनः संस्नेह्य विरेचयेत्तीक्ष्णेन । नातिप्रवर्त्तमाने तिष्ठति वा दुष्टसंशोधने तत्सन्तेजनार्थमुष्णोदकं पाययेत्, पाणितापैश्च पार्श्वोदरमुपस्वेदयेत्, ततः प्रवर्तन्ते दोषाः । अनुप्रवृत्ते चाल्पदोषे जीर्णौषधं बहुदोषमहःशेषं बलञ्चावेक्ष्य भूयो मात्रां विदध्यात् । अप्रवृत्तदोषं दशरात्रादूर्ध्वमुपसंस्कृतदेहं स्नेहस्वेदाभ्यां भूयः शोधयेत् । दुर्विरेच्यमास्थाप्य पुनः संस्नेह्य विरेचयेत् । ह्रीभयलोभैर्वेगाघातशीलाः प्रायशः स्त्रियो राजसमीपस्था वणिजः श्रोत्रियाश्च भवन्ति । तस्मादेते दुर्विरेच्याः, बहुवातत्वात्; अत एव तानतिस्निग्धान् स्वेदोपपन्नान् शोधयेत् ॥ १० ॥

स्निग्धस्विन्नस्यातिमात्रमतिमृदुकोष्ठस्य वाऽतितीक्ष्णमधिकं वा दत्तमौषधमतियोगं कुर्य्यात् । तत्र वमनातियोगे पित्तातिप्रवृत्तिर्बलविस्रंसो वातकोपश्च बलवान् भवति । तं घृतेनाभ्यज्यावगाह्य शीतास्वप्सु शर्करामधुमिश्रैर्लेहैरुपचरेद्यथास्वम् । विरेचनातियोगे कफस्यातिप्रवृत्तिरुत्तरकालं च सरक्तस्य, तत्रापि बलविस्रंसो वातकोपश्च बलवान् भवति, तमतिशीताम्बुभिः परिषिच्यावगाह्य

---

इति चरकः । १ वमनायोगे वामयेदित्यर्थः । २ विरेचनायोगे विरेचयेदित्यर्थः । ३ समुत्क्लिष्टाः=प्रकुपिताः । ४ आस्थाप्य=निरूह्य, पुनः संस्नेह्य=स्नेहबस्तिनेत्यर्थः ।

५ दुर्विरेच्यानामुपायं दर्शयति—दुर्विरेच्यमिति । ६ ह्रिया वेगाघातशीलाः स्त्रियः, भयेन राजसमीपस्था जनाः, लोभेन वणिजः श्रोत्रियाश्चेति यथासङ्ख्यमन्वयः । ७ दुर्विरेच्याः=क्रठिनतया विरेचनार्हाः । ८ अतियोगव्यापदमाचष्टे—स्निग्धेति ।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा शीतैस्तण्डुलाम्बुभिर्मधुमिश्रैश्छर्दयेत्, पिच्छाबस्तिं चास्मै दद्यात्, क्षीरसर्पिषा चैनमनुवासयेत्, प्रियङ्ग्वादिं चास्मै तण्डुलाम्बुना पातुं प्रयच्छेत्, क्षीररसयोश्चान्यतरेण भोजयेत् ॥ ११ ॥

तस्मिन्नेव वमनातियोगे प्रवृद्धे शोणितं ष्ठीवति छर्दयति वा, तत्र जिह्वानिःसरणमक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंहननं तृष्णा हिक्का ज्वरो वैसंज्ञ्यमित्युपद्रवा भवन्ति। तमजासृक्चन्दनोशीराञ्जनलाजचूर्णैः सशर्करोदकैर्मन्थं पाययेत्, फलरसैर्वा सघृतक्षौद्रशर्करैः शुङ्गाभिर्वा वटादीनां पेयां सिद्धां सक्षौद्रां वर्चोग्राहिभिर्वा, पयसा जाङ्गलरसेन वा भोजयेत्, अतिस्रुतशोणितविधानेनोपचरेत्। जिह्वामतिसर्पितां कटुकलवणचूर्णप्रघृष्टां तिलद्राक्षाप्रलिप्तां वाऽन्तः पीडयेत्, प्रविष्टायामम्लमन्ये तस्य पुरस्तात् स्वादयेयुः। व्यावृत्ते चाक्षिणी घृताभ्यक्ते पीडयेत्, हनुसंहनने वातश्लेष्महरं नस्यं स्वेदांश्च विदध्यात्; तृष्णादिषु च यथास्वं प्रतिकुर्वीत, विसंज्ञे वेणुवीणागीतस्वनं श्रावयेत् ॥ १२ ॥

विरेचनातियोगे च सचन्द्रकं सलिलमधः स्रवति ततो मांसधावनप्रकाशमुत्तरकालं जीर्वशोणितं च ततो गुदनिःसरणं वेपथुर्वमनातियोगोपद्रवाश्चास्य भवन्ति। तमपि निःस्रुतशोणितविधानेनोपचरेत्, निःसर्पितगुदस्य गुदमभ्यज्य परिस्वेद्यान्तःपीड-

---

१ पिच्छाबस्तिः—"बदर्यैरावतीशेलुशाल्मलीधन्वनाङ्कुराः। क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुताः सास्राः पिच्छिलसञ्ज्ञिताः॥ वाराहमाहिषैरभ्रबैडालैणेयकौक्कुटम्। सद्यस्कमसृगाजं वा देयं पिच्छिलबस्तिषु॥" इति निरूहक्रमचिकित्सिते वक्ष्यमाणा। २ कर्षप्रमाणं प्रियङ्ग्वादिमित्यर्थः।

३ जीवादानव्यापदं वर्णयति—**तस्मिन्निति**। ४ जिह्वानिःसरणं=जिह्वाबहिर्निगमनम्। ५ अजासृक्=अजारुधिरम्। चरकेऽपि—"अञ्जनं चन्दनोशीरमजासृक्छर्करोदकम्। पिबेन्मन्थमतियोगहरं परम्॥ शुङ्गाभिर्वा वटादीनां सिद्धां पेयां समाक्षिकाम्। वर्चःसाङ्ग्राहिकैः सिद्धं क्षीरं भोज्यं च दापयेत्॥ जाङ्गलैर्वा रसैर्भोज्यं पिच्छाबस्तिश्च शस्यते। मधुरैरनुवास्यश्च सिद्धेन क्षीरसर्पिषा॥" इति। ६ अतिसर्पिताम्=अतिनिर्गताम्। ७ व्यावृत्ते=बहिर्गते। ८ सचन्द्रकं=मयूरपिच्छस्थचन्द्रसमानम्। ९ शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगाश्रयं रक्तं जीवशोणितमु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येत् क्षुद्ररोगचिकित्सितं वा वीक्षेत, वेपथौ वातव्याधिविधानं कुर्वीत, जिह्वानिःसरणादिपूक्तः प्रतीकारः, अतिप्रवृत्ते वा जीवशोणिते काश्मरीफलबदरीदूर्वाशरैः शृतेन पयसा घृतमण्डाञ्जनयुक्तेन सुशीतेनास्थापयेत्, न्यग्रोधादिकषायक्षीरेक्षुरसघृतशोणितसंसृष्टैश्चैनं बस्तिभिरुपाचरेत्, शोणितष्ठीवने रक्तपित्तरक्तातीसारक्रियाश्चास्य विदध्यात्, न्यग्रोधादि चास्य विदध्यात् पानभोजनेषु ॥ १३ ॥

जीवशोणितरक्तपित्तयोश्च जिज्ञासार्थं तस्मिन् पिचुं प्लोतं वा क्षिपेत्, यद्युष्णोदकप्रक्षालितमपि वस्त्रं रञ्जयति तज्जीवशोणितमवगन्तव्यम्। सभक्तं च शुने दद्याच्छक्तुसम्मिश्रं वा, स यद्युपभुञ्जीत तज्जीवशोणितमवगन्तव्यम्। अन्यथा रक्तपित्तमिति ॥ १४ ॥

सशेषान्नेन बहुदोषेण रूक्षेणानिलप्रायकोष्ठेनानुष्णमस्निग्धं वा पीतमौषधमाध्मापयति, तत्रानिलमूत्रपुरीषसङ्गः समुन्नद्धोदरता पार्श्वभङ्गो गुदबस्तिनिस्तोदनं भक्तारुचिश्च भवति, तं चाध्मानमित्याचक्षते। तमुपस्वेद्यानाहवर्त्तिदीपनबस्तिक्रियाभिरुपचरेत् ॥ १५ ॥

क्षामेणातिमृदुकोष्ठेन मन्दाग्निना रूक्षेण वाऽतितीक्ष्णोष्णातिलवणमतिरूक्षं वा पीतमौषधं पित्तानिलौ प्रदूष्य परिकर्त्तिकामापादयति, तत्र गुदनाभिमेढ्रबस्तिशिरःसु सदाहं परिकर्त्तनमनिलसङ्गो वायुविष्टम्भो भक्तारुचिश्च भवति। तत्र पिच्छाबस्तियष्टीमधुककृष्णातिलकल्कमधुघृतयुक्तः, शीताम्बुपरिषिक्तं चैनं पयसा

---

च्यते। १ क्षुद्ररोगचिकित्सितं गुदभ्रंशविधानमिति तात्पर्यम्। २ घृतस्य मण्डः उपरितनोऽच्छो भागः घृतमण्डः, अञ्जनयुक्तेन=स्रोतोऽञ्जनयुतेनेत्यर्थः।

३ जीवशोणितपरिज्ञानोपायं दर्शयति—जीवेति। ४ पिचुं=कार्पासादितूलम्, प्लोतं=शुक्लवस्त्रखण्डम्। ५ आध्मानव्यापदं प्रतिपादयति—सशेषान्नेनेति। पाकावशिष्टमन्नं शेषान्नं तेन सह वर्तमानेनेत्यर्थः। ६ अनिलमूत्रपुरीषसङ्गः=वातमूत्रविष्ठाऽवरोधः। ७ परिकर्तिकाव्यापदमभिधत्ते—क्षामेणेति। क्षामेण=बलकायाभ्यां क्षीणमुपगतेनेत्यर्थः। ८ परि परितः कृन्ततीव छिनत्तीव वस्त्या-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुक्तवन्तं घृतमण्डेन[1] यष्टीमधुकसिद्धेन तैलेन वाऽनुवासयेत् ॥१६॥

क्रूरकोष्ठस्यातिप्रभूतदोषस्य मृद्वौषधमवचारितं समुत्क्लिश्य दोषान्न निःशेषानपहरति[2]। ततस्ते दोषाः परिस्रावमापादयन्ति, तत्र दौर्बल्योदरविष्टम्भारुचिगात्रसदनानि भवन्ति, सवेदनौ चास्य पित्तश्लेष्माणौ परिस्रवतः, तं परिस्रावमित्याचक्षते। तमजकर्णधवतिनिशपलाशबलाकषायैर्मधुसंयुक्तैरास्थापयेत्[3], उपशान्तदोषं[4] स्निग्धं च भूयः संशोधयेत् ॥ १७ ॥

अतिरूक्षेऽतिस्निग्धे वा भेषजमवचारितमप्राप्तं वातवर्चं उदीर्यति[5] वेगाघातेन वा, तदा प्रवाहिका भवति, तत्र सवातं सदाहं सशूलं गुरु पिच्छिलं श्वेतं कृष्णं सरक्तं वा भृशं प्रवाहमाणः कफमुपविशति[6]। तां परिस्रावविधानेनोपचरेत् ॥ १८ ॥

यस्तूर्ध्वमधो वा भेषजवेगं प्रवृत्तमज्ञत्वाद्विनिहन्ति तस्योपसरणं हृदि कुर्वन्ति दोषाः, तत्र प्रधानमर्मसन्तापाद्वेदनाभिरत्यर्थं पीड्यमानो दन्तान् किटकिटायते उद्वृत्ताक्षो जिह्वां खादति[10] प्रताम्यत्यचेताश्च भवति, तं परिवर्जयन्ति मूर्खाः। तमभ्यज्य धान्यस्वेदेन स्वेदयेत्, यष्टिमधुकसिद्धेन च तैलेनानुवासयेत्, शिरोविरेचनं चास्मै तीक्ष्णं विदध्यात्, ततो यष्टिमधुकमिश्रेण तण्डुलाम्बुना छर्दयेत्, यथादोषोच्छ्रायेण चैनं[11] बस्तिभिरुपाचरेत् ॥ १९ ॥

[12]यस्तूर्ध्वमधो वा प्रवृत्तदोषः शीतागारमुदकमनिलमन्यद्वा सेवेत, तस्य दोषाः स्रोतःस्ववलीयमाना घनीभावमापन्ना वातमूत्रशकृद्गृहमापाद्य[13] विबध्यन्ते, तस्याटोपो दाहो ज्वरो वेदनाश्च तीव्रा

---

दीनीति परिकर्तिका। १ पैत्तिकपरिकर्तिकायां घृतमण्डेन, वातिक्यां तैलेनेत्यर्थः।

२ परिस्रावव्यापदमुपपादयति—क्रूरेति। ३ अजकर्णः सालभेदः, धवः='धाय' इति ख्यातः। ४ दोषपदेनात्र परिस्रावे तात्पर्यम्। ५ प्रवाहिकाव्यापदं वर्णयति—अतिरूक्ष इति। ६ उदीरयति=प्रवर्तयति। ७ उपविशति=अतिसारयति। ८ हृदयोपसरणव्यापदमभिदधाति—य इति। ९ प्रधानमर्म हृदयं तस्य सन्तापादित्यर्थः। १० प्रताम्यति=मुह्यति। ११ नैरूहिकैः स्नैहिकैश्च बस्तिभिरित्यर्थः।

१२ विबन्धव्यापदं विवृणोति—यस्तूर्ध्वमिति। १३ विबध्यन्ते=विमनविरेच-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन्ति। तमाशु वामयित्वा प्राप्तकालां क्रियां कुर्वीत। अधोभागे त्वधोभागहरद्रव्यसैन्धवाम्लमूत्रसंसृष्टं विरेचनं पाययेत्, आस्थापनमनुवासनं च यथादोषं विदध्यात्, यथादोषमाहारक्रमं च। उभयतोभागे तूपद्रवविशेषान् यथास्वं प्रतिकुर्वीत ॥ २० ॥

या तु विरेचने गुदपरिकर्त्तिका तद्वमने कण्ठक्षणनं, यदधः परिस्रवणं स ऊर्द्ध्वभागे श्लेष्मप्रसेकः, या त्वधः प्रवाहिका सा तूर्द्ध्वं शुष्कोद्गारा इति ॥ २१ ॥

भवति चात्र।

यास्त्वेता व्यापदः प्रोक्ता दश पञ्च च तत्त्वतः।
एता विरेकातियोगदुर्योगायोगजाः स्मृताः ॥ २२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने वमनविरेचनव्यापच्चिकित्सितं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

## पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः।

अथातो नेत्रबस्तिप्रमाणप्रविभागचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

---

नप्रवृत्तिं निवारयन्ति। १ अधोभागे = विरेचने। २ कासुचिद् वमनविरेचनव्यापत्स्वन्तरं दर्शयति—येति। ३ ऊर्ध्वभागे = वमने। ४ पूर्वोक्तव्यापदां हेतूनिर्दिशति—या इति। ५ विरेकः = विरेचनं वमनं चेत्यर्थः।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।

### पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः।

६ बस्तिनाऽपि मला निहियन्त इति वमनविरेचनानन्तरं बस्तिविध्युपदेशार्थमयमध्याय आरभ्यते—अथात इति। नीयते प्राप्यते स्नेहकल्काद्यपानमिति नेत्रं निरूहान्वासनयन्त्रं, वसति मूत्रमत्रेति बवयोरभेदाद् बस्तिः मृगादीनां मूत्राशयः, "मूत्राशयो धनुर्वक्रो बस्तिरित्यभिधीयते" इति, अर्थाद् नाभेरधस्तादलाबूसदृशमधो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र[1] स्नेहादीनां कर्मणां प्रधानतममाहुराचार्य्याः। कस्मात्? अनेककर्मकरत्वाद् बस्तेः। इह खलु बस्तिर्नानाविधद्रव्यसंयोगाद् दोषाणां संशोधनसंशमनसङ्ग्रहणानि करोति, क्षीणशुक्रं वाजीकरोति, कृशं बृंहयति, स्थूलं कर्शयति, चक्षुः प्रीणयति, वलीपलितमपहन्ति, वयः स्थापयति ॥ ३ ॥

शरीरोपचयं वर्णबलमारोग्यमायुषः।
कुरुते परिवृद्धिं च बस्तिः सम्यगुपासितः[3] ॥ ४ ॥

तथा[4] ज्वरातीसारतिमिरप्रतिश्यायशिरोरोगाधिमन्थार्दिताक्षेपकपक्षाघातैकाङ्गसर्वाङ्गरोगाध्मानोदरयोनिशूलशर्कराशूलवृद्ध्युपदंशानाहमूत्रकृच्छ्रगुल्मवातशोणितवातमूत्रपुरीषोदावर्त्तशुक्रार्त्तवस्तन्यनाशहृद्ग्रहेनुमन्याग्रहार्शोश्मरीमूढगर्भप्रभृतिषु चात्यर्थमुपयुज्यते[5] ॥५॥

भवति चात्र।

बस्तिर्वाते च पित्ते च कफे रक्ते च शस्यते।
संसर्गे सन्निपाते च बस्तिरेव[6] हितः सदा ॥ ६ ॥

तत्र[7] सांवत्सरिकाष्टद्विरष्टवर्षाणां षडष्टदशाङ्गुलप्रमाणानि कनिष्ठिकाऽनामिकामध्यमाङ्गुलिपरिणाहान्यग्रेऽध्यर्द्धाङ्गुलद्व्यङ्गुलार्द्ध-

---

नालमनेकच्छिद्रं मूत्रभाजनं बस्तिरित्युच्यते। तयोः प्रमाणं प्रविभागश्च यस्मिन् चिकित्सिते तन्नेत्रबस्तिप्रमाणप्रविभागचिकित्सितं व्याख्यास्याम इत्यर्थः।

१ बस्तेः प्राधान्यं दर्शयति—**तत्रेति**। बस्तिकर्म = मूत्राधारपुटकसाधककर्म, प्रधानतमम्। प्रधानतरं तु वमनविरेचनकर्म। २ पूर्वोक्तमेव बस्तेः प्रधानतमत्वसाधनं पद्येन द्रढयति—**शरीरेति**। ३ उपासितः=व्यवहृतः। ४ बस्तिसाध्यान् रोगान् दर्शयति—**तथेति**। ५ हृद्ग्रहः, हनुग्रहः, मन्याग्रह इति योजना। ६ बस्तिकर्मेत्यर्थः।

७ नेत्रप्रमाणमास्थापनद्रव्यप्रमाणं च प्रतिपादयति—**तत्रेति**। सांवत्सरिकाष्टद्विरष्टवर्षाणामित्यत्र षडष्टदशाङ्गुलेत्यादीनां यथासंख्यमन्वयः। यथा सांवत्सरिकबालस्य निरूहयन्त्रं षडङ्गुलप्रमाणं, कनिष्ठिकापरिणाहम्, अग्रेऽध्यार्धाङ्गुलसन्निविष्टकर्णिकं, मूले कङ्कपक्षनाडीतुल्यप्रवेशम्, अग्रे मुद्ग्रवाहिस्रोतश्च विदध्यादिति क्रमशोऽध्यवसितव्यम्।

CC-0! Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीयाङ्गुलसन्निविष्टकर्णिकानि[1] कङ्कश्येनबर्हिणपक्षनाडीतुल्यप्रवेशानि मुद्गमाषकलायमात्रस्रोतांसि विदध्यान्नेत्राणि । तेषु चास्थापनद्रव्यप्रमाणमातुरहस्तसम्मितेन प्रसृतेन[3] सम्मितौ प्रसृतौ द्वौ चत्वारोऽष्टौ विधेयाः ॥ ७ ॥

वर्षान्तरेषु[4] नेत्राणां बस्तिमानस्य चैव हि ।
वयोबलशरीराणि समीक्ष्योत्कर्षयेद्विधिम्[5] ॥ ८ ॥

पञ्चविंशतेरूर्द्ध्वं द्वादशाङ्गुलं, मूलेऽङ्गुष्ठोदरपरीणाहम्[6], अग्रे कनिष्ठिकोदरपरीणाहम्, अग्रे त्र्यङ्गुलसन्निविष्टकर्णिकं, गृध्रपक्षनाडीतुल्यप्रवेशं, कोलास्थिमात्रच्छिद्रं, क्लिन्नकलायमात्रच्छिद्रमित्येके । सर्वाणि मूले बस्तिनिबन्धनार्थं द्विकर्णिकानि । आस्थापनद्रव्यप्रमाणं तु विहितं द्वादशप्रसृताः । सप्ततेस्तूर्ध्वं नेत्रप्रमाणमेतदेव, द्रव्यप्रमाणं तु द्विरष्टवर्षवत् ॥ ९ ॥

मृदुर्बस्तिः[7] प्रयोक्तव्यो विशेषाद्बालवृद्धयोः ।
तयोस्तीक्ष्णः[8] प्रयुक्तस्तु बस्तिर्हिंस्याद् बलायुषी ॥ १० ॥

व्रणनेत्रमष्टाङ्गुलं मुद्गवाहिस्रोतः, व्रणमवेक्ष्य यथास्वं स्नेहहकषाये विदधीत ॥ ११ ॥

तत्र[9], नेत्राणि सुवर्णरजताताम्रायोरीतिदन्तशृङ्गमणितरुसारम-

---

१ कर्णिका=गुदेऽधिकान्तःप्रवेशरोधिनी । "ऊनेऽब्दे पञ्चपूर्णेऽस्मिन्नासप्तभ्योऽङ्गुलानि षट् । सप्तमे सप्त तान्यष्टौ द्वादशे षोडशे नव ॥ द्वादशैव परं विंशाद् वीक्ष्य वर्षान्तरेषु च । वयोबलशरीराणि प्रमाणमभिवर्द्धयेत् ॥ स्वाङ्गुष्ठेन समं मूले स्थौल्येनाग्रे कनिष्ठया । पूर्णेऽब्देऽङ्गुलमादाय तदर्धार्धप्रवर्धितम् ॥ त्र्यङ्गुलं परमं छिद्रं मूलेऽग्रे वहते तु यत् । मुद्गं माषं कलायं च क्लिन्नं कर्कन्धुकं क्रमात् ॥ मूलच्छिद्रप्रमाणेन प्रान्ते घटितकर्णिकम् । वर्त्त्यांऽग्रे पिहितं मूले यथास्वं द्व्यङ्गुलान्तरम् । कर्णिकाद्वितयं नेत्रे कुर्यात्" इत्यष्टाङ्गहृदयम् । २ नेत्राणि=बस्तियन्त्राणि । ३ प्रसृतोऽत्र अर्द्धाञ्जलिः । ४ 'वर्षान्तरेषु' इत्यत्र 'वर्षोत्तरेषु' इति पाठान्तरम् । ५ उत्कर्षयेत्=वर्द्धयेत् । ६ परीणाहोऽत्र स्थौल्यम् ।

७ बालवृद्धयोर्बस्तौ विशेषं दर्शयति—**मृदुरिति** । मृदुद्रव्यकृतो बस्तिर्मृदुः । ८ तीक्ष्णद्रव्यकृतो बस्तिस्तीक्ष्णः । ९ बस्तिनेत्रनिर्माणद्रव्यं तदाकारांश्च निर्दिशति—**तत्रेति** । अष्टाङ्गहृदयेऽपि—"तयोस्तु नेत्रं हेमादिधातुदार्वस्थिवेणुजम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यानि श्लक्ष्णानि दृढानि गोपुच्छाकृतीन्यृजूनि गुटिकामुखानि ॥१२॥

बस्तयश्चावन्ध्या मृदवो नातिबहला दृढाः प्रमाणवन्तो गोमहिषवराहाजोरभ्राणाम् ॥ १३ ॥

नेत्रालाभे हिता नाडी नलवंशास्थिसम्भवा ।
बस्त्यलाभे हितं चर्म सूक्ष्मं वा तान्तवं घनम् ॥ १४ ॥
बस्तिं निरुपदिग्धन्तु शुद्धं सुपरिमार्जितम् ।
मृद्वनुद्धूतहीनं च मुहुः स्नेहविमर्दितम् ॥ १५ ॥
नेत्रमूले प्रतिष्ठाप्य न्युब्जं तु विवृताननम् ।
बद्ध्वा लोहेन तन्त्रेण चर्मस्रोतांसि निर्दहेत् ॥ १६ ॥
परिवर्त्त्य ततो बस्तिं बद्ध्वा गुप्तं निधापयेत् ।
आस्थापनं च तैलं च यथावत्तेन दापयेत् ॥ १७ ॥

तत्र द्विविधो बस्तिः—नैरूहिकः, स्नैहिकश्च । आस्थापनं, निरूह इत्यनर्थान्तरम् । तस्य विकल्पो माधुतैलिकः, तस्य पर्यायशब्दो यापनो, युक्तरथः सिद्धबस्तिरिति । स दोषनिर्हरणाच्छरीररोगहरणाद्वा निरूहः । वयःस्थापनादायुःस्थापनाद्वा आस्थापनम् । माधुतैलिकविधानं च निरूहक्रमचिकित्सिते वक्ष्यामः । यथाप्रमाणगुणविहितः स्नेहबस्तिविकल्पोऽनुवासनः पादावकृष्टः । अनुवसन्नपि न दुष्यत्यनुदिवसं वा दीयत इत्यनुवासनः । तस्यापि विकल्पो-

---

गोपुच्छाकारमच्छिद्रं श्लक्ष्णर्जुगुलकामुखम् ॥" इति ।

१ बस्तिनिर्माणद्रव्यमुपदिशति—**बस्तय इति** । २ उरभ्रः=मेष इत्यर्थः। ३ तान्तवं=वसनम्। ४ ग्रहणयोग्यबस्तेः परिकर्म बन्धविधिञ्चोपपादयति—**बस्तिमिति** । निरुपदिग्धं = मांसाद्युपलेपरहितम्। ५ नाधिकं न हीनमित्यर्थः। ६ प्रतिष्ठाप्य= संयोज्य, वैपरीत्येन स्थापयित्वेति यावत्, पश्चाद्भावे स्थापयित्वेत्यर्थः। न्युब्जम्= अधोमुखम्। ७ परिवर्त्य = अन्तर्भागं बहिष्कर्तुमपवृत्य, बध्वा 'सूत्रेण' इति शेषः।

८ बस्तिभेदानाख्याति— **तत्रेति** । "बस्तिर्द्विधाऽनुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम्। यः स्नेहो दीयते स स्यादनुवासननामकः॥ कषायक्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते। बस्तिभिर्दीयते यस्माच्तस्माद् बस्तिरिति स्मृतः॥" इति भावप्रकाशः। बस्तिभिर्मृगादीनां मूत्राशयैरिति तदर्थः। ९ अनर्थान्तरम्=एकार्थमित्यर्थः।

१० पादैस्त्रिभिरवकृष्टो हीनः पादावकृष्टः। ११ तस्यापि=अनुवासनस्यापि, विकल्पः=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऽर्द्धार्द्धमात्रावकृष्टोऽपरिहार्य्यो मात्राबस्तिरिति ॥ १८ ॥

निरूहः[1] शोधनो लेखी स्नैहिको बृंहणो मतः।
निरूहशोधितान्मार्गान्[2] सम्यक् स्नेहोऽनुगच्छति ॥ १९ ॥
अपेतसर्वदोषासु नाडीष्विव[3] वहज्जलम्।
सर्वदोषहरश्चासौ शरीरस्य च जीवनः ॥
तस्माद्विशुद्धदेहस्य स्नेहबस्तिर्विधीयते ॥ २० ॥

तत्र[4]ोन्मादभयशोकपिपासाऽरोचकाजीर्णार्शःपाण्डुरोगभ्रममद-मूर्च्छाच्छर्दिकुष्ठमेहोदरस्थौल्यश्वासकासकण्ठशोषशोफोप सृष्टक्षतक्षी-णचतुस्त्रिमासगर्भिणीदुर्बलान्यसहा बालवृद्धौ[5] च वातरोगार्दिते क्षीणा नानुवास्या नास्थापयितव्याः ॥ २१ ॥

उदरी[6] च प्रमेही च कुष्ठी स्थूलश्च मानवः।
अवश्यं स्थापनीयास्ते नानुवास्याः कथञ्चन ॥ २२ ॥
असाध्यता[7] विकाराणां स्यादेषामनुवासनात्।
असाध्यत्वेऽपि भूयिष्ठं गात्राणां सदनं[8] भवेत् ॥ २३ ॥
पक्वाशये[9] तथा श्रोण्यां नाभ्यधस्ताच्च सर्वतः।

---

त्रिविधो भेदः, भेदमेव दर्शयति—अर्द्धार्द्धेति। तन्त्रान्तरेऽनुवासनस्योत्तमादिमात्रा-भेदेन त्रैविध्यमुक्तम्—"षट्पली तु भवेच्छ्रेष्ठा मध्यमा त्रिपली भवेत्। कनीयस्य-ध्यर्धपला त्रिधा मात्राऽनुवासने ॥" इति।

१ फलेनापि तयोर्भेदमभिदधाति—**निरूह इति**। लेखो=लेखनः, स्नैहिकः=अनुवासनः। २ विशुद्धदेहस्यैव स्नेहबस्तिविधानमुपदिशति—**निरूहेति**। ३ नाडीषु=प्रणालिकासु।

४ बस्तिकर्मानर्हान्नरान्निर्दिशति—**तत्रेति**। ५ वर्षादर्वाग् बालस्य नवत्यूर्ध्ववृद्धस्य मृदुरपि बस्तिर्निषिद्धः। वातरोगार्दितः=वातरोगं विनेत्यर्थः। वातरोगी त्वनुवास्य एव। तदुक्तं भावप्रकाशे—"अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली" इति। ६ क्वाप्यास्थापनस्यावस्थायामनुवासनं निषेधति—**उदरीति**। तदुक्तं वाग्भटे—"सुविरक्तस्य यस्य स्यादाध्मानं पुनरेव तम्। सुस्निग्धैरम्ललवणैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥" इति।

७ वस्त्यनर्हाणां बस्तिदाने दोषं दर्शयति—**असाध्यतेति**। विकाराणाम्=उदरादीनाम्। ८ सदनं=ग्लानिः। ९ सम्यक्प्रदत्तो बस्तिर्येषु स्थानेषु तिष्ठति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्यक्प्रणिहितो बस्तिः स्थानेष्वेतेषु तिष्ठति ॥ २४ ॥
पक्वाशयाद्बस्तिवीर्य्यं खैर्देहमुपसर्पति ।
वृक्षमूले निषिक्तानामपां वीर्य्यमिव द्रुमम् ॥ २५ ॥
स चापि सहसा बस्तिः केवलः समलोऽपि वा ।
प्रत्येति वीर्यं त्वनिलैरपानाद्यैर्विनीयते ॥ २६ ॥
वीर्य्येण बस्तिरादत्ते दोषानापादमस्तकात् ।
पक्वाशयस्थोऽम्बरगो भूमेरर्को रसानिव ॥ २७ ॥
स कटीपृष्ठकोष्ठस्थान् वीर्य्येणालोड्य सञ्चयान् ।
उत्खातमूलान् हरति दोषाणां साधुयोजितः ॥ २८ ॥
दोषत्रयस्य यस्माच्च प्रकोपे वायुरीश्वरः ।
तस्मात्तस्यातिवृद्धस्य शरीरमभिनिघ्नतः ॥ २९ ॥
वायोर्विषहते वेगं नान्या बस्तेर्ऋते क्रिया ।
पवनाविद्धतोयस्य वेला वेगमिवोदधेः ॥ ३० ॥
शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः ।
कुरुते परिवृद्धिञ्च बस्तिः सम्यगुपासितः ॥ ३१ ॥

अत ऊर्द्ध्वं व्यापदो वक्ष्यामः—तत्र, नेत्रं विचलितं, विवर्त्तितं, पार्श्वावपीडितम्, अत्युत्क्षिप्तम्, अवसन्नं, तिर्य्यक्क्षिप्तमिति षट्

---

तानि निर्दिशति—**पक्वाशय इति** । श्रोण्यां=कट्याम् । १ पक्वाशयादिस्थानगतो बस्तिः कथं सर्वाङ्गगतदोषाणां शमनं करोतीति दर्शयति—**पक्वाशयादिति** । खैः=स्रोतोभिरित्यर्थः । २ आषपदेन उदानादयः । विनीयते=विशेषेण सर्वशरीरावयवेषु प्राप्यते । यथा—अपानेन अधः, उदानेन ऊर्ध्वं, व्यानेन सर्वत्र । ३ अम्बरगः=आकाशगत इत्यर्थः ।

४ वातप्रकोपप्रशमने बस्तेः प्राधान्यं निर्दिशति—**दोषेति** । ५ विषहते=विशेषेण सहते । ६ वेला=तटमर्यादा । 'वेला काले च सीमायामब्धेः कूलविकारयोः । अक्लिष्टमरणे रोगे ईश्वरस्य च भोजने ॥" इति मेदिनी । ७ सम्यगुपासितः=समीचीनतया सम्पादित इत्यर्थः । ८ बस्तिव्यापत्सु प्रथमं प्रणिधानदोषं निर्दिशति—**तत्रेति** । विचलितं=विशेषेण कम्पितम्, विवर्तितम्=अपवर्तितम्, अत्युत्क्षिप्तम्=अतिशयेनोर्ध्वं प्रेरितम्, अवसन्नम्=अधोगतिकम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणिधानदोषाः। अतिस्थूलं, कर्कशम्, अवनतम्, अणुभिन्नं, सन्निकृष्टविप्रकृष्टकर्णिकं, सूक्ष्मातिच्छिद्रम्, अतिदीर्घम्, अतिह्रस्वमस्निमदित्येकादश नेत्रदोषाः। बहुलता, अल्पता, सच्छिद्रता, प्रस्तीर्णता, दुर्बतेति पञ्च बस्तिदोषाः। अतिपीडितता, शिथिलपीडितता, भूयोभूयोऽवपीडनं, कालातिक्रम इति चत्वारः पीडनदोषाः। आमता, हीनता, अतिमात्रता, अतिशीतता, अत्युष्णता, अतितीक्ष्णता, अतिमृदुता, अतिस्निग्धता, अतिरूक्षता, अतिसान्द्रता, अतिद्रवता इत्येकादश द्रव्यदोषाः। अवाक्शीर्षोच्छीर्षन्युब्जोत्तानसङ्कुचितदेहस्थितदक्षिणपार्श्वशायिनः प्रदानमिति सप्त शय्यादोषाः। एवमेताश्चतुश्चत्वारिंशद् व्यापदो वैद्यनिमित्ताः। आतुरनिमित्ताः पञ्चदश आतुरोपद्रवचिकित्सिते वक्ष्यन्ते। स्नेहस्त्वष्टाभिः कारणैः प्रतिहतो न प्रत्यागच्छति त्रिभिर्दोषैः, अशनाभिभूतो, मलव्याप्तिश्रो, दूरानुप्रविष्टः, अस्विन्नस्य अनुष्णः, अल्पंभुक्तवतः, अल्पश्चेति वैद्यातुरनिमित्ता भवन्ति। अयोगस्तूभयोः, आध्मानं, परिकर्त्तिका, परिस्रावः, प्रवाहिका, हृदयोपसरणम्, अङ्गप्रग्रहः, अतियोगो, जीवादानमिति नव व्यापदो वैद्यनिमित्ता भवन्ति ॥ ३२ ॥

भवति चात्र।

षट्सप्ततिः समासेन व्यापदः परिकीर्त्तिताः।
तासां वक्ष्यामि विज्ञानं सिद्धिञ्च तदनन्तरम् ॥ ३३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने नेत्रबस्तिप्रमाणप्रविभाग चिकित्सितं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

---

१ नेत्रदोषान् दर्शयति—**अतिस्थूलमिति**। २ अस्निमत् = पालिमत्। ३ बस्तिदोषमभिदधाति—**बहलतेति**। बहलता = मांसोपचितता, प्रस्तीर्णता = विस्तृतता। ४ पीडनदोषमाख्याति—**अतीति**। अतिपीडितता = अतिपीडनम्।

५ द्रव्यदोषमभिधत्ते—**आमतेति**। आमता = अपक्वस्नेहता। ६ शय्यादोषमाख्याति—**अवाक्शीर्षेति**। अवाक्शीर्षः = अधोमस्तकः, उच्छीर्षः = ऊर्ध्वमस्तकः, न्युब्जः = अधोमुखः, स्थितः = उपविष्टः। ७ अङ्गप्रग्रहः = अङ्गवेदना। ८ विज्ञानं =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो नेत्रबस्तिव्यापच्चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
अर्थे नेत्रे विचलिते तथा चैव विवर्त्तिते ।
गुदे क्षतं रुजा वा स्यात्तत्र सद्यः क्षतक्रियाः ॥ ३ ॥
अत्युत्क्षिप्तेऽवसन्ने च नेत्रे पायौ भवेद्रुजा ।
विधिरत्रापि पित्तघ्नः कार्य्यः स्नेहैश्च सेचनम् ॥ ४ ॥
तिर्य्यक्प्रणिहिते नेत्रे तथा पार्श्वावपीडिते ।
मुखस्यावरणाद्वस्तिर्न सम्यक् प्रतिपद्यते ॥
ऋजु नेत्रं विधेयं स्यात्तत्र सम्यग्विजानता ॥ ५ ॥
अतिस्थूले कर्कशे च नेत्रे चावनते तथा ।
गुदे भवेत् क्षतं रुक् च साधनं पूर्ववत् स्मृतम् ॥ ६ ॥
आसन्नकर्णिके नेत्रे भिन्नेऽणौ वाऽप्यपार्थकः ।
अवसेको भवेद्वस्तेस्तस्माद्दोषान् विवर्जयेत् ॥ ७ ॥
प्रकृष्टकर्णिके रक्तं गुदमर्मप्रपीडनात् ।

---

लक्षणम् , सिद्धिं=प्रतिक्रियया पुरुषार्थप्राप्तियोग्यतारूपां सिद्धिमित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ नेत्रानन्तरमादिशब्दस्य लोपनिर्देशाद् नेत्रादिः बस्तिपुटकजन्यव्यापदां चिकित्सितमिति नेत्रबस्तिव्यापच्चिकित्सितम् । आदिना प्रणिधानद्रव्यशय्याव्यापदो बोद्धव्याः । २ नेत्रप्रणिधानव्यापद्वर्णनं तच्चिकित्सां च दर्शयति—अर्थेति । ३ सद्यः क्षतक्रिया=सद्योव्रणक्रिया मधुघृताभ्यङ्गाद्याः । ४ पायौ=गुदे । ५ विधिः=मधुरशीतादिपित्तहरविधानमित्यर्थः । ६ प्रणिधानमभिधाय नेत्रदोषव्यापद्वर्णनं तच्चिकित्सां चाह—अतिस्थूल इति । ७ पूर्ववत्=सद्यःक्षतक्रियेत्यर्थः । ८ अणुभिन्ने इत्यर्थः । ९ अवसेकः=भेषजस्य क्षरणम् , वस्तेः=बस्तितः । १० प्रकृ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षरत्यत्रापि पित्तघ्नो विधिर्बस्तिश्च पिच्छिलः ॥ ८ ॥
ह्रस्वे त्वणुस्रोतसि च क्लेशो बस्तिश्च पूर्ववत् ।
प्रत्यागच्छंस्ततः कुर्याद्रोगान् बस्तिविघातजान् ॥ ९ ॥
दीर्घे महास्रोतसि च ज्ञेयमत्यवपीडवत् ।
प्रस्तीर्णे बहले चापि बस्तौ दुर्बद्धदोषवत् ॥ १० ॥
बस्तावल्पेऽल्पता वाऽपि द्रव्यस्याल्पा गुणा मताः ।
दुर्बद्धे चाणुभिन्ने च विज्ञेयं भिन्ननेत्रवत् ॥ ११ ॥
अतिप्रपीडितो बस्तिः प्रयात्याशयमाशयं ततः ।
वातेरितो नासिकाभ्यां मुखतो वा प्रपद्यते ॥ १२ ॥
तत्र तूर्णं गलापीडं कुर्य्याच्चाप्यवधूननम् ।
शिरःकायविरेकौ च तीक्ष्णौ सेकांश्च शीतलान् ॥ १३ ॥
शनैः प्रपीडितो बस्तिः पक्वाधानं न गच्छति ।
न च सम्पादयत्यर्थांस्तस्माद्युक्तं प्रपीडयेत् ॥ १४ ॥
भूयो भूयोऽवपीडेन वायुरन्तः प्रपीड्यते ।
तेनाध्मानं रुजश्चोग्रा यथास्वं तत्र बस्तयः ॥ १५ ॥
कालातिक्रमणात् क्लेशो व्याधिश्चाभिप्रवर्धते ।
तत्र व्याधिबलघ्नं तु भूयो बस्तिं निधापयेत् ॥ १६ ॥

---

ष्टकर्णिके = चतुरङ्गुलेऽतिप्रवेशेन विप्रकृष्टकर्णिके । १ पित्तघ्नो विधिः = मधुरशीतादिविधानम् । २ ह्रस्वे = प्रमाणन्यूने, अणुस्रोतसि = सूक्ष्मच्छिद्रे, पूर्ववत् = आसन्नकर्णिकादिवत् । ३ प्रत्यागच्छन् = बहिरागच्छन् , बस्तिविघातजान् = मिथ्यायोगप्रवृत्तान् , रोगान् = मूत्राघातमूत्रकृच्छ्रादीनित्यर्थः । ४ अत्यवपीडवत् = वक्ष्यमाणातिप्रपीडितबस्तिवत् , ज्ञेयं गलपीडादिचिकित्सितमित्यर्थः ।

५ बस्तिदोषव्यापद्वर्णनं तच्चिकित्सां चाचष्ट—**प्रस्तीर्णे इति** । प्रस्तीर्णे = विस्तीर्णे । ६ दुर्बद्धदोषवत् = दुर्बद्ध इत्यादिनाऽनन्तरोक्तदोषवदित्यर्थः । ७ भिन्ननेत्रे बस्तेरवसेकवदित्यर्थः । ८ बस्तिपीडनदोषव्यापद्वर्णनं तच्चिकित्सां च ब्रवीति—**अतीति** । ९ प्रपद्यते = निर्गच्छति । १० अवधूननं = केशादिधूत्किप्य चालनमित्यर्थः । ११ सेकान् = क्षीरेक्षुरसंयष्टिमधुवादीन् परिषेकान् । १२ शनैः प्रपीडितः = मन्दं पीडितः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


गुदोपदेहशोफौ[1] तु स्नेहोऽपक्वः करोति हि ।
तत्र संशोधनो बस्तिर्हितं चापि विरेचनम् ॥ १७ ॥
हीनमात्रावुभौ[2] बस्ती नातिकार्य्यकरौ मतौ ।
अतिमात्रौ तथाऽऽनाहक्लमातीसारकारकौ ॥ १८ ॥
मूर्च्छां दाहमतीसारं पित्तं चात्युष्णतीक्ष्णकौ ।
मृदुशीतावुभौ वातविबन्धाध्मानकारकौ ॥ १९ ॥
तत्र हीनादिषु हितः प्रत्यनीकः[3] क्रियाविधिः ।
गुदबस्त्युपदेहं तु कुर्यात् सान्द्रो निरूहणः ॥ २० ॥
प्रवाहिकां वा जनयेत्तनुरल्पगुणावहः ।
तत्र साँन्द्रे[4] तनुं बस्तिं तनौ सान्द्रञ्च दापयेत् ॥ २१ ॥
स्निग्धोऽतिजाड्यकृद्रूक्षः स्तम्भाध्मानकृदुच्यते ।
बस्तिं रूक्षमतिस्निग्धे स्निग्धं रूक्षे च दापयेत् ॥ २२ ॥
अतिपीडितवद्दोषान् विद्धि चाप्यवशीर्षके ।
उच्छीर्षके[6] समुन्नाहं बस्तिः कुर्याच्च मेहनम् ॥ २३ ॥
तत्रोत्तरो हितो बस्तिः सुस्विन्नस्य सुखावहः ।
न्युब्जस्य[7] बस्तिर्नाप्नोति पक्वाधानं विमार्गगः ॥ २४ ॥
हृद्गुदं बाधते चात्र वायुः कोष्ठमथापि च ।
उत्तानस्यावृते मार्गे बस्तिर्नान्तः प्रपद्यते ॥ २५ ॥
नेत्रसंवेजनभ्रान्तो[8] वायुश्चान्तः प्रकुप्यति ।
देहे सङ्कुचिते दत्तः सक्थ्नोरप्युभयोस्तथा ॥ २६ ॥
न सम्यगनिलाविष्टो बस्तिः प्रत्येति[9] देहिनः ।
स्थितस्य बस्तिर्दत्तस्तु क्षिप्रमायात्यवाङ्मुखः ॥ २७ ॥

---

१ पीडनदोषानभिधाय बस्तिद्रव्यदोषव्यापद्वर्णनं तच्चिकित्सां चाभिधत्ते—गुदेति । उपदेह =उपलेपः । २ उभौ=आस्थापनानुवासनाख्यौ । ३ प्रत्यनीकः= सजातोपद्रवविरोधी । ४ सान्द्रे=घने । ५ शय्यादिदोषव्यापद्वर्णनं तच्चिकित्सां चाख्याति—अतिपीडितेति । ६ उच्छीर्षके=ऊर्ध्वमस्तके पुरुषे इत्यर्थः । सम्यगुन्नाहो यस्मिन् तत् समुन्नाहमाध्मानं कुर्यात् । ७ न्युब्जस्य=अधोमुखस्येत्यर्थः । ८ नेत्रसंवेजनेन नेत्रकम्पमेन भ्रान्त इति नेत्रसंवेजनभ्रान्तः । ९ प्रत्येति=प्रत्या-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न चाशयं[1] तर्पयति तस्मान्नार्थकरो हि सः।
नाप्नोति बस्तिर्दत्तस्तु कृत्स्नं पक्वाशयं पुनः॥ २८॥
दक्षिणाश्रितपार्श्वस्य[2] वामपार्श्वानुगो यतः।
न्युब्जादीनां प्रदानं च बस्तेनैव प्रशस्यते॥ २९॥
पश्चादनिलकोपोऽत्र यथास्वं तत्र कारयेत्।
व्यापद[3]ः स्नेहबस्तेस्तु वक्ष्यन्ते तच्चिकित्सिते॥ ३०॥
अयोगा[4]द्यास्तु वक्ष्यामि व्यापदः सचिकित्सिताः।
अनुष्णोऽल्पौषध[5]ो हीनो बस्तिर्नैति प्रयोजितः॥ ३१॥
विष्टम्भाध्मानशूलैश्च तमयोगं प्रचक्षते।
तत्र तीक्ष्णो[6] हितो बस्तिस्तीक्ष्णं चापि विरेचनम्॥ ३२॥
सशेषा[7]न्नेऽथवा भुक्ते बहुदोषे च योजितः।
अत्याशितस्यातिबहुर्बस्तिर्मन्दोष्ण एव च॥ ३३॥
अनुष्णलवणस्नेहो ह्यतिमात्रोऽथवा पुनः।
तथा बहुपुरीषं च क्षिप्रमाध्मापयेन्नरम्॥ ३४॥
हृत्कटीपार्श्वपृष्ठेषु शूलं तत्रातिदारुणम्।
तत्र तीक्ष्णतरो बस्तिर्हितं चाप्यनुवासनम्॥ ३५॥
अतितीक्ष्णोष्णलवणो रूक्षो बस्तिः प्रयोजितः।
सपित्तं कोपयेद्वायुं कुर्य्याच्च परिकर्त्तिकाम्॥ ३६॥
नाभिबस्तिगुदं तत्र छिनत्तीवाति देहिनः।

---

गच्छति। १ आशयं=पक्वाशयम्।

२ दक्षिणाश्रितपार्श्वस्य बस्तिर्दत्तः कृत्स्नं पक्वाशयं पुनर्नाप्नोतीति पूर्वेणान्वयः। कथं न पक्वाशयं प्राप्नोतीति वक्ति—यतः यस्मात् वामपार्श्वमनुगच्छतीति वामपार्श्वानुगः पक्वाशयो जागर्ति। ३ वैद्यातुरोभयनिमित्ताः स्नेहबस्तिभवा व्यापद इत्यर्थः।

४ अयोगाध्मान-परिकर्तिका-परिस्राव-प्रवाहिका-हृदयोपसरणाङ्गग्रहाति-योग-जीवादानव्यापद्वर्णनं तच्चिकित्सितं च दर्शयति—**अयोगाद्यास्त्विति**। ५ अल्पान्यौषधानि यस्मिन् स बस्तिरल्पौषधो नेति नागच्छतीत्यर्थः। ६ अस्योपलक्षणत्वात् पूर्वोक्तगुणत्रयविपरीत उष्णो बहुभेषजोऽपि हितः।

७ सशेषान्ने = अन्नाजीर्णावशेषे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिच्छाबस्तिर्हितस्तस्य स्नेहश्च मधुरैः श्रृतः ॥ ३७ ॥[1]
अत्यम्ललवणस्तीक्ष्णः परिस्रावाय कल्पते ।
दौर्बल्यमङ्गसादश्च[2] जायते तत्र देहिनः ॥ ३८ ॥
परिस्रवेत्ततः पित्तं दाहं सञ्जनयेद् गुदे ।
पिच्छाबस्तिर्हितस्तत्र बस्तिः क्षीरघृतेन च ॥ ३९ ॥
प्रवाहिका भवेत्तीक्ष्णान्निरूहात् सानुवासनात् ।
सदाहशूलं कृच्छ्रेण कफासृगुपवेश्यते ॥ ४० ॥
पिच्छाबस्तिर्हितस्तत्र पयसा चैव भोजनम् ।
सर्पिर्मधुरकैः सिद्धं तैलं चाप्यनुवासनम् ॥ ४१ ॥
अतितीक्ष्णो निरूहो वा सवाते चानुवासनः ।
हृदयस्योपसरणं कुरुते चाङ्गपीडनम् ॥ ४२ ॥
दोषैस्तत्र रुजस्तांस्ता[3] मदो मूर्च्छाऽङ्गगौरवम् ।
सर्वदोषहरं बस्तिं शोधनं[4] तत्र दापयेत् ॥ ४३ ॥
रूक्षस्य बहुवातस्य तथा दुःशयितस्य च ।
बस्तिरङ्गग्रहं कुर्य्याद्रूक्षो मृद्वल्पभेषजः ॥ ४४ ॥
तत्राङ्गसादः प्रस्तम्भो जृम्भोद्वेष्टनवेपकाः ।
पर्वभेदश्च[5] तत्रेष्टाः स्वेदाभ्यञ्जनबस्तयः ॥ ४५ ॥
अत्युष्णतीक्ष्णोऽतिबहुर्दत्तोऽतिस्वेदितस्य च ।
अल्पदोषस्य वा बस्तिरतियोगाय कल्पते ॥ ४६ ॥
विरेचनातियोगेन समानं तस्य लक्षणम् ।
पिच्छाबस्तिप्रयोगश्च तत्र शीतः[6] सुखावहः ॥ ४७ ॥
अतियोगात्परं यत्र जीवादानं विरिक्तवत् ।
देयस्तत्र हितश्चापि पिच्छाबस्तिः सशोणितः ॥ ४८ ॥
नवैता व्यापदो यास्तु निरूहं प्रत्युदाहृताः ।

---

१ पिच्छाबस्तिर्वक्ष्यमाणः । २ भङ्गसादः=अङ्गग्लानिः । ३ यथा वातस्य तोदादयः, पित्तस्य ओषचोषादयः, कफस्य कण्डूवादय इत्यर्थः । ४ यतः शोधनेन ऊर्ध्वगतदोषस्याधोनयनं भवतीति तात्पर्यम् । ५ पर्वभेदः=ग्रन्थिस्फुटनम् । ६ शीतोपचारश्चापि बोध्यः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नेहबस्तिष्वपि हि ता विज्ञेयाः कुशलैरिह ॥ ४९ ॥
इत्युक्ता व्यापदः सर्वाः सलक्षणचिकित्सिताः ।
भिषजा[1] च तथा कार्य्यं यथैता न भवन्ति हि ॥ ५० ॥
पक्षाद्विरेको वान्तस्य ततश्चापि निरूहणम् ।
सद्यो निरूढोऽनुवास्यः सप्तरात्राद्विरेचितः[3] ॥ ५१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने नेत्रबस्तिव्यापच्चिकित्सितं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

---

## सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातोऽनुवासनोत्तरबस्तिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
विरेचनात्[5] सप्तरात्रे गते जातबलाय वै ।
कृतान्नायानुवास्याय[6] सम्यग्देयोऽनुवासनः ॥ ३ ॥
यथावयो[7] निरूहाणां या मात्राः परिकीर्त्तिताः ।

---

१ भिषजा सम्यग् विचार्य एतादृशी चिकित्सा कार्या यथैतासां व्यापदामुत्पत्तिरेव न स्यादित्यर्थः ।

२ क्रमेण क्रियमाणानां वमनादिपञ्चकर्मणां कालावधिं दर्शयति—**पक्षादिति** । पक्षान्नार्वाङ् नापि परतः । ३ विरेचितस्तु सप्ताहात्परतोऽनुवास्यो नार्वाक् । तदुक्तमनन्तरेऽग्रेऽध्याये—"विरेचनात्सप्तरात्रे गते जातबलाय वै । कृतान्नायानुवास्याय सम्यग् देयोऽनुवासनः ॥" इति ।

**इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।**

---

## सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

४ "सद्यो निरूढोऽनुवास्यः सप्तरात्राद्विरेचितः" इति सङ्क्षेपेण यदुक्तं, तद्विस्तरेण बोधनार्थमयमध्याय आरभ्यते—**अथात इति** । अनुवासनं = स्नेहबस्तिः । ५ विरेचनात्सप्ताहानन्तरमनुवासनविधिमभिधत्ते—**विरेचनादिति** । ६ कृतान्नाय=कृताहारायेत्यर्थः । ७ अनुवासनबस्तिमात्रां दर्शयति—**यथेति** । वयोऽवस्थामनतिक्रम्येति यथावयः ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादावकृष्टास्ताः कार्य्याः स्नेहबस्तिषु देहिनाम् ॥ ४ ॥
उत्सृष्टानिलविण्मूत्रे नरे बस्तिं विधापयेत् ।
एतैर्हि विहतः स्नेहो नैवान्तः प्रतिपद्यते ॥ ५ ॥
स्नेहवस्तिविधेयस्तु नाविशुद्धस्य देहिनः ।
स्नेहवीर्य्यं तथा दत्ते देहं चानुविसर्पति ॥ ६ ॥
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि तैलानीह यथाक्रमम् ।
पानान्वासननस्येषु यानि हन्युर्गदान् बहून् ॥ ७ ॥
शटीपुष्करकृष्णाह्वामदनामरदारुभिः ।
शताह्वाकुष्ठयष्ट्याह्ववचाबिल्वहुताशनैः ॥ ८ ॥
सुपिष्टैर्द्विगुणं क्षीरं तैलं तोयचतुर्गुणम् ।
पक्त्वा बस्तौ विधातव्यं मूढवातानुलोमनम् ॥ ९ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषमानाहं विषमज्वरम् ।
कटीचूरुपृष्ठकोष्ठस्थान् वातरोगांश्च नाशयेत् ॥ १० ॥
वचापुष्करकुष्ठैलामदनामरसिन्धुजैः ।
काकोलीद्वययष्ट्याह्वमेदायुग्मनराधिपैः ॥ ११ ॥
पाठाजीवकजीवन्तीभार्गीचन्दनकट्फलैः ।
सरलागुरुबिल्वाम्बुवाजिगन्धाऽग्निवृद्धिभिः ॥ १२ ॥

---

१ पादैस्त्रिभिरवकृष्टा न्यूना इति पादावकृष्टाः, चतुर्भागावशिष्टा, इत्यर्थः । "उत्तमा स्यात्पलैः षड्भिर्मध्यमा स्यात् पलैस्त्रिभिः । पलार्ध्यर्धेन हीना स्यादुक्ता मात्राऽनुवासने ॥" इति भावमिश्रः । २ अनुवासनवस्तेः पूर्वकर्म निर्दिशति—उत्सृष्टेति । ३ प्रतिपद्यते = नैवान्तः प्रविशतीत्यर्थः । ४ अन्वासनम् = अनुवासनम् ।

५ अनुवासनार्थं शटयादितैलं निर्दिशति—शटीति । तैलमिदं प्रायशो वातरोगेषु । शटी = 'कचूर' इति ख्याता । पुष्करं = पुष्करमूलम्, कृष्णाह्वा = पिप्पली, मदनं = मदनफलम् । ६ हुताशनः = चित्रकः । ७ वचादिद्वितीयतैलं निर्दिशति—वचेति । इदमपि वातरोगेषु । अमरः = देवदारुः, सिन्धुजं = सैन्धवम् । ८ काकोलीद्वयं = काकोलीक्षीरकाकोलीति द्वितयम्, मेदायुग्मं = मेदामहामेदाऽऽख्यम्, नराधिपः = आरग्वधः । ९ सरला = त्रिवृत्, अगुरु = 'अगर' इति, अम्बु = 'नेत्रबाला' इति, वाजिगन्धा = 'असगन्ध' इति, अग्निवृद्धिः = 'चीता' इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विडङ्गारग्वधश्यामात्रिवृन्मागधिकार्धिभिः।
पिष्टैस्तैलं पचेत् क्षीरे[2] पञ्चमूलरसान्वितम् ॥ १३ ॥
गुल्मानाहाग्निषङ्गार्शोग्रहणीमूत्रसङ्गिनाम्[3]।
अन्वासनविधौ युक्तं शस्यतेऽनिलरोगिणाम् ॥ १४ ॥
चित्रकातिविषापाठादन्तीबिल्वबचामिषैः[4]।
सरलांशुमतीरास्नानीलिनीचतुरङ्गुलैः[5] ॥ १५ ॥
चव्याजमोदकाकोलीमेदायुग्ममसुरद्रुमैः[6]।
जीवकर्षभवर्षाभूबस्तगन्धाशताह्वयैः[7] ॥ १६ ॥
रेण्वश्वगन्धामञ्जिष्ठाशटीपुष्करतस्करैः[8][9]।
सक्षीरं विपचेत्तैलं मारुतामयनाशनम् ॥ १७ ॥
गृध्रसीखञ्ज[10]कुब्जाढ्यमूत्रोदावर्त्तरोगिणाम्[11]।
शस्यतेऽल्पबलाग्नीनां बस्तावाशु नियोजितम् ॥ १८ ॥
[12][13]भूतिकैरण्डवर्षाभूरास्नावृषकरोहिषैः[13]।
[14]दशमूलसहाभार्गीषड्ग्रन्थाऽमरदारुभिः ॥ १९ ॥
बलानागबलामूर्वावाजिगन्धाऽमृताह्वयैः[15]।
[16]सहाचरवरीविश्वाकाकनासाविदारिभिः ॥ २० ॥

---

१ मागधिका=पिप्पली, ऋद्धिः वृद्धिश्चेति स्वनाम्ना प्रसिद्धम्। २ क्षीरमत्र तैलसमम्। पञ्चमूलं बिल्वादिपञ्चमूलं तस्य रसेन क्वाथेन चतुर्गुणेनान्वितमित्यर्थः। ३ अग्निषङ्गः=अग्निमान्द्यम्, मूत्रसङ्गः=मूत्रकृच्छ्रम्।

४ चित्रकादितृतीयतैलं निर्दिशति—**चित्रकेति**। एतत्तैलमपि वातरोगेषु। ५ आमिषं=गुग्गुलुः, जटामांसीति हाराणचन्द्रः। ६ अंशुमती=शालपर्णी। ७ मेदायुग्मं=मेदा महामेदा चेति। एतदभावे अश्वगन्धा सारिवा च देया। ८ वर्षाभूः=रक्तपुनर्नवा, बस्तगन्धा=अजगन्धा। ९ रेणुः=रेणुका, निर्गुण्डीबीजमित्यर्थः। १० तस्करः=चोरपुष्पी। ११ आढ्यः=आढ्यवातः, ऊरुस्तम्भ इति यावत्।

१२ भूतिकादिचतुर्थतैलमभिधत्ते—**भूतिकेति**। प्रायशो वातरोगेषु तैलमिदम्। भूतिकं=कत्तृणम्, 'स्याद् भूतिकं तु भूनिम्बे दीप्यभूस्तृणकत्तृणे' इति मेदिनी। भूतिकं यमानीति सुश्रुतार्थसन्दीपनम्। १३ रोहिषः=रोहितृणम्, गन्धतृणमिति यावत्। १४ सहा=मुद्गपर्णी। १५ अमृताऽऽह्वया=गुडूची। १६ सहाचरः=नीलझिण्टी, वरी=शतावरी, नामैकदेशे नाममात्रग्रहणात्। विश्वा=शुण्ठी, काकनासा=वायसफला।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यवमाषातसीकोलकुलत्थैः क्वथितैः शृतम् ।
जीवनीयप्रतीवापं तैलं क्षीरचतुर्गुणम् ॥ २१ ॥
जङ्घोरुत्रिकपार्श्वांसबाहुमन्याशिरःस्थितान् ।
हन्याद्वातविकारांस्तु बस्तियोगैर्निषेवितम् ॥ २२ ॥
जीवन्त्यतिबलामेदाकाकोलीद्वयजीवकैः ।
ऋषभातिविषाकृष्णाकाकनासावचाऽमरैः ॥ २३ ॥
रास्नामदनयष्ट्याह्वसरलाऽभीरुचन्दनैः ।
स्वयङ्गुप्ताशटीशृङ्गीकलसीसारिवाद्वयैः ॥ २४ ॥
पिष्टैस्तैलघृतं पक्वं क्षीरेणाष्टगुणेन तु ।
तच्चानुवासने देयं शुक्राग्निबलवर्धनम् ॥ २५ ॥
बृंहणं वातपित्तघ्नं गुल्मानाहहरं परम् ।
नस्ये पाने च संयुक्तमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ २६ ॥
मधुकोशीरकाश्मर्य्यकटुकोत्पलचन्दनैः ।
श्यामापद्मकजीमूतशक्राह्वाऽतिविषाऽम्बुभिः ॥ २७ ॥
तैलपादं पचेत् सर्पिः पयसाऽष्टगुणेन च ।
न्यग्रोधादिगणक्वाथयुक्तं बस्तिषु योजितम् ॥ २८ ॥
दाहासृग्दरवीसर्पवातशोणितविद्रधीन् ।
पित्तरक्तज्वराद्यांश्च हन्यात् पित्तकृतान् गदान् ॥ २९ ॥

---

१ "जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा काकोली क्षीरकाकोली मुद्गपर्णीमाषपर्ण्यौ जीवन्ती मधुकमिति दशेमानि जीवनीयानि भवन्ति" इति चरकः ।

२ जीवन्त्यादिपञ्चमं तैलमभिदधाति—**जीवन्तीति** । 'जीवन्तो' इति नाम्नैव ख्याता । ३ अमरः=देवदारुः । ४ अभीरुः=शतावरी । ५ स्वङ्गुप्ता=आत्मगुप्ता, 'केवांछ' इत्युद्घुष्यते । कलसी=पृश्निपर्णी । जीवन्त्यादितैलमिदं पित्तरक्तरोगादितेषु बोद्धव्यम् । ६ मधुकादिषष्ठतैलं ब्रवीति—**मधुकेति** । मधुकः='मुलहटी' इति ख्यातः । ७ जीमूतः='मोथा' इति, अतिविषा='अतीस' इति बोध्या । अम्बु='नेत्रवाला' इति बोध्यम् । ८ तैलस्य पादश्चतुर्थांशो यस्मिन् सर्पिषि तत्तैलपादम् । ९ न्यग्रोधादिगणो द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः । इदं मधुकादितैलमपि पित्तरक्तरोगादितेषु बोध्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृणालोत्पलशालूकसारिवाद्वयकेशरैः ।
चन्दनद्वयभूनिम्बपद्मबीजकसेरुकैः ॥ ३० ॥
पटोलकटुकारक्तागुन्द्रापर्पटवासकैः ।
पिष्टैस्तैलमिदं पक्वं तृणमूलरसेन च ॥ ३१ ॥
क्षीरद्विगुणसंयुक्तं बस्तिकर्मणि योजितम् ।
नस्येऽभ्यञ्जनपाने वा हन्यात् पित्तगदान् बहून् ॥ ३२ ॥
त्रिफलाऽतिविषामर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः ।
निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ ३३ ॥
गुडूचीन्द्रसुराकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः ।
तैलमेभिः समैः पक्वं सुरसादिरसाप्लुतम् ॥ ३४ ॥
पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यबस्तिषु योजितम् ।
स्थूलताऽऽलस्यकण्ड्वादीन् जयेत्कफकृतान् गदान् ॥ ३५ ॥
पाठाऽजमोदाशार्ङ्गेष्टापिप्पलीद्वयनागरैः ।
सरलाऽगुरुकालीयभार्गीचव्यामरद्रुमैः ॥ ३६ ॥
मरिचैलाऽभयाकट्वीशटीग्रन्थिककट्फलैः ।
तैलमेरण्डतैलं वा पक्वमेभिः समायुतम् ॥ ३७ ॥
वल्लीकण्टकमूलाभ्यां क्वाथेन द्विगुणेन च ।

---

१ मृणालादिसप्तमतैलमभिदधाति—मृणालेति । शालूकः = कमलकन्दः । २ भूनिम्बः = 'चिरायता' इति प्रसिद्धः । ३ रक्ता = मञ्जिष्ठा, गुन्द्रा = भद्रमुस्तकः । ४ तृणमूलं कुशादितृणपञ्चमूलं तस्य रसेन क्वाथेनेत्यर्थः । इदमपि पित्तरक्तरोगादितेषु बोध्यम् । ५ त्रिफलाद्यष्टमतैलं निर्दिशति—त्रिफलेति । "एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ बिभीतकौ । चत्वार्यामलकान्येवं त्रिफलैषा प्रकीर्तिता ।" इति शार्ङ्गधरः । ६ षड्ग्रन्था = 'पिपरामूल' इति ख्याता, सप्तपर्णः = 'सतवन-सातला' इति ख्यातः । निशाद्वयं = हरिद्राद्वितयम् । ७ इन्द्रसुरा = इन्द्रवारुणी, कृष्णा = पिप्पली । ८ सुरसादिगणो द्रव्यसङ्ग्रहणीये द्रष्टव्यः । त्रिफलादितैलमिदं कफग्रस्तेषु, एवमनन्तरोक्तपाठादितैलमपि । ९ पाठादिनवमतैलमाह—पाठेति । शार्ङ्गेष्टा = गुञ्जा । १० अमरद्रुमः = देवदारुः । ११ कट्वी = कटुका, ग्रन्थिकः = 'पिपरामूल' इति ख्यातः । १२ विदार्यादिपञ्चमूलं वल्लीसंज्ञकं, करमर्दादिपञ्चमूलं कण्टकसंज्ञं च द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायेऽवलोकनीयम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हन्यादन्वासनैदत्तं सर्वान् कफकृतान् गदान् ॥ ३८ ॥
विडङ्गोदीच्यसिन्धूत्थशटीपुष्करचित्रकैः ।
कट्फलातिविषाभार्गीवचाकुष्ठसुराह्वयैः ॥ ३९ ॥
मेदामदनयष्ट्याह्वश्यामानिचुलैनागरैः ।
शताह्वानीलिनीरास्नाकलसीवृषरेणुभिः ॥ ४० ॥
बिल्वाजमोदकृष्णाह्वादन्तीचव्यनराधिपैः ।
तैलमेरण्डतैलं वा मुष्ककादिरसाप्लुतम् ॥ ४१ ॥
प्लीहोदावर्त्तवातासृग्गुल्मानाहकफामयान् ।
प्रमेहशर्कराऽर्शांसि हन्यादाश्वनुवासनैः ॥ ४२ ॥
अशुद्धमपि वातेन केवलेनातिपीडितम् ।
अहोरात्रस्य कालेषु सर्वेष्वेवानुवासयेत् ॥ ४३ ॥
रूक्षस्य बहुवातस्य द्वौ त्रीनप्यनुवासनम् ।
दत्त्वा स्निग्धतनुं ज्ञात्वा ततः पश्चान्निरूहयेत् ॥ ४४ ॥
अस्निग्धमपि वातेन केवलेनातिपीडितम् ।
स्नेहप्रगाढैर्मतिमान्निरूहैः समुपाचरेत् ॥ ४५ ॥
अथ सम्यङ्निरूढं तु वातादिष्वनुवासयेत् ।
बिल्वयष्ट्याह्वमदनफलतैलैर्यथाक्रमम् ॥ ४६ ॥
रात्रौ बस्तिं न दद्यात्तु दोषोत्क्लेशो हि रात्रिजः ।

---

१ विडङ्गादिदशमतैलमभिधत्ते—**विडङ्गेति** । विडङ्गादितैलमिदं कफभूयिष्ठे वाते प्रयोज्यम् । उदीच्यं = सुगन्धबाला, सिन्धूत्थं = सैन्धवम् । २ निचुलः = जलवेतसः । ३ कलसी = पृश्निपर्णी । ४ नराधिपः = आरग्वधः । ५ मुष्ककादिद्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तो गणः । ६ वातातिकोपेऽशुद्धस्याप्यनुवासनविधिमुपदिशति—**अशुद्धमिति** । अनिर्हृतमलादिनाऽशुद्धमित्यर्थः । ७ पूर्वाह्णादिषु कालेष्वित्यर्थः । ८ द्वौ त्रीन् वारानित्यर्थः । ९ निरूहणानन्तरकर्मनिर्दिशति—**अथेति** । १० क्रममनतिक्रम्येति यथाक्रमम् । यथा—वाते बिल्वतैलं, पित्ते यष्ट्याह्वतैलं, श्लेष्मणि मदनफलतैलमित्यर्थः । ११ रात्रौ बस्तिदानं निषेधति—**रात्राविति** । १२ दोषोत्क्लेशः = दोषधातुमलेषु विक्लेदनलक्षण उत्क्लेशः । तदुक्तम्—"अविशुद्धे तु हृदये निशि क्लिन्नेषु धातुषु । विदग्धेऽन्नरसे स्रोतस्सूपलिप्तेषु देहिनाम् । व्यापारेभ्यो निवृत्तानां दोषोत्क्लेशो भवेदिति ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नेहवीर्ययुतः कुर्यादाध्मानं गौरवं ज्वरम् ॥ ४७ ॥
अह्नि[1] स्थानस्थिते दोषे वह्नौ चान्नरसान्विते ।
स्फुटस्रोतोमुखे देहे स्नेहौजः[2] परिसर्पति ॥ ४८ ॥
[3]पित्तोऽधिके कफे क्षीणे रूक्षे वातरुगर्दिते ।
नरे रात्रौ[4] च दातव्यं काले चोष्णेऽनुवासनम् ॥ ४९ ॥
उष्णे पित्ताधिके वाऽपि दिवा दाहादयो गदाः ।
सम्भवन्ति यतस्तस्मात् प्रदोषे योजयेद्भिषक् ॥ ५० ॥
शीते वसन्ते च दिवा ग्रीष्मप्रावृड्घनात्यये ।
स्नेह्यो दिनान्ते पानोक्तान्[5] दोषान् परिजिहीर्षता ॥ ५१ ॥
अहोरात्रस्य कालेषु सर्वेष्वेवानिलाधिकम् ।
तीव्रायां रुजि जीर्णान्नं भोजयित्वाऽनुवासयेत् ॥ ५२ ॥
न[6] चाभुक्तवतः स्नेहः प्रणिधेयः कथञ्चन ।
शुद्धत्वाच्छून्यकोष्ठस्य स्नेह ऊर्ध्वं समुत्पतेत्[7] ॥ ५३ ॥
सदा[8]ऽनुवासयेच्चापि भोजयित्वाऽऽर्द्रपाणिनम् ।
ज्वरं विदग्धभुक्तस्य कुर्य्यात् स्नेहः प्रयोजितः ॥ ५४ ॥
न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वाऽनुवासयेत् ।
मदं मूर्च्छां च जनयेद् द्विधास्नेहः प्रयोजितः ॥ ५५ ॥
रूक्षं भुक्तवतो ह्यन्नं बलं वर्णं च हापयेत् ।
युक्तं[9] स्नेहमतो जन्तुं भोजयित्वाऽनुवासयेत् ॥ ५६ ॥

---

१ दिवा बस्तिदानगुणं सहेतुकं दर्शयति—**अह्नीति** । २ स्नेहौजः=स्नेहबलम्, परिसर्पति=अनुक्रामति ।

३ प्रागुक्तस्य रात्रिनिषिद्धस्य बस्तिदानस्यापवादमभिदधाति—**पित्त इति** । ४ रात्रौ=प्रथमप्रहरे इत्यर्थः । ५ पानोक्तान्=प्राक् स्नेहौपयौगिकाध्याये "वातपित्ताधिकस्योष्णे" इत्यादिना स्नेहपानाभिहितान्, परिजिहीर्षता=परिहर्तुमिच्छतेत्यर्थः । तन्त्रान्तरे—"शीतकाले दिवा स्नेहमुष्णकाले विवेन्निशि । वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ॥" इति । ६ भोजनं विना बस्तिकर्मणो निषेधं दर्शयति—**नेति** । ७ समुत्पतेत्=ऊर्ध्वं गच्छेत् । ८ भोजनोत्तरमविलम्बितमनुवासनार्थमुपदिशति—**सदेति** । ९ युक्तस्नेहं=किञ्चित्स्नेहम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूषक्षीररसैस्तस्माद् यथाव्याधिमवेक्ष्य वा[1] ।
यथोचितात् पादहीनं[2] भोजयित्वाऽनुवासयेत् ॥ ५७ ॥
अथानुवास्यं[3] स्वभ्यक्तमुष्णाम्बुस्वेदितं शनैः ।
भोजयित्वा यथाशास्त्रं कृतचङ्क्रमणं ततः ॥ ५८ ॥
विसर्ज्य च शकृन्मूत्रं योजयेत् स्नेहबस्तिना ।
प्रणिधानविधानं[4] तु निरूहे सम्प्रवक्ष्यते ॥ ५९ ॥
ततः[5] प्रणिहितस्नेह उत्तानो वाक्छतं भवेत् ।
प्रसारितैः सर्वगात्रैस्तथा वीर्यं विसर्पति ॥ ६० ॥
ताडयेत्[6] तलयोरेनं त्रींस्त्रीन् वारान् शनैः शनैः ।
स्फिचोश्चैनं ततः शय्यां त्रीन् वारानुत्क्षिपेत्[7] ततः ॥ ६१ ॥
एवं प्रणिहिते बस्तौ मन्दायासोऽथ मन्दवाक् ।
स्वास्तीर्णे शयने काममासीताचारिके रतः ॥ ६२ ॥
सं[8] तु सैन्धवचूर्णेन शताह्वेन च योजितः ।
देयः सुखोष्णश्च तथा निरेति सहसा सुखम् ॥ ६३ ॥
यस्यानुवासनो[9] दत्तः सकृदन्वक्ष[10]मात्रजेत् ।
अत्यौष्ण्यादतितैक्ष्ण्याद्वा वायुना वा प्रपीडितः ॥ ६४ ॥
सवातोऽधिकमात्रो वा गुरुत्वाद् वा सभेषजः ।
तस्यान्योऽल्पतरो देयो न हि स्निह्यत्यतिष्ठति[11] ॥ ६५ ॥

---

१ यथाव्याधि = व्याध्यनुरूपमित्यर्थः । २ "अर्धहीनं त्रिभागं वा भोजयित्वाऽनुवासयेत्" इति तन्त्रान्तरोक्तत्वात् पादेन पादाभ्यां पादैर्वा हीनं पादहीनम् ।

३ सङ्क्षेपेणानुवासनविधिमभिधत्ते—अथेति । ४ स्नेहबस्तिप्रणिधानविधानमित्यर्थः । ५ प्रणिहितस्नेहस्य पश्चात्कर्म प्रतिपादयति—तत इति । ६ ताडयेत्=स्नेहस्य सद्योबहिरागमननिवारणाय हन्यादित्यर्थः । स्नेहस्य शीघ्रागमनरक्षार्थमेतद्विधानं चरकेऽप्युक्तम्—"ईषच्च पादाङ्गुलियुग्ममाञ्छेदुत्तानदेहस्य तलौ प्रमृज्यात् । स्नेहेन पार्ष्ण्यङ्गुलिपिण्डिकाश्च ये चास्य गात्रावयवा रुगार्ताः ॥ तांश्चावमृद्नीत सुखं ततश्च निद्रामुपासीत कृतोपधानः ।" इति । तलयोः=हस्तपादतलयोः ।

७ उत्क्षिपेत्=आतुरेण सहोर्ध्वं नयेत् । ८ सः=स्नेहः । ९ शीघ्रं प्रत्यावृत्तेऽनुवासने चिकित्सामाह—यस्येति । १० अक्षस्य यन्त्रस्य अनु पश्चादित्यन्वक्षम्, तत्क्षणादिति तात्पर्यम् । ११ अतिष्ठति स्नेहे न हि स्निह्यतीत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्टब्धानिलविण्मूत्रः स्नेहहीनेऽनुवासने ।
दाहक्लमप्रवाहार्त्तिकरश्चात्यनुवासनः ॥ ६६ ॥
सानिलः[1] सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु ।
ओषचोषौ विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः[2] ॥ ६७ ॥
जीर्णान्नमथ सायाह्ने[3] स्नेहे प्रत्यागते पुनः ।
लघ्वन्नं भोजयेत् क्षामं दीप्ताग्निस्तु नरो यदि ॥ ६८ ॥
प्रातरुष्णोदकं देयं धान्यनागरसाधितम् ।
तेनास्य दीप्यते वह्निर्भक्ताकाङ्क्षा च जायते ॥ ६९ ॥
स्नेहबस्तिक्रमेष्वेवं[4] विधिमाहुर्मनीषिणः ।
अनेन विधिना षड् वा सप्त वाऽष्टौ नवैव वा ॥ ७० ॥
विधेया बस्तयस्तेषामन्तरा तु निरूहणम्[5] ।
दत्तस्तु प्रथमो बस्तिः स्नेहयेद्बस्तिवङ्क्षणौ ॥ ७१ ॥
सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु मूर्द्धस्थमनिलं जयेत् ।
जनयेद् बलवर्णौ च तृतीयस्तु प्रयोजितः ॥ ७२ ॥
रसं चतुर्थो रक्तन्तु पञ्चमः स्नेहयेत्तथा ।
षष्ठस्तु स्नेहयेन्मांसं मेदः सप्तम एव च ॥ ७३ ॥
अष्टमो नवमश्चास्थि मज्जानं च यथाक्रमम् ।
एवं शुक्रगतान्[6] दोषान् द्विगुणः साधु साधयेत् ॥ ७४ ॥

---

१ सम्यगनुवासितस्य लक्षणं वक्ति—सानिल इति । २ सायाह्ने, न तु पूर्वाह्णे इति भावः । ३ वक्ष्यमाणस्नेहबस्तिक्रमेष्वित्यर्थः । ४ "त्रीन् पञ्च वाऽऽहुश्चतुरोऽथ षड् वा वातादिकानामनुवासनीयान् । स्नेहान् प्रदायाशु भिषग् विदध्यात् स्रोतोविशुद्ध्यर्थमतो निरूहान् ॥" इति चरकः ।

५ स्नेहबस्तेः प्रथमादिदानेन कार्यं निरूपयति—दत्तस्त्विति । दोषभेदेनानुवासनबस्तिनियममाह चरकः—"एकं तथा त्रीन् कफजे विकारे पित्तात्मके पञ्च तु सप्त वाऽपि । वाते नवैकादश वा पुनर्वा बस्तीनयुग्मान् कुशलो विदध्यात् ॥" इति । जतूकर्णेऽपि—"निरूहे व्युषिते भुक्तवतोऽनुवासनं पर द्वितीयेऽहनि पञ्चमे वा तथैकादशाहेऽपकर्षतो द्वित्रिचतुरादिर्वातादिषूच्यते ।" इति । ६ व्याधिसमुद्देशीयोक्तान् शुक्रगतान् दोषानित्यर्थः । द्विगुणः=अष्टादशसङ्ख्यः स्नेहबस्तिः, साधु, साधयेत्=स्नेहयेदित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टादशाष्टादशकान् बस्तीनां यो निषेवते ।
यथोक्तेन विधानेन परिहारक्रमेण च ॥ ७५ ॥
स कुञ्जरबलोऽश्वस्य जवैस्तुल्योऽमरप्रभः ।
वीतपाप्मा श्रुतधरः सहस्रायुर्नरो भवेत् ॥ ७६ ॥
स्नेहबस्तिं निरूहं वा नैकमेवातिशीलयेत् ।
स्नेहादग्निवधोत्क्लेशौ निरूहात् पवनाद्भयम् ॥ ७७ ॥
तस्मान्निरूढोऽनुवास्यो निरूह्यश्चानुवासितः ।
नैवं पित्तकफोत्क्लेशौ स्यातां न पवनाद्भयम् ॥ ७८ ॥
रूक्षाय बहुबाताय स्नेहबस्तिं दिने दिने ।
दद्याद्वैद्यस्ततोऽन्येषामग्न्याबाधभयात् त्र्यहात् ॥ ७९ ॥
स्नेहोऽल्पमात्रो रूक्षाणां सर्वकालमनत्ययः ।
तथा निरूहः स्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते ॥ ८० ॥
अतः ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि व्यापदः स्नेहबस्तिजाः ।
बलवन्तो यदा दोषाः कोष्ठे स्युरनिलादयः ॥ ८१ ॥
अल्पवीर्यं तदा स्नेहमभिभूय पृथग्विधान् ।
कुर्वन्त्युपद्रवान् स्नेहः स चापि न निवर्त्तते ॥ ८२ ॥

---

१ अनुवासनफलं दर्शयति—**अष्टादशेति** । अष्टादशाष्टादशकान्=षट्त्रिंशत-मित्यर्थः । २ बस्तिविधानम्—"प्रक्षिप्य बस्तौ मथितं खजेन सुबद्धमुच्छ्वास्य च निर्वलीकम् । अङ्गुष्ठमध्येन मुखं पिधाय नेत्राग्रसंस्थामपनीय वर्तिम् ॥ तैलाक्तगात्रं कृतमूत्रविट्कं नातिक्षुधार्तं शयने मनुष्यम् । समेऽथवेषन्नतशीर्षके वा नात्युच्छ्रिते स्वास्तरणोपपन्ने ॥ सव्येन पार्श्वेन सुखं शयानं कृत्वर्जुदेहं स्वभुजोपधानम् । सङ्कोच्य सव्येतरदस्य सक्थि वामं प्रसार्य प्रणयेत्ततस्तम् ॥ स्निग्धे गुदे नेत्रचतुर्थभागं स्निग्धं शनैर्ऋजुवनुपृष्ठवंशम् । अकम्पनावेपनलाघवादीन् पाण्योर्गुणांश्चापि विदर्शयंस्तम् ॥ प्रपीड्य चैकाग्रहणेन दत्तं नेत्रं शनैरेव ततोऽपकर्षेत् ।" इति चरकोक्तमपि बोध्यम् । परिहारक्रमेण=आतुरोपद्रवीयोक्तपरिहारानुक्रमेण । ३ अनुवासननिरूहयोरेकस्यै-वातिशीलने दोषं दर्शयति=**स्नेहेति** । ४ स्नेहबस्तेरवस्थाविशेषेण प्रत्यहं विधि-मभिधत्ते—**रूक्षायेति** । ५ अग्न्याबाधभयात्=अग्निमान्द्यभीतेरित्यर्थः ।

६ अल्पमात्रः=पादहीनोऽर्धभागहीनो वेत्यर्थः । ७ वातादिदोषाभिभूतस्नेहबस्ति-व्यापदमाख्याति—**अत इति** । ८ सः=स्नेहः, न निवर्तते=न गच्छति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र वाताभिभूते तु स्नेहे मुखकषायता ।
जृम्भा वातरुजस्तास्ता वेपथुर्विषमज्वरः ॥ ८३ ॥
पित्ताभिभूते स्नेहे तु मुखस्य कटुता भवेत् ।
दाहस्तृष्णा ज्वरः स्वेदो नेत्रमूत्राङ्गपीतता ॥ ८४ ॥
श्लेष्माभिभूते स्नेहे तु प्रसेको मधुरास्यता ।
गौरवं छर्दिरुच्छ्वासः[1] कृच्छ्राच्छीतज्वरोऽरुचिः ॥ ८५ ॥
तत्र[2] दोषाभिभूते तु स्नेहे बस्तिं निधापयेत् ।
यथास्वं[3] दोषशमनान्युपयोज्यानि यानि च ॥ ८६ ॥
अत्यशितेऽन्नाभिभवात्[4] स्नेहो नैति यदा तदा ।
गुरुरामाशयः शूलं वायोश्चाप्रतिसञ्चरः ॥ ८७ ॥
हृत्पीडा मुखवैरस्यं श्वासो मूर्च्छा भ्रमोऽरुचिः ।
तत्रापतर्पणस्यान्ते दीपनो[5] विधिरिष्यते ॥ ८८ ॥
अशुद्धस्य[6] मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः ।
तदाऽङ्गसदनाध्मानौ श्वासः शूलं च जायते ॥ ८९ ॥
पक्वाशयगुरुत्वं च तत्र दद्यान्निरूहणम् ।
अतितीक्ष्णौषधैरेव सिद्धं चाप्यनुवासनम् ॥ ९० ॥
शुद्धस्य दूरानुसृते[7] स्नेहे स्नेहस्य दर्शनम् ।
गात्रेषु सर्वेन्द्रियाणामुपलेपोऽवसादनम्[8] ॥ ९१ ॥
स्नेहगन्धि[9] मुखं तत्र कासश्वासावरोचकः ।
अतिपीडितवत्तत्र सिद्धिरास्थापनं तथा ॥ ९२ ॥

---

१ उच्छ्वासः = ऊर्ध्वश्वासः । २ पूर्वोक्तव्यापच्चिकित्सामाचष्टे—तत्रेति ।
३ यथास्वं = यथादोषप्रत्यनीकं स्नेहबस्तिं निरूपस्तिं वेत्यर्थः ।

४ अत्याशिते स्नेहबस्तिव्यापदं तच्चिकित्सां च दर्शयति—अत्याशित इति ।
५ दीपनः = अग्निसन्दीपनः । ६ अशुद्धस्यानुवासनदाने व्यापदं तच्चिकित्सां चाभिदधाति—अशुद्धस्येति । अशुद्धस्य = अकृतविरेचननिरूहस्येत्यर्थः । ७ शुद्धस्य दूरानुसृते स्नेहे व्यापदं तच्चिकित्सां च वक्ति—शुद्धस्येति । दूरानुसृते = आमाशयं प्रविष्टे । ८ उपलेपः = मलवृद्धिः । ९ स्नेहस्येव गन्धोऽस्येति स्नेहगन्धि ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]अस्विन्नस्याविशुद्धस्य स्नेहोऽल्पः सम्प्रयोजितः ।
शीतो मृदुश्च नाभ्येति ततो मन्दं प्रवा[2]हते ॥ ९३ ॥
विबन्धगौरवाध्मानशूलाः पक्वाशयं प्रति ।
तत्रास्थापनमेवाशु प्रयोज्यं सानुवासनम् ॥ ९४ ॥
अल्पं[3] भुक्तवतोऽल्पो हि स्नेहो मन्दगुणस्तथा ।
दत्तो नैति क्लमोत्क्लेशौ भृशं चारं[4]तिमावहेत् ॥ ९५ ॥
तत्राप्यास्थापनं कार्य्यं शोधनीयेन बस्तिना ।
अन्वासनञ्च स्नेहेन शोधनीयेन शस्यते ॥ ९६ ॥
अहोरात्रादपि स्नेहः प्रत्यागच्छन्न दुष्य[5]ति ।
कुर्य्याद्धस्तिगुणांश्चापि जीर्णस्त्वल्पगुणो भवेत् ॥ ९७ ॥
यस्य[6] नोपद्रवं कुर्य्यात् स्नेहबस्तिरनिःसृतः ।
सर्वोऽल्पो वाऽऽवृतो रौक्ष्यादुपेक्ष्य[7]ः स विजानता ॥ ९८ ॥
अनाया[8]न्तं त्वहोरात्रात् स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ।
स्नेहबस्तावनायाते नान्य[9]ः स्नेहो विधीयते ॥ ९९ ॥
इत्युक्ता व्यापदः सर्वाः सलक्षणचिकित्सिताः ।
बस्तेरुत्तरसंज्ञस्य विधिं वक्ष्याम्यतः परम् ॥ १०० ॥
[10]चतुर्दशाङ्गुलं नेत्रमातुराङ्गुलसम्मितम् ।

---

१ अस्विन्नशुद्धयोरल्पादिस्नेहदाने व्यापदं तच्चिकित्सां च दर्शयति—**अस्विन्नस्येति** । २ प्रवाहते = प्रवाहिकाऽऽर्त इव मन्दवेगं प्रवर्तते इत्यर्थः । ३ अल्पभुक्तस्य मन्दगुणस्नेहदाने व्यापदं तच्चिकित्सां च निर्दिशति—**अल्पमिति** । ४ अरतिं = चेतसोऽनवस्थितिम् । 'स्वाभीष्टवस्त्वलाभेन चेतसो याऽनवस्थितिः । अरतिः सा'इति । ५ न दुष्यति = न व्यापदं करोति ।

६ अनुपद्रवकारिणः स्नेहबस्तेरनिस्सरणे उपेक्षाकरणार्थमुपदिशति—**यस्येति** । ७ उपेक्ष्यः = आनयनाय यत्नं न कुर्यादित्यर्थः । ८ सोपद्रवस्य स्नेहबस्तिविषये ब्रवीति—**अनायान्तमिति** । अनायान्तम् = अनागच्छन्तमित्यर्थः । ९ नान्यः = शोधनार्थं निरूहबस्तिरेव नेतर इत्यर्थः ।

१० उत्तरबस्तिनेत्रप्रमाणं प्रतिपादयति—**चतुर्दशेति** । वाग्भटे नेत्रस्य द्वादशाङ्गुलमेव मानमुक्तम्—"आतुराङ्गुलमानेन तन्नेत्रं द्वादशाङ्गुलम् । वृत्तं गोपुच्छवन्मूल-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालतीपुष्पवृन्ताग्रं छिद्रं सर्षपनिर्गमम् ॥ १०१ ॥
स्नेहप्रमाणं परमं प्रकुञ्चश्चात्र कीर्त्तितः ।
पञ्चविंशादधो मात्रां विदध्याद् बुद्धिकल्पिताम् ॥ १०२ ॥
निविष्टकर्णिकं मध्ये, नारीणां चतुरङ्गुले ।
मूत्रस्रोतः परीणाहं मुद्गवाहि दशाङ्गुलम् ॥ १०३ ॥
मेढ्रायामसमं केचिदिच्छन्ति खलु तद्विदः ।
तासामपत्यमार्गे तु निदध्याच्चतुरङ्गुलम् ॥ १०४ ॥
द्व्यङ्गुलं मूत्रमार्गे तु कन्यानां त्वेकमङ्गुलम् ।
विधेयं चाङ्गुलं तासां विधिवद्वक्ष्यते यथा ॥ १०५ ॥
स्नेहस्य प्रसृतं चात्र स्वाङ्गुलीमूलसम्मितम् ।
देयं प्रमाणं परममर्वाग्बुद्धिविकल्पितम् ॥ १०६ ॥
औरभ्रः शौकरो वाऽपि बस्तिराजश्च पूजितः ।
तदलाभे प्रयुञ्जीत गलचर्म तु पक्षिणाम् ॥ १०७ ॥
तस्यालाभे हतेः पादो मृदुचर्म ततोऽपि वा ।
अथातुरमुपस्निग्धं स्विन्नं प्रशिथिलाशयम् ॥ १०८ ॥

---

मध्ययोः कृतकर्णिकम् ॥ सिद्धार्थकप्रवेशाग्रं श्लक्ष्णं हैमादिसम्भवम् । कुन्दाश्वमारसुमनः पुष्पवृन्तोपमं दृढम् ॥" इति । सप्ताङ्गुलं प्रणिधानप्रमाणम्, तदाह चारपाणिः—"अङ्गुलान्यथ चत्वारि पञ्च षट् सप्त वा तथा । सप्ताङ्गुलं परं नेत्रं प्रणिधेयं भिषग्विदा ॥ हिंस्याद् बस्तिं नरं चेह प्रमाणादधिकं ततः ।" इति ।

१ उत्तरबस्तिद्रव्यमात्रामुपदिशति—**स्नेहेति** । प्रकुञ्चः=पलम्, चत्वारि तोलकानीत्यर्थः । २ अधः=अर्वागित्यर्थः । ३ स्त्रीणामुत्तरबस्तिनेत्रप्रमाणं दर्शयति—**नारीणामिति** । चतुरङ्गुले=चतुरङ्गुलावसाने । ४ परीणाहं=स्थौल्यम् । ५ स्त्रीणां मार्गभेदेन प्रणिधानविधिमभिधत्ते—**तासामिति** । ६ कन्यानाम्=अप्राप्तार्तवानामित्यर्थः । "मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमङ्गुलम्" इति वाग्भटः । ७ स्त्रीणामुत्तरबस्तिस्नेहमानमाह—**स्नेहस्येति** । प्रसृतमर्द्धाञ्जलिः । ८ स्वाङ्गुलीमूलसम्मितं प्रसृतं परममित्यर्थः । ९ स्त्रीणामुत्तरबस्तियोग्यबस्तिं निरूपयति—**औरभ्र इति** । १० गृध्रादिपक्षिणामित्यर्थः ।

११ पुरुषाणामुत्तरबस्तिप्रणिधानविधिमाख्याति—**अथेति** । १२ मलमूत्रनिर्गमेन शुद्धतया प्रशिथिलौ आशयौ यस्य तं प्रशिथिलाशयम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यवागूं सघृतक्षीरां पीतवन्तं यथाबलम् ।
निषण्णमाजानुसमे पीठे सोपाश्रये[1] समम् ॥ १०९ ॥
स्वभ्यक्तबस्तिमूर्द्धानं तैलेनोष्णेन मानवम् ।
ततः समं स्थापयित्वा नालं[2]मस्य प्रहर्षितम् ॥ ११० ॥
पूर्वं शलाकयाऽन्विष्य ततो नेत्रमनन्तरम् ।
शनैः शनैर्घृताभ्यक्तं विदध्यादङ्गुलानि षट् ॥ १११ ॥
मेढ्रायामसमं केचिदिच्छन्ति प्रणिधानकम् ।
ततोऽवपीडयेद्बस्तिं शनैर्नेत्रं च निर्हरेत् ॥ ११२ ॥
ततः प्रत्यागतस्नेहमपराह्णे विचक्षणः
भोजयेत् पयसा मात्रां यूषेणाथ रसेन वा ॥ ११३ ॥
अनेन विधिना दद्याद्बस्तींस्त्रींश्चतुरोऽपि[3] वा ।
[4]ऊर्द्ध्वजान्वै स्त्रियै दद्यादुत्तानायै विचक्षणः ॥ ११४ ॥
सम्यक्प्रपीडयेद्योनिं दद्यात् सुमृदुपीडितम् ।
त्रिकर्णिकेन नेत्रेण दद्याद्योनिमुखं प्रति ॥ ११५ ॥
गर्भाशयविशुद्ध्यर्थं स्नेहेन द्विगुणेन[5] तु ।
क्वाथप्रमाणं प्रसृतं स्त्रिया द्विप्रसृतं भवेत् ॥ ११६ ॥
कन्येतरस्याः, कन्यायास्तद्बद्बस्तिप्रमाणकम् ।
अप्रत्यागच्छति भिषक् बस्तावुत्तरसंज्ञिते ॥ ११७ ॥
भूयो बस्तिं निदध्यात्तु संयुक्तं शोधनैर्गणैः ।

---

१ उपाश्रयेण अवष्टम्भेन सहितः सोपाश्रयस्तस्मिन् । २ नालं=मेहनम् । ३ डल्हणः—प्राग्दत्तस्नेहप्रत्यागमने कालान्तरितस्तदहरेव त्रिश्चतुर्वा मात्रां वर्धयित्वा स्नेहो देयः । एवं त्रीणि दिनानि स्नैहिकमुत्तरबस्तिं दत्त्वाऽह्यहमेव विश्रम्य पुनस्त्र्यहं दद्यादाव्याधिनिवृत्तेः । तथा च वाग्भटः—"बस्तींस्त्रिरात्रमेवं च स्नेहमात्रां विवर्धयेत् । त्र्यहमेव च विश्रम्य प्रणिदध्यात् पुनस्त्र्यहम् ॥" इति ।

४ स्त्रीणामुत्तरबस्तिप्रणिधानविधानमभिधत्ते—ऊर्ध्वेति । स्त्रियै=प्राप्तार्तवायै इत्यर्थः । ५ स्वाङ्गुलीमूलसम्मितप्रसृतापेक्षया द्विगुणेनेत्यर्थः । ६ स्त्रीणां निरूहोत्तरबस्तिप्रमाणमाह—क्वाथेति । ७ तद्वत्=पुरुषवदित्यर्थः । ८ उत्तरबस्तौ अनागच्छति स्नेहे प्रत्यागमनोपायं निरूपयति—अप्रत्यागच्छतीति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुदे वर्त्तिं निदध्याद्वा शोधनद्रव्यसम्भृताम् ॥ ११८ ॥
प्रवेशयेद्वा मतिमान् बस्तिद्वारमथैषणीम् ।
पीडयेद्वाऽप्यधो नाभेर्बलेनोत्तरमुष्टिना ॥ ११९ ॥
आरग्वधस्य पत्रैस्तु निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ।
कुर्य्याद्गोमूत्रपिष्टेषु वर्त्तीर्वाऽपि ससैन्धवाः ॥ १२० ॥
मुद्गैलासर्षपसमाः प्रविभज्य वयांसि तु ।
बस्तेरागमनार्थाय ता निदध्याच्छलाकया ॥ १२१ ॥
आगारधूमबृहतीपिप्पलीफलसैन्धवैः ।
कृता वा शुक्तगोमूत्रसुरापिष्टैः सनागरैः ॥ १२२ ॥
अनुवासनसिद्धञ्च वीक्ष्य कर्म प्रयोजयेत् ।
शर्करामधुमिश्रेण शीतेन मधुकाम्बुना ॥ १२३ ॥
दह्यमाने तदा बस्तौ दद्याद्वस्तिं विचक्षणः ।
क्षीरवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन च ॥ १२४ ॥
शुक्रं दुष्टं शोणितं चाङ्गनानां पुष्पोद्रेकं तस्य नाशञ्च कष्टम् ।
मूत्राघातान्मूत्रदोषान् प्रवृद्धान् योनिव्याधिं संस्थितिं चापरायाः १२५
शुक्रोत्सेकं शर्करामश्मरीञ्च शूलं बस्तौ वङ्क्षणे मेहने च ।
घोरानन्यान् बस्तिजांश्चापि रोगान् हित्वा मेहानुत्तरो हन्ति बस्तिः १२६
सम्यग्दत्तस्य लिङ्गानि व्यापदः क्रम एव च ।
बस्तेरुत्तरसंज्ञस्य समानं स्नेहबस्तिना ॥ १२७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थानेऽनुवासनोत्तरबस्तिचिकित्सितं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

---

१ शोधनद्रव्यसम्भृतां=विरेचनद्रव्यनिर्मिताम् । २ उत्तरमुष्टिना=मुष्टेरग्रभागेनेत्यर्थः । ३ निदध्यात् = स्नेहापकर्षणार्थं प्रवेशयेदित्यर्थः । ४ फलं=मदनफलम् । ५ मुद्गादिप्रमाणा कृता वर्तिरित्यर्थः । ६ स्फिक्ताडनादिकं कर्मेत्यर्थः । ७ बस्तिदाहे चिकित्सां दर्शयति—शर्करेति ।

८ मधुकाम्बुना = मधुयष्टिकाथेन । अत्र योगत्रयम् । त्रिष्वपि 'शर्करामधुमिश्रेण' इत्यस्य सम्बन्धः ९ उत्तरबस्तिफलमभिदधाति—शुक्रमिति । पुष्पोद्रेकः=ऋतोरसमये प्रवृत्तिः । १० संस्थितिः = निर्गमावरोधः । ११ क्रमः=चिकित्सेत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तत्रिंशत्तमोऽध्याय

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## अष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो निरूहक्रमचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अथानुवासितमास्थापयेत् । स्वभ्यक्तस्विन्नशरीरमुत्सृष्टबहिर्वेगमवाते शुचौ वेश्मनि मध्याह्ने प्रततायां शय्यायामधःसुपरिग्रहायां श्रोणीप्रदेशव्यूढायामनुपधानायां वामपार्श्वशायिनमाकुञ्चितदक्षिणसक्थिमितरप्रसारितसक्थिं सुमनसं जीर्णान्नं वाग्यतं सुनिषण्णदेहं विदित्वा, ततो वामपादस्योपरि नेत्रं कृत्वेतरपादाङ्गुष्ठाङ्गुलिभ्यां कर्णिकामुपरि निष्पीडय, सव्यपाणिकनिष्ठिकाऽनामिकाभ्यां बस्तेर्मुखार्द्धं सङ्कोच्य, मध्यमाप्रदेशिन्यङ्गुष्ठैरर्द्धन्तु विवृतास्यं कृत्वा, बस्तावौषधं प्रक्षिप्य, दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठप्रदेशिनीभ्यां चानुसिक्तमनायतमबुद्बुदमसङ्कुचितमवातमौषधासन्नमुपसङ्गृह्य, पुनरितरेण गृहीत्वा दक्षिणेनावसिञ्चेत् । ततः सूत्रेणौषधान्ते द्विस्त्रिर्वाऽऽवेष्टय बध्नीयात् । अथ दक्षिणेनोत्तानेन पाणिना बस्तिं गृहीत्वा वामहस्तमध्यमाङ्गुलिप्रदेशिनीभ्यां नेत्रमुपसङ्गृह्याङ्गुष्ठेन नेत्रद्वारं पिधाय, घृताभ्यक्ताग्रनेत्रं घृताक्तगुदाय प्रयच्छेदनुपृष्ठवंशं सममुन्मुखमाकर्णिकं नेत्रं प्रणिधत्स्वेति ब्रूयात् ॥ ३ ॥

बस्तिं सव्ये करे कृत्वा दक्षिणेनावपीडयेत् ।
एकेनैवावपीडेन न द्रुतं न विलम्बितम् ॥ ४ ॥

ततो नेत्रमपनीय त्रिंशन्मात्राः पीडनकालादुपेक्ष्योत्तिष्ठेत्याः

---

**अष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।**

१ "कषायक्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते" निरूहस्य क्रमोऽनुक्रमः स एव चिकित्सितमिति निरूहक्रमचिकित्सितम् । २ निरूहप्रणयनविधानमभिधत्ते—स्वभ्यक्तेति । ३ प्रततायां=स्तब्धायाम् ४ आशयद्वारस्य वामपार्श्वमाश्रयित्वादिति सारम् । ५ 'वामं शरीरे सव्यं स्यात्' इत्यमरः । ६ अनायतं=दीर्घतारहितम् । ७ अवातं=भेषजप्रदानेन निस्सारितवातम् । ८ इतरेण=वामपाणिना । ९ नेत्रं प्रणिधत्स्व प्रवेशयेत्यातुरं प्रति भिषग् ब्रूयादिति सम्बन्धः ।

१० मात्रालक्षणम्—"कालेन यावता पाणिः पर्येति जानुमण्डले । सा मात्रा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुरं ब्रूयात् । अथातुरमुपवेशयेदुत्कुटुकं बस्त्यागमनार्थम् । निरूह-प्रत्यागमनकालस्तु मुहूर्त्तौ[1] भवति ॥ ५ ॥

अनेन विधिना बस्तिं दद्याद्बस्तिविशारदः ।
द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथार्थतः ॥ ६ ॥
सम्यङ् निरूढलिङ्गे तु प्राप्ते बस्तिं निवारयेत् ।
विशेषात्[2] सुकुमाराणां हीन एव क्रमो हितः ॥ ७ ॥
अपि हीनक्रमं कुर्यान्न तु कुर्यादतिक्रमम् ।
यस्य[3] स्याद् बस्तिरल्पोऽल्पवेगो हीनमलानिलः ॥ ८ ॥
दुर्निरूढः स विज्ञेयो मूत्रात्यरुचिजाड्यवान् ।
यान्[4]येव प्राङ् मयोक्तानि लिङ्गान्यतिविरेचिते[5] ॥ ९ ॥
तान्येवातिनिरूढेऽपि विज्ञेयानि विपश्चिता ।
यस्य[6] क्रमेण गच्छन्ति विट्पित्तकफवायवः ॥ १० ॥
लाघवं चोपजायेत सुनिरूढं तमादिशेत् ।
सुनिरूढं[7] ततो जन्तुं स्नातवन्तं तु भोजयेत् ॥ ११ ॥
पित्तश्लेष्मानिलाविष्टं क्षीरयूषरसैः क्रमात् ।
सर्वं वा जाङ्गलरसैर्भोजयेदविकारिभिः ॥ १२ ॥
त्रिभागहीनमर्द्धं वा हीनमात्रमथापि वा ।
यथाऽग्निदोषं मात्रेयं भोजनस्य विधीयते ॥ १३ ॥
अनन्तरं ततो युञ्ज्याद्यथास्वं[8] स्नेहबस्तिना ।
विविक्तता[9] मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः ॥ १४ ॥
आस्थापनस्नेहबस्त्योः सम्यग्दाने तु लक्षणम् ।

---

कविभिः प्रोक्ता ह्रस्वदीर्घप्लुते मता" ॥ पराशरः—"जानुमण्डलमावेष्टय दत्ते दक्षिण-पाणिना । कृष्टनेत्रश्चलटाशब्दशतं तिष्ठेदवेगवान् ॥" इति । १ मुहूर्तः=घटिकाद्वयम् ।

२ निरूहातियोगं निषेधति—**विशेषादिति** । ३ दुर्निरूढलक्षणमाख्याति—**यस्येति** । ४ अतिनिरूढलक्षणमाख्याति—**यानीति** । ५ शूलगुदभ्रंशकफातियोगादीनि लिङ्गानीत्यर्थः ।

६ सुनिरूढलक्षणमाचष्टे—**यस्येति** । ७ सुनिरूढस्य पश्चात्कर्म निर्दिशति—**सुनिरूढमिति** । ८ यथास्वं=वातादिदोषानुकूलम् । ९ निरूहानुवासनयोः


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदहस्तस्य[1] पवनाद्भयं बलवदिष्यते ॥ १५ ॥
रसौदनस्तेन शस्तस्तदहश्चानुवासनम् ।
पश्चाद[2]ग्निबलं मत्वा पवनस्य च चेष्टितम् ॥ १६ ॥
अन्नोपस्तम्भिते कोष्ठे स्नेहबस्तिर्विधीयते ।
अनाया[3]न्तं मुहूर्त्तात्तु निरूहं शोधनैर्हरेत् ॥ १७ ॥
तीक्ष्णैर्निरूहैर्मतिमान् क्षार[4]मूत्राम्लसंयुतैः ।
विगु[5]णानिलविष्टब्धं चिरं तिष्ठन्निरूहणम् ॥ १८ ॥
शूलार[6]तिज्वरानाहं मरणं वा प्रवर्त्तयेत् ।
न[7] तु भुक्तवते देयमास्थापनमिति स्थितिः ॥ १९ ॥
विसूचिकां वा जनयेच्छर्दिं वाऽपि सुदारुणाम् ।
कोपयेत् सर्वदोषान् वा तस्माद् दद्यादभोजिते[8] ॥ २० ॥
[9]जीर्णान्नस्याशये दोषाः पुंसः [10]प्रव्यक्तिमागताः ।
निःशेषाः सुखमायान्ति भोजनेनाप्रपीडिताः ॥ २१ ॥
न वाऽऽस्थापनविच्छिन्नमन्नमग्निः [11]प्रधावति ।
तस्मादास्थापनं देयं निराहाराय जानता ॥ २२ ॥
आवस्थिकं[12] क्रमञ्चापि मत्वा कार्यं निरूहणम् ।
मलेऽपकृष्टे दोषाणां बलवत्त्वं न विद्यते ॥ २३ ॥

---

सम्यग्दानलक्षणं वक्ति—**विविक्तेति** । विविक्तता=ग्लानिरहिता । १ सुनिरूढस्य तद्दिने करणीयानुपचारानभिधत्ते—**तदह इति** । २ पश्चात्=सान्वासनान्निरूहणात् ।

३ मुहूर्तादनागच्छतो निरूहस्य निर्हरणोपायमाख्याति—**अनायान्तमिति** । ४ यवक्षार इत्यर्थः । ५ चिरं सन्तिष्ठतो निरूहणाद् दोषान् दर्शयति—**विगुणेति** । विगुणः=विपरीतः । ६ अरतिः=चेतसोऽनवस्थितिः । 'स्वाभीष्टवस्त्वलाभेन चेतसो याऽनवस्थितिः । अरतिः सा' इति ।

७ भुक्तवत आस्थापनं निषेधति—**नेति** । ८ अभोजिते=अकृतभोजनायेत्यर्थः । ९ निराहाराय आस्थापनदाने गुणानाचष्टे—**जीर्णेति** । १० प्रव्यक्तिं=निरावरणताम् । ११ प्रधावति=जरयति । १२ अवस्थाविशेषे भुक्तवतोऽपि निरूहदानमुपदिशति—**आवस्थिकमिति** । क्रमं=विधिम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षीराण्यम्लानि मूत्राणि स्नेहाः क्वाथा रसास्तथा।
लवणानि फलं क्षौद्रं शताह्वा सर्षपं वचा ॥ २४ ॥
एला त्रिकटुकं रास्ना सरलो देवदारु च।
रजनी मधुकं हिङ्गु कुष्ठं संशोधनानि च ॥ २५ ॥
कटुका शर्करा मुस्तमुशीरं चन्दनं शटी।
मञ्जिष्ठा मदनं चण्डा त्रायमाणा रसाञ्जनम् ॥ २६ ॥
बिल्वमध्यं यवानी च फलिनी शक्रजा यवाः।
काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकावुभौ ॥ २७ ॥
तथा मेदा महामेदा ऋद्धिर्वृद्धिर्मधूलिका।
निरूहेषु यथालाभमेष वर्गो विधीयते ॥ २८ ॥
स्वस्थे क्वाथस्य चत्वारो भागाः स्नेहस्य पञ्चमः।
क्रुद्धेऽनिले चतुर्थस्तु षष्ठः पित्ते कफेऽष्टमः ॥ २९ ॥
सर्वेषु चाष्टमो भागः कल्कानां लवणं पुनः।
क्षौद्रं मूत्रं फलं क्षीरमम्लं मांसरसं तथा ॥ ३० ॥
युक्त्या प्रकल्पयेद्धीमान् निरूहे कल्पना त्वियम् ॥ ३१ ॥
कल्कैः स्नेहकषायाणामविवेकाद्विषग्वरैः।
बस्तेः सुकल्पना प्रोक्ता तस्य दानं यथार्थकृत् ॥ ३२ ॥

---

१ आस्थापनोपयोगिकानि द्रव्याणि निर्दिशति—क्षीराणीति। २ फलं=त्रिफला। ३ त्रिवृदादीनि संशोधनानीत्यर्थः। ४ मदनं=मदनफलम्, चण्डा=अगुरुः। ५ फलिनी=प्रियङ्गुः, शक्रजा यवाः=इन्द्रयवाः। ६ मधूलिका=मूर्वा।

७ निरूहेषु दोषानुसारेण क्वाथादीनां मात्रा निर्दिशति—स्वस्थ इति। स्वस्थे=समवातपित्तकफे नरे। चत्वारो भागाः=अष्टौ पलानि। पञ्चमो भागः=पादोनपञ्चपलानि। चतुर्थो भागः षट्पलानि। षष्ठो भागः चत्वारि पलानि। अष्टमो भागः त्रीणि पलानि। ८ युक्त्या=योगेन। "मधुस्नेहनकल्काख्यकषायाणामपतः क्रमात्। त्रीणि षट् द्वादश त्रीणि पलान्यनिलरोगिणाम्॥ पित्ते चत्वारि चत्वारि द्वे द्विपञ्च चतुष्टयम्। षट् त्रीणि द्वे दश त्रीणि कफे चापि निरूहणम्॥" इति तन्त्रान्तरम्।

९ बस्तिद्रव्ययोजनाक्रमं ब्रवीति—कल्कैरिति। अविवेकात्=अपृथग्भावादित्यर्थः। १० वातपित्तकफशोणितहरणशोधनसङ्ग्रहणलेखनबृंहणवाजीकरणादियथा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दत्त्वाऽऽदौ सैन्धवस्यार्द्धं मधुनः प्रसृतद्वयम् ।
पात्रे तलेन[1] मथ्नीयादनुस्नेहं शनैः शनैः ॥ ३३ ॥
सम्यक् सुमथिते दद्यात् फलकल्कं[2] मतः परम् ।
ततो यथोचितान् कल्कान् भागैः स्वैः श्लक्ष्णपेषितान् ॥ ३४ ॥
गम्भीरे भाजनेऽन्यस्मिन्मथ्नीयात्तं खजेन[3] च ।
कषायप्रसृतान् पञ्च सुपूतांस्तत्र दापयेत् ॥ ३५ ॥
रसक्षीराम्लमूत्राणां दोषावस्थामवेक्ष्य तु ।
यथा वा साधु मन्येत न सान्द्रो न तनुः समः ॥ ३६ ॥

अत ऊर्द्ध्वं द्वादशप्रसृतान् वक्ष्यामः—

दत्त्वाऽऽदौ सैन्धवस्यार्द्धं मधुनः प्रसृतिद्वयम् ।
विनिर्मथ्य ततो दद्यात् स्नेहस्य प्रसृतित्रयम् ॥ ३७ ॥
एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतिं क्षिपेत् ।
सम्मूर्च्छिते[5] कषायन्तु चतुःप्रसृतिसम्मितम् ॥ ३८ ॥
वितरेच्च तदावापमन्ते द्विप्रसृतोन्मितम् ।
एवं प्रकल्पितो बस्तिर्द्वादशप्रसृतो भवेत् ॥ ३९ ॥
ज्येष्ठायाः खलु मात्रायाः प्रमाणमिदमीरितम् ।
अपहासे भिषक्कुर्य्यात् तद्वत् प्रसृतिहापनम् ॥ ४० ॥
यथावयो निरूहाणां कल्पनेयमुदाहृता ।
सैन्धवादिद्रवान्तानां सिद्धिकामैर्भिषग्वरैः ॥ ४१ ॥
अत ऊर्द्ध्वं[6] प्रवक्ष्यन्ते बस्तयोऽत्र विभागशः ।
यथादोषं प्रयुक्ता ये हन्युर्नानाविधान् गदान् ॥ ४२ ॥
शम्पाकोरुबुवर्षाभूवाजिगन्धानिशाच्छदैः[7] ।

---

र्थयोगकृदित्यर्थः । १ तलेन=पाणितलेन । २ फलकल्कं=मदनफलकल्कम् । ३ खजेन=मन्थानेन । तन्त्रान्तरे—"माक्षिकं लवणं स्नेहं कल्कं क्वाथमिति क्रमात् । आवाप्यावाप्य पात्रे तन्मथ्नीयादन्तरान्तरा । सम्यक् पाणितलेनैव निरूहे योजनाविधिः ।" इति निरूहयोजना । ४ द्वादशप्रसृतिप्रमाणसाधनं वर्णयति—दत्त्वेति । अर्द्धं = तोलकम् । ५ सम्मूर्च्छिते = मिलिते । ६ द्विप्रसृतोन्मितं = चतुःपलप्रमाणम् ।

७ वाते वातरोगे च शम्पाकाद्यास्थापनं दर्शयति—शम्पाकेति । शम्पाकः=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चमूलीबलारास्नागुडूचीसुरदारुभिः ॥ ४३ ॥
क्वथितैः पालिकैरेभिमदनाष्टकसंयुतैः ।
कल्कैर्मागधिकाम्भोदहवुषामिसिसैन्धवैः ॥ ४४ ॥
वत्साह्वयप्रियङ्गूम्रायष्ट्याह्वयरसाञ्जनैः ।
दद्यादास्थापनं कोष्णं क्षौद्राद्यैरभिसंस्कृतम् ॥ ४५ ॥
पृष्ठोरुत्रिकशूलाश्मविण्मूत्रानिलसङ्गिनाम् ।
ग्रहणीमारुतार्शोघ्नं रक्तमांसबलप्रदम् ॥ ४६ ॥
गुडूचीत्रिफलारास्नादशमूलबलापलैः ।
क्वथितैः श्लक्ष्णपिष्टैस्तु प्रियङ्गुघनसैन्धवैः ॥ ४७ ॥
शतपुष्पावचाकृष्णायवानीकुष्ठबिल्वजैः ।
सगुडैरक्षमात्रैस्तु मदनार्द्धपलान्वितैः ॥ ४८ ॥
क्षौद्रतैलघृतक्षीरशुक्ताकाञ्जिकमस्तुभिः ।
समालोड्य च मूत्रेण दद्यादास्थापनं परम् ॥ ४९ ॥
तेजोवर्णबलोत्साहवीर्य्याग्निप्राणवर्द्धनम् ।
सर्वमारुतरोगघ्नं वयःस्थापनमुत्तमम् ॥ ५० ॥
कुशादिपञ्चमूलाब्दत्रिफलोत्पलवासकैः ।
सारिवोशीरमञ्जिष्ठारास्ना रेणुपरूषकैः ॥ ५१ ॥
पालिकैः क्वथितैः सम्यग् द्रव्यैरेभिश्च पेषितैः ।

---

आरग्वधः, उरुबुः=एरण्डः, वर्षाभू=पुनर्नवा, वाजिगन्धा=अश्वगन्धा, निशाच्छदः='कचूर' इति। १ लघुपञ्चमूलीत्यर्थः। २ मदनस्याष्टौ फलानि, तैः संयुतैः। ३ हवुषा='हाऊबेर' इति, मिसिः=मधुरिका, 'सोआ' इति प्रथते। ४ उग्रा=वचा।

५ आद्यपदेन स्नेहक्षीरकाञ्जिकमूत्रमांसरसानां ग्रहणम। अनुक्तोऽप्यत्र स्नेहो निरूहणीयः। तथा च हारीतः—"स्नेहो गुडो मांसरसः पयांसि साम्लानि मूत्रं मधु सैन्धवं च। एते निरूहे विदुषा प्रयोज्याः क्वाथश्च कल्को मदनात् फलं च॥" इति। ६ वाते वातरोगे च गुडूच्याद्यास्थापनमाह—गुडूचीति। ७ पलं=मांसम्। ८ अक्षमात्रैः=तोलकपरिमाणैः।

९ पित्ते पित्तरोगे च कुशाद्यास्थापनं निर्दिशति—कुशादीति। कुशादिपञ्चमूलं=कुशकाशनलदर्भकाण्डेक्षव इति, अब्दः=त्रिफला १० रेणुः=निर्गुण्डीबीजम्,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शृङ्गाटकात्मगुप्तेभकेसरागुरुचन्दनैः ॥ ५२ ॥
विदारीमिसिमञ्जिष्ठाश्यामेन्द्रयवसिन्धुजैः ।
फलपद्मकयष्ट्याह्वः क्षौद्रक्षीरघृताप्लुतैः ॥ ५३ ॥
दत्तमास्थापनं शीतमम्लहीनैस्तथा द्रवैः ।
दाहासृग्दरपित्तासृक्पित्तगुल्मज्वराञ्जयेत् ॥ ५४ ॥
रोध्रचन्दनमञ्जिष्ठारास्नाऽनन्ताबलर्द्धिभिः ।
सारिवावृषकाश्मर्यमेदामधुकपद्मकैः ॥ ५५ ॥
स्थिरादितृणमूलैश्च क्वाथः कर्षत्रयोन्मितैः ।
पिष्टैर्जीवककाकोलीयुगर्द्धिमधुकोत्पलैः ॥ ५६ ॥
प्रपौण्डरीकजीवन्तीमेदारेणुपरूषकैः ।
अभीरुमिसिसिन्धूत्थवत्सकोशीरपद्मकैः ॥ ५७ ॥
कसेरुशर्करायुक्तैः सर्पिर्मधुपयःप्लुतैः ।
द्रवैस्तीक्ष्णाम्लवर्ज्यैश्च दत्तो बस्तिः सुशीतलः ॥ ५८ ॥
गुल्मासृग्दरहृत्पाण्डुरोगान् सविषमज्वरान् ।
असृक्पित्तातिसारौ च हन्यात् पित्तकृतान् गदान् ॥५९॥
भद्रानिम्बकुलत्थार्ककोशातक्यमृतामरैः ।
सारिवाबृहतीपाठामूर्वाऽऽरग्वधवत्सकैः ॥ ६० ॥
क्वाथः कल्कस्तु कर्त्तव्यो वचामदनसर्षपैः ।
सैन्धवामरकुष्ठैलापिप्पलीबिल्वनागरैः ॥ ६१ ॥
कट्टैलमधुक्षारमूत्रतैलाम्बुसंयुतैः ।

---

परूषकः='फालसा' इत्युद्घुष्यते । १ आत्मगुप्ता=कपिकच्छूः, इभः='गजपीपल' इति ख्यातः । २ मिसिः='सोआ' इति, श्यामा=प्रियङ्गुः । ३ फलं=मदनफलम् ।

४ पित्ते पित्तरोगे च रोध्राद्यास्थापनमाख्याति—रोध्रेति । ५ वृषः=वासकः । ६ स्थिरादिलघुपञ्चमूलम्, तृणमूलं=कुशादिपञ्चमूलम् । ७ काकोलीयुगं=काकोली क्षीरकाकोली च । ८ अभीरुः=शतावरी, मिसिः=मधुरिका, सिन्धूत्थं=सैन्धवम्, वत्सकः=कुटजः, 'कुरैया:' इति ख्यातः ।

९ कफे कफरोगे च भद्राद्यास्थापनमाख्याति—भद्रेति । भद्रा=भद्रमुस्तकः,... कोशातकी='तरोई' इति, अमृता=गुडूची, अमरः=देवदारु । १० वत्सकः=कुटजः । ११ मदनं=मदनफलम् । १२ क्षारः=यवक्षार इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य्यमास्थापनं तूर्णं कामलापाण्डुमेहिनाम् ॥ ६२ ॥
मेदस्विनामनग्नीनां कफरोगाशनद्विषाम् ।
गलगण्डगरग्लानिश्लोपदोदररोगिणाम् ॥ ६३ ॥
दशमूलीनिशाबिल्वपटोलत्रिफलामरैः ।
क्वथितैः कल्कपिष्टैस्तु मुस्तसैन्धवदारुभिः ॥ ६४ ॥
पाठामार्गधिकेन्द्राह्वैस्तैलक्षारमधुप्लुतैः ।
कुर्यादास्थापनं सम्यङ् मूत्राम्लफलयोजितैः ॥ ६५ ॥
कफपाण्डुगदालस्यमूत्रमारुतसङ्गिनाम् ।
आमाटोपपाचीशलेष्मगुल्मक्रिमिविकारिणाम् ॥ ६६ ॥
वृषाश्मभेदवर्षाभूधान्यगन्धर्वहस्तकैः ।
दशमूलबलामूर्वायवकोलनिशाच्छदैः ॥ ६७ ॥
कुलत्थबिल्वभूनिम्बैः क्वथितैः पलसम्मितैः ।
कल्कैर्मदनयष्ट्याह्वषड्ग्रन्थाऽमरसर्षपैः ॥ ६८ ॥
पिप्पलीमूलसिन्धूत्थयवानीमिसिवत्सकैः ।
क्षौद्रेक्षुक्षीरगोमूत्रसर्पिस्तैलरसप्लुतैः ॥ ६९ ॥
तूर्णमास्थापनं कार्य्यं संसृष्टबहुरोगिणाम् ।
गृध्रसीशर्कराऽष्ठीलातूनीगुल्मगदापहम् ॥ ७० ॥
रास्नाऽऽरग्वधवर्षाभूकटुकोशीरवारिदैः ।
त्रायमाणाऽमृतारक्तापञ्चमूलीबिभीतकैः ॥ ७१ ॥

---

१ कफे कफरोग च दशमूल्याद्यास्थापनमाचष्टे—**दशमूलीति** । त्रिकण्टकादिलघुपञ्चमूलं, बिल्वाग्निमन्थादिबृहत्पञ्चमूलं च दशमूलमुच्यते । निशा=हरिद्रा । २ मागधिका=पिप्पली, इन्द्राह्वः=कुटजः । ३ मदनफलमित्यर्थः । ४ "आटोपो गुडगुडाशब्दः प्रोक्तो जठरसम्भवः" इति भावमिश्रः ।

५ वृषाद्यास्थापनमाह—**वृषेति** । वृषः=वासकः, अश्मभेदः=पाषाणभेदः, वर्षाभूः=पुनर्नवा, धान्यं='धनिया' इति, गन्धर्वहस्तकः=एरण्डः । ६ निशाच्छदः='कचूर' इति ख्यातः । ७ षड्ग्रन्था=वचा । ८ मिसिः=मधुरिका, वत्सकः=कुटजः । ९ सर्वरोगहररास्नाद्यास्थापनमुपदिशति—**रास्नेति** । १० वा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबलैः[1] पालिकैः क्काथः कल्कस्तु मदनान्वितैः ।
यष्टचाह्वमिसिसिन्धूत्थफलिनीन्द्रयवाह्वयैः ॥ ७२ ॥
रसाञ्जनरसक्षौद्रद्राक्षासौवीरसंयुतैः ।
युक्तो बस्तिः [2]सुखोष्णोऽयं मांसशुक्रबलौजसाम् ॥ ७३ ॥
आयुषोऽग्नेश्च संस्कर्त्ता हन्ति चाशु गदानिमान् ।
गुल्मासृग्दरवीसर्पमूत्रकृच्छ्राक्षतक्षयान् ॥ ७४ ॥
विषमज्वरमर्शांसि ग्रहणीं वातकुण्डलीम् ।
जानुजङ्घाशिरोबस्तिग्रहोदावर्त्तमारुतान् ॥ ७५ ॥
वातासृक्शर्कराऽष्ठीलाकुक्षिशूलोदरारुचीः ।
रक्तपित्तकफोन्मादप्रमेहाध्मानहृद्ग्रहान् ॥ ७६ ॥
वातघ्नौषधनिःक्वाथाः[3] सैन्धवत्रिवृतायुताः ।
साम्लाः सुखोष्णा योज्याः स्युर्बस्तयः कुपितेऽनिले ॥७७॥
न्यग्रोधादिगणक्वाथाः[4] काकोल्यादिसमायुताः ।
विधेया बस्तयः पित्ते ससर्पिष्काः सशर्कराः ॥ ७८ ॥
आरग्वधादिनिःक्वाथाः[5] पिप्पल्यादिसमायुताः ।
सक्षौद्रमूत्रा देयाः स्युर्बस्तयः कुपिते कफे ॥ ७९ ॥
शर्करेक्षुरसक्षीरघृतयुक्ताः[6] सुशीतलाः ।
क्षीरवृक्षकषायाढ्या[7] बस्तयः शोणिते हिताः ॥ ८० ॥
शोधनद्रव्यनिःक्वाथास्तत्कल्कस्नेहसैन्धवैः[8] ।

---

रिदः = मुस्ता । १ बलया सहितैः सबलैः । २ सुखावह उष्णः सुखोष्णः किञ्चिदुष्ण इत्यर्थः ।

३ वातरोगे आस्थापनमाचष्टे—**वातघ्नेति** । वातघ्नौषधानि भद्रदार्वादीनि, षोडशपलप्रमितानामेषामष्टगुणे जले क्काथः । ४ पित्तरोगे आस्थापनमभिधत्ते—**न्यग्रोधादीति** । न्यग्रोधादीनां षोडशपलद्रव्याणामष्टगुणे जले क्काथः । ५ श्लेष्मणि आस्थापनं निर्दिशति—**आरग्वधादीति** । षोडशपलानामारग्वधादीनामष्टगुणे जले क्वाथः ।

६ शोणितरोगे आस्थापनं दर्शयति—**शर्करेति** । ७ क्षीरवृक्षाणां न्यग्रोधादिद्रव्याणां षोडशपलप्रमितानां कषायैः क्काथैराढ्याः प्रधाना इत्यर्थः । ८ शोधनास्था-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्ताः खजेन मथिता बस्तयः शोधनाः स्मृताः ॥ ८१ ॥
त्रिफलाक्वाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः ।
ऊषकादिप्रतीवापा बस्तयो लेखनाः स्मृताः ॥ ८२ ॥
बृंहणद्रव्यनिःक्वाथाः कल्कैर्मधुरकैर्युताः ।
सर्पिर्मांसरसोपेता बस्तयो बृंहणाः स्मृताः ॥ ८३ ॥
चटकाण्डोच्चटाक्वाथाः सक्षीरघृतशर्कराः ।
आत्मगुप्ताफलावापाः स्मृता वाजीकरा नृणाम् ॥ ८४ ॥
बदर्य्यैरावतीशेलुशाल्मलीधन्वनाङ्कुराः ।
क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुताः सास्राः पिच्छिलसंज्ञिताः ॥ ८५ ॥
वाराहमाहिषैरभ्रवैडालैणेयकौक्कुटम् ।
सद्यस्कमसृगाजं वा देयं पिच्छिलबस्तिषु ॥ ८६ ॥
प्रियङ्ग्वादिगणक्वाथा अम्बष्ठाद्येन संयुताः ।
सक्षौद्राः सघृताश्चैव ग्राहिणो बस्तयः स्मृताः ॥ ८७ ॥
एतेष्वेव च योगेषु स्नेहाः सिद्धाः पृथक् पृथक् ।
समस्तेष्वथवा सम्यग्विधेयाः स्नेहबस्तयः ॥ ८८ ॥

---

पनमाख्याति—**शोधनेति** । शोधनद्रव्यं वमनविरेचनपठितं ज्ञेयम् । १ लेखना-स्थापनं वक्ति—**त्रिफलेति** । २ ऊषकादिर्द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तो गणः ।

३ बृंहणास्थापनं ब्रवीति—**बृंहणेति** । बृंहणद्रव्यं विदारीगन्धादिकम् । ४ वाजीकरणास्थापनमाचष्टे—**चटकेति** । चटकानामण्डानि, उच्चटा श्वेतगुञ्जा, "श्वेता गुञ्जोच्चटा प्रोक्ता" इति भावप्रकाशः । ५ पिच्छाबस्तिकल्पनामभिधत्ते-**बदरीति** । ऐरावती=नागबला,···धन्वनः='धामनि' इति भाषाप्रसिद्धो धनुर्वृक्षः । बदर्यादीनां धन्वनपर्यन्तानामङ्कुराः समुदायेन पलप्रमिताः । ६ सद्योजातं सद्यस्कं तत्कालीनम्, जीववतामिति भावः ।

७ सङ्ग्राह्यास्थापनकल्पनामुपदिशति—**प्रियङ्ग्वादीति** । प्रियङ्ग्वादिगणोक्तद्रव्याणां षोडशपलप्रमितानामष्टगुणे जले क्वाथः । अम्बष्ठादिगणो द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः, स कल्करूपेण योजनीयः । तदुक्तं वृद्धवाग्भटे—"ग्राही प्रियङ्ग्वष्ठादी क्वाथकल्कैः क्रमेण" इति ।

८ पूर्वोक्तकल्पेषु स्नेहबस्तिविधानार्थमुपदिशति—**एतेष्विति** । एतेषु=पूर्वोक्तेषु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्ध्यानां[1] शतपाकेन शोधितानां यथाक्रमम् ।
बलातैलेन देयाः स्युर्बस्तयस्त्रैवृतेन[2] च ॥ ८९ ॥
नरस्योत्तमसत्त्वस्य[3] तीक्ष्णं बस्तिं निधापयेत् ।
मध्यमं मध्यसत्त्वस्य विपरीतस्य[4] वै मृदुम् ॥ ९० ॥
एवं[5] कालं बलं दोषं विकारञ्च विकारवित् ।
बस्तिद्रव्यबलं चैव वीक्ष्य बस्तीन् प्रयोजयेत् ॥ ९१ ॥
दद्यादुत्क्लेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं पुनः ।
पश्चात् संशमनीयञ्च दद्याद्बस्तिं विचक्षणः ॥ ९२ ॥
एरण्ड[6]बीजमधुकं पिप्पलीसैन्धवं वचा ।
हवुषा[7]फलकल्कश्च बस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः ॥ ९३ ॥
शताह्वा[8] मधुकं बीजं कौटजं फलमेव च ।
सकाञ्जिकः सगोमूत्रो बस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥ ९४ ॥
प्रियङ्गु[9]मधुकं मुस्ता तथैव च रसाञ्जनम् ।
सक्षीरः शस्यते बस्तिर्दोषाणां शमनः परः ॥ ९५ ॥
नृपाणां[10] तत्समानानां तथा सुमहतामपि ।
नारीणां सुकुमाराणां शिशुस्थविरयोरपि ॥ ९६ ॥
दोषनिर्हरणार्थाय बलवर्णोदयाय च ।

---

गणेष्वित्यर्थः । १ बन्ध्यानां शतपाकबलातैलेन बस्तिमभिदधाति—**बन्ध्यानामिति** । २ त्रिभिः स्नेहैर्घृततैलवसाभिर्वृतं त्रिवृतं, ततः स्वार्थिकोऽण् । "द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिर्वा यमकस्त्रिवृतो महान्" इति भावमिश्रः ।

३ सत्त्वभेदेन बस्तिभेदं दर्शयति—**नरस्येति** । ४ विपरीतस्य=हीनबलस्येत्यर्थः । ५ कालादिभेदेन बस्तिभेदमाख्याति—**एवमिति** । यथा शीतकाले तीक्ष्णः, उष्णकाले मृदुः, वसन्ते शरदि च शीतोष्णयोर्मध्यः साधारणः, श्रेष्ठबले तीक्ष्णः, मध्यबले मध्यः, कनिष्ठबले मृदुः, कफवातदोषे तीक्ष्णः, कफपित्तदोषे मध्यः, पित्तरक्तदोषे मृदुः, चकारात् क्रूरमध्यमृदुकोष्ठेषु क्रमशस्तीक्ष्णमध्यमृदवो बोध्याः ।

६ एरण्डबीजाद्युत्क्लेशन बस्तिं वक्ति—**एरण्डेति** । ७ हवुषा='हाऊबेर' इति ख्याता, फलं=मदनफलम् । ८ दोषहरबस्तिमभिदधाति—**शताह्वेति** । शताह्वा='सौंफ' इति प्रथते । ९ प्रियङ्ग्वादिदोषशमनबस्तिमाख्याति—**प्रियङ्ग्विति** । मधुकं=यष्टीमधु । १० सर्वकालोपयोगार्हमाधुतैलिकबस्तिप्रशंसामाह—**नृपाणामिति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समासेनोपदेक्ष्यामि विधानं माधुतैलिकम् ॥ ९७ ॥
यानस्त्रीभोज्यपानेषु नियमश्चात्र नोच्यते ।
फलञ्च विपुलं दृष्टं व्यापदाञ्चाप्यसम्भवः ॥ ९८ ॥
योज्यस्त्वतः सुखेनैव निरूहक्रममिच्छता ।
यदेच्छति तदैवैष प्रयोक्तव्यो विपश्चिता ॥ ९९ ॥
मधुतैले समे स्यातां क्वाथश्चैरण्डमूलजः ।
पलार्द्धं शतपुष्पायास्ततोऽर्द्धं सैन्धवस्य च ॥ १०० ॥
फलेनैकेन संयुक्तः खजेन च विलोडितः ।
देयः सुखोष्णो भिषजा माधुतैलिकसंज्ञितः ॥ १०१ ॥
वचामधुकतैलञ्च क्वाथः सरससैन्धवः ।
पिप्पलीफलसंयुक्तो बस्तिर्युक्तरथः स्मृतः ॥ १०२ ॥
सुरदारु वरा रास्ना शतपुष्पा वचा मधु ।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥ १०३ ॥
पञ्चमूलीकषायञ्च तैलं मागधिका मधु ।
बस्तिरेष विधातव्यः सशताह्वः ससैन्धवः ॥ १०४ ॥
यवकोलकुलत्थानां क्वाथो मागधिका मधु ।
ससैन्धवः सयष्ट्याह्वः सिद्धबस्तिरिति स्मृतः ॥ १०५ ॥
मुस्तापाठाऽमृतातिक्ताबलारास्नापुनर्नवाः ।
मञ्जिष्ठाऽऽरग्वधोशीरत्रायमाणाख्यगोक्षुरान् ॥ १०६ ॥
पालिकान् पञ्चमूलाल्पसहितान्मदनाष्टकम् ।

---

तत्समानानां=राजतुल्यपुरुषाणाम् । १ मधुना तैलेन संसृष्टं माधुतैलिकम् ।
२ माधुतैलिकबस्तिकल्पनां निर्दिशति—**मथ्नीति** । ३ खजेन=मन्थानेनेत्यर्थः । ४ सुखोष्णः=किञ्चिदुष्णः । ५ युक्तरथाख्यबस्तिकल्पनां वक्ति—**वचेति** । रसः=मांसरसः । ६ युक्तरथाख्यो माधुतैलिक इत्यर्थः । ७ दोषहरमाधुतैलिकबस्तिमाह—**सुरदार्विति** । वरा=त्रिफला । ८ पाञ्चमूलिकमाधुतैलिकबस्तिं वक्ति—**पञ्चेति** । ९ मागधिका=पिप्पली ।
१० सिद्धबस्त्याख्यमाधुतैलिकमुपदिशति—**यवेति** । भावप्रकाशे तु—"पञ्चमूलस्य निःक्वाथैस्तैलं मागधिका मधु । ससैन्धवः सयष्ट्याह्वः सिद्धबस्तिरिति स्मृतः ॥" इति पाठः । ११ मुस्ताद्यास्थापनबस्तिं ब्रवीति—**मुस्तेति** । १२ पालिकान्=प्रत्येकमेकै-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलाढके[1] पचेत् क्वाथं पादशेषं पुनः पचेत् ॥ १०७ ॥
क्षीरार्धाढकं[2] संयुक्तमाक्षीरात् सुपरिस्रुतम् ।
पादेन जाङ्गलरसस्तथा मधुघृतं समम् ॥ १०८ ॥
शताह्वाफलिनीयष्टीवत्सकैः सरसाञ्जनैः ।
कार्षिकैः सैन्धवोन्मिश्रैः कल्कैर्बस्तिः प्रयोजितः ॥ १०९ ॥
वातासृङ्मोहशोफार्शोगुल्ममूत्रविबन्धनुत् ।
विसर्पज्वरविड्भङ्गरक्तपित्तविनाशनः ॥ ११० ॥
बल्यः सञ्जीवनो वृष्यश्चक्षुष्यः शूलनाशनः ।
स्थापनानामयं राजा बस्तिर्मुस्तादिको मतः ॥ १११ ॥
अवेक्ष्य भेषजं बुद्ध्या विकारञ्च विकारवित् ।
बीजैर्[3]नानेन मतिमान् कुर्याद् बस्तिशतान्यपि ॥ ११२ ॥
[4]अजीर्णे न प्रयुञ्जीत दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ।
आहाराचारिकं शेषमन्यद् युक्तं समाचरेत् ॥ ११३ ॥
[5]यस्मान्मधु च तैलञ्च प्राधान्येन प्रदीयते ।
माधुतैलिक इत्येवं भिषग्भिर्बस्तिरुच्यते ॥ ११४ ॥
रथेष्वपि च युक्तेषु हस्त्यश्वे चापि कल्पिते ।
यस्मान्न प्रतिषिद्धोऽयमतो युक्तरथः स्मृतः ॥ ११५ ॥
बलोपचय[6]वर्णानां यस्माद् व्याधिशतस्य च ।
भवत्येतेन सिद्धिस्तु सिद्धबस्तिरतो मतः ॥ ११६ ॥
सुखिना[7]मल्पदोषाणां नित्यं स्निग्धाश्च ये नराः ।
मृदुकोष्ठा[8]श्च ये तेषां विधेया माधुतैलिकाः ॥ ११७ ॥

---

कपलप्रमितान् , पञ्चमूलाल्पसहितान् = लघुपञ्चमूलसंयुक्तान् । १ जलाढके = अष्टविंशत्यधिकशतपलप्रमितजले इत्यर्थः । २ अर्धाढकसंयुक्तं = चतुःषष्टिपलसंयुक्तम् । ३ "वातघ्नौषधनिःक्वाथा" इत्यादिबस्तिषूक्तबीजेनेत्यर्थः ।

४ कृतास्थापनस्य वर्ज्यानि निर्दिशति—**अजीर्णे इति** । ५ माधुतैलिकादिसञ्ज्ञां विवृणोति—**यस्मादिति** । ६ उपचयः = वृद्धिः, वर्णः = गौरश्यामादिः । ७ मातुतैलिकबैस्तियोग्यान्नराह—**सुखिनामिति** । ८ मृदुः कोष्ठः कुक्षिमध्यो येषां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृदुत्वात्[1] पादहीनत्वादकृत्स्नविधिसेवनात् ।
एकबस्तिप्रदानाच्च सिद्धबस्तिष्वयन्त्रणा ॥ ११८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने निरूहक्रमचिकित्सितं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८

---

## एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथात आतुरोपद्रवचिकित्सितं व्याख्यास्यामः[2] ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
स्नेहपीतस्य वान्तस्य विरिक्तस्य स्रुतासृजः ।
निरूढस्य च[3] कायाग्निर्मन्दो भवति देहिनः ॥ ३ ॥
[4]सोऽन्नैरत्यर्थगुरुभिरुपयुक्तैः प्रशाम्यति ।
अल्पो महद्भिर्बहुभिश्छादितोऽग्निरिवेन्धनैः ॥ ४ ॥
स चाल्पैर्लघुभिश्चान्नैरुपयुक्तैर्विवर्द्धते ।
काष्ठैरणुभिरल्पैश्च सन्धुक्षित[5] इवानलः ॥ ५ ॥
हृतदोषप्रमाणेन सदाऽऽहारविधिः स्मृतः ।
त्रीणि चात्र प्रमाणानि प्रस्थोऽर्द्धाढकसाढकम्[6] ॥ ६ ॥
तत्रावरं प्रस्थमात्रं द्वे शेषे[7] मध्यमोत्तमे ।

---

ते मृदुकोष्ठाः । १ माधुतैलिकयोगानां नियन्त्रणत्वे हेतुमभिधत्ते—**मृदुत्वादिति** । पादहीनत्वात्—पादेन पादाभ्यां वा हीनत्वात्, पादेन हीने नव प्रसृताः, पादाभ्यां हीने षट् प्रसृता भवन्ति । अकृत्स्नविधिसेवनात्= वमनादिसंस्कारवर्जनादित्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यामष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।**

---

### एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

२ आतुराणामुपद्रवा वमनविरेचनादिपञ्चकर्मनिमित्ता व्यापदस्तेषां चिकित्सितमित्यातुरोपद्रवचिकित्सितम् । ३ चकारादनुवासितस्य समुच्चयः । ४ स्नेहादिना मन्दतामापन्नस्य कायाग्नेः क्रमशो यथा प्राकृतावस्थापन्नत्वं भवतीति तद्दर्शयति—**सोऽन्नैरिति** । सः= कायाग्निः । ५ सन्धुक्षितः=प्रज्वलित इत्यर्थः । ६ प्रस्थः= सार्धत्रयोदशपलः, अर्धाढकं=चतुःषष्टिपलप्रमितम्, आढकम्=अष्टाविंशत्यधिकशतपलप्रमितम् । ७ द्वे शेषे=अर्द्धाढकाढके ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्थे[1] परिस्रुते देया यवागूः स्वल्पतण्डुला ॥ ७ ॥
द्वे[2] चैवार्द्धाढके देये तिस्रश्चाप्याढके गते ।
विलेपीमुचिताद्भक्तात्[3]चतुर्थांशकृतां ततः ॥ ८ ॥
दद्यादुक्तेन विधिना क्लिन्नाम्[4]सिक्थामपिच्छिलाम् ।
अस्निग्धलवणं स्वच्छमुद्गयूषयुतं ततः ॥ ९ ॥
अंशद्वयप्रमाणेन[5] दद्यात् सुस्विन्नमोदनम् ।
ततस्तु कृतसंज्ञेन[6] हृद्येनेन्द्रियबोधिना ॥ १० ॥
त्रीनंशान् वितरेद्भोक्तुमातुरायौदनं मृदुम् ।
ततो यथोचितं[7] भक्तम्भोक्तुमस्मै विचक्षणः ॥ ११ ॥
लावैणहरिणादीनां रसैर्दद्यात् सुसंस्कृतैः ।
हीनमध्योत्तमेष्वेषु[8] विरेकेषु प्रकीर्तितः ॥ १२ ॥
एकद्वित्रिगुणाः सम्यगाहारस्य क्रमस्त्वयम् ।
कफपित्ताधिकान्मद्यनित्यान् हीनविशोधितान् ॥ १३ ॥
पेयाऽभिष्यन्दयेत्तेषां[10] तर्पणादिक्रमो हितः ।
वेदनालाभनियमशोकवैचित्त्यहेतुभिः ॥ १४ ॥

---

१ हृतदोषप्रमाणविशेषेण अन्नसंसर्जनक्रमविशेषं दर्शयति—प्रस्थ इति । प्रस्थे परिस्रुते प्रस्थपरिमाणे रुधिरे गते स्वल्पतण्डुला अष्टांशतण्डुलकृता यवागूः पेया देया । तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"पेयां पिबेदुचितभक्तकृताष्टभागां त्रिर्द्विः सकृत्प्रवरमध्यजघन्यशुद्धः" इति । २ द्वे = द्वौ वारौ । ३ उचिताद्भक्तात् = अभ्यस्तात्तण्डुलात् । ४ क्लिन्नसिक्थां = अतिपक्वतण्डुलाम्, अपिच्छिलां = मण्डरहिताम् । ५ अंशद्वयप्रमाणेन = अभ्यस्ततण्डुलार्धप्रमाणेनेत्यर्थः । ६ कृतसंज्ञेन यूषेण, अत्र 'ततः सघृतमण्डेन' इति पाठान्तरम् । ७ यथोचितं = पूर्वाभ्यस्तप्रमाणं, परिपूर्णमित्यर्थः । ८ एषु पूर्वोक्तेषु हीनमध्योत्तमेषु विरेकेषु विरेचनेषु हृतदोषमानापेक्षया एकद्वित्रिगुणोऽयमाहारस्य क्रमः सम्यक् प्रकीर्तित इत्यर्थः ।

९ क्वचिद् विषये पेयादिक्रमं निषेधति—कफेति । १० तेषां = हीनशोधितानाम्, तर्पणादिक्रमः प्रथमेऽन्नकाले लाजादिभिस्तर्पणं, ततो यूषादिभिः । तन्त्रान्तरे—"स्रुताल्पपित्तश्लेष्माणं मद्यपं वातपैत्तिकम् । पेयां न पाययेत्" इति ।

११ उक्तान्नसंसर्जनक्रममन्यत्राप्यतिदिशति—वेदनेति । वेदनालाभो ज्वरादिरोग-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरानुपोषितांश्चापि विरिक्तवदुपाचरेत्।
आढकार्द्धाढकप्रस्थसंख्या ह्येषा विरेचने ॥ १५ ॥
श्लेष्मान्तत्वाद्विरेकस्य न तामिच्छति तद्विदः।
एको विरेकः श्लेष्मान्तो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ॥ १६ ॥
बलं यत् त्रिविधं प्रोक्तमतस्तत्र क्रमक्रिया।
तत्रानुक्रममेकन्तु बलस्थः सकृदाचरेत् ॥ १७ ॥
द्विराचरेन्मध्यबलस्त्रीन् वारान् दुर्बलस्तथा।
केचिदेवं क्रमं प्राहुर्मन्दमध्योत्तमाग्निषु ॥ १८ ॥
संसर्गेण विवृद्धेऽग्नौ दोषकोपभयाद्भजेत्।
प्राक् स्वादुतिक्तौ स्निग्धाम्ललवणान् कटुकं ततः ॥ १९ ॥
स्वाद्वम्ललवणान् भूयः स्वादुतिक्तावतः परम्।
स्निग्धरुक्षान् रसांश्चैव व्यत्यासात् स्वस्थवत्ततः ॥ २० ॥
केवलं स्नेहपीतो वा वान्तो यश्चापि केवलम्।
स सप्तरात्रं मनुजो भुञ्जीत लघु भोजनम् ॥ २१ ॥
कृतः सिराव्यधो यस्य कृतं यस्य च शोधनम्।

---

प्राप्तिः, नियमो व्रतोपवासादिकः, वैचित्यं चित्तविकलतेत्यर्थः। १ श्लेष्मान्तत्वात् कफान्तिकत्वाद्विरेकस्य तां प्रस्थादिसंख्यां तद्विदो विरेचनविदो नेच्छन्तीत्यर्थः। भोजेऽपि—"तस्मान्मतिमता नित्यमात्मानं परिरक्षता। पित्तान्तं वमनं स्थाप्यं कफान्तं च विरेचनम्॥" इति।

२ बलविशेषेणान्नसंसर्जनक्रमविशेषं दर्शयति—**बलमिति**। ३ अनुक्रमं=यवाग्वादिक्रमम्। ४ क्रमेण कृतसंसर्गस्य षड्सावचारणक्रमं निर्दिशति—**संसर्गेणेति**। संसर्गेण=संसर्जनेन, यवाग्वाद्युपयोगेनेत्यर्थः। ५ स्निग्धान् मधुराम्ललवणान्, रूक्षान् कटुतिक्तकषायान्, व्यत्यासात्=विपर्ययादित्यर्थः। वृद्धवाग्भटस्तु—"दद्यान्मधुरहृद्यानि ततोऽम्ललवणौ रसौ। स्वादुतिक्तौ ततो भूयः कषायकटुकौ ततः॥ अन्योन्यप्रत्यनीकानां रसानां स्निग्धरूक्षयोः। व्यत्यासादुपयोगेन क्रमात्तं प्रकृतिं नयेत्॥" इत्याह।

६ स्नेहपीतवान्तयोरन्नसंसर्जनक्रममभिदधाति—**केवलमिति**। ७ 'मनुष्या मानुषा मर्त्या मनुजा मानवा नराः' इत्यमरः। ८ कृतसिराव्यधविरिक्तयोः परिहा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स ना परिहरेन्मासं यावद्बा बलवान् भवेत् ॥ २२ ॥
[1]
[2]त्र्यहं त्र्यहं परिहरेदेकैकं बस्तिमातुरः ।
तृतीये तु परीहारे यथा[3]योगं समाचरेत् ॥ २३ ॥
[4]तैलपूर्णाममृद्भाण्डसधर्माणो व्रणातुराः ।
[5]स्निग्धशुद्धाश्चिरोगार्त्ता ज्वरातीसारिणश्च ये ॥ २४ ॥
[6]क्रुध्यतः कुपितं पित्तं कुर्य्यात् तांस्तानुपद्रवान्[7] ।
आयास्यतः शोचतो वा चित्तं विभ्रम[8]मृच्छति ॥ २५ ॥
मैथुनोपगमाद् घोरान् व्याधीनाप्नोति दुर्मतिः ।
[9]आक्षेपकं पक्षघातमङ्गप्रग्रहमेव च ॥ २६ ॥
गुह्यप्रदेशे श्वयथुं कासश्वासौ च दारुणौ ।
रुधिरं शुक्रवच्चापि सरजस्कं प्रवर्त्तते ॥ २७ ॥
लभते च दिवास्वप्नात्तांस्तान् व्याधीन् कफात्मकान् ।
[10]प्लीहोदरं प्रतिश्यायं पाण्डुतां श्वयथुं ज्वरम् ॥ २८ ॥
मोहं सदनमज्ञानमविपाकं तथाऽरुचिम् ।
तमसा[11] चाभिभूतस्तु स्वप्नमेवाभिनन्दति ॥ २९ ॥
उच्चैः सम्भाषणाद्वायुः शिरस्यापादयेद्रुजम् ।

---

रकालावधिं दर्शयति—कृत इति । १ उपद्रवहेतुत्वेन वक्ष्यमाणं क्रोधादिकं परिहरेदित्यर्थः । २ बस्तौ परिहारकालावधिमभिधत्ते—त्र्यहमिति । एकैकं बस्तिं सेवित्वा त्र्यहं त्र्यहं वक्ष्यमाणं परिहार्यं परिहरेदित्यर्थः । ३ योगान् सम्यङ्निरूढानुवासितयोगलक्षणानतिक्रमेणेति यथायोगं यथासात्म्यमित्यर्थः ।

४ शुद्धसमानधर्मिणोऽन्यानपि रोगिणो निर्दिशति—तैलेति । यथा तैलपूर्णमपक्वमृद्भाजनमयत्नेन चाल्यमानं विशीर्यते, तद्वदयत्नेनोपचर्यमाणा व्रणातुरादयोऽवस्थान्तरं प्राप्यन्त इति डल्हणः । ५ यथावत् सेवितस्नेहाः स्निग्धाः, वमनादिना निर्हृततदोषाः शुद्धाः ।

६ स्नेहपीतादीनां परिहार्यापरिहरणे ये दोषास्तान्निरूपयति—क्रुध्यत इति । ७ दाहपिपासाद्युपद्रवानित्यर्थः । ८ सम्मोहमदापस्मारोन्मादादिविविधं भ्रममित्यर्थः । ९ मैथुनोपगममूलानेव घोरान् व्याधीन् विवृणोति—आक्षेपकमिति । १० दिवास्वप्नमूलान् कफात्मकान् व्याधीन् निरूपयति—प्लीहोदरमिति । ११ तमसा=तमोगुणेनेत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आन्ध्यं[1] जाड्यमजिघ्रत्वं बाधिर्यं मूकतां तथा ॥ ३० ॥
हनुमोक्षमधीमन्थ[2]मर्दितञ्च सुदारुणम् ।
नेत्रस्तम्भं निमेषं वा तृष्णां कासं प्रजागरम् ॥ ३१ ॥
लभते दन्तचालं च तांस्तांश्चान्यानुपद्रवान् ।
यानयानेन[3] लभते छर्दिमूर्च्छाभ्रमक्लमान् ॥ ३२ ॥
तथैवाङ्गग्रहं घोरमिन्द्रियाणाञ्च विभ्रमम् ।
चिरासनात्[4]तथा स्नानाच्छ्रोण्यां भवति वेदना ॥ ३३ ॥
अतिचङ्क्रमणाद्वायुर्जङ्घयोः कुरुते रुजः ।
सक्थिप्रशोषं शोफं वा पादहर्षमथापि वा ॥ ३४ ॥
शीतसम्भोग[5]तोयानां सेवा मारुतवृद्धये ।
ततोऽङ्गमर्दविष्टम्भशूलाध्मानप्रवेपकाः ॥ ३५ ॥
वातातपाभ्यां वैवर्ण्यं[6] ज्वरं चापि समाप्नुयात् ।
विरुद्धाध्यशनान्मृत्युं व्याधिं वा घोरमृच्छति ॥ ३६ ॥
असात्म्यभोजनं हन्याद् बलवर्णमसंशयम् ।
अनात्मवन्तः पशुवद् भुञ्जते येऽप्रमाणतः ।
रोगानीकस्य[10] ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ॥ ३७ ॥
व्यापदां[11] कारणं वीक्ष्य व्यापत्स्वेतासु बुद्धिमान् ।

---

१ उच्चैःसम्भाषणमूलान् व्याधीन् दर्शयति—**आन्ध्यमिति** । गन्धं गृह्णातीति जिघ्रः, न जिघ्रोऽजिघ्रस्तस्य भावस्तत्त्वं गन्धाज्ञतेत्यर्थः । २ अधीमन्थः = अक्षिरोगः, अर्दितं = वातव्याधिरोगविशेषः । ३ यानयानेन = अश्वादिना गमनेन ।

४ चिरासनात् = एकस्मिन् स्थाने बहुकालपर्यन्तमुपवेशनात्, स्थानात् = ऊर्ध्वीभवनात् । ५ अतिचङ्क्रमणात् = अतिपरिभ्रमणात् । ६ माल्यचन्दनाद्युपभोगः सम्भोगः । ७ वाताद् वैवर्ण्यं, पित्ताज्ज्वरमिति यथासंख्यमन्वयः ।

८ पयोमांसादिविरुद्धाशनम्, तन्निषिद्धम्—"न मत्स्यान् पयसाऽभ्यवहरेत्" इति । अध्यशनम् = अजीर्णे भोजनम्, "अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते" इति । ९ असात्म्यभोजनं = प्रकृतिप्रतिकूलभोजनम् । १० रोगानीकस्य = व्याधिसमूहस्येत्यर्थः ।

११ पूर्वोक्तदोषाणां सङ्क्षेपेण चिकित्साप्राचष्टे—**व्यापदामिति** । व्यापदाम् =


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयतेतातुरारोग्ये प्रत्यनीकेन[1] हेतुना ॥ ३८ ॥
विरिक्तेवान्तैर्हरिणैणलावकाः शशश्च सेव्यः समयूरतित्तिरिः[2] ।
सषष्टिकाश्चैव पुराणशालयस्तथैव मुद्गा लघु यच्च[3] कीर्त्तितम् ॥३९॥

इति सुश्रुतसंहितायां चिकित्सास्थाने आतुरोपद्रवचिकित्सितनामैकोन-चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

---

## चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो धूमनस्यकवलग्रह[4]चिकित्सितं व्याख्यास्यामः॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

धूमः पञ्चविधो भवति । तद्यथा—प्रायोगिकः[5], स्नेहिको वैरेचनिकः, कासघ्नो[6], वामनीयश्चेति ॥ ३ ॥

तत्रैलादिना[7] कुष्ठतगरवर्ज्येन श्लक्ष्णपिष्टेन द्वादशाङ्गुलं शरकाण्ड[8]-

---

उपद्रवाणाम् । १ प्रत्यनीकेन=विरोधिना । 'प्रतिपक्षमशक्तेन प्रतिकर्तुं तिरस्क्रिया । या तदीयस्य तत्स्तुत्यै प्रत्यनीकं तदुच्यते' । २ विरिक्तेन वान्तेन च सेव्यमन्नपानं निर्दिशति—**विरिक्तेति** । ३ अत्र तच्च सेव्यमिति शेषः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाश्चिकित्सास्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकोन-चत्वारिंशोऽध्यायः ।**

---

### चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

४ कवलग्रहशब्दानन्तरमादिशब्दस्य लुप्तनिर्देशाद् गण्डूषप्रतिसारणयोरपि चिकित्सितं बोध्यम्, चिकित्सासादृश्यात् । ५ स्वस्थस्य सततप्रयोगे साधुः प्रायोगिकः । ६ कासम् उरः कण्ठरोगं च हन्तीति कासघ्नः । भावप्रकाशे विशेषः—"धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा । रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ॥ शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा । बृंहणस्य च पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ॥ रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च ।" इति । ७ धूमवर्तिसाधनद्रव्याणि निर्दिशति—**तत्रेति** । कुष्ठतगरवर्ज्येन=कुष्ठतगररहितेन, एलादिना=एलादिवर्गेणेत्यर्थः । निमिः—"धूमो हि वक्त्रकुष्ठाभ्यां विलालयति शक्तितः । मस्तिष्कं तद्धि विष्वण्णं नाशाय प्रतिपद्यते ॥" इति ।

८ शरकाण्डं=शरेषिका, 'सरकंडा' इति ख्यातम्, अङ्गुलिपरिणाहं=कनिष्ठि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मङ्गुलिपरिणाहं चौमेणाष्टाङ्गुलं वेष्टयित्वा लेपयेदेषा वर्त्तिः प्रायोगिके, स्नेहफलसारमधूच्छिष्टसर्जरसगुग्गुलुप्रभृतिभिः स्नेहमिश्रैः स्नैहिके, शिरोविरेचनद्रव्यैर्वैरेचने, बृहतीकण्टकारिकात्रिकटुकासमर्दहिङ्ग्विङ्गुदीत्वङ्मनःशिलाच्छिन्नरुहाकर्कटशृङ्गीप्रभृतिभिः कासहरैश्च कासघ्ने, स्नायुचर्मखुरशृङ्गकर्कटकास्थिशुष्कमत्स्यवल्लूरकृमिप्रभृतिभिर्वामनीयैश्च वामनीये ॥ ४ ॥

तत्र बस्तिनेत्रद्रव्यैर्धूमनेत्रद्रव्याणि व्याख्यातानि भवन्ति। धूमनेत्रन्तु कनिष्ठिकापरिणाहमग्रे कलायमात्रस्रोतो मूलेऽङ्गुष्ठपरिणाहं धूमवर्त्तिप्रवेशस्रोतोऽङ्गुलान्यष्टचत्वारिंशत्प्रायोगिके, द्वात्रिंशत् स्नेहने, चतुर्विंशतिर्विरेचने, षोडशाङ्गुलं कासघ्ने वामनीये च। एतेऽपि कोलास्थिमात्रच्छिद्रे भवतः। व्रणनेत्रमष्टाङ्गुलं व्रणधूपनार्थं कलायपरिमण्डलं कुलत्थवाहिस्रोत इति ॥ ५ ॥

अथ सुखोपविष्टः सुमना ऋज्वधोदृष्टिरतन्द्रितः स्नेहाक्तदीप्ताग्रां वर्त्तिं नेत्रस्रोतसि प्रणिधाय धूमं पिबेत् ॥ ६ ॥

मुखेन तं पिबेत् पूर्वं नासिकाभ्यां ततः पिबेत्।

---

काऽङ्गुलिसमस्थौल्यम्। १ वर्तिः = सर्वधूमनेत्रेभ्यः षड्भागप्रमाणा। तदुक्तवान् विदेहः—"अङ्गुष्ठपरिणाहेन मध्ये स्थूलाऽन्तयोस्तनुः। धूमनेत्रस्य षड्भागं वर्तिमानं प्रचक्षते ॥" इति।

२ स्नेहफलानां तिलातसीशिग्रुबिभीतकादिफलानां सारस्तदन्तर्गतो मज्जा, मधूच्छिष्ट = सिक्थम्, 'मोम' इति ख्यातम्। ३ शिरोविरेचनद्रव्यैः = पिप्पलीविडङ्गशिग्रुसिद्धार्थकापामार्गार्कार्कपर्णिज्जकप्रभृतिभिरित्यर्थः। ४ वल्लूरं = शुष्कमांसम्। ५ वामनीयैः = संशोधनसंशमनीयोक्तमदनफलादिभिरित्यर्थः।

६ धूमनेत्रसाधनद्रव्याणि वक्ति—**तत्रेति**। बस्तिनेत्रद्रव्यैः = सुवर्णरूप्यत्रपुसीसताम्रकांस्यादिभिः। ७ धूमनेत्रप्रमाणं प्रतिपादयति—**धूमेति**। धूमनेत्रं तदुच्यते येन धूमपानं क्रियते। ८ अग्रे = मुखनासिकाप्रणयनस्थाने। मूले = वर्तिसंवरणस्थाने। धूमवर्तिप्रवेशस्रोतः = यावता स्रोतसा धूमवर्तिप्रवेशो भवति तावन्मात्रस्रोतस्कम्। ९ चतुर्ष्वपि मूलच्छिद्रमानमुक्त्वा दैर्घ्यमानमाचष्टे—अङ्गुलानीति। १० कलायपरिमण्डलं = कलायवद्वर्तुलमुखम्।

११ धूमपानविधानमाख्याति—**अथेति**। १२ आदौ स्नेहाक्तः पश्चादीप्तमग्रं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुखपीतं मुखेनैव वमेत् पीतञ्च नासया ॥ ७ ॥
मुखेन धूममादाय नासिकाभ्यां न निर्हरेत् ।
तेन हि प्रतिलोमेन दृष्टिस्तत्र विहन्यते ॥ ८ ॥

विशेषतस्तु प्रायोगिकं घ्राणेनाददीत, स्नैहिकं मुखनासाभ्यां, नासिकया वैरेचनिकं, मुखेनैवेतरौ ॥ ९ ॥

तत्र[3] प्रायोगिके वर्त्तिं व्यपगतशरकाण्डां निशातातपशुष्कामङ्गारेष्ववदीप्य नेत्रमूलस्रोतसि प्रयुज्य धूममाहरेति ब्रूयात् ; एवं स्नेहनं वैरेचनिकञ्च कुर्यादिति । इतरयोर्व्यपेतधूमाङ्गारे स्थिरे समाहिते शरावे प्रक्षिप्य वर्त्तिं मूलच्छिद्रेणान्येन शरावेण पिधाय तस्मिन् छिद्रे नेत्रमूलं संयोज्य धूममासेवेत, प्रशान्ते धूमे वर्त्तिमवशिष्टां प्रक्षिप्य पुनरपि धूमं पाययेदादोषविशुद्धेरेव धूमपानोपायविधिः ॥ १० ॥

तत्र[6] शोकश्रमभयामर्षैष्ण्यविषरक्तपित्तघ्नमूर्च्छादाहपिपासापाण्डुरोगतालुशोषच्छर्दिशिरोऽभिघातोद्धारापतर्पिततिमिरप्रमेहोदराध्मानोर्ध्ववातार्त्ता बालवृद्धदुर्बलविरिक्तास्थापितजागरितगर्भिणीरूक्षक्षीणक्षतोरस्कमधुघृतदधिदुग्धमत्स्यमद्ययवागूपीतालम्पकक्षाश्च न धूममासेवेरन् ॥ ११ ॥

---

यस्याः सा तां स्नेहाक्तदीप्ताग्राम् । १ चकारोऽप्यर्थकः, तथा च नासया नासिकया पीतमपि मुखेनैव वमेदित्यर्थः ।

२ तन्त्रान्तरेऽपि—"निर्वमेत्तु मुखेनैव नासया न कथञ्चन । विलोमतो गतो धूमः कुर्याद्दर्शनविभ्रमम् ॥" इति । वाग्भटेऽपि—"मुखेनैव वमेद्धूमं नासया दृग्विघातकृत्" इति । ३ इतरौ=कासघ्नवामनीयौ । धूमपानविधिप्रसङ्गे वाग्भटस्तु—"प्राक् पिबेन्नासयोत्क्लिष्टे दोषे घ्राणशिरोगते । उत्क्लेशनार्थं वक्त्रेण विपरीतं तु कण्ठगे ॥" इति । चक्षुष्येण उभयमार्गपानहेतुरुक्तः—"उरःकण्ठादिरोगेषु मुखेनैव पिबेन्नरः । शिरःकर्णाक्षिनासास्थे नासातो धूममाचरेत् ॥" इति ।

४ धूमविशेषेण धूमपाने विशेषविधिमभिधत्ते—तत्रेति । ५ मूले छिद्रं यस्य स तेन मूलच्छिद्रेण अन्येन शरावेणेत्यर्थः । ६ धूमपानानर्हान्नरान्निर्दिशति—तत्र शोकेति । ७ "धूमस्तु द्वादशाद् वर्षाद् गृह्यतेऽशीतिकान्न च" इति भावमिश्रः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकालपीतः कुरुते भ्रमं मूर्च्छां शिरोरुजम्।
घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वानामुपघातञ्च दारुणम्॥ १२॥

आद्यास्तु त्रयो धूमा द्वादशसु कालेषूपादेयाः। तद्यथा—क्षुतदन्तप्रक्षालननस्यस्नानभोजनदिवास्वप्नमैथुनच्छर्दिमूत्रोच्चारहसितरुषितशस्त्रकर्मान्तेष्विति। तत्र विभागो-मूत्रोच्चारक्षवथुहसितरुषितमैथुनान्तेषु स्नैहिकः, स्नानच्छर्दनादिदिवास्वप्नान्तेषु वैरेचनिकः, दन्तप्रक्षालनस्यस्नानभोजनशस्त्रकर्मान्तेषु प्रायोगिक इति॥ १३॥

तत्र स्नैहिको वातं शमयति, स्नेहादुपलेपाच्च। वैरेचनः श्लेष्माणमुत्क्लेश्यापकर्षति, रौक्ष्यात्तैक्ष्ण्यादौष्ण्याद्वैशद्याच्च। प्रायोगिकः श्लेष्माणमुत्क्लेशयत्युत्क्लिष्टं चापकर्षति शमयति वातं साधारणत्वात् पूर्वाभ्यामिति॥ १४॥

भवन्ति चात्र।

नरो धूमोपयोगाच्च प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनाः।
दृढकेशद्विजश्मश्रुः सुगन्धिर्विशदाननः॥ १५॥

तथा कासश्वासारोचकास्योपलेपस्वरभेदमुखास्रावक्षवथुवमथुक्रथतन्द्रानिद्राहनुमन्यास्तम्भाः पीनसशिरोरोगकर्णाक्षिशूला वातकफनिमित्ताश्चास्य मुखरोगा न भवन्ति॥ १६॥

तस्य योगायोगातियोगा विज्ञातव्याः। तत्र योगो रोगप्रशमनः, अयोगो रोगाप्रशमनः, तालुगलशोषपरिदाहपिपासामूर्च्छाभ्रममदकर्णक्ष्वेडदृष्टिनासारोगदौर्बल्यान्यतियोगो जनयति॥ १७॥

---

१ चरकोऽपि—"बाधिर्यमान्ध्यमूकत्वं रक्तपित्तं शिरोभ्रमम्। अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान्॥" इति। २ अकालपीतधूमपानव्यापदमभिधाय धूमपानकालानभिधत्ते—आद्यास्त्विति। वाग्भटः—"क्षुतजृम्भितविण्मूत्रस्त्रीसेवाशस्त्रकर्मणाम्। हासस्य दन्तकाष्ठस्य धूममन्ते पिबेन्मृदुम्॥ कालेष्वेषु निशाऽऽहारनावनान्ते च मध्यमम्। निद्रानस्याञ्जनस्नानच्छर्दितान्ते विरेचनम्॥" इति। ३ रुषितः = रुष्ट इत्यर्थः।

४ धूमानां प्रत्येकं कार्यमाख्याति—तत्रेति। ५ पूर्वाभ्यां = स्नेहविरेचनाभ्याम्। ६ धूमपानगुणानाचष्टे—नर इति। ७ क्रथः = अकस्मादुच्छ्वासावरोधः। ८ धूमस्य योगायोगातियोगलक्षणमाख्याति—तस्येति। ९ दृष्टिनासा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]प्रायोगिकं त्रींस्त्रीनुच्छ्वासानाददीत मुखनासिकाभ्याञ्च पर्यायांस्त्रींश्चतुरो वेति, । [2]स्नैहिकं यावदश्रुप्रवृत्तिः, । [3]वैरेचनिकमादोषदर्शनात्, तिलतण्डुलयवागूपीतेन पातव्यो वामनीयः, आसान्तरेषु कासघ्न इति ॥ १८ ॥

[4]व्रणधूमं शरावसम्पुटोपनीतेन नेत्रेण व्रणमानयेत्, धूमनाद्वेदनोपशमो व्रणवैशद्यमास्रावोपशमश्च भवति ॥ १९ ॥

विधिरेष समासेन धूमस्याभिहितो मया ।
नस्यस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं निरवशेषतः ॥ २० ॥

[5]औषधमौषधसिद्धो वा स्नेहो नासिकाभ्यां दीयत इति नस्यम्[6]। तद् द्विविधं शिरोविरेचनं, स्नेहनञ्च । तद् द्विविधमपि पञ्चधा । तद्यथा—नस्यं, शिरोविरेचनं, प्रतिमर्शः, अवपीडः, प्रधमनञ्च ।

---

शब्दयोः रोगदौर्बल्याभ्यां सम्बन्धः, तथा च दृष्टिदौर्बल्यं, नासारोग इति बोध्यम् ।

१ प्रायोगिकादिधूमानां पानमर्यादामभिधत्ते—**प्रायोगिकमिति** । "आक्षेपमोक्षैः पातव्यो धूमस्तु त्रिस्त्रिभिस्त्रिभिः" इति वाग्भटः । आक्षेपमोक्षैः = यादानविसर्गैरिति तदर्थः । निमिः—"धूमपाने तु विज्ञेय उच्छ्वासस्त्रिगुणः कलाः । तिस्रः कलाश्चात्र मात्रा प्रमाणं स्यात् त्रिमात्रिकम् ॥ पिबेत् स्वस्थविधौ मात्रां दुर्बलस्तु कलां पिबेत् । अभिष्यण्णे प्रमाणं स्यात् प्रमाणं च पिबेद्भृजि ॥" इति ।

२ इति बलवतः पुरुषस्य । तदुक्तं भोजे—"प्रमाणं स्नैहिके धूमे कृशो मात्रां पिबेन्नरः । बलवांस्तु पिबेत्तावद्यावदश्रुर्न गच्छति ॥" इति । ३ आदोषदर्शनाद्= विकृतकफदर्शनपर्यन्तम् । वाग्भटः—"अह्नः पिबेत् सकृत् स्निग्धं द्विर्मध्य शोधनं परम् । द्विश्चतुर्वा" इति । शोधनं=विरेचनमित्यर्थः ।

४ व्रणधूपनविधिमभिधत्ते—**व्रणधूममिति** । "शरावसम्पुटे क्षिप्त्वा कल्कमङ्गारदीपितम् । छिद्रे नेत्रं निवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत् ॥" इत्यष्टाङ्गहृदयम् । भावप्रकाशे गृहदेयधूपमाह—'मयूरपिच्छं निम्बस्य पत्राणि वृहतीफलम् । मरिचं हिङ्गु मांसी च बीजं कार्पाससम्भवम् ॥ छागरोमाहिनिर्मोकं विष्ठा वैडालिकी तथा । गजदन्तश्च तच्चूर्णं किञ्चिद् घृतविमिश्रितम् ॥ गेहेषु धूपनं दत्त सर्वान् बालग्रहान् हरेत् । पिशाचान् राक्षसान् हत्वा सर्वेज्वरहरं भवेत् ॥" इति ।

५ नस्यलक्षणं तद्भेदांश्च दर्शयति—**औषधमिति** । औषधं = पिप्पलीविडङ्गापामार्गादिबीजचूर्णम् । ६ भावमिश्रः—"नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौष-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेषु नस्यं प्रधानं शिरोविरेचनं च, नस्यविकल्पः प्रतिमर्शः, शिरोविरेचनविकल्पोऽवपीडः प्रधमनञ्च, ततो नस्यशब्दः पञ्चधा नियमितः ॥ २ ॥

तत्र यः स्नेहनार्थं शून्यशिरसां ग्रीवास्कन्धोरसां च बलजननाथ दृष्टिप्रसादजननार्थं वा स्नेहो विधीयते तस्मिन् वैशेषिको नस्यशब्दः। तत्तु देयं वाताभिभूते शिरसि दन्तकेशश्मश्रुप्रपातदारुणकर्णशूलकर्णक्ष्वेडतिमिरस्वरोपघातनासारोगास्यशोषावबाहुकाकालजवलिपलितप्रादुर्भावदारुणप्रबोधेषु वातपैत्तिकेषु मुखरोगेष्वन्येषु च वातपित्तहरद्रव्यसिद्धेन स्नेहेनेति ॥ २२ ॥

शिरोविरेचनं श्लेष्मणाऽभिव्याप्ततालुकण्ठशिरसामरोचकशिरोगौरवशूलपीनसार्द्धावभेदकृमिप्रतिश्यायापस्मारगन्धाज्ञानेष्वन्येषु चोर्द्ध्वजत्रुगतेषु कफजेषु विकारेषु शिरोविरेचनद्रव्यैस्तत्सिद्धेन वा स्नेहेनेति ॥ २३ ॥

तत्रैतद्द्विविधमभुक्तवतोऽन्नकाले पूर्वाह्णे श्लेष्मरोगिणां, म-

---

धम्। नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम्॥" इति। १ चकारः प्रतिमर्शस्य समुच्चयार्थम्। तथा च—"प्रतिमर्शो भवेत्स्नेहो निर्दोष उभयार्थकृत्" इति चरकः।

२ स्नैहिकनस्यस्य ये योग्यास्तान्निर्दिशति—**तत्रेति**। ३ दारुणः=दारुणकाख्यक्षुद्ररोगभेदः। ४ अन्येषु=वातपैत्तिकशिरोरोगादिषु। स्नैहिकनस्यकालावधिस्तन्त्रान्तरे—"एकान्तरं द्वयन्तरं वा नस्यं दद्याद् विचक्षणः। सप्ताहं तु परं देयं विश्रान्तस्य पुनः पुनः॥ पक्षं विंशतिरात्रं वा यावद्वा साधु मन्यते।" इति भोजः। अन्यत्र तु—"त्र्यहं पञ्चाहमथवा सप्ताहं वा सुयन्त्रितः। परं नवाहमूर्ध्वं तु नवाहात् सात्म्यतां व्रजेत्॥ न तन्नस्यगुणं कुर्यात् सात्म्यत्वाद्दोषकृन्न च। तस्मान्नस्यप्रयोगस्तु स्नैहिको न हितः सदा॥" इति।

५ शिरोविरेचनयोग्यानाह—**शिर इति**। ६ अर्द्धावभेदकः='आधाशीशी-अधकपारी' इति ख्यातः। ७ शिरोविरेचनद्रव्यैः=पिप्पलीविडङ्गशिग्रुसिद्धार्थकापामार्गक्षवकफणिज्जकपीलुप्रभृतिभिः। ८ स्नैहिकविरेचनिकयोः कालनिर्धारणमुच्यते—**तत्रेति**। सङ्ग्रहे विशेषः—'लालास्रावबहुनिप्रलापदन्तकटकायनकथनकृच्छ्रोन्मीलनपूतिमुखकर्णनादतृष्णाऽर्दितशिरोरोगश्वासकासोन्निद्रेषु रात्रौ" इति। स्वस्थवृत्ते नस्यप्रयोगकालनिर्धारणमष्टाङ्गहृदये—"स्वस्थवृत्ते तु पूर्वाह्णे शरत्कालवसन्तयोः। शीते मध्यन्दिने ग्रीष्मे सायं वर्षासु सातपे॥" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्याह्ने पित्तरोगिणामपराह्णे वातरोगिणाम् ॥ २४ ॥

अथ[1] पुरुषाय शिरोविरेचनीयाय त्यक्तमूत्रपुरीषाय भुक्तवते व्यभ्रे काले दन्तकाष्ठधूमपानाभ्यां विशुद्धवक्त्रस्रोतसे पाणितापपरिस्विन्नमृदितगलकपोललललाटप्रदेशाय वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिने प्रसारितकरचरणाय किञ्चित् प्रविलम्बितशिरसे वस्त्राच्छादितनेत्राय वामहस्तप्रदेशिन्यग्रोन्नामितनासाग्राय विशुद्धस्रोतसि दक्षिणहस्तेन स्नेहमुष्णाम्बुना प्रतप्तं रजतसुवर्णताम्रमणिमृत्पात्रशुक्तीनामन्यतमस्थं शुक्त्या[2] पिचुना वा सुखोष्णं स्नेह[3]मद्रतमासिञ्चेदवच्छिन्नधारं यथा नेत्रे न प्राप्नोति ॥ २५ ॥

[4]स्नेहोऽवसिच्यमाने तु शिरो नैव प्रकम्पयेत् ।
न कुप्येन्न प्रभाषेच्च न क्षुयान्न हसेत्तथा ॥ २६ ॥
एतैर्हि विहितः स्नेहो न सम्यक् प्रतिपद्यते ।
ततः कासप्रतिश्या[5]यशिरोऽक्षिगदसम्भवः ॥ २७ ॥

तस्य[6] प्रमाणमष्टौ विन्दवः प्रदेशिनीपर्वद्वयनिःसृताः प्रथमा मात्रा, द्वितीया शुक्तिः[7], तृतीया पाणिशुक्तिरित्येतास्तिस्रो मात्रा यथाबलं प्रयोज्याः ॥ २८ ॥

---

१ नस्यदानविधानमाह—अथेति । "अथोत्तानजुंदेहस्य पाणिपादे प्रसारिते । किञ्चिदुन्नतपादस्य किञ्चिन्मूर्धनि नामिते ॥ नासापुटं पिधायैकं पर्यायेण निषेचयेत् । उष्णाम्बुतप्तं भैषज्यं प्रनाडया पिचुनाऽथवा ॥ दत्ते पादतलस्कन्धहस्तकर्णादि मर्दयेत् ।" इति । २ पिचुना = कार्पासादिमयतूलेनेत्यर्थः । ३ स्नेहशब्दस्योपलक्षणत्वादेवमेव कल्ककाथादिकमपि देयम् । दत्तमात्रे नस्ये कर्तव्यतामाह वृद्धवाग्भटः—"दत्तमात्रे नस्ये कर्णललाटकेशभूमिगण्डमन्यास्कन्धपाणिपादतलान्यनुसुखं मर्दयेत्, शनैः शनैश्चोच्छ्वसेत् ।" इति ।

४ स्नेहावसेककाले यानि न कर्तव्यानि तानि निर्दिशति—स्नेह इति । ५ प्रतिश्यायं इयायते इति प्रतिश्यायः नासास्रावरोगः, 'जुकाम' इति ख्यातः । ६ अल्पमध्यमोत्तममेदेन स्नैहिकनस्यप्रमाणं प्रतिपादयति—तस्येति । तस्य = स्नेहस्य । ७ शुक्तिः = द्वात्रिंशद्बिन्दवः, पाणिशुक्तिः = चतुःषष्टिबिन्दवः । भोजे तु—"प्रायोगिकं स्नैहिकं च द्विविधं नस्यमुच्यते । प्रायोगिके बिन्दवोऽष्टौ स्नैहिके शुक्तिरिष्यते ॥ दोषोच्छ्रायं समासाद्य दद्याद् द्वित्रिचतुर्गुणम् ।" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नेहनस्यं[1] नोपगिलेत् कथञ्चिदपि बुद्धिमान् ॥ २९ ॥
शृङ्गाटकमभिप्लाव्य[2] निरेति वदनाद्यथा ।
कफोत्क्लेशभयाच्चैनां निष्ठीवेदविधारयन् ॥ ३० ॥
दत्ते च पुनरपि संस्वेद्य गलकपोलादीन् धूममासेवेत[3], भोजयेच्चैनमभिष्यन्दि, ततोऽस्याचारिकमादिशेत्; रजोधूमस्नेहातपमद्यद्रवपानशिरःस्नानातियानक्रोधादीनि च परिहरेत् ॥ ३१ ॥
तस्य[4] योगातियोगायोगानामिदं विज्ञानं भवति ॥ ३२ ॥
लाघवं शिरसो योगे सुखस्वप्नप्रबोधनम् ।
विकारोपशमः शुद्धिरिन्द्रियाणां मनःसुखम् ॥ ३३ ॥
कफ[5]प्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः ।
लक्षणं मूर्ध्न्यतिस्निग्धे रूक्षं तत्रावचारयेत् ॥ ३४ ॥
अयोगे वातवैगुण्यमिन्द्रियाणाञ्च रूक्षता ।
रोगाशान्तिश्च तत्रेष्टं भूयो नस्यं प्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥
चत्वारो विन्दवः षड् वा तथाऽष्टौ वा यथाबलम् ।

---

१ स्नैहिकनस्यस्य पश्चात्कर्म दर्शयति—स्नेहेति । नोपगिलेत्=न पिबेदित्यर्थः । तदुक्तवान् विदेहः="निष्ठीवेन्न पिबेन्नस्यं व्यापदः पिबतस्त्विमाः । भवन्ति कासश्छर्दिश्च कुत्साऽन्ने वमथुस्तथा ॥" इति । तन्त्रान्तरे विशेषः—"उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासावक्त्रागतं द्रवम् । वामदक्षिणपार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत्सम्मुखं न हि ॥" इति । "एकपार्श्वष्ठीवने न सर्वाः सिराः भेषजेन सम्यग् व्याप्यन्ते" इति वाग्भटः । क्वचिन्नस्यं पिबेदपि, तदप्युक्तवान् विदेहः—"क्षीणं मांसं बलं यस्य वातार्तिश्चोर्ध्वजत्रुजा । सुदोषाग्निः स्नेहसात्म्यः स नस्यं नासया पिबेत् ॥ धातूंश्च तर्पयेद् देहे पीतं नस्यं तु नस्यतः ॥" इति ।

२ घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वासन्तर्पणीनां सिराणां मध्ये सिरासन्निपातः शृङ्गाटकानीत्युक्तं शारीरस्थाने । ३ वाक्शतानन्तरमिति शेषः । "वाक्शतादूर्ध्वमुत्थाय धूमं प्रायोगिकं पिबेत्" इति भोजः । ४ स्नैहिकनस्यस्य योगायोगातियोगलक्षणान्याह—तस्येति ।

५ कफप्रसेकः=श्लेष्मसंश्रवः । ६ नस्ये शिरोविरेचनस्नेहप्रमाणमाख्याति—चत्वार इति । विदेहः स्पष्टतरमाह—"चतुरश्चतुरो बिन्दूनेकैकस्मिन् समाचरेत् । एषा लघ्वी मता मात्रा तथा शीघ्रं विरेचयेत् ॥ अध्यर्धां द्विगुणां वाऽपि त्रिगुणां वा चतुर्गुणाम् । यथाव्याधि विदित्वा तु मात्रां समवचारयेत् ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिरोविरेकस्नेहस्य प्रमाणमभिनिर्दिशेत् ॥ ३६ ॥
नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि प्रयोगतः ।
शुद्धहीनातिसंज्ञानि विशेषाच्छास्त्रचिन्तकैः ॥ ३७ ॥
लाघवं शिरसः शुद्धिः स्रोतसां व्याधिनिर्जयः ।
चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् ॥ ३८ ॥
कण्डूपदेहौ गुरुता स्रोतसां कफसंस्रवः ।
मूर्ध्नि हीनविशुद्धे तु लक्षणं परिकीर्त्तितम् ॥ ३९ ॥
मस्तुलुङ्गागमो वातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः ।
शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढविरेचिते ॥ ४० ॥
हीनातिशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत् ।
सम्यग्विशुद्धे शिरसि सर्पिर्नस्यं निषेचयेत् ॥ ४१ ॥
एकान्तरं द्व्यन्तरं वा सप्ताहं वा पुनः पुनः ।
एकविंशतिरात्रं वा यावद् वा साधु मन्यते ॥ ४२ ॥
मारुतेनाभिभूतस्य वाऽत्यन्तं यस्य देहिनः ।
द्विकालञ्चापि दातव्यं नस्यं तस्य विजानता ॥ ४३ ॥

अवपीडस्तु शिरोविरेचनवदभिष्यण्णसर्पदष्टविसंज्ञेभ्यो दद्याच्छिरोविरेचनद्रव्याणामन्यतममवपिष्यावपीड्य च, शर्करेक्षुरसक्षीरघृतमांसरसानामन्यतमं क्षीणानां शोणितपित्ते च विदध्यात् ॥ ४४ ॥

कृशदुर्बलभीरूणां सुकुमारस्य योषिताम् ।

---

१ वैरेचनिकनस्यस्य योगायोगातियोगलक्षणानि निर्दिशति—नस्य इति । २ मस्तुलुङ्गं मस्तकान्तर्घृताकारः स्नेहस्तस्यागमो निर्गमः, इन्द्रियविभ्रमः = इन्द्रियाणामयथाविषयग्रहः । ३ लक्षणानुसारेण नस्यविधिमभिधत्ते—हीनेति । ४ "दद्यात्सर्पिः सदा पित्ते" इति वक्ष्यमाणत्वात् सर्पिर्नस्यमिति पित्तप्रकृतौ बोद्धव्यम् । वातप्रकृतौ पक्वं तैलम् । ५ अवपीडनस्यार्हान्नरानिर्दिशति—अवेति । विदेहोऽवपीडस्य द्वैविध्यमुक्तवान्—"विषाभिघातसन्न्यासमूर्च्छामोहापतन्त्रके । मदापस्मारकामार्तिचिन्ताक्रोधभयादिषु ॥ मानसेषु च रोगेषु मूढव्याकुलचेतसाम् । संज्ञाप्रबोधहेत्वर्थमवपीडं प्रयोजयेत् ॥ शिरोविरेचनस्नेहमुष्काख्यं(?) तद्विरेचनम् । क्षौद्रादिकल्कपिष्टं च स्तम्भनं त्ववपीडनम् ॥" इति । ६ मेदःकफातिव्याप्तशिरोऽभिष्यण्णः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शृताः स्नेहाः शिरःशुद्धचै कल्कस्तेभ्यो यथा हितः ॥ ४५ ॥
चेतोविकारकृमिविषाभिपन्नानां चूर्णं प्रधमेत् ॥ ४६ ॥
नस्येन परिहर्त्तव्यो भुक्तवानपतर्पितोऽत्यर्थतरुणप्रतिश्यायी गर्भिणी पीतस्नेहोदकमद्यद्रवोऽजीर्णी दत्तवस्तिः क्रुद्धो गरार्त्तस्तृषितः शोकाभिभूतः श्रान्तो बालो वृद्धो वेगावरोधितः शिरःस्नातुकामश्चेति; । अनार्त्तवे चाभ्रे नस्यधूमौ परिहरेत् ॥ ४७ ॥
तत्र हीनातिमात्रातिशीतोष्णसहसाप्रदानादतिप्रविलम्बितशिरस उच्छिङ्घतो विचलतोऽभ्यवहरतो वा प्रतिषिद्धप्रदानाच्च व्यापदो भवन्ति तृष्णोद्वारादयो दोषनिमित्ताः क्षयजाश्च ॥ ४८ ॥

भवतश्चात्र ।

नस्ये शिरोविरेके च व्यापदो द्विविधाः स्मृताः ।
दोषोत्क्लेशात् क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् ॥ ४९ ॥
दोषोत्क्लेशनिमित्तांस्तु जयेच्छमनशोधनैः ।
अथ क्षयनिमित्तास्तु यथास्वं बृंहणं हितम् ॥ ५० ॥

प्रतिमर्शश्चतुर्दशसु कालेषूपादेयः । तद्यथा—तल्पोत्थितेन प्रक्षालितदन्तेन, गृहान्निर्गच्छता, व्यायामव्यवायाध्वपरिश्रान्तेन,

---

१ प्रधमने विशेषमाह विदेहः—"नाडी षडङ्गुलायामा द्विमुखो च तया धमेत् । त्रिश्चूर्णं मुच्चुटीमात्रमेष प्रधमने विधिः ॥ शुक्तिप्रमाणं जिह्वेद्धा बद्धं सूक्ष्मेण वाससा ॥" इति । तर्जन्यङ्गुष्ठाग्रमात्रग्राह्यं चूर्णं मुच्चुटीमात्रमिति तदर्थः । २ नस्यानर्हपुरुषान् दर्शयति—नस्येनेति । ३ सङ्ग्रहे चोक्तम्—"गर्भिण्या भक्तद्वेषज्वरमूर्च्छार्धावभेदकाः स्युः, अपत्यं च व्यङ्गं विकलेन्द्रियमुन्मादापस्मारयुक्तं वा स्यात्, विशेषेण तु गर्भिणी रूक्षे नस्यकर्मणि वर्षाभूकाकोलीकपिकच्छुभिः शृतं पयः पिबेत्, बलाविदार्यश्वगुप्तीमेदाभिर्वैभिरेव च शृतं हविर्वातहरसिद्धश्च स्नेहः शिरोवस्तौ कर्णपूरणे च योज्यः, सर्वं च बृंहणमन्नपानम्" इति । ४ चकारादार्तवेऽप्यभ्रे ।

५ नस्यव्यापदोऽभिधत्ते—तत्रेति । ६ उच्छिङ्घतः = नासयोर्ध्वमाकर्षतः । ७ दोषनिमित्ताः = दोषोत्क्लेशकारणाः, क्षयजाः = दोषक्षयजन्या इत्यर्थः । ८ नस्यव्यापदां चिकित्सितमभिधत्ते—दोषेति । ९ संशमनसंशोधनैरित्यर्थः । तत्र स्वल्पे शमनं, महति शोधनम् ।

१० प्रतिमर्शनस्यस्य चतुर्दशसमयमाख्याति—प्रतिमर्श इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूत्रोच्चारकवलाञ्जनान्ते, भुक्तवता, छर्दितवता, दिवास्वप्नोत्थितेन, सायञ्चेति ॥ ५१ ॥

तत्र तल्पोत्थितेनासेवितः प्रतिमर्शो रात्रावुपचितं नासास्रोतोगतं मलमुपहन्ति मनःप्रसादञ्च करोति, प्रक्षालितदन्तेनासेवितो दन्तानां दृढतां वदनसौगन्ध्यं चापादयति, गृहान्निर्गच्छता सेवितो नासास्रोतसः क्लिन्नतया रजोधूमो वा न बाधते, व्यायाममैथुनाध्वपरिश्रान्तेनासेवितः श्रममुपहन्ति, मूत्रोच्चारान्ते सेवितो दृष्टेर्गुरुत्वमपनयति, कवलाञ्जनान्ते सेवितो दृष्टिं प्रसादयति, भुक्तवता सेवितः स्रोतसां विशुद्धिं लघुतां चापादयति, वान्तेनासेवितः स्रोतोविलग्नं श्लेष्माणमपोह्य भक्ताकाङ्क्षामापादयति, दिवास्वप्नोत्थितेनासेवितो निद्राशेषं गुरुत्वं मलं चापोह्य चित्तैकाग्र्यं जनयति, सायं चासेवितः सुखनिद्राप्रबोधं चेति ॥ ५२ ॥

ईषदुच्छिङ्घतः स्नेहो यावद्वक्त्रं प्रपद्यते ।
नस्ये निषिक्तं तं विद्यात् प्रतिमर्शं प्रमाणतः ॥ ५३ ॥
नस्येन रोगाः शाम्यन्ति नराणामूर्ध्वजत्रुजा ।
इन्द्रियाणां च वैमल्यं कुर्य्यादास्यं सुगन्धि च ॥ ५४ ॥
हनुदन्तशिरोग्रीवात्रिकबाहूरसां बलम् ।
बलीपलितखालित्यव्यङ्गानां चाप्यसम्भवम् ॥ ५५ ॥

---

१ उच्चारः=पुरीषोत्सर्गः । २ यथोक्तकालसेवितप्रतिमर्शगुणान् वक्ति—तत्रेति । ३ श्रमं=व्यायाममैथुनजन्यश्रममित्यर्थः । ४ अपोह्य=दूरीकृत्य । ५ प्रतिमर्शमात्राप्रमाणमाह—ईषदिति । उच्छिङ्घतः=नासिकयोर्ध्वमाकर्षत इत्यर्थः । ६ प्रमाणतः=मात्रायुक्तम् । वृद्धवाग्भटे प्रतिमर्शप्रमाणं त्वन्यथा दृश्यते—"प्रमाणं प्रतिमर्शस्य बिन्दुद्वितयमिष्यते । बिन्दुर्वा येन चोत्क्लेशो नानुत्क्लिष्टस्य जायते ॥ निहितो यत्र वा स्नेहो न साक्षादुपलभ्यते ।" इति । शिरोविरेचनवदस्यापि पानं निषिद्धम् । तदाह विदेहः—"उच्छिङ्घेन्न पिबेत् स्नेहं निष्ठीवेन्मुखमागतम्" इति ।

७ सामान्येन नस्यफलमाचष्टे—नस्येनेति । नस्यं सप्तवर्षाभ्यन्तरे अशीतिवर्षादूर्ध्वं च नैव कार्यम् । तदाह भावमिश्रः—"अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत् । अशीतिवर्षादूर्ध्वं च नावनं नैव दीयते ॥" इति । निबन्धसङ्ग्रहव्याख्यायां कुव्गा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैलं[1] कफे सवाते स्यात् केवले पवने वसाम्।
दद्यात्सर्पिः सदा पित्ते मज्जानं च समारुते ॥ ५६ ॥
चतुर्विधस्य स्नेहस्य विधिरेवं प्रकीर्त्तितः।
श्लेष्मस्थानाविरोधित्वात्[2] तेषु[3] तैलं विधीयते ॥ ५७ ॥
अतः[4] परं प्रवक्ष्यामि कवलग्रहणे विधिम्।
चतुर्द्धा[5] कवलः स्नेही प्रसादी शोधिरोपणौ ॥ ५८ ॥
स्निग्धोष्णैः[6] स्नैहिको वाते, स्वादुशीतैः प्रसादनः।
पित्ते, कटूम्ललवणैः रूक्षोष्णैः शोधनः कफे ॥ ५९ ॥
कषायतिक्तमधुरैः कटूष्णैः रोपणो व्रणे।
चतुर्विधस्य चैवास्य विशेषोऽयं प्रकीर्त्तितः ॥ ६० ॥
तत्र त्रिकटुकवचासर्षपहरीतकीकल्कमालोड्य तैलशुक्तसुरासौवीरदधिमधूनामन्यतमेन सलवणमभिप्रतप्तमुपस्विन्नमृदितगलकपोललललाटप्रदेशो धारयेत् ॥ ६१ ॥
सुखं सञ्ज्ञार्य्यते[7] या तु मात्रा स कवलः स्मृतः।
असञ्ज्ञार्य्या[8] तु या मात्रा गण्डूषः स प्रकीर्त्तितः ॥ ६२ ॥

---

त्रेयः—"सप्तवर्षमुपादाय नस्यकर्म चतुर्विधम्। प्रतिमर्शोऽथ वमनं जन्मप्रभृति शस्यते ॥ धूमोऽथ द्वादशे वर्षे कवलः पञ्चमे मतः। दोषव्याधिबलावस्थां वीक्ष्य चैतान् प्रयोजयेत् ॥" इति। १ दोषानुसारेण स्नेहं विभजति—**तैलमिति**। केवले=दोषान्तररहिते, शुद्धे इत्यर्थः। २ शिरः श्लेष्मस्थानम्। ३ तेषु=केवलवातादिष्वित्यर्थः।

४ कवलग्रहं वर्णयति—**अत इति**। ५ भावप्रकाशे—"चतुर्विधः स्याद् गण्डूषः स्नेहनः शमनस्तथा। शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तादृशः ॥" इति। ६ चतुर्विधकवलानां द्रव्याणि दर्शयति—**स्निग्धोष्णैरिति**।

७ 'मुखं श्लेष्मागारम्' इत्यन्यत्राप्यभियुक्तोक्तेः कवले कफहरत्रिकटुकादियोगं निरूपयति—**तत्रेति**। ८ वातादिहरद्रव्यस्य चर्वणेन सञ्चार्यते इत्यर्थः। "वातपित्तकफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे। अर्द्धं निक्षिप्य सञ्चर्व्य निष्ठीवेत् कवले विधिः ॥" इति भावमिश्रः।

९ स्नेहक्षीरकषायादिद्रवपूर्णमुखत्वादसञ्चार्येति भावः। तथा च भावप्रकाशे—"स्नेहक्षीरकषायादिद्रवैः सम्पूर्णमाननम्। आपूर्यं स्थीयते तावद्विधिर्गण्डूषधारणे ॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तावच्च[1] धारयितव्योऽनन्यमनसोन्नतदेहेन यावदोषपरिपूर्ण[2]-कपोलत्वं नासास्रोतोनयनपरिप्लावश्च भवति तदा विमोक्तव्यः, पुनश्चान्यो[3] गृहीतव्य इति ॥ ६३ ॥

एवं[4] स्नेहवयःक्षौद्ररसमूत्राम्लसम्भृता[5]ः ।
कषायोष्णोदकाभ्याञ्च कवला दोषतो[6] हिताः ॥ ६४ ॥
व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं[7] वक्त्रलाघवम् ।
इन्द्रियाणां प्रसादश्च कवले शुद्धिलक्षणम् ॥ ६५ ॥
हीने[8] जाड्यकफोत्क्लेशावरसज्ञानमेव च ।
अतियोगान्मुखे पाकः शोषतृष्णारुचिक्लमाः॥ ६६ ॥
शोधनीये विशेषेण भवन्त्येव न संशयः ।
तिला[9] नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च ॥ ६७ ॥
सक्षौद्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहनाशनः ।
कवलस्य विधिर्ह्येष समासेन[10] प्रकीर्त्तितः ॥ ६८ ॥
विभज्य[11] भेषजं बुद्ध्या कुर्वीत प्रतिसारणम् ।

---

इति । गण्डूषकवलौषधमानमुक्तम्—"दद्यात् द्रव्येषु चूर्णं च गण्डूषे कोलमात्रकम् । कर्षः प्रमाणः कल्कश्च कवले दीयते बुधैः ॥" इति । १ गण्डूषधारणकालावधिमभिधत्ते—**तावच्चेति** । २ दोषः=कफः । "कफपूर्णास्यता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् । नेत्रघ्राणश्रुतिर्यावत्तावद् गण्डूषधारणम् ॥" इति । ३ "गण्डूषान् सुस्थितः कुर्यात् स्विन्नभालगलादिकः । मनुष्यस्त्रींस्तथा पञ्च सप्त वाऽऽदोषनाशनात् ॥" इति भावमिश्रः ।

४ दोषानुसारेण कवलान्निर्दिशति—**एवमिति** । ५ सम्भृताः=सम्यग्धारिता इत्यर्थः । ६ दोषतः=व्याधितः । ७ कवलफलमभिदधाति—**व्याधेरिति** । भावप्रकाशे फलमिदं गण्डूषस्योक्तम्—"व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम् । इन्द्रियाणां प्रसादश्च गण्डूषे विधृते भवेत् ॥ हरेदास्यस्य वैरस्यं शोषं पाकं व्रणं तृषाम् । दन्तचालं च गण्डूषो वैशद्यं तु करोति हि ॥...कवलः कुरुते काङ्क्षां भक्ष्येषु हरते कफम् । तृष्णां शोषञ्च वैरस्यं दन्तचालं च नाशयेत् ॥" इति । गण्डूषकवलयोरवस्थामर्यादामाह—"धार्यन्ते पञ्चमाद् वर्षाद् गण्डूषाः कवलादयः ॥" इति भावमिश्रः ।

८ कवलस्य योगायोगातियोगलक्षणमाख्याति—**हीन इति** । ९ आगन्तुकक्षारदाहनाशनकवलं निरूपयति—**तिला इति** । १० समासेन=सङ्क्षेपेण । ११ स-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्को रस[1]क्रिया क्षौद्रं चूर्णं चेति चतुर्विधम् ॥ ६९ ॥
अङ्गुल्यग्रप्रणीतन्तु यथा[2]स्वं मुखरोगिणाम् ।
तस्मिन् योगमयोगञ्च कवलोक्तं विभावयेत् ॥ ७० ॥
तानेव शमयेद् व्याँधीन् कवलो यानपोहति ।
दोषघ्नमनभिष्यन्दि भोजयेच्च तथा नरम् ॥ ७१ ॥

इति भगवता श्रीधन्वन्तरिणोपदिष्टायां तच्छिष्येण महर्षिणा सुश्रुतेन विरचितायां सुश्रुतसंहितायां चिकित्सा-स्थाने चत्वारिंशोऽध्यायः ।

---

ङ्क्षेपेण प्रतिसारणविषये ब्रवीति—**विभज्येति** । "दन्तजिह्वामुखानां यच्चूर्णकल्कावलेहकैः । शनैर्घर्षणमङ्गुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ वैरस्यं मुखदौर्गन्ध्यं मुखशोषस्तथा तृषाम् । अरुचिं दन्तपीडां च निहन्ति प्रतिसारणम् ॥" इति भावप्रकाशः । १ रसक्रिया=फाणिताकृतिः । २ वातादिदोषानुसारेण तदारब्धरोगानुसारेण च यत्र यत्प्रतिसारणमनुकूलं तद् यथास्वम् । शालाक्ये अस्य विधिः—"कोलास्थिमात्रेण पिण्डेन यथादोषं यथाव्याधि पञ्च सप्त वा वारान् हीनमध्यमोत्तमेषु व्याधिषु च प्रतिसारणं कुर्वीत । न चैनमतिघर्षयेत् । अतिघर्षणादोषचोषदाहक्लेदश्वयथुतृष्णाभक्तच्छन्दवाक्सङ्गा भवन्ति । असम्यक् प्रतिसारणात् पैच्छिल्यगुरुत्वानन्नाभिलाषप्रमोहविकारानुपशयाः । सम्यक्प्रतिसारणाद् वैशद्यं लाघवं क्षवथुरप्रसेकोऽन्नाभिलाषश्च" इति ।

३ प्रतिसारणस्य योगायोगातियोगलक्षणान्यतिदिशति—**तस्मिन्निति** । "हीने जाड्यकफोत्क्लेशावरसज्ञानमेव च । अतियोगान् मुखे पाकः शोषस्तृष्णा वमिः क्लमः ॥" इति भावमिश्रः । ४ शमयेदिति क्रियया प्रतिसारणमिति कर्तृपदमध्याहार्यम् ।

इति पण्डितश्रीकपिलदेवमिश्रतनुजन्मना मिश्रोपाह्वश्रीसुदामाशर्म्मणा निर्म्मितायां सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चिकित्सा-स्थाने चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

समाप्तमिदं चिकित्सास्थानम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अथ कल्पस्थानम् ।

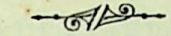

## प्रथमोऽध्यायः ।

अथातोऽन्नपानरक्षाकल्पं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
धन्वन्तरिः काशिपतिस्तपोधर्मभृतां वरः ।
सुश्रुतप्रभृतीन् शिष्यान्छशासाहतशासनः ॥ ३ ॥
रिपवो विक्रमाक्रान्ता ये च स्वे कृत्यतां गताः ।
सिसृक्षवः क्रोधविषं विवरं प्राप्य तादृशम् ॥ ४ ॥
विषैर्निहन्युर्निपुणं नृपतिं दुष्टचेतसः ।

---

### अथ कल्पस्थानम् ।

यस्योल्बणेन यमुना गरलेन दूनाऽपेया व्रजस्थितिजुषाञ्च युगान्तराले ।
निस्सार्य कालियमहिं गरलत्वशून्या येन व्यधायि मुरलीधरमानतस्तम् ॥ १ ॥

१ "विषजुष्टस्य विज्ञानं विषनिश्चयमेव च । चिकित्सितं च वक्ष्यामि कल्पे तु प्रविभागशः ॥" इति द्वितीयाध्याये प्रतिज्ञानात् चिकित्सास्थानानन्तरं कल्पस्थानमारभ्यते—अथात इति । तत्र स्वस्थस्य व्याधिजर्जरितस्य च अन्नपानैरेव प्राणधारणमिति प्रागन्नपानरक्षाकल्पं व्याख्यातुं । कल्पो लक्षणचिकित्सितकल्पनम् । अन्ने घनसाधर्म्याद् भक्ष्यं, पाने द्रवसाधर्म्याल्लेह्यमपि गृह्यते । आदिशब्दो लुप्तनिर्दिष्टः । तथा च अन्नपानशब्दाभ्यां भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यभेदाच्चतुर्विधस्य, आदिना दन्तकाष्ठादीनामपि परिग्रहः, तेषामप्युपदेशात् । एव च विषजुष्टान्नपानदन्तकाष्ठादीनां रक्षया सहितं कल्पमन्नपानरक्षाकल्पं व्याख्यास्यामो विशेषेण कथयिष्याम इत्यर्थः ।

२ अहतं शासनं यस्य सोऽहतशासनः अनुल्लङ्घिताज्ञ इत्यर्थः । ३ विषाद् राज्ञो रक्षणीयत्वं निरूपयति—**रिपव इति** । विक्रमाक्रान्ताः=राज्ञः शौर्यातिशयेन पराजिता इत्यर्थः । स्वे=आत्मीया जनाः, कृत्यतां=विद्वेषताम्, 'कृत्यो विद्विषि कार्ये च कृत्या स्याद् देवताक्रिया' इति हेमचन्द्रः । ४ सिसृक्षवः=दातुमिच्छवः, क्रोधविषं क्रोधेन विषमित्यर्थः । विवरं=छिद्रमित्यर्थः ।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियो वा विविधान् योगान् कदाचित्सुभगेच्छया[1] ॥ ५ ॥
विषकन्योपयोगाद्वा[2] क्षणाज्जह्यादसून्नरः ।
तस्माद्वैद्येन सततं विषाद्रक्ष्यो नराधिपः ॥ ६ ॥
यस्माच्च[3] चेतोऽनित्यत्वमश्ववत् प्रथितं नृणाम् ।
न विश्वस्यात्[4] ततो राजा कदाचिदपि कस्यचित् ॥ ७ ॥
कुलीनं[5] धार्मिकं स्निग्धं सुभृतं सन्ततोत्थितम् ।
अलुब्धमशठं[6] भक्तं कृतज्ञं प्रियदर्शनम् ॥ ८ ॥
क्रोधपारुष्यमात्सर्य्यमायाऽऽलस्यविवर्जितम्[7] ।
जितेन्द्रियं क्षमावन्तं शुचिं शीलदयाऽन्वितम् ॥ ९ ॥
मेधाविनमसंभ्रान्तमनुरक्तं हितैषिणम् ।
पटुं प्रगल्भं निपुणं दक्षमालस्यवर्जितम्[8] ॥ १० ॥

---

१ सुभगेच्छया सौभाग्यार्थं राजानं निजपतिं च निहन्युरित्यर्थः । तदुक्तमष्टाङ्गहृदये—"सौभाग्यार्थं स्त्रियो भर्त्रे राज्ञे वाऽऽरातिचोदिताः । गरमाहारसम्पृक्तं यच्छन्त्यासन्नवर्तिनः ॥" इति । २ विषकन्याया उपयोगात् संसर्गात् । आजन्मनः किञ्चित् किञ्चिद् विवर्द्धं तीक्ष्णविषाभ्यसनाद् विषमयी कन्या विषकन्येति प्राञ्च इति हाराणचन्द्रः । "हन्ति स्पृशन्ती स्वेदेन गम्यमाना च मैथुने । पक्वं वृन्तादिव फलं प्रशातयति मेहनम् ॥" इति बोद्धव्यम् । ज्यौतिषे विषकन्या तु—"भद्रा तिथिर्यदाश्लेषा शतभं कृत्तिका तथा । मन्दाररविवाराश्चेद् विषकन्या बुधैः स्मृता ॥" इत्युक्ता सा प्रकरणविरोधान्नात्र युक्ता ।

३ राज्ञा कदापि कस्यचिदपि विश्वासो नैव विधेय इति प्रतिपादयति—यस्माच्चेति । वारं वारं सदसन्मार्गगामित्वेनास्थिरत्वं चेतोऽनित्यत्वम् । ४ 'न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्' इति विदुरः । ५ महानसे नियोगार्हस्य वैद्यस्य गुणानाख्याति—कुलीनमिति । कुलीनं=सत्कुलोद्भवम्, यस्मात् सत्कुलोत्पन्नोऽदुष्टबीजोत्पन्नतया विषादिदुष्टकर्मणि न प्रवर्तते । एवं धार्मिकोऽपि श्रुतिस्मृतिविहितधर्मज्ञानतया दुष्टकर्मप्रवर्तने भयं कुरुते । स्निग्धं=राज्ञा सह सौहृदमापन्नम् । सुभृतं=प्रचुरवृत्तिकम्, सततोत्थितः=रात्रिन्दिवमुद्योगशीलः ।

६ 'प्रियं वक्ति पुरोऽन्यत्र विप्रियं कुरुते भृशम् । व्यक्तापराधचेष्टश्च शठोऽयं कथितो बुधैः ॥ इति विष्णुपुराणोक्तशठलक्षणरहितमशठमित्यर्थः । ७ परुषो निष्ठुरभाषी तस्य भावः पारुष्यम्, मात्सर्यम्=अन्यशुभद्वेषता । ८ पुनरत्र आलस्याभि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वोक्तैश्च[1] गुणैर्युक्तं नित्यं सन्निहितागदम्[2] ।
महानसे[3] प्रयुञ्जीत वैद्यं तद्विद्यपूजितम्[4] ॥ ११ ॥
प्रशस्त[5]दिग्देशकृतं शुचिभाण्डं महच्छुचि ।
सजालकं[6] गवाक्षाढ्यमासवर्गनिषेवितम् ॥ १२ ॥
विकक्षसृष्ट[7]संसृष्टं सवितानं कृतार्चनम् ।
परीक्षितस्त्रीपुरुषं भवेच्चापि महासनम् ॥ १३ ॥
तत्राध्यक्षं नियुञ्जीत प्रायो वैद्यगुणान्वितम्[8] ।
शुचयो[9] दक्षिणा दक्षा विनीताः प्रियदर्शनाः ॥ १४ ॥
संविभक्ताः[10] सुमनसो नीचकेशनखाः स्थिराः ।
स्नाता दृढं संयमिनः[11] कृतोष्णीषाः सुसंयताः ॥ १५ ॥
तस्य[12] चाज्ञाविधेयाः स्युर्विविधाः परिकर्मिणः ।
आहारस्थितयश्चापि[13] भवन्ति प्राणिनो यतः ॥ १६ ॥
तस्मान्महानसे वैद्यः प्रमादरहितो[14] भवेत् ।
[15]माहानसिकवोढारः सौपौदनिकपौपिकाः ॥ १७ ॥

---

धानमतिशयनिषेधार्थम् । १ "तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थः" इत्यादिकैर्युक्तसेनोयोक्तैः पूर्वोक्तैर्गुणैरित्यर्थः । २ अगदं=विषहरभेषजम् । ३ महानसे=पाकशालायाम् । ४ तद्विद्यैः पाकशास्त्रतत्त्वज्ञैर्भिषग्भिः पूजितमिति तद्विद्यपूजितम् ।

५ कीदृशं महानसं विधेयमिति दर्शयति—**प्रशस्तेति** । प्रशस्ता दिक्=आग्नेयी दिक् । तदुक्तम्—'महानसं चापि कार्यमाग्नेय्याम्' इति । ६ अत्र जालकः मशकमक्षिकादिजन्तुप्रवेशरोधकः 'चिक-परदा' इति बोद्धव्यः । गवाक्षः=वातायनम्, धूमनिस्सरणार्थमित्यर्थः । ७ विकक्षसृष्टसंसृष्टं=विगतशुष्कतृणस्थानसम्बन्धम् । 'कक्षः स्मृतो भुजामूले कक्षोऽरण्ये च वीरुधि । कक्षः शुष्कतृणे प्रोक्तः कक्षः कच्छ उदाहृतः ॥' इति धरणिः ।

८ पूर्वोक्तैः कुलीनधार्मिकत्वादिभिर्वैद्यगुणैरन्वितमित्यर्थः । ९ परिचारकगुणानाचष्टे—**शुचय इति** । दक्षिणाः=औदार्यवन्तः । १० संविभक्ताः=भागशः कर्मसु नियोजिताः । ११ संयमिनः=जिह्वालौल्यादिरहिताः, सुसंयताः=सावधानाः । १२ तस्य=अध्यक्षस्येत्यर्थः । १३ आहारेण स्थितिर्येषां ते आहारस्थितयः । १४ प्रमादरहितः=सावधान इत्यर्थः । १५ माहानसिकपरिकर्मिणां वैद्यवशगत्वं प्रतिपादयन्नाह—**माहेति** । महानसे नियुक्ता माहानसिकाः पाकशालाऽध्यक्षाः, वोढारो बाह्यकर्मकराः,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवेयुर्वैद्यवशगा ये चाप्यन्येऽत्र केचन ।
इङ्गितज्ञो[1] मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः[2] ॥ १८ ॥
विद्याद्विषस्य दातारमेभिर्लिङ्गैश्च[3] बुद्धिमान् ।
न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षन् मोहमेति च ॥ १९ ॥
अपार्थं[4] बहु सङ्कीर्णं[5] भाषते चापि मूढवत् ।
स्फोटयत्यङ्गुलीर्भूमिमकस्माद्विलिखेद्वसेत्[6] ॥ २० ॥
वेपथुर्जायते तस्य त्रस्तश्चान्योऽन्यमीक्षते ।
श्यामो विवर्णवक्त्रश्च[7] नखैः किञ्चिच्छिनत्त्यपि ॥ २१ ॥
आलभेत[8]ासकृद्दीनः करेण च शिरोरुहान् ।
निर्यि[9]सुरपद्वारैर्वीक्षते च पुनः पुनः ॥ २२ ॥
वर्तते विपरीतं तु विषदाता विचेतनः ।
[10]केचिद्भयात् पार्थिवस्य त्वरिता वा तदाज्ञया ॥ २३ ॥
[11]असतामपि सन्तोऽपि चेष्टां कुर्वन्ति मानवाः ।
तस्मात् परीक्षणं कार्य्यं भृत्यानामाद्यतैर्नृपैः ॥ २४ ॥
अन्ने[12] पाने दन्तकाष्ठे तथाऽभ्यङ्गेऽवलेखने[13] ।

---

सौपाः सूपव्यञ्जनादिपाचकाः, औदनिकाः तण्डुलपाचकाः, पौपिकाः पूपादिभक्ष्यसाधकाः।

१ अन्नादौ शत्रवो विषं ददतीति तेषां ज्ञानार्थं लक्षणमाह—इङ्गितज्ञ इति । इङ्गितमभिप्रायसूचकभावविशेषं जानातीति इङ्गितज्ञ वैद्य इत्यर्थः । विषस्योत्पत्तिमाह वाग्भटे—"मथ्यमाने जलनिधामृतार्थं सुरासुरैः । जातः प्रागमृतोत्पत्तेः पुरुषो घोरदर्शनः ॥ दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रो हरिकेशोऽनलेक्षणः । जगद्विषण्णं तं दृष्ट्वा तेनासौ विषसंज्ञितः ॥ हुङ्कृतो ब्रह्मणा मूर्तौ ततः स्थावरजङ्गमे । सोऽध्यतिष्ठन्निजं रूपमुज्झित्वा वज्रनात्मकम् ॥" इति । २ मुखवैकृतं=मुखवैवर्ण्यादि । ३ एभिः=वक्ष्यमाणैः । ४ स्वीयासत्कर्मजनितव्यामोहात् पृष्टः सन् उत्तरं न ददातीत्यर्थः । ५ अपार्थं=निरर्थकम्, सङ्कीर्णम्=अस्फुटम् । ६ भयजनितपर्व्यथाऽपनोदनाय अङ्गुलीः स्फोटयतीत्यर्थः । अकस्मात्=हेतुं विनाऽपि । ७ विवर्णवक्त्रः=मलिनमुखः । ८ आलभेत=स्पृशेत्, आङ्पूर्वकस्य लभधातोः स्पर्शार्थकत्वात् । ९ निर्यातुमिच्छुर्निर्यियासुः।

१० कदाचित् सन्तोऽपि राज्ञो भयाद् विषदातृजनवच्चेष्टां कुर्वन्तीति विषदातुः परीक्षणे राज्ञा यत्नवता भाव्यमिति प्रतिपादयति—केचिदिति । ११ असतां=विषदातॄणामित्यर्थः । १२ गरविषाधिष्ठानानि निर्दिशति—अन्न इति । १३ अवले-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्सादने कषाये च परिषेकेऽनुलेपने ॥ २५ ॥
स्रक्षु वस्त्रेषु शय्यासु कवचाभरणेषु च ।
पादुकापादपीठेषु पृष्ठेषु गजवाजिनाम् ॥ २६ ॥
विषजुष्टेषु चान्येषु नस्यधूमाञ्जनादिषु ।
लक्षणानि प्रवक्ष्यामि चिकित्सामप्यनन्तरम् ॥ २७ ॥
नृपभक्ताद्वलिं न्यस्तं सविषं भक्षयन्ति ये ।
तत्रैव ते विनश्यन्ति मक्षिकावायसादयः ॥ २८ ॥
हुतभुक्तेन चान्नेन भृशं चटचटायते ।
मयूरकण्ठप्रतिमो जायते चापि दुःसहः ॥ २९ ॥
भिन्नार्चिस्तीक्ष्णधूमश्च न चिराच्चोपशाम्यति ।
चकोरस्याक्षिवैराग्यं जायते क्षिप्रमेव तु ॥ ३० ॥
दृष्ट्वाऽन्नं विषसंसृष्टं म्रियन्ते जीवंजीवकाः ।
कोकिलः स्वरवैकृत्यं क्रौञ्चस्तु मदमृच्छति ॥ ३१ ॥
हृष्येन्मयूर उद्विग्नः क्रोशतः शुकसारिके ।
हंसः क्ष्वेडति चात्यर्थं भृङ्गराजस्तु कूजति ॥ ३२ ॥
पृषतो विसृजत्यश्रु विष्ठां मुञ्चति मर्कटः ।
सन्निकृष्टांस्ततः कुर्याद्राज्ञस्तान् मृगपक्षिणः ॥ ३३ ॥
वेश्मनोऽथ विभूषार्थं रक्षार्थञ्चात्मनः सदा ।
उपक्षिप्तस्य चान्नस्य बाष्पेणोर्द्ध्वं प्रसर्पता ॥ ३४ ॥
हृत्पीडा भ्रान्तनेत्रत्वं शिरोदुःखञ्च जायते ।

---

खनं = कङ्कतिका । १ स्रक्षु = पुष्पमाल्येषु । २ सविषान्नलक्षणं दर्शयति—नृपेति । नृपभक्तात् = राज्ञ ओदनात् । ३ हुतं भुङ्क्त इति हुतभुग् अग्निः ।

४ विशेषेण रागवत्त्वं वैराग्यम् । 'सविषान्नं दृष्ट्वा चकोराक्षिणी रक्ते भवतः' इति कुल्लूकभट्टः । ५ एतद्दर्शनेन विषनाशोऽपि भवतीति बोद्धव्यम् । ६ उद्विग्नः = चलितः, विजेरत्र चलनार्थकत्वात् । क्रोशतः = रोदनशब्दं कुरुतः । ७ क्ष्वेडति = शब्दायते । ८ पृषतः = चित्रबिन्दुमान् मृगभेदः ।

९ सविषान्नस्य बाष्पोष्मणा यद् भवति तद्दर्शयति—उपक्षिप्तस्येति । उपक्षिप्तस्य = भोक्तुं परिवेषितस्य । उपक्षिप्तस्येत्यत्र 'उखाक्षिप्तस्य' इति पाठान्तरम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र नस्याञ्जने कुष्ठं लामज्जं[1] नलदं मधु ॥ ३५ ॥
कुर्य्याच्छिरीषरजनीचन्दनैश्च प्रलेपनम् ।
हृदि चन्दनलेपस्तु तथा सुखमवाप्नुयात् ॥ ३६ ॥
पाणिप्राप्तं पाणिदाहं नखशातं[2] करोति च ।
अत्र प्रलेपः श्यामेन्द्रगोपासोमोत्पलानि[3] च ॥ ३७ ॥
स[4] चेत् प्रमादान्मोहाद्वा तदन्नमुपसेवते ।
अष्ठीला[5]वत्ततो जिह्वा भवत्यरसवेदिनी ॥ ३८ ॥
तुद्यते दह्यते चापि श्लेष्मा चास्यात्[6] प्रसिच्यते ।
तत्र बाष्पेरितं[7] कर्म यच्च स्याद्दान्तकाष्ठिकम् ॥ ३९ ॥
मूर्च्छां छर्दिमतीसारमाध्मानं दाहवेपथू ।
इन्द्रियाणाञ्च वैकृत्यं कुर्य्यादामाशयं गतम्[8] ॥ ४० ॥
तत्राशु मदनालाबुबिम्बीकोशातकीफलैः[9] ।
छर्दनं दध्युदश्विद्भ्यामथवा तण्डुलाम्बुना[10] ॥ ४१ ॥
दाहं[11] मूर्च्छामतीसारं तृष्णामिन्द्रियवैकृतम्[12] ।
आटोपं पाण्डुतां कार्श्यं कुर्य्यात् पक्वाशयं गतम् ॥ ४२ ॥
विरेचनं ससर्पिष्कं तत्रोक्तं नीलिनीफलम्[13] ।

---

१ लामज्जम्=उशीरम्, नलदं=जटामांसी, 'नलदं स्यात् पुष्परसोशीरमांसीषु न द्वयोः' इति मेदिनी । २ नखशातं=नखपातम् । ३ श्यामा=श्यामामूला त्रिवृत्, इन्द्रा=इन्द्रवारुणी, गोपा=सुगन्धमूला सारिवा, केषाञ्चनमते 'इन्द्रगोपः' इत्येकपदं, तत्र 'वीरबहूटी' इत्यर्थो बोद्धव्यः । सोमा=गुडूची, उत्पलं=नीलकमलम् ।

४ सविषान्नभोजनदोषं चिकित्सां चाह—स इति । ५ अष्ठीला=पाषाणपिण्डिका । ६ आस्यात्=मुखात् । ७ बाष्पेरितं कर्म "तत्र नस्याञ्जने कुष्ठम्" इत्यादिना पूर्वोक्तं कर्म, दान्तकाष्ठिकम् "अथास्य धातकीपुष्पपथ्याजम्बूफलास्थिभिः" इत्यादिना वक्ष्यमाणं प्रतिसारणम् । ८ आमाशयगतविषलक्षणं तच्चिकित्सां च वक्ति—**मूर्च्छामिति** । ९ अलाबुः=कटुतुम्बी । १० उदकेन इवयति वर्धते इत्युदश्विद् अर्धजलेन मथितं तक्रमित्यर्थः । 'उदकस्योदः सञ्ज्ञायाम्' इत्युदादेशः । 'उदश्वितोऽन्यतरस्याम्' इति निर्देशात् सम्प्रसारणाभावः ।

११ पक्वाशयगतविषलक्षणं तच्चिकित्सां च ब्रवीति—**दाहमिति** । १२ इन्द्रियवैकृतम्=इन्द्रियविकलता । १३ नीलिनी='नील' इति ख्याता ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दध्ना दूषीविषारिश्च[1] पेयो वा मधुसंयुतः ॥ ४३ ॥
द्रवैर्द्रव्येषु[2] सर्वेषु क्षीरमद्योदकादिषु ।
भवन्ति विविधा राज्यः[3] फेनबुद्बुदजन्म च ॥ ४४ ॥
छायाश्चात्र न दृश्यन्ते दृश्यन्ते यदि वा पुनः ।
भवन्ति यमलाश्छिद्रास्तन्व्यो[4] वा विकृतास्तथा ॥ ४५ ॥
शाकसूपान्नमांसानि[5] क्लिन्नानि विरसानि च ।
सद्यः पर्य्युषितानीव विगन्धानि भवन्ति च ॥ ४६ ॥
गन्धवर्णरसैर्हीनाः सर्वे भक्ष्याः फलानि च ।
पक्वान्याशु विशीर्य्यन्ते[6] पाकमामानि यान्ति च ॥ ४७ ॥
विशीर्य्यते[7] कूर्चकं[8] तु दन्तकाष्ठगते विषे ।
जिह्वादन्तौष्ठमांसानां श्वयथुश्चोपजायते ॥ ४८ ॥
अथास्य धातकीपुष्पपथ्याजम्बूफलास्थिभिः ।
सक्षौद्रैः प्रच्छिते शोफे कर्तव्यं प्रतिसारणम्[9] ॥ ४९ ॥
अथवाऽङ्कोठमूलानि त्वचः सप्तच्छदस्य वा ।
शिरीषमाषका वाऽपि सक्षौद्राः प्रतिसारणम् ॥ ५० ॥
जिह्वानिर्लेखकवलौ दन्तकाष्ठवदादिशेत् ।
पिच्छिलो[10] बहुलोऽभ्यङ्गो विवर्णो वा विषान्वितः ॥ ५१ ॥

---

१ दूषीविषारिद्वितीयाध्याये "पिप्पल्यो ध्यामकं मांसो" इत्यादिना वक्ष्यते । २ सविषद्रवद्रव्यलक्षणमाख्याति—द्रवैरिति । ३ विविधा राज्यो वाग्भटेन विशदीकृताः—"नीला राजी रसे ताम्रा क्षीरे दधनि दृश्यते । श्यावा पीताऽसिता तक्रे घृते पानीयसन्निभा ॥ काली मद्याम्भसोः क्षौद्रे हरित्तैलेऽरुणोपमा ॥" इति । ४ यमलाः= युग्माः, छिद्राः=छिद्रयुक्ताः । ५ सविषशाकसूपभक्ष्यफललक्षणमाचष्टे—शाकेति । 'मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकम् । त्वक् पुष्पं कन्दकं चैव शाकं दशविधं स्मृतम् ॥' इति शाकपदेन दशविधं शाकं बोद्धव्यम् । ६ विशीर्यन्ते = शटन्तीत्यर्थः ।

७ सविषदन्तकाष्ठादिलक्षणं तच्चिकित्सां च प्रतिपादयति—विशीर्यत इति । विशीर्यते=शीर्णो भवति, कूर्चकः=दन्तमलशोधनकूर्चः 'कूच्ची' इति ख्यातः । ८ प्रतिसारणं = घर्षणम् । ९ कुत्सिता माषा माषकास्तत्साम्यात् शिरीषबीजानीत्यर्थो बोद्धव्यः । १० सविषाभ्यङ्गलक्षणं तच्चिकित्सां च दर्शयति—पिच्छिल इति । बहुलः=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फोटजन्मरुजास्रावत्वक्पाकः स्वेदनं ज्वरः ।
दरणं चापि मांसानामभ्यङ्गे विषसंयुते ॥ ५२ ॥
तत्र शीताम्बुसिक्तस्य कर्तव्यमनुलेपनम् ।
चन्दनं तगरं कुष्ठमुशीरं वेणुपत्रिका[1] ॥ ५३ ॥
सोमवल्ल्यमृता श्वेता पद्मं कालीयकं[2] त्वचम् ।
कपित्थरसमूत्राभ्यां पानमेतच्च युज्यते ॥ ५४ ॥
उत्सादने परीषेके कषाये चानुलेपने ।
शय्यावस्त्रतनुत्रेषु[3] ज्ञेयमभ्यङ्गलक्षणैः ॥ ५५ ॥
केशशातः शिरोदुःखं खेभ्यश्च रुधिरागमः ।
ग्रन्थिजन्मोत्तमाङ्गेषु विषजुष्टेऽवलेखने[4] ॥ ५६ ॥
प्रलेपो बहुशस्तत्र भाविताः कृष्णमृत्तिकाः ।
ऋष्य[5]पित्तघृतश्यामापालिन्दीतण्डुलीयकैः ॥ ५७ ॥
गोमयस्वरसो वाऽपि हितो वा मालतीरसः ।
रसो मूषिकपर्ण्या वा धूमो वाऽगारसम्भवः ॥ ५८ ॥
शिरोऽभ्यङ्गः शिरस्त्राणं स्नानमुष्णीषमेव च ।
स्रजश्च विषसंसृष्टाः साधयेदवलेखनात्[6] ॥ ५९ ॥
मुखालेपे[7] मुखं श्यावं युक्तमभ्यङ्गलक्षणैः ।
पद्मिनीकण्टकप्रख्यैः कण्टकैश्चोपचीयते ॥ ६० ॥
तत्र क्षौद्रघृतं पानं प्रलेपश्चन्दनं घृतम् ।
पयस्या मधुकं फञ्जी[8] बन्धुजीवः पुनर्नवा ॥ ६१ ॥

---

घनः, अभ्यङ्गः = तैलाद्यभ्यञ्जनद्रव्यम् । १ वेणुपत्रिका = वंशपत्राणि, वेणुपत्रिका वंशपत्रीवृक्ष इति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । २ कालीयकं = दारुहरिद्रा । ३ तनुत्रे = कवचे । ४ सविषावलेखनलक्षणं तच्चिकित्सां चाख्याति—केशेति । केशशातः = कचपातनम्, खेभ्यः = स्रोतोभ्य इत्यर्थः ।

५ 'ऋष्यो नीलाण्डको लोके स रोरु इति कीर्तितः' इति बोद्धव्यम् । श्यामा = प्रियङ्गुः, पालिन्दी = श्यामामूला त्रिवृत् । ६ अवलेखनोक्तलक्षणचिकित्सितादित्यर्थः । ७ सविषमुखलेपलक्षणं तच्चिकित्सां च निर्दिशति—मुखेति । श्यावं = कपिशवर्णं 'फीका' इति बोद्धव्यम् । ८ फञ्जी = 'भारङ्गी' इति ख्याता । बन्धुजीवः = बन्धूकः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्वास्थ्यं कुञ्जरादीनां लालास्रावोऽक्षिरक्तता[1]।
स्फिक्पायुमेढ्रमुष्केषु यातुश्च[2] स्फोटसम्भवः ॥ ६२ ॥
तत्राभ्यङ्गवदेवेष्टा यातृवाहनयोः क्रिया।
शोणितागमनं खेभ्यः[3] शिरोरुक्फसंस्रवः ॥ ६३ ॥
नस्यधूमगते लिङ्गमिन्द्रियाणाञ्च वैकृतम्।
तत्र दुग्धैर्गवादीनां सर्पिः सातिविषैः[4] श्रृतम् ॥ ६४ ॥
पाने नस्ये च सश्वेतं[5] हितं समदयन्तिकम्।
गन्धहानिर्विवर्णत्वं[6] पुष्पाणां म्लानता भवेत् ॥ ६५ ॥
जिघ्रतश्च शिरोदुःखं वारिपूर्णे च लोचने।
तत्र बाष्पेरितं कर्म[7] मुखालेपे च यत् स्मृतम् ॥ ६६ ॥
कर्णतैलगते[8] श्रोत्रवैगुण्यं शोफवेदने।
कर्णस्रावश्च तत्राशु कर्त्तव्यं प्रतिपूरणम्[9] ॥ ६७ ॥
स्वरसो बहुपुत्रायाः[10] सघृतः क्षौद्रसंयुतः।
सोमवल्करसश्चापि सुशीतो हित इष्यते ॥ ६८ ॥
अश्रूपदेहो[11] दाहश्च वेदना दृष्टिविभ्रमः।
अञ्जने विषसंसृष्टे भवेदान्ध्यमथापि च ॥ ६९ ॥
तत्र सद्यो घृतं पेयं तर्पणञ्च[12] समागधम्।

---

'दुपहरिया फूल' इति प्रथते। १ विषजुष्टवाहनलक्षणं तच्चिकित्सां च वक्ति—**अस्वास्थ्यमिति**। २ याता=गन्ता, आरोढक इति यावत्।

३ सविषनस्यधूमलक्षणं तच्चिकित्सां च वक्ति—**शोणितेति**। खेभ्यः=स्रोतोभ्यः। ४ अतिविषा 'अतीस' इति ख्याता, तत्सहितैः सातिविषैः। ५ श्वेतया वचया सहितं सश्वेतम्, मदयन्तिकया मल्लिकया सहितं समदयन्तिकम्। मदयन्तिकावचयोः कल्को ग्राह्यः। ६ विषयुक्तपुष्पलक्षणं तच्चिकित्सां च ब्रवीति—**गन्धेति**। ७ बाष्पेरितं कर्म "तत्र नस्याञ्जने कुष्ठम्" इत्यादिना प्राक् निवेदितम्। ८ विषयुक्तकर्णतैललक्षणं तच्चिकित्सां च वर्णयति—**कर्णेति**। श्रोत्रवैगुण्यं=कर्णाश्रवणम्। ९ प्रतिपूरणविधिमेवाभिधत्ते-**स्वरस इति**। बहुपुत्रायाः=शतावर्याः। १० सोमवल्कः=कट्फलः, 'सोमवल्कः कट्फले स्याद् वलक्षखदिरद्रुमे' इति हेमचन्द्रः।

११ विषयुक्ताञ्जनलक्षणं तच्चिकित्सां चाभिदधाति—**अश्रिवति**। अश्रु नेत्राम्बु तस्योपदेहो वृद्धिरित्यश्रूपदेहः। १२ मागधेन पिप्पल्या सहितं समागधम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अञ्जनं मेषशृङ्गस्य निर्य्यासो वरुणस्य च ॥ ७० ॥
मुष्ककस्याजकर्णस्य[1] फेनो गोपित्त युतः ।
कपित्थमेषशृङ्गयोश्च पुष्पं[2] भल्लातकस्य वा ॥ ७१ ॥
एकैकं कारयेत् पुष्पं बन्धूकाङ्कोटयोरपि ।
शोफः[3] स्रावस्तथा स्वापः पादयोः स्फोटजन्म च ॥ ७२ ॥
भवन्ति विषजुष्टाभ्यां पादुकाभ्यामसंशयम् ।
उपानत्पादपीठानि[4] पादुकावत् प्रसाधयेत् ॥ ७३ ॥
भूषणानि[5] हतार्चींषि न विभान्ति यथा पुरा ।
स्वानि स्थानानि हन्युश्च दाहपाकावदारणैः ॥ ७४ ॥
पादुकाभूषणेष्वुक्तमभ्यङ्गविधिमाचरेत् ।
विषोपसर्गो[6] वाष्पादिर्भूषणान्तो य ईरितः ॥ ७५ ॥
समीक्ष्योपद्रवांस्तस्य विदधीत चिकित्सितम् ।
महासुगन्धिमगदं यं प्रवक्ष्यामि[7] तं भिषक् ॥ ७६ ॥
पानालेपननस्येषु विदधीताञ्जनेषु च ।
विरेचनानि तीक्ष्णानि कुर्यात् प्रच्छर्दनानि च ॥ ७७ ॥
सिराश्च व्यधयेत् क्षिप्रं प्राप्तं[8] विस्रावणं यदि ।
मूषिकाऽजरुहा[9] वाऽपि हस्ते बद्धा तु भूपतेः ॥ ७८ ॥

---

१ अजकर्णस्य=सालभेदस्य, फेनः=समुद्रफेनः, नामैकदेशे नाममात्रस्य ग्रहणात् । गोपित्तसंयुतः=गोरोचनामिश्रितः । २ पुष्पम् अञ्जनं कुर्यादित्यर्थः । ३ विषयुक्त-पादुकालक्षणं तच्चिकित्सां चाभिधत्ते—**शोफ इति** । ४ पादपीठं=पादस्थापनमासनम् । पादुकावत्, अनन्तरमेव वक्ष्यति—"पादुकाभूषणेष्वुक्तमभ्यङ्गविधिमाचरेत्" इति । ५ विषयुक्तभूषणलक्षणं तच्चिकित्सां चाभिदधाति—**भूषणानीति** । हतार्चींषि=कान्तिरहितानि ।

६ पूर्वोक्तेषु विषोपसर्गेष्वावस्थिकीं क्रियां दर्शयति—**विषेति** । ७ "चन्दनागरुणीकुष्ठम्" इत्यादिना सप्तमेऽध्याये प्रवक्ष्यामीत्यर्थः । ८ प्राप्तं=सिराव्यधविध्यध्यायमभिवीक्ष्य युक्तमित्यर्थः । ९ डल्हणोद्धृतमुशनसा प्रोक्तं मूषिकाऽजरुहालक्षणम्—"कन्दः श्वेतः सपिङ्को भेदे चाञ्जनसन्निभः । गन्धलेपनपानैस्तु विषं जरयते नृणाम् ॥ दष्टानां विषपीतानां ये चान्ये विषमोहिताः । विषं जरयते तेषां तस्मादज-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करोति निर्विषं सर्वमन्नं विषसमायुतम् ।
हृदयावरणं नित्यं कुर्याच्च मित्रमध्यगः ॥ ७९ ॥
पिबेद् घृतमजेया[2]ख्यममृताख्यञ्च बुद्धिमान् ।
सर्पिर्दधि पयः क्षौद्रं पिबेद्वा शीतलं जलम् ॥ ८० ॥
मयूरान्नकुलान् गोधाः पृषतान् हरिणानपि ।
सततं भक्षयेच्चापि रसांस्तेषां पिबेदपि ॥ ८१ ॥
गोधा[3]नकुलमांसेषु हरिणस्य च बुद्धिमान् ।
दद्यात् सुपिष्टां पालि[4]न्दीं मधुकं शर्करां तथा ॥ ८२ ॥
शर्कराऽतिविषे देये मायूरे स[5]महौषधे ।
पार्षते चापि देयाः स्युः पिप्पल्यः समहौषधाः ॥ ८३ ॥
सक्षौद्रः सघृतश्चैव शिम्बी[6]यूषो हितः सदा ।
विषन्नानि च सेवेत भक्ष्यभोज्यानि बुद्धिमान् ॥ ८४ ॥
पिप्प[7]लीमधुकक्षौद्रशर्करेक्षुरसाम्बुभिः ।
छर्दयेद् गुप्तहृदयो भक्षितं यदि वा विषम् ।

इति सुश्रुतसंहितायां कल्पस्थानेऽन्नपानरक्षाकल्पो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

---

रुहा स्मृता ॥ मूषिका लोमशा कृष्णा भवेत् साऽपि च तद्गुणा ।" इति ।

१ चित्ते विषव्याप्तिप्रतिषेधं वक्ति—**हृदयेति** । हृदयावरणं मूषिकाऽजरुहाऽमृताऽजेयपुराणघृतदूषीविषारिमहासुगन्धिशिम्बीयूषादिभिर्हृदयरक्षार्थं कुर्यादित्यर्थः । २ अजेयाख्यं घृतं द्वितीयाध्याये "मधुकं तगरं कुष्ठम्" इत्यादिना, अमृताख्यं घृतं च सप्तमाध्याये "अपामार्गस्य बीजानि" इत्यादिना वक्ष्यते ।

३ भक्ष्यभोज्येषु विषघ्नद्रव्ययोगविधिमभिधत्ते—**गोधेति** । ४ पालिन्दी = श्यामामूलं त्रिवृतम् । ५ समहौषधे = शुण्ठीसहिते । ६ शिम्बीयूषः = शमीधान्ययूषः । ७ विषभक्षणे वमनमाख्याति—**पिप्पलीति** । ८ गुप्तहृदयः = विषघ्नौषधेनावृतहृदय इत्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः कल्पस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां प्रथमोऽध्यायः ।**

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातः[1] स्थावरविषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
स्थावरं जङ्गमञ्चैव द्विविधं[2] विषमुच्यते ।
दशाधिष्ठानमाद्यन्तु[3] द्वितीयं षोडशाश्रयम् ॥ ३ ॥
मूलं[4] पत्रं फलं पुष्पं त्वक् क्षीरं सार एव च ।
निर्यासो धातवश्चैव कन्दश्च दशमः स्मृतः ॥ ४ ॥

तत्र[5], क्लीतकाश्वमारगुञ्जासुगन्धगर्गरककरघाटविद्युच्छिखा[6]-विजयानीत्यष्टौ मूलविषाणि । विषपत्रिकालम्बावरदारुकरम्भमहाकरम्भाणि पञ्चपत्रविषाणि । कुमुद्वतीवेणुकाकरम्भमहारम्भकर्कोटकरेणुकखद्योतकचर्मरीभगन्धासर्षपातिनन्दनसारपाकानीति द्वादश फलविषाणि । वेत्रकादम्बवल्लीजकरम्भमहाकरम्भाणि पञ्च पुष्पविषाणि । अन्त्रपाचककर्त्तरीयसौरीयककरघाटकरम्भनन्दननारा-

---

द्वितीयोऽध्यायः ।

१ अन्नपानादौ प्रायेण स्थावरविषमवचार्यत इति प्राक् स्थावरविषविज्ञानीयोऽध्याय आरभ्यते—**अथेति** । २ स्थावरजङ्गमारब्धं कृत्रिमसञ्ज्ञं तृतीयमपि विषं बोध्यम् । तद् वक्ष्यति—"स्थावरं जङ्गमं यच्च कृत्रिमं चापि यद्विषम्" इति । ३ आद्यं = प्रथमम् , स्थावरमिति यावत् ।

४ स्थावरस्य दशाधिष्ठानान्येव दर्शयति—**मूलमिति** । मूलविषं करवीरादि, चरके मूलजन्यविषस्य बहुत्वं दर्शितम्—"मुस्तकं पौष्करं क्रौञ्चं वत्सनाभं बलाहकम् । कर्कटं कालकूटं च करवीरकसञ्ज्ञकम् ॥ पालकेन्द्रायुधं तैलं मेघकं कुशपुष्पकम् । रोहिषं पुण्डरीकं च लाङ्गलक्यञ्जनाभकम् ॥ सङ्कोचं मर्कटं शृङ्गीविषं हालाहलं तथा । एवमादीनि चान्यानि मूलजानि स्थिराणि च ॥" इति । एषां लक्षणं तु सङ्ग्रहादौ द्रष्टव्यम् , इह ग्रन्थविस्तरशङ्कया नोक्तम् । पत्रविषं विषपत्रिकादि, फलविषं कर्कोटकादि, पुष्पविषं वेत्रादि, त्वक्सारनिर्यासविषाणि करम्भादीनि, क्षीरविषं वत्सनाभसाक्तुकादि, धातुविषं फेनाश्मभस्मादि, कन्दविषं मूलविशेषत्वान्मूलशब्देनैव ग्रहीतव्यम् । ५ पञ्चपञ्चाशत्स्थावरविषाणि वर्णयति—**तत्रेति** । मूलादिविषाणां परिज्ञानार्थं यतनीयम् । क्लीतकं = मधुयष्टिः । ६ विद्युच्छिखा = कलिहारिका ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चकानि सप्त त्वक्सारनिर्यासविषाणि।

कुमुदन्नोस्नुहीजालक्षीरीणि त्रीणि क्षीरविषाणि।

फेनाश्मभस्म हरितालञ्च द्वे धातुविषे। कालकूटवत्सनाभसर्षपपालककर्दमकवैराटकमुस्तकशृङ्गोविषप्रपुण्डरीकमूलकहालाहलमहाविषकर्कटकानीति त्रयादश कन्दविषाणि। इत्येवं पञ्चपञ्चाशत् स्थावरविषाणि भवन्ति ॥ ५ ॥

चत्वारि[२] वत्सनाभानि मुस्तके द्वे प्रकीर्त्तिते।
षट् चैव सर्षपाण्याहुः शेषाण्येकैकमेव तु ॥ ६ ॥
उद्वेष्टनं[३] मूलविषैः प्रलापो मोह एव च।
जृम्भाऽङ्गोद्वेष्टनश्वासा ज्ञेयाः पत्रविषेण तु ॥ ७ ॥
मुष्कशोफः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष[४] एव च।
भवेत् पुष्पविषैश्छर्दिरार्ध्मानं मोह एव च ॥ ८ ॥
त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्ति हि।
आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्य[५]शिरोरुक्कफसंस्रवाः ॥ ९ ॥
फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुजिह्वता।
हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि ॥ १० ॥
प्रायेण कालघातीनि[६] विषाण्येतानि निर्दिशेत्।
कन्दजानि[७] तु तीक्ष्णानि तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ ११ ॥
स्पर्शाज्ञानं कालकूटे वेपथुः स्तम्भ एव च।
ग्रीवास्तम्भो वत्सनाभे पीतविण्मूत्रनेत्रता ॥ १२ ॥
सर्षपे वातवैगुण्यमानाहो ग्रन्थिजन्म च।
ग्रीवादौर्बल्यवाक्सङ्गौ[८] पालकेऽनुमताविह ॥ १३ ॥

---

१ वर्णकहरितालवंशपत्रीमनःशिलाभेदाद्धरितालं त्रिविधम्। २ कन्दविषाणामवान्तरभेदानिर्दिशति—चत्वारीति। ३ मूलादिविषाणामुपद्रवान् दर्शयति—उद्वेष्टनमिति। उद्वेष्टनं = शरीराकुञ्चनम्। ४ अन्नद्वेषः = अन्नारोचकता। ५ पारुष्यं = कर्कशता। ६ कालघातीनि = कालान्तरमारकाणि। ७ कन्दविषाणां लक्षणानि निर्दिशति—कन्दजानीति। ८ वेपथुः = कम्पनम्। ९ वाक्सङ्गः = वाग-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसेकः[1] कर्दमाख्येन विड्भेदो नेत्रपीतता ।
वैराटकेनाङ्गदुःखं शिरोरोगश्च जायते ॥ १४ ॥
गात्रस्तम्भो वेपथुश्च जायते मुस्तकेन तु ।
शृङ्गीविषेणाङ्गसादः[2] दाहोदरविवृद्धयः ॥ १५ ॥
ण्डरीकेण रक्तत्वमक्ष्णोर्वृद्धिस्तथोदरे ।
वैवर्ण्यं मूलकैश्छर्दिर्हिक्काशोफप्रमूढताः ॥ १६ ॥
चिरेणोच्छ्वसिति श्यावो[3] नरो हालाहलेन वै ।
महाविषेण हृदये ग्रन्थिशूलोद्गमौ भृशम् ॥ १७ ॥
कर्कटेनोत्पतत्यूर्द्ध्वं हसन्दन्तान्दशत्यपि ।
कन्दजान्युग्रवीर्याणि[4] प्रयुक्तानि त्रयोदश ॥ १८ ॥
सर्वाणि कुशलैर्ज्ञेयान्येतानि दशभिर्गुणैः ।
रूक्षमुष्णं[5] तथा तीक्ष्णं सूक्ष्ममाशुव्यवायि[6] च ॥ १९ ॥
विकाशि[7] विशदञ्चैव लघ्वपाकि च तत् स्मृतम् ।
तद्रौक्ष्यात्[8] कोपयेद्वायुमौष्ण्यात् पित्तं सशोणितम् ॥ २० ॥
मतिं च मोहयेत् तैक्ष्ण्यान्मर्मबन्धान्[9] छिनत्ति च ।
शरीरावयवान् सौक्ष्म्यात् प्रविशेद्विकरोति च ॥ २१ ॥
आशुत्वादाशु तद्धन्ति व्यवायात् प्रकृतिं भजेत् ।
क्षपयेच्च[10] विकाशित्वाद्दोषान्धातून्मलानपि ॥ २२ ॥
वैशद्यादतिरिच्येत[11] दुश्चिकित्स्यञ्च लाघवात् ।
दुर्हरञ्चाविपाकित्वात् तस्मात् क्लेशयते चिरम् ॥ २३ ॥

---

वरोधः । १ प्रसेकः=लालास्रावः । २ अङ्गसादः=अङ्गग्लानिः । ३ श्यावः=कपिशः । ४ उग्रवीर्याणि=तीव्रप्रभावाणि । ५ विषाणां दश गुणान् दर्शयति—**रूक्षमिति** । ६ व्यवायित्वं पानीयपततैलवत सर्वतः प्रसरणशीलत्वम् । ७ विकासित्वं हिंसनशीलत्वम् । विपूर्वश्च हि कसतिर्हिंसार्थः । विशदं पिच्छाभागरहितम् । चरकेऽपि—"लघुरूक्षमाशु विशदं व्यवायि तीक्ष्णं विकासि सूक्ष्मं च । उष्णमनिर्देश्यरसं दशगुणमुक्तं विषं तज्ज्ञैः ॥" इति । ८ दश गुणानां प्रत्येकं कार्यं निर्दिशति—**तदिति** । ९ राजिकामरिचादिवत् तीक्ष्णत्वादित्यर्थः । १० क्षपयेत्=विनाशयेत् । ११ अतिरिच्येत=सक्तं न भवेत् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थावरं[1] जङ्गमं यच्च कृत्रिमं चापि यद्विषम् ।
सद्यो व्यापादयेत्तत्तु ज्ञेयं दशगुणान्वितम् ॥ २४ ॥
यत् स्थावरं जङ्गमकृत्रिमं वा देहादशेषं यदनिर्गतं तत् ।
जीर्णं[2] विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा ॥ २५ ॥
स्वभावतो[3] वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति[4] ।
वीर्य्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्[5] कफावृतं वर्षगणानुबन्धि ॥ २६ ॥
तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो[6] विगन्धवैरस्यमुखः पिपासी ।
मूर्च्छन् वमन् गद्गदवाग्विषण्णो भवेच्च दूष्योदरलिङ्गजुष्टः ॥२७॥
आमाशयस्थे[7] कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ।
भवेन्नरो ध्वस्तशिरोरुहाङ्गो[8] विलूनपक्षस्तु यथा विहङ्गः ॥ २८ ॥
स्थितं रसादिष्वथवा यथोक्तान्[9] करोति धातुप्रभवान् विकारान् ।

---

१ दशगुणयुक्तविषस्य सद्योव्यापादकत्वमुपदिशति—**स्थावरमिति** । यत् स्थावरं जङ्गमं कृत्रिमं वेति त्रिविधं यच्च देहादशेषमनिर्हृतं सद्यो व्यापादयेद् मारयेत्, तद् दशगुणान्वितं ज्ञेयमित्यर्थः । "स्थावरं जङ्गमं चेति विषं प्रोक्तमकृत्रिमम् । कृत्रिमं गरसञ्ज्ञं तु क्रियते विविधौषधैः ॥" इत्यष्टाङ्गहृदयम् । कृत्रिमं विषं द्विविधम्—एकं सविषं दूषीविषसञ्ज्ञम्, अपरमविषं गरसञ्ज्ञम् । तथा च काश्यपः—"संयोगजञ्च द्विविधं द्वितीयं विषमुच्यते । दूषीविषं तु सविषमविषं गर उच्यते ॥" इति । संयोगजं कृत्रिमं विषम्, द्वितीयं स्वाभाविकमिति तदर्थः ।

२ स्थावरं जङ्गमं च विषमेव जीर्णत्वादिभिः कारणैर्दूषीविषसञ्ज्ञां लभते, तदाह—**जीर्णमिति** । जीर्णम् = अतिपुराणम्, विषघ्नौषधिभिर्हतं=विषघ्नीभिरौषधीभिर्वीर्यहानिकृतम्, दावाग्निः = वनोद्भवोऽग्निः । ३ स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं स्वभावादेव दशानां गुणानां मध्ये एकद्व्यादिगुणहीनमित्यर्थः । ४ कालान्तरप्रकोपि विषं दूषीविषं, तस्य भावस्तत्ता तां दूषीविषताम् । "दूषीविषं तु शोणितदुष्टयारुः किटिमकोठलिङ्गं च । विषमेकैकं दोषं सन्दूष्य हरत्यसूनेवम् ॥" इति दृढबलः । ५ न निपातयेत्=सद्यश्चिरेण वा न मारयेदित्यर्थः । कफावृतं=कफेन मन्दीकृतौष्ण्यादिगुणम्, वर्षगणानुबन्धि=कफेनाग्नेर्मान्द्यादित्वादपाकाच्चिरस्थायि । ६ भिन्नपुरीष उद्गतमलः, भिन्नवर्णोविवर्ण इत्यर्थः ।

७ शरीरावयवविशेषगतदूषीविषलक्षणानि निर्दिशति—**आमेति** । ८ ध्वस्ता व्यस्ताः शिरोरुहाः केशाः अङ्गं च यस्य स ध्वस्तशिरोरुहाङ्गः । ९ यथोक्तान्=व्याधि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोपञ्च शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणु तत्र रूपम् ॥ २९ ॥
निद्रा गुरुत्वञ्च विजृम्भणञ्च विश्लेषहर्षौ वथवाऽङ्गमर्दः ।
ततः[2] करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठमोहान् ॥ ३० ॥
धातुत्रयं पादकरास्यशोफं दकोदरं छर्दिमथातिसारम् ।
वैवर्ण्यमूर्च्छाविषमज्वरान् वा कुर्य्यात् प्रवृद्धां प्रबलां तृषां वा ॥ ३१ ॥
उन्मादमन्यज्जनयेत्[3] तथाऽन्यदानाहमन्यत्[4] क्षपयेच्च शुक्रम् ।
गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च[4] कुष्ठं तांस्तान् विकारांश्च[5] बहुप्रकारान् ॥ ३२ ॥

दूषितं[6] देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः ।
यस्माद् दूषयते धातून् तस्माद् दूषीविषं स्मृतम् ॥ ३३ ॥
स्थावरस्योपयुक्तस्य[7] वेगे तु प्रथमे नृणाम् ।
श्यावा[8] जिह्वा भवेत् स्तब्धा मूर्च्छा श्वासश्च[9] जायते ॥ ३४ ॥
द्वितीये वेपथुः सादो दाहः कण्ठरुजस्तथा ।
विषमामाशयप्राप्तं कुरुते हृदि वेदनाम् ॥ ३५ ॥
तालुशोषं तृतीये तु शूलं चामाशये भृशम् ।

---

समुद्देशीयोक्तान् । १ विश्लेषो गात्रशैथिल्यं, हर्षो रोमाञ्चः । २ प्रकुपितदूषीविषस्य कार्याण्याह—तत इति । ततः = पूर्वरूपानन्तरम्, अन्नमदो भोजनानन्तरं पूगफलेनेव मदः, अविपाको भुक्तान्नस्य पाकाभावः । ३ अन्यत्=दूषीविषम् । ४ गाद्गद्यम् = अव्यक्तास्फुटवाक्यत्वम् । ५ विसर्पविस्फोटादीन् विकारानित्यर्थः ।

६ दूषीविषशब्दस्य निरुक्तिं वक्ति—दूषितमिति । देश आनूपादिः, कालो दुर्दिनादिः, अन्नं कुलत्थतिलमसूरादि । ७ स्थावरविषस्य सप्तवेगानां लक्षणानि निर्दिशति—स्थावरस्येति । चरकेऽष्टविषवेगा उक्ताः, तल्लक्षणानि च—"तृण्मोहदन्तहर्षप्रसेकवमथुक्लमा भवन्त्याद्ये । वेगे रसप्रदोषादसृक्प्रदोषाद् द्वितीये तु ॥ वैवर्ण्यभ्रमवेपथुमूर्च्छाजृम्भाऽङ्गचिमिचिमातमकाः । दुष्टपिशितात्तृतीये मण्डलकण्डूश्वयथुकोठाः ॥ वातादिजाश्चतुर्थे दाहच्छर्यङ्गशूलमूर्च्छाद्याः । नीलादीनां तमसश्च दर्शनं पञ्चमे वेगे ॥ षष्ठे हिक्का, भङ्गः स्कन्धस्य तु सप्तमेऽष्टमे मरणम् । नृणाम्—" इत्युक्तानि । अत्र चक्रपाणिना चरकसुश्रुतविरोधपरिहारः कृतः—'सुश्रुते एकैककलाऽतिक्रमेण सप्तवेगा उदीरिताः । इह कलालङ्घनेनैव सप्तवेगाः, अष्टमे तु सप्तकलालङ्घनोत्तरकालं मारको वेगो दष्टस्य दंशदेशगमनाय पीतविषस्य हृदयगमनाय भवतीति सुश्रुतेन सममविरोधः ।' इति । ८ श्यावा = कपिशवर्णा । ९ चकाराज्जिह्वाश्या-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्वर्णे हरिते शूने जायेते चास्य लोचने ॥ ३६ ॥
पक्वामाशययोस्तोदो हिक्का कासोऽन्त्रकूजनम् ।
चतुर्थे जायते वेगे शिरसश्चातिगौरवम् ॥ ३७ ॥
कफप्रसेको[1] वैवर्ण्यं पर्वभेदश्च पञ्चमे ।
सर्वदोषप्रकोपश्च पक्वाधाने च वेदना ॥ ३८ ॥
षष्ठे प्रज्ञाप्रणाशश्च भृशं चाप्यतिसार्य्यते ।
स्कन्धपृष्ठकटीभङ्गः सन्निरोधश्च सप्तमे ॥ ३९ ॥
प्रथमे[2] विषवेगे तु वान्तं शीताम्बुसेचितम् ।
अगदं[3] मधुसर्पिर्भ्यां पाययेत समायुतम् ॥ ४० ॥
द्वितीये पूर्ववद्वान्तं पाययेत्तु विरेचनम् ।
तृतीयेऽगदपानं तु हितं नस्यं[4] तथाऽञ्जनम् ॥ ४१ ॥
चतुर्थे स्नेहसम्मिश्रं पाययेतागदं भिषक् ।
पञ्चमे क्षौद्रमधुकक्वाथयुक्तं प्रदापयेत् ॥ ४२ ॥
षष्ठेऽतीसारवत्[5] सिद्धिरवपीडश्च सप्तमे ।
मूर्ध्नि काकपदं[6] कृत्वा सासृग्वा पिशितं क्षिपेत् ॥ ४३ ॥
वेगान्तरे त्वन्यतमे कृते कर्मणि शीतलाम् ।
यवागूं सघृतक्षौद्रामिमां दद्याद्विषापहाम् ॥ ४४ ॥

---

वतादीन् कुरुते । एवमग्रेऽपि चशब्दार्थो बोध्यः । १ कफप्रसेकः=श्लेष्मस्रावः । सन्निरोधः=श्वासावरोध इत्यर्थः । चकारात् सप्तधातूनां दूषणान्मृत्युश्च भवेदित्यर्थः । तदुक्तं वाग्भटे—"स्कन्धपृष्ठकटीभङ्गो भवेन्मृत्युश्च सप्तमे" इति ।

२ प्रथमादिवेगानां यथाक्रमं चिकित्सां ब्रवीति—प्रथम इति । ३ अगदं "पिप्पल्यो ध्यामकं मांसी" इत्यादिनाऽनन्तरमेव निवेदयिष्यते । ४ विषघ्नादिगुणयुक्तं नस्यमित्यर्थः । एवमञ्जनमपि । ५ अतीसारवत् सिद्धिः=अतीसारतुल्या चिकित्सा । ६ काकपदं=काकपदाकारं व्रणमित्यर्थः । सासृग्वेत्यत्र वाशब्दादवपीडोऽपि बोध्यः । "अवपीडश्च सप्तमे" इत्यत्र डल्हणेन—'चकारोऽयं भिन्नक्रमे, तेन सप्तमे चेति योजनात् षष्ठेऽप्यवपीडः । वाशब्दश्चानुक्तसमुच्चये, तेनानुक्तं सशोणितचर्मदानं शाखाललाटसिराताडनादिजङ्गमविषोक्तं च समुच्चीयते' इत्युच्यते ।

७ कालघातिनो विषस्य प्रतीकारविधिमभिधत्ते—वेगेति । वेगान्तरे=वेगमध्ये,



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोषातक्योऽग्निकः[1] पाठासूर्य्यवल्ल्यमृताऽभयाः ।
शिरीषः किणिही[2] शेलुर्गिर्य्याह्वा रजनीद्वयम् ॥ ४५ ॥
पुनर्नवे हरेणुश्च त्रिकटुः सारिवे बला ।
एषां यवागूर्निःक्काथे कृता हन्ति विषद्वयम् ॥ ४६ ॥
मधुकं[4] तगरं कुष्ठं भद्रदारु हरेणवः ।
पुन्नागैलैलवालूनि नागपुष्पोत्पलं सिता[5] ॥ ४७ ॥
विडङ्गं चन्दनं पत्रं प्रियङ्गुर्ध्यामकं[6] तथा ।
हरिद्रे द्वे बृहत्यौ च सारिवे च स्थिरा[7] सहा ॥ ४८ ॥
कल्कैरेषां घृतं सिद्धमजेयमिति विश्रुतम् ।
विषाणि सन्ति सर्वाणि शीघ्रमेवाजितं क्वचित् ॥ ४९ ॥
दूषीविषार्त्तं[8] सुस्विन्नमूर्द्ध्वञ्चाधश्च शोधितम् ।
पाययेतागदं नित्यमिमं[9] दूषीविषापहम् ॥ ५० ॥
पिप्पल्यो[10] ध्यामकं मांसी शावरः परिपेलवम् ।
सुवर्चिका[11] ससूक्ष्मैला तोयं कनकगैरिकम् ॥ ५१ ॥
क्षौद्रयुक्तोऽगदो ह्येष दूषीविषमपोहति ।
नाम्ना दूषीविषारिस्तु न चान्यत्रापि वार्य्यते ॥ ५२ ॥
ज्वरे[12] दाहे च हिक्कायामानाहे शुक्रसङ्क्षये ।
शोफेऽतिसारे मूर्च्छायां हृद्रोगे जठरेऽपि वा ॥ ५३ ॥

---

अन्यतमे=एकतमे । १ अग्निकः=अजमोदा, पाठा='पाढ' इति ख्याता, सूर्यवल्ली=अर्कपुष्पिकावृक्षः । २ किणिही=ज्योतिष्मती, 'मालकांगनी' इति बोध्या । किणिही अपामार्ग इत्यमरकोशे । गिर्याह्वा=विष्णुक्रान्ताभेदः । ३ कोशातक्यादीनां क्काथेन षडङ्गकल्पनाकल्पितेन यवागूः कल्पनीया ।

४ विषहरमजेयं घृतं निर्दिशति--मधुकमिति । ५ 'पुन्नागे पुरुषस्तुङ्गः केसरो देववल्लभः' इत्यमरः । नागपुष्पं=नागकेसरम्, सिता='मिसरी' इति बोध्या । ६ ध्यामकं=रोहिषम्, तदलाभे 'उशीरं' देयम् । ७ स्थिरा=शालपर्णी ।

८ दूषीविषारिमगदं निर्दिशति--दूषीति । ९ इमं=वक्ष्यमाणम् । १० ध्यामकं=रोहिषाख्यस्तृणविशेषः, मांसी=जटामांसी, शावरः=रोध्रः, परिपेलवं=कैवर्तमुस्तकम् । ११ सुवर्चिका=सर्जिकाक्षारः । १२ दूषीविषजन्योपद्रवान्निर्दिशति--

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्मादे वेपथौ चैव ये चान्ये स्युरुपद्रवाः।
यथास्वं तेषु कुर्वीत विषघ्नैरौषधैः क्रियाम् ॥ ५४ ॥
साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोत्थितम्।
दूषीविषमसाध्यन्तु क्षीणस्याहितसेविनः ॥ ५५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां कल्पस्थाने स्थावरविषविज्ञानीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

## तृतीयोऽध्यायः।

अथातो जङ्गमविषविज्ञानीयं कल्पं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
जङ्गमस्य विषस्योक्तान्यधिष्ठानानि षोडश।
समासेन मया यानि विस्तरस्तेषु वक्ष्यते ॥ ३ ॥

तत्र, दृष्टिनिःश्वासदंष्ट्रानखमूत्रपुरीषशुक्रलालार्त्तवमुखसन्दंश-विशर्द्धिततुण्डास्थिपित्तशूकशवानीति ॥ ४ ॥

तत्र, दृष्टिनिःश्वासविषा दिव्याः सर्पाः, भौमास्तु दंष्ट्राविषाः, मार्जारश्ववानरमकरमण्डूकपाकमत्स्यगोधाशम्बूकप्रचलाकगृहगो-

---

ज्वर इति। १ यथास्वं=यथायोग्यमुपदिष्टम्। २ दूषीविषस्य साध्यासाध्यत्वादिकं दर्शयति--साध्यमिति। आत्मवतः=संयमिनः। ३ अहितसेविनः=अहिताहारविहारकारिण इत्यर्थः।

इति सुश्रुतसंहितायाः कल्पस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वितीयोऽध्यायः।

---

### तृतीयोऽध्यायः।

४ द्वितीयाध्याये "द्वितीयं षोडशाश्रयम्" इति विवृण्वन् जङ्गमविषविज्ञानीयमध्यायमधिकरोति--अथेति। ५ समासेन=सङ्क्षेपेणेत्यर्थः। ६ जङ्गमविषस्य षोडशाधिष्ठानानि निर्दिशति--तत्रेति। ७ विशर्धितः=अपानवातः, गुदगर्जनमिति यावत्। 'शृधि अपानशब्दे' इति धातुः। ८ दिवि स्वर्गे भवा दिव्याः। भूमौ मर्त्यलोके भवा भौमाः। ९ पाकमत्स्यादिजीवानां परिचयार्थं यतनीतम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिकाचतुष्पादकीटास्तथाऽन्ये[1] दंष्ट्रानखविषाः, चिपिटपिच्चिटकक-
षायवासिकसर्षपकतोटकवर्चःकीटकौण्डिन्यकाः शकृन्मूत्रविषाः,
मूषिकाः शुक्रविषाः, लूता[2] लालामूत्रपुरीषमुखसन्दंशनखशुक्रार्त्तव-
विषाः, वृश्चिकविश्वम्भरवरटीराजीवमत्स्योच्चिटिङ्गाः समुद्रवृश्चि-
काश्चालर्क[3]विषाः, चित्रशिरःसरावकुर्दिशतदारुकारिमेदकसारिकामुखा
मुखसन्दंशविशर्द्धितमूत्रपुरीषविषाः, मक्षिकाकणभजलायुका मुख-
सन्दंशविषाः, विषहतास्थिसर्पकण्टकवरटीमत्स्यास्थि चेत्यस्थिवि-
षाणि, शकुलीमत्स्यरक्तराजिवरटीमत्स्याश्च पित्तविषाः, सूक्ष्मतु-
ण्डोच्चिटिङ्गवरटीशतपदीशूकवलभिकाशृङ्गीभ्रमराः शूकतुण्डवि-
षाः, कीटसर्पदेहा गतासवः शवविषाः। शेषास्त्वनुक्ता मुखसन्दंश-
विषेष्वेव गणयितव्याः ॥ ५ ॥

भवन्ति चात्र ।

राज्ञोऽरिदेशे[4] रिपवस्तृणाम्बुमार्गान्निधूमश्वसनान् विषेण ।
सन्दूषयन्त्येभिरतिप्रदुष्टान् विज्ञाय लिङ्गै[5]रभिशोधयेत्तान् ॥ ६ ॥
दुष्टं[6] जलं पिच्छिलमुग्रगन्धि फेनान्वितं राजि[7]भिरावृतञ्च ।
मण्डूकमत्स्यं म्रियते विहङ्गा मत्ताश्च सानूपचरा भ्रमन्ति ॥ ७ ॥
मज्जन्ति[8] ये चात्र नराश्वनागास्ते छर्दिमोहज्वरदाहशोफान् ।
गच्छन्ति[9] तेषामपहृत्य दोषान् दुष्टं जलं शोधयितुं यतेत ॥ ८ ॥
धवाश्वकर्णासनपारिभद्रान् सपाटलान्[10] सिद्धकमोचकौ[11] च ।
दग्ध्वा सराजद्रुम सोमवल्कांस्तद्भस्म[12] शीतं वितरेत्[13] सरःसु ॥९॥

---

१ अन्ये = मशकमक्षिकाकुम्भीरादयः। २ लूता='मकड़ा' इति ख्याता। ३ आ-
लं = वृश्चिकपुच्छस्थितकण्टकः। रलयोः सावण्याद् आरमपि। ४ तृणादीनां विष-
दूषितत्वज्ञानावश्यकतां दर्शयति—**राज्ञ इति**। ५ लिङ्गैः = तत्तल्लक्षणैरित्यर्थः।
६ विषदूषितजललक्षणमभिधत्ते—**दुष्टमिति**। दुष्टं = विषदूषितमित्यर्थः। ७ कृष्णा-
भी राजिभिः। ८ मज्जन्ति = स्नान्ति। ९ गच्छन्ति = प्राप्नुवन्ति। १० विषदुष्ट-
जलशोधनौषधं वक्ति—**धवेति**। धवः = 'धाय' इति प्रथते। अश्वकर्णः = सालभेदः,
असनः = 'विजयसार' इति ख्यातः। ११ सिद्धकः = सालः, मोचकः = मुष्ककः।
१२ सोमवल्कः = श्वेतखदिरः। १३ वितरेत् = निःक्षिपेत्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भस्माञ्जलिञ्चापि घटे निधाय विशोधयेदीप्सितमेवमम्भः ।
क्षितिप्रदेशं विषदूषितन्तु शिलातलं तीर्थमथेरिणं वा ॥ १० ॥
स्पृशन्ति गात्रेण तु येन येन गोवाजिनागोष्ट्रखरा नरा वा ।
तच्छूनतां यात्यथ दह्यते च विशीर्य्यते रोमनखं तथैव ॥ ११ ॥
तत्राप्यनन्तां सह सर्वगन्धैः पिष्ट्वा सुराभिर्विनियोज्य मार्गम् ।
सिञ्चेत् पयोभिः सुमृदन्वितैस्तं विडङ्गपाठाकटभीजलैर्वा ॥ १२ ॥
तृणेषु भक्तेषु च दूषितेषु सीदन्ति मूर्च्छन्ति वमन्ति चान्ये ।
विड्भेदमृच्छन्त्यथवा म्रियन्ते तेषां चिकित्सां प्रणयेद्यथोक्ताम् ॥१३॥
विषापहैर्वाऽप्यगदैर्विलिप्य वाद्यानि चित्राण्यपि वादयेत ।
तारः सुतारः ससुरेन्द्रगोपः सर्वैश्च तुल्यः कुरुविन्दभागः ॥ १४ ॥
पित्तेन युक्तः कपिलान्वयेन वाद्यप्रलेपो विहितः प्रशस्तः ।
वाद्यस्य शब्देन हि यान्ति नाशं विषाणि घोराण्यपि यानि सन्ति १५
धूमेऽनिले वा विषसम्प्रयुक्ते खगाः श्रमार्त्ताः प्रपतन्ति भूमौ ।
कासप्रतिश्यायशिरोरुजश्च भवन्ति तीव्रा नयनामयाश्च ॥ १६ ॥
लाक्षाहरिद्राऽतिविषाऽभयाऽब्दहरेणुकैलादलवक्रकुष्ठम् ।
प्रियङ्गुकाञ्चाप्यनले निधाय धूमानिलौ चापि विशोधयेत ॥ १७ ॥
प्रजामिसामात्मयोनेर्ब्रह्मणः सृजतः किल ।

---

१ अञ्जलि = चत्वारि पलानि । २ विषदूषितभूमिलक्षणमाह—क्षितीति । ३ तीर्थं = घट्टम, इरिणम् = ऊषरभूमिम् । ४ विशीर्यते = शटति ।

५ विषदूषितभूमिचिकित्सां वक्ति—तत्रेति । अनन्ता = उत्पलसारिवा, सर्वगन्धस्तु—"चातुर्जातककर्पूरकक्कोलागुरुकुङ्कुमम् । लवङ्गसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥" इति । ६ पयोभिः = दुग्धैः । ७ कटभी = 'मालकांगनी' इति ख्याता । ८ विषदूषिततृणभक्तयोर्लक्षणं चिकित्सां चाख्याति—तृणेष्विति । ९ तारः = रौप्यकम्, सुतारः = पारदः; सुरेन्द्रः सुवर्णं, गोपा सारिवा, ताभ्यां सहितः ससुरेन्द्रगोपः, कुरुविन्दभागः = मुस्तांशः । कुरुविन्दं पद्मरागमणिरिति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । १० विषदूषितधूमानिलयोर्लक्षणं तच्चिकित्सां चाभिदधाति—धूम इति । ११ नयनामयाः = नेत्ररोगाः । १२ अब्दः = 'मोथा' इति ख्यातः ।

१३ विषोत्पत्तौ पुरावृत्तं कथयति—प्रजामिति । चरके तु—"अमृतार्थं समुद्रे तु मथ्यमाने सुरासुरैः । जज्ञे प्रागमृतोत्पत्तेः पुरुषो घोरदर्शनः ॥ दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रो हरि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकरोदसुरो विघ्नं कैटभो नाम दर्पितः ॥ १८ ॥
ततः क्रुद्धस्य वै वक्त्राद् ब्रह्मणस्तेजसो निधेः ।
क्रोधो विग्रहवान् भूत्वा निपपात[1] अतिदारुणः ॥ १९ ॥
स[2] तं ददाह गर्जन्तमन्तकाभं महाबलम् ।
ततोऽसुरं घातयित्वा तत्[3] तेजोऽवर्द्धताद्भुतम् ॥ २० ॥
ततो विषाद[4]ो देवानामभवत्तं निरीक्ष्य वै ।
विषादजननत्वाच्च विषमित्यभिधीयते ॥ २१ ॥
ततः सृष्ट्वा प्रजाः शेषं तदा तं क्रोधमीश्वरः ।
विन्यस्त[5]वान् स भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ २२ ॥
यथा[6]ऽव्यक्तरसं तोयमन्तरीक्षान्महीगतम् ।
तेषु तेषु प्रदे[7]शेषु रसं तं तं नियच्छति ॥ २३ ॥
एवमेव विषं यद्यद् द्रव्यं व्याप्यावतिष्ठते ।
स्वभावादेव तं तस्य[8] रसं समनुवर्त्तते ॥ २४ ॥
विषे[9] यस्माद् गुणाः सर्वे तीक्ष्णाः प्रायेण सन्ति हि ।
विषं सर्वमतो ज्ञेयं सर्वदोषप्रकोपणम् ॥ २५ ॥
ते[10] तु वृत्तिं प्रकुपिता जहति स्वां विषार्दिताः ।
नोपयाति विषं पाकमतः प्राणान् रुणद्धि च ॥ २६ ॥
श्लेष्मणाऽऽवृतमार्गत्वादुच्छ्वासोऽस्य निरुध्यते ।

---

स्केशोऽनलेक्षणः । जगद्विषण्णं तं दृष्ट्वा तेनासौ विषसञ्ज्ञितः ॥ जङ्गमस्थावरायां तद्योनौ ब्रह्मा न्ययोजयत् । तदम्बुसम्भवं तस्माद् द्विविधं पावकोपमम् ॥" इति । एवमेव पुरावृत्तमष्टाङ्गहृदयेऽपि, तत्तु प्रसङ्गतः प्रागुदधृतम् । १ निपपात=निर्गतवान् । २ सः=पुरुषरूपः क्रोधः, तं=कैटभासुरम् । ३ तस्य पुरुषरूपवतः क्रोधस्य तेजस्तत्तेजः । ४ विषादः=वाक्कायचित्तावसादः, 'विषादश्चेतसो भङ्ग उपायाभावनाशयोः' इति । ५ विन्यस्तवान्=विनिःक्षिप्तवान् ।

६ विषस्य नानावीर्यत्वे हेतुमाख्याति—**यथेति** । अव्यक्तरसम्=एकरसम् । ७ तेषु तेषु प्रदेशेषु=आकाशगुणभूयिष्ठादिष्वित्यर्थः । ८ तस्य=द्रव्यस्येत्यर्थः । ९ विषस्य सर्वदोषप्रकोपकत्वमभिधत्ते—**विष इति** । १० ते वातादिदोषाः, स्वां वृत्तिं, यथा—वातः प्रस्पन्दनादिकां, पित्तः रागपक्त्यादिकां, श्लेष्मा सन्धिसंश्लेषादिकां,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विसंज्ञः[1] सति जीवेऽपि तस्मात् तिष्ठति मानवः ॥ २७ ॥
शुक्रवत्[2] सर्वसर्पाणां विषं सर्वशरीरगम्[3] ।
क्रुद्धानामेति चाङ्गेभ्यः शुक्रं निर्मन्थनादिव[4] ॥ २८ ॥
तेषां बडिशवद्[5] दंष्ट्रास्तासु सज्जति चागतम् ।
अनुद्वृत्ता[6] विषं तस्मान्न मुञ्चन्ति च भोगिनः ॥ २९ ॥
यस्मादत्यर्थमुष्णञ्च तीक्ष्णञ्च पठितं विषम्[7] ।
अतः सर्वविषेषूक्तः परिषेकस्तु शीतलः ॥ ३० ॥
मन्दं कीटेषु नात्युष्णं बहुवातकफं विषम् ।
अतः कीटविषे चापि[8] स्वेदो न प्रतिषिध्यते ॥ ३१ ॥
कीटैर्दष्टानुग्रविषैः सर्पवत् समुपाचरेत् ।
स्वभावादेव तिष्ठेत्तु प्रहारादंशयोर्विषम्[9] ॥ ३२ ॥
व्याप्य सावयवं देहं[10] दिग्धविद्धाहिदष्टयोः ।
लौल्याद्विषान्वितं मांसं यः खादेन्मृतमात्रयोः ॥ ३३ ॥
यथाविषं[11] स रोगेण क्लिश्यते म्रियतेऽपि वा ।
अतश्चाप्यनयोर्मांसमभक्ष्यं मृतमात्रयोः ॥ ३४ ॥
मुहूर्त्तात्[12] तदुपादेयं प्रहारादंशवर्जितम् ।
सवातं[13] गूढधूमाभं पुरीषं योऽतिसार्यते ॥ ३५ ॥
आध्मातोऽत्यर्थमुष्णास्रो[14] विवर्णः सादपीडितः ।

---

जहाति त्यजन्तीत्यर्थः । १ विगता सञ्ज्ञा सम्यग् ज्ञानं यस्य स विसञ्ज्ञः ।

२ दंशकाले सर्पाः कथं विषं मुञ्चन्तीति दर्शयति—**शुक्रेति** । ३ सर्वशरीरगं= सकलाङ्गव्यापकम् । ४ यथा श्रेष्ठाङ्गनाऽऽलिङ्गनरूपहर्षाच्छुक्रमङ्गेभ्य एति आगच्छति, तथैव क्रुद्धानां सर्पाणामङ्गेभ्यो विषमागच्छति । ५ बडिशवत्= मत्स्यवेधनयन्त्रवदित्यर्थः । ६ अनुद्वृत्ताः=अननुयोजिता, अनुच्छलिता इति यावत् । कर्षणकृतपरावृत्त्या हि दंष्ट्राणामधोमुखतेति निबन्धसङ्ग्रहव्याख्या ।

७ सर्वविषेषु शीतक्रियार्थमुपदिशति—**यस्मादिति** । ८ अपिशब्दप्रयोगात् केषाञ्चन कीटानां विषेषु स्वेदनिषेधः । ९ सविषमांसभक्षणदोषं दर्शयति—**स्वभावादिति** । १० दिग्धविद्धः विषलिप्तशस्त्रहतः, अहिदष्टः सर्पदष्टस्तयोरित्यर्थः । ११ यथाविषं=विषानुसारेण । १२ मुहूर्तात्=घटिकाद्वयानन्तरम्, तत्=मांसम् । १३ विषपीतलक्षणमभिधत्ते—**सवातमिति** । १४ उष्णास्रः=उष्णनेत्राम्बुः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्वमत्यथ फेनञ्च विषपीतं तमादिशेत् ॥ ३६ ॥
न चास्य हृदयं वह्निर्विषजुष्टं दहत्यपि[1] ।
तद्धि स्थानं चेतनायाः स्वभावाद् व्याप्य तिष्ठति ॥ ३७ ॥
अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसन्ध्यासु[2] चतुष्पथेषु ।
याम्ये[3] सपित्रे परिवर्जनीया ऋक्षे नरा मर्मसु ये च दृष्टाः ॥ ३८ ॥
दर्वीकराणां[4] विषमाशुघाति सर्वाणि चोष्णे[5] द्विगुणीभवन्ति ।
अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालप्रमेहिष्वथ गर्भिणीषु ॥ ३९ ॥
वृद्धातुरक्षीणबुभुक्षितेषु रूक्षेषु भीरुष्वथ दुर्दिनेषु[6] ।
शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमेति राज्यो लताभिश्च न सम्भवन्ति ॥ ४० ॥
शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो[7] विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ।
जिह्वा सिता यस्य च केशशातो[8] नासाऽवभङ्गश्चासकण्ठभङ्गः ॥ ४१ ॥
कृष्णः सरक्तः श्वयथुश्च दंशे[9] हन्वोः स्थिरत्वञ्च स वर्जनीयः ।
वर्त्तिर्घना[10] यस्य निरेति वक्त्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य ॥ ४२ ॥
दंष्ट्रानिपाताः सकलाश्च यस्य तञ्चापि वैद्यः परिवर्जयेत्तु ।
उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं वाऽप्यथवा विवर्णम् ॥ ४३ ॥
सारिष्टमत्यर्थमवेगिनञ्च[11] जह्यान्नरं तत्र न कर्म कुर्यात् ॥ ४४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां कल्पस्थाने जङ्गमविषविज्ञानीयोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

१ न दहति = न भस्मीकरोति। २ विशिष्टदेशादौ दष्टानां वर्ज्यत्वमाह—अश्वत्थेति। ३ याम्ये = भरण्याम्, पित्र्ये = मघायाम्। वाग्भटे विशेषः—"श्मशानचितिचैत्यादौ पञ्चमीपक्षसन्धिषु। अष्टमीनवमीसन्ध्यामध्यरात्रिदिनेषु च ॥ याम्याग्नेयमघाऽऽश्लेषा-विशाखापूर्वनैर्ऋते। नैर्ऋताख्ये मुहूर्ते च दष्टं मर्मसु च त्यजेत् ॥ दष्टमात्रः सितास्याक्षः शीर्यमाणशिरोरुहः। स्तब्धजिह्वो मुहुर्मूर्च्छन् शीतोच्छ्वासो न जीवति ॥" इति।

४ अवस्थाविशेषेण विषवृद्धिं कथयति—**दर्वीति**। ५ उष्णकाले इत्यर्थः। द्विगुणी-भवन्ति = द्विगुणशक्तिकानि भवन्ति। ६ मेघाच्छादितं दिनं दुर्दिनं तेष्वित्यर्थः।

७ विषाभिभूतस्यासाध्यलक्षणानि निर्दिशति—**शस्त्रेति**। शस्त्रक्षते यस्य रक्तं नैति, लताभिश्च ताडिते राज्यो रेखा न सम्भवन्तीत्यर्थः। ८ रोमहर्षः = रोमाञ्चः। ९ केशशातः = कचच्युतिः। १० दंशे = दष्टस्थाने, हन्वोः = मुखसन्ध्योः। ११ कफव-र्तिरित्यर्थः। १२ अरिष्टेन मरणलक्षणेन सहितं सारिष्टम्, अवेगिन = वेगवर्जितम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## चतुर्थोऽध्यायः।

अथातः सर्पदष्टविषविज्ञानीयं कल्पं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

धन्वन्तरिं महाप्राज्ञं सर्वशास्त्रविशारदम् ।
पादयोरुपसङ्गृह्य सुश्रुतः परिपृच्छति ॥ ३ ॥
सर्पसंख्यां विभागञ्च[2] दष्टलक्षणमेव च ।
ज्ञानञ्च विषवेगानां भगवन्! वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥
तस्य[3] तद्वचनं श्रुत्वा प्राब्रवीद्भिषजां वरः ।
असंख्या वासुकिश्रेष्ठा[4] विख्यातास्तक्षकादयः ॥ ५ ॥
महीधराश्च नागेन्द्रा हुताग्निसमतेजसः ।
ये चाप्यजस्रं[5] गर्जन्ति वर्षन्ति च तपन्ति च ॥ ६ ॥
ससागरगिरिद्वीपा यैरियं धार्यते मही ।
क्रुद्धा निःश्वासदृष्टिभ्यां ये हन्युरखिलं जगत् ॥ ७ ॥
नमस्तेभ्योऽस्ति नो तेषां[6] कार्यं किञ्चिच्चिकित्सया ।
ये तु दंष्ट्राविषा भौमा[7] ये दशन्ति च मानुषान् ॥ ८ ॥
तेषां संख्यां[8] प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः[9] ।

---

सङ्ग्रहे—"श्वयथुर्वेदनास्तीव्राः ग्रीवाभङ्गोऽल्पिरक्तता । मूर्च्छागलग्रहश्छर्दिः प्रेतराजस्य किङ्कराः ॥ जाम्बवप्रतिमो दंशः कूर्मपृष्ठवदुन्नतः । रक्तं खेभ्यः समस्तेभ्यो वर्तते न तु दंशतः ॥ रोमहर्षो न शिशिरैः श्वयथुर्लोहितोऽसितः । दृष्टमेहनता वक्रवक्त्रत्वं यस्य तं त्यजेत् ॥" इति ।

इति सुश्रुतसंहितायाः कल्पस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां तृतीयोऽध्यायः ।

---

### चतुर्थोऽध्यायः।

१ जङ्गमविषेषु सर्पस्य प्राधान्यात् प्राक् सर्पदष्टविषविज्ञानीयमधिकरोति—**अथेति** । २ विभागं = पृथक्करणम् । ३ सर्पाणां महाविषत्वं प्रतिपादयति—**तस्येति** । ४ वासुकिः श्रेष्ठो येषां ते वासुकिश्रेष्ठाः । 'शेषः प्रथमतो जातो वासुकिस्तदनन्तरम् । ऐरावतस्तक्षकश्च कर्कोटकधनञ्जयौ ॥' इति महाभारतमनुसन्धेयम् । ५ अजस्रं = रात्रिन्दिवम् । ६ तेषां = तक्षकादीनाम् । ७ भूमौ मर्त्यलोके भवा भौमाः । ८ संख्यां = गणनाम् । ९ अनुपूर्वशः = अनुक्रमेणेत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]अशीतिस्त्विव सर्पाणां भिद्यते पञ्चधा तु [2]सा ॥ ९ ॥
[3]दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तस्तथैव च ।
निर्विषा वैकरञ्जश्च त्रिविधास्ते पुनः स्मृताः ॥ १० ॥
दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तश्च पन्नगाः ।
तेषु दर्वीकरा ज्ञेया विंशतिः षट् च पन्नगाः ॥ ११ ॥
द्वाविंशतिर्मण्डलानि राजिमन्तास्तथा दश ।
निर्विषा द्वादश ज्ञेया वैकरञ्जास्त्रयस्तथा ॥ १२ ॥
वैकरञ्जोद्भवाः सप्त चित्रा मण्डलिराजिलाः ।
[4]पादाभिमृष्टा दुष्टा वा क्रुद्धा ग्रासार्थिनोऽपि वा ॥ १३ ॥
ते दशन्ति महाक्रोधास्त्रिविधं भीष्म[5]दर्शनाः ।
[6]सर्पितं रदितं चापि तृतीयमथ निर्विषम् ।
सर्पाङ्गाभिहतं केचिदिच्छन्ति खलु तद्विदः ॥ १४ ॥
[7]पदानि यत्र दन्तानामेकं द्वे वा बहूनि वा ।

---

१ सङ्क्षेपेण सर्पाणां पञ्चभेदानाख्याति—**अशीतिरिति** । २ सा=अशीतिः । ३ दर्व्याकार फण एव करो येषां प्रहारसाधनत्वात् ते, अथवा दर्वीं फणां कुर्वन्तीति दर्वीकराः, मण्डलिनः=फणावर्जिता नानाप्रकारैर्मण्डलैश्चिताः, राजिमन्तः=फणावर्जिता बिन्दुना तिर्यगूर्ध्वगरेखया च विचित्रिताः, तदुक्तं चरके—"बिन्दुलेखविचित्राङ्गः पन्नगः स्यात्तु राजिमान्" इति । निर्विषाः=विषरहिताः, वैकरञ्जाः=सङ्कीर्णजाताः ।

४ सर्पाणां दंशने हेतुमभिदधाति—**पादेति** । पादेन पादाभ्यां वाऽभिमृष्टा मर्दिता इति पादाभिमृष्टाः, दुष्टाः=दुष्टप्रकृतयः । ५ महाक्रोधेन भीमं भयङ्करं दर्शनं येषां ते भीमदर्शनाः । अष्टाङ्गहृदये—"आहारार्थं भयात्पादस्पर्शादतिविषात् क्रुधः । पापवृत्तितया वैरात् देवर्षियमचोदनात् ॥ दशन्ति सर्पास्तेषूक्तं विषाधिक्यं यथोत्तरम् । इति कारणमुक्तम् । दंशविषज्ञानार्थं दंष्ट्राभेदमाह चरकः, प्रसङ्गात् स प्रदर्श्यते—"सर्पदंष्ट्राश्चतस्रस्तु तासां वामाधरा सिता । पीता वामोत्तरा दंष्ट्रा रक्तश्यावाऽधरोत्तरा ॥ यन्मात्रः पतते बिन्दुर्गोवालात् सलिलोद्धृतात् । वामाधरायां दंष्ट्रायां तन्मात्रं स्यादहेर्विषम् ॥ एकद्वित्रिचतुर्विद्धविषभागोत्तरोत्तराः । सवर्णास्तत्कृता दंशा बहूत्तरविषा भृशाः ॥" इति ।

६ सर्पदंशस्य त्रैविध्यं दर्शयति—**सर्पितमिति** । सर्पितं=दष्टमत्यवगाढम्, रदितं=दष्टमनवगाढम् । ७ तत्रादौ सर्पितस्य लक्षणमाह—**पदानीति** । पदानि=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमग्नान्यल्परक्तानि यान्युद्वृत्य करोति हि ॥ १५ ॥
चञ्चुमालकयुक्तानि वैकृत्यकरणानि च ।
सङ्क्षिप्तानि सशोफानि विद्यात्तत् सर्पितं भिषक् ॥ १६ ॥
राज्यः सलोहिता यत्र नीलाः पीताः सितास्तथा ।
विज्ञेयं रदितं तत्तु ज्ञेयमल्पविषञ्च तत् ॥ १७ ॥
अशोफमल्पदुष्टासृक् प्रकृतिस्थस्य देहिनः ।
पदं पदानि वा विद्यादविषं तच्चिकित्सकः ॥ १८ ॥
सर्पस्पृष्टस्य भीरोर्हि भयेन कुपितोऽनिलः ।
कस्यचित् कुरुते शोफं सर्पाङ्गाभिहतन्तु तत् ॥ १९ ॥
व्याधितोद्विग्नदष्टानि ज्ञेयान्यल्पविषाणि तु ।
तथाऽतिवृद्धबालाभिदष्टमल्पविषं स्मृतम् ॥ २० ॥
सुपर्णदेवब्रह्मर्षियक्षसिद्धनिषेविते ।
विषन्नोषधियुक्ते च देशे न क्रमते विषम् ॥ २१ ॥
रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वस्तिकाङ्कुशधारिणः ।

---

क्षतचिह्नानि । १ निमग्नानि = अनुद्गतानि । २ चञ्चुमालकयुक्तानि=उपरि पिडकासदृशैराचितानि । हाराणचन्द्रस्तु—'पदानि यानि चञ्चुमोष्ठमुद्वृत्य विषं निक्षेप्तुं वक्रीकृत्य करोति सर्प इति शेषः । तानि अलक एव आलकोऽङ्गलिप्तं कुङ्कुमम्, कुत्सितं वाऽऽलमालकं रक्ताभं हरितालमित्येतत्, तद्वद्रागयुक्तान्यालकयुक्तानि' इति व्याख्यातः । वैकृत्यकरणानि = विकारभावविधायकानि । ३ सङ्क्षिप्तानि = सूचीविद्धवत्सूक्ष्माणीत्यर्थः ।

४ रदितस्य लक्षणं निर्दिशति—**राज्य इति** । राज्यः = रेखाः । ५ निर्विषस्य लक्षणमाख्याति—**अशोफमिति** । अशोफम् = ईषच्छोफयुक्तम् । ६ अविषं = निर्विषाख्यमित्यर्थः । ७ मतान्तरीयसर्पाङ्गाभिहतलक्षणं दर्शयति—**सर्पेति** । ८ चार्थे तु शब्दः, तेन शङ्काविषमपि बोद्धव्यम् । यथा कण्टकादिना विद्धे सर्पदष्टभ्रान्तिर्भवति । तदुक्तमष्टाङ्गहृदये—"दुरन्धकारे विद्धस्य केनचिद्दष्टशङ्कया । विषोद्वेगो ज्वरश्छर्दिर्मूर्च्छा दाहोऽपि वा भवेत् ॥ ग्लानिर्मोहोऽतिसारो वा तच्छङ्काविषमुच्यते ।" इति ।

९ सर्पविषस्य अवस्थाविशेषेणाल्पविषत्वं प्रतिपादयति—**व्याधितेति** । १० न क्रमते = न प्रसरतीत्यर्थः । ११ दर्वीकराणां लक्षणमाचष्टे—**रथाङ्गेति** । रथाङ्गं = चक्रम्, लाङ्गलं = हलम्, छत्रं प्रसिद्धम्, स्वस्तिकः = फणास्थनोलरेखाविशेषः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञेया दर्वीकराः सर्पाः फणिनः शीघ्रगामिनः ॥ २२ ॥
मण्डलैर्[1]विविधैश्चित्राः पृथवो मन्दगामिनः ।
ज्ञेया मण्डलिनः सर्पा ज्वलनार्कसमप्रभाः ॥ २३ ॥
स्निग्धा[2] विविधवर्णाभिस्तिर्य्यगूर्द्ध्वं च रा[3]जिभिः ।
चित्रिता इव ये भान्ति राजिमन्तस्तु ते स्मृताः ॥ २४ ॥
मुक्ता[4]रूप्यप्रभा ये च कपिला ये च पन्नगाः ।
सुगन्धयः सुवर्णाभास्ते जात्या ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ २५ ॥
क्षत्रि[5]याः स्निग्धवर्णास्तु पन्नगा भृशकोपनाः ।
सूर्य्यचन्द्राकृतिच्छत्रलक्ष्म[6] तेषां तथाऽम्बुजम् ॥ २६ ॥
कृष्णा[7] वज्रनिभा ये च लोहिता वर्णतस्तथा ।
धूम्राः पारावताभाश्च[8] वैश्यास्ते पन्नगाः स्मृताः ॥ २७ ॥
महिषं[9]द्वीपिवर्णाभास्तथैव परुषत्वचः ।
भिन्नवर्णाश्च ये केचिच्छूद्रास्ते परिकीर्त्तिताः ॥ २८ ॥
कोपयन्त्यनिलं[10] जन्तोः फणिनः सर्व एव तु ।
पित्तं मण्डलिनश्चापि कफञ्चानेकराजयः ॥ २९ ॥
अपत्यमसवर्णाभ्यां[11] द्विदोषकरलक्षणम् ।
ज्ञेयं दोषैश्च दम्पत्योर्विशेषश्चात्र वक्ष्यते ॥ ३० ॥

---

१ मण्डलिनां लक्षणमाख्याति—**मण्डलैरिति** । विविधैः=नानाप्रकारैः, पृथवः=विस्तीर्णाः, "मण्डलीमण्डलाफणः" इति चरके तल्लक्षणम् ।

२ राजिमतां लक्षणमभिदधाति—**स्निग्धा इति** । "बिन्दुलेखविचित्राङ्गः पन्नगः स्यात्तु राजिमान्" इति चरकः । बिन्दुना लेखया च विचित्रमङ्गं यस्य स बिन्दुलेखविचित्राङ्ग इति तदर्थः । ३ राजिभिः=रेखाभिः । ४ ब्राह्मणजातिसर्पं निरूपयति—**मुक्तेति** । मुक्तारूप्यप्रभाः=मुक्तारूप्यसमानकान्तयः । ५ क्षत्रियजातिसर्पं वर्णयति—**क्षत्रिया इति** । ६ 'चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः । ७ वैश्यजातिसर्पमाह—**कृष्णा इति** । ८ पारावतस्य कपोतस्य आभा इव आभा यस्य सः पारावताभः । ९ शूद्रजातिसर्पमाख्याति—**महिषेति** । द्वीपी='चीता' इति ख्यातः ।

१० दर्वीकरादीनां वातादिप्रकोपकत्वं प्रतिपादयति—**कोपयन्तीति** । ११ अपत्यमसवर्णाभ्यां=पृथग्जातीयसर्पिणीपृथग्जातीयसर्पाभ्याम्, अपत्यं वैकरञ्जाख्यमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजन्यां[1] पश्चिमे यामे सर्पाश्चित्रा[2]श्चरन्ति हि।
शेषेषूक्ता मण्डलिनो दिवा दर्वीकराः स्मृताः॥ ३१॥
दर्वी[3]करास्तु तरुणा वृद्धा मण्डलिनस्तथा।
राजिमन्तो वयोमध्या जायन्ते मृत्युहेतवः॥ ३२॥
नकु[4]लाकुलिता बाला वारिविप्रहताः कृशाः।
वृद्धा मुक्तत्व[5]चो भीताः सर्पास्त्वल्पविषाः स्मृताः॥ ३३॥

तत्र, दर्वीकराः-कृष्ण[6]सर्पो, महाकृष्णः, कृष्णोदरः, श्वेतकपोतो, महाकपोतो, बलाहको, महासर्पः, शङ्खपालो, लोहिताक्षो, गवेधुकः, परिसर्पः, खण्डफणः, ककुदः, पद्मो, महापद्मो, दर्भपुष्पो, दधिमुखः, पुण्डरीको, भ्रूकुटीमुखो, विष्किरः, पुष्पाभिकीर्णो, गिरिसर्पः, ऋजुसर्पः, श्वेतोदरो, महाशिरा, अलगर्द, आशीविष इति।

मण्डलिनस्तु-आदर्शमण्डलः, श्वेतमण्डलो, रक्तमण्डलः, चित्रमण्डलः, पृषतो, रोध्रपुष्पो, मिलिन्दको, गोनसो, वृद्धगोनसः, पनसो, महापनसो, वेणुपत्रकः, शिशुको मदनः, पालिन्दिरः, पिङ्गलः, तन्तुकः पुष्पपाण्डुः, षडङ्गः, अग्निको बभ्रुः, कषायः, कलुषः पारावतो, हस्ताभरणः, चित्रक, एणीपद इति।

राजिमन्तस्तु—पुण्डरीको, राजिचित्रः, अङ्गुलराजिः, विन्दुराजिः, कदमकः, तृणशोषकः, सर्षपकः श्वेतहनुः, दर्भपुष्पश्चक्रको, गोधूमकः, किक्किसाद इति।

---

द्विदोषकराणि लक्षणानि यस्मिन् तद् द्विदोषकरलक्षणम्। १ त्रिविधसर्पाणां विचरणसमयमाख्याति—**रजन्या इति**। २ चित्राः=राजिमन्तः। ३ अवस्थाऽनुसारेण त्रिविधसर्पाणामुग्रविषत्वं प्रतिपादयति—**दर्वीति**। चरकेऽपि—"तरुणाः कृष्णसर्पास्तु गोनसाः स्थविरास्तथा। राजिमन्तो वयोमध्ये भवन्त्याशीविषोपमाः॥" इति। आशीविषा दृष्टिनिश्वासविषा उपमा येषां ते इति तदर्थः। वाग्भटे विशेषः—"तारुण्यमध्यवृद्धत्वे वृष्टिशीतातपेषु च। विषोल्बणा भवन्त्येते व्यन्तरा ऋतुसन्धिषु॥" इति।

४ सर्पाणामल्पविषत्वे कारणमाह—**नकुलेति**। नकुलेन आकुलिताः क्षुभिता इति नकुलाकुलिताः, वारिणा विशेषेण प्रहता विततता इति वारिविप्रहताः। ५ मुक्तत्वचः=त्यक्तकञ्चुकाः। ६ दर्वीकरादिसर्पाणां नामानि निर्दिशति—**कृष्णेति**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्विषास्तु—गलगोली, शूकपत्रः, अजगरो, दिव्यको, वर्षाहिकः, पुष्पशकली, ज्योतीरथः, क्षीरिकापुष्पकः, अहिपताकः, अन्धाहिको, गौराहिको, वृक्षेशय इति ।

वैकरञ्जास्तु—त्रयाणां दर्वीकरादीनां व्यतिकराज्जाताः[1] । तद्यथा—माकुलिः, पोटगलः, स्निग्धराजिरिति । तत्र, कृष्णसर्पेण गोनस्यां वैपरीत्येन[2] वा जातो माकुलिः । राजिलेन गोनस्यां वैपरीत्येन वा जातः पोटगलः । कृष्णसर्पेण राजिमत्यां वैपरीत्येन वा जातः स्निग्धराजिरिति । तेषामाद्यस्य[3] पितृवद्विषोत्कर्षो, द्वयोर्मातृवदित्येके ।

त्रयाणां[4] वैकरञ्जानां पुनर्दिव्येलकरोध्रपुष्पकराजिचित्रकपोटगलपुष्पाभिकीर्णदर्भपुष्पवेल्लितकाः सप्त । तेषामाद्यास्त्रयो राजिलवत्[5], शेषा मण्डलिवत् । एवमेतेषां सर्पाणामशीतिर्व्याख्याता ॥ ३४ ॥

तत्र[6], महानेत्रजिह्वास्यशिरसः पुमांसः, सूक्ष्मनेत्रजिह्वास्यशिरसः स्त्रियः । उभयलक्षणा[7]मन्दविषा अक्रोधा नपुंसका इति ॥ ३५ ॥

तत्र[8], सर्वेषां सर्पाणां सामान्यत एव दष्टलक्षणं वक्ष्यामः । किं कारणं ? विषं हि निशितनिस्त्रिंशाशनिहुतवहदेश्यमाशुकारि[9] मुहूर्त्तमप्युपेक्षितमातुरमतिपातयति[10], न चावकाशोऽस्ति वाक्समूहमुपसर्त्तुम्, प्रत्येकमपि दष्टलक्षणेऽभिहिते सर्वत्र त्रैविध्यं भवति, तस्मा-

---

१ व्यतिकरात्=असमानवर्णसर्पसर्पिणीसंसर्गादित्यर्थः । २ वैपरीत्येन वा=गोनससर्पेण कृष्णसर्पिण्यां वेत्यर्थः । एवमग्रेऽपि बोद्धव्यम् । ३ आद्यस्य=माकुल्याख्यस्य, पितृवत्=कृष्णसर्पवत् । द्वयोः=पोटगलस्निग्धराजिकयोः, मातृवत् पोटगलस्य माता गोनसी, स्निग्धराजिकस्य च राजिमती तद्वदित्यर्थः ।

४ वैकरञ्जानां त्रयाणां पुनः सप्तभेदानाह—त्रयाणामिति । ५ राजिलवद् विषप्रवणा इत्यर्थः । ६ सर्पाणां पुरुषादिजातिलक्षणमाचष्टे—तत्रेति । ७ उभयलक्षणं=स्त्रीपुरुषोभयसर्पलक्षणम् । ८ सामान्येन सर्पदष्टलक्षणं वक्ति—तत्रेति । ९ निशितनिस्त्रिंशाशनिहुतवहदेश्यं=तीक्ष्णखड्गवज्राग्नितुल्यम्, आशुकारि=शीघ्रव्यापकम्, मुहूर्तमपि=घटिकाद्वयमपि । "मात्राशतं विषं स्थित्वा दंशे दष्टस्य देहिनः । देहं प्रक्रमते धातून् रुधिरादीन् प्रदूषयत् ॥" इत्यष्टाङ्गहृदये । १० अतिपात-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त् त्रैविध्यमेव वक्ष्यामः । [१]एतद्वचातुरहितमसम्मोहकरञ्च, अपि चात्रैव [२]सर्वसर्पव्यञ्जनावरोधः ॥ ३६ ॥

[३]तत्र, दर्वीकरविषेण त्वङ्नयननखदशनमूत्रपुरीषदंशकृष्णत्वं रौक्ष्यं शिरसो गौरवं सन्धिवेदना कटीपृष्ठग्रीवादौर्बल्यं जृम्भणं वेपथुः स्वरावसादो घुर्घुरको जडता शुष्कोद्गारः कासश्वासौ हिक्का वायोरूर्द्ध्वगमनं शूलोद्वेष्टनं[४][५] तृष्णा लालास्रावः फेनागमनं स्रोतोऽवरोधस्तास्ताश्च वातवेदना[६] भवन्ति ।

मण्डलिविषेण त्वगादीनां पीतत्वं शीताभिलाषः[७] परिधूपनं दाहस्तृष्णा मदो मूर्च्छा ज्वरः शोणितागमनमूर्द्ध्वमधश्च मांसानामवशातनं श्वयथुर्दंशकोथः[८] पीतरूपदर्शनमाशुकोपस्तास्ताश्च पित्तवेदना[९] भवन्ति ।

राजिमद्विषेण शुक्लत्वं त्वगादीनां शीतज्वरो रोमहर्षः[१०] स्तब्धत्वं गात्राणामादंशशोफः[११] सान्द्रकफप्रसेकश्छर्दिरभीक्ष्णमक्ष्णोः कण्डूः कण्ठे श्वयथुर्घुर्घुरक उच्छ्वासनिरोधस्तमःप्रवेशस्तास्ताश्च कफवेदना[१२] भवन्ति ॥ ३७ ॥

पुरुषाभिदष्ट[१३] ऊर्द्ध्वं प्रेक्षते, अधस्तात् स्त्रिया, सिराश्चोत्तिष्ठन्ति ललाटे, नपुंसकाभिदष्टस्तिर्यक्प्रेक्षी भवति, गर्भिण्या पाण्डुमुखो ध्मातश्च, सूतिकया[१४] कुक्षिशूलार्त्तः सरुधिरं मेहत्युपजिह्विका

---

यति=मारयति । १ एतत् त्रैविध्यम्, आतुरहितम्, असम्मोहकरं वैद्यस्य भ्रान्तिकारकं नेत्यर्थः । २ अत्रैव=त्रैविध्ये एव, सर्वसर्पव्यञ्जनावरोधः=सकलसर्पलक्षणावरोधः, सम्पूर्णसर्पदंशलक्षणानि त्रैविध्ये एवान्तर्भवन्तीति भावः ।

३ दर्वीकरादिसर्पदष्टलक्षणं प्रतिपादयति—तत्रेति । ४ स्वरावसादः=स्वरभङ्गः, घुर्घुरकः=अव्यक्तशब्दविशेषः, 'घुरघुराहट' इति लोके । ५ शूलेनोद्वेष्टनं शरीराकुञ्चनम् । ६ तोदभेदादिवातवेदना इत्यर्थः । ७ शीताभिलाषः=शीतपदार्थसेवनेच्छेत्यर्थः । परिधूपनं=सर्वाङ्गसन्तापः । ८ अवशातनं=गलनम्, श्वयथुः=शोथः, दंशकोथः=दष्टस्थानस्य पूतिभावः । ९ ओषचोषादिपित्तवेदना इत्यर्थः । १० रोमहर्षः=रोमाञ्चः । ११ दष्टस्थानस्य समन्ततः शोथ इत्यर्थः । १२ कण्ड्वादिकफवेदना इत्यर्थः ।

१३ पुरुषादिसर्पदष्टलक्षणमाख्याति—पुरुषेति । १४ सूतिकया=प्रसूतया सर्पि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चास्य भवति, ग्रासार्थिनाऽन्नं काङ्क्षति, वृद्धेन चिरान् मन्दाश्च वेगाः, बालेनाशु मृदवश्च, निर्विषेणाविषलिङ्गम्, अन्धाहिकेनान्धत्वमित्येके, ग्रसनादजगरः शरीरप्राणहरो न विषात्। तत्र सद्यःप्राणहराहिदष्टः पतति शस्त्राशनिहत इव भूमौ, स्रस्ताङ्गः स्वपिति ॥ ३८ ॥

तत्र, सर्वेषां सर्पाणां विषस्य सप्त वेगा भवन्ति। तत्र, दर्वीकराणां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति, तत् प्रदुष्टं कृष्णतामुपैति। तेन काष्ण्यं पिपीलिकापरिसर्पणमिव चाङ्गे भवति। द्वितीये मांसं दूषयति, तेनात्यर्थं कृष्णता शोफो ग्रन्थयश्चाङ्गे भवन्ति। तृतीये मेदो दूषयति, तेन शक्लेदः शिरोगौरवं स्वेदश्चक्षुर्ग्रहणञ्च। चतुर्थे कोष्ठमनुप्रविश्य कफप्रधानान् दोषान् दूषयति, तेन तन्द्राप्रसेकसन्धिविश्लेषा भवन्ति। पञ्चमेऽस्थीन्यनुप्रविशति प्राणमग्निञ्च दूषयति, तेन पर्वभेदो हिक्का दाहश्च भवति। षष्ठे मज्जानमनुप्रविशति ग्रहणीञ्चात्यर्थं दूषयति, तेन गात्राणां गौरवमतीसारो हृत्पीडा मूर्च्छा च भवति। सप्तमे शुक्रमनुप्रविशति व्यानञ्चात्यर्थं कोपयति कफञ्च सूक्ष्मस्रोतोभ्यः प्रच्यावयति, तेन श्लेष्मवर्त्तिप्रादुर्भावः कटीपृष्ठभङ्गः सर्वचेष्टाविघातो लालास्वेदयोरतिप्रवृत्तिरुच्छ्वासनिरोधश्च भवति।

मण्डलिनां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति, तत् प्रदुष्टं पीततामुपैति, तत्र परिदाहः पीतावभासता चाङ्गानां भवति। द्वितीये मांसं दूषयति, तेनात्यर्थं पीतता परिदाहो दंशे श्वयथुश्च भवति।

---

ण्या। मेहति = मूत्रयति। उपजिह्विकालक्षणं निदानस्थाने—"जिह्वाऽग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तयोनिः। प्रसेककण्डूपरिदाहयुक्ता प्रकथ्यतेऽसावुपजिह्विकेति॥" इति स्मर्तव्यम्। १ ग्रासार्थिना = बुभुक्षितेन सर्पेणेत्यर्थः। २ ग्रसनात् = निगरणादित्यर्थः।

३ दर्वीकरादिसर्पविषस्य सप्तवेगानां लक्षणानि दर्शयति—तत्रेति। ४ पिपीलिका 'चींटी' इति ख्याता, तस्याः परिसर्पणमिव प्रसरणमिवेत्यर्थः। ५ दष्टस्थाने क्लेद इत्यर्थः। ६ चक्षुर्ग्रहणं=दृष्ट्यवरोधः। ७ प्रसेकः=अल्पलालास्रावः। ८ पर्वभेदः=ग्रन्थिस्फुटनम्। ९ ग्रहणी = पित्तधरां कलाम्। १० दंशस्थाने इत्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीये मेदो दूषयति, तेन पूर्ववच्चक्षुर्ग्रहणं तृष्णा दंशक्लेदः स्वेदश्च । चतुर्थे कोष्ठमनुप्रविश्य ज्वरमापादयति । पञ्चमे परिदाहं सर्वगात्रेषु करोति । षष्ठसप्तमयोः पूर्ववत्[1] ।

राजिमतां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति । तत् प्रदुष्टं पाण्डुतामुपैति, तेन रोमहर्षः शुक्लावभासश्च पुरुषो भवति । द्वितीये मांसं दूषयति, तेन पाण्डुताऽत्यर्थं जाड्यं शिरःशोफश्च भवति । तृतीये मेदो दूषयति, तेन चक्षुर्ग्रहणं दंशक्लेदः स्वेदो घ्राणाक्षिस्रावश्च भवति । चतुर्थे कोष्ठमनुप्रविश्य न्यास्तम्भं[2] शिरोगौरवं चापादयति । पञ्चमे वाक्सङ्गं शीतज्वरञ्च करोति । षष्ठसप्तमयोः पूर्ववदिति ॥ ३९ ॥

भवन्ति चात्र ।

धात्वन्तरेषु[3] याः सप्त कलाः सम्परिकीर्त्तिताः ।
तास्वेकैकामतिक्रम्य वेगं प्रकुरुते विषम् ॥ ४० ॥
येनान्तरेण[4] तु कलां कालकल्पं भिनत्ति हि ।

---

१ पूर्ववत्=दर्वीकरोक्तलक्षणवत् । २ मन्या ग्रीवायाः पश्चाद्भागे स्थिता सिरा तस्याः स्तम्भमापादयतीत्यर्थः ।

३ सर्पविषवेगस्य सप्तत्वे हेतुमभिधत्ते—**धात्वन्तरेष्विति** । धातुग्रहणेन आशयोऽप्युपलक्ष्यते, तेन धात्वाशयमध्येषु याः सप्तकलाः शारीरस्थानस्य गर्भव्याकरणे सम्प्रकीर्तिता उक्ताः, तासु सप्तसु कलासु एकैकां कलामतिक्रम्य विषं वेगं वेगान्तरे प्रकुरुते । अत्र डल्हणः—यथा रसरक्तयोरन्तरस्थां कलामतिक्रम्य रक्ते प्रथमवेगः, रक्तमांसयोरन्तरस्थां कलामतिक्रम्य द्वितीयः, मांसमेदसोरन्तरस्थां कलामतिक्रम्य तृतीयः, मेदःकफयोरन्तरस्थां कलामतिक्रम्य चतुर्थः, कफपुरीषयोरन्तरस्थां कलामतिक्रम्य पञ्चमः, पुरीषपित्तयोरन्तरस्थां कलामतिक्रम्य षष्ठः, पित्तशुक्रयोरन्तरस्थां कलामतिक्रम्य सप्तमः । यैव कला पुरीषधरा सैवास्थिधरेति पञ्चमेऽस्थन्यनुप्रविशतीत्यविरुद्धम् । एवं यैव पित्तधरा सैव मज्जधरेति षष्ठे मज्जानमनुप्रविशतीत्यविरुद्धमिति ।

४ वेगान्तरलक्षणमाचष्टे—**येनेति** । हि यस्मात् कालकल्पं कालवन्निरन्तरं द्रुतगामिस्वभावं विषं समीरणेन वायुना उह्यमानं प्रेर्यमाणं सदन्तरेण मध्ये कलां मध्यवर्तिनीं कलां येन वेगेन भिनत्ति विदारयति तत्तु वेगान्तरं स्मृतमित्यर्थः ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीरणेनोह्यमानं तत्तु वेगान्तरं स्मृतम् ॥ ४१ ॥
शूनाङ्गः[1] प्रथमे वेगे पशुर्ध्यायति दुःखितः ।
लालास्रावो द्वितीये तु कृष्णाङ्गः पीड्यते हृदि ॥ ४२ ॥
तृतीये च शिरोदुःखं कण्ठग्रीवञ्च भज्यते ।
चतुर्थे वेपते मूढः खादन् दन्तान् जहात्यसून्[2] ॥ ४३ ॥
केचिद्वेगत्रयं प्राहुरन्तं चैतेषु तद्विदः ।
ध्यायति[3] प्रथमे वेगे पक्षी मुह्यत्यतः परम् ॥ ४४ ॥
द्वितीये विह्वलः प्रोक्तस्तृतीये मृत्युमृच्छति ।
केचिदेकं विहङ्गेषु विषवेगमुशन्ति[4] हि ।
मार्जारनकुलादीनां विषं नातिप्रवर्तते[5] ॥ ४५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां कल्पस्थाने सर्पदष्टविषविज्ञानीयं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

---

१ पशुविषवेगानां लक्षणानि निर्दिशति—शूनाङ्ग इति । शूनमङ्गं यस्य स शूनाङ्ग, शोथयुक्तशरीर इत्यर्थः । २ असून्=प्राणान् ।

३ पक्षिविषवेगानां लक्षणानि दर्शयति—ध्यायतीति । ध्यायति=चिन्तयति, सीदतीति तात्पर्यम् । मुह्यति=भ्रमति । चरकेऽपि विषवेगप्रस्तावाच्चतुष्पदां पक्षिणां च विषवेगा उक्ताः—"·····चतुष्पदां स्याच्चतुर्विधः पक्षिणां त्रिविधः ॥ सीदत्याद्ये भ्रमति च चतुष्पदो वेपते ततः शून्यः । मन्दाहारो म्रियते श्वासेन हि चतुर्थवेगे तु ॥ ध्यायति विहगः प्रथमे वेगे प्रभ्राम्यति द्वितीये तु । स्रस्ताङ्गश्च तृतीये विषवेगे याति पञ्चत्वम् ॥" इति । अत्र चक्रपाणिना विषवेगाभिधाने प्रयोजनमुक्तम्—'यद्विषवेगमृतस्यापि मांसमुपयोज्यं पीतविषस्य हृदयं दष्टस्य च दंशदेशं मुक्त्वेद्याद्युक्तविधानेन, वेगज्ञानेनाप्राप्तनैष्ठिकवेगस्य यथोक्तविधिना मांसं नोपादेयं, यतस्तस्य विषार्दितस्य सर्वं शरीरं विषवद् भवति ।' इति । ४ उशन्ति=कथयन्ति । ५ नातिप्रवर्तते=नात्यन्तं प्रसरतीत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायाः कल्पस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्थोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातः सर्पदष्टविषचिकित्सितं कल्पं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

सर्वैरेवादितः सर्पैः शाखादष्टस्य देहिनः ।
दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टाश्चतुरङ्गुले ॥ ३ ॥
श्लोतचर्मान्तवल्कानां मृदुनाऽन्यतमेन वै ।
न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम् ॥ ४ ॥
दहेद् दंशमथोत्कृत्य यत्र बन्धो न जायते ।
आचूषणच्छेददाहाः सर्वत्रैव तु पूजिताः ॥ ५ ॥
प्रतिपूर्य्य मुखं वस्त्रैर्हितमाचूषणं भवेत् ।
स दष्टव्योऽथवा सर्पो लोष्टो वाऽपि हि तत्क्षणम् ॥ ६ ॥
अथ मण्डलिना दष्टं न कथञ्चन दाहयेत् ।
स पित्तबाहुल्यविषाद् दंशो दाहाद्विसर्पते ॥ ७ ॥
अरिष्टामपि मन्त्रैश्च बध्नीयान्मन्त्रकोविदः ।
सा तु रज्ज्वादिभिर्बद्धा विषप्रतिकरी मता ॥ ८ ॥

---

पञ्चमोऽध्यायः ।

१ प्राक् सर्पदंशे अरिष्टाबन्धनमभिदधाति—सर्वैरिति । आदितः = दंशमात्रे, शाखा हस्तपादं तत्र दष्टस्य । २ अरिष्टा द्विविधा—सिद्धमन्त्रेण रज्ज्वादिभिर्वा विषोपरि बन्धः । अरिष्टाबन्धफलमुक्तं वाग्भटे—"अम्बुवत्सेतुबन्धेन बन्धेन स्तभ्यते विषम् । न वहन्ति सिराश्चास्य विषं बन्धाभिपीडिताः ॥" इति । ३ अन्यतमेन=श्लोतश्चर्मान्तवल्केष्वेकतमेनेत्यर्थः । ४ उत्कृत्य = विलिख्य, यत्र = ग्रीवावयवे इत्यर्थः ।

५ आचूषणविधिमाख्याति—प्रतिपूर्येति । वस्त्रैरित्युपलक्षणम् । तेन मृद्भस्मादिभिरपि मुखसम्पूरणम्, विषसम्बन्धपरिहारार्थमिति भावः । तथा च वाग्भटः—"आचूषेत् पूर्णवक्त्रो वा मृद्भस्मागदगोमयैः" इति । मृत्पदेन विषहरत्वाद् वल्मीकमृत्तिका ग्राह्या । "तं दंशं वा चूषेन्मुखेन यवपूर्णपांशुपूर्णेन" इति चरकः । ६ लोष्टः= मृत्पिण्डः, "प्रतप्तैर्हेमलोहाद्यैर्दहेदाशूल्मुकेन वा" इति वाग्भटः ।

७ मण्डलिदष्टे दाहं निषेधति—अथेति । ८ अष्टाङ्गहृदयेऽपि—"दंशं मण्डलिनां मुक्त्वा पित्तलत्वादथापरम्" इति । ९ मन्त्ररहितैरपि रज्ज्वादिभिरित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवब्रह्मर्षिभिः प्रोक्ता मन्त्राः सत्यतपोमयाः ।
भवन्ति नान्यथा क्षिप्रं विषं हन्युः सुदुस्तरम् ॥ ९ ॥
विषं तेजोमयैर्मन्त्रैः सत्यब्रह्मतपोमयैः ।
यथा निवार्य्यते क्षिप्रं प्रयुक्तैर्न तथौषधैः ॥ १० ॥
मन्त्राणां ग्रहणं कार्य्यं स्त्रीमांसमधुवर्जिना ।
मिताहारेण शुचिना कुशास्तरणशायिना ॥ ११ ॥
गन्धमाल्योपहारैश्च बलिभिश्चापि देवताः ।
पूजयेन्मन्त्रसिद्ध्यर्थं जपहोमैश्च यत्नतः ॥ १२ ॥
मन्त्रास्त्वविधिना प्रोक्ता हीना वा स्वरवर्णतः ।
यस्मान्न सिद्धिमायान्ति तस्माद्योज्योऽगदक्रमः ॥ १३ ॥
समन्ततः सिरा दंशाद्विध्येत्तु कुशलो भिषक् ।
शाखाऽग्रे वा ललाटे वा व्यध्यास्ता विसृते विषे ॥ १४ ॥
रक्ते निर्ह्रियमाणे तु कृत्स्नं निर्ह्रियते विषम् ।
तस्माद्विस्रावयेद्रक्तं सा ह्यस्य परमा क्रिया ॥ १५ ॥
समन्तादगदैर्दंशं प्रच्छयित्वा प्रलेपयेत् ।
चन्दनोशीरयुक्तेन वारिणा परिषेचयेत् ॥ १६ ॥

---

विषप्रतिकरो = विषप्रतीकारकारणमित्यर्थः । १ मन्त्रशक्तेः प्रशंसामाह—देवेति । २ तेजोमयैः = तेजःप्रचुरैः । ३ मन्त्रग्रहणविधिमभिदधाति—मन्त्राणामिति । ४ अविधिना = पूर्वोक्तस्त्रीमांसमधुवर्जनादिविधानं विनेत्यर्थः । प्रोक्ताः = कथिताः, 'दीक्षागुरुणा' इति शेषः ।

५ अगदक्रमे यस्य यादृशः क्रम उपयुक्तः, स कर्तव्यः । चरके चतुर्विंशत्युपक्रमा दर्शिताः—"मन्त्रारिष्टोत्कर्तननिष्पीडनचूषणाग्निपरिषेकाः । अवगाहरक्तमोक्षणवमनविरेकोपधानानि ॥ हृदयावरणाञ्जननस्यधूमलेहौषधप्रशमनानि । प्रतिसारणं प्रतिविषं संज्ञासंस्थापनं लेपः ॥ मृतसञ्जीवनमेव च विंशतिरेते चतुर्भिरधिकाः । स्युरुपक्रमा यथा ये यत्र योज्याः शृणु तथा तान् ॥" इति । ६ रक्तहरणविधिं दर्शयति—समन्तत इति । समन्ततः = चतुर्दिक्षु, दंशात्समन्ततः सिरा विध्येदिति सम्बन्धः ।

७ ताः = सिराः, विसृते = प्रसृते । ८ प्रच्छयित्वा = प्रच्छानं कृत्वा, अवलिख्येति यावत् । शोफादिनाऽनुपलभ्यमानासु सिरासु शृङ्गं जलौकसो वा युञ्ज्यादित्युक्तं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाययेतागदांस्तांस्तान् क्षीरक्षौद्रघृतादिभिः।
तदलाभे हिता वा स्यात् कृष्णा वल्मीकमृत्तिका॥ १७॥
कोविदारशिरीषार्ककटभीर्वाऽपि भक्षयेत्।
न पिबेत् तैलकौलत्थमद्यसौवीरकाणि च॥ १८॥
द्रवमन्यत्तु यत्किञ्चित् पीत्वा पीत्वा तदुद्वमेत्।
प्रायो हि वमनेनैव सुखं निह्रयते विषम्॥ १९॥
फणिनां विषवेगे तु प्रथमे शोणितं हरेत्।
द्वितीये मधुसर्पिर्भ्यां पाययेतागदं भिषक्॥ २०॥
नस्यकर्माञ्जने युञ्ज्यात्तृतीये विषनाशने।
वान्तं चतुर्थे पूर्वोक्तां यवागूमथ दापयेत्॥ २१॥
शीतोपचारं कृत्वाऽऽदौ भिषक् पञ्चमषष्ठयोः।
पाययेच्छोधनं तीक्ष्णं यवागूञ्चापि कीर्त्तिताम्॥ २२॥
सप्तमे त्ववपीडेन शिरस्तीक्ष्णेन शोधयेत्।
तीक्ष्णमेवाञ्जनं दद्यात् तीक्ष्णशस्त्रेण मूर्ध्नि च॥ २३॥
कृत्वा काकपदं चर्म सासृग्वा पिशितं क्षिपेत्।
पूर्वं मण्डलिनां वेगे दर्वीकरवदाचरेत्॥ २४॥
अगदं मधुसर्पिर्भ्यां द्वितीये पाययेत च।
वामयित्वा यवागूञ्च पूर्वोक्तामथ दापयेत्॥ २५॥
तृतीये शोधितं तीक्ष्णैर्यवागूं पाययेद्धिताम्।
चतुर्थे पञ्चमे वाऽपि दर्वीकरवदाचरेत्॥ २६॥

---

वाग्भटे—"सिरास्वदृश्यमानासु योज्याः शृङ्गजलौकसः" इति। १ कोविदारः=रक्तकाञ्चनः,...कटभी=ज्योतिष्मती, 'मालकांगनी' इति प्रथते। २ कौलत्थं=कुलत्थभवं यूषम्।

३ दर्वीकरविषस्य सप्तवेगानां चिकित्सामाचष्टे—फणिनामिति। ४ दर्वीकरविषोदितमगदमित्यर्थः। ५ पूर्वोक्तां=स्थावरविषविज्ञानीयोक्ताम्, यवागूं="कोषातक्योऽग्निकः पाठासूर्यवल्ल्यमृताऽभयाः" इत्यादिद्रव्यैः कृतां यवागूमित्यर्थः।

६ काकपदं=काकपदाकारं व्रणम्। ७ मण्डलिविषस्य सप्तवेगानां चिकित्सामाख्याति—पूर्वं इति। ८ मण्डलिविषोदितमगदमित्यर्थः। ९ तीक्ष्णैः=विरेचन-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काकोल्यादिर्हितः षष्ठे पेयश्च मधुरोऽगदः ।
हितोऽवपीडे त्वगदः सप्तमे विषनाशनः ॥ २७ ॥
पूर्वे राजिमतां वेगे अलाबुभिः शोणितं हरेत् ॥
अगदं मधुसर्पिर्भ्यां संयुक्तं पाययेत च ॥ २८ ॥
वान्तं द्वितीये त्वगदं पाययेद्विषनाशनम् ।
तृतीयादिषु त्रिष्वेवं विधिर्दार्वीकरो हितः ॥ २९ ॥
षष्ठेऽञ्जनं तीक्ष्णतममवपीडश्च सप्तमे ।
गर्भिणीबालवृद्धानां सिराव्यधविवर्जितम् ॥ ३० ॥
विषार्त्तानां यथोद्दिष्टं विधानं शस्यते मृदु ।
रक्तावसेकाञ्जनानि नरतुल्यान्यजाविके ॥ ३१ ॥
त्रिगुणं महिषे सोष्ट्रे गवाश्वे द्विगुणं तु तत् ।
चतुर्गुणन्तु नागानां, केवलं सर्वपक्षिणाम् ॥ ३२ ॥
परिषेकान् प्रदेहांश्च सुशीतानवचारयेत् ।
माषकं त्वञ्जनस्येष्टं द्विगुणं नस्यतो हितम् ।
पाने चतुर्गुणं पथ्यं वमनेऽष्टगुणं पुनः ॥ ३३ ॥
देशप्रकृतिसात्म्यर्तुविषवेगबलाबलम् ।
प्रधार्य निपुणं बुद्ध्या ततः कर्म समाचरेत् ॥ ३४ ॥
वेगानुपूर्व्या कर्मोक्तमिदं विषविनाशनम् ।

---

द्रव्यैः । १ काकोल्यादिमधुर इति सम्बन्धः । २ राजिलविषस्य सप्तवेगानां चिकित्सां वक्ति—**पूर्व इति** । ३ राजिलविषोदितमगदमित्यर्थः ।

४ गर्भिण्यादीनां विषचिकित्सायां विशेषं वक्ति—**गर्भिणीति** । ५ विधानं=क्रियायोगम् । ६ पशुविषचिकित्सायां मात्रायां विशेषमभिधत्ते—**रक्तेति** । रक्तावसेकस्योत्तमा मात्रा प्रस्थप्रमाणा, अत्र प्रस्थस्तु—"वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे । सार्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥" इति तन्त्रान्तरोक्तो बोद्धव्यः । ७ पक्षिविषचिकित्सां निरूपयति—**केवलमिति** । ८ नरविषघ्नद्रव्यकृतपरिषेकप्रदेहाभ्यामवचारयेदित्यर्थः ।

९ अञ्जनादीनां मात्राप्रमाणं प्रतिपादयति—**माषकमिति** । माषकं=द्वादशधान्यमाषात्मकं मानम् । १० चिकित्सा देशादिभेदेन प्रतिपुरुषं भिद्यत इति दर्शयति—**देशेति** । ११ प्रधार्य=विचार्येत्यर्थः । १२ वेगानुपूर्व्या=वेगानुक्रमेण ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

कर्मावस्थाविशेषेण विषयोरुभयोः[1] शृणु ॥ ३५ ॥
विवर्णे[2] कठिने शूने सरुजेऽङ्गे विषान्विते ।
तूर्णं विस्रावणं[3] कार्य्यमुक्तेन विधिना ततः ॥ ३६ ॥
क्षुधार्त्तमनिलप्रायं तद्विषार्तं[4] समाहितः ।
पाययेत रसं सर्पिः शुक्तं[5] क्षौद्रं तथा दधि ॥ ३७ ॥
तृड्[6]दाहघर्मसम्मोहे पैत्तं पैत्तविषातुरम्[7] ।
शीतैः संवाहनस्नानप्रदेहैः[8] समुपाचरेत् ॥ ३८ ॥
शीते[9] शीतप्रसेकार्त्तं श्लैष्मिकं [10]कफकृद्विषम् ।
वामयेद्वमनैस्तीक्ष्णैस्तथा मूर्च्छामदान्वितम् ॥ ३९ ॥
[11]कोष्ठदाहरुजाध्मानमूत्रसङ्गरुगन्वितम् ।
विरेचयेच्छकृद्वायुसङ्गपित्तातुरं नरम् ॥ ४० ॥
[12]शूनाक्षिकूटं निद्रार्त्तं विवर्णाविललोचनम् ।
विवर्णञ्चापि पश्यन्तमञ्जनैः समुपाचरेत् ॥ ४१ ॥
[13]शिरोरुग्गौरवालस्यहनुस्तम्भगलग्रहे ।
शिरो विरेचयेत् क्षिप्रं मन्यास्तम्भे च दारुणे ॥ ४२ ॥

---

१ उभयोः=स्थावरजङ्गमयोरित्यर्थः । २ वातजविषचिकित्सां ब्रवीति—**विवर्ण** इति । शूने=शोथयुक्ते । ३ विस्रावणं=शोणितमोक्षणम् । ४ तद्विषार्तं=वातप्रायविषवेदनार्तं दर्वीकरविषार्तमित्यर्थः । ५ शुक्तं=काञ्जिकम् । ६ पित्तजविषचिकित्सामाख्याति—**तृडिति** । ७ पैत्तविषातुरं=पित्तजनकविषातुरं, मण्डलिविषार्तमित्यर्थः । ८ संवाहनं=करपादादीनां सुखकरमर्द्दनम् । ९ कफजविषचिकित्सां प्रतिपादयति—**शीत इति** । १० कफकृद्विषं=श्लेष्मजनकविषं, राजिलविषार्तमित्यर्थः ।

११ वातपित्तविषातुरचिकित्सां वक्ति—**कोष्ठेति** । "स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृद्वण्टकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥" इति कोष्ठपदेन बोध्यम् । १२ विषेऽञ्जनयोग्यान्नरान् दर्शयति—**शूनेति** । शूनः शोथयुक्तः अक्षिकूटो भ्रुवोरधोभागो यस्य स तं शूनाक्षिकूटम्, निद्रार्तं=निद्रालुम्, विवर्णे आविले दूषिकानेत्राम्बुभ्यां मलिने च लोचने नयने यस्य स तम् । १३ शिरोविरेचनार्हान्नरान्निर्दिशति—**शिर इति** । शिरोरुक्=शिरोवेदनेत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]नष्टसंज्ञं विवृत्ताक्षं भग्नग्रीवं विरेचनैः ।
चूर्णैः प्रधमनैस्तीक्ष्णैर्विषार्त्तं समुपाचरेत् ॥ ४३ ॥
ताडयेच्च सिराः क्षिप्रं तस्य शाखाललाटजाः ।
तास्वप्रसिच्यमानासु मूर्ध्नि शस्त्रेण शस्त्रवित् ॥ ४४ ॥
कुर्य्यात् काकपदाकारं व्रणमेवं स्रवन्ति ताः ।
सरक्तं [3]चर्म मांसं वा निक्षिपेच्चास्य मूर्धनि ॥ ४५ ॥
चर्मवृक्षँकषायं वा कल्कं वा कुशलो भिषक् ।
वादयेच्चागदैर्लिप्त्वा [5]दुन्दुभींस्तस्य पार्श्वयोः ॥ ४६ ॥
लब्धसंज्ञं पुनश्चैनमूर्द्ध्वं च्याधश्च शोधयेत् ।
निःशेषं निर्हरेच्चैवं विषं परमदुर्जयम् ॥ ४७ ॥
अल्पमप्यवशिष्टं हि भूयो वेगाय [6]कल्पते ।
कुर्य्याद् वा साद[7]वैवर्ण्यज्वरकासशिरोरुजः ॥ ४८ ॥
शोफशोषप्रतिश्यामतिमिरारुचिपीनसान् ।
तेषु चापि यथादोषं प्रति[8]कर्म प्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥
विषार्त्तोपद्रवांश्चापि [9]यथास्वं समुपाचरेत् ।
[10]अथारिष्टां विमुच्याशु प्रच्छयित्वाऽङ्कितं तया[11] ॥ ५० ॥
दिह्यात्तत्र विषं [12]स्कन्नं भूयो वेगाय कल्पते ।
[13]एवमौषधिभिर्मन्त्रैः क्रियायोगैश्च यत्नतः ॥ ५१ ॥
विषे हृतगुणे देहाद् यदा दोषः प्रकुप्यति ।

---

१ नष्टसंज्ञस्य विषार्तस्य चिकित्सितमाख्याति—**नष्टेति** । नष्टा संज्ञा ज्ञानं यस्य स तं नष्टसंज्ञम् । २ शाखा हस्तपादकम् । ३ सरक्तं चर्ममांसं छागादीनाम् । ४ चर्मवृक्षो भूर्जवृक्षस्तस्य कषायो निर्यासस्तं चर्मवृक्षकषायं निक्षिपेदित्यर्थः ।

५ लेपनौषधानि वक्ष्यति । ६ वेगाय कल्पते = वेगार्थं प्रादुर्भवति । ७ सादः = अङ्गग्लानिः, वैवर्ण्यं = श्यामगौरादिवर्णस्यान्यथाभावः । ८ प्रतिकर्म = वमनादि-पञ्चकर्म । ९ यथास्वं = यथायोगम् ।

१० अरिष्टाबन्धनदूषितशोणितचिकित्सामाचष्टे—**अथेति** । ११ तया = अरिष्टया । १२ स्कन्नं = स्थानीभूतम् । १३ हृतगुणे विषे पश्चात्कर्म दर्शयति—**एवमिति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदा पवनमुद्वृत्तं[1] स्नेहाद्यैः समुपाचरेत् ॥ ५२ ॥
तैलमत्स्यकुलत्थाम्लवर्ज्यैर्विषहरायुतैः ।
पित्तज्वरहरैः पित्तं कषायस्नेहबस्तिभिः ॥ ५३ ॥
कफमारग्वधाद्येन[2] सक्षौद्रेण गणेन तु ।
श्लेष्मघ्नैरगदैश्चैव तिक्तैरुष्णैश्च भोजनैः ॥ ५४ ॥
वृक्षप्रपातविषमपतितं मृतमम्भसि ।
उद्बद्धं च [3]मृतं सद्यश्चिकित्सेन्नष्टसंज्ञवत् ॥ ५५ ॥
गाढं[4] बद्धेऽरिष्टया प्रच्छिते वा तीक्ष्णैर्लेपैस्तद्विधैर्वाऽवशिष्टैः ।
शूने गात्रे क्लिन्नमत्यर्थपूति ज्ञेयं मांसं तद्विषात्[5] पूति कष्टम् ॥ ५६ ॥
सद्यो विद्धं निस्रवेत् कृष्णरक्तं पाकं यायाद् दह्यते चाप्यभीक्ष्णम्[6] ।
कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति शीर्णं मांसं यात्यजस्रं[7] क्षताच्च ॥ ५७ ॥
तृष्णा मूर्च्छा भ्रान्तिदाहौ ज्वरश्च यस्य स्युस्तं दिग्धविद्धं[8] व्यवस्येत् ।
पूर्वोद्दिष्टं लक्षणं सर्वमेतज्जुष्टं[9] [10]यस्यालं विषेण व्रणाः स्युः ॥ ५८ ॥
लूतादष्टाः दिग्धविद्धा विषैर्वा जुष्टा प्रायस्ते व्रणाः पूतिमांसाः ।
तेषां [11]युक्त्या पूतिमांसान्यपोह्य वार्योकोभिः शोणितं चापहृत्य ॥ ५९ ॥
हृत्वा दोषान् क्षिप्रमूर्ध्वं त्वधश्च सम्यक् सिञ्चेत् क्षीरिणां[12] त्वक्कषायैः ।
अन्तर्वस्त्रं[13] दापयेच्च प्रदेहान् शीतैर्द्रव्यैराज्ययुक्तैर्विषघ्नैः ॥ ६० ॥

---

१ उद्वृत्तं = स्थानान्तरगतम् । २ आरग्वधाद्येन गणेनेति सम्बन्धः । ३ मृतं = मरणासन्नमित्यर्थः । नष्टसंज्ञवत् = नष्टसंज्ञं विवृत्ताक्षं भग्नग्रीवं विरेचनैरित्यात्युक्तवत् ।

४ विषेण पूतीभूतस्य मांसस्य चिकित्सां प्रतिपादयति—**गाढमिति** । ५ तद्विधैः = तीक्ष्णोपनाहादिभिः । ६ पूति = पूतिसंज्ञकम्, कष्टं = कृच्छ्रसाध्यम् । ७ अभीक्ष्णं = वारं वारम् । ८ अजस्रं = सततम् । ९ दिग्धो विषलिप्तो बाणः, तेन विद्धं ताडितमित्यर्थः । ...'बाणे विषाक्ते दिग्धलिप्तकौ' इत्यमरः । १० यस्यातुरस्य अलमत्यर्थं विषेण जुष्टा व्रणाः स्युः, तस्यैतत्सर्वं पूर्वोद्दिष्टं गाढं बद्धेऽरिष्टयेत्यादिनोक्तं लक्षणं भवतीति योजना ।

११ पूर्वोक्तानां व्रणानां चिकित्सां दर्शयति—**तेषामिति** । —वार्योकोभिः = जलौकोभिरित्यर्थः । १२ क्षीरिणां = न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपारिषप्लक्षपादपानाम् । १३ अन्तर्वस्त्रं = वस्त्रमध्ये ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्ने त्वस्थ्ना दुष्टजातेन[1] कार्य्यः पूर्वो मार्गः पैत्तिके यो विषे च ।
त्रिवृद्विशल्ये[2] मधुकं हरिद्रे रक्ता नरेन्द्रो लवणश्च वर्गः ॥ ६१ ॥
कटुत्रिकं[3] चैव सुचूर्णितानि शृङ्गे[4] निदध्यान्मधुसंयुतानि ।
एषोऽगदो हन्ति विषं प्रयुक्तः पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्ययोगैः ॥ ६२ ॥
अवार्य्यवीर्य्यो[5] विषवेगहन्ता महागदो नाम महाप्रभावः ।
विडङ्ग[6]पाठात्रिफलाऽजमोदाहिङ्गूनि वक्रं[7] त्रिकटूनि चैव ॥ ६३ ॥
सर्वश्च वर्गो लवणः सुसूक्ष्मः सचित्रकः क्षौद्रयुतो निधेयः ।
शृङ्गे गवां शृङ्गमयेन चैव प्रच्छादितः पक्षमुपेक्षितश्च ॥ ६४ ॥
एषोऽगदः स्थावरजङ्गमानां जेता विषाणामजितो हि नाम्ना ।
प्रपौण्ड[8]रीकं सुरदारु मुस्ता कालानुसार्य्या[9] कटुरोहिणी च ॥ ६५ ॥
[10]स्थौणेयक[11]ध्यामकगुग्गुलूनि पुन्नागतालीशसुवर्चिकाश्च[12] ।
[13]कुटन्नटैलासितसिन्धुवाराः शैलेयकुष्ठे तगरं प्रियङ्गुः ॥ ६६ ॥
रोध्रं [14]जलं काञ्चनगैरिकञ्च समागधञ्चन्दनसैन्धवञ्च ।

---

१ दुष्टजातेन = दुष्टप्राणिसम्भूतेन, अस्थ्ना अस्थिविषाणामिति भावः । अस्थ्नेति पूर्वोक्तानां दुष्टजीवशकृन्मूत्रशुक्रस्पर्शपर्दनगुदास्थिशूकशवानां सविषकण्टकानां वृश्चिककण्टकानां चोपलक्षणम् । पूर्वो मार्गः = "तेषां युक्त्या पूतिमांसान्यपोह्य" इत्यादयनन्तरोक्तः । पैत्तिके इति मण्डलिनां पैत्तिके बोद्धव्यम् ।

२ सर्वेषु विषेषु महागदाख्यमौषधमाह—त्रिवृदिति । विशल्या = 'काठापाढर' इति ख्याता, विशल्या दन्तीति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । रक्ता = मञ्जिष्ठा, नरेन्द्रः = आरग्वधः । ३ कटुत्रिकं = 'त्रिकुटा' इत्युद्घुष्यते । ४ अनन्तरोक्तसाहचर्याद् गवादिशृङ्गे इत्यर्थः । ५ अवार्यमप्रतिहतं वीर्यं शक्तिर्यस्य सः । ६ अजितनामागदमभिदधाति—विडङ्गेति । ७ वक्रं = तगरम् । अत्र श्रीहाराणचन्द्रस्तु चक्रमिति पाठं मत्वा तगरपुष्पमिति व्याख्याति ।

८ तार्क्ष्यनामागदं निरूपयति—प्रपौण्डेति । प्रपौण्डरीकं = 'पुण्डरिया' इति ख्यातम् । ९ कालानुसार्या = तगरम् । १० स्थौणेयकं = ग्रन्थिपर्णम्, 'कुकरौंधा' इत्युद्घुष्यते । ध्यामकं = गन्धतृणम् । ११ सुवर्चिका = 'सज्जीखार' इति ख्याता । १२ कुटन्नटः = श्योनाकः, 'सोनापाठा' इति ख्याता, एला प्रसिद्धा, सितसिन्धुवारः = शुक्लनिर्गुण्डी, असितसिन्धुवारो निर्गुण्डीति पदच्छेदः सुश्रुतार्थसन्दीपने । १३ जलं = बालकम्, हीबेर इति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । 'जलं गोकलले नीरे हीबेरेऽप्यन्नवज्जडे'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सूक्ष्माणि चूर्णानि समानि कृत्वा शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि ॥६७॥
एषोऽगदस्ताक्ष्यं इति प्रदिष्टो विषं निहन्यादपि तक्षकस्य।
[1]मांसीहरेणुत्रिफलामुरङ्गीरक्तालतायष्टिकपद्मकानि ॥ ६८ ॥
विडङ्गतालीशसुगन्धि[2]कैलात्वक्कुष्ठपत्राणि सचन्दनानि।
भार्गी पटोलं किणि[3]ही सपाठा मृगादनी कर्कटिका पुरश्च ॥ ६९ ॥
पालिन्द्य[4]शोकौ क्रमुकं सुरस्याः प्रसूनमारुष्करजञ्च पुष्पम्।
सूक्ष्मानि चूर्णानि समानि शृङ्गे न्यसेत्सपित्तानि समाक्षिकाणि॥७०॥
वरा[5]हगोधाशिखिशल्लकीनां मार्जारजं पार्षत[6]नाकुले च।
यस्य[7]गदोऽयं सुकृतो गृहे स्यान्नाम्नर्षभो नाम नरर्षभस्य ॥ ७१ ॥
न तत्र सर्पाः कुत एव कीटास्त्यजन्ति वीर्याणि विषाणि चैव।
एतेन भेर्यः पटहाश्च दिग्धा नानद्यमाना विषमाशु हन्युः ॥ ७२ ॥
दिग्धाः पताकाश्च निरीक्ष्य सद्यो विषाभिभूता ह्यविषा भवन्ति।
लाक्षा[9] हरेणुर्नलदं प्रियङ्गुः शिग्रुद्वयं यष्टिकपृ[10]श्निकाश्च ॥ ७३ ॥
चूर्णीकृतोऽयं [11]रजनीविमिश्रो सर्पिर्मधुभ्यां सहितो निधेयः।
शृङ्गे गवां [12]पूर्ववदापिधानस्ततः प्रयोज्योऽञ्जननस्यपानैः ॥ ७४ ॥

---

इति मेदिनी। काञ्चनगैरिकं=स्वर्णवर्णगैरिकम्, मागधेन पिप्पल्या सहितं समागधम्।

१ ऋषभनामागदमाख्याति-**मांसीति**।—मुरङ्गी=रक्तशोभाञ्जनः, रक्तालता=मञ्जिष्ठा। २ सुगन्धिका=सर्पगन्धिका। ३ किणिही=ज्योतिष्मती, पाठा पाढ' इति ख्याता, तत्सहितं; मृगादनी=इन्द्रवारुणी, कर्कटिका प्रसिद्धा, पुरः=गुग्गुलुः, 'कौशिको गुग्गुलुः पुरः' इत्यमरः। ४ पालिन्दी=त्रिवृत्, क्रमुकं=पूगफलम्, सुरस्याः तुलस्याः, प्रसूनं पुष्पमित्यर्थः। आरुष्करजं पुष्पं=भल्लातकीपुष्पम्।

५ येषां पित्तानि ग्राह्याणि तानि निर्दिशति—**वराहेति**। ६ पृषतानां चित्तलमृगभेदानामिदं पार्षतम्। ७ यस्य नरर्षभस्य पुरुषश्रेष्ठस्य गृहे अयमगदो नाम्ना ऋषभो नाम, नामेति प्रसिद्धौ, सुकृतः सुष्ठु सम्पादितः स्यादित्यर्थः। ८ दिग्धाः=लिप्ताः, विषाक्ता इति निष्कर्षः। "भेरीमृदङ्गपटहाञ्छत्राण्यमुना तथा ध्वजपताकाः। लिप्त्वाऽहिविषनिरस्त्यै प्रध्वनयेद्दर्शयेन्मतिमान्॥" इति चरके विशेषः।

९ सञ्जीवननामागदं दर्शयति—**लाक्षेति**। हरेणुः=रेणुका, नलदम्='उशीर' इति ख्यातम्। १० पृश्निका=पला। ११ रजनी=हरिद्रा। १२ पूर्ववदजिता-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सञ्जीवनो नाम गतासुकल्पानेषोऽगदो जीवयतीह मर्त्यान् ।
श्लेष्मातकीकट्फलमातुलुङ्गचः श्वेता गिरिह्वा किणिही सिता च ॥७५॥
सतण्डुलीयोऽगद एष मुख्यो विषेषु दर्वीकरराजिलानाम् ।
द्राक्षा सुगन्धा नगवृत्तिका च श्वेता समङ्गा समभागयुक्ता ॥७६॥
देयो द्विभागः सुरसाच्छदस्य कपित्थबिल्वादपि दाडिमाच्च ।
तथाऽर्द्धभागः सितसिन्धुवारादङ्कोठमूलादपि गैरिकाच्च ॥ ७७ ॥
एषोऽगदः क्षौद्रयुतो निहन्ति विशेषतो मण्डलिनां विषाणि ।
वंशत्वगार्द्राऽऽमलकं कपित्थं कटुत्रिकं हैमवती सकुष्ठा ॥ ७८ ॥
करञ्जबीजं तगरं शिरीषपुष्पञ्च गोपित्तयुतं निहन्ति ।
विषाणि लूतोन्दुरपन्नगानां कैटञ्च लेपाञ्जननस्यपानैः ॥ ७९ ॥
पुरीषमूत्रानि गर्भसङ्गान् निहन्ति वर्त्म्यञ्जननाभिलेपैः ।
काचार्मकोथान् पटलांश्च घोरान् पुष्पञ्च हन्त्यञ्जननस्ययोगैः ॥८०॥
समूलपुष्पाङ्कुरवल्कबीजात् क्वाथः शिरीषात् त्रिकटुप्रगाढः ।
सलावणः क्षौद्रयुतोऽथ पीतो विशे तः कीटविषं निहन्ति ॥ ८१ ॥
कुष्ठं त्रिकटुकं दार्वी मधुकं लवणद्वयम् ।
मालती नागपुष्पञ्च सर्वाणि मधुराणि च ॥ ८२ ॥

---

ख्यागदवत् पत्रपर्यन्तं शृङ्गमयमापिधानं यस्य सः । १ दर्वीकरराजिलविषेऽगद-योगं वक्ति—श्लेष्मातकीति ।···श्वेता गिरिह्वा=श्वेतस्यन्दा, किणिही=नीलस्य-न्दा, इति डल्हणः । सिता=शर्करा । २ तण्डुलीयः अल्पमारिषः, 'चौलाईशाक' इति ख्यातस्तेन सहितः सतण्डुलीयः ।

३ मण्डलिविषेऽगदयोगमभिदधाति—द्राक्षेति । सुगन्धा=नाकुली, 'रासना' इति ख्याता । "नाकुली सर्पगन्धा च सुगन्धा भोगगन्धिका । सैव सर्पसुगन्धेति···" इति नामान्तरम् । नगवृत्तिका=शल्लकी, श्वेता=श्वेतस्यन्दः, समङ्गा=मञ्जिष्ठा । ४ सुरसाच्छदस्य=तुलसीपत्रस्येत्यर्थः ।

५ सार्वकामिकागदमभिधत्ते—वंशेति । वंशत्वगार्द्रा=आर्द्रवंशत्वगित्यर्थः । ६ हैमवती=वचा । ७ पुरीषमूत्रानिलगर्भाणां सङ्गा अवबद्धता तान् निहन्ति । ८ काचादयो नयनरोगभेदाः । ९ विषे शिरीषयोगं प्रतिपादयति—समूलेति । १० सलावणः=लवणवर्गसहितः । ११ मूषकविषनाशकयोगमभिदधाति-कुष्ठमिति । १२ सैन्धवं सौवर्चलं चेति लवणद्वयमित्यर्थः । १३ सर्वाणि मधुराणि=काकोल्या-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपित्थरसपिष्टोऽयं शर्कराक्षौद्रसंयुतः ।
विषं हन्त्यगदः सर्वं मूषिकाणां विशेषतः ॥ ८३ ॥
सोमराजीफलं पुष्पं कटभी सिन्धुवारकः ।
चोरकोको वरुणः कुष्ठं सर्पगन्धा ससप्तला ॥ ८४ ॥
पुनर्नवा शिरीषस्य पुष्पमारग्वधार्कजम् ।
श्यामाऽम्बष्ठा विडङ्गानि तथाऽश्मन्तकानि च ॥ ८५ ॥
भूमीः कुरवकश्चैव गण एकसरः स्मृतः ।
एकशो द्वित्रिशो वाऽपि प्रयोक्तव्यो विषापहः ॥ ८६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां कल्पस्थाने सर्पदष्टविषचिकित्सितं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

## षष्ठोऽध्यायः ।

अथातो दुन्दुभिस्वनीयं कल्पं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
धवाश्वकर्णशिरीषतिनिशपलाशपिचुमर्पाटलिपारिभद्रकाम्रोदु-

---

दीनि मधुरद्रव्याणि ।

१ सर्वविषे एकसरसंज्ञकगणं निर्दिशति—**सोमेति** । सोमराजी=बाकुची । २ चोरकः=ग्रन्थिपर्णभेदः, सर्पगन्धा=नाकुली, 'रासना' इति ख्याता, सप्तला=सातला । ३ श्यामा=त्रिवृत्, अम्बष्ठा=पाठा, अश्मन्तकः=अम्लोटकसदृशः । ४ भूमी=कृष्णमृत्तिका, कुरवकः='लालकटसरैया' इति ख्यातः । एकसरः=एकसरसंज्ञक इत्यर्थः । ५ एकशः=एकमेकम्, द्वित्रिशः=द्वौ द्वौ त्रीन् त्रीन् वेत्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहितायाः कल्पस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चमोऽध्यायः ।**

---

### षष्ठोऽध्यायः ।

६ पूर्वाध्याये "वादयेच्चागदैर्लिप्त्वा दुन्दुभीं स्तस्य पार्श्वयोः" इति सामान्येनोक्तं विस्तरेण बोधनार्थमयमध्याय आरभ्यते—**अथेति** । दुन्दुभिस्वनो विद्यतेऽस्मिन्नध्याये इति दुन्दुभिस्वनीयस्तम् । ७ सर्वविषे क्षारागदमभिदधाति—**धवेति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्बरकरहाटकार्जुनककुभसर्जकपीतनश्लेष्मातकाङ्कोठामलकप्रग्रहकुटजशमीकपित्थाश्मन्तकार्कचिरबिल्वमहावृक्षारुष्करारलुमधुकमधुशिग्रुशाकगोजीमूर्वाभूर्जतिल्वकेक्षुरकगोपघोण्टारिमेदानां भस्मान्याहृत्य गवां मूत्रेण क्षारकल्पेन परिस्राव्य विपचेत्, दद्याचात्र पिप्पलीमूलतण्डुलीयकवराङ्गचोचमञ्जिष्ठाकरञ्जिकाहस्तिपिप्पलीमरिचविडङ्गगृहधूमानन्तासोमसरलाबाह्लीकगुहाकोशाम्रश्वेतसर्षपवरुणलवणप्लक्षनिचुलकवञ्जुलवकालवर्धमानपुत्रश्रेणीसप्तपर्णटुण्टुकैलवालुकनागदन्त्यतिविषाऽभयाभद्रदारुकुष्ठहरिद्रावचाचूर्णानि लोहानाञ्च समभागानि, ततः क्षारवदागतपाकमवतार्य्य लोहकुम्भे निदध्यात् ॥ ३ ॥

अनेन दुन्दुभिं लिम्पेत् पताकां तोरणानि च ।
श्रवणाद्दर्शनात् स्पर्शाद् विषात् सम्प्रतिमुच्यते ॥ ४ ॥
एष क्षारागदो नाम शर्कराश्वश्मरीषु च ।
अर्शःसु वातगुल्मेषु कासशूलोदरेषु च ॥ ५ ॥
अजीर्णे ग्रहणीदोषे [९]भक्तद्वेषे च दारुणे ।
शोफे [१०]सर्वसरे चापि देयः श्वासे च दारुणे ॥ ६ ॥

---

अश्वकर्णः = सालभेदः, तिनिशः = वञ्जुलः, पिचुमदः = निम्बः । १ करहाटकः = 'मयनफल' इति ख्यातः । अर्जुनः = 'काहू' इति ख्यातः । ककुभः = सुगन्धमूलो विटपः, कपीतनः = आम्रातकः, 'कपीतनो गर्दभाण्डशिरीषाम्रातकेषु च । अश्वत्थे च' इति विश्वः । २ प्रग्रहः = आरग्वधः । ३ अरुष्करः = भल्लातकः, अरलुः = इयोनाकः । ४ परिस्राव्य = एकविंशतिवारान् गालयित्वेत्यर्थः । ५ तण्डुलीयकः = 'चौलाई' इति ख्यातः । वराङ्गं = गुडत्वक्, 'वराङ्गं योनिमातङ्गमस्तकेषु गुडत्वचि' इति मेदिनी । चोचं = 'दालचीनी' इति प्रथते ।

६ अनन्ता = उत्पलसारिवा, सोमः = कट्फलम्, सरला प्रसिद्धा, वाह्लीकं = कुङ्कुमम्, गुहा = शालपर्णी । ७ निचुलकः = जलवेतसः, वक्रं = तगरम्, आलं = हरितालम्, वर्धमानः = एरण्डः, वञ्जुलः = जलवेतसः, पुत्रश्रेणी = द्रवन्ती, सप्तपर्णः = 'सतवन' इति ख्यातः । टुण्टुकः = इयोनाकः, एलवालुकः = 'एलुआ' इति ख्यातः । ८ 'सर्वं च तैजसं लौहम्' इति कोशात् लौहानां ताम्ररजतादीनामित्यर्थः । ९ भक्तद्वेषः = अन्नानभिलाषता । १० सर्वसरे = मुखरोगभेदे ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा सर्वविषार्त्तानां सर्वथैवोपयुज्यते ।
एष तक्षकमुख्यानामपि दर्पाङ्कुशोऽगदः ॥ ७ ॥
विडङ्ग[1]त्रिफलादन्तीभद्रदारुहरेणवः ।
तालीशपत्रमञ्जिष्ठाकेशरोत्पलपद्मकम् ॥ ८ ॥
दाडिमं मालतीपुष्पं रजन्यौ सारिवे स्थिरे[2] ।
प्रियङ्गुस्तगरं कुष्ठं बृहत्यौ चैलवालुकम् ॥ ९ ॥
सचन्दनगवाक्षी[3]भिरेतैः सिद्धं विषापहम् ।
सर्पिः कल्याणकं ह्येतद् ग्रहापस्मारनाशनम् ॥ १० ॥
पाण्ड्वामयगरश्वासमन्दाग्निज्वरकासनुत् ।
शोषिणमल्पशुक्राणां वन्ध्यानाञ्च प्रशस्यते ॥ ११ ॥
अपामार्ग[4]स्य बीजानि शिरीषस्य च माषकान्[5] ।
श्वेते[6] द्वे काकमाचीञ्च गवां मूत्रेण पेषयेत् ॥ १२ ॥
सर्पिरेतैस्तु संसिद्धं विषसंशमनं परम् ।
अमृतं नाम विख्यातमपि सञ्जीवयेन्मृतम् ॥ १३ ॥
चन्दनागुरुणी[7] कुष्ठं तगरं तिलपर्णिकम् ।
प्रपौण्डरीकं नलदं सरलं देवदारु च ॥ १४ ॥
भद्रश्रियं[8] यवफलां भार्गीं नीलीं सुगन्धिकाम् ।
कालेयं[9]कं पद्मकञ्च मधुकं नागरं जटाम् ॥ १५ ॥
पुन्नागैलैलवालूनि गैरिकं [10]ध्यामकं बलाम् ।

---

१ सर्वविषे कल्याणकं घृतमभिधत्ते—**विडङ्गेति** । २ स्थिरे=शालपर्णी मूषिकपर्णी च । ३ गवाक्षी=इन्द्रवारुणी ।

४ सर्वविषे अमृताख्यं सर्पिराह—**अपामार्गस्येति** । ५ कुत्सिता माषा माषकास्तान् सादृश्यात्तद्बीजानीत्यर्थः । ६ श्वेते द्वे=श्वेता महाश्वेता चेति द्वयम्, काकमाची='मकोय' इति ख्याता । मूत्रेण=घृतापेक्षया चतुर्गुणेन गोमूत्रेणेत्यर्थः ।

७ सर्वविषे महासुगन्धिनामागदराजं वक्ति-**चन्दनेति** । तिलपर्णिकं='हुरहुर' इति प्रसिद्धम् । ८ भद्रश्रियं=श्वेतचन्दनम्, यवफलां=दुग्धिकाम्, कुटजमित्यर्थः सुश्रुतार्थसन्दीपने । नीली=नीलाञ्जलिकाम्, सुगन्धिकां=नाकुलीम् । ९ कालेयकं=पीतचन्दनम् । १० ध्यामकं=गन्धतृणम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]तोयं सर्जरसं मांसीं शतपुष्पां हरेणुकाम् ॥ १६ ॥
तालीशपत्रं क्षुद्रैलां प्रियङ्गुं सकुटन्नटम् ।
शिला[2]पुष्पं सशैलेयं पत्रं कालानुसारिवाम् ॥ १७ ॥
कटुत्रिकं शीत[3]शिवं काश्मर्यं[4] कटुरोहिणीम् ।
सोमराजीमतिविषां पृश्निपर्णी[5]मिन्द्रवारुणीम् ॥ १८ ॥
उशीरं वरुणं मुस्तं कुस्तुम्बुरु नखं तथा ।
श्वेते[6] हरिद्रे स्थौणेयं लाक्षाञ्च लवणानि च ॥ १९ ॥
कुमुदोत्पलपद्मानि पुष्पञ्चापि तथाऽर्कजम् ।
चम्पकाशोकसुमनस्तिलकप्रसव[7]नानि च ॥ २० ॥
पाटलीशाल्मलीशेलुशिरीषाणां तथैव च ।
कुसुमं [8]तृणमून्याश्चसुरभीसिन्धुवारजम् ॥ २१ ॥
धवाश्वकर्णपार्याणां पुष्पाणि तिनिशस्य[9] च ।
गुग्गुलुं कुङ्कुमं बिम्बीं[9] सर्पाक्षीं गन्धनाकुलीम् ॥ २२ ॥
एतत् सम्भृत्य सम्भारं सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
गोपित्तमधुसर्पिर्भिर्युक्तं शृङ्गे निधापयेत् ॥ २३ ॥
भग्नस्कन्धं विवृत्ताक्षं मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतम् ।
अनेनागदमुख्येन मनुष्यं पुनराहरेत् ॥ २४ ॥
एषोऽग्निकल्प[10] दुर्वारं क्रुद्धस्यामिततेजसः ।
विषं नागपतेर्हन्यात् प्रसभं वासुकेरपि ॥ २५ ॥
महासुगन्धिनामायं पञ्चाशीत्यङ्गसंयुतः ।

---

१ तोयं=हीबेरम् । २ शिला=मनःशिला, पुष्पं=पुष्पकासीसम्' कालानुसारिवां=तगरम् । ३ शीतशिवं=कर्पूरम्, काश्मर्यं='खम्भारी' इति ख्यातम् । कटुरोहिणी='कुटकी' इति ख्याता । ४ पृश्निपर्णी=कृष्णजीरकम् ।

५ श्वेते=श्वेता महाश्वेता चेति कटभीद्वयम्, स्थौणेयं=ग्रन्थिपर्णकम्, 'कुकरौंधा' इति ख्यातम । ६ प्रसवशब्देन पुष्पाणि फलानि च गृह्यन्ते । ७ तृणशून्याः=केतक्याः । ८ तिनिशस्य=स्यन्दनस्येत्यर्थः । ९ बिम्बीं='कुन्दरू' इति ख्याताम् । सर्पाक्षी=रास्नाभेदः, गन्धनाकुलीं=गन्धरास्नाम् । १० एषोऽगदः, अग्निकल्पं दुर्वारं विषं वासुकेरपि क्रुद्धस्य अमिततेजसो नागपतेः प्रसभं हन्यादिति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजाऽगदानां सर्वेषां राज्ञो हस्ते[1] भवेत् सदा ॥ २६ ॥
स्नातानुलिप्तस्तु[2] नृपो भवेत् सर्वजनप्रियः ।
आजिष्णुताञ्च लभते शत्रुमध्यगतोऽपि सन् ॥ २७ ॥
उष्णवर्ज्यो[3] विधिः कार्यो विषार्त्तानां[4] विजानता ।
मुक्त्वा कीटविषं तद्धि[5] शीतेनाभिप्रवर्द्धते ॥ २८ ॥
अन्नपानविधावुक्तमुपधार्य[6] शुभाशुभम् ।
शुभं देयं विषार्त्तेभ्यः विरुद्धेभ्यश्च वारयेत्[7] ॥ २९ ॥
फाणितं शिग्रुसौवीरमजीर्णाध्यशनं तथा ।
वर्जयेच्च समासेन नवधान्यादिकं[8] गणम् ॥ ३० ॥
दिवास्वप्नं व्यवायञ्च[9] व्यायामं क्रोधमातपम् ।
सुरातिलकुलत्थांश्च[10] वर्जयेद्धि विषातुरः ॥ ३१ ॥
[10]प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकाङ्क्षं [11]समसूत्रजिह्वम् ।

---

योजना । १ हस्ते स्थापनप्रयोजनं तु विषजुष्टान्नपानादीनां पाणिस्पर्शेन निर्विषता-सिद्ध्यर्थम् । २ आदौ स्नातः पश्चादनुलिप्त इति स्नातानुलिप्तः । स्नानानुलेपने सर्वजनप्रियत्वसम्पादनार्थम् ।

३ विषार्तानां स्वेदं निषेधति—उष्णेति । कीटविषं विहाय विषान्तरपीडितानामुष्णवर्ज्यो विधिः शीतविधानं कार्य इत्यर्थः । कीटविषं कीटकल्पाध्याये व्यक्तीभविष्यति । ४ तत्=कीटविषम् । ५ विषार्तानां पथ्यापथ्यानि निर्दिशति—अन्नेति । उपधार्य=आलोच्य, शुभाशुभं=हिताहितम् । ६ वारयेदित्यत्र विषार्तानिति पदं वचनव्यत्यासेन आकृष्य अन्वेयम् । ७ नवधान्यादिर्व्रणितोपासनीयाध्याये प्रोक्तः । तद्यथा—"नवधान्यमाषतिलकलायकुलत्थनिष्पावहरितकशाकाम्ललवणकटुकगुडपिष्टविकृतिवल्लूरशुष्कशाकाजाविकानूपौदकमांसवसाशीतोदककृशरापायसदधिदुग्धतक्रप्रभृतीन् परिहरेत् ।" इति । माषादीनां धान्यत्वेऽपि नवधान्येत्यादौ पुनर्धान्यपदं पुराणानामपि तेषां निषेधार्थम् । ८ व्यवायं=मैथुनम् । ९ चकारेण पिण्याकमूलकलसुनकलायकुसुम्भातसीशिशुमारकूर्मनिष्पावजम्ब्वाम्रातकचूतादिकानि च वर्जयेदिति निबन्धसङ्ग्रहव्याख्याकारः ।

१० विषमुक्तलक्षणं दर्शयति—प्रसन्नेति । डल्हणः—प्रसन्नाः स्वभावावस्थिता वातादिदोषा यस्य तं प्रसन्नदोषम् । ११ समसूत्रा जिह्वा यस्य स तं समसूत्रजिह्वम् । एतदुक्तं भवति—निर्विषस्य हि पुरुषस्य चित्तेन सह समसूत्रतया जिह्वा रसवे-


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥ ३२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां कल्पस्थाने दुन्दुभिस्वनीयकल्पो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

---

## सप्तमोऽध्यायः ।

अथातो मूषिककल्पं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

पूर्वं[1] शुक्रविषा उक्ता मूषिका ये समासतः ।
नामलक्षणभैषज्यैरष्टादश निबोध मे ॥ ३ ॥
लालनः पुत्रकः कृष्णो हंसिरश्चिक्किरस्तथा ।
छुच्छुन्दरोऽलसश्चैव कषायदशनोऽपि च ॥ ४ ॥
कुलिङ्गश्चाजितश्चैव चपलः कपिलस्तथा ।
कोकिलोऽरुणसंज्ञश्च महाकृष्णस्तथोन्दुरः ॥ ५ ॥
श्वेतेन महता सार्द्धं कपिलेनाखुना तथा ।
मूषिकश्च कपोताभस्तथैवाष्टादश[2] स्मृताः ॥ ६ ॥
शुक्रं पतति यत्रैषां शुक्रस्पृष्टैः स्पृशन्ति वा ।

---

दिनी भवति, सविषस्य विषप्रभावेण दूषितचित्तत्वाज्जिह्वा रसवेदिनी न भवतीति । निबन्धसङ्ग्रहव्याख्याकारेण अतिसुन्दरमेतत्पद्यसमविषातुरलक्षणप्रतिपादकपद्यमुद्धृतम्—"प्रवृद्धदोषं विकृतिस्थधातुमनन्नकाङ्क्षं क्षतसूत्रजिह्वम् । विरुद्धवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेत् सविषं मनुष्यम् ॥" इति ।

इति सुश्रुतसंहितायाः कल्पस्थानीयसुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षष्ठोऽध्यायः ।

---

### सप्तमोऽध्यायः ।

१ अष्टादशविधमूषकाणां नामानि निर्दिशति—**पूर्वमिति** । पूर्वं जङ्गमविषविज्ञानीये "मूषिकाः शुक्रविषाः" इत्युक्ता इत्यर्थः । २ अष्टाङ्गहृदयेऽप्यष्टादशविधा मूषका उक्ताः, परं तत्र नामभेदो दृश्यते । तद्यथा—"लालनश्चपलः पुत्रो हसिरश्चिक्किरोजिरः । कषायदन्तः कुलकः कोकिलः कपिलोसितः ॥ अरुणः शबलः श्वेतः कपोतः पलितोन्दुरः । छुच्छुन्दरो रसालाख्यो दशाष्टौ चेति मूषिकाः ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नखदन्तादिभिस्तस्मिन् गात्रे रक्तं प्रदुष्यति ॥ ७ ॥
जायन्ते ग्रन्थयः शोफाः कर्णिका मण्डलानि च ।
पिडकोपचयश्चोग्रो विसर्पाः किटिभानि च ॥ ८ ॥
पर्वभेदो रुजस्तीव्रा मूर्च्छाऽङ्गसदनं ज्वरः ।
दौर्बल्यमरुचिः श्वासो वमथुर्लोमहर्षणम् ॥ ९ ॥
दष्टरूपं समासोक्तमेतद्व्यासमतः शृणु ।
लालास्रावो लालनेन हिक्का छर्दिश्च जायते ॥ १० ॥
तण्डुलीयककल्कन्तु लिह्यात्तत्र समाक्षिकम् ।
पुत्रकेणाङ्गसादश्च पाण्डुवर्णश्च जायते ॥ ११ ॥
चीयते ग्रन्थिभिश्चाङ्गमाखुशावकसन्निभैः ।
शिरीषेङ्गुदकल्कन्तु लिह्यात्तत्र समाक्षिकम् ॥ १२ ॥
कृष्णेन दंशे शोफोऽसृक्छर्दिः प्रायश्च दुर्दिने ।
शिरीषफलकुष्ठन्तु पिबेत् किंशुकभस्मना ॥ १३ ॥
हंसिरेणान्नविद्वेषो जृम्भा रोम्णां च हर्षणम् ।
पिबेदारग्वधादिन्तु सुवान्तस्तत्र मानवः ॥ १४ ॥

---

१ आदिशब्दाच्छुक्रस्पृष्टपुरीषमूत्राभ्यां च यदङ्गं स्पृशन्ति तदङ्गं रक्तं प्रदुष्यति । तथा च डल्हणोद्धृतालम्बायने—"शुक्रेणाथ पुरीषेण मूत्रेणापि नखैस्तथा । दंष्ट्राभिर्वा क्षिपन्तीह मूषिकाः पञ्चधा विषम् ॥" इति ।

२ सामान्येन मूषकदष्टलक्षणं दर्शयति—**जायन्त इति** । ३ कर्णिका=कमलमध्यबीजकोशाकृतिर्मांसकन्दीत्यर्थः । ४ पर्वभेदः=ग्रन्थिस्फुटनम् । ५ लोमहर्षणं=रोमाञ्चः । तत्रान्तरे विशेषः—"गर्भिण्या मूषिकया दष्टेऽम्लादिदोहदः, ऋतुमत्या दष्टे रक्तमेहनमाध्मानं रतिशीलता च" इति । ६ लालनदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां च दर्शयति—**लालेति** । ७ तण्डुलीयकः='चौलाई' इति ख्यातः । ८ पुत्रकदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां च वक्ति—**पुत्रकेणेति** । अङ्गसादः=अङ्गग्लानिः । ९ चीयते=व्याप्यते ।

१० कृष्णदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां च ब्रवीति—**कृष्णेनेति** । मेघाच्छादितं दिनं दुर्दिनं तस्मिन्नित्यर्थः । ११ किंशुकभस्मना=पलाशपुष्पभस्मोदकेन । १२ हंसिरदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाख्याति—**हंसिरेणेति** । अन्नविद्वेषः=अनन्नाभिलाषः । १३ सुष्ठु वान्तः सुवान्तः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिक्किरेण[1] शिरोदुःखं शोफो हिक्का वमिस्तथा ।
जालिनी[2]मदनाङ्कोठकषायैर्वामयेत्तु तम् ॥ १५ ॥
यवनाल[3]पयोक्षारं बृहत्योश्चात्र दापयेत् ।
छुच्छुन्दरेण[4] तृट् छर्दिर्ज्वरो दौर्बल्यमेव च ॥ १६ ॥
ग्रीवास्तम्भः पृष्ठशोफो गन्धाज्ञानं विसूचिका ।
चव्यं हरीतकी शुण्ठी विडङ्गं पिप्पली मधु ॥ १७ ॥
अङ्कोठबीजं च तथा पिबेदत्र विषापहम् ।
ग्रीवा[6]स्तम्भोऽलसेनोर्द्ध्ववायुर्दंशे रुजा ज्वरः ॥ १८ ॥
महागद[7]ं ससर्पिष्कं लिह्यात्तत्र समाक्षिकम् ।
निद्रा[8] कषायदन्तेन हृच्छोषः कार्श्यमेव च ॥ १९ ॥
क्षौद्रोपेताः शिरीष[9]स्य लिह्यात् सारफलत्वचः ।
कुलिङ्गेन[10] रुजः शोफो राज्यश्च दंशमण्डले ॥ २० ॥
सहे[11] ससिन्धुवारे च लिह्यात् तत्र समाक्षिके ।
[12]अजितेनाङ्गकृष्णत्वं छर्दिर्मूर्च्छा च हृद्ग्रहः ॥ २१ ॥
[13]स्नुक्क्षीरपिष्टां पालिन्दीं मञ्जिष्ठां मधुना लिहेत् ।
चपलेन[14] भवेच्छर्दिर्मूर्च्छा च सह तृष्णया ॥ २२ ॥
क्षौद्रेण त्रिफलां लिह्याद्भद्रकाष्ठजटाऽन्विताम् ।

---

१ चिक्किरदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाभिधत्ते—चिक्किरेणेति । २ जालिनी= 'तरोई' इति ख्याता । ३ ऋषभी='केवांछ' इति प्रथते । क्षारः=क्षारोदकमित्यर्थः । बृहत्योश्चेत्यत्र चकारेण क्षारस्य सम्बन्धः ।

४ छुच्छुन्दरदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां च प्रतिपादयति—छुच्छुन्दरेणेति । ५ अङ्कोठबीजं=निकोचकबीजम् । ६ अलसदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाभिदधाति—ग्रीवेति । ७ महागदः पञ्चमाध्याये "त्रिवृद्विशल्ये मधुकं हरिद्रे" इत्यादिना कथितः । ८ कषायदन्तदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाह—निद्रेति । ९ शिरीषस्य सारफलत्वच इति सम्बन्धः । १० कुलिङ्गदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाभिधत्ते—कुलिङ्गेनेति । राज्यः=रेखा इत्यर्थः । ११ सहे=मुद्गपर्णीमाषपर्ण्यौ, सिन्धुवारः=निर्गुण्डी । १२ अजितदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाभिदधाति-अजितेनेति । १३ स्नुक्=सेहुण्डः, पालिन्दी=त्रिवृत् ।

१४ चपलदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाचष्टे—चपलेनेति । भद्रकाष्ठं=देवदारु,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपिलेन[1] व्रणे कोथो ज्वरो ग्रन्थ्युद्गमः सतृड् ॥ २३ ॥
लिह्यान्मधुयुतां श्वेतां[2] श्वेतां चापि पुनर्नवाम् ।
ग्रन्थेः[3] कोकिलेनोग्रा ज्वरो दाहश्च दारुणः ॥ २४ ॥
वर्षाभूनीलिनीक्वाथकल्कसिद्धं घृतं पिबेत् ।
अरुणेन[5]ानिलः क्रुद्धो वातजान् कुरुते गदान् ॥ २५ ॥
महाकृष्णेन पित्तञ्च[6] श्वेतेन कफ एव च ।
महता कपिलेनासृक् कपोतेन चतुष्टयम्[7] ॥ २६ ॥
भवन्ति चैषां दंशेषु ग्रन्थिमण्डलकर्णिकाः[8] ।
पिडकोपचयश्चोग्रः शोफश्च भृशदारुणः ॥ २७ ॥
दधिक्षीरघृतप्रस्थास्त्रयः प्रत्येकशो[9] मताः ।
करञ्जारग्वधव्योषबृहत्यंशुमतीस्थिराः[10] ॥ २८ ॥
निष्काथ्य चैषां क्वाथस्य चतुर्थांशः पुनर्भवेत् ।
त्रिवृद्गोज्यमृतावक्रसर्पगन्धाः समृत्तिकाः[11] ॥ २९ ॥
कपित्थदाडिमत्वक् च श्लक्ष्णपिष्टाः[12] प्रदापयेत् ।
तत् सर्वमेकतः कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना[13] पचेत् ॥ ३० ॥
पञ्चानामरुणादीनां विषमेतद् व्यपोहति ।

---

जटा = जटामांसी । १ कपिलदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाख्याति—कपिलेनेति । कोथः = शटनम् । २ श्वेतां=श्वेतरयन्दाम् । द्वितीयश्वेतापदं पुनर्नवाया विशेषणम् । ३ कोकिलदष्टलक्षणं तच्चिकित्सां च निर्दिशति—ग्रन्थेय इति । ४ नीलिनी= 'नील' इति ख्याता ।

५ अरुण-महाकृष्ण-श्वेत-महाकपिल-कपोतानां पञ्चानां दष्टलक्षणानि तच्चिकित्साश्च निरूपयति—अरुणेनेति । ६ चकाराद् वातजोऽपि रोगो बोद्धव्यः । ७ वातपित्तकफरक्तजचतुष्टयमित्यर्थः । ८ कर्णिका = कमलमध्यबीजकोशाकृतिर्मांसकन्दो । ९ प्रत्येकशः=एकैकशः । १० अंशुमती=शालपर्णी, स्थिरा = मूषकपर्णी । एषां करञ्जादिद्रव्याणां प्रत्येकशः द्विपलिकं भागं सलिलाढके निष्काथ्य चतुर्थांशावशिष्टः कर्तव्यः । ११ गोजी=गोजिह्वा, अमृता=गुडूची, वक्रं = तगरम्, सर्पगन्धा=नाकुली, 'नाकुली सर्पगन्धा च सुगन्धा भोगगन्धिका । सैव सर्पसुगन्धेति" इति तन्त्रान्तरम् । समृत्तिकाः=कृष्णमृत्तिकासहिताः । १२ श्लक्ष्णपिष्टाः=सूक्ष्मपिष्टा इत्यर्थः । १३ मृद्वग्निना=मन्दाग्निना ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काकादनीकाकमाच्योः[1] स्वरसेष्वथवा कृतम् ॥ ३१ ॥
सिराश्च स्रावयेत् प्राप्ताः कुर्यात् संशोधनानि च ।
सर्वेषाञ्च विधिः कार्य्यो मूषिकाणां विषेष्वयम्[2] ॥ ३२ ॥
दग्ध्वा[3] विस्रावयेद् दंशं प्रच्छितञ्च प्रलेपयेत् ।
शिरीषरजनीकुष्ठैः[4]कुङ्कुमैरमृतायुतैः ॥ ३३ ॥
छर्दनं[5] जालिनीक्वाथैः शुकाख्याऽङ्कोठयोरपि ।
शुकाख्यां[6]कोषवत्योश्च मूलं मदन एव च ॥ ३४ ॥
देवदालीफलञ्चैव दध्ना पीत्वा विषं वमेत् ।
सर्वमूषिकदष्टानामेष योगः सुखावहः ॥ ३५ ॥
फलं[7] वचा देवदाली कुष्ठं गोमूत्रपेषितम् ।
पूर्वकल्पेन[8] योज्याः स्युः सर्वोन्दुरुविषच्छिदः ॥ ३६ ॥
विरेचने[9] त्रिवृद्दन्तीत्रिफलाकल्क इष्यते ।
शिरोविरेचने[10] सारः शिरीषस्य फलानि च ॥ ३७ ॥

---

१ द्वितीयं घृत वक्ति—**काकादनीति** । काकादनी गुञ्जा, काकमाची 'मकोय' इति ख्याता, तयोः काकादनीकाकमाच्योः । २ अयं=सिराव्यधादिको विधिः । ३ मूषकविषे दाह-विस्रावण-प्रलेपनानि निर्दिशति—**दग्ध्वेति** । अग्नितप्तेन घृतेन दग्ध्वेत्यर्थः । अष्टाङ्गहृदये काण्डेन दर्पणेन वा दाह उक्तः—"आखुना दष्टमात्रस्य दंशं काण्डेन दाहयेत् । दर्पणेनाथवा तीव्ररुजा स्यात्कर्णिकाऽन्यथा ॥" इति । ४ अष्टाङ्गहृदये कुष्ठस्थाने वक्रमुक्तम् । तद्यथा—"दग्धं विस्रावयेद्दंशं प्रच्छिन्नं च प्रलेपयेत् । शिरीषरजनीवक्रकुङ्कुमामृतवल्लिभिः ॥" इति, तत्र वक्रं तगरमित्यर्थः ।

५ मूषकविषे वमनयोगान् दर्शयति—**छर्दनमिति** । छर्दनं=वमनम्, जालिनीक्वाथैः=कटुकोशातकीक्वाथैरित्यर्थः । ६ शुकाख्या=शिरीष इत्यर्थः । मूषकविषे शुकाख्यादि योगं वक्ति—**शुकाख्येति** । शुकाख्या ग्रन्थिपर्णमिति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । शुकाख्या शुकजिह्वेति शब्दार्थचिन्तामणिः । कोषवती=कोशातकी, 'तरोई' इति ख्याता । ७ मूषकविषे फलादियोगमाह—**फलमिति** । फलं=मदनफलम् ।

८ पूर्वकल्पेन दध्ना पीत्वा विषं वमेदिति । ९ मूषकविषे विरेचनयोगं दर्शयति—**विरेचन इति** । त्रिवृत्='निसोत' इत्युद्घुष्यते । १० शिरोविरेचनमधिकरोति—**शिर इति** । सारः=मज्जा ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हितैस्त्रिकटुकाढ्यश्च गोमयस्वरसोऽञ्जने ।
कपित्थगोमयरसौ लिह्यान्माक्षिकसंयुतौ ॥ ३८ ॥
रसाञ्जनहरिद्रेन्द्रयवकट्वीषु वा कृतम् ।
प्रातः सातिविषं कल्कं लिह्यान्माक्षिकसंयुतम् ॥ ३९ ॥
तण्डुलीयकमूलेषु सर्पिः सिद्धं पिबेन्नरः ।
आस्फोतमूलसिद्धं वा पञ्चकापित्थमेव वा ॥ ४० ॥
मूषिकाणां विषं प्रायः कुप्यत्यभ्रेष्वनिर्हृतम् ।
तत्राप्येष विधिः कार्य्यो यश्च दूषीविषापहः ॥ ४१ ॥
स्थिराणां रुजतां वाऽपि व्रणानां कर्णिकां भिषक् ।
पाटयित्वा यथादोषं व्रणवच्चापि शोधयेत् ॥ ४२ ॥
श्वशृगालतरक्षुवृक्षव्याघ्रादीनां यदाऽनिलः ।
श्लेष्मप्रदुष्टो मुष्णाति संज्ञां संज्ञावहाश्रितः ॥ ४३ ॥
तदा प्रस्रस्तलाङ्गूलहनुस्कन्धोऽतिलालवान् ।

---

१ अञ्जने त्रिकटुकादियोगमाह—**हित इति** । हित=हितकारकः । योगोऽयमष्टाङ्गहृदयेऽपि—"अञ्जनं गोमयरसो व्योषक्षुद्रमरजोऽन्वितः" इति । २ संशमनमुपपादयति—**कपित्थेति** । ३ कट्वी=अशोकरोहिणी, 'कुटकी' इति ख्याता । ४ आस्फोतमूलसिद्धं=कोविदारमूलक्काथसिद्धम्, कपित्थस्य फलमूलपुष्पत्वक्पत्राणां कल्ककषायसिद्धं घृतं पञ्चकापित्थम् । "आस्फोटमूलसिद्धं वा पञ्चकापित्थमेव वा" इत्यष्टाङ्गहृदये पाठः । आस्फोटमूलमर्कमूलमित्यरुणदत्तः । ५ अनिर्हृतं=वमनविरेचनादिनाऽसंशोधितम् । मूषकविषं किञ्चिदपि शेष चेद् वातादीनां यथास्वं कालेषु वृद्धिकारणेषु प्रकुप्यतीति विशेषोऽष्टाङ्गहृदये—"सशेषं मूषकविषं प्रकुप्यत्यभ्रदर्शने । यथायथं वा कालेषु दोषाणां वृद्धिहेतुषु ॥" इति ।

६ मूषकविषकर्णिकाचिकित्सामभिदधाति—**स्थिराणामिति** । कर्णिका प्रागुक्ता । ७ उन्मत्तश्वशृगालादिदष्टलक्षणं दर्शयति—**श्वेति** । आदिशब्देन वृकचित्रकादिहिंस्रपशवो गृह्यन्ते । ८ मुष्णाति=हरति, संज्ञावहाश्रितः=संज्ञावहस्रोतोगत इत्यर्थः । तन्त्रान्तरम्—"व्याधितेन श्वादिना दष्टस्य श्लेष्मा प्रकुपितश्चेतोवाहिनीर्धमनीरनुप्रविश्य संज्ञानाशमापादयति सद्यः कालान्तराद्वा" इति । ९ लाङ्गूलं पुच्छं शेफो वा हनुश्च स्कन्धश्चेति लाङ्गूलहनुस्कन्धाः, प्रस्रस्ताः स्थानच्युता लाङ्गूलहनुस्कन्धा यस्य स तथोक्तः । 'लाङ्गूलं पुच्छशेफयोः' इति मेदिनी । बाहुलकात् प-फ-प्रत्यया-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यर्थबधिरोऽन्धश्च सोऽन्योन्यमभिधावति ॥ ४४ ॥
तेनोन्मत्तेन दृष्टस्य दंष्ट्रिणो सविषेण तु ।
सुप्तता जायते दंशे कृष्णश्चातिस्रवत्यसृक् ॥ ४५ ॥
दिग्धविद्धस्य लिङ्गेन प्रायशश्चोपलक्षितः ।
येन[1] चापि भवेद्दष्टस्तस्य चेष्टां रुतं नरः ॥ ४६ ॥
बहुशः [2]प्रतिकुर्वाणः क्रियाहीनो विनश्यति ।
दंष्ट्रिणो[3] येन दष्टश्च तद्रूपं यस्तु पश्यति ॥ ४७ ॥
अप्सु वा यदि वाऽऽदर्शे रिष्टं तस्य विनिर्दिशेत् ।
त्रस्यत्यकस्माद् योऽभीक्ष्णं दृष्ट्वा स्पृष्ट्वाऽपि[4] वा जलम् ॥४८॥
जलत्रासन्तु विद्यात्तं रिष्टं तदपि कीर्त्तितम् ।
अदष्टो वा जलत्रासी न कथञ्चन सिध्यति ॥ ४९ ॥
प्रसुप्तोऽथोत्थितो वाऽपि स्वस्थ[5]स्त्रस्तो न सिध्यति ।
दंशं[6] विस्राव्य तैर्दष्टे सर्पिषा परिदाहितम् ॥ ५० ॥
प्रदिह्यादगदैः[7], सर्पिः पुराणं पाययेत च ।

---

श्यामदन्तावप्येतौ ( शेपशेफौ )। अत एव 'शेपपुच्छ···' इति वार्तिकं सङ्गच्छते इति रामाश्रमीकारः। अतिलालवान्=अत्यन्तं लालास्रावयुक्तः।

१ अरिष्टं वर्णयति—येनेति। येन=हिंस्रपशुना, तस्य=दष्टहिंस्रपशोरित्यर्थः। २ प्रतिकुर्वाणः=दष्टहिंस्रपशुशब्दमनुकुर्वन्, क्रियया निजशरीरव्यापारेण हीन इति क्रियाहीनः। ३ अरिष्टान्तरं निर्दिशति—दंष्ट्रिणेति। वाग्भटेऽपि—"दष्टो येन तु तच्चेष्टारुतं कुर्वन् विनश्यति। पश्यंस्तमेव चाकस्मादादर्शसलिलादिषु॥" इति। ४ अपि-शब्दाज्जलशब्दश्रवणेनापि। तदुक्तमष्टाङ्गहृदये—"योऽद्भ्यस्त्रसेददष्टोऽपि शब्दस्पर्शदर्शनैः। जलसंत्रासनामानं दृष्टं तमपि वर्जयेत्॥" इति। जलं विनाऽपि जलत्रासरोगः श्लेष्मसञ्चयाज्जायते। तथा चोक्तं तन्त्रान्तरे—"बुद्धिस्थानं यदा श्लेष्मा केवलं प्रतिपद्यते। तदा बुद्धौ निरुद्धायां श्लेष्मणाऽधिष्ठितो नरः॥ जाग्रत् सुप्तोऽथवाऽऽत्मानं मज्जन्तमिव मन्यते। सलिले त्रस्यति तदा जलत्रासं तु तं विदुः॥ श्लेष्मघ्नं तत्र कर्तव्यं शोधनं शमनानि च। आहारस्य विधानेन यावत् स प्रकृतिं व्रजेत्॥" इति। ५ स्वस्थः=स्वस्थावस्थः।

६ उन्मत्तश्वशृगालादिदष्टचिकित्सामधिकरोति—दंशमिति। ७ सर्पिषा=श्वशृगालादिविषशेषनाशाय अग्नितप्तघृतेनेत्यर्थः। ८ अगदैः=पूर्वोक्तमहागदादिभिः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्कक्षीरयुतं ह्यस्य दद्याच्चापि विशोधनम्[1] ॥ ५१ ॥
श्वेतां पुनर्नवाञ्चास्य दद्याद् धुत्तूरकायुताम्।
पललं तिलतैलञ्च रूपिकायाः[2] पयो गुडः ॥ ५२ ॥
निहन्ति विषमालर्कं[3] मेघवृन्दमिवानिलः।
मूलस्य शरपुङ्खायाः[4] कर्षं धत्तूरकार्द्धिकम् ॥ ५३ ॥
तण्डुलोदकमादाय पेषयेत्तण्डुलैः सह।
उन्मत्तकस्य[5] पत्रैस्तु संवेष्ट्यापूपकं पचेत् ॥ ५४ ॥
खादेदौषधकाले च तमलर्कविषदूषितः।
करोति श्वविकारांस्तु तस्मिन् जीर्य्यति चौषधे ॥ ५५ ॥
विकाराः[6] शिशिरे याप्या गृहे वारिविवर्जिते।
ततः शान्तविकारस्तु स्नात्वा चैवापरेऽहनि ॥ ५६ ॥
शालिषष्टिकयोर्भक्तं क्षीरेणोष्णेन भोजयेत्।
दिनत्रये पञ्चमे वा विधिरेषोऽर्द्धमात्रया ॥ ५७ ॥
कर्त्तव्यो भिषजाऽवश्यमलर्कविषनाशनः।
कुप्येत् स्वयं विषं यस्य न स जीवति मानवः ॥ ५८ ॥
तस्मात् प्रकोपयेदाशु स्वयं यावत् प्रकुप्यति।
बीजैरत्नौषधीगर्भैः[7] कुम्भैः शीताम्बुपूरितैः ॥ ५९ ॥

---

१ अर्कक्षीरयुतं विशोधनमिति सम्बन्धः। विशोधनं=विशोधनद्रव्यम्, तथा च कफाधिक्ये वमनद्रव्यविशोधनं, पित्ताधिक्ये विरेचनद्रव्यविशोधनं च अर्कक्षीरयुतं दद्यादित्यर्थः। २ रूपिकायाः=श्वेतार्कवृक्षस्य, पयः=दुग्धम्। ३ अलर्कस्येदमालर्कम् उन्मत्तकुक्कुरसम्बन्धि, 'अलर्को धवलार्के स्याद्योगोन्मादितकुक्कुरे' इति विश्वः। ४ शरपुङ्खायाः 'सरफोंका' इति ख्याताया मूलस्य कर्षं धत्तूरकस्य आर्धिकं कर्षार्धम्। ५ उन्मत्तकस्य=धत्तूरकस्य, पत्रैः=सप्तपर्णैः।

६ उन्मत्तश्वशृगालादिदष्टोत्पन्नविकारा इत्यर्थः। शिशिरे=सूर्यसन्तापरहिते शीतले काले। तदुक्तं दुन्दुभिस्वनीये—"उष्णवर्ज्यो विधिः कार्यो विषार्तानां विजानता" इति। ७ अलर्कविषजुष्टस्य दैवव्यपाश्रयचिकित्सां निरूपयति—बीजेति। सङ्ग्रहेऽपि—"अष्टोत्तरशतं वारान् सिद्धमन्त्राभिमन्त्रितैः। अष्टोत्तरशतोन्मानैः पुष्पमालाऽवगुण्ठितैः॥ गोचर्ममात्रके लिप्ते ज्वलितेऽग्नौ कुशास्तृते। स्थण्डिले सरितस्तीरे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नापयेत्तं नदीतीरे समन्त्रैर्वा चतुष्पथे ।
बलिं निवेद्य तत्रापि पिण्याकं पललं दधि ॥ ६० ॥
माल्यानि च विचित्राणि मांसं पक्वामकं यथा ।
अलर्काधिपते ! यक्ष ! सारमेयगणाधिप ! ॥ ६१ ॥
अलर्कजुष्टमेतन्मे निर्विषं कुरु माचिरात् ।
दद्यात् संशोधनं तीक्ष्णमेवं स्नातस्य देहिनः ॥ ६२ ॥
अशुद्धस्यै सुरूढेऽपि व्रणे कुप्यति तद्विषम् ।
श्वादयोऽभिहिता व्याला येऽत्र दंष्ट्राविषा मया ॥ ६३ ॥
अतः[3] करोति दष्टस्तु तेषां चेष्टां रुतं नरः ।
बहुशः[4] प्रतिकुर्वाणो[5] न चिरान्म्रियते च सः ॥ ६४ ॥
नखदन्तक्षतं[6] व्यालैर्यत् कृतं तद्विमर्दयेत् ।
सिञ्चेत्तैलेन कोष्णेन[7] ते हि वातप्रकोपकाः ॥ ६५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां कल्पस्थाने मूषिककल्पो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

स्नानं चास्य चतुष्पथे ॥ अलर्काधिपते यक्ष सारमेय गणाधिप । अलर्कजुष्टमेतन्मे निर्विषं कुरु माचिरात् ॥ स्वाहेति मन्त्रोऽलर्कान्ते सर्वकर्मसु शस्यते ।" इति ।

१ अशुद्धस्य व्रणस्येति तात्पर्यम् । २ दष्टस्य श्वादेश्चेष्टाकरणे कारणमाख्याति—**श्वादय इति** । मया अत्र ये दंष्ट्राविषा व्यालास्ते श्वादयः, श्वशब्दः प्रकारवाची, तेन श्वप्रकारा उन्मत्तश्वसदृशा वातपित्तप्रकोपणेनाभिहिता इत्यर्थः ।

३ अत इति तृतीयान्तात्तसिल् । तया चातः श्वादिभिर्दष्ट इति योजनेति हाराणचन्द्रः । ४ बहुशः = अनेकवारम् , प्रतिकुर्वाणः = दष्टपशुशब्दमनुकुर्वन् । ५ सहेतुकमुन्मत्तश्वादिचिकित्सितमभिधत्ते—**नखेति** । ६ तत् = नखदन्तक्षतस्थानम् । ७ कोष्णेन=ईषदुष्णेनेत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायाः कल्पस्थानीयसुधाऽऽख्यायां सप्तमोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अष्टमोऽध्यायः ।

अथातो कीटकल्पं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
सर्पाणां[2] शुक्रविण्मूत्रशवपूत्यण्डसम्भवाः ।
वायव्यन्यम्बु[3]प्रकृतयः कीटास्तु विविधाः[4] स्मृताः ॥ ३ ॥
सर्वदोषप्रकृतिभिर्युक्तास्ते परिणामतः ।
कीटत्वेऽपि सुघोराः[5] स्युः सर्व एव चतुर्विधाः ॥ ४ ॥
कुम्भीनसस्तुण्डिकेरी शृङ्गी शतकुलीरकः ।
उच्चिटिङ्गोऽग्निनामा च चिच्चिटिङ्गो मयूरिका ॥ ५ ॥
आवर्त्तकस्तथोरभ्रः सारिकामुखवैदलौ ।
शरावकुर्दोण्डभीराजिः परुषश्चित्रशीर्षकः ॥ ६ ॥
शतबाहुश्च यश्चापि रक्तराजिश्च कीर्त्तितः ।
अष्टादशेति वायव्याः कीटाः पवनकोपनाः ॥ ७ ॥
तैर्भवन्तीह दष्टानां रोगा[6] वातनिमित्तजाः ।

---

## अष्टमोऽध्यायः ।

१ कीटाः क्रिमिभ्यः स्थूलाः क्षुद्रजन्तवस्तत्कल्पं कीटकल्पं व्याख्यास्यामः । २ तत्र कीटानामुत्पत्तिं दर्शयति—**सर्पाणामिति** । सर्पाणां = दर्वीकरमण्डलिराजिलानाम् । चरकेऽपि—"सर्पाणामेव विण्मूत्रात् कीटाः स्युः कीटसम्मताः" इति । ३ वायव्यन्यम्बु-प्रकृतयः=वातपित्तकफस्वभावाः । ४ त्रिविधा इति पाठान्तरम् । परिणामशब्दात् पञ्चम्यास्तसिल्, परिणामतः । दर्वीकरादिभिन्नजातीयानां सर्पाणां सम्बन्धेन जातत्वात् पूर्वदर्वीकरादिरूपपरित्यागेन वैकरञ्जाख्येति रूपान्तरप्राप्तिः परिणामः ।

५ दोषत्रयप्रकोपणेन सुघोरा इत्यर्थः । सम्मिलितसंख्यां दर्शयति—सर्व एव चतुर्विधा इति । कीटानां सामान्यज्ञानोपायः डल्हणोद्धृतालम्बायनोक्तो विलिख्यते—"कृष्णाभिर्बिन्दुलेखाभिः पत्त्रैः पादैर्मुखैर्नखैः । शूकैः कण्टकलाङ्गूलैः संश्लिष्टैः पक्षरोमभिः ॥ स्वनैः प्रमाणैः संस्थानैः लिङ्गैश्चापि शरीरगैः । विषवीर्यैश्च कीटानां रूपज्ञानं विभाव्यते ॥" इति । ६ तत्र चतुर्विधेषु वायव्यस्वभावानामष्टादशकीटानां नामानि निर्दिशति—**कुम्भीनसेति** । ७ रोगाः=तोदादयः, वातप्रकोपणानां कुम्भीनसा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौण्डिन्यकः[1] कणभको वरटी पत्रवृश्चिकः ॥ ८ ॥
विनासिका ब्राह्मणिका बिन्दुलो भ्रमरस्तथा ।
बाह्यकी पिच्चिटः कुम्भी वर्चःकीटोऽरिमेदकः ॥ ९ ॥
पञ्चकीटो दुन्दुभिको मकरः शतपादकः ।
पञ्चालकः पाकमत्स्यः कृष्णतुण्डोऽथ गर्दभी ॥ १० ॥
क्लीतः कृमिसरारी च यश्चाप्युत्क्लेशकस्तथा ।
एते ह्यग्निप्रकृतयश्चतुर्विंशतिरेव च ॥ ११ ॥
तैर्भवन्तीह दष्टानां रोगाः[2] पित्तनिमित्तजाः ।
विश्वम्भरः[3] पञ्चशुक्लः पञ्चकृष्णोऽथ कोकिलः ॥ १२ ॥
सैरेयकः प्रचलकौ बलभः किटिभस्तथा ।
सूचीमुखः कृष्णगोधा यश्च काषायवासिकः ॥ १३ ॥
कीटो गर्दभकश्चैव तथा त्रोटक एव च ।
त्रयोदशैते सौम्याः स्युः कीटाः श्लेष्मप्रकोपणाः ॥ १४ ॥
तैर्भवन्तीह दष्टानां रोगाः[4] कफनिमित्तजाः ।
तुङ्गीनासो[5] विचिलकस्तालको वाहकस्तथा ॥ १५ ॥
कोष्ठागारी क्रिमिकरो यश्च मण्डलपुच्छकः ।
तुङ्गनाभः सर्षपिको वल्गुलिः शम्बुकस्तथा ॥ १६ ॥
अग्निकीटश्च विज्ञेया द्वादश प्राणनाशनाः ।
तैर्भवन्तीह दष्टानां वेगज्ञानानि सर्पवत् ॥ १७ ॥

---

दीनां मध्ये शृङ्गथृचिचिटिङ्गशराबकुर्दचित्रशीर्षकान् वर्जयित्वा शेषाश्चतुर्दश मुखसन्दंशविषा इति डल्हणः ।

१ आग्नेयस्वभावानां चतुर्विंशतिकीटानां नामानि दर्शयति—**कौण्डिन्यक इति** । २ रोगाः=ओषचोषादयः । पित्तप्रकोपणानां मध्ये कौण्डिन्यकवरटीभ्रमरपिच्चिटवर्चःकीटमकरशतपदपञ्चालकपाकमत्स्यकृष्णतुण्डान् विहाय शेषाश्चतुर्दश मुखसन्दंशविषा इति निबन्धसङ्ग्रहव्याख्याकारः । ३ सौम्यस्वभावानां त्रयोदशकीटानां नामानि निरूपयति—**विश्वम्भर इति** । ४ रोगाः=कण्डूवादयः । श्लेष्मप्रकोपिणां मध्ये विश्वम्भरप्रचलाककृष्णगोधाकाषायवासिकांश्चतुरो वर्जयित्वा नवान्ये मुखसन्दंशविषा इति तत्रैव । ५ सान्निपातिकानां द्वादशटीकानां नामानि कथयति—**तुङ्गीनास इति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तास्ताश्च[1] वेदनास्तीव्रा रोगा वै सान्निपातिकाः ।
क्षाराग्निदग्धवद् दंशो[2] रक्तपीतसितारुणः ॥ १८ ॥
ज्वर[3]राङ्गमर्दरोमाञ्चवेदनाभिः समन्वितः ।
छर्द्यतीसारतृष्णा च दाहो मूर्च्छाविजृम्भिका ॥ १९ ॥
वेपथुश्वासहिक्काश्च दाहः शीतञ्च दारुणम् ।
पिडकोपचयः शोफो ग्रन्थयो मण्डलानि च ॥ २० ॥
दद्रवः कर्णिकाँश्चैव विसर्पाः किटिभानि च ।
तैर्भवन्तीह दष्टानां यथास्व[5]ञ्चाप्युपद्रवाः ॥ २१ ॥
येऽन्ये तेषां[6] विशेषास्तु तूर्णं तेषां समादिशेत् ।
दूषीविषप्रकोपाच्च तथैव विषलेपनात् ॥ २२ ॥
लिङ्गं तीक्ष्णविषेष्वेतच्छृणु मन्दविषेष्वतः ।
प्रसेकोऽरोचकश्छर्दि[7]:शिरोगौरवशीतका[8]ः ॥ २३ ॥

---

१ तास्ताः=तोददाहकण्ड्वादिका वेदनाः, रोगाः=ज्वरादयः । सर्वदोषप्रकृतिकानां मध्ये बाह्यकसर्षपशम्बूकान् वर्जयित्वा नव मुखसन्दंशविषा इति च तत्रैव । २ दंशो दष्टस्थानम् , स दंशः पित्ताद् रक्तपीतवर्णः, कफात् सितः, वाताद् अरुणो बोद्धव्यः ।

विशिष्टाकृतिवर्णाः कतिचित् कीटाः प्रदर्श्यन्ते—"अजाप्रतिमरूपो यः शूकहीनस्त्वरोमशः । सितः शरकुलीरस्तु श्वेडचूर्णविषः स्मृतः ॥ गैरिकाभो महाकीटः सपक्षो मार्जितोदरः । खेचरो मुदशूकश्च कौरिण्डन्य इति स स्मृतः ॥ कुरण्ट पुष्पवर्णाभः सपक्षो मार्जितोदरः । तुण्डशूकविषः कीटः कोष्ठागारीति संज्ञितः ॥ लाक्षारुधिरवर्णाभः श्वेतबिन्दुविचित्रितः । क्षुद्रको ह्यग्निसङ्काशो भ्राजते निशि चाग्निवत् ॥ कीटः खद्योत इत्युक्तो दष्टस्तेनापि दह्यते । दंष्ट्राविषः श्वेतबिन्दुः सपक्षः षट्पदः खगः ॥ स तु वै शम्बुको नाम कालकः सप्तमण्डलः । चतुष्पादो दीर्घपत्र उल्ललाटो बहुप्रजः ॥ वृक्षालयो दन्तविषः कृकलास इति स्मृतः । चन्द्राभः कृकलासोऽन्यस्तद्भेदस्तु त्रिकण्टकः ॥" इति।

३ चतुर्विधतीक्ष्णविषकीटलक्षणं ब्रवीति—ज्वरेति । ४ कर्णिकाः=कमलमध्यबीजकोशाकृतिर्मांसकन्दो । ५ यथास्वं=कीटदोषानुसारेणेत्यर्थः । ६ तेषां तीक्ष्णविषकीटानां विशेषास्तुङ्गीनासादिभ्यः पृथग्भूता येऽन्ये कुम्भीनासादयः, तेषाम् 'उपद्रवान्' इति शेषः, दूषीविषप्रकोपमभिवीक्ष्य तथैव विषस्य लेपनमाहारमभिवीक्ष्य तूर्णं समादिशेदित्यर्थः । दूषीविषप्रकोपाद् विषलेपनादित्युभयत्र ल्यब्लोपे पञ्चमी । ७ मन्दविषकीटलक्षणमाख्याति—प्रसेकेति । ८ अल्पं शीतं शीतकः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिडकाकोठकण्डूनां जन्म[1] दोषविभागतः ।
[2]योगैर्नानाविधैरेषां चूर्णानि गरमादिशेत् ॥ २४ ॥
दूषीविषप्रकाराणां तथा चाप्यनुलेपनात् ।
एकजातीनतस्तूर्द्ध्वं कीटान् वक्ष्यामि भेदतः[3] ॥ २५ ॥
सामान्यतो दृष्टलिङ्गैः साध्यासाध्यक्रमेण च ।
त्रिकण्टः[4] करिणी चापि हस्तिकक्षोऽपराजितः ।
चत्वार एते कणभा व्याख्यातास्तीव्रवेदनाः[5] ॥ २६ ॥
तैर्दष्टस्य श्वयथुरङ्गमर्दो गुरुता गात्राणां दंशः कृष्णश्च भवति ॥ २७ ॥

[6]तिसूर्यकः, पिङ्गाभासो, बहुवर्णो, निरुपमो, गोधेरक इति पञ्च गौधेरकाः । तैर्दष्टस्य शोफो दाहरुजौ च भवतः, गोधेरकेणैतदेव ग्रन्थिप्रादुर्भावो ज्वरश्च ॥ २८ ॥

गलगोलिका-श्वेता[7], कृष्णा, रक्तराजी, रक्तमण्डला, सर्वश्वेता, सर्षपिकेत्येवं षट् । ताभिर्दष्टे सर्षपिकावर्जं दाहशोफक्लेदा भवन्ति, सर्षपिकया हृदयपीडाऽतिसारश्च, । तासु मध्ये सर्षपिका प्राणहरी ॥ २९ ॥

---

१ जन्म=उत्पत्तिः, दोषविभागतः=कीटदोषभेदेनेत्यर्थः ।

२ कीटदेहचूर्णानां नानौषधियोगात्तथाऽनुलेपनादपि गरत्वं प्रतिपादयति—**योगैरिति** । तन्त्रान्तरे = "यश्चैतानत्ति चूर्णैर्वा चूर्ण्यते लिप्यतेऽथवा । मूत्रादिभिस्तस्य दूषीविषलिङ्गं समादिशेत् ॥" इति । ३ भेदशब्दात् ल्यब्लोपे पञ्चमी, ततस्तसिल्, भेदं वीक्ष्येत्यर्थः । ४ चतुर्विधकणभनामानि तद्दष्टलक्षणं च दर्शयति—**त्रिकण्टक इति** ।

५ चतुष्पदानामेषां चतुर्विधकणभाख्यकीटानां तीव्रवेदनाकरत्वेऽपि साध्यत्वं बोध्यम् । ६ पञ्चविधगोधेरकनामानि तद्दष्टलक्षणं च निर्दिशति—**प्रतिसूर्यक इति** । तन्त्रान्तरे गोधेरकलक्षणम्—"कृष्णसर्पेण गोधायां भवेद्यस्तु चतुष्पदः । सर्पो गौधेरको नाम तेन दष्टो न जीवति ॥" इति । कैश्चित् पाठान्तरं पठ्यते—"प्रतिसूर्यः पिङ्गनासो बहुलोमा महाशिराः । तथा निरुपमश्चेति पञ्च गौधेरकाः स्मृताः ॥ तैर्भवन्तीह दष्टानां वेगज्ञानानि सर्पवत् । रुजश्च विविधाकारा ग्रन्थयश्च सुदारुणाः ॥" इति ।

७ षड्विधगलगोलीनामानि तद्दष्टलक्षणं चाह—**श्वेतेति** । गलगोलिकां ज्येष्ठा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतपद्यस्तु[1]—परुषा, कृष्णा, चित्रा, कपिला, पीतिका, रक्ता, श्वेता, अग्निप्रभा, इत्यष्टौ। ताभिर्दष्टे, शोफो वेदना दाहश्च हृदये, श्वेताग्निप्रभाभ्यामेतदेव दाहो मूर्च्छा चातिमात्रं श्वेतपिडकोत्पत्तिश्च ॥ ३० ॥

मण्डूकाः[2]—कृष्णः, सारः, कुहको, हरितो, रक्तो, यववर्णाभो, भृकुटी, कोटिकश्[3]चेत्यष्टौ। तैर्दष्टस्य दंशे कण्डूर्भवति पीतफेनागमश्च वक्त्रात्, भृकुटीकोटिकाभ्यामेतदेव दाहश्छर्दिर्मूर्च्छा चातिमात्रम् ॥ ३१ ॥

विश्वम्भराभिर्दष्टे दंशः[4] सर्षपाकाराभिः पिडकाभिः सरुजाभिश्चीयते, शीतज्वरार्त्तश्च पुरुषो भवति ॥ ३२ ॥

अहिण्डुकाभिर्दष्टे तोददाहकण्डूश्चयथवो भवन्ति मोहश्च। कण्डूमकाभिर्दष्टे पीताङ्गश्छर्द्यतीसारज्वरादिभिरभिहन्यते। शूकवृन्ताभिर्दष्टे कण्डूकोठाः[5] प्रवर्द्धन्ते शूकश्चात्र लक्ष्यते ॥३३॥

पिपीलिकाः—स्थूलशीर्षा, संवाहिका, ब्राह्मणिका, अङ्गुलिका, कपिलिका, चित्रवर्णेति षट्। ताभिर्दष्टे दंशे श्वयथुरग्निस्पर्शवद्दाहशोफौ भवतः ॥ ३४ ॥

मक्षिकाः—कान्तारिका, कृष्णा, पिङ्गला, मधूलिका, काषायी, स्थालिकेत्येवं षट्। ताभिर्दष्टस्य कण्डूशोफदाहरुजो भवन्ति, स्थालिकाकाषायीभ्यामेतदेव श्यावपिडकोत्पत्तिरुपद्रवाश्च ज्वरादयो भवन्ति, काषायी स्थालिका च प्राणहरे ॥ ३५ ॥

---

मित्याहुः। अन्ये तु सरटमाहुरिति चक्रपाणिः। १ शतपदी=कर्णजलौका। २ मण्डूकोत्पत्तिमाह तन्त्रान्तरे—"वर्षमाणे सृजेच्छुक्रं प्रावृट्काले महोरगः। ततः शरत्प्रतप्तायां भूमौ मण्डो जलस्य हि। तस्मिन् मण्डोदके जाता मण्डूकास्तेन संज्ञिताः॥" इति। ३ कोटिकलक्षणम्—"मण्डूको गोगतिस्तज्ज्ञैः कोटिकः परिकीर्तितः। तेन दष्टस्य मरणं नास्ति तस्य प्रतिक्रिया॥" इति। ४ दंशः=दष्टस्थानमित्यर्थः। ५ "असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मविनिग्रहैः। मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च। उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते॥" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मशकाः[1]—सामुद्रः, परिमण्डलो, हस्तिमशकः, कृष्णः, पार्वतीय इति पञ्च । तैर्दष्टस्य तीव्रा कण्डूर्दंशशोफश्च, पार्वतीयस्तु कीटैः प्राणहरैस्तुल्यलक्षणः ॥ ३६ ॥

नखावकृष्टेऽत्यर्थं पिडकादाहपाका भवन्ति । जलौकसां दष्टलक्षणमुक्तं[3] चिकित्सितञ्च ॥ ३७ ॥

भवन्ति चात्र ।

गोधेरक[4]ः स्थालिका च ये च श्वेताग्निसप्रभे ।
भृकुटी कोटिकश्चैव न सिध्यन्त्येकजातिषु ॥ ३८ ॥
शवमूत्र[5]पुरीषैस्तु सविषैरवमर्षनात् ।
स्युः कण्डूदाहकोठारुःपिडकातोदवेदनाः ॥ ३९ ॥
प्रक्लेद[6]वांस्तथा स्रावो भृशं सम्पाचयेत् त्वचम् ।
दिग्धविद्ध[7]क्रियास्तत्र यथावदवचारयेत् ॥ ४० ॥
नावसन्न[8]ं न चोत्सन्नमतिसंरम्भवेदनम् ।
दंशादौ विपरीतार्त्ति कीटदष्टं सुबाधकम् ॥ ४१ ॥
[10]दष्टानुग्रविषैः कीटैः सर्पवत् समुपाचरेत् ।

---

१ प्रसङ्गान्मशकमक्षिकानाशकधूपः प्रदर्श्यते—"त्रिफलार्जुनपुष्पाणि भल्लातकशिरीषकम् । लाक्षा सर्जरसश्चैव विडङ्गश्चैव गुग्गुलुः । एतैर्धूपैर्मक्षिकाणां मशकानां च नाशनम् ॥" इति । २ नखावकृष्टविषलक्षणमाख्याति—**नखेति** । नखावकृष्टेः=नखैः कण्डूयनेन परिक्षते इत्यर्थः । ३ जलौकावचारणीयाध्याये उक्तमित्यर्थः । ४ एकजातिष्वसाध्यानि निर्दिशति—**गोधेरक इति** । स्थालिका चेति चकारेण काषायी, ये चेति चकारेण गलगोलिकाऽन्तर्गतसर्षपिका, कोटिकश्चेति चकारेण जलौकःसु अनुक्ता इन्द्रायुधा च समुच्चीयते ।

५ शवमूत्रपुरीषविषकीटावमर्शनलक्षणं तच्चिकित्सां च वक्ति—**शवेति** । ६ सविषचूर्णावसृष्टप्रदेशे प्रक्लेदवानित्यर्थः । ७ दिग्धविद्धक्रिया पञ्चमाध्याये "तेषां युक्त्वा पूतिमांसान्यपोह्य" इत्यादिनोक्ता द्रष्टव्या । ८ सुसाध्यकीटदष्टलक्षणं वक्ति—**नावसन्नमिति** । नावसन्नं=न निम्नं, न चोत्सन्नं=नाप्यत्युन्नतम् । ९ दंशादौ दंशाद्यवस्थायां विपरीतार्तिः, अर्थादनुग्रविषदष्टे तीव्रार्तिर्भवति, उग्रविषदष्टे तु मन्दार्तिरिति तात्पर्यम् । सुबाधकं=कृच्छ्रसाध्यम् ।

१० उग्रविषकीटदष्टचिकित्सामाचष्टे—**दष्टानिति** । सर्पवत्=सर्पदष्टवदित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिविधानान्तु पूर्वेषां त्रैविध्येन[1] क्रिया हिताः ॥ ४२ ॥
स्वेदमालेपनं सेकं चोष्णमत्रावचारयेत् ।[2]
अन्यत्र मूर्च्छितादृशात्[3] पाककोथप्रपीडितात् ॥ ४३ ॥
विषघ्नञ्च विधिं[4] सर्व बहुशः शोधनानि च ।
शिरीषकटुकाकुष्ठवचारजनिसैन्धवैः ॥ ४४ ॥
क्षीरमज्जवसासर्पिःशुण्ठीपिप्पलिदारुषु[5] ।
उत्कारिका स्थिरादौ[6] वा सुकृता स्वेदने हिता ॥ ४५ ॥
न स्वेदयेत चादंशं धूमं वक्ष्यामि वृश्चिके ।
अगदानेकजातीषु प्रवक्ष्यामि पृथक् पृथक् ॥ ४६ ॥
कुष्ठं वक्रं[7] वचा पाठा बिल्वमूलं सुवर्चिका ।
गृहधूमं हरिद्रे द्वे त्रिकण्टकविषे हिताः ॥ ४७ ॥
रजन्यागारधूमश्च वक्रं कुष्ठं पलाशजम्[8] ।
गलगोलिकदष्टानामगदो विषनाशनः ॥ ४८ ॥
कुङ्कुमं तगरं शिग्रु[9] पद्मकं रजनीद्वयम् ।
अगदो जलपिष्टोऽयं शतपद्विषनाशनः ॥ ४९ ॥
मेषशृङ्गी वचा पाठा निचुलो[10] रोहिणी जलम् ।
सर्वमण्डूकदष्टानामगदोऽयं विषापहः ॥ ५० ॥
धवाश्वगन्धाऽतिबलाबलासातिगुहा[11]गुहाः ।
विश्वम्भराभिर्दष्टानामगदोऽयं विषापहः ॥ ५१ ॥
शिरीषं तगरं कुष्ठं शालिपर्णी सहा निशे[12] ।
अहिण्डुकाभिर्दष्टानामगदो विषनाशनः ॥ ५२ ॥

---

१ त्रैविध्येन = वातादिभेदेन। २ कीटदष्टे सामान्यचिकित्सितमभिधत्ते-स्वेदमिति। ३ मूर्च्छितात्=प्रवृद्धात्, अन्यत्र मूर्च्छिते न कुर्यादित्यर्थः। ४ विधिं=पानन-स्याभ्यञ्जनादिसंशमनविधानमित्यर्थः। ५ दारु=दारुहरिद्रेत्यर्थः। ६ स्थिरादौ= शालपर्ण्यादौ, स्थिरादिर्द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये "विदारिगन्धा विदारी विश्वदेवा" इत्यादिना बोध्यः। ७ वक्रं=तगरम्। ८ पलाशजं बीजमित्यर्थः। ९ शिग्रुः= शोभाञ्जनः। १० निचुलः=जलवेतसः, रोहिणी=हरीतकी, जलं='नेत्रवाला' इति ख्यातम्। ११ अतिगुहा=शालपर्णी, गुहा=पृश्निपर्णी। १२ निशे=हरिद्रादारुह-


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कण्डूमकाभिर्दष्टानां रात्रौ शीताः क्रिया हिताः ।
दिवा तैं नैव सिध्यन्ति [1]सूर्य्यरश्मिबलार्दिताः ॥ ५३ ॥
वक्रं कुष्ठमपामार्गः शूकवृन्तविषेऽगदः ।
भृङ्गस्वरसपिष्टा वा कृष्णवल्मीकमृत्तिका ॥ ५४ ॥
पिपीलिकाभिर्दष्टानां मक्षिकामशकैस्तथा ।
गोमूत्रेण युतो लेपः कृष्णवल्मीकमृत्तिका ॥ ५५ ॥
नखावघृष्टैं[2]सञ्जाते शोफे भृङ्गरसो हितः ।
प्रतिसूर्यकदष्टानां सर्पदष्टवदाचरेत्[3] ।
त्रिविधा वृश्चिकाः प्रोक्ता मन्दमध्यमहाविषाः ॥ ५६ ॥
गोशँकृत्कोथजा मन्दा मध्याः काष्ठेष्टिकोद्भवाः ।
सर्पकोथोद्भवास्तीक्ष्णा ये चान्ये विषसम्भवाः ॥ ५७ ॥
मन्दाँ द्वादश मध्यास्तु त्रयः पञ्चदशोत्तमाः ।
दश विंशतिरित्येते सङ्ख्यया परिकीर्त्तिताः ॥ ५८ ॥
कृष्णँः श्यावः कर्बुरः पाण्डुवर्णो गोमूत्राभः कर्कशो मेचकँश्च ।
पीतो धूम्रो रोमशः शाड्वलाभो रक्तः श्वेतेनोदरेणेति मन्दाः ॥५९॥
युक्ताश्चैतें[6] वृश्चिकाः पुच्छदेशे स्युर्भूयोभिः पवभिश्चेतरेभ्यः ।
एभिर्दष्टे वेदना वेपथुश्च गात्रस्तम्भः कृष्णरक्तागमश्च ।

---

रिद्रे । १ सूर्यरश्मिभिर्बलं येषां ते तैः सूर्यरश्मिबलैः कण्डूमकैरर्दिताः पीडिताः । २ नखावघृष्टेन नखपरिक्षतेन सञ्जाते । ३ चिकित्सितमाचरेदित्यर्थः ।

४ वृश्चिकोत्पत्तिं निरूपयति—गोशकृदिति । गोशब्दो महिष्यादीनां तथा शकृच्छब्दो महिष्यादिमलस्योपलक्षणम् । अत्र—"सर्पकोथोद्भवास्तीव्रा दिग्धविद्धविषैर्हते । कोथे मध्या गवादीनां शकृत्कोथेऽवराः स्मृताः ॥" इति पाठान्तरम् । ५ वृश्चिकसङ्ख्यामाख्याति—मन्दा इति । अत्र गयदासस्तु पाठान्तरं पठति—"त्रयोदश प्राणहरास्त्रयो मध्यास्तथाऽपरे । मन्दवीर्या दशैकश्च वृश्चिका विषवेदिभिः । सप्तविंशतिरित्येते सङ्ख्यया परिकीर्तिताः ॥" इति ।

६ दश विंशतिः=त्रिंशदित्यर्थः । ७ मन्दविषवृश्चिकानां नामलक्षणकर्माणि निर्दिशति—कृष्ण इति । कर्बुरः=नानावर्णः । ८ मेचकः=कृष्णनीलवर्णः, शब्दार्णवे स्पष्टमाह—'मेचकः कृष्णनीलः स्यादतसीपुष्पसन्निभः' इति । ९ एते द्वादश मन्दा वृश्चिकाः, इतरेभ्यो वृश्चिकेभ्यः पुच्छदेशे भूयोभिर्बहुभिः पर्वभिर्युक्ताः स्युरुपलक्षिता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाखादष्टे[1] वेदना चोद्ध्वमेति दाहस्वेदौ दंशशोफो ज्वरश्च ॥ ६० ॥
रक्तः पीतः कापिलेनोद्गरेण सर्वे धूम्राः पर्वभिश्च त्रिभिः स्युः ॥६१॥
एते मूत्रोच्चारपुरीषाण्डजाता[3] मध्या ज्ञेयास्त्रिप्रकारोरगाणाम् ।
यस्यैतेषामन्वयाद्यः प्रसूतो दोषोत्पत्तिं तत्स्वरूपां स कुर्यात् ॥ ६२ ॥
जिह्वाशोफो भोजनस्यावरोधो[4] मूर्च्छा चोग्रा मध्यवीर्याभिदष्टे ।
श्वेतश्चित्रः[5] श्यामलो लोहिताभो रक्तः श्वेतो रक्तनीलोदरौ च ॥६३॥
पीतोऽरक्तो नीलपीतोऽपरस्तु रक्तो नीलो नीलशुक्लस्तथा च ।
रक्तो बभ्रुः पूर्ववच्चैकपर्वा[6] यश्चापर्वा पर्वणी द्वे च[7] यस्य ॥ ६४ ॥
नानारूपा वर्णतश्चापि घोरा ज्ञेयाश्चैते वृश्चिकाः प्राणचौराः ।
जन्मैतेषां सर्पकोथात्[8] प्रदिष्टं देहेभ्यो वा घातितानां विषेण ॥६५॥
एभिर्दष्टे सर्पवेगप्रवृत्तिः[9] स्फोटोत्पत्तिर्भ्रान्तिदाहौ ज्वरश्च ।
खेभ्यः[10] कृष्णं शोणितं याति तीव्रं तस्मात् प्राणैस्त्यज्यते शीघ्रमेव ६६

[11]उग्रमध्यविषैर्दष्टं चिकित्सेत् सर्पदष्टवत् ।
आदंशं स्वेदितं चूर्णैः प्रच्छितं [12]प्रतिसारयेत् ॥ ६७ ॥
[13]रजनीसैन्धवव्योषशिरीषफलपुष्पजैः ।
मातुलुङ्गाम्लगोमूत्रपिष्टञ्च सुरसाग्रजम्[14] ॥ ६८ ॥
लेपे, स्वेदे सुखोष्णञ्च गोमयं हितमिष्यते ।
पाने क्षौद्रयुतं सर्पिः क्षीरं वा बहुशर्करम् ॥ ६९ ॥

---

भवेयुरित्यर्थः । १ शाखा=हस्तपादकम् । २ मध्यविषवृश्चिकानां नामलक्षण-कर्माणि निर्दिशति—**रक्त इति** । ३ उच्चारः=मलम् । ४ भोजनस्यावरोधः=अनन्नाकाङ्क्षा ।

५ तीक्ष्णविषवृश्चिकानां नामलक्षणकर्माणि दर्शयति—**श्वेत इति** । 'श्वेतस्तु समपीतोऽसौ रक्तेतरजपारुचिः' इति शब्दार्णवः । ६ पूर्ववत्=मध्यविषवृश्चिकवत्, जिह्वाशोफादि कुर्वन्तीत्यर्थः । ७ चकारेण त्रिपर्वाऽपि बोद्धव्या । ८ सर्पकोथात्=सर्पशटनादित्यर्थः । ९ सर्पवद्वेगानां प्रवृत्तिरिति सर्पवेगप्रवृत्तिः । १० खेभ्यः=स्रोतोभ्य इत्यर्थः । ११ उग्रमध्यविषवृश्चिकदष्टचिकित्सामभिदधाति—**उग्रेति** । १२ प्रतिसारयेत्=दुष्टरक्तप्रवर्तनार्थं घर्षयेदित्यर्थः । १३ प्रतिसारणद्रव्याण्येव वक्ति—**रजनीति** । रजनी=हरिद्रा । १४ सुरसाग्रजं=तुलसीबीजम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंशं[१] मन्दविषाणान्तु चक्रतैलेन सेचयेत् ।
विदारीगण[२]सिद्धेन सुखोष्णेनाथवा पुनः ॥ ७० ॥
कुर्याच्चोत्कारिकां[३]स्वेदं विषघ्नैरुपनाहयेत् ।
गुडोदकं वा सुहिमं चातुर्जातक[४]संयुतम् ॥ ७१ ॥
पानमस्मै प्रदातव्यं क्षीरं वा सगुडं हिमम् ।
शिखिकुक्कुटबर्हा[५]णि सैन्धवं तैलसर्पिषी ॥ ७२ ॥
धूमो हन्ति प्रयुक्तस्तु शीघ्रं वृश्चिकजं विषम् ।
कुसुम्भपुष्पं रजनी निशा[६] वा कोद्रवं तृणम् ॥ ७३ ॥
एभिर्घृताक्तैर्धूपस्तु पायु[७]देशे प्रयोजितः ।
नाशयेदाशु कीटोत्थं वृश्चिकस्य च यद्विषम् ॥ ७४ ॥
लूता[८]विषं घोरतमं दुर्विज्ञेयतमं च तत् ।
दुश्चिकित्स्यतमं चापि भिषग्भिर्मन्दबुद्धिभिः ॥ ७५ ॥
सविषं निर्विषञ्चैतदित्येवं परिशङ्कते ।
विषघ्नमेव कर्त्तव्यमवि[९]रोधि यदौषधम् ॥ ७६ ॥
अगदानां[१०] हि संयोगो विषजुष्टस्य युज्यते ।
निर्विषे मानवे युक्तोऽगदः सम्पद्यतेऽसुखम्[११] ॥ ७७ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ज्ञातव्यो विषनिश्चयः ।
अज्ञात्वा विषसद्भावं भिषग्[१२] व्यापादयेन्नरम् ॥ ७८ ॥
प्रोद्विद्यमानस्तु[१३] यथाऽङ्कुरेण न व्यक्तजातिः प्रविभाति वृक्षः ।

---

१ मन्दविषवृश्चिकदष्टचिकित्सां ब्रवीति—**दंशमिति** । चक्रतैलेन = चक्रपीडिततिलतैलेन । २ विदार्यादिगणसिद्धेन तैलेनेत्यर्थः । ३ उत्कारिका = लप्सिकाऽऽकारा । ४ चातुर्जातकैस्त्वगेलापत्रकनागकेशरैः संयुतमित्यर्थः । ५ 'पिच्छबर्हे नपुंसके' इत्यमरः । ६ रजनीनिशेति पदद्वयेन हरिद्राद्वयं ग्राह्यम् । कोद्रवं तृणं = कोद्रवपलाल इत्यर्थः । ७ पायुदेशे = गुदप्रदेशे ।

८ लूताविषस्य कष्टसाध्यत्वं प्रतिपादयति—**लूतेति** । घोरतमं = कष्टसाध्यम् । ९ धातुभिः सह यन्न विरुध्यते तदविरोधि । १० अगदप्रयोगे विषनिश्चयज्ञानावश्यकतामुपदिशति—**अगदानामिति** । ११ असुखं = दुःखमित्यर्थः । १२ व्यापादयेत् = मारयेत् । १३ लूताविषस्य दुर्विज्ञेयत्वमभिदधाति—**प्रोद्विद्यमान इति** । यथाऽङ्कुरेण

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद्वद् दुरालक्ष्यतमं हि तासां विषं शरीरे [1]प्रविकीर्णमात्रम् ॥७९॥
ईषत्[2]सकण्डू प्रचलं सकोठमव्यक्तवर्णं प्रथमेऽहनि स्यात् ।
अन्तेषु शूनं[3] परिनिम्नमध्यं प्रव्यक्तरूपञ्च दिने द्वितीये ॥ ८० ॥
त्र्यहेण तद्दर्शयतीह[4] रूपं विषं चतुर्थेऽहनि कोपमेति ॥
अतोऽधिकेऽह्नि प्रकरोति जन्तोर्विषप्रकोपप्रभवान् विकारान् ॥८१॥
षष्ठे दिने विप्रसृतं[5] तु सर्वान् मर्मप्रदेशान् भृशमावृणोति[6] ।
तत् सप्तमेऽत्यर्थपरीतगात्रं[7] व्यापादयेन्मर्त्यमतिप्रबुद्धम् ॥ ८२ ॥
यास्तीक्ष्णचण्डोग्रविषा हि लूतास्ताः सप्तरात्रेण नरं निहन्युः ।
अतोऽधिकेनापि[8] निहन्युरन्या यासां विषं मध्यमवीर्यमुक्तम् ॥८३॥
यासां कनीयो विषवीर्य्यमुक्तं ताः पक्षमात्रेण विनाशयन्ति ।
तस्मात् प्रयत्नं भिषगत्र कुर्य्यादा[10]दंशपाताद्विषघातियोगैः ॥ ८४ ॥
विषन्तु[11] लालानखमूत्रदंष्ट्रारजःपुरीषैरथ चेन्द्रियेण ।

---

प्रोद्भिद्यमानस्तु उत्पत्स्यमानस्तु वृत्तो न व्यक्ता प्रत्यक्षा जातिर्जन्म यस्य स प्रविभातीत्यर्थः । १ प्रविकीर्णमात्रं=स्थितमात्रम्, अल्पविस्तृतमिति यावत् ।

२ लूताविषस्य प्रथमादिसप्तदिनेषु पृथक् पृथग् लक्षणानि निरूपयति–**ईषदिति** । ईषत्सकण्डु=किञ्चित्कण्डूसहितम्, प्रचलं=प्रचलनस्वभावम्, सकोठम्=ईषत्कोठयुक्तम् । कोठस्तु—"वरटीदष्टनिकाशः कण्डूमान् लोहितोऽल्पकफपित्तात् । त्वग्विकोत्पादविनाशः कोठ इति निगद्यते तज्ज्ञैः ॥" इति तन्त्रान्तरे । ३ शूनं=शोथयुक्तम् । ४ वाग्भटे विशेषः–"तृतीये सज्वरो रोमहर्षकृद्रक्तमण्डलः । शरावरूपस्तोदाढ्यो रोमकूपेषु सस्रवः ॥" इति । ५ विप्रसृतं=प्रसरणयुक्तम् । ६ आवृणोति=व्याप्नोति । ७ अत्यर्थपरीतगात्रम्=अत्यन्तव्याप्तशरीरम् ।

८ तीक्ष्णमध्यमन्दविषाणां लूतानां कालावधिमभिधत्ते—**या इति** । तीक्ष्णत्वेन दाहपाकस्रावकरत्वेन चण्डत्वेनातिकोपकरत्वेन उग्रमसह्यं विषं यासां तास्तीक्ष्णचण्डोग्रविषाः । ९ अधिकेनापि=प्राय एकादशरात्रेणापि । तथा च डल्हणोद्धृतालम्बायनः—"लूतास्तीक्ष्णविषा हन्युः सप्ताष्टनवभिर्दिनैः । एकादशाहात्परतो विष यासां तु मध्यमम् ॥" इति । अष्टाङ्गहृदयेऽपि—"तीक्ष्णमध्यावरत्वेन सा त्रिधा हन्त्युपेक्षिता । सप्ताहेन दशाहेन पक्षेण च परं क्रमात् ॥" इति । विषोपशमस्य कालावधिमाह तत्रैव—"एकविंशतिरात्रेण विषं शाम्यति सर्वथा" इति । १० आदंशपातात्=दंशपातसमयमारभ्येत्यर्थः ।

११ अधिष्ठानविशेषेण लूताविषस्य विशेषलक्षणानि निर्दिशति—**विषन्त्विति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सप्तप्रकारं विसृजन्ति लूतास्तदुग्रमध्यावरवीर्य्ययुक्तम् ॥ ८५ ॥
सकण्डुकोठं स्थिरमल्पमूलं लालाकृतं मन्दरुजं वदन्ति ।
शोफश्च कण्डूश्च पुलालिका च धूमायनं चैव नखाग्रदंशे ॥ ८६ ॥
दंशन्तु मूत्रेण सकृष्णमध्यं सरक्तपर्य्यन्तमवेहि दीर्णम् ।
दंष्ट्राभिरुग्रं कठिनं विवर्णं जानीहि दंशं स्थिरमण्डलञ्च ॥ ८७ ॥
रजःपुरीषेन्द्रियजं हि विद्धि स्फोटं विपक्वामलपीलुपाण्डुम् ।
एतावदेतत् समुदाहृतन्तु वक्ष्यामि लूताप्रभवं पुराणम् ॥ ८८ ॥
सामान्यतो दृष्टमसाध्यसाध्यं चिकित्सितञ्चापि यथाविशेषम् ॥८९॥

विश्वामित्रो नृपवरः कदाचिद्दृषिसत्तमम् ।
वशिष्ठं कोपयामास गत्वाऽऽश्रमपदं किल ॥ ९० ॥
कुपितस्य मुनेस्तस्य ललाटात् स्वेदबिन्दवः ।
अपतन् दर्शनादेव रवेस्तत्समतेजसः ॥ ९१ ॥
तृणे महर्षिणा लूने धेन्वर्थं सम्भृतेऽपि च ।
ततो जातास्त्विमा घोरा नानारूपा महाविषाः ।
अपकाराय वर्त्तन्ते नृपसाधनवाहने ॥ ९२ ॥
यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिन्दवः ।

---

रजः=आर्तवम्, इन्द्रियं=शुक्रम् । चकाराद् श्वासेऽपि बोद्धव्यम् । तथा च अष्टाङ्गहृदये—'श्वासदंष्ट्राशकृन्मूत्रशुक्रलालानखार्तवैः । अष्टाभिरुद्धमत्येषा विषं वक्त्रैर्विशेषतः ॥" इति । १ सकण्डुकोठः=कण्डूसहितवरटीदष्टसदृशपिडका । कोठलक्षणम्—"वरटीदष्टनिकाशः कण्डूमान् लोहितोऽस्रकफपित्तात् । क्षणिकोत्पादविनाशः कोठ इति निगद्यते तज्ज्ञैः ॥" इति । २ पुलालिका=रोमहर्षः, धूमायनं=गात्राणां धूमोद्गमनमिवेत्यर्थः । ३ सरक्तपर्यन्तं=सरक्तचतुष्पार्श्वम्, दीर्णं=विदीर्णमित्यर्थः । ४ विपक्वं च तदमलं निर्मलं पीलु तद्वत्पाण्डुस्तं विपक्वामलपीलुपाण्डुम् । ५ एतावत्=इयत्प्रमाणम्, एतत्=सर्वलूताविषयकलालाऽऽदिसप्ताधिष्ठानम् ।

६ लूतायाः प्रागुत्पत्तिं वर्णयति—वक्ष्यामीति । लूताप्रभवं=लूताऽऽद्युत्पत्तिकारणम्, पुराणं=पुरावृत्तमित्यर्थः । ७ विशेषानतिक्रम्येति यथाविशेषम् । ८ मुनेः=वसिष्ठस्य । ९ 'रवेस्तत्समतेजसः' इत्यत्र 'ह्यधस्तात्तीक्ष्णवर्चसः' इति पाठान्तरम् । १० महर्षिणा वसिष्ठेन लूने छिन्ने तृणे, अपि च धेन्वर्थं नन्दिनीभक्षणार्थमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्माल्लूतेति भाष्यन्ते सङ्ख्यया ताश्च [1]षोडश ॥ ९३ ॥
[2]कृच्छ्रसाध्यास्तथाऽसाध्या लूतास्तु द्विविधाः स्मृताः ।
तासामष्टौ कृच्छ्रसाध्या वर्ज्यास्तावत्य एव तु ॥ ९४ ॥
[3]त्रिमण्डला तथा श्वेता कपिला पीतिका तथा ।
[4]आलमूत्रविषा रक्ता कसना चाष्टमी स्मृता ॥ ९५ ॥
ताभिर्दष्टे शिरोदुःखं कण्डूर्दंशे च वेदना ।
भवन्ति च विशेषेण गदाः श्लैष्मिकवातिकाः ॥ ९६ ॥
[5]सौवर्णिका लाजवर्णा जालिन्येणीपदी तथा ।
कृष्णाऽग्निवर्णा काकाण्डा मालागुणाऽष्टमी तथा ॥ ९७ ॥
ताभिर्दष्टे दंश[6]कोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च ।
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥ ९८ ॥
पिडका विविध[7]ाकारा मण्डलानि महान्ति च ।
महान्तो मृदवः शोफा रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा ॥ ९९ ॥
सामान्यं सर्वलूतानामेतदादंशलक्षणम् ।

---

'अर्थे कृते च शब्दौ द्वौ तादर्थ्ये परिकीर्तितौ'। सम्भृते = सञ्चिते । १ अष्टाङ्गहृदये विशेषः—"कीटेभ्यो दारुणतरा लूताः षोडश ता जगुः । अष्टाविंक्षतिरित्येके ततोऽप्यन्ये तु भूयसीः । सहस्ररश्म्यनुचरा वदन्त्यन्ये सहस्रशः ॥" इति । ग्रन्थान्तरे लूतानामुत्पत्तिरन्यथा वर्णिता—"अन्ये वदन्ति भुक्तस्य दुष्टस्यान्नस्य मूर्च्छनात् । सम्भवन्ति विषस्फोटा ये लूताकीटलक्षणम् । यथास्वं धारयन्तस्ते लूताकीटाश्च कीर्तिताः ॥" इति ।

२ कृच्छ्रसाध्यासाध्यद्वयलूतादंशलक्षणमाख्याति—**कृच्छ्रेति** । "कृच्छ्रसाध्या पृथग्दोषैरसाध्या निचयेन सा" इति वाग्भटः । ३ कृच्छ्रसाध्यानामष्टलूतानां नामानि निर्दिशति—**त्रिमण्डलेति** । ४ आलविषा मूत्रविषा चेति द्वे परिगणनीये ।

५ असाध्यानामष्टलूतानां नामानि गणयति—**सौवर्णिकेति** । ६ दंशे दष्टस्थाने कोथः पूतिप्रादुर्भाव इत्यर्थः । क्षतजस्य रुधिरस्य प्रवृत्तिः प्रवर्तनम् । रक्तप्रवृत्तिस्तु पक्वजम्बूनिभा बोद्धव्या । तदुक्तं वाग्भटे—"पक्वजम्बूसवर्णं च दंशात्स्रवति शोणितम्" इति । ७ विविधाकाराः=नानावर्णाः । तदाह—"श्वेताः पीताः सिता रक्ताः पिटिकाः श्वयथूद्भवाः" इति वाग्भटः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषलक्षणं तासां वक्ष्यामि सचिकित्सितम् ॥ १०० ॥
त्रिमण्डलाया दंशेऽसृक् कृष्णं स्रवति दीर्यते ।
बाधिर्य्यं कलुषा दृष्टिस्तथा दाहश्च नेत्रयोः ॥ १०१ ॥
तत्रार्कमूलं रजनी नाकुली पृश्निपर्णिका ।
पानकर्मणि शस्यन्ते नस्यालेपाञ्जनेषु च ॥ १०२ ॥
श्वेताया: पिडका दंशे श्वेता कण्डूमती भवेत् ।
दाहमूर्च्छाज्वरवती विसर्पक्लेदरुक्करी ॥ १०३ ॥
तत्र चन्दनरास्नैलाहरेणुनलवञ्जुलाः ।
कुष्ठं लामज्जकं वक्रं नलदं चागदो हितः ॥ १०४ ॥
आदंशे पिडका ताम्रा कपिलाया: स्थिरा भवेत् ।
शिरसो गौरवं दाहस्तिमिरं भ्रम एव च ॥ १०५ ॥
तत्र पद्मककुष्ठैलाकरञ्जककुभत्वचः ।
स्थिराऽर्कपर्ण्यपामार्गदूर्वाब्राह्म्या विषापहाः ॥ १०६ ॥
आदंशे पीतिकायास्तु पिडका पीतिका स्थिरा ।
भवेच्छर्दिज्वरः शूलं मूर्ध्नि रक्ते तथाऽक्षिणी ॥ १०७ ॥
तत्रेष्टाः कुटजोशीरतुङ्गपद्मकवञ्जुलाः ।
शिरीषकिणिहीशेलुकदम्बककुभत्वचः ॥ १०८ ॥

---

१ त्रिमण्डलादष्टलक्षणं तच्चिकित्सां च वक्ति—**विशेषेति** । २ स्रवति= क्षरति, दीर्यते=चर्म विदीर्यते इत्यर्थः । ३ नाकुली=रास्ना । ४ चकारात्परिषेकेऽपि । ५ श्वेतादष्टलक्षणं तच्चिकित्सां च ब्रवीति—**श्वेताया इति** । ६ नलः= 'नरसल–नरकुल' इति ख्यातः । वञ्जुलः=जलवेतसः । ७ लामज्जकम्=उशीरवत्पीतच्छवितृणविशेषः, वक्रं=तगरम्, नलदम्=उशीरम् । ८ कपिलादष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाभिधत्ते—**आदंश इति** । ९ ककुभः=अर्जुनः, वस्तुतोऽर्जुनककुभयोः परस्परं भेदमेवाज्ञीकुर्वन्ति तज्ज्ञाः । १० स्थिरा=शालपर्णी, अर्काभानि तीक्ष्णानि पर्णानि सन्त्यस्या इत्यर्कपर्णी ।

११ पीतिकादष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाख्याति–**आदंश इति** । १२ तथाऽक्षिणी रक्ते भवत इत्यर्थः । अत्र 'रक्ते स्यातां च लोचने' इति पाठान्तरम् । १३ तुङ्गं= पद्मकेसरम्, पुन्नागफलमिति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । १४ किणिनो व्रणान् जिहीते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्तमण्डनिभे दंशे पिडकाः सर्षपा इव[1]।
जायन्ते तालुशोषश्च दाहश्चालविषार्दिते[2] ॥ १०९ ॥
तत्र प्रियङ्गुह्रीबेरकुष्ठलामज्जवञ्जुलाः[3]।
अगदः शतपुष्पा च सपिप्पलवटाङ्कुराः ॥ ११० ॥
पूतिर्मूत्रविषादंशो[4] विसर्पी कृष्णशोणितः।
कासश्वासवमीमूर्च्छाज्वरदाहसमन्वितः ॥ १११ ॥
मनःशिलाऽऽलमधुककुष्ठचन्दनपद्मकैः ॥
मधुमिश्रैः सलामज्जैरगदस्तत्र कीर्त्तितः ॥ ११२ ॥
आपाण्डुपिडको[5] दंशो दाहक्लेदसमन्वितः।
रक्ताया रक्तपर्यन्तो विज्ञेयो रक्तसंयुतः ॥ ११३ ॥
कार्यस्तत्रागदस्तोयचन्दनोशीरपद्मकैः[6]।
तथैवार्जुनशेलुभ्यां त्वग्भिराम्रातकस्य[7] च ॥ ११४ ॥
पिच्छिलं कसनादंशाद्रुधिरं शीतलं स्रवेत्[8]।
कासश्वासौ च तत्रोक्तं रक्तलूताचिकित्सितम्[9] ॥ ११५ ॥
[10]पुरीषगन्धिरल्पासृक् कृष्णाया दंश एव तु।
ज्वरमूर्च्छावमीदाहकासश्वाससमन्वितः ॥ ११६ ॥
[11]तत्रैलावक्रसर्पाक्षीगन्धनाकुलिचन्दनैः।
महासुगन्धिसहितैः[12] प्रत्याख्यायागदः स्मृतः ॥ ११७ ॥

---

इति किणिही अपामार्गः, शेलुः = श्लेष्मातकः। १ आलविषादष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाभिदधाति—**रक्तेति**। २ वञ्जुलः = जलवेतसः। ३ मूत्रविषादष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाख्याति—**पूतिरिति**। पूतिः = शटनम्। ४ आलं = हरितालम्।

५ रक्तादष्टलक्षणं तच्चिकित्सां च दर्शयति—**आपाण्डुरिति**। ६ तोयं='नेत्र वाला' इति ख्यातम्। ७ आम्रातकस्य = कपीतनस्य, 'अमड़ा' इति ख्यातस्येत्यर्थः। ८ कसनादष्टलक्षणं तच्चिकित्सां च निरूपयति—**पिच्छिलमिति**। ९ रक्तलूताचिकित्सितं = तोयचन्दनादिका चिकित्सेत्यर्थः। १० असाध्यत्वेन प्रतिपादितेषु सौवर्णिकादिष्वष्टसु मध्ये कृष्णाऽग्निवर्णे कदाचित् कृच्छ्रेण सिद्धयत इति क्रमं हित्वा आक् कृष्णादष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चोपदिशति—**पुरीषेति**। ११ वक्रं = तगरम्, सर्पाक्षी = लोहितपुष्पा शङ्खपुष्पीभेदः, गन्धनाकुलिः = रास्ना।

१२ महासुगन्धिः दुन्दुभिस्वनीये "चन्दनागुरुणी कुष्ठम्" इत्यादिना प्रतिपादित-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


[1]दंशे दाहोऽग्निवर्णायाः स्रावोऽत्यर्थं ज्वरस्तथा ।
चोषकण्डूरोमहर्षा दाहविस्फोटसंयुतः ॥ ११८ ॥
कृष्णाप्रशमनं[2] चात्र प्रत्याख्याय प्रयोजयेत् ।
सारिवोशीरयष्ट्याह्वचन्दनोत्पलपद्मकम् ॥ ११९ ॥
सर्वासामेव[3] युञ्जीत विषे श्लेष्मातकत्वचम् ।
भिषक् सर्वप्रकारेण तथा चाक्षीवपिप्पलम्[4] ॥ १२० ॥
कृच्छ्रसाध्यविषा[5] ह्यष्टौ प्रोक्ता द्वे च यदृच्छया ।
अवार्य्यविषवीर्य्याणां[6] लक्षणानि निबोध मे ॥ १२१ ॥
ध्यामः[7] सौवर्णिकादंशः सफेनो मत्स्यगन्धकः ।
श्वासः कासो ज्वरस्तृष्णा मूर्च्छा चात्र सुदारुणा ॥ १२२ ॥
आदंशे लाजवर्णाया[8] ध्यामं पूति स्रवेदसृक् ।
दाहो मूर्च्छाऽतिसारश्च शिरोदुःखञ्च जायते ॥ १२३ ॥
घोरो[9] दंशस्तु जालिन्या राजिमानवदीर्यते ।

---

स्तत्सहितैरित्यर्थः । १ अग्निवर्णादष्टलक्षणं तच्चिकित्सां चाचष्टे—दंश इति । २ कृष्णाप्रशमनं = कृष्णलूतावच्चिकित्सितम्, प्रत्याख्याय = "यावदुच्छ्वसिति प्राणी तावत्कुर्यात्प्रतिक्रियाम् । कदाचिद्दैवयोगेन दृष्टारिष्टोऽपि जीवति ॥" इत्यादिकमुपदिश्येति भावः ।

३ पूर्वोक्तानां दंशलूतानां विशिष्टं चिकित्सितमुक्त्वाऽधुना सामान्यमपि दर्शयति—सर्वासामिति । ४ अक्षीवाद् महानिम्बाद् शोभाञ्जनाद्वा जातस्तमक्षीवपिप्पलम् । 'अक्षीवं वशिरे, शिग्रौ नाऽमत्ते पुनरन्यवत्' इति मेदिनी । तन्त्रान्तरे—"लूताविषेषु सर्वेषु पाननस्याञ्जनादिना । प्रयोज्यः पिप्पलोऽक्षीवाञ्जातः शैलुत्वचोऽथवा ॥" इति । अत्र हाराणचन्द्रस्तु—'तथा च क्षीरपिप्पलम्' इति पाठं मत्वा क्षीरपिप्पलं, पिप्पलक्षीरमश्वत्थक्षीरमित्येतदिति व्याख्याति । ५ अवशिष्टानामसाध्यविषाणां लूतानां दष्टलक्षणानि निरूपयति—कृच्छ्रेति । ६ अवार्यमप्रतिहतं विषस्य वीर्यं शक्तिर्यासां तास्तासाम्, अवशिष्टानां षट्सङ्ख्यकानामित्यर्थः ।

७ सौवर्णिकादष्टलक्षणमाचष्टे—ध्याम इति । ध्यामः=दग्धेष्टकादिसमवर्णः, 'ध्यामं दमनके गन्धतृणे श्यामेऽभिधेयवत्' इति विश्वः । ८ लाजवर्णादष्टलक्षणं ब्रवीति—आदंश इति । पूति=दुर्गन्धयुक्तम् । ९ जालिनीदष्टलक्षणमाह—घोर

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तम्भः श्वासस्तमोवृद्धिस्तालुशोषश्च जायते ॥ १२४ ॥
एणीपद्यास्तथा दंशो भवेत् कृष्णतिलाकृतिः ।
तृष्णामूर्च्छाज्वरच्छर्दिकासश्वाससमन्वितः ॥ १२५ ॥
दंशः काकाण्डिकादष्टे पाण्डुरक्तोऽतिवेदनः ।
तृण्मूर्च्छाश्वासहृद्रोगहिक्काकासाः स्युरुच्छ्रिताः ॥ १२६ ॥
रक्तो मालागुणादंशो धूमगन्धोऽतिवेदनः ।
बहुधा च विशीर्येत दाहमूर्च्छाज्वरान्वितः ॥ १२७ ॥
असाध्यास्वप्यभिहितं प्रत्याख्यायाशु योजयेत् ।
दोषोच्छ्रायविशेषेण दाहच्छेदविवर्जितम् ॥ १२८ ॥
साध्याभिराभिर्लूताभिर्दष्टमात्रस्य देहिनः ।
वृद्धिपत्रेण मतिमान् सम्यगादंशमुद्धरेत् ॥ १२९ ॥
अमर्मणि विधानज्ञो वर्जितस्य ज्वरादिभिः ।
दंशस्योत्कर्त्तनं कुर्यादल्पश्चयथुकस्य च ॥ १३० ॥
मधुसैन्धवसंयुक्तैरगदैर्लेपयेत्ततः ।
प्रियङ्गुरजनीकुष्ठसमङ्गा मधुकैस्तथा ॥ १३१ ॥
सारिवां मधुकं द्राक्षां पयस्यां क्षीरमोरटम् ।
विदारीगोक्षुरक्षौद्रमधुकं पाययेत वा ॥ १३२ ॥

---

इति । राजी रेखा । १ तमोवृद्धिः=नेत्राग्रे वारं वारं तमोवर्द्धनम् । २ एणीपदीदष्टलक्षणमभिदधाति—एणीति । क्रमागतयोः कृष्णाग्निवर्णयोर्लक्षणादिकं प्राक् प्रदर्शितम् ।

३ काकाण्डादष्टलक्षणमभिधत्ते—दंश इति । ४ उच्छ्रिताः=प्रवृद्धाः । ५ मालागुणादष्टलक्षणं वक्ति—रक्त इति । ६ विशीर्येत=शीर्णो भवेदित्यर्थः । ७ असाध्यानामपि लूतानां प्रत्याख्याय चिकित्सा कार्येत्युपदिशति—असाध्यास्विति । असाध्यासु=सोर्षणिकादिषु । ८ दोषोच्छ्रायविशेषेण=वातादिदोषवर्द्धनानुसारेणेत्यर्थः । ९ कृच्छ्रसाध्यानां तात्कालिकं चिकित्सितमुपदिशति—साध्याभिरिति । अष्टाङ्गहृदये विशेषः—"अथाशु लूतादष्टस्य शस्त्रेणादंशमुद्धरेत् । दहेच्च जाम्बवौष्ठाग्नैर्न तु पित्तोत्तरं दहेत् ॥" इति । १० अगदैः=दुन्दुभिस्वनीयोक्तैर्महासुगन्ध्यादिभिः, ततः=छेदानन्तरम् । ११ समङ्गा=वराहक्रान्ता । १२ पयस्या=अर्कपुष्पी, क्षीरका-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


क्षीरिणां[1] त्वक्कषायेण सुशीतेन च सेचयेत् ।
उपद्रवान् यथादोषं विषघ्नैरेव साधयेत् ॥ १३३ ॥
नस्यां[3]ञ्जनाभ्यञ्जनपानधूमं तथाऽवपीडं कवलग्रहञ्च ।
संशोधनञ्चोभयतः[4] प्रगाढं कुर्यात्सिरामोक्षणमेव चात्र[5] ॥ १३४ ॥
कीटदष्टव्रणान्[6] सर्वानहिदष्टव्रणानि च ।
आदाहपाकात्तान् सर्वाञ्चिकित्सेद् दुष्टवद्[7] विषक् ॥ १३५ ॥
विनिवृत्ते[8] ततः शोफे कर्णिकापातनं हितम् ।
निम्बपत्रं त्रिवृद्दन्ती कुसुम्भं कुसुमं मधु ॥ १३६ ॥
गुग्गुलुः सैन्धवं किण्वं[9] वर्चः पारावतस्य च ।
विषवृद्धिकरञ्चान्नं[10] हित्वा सम्भोजनं हितम् ॥ १३७ ॥
विषेभ्य[11]ः खलु सर्वेभ्यः कर्णिकामरुजां स्थिराम् ।
प्रच्छयित्वा मधून्मिश्रैः[12] शोधनीयैरुपाचरेत् ॥ १३८ ॥
सप्तषष्टस्य[13] कीटानां शतस्यैतद्विभागशः ।

---

कोलीति डाराणचन्द्रः । क्षीरमोरटः=दीर्घमूलो लताप्रभेदः । १ क्षीरिणां=न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपारिषप्लक्षपादपानामित्यर्थः । २ विषघ्नैरगदैरित्यर्थः ।

३ लूताषु दशविधमुपक्रममाख्याति—**नस्येति** । ४ उभयतः संशोधनं=वमनविरेचनाख्यम् । ५ "सर्वतोऽपहरेद्रक्तं शृङ्गाद्यैः सिरयाऽपि च" इति वाग्भटः । ६ कीटदष्टव्रणादिषु दुष्टव्रणवच्चिकित्सार्थमुपदिशति—**कीटेति** । ७ दुष्टवत्=दुष्टव्रणवदित्यर्थः । ८ निवृत्तदाहादौ व्रणे विषोत्पन्नकर्णिकायाश्चिकित्सामाचष्टे—**विनिवृत्त इति** । ९ किण्वं=सुराबीजम् । पारावतस्य वर्चः=कपोतविट् । वाग्भटे—"निवृत्ते दाहशोफादौ कर्णिकां पातयेद् व्रणात् । कुसुम्भपुष्पं गोदन्तः स्वर्णक्षीरी कपोतविट् ॥ त्रिवृता सैन्धवं दन्ती कर्णिकापातनं तथा । मूलमुत्तरवारुण्या वंशनिर्लेखसंयुतम् ॥" इति । १० तिलकुलत्थाद्यन्नमित्यर्थः ।

११ कफवातोत्थकर्णिकाचिकित्सामाचष्टे—**विषेभ्य इति** । १२ दन्तीमूलमदनफलकल्कादिशोधनीयैरित्यर्थः । १३ कीटकल्पमुपसंहरन्नाह—**सप्तेति** । सप्ताधिका षष्टिः सप्तषष्टिस्ततोऽर्श आदिभ्योऽच् सप्तषष्टः, सप्तषष्टस्य शतस्य सप्तषष्टयधिकशतस्येत्यर्थः । यथा—वायव्याः कीटा अष्टादश, आग्नेयाश्चतुर्विंशाः, सौम्याश्चयोदश, सान्निपातिका द्वादश, कणभाश्चत्वारः, गोधेरकाः पञ्च, गलगोल्यः षट्, शतपद्योऽष्टौ, मण्डूका अष्टौ, विश्वम्भरा एका, अहिण्डुका एका, कण्डूमका एका, शूकवृन्ता एका,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दष्टलक्षणमाख्यातं चिकित्सा चाप्यनन्तरम् ॥ १३९ ॥
सविंशमध्यायशतमेतद्[1]उक्तं विभागशः ।
इहोद्दिष्टाननिर्दिष्टानर्थान् वक्ष्याम्यथोत्तरे ॥ १४० ॥
सनातन[2]त्वाद्वेदानामक्षर[3]त्वात् तथैव च ।
तथा दृष्टफल[4]त्वाच्च हितत्वादपि देहिनाम् ॥ १४१ ॥
वाक्समूहा[5]र्थविस्तारात् पूजितत्वाच्च देहिभिः ।
चिकित्सितात् पुण्यतमं न किञ्चिदपि शुश्रुमः ॥ १४२ ॥
ऋषेरिन्द्रप्रभावस्यामृत[6]योनेर्भिषग्गुरोः ।
धारयित्वा तु विमलं मतं परमसम्मतम् ।
उक्ताहारस[7]माचार इह प्रेत्य च मोदते ॥ १४३ ॥

इति भगवता श्रीधन्वन्तरिणोपदिष्टायां तच्छिष्येण महर्षिणा सुश्रुतेन विरचितायां सुश्रुतसंहितायां कल्पस्थाने कीटकल्पो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

पिपीलिकाः षट्, मक्षिकाः षट्, मशकाः पञ्च, जलौकसो द्विविधाः, वृश्चिकाश्चत्वारिंशत्, लूताः षोडश इति । 'सप्तषष्टस्य' इति पाठान्तरम् । १ एतत्=पूर्वतन्त्रम् । २ अनिर्दिष्टान्=शालाक्यकौमारकायचिकित्साभूतविद्याऽऽदीन् ।

३ चिकित्सितस्य पुण्यतमत्वं प्रतिपादयति-**सनातनत्वादिति** । सनातनत्वात्=नित्यभवत्वात्, वेदानामित्यत्र आद्यङ्गशब्दौ लुप्तनिर्दिष्टौ, तेन आयुर्वेदाङ्गानां शल्यादीनामित्यर्थः । अक्षरत्वात्=अविचलनात्मकत्वात् । ४ दृष्टफलत्वात्=प्रत्यक्षफलत्वात् । ५ वाक्समूहेऽर्थविस्तारो यस्मिन् स तथोक्तात् । ६ अमृतयोनेः=धन्वन्तरेरित्यर्थः । ७ उक्ताहारसमाचारो विद्येतेऽस्येत्युक्ताहारसमाचारः पुरुषः इह इहलोके, प्रेत्य परलोके च मोदते हृष्यतीत्यर्थः ।

इति पण्डितश्रीकपिलदेवमिश्रतनुजन्मना मिश्रोपाह्वश्रीसुदामाशर्म्मणा निर्म्मितायां सुश्रुतसंहितायाः सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां कल्पस्थाने कीटकल्पो नामाष्टमोऽध्यायः ।

समाप्तमिदं कल्पस्थानम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अथ उत्तरतन्त्रम् ।

## प्रथमोऽध्यायः ।

अथातः[1] औपद्रविकमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
अध्यायानां शते विंशे यदुक्तमसकृन्मया ।
वक्ष्यामि बहुधा सम्यगुत्तरेऽर्थानिमानिति[2] ॥ ३ ॥
इदानीं तत् प्रवक्ष्यामि तन्त्रमुत्तरमुत्तमम् ।
निखिलेनोपदिश्यन्ते यत्र[3] रोगा पृथिग्विधाः ॥ ४ ॥
शालाक्यतन्त्राभिहिता[4] विदेहाधिपकीर्त्तिताः ।
ये च विस्तरतो दृष्टाः कुमाराबाधहेतवः[5] ॥ ५ ॥

---

अथ, उत्तरतन्त्रम् ।

( शालाक्यतन्त्रम् )

मूकोऽपि वावदूको भवति यदीयां दयामुपादाय ।
वीणामण्डितपाणिः सा वाणी सद्गुणा जयति ॥

१ पञ्चस्थानात्मकं पूर्वतन्त्रं परिसमाप्य भगवता सुश्रुतेन "अधिकृत्य कृतं यस्मात्तन्त्रमेतदुपद्रवान् । औपद्रविक इत्येव तस्याग्रयत्वान्निरुच्यते ॥" इति पूर्वं प्रतिज्ञातत्वान्नानाविधार्थप्रतिपादकमुत्तरतन्त्रमधिकरोति—अथात इति । उपद्रवान् रोगानधिकृत्य कृतोऽध्याय औपद्रविकस्तम् । उपद्रवाधिकृततन्त्रस्य प्रथमत्वादध्यायस्य निरुक्त्या 'औपद्रविक' इति नामकरणम् । २ इमानर्थान् बहुधा उत्तरे सम्यग् वक्ष्यामि, इति यद् यस्मात्कारणाद् मया असकृद् वारं वारम् अध्यायानां शते विंशे पञ्चस्थानात्मकपूर्वतन्त्रे इत्यर्थः । उक्तं कथितम् , तत्तस्मात्कारणादिदानीमुत्तममुत्तरं तन्त्रं प्रवक्ष्यामीति सम्बन्धः । ३ यत्र = यस्मिन्नुत्तरतन्त्रे ।

४ शलाकायाः कर्म शालाक्यम् , तत्प्रधानं तन्त्रं, तत्राभिहिताः शालाक्यतन्त्राभिहिताः । "शालाक्यं नामोर्ध्वजत्रुगतानां श्रवणनयनवदनघ्राणादिसंश्रितानां व्याधीनामुपशमनार्थम्" इत्युक्तं स्मर्तव्यम् । विदेहाधिपो निमिस्तेन कीर्तिताः प्रणीता विदेहाधिपकीर्तिताः । ५ कुमाराणां बालानामाबाधे हेतवः, स्कन्दग्रहप्रभृतय इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षट्[1]सु कायचिकित्सासु ये चोक्ताः परमर्षि[2]भिः ।
उपसर्गादयो रोगा ये चाप्यागन्तव[3]ः स्मृताः ॥ ६ ॥
त्रिषष्टी रससंसर्गाः स्वस्थवृत्तन्तथैव च ।
युक्तार्था[4] युक्तयश्चैव दोषभेदास्तथैव च ॥ ७ ॥
यत्रोक्ता विविधा अर्था रोगसाधनहेतवः ।
महतस्तस्य तन्त्रस्य दुर्गाधं[5]स्याम्बुधेरिव ॥ ८ ॥
आदावेवोत्तमाङ्गस्थान् रोगानभिदधाम्यहम् ।
सङ्ख्यया लक्षणैश्चापि[6] साध्यासाध्यक्रमेण च ॥ ९ ॥
विद्या[7]द् द्व्यङ्गुलबाहुल्यं स्वाङ्गुष्ठोदरसम्मितम् ।
द्व्यङ्गुलं[8] सर्वतः सार्द्धं भिषङ्नयनबुद्बुदम् ॥ १० ॥
सुवृत्तं गोस्तनाकारं[10] सर्वभूतगुणोद्भवम् ।
पलं[11] भुवोऽग्नितो रक्तं वातात् कृष्णं सितं जलात् ॥ ११ ॥

---

१ षट्सु = वातपित्तकफसन्निपातशोणितागन्तुजभेदेन षड्विधास्वित्यर्थः। २ परमर्षिभिः = अग्निवेशभेडजातूकर्णपराशरहारीतक्षारपाणिप्रभृतिभिरित्यर्थः। ३ उपसर्गादयः = ज्वरादयः। ४ आगन्तवः = मानसत्वेनोपदिष्टा उन्मादादयः। ५ युक्तार्थाः = प्रमाणोपपन्नार्थाः, युक्तयः = तन्त्रयुक्तयः। अस्याग्रे केषाञ्चन सम्मतपाठः—"विदेहाधिपतिः श्रीमान् जनको नाम विश्रुतः। आलम्भयज्ञप्रवणः सोऽयजद् ब्राह्मणैर्वृतः॥ तस्य यागप्रवृत्तस्य कुपितो भगवान् रविः। दृष्टिं प्रणाशयामास सोऽनुतेपे महत्तपः॥ दीप्तां शुस्तपसा तेन तोषितः प्रददौ पुनः। चक्षुर्वेदं प्रसन्नात्मा सर्वभूतानुकम्पया॥" इति। ६ दुर्गाधस्य = अगाधस्य। ७ अत्र चकारेण हेतुचिकित्से समुच्चीयेते, साध्यासाध्यक्रमेण चेति चकारेण चिकित्सितेनेति समुच्चयः।

८ अक्षिगोलकं वर्णयति—**विद्यादिति**। द्व्यङ्गुलप्रमाणं बाहुल्यं स्थौल्यं यस्य तद् द्व्यङ्गुलबाहुल्यम्, अङ्गुलीनां स्थौल्यस्य वैषम्यात्पुनराह—स्वाङ्गुष्ठोदरसन्निभम्। ९ सर्वत आयामविस्ताराभ्यां द्व्यङ्गुलं सार्द्धमर्धतृतीयाङ्गुलम्, आतुरोपक्रमणीये—"द्व्यङ्गुलायतं च नयनम्" इति यदुक्तं तद् वर्त्ममण्डलं गृहीत्वा गणनयाऽर्धतृतीयाङ्गुलमिति न विरुध्यते। नयनबुद्बुदं = नेत्रगोलकम्। अत्र नयनमण्डलमिति पाठान्तरम्। १० गोस्तनाकारं = क्षीरपूर्णगोस्तनसदृशम्, सर्वभूतेभ्यस्तद् गुणेभ्यश्चोद्भवो यस्य तत् सर्वभूतगुणोद्भवम्। सर्वभूतेभ्यो नेत्रगोलकं सिरास्नाय्वस्थिसहितं साश्रुमार्गमुत्पन्नं, तद्गुणेभ्यश्च रक्तसितकृष्णगुणा उत्पन्ना इत्यर्थः।

११ येन भूतेन नयनगोलकमारभ्यते, येन च रक्तादय इति निरूपयति—**पलमि-**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाशादश्रुमार्गाश्च जायन्ते नेत्रबुद्बुदे ।
[1]दृष्टिञ्चात्र तथा वक्ष्ये यथा ब्रूयाद्विशारदः ॥ १२ ॥
नेत्रायामत्रिभागन्तु कृष्णमण्डलमुच्यते ।
कृष्णात् सप्तमं[3]मिच्छन्ति दृष्टिं दृष्टिविशारदाः ॥ १३ ॥
मण्ड[4]लानि च सन्धींश्च पटलानि च लोचने ।
यथाक्रमं विजानीयात् पञ्च षट् च षडेव च ॥ १४ ॥
पक्ष्म[5]वर्त्मश्वेतकृष्णदृष्टीनां मण्डलानि तु ।
अनूपूर्वन्तु ते[6] मध्याश्चत्वारोऽन्त्या यथोत्तरम् ॥ १५ ॥
पक्ष्म[7]वर्त्मगतः सन्धिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः ।
शुक्लकृष्णगतस्त्वन्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपरः ।
ततः कनीन[8]कगतः षष्ठश्चापाङ्गगः स्मृतः ॥ १६ ॥
द्वे[9] वर्त्मपटले विद्याच्चत्वार्य्यन्यानि चाक्षिणि ।
जायते तिमिरं येषु[10] व्याधिः परमदारुणः ॥ १७ ॥
[11]तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत् पिशिताश्रितम् ।

---

ति । पलं=मांसम्, भुवः=पृथिव्याः । १ पूर्वाचार्यप्रतिपादितप्रमाणानुरूपं दृष्टिमण्डलं प्रतिपादयति—**दृष्टिमिति** । २ विशारदः=चतुर्वेदपण्डितः, विदेह इत्यर्थः । ३ सप्तमं=सप्तमभागम् । आतुरोपक्रमणीये-"नवमस्तारकांशो दृष्टिः" इति तारकानवमांशो दृष्टिः शल्यतन्त्रानुसारेण, तारकासप्तमांशो दृष्टिरिति शालाक्यसिद्धान्तेन तारकाशब्देन कृष्णविभागः । एवं च कृष्णसप्तमभागत्वेनापि "मसूरदलमात्रां तु" इत्यत्रोक्ता मसूरार्धदलप्रमाणा दृष्टिरित्येक एवार्थः ।

४ नेत्रमण्डलसन्धिपटलानां संख्यामाह—**मण्डलानीति** । लोचने पञ्च मण्डलानि, षट् सन्धीन्, षडेव पटलानि यथाक्रमं विजानीयादित्यर्थः । ५ तान्येव नेत्रगतपञ्चमण्डलानि निर्दिशति—**पक्ष्मेति** । ६ ते=पक्ष्मादयो दृष्ट्यन्ताः, मध्याश्चत्वारः=कृष्णादयः, यथोत्तरम्=अन्त्याः । ७ नेत्रगतषट्सन्धीन् दर्शयति—**पक्ष्मेति** । ८ कनीनकगतः=नासासमीपवर्तिनेत्रान्तभागावस्थितः, अपाङ्गगः=नेत्रप्रान्तान्तःस्थित इत्यर्थः । 'अपाङ्गस्त्वङ्गहीने स्यान्नेत्रान्ते तिलकेऽपि च' इति मेदिनी । ९ षट् पटलान्याख्याति—**द्वे इति** । १० येषु=चतुर्षु पटलेष्वित्यर्थः ।

११ तिमिराश्रयभूतानि तान्येव चत्वारि पटलानि चिकित्सार्थं विभजते—**तेज इति** । तेजःशब्देन रक्तं, जलशब्देन रसो बोद्धव्यः । तेन तेजोबलाश्रितमित्यस्य रसरक्ताश्र-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितन्त्वस्थि चापरम् ॥ १८ ॥[1]
पञ्चमांशसमं दृष्टेस्तेषां बाहुल्यमिष्यते[2] ।
सिराणां कण्डराणाञ्च मेदसः कालकस्य[3] च ॥ १९ ॥
गुणाः कालात्[4]परः श्लेष्मा बन्धनेऽक्ष्णोः सिरायुतः ।
सिराऽनुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्द्ध्वमागतैः ॥ २० ॥
जायन्ते नेत्रभागेषु[6] रोगाः परमदारुणाः ।
तत्राविलं[7] ससंरम्भमश्रुकण्डूपदेहवत्[8] ॥ २१ ॥
गुरुष्मातोदरागाद्यैर्जुष्टञ्चाव्यक्तलक्षणैः ।
सशूलं वर्त्मकोषेषु शूकपूर्णाभमेव च ॥ २२ ॥
विहन्यमानं[10] रूपे वा क्रियास्वक्षि यथा पुरा ।
दृष्ट्वैव धीमान् बुध्येत दोषेणाधिष्ठितं तु तत् ॥ २३ ॥
तत्र[11] सम्भवमासाद्य यथादोषं भिषग्जितम्[12] ।
विद्ध्यान्नेत्रजा रोगा बलवन्तः स्युरन्यथा ॥ २४ ॥
सङ्क्षेपतः[13] क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम् ।

---

यमित्यर्थः । बाह्यं = नेत्रगोलकस्य प्रथमं पटलम्, अन्यत् = द्वितीयम् । पिशिताश्रितं मांससंश्रयम् । १ पटलं = त्वक्, मेदःसंश्रयम् । अपरं = चतुर्थम् । कालकास्थिसंस्थितम् । २ दृष्टेः = स्वाङ्गुष्ठोदरस्थूलस्य नेत्रस्य, पञ्चमांशसमं तेषां चतुर्णां पटलानां मिलितानामित्यर्थः । बाहुल्यं = स्थौल्यम् । ३ कालकस्य = कालकास्थनः । ४ कालात् = कृष्णभागात्, परः = शुक्लभागः, बन्धने = परस्परं संहनने ।

५ नेत्ररोगाणां सामान्यां रूपप्राप्तिं प्रतिपादयति—सिरेति । ६ नेत्रभागेषु = नेत्रस्य दृष्टाद्यवयवेषु । ७ नेत्ररोगाणां पूर्वरूपमाचष्टे—तत्रेति । आविलं = कलुषम्, अश्रुपूर्णमित्यर्थः । ससंरम्भम् = ईषद्रागवेदनम्, उपदेहो दूषिका विद्यतेऽस्येति उपदेहवत् । ८ अत्रादिशब्दः गुरुत्वादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते, तेन गुरुत्वादिश्लेष्मचिह्नैः, ओषादिपित्तचिह्नैः, तोदादिवातचिह्नैः, रागादिशोणितचिह्नैरित्यर्थो बोध्यः ।

९ शूकपूर्णाभं = धान्यादीनां तीक्ष्णेनाग्रेण प्रपूरितमिव क्लेशावहमित्यर्थः । १० रूपे नीलपीतादौ क्रियासु दर्शनोन्मीलितादिषु यथा पुरा आसीत्, ततो विहन्यमानं विकृतिमापद्यमानमक्षि दृष्ट्वैवेति परेणान्वयः ।

११ नेत्ररोगे पूर्वरूपे एव क्रिया कार्येत्युपदिशति—तत्रेति । १२ भिषग्जितं = भेषजमित्यर्थः । १३ संशोधनसंशमनादिक्रियायोग इत्यर्थः ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वातादीनां प्रतीघातः प्रोक्तो विस्तरतः[1] पुनः ॥ २५ ॥
उष्णाभितप्तस्य[2] जलप्रवेशाद् दूरेक्षणात् स्वप्नविपर्य्ययाच्च ।
प्रसक्तसंरोदनकोपशोककक्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च[3] ॥ २६ ॥
शुक्तारनालाम्लकुलत्थमाषनिषेवणाद्वेगविनिग्रहाच्च ।
स्वेदादथो[4] धूमनिषेवणाच्च छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ।
बाष्पग्रहात्[5] सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकारान् जनयन्ति दोषाः॥२७॥
वातादृदश[6] तथा पित्तात् कफाच्चैव त्रयोदश ।
रक्तात् षोडश विज्ञेयाः सर्वजाः पञ्चविंशतिः ॥ २८ ॥
तथा बाह्यौ[7] पुनर्द्वौ च रोगाः षट्सप्ततिः स्मृताः ।
हताधिमन्थो[8] निमिषो दृष्टिर्गम्भीरिका च या ॥ २९ ॥
यच्च वातहतं वर्त्म न ते सिध्यन्ति वातजाः ।
याप्योऽथ तन्मयः[9] काचः साध्याः स्युः सान्यमारुताः ॥३०॥
शुष्काक्षिपाकाधीमन्थस्यन्दमारुतपर्य्ययाः ।
असाध्यो[10] ह्रस्वजाड्यो यो जलस्रावश्च पैत्तिकः ॥ ३१ ॥
परिम्लायी च नीलश्च याप्यः काचोऽथ तन्मयः ।

---

१ विस्तरतो विस्तरेण पुनः वातादीनां प्रतीघातो येनौषधप्रयोगेण वातादीनां विघातः सः क्रियायोगः प्रोक्त इत्यर्थः । २ नेत्ररोगनिदानानि वक्ति—उष्णेति । उष्णेनातपादिना सन्तप्तदेह उष्णाभितप्तस्तस्य तथोक्तस्य, जलप्रवेशात्=जलावगाहनात्, शीतावृतदेहस्योर्ध्वगतेनोष्मणा नयनतेजसोऽभिभवाच्चक्षूरोगोदय इति भावः । दूरेक्षणात्=दूरस्थद्रव्यदर्शनात्, स्वप्नविपर्ययात्=रात्रिजागरणादिवास्वप्नाच्चेत्यर्थः।

३ क्लेशः कामक्रोधादिदुःखं, तेनाभितापः पीडा तस्मात् । ४ स्विद्यतेऽनेनेति स्वेदोऽग्न्यादिस्तस्मात् । ५ बाष्पग्रहात्=अश्रुवेगधारणात्, यदुक्तम्—"आनन्दजं वाऽप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि । शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन " इति तन्त्रान्तरे ।

६ नेत्ररोगाणां संख्यामाख्याति—वातादिति । ७ बाह्यौ=बहिर्निमित्तभवौ, एकोऽभिघातोत्पन्नः सनिमित्तः, अन्यः सुरर्षिगन्धर्वादिदर्शनाभिहतशक्तिरनिमित्तः । इमे षट्सप्तती रोगा अग्रे नामादितो निर्दिश्यन्ते । तन्त्रान्तरेऽष्टसप्तती रोगा उक्ताः, तेऽपि प्रदर्श्यन्ते । ८ वातजन्यनेत्ररोगाणां साध्यासाध्ये विचारयति—हतेति । ९ तन्मयः=वातात्मक इत्यर्थः । १० पित्तजन्यनेत्ररोगाणां साध्यासाध्यविचारं दर्श-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिष्यन्दोऽधिमन्थोऽम्लाध्युषितं शुक्तिका[1] च या ॥ ३२ ॥
दृष्टिः पित्तविदग्धा च धूमदर्शी च सिद्ध्यति ।
असाध्यः[2] कफजः स्रावो याप्यः काचश्च तन्मयः ॥ ३३ ॥
अभिष्यन्दोऽधिमन्थश्च बलासग्रथितञ्च यत् ।
दृष्टिः श्लेष्मविदग्धा च पोथक्यो लगणश्च यः ॥ ३४ ॥
क्रिमिग्रन्थिपरिक्लिन्नवर्त्मशुक्लार्मपिष्टकाः ।
श्लेष्मोपनाहः साध्यास्तु कथिताः श्लेष्मजेषु[3] तु ॥ ३५ ॥
रक्तस्रावोऽजकाजातं शोणितार्शोव्रणान्वितम् ।
शुक्रं[4] न साध्यं काचश्च याप्यस्तज्जः प्रकीर्त्तितः ॥ ३६ ॥
मन्थस्यन्दौ क्लिष्टवर्त्म हर्षोत्पातौ तथैव च ।
सिराजाताऽञ्जनाख्या च सिराजालञ्च यत् स्मृतम् ॥ ३७ ॥
पर्वण्यथाव्रणं शुक्रं शोणितार्मार्जुनश्च यः ।
एते साध्या विकारेषु रक्तजेषु[5] भवन्ति हि ॥ ३८ ॥
पूयस्रावो[6] नाकुलान्ध्यमक्षिपाकात्ययोऽलजी ।
असाध्याः सर्वजा याप्याः[7] काचः कोपश्च पक्ष्मणः ॥ ३९ ॥
वर्त्मावबन्धो यो व्याधिः सिरासु पिडका च या ।
प्रस्तार्यर्मार्धिमांसार्मस्नाय्वर्मोत्सङ्गिनी च या ॥ ४० ॥
पूयालसश्चार्बुदञ्च श्यावकर्दमवर्त्मनी ।
तथाऽर्शोवर्त्म शुष्कार्शः शर्करावर्त्म यच्च वै ॥ ४१ ॥
सशोफश्चाप्यशोफश्च पाको बहुलवर्त्म च ।
अक्लिन्नवर्त्म कुम्भीका बिसवर्त्म च सिध्यति ॥ ४२ ॥
सनिमित्तोऽनिमित्तश्च द्वावसाध्यौ तु बाह्यजौ ।
षट्सप्ततिर्विकाराणामेषां सङ्ग्रहकीर्तिता ॥ ४३ ॥

---

यति—असाध्य इति । १ शुक्तिका = शुक्लभागगता । २ श्लेष्मजनेत्ररोगाणां साध्यासाध्ये विचारयति—असाध्य इति । ३ श्लेष्मजेषु = कफजेषु त्रयोदशसु मध्ये ।
४ रक्तजनेत्ररोगाणां साध्यासाध्यविचारमाचष्टे—रक्तेति । ५ रक्तजेषु = षोडसु शोणितेषु मध्ये । ६ सान्निपातिकनेत्ररोगाणां साध्यासाध्यविचारं प्रदर्शयति—पूयेति । ७ काचः पक्ष्मणः कोपश्च याप्य इत्यन्वयः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नव[1] सन्ध्याश्रयास्तेषु वर्त्मजास्त्वेकविंशतिः ।
शुक्लभागे दशैकश्च चत्वारः कृष्णभागजाः ॥ ४४ ॥
सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टिजा द्वादशैव तु ।
बाह्यजौ द्वौ समाख्यातौ रोगौ परमदारुणौ ।
भूय एतान् प्रवक्ष्यामि सङ्ख्यारूपचिकित्सितैः ॥ ४५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे औपद्रविको नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

---

## द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातः[2] सन्धिगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
पूयालसः[3] सोपनाहः स्रावाः पर्वणिकाऽलजी ।
क्रिमिग्रन्थिश्च विज्ञेया रोगाः सन्धिगता नव ॥ ३ ॥

---

१ सन्ध्याद्याश्रयभेदेन नेत्ररोगसंख्यानमाख्याति—नवेति । तन्त्रान्तरे—"द्वादश व्याधयो दृष्टौ तत्रैवान्यौ गदावुभौ । कृष्णमार्गे तु चत्वारो दशैकः शुक्लभागजाः ॥ वर्त्मन्येको विंशतिश्च पक्ष्मजौ द्वौ प्रकीर्तितौ । नव सन्धिषु सर्वस्मिन् नेत्रे सप्तदशोदिताः ॥ एवं नेत्रे समस्ताः स्युरष्टसप्ततिरामयाः ॥" इति ।

इति सुश्रुतसंहितायाः उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां प्रथमोऽध्यायः ।

---

### द्वितीयोऽध्यायः ।

२ पूर्वाध्याये 'नवसन्ध्याश्रयास्तेषु' इत्युक्तं प्रतिपादितुं सन्धिगतरोगविज्ञानीयमध्यायमधिकरोति—अथेति । सन्धयस्तु—"पक्ष्मवर्त्मगतः सन्धिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः । शुक्लकृष्णगतश्चान्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपि च । मतः कनीनकगतः षष्ठश्चापाङ्गसंश्रितः ॥" इति । तत्र सन्धिगतनेत्ररोगाणां नामानि निर्दिशति—पूयालस इति ।

३ अन्यत्र क्रिमिग्रन्थिरित्यत्र जन्तुग्रन्थिरिति नामान्तरं दृश्यते । तद्यथा—"पूयालसः सोपनाहःस्रावाश्चत्वार एव च । पर्वणिकाऽलजी जन्तुग्रन्थिः सन्धौ नवामयाः ॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्वः[1] शोफः सन्धिजः संस्रवेद् यः स्रान्द्रं पूयं पूति पूयालसः सः ।
ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसन्धावपाकः[2] कण्डूप्रायो नीरुजस्तूपनाहः ॥ ४ ॥
गत्वा[3] सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावान् रुग्विहीनान् कनीनात् ।
तान् वै स्रावान् नेत्रनाडीमथैके[4] तस्या लिङ्गं कीर्त्तयिष्ये चतुर्धा ॥ ५ ॥
पाकः सन्धौ संस्रवेद् यश्च पूयं पूयास्रावो नैकरूपः[5] प्रदिष्टः ।
श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं संस्रवेद्यः श्लेष्मास्रावो नीरुजः सः प्रदिष्टः ॥ ६ ॥
रक्तास्रावः शोणितोत्थः सरक्तमुष्णं नाल्पं संस्रवेन्नातिसान्द्रम् ।
पीताभासं नीलमुष्णं जलाभं पित्तास्रावः संस्रवेत् सन्धिमध्यात्[6] ॥ ७ ॥
ताम्रा[7] तन्वी दाहशूलोपपन्ना रक्ताज्ञेया पर्वणी वृत्तशोफा ।
जाता सन्धौ कृष्णशुक्लेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव[8] ख्यापिता पूर्वलिङ्गैः ॥ ८ ॥

---

इति । १ पूयालसलक्षणमाख्याति—पक्व इति । अयं सन्निपातजन्यः साध्यश्च । सन्धिजः = कनीनकसन्धिजातः । यदाह विदेहः—"शोथक्लेदसमाविष्टं तोदभेदसमाकुलम् । 'पूयालसं तु तं विद्यात् सन्धौ कानीनके नृणाम् ॥" इति ।

२ उपनाहलक्षणं दर्शयति-ग्रन्थिरिति । कफजन्योऽयं साध्यश्च । नाल्पः = महान्, दृष्टिसन्धौ = दृष्टिविवरे जलकोष्ठपटोपरि, अपाकः = ईषत्पाकः, नीरुजः = ईषद्वेदनः; "वायुः श्लेष्माणमादाय दृष्टिसन्धौ व्यवस्थितः । अरुणं कठिनं ग्रन्थिं जनयत्यल्पवेदनम् ॥" इति विदेहवचनात् । ३ चतुर्णां नेत्रस्रावाणां लक्षणानि वक्ति-गत्वेति । एते चत्वारोऽप्यसाध्याः । सन्धीनिति बहुत्वेन सर्व एव सन्धयो गृह्यन्ते । अश्रुमार्गशब्देन सिरा बोध्या । तथा च-"अश्रुस्रावः सिरा गत्वा नेत्रसन्धिषु तिष्ठति । ततः कनीनकं गत्वा चाश्रु कृत्वा कनीनके । ततः स्रवत्यथास्रावं यथादोषमवेदनम् ॥" इति विदेहः । केवलेन वातेनासम्भवाद् वातिकस्रावो न भवतीति बोध्यम् । ४ वदन्तीति शेषः । ५ नैकरूपः = सन्निपातजत्वाद् बहुरूप इत्यर्थः । ६ सन्धिमध्यात् = कनीनकसन्धिमध्यात् ।

७ पर्वण्यलज्योर्लक्षणमभिदधाति-ताम्रेति । इयं रक्तजा कफानिलजा च । ८ तस्मिन्नेव = कृष्णशुक्लयोरेव सन्धौ, पूर्वलिङ्गैः = पर्वणीलिङ्गैः । अनयोः स्थानलक्षणाभ्यामैक्येऽपि पर्वणी तन्वी, अलजी स्थूलेति भेदः । तथा च विदेहः—"शुक्लकृष्णान्तसन्धौ तु चीयन्तेऽसृक्कफानिलाः । पर्वणीपिडका तैस्तु जायते त्वङ्कुरोपमा । ताम्रा सदाहचोषोष्णपीतकाश्रुसमाकुला । कफपित्ते तु सम्मूर्च्छ्य सह रक्तेन मारुतः । शुक्लकृष्णान्तसन्धौ तु जनयेद् गोस्तनाकृतिम् । पिडकामलजीं तां तु विद्धि तोदाश्रुसङ्कुलाम् ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिमिग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युः क्रिमयः सन्धिजाताः ।
नानारूपा वर्त्मशुक्लस्य सन्धौ चरन्तोऽन्तर्नयनं दूषयन्ति ॥ ९ ॥
इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे सन्धिगतरोगविज्ञानीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

---

## तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो वर्त्मगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
पृथग्दोषाः समस्ता वा यदा वर्त्मव्यपाश्रयाः ।
सिरा व्याप्यावतिष्ठन्ते वर्त्मस्वधिकमूर्च्छिताः ॥ ३ ॥
विवर्द्धयं मांसं रक्तञ्च तदा वर्त्मव्यपाश्रयान् ।
विकाराञ्जनयन्त्याशु नामतस्तान्निबोधत ॥ ४ ॥
उत्सङ्गिन्यथ कुम्भीका पोथक्यो वर्त्मशर्करा ।

---

१ क्रिमिग्रन्थिलक्षणमभिधत्ते—क्रिमीति । कफजोऽयं साध्यश्च । वर्त्मनः पक्ष्मणश्च सन्धिजाता इति सम्बन्धः । विदेहः—"वर्त्मशुक्लस्य सन्धौ तु ग्रन्थिः पित्तकफात्मकः । ऊष्मणा पच्यते गाढं तत्र मूर्च्छन्ति जन्तवः ॥ सूक्ष्मजातचरणा वर्त्मपक्ष्मसमाश्रयाः । तत्रस्ते पूयसंसृष्टाः पतन्ति क्रिमयस्तथा ॥ लक्षणैर्विविधैर्युक्ताः सन्निपातसमुत्थिताः । क्रिमिग्रन्थिं तु तं विद्याद्दृष्टिनाशनेत्रदूषणम् ॥" इति । २ चरन्तः=भक्षयन्तः, 'चर गतिभक्षणयोः' इति धातुः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वितीयोऽध्यायः ।

---

## तृतीयोऽध्यायः ।

३ 'वर्त्मजास्त्वेकविंशतिः' इति क्रमागतत्वादधुना वर्त्मगतरोगविज्ञानीयमधिकरोति—अथेति । नयनगोलकावरकं निमेषोन्मेषाश्रयं पटलद्वयं वर्त्म उच्यते । द्वे वर्त्मनी, "वर्त्मनी नयनच्छदौ" इति कोशः । ४ तत्र तावद्वर्त्मरोगाणां सम्प्राप्तिं वक्ति—पृथगिति । ५ अपोपसर्गस्य मध्यार्थकत्वाद् वर्त्मव्यपाश्रया वर्त्ममध्यगता इत्यर्थः । ६ अधिकमूर्च्छिताः=अतिशयप्रकुपिताः । ७ एकविंशतिवर्त्मगतरोगाणां नामानि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथाऽर्शोवर्त्म शुष्कार्शस्तथैवाञ्जननामिका ॥ ५ ॥
बहलं वर्त्म यच्चापि व्याधिर्वर्त्मावबन्धकः ।
क्लिष्टकर्दमवर्त्माख्यौ श्याववर्त्म तथैव च ॥ ६ ॥
प्रक्लिन्नमपरिक्लिन्नं वर्त्म वातहतन्तु यत् ।
अर्बुदं निमिषश्चापि शोणितार्शश्च यत् स्मृतम् ॥ ७ ॥
लगणो विषनामा च पक्ष्मकोपस्तथैव च ।
एकविंशतिरित्येते विकारा[1] वर्त्मसंश्रयाः ॥ ८ ॥
नामभिस्ते समुद्दिष्टा ल क्षणैस्तान् प्रचक्ष्महे ।
अभ्यन्तरमुखी[2] बाह्योत्सङ्गेऽधो वर्त्मनश्च[3] या ॥ ९ ॥
विज्ञेयोत्सङ्गिनी नाम तद्रूपपिडकाचिता ॥
कुम्भीकबीजप्रतिमाः[4] पिडका यास्तु वर्त्मजाः ॥ १० ॥
आध्मापयन्ति भिन्ना याः कुम्भीकपिडकास्तु ताः ।
स्रावि[5]ण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः ।
पिडकाश्च रुजा[6]त्यः पोथक्य इति संज्ञिताः ॥ ११ ॥
पिडकाभिः[7] सुसूक्ष्माभिर्घनाभिरभिसंवृता ।

---

ब्रवीति—उत्सङ्गिनीति । १ विकाराः=रोगाः ।

२ उत्सङ्गिनीलक्षणमाख्याति—अभ्यन्तरेति । वर्त्मन एवाभ्यन्तरे मुखं यस्याः सा अभ्यन्तरमुखी । ३ चकारेण विदेहोक्तकाठिन्यादिकं समुच्चीयते । तथा च विदेहः—"वर्त्मोत्सङ्गेऽधरे जन्तोः सन्निपातात् प्रजायते । अभ्यन्तरमुखी स्थूला बाह्यतश्चापि दृश्यते ॥ पिडका पिडकाभिश्च चिताऽन्याभिः समन्ततः । उत्सङ्गपिडका नाम कठिना मन्दवेदना । सा प्रभिन्ना स्रवेत् स्रावं कुक्कुटाण्डरसोपमम् ॥" इति ।

४ कुम्भीकालक्षणं निर्दिशति—कुम्भीकेति । कुम्भीका कच्छदेशोद्भवा दाडिमफलाकारफला लता, तद्बीजेन प्रतिमा यासां ता इत्यर्थः । सन्निपातजाः साध्याश्च । एषा त्रिदोषजा असाध्या चेति विजयरक्षितः । ५ पोथकीलक्षणं दर्शयति—स्राविण्य इति । स्राविण्यः=बहुस्रावाः, कण्डुराः=कण्डुयुक्ताः, गुर्व्यः=गौरवयुताः । ६ रुजावत्यः=रक्तसम्बन्धात् कफजा अपि वेदनाऽन्विता इत्यर्थः । एता अपि साध्याः ।

७ वर्त्मशर्करालक्षणमभिदधाति—पिडकाभिरिति । विदेहः—"सुसूक्ष्मपिडकाकीर्णा या स्थूला पिडका खरा । जायते सन्निपातात्तु वर्त्मशर्करिकेति सा ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिडका या खरा[1] स्थूला सा ज्ञेया वर्त्मशर्करा ॥ १२ ॥
एर्वारुबीजप्रतिमाः पिडका मन्दवेदनाः ।
सूक्ष्माः खराश्च[3] वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ॥ १३ ॥
दीर्घो[4]ऽङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणो वर्त्मसम्भवः ।
व्याधिरेष समाख्यातः शुष्कार्श इति संज्ञितः ॥ १४ ॥
दा[5]तोदवती ताम्रा पिडका वर्त्मसम्भवा ।
मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्जननामिका ॥ १५ ॥
वर्त्मो[6]पचीयते यस्य पिडकाभिः समन्ततः ।
सवर्णा[7]भिः समाभिश्च विद्याद् बहलवर्त्म तत् ॥ १६ ॥
कण्डू[8]मताऽल्पतोदेन वर्त्मशोफेन यो नरः ।
न समं छादयेदक्षि भवेद् बन्धः स वर्त्मनः ॥ १७ ॥
मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव[9] च ।
अकस्माच्च[10] भवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्म तदादिशेत् ॥ १८ ॥

---

सन्निपातजेयं साध्या च । १ खरा = खरस्पर्शा । २ अर्शोवर्त्मलक्षणं प्रतिपादयति—**एर्वारुविति** । एर्वारुः = ग्रीष्मकर्कटी । ३ खराः = तीक्ष्णाग्राः, वर्त्मस्था इत्यविशेषिताभिधानादन्तर्बहिश्च वर्त्मनो भवतीति गम्यते । तथा च विदेहः—"नीरुजा कठिना वर्त्मपक्ष्मान्तर्बाह्यतोऽपि वा । पिडका सन्निपातेन तदर्शोवर्त्म निर्दिशेत् ॥" इति । इदं सन्निपातजं साध्यं च । ४ शुष्कार्शोलक्षणमाख्याति—**दीर्घ इति** । दारुणः = बहुदुःखदः । अत्र विदेहः—"वर्त्माभ्यन्तर्गतं त्वर्शः शुष्कं स्थूलं च दारुणम् । जायते सन्निपातेन तच्छुष्कार्शः प्रकीर्तितम् ॥" इति । सन्निपातजमिदं साध्यं च ।

५ अञ्जननामिकालक्षणमभिधत्ते—**दाहेति** । इयं रक्तजा साध्या च । ६ बहलवर्त्मलक्षणं वक्ति—**वर्त्मेति** । इदमपि सन्निपातजं साध्यं च । ७ सवर्णाभिः = त्वक्समानवर्णाभिरित्यर्थः । ८ वर्त्मबन्धलक्षणमाह—**कण्डूमतेति** । वर्त्मशोफेनोपलक्षितो नरः स चक्षुर्न समं छादयेत् छादयितुं शक्नुयादित्यर्थः । सन्निपातजोऽयं व्याधिः साध्यश्च । ९ क्लिष्टवर्त्मलक्षणं ब्रवीति—**मृद्विति** । एतद्रक्तजं साध्यं च । रक्तजत्वेऽप्यस्य अल्पवेदनत्वमधिककफदूषितत्वाद्रक्तस्य । वर्त्मेति निमित्तवचनाद् वर्त्मद्वयं ग्राह्यम् । तथा च निमिः—"श्लेष्मदुष्टेन रक्तेन क्लिष्टं मांसमिवोभयम् । बन्धुजीवनिभं वर्त्म क्लिष्टवर्त्म तदुच्यते ॥" इति । समम् = एककालम् । १० अकस्मात् = अनियमादित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लिष्टं[1] पुनः पित्तयुतं विदहेच्छोणितं यदा ।
तदा क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमम् ॥ १९ ॥
यद्वर्त्म[2] बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् ।
दाहकण्डूपरिक्लेदि श्याववर्त्मेति तन्मतम् ॥ २० ॥
अरुजं[3] बाह्यतः शूनमन्तः क्लिन्नं स्रवत्यपि ।
कण्डूनिस्तोदभूयिष्ठं क्लिन्नवर्त्म तदुच्यते ॥ २१ ॥
यस्य[4] धौतानि धौतानि सम्बध्यन्ते पुनः पुनः ।
वर्त्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥ २२ ॥
विमुक्तसन्धि[5] निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते ।
एतद्वातहतं विद्यात् सरुजं यदि वाऽरुजम् ॥ २३ ॥

---

१ वर्त्मकर्दमलक्षणमभिदधाति—**क्लिष्टमिति** । क्लिष्टं क्लिष्टवर्त्मैव यदा पित्तयुतं शोणितं विदहेद् विरुद्धदाहेन संयोजयेत्, तदा क्लिन्नत्वमापन्नम् आर्द्रतां गतं वर्त्मकर्दम उच्यते इति सम्बन्धः । अयं पित्ताधिकसन्निपातजः साध्यश्च । २ श्यावर्त्मलक्षणं वक्ति—**यद्वर्त्मेति** । बहिरन्तश्च श्यावत्वं वातकृतम् । तथा च विदेहः—"दुष्टः श्लेष्मा मरुत्पित्तं वर्त्मनोश्चीयते यदा । अग्निदग्धनिभं श्यावं श्याववर्त्मेति तद्विदुः ॥" इति । एतद्वाताधिकदोषत्रयजन्यं साध्यं च ।

३ क्लिन्नवर्त्मलक्षणं ब्रवीति—**अरुजमिति** । अरुजम् = ईषदव्यथम्, बाह्यतः शून = बहिःशोथयुक्तम् । क्वचिदस्य प्रक्लिन्नवर्त्मेति नामभेदः । चक्षुष्येण पिल्लाख्यया पठितमिदम् । तथा हि—"भृशं प्रक्लिद्यते वर्त्म कण्डूमन्मन्दवेदनम् । विद्यात् प्रक्लिन्नवर्त्मेति तत् पिल्लं सन्निपातजम् ॥" इति । विदेहवचनाद् अक्लिन्नवर्त्मैव पिल्लाख्यं, तस्य सन्निपातत्वात् । न तु प्रक्लिन्नवर्त्म, तस्य कफात्मकत्वात । इदं श्लेष्मजं साध्यं च । ४ अक्लिन्नवर्त्मलक्षणमभिदधाति—**यस्येति** । यस्यरोगस्य वर्त्मानि धौतानि धौतानि पुनः पुनः प्रक्षालितानि बहिरन्तश्चापरिपक्वानि पाकरहितानि, तथाऽपि सम्बध्यन्ते आनह्यन्ते, पिल्लोपदेहेन संलग्नानि भवन्ति; तदक्लिन्नवर्त्मविद्यादित्यर्थः । सन्निपातजं साध्यञ्चेदम् । एतदेव पिल्लाख्यम् । तथा च विदेहः—"प्रक्षालितेऽथवा मृष्टे आनह्येत पुनः पुनः । अपरिक्लिन्नवर्त्मेति तत्पिल्लमिति निर्दिशेत् ॥" इति । क्वचित् पिल्लाख्यमन्यथा पठितम्—"पित्तश्लेष्मप्रकोपेण वर्त्मान्तः परिपाट्यते । ताम्रं निर्लोम तच्चापि विशिष्टं पिल्ललक्षणम् ॥" इति । वाग्भटेन कुकूणकादीनामष्टादशानां पिल्लाख्या कृतेति बोध्या ।

५ वाताहतवर्त्मलक्षणमाख्याति—**विमुक्तेति** । विमुक्तो विश्लिष्टो वर्त्मशुक्लगतः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ।
विज्ञेयमर्बुदं पुंसां स[2]रक्तमवलम्बितम् ॥ २४ ॥
नि[3]मेषिणीः सिरा वायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयाः ।
चालयत्यति बर्त्मानि निमेषः स गदो मतः ॥ २५ ॥
छि[4]न्नाश्छिन्ना विवर्द्धन्ते वर्त्मस्था मृदवोऽङ्कुराः ।
दाहकण्डूरुजोपेतास्तेऽर्शः शोणितसम्भवाः ॥ २६ ॥
अ[5]पाकः कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः ।
सकण्डूः पिच्छिलः कोलप्रमाणो लगणस्तु सः ॥ २७ ॥
शू[6]नं यद्वर्त्म बहुभिः सूक्ष्मैश्छिद्रैः समन्वितम् ।

---

सन्धियंस्मात् तद् विमुक्तसन्धि स्थानच्युतसन्धि, निश्चेष्टं = निष्क्रियम्, निमेषोन्मेषरहितमित्यर्थः । अत एव न मील्यते सङ्कुचतीत्यर्थः । क्वचित् 'निमील्यते' इति पाठः । तत्र निमीलितमेव तिष्ठतीत्यर्थः । युक्तोऽयं पाठः । वातजमिदमसाध्यञ्च । १ वर्त्मार्बुदलक्षणं प्रतिपादयति—**वर्त्मेति** । वर्त्मान्तरस्थं = वर्त्मनोऽभ्यन्तरस्थम्, विषमं = कष्टकारि, ग्रन्थिभूतं = ग्रन्थिरूपेण स्थितम्, अवेदनमिति ईषदर्थे नञ्, तेन ग्रन्थिरिवाल्पवेदनमित्यर्थः । सन्निपातजं साध्यं च । २ सरक्तं = पित्तानुबन्धात् किञ्चिद्रक्तमित्यर्थः । अवलम्बितं = वर्त्माश्रितम् ।

३ निमेषलक्षणमभिदधाति—**निमेषिणीरिति** । यद्बलेन निमेषोन्मेषौ भवतस्ताः सिरा निमेषिण्यः । वायुः वर्त्मसंश्रयाः निमेषिणीः सिराः प्रविष्टः सन् वर्त्मानि चालयतीत्यन्वयः । 'वर्त्मसंश्रयाः' इत्यत्र 'सन्धिसंश्रयाः' इति पाठान्तरम् । तत्र सन्धिसंश्रया वर्त्मशुक्लगता इत्यर्थः । चक्षुष्येण चोन्मेषणीः सिरा इत्युक्तम् । तथा च तद्वचनम्—"उन्मेषणीः सिरा वायुः प्रविश्य चावतिष्ठते । अत्यर्थं चालयेद्वर्त्म निमेषः स न सिध्यति ॥" इति । वातजोऽयमसाध्यश्च ।

४ शोणिताशोंलक्षणं वक्ति—**छिन्ना इति** । ये शोणितसम्भवा मृदवो वर्त्मस्थाऽङ्कुरा अङ्कुराकारा मांसोच्छ्रयाः छिन्नाश्छिन्ना दाहकण्डूरुजोपेताः सन्तो विवर्धन्ते तेऽङ्कुरा अर्शः शोणिताशं इत्यर्थः । इद रक्तजमसाध्यं च । तथा च विदेहः—"वायुः शोणितमादाय सिराणां प्रमुखे स्थितः । जनयत्यङ्कुरं ताम्रं वर्त्मनि च्छिन्नरोहणम् । तच्छोणिताशोंऽसाध्यं स्याद्रक्तस्राव्यथ नीरुजम् ॥" इति । ५ लगणलक्षणमाह—**अपाक इति** । व्याधिरयं श्लेष्मजः साध्यश्च । तथा च सात्यकिः—"वर्त्मोपरिष्टाद्यो ग्रन्थिः कठिनो न विपच्यते । नीरुजो लगणो नाम रोगः श्लेष्मसमुद्भवः ॥" इति ।

६ बिसवर्त्मलक्षणमभिधत्ते—**शूनमिति** । एतत् सन्निपातजं साध्यं च । सात्यकिस्तु—"बिसस्योपाचितस्येव बहुमांससिरामुखम् । बिसवर्त्मेति जानीयाद् दुश्चि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिसमन्तर्जल इव बिसवर्त्मेति तन्मतम् ॥ २८ ॥
दोषाः[1] पक्ष्माशयगतास्तीक्ष्णाग्राणि खराणि च।
निर्वर्त्तयन्ति[2] पक्ष्माणि तैर्घृष्टऊचाक्षि दूयते ॥ २९ ॥
उद्धृतैरुद्धृतैः[3] शान्तिः पक्ष्मभिश्चोपजायते।
वातातपानलद्वेषी पक्ष्मकोपः स उच्यते ॥ ३० ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे वर्त्मगतरोगविज्ञानीयो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

## चतुर्थोऽध्यायः।

अथातः[4] शुक्लगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
प्रस्तारि[5]शुक्लक्षतजाधिमांसस्नाय्वर्मसंज्ञाः खलु पञ्च रोगाः।
स्युः शुक्तिका चार्जुनपिष्टकौ च जालं सिराणां पिडकाश्च[6] याः स्युः॥३॥
रोगा बलासग्रथितेन[7] सार्द्धमेकादशाक्ष्णोः खलु शुक्लभागे।

---

कित्स्यं त्रिदोषजम् ॥" इत्याह। १ पक्ष्मकोपलक्षणं प्रतिपादयति—**दोषा इति**। सन्निपातजोऽयं व्याधिः साध्यश्च। पक्ष्माशयो वर्त्म तद्गताः पक्ष्माशयगताः। २ निर्वर्तयन्ति=नेत्रान्तः प्रवेशयन्ति। पक्ष्माणि=प्रतिबालान्। ३ उद्धृतैरुद्धृतैः=उन्मूलितैरुन्मूलितैः। अन्यत्र उपपक्ष्मनाम्ना पठितोऽयम्—"पक्ष्मोपरोधो वातेन कोऽतोऽन्तर्मुखरोगवान्। रोमैरन्तर्मुखैरन्यैरुपपक्ष्म मलैस्त्रिभिः॥" इति।

इति सुश्रुतसंहितायाः उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां तृतीयोऽध्यायः।

---

### चतुर्थोऽध्यायः।

४ क्रमप्राप्तं "शुक्लभागे दशैकश्च" इति प्रागुक्तं निरूपयितुं शुक्लगतरोगविज्ञानीयाध्यायमधिकरोति—**अथेति**। वर्त्ममण्डलाद् शुक्लमण्डलस्यानन्तर्यात् तद्गतरोगविज्ञानीयाध्यायस्यारम्भो युक्त एव। ५ एकादशानां नेत्रशुक्लभागगतरोगाणां नामानि निर्दिशति—**प्रस्तारीति**। प्रस्तार्यादिभिः पञ्चभिः सह अर्मशब्दस्य सम्बन्धः। ६ चकारात् सिराशब्दस्य अत्राक्षिप्य अन्वयात् सिरापिडकाश्चेत्यर्थः। ७ बलासग्रथितेन=बलासग्रथितनाम्नेत्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तारि[1] प्रथितमिहार्मं शुक्लभागे विस्तीर्णं[2] तनु रुधिरप्रभं सनीलम् ४
शुक्ल[3]ाख्यं मृदु कथयन्ति शुक्लभागे स[4]श्वेतं समिह वर्द्धते चिरेण।
यन्[5]मांसं प्रचयमुपैति शुक्लभागे पद्माभं तदुपदिशन्ति लोहितार्मं ॥५॥
विस्तीर्ण[6] मृदु बहलं यकृत्प्रकाशं श्यावं वा तदधिकमांसजार्मं विद्यात्।
शुक्ले[7] यत्पिशितमुपैति वृद्धिमेतत्स्नाय्वर्मेत्यभिपठितं खरं प्रपाण्डु ।६।
श्या[8]वाः स्युः पिशितनिभाश्च बिन्दवो ये
शुक्त्याभाः सितनयने स शुक्तिसंज्ञः।
[9]एको यः शशरुधिरोपमस्तु बिन्दुः

---

१ प्रस्तार्यर्मलक्षणं दर्शयति—**प्रस्तारीति**। २ तनु=अबहलम्, रुधिरप्रभं=रक्तवर्णम्, सनीलम्=ईषन्नीलम्, सहयोगेनाप्राधान्याद् ईषन्नीललोहितमित्यर्थः। "समन्ताद्विस्तृतः श्यावो रक्तो वा मांससञ्चयः। सन्निपातेन दोषाणां प्रस्तार्यर्मं तदुच्यते ॥" इति निमिः। इदं सन्निपातजं साध्यं च। ३ शुक्लार्मलक्षणं दर्शयति—**शुक्लाख्यमिति**। शुक्लाख्यं=शुक्लार्मेत्यर्थः। ४ सश्वेतं=किञ्चिच्छ्वेतम्, समं=समानम्, चिरेण=चिरकालेन, वर्धते श्लेष्मजत्वादित्यर्थः। ५ रक्तार्मलक्षणं प्रतिपादयति—**यदिति**। प्रचयं=वृद्धिम्। रक्तजमेतत् साध्यं च।

६ अधिमांसार्मलक्षणमभिदधाति—**विस्तीर्णमिति**। विस्तीर्णं=विततम्, मृदु=कोमलम्, बहलं=स्थूलम्। यकृत्प्रकाशम्=ईषत्कृष्णलोहितम्। श्यावं वेति वाशब्दः समुच्चये, तेन श्यावं लोहितं चेत्यर्थः। एतच्च त्रिदोषजं साध्यं च। ७ स्नाय्वर्मलक्षणमाख्याति—**शुक्ल इति**। पिशितं=मांसम्। इदं प्रस्तार्यर्मोद्भवम्। तथा च विदेहः—"प्रस्तारिणोऽर्मणः स्रावं निरुणद्धि यदाऽनिलः। विना स्रावं विशुष्कं तत् स्नाय्वर्मेति प्रकीर्तितम् ॥" इति।

८ शुक्तिकालक्षणमभिधत्ते—**श्यावा इति**। श्यावाः=पाण्डुश्यामाः, पिशितनिभाः=मांससमानदीप्तयः, शुक्त्याभाः=जलशुक्तिनिभाः। श्यावा इत्यादिवर्णत्रये विकल्पो बोद्धव्यः। पित्तजोऽयं साध्यश्च। "पित्तं कुर्यात् सिते बिन्दून्सितश्यावपीतकान्। मलाक्तादर्शतुल्यं वा सर्वं शुक्लं सदाहरुक्। रोगोऽयं शुक्तिकासञ्ज्ञः सशक्रुद्भेदतृड्ज्वरः ॥" इति वाग्भटः। ९ अर्जुनलक्षणमाह—**एक इति**। शशरुधिरोपमः=शशरुधिरवल्लोहित इत्यर्थः। अयं रक्तजः साध्यश्च। तदुक्तम्—"शक्रगोपनिभं शुक्लेऽर्जुनं रक्तप्रकोपतः" इति। बिन्दुरूपत्वेऽनियम इति ज्ञेयम्। अत एव तन्त्रान्तरे—"कृष्णभागे सितं बिन्दुं शुक्लं विद्यात् कफात्मकम्। रक्तं च शुक्लभागस्थमर्जुनं शोणितोद्भवम् ॥" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति ॥ ७ ॥
उत्सन्नः सलिलनिभोऽथ पिष्टशुक्लो
बिन्दुर्यो भवति स पिष्टकः सुवृत्तः ।
जालाभः कठिनसिरो महान् सरक्तः
सन्तानः स्मृत इव जालसंज्ञितस्तु ॥ ८ ॥
शुक्लस्थाः सितपिडका सिरावृताया-
स्ता विद्यादसितसमीपजाः सिराजाः ।
कांस्याभो भवति सितेऽम्बुबिन्दुतुल्यः
स ज्ञेयोऽमृदुररुजो बलासकाख्यः ॥ ९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे शुक्रगतरोगविज्ञानीयो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

१ पिष्टकलक्षणं ब्रवीति—उत्सन्न इति । उत्सन्नः = उन्नतः, सलिलनिभः = जलवत् स्वच्छः, पिष्टशुक्लः = तण्डुलपिष्टवच्छुक्लः । कफजोऽयं साध्यश्च । तन्त्रान्तरात् कफवातजोऽयम् । तथा च माधवकरः—"श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्रे पिष्टं समुन्नतम् । पिष्टवत् पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसन्निभम् ॥" इति ।

२ सिराजाललक्षणमाख्याति—जालाभ इति । अनुलोमविलोमसिरानिचयरचितनिरन्तरविवरगवाक्षीभावात् जालस्येव आभा आकृतिर्यस्य स तथा । सरक्तः = ईषल्लोहितः, सन्तनोति आच्छादयतीति सन्तानः । रक्तजोऽयं साध्यश्च । ३ सिराजपिडकालक्षणमाचष्टे—शुक्लस्था इति । सितपिडकाः = सितवर्णाः पिडकाः, सिराकृताः = सिराव्याप्ताः, असितसमीपजाः = कृष्णभागाभ्यर्णशुक्लजाः, सिराजा वास्तुस्थितसिरापरिवृतत्वेन, न तु साक्षात् सिराजाता इत्यर्थः । त्रिदोषजोऽयं साध्यश्च ।

४ बलासग्रथितलक्षणमभिधत्ते—कांस्याभ इति । कांस्यस्येवाभा दीप्तिर्यस्य स तथा, श्वेत इत्यर्थः । अम्बुबिन्दुतुल्यः = मनागुन्नतत्वाद्वारिबिन्दुसदृशः, अमृदुः = कठिनः, अरुजः = वेदनारहितः, एतद्विशेषणद्वयं कफानिलजत्वात् । तथा च विदेहः—"मारुतोत्पीडितः श्लेष्मा शुक्लभागे व्यवस्थितः । जलबिन्दुरिवोच्छ्रूनो ह्यमृदुः कफसम्भवः ॥" इति । श्लेष्मजोऽयं साध्यश्च । अत्र सिरोत्पातसिराहर्षौ वाग्भटेन पठितौ । तथा हि—"रक्तराजीनिभं शुक्रे उ'यतेऽपि सवेदनम् । अशोथाश्रूपदेहं च सिरोत्पातः सशोणितम् ॥ उपेक्षितः सिरोत्पातो राजीस्ता एव वर्धयन् । कुर्यात् सास्रं सिराहर्षं तेनाक्युद्वीक्षणाक्षमम् ॥" इति ।

**इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रार्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्थोऽध्यायः ।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातः कृष्णगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
यत्सव्रणं शुक्रमथाव्रणं वा पाकात्ययश्चाप्यजका तथैव ।
चत्वार एतेऽभिहिता विकाराः कृष्णाश्रयाः सङ्ग्रहतः पुरस्तात् ॥३॥
निमग्नरूपं हि भवेत्तु कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद् वै ।
स्रावं स्रवेदुष्णमतीव रुक् च तत् सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥ ४ ॥
दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं न च संस्रवेद्धि ।
अवेदनावन्न च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमाप्नोति कदाचिदेव ॥ ५ ॥
विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं सिरासक्तमदृष्टिकृच्च ।

---

### पञ्चमोऽध्यायः ।

१ अथ क्रमागतं "चत्वारः कृष्णभागजाः" इति सङ्क्षेपतः प्रागुक्तं स्फुटीकृत्य बोधनार्थं कृष्णभागगतरोगविज्ञानीयमध्यायमधिकरोति—**अथात** इति । २ तत्र चतुर्णां कृष्णभागगतरोगाणां नामानि निर्दिशति—**यदिति** । शुक्रं = 'फूली' इति प्रथते । 'शुक्रः स्याद् भार्गवे ज्येष्ठमासे वैश्वानरे पुमान् । रेतोऽक्षिरुग्भिदोः क्लीबम्' इति मेदिनी । शुक्रमिति पाठान्तरम् । ३ सङ्ग्रहतः = सङ्क्षेपतः इत्यर्थः ।

४ सव्रणशुक्रलक्षणमाख्याति—**निमग्नेति** । निमग्नरूपमिति शुक्रविशेषणम् । अन्तःप्रविष्टरूपमिति तदर्थः । रूपग्रहणमाभासनिषेधार्थम् । सूच्येव विद्धमिति वर्तुलत्वख्यापनाय, सूचीव्यधनवद्वेदनादर्शनाय च । स्रावम् = अश्रुवात्मकम् । स्रवेदित्यनेनैव स्रावो बोध्यते, पुनः स्रावपदं निरन्तरस्रावबोधनाय । एतद्रक्तजमसाध्यं च । अत्र विदेहः—"रक्तराजीनिभं कृष्णे छिन्नाभं यत्र लक्ष्यते । सूच्यग्रेणेव तच्छुक्रमुष्णाश्रुस्रावि सव्रणम् ॥" इति ।

५ असाध्यतया निर्दिष्टस्य सव्रणशुक्रस्य अवस्थावशेन कादाचित्कसिद्धिमभिदधाति—**दृष्टेरिति** । न चावगाढम् = एकत्वगतम्, न च संस्रवेत् = न चात्यन्तं स्रवेत्, किन्तु किञ्चिदेव स्रवेदित्यर्थः । ६ न च युग्मशुक्रम् = अयुग्मशुक्रमेकमित्यर्थः । एवं विधं कदाचित् सिध्यति, एतद्विपरीतं न सिद्ध्यतीति भावः । ७ सव्रणशुक्रस्य असाध्यत्वलक्षणं वक्ति—**विच्छिन्नेति** । विच्छिन्नमध्यं = विशीर्णमांसत्वान्निम्नमध्यम्, पिशितावृतम् = उन्नतमांसरूपतया वेष्टितम्, सिरासक्तमत एव, चलम् = अनवस्थितम्, यतः सिरा स्वभावतश्चलाः, तदाश्रितं शुक्रमपि चलमिति भावः । अदृष्टिकृत्=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वित्वग्गतं[1] लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितञ्चापि विवर्जनीयम् ॥ ६ ॥
उष्णाश्रुपातः[2] पिडका च कृष्णे यस्मिन् भवेन्मुद्गनिभञ्च शुक्रम् ।
तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचिदन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम्[3] ॥ ७ ॥
सितं[4] यदा भात्यसितप्रदेशे स्यन्दात्मकं नातिरुगभ्रयुक्तम् ।
विहायसीव[5] च्छघनानुकारि तदव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥ ८ ॥
गम्भीरजातं[6] बहलञ्च शुक्रं चिरोत्थितञ्चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ।
सञ्च्छाद्यते[7] श्वेतनिभेन सर्वं दोषेण[8] यस्यासितमण्डलन्तु ॥ ९ ॥
तमक्षिपाकात्ययमक्षिको[9] समुत्थितं तीव्ररुजं वदन्ति ।
अजापुरीषप्रतिमो[10] रुजावान् सलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रुः ।

---

दर्शनाभावकारि । १ द्वित्वग्गतं=पटलद्वयगतम्, अन्ततः=प्रान्तेषु लोहितम् ।

२ द्विपटलाश्रितस्य लक्षणं दर्शयति—**उष्णेति** । विदेहः—"एकत्वग्गतमेवं स्याद् द्वित्वग्गतमिदं भवेत् । चोषोष्णस्रावदाहास्तु तृष्णा च पिडकोद्गमः । व्यक्तमुद्गफलाकारं शुक्रं द्वित्वग्गतं भवेत् ॥" इति । एतेन मूत्रे मुद्गनिभं च शुक्लमिति द्वित्वग्गतं बोध्यम् । ३ यच्च अन्यच्छुक्रं तित्तिरिपक्षतुल्यं तदप्यसाध्यं केचिद्वदन्तीत्यन्वयः ।

४ अव्रणशुक्लक्षणमाख्याति-**सितमिति** । स्यन्दात्मकम्=अभिष्यन्दहेतुकम्, सर्वेषां नयनरोगाणामभिष्यन्दहेतुकत्वे, अस्य नियमबोधनार्थं स्यन्दात्मकमिति । ५ विहायसीव=आकाश इव, 'पुंस्याकाशविहायसी' इत्यमरः । अच्छघनानुकारि=प्रतनुमेघखण्डानुकारि । हाराणचन्द्रस्तु—'अच्छघनानुकारि' इत्यत्र 'अभ्रदलानुकारि' इति पाठं पठित्वा व्याख्याति-अभ्रं नामोपधातुविशेषः, तच्च श्वेतमेवेह प्रत्येतव्यम्, सितदृष्टान्तानुगतत्वेनोपात्तत्वात् । तस्य दलं पत्रं तदनुकर्तुं शीलमस्येत्यभ्रदलानुकारि श्वेताभ्रमिवेति निष्कर्षः । एतेनैतदुक्तं भवति-स्वभावादुपर्युपरिविन्यस्तत्वेन फलकभूतस्योपधातुविशेषस्याभ्रस्य पत्राकारस्तनुकोऽशस्तत्प्रतीकाशं मेघखण्डं यथा नीलत्वेन गोलत्वेन चाध्यस्ते आकाशे प्रतिभाति, तथैवासितप्रदेशे कृष्णमण्डले यत् सितमाभाति तदेवाव्रणं शुक्रमुच्यत इति । ६ गम्भीरजातं=द्वित्रित्वग्गतम्, बहलं=पुष्टमित्यर्थः ।

७ अक्षिपाकात्ययलक्षणं ब्रवीति-**सञ्च्छाद्यत इति** । सन्निपातजोऽयमसाध्यश्च । दोषेण=दोषत्रितयेनेत्यर्थः । ८ अक्षिकोपसमुत्थितम्=अभिष्यन्दादुत्पन्नम् । ९ अजकाजातलक्षणमाह—**अजेति** । अजापुरीषप्रतिमः=शुष्काजपुरीषतुल्यः, सलोहितः=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदार्य कृष्णं प्र[1]चयोऽभ्युपैति तञ्चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ॥१०॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे कृष्णगतरोगविज्ञानीयो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

## षष्ठोऽध्यायः ।

अथा[2]तः सर्वगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

स्यन्दा[3]स्तु चत्वार इहोपदिष्टास्तावन्त एवेह तथाऽधिमन्थाः ।
शोफान्वितोऽशोफयुतश्च पाकावित्येवमेते दश सम्प्रदिष्टाः ॥ ३ ॥
हताधिमन्थोऽनिलपर्ययश्च शुष्काक्षिपाकोऽन्यत एव वातः ।
दृष्टिस्तथाऽम्लाध्युषिता सिराणामुत्पातहर्षावपि सर्वभा[4]गाः ॥ ४ ॥
प्रायेण[5] सर्वे नयनामयास्तु भवन्त्यभिष्यन्दनिमित्त[6]मूलाः ।
तस्मादभिष्यन्दमुदीर्यमा[7]णमुपाचरेदाशु हिताय धीमान् ॥ ५ ॥

---

ईषल्लोहितावभासः । १ प्रचयः=उद्गमः, तृतीयत्वग्गतत्वेन मेदसः प्रचयो बोद्धव्यः । अभ्युपैति=समन्तादागच्छति । कफजोऽयमसाध्यश्च । अत्र विदेहः— "कृष्णेऽऽक्ष्णोर्यद्भवेच्छुक्रं छागलीविट्समप्रभम् । सान्द्रपिच्छिलरक्तास्रं त्रित्वग्गमजकेति सा ॥" इति ।

इति सुश्रुतसंहितायाः उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चमोऽध्यायः ।

---

षष्ठोऽध्यायः ।

२ अनुक्रमागतं "सर्वाश्रयाः सप्तदश" इति प्रागुक्तं व्याख्यातुं सर्वगतरोगविज्ञानीयमध्यायमधिकरोति—**अथेति** । गतशब्द आश्रयवचनः, तेन सर्वाश्रयरोगविज्ञानीय इत्यर्थः । ३ सर्वगतनेत्ररोगाणां नामानि निर्दिशति—**स्यन्दास्त्विति** । स्यन्दाः=अभिष्यन्दा इत्यर्थः । ४ सर्वभागाः=सर्वाधिष्ठाना इत्यर्थः । ५ अभिष्यन्दस्य सर्वनेत्ररोगमूलत्वं प्रतिपादयति—**प्रायेणेति** । ६ अभिष्यन्दाश्च तन्निमित्तानि च, तान्येव मूलं येषां ते तथोक्ताः । निमित्तशब्देन दुष्टा दोषा दोषप्रकोपणानि च ग्राह्याणि । ७ उदीर्यमाणम्=उत्पद्यमानमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निस्तोदनं[1] स्तम्भनरोमहर्षसङ्घर्षपारुष्यशिरोऽभितापाः ।
विशुष्कभाव[2]ः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ६ ॥
दाह[3]प्रपाकौ शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुच्छ्रयश्च ।
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ७ ॥
उष्णा[4]भिनन्दा गुरुताऽक्षिशोफः कण्डूप[5]देहौ सिततातिस्नैत्यम् ।
स्रावो मुहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ८ ॥
ताम्रा[6]श्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समन्तादतिलोहिताश्च ।
पित्तस्य लिङ्ग[7]ानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ९ ॥

वृद्धै[8]रेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् ।
तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥ १० ॥
उत्पाट[10]यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा ।
शिरसोऽर्द्धं च तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः[11] ॥ ११ ॥
[12]नेत्रमुत्पाट्यत इव मथ्यतेऽरणिवच्च यत् ।
[13]सङ्घर्षतोदनिर्भेदमांससंरब्धमाविलम् ॥ १२ ॥

---

१ वाताभिष्यन्दलक्षणमाख्याति—**निस्तोदनमिति** । अन्यत्र 'निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्ष—' इति समस्तं पदम् । निस्तोदनं=सूचीव्यधनवद् व्यथा, स्तम्भनं=जडिमा, सङ्घर्षः=करकरिका, पारुष्यं=रूक्षता, शिरोऽभितापः=शिरोव्यथा । २ विशुष्कभावः=दूषिकाराहित्यम्, न तु स्रावरहितत्वम्; शिशिराश्रुतेत्युक्तेः । वाताभिपन्ने=वातेनोपद्रुते । अयं साध्यः । ३ पित्ताभिष्यन्दलक्षणमाह—**दाहेति** । प्रपाकः=प्रकृष्टः पाकः, शिशिराभिनन्दा=शीतलेच्छा, धूमायनं=नेत्राद् धूमोद्गम इव, बाष्पसमुच्छ्रयः=बाष्पबाहुल्यम् । साध्यमिदम् ।

४ श्लेष्माभिष्यन्दलक्षणमाख्याति—**उष्णेति** । उष्णाभिनन्दा=उष्णेच्छा । ५ उपदेहः=दूषिकया लिप्तता । अयमपि साध्यः । ६ रक्ताभिष्यन्दलक्षणमभिदधाति—**ताम्रेति** । ७ पित्तस्य लिङ्गानि=पित्ताभिष्यन्दलिङ्गानीत्यर्थः । एष साध्यः ।

८ अधिमन्थानामभिष्यन्दजत्वं प्रतिपादयति—**वृद्धैरिति** ।९ तावन्तः=अभिष्यन्दैर्वातपित्तकफरक्तजाश्चत्वार एवेत्यर्थः । १० अधिमन्थस्यापरं सामान्यलक्षणमाख्याति—**उत्पाटयत इव** । शिरसोऽर्धमुत्पाटयत इव, तथा निर्मथ्यते चेति सम्बन्धः । शिरसोऽर्धमुत्पाटयत इव निर्मथ्यते चेति अधिमन्थानामभिष्यन्दैभ्यो भेदः, स च चतुर्विधेऽधिमन्थेषु बोद्धव्यः । ११ स्वलक्षणैः=यथोक्तवाताद्यभिष्यन्दलक्षणैरित्यर्थः ।

१२ वाताधिमन्थलक्षणं दर्शयति—**नेत्रमिति** । साध्योऽसौ । १३ सङ्घर्षः=


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुञ्चनास्फोटनाध्मानवेपथुव्यथनैर्युतम् ।
शिरसोऽर्द्धञ्च येन स्यादधिमन्थः स मारुतात् ॥ १३ ॥
रक्तैराजिचितं स्रावि वह्निनेवावदह्यते ।
यकृत्पिण्डोपमं दाहि क्षारेणाक्तमिव क्षपम् ॥ १४ ॥
प्रपक्वोच्छूनवर्त्मान्तं सस्वेदं पीतदर्शनम् ।
मूर्च्छाशिरोदाहयुतं पित्तेनाक्ष्यधिमन्थितम् ॥ १५ ॥
शोफवन्नातिसंरब्धं स्रावकण्डूसमन्वितम् ।
शैत्यगौरवपैच्छिल्यदूषिकाहर्षणान्वितम् ॥ १६ ॥
रूपं पश्यति दुःखेन पांशुपूर्णमिवाविलम् ।
नासाध्मानशिरोदुःखयुतं श्लेष्माधिमन्थितम् ॥ १७ ॥
बन्धुजीवप्रतीकाशं ताम्यति स्पर्शनाक्षमम् ।
रक्तास्रावं सनिस्तोदं पश्यत्यग्निनिभा दिशः ॥ १८ ॥
रक्तमग्नारिष्टवच्च कृष्णभागश्च लक्ष्यते ।
यद्दीप्तं रक्तपर्यन्तं तद्रक्तेनाधिमन्थितम् ॥ १९ ॥

हन्याद् दृष्टिं सप्तरात्रात् कफोत्थोऽधीमन्थोऽसृक्सम्भवः पञ्चरात्रात् षड्रात्राद्वै मारुतोत्थो निहन्यान्मिथ्याचारात् पैत्तिकः सद्य एव ॥ २० ॥

कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुम्बरसन्निभः ।

---

करकरिका, तोदः=सूचीव्यधनवद् व्यथा, निर्भेदः=शस्त्रेण विदारणवद् वेदना, मांससंरब्धं=मांसशूनता, आविलं=मलयुतम् । १ पित्ताधिमन्थलक्षणं वक्ति—रक्तेति । साध्योऽयम् । २ क्षारेणाक्तं क्षारलिप्तं क्षतमिव दहनशीलमित्यर्थः ।

३ प्रपक्वोच्छुनवर्त्मान्तं=पाकशोथाभिभूतवर्त्मप्रान्तम् । ४ श्लेष्माधिमन्थलक्षणं ब्रवीति—शोफवदिति । अयमपि साध्यः । नातिसंरब्धं=नात्यर्थरागवेदनम् । ५ दूषिका=नेत्रमलम् । ६ रक्ताधिमन्थलक्षणमाख्याति—बन्धुजीवेति । एव साध्यः । बन्धुजीवः='दुपहरिया फूल' इति प्रथते । ताम्यति=खिद्यति । ७ अरिष्टः='रीठा' इति ख्यातः । तद्वत् कृष्णभागो लक्ष्यते ।

८ स चाधिमन्थो यदात्मको यावता कालेन मिथ्याऽऽचाराद् दृष्टिं हन्ति, तं प्रतिपादयति—हन्यादिति । ९ सद्यःशब्देनात्र त्रिरात्रमुच्यते, वैद्यके सद्यःशब्दस्य त्रिरात्रसप्तरात्रवाचित्वात् । १० सशोफपाकलक्षणमभिधत्ते—कण्डूरिति । अयं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाहसंहर्षताम्रत्वशोफनिस्तोदगौरवैः ॥ २१ ॥
जुष्टो मुहुः स्रवेच्चास्रमुष्णशीताम्बु पिच्छिलम् ।
संरम्भी[1] पच्यते यश्च नेत्रपाकः सशोफजः ॥ २२ ॥
शोफहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोफजे ।
उपेक्षणाद्[3]क्षि यदाऽधिमन्थो वातात्मकः सादँयति[4] प्रसह्य ।
रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमन्थः खलु नाम रोगः ॥ २३ ॥
अन्तः[5]सिराणां श्वसनः स्थितो दृष्टिं प्रतिक्षिपँन्[6] ।
हताधिमन्थं जनयेत्तमसाध्यं विदुर्बुधाः ॥ २४ ॥
पक्ष्मँद्व्याक्षिभ्रुवमाश्रितस्तु यत्रानिलः सञ्चरति प्रदुष्टः ।
पर्यायँशश्चापि रुजः करोति तं वातपर्यायमुदाहरन्ति ॥ २५ ॥
यँत् कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म विलोकने चाविलदर्शनं यत् ।
सुदारुणं यत् प्रतिबोधने[10] च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥ २६ ॥

---

त्रिदोषजः साध्यश्च । उपदेहः=नेत्रमलम् । १ संरम्भी=शोथवान् । २ अशोफपाकलक्षणं दर्शयति—शोफेति । शोफहीनानि=सशोफपाकलिङ्गानीत्यर्थः । अयमपि त्रिदोषजः साध्यश्च ।

३ सकलाक्षिशोषलक्षणं हताधिमन्थं लक्षयति—**उपेक्षणादिति** । तन्त्रान्तरे—"अथवा शोषयेदक्षि क्षीणतेजोबलादयम् । तत्पद्ममिव संशुष्कमवसीदति लोचनम् । हताधिमन्थं तं विद्यादसाध्यं वातकोपतः ॥" इति विदेहः । ४ सादयति=शोषयति । ५ दृष्टिनिर्गमलक्षणं हताधिमन्थं दर्शयति—**अन्त इति** । तन्त्रान्तरे—"अन्तर्गतः सिराणां तु यदा तिष्ठति मारुतः । स तदा नयनं प्राप्य शीघ्रं दृष्टिं निरस्यति ॥ तस्यां निरस्यमानायां निर्मन्थन्निव मारुतः । नयनं निर्वमत्याशु शूलतोदाधिमन्थनैः ॥" इति विदेहः । ६ प्रतिक्षिपन्=निष्कासयन् ।

७ वातपर्यायलक्षणमभिधत्ते—**पक्ष्मेति** । ८ पर्यायशः=क्रमशः, कदाचिद् भ्रुवि, कदाचिन्नेत्रे इत्यर्थः । एष साध्यः । ९ शुष्काक्षिपाकलक्षणमाह—**यदिति** । कूणितं=सङ्कोचितं सदित्यर्थः । दारुणं कठिनं रूक्षं च वातशोषाद् वर्त्म यस्य तद् दारुणरूक्षवर्त्म । १० प्रतिबोधने=उन्मेषणे, शुष्केणाक्षिपाकेनोपहतमिति शुष्काक्षिपाकोपहतम् । सरक्तवातजन्योऽयं व्याधिः । यदाह तन्त्रान्तरे—"कूणितं खरवर्त्माक्षि कृच्छ्रोन्मीलाविलेक्षणम् । सदाहं सासृजाद् वाताच्छुष्कपाकान्वितं वदेत् ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाऽप्यनिलोऽन्यतो वा ।
कुर्याद्रुजोऽतिभ्रुविलोचनेवा तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥ २७ ॥
अम्लेन भुक्तेन विदाहिना वा सञ्च्छाद्यते सर्वत एव नेत्रम् ।
शोफान्वितं लोहितकैः सनीलैरेतादृगम्लाध्युषितं वदन्ति ॥ २८ ॥
अवेदनाः वाऽपि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः ।
मुहुर्विरज्यन्ति च ताः समन्ताद् व्याधिः सिरोत्पात इति प्रदिष्टः॥२९॥
मोहात् सिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगस्तु सिराप्रहर्षः ।
ताम्राच्छमस्रं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुञ्च ॥ ३० ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे सर्वगतरोगविज्ञानीयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

---

१ अन्यतोवातलक्षणं निर्दिशति—यस्येति । अवटुः=घाटा, दीर्घं आर्षः, मन्यागतः=ग्रीवायाः पार्श्वयोः सिरागतः, अन्यतः=उक्तप्रदेशादितरत्र, पृष्ठत इत्यर्थः । सप्तम्यर्थे तसिः । एष वातिकः साध्यश्च । विदेहेऽपि—"मन्ययोरन्तरे वायुरुत्थितः पृष्ठतोऽपि वा । करोति भेदं निस्तोदं शङ्खे चाक्ष्णोर्भ्रुवोस्तथा । तमाहुरन्यतोवातं रोगं दृष्टिविदो जनाः ॥" इति । २ अम्लाध्युषितलक्षणमभिदधाति—अम्लेनेति । विदाहिना=कटुकेन लवणेन वा । ३ अम्लेन अत्यन्तमध्युषितमम्लाध्युषितं पित्ताध्युषितम्, करणे कार्योपचारादिति सारम् ।

४ सितोत्पातलक्षणमाख्याति—अवेदनेति । अक्षिराज्यः=नेत्रसिराः । ५ विरज्यन्ति=विरक्ता भवन्ति, विशेषरक्ता भवन्तीत्यर्थः । रक्तजोऽयं साध्यश्च । ६ सिराहर्षलक्षणमभिधत्ते—मोहादिति । असावपि रक्तजः साध्यश्च । वाग्भटे सिरोत्पातसिराहर्षयोर्लक्षणम्—"रक्तराजीनिभं शुक्ले ह्यप्यतेऽपि सवेदनम् । अशोथाश्रूपदेहं च सिरोत्पातः सशोणितम् ॥ उपेक्षितः सिरोत्पातो राजीस्ता एव वर्धयन् । कुर्यात्सास्रं सिराहर्षं तेनाक्ष्युद्वीक्षणाक्षमम् ॥" इति ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षष्ठोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सप्तमोऽध्यायः ।

अथातो दृष्टिगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
मसूरदलमात्रान्तु पञ्चभूतप्रसादजाम् ।
खद्योतविस्फुलिङ्गाभामिद्धां तेजोभिरव्ययैः ॥ ३ ॥
आवृतां पटलेनाक्ष्णोर्बाह्येन विवराकृतिम् ।
शीतसात्म्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयनचिन्तकाः ॥ ४ ॥
रोगांस्तदाश्रयान् घोरान् षट् च षट् च प्रचक्ष्महे ।
पटलानुप्रविष्टस्य तिमिरस्य च लक्षणम् ॥ ५ ॥
सिराभिरभिसम्प्राप्य विगुणोऽभ्यन्तरे भृशम् ।

---

## सप्तमोऽध्यायः ।

१ क्रमप्राप्तं "दृष्टिजा द्वादशैव तु" इति प्रागुक्तं प्रतिपादितुं दृष्टिगतरोगविज्ञानीयमध्यायमधिकरोति—**अथेति** । २ तत्र नेत्रदृष्टिप्रमाणं दर्शयति—**मसूरेति** । मसूरदलमात्रां=मसूरार्धदलप्रमाणाम्, तथा च निमिः—"पञ्चभूतात्मिका दृष्टिर्मसूरार्धदलोन्मितिः" इति । पञ्चभूतप्रसादजां=प्रसन्नपञ्चभूतात्मिकाम्, खद्योतो ज्योतिरिङ्गणः, विस्फुलिङ्गोऽग्निकणः, तयोरिव आभा दीप्तिर्यस्यास्तां तथोक्तां, निमेषे खद्योतवत्, उन्मेषे च विद्योतमानत्वाद् विस्फुलिङ्गवदित्यर्थः । अव्ययैः=उपचयापचयरहितैः, निर्विकारैरित्यर्थः । तेजोभिरिद्धां=तेजोविशिष्टामित्यर्थः । इद्धमित्यत्र सिद्धामिति पाठे उत्पन्नामित्यर्थो बोद्धव्यः ।

३ बाह्येन=रसरक्ताश्रयेण प्रथमपटलेन, यदाह प्राक्—"तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत् पिशिताश्रितम्" इत्यादिना स्वयमेव । विवरस्य छिद्रस्याकृतिरिवाकृतिर्यस्याः सा तां विवराकृतिम् । यद्यपि बाह्यपटलावृतत्वाददृष्टे रूपग्रहणसामर्थ्योपघातः प्राप्तः, तथाऽपि पटलस्यात्यन्ताच्छत्वाद् रोमकूपविवरान्तरत्वाच्च तेजःपरमाणूनां बहिश्चरत्वे रूपग्रहणसामर्थ्यं दृष्टेर्नोपहन्यते इति डल्हणः । ४ शीतेन सात्म्यां हितां शीतसात्म्याम् । यद्यपि शीतेन तेजोऽभिघातस्तथाऽपीह एककार्यकरणार्थं सहोत्पन्नयोर्जलाग्न्योर्न विरोधः ।

५ दृष्टिगतरोगाणां सङ्ख्यामाख्याति—**रोगानिति** । तदाश्रयान्=दृष्ट्याश्रयान्, घोरान्=अतिशयक्लेशकरान्, षट् च षट् च=द्वादशेत्यर्थः । ६ पटलानुप्रविष्टस्य=पटलचतुष्टयप्रविष्टस्य । ७ प्रथमपटलगततिमिरलक्षणं दर्शयति—**सिरादिभिरिति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमे पटले[1] दोषो यस्य दृष्टौ व्यवस्थितः ॥ ६ ॥
अव्यक्तानि स रूपाणि[2] सर्वाण्येव प्रपश्यति ।
दृष्टिर्भृशं[3] विह्वलति द्वितीयं पटलं गते ॥ ७ ॥
मक्षिका मशकान् केशान् जालकानि[4] च पश्यति ।
मण्डलानि पताकांश्च मरीचीः[5] कुण्डलानि च ॥ ८ ॥
परिप्लवांश्च[6] विविधान् वर्षमभ्रं तमांसि च ।
दूरस्थान्यपि रूपाणि मन्यते च समीपतः ॥ ९ ॥
समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचर[7]विभ्रमात् ।
यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं[8] न पश्यति ॥ १० ॥
ऊर्ध्वं[9] पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते ।
महान्त्यपि च रूपाणि च्छादितानीव वाससा ॥ ११ ॥

---

अभिसम्प्राप्य = सम्यग् गत्वा, विगुणः = दुष्टः, अभ्यन्तरे = सर्वाभ्यन्तरे । १ पटले = कालकास्थिसंश्रये; न तु बाह्ये ; तत्र प्रथमं दोषलक्षणानुपलब्धेः । तथा च विदेहः— "यथा दोषाः प्रकुपिताः प्राप्य रूपवहे सिरे । दृष्टेरन्तरमाद्यं तु पटलं समभिद्रुताः । एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायात् पटलान्तरम् ॥" इति । 'प्रथमे पटले' इत्यादिग्रन्थात् पूर्वं केचित् "सिराभिरभिसम्प्राप्य विगुणोऽभ्यन्तरे भृशम्" इति श्लोकार्धं सम्प्राप्तिरूपं पठन्ति सुश्रुते, तच्च "सिराऽनुसारिभिर्दोषैरित्यनेनैव गतार्थमित्यनार्षं टीकाकारैर्व्याख्यातम्' इति मधुकोशकारौ । २ रूपाणि = रूपवन्ति द्रव्याणि, अव्यक्तरूपाण्यपि तानि वातेन वक्ष्यमाणभ्रमारुणवर्णादियुक्तानि, पित्तेन आदित्यखद्योतादिपीतनीलवर्णानि, कफेन सितवर्णानि, रक्तेन रक्तवर्णानि, सन्निपातेन चित्रवर्णानि, एवं द्वितीयतृतीयचतुर्थपटलेष्वपि व्याख्येयम् ।

३ द्वितीयपटलगततिमिरलक्षणं वक्ति— **दृष्टिरिति** । विह्वलति = पुनः पुनरसम्यग्रूपं गृह्णाति । द्वितीयं पटलं मांसरक्ताश्रयम् । विह्वलत्वमेव विवृणोति–मक्षिका इत्यादिना । ४ जालकानि = मर्कटलालारचितजालकाकाराणि । ५ मरीचीः = मृगतृष्णाः । मरीचीनिति पाठे चन्द्रादिरश्मीनित्यर्थः । ६ परिप्लवान् = चञ्चलान् नक्षत्रान्, विविधान् = ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्गतश्लेष्मादिदोषवर्णे ननाविधान्, वर्षं = वृष्टिः, अभ्रं = मेघः, वर्षादीन् असन्त्यपि सन्तीव पश्यतीति तात्पर्यम् । ७ गोचरविभ्रमात् = विषयविभ्रमात् । ८ सूचीपाशं = सूचीरन्ध्रमित्यर्थः ।

९ तृतीयपटलगततिमिरलक्षणमाह— **ऊर्ध्वमिति** । तृतीयं पटलं = मेदः आश्रितम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्णनासाऽक्षियुक्तानि विपरीतानि[1] वीक्षते ।
यथादोषं[2] च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि ॥ १२ ॥
अधःस्थिते समीपस्थं[3] दूरस्थञ्चोपरिस्थिते ।
पार्श्वस्थिते तथा दोषे पार्श्वस्थानि न पश्यति ॥ १३ ॥
समन्ततः स्थिते दोषे सङ्कुलानीव[4] पश्यति ।
दृष्टिमध्यगते दोषे स एकं मन्यते द्विधा ॥ १४ ॥
द्विधास्थिते त्रिधा पश्येद् बहुधा चानवस्थिते[5] ।
तिमिराख्यः[6] स वै दोषश्चतुर्थं पटलङ्गतः ॥ १५ ॥
रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाशः[7] स उच्यते ।
तस्मिन्नपि तमोभूते[8] नातिरूढे महागदे ॥ १६ ॥
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरीक्षे च विद्युतः ।
निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि[9] च पश्यति ॥ १७ ॥
स[10] एव लिङ्गनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ।

---

ऊर्ध्वमपि यादृक् पश्यति तादृगाह–सुमहान्तीति । १ विपरीतानि=छिन्नकरपादादीनि । २ विदेहो विशेषमुक्तवान्–"यथास्वं रज्यते दृष्टिर्दोषैस्त्रिपटलस्थितैः । चतुर्थपटलप्राप्तैर्मण्डलं रज्यते तु तैः ॥" इति । ३ अधःस्थिते समीपस्थं दूरस्थं च न पश्यतीति सम्बन्धः । ४ सङ्कुलानि=अन्यान्यरूपेणैव मिश्राणि । ५ अनवस्थिते=अनियतावस्थाने, चञ्चले इत्यर्थः ।

६ चतुर्थपटलगततिमिरलक्षणं वक्तुं—**तिमिरेति** । दोषा=रोगः, 'दोषा अपि रोगसंज्ञां लभन्ते' इति शास्त्रात् । चतुर्थं पटलं=कालकास्थिश्रितम् ७ लिङ्ग्यते ज्ञायतेऽनेनेति लिङ्गं चक्षुरिन्द्रियशक्तिः, तस्य नाशो यस्मिन् स लिङ्गनाशो दोषः । अतः परं 'वदन्ति' इति शेषः । तमोभूते=रूपस्यानुपलम्भादन्धकारसदृशे, भूतशब्दस्य सादृश्यवाचकत्वात् । 'भूतं प्राप्यतीते समे त्रिषु' इत्यमरः । नातिरूढे=नातिवृद्धे ।

८ भ्राजिष्णूनि=दीप्तिमन्ति वस्तूनि । ९ तस्यैव लिङ्गनाशस्यापरं सञ्ज्ञाद्वयं प्रतिपादयति—**स इति** । नीलिका विशेषिता काचसञ्ज्ञा सञ्जाता यस्य स इति गदाधरः । एतेन तृतीयपटलस्थदोषे काचसञ्ज्ञा, चतुर्थे तु सा नीलिकया विशिष्यते इति फलति । निमिः—"काच इत्येष विज्ञेयो याप्यस्त्रिपटलोत्थितः । चतुर्थपटलप्राप्तो लिङ्गनाशः स उच्यते । प्रत्याख्येयश्च कफजो व्याधिः साध्यस्तु तद्विदा ॥" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र[1] वातेन रूपाणि भ्रमन्तीव स पश्यति ॥ १८ ॥
[2]आविलान्यरुणाभानि[3] व्याविद्धानि च मानवः ।
पित्तेनादित्यखद्योत[4]शक्रचापतडिद्गुणान्[5] ॥ १९ ॥
शिखिबर्हविचित्राणि नीलकृष्णानि पश्यति ।
कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च ॥ २० ॥
गौरचामर[6]गौराणि श्वेताभ्रप्रतिमानि च ।
पश्येदसूक्ष्म[7]माण्यत्यथ व्यभ्रे चैवाभ्रसम्प्लवम् ॥ २१ ॥
सलिलप्लावितानीव परिजाड्य[8]वानि मानवः ।
तथा रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च ॥ २२ ॥
हरितश्यावकृष्णानि धूमधूम्र[9]राणि चेक्षते ।
सन्निपातेन चित्र[10]राणि विप्लुतानि च पश्यति ॥ २३ ॥
बहुधा वा द्विधा वाऽपि सर्वाण्येव समन्ततः ।
हीनाधिकाङ्गान्यथवा ज्योतींष्यपि च पश्यति ॥ २४ ॥
पित्तं[9] कुर्य्यात् परिम्लायि मूर्च्छितं रक्ततेजसा ।
पीता दिशस्तथोद्यन्तमादित्यमिव पश्यति ॥ २५ ॥

---

१ वातादितिमिरलक्षणमभिदधाति—**तत्रेति** । २ अरुणाभानि = किञ्चिद्रक्तानि, व्याविद्धानि = कुटिलानि । ३ खद्योतः = ज्योतिरिङ्गणः, शक्रचापः = इन्द्रधनुः, तडित् = विद्युत्, गुणान् = रूपाणि, आदित्यादीनां रूपाणीत्यर्थः । ४ गौरचामरगौराणि = सितचामरवच्छ्वेतानि । ५ असूक्ष्माणि = स्थूलानि । ६ परिजाड्यानि = परितः स्तिमितानि । ७ धूमधूम्राणि = धूमवेष्टितानीव । ८ चित्राणि = नानावर्णानि विप्लुतानि = सर्वतोऽवकीर्णानि ।

९ पित्तेनापरं परिम्लायिसञ्ज्ञकं तिमिरमभिधत्ते—**पित्तमिति** । मूर्च्छितं = मिश्रितम् । विदेहः—"पित्तं रक्तप्रसादेन मूर्च्छयित्वा च मारुतम् । एष याप्यः स्मृतः काचो म्लायीनाम्ना शरीरिणाम् ॥" इति । अन्यत्र रक्तपित्ताभ्यामुक्तम्—"विदधाति परिम्लायि पित्तं रक्तेन सङ्गतम् । तेन पीता दिशः पश्येदुद्यन्तमिव भास्करम् ॥" इति । एक एवासौ परिम्लायी रोगोऽरागप्राप्तः सन् तिमिराख्यः, रागप्राप्तस्तु काचाख्यः, स एव किञ्चिद्दर्शननाशकारी लिङ्गनाशः । सर्वाण्येव तिमिराणि प्रथमद्वितीयपटलगतानि साध्यानि । तृतीयपटलगतानि रागप्राप्त्या यदा काचाख्यानि भवन्ति तदा याप्यानि । तथा च तन्त्रान्तरे—"तृतीयं पटलं प्राप्तं तिमिरं रागि जायते । अरागि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकीर्य्यमाणान्[1] खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव च ।
वक्ष्यामि[2] षड्विधं रागैर्लङ्घनाशमतः परम् ॥ २६ ॥
रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टः पित्तात् परिम्लाय्यथवाऽपि[3] नीलः ।
कफात् सितः शोणितजस्तु रक्तः समस्तदोषोऽथ विचित्ररूपः॥२७॥
रक्तं[4]जं मण्डलं दृष्ट्वा स्थूलकाचानलप्रभम् ।
परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लाय्यानीलं[5]ञ्च मण्डलम् ॥ २८ ॥
दोषक्षयात् कदाचित् स्यात् स्वयं तत्र च दर्शनम् ।
अरुणं[6] मण्डलं वाताच्चञ्चलं परुषं तथा ॥ २९ ॥
पित्तान्मण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव वा ।
श्लेष्मणा बहलं[7] स्निग्धं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम् ॥ ३० ॥
चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः ।
सङ्कुचत्यातपेऽत्यर्थं छायायां विस्तृतो भवेत् ॥ ३१ ॥
मृद्यमाने च नयने मण्डलं तद्विसर्पति ।
प्रवालपद्मपत्राभं[8] मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ ३२ ॥
दृष्टिरागो भवेच्चित्रो[9] लिङ्गनाशे त्रिदोषजे ।
यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ ३३ ॥
षड् लिङ्गनाशाः षड्विधे च [10]रोगा दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव च स्युः
तथा नरः [11]पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन चान्यस्त्वथ धूमदर्शी ॥ ३४ ॥

---

तिमिरं साध्यमाद्यं पटलमाश्रितम् । कृच्छ्रं द्वितीये रागि स्यात्तृतीये याप्यमुच्यते ॥" इति । १ विकीर्यमाणान् = आच्छाद्यमानान् ।

२ वातादिभेदेन षड्विधं तिमिरमभिधाय रागैः षड्विधमभिधाति—**वक्ष्यामीति** । ३ परिम्लायी = पीतवर्णः । ४ पूर्वोक्तपित्तजनितपरिम्लायिनो लक्षणमाह—**रक्तजमिति** । रक्तजं = रक्तप्रसादाज्जातम्, स्थूलकाचानलप्रभं = बाहुल्येन स्थूलकाचाभं, वर्णेन अनलप्रभमित्यर्थः । ५ आनीलं = किञ्चिन्नीलम् । ६ दोषभेदेन लिङ्गनाशलक्षणानि दर्शयति—**अरुणमिति** । ७ बहलं स्थूलम् । ८ प्रवालपद्मपत्राभं = रक्तपद्मपुष्पदलाभमित्यर्थः । ९ वातादिवर्णविभेदेन चित्रत्वं बोध्यम् । १० रोगाः = वक्ष्यमाणाः पित्तविदग्धदृष्ट्यादयः । एवं दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव द्वादशेत्यर्थः । ११ पित्तविदग्धदृष्टिः दिवान्धः, कफेन अन्यो विदग्धदृष्टिः रात्र्यन्धः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो ह्रस्वजाड्यो नकुलान्धता च गम्भीरसंज्ञा च तथैव दृष्टिः ।
पित्तेन[1] दुष्टेन गतेन दृष्टिं पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः ॥ ३५ ॥
पीतानि रूपाणि च मन्यते यः स मानवः पित्तविदग्धदृष्टिः ।
प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे[2] दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते च ॥ ३६ ॥
रात्रौ स शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्तालपभावादपि तानि पश्येत् ।
तथा[3] नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मन्यते तु ॥ ३७ ॥
त्रिषु स्थितोऽल्पः पटलेषु दोषो[4] नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य ।
दिवा स सूर्य्यानुगृहीतचक्षुरीक्षेत रूपाणि कफालपभावात् ॥ ३८ ॥
शोकज्वरायासशिरोऽभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ।
सधूमकान्[6] पश्यति सर्वभावांस्तं धूमदर्शीति वदन्ति रोगम् ॥ ३९ ॥
स[7] ह्रस्वजाड्यो दिवसेषु कृच्छ्रात् ह्रस्वानि रूपाणि च येन पश्येत् ।
विद्योतते[8] येन नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् ॥ ४० ॥
चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत् स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः ।
दृष्टिर्विरूपा[9] श्वसनोपसृष्टा सङ्कुच्यतेऽभ्यन्तरतश्च याति ॥ ४१ ॥
रुजावगाढा[10] च तमक्षिरोगं गम्भीरिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
बाह्यौ[11] पुनर्द्वावि॒ह सम्प्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ॥ ४२ ॥

---

१ पित्तविदग्धदृष्टिलक्षणमाख्याति—**पित्तेनेति** । दुष्टेन=वृद्धेनेत्यर्थः । २ दोषे=पित्ते इत्यर्थः । ३ श्लेष्मविदग्धदृष्टिलक्षणं ब्रवीति—**तथेति** । ४ दोषः=श्लेष्मा । ५ धूमदर्शिनो लक्षणमभिधत्ते—**शोकेति** । ६ धूमेन सह वर्तन्ते इति सधूमकास्तान् सधूमकान्, सर्वभावान=पदार्थान् । पित्तजोऽयं साध्यश्च । ७ ह्रस्वजाड्यलक्षणमाख्याति—**स इति** । सः=पुरुषः । पैत्तिकोऽयमसाध्यश्च । तथा च विदेहः—"नक्तमन्धास्तु चत्वारो ये पुरस्तात् प्रकीर्तिताः । तेषामसाध्यो नकुलो ह्रस्वजाड्यस्तथैव च ॥ विशेषेण भवेयातां द्वौ चतुःपटलाश्रितौ । तौ च सम्प्राप्तरागत्वादसाध्यौ परिकीर्तितौ ॥" इति ।

८ नकुलान्ध्यलक्षणं निर्दिशति—**विद्योतत इति** । नकुलस्य यद्वद्यथा दृष्टिर्विद्योतते वर्णेन प्रतिभासते, तथाऽस्य नरस्य दोषाभिपन्ना दोषैर्व्याप्ता दृष्टिरित्यर्थः । त्रिदोषजोऽयमसाध्यश्च । ९ गम्भीरिकालक्षणमाचष्टे—**दृष्टिरिति** । विरूपा=विकृतरूपा, श्वसनोपसृष्टा=वातोपगता । १० रुजावगाढा=गम्भीरवेदनाऽन्विता । सकपटलगतवातजन्येयमसाध्या च । ११ आगन्तुनिमित्तलक्षणमभिधत्ते—**बाह्याविति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमित्ततस्तत्र[1] शिरोऽभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनैश्च ।
सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि च भास्वराणाम् ॥ ४३ ॥
हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः[2] ।
तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति वैदूर्य्यवर्णा विमला च दृष्टिः ॥४४॥
विदीर्य्यते[3] सीदति हीयते वा नृणामभीघातहता तु दृष्टिः[4] ॥ ४५ ॥

इत्येते नयनगता मया विकाराः
सङ्ख्याताः पृथगिह षट् च सप्ततिश्च ।
एतेषां पृथगिह[5] विस्तरेण सर्वं
वक्ष्येऽहं तदनु चिकित्सितं यथावत् ॥ ४६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे दृष्टिगत-रोगविज्ञानीयो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

---

सम्प्रदिष्टौ=कथितौ, औपद्रविकाध्याये इत्यर्थः । १ तत्र=तयोर्मध्ये, शिरोऽभितप्यते येन विषकुसुमगन्धवहपवनस्पर्शेनेति शिरोऽभितापस्तस्मात् । अभिष्यन्दनिदर्शनैः= अभिष्यन्दलक्षणैः । अयमप्यसाध्यः ।

२ अनिमित्तलिङ्गनाशं दर्शयति—**सुरर्षीति** । अयमप्यसाध्यः । ३ तत्र= अनिमित्तसञ्ज्ञके, विस्पष्टमिव=पूर्वावस्थातो विशेषेण प्रसन्नमिव, वैदूर्यवर्णा=इयाम वा, प्रकृतिवर्णेत्यर्थः । विमला=विगतकाचादिमला । पूर्वावस्थातः शक्तिमात्रमुपहन्यते, यतो देवादयो इयत्ययवमदूषयन्त एव शक्तिमात्रमुपघ्नन्तीति तात्पर्यम् । तदुक्तं चरके—"देवादयोऽष्टौ हि महानुभावा न दूषयन्तः पुरुषस्य देहम् । विशन्त्यदृश्यास्तरसा यथैव छायाऽऽतपौ दर्पणसूर्यकान्तौ ॥" इति । ४ अभिघातजलिङ्गनाशलक्षणमाख्याति—**विदीर्यत इति** । बाह्यनिमित्तत्वेन त्रिदोषान्तर्भूतोऽयम् । ५ इह= शालाक्ये इत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तमोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अष्टमोऽध्यायः ।

अथातश्चिकित्सितप्रविभागविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

षट्सप्ततिर्येऽभिहिता व्याधयो नामलक्षणैः ।
चिकित्सितमिदं तेषां समासव्यासतः शृणु ॥ ३ ॥
छेद्यास्तेषु दशैकश्च नव लेख्याः प्रकीर्त्तिताः ।
भेद्याः पञ्च विकाराः स्युर्व्यध्याः पञ्चदशैव तु ॥ ४ ॥
द्वादशाशस्त्रकृत्याश्च याप्याः सप्त भवन्ति हि ।
रोगा वर्जयितव्याः स्युर्दश पञ्च च जानता ।
असाध्यौ वा भवेतां तु याप्यौ चागन्तुसंज्ञितौ ॥ ५ ॥
अर्शोऽन्वितं भवति वर्त्म तु यत्तथाऽर्शः
शुष्कं तथाऽर्बुदमथो पिडकाः सिराजाः ।
जालं सिराजमपि पञ्चविधं तथाऽर्म
छेद्या भवन्ति सह पर्वणिकामयेन ॥ ६ ॥
उत्सङ्गिनी बहलकर्दमवर्त्मनी च
श्यावञ्च यच्च पठितं त्विह बद्धवर्त्म ।
क्लिष्टञ्च पोथकियुतं खलु यच्च वर्त्म
कुम्भीकिनी च सह शर्करया च लेख्याः ॥ ७ ॥

---

अष्टमोऽध्यायः ।

१ छेद्यत्वादिना साध्यासाध्यत्वादिना च चिकित्सार्थः प्रविभागः प्रकर्षेण विभजनं, तस्य विज्ञानमवबोधो विद्यते यस्मिन्नध्याये तं चिकित्सितप्रविभागविज्ञानीयम् । २ हेतुपूर्वरूपोपशयसम्प्राप्तिभिर्लक्षणैरित्यर्थः । ३ नेत्ररोगाणां साध्यासाध्यविचारमाचष्टे—**छेद्या इति** । ४ चकारादु द्वौ बाह्यजावशस्त्रकृत्याविति बोद्धव्यम् । ५ असाध्या रोगा वर्जयितव्या इत्यर्थः । ६ तानेव छेद्यान् रोगान् नामभिर्निर्दिशति—**अर्शो इति** । ७ पञ्चविधमर्म=प्रस्तार्यर्म-शुष्कार्म-रक्तार्म-अधिमांसार्म-स्नाय्वर्म इति ।

८ लेख्यान् रोगान् नामभिर्दर्शयन्नाह—**उत्सङ्गिनीति** । बहलकर्दमवर्त्मनी=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्लेष्मोपनाहलगणौ च बिसश्च भेद्या
ग्रन्थिश्च यः कृमिकृतोऽञ्जननामिका च ।
आदौ सिरा निगदितास्तु ययोः प्रयोगे
पाकौ च यौ नयनयोः पवनोऽन्यतश्च ॥ ८ ॥
पूयालसानिलविपर्य्ययमन्थसंज्ञाः
स्यन्दास्तु यान्त्युपशमं हि सिराव्यधेन ।
शुष्काक्षिपाककफपित्तविदग्धदृष्टि-
ष्वम्लाख्यशुक्रसहितार्जुनपिष्टकेषु ॥ ९ ॥
अक्लिन्नवर्त्महुतभुग्ध्वजदर्शिशुक्ति-
प्रक्लिन्नवर्त्मसु तथैव बलाससंज्ञे ।
आगन्तुनाऽऽमययुगेन च दूषितायां
दृष्टौ न शस्त्रपतनं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १० ॥
सम्पश्यतः षडपि येऽभिहितास्तु काचा-
स्ते पक्ष्मकोपसहितास्तु भवन्ति याप्याः ।
चत्वार एव पवनप्रभवास्त्वसाध्या
द्वौ पित्तजौ कफनिमित्तज एक एव ॥

---

बहलवर्त्म कर्दमवर्त्म चेत्यर्थः । १ भेद्यान् रोगानाख्याति—श्लेष्मेति । बिसं = बिसवर्त्म । २ व्यध्यान् रोगानभिदधाति—आदाविति । ययोः प्रयोगे आदौ सिरा निगदितास्तौ सिरोत्पातसिराहर्षाविति यर्थः । नयनयोः पाकौ च यौ सशोफपाकः अशोफपाकश्चेत्यर्थः । पवनोऽन्यतः = अन्यतोवातः । ३ मन्थसंज्ञाः = चत्वारोऽधिमन्थाः, स्यन्दाः = चत्वारोऽभिष्यन्दाः । ४ अशस्त्रकृत्यान् नेत्ररोगानभिधत्ते—शुष्केति । अम्लाख्यः = अम्लाध्युषितः, शुक्तमव्रणमेव । ५ हुतभुग्ध्वजदर्शी = धूमदर्शी । ६ शस्त्रपतनं = शस्त्रपातनमित्यर्थः ।

७ याप्यान् रोगान् वक्ति—संपश्यत इति । षडपि वातपित्तकफरक्तसन्निपातजपरिम्लायिसंज्ञका ये काचाः पक्ष्मकोपसहिता अभिहितास्ते संपश्यतः पुरुषस्य याप्या भवन्तीति योजना । ८ असाध्यान् रोगानिर्दिशति—चत्वार इति । चत्वारः पवनप्रभवा हताधिमन्थनिमिषगम्भीरिकावातहतवर्त्मसंज्ञकाः, द्वौ पित्तजौ ह्रस्वजाड्यजलस्रावौ, कफनिमित्तज एक एव, कफस्रावाख्यः । अष्टार्द्धकाश्चत्वारो रुधिरजा रक्तस्रावाजकाजातशोणितार्शः सव्रणशुक्रसंज्ञकाः, तावन्तश्चत्वारः त्रिदोषजाः पूयास्रावनकु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अष्टार्द्धका रुधिरजाश्च गदास्त्रिदोषा-
स्तावन्त एव गदितावपि बाह्यजौ द्वौ ॥ ११ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे चिकित्सित-
प्रविभागविज्ञानीयो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

---

## नवमोऽध्यायः ।

अथातो वाताभिष्यन्दप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
पुराणसर्पिषा स्निग्धौ स्यन्दाधीमन्थपीडितौ ।
स्वेदयित्वा यथान्यायं सिरामोक्षेण योजयेत् ॥ ३ ॥
सम्पादयेद्वस्तिभिस्तु सम्यक् स्नेहविरेचितौ ।

---

लान्ध्याक्षिपाकात्यालजीसंज्ञकाः, बाह्यजौ आगन्तुजौ । "सनिमित्तोऽनिमित्तश्च द्वावसाध्यौ तु बाह्यजौ" इत्युक्तम् ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्या-
मष्टमोऽध्यायः ।

---

### नवमोऽध्यायः ।

१ नयनरोगाणामभिष्यन्दमूलत्वादुद्देशक्रमं हित्वा दोषक्रमापेक्षया प्रथमं तावद् वाताभिष्यन्दप्रतिषेधमधिकरोति—अथात इति । अत्रादिशब्दो लुप्तो निर्दिष्टस्तेन वाताभिष्यन्दादिप्रतिषेधं व्याख्यास्याम इत्यर्थः । प्रतिषेधश्चिकित्सितम् । २ अभिष्यन्दाधिमन्थयोः सामान्यचिकित्सामाह—पुराणेति । पुराणसर्पिषा = वर्षोषितघृतेनेत्यर्थः । तदुक्तम्—"वर्षादूर्ध्वं भवेदाज्यं पुराणं तत् त्रिदोषनुत्" इति । ३ यथान्यायं = यथाशास्त्रम् । तन्त्रान्तरे विशेषः—"स्वेदः प्रलेपस्तिक्तान्नं धूमो दिनचतुष्टयम् । लङ्घनं चाक्षिरोगाणामामानां पाचनानि षट् ॥ अञ्जनं सर्पिषः पानं कषायं गुरुभोजनम् । नेत्ररोगेषु सामेषु स्नानं च परिवर्जयेत् ॥" इति । विदेहेऽपि—"प्रागेवाद्यामये भक्तं त्रिरात्रमगुरु स्मृतम् । उपवासस्त्र्यहं वा स्यान्नक्तं वाऽप्यशनं हितम् ॥ ततश्चतुर्थे दिवसे व्याधौ सञ्जातलक्षणे । यथोक्तास्तु क्रियाः कार्या नस्यसेकाञ्जनादिकाः॥" इति । सिरा उपनासिका ललाटस्था आपाङ्ग्या वा तस्या मोक्षणं तेन । ४ स्नेहव-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्पणैः[1] पुटपाकैश्च धूमैराश्च्योतनैस्तथा ॥ ४ ॥
नस्यस्नेहपरीषेकैः शिरोबस्तिभिरेव च ।
वातघ्नानूपजलजमांसाम्लकाथसेचनैः[2] ॥ ५ ॥
स्नेहैश्चतुर्भिरुष्णैश्च तत्पीताम्बरधारणैः[3] ।
पयोभिर्वसवारैश्च शाल्वणैः पायसैस्तथा ॥ ६ ॥
भिषक् सम्पादयेदेतावुपनाहैश्च पूजितैः ।
आम्यानूपौदकरसैः स्निग्धैः फलरसान्वितैः[4] ॥ ७ ॥
सुसंस्कृतैः[5] पयोभिश्च तयोराहार इष्यते ।
तथा चोपरिभक्तस्य सर्पिःपानं प्रशस्यते ॥ ८ ॥
त्रिफलाकाथसंसिद्धं केवलं[6] जीर्णमेव वा ।
सिद्धं वातहरैः क्षीरं प्रथमेन गणेन[7] वा ॥ ९ ॥
स्नेहास्तैलाद्विना सिद्धा वातघ्नैस्तर्पणे हिताः ।
स्नैहिकैः[8] पुटपाकश्च धूमो नस्यञ्च तद्विधम् ॥ १० ॥
नस्यादिषु स्थिरा[9]क्षीरमधुरैस्तैलमिष्यते ।
एरण्डपल्लवे मूले त्वचि वाऽऽजं पयः श्रृतम् ॥ ११ ॥
कण्टकार्य्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचने हितम् ।
[10]सैन्धवोदीच्ययष्ट्याह्वपिप्पलीभिः श्रृतं पयः ॥ १२ ॥
हितमर्द्धोदकं[11] सेके तथाऽऽश्च्योतनमेव च ।
[12]ह्रीवेरवक्रमञ्जिष्ठोदुम्बरत्वक्षु साधितम् ॥ १३ ॥

---

स्तिभिर्निरूहैर्वेत्यर्थः । १ आश्च्योतनं = पूरणम् ।

२ वाताभिष्यन्दाधिमन्थयोर्विशेषचिकित्सामाचष्टे—**वातघ्नेति** ॥ ३ तत्पीताम्बरधारणैः = चतुःस्नेहसिक्तकवलिकाऽऽकारवस्त्रधारणैरित्यर्थः । ४ फलरसान्वितैः = दाडिमामलकरससंयुतैः । ५ शतावरीशृङ्गवेरादिद्रव्यसंस्कृतैरित्यर्थः । तयोः = अभिष्यन्दाधिमन्थयोः । ६ केवलम् = असंस्कृतम् । ७ प्रथमेन गणेन = त्रिदारिगन्धादिगणेन । ८ तर्पणद्रव्याणि दर्शयति—**स्नैहिक इति** । स्नैहिकः पुटपाकः क्रियाकल्पे निवेदयिष्यते । ९ स्थिरा = शालपर्णी, मधुरः = मधुरवर्गः ।

१० आश्च्योतनद्रव्याणि निर्दिशति—**सैन्धवेति** । उदीच्यः = 'नागरमोथा' । इति ख्यातः । ११ अर्धमुदकं यस्मिन् पयसि तदर्धोदकम् । सैन्धवादिद्रव्यप्रमाणं क्षीराद्यष्टमांशम् । १२ ह्रीवेरं = बालकम्, वक्रं = तगरम् । अष्टाङ्गहृदये—"ह्रीवेरवक्रशार्ङ्गेष्टो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


साम्भश्छागं पयो वाऽपि शूलाश्च्योतनमुत्तमम् ।
मधुकं रजनीं पथ्यां[1] देवदारुं च पेषयेत् ॥ १४ ॥
आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम् ।
गैरिकं सैन्धवं कृष्णां नागरञ्च यथोत्तरम्[2] ॥ १५ ॥
द्विगुणं पिष्टमद्भिस्तु गुटिकाञ्जनमिष्यते ।
स्नेहाञ्जनं हितं चात्र वक्ष्यते[3] तद्यथाविधि ॥ १६ ॥
रोगो यश्चान्यतोवातो यश्च मारुतपर्य्ययः ।
अनेनैव विधानेन[4] भिषक्तावपि साधयेत् ॥ १७ ॥
पूर्वभुक्तं[5] हितं सर्पिः क्षीरं वाऽप्यथ भोजने ।
वृक्षादनीं[6] कपित्थे च पञ्चमूले महत्यपि ॥ १८ ॥
सक्षीरं कर्कटैरसे[7] सिद्धं चात्र घृतं पिबेत् ।
सिद्धं वा हितमत्राहुः पत्तूरार्त्तगलाग्निकैः[8] ॥ १९ ॥
सक्षीरं मेषशृङ्ग्या वा[9] सर्पिर्वीरतरेण वा ।
सैन्धवं[10] दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसो घृतम् ॥ २० ॥
स्तन्योदकाभ्यां कर्त्तव्यं शुष्कपाके तदञ्जनम् ।
पूजितं सर्पिषश्चात्र पानमक्ष्णोश्च तर्पणम् ॥ २१ ॥

---

दुम्बरत्वक्तु साधितम् । साम्भसा पयसाऽऽजेन शूलाश्च्योतनमुत्तमम् ॥" इति । १ पथ्यां = हरीतकीम् । २ यथोत्तरमिति अग्रिमपादादिस्थद्विगुणमित्यनेन सम्बध्यते । ३ वक्ष्यते क्रियाकल्पे इति शेषः । ४ विधानेन = पूर्वोक्तवाताभिष्यन्दविधिनेत्यर्थः ।

५ अन्यतोवातमारुतपर्ययोः सामान्यां प्रतिक्रियामुक्त्वा विशेषचिकित्सामाख्याति—**पूर्वेति** । भक्तस्य अन्नस्य पूर्वं पूर्वभक्तं, भोजनात् प्रागित्यर्थः । ६ वृक्षादनी = 'आकाशबेल' इति ख्याता । ७ कर्कटः कुलीरस्तद्रसे । ८ पत्तूरः = शालिञ्चशाकविशेषः, आर्तगलः = 'कालीकटसरैया' इति लोके, अग्निकः = अजमोदा । ९ वाशब्दः पक्षान्तरं बोधयति । पत्तूरादीनां कषाये क्षीरे च साधितं घृतम्, अथ सक्षीरे मेषशृङ्गीकाथे साधितं, वा वीरतरेण वीरणमूलेन साधितं सर्पिरित्यर्थः ।

१० शुष्कपाकचिकित्सामाचष्टे—**सैन्धवमिति** । सैन्धवादिद्रव्यत्रयकल्कं घृतेन सम्मिश्रय मातुलुङ्गरसे पिष्ट्वा संशोष्य स्तन्योदकाभ्यां द्रवीकृत्य अञ्जनं कार्यमिति सा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन चाणुना[1] ।
परिषेके हितञ्चात्र पयः शीतं ससैन्धवम् ॥ २२ ॥
रजनीदारुसिद्धं वा सैन्धवेन[2] समायुतम् ।
सर्पिर्युतं स्तन्यघृष्टमञ्जनं वा महौषधम् ॥ २३ ॥
वसा वाऽऽनूपजलजा सैन्धवेन समायुता ।
नागरोन्मिश्रिता[3] किञ्चिच्छुष्कपाके तदञ्जनम् ॥ २४ ॥
पवनप्रभवा[4] रोगा ये केचिद् दृष्टिनाशनाः ।
बीजेनानेन मेधावी तेषु कर्म प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे वाताभिष्यन्दप्रतिषेधो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

## दशमोऽध्यायः ।

अथातः[5] पित्ताभिष्यन्दप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
पित्तस्यन्दे[6] पैत्तिके चाधिमन्थे रक्तस्रावः स्रंसनञ्चापि[7] कार्यम् ।
अक्ष्णोः सेकालेपनस्याञ्जनानि[8] पैत्ते च स्याद्यद्विसर्पे विधानम् ॥३॥

---

रम् । १ शालाक्यतन्त्रोक्तेन अणुतैलेन, न तु वातव्याध्युपदिष्टेनेति भावः । २ 'ईषत्सैन्धवेनेत्यर्थः । ३ नागरोन्मिश्रिता = शुण्ठीयुक्ता, 'वसा' इति पूर्वेण सम्बन्धः । ४ सर्ववातजनेत्ररोगेषु वाताभिष्यन्दचिकित्सामतिदिशति—पवनेति । दृष्टिनाशनाः = तिमिरकाचादय इत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायां उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां नवमोऽध्यायः ।

---

### दशमोऽध्यायः ।

५ अथ दोषक्रमागतं पित्ताभिष्यन्दप्रतिषेधमधिकरोति—अथात इति । अत्रापि आदिशब्दो लुप्तनिर्दिष्टः, एवमग्रिमेष्वपि अध्यायेषु आदिशब्दो लुप्तनिर्दिष्टो द्रष्टव्यः । ६ पित्ताभिष्यन्दचिकित्सतमारभ्यते—पित्तेति । पित्तस्यन्दे = पित्ताभिष्यन्दे । ७ स्रंसनं = विरेचनम् । ८ सेकालेपनस्याञ्जनानि पित्तहराण्येव कार्याणि । विधानं = "क-


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुन्द्रां[1] शालिं शैवलं शैलभेदं दार्वीमेलामुत्पलं रोध्रमभ्रम् ।
पद्मात्पत्रं शर्करा दर्भमिक्षुं तालं रोध्रं वेतसं पद्मकञ्च ॥ ४ ॥
द्राक्षां क्षौद्रं चन्दनं यष्टिकाह्वं योषित्क्षीरं राज्यनन्ते च पिष्ट्वा ।
सर्पिःसिद्धं तर्पणे सेकनस्ये शस्तं क्षीरं सिद्धमेतेषु चाज्यम् ॥ ५ ॥

योज्यो वर्गो व्यस्त[3] एषोऽन्यथा वा
सम्यङ्नस्येऽष्टार्द्धसङ्ख्येऽपि नित्यम् ।
क्रियाः सर्वाः पित्तहर्य्यः प्रशस्ता-
स्त्र्यहाच्चोर्द्ध्वं क्षीरसर्पिश्च[4] नस्यम् ॥ ६ ॥

पालाशं[5] स्याच्छोणितं चाञ्जनार्थे शल्लक्या वा शर्करा क्षौद्रयुक्तम् ।
रसक्रियां[6] शर्करा क्षौद्रयुक्तां पालिन्द्यां वा मधुके वाऽपि कुर्यात् ॥ ७ ॥
मुस्ता फेनः सागरस्योत्पलञ्च कृमिघ्नैलाधात्रिबीजाद्रसञ्च[7] ।
तालीशैलागैरिकोशीरशङ्खैरेवं युञ्ज्यादञ्जनं स्तन्यपिष्टैः[8] ॥ ८ ॥
चूर्णं कुर्य्यादञ्जनार्थे रसो[9] वा स्तन्योपेतो धातकीस्यन्दनाभ्याम् ।
योषित्स्तन्यं [10]शातकुम्भं विघृष्टं क्षौद्रोपेतं किंशुकञ्चापि पुष्पम् ॥ ९ ॥

---

सेरु । शृङ्गाटकपद्मगुन्द्रा" "ह्रीवेरलामज्जकचन्दनानि" इति विसर्पादिचिकित्सितोक्तविधिः ।

१ तत्र पित्ताभिष्यन्दयौगिकद्रव्याणि दर्शयति— गुन्द्रामिति । गुन्द्रा = एरका, निर्ग्रन्थितृणविशेषः, 'एरका गुन्द्रमूला च शिम्बी गुन्द्रा शरीति च' इति नामान्तराणि । शैवलं = दूर्वा, शैलभेदः=पाषाणभेदः,·····अभ्रं = 'नागरमोथा' इति लोके । २ चन्दनं = रक्तचन्दनम् ,··· रात्रिः = हरिद्रा, अनन्ता=उत्पलसारिवा । ३ व्यस्तः = असमस्तः, अन्यथा = समस्त', नस्येऽष्टार्धसंख्ये = शिरोविरेचनप्रतिमर्षावपीडप्रधमनसंज्ञके नस्यचतुष्टये इत्यर्थः । ४ क्षीरमथनोत्थसर्पिः क्षीरसर्पिः । अत्र नस्यपदमाश्च्योतनसेकाञ्जनादीनामुपलक्षणम् । ५ पालाशं पलाशपुष्पोद्भवं, शोणितं स्वरसं, शोणितसारूप्यादिति भावः । शल्लकी गजभक्ष्यो लताभेदः । अस्या· गुणाः—"शल्लकी तुवरा शीता पित्तश्लेष्मातिसारजित् । रक्तपित्तव्रणहरी पुष्टिकृत् समुदीरिता ।" इति ।

६ रसक्रिया = घनीभूतक्वाथः, फाणिताकृतिरिति यावत् । "गृहीत्वा क्वाथकल्पेन क्वाथं पूतं पुनः पुनः । क्वाथयेत् फाणिताकारमेषा प्रोक्ता रसक्रिया ॥" इति तल्लक्षणम् । पालिन्दी = श्यामा त्रिवृत् । ७ कृमिघ्नः = 'वायविडङ्ग' इति, बीजः = 'विजयसार' इति ख्यातः । ८ स्तन्यपिष्टैः = दुग्धपिष्टैरित्यर्थः । ९ रसः = रसक्रिया । १० शा·

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोध्रं द्राक्षां शर्करामुत्पलञ्च नार्य्याः क्षीरे यष्टिकाह्वं वचाञ्च ।
पिष्ट्वा क्षीरे वर्णकस्य त्वचं च तोयोन्मिश्रे चन्दनोदुम्बरे च ॥१०॥
कार्यः फेनः सागरस्याञ्जनार्थे नारीस्तन्ये माक्षिके चापि घृष्टः ।
योषित्स्तन्ये स्थापितं यष्टिकाह्वं रोध्रं द्राक्षां शर्करामुत्पलञ्च ॥११॥
क्षौमाबद्धं पथ्यमाश्चद्योतने वा सर्पिर्घृष्टं यष्टिकाह्वं सरोध्रम् ।
तोयोन्मिश्राः काश्मरीधात्रिपथ्यास्तद्वच्चाहुः कट्फलञ्चाम्बुनैव ॥१२॥
एषोऽम्लाख्येऽनुक्रमश्चापि शुक्तौ कार्यः सर्वः स्यात्सिरामोक्षवर्ज्यः १३
सर्पिः पेयं त्रैफलं तैल्वकं वा पेयं वा स्यात् केवलं यत् पुराणम् ।
दोषेऽधस्ताच्छुक्तिकायामपास्ते शीतैर्द्रव्यैरञ्जनं कार्यमाशु ॥ १४ ॥
वैदूर्य्यं यत् स्फाटिकं वैद्रुमञ्च मौक्तं शाङ्खं राजतं शातकुम्भम् ।
चूर्णं सूक्ष्मं शर्कराक्षौद्रयुक्तं शुक्तिं हन्यादञ्जनं चैतदाशु ॥ १५ ॥
युञ्ज्यात्सर्पिर्धूमदर्शी नरस्तु शेषं कुर्य्याद्रक्तपित्ते विधानम् ।

---

तकुम्भं = सुवर्णम् । १ वर्णकस्य = 'वरना' इति ख्यातस्य, तोयोन्मिश्रे = वालकमिश्रिते । अत्र नारीक्षीरे पिष्टं रोध्रादिवचाऽन्तं प्रथममञ्जनम्, नारीक्षीरे पिष्टा वर्णकत्वक् द्वितीयम्, अवशिष्टं तृतीयमञ्जनं बोध्यम् । २ अनन्तरोक्तं यष्टिमधुकादिद्रव्यं भृशतरं चूर्णितं क्षौमवस्त्रबद्धं नारीस्तन्यप्लुतमाश्च्योतने पथ्यं हितकरमित्यर्थः । ३ काश्मरी = गम्भारी, 'गम्भार' इति ख्याता ।

४ अथ अम्लाध्युषितशुक्त्योः सामान्यचिकित्सितमभिधत्ते—**एष इति** । एषः = पूर्वोक्तः, अनुक्रमः = चिकित्सितम् । ५ अशस्त्रकृत्येषु पठितत्वात् सिरामोक्षवर्जनमिति भावः । ६ अम्लाध्युषितस्य विशेषचिकित्सां दर्शयति—**सर्पिरिति** । त्रैफलं तैल्वकं वा सर्पिः संशोधनार्थं, केवलं पुराणसर्पिः संशमनार्थं च बोध्यम् । ७ शुक्तिकाया विशेषचिकित्सामाह—**दोष इति** । शुक्तिकायामधस्ताद् दोषे अपास्ते निर्हृते, विरेचनेनेति शेषः । शीतैर्द्रव्यैराशु अञ्जनं कार्यम् । ८ यानि शीतद्रव्याणि तानि निर्दिशति—**वैदूर्यमिति** । वैदूर्यलक्षणम्—'एकं वेणुपलाशकोमलरुचा मायूरकण्ठत्विषा मार्जारेक्षणपिङ्गलच्छविजुषा ज्ञेयं त्रिधा छायया । यद् गात्रं गुरुतां दधाति नितरां स्निग्धं तु दोषोज्झितं वैदूर्यं विशदं वदन्ति सुधियः स्वच्छं च तच्छोश्मनम् ॥' इति । वैदूर्यपरीक्षणं यथा—"घृष्टं यदात्मना स्वच्छं स्वच्छायां निकषानि । स्फुटं प्रदर्शयेदेतद्वैदूर्यं जात्यमुच्यते ॥" इति । एवमन्येषामपि लक्षणं परीक्षणादिकं चान्यतोऽवसेयम् ।

९ धूमदर्शिनश्चिकित्सामाख्याति—**युञ्ज्यादिति** । सर्पिः पित्तहरद्रव्यसंसिद्धं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यच्चैवान्यत् पित्तहृच्चापि सर्वं यद्वीसर्पे पैत्तिके वै विधानम् ॥१६॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे पित्ताभिष्यन्दप्रतिषेधो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

## एकादशोऽध्यायः ।

अथातः श्लेष्माभिष्यन्दप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

स्यन्दाधिमन्थौ कफजौ प्रवृद्धौ जयेत् सिराणामथ मोक्षणेन ।
स्वेदावपीडाञ्जनधूमसेकप्रलेपयोगैः कवलग्रहैश्च ॥ ३ ॥
रूक्षैस्तथाऽऽश्चद्योतनसंविधानैस्तथैव रूक्षैः पुटपाकयोगैः ।
त्र्यहात्त्र्यहाच्चाप्यपतर्पणान्ते प्रातस्तयोस्तिक्तघृतं प्रशस्तम् ॥ ४ ॥
तदन्नपानञ्च समाचरेद्धि यच्छ्लेष्मणो नैव करोति वृद्धिम् ।
कुटन्नटास्फोटफणिज्झबिल्वपत्तूरपिल्वर्ककपित्थभङ्गैः ॥ ५ ॥
स्वेदं विदध्यादथवाऽनुलेपं वर्हिष्ठशुण्ठीसुरकाष्ठकुष्ठैः ।
सिन्धूत्थहिङ्गुत्रिफलामधूकप्रपौण्डरीकाञ्जनतुत्थताम्रैः ॥ ६ ॥

---

बोध्यम् । रक्तपित्ते विधानं = रक्ताभिष्यन्दे पित्ताभिष्यन्दे च यच्चिकित्सितविधानमुक्तं तदित्यर्थः । शेषं सुगमम् ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां दशमोऽध्यायः ।

---

### एकादशोऽध्यायः ।

१ दोषक्रमप्राप्तं श्लेष्माभिष्यन्दप्रतिषेधमधिकरोति-अथेति । अत्रापि आदिशब्दो लुप्तनिर्दिष्टः । २ श्लेष्मजाभिष्यन्दाधिमन्थयोश्चिकित्सां दर्शयति—स्यन्देति । ३ तिक्तघृतं कुष्ठचिकित्सिते महातिक्तघृतानन्तरमुक्तम् । ४ स्वेदद्रव्याणि निर्दिशति—कुटन्नटेति । कुटन्नटं = तगरम् , श्योनाक इत्यन्ये । आस्फोटः=श्वेतार्कः, फणिज्झकः = तीक्ष्णगन्धः, 'मरुवक' इति लोके । पत्तूरः = शालिञ्चशाकविशेषः । ५ बर्हिष्ठं = हीवेरम् । ६ सप्तवर्ष्यञ्जनानि वक्ति—सिन्धूत्थेति । सिन्धूत्थं = सैन्धवम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिष्टैर्जलेनाञ्जनवर्त्तयः स्युः पथ्याहरिद्रामधुकाञ्जनैर्वा ।
त्रीण्यूषणानि[1] त्रिफला हरिद्रा विडङ्गसारश्च समानि च स्युः ॥ ७ ॥
बर्हिष्ठकुष्ठामरकाष्ठशङ्खपाठामलव्योषमनःशिलाश्च[2] ।
पिष्ट्वाऽम्बुना वा कुसुमानि जातिकरञ्जशोभाञ्जनजानि युञ्ज्यात् ॥ ८ ॥
फलम्प्रकीर्यादथवाऽपि शिग्रोः पुष्पञ्च तुल्यं बृहतीद्वयस्य[3] ।
रसाञ्जनं सैन्धवचन्दनञ्च मनःशिलाऽऽले[4] लशुनञ्च तुल्यम् ॥ ९ ॥
पिष्ट्वाऽञ्जनार्थे कफजेषु धीमान्वर्त्तीर्विदध्यान्नयनामयेषु[5] ।
रोगे[6] बलासग्रथितेऽञ्जनज्ञैः कर्त्तव्यमेतत् सुविशुद्धकाये[7] ॥ १० ॥
नीलान् यवान् गव्यपयोऽनुपीतान्[8] शलाकिनः शुष्कतनून् विदह्य ।
तथाऽर्जकास्फोतकपित्थबिल्वनिर्गुण्डिजातीकुसुमानि चैव ॥ ११ ॥
तत्क्षारवत्सैन्धवतुत्थरोचनं पक्वं[9] विदध्यादथ लोहनाड्या[10] ।
एतद् बलासग्रथितेऽञ्जनं स्यादेषोऽनुकल्पस्तु फणिज्झकादौ ॥ १२ ॥
महौषधं[11] मागधिकाञ्च मुस्तां ससैन्धवं यन्मरिचञ्च शुक्लम् ।
तन्मातुलुङ्गस्वरसेन पिष्टं नेत्राञ्जनं पिष्टकमाशु हन्यात् ॥ १३ ॥
फले[12] बृहत्या मगधोद्भवानां निधाय कल्कं फलपाककाले ।

---

१ त्रीण्यूषणानि = त्रिकटुकम् । २ अमरकाष्ठं = देवदारु । ३ प्रकीर्यात् = पूतिकरञ्जात् । पुष्पं चेति चकारेण फलं च बोध्यम्, ४ आलं = हरितालम् । ५ नयनामयेषु = नेत्ररोगेषु । एवमेतत्पर्यन्तं सिन्धूत्थपथ्योषणबर्हिष्ठजातीकुसुमप्रकीर्यफलरसाञ्जनादीनि सप्तवर्त्यञ्जनान्युक्तानि ।

६ बलासग्रथिते क्षाराञ्जनयोगमभिदधाति—**रोगे इति** । ७ सिराव्यधविरेचनादिभिः सुविशुद्धः कायो यस्य स तस्मिन् सुविशुद्धकाये । ८ अनुपीतान् = भावितान्, सप्ताहं भावना । ९ अर्जकः = वर्वरिकाकारो लघुमञ्जरीकः सूक्ष्मपत्रो निर्गन्धः श्वेतकुठेरकः । १० नीलयवादिभस्म प्रस्थप्रमाणम् उष्णोदके आढकप्रमाणे मेलयित्वा यावत् क्षारोदकं तीक्ष्णं पिच्छिलं रक्तं च स्यात्, तावत् पुनः पुनः संस्राव्य तद् भस्मापहाय तत्र क्षारोदके सैन्धवतुत्थरोचनमावापं क्षारोदकाद् द्वात्रिंशद्भागं दत्त्वा पक्त्वा च लोहशलाकयाऽञ्जनं कुर्यादित्यर्थः । 'लोहनाड्या' इत्यत्र 'लोहनाड्याम्' इति पाठान्तरम् ।

११ पिष्टकरोगेऽञ्जनमभिदधाति—**महौषधमिति** । शुक्लं मरिचं = शोभाञ्जनबीजम् । १२ अञ्जनान्तरं निर्दिशति—**फले इति** । फलपाककाले बृहत्या कण्टकार्याः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्रोतोजयुक्तं च तदुद्धृतं स्यात्तद्वत्तु पिष्टे, विधिरेष चापि ॥ १४ ॥
बार्त्ताकशिग्रिन्द्रसुरापटोलकिराततिक्तामलकीफलेषु ।
कासीससामुद्रसाञ्जनानि जात्यास्तथा क्षारकमेव चापि ॥ १५ ॥
प्रक्लिन्नवर्त्मन्युपदिश्यते तु योगाञ्जनं तन्मधुनाऽवघृष्टम् ।
नादेयमग्र्यं मरिचञ्च शुक्लं नेपालजाता च समप्रमाणा ॥ १६ ॥
समातुलुङ्गद्रव एष योगः कण्डूं निहन्यात्सकृदञ्जनेन ।
सशृङ्गवेरं सुरदारु मुस्तं सिन्धुप्रसूतं मुकुलानि जात्याः ॥ १७ ॥
सुराप्रपिष्टन्त्विदमञ्जनं हि कण्ड्वां च शोफे च हितं वदन्ति ।
स्यन्दाधिमन्थक्रममाचरेच्च सर्वेषु चैतेषु सदाऽप्रमत्तः ॥ १८ ॥
(विशेषतो नावनमेव कार्यं संसर्जनं चापि यथोपदिष्टम् ।)

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे कफाभिष्यन्दप्रतिषेधो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

फलमादाय बीजं निष्कास्य तत्र स्रोतोजः सौवीराञ्जनं तेन युक्तं मगधोद्भवानां कल्कं पिप्पलीकल्कं पूरयेत् । तत्कल्कं सप्तरात्रात्परमुद्धृतं तद्वद् महौषधवत् पिष्टकेऽञ्जनार्थं हितकरं स्यादित्यर्थः ।

१ कण्टकारिफलविधानमन्यस्मिन्नपि फलेऽतिदिशति—विधिरिति । २ इन्द्रसुरा=इन्द्रवारुणी । ३ प्रक्लिन्नवर्त्मनि योगाञ्जनमाख्याति—कासीसेति । जात्याः कोरकमिति सम्बन्धः । जातीकलिकेति तदर्थः । ४ नेत्रकण्डूचिकित्सामाह—नादेयमिति । नद्यां भवं नादेयं सैन्धवम्, मरिचं शुक्लं=शोभाञ्जनबीजम्, नेपालजाता=मनःशिला । ५ सिन्धुप्रसूत=सैन्धवमित्यर्थः । ६ पूर्वोक्तेषु रोगेषु विशेषचिकित्सामभिधाय सामान्यचिकित्सामाचष्टे—स्यन्देति । ७ एतेषु=बलासश्रयितपिष्टकप्रक्लिन्नवर्त्माख्यरोगेषु । चकारादन्येष्वपि श्लेष्मजनेत्ररोगेष्वतिदेशः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकादशोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## द्वादशोऽध्यायः ।

अथातो रक्ताभिष्यन्दप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
मन्थं स्यन्दं सिरोत्पातं सिराहर्षञ्च रक्तजम् ।
एकैकेन विधानेन चिकित्सेच्चतुरो गदान् ॥ ३ ॥
व्याध्यार्त्ताश्चतुरोऽप्येतान स्निग्धान् कौम्भेन सर्पिषा ।
रसैरुदारैरथवा सिरामोक्षेण योजयेत् ॥ ४ ॥
विरिक्तानां प्रकामञ्च शिरांस्येषां विशोधयेत् ।
वैरेचनिकसिद्धेन सितायुक्तेन सर्पिषा ॥ ५ ॥
ततः प्रदेहाः परिषेचनानि नस्यानि धूमाश्च यथास्वमेव ।
आश्चोतनाभ्यञ्जनतर्पणानि स्निग्धाश्च कार्याः पुटपाकयोगाः ॥६॥
नीलोत्पलोशीरकटङ्कटेरीकालीययष्टीमधुमुस्तरोधैः ।
सपद्मकैर्धौतघृतप्रदिग्धैरक्ष्णोः प्रलेपं परितः प्रकुर्य्यात् ॥ ७ ॥
रुजायां चाप्यतिभृशं स्वेदाश्च मृदवो हिताः ।
अक्ष्णोः समन्ततः कार्यं पातनञ्च जलौकसाम् ॥ ८ ॥
घृतस्य महती मात्रा पीता चार्त्तिं नियच्छति ॥
पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिश्चाप्युपपादितः ॥ ९ ॥

---

द्वादशोऽध्यायः ।

१ वातादिदोषकृतानभिष्यन्दानभिधाय पारिशेष्याद् रक्ताभिष्यन्दप्रतिषेधमधिकरोति—अथेति । २ रक्तजमिति विशेषणं मन्थं स्यन्दमित्यत्र अन्वेति, सिराहर्षसिरोत्पातयो रक्तजमात्रत्वेन प्रतिपादनात् । ३ कौम्भेन = एकादशोत्तरशतवर्षोषितेन, "कौम्भं तु शतवत्सरम्" इत्याचार्योक्त्या शतवर्षोषितेन वा । "एकादशशतं चैव वत्सरानुषितं घृतम् । रक्षोघ्नं कुम्भसर्पिः स्यात्" इति द्रवद्रव्यविध्यध्यायोक्तं स्मर्तव्यम् । ४ उदारैः = अधिकैः, रसैः = मांसरसैः, स्निग्धानित्यर्थः ।

५ वैरेचनिकसिद्धेन = त्रिवृतादिद्रव्यसिद्धेन शिरोविरेचनद्रव्यसिद्धेन वेत्यर्थः । ६ अभ्यञ्जनम् = अञ्जनम् । ७ कटङ्कटेरी = दारुहरिद्रा, कालीयकम् = 'अगर' इति ख्यातम् । ८ धौतघृतप्रदिग्धैः = शतधौतघृतमिश्रैरित्यर्थः । ९ अतिभृशम् = अत्यधिकम् । १० नियच्छति = निवारयति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कशेरुमधुकाभ्यां वा चूर्णमम्बरसंवृतम्[1] ।
न्यस्तमप्स्वान्तरिक्षासु[2] हितमाश्चयोतनम्भवेत् ॥ १० ॥
पाटल्यर्जुनश्रीपर्णीधातकीधात्रिबिल्वतः[3] ।
पुष्पाण्यथ बृहत्योश्च बिम्बीलोटाच्च[4] तुल्यशः ॥ ११ ॥
समञ्जिष्ठानि मधुना[5] पिष्टानीक्षुरसेन वा ।
रक्ताभिष्यन्दशान्त्यर्थमेतदञ्जनमिष्यते ॥ १२ ॥
चन्दनं कुमुदं पत्रं[6] शिलाजतु सकुङ्कुमम् ।
अयस्ताम्ररजस्तुत्थं निम्बनिर्यासमञ्जनम्[7] ॥ १३ ॥
त्रपु कांस्यमलं चापि पिष्ट्वा पुष्परसेन तु ।
वि ला याः कृता वर्त्त्यः पूजिताश्चाञ्जने सदा ॥ १४ ॥
स्यादञ्जनं घृतं क्षौद्रं सिरोत्पातस्य भेषजम् ।
तद्वत्सैन्धवकासीसस्तन्यघृष्टञ्च पूजितम् ॥ १५ ॥
मधुना शङ्खनैपाली[9]तुत्थदार्व्यः ससैन्धवाः ।
रसः शिरीषपुष्पाच्च सुरामरिचमाक्षिकैः ॥ १६ ॥
युक्तन्तु मधुना वाऽपि गैरिकं हितमञ्जनम् ।
सिराहर्षेऽञ्जनं[10] कुर्यात् फाणितं मधुसंयुतम् ॥ १७ ॥
मधुना तार्क्ष्यजं[11] वाऽपि कासीसं वा ससैन्धवम् ।

---

१ अम्बरसंवृतं = पोट्टलिकाकारवस्त्रबद्धम् । २ न्यस्तम् = आप्लुतम् । ३ श्रो-पर्णी = 'गम्भार' इति ख्याता । ४ बिम्बीलोटो भिल्लोटो हिमाद्रिजो वृक्ष इति निबन्धसङ्ग्रहव्याख्याकारः । ५ मधुना = पुष्परसेन । ६ पत्रं = 'तेजपात' इति ख्यातम् । ७ अञ्जनं = रसाञ्जनम् । लेखनादिकर्मभेदेन वर्तिप्रमाणमुक्तं तन्त्रान्तरे—"हरेणुमात्रा वर्तिः स्याल्लेखनस्य प्रमाणतः । प्रसादनस्य चाध्यर्धं द्विगुणा रोपणस्य तु ॥" इति ।

८ प्राग् रक्ताभिष्यन्दरक्ताधिमन्थसिरोत्पातसिराहर्षाणां सामान्यचिकित्सां प्रतिपाद्य सिरोत्पाते विशेषचिकित्सामाख्याति—स्यादिति । अञ्जनं = रसाञ्जनम् । ९ नैपाली = मनःशिला । १० सिराहर्षे विशेषचिकित्सितमाचष्टे—सिरेति । अत्र चत्वार्यञ्जनानि निर्दिष्टानि । फाणितं = 'राब' इति ख्यातम्, "इक्षो रसस्तु यः पक्वः किञ्चिद् गाढो बहुद्रवः । स एवेक्षुविकारेषु ख्यातः फाणितसंज्ञया ॥" इति तल्लक्षणम् । ११ तार्क्ष्यजं = रसाञ्जनम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेत्राम्लं[1] स्तन्यसंयुक्तं फाणितन्तु ससैन्धवम् ॥ १८ ॥
पैत्तं[2] विधिमशेषेण कुर्य्यादर्जुनशान्तये ।
इक्षुक्षौद्रसितास्तन्यदार्वीमधुकसैन्धवैः ॥ १९ ॥
सेकाञ्जनं चात्र हितमम्लैः[3] राश्च्योतनं तथा ।
सितामधुककट्वङ्गमस्तु[4] क्षौद्राम्लसैन्धवैः ॥ २० ॥
बीजपूरक[5]कोलाम्लदाडिमाम्लैश्च युक्तितः ।
एकशो वा द्विशो वाऽपि योजितं[6] वा त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २१ ॥
स्फटिकं विद्रुमं[7] शङ्खो मधुकं मधु चैव हि ।
शङ्खक्षौद्रसितायुक्तः सामुद्रः फेन एव च ॥ २२ ॥
द्वाविमौ विहितौ योगावञ्जनेऽर्जुननाशनौ ।
सैन्धवक्षौद्रकतका[8]ः सक्षौद्रं वा रसाञ्जनम् ॥ २३ ॥
कासीसं मधुना वाऽपि योज्यमञ्जने सदा ।
लोहं[9] चूर्णानि सर्वाणि धातवो लवणानि[10] च ॥ २४ ॥

---

१ वेत्राम्लम्=अम्लवेतसम्। २ रक्तार्जुनचिकित्सामभिदधाति—पैत्तमिति। पैत्तं विधिं=पित्ताभिष्यन्दोक्तविधानम्। ३ अम्लैः=अम्लवर्गोक्तदाडिमादिभिः। ४ कट्वङ्गः=श्योनाकः। ५ बीजपूरकं=मातुलुङ्गफलम्। ६ पूर्वोक्तैः सितादिदाडिमाम्लपर्यन्तैर्व्यस्तैः समस्तैर्वा युक्तितो दोषबलाद्यपेक्षया योजितं प्रयुक्तमाश्च्योतनं हितकरमिति समुदितार्थः।

७ विशिष्टो दुर्वृक्षोऽस्त्यस्येति विद्रुमः प्रवालः 'द्यद्रुभ्यां मः' इति मप्रत्ययः। शङ्खः=कम्बुः। 'भूतादिमिन्द्रियादिं च द्विधाऽहङ्कारमीश्वरः। बिभर्ति शङ्खरूपेण शार्ङ्गरूपेण च स्थितम्॥' इति विष्णुपुराणम्। प्रसङ्गाद् श्रीदेवीभागवताद्युक्तं शङ्खोत्पत्यादिकमुच्यते—'अस्थिभिः शङ्खचूडस्य शङ्खजातिर्बभूव ह। नानाप्रकाररूपेण शश्वत् पूता सुरार्चने॥ प्रशस्तं शङ्खतोयं च देवानां प्रीतिदं परम्। तीर्थतोयस्वरूपं च पवित्रं शम्भुना विना॥ शङ्खशब्दो भवेद्यत्र तत्र लक्ष्मीः सुसंस्थिरा। स स्नातः सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शङ्खवारिणा॥ शङ्खो हरेरधिष्ठानं यतः शङ्खस्ततो हरिः। तत्रैव वसते लक्ष्मीर्दूरीभूतममङ्गलम्॥ स्त्रीणां च शङ्खध्वनिभिः शूद्राणां च विशेषतः। भीता रुष्टा याति लक्ष्मीः स्थलमन्यत् स्थलात्ततः॥" इति। ८ कतकः=पयःप्रसादी, 'निर्मली' इति भाषायाम्।

९ अर्जुनरोगे लेखाञ्जनमाख्याति—लोहेति। १० धातवः—"सुवर्णरूप्यताम्राणि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्नानि[1] दन्ताः शृङ्गाणि गणश्चाप्यवसादनः ।
कुक्कुटाण्डकपालानि लशुनं कटुकत्रयम्[2] ॥ २५ ॥
करञ्जबीजमेला च लेख्याञ्जनमिदं स्मृतम् ।
पुटपाकावसानेन[3] रक्तविस्रावणादिना ॥ २६ ॥
सम्पादितस्य विधिना कृत्स्नेन स्यन्दघातिना[4] ।
अनेनापहरेच्छुक्रमव्रणं[5] कुशलो भिषक् ॥ २७ ॥
उत्तानमवगाढं[6] वा कर्कशं वाऽपि सव्रणम् ।
शिरीषबीजमरिचपिप्पलीसैन्धवैरपि ॥ २८ ॥
शुक्रस्य घर्षणं कार्य्यमथवा सैन्धवेन तु ।
कुर्य्यात्ताम्ररजःशङ्खशिलामरिचसैन्धवैः[7] ॥ २९ ॥
अन्त्याद्[8] द्विगुणितैरेभिरञ्जनं शुक्रनाशनम् ।
कुर्य्यादञ्जनयोगौ वा सम्यक्श्लोकार्द्धिकाविमौ ॥ ३० ॥
शङ्खकोलास्थिकतकद्राक्षामधुकमाक्षिकैः ।

---

हरितालं मनःशिला । गैरिकाञ्जनकासीससीसलोहाः सहिङ्गुलाः । गन्धकोऽभ्रकमित्याद्या धातवो गिरिसम्भवाः ॥" इति । लवणानि=लवणवर्गोक्तानि सैन्धवादीनि पञ्च ।

१ रत्नानि—'वज्रं गारुत्मतं पुष्पं रागो माणिक्यमेव च । इन्द्रनीलञ्च गोमेदस्तथा वैदूर्यमित्यपि । मौक्तिकं विद्रुमश्चेति रत्नान्युक्तानि वै नव ॥' इति । दन्ताः=गजादीनां दन्ता इत्यर्थः । शृङ्गाणि=गवादीनां विषाणानि, अवसादनः=मिश्रकाध्यायोक्तः कासीसादिगण इत्यर्थः । २ कटुकत्रयं=त्रिकटुकम् ।

३ लेख्याञ्जनयोग्यातुरं निर्दिशति—पुटेति । पुटपाक एवावसानं यस्य स तथोक्तेन पुटपाकान्तेनेत्यर्थः । ४ स्यन्दघातिना=अभिष्यन्दघातशीलेन, विधिनेत्यस्य विशेषणम् । स च विधिस्तन्त्रान्तरे—"ततः प्रदेहान् परिषेचनानि नस्यानि धूमाश्च यथास्वमेव । आश्च्योतनाभ्यञ्जनतर्पणानि तथैव कार्याः पुटपाकयोगाः ॥" इति ।

५ अपहरेत=चिकित्स्येत् । ६ अव्रणशुक्रचिकित्सितमभिधाय सव्रणचिकित्सितं वक्ति—उत्तानमिति । उत्तानम्=एकपटलगतम्, अवगाढं=द्वित्र्यादिपटलगतम्, कर्कशं=कठिनं, सव्रणं पूर्वोक्तेन विधिना लेखयेदित्यर्थः । ७ जारितं ताम्रं ताम्ररजः, शिला=मनःशिला ।

८ अर्थात् सैन्धवाद् द्विगुणं मरिचं, चतुर्गुणा मनःशिला, अष्टगुणः शङ्खः,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षौद्रदन्तार्णवमलशिरीषकुसुमैरपि ॥ ३१ ॥
क्षाराञ्जनं वा वितरेद्बलाशग्रथितापहम् ।
मुद्गान् वा निस्तुषान् भृष्टान् शङ्खक्षौद्रसमायुतान् ॥ ३२ ॥
मधूकसारं मधुना योजयेच्चाञ्जने सदा ।
बिभीतकास्थिमज्जा वा सक्षौद्रः शुक्रनाशनः ॥ ३३ ॥
शङ्खशुक्तिमधूच्छिष्टमधुकं कतकानि च ।
द्वित्वङ्गते सशूले वा वातघ्नं तर्पणं हितम ॥ ३४ ॥
वंशजारुष्करौ तालं नारिकेलञ्च दाहयेत् ।
विस्राव्य क्षारवच्चूर्णं भावयेत्करभास्थिजम् ॥ ३५ ॥
बहुशोऽञ्जनमेतत्स्याच्छुक्रवैवर्ण्यनाशनम् ।
अजकां पार्श्वतो विद्धां सूच्या विस्राव्य चोदकम् ॥ ३६ ॥
व्रणं गोमांसचूर्णेन पूरयेत् सर्पिषा सह ।
बहुशोऽवलिखेच्चापि वर्त्मास्योपगतं यदि ॥ ३७ ॥
सशोफश्चाप्यशोफश्च द्वौ पाकौ यौ प्रकीर्त्तितौ ।

---

षोडशगुणं ताम्ररज इति । १ दन्तः=गोदन्तः, अर्णवमलं=समुद्रफेनम् । २ क्षाराञ्जनं=श्लेष्माभिष्यन्दे "नीलान् यवान् गव्यपयोऽनुपीतान्" इत्याद्युक्तम् । ३ मधुकं=यष्टिमधु । ४ द्वित्वग्गते=द्विपटलाश्रिते शुक्रे । ५ वंशजः=वंशाङ्कुर इत्यर्थः । अरुष्करः=भल्लातकः ।

६ तिलनालदीपितानां वंशजादीनां भस्म करभास्थिचूर्णसमं प्रत्यहमाकृष्य षड्गुणोदकेऽष्टगुणोदके वा निःक्वाथयेत् । ततः पादशेषं बहुवारं विस्राव्य स्वस्थेन तेनोदकेन सप्ताहं करभास्थिचूर्णं भावयित्वाऽऽतपे शोषयेत् । ततस्तच्चूर्णं पुनः सञ्चूर्ण्य मध्वक्तशलाकाऽऽदिना शुक्रदेशमात्रं घर्षयित्वा त्रिफलोदकेन नयनं प्रक्षालयेत् । ७ एतेन शुक्रस्य वैवर्ण्यं शुक्लतां विनाश्य कृष्णतां समुत्पादयतीत्यर्थः; न तु शुक्रं नाशयतीति भावः ।

८ असाध्यस्य अजकाजातस्य चिकित्सामुपदिशति—**अजकामिति** । अजकाजातमित्यर्थः । तन्त्रान्तरे विशेषः—"सर्वथाऽनुपशान्तां तु दहेत् स्वर्णशलाकया । अजकां पार्श्वतो विद्ध्वा ततो रन्ध्रं समाचरेत् ॥" इति । ९ अस्य अजकाजातस्य, वर्त्म तुण्डम्, उपगतमुच्चतां प्राप्तमित्यर्थः । १० नेत्रपाकचिकित्सितमभिदधाति—**सशोफ इति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य तत्र विद्ध्वा सिरां[1] भिषक् ॥ ३८ ॥
सेकाश्चचोतननस्यानि पुटपाकांश्च कारयेत् ।
सर्वतश्चापि[2] शुद्धस्य कर्त्तव्यमिदमञ्जनम् ॥ ३९ ॥
ताम्रपात्रस्थितं मासं सर्पिः सैन्धवसंयुतम् ।
मैरेयं[3] वाऽपि दध्येवं दध्युत्तरकमेव वा ॥ ४० ॥
घृतं कांस्यमलोपेतं स्तन्यं वाऽपि ससैन्धवम् ।
मधूकसारं[4] मधुना तुल्यांशं गैरिकेण वा ॥ ४१ ॥
सर्पिःसैन्धवताम्राणि योषित्स्तन्ययुतानि वा ।
दाडिमारेवताश्मन्तकोलाम्लैश्च ससैन्धवाम् ।
रसक्रियां[5] वा वितरेत्सम्यक्पाकजिघांसया ॥ ४२ ॥
मांसं[6] सैन्धवसंयुक्तं स्थितं सर्पिषि नागरम् ।
आश्च्योतनाञ्जनं योज्यमबलाक्षीरसंयुतम्[7] ॥ ४३ ॥
जात्याः पुष्पं सैन्धवं शृङ्गवेरं[8] कृष्णाबीजं कीटशत्रोश्च सारम् ।
एतत् पिष्टं नेत्रपाकेऽञ्जनार्थं क्षौद्रोपेतं निर्विशङ्कं[9] प्रयोज्यम् ॥ ४४ ॥
पूयालसे[10] शोणितमोक्षणञ्च हितं तथैवाप्युपनाहनञ्च ।
कृत्स्नो[11] विधिश्छेदनपाकघाती यथाविधानं भिषजा प्रयोज्यः ॥४५॥

---

१ अपाङ्गथामौपनासिक्यां लालाट्यां वा सिरामित्यर्थः । २ पूर्वोक्तयोः सशोफाशोफयोरञ्जनं दर्शयति—**सर्वत इति** । सर्वतश्चापि शुद्धस्य=अन्तःपरिमार्जनबहिःपरिमार्जनाभ्यां शुद्धस्येत्यर्थः । ३ मैरेयो नाम सुराऽऽसवयोः प्रत्येकनिष्पादितयोरेकीकृत्य पुनः सन्धानान्मैरेयः । दध्युत्तरकं=दधिसरः । ४ मधूकसारः=यष्टिमधुसत्त्वम् । ५ रसक्रियामाख्याति—**दाडिमेति** । फाणितीभूतः क्वाथो रसक्रियोच्यते । आरेवतः=आरग्वधः, अश्मन्तकः=अम्लोटकः । ६ आश्च्योतनं निर्दिशति—**मासमिति** । अत्र मांसमिति पाठान्तरम् । ७ अबलाक्षीरसंयुतं=स्त्रीदुग्धयुक्तम् । ८ शृङ्गवेरम्=आर्द्रकम्, कृष्णबीजं=पिप्पलीबीजम्, कीटशत्रोः=विडङ्गस्येत्यर्थः । ९ निर्विशङ्कं=निःशङ्कमित्यर्थः ।

१० पूयालसे चिकित्सामभिदधाति—**पूयेति** । अत्र शोणितमोक्षणं स्नेहस्वेदपूर्वकमवसेयम् । उपनाहनं=प्रलेपो बन्धनं वेत्यर्थः । तच्च यथादोषहरव्रणशोधनचक्षुष्यद्रव्यैरेव बोध्यम् । ११ विधिः=अन्तःशुद्धिकरं बहिःशुद्धिकरं च सकलं विधानमि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कासीसं[1]सिन्धुप्रभवार्द्रकैस्तु हितं भवेदञ्जनमेव चात्र ।
चौद्रान्वितैरेभिः[2]रथोपयुञ्ज्यादन्यत्तु ताम्रायसचूर्णयुक्तैः ॥ ४६ ॥
स्नेहादिभिः[3] सम्यगपास्य दोषांस्तृप्तिं विधायाथ यथास्वमेव ।
प्रक्लिन्नवर्त्मानमुपक्रमेत सेकाञ्जनाश्च्योतननस्यधूमैः ॥ ४७ ॥
मुस्ता[4]हरिद्रामधुकप्रियङ्गुसिद्धार्थरोध्रोत्पलसारिवाभिः ।
क्षुण्णाभि[5]राश्च्योतनमेव कार्य्यमत्राञ्जनं चाञ्जनमात्रिकं स्यात् ॥४८॥
पत्रं[6] फलञ्चामलकस्य पक्त्वा क्रियां विदध्यादथवाऽञ्जनार्थे ।
वंशस्य मूलेन रसक्रियां वा वर्त्तीकृतां ताम्र[7]कपालपक्काम् ॥ ४९ ॥
रसक्रियां वा त्रिफलाविपक्वां पलाशपुष्पैः खर[8]मञ्जरैर्वा ।
पिष्ट्वा छगल्याः पयसा मलं वा कांसस्य दग्ध्वा सह तान्तवेन॥५०॥
प्रत्यञ्जनं तन्मरिचैरुपेतं चूर्णेन ताम्रस्य सहोपयोज्यम् ।
समुद्रफेनं[10] लवणोत्तमञ्च शङ्खोऽथ मुद्गो मरिचञ्च शुक्लम् ॥ ५१ ॥
चूर्णाञ्जनं जाड्यमथापि कण्डूमक्लिन्नवर्त्मान्युपहन्ति शीघ्रम् ।
प्रक्लिन्नवर्त्मन्यपि चैत एव [11]योगाःप्रयोज्याश्च समीक्ष्य दोषम् ।५२॥

---

त्यर्थः । १ पूयालसे कासीसादिरसक्रियाऽञ्जनमभिधत्ते—कासीसेति । सिन्धुप्रभवः=सैन्धवलवणः । २ एभिः=कासीसादिभिः । ताम्रायसचूर्णयुक्तैः चौद्रान्वितैरेभिरिति सम्बन्धः । ३ प्रक्लिन्नवर्त्मचिकित्सामाचष्टे—स्नेहादिभिरिति । स्नेहादिभिः=स्नेहसिराव्यधविरेकशिरोविरेकास्थापनैरित्यर्थः ।

४ तत्र सेकाश्च्योतनद्रव्याणि दर्शयति—मुस्तेति । मधुकः=यष्टिमधु, सिद्धार्थः=सर्षपः । ५ क्षुण्णाभिः=आन्तरीक्षास्वप्सु अन्यस्मिन् वा न्यस्ताभिः, अञ्जनमाक्षिकमित्यत्र अञ्जनं रसाञ्जनम् । ६ रसक्रियाऽञ्जनमुपदिशति—पत्रमिति । क्रियां=रसक्रियामित्यर्थः । ७ ताम्रकपालपक्वां=ताम्रकटाहपरिपक्वाम् । अर्थात् पाकेन तावच्छोषयेद् यावत् वर्तिकरणयोग्या न भवेत् । ८ खरमञ्जरैः=अपामार्गस्य । अत्र पुनः पुनरभिहितवाशब्देन पृथक् पृथग् रसक्रियायोगो बोद्धव्यः ।

९ अधुना तीक्ष्णाञ्जनेन दुर्बलस्य नेत्रस्य प्रत्यञ्जनमाह—पिष्ट्वेति । छगल्याः=अजायाः, पयसा=क्षीरेण, कांसस्य मलं वा, तान्तवेन=कार्पासवस्त्रेण, सह दग्ध्वेत्यर्थः । १० प्रक्लिन्नवर्त्मनि चूर्णाञ्जनं निर्दिशति—समुद्रेति । लवणोत्तमं=सैन्धवम् , शुक्लं मरिचं=शोभाञ्जनबीजम् । ११ योगाः=कफहरा योगा इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सकज्जलं ताम्रघटे[1] च घृष्टं सर्पिर्युतं तुत्थकमञ्जनं च ॥ ५३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे रक्ताभिष्यन्दप्रतिषेधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

## त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो[2] लेख्यरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

नव[3] येऽभिहिता लेख्याः सामान्यास्तेष्वयं विधिः ।

स्निग्धं[4]वान्तविरिक्तस्य निवातातपसद्मनि ॥ ३ ॥

( आप्तैर्दृढं गृहीतस्य वेश्मन्युत्तानशायिनः ॥ )

सुखोदकप्रतप्तेन वाससा सुसमाहितः ।

स्वेदयेद्वर्त्म निर्भुज्य[5] वामाङ्गुष्ठाङ्गुलिस्थितम् ॥ ४ ॥

अङ्गुल्यङ्गुष्ठकाभ्यान्तु निर्भुग्नं वर्त्म यत्नतः ।

प्लोतान्तराभ्यां[6] न यथा चलति संस्रतेऽपि वा ॥ ५ ॥

---

१ ताम्रघटे=ताम्रपात्रे, तुत्थकमञ्जनमित्यत्र अञ्जनं रसाञ्जनमित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वादशोऽध्यायः ।

---

### त्रयोदशोऽध्यायः ।

२"छेद्यास्तेषु दशैकश्च नव लेख्याः प्रकीर्तिताः" इति वचनेन प्राक् प्रतिपादनार्हाणां छेद्यरोगाणां प्रतीकारक्रमं हित्वा लेख्याञ्जनप्रसङ्गाद् छेद्यादिरोगेष्वपि प्रथमावस्थायां लेखनोपयोगाच्च प्राक् लेख्यरोगप्रतिषेधमधिकरोति—अथेति । ३ तत्रादौ वर्त्मलेखनविधिमभिधत्ते—नवेति । "अर्शोऽन्वितं भवति वर्त्म तु यत्तथाऽर्शः" इत्यादिना प्राक् चिकित्सितप्रविभागविज्ञानीये नव लेख्यरोगा अभिहिताः । ४ स्निग्धवान्तविरिक्तस्येत्यत्र स्नेहानन्तरं स्वेदोऽपि कार्यः । ५ निर्भुज्य=उत्तानीकृत्य ।

६ प्लोतान्तराभ्यां वस्त्रान्तरिताभ्यामङ्गुल्यङ्गुष्ठाभ्यां यथा न चलति न कम्पते, वा न स्रंसते नाधः पतति, तथा वर्त्म यत्नतो निर्भुग्नमुत्तानं कुर्यादित्यर्थः । अष्टाङ्गहृदये

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः प्रमृज्य प्लोतेन वर्त्म शस्त्रपदाङ्कितम् ।
लिखेच्छस्त्रेण पत्त्रैर्वा, ततो रक्ते स्थिते पुनः ॥ ६ ॥
स्विन्नं मनोह्वाकासीसव्योषार्द्राञ्जनसैन्धवैः ।
श्लक्ष्णपिष्टैः समाक्षीकैः प्रतिसार्य्योष्णवारिणा ॥ ७ ॥
प्रक्षाल्य हविषा सिक्तं व्रणवत् समुपाचरेत् ।
स्वेदावपीडप्रभृतीन्य्यहादूर्द्ध्वं प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥
व्यासतस्ते समुद्दिष्टं विधानं लेख्यकर्मणि ।
असृग्गास्रावरहितं कण्डूशोफविवर्जितम् ॥ ९ ॥
समं नखनिभं वर्त्म लिखितं सम्यगिष्यते ।
रक्तमेति स्रवेत् स्कन्नं क्षताच्छस्त्रकृताद् ध्रुवम् ॥ १० ॥
रागशोफपरिस्रावास्तिमिरं व्याध्यनिजयः ।
वर्त्म श्यावं गुरु स्तब्धं कण्डूहर्षोपदेहवत् ॥ ११ ॥

---

ऽपि—"निवातेऽधिष्ठितस्याप्तैः शुद्धस्योत्तानशायिनः । बहिः कोष्णाम्बुतप्तेन स्वेदितं वर्त्म वाससा ॥ निर्भुज्य वस्त्रान्तरितं वामाङ्गुष्ठाङ्गुलीधृतम् । न स्रंसते चलति वा वर्त्मैवं सर्वतस्ततः ॥" इति ।

१ शस्त्रपदाङ्कितं = तिर्यङ् मण्डलाग्रेण शस्त्रपदाङ्कितं कृत्वेति शेषः । २ शस्त्रेण= मण्डलाग्रेणैव, पत्त्रैः=शाकादिपत्त्रैः । तदाह वाग्भटः—"मण्डलाग्रेण तत्तिर्यक् कृत्वा शस्त्रपदाङ्कितम् । लिखेत्तेनैव पत्त्रैर्वा शाकशैफालिकाऽऽदिजैः ॥ फेनेन तोयराशेर्वा पिचुना प्रमृजन्नसृक् । स्थिते रक्ते सुलिखितं सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥" इति । ३ मनोह्वा=मनःशिला, आर्द्राञ्जनं = रसाञ्जनम् । ४ समाक्षीकैः=स्वर्णमाक्षिकसंयुतैरित्यर्थः । माक्षीकैरित्यत्र दीर्घ आर्षः । प्रतिसार्य = विघृष्येत्यर्थः ।

५ व्रणवत् = सप्ताहं सद्योव्रणवत्, तदनन्तरं शारीरव्रणवत् । ६ विधानं = स्वेदावपीडप्रभृति । वाग्भटस्तु—"घृतेनासिक्तमभ्यक्तं बध्नीयान्मधुसर्पिषा । ऊर्ध्वाधः कर्णयोर्दत्त्वा पिण्डीं च यवसक्तुभिः ॥ द्वितीयेऽहनि मुक्तस्य परिषेकं यथायथम् । कुर्याच्चतुर्थे नस्यादीन् मुञ्चेदेवाह्नि पञ्चमे ॥" इत्याह । ७ अथ सम्यग्लिखितवर्त्मलक्षणमभिदधाति—**असृगिति** । असृग्गास्रावरहितं = शोणितास्रावहीनम् । ८ समं= निम्नोन्नतारहितम्, नखनिभं=नखसदृशं वर्णत इत्यर्थः ।

९ दुर्लिखितवर्त्मलक्षणमाख्याति—**रक्तमिति** । स्कन्नं = स्त्यानमित्यर्थः । १० उपदेहः = दूषिकेत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नेत्रपाकमुदीर्णं वा कुर्वीताप्रतिकारिणः[1] ।
एतद्दुर्लिखितं ज्ञेयं स्नेहयित्वा पुनर्लिखेत् ॥ १२ ॥
व्यावर्त्तते[2] यदा वर्त्म पक्ष्म चापि विमुह्यति ।
स्यात् सरुक् स्रावबहुलं तदतिस्रावितं विदुः ॥ १३ ॥
स्नेहस्वेदादिरिष्टः स्यात् क्रमस्तत्रानिलापहः ।
वर्त्मावबन्धं क्लिष्टञ्च बहलं यच्च कीर्त्तितम् ॥ १४ ॥
पोथकीश्चाप्यवलिखेत्[4] प्रच्छयित्वाऽग्रतः शनैः ।
समं[5] लिखेत्तु मेधावी श्यावकर्दमवर्त्मनी ॥ १५ ॥
कुम्भीकिनीं[6] शर्कराञ्च तथैवोत्सङ्गिनीमपि ।
कल्पयित्वा[7] तु शस्त्रेण लिखेत् पश्चादतन्द्रितः ॥ १६ ॥
भवेयुर्वर्त्मसु[8] च याः पिडकाः कठिना भृशम् ।
ह्रस्वास्ताम्राश्च ताः पक्का भिन्द्याद्व्रीह्याद्भिन्ना लिखेदपि[9] ॥ १७ ॥
तरुणीश्चाल्पसंरम्भाः पिडका बाह्यवर्त्मजाः ।
विदित्वैताः[10] प्रशमयेत् स्वेदालेपनशोधनैः ॥ १८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे लेख्यरोगप्रतिषेधो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

---

१ अप्रतिकारिणः = अचिकित्स्यमानस्येत्यर्थः । २ अतिलिखितवर्त्मलक्षणमभिधत्ते—व्यावर्तत इति । व्यावर्तते = विपरिवर्तते । "रुक्पक्ष्मवर्त्मसदनं स्रंसनादतिलेखनात् । स्नेहस्वेदादिकस्तस्मिन्निष्टो वातहरः क्रमः ॥" इति वाग्भटोऽपि । ३ रोगविशेषे प्रच्छनपूर्वकं लेखनमुपदिशति—वर्त्मेति । वर्त्मावबन्धम्, क्लिष्टं = क्लिष्टवर्त्म, बहलं = बहलवर्त्म । ४ अवलिखेत् = वृद्धिपत्रादिभिः शस्त्रैर्लिखेत्, न तु पत्रादिभिरित्यर्थः ।

५ श्यावकर्दमवर्त्मनोः समलेखनार्थमुपदिशति—समिति । समम् = एककालम् । ६ कुम्भीकादौ छेदनपूर्वकलेखनं दर्शयति—कुम्भीकिनीमिति । ७ कल्पयित्वा = छित्त्वा, शस्त्रेण = वृद्धिपत्रादिना शस्त्रेणेत्यर्थः । ८ कुत्रचिद् भेदनपूर्वकं लेखनमाख्याति—भवेयुरिति । व्रीह्यादिवक्त्रेण भिन्द्यादित्यर्थः । तदाह वाग्भटः = "पिटिका व्रीह्यादिवक्त्रेण भित्त्वा तु कठिनोन्नताः । निष्पीडयेदनु विधिः परिशेषस्तु पूर्ववत् ॥" इति । १० प्रशमयेत् = शान्तिं नयेदित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्य-टिप्पन्यां त्रयोदशोऽध्यायः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातो भेद्यरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
स्वेदयित्वा बिसग्रन्थिं छिद्राण्यस्य निराशयम् ।
पक्वं भित्त्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेनावचूर्णयेत् ॥ ३ ॥
कासीसमागधीपुष्पनेपाल्येलायुतेन तु ।
ततः क्षौद्रघृतं दत्त्वा सम्यग्बन्धमथाचरेत् ॥ ४ ॥
रोचनाक्षारतुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च ।
प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लगण इष्यते ॥ ५ ॥
महत्यपि च युञ्जीत क्षाराग्नी विधिकोविदः ।
स्विन्नां भिन्नां विनिष्पीड्य भिषगञ्जननामिकाम् ॥ ६ ॥
शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ।
रसाञ्जनमधुभ्यां तु भित्त्वा वा शस्त्रकर्मवित् ॥ ७ ॥
प्रतिसार्य्याञ्जनैर्युञ्ज्यादुष्णैर्दीपशिखोद्भवैः ।
सम्यक् स्विन्ने कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात् प्रतिसारणम् ॥८॥

---

चतुर्दशोऽध्यायः ।

१ लेख्यरोगप्रतिषेधानन्तरं "भेद्याः पञ्च विकाराः स्युः" इति प्रतिपादितुं भेद्यरोगप्रतिषेधमधिकरोति—अथेति । २ तत्र भेदने सामान्यविधिमभिदधाति—स्वेदयित्वेति । बिसग्रन्थिं पक्वं स्वेदयित्वेति सम्बन्धः । अस्य छिद्राणि निराशयं निरुत्सङ्गं यथा स्यात्तथा भित्त्वा, निराश्रयमिति पाठान्तरम् । ३ मागधी = पिप्पली, पुष्पं = रसाञ्जनम्, नेपाली = मनःशिला । ४ लगणस्य चिकित्सामाख्याति—रोचनेति । रोचना = गोरोचना, क्षारः = यवक्षारः । ५ व्रीहिमुखेन भिन्ने इत्यर्थः । "भिन्द्याल्लगणकुम्भीकाबिसोत्सङ्गाञ्जनालजीः" इति वाग्भटः । ६ महत्यपि = महालगणेऽपीत्यर्थः ।

७ स्वयम्भिन्नाया अञ्जननामिकायाश्चिकित्सां वक्ति—स्विन्नामिति । भिन्नां = स्वयम्भिन्नामित्यर्थः । विनिष्पीड्य = स्नेहस्वेदपूर्वकं निष्पीडनं कृत्वा । ८ शिला = मनःशिला, एला = लघ्वेला, नतं = तगरम्, सिन्धूत्थं = सैन्धवम् । ९ अभिन्नञ्जननामिकाचिकित्सां दर्शयति—रसाञ्जनेति । रसाञ्जनमधुभ्यां प्रतिसार्येति सम्बन्धः । १० दीपशिखोद्भवैः = कज्जलसंज्ञकाञ्जनैः । ११ क्रिमिग्रन्थिचिकित्सां वक्ति—


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिफलातुत्थकासीससैन्धवैश्च रसक्रिया[1]।
भित्त्वोपनाहं[2] कफजं पिप्पलीमधुसैन्धवैः ॥ ९ ॥
लेखयेन्मण्डलाग्रेण समन्तात् प्रच्छयेदपि।
संस्नेह्य[3] पत्रभङ्गैश्च स्वेदयित्वा यथासुखम् ॥ १० ॥
आपाकाद्विधिनोक्तेन[4] पञ्चभेद्यानुपाचरेत्।
सर्वेष्वेतेषु विहितं विधानं[5] स्नेहपूर्वकम्।
सम्पक्वे प्रयतो भूत्वा कुर्वीत व्रणरोपणम् ॥ ११ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे भेद्यरोगप्रतिषेधो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

## पञ्चदशोऽध्यायः।

अथातश्छेद्यरोगप्रतिषेधं[6] व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

---

**सम्यगिति**। भिन्ने व्रीहिमुखादिभिरित्यर्थः। वाग्भटे—"कृमिग्रन्थिं करीषेण स्विन्नं भित्त्वा विलिख्य च। त्रिफलाक्षौद्रकासीससैन्धवैः प्रतिसारयेत् ॥" इति। १ रसक्रिया = फाणिताकृतिः, सा च त्रिफलाकाथे तुत्थकासीससैन्धवावापेन निष्पाद्या।

२ श्लेष्मोपनाहचिकित्सितं निर्दिशति—**भित्त्वेति**। भित्त्वा=व्रीहिमुखेन विदार्य, पिप्पलीमधुसैन्धवैः प्रतिसारणं कार्यम्। तच्च लिखिते प्रच्छिते च सति बोद्धव्यम्। तथा च वाग्भटः—"उपनाहं भिषक् स्विन्नं भित्त्वा व्रीहिमुखेन च। लेखयेन्मण्डलाग्रेण ततश्च प्रतिसारयेत् ॥" इति। ३ पञ्चसु भेद्यरोगेषु सामान्यविधिमभिधत्ते—**संस्नेह्येति**। पत्रभङ्गैः = निम्बादिपत्रचूर्णैः। ४ उक्तेन विधिना=अपतर्पणादिसामान्यशोथप्रतीकारेण, पञ्चभेद्यान्=बिसग्रन्थिलगण्डजननामिकाक्रिमिग्रन्थिश्लेष्मोपनाहसंज्ञकान्। ५ स्नेहस्वेदरक्तस्रावविरेकादिविधानमित्यर्थः।

**इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्दशोऽध्यायः।**

---

### पञ्चदशोऽध्यायः।

६ पारिशेष्याच्छेद्यानां रोगाणां प्रतिषेधमधिकरोति—अथात इति। "छेद्या-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्निग्धं[1] भुक्तवतो ह्यन्नमुपविष्टस्य यत्नतः ।
संरोषयेत्तु नयनं भिषक् चूर्णैस्तु लावणैः[2] ॥ ३ ॥
ततः[3] संरोषितं तूर्णं सुस्विन्नं परिघट्टितम् ।
अर्म[4] यत्र वलीजातं[5] तत्रैतल्लगयेद्भिषक् ॥ ४ ॥
अपाङ्गं प्रेक्षमाणस्य बडिशेन समाहितः ।
मुचुण्ड्या[6]ऽऽदाय मेधावी सूचीसूत्रेण वा पुनः ॥ ५ ॥
न चोत्थापयता क्षिप्रं कार्यमभ्युन्नतं तु तत्[7] ।
शस्त्राबाधभयाच्चास्य वर्त्मनी ग्राहयेद्[8] दृढम् ॥ ६ ॥
ततः प्रशिथिलीभूतं[9] त्रिभिरेव विलम्बितम् ।
उल्लिखन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन परिशोधयेत्[10] ॥ ७ ॥
विमुक्तं सर्वतश्चापि कृष्णाच्छुक्लाच्च मण्डलात् ।
नीत्वा कनीनकोपान्तं छिन्द्यान्नातिकनीनकम्[11] ॥ ८ ॥
[12]चतुर्भागस्थिते मांसे नाक्षि व्यापत्तिमृच्छति ।

---

स्तेषु दशैकश्च" इति प्रागुक्त्या एकादश छेद्यरोगाः । १ अर्मणां छेदने प्राक्कर्म निर्दिशति—स्निग्धमिति । वाग्भटे तु—"उत्तानस्येतरत् स्विन्नं ससिन्धुस्थेन चाञ्जितम् । रसेन बीजपूरस्य निमील्याक्षि विमर्दयेत् ॥" इति । २ लावणैः संरोषयेदिति सम्बन्धः । संरोषयेत्=अमलीकरणार्थं सङ्क्षोभयेदित्यर्थः । ३ अर्मच्छेदनविधिमभिदधाति—तत इति । संरोषितं=अर्मशिथिलीकरणार्थं सङ्क्षोभितम्, परिघट्टितं=सन्दंशाग्रेण इतस्ततः चालितम् । ४ वलीजातं=शिथिलं चर्मव्यक्तम्, 'जातं व्यक्तौषजन्मसु' इति मेदिनी । लगयेत्=बडिशेन संयोजयेत् ।

५ यदि बडिशं नासाद्यते, तदा पक्षान्तरमाह—मुचुण्ड्येति । मुचुण्ड्या=सूक्ष्मकण्टकमुखेन सन्दंशयन्त्रेणेत्यर्थः । मुचुण्डीलक्षणं वाग्भटे—"मुचुण्डी सूक्ष्मदन्तर्जुर्मूले रुचकभूषणा । गम्भीरव्रणमांसानाममर्मणः शोषितस्य च ।" इत्युक्तम् । ६ तदर्म त्रुटनभिया क्षिप्रं झटिति अभ्युन्नतं न कार्यमित्यर्थः । ७ यन्त्रेण ग्राहयेदित्यर्थः । ८ प्रशिथिलीभूतं विमुक्तनयनगोलकाश्लेषम्, त्रिभिर्बडिशादिभिरेव विलम्बितं धृतम् । ९ परिशोधयेत्=उन्मूलयेत् । १० व्यापत्तिभयात् कनीनिकामनतिक्रान्तं यथा स्यात्तथा छिन्द्यात्, मण्डलाग्रेणेत्यर्थः । ११ कियान् मांसः संरक्ष्यो येन कनीनकं संरक्षितं स्यादिति दर्शयति—चतुरिति । नयनगोलकस्योपरितने मांसे चतुर्भागेन स्थिते इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कनीनकवधादस्रं[1] नाडी वाऽप्युपजायते ॥ ९ ॥
हीनच्छेदात् पुनर्वृद्धिं शीघ्रमेवाधिगच्छति ।
अर्मं[2] यज्जालवद्व्यापि तदप्युन्मार्ज्य लम्बितम् ॥ १० ॥
छिन्द्याद्वक्रेण शस्त्रेण वर्त्मशुक्लान्तमाश्रितम् ।
प्रतिसारणमक्ष्णोस्तु[3] ततः कार्यमनन्तरम् ॥ ११ ॥
यावनालस्य[4] चूर्णेन त्रिकटोर्लवणस्य च ।
स्वेदयित्वा ततः पश्चाद् बध्नीयात् कुशलो भिषक् ॥ १२ ॥
दोषर्तुबलकालज्ञः स्नेहं दत्त्वा यथाहितम् ।
व्रणवत् संविधानन्तु[5] तस्य कुर्यादतः परम् ॥ १३ ॥
त्र्यहान्मुक्त्वा करस्वेदं दत्त्वा शोधनमाचरेत् ।
कर[6]ञ्जबीजामलकमधुकैः साधितं पयः ॥ १४ ॥
हितमाश्चोतनं शूले द्विरह्नः[7] क्षौद्रसंयुतम् ।
मधुकोत्पलकिञ्जल्कदूर्वाकल्कैश्च मूर्द्धनि ॥ १५ ॥
प्रलेपः सघृतः शीतः क्षीरपिष्टः प्रशस्यते ।
लेख्याञ्जनैरपहरेदर्मशेषं भवेद्यदि ॥ १६ ॥
अर्म[10] चाल्पं दधिनिभं नीलं रक्तमथापि वा ।
धूसरं तनु यच्चापि शुक्लवत् तदुपाचरेत् ॥ १७ ॥

---

१ अस्रं=शोणितम्, नाडी=नाडीव्रणः। २ अवस्थाविशेष प्रतिपादयति—अर्मेति। यदर्मं जालवद् मत्स्यबन्धनजालवदित्यर्थः। व्यापि व्यापनस्वभावं तदपि उन्मार्ज्य सैन्धवचूर्णेनावघृष्य वक्रेण शस्त्रेण बडिशेन लम्बितं धृतं मण्डलाग्रेण छिन्द्यादित्यर्थः। ३ छेदनानन्तरं प्रतिसारणविधिं वक्ति—प्रतीति। ४ यावनालस्य=यवक्षारस्य। ५ संविधानं=शोधनरोपणादिकम्।

६ आवस्थिकशूलचिकित्सामुपदिशति—करञ्जेति। ७ द्विरह्नः=सायं प्रातर्वारद्वयं सूर्यप्रकाशे एव। ८ तस्मिन् शूले शिरोलेपं ब्रवीति—मधुकेति। मधुकः=यष्टिमधु, उत्पलं=नीलकमलम्, किञ्जल्कः=पद्मकेसरम्। ९ लेख्याञ्जनं रक्ताभिष्यन्दप्रतिषेधोक्तं "लोहचूर्णानि सर्वाणि धातवो लवणानि च" इति।

१० शुक्लचिकित्सामर्मण्यप्यतिदिशति-अर्मेति। वाग्भटेऽपि—"अर्मोक्तं पञ्चधा तत्तु तनु धूमाविलं च यत्। रक्तं दधिनिभं यच्च शुक्लवत्तस्य भेषजम्॥" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चर्माभं बहलं यत्तु स्नायुमांसघनावृतम् ।
छेद्यमेव तदर्म स्यात् कृष्णमण्डलगञ्च यत् ॥ १८ ॥
विशुद्धेर्वर्णमक्लिष्टं क्रियास्वक्षि गतक्लमम् ।
छिन्नेऽर्मणि भवेत् सम्यग्यथास्वमनुपद्रवम् ॥ १९ ॥
सिराजाले सिरा यास्तु कठिनास्ताश्च बुद्धिमान् ।
उल्लिखेन्मण्डलाग्रेण बडिशेनावलम्बिताः ॥ २० ॥
सिरासु पिडका जाता या न सिध्यन्ति भेषजैः ॥
अर्मवन्मण्डलाग्रेण तासां छेदनमिष्यते ॥ २१ ॥
रोगयोश्चैतयोः कार्यमर्मोक्तं प्रतिसारणम् ।
विधिश्चापि यथादोषं लेखनद्रव्यसम्भृतः ॥ २२ ॥
सन्धौ संस्वेद्य शस्त्रेण पर्वणीकां विचक्षणः ।
उत्तरे च त्रिभागे च बडिशेनावलम्बिताम् ॥ २३ ॥

---

१ छेदनार्हमर्म निर्दिशति—**चर्माभमिति**। चर्माभं=चर्मखण्डसदृशम्, बहलं=स्थूलम्, स्नायुमांसाभ्यां घनं यथा स्यादेवमावृतं स्नायुमांसाभ्यां घनं यथा स्यादेवमावृतं स्नायुमांसघनावृतम्। २ सम्यक् छिन्नार्मलक्षणमाह—**विशुद्धेति**। अक्लिष्टं=क्लेशरहितम्, क्रियासु=निमेषोन्मेषादिषु। ३ सिराजालच्छेदनविधिं दर्शयति—**सिरेति**। बुद्धिमान् वैद्यः सिराजाले याः कठिनाः सिरास्ता बडिशयन्त्रेण अवलम्बिता धृता मण्डलाग्रेण उद् ऊर्ध्वं लिखेच्छिन्द्यादित्यर्थः। छेदनमिदं स्निग्धस्विन्नशिथिलीकृतनेत्रस्यैव बोद्धव्यम्।

४ सिराजपिडकाच्छेदनविधिमभिदधाति—**सिरास्त्विति**। "सिराजाले सिरा यास्तु कठिना लेखनौषधैः। न सिद्धयन्त्यर्मवत्तासां पिटिकानां च साधनम्॥" इति। वाग्भटः। ५ अर्मवत्="स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नमुपविष्टस्य यत्नतः" इत्याद्यर्मोक्तपूर्वकर्मवत्, मण्डलाग्रेण छेदनमिष्यते इत्यर्थः। ६ एतयोः=सिराजालसिरापिडकयोः, अर्मवितं="यावनालस्य चूर्णेन त्रिकटोर्लवणस्य च" इत्यादिकम्। ७ लेखनद्रव्यसम्भृतः=लेखनद्रव्यनिष्पादितः। "रक्तस्यन्दवदुत्पातहर्षजालार्जुने क्रिया" इति वाग्भटः।

८ पर्वणिकाच्छेदनविधिमाख्याति—**सन्धाविति**। सन्धौ=कृष्णशुक्लसन्धौ, संस्वेद्य=सम्यक् स्वेदनं कृत्वा। ९ उत्तरे त्रिभागे=उपरितनभागत्रितये, बाह्यसन्धित्रिभागे इत्यर्थः। तथा च वाग्भटः—"पर्वणी बडिशेनात्ता बाह्यसन्धित्रिभागतः। वृद्धिपत्रेण वध्यार्डे स्यादश्रुगतिरन्यथा। चिकित्सा चार्मवत् क्षौद्रसैन्धवप्रतिसारि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिन्द्यात् ततोऽर्द्धमग्रे[1] स्यादश्रुनाडी ह्यतोऽन्यथा ।
प्रतिसारणमत्रापि सैन्धवं दौद्रमिष्यते ॥ २४ ॥
लेखनीयानि चूर्णानि व्याधिशेषस्य भेषजम् ।
शङ्खं[2] समुद्रफेनञ्च मण्डूकीञ्च समुद्रजाम् ॥ २५ ॥
स्फटिकं कुरुविन्दं[3] ञ्च प्रवालाश्मन्तकन्तथा ।
वैदूर्य्यं[4] पुलकं मुक्तामयस्ताम्ररजांसि च ॥ २६ ॥
समभागानि सम्पिष्य सार्द्धं स्रोतोऽञ्जनेन तु ।
चूर्णाञ्जनं कारयित्वा भाजने मेषशृङ्गजे[5] ॥ २७ ॥
संस्थाप्योभयतः[6] कालमञ्जयेत् सततं बुधः ।
अर्मणि पिडकां हन्यात् सिराजालानि तेन वै ॥ २८ ॥
अर्शस्तथा यच्च नाम्ना शुष्कार्शोऽर्बुदमेव च ।

---

ता ।" इति । १ ततः भागत्रितयस्यार्धं भागमित्येतत् । अग्रे उपरिष्टाच्छिन्द्यात् । अत्राग्रे इति विशेषणं भागत्रितयस्याधः सार्द्धं भागं परिहर्तुम् । तस्मिन् हि छिन्ने सन्धेस्तस्य विश्लेषादवकाशं लब्ध्वाऽन्तर्वर्ती सुकुमारो जलकोष्ठपटः शुक्लकृष्णमण्डल-प्रान्ततः प्रपीडितो मनाक् छिद्यते रात्रिन्दिवं जलमास्रावयितुम्, तदिदमुच्यते—स्या-दश्रुनाडीति । अश्रु चतुर्जलं तदर्था शुक्लकृष्णगता नाडी अश्रुनाडीति सुश्रुतार्थ-सन्दीपनम् ।

२ अर्मणि तान्येव लेखनीयचूर्णानि निर्दिशति—शङ्खमिति । समुद्रजां मण्डू-कीं=शुक्तिमित्यर्थः । ३ कुरुविन्दं=पद्मरागमणिम्, अश्मन्तकं=मणिविशेषम् । ४ वैदूर्यं=विडालनेत्रसदृशम् । अस्य लक्षणमुक्तम्—'एकं वेणुपलाशकोमलरुचा मायूरकण्ठत्विषा मार्जारेक्षणपिङ्गलच्छविजुषा ज्ञेयं त्रिधा छायया । यद् गात्रं गुरुतां दधाति नितरां स्निग्धं तु दोषोज्झितं वैदूर्यं विशदं वदन्ति सुधियः स्वच्छञ्च तच्छो-भनम् ॥' इति । प्रसङ्गात् कुलक्षणं बोध्यम्—'विच्छायं मृच्छिलागर्भं लघु रूक्षं च सक्षतम् । सत्रासं परुषं कृष्णं वैदूर्यं दूरतो नयेत् ॥' इति । तत्परीक्षा तु—'घृष्टं यदात्मना स्वच्छं स्वच्छायां निकषाश्मनि । स्फुटं प्रदर्शयेदेतद्वैदूर्यं जात्यमुच्यते ॥' इति । विशेषो गारुडे युक्तिकल्पतरौ द्रष्टव्यः । पुलकं=स्फटिकम् । वैदूर्यं पुलकमित्यत्र 'वैदूर्योपलकम्' इति परेषां सम्मतपाठः । ५ मेषशृङ्ग इक्षुदीभेदस्तन्निर्मिते भाजने पात्रे इत्यर्थः । मेषविषाणरचिते भाजने इत्यन्ये । ६ उभयतः कालं=दिनस्य कालद्वयमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यन्तरं वर्त्मशया विधानं तेषु वक्ष्यते ॥ २९ ॥
वर्त्मोपस्वेद्य निर्भुज्य सूच्योत्क्षिप्य प्रयत्नतः।
मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन मूले भिन्द्याद्विषग्वरः ॥ ३० ॥
ततः सैन्धवकासीसकृष्णाभिः प्रतिसारयेत्।
स्थिते च रुधिरे वर्त्म दहेत् सम्यक् शलाकया ॥ ३१ ॥
क्षारेणावलिखेच्चापि व्याधिशेषो भवेद्यदि।
तीक्ष्णैरुभयतो भागैस्ततो दोषमधिक्षिपेत् ॥ ३२ ॥
वितरेच्च यथादोषमभिष्यन्दक्रियाविधिम्।
शस्त्रकर्मण्युपरते मासञ्च स्यात् सुयन्त्रितः ॥ ३३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे छेद्यरोगप्रतिषेधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

---

## षोडशोऽध्यायः।

अथातः पक्ष्मकोपप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
याप्यस्तु यो वर्त्मभवो विकारः पक्ष्मप्रकोपाऽभिहितः पुरस्तात्।

---

१ वर्त्मार्शःप्रभृतीनां छेदनविधिमुपदिशति—अभ्यन्तरमिति। वर्त्मशयाः= वर्त्माभ्यन्तराश्रयाः। २ विधानं दर्शयति—वर्त्मेति। "दहेदशान्तौ निर्भुज्य वर्त्मदोषाश्रयां वलीम्। सन्दर्शेनाधिकं पक्ष्म हृत्वा तस्याश्रयं दहेत्॥" इत्यष्टाङ्गहृदयम्। निर्भुज्य=उत्तानीकृत्य। ३ भिन्द्यात्=छिन्द्यादित्यर्थः। ४ उभयतोभागैः=वमनविरेचनैरित्यर्थः। ५ सुयन्त्रितः=पथ्याहारविहार युक्त इत्यर्थः।

इति सुश्रुतसंहितायाः उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चदशोऽध्यायः।

---

### षोडशोऽध्यायः।

६ छेद्यरोगप्रतिषेधानन्तरं पक्ष्मकोपप्रतिषेधमधिकरोति—अथेति। पक्ष्म वर्त्मगतलोममाला तत्कोपस्य प्रतिषेधस्तम्। पक्ष्मकोपस्य छेद्यत्वेन छेद्यरोगप्रतिषेधे एव प्रतिपाद्यतया पृथगध्यायारम्भोऽग्निक्षारकृत्यत्वेन याप्यत्वेन च बोद्धयः। ७ पक्ष्मकोपे शस्त्रकर्मविधानमभिदधाति—याप्य इति। ८ पुरस्तात्=वर्त्मगतरोगविज्ञानीये।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्रोपविष्टस्य नरस्य चर्म वर्त्मोपरिष्टादनुतिर्यगेव ॥ ३ ॥
भ्रुवोरधस्तात् परिमुच्य भागौ पक्ष्माश्रितं चैकमतोऽवकृन्तेत् ।
कनीनकाऽपाङ्गसमं समन्ताद् यवाकृति स्निग्धतनोर्नरस्य ॥ ४ ॥
उत्कृत्य शस्त्रेण यवप्रमाणं बालेन सीव्येद्भिषगप्रमत्तः ।
दत्त्वा च सर्पिर्मधुनाऽवशेषं कुर्य्याद्विधानं विहितं व्रणे यत् ॥ ५ ॥
ललाटदेशे च निबद्धपट्टं प्राक्स्यूतमत्राप्यपरञ्च बद्ध्वा ।
स्थैर्य्यं गते चाप्यथ शस्त्रमार्गे बालान् विमुञ्चेत् कुशलोऽभिवीक्ष्य ॥ ६ ॥
एवं न चेच्छाम्यति तस्य वर्त्म निर्भुज्य दोषोपहतां वलिञ्च ।
ततोऽग्निना वा प्रतिसारयेत्तां क्षारेण वा सम्यगवेक्ष्य धीरः ॥ ७ ॥
छित्त्वा समं वाऽप्युपपक्ष्ममालां सम्यग् गृहीत्वा बडिशैस्त्रिभिस्तु ।
पथ्याफलेन प्रतिसारयेत्तु घृष्टेन वा तौवरकेण सम्यक् ॥ ८ ॥

---

१ तत्र=पक्ष्मप्रकोपे । २ एकं भागमित्यर्थः । ३ बालेन=अश्वपुच्छलोम्ना ।
४ स्थैर्यं गते=कठिनीभूते, संरूढे इति यावत् ।

५ विमुञ्चेत्=अपकर्षेत् । वाग्भटे—"पक्ष्मरोधे प्रवृद्धेषु शुद्धदेहस्य रोमसु । उत्सृज्य द्वौ भ्रुवोऽधस्ताद् भागौ भागं च पक्ष्मतः । यवमात्रं यवाकारं तिर्यक् छित्त्वाऽऽर्द्रवाससा ॥ अपनेयमसृक् तस्मिन्नल्पीभवति शोणिते । सीव्येत् कुटिलया सूच्या मुद्गमात्रान्तरैः पदैः ॥ बध्वा ललाटे पट्टं च तत्र सीवनसूत्रकम् । नातिगाढमलर्थं सूच्या निक्षिपेदथ योजयेत् ॥ मधुसर्पिः कवलिकां न चास्मिन् बन्धमाचरेत् । न्यग्रोधादिकषायैश्च सक्षीरैः सेचयेद्रजि ॥ पञ्चमे दिवसे सूत्रमपनीयावचूर्णयेत् । गैरिकेण व्रणं युञ्ज्यात्तीक्ष्णं नस्याञ्जनादि च ॥" इति विशेषोऽपि ।

६ पक्ष्मकोपे शस्त्रकर्मणाऽशाम्यति अग्निक्षारविधिमभिधत्ते—एवमिति ।
७ प्रतिसारयेद्=घर्षयेत्, तां=वलिम्, अवेक्ष्य=विमृश्य, नाधिकं नापि च हीनमिति भावः । ८ भेषजकर्मोपदिशति—छित्त्वेति । छित्त्वा=द्विधाकृत्य, उत्पाट्येति यावत् । उपपक्ष्ममालां=पक्ष्मकोपम्, या देशभेदेन 'परिवाल' इत्युद्घुष्यते । एतल्लक्षणं वर्त्मवातरोगविज्ञानीये—"दोषाः पक्ष्माशयगतास्तीक्ष्णाग्राणि खराणि च । निर्वर्तयन्ति पक्ष्माणि तैर्घृष्टं चाक्षि दूयते ॥" इति ।

सुश्रुतार्थसन्दीपनकारस्तु—'उपपक्ष्ममालम्' इति पाठं मत्वा 'पक्ष्मश्रेण्याः समीपमुपपक्ष्ममालम् । मालाश्रेणीति पर्यायौ' इति व्याख्याति । ९ घृष्टेन अम्बूनीति शेषः । अत्र पिष्टेनेति पाठान्तरम् । तौवरकेण=तुवरकफलेनेत्यर्थः । अत्र मधुमेहचिकित्सि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चत्वार[1] एते विधयो विहन्तुं पक्ष्मोपरोधं पृथगेव शस्ताः।
विरेचनाश्च्योतनधूमनस्यलेपाञ्जनस्नेहरसक्रियाश्च[2] ॥ ९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे पक्ष्मगतरोगप्रतिषेधो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

---

## सप्तदशोऽध्यायः।

अथा[3]तो दृष्टिगतरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
त्रयः सा[4]ध्यास्त्रयोऽसाध्या याप्याः षट् च भवन्ति हि।
तं[5]त्रैकस्य प्रतीकारः कीर्त्तितो धूमदर्शिनः ॥ ३ ॥
दृष्टौ पित्तविदग्धायां विदग्धायां कफेन च।
पित्तश्लेष्महरं[6] कुर्य्याद् विधिं शस्त्रक्षताद्ऋते ॥ ४ ॥

---

तोक्तं—"वृक्षास्तुवरका ये स्युः पश्चिमार्णवभूमिषु। वीचीतरङ्गविक्षेपमारुतोद्धूतपल्लवाः। तेषां फलानि गृह्णीयात् सुपक्वान्यम्बुदागमे॥" इत्यादिना स्मर्तव्यम्। १ चत्वारः=शस्त्राग्निक्षारभेषजानि, पक्ष्मोपरोधं=पक्ष्मकोपम्। २ चकारेण उपपक्ष्मोत्पाटनं च बोद्धव्यम्।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रागंतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षोडशोऽध्यायः।

---

## सप्तदशोऽध्यायः।

३ पारिशेष्याद् दृष्टिगतानां रोगाणां प्रतिषेधाध्यायमधिकरोति—अथेति। गतशब्द आश्रयवचनः, आश्रयशब्देन मण्डलमभिप्रेयते, तेन दृष्टिमण्डलरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्याम इत्यर्थः। ४ साध्याः=धूमदर्शिपित्तविदग्धदृष्टिश्लेष्मविदग्धदृष्टयस्त्रयः, असाध्याः=ह्रस्वजाड्यनाकुलान्ध्यगम्भीरिकाख्यः, याप्याः=अरुणादिविचित्रवर्णान्ताः षट् काचाः। ५ तत्र=त्रिषु साध्येषु मध्ये, कीर्तितः=पित्ताभिष्यन्दप्रतिषेधे कथितः। ६ पित्तश्लेष्महरं=पित्तश्लेष्माभिष्यन्दहरम्, तथा च पित्तविदग्धदृष्टौ पित्ताभिष्यन्दहरं श्लेष्मविदग्धदृष्टौ श्लेष्माभिष्यन्दहरं च विधिं कुर्यादित्यर्थः। शस्त्रक्षतादृते=सिराव्यधं विनेत्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नस्येसेकाञ्जनालेपपुटपाकैः सतर्पणैः ।
आद्ये तु त्रैफलं पेयं सर्पिस्त्रैवृतमुत्तरे ॥ ५ ॥
तैल्वकं चोभयोः पथ्यं केवलं[3] जीर्णमेव वा ।
गैरिकं[4] सैन्धवं कृष्णा गोदन्तस्य मसा तथा ॥ ६ ॥
गोमांसं मरिचं बीजं शिरीषस्य मनःशिला ।
वृन्तं कपित्थान्मधुना स्वयङ्गुप्ताफलानि च ॥ ७ ॥
चत्वार एते योगाः स्युरुभयोरञ्जने हिताः ।
कुब्जक[6]काशोकशालाम्रप्रियङ्गुनलिनोत्पलैः[7] ॥ ८ ॥
पुष्पैर्हरेणुकृष्णाह्वापथ्याऽऽमलकसंयुतैः ।
सर्पिर्मधुयुतैश्चूर्णैर्वेणुनाडचामवस्थितैः[9] ॥ ९ ॥
अञ्जयेद् द्वावपि भिषक् पित्तश्लेष्मविभावितौ[10] ।
[11]आम्रजम्बूद्भवं पुष्पं तद्रसेन हरेणुकाम् ॥ १० ॥

---

१ पित्तविदग्धदृष्टौ पित्ताभिष्यन्दहरं नस्यादि, श्लेष्मविदग्धदृष्टौ श्लेष्माभिष्यन्दहरं नस्यादि बोधयम् । २ सामान्यं वैशेषिकं च स्नेहोपक्रमं दर्शयति—आद्य इति । आद्ये = पित्तविदग्धदृष्टिसंज्ञके, त्रैफलं सर्पिः = त्रिफलाक्काथकल्कसिद्धं घृतम्, एवं त्रैवृतं तैल्वकं च बोद्धयम् । उत्तरे = श्लेष्मविदग्धदृष्टिसंज्ञके । ३ केवलम् = असिद्धम्, त्रिफलाऽऽदिभिरसंस्कृतमिति यावत् ।

४ पित्तविदग्धदृष्टौ चतुरोऽञ्जनयोगान्निर्दिशति—गैरिकमिति । तत्र अर्धश्लोकसमापनेन एकेन श्लोकेन प्रथमद्वितीययोगौ बोद्धयौ । एतत्प्रथमद्वितीययोगोक्तमञ्जनं मधुनैव प्रयोक्तव्यम् । वृन्तं कपित्थान्मधुनेति पादिकस्तृतीययोगः । स्वयङ्गुप्ताफलानि चेति पादिकश्चतुर्थयोगः । अत्र चकारान्मधुनेति समुच्चीयते । ५ उभयोः = पित्तकफविदग्धदृशोः ।

६ पित्तकफविदग्धदृष्टौ पुष्पाञ्जनमाख्याति—कुब्जकेति । ७ कुब्जकः = सेवतीपुष्पप्रभेदः । 'चम्पकात् पुष्पशतकादशोकं पुष्पमुत्तमम् । अशोकात् पुष्पसाहस्रात् सेवतीपुष्पमुत्तमम् । सेवतीपुष्पसाहस्रात् कुब्जकं पुष्पमुत्तमम् ॥' इति नारसिंहपुराणम् । ७ नलिनं = किञ्चिद्रक्तं कमलम्, उत्पलं = नीलोत्पलम् । ८ हरेणुः = रेणुका, निर्गुण्डीबीजमित्यर्थः । 'हरेणू रेणुका कौन्ती कपिला भस्मगन्धिनी' इत्यमरः । कृष्णाह्वा = पिप्पली । ९ वेणुनाडयामवस्थापनं शक्तिवृद्धये । १० पित्तश्लेष्मविभावितौ = पित्तश्लेष्मविदग्धदृष्टिकौ ।

११ दिनरात्र्यन्धयोरञ्जनद्वयं वक्ति—आम्रेति । तद्रसेन = आम्रजम्बूपुष्परसेन,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पिष्ट्वा क्षौद्राज्यसंयुक्तं प्रयोज्यमथवाऽञ्जनम्।
नलिनोत्पलकिञ्जल्कगैरिकैर्गोशकृद्रसैः ॥ ११ ॥
गुडिकाऽञ्जनमेतद्वा दिनरात्र्यन्धयार्हितम्।
रसाञ्जनेरसक्षौद्रताली शस्वर्णगैरिकम् ॥ १२ ॥
गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये।
शीतं सौवीरकं वाऽपि पिष्ट्वाऽथ रसभावितम् ॥ १३ ॥
कूर्मपित्तेन मतिमान् भावयेद्रौहितेन वा।
चूर्णाञ्जनमिदं नित्यं प्रयोज्यं पित्तशान्तये ॥ १४ ॥
काश्मरीपुष्पमधुकदार्वीरोध्ररसाञ्जनैः।
सक्षौद्रमञ्जनन्तद्वद्धितमत्र्यामये सदा ॥ १५ ॥
स्रोतोजं सैन्धवं कृष्णां रेणुकाञ्चापि पेषयेत्।
अजामूत्रेण ता वर्त्यः क्षणदाऽऽन्ध्याञ्जने हिताः ॥ १६ ॥
कालानुसारिवां कृष्णां नागरं मधुकं तथा।

---

रेणुकां—रेणुकाचूर्णं रसचतुर्थांश पिष्ट्वा, अथवा क्षौद्राज्यसंयुक्तं माक्षिकसर्पिर्युतं रेणुकाचूर्णं पिष्ट्वाऽञ्जनं प्रयोज्यम्। १ नलिनम्=ईषद्रक्तं पद्मम्, उत्पलं=नीलोत्पलम्, किञ्जल्कः=नलिनोत्पलयोः केसरः। २ दिवान्ध्ये वैशेषिकं चूर्णाञ्जनमुपदिशति—रसाञ्जनेति। रसाञ्जनं='रसौत' इति ख्यातम्, रसः=जातीपत्ररसः। रसशब्देनेह छागयकृद्रसमेव ग्राह्यन्ति सादृगुण्यमभिसमीक्ष्येति सुश्रुतार्थसन्दीपनम्। स्वर्णगैरिकं=पीतवर्णगैरिकम्। ३ पित्तोपहतदृष्टये=पित्तविदग्धदृष्टये इत्यर्थः।

४ अन्यच्चूर्णाञ्जनं निर्दिशति—शीतमिति। शीतं रसाञ्जनम्, सौवीरकं सौवीराञ्जनं वा पिष्ट्वा चूर्णीकृत्य रसभावितं चतुष्पदमृगपक्षिमांसरसभावितं तत् कूर्मपित्तेन रौहितेन पित्तेन वा सप्ताहं भावयेदित्यर्थः। ५ पित्तशान्तये=पित्तविदग्धदृष्टिदोषशान्तये। ६ दिवान्ध्ये कल्काञ्जनं ब्रवीति—काश्मरीति। काश्मरीपुष्पं=गम्भारीपुष्पम्। ७ अत्रपित्तविदग्धदृष्टौ। ८ नक्तान्ध्ये वर्त्यञ्जनमभिधत्ते—स्रोतोजमिति। स्रोतोजं=रसाञ्जनम्, कृष्णां=पिप्पलीम्। ९ 'निशा निशीथिनी रात्रित्रियामा क्षणदा क्षपा' इत्यमरः।

१० नक्तान्ध्ये वर्त्यञ्जनं वक्ति—कालेति। कालानुसारिवा=तगरम्, कृष्णा=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालीशपत्रं क्षणदे[1] गाङ्गेयञ्च यकृद्रसे ॥ १७ ॥
कृतास्ता वर्त्तयः पिष्टाश्छायाशुष्काः सुखावहाः ।
मनःशिलाऽभयाव्योषबलाकालानुसारिवाः ॥ १८ ॥
सफेनै[2]र्वा वर्त्तयः पिष्टाश्छागक्षीरसमन्विताः ।
गोमूत्रे[3]पित्तमदिरायकृद्धात्रीरसे पचेत् ॥ १९ ॥
क्षुद्राञ्जनं रसे नान्यद्यकृतस्त्रैफलेऽपि वा ।
गोमूत्राज्यार्णवमँ[4]लपिप्पलीक्षौद्रकट्फलैः ॥ २० ॥
सैन्धवोपहितं युञ्ज्यान्निहितं वेणुगह्वरे[5] ।
मेदो यकृद्घृतञ्चाजं पिप्पल्यः सैन्धवं मधु ॥ २१ ॥
रसमामलकाच्चापि पक्वं सम्यङ् निधापयेत् ।
कोशे[6] खदिरनिर्माणे तद्वत् क्षुद्राञ्जनं हितम् ॥ २२ ॥
हरेणुमगधाजास्थिमज्जैलायकृदन्वितम् ।
यकृद्रसेनाञ्जनं वा श्लेष्मोपह[7]दृष्टये ॥ २३ ॥
विपाच्य गोधायकृदर्द्धपाटितं सुपूरितं मागधिकाभिरग्निना[8] ।
निषेवितं[10] तत् यकृदञ्जनेन निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु ॥२४॥
तथा यकृच्छागभवं हुताशने विपाच्य सम्यङ्मगधासमन्वितम् ।
प्रयोजितं[11] पूर्ववदाशवसंशयं जयेत्तपाऽऽन्ध्यं सकृदञ्जनान्नृणाम् ॥२५

---

पिप्पली । १ क्षणदे=हरिद्राद्वयम्, गाङ्गेयं=मुस्तकम्, यकृद्रसे=छागादिकालखण्डरसे । २ सफेनाः=समुद्रफेनयुक्ताः । ३ नक्तान्ध्ये रसाञ्जनत्रितयमुपदिशति—गोमूत्रेति । गोमूत्रादीनां चतुर्णां समाहारः गोमूत्रपित्तमदिरायकृद्धात्रीरसे क्षुद्राञ्जनं रसक्रियाञ्जनं पचेदिति प्रथमो योगः । यकृतो रसेन अन्यदिति द्वितीयः । त्रैफलेऽपीति तृतीयः । ४ अर्णवमलः=समुद्रफेनः । ५ वेणुगह्वरे=वंशनलिकाभ्यन्तरे । ६ कोशे=पात्रे, 'कोशोऽस्त्री कुड्मले पात्रे दिव्ये खड्गपिधानके । जातिकोशेऽर्थसङ्घाते पेश्यां शब्दादिसङ्ग्रहे ॥" इति मेदिनी ।

७ कफविदग्धदृष्ट्यपरपर्याये नक्तान्ध्येऽन्यदञ्जनं निर्दिशति—हरेणविति । हरेणुः=रेणुका, निर्गुण्डीबीजमिति यावत् । मगधाजास्थिमज्जा=पिप्पलीवितुषबीजम् । ८ श्लेष्मोपहतदृष्टये=कफविदग्धदृष्टये । ९ अग्निना विपाच्येति सम्बन्धः । पुटपाकविधिनेति शेषः । १० तद्यकृद् निषेवितं भक्षितम्, पिप्पली पुनरञ्जनविधिना । ११ पू-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्लीहा यकृच्चाप्युपभक्षिते उभे प्रकल्प्य [1]शूल्ये घृततैलसंयुते ।
ते सार्षपस्नेहसमायुतेऽञ्जनं नक्तान्ध्यमाशवेव हतः प्रयोजिते ॥२६॥
नदीज[2]शिम्बी त्रिकटुन्यथाञ्जनं मनःशिला द्वे च निशे यकृद्गवाम् ।
स[3]चन्दनेयं गुटिकाऽथवाऽञ्जनं प्रशस्यते वै दिवसेऽवपश्यताम् ॥२७॥
भव[4]न्ति याप्याः खलु ये षडामया हरेदसृक्तेषु सिराविमोक्षणैः ।
विरेचयेच्चापि पुराणसर्पिषा विरेचनाङ्गोपहितेन[5] सर्वदा ॥ २८॥
[6]पयोविमिश्रं पवनोद्भवे हितं वदन्ति पञ्चाङ्गुलतैलमेव तु ।
भवेद् घृतं त्रैफ[7]लमेव शोधनं विशेषतः शोणितपित्तरोगयोः ॥२९॥
त्रिवृद्विरेकैः[8] कफजे प्रशस्यते त्रिदोषजे तैलमुशन्ति तत्कृत[9]म् ।
[10]पुराणसर्पिस्तिमिरेषु सर्वतो हितं भवेदायसभाजनस्थितम् ॥ ३० ॥
हितं च विद्यात् त्रिफलाघृतं सदा कृतञ्च यन्मेषविषाणनामभिः[11] ।
[12]सदाऽवलिह्यात्त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे॥३१॥

---

र्ववत् अर्थाद् यकृतः भक्षणं, पिप्पल्या अञ्जनम् । १ शूल्ये=लोहशलाकया पक्वे । शूलशब्दात् तत्र संस्कृतमित्यर्थे 'शूलोखाद्यत्' इति यत् । तत्पाकप्रकारो यथा—"कालखण्डानि मांसानि ग्रथितानि शलाकया । घृतं सलवणं दत्त्वा निर्धूमे दहने पचेत् । तत्तु शूल्यमिति प्रोक्तं पाककर्मविचक्षणैः ॥" इति ।

२ पित्तविदग्धदृष्ट्यपरपर्याये दिवान्ध्येऽञ्जनमभिदधाति—**नदीजेति** । नदीजं=सैन्धवम्, शिम्बी=हरितमुद्गः, अञ्जनं=सौवीराञ्जनम् । ३ सचन्दना=रक्तचन्दनयुक्ता, अञ्जनं=चूर्णाञ्जनम् । ४ अथ साध्यानां चिकित्सितमुक्त्वा याप्यानां चिकित्सितं ब्रवीति—**भवन्तीति** । उपेक्ष्यमाणा इति शेषः । "तिमिरं काचतां याति काचोऽप्यान्ध्यमुपेक्षया । नेत्ररोगेष्वतो घोरं तिमिरं साधयेद् द्रुतम् ॥" इति वाग्भटः । तेषु=प्रथमद्वितीयपटलप्राप्तेषु तिमिरावस्थेषु काचेषु । ५ विरेचनाङ्गोपहितेन=विरेचनद्रव्यसिद्धेन ।

६ सर्वतिमिराणां सामान्यं शोधनमुक्त्वा विशेषशोधनमभिदधन् आदौ वाततिमिरचिकित्सामाख्याति—**पय इति** । पञ्चाङ्गुलतैलम्=एरण्डतैलम् । ७ त्रैफलं=त्रिफलाकाथकल्कसंस्कृतम् । ८ त्रिवृद्विरेकः=त्रिवृता सिद्धसर्पिषा विरेचनम् । ९ तत्कृतं=त्रिवृता संस्कृतमित्यर्थः । १० वाततिमिरे संशोधनमभिधाय सामान्यं संशमनमाचष्टे—**पुराणेति** । ११ मेषविषाणनामभिः=मेषशृङ्गीफलैः । १२ विशेषसंशमनमभिदधाति—**सदेति** । सदा=नित्यगे आवस्थिके च काले । घृतयुतत्रिफलायोगोऽ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीरजे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः ।
गवां शकृत्क्वाथविपक्वमुत्तमं हितं तु तैलं तिमिरेषु नावनम् ॥३२॥
हितं घृतं केवलमेव पैत्तिके ह्यजाविकं यन्मधुरैर्विपाचितम् ।
तैलं स्थिरादौ मधुरे च यद्गणे तथाऽणुतैलं पवनासृगुत्थयोः॥३३॥
सहाऽश्वगन्धाऽतिबलावरीशृतं हितञ्च नस्ये विवृतं यदीरितम् ।
जलोद्भवानूपजमांससंस्कृता घृतं विधेयं पयसो यदुत्थितम् ॥ ३४ ॥
सकैसैन्धवः क्रव्यभुगेणमांसयोर्हितः ससापः समधुः पुटाह्वयः ।
वसाऽथ गृध्रोरगताम्रचूडजा सदा प्रशस्ता मधुकान्विताञ्जने ॥ ३५ ॥
प्रत्यञ्जनं स्रोतसि यत्समुत्थितं क्रमाद्रसक्षीरघृतेषु भावितम् ।
स्थितं दशाहत्रयमेतदञ्जनं कृष्णोरगास्ये कुशसम्प्रवेष्टिते ॥ ३६ ॥
तन्मालतीकोरकसैन्धवायुतं सदाऽञ्जनं स्यात्तिमिरेऽथ रागिणि ।
सुभावितं वा पयसा दिनत्रयं काचापहं शास्त्रविदः प्रचक्षते ॥ ३७ ॥

---

यमनुक्ते रक्तजेऽपि बोद्धव्यः, "रक्तगे पित्तवत् सिद्धिः" इत्याद्युक्त्या द्वयोस्तुल्यचिकित्सादर्शनात् ।

१ श्लेष्मतिमिरे नस्यमभिधत्ते—**गवामिति** । २ नावनं = नस्यम् । ३ मधुरैर्विपाचितं = काकोल्यादिक्वाथकल्कविपक्वम् । ४ स्थिरादौ = विदारिगन्धादौ, अणुतैलं वातव्याधिचिकित्सिते द्रष्टव्यम् । ५ केवलवातजे तिमिरे नस्यमुपदिशति—**सहेति** । सहा = मुद्गपर्णी, वरी = शतावरी, नामैकदेशे नाममात्रग्रहणात् । त्रिभिः सर्पिर्वसामज्जभिर्वृतं त्रिवृतं तैलमीरितं महावातव्याधिचिकित्सिते इत्यर्थः ।

६ वातजतिमिरे नस्यमभिधाय पुटपाकमाचष्टे—**सेति** । क्रव्यभुक् = गृध्रादिः, एणः = कृष्णसारः, पुटाह्वयः = पुटपाकः । अस्य विधिः क्रियाकल्पे वक्ष्यमाणः । ७ वातजतिमिरेऽञ्जनं वक्ति—**वसेति** । उरगः = कृष्णसर्पः, ताम्रचूडः = कुक्कुटः, 'कृकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कुटश्चरणायुधः' इत्यमरः । ८ वातजतिमिरे वसोपयोगेन क्लेदशोथादीनां प्रादुर्भावे प्रत्यञ्जनमभिधत्ते—**प्रत्यञ्जनमिति** । अञ्जनस्य अनु प्रयुज्यते यत्तत् प्रत्यञ्जनम् । स्रोतसि समुत्थितं = स्रोतोञ्जनम्, क्रमाद् रसादिषु त्रिषु भावितं प्रयोज्यम् । रसः = छागादिमांसरसः । भावना सप्ताहमेव, "सप्ताहं भावनाविधिः" इत्युक्तेः ।

वातजरागितिमिरचिकित्सितमाख्याति—**स्थितमिति** । दशाहत्रयं मासमेकं रसादिभिस्त्रिभिर्भावितमेतदञ्जनं स्रोतोञ्जनं कुशसम्प्रवेष्टिते कृष्णोरगास्ये कृष्णसर्पमुखे संस्थाप्य पश्चाद् मालतीकोरकैः जातीकुसुमैः सैन्धवेन समभागेन युतं तिमिरे रागिणि वातकाचेऽञ्जनं कार्यम् । ९ वाशब्देन वातकाचे अञ्जनस्य योगान्तरं बोध्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]हविर्हितं क्षीरभवन्तु पैत्तिके वदन्ति नस्ये मधुरौषधैः कृतम ।
तत्तर्पणे चैव हितं प्रयोजितं सजाङ्गलस्तेषु[2] च यः पुटाह्वयः ॥३८॥
रसाञ्जनक्षौद्रसितामनःशिलाक्षुद्राञ्जनं तन्मधुकेन संयुतम् ।
समाञ्जनं[3] वा कनकाकरोद्भवं सुचूर्णितं श्रेष्ठमुशन्ति तद्विदः ॥ ३९ ॥
भिल्लोट[4]गन्धोदकसेकसेचितं प्रत्यञ्जने चात्र हितं तु तुत्थकम् ।
समेष[5]शृङ्गाञ्जनभागसम्मितं जलोद्भवं काचमलं व्यपोहति ॥ ४० ॥
पलाश[6]रोहीतमधूकजा रसाः क्षौद्रेण युक्ता मदिराग्रमिश्रिताः ।
उशीरलोध्रत्रिफलाप्रियङ्गुभिः पचेत्तु[7] नस्यं कफरोगशान्तये ॥४१॥
विड[8]ङ्गपाठाकिणिहीङ्गुदात्वचः प्रयोजयेद् धूममुशीरसंयुताः ।
वनस्पति[9]क्काथविपाचितं घृतं हितं हरिद्रानलदे च तर्पणम् ॥ ४२ ॥
समागधो माक्षिकसैन्धवाढ्यः सजाङ्गलः स्यात पुटपाक[10] एव च ।

---

१ पित्तजतिमिरचिकित्सितमभिदधाति—**हविरिति** । २ तेषु मधुरौषधेषु यः सजाङ्गलो जाङ्गलमांसयुक्तः पुटाह्वयः पुटपाकः स पित्ततिमिरे स्नेहार्थं हितः, मधुरौषधमांसवसामज्जकृतस्य स्नेहत्वेन विवक्षितत्वात् ।

३ पित्तजतिमिरे रसक्रियाञ्जनमभिधाय प्रत्यञ्जनमभिधत्ते—**समाञ्जनमिति** । समाञ्जनं=तुल्यसौवीराञ्जनम्, कनकाकरोद्भवं=तुत्थकम्, उशन्ति=इच्छन्ति, प्रत्यञ्जनमिति शेषः । ४ तत्रैव अपरं प्रत्यञ्जनं निर्दिशति—**भिल्लोटेति** । भिल्लोटको हिमवदासन्नभूमिजः ककुभानुकारिफलो वृक्षविशेष इति डल्हणः । गन्धा एलादिगणोक्ताः, तत्सेकसेचितं तुत्थकमत्र पित्तजतिमिरे प्रत्यञ्जने हितमित्यर्थः । ५ रागिपित्तजतिमिरे चिकित्सितं वक्ति—**सेति** । मेषशृङ्गो नन्दीवृक्षः, अञ्जनं सौवीराञ्जनम्, एतद्द्वितयभागेन सम्मितं तुल्यभागं जलोद्भवं स्रोतोञ्जनं काचमलं व्यपोहति ।

६ पैत्तिके काचे रसक्रियाञ्जनं ब्रवीति—**पलाशेति** । रोहितः='गुलनार' इति ख्यातः । मदिराग्रं मदिराया उपरितनोऽच्छोंऽशस्तेन मिश्रिता रसक्रिया कार्येत्यर्थः । 'काचमलं व्यपोहति' इति पूर्वेणाकृष्य अन्वीयते । ७ तिलतैले पचेदित्यर्थः, श्लेष्मणि तैलस्य विहितत्वात्, यदनिर्दिष्टं बुद्धिमता तदूह्यम्' इत्यनुशासनाच्च ।

८ कफजतिमिरे नस्यमभिधाय धूममभिदधाति—**विडङ्गेति** । किणिही=अपामार्गः, धूमं प्रयोजयेत् पानायेति शेषः । पित्तजतिमिरे धूमस्य निषेधेऽपि कफजे निषेधाभावः । ९ कफजतिमिरेऽभिपूरणमाख्याति—**वनस्पतीति** । वनस्पतयः अश्वत्थादिक्षीरवृक्षाः, तत्कृतचतुर्गुणे क्वाथे विपाचितं हरिद्रानलदकल्कचतुर्भागं घृतं तर्पणे आश्च्योतने हितम् । नलदमुशीरम् । १० पुटपाकोऽयं कफतिमिरे एव ज्ञातव्यः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनःशिलात्र्यूषणशङ्खमाक्षिकैः ससिन्धुकासीसरसाञ्जनैः क्रियाः॥४३॥
हिते च कासीसरसाञ्जने तथा[1] वदन्ति पथ्ये गुडनागरैर्युते ।
यदञ्जनं वा[2] बहुशो निषेचितं समूत्रवर्गे त्रिफलोदके श्रृते[3] ॥ ४४ ॥
निशाचरास्थिस्थितमेतदञ्जनं क्षिपेच्च मासं सलिलेऽस्थिरे पुनः ।
मेषस्य[4] पुष्पैर्मधुकेन संयुतं तदञ्जनं सर्वकृते प्रयोजयेत् ॥ ४५ ॥
क्रियाश्च[5] सर्वाः, क्षतजोद्भवे हितः क्रमः परिम्लायिनि चापि पित्तहृत्
क्रमो[6] हितः स्यन्दहरः प्रयोजितः समीक्ष्य दोषेषु यथास्वमेव च ॥४६॥
दोषोदये नैव च विप्लुतिङ्गते द्रव्याणि नस्यादिषु योजयेद् बुधः
पुनश्च कल्पेऽञ्जनविस्तरः शुभः प्रवक्ष्यतेऽन्यस्तमपीह योजयेत् ॥४७॥
घृतं[10] पुराणं त्रिफलां शतावरीं पटोलमुद्वामलकं यवानपि ।
निषेवमाणस्य नरस्य यत्नतो भयं[11] सुघोरात्तिमिरान्न विद्यते ॥४८॥

---

१ तथा = रसक्रियाञ्जनविधयेत्यर्थः । २ सर्वजकाचचिकित्सितमभिधत्ते—यदिति । ३ श्रृते = क्वाथीकृते । ४ निशाचराणां गृध्रादीनां निर्हृतमञ्जनि नलकास्थिन स्थितं मूत्रवर्गादिसेचितमेतदञ्जनं नलकमुखं पिधाय अस्थिरे वहति सलिले स्तम्भाद्युपरि बध्वा मासपर्यन्तं निक्षिपेत् ।

५ मेषस्य = मेषशृङ्ग्याः । ६ सान्निपातिकरागितिमिरचिकित्सितमाह—क्रियाश्चेति । क्रियाः = अक्षितर्पणपुटपाकादिकाः, सर्वाः = पित्तकफकाचोक्ताः । क्षतजोद्भवे रक्तजे परिम्लायिनि च पित्तहृत् क्रमः पित्ततिमिरापहनस्य तर्पणादिक्रमो हित इति सम्बन्धः ।

७ तिमिरेष्वभिष्यन्दचिकित्सामतिदिशति—क्रम इति । दोषेषु = रोगेषु, षट्सु काचाख्येषु रोगेष्विति यावत्, "दोषा अपि रोगशब्दं लभन्ते" इत्युक्तेः । यथास्वं = यथादोषम्, अर्थाद् वाततिमिरे वाताभिष्यन्दक्रमः, एवं पित्तादितिमिरे पित्ताभिष्यन्दादिक्रमो हितः । ८ वातादितिमिरेषु वाताभिष्यन्दादिक्रमः कदा कार्य इत्युपदिशति—दोषेति । दोषोदये दोषाभिवृद्धिमात्रे, विप्लुतिं गते सकलदृष्टिमण्डलविस्तृतिं प्राप्ते, द्रव्याणि वाताभिष्यन्दाद्युक्तघृतादीनि नस्यादिषु नैव योजयेत । एतेन लङ्घनविरेचनादिना दिनत्रयमुल्लङ्घ्य ततो वाताभिष्यन्दाद्युक्तनस्यादीनि वातादितिमिरेषु योजयेदित्यायातम् । ९ कल्पे = वक्ष्यमाणे क्रियाकल्पाध्याये, तम् = अञ्जनविस्तरम् ।

१० तिमिरे आहारविधिं दर्शयति—घृतमिति । ११ सुघोरात् = दारुणात् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतावरीपायस एव केवलस्तथाकृतो वाऽऽमलकेषु पायसः ।
प्रभूतसर्पिस्त्रिफलोदकोत्तरो यवौदनो वा तिमिरं व्यपोहति ॥ ४९ ॥
जीवन्तिशाकं सुनिषण्णकञ्च सतण्डुलीयं वरवास्तुकञ्च ।
चिल्ली तथा मूलकपोतिका च दृष्टेर्हितं शाकुनजाङ्गलञ्च ॥ ५० ॥
पटोलकर्कोटककारवेल्लवार्त्ताकुतर्कारिकरीरजानि ।
शाकानि शिग्रार्त्तगलानि चैव हितानि दृष्टेर्घृतसाधितानि ॥ ५१ ॥

विवर्जयेत्सिरामोक्षं तिमिरे रागमागते ।
यन्त्रेणोत्पीडितो दोषो निहन्यादाशु दर्शनम् ॥ ५२ ॥
अरागि तिमिरं साध्यमाद्यं पटलमाश्रितम् ।
कृच्छ्रं द्वितीये रागि स्यात् तृतीये याप्यमुच्यते ॥ ५३ ॥
रागप्राप्तेष्वपि हितास्तिमिरेषु तथा क्रियाः ।
यापनार्थं यथोद्दिष्टाः सेव्याश्चापि जलौकसः ॥ ५४ ॥
श्लैष्मिके लिङ्गनाशे तु कर्म वक्ष्यामि सिद्धये ।
न चेद्दर्द्धेन्दुधर्माम्बुबिन्दुमुक्ताकृतिः स्थिरः ॥ ५५ ॥
विषमो वा तनुर्मध्ये राजिमान् वा बहुप्रभः ।
दृष्टिस्थो लक्ष्यते दोषः सरुजा वा सलोहितः ॥ ५६ ॥
स्निग्धस्विन्नस्य तस्याथ काले नात्युष्णशीतले ।
यन्त्रितस्योपविष्टस्य स्वां नासाम्पश्यतः समम् ॥ ५७ ॥
मतिमान् शुक्लभागौ द्वौ कृष्णान्मुक्त्वा ह्यपाङ्गतः ।

---

१ शतावरीमूलश्रृतपयसा सिद्धः शतावरीपायसः । २ प्रभूतं प्रचुरं सर्पिः घृतं यस्मिन् यवौदने स प्रभूतसर्पिः । ३ सुनिषण्णकं='चौपतिया' इति ख्यातम् । ४ चिल्ली=क्षेत्रवास्तुकः, मूलकपोतिका='छोटी मूली' इति ख्याता । ५ तर्कारी='जाही—गनियार' इति ख्याता । ६ आर्तगलः=नीलीझिण्टी । ७ रागप्राप्ते तिमिरे सिरामोक्षे निषेधति—विवर्जयेदिति । ८ दर्शनं=दृष्टिमित्यर्थः ।

९ अनौषधसाध्ये श्लैष्मिके लिङ्गनाशे शस्त्रकर्मविधिमभिदधाति—श्लैष्मिक इति । कर्म=शस्त्रकर्म । १० घर्माम्बुबिन्दुः=प्रस्वेदबिन्दुः । आकृतिशब्दस्य अर्धेन्द्वादिभिः प्रत्येकं सम्बन्धः । स्थिरः=कठोरः । ११ तदेव शस्त्रकर्माह—स्निग्धेति । १२ कृष्णमण्डलं मध्ये स्थापयितुमिदमुच्यते स्वां नासां समं पश्यत इति । १३ कृष्णात्


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्मील्य नयने सम्यक् सिराजालविवर्जिते ॥ ५८ ॥
नाधो नोर्द्ध्वं न पार्श्वाभ्यां [1]छिद्रे दैवकृते [2]ततः ।
शलाकया प्रयत्नेन विश्वस्तं यववक्रया ॥ ५९ ॥
मध्यप्रदेशिन्यङ्गुष्ठस्थिरहस्तगृहीतया ।
दक्षिणेन भिषक् [3]सव्यं विध्येत् सव्येन चेतरत् ॥ ६० ॥
वारिबिन्द्वागमः सम्यग् भवेच्छब्दस्तथा व्यधे ।
संसिच्य[4] विद्धमात्रन्तु योषित्स्तन्येन कोविदः ॥ ६१ ॥
स्थिरे दोषे चले वाऽपि स्वेदयेदक्षि बाह्यतः ।
सम्यक् शलाकां संस्थाप्य भङ्गैरनिल[5]नाशनैः ॥ ६२ ॥
शलाकाग्रेण तु ततो [6]निर्लिखेद् दृष्टिमण्डलम् ।
विध्य[7]तो योऽन्यपार्श्वेऽक्ष्णस्तं रुद्ध्वा नासिकापुटम् ॥ ६३ ॥
उच्छिङ्घनेन हर्त्तव्यो दृष्टिमण्डलगः कफः ।
निरभ्र इव घर्मांशुर्यदा दृष्टिः प्रकाशते ॥ ६४ ॥
तदासौ लिखिता सम्यग् ज्ञेया या चापि निर्व्यथा ।

---

कृष्णतारकान्तान्मुक्त्वा, अपाङ्गतः भ्रूपुच्छान्तप्रदेशसमीपे विध्येत्। कृष्णमण्डलादर्धाङ्गुलम्, अपाङ्गाच्चाङ्गुलचतुर्भागं त्यक्त्वा विध्येदिति वाग्भटः। तद्यथा—"कृष्णादर्धाङ्गुलं मुक्त्वा तदर्धार्धमपाङ्गतः" इति। १ छिद्रमिव छिद्रं तस्मिन्, न तु साक्षात्तत्र छिद्रमस्ति।

२ वाग्भटेऽपि—"तर्जनीमध्यमाङ्गुष्टैः शलाकां निश्चलं धृताम्। दैवच्छिद्रं नयेत्पार्श्वादूर्ध्वमामन्थयन्निव ॥ सव्यं दक्षिणहस्तेन नेत्रं सव्येन चेतरत्। विध्येत् सुविद्धे शब्दः स्यादरुक् चाम्बुलवस्रुतिः ॥" इति। ३ सव्यं वामनयनं, सव्येन वामकरेण, इतरत् दक्षिणनयनं, दक्षिणेन दक्षिणकरेणेत्यर्थः। ४ सम्यग् विद्धे नेत्रे पश्चात्कर्म निर्दिशति—**संसिच्येति**। ५ अनिलनाशनैर्भङ्गैः=वातनाशनैरण्डादिपल्लवैः, स्वेदयेदिति पूर्वेणान्वयः। ६ श्लेष्मसंहतिविश्लेषाय निर्लिखेदित्यर्थः।

७ शलाकाग्रेण निर्लेखनाद् विश्लिष्टश्लेष्मणो निर्हरणोपायं दर्शयति—**विध्यत इति**। विध्यतः अक्ष्णोऽन्यपार्श्वे यो नासिकापुटस्तं नासिकापुटं रुद्ध्वा दृष्टिमण्डलगः कफः उच्छिङ्घनेन ऊर्ध्वश्वासग्रहणेन नस्येनेति यावद् हर्तव्योऽपसार्यः। ८ सम्यग् लिखितलक्षणमभिदधाति—**निरभ्र इति**। निरभ्रः=मेघरहितः, घर्मांशुः=सूर्यः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं त्वशक्ये निर्हर्तुं दोषे प्रत्यागतेऽपि वा ॥ ६५ ॥
स्नेहाद्यैरुपपन्नस्य व्यधो भूयो विधीयते ।
ततो दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः ॥ ६६ ॥
घृतेनाभ्यज्य नयनं वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ।
ततो गृहे निराबाधे[1] शतीतोत्तान एव च ॥ ६७ ॥
उद्गारकासक्षवथुष्ठीवनोत्कम्पनानि च ।
तत्कालं[2] नाचरेदूर्ध्वं यन्त्रणा स्नेहपीतवत् ॥ ६८ ॥
त्र्यहात् त्र्यहाच्च धावेत्[3] कषायैरनिलापहैः ।
वायोर्भयात् त्र्यहादूर्ध्वं स्वेदयेदपि पूर्ववत्[4] ॥ ६९ ॥
दशाहमेवं[5] संयम्य हितं दृष्टिप्रसादनम् ।
पश्चात् कर्म च सेवेत लघ्वन्नञ्चापि मात्रया ॥ ७० ॥
सिराव्यधविधौ[6] पूर्वं नरा ये च विवर्जिताः ।
न तेषां नीलिकां विध्येदन्यत्राभिहिताद्भिषक् ॥ ७१ ॥
पूर्यते[7] शोणितेनाक्षि सिरावेधाद्विसर्पता ।
तत्र स्त्रीस्तन्ययष्ट्याह्वपक्वं सेके हितं घृतम् ॥ ७२ ॥
अपाङ्गासन्नविद्धे तु शोफशूलाश्रुरक्तताः ।
तत्रोपनाहं[8] भ्रूमध्ये कुर्य्याच्चोष्णाज्यसेचनम् ॥ ७३ ॥
व्यधेनासन्नकृष्णेन रागः कृष्णं च पीडयते ।
तत्राधःशोधनं[9] सेकः सर्पिषा रक्तमोक्षणम् ॥ ७४ ॥

---

१ निराबाधे=धूलिधूमवातातपादिरहिते । २ तत्कालं=नेत्रे यावच्छलाकाऽवस्थिति-स्तावत्कालपर्यन्तम्, स्नेहपीतवत्=स्नेहपानवत्, मन्त्रणा=नियमः, ३ धावेत=प्रक्षालयेदित्यर्थः । ४ पूर्ववत्=बाह्यतो मृदु स्वेदयेत् । ५ एवम्=उत्तानशयनादिना, दृष्टिप्रसादनं पश्चात्कर्म नस्यतर्पणशिरोबस्त्यादिकमिति सम्बन्धः ।

६ इदानीमिकेऽपि लिङ्गनाशे शस्त्रकर्मानर्हजनान् दर्शयति—**सिरेति** । सिराव्यध-विधौ पूर्वं ये च नरा बालस्थविरादयो विवर्जितास्तेषां नीलिकां लिङ्गनाशम्, अभिहितादुक्ताद् दैवकृतच्छिद्रादन्यत्र भिषग् वैद्यो न विध्येदित्यर्थः । ७ दैवकृतच्छिद्रादन्यत्र नीलिकाव्यधे दोषप्रदर्शनपुरस्सरं चिकित्सितमभिधत्ते—**पूर्यत इति** । विसर्पता शोणितेनाक्षि पूर्यत इति सम्बन्धः । ८ उपनाहं="गैरिकं सारिवा दूर्वा"इति वक्ष्यमाणप्रलेपम् । ९ अधःशोधनं=विरेचनम् । रक्तमोक्षणं त्वत्र जलौकोभिरेव

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथाप्युपरि विद्धे तु कष्टा[1] रुक् सम्प्रवर्त्तते ।
तत्र कोष्णेन हविषा[2] परिषेकः प्रशस्यते ॥ ७५ ॥
शूलाश्रुरागास्त्वत्यर्थमधोवेधेन पिच्छिलः ।
शलाकामनुचास्रावस्तत्र[3] पूर्वचिकित्सितम् ॥ ७६ ॥
रागाश्रुवेदनास्तम्भहर्षाश्चातिविधट्टिते[4] ।
स्नेहस्वेदौ हितौ तत्र हितं चाप्यनुवासनम् ॥ ७७ ॥
दोषस्त्वधोऽपकृष्टोऽपि तरुणः[5] पुनरुद्ध्वगः ।
कुर्य्याच्छुक्लारुणं नेत्रं तीव्ररुङ्नष्टदर्शनम् ॥ ७८ ॥
मधुरैस्तत्र[6] सिद्धेन घृतेनाक्ष्णः प्रसेचनम् ।
शिरोबस्तिञ्च तेनैव[7] दद्यान्मांसैश्च भोजनम् ॥ ७९ ॥
दोषस्तु[8] सञ्जातबलो घनः सम्पूर्णमण्डलः ।
प्राप्य नश्येच्छलाकाग्रं तन्वभ्रमिव[9] मारुतम् ॥ ८० ॥
मूर्द्धाभिघातव्यायामव्यवायवमिमूर्च्छनैः[10] ।
दोषः प्रत्येति कोपाच्च विद्धोऽतितरुणश्च[11] यः ॥ ८१ ॥
शलाका[12] कर्कशा शूलं, खरा दोषपरिप्लुतिम् ।
व्रणं विशालं स्थूलाग्रा, तीक्ष्णा हिंस्यादनेकधा[13] ॥ ८२ ॥
जलास्रावन्तु[14] विषमा, क्रियासङ्गमथास्थिरा ।

---

बोध्यम् । १ कष्टा = अतिकष्टकरी । २ हविषा=घृतेनेत्यर्थः । ३ शलाकामनु = शलाकाया अनन्तरम् । पूर्वचिकित्सितम् = अधःशोधनादिकं, स्त्रीस्तन्यषष्ठ्याह्वे-त्यादिकं वा । ४ अतिविधट्टिते = अतिचालिते इत्यर्थः । ५ तरुणः = दृष्टिना-शमप्राप्त इत्यर्थः । ६ मधुरैः = काकोल्यादिप्रभृतिभिः । ७ तेनैव = काकोल्या-दिसिद्धघृतेनैवेत्यर्थः ।

८ शस्त्रकर्माहलिङ्गनाशं निर्दिशति—**दोषस्त्विति** । ९ यथा मारुतं प्राप्य तन्वभ्रं स्वल्पमेघः । १० निर्लिखितस्यापि दोषस्य पुनरावृत्तौ कारणानि दर्शयति—**मूर्द्धेति** । ११ तरुणः = लिङ्गनाशमप्राप्तः ।

१२ दुष्टशलाकाजनितव्यापदमाख्याति—**शलाकेति** । कर्कशा = कठोरा, शूलं करोतीति परेण सम्बन्धः । एवं सर्वत्र । दोषस्य परितः प्लुतिमागमनं दोषपरिप्लुतिम् । १३ अनेकधा अनेकप्रकारेण हिंस्यात् क्षतं करोतीत्यर्थः । १४ विषमा = तनुस्थूला,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करोति, वर्जिता[1] दोषैस्तस्मादेभिर्हिता भवेत् ॥ ८३ ॥
अष्टाङ्गुलायता मध्ये सूत्रेण परिवेष्टिता ।
अङ्गुष्टपर्वसमिता वक्त्रयोर्मुकुलाकृतिः ॥ ८४ ॥
ताम्रायसी शातकुम्भी[2] शलाका स्यादनन्दिता ।
रोगः[3] शोफोऽर्बुदस्रोषो बुद्बुदं शूकराक्षिता ॥ ८५ ॥
अधिमन्थादयश्चान्ये रोगाः स्युर्व्यधदोषजाः ।
अहिताचारतो वाऽपि यथाऽस्वं[4] तानुपाचरेत् ॥ ८६ ॥
रुजायां[5] क्षिरागे वा योगान् भूयो निबोध मे ।
गैरिकं सारिवा[6] दूर्वा यवपिष्टं घृतं पयः ॥ ८७ ॥
सुखालेपः प्रयोज्योऽयं वेदनारागशान्तये ।
मृदुभ्रष्टैस्तिलैर्वाऽपि सिद्धार्थकसमायुतैः[7] ॥ ८८ ॥
मातुलुङ्गरसोपेतैः सुखालेपस्तदर्थकृत् ।
पयस्यासारिवापत्रमञ्जिष्ठामधुकैरपि ॥ ८९ ॥
अजाक्षीरान्वितैर्लेपः सुखोष्णः पथ्य[9] उच्यते ।
दारुपद्मक[10]शुण्ठीभिरेवमेव कृतोऽपि वा ॥ ९० ॥
द्राक्षामधुककुष्ठैर्वा तद्वत्[11] सैन्धवसंयुतैः ।
रोध्रसैन्धवमृद्वीकामधुकैर्वाऽप्यजापयः[12] ॥ ९१ ॥
घृतं सेके प्रयोक्तव्यं रुजारागनिवारणम् ।
मधुकोत्पलकुष्ठैर्वा द्राक्षालाक्षासितायुतैः ।

---

क्रियासङ्गं=दृष्ट्युपरोधम् । १ शस्त्रकर्मयोग्यशलाकामभिदधाति—**वर्जितेति** । एभिर्दोषैः=कर्कशादिभिः । २ शातकुम्भी=सुवर्णमयी, शतकुम्भे पर्वतविशेषे भवं शातकुम्भं, ततो ङीप् । 'यं गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकादीप्ततेजसम् । तदुल्बं पर्वते न्यस्तं हिरण्यं समपद्यत ॥' इति वायुपुराणम् ।

३ दुष्टव्यधाहाराचारजा व्यापदो दर्शयति—**राग इति** । बुद्बुदं=बुद्बुदाकारो मांसनिर्गमः, शूकराक्षिता=अधोदृष्टित्वम् । ४ यथास्वं=यथादोषम् । ५ कर्कश-शलाकाजनितशूले दुष्टव्यधजे च रोगे चिकित्सां निर्दिशति—**रुजायामिति** । मे मत्सकाशात्, निबोध जानीहि । ६ सारिवा=उत्पलसारिवा । ७ सिद्धार्थकसमा-युतैः=सर्षपसंयुतैः । ८ पयस्या=अर्कपुष्पी, पत्रं='तेजपात' इति ख्यातम् ।

९ पथ्यः=हितकर इत्यर्थः । १० दारु=दारुहरिद्रा, नामैकदेशे नाममात्रग्रहणात् । पद्मकं=पद्मकाष्ठम्, 'पद्माख' इति ख्यातम् । ११ तद्वत्=लेपः पथ्य इत्यर्थः । १२ मृद्वी-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ससैन्धवैः शृतं क्षीरं रुजारागनिबर्हणम् ॥ ९२ ॥
शतावरीपृथक्पर्णीमुस्ताऽऽमलकपद्मकैः ।
साजक्षीरैः शृतं सर्पिर्दाहशूलनिबर्हणम् ॥ ९३ ॥
वातघ्नसिद्धे[1] पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे ।
काकोल्यादिप्रतीवापं तद् युञ्ज्यात् सर्वकर्मसु[2] ॥ ९४ ॥
शाम्यत्येवं न चेच्छूलं स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् ।
ततः सिरां[3] दहेद्वाऽपि मतिमान् कीर्त्तितं यथा ॥ ९५ ॥
दृष्टेरतः प्रसादार्थमञ्जने शृणु मे शुभे ।
मेषशृङ्गस्य[4] पुष्पाणि शिरीषधवयोरपि ॥ ९६ ॥
सुमनायाश्च[5] पुष्पाणि मुक्ता वैदूर्य्यमेव च ।
अजाक्षीरेण सम्पिष्य ताम्रे सप्ताहमावपेत्[6] ॥ ९७ ॥
प्रविधाय च तद्वर्त्तीर्योजयेच्चाञ्जने भिषक् ।
स्रोतोजं[7] विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिलाम् ॥ ९८ ॥
मरिचानि च तद्वर्त्तीः कारयेच्चापि पूर्ववत् ।
दृष्टिस्थैर्यार्थमेतत्तु विदध्यादञ्जने हितम् ॥ ९९ ॥
भूयो वक्ष्यामि मुख्यानि विस्तरेणाञ्जनानि च ।
कल्पे नानाप्रकाराणि[8] तान्यपीह प्रयोजयेत् ॥ १०० ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे दृष्टिगतरोग-विज्ञानीयो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

का=द्राक्षेत्यर्थः । १ वातघ्नैर्भद्रदार्वादिभिः सिद्धे वातघ्नसिद्धे ।

२ नस्यालेपनादिसर्वकर्मस्वित्यर्थः । ३ औपनासिकामपाङ्ग्यां लालाट्यां वा सिरां दहेदित्यर्थः । ४ अवशिष्टदोषदूषिताया दृष्टेः प्रसादनार्थमञ्जनद्वयं निर्दिशति—मेषशृङ्गस्येति । मेषशृङ्गस्य=पुत्रजीवानुकारिवृक्षस्य । इत आरभ्य प्रथममञ्जनमुच्यते । ५ सुमनायाः=मालत्याः । ६ आवपेत्=निदध्यात् ।

७ स्रोतोजं=सौवीराञ्जनम्, यमुनास्रोतसि जातः कुलत्थाकारप्रस्तरविशेषः सौवीराञ्जनमुच्यते । इत आरभ्य द्वितीयमञ्जनं बोध्यम् । सागरस्य फेनं=समुद्रफेनम् । ८ नानाप्रकाराणि अनेकविधानि तान्यञ्जनानीति सम्बन्धः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तदशोऽध्यायः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## अष्टादशोऽध्यायः ।

अथातः क्रियाकल्पं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञस्तपोदृष्टिरुदारधीः ।
वैश्वामित्रं शशासाथ शिष्यं काशिपतिर्मुनिः ॥ ३ ॥
तर्पणं पुटपाकश्च सेक आश्च्योतनाञ्जने ।
तत्र तत्रोपदिष्टानि तेषां व्यासं निबोध मे ॥ ४ ॥
संशुद्धदेहशिरसो जीर्णान्नस्य शुभे दिने ।
पूर्वाह्णे वाऽपराह्णे वा कार्य्यमक्ष्णोश्च तर्पणम् ॥ ५ ॥
वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः ।
आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ ॥ ६ ॥
समौ दृढावसम्बाधौ कर्त्तव्यौ नेत्रकोशयोः ।
पूरयेद् घृतमण्डस्य विलीनस्य सुखोदके ॥ ७ ॥

---

### अष्टादशोऽध्यायः ।

१ पूर्वाध्यायेषु नाममात्रेणाभिहितानि तर्पणादीनि विस्तरेण प्रतिपादयितुं क्रियाकल्पनामाध्यायमधिकरोति—**अथेति** । क्रियाणां तर्पणपुटपाकसेकप्रभृतीनां कल्पनं करणं कल्पः क्रियाकल्पस्तम् । २ तपसा दृष्टिर्दर्शनं विशिष्टज्ञानोदयो यस्य स तपोदृष्टिः, उदारा उत्कृष्टा धीः प्रज्ञा यस्य स उदारधीः । ३ वैश्वामित्रं=सुश्रुतम्, शशास=शिक्षितवान्, काशिपतिः=राजर्षिधन्वन्तरिः । 'ङ्याप्नोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्' इति ह्रस्वः । ४ तत्रतत्रोपदिष्टानि=वाताभिष्यन्दादौ सङ्क्षेपतोऽभिहितानि, व्यासं=विस्तरम् ।

५ नेत्रे तर्पणं कथं कार्यमिति तद्विधिं दर्शयति—**संशुद्धेति** । संशुद्धदेहशिरसः=सम्यक्शुद्धशरीरमस्तकस्य, सिरामोक्षणविरेकनिरूहशिरोविरेकैरित्यर्थः । ६ वेश्मनि=गृहे, 'गृहं गेहो दवसितं वेश्म सद्म निकेतनम्' इत्यमरः । ७ नेत्रकोशयोः परितः क्लिन्नेन जलमर्दितेन माषचूर्णेन परिमण्डलौ वर्तुलौ समौ अनिम्नोन्नतौ दृढौ छिद्ररहितौ असम्बाधौ आधारौ आलवालौ कर्तव्यावित्यर्थः । 'आधारश्चाधिकरणेऽप्यालवालेऽम्बुधारणे' इति मेदिनी । क्षेत्रादिसेकार्थं सेतुना बहुनालं जलं निरुध्य यत्र स्थाप्यते स आधारो बद्धकन्दरादिः 'बांध—बन्ध' इति ख्यातः 'टांका' इति चेति भरतः ।

८ घृतस्योपरितनो भागो घृतमण्ड इत्यभिधीयते । घृतमण्डस्येत्यत्र करणे षष्ठी,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपक्ष्माप्रात्ततः[1] स्थाप्यं पञ्च तद्वाक्शतानि तु ।
स्वस्थे, कफे षट्, पित्तेऽष्टौ, दश वाते तदुत्तमम् ॥ ८ ॥
रोगस्थानविशेषेण[2] केचित्कालं प्रचक्षते ।
यथाक्रमोपदिष्टेषु[3] त्रीण्येकं पञ्च सप्त च ॥ ९ ॥
दश दृष्ट्यामथाष्टौ च वाक्शतानि विभावयेत् ।
ततश्चापाङ्गतः[4] स्नेहं स्रावयित्वाऽक्षि शोधयेत् ॥ १० ॥
स्विन्नेन यवपिष्टेन, स्नेहवीर्येरितं[5] ततः ।
यथास्वं धूमपानेन[6] कफमस्य विशोधयेत् ॥ ११ ॥
एकाहं[7] वा त्र्यहं वाऽपि पञ्चाहञ्चेष्यते परम् ।
तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्येमानि लक्षयेत् ॥ १२ ॥
सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं[8] वर्णपाटवम् ।
[9]निर्वृतिर्व्याधिविध्वंसः[10] क्रियालाघवमेव च ॥ १३ ॥
[11]गुर्वीविलमतिस्निग्धमश्नुकण्डूपदेहवत् ।

---

घृतमण्डैरित्यर्थः । तथा च सुखोदके ईषदुष्णोदके विलीनैः घृतमण्डैः आपक्ष्माग्रात् पूरयेदिति सम्बन्धः ।

१ तर्पणं कियत्कालपर्यन्तं स्थापनीयमिति दर्शयति—तत इति । ततः=तर्पणानन्तरम् । २ स्वमतं प्रदर्श्य परमतमाह—रोगेति । रोगस्थानविशेषेण=सन्धिवर्त्मशुक्लकृष्णसर्वदृष्टिविभेदेन । ३ यथाक्रमोपदिष्टेषु=यथाक्रमोक्तेषु सन्ध्यादिरोगस्थानेषु । अर्थात् सन्धौ त्रीणि वाक्शतानि, वर्त्मन्येकं, शुक्ले पञ्च, कृष्णे सप्त, सर्वत्र दश, दृष्ट्यां दश, अष्टौ वा । ४ अपाङ्गतः=भ्रूपुच्छान्तप्रदेशात् । ५ स्नेहवीर्येण स्नेहरूक्षत्वेन ईरितं प्रेरितमिति स्नेहवीर्येरितं कफमिति सम्बन्धः । ६ कफप्रत्यनीकेन शिरोविरेचनधूमपानेनेत्यर्थः । ७ यानि दिनानि तर्पणप्रयोगस्तानि निर्दिशति—एकाहमिति । विदेहे विशेषः—"स्वस्थवृत्ते विधातव्यं द्व्यन्तरं तर्पणं भवेत् । अहन्यहनि वातोत्थे, रक्तपित्ते दिनान्तरम् ॥ तर्पणं सन्निपातोत्थे द्व्यन्तरं, त्र्यन्तरं कफे ॥" इति ।

८ सम्यक्तृप्तनेत्रलक्षणमभिदधाति—तर्पण इति । ९ वैशद्यं=निर्मलत्वम्, वर्णपाटवं=शुक्लादिवर्णस्य यथार्थतो ग्रहणम् । १० निर्वृतिः=स्वास्थ्येनावस्थितिः, 'अथ निर्वृतिः । मोक्षे मृत्यौ सुखे सौख्ये' इति हेमचन्द्रः । व्याधिविध्वंसः=तत्तद्व्याधिलक्षणोपशमः, क्रियालाघवं=निमेषोन्मेषादिक्रियालघुता । ११ अतितृप्तनेत्रलक्षण-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञेयं दोषसमुत्क्लिष्टं[1] नेत्रमत्यर्थतर्पितम् ॥ १४ ॥
रूक्षं[2] माविलमस्राढ्यमसहं रूपदर्शने ।
व्याधिवृद्धिश्च तज्ज्ञेयं हीनतर्पितमक्षि च ॥ १५ ॥
अनयोर्[3] दोषबाहुल्यात् प्रयतेत चिकित्सिते ।
धूमनस्याञ्जनैः सेकैः रूक्षैः स्निग्धैश्च योगवित् ॥ १६ ॥
ताम्यत्यति[4]विशुष्कं यद्रूक्षं यच्चातिदारुणम् ।
शीर्णपक्ष्माविलं जिह्मं[5] रोगक्लिष्टञ्च यद् भृशम् ॥ १७ ॥
तदक्षि तर्पणादेव लभेतोर्जां[6]मसंशयम् ।
दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायासभ्रमेषु[7] च ॥ १८ ॥
अशान्तोपद्रवे चाक्षिणि तर्पणं न प्रशस्यते ।
पुटपाकस्तदैतेषु, नस्यं येषु च गर्हितम् ॥ १९ ॥
तर्पणार्हा न ये प्रोक्ताः स्नेहपानाक्षमाश्च ये ।
ततः प्रशान्तदोषेषु पुटपाकक्षमेषु[8] च ॥ २० ॥
पुटपाकः प्रयोक्तव्यो नेत्रेषु भिषजा भवेत् ।
स्नेहनो लेखनीयश्च रोपणीयश्च स त्रिधा ॥ २१ ॥
हितैः[9] स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापि च लेखनः ।

---

मभिधत्ते—गुर्विति । १ दोषसमुत्क्लिष्टं=दोषव्याप्तम् । २ हीनतृप्तनेत्रलक्षण-माख्याति—रूक्षमिति । आविलम्=आकुलम्, अस्राढ्यम्=अश्रुपूर्णम् । ३ अनयोः=हीनातितृप्तयोरित्यर्थः ।

४ तर्पणविषयं निवेदयति—ताम्यतीति । ताम्यति=तमोदर्शित्वेन खिद्यति, अतिविशुष्कम्=अश्रुहीनम् । ५ जिह्मं=सिरादिसङ्कोचेन रूपक्रियासु जडम् । ६ ऊर्जां=बलं, प्रकृतिभावमिति भावः । ७ तर्पणाविषयं दर्शयति—दुर्दिनेति । मेघाच्छन्नं दिनं दुर्दिनम् । चिन्तायां सम्भ्रमेषु चेति पाठान्तरम् । तत्र सम्भ्रमो भयम् ।

८ अथ तर्पणविषयं प्रतिपाद्य पुटपाकस्य विषयाविषयौ निरूपयति—पुटपाक इति । एतेषु पूर्वोक्तेषु "ताम्यत्यतिविशुष्कम्" इत्यादितर्पणार्हेषु पुटपाकविषयः । पुटपाकस्याविषयस्तु येषु नस्यं गर्हितमित्यादिः । तदुक्तं धूमनस्यकवलग्रहचिकित्सिते—"नस्येन परिहर्तव्यो भुक्तवानपतर्पितोऽत्यर्थतरुणप्रतिश्यायी" इत्यादिना । तर्पणार्हा न ये प्रोक्ता चिन्ताभ्रमगृहीतादयः, स्नेहपानाक्षमाश्च ये दुर्बलारोचकिप्रभृतयः, ते पुटपाकं नार्हन्तीत्यर्थः । ९ पुटपाकस्यावस्थिकं कालं निर्दिश्य स्नेहनरोपणीयलेख-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टेर्बलार्थमपरैः[1] पित्तासृग्व्रणवातनुत् ॥ २२ ॥
स्नेहमांसवसामज्जमेदःस्वाद्वौषधैः[2] कृतः ।
स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्य्यो[3] द्वे वाक्शते तु सः ॥ २३ ॥
जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंभृतैः[4] ।
कृष्णलोहरजस्ताम्रशङ्खविद्रुमसिन्धुजैः ॥ २४ ॥
समुद्रफेनकासीससस्रोतोजदधिमस्तुभिः ।
लेखनो वाक्शतं तस्य परं धारणमुच्यते ॥ २५ ॥
स्तन्यं[5] जाङ्गलमध्वाज्यतिक्तद्रव्यविपाचितः ।
लेखनात्त्रिगुणं[6] धार्य्यः पुटपाकस्तु रोपणः ॥ २६ ॥
वितरेत्तर्पणोक्तन्तु[7] धूमं हित्वा तु रोपणम् ।
स्नेहस्वेदौ द्वयोः कार्यौ[8], कार्यो नैव च रोपणे ॥ २७ ॥
एकाहं[9] वा द्व्यहं वाऽपि त्र्यहं वाऽप्यवचारणम् ।
यन्त्रणा तु क्रियाकालाद्[10] द्विगुणं कालमिष्यते ॥ २८ ॥
तेजांस्यनिलमाकाशमादर्शं[10] भास्वराणि च ।
नेक्षेत तर्पिते नेत्रे पुटपाककृते तथा ॥ २९ ॥
मिथ्योपचाराद्[11] नयोर्यो व्याधिरुपजायते ।
अञ्जनाश्चोतनस्वेदैर्यथास्वं तमुपाचरेत् ॥ ३० ॥

---

नीयानां त्रिविधानामपि विषयं दर्शयति—**हित इति** । १ अपरः=रोपणीयपुटपाकः । २ स्वाद्वौषधैः=काकोल्यादिप्रभृतिभिर्द्रव्यैः । ३ आपक्षमाग्राह्यं इत्यर्थः । ४ लेखनद्रव्यसम्भृतैः=व्योषादिलेखनद्रव्यभावितैः ।

५ स्नेहनलेखनपुटपाकद्वयमभिधाय रोपणपुटपाकमाह—**स्तन्येति** । स्तन्यं=स्त्रीदुग्धम् । ६ त्रिगुणं=वाक्शतत्रयमित्यर्थः । ७ स्नेहनलेखनयोः पूर्वकर्म दर्शयति—**वितरेदिति** । रोपणं पुटपाकं हित्वा तर्पणोक्तं यथादोषं स्निग्धं रूक्षं च धूमं द्वयोर्वितरेत् कुर्यात्, स्नेहस्वेदौ द्वयोरेव कार्यावित्यर्थः । ८ श्लैष्मिके नेत्ररोगे एकाहं, पैत्तिके द्व्यहं, वातिके त्र्यहं वाऽवचारणमित्यर्थः । ९ स्नेहपानादिक्रियाकालादित्यर्थः । १० पुटपाके परिहार्याणि निर्दिशति—**तेजांसीति** । तेजांसि=दीपप्रभृतीनि, अनिलं=सम्मुखवातम्, आदर्शं=दर्पणम्, भास्वराणि=सूर्यादीनि । ११ अनयोः=तर्पणपुटपाकयोरित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसन्नवर्णं[1] विशदं वातातपसहं लघु ।
सुखस्वप्नावबोध्यञ्च पुटपाकगुणान्वितम् ॥ ३१ ॥
अतियोगाद् रुजः शोफः पिडकास्तिमिरोद्गमः ।
पाकोऽश्रु हर्षणञ्चापि हीने दोषोद्गमस्तथा ॥ ३२ ॥
अत[2] ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पुष्टपाकप्रसाधनम् ।
द्वौ बिल्वमात्रौ श्लक्ष्ण[3]स्य पिण्डौ मांसस्य पेषितौ ॥ ३३ ॥
द्रव्याणां बिल्वमात्रन्तु द्रवाणां कुडवो मतः ।
तदैकध्यं समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ॥ ३४ ॥
काश्मरीकुमुदैरण्डपद्मिनीकदलीभवैः ।
मृदालिप्तमङ्गारैः खादिरैरव[4]कूलयेत् ॥ ३५ ॥
कतकाश्मन्तकैरण्डपाटलावृषबादरैः ।
सक्षीरद्रुमकाष्ठैर्वा गोमयैर्वाऽपि युक्तितः[5] ॥ ३६ ॥
स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय तं नृणाम् ।
तर्पणोक्तेन विधिना यथावदवचारयेत् ॥ ३७ ॥
कनीनके निषेक्तव्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ।
रक्ते पित्ते च तौ[6] शीतौ कोष्णौ वातकफापहौ ॥ ३८ ॥
अत्युष्णतीक्ष्णौ[7] सततं दाहपाककरौ स्मृतौ ।
अप्लुतौ[8] शीतलौ चाश्रुस्तम्भरुग्घर्षकारकौ ॥ ३९ ॥
अतिमात्रौ कषायत्व[9]सङ्कोचस्फुरणावहौ ।

---

१ पुटपाकस्य सम्यग्योगातियोगहीनयोगलक्षणमाख्याति—**प्रसन्नेति** । प्रसन्नवर्णं=यथास्ववर्णम्, विशदं=दूषिकारहितम् । २ पुटपाकविधानं निरूपयति—अत इति । पुटपाकप्रसाधनं=पुटपाकनिष्पादनम् । ३ श्लक्ष्णस्य सूक्ष्मपिष्टस्य मांसस्य द्वौ पिण्डौ बिल्वमात्रौ प्रत्येकं पलप्रमाणौ कर्तव्यौ । तत्र यादृशः पुटपाकः कर्तव्यस्तदनुसारेण स्नेहनलेखनरोपणेषु पुटपाकेषु यथाक्रमं द्रव्याणां मधुरौषधलेखनद्रव्यतिक्तद्रव्याणां बिल्वमात्रं पलप्रमाणं, द्रवाणां तु स्नेहवसाप्रभृतीनां कुडवः, अष्टौ पलानीत्यर्थः । ४ अवकूलयेत्=पचेदित्यर्थः ।

५ युक्तिस्तु—"पुटपाकस्य पाकोऽयं बहिरारक्तवर्णता" इति बोध्या । युक्तित इत्यस्य अवकूलयेदित्यत्र सम्बन्धः । ६ तौ=तर्पणपुटपाकौ । ७ तर्पणपुटपाकयोर्व्यापदो दर्शयति—अत्युष्णेति । ८ अप्लुतौ=मन्दसर्पितौ । ९ कषायत्वं=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीनप्रमाणौ दोषाणामुत्क्लेशजननौ भृशम् ॥ ४० ॥
युक्तौ[1] कृतौ दाहशोफरुग्घर्षस्रावनाशनौ ।
कण्डूपदेहदूषीकारक्तराजिविनाशनौ[2] ॥ ४१ ॥
तस्मात् परिहरन् दोषान्[3] विदध्यात्तौ सुखावहौ ।
व्यापद[4]श्च यथादोषं नस्यधूमाञ्जनैर्जयेत् ॥ ४२ ॥
आद्यन्तयो[5]श्चाप्यनयोः स्वेद उष्णाम्बुचैलिकः ।
तथा हितोऽवसाने च धूमः श्लेष्मसमुच्छ्रितौ ॥ ४३ ॥
यथा[6]दोषोपयुक्तन्तु नातिप्रबलमोजसा ।
रोगमाश्च्योतनं हन्ति सेक[7]स्तु बलवत्तरम् ॥ ४४ ॥
तौ[8] त्रिधैवोपयुज्येते रोगेषु पुटपाकवत् ।
ले[9]ने सप्त चाष्टौ वा बिन्दवः स्नैहिके दश ॥ ४५ ॥
आश्च्योतने प्रयोक्तव्या द्वादशैव तु रोपणे ।
सेकस्य[10] द्विगुणः कालः पुटपाकात् परो मतः ॥ ४६ ॥

---

रागत्वम् । १ तर्पणपुटपाकयोर्गुणानाह—**युक्ताविति** । युक्तौ = दोषरहितत्वेन न्याय्यौ । २ दूषीका = नेत्रमलः, दूषयति, 'दुष वैकृत्ये' इति ण्यन्तात् 'दोषो णौ' इत्यूत्वम् 'कषिदूषिभ्यामीकन्' इति ईकन् । ह्रस्वेकारघटितदूषिकाशब्दे ण्वुल्, 'अच इः' इत्यौणादिक इः । ३ दोषान् = पूर्वोक्तानत्युष्णतीक्ष्णादिकान्, तौ = तर्पणपुटपाकौ । ४ दाहपाकादिका व्यापद इत्यर्थः ।

५ तर्पणपुटपाकयोः पूर्वकर्म पश्चात्कर्म च निर्दिशति—**आद्यन्तयोरिति** । अनयोः=तर्पणपुटपाकयोः, स्वेदः, कथम्भूतः—उष्णाम्बुचैलिकः उष्णाम्बुना सिक्तं चेलं शाकपार्थिवादिः, 'तदर्हति' इति ठक्, उत्तरपदवृद्धिः । ६ क्रमागतयोराश्च्योतनसेकयोर्गुणानभिदधाति—**यथेति** । यथादोषोपयुक्तं=वातादिजे नेत्ररोगे तत्तद्दोषप्रत्यनीकभेषजसिद्धद्रवप्रयोजितम्, आश्च्योतनं पूरणमिति सम्बन्धः ।

७ सेकः=परिषेकः, अत्र यथादोषोपयुक्तमिति पदं लिङ्ग-त्यासेन सम्बन्धनीयम् । विदेहे विशेषः—"प्रागेवाद्यामये कार्यं त्रिरात्रं लघुभोजनम् । उपवासस्त्र्यहं वा स्यान्नक्तं वाऽप्यशनं त्र्यहम् ॥ ततश्चतुर्थे दिवसे व्याधि सञ्जातलक्षणम् । समीक्ष्याश्च्योतनैः सेकैर्यथास्वमुपपादयेत् ॥" इति । ८ तौ आश्च्योतनसेकौ वातादिजे नेत्ररोगे पुटपाकवत् स्नेहनलेखनरोपणभेदात् त्रिभिः प्रकारैरुपयुज्येते इत्यर्थः । ९ आश्च्योतने बिन्दुसङ्ख्यामाख्याति—**लेखन इति** । लेखने = लेखनाश्च्योतने । १० परिषे-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा[1] कार्यनिर्वृत्तेरुपयोगो यथाक्रमम् ।
पूर्वापराह्णे मध्याह्ने रुजाकालेषु चोभयोः[2] ॥ ४७ ॥
योगायोगान्[3] स्नेहसेके तर्पणोक्तान् प्रचक्षते ।
रोगान्[4] शिरसि सम्भूतान् हत्वाऽतिप्रबलान् गुणान् ॥ ४८ ॥
करोति शिरसो बस्तिरुक्ता ये मूर्द्धतैलिकाः ।
शुद्धदेहस्य सायाह्ने यथाव्याध्यशितस्य[5] तु ॥ ४९ ॥
ऋज्वासीनस्य[6] बध्नीयाद्बस्तिकोशं ततो दृढम् ।

---

कस्य धारणकालं वक्ति—सेकस्येति । पुटपाकात् पुटपाकधारणकालात् सेकस्य द्विगुणः कालः परः श्रेष्ठतमो मत इत्यर्थः । तत्र लेखनपरिषेकस्य धारणकालो वाक्शतद्वयं, स्नेहनस्य वाक्शतचतुष्टयं, रोपणस्य षड्वाक्शतानि ।

१ पक्षान्तरं दर्शयति—अथवेति । कार्यनिर्वृत्तेः = प्रकृतिवर्णोपपत्तिनिमेषोन्मेषादिक्रियापाटवप्रभृतिकार्यसिद्धेः, व्याध्युपशमनादित्यर्थः । २ उभयोः = आश्च्योतनपरिषेकयोः । अर्थात् कफजे नेत्ररोगे पूर्वाह्णे लेखनावाश्च्योतनसेकौ, वातजे नेत्ररोगेऽपराह्णे स्नेहनौ, रक्तपित्तजे मध्याह्ने रोपणौ तौ प्रयोज्यौ । रुजाकालेषु = सामान्यतया रोगोत्पत्तिकालेषु, अर्थाद् यस्मिन् काले व्याध्युत्पत्तिस्तस्मिन्नेव काले सेकाश्च्योतनौ कार्यौ ।

३ द्रव्यविशेषकृतस्य सेकस्य योगायोगलक्षणं सङ्क्षिप्य दर्शयति—योगेति । योगः सम्यग्योगः, अयोगः सम्यग्योगाभावः, तस्मादयोगशब्देन हीनमिथ्यातियोगाः प्राप्ताः, अतो नेह पृथगुक्तिः । तर्पणोक्तान् = सुखस्वप्नावबोधादीन् । ४ शिरोबस्तिविधानमाह—रोगानिति । शिरसि सम्भूतान् अतिप्रबलान् रोगान् शिरोऽभितापप्रभृतीन् हत्वा शिरसो बस्तिर्ये मूर्धतैलिका गुणा उक्ताः "केशानां मार्दवं दैर्घ्यं बहुत्वं स्निग्धकृष्णताम्" इत्यादिनाऽनागताबाधप्रतिषेधनीये तान् गुणान् करोतीत्यर्थः । ५ यथाव्याध्यशितस्य = व्याध्युचितमाहारं भुक्तवतः ।

६ ऋज्वासीनस्य यथाव्याधि श्रृतस्नेहपूर्णं यथा वातिके श्लैष्मिके च तत्तद्व्याधिहरद्रव्यसिद्धेन तैलेन, पैत्तिके पित्तहरद्रव्यसिद्धेन घृतेन पूर्णं बस्तिकोशं गवादीनां मूत्राधारात्मकं कोशाकारमाशयविशेषं दृढं शिरसि बध्नीयादित्यर्थः । संयम्य व्याधितं स्पन्दनादिरहितत्वेन संयतं कृत्वा तर्पणोक्तमद्रितर्पणकथितकालं दशगुणं यथाक्रमं कफपित्तवातजेषु रोगेषु षडष्टदशवाक्सहस्रोपलक्षितं कालं विधानविद् धारयेत् । अर्थात् कफे षड्मात्रासहस्राणि, पित्तेऽष्टौ सहस्राणि, वाते दशसहस्राणीति । तदुक्तम्—"स्वस्थे, "कफे षट् पित्तेऽष्टौ दश वाते तदुत्तमम्" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथाव्याधिश्रृतस्नेहपूर्णं संयम्य धारयेत् ॥ ५० ॥
तर्पणोक्तं दशगुणं यथादोषं विधानवित् ।
व्यक्तरूपेषु दोषेषु शुद्धकायस्य केवले ॥ ५१ ॥
नेत्रे[२] एव स्थिते दोषे प्राप्तमञ्जनमाचरेत् ।
लेखनं रोपणञ्चापि प्रसादनमथापि वा ॥ ५२ ॥
तत्र[३] पञ्च रसान् व्यस्तानाद्यैकरसवर्जितान् ।
पञ्चधा लेखनं युञ्ज्याद्यथादोषमतन्द्रितः ॥ ५३ ॥
नेत्रवर्त्म[४]शिराकोशस्रोतःशृङ्गाटकाश्रितम् ।
मुखनासाऽक्षिभिर्दोषमोजसा स्रावयेत्तु तत् ॥ ५४ ॥
कषाय[५]ं तिक्तकं वाऽपि सस्नेहं रोपणं मतम् ।
तत् स्नेहशैत्याद्वर्ण्यं स्याद् दृष्टेश्च बलवर्द्धनम् ॥ ५५ ॥
मधुर[६]ं स्नेहसम्पन्नमञ्जनन्तु प्रसादनम् ।
दृष्टिदोषप्रसादाथ स्नेहनार्थं च तद्धितम् ॥ ५६ ॥

---

१ अञ्जनभेदान् तदावस्थिककालं च निर्दिशति—व्यक्तेति । व्यक्तरूपेषु = आमावस्थाऽपगमेन प्रस्फुटस्वलिङ्गेषु, शुद्धकायस्य = सिराव्यधविरेकनिरूहशिरोविरेकैर्निर्हृतमलदेहस्य । २ नेत्रे एव = अक्षिगोलकत्वङ्मात्रावस्थिते एव, न तु पक्ष्माद्याश्रिते । तन्त्रान्तरेऽपि—"अथाञ्जनं शुद्धतनोर्नेत्रमात्राश्रिते मले । पक्वलिङ्गोऽल्पशोऽथार्तिकण्डूपैच्छिल्यलक्षिते ॥" इति ।

३ नाममात्रेणोपदिष्टानि लेखनप्रभृतीनि त्रिविधान्यञ्जनानि क्रमशो विवृणोति—**तत्रेति** । तत्र = अञ्जनेषु मध्ये, पञ्च रसान् = पञ्चरसद्रव्याणि, आद्यैकरसवर्जितान् = लेखनायोग्यत्वेन मधुररसवर्जितान्, व्यस्तान् = एकैकत्वेन विभक्तान्, पञ्चधा = वातपित्तश्लेष्मरक्तसन्निपातभेदेन, यथादोषमतन्द्रितः प्रमादरहितो वैद्यो युञ्जयात् । यथा वातेऽम्ललवणौ, पित्ते तिक्तकषायौ, कफे कटुतिक्तकषायाः, रक्ते पित्तवत्तिक्तकषायौ, सन्निपाते रसद्वयं रसत्रयं वा । तदुक्तं चरके—"रौक्ष्यात् कषायो रूक्षाणामुत्तमः" इत्यादिना ।

४ लेखनाञ्जनं यथा दोषस्य स्रावणं करोति, तद्दर्शयति—**नेत्रेति** । नेत्रवर्त्मनोः सिराः, कोशः, स्रोतांसि, शृङ्गाटकमर्म, तत्र तत्राश्रितं दोषं मुखनासाऽक्षिभिरोजसा बलेन स्रावयेत् । ५ रोपणाञ्जनविधिमभिधत्ते—**कषायमिति** । सस्नेहं = किञ्चिदघृतयुक्तम् । ६ प्रसादनाञ्जनविधानमभिदधाति—**मधुरमिति** । स्नेहसम्पन्नं = प्रचुरतर-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथादोषं प्रयोज्यानि तानि रोगविशारदैः ।
अञ्जनानि यथोक्तानि प्राह्णसायाह्णरात्रिषु ॥ ५७ ॥
गुटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि तु ।
यथापूर्व बलं तेषां श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥ ५८ ॥
हरेणुमात्रा वर्त्तिः स्याल्लेखनस्य प्रमाणतः ।
प्रसादनस्य चाध्यर्द्धा द्विगुणा रोपणस्य च ॥ ५९ ॥
रसाञ्जनस्य मात्रा तु यथावर्त्तिमिता मता ।
द्वित्रिचतुःशलाकाश्च चूर्णस्यापि यथानुपूर्वशः ॥ ६० ॥
तेषां तुल्यगुणान्येव विदध्याद्भाजनान्यपि ।
सौवर्णं राजतं शार्ङ्गं ताम्रं वैदूर्यकांस्यजम् ॥ ६१ ॥
आयसानि च योज्यानि शलाकाश्च यथाक्रमम् ।
वक्त्रयोर्मुकुलाकारा कलायपरिमण्डला ॥ ६२ ॥

---

घृतयुक्तम् । अत एवेदं स्नेहनमित्युपदिश्यते । १ तान्यञ्जनानि गुटिकादिभेदेन त्रेधा विभजते—**गुटिकेति** । गुटिकाञ्जनं रसक्रियाञ्जनं चूर्णाञ्जनं चेति गुटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि बोध्यानि । यथापूर्वं बलं तेषाम्, अर्थात् महाबलमध्यबलहीनबल-रोगानुसारेण क्रमशो गुटिकाञ्जनादित्रिविधं श्रेष्ठमिति ।

२ गुटिकाञ्जनादीनां प्रमाणं वर्णयति—**हरेण्विति** । हरेणुर्वंतुलकलायः, तत्प्रमाणा मात्रा अस्या इति हरेणुमात्रा । ३ अधिकमर्द्धमत्रेति अध्यर्धा साद्धंकलाय-प्रमाणा, द्विगुणा=कलायद्वयप्रमाणा । ४ यथावर्तिमिता=यथास्ववर्तिप्रमाणा, यथा लेखनरसक्रियाञ्जनस्य लेखनवर्तिवत्, रोपणस्य रोपणवर्तिवत्, प्रसादनस्य च प्रसादनवत् प्रमाणम् । ५ चूर्णस्य चूर्णाञ्जनस्य मात्रा अनुपूर्वशो लेखनादिक्रमेण द्वित्रिचतुःशलाका धार्या इत्यर्थः । यथा लेखनचूर्णाञ्जनस्य शलाकाद्वयं, रोपणस्य शलाकात्रयं, प्रसादनस्य चतस्रः शलाका इति ।

६ अञ्जनस्थापनार्हाणि पात्राणि निरूपयति—**तेषामिति** । तेषां त्रयाणामञ्जनानां मध्ये तुल्यगुणानि समानगुणानि भाजनानि पात्राणि विदध्यात् । यथा सौवर्णे मधुरं, राजतेऽम्लं, शार्ङ्गे मेषशृङ्गमये लवणं, ताम्रे लोहमये वा कषायं, वैदूर्ये कटुकं, कांस्ये तिक्तं, शीताञ्जनं नलादिमये इति । एवं यथाक्रमं शलाका अपि बोध्याः । ७ अञ्जनशलाकाऽऽकृतिं वक्ति—**वक्त्रयोरिति** । वक्त्रयोः=प्रान्तयोः, मुकुलाकारा=ईषद्विकाशितमल्लिकादिकलिकाकारा, कलायपरिमण्डला=वर्तुलकलायवद् गोला ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टाङ्गुला तनुर्मध्ये सुकृता साधुनिग्रहा[1]।
औदुम्बर्यश्मजा[2] वाऽपि शारीरी वा हिता भवेत् ॥ ६३ ॥
वामेनाक्षि विनिर्भुज्य[3] हस्तेन सुसमाहितः।
शलाकया दक्षिणेन क्षिपेत् कानीनमञ्जनम् ॥ ६४ ॥
आपाङ्गचं वा यथा[4]योगं कुर्य्याच्चापि गतागतम्।
वर्त्मोपलेपि[5] वा यत्तदङ्गुल्यैव प्रयोजयेत् ॥ ६५ ॥
अक्षि नात्यन्तयोरञ्ज्याद्[6] बाधमानोऽपि वा भिषक्।
नं चानिर्वान्तदोषेऽक्षिणि धावनं[7] सम्प्रयोजयेत् ॥ ६६ ॥
दोषः प्रतिनिवृत्तः[8] सन् हन्याद् दृष्टेर्बलं तथा।
गतदोषमपेताश्रु[9] पश्येद्यत्सम्यगम्भसा ॥ ६७ ॥
प्रक्षाल्याक्षि यथादोषं कार्य्यं प्रत्यञ्जनं ततः।
श्रमोदावर्त्तरुदितमद्यक्रोधभयज्वरैः[10] ॥ ६८ ॥

---

१ साधुनिग्रहा=सुखग्रहा। २ औदुम्बरी=ताम्रमयी, 'उदुम्बरस्तु दैहल्यां वृक्षभेदे च पण्डके। कुष्ठभेदेऽपि च पुमांस्ताम्रे तु स्यान्नपुंसकम्॥' इति मेदिनी। अश्मजा=वैदूर्यादिपाषाणजा, शारीरी=हस्तिदन्तादिमयी, अपिशब्दात् सुवर्णादिजाऽपि। तन्त्रान्तरे विशेषः—"आयसी रोपणे, ताम्रा लेख्ये, हैमी प्रसादने। शेषा अपि यथादोषं प्रयोज्या रसकोविदैः॥" इति।

३ अञ्जनविधिमभिदधाति—**वामेनेति**। विनिर्भुज्य=वर्त्मापकर्षेण वक्रीकृत्य ४ योगमनतिक्रम्य यथायोगम्, अतियोगो हीनयोगश्च यथा न स्यादिति कृत्वेत्यर्थः। यथायोग्यमिति हाराणचन्द्रसम्मतपाठः। गतागतम्=इतस्ततः सञ्चारम्। ५ वर्त्मोपलेपि=वर्त्मोपलेपनयोग्यम्। ६ अन्तयोः=कनीनकाऽपाङ्गयोः, नात्यञ्जयात्=अर्थात् क्षतभिया ईषदञ्जयात्।

७ अकाले प्रक्षालनदोषान् दर्शयति—**नेति**। निर्निश्चयेन सम्यग्योगेन न वान्तोऽश्रुदूषिकादिरूपो दोषो येन तस्मिन् अनिर्वान्तदोषे। 'निर्निश्चयनिषेधयोः' इति वररुचिः। धावनं=प्रक्षालनम्। ८ प्रतिनिवृत्तः=पुनरावृत्तः। ९ प्रक्षालनार्हमक्षि निरूपयति—**गतेति**। आदौ गतदोषं पश्चाच्च अपेताश्रु यदक्षि तदम्भसा सम्यक् प्रक्षाल्य यथादोषं ततस्तस्याक्ष्णः, सार्वविभक्तिकस्तसिल्, तीक्ष्णाञ्जनेन कटूभूतनयनस्य यदञ्जनं शीतं, तथा शीतेन जडीभूतनयनस्य तत्तीक्ष्णमञ्जनं तत्प्रत्यञ्जनं कार्यमित्यर्थः। १० अञ्जनानर्हान्निर्दिशति—**श्रमेति**।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेगाघातशिरोदोषैश्चार्त्तानां नेष्यतेऽञ्जनम् ।
रागरुक्तिमिरास्रावशूलसंरम्भसम्भवात् ॥ ६९ ॥
निद्राक्षये क्रियाशक्तिं, प्रवाते दृग्बलक्षयम् ।
रजोधूमहते रागस्रावाधीमन्थसम्भवम् ॥ ७० ॥
संरम्भशूलौ नस्यान्ते, शिरोरुजि शिरोरुजम् ।
शिरःस्नातेऽतिशीते च रवावनुदितेऽपि च ॥ ७१ ॥
दोषस्थैर्य्यादपार्थं स्याद्दोषोत्क्लेशं करोति च ।
अजीर्णेऽप्येवमेव स्यात् स्रोतोमार्गावरोधनात् ॥ ७२ ॥
दोषवेगोदये दत्तं कुर्य्यात्तांस्तानुपद्रवान् ।
तस्मात् परिहरन् दोषानञ्जनं साधु योजयेत् ॥ ७३ ॥
लेखनस्य विशेषेण काल एष प्रकीर्त्तितः ।
व्यापदश्च जयेदेताः सेकाश्च्योतनलेपनैः ॥ ७४ ॥
यथास्वं धूमकवलैर्नस्यैश्चापि समुत्थिताः ।
विशदं लघ्वनास्रावि क्रियापटु सुनिर्मलम् ॥ ७५ ॥
संशान्तोपद्रवं नेत्रं विरिक्तं सम्यगादिशेत् ।
जिह्मं दारुणदुर्वर्णं स्रस्तं रूक्षमतीव च ॥ ७६ ॥
नेत्रं विरेकातियोगे स्यन्दते चातिमात्रशः ।

---

१ संरम्भः=श्वयथुरित्यर्थः । २ अञ्जनवैगुण्ये व्यापदो दर्शयति—**निद्रेति** । निद्राक्षये=निद्राऽन्ते, क्रियाऽशक्तिं=निमेषोन्मेषादिक्रियाणामशक्तिम्, 'अञ्जनं करोति' इति शेषः । ३ अपार्थम्=अकिञ्चित्करमित्यर्थः । ४ रागशोकादिकानुपद्रवानित्यर्थः । ५ लेखनस्य=लेखनाञ्जनस्य, एष कालः=पूर्वोक्तनिषिद्धकालः ।

६ अकालेऽञ्जनकृतानां व्यापदां चिकित्सामाह—**व्यापदश्चेति** । एताः पूर्वोक्ता रागरुजादयः समुत्थिता व्यापदो यथास्वं सेकाश्च्योतनलेपनैर्धूमकवलैर्नस्यैश्च जयेदित्यर्थः । ७ लेखनाञ्जनस्य सम्यग्योगातियोगलक्षणमाख्याति—**विशदमिति** । विशदं=शुभ्रम्, अनास्रावि=अश्रुस्रावविवर्जितम्, क्रियासु निमेषोन्मेषादिषु पटु, सुनिर्मलं=दूषिकारहितत्वेन विमलम् । ८ सम्यक् शान्ता उपद्रवा यस्मिन्नेत्रे तत् संशान्तोपद्रवम् । ९ लेखनाञ्जनस्यातियोगलक्षणं तत्प्रतीकारं चाभिधत्ते—**जिह्ममिति** । जिह्मं=कुटिलम्, दारुणं=दुःखदायकम् । १० स्यन्दते=विस्रावयति ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र सन्तर्पणं कार्य्यं विधानं चानिलापहम् ॥ ७७ ॥
अक्षि[1] मन्दविरिक्तं स्यादुदग्रतरदोषवत् ।
धूमनस्याञ्जनैस्तत्र हितं दोषावसेचनम् ॥ ७८ ॥
स्नेहवर्ण[2]बलोपेतं प्रसन्नं दोषवर्जितम् ।
ज्ञेयं प्रसादने सम्यगुपयुक्तेऽक्षि निर्वृतम्[3] ॥ ७९ ॥
किञ्चिद्धीन[4]विकारं स्यात्तर्पणाद्धि कृतादति ।
तत्र दोषहरं[5] रूक्षं भेषजं शस्यते मृदु ॥ ८० ॥
साधारण[6]मपि ज्ञेयमेवं रोपणलक्षणम् ।
प्रसादन[7]वदाचष्टे तस्मिन् युक्तेऽतिभेषजम् ॥ ८१ ॥
स्नेहनं[8] रोपणं वाऽपि हीनयुक्तमपार्थकम् ।
कर्त्तव्यं मात्रया तस्मादञ्जनं सिद्धिमिच्छता ॥ ८२ ॥
[10]पुटपाकक्रियाद्यासु क्रियास्वेषैव कल्पना ।
सहस्रशश्चाञ्जनेषु बीजेनोक्तेन पूजिताः ॥ ८३ ॥

---

१ लेखनाञ्जनस्य हीनयोगलक्षणं तत्प्रतीकारं च दर्शयति—अक्षीति । उदग्रतरदोषवत्=प्रबलतरदोषयुक्तम् । २ प्रसादनाञ्जनस्य सम्यग्योगमाचष्टे—स्नेहेति । स्नेहवर्णबलैरुपेतम्, प्रसन्नं=विकसितम् । ३ निर्वृतं=शान्तोपद्रवेन स्वस्थावस्थम् ।

४ प्रसादनाञ्जनस्यातियोगलक्षणं तच्चिकित्सां च निर्दिशति—किञ्चिदिति । तर्पणादतिकृतात् किञ्चिद्धीनविकारमपि स्यात्, प्रसादनाञ्जने इति शेषः । ५ दोषहरं=श्लेष्मदोषहरम् । ६ रोपणाञ्जनस्य सम्यग्योगातियोगलक्षणमतिदिशन् चिकित्सां च वक्ति—साधारणमिति । एवं प्रसादनाञ्जनस्य सम्यग्योगातियोगसमानं साधारणं रोपणस्य रोपणाञ्जनस्य सम्यग्योगातियोगलक्षणमपि ज्ञेयमित्यर्थः । ७ प्रसादनवत् प्रसादनाञ्जनातियोगवत् "तत्र दोषहरं रूक्षं भेषजं शस्यते मृदु" इति पूर्वोक्तं भेषजं तस्मिन्नतियुक्ते प्रयुक्ते आचष्टे । मृदु=मृदुवीर्यं, शीतवीर्यमिति तदर्थः ।

८ प्रसादनरोपणयोर्हीनयोगलक्षणमभिदधाति—स्नेहनमिति । स्नेहनं=प्रसादनाञ्जनम्, अस्य लक्षणं प्रागुक्तम्—"मधुरं स्नेहसम्पन्नमञ्जनं तु प्रसादनम् । दृष्टिदोषप्रसादार्थं स्नेहनार्थं च तद्धितम् ॥" इति । हीनयुक्तं=हीनमात्रया प्रयुक्तम्, अपार्थकम्=अकिञ्चित्करमित्यर्थः । ९ हीनातियोगरहितया मात्रयेत्यर्थः ।

१० पूर्वोक्तेनाञ्जनबीजेन अन्यान्यप्यञ्जनानि कार्याणीत्युपदिशति—पुटपाकेति । अञ्जनेषु उक्तेन लेखनरोपणप्रसादनाख्येन बीजेन बीजभूतेन पुटपाकक्रियाद्यासु पुटपाकसेकाश्च्योतनाञ्जनात्मिकासु क्रियासु अनुक्तेष्वञ्जनेषु कल्पना लेखनरोपणप्रसादन-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टेर्बलविवृद्ध्यर्थं याप्यरोगक्षयाय च ।
राजार्हान्यञ्जनाग्र्याणि निबोधेमान्यतः परम् ॥ ८४ ॥
अष्टौ भागानञ्जनस्य नीलोत्पलसमत्विषः ।
औदुम्बरं[3] शातकुम्भं राजतञ्च समासतः ॥ ८५ ॥
एकादशैतान् भागांस्तु योजयेत् कुशलो भिषक् ।
मूषा[4]क्षिप्तं तदाध्मातमावृतं जातवेदसि ॥ ८६ ॥
खदिराश्मन्तकाङ्गारैर्गोशकृ[5]द्भिरथापि वा ।
गवां[6] शकृद्रसे मूत्रे दध्नि सर्पिषि माक्षिके ॥ ८७ ॥
तैलमद्यवसामज्जसर्वगन्धो[7]दकेषु च ।
द्राक्षारसेक्षुत्रिफलारसेषु सुहिमेषु च ॥ ८८ ॥
सारिवा[8]दिकषाये च कषाये चोत्पलादिके ।
निषेचयेत् पृथक् चैनं ध्मातं ध्मातं पुनः पुनः ॥ ८९ ॥
ततोऽन्तर्[9]रीक्षे सप्ताहं प्लोतबद्धं स्थितं जले ।
विशोष्य[10] चूर्णयेन्मुक्तां स्फटिकं विद्रुमं तथा ॥ ९० ॥
कालानुसारिवां चापि [11]शुचिरावाप्य योगतः ।

---

संज्ञका औषधकल्पना एकैव सहस्रशः पूजिता इत्यर्थः । १ चूर्णाञ्जनविधिमभिधत्ते-दृष्टेरिति । दृष्टेः = मसूरदलमात्राया दृष्टेरित्यर्थः । २ अञ्जनस्य = सौवीराञ्जनस्य, कथम्भूतस्य—नीलोत्पलसमत्विषः नीलोत्पलतुल्यकान्तेः । यमुनास्रोतसि जातः कुलत्थाकारः प्रस्तरविशेषः सौवीराञ्जनं बोध्यम् ।

३ औदुम्बरं = ताम्ररजः, 'उदुम्बरस्तु देहल्यां वृक्षभेदे च पण्डके । कुष्ठभेदेऽपि च पुमांस्ताम्रे तु स्यान्नपुंसकम् ॥' इति मेदिनी । शातकुम्भं = सुवर्णरजः, राजतं = रूप्यरजः, समासतः = सङ्क्षेपतः, ताम्रादीनां प्रत्येकमेकैकभागमित्यर्थः । ४ मूषा मृत्कल्पितं पात्रं, यत्र स्वर्णकारा स्वर्णादिधातून् प्रक्षिप्य अग्नौ द्रवीकुर्वन्ति, तत्राक्षिप्तं संस्थापितं, जातवेदसि = अग्नौ । ५ गोशकृद्भिः = शुष्कगोपुरीषैः । ६ गवामिति पदं शकृदादिसर्पिःपर्यन्तेषु सम्बन्धनीयम् ।

७ सर्वगन्धं नाम—'चातुर्जातककर्पूरकक्कोलागुरुकुङ्कुमम् । लवङ्गसहितं चैतत् सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥' इति । ८ सारिवादिरुत्पलादिश्च गणो द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये द्रष्टव्यः । ९ अन्तरीक्षे जले इति सम्बन्धः । प्लोतबद्धं = वस्त्रबद्धम् । १० विशोष्य = सप्तरात्रादनन्तरं तदञ्जनं शोषयित्वा । ११ शुचिर्वैद्य इत्यर्थः । योगतः = अल्प-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं निहितं भाजने शुभे ॥ ९१ ॥
दन्तस्फटिकवैदूर्य्यशङ्खशैलासनोद्भवे ।
शातकुम्भेऽथ शार्ङ्गे वा राजते वा सुसंस्कृते ।
सहस्रपाकवत् पूजां कृत्वा राज्ञः प्रयोजयेत् ॥ ९२ ॥
तेनाञ्जिताक्षो नृपतिर्भवेत् सर्वजनप्रियः ।
अधृष्यः सर्वभूतानां दृष्टिरोगविवर्जितः ॥ ९३ ॥
कुष्ठञ्चन्दनमेलाश्च पत्रं मधुकमञ्जनम् ।
मेषशृङ्गस्य पुष्पाणि वक्रं रत्नानि सप्त च ॥ ९४ ॥
उत्पलस्य बृहत्योश्च पद्मस्यापि च केशरम् ।
नागपुष्पमुशीराणि पिप्पली तुत्थमुत्तमम् ॥ ९५ ॥
कुक्कुटाण्डकपालानि दार्वीं पथ्यां सरोचनाम् ।
मरिचान्यक्षमज्जानं तुल्याञ्च गृहगोपिकाम् ॥ ९६ ॥
कृत्वा सूक्ष्मं ततश्चूर्णं न्यसेदभ्यर्च्य पूर्ववत् ।
एतद् भद्रोदयं नाम सदैवार्हति भूमिपः ॥ ९७ ॥
वक्रं समरिचञ्चैव मांसीं शैलेयमेव च ।
तुल्यांशानि समानैस्तैः समग्रैश्च मनःशिला ॥ ९८ ॥
पत्रस्य भागाश्चत्वारो द्विगुणं सर्वतोऽञ्जनम् ।

---

मात्रया, आवाप्य = प्रक्षिप्य । १ असनो बीजकस्तद्भवे भाजने । २ शार्ङ्गे = मेषशृङ्गमये । ३ सहस्रपाकवत शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषादिना पूजां कृत्वेत्यर्थः । ४ सर्वभूतानां = देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागानाम् ।

५ भद्रोदयाञ्जनं ब्रवीति—**कुष्ठमिति** । पत्रं = 'तेजपात' इति बोद्धव्यम् , मधुकं = यष्टीमधु । ६ वक्रं = तगरम् , सप्तरत्नानि = पद्मरागमरकतनीलवैदूर्यमुक्ताप्रवालसुवर्णानि । ७ उत्पलस्य = नीलोत्पलस्य, बृहत्योः = कण्टकारिद्वयस्य, चकारात् पुष्पाणि बोध्यानि । ८ उत्तमं तुत्थं = मयूरग्रीवाख्यम् । ९ सरोचनां = गोरोचनसहिताम् । १० गृहगोपिकां = गृहगोधिकाम् । ११ न्यसेत् = भाजने प्रक्षिपेत् , अभ्यर्च्य = शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषादिना सम्पूज्य । १२ भद्रस्य कल्याणस्योदयो लाभो यस्मात्तद् भद्रोदयम् ।

१३ तगराद्यञ्जनमधिकरोति—**वक्रमिति** । वक्रं=तगरम् । १४ समानैः समांशैन गृहीतैस्तैः समग्रैः सर्वद्रव्यैः समा मनःशिलेत्यर्थः । १५ पत्रस्य चत्वारो भागा आद्य-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तावच्च यष्टीमधुकं पूर्ववच्चैतदञ्जनम् ॥ ९९ ॥
मनःशिला देवकाष्ठं रजन्यौ त्रिफलोषणम्।
लाक्षालशुनमञ्जिष्ठासैन्धवैलाः समाक्षिकाः ॥ १०० ॥
रोध्रं सावरकं चूर्णमायासं ताम्रमेव च।
कालानुसारिवाश्चैव कुक्कुटाण्डदलानि च ॥ १०१ ॥
तुल्यानि पयसा पिष्ट्वा गुटिकां कारयेद् बुधः।
कण्डूतिमिरशुक्लार्मरक्तराज्युपशान्तये ॥ १०२ ॥
कांस्यापमार्जनमसीमधुकं सैन्धवं तथा।
एरण्डमूलञ्च समं बृहत्यंशद्वयान्वितम् ॥ १०३ ॥
आजेन पयसा पिष्ट्वा ताम्रपात्रं प्रलेपयेत्।
सप्तकृत्वस्तु ता वर्त्त्यश्छायाशुष्का रुजापहाः ॥ १०४ ॥
पथ्यातुत्थकयष्ट्याह्वैस्तुल्यैर्मरिचषोडशा।
पथ्या सर्वविकारेषु वर्त्तिः शीताम्बुपेषिता ॥ १०५ ॥
रसक्रियाविधानेन यथोक्तविधिकोविदः।
पिण्डाञ्जनानि कुर्वीत यथायोगमतन्द्रितः ॥ १०६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे क्रियाकल्पो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

निर्दिष्टद्रव्याद् बोद्धव्याः। सर्वतः सर्वस्मात् समुदिताञ्जनचूर्णाद् द्विगुणमञ्जनं सौवीराञ्जनम्। १ तावच्च सौवीराञ्जनसमपरिमाणं यष्टीमधुकम्। २ मनःशिलाऽऽद्यञ्जनं निर्दिशति—मन इति। रजन्यौ=हरिद्रादारुहरिद्रे, ऊषणं=मरिचम्। ३ कुक्कुटाण्डदलानि=कुक्कुटाण्डकपालानीत्यर्थः। ४ तुल्यानि=सर्वाणि पूर्वोक्तानि द्रव्याणि समानानीत्यर्थः।

५ कांस्याद्यञ्जनं प्रतिपादयति—कांस्येति। कांस्यस्य अपमार्जनादवघर्षणादुत्थिता मसी कांस्यापमार्जनमसी। ६ पथ्याऽऽद्यञ्जनमभिदधाति—पथ्येति। मरिचस्य षोडशभागा यत्र सा मरिचषोडशा, वर्तिरित्यस्य विशेषणम्।

७ शुष्कवर्त्यञ्जनेऽवचार्यमाणया नेत्रे क्षतादिकं स्यादिति तद्विधिमुपदिशति—रसेति। रसक्रियाया विधानं नातितनु नातिघनं शलाकोपलेपक्षमम् अङ्गुल्युपलेपक्षमं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# एकोनविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो नयनाभिघातप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अभ्याहते तु नयने बहुधा नराणां
संरम्भरागतुमुलासु रुजासु धीमान् ।
नस्यास्यलेपपरिषेचनतर्पणाद्य-
मुक्तं पुनः क्षतजपित्तजशूलपथ्यम् ॥ ३ ॥

दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्य्यात्
स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः ।
स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजाऽभिघातै-
रभ्याहतामपि तथैव भिषक् चिकित्सेत् ॥ ४ ॥

---

तेन रसक्रिया विधानेन यथायोगं नेत्रे क्षतादिकपरिहरणेन पिण्डाञ्जनानि वर्त्यञ्जनानि शिलादौ अवघृष्टानि पिष्टानि वा कुर्यादित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्या-
मष्टादशोऽध्यायः ।

---

## एकोनविंशोऽध्यायः ।

१ नयनयोरभिघाता दण्डादिना भयशोकादिना वा जनिता वेदनादयस्तेषां प्रतिषेधो नयनाभिघातप्रतिषेधस्तम् । तथा च विदेहः—"तीक्ष्णाञ्जनातिपरिक्लिष्टेषु नेत्रेषु वातातपधूमरजव्यापारकीटमक्षिकामशकस्पर्शादिभिरभिहतेषु सलिलक्रीडाजागरणलङ्घनाप्लुताभिद्रुतेषु श्रान्तक्लान्तेषु भयादितेषु दिवाकराग्निचन्द्रग्रहनक्षत्रक्रमणकर्मविविधरूपप्रेक्षणाद्यभिहतेषु दुर्बलेषु नेत्रेषु रागदाहतोदशोफपाकघर्षादिवेदनासु" इति ।

२ तत्रादौ नयनाभिघाते सामान्यचिकित्सामभिधत्ते—अभ्याहत इति । नराणां बहुधा बहुप्रकारेण अभ्याहते दण्डशस्त्रादिभिः सद्योऽभिहते नयने संरम्भरागाभ्यां तुमुलासु सङ्कुलासु रुजासु नस्यास्यलेपपरिषेचनतर्पणाद्यं कर्म क्षतजपित्तजशूलपथ्यं रक्ताभिष्यन्दहितं पित्ताभिष्यन्दहितं च तथा स्निग्धादिभिर्दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यादित्यर्थः । ३ तथैव पूर्वोक्तप्रकारेण चिकित्सेत् । चिकित्सितमत्रापि सप्ताहाद-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]सद्योहते नयन एष विधिस्तदूर्ध्वं
स्यन्देरितो भवति दोषमवेक्ष्य कार्य्यः ।
अभ्याहतं नयनमीषदथास्य[2]बाष्प-
संस्वेदितं भवति तन्निरुजं क्षणेन ॥ ५ ॥
[3]साध्यं क्षतं पटलमेकमुभे तु कृच्छ्रे
त्रीणि क्षतानि पटलानि विवर्जयेत्तु ।
स्यात् पिच्चितं[4]च नयनं ह्यति चावसन्नं
स्रस्तं च्युतञ्च हतदृक् च भवेत्तु याप्यम् ॥ ६ ॥
विस्तीर्णदृष्टितनुरागमस[5]त्प्रदर्शि
साध्यं यथास्थितमनाविलदर्शनञ्च ।
[6]प्राणोपरोधवमनक्षुतकण्ठरोधै-
रुन्नम्यमाशु नयनं यदतिप्रविष्टम् ॥ ७ ॥
नेत्रे विलम्बिनि विधिर्विहितः पुरस्ता-
दुच्छिङ्घनं शिरसि वार्यवसेचनञ्च ।

---

र्वागेव बोध्यम् । १ वैद्यके सद्यःशब्दस्य सप्ताहपरकत्वात् सद्योहते सप्ताहादर्वागे-वेत्यर्थः । तदूर्ध्वं = सप्तरात्रादूर्ध्वम् , स्यन्देरितः = वाताभिष्यन्दोक्तो विधिः । २ आ-स्यबाष्पेण मुखफूत्कारोष्मणा संस्वेदितमास्यबाष्पसंस्वेदितम् ।

३ नयनाभिघातस्य साध्यासाध्यत्वविचारं प्रकटयति—**साध्यमिति** । एकं पटलम् = आद्यं पटलम् , उभे = आद्यद्वितीयपटले, त्रीणि = आद्यद्वितीयतृतीयपटलानि। ४ पिच्चितलक्षणमुक्तं प्राक् सद्योव्रणचिकित्सिते—"प्रहारपीडनाभ्यां तु यदङ्गं पृथुतां गतम् । सास्थि तत् पिच्चितं विद्यान्मज्जरक्तपरिप्लुतम् ॥" इति । अवसन्नम् = अन्तः-प्रविष्टम् , स्रस्तं = शिथिलम् , च्युतम् = अवलम्बितम् , हतदृक् = विनष्टदृष्टिमण्डलम् । ५ असत्प्रदर्शि = असाधुदर्शि ।

६ अतिप्रविष्टनयनचिकित्सामाख्याति—**प्राणेति** । प्राणोपरोधः = श्वासावरोधः । ७ अतिनिर्गतनयनस्य चिकित्सामाचष्टे—**नेत्र इति** । विलम्बिनि = अतिनिर्गते, पुरस्तात् = सद्योव्रणचिकित्सिते 'भिन्ननेत्रमकर्मण्यमभिन्नं लम्बते तु यत् । तन्निवेश्य यथास्थानमव्याविद्धसिरं शनैः ॥' इत्यादिना विधिर्विहितः । उच्छिङ्घनं = नासया वातस्यान्तःप्रवेशनम् , वार्यवसेचनं = शीतजलपरिषेक इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षट्सप्ततिर्नयनजा य इमे प्रदिष्टा
रोगा भवन्त्यमहतां महताञ्च तेभ्यः ॥ ८ ॥
स्तन्यप्रकोपकफमारुतपित्तरक्तै-
र्बालाक्षिवर्त्मभव एव कुकूणकोऽन्यः ।
मृद्नाति[२] नेत्रमतिकण्डुमथाक्षिकूटं
नासाललाटमपि तेन शिशुः स नित्यम् ॥ ९ ॥
सूर्यप्रभां न सहते स्रवति प्रबद्धं[३],
तस्याहरेद् रुधिरमाशु विनिर्लिखेच्च ।
क्षौद्रायुतैश्च कटुभिः[४] प्रतिसारयेत्तु
मातुः शिशोरभिहितञ्च विधिं विदध्यात् ॥ १० ॥
तं[५] वामयेत्तु मधुसैन्धवसम्प्रयुक्तैः ।
पीतं पयः खलु फलैः खरमञ्जरीणाम् ॥ ११ ॥
स्यात्पिप्पलीलवणमाक्षिकसंयुतैर्वा
नैनं[६] वमन्तमपि वामयितुं यतेत ।

---

१ पूर्वोक्तमुपसंहरन् प्रसङ्गाद्बालानां स्तन्यादिदोषजातं कुकूणकं नाम रोगविशेषमधिकरोति—**षडिति** । येऽमे षट्सप्ततिर्नयनजा रोगाः प्रदिष्टास्ते अमहतां बालानां महतां च भवन्ति तेभ्यो रोगेभ्योऽन्यः स्तन्यप्रकोपकफमारुतपित्तरक्तैः बालाक्षिवर्त्मभव एव कुकूणकः, अस्तीति शेषः ।

२ कुकूणकस्य लक्षणं तच्चिकित्सां चाभिदधाति—**मृद्नातीति** । अक्षिकूटं = नेत्रगोलकम् । ३ प्रबद्धं निरन्तरं स्रवति अश्रूणि विमुञ्चति, तस्य रुधिरम् आहरेत् जलौकोभिरिति शेषः । विनिर्लिखेद् गोजोशेफालिकापत्रादिभिरित्यर्थः । ४ कटुभिः = त्रिकटुकैः, प्रतिसारयेत्=ईषत् प्रलेपयेत् । शिशोर्मातुरभिहितं विधिं "स्तन्ये गते विकृतिमाशु भिषक्" "तेषु च यथाऽभिहितं मृद्वच्छेदनीयमौषधं मात्रया क्षीरपस्य" इत्यादिकं विदध्यात् ।

५ क्षीरपस्य बालस्य स्तन्यसात्म्यत्वात् स्तन्ययुक्तमेव वमन निर्दिशति—**तमिति** । मधुसैन्धवसम्प्रयुक्तैः पिप्पलीलवणमाक्षिकसंयुतैर्वा खरमञ्जरीणां फलैरपामार्गफलचूर्णैः सह पयः स्तन्यं पीतं तं बालं वामयेदित्यर्थः । ६ स्वयं वमन्तं प्रकारा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दत्त्वा[1] वचामशनदुग्धभुजे प्रयोज्य-
मूर्ध्नि[1] ततः फलयुतं वमनं विधिज्ञैः ॥ १२ ॥
जम्ब्वाम्रधात्र्यणुदलैः[2] परिधावनार्थं
कार्य्यं कषायमवसेचनमेव चापि ।
आश्च्योतने[3] च हितमत्र घृतं गुडूची-
सिद्धं तथाऽऽहुरपि च त्रिफलाविपक्वम् ॥ १३ ॥
नेपालजामरिचशङ्खरसाञ्जनानि[4]
सिन्धुप्रसूतगुडमाक्षिकसंयुतानि ।
स्यादञ्जनं मधुरसामधुकाम्रकैर्वा[5]
कृष्णायसं[6] घृतपयो मधु वाऽपि दग्धम् ॥ १४ ॥
व्योषं[7] पलाण्डु मधुकं लवणोत्तमञ्च
लाक्षाञ्च गैरिकयुतां गुटिकाञ्जनं[8] वा ।
निम्बच्छदं[9] मधुकदार्वि सताम्रलोध्र-
मिच्छन्ति चात्र भिषजोऽञ्जनमंशतुल्यम्[10] ॥ १५ ॥

---

न्तरेण वामयितुमेनं बालं न यतेत, यत्नं न कुर्यादित्यर्थः। १ क्षीरान्नादस्य अन्नादस्य च वमनं वक्ति-दत्त्वेति। अशनदुग्धभुजे=क्षीरान्नादायेत्यर्थः। फलयुतं=मदनफलसंयुतम्। २ कुकूणके वर्त्मनः प्रक्षालनपरिषेकार्थं कषायमाख्याति—जम्ब्वित्ति। अणुदलैः=कोमलपत्रैः, परिधावनार्थं=प्रक्षालनार्थम्, अवसेचनं=परिषेक इत्यर्थः।

३ अक्षिपूरणार्थमकल्कघृतद्वयमभिदधाति—आश्च्योतन इति। त्रिफलाविपक्वं त्रिफलाक्काथसिद्धं घृतमिति सम्बन्धः। त्रिफलाविपक्वं द्वितीयमञ्जनम्। ४ कुकूणकेऽञ्जनमभिधत्ते—नेपालजेति। नेपालजा=मनःशिला। ५ मधुरसा=मूर्वा। ६ चूर्णाञ्जनं निर्दिशति—कृष्णेति। कृष्णायसं=कृष्णलोहचूर्णमन्तर्धूमदग्धमित्यर्थः। "लौहचूर्णं च सर्पिश्च मधु क्षीरं च दाहयेत्। एतच्चूर्णाञ्जनं पिष्टं कुमाराणां कुकूणके॥" इति विदेहः।

७ गुटिकाञ्जनं दर्शयति—व्योषमिति। व्योषं=त्रिकटुकम्, लवणोत्तमं=सैन्धवम्। ८ गुटिकाञ्जनं=वर्त्यञ्जनम्। ९ निम्बच्छदमित्यादिनाऽपरं वर्त्यञ्जनं वक्ति। मधुकं च दार्वी चेति मधुकदार्वि, दार्वीपदेन हरिद्रादयं ग्राह्यम्। १० अञ्जनं=गुटिकाञ्जनम्, अंशतुल्यं=निम्बच्छदादिकं समभागम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्रोतोजं[1] शङ्खदधिसैन्धवमर्द्धपक्षं
शुक्रं शिशोर्नुदति भावितमञ्जनेन ।
स्यन्दे कफादभिहितं क्रममाचरेच्च
बालस्य रोगकुशलोऽद्विगदं जिघांसुः ॥ १६ ॥
समुद्र[2] इव गम्भीरं नैव शक्यं चिकित्सितम् ।
वक्तुं निरवशेषेण श्लोकानामयुतैरपि ॥ १७ ॥
सहस्रैरपि वा प्रोक्तं[3]मर्थमल्पमतिर्नरः ।
तर्कग्रन्थार्थरहितो नैव गृह्णात्यपण्डितः ॥ १८ ॥
तदिदं बहुगूढार्थं चिकित्सा[4]बीजमीरितम् ।
कुशलेनाभिपन्नं तद्बहुधाऽभिप्ररोहति ॥ १९ ॥
तस्मान्मतिमता नित्यं नाना[5]शास्त्रार्थदर्शिना ।
सर्वमूह्यमगाधार्थं शास्त्रमाग[6]मबुद्धिना ॥ २० ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे नयनाभिघात-चिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

---

१ बालानां शुक्रलेखनार्थमञ्जनमुपदिशति—स्रोतोजेति । स्रोतोजं रसाञ्जनम् अर्द्धपक्षं सार्द्धसप्तरात्रं भावितं सत् अञ्जनेन शिशोः शुक्रं नुदति । बालस्य अद्विगदं कुकूणकं जिघांसुः रोगकुशलो वैद्यः कफात् स्यन्दे कफाभिष्यन्देऽभिहितं क्रममाचरेच्चेत्यर्थः । डल्हणोक्ता वृद्धवैद्यसम्मता कल्पना-गव्येन दध्ना पिष्टाभ्यां शङ्खसैन्धवाभ्यां स्रोतोजं रसाञ्जनमर्धपक्षं सार्द्धसप्तरात्रमसकृल्लेपयेत् । ततोऽनन्तरं तत्स्रोतोजं रसाञ्जनं पिष्ट्वा वर्तिः कार्या, साऽञ्जनेन शिशोः शुक्रं नुदति स्फोटयतीत्यर्थः ।

२ नेत्रचिकित्सितमुपसंहरन् स्तौति—समुद्रेति । समुद्र इव गम्भीरं श्लोकानां सहस्रैरप्ययुतैः श्लोककोटयाऽपि निरवशेषेण वक्तुं नैव शक्यमित्यर्थः । ३ प्रोक्तमर्थमल्पमतिर्नरस्तर्केण ऊहेन यो ग्रन्थार्थः शास्त्रार्थस्तेन रहितो नैव गृह्णातीत्यर्थः । ४ चिकित्साबीजभूतमित्यर्थः । ५ नानाशास्त्राणि शालाक्यादीनि तेषामर्थदर्शिना ।

६ आगमः आप्तानां शास्त्रं तत्र बुद्धिर्यस्य तेन आगमबुद्धिना, तदुक्तम्—"सिद्धं सिद्धैः प्रमाणैस्तु हितं चात्र परत्र च । आगमः शास्त्रमाप्तानामाप्तास्तत्त्वार्थवेदिनः॥" इति । अपि च—"सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां तथाऽर्चनम् । साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च ॥ षट्कर्म साधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः । सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद्विदुर्बुधाः॥" इति ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकोनविंशोऽध्यायः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः कर्णगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
कर्णशूलं प्रणादश्च बाधिर्यं क्ष्वेड एव च ।
कर्णस्रावः कर्णकण्डूः कर्णवर्चस्तथैव च ॥ ३ ॥
कृमिकर्णप्रतीनाहौ विद्रधिर्द्विविधस्तथा ।
कर्णपाकः पूतिकर्णस्तथैवार्शश्चतुर्विधम् ॥ ४ ॥
कर्णार्बुदं सप्तविधं शोफश्चापि चतुर्विधः ।
एते कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥ ५ ॥
समीरणः श्रोतगतोऽन्यथाचरः समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः ।
करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुराचरः ॥६॥
यदा तु नाडीषु विमार्गमागतः स एव शब्दाभिवहासु तिष्ठति ।

---

## विंशतितमोऽध्यायः ।

१ इन्द्रियगतरोगसामान्याद् श्रोत्रगतरोगविज्ञानीयमधिकरोति—**अथेति** । गत-शब्द आश्रयवचनः, तेन कर्णाश्रितरोगविज्ञानमधिकृत्य कृतोऽध्यायः कर्णगतरोगविज्ञा-नीयस्तम् । २ तत्रादौ कर्णगतरोगाणां नामानि निर्दिशति—**कर्णशूलमिति** । ३ दोषविद्रधिः क्षतविद्रधिश्चेति भेदेन विद्रधिर्द्विविध इत्यर्थः । ४ वातपित्तकफ-सन्निपातैरर्शश्चतुर्विधमित्यर्थः । ५ कर्णार्बुदं सप्तविधम्—वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च । सप्तमं सर्वात्मकम् । वातपित्तकफसन्निपातैः शोफश्चापि चतुर्विधः । तद् वक्ष्यति—"दोषैस्त्रिभिस्तैः पृथगेकशश्च ब्रूयात्तथाऽर्शांसि तथैव शोफान् । शालाक्यसिद्धान्तमवेक्ष्य चापि सर्वात्मकं सप्तममर्बुदं तु ॥" इति ।

६ कष्टशूलस्य कर्णसाध्यत्वात् प्राक् तल्लक्षणमभिधत्ते—**समीरण इति** । समी-रणो वायुः श्रोत्रगतः श्रोत्रप्राप्तोऽन्यथाचरन् विमार्गगः समन्ततः कर्णयोरतीव शूलं करोतीति सम्बन्धः । दोषैः कफपित्तरक्तैर्यथास्वमावृतः स कर्णशूलो दुराचरो दुःखेन आचर्यते उपचर्यते इति कथितः । कर्णशूलस्य कष्टसाध्यत्वं मूर्च्छाऽऽद्युपद्रवयोगाद् बोध्यम । तथा च विदेहः—"मूर्च्छा दाहो, ज्वरः कासो हृल्लासो वमथुस्तथा । उप-द्रवाः कर्णशूले भवन्त्येते मरिष्यतः ॥" इति ।

७ कर्णनादलक्षणमभिदधाति—**यदेति** । यदा तु स एव वायुः शब्दाभिवहासु नाडीषु विमार्गमागतः शिरः प्राप्तस्तिष्ठतीति सम्बन्धः । तथा च विदेहः—"शिरोगतो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शृणोति शब्दान् विविधांस्तदा नरः प्रणादमेनं कथयन्ति चामयम्॥७॥
स एव[1] शब्दानुवहा यदा सिराः कफानुयातो व्यनुसृत्य तिष्ठति।
तदा नरस्याप्रतिकारसेविनो भवेत्तु बाधिर्य्यमसंशयं खलु॥ ८॥
श्रमात्क्षयाद्रूक्षकषायभोजनात्समीरणः शब्दपथे प्रतिष्ठितः।
विरिक्तशीर्षस्य च शीतसेविनः करोति हि क्ष्वेडमतीव कर्णयोः॥९॥
शिरोऽभिघातादथवा निमज्जतो जले प्रपाकादथवाऽपि विद्रधेः।
स्रवेत्तु पूयं श्रवणोऽनिलावृतः स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्त्तितः॥१०॥
कफेन कण्डूः प्रचितेन कर्णयोर्भृशं भवेत् स्रोतसि कर्णसंज्ञिते।
विशोषिते श्लेष्मणि पित्ततेजसा नृणां भवेत्स्रोतसि कर्णगूथकः॥११॥
स कर्णविट्को द्रवतां यदागतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते।

---

यदा वायुः श्रोत्रयोः प्रतिपद्यते। तदा तु विविधान् शब्दान् समीरयति कर्णयोः॥ भृङ्गारकौञ्चनादं वा मण्डूककाकयोस्तथा। तन्त्रीं मृदङ्गशब्दं वा सामतूर्यस्वनं तथा॥ गीताध्ययनवंशानां निर्घोषं क्ष्वेडनं तथा। अपामिव पतन्तीनां शकटस्येव गच्छतः॥ श्वसतामिव सर्पाणां सदृशः श्रूयते स्वनः।" इति।

१ बाधिर्यलक्षणमाख्याति—**स एवेति**। स एव वायुः कफानुयातः कफानुगतः शब्दानुवहाः सिरा व्यनुसृत्य विविधमार्गमावृत्य तिष्ठतीति सम्बन्धः। २ अप्रतिकारसेविनः=अचिकित्स्यतः। ३ कर्णक्ष्वेडलक्षणमाचष्टे—**श्रमादिति**। क्षयात्=धातुक्षयात्। अयं पित्तादिदोषसंसृष्टवातजन्यः। कर्णनादे केवलवातजन्ये नानाशब्दात् शृणोति, कर्णक्ष्वेडे नियमेन वेणुशब्दमिति तयोर्भेदोऽवगन्तव्यः। तदाह विदेहः—"मारुतः कफपित्ताभ्यां संसृष्टः शोणितेन च। कर्णक्ष्वेडं सजनयेत् क्ष्वेडनं वेणुघोषवत्॥" इति। ४ क्ष्वेडम्=अव्यक्तशब्दम्।

५ कर्णस्रावलक्षणं वक्ति—**शिर इति**। शिरोऽभिघातात् शिरसि दण्डादिना वातादिना वा कर्णसंश्रयिणां सिरास्नाय्वादीनामुपघातात्, अथवा जले निमज्जतः, अथवा विद्रधेः कर्णविद्रधेः प्रपाकादनिलार्दितः श्रवणः पूयं स्रवेत्, स कर्णसंस्राव इति रोगः प्रकीर्तित इत्यर्थः।

६ कर्णकण्डूकर्णगूथकयोर्लक्षणे ब्रवीति—**कफेनेति**। कर्णयोः प्रचितेन सञ्चितेन कफेन कर्णसंज्ञिते स्रोतसि कर्णस्रोतसि भृशं कण्डूर्भवेदिति सम्बन्धनीयम्। ७ प्रचितेनेति लिङ्गव्यत्यासेन अध्याहार्यं स्रोतसि सञ्चिते श्लेष्मणि पित्ततेजसा विशोषिते सति कर्णगूथको भवेदिति सम्बन्धः। ८ कर्णप्रतिनाहलक्षणं प्रतिपादयति—**स इति**। विलायितः=स्नेहस्वेदाभ्यां विलीनीकृतः सन्, घ्राणं च मुखं च घ्राणमुखं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽभितापनः ॥१२॥
[2]यदा तु मूर्च्छन्त्यथवाऽपि जन्तवः सृजन्त्यपत्यान्यथवाऽपि मक्षिकाः।
तदञ्जनत्वाच्छ्रवणो निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः[3] कृमिकर्णकोऽगदः ॥१३॥
[4]क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः ।
स रक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत् प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ १४ ॥
[5]भवेत् प्रपाकः खलु पित्तकोपतो विकोथविक्लेदकरश्च कर्णयोः ।
[6]स्थिते कफे स्रोतसि पित्ततेजसा विलाय्यमाने भृशसम्प्रतापवान् ॥
अवेदनो वाऽप्यथवा सवेदनो घनं स्रवेत् पूति च पूतिकर्णकः ॥१५॥
[7]प्रदिष्टलिङ्गान्यशोसि तत्त्वतस्तथैव शोफार्बुदलिङ्गमीरितम् ।
[8]मया पुरस्तात्प्रसमीक्ष्य योजयेदिहैव तावत् प्रयतो भिषग्वरः ॥१६॥
इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे कर्णगतरोगविज्ञानीयो नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

---

प्रपद्यते । १ शिरसोऽभितापनः = सकलशिरोविकारकारी । अयं कफमारुताभ्यां सन्निपातेन वा । तथा च विदेहः-"कफाद् वा मारुताद्वाऽपि सन्निपातेन वा पुनः" इति ।

२ क्रिमिकर्णलक्षणमुपदिशति-यदेति । मूर्च्छन्ति = उच्छ्रिता भवन्ति, जन्तवः = मांसशोणितकोथजाः क्रिमयः, अपत्यानि = सूक्ष्मक्रिमीन् । ३ आद्यैर्भिषग्भिर्विदेहादिभिस्तदञ्जनत्वात् क्रिमिलक्षणत्वात् श्रवणः क्रिमिकर्णको निरुच्यते इति सम्बन्धः । अयं सान्निपातिकः । तथा च विदेहः—"श्लेष्मपित्तजलोन्मिश्रे कोथे शोणितमांसजे । मूर्च्छन्ति जन्तवस्तत्र कृष्णास्ताम्राः सितारुणाः । भक्षयन्तीव ते कर्णं कुर्वन्तो विविधा रुजः । क्रिमिकर्णं तु तं विद्यात् सन्निपातप्रकोपजम् ॥" इति ।

४ कर्णविद्रधिलक्षणमाह—क्षतेति । क्षताभिघातप्रभवः = क्षतप्रभवोऽभिघातप्रभवश्चेत्यर्थः । क्षताभिघातप्रभवयोरागन्तुकत्वादेकत्वमेव बोध्यम् । अपरः = द्वितीयः, दोषकृतः = दोषजनितः ।

५ कर्णपाकपूतिकर्णयोर्लक्षणेऽभिदधाति—भवेदिति ।

६ स्रोतसि कर्णकुहरे स्थिते कफे पित्ततेजसा विलाय्यमाने सति भृशसन्प्रतापवान् अवेदनः सवेदनो वा पूतिकर्णः घनं निरन्तरं पूति पूयं स्रवेत् स्रावयेदित्यर्थः ।

७ कर्णगतशोथार्बुदार्शसामतिदेशेन लक्षणमाह—प्रदिष्टेति । शोफार्बुदयोर्लिङ्गं लक्षणमिति शोफार्बुदलिङ्गम् ।

८ प्रसमीक्ष्य = सम्यग्विचार्येत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां विंशतितमोऽध्यायः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# एकविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः कर्णगतरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

सामान्यं कर्णरोगेषु घृतपानं रसायनम् ।
अव्यायामोऽशिरःस्नानं ब्रह्मचर्य्यमकत्थनम् ॥ ३ ॥
कर्णशूले प्रणादे च बाधिर्य्यक्ष्वेडयोरपि ।
चतुर्णामपि रोगाणां सामान्यं भेषजं विदुः ॥ ४ ॥
स्निग्धं वातहरैः स्वेदैर्नरं स्नेहविरेचितम् ।
नाडीस्वेदैरुपचरेत्पिण्डस्वेदैस्तथैव च ॥ ५ ॥
विल्वैरण्डार्कवर्षाभूदधित्थोन्मत्तशिग्रुभिः ।
बस्तगन्धाऽश्वगन्धाभ्यां तर्कारीयववेणुभिः ॥ ६ ॥
आरनालप्लुतैरेभिर्नाडीस्वेदः प्रयोजितः ।
कफवातसमुत्थानं कर्णशूलं निरस्यति ॥ ७ ॥

---

एकविंशतितमोऽध्यायः ।

१ "रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्" इत्युक्त्या कर्णगतरोगचिकित्सितमारभ्यते—**अथेति** । कर्णगतरोगाणां प्रतिषेधश्चिकित्सितम् । २ तत्रादौ कर्णरोगे सामान्यचिकित्सितमभिदधाति—**सामान्यमिति** । हाराणचन्द्रस्तु—रसायनमित्यत्र रसाशनमिति पाठं पठित्वा मांसरसेन भोजनमिति व्याख्याति । ३ अकत्थनम्=अभाषणमित्यर्थः ।

४ वातजानां चतुर्णां कर्णशूल-प्रणाद-बाधिर्य-क्ष्वेडानां सामान्यचिकित्सामाख्याति—**कर्णेति** । ५ सामान्यं भेषजमेव दर्शयति-**स्निग्धमिति** । स्नेहपानाभ्यङ्गाभ्यां स्निग्धमित्यर्थः । स्नेहैरेरण्डतैलादिभिर्विरेचितम् । ६ नाडीस्वेदस्तु—"व्यामार्धमात्रा त्रिर्वक्रा हस्तिहस्तसमाकृतिः । स्वेदनार्थे हिता नाडी कैलिञ्जी। हस्तिशुण्डिका ॥" इति स्वेदावचारणीये उक्तः । पिण्डस्वेदैः=कृसरापायसादिभिः ।

७ नाडीस्वेदोपयोगिद्रव्याणि निर्दिशति—**बिल्वेति** । वर्षाभूः=श्वेतपुनर्नवा, दधित्थः=कपित्थः, दधिवर्णो द्रवस्तिष्ठत्यस्मिन्निति अन्वर्थता । 'सुपि स्थः' इति कः । उन्मत्तः=धत्तूरः । ८ बस्तस्य गन्ध इव गन्धोऽस्या बस्तगन्धा अजगन्धा, अश्वगन्धा='असगन्ध' इत्युद्घुष्यते । तर्कारी=अरणी, यववेणुः=कुधान्यवर्गपठितो वंशफलम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

मीनकुक्कुटलावानां मांसजैः पयसाऽपि वा।
पिण्डैः स्वेदञ्च कुर्वीत कर्णशूलनिवारणम्॥ ८॥
अश्वत्थपत्रखल्लं वा विधाय बहुपत्रकम्।
तदङ्गारैः सुसम्पूर्णं निदध्याच्छ्रवणोपरि॥ ९॥
यत्तैलं च्यवते तस्मात् खल्लादङ्गारतापितात्।
तत्प्राप्तं श्रवणस्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम्॥ १०॥
क्षौमगुग्गुल्वगुरुभिः सघृतैर्धूपयेच्च तम्।
भक्तोपरि हितं सर्पिर्बस्तिकर्म च पूजितम्॥ ११॥
निरन्नो निशि तत्सर्पिः पीत्वोपरि पिबेत् पयः।
मूर्द्धबस्तिषु नस्ये च मस्तिष्के परिषेचने॥ १२॥
शतपाकं बलातैलं प्रशस्तञ्चापि भोजने।
कण्टकारीमजाक्षीरे पक्त्वा क्षीरेण तेन च॥ १३॥
विपचेत् कुक्कुटवसां कर्णयोस्तत् प्रपूरणम्।
तण्डुलीयकमूलानि फलमङ्कोलजन्तथा॥ १४॥
अहिंस्राकेन्दुकामूलं सरलं देवदारु च।
लशुनं शृङ्गवेरञ्च तथा वंशावलेखनम्॥ १५॥
कल्कैरेषां तथाऽम्लैश्च पचेत् स्नेहं चतुर्विधम्।
वेदनायाः प्रशान्त्यर्थं हितं तत् कर्णपूरणम्॥ १६॥

---

१ पिण्डस्वेदोपयोगिद्रव्याणि वक्ति—मीनेति। मांसजैः पिण्डैः, पयसा वा घनीभूतेन क्षीरपिण्डेन स्वेदं कुर्वीतेत्यर्थः।

२ वातजकर्णशूले स्नेहस्वेदमुपदिशति—अश्वत्थेति। अयं भावः—तैलाक्तैर्घृताक्तैर्वाऽश्वत्थपत्रैश्चतुरङ्गुलमधःकलायमात्रच्छिद्रं कोटराकारं पात्रं ज्वलदङ्गारेण प्रपूर्य तत् खल्लच्छिद्रं कर्णविवराभिमुखं कृत्वा अग्निसन्तापाच्च्युतेन तैलेन घृतेन वा श्रवणस्रोतः सद्योवेदनां दूरीकरोतीति। ३ कर्णस्वेदस्य पश्चात्कर्माह—क्षौमेति। क्षौमम्=अतसीवस्त्रम्। ४ शिरोबस्तिकर्मेत्यर्थः। ५ स्नेहपिचुप्लोतादिनाऽवचारिते शिरोबस्तिविशेषे मस्तिष्के इत्यर्थः। ६ बलातैलं मूढगर्भचिकित्सितोक्तम्।

७ कतिपयकर्णपूरणयोगान्निर्दिशति—कण्टेति। कण्टकारीं छगलीक्षीरे क्षीरपाकविधिना पक्त्वेत्यर्थः। ८ केन्दुकः=तिन्दुकः। ९ वंशावलेखनं=वंशत्वक्। १० चतुर्विधः स्नेहः=घृततैलवसामज्जाख्यः। तदुक्तम्—"स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लशुनार्द्रकशिग्रूणां मुरङ्ग्या[1] मूलकस्य च ।
कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः[2] कर्णपूरणे ॥ १७ ॥
शृङ्गवेररसः क्षौद्रं सैन्धवं तैलमेव च ।
कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम् ॥ १८ ॥
वंशावलेखनायुक्ते मूत्रे चाजाविके भिषक् ।
सर्पिः पचेत्तेन कर्णं पूरयेत् कर्णशूलिनः ॥ १९ ॥
महतः[3] पञ्चमूलस्य काण्डमष्टादशाङ्गुलम् ।
क्षौमेणा[4]वेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ २० ॥
यत्तैलं च्यवते तेभ्यो धृते[5]भ्यो भाजनोपरि ।
ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ २१ ॥
कुर्य्यादेवं भद्रकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च[6] सारले ।
मतिमान् दीपिकातैलं कर्णशूलनिबर्हणम् ॥ २२ ॥
अर्काङ्कुरान्म्लपिष्टांस्तैलाक्तान् लवणान्वितान् ।
सन्निदध्यात् स्नुहीकाण्डे[7] कोरिते तच्छदावृते ॥ २३ ॥
पुटपाकक्रमस्विन्नान् पीडयेदारसागमात्[8] ।
सुखोष्णं तद्रसं कर्णे दापयेच्छूलशान्तये ॥ २४ ॥
कपित्थमातुलुङ्गाम्लशृङ्गवेररसैः शुभैः ।
सुखोष्णैः पूरयेत् कर्णं तच्छूलविनिवृत्तये ॥ २५ ॥
कर्णं कोष्णेन चुक्रेण[9] पूरयेत् कर्णशूलिनः ।
समुद्रफेनचूर्णेन युक्त्या चाप्यवचूर्णयेत् ॥ २६ ॥

---

वसा तथा । मज्जा च" इति । १ मुरङ्गी=रक्तशोभाजनः । २ कदुष्णः=ईषदुष्णः । लशुनादीनां षण्णां स्वरसा व्यस्ताः समस्ता वा देयाः ।

३ दीपिकातैलमुपदिशति—महत इति । महत्पञ्चमूलं=बिल्वाग्निमन्थटिण्टुकपाटलाः काश्मर्यश्च । ४ क्षुमाया वस्त्रं क्षौमं तेन त्रिभागभावेष्टय, 'अतसी स्यादुमा क्षुमा' इत्यमरः । ५ अधोमुखं धृतेभ्य इत्यर्थः । ६ चकारेण अगुर्वैरण्डाग्निमन्थकाष्ठानां समुच्चयः । ७ स्नुहीकाण्डे=सेहुण्डखण्डे, कोरिते=कृतकोटरे, तच्छदावृते=सेहुण्डपत्राच्छादिते । ८ आरसागमात्=रसनिस्सरणपर्यन्तम् । ९ चुक्रेण=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टानामिह मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन[1] तु ।
कोष्णेन पूरयेत् कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥ २७ ॥
मूत्रेष्वम्लेषु[2] वातघ्ने गणे च कथिते भिषक् ।
पचेच्चतुर्विधं स्नेहं पूरणं तच्च कर्णयोः ॥ २८ ॥
एता[3] एव क्रियाः कुर्य्यात् पित्तघ्नैः पित्तसंयुते ।
काकोल्यादौ[4] दशक्षीरं तिक्तं चात्र हितं हविः ॥ २९ ॥
क्षीरवृक्षप्रवालेषु[5] मधुके चन्दने तथा ।
कल्ककाथे परं पक्वं शर्करामधुकैः सरैः[6] ॥ ३० ॥
इङ्गुदी[7]सर्षपस्नेहौ सकफे पूरणे हितौ ।
तिक्तौषधानां यूषाश्च स्वेदाश्च[8] कफनाशनाः ॥ ३१ ॥
सुरसादौ[9] कृतं तैलं पञ्चमूले महत्यपि ।
मातुलुङ्गरसः शुक्तं लशुनार्द्रकयो रसः ॥ ३२ ॥
एकैकः पूरणे पथ्यस्तैलं तेष्वपि वा कृतम् ।
तीक्ष्णा[10] मूर्धविरेकाश्च कवलाश्चात्र पूजिताः ॥ ३३ ॥
कर्णशूलविधिः कृत्स्नः पित्तघ्नः शोणितावृते ।
शूलप्रणादबाधिर्य्यक्ष्वेडानान्तु प्रकीर्त्तितम् ॥ ३४ ॥

---

'चूक' इति ख्यातेन । १ अन्यतमेन = एकतमेन । २ अम्लेषु = अम्लवर्गोक्तेषु द्रव्येषु, वातघ्ने गणे = वातसंशमने भद्रदार्वादिगणे ।

३ पित्तजकर्णशूले सामान्यचिकित्सामाचष्टे—**एता इति** । एताः = पूर्वोक्ता दीपिकादयः, पित्तघ्नैः = पित्तहरद्रव्यैः, पित्तसंयुते = पित्तजकर्णशूले इत्यर्थः । ४ पित्तजकर्णशूले विशेषचिकित्सितमभिधत्ते—**काकोल्यादाविति** । काकोल्यादौ = काकोल्यादिकल्के, दशगुणं क्षीरमत्रेति दशक्षीरं हविर्घृतं सिद्धं तिक्तं तिक्तद्रव्यसिद्धं घृतं हितमित्यर्थः । ५ क्षीरवृक्षाणां न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षपारिषाणां, प्रवालेषु अभिनवपल्लवेषु । ६ सरैः = विरेचनद्रव्यैः ।

७ श्लेष्मजकर्णशूले चिकित्सां दर्शयति—**इङ्गुदीति** । इङ्गुदी = 'गोंदी' इति ख्याता । ८ स्वेदाः = तापोष्मस्वेदाः स्वेदावचारणीयोक्ताः । ९ सुरसादौ = "सुरसाश्वेतसुरसा" इत्यादिना द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तगणे । १० अपामार्गबीजादिभिस्तीक्ष्णमूर्धविरेकाः, पिप्पल्यादिभिस्तीक्ष्णकवला इत्यर्थः ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्यतो, विशेषेण[1] बाधिर्य्ये पूरणं शृणु ।
गवां मूत्रेण बिल्वानि[2] पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ॥ ३५ ॥
सजलञ्च सदुग्धञ्च बाधिर्य्ये कर्णपूरणम् ।
सितामधुकबिम्बीभिः सिद्धं वाऽऽजे पयस्यपि ॥ ३६ ॥
बिम्बीक्वाथे विमथ्योष्णं शीतीभूतं तदुद्धृतम् ।
पुनः पचेद्दशक्षीरं सितामधुकचन्दनैः ॥ ३७ ॥
बिल्वाम्बुगाढं तत्तैलं बाधिर्य्ये कर्णपूरणम् ।
वक्ष्यते यः प्रतिश्याये विधिः[4] सोऽप्यत्र पूजितः ॥ ३८ ॥
वातव्याधिषु यश्चोक्तो विधिः स च हितो भवेत् ।
कर्णस्रावे पूतिकर्णे तथैव कृमिकर्णके ॥ ३९ ॥
समानं कर्म कुर्वीत योगान् वैशेषिकानपि ।
शिरोविरेचनञ्चैव[5] धूपनं पूरणं तथा ॥ ४० ॥
प्रमार्जनं[6] धावनञ्च वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ।
राजवृक्षादितोयेन[7] सुरसादिगणेन वा ॥ ४१ ॥
कर्णप्रक्षालनं[8] कार्य्यं चूर्णैरेषाञ्च पूरणम् ।

---

१ बाधिर्ये कतिपययोगानाह—**विशेषेणेति** । २ बिल्वानि = बिल्वफलानि, पिष्ट्वा = कल्कीकृत्य, जलचतुर्गुणे अजाक्षीरचतुर्गुणे बिल्वफलकल्केन तैलं विपाचयेदित्यर्थः ।

३ कल्कीकृतैः सितामधुकादिभिश्चतुर्गुणे आजे पयसि सिद्धबिल्वमूलक्वाथे उष्णमेव तैलं मथित्वा शीतीभूतमुद्धृतमवतारितं पुनरपि बिल्वाम्बुनो गाढमतिशयो यत्र तैले तद् बिल्वाम्बुगाढं दशक्षीरं दशगुणक्षीरे सितामधुकचन्दनैः कल्कीभूतैस्तत् पचेत्, तत्तैलं बाधिर्ये कर्णपूरणम् ।

४ विधिः ⇒ "नवं प्रतिश्यायमपास्य सर्वमुपाचरेत्सर्पिष एव पानैः" इत्यादिनाऽभिहितविधानम् । ५ कर्णस्राव-पूतिकर्ण-क्रिमिकर्णकेषु समानं कर्म एव निर्दिशति—**शिर इति** ।

६ प्रमार्जनं = पिचुकूर्चिकया कर्णस्य प्रोञ्छनम्, धावनं = प्रक्षालनम् । ७ राजवृक्षादिरारग्वधादिः सुरसादिश्च द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये द्रष्टव्यः । ८ समानं कर्माभिधाय कर्णस्रावे कतिपयकर्णपूरणयोगानाह—**कर्णेति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्वाथं पञ्चकषायं[1] तु कपित्थरसयोजितम् ॥ ४२ ॥
कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह ।
सर्जत्वक्[2]चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः ॥ ४३ ॥
योजितो मधुना वाऽपि कर्णस्रावे प्रशस्यते ।
लाक्षारसाञ्जनं सर्जश्चूर्णितं कर्णपूरणम् ॥ ४४ ॥
शशैवलं[3] महावृक्षजम्ब्वाम्रप्रसवायुतम् ।
कुलीर[4]क्षौद्रमण्डूकीसिद्धं तैलञ्च पूजितम् ॥ ४५ ॥
तिन्दुकान्यभयारोध्रं समङ्गाऽऽमलकं मधु ।
पूरणञ्चात्र पथ्यं स्यात्कपित्थरसयोजितम् ॥ ४६ ॥
रसमाम्रकपित्थानां मधूकधवशालजम् ।
पूरणार्थं प्रशंसन्ति तैलं वा तैर्विपाचितम् ॥ ४७ ॥
प्रियङ्गुमधुकाम्बष्ठा[5]धातकीशिलपर्णिभिः ।
मञ्जिष्ठालोध्रलाक्षाभिः कपित्थस्य रसेन वा ॥ ४८ ॥
पचेत्तैलं तदास्रावमवगृह्णाति[6] पूरणात् ।
घृष्टं[7] रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण मधुसंयुतम् ॥ ४९ ॥
तत्प्रशस्तं चिरोत्थेऽपि सास्रावे पूतिकर्णके ।
निर्गुण्डीस्वरसस्तैलं सिन्धु[8]र्धूमरजो गुडः ॥ ५० ॥
पूरणः पूतिकर्णस्य शमनो मधुसंयुतः ।
कृमिकर्णकनाशार्थं कृमिघ्नं योजयेद्विधिम् ॥ ५१ ॥

---

१ "तिन्दुकान्यभया रोध्रं समङ्गाऽऽमलकम्" इत्यनन्तरोक्तं पञ्चकषायम् । २ सर्जत्वक् = पीतशालत्वक् । ३ सशैवलं = दूर्वायुक्तम्, महावृक्षः = स्नुही, प्रसवः = नवपल्लवः । ४ कुलीरः = 'काकड़ासिंगी' इति ख्यातः, क्षौद्रः = माक्षिकम्, मण्डूकं = ब्राह्मीभेदः, ब्राह्मीतः सूक्ष्मपत्रा 'बरमी' इत्युदघुष्यते । कुलीरादिकं कल्कद्रव्यम् ।

५ अम्बष्ठा = पाठा, धातकी = 'धाय' इति ख्याता, शिला = मनःशिला, पर्णी = शालपर्णी । हाराणचन्द्रस्तु-शिलपर्णिभिरित्यत्र शीतपर्णिभिरिति पाठं मत्वा अर्कपुष्पीति व्याख्याति । ६ अत्र प्रियङ्ग्वादीनां कल्कैः कपित्थपल्लवरसेन चतुर्गुणेन सिद्धं तिलतैलं तदास्रावं कर्णास्रावम् अवगृह्णाति अपहरतीत्यर्थः ।

७ पूतिकर्णस्य योगद्वयेन विशेषचिकित्सां वक्ति—घृष्टमिति । ८ सिन्धुः = सैन्धवम्, धूमरजः = गृहधूमरजः । ९ कृमिघ्नीविधिं क्रिमिप्रतिषेधे वक्ष्यति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्त्ताकुधूमश्च[1] हितः सार्षपस्नेह एव च ।
कृमिघ्नं[2] हरितालेन गवां मूत्रयुतेन च ॥ ५२ ॥
गुग्गुलोः कर्णदौर्गन्ध्ये धूपनं श्रेष्ठमुच्यते ।
छर्दनं धूमपानञ्च कवलस्य च धारणम् ॥ ५३ ॥
कर्णक्ष्वेडे हितं तैलं सार्षपञ्चैव पूरणम् ।
विद्रधौ चापि कुर्वीत विद्रध्युक्तं चिकित्सितम् ॥ ५४ ॥
प्रक्लेद्य धीमांस्तैलेन स्वेदेन प्रविलाय्य च ।
शोधयेत्कर्णविट्कन्तु[3] भिषक् सम्यक् शलाकया ॥ ५५ ॥
नाडीस्वेदोऽथ वमनं[4] धूमो मूर्द्धविरेचनम् ।
विधिश्च कफहृत्सर्वः कर्णकण्डूमपोहति ॥ ५६ ॥
अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् ।
ततो विरिक्तशिरसः क्रियां[5] प्राप्तां समाचरेत् ॥ ५७ ॥
कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्य्यात्पित्तविसर्पवत्[6] ।
कर्णच्छिद्रे[7] वर्त्तमानं कीटं क्लेदमलादि वा ॥ ५८ ॥
शृङ्गेणापहरेद्धीमानथवाऽपि शलाकया[8] ।
शेषाणान्तु[9] विकाराणां प्राक् चिकित्सितमीरितम् ॥ ५९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे कर्णगतरोगप्रतिषेधो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

---

१ वार्ताकुधूमः = परिपक्वशुष्कवार्ताकुधूमः, पाने कर्णधूपने च हित इत्यर्थः । २ क्रिमिकृतदौर्गन्ध्यचिकित्सामाख्याति—कृमिघ्नमिति । कृमिघ्नं = विडङ्गचूर्णम् । ३ कर्णविट्कं = कर्णगूथम् । ४ वैरेचनिकधूम इत्यर्थः । ५ क्रियां = नस्यादिकर्म, प्राप्तां = युक्तां शिरःशूलादिहरामित्यर्थः । ६ पित्तविसर्पवच्छोतालेपनपरिषेकादिकं भैषज्यं कुर्यादित्यर्थः ।

७ कर्णगतकीटादिचिकित्सामाह—कर्णेति । कर्णप्रविष्टकीटादिलक्षणमाह माधवकरः—"पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि । अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥ कर्णो निस्तुद्यते तस्य तथा फरफरायते । कीटे चरति रुक् तीव्रा निष्यन्दे मन्दवेदना ॥" इति । ८ शृङ्गेण आचूष्य अपहरेदित्यर्थः । ९ शेषाणां = चतुर्विधा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# द्वाविंशतितमोऽध्यायः।

अथातो नासागतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अपीनसः पूतिनस्यं नासापाकस्तथैव च।
तथा शोणितपित्तञ्च पूयशोणितमेव च ॥ ३ ॥
क्षवथुर्भ्रंशथुर्दीप्तो नासानाहः परिस्रवः।
नासाशोषेण सहिता दशैकाश्चेरिता गदाः ॥ ४ ॥
चत्वार्यर्शांसि चत्वारः शोफाः सप्तार्बुदानि च।
प्रतिश्यायाश्च ये पञ्च वक्ष्यन्ते सचिकित्सिताः।
एकत्रिंशन्मितास्ते तु नासारोगाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ५ ॥
आनह्यते यस्य विधूप्यते च प्रक्लिद्यते शुष्यति चापि नासा।
न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्तमपीनसेन ॥ ६ ॥

---

नामर्शसां, सप्तविधानामर्बुदानां, चतुर्विधानां शोफानां च; विकाराणां = कर्णरोगाणाम्, प्राक् = अर्श आदिचिकित्सिते, ईरितं = कथितमित्यर्थः।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकविंशोऽध्यायः।

---

## द्वाविंशतितमोऽध्यायः।

१ गतशब्द आश्रितपर्यायः, तेन नासाऽऽश्रितरोगविज्ञानमधिकृत्य कृतोऽध्यायो नासागतरोगविज्ञानीयस्तम्। २ तत्रादौ नासिकागतरोगाणां नामानि निर्दिशति—**अपीनस इति**। अपीनसपीनसौ द्वावपि शब्दौ। पूतिनस्यं पूतिनासेति नामभेदः। ३ दोषागन्तुजभेदेन पूयशोणितं द्विविधम्। ४ क्षवथुरपि द्विविधः—दोषजः, आगन्तुजश्च। ५ दश एकश्च परिमाणमेषां गदानामिति; दशैकाः। ६ अपीनसाद्येकादशरोगाः, चत्वार्यर्शांसि, चत्वारः शोफाः, सप्तार्बुदानि, पञ्च, प्रतिश्यायाः, सर्वे मिलित्वा एकत्रिंशन्मिता नासारोगा इत्यर्थः।

७ अपीनसलक्षणं ब्रवीति—**आनह्यत इति**। आनह्यते = वातशोषितकफेन आवध्यते, अवरुध्यत इति यावत्। विधूप्यते = पित्ताद् धूमायत इव, प्रक्लिद्यते = कफाद् आर्द्रीभवति। ८ गन्धरसान् = गन्धान् रसांश्चेत्यर्थः। नासिकाया आबद्धत्वेन सुर-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तञ्चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात् प्रतिश्यायसमानलिङ्गम् ।
दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले संवासितो यस्य समीरणस्तु ॥ ७ ॥
निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम् ।
घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्याद्यस्मिन् विकारे बलवांश्च पाकः ॥ ८ ॥
तं नासिकापाकमिति व्यवस्येद् विक्लेदकोथावपि यत्र दृष्टौ ।
चतुर्विधं द्विप्रभवं द्विमार्गं वक्ष्यामि भूयः खलु रक्तपित्तम् ॥ ९ ॥
दोषैर्विदग्धैरथवाऽपि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तु ।
नासा स्रवेत् पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ १० ॥
घ्राणाश्रिते मर्मणि सम्प्रदुष्टे यस्यानिलो नासिकया निरेति ॥११॥

---

भ्यसुरभीन् गन्धान्, नासाऽऽरम्भकदोषेण रसनाया अपि दुष्टेर्मधुरादीन् रसान्न वेत्तीति तात्पर्यम् । व्यवस्येत=जानीयादित्यर्थः । १ अनिलश्लेष्मभवं = वातकफजम् । तन्त्रान्तरेऽस्य लक्षणम्—"मस्तुलुङ्गोचितः श्लेष्मा यदा पित्ताद् विदह्यते । तदाऽसृक् पिच्छिलं नासा बहुसिंहाणकं स्रवेत् । सकण्डूदाहपाकं च तं तु विद्यादपीनसम् ॥" इति । प्रतिश्यायसमानलिङ्गं=कफवातजप्रतिश्यायतुल्यलक्षणम् ।

२ पूतिनस्यलक्षणमभिदधाति—**दोषैरिति** । विदग्धैः पित्तश्लेष्मणोः सरक्तयोरूष्मणा विरुद्धलवणाम्लरसपाकेन पूतिभावमापन्नैर्दोषैः कफपित्तशोणितैर्गलतालुमूले संवासितः आत्मविकृतिगन्धेन मिश्रीकृतः पूतिः दुर्गन्धीभूतः समीरणो यस्य मुखनासिकाभ्यां निरेति निर्गच्छति तं पूतिनासं रोगं प्रवदन्ति । अत्र विदेहः—"कफपित्तमसृङ्मिश्रं सञ्चितं मूर्ध्नि देहिनाम् । विदग्धमूष्मणा गाढं रुजां कृत्वाऽक्षिशङ्खजाम् ॥ ततः प्रस्यन्दते घ्राणात् सरक्तं पूतिपीतकम् । पूतिनस्यं तु तं विद्याद् घ्राणकण्डूज्वरप्रदम् ॥" इति ।

३ नासापाकलक्षणं वक्ति—**घ्राणेति** । यस्मिन् विकारे घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि व्रणान् कुर्यात्, बलवान् पाकश्च भवेत्, त नासिकापाकं व्यवस्येत् जानीयात्, यत्र विकारे विक्लेदकोथौ विक्लेदः आर्द्रता, कोथः पूतिभावः, दृष्टौ भवेतामित्यर्थः ।

४ चतुर्विधं वातपित्तकफसन्निपातात्मकम्, द्वौ प्रभवौ यकृत्प्लीहानौ यस्य तं द्विप्रभवम्, द्विमार्गम्=अधरोत्तरमार्गद्वितयम् । ५ दोषागन्तुजपूयरक्तलक्षणं दर्शयति—**दोषैरिति** । विदग्धैः=पित्तरक्ताधिक्यत्वाद् विरुद्धां परिणतिं प्राप्तैः, ललाटाभिघातेन वा पाकं प्राप्तैः, तैः=प्रहारपीडनादिभिरित्यर्थः ।

६ दोषजक्षवथुलक्षणमुपदिशति—**घ्राणेति** । घ्राणश्रिते मर्मणि शृङ्गाटके, तदुक्तं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कफानुयातो बहुशः सशब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः।
[1]तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान् कटूनकनिरीक्षणाद् वा ॥ १२ ॥
सूत्रादिभिर्वा [2]रुणास्थिमर्मण्युद्घाटितेऽन्यः क्षवथुर्नरेति।
[3]प्रभ्रश्यते नासिकयैव यश्च सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु ॥ १३ ॥
प्राक् सञ्चितो मूर्ध्नि च पित्ततप्तस्तं भ्रंशथुं व्याधिमुदाहरन्ति।
[4]घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिःसरेद् धूम इवेह वायुः ॥ १४ ॥
नासा प्रदीप्तेव[5] च यस्य जन्तोर्व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति।
[6]कफावृतो वायुरुदानसंज्ञो यदा स्वमार्गे विगुणः स्थितः स्यात् ॥१५॥
घ्राणं वृणोतीव[7] तदा स रोगो नासाप्रतीनाह इति प्रदिष्टः।
[8]अजस्रमच्छं सलिलप्रकाशं यस्याविवर्णं स्रवतीह नासा ॥ १६ ॥
रात्रौ विशेषेण हि तं विकारं नासापरिस्रावमिति व्यवस्येत्।
घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गाढं परिशोषिते च ॥ १७ ॥

---

प्रत्येकमर्मनिर्देशशारीरे—'घ्राणश्रोत्राक्षिजिह्वासन्तर्पणीनां सिराणां मध्ये सिरासन्निपातः शृङ्गाटकानि" इति। १ आगन्तुजक्षवथुलक्षणमाह—तीक्ष्णेति। तीक्ष्णोपयोगात्=राजिकादितीक्ष्णद्रव्यभक्षणात्, अतिजिघ्रतः=भृशमाघ्रायतः, कटून् भावान्=कटूनि द्रव्याणि, अर्ककनिरीक्षणात=सूर्यदर्शनात्, नासारन्ध्रेण अर्ककिरणस्य यथाकथञ्चित् संस्पर्शेण कफविलयनादिति तात्पर्यम्। २ तरुणास्थिन मर्मणि शृङ्गाटके, उद्घाटिते=ऊर्ध्वं चालिते, अन्यः=आगन्तुजः।

३ भ्रंशथुलक्षणमाचष्टे—प्रभ्रश्यत इति। यश्च सान्द्रादिलक्षणः कफो नासिकयैव प्रभ्रश्यते अत्यर्थमधः पतति। ४ दीप्तलक्षणमुद्दिशति—घ्राण इति। इह दाहसमन्विते घ्राणे धूम इव वायुर्निश्वासो भृशं विनिःसरेत् निर्याति। विदेहे अस्य लक्षणम्—"धूमायते यदा नासा चलत्कृष्यति दीप्यते। निश्चरेत्तम उच्छ्वासस्तं व्याधिं दीप्तमादिशेत्॥" इति। ५ प्रदीप्तेव=प्रज्वलितेव। ६ नासाप्रतीनाहलक्षणमाख्याति—कफेति। ७ वृणोतीव=आच्छादयतीव।

८ नासास्रावलक्षणमभिदधाति—अजस्रमिति। अत्र रोगे स्रावः शृङ्गाटकाख्यस्रोतसि प्रविलायितात कफाद् बोध्यः। तथा च विदेहः—"स्रोतः शृङ्गाटके श्लेष्मा चितः क्लेदित ऊष्मणा। विशेषात् स्यन्दते रात्रौ नासास्रावं तु तं विदुः॥" इति। ९ नासाशोषलक्षणमभिधत्ते—घ्राणेनेति। विदेहेऽपि—"पित्तवातौ यदा घ्राणे कफरक्ते विशोषयेत्। तदा स्यादुच्छ्वसेन्नासा तस्य शुष्कं विधीयते। भृशशुष्कावचूर्णेन नासाशोषं तु तं विदुः॥" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुच्छ्वसित्यूर्द्ध्वमधश्च कृच्छ्राद् यस्तस्य नासापरिशोष उक्तः ।
[1]दोषैस्त्रिभिस्तैः पृथगेकशश्च ब्रूयात्तथाऽर्शांसि तथैव शोफान् ॥१८॥
शालाक्यसिद्धान्तमवेक्ष्य वाऽपि सर्वात्मकं सन्नममर्बुदं तु ।
रोगः प्रतिश्याय इहोपदिष्टः स वक्ष्यते पञ्चविधः पुरस्तात् ॥ १९ ॥

नासास्रोतोगता रोगास्त्रिंशदेकश्च कीर्तिताः ।
स्रोतःपथे यद्विपुलं कोशवच्चार्बुदं भवेत् ॥ २० ॥
शोफास्तु शोफविज्ञाना नासास्रोतोव्यवस्थिताः ।
निदानेऽर्शांसि निर्दिष्टान्येवं तानि विभावयेत् ॥ २१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे नासागतरोगविज्ञानीयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

---

## त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

[4]अथातो नासागतरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
[5]पूर्वोद्दिष्टे पूतिनस्ये च जन्तोः स्नेहस्वेदौ छर्दनं स्रंसनञ्च ।

---

१ उक्तानामर्शआदीनां सामान्येन लक्षणमतिदिशति—दोषरिति । त्रिभिर्दोषैः पृथक् त्रीण्यर्शांसि, सन्निपातेन एकम्, एवं चत्वार्यर्शांसि, तथैव शोफान् चतुरो ब्रूयात् । २ नासागतशोफान् नासाऽर्बुदलक्षणेन पृथक् प्रदर्शनार्थं वक्ति—स्रोत इति । कोशवत्=अन्तःपूरणवस्तुवत्, तादृशमन्तःपूरणकरं वस्तु शोथस्य नास्तीति डल्हणः । ३ शोफानामिव विज्ञानं येषां ते शोफविज्ञानाः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वाविंशोऽध्यायः ।

---

### त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

४ "रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्" इत्युक्तेः पूर्वाध्याये लक्षणादिकमभिधाय अधुना तच्चिकित्सां निरूपयितुं नासागतरोगप्रतिषेधमधिकरोति—अथेति । ५ तत्रादौ अपीनसपूतिनस्ययोश्चिकित्सितमाख्याति—पूर्वोद्दिष्टे इति । पूर्वोद्दिष्टे=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तं भक्तं तीक्ष्णमल्पं लघु स्याद्दुष्णं तोयं धूमपानञ्च काले[1] ॥३॥
हिङ्गुव्योषं[2] वत्सकाख्यं शिवाटी लाक्षा बीजं सौरभं कट्फलञ्च।
उग्रा[3] कुष्ठं तीक्ष्णगन्धाविडङ्गं श्रेष्ठं नित्यं चावपीडे करञ्जम् ॥४॥
एतैर्द्रव्यैः सार्षपं मूत्रयुक्तं तैलं धीमान्नस्यहेतोः[4] पचेत।
नासापाके[5] पित्तहृत्संविधानं कार्य्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरञ्च ॥ ५ ॥
हृत्वा[6] रक्तं क्षीरवृक्षत्वचश्च साज्याः सेका योजनीयाश्च लेपाः।
वक्ष्याम्यूर्द्ध्वं[7] रक्तपित्तोपशान्तिं, नाडीवत्स्यात्पूयरक्ते चिकित्सा।
वान्ते[8] सम्यक् चावपीडं वदन्ति तीक्ष्णं धूमं शोधनं चात्र नस्यम्।
क्षेप्यं[9] नस्यं मूर्द्धविरेचनीयैर्नाड्या चूर्णं क्षवथौ भ्रंशथौ च ॥ ७ ॥
कुर्य्यात्स्वेदान्मूर्ध्नि वातामयघ्नान्स्निग्धान्धूमान्यद्यदन्यद्धितं[10] च।
दीप्ते[11] रोगे पैत्तिकं संविधानं कुर्यात् सर्वं स्वादु यच्छीतलञ्च ॥८॥
नासानाहे[12] स्नेहपानं प्रधानं स्निग्धा धूमा मूर्द्धबस्तिश्च नित्यम्।

---

अपीनसे, छर्दनं = वमनम्, स्रंसनं=विरेचनम्। १ काले=धूमपानकाले, धूमपानं कारयेदित्यर्थः। तच्च स्नैहिकं वैरेचनिकं वा दोषबलं विचार्य प्रयोज्यम्। २ तयोरवपीडद्रव्याणि दर्शयति—**हिङ्गिवति**। वत्सकाख्यं = कुटजः, शिवाटी=श्वेतपुनर्नवा, बीजं = बीजकः। ३ उग्रा=वचा, तीक्ष्णगन्धा=शोभाञ्जनः। ४ अपीनसपूतिनस्ययोर्नस्यहेतोरित्यर्थः।

५ नासापाकचिकित्सामभिदधाति—**नासेति**। बाह्यं = लेपाभ्यङ्गपरिषेकादि, आभ्यन्तरम् = आहारस्नेहपानविरेकादि। ६ हृत्वा रक्तं 'जलौकोभिः' इति शेषः। क्षीरवृक्षत्वचः=न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थादिपञ्चक्षीरवृक्षवल्कलानि, साज्याः = सघृताः। ७ ऊर्ध्वं=रक्तपित्तप्रतिषेधे, रक्तपित्तोपशान्तिं="नासाप्रवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं नासिकया पयो वा" इत्यादिरक्तपित्तचिकित्सामित्यर्थः। पूयरक्ते नाडीव्रणतुल्या चिकित्सा स्यात्। सा विसर्पनाडीस्तनरोगचिकित्सिते द्रष्टव्या।

८ पूयरक्ते सामान्यं चिकित्सितमभिधाय विशेषचिकित्सितमभिधत्ते—**वान्त इति**। अवपीड्य दीयत इत्यवपीडस्तम्। ९ क्षवथुभ्रंशथ्वोश्चिकित्सामाह—**क्षेप्यमिति**। प्रधमनं नस्यमित्यर्थः। मूर्धविरेचनीयैः=शिरोविरेचनद्रव्यैः। १० अन्यत्=शिरोबस्तिमस्तिष्कादिकम्। ११ दीप्तरोगचिकित्सामुद्दिशति—**दीप्त इति**। पैत्तिकं संविधानं = पैत्तिकं कर्म, सर्वं = बाह्याभ्यन्तरम्।

१२ नासानाहचिकित्सामभिदधाति—**नासेति**। मूर्धबस्तिश्चेति चकाराच्छालव-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलातैलं[1] सर्वथैवोपयोज्यं वातव्याधावन्यदुक्तञ्च यद्यत् ॥ ९ ॥
नासास्रावे[2] घ्राणतश्चूर्णमुक्तं नाड्या देयं योऽवपीडश्च तीक्ष्णः ।
तीक्ष्णं धूमं देवदार्वग्निकाभ्यां[3] मांसं वाऽऽजं युक्तमत्रादिशन्ति ॥१०॥
नासाशोषे[4] क्षीरसर्पिः प्रधानं सिद्धं तैलं चाणुकल्पेन नस्यम् ।
सर्पिःपानं भोजनं जाङ्गलैश्च[5] स्नेहः स्वेदः स्नैहिकश्चापि धूमः ॥११॥
शेषान्रोगान्घ्राणजान्सन्नियच्छेदुक्तं तेषां यद्यथा सँविधानम् ॥१२॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे नासागतरोगप्रतिषेधो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

---

## चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः प्रतिश्यायप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

---

णोपनाहादीनां समुच्चयः । १ बलातैलं = मूढगर्भचिकित्सितोक्तम् , सर्वथैव = पानाभ्यङ्गानुवासनशिरोबस्तिमस्तिष्कादिभिः सर्वैरेव प्रकारैः, अन्यत्=अणुतैलादिकम् । २ नासास्रावचिकित्सां ब्रवीति—**नासास्राव इति** । शिरोविरेचनद्रव्यनिष्पादितं चूर्णमित्यर्थः । तीक्ष्णोऽवपीडः = "हिङ्गु व्योष वत्सकाख्यं शिवाटी" इत्यादिना प्रागिहैवाध्यायेऽभिहितः । ३ अग्निकः = चित्रकः, आजं मांसं भोजने बोध्यम् ।

४ नासाशोषचिकित्सां कथयति—**नासाशोष इति** । क्षीरमथनोत्थं सर्पिः क्षीरसर्पिः, अणुकल्पेन सिद्धं वातव्याध्युक्तमणुतैलम् । ५ जाङ्गलैरेणादिमांसैः स्नेहः स्वेदश्चेत्यर्थः । स्नैहिको धूमो मधूच्छिष्टादिभिर्बोध्यः । ६ अर्श आदीनां नासारोगाणां चिकित्सां दर्शयति—**शेषानिति** । शेषान् रोगान् = अर्शःशोफादीन्, सन्नियच्छेत् = प्रतिकुर्यात्, संविधानं=चिकित्सितमित्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रयोविंशोऽध्यायः ।**

---

## चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

७ प्रतिक्षणं श्यायते इति प्रतिश्यायः, श्यैङ् गतौ, 'श्याद्व्यधास्रुसंस्रतीणवसावहलिहश्लिषश्वसश्च' इति णः । अथवा वातं प्रति अभिमुखं श्यायो गमनं कफादीनां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारीप्रसङ्गः शिरसोऽभितापो धूमो रजः शीतमतिप्रतापः ।
सन्धारणं मूत्रपुरीषयोश्च सद्यः प्रतिश्यायनिदानमुक्तम् ॥ ३ ॥
चयङ्गता मूर्द्धनि मारुतादयः पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् ।
प्रकोप्यमाणा विविधैः प्रकोपणैर्नृणां प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि ॥४॥
शिरोगुरुत्वं क्षवथोः प्रवर्त्तनं तथाऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता ।
उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः ॥५॥
आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रवर्त्तिनी ।
गलतालोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोस्तथा ॥ ६ ॥
स्वरोपघातश्च भवेत् प्रतिश्यायेऽनिलात्मके ।
उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात् स्रवति पैत्तिके ॥ ७ ॥
कृशोऽतिपाण्डुः सन्तप्तो भवेत् तृष्णानिपीडितः ।
सधूमं सहसा वह्निं वमतीव च मानवः ॥ ८ ॥

---

यत्र स प्रतिश्यायः । तथा च चरकः—"घ्राणमूले स्थितः श्लेष्मा रुधिरं पित्तमेव च । मारुताध्मातशिरसः श्यायते मारुतं प्रति । प्रतिश्यायस्ततो घोरो जायते देहकर्षणः ॥" इति ।

१ प्रतिश्यायस्य निदानं द्विविधं—सद्योजनकम्, अपरं चयादिक्रमेण कालान्तरजनकम्, तत्र प्राक् सद्योजननिदानमाह—**नारीति** । नारीष्वतिशयेन प्रवृत्तिर्नारीप्रसङ्गः, शिरोऽभितप्यते येन स शिरोऽभितापो धूमादिः, रजो धूलिः, नासाप्रविष्टं हेतुः । २ चयादिक्रमनिदानमुपदिशति—**चयङ्गता इति** । चयं गताः=स्वे स्वे स्थाने सञ्चयं प्राप्ताः, चयादिक्रमो यथा—निदानात् सञ्चयः, सञ्चयात् प्रकोपः, प्रकोपात् प्रसरः, प्रसरात् स्थानसंश्रयः, सश्रयाद् व्यक्तिः, ततो भेद इति । ३ विविधैः प्रकोपणैः=बलवद्विग्रहदिवास्वप्नादिभिरित्यर्थः ।

४ प्रतिश्यायस्य पूर्वरूपं निर्दिशति—**शिरोगुरुत्वमिति** । क्षवथोः=छिक्कायाः, अङ्गमर्दो वेदनाविशेषः, परिहृष्टरोमता=ऊर्द्धषितरोमाञ्चः । ५ अपरे पृथग्विधा उपद्रवाः घ्राणधूमायनमन्थादयो विदेहोक्ताः । तथा च तद्वाक्यम्—"पूर्वरूपाणि दृश्यन्ते प्रतिश्याये भविष्यति । घ्राणधूमायनं मन्थः क्षवथुस्तालुदारणम् । कण्ठध्वंसो मुखस्रावः शिरसः पूरणं तथा ॥" इति । प्रतिश्यायपुरस्सराः=प्रतिश्यायपूर्वरूपाणि ।

६ वातजप्रतिश्यायस्य लक्षणमभिधत्ते—**आनद्धेति** । आनद्धा=अवबद्धा, पिहिता=सपिधानेव । ७ निस्तोदः=सूचीव्यधनवद्व्यथा, शङ्खयोः=भ्रूपुच्छान्तयोरित्यर्थः । ८ पित्तप्रतिश्यायलक्षणमाख्याति—**उष्ण इति** । सपीतकः=ईषत्पीतः । ९ अतिपाण्डुः=धूसरः । १० मानवः सधूमं वह्निमिव सहसाऽकस्माद् वम-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कफः[1] कफकृते घ्राणाच्छुक्लः शीतः स्रवेन्मुहुः ।
शुक्लावभासः[2] शूनाक्षो भवेद् गुरुशिरोमुखः ॥ ९ ॥
शिरोगलौष्ठतालूनां कण्डूयनमतीव च ।
भूत्वा[3] भूत्वा प्रतिश्यायो योऽकस्माद्विनिवर्त्तते ॥ १० ॥
सम्पक्वो वाऽप्यपक्वो वा स सर्वप्रभवः स्मृतः ।
लिङ्गानि चैव सर्वेषां पीनसानां च सर्वजे[4] ॥ ११ ॥
रक्तजे[5] तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्त्तते ।
ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरुरोघातप्रपीडितः[6] ॥ १२ ॥
दुर्गन्धोच्छ्वासवदनस्तथा गन्धान्न वेत्ति च ।
मूर्च्छन्ति[7] चात्र कृमयः श्वेताः स्निग्धास्तथाऽणवः ॥ १३ ॥
कृमिमूर्द्धविकारेण[8] समानं चास्य लक्षणम् ।
प्रक्लिद्यति[9] पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति ॥ १४ ॥
मुहुरानह्यते[10] चापि मुहुर्विव्रियते तथा ।
निःश्वासोच्छ्वासदौर्गन्ध्यं तथा गन्धान्न वेत्ति च ॥ १५ ॥

---

तीति सम्बन्धः । १ श्लेष्मजप्रतिश्यायलक्षणं वक्ति—कफ इति । कफकृते प्रतिश्याये घ्राणाच्छुक्लः शीतः कफो मुहुर्वारं वारं स्रवेदित्यर्थः । २ शुक्लावभासः=श्वेतवपुः, शूनाक्षः=उच्छूननयनः ।

३ सान्निपातिकप्रतिश्यायस्य लक्षणं ब्रवीति—भूत्वेति । अकस्मात्=कारणं विनैवेत्यर्थः । ४ सर्वजे प्रतिश्याये सर्वेषां वातजादीनां प्रतिश्यायानां पीनसानां लिङ्गानि भवन्तीति योजना । अत्र यद्यपि दोषत्रयलिङ्गानि नोक्तानि, तथाऽपि सर्वप्रभवत्वाज्ज्ञेयानि । असाध्योऽयं सान्निपातिकप्रतिश्यायः । तदुक्तं विदेहे—"नृणां दुष्टप्रतिश्यायस्त्वसाध्यः सर्वजः स्मृतः" इति ।

५ रक्तजप्रतिश्यायलक्षणमभिदधाति—रक्तज इति । ६ उरोघातस्तन्त्रान्तरपठितः, तेन प्रकर्षेण पीडितः । तद्यथा—"उरःक्षतमुरःस्तम्भः पूतिकर्णकफोरसः । सकासः सज्वरो ज्ञेय उरोघातः सपीनसः ॥" इति । ७ मूर्च्छन्ति=पतन्ति, अणवः क्रिमयः=सूक्ष्माः क्रिमयः । ८ कृमिमूर्धविकारेण=कृमिजशिरोरोगेणेत्यर्थः । तस्य लक्षणं—"निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रम्" इत्यादिना वक्ष्यमाणम् ।

९ दुष्टप्रतिश्यायलक्षणमुद्दिशति—प्रक्लिद्यतीति । १० आनह्यते=विबध्यते, विव्रियते=अविबद्धा भवति । क्लेदशोषविबन्धाविवृतत्वानि नैककालं भवन्ति, किन्तु

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात् कृच्छ्रसाधनम्[1] ।
सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः[2] ॥ १६ ॥
कालेन रोगजनना जायन्ते दुष्टपीनसाः ।
बाधिर्य्यमान्ध्यमघ्राणं घोरांश्च नयनामयान् ॥
कासाग्निसादशोफांश्च वृद्धाः[3] कुर्वन्ति पीनसाः ॥ १७ ॥
नवं[4] प्रतिश्यायमपास्य[5] सर्वमुपाचरेत्सर्पिष एव पानैः ।
स्वेदैर्विचित्रैर्वमनैश्च युक्तैः कालोपपन्नैरवपीडनैश्च[6] ॥ १८ ॥
अपच्यमानस्य[7] हि पाचनार्थं स्वेदो हितोऽम्लैरहिमं च भोज्यम् ।
निषेव्यमाणं पयसाऽऽर्द्रकं वा सम्पाचयेदिक्षुविकारयोगैः[8] ॥ १९ ॥
पक्वं[9] घनं चाप्यवलम्बमानं शिरोविरेकैरपकर्षयेत्तम् ।
विरेचनास्थापनधूमपानैरवेक्ष्य दोषान् कवलग्रहैश्च ॥ २० ॥
निर्वातशय्यासनचेष्टनानि मूर्ध्नो गुरूष्णञ्च तथैव वासः ।
तीक्ष्णा विरेकाः शिरसः सधूमा रूक्षं यवान्नं विजया[10] च सेव्या ॥२१॥
शीताम्बुयोषिच्छिशिरावगाहचिन्ताऽतिरूक्षाशनवेगरोधान्[11] ।
शोकञ्च मद्यानि नवानि चैव विवर्जयेत् पीनसरोगजुष्टः ॥ २२ ॥

---

यदा यदा यद्यद्दोषाधिक्यं भवति, तदा तदा तत्तद्दोषकृतः स स बोद्धव्य इति न विरोधः। १ कृच्छ्रसाधनमसाध्यञ्च ।

२ प्रतिश्यायोपद्रवान्निर्दिशति—सर्व इति । अप्रतिकारिणः प्रतिक्रियामकुर्वतो नरस्य सर्व एव प्रतिश्यायाः कालेन कालान्तरेण रोगजनना भवन्ति, तथा ते एव प्रतिश्यायाः क्रमेण दुष्टपीनसा जायन्ते इति योज्यम् । ३ वृद्धाः प्रतिश्यायाः बाधिर्यादीनुपद्रवान् कुर्वन्तीत्यर्थः । ४ अथ प्रतिश्यायानां सामान्यं चिकित्सितमुपदिशति—नवमिति । नवं = सामम्, अपास्य = परिहृत्येत्यर्थः । सर्वेषां प्रतिश्यायानां वातात्मकत्वाद् नवं प्रतिश्यायं परित्यज्य सर्वत्र सर्पिःपानमुपदिशति । ५ कालोपपन्नैः = कालयोग्यैरित्यर्थः ।

६ नवप्रतिश्याये पाचनमाह—अपच्येति । अहिमं भोज्यम् = उष्णं भोजनम् । ७ पयसा क्षीरेण इक्षुविकारयोगैर्गुडादिभिर्निषेव्यमाणमार्द्रकं सम्पाचयेति सम्बन्धः । ८ पक्वप्रतिश्यायस्य निर्हरणमाख्याति—पक्वमिति । घनं = सान्द्रम् । ९ पक्वप्रतिश्याये सेव्यानि वर्णयति—निवातेति । चेष्टनं = क्रीडनम् । १० विजया = हरीतकीत्यर्थः । ११ प्रतिश्याये वर्ज्यानि निर्दिशति—शीतेति । शीताम्बु = शीतल-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]छर्द्यङ्गसादज्वरगौरवार्त्तमरोचकारत्यतिसारयुक्तम् ।
विलङ्घनैः पाचनदीपनीयैरुपाचरेत् पीनसिनं यथावत् ॥ २३ ॥
[2]बहुद्रवैर्वातकफोपसृष्टं प्रच्छर्दयेत् पीनसिनं वयःस्थम् ।
उपद्रवांश्चापि यथोपदेशं स्वैर्भेषजैर्भोजनसंविधानैः ।
जयेद्विदित्वा मृदुतां गतेषु प्राग्लक्षणेषूक्तमथादिशेच्च ॥ २४ ॥
[4]वातिके तु प्रतिश्याये पिबेत् सर्पिर्यथाक्रमम् ।
पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन[5] च ॥ २५ ॥
नस्यादिषु विधिं कृत्स्नमवेक्षेतादितेरितम्[6] ।
[8]पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः[9] शृतम् ॥ २६ ॥
परिषेकान् प्रदेहांश्च कुर्यादपि च शीतलान् ।
श्रीसर्जरसपत्तङ्गप्रियङ्गुमधुशर्कराः[8] ॥ २७ ॥
द्राक्षाम[10]धूलिकागोजीश्रीपर्णीमधुकैस्तथा ।
युज्यन्ते कवलाश्चात्र[11] विरेको मधुरैरपि ॥ २८ ॥
[12]धवत्वक्त्रिफलाश्यामातिल्वकैर्मधुकेन च ।

---

जलम्, योषित्=स्त्री, शिशिरावगाहः=शिशिरतौ स्नानम्, वेगावरोधः=मलमूत्रादीनां सन्धारणमित्यर्थः ।

१ सोपद्रवस्य पक्वप्रतिश्यायस्यावस्थिकं चिकित्सितं वक्तुं—छर्दीति । अरतिः=अनवस्थितचित्तत्वम्, 'स्वाभीष्टवस्त्वलाभेन चेतसो याऽनवस्थितिः । अरतिः सा'इति । २ पक्वप्रतिश्याये वमनावस्थां दर्शयति—बह्विति । वयःस्थं=तरुणम्, प्रच्छर्दयेत् । ३ प्राग्लक्षणेषु=शिरोगुरुत्वादिषु गलतालुवेदनासु च सर्वेषु पूर्वरूपेषु । ४ वातिकप्रतिश्यायचिकित्सामाख्याति—वातिक इति । यथाक्रमं=स्नेहपानक्रमेणेत्यर्थः । ५ प्रथमेन गणेन=विदारिगन्धादिगणेन । ६ अदितेरितम्=अदितचिकित्सितोक्तम् ।

७ पैत्तिकरक्तोत्थप्रतिश्यायचिकित्सामाचष्टे—पित्तेति । मधुरकैः=मधुरवर्गाभिहितैः काकोल्यादिभिरित्यर्थः । ९ प्रदेहान्=प्रलेपान् । ८ श्रीः='गुग्गुल'इति प्रथते । सर्जरसः='राल'इति लोके । पत्तङ्गं=रक्तचन्दनम् । १० मधूलिका='गुडूची', गोजी=गोजिह्वा, श्रीपर्णी=गम्भारी, मधुकः=यष्टीमधु । ११ अत्र=पित्तरक्तकृतयोः प्रतिश्याययोः । मधुरैः=काकोल्यादिभिरित्यर्थः ।

१२ पित्तरक्तोत्थयोः प्रतिश्याययोर्नस्यार्थं तैलमुपदिशति—धवेति । धवत्वक्=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीपर्णीरजनीमिश्रैः क्षीरे[1] दशगुणे पचेत् ॥ २९ ॥
तैलं कालोपपन्न[2] तन्नस्यं स्यादनयोर्हितम् ।
कफजे[3] सर्पिषा स्निग्धं तिलमाषविपक्वया ॥ ३० ॥
यवाग्वा[4] वामयेद्धान्तः कफघ्नं क्रममाचरेत् ।
उभे बले बृहत्यौ च विडङ्गं सत्रिकण्टकम्[5] ॥ ३१ ॥
श्वेतामूलं सदाभद्रां[6] वर्षाभूश्चात्र संहरेत् ।
तैलमेभिर्विपक्वं तु नस्यमस्योपकल्पयेत् ॥ ३२ ॥
सरलाकिणिहीदारुनिकुम्भेङ्गुदिभिः[7] कृताः ।
वर्त्यश्चोपयोज्याः स्युर्धूमपाने यथाविधि ॥ ३३ ॥
सर्पींषि[8] कटुतिक्तानि तीक्ष्णधूमाः कटूनि च ।
भेषजान्युपयुक्तानि हन्युः सर्वप्रकोपजम् ॥ ३४ ॥
रसाञ्जने सातिविषे मुस्तायां भद्रदारुणि ।
तैलं विपक्वं नस्यार्थे विद्ध्याच्चात्र[9] बुद्धिमान् ॥ ३५ ॥
मुस्ता[10] तेजोवती पाठा कट्फलं कटुका वचा ।
सर्षपाः पिप्पलीमूलं पिप्पल्यः सैन्धवाग्निकौ ॥ ३६ ॥
तुत्थं करञ्जबीजञ्च लवणं भद्रदारु च ।
एतैः कृतं कषायन्तु कवले सम्प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥

---

धववल्कलम्, श्यामा=श्याममूला त्रिवृत, तिल्वकः=लोध्रः। १ धवत्वगादिकस्कैस्तैलचतुर्थांशैर्दशगुणे क्षीरे चतुर्गुणं जलमपि दत्त्वा तैलं पचेदित्यर्थः। २ कालोपपन्नं=नस्यकालयोग्यम्, अनयोः=रक्तपित्तोत्थयोः प्रतिश्याययोः।

३ श्लेष्मजप्रतिश्यायचिकित्सितं प्रतिपादयति—**कफज इति**। ४ यवाग्वा=कृसरया, वमनौषधमिश्रया वामयेत्, कफघ्नं क्रमम्=अन्नसंसर्जनाख्यम्, आचरेत्। ५ सत्रिकण्टकं=गोक्षुरकसहितम्। ६ सदाभद्रा=गम्भारी, हाराणचन्द्रस्तु—सदाभद्रामित्यत्र 'सहां भद्राम्' इति पाठं मत्वा सहा मुद्गपर्णी, भद्रा रास्ना, इति व्याख्याति। ७ सरला=त्रिवृत्, किणिही=कटभी, दारु=देवदारु, निकुम्भा=दन्तीत्यर्थः।

८ सान्निपातिकप्रतिश्यायचिकित्सितमाख्याति—**सर्पींषीति**। कटुतिक्तानि=कटुतिक्तद्रव्यसिद्धानि। ९ अत्र=सान्निपातिकप्रतिश्याये। १० सान्निपातिक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हितं मूर्द्धविरेके च तैलमेभिर्विपाचितम् ।
क्षीरमर्द्धजले काथ्यं जाङ्गलैर्मृगपक्षिभिः ॥ ३८ ॥
पुष्पैर्विमिश्रं जलजैर्वातघ्नैरौषधैरपि ।
हिमे क्षीरावशिष्टेऽस्मिन् घृतमुत्पाद्य यत्नतः ॥ ३९ ॥
सर्वगन्धसिताऽनन्तामधुकं चन्दनं तथा ।
आवाप्य विपचेद् भूयो दशक्षीरन्तु तद्घृतम् ॥ ४० ॥
नस्ये प्रयुक्तमुद्रिक्तान् प्रतिश्यायान् व्यपोहति ।
यथास्वं दोषशमनैस्तैलं कुर्य्याच्च यत्नतः ॥ ४१ ॥
समूत्रपित्ताश्चोद्दिष्टाः क्रियाः कृमिषु योजयेत् ।
यापनार्थं कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥ ४२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे प्रतिश्यायप्रतिषेधो नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

---

प्रतिश्याये मुस्तादियोगं दर्शयति—मुस्तेति । तेजोवती = चविका । १ एभिर्मुस्तादिभिः कल्कीकृतैर्विपाचितं तैलं मूर्धविरेके शिरोविरेचने हितमित्यर्थः ।

२ सर्वप्रतिश्याये दशक्षीरं घृतमभिदधाति—क्षीरमिति । क्षीरं जाङ्गलैर्मृगपक्षिभिरेणलावादिभिरष्टगुणम्, "द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम्" इति यद्यप्यस्ति, तथाऽप्यत्र क्षीरादर्धं जलं, जलजैः पुष्पैर्नीलोत्पलादिभिः, वातघ्नैः विदारीगन्धादिभिर्विमिश्रं कृत्वा, क्षीरावशिष्टे घृतमुत्पाद्य तद्दुग्धं मथित्वा, सर्वगन्धा एलादिपरिपठिताः, सिताः शर्कराः, अनन्ता उत्पलसारिवा, चन्दनं रक्तचन्दम्, आवाप्य प्रक्षिप्य, तद्घृतं क्षीरमथनादुत्पन्नं घृतं भूयो विपचेत् । ३ व्यपोहति = अपहरति ।

४ रक्तप्रतिश्याये क्रिमिघ्नविधिमभिधत्ते—समूत्रेति । समूत्रपित्ताः = गोमूत्रपित्तयुक्ताः । ५ कृमिघ्नानि भेषजानि = सुरसादीनीत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुर्विंशोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः शिरोरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
शिरो रुजति मर्त्यानां वातपित्तकफैस्त्रिभिः ।
सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण कृमिभिस्तथा ॥ ३ ॥
सूर्य्यावर्त्तानन्तवाताद्भवभेदकशङ्खकैः ।
एकादशप्रकारस्य लक्षणं सम्प्रवक्ष्यते ॥ ४ ॥
यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तास्रा निशि चातिमात्रम् ।
बन्धोपतापैश्च भवेद्विशेषः शिरोऽभितापः स समीरणेन ॥ ५ ॥
यस्योष्णसङ्गारचितं यथैव दह्येत धूप्येत शिरोऽक्षिनासम् ।
शीतेन रात्रौ च भवेद्विशेषः शिरोऽभितापः स तु पित्तकोपात् ॥६॥
शिरोगलं यस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिष्टब्धमथो हिमञ्च ।

---

## पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

१ शिरःसंश्रितान् श्रवणादिगतरोगानभिधाय ऊर्ध्वजत्रुगतपारिशेष्यादाश्रयभूत-शिरोरोगविज्ञानीयमधिकरोति—**अथेति** । शिरोरोगा एकादश । २ तत्रादौ शिरोरोगाणां नामानि निर्दिशति—**शिर इति** । शिरो रुजति मर्त्यानामित्यत्र शिरोरोगास्तु जायन्ते इति पाठान्तरम् । वातपित्तकफैरित्युक्तेस्त्रित्वबोधेऽपि पुनस्त्रिभिरिति पदं सर्वेषां शिरोरोगाणां सन्निपातजत्वख्यापनार्थम् । वातादिभेदश्चौत्कट्यात् । तदुक्तम्—"सर्व एव शिरोरोगाः सन्निपातसमुत्थिताः । औत्कट्याद्दोषलिङ्गैस्ते कीर्तितास्तद्विदा दशः ॥" इति । ३ क्षयेण = रसादिक्षयेणेत्यर्थः ।

४ वातिकशिरोरोगलक्षणमाख्याति—**यस्येति** । अनिमित्तम् = अतर्कितविप्रकृष्ट-निमित्तम्, निशि चातिमात्रं—रात्रौ शीतेन वायोराधिक्यादत्यन्तं व्यथा भवति, वायोः शीतयोनित्वादिति तात्पर्यम् । ५ बन्धः = वस्त्रादिभिर्बन्धनम्, उपतापः = स्वेदनम् । शिरोऽभितापः = शिरःपीडेत्यर्थः । ६ पैत्तिकशिरोरोगलक्षणमभिधत्ते—**यस्योष्णमिति** । अङ्गारचितं = ज्वलदङ्गाराच्छन्नमिवेत्यर्थः । धूप्येत = धूमपूर्णमिव भवेत्, शिरश्च अक्षि च नासा चेति शिरोऽक्षिनासम् । प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः ।

७ श्लेष्मजशिरोरोगलक्षणमभिदधाति—**शिरोगलमिति** । कफोपदिग्धम् = अन्तः-कफोपलिप्तम्, गुरु = भारयुतम्, प्रतिष्टब्धं = बद्धमिव, हिमं = हिमस्पर्शम् ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूनाक्षिकूटं वदनञ्च यस्य शिरोऽभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ७ ॥
शिरोऽभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवन्ति ।
रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ८ ॥
वसाबलासक्षतसम्भवानां शिरोगतानामिह सङ्क्षयेण ।
क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥ ९ ॥
संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ।
निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं सम्भक्ष्यमाणं स्फुटतीव चान्तः ॥ १० ॥
घ्राणाच्च गच्छेत्सलिलं सरक्तं शिरोऽभितापः कृमिभिः स घोरः ।
सूर्योदयं या प्रतिमन्दमन्दमक्ष्यभ्रुवं रुक् समुपैति गाढम् ॥ ११ ॥

---

१ शूनाक्षिकूटं = शोथयुतनेत्रगोलकम् । २ सान्निपातिकशिरोरोगलक्षणं वक्ति— शिर इति । सर्वाणि लिङ्गानि = अनन्तरोक्तानि वातजादिलक्षणानि । "वाताच्छूलं भ्रमः कम्पः पित्ताद्दाहो मदस्तृषा । कफाद् गुरुत्वं तन्द्रा च शिरोरोगे त्रिदोषजे ॥" इति चरकः ।

३ रक्तजशिरोरोगलक्षणमुपदिशति—रक्तेति । स्पर्शासहत्वमिति पैत्तिकशिरोरोगाधिकं लक्षणं बोध्यम् । ४ क्षयजशिरोरोगस्य लक्षणमुद्दिशति—वसेति । वसा देहस्नेहस्योपलक्षणम् , तेन मेदोमज्जशुक्रमस्तिष्काण्यपि गृह्यन्ते । ५ कष्टः = कष्टसाध्य इत्यर्थः । उग्ररुजः = तीव्रवेदनः । ६ संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैः कफक्षयः, नागरादितीव्रधूमेन वसामस्तिष्कादिक्षयः, सिरामोक्षादिभिरसृक्क्षयः । अत एव एतैः संस्वेदनादिभिः क्षयजस्य वृद्धिः । विदेहेऽपि—"भ्रमति तुद्यते शून्यं शिरो विभ्रान्तनेत्रता । मूर्च्छा गात्रावसादश्च शिरोरोगे क्षयात्मके ॥" इति । "स्त्रीप्रसङ्गादभिघातादथवा देहकर्मणा । क्षिप्रं सञ्जायते कृच्छ्रः शिरोरोगः क्षयात्मकः । वातपित्तात्मकं लिङ्गं व्यामिश्रं तत्र लक्षयेत् ॥" इति चक्षुष्यः ।

७ क्रिमिजशिरोरोगलक्षणमाह—निस्तुद्यत इति । निस्तुद्यते = व्यथ्यते, सम्भक्ष्यमाणं = क्रिमिभिर्दश्यमानमित्यर्थः । स्फुटतीव = शीर्यत इव, स्फुरतीवेति पाठे मनाक् चलतीवेत्यर्थो बोध्यः । ८ चकारेण क्रिमिनिर्गमोऽपि बोध्यः । तदुक्तं चरके— "क्रिमिरोगातुरं विद्यात् क्रिमीणां दर्शनेन च" इति ।

९ सूर्यावर्तलक्षणं प्रतिपादयति—सूर्योदयमिति । सूर्योदयं प्रति लक्षीकृत्य या रुक अक्षिभ्रुवं समुपैतीति सम्बन्धः । अक्षिणी च भ्रुवौ चेत्यक्षिभ्रुवम् । प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः । सूर्योदये प्रातर्मन्दं मन्दं यथा स्यात्तथा रुजां समुपैति, अंशुमता च सूर्येण सह गाढं यथा भवति तथा वर्धते । अर्थात्—यथा सूर्यो वर्धते तथा वेदना

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवर्द्धते चांशुमता सहैव सूर्य्यापवृत्तौ विनिवर्त्तते च ।
शीतेन शान्तिं लभते कदाचिदुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाच्च ॥१२॥
तं भास्करावर्तमुदाहरन्ति सर्वात्मकं[1] कष्टतमं विकारम् ।
दोषास्तु[2] दुष्टास्त्रय एव मन्यां सम्पीड्य घाटासु रुजां सुतीव्राम् ॥१३॥
कुर्वन्ति साक्ष्णिभ्रुवि शङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ।
गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान् ॥ १४ ॥
अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ।
यस्योत्तमाङ्गार्द्धमतीव जन्तोः सम्भेदतोदभ्रमशूलजुष्टम् ॥ १५ ॥
पक्षाद् दशाहादथवाऽप्यकस्मात्तस्यार्द्धभेदं त्रितयाद्व्यवस्येत् ।

---

प्रवृद्धा भवति, सूर्यस्यापवृत्तौ सायाह्ने विनिवर्तते शाम्यतीति । अत्र निमिः—"सूर्यसोमात्मकौ नित्यं स्वहेतू पित्तमारुतौ । कुर्वाते वेदनां तीव्रां दिनात् पूर्वाह्ण एव तु ॥ आदित्यतेजसा युक्ते निवृत्तेऽपि च भास्करे । स्रोतसां विवृतत्वाच्च ततः श्लेष्माऽधिगच्छति ॥ उद्गतो मातरिश्वा च स्वमार्गं प्रतिपद्यते । तस्मान्मध्यदिनादूर्ध्वं वेदनाऽत्र प्रशाम्यति ॥" इति ।

१ सर्वात्मकं=सन्निपातजम् । विदेहे सूर्यावर्तविपर्ययोऽपि पठ्यते । तद्यथा—"तत्र वातानुगं पित्तं चितं शिरसि तिष्ठति । मध्याह्ने तेजसाऽर्कस्य तद्विवृद्धं शिरोरुजम् ॥ करोति पैत्तिकीं घोरां संशाम्यति दिनक्षये । अस्तं गते प्रभाहीने सूर्ये वायुर्विवर्धते ॥ पित्तं शान्तिमवाप्नोति ततः शाम्यति वेदना । एष पित्तानिलकृतः सूर्यावर्तविपर्ययः ॥" इति । अयमत्र सूर्यावर्त एवान्तर्भावनीयः, चातुर्थिके चातुर्थिकविपर्ययवदिति श्रीकण्ठः ।

२ अनन्तवातलक्षणमभिदधाति—**दोषास्त्विति** । दुष्टा दोषास्त्रय एव मन्यां ग्रीवासिराद्वयं सम्पीड्य घाटासु ग्रीवापश्चाद्भागेषु सुतीव्रां रुजां कुर्वन्ति, योऽक्ष्णिभ्रुवि शङ्खदेशे च आशु स्थितिमारब्धत्वं विशेषतः करोति, तथा यो गण्डस्य कपोलस्य पार्श्वे एकदेशे कम्पं हनुग्रहादिकं च करोति, तं दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारमनन्तवातमुदाहरन्तीति योजना ।

३ अर्धावभेदलक्षणं ब्रवीति—**यस्येति** । उत्तमाङ्गार्धं=शिरोऽर्धम्, 'उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । ४ त्रितयादित्यत्र द्वितयादिति पाठः । अत्र विदेहः—"शिरसोऽन्यतरे पार्श्वे कुपितो मारुतो यदा । श्लेष्मणा रुध्यते जन्तोस्तोदस्फुटनदारुणैः ॥ शूलावदारणैर्गाढमर्धं तदवरुध्यते । नयनं चावदीर्येत सोऽर्धभेदः कफानिलात् ॥ तथा त्र्यहात् स पञ्चाहात् पक्षान्मासाच्च देहिनाम् ।" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्खाश्रितो वायुरुदीर्णवेगः कृतानुयात्रः कफपित्तरक्तैः ॥ १६ ॥
रुजः सुतीव्राः प्रतनोति मूर्ध्नि विशेषतश्चापि हि शङ्खयोस्तु ।
सुकष्टमेनं खलु शङ्खकाख्यं महर्षयो वेदविदः पुराणाः ॥ १७ ॥
व्याधिं वदन्त्युद्गतमृत्युकल्पं भिषक्सहस्रैरपि दुर्निवारम् ॥ १८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे शिरोरोगविज्ञानीयो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

---

## षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः शिरोरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
वातव्याधिविधिः कार्य्यः शिरोरोगेऽनिलात्मके ।
पयोऽनुपानं सेवेत घृतं तैलमथापि वा ॥ ३ ॥
मुद्गान् कुलत्थान्माषांश्च खादेच्च निशि केवलान् ।

---

१ शङ्खकलक्षणमभिदधाति—शङ्खेति । कफपित्तरक्तैः कृताऽनुयात्रा येन स कृतानुयात्रो वायुरिति सम्बन्धः । २ शङ्खयोः = भ्रूपुच्छान्तयोरित्यर्थः । ३ उद्गत-मृत्युकल्पम् = उपस्थितमृत्युसदृशम् । अस्य व्याधेस्त्रिरात्राभ्यन्तरे विकल्पितासाध्य-त्वम्, त्रिरात्रात्परमसाध्यत्वम् । तथा च विदेहः—"चीयते तु सदा पित्तं शङ्खयोरनि-लाचितम् । निरुणद्धि ततो मर्म परिपूरितमुल्बणम् ॥ ततः शङ्खौ प्रदुष्येते दह्येत इव वह्निना । सूचीभिरिव तुद्येते निकृत्येत इवासिना ॥ शङ्खको नाम शिरसि व्याधिरेषः सुदारुणः । तृष्णामूर्च्छाज्वरकरस्त्रिरात्रात्परमन्तकृत् ॥ कुशलेन तूपक्रान्तस्त्रिरात्रादेव जीवति ।" इति ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चविंशोऽध्यायः ।

---

## षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

४ पूर्वाध्याये शिरोरोगविज्ञानमभिधाय तच्चिकित्सां प्रतिपादितुं शिरोरोगप्रतिषेध-मधिकरोति—अथेति । प्रतिषेधः = चिकित्सितमित्यर्थः । ५ वातिकशिरोरोगचि-कित्सां दर्शयति—वातेति । वातव्याधिविधिः स्नेहस्वेदाभ्यङ्गपरिषेकादिबाह्यः, स्नेह-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कटूष्णांश्च ससापक्वानुष्णं चानु पयः पिबेत् ॥ ४ ॥
पिबेद्वा पयसा तैलं तत्कल्कं वाऽपि मानवः ।
वातघ्नसिद्धैः क्षीरैश्च सुखोष्णैः सेकमाचरेत् ॥ ५ ॥
तत्सिद्धैः पायसैर्वाऽपि सुखोष्णैर्लेपयेच्छिरः ।
स्विन्नैर्वा मत्स्यपिशितैः कृशरैर्वा ससैन्धवैः ॥ ६ ॥
चन्दनोत्पलकुष्ठैर्वा सुश्लक्ष्णैर्मगधायुतैः ।
स्निग्धस्य तैलं नस्यं स्यात् कुलीररससाधितम् ॥ ७ ॥
वरुणादौ गणे क्षुण्णे क्षीरमर्द्धोदकं पचेत् ।
क्षीरशेषञ्च तन्मथ्यं शीतं सारमुपाहरेत् ॥ ८ ॥
ततो मधुरकैः सिद्धं नस्ये तत् पूजितं हविः ।
तस्मिन् विपक्वे क्षीरे तु पेयं सापः सशर्करम् ॥ ९ ॥
धूमञ्चास्य यथाकालं स्नैहिकं योजयेद्भिषक् ।
पानाभ्यञ्जननस्येषु बस्तिकर्मणि सेचने ॥ १० ॥
विदध्यात्त्रैवृतं धीमान् बलातैलमथापि वा ।
भोजयेच्च रसैः स्निग्धैः पयोभिर्वा सुसंस्कृतैः ॥ ११ ॥
पित्तरक्तसमुत्थानौ शिरोरोगौ निवारयेत् ।
शिरोलेपैः ससर्पिष्कैः परिषेकैश्च शीतलैः ॥ १२ ॥
क्षीरेक्षुरसधान्याम्लमस्तुक्षौद्रसिताजलैः ।

---

पानानुवासनाद्याभ्यन्तर इत्यर्थः । १ कटूष्णान्=कटूष्णद्रव्यसिद्धान् । २ तत्कल्कं=मुद्गादिद्रव्यकल्कम् । ३ तत्सिद्धैः=भद्रदार्वादिवातहरद्रव्यसिद्धैः ।

४ 'तिलतण्डुलसम्मिश्रः कृशरः सोऽभिधीयते' इति कृशरपदेन बोध्यम् । ५ वरुणादिद्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तगणः, क्षुण्णे=कुट्टिते । ६ तस्मिन् वरुणादिगणे क्षीरे च विपक्वं सशर्करं सर्पिः पेयमित्यर्थः । ७ स्नैहिको धूमः स्नेहफलसारेत्यादिना धूमादिचिकित्सिते प्रोक्तः । ८ त्रैवृतं सर्पिर्महावातव्याधिचिकित्सिते, बलातैलं च मूढगर्भचिकित्सिते प्रोक्तम् । ९ रसैः=मांसरसैरित्यर्थः । सुसंस्कृतैः=वातहरद्रव्यसिद्धैः ।

१० पित्तरक्तजशिरोरोगयोस्तुल्यचिकित्सितत्वात् सङ्क्षेपेणोभयोरेकं चिकित्सितमुपदिशति—पित्तेति । ११ मधुरकादिद्रव्यकृतशिरोलेपैरित्यर्थः । १२ सिताजलं=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नलेवञ्जुलकह्लारचन्दनोत्पलपद्मकैः ॥ १३ ॥
वंशशैवलयष्ट्याह्वमुस्ताऽम्भोरुहसंयुतैः ।
शिरःप्रलेपैः सघृतैर्वैसर्पैश्च तथाविधैः ॥ १४ ॥
मधुरैश्च मुखालेपैर्नस्यकर्मभिरेव च ।
आस्थापनैर्विरेकैश्च पथ्यैश्च स्नेहबस्तिभिः ॥ १५ ॥
क्षीरसर्पिर्हितं नस्यं वसा वा जाङ्गला शुभा ।
उत्पलादिविपक्वेन क्षीरेणास्थापनं हितम् ॥ १६ ॥
भोजनं जाङ्गलरसैः सर्पिषा चानुवासनम् ।
मधुरैः क्षीरसर्पिस्तु स्नेहने च सशर्करम् ॥ १७ ॥
पित्तरक्तघ्नमुद्दिष्टं यच्चान्यदपि तद्धितम् ।
कफोत्थितं शिरोरोगं जयेत्कफनिवारणैः ॥ १८ ॥
शिरोविरेकैर्वमनैस्तीक्ष्णैर्गण्डूषधारणैः ।
अच्छञ्च पाययेत्सर्पिः स्वेदयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ १९ ॥
शिरो मधूकसारेण स्निग्धञ्चापि विरेचयेत् ।
इङ्गुदस्य त्वचा वाऽपि मेषशृङ्गस्य वा भिषक् ॥ २० ॥
आभ्यामेव कृतां वर्त्तिं धूमपाने प्रयोजयेत् ।
घ्रेयं कट्फलचूर्णञ्च कवलाश्च कफापहाः ॥ २१ ॥

---

शर्करोदकम् । १ शिरोलेपद्रव्याणि निर्दिशति—नलेति । वञ्जुलः = जलवेतसः, कह्लारं = रक्तकमलम् , चन्दनं = रक्तचन्दनम् , उत्पलं = नीलोत्पलम् , पद्मकं = पद्मकाष्ठम् । २ शैवलं = दूर्वा, यष्ट्याह्वं = यष्टीमधु, अम्भोरुहं = पद्मम् । ३ वैसर्पैः = विसर्पचिकित्सितोक्तैरुशीरलामज्जकचन्दनस्रोतोजमुक्तामणिगैरिकैः । ४ काकोल्यादिमधुरवर्गैरित्यर्थः । नस्यमपि मधुरवर्गसाधितं बोध्यम् । ५ पथ्यैः = हितकरैः । ६ क्षीरमथनोत्थं सर्पिः क्षीरसर्पिः ।

७ आस्थापनोपयोगिद्रव्याणि दर्शयति—उत्पलादीति । उत्पलादिर्द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः । ८ स्नेहने = स्नेहनबस्तौ । ९ अन्यदपि = पानप्रलेपनस्यादिकं रक्तपित्तघ्नमित्यर्थः । १० कफजशिरोरोगचिकित्सितमभिधत्ते—कफेति । कफोत्थितं शिरोरोगं कफनिवारणैः शिरोविरेकैस्तीक्ष्णैर्वमनैः गण्डूषधारणैश्च जयेदित्यर्थः । ११ मेषशृङ्गस्य = 'मेढ़ासिंगी' इति ख्यातस्य । १२ आभ्यामेव = इङ्गुदीमेषशृङ्गीत्वग्भ्यामेव

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरलाकुष्ठशार्ङ्गेष्टा[1]देवकाष्ठैः सरोहिषैः ।
क्षारपिष्टैः सलवणैः सुखोष्णैर्लेपयेच्छिरः ॥ २२ ॥
यवषष्टिकयोश्चान्नं व्योषक्षारसमायुतम् ।
पटोलमुद्गकौलत्थैर्मात्रावद्भोजयेद्रसैः[2] ॥ २३ ॥
शिरोरोगे[3] त्रिदोषोत्थे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ।
सर्पिःपानं विशेषेण पुराणं वा दिशन्ति हि ॥ २४ ॥
क्षयजे[4] क्षयमासाद्य कर्त्तव्यो बृंहणो विधिः ।
पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नैर्मधुरैः[5] श्रृतम् ॥ २५ ॥
क्षयकासापहं चात्र सर्पिः पथ्यतमं विदुः ।
कृमिभिर्भक्ष्यमाणस्य वक्ष्यते शिरसः क्रिया[6] ॥ २६ ॥
नस्ये हि शोणितं दद्यात्तेन मूर्च्छन्ति[7] जन्तवः ।
मत्ताः शोणितगन्धेन समायान्ति यतस्ततः[8] ॥ २७ ॥
तेषां निर्हरणं कार्य्यं ततो मूर्द्धविरेचनैः[9] ।
ह्रस्वशिग्रुकबीजैर्वा कांस्यनीलीसमायुतैः[10] ॥ २८ ॥
कृमिघ्नैरवपीडैश्च[11] मूत्रपिष्टैरुपाचरेत् ।
पूतिमत्स्ययुतान् धूमान्[12] कृमिघ्नांश्च प्रयोजयेत् ॥ २९ ॥
भोजनानि कृमिघ्नानि[13] पानानि विविधानि च ।

---

१ शार्ङ्गेष्टा=महाकरञ्जः, देवकाष्ठं=देवदारु, सरोहिषैः=रोहिषतृणविशेषसहितैः । २ यवषष्टिकयोश्चान्नं व्योषेन त्रिकटुकेन, क्षारेण यवक्षारेण समायुतं पटोलमुद्गकौलत्थैः रसैर्यूषैर्मात्रावद् भोजयेदित्यर्थः । ३ त्रिदोषजशिरोरोगचिकित्सां निर्दिशति—**शिरोरोग इति** । पूर्वोक्तवातादिजशिरोरोगहरो विधिस्त्रिदोषघ्नः । ४ क्षयजशिरोरोगचिकित्सामाख्याति—**क्षयज इति** । ५ वातघ्नानि भद्रदार्वादीनि, मधुराणि काकोल्यादीनि तैर्वातघ्नमधुरैः । ६ क्रिमिजशिरोरोगे चिकित्सामभिदधाति—**कृमिभिरिति** । ७ मूर्च्छन्ति=लोलुपत्वेन चञ्चला भवन्तीत्यर्थः । ८ यतस्ततः=नासास्रोतःप्रभृतिभिः । ९ विडङ्गमरिचापामार्गशिग्रुबीजप्रभृतिभिर्मूर्धविरेचनैरित्यर्थः । १० कांस्यनीली=कांस्यमलः । ११ कृमिघ्नैः=विडङ्गादिभिः । १२ धूमपानविधिनेति शेषः । १३ कृमिघ्नानि=कृमिप्रतिषेधोक्तानि धान्याम्लादीनीत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य्यावर्ते[1] विधातव्यं नस्यकर्मादिभेषजम् ॥ ३० ॥
भोजनं जाङ्गलप्रायं क्षीरान्नविकृतिर्घृतम् ।
तथाऽर्द्धभेदके[2] व्याधौ प्राप्तमन्यच्च यद्भवेत् ॥ ३१ ॥
शिरीषमूलकफलैरवपीडोऽनयोर्[3]हितः ।
वंशमूलककर्पूरैरवपीडं प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥
अवपीडो हितश्चात्र वचामागधिकायुतः[4] ।
मधुकेनावपीडो वा मधुना सह संयुतः ॥ ३३ ॥
मनःशिलाऽवपीडो वा मधुना चन्दनेन वा ।
तेषामन्ते[5] हितं नस्यं सर्पिर्मधुरसान्वितम् ॥ ३४ ॥
सारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकं चाम्लपेषितम् ।
सर्पिस्तैलयुतो लेपो द्वयोरपि[6] सुखावहः ॥ ३५ ॥
एष एव प्रयोक्तव्यः शिरोरोगे कफात्मके ।
अनन्तवाते[7] कर्तव्यः सूर्य्यावर्तहरो विधिः ॥ ३६ ॥
सिराव्यधश्च कर्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ।
आहारश्च विधातव्यो वातपित्तविनाशनः ॥ ३७ ॥
मधुमस्तकसंयावघृतपूपौश्च[8] भोजनम् ।

---

१ सूर्यावर्तकचिकित्सामाचष्टे—**सूर्यावर्त इति** । आदिशब्दात् प्रलेप-परिषेक-कवलग्रह-शिरोबस्त्यादयो ग्राह्याः । येषां मते सूर्यावर्तविपर्ययसंज्ञकः शिरोरोगः, तत्रापि इयमेव चिकित्सा ज्ञातव्या । २ अर्धावभेदकचिकित्सितमुद्दिशति—**तथेति** । तथा=तेनैव प्रकारेण, यथा सूर्यावर्तके नस्यादिभेषजमाहारादिकमुक्तं तत्सर्वं विधेयमित्यर्थः । यच्च अन्यत् स्नेहसिराव्यधावपीडादिकं प्राप्तं युक्तं भवेत् तदपि कर्तव्यम् । ३ अनयोः=सूर्यावर्तार्द्धभेदकयोः । ४ मागधिका=पिप्पली ।

५ तेषामवपीडानाम् अन्ते मधुरसान्वितं काकोल्यादिगणकल्कसाधितं सर्पिर्नस्ये हितमित्यर्थः । ६ द्वयोः=सूर्यावर्तार्द्धावभेदकयोः । ७ अनन्तवातचिकित्सितमभिधत्ते—**अनन्तेति** । ८ मधुमस्तका रवजुका इति डल्हणः । संयावः=लप्सिका, तल्लक्षणं तु—"संयावस्तु घृतक्षीरगुडगोधूमपाकजम्" इति, घृतपूरः='घेवर' इति ख्यातः । "मर्दितां समितां क्षीरनारिकेलघृतादिभिः । अवमथ्य घृते पक्वो घृतपूरोऽयमुच्यते ॥" इति तल्लक्षणम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्ये पाने च शङ्खके ॥ ३८ ॥
जाङ्गलानां रसैः स्निग्धैराहारश्चात्र शस्यते ।
शतावरीं तिलान् कृष्णान् मधुकं नीलमुत्पलम् ॥ ३९ ॥
दूर्वां पुनर्नवाञ्चैव लेपे साध्ववचारयेत् ।
महासुगन्धामथवा पालिन्दीञ्चाम्लपेषिताम् ॥ ४० ॥
शीतांश्चात्र परीषेकान् प्रदेहानत्र योजयेत् ।
अवपीडश्च देयोऽत्र सूर्य्यावर्त्तनिवारणः ॥ ४१ ॥
कृमिक्षयकृतौ हित्वा शिरोरोगेषु बुद्धिमान् ।
मधुतैलसमायुक्तैः शिरांस्यतिविरेचयेत् ॥ ४२ ॥
पश्चात्सर्षपतैलेन ततो नस्यं प्रयोजयेत् ।
न चेच्छान्तिं व्रजन्त्येवं स्निग्धस्विन्नांस्ततो भिषक् ॥ ४३ ॥
पश्चादुपाचरेत्सम्यक् सिराणामथ मोक्षणैः ।
षट्सप्ततिर्नेत्ररोगा दशाष्टादश कर्णजाः ॥ ४४ ॥
एकत्रिंशद् घ्राणगताः शिरस्येकादशैव तु ।
इति विस्तरतो दृष्टाः सलक्षणचिकित्सिताः ॥ ४५ ॥
संहितायामभिहिताः सप्तषष्टिर्मुखामयाः ।
एतावन्तो यथास्थूलमुत्तमाङ्गगता गदाः ।

---

१ शङ्खकचिकित्सितमाख्याति—क्षीरेति । क्षीरमथनोत्थं सर्पिः क्षीरसर्पिः । २ शङ्खकशिरोरोगे लेपं वक्ति—शतावरीमिति । शतावर्यादिद्रव्यं क्षीरे पिष्ट्वा लेपः कार्यः । ३ महासुगन्धा=रास्ना, पालिन्दी=श्यामालता, अम्लपेषितां=काञ्जिकपेषिताम् । ४ अत्र=शङ्खके । ५ सूर्यावर्तनिवारणः=अनन्तरोक्तः "शिरीषमूलकफलैरवपीडोऽनयोर्हितः" इत्याद्यवपीड इत्यर्थः ।

६ शिरोरोगाणां सामान्यं चिकित्सितं ब्रवीति—कृमिक्षयेति । बुद्धिमान् वैद्यः कृमिक्षयकृतौ शिरोरोगौ हित्वा त्यक्त्वा शिरोरोगेषु अन्येषु शिरोरोगेषु मधुतैलसमायुक्तैः संशोधनसंशमनीयाध्यायोक्तैः शिरोविरेचनद्रव्यैः शिरांस्यतिविरेचयेत् । ततः पश्चात् सर्षपतैलेन नस्यं प्रयोजयेदिति सम्बन्धः । ७ 'कृमिक्षयकृतौ हित्वा' इति इहाप्यावर्तते । ८ शालाक्यतन्त्रमुपसंहरति—षडिति । कर्णजाः कर्णरोगाः, दशाष्टादश अष्टाविंशतिः । ९ सूक्ष्मेण तु असंख्येया भेदाः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्मिन्[1] शास्त्रे निगदिताः सङ्क्षेपारूपचिकित्सितैः ॥ ४६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे शिरोरोगप्रतिषेधोनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

---

## सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातो नवग्रहाकृतिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

बालग्रहाणां विज्ञानं[3] साधनञ्चाप्यनन्तरम् ।
उत्पत्तिं कारणञ्चैव सुश्रुतैकमनाः शृणु ॥ ३ ॥
स्कन्दग्रहस्तु[4] प्रथमः स्कन्दापस्मार एव च ।
शकुनी रेवती चैव पूतना चान्धपूतना ॥ ४ ॥
पूतना शीतनामा च तथैव मुखमण्डिका[5] ।

---

१ अस्मिन् शालाक्ये शास्त्रे, निगदिताः कथिताः, मया धन्वन्तरिणेति शेषः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षड्विंशोऽध्यायः ।

शालाक्यतन्त्रं सम्पूर्णम् ।

---

## सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

( अथ कौमारभृत्यतन्त्रम् । )

२ शालाक्यतन्त्रमभिधाय कौमारमन्त्रमधिकरोति—अथेति । "कौमारभृत्यं नाम कुमारभरणधात्रीक्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानां च व्याधीनामुपशमनार्थम्" इति वेदोत्पत्तावभिहितम् । नवग्रहाकृतिपदस्यादौ बालशब्दो लुप्तनिर्दिष्टः, तेन बालानां संवत्सरपराणां नवग्रहा अप्रसिद्धाः स्कन्दप्रभृतयः, तेषामाकृतिः कार्यभूतं लिङ्गं, तस्या विज्ञानमधिकृत्य कृतोऽध्यायो नवग्रहाकृतिविज्ञानीयस्तम् । अबालानामष्टौ देवप्रभृतयो ग्रहा भूतविद्यायां षष्टितमेऽमानुषोपसर्गप्रतिषेधाध्याये वक्ष्यन्ते । ३ विज्ञानं = विशिष्टज्ञानम् , साधनं = चिकित्सितमित्यर्थः ।

४ नवग्रहाणां नामानि निर्दिशति—स्कन्देति । भगवता शिवेन स्कन्दस्य विनोदार्थं सृष्टः स्कन्दग्रहः, न पुनः कार्तिकेयः स्कन्दोऽत्रेति बोध्यम् । ५ अध्ययनसम्प्रदा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवमो नैगमेषश्च यः पितृग्रहसंज्ञितः ॥ ५ ॥
धात्रीमात्रोः प्राक्प्रदिष्टापचाराच्छौचभ्रष्टान्मङ्गलाचारहीनान् ।
त्रस्तान् हृष्टांस्तर्जितान् ताडितान् वा पूजाहेतोर्हिंस्युरेते कुमारान् ॥ ३ ॥
ऐश्वर्यस्थास्ते न शक्या विशन्तो देहं द्रष्टुं मानुषैर्विश्वरूपाः ।
आप्तं वाक्यं तत्समीक्ष्याभिधास्ये लिङ्गान्येषां यानि देहे भवन्ति ॥ ७ ॥
शूनाक्षः क्षतजसगन्धिकः स्तनद्विड् वक्रास्यो हतचलितैकपक्ष्मनेत्रः ।
उद्विग्नः सुलुलितचक्षुरल्परोदी स्कन्दार्त्तो भवति च गाढमुष्टिवर्चाः ८
निःसंज्ञो भवति पुनर्भवेत्ससंज्ञः संरब्धः करचरणैश्च नृत्यतीव ।
विण्मूत्रे सृजति विनद्य जृम्भमाणः फेनञ्च प्रसृजति तत्सखाभिपन्नः १०
स्रस्ताङ्गो ११ भयचकितो विहङ्गगन्धिः
संस्राविव्रणपरिपीडितः समन्तात् ।

---

नीये उपक्रमे "पूतनायास्तथाऽन्धाया मण्डिका शीतपूतना" इति व्युत्क्रमेण निरदिक्षत् । १ बालस्य अन्यग्रहेभ्यो रक्षकत्वात् पितेव ग्रह इति पितृग्रहः, सा एव सञ्ज्ञा सञ्जाता यस्य स पितृग्रहसञ्ज्ञितः । २ ग्रहाणां बालावेशे हेतुमाह—धात्रीति । धात्री उपमाता, पोषयित्रीति यावत्; माता जननी, तयोर्धात्रीमात्रोः प्राग् गर्भिणीव्याकरणे प्रदिष्टोऽपचार उपदिष्टाकृत्यविधिस्तस्मात् प्राक्प्रदिष्टापचारात् । बालानां प्राक्तनकर्मवशाद् धात्री माता चापचारं करोति, येन तत्कृतापचाराद् बालाः फलभोक्तारो भवन्ति ।

३ कुमारशब्दस्योपलक्षणत्वात् कुमारिका अपि हिंस्युरित्यर्थः । ४ देहं विशन्तो ग्रहाः कस्मान्नोपलभ्यन्त इत्याह—ऐश्वर्येति । ऐश्वर्यस्थाः=अणुताद्यष्टविधप्रभावे स्थिताः । यत ऐश्वर्यस्था विश्वरूपास्ते, नातो देहं विशन्तो मानुषैर्द्रष्टुं शक्या इति योजना । ५ आप्तं वाक्यम्=आप्तोच्चरितं वाक्यमित्यर्थः । आप्तस्तु यथार्थवक्ता ।

६ स्कन्दग्रहार्तलक्षणमभिदधाति—शूनाक्ष इति । शूनाक्षः=शोथयुक्तनयनः, क्षतजसगन्धिकः=रुधिरसमानगन्धिकः, स्तनद्विट्=स्तनद्वेषी, वक्रास्यः=वक्रमुखः, हतं चलितं चैकपक्ष्म नेत्रे यस्य स हतचलितैकपक्ष्मनेत्रः । ७ सुलुलितचक्षुः=ईषन्निमीलितनयनः । ८ गाढे मुष्टिवर्चसी यस्य स गाढमुष्टिवर्चाः । ९ स्कन्दापस्मारार्तलक्षणं दर्शयति—निःसञ्ज्ञ इति । निःसञ्ज्ञः=निर्गतसम्यग्ज्ञान इत्यर्थः । १० तस्य स्कन्दस्य सखा तत्सखः स्कन्दापस्मारः, तेनाभिपन्नो जुष्ट इति तत्सखाभिपन्नः ।

११ शकुनिग्रहार्तलक्षणमाख्याति—स्रस्ताङ्ग इति । स्रस्ताङ्गः=शिथिलशरीरः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकै-
र्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः[1] शकुन्या ॥ १० ॥
रक्तास्यो[2] हरितमलोऽतिपाण्डुदेहः
श्यावो वा ज्वरमुखपाकवेदनाऽऽर्त्तः ।
रेवत्या व्यथिततनुश्च कर्णनासं
मृद्नति ध्रुवमभिपीडितः कुमारः ॥ ११ ॥
स्रस्ताङ्गः[3] स्वपिति सुखं दिवा न रात्रौ
विड्भिन्नं सृजति च काकतुल्यगन्धिः ।
छर्द्याऽऽर्त्तो हृषिततनूरुहः[4] कुमार-
स्तृष्णालुर्भवति च पूतनागृहीतः ॥ १२ ॥
यो द्वेष्टि[5] स्तनमतिसारकासहिक्काछर्दीभिर्ज्वरसहिताभिरर्द्यमानः ।
दुर्वर्णः सततमधःशयोऽम्लगन्धिः[6]स्तं ब्रूयुर्भिषज इहान्धपूतनार्त्तम् ।१३।
उद्विग्नो[7] भृशमतिवेपते प्ररुद्यात्
संलीनः स्वपिति च यस्य चान्त्रकूजः ।
विस्राङ्गो भृशमतिसार्य्यते च यस्तं
जानीयाद्विषगिह शीतपूतनार्त्तम् ॥ १४ ॥
म्लानाङ्गः[8] सुरुचिरपाणिपादवक्त्रो
बह्वाशी कलुषसिरावृतोदरो यः ।

---

१ क्षतः=आर्त इत्यर्थः । २ रेवतीग्रहार्तलक्षणं ब्रवीति—रक्तास्य इति । रक्तास्यः=रक्तवर्णमुखः, हरितमलः=हरितवर्णविण्मूत्रः, ज्वरमुखपाकवेदनार्तः=ज्वरार्तो मुखपाकवेदनार्तश्चेत्यर्थः ।

३ पूतनाग्रहार्तलक्षणमभिधत्ते—स्रस्ताङ्ग इति । ४ हृषिततनूरुहः=उद्धर्षितरोमाग्रः, तृष्णालुः=पिपासाशील इत्यर्थः । ५ अन्धपूतनार्तलक्षणमुपदिशति—य इति । ६ अम्लगन्धिः=काञ्जिकाद्यम्लद्रव्यगन्धिः । ७ शीतपूतनार्तस्य लक्षणमुद्दिशति—उद्विग्न इति । अतिवेपते=अतिकम्पते, संलीनः=शयनीयैकभागे सम्यग्लीन इत्यर्थः ।

८ मुखमण्डिकाग्रहार्तस्य लक्षणमाख्याति—म्लानाङ्ग इति । म्लानाङ्गः=मलिनशरीरः, सुरुचिरपाणिपादवक्त्रः=सुन्दरकरचरणमुखः, कलुषसिराभिरावृतमुदरं यस्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोद्वेगो भवति च मूत्रतुल्यगन्धिः
स ज्ञेयः शिशुरिह वक्त्रमण्डिकार्त्तः[1] ॥ १५ ॥
यः[2] फेनं वमति विनम्यते च मध्ये
सोद्वेगं विलपति चोर्द्ध्वमीक्षमाणः ।
उद्वर्त्येत प्रततं[3] मथो वसासगन्धि-
निःसंज्ञो भवति हि नैगमेषजुष्टः ॥ १६ ॥
प्रस्तब्धो[4] यः स्तनद्वेषी मुह्यते चाविशन्मुहुः ।
तं बालमचिराद्धन्ति ग्रहः सम्पूर्णलक्षणः ॥ १७ ॥
विपरीतमतः[5] साध्यं चिकित्सेदचिरादितम् ।
गृहे[6] पुराणहविषाऽभ्यज्य बालं शुचौ शुचिः ॥ १८ ॥
सर्षपान् प्रकिरेत्तेषां[7] तैलैर्दीपञ्च कारयेत् ।
सदा सन्निहितञ्चापि जुहुयाद्धव्यवाहनम्[8] ॥ १९ ॥
सर्वगन्धौषधीबीजैर्गन्धमाल्यैरलङ्कृतम्[9] ।
अग्नये कृत्तिकाभ्यश्च स्वाहा स्वाहेति सन्ततम् ॥ २० ॥
नमः[10] स्कन्दाय देवाय ग्रहाधिपतये नमः ।

---

स तथोक्तः । १ मुखमण्डिकार्त इत्यर्थः । २ नैगमेषग्रहार्तस्य लक्षणं वक्ति—य इति । यः=बालः, मध्ये=मध्याङ्गे विनम्यते, सोद्वेगं=सत्रासं विलपति, ऊर्ध्वमीक्षमाणः=ऊर्ध्वमवलोकयन् । ३ प्रततं=निरन्तरम्, वसासगन्धिः=वसासमगन्धिः ।

४ असाध्यग्रहार्तलक्षणं दर्शयति—**प्रस्तब्ध इति** । प्रस्तब्धः=प्रकर्षेण स्तब्धाङ्गः, आविशन्=आवेशं प्राप्नुवन् । ५ साध्यग्रहार्तलक्षणं निर्दिशति—**विपरीतमिति** । विपरीतं=पूर्वोक्तासाध्यप्रस्तब्धादिलक्षणप्रतिकूलमित्यर्थः । अचिरादितं=स्वल्पकालपीडितम् । ६ साध्यग्रहार्तलक्षणमाह—**गृह इति** । पुराणहविषा=पुराणघृतेन, शुचौ=शुचिदेशे, शुचिः=वैद्य इत्यर्थः । ७ तेषां=सर्षपाणाम्, कारयेत=प्रज्ज्वालयेत् । ८ हव्यवाहनम्=अग्निमित्यर्थः ।

९ 'चातुर्जातककर्पूरकक्कोलागुरुकुङ्कुमम् । लवङ्गसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥' इति सर्वगन्धद्रव्याणि, यवधान्यतिलादीन्योषधीबीजानि, 'ओषध्यः फलपाकान्ताः' इत्यमरः । यवादीनां मानमुक्तं याज्ञिकैः—'यवार्धं तण्डुलाः प्रोक्तास्तण्डुलार्धं तिलाः स्मृताः । तिलार्धं शर्कराः प्रोक्ता आज्यं भागचतुष्टयम् ॥' इति । १० तत्र यं मन्त्रमुच्चरेत्तं निर्दिशति—**नम इति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिरसा त्वाऽभिवन्देऽहं प्रतिगृह्णीष्व मे बलिम् ।
नीरुजो निर्विकारश्च शिशुर्मे जायतां द्रुतम्[1] ॥ २१ ॥
इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे नवग्रहाकृतिविज्ञानीयो नाम ( प्रथमोऽध्यायः, आदितः ) सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

---

## अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

अथातः[2] स्कन्दग्रहप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
स्कन्दग्रहोपसृष्टानां[3] कुमाराणां प्रशस्यते ।
वातघ्नद्रुमपत्राणां निष्काथः परिषेचने ॥ ३ ॥
तेषां[4] मूलेषु सिद्धञ्च तैलमभ्यञ्जने हितम् ।
सवगन्धसुरामण्डकैडर्य्यावापमिष्यते[5] ॥ ४ ॥
देवदारुणि रास्नायां मधुरेषु[6] द्रुमेषु च ।
सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पानमस्मै प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥
सर्षपाः सर्पनिर्मोको वचा काकादनी[7] घृतम् ।
उष्ट्राजाविगवाञ्चैव रोमाण्युद्धूपनं शिशोः ॥ ६ ॥
सोमवल्लीमिन्द्रवल्लीं शमीं बिल्वस्य कण्टकान् ।

---

१ द्रुतं = शीघ्रमित्यर्थः । 'द्रुतं शीघ्रविलीनयोः' इति हेमचन्द्रः।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकौमारतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तविंशोऽध्यायः ।

---

### अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

२ नवग्रहाकृतिविज्ञानीयानन्तरं 'साधनं चाप्यनन्तरम्' इति प्राक् प्रतिज्ञातत्वादुपक्रमागतं प्रथमं स्कन्दग्रहप्रतिषेधमधिकरोति—अथेति । ३ उपसृष्टानां = जुष्टानाम् । ४ तेषां = भद्रदार्वादिवातघ्नद्रुमाणाम् । ५ सुरामण्डः = सुराया उपरितनोऽच्छो भागः, कैडर्यः = महानिम्बः, आवापः = प्रक्षेपः । ६ मधुरेषु द्रुमेषु = मधूकराजादनप्रभृतिषु वृक्षेषु । ७ काकादनी = गुञ्जा । ८ सोमवल्ली = गुडूची, इन्द्र-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृगादन्याश्च[1] मूलानि ग्रथितान्येव धारयेत् ॥ ७ ॥
रक्तानि माल्यानि तथा पताका रक्ताश्च गन्धा विविधाश्च भक्ष्याः।
घण्टा च देवाय बलिर्निवेद्यः[2][3] सकुक्कुटः स्कन्दग्रहे हिताय ॥ ८ ॥
स्नानं त्रिरात्रं निशि चत्वरेषु कुर्यात्[4] पुरं शालियवैर्नवैस्तु।
अद्भिश्च गायत्र्यभिमन्त्रिताभिः[5] प्रज्वालनं व्याहृतिभिश्च वह्नेः ॥ ९ ॥
रक्षामतः[6] प्रवक्ष्यामि बालानां पापनाशिनीम्।
अहन्यहनि कर्त्तव्या या भिषग्भिरतन्द्रितैः[7] ॥ १० ॥
तपसां तेजसां चैव यशसां वपुषां तथा।
निधानं[8] योऽव्यया देवः स ते स्कन्दः प्रसीदतु ॥ ११ ॥
ग्रहसेनापतिर्देवो[9] देवसेनापतिर्विभुः।
देवसेनारिपुहरः[10] पातु त्वां भगवान् गुहः ॥ १२ ॥
देवदेवस्य[11] महतः पावकस्य च यः सुतः।
गङ्गोमाकृत्तिकानाञ्च स ते[12] शर्म प्रयच्छतु ॥ १३ ॥
रक्तमाल्याम्बरः श्रीमान् रक्तचन्दनभूषितः।
रक्तदिव्यवपुर्देवः पातु त्वां[13] क्रौञ्चसूदनः ॥ १४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे स्कन्दप्रतिषेधो नाम
( द्वितीयोऽध्यायः, आदितः ) अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

---

वल्ली = गोलोमी, 'सफेददूब' इति ख्याता। १ मृगादन्याः = इन्द्रवारुण्याः।

२ बलिं निर्दिशति—रक्तानीति। ३ 'नमः स्कन्दाय देवाय ग्रहाधिपतये नमः' इति पूर्वोक्तमन्त्रेण बलिर्निवेद्य इत्यर्थः। ४ कुर्यात्, किं? नवैः शालियवैः पुरं मण्डलमित्यर्थः। ५ गायत्र्यभिमन्त्रिताभिरद्भिश्च स्नानमिति सम्बन्धनीयम्। एतेन श्लोकद्वयेन त्रिरात्रं बलिस्नानहोमकर्तव्यतोपदिष्टा। ६ अथ बालानां रक्षाविधानमभिधत्ते—रक्षेति। पापनाशिनीं रक्षामिति सम्बन्धः। रक्षा = स्वस्त्ययनं, रक्षणमन्त्रमित्यर्थः। ७ अतन्द्रितैः = अनलसैः। ८ निधानमिति तपसां तेजसां यशसां तथा वपुषामित्यत्र अन्वेति।

९ ग्रहाणां स्कन्दग्रहप्रभृतीनां सेनायाः पतिः ग्रहसेनापतिर्देवसेनापतिः। १० हरतीति हरः, देवसेनारिपूणां दैत्यानां हरो देवसेनारिपुहरः। ११ देवदेवस्य = महादेवस्य। १२ 'शर्मशातसुखानि च' इत्यमरः। १३ क्रौञ्चनामानं पर्वतं सूदयति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः स्कन्दापस्मारप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
बिल्वः शिरीषो गोलोमी[२] सुरसादिश्च यो गणः ।
परिषेके प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्मारशान्तये ॥ ३ ॥
सर्वगन्धविपक्वन्तु तैलमभ्यञ्जने हितम् ।
क्षीरवृक्षकषाये[३] च काकोल्यादौ गणे तथा ॥ ४ ॥
विपक्तव्यं घृतं चापि पानीयं पयसा सह ।
उत्सादनं वचाहिङ्गुयुक्तं[४] स्कन्दग्रहे हितम् ॥ ५ ॥
गृध्रोलूकपुरीषाणि केशा हस्तिनखा घृतम् ।
वृषभस्य च रोमाणि योज्यान्युद्धूपनेऽपि च ॥ ६ ॥
अनन्तां[५] कुक्कुटीं बिम्बीं मर्कटीञ्चापि धारयेत् ।

---

निहन्तीति क्रौञ्चसूदनः । 'स्कन्देन युद्ध्वा सुचिरं चित्रमायी सुमायिना । सशैलस्तस्य दैत्यस्य ख्यातश्चित्रेण कर्मणा । केतुतामगमत् तस्य नाम्ना क्रौञ्चः स उच्यते ॥' इति मृगेन्द्रसंहिता ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकौमारतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्या-मष्टाविंशोऽध्यायः ।

---

### एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ स्कन्दप्रतिषेधानन्तरं क्रमप्राप्तं स्कन्दापस्मारप्रतिषेधमधिकरोति—अथेति । अपगतः स्मारो यस्मादित्यपस्मारः, स्कन्दापस्मारः स्कन्दसखः, तस्य प्रतिषेधं चिकित्सितं स्कन्दापस्मारप्रतिषेधम् । २ गोलोमी=श्वेतदूर्वा, वचेत्यन्ये । सुरसादिर्द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तो गणः । ३ क्षीरवृक्षकषाये न्यग्रोधोदुम्बरादिपञ्चककषाये चतुर्गुणे, पयसा चतुर्गुणेन दुग्धेन सह काकोल्यादौ गणे कल्कीकृते स्नेहचतुर्थांशे घृतं विपक्तव्यम्, तच्च पानीयं पातव्यमित्यर्थः ।

४ वचाहिङ्गुभ्यां युक्तं मिलितमुत्सादनमुद्वर्तनं स्कन्दग्रहे हितं भवतीत्यर्थः । ५ अनन्ता=उत्पलसारिवा, विशल्येत्यन्ये । कुक्कुटी=कुक्कुटीशरीरवत् कुसुमचित्रा वल्ली स्फटि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्वापक्वानि मांसानि प्रसन्ना[1] रुधिरं पयः ॥ ७ ॥
भूतौदनो निवेद्यश्च स्कन्दापस्मारिणेऽवटे[2] ।
चतुष्पथे च कर्त्तव्यं स्नानमस्य यतात्मना[3] ॥ ८ ॥
स्कन्दापस्मारसंज्ञो[4] यः स्कन्दस्य दयितः सखा ।
विशाखसंज्ञश्च शिशोः शिवोऽस्तु विकृताननः ॥ ९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे स्कन्दापस्मारप्रतिषेधो नाम (तृतीयोऽध्यायः, आदितः) एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

---

## त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः[5] शकुनीप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
शकुन्यभिपरीतस्य[6] कार्य्यो वैद्येन जानता ।
वेतसाम्रकपित्थानां निष्क्वाथः[7] परिषेचने ॥ ३ ॥

---

करचितकुक्कुटाण्डतुल्यकन्देति डल्हणः । शाल्मलीत्यन्ये । मर्कटी=कपिकच्छुः, अपामार्ग इत्यपरे । धारयेत् शरीरे इति शेषः । १ प्रसन्ना=सुरा । २ अवटे=गर्ते इत्यर्थः । ३ यतात्मना संयतचित्तेन चतुष्पथे अस्य बालस्य स्नानं कर्तव्यं कारयितव्यमित्यर्थः ।

४ बालस्य रक्षामन्त्रं निर्दिशति—स्कन्देति । स्कन्दस्य कार्तिकेयस्य दयितः प्रियः 'दयितं वल्लभं प्रियम्' इत्यमरः । सखा मित्रं यो विकृताननो विकरालमुखः स्कन्दापस्मारसंज्ञो विशाखसंज्ञः, अस्तीति शेषः । विशाखसंज्ञ इति स्कन्दापस्मारस्य नामान्तरम् । सः शिशोः शिवोऽस्तु कल्याणकृद् भवत्वित्यर्थः । 'शिवः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्' इत्यमरः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकौमारतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

---

## त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

५ क्रमप्राप्तं शकुनीप्रतिषेधमधिकरोति—अथात इति । ६ शकुन्यभिपरीतस्य=शकुनीग्रहव्याप्तस्य बालस्येत्यर्थः । ७ परिषेचने निष्काथः कार्य इति सम्ब-



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कषायमधुरैस्तैलं कार्य्यमभ्यञ्जने शिशोः ।
मधुकोशीरह्रीवेरसारिवोत्पलपद्मकैः ॥ ४ ॥
रोध्रप्रियङ्गुमञ्जिष्ठागैरिकैः प्रदिहेच्छिशुम् ।
व्रणेषूक्तानि चूर्णानि पथ्यानि विविधानि च ॥ ५ ॥
स्कन्दग्रहे धूपनानि तानीहापि प्रयोजयेत् ।
शतावरीमृगैर्वारुनागदन्तीनिदिग्धिकाः ॥ ६ ॥
लक्ष्मणां सहदेवाञ्च बृहतीञ्चापि धारयेत् ।
तिलतण्डुलकं माल्यं हरितालं मनःशिला ॥ ७ ॥
बलिरेष करञ्जेषु निवेद्यो नियतात्मना ।
निष्कुटे च प्रयोक्तव्यं स्नानमस्य यथाविधि ॥ ८ ॥
स्कन्दापस्मारशमनं घृतं चापीह पूजितम् ।
कुर्य्याच्च विविधां पूजां शकुन्याः कुसुमैः शुभैः ॥ ९ ॥

---

न्धः । १ कषायाः न्यग्रोधादयः, मधुराणि काकोल्यादीनि, तैः कषायमधुरैः । न्यग्रोधादिपञ्चानां कषायः, काकोल्यादीनां कल्कश्च ग्राह्यः । २ मधुकं=यष्टीमधु, उशीरं='खस' इति ख्यातम्, ह्रीवेरः='हाऊबेर' इति, सारिवा='अनन्तमूल' इति, उत्पलं=नीलोत्पलम्, पद्मकं=पद्मकाष्ठम् । ३ प्रदिहेत=प्रलिम्पेत् ।

४ व्रणेषु=शकुनीग्रसितबालव्रणेषु, उक्तानि चूर्णानि=द्विव्रणीयोक्तानि मिश्रकोक्तानि च शोधनरोपणानि चूर्णानि, विविधानि पथ्यानि=व्रणितोपासनीयोक्तानि शालिमुद्गदाडिमसैन्धवादीनि । ५ धूपनानि="सर्षपाः सर्पनिर्मोको वचा काकादनी घृतम्" इति स्कन्दग्रहोक्तानि । ६ मृगैर्वारुः=इन्द्रवारुणी, नागदन्ती=दन्तीभेदः, निदिग्धिका=कण्टकारिका । ७ सहदेवा=पीतपुष्पा बला, बृहतो=स्थूलफला कण्टकारिका । ८ करञ्जेषु=नक्तमालमूलेष्वित्यर्थः । नियतात्मना=उपवासादिशुचिना, तदुक्तम्—"सोपवासः शुचिर्नक्तं सशस्त्रो निर्हरेद् बलिम्" इति ।

९ निष्कुटे=गृहोपवने, 'गृहारामास्तु निष्कुटाः' इत्यमरः । यथाविधि=नवैः शालियवैर्निर्मिते मण्डले गायत्र्यभिमन्त्रिताभिरद्भिः स्कन्दग्रहोक्तविधानेन स्नानमित्यर्थः । १० "देवदारुणि रास्नायां मधुरेषु द्रुमेषु च" इत्यादिषु सिद्धं घृतमित्यर्थः । चापीहेति चकारेण "सोमवल्लीमिन्द्रवल्लीं शमीं बिल्वस्य कण्टकान् । मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितान्येव धारयेत् ॥" इति समुच्चीयते । ११ कुसुमैः=जातीपुष्पनीलोत्पलादिपुष्पैरित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरीक्षचरा देवी सर्वालङ्कारभूषिता ।
अयोमुखी तीक्ष्णतुण्डा शकुनी ते प्रसीदतु ॥ १० ॥
दुर्दर्शना महाकाया पिङ्गाक्षी भैरवस्वरा ।
लम्बोदरी शङ्कुकर्णी शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ११ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे शकुनीप्रतिषेधो नाम ( चतुर्थोऽध्यायः, आदितः ) त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो रेवतीप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
अश्वगन्धा च शृङ्गी च सारिवा सपुनर्नवा ।
सहे तथा विदारी च कषायाः सेचने हिताः ॥ ३ ॥
तैलमभ्यञ्जने कार्य्यं कुष्ठे सर्जरसेऽपि च ।
पलङ्कषायां नलदे तथा गिरिकदम्बके ॥ ४ ॥
धवाश्वकर्णककुभधातकीतिन्दुकीषु च ।
काकोल्यादिगणे चैव पानीयं सर्पिरिष्यते ॥ ५ ॥

---

१ बालरक्षामन्त्रमुद्दिशति—अन्तरीक्षेति । अन्तरीक्षे आकाशे चरतीति अन्तरीक्षचरा । २ अत्र 'अधोमुखी' इति पाठान्तरम् । तीक्ष्णतुण्डा तीक्ष्णं तुण्डं मुखं यस्याः सा । ३ पिङ्गे पिङ्गलवर्णेऽक्षिणी यस्याः सा पिङ्गाक्षी । ४ शङ्कुवत् कर्णौ यस्याः सा शङ्कुकर्णी ।

इति सुश्रुतसंहितायां उत्तरतन्त्रान्तर्गतकौमारतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

### एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

५ क्रमागतत्वाच्छकुनीप्रतिषेधानन्तरं रेवतीप्रतिषेधमधिकरोति—अथात इति । ६ अश्वगन्धा = 'असगन्ध' इति ख्याता । शृङ्गी = कर्कटशृङ्गी । ७ सहे = मुद्गपर्णी माषपर्णी च । ८ सर्जरसः = सालरसः, 'राल' इति ख्यातः । ९ पलङ्कषायां = गोक्षुरके, नलदे = जटामांस्याम्, गिरिः = गिरिकर्णिके, कदम्बकः = 'कदम्ब' इति ख्यातः । गिरिकदम्बो महाकदम्ब इत्यन्ये । १० अश्वकर्णः = सालभेदः । ककुभः = अर्जुनः, तिन्दुकी = 'तेन्दू' इति ख्याता । ११ पानीयं = पातव्यमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलत्थाः शङ्खचूर्णञ्च प्रदेहः[१] सार्वगन्धिकः ।
गृध्रोलूकपुरीषाणि यवा यवफलो[२] घृतम् ॥ ६ ॥
सन्ध्ययोरुभयोः कार्य्यमेतदुद्धूपनं शिशोः ।
वरुणारिष्टकमयं[३] रुचकं सैन्दुकं तथा ॥ ७ ॥
सततं धारयेच्चापि कृतं वा पौत्रजीविकम्[४] ।
शुक्लाः सुमनसो[५] लाजाः पयः शाल्योदनं तथा ॥ ८ ॥
बलिर्निवेद्यो[६] गोतीर्थे रेवत्यै प्रयतात्मना ।
सङ्गमे[७] च भिषक् स्नानं कुर्य्याद् धात्रीकुमारयोः ॥ ९ ॥
नानावस्त्रधरा[८] देवी चित्रमाल्यानुलेपना ।
चलत्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु ॥ १० ॥
उपासते यां सततं देव्यो विविधभूषणाः[९] ।
लम्बा कराला विनता तथैव बहुपुत्रिका ।
रेवती शुष्कनामा या सा ते देवी प्रसीदतु[१०] ॥ ११ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे रेवतीप्रतिषेधो नाम ( पञ्चमोऽध्यायः, आदितः ) एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

---

१ प्रदेहः=प्रलेपः, सर्वगन्धेन संसृष्टः सार्वगन्धिकः। "चातुर्जातककर्पूरकक्कोलागुरुकुङ्कुमम्। लवङ्गसहितं चेव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत्॥" इति। २ यवफलः=वंशः। ३ वरुणारिष्टकमयं वरुणनिम्बकाष्ठघटितं तथा सैन्दुकं सिन्धुवारकाष्ठघटितं रुचकं माल्यं धारयेदिति सम्बन्धः। रुचको बीजपूरे च निष्के दन्तकपोतयोः। न द्वयोः सर्ज्जिकाक्षारेऽप्यश्वाभरणमाल्ययोः। सौवर्चलेऽपि मङ्गल्यद्रव्येऽपि कटकेऽपि च॥' इति मेदिनी। ४ पुत्रजीवः 'जीयापोता' इति ख्यातस्तत्काष्ठकृतं पौत्रजीविकं रुचकं वेत्यर्थः। ५ सुमनसः=पुष्पाणि। ६ गोतीर्थं=गोशालायाम्। ७ सङ्गमे=नदीद्वयसङ्गमने, कुर्यात्=कारयेदित्यर्थः।

८ बालस्य रक्षामन्त्रमुद्दिशति—**नानेति**। धरतीति धरा, नानावस्त्राणां धरेति नानावस्त्रधरा। ९ विविधभूषणा देव्यः अन्या देव्यः सततं यां रेवतीम् उपासते सेवन्ते इति योज्यम्। १० प्रसीदतु=प्रसन्ना भवत्वित्यर्थः।

**इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकौमारतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकत्रिंशोऽध्यायः।**

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः[1] पूतनाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
कपोतवङ्क[2]ाऽरलुको वरुणः पारिभद्रकः ।
आस्फोता[3] चैव योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥ ३ ॥
वचा वयःस्था[4] गोलोमी हरितालं मनःशिला ।
कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थे वर्ग इष्यते ॥ ४ ॥
हितं घृतं तुगाक्षी[5]र्या सिद्धं मधुरकेषु च ।
कुष्ठतालीशखदिरचन्दनस्यन्दने तथा ॥ ५ ॥
देवदारुवचाहिङ्गुकुष्ठं गिरिकदम्ब[6]कः ।
एलाहरेण[7] श्चापि योज्या उद्धूपने सदा ॥ ६ ॥
गन्धना[8]कुलिकुम्भीके मज्जानो बदरस्य च ।
कर्कटास्थि घृतञ्चापि धूपनं सर्षपैः सह ॥ ७ ॥
काकादनी[9] चित्रफलां बिम्बीं गुञ्जाञ्च धारयेत् ।
मत्स्यौदनञ्च कुर्वीत कृशरां पलल[10]ं तथा ।
शरावसम्पुटे कृत्वा बलिं शून्यगृहे हरेत् ॥ ८ ॥

---

### द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ रेवतीप्रतिषेधानन्तरं क्रमागतं पूतनाप्रतिषेधमधिकरोति—**अथात इति** । २ कपोतवङ्का = ब्रह्मसुवर्चला, ब्राह्मीत्यन्ये । अरलुकः = 'सोनापाठा' इति ख्यातः । वरुणः = 'बरना' इति ख्यातः । पारिभद्रकः = निम्बः । ३ आस्फोता = सारिवा ।

४ वयःस्था = ब्राह्मी, गोलोमी = श्वेतदूर्वा । ५ तुगाक्षीर्या = वंशलोचनायाम्, मधुरकेषु = काकोल्यादिमधुरवर्गेषु । तत्र तुगाक्षीर्याः कषायः, काकोल्यादिवर्गस्य कल्को ग्राह्यः । ६ गिरिः = गिरिकर्णिका, कदम्बकः = कदम्बः, गिरिकदम्बो महाकदम्ब इत्यन्ये ।

७ हरेणवः = रेणुकाः, निर्गुण्डीबीजमित्यर्थः । ८ गन्धनाकुली = रास्ना, कुम्भीका = वारिपर्णी । ९ काकादनी = श्वेतगुञ्जा, चित्रफला = इन्द्रवारुणी, कण्टकारीत्यन्ये । १० पललं = तिलचूर्णम् । 'पललं पङ्कमांसयोः । तिलचूर्णे पललस्तु राक्षसे'

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्छिष्टेनाभिषेकेण शिशोः स्नपनमिष्यते[1]।
पूज्या च पूतना देवी बलिभिः सोपहारकैः ॥ ९ ॥
मलिनाऽम्बरसंवीता[2] मलिना रूक्षमूर्द्धजा।
शून्यागाराश्रिता देवी दारकं[3] पातु पूतना ॥ १० ॥
दुर्दर्शना सुदुर्गन्धा करालाऽ मेघकालिका।
भिन्नगाराश्रया[4] देवी दारकं पातु पूतना ॥ ११ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे ( षष्ठोऽध्यायः, आदितः ) द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

---

## त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।

अथातोऽन्धपूतनाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः[5] ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
तिक्त[6]द्रुमपत्राणां कार्य्यः क्काथोऽवसेचने।
सुरा सौवीरक[7]ं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ॥ ३ ॥
तथा सर्जरसश्चैव तैलार्थमुपदिश्यते।

---

इति हैमः। १ उच्छिष्टेन=आचमनावशिष्टेन, अभिषेकेण=जलेनेत्यर्थः।

२ बालस्य रक्षामन्त्रं निर्दिशति—**मलिनेति**। मलिनाम्बरसंवीता=मलिनवस्त्राच्छादिता, रूक्षमूर्धजा=रूक्षकेशा। ३ दारकं=बालम्, 'दारको भेदके पुत्रे' इति हैमः। ४ भिन्नागारे आश्रयो यस्याः सा भिन्नागाराश्रया, पूतना देवी दारकं बालं पातु रक्षतु।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकौमारतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्वात्रिंशोऽध्यायः।

---

## त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः।

५ पूतनासामान्यात् क्रमागतमन्धपूतनाप्रतिषेधमधिकरोति—**अथेति**। ६ तिक्तकद्रुमाणां निम्बादिवृक्षाणां पत्राणि तेषां क्काथोऽवसेचने कार्य इत्यर्थः। ७ सौवीरकं=काञ्जिकभेदः। यथा—"सौवीरस्तु यवैरामैः पक्वैर्वा निस्तुषैः कृतम्। गोधूमैरपि सौवीरमाचार्याः केचिदूचिरे ॥" इति। सुरासौवीरके तैलात् प्रत्येकं चतुर्गुणे,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिप्पल्यः पिप्पलीमूलं वर्गो मधुरको[1] मधु ॥ ४ ॥
शालपर्णी बृहत्यौ च घृतार्थमुपदिश्यते ।
सर्वगन्धैः प्रदेहश्च गात्रेष्वक्ष्णोश्च शीतैः[2] ॥ ५ ॥
पुरीषं कौक्कुटं केशांश्चर्म सर्पत्वचन्तथा ।
जीर्णांश्च भिक्षुसङ्घाटीं[3] धूपनायोपकल्पयेत् ॥ ६ ॥
कुक्कुटीं[4] मर्कटीं शिम्बीमनन्ताञ्चापि धारयेत् ।
सांसमांसं तथा पक्वं शोणितञ्च चतुष्पथे ॥ ७ ॥
निवेद्यमन्तश्च[5] गृहे शिशो रक्षानिमित्ततः ।
शिशोश्च[6] स्नपनं कुर्य्यात् सर्वगन्धोदकैः शुभैः ॥ ८ ॥
करालाँ[7] पिङ्गला मुण्डा कषायाम्बरवासिनी ।
देवी बालमिमं प्रीता संरक्षत्वन्धपूतना[8] ॥ ९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रेऽन्धपूतनाप्रतिषेधो नाम ( सप्तमोऽध्यायः, आदितः ) त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

---

कुष्ठादीनि कल्कद्रव्याणि, तानि च तैलचतुर्थांनि । १ मधुरकः = काकोल्यादिः, मधु = माक्षिकम्, तस्य च शीतीभूते घृते प्रक्षेपः ।

२ शीतलैः कुमुदोत्पलादिभिरन्यैरपि द्रव्यैरित्यर्थः । ३ भिक्षुसङ्घाटी = शाक्यभिक्षोः परिव्राजकस्य वा जीर्णवस्त्रम् । ४ कुक्कुटी = कुक्कुटीशरीरवत् स्फटिकरचितकुक्कुटाण्डसदृशकन्दा कुसुमचित्रा वल्लीति डल्हणः । शात्मलीत्यन्ये । मर्कटी = कपिकच्छूः, अपामार्ग इत्यन्ये । अनन्ता = उत्पलसारिवा ।

५ अन्तःगृहे = भिन्नागाराभ्यन्तरे । ६ शिशोश्चेति चकारेण धात्र्याश्च स्नपनं कुर्यादित्यर्थः । ७ बालस्य रक्षामन्त्रमुपदिशति—करालेति । ८ अन्धपूतना देवी प्रीता सती इमं बालं संरक्षतु पालयत्विति सम्बन्धः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकौमारतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः शीतपूतनाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
कपित्थं सुवहां[२] बिम्बीं तथा बिल्वं प्रचीबलम् ।
नन्दीं[३] भल्लातकञ्चापि परिषेके प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥
बस्तमूत्रं गवां मूत्रं मुस्तञ्च सुरदारु[४] च ।
कुष्ठञ्च सर्वगन्धांश्च तैलार्थमवचारयेत् ॥ ४ ॥
रोहिणी[५]सर्जखदिरपलाशककुभत्वचः ।
निष्क्वाथ्य तस्मिन्निष्क्वाथे सक्षीरं विपचेद् घृतम् ॥ ५ ॥
गृध्रोलूकपुरीषाणि बस्तगन्धा[६]महेस्त्वचः ।
निम्बपत्राणि मधुकं धूपनार्थं प्रयोजयेत् ॥ ६ ॥
धारयेदपि लम्बा[७]ञ्च गुञ्जां काकादनीं तथा ।
नद्यां मुद्गकृतैश्चान्नैस्तर्पयेच्छीतपूतनाम्[८] ॥ ७ ॥
देव्यै देयश्चोपहारो वारुणी रुधिरं तथा ।
जलाशयान्ते[९] बालस्य स्नपनं चोपदिश्यते ॥ ८ ॥
मुद्गौदनाशना[१०] देवी सुराशोणितपायिनी ।

---

### चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ अन्धपूतनाप्रतिषेधानन्तरं पूतनासामान्याच्छीतपूतनाप्रतिषेधमधिकरोति—**अथात इति** । २ सुवहा=रास्ना, बिम्बी=बिम्बीफलम्, प्रचीबलः=मत्स्याक्षकः, प्रचीयते बलमनयेति प्रचीबला, पृषोदरादिः । प्रचीबला बल्या तुरगगन्धा चेति यावत्, तस्य फलं प्रचीबलमिति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् ।

३ नन्दी=नन्दीवृक्षः । ४ सुरदारु=देवदारु । ५ रोहिणी=कट्फलः, सर्जः=सालः, 'साले तु सर्जकाश्वर्यश्वकर्णकाः सस्यसंवरः' इत्यमरः । ककुभः=अर्जुनः । रोहिण्यादीनां त्वचः । ६ बस्तगन्धा=अजगन्धा, अहेस्त्वचः=सर्पकञ्चुकाः । ७ लम्बा=तिक्तदुम्बी, काकादनी=श्वेतगुञ्जा । ८ शीतपूतना जलाशयाधिवासिनी, अतो नद्यां मुद्गकृतैरन्नैर्भक्ष्यैस्तां तर्पयेदित्यर्थः । ९ जलाशयान्ते=नदीनिकटे ।

१० बालस्य रक्षामन्त्रमाह—**मुद्गौदनेति** । मुद्गौदनमशनं भोजनं यस्याः सा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलाशयालया देवी पातु त्वां शीतपूतना ॥ ९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे शीतपूतनाप्रतिषेधो नाम ( अष्टमोऽध्यायः, आदितः ) चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

---

## पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः।

अथातो[2] मुखमण्डिकाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

कपित्थबिल्वतर्कारी[3]वांशीगन्धर्वहस्तकाः।
कुबेराक्षी[4] च योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥ ३ ॥
स्वरसैर्भृङ्गवृक्षाणां[5] तथाऽजहरिगन्धयोः।
तैलं वसाञ्च संयोज्य पचेदभ्यञ्जने शिशोः ॥ ४ ॥
मधूलिकायां[6] पयसि तुगाक्षीर्यां गणे तथा।
मधुरे[7] पञ्चमूले च कनीयसि घृतं पचेत् ॥ ५ ॥

---

मुद्गौदनाशया। १ जलाशय आलया निवासस्थानं यस्याः सा शीतपूतना देवी त्वां बालं पातु रक्षतु।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकौमारतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।

---

### पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः।

२ शीतपूतनाप्रतिषेधानन्तरं नवग्रहाकृतिविज्ञानीयक्रमोक्तं मुखमण्डिकाप्रतिषेधमधिकरोति—अथात इति। ३ तर्कारी=अरणी, 'जया जयन्ती तर्कारी नादेयी वैजयन्तिका' इत्यमरः। वांशी=वंशलोचना, गन्धर्वस्य इस्त इव पत्रमस्येति गन्धर्वहस्तकः शुक्लैरण्डः। ४ कुबेराक्षी=पाटला। ५ वातहरबिल्वादिकानां भृङ्गाः पत्रभङ्गाः, तदुपयोगिका वृक्षा इति डल्हणः। 'भृङ्गं त्वक्पत्रं भृङ्गास्तु षिङ्गधूम्याटमार्कवाः' इति हैमः। भृङ्गवृक्षो भृङ्गराज इति सुश्रुतार्थसन्दीपनम्। अजहरिगन्धयोः=बस्तगन्धाऽश्वगन्धयोः।

६ मधूलिकायां=मूर्वायाम्, पयसि=गोदुग्धे, तुगाक्षीर्यां=वंशलोचनायाम्। ७ मधुरे=काकोल्यादिमधुरवर्गे, कनीयसि पञ्चमूले=त्रिकण्टकबृहतीद्वयपृथक्पर्ण्यो

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचासर्जरसः[1] कुष्ठं सर्पिश्चोद्धूपनं हितम् ।
धारयेदपि जिह्वाश्च चाषचीरल्लिसर्पजाः[2] ॥ ६ ॥
वर्णकं[3] चूर्णकं माल्यमञ्जनं पारदं तथा ।
मनःशिलाश्चोपहरेद्गोष्ठमध्ये[4] बलिं तथा ॥ ७ ॥
पायसं सपुरोडाशं बल्यर्थमुपसंहरेत् ।
मन्त्रपूताभिरद्भिश्च[5] तत्रैव स्नपनं हितम् ॥ ८ ॥
अलङ्कृता[6] रूपवती सुभगा कामरूपिणी ।
गोष्ठमध्यालयरता पातु त्वां[7] मुखमण्डिका ॥ ९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे मुखमण्डिकाप्रतिषेधो नाम ( नवमोऽध्यायः, आदितः ) पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

---

## षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो नैगमेषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

---

विदारिगन्धा चेति द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्ते । १ सर्जरसः=‘राल’ इति ख्यातः ।

२ चाषः=स्वर्णचूडो नीलाङ्गः, ‘नीलकण्ठ’ इति लोके । ‘अशोकश्च विशोकश्च नन्दनः पुष्टिवर्धनः। हेमतुण्डो मणिग्रीवः स्वस्तिकश्चापराजितः॥ अष्टौ चाषस्य नामानि चाषं दृष्ट्वा तु यः पठेत् । अर्थसिद्धिर्भवेत्तस्य मिष्टमन्नं वराङ्गना ॥” इति । चीरल्लिः=‘चील’ इति प्रथते । ३ वर्णकः=रोचनिका, हरितालमित्यन्ये । चूर्णकम्=‘अबीर’ इति बोध्यम्, अञ्जनं=रसाञ्जनम् ।

४ गोष्ठमध्ये=गोशालामध्ये । ५ मन्त्रपूताभिः=गायत्र्यभिमन्त्रिताभिः । तत्रैव=गोष्ठमध्ये इत्यर्थः । ६ बालस्य रक्षामन्त्रं निर्दिशति—अलङ्कृतेति । अलङ्कृता=अलङ्कारयुक्ता, कामं यथेच्छं रूपमस्ति अस्या इति कामरूपिणी । ७ त्वां बालं पातु रक्षतु ।

**इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकौमारतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।**

---

## षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

८ नवग्रहाकृतिविज्ञानीयक्रमागतं पारिशेष्यान्नैगमेषप्रतिषेधमधिकरोति—अथेति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिल्वाग्निमन्थपूतीकाः[1] कार्य्याः स्युः परिषेचने ।
सुरा सबीजं धान्याम्लं परिषेके च शस्यते ॥ ३ ॥
प्रियङ्गुसरलाऽनन्ताशतपुष्पाकुटन्नटैः[2] ।
पचेत्तैलं सगोमूत्रैर्दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ॥ ४ ॥
पञ्चमूलद्वयक्वाथे क्षीरे मधुरकेषु च[3] ।
पचेद् घृतञ्च मेधावी खर्जूरीमस्तकेऽपि वा ॥ ५ ॥
वचां वयःस्थां गोमोमीं जटिलां चापि धारयेत्[4] ।
उत्सादनं[5] हितं चात्र स्कन्दापस्मारनाशनम् ॥ ६ ॥
सिद्धार्थकवचाहिङ्गुकुष्ठञ्चैवाक्षतैः[6] सह ।
भल्लातकाजमोदाश्च हितमुद्धूपनं शिशोः ॥ ७ ॥
मर्कटोलूकगृध्राणां पुरीषाणि नवग्रहे ।
धूपः सुप्ते जने[7] कार्य्यो बालस्य हितमिच्छता ॥ ८ ॥
तिलतण्डुलकं माल्यं भक्ष्यांश्च विविधानपि ।
कुमारपितृमेषाय वृक्षमूले[8] निवेदयेत् ॥ ९ ॥
अधस्ताद्वटवृक्षस्य स्नपनं[9] चोपदिश्यते ।
बलिं[10] न्यग्रोधवृक्षेषु तिथौ षष्ठ्यां निवेदयेत् ॥ १० ॥
[11] अजाननश्चलाक्षिभ्रूः कामरूपी महायशाः ।

---

मेषाननोऽयं ग्रह इति ग्रहोत्पत्त्यध्याये वक्ष्यते । १ पूतीकः=नक्तमालः । २ सरला=शुक्ला त्रिवृत्, अनन्ता=उत्पलसारिवा, शतपुष्पा='सौंफ' इति ख्याता। कुटन्नटं=तगरम्, श्योनाक इत्यन्ये। दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः गोमूत्रैश्च प्रत्येकं समं तैलं प्रियङ्ग्वादिकल्कं तैलचतुर्थांशं प्रक्षिप्य पचेत्।

३ पञ्चमूलद्वयक्वाथे दशमूलक्वाथे त्रिगुणे, क्षीरे घृतसमे मधुरकेषु काकोल्यादिषु खर्जूरीमस्तके खर्जूरीमज्जनि वा पानार्थं घृतं पचेदित्यर्थः। तत्र काकोल्यादिकल्कः स्नेहचतुर्थांशः, खर्जूरीमज्जा वा चतुर्थांशः । ४ वयःस्था=गुडूची, हरीतकीति सुश्रुतार्थसन्दीपनम्। गोलोमी=श्वेतदूर्वा, जटिला=जटामांसी ।।५ उत्सादनमुद्वर्तनं, वचाहिङ्गुयुतं स्कन्दापस्मारनाशनं हितमत्र नैगमेषग्रहजुष्टेऽस्तीत्यर्थः। ६ सिद्धार्थकः=श्वेतसर्षपः, अक्षतैः=यवैरित्यर्थः। ७ सुप्ते जने=अर्द्धरात्रे। ८ क्षीरवृक्षमूले इत्यर्थः।

९ गायत्र्यभिमन्त्रितजलेन स्नपनमित्यर्थः । १० बलिं="तिलतण्डुलकं माल्यं हरितालं मनःशिला" इति शकुनीप्रतिषेधोक्तम्। ११ बालस्य रक्षामन्त्रं दर्शयति—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालं बालपिता देवो नैगमेषोऽभिरक्षतु ॥ ११ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे नैगमेषप्रतिषेधो नाम ( दशमोऽध्यायः, आदितः ) षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

---

## सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो ग्रहोत्पत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

नव स्कन्दादयः प्रोक्ता बालानां य इमे ग्रहाः ।

श्रीमन्तो दिव्यवपुषो नारीपुरुषविग्रहाः ॥ ३ ॥

एते गुहस्य रक्षार्थं कृत्तिकोमाऽग्निशूलिभिः ।

सृष्टाः शरवणस्थस्य रक्षितस्यात्मतेजसा ॥ ४ ॥

स्त्रीविग्रहा ग्रहा ये तु नानारूपा मयेरिताः ।

---

अजेति । अजाननः = मेषाननः । १ बालपिता बालस्य पिता देवो नैगमेषो बालमभिरक्षतु सर्वतः पात्वित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकौमारतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

---

### सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

२ नवग्रहाकृतिविज्ञानीये 'उत्पत्तिं कारणं चैव' इत्युररीकृतत्वात् सम्प्रति ग्रहोत्पत्त्यध्यायमधिकरोति—**अथात इति** । ग्रहाणां स्कन्दादीनामुत्पत्तिं प्राप्तिमधिकृत्य कृतोऽध्यायो ग्रहोत्पत्तिस्तम् । तद्धितप्रत्ययस्य लुक् । ३ बालग्रहाणां नवानामुत्पत्तिं वर्णयति—**नवेति** । ४ विग्रहाः=शरीरम्, पुरुषशरीराः, स्त्रीशरीरा इत्यर्थः । तत्र स्कन्द-स्कन्दापस्मार-नैगमेषाः पुरुषशरीरधारिणः, अवशिष्टाः शकुनी-रेवती-पूतना-ऽन्धपूतना-शीतपूतना-मुखमण्डिका इति षट् स्त्रीशरीरधारिणो ग्रहाः ।

५ कृत्तिकोमाऽग्निशूलिभिः आत्मतेजसा स्वशक्त्या रक्षितस्य शरवणस्थस्य ग्रहस्य रक्षार्थम् एते ग्रहाः सृष्टा इति सम्बन्धः । उमापदं गङ्गाया अप्युपलक्षणम्, अनन्तरं 'गङ्गोमाकृत्तिकानाम्' इत्युक्तेः । शरवणे स्थितस्य गुहस्य कथा वामनपुराणे चतुःपञ्चाशत्तमेऽध्याये 'दिव्ये शरवणे स्थितः' इत्यादिनाऽनुसन्धेया । ६ मया=धन्वन्तरिणा ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गङ्गोमाकृत्तिकानां ते[1] भागा राजसतामसाः ॥ ५ ॥
नैगमेषस्तु पार्वत्या सृष्टो मेषाननो ग्रहः ।
कुमार[2]धारी देवस्य गुहस्यात्मसमः सखा ॥ ६ ॥
स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः सोऽग्नि[3]नाऽग्निसमद्युतिः ।
स च स्कन्दसखा नाम विशाख इति चोच्यते ॥ ७ ॥
स्कन्दः सृष्टो भगवता देवेन त्रिपुरारि[4]णा ।
बिभर्ति चापरां संज्ञां कुमार इति स ग्रहः ॥ ८ ॥
बाललीलाधरो योऽयं देवो रुद्राग्निसम्भवः ।
मिथ्या[5]ऽऽचारेषु भगवान् स्वयं नैष प्रवर्त्तते ॥ ९ ॥
कुमा[6]रः स्कन्दसामान्यादत्र केचिदपण्डिताः ।
गृह्णातीत्यल्पविज्ञाना ब्रुवते देहचिन्तकाः ॥ १० ॥
ततो भगवति स्कन्दे सुरसेनाप[7]तौ कृते ।
उपत[8]स्थुर्ग्रहाः सर्वे दीप्तशक्तिधरं गुहम् ॥ ११ ॥
ऊचुः प्राञ्जलयश्चैनं वृत्तिं नः[9] संविधत्स्व वै ।
तेषामर्थे[10] ततः स्कन्दः शिवं देवमचोदयत् ॥ १२ ॥

---

१ ते = स्त्रीविग्रहाः, भागाः = अंशाः, राजसतामसाः = रजस्तमोमयभूयिष्ठा इत्यर्थः। पुरुषविग्रहा ग्रहास्तु रजस्तमोमयाः, न तु तेषु तयोर्भूयिष्ठत्वम्।

२ कुमारधारी = कुमारपालयिता। ३ सः स्कन्दापस्मारोऽग्निना सृष्ट इत्यर्थः। ४ त्रिपुरारिणा = शूलिना, शिवेनेति यावत्। ५ मिथ्या आचारा येषां ते तेषु मिथ्याऽऽचारेषु बालावेशात्मकेषु पापाचारेष्वित्यर्थः। स्वयमेष भगवान् कार्तिकेयो न प्रवर्तते, किन्तु तद्रक्षकाः स्कन्दस्कन्दापस्मारादय एव प्रवर्तन्ते।

६ ये तु स्कन्दग्रहस्य स्कन्द इति कुमार इति च कार्तिकेयसमानं नामधेयं दृष्ट्वा भगवान् कार्तिकेय एव बालेषु प्रवर्तते इत्याहुस्तान् प्रति कथयति—**कुमार इति**। कुमारः कार्तिकेयः स्कन्दसामान्यात् स्कन्दग्रहनामतुल्यत्वाद् बालं गृह्णातीति केचिदपण्डिता देहचिन्तका ब्रुवते, तेऽल्पविज्ञाना अज्ञा इत्यर्थः। ७ सुराणां सेनायाः पतौ स्वामिनि सुरसेनापतौ स्कन्दे कृते सति। ८ उपतस्थुः = वृत्तीच्छया आगता इत्यर्थः। ९ नः = अस्माकम्, वृत्तिं = वर्तनम्, जीविकोपायम्, 'वृत्तिर्वर्तनजीवने इत्यमरः। संविधत्स्व = कुरु।

१० ततः = ग्रहकर्तृकवृत्तिप्रार्थनाऽनन्तरम्, देवं शिवम् अचोदयत् प्रार्थयामास।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो ग्रहांस्तानुवाच भगवान् भगनेत्रहृत्[1] ।
तिर्यग्योनिं मानुषञ्च दैवञ्च त्रितयं जगत् ॥ १३ ॥
परस्परोपकारेण[2] वर्त्तते धार्य्यतेऽपि च ।
देवाँ[3] मनुष्यान् प्रीणन्ति तैर्य्यग्योनींस्तथैव च ॥ १४ ॥
वर्त्तमानैर्यथाकालं शीतवर्षोष्णमारुतैः ।
इज्याऽञ्जलिनमस्कारजपहोमव्रतादिभिः ॥ १५ ॥
नँराः[4] सम्यक् प्रयुक्तैश्च प्रीणन्ति त्रिदिवेश्वरान् ।
भागधेयं विभक्तञ्च शेषं[5] किञ्चिन्न विद्यते ॥ १६ ॥
तद्[6] युष्माकं शुभा वृत्तिर्बलेष्वेव भविष्यति ।
कुलेषु येषु नेज्यन्ते देवाः पितर एव च ॥ १७ ॥
ब्राह्मणाः साधवश्चैव गुरवोऽतिथयस्तथा ।
निवृत्ताचारशौचेषु परपाकोपजीविषु ॥ १८ ॥
उत्सन्नँबलिभिक्षेषु भिन्नकांस्योपभोजिषु[7] ।
गृहेषु तेषु ये बालास्तान् गृह्णीध्वमशङ्किताः ॥ १९ ॥
तत्र वो विपुला [8]वृत्तिः पूजा चैव भविष्यति ।
एवं ग्रहाः समुत्पन्ना बालान् गृह्णन्ति चाप्यतः ॥ २० ॥
ग्रहो [9]सृष्टा बालास्तु दुश्चिकित्स्यतमा मताः ।
वैकल्यं[10] मरणं चापि ध्रुवं स्कन्दग्रहे मतम् ॥ २१ ॥

---

१ भगनेत्रहृत=भगनयनहारी, शिव इत्यर्थः । २ परस्परोपकारेण=अन्योन्योपकारेण, यथा तिर्यग्योनयो गवादयः क्षेत्रकर्षणादिना मनुष्यानुपकुर्वन्ति, मनुष्याश्च माषादिदानेन तिर्यग्योनीनुपकुर्वन्ति ।

३ देवमानुषयोः परस्परमुपकारं दर्शयन् प्राक् मानुषेषु देवोपकारमाह—**देवा इति** । तैर्यग्योनीन्=पशुपक्षियोनीन् । ४ देवेषु मानुषोपकारं निरूपयति—**नरा इति** । सम्यक्प्रयुक्तैः=वेदोक्तविधानेन सम्यक्साधितैरित्यर्थः । ५ शेषम्-विभक्तं किञ्चिद् भागधेयम् अंशसमूहो न विद्यते ।

६ यतो यूयं बालरक्षार्थं सृष्टास्तत्तस्मात्कारणादित्यर्थः । ७ उत्सन्ने बलिभिक्षे येषु तेषु उत्सन्नबलिभिक्षेषु । भिन्ने कांस्ये कांस्यपात्रे उपभोक्तुं शीलं येषां तेषु भिन्न-कांस्योपभोजिषु । ८ हिंसाऽऽत्मिका वृत्तिरित्यर्थः । ९ ग्रहेणोपसृष्टा जुष्टा ग्रहोपसृष्टाः । १० वैकल्यं=विकलता ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कन्दग्रहोऽत्युग्रतमः सर्वेष्वेव यतः स्मृतः ।
अन्यो वा सर्वरूपस्तु[1] न साध्यो ग्रह उच्यते ॥ २२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे ग्रहोत्पत्त्यध्यायो नाम (एकादशोऽध्यायः, आदितः) सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

---

## अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो[2] योनिव्यापत्प्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
प्रवृद्धलिङ्गं[3] पुरुषं याऽत्यर्थमुपसेवते ।
रूक्षदुर्बलबाला या तस्या वायुः प्रकुप्यति ॥ ३ ॥
स दुष्टो योनिमासाद्य योनिरोगाय कल्पते ।
त्रयाणामपि दोषाणां यथास्वं लक्षणेन तु ॥ ४ ॥
विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसङ्ग्रहे ।
मिथ्याऽऽचारेण[4] याः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्त्तवेन च ॥ ५ ॥
जायन्ते बीजदोषाच्च[5] दैवाच्च शृणु ताः पृथक् ।

---

१ सर्वाणि रूपाणि लक्षणानि यत्र स सर्वरूपोऽन्यो वा ग्रहः साध्यो नोच्यते इत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकौमारतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

---

### अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

२ ग्रहोत्पत्त्यध्यायानन्तरं कौमारतन्त्रमुपसंहरन् कुमारजन्मविकारकारणाद् योनिव्यापत्प्रतिषेधमधिकरोति—अथात इति । योनेर्व्यापदां रोगाणां प्रतिषेधो योनिव्यापत्प्रतिषेधस्तम् । ३ योनिरोगनिदानमाह—प्रवृद्धेति । रूक्षदुर्बलबाला या स्त्री प्रवृद्धलिङ्गं पुरुषमत्यर्थमतिशयेनोपसेवते, तस्या वायुः प्रकुप्यति; स वायुर्दुष्टः प्रकुपितः सन् योनिमासाद्य योनिरोगाय कल्पते इति सम्बन्धः । ४ मिथ्याऽऽचारेण = असम्यगाहाराचारेण, चरधातोर्गतिभक्षणार्थत्वात् । तन्त्रान्तरे—"मिथ्याऽऽहारविहाराभ्यां दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितात् । आर्तवाद् बीजतश्चापि दैवाद्वा स्युर्भगे गदाः ॥" इति । प्रदुष्टेनार्तवेन=वातादिदुष्टरजसेत्यर्थः । ५ बीजदोषात्=मातापित्रोरारम्भकबीजदोषात्, दैवात्=प्राक्तनाधर्मवशात् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदावर्त्ता[1] तथा वन्ध्या विप्लुता च परिप्लुता ॥ ६ ॥
वातला चेति वातोत्थाः, पित्तोत्था रुधिरक्षरा ।
वामिनी स्रंसिनी चापि पुत्रघ्नी पित्तला च या ॥ ७ ॥
अत्यानन्दा च या योनिः कर्णिनी चरणाद्वयम्[2] ।
श्लेष्मला च कफाज्ज्ञेया षण्ढाख्या[3] फलिनी तथा ॥ ८ ॥
महती सूचिवक्त्रा च सर्वजेति त्रिदोषजा ।
सफेनिलमुदावर्त्ता[4] रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति ॥ ९ ॥
बन्ध्यां नष्टार्त्तवां[5] विद्याद्विप्लुतां नित्यवेदनाम् ।
परिप्लुतायां[6] भवति ग्राम्यधर्मे रुजा भृशम् ॥ १० ॥
वातला[7] कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता ।
चतसृष्वपि चाद्यासु[8] भवन्त्यनिलवेदनाः ॥ ११ ॥
सदाह[9] प्रक्षरत्यस्रं यस्यां सा लोहितक्षरा ।
सवातमुद्गिरेद्बीजं[10] वामिनी रजसा युतम् ॥ १२ ॥

---

१ दोषभेदेन योनिरोगसंख्यामाख्याति—**उदावर्तेति** । २ चरणाद्वयम्=अचरणा अतिचरणा चेति द्वितयम् । ३ षण्डाख्या=षण्ढी । ४ वातजपञ्चयोनिरोगाणां लक्षणानि निर्दिशति—**सफेनिलेति** । सा योनिः फेनिलं फेनवदार्तवं मुञ्चति । ऊर्ध्वमावर्तः समन्ताद्वर्तनं वायोर्यत्र सोदावर्ता । उदावर्ताऽऽदीनां विशेषलक्षणमुक्तं चरके । तत्रोदावर्तालक्षणम्—"वेगोदावर्तनाद्योनिमुदावर्तयतेऽनिलः । सा रुगार्ता रजः कृच्छ्रेणोदावृत्तं विमुञ्चति ॥ आर्तवे सा विमुक्ते तु तत्क्षणं लभते सुखम् । रजसो गणनादूर्ध्वं ज्ञेयोदावर्तिनी बुधैः ॥" इति । अन्यासां लक्षणादिकं तत एवावसेयम् ।

५ नष्टमार्तवं यस्यां सा तां नष्टार्तवाम्, नित्यवेदनां=वातजनितशोदादिनानावेदनायुक्ताम् । ६ परि सर्वतो वातविकारेण प्लुतत्वात् परिप्लुता सञ्ज्ञा बोध्या । ग्राम्यधर्मे=मैथुने । ७ वातलया सह इति पञ्च वातजयोनिव्यापदः । वातलायाः पृथगभिधानं वातलायां विशेषेण वातवेदनाप्रादुर्भावार्थम् । ८ आद्यासु=उदावर्ता-वन्ध्या-विप्लुता-परिप्लुतासु, अनिलवेदनाः=शोदायः ।

९ पित्तजपञ्चयोनिरोगाणां लक्षणान्याह—**सदाहमिति** । अस्रम्=आर्तवम् । १० बीजं=शुक्रम्, शुद्धमपि वमेदित्यर्थः । चरके—"षडहात् सप्तरात्राद्वा शुक्रं गर्भाशयं गतम् । सरुगं नीरुजं वाऽपि या स्रवेत् सा तु वामिनी ॥" इति योन्याः शुक्र-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्रंसिनी स्यन्दते तु क्षोभिता[1] दुःप्रसूश्च या।
स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंस्रवात् ॥ १३ ॥
अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता[2]।
चतसृष्वपि चाद्यासु[3] पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ १४ ॥
अत्यानन्दा[4] न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति।
कर्णिन्यां कर्णिका[5] योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥ १५ ॥
मैथुनेऽचरणा पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते[6]।
बहुः[7] श्चातिचरणादन्या बीजं न विन्दति ॥ १६ ॥
श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूयुक्ताऽतिशीतला[8]।
चतसृष्वपि चाद्यासु[9] श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रितिर्भवेत् ॥ १७ ॥
[10]अनार्तवस्तना षण्डी खरस्पर्शा च मैथुने।
[11]अतिकायगृहीतायास्तरुण्याः फलिनी भवेत् ॥ १८ ॥
विवृताऽतिमहायोनिः सूचीवक्त्राऽतिसंवृता[12]।

---

वमनसमयमाह। १ क्षोभिता = विमर्दिता, दुःखेन प्रसूयत इति दुःप्रसूः या योनिः सा प्रस्रंसिनीति योज्यम्। २ दाहपाकेत्याद्युपलक्षणम्, तेन नीलपीतासितार्तवा च भवति। तदुक्तम्—"व्यापल्लवणकट्वम्लक्षारायैः पित्तजा भवेत्। दाहपाकज्वरोष्णार्ता नीलपीतासितार्तवा॥" इति। ३ आद्यासु = रुधिरक्षरा-वामिनी-प्रस्रंसिनी-पुत्रघ्नीषु, पित्तलिङ्गोच्छ्रयः = ओषचोषादिपित्तलिङ्गोच्छ्रयः।

४ श्लेष्मजपञ्चयोनिरोगाणां लक्षणानि दर्शयति—अत्यानन्देति। ग्राम्यधर्मेण = मैथुनेन। ५ कर्णिका = कमलबीजकोशाकृतिमांसकन्दी। ६ यत्र योनौ मैथुने मैथुनकाले पुरुषात् पुरुषबीजात् पूर्वमतिरिच्यते निर्गम्यते, स्त्रीबीजमिति शेषः। साऽचरणा। ७ बहुशोऽतिचरणाद् मैथुनातिचरणाद् अन्या अतिचरणा बीजं गर्भाङ्कुरजननं न विदन्ति न प्राप्नोति। ८ अतिशीतलेत्युपलक्षणम्, तेन वेदनाऽऽदिकमपि बोध्यम्। तथा च तन्त्रान्तरम्—"कफोऽभिष्यन्दिभिर्वृद्धो योनिं चेद् दूषयेत् स्त्रियः। स कुर्यात् पिच्छिलां शीतां कण्डूग्रस्तां सवेदनाम्॥" इति। ९ आद्यासु = अत्यानन्दा-कर्णिन्यचरणाऽतिचरणासु।

१० सान्निपातिकपञ्चयोनिरोगाणां लक्षणानि निरूपयति—अनार्तवेति। 'अनार्तवाऽस्तनी' इति पाठान्तरम्। ११ अतिकायेन महामेहनपुरुषेण गृहीताया सङ्गताया इत्यर्थः। १२ अतिशयेन सूचीवत् सङ्कीर्णमुखी अतिसंवृता।



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वलिङ्गसमुत्थाना[1] सर्वदोषप्रकोपजा ॥ १९ ॥
चतसृष्वपि चाद्यासु[2] सर्वलिङ्गोच्छ्रितिर्भवेत् ।
पञ्चासाध्या भवन्तीमा योनयः सर्वदोषजाः ॥ २० ॥
प्रतिदोषं[3]न्तु साध्यासु स्नेहादिक्रम इष्यते ।
दद्यादुत्तरबस्तींश्च विशेषेण यथोदितां[4]न् ॥ २१ ॥
कर्कशां शीतलां स्तब्धामल्पस्पर्शाञ्च मैथुने ।
कुम्भी[5]स्वेदैरुपचरेत् सानूपौदकसंयुतैः ॥ २२ ॥
मधुरौषधसंयुक्तान् वेशवारांश्च योनिषु ।
निक्षिपेद्धारयेच्चापि पिचु[6]तैलमतन्द्रितः ॥ २३ ॥
धावना[7]नि च पथ्यानि कुर्वीतापूरणानि च ।
ओषध[8]चोषान्वितासूक्तं कुर्याच्छीतं विधिं भिषक् ॥ २४ ॥
दुर्गन्धां पिच्छिलां चापि चूर्णैः[9] पञ्चकषायजैः ।

---

१ सर्वदोषलिङ्गानां समुत्थानं यत्र सा सर्वलिङ्गसमुत्थाना । २ आद्यासु = षण्ढी-फलिनी-महती-सूचीवक्त्रासु ।

३ वातजयोनिरोगचिकित्सां। वक्ति—**प्रतिदोषमिति** । साध्यासु योनिव्यापत्सु प्रतिदोषं यः स्नेहादिक्रमः स इष्यते इति योजना । "तासु योनिषु चाद्यासु स्नेहादिक्रम इष्यते । बस्त्यभ्यङ्गपरीषेकप्रलेपपिचुधारणम् ॥" इति भावमिश्रः । ४ यथोदितान् = वातादिभेदेन यथोक्तानित्यर्थः । ५ कुम्भीस्वेदैरुपचरेत्=आनूपौदकमांसवातघ्नद्रव्यक्काथपूर्णां कुम्भीं कृत्वा भूमौ निखन्य तदुपरि शय्यां संस्थाप्य अग्निसन्तप्तलौहपाषाणगुडकान् क्काथे निक्षिप्य तदुत्थितैर्बाष्पस्वेदैर्योनिप्रदेशमात्रगामिभिरुपचरेदिति डल्हणः । "मृदुभिः पञ्चभिर्नारीं स्निग्धस्विन्नामुपाचरेत् । सर्वतः सुविशुद्धायाः शेषं कर्म विधीयते ॥ वातव्याधिहरं कर्म वातार्तानां सदा हितम् । औदकानूपजैर्मांसैः क्षीरैः सतिलतण्डुलैः ॥ सवातघ्नौषधैर्नाडीकुम्भीस्वेदैरुपाचरेत् । अक्तां लवणतैलेन साश्मप्रस्तरसङ्करैः ॥ स्विन्नां कोष्णाम्बुसिक्ताङ्गीं वातघ्नैर्भोजयेद्रसैः ।" इति चरकः । ६ पिचु = 'फाहा' इति लोके । ७ धावनानि = प्रक्षालनानि, पथ्यानि = वातघ्नौषधसाधितानीत्यर्थः ।

८ पित्तजयोनिरोगचिकित्सामाचष्टे—**ओषेति** । शीतं विधिं = रक्तपित्तहरविधानमित्यर्थः । "कारयेद्रक्तपित्तघ्नं शीतं पित्तकृतासु च" इति चरकः । ९ पञ्चकषायजैश्चूर्णैः = न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षपारिषचूर्णैः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूरयेद्राजवृक्षादिकषायैश्चापि धावनम् ॥ २५ ॥
योन्यान्तु पूयस्राविण्यां शोधनैर्द्रव्यसम्भृतैः ।
सगोमूत्रैः सलवणैः शोधनं हितमिष्यते ॥ २६ ॥
बृहतीफलकल्कस्य द्विहरिद्रायुतस्य च ।
कण्डूमतीमल्पस्पर्शां पूरयेद् धूपयेत्तथा ॥ २७ ॥
वर्त्तिं प्रदद्यात् कर्णिन्यां शोधनद्रव्यसम्भृताम् ।
प्रस्रंसिनीं घृताभ्यक्तां क्षीरस्विन्नां प्रवेशयेत् ॥ २८ ॥
पिधाय वेशवारेण ततो बन्धं समाचरेत् ।
प्रतिदोषं विदध्याच्च सुरारिष्टासवान् भिषक् ॥ २९ ॥
प्रातः प्रातर्निषेवेत रसोनादुद्धृतं रसम् ।
क्षीरमांसरसप्रायमाहारं विदधीत च ॥ ३० ॥
शुक्रार्त्तवादयो दोषाः स्तनरोगाश्च कीर्त्तिताः ।
क्लैब्यस्थानानि मूढस्य गर्भस्य विधिरेव च ॥ ३१ ॥
गर्भिणीप्रतिरोगेषु चिकित्सा चाप्युदाहृता ।
सर्वथा तां प्रयुञ्जीत योनिव्यापत्सु बुद्धिमान् ।

---

१ पूरयेद्, योनिमिति शेषः । राजवृक्षादिकषायैः = आरग्वधादिक्वाथैरित्यर्थः । २ शोधनद्रव्याणि मिश्रकोक्तानि ग्राह्याणि ।

३ कफजयोनिरोगचिकित्सामाह—बृहतीति । ४ धूमनस्यकवलग्रहचिकित्सितोक्तेन व्रणधूपनविधिना धूपयेदित्यर्थः । ५ रसोनात् = लशुनात् । अस्योत्पत्तिवर्णने—"यदाऽमृतं वैनतेयो जहार सुरसत्तमात् । तदा ततोऽपतद्बिन्दुः सरसः सोऽभवद् भुवि ॥ पञ्चभिश्च रसैर्युक्तो रसेनाम्लेन वर्जितः । तस्माद्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः ॥" इति रसोनसंज्ञाकरणकारणमुक्तम् ।

६ कौमारतन्त्रमुपसंहरति—शुक्रेति । शुक्रार्तवादयो दोषाः शुक्रशोणितशुद्धिशारीरे, स्तनरोगाश्च विसर्पनाडीस्तनरोगनिदाने, तच्चिकित्सिते च सलक्षणचिकित्सिताः कीर्तिताः कथिताः । शुक्रार्तवादय इत्यत्र आदिशब्दाद् धात्रीस्तन्यदोषाश्च बोध्याः ।

७ क्लैब्यस्थानानि = क्लैब्यकारणानि क्षीणबलीयवाजिकरणे, मूढस्य गर्भस्य कारणानि, विधिः = क्रिया चेति द्वयं मूढगर्भनिदाने तच्चिकित्सितेऽभिहितम् । ८ गर्भिण्या मासानुमासं प्रतिरोगेषु रक्तस्रावादिषु चिकित्सोदाहृता गर्भिणीव्याकरणशारीरे । ९ तां = पूर्वोक्तां चिकित्साम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपप्रजातारोगांश्च चिकित्सेदुत्तराद्भिषक् ॥ ३२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे योनिव्यापत्प्रतिषेधो नाम ( द्वादशोऽध्यायः, आदितः ) अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

## एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो ज्वरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

येनामृतमपां मध्यादुद्धृतं पूर्वजन्मनि ।
यतोऽमरत्वं सम्प्राप्तास्त्रिदशास्त्रिदिवेश्वरात् ॥ ३ ॥
शिष्यास्तं देवमासीनं पप्रच्छुः सुश्रुतादयः ।
व्रणस्योपद्रवाः प्रोक्ताः व्रणिनामप्यतः परम् ॥ ४ ॥
समासाद् व्यासतश्चैव ब्रूहि नो भिषजां वर ! ।
उपद्रवेण जुष्टस्य व्रणः कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ५ ॥
उपद्रवास्तु व्रणिनः कृच्छ्रसाध्याः प्रकीर्त्तिताः ।
प्रक्षीणबलमांसस्य शेषधातुपरिक्षयात् ॥ ६ ॥

---

१ अपप्रजाताया अयथाकालमसुखं वा प्रसूताया ज्वरादिकान् रोगानित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकौमारतन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्या-मष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

## एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

### ( अथ कायचिकित्सातन्त्रम् । )

२ कायचिकित्सातन्त्रे बहुषूपद्रवेषु सत्सु ज्वरस्य रुद्रकोपाग्निसम्भूतत्वेन गरीयस्त्वात् प्राक् ज्वरप्रतिषेधमधिकरोति—अथात इति । ज्वरश्च प्रतिषेधः चिकित्सा चेति ज्वरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः, प्रकर्षेण कथयिष्याम इत्यर्थः । ३ येन धन्वन्तरिणा पूर्वजन्मनि दैवत्वे अपां मध्यादमृतमुद्धृतम् । त्रिदशाः यतो यस्मात् त्रिदिवेश्वराद् धन्वन्तरेरमृतत्वसम्प्राप्त्या अमरत्वं सम्प्राप्ता इति योज्यम् ।

४ व्रणस्योपद्रवा वेदनावर्णास्रावादयः प्रोक्ता व्रणास्रावविज्ञानीयादिष्वित्यर्थः । ५ उपद्रवेण=ज्वराद्युपद्रवेण, जुष्टस्य = युक्तपुरुषस्य । ६ शेषधातूनां मेदःप्रभृतीनां परिक्षयादित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मादुपद्रवान् कृत्स्नान् ब्रूहि नः सचिकित्सितान् ।
सर्वकायचिकित्सासु ये दृष्टाः परमर्षिणा[1] ॥ ७ ॥
तेषां[2] तद्वचनं श्रुत्वा प्राब्रवीद्भिषजां वरः ।
ज्वरमादौ प्रवक्ष्यामि स रोगानीकराट्[3] स्मृतः ॥ ८ ॥
रुद्रकोपाग्निसम्भूतः[4] सर्वभूतप्रतापनः ।
तैस्तैर्नामभिरन्येषां[5] सत्त्वानां परिकीर्त्यते ॥ ९ ॥
जन्मादौ निधने चैव प्रायो विशति देहिनम् ।
अतः सर्वविकाराणामयं राजा प्रकीर्त्तितः ॥ १० ॥
ऋते देवमनुष्येभ्यो नान्यो विषहते[6] तु तम् ।
कर्मणा लभते यस्माद् देवत्वं मानुषादपि ॥ ११ ॥
पुनश्चैव च्युतः स्वर्गान्मानुष्यमनुवर्त्तते ।
तस्मात्ते देवभावेन सहन्ते मानुषा ज्वरम् ॥ १२ ॥
शेषाः सर्वे विपद्यन्ते[7] तैर्य्यग्योना ज्वरार्दिताः ।
स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा ॥ १३ ॥

---

१ परमर्षिणा=धन्वन्तरिणा । २ रोगेषु ज्वरस्य प्राधान्यं दर्शयति—**तेषामिति** । तेषां=शिष्याणाम् । ३ रोगानीकस्य रोगसमूहस्य राट् राजा । ४ दक्षाध्वरध्वंसे कुपितस्य रुद्रस्य ललाटस्वेदजादग्नेः सम्भूतो रुद्रकोपाग्निसम्भूतः । तदुक्तं महाभारते शान्तिपर्वणि—"ततस्तस्य सुरेशस्य क्रोधादमिततेजसः । ललाटात् प्रसृतो घोरः स्वेदबिन्दुर्बभूव ह ॥ तस्मिन् पतितमात्रे तु स्वेदबिन्दौ तदा भुवि । प्रादुर्बभूव सुमहानग्निः कालानलोपमः ॥ तत्र चाजायत तदा पुरुषः पुरुषर्षभ ! । ज्वरो नामैष धर्मज्ञ ! लोकेषु प्रचरिष्यति ॥" इति ।

५ अन्येषां सत्त्वानां गजाश्वादीनां तैस्तैर्नामभिः पाकलाभितापादिभिः परिकीर्त्यते । तदुक्तं पालकाप्यविरचिते हस्त्यायुर्वेदे महारोगस्थाने नवमाध्याये—"पाकलः स तु नागानामभितापस्तु वाजिनाम् । गवामीश्वरसंज्ञश्च मानवानां ज्वरो मतः ॥ अजावीनां प्रलापाख्यः करभे चालसो भवेत् । हारिद्रो महिषाणां तु मृगरोगो मृगेषु च ॥ पक्षिणामभिघातस्तु मत्स्येष्विन्द्रमदो मतः । पक्षपातः पतङ्गानां व्याडेष्वक्षिकसंज्ञकः ॥" इति । अन्यत्र—"जलस्य नीलिका भूमेरूषरो वृक्षस्य कोटरः" इति ।
६ विषहते=सोढुं शक्नोति । ७ विपद्यन्ते=म्रियन्ते इत्यर्थः ।

८ ज्वरस्वरूपं निरूपयति—**स्वेदेति** । स्वेदावरोधः=प्रस्वेदानिर्गमः, प्रस्वेदा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकारा युगपद्यस्मिन् ज्वरः स परिकीर्त्तितः ।
दोषैः[२] पृथक् समस्तैश्च द्वन्द्वैरागन्तुरेव च ॥ १४ ॥
अनेककारणोत्पन्नः स्मृतस्त्वष्टविधो ज्वरः ।
दोषाः[३] प्रकुपिताः स्वेषु कालेषु स्वैः प्रकोपणैः ॥ १५ ॥
व्याप्य देहमशेषेण ज्वरमापादयन्ति[४] हि ।
दुष्टाः स्वहेतुभिर्दोषाः प्राप्यामाशयं[५]मूष्मणा ॥ १६ ॥
सहिता रसं[६]मागत्य रसस्वेदप्रवाहिणाम् ।
स्रोतसां मार्गमावृत्य मन्दीकृत्य हुताशनम्[७] ॥ १७ ॥
निरस्य बहिरुष्माणं पक्तिस्थानाच्च[८] केवलम् ।
शरीरं समभिव्याप्य स्वकालेषु ज्वरागमम् ॥ १८ ॥
जनयन्त्यथ वृद्धिं[९] वा स्ववर्णञ्च त्वगादिषु ।
मिथ्याऽतियुक्तैरपि[१०] च स्नेहाद्यैः कर्मभिर्नृणाम् ॥ १९ ॥
विविधादभिघाताच्च[११] रोगोत्थानात् प्रपाकतः ।

---

निर्गमे कारणमुक्तम्—"ऋणाद्धि चाप्यपां धातून् यस्मात्तस्माज्ज्वरातुरः । भवत्यत्युष्णगात्रश्च स्विद्यते न च सर्वशः ॥" इति । सन्तापः = देहेन्द्रियमनसां तापः । तदुक्तं चरके—"देहेन्द्रियमनस्तापी" इति । सर्वाङ्गग्रहणं = सर्वाङ्गवेदना । १ युगपत् = एककाले । "ज्वरप्रत्यात्मिकं लिङ्गं सन्तापो देहमानसः । ज्वरेणाविशता भूतं न हि किञ्चिन्न तप्यते ॥" इति चरकोक्तं लक्षणम् । २ हेतुभेदाज्ज्वरभेदान् दर्शयति—**दोषैरिति** । दोषैः पृथक् त्रयः—वातिकः, पैत्तिकः, श्लैष्मिकः, समस्तैर्दोषैरेकः सान्निपातिकः, द्वन्द्वजास्त्रयः—वातपैत्तिकः, वातश्लैष्मिकः, पित्तश्लैष्मिकः, आगन्तुज एकः । एवमष्टौ ज्वरा बोद्धव्याः ।

३ ज्वरस्य सम्प्राप्तिं वक्ति—**दोषा इति** । स्वेषु कालेषु = वर्षाशरद्वसन्तेषु, स्वैः प्रकोपणैः = व्रणप्रश्नोक्तैर्बलवद्विग्रहादिक्रोधादिदिवास्वापादिभिः । ४ आपादयन्ति = जनयन्तीत्यर्थः । ५ "नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय इति स्मृतः" इत्यामाशयं प्राप्य, ऊष्मणा बह्वग्न्यूष्मणा धातूष्मणा दोषोष्मणा वा सहिता इति सम्बन्धः । ६ रसं = हृदयस्थम् । ७ हुताशनं = जठराग्निम् । ८ पक्तिस्थानात् = अग्निस्थानादित्यर्थः । केवलं = कृत्स्नम् । ९ वृद्धिमागतस्य स्ववर्णं यथास्ववर्णं त्वगादिषु नखत्वङ्नयनादिषु जनयन्ति । १० मिथ्याऽतियुक्तैः = अयथाविधियुक्तैरतियुक्तैश्च, स्नेहाद्यैः = स्नेहस्वेदवमनविरेचनादिकैः कर्मभिः, 'नृणां ज्वरो दोषैः प्रवर्तते' इत्यग्रेण सम्बन्धः ।

११ विविधादभिघातात् = शस्त्रलोष्टकाष्ठादिप्रहारात्, रोगोत्थानात् = विदध्यादिरो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमात्क्षयाद्जीर्णाच्च विषात्सात्म्यर्त्तुपर्य्ययात् ॥ २० ॥
ओषधीपुष्पगन्धाच्च शोकान्नक्षत्रपीडया ।
अभिचाराभिशापाभ्यां मनोभूताभिशङ्कया ॥ २१ ॥
स्त्रीणामपप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः ।
स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रवर्त्तते ॥ २२ ॥
तैर्वेगवद्भिर्बहुधा समुद्भ्रान्तैर्विमार्गगैः ।
विक्षिप्यमाणोऽन्तरग्निर्भवत्याशु बहिश्चरः ॥ २३ ॥
रुणद्धि चाप्यपां धातुं यस्मात्तस्माज्ज्वरातुरः ।
भवत्यत्युष्णगात्रश्च ज्वरितस्तेन चोच्यते ॥ २४ ॥
श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ।
इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ २५ ॥

---

गोत्थानात्। १ सात्म्यर्तुपर्ययात्=सात्म्यविपर्ययाद् ऋतुविपर्ययाच्चेत्यर्थः। २ ओषधीपुष्पगन्धात्=विषौषधीपुष्पगन्धात्, नक्षत्रपीडया जन्मादिनक्षत्रे ग्रहविशेषावस्थानपीडया। ३ अभिचारो मारणोच्चाटनादिरूपस्तन्त्राथर्ववेदप्रसिद्धः कर्मविशेषः, अभिशापो द्विजगुरुसिद्धप्रभृतिभिरनिष्टाशंसनं, ताभ्यामभिचाराभिशापाभ्याम्, मनोभूताभिशङ्कया, अत्र मनःशब्देन विकारित्वेनोपदिष्टाः कामादयो बोध्याः, 'कामजे चित्तविभ्रंशः' इत्याद्युक्तेः। भूतशब्देन देवादिग्रहाः, अभिशङ्काशब्देन अभिषङ्गः। तेन मनोऽभिषङ्गेण कामाद्यभिषङ्गेण, भूताभिषङ्गेण देवादिग्रहाभिषङ्गेणेत्यर्थः।

४ अपप्रजातानाम्=अयथाकालमसुखं वा प्रसूतानाम्, प्रजातानां=यथाकालं क्लेशरहितं प्रसूतानाम्। ५ स्तन्यावतरणे=दुग्धस्य प्रथममुन्मुखीभवने, स्तन्यवहानां धमनीनां विकाशित्वेन परिणमननिमित्ताद् वेदनाविशेषादिति भावः।

६ ज्वरे गात्रौष्ण्ये हेतुं प्रतिपादयति—**तैरिति**। तैर्दोषैः वेगवद्भिः प्रसरणशीलैः समुद्भ्रान्तैः सम्यगुद्वेगकरैः विमार्गगैर्विकृतत्वात्तिर्यग्गतैः, विक्षिप्यमाणः इतस्ततः प्रेर्यमाणोऽन्तरग्निराशु रोमकूपैर्बहिश्चरो भवति। ७ अपां धातुं=स्वेदमित्यर्थः। यस्माद् बहिर्निःसृतोऽन्तरग्निरपां धातुं रुणद्धि, तस्मादत्युष्णगात्रो भवति, तेनात्युष्णगात्रत्वेन हेतुना ज्वरातुरो ज्वरितश्चोच्यते इति योजना।

८ ज्वरपूर्वरूपमाख्याति—**श्रम इति**। श्रमः=व्यापारं विनैव, अरतिः=अनवस्थितचित्तता, "स्वाभीष्टवस्त्वलाभेन चेतसो याऽनवस्थितिः। अरतिः सा" इति। विवर्णत्वं=म्लानगात्रत्वम्, वैरस्यं=मुखस्याप्रकृतरसता, नयनप्लवः=अश्रुपूर्णनयनत्वम्, तदुक्तं चरके—"आलस्यं नयने सास्रे" इति। ९ आदिशब्दादम्बुज्वलन-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जृम्भाऽङ्गर्दो[1] गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।
अप्रहर्षश्च[2] शीतञ्च भवत्युत्पत्स्यति ज्वरे ॥ २६ ॥
सामान्यतो, विशेषात्तु जृम्भाऽत्यर्थं समीरणात् ।
पित्तान्नयनयोर्दाहः, कफान्नान्नाभिनन्दनम्[3] ॥ २७ ॥
सर्वलिङ्गसमवायः सर्वदोषप्रकोपजे ।
द्वयोर्द्वयोस्तु रूपेण संसृष्टं द्वन्द्वजं विदुः ॥ २८ ॥
वेपथुर्विषमो वेगः[4] कण्ठौष्ठपरिशोषणम् ।
निद्रानाशः क्षुतः स्तम्भो[5] गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ २९ ॥
शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं[6] बद्धविट्कता[7] ।
जृम्भाऽऽध्मानं[8] तथा शूलं भवत्यनिलजे ज्वरे ॥ ३० ॥
वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च[9] निद्राऽल्पत्वं तथा वमिः ।
कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ ३१ ॥
प्रलापः कटुता[10] वक्त्रे मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥ ३२ ॥

---

योरप्यनिश्चितेच्छाद्वेषयोर्ग्रहणम् । तथा च चरकः—"ज्वलनातपवाय्वम्बुभक्तिद्वेषावनिश्चितौ" इति । १ अङ्गमर्दः=अङ्गमोटनम् । २ अप्रहर्षः=प्रीत्यभावः, उत्पत्स्यति ज्वरे=भविष्यति ज्वरे । ३ नान्नाभिनन्दनं=नान्नाभिलाषः ।

४ वातज्वरलक्षणमाचष्टे—वेपथुरिति । वेपथुः=कम्पः, विषमो वेगः=कदाचिज्ज्वरस्य प्रवृत्तिर्वृद्धिर्वा । ५ क्षुतः क्षिक्कायाः स्तम्भोऽनिर्गमः । वाग्भटेऽपि—"हर्षो रोमाञ्चदन्तेषु वेपथुः क्षवथोर्ग्रहः । भ्रमः प्रलापो घर्मेच्छा विलापश्चानिलज्वरे ॥" इति । ६ शिरसि हृदि गात्रेषु रुक् पीडा, वक्त्रवैरस्यं=मुखविरसता, बद्धविट्कता=बद्धमलता । ७ आध्मानलक्षणम्—"साटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम् । आध्मानमिति जानीयाद् घोरं वातनिरोधजम् ॥" इति वातव्याधिनिदानेऽभिहितम् । चरकनिदानोक्तानि वातज्वरस्यान्यान्यपि लक्षणानि प्रदर्श्यन्ते—"भवन्ति विविधा वातवेदनाः पादसुप्तता । पिण्डिकोद्वेष्टनं कर्णस्वनो वक्त्रकषायता ॥ ऊरुदाहो हनुस्तम्भो विश्लेषः सन्धिजानुनोः । शुष्ककासो वमिर्लोमदन्तहर्षः श्रमभ्रमौ ॥ अरुणं नेत्रमूत्रादितुट्प्रलापोष्णकामिताः ।" इति ।

८ पित्तज्वरलक्षणं ब्रवीति—वेग इति । वेगस्तीक्ष्णः=तीव्रवेगः । ९ कटु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरवं शीतमुत्क्लेशो रोमहर्षोऽतिनिद्रता ।
स्रोतोरोधो[२] रुगल्पत्वं प्रसेको मधुरास्यता ॥ ३३ ॥
नात्युष्णगात्रता छर्दिरङ्गसादोऽविपाकता[३] ।
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च[४] शुक्लता ॥ ३४ ॥
निद्रानाशो[५] भ्रमः श्वासस्तन्द्रा सुप्ताङ्गताऽरुचिः ।
तृष्णा मोहो मदः स्तम्भो दाहः शीतं हृदि व्यथा ॥ ३५ ॥
पक्तिश्चिरेण दोषाणामुन्मादः श्यावदन्तता ।
रसना परुषा कृष्णा सन्धिमूर्द्धास्थिजा[६] रुजः ॥ ३६ ॥
निर्भुग्ने कलुषे नेत्रे[७] कर्णौ शब्दरुगन्वितौ ।
प्रलापः स्रोतसां[८] पाकः कूजनं चेतनाच्युतिः ॥ ३७ ॥
स्वेदमूत्रपुरीषाणामल्पशः सुचिरात्[९] स्रुतिः ।
सर्वजे सर्वलिङ्गानि[१०] विशेषञ्चात्र मे शृणु ॥ ३८ ॥
नात्युष्णशीतो[११]ऽल्पसंज्ञो भ्रान्तप्रेक्षी हतस्वरः ।

---

ता वक्त्रे = मुखतिक्तत्वम् । १ कफज्वरलक्षणमभिदधाति—**गौरवमिति** । गौरवं = गुरुगात्रता, शीतं = शीताविर्भावः, उत्क्लेशः = श्लेष्मनिष्ठीवनमिव, रोमहर्षः = रोमाञ्चः, अतिनिद्रता = निद्राऽऽधिक्यम् । २ स्रोतोरोधः = रसवाहिनां स्रोतसां रोधः, प्रसेकः = लालास्रावः । ३ अविपाकता = अन्नाविपाकः । ४ चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तथा च—"हृल्लासश्छर्दनं कासः स्तम्भः श्वैत्यं त्वगादिषु । अङ्गेषु शीतपिटिकास्तन्द्रोदर्दः कफोद्भवे ॥" इति । उदर्दस्तु—"शीतपानीयसंस्पर्शाच्छीतकाले विशेषतः । श्वयथुः शिशिरार्तानामुदर्दः कफसम्भवः ॥" इति ।

५ सान्निपातिकज्वरलक्षणमभिधत्ते—**निद्रेति** । तन्द्रा—"इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः । निद्राऽऽर्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥" इति । सुप्ताङ्गता = गात्राणां स्पर्शाज्ञता । ६ सन्धिरुजा, मूर्धरुजा, अस्थिरुजा चेत्यर्थः । ७ नेत्रे कथम्भूते—निर्भुग्ने कुटिले, कलुषे सास्रत्वादिना आविले । कर्णौ कथम्भूतौ—शब्दरुगन्वितौ शब्दान्वितौ चेत्यर्थः । ८ स्रोतसां = मुखनासादिरन्ध्राणां पाकः, कूजनं = कण्ठेऽव्यक्तशब्दोत्थानम्, चेतनाच्युतिः = चित्तनाशः । ९ स्रुतिः = निःसृतिरित्यर्थः । सन्निपातस्य अन्यान्यपि लक्षणानि तन्त्रान्तरतोऽवसेयानि ।

१० अभिन्यासादिसंज्ञाभिः सन्निपातज्वरं चतुर्द्धा भिनत्ति—**विशेषमिति** । विशेषं = भेदम्, अत्र = सन्निपातज्वरे । ११ नात्युष्णशीतः = साधारणाङ्गस्पर्शः,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खरजिह्वः शुष्ककण्ठः स्वेदविण्मूत्रवर्जितः ॥ ३९ ॥
सास्रो निर्भुग्नहृदयो भक्तद्वेषी हतप्रभः ।
श्वसन् निपतितः शेते प्रलापोपद्रवायुतः ॥ ४० ।
तमभिन्यासमित्याहुर्हतौजसमथापरे ।
सन्निपातज्वरं कृच्छ्रमसाध्यमपरे विदुः ॥ ४१ ॥
निद्रोपेतमभिन्यासं क्षीणमेनं हतौजसम् ।
संन्यस्तगात्रं संन्यासं विद्यात्सर्वात्मके ज्वरे ॥ ४२ ॥
ओजो विस्रंसते यस्य पित्तानिलसमुच्छ्रयात् ।
स गात्रस्तम्भशीताभ्यां शयनेष्वसुरचेतनः ॥ ४३ ॥

---

भ्रान्तप्रेक्षी=सर्ववस्त्वयथार्थदर्शी । १ निपतितः=शय्यायां नियतं पतितः, शेते=निद्राति, प्रलाप एवोपद्रवः प्रलापोपद्रवस्तेन आयुतोऽत्यर्थयुक्तः । २ तं=सन्निपातमित्यर्थः ।

३ सन्निपातस्य असाध्यत्वं तु="दोषे विबद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसम्पूर्णलक्षणः । असाध्यः सोऽन्यथा कृच्छ्रो भवेद्वैकल्यदोऽपि वा" इति विबद्धदोषत्वादिना सम्पूर्णलक्षणत्वे एव बोध्यम् । भालुकिः—"मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातं चिकित्सता । यस्तु तत्र भवेज्जेता स जेताऽऽमयसङ्कुले ॥ सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् । कस्तेन न कृतो धर्मः कां वा पूजां न सोऽर्हति ॥" इति ।

४ परमतं निरस्यन् स्वमतं दर्शयति—**निद्रोपेतमिति** । सर्वात्मके ज्वरे निद्रोपेतमभिन्यासं विद्यादित्यन्वयेन सम्बन्धः । एवं क्षीणं सन्तं हतौजसं विद्यात्, संन्यस्तगात्रं संन्यासं विद्यात् । ५ विस्रंसते=बहिर्निर्गच्छति । ६ शयनेष्वसुः=स्वपितुमिच्छुः, अचेतनः=निःसंज्ञः । यद्यपि तन्त्रान्तरे त्रयोदशसन्निपाताः प्रकृतावुक्ताः । यथा—हीनमध्याधिकक्रमेण षट्, द्व्युल्बणेन त्रयः, एकोल्बणेन त्रयः, समत्वेनैक इति; तथाऽपि सुश्रुत इह दोषोत्कर्षापकर्षतारतम्येन धात्वाद्यावरणभेदेन च सन्निपातभेदानामानन्त्यात् पृथक् पृथग् लक्षणं नोक्तवान् । सन्निपातज्वरविशेषाणां त्रयोदशनामान्तराण्याह तन्त्रान्तरे—"शीताङ्गस्त्रिमलोद्भवज्वरगणे तन्द्री प्रलापी ततो, रक्तष्ठीवयिता च तत्र गणितः सम्भुग्ननेत्रस्तथा । साभिन्यासकजिह्वकश्च कथितः प्राक्सन्धिगोऽथान्तको, रुग्दाहः सहचित्तविभ्रम इह द्वौ कर्णकण्ठग्रहौ ॥" इति । अन्यग्रन्थोक्तत्रयोदशसन्निपातानां कुम्भीपाकादिनामान्याह—"कुम्भीपाकः प्रोर्णुनावः प्रलापी ह्यन्तर्दाहो दण्डपातोऽन्तकश्च । पणीदाहश्चाथ हारिद्रसंज्ञो भेदा एते सन्निपातज्वरस्य ॥ अजघो-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपि जाग्रत् स्वपन् जन्तुस्तन्द्रालुश्च प्रलापवान्।
संहृष्टरोमा स्रस्ताङ्गो मन्दसन्तापवेदनः ॥ ४४ ॥
ओजोनिरोधजं तस्य जानीयात् कुशलो भिषक्।
सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा ॥ ४५ ॥
पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा।
द्विदोषोच्छ्रायलिङ्गास्तु द्वन्द्वजास्त्रिविधाः स्मृताः ॥ ४६ ॥
तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा।

---

षभूतहासौ यन्त्रापीडश्च संन्यासः। संशोषी च विशेषास्तस्यैवोक्तास्त्रयोदशान्यत्र ॥" इति। एतेषां लक्षणान्यन्यत्र द्रष्टव्यानि।

१ सन्निपातज्वरस्य मोक्षवधयोर्मर्यादां दर्शयति—सप्तम इति। वाताधिकः सन्निपातज्वरः सप्तमे, पित्ताधिको दशमे, श्लेष्माधिको द्वादशे मलपाकाद्विमुञ्चति, धातुपाकाद्धन्ति। तदुक्तम्—"पित्तकफानिलवृद्ध्या दशदिवसद्वादशाहसप्ताहात्। हन्ति विमुञ्चति वाऽपि त्रिदोषजो धातुमलपाकात ॥" इति। तन्त्रान्तरे धातुपाकलक्षणम्—"सम्बाध्यमानो हृदि नाभिदेशे गात्रेषु वा पाकरुजाऽन्वितेषु। पक्वेषु वा तेषु रुजा ज्वरार्तः स धातुपाकी कथितो भिषग्भिः ॥" इति। अपरं च—"नाभेरूर्ध्वं हृदोऽधस्तात् पीडिते वेद्व्यथा भवेत्। धातोः पाकं विजानीयादन्यथा तु मलस्य च ॥" इति। "सप्तमी द्विगुणा या तु नवम्येकादशी तथा। एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥" इति भालुकिप्रोक्ता सन्निपातज्वरस्य मोक्षवधयोर्मर्यादाऽपि बोध्या।

२ अथ विकृतिविषमसमवेतान् द्वन्द्वजज्वरान् दर्शयन् वातपित्तज्वरलक्षणमभिदधाति—तृष्णेति। तृष्णाद्याः शिरोरुजान्ताः सुगमाः। द्वन्द्वजेषु सान्निपातिकेषु च कानिचिल्लक्षणानि विकृतिविषमसमवायारब्धानि भवन्ति, कानिचित्प्रकृतिसमसमवायारब्धानि भवन्ति। दोषाणामेव लक्षणानि दृश्यन्ते प्रकृतिसमसमवायारब्धानि, विपरीतानि तु विकृतिविषमसमवायारब्धानि। प्रकृतिसमसमवायो यथा—कफपित्तजे लिप्ततिक्तास्यत्वम्। विकृतिविषमसमवायो यथा—वातपित्तयोर्लक्षणेषु अरुचिरोमहर्षौ, इमौ तु विकृत्यारब्धौ दृश्येते। वातश्लेष्मणोर्लक्षणेषु सन्तापो नास्ति, सान्निपातिकज्वरलक्षणे दृश्यते, सोऽपि विकृत्यारब्धः। शिरसो लोठनं वातपित्तश्लेष्मणां लक्षणेषु न दृश्यते। सान्निपातिकज्वरलक्षणे दृश्यते, तदपि विकृत्यारब्धम्। एवं द्वन्द्वजसन्निपातजेषु सर्वेष्वपि रोगेषु बोद्धव्यम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तथा ॥ ४७ ॥
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ।
स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च ॥ ४८ ॥
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदप्रवर्तनम् ।
सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ४९ ॥
लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ।
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥ ५० ॥
( जृम्भाऽऽध्मानमदोत्कम्पपर्वभेदपरिक्षयाः ।
तृट्प्रलापाभितापाः स्युर्ज्वरे मारुतपैत्तिके ॥ १ ॥
शूलकासकफोत्क्लेशशीतवेपथुपीनसाः ।
गौरवारुचिविष्टम्भा वातश्लेष्मसमुद्भवे ॥ २ ॥
शीतदाहारुचिस्तम्भस्वेदमोहमदभ्रमाः ।
कासाङ्गसादहृल्लासा भवन्ति कफपैत्तिके ॥ ३ ॥ )
कृशानां ज्वरमुक्तानां मिथ्याऽऽहारविहारिणाम् ।

---

१ कण्ठास्यशोषौ = कण्ठशोषो मुखशोषश्चेत्यर्थः । वमथुः=छर्दिभेदः, रोमहर्षः= रोमाञ्चः । २ पर्वभेदः = पर्वाणि भिद्यन्त इव सन्धिषु व्यथा ।

३ वातश्लेष्मज्वरलक्षणमुद्दिशति—**स्तैमित्यमिति** । स्तैमित्यं = निश्चलत्वं ज्वरितस्य, पर्वणां भेदः=ग्रन्थिस्फुटनम् । ४ स्वेदप्रवर्तनं = कारणं विनैव स्वेदस्य प्रवृत्तिः । "शिरोग्रहः स्वेदभवश्च कासो ज्वरस्य लिङ्गं कफवातजस्य" इति हारीतः । इदमपि लक्षणं विकृतिविषमसमवायारब्धम् । सन्तापोऽपि विकृतिविषमसमवायारब्धः । ५ मध्यवेगः=नातितीक्ष्णो नातिमृदुरित्यर्थः ।

६ श्लेष्मपित्तज्वरलक्षणमभिदधाति—**लिप्तेति** । श्लेष्मणा लिप्तं च पित्तेन तिक्तं च आस्यं मुखं यस्य, तस्य भावो लिप्ततिक्तास्यता, लिप्तास्यता तिक्तास्यता चेत्यर्थः । तन्द्रा = निद्रावत् क्लान्तिः, तन्द्रालक्षणम्—"इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः । निद्राऽऽर्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥" इति । मोहः= मूर्च्छा । "तथा स्तम्भश्च संस्वेदः कफपित्तप्रवर्तनम्" इति चरकोक्तानि लक्षणान्यपि बोद्धव्यानि ।

७ विषमज्वरसम्प्राप्तिमाह—**कृशानामिति** । कृशानां मिथ्याऽऽहारविहारिणां ज्वरमुक्तानां देहिनां दोषः स्वल्पोऽपि पुनर्मिथ्याऽऽहारविहाराभ्यां संवृद्धोऽनिलेरितो·

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोषः स्वल्पोऽपि संवृद्धो देहिनामनिलेरितः ॥ ५१ ॥
सततान्येद्युष्कतृयाख्यचातुर्थान् सप्रलेपकान्।
कफस्थानविभागेन यथासंख्यं करोति हि ॥ ५२ ॥
अहोरात्रादहोरात्रात् स्थानात् स्थानं प्रपद्यते।
ततश्चामाशयं प्राप्य दोषः कुर्य्याज्ज्वरं नृणाम् ॥ ५३ ॥
तथा प्रलेपको ज्ञेयः शोषिणां प्राणनाशनः।
दुश्चिकित्स्यतमो मन्दः सुकष्टो धातुशोषकृत् ॥ ५४ ॥
कफस्थानेषु वा दोषस्तिष्ठन् द्वित्रिचतुर्षु वा।

---

वातप्रेरितः सन् सततान्येद्युष्कतृयाख्यचातुर्थप्रलेपकान् कफस्थानानाम् आमाशययोरः-कण्ठशिरःसन्धीनां विभागेन यथासङ्ख्यं करोतीति सम्बन्धः। यथा—आमाशयस्थः सत प्रत्यहं वारद्वयं करोति, उरस्थः अन्येद्युष्कं, कण्ठस्थस्तृतीयकं, शिरस्थश्चतुर्थकं, सन्धिस्थः प्रलेपकं, सर्वेषु कफस्थानेषु व्यवस्थितो दोषः सन्ततं करोतीति। दोष इति एकवचनं दोषत्वसामान्यादिति बोद्धव्यम्।

१ उरआदिस्थितो दोषो यथाऽन्येद्युष्कादीन् करोति तथा दर्शयति—**अहोरात्रादिति**। अहोरात्रादुरःस्थो दोष एकस्मिन् दिने आमाशयं प्राप्य अन्यस्मिन् दिने-ऽन्येद्युष्कं करोति, सततारम्भकदोषापेक्षयाऽस्य व्यवहितत्वात्। कण्ठस्थितो दोष एकस्मिन् दिने हृदयमागच्छति, अन्यस्मिन् दिने आमाशयमागत्य तृतीयकं करोति तृतीयदिवसे, एवं शिरःस्थो दोषः कण्ठोर आमाशयान् त्रिभिर्दिनैः क्रमेण प्राप्य चतु-र्थेऽहि चातुर्थकं करोति, सन्धिस्थितो दोषो नित्यमेव प्रलेपकं करोति, सन्धयश्चामाश-येऽपि सन्तीति स सर्वदा भवति।

२ प्रलेपकलक्षणमभिधत्ते—**तथेति**। ३ सन्निपातात्मकत्वाद् दुश्चिकित्स्यतम इत्यर्थः। मन्दः = मन्दवेगः। ४ चतुर्थकादिविपर्ययज्वरलक्षणमाह—**कफेति**। कफस्थानयोर्द्वयोर्हृदयामाशययोस्तिष्ठन् दोषोऽन्येद्युष्कविपर्ययं करोति, अर्थादहोरात्रे पूर्वाह्णादीनामेककालं मुक्त्वा समस्तमहोरात्रं भवतीति विपर्ययः। आमाशयहृदयक-ण्ठस्थितेन तृतीयकविपर्ययः। तत्रैकस्मिन् दिने हृदयस्थो दोष आमाशयमागत्य तत्स्थे-न सह ज्वरयति, तद्दिने कण्ठस्थितश्च हृदयमायाति, अपरदिने सोऽप्यामाशयमागत्य ज्वरयति, एवं दिनद्वये भूत्वा पश्चादेकदिनं न भवतीति तृतीयकविपर्ययः। आमाशय-हृदयकण्ठशिरःस्थेन दोषेण चतुर्थकविपर्ययः। तत्र यस्मिन् दिने हृदयस्थो दोष आमाशयमागत्य ज्वरयति तस्मिन्नेव कण्ठस्थो हृदयं शिरःस्थश्च कण्ठमायाति, अपर-दिने हृदयस्थ एवामाशयमागत्य ज्वरयति, एवं दिनत्रये भूत्वा पश्चादेकदिनं न भव-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपर्य्ययाख्यान् कुरुते विषमान् कृच्छ्रसाधनान् ॥ ५५ ॥
परो[1] हेतुः स्वभावो वा विशमे कैश्चिदीरितः ।
आगन्तु[2]श्चानुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे ॥ ५६ ॥
वाता[3]धिकत्वात् प्रवदन्ति तज्ज्ञास्तृतीयकञ्चापि चतुर्थकञ्च ।
औप[4]त्यके मद्यसमुद्भवे च हेतुं ज्वरे पित्तकृतं वदन्ति ॥ ५७ ॥
प्रलेपकं वातबला[5]सकञ्च कफाधिकत्वेन वदन्ति तज्ज्ञाः ।
मूर्च्छा[6]ऽनुबन्धा विषमज्वरा ये प्रायेण ते द्वन्द्वसमुत्थितास्तु ॥ ५८ ॥
त्वक्[7]स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरे ।

---

तीति चतुर्थकविपर्यय इति श्रीकण्ठः। सततस्य तु विपर्ययो न भवति, एकस्मिन्नेव कफस्थाने स्थितेन दोषेण तत्करणाद् व्याधिस्वभावाद्वा। 'कफस्थानेषु वा दोषः' इत्यत्र दोषशब्दस्य पृथग्द्वन्द्वसमस्तदोषत्वे तात्पर्यम्।

१ विषमज्वराणामेकीयमतेन नियतैककालागमने हेतुमभिदधाति-पर इति। परो भूतादिः, हेतुः कारणम्, स्वभावो वा विषमे विषमज्वरे हेतुः कैश्चिदीरितः। "निवृत्तः पुनरायाति विषमो नियते दिने। स्वभावं कारणं तत्र मन्यन्ते मुनिपुङ्गवाः॥" इति तदुक्तिः। २ वस्तुतस्तु विषमज्वरे भूतादिर्हेतुरिति समर्थयति—आगन्तुरिति। आगन्तुः=भूतादिः, अनुबन्धः=कारणम्, दोषोत्पादक इति यावत्। 'अनुबन्धस्तु बन्धे स्याद् दोषोत्पादे विनश्वरे' इति मेदिनी।

३ विषमज्वराणामारम्भकदोषान्निर्दिशति—वातेति। तन्त्रान्तरे—"कफपित्तात् त्रिकग्राही पृष्ठाद् वातकफात्मकः। वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः॥" इति, एवं—"चतुर्थको दर्शयति स्वभावं द्विविधं ज्वरः। जङ्घाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरसोऽनिलसम्भवः। मध्यकायं तु गृह्णाति पूर्वं यस्तु स पित्तजः। विषमज्वर एवान्यश्चतुर्थकविपर्ययः॥" इति च तृतीयकचतुर्थकयोर्यद्यपि द्वन्द्वदोषसमुद्भवत्वमुक्तं, तथाऽपि स्वतन्त्रे पित्तश्लेष्मलिङ्गत्वेऽपि तयोर्वाताधिकत्वं ज्ञेयम्।

४ उपत्यका पर्वतासन्नभूमिस्तत्र भवे ज्वरे औपत्यके। ५ वातबलाहकस्तु शोथिनामेव भवति। तदुक्तम्-"नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनकस्तेन सीदति। स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी॥" इति। वातबलासकोऽधुना 'बेरी बेरी' इति पाश्चात्यभाषायां ख्यातः। ६ मूर्च्छाऽनुबन्धाः सततमूर्च्छोत्पादका ये विषमज्वरास्ते प्रायेण द्वन्द्वसमुत्थिताः, एवं च ते दुश्चिकित्स्या इति योजनीयम्।

७ सन्तताद्यज्वरे पूर्वं कस्यचिच्छीतं कस्यचिद्दाह इति तेषां द्वैविध्यं दर्शयति—त्वक्स्थाविति। अयं भावः-यदा श्लेष्मानिलौ त्वचि कुपितौ भवतस्तदा ज्वरस्यादौ

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च[1] ॥ ५९ ॥
करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च ।
प्रशान्ते कुरुतस्तस्मिंश्छीतमन्ते च तावपि[2] ॥ ६० ॥
द्वावेतौ[3] दाहशीतादी ज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ ।
दाहपूर्वस्तयोः कष्टः कृच्छ्रसाध्यश्च स स्मृतः ॥ ६१ ॥
प्रसक्तश्चाभिघातोत्थश्चेतनाप्रभवस्तु यः[4] ।
राज्यह्नोः[5] षट्सु कालेषु कीर्त्तितेषु यथा पुरा ॥ ६२ ॥
प्रसह्य विषमोऽभ्येति मानवं बहुधा ज्वरः ।
स[6] चापि विषमो देहं न कदाचिद् विमुञ्चति ॥ ६३ ॥
ग्लानिगौरवकार्श्येभ्यः स यस्मान्न प्रमुच्यते ।
वेगे तु समतिक्रान्ते गतोऽयमिति लक्ष्यते ॥ ६४ ॥
धात्वन्तरस्थो[7] लीनत्वान्न सौक्ष्म्यादुपलभ्यते ।
अल्पदोषेन्धनः क्षीणः क्षीणेन्धन इवानलः[8] ॥ ६५ ॥

---

त्वचि शीतं जनयतः । अर्थाज्ज्वरे आदौ पूर्वं कफवातौ त्वक्स्थौ सन्तौ शीतमुत्पादयतः, तयोः श्लेष्मानिलयोः प्रशान्तयोः स्वकालापगमात् प्रत्यनीकप्राप्त्या च प्रशान्तवेगयोः सतोरन्ते पित्तं दाहं करोति । तथा तेनैव प्रकारेण आदौ पित्तं त्वक्स्थं सदतीव दाहं करोति, तस्मिन् पित्ते प्रशान्ते सति तौ श्लेष्मानिलौ अन्ते शीतं कुरुत इति । १ चकारान्मोहमूर्च्छादीन् करोति । २ अपिशब्दाद्भ्रमथुतन्द्राऽऽदीन् कुरुतः ।

३ द्वावेतौ दाहशीतादी संसर्गजौ सान्निपातिकौ कथितौ तयोर्दाहशीतपूर्वकयोर्ज्वरयोर्मध्ये दाहपूर्वकः कष्टोऽत्यन्तदुःखप्रदः कृच्छ्रसाध्यश्च स्मृतः । शीतपूर्वस्तु सुखसाध्यः, रोगशक्तेरचिन्त्यत्वात् । ४ यो ज्वरोऽभिघातोत्थः काष्ठलोष्टाद्यभिघातजः चेतनाप्रभवः कामादिजः स प्रसक्तः प्रकर्षेण सङ्गीत्यर्थः ।

५ विषमज्वराणां स्वकालेवृद्धिं दर्शयति—**राज्यह्नोरिति** । षट्सु कालेषु = पूर्वाह्णादिषु, यथा = येन प्रकारेण, पुरा = त्रणप्रश्नाध्याये, कीर्तितेषु = कथितेषु । ६ विषमज्वराणामुपशान्तवेगानामपि देहेऽवस्थानं प्रतिपादयति—**स चापीति** । विषमः = विषमज्वरः । तन्त्रान्तरे विशेषः—"शिरसो गौरवं ग्लानिर्नातिश्रद्धा च भोजने । माधुर्यमथ वैरस्यं तिक्तत्वमथवा पुनः ॥ वक्त्रस्य जायते यस्मात् प्रवेगेऽपि गते सति । तस्मात्तु नियतो लीनशरीरे विषमज्वरः ॥" इति । ७ एकस्माद्धातोरन्यो धातुर्धात्वन्तरं तत्र तिष्ठतीति धात्वन्तरस्थः, लीनत्वात् = एकदेशस्थितत्वात्, सौक्ष्म्यात् = अणुत्वात् । ८ क्षीणः = अल्पदोषरूपेन्धनत्वेन अल्पीभूतः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोषो[1]ऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ।
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ ६६ ॥
स[2]ततं रसरक्तस्थः सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः ।
मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि त्वस्थिमज्जगतः पुनः ॥ ६७ ॥
कुर्य्याच्चातुर्थ[3]कं घोरमन्तकं रोगसङ्करम् ।
केचि[4]द् भूताभिषङ्गोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम् ॥ ६८ ॥
सप्ता[5]हं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ।
सन्तत्या योऽविसर्गी स्यात्सन्ततः स निगद्यते ॥ ६९ ॥
अहोरात्रे सततको द्वौ काला[6]वनुवर्त्तते ।

---

१ कायचिकित्साविदां मतेन विषमज्वरसम्प्राप्तिमाह—दोष इति । ज्वरोत्सृष्टस्य सहसा निवृत्तज्वरस्य पुंसोऽल्पो दोषः पुनरहितसम्भूतोऽहिताहाराचारादिसम्भूतः सन् अन्यतमं धातुं प्राप्य विषमज्वरं तृतीयादिकं करोति । विषमज्वरसामान्यलक्षणं भालुकिना पठितम्—"यः स्यादनियतात् कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च । वेगतश्चापि विषमो ज्वरः स विषमः स्मृतः ॥" इति ।

२ विषमज्वराणामाश्रयभूतान् धातून् दर्शयति—सततमिति । सततशब्दः सन्ततस्योपलक्षकः, तेन रसस्थः सन्ततं, रक्तस्थः सततं करोतीत्यर्थः । तदुक्तं चरके—"रक्तधात्वाश्रयः प्रायो दोषः सततकं ज्वरम्" इति । ३ अन्तकं=यमसदृशम्, रोगसङ्करम्=अनेकरोगसङ्कुलम् । गम्भीरस्थानत्वाच्चिरकालेशनत्वाच्च अन्यानपि रोगानावहतीति भावः ।

४ एकीयमते विषमज्वरस्य भूताभिषङ्गजत्वमभिधत्ते—केचिदिति । "भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् । केचिद् भूताभिषङ्गोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम् ॥" इति भावमिश्रः । भूतानि देवग्रहादयः, तेषामभिषङ्ग आवेशस्तदुत्थं भूताभिषङ्गोत्थम् ।

५ विषमज्वराणां लक्षणानि निर्दिशति—सप्ताहमिति । सप्ताहादीन् व्याप्य सन्तत्या नैरन्तर्येण अविसर्गोऽत्यागशीलः स ज्वरः सन्ततो निगद्यते । सप्ताहादिदिनविकल्पा व्यवस्थिताः । तदुक्तम्—"वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः । श्लैष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः पाकं प्रगच्छति ॥" इति । अयं सुखसाध्यः । तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"सन्ततज्वर एवान्यः स्वल्पदुर्बलकारणः । एकदोषो द्विदोषो वा सुखसाध्यः प्रकीर्तितः ॥" इति ।

६ कालाः षट् पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णप्रदोषार्धरात्रप्रत्यूषाः ; तत्र पूर्वाह्णप्रदोषयोः कफस्य कालः, मध्याह्नार्धरात्रयोः पित्तस्य, अपराह्णप्रत्यूषयोर्वातस्य । पूर्वाह्णादीनां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रादेककालं प्रवर्त्तते ॥ ७० ॥
तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः।
वातेनोदीर्यमाणाश्च ह्रीयमाणाश्च सर्वतः।
एकद्विदोषा मर्त्यानां तस्मिन्नेवोदितेऽहनि ॥ ७१ ॥
वेलां तामेव कुर्वन्ति ज्वरवेगो मुहुर्मुहुः।
वातेनोद्धूयमानस्तु यथा पूर्य्येत सागरः ॥ ७२ ॥
वातेनोदीरितास्तद्वद्दोषाः कुर्वन्ति वै ज्वरान्।
यथा वेगागमे वेलां छादयित्वा महोदधेः ॥ ७३ ॥
वेगहानौ तदेवाम्भस्तत्रैवान्तर्निलीयते।
दोषवेगोदये तद्वदुदीर्य्येत ज्वरोऽस्य वै ॥ ७४ ॥
वेगहानौ प्रशाम्येत यथाम्भः सागरे तथा।
विविधेनाभिघातेन ज्वरो यः सम्प्रवर्त्तते ॥ ७५ ॥
यथादोषप्रकोपन्तु तथा मन्येत तं ज्वरम्।
श्यावास्यता विषकृते दाहातीसारहृद्ग्रहाः ॥ ७६ ॥

---

षण्णां कालानां मध्ये कालौ अर्थात् कालद्वयमनुवर्तते वेगं करोति स सततः, अह्नि एककालं रात्रावेककालं वा, अह्नि द्वौ कालौ, रात्रौ द्वौ कालौ वा, अत्र दोषोत्कर्षापकर्षाभ्यामधिककालत्वं हीनकालत्वमपि ज्ञातव्यं, न तु नियम इतीशानः। अन्येद्युष्को ज्वर एककालमनुवर्तते वेगं करोति, अहोरात्रादन्यस्मिन्नहोरात्रे एककालमागच्छतीत्यर्थः। १ तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि इत्यत्र 'एककालम्' इति सम्बन्धनीयम्, एवं चतुर्थेऽह्नि चतुर्थक इत्यत्रापि तत्।

२ विषमज्वराणां नियतकालागमने हेतुमभिदधाति—वातेनेति। उदीर्यमाणाः=उत्कटीक्रियमाणाः, ह्रीयमाणा=आकृष्यमाणाः। ३ तस्मिन्नेवोदितेऽहनि=पूर्वोक्ते विषमज्वराणां दिने। ४ तामेव वेलां पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णप्रदोषार्धरात्रप्रत्यूषात्मिकां ज्वरवेगे ज्वरवेगविषये कुर्वन्तीत्यर्थः। ५ उदीरिताः=उद्रिक्ताः, दोषाः=आमाशयगता वातपित्तश्लेष्माणः। ६ उदीर्येत=यथाबलमभिव्यज्येत। ७ संश्लिष्टावयवत्वेन पुनरामाशयानुसरणात् प्रशाम्येतेत्यर्थः।

८ विविधागन्तुज्वराणां लक्षणानि निरूपयति—विविधेनेति। विविधेन=शस्त्रलोष्टमुष्टिलगुडाद्यनेकविधेन। ९ श्यावः शुक्लानुविद्धकृष्णवर्णः, तद्वदास्यं मुखं यस्य, तस्य भावः श्यावास्यता, विषकृते=स्थावरविषभक्षणादिकृते, अतीसारः=स्थावर-



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभक्तरुक् पिपासा च तोदो मूर्च्छा बलक्षयः ।
ओ[1] धीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुक् वमथुः क्षवः ॥ ७७ ॥
कामजे[2] चित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽऽलस्यमरोचकः ।
हृदये वेदना चास्य गात्रञ्च परिशुष्यति ॥ ७८ ॥
भया[3]त प्रलापः शोकाच्च भवेत कोपाच्च वेपथुः ।
अभिचारा[4]भिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ ७९ ॥
भूता[5]भिषङ्गादुद्वेगहास्यकम्पनरोदनम् ।
श्रमक्षयाभिघातेभ्यो देहिनां कुपितोऽनिलः ॥ ८० ॥
पूरयित्वा[6]ऽखिलं देहं ज्वरमापादयेद् भृशम् ।
रोगाणान्तु समुत्थानाद्विदाहागन्तुतस्तथा ॥ ८१ ॥
ज्वरोऽपरः सम्भवति तैस्तै[7]रन्यैश्च हेतुभिः ।
दोषाणां स तु लिङ्गानि कदाचिन्नातिवर्त्तते ॥ ८२ ॥
गुरुता[8] हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ ।
रसस्थे तु ज्वरे लिङ्गं दै[9]न्यं चास्योपजायते ॥ ८३ ॥

---

विषस्याधोगतत्वादिति भावः । १ ओषधीगन्धजे = तीव्रौषधीगन्धघ्राणजे । २ कामजे = अभिमतकामिन्याद्यप्राप्तिनिमित्ते, चित्तविभ्रंशः = भ्रमादिः । तदुक्तं वाग्भटे— "कामाद् भ्रमोऽरतिर्दाहो ह्रीनिद्राधीधृतिक्षयः । ध्याननिःश्वासबहुलं लिङ्गं कामज्वरे स्मृतम् ॥" इति ।

३ भयशोककोपाभिषङ्गज्वरमाह—भयादिति । प्रलापः = असम्बद्धभाषणम् । ४ अभिचारो मन्त्रादिभिर्मारणप्रयोगः, अभिशापो ब्रह्मर्षिगुरुसिद्धादीनामभिशपनं, ताभ्यामभिचाराभिशापाभ्याम् । तृष्णा चेति चकारेण दाहादिकः समुच्चीयते । तदुक्तं वाग्भटे—"तत्राभिचारिकैर्मन्त्रैर्हूयमानस्य तप्यते । पूर्वं चेतस्ततो देहस्ततो विस्फोट-तृड्भ्रमैः । सदाहमूर्च्छैर्ग्रस्तस्य प्रत्यहं वर्धते ज्वरः ॥" इति ।

५ भूतानां देवादिग्रहाणामभि समन्ततो भावेन सङ्गः सम्बन्धो भूताभिषङ्गस्तस्मात् । "कामशोकभयाद्वायुः, क्रोधात्पित्तं, त्रयो मलाः । भूताभिषङ्गात् कुप्यन्ति भूत-सामान्यलक्षणाः ॥" इति माधवकरः । ६ पूरयित्वा = व्याप्येत्यर्थः । ७ तैस्तैर-न्यैश्च हेतुभिः = विद्रध्यादिसमुत्थानात्प्रागुक्तैरन्यैश्च ज्वरकारिभिः कारणैरित्यर्थः ।

८ धातुगतज्वराणां लक्षणानि वक्ति—गुरुतेति । गुरुता = गात्राणां गौरवम्, हृदयोत्क्लेशः = हृदयस्थितदोषस्योपस्थितवमनत्वमिव, सदनम् = अङ्गग्लानिः । ९ दै-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्तनिष्ठीवनं दाहः स्वेदश्छर्दनविभ्रमौ ।
प्रलापः पिटिका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ ८४ ॥
पिण्डिकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता ।
ऊष्मान्तर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ८५ ॥
भृशं स्वेदस्तृषा मूर्च्छा प्रलापश्छर्दिरेव च ।
दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदःस्थे चासहिष्णुता ॥ ८६ ॥
भेदोऽस्थ्नां कुञ्चनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च ।
विक्षेपणं च गात्राणामेतदस्थिगते ज्वरे ॥ ८७ ॥
तमःप्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा ।
अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे ।
मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे ॥ ८८ ॥
शोफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः ।
दग्ध्वेन्धनं यथा वह्निर्धातून् हत्वा यथा विषम् ॥ ८९ ॥

---

न्यं = क्लान्तचित्तत्वम्, अस्य = प्राणिनः। १ पिण्डिका जान्वधो जङ्घामांसपिण्डः, तस्या उद्वेष्टनं दण्डादिना पीडनेनैव वेदना पिण्डिकोद्वेष्टनम्। सृष्टमूत्रपुरीषता = प्रवर्तमानमूत्रपुरीषता। २ ऊष्माऽन्तः = अन्तर्दाह इत्यर्थः। विक्षेपः = हस्तादिचालनम्।

३ प्रलापः = असम्बद्धभाषणम्। ४ असहिष्णुता = क्रोधनम्। ५ भेदोऽस्थ्नां = भङ्गवत्पीडेत्यर्थः। कुञ्चनम् = अस्थ्नां सङ्कोचः। कुञ्चनमित्यत्र 'कूजनम्' इति पाठे अस्फुटध्वनिरित्यर्थः। ६ तमःप्रवेशनम् = अन्धकारप्रविष्टस्येवासंवित्तिः। ७ श्वासप्रतिषेधे महाश्वासलक्षणं वक्ष्यति—"विसञ्ज्ञः पार्श्वशूलार्तः शुष्ककण्ठोऽतिघोषवान्। संरब्धनेत्रस्त्वायम्य यः श्वस्यात् स महान् स्मृतः॥" इति। मर्मणो हृदयस्य छेद इव छेदो मर्मच्छेदः। परपदार्थेषु प्रयुज्यमानाः शब्दा इवान्तरेणापि इव इत्यर्थं गमयन्ति, यथा अग्निर्माणवकः।

८ शुक्रं च तत्स्थानं चेति शुक्रस्थानं तदगते शुक्रस्थानगते अर्थाद् रसादिधातुगतज्वरेषु मध्ये शुक्रस्थानगते मरणं प्राप्नुयादिति योजनीयम्। न तु शुक्रस्य स्थानं शुक्रस्थानम्, शुक्रस्य सर्वदेहगत्वेन नियतस्थानासम्भवादिति कार्तिकः। तदुक्तं शारीरस्थाने—"यथा पयसि सर्पिस्तु गुडश्चेक्षुरसे यथा। शरीरेषु तथा नृणां शुक्रं विद्याद्विषग्वरः॥" इति।

९ शुक्रगतो ज्वरोऽपरव्यापाराभावाद्देहघातेनैवोपशाम्यतीति दर्शयति—दग्ध्वेति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतकृत्यो व्रजेच्छान्तिं देहं हत्वा तथा ज्वरः ।
वातपित्तकफोत्थानां ज्वराणां लक्षणं यथा[1] ॥ ९० ॥
तथा तेषां भिषग्ब्रूयाद्रसादिष्वपि बुद्धिमान् ।
समस्तैः सन्निपातेन धातुस्थमपि निर्दिशेत् ॥ ९१ ॥
द्वन्द्वजं द्वन्द्वजैरेव[2] दोषैश्चापि वदेत्कृतम् ।
गम्भीरस्तु[3] ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया ॥ ९२ ॥
आनद्धत्वेन[4] चात्यर्थं श्वासकासोद्गमेन च ।
हतप्रभेन्द्रियं क्षीणमरोचकनिपीडितम्[5] ॥ ९३ ॥
गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं[6] ज्वरितं परिवर्जयेत् ।

---

दग्ध्वा=भस्मीकृत्येत्यर्थः । १ यथा येन प्रकारेण वातपित्तकफोत्थानां ज्वराणां लक्षणं, तथा तेनैव प्रकारेण तेषां वातादिज्वराणां रसादिषु सप्तसु धातुष्वपि गतानां लक्षणं बुद्धिमान् भिषग् ब्रूयादिति सम्बन्धः । २ द्वन्द्वजैः=द्विदोषजनितैरित्यर्थः ।

३ ज्वराणां साध्यासाध्यलक्षणमाह—गम्भीरस्त्विति । गम्भीरः=अन्तर्वेगः । य एव ज्वरश्चरकेऽन्तर्वेगः, स एव सुश्रुते गम्भीरः पठितः । तदुक्तम्—"अन्तर्दाहोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः । सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः । अन्तर्वेगस्य लिङ्गानि कष्टसाध्यत्वमेव च ॥" इति । बहिर्वेगस्य लिङ्गानि तु—"सन्तापो ह्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनां च मार्दवम् । बहिर्वेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमेव च ॥" इति । ४ आनद्धत्वेन=विबद्धमलत्वेन ।

५ गम्भीरज्वरस्य असाध्यत्वं निर्दिशति—हतेति । हतप्रभाणि हतशक्तीनि स्वविषयाग्राहीणि चक्षुरादीनि यस्य स तथा, अथवा—हता प्रभा दीप्तिरिन्द्रियाणि च यस्य स तथा । ६ गम्भीर उक्तलक्षणः, तीक्ष्णवेगोऽतिदुःसहवेगस्ताभ्यामार्तं पीडितम् । एषामसाध्यलक्षणानामुपलक्षणत्वात्तन्त्रान्तरोक्तान्यन्यान्यपि लक्षणानि ज्ञातव्यानि । तद्यथा—"प्रेतैः सह पिबेन्मद्यं स्वप्ने यः कृष्यते शुना । सुघोरं ज्वरमासाद्य स जीवम-पसृज्यते ॥ ज्वरः पौर्वाह्णिको यस्य शुष्ककासश्च दारुणः । बलमांसविहीनस्य यथा प्रेतस्तथैव सः ॥ ज्वरो यस्यापराह्णे तु श्लेष्मकासश्च दारुणः । बलमांसविहीनस्य यथा प्रेतस्तथैव सः ॥ सहसा ज्वरसन्तापस्तृष्णा मूर्च्छा बलक्षयः । विश्लेषणं च सन्धीनां मुमूर्षोरुपजायते ॥ गोसर्गे वदनाद्यस्य स्वेदः प्रच्यवते भृशम् । लेपज्वरोप-सृष्टस्य दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ मृत्युश्च तस्मिन् बहुपिच्छिलत्वाच्छीतस्य जन्तोः परितः सरत्वात् । स्वेदो ललाटे हिमवन्नरस्य शीतार्दितस्यैति सुपिच्छिलश्च ॥ कण्ठे स्थितो यस्य न याति वक्षो नूनं यमस्यैति गृहं स मर्त्यः ॥ स्रुतस्वेदो ललाटाद्यः श्लथ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीनमध्याधिकैर्दोषैस्त्रिसप्तद्वादशाहिकः ॥ ९४ ॥
ज्वरवेगो भवेत्तीव्रो यथापूर्व[1] सुखक्रियः ।
कालो ह्येष यमश्चैव नियतिर्मृत्युरेव च ॥ ९५ ॥
तस्मिन् व्यपगते देहाज्जन्मेह पुनरुच्यते ।
इति ज्वराः समाख्याताः कर्म[2]दानीं प्रवक्ष्यते ॥ ९६ ॥
ज्वरस्य[3] पूर्वरूपेषु वर्तमानेषु बुद्धिमान् ।
पाययेत घृतं स्वच्छं[4] ततः स लभते सुखम् ॥ ९७ ॥
विधिर्मारुतज[5]ेष्वेष, पैत्तिकेषु विरेचनम् ।
मृदु, प्रच्छर्दनं तद्वत्[6] कफजेषु विधीयते ॥ ९८ ॥
सर्व[7]द्विदोषजेषूक्तं यथादोषं विकल्पयेत् ।
अस्ने[8]नीयोऽशोध्यश्च संयोज्यो लङ्घनादिना ॥ ९९ ॥
रूपप्राग्रूपयोर्विद्यान्नाना[9]त्वं वह्निधूमवत् ।
प्रव्यक्तरूपेषु[10] हितमेकान्तेनापतर्पणम् ॥ १०० ॥

---

सन्धानबन्धनः । मुह्येदुत्थाप्यमानस्तु स स्थूलोऽपि न जीवति ॥ यस्य स्वेदोऽतिबहुलः पिच्छिलो याति सर्वतः । रोगिणः शीतगात्रस्य तदा मरणमादिशेत् ॥" इति ।

१ यथापूर्वं = द्वादशाहिकतीक्ष्णवेगात् साप्ताहिकः, साप्ताहिकतीक्ष्णवेगात् त्र्याहिकः, सुखक्रियः = सुचिकित्स्य इत्यर्थः । २ कर्म = चिकित्सा । ३ ज्वरपूर्वरूपे चिकित्सां दर्शयति—ज्वरस्येति । निरामवातजनितज्वरस्येत्यर्थः । ४ स्वच्छं = केवलं, द्रव्यान्तरयोगरहितमिति यावत् । ५ मारुतजेषु = श्रमक्षयादिकुपितवातज्वरपूर्वरूपेषु, न तु आमाशयानुपूर्व्योत्पन्नेषु सामवातज्वरपूर्वरूपेषु । पैत्तिकेषु = पित्तज्वरपूर्वरूपेषु । ६ तद्वत् = मृदु, कफजेषु = कफज्वरपूर्वरूपेषु । ७ सर्वेषु सन्निपातज्वरपूर्वरूपेषु, द्विदोषजेषु द्वन्द्वजज्वरपूर्वरूपेष्वित्यर्थः । उक्तं = सर्पिःपानादिकम्, विकल्पयेत् = यथादोषमवधारयेत् ।

८ 'विवर्जयेत् स्नेहमानम्' इति स्नेहोपयौगिकचिकित्सितोक्तविधिना स्नेहादिभिः परिहर्तव्यान् प्रति वक्ति—अस्नेहनीय इति । अस्नेहनीयः = अजीर्णी तरुणज्वरीत्यादिकः, अशोध्यः = वमनविरेचनायोग्यः । ९ नानात्वं = पृथक्त्वम्, वह्निधूमवत्—यथा धूमनिमित्तकारणीभूतो वह्निर्धूमतो भिद्यते, तथैव रूपनिमित्तकारणीभूतं प्राग्रूपमिति भावः । "तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते" इति तन्त्रान्तरम् । १० दोषे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आमाशयस्थे दोषे तु [१]सोत्क्लेशे वमनं परम् ।
[२]आनद्धस्तिमितैर्दोषैर्यावन्तं कालमातुरः ॥ १०१ ॥
कुर्य्यादनशनं तावत्ततः संसर्गमाचरेत् ।
न [३]लङ्घयेन्मारुतजे क्षयजे मानसे तथा ॥ १०२ ॥
अलङ्घ्याश्चापि ये पूर्वं [४]द्विव्रणीये प्रकीर्त्तिताः ।
[५]अनवस्थितदोषाग्नेर्लङ्घनं दोषपाचनम् ॥ १०३ ॥
ज्वरघ्नं दीपनं [६]काङ्क्षारुचिलाघवकारकम् ।
[७]सृष्टमारुतविण्मूत्रं क्षुत्पिपासाऽसहं लघुम् ॥ १०४ ॥
प्रसन्नात्मेन्द्रियं क्षामं नरं विद्यात् सुलङ्घितम् ।
[८]बलक्षयस्तृषाशोषस्तन्द्रानिद्राभ्रमक्लमाः ॥ १०५ ॥

---

आमाशयस्थे सति प्रव्यक्तरूपेषु ज्वरेष्वित्यर्थः । अपतर्पणम् = उपवासः । १ उत्क्लेशे हृल्लासलालाप्रसेकादिना सहिते दोषे सोत्क्लेशे ।

२ लङ्घनं कियन्तं कालं कार्यमित्युपदिशति—आनद्ध इति । यावन्तं कालमातुरः स्तिमितैरचलैर्दोषैरानद्धो बद्धः, तावत् कालमनशनं कुर्यात् ; ततः संसर्गं पेयादिसम्बन्धमाचरेदित्यर्थः । दोषपाकसमयमाह—"वातः पचति सप्ताहात् पित्तं तु दशभिर्दिनैः । श्लेष्मा द्वादशभिर्घस्रैः पच्यते वदतां वर ॥ लङ्घनं लङ्घनीयस्तु कुर्याद्दोषानुरूपतः । त्रिरात्रमेकरात्रं वाऽहोरात्रमथवा ज्वरे ॥ निर्वातसेवनात् स्वेदाल्लङ्घनादुष्णवारिणः । पानादामज्वरे क्षीणे पश्चाद्दोषधमाचरेत् ॥" इति । "ज्वरादौ लङ्घनं प्रोक्तं ज्वरमध्ये तु पाचनम् । ज्वरान्ते भेषजं दद्याज्ज्वरमुक्ते विरेचनम् ॥ त्रिविधं त्रिविधे दोषे तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत् । दोषेऽल्पे लङ्घनं पथ्यं मध्ये लङ्घनपाचनम् । प्रभूते शोधनं तच्च मूलादुन्मूलयेन्मलान् ॥" इति ।

३ लङ्घनानर्हान् ज्वरिणो दर्शयति—नेति । क्षयजे=धातुक्षयजे, यक्ष्मज्वरे वा, मानसे=कामक्रोधादिजे । ४ द्विव्रणीये "न कार्यं गर्भिणीवृद्धबालदुर्बलभीरुभिः" इति अलङ्घ्याः प्रकीर्तिताः । ५ ज्वरे लङ्घनगुणानाख्याति—अनवस्थितेति । अनवस्थितः स्वस्थानादितस्ततो गतो दोषोऽग्निश्च यस्य तस्य अनवस्थितदोषाग्नेर्ज्वरिण इत्यर्थः । ६ काङ्क्षा=अन्नाभिलाषः, रुचिः=मुखोपनीतस्याहारस्य रसनेन्द्रियस्याभिलाषा, 'रुचिः स्त्री दीप्तिशोभायामभीष्टार्थाभिलाषयोः' इति मेदिनी ।

७ सम्यग्लङ्घितलक्षणं ब्रवीति—सृष्टेति । तन्त्रान्तरे—"वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे । हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गते ॥ स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपासासहोदये । कृतं लङ्घनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥" इति । ८ अतिश-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपद्रवाश्च श्वासाद्याः सम्भवन्त्यतिलङ्घनात् ।
दीपनं[1] कफविच्छेदि पित्तवातानुलोमनम् ॥ १०६ ॥
कफवातज्वरार्त्तेभ्यो हितमुष्णाम्बु[2] तृट्छिदम् ।
तद्धि मार्दवकृद्दोषस्रोतसां शीतं[3]मन्यथा ॥ १०७ ॥
सेव्यमानेन तोयेन ज्वरः शीतेन वर्द्धते ।
पित्तं[4]मद्यविषोत्थेषु शीतलं तिक्तकैः श्रृतम् ॥ १०८ ॥
गाङ्गेयं[5]नागरोशीरपर्पटोदीच्यचन्दनैः ।
दीपनी पाचनी लघ्वी ज्वरार्त्तानां ज्वरापहा ॥ १०९ ॥
अन्नकाले हिता पेया यथास्वम्पाचनैः[6] कृता ।
बहुदोषस्य मन्दाग्नेः सप्तरात्रात्परं ज्वरे ॥ ११० ॥

---

यितलङ्घनस्य लक्षणमाह—बलक्षय इति । तन्त्रान्तरे—"पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कालः शोषो मुखस्य च । क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥ मनसः सम्भ्रमोऽभीक्ष्णमूर्ध्ववातस्तमो हृदि । देहाग्निबलहानिश्च लङ्घनेऽतिकृते भवेत् ॥" इति । हीनलङ्घनस्य लक्षणं तु—"कफोत्क्लेशः सहृल्लासः क्षीवनं च मुहुर्मुहुः । कण्ठस्य हृदयाशुद्धिस्तन्द्रा स्याद्धीनलङ्घने ॥" इति तन्त्रान्तरोक्तं बोध्यम् ।

१ ज्वरेऽर्धावशिष्टोदकगुणं दर्शयति—दीपनमिति । २ उष्णोदकलक्षणमुक्तम्—"क्वाथ्यमानं तु निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं तथा । अर्धावशिष्टं यत्तोयं तदुष्णोदकमुच्यते ॥" इति । "ज्वरकासकफश्वासपित्तवातामेदसाम् । नाशनं पाचनं चैव पथ्यमुष्णोदकं सदा" ॥ ऋतुभेदेन जलस्य पाकभेदमाह—"त्रिपादशेषं सलिलं ग्रीष्मे शरदि शस्यते । हिमेऽर्धशेषं शिशिरे तथा वर्षावसन्तयोः ॥" इति । अन्ये तु—"निदाघे त्वर्धपादोनं पादहीनं तु शारदम् । शिशिरे च वसन्ते च हिमे चार्धावशेषितम् ॥ अष्टमांशावशेषं तु वारि वर्षासु शस्यते । इति केचिद् बुधाः प्राहुर्जेज्जटागमदर्शनात् ॥" इति ।

३ शीतोदकगुणं वक्ति—शीतमिति । शीतम् = अक्वथितम् , अन्यथा = उष्णोदकगुणविपरीतगुणम् । ४ श्रृतशीतजलगुणमाह—पित्तेति । तिक्तकैः = तिक्तवर्गाभिहितैर्द्रव्यैः । ५ गाङ्गेयं = मुस्तम् , नागरः = शुण्ठी, उशीरं = 'खस' इति ख्यातम् । पर्पटः = 'पित्तपापड़ा' इति प्रथते । उदीच्यं = बालकम् । गाङ्गेयादिकं कर्षमात्रमादाय प्रस्थपरिमिते जले क्वाथ्य अर्धावशिष्टं कर्तव्यम् । तदुक्तम्—"यदप्सु श्रृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते । कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिकेऽम्भसि । अर्धश्रृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ॥" इति वङ्गसेनः । शार्ङ्गधरोऽपि—"क्षुण्णं द्रव्यं पलं साध्यं चतुःषष्टिपले जले । अर्धशिष्टं तु तद्देयं पाने पेयादिसंविधौ ॥" इति । ६ पा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लङ्घनाम्बुयवागूभिर्यदा दोषो न पच्यते ।
तदा तं मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनैः ॥ १११ ॥
कषायैः[1] पाचनैर्हृद्यैर्ज्वरघ्नैः समुपाचरेत् ।
पञ्चमूलीकषायन्तु[2] पाचनं पवनज्वरे ॥ ११२ ॥
सक्षौद्रं पैत्तिके मुस्तकटुकेन्द्रयवैः कृतम् ।
पिप्पल्यादिकषायन्तु[3] कफजे परिपाचनम् ॥ ११३ ॥
द्वन्द्वजेषु तु संसृष्टं[4] दद्यादथ विवर्जयेत् ।
पीताम्बुर्लङ्घितो भुक्तोऽजीर्णी क्षीणः पिपासितः ॥ ११४ ॥
( तीक्ष्णे ज्वरे गुरौ देहे विबद्धेषु मलेषु च ।
सामदोषं विजानीयाज्ज्वरं पक्वमतोऽन्यथा ॥ )
मृदौ[5] ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च ।
पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम्[6] ॥ ११५ ॥
दोषप्रकृतिवैकृत्यादेकेषां[7] पक्वलक्षणम् ।
हृदयोद्वेष्टनं[8] तन्द्रा लालास्रुतिररोचकः ॥ ११६ ॥
दोषाप्रवृत्तिरालस्यं[9] विबन्धो बहुमूत्रता ।
गुरूदरत्वमस्वेदो न पक्तिः शकृतोऽरतिः[10] ॥ ११७ ॥

---

चनैः=वक्ष्यमाणैः पञ्चमूलीप्रभृतिभिः पाचनैरित्यर्थः । १ कषायैः=क्वाथैः ।

२ प्रतिदोषं तांस्तान् पाचनकषायान्निर्दिशति—**पञ्चेति** । पञ्चमूली=महती पञ्चमूली । ३ पिप्पल्यादिर्गणो द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः । ४ संसृष्टं=मिश्रं कषायमित्यर्थः । येषां पाचनमहितं तानाह—**अथेति** । विवर्जयेत् 'पाचनम्' इति शेषः । ५ पक्वज्वरलक्षणमाह—**मृदाविति** । मृदौ=स्वल्पीभूते, प्रचलेषु=स्वमार्गसञ्चारिषु, मलेषु=वातपित्तकफमूत्रपुरीषेषु । ६ तदौषधं=वक्ष्यमाणशमनशोधनाख्यमौषधमित्यर्थः ।

७ एकीयमतं निर्दिशति—**दोषेति** । दोषाणां दुष्टवातपित्तकफानां प्रकृतिः ज्वरस्य तदुपद्रवाणां चोत्पादनं, तस्या वैकृत्यं वैपरीत्यं तस्माद् दोषप्रकृतिवैकृत्याद्, दोषपाकज्ञानमित्यर्थः । ८ सामान्यमामज्वरलक्षणमाचष्टे—**हृदयोद्वेष्टनमिति** । हृदयोद्वेष्टनं=हृदयस्यामोटनमिव । ९ दोषाप्रवृत्तिः=वातादिदोषाणां निश्चलता, आलस्यम्=अलसत्वम्, विबन्धः=विड्वातयोरप्रवृत्तिः । १० अरतिः=अनवस्थितचि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वापः स्तम्भो गुरुत्वञ्च गात्राणां वह्निमार्दवम् ।
मुखस्याशुद्धिरग्लानिः प्रसङ्गी[1] बलवान् ज्वरः ॥ ११८ ॥
लिङ्गैरेभिरजानीयाज्ज्वरमामं विचक्षणः ।
सप्तरात्रात्परं केचिन्मन्यन्ते[2] देयमौषधम् ॥ ११९ ॥
दशरात्रात्परं केचिद्दातव्यमिति निश्चिताः ।
पैत्तिके[3] वा ज्वरे देयमल्पकालसमुत्थिते ॥ १२० ॥
अचिरज्वरितस्यापि देयं स्याद्दोषपाकतः ।
भेषजं ह्यामदोषस्य[4] भूयो ज्वलयति ज्वरम् ॥ १२१ ॥
शोधनं, शमनीयन्तु करोति विषमज्वरम् ।
च्यवमानं ज्वरोत्क्लिष्टमुपेक्षेत[5] मलं सदा ॥ १२२ ॥

---

त्तता । १ प्रसङ्गी=संसक्तः । निरामज्वरलक्षणं तु—"लघुत्वामत्वं लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम् । दोषप्रकृतिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम् ॥" इति । दोषप्रकृतिर्दोषाणां मार्गसञ्चार इति तदर्थः ।

२ ज्वरे परमतेन औषधदानकालमाह—सप्तेति । सप्तरात्रात्परम्=अष्टमेऽहनीत्यर्थः । केचित्=चरकादयः, यथा—"ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितम् । पाचकं शमनीयं वा कषायं पाययेत्तु तम् ॥" इति । ज्वरितं षडहे लङ्घनेन व्यतीते सप्तमेऽहनि लघ्वन्नं दत्त्वा, अष्टमे दिने कषायं पाययेदिति तदर्थः । "गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं स्मृतम् । वातज्वरे तथा पेयं कालिङ्गं सप्तमेऽहनि ॥" इति शार्ङ्गधरः । अपि च—"पाययेदातुरं साममौषधं सप्तमे दिने । शमनेनाथवा दृष्ट्वा निरामं तमुपाचरेत् ॥" इति तन्त्रान्तरम् । अपि च—"वातिके सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिके । श्लैष्मिके द्वादशाहेन ज्वरे युञ्जीत भेषजम् ॥" इति । एवं सति कषायदाने सप्तमाष्टमदिवसयोर्विकल्पः । तत्रापि वयोबलाग्निदोषदेशकालोचितं कुर्यादिति भावमिश्रः ।

३ यदा पित्तज्वरोऽल्पदोषश्च सप्ताहादर्वागपि शीघ्रं पाकमाप्नुयात्तदा भेषजं देयमिति स्वमतमाह—पैत्तिक इति । अल्पकालसमुत्थिते पैत्तिके ज्वरे दोषपाकतो दोषपाकं दृष्ट्वा भैषज्यं देयं, न तु तत्र दशरात्रापेक्षा; तथा अचिरज्वरितस्यापि पैत्तिकेतरनवज्वरयुक्तस्यापि दोषपाकं दृष्ट्वा भैषज्यं देयमित्यर्थः ।

४ आमज्वरे औषधदाने दोषमाह—भेषजमिति । हि शोधनं भेषजमामदोषस्य पुरुषस्य भूयो ज्वरं ज्वलयति दीपयति, शमनीयं भेषजं तु विषमज्वरं करोतीत्यर्थः । तन्त्रान्तरेऽपि—"दोषा वृद्धाः कषायेण स्तम्भितास्तरुणज्वरे । स्तभ्यन्ते न विपच्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम् ॥" इति । ५ उपेक्षेत=प्रतीकारं प्रत्युदासीत, मलं=वातादिकम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिप्रवर्त्तमानञ्च साधयेदतिसारवत् ।
यदा[1] कोष्ठानुगाः पक्वा विबद्धाः स्रोतसां मलाः ॥ १२३ ॥
अचिरज्वरितस्यापि तदा दद्याद्विरेचनम्[2] ।
पक्वो[3] ह्यनिर्हृतो दोषो देहे तिष्ठन् महात्ययम् ॥ १२४ ॥
विषमं वा ज्वरं कुर्याद् बलव्यापदमेव[4] च ।
तस्मान्निर्हरणं कार्यं दोषाणां वमनादिभिः ॥ १२५ ॥
प्राक्कर्म[5] वमनं चास्य कार्यमास्थापनं तथा ।
विरेचनं तथा कुर्याच्छिरसश्च विरेचनम् ॥ १२६ ॥
क्रमशः, बलिने देयं वमनं श्लैष्मिके ज्वरे ।
पित्तप्राये विरेकस्तु[6] कार्यः प्रशिथिलाशये ॥ १२७ ॥
सरुजेऽनिलजे कार्यं सोदावर्त्ते[7] निरूहणम्[8] ।
कटीपृष्ठग्रहार्त्तस्य दीप्ताग्नेरनुवासनम् ॥ १२८ ॥
शिरोगौरवशूलघ्नमिन्द्रियप्रतिबोधनम् ।
कफाभिपन्ने शिरसि काय मूर्द्धविरेचनम् ॥ १२९ ॥
दुर्बलस्य[9] समाध्मातमुदरं सरुजं दिहेत् ।

---

१ ज्वरे शोधनावस्थां दर्शयति—**यदेति** । कोष्ठानुगाः=आमाशयादाववस्थिताः, स्रोतसां=तत्तत्कोष्ठाश्रितानाम् । २ विरेचनं=शोधनम् । ३ पक्वदोषोपेक्षणे दूषणं दर्शयति—**पक्व इति** । पक्वः=लङ्घनतिक्ताम्बुपानपेयाऽदिभिः, अनिर्हृतः=वमनादिनाऽनुत्सृष्टः, महात्ययं=गम्भीरमिति कार्तिकः । महात्ययं विषमज्वरं चातुर्थिकं तस्यैव महात्ययत्वादिति गदाधरः । ४ बलव्यापदं=बलक्षयम् ।

५ ज्वरे वमनादिक्रममुपदिशति—**प्राक्कर्मेति** । यद्यपि लङ्घनस्य प्राक्कर्मत्वमुपदिष्टं, तथाऽप्यत्र वमनस्य प्राक्कर्मत्वमवस्थाविशेषाद् बोध्यम् । ६ तुकारः पित्ते वमनमपि सूचयति । तथा च तन्त्रान्तरम्—"उपस्थिते श्लेष्मपित्ते व्याधावामाशयाश्रये । वमनार्थं प्रयुञ्जीत भिषग्देहमदूषयन् ॥" इति । ७ सोदावर्ते=सविबन्धे, "वातविण्मूत्रजृम्भाऽश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः । व्याहन्यमानैरुदितैरुदावर्तो निरुच्यते ॥" इति तल्लक्षणं वक्ष्यति । निरूहणम्=आस्थापनम् ।

८ ज्वरे आध्माने उदरलेपमुद्दिशति—**दुर्बलस्येति** । दिहेत्=लिम्पेदित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिङ्गुसैन्धवैः ॥ १३० ॥
अम्लपिष्टैः सुखोष्णैश्च पवने तूर्द्ध्वमागते ।
रुद्धमूत्रपुरीषाय गुदे वर्तिं निधापयेत् ॥ १३१ ॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलयवानीचव्यसाधिताम् ।
पाययेत यवागूं वा मारुताद्यनुलोमिनीम् ॥ १३२ ॥
शुद्धस्योभयतो यस्य ज्वरः शान्तिं न गच्छति ।
सशेषदोषरूक्षस्य तस्य तं सर्पिषा जयेत् ॥ १३३ ॥
कृशञ्चैवाल्पदोषञ्च शमनीयैरुपाचरेत् ।
उपवासैर्बलस्थन्तु ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते ॥ १३४ ॥
क्लिन्नां यवागूं मन्दाग्निं तृषार्त्तं पाययेन्नरम् ।
तृट्छर्दिदाहघर्मार्त्तं मद्यपं लाजतर्पणम् ॥ १३५ ॥
सक्षौद्रमम्भसा पश्चाज्जीर्णे यूषरसौदनम् ।
उपवासश्रमकृते क्षीणे वाताधिके ज्वरे ॥ १३६ ॥
दीप्ताग्निं भोजयेत् प्राज्ञो नरं मांसरसौदनम् ।
मुद्गयूषौदनश्चापि हितः कफसमुत्थिते ॥ १३७ ॥
स एव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः ।
दाडिमामलमुद्गानां यूषश्चानिलपैत्तिके ॥ १३८ ॥
ह्रस्वमूलकयूषस्तु वातश्लेष्माधिके हितः ।
पटोलनिम्बयूषस्तु पथ्यः पित्तकफात्मके ॥ १३९ ॥

---

१ दारु = देवदारु, हैमवती=वचा । २ काञ्जिकाद्यम्लपिष्टैरित्यर्थः । ३ दारुहैमवत्यादिभिः कृतां वर्तिमित्यर्थः । ४ षडङ्गपरिभाषाश्रृतेन जलेन साधितामिति बोध्यम् । ५ उभयतः=वमनविरेचनादिना । ६ वक्ष्यमाणेन कल्याणकादिना सर्पिषेत्यर्थः ।

७ शोधनविधिमभिधाय संशमनविधिमभिदधाति—कृशमिति । ८ उपवासैः= अनशनैः, उपवासैरिति बहुवचनं दशविधमपि लङ्घनं यथाऽऽवस्थं योज्यमिति सूचयति । तथा च चरकः—"चतुष्प्रकारा संशुद्धिः पिपासामारुतातपौ । पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लङ्घनम् ॥" इति । चतुष्प्रकारा संशुद्धिर्वमनविरेचननिरूहशिरोविरेचनानि, अत्र लङ्घनं कर्षणमिति तदर्थः । ९ सितया=शर्करया । १० द्वन्द्वजज्वराणां पथ्यं दर्शयति—दाडिमेति । ११ ह्रस्वमूलको बालमूलकस्तस्य यूषः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाहच्छर्दियुतं क्षामं[1] निरन्नं तृष्णयार्दितम् ।
सिताक्षौद्रयुतं लाजतर्पणं पाययेत च ॥ १४० ॥
कफपित्तपरीतस्य[2] ग्रीष्मेऽसृक्पित्तिनस्तथा ।
मद्यनित्यस्य न हिता यवागूस्तमुपाचरेत् ॥ १४१ ॥
यूषैरम्लैरनम्लैर्वा जाङ्गलैश्च रसैर्हितैः ।
मद्यं पुराणं[3] मन्दाग्नेर्यवान्नोपहितं हितम् ॥ १४२ ॥
सव्योषं[4] वितरेत्तक्रं कफारोचकपीडिते ।
कृशोऽल्पदोषो[5] दीनश्च नरो जीर्णज्वरार्दितः ॥ १४३ ॥
विबद्धः सृष्टदोषश्च[6] रूक्षः पित्तानिलज्वरी ।
पिपासाऽऽर्त्तः सदाहो वा पयसा[7] स सुखी भवेत् ॥ १४४ ॥
तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ।
सर्वज्वरेषु सुलघु[8] मात्रावद्भोजनं हितम् ॥ १४५ ॥
वेगापाये[10] ऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगाभिवर्द्धनम् ।
ज्वरितो[11] हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ॥ १४६ ॥
अन्नकाले[12] ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽथवा ।
स क्षीणः कृच्छ्रतां याति यात्यसाध्यत्वमेव च ॥ १४७ ॥

---

१ क्षामं=क्षीणम्, निरन्नम्=अकृतभोजनम् । २ येषां यवागूः।अहिता तानभिधत्ते-कफेति । असृक्पित्तिनः=रक्तपित्तिन इत्यर्थः । ३ पुराणं=सम्यक् पक्वम् । ४ सव्योषं=त्रिकटुयुक्तम्, वितरेत्=दद्यादित्यर्थः । ५ ज्वरे क्षीरप्रयोगमुपदिशति—कृश इति । कृशः=क्षीणः, दीनः=क्लिष्टचित्तः । ६ सृष्टदोषः=च्युतदोषः । ७ पयसा=क्षीरेणेत्यर्थः ।

८ तरुणज्वरे पयः पीतं सद् यत्करोति तद्दर्शयति—तदेवेति । तदेव=पयः, तरुणे=तरुणज्वरे । ९ पुराणरक्तशाल्यादिकं सुलघ्वित्यर्थः । मात्रावत्=अल्पम् । १० वेगापाये=ज्वरवेगक्षये । ११ जीर्णज्वरितस्यारुचावपि हितभोजनमुपदिशति—ज्वरित इति । हि कल्पनाविशेषेण रुच्यं कृत्वा अश्नीयादित्यर्थः । तदुक्तम्—"सातत्यात् स्वाद्वभावाच्च पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम् । कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत् पुनः ॥" इति । १२ हि यस्मादन्नकाले अभुञ्जानः क्षीयते अथवा म्रियते ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्माद्रक्षेद्बलं पुंसां बले सति हि जीवितम् ।
गुर्व्यैभिष्यन्द्यकाले[1] च ज्वरी नाद्यात्कथञ्चन ॥ १४८ ॥
न तु[2] तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय वा ।
सततं विषमं[3] वाऽपि क्षीणस्य सुचिरोत्थितम् ॥ १४९ ॥
ज्वरं सम्भोजनैः[4] पथ्यैर्लघुभिः समुपाचरेत् ।
मुद्गान्मसूरांश्चणकान् कुलत्थान् समकुष्ठकान्[5] ॥ १५० ॥
आहारकाले यूषार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत् ।
पटोलपत्रं वार्ताकं कठिल्लं[6] पापचैलिकम् ॥ १५१ ॥
कर्कोटकं[7] पर्पटकं गोजिह्वां बालमूलकम् ।
पत्रं गुडूच्याः शाकार्थं ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥ १५२ ॥
लावान् कपिञ्जलानेणान्[8] पृषताञ्छरभाञ्छशान् ।
कालपुच्छान्[9] कुरङ्गांश्च तथैव मृगमातृकान् ॥ १५३ ॥
मांसार्थं मांससात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ।
सारसक्रौञ्चशिखिनः[10] कुक्कुटांस्तित्तिरींस्तथा ॥ १५४ ॥

---

१ अभिष्यन्दि=दोषधातुमलस्रोतसां क्लेदप्राप्तिजननम्, कथञ्चन=एकवारमपि । २ अत्र तुकारो यस्मादर्थे । यस्मादहितं गुर्वादिकं भुक्तं भोजनं तस्य ज्वरितस्य आयुषे सुखाय वा न भवतीति शेषः । ३ विषमं=सततान्येद्युष्कादिकम् । ४ सम्भोजनैः=यथेष्टभोजनैरित्यर्थः ।

५ ज्वरे आहारोपयोगीनि द्रव्याणि निर्दिशति—मुद्गानिति । समकुष्ठकान्=वनमुद्गसहितान् । ६ कठिल्लं=पुनर्नवाशाकम्, 'कठिल्लकस्तु पर्णासे वर्षाभूकारवेल्लयोः' इति विश्वः । पापचैलिकं=पाठाशाकम् । ७ कर्कोटकं='खेखसा' इति ख्यातस्य शाकम्, पर्पटकं='पित्तपापड़ा' इति ख्यातस्य शाकम्, गोजिह्वा=वनगोजीशाकम्, बालमूलकं=लघुमूलकशाकम् । ८ कपिञ्जलः=गौरतित्तिरिः, एणः=कृष्णमृगः, पृषतः=शुभ्रबिन्दुमान् मृगविशेषः, शरभः=अष्टापद उष्ट्रप्रमाणो महाशृङ्गः पृष्ठगतचतुष्पादः काश्मीरे प्रसिद्धः, अस्य लक्षणं महाभारते—'अष्टपादूर्ध्वनयन ऊर्ध्वपादचतुष्टयः । सिंहं हन्तुं समायाति शरभो वनगोचरः ॥' इति ।

९ कालपुच्छः=यथाश्रुतो मृगविशेषः, कुरङ्गः=ईषत्ताम्रो बृहद्धरिणश्चतुःशृङ्गश्चतुरगतिः, 'चतुरङ्ग' इति लोके । मृगमात्रिकः=क्षुद्रमृगः । १० परमतेन सारसादीनामप्रशस्तत्वमाह—सारसेति । सारसः=रक्तचञ्चुः पक्षिविशेषः, क्रौञ्चः='करा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः ।
ज्वरितानां[1] प्रकोपन्तु यदा याति समीरणः ॥ १५५ ॥
तदैते[2]ऽपि हि शस्यन्ते मात्राकालोपपादिताः ।
परिषेकावगाहांश्च[3] स्नेहान् संशोधनानि च ॥ १५६ ॥
( स्नानाभ्यङ्गदिवास्वप्नशीतव्यायामयोषितः । )
कषायगुरुरूक्षाणि क्रोधादीनि तथैव च ॥ १५७ ॥
सारवन्ति[4] च भोज्यानि वर्जयेत्तरुणज्वरी ।
तथैव नवधान्यादिं[5] वर्जयेच्च समासतः ॥ १५८ ॥
अनवस्थितदोषाग्नेरेभिः[6] सन्धुक्षितो ज्वरः ।
गम्भीरतीक्ष्णवेगत्वं यात्यसाध्यत्वमेव च ॥ १५९ ॥
शीततोयदिवास्वप्नक्रोधव्यायामयोषितः ।
न सेवेत ज्वरोत्सृष्टो यावन्न बलवान् भवेत् ॥ १६० ॥
मुक्तस्यापि ज्वरेणाशु दुर्बलस्याहितैर्ज्वरः[7] ।
प्रत्यापन्नो[8] दहेद् देहं शुष्कं वृक्षमिवानलः ॥ १६१ ॥
तस्मात्कार्यः परीहारो[9] ज्वरमुक्तैर्विरिक्तवत् ।
यावन्न प्रकृतिस्थः स्याद् दोषतः प्राणतस्तथा ॥ १६२ ॥
ज्वरे[10] प्रमोहो भवति स्वल्पैरप्यवचेष्टितैः ।
निषण्णं भोजयेत्तस्मान्मूत्रोच्चारौ च कारयेत् ॥ १६३ ॥
अरोचके गात्रसादे वैवर्ण्येऽङ्गमलादिषु ।

---

कुल' इति ख्यातो बकभेदः, शिखी=मयूरः। १ स्वमतेन अभिदधाति—ज्वरितानामिति। २ एते=सारसादयः।

३ ज्वरे वर्जनीयानि दर्शयति—परिषेकेति। अवगाहः=नद्यादौ निमज्य स्नानम्। ४ स्निग्धानि अभिष्यन्दीनि च सारवन्ति वस्तूनीत्यर्थः। ५ नवधान्यादिवर्गो व्रणितोपासनीये तक्रान्तो द्रष्टव्यः। ६ अनवस्थितदोषाग्नेः=नवज्वरिणः, एभिः=परिषेकादिभिः। ७ अहितैः=परिषेकादिभिरित्यर्थः। ८ प्रत्यापन्नः=प्रत्यावृत्तः, दहेत्=विनाशयेत्। ९ परीहारः=परिषेकादीनां परित्यागः।

१० ज्वरे आयासनिषेधार्थमुपदिशति—ज्वर इति। ज्वरे ज्वरकर्शिते पुरुषे स्वल्पैरपि अवचेष्टितैरुत्थानादिव्यापारैः प्रमोहो मूर्च्छा भवति, तस्मात् निषण्णं शय्यायामु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तज्वरोऽपि शोध्यः स्यादनुबन्धभयान्नरः ॥ १६४ ॥
न जातु स्नापयेत प्राज्ञः सहसा ज्वरकर्शितम्।
तेन सन्दूषितो ह्यस्य पुनरेव भवेज्ज्वरः ॥ १६५ ॥
चिकित्सेच्च ज्वरान् सर्वान्निमित्तानां विपर्य्ययैः।
श्रमक्षयाभिघातोत्थे मूलव्याधिमुपाचरेत् ॥ १६६ ॥
स्त्रीणामपप्रजातानां स्तन्यावतरणे च यः।
तत्र संशमनं कुर्य्याद्यथादोषं विधानवित् ॥ १६७ ॥
अतः संशमनीयानि कषायाणि निबोध मे।
सर्वज्वरेषु देयानि यानि वैद्येन जानता ॥ १६८ ॥
पिप्पलीसारिवाद्राक्षाशतपुष्पाहरेणुभिः।
कृतः कषायः सगुडो हन्याच्छ्वसनजं ज्वरम् ॥ १६९ ॥

---

पविष्टमेव भोजयेत्। चकाराद् निषण्णमेव मूत्रोच्चारौ।कारयेदित्यर्थः। १ अनुबन्धभयात्=ज्वरस्य पुनरावृत्तिशङ्कया। २ सहसा=बलप्राप्तेः प्राक्। ३ तेन=स्नानेनेत्यर्थः।

४ सङ्क्षेपतः सर्वज्वरचिकित्सितमभिधत्ते—चिकित्सेच्चेति। निमित्तानां विपर्ययैः=कारणानां विपरीतैः, यथा—सन्तर्पणोत्थे ज्वरे अपतर्पणम्, अपतर्पणोत्थे च सन्तर्पणमिति। ५ "श्रमक्षयाभिघातेभ्यो देहिनां कुपितोऽनिलः। पूरयित्वाऽखिलं देहं ज्वरमापादयेद् भृशम्॥" इति प्रागुक्तस्मरणाद् मूलव्याधिं मूलदोषं वायुमुपाचरेदित्यर्थः। ६ यः=ज्वरः। ७ विधानविद् वैद्यो यथा दोषं दोषप्रकोपानुसारेण तत्र ज्वरे संशमनं पाचनमपि कुर्यात् कारयेदित्यर्थः। ८ मे मत्सकाशात्, निबोध जानीहि।

९ तत्र वातज्वरे संशमनकषायानाख्याति—पिप्पलीति। सारिवा=उत्पलसारिवा, शतपुष्पा='सौंफ' इति ख्याता। हरेणुः=रेणुका, निर्गुण्डीबीजमिति यावत्। पिप्पल्यादिद्रव्यपलं षोडशपलप्रमाणे पानीये सङ्काथ्य चतुर्भागावशिष्टं पलचतुष्टयमादाय कर्षप्रमाणं गुडं मेलयित्वा पानेन श्वसनजं वातजं ज्वरमेष कषायो नाशयतीति बोध्यम्। "भेषजात् षोडशगुणं जलं, काथ्ये पलं मतम्। चतुर्भागावशेषं तु पेयमेवं सुखार्थिना॥" इति तद्विधिरुक्तः। एतत् पलमानमुत्तमादिभेदेन बोध्यम्। तदुक्तम्—"उत्तमस्य पलं मानं त्रिभिः कर्षैश्च मध्यमे। जघन्यस्य पलार्धं च स्नेहकाथौषधेषु च॥" इति।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]शृतं शीतकषायं वा गुडूच्याः पेयमेव तु ।
बलादर्भश्वदंष्ट्राणां[2] कषायं पादशेषितम् ॥ १७० ॥
शर्करा[3]घृतसंयुक्तं पिबेद्वातज्वरापहम् ।
शतपुष्पावचाकुष्ठदेवदारुहरेणुकाः ॥ १७१ ॥
कुस्तुम्बुरूणि[4] नलदं मुस्तं चैवाप्सु साधयेत् ।
क्षौद्रेण सितया चापि युक्तः क्वाथोऽनिलाधिके ॥ १७२ ॥
द्राक्षागुडूचीकाश्मर्य्य[5]त्रायमाणाः ससारिवाः ।
निःक्वाथ्य सगुडं क्वाथं पिबेद्वातकृते ज्वरे ॥ १७३ ॥
गुडूच्याः स्वरसो ग्राह्यः शतावर्य्याश्च तत्समः ।
निहन्यात्सगुडः पीतः सद्योऽनिलकृतं ज्वरम् ॥ १७४ ॥
घृताभ्यङ्गस्वेदलेपानव[6]स्थासु च योजयेत् ।
श्रीपर्णी[7]चन्दनोशीरपरूषकमधूकजः ॥ १७५ ॥

---

१ शृतं=पूर्वोक्तविधिना काथीकृतम्, अत्र विशेषः—"दिवा शृतं पयो रात्रौ गुरुतामधिगच्छति । रात्रौ शृतं दिवा पीतं गुरुत्वमधिगच्छति ॥ तत्तु पर्युषितं वह्निगुणोत्सृष्टं त्रिदोषकृत् । गुर्वम्लपाकं विष्टम्भि सर्वरोगेषु निन्दितम् ॥ शृतशीतं पुनस्तप्तं तोयं विषसमं भवेत् । निर्यहोऽपि तथा शीतः पुनस्तप्तो विषोपमः ॥" इति । शीतकषायलक्षणम्—"क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक् षड्भिर्जलपलैः प्लुतम् । शर्वरीमुषितः स स्याद्भिषः शीतकषायकः ॥" इति । अपि च—"द्रव्यादापोत्थितात्तोये प्रतप्ते संस्थितान्निशि । कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः ॥" इति । २ श्वदंष्ट्रा=गोक्षुरकः । ३ शर्कराघृताभ्यां कर्षप्रमाणाभ्यां संयुक्तम्, एवमग्रेऽपि अनुपाने कर्षप्रमाणमुन्नेयम् ।

४ कुस्तुम्बुरु=धन्याकम्, नलदम्=उशीरम् । ५ काश्मर्य=गम्भारीफलम्, त्रायमाणा=त्रायन्ती, 'वार्षिकं त्रायमाणा स्यात् त्रायन्ती बलभद्रिका' इति । ६ अवस्थासु=रूक्षत्वशीतानुसङ्गित्वादिषु, यथा रूक्षत्वे पुराणघृताभ्यङ्गः, शीतानुसङ्गित्वे स्वेदलेपौ । "दाहकृत्तेजसा युक्तः शीतकृत् सोमसंश्रयात्" इति वाग्भटोक्त्या पित्तश्लेष्मानुसङ्गित्वेन दाहशीते जाते यथा योग्यं शीतोष्णान् लेपान् प्रयोजयेदित्याद्यूह्यम् ।

७ पित्तज्वरे संशमनमुपदिशति—श्रीपर्णीति । श्रीपर्णीपरूषकयोः फलं ग्राह्यं मधूकस्य तु पुष्पम् । श्रीपर्णी=गम्भारी, परूषकः='फालसा' इति ख्यातः । चन्दनं=रक्तचन्दनम्, यत उक्तम्—"कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम्" इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्कराम्बुरो हन्ति कषायः पैत्तिकं ज्वरम् ।
पीतं पित्तज्वरं हन्यात्सारिवाद्यं[1] सशर्करम् ॥ १७६ ॥
सयष्टीमधुकं हन्यात्तथैवोत्पलपूर्वकम्[2] ।
घृतं शीतकषायं वा सोत्पलं[3] शर्करायुतम् ॥ १७७ ॥
गुडूचीपद्मरोध्राणां[4] सारिवोत्पलयोस्तथा ।
शर्कराम्बुरः क्वाथः शीतः पित्तज्वरापहः ॥ १७८ ॥
द्राक्षाऽऽरग्वधयोश्चापि काश्मर्य्यस्यथवा पुनः[5] ।
स्वादुतिक्त[6] कषायाणां कषायैः शर्करायुतैः ॥ १७९ ॥
सुशीतैः[7] शमयेत्तृष्णां प्रवृद्धां दाहमेव च ।
शीतं मधुयुतं तोयमाकण्ठाद्वा पिपासितम् ॥ १८० ॥
वामयेत्पाययित्वा[8] तेन तृष्णा प्रशाम्यति ।
क्षीरैः क्षीरिकषायैश्च[9] सुशीतैश्चन्दनायुतैः ॥ १८१ ॥
अन्तर्दाहे[10] विधातव्यमेभिश्चान्यैश्च शीतलैः ।
पद्मकं[11] मधुकं द्राक्षां पुण्डरीकमथोत्पलम् ॥ १८२ ॥
यवान् भृष्टानुशीराणि[12] समङ्गां काश्मरीफलम् ।
निदध्यादप्सु चालोड्य निशापर्य्युषितं ततः ॥ १८३ ॥
क्षौद्रेण युक्तं पिबतो ज्वरदाहौ प्रशाम्यतः ।

---

१ सारिवाद्यं = द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तसारिवादिद्रव्यम् । २ उत्पलपूर्वकं = द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तमुत्पलादिद्रव्यम् । ३ सोत्पलम् = उत्पलादिगणद्रव्यसहितम्, अर्थादुत्पलादिगणकृतम् । ४ पद्म = कमलम्, उत्पलं = नीलोत्पलम् ।

५ पित्तज्वरे आवस्थिकं योगत्रयं वक्ति—द्राक्षेति । द्राक्षाऽऽरग्वधयोः फलं ग्राह्यम् । ६ स्वादुतिक्तकषायाणां = यथालाभं रसविशेषविज्ञानीयाध्यायोक्तमधुरतिक्तकषायवर्गाभिहितानां द्रव्याणाम् । ७ सुशीतैः = शीतकषायैरित्यर्थः । ८ मदनफलादिवमनद्रव्येण वामयेदित्यर्थः । ९ क्षीरिकषायैः = न्यग्रोधादिपञ्चक्षीरिवृक्षकाथैः । १० पानलेपपरिषेकावगाहादिकं विधातव्यमित्यर्थः । अन्यैः = काकोल्यादिभिः, शीतलैः = शीतवीर्यैः, तथा शीतस्पर्शैरपि ।

११ पित्तज्वरावस्थायां शीतकषायमाचष्टे—पद्मकमिति । पद्मकं = पद्मकाष्ठम्, पुण्डरीकं = सिताम्भोजम् । १२ समङ्गा = 'लजालू-लजौनी-छुईमुई' इति नाम्ना



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिह्वातालुगलक्लोमशोषे[1] मूर्ध्नि च दापयेत् ॥ १८४ ॥
केशरं[2] मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ।
शर्कराद्याडिमाभ्यां वा द्राक्षाखर्जूरयोस्तथा ॥ १८५ ॥
वैरस्ये[3] धारयेत्कल्कं गण्डूषञ्च तथा हितम् ।
सप्तच्छदं[4] गुडूचीञ्च निम्बं स्फूर्जकमेव च ॥ १८६ ॥
क्वाथयित्वा पिबेत् क्वाथं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ।
कटुत्रिकं नागपुष्पं[5] हरिद्रा कटुरोहिणी ॥ १८७ ॥
कौटजञ्च फलं हन्यात्सेव्यमानं कफज्वरम् ।
हरिद्रां चित्रकं निम्बमुशीरं[6] वातिविषे वचाम् ॥ १८८ ॥
कुष्ठमिन्द्रयवान् मूर्वां पटोलं चापि साधितम् ।
पिबेन्मरिचसंयुक्तं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ १८९ ॥
सारिवाऽतिविषाकुष्ठपुरा[7]ख्यैः सदुरालभैः ।
मुस्तेन च कृतः क्वाथः पीतो हन्यात् कफज्वरम् ॥ १९० ॥
मुस्तं वृक्षकबीजानि[8] त्रिफलाकटुरोहिणी ।
पटूषकाणि च क्वाथः कफज्वरविनाशनः ॥ १९१ ॥
राजवृक्षा[9]दिवर्गस्य कषायो मधुसंयुतः ।
कफवातज्वरं हन्याच्छीघ्रं कालेऽवचारितः ॥ १९२ ॥
नागरं धान्यकं भार्गी[10]मभयां सुरदारु च ।

---

उद्घुष्यते । १ क्लोम्नि=तिलके । २ पित्तज्वरे गण्डूषस्य योगद्वयमभिधत्ते—केशरमिति । ३ मुखवैरस्ये इत्यर्थः ।

४ कफज्वरे संशमनमभिदधाति—सप्तच्छदमिति । सप्तच्छदः=सप्तपर्णः 'सातला—सतवन' इति ख्यातः, स्फूर्जकः=फणिज्जकः । ५ नागपुष्पं=नागकेसरम् । ६ अतिविषा='अतीरु' इति ख्याता । ७ पुराख्यः=गुग्गुलुः, दुरालभा='जवासा' इति ख्याता । ८ वृक्षकबीजानि=कुटजबीजानि, इन्द्रयवा इति यावत् । कटुरोहिणी='कुटकी' इति ख्याता ।

९ द्वन्द्वजज्वरे संशमनयोगान्निर्दिशति—राजेति । राजवृक्षादिवर्गस्य=आरग्वधादिगणस्य । १० भार्गी='भारङ्गी' इति ख्याता । अभया=हरीतकी, सुरदारु=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचां पर्पटकं मुस्तं भूतीकं[1]मथ कट्फलम् ॥ १९३ ॥
निष्काथ्य कफवातोत्थे क्षौद्रहिङ्गुसमन्वितम् ।
दातव्यं श्वासकासघ्नं [2]श्लेष्मोत्सेके गलग्रहे ॥ १९४ ॥
हिक्कासु कण्ठश्वयथौ शूले हृदयपार्श्वजे[3] ।
बलापटोलत्रिफलायष्ट्याह्वानां वृषस्य च ॥ १९५ ॥
क्काथो मधुयुतः पीतो हन्ति पित्तकफज्वरम् ।
कटुकाविजया[4]द्राक्षामुस्तपर्पटकैः कृतः ॥ १९६ ॥
कषायो नाशयेत्पीतः श्लेष्मपित्तभवं ज्वरम् ।
भार्गीवचापर्पटकधान्यहिङ्ग्वभयाघनैः ॥ १९७ ॥
काश्मर्य्यनागरैः क्काथः सक्षौद्रः श्लेष्मपित्तजे ।
सशर्करामक्षमात्रां[5] कटुकामुष्णवारिणा ॥ १९८ ॥
पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम् ।
किरा[6]ततिक्तमसृतां द्राक्षामामलकं शटीम् ॥ १९९ ॥
निष्काथ्य वातपित्तोत्थे तं क्काथं सगुडं पिबेत् ।
रास्ना वृषोऽथ त्रिफला राजवृक्षफलैः सह ॥ २०० ॥
कषायः साधितः पीतो वातपित्तज्वरं जयेत् ।
सर्वदोषसमुत्थे तु संसृष्टानवचारयेत् [8] ॥ २०१ ॥
यथादोषोच्छ्रयञ्चापि ज्वरान् सर्वानुपाचरेत् ।
[10]वृश्चीवबिल्ववर्षाभ्वः पयश्चोदकमेव च ॥ २०२ ॥
पचेत्[11] क्षीरावशिष्टं तु तद्धि सर्वज्वरापहम् ।

---

देवदारु । १ भूतीकं = रोहिषतृणम् । २ श्लेष्मोत्सेके = श्लेष्मवृद्धौ । ३ हृदय-पार्श्वजे च शूले इत्यर्थः । ४ विजया = हरीतकी । ५ अक्षमात्रां = कर्षप्रमाणाम् । ६ किरातितिक्तं = 'चिरायता' इति प्रथते । अमृता = गुडूची, शटी = 'कचूर' इति ख्याता । ७ वृषः = वासक इत्यर्थः ।

८ सन्निपाते सामान्यचिकित्सामाह — सर्वदोषेति । संसृष्टान् = वातार्थुक्तक-षायेण मिलितान् । ९ यस्य दोषस्य उच्छ्रयो वृद्धिर्भवति, तद्दोषप्रतीकारेणेत्यर्थः । १० वृश्चीवः = श्वेतपुनर्नवा, वर्षाभूः = रक्तपुनर्नवा । ११ "द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषं कर्तव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥" इति परिभाषोक्तविधि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदकांशावशेषः क्षीरं शिंशपासारसंयुतम् ॥ २०३ ॥
तत् क्षीरशेषं कथितं पेयं सर्वज्वरापहम् ।
नलवेतसयोर्मूले मूर्वायां देवदारुणि ॥ २०४ ॥
कषायं विधिवत् कृत्वा पेयमेतज्ज्वरापहम् ।
हरिद्रा भद्रमुस्तं च त्रिफला कटुरोहिणी ॥ २०५ ॥
पिचुमन्दः पटोली च देवदारु निदिग्धिका ।
एषां कषायः पीतस्तु सन्निपातज्वरं जयेत् ॥ २०६ ॥
अविपक्तिं प्रसेकं च शोफं कासमरोचकम् ।
त्रैफलो वा ससर्पिष्कः क्वाथः पेयस्त्रिदोषजे ॥ २०७ ॥
अनन्तां बालकं मुस्तां नागरं कटुरोहिणीम् ।
सुखाम्बुना प्रागुदयात्पाययेत्क्षसम्मितम् ॥ २०८ ॥
एषसर्वज्वरान् हन्ति दीपयत्याशु चानलम् ।
द्रव्याणि दीपनीयानि तथा वैरेचनानि च ॥ २०९ ॥
एकशो वा द्विशो वाऽपि ज्वरघ्नानि प्रयोजयेत् ।
सर्पिर्मध्वभयातैललेहोऽयं सर्वजं ज्वरम् ॥ २१० ॥
शान्तिं नयेत् त्रिवृच्चापि सक्षौद्रा प्रबलं ज्वरम् ।
ज्वरे तु विषमे कार्य्यमूर्द्ध्वं चाधश्च शोधनम् ॥ २११ ॥

---

ना पचेदित्यर्थः । १ शिंशपासारः पलप्रमाणः, क्षीरम् अष्टपलप्रमाणम् ।

२ मूर्वा='मरोरफली' इति ख्याता । ३ कटुरोहिणी='कुटकी' इति ख्याता । ४ पिचुमन्दः=निम्बः, निदिग्धिका=कण्टकारिका । ५ प्रसेकः=लालास्रावः । ६ वा अथवा त्रिदोषजे त्रैफलः क्वाथः ससर्पिष्कः सर्पिषा युक्तः पेयः पातव्य इत्यर्थः । ७ अनन्ता='जवासा' इति ख्याता, बालकं=नेत्रवाला' इति ख्याता । ८ अक्षसम्मितं=कर्षप्रमाणमित्यर्थः ।

९ दीपनीयानि=पिप्पल्यादीनि अग्निसन्दीपनीयानि, वैरेचनानि=त्रिवृदभयादीनि विरेचनद्रव्याणि । १० प्रयोजयेत्=सन्निपातजीर्णज्वरावस्थायामेकशो द्विशो वाऽपि दोषबलं विचार्य दापयेदित्यर्थः । ११ प्रबलं=दाहादियुक्तम् , तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"पथ्यातैलघृतक्षौद्रैर्लेहो दाहश्रमज्वरान् । कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासान् हन्ति वमीरपि ॥" इति ।

१२ सर्वेषु विषमज्वरेषु कफपित्ताधिकतया वमनविरेचनार्थमुपदिशति—ज्वरे इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घृतं प्लीहोदरोक्तं वा निहन्याद्विषमज्वरम्[1] ।
गुडप्रगाढां त्रिफलां पिबेद् वा विषमार्दितः[2] ॥ २१२ ॥
गुडूचीनिम्बधात्रीणां[3] कषायं वा समाक्षिकम् ।
प्रातः प्रातः ससर्पिष्कं रसोनमुपयोजयेत्[4] ॥ २१३ ॥
त्रिचतुर्भिः पिबेत्[5] क्वाथं पञ्चभिर्वा समन्वितैः ।
मधुकस्य पटोलस्य रोहिण्या[6] मुस्तकस्य च ॥ २१४ ॥
हरीतक्याश्च सर्वोऽयं त्रिविधो योगः[7] इष्यते ।
सर्पिःक्षीरसिताक्षौद्रमागधीर्वा यथाबलम् ॥ २१५ ॥
दशमूलीकषायेण मागधीर्वा प्रयोजयेत् ।
पिप्पलीवर्द्धमानं[8] वा पिबेत् क्षीररसाशनः ॥ २१६ ॥
ताम्रचूडस्य[9] मांसेन पिबेद्वा मद्यमुत्तमम् ।
कोलाग्निमन्थत्रिफलाक्वाथे[10] दध्ना घृतं पचेत् ॥ २१७ ॥
तिल्वकावापमेतद्धि विषमज्वरनाशनम् ।
पिप्पल्यतिविषाद्राक्षासारिवाबिल्वचन्दनैः ॥ २१८ ॥

---

ऊर्ध्वं शोधनं=वमनम् , अधःशोधनं = विरेचनम् । १ कफप्रधानं विषमज्वरमित्यर्थः । २ विषमार्दितः=विषमज्वरपीडितः । ३ धात्री=आमलकी । ४ रसोनम्=अम्लरसरहितं, लशुनमित्यर्थः । तदुक्तम्—"पञ्चभिश्च रसैर्युक्तो रसेनाम्लेन वर्जितः । तस्माद्रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः ॥" इति । ५ त्रिभिर्द्रव्यैः चतुर्भिः पञ्चभिर्वा समन्वितैः साधितं क्वाथं विषमज्वरान् प्रतीकर्तुं पिबेदित्यर्थः । ६ रोहिणी='कुटकी' इति ख्याता ।

७ त्रिविधो योगो यथा—मधुकपटोलरोहिणीभिस्त्रिभिर्द्रव्यैरेको योगः, मधुकपटोलरोहिणीमुस्तकैश्चतुर्भिर्द्वितीयो योगः, मधुकपटोलरोहिणीमुस्तकहरीतकीभिः पञ्चभिस्तृतीयो योगः । ८ पिप्पलीवर्धमानं नाम क्रमाभिवृद्धा पिप्पली, तत्प्रयोगो वातव्याधिचिकित्सिते द्रष्टव्यः । ९ ताम्रचूडस्य = कुक्कुटस्येत्यर्थः ।

१० कोलं = पञ्चकोलम् । घृतनिर्माणविधिः—पलशतप्रमाणानि पञ्चकोलादिद्रव्याणि द्वादशाधिकपलप्रमाणे पानीये पक्त्वा चतुर्थांशमष्टाविंशत्यधिकशतमवशेषयेत्, ततस्तेन क्वाथेन चतुर्गुणेन तथा चतुर्गुणेन च दध्ना द्वात्रिंशत्पलप्रमाणं घृतम्, अष्टपलप्रमाणं पट्टिकारोध्रं च दत्त्वा पुनः पचेदिति । अनेनैव विधिनाऽन्यान्यपि तैलघृ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कटुकेन्द्रयवोशीरसिंहीता[1]मलकोघनैः ।
त्रायमाणास्थिरा[2]धात्रीविश्वभेषजचित्रकैः ॥ २१९ ॥
पक्वमेतैर्घृतं पीतं विजित्य विषमाग्निताम् ।
जीर्णज्वरशिरःशूलगुल्मोदरहलीम[3]कान् ॥ २२० ॥
क्षयकासं ससन्तापं पार्श्वशूलानपास्य[4]ति ।
गुडूचीत्रिफलावासात्रायमाणायवा[5]सकैः ॥ २२१ ॥
क्वथितैर्विधिवत्पक्वमेतैः कल्कीकृतैः समैः ।
द्राक्षामागधिका[6]ऽम्भोदनागरोत्पलचन्दनैः ॥ १२२ ॥
पीतं सर्पिः क्षयश्वासकासाजीर्णज्वरान् जयेत् ।
कल[7]शीबृहतीद्राक्षात्रायन्तीनिम्बगोक्षुरैः ॥ २२३ ॥
बलापर्पटकाम्भोदशालपर्णीयवासकैः ।
पक्वमुत्क्वथितैः सर्पिः कल्कैरेभिः समन्वितम् ॥ २२४ ॥
शटीतामलकीभार्गीमेदाऽऽमलकपौष्करैः ।
क्षारद्विगुणसंयुक्तं जीर्णज्वरमपोहति ॥ २२५ ॥
शिरःपार्श्वरुजाकासक्षयप्रशमनं परम् ।
पटोलीपर्पटारिष्ट[9]गुडूचीत्रिफलावृषैः ॥ २२६ ॥
कटुजाम्बुद[11]भूनिम्बयासयष्ट्याह्वचन्दनैः ।
दार्वीशक्रय[12]वोशीरत्रायमाणाकणोत्पलैः ॥ २२७ ॥
धात्रीभृङ्गरजोभीरु[13]काकमाचीरसैर्घृतम् ।

---

तानि पाचनीयानि, येषु प्रमाणं नोक्तम् । १ सिंही=बृहत्कण्टकारिका, तामलका=भूम्यामलकी, 'झटामलाज्झटा ताली शिवा तामलकीति च' इत्यमरः ।

२ स्थिरा=शालपर्णी, विश्वभेषजं='सोंठ' इति प्रथते । ३ हलीमकः=पाण्डुरोगप्रभेदः । ४ अपास्यति=नाशयतीत्यर्थः । ५ यवासकः='जवासा' इति ख्यातः । ६ मागधिका=पिप्पली । ७ कलशी=पृश्निपर्णी, बृहती=कण्टकारिका, त्रायन्ती=त्रायमाणा । ८ पर्पटकः='पित्तपापड़ा' इति ख्यातः । अम्भोदः=मुस्ता । ९ शटी='कचूर' इति प्रथते । तामलकी=भूम्यामलकी । १० अरिष्टः=निम्बः, वृषः=वासा ।

११ अम्बुदः=मुस्ता, भूनिम्बः='चिरायता' इति, यासः='जवासा' इति, यष्ट्याह्वं=यष्टीमधु । १२ शक्रयवः=इन्द्रयवः, कणा=पिप्पली, उत्पलं=कुष्ठम् । १३ भीरुः=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धमाश्वपचीकुष्ठज्वरशुक्राऽर्जुनव्रणान् ॥ २२८ ॥
हन्यान्नयनवदनश्रवणघ्राणजान् गदान् ।
विडङ्गत्रिफलामुस्तमञ्जिष्ठादाडिमोत्पलैः ॥ २२९ ॥
प्रियङ्ग्वेलैलवालूकचन्दनामरदारुभिः ।
बर्हिष्ठकुष्ठरजनीपर्णिनीसारिवाद्वयैः ॥ २३० ॥
हरेणुकात्रिवृद्दन्तीवचातालोशकेसरैः ।
द्विक्षीरं विपचेत्सर्पिर्मालतीकुसुमैः सह ॥ २३१ ॥
जीर्णज्वरश्वासकासगुल्मोन्मादगरापहम् ।
एतत्कल्याणकं नाम सर्पिर्माङ्गल्यमुत्तमम् ॥ २३२ ॥
अलक्ष्मीग्रहरक्षोऽग्निमान्द्यापस्मारपापनुत् ।
शस्यते नष्टशुक्राणां वन्ध्यानां गर्भदं परम् ॥ २३३ ॥
मेध्यं चक्षुष्यमायुष्यं रेतोमार्गविशोधनम् ।
एतैरेवं तथा द्रव्यैः सर्वगन्धैश्च साधितम् ॥ २३४ ॥

---

शतावरी, काकमाची = 'मकोय' इत्युद्घुष्यते । पटोल्यादिघृतसाधने पटोलीप्रभृत्युत्पलान्तानां द्रव्याणां कल्कं, धात्रीप्रभृतीनां च स्वरसो ग्राह्यः ।

१ कल्याणकघृतमाख्याति—विडङ्गेति । उत्पलमत्र नीलोत्पलम् । २ एला=लध्वेला, एलावालूकम् = 'एलुआ' इति ख्यातम्, चन्दनं = रक्तचन्दनम्, अमरदारु = देवदारु । ३ बर्हिष्ठं = 'नेत्रवाला' इति ख्यातम् । 'बालं ह्रीवेरबर्हिष्ठोदीच्यं केशाम्बुनाम च' इत्यमरः । रजनीद्वयं=हरिद्रा दारुहरिद्रा च, पर्णिनीद्वयं=शालपर्णी पृश्निपर्णी च, सारिवाद्वयं = सारिवा उत्पलसारिवा च ।

४ हरेणुका=रेणुका, निर्गुण्डीबीजमिति यावत् । त्रिवृत्='निसोत' इति, ५ द्विक्षीरं = गोश्छगल्याश्च क्षीरम् ।। एतत् कल्याणकघृतं विडङ्गादिद्रव्याणामष्टपलप्रमाणेन कल्केन, एकप्रस्थप्रमितेन क्षीरेण, चतुःप्रस्थप्रमाणेन जलेन, प्रस्थप्रमाणेन गव्यघृतेन साधयेत् । ६ मेधायै प्रज्ञायै हितं मेध्यमित्यर्थः ।

७ महाकल्याणकघृतं वर्णयति—एतैरेवेति । एतैः=कल्याणकघृतौक्तैर्विडङ्गादिभिर्द्रव्यैः, तथा "चातुर्जातककर्पूरकक्कोलागुरुकुङ्कुमम् । लवङ्गसहितं चैव सगन्धं विनिर्दिशेत् ॥" इत्युक्तैः सर्वगन्धैश्च कपिलाया घृतप्रस्थं सुवर्णमणिसंयुतं साधितं तत् सर्पिः, पुनरमैश्चम्पकाशोकशिरीषकुसुमैस्तथा नलदपद्मानां केसरैर्दाडिमस्य च कुसुमैः वृतं युक्तं तत्क्षीरेण कपिलाक्षीरेण सहैकध्यं कृतं प्रसाध्य, एतेन घृतमिदं पाकद्वय-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपिलाया घृतप्रस्थं सुवर्णमणिसंयुतम् ।
तत्क्षीरेण सहैकध्यं प्रसाध्य कुसुमैरिमैः ॥ २३५ ॥
सुमनश्चम्पकाशोककशिरीषकुसुमैर्वृतम् ।
तथा नलदपद्मानां केशरैर्दाडिमस्य च ॥ २३६ ॥
तिथौ प्रशस्ते नक्षत्रे साधकस्यातुरस्य च ।
कृतं मनुष्यदेवाय ब्राह्मणैरभिमन्त्रितम् ॥ २३७ ॥
दत्तं सर्वज्वरान् हन्ति महाकल्याणकं त्विदम् ॥ २३८ ॥
दर्शनस्पर्शनाभ्यां च सर्वरोगहरं शिवम् ।
अधृष्यः सर्वभूतानां वलीपलितवर्जितः ॥ २३९ ॥
अस्याभ्यासाद् घृतस्येह जीवेद्वर्षशतत्रयम् ।
गव्यं दधि च मूत्रञ्च क्षीरं सर्पिः शकृद्रसः ॥ २४० ॥
समभागानि पाच्यानि कल्कांश्चैतान् समावपेत् ।
त्रिफलां चित्रकं मुस्तं हरिद्राऽतिविषे वचाम् ॥ २४१ ॥
विडङ्गं त्र्यूषणञ्चव्यं सुरदारु तथैव च ।
पञ्चगव्यमिदं पानाद्विषमज्वरनाशनम् ॥ २४२ ॥
पञ्चगव्यमृते गर्भात्पाच्यमन्यद् वृषेण च ।
बलयाऽथ परं पाच्यं गुडूच्या तद्वदेव तु ॥ २४३ ॥
जीर्णज्वरे च शोफे च पाण्डुरोगे च पूजितम् ।

---

साधितं भवतीति ज्ञेयम्, ततो ब्राह्मणैरभिमन्त्रितं साधकस्य वैद्यस्य आतुरस्य च प्रशस्ततिथिनक्षत्रादौ मनुष्यदेवाय भूपतये दत्तमिदं महाकल्याणकं सर्वज्वरान् हन्तीति समुदितार्थः। १ 'सुमना मालती जाती' इत्यमरः। २ अधृष्यः = अजेय इत्यर्थः। सर्वभूतानां = सकलप्राणिनाम्।

३ पञ्चगव्यसाधनमाह—**गव्यमिति**। ४ पाच्यानि = पचनीयानि, कल्कान् = स्नेहचतुर्थभागान्। ५ कल्कद्रव्याण्येव निर्दिशति—**त्रिफलामिति**। अतिविषा = 'अतीस' इति ख्याता। ६ त्र्यूषणं = त्रिकटुकम्। ७ अगर्भपञ्चगव्यमुद्दिशति—**पञ्चेति**। गर्भादृते = कल्कं विना, अन्यत्=द्वितीयम्। वृषेण वासकेन, बलया, गुडूच्या, च तद्वदेव पूर्वोक्तकल्पनयैव पाच्यम्। एतेन घृतत्रयं सज्जातमिति बोध्यम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतेनैव[1] तु कल्पेन घृतं पञ्चाविकं पचेत्।
पञ्चाजं[2] पञ्चमहिषं चतुरुष्ट्रमथापि च ॥ २४४ ॥
त्रिफलोशीरशम्पाक[3]कटुकाऽतिविषाघनैः।
शतावरीसप्तपर्णगुडूचीरजनीद्वयैः ॥ २४५ ॥
चित्रकत्रिवृतामूर्वा[4]पटोलारिष्टबालकैः।
किराततिक्तकवचाविशाला[5]पद्मकोत्पलैः ॥ २४६ ॥
सारिवा[6]द्वययष्ट्याह्वचविकारक्तचन्दनैः।
दुरालभा[7]पर्पटकत्रायमाणाऽटरूषकैः ॥ २४७ ॥
रास्नाकुङ्कुममञ्जिष्ठामागधी[8]नागरैस्तथा।
धात्रीफलरसैः सम्यग् द्विगुणैः साधितं हवि[9]ः ॥ २४८ ॥
परिसर्पज्वरश्वासगुल्मकुष्ठनिवारणम्।
पाण्डुप्लीहाग्निसादिभ्य एतदेव परं हितम् ॥ २४९ ॥
[10]पटोलकटुकादार्वीनिम्बवासाफलत्रिकम्।
दुरालभापर्पटकत्रायमाणाः पलोन्मिताः ॥ २५० ॥
प्रस्थमामलकानाञ्च काथयेत्सलिलार्मणे[11]।
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २५१ ॥
कल्कैः[12] कुटजभूनिम्बघनयष्ट्याह्वचन्दनैः।

---

१ पञ्चाविकादिघृतं दर्शयति—एतेनेति। एतेनैव कल्पेन=पूर्वोक्तपञ्चगव्यविधिना, पञ्चाविकं=मेष्या दध्यादीनि पञ्च। २ पञ्चाजं=छगल्या दध्यादीनि पञ्च, पञ्चमहिषं=महिष्या दध्यादीनि पञ्च, चतुरुष्ट्रम्=उष्ट्र्या दध्यादीनि चत्वारि पुरीषरसरहितानि। ३ शम्पाकः=आरग्वधः, घनः=मुस्ता। ४ मूर्वा='मरोरफली' इति ख्याता, अरिष्टः=निम्बः, बालकः='नेत्रवाला' इति ख्यातः। ५ विशाला=इन्द्रवारुणी, पद्मकं=पद्मकाष्ठम्, उत्पलं=नीलोत्पलम्। ६ सारिवाद्वयं=सारिवा उत्पलसारिवा च, यष्ट्याह्वं=यष्टीमधु, चविका=चव्यम्। ७ दुरालभा='जवासा' इति, पर्पटकः='पित्तपापड़ा' इति, त्रायमाणा=त्रायन्ती, अटरूषकः=वासकः। ८ मागधी=पिप्पली, नागरः=शुण्ठी। ९ हविः=घृतमित्यर्थः।

१० अन्यद्घृतमभिदधाति—पटोलेति। दार्वी=दारुहरिद्रा, फलत्रिकं=त्रिफला। ११ अर्मणे=द्रोणपरिमाणे। १२ कुटजः='कुरैया' इति, भूनिम्बः='चिरायता' इति,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धं चक्षुष्यं शुक्लयोर्हितम् ॥ २५२ ॥
घ्राणकर्णाक्षिवदनवर्त्मरोगव्रणापहम् ।
रक्तपित्तकफस्वेदक्लेदपूयोपशोषणम् ॥ २५३ ॥
कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालाहरं परम ।
श्रृतं[२]म्पयः शर्करा च पिप्पल्यो मधुसर्पिषी ॥ २५४ ॥
पञ्चसारमिदं पेयं मंथितं[३] विषमज्वरे ।
क्षतक्षीणे क्षये श्वासे हृद्रोगे चैतदिष्यते ॥ २५५ ॥
लाक्षा[४]विश्वनिशामूर्वामञ्जिष्ठास्वर्जिकामयैः ।
षडगुणेन च तक्रेण सिद्धं तैलं ज्वरान्तकृत् ॥ २५६ ॥
क्षीरि[५]वृ क्षासनारिष्टजम्बूसप्तच्छदार्जुनैः ।
शिरीषखदिरास्फोटा[६]मृतवल्लचटरूषकैः ॥ २५७ ॥
कटुकापर्पटोशीरवचातेजोव[७]ती घनैः ।
साधितं तैलमभ्यङ्गादाशु जीर्णज्वरापहम् ॥ २५८ ॥
निर्विषैर्भुजगैर्नागैर्विनीतैः कृततस्करैः ।

---

घनः = मुस्ता, यष्ट्याह्वं = यष्टीमधु । १ शुक्लयोः = नेत्रगतरोगयोः । २ पञ्चसारपेयमाह—श्रृतमिति । श्रृतं = क्वथितम् , पयः = क्षीरम् । ३ हस्तेन मथितमित्यर्थः ।

४ जीर्णज्वरे लाक्षाऽऽदितैलमाख्याति—लाक्षेति । लाक्षा = 'लाख' इति, विश्वं = 'सोंठ' इति, निशा = हरिद्रा, मूर्वा = 'मरोरफली' इति, मञ्जिष्ठा = 'मजीठ' इति, स्वर्जिका = 'सज्जीखार' इति, आमयं = कुष्ठम् । लाक्षाऽऽदिद्रव्याणां कल्कमष्टपलप्रमाणम् , तैलं द्वात्रिंशत्पलप्रमितम् , तैलात् षड्गुणेन तक्रेण सिद्धं तैलं ज्वरयोः शीतपूर्वकयोर्दाहपूर्वकयोश्च अन्तकृन्नाशकृदित्यर्थः ।

५ क्षीरिवृक्षादितैलं दर्शयति—क्षीरीति । क्षीरिवृक्षाः = न्यग्रोधादयः पञ्च, असनः = बीजकः, अरिष्टः = निम्बः, सप्तच्छदः = 'सतवन' इति, अर्जुनः = 'काहू' इति । ६ आस्फोटा = श्वेतार्कः, अमृतवल्ली = गुडूची, अटरूषकः = वासा । ७ तेजोवती = काकमर्दनिका, घनः = मुस्ता । अत्र क्षीरिवृक्षादिद्रव्याणां कल्कमष्टपलप्रमितं तैलं प्रस्थप्रमाणं स्नेहचतुर्गुणेन जलेन साधयेत् ।

८ विषमज्वरे विशेषचिकित्सितमभिधत्ते—निर्विषैरिति । निर्विषैः = विषरहितैः, भुजगैः = डुण्डुभादिसर्पैः, विनीतैः = नम्रीकृतैः, नागैः = हस्तिभिः, कृततस्करैः =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रासयेदागमे[1] चैनं तदहर्भोजयेन्न च ॥ २५९ ॥
अत्यभिष्यन्दि[2]गुरुभिर्वामयेद्वा पुनः पुनः ।
मद्यं तीक्ष्णं पाययेत घृतं वा ज्वरनाशनम् ॥ २६० ॥
पुराणं वा घृतं काममुदारं[3] वा विरेचनम् ।
निरूहयेद्वा मतिमान् सुस्निग्धं तदहर्नरम् ॥ २६१ ॥
अजा[4]व्योश्चर्मरोमाणि वचा कुष्ठं पलङ्कषा ।
निम्बपत्रं मधुयुतं धूपनन्तस्य दापयेत् ॥ २६२ ॥
बैडा[5]लं वा शकृद्योज्यं वेपमानस्य धूपनम् ।
पिप्प[6]लीसैन्धवं तैलं नैपाली चेक्षणाञ्जनम् ॥ २६३ ॥
उदरोक्तानि सर्पींषि यान्युक्तानि पुरा मया ।
कल्पोक्तं चा[7]जितं सर्पिः सेव्यमानं ज्वरं जयेत् ॥ २६४ ॥
भूत[8]विद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनपूजनैः ।
जयेद् भूताभिषङ्गोत्थं, विज्ञानाद्यै[9]श्च मानसम् ॥ २६५ ॥

---

कृत्रिमचौरै[1]रित्यर्थः । १ आगमे=ज्वरागमनसमये, त्रासयेत्=भयमुत्पादयत् । २ अत्यभिष्यन्दिगुरुभिः=मदनफलसाधिताभिः क्षीरादिभिः । ३ उदारं=येन विरेचनेन पीडा न स्यात्तादृशम् ।

४ विषमज्वरे धूपनं निर्दिशति—अजेति । अजा छगली, अविर्मेषी, तयोश्चर्मरोमाणीत्यर्थः । पलङ्कषा=गुग्गुलुः । ५ बैडालं=बिडालसम्बन्धि । शकृत्=विष्ठा, ६ विषमज्वरेऽञ्जनं ब्रवीति—पिप्पलीति । नैपाली=मनःशिला । ७ अजितं सर्पिः=अजेयाख्यं घृतमित्यर्थः ।

८ भूताभिषङ्गोत्थज्वरचिकित्सितमाचष्टे—भूतेति । बन्धः=समन्त्रै रज्ज्वादिभिर्बन्धनम्, आवेशनं=समन्त्रैः सर्षपादिभिस्ताडनम्, पूजनं=बल्युपहारस्तुत्यादिभिरर्चनम् । तन्त्रान्तरेऽस्य चिकित्सामाह—"सहदेवाया मूलं विधिना कण्ठे निबद्धमपहरति । एकद्वित्रिचतुर्भिर्दिवसैर्भूतज्वरं पुंसाम् ॥" इति ।

९ मानसज्वरचिकित्सामाह—विज्ञानाद्यैरिति । आदिशब्दाद् धैर्यस्मृतिज्ञानसमाधयो ग्राह्याः । मानसं=कामशोकक्रोधभयजम् । "कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात् पित्तं त्रयो मलाः । भूताभिषङ्गात् कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥" इति कामादीनां निजो दोषः । "क्रोधजे पित्तजित्कार्यं धार्यं सद्वाक्यमेव च । आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ॥ हर्षणैश्च समं यान्ति क्रामक्रोधभयज्वराः । कामैरथ मनोघ्नैश्च पित्त-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्रमक्षयोत्थे भुञ्जीत घृताभ्यक्तो रसौदनम् ।
अभिशापाभिचारोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत् ॥ २६६ ॥
दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडितम् ।
अभिघातज्वरे कुर्य्यात् क्रियामुष्णविवर्जिताम् ॥ २६७ ॥
कषायमधुरां स्निग्धां यथादोषमथापि वा ।
औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रसाधनैः ॥ २६८ ॥
जयेत्, कषायं च हितं सर्वगन्धकृतं तथा ।
निम्बदारुकषायं वा हितं सौमनसं यथा ॥ २६९ ॥
यवान्नविकृतिः सर्पिर्मद्यञ्च विषमे हितम् ।
सम्पूजयेद् द्विजान् गाश्च देवमीशानमम्बिकाम् ॥ २७० ॥
कफवातोत्थयोश्चापि ज्वरयोः शीतपीडितम् ।
दिह्याद्उष्णेन वर्गेण परश्चोष्णो विधिर्हितः ॥ २७१ ॥
सिञ्चेत् कोष्णैरारनालशुक्तगोमूत्रमस्तुभिः ।
दिह्यात् पलाशैः पिष्टैर्वा सुरसार्जकशिग्रुजैः ॥ २७२ ॥

---

ध्नैश्चाप्युपक्रमैः । सद्वाक्यैश्च शमं याति ज्वरः क्रोधसमुत्थितः ॥" इति तन्त्रान्तरीया चिकित्सा ।

१ विविधागन्तुज्वरचिकित्सितमाख्याति—श्रमेति । २ आदिशब्दाच्छान्तिजपादयो बोध्याः । ३ उत्पातः=अनिष्टसूचकं निर्घातादि । ४ सर्वगन्धं नाम—"चातुर्जातककर्पूरकङ्कोलागुरुकुङ्कुमम् । लवङ्गसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् ॥" इति । ५ सुमना जाती तत्कृतं सौमनसम् ।

६ ज्वरे शीतप्रतीकारं प्रतिपादयति—कफेति । ७ दिह्यात्=लिम्पेत्, उष्णेन वर्गेण=भद्रदार्वादिना, सुरसादिना पलादिना वा । ८ आरनालं=काञ्जिकम्, शुक्तं=चुक्रम् । अस्य कल्पना तन्त्रान्तरेऽभिहिता । तद्यथा—"प्रस्थमेकं तु भक्तस्य त्रयं सौवीरकस्य च । अर्धं प्रस्थं तु दध्नश्च भिषगम्लस्य दापयेत् ॥ पलषोडशकं चैव शोधितस्यार्द्रकस्य च । सैन्धवं पिप्पलीं चैव चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् ॥ स्थापयेत्सुदृढे भाण्डे सर्षपा परिभाविते । हेमन्ते वासराण्यष्टौ वसन्ते षट् दिनानि च ॥ प्रावृट्काले चतुरहं वर्षास्वपि च वासयेत् । अत ऊर्ध्वं क्षिपेच्चूर्णं चातुर्जातात् पलद्वयम् ॥" इति ।

९ पलाशैः=पत्रैः, 'पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्ण छदः पुमान्' इत्यमरः । सुरसा=तुलसी, अर्जकः=कुठेरकः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षारतैलेन[1] वाऽभ्यङ्गः सशुक्तेन विधीयते ।
पानमारग्वधादेश्च कथितस्य विशेषतः ॥ २७३ ॥
अवगाहः[2] सुखोष्णश्च वातघ्नक्वाथयोजितः ।
जित्वा शीतं क्रमैरेभिः[3] सुखोष्णजलसेचितम् ॥ २७४ ॥
प्रवेश्यौर्णिककार्पासकौशेयाम्बरसंवृतम् ।[4]
शाययेद् ग्लानदेहञ्च[5] कालागुरुविभूषितम् ॥ २७५ ॥
स्तनाढ्या रूपसम्पन्नाः कुशला नवयौवनाः ।
भजेयुः प्रमदा गात्रैः शीतदैन्यापहाः शुभाः ॥ २७६ ॥
शरच्छशाङ्कवदना[6] नीलोत्पलविलोचनाः ।
स्फुरितभ्रूलताभङ्गललाटतटकम्पनाः ॥ २७७ ॥
प्रलम्बबिम्बप्रचलद्विम्बीफलनिभाधराः ।
कृशोदर्य्योऽतिविस्तीर्णजघनोद्वहनालसाः ॥ २७८ ॥
कुङ्कुमागुरुदिग्धाङ्ग्यो घनतुङ्गपयोधराः ।
सुगन्धिधूपितश्लक्ष्णसस्तांशुकविभूषणाः ॥ २७९ ॥
गाढमालिङ्गयेयुस्तं तरुं वनलता इव ।
प्रह्लादं चास्य विज्ञाय ताः स्त्रोरपनयेत्[7] पुनः ॥ २८० ॥
तासामङ्गपरिष्वङ्गनिवारितहिमज्वरम् ।
भोजयेद्धितमन्नञ्च[8] यथा सुखमवाप्नुयात् ॥ २८१ ॥
दाहाभिभूते[9] तु विधिं कुर्य्याद्दाहविनाशनम् ।
मधुफाणितयुक्तेन निम्बपत्राम्भसाऽपि वा ॥ २८२ ॥

---

१ पलाशक्षारसिद्धं तैलं क्षारतैलम् । २ अवगाहः=वातघ्नक्वाथपूर्णभाजने निमज्जनम्, सुखोष्णः=ईषदुष्णः । ३ एभिः=भद्रदार्वाद्युष्णवर्गप्रलेपादिभिः । ४ वातरहिते गृहे प्रवेश्येत्यर्थः । ५ ग्लानदेहं कालागुरुविभूषितं पुरुषं स्तनाढ्यादिगुणयुक्ताः प्रमदा मृदुमर्दनार्थं गात्रैः कृत्वा भजेयुरिति सम्बन्धः ।

६ आलिङ्गनयोग्या ललना वर्णयति—शरदिति । एवम्भूताः स्त्रियः तरुं वनलता इव तं पुरुषमालिङ्गयेयुरिति सम्बन्धः । ७ अन्यथा तत्संसर्गान्महाननर्थः स्यात् । ८ हितमन्नं=वातश्लेष्महरमाहारम् । ९ ज्वरे दाहप्रतीकारमुपदिशति—दाहेति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाहज्वरार्त्तं मतिमान् वामयेत् क्षिप्रमेव च ।
शतधौतघृताभ्यक्तं दिह्याद्वा यवशक्तुभिः ॥ २८३ ॥
कोलामलकसंयुक्तैः शुक्तधान्याम्लसंयुतैः ।
अम्लपिष्टैः सुशीतैश्च फेनिलापल्लवैस्तथा ॥ २८४ ॥
अम्लपिष्टैः सुशीतैर्वा पलाशतरुजैर्दिहेत् ।
बदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टकस्य च ॥ २८५ ॥
लिप्तेऽङ्गे दाहतृण्मूर्च्छाः प्रशाम्यन्ति च सर्वशः ।
यवार्द्धकुडवं पिष्ट्वा मञ्जिष्ठार्द्धपलं तथा ॥ २८६ ॥
अम्लप्रस्थशतोन्मिश्रं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
एतत् प्रह्लादनं तैलं ज्वरदाहविनाशनम् ॥ २८७ ॥
न्यग्रोधादिर्गणो यस्तु काकोल्यादिश्च यो गणः ।
उत्पलादिर्गणो यस्तु पिष्टैर्वा तैः प्रलेपयेत् ॥ २८८ ॥
तत्कषायाम्लसंसिद्धाः स्नेहाश्चाभ्यञ्जने हिताः ।
तेषां शीतकषाये वा दाहार्त्तमवगाहयेत् ॥ २८९ ॥
दाहवेगे त्वतिक्रान्ते तस्मादुद्धृत्य मानवम् ।
परिषिच्याम्बुभिः शीतैः प्रलिम्पेच्चन्दनादिभिः ॥ २९० ॥
ग्लानं वा दीनमनसमाश्लिषेयुर्वराङ्गनाः ।

---

१ तन्त्रान्तरेऽपि—"स्वस्थानगतमुत्क्लिष्टमग्निनिर्वापकं भिषक् । पित्तं ज्ञात्वा विरेकेण वमनेनाथवा हरेत् ॥" इति । २ शतवारान् शीतलजलेन धौतं फेनिलं घृतं शतधौतघृतं तेनाभ्यक्तम् । दिह्यात् = लिम्पेत् । ३ फेनिला = उपोदिका, 'पोई' इति ख्याता । ४ पलाशतरुजैः = पलाशपल्लवैरित्यर्थः ।

५ बदरीपल्लवोत्थेन फेनेन अरिष्टकस्य निम्बस्य च फेनेन अङ्गे लिप्ते दाहतृण्मूर्च्छाः सर्वशः प्रशाम्यन्तीति सम्बन्धः । फेनकल्पना तु—काञ्जिकपूर्णपात्रे काञ्जिकपिष्टान् बदरीपल्लवान् स्थापयित्वा करेण विलोडिते फेन उत्तिष्ठेदिति । ६ प्रह्लादनतैलमभिधत्ते—यवार्धेति । ७ अम्लप्रस्थशतोन्मिश्रं = काञ्जिकप्रस्थशतमिलितम् । ८ तेषां न्यग्रोधादिकाकोल्याद्युत्पलादीनां कषायैः क्वाथैः अम्लैः काञ्जिकैश्च संसिद्धा इति तत्कषायाम्लसंसिद्धाः ।

९ अवगाहयेत् = द्रवपूर्णभाजने निमज्जनं कारयेत् । १० तस्मात् = न्यग्रोधादिशीतकषायावगाहात् । ११ दीनमनसं = क्लिष्टचित्तम्, आश्लिषेयुः = आलिङ्गेयुरि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेलवैः[1] क्षौमसंवीताश्चन्दनार्द्रपयोधराः ॥ २९१ ॥
बिभ्रत्योऽब्जस्रजश्चित्रा मणिरत्नविभूषिताः ।
भजेयुस्ताः स्तनैः शीतैः स्पृशन्त्योऽम्बुरुहैः खैः[2] ॥ २९२ ॥
प्रह्लादं चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत्[3] पुनः ।
हितञ्च भोजयेदन्नं[4] तथाऽऽप्नोति सुखं महत् ॥ २९३ ॥
पित्तज्वरोक्तं शमनं विरेकोऽन्यद्धितञ्च यत् ।
निर्हरेत्पित्तमेवादौ दोषेषु समवायिषु[5] ॥ २९४ ॥
दुर्निवारतरं तद्धि[6] ज्वरार्त्तानां विशेषतः ।
छर्दिर्मूर्च्छापिपासादीनविरोधाज्ज्वरस्य च[7] ॥ २९५ ॥
उपद्रवान् जयेच्चापि प्रत्यनीकेन[8] हेतुना ।
विशेषमपरं चात्र शृणूपद्रवनाशनम् ॥ २९६ ॥
मधुकं रजनीमुस्तं दाडिमं साम्लवेतसम् ।
अञ्जनं[9] तिन्तिडीकञ्च नलदं पत्रमुत्पलम् ॥ २९७ ॥

---

त्यर्थः । १ पेलवक्षौमेन कोमलपट्टवस्त्रेण संवीताः सम्यगाच्छादिताः । २ ताः स्त्रियोऽम्बुरुहैरुत्पलादिभिः सुखैः स्पृशन्त्यः शीतैः स्तनैः कृत्वा भजेयुरिति योजनीयम् । ३ अस्य प्रह्लादं हर्षं विज्ञाय पुनस्ताः स्त्रीरपनयेत्, अन्यथा तत्संसर्गान्महाननर्थः स्यादिति भावः ।

४ पित्तहरमन्नमित्यर्थः । ५ समवायिषु = संसर्गिषु, प्राचुर्येण पित्तसम्बन्धयुक्तेष्वित्यर्थः । तन्त्रान्तरेऽप्युक्तम्—"समवाये हि दोषाणां पूर्वं पित्तमुपाचरेत् । ज्वरे चैवातिसारे च सर्वत्रान्यत्र मारुतम् ॥" इति । अन्यत्र मारुतमित्यस्य अन्यस्मिन्नामये वायोरेवादौ प्रतिक्रियां कुर्यादित्यर्थः । यथा—"वातस्यानुजयेत् पित्तं पित्तस्यानुजयेत् कफम् । त्रयाणां वा जयेत् पूर्वं यो भवेद् बलवत्तमः ॥" इति । "सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्यादामकफापहम् । पश्चाच्छ्लेष्मणि संक्षीणे शमयेत् पित्तमारुतौ ॥" इति वचनेन आदौ आमश्लेष्मणः शमनमर्थात् प्रकृतिस्थापनमुच्यते, न तु निर्हरणम् । ६ हि यस्मात् ज्वरार्तानां दाहज्वरपीडितानां तत् पित्तं विशेषतो दुर्निवारतरमित्यर्थः ।

७ अथ ज्वरोपद्रवचिकित्सितमभिधत्ते—छर्दीति । उपद्रवपदेन "व्याधेरुपरि यो व्याधिर्भवत्युत्तरकालजः । उपक्रमाविरोधी च स उपद्रव उच्यते ॥" इति तन्त्रान्तरोक्तं बोध्यम् । ८ प्रत्यनीकेन = स्वचिकित्सितेनेत्यर्थः । ९ अञ्जनं = रसाञ्जनम्, तिन्तिडीकं = चुक्रम्, नलदं = मांसी, पत्रं = 'तेजपात' इति ख्यातम्, उत्पलं =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वचं व्याघ्रनखं चैव मातुलुङ्गरसो मधु ।
दिह्यादेभिर्ज्वरार्त्तस्य मधुशुक्तयुतैः[1] शिरः ॥ २९८ ॥
शिरोऽभितापसम्मोहवमिहिक्काप्रवेपथून् ।
प्रदेहो नाशयत्येष ज्वरितानामुपद्रवान् ॥ २९९ ॥
मधूकमथ ह्रीवेरं[2]मुत्पलानि मधूलिकाम् ॥ ३०० ॥
लीढ्वा चूर्णानि मधुना सर्पिषा च जयेद् वमिम् ।
कफप्रसेकासृक्पित्त[3]हिक्काश्वासांश्च दारुणान् ॥ ३०१ ॥
लिहन् ज्वरार्त्तस्त्रिफलां पिप्पलीञ्च समाक्षिकाम् ।
कासे श्वासे च मधुना सर्पिषा च सुखी भवेत् ॥ ३०२ ॥
विदारीं दाडिमं लोध्रं दधित्थं[4] बीजपूरकम् ।
एभिः प्रदिह्यान्[5]मूर्द्धानं तृड्दाहार्त्तस्य देहिनः ॥ ३०३ ॥
दाडिमस्य सितायाश्च द्राक्षाऽऽमलकयोस्तथा ।
वैरस्ये[6] धारयेत् कल्कं गण्डूषञ्च यथा हितम् ॥ ३०४ ॥
क्षीरेक्षुरसमाक्षीकसर्पिस्तैलोष्णवारिभिः ।
शून्ये[7] मूर्ध्नि हितं नस्यं जीवनीयशृतं घृतम् ॥ ३०५ ॥
चूर्णितैस्त्रिफलाश्यामात्रिवृत्पिप्पलिसंयुतैः ।
सक्षौद्रः शर्करायुक्तो विरेकस्तु प्रशस्यते ॥ ३०६ ॥

---

नीलोत्पलम् । १ मधुशुक्तलक्षणमुक्तम्—"जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् । मधुभाण्डे विनिक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत् । मासेन तज्जातरसं मधुशुक्तं प्रकीर्तितम् ॥" इति ।

२ ह्रीवेरं='नेत्रवाला' इति, मधूलिका=मूर्वा । ३ असृक्पित्तं=रक्तपित्तम् । ४ दधिवर्णो द्रवस्तिष्ठत्यस्मिन्निति दधित्थं, कपित्थमित्यर्थः । 'अथ कपित्थे स्युर्दधित्थग्राहिमन्मथाः' इत्यमरः । ५ प्रदिह्यात्=प्रलिम्पेदित्यर्थः । ६ वैरस्ये=मुखवैरस्ये । दाडिमादीनां कल्कं क्षीरादिभिर्गण्डूषं च यथाहितं धारयेदिति सम्बन्धः । ७ शून्यत्वेनानुभूते इत्यर्थः । जीवनीयानि=द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तानि काकोलीप्रभृतीनि दश द्रव्याणि । जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा काकोली क्षीरकाकोली मुद्गपर्णीमाषपर्ण्यौ जीवन्ती मधुकमिति दशेमानि जीवनीयानि भवन्तीति चरकः ।

८ श्यामा=वृद्धदारकः, 'विधारा' इति ख्याता । त्रिवृत्='निसोत' इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्वे पित्तज्वरे रक्ते [1]चोर्ध्वगे वेपथौ तथा ।
कफवातोत्थयोरे [2]स्नेहाभ्यङ्गैर्विशोधयेत् ॥ ३०७ ॥
हृतदोषो भ्रमार्त्तस्तु लिह्यात् क्षौद्रसिताऽभ[3]याः ।
वातघ्नमधुरैर्योज्या निरूहा वातजे ज्वरे ॥ ३०८ ॥
विभ[5]ज्य दोषं प्राणञ्च यथास्वं चानुवासनाः ।
उत्पल[6]ादिकषायाद्याश्चन्दनोशीरसंयुताः ॥ ३०९ ॥
शर्करामधुराः शीताः पित्तज्वरहरा मताः ।
आम्रा[7]दीनां त्वचं शङ्खं चन्दनं मधुकोत्पले ॥ ३१० ॥
गैरिकाञ्जन[8]मञ्जिष्ठामृणालान्यथ पद्मकम् ।
श्लक्ष्णपिष्टन्तु पयसा शर्करामधुसंयुतम् ॥ ३११ ॥
सुपूतं शीतलं बस्तिं दह्यमानाय दापयेत् ।
ज्वरदाहापहं तेषु[10] सिद्धञ्चैवानुवासनम् ॥ ३१२ ॥
[11]आरग्वधगणक्काथाः पिप्पल्यादिसमायुताः ।
स[12]क्षौद्रमूत्रा [13]देयाः स्युः कफज्वरविनाशनाः ॥ ३१३ ॥
कफघ्नैरेव संसिद्धा [14]द्रव्यैश्चाप्यनुवासनाः ।

---

१ ऊर्ध्वगे ऊर्ध्वगामिनि रक्ते इत्यर्थः । २ कफवातोत्थयोर्ज्वरयोः, पक्वयोरिति शेषः । विशोधयेत्=शमं नयेदित्यर्थः । ३ अभया=हरीतकी ।

४ वातज्वरे निरूहानुवासनद्रव्याणि निर्दिशति—**वातघ्नेति** । वातघ्नानि भद्रदार्वादीनि, मधुराः काकोल्यादयः । ५ विभज्य=हीनमध्योत्तमादिभेदेन विचार्य, दोषं प्राणं बलं चेत्यर्थः । अर्थादल्पप्रकुपिते दोषे बले च अल्पः, मध्यमे मध्यमः, उत्तमे च उत्तमो निरूहः कार्यः ।

६ पित्तज्वरे निरूहानुवासनद्रव्याणि दर्शयति—**उत्पलादीति** । अत्र निरूहपदमाकृष्यते, तेन उत्पलादिकषायाद्या निरूहा इत्यर्थः । ७ चन्दनं=रक्तचन्दनम्, मधुकं=यष्टीमधु, उत्पलं=नीलोत्पलम् । ८ अञ्जनं=रसाञ्जनं सौवीराञ्जनं वा, मञ्जिष्ठा='मजीठ' इति, मृणालं=विसम्, पद्मकं=पद्मकाष्ठम्, 'पद्माख' इति प्रथते । ९ निरूहबस्तिमित्यर्थः । १० तेषु=आम्रादित्वक्प्रभृतिषु द्रव्येषु । ११ कफज्वरे निरूहानुवासनद्रव्याण्याह—**आरग्वधेति** । १२ 'निरूहा' इति शेषः । १३ आरग्वधादिगणद्रव्यैरित्यर्थः ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसर्गे[1] सन्निपाते च संसृष्टा बस्तयो हिताः ॥ ३१४ ॥
संसृष्टैरेव संसृष्टा द्रव्यैश्चाप्यनुवासनाः[2] ।
वातरोगापहाः[3] सर्वे स्नेहा ये सम्यगीरिताः ॥ ३१५ ॥
विना तैलं त एव स्युर्योज्याः[4] मारुतजे ज्वरे ।
निखिलेनोपयोज्याश्च ते[5] एवाभ्यञ्जनादिषु[6] ॥ ३१६ ॥
पैत्तिके मधुरैस्तिक्तैः सिद्धं सर्पिश्च पूज्यते[7] ।
श्लैष्मिके कटुतिक्तैश्च, संसृष्टानीतरेषु[8] च ॥ ३१७ ॥
हृतावशेषं[9] पित्तन्तु त्वक्स्थं जनयति ज्वरम् ।
पिबेदिक्षुरसं तत्र[10] शीतं वा शर्करोदकम् ॥ ३१८ ॥
शालिषष्टिकयोरन्नं[11] अश्नीयात् क्षीरसम्प्लुतम् ।
कफवातोत्थयोरेव[12] स्वेदाभ्यङ्गौ प्रयोजयेत् ॥ ३१९ ॥
घृतं[13] द्वादशरात्रात्तु देयं सर्वज्वरेषु च ।
तेनान्तरेणाशयं स्वं गता दोषा भवन्ति हि ॥ ३२० ॥
धातून्[14] प्रक्षोभयन् दोषो मोक्षकाले बलीयते ।

---

१ संसर्गसन्निपातयोर्निरूहानुवासनद्रव्याणि अभिधत्ते—संसर्गे इति । संसृष्टाः=मिलिताः, बस्तयः=निरूहबस्तयः । २ संसृष्टैर्द्रव्यैः=मिलितद्रव्यैः । ३ अनुवासनविषये तैलं निषेधति—वातेति । सर्वे स्नेहाः=सर्पिस्तैलवसामज्जानः । ४ योज्याः, अनुवासनविधिनेत्यर्थः । ५ ते=सर्पिस्तैलवसामज्जानः, अभ्यञ्जादौ तैलस्यापि प्रयोगं कर्तुं निखिलेनेति पदमुपात्तम् । ६ अभ्यञ्जनादिष्वित्यर्थः । ७ संसृष्टानि=अन्योऽन्यमिश्राणि सर्पिरादीनि, इतरेषु=सन्निपातेषु ।

८ हृतावशेषपित्तचिकित्सितमभिदधाति—हृतेति । हृतावशेषं=निर्हरणावशिष्टम् । ९ तत्र=हृतावशेषपित्तज्वरे । १० अन्नम्=ओदनमित्यर्थः । ११ हृतावशेषयोः कफवातज्वरयोरित्यर्थः । १२ ज्वरे घृतदानयोग्यकालमभिधत्ते—घृतमिति । सर्वज्वरेषु लङ्घनोष्णोदकपानादिपाचनैः पक्वेषु द्वादशरात्राद् द्वादशरादूर्ध्वं घृतं देयम्, हि यस्मात् तेनान्तरेण तेन समयेन दोषा वातादयः सन्निपातकारकाः, पाकप्राप्तत्वात् स्वमाशयं निजं स्थानं गता भवन्तीत्यर्थः ।

१३ मुच्यमानज्वरलक्षणं ब्रवीति—धातूनिति । दोषो मोक्षकाले धातून् प्रक्षोभयन् चालयन् बलीयते बलीवाचरति, यथा दीपो निर्वाणावस्थायां महतीं ज्वालां दर्शयन् निर्वाणं याति, तद्वदयमपि ज्वरारम्भको दोषो बलीयते इति तात्पर्यम् । तेन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेन व्याकुलचित्तस्तु म्रियमाण इवेहते ॥ ३२१ ॥
लघुत्वं[1] शिरसः स्वेदो मुखमापाण्डु पाकि च ।
क्षवथुश्चान्नकाङ्क्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ३२२ ॥
शं[2]भुक्रोधोद्भवो घोरो बलवर्णाग्निसादकः ।
रोगराड् रोगसङ्घातो ज्वर इत्युपदिश्यते ॥ ३२३ ॥
व्या[3]पित्वात सर्वसंस्पर्शात कृच्छ्रत्वादन्तसम्भवात् ।
अन्तको ह्येष भूतानां[4] ज्वर इत्युपदिश्यते ॥ ३२४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे ज्वरप्रतिषेधो नाम (प्रथमोऽध्यायः, आदितः) एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

---

दोषेण व्याकुलं चित्तं यस्य स पुरुषो म्रियमाण इव ईहते अर्थाद् मुमूर्षुवद् गात्रविक्षेपणादिव्यापारं करोतीत्यर्थः ।

१ ज्वरमुक्तलक्षणमाख्याति—लघुत्वमिति । लघुत्वं शिरसः = शिरोलघुत्वम्, आपाण्डु = ईषत्पाण्डु । तन्त्रान्तरे—"देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् । स्वेदः क्षयः प्रकृतियोगि मनोऽभिलिप्सा कण्डूश्च मूर्धनि विगतज्वरलक्षणानि ॥" इति । २ ज्वरस्य अन्यरोगेभ्यो गरीयस्त्वं प्रतिपादयति—शम्भ्विति । ज्वरस्य मूर्तिमत्त्वमुक्तम्—"रुद्रकोपाग्निसम्भूतः सर्वभूतप्रतापनः । त्रिपादभस्मप्रहरणस्त्रिशिराः सुमहोदरः ॥ वैयाघ्रचर्मवसनः कपिलो माल्यविग्रहः । पिङ्गेक्षणो ह्रस्वजङ्घो बीभत्सो बलवान् महान् ॥ पुरुषो लोकनाशार्थमसौ ज्वर इति स्मृतः ॥" इति भावप्रकाशे । हरिवंशेऽपि—"ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः । भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥" इति ।

३ व्यापित्वात् = पुरुषपश्वादिसर्वप्राणिषु व्यापनात्, सर्वसंस्पर्शात् = देहेन्द्रियमनस्तापित्वात्, तदुक्तं चरके—"देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली । ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥" इति । ४ व्यापित्वादिहेतोरेव ज्वरः अन्तक इत्युपदिश्यते इति सम्बन्धनीयम् ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातोऽतीसारप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैरसात्म्यैश्चापि भोजनैः ॥ ३ ॥
स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषाद्भयात् ।
शोकाद् दुष्टाम्बुमद्यातिपानात् सात्म्यर्तुपर्य्ययात् ॥ ४ ॥
जलातिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः ।

---

## चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ ज्वरातीसारयोरन्योन्योपद्रवाज्ज्वरप्रतिषेधानन्तरमतीसारप्रतिषेधमधिकरोति—**अथात इति**। अतिसरणमतिसारः, 'सृ गतौ' इत्यस्मात् 'व्याधिमत्स्यबलेषु च' इति वार्तिकेन घञ् 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' इति दीर्घः। "अतिरत्यर्थवचने सरतिर्गतिकर्मणि। तस्मादत्यन्तसरणादतीसार इति स्मृतः॥" इति तन्त्रान्तरम्। अतीसारस्योत्पत्तिमाह—"दीर्घसत्रेण यजतः पृषध्रस्य महात्मनः। आलभ्याः पशवः क्षीणास्ततो गावः प्रकल्पिताः॥ तासामुपाकृतानां च गवामत्यर्थसेवनात्। असात्म्यत्वादथोष्णत्वाद् गौरवाच्च विशेषतः॥ अतिस्नेहाच्च सङ्क्षीणो जाठरोऽग्निस्तदा किल। अतीसारः पुरोत्पन्नो दोषधातुमलाश्रयः॥" इति।

२ अतीसारनिदानमभिदधाति—**गुर्विति**। गुरु=मात्रया गुणतः विपाकतश्च। अतिशब्दस्य स्निग्धादिस्थूलान्तैः सह सम्बन्धः। स्थूलं=संहतावयवं लड्डुकपिष्टकादि। ३ विरुद्धं=संयुक्तं क्षीरमत्स्यादि। "अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते" इति। अजीर्णम्=आमं विदग्धं च, विषमम्=अकालभोजनादि, तदुक्तं प्राक्—"बहुस्तोकमकाले च भुक्तं यद्विषमं हि तत्" इति।

४ अतियुक्तैः=अतियोगयुक्तैः, मिथ्यायुक्तैः=हीनयोगयुक्तैः, विषात्=स्थावरविषाद् दूषीविषाद्वा। ५ दुष्टयोर्व्यापन्नयोरम्बुमद्ययोरतिपानादित्यर्थः। सात्म्यर्तुपर्ययात्=सात्म्यविपर्ययादृतुविपर्ययाच्च, सात्म्यविपर्ययोऽसात्म्यम्, तस्य द्वैविध्यमाह—"द्विविधं हि सात्म्यं प्रकृतिसात्म्यमभ्याससात्म्यं च" इति। ऋतुविपर्ययः—यस्मिन्नृतौ यदुचितं तस्य विपरीतः। ६ जलातिरमणैः=जलक्रीडाऽऽदिभिः, वेगविघातैः=मूत्रपुरीषादीनां वेगनिरोधनैः, क्रिमिदोषतः=क्रिमिभिः पक्वामाशयदूषणात्, क्रिमिजनितवातादिप्रकोपाद्वा।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ५ ॥
संशम्यापां धातुरन्तः कृशानुं वर्चोमिश्रो मारुतेन प्रणुन्नः ।
वृद्धोऽतीवाधः सरत्येष यस्माद् व्याधिं घोरं तं त्वतीसारमाहुः ॥६॥
एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः ।
केचित् प्राहुर्नैकरूपप्रकारं नैवेत्येवं काशिराजस्त्ववोचत् ॥ ७ ॥
दोषावस्थास्तस्य नैकप्रकाराः काले काले व्याधितस्योद्भवन्ति ।
हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः ॥ ८ ॥
विट्सङ्ग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ।
शूलाविष्टः सक्तमूत्रोऽन्तकूजी स्रस्तापानः सन्नकट्यूरुजङ्घः ॥ ९ ॥
वर्चो मुञ्चत्यल्पमल्पं सफेनं रूक्षं श्यावं सानिलं मारुतेन ।
दुर्गन्ध्युष्णं वेगवन्मांसतोयप्रख्यं भिन्नं स्विन्नदेहोऽतितीक्ष्णम् ॥१०॥

---

१ अतीसारसम्प्राप्तिमभिधत्ते—संशम्येति । यस्माद् मारुतेन वायुना अधः प्रणुन्नः प्रेरितः, अपां धातुः कफरसमूत्रस्वेदमेदःपित्तरक्तादिकः वृद्धः वृद्धिं गतः अन्तः कृशानुम् अन्तरग्निं संशम्य शमयित्वा मन्दीकृत्येत्यर्थः । वर्चोमिश्रः पुरीषयुक्तः एषः अतीव अधः सरति, तस्मादाचार्याः घोरं तं व्याधिमतीसारमाहुः ।

२ अतीसाराणां संख्यां निर्दिशति—एकैकश इति । एकैकशः—वातेन, पित्तेन, श्लेष्मणा त्रयः, सर्वशः सन्निपातेन चतुर्थः, शोकेन पञ्चमः, आमेन षष्ठः, एवं षडतीसारा भवन्ति । ३ नैकरूपप्रकारं = द्वन्द्वजादिभेदेन बहुरूपभेदम्, केचित् = हारीतादिभिः । ४ दोषावस्थाः = आमपक्वरक्ताद्याः, तस्य = अतिसारिणः पुरुषस्य, काले काले = स्वे स्वे काले इत्यर्थः ।

५ सर्वातीसारस्य पूर्वरूपं निरूपयति—हृदिति । कुक्षिशब्दः उदरैकदेशवाची, तेन न पौनरुक्त्यम् । तोदशब्दस्य सर्वैर्हृदादिभिः कुक्षिपर्यन्तैः सह सम्बन्धः । ६ अविपाकः = अन्नस्याविपाकः, भविष्यतः = भाविनः, तस्य = अतीसारस्य, पुरस्सराणि = पूर्वरूपाणीत्यर्थः ।

७ वातातीसारस्य लक्षणमाख्याति—शूलेति । शूलाविष्टः = उदरशूलेन पीडितः, सक्तमूत्रः = विबद्धमूत्रः, अन्त्रकूजी = अन्त्रे गुडगुडादिशब्दयुक्तः, स्रस्तापानः = अधश्च्युतगुदः, सन्नाः शिथिलाः कट्यूरुजङ्घा यस्य सः । ८ सानिलं = सशब्दवातयुक्तम् । तन्त्रान्तरे—"अनिलं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः । शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥" इति ।

९ पित्तातीसारलक्षणमुपदिशति—दुर्गन्धीति । मांसतोयप्रख्यं = मांसधावनोद-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पित्तात् पीतं नीलमालोहितं वा तृष्णामूर्च्छादाहपाकज्वरार्त्तः ।
तन्द्रा निद्रा गौरवोत्क्लेशसादी वेगाशङ्की सृष्टविट्कोऽपि भूयः॥११॥
शुक्लं सान्द्रं श्लेष्मणा श्लेष्मयुक्तं भक्तद्वेषी निःस्वनं हृष्टरोमा ।
तन्द्रायुक्तो मोहसादाग्न्यशोषी वर्चः कुर्यान्नैकवर्णं तृषार्त्तः ॥ १२ ॥
सर्वोद्भूते सर्वलिङ्गोपपत्तिः कृच्छ्रश्चायं बालवृद्धेष्वसाध्यः ।
तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य बाष्पावेगः पक्तिमाविध्य जन्तोः॥१३॥
कोष्ठं गत्वा क्षोभयत्यस्य रक्तं तद्बाधस्तात् काकणन्तीप्रकाशम् ।
वर्चोमिश्रं निःपुरीषं सगन्धं निर्गन्धं वा सार्यते तेन कृच्छ्रात् ॥१४॥
शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः ।
आमाजीर्णोपद्रुताः क्षोभयन्तः कोष्ठं दोषा सम्प्रदुष्टाः सभक्तम् ॥१५॥
नानावर्णं नैकशः सारयन्ति कृच्छ्राज्जन्तोः षष्ठमेनं वदन्ति ॥ १६ ॥
संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति ।

---

कसदृशम्, अतितीक्ष्णं = मलस्यातिशयतीक्ष्णता, मलस्यात्यन्ततीक्ष्णता ततो मक्षिकाणां पलायनेन ज्ञातव्या । १ 'दाहः सर्वाङ्गे, पाको गुदे एव, तदुक्तम्—"तृष्णादाहस्वेदमूर्च्छाबुध्नसन्तापपाकपरीतः" इति । बुध्नः गुद इत्यर्थः ।

२ श्लेष्मातीसारलक्षणं वक्ति—**तन्द्रेति** । तन्द्रालक्षणमुक्तम्—"इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः । निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥" इति । ३ हृष्टरोमा = कण्टकितदेह इत्यर्थः ।

४ सन्निपातातीसारस्य लक्षणमाचष्टे—**तन्द्रायुक्त इति** । वर्चः = पुरीषम्, नैकवर्णं = नानावर्णम् । ५ सर्वेषां दोषाणां लिङ्गानि सर्वलिङ्गानि, तेषामुपपत्तिः प्राप्तिरिति सर्वलिङ्गोपपत्तिः । ६ शोकजातीसारलक्षणमभिदधाति—**तस्तैरिति** । तैस्तैर्भावैर्धनबन्धुनाशादिभावैः, शोचतः शोकं कुर्वतः, अल्पाशनस्य जन्तोः बाष्पोऽत्युद्भतनेत्रनासागलादिगतं जलं, तेन सहित ऊष्मा शोकजं देहतेजो बाष्पोष्मा पक्तिमाविध्य अग्निं व्याकुलीकृत्य अधस्तात् क्षोभयति चालयति । 'पक्तिमाविध्य' इत्यत्र 'वह्निमाविश्य' इति पाठान्तरम् । ७ काकणन्तीप्रकाशं = गुञ्जाफलसदृशम् ।

८ आमातीसारलक्षणं दर्शयति—**आमेति** । आमाजीर्णोपद्रुताः = आमाख्येनाजीर्णेनोदीरिताः । प्रसङ्गादामलक्षणं बोध्यम्—"आहारस्य रसः शेषो यो न पक्वोऽग्निलाघवात् । स हेतुः सर्वरोगाणामाम इत्यभिधीयते ॥" इति । ९ आमपक्वमललक्षणं निर्दिशति—**संसृष्टमिति** । संसृष्टं = मिलितम्, एभिः = पूर्वनिर्दिष्टैः, अवसीदति =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरीषं भृशदुर्गन्धि[1] विच्छिन्नं चामसंज्ञकम् ॥ १७ ॥
एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि[2] यस्य तु।
लाघवञ्च[3] मनुष्यस्य तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ १८ ॥
सर्पिर्मेदोवेसवाराम्बुतैलमज्जक्षीरक्षौद्ररूपं स्रवेद् यत्।
मज्जिष्ठाऽऽभं मस्तुलुङ्गोपमं[5] वा विस्रं शीतं प्रेतगन्ध्यञ्जनाभम् ॥ १९ ॥
राजीमद्[6] वा चन्द्रकैः[7] सन्ततं वा पूयप्रख्यं कर्दमाभं तथोष्णम्।
हन्यादेतद् यत् प्रतीपं भवेच्च क्षीणं हन्युश्चोपसर्गाः[8] प्रभूताः ॥ २० ॥
असंवृतगुदं[9] क्षीणं दुराध्मातमुपद्रुतम्।
गुदे पक्वे गतोष्माणमतीसारकिणं त्यजेत् ॥ २१ ॥

---

निमज्जतीत्यर्थः। १ भृशदुर्गन्धि=अतिशयविस्रम्। २ विपरीतानि यथा—जले प्लवनं, गन्धरहितत्वम्, अपिच्छिलत्वं च।

३ कोष्ठस्य शरीरस्य च लाघवमित्यर्थः। लाघवं चेति चकारात् कफदुष्टं पुरीषं समुच्चीयते। यदुक्तम्—"मज्जत्यामा गुरुत्वाद्विट् पक्वा तूत्प्लवते जले। विनाऽतिद्रवसङ्घाताच्छ्लेष्मशैत्यप्रदूषणात् ॥" इति।

४ अतीसाराणामसाध्यलक्षणानि निरूपयति—सर्पिरिति। वेसवारः 'निरस्थि पिशितं पिष्टम्' इत्यादि संस्कारेण संस्कृतं मांसं तेन मिश्रमम्बु वेसवाराम्बु। ५ मस्तुलुङ्गः अर्धविलोनचतुःस्नेहाकारो मस्तकमज्जा तत्तुल्यं मस्तुलुङ्गोपमम्। ६ राजीमत=नीलपीतादिरेखायुक्तम्, चन्द्रकैः=मयूरपिच्छाभैः, तदुक्तम्—"चन्द्रकैः शिखिपिच्छाभैर्नीलपीतादिराजिभिः। आवृतं वेसवाराम्बु मज्जक्षीरोपमं त्यजेत् ॥" इति।

७ उपद्रवा उक्तास्तन्त्रान्तरे—"तृष्णा दाहोऽरुचिः शोथः पार्श्वशूलोऽरतिर्वमिः। गुदपाकः प्रलापश्च ह्याध्मानं श्वासकासकौ ॥ मूर्च्छा हिक्का मदः शूलं बहुवेगो ज्वरस्तथा। एतैरुपद्रवैर्जुष्टमतिसारिणमुत्सृजेत् ॥" इति। अन्यच्च—"हस्तपादाङ्गुलेः सन्धिप्रपाको मूत्रनिग्रहः। पुरीषस्योष्णता चैव मरणायातिसारिणाम् ॥" इति।

८ असंवृतगुदं=गुदसंवरणक्षमम्, क्षीणं=बलोपचयरहितम्, दुराध्मातं=भृशमाध्मानयुक्तम्, उपद्रुतम्=अतिसारोपद्रवैः शोथादिभिर्युक्तम्। तदुक्तम्—"शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम्। छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वाऽतीसारिणं त्यजेत् ॥" इति। अपि च—"श्वासशूलपिपासार्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम्। विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत् ॥ बाले वृद्धे त्वसाध्योऽयं लिङ्गैरेतैरुपद्रुतः। अपि यूनामसाध्यः स्यादतिदुष्टेषु धातुषु ॥" इति। ९ गतोष्माणं=शीतगात्रम्, नष्टाग्निं वा,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरिणामतीसारः सम्भूतो येन केनचित् ।
दोषाणामेव लिङ्गानि कदाचिन्नातिवर्त्तते ॥ २२ ॥
स्नेहाजीर्णनिमित्तस्तु बहुशूलप्रवाहिकः ।
विसूचिकानिमित्तस्तु चान्योऽजीर्णनिमित्तजः ।
विषार्शःकृमिसम्भूतो यथास्वं दोषलक्षणः ॥ २३ ॥
आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः ।
अतः सर्वेऽतिसारास्तु ज्ञेयाः पक्वामलक्षणैः ॥ २४ ॥
तत्रादौ लङ्घनं कार्यमतिसारेषु देहिनाम् ।
ततः पाचनसंयुक्तो यवाग्वादिक्रमो हितः ॥ २५ ॥
अथवा वामयित्वाऽऽमे शूलाध्माननिपीडितम् ।
पिप्पलीसैन्धवाम्भोभिर्लङ्घनाद्यैरुपाचरेत् ॥ २६ ॥
कार्य्यं च वमनस्यान्ते प्रद्रवं लघुभोजनम् ।
खडयूषयवागूषु पिप्पल्याद्यं च योजयेत् ॥ २७ ॥
अनेन विधिना चामं यस्य वै नोपशाम्यति ।
हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेत् प्रातः स मानवः ॥ २८ ॥
आमातिसारिणां कार्य्य नादौ सङ्ग्रहणं नृणाम् ।
तेषां दोषा विबद्धाः प्राग् जनयन्त्यामयानिमान् ॥ २९ ॥
प्लीहपाण्ड्वामयानाहमेहकुष्ठोदरज्वरान् ।

---

अतिसारकिणम्=अतिसारयुक्तं 'वातातिसाराभ्यां कुक् च' इति कुक्, चादिनिः ।

१ अनुक्तातीसारिणां दोषजेष्वेवान्तर्भावं दर्शयति—शरीरिणामिति । येन केनचिद्धेतुनेत्यर्थः । २ नातिवर्तते=नातिक्रामति । ३ तेषामजीर्णादीनां लक्षणान्यनतिक्रम्येति यथास्वम् । ४ पूर्वोक्तैः=पक्वामलक्षणैरित्यर्थः । ५ तत्र=तयोर्मध्ये, आदावामे इत्यर्थः । ६ आदिशब्दाद् यूषरसादयोऽवगन्तव्याः । ७ अथवा आमेऽतीसारे शूलाध्माननिपीडितं नरं पिप्पलीसैन्धवाम्भोभिर्वामयित्वा लङ्घनाद्यैरुपाचरेदिति सम्बन्धः । ८ प्रद्रवं=यवागूयूषादिप्रकृष्टद्रवम् । ९ खडयूषोऽन्नपानाध्यायेऽभिहितः । १० आमम्=आमातीसारम् ।

११ तेषामामातिसारिणां प्राग् दोषा विबद्धा इमानामयान् जनयन्ति । तन्त्रान्तरे विशेषः—"क्षीणधातुबलातस्य बहुदोषोऽतिनिःसृतः । आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोफगुल्मग्रहण्यर्शःशूलालसकहृद्ग्रहान् ॥ ३० ॥
सशूलं बहुशः कृच्छ्राद्विबद्धं योऽतिसार्य्यते ।
दोषान् सन्निचितान्[1] तस्य पथ्याभिः सम्प्रवर्त्तयेत् ॥ ३१ ॥
योऽतिद्रवं प्रभूतञ्च पुरीषमतिसार्य्यते ।
तस्यादौ वमनं कुर्य्यात् पश्चाल्लङ्घनपाचनम् ॥ ३२ ॥
स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं योऽतिसार्य्यते ।
अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तं विरेचयेत् ॥ ३३ ॥
आमे[2] च लङ्घनं शस्तमादौ पाचनमेव वा ।
योगाश्चात्र प्रवक्ष्यन्ते त्वामातीसारनाशनाः ॥ ३४ ॥
कलिङ्गाति[3]विषाहिङ्गुसौवर्चलवचाऽभयाः ।
देवदारुवचामुस्तानागरातिविषाऽभयाः ॥ ३५ ॥
अभया धान्यकं मुस्तं पिप्पली नागरं वचा ।
नागरं धान्यकं मुस्तं बालकं[4] बिल्वमेव च ॥ ३६ ॥
मुस्तं पर्पटकं शुण्ठी वचा प्रतिविषा[5]ऽभया ।
अभयाऽतिविषा हिङ्गु वचा सौवर्चलं तथा ॥ ३७ ॥
चित्रकः पिप्पलीमूलं वचा कटुकरोहिणी[6] ।
पाठा वत्सक[7]बीजानि हरीतक्यो महौषधम् ॥ ३८ ॥
मूर्वा[8] निर्दहनी पाठा त्र्यूषणं गजपिप्पली ।
सिद्धार्थक[9] भद्रदारु शताह्वा कटुरोहिणी ॥ ३९ ॥

---

पाचनान्मरणं भवेत् ॥" इति । १ सन्निचितान्=सञ्चयगतान्, प्रवृद्धानिति यावत । पथ्याभिर्बहुशः सम्प्रवर्तयेद् विरेचयेदित्यर्थः । २ आमे=आमातीसारे । पाचनं तत्रोपदिष्टं यत्र शरीरस्य लङ्घनासामर्थ्यम् अन्नाभिलाषश्च ।

३ आमातीसारे अर्धश्लोकोक्तान् विंशतिः पाचनयोगान्निर्दिशति—कलिङ्गेति । कलिङ्गाः=इन्द्रयवाः । ४ बालकं='नेत्रवाला' इति ख्यातम् । ५ प्रतिविषा प्रतीपं विषं यस्याः सा अतिविषाभेदः । ६ कटुकरोहिणी='कुटकी' इति ख्याता । ७ वत्सकबीजानि=कुटजबीजानि, इन्द्रयवा इत्यर्थः । महौषधं=शुण्ठी । ८ मूर्वा='मरोरफली' इति प्रथते । निर्दहनी=चित्रकः, त्र्यूषणं=त्रिकटुकम् । ९ सिद्धार्थकाः=श्वेतसर्षपाः, शताह्वा=शतपुष्पा ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एला सावरकं[1] कुष्ठं हरिद्रे कौटजा यवाः ।
मेषशृङ्गी[2] त्वगेले च कृमिघ्नं वृक्षकाणि च ॥ ४० ॥
वृक्षादनी[3] वीरतरुर्बृहत्यौ द्वे सहे तथा ।
अरलुत्वक्[4] तैन्दुकी च दाडिमी कौटजी शमी ॥ ४१ ॥
पाठा तेजोवती[5] मुस्तं पिप्पली कौटजं फलम् ।
पटोलं दीप्यकी[6] बिल्वं हरिद्रे देवदारु च ॥ ४२ ॥
विडङ्गमभया पाठा शृङ्गवेरं[7] घनं वचा ।
वचा वत्सकबीजानि सैन्धवं कटुरोहिणी ॥ ४३ ॥
हिङ्गुर्वत्सकबीजानि वचा बिल्वशलाटु[8] च ।
नागरातिविषे मुस्तं पिप्पल्यो वात्सकं[9] फलम् ॥ ४४ ॥
महौषधं प्रतिविषा मुस्तं चेत्यामपाचनाः ।
प्रयोज्या विंशतिर्योगाः श्लोकार्द्धविहिता[10] स्त्विमे ॥ ४५ ॥
धान्याम्लोष्णाम्बुमद्यानां पिबेदन्यतमेन[11] वा ।
निष्क्वाथान् वा पिबेदेषां सुखोष्णान्साधु साधितान् ॥४६॥
पयस्युत्क्वाथ्य[12] मुस्तानां विंशतिं त्रिगुणाम्भसि ।
क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्त्यामं शूलमेव च ॥ ४७ ॥
निखिलेनोपदिष्टोऽयं विधिरामोपशान्तये ।
हरीतकीमतिविषां हिङ्गु सौवर्चलं वचाम् ॥ ४८ ॥
पिबेत् सुखाम्बुना[13] जन्तुरामातीसारपीडितः ।

---

१ सावरकं=लोध्रम्, हरिद्रे=हरिद्रा दारुहरिद्रा च, कौटजा यवाः=इन्द्रयवाः । २ मेषशृङ्गी=कर्कटशृङ्गी, त्वक्='दालचीनी' इति, कृमिघ्नं=विडङ्गम्, वृक्षकः=कुटजः । ३ वृक्षादनी='आकाशवेल' इति ख्याता । वीरतरुः=शरः, ककुभ इत्यन्ये । सहे=मुद्गपर्णी, माषपर्णी च । ४ अरलुः श्योनाकभेदः, तस्य त्वक्, तैन्दुकी='तेन्दुआ' इति ख्यातस्य च त्वक् । ५ तेजोवती=चव्यम् । ६ दीप्यकः=यवानी । ७ शृङ्गवेरं=शुण्ठी, घनं=मुस्ता । ८ बिल्वशलाटु=आमबिल्वफलम्, 'आमे फले शलाटु स्यात्' इत्यमरः । ९ वात्सकं फलम्=इन्द्रयवाः । १० श्लोकार्धविहिताः=अर्धश्लोकैः कृताः । ११ अन्यतमेन=धान्याम्लादीनां मध्ये एकतमेनेत्यर्थः । १२ शूलयुक्तातिसारे योगान्निर्दिशति—पयसीति । १३ सुखाम्बुना=ईषदु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटोलं दीप्यकं[1] बिल्वं वचापिप्पलिनागरम् ॥ ४९ ॥
मुस्तं कुष्ठं विडङ्गञ्च पिबेद् वाऽपि सुखाम्बुना ।
शृङ्गवेरं गुडूचीञ्च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ५० ॥
लवणान्यथ[2] पिप्पल्यो विडङ्गानि हरीतकी ।
चित्रकं शिंशपा पाठा[3] शार्ङ्गेष्टा लवणानि च ॥ ५१ ॥
हिङ्गु वृक्षकबीजा[4]नि लवणानि च भागशः ।
हस्तिदन्त्यथ पिप्पल्यः कल्कावक्षसमौ[5] स्मृतौ ॥ ५२ ॥
वचागुडूचीकाण्डानि योगोऽयं परमो मतः ।
एते सुखाम्बुना योगा देयाः पञ्च सतां मताः ॥ ५३ ॥
निवृत्तेष्वामशूलेषु यस्य न प्रगुणो[6]ऽनिलः ।
स्तोकं स्तोकं रुजामच्च सशूलं योऽतिसार्य्यते ॥ ५४ ॥
सक्षारलवणैर्युक्तं मन्दाग्निः स पिबेद् घृतम् ॥
क्षीरनागरचाङ्गेरी[7]कोलदध्यम्लसाधितम् ॥ ५५ ॥
सर्पिरच्छं[8] पिबेद्वाऽपि शूलातीसारशान्तये ।
दध्ना तैलघृतं पक्वं सव्योषाजातिचित्रकैः[9] ॥ ५६ ॥
सबिल्वपिप्पलीमूलदाडिमैर्वा रुगन्वितैः[10] ।
निखिलो विधिरुक्तोऽयं वातश्लेष्मोपशान्तये ॥ ५७ ॥
तीक्ष्णोष्णवर्ज्यमेनन्तु विदध्यात्पित्तजे भिषक् ।
यथोक्तमुपवासान्ते यवागूश्च प्रशस्यते ॥ ५८ ॥
बलयोरंशुमत्याञ्च[11] स्वदंष्ट्राबृहतीषु च ।
शतावर्याञ्च संसिद्धाः सुशीता मधुसंयुताः ॥ ५९ ॥

---

ष्णीकृतजलेन । १ दीप्यकं = यमानी । २ श्लोकार्द्धेन सुखाम्बुना सह सेवनार्थं पञ्च योगानाह—लवणानीति । ३ पाठा = 'पाढ' इति ख्याता । शार्ङ्गेष्टा = महाकरञ्जः । ४ वृक्षकबीजानि = इन्द्रयवाः । ५ अक्षसमौ = कर्षप्रमाणौ । ६ प्रगुणः = प्रकर्षगुणयुक्तः । ७ चाङ्गेर्याः स्वरसः ग्राह्यः । ८ अच्छं = द्रव्यान्तरसंस्कारराहितम् । ९ व्योषं = त्रिकटुकम् , जाती = सुमनाः । १० रुगन्वितैः = कुष्ठयुतैः ।
११ बलयोः = बलाऽतिबलयोः, अंशुमत्यां = शालपर्ण्याम् , स्वदंष्ट्रायां = गोक्षुरके ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्गादिषु[1] च यूषाः स्युर्द्रव्यैरेतैः सुसंस्कृताः ।
मृदुभिर्दीपनैस्तिक्तैर्द्रव्यैः स्यादामपाचनम् ॥ ६० ॥
हरिद्राऽतिविषापाठा[3]वत्सबीजरसाञ्जनम् ।
रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे बीजानि कुटजस्य च ॥ ६१ ॥
पाठा गुडूची भूनिम्ब[4]स्तथैव कटुरोहिणी ।
एतैः श्लोकार्द्धनिर्दिष्टैः काथाः स्युः पित्तपाचनाः ॥ ६२ ॥
मु[5]स्तं कुटजबीजानि भूनिम्बं सरसाञ्जनम् ।
दार्वी दुरालभा बिल्वं बालकं रक्तचन्दनम् ॥ ६३ ॥
चन्दनं बालकं मुस्तं भूनिम्बं सदुरालभम् ।
मृ[6]णालं चन्दनं रोध्रं नागरं नीलमुत्पलम् ॥ ६४ ॥
पाठा मुस्तं हरिद्रे द्वे पिप्पली कौ[8]टजं फलम् ।
फल[9]त्वचं वत्सकस्य शृङ्गवेरं घनं वचा ॥ ६५ ॥
षडेतेऽभिहिता योगाः पित्तातीसारनाशनाः ।
[10]बिल्वशक्रयवाम्भोदबालकातिविषाकृतः ।

---

१ आदिशब्दाद् वनमुद्गकलायमसूरादीनां ग्रहणम्। एतैः=बलादिभिः। मुद्गयूषविधिमाह वृन्दटीकायां तन्त्रान्तरे—"मुद्गानां द्विपलं तोये शृतमर्द्धाढकोन्मिते। पादस्थं मर्दितं पूतं दाडिमस्य पलेन तत् ॥ युक्तं सैन्धवविश्वाह्वधान्यकैः पादिकांशिकैः। कणाजीरकयोश्चूर्णाच्छाणैकेनावचूर्णितम् ॥" इति।

२ पैत्तिके आमातिसारे श्लोकार्धेन पाचनयोगत्रयमाख्याति—**मृदुभिरिति**। तिक्तद्रव्याणां दुरालभागुडूच्यतिविषाऽऽदीनां शीतवीर्यत्वेऽपि आमातिसारे तानि पाचनान्येवोपदिष्टानि। तथा च—"स्वेदनं लङ्घनं कालो यवाग्वस्तिक्तको रसः। पाचनान्यविपक्वानाम्" इति। ३ पाठा='पाढ' इति ख्याता। वत्सबीजानि=इन्द्रयवाः। ४ भूनिम्बः='चिरायता' इति प्रथते।

५ सामपित्तपाचनार्थमपरान् श्लोकार्धेन षट् सिद्धतमयोगानाख्याति—**मुस्तमिति**। ६ दुरालभा='जवासा' इति, बालकं='नेत्रवाला' इति ख्यातम्। ७ मृणालं=बिसम्, नागरं=शुण्ठी। ८ कौटजं फलम्=इन्द्रयवाः। ९ वत्सकस्य कुटजस्य फलत्वचं फलानि त्वक् चेत्यर्थः। फलत्वचमित्यत्र 'द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे' इति टच्। घनं=मुस्तकमित्यर्थः।

१० अपरमपि सिद्धतमं योगं निर्दिशति—**बिल्वेति**। बिल्वं=कोमलबिल्वफ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कषायो हन्त्यतीसारं सामं पित्तसमुद्भवम् ॥ ६६ ॥
मधुकोत्पलबिल्वाब्दह्रीवेरोशीरनागरैः ।
कृतः काथो मधुयुतः पित्तातीसारनाशनः ॥ ६७ ॥
यदा पक्वोऽप्यतीसारः सरत्येव मुहुर्मुहुः ।
ग्रहण्या मार्दवाज्जन्तोस्तत्र संस्तम्भनं हितम् ॥ ६८ ॥
समङ्गा धातकीपुष्पं मञ्जिष्ठा लोध्रमुस्तकम् ।
शाल्मलीवेष्टको रोध्रं वृक्षदाडिमयोस्त्वचौ ॥ ६९ ॥
आम्रास्थिमध्यं लोध्रञ्च बिल्वमध्यं प्रियङ्गवः ।
मधुकं शृङ्गवेरञ्च दीर्घवृन्तत्वगेव च ॥ ७० ॥
चत्वार एते योगाः स्युः पक्वातीसारनाशनाः ।
उक्ता य उपयोज्यास्ते सक्षौद्रास्तण्डुलाम्बुना ॥ ७१ ॥
सौस्तं कषायमेकं वा पेयं मधुसमायुतम् ।
लोध्राम्बष्ठाप्रियङ्ग्वादीन् गणानेवं प्रयोजयेत् ॥ ७२ ॥
पद्मां समङ्गां मधुकं बिल्वजम्बूशलाटु च ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन सक्षौद्रमगदङ्करम् ॥ ७३ ॥
कच्छुरामूलकल्कं वाऽप्युदुम्बरफलोपमम् ।

---

लम्, शक्रयवाः = इन्द्रयवाः, अम्भोदः = मुस्तकम्, बालकं = 'नेत्रबाला' इति ख्यातम् । १ उत्पलं = नीलोत्पलम्, बिल्वं = कोमलं बिल्वफलम्, अब्दं = मुस्ता, ह्रीवेरं = 'नेत्रबाला' इति ख्यातम् । २ ग्रहण्या मार्दवात् = अग्निस्तम्भात्, संस्तम्भनं = सङ्ग्रहणमित्यर्थः ।

३ स्तम्भनयोगानाचष्टे—समङ्गेति । समङ्गा = लज्जालुः, धातकीपुष्पं = धवपुष्पम् । ४ शाल्मलीवेष्टकः = शाल्मलीनिर्यासकः, 'मोचरस' इति ख्यातः । वृक्षदाडिमयोस्त्वचौ, तत्र वृक्षः कुटजः । ५ आम्रास्थिमध्यम् = आम्रफलमज्जा, बिल्वमध्यं = बिल्वफलमज्जा । ६ दीर्घवृन्तत्वक् = श्योनाकत्वगित्यर्थः । ७ ये समङ्गादिका योगा उक्तास्ते सक्षौद्राः तण्डुलाम्बुना तण्डुलजलेन उपयोज्या इत्यर्थः । ८ कषायमत्र क्वाथः ।

९ अम्बष्ठा = पाठा, प्रियङ्ग्वादिगणो द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये द्रष्टव्यः । १० पद्मा = भागौ, लवङ्गमित्यन्ये । समङ्गा = लज्जालुः, बिल्वजम्बूशलाटु = बिल्वस्य कोमलं फलं, जम्ब्वाश्च कोमलं फलम्, 'आमे फले शलाटु स्यात्' इत्यमरः । ११ कच्छुरा =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पयस्या चन्दनं पद्मा सितामुस्ताऽब्जकेशरम् ॥ ७४ ॥
पक्वातिसारं योगोऽयं जयेत्पीतः सशोणितम् ।
निरामरूपं[1] शूलार्त्त लङ्घनाद्यैश्च कर्षितम् ॥ ७५ ॥
नरं रूक्षमवेक्ष्याग्निं[2] सक्षारं पाययेद् घृतम् ।
बलाबृहत्यंशुमतीकच्छुरामूलसाधितम्[3] ॥ ७६ ॥
मधूच्छितं[4] समधुकं पिबेच्छूलैरभिद्रुतः ।
दार्वीबिल्वकणोद्राक्षाकटुकेन्द्रयवैर्घृतम्[5] ॥ ७७ ॥
साधितं हन्त्यतीसारं वातपित्तकफात्मकम् ।
दध्ना चाम्लेन सम्पक्वं सव्योषाजाजिचित्रकम्[6] ॥ ७८ ॥
सचव्यपिप्पलीमूलं दाडिमैर्वा रुगर्दितः ।
पयो घृतञ्च मधु च पिबेच्छूलैरभिद्रुतः ॥ ७९ ॥
सिताऽजमोदकट्वङ्गमधुकैरवचूर्णितम्[7] ।
अवेदनं[8] सुसम्पक्वं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् ॥ ८० ॥
नानावर्णमतीसारं[9] पुटपाकैरुपाचरेत् ।
त्वक्पिण्डं[10] दीर्घवृन्तस्य पद्मकेसरसंयुतम् ॥ ८१ ॥
काश्मरीपद्मपत्रैश्चावेष्टच सूत्रेण संदृढम् ।
मृदावलिप्तं सुकृतमङ्गारेष्ववकूलयेत्[11] ॥ ८२ ॥
स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीडच रसमादाय तं ततः ।
शीतं मधुयुतं कृत्वा पाययेतोदरामये ॥ ८३ ॥

---

'जवासा' इति ख्याता, तस्या मूलकल्कम् उदुम्बरफलं परिमाणेन उपमा यस्य तद् उदुम्बरफलोपमं, कर्षप्रमाणमित्यर्थः ।

१ घृतपानयोग्यमतिसारिणं दर्शयति—निरामेति । २ दीप्तमग्निमित्यर्थः । सक्षारं = यवक्षारयुक्तम् । ३ अंशुमती=शालपर्णी, कच्छुरा='जवासा' इति ख्याता, तन्मूलसाधितम् । ४ मधूच्छितं=किञ्चिन्मधुयुक्तम्, समधुकं = यष्टिमधुयुतम् । ५ कणा = पिप्पली । ६ व्योषं = त्रिकटुकम्, अजाजी = जीरकः । ७ कट्वङ्गः = इयोनाकः । ८ पुटपाकविषयमभिदधाति—अवेदनमिति । अवेदनं = वेदनारहितम् । ९ नानावर्णं = सान्निपातिकमित्यर्थः ।

१० पुटपाकविधिमभिधत्ते—त्वगिति । दीर्घवृन्तस्य = इयोनाकस्य । ११ अव-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन्ती[1]मेषशृङ्ग्यादिष्वेवं द्रव्येषु साधयेत्।
तित्तिरिं[2] लुञ्चितं सम्यक् निःकृष्टान्त्रन्तु पूरयेत् ॥ ८४ ॥
न्यग्रोधादित्वचां कल्कैः पूर्ववच्चावकूलयेत्।
रसमादाय तस्याथ सुस्विन्नस्य समाद्विकम् ॥ ८५ ॥
शर्करोपहितं[3] शीतं पाययेतोदरामये।
लोध्रचन्दनयष्ट्याह्वदार्वी[4]पाठासितोत्पलान् ॥ ८६ ॥
तण्डुलोदकसम्पिष्टान् दीर्घवृन्त[5]त्वगन्वितान्।
पूर्ववत्[6] कूलितात्तस्माद्रसमादाय शीतलम् ॥ ८७ ॥
मध्वाक्तम्पाययेच्चैतत्कफपित्तोदरामये।
एवं प्ररोहैः कुर्वीत वटादी[7]नां विधानवत् ॥ ८८ ॥
पुटपाकान् यथायोगं जाङ्गलो[8]हितान् शुभान्।
बहुश्लेष्म सरक्तञ्च मन्दवातं चिरोत्थितम् ॥ ८९ ॥
कौटजं फाणितं वाऽपि हन्त्यतीसारमोजसा[9]।
अम्बष्ठादिमधुयुतं पिप्पल्यादिसमन्वितम् ॥ ९० ॥
पृश्निपर्णीबलाबिल्व[10]बालकोत्पलधान्यकैः।

---

कूलयेत्=पाचयेदित्यर्थः। १ जीवन्ती=उत्तरापथे महाकन्दा कर्कोटिकासदृशपत्रेति डल्हणः। मेषशृङ्गी='मेढासिंगी' इति ख्याता। आदिशब्दात् पाठाशठ्यादयो ग्राह्याः। २ तित्तिरिं कृष्णतित्तिरिं सम्यक् लुञ्चितं चञ्चुपक्षादिकमपसारितं निःकृष्टान्त्रं न्यग्रोधादित्वचां कल्कैः कोष्ठं पूरयित्वा पूर्ववत् काश्मरीपक्षपत्रावेष्टनादिपूर्वकमवकूलयेत्, खदिराङ्गारेषु पाचयेदित्यर्थः।

३ शर्करया उपहितं संसृष्टं शर्करोपहितम्। ४ दार्वी=दारुहरिद्रा, पाठा='पाढ' इति ख्याता, सितोत्पलं=कुमुदपुष्पम्। ५ दीर्घवृन्तः=श्योनाकः। ६ पूर्ववत्कूलितान्=पुटपाकविधिना पक्वानित्यर्थः। ७ वटादीनां=द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये न्यग्रोधवर्गोक्तानाम्। ८ जाङ्गलोपहितान्=लावकपिञ्जलादिजाङ्गलमांससंसृष्टानित्यर्थः। ९ ओजसा=स्वशक्त्या।

फाणितकल्पना—श्वेतपुष्पचिक्कणपत्रस्य कुटजस्य वल्कलमादाय षोडशगुणे अष्टगुणे चतुर्गुणे वा जले क्वाथयेत्, ततोऽर्धावशिष्टं क्वाथमादाय वस्त्रेण गालयित्वा पुनः पक्वफाणिताकृतिसमं पचेत्, ततस्तत्र चतुर्थांशमम्बष्ठादिमधुपिप्पल्यादिचूर्णं प्रक्षिप्य अवतारयेदिति। १० बिल्वम्=आमबिल्वफलम्, बालकं='नेत्रवाला' इति ख्यातम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सनागरैः पिबेत् पेयां साधितामुदरामयी ॥ ९१ ॥
अरलुत्वक्प्रियङ्गुञ्च मधुकं दाडिमाङ्कुरान्[1] ।
आवाप्य पिष्ट्वा दधनि यवागूं साधयेद् द्रवाम् ॥ ९२ ॥
एषा[3] सर्वानतीसारान् हन्ति पक्वानसंशयम् ।
रसाञ्जनं सातिविषं त्वग्बीजं[4] कौटजं तथा ॥ ९३ ॥
धातकीनागरञ्चैव पाययेत्तण्डुलाम्बुना ।
सशूलं रक्तजं घ्नन्ति एते मधुसमायुताः ॥ ९४ ॥
मधुकं बिल्वपेशी[5] च शर्करामधुसंयुता ।
अतीसारं निहन्युश्च शालिषष्टिकयोः कणाः[6] ॥ ९५ ॥
तद्वल्लीढं मधुयुतं बदरीमूलमेव तु ।
बदर्य्यर्जुनजम्ब्वाम्रशल्लकीवेतसत्वचः ॥ ९६ ॥
शर्करा[7]क्षौद्रसंयुक्ताः पीता घ्नन्त्युदरामयम् ।
[8]एतैरेव यवागूंश्च षडान् यूषांश्च कारयेत् ॥ ९७ ॥
पानीयानि च तृष्णासु द्रव्येष्वेतेषु बुद्धिमान् ।
कृतं शाल्मलिवृन्तेषु कषायं हि संज्ञितम्[9] ॥ ९८ ॥
निशापर्युषितं पेयं सक्षौद्रं मधुकान्वितम् ।
विबद्धवातविट्[10] शूलपरीतः सप्रवाहिकः ॥ ९९ ॥
सरक्तपित्तश्च[11] पयः पिबेत् तृष्णासमन्वितः ।
यथाऽमृतं तथा क्षीरमतीसारेषु पूजितम् ॥ १०० ॥

---

१ दाडिमाङ्कुरान्=दाडिमकोमलपत्राणीत्यर्थः । २ "यवागूः षड्गुणे तोये संसिद्धा घनसित्थका" इत्यादिविधिना साधयेदित्यर्थः । ३ एषा=यवागूः । ४ त्वक्='दालचीनी' इति, कौटजं बीजम्=इन्द्रयवाः । ५ बिल्वपेशी=बिल्वशलाटु । ६ कणाः=शालिषष्टिकतण्डुलयोः सूक्ष्मांशाः, शर्करामधुसंयुता इत्यस्य अत्रापि सम्बन्धः । ७ अर्जुनः=ककुभः, 'काहू' इति ख्यातः । शल्लकी=शल्लकीद्रुमः । ८ एतैः=बदर्यादिभिरेव, षडान्=पेयाविशेषान्, दाडिमगोरसादिना घनपल्लवफलादिभिः कृतान् ।

९ हिमसंज्ञितं=शीतं कषायमित्यर्थः । अस्य विधिर्यथा—यावद् द्रव्यचूर्णं तावज्जलेऽहोरात्रं संस्थाप्य मृदितं वस्त्रगालितं पलचतुष्टयं मधु कर्षप्रमाणं यष्टीमधु च आवाप्य पेयमिति । १० विबद्धवातविट्=अवरुद्धवातपुरीषः । ११ रक्तेन पित्तेन च

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिरोत्थितेषु तत् पेयमपाम्भागैस्त्रिभिः शृतम् ।
दोषशेषं हरेत्तद्धि तस्मात्पथ्यतमं स्मृतम् ॥ १०१ ॥
हितः स्नेहविरेको वा बस्तयः पिच्छिलाश्च[1] ये ।
पिच्छिले[2]स्वरसे सिद्धं हितञ्च घृतमुच्यते ॥ १०२ ॥
शकृता यस्तु संसृष्टमतिसार्यते[3] शोणितम् ।
प्राक् पश्चाद्वा पुरीषस्य सरुक् सपरिकर्त्तिकः[4] ॥ १०३ ॥
क्षीरिशुङ्गा[5]शृतं सर्पिः पिबेत् सक्षौद्रशर्करम् ।
दार्वीत्वक्[6]पिप्पलीशुण्ठीलाक्षाशक्यवैर्घृतम् ॥ १०४ ॥
संयुक्तं भद्ररोहिण्या[7] पक्वं पेयादिमिश्रितम् ।
त्रिदोषमप्यतीसारं पीतं हन्ति सुदारुणम् ॥ १०५ ॥
गौरवे वमनं पथ्यं यस्य स्यात् प्रबलः कफः ।
ज्वरे दाहे सविड्बन्धे मारुताद्रक्तपित्तवत् ॥ १०६ ॥
सम्पक्वे[8] बहुदोषे च विबन्धे मूत्रशोधनैः ।
कार्यमास्थापनं[10] क्षिप्रं तथा चैवानुवासनम् ॥ १०७ ॥
प्रवाहणे[11] गुदभ्रंशे मूत्राघाते कटिग्रहे ।

---

सहितः सरक्तपित्तः, रक्तपित्तातिसारीत्यर्थः । १ पिच्छिला बस्तयो निरूहक्रमचिकित्सितेऽभिहिताः ।

२ पिच्छिलानां श्योनाकशाल्मल्यादीनां स्वरसे इत्यर्थः । ३ यस्तु शकृता पुरीषेण संसृष्टं मिलितं शोणितमतिसार्यतेति सम्बन्धः । ४ परिकर्तिका बस्तिगुदमेढ्रेषु परिकर्तनवद्वेदनाविशेषः, तत्सहितः सपरिकर्तिक इत्यर्थः । ५ क्षीरिणः न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपारिषप्लक्षपादपाः, तेषां शुङ्गाः नवपत्राङ्कुराः । ६ दार्वीत्वक्=दारुहरिद्रात्वक्, शक्यवाः=इन्द्रयवाः । ७ भद्ररोहिणी=कटुरोहिणी, 'कुटकी' इति ख्याता । पेयादिमिश्रितं पेयायवागूप्रभृतिभिः संसृष्टम् । अत्र घृते दार्वीत्वगादिभद्ररोहिणीपर्यन्तानां द्रव्याणां कल्कः, जलं चतुर्गुणम् ।

८ अतिसारे पक्वावस्थायामपि वमनमुपदिशति—गौरव इति । गौरवे उदरगुरुतायां रक्तपित्तवद् यथा रक्तपित्तेऽधोगते वमनं तथा गौरवादियुक्ते अतिसारेऽपि यस्य पुरुषस्य प्रबलः कफः स्यात्, मारुतात्सविड्बन्धे ज्वरे दाहे च वमनमिति योजनीयम् ।

९ अतीसारे बस्तियोगान्निर्दिशति—सम्पक्व इति । मूत्रशोधनैः=तृणपञ्चमूल्यादिभिरित्यर्थः । १० आस्थापनं=निरूहः । ११ गुदभ्रंशे=गुदनिःसरणे ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुराम्लैः[1] घृतं तैलं सर्पिर्वाऽप्यनुवासनम् ॥ १०८ ॥
गुदपाकस्तु पित्तेन यस्य स्यादहिताशिनः ।
तस्य पित्तहराः सेकास्[2]तत्सिद्धाश्चानुवासनाः ॥ १०९ ॥
दधिमण्डसुराबिल्वसिद्धं तैलं समारुते ।
भोजने च हितं क्षीरं कच्छुरा[3]मूलसाधितम् ॥ ११० ॥
अल्पाल्पं बहुशो रक्तं सरुग्[4] य उपवेश्यते ।
यदा वायुर्विबद्धश्च पिच्छाबस्तिस्तदा हितः ॥ १११ ॥
प्रायेण[5] गुददौर्बल्यं दीर्घकालातिसारिणाम् ।
भवेत् तस्माद्धितं तेषां गुदे तैलावचारणम्[6] ॥ ११२ ॥
कपित्थ[7]शाल्मलीफञ्जीवटकार्पासदाडिमाः ।
यूथिका कच्छुरा शेलुः शणश्चुच्चूश्च[8] दाधिकाः ॥ ११३ ॥
शाल[9]पर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका ।
बला[10]श्वदंष्ट्राबिल्वानि पाठानागरधान्यकम् ॥ ११४ ॥
एष[11] आहारसंयोगे हितः सर्वातिसारिणाम् ।
तिलकल्को हितश्चात्र मौद्गो[12] मुद्गरसस्तथा ॥ ११५ ॥

---

१ मधुराः काकोल्यादयः, अम्लाः बीजपूरककपित्थचुक्रकाञ्जिकादयः, तैः । २ क्षीरेक्षुरसशर्करोदकमधुरौषधकषायकृताः सेका इत्यर्थः । तत्सिद्धाः=पित्तहरद्रव्यसाधिताः । ३ कच्छुरा 'जवासा' इति ख्याता, तन्मूलसाधितं क्षीरमित्यर्थः । ४ सरुग्वेदनासहितम् , यः पुरुष उपवेश्यते अतिसार्यते ।

५ गुददौर्बल्यचिकित्सामाह—**प्रायेणेति** । ६ पिचुसेकानुवासनैस्तैलावचारणमित्यर्थः । ७ अतीसारे शूलोपद्रवचिकित्सामाख्याति—**कपित्थेति** । फञ्जी = भार्गी । ८ चुच्चूः = सुनिषण्णकशाकः, दाधिकाः = दध्ना संस्कृताः, कपित्थादिचुच्चूपर्यन्ता दध्ना संस्कृता हिता इत्यर्थः ।

९ आहारोपयोगिद्रव्याणि दर्शयति—**शालेति** । शालपर्णी = 'सरवन' इति ख्याता, पृश्निपर्णी = 'पिठवन' इति ख्याता, बृहती = स्वल्पफला कण्टकारी, कण्टकारिका = बृहत्फला कण्टकारी । १० श्वदंष्ट्रा = गोक्षुरकः । ११ एषः = दशाङ्गत्वेन प्रसिद्धः शालपर्ण्यादिः । भक्तादिसाधने द्रवप्रमाणमुक्तं तन्त्रान्तरे—"भक्तं पञ्चगुणे तोये यवागूं षड्गुणे पचेत् । चतुर्दशगुणे पेयां विलेपीं च चतुर्गुणे ॥" इति । १२ मौद्गः =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पित्तातिसारी यो मर्त्यः पित्तलान्यतिषेवते ॥[1]
पित्तं प्रदुष्टं तस्याशु रक्तातीसारमावहेत् ॥ ११६ ॥
ज्वरं शूलं तृषां दाहं गुदपाकञ्च दारुणम् ।
यो[2] रक्तं शकृतः पूर्वं पश्चाद्वा प्रतिसार्य्यते ॥ ११७ ॥
स पल्लवैर्वटादीनां[3] ससर्पिः साधितं पयः ।
पिबेत् सशर्कराक्षौद्रमथवाऽप्यभिमथ्य तत्[4] ॥ ११८ ॥
नवनीतमथो लिह्यात्तक्रं चानुपिबेत्ततः[5] ।
प्रियालशाल्मलीप्लक्षशल्लकीतिनिशत्वचः[6] ॥ ११९ ॥
क्षीरे[7] विमृदिताः पीताः सक्षौद्रा रक्तनाशनाः ।
मधुकं शर्करां लोध्रं पयस्यामथ सारिवाम् ॥ १२० ॥
पिबेच्छागेन पयसा सक्षौद्रं रक्तनाशनम् ।
मञ्जिष्ठां सारिवां लोध्रं पद्मकं[8] कुमुदोत्पलम् ॥ १२१ ॥
पिबेत्[9] पद्माञ्च दुग्धेन छागेनासृक्प्रशान्तये ।
शर्करोत्पललोध्राणि[10] समङ्गा मधुकं तिलाः ॥ १२२ ॥
तिलाः कृष्णाः सयष्ट्याह्वाः समङ्गा चोत्पलानि च ।
तिला मोचरसो[12] लोध्रं तथैव मधुकोत्पलम् ॥ १२३ ॥
कच्छुरा[13] तिलकल्कश्च योगाश्चत्वार एव च ।
आजेन पयसा पेयाः सरक्ते मधुसंयुताः ॥ १२४ ॥
द्रवे सरक्ते स्रवति बालबिल्वं सफाणितम् ।
सक्षौद्रतैलं [14]प्रागेव लिह्यादाशु हितं हि तत् ॥ १२५ ॥

---

मुद्गस्य कल्कः । १ पित्तलाद्यन्नपानादीनीत्यर्थः ।

२ रक्तातीसारचिकित्सामाचष्टे—य इति । ३ वटादीनां = न्यग्रोधादिपादपानाम् । ४ तत् = क्षीरम् , अभिमथ्य = विलोडयेत्यर्थः । ५ क्षीरविलोडनादुत्पन्नं नवनीतमित्यर्थः । ६ 'तिनिशे स्यन्दनो नेमी रथद्रुतिमुक्तकः' इत्यमरः । 'त्वच' इति प्रियालादिभिः सर्वैः सह सम्बध्यते । ७ अजाक्षीरे इत्यर्थः । विमृदिताः = विलोडिताः । ८ पद्मा = अर्कपुष्पी । ९ पद्मकं = पद्मकाष्ठम् , कुमुदं = श्वेतकमलम्, 'कोई' इति ख्यातम् , उत्पलं = नीलोत्पलम् । १० पद्मा = भार्गी, लवङ्गमित्यन्ये ।

११ श्लोकार्धेन चतुरो योगान् दर्शयति—शर्करेति । समङ्गा अत्र वराइक्रान्ता । १२ मोचरसः = शाल्मलीनिर्यासः । १३ कच्छुरा = 'जवासा' इति ख्याता । १४ प्राक् =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोशकारं घृते भृष्टं लाजचूर्णं सिता मधु ।
सशूलं रक्तपित्तोत्थं लोढं हन्त्युदरामयम् ॥ १२६ ॥
बिल्वमध्यं[2] समधुकं शर्कराक्षौद्रसंयुतम् ।
तण्डुलाम्बुयुतो योगः पित्तरक्तोत्थितं जयेत् ॥ १२७ ॥
योगान् साङ्ग्राहिकांश्चान्यान् पिबेत् सक्षौद्रशर्करान् ।
न्यग्रोधादिषु कुर्याच्च पुटपाकान् यथेरितान् ॥ १२८ ॥
मृदपाके च ये[3] उक्तास्तेऽत्रापि विधयः स्मृताः ।
रुजायां चाप्रशाम्यन्त्यां पिच्छाबस्तिर्हितो भवेत् ॥ १२९ ॥
सक्तविड्[4] दोषबहुलं दीप्ताग्नेर्योऽतिसार्य्यते ।
विडङ्गत्रिफलाकृष्णा[5]कषायैस्तं विरेचयेत् ॥ १३० ॥
अथवैरण्डसिद्धेन पयसा केवलेन वा ।
यवागूर्वितरेच्चास्य वातघ्नैर्दीपनैः कृताः[6] ॥ १३१ ॥
दीप्ताग्निर्निष्पुरीषो[7] यः सार्य्यते फेनिलं शकृत् ।
स पिबेत् फाणितं शुण्ठीदधितैलपयोघृतम् ॥ १३२ ॥
स्विन्नानि गुडतैलाभ्यां भक्षयेद्बदराणि च ।
स्विन्नानि पिष्टवद्वाऽपि[8] समं बिल्वशलाटुभिः ॥ १३३ ॥
दध्नोपयुज्य कुल्माषान्[9] श्वेतामनुपिबेत् सुराम् ।

---

भोजनात्पूर्वमेव । १ कोशकारः=इक्षुभेदः । कोशकारो नाम कौशेयवस्त्रोपादानभूततन्तूत्पादकः कीटविशेष इति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । २ बिल्वमध्यं=बिल्वफलमध्यमज्जा । ३ ये=सेकप्रभृतयः ।

४ अतीसारे अवस्थावशेन विरेचनकर्म निरूपयति—**सक्तेति** । सक्तविट्=अवरुद्धपुरीषः । ५ कृष्णा=पिप्पली । ६ विरेचनानन्तरं कर्तव्यतामुपदिशति—**यवागूरिति** । वातघ्नैर्दीपनैः=शालपर्णीप्रभृतिभिः । ७ निःसारकसञ्ज्ञकस्य चिकित्सामाह—**दीप्ताग्निरिति** । निष्पुरीषः=क्षीणपुरीषः ।

८ पिष्टवत्=पिष्टस्वेदनविधिनेत्यर्थः । तद्विधिरभिहितस्तन्त्रान्तरे—"अनेकच्छिद्रसंयुक्तशरावेण पिधाय च । जलार्धपूरितां स्थालीं चुल्ल्यामुपरि विन्यसेत् ॥ स्वेद्यानि द्रव्यजातानि शरावेऽस्मिन्निधाय च । आच्छाद्यान्यशरावेण ज्वालां तावत्प्रदापयेत् ॥ स्विन्नानि तानि यावत् स्युः पिष्टस्वेदे त्वयं विधिः ।" इति । ९ कुल्माषः=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शशमांसं सरुधिरं समङ्गां[1] सघृतं दधि ॥ १३४ ॥
खादेद्विपाच्य सेवेत मृद्वन्नं शकृतः क्षये[2] ।
संस्कृतो यमके[3] माषयवकोलरसः शुभः ॥ १३५ ॥
भोजनार्थं प्रदातव्यो दधिदाडिमसाधितः ।
विडं बिल्वशलाटूनि नागरं चाम्लपेषितम् ॥ १३६ ॥
दध्नः सरं[4]श्च यमके भृष्टो वर्चःक्षये हितः ।
सशूलं क्षीणवर्चा यो[5] दीप्ताग्निरतिसार्य्यते ।
स[6] पिबेद् दीपनैर्युक्तं सर्पिः सङ्ग्राहकैः सह ॥ १३७ ॥

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य ।
प्रवाहमाणस्य मुहुर्मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १३८ ॥
प्रवाहिका[7] वातकृता सशूला पित्तात् सदाहा सकफा कफाच्च ।
सशोणिता शोणितसम्भवा तु ता[8]ः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ॥१३९॥
तासामतीसारवदादिशेच्च[10] लिङ्गं क्रमं चामविपक्वताञ्च ।

---

यावकः, "अर्धस्विन्नास्तु गोधूमा अन्येऽपि चणकादयः। कुल्माषा इति कथ्यन्ते शब्दशास्त्रेषु पण्डितैः ॥" इति तल्लक्षणम्। इक्षेतां सुरां पैष्टीमित्यर्थः।

१ समङ्गां = लज्जालुम्। २ शकृतः क्षये = विष्ठाक्षये इत्यर्थः। ३ यमके = घृततैले, माषयवकोलरसः = माषादियूषः। ४ सरः = दध्न उपरितनो भागः। ५ यः = क्षीणपुरीषः पुरुषः। ६ स दीपनैश्चित्रकादिभिर्युक्तं सङ्ग्राहकैर्धातकीबिल्वशलाटुप्रभृतिभिः सह सर्पिः पिबेत्।

७ अतिसारप्रभेदप्रवाहिकायाः सम्प्राप्तिपूर्वकं लक्षणमाह—**वायुरिति**। अहिताशनस्य अतिशयेन वातलभक्ष्यभोजिनो वायुः प्रवृद्धः, प्रवाहमाणस्य प्रवाहणं कुर्वतः निचितं सञ्चितं बलासं कफं, बलासस्योपलक्षणत्वात् पित्तं रक्तं वा मलाक्तं पुरीषयुक्तं मुहुर्वारं वारम् अधस्ताद् नुदति गुदमार्गेण पातयति, तज्ज्ञा वैद्यास्तां प्रवाहिकां प्रवदन्तीत्यर्थः। अतीसारे अनेकविधद्रवधातुसरणं, प्रवाहिकायां तु कफमात्रसरणमिति तयोर्भेदः। भोजादौ त्वियं विस्रंसीति नाम्ना पठ्यते।

८ वातादिभेदेन प्रवाहिकालक्षणं दर्शयति—**प्रवाहिकेति**। ९ ताः = प्रवाहिकाः, स्नेहरूक्षप्रभवाः स्नेहप्रभवाः कफजाः, रूक्षप्रभवा वातजाः, तुशब्दात् तीक्ष्णोष्णप्रभवाः पित्तजा रक्तजा च। १० तासां चतसृणां प्रवाहिकाणाम् अतिसारवत् लिङ्गं प्रागुक्तप्रवाहिकालक्षणतः अधिकं लक्षणम् आमविपक्वभेदेन क्रमं चिकित्साक्रमं च

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]न शान्तिमायाति विलङ्घनैर्या योगैरुदीर्णा यदि पाचनैर्वा ॥१४०॥
तां क्षीरमेवाशु शृतं निहन्ति तैलं तिलाः पिच्छिलबस्तयश्च ।
[2]आर्द्रैः कुशैः सम्परिवेष्टितानि वृन्तान्यथार्द्राणि हि शाल्मलीनाम् १४१
पक्वानि सम्यक् पुटपाकयोगेनापोथ्य तेभ्यो रसमाददीत ।
क्षीरं शृतं तैलहविर्विमिश्रं कल्केन यष्टीमधुकस्य वाऽपि ॥ १४२ ॥
[4]बस्तिं विदध्याद्विषगप्रमत्तः प्रवाहिकामूत्रपुरीषसङ्गे ।
[5]द्विपञ्चमूलीक्वथितेन शूले प्रवाहमाणस्य समाक्षिकेण ॥ १४३ ॥
क्षीरेण चास्थापनमप्रचमुक्तं [6]तैलेन युञ्ज्यादनुवासनञ्च ।
[7]वातघ्नवर्गे लवणेषु चैव तैलञ्च सिद्धं हितमन्नपाने ॥ १४४ ॥
लोध्रं विडं बिल्वशलाटु[8] चैव लिह्याच्च तैलेन कटुत्रिकाढ्यम् ।
दध्ना ससारेण समाक्षिकेण भुञ्जीत निश्चारकपीडितस्तु [9]॥ १४५ ॥
सुतप्तकुप्यक्वथितेन[10] वाऽपि क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ।
शूलार्दितो [11]व्योषविदारिगन्धासिद्धेन दुग्धेन हिताय भोज्यः॥१४६॥
वातघ्नसङ्ग्राहकदीपनीयैः[12] कृतान् षडांश्चाप्युपभोजयेच्च ।
खादेच्च मत्स्यान् [13]रसमाप्नुयाच्च वातघ्नसिद्धं सघृतं सतैलम्॥१४७॥

---

आदिशेदित्यर्थः ।

१ लङ्घनाद्युपक्रमैः प्रवाहिकाया अप्रशमे चिकित्सितमभिधत्ते—नेति । उदीर्णा= उत्कटा, पाचनैर्योगैरिति सम्बन्धः । २ पिच्छाबस्तिविधिं वक्ति—आर्द्रैरिति । ३ हविः=घृतम् । ४ पिच्छाबस्तिमित्यर्थः । ५ अवस्थावशेन आस्थापनानुवासने उपदिशति—द्विपञ्चेति । द्विपञ्चमूली = दशमूली । ६ तैलेन = दशमूलीक्वाथे क्षीरे च सिद्धतैलेनेत्यर्थः ।

७ अन्नसंस्कारार्थं पानार्थं च तैलमभिदधाति—वातघ्नेति । विदारिगन्धादौ वातघ्नवर्गे, लवणेषु सैन्धवादिषु । ८ बिल्वशलाटु = कोमलं बिल्वफलम् । ९ निश्चारको निःसारकसंज्ञको वा पुरीषक्षयापरपर्यायः प्रवाहिकाभेदस्तेन पीडितः पुरुषः ससारेण दध्नः उपरितनस्निग्धभागसराख्यसहितेन, समाक्षिकेण मधुसहितेन दध्ना सह भुञ्जीतेत्यर्थः । १० कुप्यं सुवर्णरूप्येतरलोहं, सुतप्तकुप्यप्रक्षेपेण क्वथितं पाचितमिति सुतप्तकुप्यक्वथितं तेन क्षीरेणेत्यर्थः । ११ व्योषं = त्रिकटुकम् ।

१२ वातघ्नानि शालपर्ण्यादीनि, सङ्ग्राहकाणि बिल्वपाठाप्रभृतीनि, दीपनीयानि चित्रकशुण्ठ्यादीनि तैः कृतान् साधितान् षडान् दाडिमगोरसादानवनान् । १३ रसं=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एणाव्यजानान्तु[1] वटप्रवालैः सिद्धानि सार्द्धं पिशितानि खादेत् ।
मेध्यस्य[2] सिद्धन्त्वथ वाऽपि रक्तं बस्तस्य दध्ना घृततैलयुक्तम् ॥१४८॥
खादेत् प्रदेहैः[3] शिखिलावजैर्वा भुञ्जीत यूषैर्दधिभिश्च मुख्यैः ।
माषान्सुसिद्धान्घृतमण्डयुक्तान्खादेच्च दध्ना मरिचोपदंशान्[4] ॥१४९॥

महारुजे मूत्रकृच्छ्रे भिषग्वस्तिं[5] प्रदापयेत् ।
पयोमधुघृतोन्मिश्रं मधुकोत्पलसाधितम् ॥ १५० ॥
स बस्तिः शमयेत्तस्य रक्तं दाहमथो ज्वरम् ।
मधुरौषधसिद्धञ्च[6] हितं तस्यानुवासनम्[7] ॥ १५१ ॥
रात्रावहनि वा नित्यं रुजार्त्तो यो भवेन्नरः ।
यथा यथा सतैलः[8] स्याद्वातशान्तिस्तथा तथा ॥ १५२ ॥
प्रशान्ते मारुते चापि शान्तिं याति प्रवाहिका ।
तस्मात् प्रवाहिकारोगे मारुतं शमयेद्भिषक् ॥ १५३ ॥

पाठाऽजमोदा कुटजोत्पलं[9] च शुण्ठीसमा मागधिकाश्च पिष्टाः ।
सुखाम्बुपीताः शमयन्ति रोगं मेध्याण्डसिद्धं[10] सघृतं पयो वा ॥१५४॥
शुण्ठीं घृतं[11] सक्षवकं सतैलं विपाच्य लीढ्वाऽऽमयमाशु हन्यात् ।

---

विष्किरवर्गाभिहितमांसरसम्, आप्नुयात्=पिबेदित्यर्थः । १ एणः कृष्णसारो मृगः, अविर्मेषः, अजा छगलः, तेषां पिशितानि मांसानि वटप्रवालैः सह सिद्धानि खादेदित्यर्थः ।

२ मेध्यस्य यज्ञार्हस्य बस्तस्य रक्तं घृततैलभृष्टं दध्ना सिद्धं संस्कृतं खादेदिति योज्यम् । सुश्रुतार्थसन्दीपनकारस्तु—घृततैलयुक्तं घृततैलाभ्यां संस्कृतं मेध्यस्य खड्गिप्रभृतेः सिद्धं प्रागुक्तैणादिपिशितसाधनसाहचर्याद् वटप्रवालैः सह पक्वं मांसं बस्तस्य रक्तं वा दध्ना खादेदिति व्याख्याति । ३ पाकेन घनीभूता रसाः प्रदेहास्तैरित्यर्थः । ४ मरिचोपदंशान्=मरिचावचूर्णितान् । ५ निरूहबस्तिमित्यर्थः । ६ मधुकं=यष्टीमधु, उत्पलं=नीलोत्पलम् ।

७ निरूहबस्तिमुक्त्वाऽनुवासनबस्तिं ब्रवीति—मधुरेति । मधुरौषधानि काकोल्यादीनि तैः सिद्धम् । ८ अनुवासनेन शीलिततैलः सतैलः । ९ कुटजः=इन्द्रयवाः, उत्पलं=नीलोत्पलम् । १० मेध्याण्डसिद्धं=छागाण्डसिद्धम् । ११ क्षवकः='नकछिकनी' इति ख्यातः । शुण्ठीक्षवकयोः कल्कं घृततैले यमके अवलेहविधिना विपाच्य लीढ्वा प्रवाहिकाऽऽख्यमामयमाशु हन्यादित्यर्थः । अत्र शुण्ठीक्षवकयोरर्द्धं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गजाशनाकुम्भिकदाडिमानां रसैः कृता तैलघृते सदध्नि ॥१५५॥
बिल्वान्विता पथ्यतमा यवागूर्धारोष्णदुग्धस्य तथा च पानम् ।
लघूनि पथ्यान्यथ दीपनानि स्निग्धानि भोज्यान्युदरामयेषु ॥१५६॥
हिताय नित्यं वितरेद्विभज्य योगांश्च तांस्तान् भिषगप्रमत्तः ॥१५७॥

तृष्णाऽपनयनी लघ्वी दीपनी बस्तिशोधनी ।
ज्वरे चैवातिसारे च यवागूः सर्वदा हिता ॥ १५८ ॥
रौक्ष्याज्जाते क्रिया स्निग्धा रूक्षा स्नेहनिमित्तजे ।
भयजे सान्त्वनापूर्वा शोकजे शोकनाशिनी ॥ १५९ ॥
विषार्शःकृमिसम्भूते हिता चोभयशर्मदा ॥
छर्दिमूर्च्छातृडाद्यांश्च साधयेदविरोधतः ॥ १६० ॥
समवाये तु दोषाणां पूर्वं पित्तमुपाचरेत् ।
ज्वरे चैवातिसारे च सर्वत्रान्यत्र मारुतम् ॥ १६१ ॥
यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥ १६२ ॥
कर्मजा व्याधयः केचिद् दोषजाः सन्ति चापरे ।

---

घृतं तैलं च, जलं तु चतुर्गुणं बोध्यम् ।

१ गजाशना=शल्लकी, कुम्भिका=वारिपर्णी, "वारिपर्णी बृहत्पत्रा कुम्भिकेति प्रकीर्तिता" इति, गजाशनादीनां रसैः क्वाथैः बिल्वान्विता बिल्वगर्भयुक्ता तैलघृते संस्कृता दध्नि सिद्धा यवागूः पथ्यतमेत्यर्थः । २ उदरामयेषु=अतीसारप्रवाहिकाख्येषु । ३ लघुदीपनस्निग्धान् योगानित्यर्थः । ४ तृष्णाऽपनयनी=पिपासाशमनीत्यर्थः । ५ सान्त्वना पूर्वा=भयापहवाक्यादिप्रयोगपूर्वा ।

६ उभयशर्मदा=विषादिहरा अतीसारहरा चेत्यर्थः । ७ अविरोधतः=अतीसाराविरोधेन । ८ अन्यत्र=ज्वरातीसारातिरिक्तेषु अन्येषु रोगेष्वित्यर्थः । ९ अतिसारनिवृत्तिलक्षणमुपदिशति—यस्येति । यस्यातिसारिणः उच्चारं पुरीषं विना मूत्रं प्रवर्तते, सम्यक् प्रवृत्तिशङ्कारहितं वायुश्च गच्छति, गुदेनेति शेषः । दीप्ताग्नेः प्रवृद्धजठरानलस्य लघुकोष्ठस्य तस्यातिसारिणः उदरामयोऽतिसारः स्थितो गतः, निवृत्त इत्यर्थः ।

१० कर्मजादिभेदेन रोगस्य त्रैविध्यं दर्शयति—कर्मजा इति । कर्मजाः=पूर्वजन्मकृतपापोत्पन्नाः, तदुक्तं शातातपीये—'पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये । बाधते

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये कर्मजास्तेष्वहेतुकाः ॥ १६३ ॥
नश्यन्ति त्वक्रियाभिस्ते क्रियाभिः कर्मसङ्क्षये।
शाम्यन्ति दोषसम्भूता दोषसङ्क्षयहेतुभिः ॥ १६४ ॥
तेषामल्पनिदाना ये प्रतिकष्टा भवन्ति च ॥
मृदवो बहुदोषा वा कर्मदोषोद्भवास्तु ते ॥ १६५ ॥
कर्मदोषक्षयकृता तेषां सिद्धिर्विधीयते।
दुष्यति ग्रहणी जन्तोरग्निसादनहेतुभिः ॥ १६६ ॥
अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः।
भूयः सन्दूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥ १६७ ॥
तस्मात्कार्य्यः परीहारस्त्वतीसारे विरिक्तवत्।
यावन्न प्रकृतिस्थः स्याद्दोषतः प्राणतस्तथा ॥ १६८ ॥
षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्त्तिता।
पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्त्तिता ॥ १६९ ॥

---

व्याधिरूपेण तस्य कृच्छ्रादिभिः शमः ॥ कुष्ठं च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा। मूत्रकृच्छ्राश्मरीकासा अतीसारभगन्दरौ ॥' इति। दोषजाः=कुपितवातादिदोषजाः।

१ कर्मदोषोद्भवाः=पापदोषमूलाः, अहेतुकाः=दोषागन्तुहेतुरहिताः। २ ते=कर्मजाः, अक्रियाभिः=अचिकित्साभिः, क्रियाभिः=कृच्छ्रादिप्रायश्चित्तैः, जपहोमादिभिश्च। ३ ये दोषसङ्क्षयहेतुभिः शाम्यन्ति ते दोषजा इति योज्यम्। अनेन दोषजानां लक्षणमुक्तम्।

४ कर्मदोषजानां लक्षणमभिदधाति—तेषामिति॥ तेषां=कर्मादिजानाम्, प्रतिकष्टाः=इत्थम्भूतकष्टाः, अत्र प्रतिशब्दस्य इत्थम्भूतार्थकत्वम्। ५ कर्मदोषक्षयकृता=यागदानादिदैवव्यपाश्रयेण कर्मक्षयकृता, स्नेहस्वेदनवमनादियुक्तिव्यपाश्रयेण दोषक्षयकृता, सिद्धिः=साधनमित्यर्थः।

६ ग्रहणीरोगमधिकरोति—दुष्यतीति। जन्तोः प्राणिनः अग्निसादनहेतुभिरग्निनिर्वापणकारणैः ग्रहणी पित्तधरा कला दुष्यति, विकृतिं यातीत्यर्थः। ७ अपिशब्दादनिवृत्तेऽप्यतीसारे। अतीसारे द्रवधातुप्रवृत्तिः, ग्रहण्यां तु बद्धस्यापि मलस्य प्रवृत्तिरिति तयोर्भेदो ज्ञातव्यः। ८ विरिक्तवत्=आतुरोपद्रवचिकित्सितोक्तविधिवत्। ९ परिकीर्तिता=अभिहिता, 'गर्भव्याकरणे शारीरे' इति शेषः।

१० पक्वामाशयमध्यस्था=पच्यमानाशयरूपेत्यर्थः। ग्रहणी=अग्न्यधिष्ठानभूता

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]अग्न्या बलमग्निर्हि स चापि ग्रहणीं श्रितः ।
तस्मात् सन्दूषिते वह्नौ ग्रहणी सम्प्रदुष्यति ॥ १७० ॥
एकशः सर्वशश्चैव दोषैरत्यर्थमुच्छ्रितैः[2] ।
सा दुष्टा बहुशो[3] भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥ १७१ ॥
पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् ।
ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ १७२ ॥
[4]तस्योत्पत्तौ विदाहोऽन्ने सदनालस्यतृट्क्लमाः ।
बलक्षयोऽरुचिः कासः [5]कर्णक्ष्वेडोऽन्त्रकूजनम् ॥ १७३ ॥
[6]अथ जाते भवेज्जन्तुः शूनपादकरः कृशः ।
[7]पर्वरुग्लौल्यतृट्छर्दिज्वरारोचकदाहवान् ॥ १७४ ॥
उद्गिरेच्छुक्ततिक्ताम्ललोहधूमामगन्धिकम् ।
प्रसेकमुखवैरस्यतमक[8]कारुचिपीडितः ॥ १७५ ॥
[9]वाताच्छूलाधिकैः पायुहृत्पार्श्वोदरमस्तकैः ।
पित्तात् सदाहैर्गुरुभिः कफात् त्रिभ्यस्त्रिलक्षणैः ॥ १७६ ॥

---

नाडी, चरकेऽपि—"अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता । नाभेरुपरि सा ह्यग्निबलोपस्तम्भबृंहिता । अपक्वं धारयत्यन्नं पक्वं सृजति चाप्यधः ॥" इति ।

१ अग्नौ दूषिते यथा ग्रहणी दुष्यति तथा दर्शयति—**ग्रहण्या इति** । 'हि यस्माद् ग्रहण्या बलमग्निः, स चाप्यग्निः ग्रहणीं श्रित आश्रितः, तस्माद् वह्नौ सन्दूषिते ग्रहणी सम्प्रदुष्यतीत्यर्थः । २ अत्यर्थमुच्छ्रितैः = अतिवृद्धैरित्यर्थः । ३ बहुशः—बहून् वारान्, आमम् = अपक्वम् ।

४ ग्रहणीपूर्वरूपाणि निरूपयति—**तस्येति** । तस्य=ग्रहणीरोगस्य, उत्पत्तौ= प्रादुर्भावे, अन्ने विदाहः = अग्निमान्द्यत्वेन आहारस्य विदग्धत्वम् । ५ कर्णक्ष्वेडः= वेणुघोषसमशब्दः, तदुक्तम्—"वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषसमं स्वनम् । करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ॥" इति ।

६ ग्रहण्याः पूर्वरूपानन्तरं विशिष्टलक्षणानि निर्दिशति—**अथेति** । शूनपादकरः शूनौ शोथयुक्तौ पादौ करौ यस्य सः । ७ पर्वरुक् = ग्रन्थिस्फुटनम्, लौल्यं = सर्वरसाभ्यवहारे लोलुपत्वम् । ८ तमकः = श्वासरोगप्रभेदः । ९ वातादिभेदेन ग्रहणीलक्षणानि दर्शयति—**वातादिति** । वातादिप्रभेदेन विशिष्टलक्षणानि ग्रन्थान्त-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोषवर्णैर्नखैस्तद्वद्विण्मूत्रनयनाननैः[1]।
हृत्पाण्डूदरगुल्मार्शःप्लीहाशङ्की च मानवः ॥ १७७ ॥
यथादोषोच्छ्रयन्तस्य[2] विशुद्धस्य यथाक्रमम् ।
पेयादिं[3] वितरेत् सम्यग्दीपनीयोपसम्भृतम् ॥ १७८ ॥
ततः पाचनसङ्ग्राहिदीपनीयगणत्रयम्[4] ।
पिबेत् प्रातः सुरारिष्टस्नेहमूत्रसुखाम्बुभिः ॥ १७९ ॥
तक्रेण वाऽथ तक्रं[5] वा केवलं हितमुच्यते ।
कृमिगुल्मोदरार्शोघ्नीः क्रियाश्चात्रावचारयेत् ॥ १८० ॥
चूर्णं हिङ्ग्वादिकं[6] चात्र घृतं वा प्लीहनाशनम् ।
कल्केन[7] मगधादेश्च चाङ्गेरीस्वरसेन च ॥ १८१ ॥
चतुर्गुणेन दध्ना च घृतं सिद्धं हितं भवेत् ।
सर्वथा दीपनं सर्वं ग्रहणीरोगिणां हितम्[8] ।

---

रतो ज्ञातव्यानि । १ वर्णैः=कृष्णारुणनीलपीतरक्तासितपाण्डुभिर्वर्णैरित्यर्थः ।

२ ग्रहणीरोगचिकित्सितमाख्याति—यथेति । विशुद्धस्य=वातोद्रेके निरूहेण, पित्तोद्रेके विरेकेण, कफोद्रेके वमनेन शुद्धिमापन्नस्येत्यर्थः । ३ आदिशब्दाद् विलेपियूषमृद्वोदनादिकं गृह्यते । ४ पाचनद्रव्यगणो हरिद्रादिना, सङ्ग्राहिद्रव्यगणोऽम्बष्ठादिना, दीपनीयद्रव्यगणश्च पिप्पल्यादिना द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये प्रदर्शितः ।

५ तक्रस्य गुणोत्कर्षमाह—"न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धः प्रभवन्ति रोगाः । यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥" इति । रोगविशेषे तक्रविशेषानाह—"वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं पित्ते स्वादु सशर्करम् । पिबेत्तक्रं कफे चापि क्षारत्रिकटुसंयुतम् ॥ हिङ्गुजीरयुतं घोलं सैन्धवेनावधूलितम् । ग्रहण्यर्शोऽतिसारघ्नं भवेद्वातहरं परम् ॥" इति । ६ हिङ्ग्वादिचूर्णं महावातव्याधौ द्रष्टव्यम् । घृतं=षट्पलादिघृतमित्यर्थः ।

७ चाङ्गेरीघृतमभिदधाति—कल्केनेति । कल्केन=स्नेहचतुर्थांशेन, मगधादेः=द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तस्य पिप्पल्यादेः, चाङ्गेरी । 'अमलोनिया' इति ख्याता, तस्याः स्नेहचतुर्गुणेन स्वरसेनेत्यर्थः । ८ दीपनमग्निदीपनं यत्, तत्सर्वं ग्रहणीरोगिणां सर्वथा हितमिति योज्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्वरादीनविरोधाच्च साधयेत् स्वैश्चिकित्सितैः ॥ १८२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रेऽतिसारप्रतिषेधो नाम ( द्वितीयोऽध्यायः, आदितः ) चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

## एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथातः शोषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः ।
दुर्विज्ञेयो दुर्निवारः शोषो व्याधिर्महाबलः ॥ ३ ॥
संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते ।
क्रियाक्षयकरत्वाच्च क्षय इत्युच्यते पुनः ॥ ४ ॥
राज्ञश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः ।

---

१ ग्रहणीरोगोपद्रवाणां ज्वरारोचकादीनां चिकित्सामाह—ज्वरादीनिति । आदिशब्दादरोचकशूलकरपादशोथाः ग्राह्याः । अविरोधात् = मूलव्याधेर्विरोधं विनेत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चत्वारिंशोऽध्यायः ।

---

### एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

२ ज्वरातीसाराभ्यामपि शोषस्य सम्भवादतीसारप्रतिषेधानन्तरं शोषप्रतिषेधमधिकरोति—अथात इति । शोषप्रतिषेधं = यक्ष्मचिकित्सितमित्यर्थः । शोषस्य पर्यायाः राजयक्ष्म-क्षय-यक्ष्मप्रभृतयः । 'क्षयः शोषश्च यक्ष्मा च' इत्यमरः ।

३ शोषस्य रोगराजत्वं प्रतिपादयति—अनेकेति । अनेकरोगाः शोथाद्युपद्रवा अनुगता आश्रिता यस्य सोऽनेकरोगानुगतः, बहवो रोगाः प्रतिश्यायश्वासादयः पुरोगमाः पूर्वरूपत्वेन अग्रेसरा यस्य स बहुरोगपुरोगमः, तद् वक्ष्यति—"श्वासाङ्गमर्दकफसंस्रवतालुशोषवम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः । शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥" इति ।

४ सपर्यायं शोषशब्दं निर्वक्ति—संशोषणादिति । ५ क्रियायाश्चिकित्साया अथवा कायवाङ्मानसकर्मणः क्षयकरत्वादित्यर्थः । ६ किलेति वार्तायाम् । राज्ञश्च-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मादयं राजयक्ष्मेति केचिदाहुर्मनीषिणः ॥ ५ ॥
स व्यस्तैर्जायते दोषैरिति केचिद्वदन्ति हि ।
एकादशानामेकस्मिन् सान्निध्यात्तन्त्रयुक्तितः ॥ ६ ॥
क्रियाणामविभागेन प्रागेकोत्पादनेन च ।
एक एव मतः शोषः सन्निपातात्मको ह्यतः ॥ ७ ॥
उद्रेकात्तत्र लिङ्गानि दोषाणां निपतन्ति हि ।
क्षयाद्वेगप्रतीघातादाघाताद्विषमाशनात् ॥ ८ ॥

---

न्द्रमसोऽयं यक्ष्मा यथा प्रागभूत्, यथा चास्य 'राजयक्ष्मा' इति संज्ञा समभूदिति वार्तामाह चरकः—"दिवौकसां कथयतामृषिभिर्वै श्रुता कथा । कामव्यसनसंयुक्ता पौराणी शशिनं प्रति ॥ रोहिण्यामतिसक्तस्य शरीरं चातुरक्षतः । आजगामाल्पतामिन्दोर्देहः स्नेहपरिक्षयात् ॥ दुहितॄणामसम्भोगाच्छेषाणां च प्रजापतेः । क्रोधो निश्वासरूपेण मूर्तिमान् निःसृतो मुखात् ॥ प्रजापतेर्हि दुहितॄरष्टाविंशतिरंशुमान् । भार्यार्थं प्रतिजग्राह न च सर्वास्ववर्तत ॥ गुरुणा तमवध्यातं भार्यास्वसमवर्तिनम् । रजःपरीतमबलं यक्ष्मा शशिनमाविशत् ॥ सोऽभिभूतोऽतिमहता गुरुक्रोधेन निष्प्रभः । देवदेवर्षिसहितो जगाम शरणं गुरुम् ॥ अथ चन्द्रमसः शुद्धां मतिं बुद्ध्वा प्रजापतिः । प्रसादं कृतवान् सोमस्ततोऽश्विभ्यां चिकित्सितः ॥ स विमुक्तग्रहश्चन्द्रो विरराज विशेषतः । ओजसा वर्धितोऽश्विभ्यां शुद्धं सत्त्वमवाप च ॥ क्रोधो यक्ष्मा ज्वरो रोग एकार्थो दुःखसंज्ञकः । यस्मात् स राज्ञः प्रागासीद्राजयक्ष्मा ततो मतः ॥ स यक्ष्मा हुङ्कृतोऽश्विभ्यां मानुषं लोकमागतः । लब्ध्वा चतुर्विधं हेतुं समाविशति मानवान् ॥" इति । "नक्षत्राणां द्विजानां च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा । यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मतः ॥" इति वाग्भटः । एषा कथा कालिकापुराणादावप्यनुसन्धेया । कर्मदोषजोऽयं व्याधिरिति बोध्यम् । १ व्यस्तैः=पृथग्भूतैः, केचित्=पाराशरीयान्तेवासिनः, तद्वचनमाह शार्ङ्गधरः—"क्षयाः पञ्चैव विज्ञेयास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते । चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमः स्यादुरःक्षतात् ॥" इति ।

२ परमतनिराकरणाय स्वमते शोषस्यैकत्वे हेतुत्रितयमभिधत्ते—**एकेति** । एकादशानां वातपित्तकफजत्वेन वक्ष्यमाणानां स्वरभेदशूलादीनाम्, एकस्मिन् राजयक्ष्मरोगे सान्निध्यात् स्वलक्षणत्वेन विद्यमानत्वात् तन्त्रयुक्तितः अर्थयुक्तितः, क्रियाणां चिकित्सितानाम् अविभागेन वातजादिशोषं प्रति अविभज्योपदेशेन, प्राक् पूर्वं दक्षद्वारा एकस्यैव उत्पादनेन हि यस्माद्धेतुत्रयमुपन्यस्तमतः सन्निपातात्मकः एक एव शोषो मत इत्यर्थः । ३ उद्रेकात्=आधिक्यात्, तत्र=राजयक्ष्मणि ।

४ शोषोत्पत्तौ चतुर्विधहेतुमभिदधाति—**क्षयादिति** । क्षयात्=रसादिशुक्रान्तानां

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायते कुपितैर्दोषैर्व्याप्तदेहस्य देहिनः ।
कफप्रधानैर्दोषैर्हि रुद्धेषु रसवर्त्मसु ॥ ९ ॥
अतिव्यवायिनो वाऽपि क्षीणे रेतस्यनन्तरम् ।
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ १० ॥
भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणितदर्शनम् ।
स्वरभेदश्च जायेत षड्रूपे राजयक्ष्मणि ॥ ११ ॥
स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संलोचश्चांसपार्श्वयोः ।
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः ॥ १२ ॥
शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च ।
कासः कण्ठस्य चोध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ १३ ॥

---

धातूनां क्षयात्, वेगप्रतीघातात्=वातमूत्रपुरीषादीनां वेगावरोधात्, यदुक्तं चरके—"ह्रीमत्त्वाद्वा घृणित्वाद्वा भयाद्वा वेगमागतम् । वातमूत्रपुरीषाणां निगृह्णाति यदा नरः ॥" इति । आघातात्=अयथाबलमारम्भात्, तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"अयथाबलमारम्भो वेगसन्धारणं क्षयः । यक्ष्मणः कारणं विद्याच्चतुर्थं विषमाशनम् ॥" इति । विषमाशनात्=अप्राप्तातीतकालबह्वल्पभोजनात्, "बहु स्तोकमकाले वा विज्ञेयं विषमाशनम्" इति । विषमाशनेन स्रोतोरोधकत्वाद् यक्ष्मरोगसम्भवमाह चरकः—"विविधान्यन्नपानानि वैषम्येण समश्नतः । जनयन्त्यामयान् घोरान् विषमान् मारुतादयः । स्रोतांसि रुधिरादीनां वैषम्याद् विषमं गताः । रुद्ध्वा रोगाय कल्पन्ते पुष्यन्ति च न धातवः ॥" इति ।

१ कफः प्रधानमुत्कटं येषां वातादिदोषाणां तैः कफप्रधानैः, रसवर्त्मसु=रसवहधमनीष्वित्यर्थः । रसवर्त्मस्वित्यत्र आदिशब्दो लुप्तनिर्दिष्टो द्रष्टव्यः, तेन रक्तादिवहस्रोतोनिरोधोऽपि बोध्यः । २ अनन्तरं सर्वे धातवः क्षीयन्ते इति सम्बन्धः । यथा रेतसि क्षीणे मज्जा क्षीयते, मज्जनि क्षीणे अस्थि, एवं पूर्वं पूर्वं बोध्यम् ।

३ यक्ष्मणः षड् रूपाणि दर्शयति—भक्तेति । भक्तद्वेषः=भोजनेऽरुचिः । ४ अथ दोषभेदेनैकादशरूपाणि दर्शयन्नाह—स्वरेति । स्वरभेदः=घर्घरादिस्वरः, शूलमंसपार्श्वयोरेव, संलोचः=लुञ्चितमिव, क्व ? अंसपार्श्वयोः=अंसयोः पार्श्वयोरित्यर्थः । 'सङ्कोच' इति पाठान्तरम् । ५ शिरसः परिपूर्णत्वं कफेनेति शेषः । अभक्तच्छन्दः=भक्तारुचिः । ६ कण्ठस्य उद्ध्वंसः=कण्ठभेदः, उत्कासिकेति कार्तिकः । एतानि चैकादशरूपाणि प्रायोभावित्वादुक्तानि, अन्यतमरूपपरिहाराद्रूपान्तरयोगेऽप्येकादशत्वं षट्त्वं च स्यादेवः; तथा हि चरको निदाने एकादशरूपाणि पठित्वा चिकित्सिते-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकादशभिरेभिर्वा षड्भिर्वाऽपि समन्वितम् ।
( कासातीसारपार्श्वार्त्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः ॥ १४ ॥
त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकासासृगामयैः । )
जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छन् सुविपुलं यशः ॥ १५ ॥
व्यवायशोकस्थावीर्यव्यायामाध्वोपवासतः ।
व्रणोरःक्षतपीडाभ्यां शोषानन्ये वदन्ति हि ॥ १६ ॥
व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः ।
पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥ १७ ॥
प्रध्यानशीलः स्रस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः ।
विना शुक्रक्षयकृतैर्विकारैरभिलक्षितः ॥ १८ ॥

---

ऽपि वेगरोधादिकारणचतुष्टयजे प्रतिकारणं चतुर्धा एकादशरूपाणि पठितवान् । यथा—"कासोऽसतापो वैस्वर्यं ज्वरः पार्श्वशिरोरुजा । छर्दनं रक्तकफयोः श्वासो वर्चोग्रहोऽरुचिः । रूपाण्येकादशैतानि, यक्ष्मणि षडिमानि च । कासो ज्वरः पार्श्वशूलं स्वरवर्चोग्रहोऽरुचिः ।" इति श्रीकण्ठविजयरक्षितौ ।

१ बहुरूपो राजयक्ष्मा असाध्यः, तं प्रतिपादयति—**एकेति** । एकादशभिरेभिः= "स्वरभेदोऽनिलाच्छूलम्" इत्यादिभिः कण्ठोद्ध्वंसान्तैः, षड्भिः = "भक्तद्वेषो ज्वरः" इत्यादिभिः, अपिशब्दात् तन्त्रान्तरोक्तैस्त्रिभिर्वा, "कासो ज्वरो रक्तपित्तं त्रिरूपे राजयक्ष्मणि" इति भोजः । "अंसपार्श्वाभितापश्च सन्तापः करपादयोः । ज्वरः सर्वाङ्गगश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥" इति चरकोक्तविशिष्टलक्षणोक्तैस्त्रिभिर्वा समन्वितं 'मांसबलक्षये सति' इति शेषः । जह्यात त्यजेदिति उत्तरश्लोकस्थेन सम्बन्धः । तथा च चरकः—"वातव्याधिरपस्मारी कुष्ठी ब्रध्नी चिरज्वरी । गुल्मी च मधुमेही च राजयक्ष्मी च यो नरः ॥ अचिकित्स्या भवन्त्येते बलमांसपरिक्षयात् ।" इति ।

२ कासातीसारादिभिर्ज्वरान्तैः षड्लिङ्गैरित्यर्थः । ३ शोषार्दितं = राजयक्ष्मपीडितम् । ४ व्यवायादिजनितधातुशोषणमात्रेण राजयक्ष्मत्वमित्येकीयमतं निरस्यन्नाह—**व्यवायेति** । व्यवायः=मैथुनम् । ५ व्यवायशोषिणो लक्षणं निरूपयति—**व्यवायशोषीति** । व्यवायेन शुष्यत इति व्यवायशोषी, शुक्रस्य क्षयलिङ्गैः । ६ यथोक्तं भगवता स्वयमेव सूत्रस्थाने—"शुक्रक्षये मेढ्रवृषणवेदना, अशक्तिर्मैथुने, चिराद्वा प्रसेकः, प्रसेके चाल्पदर्शनं रक्तस्य शुक्रस्य वा" इति । यथा शुक्रस्य पूर्वो मज्जा, मज्ज्ञः अस्थि, अस्थ्नो मेदः, मेदसो मांसं, मांसस्य रक्तम्, इत्येवं यथापूर्वमित्यर्थः ।

७ शोकशोषिणो लक्षणमभिधत्ते—**प्रध्यानेति** । प्रध्यानशीलः = चिन्तापरः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः ।
कम्पनोऽरुचिमान् भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः ॥ १९ ॥
ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारुचिपीडितः ।
सम्प्रस्रुतास्यनासाऽक्षः शुष्कसुप्तरूक्षमलच्छविः ॥ २० ॥
अध्वप्रशोषी स्रस्ताङ्गः सम्भृष्टपरुषच्छविः ।
प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥ २१ ॥
व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः ।
उरःक्षतकृतैर्लिङ्गैः संयुक्तश्च क्षताद्विना ॥ २२ ॥
रक्तक्षयाद्भेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात् ।
व्रणितस्य भवेच्छोषः स चासाध्यतमः स्मृतः ॥ २३ ॥
व्यायामभाराध्ययनैरभिघातातिमैथुनैः ।
कर्मणा चाप्युरस्येन वक्षो यस्य विदारितम् ।
तस्योरसि क्षते रक्तं पूयः श्लेष्मा च गच्छति ॥ २४ ॥
कासमानश्छर्दयेच्च पीतरक्तासितारुणम् ।
सन्तप्तवक्षाः सोऽत्यर्थं दूयनात्परिताम्यति ॥ २५ ॥

---

१ जराशोषिणो लक्षणं ब्रवीति—जरेति । २ भिन्नस्य स्फुटितस्य कांस्यपात्रस्य हतस्य दण्डादिनेव स्वरो यस्य स इत्यर्थः । ३ शुष्करूक्षे यथाक्रमं मलच्छवी यस्य सः, 'सुप्तरूक्षमलच्छविः' इति पाठान्तरम् । अत्र सुप्तरूक्षत्वं प्रभायाः, मज्ञाः क्रोशन्तीति वदुपचारात् । रूक्षत्वं मलस्य बोध्यम् ।

४ अध्वशोषिणो लक्षणमभिदधाति—अध्वेति । स्रस्ताङ्गः = शिथिलगात्रः, सम्भृष्टस्य भर्जितस्य इव परुषा छविर्वर्णो यस्य सः । ५ क्लोम तिलकम्, शुष्कं क्लोमगलाननं यस्य सः । ६ व्यायामशोषिणो लक्षणमाख्याति—व्यायामेति । एभिः = पूर्वोक्तैरध्वशोषिलक्षणैः, अध्वनो व्यायाममात्रसामान्यात् । भूयिष्ठम् = अत्यर्थम्, अध्वशोषे अल्पानि लक्षणानि, व्यायामजे तु महान्तीत्यर्थः ।

७ व्रणशोषिणो लक्षणमाचष्टे—रक्तेति । रक्तक्षयात् = रक्तातिस्रुतेरित्यर्थः । ८ उरःक्षतशोषिणो लक्षणमुपदिशति—व्यायामेति । व्यायामः = शरीरायासजनकश्रमः । ९ उरस्येन = धनुराकर्षणादिना कर्मणेत्यर्थः । "धनुषाऽऽयस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम । युध्यमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः ॥" इत्यादिना माधवकरेण उरःक्षतशोषिणो लक्षणमुक्तम् । १० क्षते = विदारिते इत्यर्थः । ११ दूयनात् = अति-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्गन्धवदनोच्छ्वासो भिन्नवर्णस्वरो नरः ।
केषाञ्चिदेवं शोषो हि कारणैर्भेदमागतः ॥ २६ ॥
न तत्र दोषलिङ्गानां समस्तानां निपातनम् ।
क्षया एव हि ते ज्ञेयाः प्रत्येकं धातुसंज्ञिताः ॥ २७ ॥
चिकित्सितं तु तेषां हि प्रागुक्तं धातुसङ्क्षये ॥ २८ ॥
श्वासाङ्गसादकफसंस्रवतालुशोष-
च्छर्द्यग्निसादमदपीनसपाण्डुनिद्राः ।
शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः
शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥ २९ ॥
स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनीलकण्ठ-
गृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च ।
तं वाहयन्ति स नदीर्विजलाश्च पश्ये-
च्छुष्कांस्तरून् पवनधूमदवार्दितांश्च ॥ ३० ॥

---

वेदनात्, परिताम्यति=मोहमाप्नोति ।

१ एकीयमतमभिधत्ते—**केषाञ्चिदिति** । केषाञ्चिदाचार्याणां मते एवं कारणैर्व्यायामादिभिरनेकैः कारणैर्हि यस्माच्छोषो भेदं पृथग्भावमागतः, अतः एक एव शोष इति तात्पर्यम् । २ तत्र=तेषु व्यवायादिषु । ३ ते=व्यवायादिजाः, धातुसञ्ज्ञिताः=तेषां क्षयनामधेयत्वेऽपि प्रत्येकं धातुक्षयसञ्ज्ञका इत्यर्थः । ४ धातुसङ्क्षये=दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयाध्याये ।

५ अधुना राजयक्ष्मणः पूर्वरूपं दर्शयति—**श्वासेति** । श्वासादयो भविष्यति उत्पद्यमाने शोषे भवन्तीति सम्बन्धः । अङ्गसादः=अङ्गग्लानिः, कफसंस्रवः=कफष्ठीवनम्, अग्निसादः=अग्निमान्द्यम्, मदः=धत्तूरफलभक्षणादिव मनोमोह इति वाचस्पतिः । पीनसः=प्रतिश्यायः । ६ शुक्लेक्षणः=शुक्लनयनः, मांसपरः=मांसभक्षणेच्छुः, रिरंसुः=स्त्रियं रन्तुमिच्छुः ।

७ शल्लकी='साही' इति ख्याता । नीलकण्ठः=मयूरः । कृकलासकः='गिरगिट' इति ख्यातः । ८ तं=शोषिणम्, वाहयन्ति=प्रापयन्ति, विजलाः=निर्जलाः, दवः=वनाग्निः, अर्दितान्=अभिभूतान्, चकारात्तृणकेशनिपातादयो बोध्याः । तदुक्तं चरके—"पूर्वरूपं प्रतिश्यायो दौर्बल्यं दोषदर्शनम् । अदोषेष्वपि भावेषु, काये बीभत्सदर्शनम् ॥ घृणित्वमश्नतश्चापि बलमांसपरिक्षयः । स्त्रीमद्यमांसप्रियता प्रियता चावगु-



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाशनं क्षीयमाणमतीसारनिपीडितम्।
शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥ ३१ ॥
उपाचरेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नवम्।
स्थिरादिवर्गसिद्धेन घृतेनाजाविकेन च ॥ ३२ ॥
स्निग्धस्य मृदु कर्त्तव्यमूर्ध्वञ्चाधश्च शोधनम्।
आस्थापनं तथा कार्य्यं शिरसश्च विरेचनम् ॥ ३३ ॥
यवगोधूमशालींश्च रसैर्भुञ्जीत शोधितः।
दृढेऽग्नौ बृंहयेच्चापि निवृत्तोपद्रवं नरम् ॥ ३४ ॥
व्यवायशोषिणं प्रायो भजन्ते वातजा गदाः।
बृंहणीयो विधिस्तस्मै हितः स्निग्धोऽनिलापहः ॥ ३५ ॥
काकानुलूकान्नकुलान् बिडालान् गण्डूपदान् व्यालबिलेशयाखून्।
गृध्रांश्च दद्याद्विविधैः प्रवादैः ससैन्धवान् सर्षपतैलभृष्टान् ॥ ३६ ॥

---

ष्ठने ॥ मक्षिकाघुणकेशानां तृणानां पतनानि च। प्रायोऽन्नपाने, केशानां नखानां चातिवर्धनम् ॥ पतत्रिभिः पतङ्गैश्च श्वापदैश्चाभिधर्षणम्। स्वप्ने केशास्थिराशीनां भस्मनश्चाधिरोहणम् ॥ जलाशयानां शैलानां वनानां ज्योतिषामपि। शुष्यतां क्षीयमाणानां पततां यच्च दर्शनम् ॥" इति।

१ शोषस्य असाध्यलक्षणान्याह—**महाशनमिति**। महदशनं भोजनं यस्य तम्। २ अकृशमित्यनेन वयःस्थोऽपि प्रत्याख्याय उपक्रम्यत इति सूच्यते। तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"परं दिनसहस्रं तु यदि जीवति मानवः। सुभिषग्भिरुपक्रान्तस्तरुणः शोषपीडितः ॥" इति। "ज्वरानुबन्धरहितं बलवन्तं क्रियासहम्। उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥" इति माधवकरः।

३ शोषे सामान्यं चिकित्सितं वक्ति—**स्थिरादीति**। स्थिरादिवर्गसिद्धेन = विदारिगणसाधितेन, आजाविकेन = आजेन आविकेन वा। ४ निरूहास्थापनमित्यर्थः। ५ जाङ्गलमांसरसैरित्यर्थः।

६ शोषिणां देयानि मांसानि निर्दिशति—**काकानिति**। ग्राम्यादिभेदेन षड्विधा बिलाडा निर्दिष्टा निबन्धसङ्ग्रहव्याख्यायाम्—"ग्राम्यो वन्यस्तोयजातः पक्षिमार्जारविज्जकौ। सुगन्धवृषणश्चेति मार्जाराः षट् प्रकीर्तिताः ॥" इति। गण्डूपदः = किञ्चुलकः, 'केचुआ' इति ख्यातः, व्यालाः = व्याघ्रादिहिंस्राः, बिलेशयाः = शल्लकयादयः।

७ विविधैः प्रवादैः = अनेकविधैर्वचनैः, यथा—"काकांस्तित्तिरिशब्देन मत्स्यशब्देन चोरगान्। भृष्टांस्तरयान्त्रशब्देन दद्याद् गण्डूपदानपि ॥" इति। एवंविधेन

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देयानि मांसानि च जाङ्गलानि मुद्गाढकीसूपरसाश्च हृद्याः।
खरोष्ट्रनागाश्वतराश्वजानि देयानि मांसानि सुकल्पितानि ॥ ३७ ॥
मांसोपदंशांश्च पिबेदरिष्टान् माद्वीकयुक्तान् मदिराश्च सेव्याः।
अर्कामृताक्षारजलोषितेभ्यः कृत्वा यवेभ्यो विविधांश्च भक्ष्यान्॥३८॥
खादेत् पिबेत् सर्पिरजाविकं वा कृशो यवाग्वा सह भक्तकाले।
सर्पिर्मधुभ्यां त्रिकटु प्रलिह्याच्च्यावितङ्गोपहितं क्षयार्त्तः ॥ ३९ ॥
मांसादमांसेषु घृतञ्च सिद्धं शोषापहं क्षौद्रकणासमेतम्।
द्राक्षासितामागधिकाऽवलेहः सक्षौद्रतैलः क्षयरोगघाती ॥ ४० ॥
घृतेन चाजेन समाक्षिकेण तुरङ्गगन्धातिलमाषचूर्णम्।
सिताऽश्वगन्धामगधोद्भवानां चूर्णं घृतक्षौद्रयुतं प्रलिह्यात् ॥ ४१ ॥
क्षीरं पिबेद् वाऽप्यथ वाजिगन्धाविपक्वमेवं लभतेऽङ्गपुष्टिम्।
तदुत्थितं क्षीरघृतं सिताढ्यं प्रातः पिबेद् वाऽपि पयोऽनुपानम् ॥ ४२ ॥
उत्सादने चापि तुरङ्गगन्धा योज्या यवाश्चैव पुनर्नवे च।

---

दानेन प्रयोजनं प्रदर्शितम्—"जानन् जुगुप्सुर्नैवाद्याद् भुक्तं वा पुनरुल्लिखेत्। तस्माच्छ्रोपसिद्धानि मांसान्येतानि दापयेत्॥" इति। १ जाङ्गलानि=जङ्गालविष्किरप्रतुदजानि। २ अश्वतरः=अश्वाद् गर्दभीजातः, गर्दभाद् वडवाजातो वा 'खच्चर' इति ख्यातः। सुकल्पितानि=वेशवारूपेण कल्पितानि, तदाह भोजः—'खरोष्ट्राश्वतरं नागं मांसं मांसाभिवृद्धये। दद्यान्माहिषशब्देन वेशवारीकृतं भिषक्॥" इति।

३ उपदंशः=मद्यपानरोचकभक्ष्यद्रव्यं, 'चिखना' इति विहारप्रान्ते मद्यपा वदन्ति। अरिष्टान्=अभयाऽरिष्टादीन्, माद्वीकयुक्तान्=द्राक्षाऽऽसवयुक्तान्। ४ उषितेभ्यः=रात्रौ स्थितेभ्यः, अर्कादीनां भस्म चतुर्गुणजलेन गालयित्वा अर्धावशिष्टं पचेत्। तदुक्तम्—'पानाय भोजनायाथ भस्म स्राव्यं चतुर्गुणे। जलेऽर्धमवशिष्टं तु क्षाराम्भो ग्राह्यमिष्यते॥" इति। ५ अजाविकम्=आजम् आविकं वा, अजेत्यत्र ह्रस्वत्वमार्षम्। ६ मांसादा गृध्राद्यस्तेषां मांसेषु चतुर्गुणे मांसरसे इत्यर्थः।

७ द्राक्षासितेत्यादिना श्लोकार्धेन उत्तरश्लोकस्थ श्लोकार्धं यावदवलेहं वक्ति। ८ तुरङ्गगन्धा=अश्वगन्धा। ९ मगधोद्भवा=पिप्पली। १० वाजिगन्धा='असगन्ध' इति ख्याता। ११ तदुत्थितं=वाजिगन्धाविपक्वक्षीरोद्भूतम्, क्षीराद् विलोडनेन उत्थितं घृतं क्षीरघृतम्। १२ पुनर्नवे=श्वेतपुनर्नवा रक्तपुनर्नवा च।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]कृत्स्ने वृषे तत्कुसुमैश्च सिद्धं सर्पिः पिबेत् क्षौद्रयुतं हिताशी ॥४३॥
यक्ष्माणमेतत् प्रबलञ्च कासं श्वासञ्च हन्यादपि पाण्डुताञ्च ।
शकृद्रसा गोश्वगजाव्यजानां क्काथा मिताश्चापि तथैव भागैः ॥ ४४ ॥
मूर्वाहरिद्राखदिरद्रमाणां क्षीरस्य भागस्त्वपरो[2] घृतस्य ।
भागान् दशैतान् विपचेद्विधिज्ञो दत्त्वा त्रिवर्गं[3] मधुरञ्च कृत्स्नम्॥४५॥
कटुत्रिकञ्चैव सभद्रदारु घृतोत्तमं यक्ष्मनिवारणाय ।
द्वे पञ्च[4]मूल्यौ वरुणं करञ्जं भल्लातकं बिल्वपुनर्नवे च ॥४६॥
यवान् कुलत्थान् बदराणि भार्गीं पाठां हुताशं[5] समहीकदम्बम् ।
कृत्वा कषायं विपचेद्धि तस्य षड्भिर्हि पात्रैर्घृतपात्रमेकम् ॥ ४७ ॥
व्योषं महावृक्षपयोऽभयाञ्च चव्यं सुराख्यं लवणोत्तमञ्च ।
एतद्धि शोषं जठराणि चैव हन्यात् प्रमेहांश्च सहानिलेन ॥ ४८ ॥
गोश्वाव्यजेभैणखरोष्ट्रजातैः शकृद्रसक्षीरररसक्षतोत्थैः ।
द्राक्षाऽश्वगन्धामगधासिताभिः सिद्धं घृतं यक्ष्मविकारहारि ॥४९॥
एलाऽजमोदाऽऽमलकाऽभयाक्षगायत्र्यरिष्टासनसालसारान् ।
विडङ्गभल्लातकचित्रकोग्रा[11]कटुत्रिकाम्भोदसुराष्ट्रजांश्च ॥ ५० ॥
पक्त्वा[12] जले तेन पचेद्धि सर्पिस्तस्मिन् सुसिद्धे त्ववतारिते च ।

---

१ कृत्स्ने=शाखापत्रमूलादिसहिते, वृषे=वासके, तत्कुसुमैः=अष्टमभागेन कल्कीकृतैर्वासकपुष्पैः । तदुक्तम्—"शणस्य कोविदारस्य वृषस्य च पृथक् पृथक् । कल्काढ्यत्वान्न शंसन्ति पुष्पकल्पं चतुष्पलम् ॥" इति ।

२ अपरः=नवमो भाग इत्यर्थः । ३ त्रिवर्गं=त्रिफलाम्, मधुरं=काकोल्यादिमधुरद्रव्यम् । अत्र शकृद्रसानामेकैको भागः, मूर्वादीनामप्येकैको भागः । ४ द्वे पञ्चमूल्यौ=दशमूलम्, बिल्वपुनर्नवे इत्यत्र बिल्वपदेन तत्फलं ग्राह्यम् । ५ हुताशः='चीत' इति ख्यातः । महीकदम्बः=मुण्डी' इति प्रथते ।

६ पात्रैः=आढकप्रमाणैरित्यर्थः । ७ महावृक्षपयः=सेहुण्डक्षीरम्, सुराख्यं=देवदारु, लवणोत्तमं=सैन्धवम् । ८ क्षीरं यथा प्राप्तं प्रक्षेपणीयम् । ९ मगधा=पिप्पली, सिता=शर्करा । १० अक्षं=बिभीतकम्, 'अक्षो रथस्यावयवे व्यवहारे बिभीतके । पाशके शकटे कर्षे ज्ञाने चात्मनि रावणौ ॥ अक्षं सौवर्चले तुत्थे हृषीके' इति हेमचन्द्रः । गायत्री=खदिरः, अरिष्टः=निम्बः । ११ उग्रा=वचा, अम्भोदः=मुस्तकम्, सुराष्ट्रजा='फिटकिरी' इति ख्याता । १२ पक्त्वा=क्काथकल्पेन विपाच्य, तेन=क्काथेन ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिशत्पलान्यत्र सितोपलाया दत्त्वा तुगाक्षीरिपलानि षट् च ॥५१॥
प्रस्थे घृतस्य द्विगुणं[2] च दद्यात् क्षौद्रं ततो मन्थहतं विदध्यात्।
पलं पलं प्रातरतः प्रलिह्य पश्चात् पिबेत् क्षीरमतन्द्रितश्च[3] ॥ ५२ ॥
एतद्धि मेधं[4] परमं पवित्रं चक्षुष्यमायुष्यमथो यशस्यम्।
यक्ष्माणमाशु व्यपहन्ति चैतत् पाण्ड्वामयञ्चैव भगदरञ्च ॥ ५३ ॥
श्वासञ्च हन्ति स्वरभेदकासहृत्प्लीहगुल्मग्रहणीगदांश्च।
न चात्र किञ्चित् परिवर्जनीयं रसायनञ्चैतदुपास्यमानम्[5] ॥ ५४ ॥
प्लीहोदरोक्तं[6] विहितञ्च सर्पिस्त्रीण्येव चान्यानि हितानि चात्र।
उपद्रवांश्च स्वरवैकृतादीन् जयेद् यथास्वं प्रसमीक्ष्य शास्त्रम् ॥ ५५ ॥
अजाँशकृन्मूत्रपयोघृतासृङ्मांसालयानि प्रतिसेवमानः।
स्नानादिनानाविधिना जहाति मासादशेषं नियमेन शोषम्[7] ॥ ५६ ॥
रसोनयोगं[8] विधिवत् क्षयार्तः क्षीरेण वा नागबलाप्रयोगम्।
सेवेत वा मागधिकाविधानं तथोपयोगं जतुनोऽश्मजस्य[9] ॥ ५७ ॥
शोकं[10] स्त्रियं क्रोधमसूयनञ्च त्यजेदुदारान् विषयान् भजेत।

---

१ तुगाक्षीरी = वंशलोचना। २ द्विगुणं क्षौद्रमिति सम्बन्धः। ३ अतन्द्रितः = आलस्यरहितः। ४ मेधा धारणावती बुद्धिः, तस्यै हितं मेध्यम्। 'अतीतानुस्मृतिर्मेधा तत्कालग्राहिणी मतिः। शुभाशुभविचारज्ञा प्रज्ञा धीरैरुदाहृता ॥' इति विशेषः। ५ उपास्यमानं = सेवमानमित्यर्थः।

६ प्लीहोदरोक्तं सर्पिः = षट्पलकं घृतम्, त्रीण्येव चान्यानि = उदरोक्तानि त्रीणि। यथा—"हरीतकीचूर्णप्रस्थम्" इत्यादिनाऽभिहितं प्रथमम्, "गव्ये पयसि महावृक्षक्षीरम्" इत्यादिनोक्तं द्वितीयम्, "चव्यचित्रकदन्त्यतिविषा" इत्यादिना प्रोक्तं तृतीयम।

७ शोषे अजाया सर्वथोपयोगित्वं प्रतिपादयति—अजेति। मांसालयानीत्यत्र आलयम् अजागृहम्। ८ रसोनयोगं = लशुनयोगम्। ९ अश्मजस्य जतुनः = शिलाजतुन इत्यर्थः। शिलाजतुनो विधानं मधुमेहचिकित्सिते, मागधिकाविधानं महावातव्याधिचिकित्सिते च द्रष्टव्यम्।

१० शोषे परिहार्याणि दैवव्यपाश्रयचिकित्सां चाख्याति—शोकमिति। असूय-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैद्यान्द्विजातींस्त्रिदशान्गुरूंश्च वाचश्च पुण्याः शृणुयाद् द्विजेभ्यः॥५८॥
इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे ( तृतीयोऽध्यायः, आदितः ) एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो गुल्मप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
यथोक्तैः कोपनैर्दोषाः कुपिताः कोष्ठमागताः ।
जनयन्ति नृणां गुल्मं स पञ्चविधः उच्यते ॥ ३ ॥
हृद्वस्त्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः ।
चयापचयवान् वृत्तः स गुल्म इति कीर्त्तितः ॥ ४ ॥
पञ्च गुल्माश्रया नृणां पार्श्वे हृन्नाभिबस्तयः ।
कुपितानिलमूलत्वाद् गूढमूलोदयादपि ॥ ५ ॥

---

नं = गुणेषु दोषाविष्करणम् । १ त्रिदशान् = देवान्, वाचः = शिवस्तुत्यादिकाः ।
इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

### द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

२ यथैकमूलेषु सङ्घातजातेषु शरेक्षुप्रभृतिषु स्कन्धरहितेषु 'गुल्म' इति व्यपदिशन्ति, तद्वदिहापि सङ्घातेनावस्थानाद् 'गुल्म' इत्यभिधानम् । ३ गुल्मसम्प्राप्तिं ब्रूते—यथोक्तैरिति । यथोक्तैः = बलवद्विग्रहादिक्रोधादिभिर्व्रणप्रश्नोक्तैः कोपनैरित्यर्थः । चरके—"कफं च पित्तं च सदुष्टवायुरुद्धूय मार्गान् विनिबध्य ताभ्याम् । हृन्नाभिपार्श्वोदरबस्तिशूलं करोत्यधो याति न बद्धमार्गः ॥ पक्वाशये पित्तकफाशये वा स्थितः स्वतन्त्रः परसंश्रयो वा । स्पर्शोपलभ्यः परिपिण्डितत्वाद् गुल्मो यथादोषमुपैति नाम ॥" इति विशेषः । कोष्ठस्य लक्षणम्—"स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृदुण्डुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥" इति ।
४ पञ्चविधः = वातपित्तकफसन्निपातरक्तजाः । ५ सञ्चारी = सञ्चरणशीलः । ६ चयापचयवान् = कदाचिच्चीयते वृद्धिं गच्छति, कदाचिद् ह्रासो भवतीत्यर्थः । ७ "पञ्चस्थानानि गुल्मस्य पार्श्वहृन्नाभिबस्तयः" इति चरकः । ८ आकुलीकृतवायुमूलत्वादिति डल्हणः । कुपितानिलमूलत्वादिति पाठान्तरम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुल्मवद्वा विशालत्वाद् गुल्म इत्यभिधीयते ।
स[1] यस्मादात्मनि चयं गच्छत्यप्स्विव बुद्बुदः ॥ ६ ॥
अन्तः सरति[2] यस्माच्च न पाकमुपयात्यतः ।
स व्यस्तैर्जायते[3] दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः ॥ ७ ॥
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन[4] चापरः ।
सदनं[5] मन्दता वह्नेराटोपोऽन्त्रविकूजनम् ॥ ८ ॥
विण्मूत्रानिलसङ्गश्च सौहित्यासहता[6] तथा ।
द्वेषोऽन्ने वायुरूर्द्ध्वञ्च पूर्वरूपेषु गुल्मिनाम् ॥ ९ ॥
हृत्कुक्षिशूलं[7] मुखकण्ठशोषो वायोर्निरोधो विषमाग्निता च[8] ।
ते ते विकाराः[9] पवनात्मकाश्च भवन्ति गुल्मेऽनिलसम्भवे तु ॥१०॥
स्वेदो[10]ज्वराहारविदाहदाहास्तृष्णाऽङ्गरागः कटुवक्त्रता च ।
पित्तस्य लिङ्गान्यखिलानि[11] यानि पित्तात्मके तानि भवन्ति गुल्मे ॥११॥
स्तैमित्यमन्नेऽरुचिरङ्गसादश्छर्दिः[12] प्रसेको मधुरास्यता च ।
कफस्य लिङ्गानि[13] च यानि तानि भवन्ति गुल्मे कफसम्भवे तु ॥१२॥

---

१ गुल्मस्य पाकाभावे हेतुमाह—स इति । आत्मनि=स्वावयवे । "मांसशोणितभूयस्त्वात् पाकं गच्छति विद्वद्भिः । मांसशोणितहीनत्वाद् गुल्मः पाकं न गच्छति ॥" इत्यन्यत्र । २ सरति=भ्राम्यति । ३ गुल्मस्य पञ्चविधत्वमेव विवृणोति—स व्यस्तैरिति । व्यस्तैः=वातपित्तश्लेष्मभिः, समस्तैः=सन्निपातेन, उच्छ्रितैः=प्रकुपितैस्त्रिभिः । ४ "स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मः" इति चरकः । "आर्तवादपि गुल्मः स्यात्स तु स्त्रीणां प्रजायते । अन्यस्त्वसृग्भवः पुंसां तथा स्त्रीणां प्रजायते ॥" इति ।

५ गुल्मपूर्वरूपाणि दर्शयति—सदनमिति । आटोपः=उदरापूरणम् । ६ सौहित्यासहता=तृप्त्यसहिष्णुता । तन्त्रान्तरेऽपि—"उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि । आटोप आध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥" इति ।

७ वातजगुल्मस्य लक्षणमाख्याति—हृदिति । ८ चकारेण मुखविरसता ग्राह्या । ९ स्तम्भकम्पादयो विकारा इत्यर्थः । १० पित्तजगुल्मस्य लक्षणं दर्शयति—स्वेदेति । आहारविदाहः=भोजनानन्तरमम्लिकादिप्रादुर्भावः । ११ भ्रममदमूर्च्छादीनि लिङ्गानीत्यर्थः । १२ कफजगुल्मस्य लक्षणमाह—स्तैमित्यमिति । स्तैमित्यं=निश्चलत्वम्, प्रसेकः=लालास्रावः । १३ गौरवशैत्यादीनि लिङ्गानीत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]सर्वात्मकः सर्वविकारयुक्तः सोऽसाध्य उक्तः, [2]क्षतजं प्रवक्ष्ये ।
नवप्रसूताऽहितभोजना या या चाम[3]गर्भं विसृजेद्दतौ वा ॥ १३ ॥
वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ।
पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेष[4]णं चाप्यपरं निबोध ॥ १४ ॥
न [5]स्पन्दते नोदरमेति वृद्धिं भवन्ति लिङ्गानि च गर्भिणीनाम् ।
तं गर्भकालाति[6]गमे चिकित्स्यमसृग्भवं गुल्ममुशन्ति तज्ज्ञाः ॥१५॥
[7]वातगुल्मार्दितं स्निग्धं युक्तं स्नेहविरेचनैः ।
उपाचरेद् [8]यथाकालं निरूहैः सानुवासनैः ॥ १६ ॥
पित्तगुल्मार्दितं स्निग्धं काकोल्यादिघृतेन[9] तु ।
विविक्तं [10]मधुरैर्योगैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥ १७ ॥
श्लेष्मगुल्मार्दितं स्निग्धं [11]पिप्पल्यादिघृतेन तु ।
तीक्ष्णै[12]र्विरिक्तं तद्रूपैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥ १८ ॥
सन्निपातोत्थिते गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ।
पित्त[13]वद्रक्तगुल्मिन्या नार्य्याः कार्य्यः क्रियाविधिः ॥ १९ ॥
विशेषमपरं चास्याः शृणु रक्तविभेदनम् ।
पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः प्रयोजयेत् ॥ २० ॥

---

१ सान्निपातिकगुल्मस्य लक्षणमभिदधाति—**सर्वेति** । सर्वविकारयुक्तः=वातादिगुल्मलक्षणयुतः । "महारुजं दाहपरीतमश्मवद्धनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम् । मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥" इति चरकः ।

२ रक्तगुल्मलक्षणमभिधत्ते—**क्षतजमिति** । क्षतजम्=आर्तवरक्तम् । ३ आमगर्भं षण्मासपर्यन्तं बोध्यम् । ४ विशेषणं=विशेषम् । ५ न स्पन्दते न=स्पन्दते इत्यर्थः । नञद्वयस्य प्रकृतार्थदार्ढ्यबोधकत्वात् । ६ गर्भकालापगमे=दशममासादिकाले व्यतीते । तदुक्तम्—"यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः" इति चरके ।

७ वातादिगुल्मचिकित्सामाचष्टे—**वातेति** । स्नेहविरेचनैः=तिल्वकसर्पिःप्रभृतिभिः । ८ कालं 'पक्वाद्विरेको वान्तस्य' इत्याद्युक्तमनतिक्रम्येति यथाकालम् । ९ काकोल्यादिक्काथकल्कसिद्धघृतेनेत्यर्थः । १० आरग्वधादिभिर्मधुरैर्योगैरित्यर्थः । ११ पिप्पल्यादिघृतं ज्वरप्रतिषेधे प्रोक्तम् । १२ तद्रूपैः=तीक्ष्णैरित्यर्थः । १३ पित्त-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दद्यादुत्तरबस्तिञ्च पिप्पल्यादिघृतेन तु ।
उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरासृग्दरो हितः ॥ २१ ॥
[२]आनूपौदकमज्जानो वसा तैलं घृतं दधि ।
[३]विपक्वमेकतः शस्तं वातगुल्मेऽनुवासनम् ॥ २२ ॥
जाङ्गलैकशफानान्तु वसा सर्पिश्च पैत्तिके ।
तैलं जाङ्गलमज्जान एवं गुल्मे कफोत्थिते ॥ २३ ॥
[४]धात्रीफलानां स्वरसे षडङ्गं विपचेद् घृतम् ।
शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं वातगुल्मिने ॥ २४ ॥
[५]चित्रकव्योषसिन्धूत्थपृथ्वीकाचव्यदाडिमैः ।
[६]दीप्यकग्रन्थिकाजाजीहपुषाधान्यकैः समैः ॥ २५ ॥
दध्यारनालबदरमूलकस्वरसैर्घृतम् ।
तत्पिबेद्वातगुल्माग्निदौर्बल्याटोपशूलनुत् ॥ २६ ॥
[७]हिङ्गुसौवर्चलाजाजीविडदाडिमदीप्यकैः ।
पुष्करव्योषधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः ॥ २७ ॥
शटीवचाऽजगन्धैलासुरसैश्च[९] विपाचितम् ।
शूलानाहहरं सर्पिर्दध्ना चानिलगुल्मिनाम् ॥ २८ ॥
[१०]विडदाडिमसिन्धूत्थहुतभुग्व्योषजीरकैः ।

---

वत्=पित्तगुल्मवदित्यर्थः। १ आसृग्दरो विधिः=रक्तपित्तोक्तविधानम्।

२ वातादिगुल्मेऽनुवासनमुद्दिशति—**आनूपेति**। आनूपाः=गजादयः, औदकाः=मत्स्यादयः। ३ एकतः=एकीकृत्य, वातहरद्रव्यैर्विपक्वमित्यर्थः। ४ वातजगुल्मनाशकघृतानि निर्दिशति—**धात्रीति**। धात्रीफलानां चतुर्गुणे स्वरसे षडङ्गं षट्पलकं घृतं विपचेत्। प्लीहोदरोक्तं षट्पलकं घृतं पुनर्धात्रीफलस्वरसे पक्तव्यमिति भावः।

५ चित्रकादिघृतमभिधत्ते—**चित्रकेति**। व्योषं=त्रिकटुकम्, सिन्धूत्थं=सैन्धवम्, पृथ्वीका=हिङ्गुपत्री। ६ दीप्यकः=अजमोदा, ग्रन्थिकं='पिपरामूल' इति ख्यातम्, अजाजी='जीरा' इति, हपुषा='हाऊबेर' इति प्रथते।

७ हिङ्ग्वाद्यं घृतमभिदधाति—**हिङ्ग्विति**। ८ धान्यं='धनिया' इति ख्यातम्। ९ सुरसः='तुलसी' इति ख्यातः। १० दाधिकाख्यं घृतमभिदधाति—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिङ्गुसौवर्चलक्षारयवक्षाम्लाम्लवेतसैः ॥ २९ ॥
बीजपूररसोपेतं सर्पिर्दधिचतुर्गुणम् ।
साधितं दाधिकं नाम गुल्महृत् प्लीहशूलजित् ॥ ३० ॥
रसोनस्वरसे सर्पिः पञ्चमूलरसान्वितम् ।
सुरारनालदध्यम्लमूलकस्वरसैः सह ॥ ३१ ॥
व्योषदाडिमवृक्षाम्लयवानीचव्यसैन्धवैः ।
हिङ्ग्वम्लवेतसाजाजीदीप्यकैश्च समांशिकैः ॥ ३२ ॥
सिद्धं गुल्मग्रहण्यर्शःश्वासोन्मादक्षयज्वरान् ।
कासापस्मारमन्दाग्निप्लीहशूलानिलान् जयेत् ॥ ३३ ॥
दधि सौवीरकं सर्पिः क्वाथौ मुद्गकुलत्थजौ ।
पञ्चाढकानि विपचेदावाप्य द्विपलान्यथ ॥ ३४ ॥
सौवर्चलं स्वर्जिकाक्षं देवदार्वथ सैन्धवम् ।
वातगुल्मापहं सर्पिरेतद्दीपनमेव च ॥ ३५ ॥
तृणमूलकषाये तु जीवनीयैः पचेद् घृतम् ।
न्यग्रोधादिगणे वाऽपि गणे वाऽप्युत्पलादिके ॥ ३६ ॥
रक्तपित्तोत्थितं घ्नन्ति घृतान्येतान्यसंशयम् ।
आरग्वधादौ विपचेद्दीपनीययुतं घृतम् ॥ ३७ ॥
क्षारवर्गे पचेच्चान्यत् पचेन्मूत्रगणेऽपरम् ।

---

विडेति । हुतभुक्=चित्रकः । १ क्षारः=यवक्षारः, रुक्=कुष्ठम्, वृक्षाम्लं=तिन्तिडीकमित्यर्थः ।

२ रसोनादिघृतं वक्ति—रसोनेति । पञ्चमूलरसान्वितं=बिल्वाग्निमन्थेत्यादिमहत्पञ्चमूलक्काथयुक्तम् । ३ दध्यम्लं=दधिमस्तु । ४ दीप्यकः=अजमोदा, व्योषादिद्रव्यैः कल्कीभूतैः स्नेहपादिकैरेव । ५ अत्र दध्यादीनां पृथक् चतुराढकप्रमाणं, सौवर्चलादीनां च पृथग् द्विपलप्रमाणं ग्राह्यम् ।

६ पित्तजरक्तजगुल्मयोर्घृतानि ब्रवीति—तृणेति । तृणमूलकषाये=कुशादितृणपञ्चमूलकषाये, जीवनीयैः=काकोल्यादिभिः कल्कीकृतैरित्युन्नेयम् । ७ न्यग्रोधाद्युत्पलादिगणौ द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्याये द्रष्टव्यौ । ८ कफगुल्मे त्रीणि घृतानि निर्दिशति—आरग्वधादाविति । दीपनीयानि पिप्पल्यादीनि तत्कल्कयुतं दीपनीययुतम् । ९ क्षा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घ्नन्ति गुल्मं कफोद्भूतं घृतान्येतान्यसंशयम् ॥ ३८ ॥
यथादोषोच्छ्रयञ्चापि चिकित्सेत्सान्निपातिकम् ।
चूर्णं हिङ्ग्वादिकं[1] वाऽपि घृतं वा प्लीहनाशनम् ॥ ३९ ॥
पिबेद् गुल्मापहं काले सर्पिस्तैल्वकमेव वा ।
तिलेक्षुरकपालाशसार्षपं[2] यावनालजम् ॥ ४० ॥
भस्म मूलकजञ्चापि गोजाविखरहस्तिनाम् ।
मूत्रेण महिषीणाञ्च पालिकैश्चावचूर्णितैः ॥ ४१ ॥
कुष्ठसैन्धवयष्ट्याह्वनागरकृमिघ्नातिभिः[3] ।
साजमोदैश्च दशभिः सामुद्राच्च पलैर्युतम् ॥ ४२ ॥
अयःपात्रेऽग्निनाऽल्पेन पक्त्वा लेह्यमथोद्धरेत् ।
तस्य मात्रां पिबेद्धन्ना सुरया सर्पिषाऽपि वा ॥ ४३ ॥
धान्याम्लेनोष्णतोयेन कौलत्थेन रसेन वा ।
गुल्मान् वातविकारांश्च[4] क्षारोऽयं हन्त्यसंशयम् ॥ ४४ ॥
स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः[5] केतकिजोऽपि वा ।
तैलेन शमयेत् पीतो गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ ४५ ॥
पीतं[6] सुखाम्बुना वाऽपि स्वर्जिकाकुष्ठसैन्धवम् ।
वृश्चीवं[7]मुरुबूकञ्च वर्षाभूबृहतीद्वयम् ॥ ४६ ॥

---

स्वर्गे = अन्नपानाध्यायोपदिष्टे, मूत्रगणे = अष्टसंख्याके गोमूत्रादिके, उभयत्र दीपनीययुतमिति सम्बन्धनीयम् ।

१ हिङ्ग्वादिकं चूर्णं वातव्याधौ द्रष्टव्यम् । प्लीहनाशनं घृतं प्लीहोदरोक्तं षट्पलकम् । २ पानीयक्षारमुपदिशति—तिलेति । इक्षुरकः = 'तालमखाना' इति ख्यातः । 'इक्षुगन्धा तु काण्डेक्षुकोकिलाक्षेक्षुरक्षुराः' इत्यमरः । ३ कृमिघ्नाति = विडङ्गम् । अत्र तिलादिमूलकान्तानां भस्म गवादिमूत्रचतुर्गुणेन एकविंशतिवारान् विस्राव्य क्षुष्ठाद्यजमोदान्तैः पालिकैः समुद्रलवणाद्दशभिः पलैश्चूर्णितैर्युतं कृत्वा लौहपात्रे अल्पेन मृदुनाऽग्निना लेह्यं पक्त्वा उद्धरेदिति सम्बन्धनीयम् ।

४ वातविकारान् = तूनीप्रतूनीप्रभृतीन् । ५ क्षारः = यवक्षारः । केतकिजोऽपि वा क्षार इति द्वितीयो योगः । ६ गुल्मे क्षारावलेहमुक्त्वा चूर्णमुपदिशति—पीतमिति । सुखाम्बुना = ईषदुष्णजलेनेत्यर्थः ।

७ वृश्चीवाद्यरिष्टं दर्शयति—वृश्चीवेति । वृश्चीवः = शुक्लपुनर्नवा, उरुबूकः =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रकञ्च जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषितम् ।
मागधीचित्रकक्षौद्रलिप्ते कुम्भे निधापयेत् ॥ ४७ ॥
मधुनः प्रस्थमावाप्य पथ्याचूर्णार्द्धसंयुतम् ।
बुसोषितं दशाहन्तु जीर्णभक्तः पिबेन्नरः ॥ ४८ ॥
अरिष्टोऽयं जयेद् गुल्ममविपाकमरोचकम् ।
पाठानिकुम्भैरजनीत्रिकटुत्रिफलाऽग्निकम् ॥ ४९ ॥
लवणं वृक्षबीजञ्च तुल्यं स्यादनवो गुडः ।
पथ्याभिर्वा युतं चूर्णं गवां मूत्रयुतं पचेत् ॥ ५० ॥
गुटिकास्तद्घनीभूतं कृत्वा खादेदभुक्तवान् ।
गुल्मप्लीहाग्निसादांस्ता नाशयेयुरशेषतः ॥ ५१ ॥
हृद्रोगं ग्रहणीदोषं पाण्डुरोगञ्च दारुणम् ।
सशूले सोन्नतेऽस्पन्दे दाहपाकरुगन्विते ॥ ५२ ॥
गुल्मे रक्तं जलौकोभिः सिरामोक्षेण वा हरेत् ।
सुखोष्णा जाङ्गलरसाः सुस्निग्धा व्यक्तसैन्धवाः ॥ ५३ ॥
कटुत्रिकसमायुक्ता हिताः पाने तु गुल्मिनाम् ।
पेया वातहरैः सिद्धाः कौलत्थाः संस्कृता रसाः ॥ ५४ ॥
खलाः सपञ्चमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः ।
बद्धवर्चोऽनिलानान्तु सार्द्रकं क्षीरमिष्यते ॥ ५५ ॥
कुम्भीपिण्डेष्टकास्वेदान् कारयेत् कुशलो भिषक् ।
गुल्मिनः सर्व एवोक्ता दुर्विरेच्यतमा भृशम् ॥ ५६ ॥

---

शुक्लैरण्डः, वर्षाभूः=रक्तपुनर्नवा । १ पथ्याचूर्णार्धसंयुतं = हरीतकीचूर्णाष्टपलसंयुतम् । २ बुसोषितं=बुसराशौ स्थितम् । तुषोषितमिति पाठान्तरम् । ३ निकुम्भा=दन्ती । ४ वृक्षबीजम्=इन्द्रयवाः, अनवः=पुराणः । ५ बलवान् पुरुषः कर्षप्रमाणं खादेदित्यर्थः । तदुक्तम्—"कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानां च सर्वशः" इति ।

६ गुल्मे आवस्थिकीं चिकित्सां दर्शयति—सशूल इति । सोन्नते=प्रवृद्धे, अस्पन्दे=अचले । ७ सिरामोक्षणं तु बाह्योरेव बोध्यम् । ८ वातहरैः=भद्रदार्वादिभिः । ९ खलाः=कपित्थादिसंस्कृता यूषविशेषाः । तदुक्तम्—"कपित्थतक्रचाङ्गेरीमरिचाजाजिचित्रकैः । सुपक्वः खडयूषोऽयम्" इति । १० वर्चः=पुरीषमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतश्चैतांस्तु सुस्विन्नान् स्वंसनेनोपपादयेत्[1] ।
विम्लापनाभ्यञ्जनानि[2] तथैव दहनानि च ॥ ५७ ॥
उपनाहाश्च कर्त्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः[3] ।
उदरोक्तानि सर्पींषि[4] मूत्रवर्त्तिक्रियास्तथा ॥ ५८ ॥
लवणानि[5] च योज्यानि यान्युक्तान्यनिलामये ।
वातवर्चोनिरोधे तु सामुद्रार्द्रकसर्षपैः[6] ॥ ५९ ॥
कृत्वा पायौ विधातव्या वर्त्तयो मरिचोत्तराः[7] ।
दन्तीचित्रकमूलेषु तथा वातहरेषु च ॥ ६० ॥
कुर्य्यादरिष्टान् सर्वांश्च सूत्रस्थाने[8] यथेरितान् ।
खादेद्वाऽप्यङ्कुरान् भृष्टान् पूतीकनृपवृक्षयोः[9] ॥ ६१ ॥
ऊर्ध्वं तं[10] मनुष्यञ्च गुल्मिनं न निरूहयेत् ।
पिबेत् त्रिवृन्नागरं वा सगुडां वा हरीतकीम् ॥ ६२ ॥
गुग्गुलुं त्रिवृतां दन्तीं[11] द्रवन्तीं सैन्धवं वचाम् ।
मूत्रमद्यपयोद्राक्षारसैर्वीक्ष्य बलाबलम् ॥ ६३ ॥
एवं[12] पीलूनि पिष्टानि पिबेत् सलवणानि तु ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकसैन्धवैः ॥ ६४ ॥
युक्ता हन्ति सुरा गुल्मं शीघ्रं काले[13] प्रयोजिता ।
बद्धविण्मारुतो गुल्मी भुञ्जीत पयसा यवान् ॥ ६५ ॥
कुल्माषान्[14] वा बहुस्नेहान् भक्षयेल्लवणोत्तरान् ।

---

१ उपपादयेत्=योजयेदित्यर्थः । २ अङ्गुल्यादिना गुल्मस्य मर्दनं विम्लापनम्, दहनानि=जाम्बवौष्ठादिना दाहाः । ३ शाल्वणादयः=शाल्वणप्रकारा उपनाहाः ।
४ तत्र हरीतकीचूर्णप्रस्थमित्यादिना सर्पींष्युक्तानि । वमनशिरोविरेचनद्रव्याणामित्यादिना तत्र मूत्रवर्तिक्रिया अप्युक्ताः । ५ पत्रलवण-स्नेहलवण-कल्याणलवणानीत्यर्थः । ६ सामुद्रं=समुद्रलवणम् । ७ मरिचोत्तराः=मरिचप्रधानाः ।
८ सूत्रस्थाने विरेचनकल्पे इत्यर्थः । ९ पूतीकः=करञ्जकः, नृपवृक्षः=शम्पाकः ।
१० ऊर्ध्ववातमूर्ध्ववातयुतं गुल्मिनं मनुष्यं न निरूहयेदिति सम्बन्धः । ११ द्रवन्ती=दन्तीभेदः । १२ एवं=मूत्रमद्यादिभिरित्यर्थः । भृष्टानीत्यत्र पिष्टानीति पाठान्तरम् ।
१३ काले=आध्मानाद्यवस्थायाम् । १४ कुल्माषान्=सम्यक् स्विन्नान् यवगोधूममम-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथास्योपद्रवः शूलः कथञ्चिदुपजायते ॥ ६६ ॥
शूलं[1] निखानितमिवासुखं येन तु वेत्त्यसौ ।
तत्रे[2] विण्मूत्रसंरोधः कृच्छ्रोच्छ्वासः स्थिराङ्गता ॥ ६७ ॥
तृष्णा दाहो भ्रमोऽन्नस्य विदग्धे[3]परिवृद्धिता ।
रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्भुक्ते[4]वृद्धिर्जडाङ्गता ॥ ६८ ॥
वाय्वादिभिर्यथासङ्ख्यं मिश्रै[5]र्वा वीक्ष्य योजयेत् ।
पथ्यात्रिल[6]वणं क्षारं हिङ्गुतुम्बुरुपौष्करम् ॥ ६९ ॥
यवानीं च हरिद्रां च विडङ्गान्यम्लवेतसम् ।
विदारीत्रिफलाऽभीरु[7]शृङ्गाटीगुडशर्कराः ॥ ७० ॥
काश्मरीफलयष्ट्याह्वपरू[8]षकहिमानि च ।
षड्ग्र[9]न्थाऽतिविषादारुपथ्यामरिचवृत्तकान् ॥ ७१ ॥
कृष्ण[10]मूलकचव्यञ्च नागरक्षारचित्रकान् ।
उष्णाम्लकाञ्जिकक्षीरतोयैः श्लोकसमापनान् ॥ ७२ ॥
यथाक्रमं[11] विमिश्रांश्च द्वन्द्वे सर्वांश्च सर्वजे ।
तथैव[12] सेकावगाहप्रदेहाभ्यङ्गभोजनम् ॥ ७३ ॥

---

यान् भक्ष्यान् । १ शूलं = कीलकमित्यर्थः । २ शूलं दोषलिङ्गतः सप्तधा विशिनष्टि-तत्रेति । तत्र = शूले । ३ अन्नस्य विदाहेन परिवृद्धिर्यस्य शूलस्य तस्य भावो विदग्धपरिवृद्धिता । ४ भुक्तमात्रे वृद्धिर्भुक्तवृद्धिः । ५ मिश्रैः = द्वन्द्वैः, सान्निपातकैश्चेत्यर्थः । वीक्ष्य = वातादिदोषभेदेन शूलं विचार्य ।

६ त्रिलवणं = सैन्धवसौवर्चलविडाख्यम्, क्षारः = यवक्षारः, तुम्बुरु = धान्याकम् । ७ अभीरुः = शतावरी, शृङ्गाटी = 'सिंघाड़ा' इति ख्याता । गुडशर्करा = गाङ्गेटीफलम् । ८ परूषकः = 'फालसा' इति ख्यातः । हिमं = चन्दनम् । ९ षड्ग्रन्था = वचा, अतिविषा = 'अतीस' इति प्रथते । वृत्तकः = इन्द्रयवाः । १० मूलकं = पिप्पलीमूलम् ।

११ वातिके पथ्याऽऽद्यम्लवेतसान्तयोगमम्लकाञ्जिकेन, पैत्तिके विदार्यादिहिमान्तयोगमुष्णक्षीरेण, श्लैष्मिके षड्ग्रन्थादिचित्रकान्तयोगमुष्णतोयेन । विमिश्रांश्च द्वन्द्वे अर्थाद् वातपैत्तिके पथ्यादिं विदार्यादिं च, वातश्लैष्मिके पथ्यादिं षड्ग्रन्थादिं च, पित्तश्लैष्मिके विदार्यादिं षड्ग्रन्थादिं च । सर्वजे सन्निपाते सर्वान् पथ्यादीन् त्रीनित्यर्थः । १२ तथैव = यथासंख्यमित्यर्थः । अर्थाद् वातिके सेकादिकं, पैत्तिके

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशिरोदकपूर्णानां भाजनानाञ्च धारणम् ।
वमनोन्मर्दनस्वेदलङ्घनक्षपणक्रियाः ॥ ७४ ॥
स्नेहादिश्च क्रमः सर्वो विशेषेणोपदिश्यते ।
[1]वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् शुष्कशाकानि वैदलम् ॥ ७५ ॥
न खादेदालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ।
[2]विना गुल्मेन यच्छूलं गुल्मस्थानेषु जायते ॥ ७६ ॥
निदानं तस्य वक्ष्यामि रूपञ्च सचिकित्सितम् ।
[3]वातमूत्रपुरीषाणां निग्रहादतिभोजनात् ॥ ७७ ॥
[4]अजीर्णाध्यशनायासविरुद्धान्नोपसेवनात् ।
पानीयपानात् क्षुत्काले [5]विरूढानाञ्च सेवनात् ॥ ७८ ॥
पिष्टान्नशुष्कमांसानामुपयोगात्तथैव च ।
एवंविधानां [6]द्रव्याणामन्येषां चोपसेवनात् ॥ ७९ ॥
वायुः प्रकुपितः कोष्ठे शूलं सञ्जनयेद् भृशम् ।
निरुच्छ्वासो भवेत्तेन वेदनापीडितो नरः ॥ ८० ॥
[7]शङ्कुस्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्राश्च वेदनाः ।

---

शिशिरोदकादिकं, श्लैष्मिके वमनादिकम् ।

१ गुल्मे वर्ज्यमभिदधाति—वल्लूरमिति । वल्लूरं = शुष्कमांसम् । २ गुल्मोपद्रवं शूलमुक्त्वा केवलं शूलं वक्ति—विनेति । गुल्मस्थानेष्विति स्थानपदेन तत्समोपवर्तित्रिकपृष्ठादिदेशेष्वपि बोध्यम्, तत्रापि शूलोत्पत्तेः । तदुक्तम्—"वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकवस्तिदेशे" इति ।

३ शूलस्य निदानं सम्प्राप्तिं चाभिदधाति—वातेति । निग्रहात् = वेगकाले निरोधात् । शुक्रस्य निग्रहादपि बोध्यम् । तदुक्तम्—"विट्शुक्रमूत्रानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाष्यात्" इति । ४ "अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते" इत्यध्यशनम् । विरुद्धान्नं हिताहितीये द्रष्टव्यम् । ५ विरूढानाम् = अङ्कुरितानाम् । ६ "कलायमुद्गाढकिकोरदूषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात्" इत्यादिकानाम् ।

७ शूलनिरुक्तिं वक्ति—शङ्कुस्फोटनवत् = कीलकाहननवत् । शूलस्योत्पत्तिमाह हारीतः—"अनङ्गनाशाय हरस्त्रिशूलं मुमोच कोपान्मकरध्वजश्च । तमापतन्तं सहसा निरीक्ष्य भयार्दितो विष्णुतनुं प्रविष्टः ॥ स विष्णुहुङ्कारविमोहि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूलासक्तस्य लक्ष्यन्ते तस्माच्छूलमिहोच्यते ॥ ८१ ॥
निराहारस्य[1] यस्यैव तीव्रं शूलमुदीर्यते ।
प्रस्तब्धगात्रो[2] भवति कृच्छ्रेणोच्छ्वसितीव च ॥ ८२ ॥
वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण कुरुते नरः ।
एतैर्लिङ्गैर्विजानीयाच्छूलं वातसमुद्भवम् ॥ ८३ ॥
तृष्णा[3] दाहो मदो मूर्च्छा तीव्रं शूलं तथैव च ।
शीताभिकामो भवति शीतेनैव प्रशाम्यति ॥ ८४ ॥
एतैर्लिङ्गैर्विजानीयाच्छूलं पित्तसमुद्भवम् ।
शूलेनोत्पीड्यमानस्य[4] हृल्लास उपजायते ॥ ८५ ॥
अतीव पूर्णकोष्ठत्वं तथैव गुरुगात्रता ।
एतच्छ्लेष्मसमुत्थस्य शूलस्योक्तं निदर्शनम्[5] ॥ ८६ ॥
सर्वाणि[6] दृष्ट्वा रूपाणि निादशेत्सान्निपातिकम् ।
सन्निपातसमुत्थानमसाध्यं तं विनिादशेत्[7] ॥ ८७ ॥
शूलानां लक्षणं प्रोक्तं चिकित्सां तु निबोध मे ।

---

तात्मा पपात भूमौ प्रथितः स शूलः । स पञ्चभूतानुगतं शरीरं प्रदूषयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः ॥" इति ।

१ वातिकशूलस्य लक्षणमुपदिशति—**निराहारस्येति** । २ प्रस्तब्धगात्रः= जडीभूतशरीरः, कृच्छ्रेण=कष्टेनेत्यर्थः । ३ पैत्तिकशूलस्य लक्षणमाख्याति—**तृष्णेति** । दाहो नाभ्याम्, पित्तशूलस्य स्थानत्वात् । तदुक्तम्—"तृष्मोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमचोषयुक्तम्" इति । ४ कफजशूलस्य लक्षणमभिधत्ते—**शूलेनेति** । हृल्लासः=उपस्थितवमनत्वमिव । ५ निश्चित्य दृश्यत उपलभ्यतेऽनेनेति निदर्शनं लिङ्गमित्यर्थः ।

६ सान्निपातिकशूलस्य लक्षणमभिदधाति—**सर्वाणीति** । कैश्चिद् दोषभेदेन शूलस्य नियतं स्थानमुक्तम्—"वातात्मकं बस्तिगतं वदन्ति, पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम् । हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं, सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात् ॥" इति । "बस्तौ हृत्पार्श्वपृष्ठेषु स शूलः कफवातिकः । कुक्षौ हृन्नाभिमध्येषु स शूलः कफपैत्तिकः ॥ दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः ।" इति वातकफजादेः स्थानसंश्रयत्वेन बोध्यम् । ७ विनिर्दिशेत्=जानीयादित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशुकारी[1] हि पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ ८८ ॥
तस्य शूलाभिपन्नस्य[2] स्वेद एव सुखावहः ।
पायसैः[3] कृशरापिण्डैः स्निग्धैर्वा पिशितैर्हितः ॥ ८९ ॥
त्रिवृच्छाकेन[4] वा स्निग्धमुष्णं भुञ्जीत भोजनम् ।
चिरबिल्वाङ्कुरान् वाऽपि तैलभृष्टांस्तु भक्षयेत् ॥ ९० ॥
वैहङ्गांश्च रसान् स्निग्धान् जाङ्गलान्[5] शूलपीडितः ।
यथालाभं निषेवेत मांसानि बिलशायिनाम्[6] ॥ ९१ ॥
सुरासौवीरकं चुक्रं मस्तूदश्वित्तथा दधि[7] ।
सकाललवणं पेयं शूले वातसमुद्भवे ॥ ९२ ॥
कुलत्थयूषो युक्ताम्लो लावकीयूषसंस्कृतः[8] ।
ससैन्धवः समरिचो वातशूलविनाशनः ॥ ९३ ॥
विडङ्गशिग्रुकम्पिल्लैः[9] पथ्याश्यामाऽम्लवेतसान् ।
सुरसाश्वमूत्रीं[10] च सौवर्चलयुतान् पिबेत् ॥ ९४ ॥
मद्येन वातजं शूलं क्षिप्रमेव प्रशाम्यति ।
पृथ्वीकाऽजाजिचविकायवानीव्योषचित्रकाः[11] ॥ ९५ ॥
पिप्पल्यः पिप्पलीमूलं सैन्धवं चेति चूर्णयेत् ।
तानि चूर्णानि पयसा पिबेत् काम्बलिकेन[12] वा ॥ ९६ ॥
मद्यासवेन चुक्रेण[13] सुरासौवीरकेण वा ।

---

१ वातिकशूलचिकित्सामाह—**आशुकारीति** । २ शूलाभिपन्नस्य=वातिकशूलयुक्तस्य । ३ स्वेदद्रव्याण्येव निर्दिशति—**पायसैरिति** । "अतप्ततण्डुला धौताः परिभृष्टा घृतेन च । खण्डयुक्तेन दुग्धेन पाचिताः पायसो भवेत् ॥" इति ।

४ आहारमुपदिशति—**त्रिवृदिति** । ५ जाङ्गलान् वैहङ्गानिति सम्बन्धः । ६ बिलशायिनां=शशाविच्छल्लकादीनामित्यर्थः । ७ मस्तु=दधिमस्तु, उदश्वित्=अर्धोदकेन मथितं तक्रम् । ८ लावकीयूषसंस्कृतः=क्षुद्रलावकृतयूषसम्मिश्रः । ९ कम्पिल्लः='कवीला' इति ख्यातः । पथ्या=हरीतकी, श्यामा=रक्तमूला त्रिवृत् । १० सुरसा=तुलसी, अश्वमूत्री=शल्लकी । ११ पृथ्वीका=हिङ्गुपत्री ।

१२ काम्बलिकेन=दधिमस्त्वम्लादिसिद्धयूषविशेषेण । तदुक्तम्—"अथ काम्बलिकोऽपरः । दध्यम्ललवणस्नेहतिलमाषसमन्वितः" इति । १३ चुक्रेण=शुक्तेनेत्यर्थः ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवैतानि चूर्णानि मातुलुङ्गरसेन वा ॥ ९७ ॥
तथा बदरयूषेण भावितानि पुनः पुनः ।
तानि हिङ्गुप्रगाढानि सह शर्करया पिबेत् ॥ ९८ ॥
सह दाडिमसारेण वर्त्तिः कार्या भिषग्[1]जिता ।
सा वर्त्तिर्वातिकं शूलं क्षिप्रमेव व्यपोहति ॥ ९९ ॥
गुडतैलेन वा लीढा पीता मद्येन वा पुनः ।
बुभुक्षाप्रभवे शूले लघु सन्तर्पणं[2] हितम् ॥ १०० ॥
उष्णैः क्षीरैर्यवागूभिः स्निग्धैर्मांसरसैस्तथा ।
वातशूले समुत्पन्ने रूक्षं स्निग्धेन भोजयेत् ॥ १०१ ॥
सुसंस्कृताः प्रदेयाः स्युर्घृतपूरा[3] विशेषतः ।
वारुणीञ्च पिबेज्जन्तुस्तथा सम्पद्यते सुखी ॥ १०२ ॥
एतद्वातसमुत्थस्य शूलस्योक्तं चिकित्सितम् ।
अथ[4] पित्तसमुत्थस्य क्रियां वक्ष्याम्यतः परम् ॥ १०३ ॥
ससुखं छर्दयित्वा[5] तु पीत्वा शीतोदकं नरः ।
शीतलानि च सेवेत सर्वाण्युष्णानि वर्जयेत् ॥ १०४ ॥
मणिराजतताम्राणि भाजनानि च सर्वशः[6] ।
वारिपूर्णानि तान्यस्य शूलस्योपरि निःक्षिपेत् ॥ १०५ ॥
गुडः शालिर्यवाः क्षीरं सर्पिःपानं विरेचनम् ।
जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥ १०६ ॥
रसान् सेवेत पित्तघ्नान्[7] पित्तलानि विवर्जयेत् ।
पालाशं धान्वनं वाऽपि पिबेद् यूषं[8] सशर्करम् ॥ १०७ ॥
परूषकाणि मृद्वीकाखर्जूरोदकजान्यपि[9] ।

---

१ भिषग्जिता=वैद्येन । २ सन्तर्पणं=भोजनम् । ३ घृतपूराः='घेवर' इति ख्याताः । सुसंस्कृताः=शुण्ठीमरिचादिभिः साधिताः ।
४ पैत्तिकशूलस्य चिकित्सामाचष्टे—अथेति । ५ छर्दयित्वा=वामयित्वा । ६ सर्वशः=भाजनस्य मुखपर्यन्तम् । ७ पित्तघ्नान्=जाङ्गलवर्गोक्तान् पित्तहरान् । ८ पालाशं यूषं धान्वनं यूषं वेति सम्बन्धः । पालाशं यूषं=मांसादमांसरसम्, धान्वनं यूषं=जाङ्गलमांसरसम् । ९ उदकजानि=पद्मानीत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

तत् पिबेच्छर्करायुक्तं पित्तशूलनिवारणम् ॥ १०८ ॥
अशने[1] भुक्तमात्रे तु प्रकोपः श्लैष्मिकस्य च ।
वमनं कारयेत्तत्र पिप्पली[2]वारिणा भिषक् ॥ १०९ ॥
रूक्षः[3] स्वेदः प्रयोज्यः स्यादन्याश्चोष्णाः क्रिया हिताः ।
पिप्पलीशृङ्गवेरञ्च श्लेष्मशूले भिषग्जितम् ॥ ११० ॥
पाठां वचां त्रिकटुकं तथा कटुकँरोहिणीम् ।
चित्रकस्य च निर्यूहे[5] पिबेद् यूषं सहार्जकम् ॥ १११ ॥
एरण्ड[6]फलमूलानि मूलं गोक्षुरकस्य च ।
शालपर्णीं पृश्निपर्णीं बृहतीं कण्टकारिकाम् ॥ ११२ ॥
दद्याच्छृगाल[7]विन्नाञ्च सहदेवां तथैव च ।
महा[8]सहां क्षुद्रसहां मूलमिक्षुरकस्य च ॥ ११३ ॥
एतत् सम्भृत्य सम्भार[9]ं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
चतुर्भागावशेषन्तु [10]यवक्षारयुतं पिबेत् ॥ ११४ ॥
वातिकं पैत्तिकं वाऽपि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
प्रसह्य नाशयेच्छूलं छिन्नाभ्रमिव मारुतः ॥ ११५ ॥
पिप्पली स्वर्जिकाक्षारो [11]यवाश्चित्रक एव च ।
[12]सेव्यञ्चैतत्समानीय भस्म कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ ११६ ॥
तदुष्णवारिणा पीतं श्लेष्मशूले भिषग्जितम् ।
रुणद्धि[13] मारुतं श्लेष्मा कुक्षिपार्श्वव्यवस्थितः ॥ ११७ ॥

---

१ श्लैष्मिकशूलचिकित्सामाख्याति—अशन इति । अशने = भोजने । २ पिप्पलीवारिणा = पिप्पलीयुतजलेन । ३ रूक्षः = करीषादिभिः कृतः । ४ कटुकरोहिणी = 'कुटकी' इति ख्याता । ५ निर्यूहे = क्वाथे, यूषं = शूलघ्नं शिम्बिधान्ययूषम्, अर्जकः = 'बबई' इति ख्यातः ।

६ एरण्डादिप्रयोगं प्रतिपादयति—एरण्डेति । ७ शृगालविन्ना = बृहत्पत्रा पृश्निपर्णी । ८ महासहा = माषपर्णी, क्षुद्रसहा = मुद्गपर्णी, इक्षुरकस्य = 'तालमखाना' इति ख्यातस्य । ९ एरण्डादिद्रव्यसम्भारमित्यर्थः । १० यवक्षारमत्र प्रस्थप्रमितं प्रदाय लेहीभूतं पचेत् । ११ यवः = यवक्षारः । १२ सेव्यं भस्मेति सम्बन्धः । सेव्यम् = उशीरम् । १३ पार्श्वशूलनिदानमाह—रुणद्धीति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स[1] संरुद्धः करोत्याशु साध्मानं गुडगुडायनम् ।
सूचीभिरिव निस्तोदं कृच्छ्रोच्छ्वासी तदा नरः ॥ ११८ ॥
नान्नं वाञ्छति नो निद्रामुपैत्यर्त्तिनिपीडितः[2] ।
पार्श्वशूलः स विज्ञेयः कफानिलसमुद्भवः ॥ ११९ ॥
तत्र[3] पुष्करमूलानि हिङ्गुसौवर्चलं विडम् ।
सैन्धवं तुम्बुरुं[4] पथ्यां चूर्णं कृत्वा तु पाययेत् ॥ १२० ॥
पार्श्वहृद्बस्तिशूलेषु यवक्काथेन संयुतम् ।
सर्पिः प्लीहोदरोक्तं[5] वा घृतं वा हिङ्गुसंयुतम् ॥ १२१ ॥
बीजपूरकसारं[6] वा पयसा सह साधितम् ।
एरण्डतैलमथवा सक्षमस्तुपयोरसैः[7] ॥ १२२ ॥
भोजयेच्चापि पयसा जाङ्गलेन रसेन वा ।
प्रकुप्यति[8] यदा कुक्षौ वह्निमाक्रम्य मारुतः ॥ १२३ ॥
तदाऽस्य भोजनं भुक्तं सोपस्तम्भं[9] न पच्यते ।
उच्छ्वसित्यामशकृता[10] शूलेनाहन्यते मुहुः ॥ १२४ ॥
नैवासने न शयने तिष्ठन् वा लभते सुखम् ।
कुक्षिशूल इति ख्यातो वातादामसमुद्भवः ॥ १२५ ॥
वमनं [11]कारयेत्तत्र लङ्घयेद्वा यथाबलम् ।
संसर्गपाचनं कुर्य्यादम्लैर्दीपनसंयुतैः[12] ॥ १२६ ॥

---

१ सः=वायुः, साध्मानम्=उदरापूरसहितम् । २ अर्तिनिपीडितः=शूलपीडितः । ३ पार्श्वशूलस्य चिकित्सां दर्शयति—तत्रेति । ४ तुम्बुरुः=धान्याकम् । ५ प्लीहोदरोक्तं सर्पिः=षट्पलं घृतम्, घृतं वा=असिद्धं घृतं वा । ६ बीजपूरकसारः=जम्बीरफलमज्जा, 'सारो बले स्थिरांशे च मज्जि पुंसि जले घने' इति मेदिनी । पयसा=क्षीरेण । ७ मस्तु=दधिमस्तु, पयः=क्षीरम्, रसः=मांसरसः ।

८ कुक्षिशूलनिदानमुपदिशति—प्रकुप्यतीति । आक्रम्य=मन्दीकृत्य । ९ सोपस्तम्भं=जडीभावान्वितम् । १० आमशकृता=अपक्वपुरीषेण । ११ कुक्षिशूलस्य चिकित्सामभिधत्ते—वमनमिति । १२ दीपनसंयुतैर्हिङ्गुसैन्धवसमन्वितैः अम्लैर्दाडिमतक्रादिभिः संसर्गपाचनं पेयादिक्रमपाचनं कुर्यादिति सम्बन्धः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरं[1] दीप्यकं चव्यं हिङ्गु सौवर्चलं विडम् ।
मातुलुङ्गस्य बीजानि[2] तथा श्यामोरुबूकयोः ॥ १२७ ॥
बृहत्याः कण्टकार्य्याश्च क्वाथं शूलहरं पिबेत् ।
वचा[3]सौवर्चलं हिङ्गु कुष्ठं सातिविषाऽभया ॥ १२८ ॥
कुटजस्य च बीजानि[4] सद्यः शूलहराणि तु ।
विरेचने प्रयुञ्जीत ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ १२९ ॥
स्नेहबस्तीन्निरूहांश्च कुर्य्याद् दोषनिबर्हणान् ।
उपनाहाः स्नेहसेका धान्या[5]म्लपरिषेचनम् ॥ १३० ॥
अव[6]गाहाश्च शस्यन्ते यच्चान्यदपि तद्धितम् ।
कफ[7]पित्तावरुद्धस्तु मारुतो रसमूर्च्छितः ॥ १३१ ॥
हृदिस्थः कुरुते शूलमुच्छ्वासारोधकं परम् ।
स हृच्छूल इति ख्यातो रसमारुतसम्भवः ॥ १३२ ॥
तत्रापि कर्माभिहितं यदुक्तं हृद्विकारिणाम्[8] ।
संरोधात्[9] कुपितो वायुर्बस्तिमावृत्य तिष्ठति ॥ १३३ ॥
[10]बस्तिवङ्क्षणनाभीषु ततः शूलोऽस्य जायते ।
विण्मूत्रवातसंरोधी बस्तिशूलः स मारुतात् ॥ १३४ ॥
नाभ्यां[11] वङ्क्षणपार्श्वेषु कुक्षौ मेढ्रान्तमर्दकः ।
मूत्रमावृत्य गृह्णाति मूत्रशूलः स मारुतात् ॥ १३५ ॥

---

१ कुक्षिशूले क्वाथं ब्रवीति—**नागरमिति** । दीप्यकः=अजमोदा । २ बीजानीति पदं मातुलुङ्गस्येत्यादिभिः प्रत्येकं षष्ठ्यन्तेन पदेन सम्बध्यते । श्यामा=वृद्धदारकः, उरुबूकः=रक्तैरण्डः । ३ कुक्षिशूले विरेचनमाचष्टे—**वचेति** । अतिविषा='अतीस' इति ख्याता । अभया=हरीतकी । ४ कुटजस्य बीजानि=इन्द्रयवाः । ५ धान्याम्लं=काञ्जिकम् । ६ अवगाहः=वातघ्नद्रव्यद्रवपूर्णद्रोण्यादिनिमज्जनम् ।

७ हृच्छूलस्य निदानं चिकित्सां च वक्ति—**कफेति** । रसमूर्च्छितः=रसान्वितः । ८ हृद्विकारिणां=हृद्रोगिणाम् । ९ बस्तिशूलस्य निदानमाह—**संरोधादिति** । १० बस्तिः=मूत्राशयः, वङ्क्षणः=बस्त्यधः उरुमेढ्राणामन्तरालसन्धिः । ११ मूत्रशूलनिदानमाख्याति—**नाभ्यामिति** । यदा मेढ्रान्त्रमर्दको वायुः आवृत्य अवरुध्य गृह्णाति, मूत्रमिति शेषः, तदा नाभ्यां वङ्क्षणपार्श्वेषु शूलो जायते; स मारुतान्मूत्रशूलो बोध्य इति योजना ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]वायुः प्रकुपितो यस्य रूक्षाहारस्य देहिनः ।
मलं रुणद्धि कोष्ठस्थं मन्दीकृत्य तु पावकम् ॥ १३६ ॥
शूलं सञ्जनयंस्तीव्रं स्रोतांस्यावृत्य तस्य हि ।
दक्षिणं यदि वा वामं कुक्षिमादाय जायते ॥ १३७ ॥
सर्वत्र वर्धते क्षिप्रं भ्रमन्नथ सघोष[2]वान् ।
पिपासा वर्द्धते तीव्रा भ्रमो मूर्च्छा च जायते ॥ १३८ ॥
उच्चा[3]रितो मूत्रितश्च न शान्तिमधिगच्छति ।
विट्शूलमेतज्जानीयाद्विषक् परमदारुण[4]म् ॥ १३९ ॥
क्षि[5]प्रं दोषहरं कार्य्यं भिषजा साधु जानता ।
स्वेदनं वमनञ्चैव निरूहाः स्नेहबस्तयः ॥ १४० ॥
पूर्वोद्दिष्ट[6]ान् पाययेत योगान् कोष्ठविशोधनान् ।
उदावर्त्त[7]हराश्चास्य क्रियाः सर्वाः सुखावहाः ॥ १४१ ॥
अतिमा[8]त्रं यदा भुक्तं पावके मृदुतां गते ।
स्थिरीभूतं तु तत्कोष्ठे वायुरावृत्य तिष्ठति ॥ १४२ ॥
अवि[9]पाकगतं ह्यन्नं शूलं तीव्रं करोत्यति ।
मूर्च्छाऽऽध्मानं विदाहश्च हृ[10]दुत्क्लेशो विलम्बिका ॥ १४३ ॥

---

१ पुरीषशूलस्य निदानं ब्रवीति—वायुरिति । २ सघोषवान्=शब्दयुक्तः । ३ उच्चारितः=विसृष्टपुरीषः । ४ परमदारुणम्=अत्यन्तकष्टकारि । ५ बस्तिशूलादीनां सामान्यं चिकित्सितमभिधत्ते—क्षिप्रमिति । दोषहरं=शोधनम् । ६ पूर्वोद्दिष्टान्=सूत्रस्थाने त्रिचत्वारिंशच्चतुश्चत्वारिंशदध्यायोपदिष्टान् । ७ उदावर्तहराः क्रिया उदावर्तप्रतिषेधाध्याये वक्ष्यमाणाः ।

८ अविपाकजशूलस्य लक्षणमाह—अतिमात्रमिति । ९ अविपाकगतम्=अविपाकं प्राप्तम् । परिणामशूलमाह तन्त्रान्तरे—"बलासः प्रच्युतः स्थानात् पित्तेन सह मूर्च्छितः । वायुमादाय कुरुते शूलं जीर्यति भोजने ॥ कुक्षौ जठरपार्श्वेषु नाभौ बस्तौ स्तनान्तरे । पृष्ठमूलप्रदेशेषु सर्वेष्वेतेषु वा पुनः ॥ भुक्तमात्रेऽथवा वान्ते जीर्णेऽन्ने च प्रशाम्यति । षष्टिकव्रीहिशालीनामोदनेन विवर्धते ॥ तत्परिणामजं शूलं दुर्विज्ञेयं महागदम् । तमाहू रसवाहानां स्रोतसां दुष्टिहेतुकम् ॥ केचिदन्नद्रवं प्राहुरन्ये तत्पक्तिदोषतः । पक्तिशूलं वदन्त्येके केचिदन्नविदाहजम् ॥" इति ।

१० हृत्पीडक उत्क्लेशो हृदुत्क्लेशः । विलम्बिकाया लक्षणं विसूचिकाप्रतिषेधे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरिच्यते छर्दयति कम्पतेऽथ विमुह्यति ।
अविपाकाद्भवेच्छूलस्त्वन्नदोषसमुद्भवः ॥ १४४ ॥
वमनं[1] लङ्घनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः ।
क्षाराश्चूर्णानि गुटिकाः शस्यन्ते शूलनाशनाः ॥ १४५ ॥
गुल्मावस्थाः क्रियाः कार्या यथावत्[2] सर्वशूलिनाम् ।

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे गुल्मप्रतिषेधो नाम (चतुर्थोऽध्यायः, आदितः) द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

---

## त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथ[3] तो हृद्रोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
वेगा[4]घातोष्णरूक्षान्नैरतिमात्रोपसेवितैः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैः[5] रसात्म्यैश्चापि भोजनैः ॥ ३ ॥
दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा[6] हृदयं गताः ।

---

वक्ष्यते । तथ्यथा—"दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोर्ध्वमधश्च यस्य । विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ॥" इति । १ अविपाकजशूलस्य चिकित्सामाख्याति—वमनमिति । २ यथावत् = यथावस्थमित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायां उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

---

### त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

३ "तत्रापि कर्माभिहतं यदुक्तं हृद्विकारिणाम्" इति पूर्वाध्याये नाममात्रेणोपदिष्टं विस्तरेण बोधयितुं हृद्रोगप्रतिषेधमधिकरोति—**अथात इति** । हृदयस्य रोगो हृद्रोगः, 'वा शोकष्यञ्रोगेषु' इति रोगशब्दे परे हृदयस्य हृद्भावः । अथवा हृदो रोगो हृद्रोगस्तस्य प्रतिषेधं चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

४ हृद्रोगस्य निदानं सम्प्राप्तिं चाभिधत्ते—**वेगेति** । वेगाघातः = मलमूत्रवेगावरोधः, आघातशब्दस्य आवर्तनं कार्यम्, तथा च आघातो हृदि लगुडादिप्रहार इत्यर्थः । ५ असात्म्यैः = प्रकृतिप्रतिकूलैः । ६ पूर्वोक्तैर्वेगाघातादिभिर्हेतुभिः विगुणा

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुर्वन्ति हृदये बाधां हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ ४ ॥
चतुर्विधः स दोषैः स्यात् क्रिमिभिश्च पृथक् पृथक् ।
लक्षणं तस्य वक्ष्यामि चिकित्सितमनन्तरम् ॥ ५ ॥
आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा ।
निर्मथ्यते दीर्य्यते च स्फोटचते पाट्यतेऽपि च ॥ ६ ॥
तृष्णोषादाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदयक्लमः ।
धूमायनञ्च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥ ७ ॥
गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम् ।
माधुर्य्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि ॥ ८ ॥
उत्क्लेशः ष्ठीवनं तोदः शूलो हृल्लासकस्तमः ।

---

दुष्टा दोषा हृदयं गताः रसं दूषयित्वा हृदये बाधां दोषभेदेन नानाविधां व्यथां कुर्वन्ति, तं हृद्रोगं प्रचक्षते आचार्या इति सम्बन्धनीयम् ।

१ हृद्रोगस्य संख्यामाख्याति—चतुर्विध इति । दोषैर्वातादिभिस्त्रयः, सन्निपातैश्च, कृमिभिः सह । तन्त्रान्तरे पञ्चविधो हृद्रोग उक्तः—"अत्युष्णगुर्वन्नकषायतिक्तश्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः । सञ्चिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः ॥" इति । वस्तुतस्तु सान्निपातिकहृद्रोग एवापचारेणोत्तरावस्थायां कृमिनिपातनात् कृमिज इति कथ्यते । तेन न पञ्च हृद्रोगाः । तदुक्तं चरके—"त्रिदोषजे तु हृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते । तिलक्षीरगुडादीनि ग्रन्थिस्तस्योपजायते ॥ मर्मैकदेशे सङ्क्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति । सङ्क्लेदात् कृमयश्चास्य भवन्त्युपहतात्मनः ॥" इति ।

२ वातिकहृद्रोगस्य लक्षणमुपदिशति—आयम्यत इति । मारुतजे 'हृद्रोगे' इति शेषः । आयम्यते = व्यथया विस्तार्यत इव, तुद्यते = सूचीभिरिव विद्ध्यते । ३ निर्मथ्यते = मन्थनेनेव विलोड्यते, दीर्यते = करपत्रेण द्विधा क्रियत इव, स्फोट्यते = अस्त्रेणेव. पाट्यते=कुठारेण बहुधा क्रियत इव ।

४ पैत्तिकहृद्रोगस्य लक्षणमाख्याति—तृष्णेति । ऊषा = प्रादेशिकः किञ्चिद्दाहः, हृदि किञ्चिद्दाह इत्यर्थः । दाहः = सार्वाङ्गिकः, चोषः = हृदये चूषणेनेव पीडा, क्लमः = हृदयाकुलत्वम् , ग्लानिवदित्यर्थः । ५ 'क्लेदः' इति पाठान्तरम् । ६ श्लैष्मिकहृद्रोगस्य लक्षणमभिदधाति—गौरवमिति । गौरवं = हृदयस्य गुरुता, स्तम्भः = हृदयस्य मन्दशब्दत्वेन जडता, मार्दवं=जलप्लुतमिव । ७ बलासावतते = कुपितकफव्याप्ते, "दोषा दुष्टा दूषयितारो भवन्ति" इत्यागमात् ।

८ सान्निपातिकहृद्रोगस्य लक्षणमभिधत्ते—उत्क्लेश इति । उत्क्लेशः = वमन-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ९ ॥
भ्रमक्लमौ सादशोषौ ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः।
कृमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकाणाञ्च ये मताः ॥ १० ॥
वातोपसृष्टे हृदये वामयेत स्निग्धमातुरम्।
द्विपञ्चमूलकाथेन सस्नेहलवणेन तु ॥ ११ ॥
पिप्पल्येलाबचाहिङ्गुयवभस्मानि सैन्धवम्।
सौवर्चलमथो शुण्ठीमजमोदाञ्च चूर्णितम् ॥ १२ ॥
फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः।
पाययेत विशुद्धञ्च स्नेहेनान्यतमेन वा ॥ १३ ॥
भोजयेज्जीर्णशाल्यन्नं जाङ्गलैः सघृतै रसैः।
वातघ्नसिद्धं तैलञ्च दद्याद्बस्तिं प्रमाणतः ॥ १४ ॥
श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितोत्पलजलैर्वमेत्।
पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरैः शृतम् ॥ १५ ॥
घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान् पित्तज्वरविनाशनान्।
तृप्तस्य च रसैर्मुख्यैर्मधुरैः सघृतैर्भिषक् ॥ १६ ॥

---

मिवोपस्थितत्वम्, ष्ठीवनं = थूत्करणम्, हृल्लासः = लालास्रावः। १ तेषां=वातादिजानां कृमिहीनानां हृद्रोगिणाम्। २ वातादिजानां कृमिहीनानां हृद्रोगिणामुपद्रवानभिधाय कृमिजस्योपद्रवान् दर्शयति—कृमिज इति। श्लैष्मिकाणां कृमिजातीनां ये उपद्रवास्त एव कृमिजे हृद्रोगे मता इत्यर्थः। ते च हृल्लासास्यस्रवणाविपाकादयः।

३ वातजहृद्रोगचिकित्सां वक्ति—वातेति। वातोपसृष्टे हृदये=वातजहृद्रोगे। यद्यपि वाते वमनं निषिद्धं, तथाऽपि वातस्य कफस्थानगतत्वेन अत्र वमनमुपदिष्टम्। एवं पित्तजेऽपि बोध्यम्। ४ द्विपञ्चमूलकाथेन = दशमूलीकाथेनेत्यर्थः। ५ यवभस्म=यवक्षारः। ६ फलं = मातुलुङ्गादिफलम्, धान्याम्लं = काञ्जिकम्, मद्यासवौ = मद्यवर्गाभिहितौ। ७ स्नेहेनान्यतमेन = चतुःस्नेहमध्ये एकेन स्नेहेन। ८ वातजहृद्रोगे पथ्यमुपदिशति—भोजयेदिति। ९ वातघ्नसिद्धं = वातहरभद्रदार्वादिसाधितम्।

१० पित्तजहृद्रोगचिकित्सामाचष्टे—श्रीपर्णीति। श्रीपर्णी = गम्भारीशब्दवाच्या, मधुकं = यष्टीमधु, क्षौद्रं = माक्षिकम्, सिता = शर्करा, उत्पलं = कुष्ठम्। ११ मधुरैः= काकोल्यादिभिः। १२ उद्दिष्टान् = 'चन्दनोशीरश्रीपर्णी' इत्यादिनाऽभिहितान्। १३ रसैः=एणादिमांसरसैः, मधुरैः = अम्लादिसिद्धैः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सक्षौद्रं वितरेद्बुस्तौ तैलं मधुकसाधितम्[1] ।
वचा[2]निम्बकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफात्मके ॥ १७ ॥
चूर्णन्तु पाययेतोक्तं[3] वातजे भोजयेच्च तम् ।
फलादिमथ मुस्तादिं[4] त्रिफलां वा पिबेन्नरः ॥ १८ ॥
श्यामात्रिवृत्कल्कयुतं[5] घृतं वाऽपि विरेचनम् ।
बलातैलैर्विदध्याच्च[6] बस्तिं बस्तिविशारदः ॥ १९ ॥
क्रिमिहृद्रोगिणं[7] स्निग्धं भोजयेत् पिशितौदनम्[8] ।
दध्ना च पललोपेतं[9] त्र्यहं, पश्चाद्विरेचयेत् ॥ २० ॥
सुगन्धिभिः सवलणैर्योगैः साजाजिशर्करैः[10] ।
विडङ्गगाढं धान्याम्लं पाययेताप्यनन्तरम् ॥ २१ ॥
हृदयस्थाः पतन्त्येवमधस्तात् क्रिमयो णाम् ।
यवान्नं वितरेच्चास्य सविडङ्गमतः परम् ॥ २२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे हृद्रोगप्रतिषेधो नाम (पञ्चमोऽध्यायः, आदितः) त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

---

१ मधुकसाधितम्=यष्टीमधुसिद्धम् । २ श्लैष्मिकहृद्रोगे चिकित्सामभिदधाति–वचेति । ३ उक्तं चूर्णं=पिप्पल्येलेत्यादिकम् ।

४ फलादिः=संशोधनसंशमनीयाध्यायोक्तो मदनफलादिः, मुस्तादिः=द्रव्यसङ्ग्रहणीयाध्यायोक्तः । ५ श्यामा अत्र वृद्धदारकः 'विधारा' इति ख्याता । ६ बलातैलं मूढगर्भचिकित्सितोक्तम् ।

७ कृमिजहृद्रोगे चिकित्सां वक्ति–क्रिमीति । पिशितौदनं=मांसौदनम् । ८ पललोपेतं=भृष्टतिलचूर्णान्वितम् । ९ सुगन्धिभिः=शर्कराक्षौद्रसंयुक्तमित्यादिभिर्विरेचनकल्पोक्तैः । १० वितरेत्=दद्यादित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः पाण्डुरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम् ॥
निषेवमाणस्य विदूष्य रक्तं कुर्वन्ति दोषास्त्वचि पाण्डुभावम् ॥ ३ ॥
पाण्ड्वामयोऽष्टार्द्धविधः प्रदिष्टः पृथक् समस्तैर्युगपच्च दोषैः ।
सर्वेषु चैतेष्विह पाण्डुभावो यतोऽधिकोऽतः खलु पाण्डुरोगः ॥ ४ ॥
त्वक्स्फोटनं ष्ठीवनगात्रसादौ मृद्भक्षणं प्रेक्षणकूटशोथः ।

---

## चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ हृद्रोगे जाते पाण्डुत्वं जायत इति पाण्डुत्वजनकत्वेन हृद्रोगसाधर्म्यात् पाण्डुरोगप्रतिषेधमधिकरोति—**अथात इति** । पाण्डुत्वेनोपलक्षितो रोगः पाण्डुरोगस्तत्प्रतिषेधस्तम् । पाण्डुरोगेण कामलादयोऽपि गृह्यन्ते । तथा च हारीतः—"वातेन पित्तेन कफेन चैव त्रिदोषमृद्भक्षणसम्भवे च । द्वे कामले चैव हलीमकश्च स्मृतोऽष्टधैवं खलु पाण्डुरोगः ॥" इति । पाण्डुवर्णाधिक्यात् पाण्डुरोग इति संज्ञा, अतः कृष्णादिवर्णः पाण्डुत्वं नातिक्रामति । तथा च वक्ष्यति—"सर्वेषु चैतेष्विह पाण्डुभावो यतोऽधिकोऽतः खलु पाण्डुरोगः" इति ।

२ पाण्डुरोगस्य निदानं सम्प्राप्तिं चाभिधत्ते—**व्यवायमिति** । व्यवायः = मैथुनम् , मृत् = मृत्तिका, इयं नानाविधत्वात्सर्वदोषप्रकोपणी । तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"कषाया मारुतं, पित्तमूषरा, मधुरा कफम् । कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद् भुक्तं विरूक्षयेत् ॥" इति । तीक्ष्णं = राजिकादिपित्तप्रकोपि । ३ रक्तमित्युपलक्षणं, तेन त्वङ्मांसमपि बोध्यम् । तदुक्तं चरके—"वायुना बलिना क्षिप्तं सम्प्राप्य धमनीर्दश । प्रपन्नं केवलं देहं त्वङ्मांसान्तरमाश्रितम् ॥ प्रदूष्य कफवातासृक्मांसानि प्रकरोति तत् । पाण्डुहारिद्रहरितान् वर्णान् बहुविधांस्त्वचि ॥" इति ।

४ पाण्डुरोगस्य संख्यामाख्याति—**पाण्ड्वामय इति** । अष्टार्धविधः = चतुर्विधः । तन्त्रान्तरे पाण्डुरोगः पञ्चविध उक्तः—'पाण्डुरोगाः स्मृताः पञ्च वातपित्तकफैस्त्रयः । चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमो भक्षणान्मृदः ॥" इति । अत्र मृद्भक्षणजन्यस्य पञ्चमस्य पाण्डुरोगस्य त्रिदोषजे एवान्तर्भावाच्चतुर्विध उक्तः । कामलादयः पञ्च वक्ष्यमाणाः पाण्डुरोगस्य पर्यायाः, तेनात्र चतुर्विध एव बोध्यः ।

५ पाण्डुरोगस्य पूर्वरूपाणि दर्शयति—**त्वगिति** । त्वक्स्फोटनं=त्वचः स्फुटनम् , ष्ठीवनं = थूत्करणम् 'थुकथुकी' इति लोके । मृद्भक्षणं = मृद्भक्षणेच्छा, प्रेक्षणकूट-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ५ ॥
सकामलापानकिपाण्डुरोगः कुम्भाह्वयो लाघरकोऽलसाख्यः ।
विभाष्यते लक्षणमस्य कृत्स्नं निबोध वक्ष्याम्यनुपूर्वशस्तत् ॥ ६ ॥
कृष्णेक्षणं कृष्णसिराऽवनद्धं तद्वर्णविण्मूत्रनखाननञ्च ।
वातेन पाण्डुं मनुजं व्यवस्येद् युक्तं तथाऽन्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥ ७ ॥
पीतेक्षणं पीतसिराऽवनद्धं तद्वर्णविण्मूत्रनखाननञ्च ।
पित्तेन पाण्डुं मनुजं व्यवस्येद् युक्तं तथाऽन्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥ ८ ॥
शुक्लेक्षणं शुक्लसिराऽवनद्धं तद्वर्णविण्मूत्रनखाननञ्च ।
कफेन पाण्डुं मनुजं व्यवस्येद् युक्तं तथाऽन्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥ ९ ॥
सर्वात्मके सर्वमिदं व्यवस्येद्, वक्ष्यामि लिङ्गान्यथ कामलायाः ।

---

शोथः=अक्षिगोलकशोथः । १ आहारस्य अविपाक इत्यर्थः। पुरःसराणि=पूर्वसराणि ।

२ पाण्डुरोगस्य पर्यायान् दर्शयति—**स इति** । स पाण्डुरोगः कामलेत्यादिनाम्ना विभाष्यते इत्यन्वयः । अत्र सुश्रुतार्थसन्दीपनम्—अत्र कामलेति कामशब्दोऽयं साधारणशब्दविशेषात् स्वल्पे भक्ताद्यभिलाषे प्रवर्तते, तं लातीति कामला । दुष्टत्वेन कुत्सितोऽपानोऽपानकः, सोऽस्यास्तीति अपानकी, कामलाऽऽख्योऽपानकिपाण्डुरोगः कामलाऽपानकिपाण्डुरोगः । कुम्भकामलाऽऽख्योऽपानकिपाण्डुरोगस्त्वत्र कुम्भाह्वय उच्यते, भीमो भीमसेन इतिवत्। रोगस्यास्य कुम्भकामलेति संज्ञा तन्त्रान्तरे उपदिश्यते । "कालान्तरात् खरीभूता कृच्छ्रा स्यात् कुम्भकामला" इति स एव पुनर्ज्वरादिभिर्लाघवं करोति, सत्यपि सामर्थ्ये कर्मस्वनुत्साहं च जनयतीत्यलसाख्योऽपानकिपाण्डुरोगस्तु लाघवक उच्यते इति । 'लाघरक' इत्यत्र 'लाघवक' इति पाठान्तरम् । ३ निबोध=जानीहि ।

४ वातिकपाण्डुरोगस्य लक्षणमभिदधाति—**कृष्णेक्षणमिति** । कृष्णेक्षणं=कृष्णनयनम्, तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं=कृष्णवर्णविण्मूत्रनखमुखम्। तन्त्रान्तरे—"त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणाभताः। वातपाण्ड्वामये तोदकम्पानाहभ्रमादयः ॥" इति । ५ तदुपद्रवैः=वातोपद्रवैरित्यर्थः। ६ पैत्तिकपाण्डुरोगस्य लक्षणं वक्ति—**पीतेक्षणमिति** । पीतेक्षणं=पीतवर्णनेत्रम् । ७ तदुपद्रवैः=पित्तोपद्रवैर्दाहतृष्णादिभिरित्यर्थः। ८ श्लैष्मिकपाण्डुरोगस्य लक्षणं निर्दिशति—**शुक्लेक्षणमिति** । शुक्लेक्षणं=श्वेतनयनम्। ९ तदुपद्रवैः=कफोपद्रवैस्तन्द्राऽऽलस्यादिभिः।

१० सान्निपातिकपाण्डुरोगस्य लक्षणमभिधत्ते—**सर्वात्मक इति** । इदं=प्रकृति-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो[1] ह्यामयान्ते सहसाऽन्नमम्लमद्यादपथ्यानि च तस्य पित्तम् ॥१०॥
करोति पाण्डुं वदनं विशेषात् पूर्वरितौ[2] तन्द्रिबलक्षयौ च ।
भेदस्तु[3] तस्याः खलु कुम्भसाह्वः शोफो महांस्तत्र च पर्वभेदः ॥११॥
ज्वरांङ्गमर्दभ्रमसादतन्द्राक्षयान्वितो लाघरकोऽलसाख्यः ।
तं[5] पातपित्ताद्धरिपीतनीलं हलीमकं नाम वदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १२ ॥
उपद्रवास्तेष्वरुचिः पिपासा छर्दिर्ज्वरो मूर्द्धरुजाऽग्निसादः ।
शोफस्तथा कण्ठगतोऽबलत्वं[7] मूर्च्छा क्लमो हृद्यवपीडनञ्च ॥ १३ ॥
साध्यन्तु[8] पाण्ड्वामयिनं समीक्ष्य स्निग्धं घृतेनोर्ध्वमधश्च शुद्धम् ।
सम्पादयेत् क्षौद्रघृतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णयुतैः प्रयोगैः[9] ॥ १४ ॥

---

समसमवेतत्वेन वातादिजपाण्डुरोगलक्षणम्, "सर्वान्नसेविनः सर्वे दुष्टा दोषास्त्रिदोषजम् । त्रिलिङ्गं सम्प्रकुर्वन्ति पाण्डुरोगं सुदुःसहम् ॥" इति चरकः । व्यवस्येत्=जानीयादित्यर्थः ।

१ कामलालक्षणं प्रतिपादयति—य इति । आमयान्ते=पाण्डुरोगान्ते, अन्यरोगान्ते चेत्यर्थः । अम्लमन्नम्=अम्लभोजनम् । २ पूर्वेरितौ=गर्भव्याकरणाध्याये दोषादिक्षयवृद्ध्यध्याये चाभिहितौ, क्रमशस्तन्द्रा बलक्षयश्चेत्यर्थः । ३ कामलाभेदकुम्भसाह्वलक्षणमभिदधाति—भेदस्त्विति । तन्त्रान्तरे कुम्भसाह्वस्य कुम्भकामलेति नामान्तरम् । तद्यथा—"कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाऽऽश्रया मता । कालान्तरात्खरीभूता कृच्छ्रा स्यात् कुम्भकामला ॥" इति ।

४ कुम्भसाह्वस्य अवस्थाभेदेन संज्ञान्तरमाख्याति—ज्वरेति । लाघरकोऽलसाख्यः=लाघरकाख्यः, अलसाख्यश्चेत्यर्थः । अस्यैव अवस्थाभेदं पानकीति तन्त्रान्तरे—"सन्तापो भिन्नवर्चस्त्वं बहिरन्तश्च पीतता । पाण्डुता नेत्ररोगश्च पानकीलक्षणं वदेत् ॥" इति । ५ हलीमकलक्षणमभिधत्ते—तमिति । यदा कुम्भसाह्वो हरितपीतनीलः स्यात्तदा तज्ज्ञाः तं पाण्डुरोगं हलीमकं नाम वदन्तीत्यर्थः । ६ पाण्डुरोगोपद्रवान् दर्शयति—उपद्रवा इति । मूर्धरुजा=शिरोव्यथा । ७ अबलत्वं=निर्बलत्वम् ।

८ पाण्डुरोगचिकित्सितमुपदिशति—साध्यमिति । अध्यायान्तेऽसाध्यलक्षणं वक्ष्यति, तद्विपरीतं साध्यलक्षणं बोध्यम् । घृतेन=कट्वर-कल्याणक-दाधिक-महातिक्त-पञ्चगव्यादिना घृतेनेत्यर्थः । पाण्डुरोगे ऊर्ध्वशोधनं निषिद्धमपि ऋतुदेशकालप्रकृत्यादिकं विचार्य मृदुवमनं देयम् । तथा च तन्त्रान्तरम्—"कालं च देशप्रकृती शरीरं समीक्ष्य दद्याद्वमनं विधिज्ञः । वान्तस्य तीक्ष्णान्यनुलोमनानि कल्पोपदिष्टानि भिषग् विदध्यात् ॥" इति । ९ प्रयोगैः=वक्ष्यमाणयोगैरित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिबेद् घृतं वा रजनीविपक्वं यत् त्रैफलं तैल्वकमेव वाऽपि ।
विरेचनद्रव्यैकृतं पिबेद्वा योगांश्च वैरेचनिकान् घृतेन ॥ १५ ॥
मूत्रे निकुम्भार्द्धपलं विपाच्य पिबेदभीक्ष्णं कुडवार्द्धमात्रम् ।
खादेद् गुडं वाऽप्यभयाविपक्वमारग्वधादिक्वथितं पिबेद्वा ॥ १६ ॥
अयोरजोव्योषविडङ्गचूर्णं लिह्याद्धरिद्रां त्रिफलाऽन्वितां वा ।
सर्पिर्मधुभ्यां विदधीत वाऽपि शास्त्रप्रदेशाभिहितांश्च योगान् ॥१७॥
हरेच्च दोषान् बहुशोऽल्पमात्रान् श्वयेद्धि दोषेष्वतिनिर्हृतेषु ।
धात्रीफलानां रसमिक्षुजञ्च मन्थं पिबेत् क्षौद्रयुतं हिताशी ॥ १८ ॥
उभे बृहत्यौ रजनीं शुकाख्यां काकादनीं चापि सकाकमाचीम् ।
आदारिबिम्बीं सकदम्बपुष्पीं विपाच्य सर्पिर्विपचेत्कषाये ॥ १९ ॥
तत्पाण्डुतां हन्त्युपयुज्यमानं क्षीरेण वा मागधिका यथाऽग्नि ।

---

१ रजनीविपक्वं=हरिद्राकल्कसिद्धम्, त्रैफलं=त्रिफलासिद्धम्, तैल्वकं=पट्टिकालोध्रसिद्धम् । २ त्रिवृदादिविरेचनद्रव्यसंस्कृतं घृतमित्यर्थः । वैरेचनिकान्=विरेचनद्रव्यविकल्पोक्तान् ।

३ पाण्डुरोगे अन्यानि विरेचनानि निर्दिशति—मूत्र इति । मूत्रे=महिषीमूत्रे, षोडशगुणे इत्यर्थः । निकुम्भा=दन्ती, कुडवार्धमात्रं=पलद्वयमात्रम् । मात्रेयमविशेषेण अभिहिता, तस्माद्यथायोगं मात्रा निरूपणीया । तदुक्तम्—"मात्राया नास्त्यवस्थानम्" इति । ४ अभयाविपक्वं=हरीतकीक्वाथसिद्धम् । ५ अयोरजः=लोहचूर्णम्, व्योषं=त्रिकटुकम्, लिह्याद् मधुसर्पिर्भ्यामिति सम्बन्धः । प्रथमयोगोऽयम् । द्वितीययोगस्तु त्रिफलाऽन्वितां हरिद्रामिति । ६ शास्त्रेऽन्यप्रदेशाभिहितानित्यर्थः । योगान्=नवायसप्रभृतीन् । ७ श्वयेत्=शोथमाप्नुयात् ।

८ अन्नपानरक्षाविध्यध्याये मन्थलक्षणमुक्तम्—"सक्तवः सर्पिषाऽभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः । नातिद्रवा नातिसान्द्रा मन्थ इत्युपदिश्यते ॥" इति । मन्थं क्षौद्रयुतमिति तृतीयो योगः । तन्त्रान्तरेऽपि—"पिबेत् सुशीतलान् मन्थान् घृताक्तान् मधुसंयुतान् । सक्षौद्रं वा रसं धात्र्या इक्षोर्वाऽपि हिताशनः ॥" इति । अन्यत्र—"धात्रीफलरसे सक्तूनिक्षूणां च रसे तथा । पाण्डुर्मधुसमायुक्तं पिबेन्मन्थं सुशीतलम् ॥" इति पाण्डुरोगे विशिष्टमन्थमाह । ९ आदारी वेल्लन्तरसदृशपुष्पा आलिरिति लोके, बिम्बी रास्नाऽनुकारिविटपा लोहितफला चेति डल्हणः । एतदभावे तिक्तपटोलं ग्राह्यन्ति । कदम्बपुष्पी=मुण्डीत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हितञ्च यष्टीमधुजं कषायं चूर्णं समं वा मधुनाऽवलिह्यात् ॥ २० ॥
गोमूत्रयुक्तं त्रिफलादलानां[1] दत्त्वाऽऽयसं चूर्णमनल्पकालम् ।
प्रवालमुक्ताऽञ्जन[2]शङ्खचूर्णं लिह्यात्तथा काञ्चनगैरिकोत्थम् ॥ २१ ॥
आजं शकृत्स्यात् कुडव[3]प्रमाणं विडं हरिद्रालवणोत्तमञ्च ।
पृथक्[4]पलांशानि समग्रमेतच्चूर्णं हिताशो मधुनाऽवलिह्यात् ॥ २२ ॥
मण्डूर[5]लोहाग्निविडङ्गपथ्याव्योषांशकः सर्वसमानताप्यः ।
मूत्रासुतोऽयं मधुनाऽवलेहः पाण्ड्वामयं हन्त्यचिरेण घोरम् ॥२३॥
बिभीतकायोमलनागराणां[6] चूर्णं तिलानाञ्च गुडश्च मुख्यः ।
तक्रानुपानो वटकः प्रयुक्तः क्षिणोति घोरानपि पाण्डुरोगान् ॥२४॥
सौवर्चलं हिङ्गु किराततिक्तं कलायमात्राणि सुखाम्बुना वा ।
मूर्वाहरिद्राऽऽमलकञ्च लिह्यात् स्थितं गवां सप्तदिनानि मूत्रे ॥२५॥
मूलं बलाचित्रकयोः पिबेद्वा पाण्ड्वामयार्तोऽक्षसमं[8] हिताशी ।
सुखाम्बुना वा लवणेन तुल्यं शिग्रोः फलं[9] क्षौद्रभुजोपयोज्यम् ॥२६॥
न्यग्रोधवर्गस्य[10] पिबेत् कषायं शीतं सिताक्षौद्रयुतं हिताशी ।
शालादिकं चाप्यथ [11]सारचूर्णं धात्रीफलं वा मधुनाऽवलिह्यात् ॥२७॥
विडङ्गमुस्तत्रिफलाऽजमोदपरूषकव्योषविनिर्दहन्यः[12] ।
चूर्णानि कृत्वा गुडशर्करे च तथैव सर्पिर्मधुनी शुभे च ॥ २८ ॥

---

१ त्रिफलादलानां त्रिफलात्वचां चूर्णमायसं लौहं चूर्णं दत्त्वा गोमूत्रयुक्तमनल्पकालं चिरकालं लिह्यादिति सम्बन्धः । २ अञ्जनं=रसाञ्जनम्, काञ्चनगैरिकोत्थं=सुवर्णगैरिकचूर्णम् । ३ कुडवप्रमाणं=षोडशतोलकप्रमाणम् । ४ पृथक् पलांशानि=पृथक्पलप्रमाणानि ।

५ पाण्डुरोगे सिद्धतमं योगमभिधत्ते—**मण्डूरेति** । मण्डूरादीनामंशः समो भागो यस्मिन् स मण्डूरलोहाग्निविडङ्गपथ्याव्योषांशकः, अग्निः=चित्रकः, सर्वसमानताप्यः=मण्डूरादिसर्वद्रव्यसमस्वर्णमाक्षिकः । ६ मूत्रासुतः=गोमूत्रसन्धानीकृत इत्यर्थः । ७ अन्यं सिद्धतमं योगं दर्शयति—**बिभीतकेति** । अयोमलं=लोहमलम् । ८ अक्षसमं=कर्षप्रमाणम् । ९ शिग्रोः फलं=शोभाञ्जनफलम् । अत्रापि कलायमात्रमनुवर्तनीयम् । १० न्यग्रोधवर्गस्य=न्यग्रोधादिगणस्य । ११ शालादिकं सारचूर्णमिति सम्बन्धः । शालसारादिचूर्णमित्यर्थः । १२ विनिर्दहनी=चित्रकः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भारमेतद्विपचेन्निधाय सारोदके सारवतो[1] गणस्य ।
जातञ्च लेह्यं मतिमान् विदित्वा निधापयेन्मोचकजे[2] समुद्गे ॥२९॥
हन्त्येष लेहः खलु पाण्डुरोगं सशोथमुग्रामपि कामलाञ्च ।
स[3]शर्करा कामलिनां त्रिभण्डी हिता गवाक्षी सगुडा च शुण्ठी ॥३०॥
कालेयके चापि घृतं विपक्वं हितं च तत्स्याद्रजनीविमिश्रम् ।
धा[4]तुं नदीजं जतु शैलजं वा कुम्भाह्वये मूत्रयुतं पिबेद्वा ॥ ३१ ॥
मूत्रे स्थितं सैन्धवसम्प्रयुक्तं मासं पिबेद्वाऽपि हि लोहकिट्ट[5]म् ।
द[6]ग्ध्वाऽक्षकाष्ठैर्मलमायसं वा गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ॥ ३२ ॥
विचूर्ण्य लीढं मधुना चिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्यात ।
सिन्धू[7]द्भवं वाऽग्निसमं च कृत्वा सिक्त्वा च मूत्रे सकृदेव तप्तम्॥३३॥
लौहञ्च किट्टं बहुशश्च तप्त्वा निर्वाप्य मूत्रे बहुशस्तथैव ।
एकीकृतं गोजलपिष्टमेतदैकध्यमावाप्य पचेदुखायाम्[8] ॥ ३४ ॥
यथा न दिह्येत तथा विशुष्कं चूर्णीकृतं पेयमुदञ्चिता तत् ।
तक्रौदनाशी विजयेत रोगं पाण्डुं तथा दीपयतेऽनलञ्च ॥ ३५ ॥
द्राक्षागुडूच्यामलकीरसैश्च सिद्धं घृतं लाघरके[9] हितञ्च ।

---

१ सारवतो गणस्य शालसारादिगणस्य सारोदके चतुर्भागावशिष्टप्रस्थमात्रे सारकाथे गुडशर्करे सर्पिश्च निक्षिप्य पचेत्, आसन्ने पाके विडङ्गादीनां चूर्णानि सारोदकचतुर्थभागानि प्रक्षिप्य अवतार्य शीतीभूते च तस्मिन् मधुनः सारोदकचतुर्थभागमेवावपेत्। २ मोचकजे समुद्गे = पाटलवृक्षसम्भूते सम्पुटे इत्यर्थः।

३ कामलाचिकित्सितं वक्ति—**सशर्करेति**। त्रिभण्डी = त्रिवृत्, गवाक्षी = इन्द्रवारुणी, सगुडेति गवाक्षी शुण्ठी उभयत्र अन्वेति। ४ कुम्भसाह्वयचिकित्सामाख्याति—**धातुमिति**। नदीजं धातुं = स्वर्णमाक्षिकम्, शैलजं जतु = शिलाजतु। ५ लोहकिट्टं = मण्डूरमित्यर्थः।

६ कुम्भसाह्वये सिद्धतमं तन्त्रान्तरे बिभीतकलवणाख्यं योगमभिदधाति—**दग्ध्वेति**। अक्षकाष्ठैः = बिभीतककाष्ठैः, आयसं मलं = लोहकिट्टम्, मण्डूरमिति यावत्। ७ सिन्धूद्भवं = सैन्धवम्। ८ उखायां = स्थाल्याम्। ९ लाघरकचिकित्सितं ब्रवीति—**द्राक्षेति**। अत्र पानकीहलीमकचिकित्सितमनुक्तमपि, तयोः पाण्डुरोगचिकित्सितं कर्तव्यम्। विशेषचिकित्सा तन्त्रान्तरे द्रष्टव्या।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौडानरिष्टान्मधुशर्कराश्च मूत्रासवान् क्षारकृतांस्तथैव ॥ ३६ ॥
स्निग्धान् रसानामलकैरुपेतान्कोलान्वितान्वाऽपि हि जाङ्गलानाम् ।
सेवेत शोफाभिहितांश्च योगान्पाण्ड्वामयी शालियवांश्च नित्यम् ॥३७॥
श्वासातिसारारुचिकासमूर्च्छातृट्छर्दिशूलज्वरशोफदाहान् ।
तथाऽविपाकस्वरभेदसादान् जयेद् यथास्वं प्रसमीक्ष्य शास्त्रम् ॥३८॥
अन्तेषु शूनं परिहीनमध्यं म्लानं तथाऽन्तेषु च मध्यशूनम् ।
गुदे च शेफस्यथ मुष्कशूनं प्रताम्यमानं च विसंज्ञकल्पम् ॥३९॥
विवर्जयेत् पाण्डुकिनं यशोऽर्थी तथाऽतिसारज्वरपीडितञ्च ॥४०॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे पाण्डुरोगप्रतिषेधो नाम ( षष्ठोऽध्यायः, आदितः ) चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४४॥

## पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो रक्तपित्तप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

---

१ पाण्डुरोगिणां सेव्यानि निर्दिशति—गौडानिति । गौडानरिष्टान् = अभयारिष्टप्रभृतीन्, मधुशर्कराः—मधुशब्देन मध्वासवः, शर्कराशब्देन शर्कराऽऽसवः, मध्वासवो लोहारिष्टप्रभृतिकः, मूत्रासवान् = कुष्ठचिकित्सितोक्तान्, क्षारकृतान् = इलीपदपठितानासवान् । २ शोफाभिहितान् = दैवदारुशुण्ठीरसादिकान् योगान् ।

३ पाण्डुरोगोपद्रवचिकित्सामभिदधाति—श्वासेति । ४ यथास्वं = यस्य यथाऽऽत्मीयम् । ५ पाण्डुरोगिणोऽसाध्यलक्षणं प्रतिपादयति—अन्तेष्विति । अन्तेषु = हस्तपादमुखेषु, परिहीनमध्यं = कृशमध्यशरीरम्, म्लानं = क्षीणम् । ६ प्रताम्यमानं = मूर्च्छन्तम्, विसंज्ञकल्पं = मृतसदृशम् । तन्त्रान्तरेऽसाध्यलक्षणानि—"ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः । पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः ॥ पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिद्धयति । कालप्रकर्षाच्छूनाङ्गो यो वा पीतानि पश्यति ॥" इति ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

### पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

७ पाण्डुरोगवद्रक्तपित्तस्यापि पित्तजन्यत्वात् पाण्डुरोगप्रतिषेधानन्तरं रक्तपित्तप्रतिषेधमधिकरोति—अथेति । रक्तं च पित्तं चेति द्वन्द्वसमासः, तत्प्रतिषेधो रक्तपित्तप्रति-



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रोधशोकभयायासविरुद्धान्नातपानलान् ।
कटूवम्ललवणक्षारतीक्ष्णोष्णातिविदाहिनः ॥ ३ ॥
नित्यमभ्यसतो दुष्टो रसः पित्तं प्रकोपयेत् ।
विदग्धं स्वगुणैः पित्तं विदहत्याशु शोणितम् ॥ ४ ॥
ततः प्रवर्त्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधाऽपि वा ।
आमाशयाद् व्रजेदूर्ध्वमधः पक्वाशयाद् व्रजेत् ॥ ५ ॥
विदग्धयोर्द्वयोश्चापि द्विधाभागं प्रवर्त्तते ।
केचित् सयकृतः प्लीह्नः प्रवदन्त्यसृजो गतिम् ॥ ६ ॥
ऊर्ध्वं साध्यमधोयाप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ।
सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः ॥ ७ ॥
लोहगन्धिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन् भविष्यति ।
बाह्यासृग्लक्षणैस्तस्य सङ्ख्यादोषोच्छ्रितीर्विदुः ॥ ८ ॥

---

षेधस्तम् । चरके रागपरिप्राप्तं पित्तं रक्तपित्तमित्युक्तं, तेन रक्तं च तत पित्तं चेति कर्मधारयः, उभयथाऽपि निरुक्तौ अदोषः । "संयोगाद् दूषणात्तत्तु सामान्याद् गन्धवर्णयोः । रक्तस्य पित्तमाख्यातं रक्तपित्तं मनीषिभिः ॥" इति चरकवचनम् । अर्थाद् रक्तस्य संयोगात् तथा रक्तस्य दूषणात् तथा रक्तस्य गन्धवर्णयोः पित्ते सामान्यात् पित्तं रक्तपित्तमित्युच्यत इति तदीयवाक्यार्थः ।

१ रक्तपित्तस्य निदानं सम्प्राप्तिं च दर्शयति—क्रोधेति । क्रोधशोकेत्यादिर्हेतुः । नित्यमभ्यसत इत्यादिः सम्प्राप्तिः । २ विदग्धं=दूषितम्, स्वगुणैः=स्वकारणैर्गुणैस्तीक्ष्णादिभिः । गुणैरिति बहुत्वेन तीक्ष्णाम्ललवणकटूष्णधर्मादयो बोध्याः । विदहति=दूषयति । ३ ऊर्ध्वं=नासाऽक्षिकर्णास्यतः, अधः=मेढ्योनिगुदतः । तदुक्तम्—"ऊर्ध्वं नासाऽक्षिकर्णास्यैर्मेढ्योनिगुदैरधः । कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत् प्रवर्तते ॥" इति ।

४ रक्तस्य ऊर्ध्वमधो वेति द्विधा प्रवर्तनं स्फोरयति—आमाशयादिति । ५ विदग्धयोः=दूषितयोरित्यर्थः । ६ रक्तपित्तस्य पूर्वरूपमाख्याति—सदनमिति । सदनम्=अङ्गग्लानिः, शीतकामित्वं=शीतेऽभिलाषः, कण्ठधूमायनं=कण्ठाद्धूमनिर्गम इव वेदना । ७ लोहगन्धिः=ध्मायमानलोहस्येव श्वासे गन्धः ।

८ रक्तपित्तस्य संख्यां दोषोच्छ्रयं चातिदेशेन दर्शयति—बाह्येति । बाह्यासृग्लक्षणैः=शोणितवर्णनीयोपदिष्टैः फेनिलमरुणमित्यादिभिर्दोषदुष्टलक्षणैरित्यर्थः । तस्य=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौर्बल्यं[1] श्वासकासज्वरवमथुमदास्तन्द्रितादाहमूर्च्छा
भुक्ते चान्ने विदाहस्त्वधृतिरपि[2] सदा हृद्यतुल्या च पीडा ।
तृष्णा कण्ठस्य भेदः शिरसि च दवः[3] पूतिनिष्ठीवनञ्च
द्वेषो भक्तेऽविपाको विरतिरपि[4] रते रक्तपित्तोपसर्गाः ॥ ९ ॥
मांसप्रक्षालनाभं[5] क्वथितमिव च यत् कर्दमाम्भोनिभं वा
मेदःपूयास्रकल्पं[6] यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम् ।
यत् कृष्णं यच्च नीलं भृशमतिकुणपं[7] यत्र चोक्ता विकारा-
स्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा[8] यच्च तुल्यं विभाति ॥ १० ॥
नादौ सङ्ग्राह्यमुद्रिक्तं[9] यदसृग् बलिनोऽश्नतः ।
तत् पाण्डुग्रहणीकुष्ठप्लीहगुल्मज्वरावहम् ॥ ११ ॥
अधःप्रवृत्तं वमनैरूर्ध्वगं च विरेचनैः ।
जयेदन्यतरद्वाऽपि क्षीणस्य [10]शमनैरसृक् ॥ १२ ॥
अतिप्रवृद्धदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ।
अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्त्तव्यमपतर्पणम्[11] ॥ १३ ॥
लङ्घितस्य[12] ततः पेयां विदध्यात् स्वल्पतण्डुलाम् ।
रसयूषौ प्रदातव्यौ सुरभिस्नेहसंस्कृतौ ।

---

रक्तपित्तस्य, संख्या = सप्तविधा, दोषोच्छ्रितिः = दोषोल्बण्यम् । १ रक्तपित्तस्योपद्रवान् निर्दिशति—दौर्बल्येति । वमथुः = छर्दिः । २ अधृतिः = असन्तोषः, अतुल्या = असाधारणा । ३ दवनं = सन्तापः । ४ रतेरपि विरतिः = सुखस्यापि विनाश इत्यर्थः ।

५ असाध्यरक्तपित्तस्य लक्षणमभिदधाति—मांसेति । मांसप्रक्षालनाभं = मांसधावनजलाभम्, कर्दमाम्भोनिभं = पङ्कमिश्रितजलसदृशम् । ६ मेदःपूयास्रकल्पं = मेदःपूयरक्तसदृशम् । ७ अतिकुणपं = शटितशवगन्धि, उक्ता विकाराः = दौर्बल्यश्वासादय उपद्रवाः । ८ सुरपतिधनुषा = इन्द्रधनुषा । ९ प्राग् बलवति रक्तपित्ते सङ्ग्रहणनिषेधं दर्शयति—नादाविति । उद्रिक्तम् = अत्यन्तवृद्धिं गतम् । १० शमनैर्न तु वमनविरेकैः । तन्त्रान्तरेऽपि—"ऊर्ध्वगं वाऽप्यधोगं वा क्षीणस्य शमनैर्जयेत्" इति । ११ अपतर्पणं = लङ्घनमित्यर्थः ।

१२ लङ्घनानन्तरं यत् कर्तव्यं तदुपदिशति—लाङ्घितस्येति । तन्त्रान्तरे विशेषः—"अधोवहे यवाग्वादि न चेत् स्यान्मारुतो बली । ऊर्ध्वगे तर्पणं शस्तं यथादोषमथापि

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्पणं पाचनं[1] लेहान् सर्पींषि विविधानि च ॥ १४ ॥
द्राक्षा[2]मधुककाश्मर्य्यसितायुक्तं विरेचनम् ।
यष्टीमधुकयुक्तं च सक्षौद्रं वमनं हितम् ॥ १५ ॥
पयांसि[3] शीतानि रसाश्च जाङ्गलाः सतीनयूषाश्च सशालिषष्टिकाः ।
पटोलशेलूसुनिषण्णयूथिकावटातिमुक्ताङ्कुरसिन्दुवारजम् ॥ १६ ॥
हितञ्च शाकं घृतसंस्कृतं सदा तथैव धात्रीफलदाडिमान्वितम् ।
रसाश्च पारावतशङ्कुकूर्मजास्तथा यवाग्वोऽभिहिता घृतोत्तरा[5]ः ॥१७॥
सन्तानिकाश्चोत्पलवर्गसाधिते क्षीरे प्रशस्ता मधुशर्करोत्तराः ।
हिमाः[6] प्रदेहा मधुरा गणाश्च ये घृतानि पथ्यानि च रक्तपित्तिनाम्१८
मधूकशोभाञ्जनकोविदारजैः प्रियङ्गुकायाः कुसुमैश्च चूर्णितैः ।
भिषग्विदध्याच्चतुरः समाक्षिकान्हिताय लेहानसृजः प्रशान्तये॥१९॥
लिह्याच्च दूर्वावटजांश्च पल्लवान् मधुद्वितीयान् सितकर्णिकस्य च ।
हितञ्च खर्जूरफलं समाक्षिकं फलानि[7] चान्यान्यपि तद्गुणान्यथ २०
रक्तातिसारप्रोक्तांश्च योगान्[10]त्रापि योजयेत् ।
शुद्धेक्षुकाण्डमापोथ्य[11] नवे कुम्भे हिमाम्भसा ॥ २१ ॥

---

वा ॥" इति । १ पाचनं = हीवेरचन्दनोशीरादिसाधितजलम्, लेहान् = मधूकशोभाञ्जनकोविदारजैरित्यादिना वक्ष्यमाणान्, सर्पींषि = वासाघृतादीनि । २ रक्तपित्ते वमनविरेचनयोर्द्रव्याणि निर्दिशति—**द्राक्षेति** । काश्मर्यं=गम्भारीशब्दवाच्यम् ।

३ रक्तपित्ते भोजनद्रव्याणि निर्दिशति—**पयांसीति** । उत्पलादिद्रव्यसिद्धशीतानि पयांसि पित्तोल्बणे बोध्यानि, जाङ्गला रसा वातोल्बणे, सतीनयूषा वर्तुलकलायय्यूषाः सशालिषष्टिकाः पित्तोल्बणे । ४ अङ्कुराः = पटोलादीनां कोमलपल्लवाः, पटोलादिशाकमपि कफानुबन्धे शस्तम् । ५ घृतोत्तराः = घृतप्रधानाः । ६ हिमाः = न्यग्रोदिशीतलगणसाधितेन शीताः, प्रदेहाः = लेपाः, मधुरा गणाः = काकोल्यादयः, घृतानि = मधुरगणसंस्कृतानि ।

७ रक्तपित्ते लेहमभिदधाति—**मधूकेति** । अत्र मधूक–शोभाञ्जन-कोविदार–प्रियङ्गुकानां कुसुमैरेकैकैश्चत्वारो लेहा ज्ञातव्याः । ८ सितकर्णिकस्य = श्वेतकर्णिकारस्य । सितकर्णिको वासक इति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । ९ अन्यानि फलानि = खर्जूरफलतुल्यगुणानि । १० प्रियालमल्लिकेत्यादीन् योगानित्यर्थः । ११ शुद्धेक्षुकाण्डं = वल्कलरहितेक्षुकाण्डम्, शुक्लेक्षुकाण्डमिति पाठान्तरम् । आपोथ्य=सङ्कुट्य,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योजयित्वा क्षिपेद्रात्रावाकाशे[1] सोत्पलन्तु तत् ।
प्रातः स्रुतं[2] क्षौद्रयुतं पिबेच्छोणितपित्तवान् ॥ २२ ॥
पिबेच्छीतकषायं वा जम्ब्वाम्रार्जुनसम्भवम् ।
उडुम्बरफलं पिष्ट्वा पिबेत्तद्रसमेव[4] वा ॥ २३ ॥
त्रपुषीमूलकल्कं[5] वा सक्षौद्रं[6] तण्डुलाम्बुना ।
पिबेदक्षसमं[7] कल्कं यष्टीमधुकमेव[8] वा ॥ २४ ॥
चन्दनं मधुकं रोध्रमेवमेव[9] समं पिबेत् ।
करञ्जबीजमेवं वा सिताक्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ २५ ॥
मज्जानमिङ्गुदस्यैवं पिबेन्मधुकसंयुतम् ।
सुखोष्णं लवणं बीजं कारञ्जं दधिमस्तुना ॥ २६ ॥
पिबेद्वाऽपि त्र्यहं मर्त्यो रक्तपित्ताभिपीडितः ।
रक्तपित्तहराः शस्ताः षडेते योगसत्तमाः ॥ २७ ॥
पथ्याश्चैवावपीडेषु घ्राणतः प्रस्रुतेऽसृजि ।
अतिनिस्रुतरक्तो वा क्षौद्रयुक्त पिबेदसृक् ।
यकृद्वा भक्षयेदाजमांसं पित्तसमायुतम् ॥ २८ ॥
पलाशवृन्तस्वरसे विपक्वं सर्पिः पिबेत् क्षौद्रयुतं सुशीतम् ।
वनस्पतीनां[10] स्वरसैः कृतं वा सशर्करं क्षीरघृतं पिबेद्वा ॥ २९ ॥
द्राक्षामुशीराण्यथ पद्मकं सिता[11] पृथक्पलांशान्युदके समावपेत् ।
स्थितं निशां तद्रुधिरामयं जयेत्पीतं पयो वाऽम्बुसमं[12] हिताशिनः ॥३०॥

---

हिमाम्भसा = शीतलजलेन । १ आकाशे=निरावृते देशे, उत्पलं=नीलोत्पलम् । २ स्रुतं=गालितमित्यर्थः । ३ पिबेद् मधुना सहेत्यर्थः । शीतकषायलक्षणं ज्वरप्रतिषेधे प्रोक्तम् । ४ तद्रसमुदुम्बरफलरसम्, पिबेद् मधुयुतमित्यत्रापि सम्बन्धनीयम् ।

५ रक्तपित्ते सिद्धतमान् षड् योगान् दर्शयति—त्रपुषीति । त्रपुषी='खीरा' इति ख्याता । सक्षौद्रं=समधु, तच्च कर्षप्रमाणं ग्राह्यम् । तण्डुलाम्बुना कल्कचतुर्गुणेन । ६ अक्षसमं=कर्षप्रमितम् । ७ एवमेव=मधुना तण्डुलाम्बुना च सहेत्यर्थः । ८ मधुकसंयुतं=यष्टीमधुयुक्तम् । ९ पथ्याः=अनन्तरोक्ताः त्रपुसीमूलकल्कं वेत्यादिका षड् योगा हिता इत्यर्थः । १० वनस्पतीनां=वटादीनाम्, क्षीरमथनोत्थं घृतं क्षीरघृतम् । ११ सिता=शर्करा । १२ पयो वाऽम्बुसमं=क्षीरं जलं च सममित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुरङ्गवर्च्चःस्वरसं[1] समाक्षिकं पिबेत्सिताक्षौद्रयुतं वृषस्य वा ।
लिहेत्तथा वास्तुकबीजचूर्णं क्षौद्रान्वितं तण्डुलसाह्वयं[2] वा ॥ ३१ ॥
लिह्याच्च लाजाञ्जनचूर्णमेकमेवं सिताक्षौद्रयुतां तुगाख्याम्[3] ।
द्राक्षां सितां तिक्तकरोहिणीञ्च[4] हिमाम्बुना वा मधुकेन युक्ताम् ॥३२॥
पथ्यामहिंस्रां[5] रजनीं घृतञ्च लिह्यात्तथा शोणितपित्तरोगी ।
वासाकषायोत्पलमृत्प्रियङ्गुरोध्राञ्जनाम्भोरुहकेशराणि[6] ॥ ३३ ॥
पीत्वा सिताक्षौद्रयुतानि जह्यात्पित्तासृजो वेगमुदीर्णमाशु ।
गायत्रिजम्ब्वर्जुनकोविदारशिरीषरोध्राशनशाल्मलीनाम्[7] ॥ ३४ ॥
पुष्पाणि शिग्रोश्च विचूर्ण्य लेहो मध्वन्वितः शोणितपित्तरोगे ।
सक्षौद्रमिन्दीवरभस्मवारि[8] करञ्जबीजं मधुसर्पिषी च ॥ ३५ ॥
जम्ब्वर्जुनाम्रक्वथितञ्च तोयं घ्नन्ति त्रयः पित्तमसृक् च योगाः ।
मूलानि पुष्पाणि च मातुलुङ्गचाः[9] पिष्ट्वा पिबेत्तण्डुलधावनेन॥३६॥
घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं नासिकया पयो वा ।
द्राक्षारसं[10] क्षीरघृतं पिबेद्वा सशर्करञ्चेक्षुरसं हिमं वा ॥ ३७ ॥
शीतोपचारं मधुरञ्च कुर्य्याद्विशेषतः शोणितपित्तरोगे ।
द्राक्षाघृतक्षौद्रसितायुतेन[11] विदारिगन्धादिविपाचितेन ॥ ३८ ॥

---

१ तुरङ्गवर्चःस्वरसं = घोटकपुरीषस्वरसम् । २ तण्डुलसाह्वयं = तण्डुलीयम् । ३ लाजाः=भृष्टधान्यानि, अञ्जनं=रसाञ्जनम्, एकं = प्रधानम्, तुगाख्या = वंशरोचना । ४ तिक्तकरोहिणी = कुटकीशब्दवाच्या । ५ अहिंस्रा = 'बालछड़' इति ख्याता । रजनी = हरिद्रा । घृतं घृतेन सहेत्यर्थः ।

६ वेगयुक्ते रक्तपित्ते सिद्धतमयोगं दर्शयति—वासेति । वासाकषायः = वासाक्वाथः, उत्पलं = नीलोत्पलम्, मृत्=मुलतानीमिट्टी' इति प्रथते । अम्भोरुहकेशरं=पद्मकेशरम् । ७ गायत्री = खदिरः । ८ भस्मवारि = क्षारोदकम् । ९ मातुलुङ्ग्याः = बीजपूरकस्य । १० द्राक्षारसमित्यादिना योगत्रयमुच्यते । यथा द्राक्षारसं सशर्करं, क्षीरघृतं क्षीरमथनोत्थं घृतं सशर्करम्, इक्षुरसं हिमं सशर्करं च पिबेद् नासिकयेति सम्बन्धः । तन्त्रान्तरेऽपि—"द्राक्षारसस्य नस्यं नस्यं वा क्षीरसर्पिषः सपदि। इक्षो रसस्य नस्यं सशर्करं रक्तनुद् भवति ॥" इति ।

११ रक्तपित्ते आस्थापनार्थं क्षीरमनुवासनार्थं घृतं चाभिदधाति—द्राक्षेति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षीरेण चास्थापनमग्र्यमुक्तं हितं घृतञ्चाप्यनुवासनार्थम् ।
प्रियङ्गुरोध्राञ्जनगैरिकोत्पलैः सुवर्णकालीयकरक्तचन्दनैः ॥ ३९ ॥
सिताऽश्वगन्धाऽम्बुदयष्टिकाह्वयैर्मृणालसौगन्धिकतुल्यपेषितैः ।
निरूह्य चैनं पयसा समाक्षिकैर्घृतप्लुतैः शीतजलावसेचितम् ॥४०॥
क्षीरौदनं भुक्तमथानुवासयेद् घृतेन यष्टीमधुसाधितेन च ।
अधोवहं शोणितमेष नाशयेत् तथाऽतिसारं रुधिरस्य दुस्तरम् ॥४१॥
विरेकयोगे त्वति चैव शस्यते वाम्यश्च रक्ते विजिते बलान्वितः॥४२॥
एवंविधा उत्तरबस्तयश्च मूत्राशयस्थे रुधिरे विधेयाः ।
प्रवृत्तरक्तेषु च पायुजेषु कुर्य्याद्विधानं खलु रक्तपैत्तम् ॥ ४३ ॥
विधिश्चास्रग्दरेऽप्येष स्त्रीणां कार्य्यो विजानता ।
शस्त्रकर्मणि रक्तं च यस्यातीव प्रवर्त्तते ॥ ४४ ॥
त्रयाणामपि दोषाणां शोणितेऽपि च सर्वशः ।
लिङ्गान्यालोक्य कर्तव्यं चिकित्सितमनन्तरम् ॥ ४५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे रक्तपित्तप्रतिषेधो नाम ( सप्तमोऽध्यायः, आदितः ) पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

---

१ अग्र्यं=श्रेष्ठमित्यर्थः । २ आस्थापनानुवासनयोरपरं योगमभिधत्ते—प्रियङ्ग्वित्ति । प्रियङ्गुः=फलिनी, अञ्जनं=सौवीराञ्जनम्, उत्पलं=नीलोत्पलम्, सुवर्णं=सुवर्णगैरिकम्, कालीयकं=पीतचन्दनमित्यर्थः । ३ अम्बुदः=मुस्ता, यष्टिकाह्वयः=मधुकम्, सौगन्धिकं=कह्लारम् ।

४ एषः=आस्थापनानुवासनप्रयोगः, रुधिरस्यातिसारं=रक्तातिसारम् । ५ विरेकयोगे त्वति=विरेकातियोगे इत्यर्थः । वाम्यश्च रक्ते विजिते बलान्वितः—अर्थाद् आस्थापनानुवासनाभ्यां विजिते रक्ते रक्तपित्ते सति बलान्वितः पुरुषो वाम्यो वामनीय इत्यर्थः । ६ एवंविधाः=अनन्तरोक्तास्थापनानुवासनसदृशाः, मूत्राशयस्थे=बस्तिस्थे । ७ पायुजेषु=अर्शस्सु । ८ एषः=रक्तपित्तघ्नो विधिरित्यर्थः ।

**इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।**

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो मूर्च्छाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः ।
वेगाघातादभीघाताद्धीनसत्त्वस्य वा पुनः ॥ ३ ॥
करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ।
निविशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ ४ ॥
हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञानाशो बलस्य च ।
सर्वासां पूर्वरूपाणि, यथास्वं ता विभावयेत् ॥ ५ ॥
संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः ।
तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ६ ॥
सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ।
मोहो मूर्च्छेति तां प्राहुः षड्विधा सा प्रकीर्त्तिता ॥ ७ ॥

---

षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ रक्तपित्तप्रतिषेधानन्तरं पित्तकृतत्वसाधर्म्याद् मूर्च्छाप्रतिषेधमधिकरोति—**अथेति**। तदुक्तम्—"मूर्च्छा पित्ततमः प्राया" इति। २ मूर्च्छाया निदानं सम्प्राप्तिं चाह—**क्षीणस्येति**। बहुदोषस्य = अधिकदोषस्य न त्वनेकदोषस्य, विरुद्धाहारः क्षीरमत्स्यादिस्तस्य सेविन इत्यर्थः। वेगाघातात् = मलादिवेगधारणात्, अभीघातात् = लगुडादिना घातात्, हीनसत्त्वस्य = अल्पसत्त्वगुणस्येत्यर्थः।

३ करणायतनेषु = बुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रियमनोबुद्ध्यहङ्कारस्थानेषु, बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु = बाह्यकरणायतनानि कर्मेन्द्रियाणि, आभ्यन्तरकरणायतनानि मनोबुद्ध्यहङ्कारस्थानानि, तेषु यदा उग्रा अतिप्रवृद्धाः प्रसृताश्च दोषा निविशन्ते तदा मानवा मूर्च्छन्तीति सम्बन्धनीयम्।

४ मूर्च्छायाः पूर्वरूपमुपदिशति—**हृत्पीडेति**। बलस्य च नाश इत्यर्थः। ५ यया प्रक्रियया मानवो मूर्च्छति तां दर्शयति—**सञ्ज्ञेति**। नाडीषु = सिराधमनीस्रोतस्सु, पिहितासु = आवृतासु, तमः = मनोगुणोऽज्ञानहेतुः, सुखदुःखव्यपोहकृत् = सुखदुःखज्ञाननाशकृदित्यर्थः।

६ मोहो मूर्च्छेति तस्याः पर्यायौ, मूर्च्छायोऽपि पर्यायः। तदुक्तम्—"सञ्ज्ञोपघाते मूर्च्छायो मूर्च्छा स्यान्मूर्च्छनं तथा। कश्मलं प्रलयो मोहः संन्यासस्तु मृतोपमः॥"

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ।
षट्स्वप्येतासु पित्तं हि प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ८ ॥
अपस्मारोक्तलिङ्गानि तासामुक्तानि तत्त्वतः ।
पृथिव्यम्भस्तमोरूपं रक्तगन्धश्च तन्मयः ॥ ९ ॥
तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः ।
द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ॥ १० ॥
गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ।
त एव तस्माज्जायेत मोहस्ताभ्यां यथेरितः ॥ ११ ॥
स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वस्रूजा गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ।
मद्येन विलपन् शेते नष्टविभ्रान्तमानसः ।
गात्राणि विक्षिपन् भूमौ जरां यावन्न याति तत् ॥ १२ ॥
वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युः स्तम्भश्च विषमूर्च्छिते ।

---

इति । षड्विधेत्यादिना मूर्च्छायाः षाड्विध्यं दर्शयति । तन्त्रान्तरे चतस्रो मूर्च्छाः—"चत्वारो मूर्च्छाया इत्यपस्मारैर्व्याख्याताः" इति चरकः । १ प्रभुत्वेन=व्यापकत्वेनेत्यर्थः । २ वातजादीनां तिसृणां मूर्च्छानामतिदेशेन लक्षणान्यभिधाय रक्तजायाः सम्प्राप्तिं लक्षणं चाभिदधाति—**पृथिवीति** । पृथिव्यम्भः=पृथिवीजलम् , तमोरूपं=तमोबहुलम् , तदुक्तं भगवता सुश्रुतेन स्वयमेव शारीरे—"तमोबहुला पृथिवी, सत्त्वतमोबहुला आपः" इति । रक्तगन्धश्च तन्मयः पृथिवीजलमयः, द्रवत्वाद् रक्तमम्भोमयम् , पार्थिवत्वाद् गन्धः पृथिवीमय इत्यर्थः । 'रक्तगन्धस्तदन्वयः' इति पाठान्तरम् ।

३ यस्मात् पृथिव्यम्भस्तमोबहुलं, रक्तगन्धश्च पृथिवीजलमयः, मूर्च्छा च तमःप्राया, तस्मादित्यर्थः । मानवाः=ये तामसाः, न तु सात्त्विका राजसाश्च । ४ भोजे यथा—"स्तब्धाङ्गदृष्टिर्भवति गूढोच्छ्वासस्तथैव च । दर्शनादसृजस्तज्जाद् गन्धाच्चैव विमुह्यति ॥" इति ।

५ विषमद्योत्थेऽभिधत्ते—**गुणा इति** । गुणाः=रूक्षादयः, विषे तीव्रतरत्वेन, मद्ये तीव्रत्वेनेत्यर्थः । तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"ये विषस्य गुणाः प्रोक्ताः सन्निपातप्रकोपणाः । त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः ॥" इति । ६ ताभ्यां=विषमद्याभ्याम् । ७ रक्तजादिमूर्च्छात्रितयलक्षणं दर्शयति—**स्तब्धाङ्गेति** । गूढोच्छ्वासः=अस्पष्टोच्छ्वासः । ८ नष्टं स्मृतिरहितं विभ्रान्तं विक्षिप्तं मानसं चित्तं यस्य स नष्टवि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं वि[1]लक्षणैः ॥ १३ ॥
सेकावगाहौ मणयः सहाराः शीता प्रदेहा व्यजनानिलाश्च ।
शीतानि पान[3]ानि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥१४॥
सितां[4]पियालेक्षुरसप्लुतानि द्राक्षामधूकस्वरसान्वितानि ।
खर्जूरकाश्मर्य्यरसैः श्रृतानि पानानि सर्पींषि च जीवन[5]ानि ॥ १५ ॥
सिद्धानि वर्गे मधु[6]रे पयांसि सदाडिमा जाङ्गलजा रसाश्च ।
तथा यवा लोहितशालयश्च मूर्च्छासु पथ्याश्च सदा सत[7]ीनाः ॥१६॥
भुज[8]ङ्गपुष्पं मरिचान्युशीरं कोलस्य मध्यञ्च पिबेत् समानि ।
शीतेन तोयेन बिस[9]ं मृणालं क्षौद्रेण कृष्णां सितया च पथ्याम् ॥१७॥
कुर्य्याच्च नासावदनावरोधं क्षीरं पिबेद्वाऽप्यथ मानुषीणाम् ।
मूर्च्छां प्रसक्तां तु [10]शिरोविरेकैर्जयेदभीक्ष्णं वमनैश्च तीक्ष्णैः ॥१८॥
हरीतकीक्वाथश्रृतं घृतं वा [11]धात्रीफलानां स्वरसैः कृतं वा ।
द्राक्षासितादाडिमलाजवन्ति शीतानि [12]नीलोत्पलपद्मवन्ति ॥१९॥
पिबेत् कषायाणि च गन्धवन्ति पित्तज्वरं यानि शमं नयन्ति ।
[13]प्रभूतदोषस्तमसोऽतिरेकात्सम्मूर्च्छितो नैव विबुध्यते यः ॥२०॥

---

भ्रान्तमानसः । १ विषस्य मूलकन्दपत्रक्षीरादिप्रभेदेन यल्लक्षणं कल्पस्थानेऽभिहितं तल्लक्षणैरिव तीव्रतरत्वेन युक्ता मूर्च्छा भवतीत्यर्थः ।

२ मूर्च्छाचिकित्सामाख्याति—**सेकेति** । सेकावगाहावपि शीतावेव बोध्यौ । मणयः = चन्द्रकान्तादयः, हाराः = मुक्तादिहाराः, प्रदेहाः = चन्दनोत्पलप्रभृतिविहिताः प्रलेपा इत्यर्थः । ३ पानानि = पानकानि, गन्धवन्ति = कर्पूरादिसुगन्धवन्ति, अनिवारितानि = प्रशस्तानि । ४ शीतानि गन्धवन्ति च पानान्येव निर्दिशति—**सितेति** । सिता = शर्करा, प्रियालः = 'चिरौंजी' इति ख्यातः । ५ जीवनानि सर्पींषि = जीवकर्षभकादिसाधितानि घृतानीत्यर्थः । ६ मधुरे वर्गे = काकोल्यादिमधुरवर्गे । ७ सतीनः = वर्तुलकलायः । ८ भुजङ्गपुष्पं = नागकेसरम् । ९ बिसं = सूक्ष्ममृणालम्, मृणालं = पद्मनालम्, कृष्णा = पिप्पली, पथ्या = हरीतकी । १० शिरोविरेकैः = नस्यैरित्यर्थः । ११ धात्रीफलानाम् = आमलकफलानाम् । १२ नीलोत्पलपद्मवन्तीत्यादिकं पित्तज्वरहरकषायविशेषणम् ।

१३ मूर्च्छाभेदसंन्यासस्य लक्षणमभिदधाति—**प्रभूतेति** । अतिरेकात् = अतिशयवर्द्धनात् । संन्यासस्य मूर्च्छादिभ्यो भेदमाह तन्त्रान्तरे—"दोषेषु मदमूर्च्छायाः कृत-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संन्यस्तसंज्ञो भृशदुश्चिकित्स्यो ज्ञेयस्तदा बुद्धिमता मनुष्यः ।
यथाऽऽमलोष्टं सलिले निषिक्तं समुद्धरेदाश्वविलीनमेव ॥ २१ ॥
तद्वच्चिकित्सेत्त्वरया भिषक्तमस्वेदनं मृत्युवशं प्रयातम् ।
तीक्ष्णैरञ्जनाभ्यञ्जनधूमयोगैस्तथा नखाभ्यन्तरतोत्रपातैः ॥ २२ ॥
वादित्रगीतानुनयैरपूर्वैर्विघट्टनैर्गुप्तफलावघर्षैः ।
आभिः क्रियाभिश्च न लब्धसंज्ञः सानाहलालाश्वसनश्च वर्ज्यः ॥ २३ ॥
प्रबुद्धसंज्ञं वमनानुलोम्यैस्तीक्ष्णैर्विशुद्धं लघुपथ्यभुक्तम् ।
फलत्रिकैश्चित्रकनागराद्यैस्तथाऽश्मजाताज्जतुनः प्रयोगैः ।
सशर्करैर्मासमुपक्रमेत विशेषतो जीर्णघृतं स पाय्यः ॥ २४ ॥
यथास्वञ्च ज्वरघ्नानि कषायाण्युपयोजयेत् ।
सर्वमूर्च्छापरीतानां विषजायां विषापहम् ॥ २५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे मूर्च्छाप्रतिषेधो नाम
( अष्टमोऽध्यायः, आदितः ) षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

---

वेगेषु देहिनाम् । स्वयमेवोपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना ॥" इति । १ संन्यास-संन्यस्तस्य शीघ्रं चिकित्साकरणाय निदर्शयति—यथेति । आमलोष्टम् = अपक्वमृत्पिण्डम् । २ तं = संन्यासम् , अस्वेदनं = स्वेदरहितमित्यर्थः ।

३ तीक्ष्णशब्दस्य अञ्जनादिभिः प्रत्येकं सम्बन्धः । नखाभ्यन्तरतोत्रपातैः = नखाभ्यन्तरे सूचीप्रकारस्य तोत्रस्य व्यधनैरित्यर्थः । ४ गुप्तफलावघर्षैः = कपिकच्छूफलावघर्षणैः । गुप्तफलं वृषणं तस्यावघर्षणैः पीडनैरित्यन्ये । ५ श्वसनः = श्वासः । ६ तीक्ष्णाञ्जनादिभिः प्रबुद्धसंज्ञमित्यर्थः । तीक्ष्णैर्वमनानुलोम्यैः = तीक्ष्णवमनविरेचनैः । ७ जतुनः = शिलाजतुनः । ८ जीर्णघृतं = दशाब्दिकघृतम् । ९ यथास्वं = यथादोषम् । १० विषापहं = विषमोहशमनं कल्पस्थानोक्तनस्याञ्जनादिकमित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽख्यटिप्पन्यां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः पानात्ययप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

मद्यमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मं विशदमेव च ।
रूक्षमाशुकरञ्चैव व्यवायि च विकाशि च ॥ ३ ॥
औष्ण्याच्छीतोपचारं तत्तैक्ष्ण्याद्धन्ति मनोगतिम् ।
विशत्यवयवान् सौक्ष्म्याद्वैशद्यात्कफशुक्रनुत् ॥ ४ ॥
मारुतं कोपयेद्रौक्ष्यादाशुत्वाच्चाशुकर्मकृत् ।
हर्षदञ्च व्यवायित्वाद्विकाशित्वाद्विसर्पति ॥ ५ ॥
तदम्लं रसतः प्रोक्तं लघु रोचनदीपनम् ।
केचिल्लवणवर्ज्यास्तु रसानत्रादिशन्ति हि ॥ ६ ॥
स्निग्धैस्तदन्नैर्मांसैश्च भक्ष्यैश्च सह सेवितम् ।

---

## सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

१ "मूर्च्छा, मद्येन च विषेण च" इति स्मृत्या मूर्च्छाप्रतिषेधानन्तर पानात्यय-प्रतिषेधमधिकरोति—**अथात इति** । अत्येति विनश्यत्यनेनेति अत्ययो व्याधिः । पान-शब्दो मद्ये रूढः, पानमूलोऽत्ययः पानात्ययः । अत्र आदिशब्दो लुप्तो निर्दिष्टः, तेन परमदादयोऽपि गृह्यन्ते । २ मद्यस्य गुणकर्मणी निर्दिशति—**मद्यमिति** । सूत्रस्थाने मद्यगुणा उक्ता अपि, अत्र पुनस्ते अधिकप्रदर्शनार्थमुच्यन्ते । ३ व्यवायि = सर्वदेह-व्यापकत्वम् , विकाशि = विकसनशीलम् । ४ बाह्याध्यात्मिकां मनोगतिमित्यर्थः । ५ अवयवान् = हृदयौजःप्रभृतीन् , "सौक्ष्म्यान्मद्यं निहन्त्येवमोजसः स्वगुणैर्गुणान्" इति चरकः ।

६ मद्यरसमभिदधाति—**तदम्लमिति** । तत् = मद्यम् , अम्लम् = अम्लरसव्य-क्तम् । तदुक्तम्—"मद्यस्य षड्रसत्वेऽपि व्यक्तोऽम्लो रस उच्यते" इति । तेन मद्ये अपरेऽपि रसा अनुरसत्वेन ज्ञातव्याः । तथा च तन्त्रान्तरम्—"मद्यस्याम्लस्वभावस्य चत्वारोऽनुरसाः स्मृताः । मधुरश्च कषायश्च कटुकस्तिक्त एव च ॥" इति । भोजः—"मदिराया रसा व्यक्ता मधुरोषणतिक्तकाः । लवणाम्लकषायाश्च त्रयः सूक्ष्मतराः स्मृताः ॥ विपर्ययेणैतदेवं मैरेये कथिता रसाः । माध्वीके सीधुसञ्ज्ञे च व्यक्तौ चाम्लकटू रसौ । व्यक्ता हि शेषाश्चत्वारो रसा भोजेन कीर्तिताः ॥" इति ।

७ विधिसेवितमद्यगुणान् वक्ति—**स्निग्धैरिति** । अन्नैः = गोधूमादिभिः । "वि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवेदायुःप्रकर्षाय बलायोपचयाय च ॥ ७ ॥
काम्यता मनसस्तुष्टिर्धैर्य्यं तेजोऽतिविक्रमः ।
विधिवत् सेव्यमाने तु मद्ये सन्निहिता गुणाः ॥ ८ ॥
तदेवानन्तमज्ञेन सेव्यमानममात्रया ।
कायाग्निना ह्यग्निसमं समेत्य कुरुते मदम् ॥ ९ ॥
मदेन करणानान्तु भावान्यत्वे कृते सति ।
निगूढमपि भावं स्वम्प्रकाशीकुरुतेऽवशः ॥ १० ॥
त्र्यवस्थश्च मदो ज्ञेयः पूर्वो मध्योऽथ पश्चिमः ।
पूर्वे वीर्यरतिप्रीतिहर्षभाष्यादिवर्द्धनम् ॥ ११ ॥
प्रलापो मध्यमे मोहो युक्तायुक्तक्रियास्तथा ।
विसंज्ञः पश्चिमे शेते नष्टकर्मक्रियागुणः ॥ १२ ॥
श्लैष्मिकानलपित्तांश्च स्निग्धान् मात्रोपसेविनः ।
पानं न बाधतेऽत्यर्थं विपरीतांस्तु बाधते ॥ १३ ॥
निर्भक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् ।
उत्पादयेत् कष्टतमान्विकारा नापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ १४ ॥
क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन ।
व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥ १५ ॥

---

धिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् । प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतोपमम् ॥" इति तन्त्रान्तरम् । १ बलाय = ओजसे, उपचयाय = स्थौल्यायेत्यर्थः । २ काम्यता = कमनीयमूर्तिता, मनसस्तुष्टिः = सन्तोषः, तेजः = प्रभा । ३ अविधिसेवितमद्यदोषमाह—तदेवेति । तदेव = मद्यमेवेत्यर्थः ।

४ प्रवृद्धेन मदेन अवशः पुरुषो यत् कुरुते तद् दर्शयति—मदेनेति । करणानां = मनोबुद्धीन्द्रियाणाम्, भावान्यत्वे = स्वरूपान्यथात्वे । ५ अवशः = मदपरवश इत्यर्थः । ६ तं पुनर्मदं त्रेधा विभजते—त्र्यवस्थश्चेति । त्र्यवस्थः = त्रिप्रकार इत्यर्थः । ७ पुरुषविशेषे मद्यस्य नातिबाधकत्वं दर्शयति—श्लैष्मिकानिति । ८ विपरीतान् = पित्ताधिकरूक्षातिमात्रसेविन इत्यर्थः ।

९ मदात्ययनिदानमाह—निर्भक्तमिति । निर्भक्तम् = आहाररहितम् । १० विकारान् = वक्ष्यमाणपानात्ययादीन्, शरीरभेदं = देहविनाशम् । ११ परिक्षतेन =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यम्लभक्ष्यावततोदरेण[1] साजीर्णभुक्तेन तथाबलेन ।
उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान् विकारान्[2] ॥१६॥

पानात्ययं[3] परमदम्पानाजीर्णमथापि वा ।
पानविभ्रममुग्रञ्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १७ ॥

स्तम्भाङ्गमर्दहृदयग्रहतोदकम्पाः[4]
पानात्ययेऽनिलकृते शिरसो रुजश्च ।
स्वेदप्रलापमुखशोषणदाहमूर्च्छाः
पित्तात्मके वदनलोचनपीतता च ॥ १८ ॥
श्लेष्मात्मके वमथुशीतकफप्रसेकाः
सर्वात्मके भवति सर्वविकारसम्पत् ।
ऊष्माणमङ्गगुरुतां विरसाननत्वं[5]
श्लेष्माधिकत्वमरुचिमलमूत्रसङ्गम् ॥ १९ ॥
लिङ्गं परस्य[6] तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञा-
स्तृष्णां रुजां शिरसि सन्धिषु चापि भेदम् ।
आध्मानमुद्गिरणमम्लरसो विदाहो-
ऽजीर्णस्य[7] पानजनितस्य वदन्ति लिङ्गम् ॥ २० ॥
ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि
पित्तप्रकोपजनितानि च कारणानि ।
हृद्गात्रतोदवमथुज्वरकण्ठधूम-
मूर्च्छाकफस्रवणमूर्द्धरुजो विदाहः[8] ॥ २१ ॥

---

क्षीणेनेत्यर्थः । १ अवततोदरेण = व्याप्तोदरेण, साजीर्णभुक्तेन साजीर्णं भुक्तं यस्य स तथा तेन । २ विकारान् = पानात्ययादीन् । ३ मदात्ययभेदानाह—**पानात्ययमिति** ।

४ वातादिभेदेन पानात्ययस्य लक्षणमाख्याति—**स्तम्भेति** । स्तम्भः = स्तब्धता । ५ परमदलक्षणं ब्रवीति—**ऊष्माणमिति** । ६ परस्य तु मदस्य = परमदस्येत्यर्थः । ७ पानाजीर्णलक्षणमभिधत्ते—**आध्मानमिति** । उद्गिरणं = वान्तिः, पानजनितस्य अजीर्णस्य = पानाजीर्णस्येत्यर्थः ।

८ पानविभ्रमलक्षणमभिदधाति—**हृद्गात्रेति** । वमथुः = छर्दिः, कण्ठधूमः =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु
तं पानविभ्रममुशन्त्यखिलेन धीराः ।
हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहं
तैलप्रभाऽऽस्यमतिपानहतं विजह्यात् ॥ २२ ॥
जिह्वौष्ठदन्तमसितं त्वथवाऽपि नीलं
पीते च यस्य नयने रुधिरप्रभे च ।
हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः
कासभ्रमावपि च पानहतं भजन्ते ॥ २३ ॥
तेषां निवारणमिदं हि मयोच्यमानं
व्यक्ताभिधानमखिलेन विधिं निबोध ।
मद्यन्तु चुक्रमरिचार्द्रकदीप्यकुष्ठ-
सौवर्चलायुतमलं पवनस्य शान्त्यै ॥ २४ ॥
पृथ्वीकदीप्यकमहौषधहिङ्गुभिर्वा
सौवर्चलेन च युतं वितरेत् सुखाय ।
आम्रातकाम्रफलदाडिममातुलुङ्गैः
कुर्य्याच्छुभान्यपि च षाडवपानकानि ॥ २५ ॥
सेवेत वा फलरसोपहितान् रसादी-
नानूपवर्गपिशितान्यपि गन्धवन्ति ।
पित्तात्मके मधुरवर्गकषायमिश्रं

---

कण्ठाद्धूमनिर्गमवत्पीडा, मूर्धरुजा = शिरोव्यथा । १ उशन्ति = इच्छन्ति । २ असाध्यलक्षणमाख्याति—हीनेति । हीनोत्तरौष्ठं = सङ्क्षिप्तोपरितनौष्ठम्, अतिशीतं बहिः, अमन्ददाहं = तीव्रदाहमभ्यन्तरे, अथवा कदाचिदतिशीतं, कदाचित्तीव्रदाहम् । तैलप्रभाऽऽस्यं = तैलाक्तमुखमिव, पानहतं = मद्यपीडितमित्यर्थः ।

३ उपद्रवान् दर्शयति—हिक्केति । एते हिक्काऽऽदय उपद्रवाः पानहतं पुरुषं भजन्ते इति सम्बन्धः । ४ तेषां = पानात्ययादीनाम् । ५ पृथ्वीका = महत्येला, दीप्यकः = अजमोदा, महौषधं = शुण्ठी । ६ षाडवपानकानि अन्नपानविधौ दर्शितानि । तन्त्रान्तरे—"युतमिक्षुविकारेण कथितं चूतजं फलम् । घृतशुण्ठीतिलयुतं विज्ञेयो घनषाडवः ॥" इति षाडवकल्पना । ७ फलरसोपहितान् = दाडिममातुलु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मद्यं हितं समधुशर्करमिष्टगन्धम् ॥ २६ ॥
पीत्वा[२] च मद्यमपि चेक्षुरसप्रगाढं
निःशेषतः क्षणमवस्थितमुल्लिखेच्च ।
लावैणतित्तिरिरसांश्च पिबेदनम्लान्
मौद्गान् सुखाय सघृतान् ससितांश्च यूषान् ॥ २७ ॥
पानात्यये कफकृते कफमुल्लिखेच्च
मद्येन बिम्बिविदुलोदकसंयुतेन[३] ।
सेवेत तिक्तकटुकांश्च[४] रसानुदारान्
यूषांश्च तिक्तकटुकोपहितान् हिताय ॥ २८ ॥
पथ्यं यवान्नविकृतानि च जाङ्गलानि
श्लेष्मघ्नमन्यदपि यच्च निरुत्ययं[५] स्यात् ।
कुर्य्याच्च सर्वमथ सर्वभवे विधानं
द्वन्द्वोद्भवे द्वयमवेक्ष्य यथाप्रधानम्[६] ॥ २९ ॥
सामान्यमन्यदपि यच्च समग्रमग्र्यं[७]
वक्ष्यामि यच्च मनसो मदकृत् सुखञ्च ।
त्वङ्नागपुष्पमगधैलमधूकधान्यैः
श्लक्ष्णैरजाजिमरिचैश्च कृतं समांशैः ॥ ३० ॥

---

ङ्गादिफलयुक्तान्, रसादीन्=तत्तन्मांसरसयूषादीन् । १ एलात्वक्पत्रकाद्यैरिष्टगन्धमित्यर्थः ।

२ पित्तात्मके मदात्यये वमनं निर्दिशति—पीत्वेति । उल्लिखेत्=वमेत् । ३ विदुलं=वेतसफलम् । ४ तिक्तकटुकान्=तिक्तकटुकद्रव्यसंस्कृतान्, रसान्=मांसरसान्, उदारान्=जाङ्गलजान्, यूषान्=मुद्गादियूषान्, तिक्तकटुकोपहितान्—तिक्तानि दुरालभाऽऽदीनि, कटुकानि पिप्पल्यादीनि तैरुपहितान् संस्कृतानित्यर्थः । ५ निरुत्ययं=निर्दोषम् । ६ प्रधानं सन्निपातजे द्वन्द्वजे च बलवन्तं दोषमनतिक्रम्येति यथाप्रधानम् । ७ अन्यदपि यत् सामान्यं यच्च मनसो यदकृद् हर्षकृद् वक्ष्यामि, तत् समग्रम् अग्र्यं श्रेष्ठं सुखं चेति सम्बन्धनीयम् ।

८ पानात्ययचिकित्सां वक्ति—त्वगिति । त्वक्='दालचीनी' इति, नागपुष्पं=नागकेसरम्, । धान्यं='धनिया' इति, अजाजी=जीरकः, समांशैः=तुल्यभागैः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानं[1] कपित्थरसवारिपरूषकाढ्यं
पानात्ययेषु विधिवत्सुतमम्बरान्ते[2] ।
ह्रीवेरपद्मपरिपेलवसम्प्रयुक्तैः[3]
पुष्पैर्विलिप्य करवीरजलोद्भवैश्च ॥ ३१ ॥
पिष्टैः सपद्मकयुतैरपि सारिवाद्यैः सेकं जलैश्च वितरेदमलैः सुशीतैः ।
त्वक्पत्रचोचमरिचैलभुजङ्गपुष्पश्लेष्मातकप्रसवकल्कगुडैरुपेतम् ३२
द्राक्षायुतं हृतमलं[5] मदिरामयार्त्तैः[4]-
स्तत्पानकं शुचि सुगन्धि नरैर्निषेव्यम् ।
पिष्ट्वा पिबेच्च मधुकं कटुरोहिणीं[6] च
द्राक्षाञ्च मूलमसकृत् त्रपुषीभवं यत् ॥ ३३ ॥
कार्पासिनीमथ च नागबलाञ्च तुल्यां
पीत्वा सुखी भवति साधु सुवर्चलाञ्च ।
काश्मर्य्यदारुबिडदाडिमपिप्पलीषु[7]
द्राक्षाऽन्वितासु कृतमम्बुनि[8] पानकं यत् ॥ ३४ ॥
तद्बीजपूरकरसायुतमाशु पीतं
शान्तिं परां परमदे[8] त्वचिरात्करोति ।
द्राक्षासितामधुकजीरकधान्यकृष्णा-
स्वेवं कृतं त्रिवृतया च पिबेत्तथैव ॥ ३५ ॥
सौवर्चलायुतमुदारं[9]रसं फलाम्लं
भार्गीश्रृतेन च जलेन हितोऽवसेकः ॥ ३६ ॥
[10]इक्ष्वाकुधामार्गवबृहकाणि काकाह्वयोदुम्बरिकाश्च दुग्धे ।
विपाच्य तस्याञ्जलिनावमेद्धि मद्यं पिबेच्चाह्नि गते त्वजीर्णे ॥ ३७ ॥

---

१ पानं = पानकम् । २ अम्बरान्ते = वस्त्रान्ते । ३ परिपेलवं = कैवर्तमुस्तकम् । ४ भुजङ्गपुष्पं = नागकेसरम् । ५ हृतमलं = वस्त्रगालितम्, मदिरामयार्तैः = पानात्ययपीडितैरित्यर्थः ।

६ कटुरोहिणी = 'कुटकी' इति ख्याता । ७ परमदचिकित्सामाह—काश्मर्येति । काश्मर्य = गम्भारीफलम्, अम्बुनि = जले । ८ परमदे पानकान्तरं निर्दिशति—द्राक्षेति । ९ उदारं = जाङ्गलमांसरसम् । १० पानाजीर्णचिकित्सामाख्याति—



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वक्पिप्पलीभुजगपुष्पविडैरुपेतं
सेवेत हिङ्गुमरिचैलयुतं फलाम्लम् ।
उष्णाम्बुसैन्धवयुतास्त्वथवा विडत्वक्
चव्यैलहिङ्गुमगधाफलमूलशुण्ठीः ॥ ३८ ॥
हृद्यैः खडैरपि च भोजनमत्र शस्तं
द्राक्षाकपित्थफलदाडिमपानकं यत् ।
तत्पानविभ्रमहरं मधुशर्कराढच-
माम्रातकोलरसपानकमेव चापि ॥ ३९ ॥
खर्जूरवेत्रककरीरपरूषकेषु
द्राक्षात्रिवृत्सु च कृतं ससितं हिमं वा ।
श्रीपर्णियुक्तमथवा तु पिबेदिमानि
यष्ट्याह्वयोत्पलहिमाम्बुविमिश्रितानि ॥ ४० ॥
क्षीरिप्रवालबिसजीरकनागपुष्पपत्रैलवालुसितसारिवपद्मकानि ।
आम्रातभव्यकरमर्दकपित्थकोलवृक्षाम्लवेत्रफलजीरकदाडिमानि ४१
सेवेत वा मरिचजीरकनागपुष्प-
त्वक्पत्रविश्वचविकैलयुतान् रसांश्च ।
सूक्ष्माम्बरस्रुतहिमांश्च सुगन्धिगन्धान्
पानोद्भवान्नुदति सप्तगदानशेषान् ॥ ४२ ॥

---

इक्ष्वाक्विति । इक्ष्वाकुः = तिक्तालाबूः, धामार्गवः = 'तरोई' इति ख्यातः । वृक्षकः = इन्द्रयवाः । १ फलाम्लं = दाडिमबीजपूरकाद्याम्लीकृतं मद्यमित्यर्थः । २ मगधाफलमूलं = पिप्पलीफलमूलम् । ३ खडा यूषविशेषाः ।

४ पानविभ्रमचिकित्सामाचष्टे-द्राक्षेति । ५ श्रीपर्णियुक्तं = गम्भारीफलयुक्तम्, 'ङ्यापोः संज्ञाच्छन्दसोर्बहुलम्' इति ह्रस्वः । अथवा इमानि क्षीरिप्रवालादीनि दाडिमान्तानि कथम्भूतानि ? यष्ट्याह्वयोत्पलहिमाम्बुविमिश्रितानि पानविभ्रमे पिबेत् । यष्ट्याह्वयं यष्टीमधु उत्पलं नीलोत्पलं यद् हिमाम्बु तेन विमिश्रितानित्यर्थः ।

६ क्षीरिप्रवालाः = वटादिक्षीरवृक्षपल्लवाः । ७ भव्यं = फलविशेषः । ८ रसान् = मांसरसान् । ९ चत्वारो मदात्ययाः, त्रयश्च परमदपानाजीर्णपानविभ्रमाः, इत्येवं सप्त ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चेन्द्रियार्थविषया[1] मृदुपानयोगा
हृद्याः सुखाश्च मनसः सततं निषेव्याः ।
पानात्ययेषु विकटोरु[2]नितम्बवत्यः
पीनोन्नतस्तनभरानतमध्यदेशाः ॥ ४३ ॥
प्रौढाः स्त्रियोऽभिनवयौवनपीनगात्र्यः
सेव्याश्च पञ्च[3]विषयातिशयस्वभावाः ॥ ४४ ॥
पिबेद्रसं पुष्प[4]फलोद्भवं वा सितामधूकत्रिसुगन्धियुक्तम् ।
सशर्क्करं संयोज्य च नागपुष्पैरजाजिकृष्णामरिचैश्च तुल्यैः ॥ ४५ ॥
वर्षा[5]भूयष्ट्याह्वमधूकलाक्षात्वक्कर्बुदाराङ्कुरजीरकाणि ।
द्राक्षाञ्च कृष्णामथ केशरञ्च क्षीरे समालोड्य पिबेत् सुखेप्सुः ॥४६॥
भवेच्च मद्येन तु येन पातितः प्रकामपीतेन सुरासवादिना ।
तदेव तस्मै विधि[6]वत्प्रदापयेद् विपर्य्यये भ्रंशमवश्यमृच्छति ॥४७॥
यथा[7] नरेन्द्रोपहतस्य कस्यचिद् भवेत् प्रसादस्तत एव नान्यतः ।
ध्रुवं तथा मद्यहतस्य देहिनो भवेत्प्रसादस्[8] त एव नान्यतः ॥ ४८ ॥
विच्छि[9]न्नमद्यः सहसा योऽतिमद्यं निषेवते ।
तस्य [10]पानात्ययोद्दिष्टा विकाराः सम्भवन्ति हि ॥ ४९ ॥

---

१ पञ्चेन्द्रियार्थाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः, तेषां विषयाः करणानि, मृदुपानयोगाः=पैष्टिकगौडिकमाध्वीकादिमृदुमद्ययोगाः । २ विकटौ विशालौ ऊरू यासां ता विकटोरवः, नितम्बवत्यश्च श्रेष्ठनितम्बाः, पीनोन्नतस्तनभराहतमध्यदेशाः=पीनोन्नतस्तनभरेण आनत ईषन्नम्रो मध्यदेशो यासां ताः । ३ पञ्चानां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानां विषयाः करणानि, तेष्वतिशयः स्वीयो भावो यासां ताः पञ्चविषयातिशयस्वभावाः ।

४ पुष्पफलोद्भवं=कूष्माण्डफलसमुद्भूतम्, त्रिसुगन्धि=त्रिजातकम्, "त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम्" इति बोध्यम् । ५ वर्षाभूः=श्वेतपुनर्नवा, त्वक्=गुडत्वक्, कर्बुदाराङ्कुरः=कोविदाराङ्कुरः । ६ विधिवत्=सौवर्चलादियुतम्, भ्रंशं=क्लेशम् ।

७ मदात्यये मद्यस्योपयोगित्वं दृष्टान्तेन दर्शयति—**यथेति** । नरेन्द्रोपहतस्य=राजपीडितस्य । ८ ततः=मद्यात् । ९ विच्छिन्नमद्यस्य पुनर्मद्यसेवने दोषं दर्शयति—**विच्छिन्नेति** । विच्छिन्नमद्यः=त्यक्तमद्यः । १० पानात्ययोद्दिष्टाः=ध्वंसकविक्षेपकादय इत्यर्थः । ध्वंसकविक्षेपकाख्यौ मद्यविकारौ चरके पृथक् पठितौ । तद्यथा—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मद्यस्याग्नेयवायव्यौ गुणावम्बुवहानि तु[1] ।
स्रोतांसि शोषयेयातां तेन तृष्णोपजायते ॥ ५० ॥
पाटलोत्पलकन्देषु[2] मुद्गपर्ण्यां च साधितम् ।
पिबेन्मागधिकोन्मिश्रं तत्राम्भो हिमशीतलम्[3] ॥ ५१ ॥
सर्पिस्तैलवसामज्जदधिभृङ्गरसैर्युतम्[4] ।
क्काथेन बिल्वयवयोः सर्वगन्धैश्च पेषितैः ॥ ५२ ॥
पक्कमभ्यञ्जने श्रेष्ठं, सेके क्काथश्च शीतलः ।
रसवन्ति च भोज्यानि[5] यथास्वमवचारयेत् ॥ ५३ ॥
पानकानि[6] सुशीतानि हृद्यानि सुरभीणि च ।
त्वचं प्राप्तस्तु पानोष्मा[7] पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः ।
दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम्[8] ॥ ५४ ॥
शीतं[9] विधानमत ऊर्ध्वमहं प्रवक्ष्ये
दाहप्रशान्तिकरमृद्धिमतां नराणाम् ।
तत्रादितो मलयजेन हितः[10] प्रदेह-
श्चन्द्रांशुहारतुहिनोदकशीतलेन ॥ ५५ ॥
शीताम्बुशीतलतरैश्च[11] यानमेनं
हारैर्मृणालवलयैरबलाः[12] स्पृशेयुः ।

---

"विच्छिन्नमद्यः सहसा योऽतिमद्यं निषेवते । ध्वंसो विक्षेपकश्चैव रोगस्तस्योपजायते ॥ श्लेष्मप्रसेकः कण्ठास्यशोषः शब्दासहिष्णुता । तन्द्रा निद्राऽभियोगश्च ज्ञेयं ध्वंसक-लक्षणम् ॥ हृत्कण्ठरोधः सम्मोहश्छर्दिरङ्गरुजा ज्वरः । तृष्णा कासः शिरःशूलमेतद्विक्षेप-लक्षणम् ॥" इति ।

१ मद्यजतृष्णोत्पत्तिं निर्दिशति—**मद्यस्येति** । अम्बुवहानि स्रोतांसीति सम्बन्धः । २ मद्यजतृष्णाचिकित्सां वक्ति—**पाटलेति** । पाटला = 'पाढरि' इति ख्याता । ३ हि-मवच्छीतलं हिमशीतलम् । ४ अत्र सर्पिस्तैलं वसा मज्जेति चतुःस्नेहः प्रस्थप्रमितो दधिभृङ्गराजयोर्द्वौ प्रस्थौ बिल्वयवक्काथस्य च द्वौ प्रस्थौ सर्वगन्धं च स्नेहचतुर्थांशं बोध्यम् । ५ भोज्यानि = भक्तानीत्यर्थः । ६ पानकानि = द्राक्षादाडिमादिकृतानि ।

७ मद्यजदाहं तच्चिकित्सां च ब्रवीति—**त्वचमिति** । पानोष्मा = मद्यपानोष्मे-त्यर्थः । ८ पित्तवत् = मधुरशीतादिकम् । ९ ऐश्वर्यवतां पुरुषाणां दाहचिकित्सा-माह—**शीतमिति** । १० प्रदेहः = प्रलेपः । ११ शयानं = विश्रान्तम् । १२ अबलाः =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्नोत्पलोज्ज्वलहिमे शयने शयीत
पत्रेषु वा सजलबिन्दुषु पद्मिनीनाम् ॥ ५६ ॥
आसादयन् पवनमाहृतमङ्गनाभिः कह्लारपद्मदलशैवलसञ्चयेषु ।
कान्तैर्वनान्तपवनैः परिमृश्यमानः शक्तश्चरेद्वनकाननदीर्घिकासु ५७
दाहाभिभूतमथवा परिषेचयेत्तु
लामज्जकाम्बुरुहचन्दनतोयतोयैः
विस्रावितां हृतमलां नववारिपूर्णां
पद्मोत्पलाकुलजलामधिवासिताम्बुम् ॥ ५८ ॥
वापीं भजेत हरिचन्दनभूषिताङ्गः
कान्ताकरस्पृशनकर्कशरोमकूपः ।
तत्रैनमम्बुरुहपत्रसमैः स्पृशन्त्यः
शीतैः करोरुवदनैः कठिनैः स्तनैश्च ॥ ५९ ॥
तोयावगाहकुशला मधुरस्वभावाः
संहर्षयेयुरबलाः सुकलैः प्रलापैः ।
धारागृहे प्रगलितोदकदुर्दिनाभे
क्लान्तः शयीत सलिलानिलशीतकुक्षौ ॥ ६० ॥
गन्धोदकैः सुकुसुमैरुपसिक्तभूमौ
पत्राम्बुचन्दनरसैरुपलिप्तकुड्ये ।

---

प्रौढस्त्रियः । १ भिन्नं प्रफुल्लमुत्पलमत्रेति भिन्नोत्पलम्, अत एवोज्ज्वलहिमम्, आस्तीर्णप्रफुल्लनीलोत्पलोज्ज्वलशीतले इत्यर्थः ।

२ किं कुर्वन् शयीतेति निरूपयति—आसादयन्निति । आसादयन्=प्राप्नुवन्, आहृतम्=आनीतं व्यञ्जनादिभिरित्यर्थः । ३ परिमृश्यमानः=स्पृश्यमानः । ४ तोयं=बालकम् । ५ तत्र=तस्यां वाप्याम्, एनं=दाहपीडितम् । ६ सुकलैः=शोभनकलायुक्तैः, प्रलापैः=प्रकृष्टवचनैरित्यर्थः । ७ प्रगलितं गलितुं प्रवृत्तं यदुदकं तेन दुर्दिनस्य इव आभा यस्य तत्तस्मिन् प्रगलितोदकदुर्दिनाभे, क्लान्तः=ग्लानियुक्तः, दाहार्त इति शेषः । सलिलानिलशीतकुक्षौ—सलिलेन मिश्रितोऽनिलः सलिलानिलस्तेन शीतः कुक्षिरभ्यन्तरं यस्य तत्तस्मिन् ।

८ सुकुसुमैः=जात्यादिसुगन्धिपुष्पवासितैः, पत्रं=पत्रकम्, अम्बु=बालकम्,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जात्युत्पलप्रियककेशरपुण्डरीक-
पुन्नागनागकरवीरकृतोपचारे ॥ ६१ ॥
तस्मिन् गृहे कमलरेण्वरुणे शयीत
यत्नाहृतानिलविकम्पितपुष्पदाम्नि ।
हेमन्तविन्ध्यहिमवन्मलयाचलानाम्
शीताम्भसां सकदलोहरितद्रुमाणाम् ॥ ६२ ॥
उद्भिन्ननीलनलिनाम्बुरुहाकराणाम् ।
चन्द्रोदयस्य च कथाः शृणुयान्मनोज्ञः ।
म्लानं प्रतान्तमनसं मनसोऽनुकूलाः
पीनस्तनोरुजघना हरिचन्दनाङ्ग्यः ॥ ६३ ॥
ता एनमार्द्रवसनाः सह संविशेयुः
श्लिष्ट्वाऽबलाः शिथिलमेखलहारयष्ट्यः ॥ ६४ ॥
हर्षयेयुर्नरं नार्य्यः स्वगुणै रहसि स्थिताः ।
ताः शैत्याच्छमयेयुश्च पित्तपानात्ययान्तरम् ॥ ६५ ॥
तृड्दाहरक्तपित्तेषु कार्योऽयं भेषजक्रमः ।
सामान्यतो विशेषन्तु शृणु दाहेष्वशेषतः ॥ ६६ ॥
कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ह्यति ।
सञ्चूष्यते दह्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥ ६७ ॥
लोहगन्धाङ्गवदनो वह्निमेवावकीर्य्यते ।
तं विलङ्घ्य विधानेन संसृष्टाहारमाचरेत् ॥ ६८ ॥
अप्रशाम्यति दाहे च रसैस्तृप्तस्य जाङ्गलैः ।
शाखाऽऽश्रया यथान्यायं रोहिणीव्यधयेत् सिराः ॥ ६९ ॥

---

चन्दनं=श्वेतचन्दनम् । १ केशरः=वकुलः । २ नागः=नागकेसरम् । ३ कमलरेण्वरुणे=कमलपांसुवद्रक्ताङ्गे इत्यर्थः ।

४ प्रतान्तमनसं=दीनमनस्कम् । ५ संविशेयुः=दाहार्तेन सह विश्रामं कुर्युरित्यर्थः । ६ पित्तपानात्ययान्तरं=पित्तपानात्ययभेदम् ।

७ रक्तजदाहलक्षणमिदमाह—कृत्स्नेति । कृत्स्नदेहानुगं=सकलदेहव्याप्तम् । ८ ताम्रलोचनः=लोहिताक्षः । ९ तं=रक्तदाहार्तम् । १० शाखाऽऽश्रयाः=बाहु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पित्तज्वरसमः[1] पित्तात् स चाप्यस्य विधिर्हितः ।
तृष्णानिरोधाद्[2]दग्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम् ॥ ७० ॥
सबाह्याभ्यन्तरं देहं दहेद्वै मन्दचेतसः ।
संशुष्कगलतालोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य[3] चेष्टते ॥ ७१ ॥
तत्रोपशमयेत्तेजस्तद्दग्धातुञ्च विवर्द्धयेत् ।
पाययेत् काममम्भश्च शर्कराढ्यं पयोऽपि वा ॥ ७२ ॥
शीतमिक्षुरसं मन्थं वितरेच्चेरितं[5] विधिम् ।
सृजा[6] पूर्णकोष्ठस्य दाहो भवति दुःसहः ॥ ७३ ॥
विधिः सद्योव्रणीयोक्तस्[7]तस्य लक्षणमेव च ।
धातुक्षयोक्तो[8] यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः ॥ ७४ ॥
क्षामस्वरः[9] क्रियाहीनो भृशं सीदति पीडितः ।
रक्तपित्तविधिस्तस्य हितः स्निग्धोऽनिलापहः ॥ ७५ ॥
क्षतजेनाशनतश्चान्यः[10] शोचतो वाऽप्यनेकधा ।
तेनान्तर्दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥ ७६ ॥
तमिष्टविषयोपेतं[11] सुहृद्भिरभिसंवृतम् ।
क्षीरमांसरसाहारं विधिनोक्तेन साधयेत् ॥ ७७ ॥

---

जङ्घाऽऽश्रयाः, रोहिणीसिराः=लोहिताः सिरा इत्यर्थः । १ पित्तज्वरसमः=पित्तज्वरलिङ्गयुक्तः, स चाप्यस्य विधिः=पित्तज्वरचिकित्सेत्यर्थः ।

२ तृष्णानिरोधजे दाहे चिकित्सां वक्ति—**तृष्णेति** । अब्धातौ=रसे, तेजः=पित्तोष्मा, समुद्धतं=अत्यन्तवृद्धः । ३ निष्कृष्य=निःसार्य, चेष्टते=हस्तपादादिविक्षेपणं करोति । ४ तत्र=तृष्णानिरोधजे दाहे, तेजः=पित्तोष्माणम् । ५ ईरितं=कथितम्, विधिं=पित्तज्वरहरविधानम् ।

६ अवगाढशस्त्रप्रहारजनितपूर्णकोष्ठजदाहलक्षणं तच्चिकित्सां च ब्रवीति-**असृजेति** । ७ "तस्मिन् भिन्ने रक्तपूर्णे" इत्यादिना तत्रोक्तः । ८ धातुक्षयजदाहलक्षणं तच्चिकित्सां च दर्शयति—**धात्विति** । ९ क्षामस्वरः=दुर्बलस्वरः, क्रियाहीनः=निश्चेष्ट इत्यर्थः । १० रक्तजदाहलक्षणं तच्चिकित्सां च निर्दिशति-**क्षतजेनेति** । अशनतः=भोजनं कुर्वतः । ११ इष्टविषयोपेतं=अभिलषितशब्दस्पर्शादिसंयुक्तम्, अभिसंवृतं=समन्ततः परिवृतमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति स चासाध्यतमः स्मृतः ।
सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रेषु देहिषु ॥ ७८ ॥
एवंविधो भवेद्यस्तु मदिरामथपीडितः ।
प्रशान्तोपद्रवे चापि शोधनं प्राप्तमाचरेत् ॥ ७९ ॥
सजीरकाण्यार्द्रकशृङ्गवेरसौवर्चलान्यर्द्धजलप्लुतानि ।
मद्यानि हृद्यान्यथ गन्धवन्ति पीतानि सद्यः शमयन्ति तृष्णाम् ॥८०॥
जलप्लुतश्चन्दनभूषिताङ्गः स्रग्वी सभक्तां पिशितोपदंशाम् ।
पिबन् सुरां नैव लभेत रोगान् मनोनुविघ्नं च मदं न याति ॥८१॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे मदात्ययप्रतिषेधो नाम ( नवमोऽध्यायः, आदितः ) सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

---

## अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथातस्तृष्णाप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
सततं यः पिबेद्वारि न तृप्तिमधिगच्छति ।
पुनः काङ्क्षति तोयञ्च तं तृष्णार्दितमादिशेत् ॥ ३ ॥

---

१ मर्माभिघातजदाहमभिदधाति—**मर्मेति** । मर्माणि शिरोहृदयबस्त्यादीनि । २ प्रशान्तोपद्रवे = निवृत्ततृष्णाऽऽदिके, 'आतुरे' इति शेषः । ३ मद्यसेवनविधिमभिधत्ते—**सजीरकाणीति** । तन्त्रान्तरे मात्रा कथिता—"शुद्धकायः पिबेन्मद्यं सोपदंशं पलद्वयम् । मध्याह्ने द्विगुणं तच्च सुस्निग्धं भक्षयेदनु ॥ प्रदोषेऽष्टपलं तद्वन्मात्रा मद्यरसायने । अनेन विधिना सेव्यं मद्यं नित्यमतन्द्रितैः ॥" इति । ४ उपदंशः=मद्यपानरोचकद्रव्यम् । ५ पानजान् रोगानित्यर्थः । मनोनुविघ्नं=मनोविघातकम् ।

**इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।**

---

## अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

६ पानात्ययप्रतिषेधानन्तरं तुल्यचिकित्सितत्वात् तृष्णाप्रतिषेधमधिकरोति—**अथेति** । तृष्णा = पिपासा । ७ तृष्णायाः सामान्यलक्षणं निरूपयति—**सततमिति** ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सङ्क्षोभशोकश्रममद्यपानाद्रूक्षाम्लशुष्कोष्णकटूपयोगात्।
धातुक्षयाल्लङ्घनसूर्य्यतापात् पित्तञ्च वातश्च भृशं प्रवृद्धौ ॥ ४ ॥
स्रोतांसि सन्दूषयतः समेतौ यान्यम्बुवाहीनि शरीरिणां हि।
स्रोतःस्वपांवाहिषु दूषितेषु जायेत तृष्णा प्रबला ततस्तु ॥ ५ ॥
तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथाऽन्याऽऽमसमुद्भवा च।
स्यात्सप्तमी भक्तनिमित्तजा तु निबोध लिङ्गान्यनुपूर्वशस्तु ॥ ६ ॥
तालोष्ठकण्ठास्यविशोषदाहाः सन्तापमोहभ्रमविप्रलापाः।
पूर्वाणि रूपाणि भवन्ति तासामुत्पत्तिकालेषु विशेषतस्तु ॥ ७ ॥
शुष्कास्यता मारुतसम्भवायां तोदस्तथा शङ्खशिरःसु चापि।
स्रोतोनिरोधो विरसञ्च वक्त्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥ ८ ॥
मूर्च्छाप्रलापारुचिवक्त्रशोषाः पीतेक्षणत्वं प्रततश्च दाहः।
शीताभिकाङ्क्षा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिधूपनञ्च ॥ ९ ॥

---

सततं=निरन्तरम्। १ तृष्णाया निदानं सम्प्राप्तिं च दर्शयति—सङ्क्षोभेति। सङ्क्षोभः=अत्यर्थंचलनम्। २ अम्बुवाहीनि स्रोतांसीति सम्बन्धः। अम्बुवाहीनि=जलवाहीनि, स्रोतांसि=जिह्वागलतालुक्लोमजानि रसवाहिन्यश्च धमन्यः। चरकेऽप्युक्तम्—"रसवाहिनीश्च धमनीर्जिह्वामूलगलतालुकक्लोम्नः। संशोष्य नृणां देहे कुरुतस्तृषमतिबलौ तौ तु ॥" इति।

३ तृष्णायाः संख्यामाख्याति-तिस्र इति। वातपित्तकफजास्तिस्र इत्यर्थः। क्षतजा=व्रणनिमित्ता, क्षयात्=रसक्षयात्, आमसमुद्भवा=अजीर्णजा। दृढबलेन तु पञ्च तृष्णाः पठिताः—"वातपित्तक्षयामोपसर्गजाः" इति। तत्र कफजा आमजायामेवावरुद्धा, क्षयजा वातजायाम्, भक्तजा च वातजायाम्। ४ भक्तनिमित्तजा=स्निग्धादिभोजननिमित्तेत्यर्थः। ५ तृष्णायाः पूर्वरूपमाख्याति-तालविति। विशेषेण शोषो विशोषः।

६ वातजतृष्णालक्षणं वक्ति—शुष्कास्यतेति। शुष्कास्यता=शुष्कमुखत्वम्, शङ्खशिरःसु=शङ्खयोः शिरसि च तोद इत्यर्थः। ७ स्रोतोनिरोधः=कर्णस्रोतोनिरोधः, रसाम्बुवाहिनीधमनीनिरोध इति विजयरक्षितः। विरसं चेति चकाराच्चरकोक्तनिद्रानाशस्य ग्रहणम्। यदाह चरकः—"निद्रानाशः शिरसो भ्रमस्तथा शुष्कगलतालुः॥" इति।

८ पित्तजतृष्णाया लक्षणं ब्रवीति—मूर्च्छेति। मूर्च्छा=चेतनाच्युतिः, प्रलापः=विलापः, प्रततः शोषः=अविरतः शोषः। ९ परिधूपनं=धूमस्योद्गिरणमिव। चका-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कफावृताभ्यामनिलानलाभ्यां[1] कफोऽपि शुष्कः प्रकरोति तृष्णाम्।
निद्रागुरुत्वं मधुरास्यता च तथार्दितः[2] शुष्यति चातिमात्रम् ॥ १० ॥
कण्ठोपलेपो मुखपिच्छिलत्वं शीतज्वरच्छर्दिररोचकश्च।
कफात्मिकायां[3] गुरुगात्रता च शाखासु शोफस्त्वविपाक एव।
एतानि रूपाणि भवन्ति तस्यां तयार्दितः काङ्क्षति नाति चाम्भः ११
क्षतस्य[4] रुक्शोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु।
तयाऽभिभूतस्य निशादिनानि गच्छन्ति दुःखं पिबतोऽपि तोयम् १२
रसक्षयाद्या[5] क्षयजा मता सा तयार्दितः शुष्यति दह्यते च।
अत्यर्थमाकाङ्क्षति चापि तोयं तां सन्निपातादिति केचिदाहुः ॥१३॥
रसक्षयोक्तानि[6] च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषग् व्यवस्येत्।
त्रिदोषलिङ्गाऽऽमसमुद्भवा[7] च हृच्छूलनिष्ठीवनसादयुक्ता ॥ १४ ॥
स्निग्धं[8] तथाऽम्लं लवणञ्च भुक्तं गुवन्नमेवाति तृषां करोति।

---

रात् पीतविण्मूत्रनेत्रत्वादयो ग्राह्याः। १ कफजतृष्णालक्षणमभिधत्ते—**कफेति**। अनिलानलाभ्यां=वातपित्ताभ्याम्। २ तयाऽर्दितः=कफजतृष्णया पीडितः।

३ चरके कफजा तृष्णा न पठिता। भगवता सुश्रुतेन चिकित्साभेदार्थं पठिता। हारीतेनापि सपित्तेनैव श्लेष्मणा तृष्णा पठिता, न तु केवलेन। यदाह—"स्वाद्वम्ललवणाजीर्णैः क्रुद्धः श्लेष्मा सहोष्मणा। प्रपद्याम्बुवहं स्रोतस्तृष्णां सञ्जनयेन्नृणाम्॥ शिरसो गौरवं तन्द्रा माधुर्यं वदनस्य च। भक्तद्वेषः प्रसेकश्च निद्राऽऽधिक्यं तथैव च॥ एतैर्लिङ्गैर्विजानीयात्तृष्णां कफसमुद्भवाम्।" इति। शाखासु=बाहुपादेषु।

४ क्षतजतृष्णाया लक्षणमभिदधाति—**क्षतस्येति**। क्षतस्य=शस्त्रादिशस्त्रयुक्तस्येत्यर्थः। ५ क्षयशब्दस्यानेकविषयत्वात् क्षयजां तृष्णां विशेषयन् तल्लक्षणं निर्दिशति—**रसेति**। ६ रसक्षयोक्तानि लक्षणानि "रसक्षये हृत्पीडा कम्पः शोषः शून्यता तृष्णता च" इति सूत्रस्थाने भगवता सुश्रुतेनैव प्रतिपादितानि। तस्यां=क्षयजतृष्णायाम्, व्यवस्येत्=जानीयादित्यर्थः।

७ आमजतृष्णालक्षणं दर्शयति—**त्रिदोषेति**। त्रिदोषलिङ्गा=त्रिदोषलिङ्गयुक्ता, आमे ह्यजीर्णात्त्रिदोषकोपः स्यात्। तदुक्तं सुश्रुतेनैव—"अजीर्णात् पवनादीनां विभ्रमो बलवान् भवेत्" इति। निष्ठीवनं=लोके 'थुकथुकी' इति प्रथितम्, सादः=अङ्गग्लानिरित्यर्थः।

८ भक्तजतृष्णालक्षणमाख्याति—**स्निग्धमिति**। लवणं चेति चकारात् कटु च,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षीणं विचित्तं बधिरं तृषार्त्तं विवर्जयेन्निर्गतजिह्वमाशु ॥ १५ ॥
तृष्णाऽभिवृद्धावुदरे च पूर्णे तं वामयेन्मागधिकोदकेन ।
विलोभनं चात्र हितं विधेयं स्यादाडिमाम्रातकमातुलुङ्गैः ॥ १६ ॥
तिस्रः प्रयोगैरिह सन्निवार्याः शीतैश्च सम्यग्रसवीर्य्यजातैः ।
गण्डूषमम्लैर्विरसे च वक्त्रे कुर्य्याच्छुभैरामलकस्य चूर्णैः ॥ १७ ॥
सुवर्णरूप्यादिभिरग्नितप्तैर्लोष्टैः कृतं वा सिकतादिभिर्वा ।
जलं सुखोष्णं शमयेत्तु तृष्णां सशर्करं क्षौद्रयुतं हिमं वा ॥ १८ ॥
पञ्चाङ्गिकाः पञ्चगणाः य उक्तास्तेष्वम्बु सिद्धं प्रथमे गणे वा ।
पिबेत्सुखोष्णं मनुजोऽचिरेण तृषो विमुच्येत हि वातजायाः ॥१९॥
पित्तघ्नवर्गैस्तु कृतः कषायः सशर्करः क्षौद्रयुतः सुशीतः ।
पीतस्तृषां पित्तकृतां निहन्ति क्षीरं श्रृतं वाऽप्यथ जीवनीयैः ॥२०॥
बिल्वाढकीकन्यकपञ्चमूलीदर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति ।
हितं भवेच्छर्दनमेव चात्र तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ २१ ॥
सर्वासु तृष्णास्वथवाऽपि पैत्तं कुर्य्याद्विधिं तेन हि ता न सन्ति ।
पर्य्यागतोदुम्बरजो रसस्तु सशर्करस्तत्कथितोदकं वा ॥ २२ ॥

---

न तु तिक्तकषायमधुराणीत्यर्थः । तन्त्रान्तरीयोपसर्गजालक्षणम्—"दीनस्वरः प्रताम्यन् दीनः संशुष्कवक्त्रगलतालुः । भवति खलु योपसर्गातृष्णा सा शोषिणी कष्टा ॥" इति । उपसर्गास्तु—"ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम्" इति ।

१ तृष्णायाः सामान्यविधिमभिधत्ते—**तृष्णेति** । वामयेत्=क्षयजां विहाय छर्दयेत् । तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"उल्लेखनं तु तृष्णासु क्षयादन्यत्र युज्यते" इति । मागधिकोदकेन=पिप्पलीमिश्रितोदकेनेत्यर्थः । २ तिस्रः=वातपित्तकफजास्तृष्णाः, प्रयोगैः=वक्ष्यमाणैः । ३ अम्लैः=मातुलुङ्गादिभिरम्लैरित्यर्थः । ४ हिमं=हिमीकृतमित्यर्थः ।

५ वातजतृष्णाचिकित्सितं वक्ति—**पञ्चाङ्गिका इति** । पञ्चाङ्गिकाः पञ्चगणाः=पञ्च पञ्चमूलानि, प्रथमे गणे=विदारिगन्धादौ । ६ पित्तघ्नतृष्णाचिकित्सामभिदधाति-**पित्तघ्नेति** । पित्तघ्नवर्गः=काकोल्यादिप्रभृतिः । ७ जीवनीयैः=काकोल्यादिभिः । ८ कफजतृष्णाचिकित्सामाचष्टे-**बिल्वेति** । कन्यकपञ्चमूली=लघुपञ्चमूलम् । ९ निम्बप्रसवोदकेन=निम्बपल्लवक्वाथेनेत्यर्थः । १० ताः=तृष्णाः, न सन्ति=न भवन्ति । ११ पर्यागतोदुम्बरजः=पक्वोदुम्बरजः, तत्कथितोदकं=पक्वोदुम्बरक्वथितजलम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्गस्य सिद्धस्य च सारिवादेः पातव्यमम्भः शिशिरं तृषार्त्तैः ।
कशेरुशृङ्गाटकपद्ममोचबिसेक्षुसिद्धं क्षतजां निहन्ति ॥ २३ ॥
लाजोत्पलोशीरकुचन्दनानि दत्त्वा प्रवाते निशि वासयेत्तु ।
तदुत्तमं तोयमुदारगन्धि सितायुतं क्षौद्रयुतं वदन्ति ॥ २४ ॥
द्राक्षाप्रगाढञ्च हिताय वैद्यस्तृष्णार्दितेभ्यो वितरेन्नरेभ्यः ।
ससारिवादौ तृणपञ्चमूले तथोत्पलादौ प्रथमे गणे च ॥ २५ ॥
कुर्य्यात्कषायञ्च यथेरितेन मधूकपुष्पादिषु चापरेषु ।
राजादनक्षीरिकपीतनेषु षट्पानकान्यत्र हितानि च स्युः ॥ २६ ॥
सतुण्डिकेराण्यथवा पिबेत्तु पिष्टानि कार्पाससमुद्भवानि ।
क्षतोद्भवां रुग्विनिवारणेन जयेद्रसानामसृजश्च पानैः ॥ २७ ॥
क्षयोत्थितां[10] क्षीरघृतं निहन्यान्मांसोदकं वा मधुकोदकं वा ।
आमोद्भवां[11] बिल्ववचायुतैस्तु जयेत्कषायैरथ दीपनीयैः ॥ २८ ॥
आम्रातभल्लातबलायुतानि पिबेत्कषायाण्यथ दीपनानि ।
गुर्वन्नजातां[12] वमनैर्जयेच्च क्षयादृते सर्वकृतां च तृष्णाम् ॥२९॥
श्रमोद्भवां[13] मांसरसो निहन्ति गुडोदकं वाऽप्यथवाऽपि मन्थः ।

---

१ क्षतजतृष्णायाश्चिकित्सामभिधत्ते—**कशेरुरिति** । मोचा=कदली, 'कदली वारणबुसा रम्भा मोचांशुमत्फला'. इत्यमरः । २ क्षतजतृष्णायां योगान्तरं निर्दिशति—**लाजेति** । ३ उदारगन्धि=सुगन्धिपुष्पाधिवासितम् । ४ वितरेत=दद्यात् । ५ प्रथमे गणे=विदारिगन्धादौ । ६ यथेरितेन=पूर्वोक्तविधानेन, लाजादिं दत्त्वा प्रवाते निशि वासनं शर्करादिप्रक्षेप इति विधिनेत्यर्थः । मधूकपुष्पादिषु आदिशब्दाच्छ्लोभाञ्जनकोविदारप्रियङ्गुपुष्पेषु । ७ क्षीरिकपीतनः=आर्द्रशिरीषः, पानकानि=कषायाणि । ८ तुण्डिकेरी=वनकार्पासी, कार्पाससमुद्भवानि=ग्राम्यकार्पासफलानीत्यर्थः । ९ रसानां=मांसरसानाम्, असृजः=एणादिरुधिरस्य ।

१० क्षयजतृष्णायाश्चिकित्सितं वक्ति-**क्षयोत्थितामिति** । क्षीरमथनोत्थं घृतं क्षीरघृतम् । ११ आमजतृष्णायाश्चिकित्सामाचष्टे-**आमोद्भवामिति** । दीपनीयैः=पिप्पल्यादिकृतैः । १२ भक्तजतृष्णायाश्चिकित्सामाख्याति-**गुर्वन्नजातामिति** । क्षयादृते=क्षयजां तृष्णां विहायेत्यर्थः । तन्त्रान्तरेऽपि-"उल्लेखनं तु तृष्णासु क्षयादन्यत्र युज्यते" इति ।

१३ प्रसङ्गाच्छ्रमादिजानां तृष्णानां चिकित्सां दर्शयति-**श्रमोद्भवामिति** । भक्तोपरोधात्=आहारावरोधात, वातोत्कटतृष्णायां यवागूं पित्तोत्कटतृष्णायां हिमं मन्थं च

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तोपरोधात् तृषितो यपागूमुष्णां पिबेन्मन्थमथो हिमं च ॥३०॥
या स्नेहपीतस्य भवेच्च तृष्णा तत्रोष्णमम्भः प्रपिबेन्मनुष्यः ।
मद्योद्भवामर्द्रजलं निहन्ति मद्यं तृषां याऽपि च मद्यपस्य ॥ ३१ ॥
तृष्णोद्भवां हन्ति जलं सुशीतं सशर्करं सेक्षुरसं तथाऽम्भः ।
स्वैः स्वैः कषायैर्वमनानि तासां तथा ज्वरोक्तानि च पाचनानि॥३२॥
लेपावगाहौ परिषेचनानि कुर्य्यात्तथा शीतगृहाणि चापि ।
संशोधनं क्षीररसौ घृतानि सर्वासु लेहान्मधुरान् हिमांश्च ॥ ३३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे ( दशमोऽध्यायः, आदितः ) अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

---

## एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथा[३]ऽछर्दिप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
अतिद्र[४]वैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरति ।
अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥ ३ ॥
श्रमात् क्षयात्तथोद्वे[५]गादजीर्णात् कृमिदोषतः ।
नार्य्याश्चाप[६]न्नसत्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः ॥ ४ ॥
अत्यन्तामपरीतस्य छर्दि[७]र्वै सम्भवो ध्रुवम् ।

---

पिबेदित्यर्थः । १ तृष्णासु प्रागुक्तं पित्तहरविधिमभिधत्ते—लेपेति । २ संशोधनं = विरेचनमित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्या-मष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

---

### एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

३ तृष्णाप्रतिषेधानन्तरं तुल्यचिकित्सितत्वाच्छर्दिप्रतिषेधमधिकरोति—अथेति । छर्दिः=वमिरित्यर्थः । ४ छर्दिनिदानमाह—आतद्रवैरिति । अहृद्यैः = अप्रियैः । ५ उद्वेगात्=उद्वेजनात् । ६ आपन्नसत्त्वायाः = गर्भिण्याः, 'आपन्नसत्त्वा स्याद् गुर्वि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीभत्सैर्[1]हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् ॥ ५ ॥
छादयन्[2]ननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ।
निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्राद्विनिश्चरन् ॥ ६ ॥
दोषा[3]नुदीरयन् वृद्धानुदानो व्यानसङ्गतः ।
ऊर्ध्वमागच्छति भृशं विरुद्धाहारसेवनात् ॥ ७ ॥
प्र[4]सेको हृदयोत्क्लेशो भक्तस्यानभिनन्दनम् ।
पूर्वरूपं मतं छर्द्या यथा[5]स्वं च विभावयेत् ॥ ८ ॥
प्रच्छर्दयेत् फेनिलमल्पमल्पं शूलार्दितोऽभ्यर्दितपार्श्वपृष्ठः ।
श्रान्तः सघोषं बहुशः क[6]षायं जीर्णेऽधिकं साऽनिलजा वमिस्तु ॥९॥
योऽलं[7] भृशं वा कटुतिक्तवक्त्रः पीतं सरक्तं हरितं वमेद्वा ।
सदाहचोषज्वरवक्त्रशोषो मूर्च्छान्वितः पित्तनिमित्तजा सा ॥१०॥
यो[8] हृष्टरोमा मधुरं प्रभूतं शुक्लं हिमं सान्द्रकफानुविद्धम् ।
[10]अभक्तरुग्गौरवसादयुक्तो वमेद्वमी सा कफकोपजा स्यात् ॥ ११ ॥
[11]सर्वाणि रूपाणि भवन्ति यस्यां सा सर्वदोषप्रभवा मता तु ।
बीभत्सजा[12] दौहृदजाऽऽमजा च सात्म्यप्रकोपात्कृमिजा च या हि ।

---

ण्यन्तर्वत्नी च गर्भिणी' इत्यमरः। अतिद्रुतम्=अतिशीघ्रम्। १ बीभत्सैः=विकृतैर्हेतुभिरित्यर्थः।

२ छर्दिनिरुक्तिं वक्ति—**छादयन्निति**। छादयन्=पूरयन्, अर्दयन्=अङ्गानि पीडयन्, अङ्गभञ्जनैः=अङ्गभेदैः। ३ छर्दिसम्प्राप्तिमभिदधाति—**दोषानिति**। व्यानसङ्गतः=व्यानेन वायुना मिलित इत्यर्थः। ४ छर्दिपूर्वरूपमाह—**प्रसेक इति**। प्रसेकः=मुखप्रसेकः। ५ यथास्वं=यथाऽऽत्मीयमित्यर्थः।

६ वातजच्छर्दिलक्षणमाख्याति—**प्रच्छर्दयेदिति**। अभ्यर्दितपार्श्वपृष्ठः=पीडितपार्श्वपृष्ठः। ७ कषायं=कषायरसमित्यर्थः। ८ पित्तजच्छर्दिलक्षणमभिधत्ते—**योऽम्लमिति**। कटुतिक्तवक्त्रः=कटुतिक्तमुखः। ९ कफजच्छर्दिलक्षणमभिदधाति—**य इति**। सान्द्रकफानुविद्धं=घनकफमिश्रम्। १० अभक्तरुक्=अन्नानभिलाष इत्यर्थः।

११ सान्निपातकच्छर्दिलक्षणमाचष्टे—**सर्वाणीति**। सर्वाणि रूपाणि=वातजादिसमस्तच्छर्दिरूपाणीत्यर्थः। तन्त्रान्तरे—"शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबला प्रसक्तम। छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात्॥" इति। १२ आगन्तुजच्छर्दिलक्षणमाचष्टे-**बीभत्सजेति**। बीभत्सजा=पूयामेध्यादिदर्शनगन्ध-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा पञ्चमी ताञ्च विभावयेत्तु[1] दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥ १२ ॥
शूलहृल्लासबहुला कृमिजा च विशेषतः[2] ।
कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ १३ ॥
क्षीणस्योपद्रवैर्युक्तां सासृक्पूयां सचन्द्रिकाम् ।
छर्दिं प्रसक्तां[4] कुशलो नारभेत चिकित्सितुम् ॥ १४ ॥
आमाशयोत्क्लेशभवा[5] हि सर्वास्तस्माद्धितं लङ्घनमेव तासु[6] ।
(विधीयते मारुतजां विना तु संशोधनं वा कफपित्तहारि १५)
वमीषु बहुदोषासु छर्दनं हितमुच्यते ।
विरेचनं वा कुर्वीत यथादोषोच्छ्रयं भिषक्[8] ॥ १६ ॥
संसर्गं[7] क्रमपूर्वेण यथास्वं भेषजायुतः ।
लघूनि परिशुष्काणि[8] सात्म्यान्यन्नानि चाचरेत् ॥ १७ ॥
यथास्वञ्च कषायाणि ज्वरघ्नानि प्रयोजयेत् ।
हन्यात्[9] क्षीरघृतं पीतं छर्दिं पवनसम्भवाम् ॥ १८ ॥
ससैन्धवं[10] पिबेत्सर्पिर्वातच्छर्दिनिवारणम् ।

---

स्वादजा, दौर्हृदजा=गर्भिण्याः स्त्रिया दौर्हृदालाभजा, आमजा=अजीर्णजा, असात्म्यजा=असात्म्यभक्षणादिसम्भूता, क्रिमिजा=कोष्ठक्रिमिसम्भूता । एताः पञ्चापि आगन्तुजत्वेन साम्यादेकैव बोध्याः । १ विभावयेत्=अनुबन्धयेत्, आदौ=वातादिलक्षणे ।

२ क्रिमिजच्छर्देर्विशिष्टलक्षणमाह—शूलेति । क्रिमिजाया अयं विशेषः—हृच्छूलहृल्लासाधिका क्रिमिजहृद्रोगतुल्यलक्षणेन च लक्षिता । यथा—"उत्क्लेशः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः । अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च क्रिमिजे भवेत् ॥" इति । ३ सर्वासामसाध्यलक्षणमाख्याति—क्षीणस्येति । छर्देरुपद्रवास्तु—"कासः श्वासो ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्यमेव च । हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥" इति । सचन्द्रिकां=मयूरपिच्छचन्द्रिकाप्रभायुक्ताम्, मेदःप्रभृतिधातूनां स्नेहः प्रवर्तमानो मयूरपिच्छचन्द्रिकावत् प्रतिभाति । ४ प्रसक्तां=निरन्तरप्रवृत्तामित्यर्थः ।

५ सामान्येन सर्वासामपि छर्दीनां चिकित्सां निर्दिशति—आमाशयेति । तासु=छर्दिषु । ६ यथादोषोच्छ्रयं=दोषाधिक्यमवेक्ष्य । ७ संसर्गः=अन्नसंसर्गः, अनुक्रमेण=यथाक्रमेण, मण्डपेयाविलेप्यादिक्रमेणेत्यर्थः । ८ परिशुष्काणि=शुष्कुलीलाजादीनि । ९ वातजच्छर्दिचिकित्सां दर्शयति—हन्यादिति । क्षीरमथनोत्थं घृतं क्षीरघृतम् । १० वाग्भटेऽपि—"हन्ति मारुतजां छर्दिं सर्पिः पीतं ससैन्धवम्" इति

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्गामलकयूषो वा ससर्पिष्कः ससैन्धवः ।
यवागूं मधुमिश्रां वा पञ्चमूलीकृतां पिबेत् ॥ १९ ॥
पिबेद्वा व्यक्तसिन्धूत्थं फलाम्लं वैष्किरं रसम् ।
सुखोष्णलवणं चात्र हितं स्नेहविरेचनम् ॥ २० ॥
पित्तोपशमनीयानि पाक्यानि शिशिराणि च ।
कषायाण्युपयुक्तानि घ्नन्ति पित्तकृतां वमीम् ॥ २१ ॥
शोधनं मधुरैश्चात्र द्राक्षारससमायुतैः ।
बलवत्यां प्रशंसन्ति सर्पिस्तैल्वकमेव च ॥ २२ ॥
आरग्वधादिर्निर्यूहं दशाङ्गयोगमेव वा ।
पाययेताथ सक्षौद्रं कफजायां चिकित्सकः ॥ २३ ॥
कृतं गुडूच्या विधिवत्कषायं हिमसंज्ञितम् ।
तिसृष्वपि भवेत्पथ्यं माक्षिकेण समन्वितम् ॥ २४ ॥
बीभत्सजां हृद्यतमैर्दौर्हृदीं काङ्क्षितैः फलैः ।

---

१ पञ्चमूलीकृतां = शालपर्ण्यादिकेन बिल्वादिकेन वा कृतामित्यर्थः । २ व्यक्त-सिन्धूत्थं=प्रकटलवणम्, फलाम्लं=दाडिममातुलुङ्गादिफलेनाम्लीकृतम्, वैष्किरं=लावादिमांसरसम् । ३ सुखं सुखकरमुष्णं लवणं यस्मिन् तत् सुखोष्णलवणम् । "कोष्णं सलवणं चात्र हितं स्नेहविरेचनम्" इति वाग्भटः । स्नेहेन परण्डतैलादिना विरेचनं स्नेहविरेचनम् ।

४ पित्तजच्छर्दिचिकित्सामाचष्टे—**पित्तेति** । पित्तोपशमनीयानि=पित्तज्वरशमनानि, पाक्यानि=शृतानि, शिशिराणि=शीतकषायाणि । ५ वमनं विरेचनं वा शोधनम् । ६ तैल्वकं सर्पिर्वातव्याधौ द्रष्टव्यम् । ७ कफजच्छर्दिचिकित्सामाख्याति—**आरग्वधादिति** । निर्यूहः=क्वाथः, दशाङ्गयोगं=कफज्वरोक्तं "कटुका चित्रकम्" इत्यादिकं मरिचरहितम् ।

८ सन्निपातजायाश्छर्देश्चिकित्सितं ब्रवीति—**कृतमिति** । हिमसंज्ञितं=शीतकषायाख्यम् । "द्रव्यादापोत्थितात्तोये प्रतप्ते निशि संस्थितात् । कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः ॥ षड्भिः पलैश्चतुर्भिर्वा सलिलाच्छीतफाण्टयोः । आप्लुतं भेषजपलं रसाख्यस्य पलद्वयम् ॥" इति । ९ तिसृषु=वातपित्तकफजासु, अपिशब्दात् सन्निपातजास्वपि ।

१० बीभत्सजायाश्चिकित्सां प्रतिपादयति—**बीभत्सजामिति** । दौर्हृदीं=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लङ्घनैर्वमनैश्चामां सात्म्यैः[1] सात्म्यप्रकोपजाम् ॥ २५ ॥
कृमिहृद्रोगवच्चापि कृमिजां साधयेद्भमीम् ।
वितरेच्च यथादोषं शस्तं विधिमनन्तरम् ॥ २६ ॥
दधित्थ[2]रससंयुक्तां पिप्पलीं माक्षिकान्विताम् ।
मुहुर्मुहुर्नरो लीढ्वा छर्दिभ्यः प्रविमुच्यते ॥ २७ ॥
समाक्षिका मधु[3]रसा पीता वा तण्डुलाम्बुना ।
तर्पणं[4] वा मधुयुतं तिसृणामपि भेषजम् ॥ २८ ॥
स्वयङ्गु[5]प्तां सयष्ट्याह्वां तण्डुलाम्बुमधुद्रवाम् ।
पिबेद्यवागूमथवा सिद्धां पत्रैः करञ्जजैः ॥ २९ ॥
युक्ताम्ललवणाः पिष्टा कुस्तुम्बु[6]र्य्योऽथवा हिताः ।
तण्डुलाम्बुयुतं खादेत्कपित्थं त्र्यूष[7]णेन वा ॥ ३० ॥
सिताचन्दन[8]मध्वाक्तं लिह्याद्वा मक्षिकाशकृत् ।
पिबेत् पयोऽग्नितप्तञ्च निर्वाप्य गृहगोधिकाम् ॥ ३१ ॥
सर्पिःक्षौद्रयुतान् वाऽपि लाजसक्तून् पिबेत्तथा ।
सापःक्षौद्रसितोपेतां मागधीं[10] वा लिहेत्तथा ॥ ३२ ॥
धात्रीरसे चन्दनं वा घृष्टं मुद्गदलाम्बु वा ।
कोलामलकमज्जानं लिह्याद्वा त्रिसुगन्धिकम्[11] ॥ ३३ ॥
सक्षौद्रां शालिलाजानां यवागूं वा पिबेन्नरः ।

---

दौर्हृदविमाननजातां वमिम् । १ सात्म्यप्रकोपजां=सात्म्यपरित्यागजाम् । २ सामान्येन छर्दिचिकित्सामाह—दधित्थेति । दधित्थः=कपित्थः । ३ मधुरसा=मूर्वा, तण्डुलाम्बुना=तण्डुलप्रक्षालनजलेन । ४ लाजसक्तुकृतं तर्पणमित्यर्थः । तिसृणां=वातपित्तकफजानां छर्दीनाम् । ५ स्वयङ्गुप्तां=कपिकच्छूम्, तण्डुलाम्बुमधुद्रवां—तण्डुलाम्बुमधूनि द्रवे यस्यां सा तथोक्ताम् ।

६ कुस्तुम्बुर्यः=धान्यकाः । ७ त्र्यूषणेन=त्रिकटुकेन । ८ चन्दनं=रक्तचन्दनम्, मक्षिकाशकृत=मक्षिकापुरीषम् । ९ पयः=जलम् । गृहगोधिकाशब्देन वरमठीकृतं मृन्मयं गृहमुच्यत इति निबन्धसङ्ग्रहव्याख्याकारः । १० मागधीं=पिप्पलीम् । ११ त्रिसुगन्धिकं=त्रिजातकम् । "त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धि त्रिजा-



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घ्रेयाण्युपहरेच्चापि मनोघ्राणसुखानि च ॥ ३४ ॥
जाङ्गलानि च मांसानि शुभानि पानकानि च ।
भोजनानि विचित्राणि कुर्य्यात्सर्वास्वतन्द्रितः ॥ ३५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे छर्दिप्रतिषेधो नाम (एकादशोऽध्यायः, आदितः) एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

---

## पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो हिक्काप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
विदाहिगुरुविष्टम्भिरुक्षाभिष्यन्दिभोजनैः ।
शीतपानासनस्थानरजोधूमानिलानलैः ॥ ३ ॥
व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः ।
आमदोषाभिघातस्त्रीक्षयदोषप्रपीडनैः ॥ ४ ॥
विषमाशनाध्यशनैस्तथा समशनैरपि ।

---

तकम्" इति तन्त्रान्तरम् । १ घ्रेयाणि=सुगन्धद्रव्याणि । २ विचित्राणि=अनेकविधानीत्यर्थः । अतन्द्रितः=अनलसः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकोनपञ्चाशोऽध्यायः ।

---

### पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

३ छर्दिप्रतिषेधानन्तरं तुल्यसंख्यत्वाद् हिक्काप्रतिषेधमधिकरोति—**अथेति** । हिक्कति ऊर्ध्वं वातप्रवृत्तौ हिगिति शब्दविशेषं करोतीति हिक्का 'गुरोश्च हलः' इत्यः । हिक्का='हिचकी' इति ख्याता । ४ हिक्काया निदानमभिधत्ते—**विदाहीति** । विदाहीनि=विदहनशीलानि, गुरूणि=गुणतः पाकतश्च, विष्टम्भीनि=करीरादीनि, रूक्षाणि=चणकादीनि, अभिष्यन्दीनि=अभिष्यन्दनशीलानि फाणितमाषमत्स्यक्षीरादीनि ।

५ वेगाघातः=मलादिवेगधारणम्, अपतर्पणम्=अनशनादि । ६ आमदोषस्य लक्षणम्—"ऊष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमान्द्यादपाचितम् । दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते ॥"इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ ५ ॥
मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति[1] सस्वनो यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन् ।
स घोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिक्केति भिषग्भिरुच्यते ॥६॥[2]
अन्नजां[3] यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ।
वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि ॥ ७ ॥
मुखं[4] कषायमरतिर्गौरवं कण्ठवक्त्रसोः ।
पूर्वरूपाणि हिक्कानामाटोपो जठरस्य च ॥ ८ ॥
त्वरमाणस्य[5] चाहारं भुञ्जानस्याथवा घनम् ।
वायुरन्नैरवस्तीर्णः[6] कटुकैरर्दितो भृशम् ॥ ९ ॥
हिक्कयत्यूर्ध्वगो[7] भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ।
चिरेण[8] यमलैर्वेगैर्या हिक्का सम्प्रवर्त्तते ॥ १० ॥
कम्पयन्ती शिरोग्रीवं यमलां तां विनिर्दिशेत् ।
[10]विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्तते ॥ ११ ॥

---

१ हिक्कानां स्वरूपं निरुक्तिं च वक्ति—**मुहुरिति**। वायुरत्र सोदानप्राणो बोद्धव्यः। उदेति=ऊर्ध्वं याति, सस्वनः=हिगिति शब्दवान्। ऊर्ध्वगमनमेव विशिनष्टि-यकृदिति। प्लिहेति ह्रस्वेकारश्छन्दोऽनुरोधात्। मुखादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी, तेन यकृत्प्लीहान्त्राणि मुखमानीय आक्षिपन् निःसारयन्निवेत्यर्थः। मुखादिवेत्यत्र मुखशब्देन प्राणोदकान्नवाहीनि स्रोतांसि भण्यन्ते। तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"प्राणोदकान्नवाहीनि स्रोतांसि विकृतोऽनिलः। हिक्काः करोति संरुध्य तासां लिङ्गं पृथक्छृणु ॥" इति। २ 'हिनस्त्यसून्' इति हिक्केति निरुक्तिः। एतादृशे विग्रहे पृषोदरादित्वाद् रूपसिद्धिर्बोध्या।

३ हिक्कानां भेदं सम्प्राप्तिं चाभिधत्ते—**अन्नजामिति**। अन्नजायाः साध्यत्वेन प्राशस्त्यात् पूर्वमभिधानम्। चरके यमलैव व्यपेतेति नाम्ना पठिता। ४ हिक्कानां पूर्वरूपं दर्शयति—**मुखमिति**। अरतिः=चेतसोऽनवस्थितिः। ५ अन्नजालक्षणमभिदधाति—**त्वरमाणस्येति**। घनं=गुरुमन्नम्। ६ अवस्तीर्णः=आच्छादितः। ७ 'हिक्क हिंसायाम्' इति चुरादिः।

८ यमलालक्षणं निर्दिशति—**चिरेणेति**। यमलैर्वेगैः=युग्मैरुपक्रमैरित्यर्थः। ९ शिरोग्रीवमित्युपलक्षणम्, तेन चरकोक्तप्रलापमूर्च्छावमितृष्णावैचित्यजृम्भाविप्लुताक्षत्वमुखशोषा बोध्या इति गयदासः। १० क्षुद्रालक्षणमभिधत्ते—**विकृष्टेति**। विकृष्टकालैः=अचिरकालैरित्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमूलात् प्रधाविता ।
नाभिप्रवृत्ता[1] या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी ॥ १२ ॥
शुष्ककण्ठजिह्वास्यश्वासपार्श्वरुजाकरी ।
अनेकोपद्रवयुता[2] गम्भीरा नाम सा स्मृता ॥ १३ ॥
मर्माण्यापीडयन्तीव[3] सततं या प्रवर्तते ।
देहमायम्य वेगेन घोषयत्यतितृष्यतः ॥
महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकम्पिनी ॥ १४ ॥
आयम्यते[4] हिक्कतोऽङ्गानि यस्य दृष्टिश्चोर्ध्वं तास्यते यस्य गाढम् ।
क्षीणोऽन्नद्विट् कासते यश्च हिक्की तौ द्वावन्त्यौ[5] वर्जयेद्धिक्कमानौ १५
प्राणायामोद्वेजनत्रासनानि[6] सूचीतोदैः सम्भ्रमश्चात्र शस्तः ।
यष्ट्याह्वं वा मार्त्तिकेणावपीडे पिप्पल्यौ वा शर्कराचूर्णयुक्ताः ॥१६॥
सर्पिः कोष्णं क्षीरमिक्षो रसो वा नातिक्षीणे छर्दनं[7] शान्तिहेतोः ।
नारीपयःपिष्टमशुक्लचन्दनं[8] घृतं सुखोष्णं च ससैन्धवं तथा ॥१७॥
चूर्णीकृतं सैन्धवमम्भसाऽथवा निहन्ति हिक्काञ्च हितञ्च नस्यतः ।
युञ्जाद्धूमं शालनिर्यासजातं[9] नैपालं वा गोविषाणोद्भवं वा ॥१८॥
सर्पिः स्निग्धैश्चर्मबालैः[10] कृतं वा हिक्कास्थाने स्वेदनं चापि कार्य्यम् ।
क्षौद्रोपेतं गैरिकं काञ्चनाह्वं[11] लिह्याद्भस्म ग्राम्यसत्त्वास्थिजं वा ॥१९॥

---

१ गम्भीरालक्षणमाख्याति—**नाभिप्रवृत्तेति** । नाभितः प्रवृत्तिर्यस्याः सा । असाध्येयम् । २ अनेकोपद्रवैर्जत्रूर्ध्वश्वासतृष्णादिभिर्युक्तेत्यर्थः । ३ महती (महाहिक्का)-लक्षणमाचष्टे—**मर्माणीति** । मर्माणि=प्रधानानि बस्तिहृदयशिरांसि ।

४ साध्यानामपि हिक्कानामवस्थाविशेषेण असाध्यत्वं प्रतिपादयति—**आयम्यत इति** । आयम्यते=विस्तार्यत इव, दृष्टिश्चोर्ध्वं भवतीति शेषः । ५ अन्त्यौ=गम्भीरा महती चेत्यर्थः ।

६ हिक्कानां चिकित्सितं वक्ति—**प्राणायामेति** । प्राणायामोऽत्र कुम्भक एव, न तु रेचकपूरकौ । उद्वेजनं=परुषवचनैर्मनस आकुलीकरणम् । ७ छर्दनं=वमनमित्यर्थः । ८ अशुक्लचन्दनं=रक्तचन्दनम् । ९ शालनिर्यासजातं=सर्जरसोद्भवं धूमम्, नैपालं=मनःशिलाजातं धूमम्, गोविषाणोद्भवं=गोशृङ्गजातधूमम् । १० गोचर्मबालैरित्यर्थः ।

११ काञ्चनाह्वं गैरिकं=सुवर्णगैरिकम्, ग्राम्यसत्त्वास्थिजं=गवादिग्राम्यजीवास्थि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद्वच्छ्वाविन्मेषगोशल्लकानां रोमाण्यन्तर्धूमदग्धानि चात्र ।
मध्वाज्याक्तं बर्हिपत्रप्रसूतमेवं भस्मौदुम्बरं तैल्वकं वा ॥ २० ॥

स्वर्जिक्षारं बोजपूराद्रसेन
क्षौद्रोपेतं हन्ति लीढ्वाऽऽशु हिक्काम् ।
सर्पिःस्निग्धा घ्नन्ति हिक्कां यवाग्वः
कोष्णग्रासाः[२] पायसो वा सुखोष्णः ॥ २१ ॥

शुण्ठीतोये साधितं क्षीरमाजं तद्वत्पीतं शर्करासंयुतं वा ।
आतृप्तेर्वा सेव्यमानं निहन्याद् घ्रातं हिक्कामाशु मूत्रं त्वजाव्योः।२२।
सपूति[३]कीटं लशुनोग्रगन्धाहिङ्ग्वम्लजमाचूर्ण्य सुभावितं तत् ।
क्षौद्रं सितां वारणकेशर[४]ञ्च पिबेद्रसेनेक्षुमधूकजेन ॥ २३ ॥
पिबेत्पलं वा लवणोत्तम[५]स्य द्वाभ्यां पलाभ्यां हविषः समग्रम् ।
हरीतकीं कोष्णजलानुपानां पिबेद् घृतं क्षारमधूपपन्नम् ॥ २४ ॥
रसं कपित्थान्मधु[६]पिप्पलीभ्यां शुक्तिप्रमाणं प्रपिबेत् सुखाय ॥ २५ ॥
कृष्णां[७] सितां चामलकञ्च लीढं सशृङ्गवेरं मधुनाऽथवाऽपि ।
कोलास्थिमज्जाञ्जनलाजचूर्णं हिक्कां निहन्यान्मधुनाऽवलीढम् ॥२६॥

पाटलायाः फलं पुष्पं गैरिकं[९] कटुरोहिणी ।
खर्जूर[१०]मध्यं मागध्यः काशीशं दधिनाम च ॥ २७ ॥
चत्वार एते योगाः स्युः प्रतिपादप्रदर्शिताः ।
मधुद्वितीयाः कर्त्तव्यास्ते हिक्कासु विजानता ॥ २८ ॥

---

भवं भस्मेत्यर्थः । १ मध्वाज्ये तुल्यभागे न देये, यतो निषिद्धम्—"भजतो विषरूपत्वं तुल्यांशे मधुसर्पिषी" इति तन्त्रान्तरे । बर्हिपत्रप्रसूतं = मयूरपिच्छचन्द्रिकोत्पन्नं भस्मेत्यर्थः । २ कोष्णग्रासाः = ईषदुष्णकवलाः । ३ पूतिगन्धिः कीटः पूतिकीटः, उग्रगन्धा = वचा, सुभावितं = अजाव्योर्मूत्रेण बहून् वारान् भावितम् । ४ वारणकेशरं = नागकेशरम् । ५ लवणोत्तमस्य = सैन्धवस्य । ६ मधु अर्धपलप्रमितम्, पिप्पली कर्षप्रमाणा ।

७ कृष्णां = पिप्पलीम् । ८ अञ्जनं = सौवीराञ्जनम् । ९ गैरिकं = स्वर्णगैरिकम्, कटुरोहिणी = 'कुटकी' इति ख्याता । १० खर्जूरमध्यं = खर्जूरमस्तकमज्जा, दधिनाम =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपोतपारावतलावशल्लक-
श्वदंष्ट्रगोधावृषदंशजान् रसान् ।
पिबेत् फलाम्लानहिमान् ससैन्धवान्
स्निग्धांस्तथैवर्ष्यमृगद्विजोद्भवान् ॥ २९ ॥
विरेचनं पथ्यतमं ससैन्धवं घृतं सुखोष्णञ्च सितोपलायुतम् ।
सदागतावूर्ध्वगतेऽनुवासनं वदन्ति केचिच्च हिताय हिक्किनाम् ॥३०॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे हिक्काप्रतिषेधोनाम (द्वादशोऽध्यायः, आदितः) पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

---

## एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः श्वासप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
यैरेव कारणैर्हिक्का बहुभिः सम्प्रवर्त्तते ।
तैरेव कारणैः श्वासो घोरो भवति देहिनाम् ॥ ३ ॥
विहाय प्रकृतिं वायुः प्राणोऽथ कफसंयुतः ।

---

कपित्थफलम् । १ वृषदंशः=वनमार्जारः । २ मृगद्विजाः=जङ्गालविष्किराः ।
३ विस्तरोक्तं चिकित्सितं सङ्क्षेपेण दर्शयति—**विरेचनमिति** । ४ सदागतौ=वायौ, 'श्वसनः स्पर्शनो वायुर्मातरिश्वा सदागतिः' इत्यमरः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---

### एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

५ हिक्काप्रतिषेधानन्तरं समानहेतुकत्वाच्छ्वासप्रतिषेधमधिकरोति—**अथेति** । "कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा । यथा श्वासश्च हिक्का च प्राणानाशु निकृन्ततः ॥" इति तयोरात्ययिकत्वसाम्यमपि बोध्यम् । ६ श्वासनिदानमभिदधाति—**यरेवेति** । यैरेव कारणैः=विदाह्यादिभिर्हेतुभिः । ७ श्वाससम्प्राप्तिं दर्शयति—**विहायेति** । प्रकृतिं विहाय=विगुणो भूत्वेत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वासयत्यूर्द्ध्वगो भूत्वा तं श्वासं परिचक्षते ॥ ४ ॥
[1]क्षुद्रकस्तमकश्छिन्नो महानूर्द्ध्वश्च पञ्चधा ।
भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ ५ ॥
[2]प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा भक्तद्वेषोऽरतिः परा ।
आनाहः पार्श्वयोः शूलं वैरस्यं वदनस्य च ॥ ६ ॥
[3]किञ्चिदारभमाणस्य यस्य श्वासः प्रवर्त्तते ।
निषण्णस्यैति शान्तिञ्च स क्षुद्र इति संज्ञितः ॥ ७ ॥
[4]तृट्स्वेदवमथुप्रायः कण्ठघुर्घुरिकान्वितः ।
विशेषाद् [5]दुर्दिने ताम्येच्छ्वासः स तमको मतः ॥ ८ ॥
घोषेण महताऽऽविष्टः सकासः सकफो नरः ।
यः श्वसित्यबलोऽन्नद्विट् सुप्तस्तमकपीडितः ॥ ९ ॥
स शाम्यति कफे हीने स्वपतश्च विवर्द्धते ।
[6]मूर्च्छाज्वराभिभूतस्य ज्ञेयः प्रतमकस्तु सः ॥ १० ॥
[7]आध्मातो दह्यमानेन बस्तिना सरुजं नरः ।
[8]सर्वप्राणेन विच्छिन्नं श्वस्याच्छिन्नं तमादिशेत् ॥ ११ ॥
[9]विसंज्ञः पार्श्वशूलार्त्तः शुष्ककण्ठोऽतिघोषवान् ।
[10]संरुद्धनेत्रस्त्वायम्य यः श्वस्यात् स महान् स्मृतः ॥ १२ ॥
[11]मर्मस्वायम्यमानेषु श्वसन्मूढो मुहुश्च यः ।

---

१ श्वासभेदान् निर्दिशति—क्षुद्रक इति । स महाव्याधिः श्वासः एकोऽपि विशेषतः क्षुद्रकादिभेदात् पञ्चधा भिद्यते इति सम्बन्धः । प्रतमकः श्वासः तमकस्य भेद एव, अतो न पञ्चसंख्याऽतिरेकः । २ श्वासस्य पूर्वरूपं ब्रवीति—प्राग्रूपमिति । प्राग्रूपं=पूर्वरूपम् । भक्तद्वेषः=अन्नानभिलाषः, अरतिः=कुत्रापि चेतसोऽनवस्थितिः ।

३ क्षुद्रश्वासलक्षणं दर्शयति—किञ्चिदिति । किञ्चित्कार्यमित्यर्थः । ४ तमकश्वासं लक्षयति—तृडिति । ५ दुर्दिने=मेघाच्छन्ने दिने । ६ तमकभेदस्य प्रतमकश्वासस्य लक्षणमाह—मूर्च्छति । अभिभूतस्य=आक्रान्तस्येत्यर्थः । ७ छिन्नश्वासं लक्षयति—आध्मात इति । ८ विच्छिन्नम्=अन्तराऽन्तरा, श्वस्यात्=श्वासं कुर्यात् । ९ महाश्वासलक्षणं कथयति—विसंज्ञ इति । विसंज्ञः=चेतनारहितः । १० संरुद्धनेत्रः=सशोथनयनः ।

११ ऊर्ध्वश्वासलक्षणमभिधत्ते—मर्मस्विति । मर्मसु=हृद्बस्तिशिरःसु, आयम्य

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्द्ध्वप्रेक्षी हतरवस्तमूर्द्ध्वश्वासमादिशेत् ॥ १३ ॥
क्षुद्रः[1] साध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते ।
त्रयः श्वासा[2] न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥ १४ ॥
स्नेह[3]बस्तिं विना केचिदूर्द्ध्वञ्चाधश्च शोधनम् ।
मृदुप्राणव[4]तां श्रेष्ठं श्वासिनामादिशन्ति हि ॥ १५ ॥
श्वासे कासे च हिक्कायां हृद्रोगे चापि पूजितम् ।
घृतं पुराणं संसिद्धमभयाबिडरा[5]मठैः ॥ १६ ॥
सौवर्चलाभयाबिल्वैः संस्कृतं वाऽनवं घृतम् ।
पिप्पल्यादिप्रतीवापं सिद्धं वा प्रथ[6]मे गणे ॥ १७ ॥
सपञ्चलवणं सर्पिः श्वासकासौ व्यपोहति ।
हिस्रा[7]विडङ्गपूतीकत्रिफलाव्योषचित्रकैः ॥ १८ ॥
द्वि[8]क्षीरं साधितं सर्पिश्चतुर्गुणजलाप्लुतम् ।
कोल[9]मात्रैः पिबेत्तद्धि श्वासकासौ व्यपोहति ॥ १९ ॥
अर्शस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा ।
कृत्स्ने [10]वृषकषाये वा पचेत् सर्पिश्चतुर्गुणे ॥ २० ॥
तन्मूलकुसुमावापं[11] शीतं क्षौद्रेण योजयेत् ।
[12]शृङ्गीमधूलिकाभार्गीशुण्ठीतार्क्ष्यसिताऽम्बुदैः ॥ २१ ॥
सहरिद्रैः सयष्ट्याह्वैः समैरावाप्य योगतः[13] ।

---

मानेषु=आकृष्यमाणेषु, मूढः=चेष्टारहित इत्यर्थः । १ श्वासानां साध्यासाध्यत्वं निरूपयति—क्षुद्र इति । २ त्रयः श्वासाः=छिन्नश्वासमहाश्वासोर्ध्वश्वासाः, दुर्बलस्य तमकः श्वासो न सिद्ध्यति । चकारात् तन्त्रान्तरोक्तज्वरमूर्च्छादियुक्तस्यापि न सिद्ध्यतीति बोध्यम् ।

३ श्वासचिकित्सां प्रतिपादयति—स्नेहेति । ४ प्राणवतां=बलवताम् । ५ रामठं=हिङ्गु, 'सहस्रवेधि जतुकं बाह्लीकं हिङ्गु रामठम्' इत्यमरः । ६ प्रथमे गणे=विदारिगन्धादौ । ७ हिंस्रा='बालछड़' इति ख्याता । पूतीकः=नक्तमालः । ८ द्विक्षीरं=द्विगुणक्षीरम् । सर्पिः प्रस्थप्रमाणं बोध्यम् । ९ कोलमात्रैः=अर्धकर्षप्रमाणैः । १० वृषकषाये=वासाक्काथे । ११ तन्मूलकुसुमावापं=वासामूलपुष्पकल्कप्रतीवापम् । १२ शृङ्गी=कर्कटशृङ्गी, मधूलिका=मूर्वा, तार्क्ष्यं=रसाञ्जनम्, सिता=शर्करा, अम्बुदः=मुस्ता । १३ योगतः=युक्तित इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घृतप्रस्थं पचेद्धीमान् शीततोये चतुर्गुणे ॥ २२ ॥
श्वासं कासं तथा हिक्कां सर्पिरेतन्नियच्छति ।
सुवहा[1] कालिका भार्गी शुकाख्या नैचुलं फलम् ॥ २३ ॥
काकादनी शृङ्गवेरं वर्षाभूर्बृहतीद्वयम् ।
कोलमात्रैर्[3] घृतप्रस्थं पचेदेभिर्जलद्विकम् ॥ २४ ॥
कटूष्णं पीतमेतद्धि श्वासामयविनाशनम् ।
सौवर्चलयवक्षारकटुकाव्योषचित्रकैः ॥ २५ ॥
वचाऽभयाविडङ्गैश्च साधितं श्वासशान्तये ।
गोपवल्ल्युदके[4] सिद्धं स्यादन्यद् द्विगुणे घृतम् ॥ २६ ॥
पञ्च[5] तानि हवींष्याहुर्भिषजः श्वासकासयोः ।
तालीशतामलक्यग्राजीवन्तीकुष्ठसैन्धवैः ॥ २७ ॥
बिल्वपुष्करभूतीकसौवर्चलकणाऽग्निभिः ।
पथ्यातेजोवतीयुक्तैः[8] सर्पिर्जलचतुर्गुणम् ॥ २८ ॥
हिङ्गुपादयुतं सिद्धं सर्वश्वासहरं परम् ।
वासाघृतं[9] षट्पलं वा घृतं चात्र हितं भवेत् ॥ २९ ॥
तैलं[10] दशगुणे सिद्धं भृङ्गराजरसे शुभे ।
सेव्यमानं यथान्यायं श्वासकासौ व्यपोहति ॥ ३० ॥
फलाम्ला[11] विष्किररसाः स्निग्धाः प्रव्यक्तसैन्धवाः ।

---

१ सुवहा=गोधापदी 'लजालू' इति ख्याता । कालिका=जटामांसी, शुकाख्या=शुकशिम्बा, नैचुलं फलं=जलवेतसफलम् । २ वर्षाभूः=श्वेतपुनर्नवा । ३ कोलमात्रैः=अर्धकर्षप्रमाणैः, जलद्विकं=द्विगुणजलम् । ४ गोपवल्ल्युदके=सारिवाक्वाथे । ५ हिंस्रादि-शृङ्गयादि-सुवहादि-सौवर्चलादि-गोपवल्ल्यादीनि पञ्चैतानि हवींषीत्यर्थः ।

६ तामलकी='भूई आंवला' इति प्रथते । उग्रा=वचा । ७ भूतीकं=रोहिषतृणम्, कणा=पिप्पली । ८ तेजोवती=चव्यम् । ९ वासाघृतं कृत्स्ने वृषे तत्कुसुमैरित्यादिना रक्तपित्तोक्तम्, षट्पलघृतं च पिप्पलीपिप्पलीमूलेत्यादिना उदरचिकित्सितोक्तं बोध्यम् ।

१० कफप्रधाने श्वासे स्नेहमभिदधाति—तैलमिति । ११ फलाम्लाः=दाडिम-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एणादीनां शिरोभिर्वा कौलत्थ्यो[1] वा सुसंस्कृताः ॥ ३१ ॥
हन्युः श्वासञ्च कासञ्च संस्कृतानि पयांसि[2] च ।
तिमिरस्य[3] च बीजानि कर्कटाख्या च चूर्णिता ॥ ३२ ॥
दुरालभा[4]ऽथ पिप्पल्यः कटुकाख्या हरीतकी ।
श्वाविन्मयूररोमाणि[5] कोला मागधिकाकणाः ॥ ३३ ॥
भार्गीत्वक्शृङ्गवेरञ्च शर्करा शल्लकाङ्गजम्[6] ।
नृत्तकौण्डकबीजानि[7] चूर्णितानि तु केवलम् ॥ ३४ ॥
पञ्च श्लोकार्द्धिकास्त्वेते लेहा ये सम्यगीरिताः ।
सर्पिर्मधुभ्यां ते लेह्याः कासश्वासार्दितैर्नरैः ॥ ३५ ॥
सप्तच्छदस्य पुष्पाणि पिप्पलीश्चापि मस्तुना ।
पिबेत् सञ्चूर्ण्य मधुना धानाश्चाप्यथ भक्षयेत् ॥ ३६ ॥
अर्काङ्कुरैर्भावितानां[8] यवानां साध्वनेकशः ।
तर्पणं वा पिबेदेषां सक्षौद्रं श्वासपीडितः ॥ ३७ ॥
शिरीषकदलीकुन्दपुष्पं मागधिकायुतम् ।
तण्डुलाम्बुयुतं पीत्वा जयेच्छ्वासानशेषतः[10] ॥ ३८ ॥
कोलमज्जां तालमूलमृष्यचर्ममसीमपि[11] ।
लिह्यात् क्षौद्रेण भार्गीं वा सर्पिर्मधुसमायुताम् ॥ ३९ ॥
नीचैः[12]क म्बबीजं वा सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ।

---

बीजपूरादिभिरम्लीकृताः, विष्किररसाः = लावादिमांसरसाः । १ कुलत्थसंस्कृता यूषा इत्यर्थः । २ 'संस्कृतानि पयांसि' इति तु वातहरैर्दशमूलादिभिरिति बोध्यम् । ३ तिमिरो नखरागिपत्रः 'तिवरिया' इति प्रसिद्ध इति डल्हणः । 'तिनिशस्य' इति श्रीहाराणचन्द्रसम्मतपाठः । कर्कटाख्या = कर्कटशृङ्गी ।

४ दुरालभा = 'जवासा' इति प्रथते । ५ श्वाविद्रोमाणि, शललाख्यानि, 'त्रेण्या शलल्या विनीय' इति पारस्करः । कोला = चव्यम्, मागधिकाकणाः = पिप्पलीतण्डुलाः । ६ शल्लकाङ्गजं = शल्लकशकलम् । ७ नृत्तकौण्डको मर्कटक इति डल्हणः । नृत्तकौण्डकबीजानीत्यत्र त्रिकण्टकस्य बीजानीति श्रीहाराणचन्द्रसम्मतपाठः । ८ धाना भृष्टयवाः स्मृताः । ९ अर्काङ्कुरैः = अर्कपल्लवपुष्पकृतैः क्वाथैरित्यर्थः । १० अशेषतः = निःशेषान् । ११ ऋष्यचर्ममसी = ऋष्याख्यमृगचर्मभस्म । १२ नीचैः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्राक्षां हरीतकीं कृष्णां[1] कर्कटाख्यां[1] दुरालभाम् ॥ ४० ॥
सर्पिर्मधुभ्यां विलिहन् हन्ति श्वासान् सुदारुणान् ।
हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शटीम्[2] ॥ ४१ ॥
लिह्यात् तैलेन तुल्यानि श्वासार्त्तो हितभोजनः ।
गवां पुरीषस्वरसं मधुसर्पिःकणायुतम्[3] ॥ ४२ ॥
लिह्याच्छ्वासेषु कासेषु वाजिनां[4] वा शकृद्रसम् ।
पाण्डुरोगेषु शोथेषु ये योगाः सम्प्रकीर्त्तिताः ॥ ४३ ॥
श्वासकासापहास्तेऽपि कासघ्ना ये च कीर्तिताः ।
भार्गीत्वक्त्र्यूषणं तैलं हरिद्रां कटुरोहिणीम् ॥ ४४ ॥
पिप्पलीं मरिचं चण्डां[5] गोशकृद्रसमेव च ।
तलकोटस्य[6] बीजेषु पचेदुत्कारिकां शुभाम् ॥ ४५ ॥
सेव्यमाना निहन्त्येषा श्वासानाशु सुदुस्तरान् ।
पुराणसर्पिः पिप्पल्यः कौलत्थ्या[7] जाङ्गला रसाः ॥ ४६ ॥
सुरा सौवीरकं हिङ्गु मातुलुङ्गरसो मधु ।
द्राक्षाऽऽमलकबिल्वानि शस्तानि श्वासिहिक्किनाम् ॥४७॥
श्वासहिक्कापरिगतं स्निग्धैः स्वेदैरुपाचरेत् ।
आक्तं लवणतैलाभ्यां तैः[8] स्य ग्रथितः कफः ॥ ४८ ॥
स्वस्थो[9] विलयनं याति मारुतश्च प्रशाम्यति ।
स्विन्नं ज्ञात्वा ततश्चैव भोजयित्वा रसौदनम् ॥ ४९ ॥
वातश्लेष्मविबन्धे वा भिषग् धूमं प्रयोजयेत् ।
मनःशिलादेवदारुहरिद्राच्छदनामिषैः[10] ॥ ५० ॥
लाक्षोरुबूकमूलैश्च[11] कृत्वा वर्त्तीर्विधानतः ।

---

कदम्बबीजं=लघुकदम्बवृक्षफलम् । १ कृष्णां=पिप्पलीम्, कर्कटाख्यां=कर्कटशृङ्गीम्, दुरालभां='जवासा' इति ख्याताम् । २ शटीं='कचूर' इति ख्याताम् । ३ कणायुतं=पिप्पलीचूर्णसंयुतम् । ४ वाजिनां=घोटकानाम् । ५ चण्डा=कपिकच्छूः, शिवलिङ्गीत्यन्ये । ६ तलकोटस्य=अङ्कोठस्य । ७ कौलत्थ्याः=कुलत्थैः संस्कृताः । ८ तैः=स्निग्धस्वेदैः, ग्रथितः=घनीभूतः । ९ स्वस्थः=स्रोतःस्थितः, विलयनं=द्रवत्वम् । १० छदनं=तेजपत्रम्, आमिषं=गुग्गुलुः । ११ उरुबूकमूलं=रक्तैरण्डमूलमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्पिर्यवमधूच्छिष्टशालनिर्यासजं तथा ॥ ५१ ॥
शृङ्गबालखुरस्नायुत्वक् समस्तं गवामपि ।
तुरुष्कशल्लकीनाञ्च गुग्गुलोः पद्मकस्य च ॥ ५२ ॥
एते सर्वे सर्षपिष्का धूमाः कार्य्या विजानता ।
बलीयसि कफग्रस्ते वमनं सविरेचनम् ॥ ५३ ॥
दुर्बले चैव रूक्षे च तर्पणं हितमुच्यते ।
जाङ्गलैरभ्रजैर्मांसैरानूपैर्वा सुसंस्कृतैः ॥ ५४ ॥
निदिग्धकाञ्चामलकप्रमाणां हिङ्ग्वर्द्धयुक्तां मधुना सुयुक्ताम् ।
लिहन्नरः श्वासनिपीडितो हि श्वासं जयत्येव बलात्त्र्यहेण ॥५५॥
यथाऽग्निरिद्धः पवनानुविद्धो वज्रं यथा वा सुरराजमुक्तम् ।
रोगास्तथैते खलु दुर्निवाराः श्वासश्च कासश्च विलम्बिका च ॥५६॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे श्वासप्रतिषेधो नाम (त्रयोदशोऽध्यायः, आदितः) एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

## द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः कासप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

---

१ मधूच्छिष्टं='मोम' इति ख्यातम्, शालनिर्यासः='राल' इति प्रथते। २ तुरुष्कः=सिल्हकः, शल्लकी='साही' इति लोके। ३ बलीयसि=बलयुक्तातुरे। ४ जाङ्गलाः=एणादयो लावादयश्च, उरभ्रः=मेषः, आनूपाः=कच्छपादयः। ५ निदिग्धिकां=कण्टकारिकाम्। ६ इद्धः=प्रदीप्तः, पवनानुविद्धः=वातयुक्तः। ७ दुर्निवाराः=दुश्चिकित्स्या इत्यर्थः। विलम्बिकाया लक्षणं विसूचिकाप्रतिषेधेऽभिहितम्। तद्यथा—"दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोर्ध्वमधश्च यस्य। विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः॥" इति।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

## द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

८ श्वासप्रतिषेधानन्तरं तुल्यहेतुकत्वात् कासप्रतिषेधमधिकरोति—अथेति। कास-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्ता ये हेतवो नृणां रोगयोः श्वासहिक्कयोः ।
कासस्यापि च विज्ञेयास्त एवोत्पत्तिहेतवः ॥ ३ ॥
धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च ।
विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव ॥ ४ ॥
प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः सम्भिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ।
निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषः कासः स विद्वद्भिरुदाहृतस्तु ॥ ५ ॥
स वातपित्तप्रभवः कफाच्च क्षतात्तथाऽन्यः क्षयजोऽपरश्च ।
पञ्चप्रकारः कथितो भिषग्भिर्विवर्द्धितो यक्ष्मविकारकृत् स्यात् ॥६॥
भविष्यतस्तस्य तु कण्ठकण्डूर्भोज्योपरोधो गलतालुलेपः ।
स्वरशब्दवैषम्यमरोचकोऽग्निसादश्च लिङ्गानि भवन्त्यमूनि ॥ ७ ॥
हृच्छङ्खमूर्धोदरपार्श्वशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः ।
प्रसक्तमन्तः कफमीरणेन कासेत्तु शुष्कं स्वरभेदयुक्तः ॥ ८ ॥
उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्त्तः ।
पित्तेन पीतानि वमेत्कटूनि कासेत्स पाण्डुः परिदह्यमानः ॥९॥

---

तेऽनेनेति कासः, 'कासृ शब्दकुत्सायाम्' इति धातुः, 'इलश्च' इति घञ् । १ कासस्य सम्प्राप्तिं निरुक्तिं चाभिधत्ते—धूमेति । धूमोपघातात्=धूमेन कण्ठप्रविष्टेन कण्ठस्योपघातात्, रजसः=कण्ठनासाप्रविष्टादेव, व्यायामः=आयासः, रूक्षान्नं=चणकादिकम् । २ प्राणो वायुः उदानानुगतः प्रदुष्टः सन् वक्त्रान्निरेति, स वायुः सम्भिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः कास इति प्रदिष्ट इति सम्बन्धः ।

३ काससंख्यामाख्याति—स इति । ४ यक्ष्मविकारकृत्=राजयक्ष्मकृदित्यर्थः । तन्त्रान्तरेऽपि—"पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः । ।क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥" इति । ५ कासस्य पूर्वरूपं निर्दिशति—भविष्यत इति । भोज्यानां गले सङ्गो भोज्योपरोधः । ६ स्वरशब्दवैषम्यं=किञ्चित्प्रकृतिस्वरवैलक्षण्यम् ।

७ वातिककासलक्षणमभिदधाति—हृच्छङ्खेति । शङ्खः=ललाटैकदेशः, क्षामाननः=शुष्कमुखः, क्षीणबलस्वरौजाः—क्षीणं बलं स्वर ओजश्च यस्य त तथा । ८ ईरणेन=वायुनेत्यर्थः । कासेदिति परस्मैपदमार्षम् ।

९ पैत्तिककासं लक्षयति—उर इति । १० पीतानि वमेत्=पित्तं कफसंसृष्टं निष्ठीवति, उक्तं च तन्त्रान्तरे—"श्लेष्माणं पित्तसंसृष्टं निष्ठीवति च पैत्तिकः" इति । ११ परिदह्यमानः=दाहयुक्तः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रलिप्यमानेन[1] मुखेन सीदन् शिरोरुजार्त्तः कफपूर्णदेहः ।
अभक्तरुग्गौरवसादयुक्तः कासेत[2] ना सान्द्रकफं कफेन ॥ १० ॥
वक्षोऽतिमात्रं विहतं तु[3] यस्य व्यायामभाराध्ययनाभिघातैः ।
विश्लिष्टवक्षाः[4] स नरः सरक्तं ष्ठीवत्यभीक्ष्णं क्षतजं तमाहुः ॥११॥
स[5] गात्रशूलज्वरदाहमोहान् प्राणक्षयञ्चोपलभेत कासी ।
शुष्यन् विनिष्ठीवति दुर्बलस्तु[6] क्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ॥ १२ ॥
ससर्वलिङ्गं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं[7] वदन्ति ।
वृद्धत्वमासाद्य भवेत्तु यो वै याप्यं तमाहुर्भिषजस्तु कासम्[8] ॥ १३ ॥
[9]शृङ्गीवचाकट्फलकट्तृणाब्दधान्याभयाभार्ग्यमराह्वविश्वम् ।
उष्णाम्बुना हिङ्गुयुतं तु पीत्वा [10]बद्धास्यमप्याशु जहाति कासम् ॥१४॥

---

१ कफकासलक्षणमाख्याति—**प्रलिप्यमानेनेति** । प्रलिप्यमानेन मुखेन=श्लेष्मलिप्तेन मुखेनेत्यर्थः । २ न भक्ते रुग् रुचिर्यस्य सोऽभक्तरुक्, सान्द्रकफः=घनश्लेष्मा । ३ उरःक्षतजकासं लक्षयति—**वक्ष इति** । विहतं=विशेषेण पीडितम्, व्यायामः=आयासः । ४ विश्लिष्टवक्षाः=अवसन्नवक्षा इत्यर्थः । तन्त्रान्तरे—"अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहैः । रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत् ॥ स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत् सशोणितम् । कण्ठेन रुजताऽत्यर्थं विभिन्नेनैव चोरसा ॥ सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना । दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्य्यपीडितः । पारावत इवाकूजन् कासवेगात् क्षतोद्भवात् ॥" इति ।

५ क्षयजकासलक्षणं दर्शयति—**स इति** । ६ दुर्बलः=उपचयरहितः । तन्त्रान्तरे क्षयजकासलक्षणम्—"विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद् वेगनिग्रहात् । घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः । कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥" इति । ७ क्षयजं=शुक्रादिधातुक्षयजम् । ८ कासस्यावस्थायां याप्यत्वं निर्दिशति—**वृद्धत्वेति** । तन्त्रान्तरे कासस्य असाध्यसाध्ययाप्यत्वमाह—"इत्येव क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः । साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेव क्षतोत्थितः ॥ नवौ कदाचित्सिध्येतामपि पादगुणान्वितौ । स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्तितः । त्रीन् पूर्वान् साधयेत्साध्यान् पथ्यैर्याप्यांस्तु यापयेत् ॥" इति ।

९ सामान्येन कासचिकित्सामाचष्टे—**शृङ्गीति** । शृङ्गी=कर्कटशृङ्गी, कट्तृणं=रोहिषतृणम्, अब्दं=मुस्ता, अमराह्वः=देवदारुः, विश्वं=शुण्ठी । १० बद्धास्यं=चिरकालं व्याप्य आस्ये स्थितिकरम्, चिरकालानुबद्धमिति तात्पर्यम् । बद्धा आस्या

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलत्रिकव्योषविडङ्गशृङ्गीरास्नावचापद्मकदेवकाष्ठैः।
लेहः समैः क्षौद्रसिताघृताक्तः कासं निहन्यादचिरादुदीर्णम् ॥१५॥
पथ्यां सितामामलकानि लाजां समागधीञ्चापि विचूर्ण्य शुण्ठीम्।
सर्पिर्मधुभ्यां विलिहीत कासी ससैन्धवां वोष्णजलेन कृष्णाम् ॥१६॥
खादेद् गुडं नागरपिप्पलीभ्यां द्राक्षाञ्च सर्पिर्मधुनाऽवलिह्यात्।
द्राक्षां सितां मागधिकाञ्च तुल्यां सशृङ्गवेरं मधुकं तुगाञ्च ॥ १७ ॥
लिह्याद् घृतक्षौद्रयुतां समांशां सितोपलां वा मरिचांशयुक्ताम्।
धात्रीकणाविश्वसितोपलाश्च सञ्चूर्ण्य मण्डेन पिबेच्च दध्नः ॥१८॥
हरेणुकां मागधिकाञ्च तुल्यां दध्ना पिबेत् कासगदाभिभूतः ;
उभे हरिद्रे सुरदारुशुण्ठीं गायत्रिसारञ्च पिबेत् समांशम् ॥ १९ ॥
बस्तस्य मूत्रेण सुखाम्बुना वा दन्तीं द्रवन्तीञ्च सतिल्वकाख्याम्।
भृष्टानि सर्पींष्यथ बादराणि खादेत्पलाशानि ससैन्धवानि ॥ २० ॥
कोलप्रमाणं प्रपिबेद्धि हिङ्गुसौवीरकेणाम्लरसेन वाऽपि।
क्षौद्रेण लिह्यान्मरिचानि वाऽपि भार्गीवचाहिङ्गुकृता च वर्त्तिः ॥२१॥
धूमे प्रशस्ता घृतसम्प्रयुक्ता वेणुत्वगेलालवणैः कृता वा।
मुस्तेङ्गुदीत्वङ्मधुकाह्वमांसीमनःशिलालैश्छगलाम्बुपिष्टैः ॥ २२ ॥
विधाय वर्त्तीञ्च पयोऽनुपानं धूमं पिबेद्वातबलासकासी।
पिबेच्च सीधुं मरिचान्वितं वा तेनाशु कासं जयति प्रसह्य ॥ २३ ॥
द्राक्षाऽम्बुमज्जिष्ठपुराह्वयाभिः क्षीरं शृतं माक्षिकसम्प्रयुक्तम्।

---

आसना येन तं तथोक्तं, येन कासेनोपविश्यापि शान्तिं नाप्नुवन्ति तमपीति यावदिति सुश्रुतार्थसन्दीपनम्। १ फलत्रिकं = त्रिफला, व्योषं = त्रिकुटा, शृङ्गी = कर्कटशृङ्गी, पद्मकं = 'पद्माख' इति ख्यातम्। देवकाष्ठं = देवदारु। २ कृष्णां = पिप्पलीम्। ३ धात्री = आमलकीफलम्, कणा = पिप्पली, विश्वं = शुण्ठी।

४ हरेणुका = निर्गुण्डीबीजम्, मागधिका = पिप्पली। ५ गायत्रिसारं = खदिरसारम्। ६ द्रवन्ती = दन्तीभेदः। ७ बादराणि पलाशानि पत्राणीत्यर्थः। ८ कोलप्रमाणं = कर्षप्रमाणम्, सौवीरकेण = काञ्जिकेन, अम्लरसेन = बीजपूररसेन। ९ वेणुत्वक् = 'वंशलोचन' इति। १० आलं = हरितालम्। ११ सीधुं = शस्यकं = सीधुमित्यर्थः। १२ अम्बु = 'नेत्रवाला' इति ख्यातम्। पुराह्वया = शल्लकी, पुराह्वया गुग्गु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निदिग्धिकानागरपिप्पलीभिः खादेच्च मुद्गान्मधुना सुसिद्धान् २४
उत्कारिकां सर्पिषि नागराढ्यां पक्त्वा समूलैस्त्रुटिकोलपत्रैः ।
एभिर्निषेवेत कृताञ्च पेयां तन्वीं सुशीतां मधुना विमिश्राम् ।
यत् प्रीह्हि सर्पिर्विहितं षडङ्गं तद्वातकासं जयति प्रसह्य ।
विदारिगन्धादिकृतं घृतं वा रसेन वा वासकजेन पक्वम् ॥ २६ ॥
विरेचनं स्नैहिकमत्र चोक्तमास्थापनं चाप्यनुवासनञ्च ।
धूमं पिबेत् स्नैहिकमप्रमत्तः पिबेत सुखोष्णं घृतमेव चात्र ॥२७॥
हिता यवाग्वश्च रसेषु सिद्धाः पयांसि लेहाः सघृतास्तथैव ।
प्रच्छर्दनं कायशिरोविरेकास्तथैव धूमाः कवलग्रहाश्च ॥ २८ ॥
उष्णाश्च लेहाः कटुका निहन्युः कफं विशेषेण विशोषणं च ।
कटुत्रिकञ्चापि वदन्ति पथ्यं घृतं कृमिघ्नस्वरसे विपक्वम् ॥ २९ ॥
निर्गुण्डिपत्रस्वरसे च पक्वं सर्पिः कफोत्थं विनिहन्ति कासम् ।
पाठाविडव्योषविडङ्गसिन्धुत्रिकण्टराम्लाहुतभुग्बलाभिः ॥ ३० ॥
शृङ्गीवचाऽम्भोधरदेवदारुदुरालभाभार्ग्यभयाशटीभिः ।
सम्यग्विपक्वं द्विगुणेन सर्पिर्निदिग्धिकायाः स्वरसेन चैतत् ॥ ३१ ॥
श्वासाग्निसादस्वरभेदभिन्नान्निहन्त्युदीर्णानपि पञ्च कासान् ।
विदारिगन्धोत्पलसारिवादीन्निष्काथ्य वर्गं मधुरञ्च कृत्स्नम् ॥३२॥

---

लुरित्यन्ये । १ निदिग्धिका=कण्टकारिका । २ उत्कारिकां=लप्सिकाम्, नागराढ्यां=शुण्ठ्यधिकाम्, त्रुटिः=सूक्ष्मैला, कोलः=बदरः, पत्रं='तेजपात' इति ख्यातम् ।

३ वातजकासचिकित्सामाह—**यदिति** । षडङ्गं=षट्पलम् । ४ रसेन=क्वाथेनेत्यर्थः । ५ अत्र=वातकासे । ६ रसेषु=मांसरसेषु । ७ कफकासचिकित्सामाख्याति—**प्रच्छर्दनमिति** । प्रच्छर्दनं=वमनम् । ८ उष्णा लेहाः कटुद्रव्यकृता बोध्याः । ९ कृमिघ्नस्वरसे=विडङ्गस्वरसे । १० सिन्धु=सैन्धवम्, त्रिकण्टः=गोक्षुरकः, हुतभुक्=चित्रकः, बला='खरैटी' इति ख्याता । ११ अम्भोधरः=मुस्तकम्, दुरालभा='जवासा' इति, शटी='कचूर' इति ख्याता । १२ निदिग्धिकायाः=कण्टकारिकायाः ।

१३ पित्तज-क्षयज-क्षतज-कासानां चिकित्सामाचष्टे—**विदारीति** । आदिशब्दस्य विदारिगन्धादिभिः सह प्रत्येकं सम्बन्धः । तेन विदारिगन्धादिः, उत्पलादिः,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घृतं पचेदिक्षुरसाम्बुदुग्धैः काकोलिवर्गे च सशर्करं तत् ।
प्रातः पिबेत् पित्तकृते च कासे रतिप्रसूते[1] क्षतजे च कासे ॥ ३३ ॥
खर्जूरभार्गीमगधापियालमेधूलिकैलाऽऽमलकैः समांशैः ।
चूर्णं[2] सिताक्षौद्रघृतप्रगाढं त्रीन्[3] हन्ति कासानुपयुज्यमानम् ॥ ३४ ॥
रक्ताह[4]रिद्राऽञ्जनवह्निपाठामूर्वोपकुल्या विलिहेत् समांशाः ।
क्षौद्रेण कासे क्षतजे क्षयोत्थे पिबेद् घृतं चेक्षुरसे विपक्वम् ॥३५॥
चूर्णं पिबेदामलकस्य वाऽपि क्षीरेण[5] पक्वं सघृतं हिताशी ।
चूर्णानि गोधूमयवोद्भवानि काकोलिवर्गश्च कृतः सुसूक्ष्मः ॥ ३ ६॥
कासेषु पेयास्रिषु कासबद्भिः क्षीरेण सक्षौद्रघृतेन वाऽपि ।
गुडोदकं वा क्वथित[6]ं पिबेद्धि क्षौद्रेण शीतं मरिचोपदंशम् ॥३७॥
प्रस्थं[7] त्रयेणामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वाऽर्धतुलां गुडस्य ।
चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिक[8]चव्यजीरव्योषेभकृष्णाहपुषाऽजमोदैः ॥ ३८ ॥
विडङ्गसिन्धुत्रिफलायवानीपाठाऽग्नि[9]धान्यैश्च पिचुप्रमाणैः ।
दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टावष्टौ च तैलस्य पचेद् यथावत् ॥३९॥
तं भक्षयेदक्षफलप्रमाण[10]ं यथेष्टचेष्टस्त्रिसुगन्धियुक्तम् ।
अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥ ४० ॥
शाम्यन्ति [11]चायं चिरमन्तरग्नेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः ।
स्त्रीणाञ्च वन्ध्याऽऽमयनाशनः स्यात् कल्याणको नाम गुडः प्रतीतः॥४१॥

---

सारिवादिश्चेत्यर्थः । मधुरं वर्गं=काकोल्यादिवर्गम् । १ रतिप्रसूते = क्षयसमाख्ये इति निष्कर्षः । २ मधूलिका=मूर्वा । ३ त्रीन्=पित्तोरःक्षतक्षयजान् । ४ रक्ता=मञ्जिष्ठा, अञ्जनं = सौवीराञ्जनम्, वह्निः = अजमोदा, उपकुल्या = पिप्पली । ५ क्षीरेण = दुग्धेन । ६ क्वथितं = शीतकषायविधिना गृहीतस्य गुडोदकस्य पश्चात् किञ्चित् पक्वमित्यर्थः ।

७ कल्याणगुडमभिधत्ते—प्रस्थेति । अर्धतुलां = पञ्चाशत्पलानि । ८ ग्रन्थिकं = 'पिपरामूल' इति ख्यातम् । इभकृष्णा=गजपिप्पली, हपुषा='हाउबेर' इति ख्याता । ९ अग्निः=चित्रकः, धान्यं='धनिया' इति ख्यातम् । पिचुप्रमाणैः = कर्षप्रमाणैः । १० अक्षफलप्रमाणं = बिभीतकफलप्रमाणम्, त्रिसुगन्धियुक्तं = त्रिजातकयुतम् । ११ अयं=कल्याणकगुडः ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विपञ्चमूलेभकणाऽऽत्मगुप्ताभार्गीशटीपुष्करमूलविश्वान् ।
पाठाऽमृताग्रन्थिकशङ्खपुष्पीरास्नाऽग्न्यपामार्गबलायवासान् ॥ ४२ ॥
द्विपालिकान् न्यस्य यवाढकञ्च हरीतकीनाञ्च शतं गुरूणाम् ।
द्रोणे जलस्याढकसंयुते च क्वाथे कृते पूतचतुर्थभागे ॥ ४३ ॥
पचेत् तुलां शुद्धगुडस्य दत्त्वा पृथक च तैलात् कुडवं घृताच्च ।
चूर्णञ्च तावन्मगधोद्भवाया देयञ्च तस्मिन्मधु सिद्धशीते ॥ ४४ ॥
रसायनात् कर्षमतो विलिह्याद् द्वे चाभये नित्यमथाशु हन्यात् ।
तद्राजयक्ष्मग्रहणीप्रदोषशोफाग्निमान्द्यस्वरभेदकासान् ॥ ४५ ॥
पाण्ड्वामयश्वासशिरोविकारान् हृद्रोगहिक्काविषमज्वरांश्च ।
मेधाबलोत्साहमतिप्रदञ्च चकार चैतद्भगवानगस्त्यः ॥ ४६ ॥
कुलीरशुक्तीचटकैणलावान्निष्काथ्य वर्गं मधुरं च कृत्स्नम् ।
पचेद् घृतं तत्तु निषेव्यमाणं हन्यात् क्षतोत्थं क्षयजञ्च कासम् ॥४७॥
शतावरीनागबलाविपक्वं घृतं विधेयञ्च हिताय कासिनाम् ॥ ४८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे कासप्रतिषेधो नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

---

१ अगस्त्यावलेहं प्रतिपादयति—द्विपञ्चमूलेति । द्विपञ्चमूलं = दशमूलम्, इभकणा = गजपिप्पली, आत्मगुप्ता = कपिकच्छूः, शटी = 'कचूर' इति ख्याता । विश्वं = शुण्ठी । २ अमृता = गुडूची, ग्रन्थिकं = पिप्पलीमूलम्, अग्निः = चित्रकः, बला = 'खरैटी' इति प्रथते ।

३ यवाढकं = यवानां चतुःषष्टिपलानि, गुरूणाम् = अतिस्थूलानाम् । ४ मगधोद्भवायाः = पिप्पल्या इत्यर्थः । ५ कुलीरादिघृतमभिधत्ते—कुलीरेति । कुलीरः = कर्कटकः, शुक्तिः = जलशुक्तिः, चटकः = ग्रामचटकः, एणः = कृष्णमृगः । ६ हिताय = कल्याणायेत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः स्वरभेदप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनातिगीत-
शीतादिभिः प्रकुपिताः पवनादयस्तु ।
स्रोतसुः ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां
हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ ३ ॥

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं शनैर्वदति गद्गदवत् स्वरञ्च ।
पित्तेन पीतवदनाक्षिपुरीषमूत्रो ब्रूयाद् गलेन परिदाहसमन्वितेन ॥४॥

कृच्छ्रात् कफेन सततं कफरुद्धकण्ठो
मन्दं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषः ।
सर्वात्मके भवति सर्वविकारसम्प-
दव्यक्तता च वचसस्तमसाध्यमाहु ॥ ५ ॥

क्षूण्येत वाक् क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च ।
वागेष चापि हतवाक् परिवर्जनीयः ।
अन्तर्गलं स्वरमलक्ष्यपदक्षिरेण
भेदश्चयाद्वदति दिग्धगलौष्ठतालुः ॥ ६ ॥

---

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

१ प्रतीकारसाम्यात् कासप्रतिषेधानन्तरं स्वरभेदप्रतिषेधमधिकरोति—**अथेति** । स्वरभेदः = स्वरोपघातः । २ एकेनैव श्लोकेन स्वरभेदस्य हेतु-सम्प्राप्ति-संख्या निर्दिशति—**अत्युच्चेति** । अध्ययनम् = उच्चैर्वेदादिपाठः । ३ स्वरवहेषु स्रोतःसु = शब्दवाहिनीषु धमनीषु, षड्विधः = वातपित्तकफसन्निपातक्षयभेदोजभेदात् षट्प्रकारः ।

४ वातिकादिस्वरभेदं लक्षयति—**वातेनेति** । कृष्णशब्दो नयनादिवर्चःपर्यन्तैः सह सम्बध्यते । भिन्नं = भिन्नस्वरम् । ५ कफरुद्धकण्ठः = श्लेष्मावृतगलः, मन्दं शनैः = मन्दं मन्दमित्यर्थः । दिवा विशेषः = दिने सूर्यरश्मिभिः कफस्य मन्दीभावाद्विशेषो भवेदित्यर्थः । ६ सर्वविकारसम्पत् = वातादिस्वरभेदलिङ्गप्रादुर्भावः । ७ मे-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षीणस्य[1] वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः ।
मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥ ७ ॥

स्निग्धान्[2] स्वरातुरनरानपकृष्टदोषान्
न्यायेन तान् वमनरेचनबस्तिभिश्च ।
नस्यावपीडमुखधावनधूमलेहैः[3]
सम्पादयेच्च विविधैः कवलग्रहैश्च ॥ ८ ॥

यः श्वासकासविधिरादित एव चोक्त-
स्तञ्चाप्यशेषमवतारयितुं यतेत ।
वैशेषिकञ्च विधिमूर्द्ध्वमतो वदामि
तं वै स्वरातुरहितं[4] निखिलं निबोध ॥ ९ ॥

स्वरोपघातेऽनिलजे[5] भुक्तोपरि घृतं पिबेत् ।
कासमर्दकवार्त्ताकमार्कवस्वरसे[6] श्रृतम् ॥ १० ॥
पीतं घृतं हन्त्यनिलं[7] सिद्धमार्त्तगले रसे ।
यवक्षाराजमोदाभ्यां चित्रकामलकेषु वा ॥ ११ ॥
देवदार्वग्निकाभ्यां[8] वा सिद्धमाजं समाक्षिकम् ।
सुखोदकानुपानो वा ससर्पिष्को गुडौदनः ॥ १२ ॥
क्षीरानुपानं[9] पित्ते तु पिबेत् सर्पिरतन्द्रितः ।

---

दोजस्वरभेदलक्षणमाख्याति—अन्तरिति । मेदश्चयात् = मेदोवृद्धेः, दिग्धं मेदसा लिप्तं गलौष्ठतालु यस्य स दिग्धगलौष्ठतालुः ।

१ उक्तवातादिजानामेवावस्थायामसाध्यत्वं प्रतिपादयति—क्षीणस्येति । क्षीणस्य = क्षीणमांसस्य, कृशस्य = अबलस्य, सहोपजातः = जन्मप्रभृतिबद्धः, 'काकस्वर' इति लोके । २ सामान्येन स्वरभेदचिकित्सितमभिदधाति—स्निग्धानिति । ३ मुखधावनं = गण्डूषादिकम्, कवलग्रहैः = गण्डूषभेदैः । "सुखं सञ्चार्यते या तु गण्डूषे सा प्रकीर्तिता । असञ्चार्या तु या मात्रा कवले सा प्रकीर्तिता ॥" इति ज्ञेयम् । ४ स्वरातुरहितं = स्वरभेदातुरहितमित्यर्थः ।

५ वातजस्वरभेदचिकित्सामाचष्टे—स्वरेति । ६ कासमर्दः = 'कसौंदी' इति ख्यातः । मार्कवः = भृङ्गराजः । ७ अनिलं = वातजस्वरभेदम्, आर्तगलः = ककुभ- इत्यर्थः । ८ अग्निकः = अजमोदा । ९ पैत्तिकस्वरभेदचिकित्सामभिधत्ते—क्षीरा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्नीयाच्च ससर्पिष्कं यष्टीमधुकपायसम् ॥ १३ ॥
लिह्यान्मधुरकाणां वा चूर्णं मधुघृताप्लुतम् ।
शतावरीचूर्णयोगं बलाचूर्णमथापि वा ॥ १४ ॥
पिबेत् कटूनि मूत्रेण कफजे स्वरसङ्क्षये ।
लिह्याद्वा मधुतैलाभ्यां भुक्त्वा खादेत् कटूनि वा ॥ १५ ॥
स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते ।
सर्वजे क्षयजे चापि प्रत्याख्यायाचरेत् क्रियाम् ॥ १६ ॥
शर्करामधुमिश्राणि शृतानि मधुरैः सह ।
पिबेत् पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतः स्वरः ॥ १७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे छर्दिप्रतिषेधो नाम (पञ्चदशोऽध्यायः, आदितः) त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

---

## चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः कृमिरोगप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
अजीर्णाध्यशनासात्म्यविरुद्धमलिनाशनैः ।
अव्यायामदिवास्वप्नगुर्वतिस्निग्धशीतलैः ॥ ३ ॥
माषपिष्टान्नविदलबिसशालूकसेरुकैः ।

---

नुपानमिति । १ यष्टीमधुकान्वितं पायसं यष्टीमधुकपायसम् । २ मधुरकाणां = काकोल्यादीनाम् । ३ कफजस्वरभेदचिकित्सितमभिदधाति—पिबेदिति । कटूनि = त्रिकटुकादीनि । ४ कफवत् = कफजस्वरभेदवत् । ५ प्रत्याख्याय = असाध्यत्वेन निराकृत्येत्यर्थः । ६ मधुरैः = काकोल्यादिभिः । ७ गोमहिष्यजानां पयांसीत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहितायां उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---

### चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

८ कृमीणां निदानमुपदिशति—अजीर्णेति । असात्म्यं = प्रकृतिप्रतिकूलमशनम्, विरुद्धं = हिताहितीयोक्तम् । ९ पिष्टान्नं = तण्डुलादिपिष्टम्, विदलं = मकुष्ठादि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्णशाकसुराशुक्तदधिक्षीरगुडेक्षुभिः ॥ ४ ॥
पललानूपपिशितपिण्याकपृथुकादिभिः ।
स्वाद्वम्लद्रवपानैश्च श्लेष्मा पित्तञ्च कुप्यति ॥ ५ ॥
कृमीन् बहुविधाकारान् करोति विविधाश्रयान् ।
आमपक्वाशये तेषां कफविड्जन्मनां पुनः ।
धमन्यां रक्तजानां च प्रसवः प्रायशः स्मृतः ॥ ६ ॥
विंशतेः कृमिजातीनां त्रिविधः सम्भवः स्मृतः ।
पुरीषकफरक्तानि तासां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ ७ ॥
अजवा विजवाः किप्याश्चिप्या गण्डूपदास्तथा ।
चूरवो द्विमुखाश्चैव ज्ञेयाः सप्त पुरीषजाः ॥ ८ ॥
श्वेताः सूक्ष्मास्तुदन्त्येते गुदं प्रतिसरन्ति च ।
तेषामेवापरे पुच्छैः पृथवश्च भवन्ति हि ॥ ९ ॥
शूलाग्निमान्द्यपाण्डुत्वविष्टम्भबलसङ्क्षयाः ।
प्रसेकारुचिहृद्रोगविड्भेदास्तु पुरीषजैः ॥ १० ॥
रक्ता गण्डूपदा दीर्घा गुदकण्डूनिपातिनः ।
शूलाटोपशकृद्भेदपक्तिनाशाश्च ते ॥ ११ ॥
दर्भपुष्पा महापुष्पाः प्रलूनाश्चिपिटास्तथा ।
पिपीलिका दारुणाश्च कफकोपसमुद्भवाः ॥ १२ ॥
रोमशा रोममूर्द्धानः सपुच्छाः श्यावमण्डलाः ।

---

कम्, शालूः = कमलकन्दः । १ पललं = तिलकल्कः, आनूपपिशितम् = आनूपमांसम्, पिण्याकः = निःस्नेहतिलकल्कः, 'खरी' इति प्रथते । पृथुकः = चिपिटकः । २ कृमीणामुत्पत्तिस्थानानि निर्दिशति—आमेति । तेषां = कृमीणाम् । ३ प्रसवः = उत्पत्तिरित्यर्थः ।

४ पुरीषजकृमीणां नामानि लक्षणं चाभिदधाति—अजवा इति । अजवादिद्विमुखान्ताः सप्त पुरीषजाः कृमयः । ५ गुदं प्रति = गुदं लक्ष्यीकृत्येत्यर्थः । ६ विड्भेदः = द्रवपुरीषत्वम् । ७ पक्तिनाशकराः = अग्निनाशकराः । ८ कफजकृमीणां नामानि लक्षणं चाभिधत्ते—दर्भपुष्पा इति । दर्भपुष्पादयो दारुणान्ताः षट् कफजाः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूढधान्याङ्कुराकाराः शुक्लास्ते तनवस्[1]तथा ॥ १३ ॥
मज्जादा नेत्रलेढारस्तालुश्रोत्रभुजस्तथा ।
शिरोहृद्रोगवमथुप्रतिश्यायकराश्च ते ॥ १४ ॥
केशरोमनखादाश्च दन्तादाः किक्किशास्तथा ।
कुष्ठजाः सपरीसर्पा ज्ञेयाः शोणितसम्भवाः ॥ १५ ॥
ते सरक्ताश्च कृष्णाश्च स्निग्धाश्च पृथवस्[3]तथा ।
रक्ताधिष्ठानजान् प्रायोविकारान्[4] जनयन्ति ते ॥ १६ ॥
माषपिष्टान्नविदलपर्णशाकैः[5] पुरीषजाः ।
मांसमाषगुडक्षीरदधितैलैः कफोद्भवाः ॥ १७ ॥
विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवन्ति हि ।
ज्वरो[6] विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ॥ १८ ॥
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च सञ्जातकृमिलक्षणम् ।
दृश्यास्त्रयोदशाद्यास्तु कृमीणां परिकीर्तिताः ॥ १९ ॥
केशादाद्यास्त्वदृश्यास्ते द्वावाद्यौ परिवर्जयेत् ।
एषामन्यतमं[9] ज्ञात्वा जिघांसुः स्निग्धमातुरम् ॥ २० ॥
सुरसादिविपक्वेन सर्पिषा वान्तमादितः ।
विरेचयेत्तीक्ष्णतरैर्योगैरास्थापयेच्च तम् ॥ २१ ॥
यवकोलकुलत्थानां सुरसादेर्गणस्य च[10] ।

---

क्रिमयः । १ तनवः = कृशाः, सूत्राकारा इति यावत् ।

२ रक्तजकृमीणां नामानि लक्षणं च वक्ति—केशेति । केशादिपरीसर्पान्ताः सप्त रक्तजाः क्रिमयः । ३ पृथवः = स्थूलाः । ४ विकारान् = कुष्ठविसर्पपिडकादीन् । ५ पुरीषजादिक्रिमीणां विशेषकारणानि दर्शयति—माषेति । विदलं = मकुष्ठादि, पर्णशाकं = पत्रशाकम् । ६ सञ्जातक्रिमिलक्षणमुपदिशति—ज्वर इति । विवर्णता = गौरादिवर्णान्यत्वमित्यर्थः ।

७ क्रिमीणां दृश्यादृश्यविभागं ब्रवीति—दृश्या इति । आद्यास्त्रयोदश = अजवादिदारुणान्ता इत्यर्थः । ८ केशादाद्याः परीसर्पान्ता रक्तजाः क्रिमय इत्यर्थः । ९ पुरीषज-कफज-कृमीणां सामान्यं चिकित्सितमाह—एषामिति । अन्यतमम् = एकतमम् । १० चकारात् सुरसादिगणकल्कोऽपि ग्राह्यः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विडङ्गस्नेहयुक्तेन क्वाथेन लवणेन च ॥ २२ ॥
प्रत्यागते[1] निरूहे तु नरं स्नातं सुखाम्बुना ।
युञ्ज्यात् कृमिघ्नैरशनैस्ततः शीघ्रं भिषग्वरः ॥ २३ ॥
स्नेहेनोक्तेन[2] चैनन्तु योजयेत् स्नेहबस्तिना ।
ततः शिरीषकिणिही[3]रसं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ २४ ॥
केवूकं[4]स्वरसं वाऽपि पूर्ववत्तीक्ष्णभोजनः ।
पलाशबीजस्वरसं कल्कं[5] वा तण्डुलाम्बुना ॥ २५ ॥
पारिभद्रक[6]पत्राणां क्षौद्रेण स्वरसं पिबेत् ।
पत्तूर[7]स्वरसं वाऽपि पिबेद्वा सुरसादिजम् ॥ २६ ॥
लिह्यादश्वशकृच्चूर्णं[8] वैडङ्गं वा समाक्षिकम् ।
पत्रैर्मूषिकपर्ण्या[9] वा सुपिष्टैः पिष्टमिश्रितैः ॥ २७ ॥
खादेत् पूपलिकाः पक्वाः [10]धान्याम्लञ्च पिबेदनु ।
सुरसादिगणे पक्वं तैलं वा पानमिष्यते ॥ २८ ॥
विडङ्गचूर्णयुक्तैर्वा [11]पिष्टैर्भक्ष्यांस्तु कारयेत् ।
तत्कषायप्रपीतानां[12] तिलानां स्नेहमेव वा ॥ २९ ॥
श्वाविधः शकृतश्चूर्[13]ण सप्तकृत्वः सुभावितम् ।
विडङ्गानां कषायेण त्रैफलेन तथैव च ॥ ३० ॥
क्षौद्रेण लीढ्वाऽनुपिबेद्रसमामलकोद्भवम् ।
अक्षाभयारसं वाऽपि विधिरेषोऽयसामपि ॥ ३१ ॥

---

१ प्रत्यागते = पतिते । २ स्नेहेनोक्तेन = विडङ्गसाधितस्नेहेन, स्नेहबस्तिना = अनुवासनेनेत्यर्थः । ३ किणिही = अपामार्गः । ४ केवूकः = 'केऊ' इति ख्यातः । पूर्ववत = क्षौद्रयुतमित्यर्थः ।

५ पलाशबीजकल्कं वेत्यर्थः । ६ पारिभद्रकः = पर्वतनिम्बः । ७ पत्तूरस्वरसं = सिरवालिकास्वरसम् । पत्तूरं रक्तचन्दनमित्यन्ये । ८ अश्वशकृच्चूर्णं = घोटकपुरीषचूर्णम्, वैडङ्गं = विडङ्गचूर्णम् । ९ मूषिकपर्ण्याः = दन्त्याः, पिष्टमिश्रितैः = यवपिष्टयुक्तैरित्यर्थः । १० धान्याम्लं = काञ्जिकम् । ११ यवादिपिष्टैरित्यर्थः । भक्ष्यान् = लड्डुकादीन् । १२ तत्कषायप्रपीतानां = विडङ्गक्वाथभावितानाम् । १३ सप्तकृ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूतिकस्वरसं[1] वाऽपि पिबेद्वा मधुना सह।
पिबेद्वा पिप्पलीमूलमजामूत्रेण संयुतम्॥ ३२॥
सप्तराजं पिबेद् घृष्टं त्रपु[2] वा दधिमस्तुना।
पुरीषजान् कफोत्थांश्च हन्यादेवं कृमीन् भिषक्॥ ३३॥
शिरोहृद्घ्राणकर्णाक्षिसंश्रितांश्च पृथग्विधान्[3]।
विशेषेणाञ्जनैर्नस्यैरवपीडैश्च साधयेत्[4]॥ ३४॥
शक्रद्रसं तुरङ्गस्य सुशुष्कं भावयेदति।
निष्काथेन विडङ्गानां चूर्णं प्रधमनन्तु तत्[5]॥ ३५॥
अयश्चूर्णान्यनेनैव[6] विधिना योजयेद्भिषक्।
सकांस्यनीलं[7] तैलञ्च नस्यं स्यात्सुरसादिके॥ ३६॥
इन्द्रलुप्तविधिश्चापि विधेयो रोमभोजिषु।
दन्तादानां समुद्दिष्टं विधानं मुखरोगिकम्[8]॥ ३७॥
रक्तजानां[9] प्रतीकारं कुर्यात् कुष्ठचिकित्सिते।
सुरसादिन्तु[10] सर्वेषु सर्वथैवोपयोजयेत्॥ ३८॥
प्रव्यक्तितिक्तकटुकं भोजनञ्च हितं भवेत्।
कुलत्थक्षारसंसृष्टं[11] क्षारपानञ्च पूजितम्॥ ३९॥
क्षीराणि[12] मांसानि घृतानि चैव दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति।

---

त्वः = सप्तवारान्। १ पूतीकस्वरसं = करञ्जस्वरसम्। २ त्रपु = रङ्गम्, 'रांगा' इति ख्यातम्।

३ स्थानविशेषेण कफजक्रिमीणां विशेषचिकित्सितमाचष्टे—**शिरोहृदिति**। ४ चकाराद् गण्डूषकवलग्रहादिभिरपि साधयेदिति बोध्यम्। ५ प्रधमनं = नासायां चूर्णप्रक्षेपणम्। ६ अनेनैव = अश्वपुरीषस्वरसप्रधमनविधानेनैव। ७ सकांस्यनीलं = कांस्यापमार्जनमसीसहितम्। सुरसादिके 'विपक्वम्' इति शेषः।

८ मुखरोगिकं = क्रिमिदन्तोक्तम्। ९ रक्तजक्रिमिचिकित्सामाह—**रक्तजानामिति**। कुष्ठचिकित्सिते 'समुद्दिष्टम्' इति पदसम्बन्धनीयम्। १० पुरीषजादिषु सर्वेष्वित्यर्थः। ११ यवक्षारपानमित्यर्थः। तदुक्तम्—"यावशूकस्य पानं तु कुलत्थक्षारवारिणा' इति। १२ क्रिमिरोगे वर्ज्यानि निर्दिशति—**क्षीराणीति**। पर्णवन्ति शाकानि = पत्र-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समासतोऽम्लान्मधुरान् हिमांश्च कृमीन् जिघांसुः[1] परिवर्जयेत्तु ॥४०॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे रक्तपित्तप्रतिषेधो नाम ( षोडशोऽध्यायः, आदितः ) चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

---

## पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथातः[2] उदावर्त्तप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अधश्चोद्[3]ध्वञ्च भावानां प्रवृत्तानां स्वभावतः ।
न वेगान् धारयेत् प्राज्ञो वातादीनां जिजीविषुः ॥ ३ ॥

वातविण्मूत्रजृम्भाऽश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः ।
व्याहन्यमानैरुदितैरुदावर्त्तो निरुच्यते[4] ॥ ४ ॥

क्षुत्तृष्णाश्वासनिद्राणामुदावर्त्तो विधारणात् ।
तस्याभिधास्ये व्यासेन लक्षणञ्च चिकित्सितम् ॥ ५ ॥

त्रयोदशविधश्चासौ भिन्न एतैस्तु[6] कारणैः ।
अपथ्यभोजनाच्चापि वक्ष्यते च तथाऽपरैः[7] ॥ ६ ॥

---

शाकानि । १ जिघांसुः = हन्तुमिच्छुः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---

### पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

२ कृमिप्रतिषेधानन्तरमुदावर्तप्रतिषेधमधिकरोति—अथात इति । उद् ऊर्ध्वं वातविण्मूत्रादीनामावर्तो भ्रमणं यस्मिन् स उदावर्तः । उदावर्तस्य सामान्यलक्षणमुक्तं तन्त्रान्तरे—"यत्रोर्ध्वं जायते वायोरावर्तः स चिकित्सकैः । उदावर्त इति प्रोक्तो व्याधिस्तत्रानिलः प्रभुः ॥" इति । ३ वेगधारणं निषेधति—अध इति । अधःप्रवृत्तानां भावानां मूत्रादीनाम्, उर्ध्वं प्रवृत्तानां भावानामुद्गारादीनाम् ।

४ उदावर्तस्य निदानं निरुक्तिं च निर्दिशति—वातेति । इन्द्रियमत्र शुक्रम् । तदुक्तमभिधाने—'श्रोत्रवागादि सत्त्वं च शुक्रं चेन्द्रियमुच्यते' इति । ५ व्याहन्यमानः = अवरुध्यमानैरित्यर्थः । ६ एतैः = पूर्वोक्तवातविण्मूत्रादिभिः । ७ अपरैः =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्मानशूलौ[1] हृदयोपरोधं शिरोरुजं श्वासमतीव हिक्काम् ।
कासप्रतिश्यायगलग्रहांश्च बलासपित्तप्रसरञ्च[2] घोरम् ॥ ७ ॥
कुर्यादपानोऽभिहतः[3] स्वमार्गे हन्यात् पुरीषं मुखतः क्षिपेद्वा ।
आटोप[4]शूलौ परिकर्त्तनञ्च सङ्गः पुरीषस्य तथोद्ध्वंवातः ॥ ८ ॥
पुरीषमास्यादपि वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ।
मूत्रस्य[5] वेगेऽभिहते नरस्तु कृच्छ्रेण मूत्रं कुरुतेऽल्पमल्पम् ॥ ९ ॥
मेढ्रे गुदे वङ्क्षणबस्तिमुष्कनाभिप्रदेशेष्वथवाऽपि मूर्ध्नि ।
आनद्धबस्तिश्च भवन्ति तीव्राः शूलाश्च शूलैरिव भिन्नमूर्त्तेः[6] ॥१० ॥
मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपघातात्[7] पवनात्मकाः स्युः ।
श्रोत्राननघ्राणविलोचनोत्था भवन्ति तीव्राश्च[8] तथा विकाराः ॥११॥
आनन्दजं[9] शोकसमुद्भवं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि ।
शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च[10] भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ १२ ॥
भवन्ति[11] गाढं क्षवथोर्विघाताच्छिरोऽक्षिनासाश्रवणेषु रोगाः ।
कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च[12] वायोरुत वाऽप्रवृत्तिः ॥ १३ ॥
उद्गारवेगे[13]ऽभिहते भवन्ति घोरा विकाराः पवनप्रसूताः ।

---

वाताद्यवरोधजातिरिक्तः । १ वातावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणमभिदधाति—**आध्मा-नेति** । हृदयोपरोधं = हृदयावरणम् । २ बलासपित्तप्रसरं = कफपित्तप्रसरणम् । ३ अभिहतः = अवरुद्धः, स्वमार्गे = गुदे ।

४ पुरीषावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणमभिधत्ते—**आटोपेति** । आटोपः = सरुग्गुड-गुडाशब्दः, परिकर्तनं = गुदमेढ्रबस्त्यादिषु कर्तनवद् व्यथा, पुरीषस्य सङ्गः = पुरीषा-प्रवृत्तिः, ऊर्ध्ववातः = उद्गारः । ५ मूत्रावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणमाख्याति—**मूत्र-स्येति** । ६ भिन्नमूर्त्तेः = भिन्नशरीरस्येत्यर्थः ।

७ जृम्भाऽवरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणमाचष्टे—**मन्येति** । मन्यागलयोः स्तम्भः, शिरो-विकाराः = सूर्यावर्तादिशिरोरोगाः, पवनात्मकाः = पवनजाः कम्पसुप्त्यादयः । ८ च-कारादरुचिविभ्रमादयश्च बोध्याः । ९ नेत्रोदकावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणं वक्ति—**आनन्दजमिति** । प्राप्तं = प्रवृत्युन्मुखम् । १० चकारात् प्रतिश्यायादयो बोध्याः । ११ क्षिक्काऽवरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणं ब्रवीति—**भवन्तीति** । क्षवथोर्विघातात् = क्षिक्काऽ-वरोधात् । १२ चकारान्मन्यास्तम्भादयो बोध्याः । उतवा = अथवेत्यर्थः ।

१३ उद्गारावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणं प्रतिपादयति—**उद्गारेति** । पवनप्रसूताः =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छर्दिर्विघातेन भवेच्च कुष्ठं येनैव दोषेण विदग्धमन्नम् ॥ १४ ॥
मूत्राशये पायुनि मुष्कयोश्च शोफो रुजो मूत्रविनिग्रहश्च ।
शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेद्वा ते ते विकारा विहते तु शुक्रे ॥ १५ ॥
तन्द्राऽङ्गमर्दारुचिविभ्रमाः स्युः क्षुधोऽभिघातात् कृशता च दृष्टेः ।
कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृष्णाऽभिघाताद् हृदये व्यथा च ॥१६॥
श्रान्तस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवाऽपि गुल्मः ।
जृम्भाऽङ्गमर्दोऽङ्गशिरोऽक्षिजाड्यं निद्राऽभिघातादथवाऽपि तन्द्रा १७
तृष्णाऽर्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरभिद्रुतम् ।
शकृद्बद्धमन्तं मतिमानुदावर्त्तनमुत्सृजेत् ॥ १८ ॥
सर्वेष्वेतेषु विधिवदुदावर्त्तेषु कृत्स्नशः ।
वायोः क्रिया विधातव्याः स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥ १९ ॥
सामान्यतः पृथक्त्वेन क्रियां भूयो निबोध मे ।
आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्ने विशिष्यते ॥ २० ॥

---

वातजाः कम्पहिक्काहृद्विबन्धादयः । १ वमनावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणमाह—छर्दिरिति । भवेच्चेति चकारादरोचकादयो बोध्याः । २ वीर्यावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणं दर्शयति—मूत्राशय इति । मूत्राशये=बस्तौ, पायुनि=गुदे, मूत्रविनिग्रहः=मूत्राप्रवर्तनम् । ३ तस्य शुक्रस्य स्रवणं तत्स्रवणम्, ते ते विकाराः=शुक्रवेगविघातजा हृत्पीडाऽङ्गमर्दादयः, विहते शुक्रे=निर्गच्छच्छुक्रावरोधे ।

४ क्षुधाऽवरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणं निर्दिशति—तन्द्रेति । तन्द्रा=निद्राभेदः । कृशता चेति चकारात् कार्श्यदौर्बल्यादयो बोध्याः । ५ तृषाऽवरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणमाचष्टे—कण्ठेति । श्रवणावरोधः=अङ्गुलिपिहित इव शब्दस्याग्रहणम् । व्यथाचेति चकाराच्छ्लमस्वेदादयः । ६ श्वासावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणमाख्याति—श्रान्तस्येति । श्रान्तस्य=धावनादिना खिन्नस्येत्यर्थः ।

७ निद्राऽवरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणमभिधत्ते—जृम्भेति । जाड्यं=गौरवम् । ८ असाध्योदावर्तं लक्षयति—तृष्णाऽर्दितमिति । परिक्लिष्टं=क्लेशसंयुक्तम् । ९ उदावर्तेषु सामान्यचिकित्सां दर्शयति—सर्वेष्विति । १० स्वमार्गप्रतिपत्तये=वायोरात्ममार्गप्रवर्तनायेत्यर्थः ।

११ वातजोदावर्तचिकित्सामाख्याति—आस्थापनमिति । आस्थापनं=निरूहः,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरीषजे तु कर्त्तव्यो विधिरानाहिको भवेत् ।
सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत् ॥ २१ ॥
एलां वाऽप्यथ मद्येन क्षीरं वाऽपि पिबेन्नरः ।
धात्रीफलानां स्वरसं सजलं वा पिबेत् त्र्यहम् ॥ २२ ॥
रसमश्वपुरीषस्य गर्दभस्याथवा पिबेत् ।
मांसोपदंशं मधु वा पिबेद्वा सीधु गौडिकम् ॥ २३ ॥
भद्रदारु घनं मूर्वा हरिद्रा मधुकं तथा ।
कोलप्रमाणानि पिबेदान्तरिक्षेण वारिणा ॥ २४ ॥
दुःस्पर्शास्वरसं वाऽपि कषायं कुङ्कुमस्य च ।
एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वाऽलवणीकृतम् ॥ २५ ॥
पञ्चमूलीश्रृतं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा ।
योगांश्च वितरेदत्र पूर्वोक्तानश्मरीभिदः ॥ २६ ॥
मूत्रकृच्छ्रक्रमं चापि कुर्यान्निरवशेषतः ।
भूयो वक्ष्यामि योगान् यान् मूत्राघातोपशान्तये ॥ २७ ॥
स्नेहैः[10] स्वेदैरुदावर्त्त जृम्भाजं समुपाचरेत् ।
[11]अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्य्यः स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः ॥२८॥
[12]तीक्ष्णाञ्जनावपीडाभ्यां तीक्ष्णगन्धोपशिङ्घनैः ।

---

विशिष्यते = विशेषेण क्रियते । १ पुरीषजोदावर्तचिकित्सामाह—**पुरीषज इति** । आनाहिको विधिर्विसूचिकाप्रतिषेधे वक्ष्यते । २ मूत्रोदावर्तचिकित्सां वक्ति—**सौवर्चलेति** ।

३ मांसोपदंशं = मांसभक्षणसहितम्, मधु = द्राक्षोद्भवं मद्यम्, तदुक्तं तन्त्रान्तरे—"द्राक्षोद्भवं चापि पिबेन्मद्यं मांसोपदंशकम्" इति । गौडिकं = गुडकृतं सीधु । ४ घनं = मुस्तकम् । ५ कोलप्रमाणानि = अर्धकर्षप्रमाणानि । ६ दुःस्पर्शास्वरसं = दुरालभास्वरसम् । ७ अलवणीकृतम् = ईषत्सैन्धवयुतम् ।

८ पञ्चमूलीश्रृतं = लघुपञ्चमूलसाधितम् । तदुक्तम्—"लघुना पञ्चमूलेन श्रृतं क्षीरं पिबेन्नरः" इति । ९ अत्र = मूत्रजोदावर्ते, पूर्वोक्तान् = "कुशः काशः शरः" इत्यादिकानश्मरीचिकित्सितोक्तान् । एवं मूत्रकृच्छ्रमूत्राघातचिकित्सितोक्ता योगा अपि बोध्याः ।

१० जृम्भाऽश्रुजोदावर्तचिकित्सामाचष्टे—**स्नेहैरिति** । ११ अश्रुमोक्षः = नेत्रजलनिःसारणम् । १२ क्षवजोदावर्तचिकित्सां दर्शयति—**तीक्ष्णेति** । तीक्ष्णगन्धोपशिङ्घनैः =

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्त्तिप्रयोगैरथवा क्षवसक्तिं प्रवर्त्तयेत् ॥ २९ ॥
तीक्ष्णौषधप्रधमनैरथवाऽऽदित्यरश्मिभिः ।
उद्गारजे क्रमोपेतं स्नैहिकं धूममाचरेत् ॥ ३० ॥
सुरां सौवर्चलवतीं बीजपूररसान्विताम् ।
छर्द्यघातं यथादोषं सम्यक् स्नेहादिभिर्जयेत् ॥ ३१ ॥
सक्षारलवणोपेतमभ्यङ्गं चात्र दापयेत् ।
बस्तिशुद्धिकरावापं चतुर्गुणजलं पयः ॥ ३२ ॥
आवारिनाशात् क्वथितं पीतवन्तं प्रकामतः ।
रमयेयुः प्रिया नार्य्यः शुक्रोदावर्त्तिनं नरम् ॥ ३३ ॥
क्षुद्घाते हितं स्निग्धमुष्णमल्पञ्च भोजनम् ।
तृष्णाघाते पिबेन्मन्थं यवागूं वाऽपि शीतलाम् ॥ ३४ ॥
भोज्यो रसेन विश्रान्तः श्रमश्वासातुरो नरः ।
निद्राघाते पिबेत् क्षीरं स्वप्याच्चेष्टकथा नरः ॥ ३५ ॥
आध्मानाद्येषु रोगेषु यथास्वं प्रयतेत हि ।
यच्च यत्र भवेत् प्राप्तं तच्च तस्मिन् प्रयोजयेत् ॥ ३६ ॥
वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः ।

---

पौनःपुन्येन मरिचादिचूर्णावघ्राणैः । १ धूमवर्तिप्रयोगैरित्यर्थः । क्षवसक्तिः=छिक्कायाः अप्रवर्तनम् । २ उद्गारजोदावर्तचिकित्सां निर्दिशति—**उद्गारज** इति । क्रमोपेतं=धूमनस्यकवलग्रहचिकित्सितोक्तक्रमयुतम् ।

३ छर्द्यघातजोदावर्तचिकित्सामभिदधाति—**छर्द्यघातमिति** । छर्द्यघातं=छर्द्यघातजमुदावर्तमित्यर्थः । ४ क्षारः=यवक्षारः । ५ शुक्रोदावर्तचिकित्सामभिधत्ते—**बस्तीति** । बस्तिशुद्धिकरावापं=कूष्माण्डकतृणपञ्चमूलादिप्रक्षेपम् । ६ प्रकामतः=स्वेच्छयेत्यर्थः ।

७ क्षुत्तृष्णाघातजोदावर्तचिकित्सामाह—**क्षुद्घात इति** । ८ यवागूं=पेयाम् । ९ मांसरसेनेत्यर्थः । १० निद्राघातजोदावर्तचिकित्सां ब्रवीति—**निद्रेति** । क्षीरं=गोदुग्धम् । तदुक्तमन्यत्र—"निद्राघाते पिबेत् क्षीरं गोस्तनादथवा नरः" इति । इष्टकथाः=अनुकूलकथाः, 'शृणुयात्' इति शेषः ।

११ उदावर्तोपद्रवचिकित्सामाचष्टे—**आध्मानाद्येष्विति** । आदिशब्दाच्छूलपरिकर्तिकापुरीषसङ्गादयो ग्राह्याः । १२ प्राप्तं=युक्तमित्यर्थः । १३ "अपथ्यभोजना-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्त्तं करोति हि ॥ ३७ ॥
वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदोवहानि वै ।
स्रोतांस्युदावर्तयति[1] पुरीषं चातिवर्तयेत् ॥ ३८ ॥
ततो हृद्बस्तिशूलार्त्तो गौरवारुचिपीडितः ।
वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण कुरुते नरः ॥ ३९ ॥
श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहवमिज्वरान् ।
तृष्णाहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥ ४० ॥
लभते च बहूनन्यान् विकारान् वातकोपजान् ॥
तं[2] तैललवणाभ्यक्तं स्निग्धं स्विन्नं निरूहयेत् ॥ ४१ ॥
दोषतो भिन्नवर्चस्कं[3] भुक्तं चाप्यनुवासयेत् ।
न चेच्छान्तिं व्रजत्येवमुदावर्तः सुदारुणः ॥ ४२ ॥
अथैनं बहुशः स्विन्नं युञ्ज्यात् स्नेहविरेचनैः[4] ।
पाययेत त्रिवृत्पीलुयवानीरम्लपाचनैः[5] ॥ ४३ ॥
हिङ्गुकुष्ठवचास्वर्जिविडङ्गं वा द्विरुत्तरम्[6] ।
योगावेतावुदावर्त्तं शूलञ्चानिलजं हतः ॥ ४४ ॥
देवदार्वग्निकौ[7] कुष्ठं शुण्ठीं पथ्यां पलङ्कषाम् ।
पौष्कराणि च मूलानि तोयस्यर्द्धाढके[8] पचेत् ॥ ४५ ॥
पादावशिष्टं तत् पीतमुदावर्त्तमपोहति[9] ।

---

च्चापि वक्ष्यते च तथाऽपरः" इति प्रागुक्तस्य दोषजोदावर्तस्य निदानं लक्षणानि चोपदिशति—**वायुरिति**। अपानवायुरित्यर्थः। कोष्ठानुगः कोष्ठशब्देन समस्तमुदरमध्यमुच्यते। रूक्षैः=चणकराजमाषादिभिः। १ उदावर्तयति=ऊर्ध्वमावर्तयति, अतिवर्तयेत्=शोषयेदित्यर्थः।

२ दोषजोदावर्तस्य चिकित्सां प्रतिपादयति—**तमिति**। तम्=उदावर्तिनम्। ३ भिन्नवर्चस्कं=निरूहभिन्नपुरीषम्। ४ एरण्डतैलादिस्नेहविरेचनैरित्यर्थः। ५ पीलुः कोङ्कणदेशप्रसिद्धो गुडफलविशेषः। अम्लं=काञ्जिकम्, पाचनानि=चित्रकादीनि। ६ द्विरुत्तरं=हिङ्ग्वादिद्रव्यादुत्तरोत्तरं द्विगुणं ग्राह्यमित्यर्थः। ७ अग्निकः=अजमोदा, पलङ्कषा=गुग्गुलुः। ८ अर्धाढके=द्वात्रिंशत्पलप्रमिते। ९ पादावशिष्टम्=अष्टपलप्रमितम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूलकं मुष्कमार्द्रञ्च वर्षाभूः पञ्चमूलकम् ॥ ४६ ॥
आरेवतफलं चाप्सु पक्त्वा तेन घृतं पचेत् ।
तत्पीयमानं शास्त्युग्रमुदावर्तमशेषतः ॥ ४७ ॥
वचामतिविषां कुष्ठं यवक्षारं हरीतकीम् ।
कृष्णां निर्दहनीञ्चापि पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४८ ॥
इक्ष्वाकुमूलं मदनं विशल्याऽतिविषे वचाम् ।
कुष्ठं किण्वाग्निकौ चैव पिबेत् तुल्यानि पूर्ववत् ॥ ४९ ॥
मूत्रेण देवदार्वग्नित्रिफलाबृहतीः पिबेत् ।
यवप्रस्थं फलैः सार्धं कण्टकार्य्या जलाढके ॥ ५० ॥
पक्त्वाऽर्द्धप्रस्थशेषन्तु पिबेद्विङ्गुसमन्वितम् ।
मदनालाबुबीजानि[10] पिप्पलीं सनिदिग्धिकाम् ॥ ५१ ॥
सञ्चूर्ण्य प्रथमेन्नाड्या विशत्येतद्यथा गुदम् ।
चूर्णं[11] निकुम्भकम्पिल्लश्यामेक्ष्वाकग्निकोद्भवम् ॥ ५२ ॥
[12]कृतवेधनमागध्योर्लवणानाञ्च साधयेत् ।
गवां मूत्रेण ता वर्त्तीः कारयेत्तु [13]गुदानुगाः ।

---

१ बिल्वादिपञ्चमूलकमित्यर्थः । २ आरेवतफलं=शम्पाकफलम्, पक्त्वा=क्वाथयित्वा । ३ शास्ति=हन्ति । ४ अतिविषा='अतीस' इति ख्याता । ५ निर्दहनी='अरनी' इति ख्याता । ६ इक्ष्वाकुमूलं=कटुतुम्बीमूलम्, मदनं=मदनफलम्, विशल्या=इन्द्रवारुणी । ७ किण्वं=मधूकपुष्पजीरकमित्यर्थः । अग्निकः=अजमोदा, पूर्ववत्=उष्णेन वारिणा । ८ अग्निः=चित्रकः । ९ यवस्य प्रस्थं षोडशपलानीत्यर्थः । जलाढके=जलस्य चतुःषष्टिपलप्रमिते ।

१० मदनालाबुनोर्बीजानीत्यर्थः । तदुक्तं तन्त्रान्तरेऽपि—"मदनालाबुनोर्बीजं कण्टकारीसमन्वितम्" इति । सनिदिग्धिकां=कण्टकारीसहिताम् । ११ निकुम्भः=दन्ती, कम्पिल्लः='कवीला' इति ख्यातः । श्यामा=रक्तमूला त्रिवृत्, इक्ष्वाकुः=कटुतुम्बी, अग्निकः=अजमोदा । १२ कृतवेधनं=कोशातकीफलम्, मागधी=पिप्पली । १३ गुदानुगाः=गुदप्रवेशयोग्यप्रमाणा इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्यः शर्मकरावेतौ[1] योगावमृतसम्भवौ ॥ ५३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे उदावर्तप्रतिषेधो नाम (सप्तदशोऽध्यायः, आदितः) पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

---

## षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथातो[2] विसूचिकाप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

अजीर्णमामं[3] विष्टब्धं विदग्धञ्च यदीरितम् ।
विसूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका ॥ ३ ॥
सूचीभिरिव[4] गात्राणि तुदन् सन्तिष्ठतेऽनिलः ।
यस्याजीर्णेन सा वैद्यैरुच्यते [5]ति विसूचिका ॥ ४ ॥
न [6]तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः ।
मूढास्तामजितात्मानो लभन्ते कलुषाशयाः[7] ॥ ५ ॥
मूर्च्छाऽतिसारौ वमथुः पिपासा शूलं भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः ।

---

१ शर्मकरौ = सुखकरौ, 'शर्मशातसुखानि च' इत्यमरः । अमृतसम्मतौ = सुधातुल्यावित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽख्यटिप्पन्यां पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ।

---

### षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

२ उदावर्तप्रतिषेधानन्तरं विसूचिकाप्रतिषेधमधिकरोति—**अथात इति** । विसूचिकाशब्दोऽयं प्रकृत्या जहत्स्वार्थया लक्षणया अलसकविलम्बिके लक्षयति । ३ विसूच्यादीनां कारणं दर्शयति—**अजीर्णमिति** । ईरितम् 'अन्नपानविधौ' इति शेषः ।

४ विसूचिकाया निरुक्तिं वक्ति—**सूचीभिरिति** । ५ 'वर्णागम' इत्यादिना इकारस्य लोपात् साधुः । 'ति' इत्यत्र 'तु' इति पाठः । ६ तां = विसूचिकाम्, विदितागमाः = ज्ञातायुर्वेदाः । ७ कलुषाशयाः = प्रदुष्टाशयाः । 'लभन्तेऽशनलोलुपाः' इति पाठान्तरम् ।

८ विसूचिकालक्षणमुपदिशति—**मूर्च्छेति** । वमथुः = वमनम्, उद्वेष्टनं =


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः॥६॥
कुक्षिरानह्यतेऽत्यथ प्रताम्यति विकूजति।
निरुद्धो मारुतश्चापि कुक्षौ विपरिधावति॥ ७॥
वातवर्चोनिरोधश्च कुक्षौ यस्य भृशम्भवेत्।
तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारावरोधकौ॥ ८॥
दुष्टन्तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्त्तते नोर्द्ध्वमधश्च यस्य।
विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः९
यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः।
दोषेण येनावततं स्वलिङ्गैस्तं लक्षयेदामसमुद्भवैश्च॥ १०॥
यः श्यावदन्तौष्ठनखोऽल्पसंज्ञश्छर्द्यर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः।
क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धिर्यायान्नरः सोऽपुनरागमाय॥११॥

---

हस्तपादादीनां मोटनम। १ शिरसो भेदः=शिरःशूलम्। २ अलसकलक्षणं प्रतिपादयति—**कुक्षिरिति**। कुक्षिः=उदरम्, आनह्यते=आध्मायते, प्रताम्यति=ताडयति, विकूजति=आर्तनादं करोति। ३ विपरिधावति=विशेषेण समन्ताद् गच्छतीत्यर्थः।

४ विलम्बिकालक्षणं ब्रवीति—**दुष्टमिति**। यस्य पुरुषस्य भुक्तमन्नं कफमारुताभ्यां दुष्टं सदूर्ध्वमधश्च न प्रवर्तते, पुराणाः शास्त्रविदस्तां विलम्बिकामाचक्षते इति सम्बन्धः। भृशं दुश्चिकित्स्यां प्रत्याख्यायोपचरणीयामित्यर्थः। इयमेव विलम्बिका तन्त्रान्तरे 'दण्डालसक' इति नाम्ना पठ्यते। ५ आमस्य विकारान्तरकारित्वं प्रतिपादयति—**यत्रस्थमिति**। आमं कर्तृ, यत्रस्थं यस्मिन् देशे स्थितं, येन च दोषेण स्वकारणकुपितेन वातादिनाऽवततं व्याप्तं स्यात्, तमेव देशं यस्माद् विशेषेण विरुजेत्; एतेनान्यदेशेऽपि किञ्चिद्रुजं करोतीति बोध्यम्। यथा गण्डमालादौ पिण्डिकास्थितस्यापि दोषस्य ग्रीवादौ विकारकर्तृत्वम्। तस्मात् तं देशं स्वलिङ्गैस्तोदादिभिरामसमुद्भवैश्च स्तम्भाध्मानादिभिर्विकारजातैर्विकारसमूहैः लक्षयेद्, वैद्य इति शेषः। आमस्य लक्षणम्—"अविपक्वमसंयुक्तं दुर्गन्धं बहु पिच्छिलम्। सादनं सर्वगात्राणामामामित्यभिधीयते॥" इति।

६ विसूचिलाया असाध्यलक्षणं दर्शयति—**य इति**। अल्पसंज्ञः=मन्दचेतनः, अभ्यन्तरयातनेत्रः=कोटरान्तःप्रविष्टाक्षिगोलकः। ७ क्षामस्वरः=क्षीणस्वरः, सर्वविमुक्तसन्धिः=शिथिलीभूतसर्वपर्वास्थिसन्धिः, अपुनरागमाय=मरणायेत्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

साध्यासु[1] पाष्ण्योर्दहनं प्रशस्तमग्निप्रतापो वमनञ्च तीक्ष्णम्।
पक्के ततोऽन्ने तु विलङ्घनं स्यात् सम्पाचनं[2] चापि विरेचनं च ॥१२॥
विशुद्धदेहस्य हि सद्य एव मूर्च्छाऽतिसारादिरुपैति शान्तिम्।
आस्थापनं चापि वदन्ति पथ्यं सर्वासु योगानपरान्[3] निबोध ॥ १३ ॥
पथ्यावचाहिङ्गुकलिङ्ग[4]गृञ्जसौवर्चलैः सातिविषैश्च चूर्णम्।
सुखाम्बुपीतं विनिहन्त्यजीर्णं शूलं विसूचीमरुचिञ्च सद्यः ॥ १४ ॥
क्षारागदं[5] वा लवणं विडं वा गुडप्रगाढानथ सर्षपान् वा।
अम्लेन[6] वा सैन्धवहिङ्गुयुक्तौ सबीजपूर्णौ[7] सधृतौ त्रिवर्गौ ॥ १५ ॥
कटुत्रिकं वा लवणैरुपेतं पिबेत् स्नुहीक्षीरविमिश्रितं तु।
कल्याणकं वा लवणं पिबेत्तु यदुक्तमादावनिलामयेषु[8] ॥ १६ ॥
कृष्णाऽजमोदत्वकाणि वाऽपि तुल्यौ पिबेद्वा मगधानिकुम्भौ।
दन्तीयुतं वा मगधोद्भवानां कल्कं पिबेत् कोषवतीरसेन[9] ॥ १७ ॥
उष्णाभिरद्भिर्मगधोद्भवानां कल्कं पिबेन्नागरकल्कयुक्तम्।
व्योषं[10] करञ्जस्य फलं हरिद्रे मूलं समं चाप्यथ मातुलुङ्ग्याः ॥ १८ ॥
छायाविशुष्का गुटिकाः कृतास्ता हन्युर्विसूचीं[11] नयनाञ्जनेन।
सुवामितं साधुविरेचितं वा सुलङ्घितं वा मनुजं विदित्वा ॥ १९ ॥
पेयादिभिर्दीपनपाचनीयैः सम्यक् क्षुधार्त्तं समुपक्रमेत।
आमं[12] शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन ॥२०॥

---

१ विसूचिकादीनां चिकित्सितमाचष्टे—साध्यास्विति। २ स्वेदादिभिः सम्पाचनमित्यर्थः। ३ अपरान्=पथ्यावचेत्यादिना वक्ष्यमाणान्। ४ कलिङ्गः=इन्द्रयवः, गृञ्जः=गृञ्जनम्। ५ क्षारागदं दुन्दुभिस्वनीयोक्तम्, लवणं विडं=विडलवणम्। ६ अम्लेन=काञ्जिकेन, सबीजपूरौ=बीजपूरसहितौ, सधृतौ=तुल्यप्रमाणौ, त्रिवर्गौ=त्रिफलात्रिकटुकौ। ७ वातव्याधिचिकित्सिते गण्डीरपलाशेत्यादिना यदुक्तमित्यर्थः। ८ अम्लेनेति अत्रापि सम्बध्यते। मगधा=पिप्पली, निकुम्भः=दन्ती। ९ कोषवती घोषकभेदः, तस्य रसेनेत्यर्थः।

१० विसूच्यां प्रमीलकादिशान्त्यर्थं नयनाञ्जनं निर्दिशति—व्योषमिति। व्योषं=त्रिकटुकम्। ११ विसूचीं=विसूचिकाजनितं प्रमीलकशिरोरोगादिकम्, कारणे कार्योपचारात्। १२ अथ विसूचिकातुल्यचिकित्सितत्वाद् विसूचिकोपद्रवाच्च आनाहमा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवर्त्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ।
तस्मिन्[1] भवन्त्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः ॥२१॥
आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृल्लास उद्गारविघातनञ्च[2] ।
स्तम्भः[3] कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा स शकृद्वमेच्च ॥ २२ ॥
श्वासश्च पक्वाँशयजे[4] भवन्ति लिङ्गानि चात्रालसकोद्भवानि ।
आमोद्भवे[5] वान्तमुपक्रमेत संसर्गभक्तक्रमदीपनीयैः ॥ २३ ॥
अथेतरं यो[6] न शकृद्वमेत्तमामं जयेत् स्वेदनपाचनैश्च ।
विसूचिकायां[7] परिकीर्त्तितानि द्रव्याणि वैरेचनिकानि यानि ॥२४॥
तान्येव वर्त्तीर्विरेद् विचूर्ण्य महिष्यजावीभगवां तु मत्रैः ।
स्विन्नस्य पायौ विनिवेश्य ताश्च चूर्णानि चैषां प्रथमेत्तु नाड्या॥२५॥
मूत्रेषु[8] संसाध्य यथाविधानं द्रव्याणि यान्यूर्द्ध्वमधश्च यान्ति ।
क्वाथेन तेनाशु निरूहयेच्च मूत्रार्द्धयुक्तेन समाक्षिकेन ॥ २६ ॥

---

ख्याति—**आममिति** । क्रमेण निचितं वृद्धिं गतमामपक्वान्नरसः शकृद् वा विगुणानिलेन उन्मार्गवायुना विबद्धमवरुद्धं सद् न प्रवर्तमानं स्वमार्गेऽप्रवर्तमानमेनमामाहमुदाहरन्तीत्यर्थः ।

१ आमजानाहं लक्षयति—**तस्मिन्निति** । तस्मिन्=आनाहे, आमसमुद्भवे । २ उद्गारविघातनम्=उद्गारप्रवृत्तिः । ३ पुरीषजानाहलक्षणं दर्शयति—**स्तम्भ इति** । ४ पक्वाशयजे आनाहे इत्यर्थः । ५ आमजानाहचिकित्सां वक्ति—**आमेति** । संसर्गभक्तक्रमः=पेयादिक्रमः । ६ पुरीषजानाहचिकित्सामाचष्टे—**अथेति** । यः पुरुषः शकृत् पुरीषं न वमेत्, तस्य तमामम् आमदोषानुविद्धमितरं पुरीषजमानाहं स्वेदनपाचनैर्जयेदिति योजनीयम् ।

७ अतिदेशेन आनाहचिकित्सितमभिधत्ते—**विसूचिकायामिति** । विसूचिकायां यानि वैरेचनिकानि द्रव्याणि दन्त्यादीनि परिकीर्तितानि तानि विचूर्ण्य महिष्यजावीभगवां मूत्रैर्विपाच्य वर्तीर्विरचेत्, ताश्च वर्तीः स्विन्नस्य नरस्य पायौ गुदे विनिवेश्य एषां वैरेचनिकद्रव्याणां चूर्णानि नाड्या प्रथमेदिति सम्बन्धनीयम् ।

८ आनाहे निरूहमुपदिशति—**मूत्रेष्विति** । यानि द्रव्याणि ऊर्ध्वमधश्च यान्ति संशोधनसंशमनोयोक्तानि कोशातक्यादीनि, तानि महिष्यादिजेषु मूत्रेषु यथाविधानं काथपाकविधिना संसाध्य तेन काथेन मूत्रार्धयुक्तेन अर्धमूत्रान्वितेन समाक्षिकेन त्रिभण्डियुक्तं लवणप्रकुञ्चं त्रिवृत्सहितमेव सैन्धवलवणपलं दत्त्वा निरूहयेदित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


त्रिभण्डियुक्तं लवणप्रकुञ्चं दत्त्वा विरिक्तक्रममाचरेच्च ।
एष्वेवं[1] तैलेन च साधितेन प्राप्तं यदि स्यादनुवासयेच्च ॥ २७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे विसूचिकाप्रतिषेधो नाम ( अष्टादशोऽध्यायः, आदितः ) षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥५६॥

---

## सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथातोऽरोचकप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
दोषैः[3] पृथक् सह च चित्तविपर्य्ययाच्च
भक्तायनेषु हृदि चावतते प्रगाढम् ।
नान्ने रुचिर्भवति तं भिषजो विकारं
भक्तोपघातमिह[4] पञ्चविधं वदन्ति ॥ ३ ॥

---

१ आनाहेऽनुवासनं निर्दिशति-एष्वेवेति । एषु = कोशातक्यादिष्वित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---

### सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

२ विसूचिकाप्रतिषेधानन्तरमग्निमान्द्यहेतुत्वसाम्यादरोचकप्रतिषेधमधिकरोति—अथेति । अरोचकः, अभक्तच्छन्दः, अन्नद्वेषश्चेति पर्यायाः । वृद्धभोजे एषां परस्परं भेदोऽङ्गीकृतः । तद्यथा—"प्रक्षिप्तं तु मुखे चान्नं जन्तोर्न स्वदते मुहुः । अरोचकः स विज्ञेयो, भक्तद्वेषमतः शृणु ॥ चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा श्रुत्वाऽपि भोजनम् । द्वेषमायाति यज्जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥ यस्य नान्ने भवेच्छ्रद्धा सोऽभक्तच्छन्द उच्यते" । इति ।

३ सम्प्राप्तिद्वारेण संख्यामाख्याति—दोषैरिति । चित्तविपर्ययात् = कामशोकभयादिनिमित्ततश्चित्तवैकल्यात्, भक्तायनेषु = अन्नवहेषु स्रोतःसु, भक्तायनपदं जिह्वोपलक्षणम् । तथा च तन्त्रान्तरम्—"पृथग्दोषैः समस्तैश्च जिह्वाहृदयसंस्रुतैः । जायतेऽरुचिराहारे द्विष्टैरन्यैश्च मानसैः ॥" इति । ४ भक्तोपघातम् = अरोचकम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृच्छूलपीडनयुतं विरसाननत्वं
वातात्मके भवति लिङ्गमरोचके तु ।
हृद्दाहचोषबहुता मुखतिक्तता च
मूर्च्छा सतृड् भवति पित्तकृते तथैव ॥ ४ ॥
कण्डूगुरुत्वकफसंस्रवसादतन्द्राः
श्लेष्मात्मके मधुरमास्यमरोचके तु ।
सर्वात्मके पवनपित्तकफा बहूनि
रूपाण्यथास्य हृदये समुदीरयन्ति ॥ ५ ॥
संरागशोकभयविप्लुतचेतसस्तु
चिन्ताकृतो भवति सोऽशुचिदर्शनाच्च ।
वाते वचाऽम्बुवमनं कृतवान् पिबेच्च ।
स्नेहैः सुराभिरथवोष्णजलेन चूर्णम् ॥ ६ ॥
कृष्णाविडङ्गयवभस्महरेणुभार्गी-
रास्नैलहिङ्गुलवणोत्तमनागराणाम् ।
पित्ते गुडाम्बुमधुरैर्वमनं प्रशस्तं
स्नेहः ससैन्धवसितामधुसर्पिरिष्टः ॥ ७ ॥
निम्बाम्बुवामितवतः कफजेऽनुपानं
राजद्रुमाम्बु मधुना तु सदीप्यकं स्यात् ।
चूर्णं यदुक्तमथवाऽनिलजे तदेव

---

१ वातिकारोचकलक्षणं दर्शयति—हृच्छूलेति । २ कफसंस्रवः = श्लेष्मस्यन्दनम्, सादः = अङ्गग्लानिः । ३ अवशिष्टं पञ्चममरोचकं लक्षयति—संरागेति । संरागः = कामः, अशुचिदर्शनात् = बीभत्सादिदर्शनात् । ४ वातिकारोचकचिकित्सामाचष्टे—वात इति । वाते = वातजारोचके, वचाऽम्बुना वचाक्काथेन वमनं वचाऽम्बुवमनम् । ५ हरेणुः = रेणुका, निर्गुण्डीबीजमित्यर्थः । लवणोत्तमं = सैन्धवम् । ६ पैत्तिकारोचकचिकित्सामभिधत्ते—पित्त इति । पित्ते = पित्तजारोचके ।

७ श्लैष्मिकारोचकचिकित्सां निर्दिशति—निम्बेति । निम्बाम्बुना निम्बक्काथेन वामितवतः पुंस इत्यर्थः । राजद्रुमाम्बु = आरग्वधक्काथः, सदीप्यकम् = अजमोदासहितम् । ८ कृष्णाविडङ्गयवभस्मेत्यादिना यदुक्तमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वैश्च सर्वकृतमेवमुपक्रमेत ॥ ८ ॥
द्राक्षापटोलविडवेत्रकरीरनिम्ब-
मूर्वाऽभयाऽक्षबदरामलकेन्द्रवृक्षैः ।
बीजैः करञ्जनृपवृक्षभवैश्च पिष्टै-
र्लेहं पचेत् सुरभिमूत्रयुतं यथावत् ॥ ९ ॥
मुस्तां वचां त्रिकटुकं रजनीद्वयञ्च
भार्गीञ्च कुष्ठमथ निर्दहनीञ्च पिष्ट्वा ।
मूत्रेऽविजे द्विरदमूत्रयुते पचेद्वा
पाठान्तुगामतिविषां रजनीञ्च मुख्याम् ॥ १० ॥
मण्डूकिमर्कममृताञ्च सलाङ्गलाख्यां
मूत्रे पचेत्तु महिषस्य विधानविद्वा ।
एतान्न सन्ति चतुरो लिहतस्तु लेहान्
गुल्मारुचिश्वसनकण्ठहृदामयाश्च ॥ ११ ॥
सात्म्यान् स्वदेशरचितान् विविधांश्च भक्ष्यान्
पानानि मूलफलषाडवरागयोगान् ।
अद्यादमांसांश्च विविधान् विविधैः प्रकारै-
र्भुञ्जीत चापि लघुरूक्षमनःसुखानि ॥ १२ ॥
आस्थापनं विधिवदत्र विरेचनञ्च
कुर्य्यान्मृदूनि शिरसश्च विरेचनानि ।

---

१ चतुर्णामप्यरोचकानां यथासंख्येन चतुरो लेहानुपदिशति—द्राक्षेति । द्राक्षादिः सुरभिमूत्रयुतं यथावदित्यन्तः प्रथमो योगः । अभया = हरीतकी, अक्षं = बिभीतकम्, इन्द्रवृक्षः = कुटजः । २ नृपवृक्षः = आरग्वधः । ३ मुस्तादिः मूत्रेऽविजे इति पर्यन्तो द्वितीयो योगः । निर्दहनी = चित्रकः ।

४ अविजे = मेषोत्थे मूत्रे इत्यर्थः । द्विरदमूत्रयुते = हस्तिमूत्रयुक्ते, द्विरदमूत्रयुत इत्यारभ्य रजनीं च मुख्यामिति पर्यन्तस्तृतीयो योगः । ५ मण्डूकीत्यादिश्चतुर्थो योगः । मण्डूकी = ब्राह्मी, अमृता = गुडूची, लाङ्गलाख्या = कलिहारी । ६ सात्म्यान् = प्रकृत्यनुकूलान् । ७ मांसरसानित्यर्थः ।

८ निषिद्धस्यापि निरूहस्य अरोचके प्रयोगं वक्ति—आस्थापनमिति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रीण्यूषणानि[1] रजनीत्रिफलायुतानि
चूर्णीकृतानि यवशूकविमिश्रितानि[2] ॥ १३ ॥
क्षौद्रायुतानि वितरेन्मुखबोधनार्थ-
मन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि ।
मुस्तादिराजतरुवर्गदशाङ्गसिद्धैः[3]
क्वाथैर्जयेन्मधुयुतैर्विविधैश्च लेहैः ॥ १४ ॥
मूत्रासवैर्गुडकृतैश्च तथा त्वरिष्टैः[4]
क्षारासवैश्च मधुमाधवतुल्यगन्धैः ।
स्यादेष[5] एव कफवातहते विधिश्च
शान्तिं गते हुतभुजि प्रशमाय तस्य ॥ १५ ॥
इच्छाभिघातभयशोकहतेऽन्तरग्नौ[6]
भावान् भवाय वितरेत् खलु शक्यरूपान् ।
अर्थेषु चाप्यपचितेषु[7] पुनर्भवाय
पौराणिकैः श्रुतिपथैरनुमानयेत्तम् ॥ १६ ॥
दैन्यं गते[8] मनसि बोधनमत्रशस्तं
यद्यत् प्रियं तदुपसेव्यमरोचके तु ॥ १७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रेऽरोचकप्रतिषेधो नाम ( एकोनविंशोऽध्यायः, आदितः ) सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

---

आस्थापनं निरूहः । १ त्रीण्यूषणानि = त्रिकटुकानि । २ यवशूकः = यवक्षारः ।

३ राजतरुवर्गः = आरग्वधादिवर्गः, दशाङ्गं = दशमूलम् । ४ मूत्रेणासूयन्त इति मूत्रासवास्तैर्मूत्रासवैः, कथम्भूतैः—गुडकृतैः = कुष्ठचिकित्सितोक्तविधिना गुडमद्यादिकृतैरित्यर्थः । अरिष्टैः = अभयाऽरिष्टादिभिः, क्षारासवैः = महाकुष्ठोक्तैर्मद्यादिभिः पलाशक्षारपानीयेन सह साधितैः, मधुमाधवतुल्यगन्धैः—मधु क्षौद्रं, माधवं मधुकृतं मद्यं, तयोस्तुल्यगन्धैरित्यर्थः ।

५ पूर्वोक्तविधानमविपाकेऽतिदिशति—स्यादेष इति । शान्तिं गते = मन्दतां प्राप्ते, हुतभुजि = जाठराग्नौ, अविपाके इत्यर्थः । ६ आगन्तुजारोचकचिकित्सामाह—इच्छेति । इच्छाऽभिघातः = वाञ्छाऽप्राप्तिः, भवाय = रुच्युत्पादनाय, शक्यरूपान् = प्राप्यान् । ७ अपचितेषु = नष्टेषु, अनुमानयेत् = प्रबोधयेत् । ८ दैन्यं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

अथातो मूत्राघातप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

वातकुण्डलिकाऽष्ठीला वातबस्तिस्तथैव च।
मूत्रातीतः सजठरो मूत्रोत्सङ्गः क्षयस्तथा ॥ ३ ॥
मूत्रग्रन्थिर्मूत्रशुक्रमुष्णवातस्तथैव च।
मूत्रौकसादौ द्वौ चापि रोगा द्वादश कीर्त्तिताः ॥ ४ ॥
रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुरन्तरमाश्रितः।
मूत्रं चरति सङ्गृह्य विगुणः कुण्डलीकृतः ॥ ५ ॥
सृजेदल्पाल्पमथवा सरुजस्कं शनैः शनैः।
वातकुण्डलिकां तं तु व्याधिं विद्यात् सुदारुणम् ॥ ६ ॥
शकृन्मार्गस्य बस्तेश्च वायुरन्तरमाश्रितः।
अष्ठीलावद् घनं ग्रन्थिं करोत्यचलमुन्नतम् ॥ ७ ॥
विण्मूत्रानिलसङ्गश्च तत्राध्मानञ्च जायते।

---

गते=क्लिष्टे इत्यर्थः। बोधनं=सदुपदेशादिभिः प्रबोधनम्।

इति सुश्रुतसंहितायां उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

---

### अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

१ अरोचकप्रतिषेधानन्तरं "भूयो वक्ष्यामि योगांश्च मूत्राघातोपशान्तये" इत्युदावर्तप्रतिषेधे प्रतिज्ञातं व्याख्यातुं मूत्राघातप्रतिषेधमधिकरोति—**अथात इति**। मूत्राघातः=मूत्रावरोधः। २ मूत्राघातानां नामानि निर्दिशति—**वातेति**। अष्ठीला=वाताष्ठीलेत्यर्थः। निदानस्थानोक्ता वाताष्ठीला सा एतद्भिन्ना बोध्या। ३ मूत्रौको मूत्राश्रयः, मूत्राश्रयः सादो यस्य स मूत्रौकसादः। ओक आश्रय इति पर्यायौ।

४ वातकुण्डलिकालक्षणं दर्शयति—**रौक्ष्यादिति**। ५ विगुणः=कुपितः, कुण्डलीकृतः=वलयीकृतः, 'कुण्डलं कर्णभूषायां पाशेऽपि वलयेऽपि च' इति मेदिनी। ६ सरुजस्कं=सवेदनम्। ७ सुदारुणं मारणात्मकत्वात्।

८ वाताष्ठीलालक्षणं निर्दिशति—**शकृदिति**। शकृन्मार्गस्य=गुदस्येत्यर्थः। ९ अष्ठीला दीर्घवर्तुलपाषाणभेदः। १० आध्मानं बस्तौ ज्ञातव्यम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदना च परा बस्तौ वाताष्ठीलेति तां विदुः ॥ ८ ॥
वेगं[1] विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ।
निरुणद्धि मुखं तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥ ९ ॥
मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिपीडितः ।
वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ १० ॥
वेगं[2] सन्धार्य्य मूत्रस्य यो भूयः स्रष्टुमिच्छति ।
तस्य नाभ्येति[3] यदि वा कथञ्चित्सम्प्रवर्त्तते ॥ ११ ॥
प्रवाँहतो[4] मन्दरुजमल्पमल्पं पुनः पुनः ।
मूत्रातीतन्तु तं विद्यान्मूत्रवेगविघातजम् ॥ १२ ॥
मूत्रस्य[5] विहते वेगे तदुदावर्त्तहेतुना ।
अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद् भृशम् ॥ १३ ॥
नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम् ।
तं मूत्रजठरं विद्यादधःस्रोतोनिरोधनम्[6] ॥ १४ ॥
बस्तौ[7] वाऽप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः ।
मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत[8] सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १५ ॥
स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाऽथ नीरुजम् ।
विगुणानिलजो[9] व्याधिः समूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥ १६ ॥
रूक्षस्य[10] क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ।
सदाहवेदनं कृच्छ्रं कुर्य्यातां मूत्रसङ्क्षयम् ॥ १७ ॥

---

१ वातबस्तिलक्षणमाह—**वेगमिति** । वेगं = प्रवृत्त्युन्मुखत्वम्, अकुशलः = मूर्ख इत्यर्थः। २ मूत्रातीतलक्षणमभिधत्ते—**वेगमिति**। ३ नाभ्येति = मूत्रं नागच्छति। ४ प्रवाहतः = वेगेन वर्तयतः। ५ मूत्रजठरलक्षणमभिदधाति—**मूत्रस्येति**। उदावर्तहेतुना = मूत्रवेगधारणजनितोदावर्तनिमित्तेन। ६ अधःस्रोतोनिरोधनं = मूत्रपुरीषमार्गावरोधकमित्यर्थः।

७ मूत्रोत्सङ्गलक्षणमाचष्टे—**बस्ताविति**। नाले = मेढ्रस्रोतसि, मणौ = मेढ्राग्रे। ८ सज्जेत = निरुद्धं स्यात्, सरक्तं = प्रवाहणकुपितवायुना बस्त्यादिभेदजनितरक्तयुक्तं मूत्रमित्यर्थः। ९ विगुणानिलजः = कुपितवातजः। १० मूत्रक्षयलक्षणमाख्याति—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यन्तरे[1] बस्तिमुखे वृत्तोऽल्पः स्थिर एव च।
वेदनावानति सदा मूत्रमार्गनिरोधनः[2]॥ १८॥
जायते सहसा यस्य ग्रन्थिरश्मरिलक्षणः[3]।
स मूत्रग्रन्थिरित्येवमुच्यते वेदनाऽऽदिभिः॥ १९॥
प्रत्युपस्थितमूत्रस्तु[4] मैथुनं योऽभिनन्दति।
तस्य मूत्रयुतं रेतः सहसा सम्प्रवर्तते॥ २०॥
पुरस्ताद्वाऽपि मूत्रस्य पश्चाद्वाऽपि कदाचन।
भस्मोदकप्रतीकाशं[5] मूत्रशुक्रं तदुच्यते॥ २१॥
व्यायामाध्वातपैः[6] पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलावृतम्।
बस्तिं मेढ्रं गुदञ्चैव प्रदहन् स्रावयेदधः॥ २२॥
मूत्रं हारिद्रं[7]मथवा सरक्तं रक्तमेव वा।
कृच्छ्रात् प्रवर्तते जन्तोरुष्णवातं वदन्ति तम्॥ २३॥
विशदं[8] पीतकं मूत्रं सदाहं बहलं तथा।
शुष्कं भवति यच्चापि रोचनाचूर्णसन्निभम्[9]॥ २४॥

---

रूक्षस्येति। क्लान्तदेहस्य=श्रान्तशरीरस्य। १ मूत्रग्रन्थिलक्षणं वक्ति—**अभ्यन्तर इति**। अभ्यन्तरे बस्तिमुखे=बस्तिमुखस्याभ्यन्तरे इत्यर्थः। वृत्तः=वर्तुलः। २ मूत्रमार्गनिरोधनः=मूत्रवाहिस्रोतोनिरोधनः।

३ वेदनाभिरश्मर्यास्तुल्यलक्षणः। अश्मर्या सह अस्य भेदस्तु—अश्मर्यां पित्तादिकं संहन्यते, अत्र रक्तमेव। तथा च तन्त्रान्तरम्—"रक्तं वातकफाद् दुष्टं बस्तिद्वारे सुदारुणम्। ग्रन्थिं कुर्यात् स कृच्छ्रेण सृजेन्मूत्रं तदावृतम्॥ अश्मरीसमशूलं तं मूत्रग्रन्थिं प्रचक्षते" इति। ४ मूत्रशुक्रस्य लक्षणं ब्रवीति—**प्रत्युपस्थितेति**। प्रत्युपस्थितमूत्रः=सञ्जातमूत्रवेगः, अभिनन्दति=इच्छति, करोतीत्यर्थः। ५ भस्मोदकप्रतीकाशं=भस्ममिलितोदकसदृशम्।

६ उष्णवातलक्षणमाह—**व्यायामेति**। अनिलावृतं=वातसंयुतम्, 'अनिलान्वितम्' इति पाठान्तरम्। ७ हारिद्रं=हरिद्रावर्णम्, सरक्तम=ईषद्रक्तम्, रक्तमेव=केवलं शोणितम्, अत्यन्तरक्तवर्णमूत्रं वेत्यर्थः। ८ मूत्रौकसादलक्षणमाचष्टे—**विशदमिति**। पीतकं=पीतवर्णम्, बहलं=स्थूलम्, घनमित्यर्थः। ९ गोरोचनाचूर्णसदृशमित्यर्थः। अस्य तन्त्रान्तरे 'मूत्रसाद' इति संज्ञा पठ्यते। तद्यथा—"पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत्। कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं श्वेतं रक्तं घनं सृजेत्॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूत्रौकसादं तं विद्याद्रोगं पित्तकृतं बुधः ।
पिच्छिलं संहतं श्वेतं तथा कृच्छ्रप्रवर्त्तनम् ॥ २५ ॥
शुष्कं भवति यच्चापि शङ्खचूर्णप्रपाण्डुरम् ।
मूत्रौकसादं तं विद्यादामयं द्वादशं कफात् ॥ २६ ॥
कषाय[1]कल्कसर्पींषि भक्ष्यान् लेहान् पयांसि च ।
क्षारमद्यासवस्वेदान् बस्तींश्चोत्तरसंज्ञितान् ॥ २७ ॥
विद्ध्यान्मतिमांस्तत्र विधिं[2] चाश्मरिनाशनम् ।
मूत्रोदा[3]वर्तयोगांश्च कात्स्न्र्येनात्र प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥
कल्कमेर्वारु[4]बीजानां[5] मक्षमात्रं ससैन्धवम् ।
धान्याम्ल[6]युक्तं पीत्वैव मूत्रकृच्छ्रात् प्रमुच्यते ॥ २९ ॥
सुरां सौवर्चलवतीं मूत्रकृच्छ्री पिबेन्नरः ।
मधु[7]मांसोपदंशं वा पिबेद्वाऽप्यथ गौडिकम् ॥ ३० ॥
पिबेत् कुङ्कु[8]मकर्षं वा मधूदकसमायुतम् ।
रात्रिपर्य्युषितं प्रातस्तथा सुखमवाप्नुयात् ॥ ३१ ॥
दाडि[9]माम्लां युतां मुख्यामेलाजीरकनागरैः ।
पीत्वा सुरां सलवणां मूत्रकृच्छ्रात् प्रमुच्यते ॥ ३२ ॥
पृथ[10]क्पर्ण्यादिवर्गस्य मूलं गोक्षुरकस्य च ।

---

सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेत्तु तत् । शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥" इति ।

१ मूत्राघातानां चिकित्सामाख्याति—कषायेति । कषायः = क्वाथः । २ अश्मरीचिकित्सितोक्तं विधिमित्यर्थः । ३ सौवर्चलाद्यां मदिरामित्यादिना मूत्रोदावर्तप्रतिषेधोक्तान् योगानित्यर्थः । ४ एर्वारुबीजानां = ग्रीष्मकर्कटीबीजानाम्, अक्षमात्रं = कर्षप्रमाणम् । ५ धान्याम्लयुक्तं = काञ्जिकयुक्तमित्यर्थः । ६ मधु = मद्यम्, 'मधु मद्ये पुष्परसे' इति कोशः । मद्यमिदं मधुकृतं बोध्यम् । "मांसोपदंशं मधुना मद्यं वाऽपि पिबेन्नरः" इति तन्त्रान्तरम् । मांसोपदंशं = मांसभक्षणसंयुतम् ।

७ कुङ्कुमः = केसरः, तस्य कर्षप्रमाणम् । मधूदकसमायुतं = मधुयुक्तोदकसंयुतम् । ८ दाडिमेन अम्लीकृतां दाडिमाम्लाम्, सुरां मुख्यामिति सम्बन्धः । मुख्या सुरा पट्टी बोध्या । ९ पृथक्पर्ण्यादिवर्गस्य = विदारिगन्धादिगणस्येत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्द्धप्रस्थेन तोयस्य पचेत् क्षीरचतुर्गुणम् ॥ ३३ ॥
क्षीरावशिष्टं तच्छीतं सिताक्षौद्रयुतं पिबेत् ।
नरो मारुतपित्तोत्थमूत्राघातनिवारणम् ॥ ३४ ॥
निष्पीड्य[1] वाससा सम्यग्वर्चो रासभवाजिनोः ।
रसस्य कुडवन्तस्य[2] पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥ ३५ ॥
मुस्ताऽभयादेवदारुमूर्वाणां[3] मधुकस्य च ।
पिबेदक्षसमं[4] कल्कं मूत्रदोषनिवारणम् ॥ ३६ ॥
अभयाऽऽमलकाक्षाणां[5] कल्कं बदरसम्मितम् ।
अम्भसाऽलवणोपेतं[6] पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥ ३७ ॥
उदुम्बरसमं[7] कल्कं द्राक्षाया जलसंयुतम् ।
पिबेत् पर्य्युषितं रात्रौ शीतं मूत्ररुजापहम् ॥ ३८ ॥
निदिग्धिकायाः[8] स्वरसं पिबेत् कुडवसम्मितम् ।
मूत्रदोषहरं कल्यम्[9] अथवा क्षौद्रसंयुतम् ॥ ३९ ॥
प्रपीड्यामलकानान्तु रसं कुडवसम्मितम् ।
पीत्वाऽगदी[10] भवेज्जन्तुर्मूत्रदोषरुजातुरः ॥ ४० ॥
धात्रीफलरसेनैवं सूक्ष्मैलां वा पिबेन्नरः ।
पिष्ट्वाऽथवा सुशीतेन शालितण्डुलवारिणा ॥ ४१ ॥
तालस्य तरुणं मूलं त्रपुसस्य[11] रसं तथा ।
श्वेतं कर्कटकस्य[12] चैव प्रातस्तु पयसा पिबेत् ॥ ४२ ॥
घृतं वा मधुरैः[13] क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः ।

---

१ निष्पीड्य = गालयित्वा । २ कुडवं = चत्वारि पलानि । ३ अभया = हरीतकी, मूर्वा = 'मरोरफली' इति ख्याता । ४ अक्षसमं = कर्षप्रमाणम् । ५ अक्षः = बिभीतकः, बदरसम्मितं = अर्द्धकर्षप्रमाणम् । ६ अलवणोपेतं = किञ्चित्सैन्धवयुक्तम् ।
७ उदुम्बरसमं = कर्षप्रमाणम् । ८ निदिग्धिकायाः = कण्टकारिकायाः, कुडवसम्मितं = चतुष्पलप्रमितम् । ९ कल्यं = प्रातःकाले । १० अगदी = नीरोग इत्यर्थः । ११ त्रपुसस्य = 'खीरा' इति ख्यातस्य । १२ कर्कट्याः फलं कर्कटम्, 'फले लुक्' इति तद्धितलुक्, स्वार्थे कप्रत्ययः कर्कटकम् । पयसा = दुग्धेन, "त्रपुसं वाऽथ दुग्धेन मूत्रदोषहरं पिबेत्" इति तन्त्रान्तरम् । १३ मधुरैः = काकोल्यादिभिः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं तथैवाश्मरिनाशनम् ॥ ४३ ॥
बलाश्वदंष्ट्राक्रौञ्चास्थिकोकिलाक्षकतण्डुलान् ।
शतपर्वकमूलञ्च देवदारु सचित्रकम् ॥ ४४ ॥
अक्षबीजञ्च सुरया कल्कीकृत्य पिबन्नरः ।
मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं तथैवाश्मरिनाशनम् ॥ ४५ ॥
पाटलाक्षारमाहृत्य सप्तकृत्वः परिस्रुतम् ।
पिबेन्मूत्रविकारघ्नं संसृष्टं तैलमात्रया ॥ ४६ ॥
नलाश्मभेददर्भेक्षुत्रपुसैर्वारुबीजकान् ।
क्षीरे परिप्लुतान् तत्र पिबेत् सर्पिःसमायुतान् ॥ ४७ ॥
पाटल्या यावशूकाच्च पारिभद्रात्तिलादपि ।
क्षारोदकेन मतिमान् त्वगेलोषणचूर्णकम् ॥ ४८ ॥
पिबेद् गुडेन मिश्रं वा लिह्याल्लेहान् पृथक् पृथक् ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मूत्रदोषे क्रमं हितम् ॥ ४९ ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नानां हितं तेषु विरेचनम् ।
ततः संशुद्धदेहानां हिताश्चोत्तरबस्तयः ॥ ५० ॥
स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोणितं यस्य दृश्यते ।
मैथुनोपरमस्तस्य बृंहणश्च विधिः स्मृतः ॥ ५१ ॥
ताम्रचूडवसा तैलं हितञ्चोत्तरबस्तिषु ।

---

१ श्वदंष्ट्रा = गोक्षुरकः, क्रौञ्चः 'कराकुल' इति ख्यातः पक्षिविशेषस्तस्यास्थि, कोकिलाक्षकः = 'तालमखाना' इति ख्यातः । २ शतपर्वकमूलं = इक्षुमूलम् ।

३ अक्षबीजं = बिभीतकमज्जा । ४ परिस्रुतं = गालितम् । ५ तैलमात्रया = अल्पतैलेनेत्यर्थः । अत्र मात्राशब्दोऽल्पवाची । ६ अश्मभेदः = पाषाणभेदः, त्रपुसं = 'खीरा' इति ख्यातम् । पर्वारुः = ग्रीष्मकर्कटी, बीजकः = असनसारः । ७ यावशूकात् = यवक्षारात्, पारिभद्राद् = पर्वतनिम्बात्, ८ ऊषणं = पिप्पली । अर्थात् पाटल्यादीनां क्षारोदकेन सह त्वगेलोषणचूर्णं पिबेत्, पाटल्यादिक्षारोदकगुडकृतान् लेहान् वा लिह्यात् ।

९ मूत्ररक्तचिकित्सामाह—स्त्रीणामिति । अतिप्रसङ्गेन = अतिमैथुनेन । १० मांसक्षीरघृतादिसेवनं बृंहणो विधिः । ११ ताम्रचूडवसा = कुक्कुटवसेत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधानं तस्य पूर्वं हि व्यासतः परिकीर्त्तितम् ॥ ५२ ॥
क्षौद्रार्द्धपात्रं दत्त्वा च पात्रन्तु क्षीरसर्पिषः।
शर्करायाश्च चूर्णं च द्राक्षाचूर्णं च तत्समम् ॥ ५३ ॥
स्वयङ्गुप्ताफलेञ्चैव तथैव क्षुरकस्य च।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तमर्द्धभागं प्रकल्पयेत् ॥ ५४ ॥
तदैकध्यं समानीय खजेनाभिप्रमन्थयेत्।
ततः पाणितलं चूर्णं लीढ्वा क्षीरं ततः पिबेत् ॥५५॥
एतत् सर्पिः प्रयुञ्जानः शुद्धदेहो नरः सदा।
मूत्रदोषान् जयेत् सर्वानन्ययोगैः सुदुर्जयान् ॥ ५६ ॥
जयेच्छोणितदोषांश्च बन्ध्या गर्भं लभेत च।
नारी चैतत् प्रयुञ्जाना योनिदोषात् प्रमुच्यते ॥ ५७ ॥
बलां कोलास्थि मधुकं श्वदंष्ट्राऽथ शतावरी।
मृणालञ्च कशेरुश्च बीजानीक्षुरकस्य च ॥ ५८ ॥
सहस्रवीर्य्यांशुमती पयस्या सह कालया।
शृगालविन्नाऽतिबला बृंहणीयो गणस्तथा ॥ ५९ ॥
एतानि समभागानि मतिमान् सह साधयेत्।
चतुर्गुणेन पयसा गुडस्य तुलया सह ॥ ६० ॥
द्रोणावशिष्टं तत् पूतं पचेत्तेन घृताढकम्।
तत् सिद्धं कलसे स्थाप्यं क्षौद्रप्रस्थेन संयुतम् ॥ ६१ ॥

---

१ मूत्राघाते घृतमभिधत्ते—**क्षौद्रेति**। क्षौद्रस्य अर्धपात्रमर्धाढकम्, क्षीरसर्पिषः= क्षीरमथनोत्थघृतस्य। २ स्वयङ्गुप्ताफलं=कपिकच्छूफलम्, इक्षुरसस्य=कोकिलाक्षस्य। ३ खजेन=मन्थनदण्डेनेत्यर्थः। ४ पाणितलं=हस्ततलम्।

५ बलाघृतमभिदधाति—**बलेति**। कोलास्थि=बदरमज्जा, मधुकं=यष्टीमधु, श्वदंष्ट्रा=गोक्षुरकः। ६ इक्षुरकस्य='तालमखाना' इति ख्यातस्य। ७ सहस्रवीर्या=दूर्वा, अंशुमती=शालपर्णी, पयस्या=अर्कपुष्पी, क्षीरकाकोलीत्यन्ये। कालया=कालानुसारिवया सहेत्यर्थः। ८ शृगालविन्ना=पृश्निपर्णी, बृंहणीयो गणः=काकोल्यादिः, स गुडूचीरहितो बोध्यः। तथा च तन्त्रान्तरम्—"गुडूचीरहितो वर्गः काकोल्यादिरुदाहृतः। बृंहणीयः" इति। ९ पूतं=वाससा गालितम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्पिरेतत् प्रयुञ्जानो मूत्रदोषात् प्रमुच्यते ।
तुगाक्षीर्याश्च[1] चूर्णानि शर्करायास्तथैव च ॥ ६२ ॥
क्षौद्रेण तुल्यान्यालोड्य प्रशस्तेऽहनि लेहयेत् ।
तस्य खादेद्यथाशक्ति मात्रां क्षीरं ततः पिबेत् ॥ ६३ ॥
शुक्रदोषान् जयेन्मर्त्यः प्राश्य सम्यक् सुयन्त्रितः ।
व्यवायक्षीणरेतास्तु[2] सद्यः संलभते सुखम् ॥ ६४ ॥
ओजस्वी बलवान् मर्त्यः पिबन्नेव च हृष्यति ।
चित्रैकः[3] सारिवा चैव बला कालानुसारिवा ॥ ६५ ॥
द्राक्षा विशाला[4] पिप्पल्यस्तथा चित्रफला भवेत् ।
तथैव मधुकं पथ्यां[5] दद्यादामलकानि च ॥ ६६ ॥
घृताढकं पचेदेभिः कल्कैः कर्षसमन्वितैः ।
क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत् ॥ ६७ ॥
शीतं परिस्रुतं[6] चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम् ।
तुगाक्षीर्याश्च[7] तत्सर्वं मतिमान् परिमिश्रयेत ॥ ६८ ॥
ततो मितं पिबेत्काले यथादोषं यथाबलम्[8] ।
वातरेताः श्लेष्मरेताः पित्तरेतास्तु यो भवेत् ॥ ६९ ॥
रक्तरेता ग्रन्थिरेताः पिबेदिच्छन्नरोगताम् ।
जीवनीयं च वृष्यं च सर्पिरेतद्बलावहम् ॥ ७० ॥
प्रज्ञाहितं च धन्यं च सर्वरोगापहं शिवम् ।
सर्पिरेतत् प्रयुञ्जाना[9] स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात् ॥ ७१ ॥
असृग्दोषान्[10] जयेच्चापि योनिदोषांश्च संहतान् ।

---

१ तुगाक्षीर्याः=वंशरोचनायाः । २ व्यवायेन मैथुनेन क्षीणं रेतो यस्य स व्यवायक्षीणरेताः ।

३ महाबलाघृतमाख्याति—चित्रक इति । ४ विशाला=इन्द्रवारुणी, चित्रफला=बृहदिन्द्रवारुणी । ५ पथ्यां=हरीतकीम् । ६ परिस्रुतं=वाससा गालितम् । ७ तुगाक्षीरी=वंशरोचना, अत्रापि 'प्रस्थसंयुतम्' इति सम्बध्यते । ८ यथाग्निबलमित्यर्थः । ९ प्रयुञ्जाना=सेवमाना । १० असृग्दोषान्=रक्तदोषान्, 'रुधिरेऽ-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूत्रदोषेषु सर्वेषु कुर्यादेतच्चिकित्सितम् ॥ ७२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे मूत्राघातप्रतिषेधो नाम ( विंशोऽध्यायः, आदितः ) अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

---

## ऊनषष्टितमोऽध्यायः ।

अथातो मूत्रकृच्छ्रप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

वातेन[२] पित्तेन कफेन सर्वैस्तथाऽभिघातैः शकृदश्मरीभ्याम् ।
तथाऽपरः शर्करया सुकष्टो [३]मूत्रोपघातः कथितोऽष्टमस्तु ॥ ३ ॥

अल्पं[४]मल्पं समुत्पीड्य मुष्कमेहनबस्तिभिः ।
फल[५]द्भिरिव कृच्छ्रेण वाताघातेन मेहति ॥ ४ ॥

हारि[६]द्रमुष्णं रक्तं वा मुष्कमेहनबस्तिभिः ।
अग्निना दह्य[७]मानाभैः पित्ताघातेन मेहति ॥ ५ ॥

स्निग्[८]धं शुक्लमनुष्णञ्च मुष्कमेहनबस्तिभिः ।

---

सृग्लोहिताम्ररक्तक्षतजशोणितम्' इत्यमरः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्या-मष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---

## एकोनषष्टितमोऽध्यायः ।

१ बस्तिगतत्वसाधर्म्याद् मूत्राघातप्रतिषेधानन्तरं मूत्रकृच्छ्रप्रतिषेधमधिकरोति—**अथात इति** । मूत्रकृच्छ्रं=दुःखेन मूत्रप्रवृत्तिः । २ मूत्रकृच्छ्रभेदानाह—**वातेनेति** । ३ मूत्रोपघातः=मूत्रकृच्छ्रः । मूत्रकृच्छ्रस्य निदानं सम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणं चोक्तं तन्त्रान्तरे—"व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसङ्गनित्यद्रुतपृष्ठयानात् । आनूपमांसाध्यशनाद-जीर्णात् स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथाऽष्टौ ॥ पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य बस्तौ । मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥" इति ।

४ वातजमूत्रकृच्छ्रलक्षणमभिदधाति—**अल्पमिति** । मुष्कः अण्डकोशः, मेहनं लिङ्गम्, बस्तिः मूत्राशयः । ५ फलद्भिः=पीडयद्भिः, वाताघातेन=वातकृच्छ्रेण । ६ पित्तजमूत्रकृच्छ्रलक्षणमभिधत्ते-**हारिद्रमिति** । हारिद्रं=हरिद्रावर्णम्, रक्तं=रक्तवर्णम् । ७ दह्यमानाभैः=अत्यन्तदाहपरीतैरित्यर्थः । ८ कफजमूत्रकृच्छ्रलक्षणमाचष्टे-



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संहृष्टरोमा[1] गुरुभिः श्लेष्माघातेन मेहति ॥ ६ ॥
दाहशीतरुजाविष्टो नानावर्णं मुहुर्मुहुः ।
ताम्यमानस्तु कृच्छ्रेण सन्निपातेन मेहति ॥ ७ ॥
मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च ।
स्रोतःसु मूत्राघातस्तु जायते भृशवेदनः ॥ ८ ॥
वातबस्तेस्तु तुल्यानि तस्य लिङ्गानि[4] लक्षयेत् ।
शकृतस्तु[5] प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः ॥ ९ ॥
आध्मानञ्च सशूलञ्च मूत्रसङ्गं करोति हि ।
अश्मरीहेतुकः[6] पूर्वं मूत्राघात उदाहृतः ॥ १० ॥
अश्मरी शर्करा चैव तुल्ये सम्भवलक्षणैः[7] ।
शर्कराया विशेषन्तु शृणु कीर्त्तयतो मम ॥ ११ ॥
पच्यमानस्य पित्तेन भिद्यमानस्य वायुना ।
श्लेष्मणोऽवयवा भिन्नाः शर्करा इति संज्ञिताः ॥ १२ ॥
हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षौ वह्निः सुदुर्बलः ।
ताभिर्भवति मूर्च्छा च मूत्राघातश्च दारुणः ॥ १३ ॥
मूत्रवेगनिरस्तासु[10] तासु शाम्यति वेदना ।
यावदन्या पुननैति गुडिका स्रोतसो मुखम् ॥ १४ ॥

---

स्निग्धमिति । अनुष्णं=किञ्चिदुष्णम् । १ संहृष्टरोमा=उद्गतरोमाञ्चः । २ सान्निपातिकमूत्रकृच्छ्रलक्षणमाह—दाहेति । आविष्टः=युक्तः ।

३ अभिघातजमूत्रकृच्छ्रलक्षणमाख्याति—मूत्रवाहिस्रोतःस्विति । मूत्रवाहिस्रोतःस्विति सम्बन्धः । ४ लिङ्गानि=लक्षणानि । ५ पुरीषजमूत्रकृच्छ्रलक्षणं दर्शयति—शकृतस्त्विति । प्रतीघातात्=अवरोधात् । ६ अश्मरीजमूत्रकृच्छ्रं निर्दिशति—अश्मरीति । मूत्राघातः=मूत्रकृच्छ्रः ।

७ मूत्रकृच्छ्रहेतुत्वेनोक्तयोरश्मरीशर्करयोस्तुल्यतामवान्तरभेदं च वक्ति—अश्मरीति । सम्भवः=उत्पत्तिः । 'तुल्यसम्भवलक्षणे' इति पाठान्तरम् । तुल्यः सम्भव उत्पत्तिर्लक्षणं च ययोस्ते तथा, समाननिदानलिङ्ग इति तदर्थः । ८ पच्यमानस्य=पक्वस्य, भाविनि भूतवदुपचारात् । एवं भिद्यमानस्य भिन्नस्येत्यर्थः । ९ ताभिः=शर्कराभिः । १० निरस्तासु=निःसृतासु ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्करासम्भवस्यैतन्मूत्राघातस्य लक्षणम्।
चिकित्सितं[1] मथैतेषामष्टानामपि वक्ष्यते ॥ १५ ॥
अश्मरीञ्च समाश्रित्य यदुक्तं प्रसमीक्ष्य तत्।
यथादोषं प्रयुञ्जीत स्नेहादिमपि च क्रमम् ॥ १६ ॥
श्वदंष्ट्राऽश्मभिदौ कुम्भीं हपुषां कण्टकारिकाम्।
बलां शतावरीं रास्नां वरुणं गिरिकर्णिकाम्[2] ॥ १७ ॥
तथा विदारिगन्धादिं संहृत्य त्रैवृतं[3] पचेत्।
तैलं घृतं वा तत्पेयं तेन वाऽप्यनुवासनम्[4] ॥ १८ ॥
दद्यादुत्तरबस्तिञ्च वातकृच्छ्रोपशान्तये।
श्वदंष्ट्रास्वरसे तैलं सगुडक्षीरनागरम् ॥ १९ ॥
पक्त्वा तत्पूर्ववद्योज्यं[4] तत्रानिलरुजापहम्।
[5]तृणोत्पलादिकाकोलीन्यग्रोधादिगणैः[6] कृतम् ॥ २० ॥
पीतं घृतं पित्तकृच्छ्रं नाशयेत् क्षीरमेव वा।
दद्यादुत्तरबस्तिञ्च[7] पित्तकृच्छ्रोपशान्तये ॥ २१ ॥
एभिरेव[8] कृतः स्नेहस्त्रिविधेष्वपि बस्तिषु।
हितं विरेचनं चेक्षुक्षीरद्राक्षारसैर्युतम् ॥ २२ ॥
सुरसोषकमुस्तादौ[9] वरुणादौ च यत् कृतम्।

---

१ मूत्रकृच्छ्रचिकित्सामाख्याति—**चिकित्सितमिति**। एतेषां=मूत्रकृच्छ्राणाम्।
२ वातजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सां निर्दिशति—**श्वदंष्ट्रेति**। श्वदंष्ट्रा=गोक्षुरकः, अश्मभित्=पाषाणभेदः, कुम्भी=वारिपर्णी, हपुषा='हाऊबेर' इति ख्याता।
३ गिरिकर्णिका=अपराजिताभेदः। ४ त्रिभिः सर्पिर्वसामज्जभिर्वृतं तैलम्, त्रिभिस्तैलवसामज्जभिर्वृतं घृतं वा त्रैवृतमित्यर्थः। ४ पानानुवासनोत्तरबस्तिषु योज्यमित्यर्थः।
५ पित्तजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सामाचष्टे—**तृणेति**। ६ तृणादिसंस्कृतस्नेहेनेति शेषः। ७ एभिः=पूर्वोक्ततृणोत्पलादिप्रभृतिभिः, त्रिविधेषु बस्तिषु=निरूहानुवासनोत्तरबस्तिषु। ८ कफजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सामाख्याति—**सुरसेति**। आदिशब्दः सुरसादिभिः सह प्रत्येकं सम्बध्यते। तेन सुरसादौ ऊषकादौ मुस्तादौ चेत्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]लं तथा यवाग्वादि कफाघातेऽप्र शस्यते ॥ २३ ॥
[2]यथादोषोच्छ्रयं कुर्यादेतानेव च सर्वजे ।
[3]फल्गुवृश्चीरदर्भाश्मसारचूर्णञ्च वारिणा ॥ २४ ॥
सुरेक्षुरसदर्भाम्बुपीतं कृच्छ्ररुजापहम् ।
[4]तथाऽभिघातजे कुर्यात् सद्योव्रणचिकित्सितम् ॥ २५ ॥
[5]मूत्रकृच्छ्रे शकृज्जाते कार्या वातहरी क्रिया ।
[6]स्वेदावगाहावभ्यङ्गबस्तिचूर्णक्रियास्तथा ॥ २६ ॥
ये त्वन्ये तु तथा कृच्छ्रे तयोः प्रोक्तः क्रियाविधिः ॥ २७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे मूत्रकृच्छ्रप्रतिषेधो नाम (एकविंशतितमोऽध्यायः, आदितः) एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

---

## षष्टितमोऽध्यायः ।

अथातोऽमानुषोपसर्गप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

---

१ आदिशब्दाद् विलेप्यादयो बोध्याः । कफाघाते=कफजमूत्रकृच्छ्रे ।

२ सान्निपातिकमूत्रकृच्छ्रचिकित्सां वक्ति—यथेति । एतान्=वातादिमूत्रकृच्छ्रहरयोगान् । ३ फल्गुः='कठूमर' इति ख्यातः । वृश्चीरः=श्वेतपुनर्नवा, अश्मसारः=शिलाजतु । ४ अभिघातजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सामभिधत्ते—तथेति । अभिघातजे=अभिघातजमूत्रकृच्छ्रे ।

५ पुरीषजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सितमभिदधाति—मूत्रेति । ६ स्वेदावगाहादयो वातव्याध्युक्ता ग्राह्याः । ७ अश्मरीशर्करोत्पन्नयोर्मूत्रकृच्छ्रयोश्चिकित्सां ब्रवीति—य इति । प्रोक्तः=अश्मरीशर्कराचिकित्सितेऽभिहित इत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतकायचिकित्सातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ।

---

## षष्टितमोऽध्यायः ।

### ( अथ भूतविद्या )

८ कायचिकित्साऽनन्तरं भूतविद्यामधिकरोति—अथात इति । "भूतविद्या नाम

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशाचरेभ्यो[1] रक्ष्यस्तु नित्यमेव क्षतातुरः ।
इति यत्प्रागभिहितं[2] विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥
गुह्यानागतविज्ञानमनवस्थाऽसहिष्णुता[3] ।
क्रिया वाऽमानुषी यस्मिन्[4] स ग्रहः परिकीर्त्यते ॥ ४ ॥
अशुचिं[5] भिन्नमर्य्यादं क्षतं वा यदि वाऽक्षतम् ।
हिंस्युर्हिंसाविहारार्थं[6] सत्कारार्थमथापि वा ॥ ५ ॥
असङ्ख्येया ग्रहगणा ग्रहाधिपतयस्तु ये[7] ।
व्यज्यन्ते[8] विविधाकारा भिद्यन्ते ते तथाऽष्टधा ॥ ६ ॥
देवास्तथा शत्रुगणाश्च तेषां गन्धर्वयक्षाः पितरो भुजङ्गाः ।
रक्षांसि या चापि पिशाचजातिरेषोऽष्टको[10] देवगणो ग्रहाख्यः ॥७॥
सन्तुष्टः[11] शुचिरपि चेष्टगन्धमाल्यो
निस्तन्द्री ह्यवितथसंस्कृतप्रभाषी ।
तेजस्वी [12]स्थिरनयनो वरप्रदाता
ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः ॥ ८ ॥

---

देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम्" इति वेदोत्पत्त्यध्यायेऽभिहितम् । अमानुषाणां देवादिग्रहाणामुपसर्ग उपद्रवः, तस्य प्रतिषेधश्चिकित्सितम् । १ निशाचरेभ्यः=देवादिग्रहेभ्यः । २ प्राक्=व्रणितोपासनीये । ३ ग्रहसामान्यलक्षणमभिधत्ते—गुह्यमिति । गुह्यं रहस्यम्, अनागतं भावि, तयोर्विज्ञानम् । अनवस्था=अनवस्थितिः, चञ्चलत्वमित्यर्थः । असहिष्णुता=अक्षमत्वम् । ४ यस्मिन्=आतुरे, सग्रहः=ग्रहजुष्ट इत्यर्थः ।

५ ग्रहावेशयोग्यान् पुरुषान् दर्शयति—अशुचिमिति । भिन्नमर्यादं=न्यायपथमतिक्रान्तम् । ६ हिंसाविहारार्थं=वधक्रीडार्थम् । ७ ग्रहाणामसंख्येयत्वं वक्ति—असंख्येया इति । ८ व्यज्यन्ते=पृथक् प्रतीयन्ते । ९ ग्रहाधिपानामष्टविधत्वं प्रतिपादयति—देवा इति । शत्रुगणाः=दैत्यगणाः, गन्धर्वाः=हाहाहूहूप्रभृतयः, यक्षाः=कुबेरादयः, पितरः=अग्निष्वात्तादयः, भुजङ्गाः=वासुकिप्रभृतयः । १० अष्टौ परिमाणमस्येत्यष्टकः ।

११ देवग्रहजुष्टस्य लक्षणमाह—सन्तुष्ट इति । इष्टानि प्रियाणि गन्धमाल्यानि यस्य स इष्टगन्धमाल्यः, अवितथं सत्यं संस्कृतं च प्रभाषते इत्यवितथसंस्कृतप्रभाषी । १२ स्थिरनयनः=निमेषरहितः, ब्रह्मण्यः=ब्राह्मणानुरक्तः, देवजुष्टः=देवग्रहपीडितः,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्वेदी[1] द्विजगुरुदेवदोषवक्ता
जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः ।
सन्तुष्टो भवति न चान्नपानजातै-
र्दुष्टात्मा भवति च देवशत्रुजुष्टः ॥ ९ ॥
हृष्टात्मा[2] पुलिनवनान्तरोपसेवी
स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः ।
नृत्यन् वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं
गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ १० ॥
ताम्राक्षः[3] प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी
गम्भीरो द्रुतमतिरल्पवाक् सहिष्णुः ।
तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै
यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ ११ ॥
प्रेतेभ्यो[4] विसृजति संस्तरेषु पिण्डान्
शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः ।
मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकाम-
स्तद्युक्तो भवति पितृग्रहाभिभूतः ॥ १२ ॥
भूमौ[5] यः प्रसरति सर्पवत् कदाचित्

---

देवग्रहेण गणमातृकादयोऽपि ग्राह्याः । तथा च विदेहः—"क्रोधनः स्रस्तसर्वाङ्गो लालाफेनाविलाननः । निद्रालुः कम्पनो मूको गणमातृभिरर्दितः ॥" इति ।

१ देवशत्रुजुष्टस्य लक्षणमभिधत्ते—संस्वेदीति । संस्वेदी=स्वेदवान् , जिह्माक्षः=कुटिलदृष्टिः, विमार्गदृष्टिः=श्रुतिधर्मनिन्दकः । २ गन्धर्वाविष्टस्य लक्षणमाख्याति—हृष्टात्मेति । हृष्टात्मा=चिन्तादिरहितः सन्तुष्टात्मा, पुलिनवनान्तरोपसेवी-पुलिनं नद्यादितटम् , वनमुद्यानम् , तयोरन्तरं मध्यमुपसेवते इति, स्वाचारः=शोभनाचारः, प्रियाणि परि सर्वतो गीतगन्धमाल्यानि यस्य स प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः ।

३ यक्षाविष्टस्य लक्षणमाह—ताम्राक्ष इति । ताम्राक्षः=रक्तनेत्रः, प्रियं शोभनं, तनु सूक्ष्मं, रक्तं च वस्त्रं धर्तुं शीलं यस्य स प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी, गम्भीरः=गम्भीरशीलः । ४ पितृजुष्टस्य लक्षणं ब्रवीति—प्रेतेभ्य इति । प्रेतेभ्यः=मृतेभ्यः, विसृजति=ददाति, संस्तरेषु=आस्तीर्णकुशेषु, शान्तात्मा=शान्तस्वभावः, अपसव्यवस्त्रः=वामोत्तरीयः, अपसव्यहस्त इति पाठे दक्षिणहस्त इत्यर्थः । ५ नागाविष्टस्य लक्षण-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृक्किण्यौ विलिखति जिह्वया तथैव ।
निद्रालुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सु-
र्विज्ञेयो भवति भुजङ्गमेन जुष्टः ॥ १३ ॥
मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सु-
र्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः ।
क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी
शौचद्विड् भवति च रक्षसा गृहीतः ॥ १४ ॥
उद्धस्तः कृशपरुषश्चिरप्रलापी
दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः ।
बह्वाशी विजनहिमाम्बुरात्रिसेवी
व्याविग्नो भ्रमति रुदन् पिशाचजुष्टः ॥ १५ ॥
स्थूलाक्षस्त्वरितगतिः स्वफेनलेही
निद्रालुः पतति च कम्पते च योऽति ।
यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः सन्
संसृष्टो न भवति वार्द्धकेन जुष्टः ॥ १६ ॥
देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि ।
गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ ॥ १७ ॥

---

माचष्टे—भूमाविति । प्रसरति=उरसा भ्रमति, सृक्किण्यौ=ओष्ठप्रान्तौ, विलिखति=विलेढि, धातूनामनेकार्थत्वात् । 'विलिहति' इति पाठान्तरम् ।

१ राक्षसाविष्टस्य लक्षणमाख्याति—मांसेति । विविधसुराविकाराः=पैष्टीप्रभृतयः । २ विपुलबलः=अन्नाद्विनाऽपि प्रभूतबलः । रक्षःपदेन ब्रह्मराक्षसादयो ग्राह्याः । तथा च—"देवविप्रगुरुद्वेषी वेदवेदाङ्गनिन्दकः । आत्मपीडाकरो हासी ब्रह्मराक्षससेवितः ॥" इति । ३ पिशाचाविष्टस्य लक्षणं निर्दिशति—उद्धस्त इति । उद्धस्तः=ऊर्ध्वबाहुः, अतिलोलः=अतिचञ्चलः । ४ विजनं निर्जनस्थानं, हिमाम्बु शीताम्बु, रात्रिः निशा, एतत्सेवीति विजनहिमाम्बुरात्रिसेवी ।

५ असाध्यलक्षणं दर्शयति—स्थूलाक्ष इति । ६ नगः=वृक्षः, आदिशब्दात् भित्तिप्रासादादयो गृह्यन्ते । विदेहेऽधिकमसाध्यलक्षणम्—"मेढ्रप्रवृत्तः क्षतजः सास्रावः स्रुतनासिकः । रूक्षजिह्वः पूतिगर्भो हतवागतिदुर्बलः ॥" इति । ७ देवादीनां ग्रहण-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णक्षये च पितरः पञ्चम्यामपि चोरगाः ।
रक्षांसि निशि पैशाचाश्चतुर्दश्यां विशन्ति च ॥ १८ ॥
दर्पणादीन् यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा ।
स्वमणिं भास्करस्योस्रा यथा देहञ्च देहधृक् ॥
विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणम् ॥ १९ ॥
तपांसि तीव्राणि तथैव दानं व्रतानि धर्मो नियमाश्च सत्यम् ।
गुणास्तथाऽष्टावपि तेषु नित्या व्यस्ताः समस्ताश्च यथाप्रभावम् ॥२०॥
न ते मनुष्यैः सह संविशन्ति न वा मनुष्यान् क्वचिदाविशन्ति ।
ये त्वाविशन्तीति वदन्ति मोहात् ते भूतविद्याविषयादपोह्याः ॥२१॥
तेषां ग्रहाणां परिचारका ये कोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः ।

---

कालं वक्ति—**देवग्रहा इति** । १ कृष्णक्षये = अमावास्यायाम्, पितरः=पितृग्रहाः, उरगाः=नागग्रहाः । २ विशन्ति = अनुप्रवेशं कुर्वन्ति । तिथ्यभिधानप्रयोजनं तेषां तिथौबलिदानार्थम् । तदुक्तम्—"ग्रहा गृह्णन्ति ये येषु तेषां तेषु विशेषतः । दिनेषु बलिहोमादीन् प्रयुञ्जीत चिकित्सकः ॥" इति ।

३ देहं विशन्तो देवादिग्रहाः कथं न दृश्यन्ते इत्याशङ्कायामुपदिशति—**दर्पणादीनिति** । दर्पणः=आदर्शः, आदिशब्दादन्यदपि निर्मलद्रव्यं जलतैलादिकं गृह्यते । छाया=प्रतिकृतिः । शीतोष्णमिति कर्तृपदम् । प्राणिन इति कर्मपदम् । ४ स्वमणिं = सूर्यकान्तम्, भास्करस्योस्राः=सूर्यरश्मयः, 'किरणोऽस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः' इत्यमरः । देहधृक्=जीवात्मा ।

५ यथा छायाशीतोष्णादयो दर्पणप्राणिप्रभृतीन् विशन्तो न दृश्यन्ते तद्वद् ग्रहा अपीत्यर्थः । शरीरिणमित्यत्र शरीरिशब्देन शरीरमभिप्रेतं, स्थानिनि स्थानोपचारात्; यथा मञ्चाः क्रोशन्तीति । ६ ग्रहाणां तीव्रतपोनियमादियुक्तत्वं प्रभाववत्तां च प्रतिपादयति—**तपांसीति** । ७ अष्टौ गुणाः=अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राकाम्यं, प्राकाश्यम्, ईशित्वं, वशित्वं, कामावसायित्वं चेति । व्यस्ताः=द्वित्राः, त्रिचतुष्काः, पञ्च षट्का वा । तत्र व्यस्ता गुणा असुरादिग्रहाणां, समस्ताश्च देवग्रहाणामिति बोध्यम् ।

८ तपोनियमादियुक्ता देवादिग्रहाः कथमप्यशुचिं देहं नाविशन्तीति दर्शयति—**नेति** । ९ मोहात=अज्ञानात्, अपोह्याः=बाह्या इत्यर्थः । १० के तर्ह्याविशन्ती-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असृग्वसामांसभुजः सुभीमा निशाविहाराश्च[1] तमाविशन्ति ॥२२॥
निशाचराणां तेषां हि ये देवगणमाश्रिताः।
ते तु तत्सत्त्वसंसर्गाद्[2]विज्ञेयास्तु तदृज्ञनाः॥ २३॥
देवग्रहा इति पुनः प्रोच्यन्ते शुचयश्च[3] ये।
देववच्च नमस्यन्ते प्रत्यर्च्यन्ते च देववत्॥ २४॥
स्वामिशीलक्रियाचाराः क्रम एष सुरादिषु।
निर्ऋतेर्या[4] दुहितरस्तासां स प्रसवः स्मृतः॥ २५॥
सत्यत्वादप्रवृत्तेषु वृत्तिस्तेषां गणैः[6] कृता।
हिंसाविहारा[7] ये केचिद् देवभावमुपाश्रिताः॥ २६॥
भूतानीति कृता संज्ञा तेषां संज्ञाप्रवक्तृभिः।
ग्रहसंज्ञानि[8] भूतानि यस्माद्वेत्त्यनया भिषक्॥ २७॥
विद्यया भूतविद्यात्वमत एव निरुच्यते।
तेषां शान्त्यर्थमन्विच्छन् वैद्यस्तु सुसमाहितः॥ २८॥
जपैः सनियमैर्होमैरारभेत चिकित्सितुम्।
रक्तानि गन्धमाल्यानि बीजानि[10] मधुसर्पिषी॥ २९॥
भक्ष्याश्च सर्वे सर्वेषां सामान्यो विधिरुच्यते।
वस्त्राणि[11] गन्धमाल्यानि मांसानि रुधिराणि च॥ ३०॥

---

त्याह—तेषामिति। १ निशाविहाराः=रात्रिभ्रमणशीलाः। २ तत्सत्त्वसंसर्गात=देवादिसत्त्वसंयोगात्, तदृज्ञनाः=तल्लक्षणा इत्यर्थः। ३ ये पुनर्ग्रहाः शुचयस्ते देवग्रहा इति प्रोच्यन्ते इति सम्बन्धः।

४ "स्वामिशीलक्रियाचारक्रमा एव सुरादिषु। निर्ऋतेर्या दुहितरस्तासां सप्रसवाः स्मृताः॥" इति श्रीहाराणचन्द्रसम्मतपाठः। ५ निर्ऋतेः=रक्षसां पितामहस्य, सः=देवाद्यनुचरगणः, प्रसवः=सन्तानः, अतो मांसादिभोजनस्वभावं न त्यजतीति भावः। ६ गणैः स्वामिभूतदेवादिभिः सत्यत्वाच्छास्त्रोक्तानुष्ठानाद् अपवृत्तेषु पराङ्मुखेषु तेषामनुचरभूतग्रहाणां वृत्तिर्जीविका कृतेत्यर्थः। ७ ग्रहाणां भूतसंज्ञकत्वे हेतुमाह—हिंसेति। देवभावं=देवरूपमित्यर्थः।

८ भूतविद्याया निरुक्तिं वक्ति—ग्रहेति। वेत्ति=जानाति। ९ ग्रहाणां सामान्यचिकित्सामाह—तेषामिति। तेषां=देवाद्यनुचरभूतग्रहाणाम्। १० बीजानि=माषसर्षपयवप्रभृतीनि, यन्त्रलिखितानि बीजाक्षराणि बीजानीत्यन्ये। ११ तेषां विशे-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यानि येषां यथेष्टानि तानि तेभ्यः प्रदापयेत् ।
हिंसन्ति[1] मनुजान् येषु प्रायशो दिवसेषु तु ॥ ३१ ॥
दिनेषु तेषु देयानि तद्भूतविनिवृत्तये ।
देवग्रहे[2] देवगृहे हुत्वाऽग्निं प्रापयेद्बलिम् ॥ ३२ ॥
कुशास्वस्तिक[3]पूपाज्यच्छत्रपायससम्भृतम् ।
असुराय[4] यथाकालं विदध्याच्चत्वरादिषु ॥ ३३ ॥
गन्धर्वस्य[5] गवां मध्ये मद्यमांसाम्बु जाङ्गलम् ।
हृद्ये[6] वेश्मनि पक्षस्य कुल्माषासृक्सुरादिभिः ॥ ३४ ॥
अतिमुक्तक[7]कुन्दाब्जपुष्पैश्च वितरेद्बलिम् ।
नद्यां[8] पितृग्रहायेष्टं कुशास्तरणभूषितम् ॥ ३५ ॥
तत्रैवोपहरेच्चापि नागाय[9] विविधं बलिम् ।
चतुष्पथे राक्षसस्य भीमेषु गहनेषु[10] वा ॥ ३६ ॥
शून्यागारे[11] पिशाचस्य तीव्रं बलिमुपाहरेत् ।

---

चिकित्सितमभिधत्ते—**वस्त्राणीति** । यानि वस्त्रादीनि येषां देवाद्यनुचराणां यथेष्टानि यथेप्सितानि तानि तेभ्यः प्रदापयेदिति सम्बन्धनीयम् ।

१ वस्त्रादिप्रदानकालमाचष्टे—**हिंसन्तीति** । अन्यत्रापि—"ग्रहा गृह्णन्ति ये येषु तेषां तेषु विशेषतः । दिनेषु बलिहोमादीन् प्रयुञ्जीत चिकित्सकः ॥" इति । २ देवग्रहचिकित्सां वक्ति—**देवेति** । देवगृहे=देवस्थाने ३ स्वस्तिकः=तण्डुलादिचूर्णनिर्मितत्रिकोणाकाराधिवासद्रव्यम्, सम्भृतं=मिलितम् । ४ असुरग्रहचिकित्सामाचष्टे—**असुरायेति** । यथाकालं=सन्ध्याकाले, विदध्यात्=दद्यात्, स्वस्तिकादिबलिमिति शेषः ।

५ गन्धवग्रहचिकित्सां दर्शयति—**गन्धर्वस्येति** । अम्बु=जलम् । ६ यक्षग्रहचिकित्सामाह—**हृद्य इति** । हृद्ये=मनोज्ञे, कुल्माषाः=यवादिपिष्टकृताः शृङ्गाटकादयः । ७ अतिमुक्तकः=माधवीलता । ८ पितृग्रहचिकित्सामाख्याति—**नद्यामिति** । इष्टं=तिलगुडपायसादिबलिमित्यर्थः । ९ नागराक्षसग्रहयोश्चिकित्सां निर्दिशति—**तत्रैवेति** । तत्रैव=नद्याम्, विविधं=गुडमधवासत्रपायसाद्यनेकविधम् । १० गहनेषु=वनेषु, 'गहनं काननं वनम्' इत्यमरः । अत्र मांसासृक्सुराविकाराद्यनेकप्रकारं बलिं वितरेत् । ११ पिशाचग्रहचिकित्सामभिदधाति—**शून्यागार इति** । तीव्रं बलिम्=आममांसपशूपहारमद्योत्कटमित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]पूर्वमाचरितैर्मन्त्रैर्भूतविद्यानिदर्शितैः ॥ ३७ ॥
न शक्या बलिभिर्जेतुं योगैस्तान् समुपाचरेत् ।
[2]अजर्क्षचर्मरोमाणि शल्यकोलूकयोस्तथा ॥ ३८ ॥
हिङ्गु मूत्रञ्च वस्तस्य धूममस्य प्रयोजयेत् ।
एतेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो ग्रहः ॥ ३९ ॥
[3]गजाह्वपिप्पलीमूलव्योषामलकसर्षपान् ।
गोधानकुलमार्जारऋष्यपित्तैं[4]प्रपेषितान् ॥ ४० ॥
नस्याभ्यञ्जनसेकेषु विद्ध्याद्योगतत्त्ववित् ।
[5]खराश्वाश्वतरोलूककरभश्वशृगालजम् ॥ ४१ ॥
पुरीषं गृध्रकाकानां वराहस्य च पेषयेत् ।
वस्तमूत्रेण तत्सिद्धं तैलं स्यात् पूर्ववद्धितम् ॥ ४२ ॥
[6]शिरीषबीजं लशुनं शुण्ठीं सिद्धार्थकं वचाम् ।
मञ्जिष्ठां रजनीं कृष्णां वस्तमूत्रेण पेषयेत् ॥ ४३ ॥
वर्त्यश्छायाविशुष्कास्ताः [7]सपित्ता नयनाञ्जनम् ।
[8]नक्तमालफलं व्योषं मूलं श्योनाकबिल्वयोः ॥ ४४ ॥
हरिद्रे च कृता वर्त्यः पूर्ववन्नयनाञ्जनम् ।
सैन्धवं कटुकां हिङ्गु वयःस्थाञ्च[9] वचामपि ।
वस्तमूत्रेण सम्पिष्टं मत्स्यपित्तेन पूर्ववत् ॥ ४५ ॥
ये ये ग्रहा न सिध्यन्ति सर्वेषां नयनाञ्जनम् ।

---

१ अग्रोपहरणीयैर्मन्त्रैरिहोक्तैर्बलिदानादिभिश्च जेतुमशक्यानां ग्रहाणां धूपनप्रकारमुपदेष्टुमिदमुच्यते—**पूर्वमिति** । पूर्वं=प्राक्, आचरितैः=प्रयुक्तैरित्यर्थः । भूतविद्यानिदर्शितैर्बलिभिरिति सम्बन्धः । २ ग्रहजुष्टे तदेव धूपनमुपदिशति—**अजर्क्षेति** । अजः=छगलः, ऋक्षः='रीछ' इति ख्यातः । ३ ग्रहजुष्टे गजपिप्पल्यादियोगं वक्ति—**गजाह्वेति** । गजाह्वा=गजपिप्पली । ४ पित्तशब्दस्य गोधादिभिः सह प्रत्येकं सम्बन्धः । ५ खरपुरीषादितैलमाह-**खरेति** । खरः=गर्दभः ।

६ ग्रहजुष्टे कतिपययोगान् दर्शयति-**शिरीषबीजमिति** । सिद्धार्थकः=श्वेतसर्षपः । ७ सपित्ताः=गोपित्तयुक्ताः । ८ नक्तमालफलं=करञ्जफलम् । ९ वयःस्था=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुराणसर्पिर्लशुनं हिङ्गु सिद्धार्थकं वचा ॥ ४६ ॥
गोलोमी[२] चाजलोमी च भूतकेशी जटा तथा ।
कुक्कुटा[३] सर्पगन्धा च तथा काणविकाणिके ॥ ४७ ॥
वज्रप्रोक्ता[४] वयःस्था च शृङ्गी मोहनवल्लिका ।
अर्कमूलं त्रिकटुकं लता[५] स्रोतोऽजमञ्जनम् ॥ ४८ ॥
नैपाली[६] हरितालञ्च रक्षोघ्ना ये च कीर्तिताः ।
सिंहव्याघर्क्षमार्जारद्वीपिवाजिगवान्तथा ॥ ४९ ॥
श्वाविच्छल्यकगोधानामुष्ट्रस्य नकुलस्य च ।
विट्त्वग्रोमवसामूत्ररक्तपित्तनखादयः ॥ ५० ॥
अस्मिन्[७] वर्गे भिषक् कुर्य्यात्तैलानि च घृतानि च ।
पानाभ्यञ्जननस्येषु तानि योज्यानि जानता ॥ ५१ ॥
अवपीडेऽञ्जने चैव विदध्याद् गुटिकीकृतम् ।
विदधीत परीषेके क्वथितं, चूर्णितं तथा ॥ ५२ ॥
ऊद्धूलने[९], श्लक्ष्णपिष्टं प्रदेहे चावचारयेत् ।
एष सर्वविकारांस्तु मानसानपराजितः ॥ ५३ ॥
हन्यादल्पेन कालेन [१०]स्नेहादिरपि च क्रमः ।

---

गुडूची, हरीतकीति सुश्रुतार्थसन्दीपनम् । १ ग्रहजुष्टे अपराजितयोगं ब्रवीति—पुराणेति । २ गोलोमी = दूर्वा, अजलोमी = श्वेतदूर्वा, भूतकेशी = मांसी, श्वेतवचेत्यन्ये । जटा = गन्धमांसी । ३ कुक्कुटा = कुक्कुटशिम्बी, कुक्कुटीति पाठे शाल्मली बोध्या । सर्पगन्धा = छत्राकी, काणविकाणिके = काकोलीक्षीरकाकोल्यौ । ४ वज्रप्रोक्ता = वज्रकन्दः, ऋष्यप्रोक्तेति पाठे शतावरी, मोहनवल्लिका = वटपत्री ।

५ लता = प्रियङ्गुः, स्रोतोऽञ्जनं पर्णसानद्यां सिन्धुनदे वा समुद्भूतम् । तच्च—"वल्मीकशिखराकारं रूपे नीलोत्पलद्युति । स्रोतोऽञ्जनं प्रशंसन्ति तच्च प्रत्यञ्जने हितम् ॥" इत्युक्तलक्षणम् ॥ ६ नैपाली = मनःशिला, रक्षोघ्नाः = सर्जरसगुग्गुलश्वेतसर्षपादयः । ७ अस्मिन् वर्गे = पुराणसर्पिरित्यादिके रक्तपित्तनखादिपर्यन्ते । ८ अवपीडे = नस्यप्रभेदे, गुटिकीकृतं = वर्तीकृतम् । ९ उद्धूलने = अवचूर्णने, चूर्णावघर्षणे इत्यर्थः । १० आदिशब्दात् स्वेदवमनविरेकादिकं बोध्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]न चाचौक्षं प्रयुञ्जीत प्रयोगं देवताग्रहे ॥ ५४ ॥
ऋते पिशाचादन्यत्र प्रतिकूलं[2] न चाचरेत् ।
वैद्यातुरौ[3] निहन्युस्ते ध्रुवं क्रुद्धा महौजसः ॥ ५५ ॥
हिताहितीये[4] यच्चोक्तं नित्यमेव समाचरेत् ।
ततः प्राप्स्यति सिद्धिञ्च[5] यशश्च विपुलं भिषक् ॥ ५६ ॥

इति सुश्रुतसंहिताया मुत्तरतन्त्रान्तर्गते भूतविद्यातन्त्रेऽमानुषोपसर्गप्रतिषेधो नाम ( प्रथमोऽध्यायः, आदितः ) षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

---

## एकषष्टितमोऽध्यायः ।

[6]अथातोऽपस्मारप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
[7]स्मृतिर्भूतार्थविज्ञानमपश्च परिवर्जने ।
अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरन्तकृत्[8] ॥ ३ ॥

---

१ देवग्रहे अचौक्षप्रयोगं निषेधति—नेति । अचौक्षम् = अपवित्रम्, 'चोक्षः सुन्दरशीतयोः । शुचौ' इति हेमचन्द्रः । २ प्रतिकूलं = निषिद्धम् । ३ पिशाचादन्यत्र निषिद्धाचरणे यद् भवति, तद्दर्शयति—वैद्येति । ते देवादिग्रहा ध्रुवं प्रतिकूलाचरणात् क्रुद्धाः सन्तो वैद्यातुरौ निहन्युरित्यर्थः । ४ ग्रहजुष्टे हिताहारादिसेवनार्थमुपदिशति—हितेति । ५ ग्रहमुक्तिलक्षणसिद्धिं प्राप्स्यति, 'आतुर' इति शेषः । भिषक् विपुलं यशश्च प्राप्स्यति ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतभूतविद्यातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां षष्टितमोऽध्यायः ।

---

### एकषष्टितमोऽध्यायः ।

६ अमानुषोपसर्गप्रतिषेधानन्तरं चित्तविकृतिजनकत्वसाधर्म्यादपस्मारप्रतिषेधमधिकरोति—अथात इति । अपगतः स्मारः स्मरणं यस्मिन् रोगे सोऽपस्मारः, तस्य प्रतिषेधश्चिकित्सितम् । ७ अपस्मारशब्दं निर्वक्ति—स्मृतिरिति । ८ अन्तकृत् = विनाशकृदित्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथ्याऽतियोगेन्द्रियार्थकर्मणामभिसेवनात् ।
विरुद्धमलिनाहारविहारकुपितैर्मलैः ॥ ४ ॥
वेगनिग्रहशीलानामहिताशुचिभोजिनाम् ।
रजस्तमोऽभिभूतानां गच्छताञ्च रजस्वलाम् ॥ ५ ॥
तथा कामभयोद्वेगक्रोधशोकादिभिर्भृशम् ।
चेतस्यभिहते पुंसामपस्मारोऽभिजायते ॥ ६ ॥
हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता ।
निद्रानाशश्च तस्मिंस्तु भविष्यति भवन्त्यथ ॥ ७ ॥
संज्ञावहेषु स्रोतःसु दोषव्याप्तेषु मानवः ।
रजस्तमःपरीतेषु मूढो भ्रान्तेन चेतसा ॥ ८ ॥
विक्षिपन् हस्तपादं च विजिह्मभ्रूर्विलोचनः ।
दन्तान् खादन् वमन् फेनं विवृताक्षः पतेत् क्षितौ ॥ ९ ॥

---

१ अपस्मारनिदानं निर्दिशति—मिथ्येति । मिथ्यायोगायोगातियोगैरिन्द्रियार्थानां स्पर्शादीनां, कर्मणां कायवाङ्मानसानामिति मिथ्याऽतियोगेन्द्रियार्थकर्मणाम् । शब्दादीनां मिथ्यायोगादयो दर्शिता वाचस्पतिना—परुषेष्टविनाशादिश्रवणं मिथ्यायोगः, पटहादीनामतिशब्दश्रवणमतियोगः, सर्वशोऽश्रवणमयोगः । अभिघातभूताशुचिसंस्पर्शो मिथ्यायोगः, अतिमात्रशीतोष्णादीनां स्पृश्यानां स्नानाभ्यङ्गादीनां चातिसेवनमतियोगः, तथा सर्वशोऽसेवनमयोगः । तथाऽतितेजसामतिदर्शनमतियोगः, सर्वथाऽनवलोकनमयोगः, सूक्ष्मादिदर्शनं मिथ्यायोगः । रसानामत्यादानमतियोगः, अनादानमयोगः, तथाऽयोग्यरसानामादानं मिथ्यायोगः । तथा पूत्याद्याघ्राणं मिथ्यायोगः, अतितीक्ष्णादिगन्धाघ्राणमतियोगः, सर्वशोऽघ्राणमयोगः । तथा कायिकर्मणो व्यायामादेर्निषिद्धकालादिषु सेवनं मिथ्यायोगः, अतिसेवनमतियोगः, सर्वशोऽसेवनमयोगः । तथा वाचिककर्मणः परुषानृतादिवचनं मिथ्यायोगः, अतिवचनादिकश्चातियोगः, सर्वशो मौनमयोगः । तथा मानसकर्मणः शोकादिचिन्तनं मिथ्यायोगः, अतिमात्रचिन्तनादिकमतियोगः, सर्वशोऽचिन्तनमयोग इति । २ मलिनाहारः=पूतिद्विष्टामेध्यपर्युषिताहारः । ३ अभिहते=दूषिते इत्यर्थः ।

४ अपस्मारस्य पूर्वरूपं निरूपयति—हृत्कम्प इति । शून्यता=हृदयस्यैव, ध्यानं=विस्मापनम्, मूर्च्छा=मनोमोहः, प्रमूढता=इन्द्रियमोहः । ५ अपस्मारस्य सामान्यलक्षणमाख्याति—संज्ञेति । दोषव्याप्तेषु=वातादिदोषाभिभूतेषु । ६ विजिह्म

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अल्पकालान्तरञ्चापि पुनः संज्ञां लभेत सः।
सोऽपस्मार इति प्रोक्तः[१] स च दृष्टश्चतुर्विधः॥ १०॥
वातपित्तकफैर्नृणाञ्चतुर्थैः सन्निपाततः।
वेपमानो[२] दशन् दन्तान् श्वसन् फेनं वमन्नपि॥ ११॥
यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं[३] कृष्णं मामनुधावति।
ततो मे चित्तनाशः स्यात्सोऽपस्मारोऽनिलात्मकः॥ १२॥
तृट्तापस्वेदमूर्च्छार्त्तो[४] धुन्वन्नङ्गानि विह्वलः।
यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं पी॰ मामनुधावति॥ १३॥
ततो मे चित्तनाशः स्यात्स पित्तभव उच्यते।
शीतहल्लासनिद्रार्त्तः[५] पतन् भूमौ वमन् कफम्॥ १४॥
यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं शुक्लं मामनुधावति।
ततो मे चित्तनाशः स्यात्सोऽपस्मारः कफात्मकः॥ १५॥
हृदि तोदस्तृडुत्क्लेदस्त्रिष्वप्येतेषु[६] सङ्क्षयात्।
प्रलापः कूजनं क्लेशः प्रत्येकन्तु भवेदिह॥ १६॥
सर्वलिङ्गसमवायः[७] सर्वदोषप्रकोपजे।
अनिमित्तागमाद्[८] व्याधेर्गमनादकृतेऽपि च॥ १७॥
आगमाच्चाप्यपस्मारं वदन्त्यन्ये न दोषजम्।

---

कुटिला भ्रूर्यस्य स विजिह्मभ्रूः, विलोचनः=विकृतनयनः। १ अपस्मारस्य संख्यामाचष्टे—स चेति। चतुर्विध इति संख्याकरणं द्वन्द्वजप्रतिषेधार्थम्, द्वन्द्वजाभावस्तु व्याधिस्वभावात्।

२ वातजापस्मारस्य लक्षणमभिधत्ते—वेपमान इति। वेपमानः=कम्पमानः। ३ विकृतं सत्त्वं=विकृतरूपं सत्त्वम्। ४ पित्तजापस्मारलक्षणमभिदधाति—तृडिति। तृट्=पिपासा, तापः=सन्तापः, धुन्वन्=विक्षिपन्, अङ्गानि=हस्तपादादीनि, विह्वलः=विकल इत्यर्थः। ५ श्लैष्मिकापस्मारलक्षणं वक्ति—शीतेति। हल्लासः=थूत्कारः। ६ एतेषु=वातादिजापस्मारेषु। ७ सान्निपातिकापस्मारलक्षणमाह—सर्वेति। सर्वलिङ्गसमवायः=वातादिलक्षणसमावेशः।

८ एकीयमतेन अपस्मारस्यागन्तुकत्वं निरूपयति—अनिमित्तेति। अनिमित्ता-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]क्रमोपयोगाद्दोषाणां क्षणिकत्वात्तथैव च ॥ १८ ॥
[2]आगमाद्वैश्वरूप्याच्च स तु निर्वर्ण्यते बुधैः ।
[3]देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित् ॥ १९ ॥
शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुद्भवः ।
[4]स्थायिनः केचिदल्पेन कालेनाभिप्रवर्द्धिताः ॥ २० ॥
[5]दर्शयन्ति विकारांस्तु विश्वरूपान्निसर्गतः ।
अपस्मारो महाव्याधिस्तस्माद्दोषज एव तु ॥ २१ ॥
[6]तस्य कार्य्यो विधिः सर्वो य उन्मादेषु वक्ष्यते ।
पुराणसर्पिषः पानमभ्यङ्गश्चैव पूजितः ॥ २२ ॥
उपयोगो [7]ग्रहोक्तानां योगानान्तु विशेषतः ।
ततः सिध्यन्ति ते सर्वे योगैरन्यैश्च साधयेत् ।
शिग्रुकट्वङ्गकिणिहीनिम्बत्वग्रससाधितम् ॥ २३ ॥
[8]चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलमभ्यञ्जने हितम् ।
गोधानकुलनागानां [9]पृषतर्क्षगवामपि ॥ २४ ॥

---

गमात्=अकारणोत्पादनात्, गमनादकृतेऽपि 'प्रतीकारे' इति शेषः। १ स्वमतेऽपस्मारस्य हेतुचतुष्टयेन दोषजत्वं प्रतिपादयति—क्रमेति। क्रमोपयोगात्=सञ्चयादिक्रमेण विकारोत्पन्नकारकयोगात्। २ आगमात्=शास्त्रात्, यतः शास्त्रे वातिक-पैत्तिक-श्लैष्मिक-सान्निपातिकाश्चत्वारोऽपस्मारा अभिहिताः, वैश्वरूप्यात्—विश्वेषां सर्वेषां वातपित्तश्लेष्मणां मनोदोषयो रजस्तमसोश्च रूपं नानाप्रकारं लिङ्गं यस्यापस्मारस्य सः, तस्य भावस्तस्मात्।

३ यदि दोषाणां सञ्चयादिक्रमेणोपयोगस्तदा कथमल्पेनैव कालेन तद्विकारोद्गमः स्यादिति दृष्टान्तेन दर्शयति—देव इति। "अधिशेते यथा भूमिं बीजं कालेऽवरोहति। अधिशेते तथा धातून् दोषः कालेऽवकुप्यति॥" इत्यात्रेयः। ४ स्थायिनः=स्थितिशीला वातादयः। ५ विश्वरूपान्=नानारूपान्। अपस्मारप्रकोपकालमाह तन्त्रान्तरे—"पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः। अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किञ्चिदथान्तरम्॥" इति।

६ अथापस्मारचिकित्सां निर्दिशति—तस्येति। तस्य=अपस्मारस्य। ७ ग्रहपदेन स्कन्दग्रहादयो देवग्रहादयश्च बोध्याः। ८ कट्वङ्गः=श्योनाकः, किणिही अपामार्गः। 'किण्वाहि-किण्वंहि' इति पाठश्चिन्त्यः। ९ पृषतः=शुभ्रबिन्दुमान् मृगभेदः, ऋक्षः=भल्लूकः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पित्तेषु सिद्धं तैलञ्च पानाभ्यङ्गेषु पूजितम् ।
[1]तीक्ष्णैरुभयतोभागैः शिरश्चापि विशोधयेत् ॥ २५ ॥
पूजां रुद्रस्य कुर्वीत तद्गणानाञ्च नित्यशः ।
वातिकं बस्तिभिश्चापि पैत्तिकं तु विरेचनैः ॥ २६ ॥
कफजं वमनैर्धीमानपस्मारमुपाचरेत् ।
[2]कुलत्थयवकोलानि शणबीजं पलङ्कषाम् ॥ २७ ॥
जटिलां[3] पञ्चमूल्यौ द्वे पथ्याञ्चोत्क्वाथ्य यत्नतः ।
बस्तमूत्रयुतं सर्पिः पचेत्तद्वातिके हितम् ॥ २८ ॥
[4]काकोल्यादिप्रतीवापं सिद्धं च प्रथमे गणे ।
पयोमधुसितायुक्तं घृतं तत् पैत्तिके हितम् ॥ २९ ॥
[5]कृष्णाबचामुस्तकाद्यैर्युक्तमारग्वधादिके ।
पक्वं च मूत्रवर्गेषु श्लेष्मापस्मारिणे हितम् ॥ ३० ॥
[6]सुरद्रुमवचाकुष्ठसिद्धार्थव्योषहिङ्गुभिः ।
मञ्जिष्ठारजनीयुग्मसमङ्गात्रिफलाऽम्बुदैः ॥ ३१ ॥
[7]करञ्जबीजशैरीष[8]गिरिकर्णीहुताशनैः ।
सिद्धं सिद्धार्थकं नाम सर्पिर्मूत्रचतुर्गुणम् ॥ ३२ ॥
कृमिकुष्ठ[9]गरश्वासबलासविषमज्वरान् ।

---

१ तीक्ष्णैः = विषाणिकाब्राह्मीकारवेल्लकादिभिः, उभयतोभागैः = वमनविरेचनैरित्यर्थः । २ वातिकापस्मारचिकित्सामाख्याति—कुलत्थेति । कोलं = बदरम्, पलङ्कषा = गुग्गुलुः । ३ जटिला = जटामांसी, पञ्चमूल्यौ द्वे = शालिपर्ण्यादिर्बिल्वादिश्च । ४ पैत्तिकापस्मारचिकित्सामाचष्टे—काकोल्यादीति । काकोल्यादिप्रतीवापं = काकोल्यादिकल्कम्, प्रथमे गणे = विदारिगन्धादिक्वाथे ।

५ श्लैष्मिकापस्मारचिकित्सामभिधत्ते—कृष्णेति । कृष्णा = पिप्पली, आदिशब्दस्य कृष्णादिभिः सह प्रत्येकं सम्बन्धः । पिप्पल्यादिबचादिमुस्तकादीनां क्वाथैः, आरग्वधादीनां कल्कैः मूत्रवर्गे घृतं साधनीयम् । ६ सिद्धार्थकघृतमभिदधाति—सुरद्रुमेति । सुरद्रुमः = देवदारु, सिद्धार्थः = श्वेतसर्षपः, व्योषं = निकटु । ७ रजनीद्वयं = हरिद्रा दारुहरिद्रा च, समङ्गा = लज्जालुः, अम्बुदः = मुस्ता । ८ शैरीषं = शिरीषबीजम्, गिरिकर्णी = अपराजिताभेदः, हुताशनः = चित्रकः । ९ गरः = संयोग विषमित्यर्थः ।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वभूतग्रहोन्मादानपस्मारांश्च नाशयेत् ॥ ३३ ॥
दशमूलेन्द्रवृक्षत्वङ्मूर्वाभार्गीफलत्रिकैः ।
शम्पाकश्रेयसीसप्तपर्णापामार्गफल्गुभिः ॥ ३४ ॥
भृतैः कल्कैश्च भूनिम्बपूतीकव्योषचित्रकैः ।
त्रिवृत्पाठानिशायुग्मसारिवाद्वयपौष्करैः ॥ ३५ ॥
कटुकायासदन्त्युग्रानीलिनीक्रिमिशत्रुभिः ।
सर्पिरेभिश्च गोक्षीरदधिमूत्रशकृद्रसैः ॥ ३६ ॥
साधितं पञ्चगव्याख्यं सर्वापस्मारभूतनुत् ।
चातुर्थकक्षयश्वासानुन्मादांश्च नियच्छति ॥ ३७ ॥
भार्गीभृते पचेत् क्षीरे शालितण्डुलपायसम् ।
त्र्यहं शुद्धाय तं भोक्तुं वराहायोपकल्पयेत् ॥ ३८ ॥
ज्ञात्वा च मधुरीभूतं तं विशस्यान्नमुद्धरेत् ।
त्रीन् भागांस्तस्य चूर्णस्य किण्वभागेन संसृजेत् ॥ ३९ ॥
मण्डोदकार्थे देयश्च भार्गीक्वाथः सुशीतलः ।
शुद्धे कुम्भे निदध्याच्च सम्भारं तं सुरां ततः ॥ ४० ॥

---

१ पञ्चगव्याख्यघृतमभिदधाति—दशेति । इन्द्रवृक्षः = कुटजः, मूर्वा = 'मरोर-फली' इति ख्याता । फलत्रिकं = त्रिफला । २ शम्पाकः = आरग्वधः, श्रेयसी = गजपिप्पली, फल्गुः = 'कठूमर' इति प्रथते । ३ भूनिम्बः = 'चिरायता' इति, पूतीकः = 'कंजा' इति । ४ निशायुग्मं = हरिद्राद्वयम्, सारिवाद्वयं = सारिवा उत्पलसारिवा च, पौष्करं = पुष्करमूलम् । ५ यासः = 'जवासा' इति, दन्ती = 'दतैया' इति, उग्रा = वचा, नीलिनी = 'नील' इति, क्रिमिशत्रुः = विडङ्गम् । 'कटुका मदयन्त्युग्रा' इति पाठे मदयन्ती वनमल्लिका बोध्या । अत्र दशमूलादिफल्गुपर्यन्तानां क्वाथः, भूनिम्बा-दिक्रिमिशत्रुपर्यन्तानां कल्कः, गोक्षीरादयः प्रत्येकं स्नेहसमाः ।

६ भार्ग्यादिसुरां दर्शयति—भार्गीति । क्षीरे चतुर्थांशं भार्गीकल्कं चतुर्गुणं जलं च दत्त्वा क्षीरं साधनीयम् । ७ शुद्धाय = अभुक्ताय, वराहाय = शूकराय, उपक-ल्पयेत् = दद्यात्, चतुर्थदिने इति भावः । ८ मधुरीभूतं = आमाशये पाकमप्राप्तम् । विषीभूतमित्यन्ये, मधुरशब्दस्य विषार्थकत्वात् । विशस्य = हत्वेत्यर्थः । ९ तस्य = उद्धृतस्यान्नस्य, किण्वभागेन = सुराबीजैकभागेन, १० मण्डोदकार्थे = सन्धानार्थे । ११ शुद्धे = लोध्रादिविलिप्तत्वेन कृतसंस्कारे, कुम्भे = घृतकुम्भे इत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातगन्धां जातरसां पाययेदातुरं भिषक् ।
सिरां[1] विध्येदथ प्राप्तां मङ्गल्यानि च धारयेत् ॥ ४१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते भूतविद्यातन्त्रेऽपस्मारप्रतिषेधो नाम ( द्वितीयोऽध्यायः, आदितः ) एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

---

## द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

अथात[2] उन्मादप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
मदयन्ति[3]न्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिता ।
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्त्तितः ॥ ३ ॥
एकैकश[4]: समस्तैश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ।
मानसेन च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते ॥ ४ ॥
विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् ।

---

१ अपस्मारे सिराव्यधमुपदिशति—सिरामिति । उरोपाङ्गललाटजां सिरामित्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतभूतविद्यातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामेकषष्टितमोऽध्यायः ।

---

### द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

२ अपस्मारप्रतिषेधानन्तरं चित्तविकृतिजनकत्वसाधर्म्यात् तुल्यचिकित्सितत्वादुन्मादप्रतिषेधमधिकरोति—अथात इति । उन्मादः=चित्तविभ्रमः । ३ उन्मादनिरुक्तिं वक्ति—मदयन्तीति । मदयन्ति=मनोविभ्रमं कुर्वन्ति, उद्धताः=उपचिताः, उन्मार्गमाश्रिताः=मनोवहधमनीरनुप्राप्ताः । उन्मादस्य सामान्यहेतुमाह तन्त्रान्तरे—"विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम् । उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ॥" इति । अस्य सम्प्राप्तिर्यथा—"तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य । स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥" इति ।

४ उन्मादभेदान् दर्शयति—एकैकश इति । अत्यर्थमूर्च्छितैः=अत्यन्तप्रवृद्धैरि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्त्ति च ॥ ५ ॥
मोहोद्वेगौ स्वनः श्रोत्रे गात्राणामपकर्षणम् ।
अत्युत्साहोऽरुचिश्चान्ने स्वप्ने कलुषभोजनम् ॥ ६ ॥
वायुनोन्मथनञ्चापि भ्रमश्चक्रगतस्य वा ।
यस्य स्यादचिरेणैव उन्मादं सोऽधिगच्छति ॥ ७ ॥
रूक्षैश्छविः परुषवाग् धमनीततो वा
शीतातुरः कृशतनुः स्फुरिताङ्गसन्धिः ।
आस्फोटयत्यटति गायति नृत्यशीलो
विक्रोशति भ्रमति चाप्यनिलप्रकोपात् ॥ ८ ॥
तृट्स्वेददाहबहुलो बहुभुग्विनिद्र-
श्छायाहिमानिलजलान्तविहारसेवी ।
तीक्ष्णो हिमाम्बुनिचयेऽपि स वह्निशङ्की
पित्ताद्दिवा नभसि पश्यति तारकाश्च ॥ ९ ॥
छर्द्यग्निसादसदनारुचिकासयुक्तो
योषिद्विविक्तरतिरल्पमतिप्रचारः ।

---

त्यर्थः । १ अप्रवृद्धः = यावद् वृद्धिं न गतः, अल्पलिङ्ग इत्यर्थः । तरुणः = अल्पमात्रः । २ उन्मादस्य पूर्वरूपमाख्याति—मोहेति । अपकर्षणं = दुर्बलीभवनम् । ३ अत्युत्साहः = कर्तव्यकार्येष्वत्यनुरागः । कलुषभोजनं = मलयुतभोजनम् । ४ उन्मथनं = पीडनम्, चक्रगतस्य = कुलालचक्रस्थितस्य, वा = इव, भ्रमः = गात्रभ्रमणम् ।

५ वातजमुन्मादं लक्षयति—रूक्षैरिति । धमनीततः = सिराव्याप्तः, शीतातुरः = शीतपीडितः । ६ आस्फोटयति, भाण्डादिकमिति शेषः । अटति = चलति, विक्रोशति = रोदिति, भ्रमति = कम्पते । ७ पित्तजोन्मादचिकित्सां ब्रवीति—तृडिति । तृट् = पिपासा, बहुलशब्दस्य तृडादिभिः सह सम्बन्धः । छायां हिमानिलं जलान्तविहारभूमिं च सेवितुं शीलमस्येति छायाहिमानिलजलान्तविहारसेवी । ८ हिमाम्बुनिचयेऽपि = शीतलजलराशावपीत्यर्थः ।

९ कफजोन्मादचिकित्सामभिदधाति—छर्दीति । अग्निसादः = अग्निमान्द्यम्, सदनम् = अङ्गसादः, योषित्सु विविक्ते एकान्ते च रतिर्यस्य स योषिद्विविक्तरतिः, अल्प-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निद्रापरोऽल्पकथनोऽल्पभुगुष्णसेवी
रात्रौ भृशं[1] भवति चापि कफप्रकोपात् ॥ १० ॥
सर्वात्मके[2] पवनपित्तकफा यथास्वं
संहर्षिता इव च लिङ्गमुदीरयन्ति ॥ ११ ॥
[3]चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथाऽन्यै-
र्वित्रासितस्य धनबान्धवसङ्क्षयाद्वा ।
गाढं क्षतें[4] मनसि च प्रियया रिरंसो-
र्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः ॥ १२ ॥
चित्रं[5] स जल्पति मनोऽनुगतं विसंज्ञो
गायत्यथो हसति रोदिति मूढसंज्ञः ।
रक्तेक्षणो[6] हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः
श्यावाननो विषकृतेऽथ भवेत् परासुः ॥ १३ ॥
स्निग्धं[7] स्विन्नन्तु मनुजमुन्मादा[8] विशोधयेत् ।
तीक्ष्णैरुभयतोभागैः[9] शिरसश्च विरेचनैः ॥ १४ ॥
विविधैरवपीडैश्च सर्षपस्नेहसंयुतैः ।

---

मतिप्रचारः=अल्पबुद्धिरल्पगतिश्चेत्यर्थः । १ भृशम्=अधिकम्, अपिशब्दान्नखादीनां शौक्ल्यादिकम् । तदुक्तमन्यत्र—'वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियताऽतिनिद्रा । छर्दिश्च लाला च बलं च भुङ्क्ते नखादिशौक्ल्यं च कफात्मके स्यात् ॥" इति । २ सान्निपातिकोन्मादलक्षणं निर्दिशति—सर्वात्मक इति । संहर्षिता इव=स्पर्धावन्त इवेत्यर्थः ।

३ विकारोत्पत्तिसहितान् मनसो दुःखकरान् हेतूनभिधत्ते—चौररिति । नरेन्द्रपुरुषैः=नृपाधिकारिभिः, अरिभिः=शत्रुभिः, अन्यैः=सिंहगजादिभिः । ४ क्षते=पीडिते, रिरंसोः=रन्तुमिच्छोः, कामुकस्येत्यर्थः । मनसो विकारः=मानस उन्मादः । ५ मनोदुःखजमुन्मादं लक्षयति—चित्रमिति । चित्रं=विविधम्, मनोऽनुगतं गोप्यमपि, विसञ्ज्ञः=विपरीतज्ञानः ।

६ विषजमुन्मादं लक्षयति—रक्तेक्षण इति । हतं बलमिन्द्रियाणि भाश्च यस्य स हतबलेन्द्रियभाः, भा दीप्तिः । ७ उन्मादस्य सामान्यचिकित्सामभिदधाति—स्निग्धमिति । ८ तीक्ष्णैः=विषाणिकाब्राह्मीकारवेल्लकादिभिः, उभयतोभागैः=वमनविरेचनैः, शिरसो विरेचनं विडङ्गतण्डुलादिभिर्बोध्यम् । ९ अवपीडैः=नस्य-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योजयित्वा तु तच्चूर्णं घ्राणे तस्य प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥
सततं धूपयेच्चैनं श्वगोमांसैः सुपूतिभिः[1] ।
सर्षपानाञ्च तैलेन नस्याभ्यङ्गौ हितौ सदा ॥ १६ ॥
दर्शयेदद्भुतान्यस्य[2] वदेन्नाशं प्रियस्य वा ।
भीमाकारैर्नरैर्नागैर्दान्तैर्व्यालैश्च निर्विषैः[3] ॥ १७ ॥
भीषयेत्[4]संयतं पाशैः कशाभिर्वाऽथ ताडयेत् ।
यन्त्रयित्वा सुगुप्तं वा त्रासयेत्तं तृणाग्निना ॥ १८ ॥
जलेन तर्जयेद्वाऽपि रज्जुघातैर्विभावयेत् ।
बलवांश्चापि संरक्षेज्जलेऽन्तः परिवासयेत् ।
प्रतुदेदारया[5] चैनं मर्माघातं विवर्जयेत् ।
वेश्मनोऽन्तः प्रविश्यैनं रक्षंस्तद्वेश्म दीपयेत्[6] ॥ १९ ॥
सापिधाने जरत्कूपे[7] सततं वा निवासयेत् ।
त्र्यहात्र्यहाद्यवागूश्च तर्पणान् वा प्रदापयेत्[8] ॥ २० ॥
केवलानम्बुयुक्तान् वा कुल्माषान्[9] वा बहुश्रुतः ।
हृद्यं यद्दीपनीयञ्च तत्पथ्यं तस्य भोजयेत् ॥ २१ ॥
([10]विडङ्गत्रिफलामुस्तमञ्जिष्ठादाडिमोत्पलैः ।
श्यामैलवालुकैलाभिश्चन्दनामरदारुभिः ॥ २२ ॥
बर्हिष्ठरजनीकुष्ठ[11]पर्णिनीसारिवाद्वयैः ।
हरेणुकात्रिवृद्दन्तीवचातालीशकेशरैः ॥ २३ ॥

---

प्रभेदैः । १ सुपूतिभिः=सुष्ठुशटितैः । २ अस्य=उन्मादार्तस्य, प्रियस्य=प्रियवस्तुनः । ३ निर्विषैः=विषरहितैर्गोनसादिभिः । ४ भीषयेत्=त्रासयेत्, कशाभिः=अश्वादिताडनीभिः । ५ प्रतुदेत्=व्यथयेत्, आरया=तीक्ष्णाग्रया शलाकयेत्यर्थः । ६ दीपयेत्=प्रज्ज्वालयेत् । ७ कूपे=गर्ते, "वद्धं श्वभ्रे विनिक्षिपेत्" इति वाग्भटः ।

८ उन्मादे आहारविधिमभिधत्ते—त्र्यहादिति । तर्पणान्=सक्तून्, केवलान् अम्बुयुक्तान् प्रदापयेदिति सम्बन्धः । ९ कुलमाषान्=यवादिपिष्टमयान् भक्ष्यान् । १० महाकल्याणघृतं वक्ति—विडङ्गेति । एतत् कल्याणघृतं ज्वरप्रतिषेधे पाठभेदेन पठितम् । ११ पर्णिनी=पृष्ठपर्णीत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विक्षीरं साधितं सर्पिर्मालतीकुसुमैः सह ।
गुल्मकासज्वरश्वासक्षयोन्मादनिवारणम् ॥ २४ ॥
एतदेव हि सम्पक्वं जीवनीयोपसम्भृतम् ।
चतुर्गुणेन दुग्धेन महाकल्याणमुच्यते ॥ २५ ॥
अपस्मारं ग्रहं शोषं क्लैब्यं कार्श्यमबीजंताम् ।
घृतमेतन्निहन्त्याशु ये चादौ गदिता गदाः ॥ २६ ॥
बर्हिष्ठकुष्ठमञ्जिष्ठाकटुकैलानिशाह्वयैः ।
तगरत्रिफलाहिङ्गुवाजिगन्धाऽमरद्रुमैः ॥ २७ ॥
वचाऽजमोदाकाकोलीमेदामधुकपद्मकैः ।
सशर्करं हितं सर्पिः पक्वं क्षीरचतुर्गुणम् ॥ २८ ॥
बालानां ग्रहजुष्टानां पुंसां दुष्टाल्परेतसाम् ।
ख्यातं फलघृतं स्त्रीणां वन्ध्यानाञ्चाशु गर्भदम् ॥ २९ ॥ )
ब्राह्मीमैन्द्रीं विडङ्गानि व्योषं हिङ्गु सुरां जटाम् ।
विषघ्नीं लशुनं रास्नां विशल्यां सुरसां वचाम् ॥ ३० ॥
ज्योतिष्मतीं नागरं च अनन्तामभयान्तथा ।
सौराष्ट्रीञ्च समांशानि गजमूत्रेण पेषयेत् ॥ ३१ ॥
छायाविशुष्कास्तद्वर्त्तीर्योजयेद्विधिकोविदः ।
अवपीडेऽञ्जनेऽभ्यङ्गे नस्ये धूमे प्रलेपने ॥ ३२ ॥
उरोऽपाङ्गललाटेषु सिराश्चास्य विमोक्षयेत् ।
अपस्मारक्रियाञ्चापि ग्रहोदिष्टाञ्च कारयेत् ॥ ३३ ॥

---

१ अबीजतां = नपुंसकताम् । २ फलघृतमभिदधाति—बर्हिष्ठेति । बर्हिष्ठं = 'नेत्रबाला' इति ख्यातम् । ३ वाजिगन्धा='असगन्ध' इति ख्याता । अमरद्रुमः = देवदारु ।

४ उन्मादे ब्राह्मयादियोगं निर्दिशति—ब्राह्मीमिति । ऐन्द्री = इन्द्रवारुणी । ५ लशति भिनत्ति रोगानिति लशुनम्, विशल्या = गुडूची, सुरसा = तुलसी । ६ ज्योतिष्मती='मालकांगनी' इति ख्याता । नागरं = शुण्ठी, अत्र 'मागधिकाम्' इति पाठे इन्द्रवारुणीभेदः । अनन्ता = उत्पलसारिवा । ७ सौराष्ट्री = 'फिटकिरी' इति ख्यते । ८ उन्मादे सिराव्यधमुपदिशति—उरोपाङ्गेति । अपाङ्गः = शङ्खः । ९ ग्र-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तदोषं विशुद्धञ्च स्नेहबस्तिभिराचरेत् ।
उन्मादेषु[1] च सर्वेषु कुर्य्याच्चित्तप्रसादनम् ।
मृदुपूर्वा मदेऽप्येवं क्रियां मृद्वीं प्रयोजयेत् ॥ ३४ ॥
शोकशल्यं व्यपनयेदुन्मादे पञ्चमे[2] भिषक् ।
विषजे मृदुपूर्वाञ्च विषघ्नीं कारयेत्[3] क्रियाम् ॥ ३५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते भूतविद्यातन्त्रे उन्मादप्रतिषेधो नाम ( तृतीयोऽध्यायः, आदितः ) द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

---

## त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।

अथातो[4] रसभेदविकल्पमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
दोषाणां[5] पञ्चदशधा प्रसरोऽभिहितस्तु यः ।
त्रिषष्ट्या रसभेदानां तत्प्रयोजनमुच्यते ॥ ३ ॥
अविदग्धा[6] विदग्धाश्च भिद्यन्ते ते त्रिषष्टिधा ।

---

होद्दिष्टां = स्कन्दग्रहादिप्रतिषेधोक्ताम्, अमानुषोपसर्गप्रतिषेधोपदिष्टदेवग्रहाद्युक्ताम्नेत्यर्थः । १ उन्मादे चित्तप्रसादनादिकमुपदिशति—उन्मादेष्विति । २ पञ्चमे = मनोदुःखजे । ३ विषघ्नीं क्रियां कल्पस्थाने उपदिष्टवान् ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतभूतविद्यातन्त्रे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

---

## त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।
( अथ तन्त्रभूषणम् । )

४ अथ भूतविद्याऽनन्तरमौपद्रविकाध्याये तन्त्रभूषणत्वेनाभिहितेषु चतुर्षष्ट्यध्यायेषु क्रमानुसारेण रसभेदविकल्पमध्यायमधिकरोति—अथात इति । रसानां मधुरादीनां भेदेन द्वित्रिकादिभेदेन विकल्पो विभजनं यस्मिन्नध्याये स तम्, अथवा रसभेदानां विकल्पो दोषभेदवशादवचारणं यस्मिन् स तं रसभेदविकल्पम् । ५ रसभेदकथने प्रयोजने दर्शयति—दोषाणामिति । अभिहितः 'व्रणप्रश्नाध्याये' इति शेषः ।

६ यादृशानां रसानां त्रिषष्टिभेदा भवन्ति, तान्निर्दिशति—अविदग्धा इति ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसभेदत्रिषष्टिन्तु वीक्ष्य[1] वीक्ष्यावचारयेत् ॥ ४ ॥
एकैकेनानुगमनं भागशो यदुदीरितम् ।
दोषाणां, तत्र मतिमान् त्रिषष्टिं तु प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥
यथाक्रम[3]प्रवृत्तानां द्विकेषु मधुरो रसः ।
पञ्चानुक्रम[4]ते योगानम्लश्चतुर एव च ॥ ६ ॥
त्रींश्चानुगच्छति रसो लवणः कटुको द्वयम् ।
तिक्तः कषायमन्वेति ते द्विका दश पञ्च च ॥ ७ ॥

तद्य[5]था—मधुराम्लः १, मधुरलवणः २, मधुरकटुकः ३, मधुरतिक्तः ४, मधुरकषायः ५, एते पञ्चानुक्रान्ता मधुरेण । अम्ललवणः १, अम्लकटुकः २, अम्लतिक्तः ३, अम्लकषायः ४, एते चत्वारोऽनुक्रान्ता अम्लेन । लवणकटुकः १, लवणतिक्तः २, लव-

---

अविदग्धाः = अन्येन असंयुक्ताः, धातूनामनेकार्थकत्वेन अत्र विदग्धशब्दस्य संयुक्तार्थकत्वात्; विदग्धाः = संयुक्ताः, भिद्यन्ते=एकैकेन सहानुगमनाद् भेदं यान्ति, ते= रसाः । १ वीक्ष्य वीक्ष्य=दोषभेदविकल्पे वक्ष्यमाणं तं तं दोषभेदं पौनःपुन्येन विमृश्य, रसभेदत्रिषष्टिं = त्रिषष्टिधा भिन्नं तं तं रसम्, अवचारयेत्=प्रयोजयेदित्यर्थः ।

२ दोषभेदे रसभेदोपयोगं प्रतिपादयति—एकैकेनेति । भागशोऽशांशतया रसानामेकैकेन मधुरादिनाऽनुगमनं प्रवर्तनं यदुदीरितमनन्तरेऽस्मिन्नेवाध्यायेऽभिहितम्, मतिमान् ऊहापोहकुशलो वैद्यः तत्र दोषभेदेषु तां रसभेदत्रिषष्टिं प्रयोजयेदित्यर्थः । ३ तत्र संयुक्तेषु पञ्चदशद्विरससंयोगान् प्रदर्शयति—यथेति । यथाक्रमप्रवृत्तानां = मधुरादिक्रमप्रवृत्तानाम्, द्विकेषु = द्विकसंयोगेषु । ४ अनुक्रमते = अनुगतो भवति ।

५ पञ्चदशसंख्याकानां द्विकसंयोगानामनुगमनप्रकारमाह—तद्यथेति । मधुराम्लौ विद्येते यस्मिन् संयोगे स मधुराम्लः, एवं मधुरलवणादावपि बोध्यम् । मधुराम्लः = बदरकपित्थफलादिः १, मधुरलवणः = उष्ट्रीक्षीरादिः २, मधुरकटुकः = कुक्कुरशृगालमांसादिः ३, मधुरतिक्तः = श्रीवासस[6]र्जरसादिः ४, मधुरकषायः = तैलधन्वनफलादिः ५, अम्ललवणः = एडकादिः, ऊषकादिः ६, अम्लकटुकः = चुक्रादिः ७, अम्लतिक्तः = सुरादिः ८, अम्लकषायः = हस्तिनीदधिशुक्रमांसादिः ९, लवणकटुकः = गोमूत्रस्वर्जिकादिः १०, लवणतिक्तः = त्रपुसीसादिः ११, लवण-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णकषायः ३, एते त्रयोऽनुक्रान्ता लवणेन । कटुतिक्तः १, कटुकषायः २, द्वावेतावनुक्रान्तौ कटुकेन । तिक्तकषायः १, एक एवानुक्रान्तस्तिक्ते । एवमेते पञ्चदश द्विकसंयोगा व्याख्याताः ॥ ८ ॥

त्रिकान्[1] वक्ष्यामः—

आदौ प्रयुज्यमानस्तु मधुरो दश गच्छति ।
षडम्लो लवणस्तस्मादर्द्धमेकं[3] तथा कटुः ॥ ९ ॥

तद्यथा[4]—मधुराम्ललवणः १, मधुराम्लकटुकः, २ मधुराम्लतिक्तः ३, मधुराम्लकषायः ४, मधुरलवणकटुकः ५, मधुरलवणतिक्तः ६, मधुरलवणकषायः ७, मधुरकटुकतिक्तः ८, मधुरकटुकषायः ९, मधुरतिक्तकषायः १०, एवमेषां दशानां त्रिकसंयोगानामादौ मधुरः प्रयुज्यते । अम्ललवणकटुकः १, अम्ललवणतिक्तः २, अम्ललवणकषायः ३, अम्लकटुतिक्तः ४, अम्लकटुकषायः ५, अम्लतिक्तकषायः ६, एवमेषां षण्णामादावम्लः प्रयुज्यते । लवणकटुतिक्तः १, लवणकटु-

---

कषायः = समुद्रफेनादिः १२, कटुतिक्तः = कर्पूरजातीफलादिः १३, कटुकषायः = लवलीफलहस्तिनीघृतादिः १४, तिक्तकषायः = भल्लातकमज्जाहरितालादिः १५, एवं पञ्चदशधा द्विरससंयोगाः प्रदर्शिताः । १ विंशतिस्त्रिरससंयोगान् दर्शयति—त्रिकानिति । २ दश = दश योगान् । ३ अर्धं = त्रीन् योगानित्यर्थः ।

४ विंशतिसंख्याकानां त्रिरससंयोगानामनुगमनप्रकारमाख्याति—तद्यथेति । मधुराम्ललवणा विद्यन्ते यत्र संयोगे स मधुराम्ललवणः, एवं मधुराम्लकटुकादावपि बोद्धव्यम् । मधुराम्ललवणः = हस्तिमांसादिः १, मधुराम्लकटुकः = शल्यकमांसादिः २, मधुराम्लतिक्तः = गोधूमोत्थसुरादिः ३, मधुराम्लकषायः = मस्तुतक्रादिः ४, मधुरलवणकटुकः = कपोतमांसादिः अपूपादिश्च ५, मधुरलवणतिक्तः = शम्बूकादिमांसः ६, मधुरलवणकषायः = पद्मकन्दादिर्गुडसंयुक्तः ताप्यकासीसादिश्च ७, मधुरकटुतिक्तः = कटुकाम्लभक्तादिः तृणशून्याफलशुष्ककुस्तुम्बर्यादिश्च ८, मधुरकटुकषायः = गोधामांसैरण्डतैलादिः ९, मधुरतिक्तकषायः = गुडूचीशाखामृगामिषतुवरकतैलादिः १०, अम्ललवणकटुकः = रौप्यशिलाजत्वादिः ११, अम्ललवणतिक्तः = हस्तिमृगमूषादिः १२, अम्ललवणकषायः = हस्तिनीदध्यादिः १३, अम्लकटुतिक्तः = मरिचसंस्कृतसुरादिः १४, अम्लकटुकषायः = अम्लवेतसादिः १५, अम्लतिक्तकषायः = कीरमांसयुतसुरादिः १६, लवणकटुतिक्तः = अविमूत्रादिकः १७, लवणकटुकषायः = अरुष्करः सरोमकः १८

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कषायः२, लवणतिक्तकषायः३, एवमेषां त्रयाणामादौ लवणः प्रयुज्यते । कटुतिक्तकषायः१, एवमेकस्यादौ कटुकः प्रयुज्यते । एवमेते त्रिकसंयोगा विंशतिर्व्याख्याताः ॥ १० ॥

[1]चतुष्कान् वक्ष्यामः—

चतुष्करससंयोगान्मधुरो दश[2] गच्छति ।
चतुरोऽम्लोऽनुगच्छेच्च लवणस्त्वेकमेव तु ॥ ११ ॥

[3]मधुराम्ललवणकटुकः १, मधुराम्ललवणतिक्तः २, मधुराम्ललवणकषायः ३, मधुराम्लकटुकतिक्तः ४, मधुराम्लकटुकषायः ५, मधुराम्लतिक्तकषायः६, मधुरलवणकटुतिक्तः७, मधुरलवणकटुकषायः८, मधुरलवणतिक्तकषायः९, मधुरकटुतिक्तकषायः१०, एवमेषां दशानामादौ मधुरः प्रयुज्यते । अम्ललवणकटुतिक्तः१, अम्ललवणकटुकषायः२, अम्ललवणतिक्तकषायः३, अम्लकटुतिक्तकषायः४, एवमेषां चतुर्णामादावम्लः । लवणकटुतिक्तकषायः १, एवमेकस्यादौ ल-

---

लवणतिक्तकषायः=समुद्रफेनाविकः १९, कटुतिक्तकषायः=कृष्णागरुसुरदारुस्नेहादिकः २०, एवं विंशतिविधास्त्रिरससंयोगाः प्रदर्शिताः ।

१ पञ्चदशचतुष्करससंयोगान्निर्दिशति—**चतुष्कानिति** । २ दशयोगानित्यर्थः । ३ पञ्चदशसंख्याकानां चतुष्करससंयोगानामनुगमनप्रकारं दर्शयति—मधुरेति । मधुराम्ललवणकटुका विद्यन्ते यत्र संयोगे स मधुराम्ललवणकटुकः, एवं शेषेष्वपि व्याख्येयम् । मधुराम्ललवणकटुकः=गोमूत्रान्वितशिलाजत्वादिः १, मधुराम्ललवणतिक्तः=गोमूत्रैकशफक्षीरादिः २, मधुराम्ललवणकषायः=सैन्धवान्विततक्रादिः ३, मधुराम्लकटुकतिक्तः=लशुनान्वितसुरादिः ४, मधुराम्लकटुकषायः=काञ्जिकान्वितैरण्डतैलादिः ५, मधुराम्लतिक्तकषायः=उदुम्बरान्वितयवासशर्करादिः ६, मधुरलवणकटुकतिक्तः=वार्ताकफलादिकः ७, मधुरलवणकटुकषायः=गोमूत्रान्विततैलादिः ८, मधुरलवणतिक्तकषायः=समुद्रफेनशर्कराचित्रकान्वितबदरादिः ९, मधुरकटुतिक्तकषायः=तिलगुग्गुल्वादिः १०, अम्ललवणकटुतिक्तः=सुवर्चलान्वितहस्तिनीदध्यादिकृतमुरादिकः ११, अम्ललवणकटुकषायः=सौवर्चलान्वितहस्तिनीदध्यादिः १२, अम्ललवणतिक्तकषायः=प्रौञ्जिदलवणान्वितशुकमांसादिः १३, अम्लकटुतिक्तकषायः=बालमूलकहस्तिनीदध्यादिः १४, लवणकटुतिक्तकषायः=

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वणः। एवमेते चतुष्करससंयोगाः पञ्चदश कीर्तिताः ॥ १२ ॥

पञ्चकान् वक्ष्यामः—

पञ्चकान् पञ्च मधुर एवमम्लस्तु गच्छति ॥ १३ ॥

मधुराम्ललवणकटुतिक्तः१, मधुराम्ललवणकटुकषायः२, मधुराम्ललवणतिक्तकषायः३, मधुराम्लकटुतिक्तकषायः४, मधुरलवणकटुतिक्तकषायः५, एवमेषां पञ्चानामादौ मधुरः प्रयुज्यते। अम्ललवणकटुतिक्तकषायः१, एवमेकस्यादावम्लः। एवमेते षट् पञ्चकसंयोगा व्याख्याताः ॥ १४ ॥

षट्कमेकं वक्ष्यामः—

एकस्तु षट्कसंयोगः—मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायः। एष एक एव षट्संयोगः ॥ १५ ॥

एकैकश्च षड्सा भवन्ति—मधुरः१, अम्लः२, लवणः३, कटुकः४, तिक्तः५, कषायः६, इति ॥ १६ ॥

भवति चात्र।

एषा त्रिषष्टिर्व्याख्याता रसानां रसचिन्तकैः।

---

सरोमकबालबिल्वादिः १५, एवं पञ्चदशधाश्चतुष्करससंयोगाः प्रदर्शिताः।

१ अतः परं षट् पञ्चरससंयोगानाचष्टे—पञ्चकानिति। २ पञ्चकान्=पञ्चरससंयोगान्, पञ्च=पञ्चसंख्याकान्=योगानित्यर्थः। ३ षट्संख्याकानां पञ्चरससंयोगानामनुगमनप्रकारं प्रतिपादयति—मधुरेति। व्याख्या पूर्ववत् कार्या। मधुराम्ललवणकटुतिक्तः=आम्रकरमर्दान्वितभ्रष्टवृन्ताकफलादिः १, मधुराम्ललवणकटुकषायः=त्रिकटुयवक्षारान्विततक्रादिः २, मधुराम्ललवणतिक्तकषायः=औद्भिदान्विततक्रादिः ३, मधुराम्लकटुतिक्तकषायः=हरीतकीधात्रीफलादिः ४, मधुरलवणकटुतिक्तकषायः=रसोनादिकः ५, अम्ललवणकटुतिक्तकषायः=भल्लातकरौप्यशिलाजतुमिश्रितनिम्बादिः ६, एवं षट् पञ्चरससंयोगाः प्रदर्शिताः।

४ अतः परमेकं षड्रससंयोगं दर्शयति—षट्कमिति। मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायः=एणमांसादिकः १, एवमेक एव षड्रससंयोगोऽभिहितः। ५ असंयुक्तान् षड्रसानभिधत्ते—एकैकश्चेति। मधुरः=सन्तानिकागोदुग्धादिः १, अम्लः=आम्रकरमर्दादिः २, लवणः=रोमकादिकः ३, कटुकः=चव्यादिकः ४, तिक्तः=निम्बपर्पटादिः ५, कषायः=पद्मन्यग्रोधाद्यङ्कुरादिः ६, एवमसंयुक्ताः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोषभेदत्रिषष्ट्यां तु प्रयोक्तव्या विचक्षणैः ॥ १७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे तन्त्रभूषणाध्यायेषु रसभेदविकल्पाध्यायो नाम ( प्रथमः, आदितः ) त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

---

## चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

अथातः[2] स्वस्थवृत्तमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

सूत्रस्थाने समुद्दिष्टः[3] स्वस्थो भवति यादृशः ।

तस्य यद्रक्षणं तद्धि चिकित्सायाः प्रयोजनम् ॥ ३ ॥

तस्य यद्वृत्तमुक्तं हि रक्षणं च मयाऽऽदितः[4] ।

तस्मिन्नर्थाः समासोक्ता विस्तरेणेह वक्ष्यते[5] ॥ ४ ॥

यस्मिन् यस्मिन्नृतौ ये ये दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम् ।

तेषु तेषु प्रदातव्या रसास्ते[6] ते विजानता ॥ ५ ॥

---

षड् रसाः प्रदर्शिताः । १ दोषभेदत्रिषष्ट्यां = दोषभेदविकल्पाध्याये वक्ष्यमाणायाम्, दोषभेदविकल्पाध्याये ये द्विषष्टिर्दोषभेदा वक्ष्यन्ते, तेष्वेव स्वास्थ्यमादाय त्रिषष्टिधा भिन्ना रसाः प्रयोक्तव्या इत्यर्थः । तदुक्तम्—"द्विषष्टिर्दोषभेदाः स्यू रसभेदास्त्रिषष्टिधा । स्वास्थ्यं त्रिषष्टं विज्ञेयं तत्र षड्रसयोजनम् ॥" इति ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गततन्त्रभूषणे सुधाऽऽख्यटिप्पन्यां त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।

---

### चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

२ रसभेदविकल्पानन्तरमौद्भिदिकाध्यायोक्तक्रमप्राप्तं स्वस्थवृत्तमध्यायमधिकरोति—अथात इति । स्वस्थस्य वृत्तमाचारः । ३ समुद्दिष्टः = "समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः । प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥" इति दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयेऽभिहितः । ४ आदितः = आतङ्कार्तावाधचिकित्सिते । ५ वक्ष्यते 'स्वस्थवृत्तम्' इति शेषः । ६ कृत्वाश्रयं स्वस्थवृत्तमभिधत्ते—यस्मिन्निति । ७ रसाः = रसवन्ति द्रव्याणीत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रक्लिन्नत्वाच्छरीराणां वर्षासु भिषजा खलु[1]।
मन्देऽग्नौ कोपमायान्ति सर्वेषां मारुतादयः ॥ ६ ॥
तस्मात् क्लेदविशुद्ध्यर्थं दोषसंहरणाय च।
कषायतिक्तकटुकै रसैर्युक्तमपद्रवम्[3] ॥ ७ ॥
नातिस्निग्धं नातिरूक्षमुष्णं दीपनमेव च।
देयमन्नं नृपतये यज्जलं चोक्तमादितः[4] ॥ ८ ॥
तप्तावरतम्भो[5] वा पिबेन्मधुसमायुतम्।
अह्नि मेघानिलाविष्टेऽत्यर्थशीताम्बुसङ्कुले ॥ ९ ॥
तरुणत्वाद्विदाहञ्च[6] गच्छन्त्योषधयस्तदा।
मतिमांस्तान्निमित्तञ्च[7] नातिव्यायाममाचरेत् ॥ १० ॥
अत्यम्बुपानावश्यायग्राम्यधर्मातपांस्त्यजेत्[8]।
भूबाष्पपरिहारार्थं शयीत च विहायसि[9] ॥ ११ ॥
शीते साग्नौ निवाते च गुरुप्रावरणे गृहे।
यायान्नागवधूभिश्च[10] प्रशस्तागुरुभूषितः ॥ १२ ॥
दिवास्वप्नमजीर्णञ्च[11] वर्जयेत्तत्र यत्नतः।
सेव्याः[12] शरदि यत्नेन कषायस्वादुतिक्तकाः ॥ १३ ॥
क्षीरेक्षुविकृतिक्षौद्रशालिमुद्गादिजाङ्गलाः[13]।
श्वेतस्रजश्चन्द्रपादाः[14] प्रदोषे लघु चाम्बरम् ॥ १४ ॥
सलिलञ्च प्रसन्नत्वात् सर्वमेव तदा हितम्।

---

१ वर्षाचर्यां प्रतिपादयति—प्रक्लिन्नत्वादिति। प्रक्लिन्नत्वात्=अत्यार्द्रत्वात्, भिषजेति पदस्य देयमन्नमित्यत्र सम्बन्धः। २ तन्त्रान्तरेऽपि—"शमप्रकोपौ दोषाणां सर्वेषामग्निसंश्रितौ" इति। ३ अपद्रवं=द्रवहीनमित्यर्थः। ४ द्रवद्रव्यविधौ पानीयवर्गे "वर्षास्वान्तरीक्षमौद्भिदं वा सेवेत" इत्यादिना कथितम्। ५ तप्तावरतं=श्रृतशीतम्। ६ विदाहम्=अम्लपाकम्। ७ तन्निमित्तं=विदाहनिमित्तम्। ८ ग्राम्यधर्मः=मैथुनम्। ९ विहायसि=अट्टाद्युपरिभागे। १० नागवधूभिः=हस्तिनीभिः। ११ चकारात्पूर्ववातादिकं समुच्चीयते। तत्र=वर्षास्वित्यर्थः।

१२ शरच्चर्यां ब्रवीति—सेव्या इति। १३ जाङ्गलम्=एणादीनां लावादीनां च मांसम्। १४ चन्द्रपादाः=चन्द्रांशव इत्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरःस्वाप्लवनञ्चैव कमलोत्पलशालिषु ॥ १५ ॥
प्रदोषे शशिनः पादाश्चन्दनं चानुलेपनम् ।
तिक्तस्य[1] सर्पिषः पानैरसृक्स्रावैश्च युक्तितः[2] ॥ १६ ॥
वर्षासूपचितं पित्तं हरेच्चापि विरेचनैः ।
नोपेयात्[3] तीक्ष्णमम्लोष्णं क्षारं स्वप्नं दिवाऽऽतपम् ॥ १७ ॥
रात्रौ जागरणञ्चैव मैथुनं चापि वर्जयेत् ।
( स्वादुशीतजलं मेध्यं शुचिस्फटिकनिर्मलम्[3] ॥ १८ ॥
शरच्चन्द्रांशुनिर्धौतमगस्त्योदयनिर्विषम्[4] ।
प्रसन्नत्वाच्च सलिलं सर्वमेव तदा हितम् ॥ १९ ॥
सचन्दनं सकर्पूरं वासश्चामलिनं लघु ।
भजेच्च शारदं माल्यं सीधोः पानञ्च युक्तितः[5] ॥ २० ॥
पित्तप्रशमनं यच्च तच्च सर्वं समाचरेत् । )
( हेमन्तः[6] शीतलो रूक्षो मन्दसूर्य्योऽनिलाकुलः ॥ २१ ॥
ततस्तु शीतमासाद्य वायुस्तत्र प्रकुप्यति ।
कोष्ठस्थः शीतसंस्पर्शादन्तः पिण्डीकृतोऽनलः[7] ॥ २२ ॥
रसमुच्छोषयत्याशु तस्मात् स्निग्धं तदा हितम् । )
हेमन्ते[8] लवणक्षारतिक्ताम्लकटुकोत्कटम् ॥ २३ ॥
ससर्पिस्तैलमहिममशनं हितमुच्यते ।
तीक्ष्णान्यपि च पानानि[9] पिबेद्गुरुभूषितः ॥ २४ ॥

---

१ तिक्तस्य सर्पिषः = कुष्ठचिकित्सितेऽभिहितस्य तिक्तकस्य महातिक्तस्य घृतस्येत्यर्थः । युक्तितः = योगतः, आतुरबलबलामभिसमीक्ष्येत्यर्थः । २ सेव्यमुपदिश्य वर्ज्यमुपदिशति—**नोपेयादिति** । नोपेयात् = न सेवेत, स्वप्नं दिवा = दिवास्वापम् ।

३ शुचिस्फटिकवद् विशुद्धस्फटिकवन्निर्मलम् । ४ अगस्त्यस्य आकाशे नक्षत्ररूपस्या गस्त्यमुनेरुदयेन निर्विषं निर्मलमित्यर्थः । ५ युक्तितः = योगतः, आतुरबलादिकं विचार्येत्यर्थः ।

६ हेमन्तचर्यामाख्याति—**हेमन्त इति** । ७ पिण्डीकृतः = संहत इति तात्पर्यम् । ८ हेमन्ते सेव्यासेव्यव्यवस्थामाह—**हेमन्त इति** । ९ मद्यादीनि पानानीत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैलाक्तस्य सुखोष्णे च वारिकोष्ठेऽवगाहनम् ।
साङ्गारयाने महति कौशेयास्तरणास्तृते ॥ २५ ॥
शयीत शयने तैस्तैर्वृतो गर्भगृहोदरे ।
स्त्रीः श्लिष्ट्वाऽगुरुधूपाढ्याः पीनोरुजघनस्तनीः ॥ २६ ॥
प्रकामञ्च निषेवेत मैथुनं तर्पितो नृपः ।
( मधुरं तिक्तकटुकमम्लं लवणमेव च ॥ २७ ॥
अन्नपानं तिलान् माषाञ्छाकानि च दधीनि च ।
तथेक्षुविकृतीः शालीन् सुगन्धांश्च नवानपि ॥ २८ ॥
प्रसहानूपमांसानि क्रव्यादबिलशायिनाम् ।
औदकानां प्लवानाञ्च पादिनाञ्चोपसेवयेत् ॥ २९ ॥
मद्यानि च प्रसन्नानि यच्च किञ्चिद् बलप्रदम् ।
कामतस्तन्निषेवेत पुष्टिमिच्छन् हिमागमे ॥ ३० ॥
दिवास्वप्नमजीर्णं च वर्जयेत्तत्र यत्नतः । )
एष एव विधिः कार्य्यः शिशिरे समुदाहृतः ॥ ३१ ॥
( हेमन्ते निचितः श्लेष्मा शैत्याच्छीतशरीरिणाम् ।

---

१ वारिकोष्ठे = 'टब' इति समाख्ये काष्ठपाषाणादिकृतनौकाकारे जलपात्रे ।

२ साङ्गारयाने = अङ्गारधानिकायुक्ते, 'साङ्गारधाने' इति हाराणचन्द्रसम्मतपाठः । 'अङ्गारधानिकाऽङ्गारशकट्यपि हसन्त्यपि' इत्यमरः । साङ्गारयान इति पदं 'गर्भगृहोदरे' इत्यत्र अन्वेति । गर्भगृहोदरे = गर्भागारमध्ये, 'गर्भागारं वासगृहम्' इत्यमरः ।

६ श्लिष्ट्वा = आलिङ्ग्येत्यर्थः ।

४ 'मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकम् । त्वक् पुष्पं कवकं चैव शाकं दशविधं स्मृतम् ॥' इति । मूलं मूलकविशादेः १, पत्रं वास्तुकादेः २, करीरं वंशाङ्कुरादेः ३, अग्रं वेत्रादेः ४, फलं कूष्माण्डवार्ताक्यादेः ५, काण्डं कमलादेर्नालम् ६, अधिरूढकं = तालबीजाङ्कुरास्थिमज्जादि ७, त्वक् मातुलुङ्गादेः ८, पुष्पं तिन्तिडीकोविदारादेः ९, कवकं छत्राकम् १० । 'पत्रं पुष्पं फलं नालं कण्डं संस्वेदजं तथा । शाकं षड्विधमुद्दिष्टं गुरु विद्याद्यथोत्तरम् ॥' इति मतान्तरोक्तानि च शाकानि बोध्यानि । ५ 'मांसम्' इति शेषः ।

६ मद्यस्य उपरितनो यः स्वच्छो भागः सा प्रसन्ना कथिता । "सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात्" इति शार्ङ्गधरः । ७ हिमागमे = हेमन्ततौ । ८ वसन्तचर्यामभिदधाति—

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औष्णचाद्वसन्ते कुपितः कुरुते च गदान् बहून् ॥ ३२ ॥
ततोऽम्लमधुरस्निग्धलवणानि गुरूणि च ।
वर्जयेद्व्यायामनादीनि कर्माण्यपि च कारयेत् ॥ ३३ ॥
षष्टिकान्नं यवाञ्छीतान् मुद्गान् नीवारकोद्रवान् ।
लावादिविष्किरसैर्दद्याद् यूषैश्च युक्तितः ॥ ३४ ॥
पटोलनिम्बवार्ताकतिक्तकैश्च हिमात्यये[1] ।
सेवेन्मध्वासवारिष्टान् सीधुमाध्वीकमाधवान्[2] ॥ ३५ ॥
व्यायाममञ्जनं धूमं तीक्ष्णञ्च कवलग्रहम् ।
सुखाम्बुना च सर्वार्थान् सेवेत कुसुमागमे ॥ ३६ ॥ )
तीक्ष्णरूक्षकटुक्षारकषायं कोष्णमद्रवम्[3] ।
यवमुद्गमधुप्रायं वसन्ते भोजनं हितम् ॥ ३७ ॥
व्यायामोऽत्र नियुद्धाध्वशिलानिर्घातजो[4] हितः ।
उत्सादनं[5] तथा स्नानं वनिताः काननानि च ॥ ३८ ॥
सेवेत निर्हरेच्चापि[6] हेमन्तोपचितं कफम् ।
शिरोविरेचकवमननिरूहकवलादिभिः ॥ ३९ ॥
वर्जयेन्मधुरस्निग्धदिवास्वप्नगुरुद्रवान् ।
व्यायाममुष्णमायासं मैथुनं परिशोषि च ॥ ४० ॥
रसांश्चाग्निगुणोद्रिक्तान् निदाघे परिवर्जयेत् ।
सरांसि सरितो वापीर्वनानि रुचिराणि च ॥ ४१ ॥

---

हेमन्त इति । निचितः = सञ्चित इत्यर्थः । १ हिमात्यये = वसन्ते । २ मधुकृत आसवो माधवः । ३ कोष्णं = किञ्चिदुष्णम्, अद्रवं = द्रवरहितम् ।

४ नियुद्धं = बाहुयुद्धम्, 'नियुद्धं बाहुयुद्धे स्यात्' इत्यमरः । अध्वा = मार्गगमनम्, शिलानिर्घातः = शिलया गात्राभिहननम् । ५ उत्सादनम् = उद्वर्तनम् । ६ "हरेद् वसन्ते श्लेष्माणं पित्तं शरदि निर्हरेत्" इति सूत्रस्थानेऽप्युक्तम् ।

७ ग्रीष्मचर्यामुपदिशति—व्यायाममिति । व्यायामं = शरीरायासकरकर्म, आयासः = व्यायामापेक्षयाऽल्पश्रमकरं कर्म, परिशोषि = शोषणशीलम् । ८ अग्निगुणोद्रिक्तान् = कटुकाम्ललवणान् । ९ ग्रीष्मे सेव्यकर्म निर्दिशति—सरांसीति । सरांसि = देवखातानि जलाधाराणि, सरितः = गङ्गादिनदीः, वापीः = दीर्घिकाः, 'पाषा-



CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्दनानि परार्ध्यानि[1] स्रजः सकमलोत्पलाः ।
तालवृन्तानिलाहारांस्तथा शीतगृहाणि[2] च ॥ ४२ ॥
घर्मकाले निषेवेत वासांसि सुलघूनि च ।
शर्कराखण्डदिग्धानि[3] सुगन्धीनि हिमानि च ॥ ४३ ॥
पानकानि च सेवेत मन्थांश्चापि सशर्करान्[4] ।
भोजनं च हितं शीतं सघृतं मधुरद्रवम्[5] ॥ ४४ ॥
श्रृतेन पयसा रात्रौ शर्करामधुरेण च ।
प्रत्यग्रकुसुमाकीर्णे[6] शयने हर्म्यसंस्थिते ॥ ४५ ॥
शयीत चन्दनार्द्राङ्गः स्पृश्यमानोऽनिलैः सुखैः ।
तापात्यये[7] हिता नित्यं रसा ये गुरवस्त्रयः ॥ ४६ ॥
पयो मांसरसाः कोष्णास्तैलानि च घृतानि च ।
बृंहणञ्चापि यत्किञ्चिदभिष्यन्दि[8] तथैव च ॥ ४७ ॥
निदाघोपचितञ्चैव प्रकुप्यन्तं समीरणम् ।
निहन्यादनिलघ्नेन विधिना[10] विधिकोविदः ॥ ४८ ॥

---

णैरिष्टिकाभिर्वा बद्धकूपा बृहत्तरा । ससोपाना भवेद् वापी प्राहुः शास्त्रविशारदाः ॥' इति । १ परार्ध्यानि=श्रेष्ठानीत्यर्थः । २ तालवृन्तं तालपत्ररचितव्यजनम् । ३ दिग्धानि=युक्तानि । सुगन्धीनि=कर्पूराद्यधिवासितानि ।

४ मन्थान्=जलघृताक्तसक्तून् । ५ मधुरद्रवो रसालपानकादिर्विष्यते यत्र भोजने तन्मधुरद्रवम् । "दिवा पानानि शीतानि हितं रात्रौ च भोजनम् । ससर्पिःशर्करं शीतं श्रृतेन पयसा युतम् ॥" इति तन्त्रान्तराद्रात्रौ भोजनं दिवा मन्थादिपानमित्युन्नेयम् । ६ प्रत्यग्रकुसुमाकीर्णे=नवपुष्पास्तृते, हर्म्यसंस्थिते=काष्टेष्टकादिकृतधवलगृहोपरिसंस्थिते, रात्रौ हर्म्योपरि दिवा शीतगृहे शयीत । तथा च तन्त्रान्तरम्—"दिवा शीतगृहे निद्रां निशि चन्द्रांशुशीतले । भजेच्चन्दनदिग्धाङ्गः प्रवाते हर्म्यमस्तके ॥" इति ।

७ प्रावृट्चर्यां निरूपयति—**तापात्यय इति** । तापात्यये=वर्षर्तौ, गुरवस्त्रयः=मधुराम्ललवणाः । ८ "पैच्छिल्याद् गौरवाद् द्रव्यं रुद्धवा रसवहाः सिराः । धत्ते यद्गौरवं तत्स्यादभिष्यन्दि यथा दधि ॥" इति । ९ निदाघोपचितं=ग्रीष्मकालसञ्चितम् । १० स्नेहस्वेदादिविधिनेत्यर्थः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदीजलं रूक्षमुष्णमुदमन्थं तथाऽऽतपम् ।
व्यायामञ्च दिवास्वप्नं व्यवायञ्चात्र वर्जयेत् ॥ ४९ ॥
नवान्नरूक्षशीताम्बु सक्तूंश्चापि विवर्जयेत् ।
यवषष्टिकगोधूमान् शालींश्चाप्यनवांस्तथा ॥ ५० ॥
हर्म्यमध्ये निवाते च भजेच्छय्यां मृदूत्तराम् ।
सविषैप्राणिविण्मूत्रलालादिष्ठीवनादिभिः ॥ ५१ ॥
समाप्लुतं तदा तोयमान्तरीक्षं विषोपमम् ।
वायुना विषदुष्टेन प्रावृषेण्येन दूषितम् ॥ ५२ ॥
तद्धि सर्वोपयोगेषु तस्मिन् काले विवर्जयेत् ।
अरिष्टासवमैरेयान् सोपदंशांस्तु युक्तितः ॥ ५३ ॥
पिबेत् प्रावृषि जीर्णांस्तु रात्रौ तानपि वर्जयेत् ।
निरूहैर्बस्तिभिश्चान्यैस्तथाऽन्यैर्मारुतापहैः ॥ ५४ ॥
कुपितं शमयेद्वायुं वार्षिकं चाचरेद्विधिम् ।
ऋतावृतौ य एतेन विधिना वर्त्तते नरः ॥ ५५ ॥
घोरानृतुकृतान् रोगान्नाप्नोति स कदाचन ।

अत ऊर्ध्वं द्वादशाशनप्रविचारान् वक्ष्यामः । तत्र शीतोष्ण-स्निग्धरूक्षद्रवशुष्कैककालिकद्विकालिकौषधयुक्तमात्राहीनदोषप्रशमनवृत्त्यर्थाः ॥ ५६ ॥

---

१ व्यवायं=मैथुनम् । २ मृदूत्तरां=मृद्वाच्छादनाम् । ३ वर्षाजलनिषेधमाह—सविषेति । ४ विषदुष्टेन=शालपुष्पादिविषौषधिपुष्पगन्धादिदोषयुक्तेन, प्रावृषेण्येन=प्रावृषि भवेन, 'प्रावृष एण्यः' इत्येण्यः । ५ तत्=आन्तरीक्षं तोयम् । ६ उपदंशो मद्यरोचकद्रव्यं, तेन सहितान् सोपदंशान् ।

७ वार्षिकं=वर्षाकालिकम् । वर्षा-शीत-ग्रीष्मसमये आनन्ददायकानि—"पीताम्बरं पयःपानं पादुका पूर्णमन्दिरम् । परान्नं पद्मपत्राक्षी वृष्टौ सप्तसुखावहाः ॥ तैलतापनताम्बूलं तूलिका तप्तभोजनम् । तप्ताम्बु तरुणी नारी शीते सप्त सुखावहाः ॥ चन्दनं च चतुर्द्वारं चामरं चीरचन्द्रमाः । चम्पकं चतुरा नारी ग्रीष्मे सप्तसुखावहाः ॥" इति ।

८ आर्तवविधिसेवनफलमभिधत्ते—ऋताविति । एतेन विधिना=पूर्वोक्तेन विधानेनेत्यर्थः । ९ द्वादशाशनप्रविभागानाह—अत इति । १० तत्र=द्वादशाशनप्रविभागेषु मध्ये । अशनप्रविचारानिति पाठे अशनस्य भोजनस्य प्रकृष्टान्

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]तृष्णोष्णमददाहार्त्तान् रक्तपित्तविषातुरान् ।
मूर्च्छाऽऽर्त्तान् स्त्रीषु च क्षीणान् [2]शीतैरन्नैरुपाचरेत् ॥५७॥
[3]कफवातामयाविष्टान् विरिक्तान् स्नेहपायिनः ।
[4]अक्लिन्नकायांश्च नरानुष्णैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५८ ॥
[5]वातिकान् रूक्षदेहांश्च व्यवायोपहतांस्तथा ।
व्यायामिनश्चापि नरान् स्निग्धैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५९ ॥
[6]मेदसाऽभिपरीतांस्तु स्निग्धान्मेहातुरानपि ।
कफाभिपन्नदेहांश्च रूक्षैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ६० ॥
[7]शुष्कदेहान् पिपासाऽऽर्त्तान् दुर्बलानपि च द्रवैः ।
[8]प्रक्लिन्नकायान् व्रणिनः शुष्कैर्महिन एव च ॥ ६१ ॥
[9]एककालं भवेद्देयो दुर्बलाग्निविवृद्धये ।
समाग्नये तथाऽऽहारो द्विकालमपि पूजितः ॥ ६२ ॥
[10]औषधद्वेषिणे देयस्तथौषधसमायुतः ।
मन्दाग्नये रोगिणे च [11]मात्राहीनः प्रशस्यते ॥ ६३ ॥
[12]यथर्त्तुदत्तस्त्वाहारो दोषप्रशमनः स्मृतः ।
अतः परन्तु स्वस्थानां [13]वृत्त्यर्थं सर्व एव च ।
प्रविचारानिमानेवं द्वादशात्र प्रयोजयेत् ॥ ६४ ॥

---

विचारणान् अवचारणरूपान् । १ शीताहारविषयं दर्शयति—तृष्णेति । २ शीतैः = शीतवीर्यैरित्यर्थः । ३ उष्णाहारविषयमभिधत्ते—कफेति । कफवातामयाविष्टान् = कफवातरोगग्रसितान् । ४ अक्लिन्नकायान् = क्लेदरहितदेहान् ।

५ स्निग्धाहारविषयमभिदधाति—वातिकानिति । वातिकान् = वातप्रकृतीन् । ६ रूक्षभोजनविषयं निर्दिशति—मेदसेति । मेदसाऽभिपरीतान् = मेदोव्याप्तदेहान्, स्निग्धान् = स्निग्धशरीरान् । ७ द्रवभोजनविषयमाह—शुष्केति । द्रवैः = द्रवबहुलैरन्नैरित्यर्थः । ८ शुष्कभोजनविषयं निरूपयति—प्रक्लिन्नेति । प्रक्लिन्नकायान् = कुष्ठिप्रभृतीन् कुथितशरीरान्, व्रणिनः = क्लिन्नव्रणयुक्तान् । ९ एककालोभयकालभोजनविषयमभिदधाति—एकेति । एककालं हीनमात्रमेव भोजनं देयम् ।

१० औषधयुक्तमात्राहीनभोजनविषयमभिधत्ते—औषधेति । ११ मात्राहीनः 'आहार' इति शेषः । १२ यथर्तुदत्ताहारफलं वक्ति—यथेति । १३ वृत्त्यर्थं = स्वा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत[1] ऊर्ध्वं दशौषधकालान् वक्ष्यामः । तत्राभक्तं प्राग्भक्तमधोभक्तं मध्येभक्तमन्तराभक्तं सभक्तं सामुद्गं मुहुर्मुहुर्ग्रासं ग्रासान्तरञ्चेति दशौषधकालाः ॥ ६५ ॥

त[2]त्राभक्तं तु-यत् केवलमेवौषधमुपयुज्यते ॥ ६६ ॥

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं
हन्यात्तथाऽऽमयमसंशयमाशु चैव ।
तद्बालवृद्धवनितामृदवस्तु पीत्वा
ग्लानिं[3] परां समुपयान्ति बलक्षयञ्च ॥ ६७ ॥

प्रा[4]ग्भक्तं नाम-यत् प्राग्भक्तस्योपयुज्यते ॥ ६८ ॥

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्या-
दन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति ।
प्राग्भक्तसेवितमथौषधमे[5]व देव
दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुकृशाङ्गनाभ्यः ॥ ६९ ॥

अधोभक्तं नाम-यदधो भक्तस्येति ॥ ७० ॥

मध्येभक्तं नाम-यन्मध्ये भक्तस्य पीयते ॥ ७१ ॥

पीतं यदन्नमुपयुज्य तदूर्ध्वकाये
हन्याद्बलान् बहुविधांश्च बलं ददाति ।
मध्ये तु पीतमपहन्त्यविसा[6]रिभावाद्
ये मध्यदेहमभिभूय भवन्ति रोगाः ॥ ७२ ॥

अन्तराभक्तं नाम-यदन्तरा पीयते पूर्वापरयोर्भक्तयोः ॥७३॥

---

स्थ्यरक्षणार्थमित्यर्थः । १ दशौषधकालान् दर्शयति—अत इति । २ अभक्तकालं निरूपयति—तत्रेति । केवलम् = अन्नरहितमित्यर्थः । ३ एतेन बालादीनामभक्तौषधनिषेधो बोध्यः । ४ प्राग्भक्तकालमभिदधाति—प्रागिति । प्राग्भक्तं = भक्तस्यादौ । ५ प्राग्भक्ताख्यमौषधमित्यर्थः ।

६ अधोभक्तमध्यभक्तयोर्लक्षणमाह—अधोभक्तमिति । अधोभक्तं = भोजनान्ते इत्यर्थः । अर्धभोजनानन्तरं यदौषधमुपयुज्यते, तन्मध्येभक्तम् । ७ अविसारिभावात् = अविप्रसरणस्वभावात्, मध्यदेहं = कोष्ठमित्यथः । ८ अन्तराभक्तसभक्त-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]सभक्तं मान—यत् सह भक्तेन ॥ ७४ ॥

पथ्यं सभक्तमबलाबलयोर्हि नित्यं
तद्द्वेषिणामपि तथा शिशुवृद्धयोश्च ।
हृद्यं मनोबलकरन्त्वथ दीपनं च ।
पथ्यं सदा भवति चान्तरभक्तकं यत् ॥ ७५ ॥

[3]सामुद्गं नाम—यद्भक्तस्यादावन्ते च पीयते ॥ ७६ ॥

दोषे द्विधा[4] प्रतिसृते तु समुद्गसंज्ञ-
माद्यन्तयोर्यदशनस्य निषेव्यते तु ॥ ७७ ॥

[5]मुहुर्मुहुर्नाम—सभक्तमभक्तं वा यदौषधं मुहुर्मुहुरुपयुज्यते ॥७८॥

श्वासे मुहुर्मुहुरतिप्रसृते च कासे
हिक्कावमीषु स वदन्त्युपयोज्यमेतत् ॥ ७९ ॥

[6]ग्रासं तु—यत्पिण्डव्यामिश्रम् ॥ ८० ॥

ग्रासान्तरं तु—यद्ग्रासान्तरेषु ॥ ८१ ॥

ग्रासेषु चूर्णमबलाग्निषु[8] दीपनीयं
वाजीकराण्यपि तु योजयितुं यतेत ।
ग्रासान्तरेषु वितरेद्वमनीयधूमान्[9] ।
श्वासादिषु प्रथितदृष्टगुणांश्च लेहान् ॥ ८२ ॥

एवमेते दशौषधकालाः ॥ ८३ ॥

---

कालं ब्रवीति—**अन्तरेति** । अन्तराभक्तं = यत् पूर्वापरयोर्भक्तयोरन्तरा मध्ये पीयते, पूर्वापरयोः = प्रातः सायङ्कालिकयोः । १ सभक्तं = भक्तयुक्तम् । २ तद्द्वेषिणां = भेषजद्वेषिणामित्यर्थ ।

३ सामुद्गकालं निरूपयति—**सामुद्गमिति** । समुद्गस्य सम्पुटस्येदं सामुद्गं, सम्पुटितमन्नमिति तात्पर्यम् । ४ द्विधा प्रविसृते = ऊर्ध्वाधो देहे प्रसृते । ५ मुहुर्मुहुः कालं दर्शयति—**मुहुरिति** । मुहुर्मुहुर्वारं वारं यदौषधमुपयुज्यते तन्मुहुर्मुहुरित्यर्थः ।

६ ग्रास-ग्रासान्तरकालमाह—**ग्रासमिति** । अन्नेन सह ग्रस्यते यत्तद् ग्रासम्, पिण्डव्यामिश्रं = कवलव्यामिश्रम् । ७ ग्रासयोरन्तरं मध्यमिति ग्रासान्तरम्, ग्रासान्तरेषु = कवलान्तरेषु । ८ अबलाग्निषु = दुर्बलाग्निष्वित्यर्थः । ९ वमनीयधूनूमा = स्नायुचर्मखुरशृङ्गकर्कटकास्थिशुष्कमत्स्यवल्लूरकिमिप्रभृतिभिर्वामनीयैः कृतान् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विसृष्टे विण्मूत्रे विशदकरणे देहे च सुलघौ
विशुद्धे चोद्गारे हृदि सुविमले वाते च सरति ।
तथाऽन्नश्रद्धायां क्लमपरिगमे कुक्षौ च शिथिले
प्रदेयस्त्वाहारो भवति भिषजां कालः स तु मतः ॥ ८४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे तन्त्रभूषणाध्यायेषु स्वस्थवृत्ताध्यायो नाम ( द्वितीयोऽध्यायः, आदितः ) चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

---

## पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

अथातस्तन्त्रयुक्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥

द्वात्रिंशत्तन्त्रयुक्तयो भवन्ति शास्त्रे । तद्यथा—अधिकरणं१, योगः२, पदार्थः३, हेत्वर्थः४, उद्देशः५, निर्देशः६, उपदेशः७, अपदेशः८, प्रदेशः९, अतिदेशः१०, अपवर्गः११, वाक्यशेषः१२, अर्थापत्तिः१३, विपर्य्ययः१४, प्रसङ्गः१५, एकान्तः१६, अनेकान्तः१७, पूर्वपक्षः१८, निर्णयः१९, अनुमतं२०, विधानम्२१, अनागतावेक्षणम्२२,

---

१ औषधकालान् प्रदर्श्य आहारकालं निरूपयति—विसृष्ट इति । विशदानि करणानि इन्द्रियाणि यस्मिन् देहे स तस्मिन् विशदकरणे । २ विशुद्धे = मधुराम्लभूमगन्धिवियुक्ते, वाते सरति = अधोवाते निःसरति सतीत्यर्थः । ३ अन्नश्रद्धायां = भक्ताकाङ्क्षायाम् , क्लमपरिगमे = अनायासश्रमरहिते, शिथिले = स्तब्धतारहिते इत्यर्थः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गतस्वस्थवृत्ताध्याये सुश्रुतऽऽख्यटिप्पन्यां चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

---

### पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

४ स्वस्थवृत्तानन्तरं दुर्विज्ञेयानामर्थानां प्रसाधनार्थं युक्तीरभिधातुं तन्त्रयुक्त्यध्यायमधिकरोति—अथात इति । त्रायते शरीरमनेनेति तन्त्रं शास्त्रं चिकित्सा च, तस्य युक्तीः योजना अधिकृत्य कृतोऽध्यायस्तं तन्त्रयुक्तिम् । तद्धितप्रत्ययस्य लोपः । ५ द्वात्रिंशत्तन्त्रयुक्तीनां नामानि निर्दिशति—द्वात्रिंशदिति । एतेषां व्याख्यानमग्रे द्रष्टव्यम् ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिकान्तावेक्षणं२३, संशयः२४, व्याख्यानं२५, स्वसंज्ञा२६, निर्वचनं२७, निदर्शनं२८, वियोगः२९, विकल्पः३०, समुच्चयः३१, ऊह्यम्३२, इति ॥ ३ ॥

अत्रासां तन्त्रयुक्तीनां[1] किं प्रयोजनम् ? उच्यते—वाक्ययोजनमर्थयोजनञ्च ॥ ४ ॥

भवन्ति चात्र श्लोकाः ।

असद्वादियुक्तानां[2] वाक्यानां प्रतिषेधनम् ।
स्ववाक्यसिद्धिरपि[3] च क्रियते तन्त्रयुक्तितः[4] ॥ ५ ॥
व्यक्ता नोक्तास्तु ये ह्यर्था लीना[5] ये चाप्यनिर्मलाः ।
लेशोक्ता ये च केचित्स्युस्तेषाञ्चापि प्रसाधनम्[6] ॥ ६ ॥
यथाऽम्बुजवनस्यार्कः[7] प्रदीपो वेश्मनो यथा ।
प्रबोधस्य[8] प्रकाशार्थं तथा तन्त्रस्य युक्तयः ॥ ७ ॥

तत्र यमर्थमधिकृत्योच्यते तदधिकरणम् । यथा—रसं दोषं वा ॥८॥

येन[9] वाक्यं युज्यते स योगः । यथा—

'तैलं[10] पिबेच्चामृतवल्लिनिम्बहिंस्राऽभयावृक्षकपिप्पलीभिः ।
सिद्धं बलाभ्याञ्च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगण्डरोगे' ॥

इत्यत्र तैलं सिद्धं पिबेदिति प्रथमं वक्तव्ये तृतीयपादे सिद्धमिति प्रयुक्तम्, एवं दूरस्थानामपि पदानामेकीकरणं योगः ॥ ९ ॥

---

१ तन्त्रयुक्तीनां प्रयोजनं दर्शयति—अत्रेति । अत्र = चिकित्साशास्त्रे, वाक्ययोजनम् = असम्बद्धवाक्यस्य सम्बन्धनम्, अर्थयोजनं = लीनस्य असङ्गतस्य चार्थस्य सङ्गतीकरणम् । २ असद्वादिप्रयुक्तानां = प्रतिरसपाकादिप्रतिपक्षवादिकथितानाम्, प्रतिषेधनं = अपदेशादितन्त्रयुक्तिभिः परपक्षदूषणम् । ३ स्ववाक्यसिद्धिः = स्ववाक्यस्थापनम्, तन्त्रयुक्तितः = निर्णयाख्यतन्त्रयुक्त्येत्यर्थः । ४ लीनाः = असम्यग्दर्शिताः । ५ प्रसाधनं = योगाख्यादितन्त्रयुक्तिभिः समाधानं क्रियत इति शेषः । ६ अम्बुजवनस्य = कमलवनस्य । ७ प्रबोधस्य = यथार्थज्ञानस्येत्यर्थः ।

८ अथ अधिकरणलक्षणं दर्शयति—तत्रेति । तत्र = द्वात्रिंशत्तन्त्रयुक्तिषु मध्ये, यमर्थमधिकृत्य अन्योऽर्थः उच्यते तदधिकरणम् । ९ योगलक्षणमुपदिशति—येनेति । येन विपर्ययेणोक्तानां सन्निकृष्टविप्रकृष्टानां पदानामेकीकरणं स योग इत्यर्थः । १० तैलं

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]योऽर्थोऽभिहितः सूत्रे पदे वा स पदार्थः, पदस्य पदयोः पदानां वाऽर्थः पदार्थः; अपरिमिताश्च पदार्थाः। यथा—स्नेहस्वेदाञ्जनेषु निर्दिष्टेषु द्वयोस्त्रयाणां वाऽर्थानामुपपत्तिर्दृश्यते[2], तत्र योऽर्थः पूर्वापरयोगसिद्धो भवति स ग्रहीतव्यः। यथा—वेदोत्पत्तिमध्यायं व्याख्यास्याम इत्युक्ते सन्दिह्यते बुद्धिः-कतमस्य वेदस्योत्पत्तिं वक्ष्यतीति, यतः ऋग्वेदादयस्तु वेदाः; विद् विचारणे विद्लृ लाभे, इत्येतयोश्च धात्वोरनेकार्थयोः प्रयोगात्, तत्र पूर्वापरयोगमुपलभ्य प्रतिपत्तिर्भवति-आयुर्वेदोत्पत्तिम विवक्षुरिति एष पदार्थः॥ १०॥

[3]यदन्यदुक्तमन्यार्थसाधकं भवति स हेत्वर्थः। यथा-मृत्पिण्डोऽद्भिः प्रक्लिद्यते तथा माषदुग्धप्रभृतिभिर्व्रणः प्रक्लिद्यत इति॥ ११॥

[4]समासवचनमुद्देशः। यथा—शल्यमिति॥ १२॥

[5]विस्तरवचनं निर्देशः यथा—शारीरमागन्तुकं चेति॥ १३॥

[6]एवमित्युपदेशः। यथा—'तथा न जागृयाद्रात्रौ दिवास्वप्नञ्च वर्जयेत्' इति॥ १४॥

[7]अनेन कारणेनेत्यपदेशः। यथाऽपदिश्यते-मधुरः श्लेष्माणमभिवर्द्धयतीति॥ १५॥

[8]प्रकृतस्यातिक्रान्तेन साधनं प्रदेशः। यथा—देवदत्तस्यानेन

---

पिबेदिति गलगण्डचिकित्सितोक्त पद्यम्। १ पदार्थलक्षणमभिधत्त—**योऽर्थ इति**। २ यथा स्नेहशब्देन गुणप्रेमसर्पिषां त्रयाणामर्थानामुपपत्तिर्दृश्यते, स्वेदशब्देन साग्निनिरग्निकयोरूष्मणोरुपपत्तिः, एवमञ्जनशब्देनापि नयनाञ्जनाभ्यङ्गयोरुपपत्तिः।

३ हेत्वर्थलक्षणमभिदधाति—**यदन्यदिति**। अन्यदुक्तं यदनुक्तमन्यार्थं साधयति स हेत्वर्थः। ४ उद्देशलक्षणं प्रतिपादयति-**समासेति**। समासवचनं=सङ्क्षेपेण कथनमित्यर्थः। अत्र सङ्क्षेपेण शल्यं सर्वमेवाबाधजननमुच्यते, शारीरागन्तुभेदेनात्र प्रपञ्चो नास्ति। ५ निर्देशलक्षणं वक्ति—**विस्तरेति**। विस्तरेण कथनं निर्देश इत्यर्थः। शारीरमागन्तुकं च शल्यं द्विविधमित्यर्थः।

६ उपदेशलक्षणं ब्रवीति—**एवमिति**। एवं कुर्यादित्युपदेश इत्यर्थः। ७ अपदेशलक्षणं निरूपयति—**अनेनेति**। कार्यं प्रति हेतुकथनमपदेश इत्यर्थः। ८ प्रदेशस्य लक्षणमाह—**प्रकृतस्येति**। प्रकृतस्य प्रस्तुतस्य अतिक्रान्तेन साधनं प्रदेशः। उदाहरणे यज्ञदत्तस्य शल्योद्धरणं प्रस्तुतं, तस्य अतिक्रान्तेन अतीतेन देवदत्तसम्बन्धि-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शल्यमुद्धृतं तथा यज्ञदत्तस्याप्युद्धरिष्यतीति ॥ १६ ॥

प्रकृतस्यानागतस्य साधनमतिदेशः । यथा—यतोऽस्य वायुरूर्ध्वमुत्तिष्ठते तेनोदावर्ती स्यादिति ॥ १७ ॥

अभिव्याप्यापकर्षणमपवर्गः । यथा-अस्वेद्या विषोपसृष्टाः, अन्यत्र कीटविषादिति ॥ १८ ॥

येन पदेनानुक्तेन वाक्यं समाप्येत स वाक्यशेषः । यथा—शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोदरोरसामित्युक्ते पुरुषग्रहणं विनाऽपि गम्यते पुरुषस्येति ॥ १९ ॥

यदकीर्त्तितमर्थादापद्यते साऽर्थापत्तिः, यथा—ओदनं भोक्ष्ये इत्युक्तेऽर्थादापन्नं भवति—नायं पिपासुर्यवागूमिति ॥ २० ॥

यद्यत्राभिहितं तस्य प्रातिलोम्यं विपर्य्ययः । यथा—कृशाल्पप्राणभीरवो दुश्चिकित्स्या इत्युक्ते विपरीतं गृह्यते दृढादयः सुचिकित्स्या इति ॥ २१ ॥

प्रकरणान्तरेण समापनं प्रसङ्गः । यद्वा, प्रकरणान्तरितो योऽर्थोऽसकृदुक्तः समाप्यते स प्रसङ्गः । यथा—महाभूतशरीरिसमवायः पुरुषस्तस्मिन् क्रिया सोऽधिष्ठानमिति वेदोत्पत्तावभिधाय भूतचिन्तायां पुनरुक्तं यतोऽभिहितं पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इति, स खल्वेष कर्मपुरुषश्चिकित्साऽधिकृत इति ॥ २२ ॥

---

शल्योद्धरणकर्तृत्वेन साधनम् ।

१ अतिदेशलक्षणं प्रतिपादयति—प्रकृतस्येति । अनागतस्य = भविष्यतः । उदाहरणे वायोरूर्ध्वमुत्थानं प्रस्तुतं, तेन भविष्यदुदावर्तित्वं साध्यते । "इतरत्र विहितस्य विधेरितरत्र प्रयोगायोपदेशोऽतिदेशः । यथा—एष एव विधिः कार्यः शिशिरे समुदाहृतः" इति हाराणचन्द्रसम्मतः साधुः पाठः । २ अपवर्गलक्षणमाख्याति—अभिव्याप्येति । अभिव्याप्य साकल्येन सम्बध्य अपकर्षणं पृथक्करणमपवर्ग इत्यर्थः ।

३ वाक्यशेषलक्षणमाचष्टे—येनेति । ४ गम्यते = ज्ञायते । ५ अर्थापत्तिलक्षणमाह—यदिति । ६ पिपासुः=पातुमिच्छुरित्यर्थः । ७ विपर्ययलक्षणं दर्शयति—यद्यत्रेति । प्रातिलोम्यं=विपरीतम् । ८ प्रसङ्गलक्षणमभिधत्ते—प्रकरणेति । प्रकरणान्तरेण = प्रकरणान्तरोक्तेनार्थेनेत्यर्थः । ९ असकृदुक्तः = पुनः पुनः प्रतिपा-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]सर्वत्र यदवधारणेनोच्यते स एकान्तः। यथा—त्रिवृद्विरेचयति, मदनफलं वामयति ॥ २३ ॥

[2]कचित्तथा क्वचिदन्यथेति यः सोऽनेकान्तः। यथा—केचिदाचार्य्या ब्रुवते द्रव्यं प्रधानं, केचिद्रसं, केचिद्वीर्य्यं, केचिद्विपाकमिति ॥ २४ ॥

आक्षेपपूर्वकः प्रश्नः पूर्वपक्षः। यथा—कथं वातनिमित्ताश्चत्वारः प्रमेहा असाध्या भवन्तीति ॥ २५ ॥

[3]तस्योत्तरं निर्णयः। यथा—शरीरं प्रपीड्य पश्चादधो गत्वा वसामेदोमज्जानुविद्धं मूत्रं विसृजति वातः, एवमसाध्या वातजा[4] इति ॥ २६ ॥

तथा चोक्तम्—

कृत्स्नं शरीरं निष्पीड्य मेदोमज्जावसायुतः।
अधः प्रकुप्यते वायुस्तेनासाध्यास्तु वातजाः ॥ २७ ॥

[5]परमतमप्रतिषिद्धमनुमतम्। यथाऽन्यो ब्रूयात्—सप्त रसा इति, तच्चाप्रतिषेधादनुमन्यते कथञ्चिदिति ॥ २८ ॥

[7]प्रकरणानुपूर्व्याऽभिहितं विधानम्। यथा—सक्थिमर्माण्येकादशप्रकरणानुपूर्व्याऽभिहितानि ॥ २९ ॥

[8]एवं वक्ष्यतीत्यनागतावेक्षणम्। यथा श्लोकस्थाने ब्रूयात्—चिकित्सितेषु वक्ष्यामीति ॥ ३० ॥

[9]यत्पूर्वमुक्तं तदतिक्रान्तावेक्षणम्। यथा चिकित्सितेषु

---

दितः। १ एकान्तलक्षणं निर्दिशति—**सर्वत्रेति**। अवधारणेन = अविकल्पेन। २ अनेकान्तलक्षणमभिदधाति—**क्वचिदिति**। ३ तस्य = पूर्वपक्षस्य। ४ वातजाः प्रमेहा इत्यर्थः।

५ अनुमतलक्षणमभिधत्ते—**परमतमिति**। अप्रतिषिद्धम् = अनिराकृतम्। ६ अप्रतिषेधात् = अनिराकरणात्, कथञ्चित् = केनापि प्रकारेण। ७ विधानलक्षणं ब्रवीति—**प्रकरणेति**। प्रकरणानुपूर्व्याऽभिहितं = यथाक्रममुक्तम्, सक्थिमर्माणि = क्षिप्रतलहृदयादीनि। ८ अनागतावेक्षणलक्षणमाख्याति—**एवमिति**। अनागतस्य भविष्यतोऽवेक्षणं कार्यार्थमवलोकनम्। ९ अतिक्रान्तावेक्षणलक्षणं प्रतिपादयति—**यत्पूर्वमिति**। अतिक्रान्तस्य अतीतस्य कार्यार्थमवेक्षणमित्यर्थः।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रूयात्—श्लोकस्थाने यदीरितमिति ॥ ३१ ॥

उभयहेतुदर्शनं संशयः । यथा—तलहृदयाभिघातः प्राणहरः पाणिपादच्छेदनमप्राणहरमिति ॥ ३२ ॥

तन्त्रेऽतिशयोपवर्णनं व्याख्यानम् । यथा—इह पञ्चविंशतिकः पुरुषो व्याख्यायते, अन्येष्वायुर्वेदतन्त्रेषु भूतादिप्रभृत्यारभ्य चिन्ता ॥ ३३ ॥

अन्यशास्त्रासामान्या स्वसंज्ञा । यथा—मिथुनमिति मधुसर्पिषोर्ग्रहणम्, लोकप्रसिद्धमुदाहरणं वा ॥ ३४ ॥

निश्चितं वचनं निर्वचनम् । यथा—आयुर्विद्यतेऽस्मिन्ननेन वा आयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः ॥ ३५ ॥

दृष्टान्तव्यक्तिर्निदर्शनम् । यथा—अग्निर्वायुना सहितः कक्षे वृद्धिङ्गच्छति तथा वातपित्तकफदुष्टो व्रण इति ॥ ३६ ॥

इदमेव कर्त्तव्यमिति नियोगः । यथा—पथ्यमेव भोक्तव्यमिति ॥३७॥

इदञ्चेदञ्चेति समुच्चयः । यथा—मांसवर्गे एणहरिणादयो लावतित्तिरिशारङ्गाश्च प्रधानानीति ॥ ३८ ॥

---

१ संशयलक्षणमाह—**उभयेति** । उदाहरणे तलहृदयं पाणिपादाश्रितम्, अत्राश्रयघातेन आश्रितोपघातात् पाणौ पादे वा छिन्ने सति तलहृदयस्याप्याहतत्वमिति प्राणहरणमप्राणहरणं वा भवत्विति संशयः । अत्र हाराणचन्द्रसम्मतपाठः—"उभयथादर्शनं संशयः । यथा—किं पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निराहोस्वित् पित्तमेवाग्निरिति" ।

२ व्याख्यानस्य लक्षणमाख्याति—**तन्त्र इति** । अतिशयोपवर्णनम्=अधिकार्थस्य कथनम्, इह=अस्मिन् तन्त्रे । पुरुषस्य पञ्चविंशतिकत्वं तु—अष्टौ प्रकृतयः, षोडश विकाराः, पुरुषः पञ्चविंशतितम इति बोध्यम् । ३ एतेन भूतादिमहङ्कारमारभ्य चिन्ता, न त्वव्यक्तमारभ्येत्युन्नेयम् ।

४ स्वसंज्ञालक्षणमभिदधाति—**अन्येति** । अन्येषु शास्त्रेषु व्याकरणादिषु असामान्या असाधारणा । ५ मिथुनसंज्ञया मधुसर्पिषोर्ग्रहणं व्यवहारे न दृश्यत इत्यरुच्या उदाहरणान्तरं दर्शयति—**लोकेति** । लोकप्रसिद्धमुदाहरणं वा स्वसंज्ञया ग्राह्यमित्यर्थः । यथा घृततैलवसामज्जसु चतुर्षु स्नेहेषु महास्नेहसंज्ञा । ६ निर्वचनलक्षणमभिधत्ते—**निश्चितमिति** । निर्वचनं=निरुक्तिः ।

७ निदर्शनलक्षणमाचष्टे—**दृष्टान्तेति** । दृष्टान्तेन व्यक्तिर्यस्मिन् वाक्ये तत्तथा ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदं वेदं वेति विकल्पः । यथा-रसौदनः सघृता यवागूर्वा ॥३९॥

[1]यदनिर्दिष्टं बुद्धचाऽवगम्यते तदूह्यम् । यथा-अभिहितमन्नपानविधौ चतुर्विधञ्चान्नमुपदिश्यते-भक्ष्यं भोज्यं लेह्यं पेयमिति, एवञ्चतुर्विधे वक्तव्ये द्विविधमभिहितम्। इदमत्रोह्यम्-अन्नपाने विशिष्टयो[2]र्द्वयोर्ग्रहणे कृते चतुर्णामपि ग्रहणं भ[3]वतीति, चतुर्विधश्चाहारः प्रविर[4]लः, प्रायेण द्विविध एव; अतो द्वित्वं प्रसिद्धमिति । किञ्चान्यत्—अन्नेन भक्ष्यमवरुद्धं, घनसाधर्म्यात् ; पेयेन लेह्यं, द्रवसाधर्म्यात् ॥ ४० ॥

भवन्ति चात्र ।

[5]सामान्यदर्शनेनासां व्यवस्था सम्प्रदर्शिता ।
विशेषस्तु यथायोगमुपधार्यो विपश्चिता ॥ ४१ ॥
द्वात्रिंशद्युक्तयो ह्येतास्तन्त्रसारगवेषणे ।
मया सम्यग्विनिहि[6]ताः शब्दार्थन्यायसंयुताः ॥ ४२ ॥
यो ह्येता विधिवद्वेत्ति दीपीभूतास्तु बुद्धिमान् ।
स पूजार्हो भिषक् श्रेष्ठ इति धन्वन्तरे[7]मतम् ॥ ४३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे तन्त्रभूषणाध्यायेषु तन्त्रयुक्तिनाम (तृतीयोऽध्यायः, आदितः) पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

---

'दृष्टान्तेनार्थः प्रसाध्यते यत्र तन्निदर्शनम्' इति पाठान्तरम् । १ ऊह्यलक्षणं दर्शयति—यदिति । अनिर्दिष्टं = साक्षात् । २ विशिष्टयोः = अभ्यवहार्ययोरित्यर्थः । ३ प्रधानेन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायादिति भावः । ४ प्रविरलः = क्वाचित्क इत्यर्थः ।

५ अध्यायमुपसंहरति—सामान्येति । आसां = तन्त्रयुक्तीनाम् । ६ विनिहिताः = वर्णिताः, 'शब्दार्थन्यायसंयुताः' इत्यत्र 'शब्दन्यायार्थसंयुताः' इति पाठे शब्दस्य न्यायसङ्कतोऽर्थः शब्दन्यायार्थः, तेन संयुताः शब्दन्यायार्थसंयुता इत्यर्थो बोध्यः ।

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रान्तर्गततन्त्रयुक्त्यध्याये सुधाऽख्यटिप्पन्यां पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

अथातो दोषभेदविकल्पनामाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥ २ ॥
अष्टाङ्गवेदविद्वांसं दिवोदासं महौजसम् ।
छिन्नशास्त्रार्थसन्देहं सूक्ष्मागाधागमोदधिम् ॥ ३ ॥
विश्वामित्रसुतः श्रीमान् सुश्रुतः परिपृच्छति ।
द्विषष्टिर्दोषभेदा ये पुरस्तात्परिकीर्त्तिताः ॥ ४ ॥
कति तत्रैकशो ज्ञेया द्विशो वाऽप्यथवा त्रिशः ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संशयच्छिन्महातपाः ॥ ५ ॥
प्रीतात्मा नृपशार्दूलः सुश्रुतायाह तत्त्वतः ।
त्रयो दोषा धातवश्च पुरीषं मूत्रमेव च ॥ ६ ॥
देहं सन्धारयन्त्येते ह्यव्यापन्ना रसैर्हितैः ।
पुरुषः षोडशकलः प्राणाश्चैकादशैव ये ॥ ७ ॥

---

## षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

१ तन्त्रयुक्त्यध्यायानन्तरं पारिशेष्याद् दोषभेदविकल्पाध्यायमधिकरोति—**अथात इति** । दोषाणां वातादीनां, पृथक्संसर्गसन्निपातभेदेन भेदः, तस्य विकल्पनमेकैकाश्रयानुगमनेन नानात्वकरणं दोषभेदविकल्पः, तमधिकृत्य कृतोऽध्यायस्तम् । २ सूक्ष्मा लीनार्थाः, अगाधा दुरवगाहा ये आगमाः, ते एव उदधयः, ।ते विद्यन्तेऽस्मिन् स तं सूक्ष्मागाधागमोदधिम् । ३ श्रीमान्=राज्यश्रीयुक्तः, ब्रह्मश्रीयुक्तो वाऽर्थः ।

४ दोषभेदविषये सुश्रुतस्य प्रश्नं निर्दिशति—**द्विषष्टिरिति** । पुरस्तात्=रसभेदविकल्पाध्याये । ५ "एकशः षट् द्विशस्त्वेकविंशतिश्चतुरन्विता । त्रिशो द्वात्रिंशदित्येवं त्रयो दोषास्त्रिषष्टिधा ॥" इति । ६ दोषादीनां देहधारकत्वमाख्याति—**त्रय इति** । त्रयो दोषाः=वातादित्रयः, धातवः=रसादयः सप्त । ७ अव्यापन्नाः=अविकृतिं गताः, रसैः=मधुरादिभिः, हितैः=पथ्यैः ।

८ तन्त्रोक्तविषयमुपसंहरति—**पुरुष इति** । षोडशकलः=षोडशगुणः, गुणाः सर्वभूतचिन्ताशारीरोक्ताः । तद्यथा—"सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नः प्राणापानावुन्मेषनिमेषौ बुद्धिर्मनः सङ्कल्पो विचारणा स्मृतिर्विज्ञानमध्यवसायो विषयोपलब्धिश्च" इति । प्राणाः=अग्निः सोमो वायुः सत्त्वं रजस्तमः पञ्चेन्द्रियाणि भूतात्मेत्येकादश ।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगाणान्तु[1] सहस्रं यच्छतं विंशतिरेव च ।
शतञ्च पञ्च द्रव्याणां[2] त्रिसप्तत्यधिकोत्तरम् ॥ ८ ॥
व्यासतः कीर्त्तितं तद्धि, भिन्नाः[3] दोषास्त्रयो गुणाः ।
द्विषष्टिधा भवन्त्येते भूयिष्ठमिति निश्चयः ॥ ९ ॥
त्रय एव पृथक्[4] दोषा द्विशो नव समाधिकैः ।
त्रयोदशाधिकैकद्विसममध्योल्बणैस्त्रिशः[5] ॥ १० ॥

---

१ रोगाणां विंशत्यधिकानि एकादशशतानीत्यर्थः । २ भेषजद्रव्याणां त्रिसप्तत्यधिकानि पञ्चशतानीत्यर्थः ।

३ द्विषष्टिदोषभेदान्निरूपयति—**भिन्ना इति** । भिन्नाः = भेदं गताः, दोषास्त्रयः = वातादयः, गुणाः = गुणमयाः, सत्त्वरजस्तमोमया इत्यर्थः । द्विषष्टिधा भवन्तीति सम्बन्धः । ४ पृथगेव प्रवृद्धा दोषास्त्रयः । तद्यथा—प्रवृद्धो वातः स्वस्थौ पित्तश्लेष्माणौ १, प्रवृद्धं पित्तं स्वस्थौ वातश्लेष्माणौ २, प्रवृद्धः श्लेष्मा स्वस्थे वातपित्ते ३; इति ।

द्विशो नव समाधिकैः—द्वाभ्यां द्वाभ्यां निष्पद्यन्ते इति द्विशः, प्रवृद्धदोषद्वितयाभिर्निर्वृत्ता नवभेदाः समाधिकैरेव भवन्ति, अर्थात् समवृद्धाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यां दोषाभ्यां त्रयो भेदाः, अन्यतराधिकवृद्धाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यां दोषाभ्यां षट् ; इत्येवं प्रकारेण नव । तद्यथा—वातपित्ते समं वृद्धे स्वस्थः श्लेष्मा १, वातश्लेष्माणौ समं वृद्धौ स्वस्थं पित्तं २, पित्तश्लेष्माणौ समं वृद्धौ स्वस्थो वातः ३; इति त्रयः ।

अन्यतराधिकवृद्धाभ्यां षड् यथा—वातपित्तयोर्वृद्धयोर्वातोऽधिकवृद्धः स्वस्थः श्लेष्मा १, वातपित्तयोर्वृद्धयोः पित्तमधिकवृद्धं स्वस्थः श्लेष्मा २, वातश्लेष्मणोर्वृद्धयोर्वातोऽधिकवृद्धः स्वस्थं पित्तं ३, वातश्लेष्मणोर्वृद्धयोः श्लेष्माऽधिकवृद्धः स्वस्थं पित्तं ४, पित्तश्लेष्मणोर्वृद्धयोः पित्तमधिकवृद्धं स्वस्थो वातः ५, पित्तश्लेष्मणोर्वृद्धयोः श्लेष्माऽधिकवृद्धः स्वस्थो वातः ६; इत्येवं षट् ।

५ त्रिंशस्तु त्रयोदश, अधिकवृद्धैकद्विसममध्योल्बणैर्भवन्तीति योजनीयम् । अर्थाद् एकाधिकवृद्धैस्त्रिभिर्दोषैस्त्रयः, द्व्यधिकवृद्धैस्त्रिभिर्दोषैस्त्रयः, हीनमध्योल्बणैश्च दोषैः षट् , समवृद्धैस्त्रिभिर्दोषैरेकः । "द्व्युल्बणैकोल्बणैः षट् स्युर्हीनमध्याधिकैश्च षट् । समैश्चैको विकारास्ते सन्निपातास्त्रयोदश ॥" इति चरकः । तत्रैकाधिकवृद्धैस्त्रिभिर्दोषैस्त्रयः—वातपित्तश्लेष्मणां वृद्धानां वातोऽधिकवृद्धः १, वातपित्तश्लेष्मणां वृद्धानां पित्तमधिकवृद्धम् २, वातपित्तश्लेष्मणां वृद्धानां श्लेष्माऽधिकवृद्धः ३; इत्येकाधिकवृद्धास्त्रयो दोषभेदाः ।

द्व्यधिकवृद्धैस्त्रिभिर्दोषैस्त्रयो यथा—वातपित्तश्लेष्मणां वृद्धानां वातपित्ते अधिक-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[1]पञ्चाशदेवन्तु सह भवन्ति क्षयमागतैः ।

---

वृद्धे १, वातपित्तश्लेष्मणां वृद्धानां वातश्लेष्माणौ अधिकवृद्धौ २, वातपित्तश्लेष्मणां वृद्धानां पित्तश्लेष्माणावधिकवृद्धौ ३, इति द्विदोषाधिकवृद्धास्त्रयो दोषभेदाः।

हीनमध्याधिकैश्च षड् यथा—हीनवृद्धो वातः, मध्यवृद्धं पित्तम्, अधिकवृद्धः श्लेष्मा १, मध्यवृद्धो वातः, हीनवृद्धं पित्तम्, अधिकवृद्धः श्लेष्मा २, अधिकवृद्धो वातः, मध्यवृद्धं पित्तं, हीनवृद्धः श्लेष्मा ३, हीनवृद्धो वातः, अधिकवृद्धं पित्तं, मध्यवृद्धः श्लेष्मा ४, अधिकवृद्धो वातः, हीनवृद्धं पित्तं, मध्यवृद्धः श्लेष्मा ५, मध्यवृद्धो वातः, अधिकवृद्धं पित्तं, हीणवृद्धः श्लेष्मा ६, इति होनमध्याधिकैश्च दोषैः षट्। समं वृद्धा वातपित्तश्लेष्माणः १, इति सर्वदोषैः समवृद्धैरेकः।

१ एवं पूर्वोक्तप्रकारेण क्षयमागतैः पञ्चविंशतिदोषभेदैः सह पञ्चाशद् भवन्तीत्यर्थः। "यथा वृद्धैस्तथा क्षीणैर्दोषैः स्युः पञ्चविंशतिः" इति चरकः। तत्र क्षीणैस्त्रयोभेदा यथा—क्षीणो वातः स्वस्थौ पित्तश्लेष्माणौ १, क्षीणं पित्तं स्वस्थौ वातश्लेष्माणौ २, क्षीणः श्लेष्मा स्वस्थे वातपित्ते ३, एवं पृथक् त्रय एव।

क्षीणैः द्विशो नव समाधिकैर्यथा—वातपित्ते समं क्षीणे स्वस्थः श्लेष्मा १, वातश्लेष्माणौ समं क्षीणौ स्वस्थं पित्तं २, पित्तश्लेष्माणौ समं क्षीणौ स्वस्थो वातः ३; इति।

अधिकक्षीणाः षड् यथा—वातपित्तयोः क्षीणयोः वातोऽधिकक्षीणः स्वस्थः श्लेष्मा १, वातपित्तयोः क्षीणयोः पित्तमधिकक्षीणं स्वस्थः श्लेष्मा २, वातश्लेष्मणोः क्षीणयोर्वातोऽधिकक्षोगः स्वस्थं पित्तम् ३, वातश्लेष्मणोः क्षीणयोः श्लेष्माऽधिकक्षीणः स्वस्थं पित्तम् ४, पित्तश्लेष्मणोः क्षीणयोः पित्तमधिकक्षीणं स्वस्थो वातः ५, पित्तश्लेष्मणोः क्षीणयोः श्लेष्माऽधिकक्षीणः स्वस्थो वातः ६; इति।

अथ क्षीणदोषत्रयभेदास्त्रयोदश कथ्यन्ते। तत्र त्रिशस्त्वेकाधिकक्षीणैस्त्रयो यथा—वातपित्तश्लेष्मणां क्षीणानां वातोऽधिकक्षीणः १, वातपित्तश्लेष्मणां क्षीणानां पित्तमधिकक्षीणम् २, वातपित्तश्लेष्मणां क्षीणानां श्लेष्माऽधिकक्षीणः ३; इति। द्व्यधिकक्षीणैस्त्रयो यथा—वातपित्तश्लेष्मणां क्षीणानां वातपित्ते अधिकक्षीणे १, वातपित्तश्लेष्मणां क्षीणानां वातश्लेष्माणावधिकक्षीणौ २, वातपित्तश्लेष्मणां क्षीणानां पित्तश्लेष्माणावधिकक्षीणौ ३; इति।

क्षीणैर्हीनमध्याधिकैश्च षड् यथा—हीनक्षीणो वातः, मध्यक्षीणं पित्तं, अधिकक्षीणः श्लेष्मा १, मध्यक्षीणो वातः, हीनक्षीणं पित्तं, अधिकक्षाणः श्लेष्मा २, अधिकक्षीणो वातः, मध्यक्षीणं पित्तं, हीनक्षीणः श्लेष्मा ३, हीनक्षीणोवातः, अधिकक्षीणं पित्तं मध्यक्षीणः श्लेष्मा ४, अधिकक्षीणो वातः, हीनक्षीणं पित्तं, मध्यक्षीणः श्लेष्मा ५,

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



क्षीणमध्याधिकक्षीणक्षीणवृद्धैस्तथाऽपरैः ॥ ११ ॥
द्वादशैवं समाख्याता त्रयो दोषा द्विषष्टिधा।
मिश्रा धातुमलैर्दोषा यान्त्यसंख्येयतां पुनः ॥ १२ ॥
तस्मात् प्रसङ्गं संयम्य दोषभेदविकल्पनैः।
रोगं विदित्वोपचरेद्रसभेदैर्यथेरितैः ॥ १३ ॥
भिषक् कर्त्ताऽथ करणं रसा दोषास्तु कारणम्।
कार्यमारोग्यमेवैकमनारोग्यमतोऽन्यथा ॥ १४ ॥
अध्यायानान्तु षट्षष्टचा ग्रथितार्थपदक्रमम्।
एवमेतदशेषेण तन्त्रमुत्तरमृद्धिमत् ॥ १५ ॥

---

मध्यक्षीणो वातः, अधिकक्षीणं पित्तं, हीनक्षीणः श्लेष्मा ६; इति। समं क्षीणा वातपित्तश्लेष्माणः १, इति सर्वदोषैः समक्षीणैरेकः।

१ क्षीणमध्याधिकैः द्विक्षीणैकवृद्धैस्तथा अपरैः द्विवृद्धैकक्षीणैश्च द्वादश भेदा भवन्ति, एवं त्रयो दोषा द्विषष्टिधा समाख्याताः कथिता इत्यर्थः। अत्र मध्यशब्देन स्वस्थो बोध्यः, अधिकशब्देन च वृद्धः।

तत्र क्षीणमध्याधिकभेदैन षड् यथा—क्षीणो वातः, स्वस्थं पित्तं, वृद्धः श्लेष्मा १, क्षीणो वातः, वृद्धं पित्तं, स्वस्थः श्लेष्मा २, स्वस्थो वातः, क्षीणं पित्तं, वृद्धः श्लेष्मा ३, वृद्धो वातः, क्षीणं पित्तं, स्वस्थः श्लेष्मा ४, स्वस्थो वातः, वृद्धं पित्तं क्षीणः श्लेष्मा ५, वृद्धो वातः, स्वस्थं पित्तं क्षीणः श्लेष्मा ६; इति।

अथ द्विक्षीणैकवृद्धास्त्रयो यथा—वातपित्ते क्षीणे, वृद्धः श्लेष्मा १, वातश्लेष्माणौ क्षीणौ, पित्तं वृद्धम् २, पित्तश्लेष्माणौ क्षीणौ, वृद्धो वातः ३; इति। अथ द्विवृद्धैकक्षीणास्त्रयो यथा—वातपित्ते वृद्धे क्षीणः श्लेष्मा १, वातश्लेष्माणौ वृद्धौ, क्षीणं पित्तं २, पित्तश्लेष्माणौ वृद्धौ क्षीणो वातः ३; इति।

२ उक्तविषयमुपसंहरति—**मिश्रा इति**। धातुभिरसृगादिभिर्मलैश्च मिश्रा वाततयो दोषा असंख्येयतां यान्तीत्यर्थः। तत्र धातुमलमिश्रस्य वातस्य लक्षणं वातव्याधिनिदाने द्रष्टव्यम्। पित्तश्लेष्मणोर्ग्रन्थान्तरेऽवलोकनीयम्। ३ तस्मात् = अपरिसंख्येयत्वात्, प्रसङ्गं = दोषधातुमलसंसर्गप्रसक्तिम्, संयम्य = सङ्कुच्येत्यर्थः। ४ अतोऽन्यथा = तत्तद्दोषप्रसङ्गसंयमनमन्तरेण, अनारोग्यं = नैवारोग्यं सम्भवेदित्यर्थः।

५ एतत्तन्त्रप्रशंसामाह—**अध्यायानामिति**। ग्रथितोऽर्थपदक्रमो यत्र तद् ग्रथितार्थपदक्रमम्।


CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्पष्टगूढार्थविज्ञानमगाढमन्दचेतसाम्।
यथाविधि यथाप्रश्नं भवतां परिकीर्त्तितम्॥ १६॥
सहोत्तरं त्वेतदधीत्य सर्वं ब्राह्मं विधानेन यथोदितेन।
न हीयतेऽर्थान्मनसोऽभ्युपेतादेतद्वचो ब्राह्ममतीव सत्यम्॥ १७॥

इति भगवता धन्वन्तरिणोपदिष्टायां ताच्छष्येण महर्षिणा सुश्रुतेन विरचितायां सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे दोषभेद-विकल्पो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः॥ ६६॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः।

---

१ स्पष्टं गूढार्थविज्ञानं यत्र तत् स्पष्टगूढार्थविज्ञानम्, एतदुत्तरं तन्त्रमित्यस्य विशेषणम्। अगाढमन्दचेतसामिति भवतामित्यस्य विशेषणम्। अगाढा न सेविता मन्दचेतसो मूर्खा यैस्ते तेषाम्, पण्डितसेवित्वेन मनस्विनामित्यर्थः। २ एतत्तन्त्राध्ययनफलमभिधत्ते—सहोत्तरमिति। ब्राह्मं=ब्रह्मणा प्रोक्तमित्यर्थः।

मगद्विजो हेमनमिश्रनामा मान्यो वदान्यः प्रपितामहो मे।
धनेश्वरस्तत्सुत आर्यवर्यः स्तुत्योऽभवद्योगपथेन गच्छन्॥ १॥
तदाद्यपुत्रः कपिलादिदेवो विद्वान् यशस्वी प्रथितो मनस्वी।
तदङ्गजोऽहं विवृतिं सुधाऽऽख्यां समाचरं सुश्रुतसंहितायाम्॥ २॥
क्वाहं मन्दमतिः क्वायमायुर्वेदसुधानिधिः।
किन्तु सूर्यप्रसादेन पारितेयं सुधा मया॥ ३॥
सप्ताङ्काङ्कशशाङ्केऽब्दे वैक्रमे विजयाभिधे।
विजयादशमीं प्राप्य प्राकाश्यं समनीयत॥ ४॥

इति पण्डितश्रीकपिलदेवमिश्रतनुजन्मना मिश्रोपाह्वश्रीसुदामाशर्मणा निर्म्मितायां सुश्रुतसंहितायां सुधाऽऽख्यटिप्पन्यामुत्तरतन्त्रे षट्षष्टितमोऽध्यायः।

---

प्राप्तिस्थानम्—

जयकृष्णदास-हरिदास गुप्तः—

चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय,

बनारस सिटी।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ श्रीः ॥

# संक्षेपतः यन्त्रों का परिचय।

( १ ) ऋक्षमुखयन्त्र

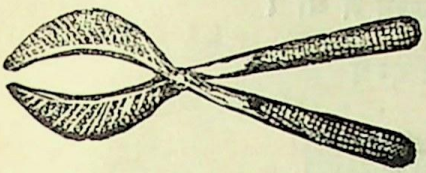

( २ ) कङ्कमुखयन्त्र

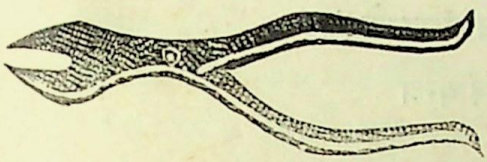

( ३ ) कङ्कमुखयन्त्र

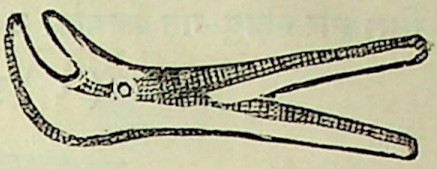

( ४ ) भृङ्गमुखयन्त्र

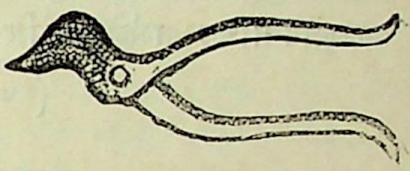

( १-४ ) ऋक्षमुख, कङ्कमुख और भृङ्गमुख नामक ये यन्त्र स्वस्तिक यन्त्रके अन्तर्गत हैं। इनका उपयोग अस्थि-निमग्न शल्योंका उद्धरण करने में होता था।

आधुनिक शल्यचिकित्सामें हड्डी पकड़ने, बन्दूककी गोली निकालने दाँत निकालने, कर्णनासागत शल्य निकालने तथा अन्य कामों के लिये अनेक पशु-पक्षियों के मुखानुकारी स्वस्तिकयन्त्र प्रयुक्त होते हैं। इनके नाम कहीं अन्वेषकानुसार, अधिकतर स्थानिककार्यानुसार रक्खे गये हैं। यथा- Ferguson's Forceps; Tarabeuf's Forceps; Bedfords' Forceps इत्यादि नाम अन्वेषकानुसार रक्खे हैं। Aural Forceps, Dental Forceps; Bone Forceps इत्यादि नाम स्थानिककार्यानुसार रक्खे गये हैं। कतिपय नाम प्राणियों के अङ्गसादृश्यानुसार रक्खे गये हैं। यथा सिंहमुख Lion Forceps, शशघातीमुख Dental Hawk Bill Forceps, मूषिकमुख Mouse teeth Forceps, मकरमुख Crocodile Forceps. श्वामुख Bull-dog Volsalla etc.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


( ५ ) सन्दंशयन्त्र

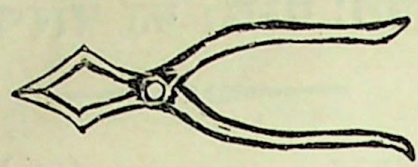

( ५ ) सन्दंश-यन्त्र दो प्रकारका होता है। इनका उपयोग त्वचा, मांस, सिरा और स्नायु-गत शल्योंका उद्धरण करने में था ।

( ६ ) मुचुण्डीयन्त्र

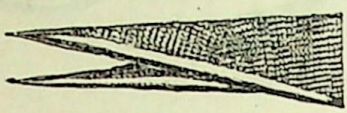

( ६ ) मुचुण्डीयन्त्र अष्टाङ्गसङ्ग्रह के अनुसार सन्दंशयन्त्रका भेद है। 'तद्वच्च मुचुण्डी, सा तु ऋजुफलक्षणा सूक्ष्मदन्ता सक्तद्विभुजा मूले रुचकनद्धा वलयपीडनाच्छिन्नार्मशेषगम्भीरव्रणाधिमांसहरणे—"

( ७ ) नाड़ीयन्त्र

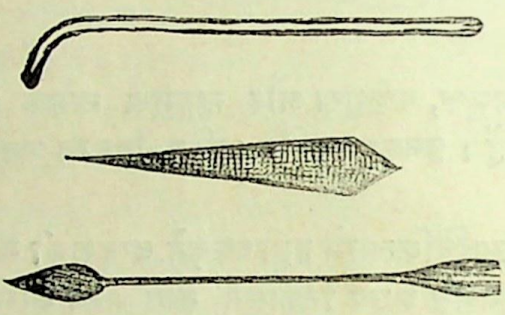

( ७ ) नाडीयन्त्र अनेक प्रकारके होते थे। इनकी संख्या २० थी। इनका उपयोग-स्रोतोंमें फँसे हुये शल्यको देखने एवं निकालने में, आशयोंका निरीक्षण करने में, कार्य में सुगमता प्राप्तिके लिये. आशय में भरे द्रव्य के आचूषण करने में होता था। ये यन्त्र स्रोतज्ञों के आदेशानुसार बनाये जाते थे। इसी से इनकी लम्बाई और चौड़ाई निश्चित नही थी।

आधुनिक शल्यचिकित्सा में बहुत नाडी यन्त्र व्यवहृत होते हैं। इनको डायरेक्टर Director, कहते हैं। यथा—Probe director, Hernia director, Lithotomy director; Fistula director इत्यादि।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दूषित दूध निकालने के लिये ( ब्रेस्ट पम्प'-Breast Pump ) नामक नाडी यन्त्र का उपयोग होता है। छाती में जब जलसंचय ( Pleurisy with effusion ) होता है, तब जल निकालने के लिये ( पोटेन्स अस्पिरेटर, Potains Aspirator ) नामक नाडीयन्त्र और पथरी फोड़ने के पश्चात् उसमें कण निकालने के लिये ( इवैक्युएटर Evacuator, ) नाडीयन्त्र संप्रति व्यवहृत होते हैं।

( ८ ) अर्शोयन्त्र

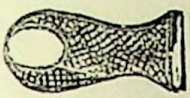

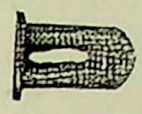

( ८ ) अर्शोयन्त्र नाडीयन्त्रान्तर्गत है। यह लोहे, हाथीदाँत, सींग या लकड़ी से निर्मित किया जाता था। आकार गौके स्तनके समान होता था, एवं बीच में खोखला रहता था। पुरुषोंके लिये इनका आकार ४ अङ्गुल एवं परिधि ९ अङ्गुल की होती थी। स्त्रियों के लिये अधिक चौड़े और ६ अङ्गुल परिधिके बनाये जाते थे। इनमें दो छिद्र होते थे। पहला छिद्र रोग के निरीक्षणार्थ और दूसरा कार्यार्थ होता था। यह कार्य प्रायः क्षार और दाह द्वारा होता था। छिद्रकी लम्बाई ३ अङ्गुल और परिधि अङ्गुष्ठ के समान होती थी। छिद्रसे आध अङ्गुल की दूरीपर आधा अङ्गुलभर ऊंचा एक गोल उभार होता था।

वाग्भटने उपरोक्त दोनों प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये भिन्न भिन्न यन्त्रों का उपयोग बताया है। इनकी लम्बाई एवं परिधि एक समान होती थी। ये दोनों इकट्ठे प्रयुक्त किये जाते थे। एकसे रोगपरीक्षण और दूसरे से क्रियासम्पादन होता था।

( ९ ) बस्तियन्त्र

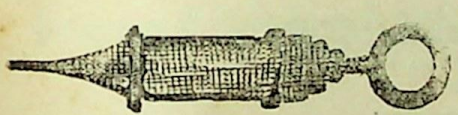

( १० ) बस्तियन्त्र

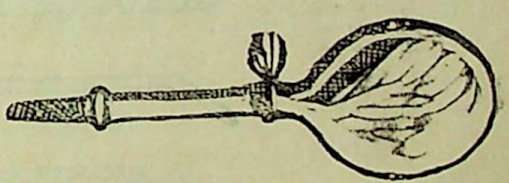

( ९-१० ) बस्तियन्त्र में एक थैली और एक नली होती थी। यह नली किसी धातु या लकड़ी की बनाई जाती थी; जो कि चिकनी, साफ, दृढ और

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौ की पूँछकी भाँति जड़ से मोटी और आगे से पतली होती थी। इसके सिरे पर गोल मुख होता था। इनकी आकृति, लंबाई और परिधिमें अवस्थानुसार भेद होता था।

बस्ति पशुओंके मूत्राशयसे बनाई जाती थी। दुर्गन्ध को दूर करनेके लिये चूने और पानी से अच्छीतरह साफ करके उसे खूब सुखा लेते थे। बस्ति स्वच्छ आर चिकनी होती थी। यदि मूत्राशय नही मिलता था, तो मेढक की त्वचा अथवा उदर-झिल्लीकी बनाई जाती थी। सबके अभाव में वस्त्र या चर्म्मकी बनाते थे।

( ११ ) जलोदरयन्त्र

( ११ ) जलोदरयन्त्र नाडीयन्त्रान्तर्गत है। यह किसी धातु अथवा मोरके पंखके समान खोखली वस्तु से बनाया जाता था। इसके दोनों ओर मुख होता था।

( १२ )अङ्गुलीयन्त्र

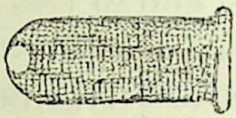

( १२ ) अंगुलीयन्त्र हाथीदाँत या लकड़ीसे बनाया जाता था। लम्बाई ४ अङ्गुलकी होती थी। इसका उपयोग रोगी का मुख खोलने आर अङ्गुलियों की रक्षा करने में होता था

( १३ ) दर्व्याकृतिशलाका

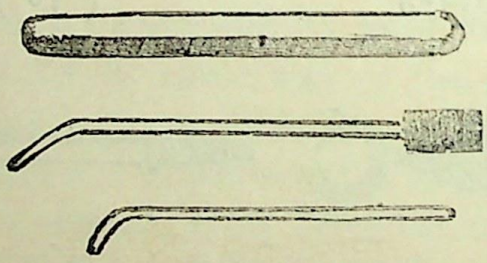

( १३ ) शलाकायन्त्र नाना प्रकारके हैं। इनकी संख्या अठाइस है। पर यह संख्या अनिश्चित है। कार्य, कारण और आवश्यकतासे इनकी लम्बाई

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


एवं परिधिमें भी भेद होता था। इनका उपयोग—एषण, व्यूहन ( अटकी हुई पूय को खींचने ) चालन, आहरण और स्रोतोगत शल्यके उद्धरण आदि में किया जाता था।

( १४ ) गर्भशङ्कुयन्त्र

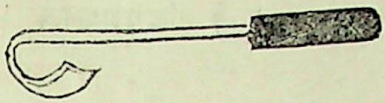

( १४ ) गर्भशङ्कुयन्त्रका अग्रभाग अङ्कुशके समान टेढ़ा होता था। इसका उपयोग मूढ़गर्भ में किया जाता था। यह शङ्कु मण्डलाग्रसे शिरोविदारण करने के पश्चात आहरण करने के लिये प्रयुक्त होता था। अंग्रेजी में इस यन्त्रको (ब्लन्ट हुक एण्ड क्रोचेट Blunt hook and Crotchet ) कहते हैं।

( १५ ) अश्मरीहरयन्त्र

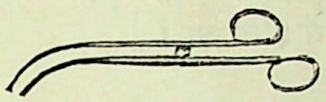

( १५ ) अश्मरीहरयन्त्र का उपयोग अश्मरी के शल्यकर्ममें और अश्मरी को मूत्राशयसे निकालने में किया जाता था।

## संक्षेपतः शस्त्रोंका परिचय।

( १ ) मण्डलाग्रशस्त्र

( १ ) मण्डलाग्रशस्त्रका एक सिरा गोल तथा दूसरा सिरा उस्तरे के समान होता था। वाग्भट के अनुसार इसका आकार तर्जनीके नख की तरह होता था। इसका उपयोग –गलशुण्डिकारोग में, मूढगर्भ में और आँख के रोग आदि में, तथा आँखकी वृद्धि ( अर्श ) में, एवं जिह्वा के अधि-जिह्वारोग में छेदन लेखन के लिये था।

( २ ) करपत्रशस्त्र

( २ ) करपत्रशस्त्र के शब्दार्थसे विदित होता है कि यह हाथ की अङ्गु-

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लियों के समान होता था और इससे छेदन और लेखन का कार्य लिया जाता था। कोई आचार्य इसे बढ़ई की आरीके समान स्वीकार करते हैं। इसका उपयोग हड्डियोंके काटने में होता था। अंग्रेजीमें ( 'बोन सा' Bone sow ) कहते हैं।

### ( ३ ) वृद्धिपत्रशस्त्र

( ३ ) वृद्धिपत्रशस्त्रका आकार 'वृद्धि' वृक्ष के पत्ते की तरह होता था। इसके दो स्वरूप थे। सीधा, जिससे त्वचा की विद्रधियाँ खोली जाती थीं, वक्र, जिससे गम्भीरविद्रधियाँ खोली जाती थीं। इसका उपयोग—व्रणके पाससे बालोंको हटानेमें, छेदन या लेखन करने में, वृद्धिरोगके शल्यकर्ममें और सिरमें काकपद करनेमें होता था।

### ( ४ ) नखशस्त्र

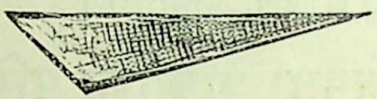

( ४ ) नखशस्त्र दो प्रकारका होता था। वक्रधार और ऋजुधार। इसका उपयोग—छेदन, भेदन, लेखन और विशेषतः आचूषण क्रिया में किया जाता था। ( नेलपेरर Nail Parer ) कहते हैं।

### ( ५ ) मुद्रिकाशस्त्र

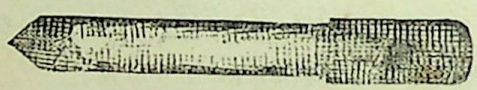

( ५ ) मुद्रिका शस्त्रका आकार तर्जनीके प्रथमपर्वकी भाँति होता था। वाग्भटके अनुसार इसका दूसरा नाम 'अङ्गुलिशस्त्र' था। इसका उपयोग—गलरोग और मूढगर्भ ( विषकुम्भक ) में छेदन भेदनके लिये होता था। अंग्रेजीमें इसे ( फिंगर नाइफ Finger Knife ) कह सकते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## ( ६ ) उत्पलपत्रशस्त्र

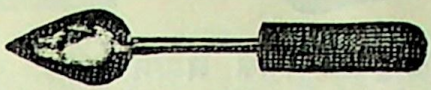

( ६ ) उत्पलपत्रशस्त्रका आकार कमल के पत्ते की भाँति होता था। इसका अग्रभाग नोकदार एवं तेज होता था। इसका उपयोग—काटने, छेदने और मुख्यतः सिरावेध में होता था। अंग्रेजी में इसको ( लान्सेट Lancet) कह सकते हैं।

## ( ७ ) अर्द्धधारशस्त्र

( ७ ) अर्द्धधारशस्त्रको कई आचार्य एक धारवाला मानते हैं। डल्हणने इसे लम्बाईमें आधी धारवाला कहा है। इसका उपयोग शरीर को विभक्त करने में होता था।

## ( ८ ) सूचीशस्त्र

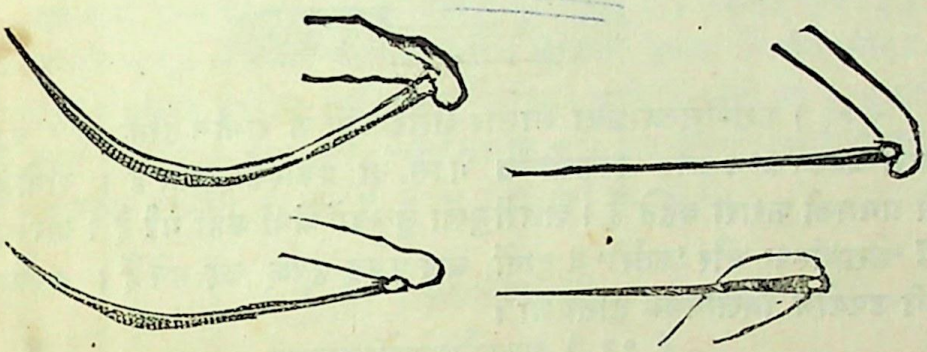

( ८ ) सूचीशस्त्रके तीन भेद थे। पहला, तीन अङ्गुल लम्बा, जो मांसल स्थानोंको सीनेमें प्रयुक्त किया जाता था। दूसरा, दाई अङ्गुल लम्बा, जिसका उपयोग जोड़ों के पास जहां कि मांसल-पेशियाँ कम हैं, वहां होता था। तीसरा, दो अंगुल लम्बा जिसका उपयोग आमाशय, आँत, अण्डकोश आदि स्थानों को सीने के लिये होता था। सीनेके अतिरिक्त इनका उपयोग कोष्ठ से द्रव निकालने में, गतिव्रण तथा अर्बुदों की चिकित्सामें होता था। इससे चिकित्सा में क्षारसूत्र प्रविष्ट करते थे। अथवा बन्ध देकर रक्तसञ्चार रोका जाता था। ये सब सूचीशस्त्र धनुषके समान अर्द्धगोल होते थे।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


( ९ ) कुशपत्रशस्त्र

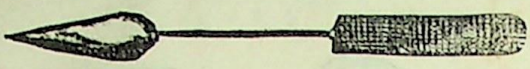

( ९ ) कुशपत्रशस्त्र कुशके पत्तेके समान बारीक, नोकदार पतला और तेजधारका होता था। इसका उपयोग विद्रधिसे पूय निकालनेके लिये था। इसे प्रायः कोमल स्थानों पर व्यवहार करते थे। अंग्रेजी शल्यचिकित्सा में इसका सादृश्य ( 'पेजेटका नाइफ या बस्तुरी' Paget's Knife or Bistoury ) के साथ होता है।

( १० ) आटीमुखशस्त्रम्

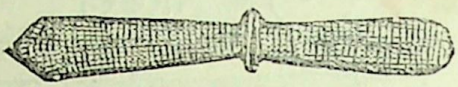

( १० ) आटीमुखशस्त्र की आकृति 'आटी' पक्षीके समान होती थी। इसका भी उपयोग पूय निकालनेके लिये था। आटीमुख को ( 'हाकबिलसीज़र्स' Hawk Bill Scissors ) कहते हैं।

( ११ ) शरारीमुखशस्त्र

( ११ ) शरारीमुखशस्त्रका आकार शरारीपक्षी के समान होता था। यह पक्षी धवलस्कन्ध और रक्तशीर्षक भेदसे दो प्रकारका होता है। दोनोंमें से प्रथमको शरारी कहते हैं। शरारीमुखी सुश्रुतमें कैंची कही गई है। वाग्भट में 'शरार्यास्य' और 'कर्तरी' ये दोनों शस्त्र पृथक् पृथक् कहे गये हैं। इसका भी उपयोग विस्रावणमें होता था।

( १२ ) अन्तर्मुखकर्त्तरिकाशस्त्र

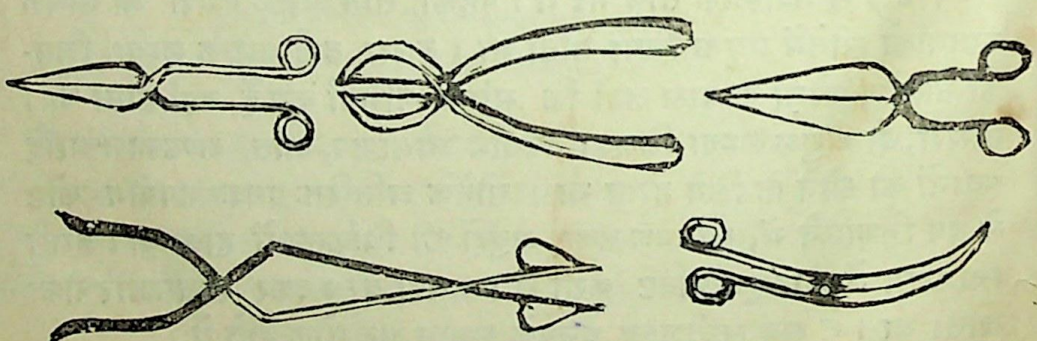

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



( १२ ) अन्तर्मुखशस्त्र भी एक प्रकारकी कर्तरी का ही भेद है। वाग्भट में इसका आकार अर्धचन्द्राकार लिखा है। और इसका उपयोग विद्रधियों में से पूय निकालने को बताया है। 'अथवा अर्धचन्द्रेण शस्त्रेणैव मृतगर्भस्य बाहुयुगलं सन्छिद्य बाहू निस्सारयेत्' हारीत के इस उक्ति से इस शस्त्रका उपयोग मूढगर्भ में बाहुच्छेदन करने का भी है। अंग्रेजी में कर्तरी को ( पेयर औफ सीज़र्स Pair of Scissors ) कहते हैं।

( १३ ) त्रिकूर्चकशस्त्र

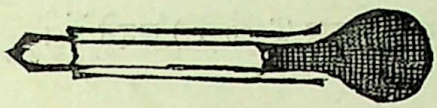

( १३ ) त्रिकूर्चकशस्त्र लकड़ी या धातुके मूठ में तीन कूर्चक ( नोकदार कूचियाँ ) लगाकर बनाया जाता था। इन कूर्चकों के बीच का अन्तर एक चावलका रहता था। इसका उपयोग कुष्ठरोग में और नासार्शस में लेखन कर्म से रक्त निकालने में होता था।

वाग्भटमें इसी प्रकारके दो अन्यशस्त्रों का वर्णन है। पहला 'कूर्च' है। एक लकड़ी के मूठ में सात या आठसूइयाँ लगाकर इसका निर्माण किया जाता था। इसका उपयोग उपरि त्वचा के लेखन करने में होता था। दूसरे का नाम 'खज' है। इसमें डेढ़ अङ्गुल लम्बी आठ तेज सूइयाँ लगी रीहत थीं। इसका उपयोग नासार्शस में रक्त निकालने का था।

( १४ ) कुठारिकाशस्त्र

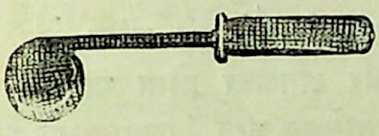

( १४ ) कुठारिका शस्त्र के लकड़ी के बने हत्थेकी लंबाई साढ़े सात अङ्गुल की होती थी। इसका फलक गौके दांतके आकार का एक अङ्गुल लंबा होता था। और उपयोग अस्थिस्थित सिराओं के वेध में किया जाता था। अंग्रेजी में कुठारिका को ( 'एक्सशेप्ड्नाइफ' Axe-shaped Knife ) कहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


( १५ ) व्रीहिमुखशस्त्र

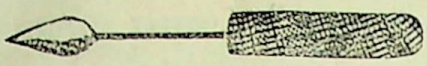

( १५ ) व्रीहिमुखशस्त्रका मुख व्रीहि के समान आगे से तेज होता था। इसका उपयोग-मांसल प्रदेशीय सिराओं के वेध करने में, वृद्धि, जलोदर, गुल्म और विद्रधि आदिके वेधन एवं भेदन करने में किया जाता था। इसका प्रयोग करते समय शस्त्रको इस प्रकार पकड़ा जाता था कि इसका मूठ करतलके मध्यमें और नोक अंगुष्ठ तथा तर्जनी अंगुलियोंके मध्यमें आ जाय। अंग्रेजी में इसे ( ट्रोकार Trocar ) कहते हैं।

( १६ ) आराशस्त्रम्

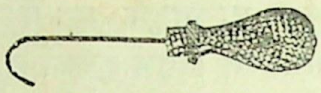

( १६ ) आराशस्त्र लकड़ी के मूठ में मोटी सूई लगाकर बनाया जाता था। मूठ गौके पूँछ के समान पीछे से मोटा होता था। इसका सिरा तेज नोकदार रहता था। आकृति चमारोंके सूये जैसी मिलती थी। इसका उपयोग-शोथके पक्वापक्वका निश्चय करने में कर्णपाली रोग में, वेधन करने में तथा अस्थि आदिके वेधन करनेमें किया जाता था। अंग्रेजी में आरा को ('आल' Awl ) कहते हैं।

( १७ ) वेतसपत्रशस्त्र

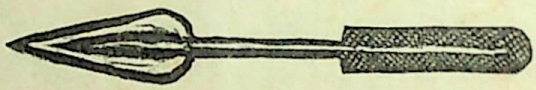

( १७ ) वेतसपत्रशस्त्र वेतके पत्ते की भांति तेज शस्त्र था। इसका मूठ और शस्त्र दोनों चार चार अंगुलका होता था और चौड़ाई एक अंगुलकी होती थी। इसका उपयोग वेधन करने में किया जाता था। अंग्रेजी में इसको ('नैरो क्लेडेडनाइफ या स्कालपेल Narrow Claded Knife or Scalpel ) कह सकते हैं।

( १८ ) बडिशशस्त्र

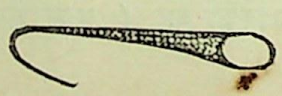

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



( १८ ) बड़िशशस्त्र 'वंसी' ( मछली को पकड़नेवाले हुक ) के समान सिरे पर मुड़ा हुआ आधे चन्द्रमाकी भांति बनाया जाता था। और जौके पत्ते की भांति तेज रहता था। इसका उपयोग—मूत्रमार्ग में फँसी अश्मरी को खींचने में, अक्षिरोगों में और गलशुण्डिकामें किया जाता था।

( १९ ) दन्तशङ्कुशस्त्र

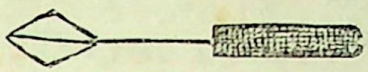

( १९ ) दन्तशङ्कुशस्त्र चौखँटा एवं जौके पत्ते की भांति तेज किनारों वाला शस्त्र था। इसका उपयोग-कपालिका, दन्तशर्करा आदि दोषोंको दूर करने में होता था।

( २० ) एषणीशस्त्र

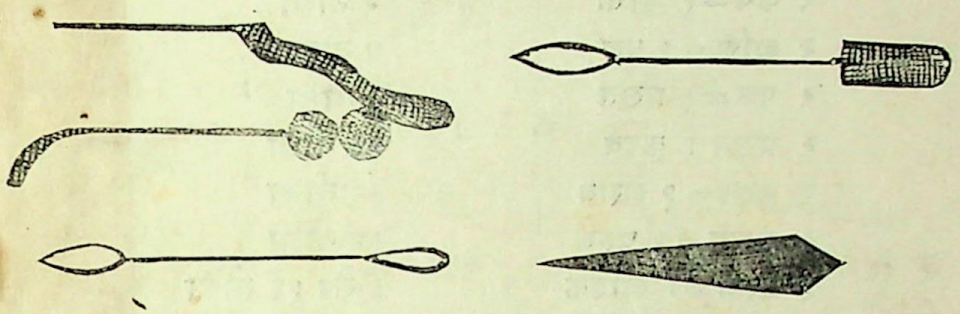

( २० ) एषणी शस्त्र का सिरा गण्डूपदके समान होता था। यह शस्त्र दो प्रकारका था। पहला कठिन, जो लोहे आदि कठिन वस्तु से बनाया जाता था। और इसका उपयोग गम्भीर-व्रणों की परीक्षा में किया जाता था। दूसरा मृदु, जो नाल आदि मृदु वस्तु से बनाया जाता था। और इसका उपयोग ऊपरी त्वचाके व्रणों की परीक्षामें था। अन्वेषण, भेदन और अनुलोमन ये तीन कार्य एषणी के थे। अंग्रेजी में ( शार्प प्रोब Sharp Probe ) या ( 'नीडल शेप्ड प्रोब' Needle Shaeed Probe ) कह सकते हैं।

वाग्भटमें एक ऐसी एषणी का वर्णन है, जिसमें छिद्र होता था। उसमें सूत्र डालकर भगन्दर आदि में प्रयुक्त किया जाता था। इसके अतिरिक्त वाग्भट में 'कुरव' के समान आकारवाली एषणी का वर्णन है। जिसका उपयोग 'लिङ्गनाश' में होता था। लिंगनाशवेधनी शलाका को अंग्रेजी में ( 'क्याटाराक्ट नीडल' Cataract Needle ) कहते हैं।

---

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वर्तमान और मागध मानकी तुलना।

| मागधमान | आधुनिकमान |
|---|---|
| ८ सरसों = १ यव | |
| ४ यव = १ रत्ती | १ रत्ती |
| ६ रत्ती = १ माषक | ६ रत्ती |
| ४ माषा = १ शाण | ३ माषा |
| २ शाण = १ कोल | ५ माषे $\frac{१}{२}$ तोला |
| २ कोल = १ कर्ष | १ तोला |
| २ कर्ष = १ शुक्ति | २ तोला |
| २ शुक्ति = १ पल | ४ तोला |
| २ पल = १ प्रसृत | ८ तोला |
| २ प्रसृत १ कुडव | १६ तोला |
| २ कुडव = १ शराब | ३२ तोला |
| २ शराब = १ प्रस्थ | ६४ तोला |
| ४ प्रस्थ = १ आढक | ३ सेर १६ तोला |
| ४ आढक = १ द्रोण | १२ सेर ६४ तोला |
| २ द्रोण = १ शूर्प | २५ सेर ४८ तोला |
| २ शूर्प = १ द्रोणी | ५१ सेर १६ तोला |
| ४ द्रोणी = १ खारी | २०४ सेर ६४ तोला |
| २००० पल = १ भार | १०० सेर |
| १०० पल = १ तुला | ५ सेर |

१ सेर = ८० तोला

पाठ्य-पुस्तक-विभाग

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

संस्कृत विश्वविद्यालय पुस्तकालय
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SAMPLE STOCK VERIFICATION

19..

VERIFIED BY.....

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar